PURODHA

VOL. I
1963

G. K. V. LIB.
HARDWAR

112299

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

वर्ष १ फरवरी १९६३ अंक ३

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

112290

HL

PURODHA

Vol. 1
1963

G.K.V.
Lib
HARDWAR

प्रकाशक

श्रीअरविंद सोसायटी

पांडिचेरी-२

सूची

आवाहन	देवदत्त	v
मातृवाणी	श्रीमां	vi
बिखरे फूल	श्रीअरविंद	vii
संपादकीय		viii
मैं हूं कृतज्ञता	श्रीमां	१
क्षत्रिय का आदर्श	श्रीअरविंद	३
वेद का राष्ट्रगान	जगन्नाथ वेदालंकार	६
त्याग का आदर्श	गजराज सुखदेव	१०
अजगर और कछुआ	संतोषकुमार	१२
वनस्पतियो	डा. शिवप्रसाद सिंह	१४
खंडित फूल	पवनकुमार जैन	१४
सागर-कन्या डलफिन	सुमित्रा नाहर	१५
गुरु गोविंदसिंह	अजरा परवीन	१९
फूल	डा. अमृता भारती	२२
अनोखी दीवार	कुंज अलकापुरी	२३
अमेरिकी बाल-जीवन	डा. प्रभाकर माचवे	२६
पतंग और प्रायश्चित्त	शांति रानी	२८
पुकारती वसुन्धरा	मधुच्छंदा	३०
लड्डू वाले चाचा	वन्दना जैन	३१
भारत जननी	सुधा	३३
बूझो तो जानें		३३
तन्दुरुस्ती हजार नियामत	प्रणवकुमार भट्टाचार्य	३४
बैठो, कुछ बात करें		३६
सेगैं साहब की बकरी	आलफोंस दोदे	३७
खेल तमाशे	रमेश सक्सेना	४२
निवेदन	सकलेश	४४
जुजुत्सु सीखो	अनिरुद्ध सरकार	४५
शिवाजी को सीख	दीपंकर सहस्रबुद्धे	४९
किनारा दूर रे	वरुणेश	५२
युरेका		५३
कार्नर बाल		५६
दुनिया रंग-बिरंगी		५७

आवरण
संजीवन विश्वास

रंगीन छवि
जानिना

चित्रकार
कृष्णलाल
अनिरुद्ध सरकार
मिता चक्रवर्ती
ऊषा पटेल
प्रीति
उपेन्द्र
कुमुद

हमारे प्रतिनिधि
रमेश सक्सेना
नयी दिल्ली

मूल्य
एक प्रति : रु. १.५० न. पै.
वार्षिक चंदा : रु. ५.००

मुद्रक
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस
पांडिचेरी–२

Director of Publication: Aniruddha Sircar, Sri Aurobindo Society, Pondicherry-2
48/1/63/750

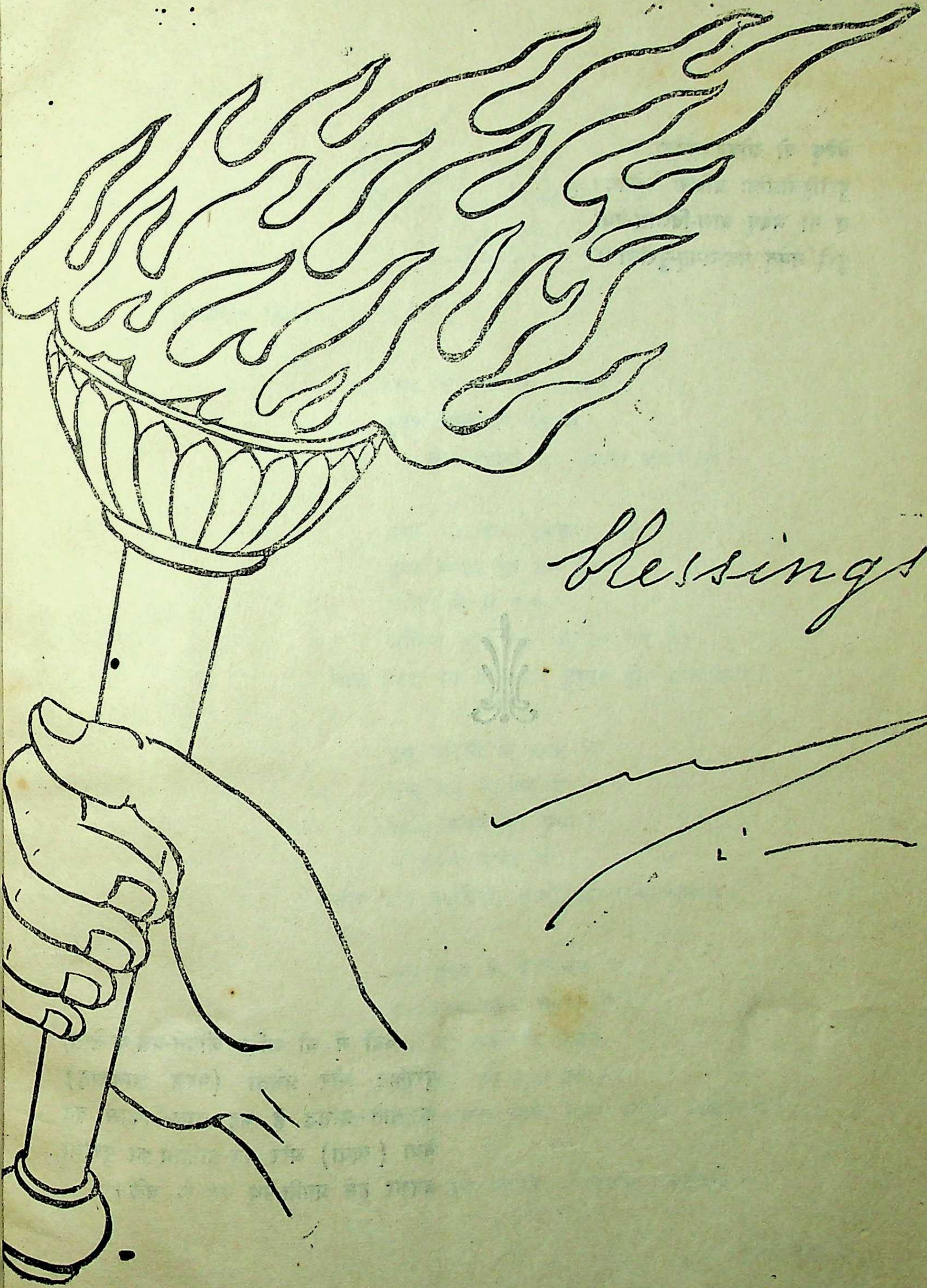

Blessings

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता
पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधा
पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधा ॥

* * *

वेदों में जो अग्नि जीवन-यज्ञ के नेता,
पुरोहित और प्रचेता (परम ज्ञानवान्)
के नाते प्रसिद्ध है वह बाल-विकास का
वेधा (ब्रह्मा) और पत्र-साहित्य का पुरोधा
बनकर हमें प्रगति-पथ पर ले चले।

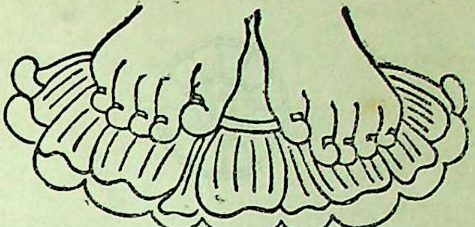

(आवाहन गीत)

प्राण के पल पल तरसते
कुहक अन्तरघन बरसते
तुम पधारो मां, अनन्त प्रकाशिनी !

प्रलय पारावार उमड़ा,
अन्ध बादल छा गये हैं।
ज्योति के ये शत्रु,
अग्निल द्वार तक भी आ गये हैं।
आज फिर नव दर्प, नव हुंकार हो, उल्लासिनी !

इस धरित्री के नयन के
अश्रु अब निःशेष हैं।
कोटि कण्ठों की पुकारों
में करुण आवेश हैं।
वीर मार्ग प्रदर्शिनी, आओ अमित बलदायिनी !

मम हृदय के कमल-दल पर
ज्योतिमय अपने चरण धर।
दान दो तव गंध पावन
देह, मन सब कुछ उठे भर।
फिर नवीन प्रभात आये, दिव्य ज्योति विकासिनी !

तुम पधारो मां अनन्त प्रकाशिनी !

—देवदत्त

भारत इस देश की जमीन, नदियां और पहाड़ ही नहीं ह और न वह इस देश के वासियों का सामूहिक नाम ही है। भारत एक जीवित सत्ता है, ठीक उसी प्रकार जीवित जैसे शिव आदि देवता। सभी देशों की अपनी-अपनी आत्मा होती है और यदि उनमें (सीमासंबंधी) राजनीतिक परिवर्तन कर दिये जायें तो वे अवास्तविक होंगे। उदाहरण के लिए, यद्यपि आस्ट्रिया जर्मनी का भाग बन गया है फिर भी वह जर्मनी से बिलकुल अलग है और उसकी आत्मा विक्षुब्ध है।[1] भारतमाता शिव की तरह ही अधिमानस-स्तर की देवी है और यदि वह चाहे तो मानव-देह में भी प्रकट हो सकती है।

जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी अंतरात्मा उसकी वास्तविक सत्ता होती है जो उसकी भवितव्यता को कम वा अधिक प्रकट रूप में परिचालित करती है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की भी अंतरात्मा होती है। वही उसकी सच्ची सत्ता होती है और उसकी भवितव्यता को पर्दे के पीछे से निर्मित करती है। देश की यह आत्मा ही राष्ट्रीय प्रतिभा होती है, जाति की भावना होती है, राष्ट्रीय अभीप्सा का केंद्र होती है, किसी देश के जीवन में जो कुछ सुन्दर, उत्कृष्ट, महान् और उदार होता है उसका मूल स्रोत यही होती है। सच्चे देशभक्त प्रत्यक्ष सत्ता के रूप में इसकी उपस्थिति अनुभव करते हैं। इसीको भारतवर्ष में एक दिव्य-प्राय रूप दिया गया है। जो लोग अपने देश से सच्चा प्रेम करते हैं वे इसे भारतमाता कहकर पुकारते हैं और अपने देश के हित के लिए इसीके आगे नित्य प्रार्थना करते हैं। यह भारतमाता ही देश के सच्चे आदर्श, विश्व में उसके सच्चे उद्देश्य का प्रतीक है, उसका मूर्त्तिमान् रूप है।

हे हमारी मां, भारत की आत्मा! हमें पथ दिखा जिससे कि हम सदा महान् आदर्शों का ही पक्ष लें और मनुष्यों को तेरा सच्चा रूप दिखा सकें, उन्हें बता सकें कि आत्मा के जगत् में तू नेता है और सभी राष्ट्रों का मित्र एवं सहायक है।

—श्रीमां

---

[1] यह उस समय की बात है जब हिटलर ने बलपूर्वक आस्ट्रिया को जर्मनी में मिला लिया था। –सं.

ऐसा कौनसा क्षेत्र है जिसमें भारत ने बड़े पैमाने पर ब्यौरों की पूर्णता को ध्यान में रखते हुए प्रयत्न नहीं किया, सफल नहीं हुआ, रचना नहीं की ?

यह प्रमाणित हो चुका है कि आधुनिक युग के पहले वह विज्ञान में किसी भी देश से आगे बढ़ा हुआ था और यूरोप अपने भौतिक विज्ञान के आरंभ के लिए भारत का उतना ही ऋणी है जितना यूनान का।

साहित्य में, मस्तिष्क के क्षेत्र में, भारत का जीवन और निर्माण महान् रहा है।

वेद और उपनिषद् भारत के मात्र दर्शन-शास्त्रों और धर्मों के ही नहीं, वरन् भारत की सारी कला, काव्य और साहित्य के मूल स्रोत हैं।

भारतवर्ष भारतशक्ति है, एक महान् आध्यात्मिक परिकल्पना की जीवंत शक्ति और इसके प्रति निष्ठावान् रहना ही उसके जीवन का मूल सिद्धांत है। इसीके बल पर तो उसकी अमर राष्ट्रों में गणना रही है; यही रहा है उसके आश्चर्यजनक स्थायित्व का, उसके दीर्घ जीवन एवं पुनरुज्जीवन की शाश्वत शक्ति का रहस्य।

भारत माता पृथ्वी का एक टुकड़ा नहीं है, वह एक शक्ति है, एक देवी है.....।

मैं स्वदेश को मां मानता हूं, उसकी भक्ति करता हूं, पूजा करता हूं। मां की छाती पर बैठकर यदि कोई राक्षस रक्तपान करने के लिए उद्यत हो तो भला लड़का क्या करता है? निश्चिंत होकर भोजन करने, स्त्री-पुत्र के साथ आमोद-प्रमोद करने के लिए बैठ जाता है या मां का उद्धार करने के लिए दौड़ पड़ता है? .....

जिस दिन हम अखण्डरूपा मातृ-मूर्त्ति के दर्शन करेंगे, उसके रूप-लावण्य से मुग्ध होकर उसके कार्य में जीवन उत्सर्ग करने के लिए उन्मत्त हो जायेंगे, उस दिन, सब बाधाएं तिरोहित हो जायेंगी, भारत की एकता और उन्नति सहज-साध्य हो जायगी।

—श्रीअरविंद

कुछ अपने बारे में

पुरोधा का तीसरा अंक पाठकों के हाथ में है। अगले अंक से हम कुछ पविरर्तन करने की सोच रहे हैं ताकि पुरोधा विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी हो सके। पुरोधा के पाठकों में से बहुत से साहित्यिक या सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लिया करते होंगे, अगर उनके संक्षिप्त समाचार भेजे जायं तो हम उन्हें अवश्य छापेंगे। समाचार में विशेष रूप से यह बताया जाय कि आयोजन की विशेषता क्या थी और उसका उद्देश्य क्या था। इससे दूसरे विद्यार्थियों को भी सहायता मिलेगी

हमारे पाठक भारत के भिन्न भिन्न कोनों में बिखरे हुए हैं। प्रत्येक प्रदेश में वहां की लोक कथाएं, नानी की कहानियां, लोरियां अलग-अलग तरह की होती हैं। उनमें भिन्नता होते हुए भी एकता होती है। हमारे पाठक यदि इस प्रकार की चीजें लिख भेजें तो उनसे हमारा आपस में परिचय बढ़ेगा। जहां तक हो सके कहानी या गीत के स्वाभाविक वातावरण को बनाये रखने का प्रयास किया जाय। आञ्चलिक भाषाओं की कहानी में अपने यहां के कुछ विशेष शब्द या मुहावरे बिखरे रहें तो और भी अच्छा। जैसे बुन्देलखण्ड की कहानी में बुंदेली मुहावरे या ब्रजमंडल की कहानी में कहीं कहीं ब्रज भाषा की छटा। इसी प्रकार अन्य भाषाओं की कहानियों में वहां के गीतों की एक आध कड़ी देवनागरी लिपि में दे दी जाय।

इसी प्रकार हम भारत तथा अन्य देशों के महत्त्वपूर्ण स्थानों, नदी-पहाड़ों का परिचय, महापुरुषों की जीवनी आदि देने का प्रयास करेंगे। स्वास्थ्य के लिये कसरत आदि के बारे में तो लेख दिये ही जा रहे हैं, इसके साथ ही स्वास्थ्यप्रद भोजन, फल, तरकारी आदि का भी परिचय दिया जायगा।

हम प्रत्येक अंक में एक विषय की घोषणा करेंगे और अपने विद्यार्थी पाठकों से आशा करेंगे कि वे उस विषय पर कहानी, निबंध या कविता लिखकर भेजें। सर्वोत्तम कृति पर कुछ उपहार दिया जायगा और उसे पुरोधा में प्रकाशित किया जायगा। इस बार एक विषय दिया जा रहा है। इस पर लिखकर ३० अप्रैल तक लेख भेज दीजिये। रचनाओं के साथ टिकट रहे तो उत्तर देने में आसानी होगी।

विषय : **मैं पढ़-लिखकर क्या बनूंगा।**

इनके अतिरिक्त भी कुछ योजनाएं हैं पर हम घोषणा करने की जगह उन्हें क्रियान्वित करके पाठकों के सामने रखने का प्रयास करेंगे। पाठक यदि प्रत्येक अंक के बाद हमें यह बताते चलें कि उन्हें कौन-कौनसी चीजें पसंद आयीं और आगे के लिए कुछ सुझाव देते चलें तो उनकी पुरोधा अधिक उपयोगी बन सकेगी।

सम्पादक

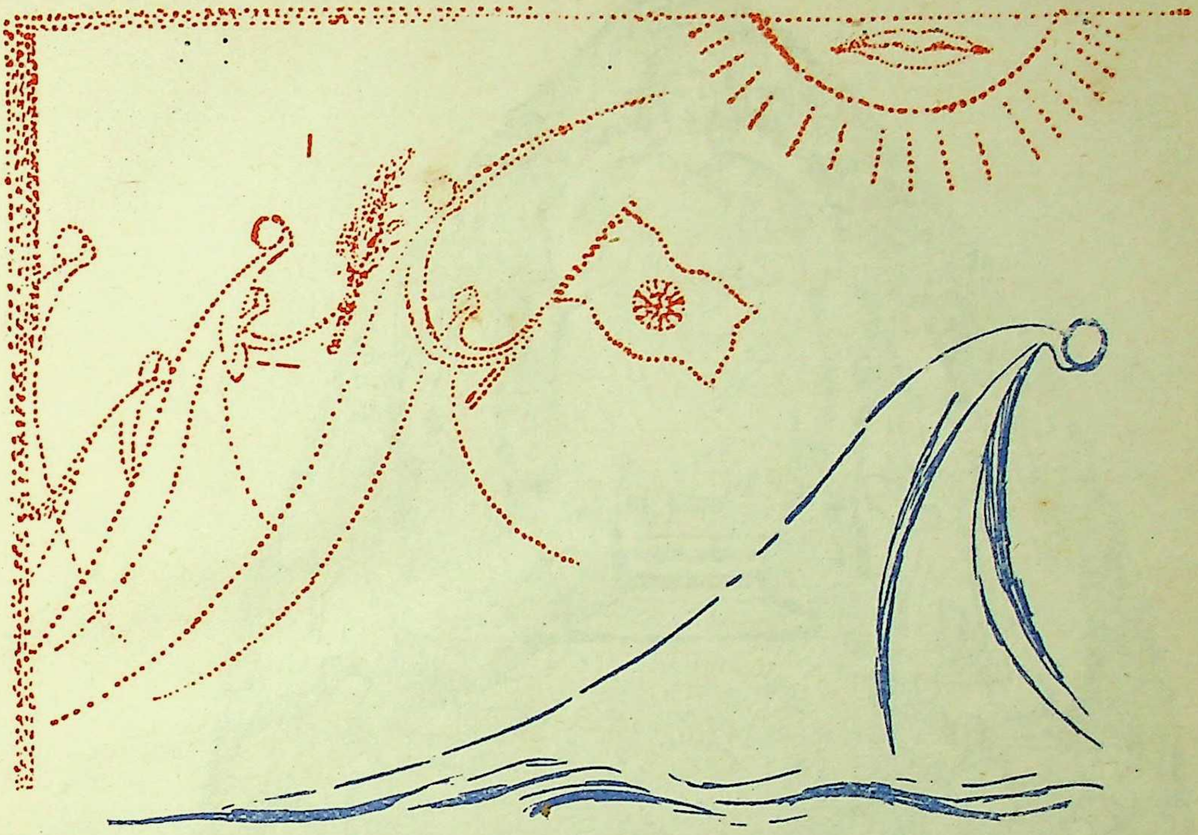

Prière des élèves

Fais de nous les guerriers héroïques que nous aspirons à devenir, pour livrer avec succès la grande bataille de l'avenir qui doit naître, contre le passé qui veut durer; afin que les choses nouvelles puissent se manifester et que nous soyons prêts à les recevoir.

—La Mère

हमें वीर योद्धा बना, यही है हमारी अभीप्सा। हम भविष्य के महान् संग्राम में सफलतापूर्वक युद्ध कर सकें--भविष्य के उस संग्राम में जो अभी भी बने रहने की चेष्टा करनेवाले भूतकाल के विरुद्ध उत्पन्न होने जा रहा है; जिससे कि नवीन चीजें अभिव्यक्त हों और हम उन्हें ग्रहण करने के लिए तैयार हो सकें।

श्रीमां

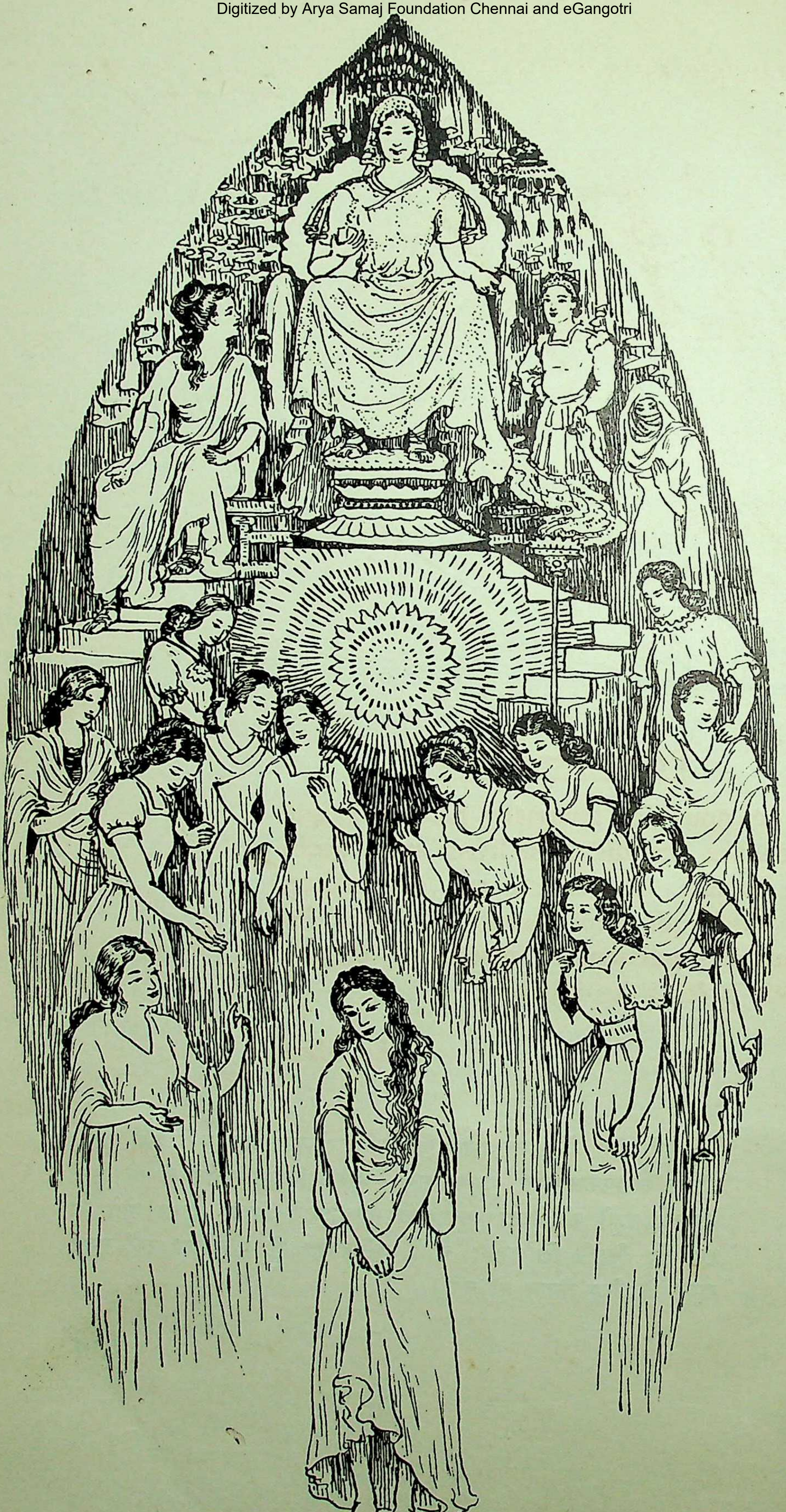

मैं हूं कृतज्ञता

—श्रीमां

एक भव्य राजमहल। बीचोंबीच स्थापित एक गुप्त देवालय। उसकी देहली पर अभीतक किसी का पांव नहीं पड़ा था। उसके बाहरी भागों में ही किसी मर्त्य का प्रवेश नहीं हो सका था तो गुप्त देवालय की कौन कहे! कारण, वह स्थित था एक ऊंचे बादल के शिखर पर। आजतक कोई विरला ही वहां का मार्ग खोज निकालने में सफल हुआ होगा।

वह था सत्य का राजप्रासाद।

एक बार यहां एक उत्सव का आयोजन हुआ। पर यहां मनुष्यों को आमंत्रित नहीं किया गया था। आमंत्रित थे मानव से अत्यंत भिन्न जाति के व्यक्ति—छोटे-बड़े देवी और देवता—जिन्हें धरती के लोक **सद्गुणों** के नाम से पूजते हैं।

प्रासाद के अगले भाग में एक विशाल कक्ष था जिसकी दीवारें, फर्श और छत स्वयं प्रकाशमान थे और हजारों झलमलाती बत्तियों से और भी जगमगा रहे थे।

वह था **ज्ञान-शक्ति** का महाकक्ष। प्रकाश फर्श पर पड़कर गहरा, सुन्दर नीलाभ हो रहा था। छत की ओर उठता हुआ वह अधिकाधिक तेज होता गया था जहां रत्नखचित झाड़-फानूस लटके थे और अपने सहस्र मुखों से उज्ज्वल किरणों को छिटका रहे थे।

सब सद्गुण आये तो अलग-अलग, पर तुरंत ही आपस में हिल-मिल गये। वे खुश थे कि कम से कम एक बार एक-दूसरे से भेंट तो हो गयी। सृष्टि में तो वे प्रायः अलग-अलग बिखरे रहते हैं, मानों विजातीय सत्ताओं की भीड़ में बिलकुल एकाकी हों।

उस समारोह की नेत्री थी **सच्चाई**। वह स्वच्छ जल जैसी पारदर्शी पोशाक पहने और हाथ में शुभ्र स्फटिक लिये थी। इसमें से वस्तुएं वैसी ही दिखायी देती थीं जैसी कि वे हैं अर्थात् साधारणतः जैसी दीखती हैं उससे बिलकुल भिन्न। कारण, उसमें वस्तुएं बिना विकृति के प्रतिबिंबित होती थीं।

उसके समीप ही स्वमिभक्त अंगरक्षकों की तरह खड़े थे—**साहस** और **विनय**। **विनय**—सम्मानित और गौरवान्वित। **साहस** का था उन्नत ललाट, चमकती आंखें, विहंसता और दृढ़ वदन, शांत-स्थिर निश्चयात्मक भावयुक्त।

साहस के पास ही, उसके हाथ में हाथ डाले, पूरी तरह ढकी हुई खड़ी थी एक नारी। परदे में से दीख पड़ रही थीं केवल उसकी अंतर्भेदी, चमकती दो आंखें। वह थी **दूरदर्शिता**।

सबके बीच, इधर-उधर आती-जाती, फिर भी सब के पास उपस्थित-सी थी **उदारता**। शांत और सचेत, क्रियाशील और विवेकपूर्ण। जिधर से भी वह गुजरती थी, अपने पीछे हलके

*

शुभ्र प्रकाश की एक रेखा छोड़ जाती थी। जो प्रकाश वह बिखेर रही थी, जो उसमें से छनकर छिटक रहा था, वह उसे अदृश्य रूप में अपनी अनन्य सखी, अविभेद्य साथिन, जुड़वां बहिन **न्यायशीलता** से मिला था।

और **उदारता** के इर्द-गिर्द तेजस्वी सहचरियों के रूप में इधर-उधर घूम-फिर रही थीं **धीरता, दयालुता, कोमलता** तथा और भी बहुत-से देवी-देवता।

उस उत्सव में, प्रायः सभी उपस्थित थे। कम से कम उनका अनुमान ऐसा ही था।

आश्चर्य! हठात् स्वर्ण-द्वार पर आ खड़ी हुई एक नव आगंतुका।

बड़ी कठिनाई से द्वारपालोंने उसे अंदर आने दिया था। न तो कभी उन्होंने उसे देखा था और न उसके आकार-प्रकार में ही कुछ ऐसा था जो उन्हें प्रभावित करता।

वह बहुत ही कम उम्र की और नाजुक थी। साधारण सफेद-सी पोशाक पहने थी और बड़ी सरल, गरीब-सी प्रतीत होती थी। झिझकते, सकपकाते वह कुछ कदम आगे बढ़ी। अपने-आपको इतनी बड़ी जगमगाती सभा में पाकर वह असमंजस में पड़ गयी। वह रुकी, किस ओर जाये उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

साथियों से थोड़ी सलाह करके, उनके अनुरोध पर, **दूरदर्शिता** उस अपरिचित स्त्री की ओर बढ़ी। दुविधा में पड़े लोगों की तरह सोचने के लिए थोड़ा खांसकर, अज्ञात अतिथि को संबोधित करती हुई बोली:

"आज जितने लोग यहां एकत्र हुए हैं सब एक-दूसरे को नाम और गुण से जानते हैं। आपके आगमन से हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। क्योंकि आप अजनबी-सी प्रतीत हो रही हैं। आज से पहले, शायद, हमने आपको कभी नहीं देखा। कृपया बताने का कष्ट करें कि आप कौन हैं।"

आगंतुका ने एक लंबी सांस भरते हुए उत्तर दिया—आह, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मैं यहां —इस राजप्रासाद में— एक अजनबी प्रतीत होती हूं। मैं शायद ही कहीं आमंत्रित होती हूं।

"मैं हूं कृतज्ञता।"

* * *

हे प्रभो! अश्रांत गीत की तरह मेरा तीव्र कृतज्ञ भाव तेरी ओर उठ रहा है।

हे प्रभो! ऐसा वर दे कि हम तेरे प्रति एक गंभीर और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

—श्रीमां

श्रीअरविंद

क्षत्रिय का आदर्श

पिछले एक हजार वर्ष से अपने ब्राह्मण स्वभाव का विकास भारतीय समाज का आदर्श रहा है। पर जिस युग में हम पांव रखने जा रहे हैं उसका आदर्श होगा क्षत्रिय वीर के स्वभाव का विकास। हमारी अभीप्सा संत-महात्माओं की अपेक्षा राजपूत वीरों की ओर मुड़ेगी। समाज की जीवन-चर्या सामाजिक इज्जत और शालीनता की बारीकियों द्वारा नहीं, ताकत और प्रताप के द्वारा नियंत्रित होगी। आलोचनाएं बड़े पैमाने पर होंगी और गांव-गलियों कि छोटी-मोटी उत्सुकतापूर्ण चर्चाओं को बूढ़ी औरतों की गप्पों के लिये एक तरफ रख दी जायंगी। उनपर ध्यान नहीं दिया जायगा।

इसका अर्थ यह नहीं कि हिंदू-धर्म का लक्ष्य ही बदल जायगा। बदलेगा केवल रास्ता, हर एक आदमी का सुनिश्चित पथ। एक ही केंद्र की ओर ले जानेवाले रास्ते भी असंख्य होते हैं। इस युग में भी पुराने जमाने की तरह मुक्ति को परमार्थ माना जायगा। पर इस मुक्ति की पूजा बहादुरी, निडरता, दहकती हुई ताकत, भभकती हुई शक्ति आदि रूपों में होगी। स्वामी विवेकानंद ने अपनी एक निजी बातचीत में कहा था—मर्दानगी क्या है? यह स्वाभाविक रूप में जान लेना कि पुरुष का गौरव किस बात में है।

मर्द आदमी यह जानता है कि वह कब प्रहार करे। वह यह भी जानता है कि कब आज्ञापालन करे। कुछ मौके ऐसे होते हैं जब कि आज्ञा-भंग का अर्थ एक जकड़नेवाली गुलामी होता है। कोई आदमी यह आशा न रखे कि मैं अनुचित व्यवहार में उसको सहारा दूं। कोई व्यक्ति मेरे सामने निर्लज्जता के साथ अधर्म की चर्चा करने का साहस न करे। ब्राह्मण में प्रहार करने का साहस हो सकता है पर क्षत्रिय उसके लिए ठीक मौका भी पहचानता है।

याद रहे कि निर्भयता और दूसरों में भय उत्पन्न करने की क्षमता क्षत्रियोचित स्वभाव के आवश्यक गुण होते हुए भी उसकी नींवमात्र हैं, चोटी नहीं। उसके मुकुट हैं अन्याय के प्रति घृणा, दया, रक्षाभाव, धर्म के नाम पर तुरंत प्राण निछावर करने का संकल्प। क्षत्रिय की स्वतंत्रता का अर्थ है निजी भय से मुक्ति। जिस ध्वजा के नीचे वह युद्ध कर रहा है उसके लिए वह अपने प्राणरूपी प्यादे को खुशी-खुशी मरवा देता है। वह विजय-घोष करता हुआ प्राण देगा। कोई कालिमा, कोई कड़वाहट उसके मन और शील की चमकती हुई समता पर धब्बा नहीं डालेगी।

क्षत्रिय जितना वीर होता है उतना ही उदार। जितना हृदय की दुर्बलता से मुक्त होता है उतना ही सन्देहहीन। ईर्ष्या व कमीनेपन की तसल्ली से तो उसका परिचय ही नहीं। उसके साथियों का गौरव ही है उसकी सबसे बड़ी खुशी। उसकी निजी विनयशीलता नीचे गिराने

वाली लालसा से उसकी रक्षा करती है। गौरव है उसका धर्म, दुर्बलों की रक्षा उसकी मुक्ति। राजपुत्रों के हृदय ही अवतारों के सहचर हो सकते हैं।

सच्चा क्षत्रिय अपनी तपस्या में तिलभर भी डिगनेवाला नहीं होता। महान् सेनानायकों की शैया कठिन और आहार अल्प होता है। सेनाओं में मामूली सिपाहियों को पहले और उनके अफसरों को पीछे भोजन परोसा जाता है। क्षत्रियों की क्रीड़ा में, खेल-कूद में भी शरीर को उचित ढंग से शिक्षा देना आवश्यक है। ऐशो-आराम की जिन्दगी से मांसपेशियां ढीली पड़ जाती हैं, इच्छाशक्ति को घुन खा जाता है। क्षत्रिय की पेशियां लोहे जैसी, उसका कवच चमकीला और उसकी आत्मा लक्ष्य की ओर तनी हुई होती है। सोते-सोते भी उसका हाथ तलवार की मूंठ पर रहता है और कान खुले रहते हैं उस युद्ध की पुकार सुनने के लिए जो किसी भी क्षण उठ सकती है : "जागो, उठो, युद्ध करो, तब तक चैन न लो जबतक विजय न प्राप्त हो जाय।" नेता और साथी के साथ वफा, महान् उद्देश्य व ध्वजा के लिए भक्ति, दूसरों की महानता और सच्चाई के प्रति उत्सुकता व प्रेम, ऊंचा उठानेवाला आत्म-गौरव, वह खिलवाड़ जो कभी तंग-दिल व स्वार्थपर नहीं हो सकता—ये हैं क्षत्रिय वीर के गुण।

क्षत्रिय नारी में शक्ति को देखता है, दुर्बलता को नहीं। वह नारी-रूप में एक साथी चाहता है, खिलौना नहीं। वह उसकी आत्मा का सम्मान करता है, उसकी उच्चतम अभीप्साओं का ध्यान रखता है और उसके ऊपर पुरुष न होने के कारण कमजोरी और निकम्मेपन का आरोप नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी झूठे पाखण्ड के आगे नतमस्तक होता है। वह किसी भी सारहीन चाल को धोखे से बड़ाई नहीं मान बैठता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह किसी महान् उद्देश्य के लिए अपनी बलि चढ़ाने का पुरुष की तरह नारी को भी अधिकारी मानता है। वह लक्ष्य की स्पष्ट झांकी के लिए नारी का मुंह ताकता है और मुसीबतों को पार करके मजबूत बनने के लिए उसे आजाद छोड़ देता है। अपने विचार व ज्ञान से वह केवल उसके उच्चतम संकल्प को सहारा देता है। किंतु दर्प या दुर्बलता को श्रद्धांजलि अर्पित नहीं करता। वह नारी के सामने व्यर्थ की चापलूसी या दुर्बल ढीलापन नहीं दिखाता। हाथ में हाथ डालकर वह नारी के साथ एक पारस्परिक श्रम व पारस्परिक आशा के मार्ग पर कदम बढ़ाता है—नारी की आंखों में एक गौरवपूर्ण सच्चाई होती है और पुरुषमें एक भावपूर्ण सम्मान व दृढ़ निश्चय। प्राचीन काल की सब नारियों में ऊंची वे सतियां मानी गयीं जिन्होंने अपने प्रियतम के लिए हंसते-हंसते प्राण दिये। भविष्य की नारियों में सबसे ऊंची पदवी वे प्राप्त करेंगी जो आदर्श के लिए जिन्दा भी रहेंगी और मर भी मिटेंगी, और इस प्रकार अपने साथी की आत्मा के साथ गहरा नाता जोड़कर संतुष्ट होंगी।

आदर्श के लिए बिताया जानेवाला जीवन पुरुष व नारी-रूपी माया से बहुत ऊपर होता है। आदर्श कोई आकस्मिक घटनाएं नहीं, बहुसंख्यक जीवनों की लम्बी तपस्या के फलस्वरूप निर्मित होते हैं वे। जितना ही उनका जोश अधिक होता है, उतना ही मानवजीवन महान् बन जाता है। गिनी-चुनी हैं वे आत्माएं जो किसी आदर्श के लिए जीवन लगा दें।

इस नये युग में प्राचीन आदर्शों को हटाया न जायगा बल्कि अब पहली बार वे पूरी सफलता को प्राप्त होंगे। भारतीय घरेलू जीवन की अत्यंत पवित्रता और मिठास के कारण

ही पुरुष उसकी रक्षा के लिए पर्याप्त शक्ति व साहस जुटा सकते हैं। परिपूर्ण पुरुष ही सच्चा क्षत्रिय है और परिपूर्ण पुरुष के अंदर ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों होते हैं।

हमारे सामने जो कार्य समुपस्थित है उसको सब सम्मान के साथ देखें। इतिहास का कोई युग इतना महान् नहीं हुआ। पुरानी प्राप्तियां आज हमारी पहुंच के बाहर नहीं हैं। संन्यास मार्ग लोकसेवा से बढ़कर नहीं है। ईश्वर का कोई रूप भूमिदेवी से ऊंचा नहीं हो सकता। इसी देवी को हमें अपनी अनुभूति का विषय बनाना है, इसी देवी की पूजा की प्रतिष्ठा करनी है। प्राचीन काल की गांधारी ने दुर्योधन से कहा था, "यतो धर्मस्ततो जयः"। हमें याद रखना चाहिए कि आज के दुर्योधनों के सामने भी यही गान चल रहा है।

अनु.—कृष्णाकुमारी

◆

क्षत्रिय आखिर किसलिए जीता है, उसके जीवन का सच्चा उद्देश्य क्या है और किस बात में उसका वास्तविक सुख है? अपने आपको खुश रखना, परिवार को सुखी देखना और मित्रों और नातेदारों के बीच रहते हुए आराम से और मौज से तथा सुख-शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करना, क्षत्रिय जीवन का सच्चा उद्देश्य नहीं है। क्षत्रिय जीवन का सच्चा उद्देश्य है सत्य के लिए लड़ना और उसका बड़े से बड़ा सुख इसी बात में है कि उसे ऐसा कोई शुभ कार्य और अवसर प्राप्त हो जिसके लिए या तो वह अपना जीवन दान कर सके या विजयी होकर वीर जीवन का यश और गौरव प्राप्त कर सके। ....

क्षत्रिय के लिए सबसे बड़ा शोक क्या है? उसकी प्रतिष्ठा की हानि, बलवान् और साहसी पुरुषों में उसका जो स्थान है उस पद से उसकी च्युति; उसके लिए यह मृत्यु से भी बुरी चीज है। संग्राम, साहस, शक्ति, शासन, वीरों का मान, युद्ध करते-करते मर कर स्वर्ग की प्राप्ति—यह है योद्धा का आदर्श।

—श्रीअरविन्द

वेद का राष्ट्रगान

अथर्ववेद का भूमिसूक्त (काण्ड १२, सूक्त १) वेद का राष्ट्रगान कहलाता है। यह एक ६३ मंत्रों का विराट् सूक्त है: उदात्त, बृहत्, गंभीर और ओजस्वी भावों से ओतप्रोत, राष्ट्रीय भावना से प्राणवंत, पर संकीर्णता से कोसों दूर। विश्व का कोई भी राष्ट्र इसे अपने राष्ट्रगान के रूप में अपना सकता है और अपने अभ्युदय के लिए अपूर्व प्रेरणा पा सकता है। इसका एक-एक शब्द परम मननीय है।

इसमें से कुछ संकलित मंत्र व मंत्रांश हम अपने प्रिय पाठकों के लिए यहां अर्थसहित प्रस्तुत कर रहे हैं।

ओ३म् सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १२.१.१

अर्थ—(सत्यम्) सत्य (बृहत्) विशालता (ऋतम्) न्याय्य व्यवहार (उग्रम्) क्षात्रबल (दीक्षा) व्रतनिष्ठा (तपः) तप (ब्रह्म) ब्रह्मतेज (यज्ञः) यज्ञभावना (पृथिवीम्) मातृभूमि को (धारयन्ति) धारण करते हैं। (नः) हमारे (भूतस्य) भूतकाल की तथा (भव्यस्य) वर्तमान और भविष्य की (पत्नी) रक्षा करनेवाली (सा पृथिवी) वह मातृभूमि (नः) हमारे लिए (उरुं लोकम्) विस्तृत स्थान (कृणोतु) करे, प्रदान करे।

भावार्थ—सत्यप्रेम, विचारों की विशालता, सत्याचरण, क्षत्रतेज, ब्रह्मतेज, शुभ कर्म करने का दृढ़ संकल्प, तपस्या, यज्ञ (त्याग और संगठन)—ये आठ गुण मातृभूमि की रक्षा करते हैं। किसी राष्ट्र की रक्षा व उन्नति केवल शासन या राजनीति की बाह्य मशीनरी से ही नहीं हो सकती वरन् इसके लिए उसके निवासियों में और विशेषकर उसके नायकों में उक्त गुणों का होना परम आवश्यक है। इनके होने पर हमारी मातृभूमि, देशमाता हमारे भूत, वर्तमान और भविष्य की सब प्रकार से रक्षा करती है और हमें निवास के लिए चारों दिशाओं में निर्बाध क्षेत्र प्रदान करती है।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना वि चक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ १२.१.५

अर्थ—(यस्याम्) जिस मातृभूमि पर (पूर्वे) पूर्वकाल में (पूर्वजनाः) हमारे पूवज (विचक्रिरे) विविध प्रकार के कर्म करते रहे हैं, (यस्याम्) जिसपर (देवाः) देव, देव-प्रकृति

के मानव (असुरान्) असुरों को (अभ्यवर्तयन्) अभिभूत एवं पराजित करते रहे हैं, जो (गवान् अश्वानाम्) गौ, अश्व आदि पशुओं का (च) और (वयसः) नाना प्रकार के पक्षियों का (वि-स्था) एक विशेष निवास-स्थान है वह (पृथिवी) हमारी मातृभूमि (नः) हमें (भगम्) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज (दधातु) धारण कराये, प्रदान करे।

भावार्थ—जिस प्रकार हमारे देवतुल्य पूर्वज हमारी मातृभूमि पर महान् कर्म करते रहे हैं और असुरों को हराते आये हैं उसी प्रकार हमें भी अपने महान् कर्मों से और असुरों के मर्दन के द्वारा अपनी मातृभूमि की महिमा बढ़ानी चाहिये। इसके लिए हमें अपनी भूमिमाता से, राष्ट्र-आत्मा की अधिष्ठात्री देवी से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें तेज और ज्ञान-विज्ञान आदि सर्वविध ऐश्वर्य प्रदान करे।

यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषि बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥१२.१.८

अर्थ—(यस्याः) जिस (पृथिव्याः) हमारी मातृभूमि का (हृदयम्) हृदय (परमे व्योमन्) परम रक्षक और आकाश की भांति परम व्यापक परमेश्वर में (सत्येन) सत्य से (आवृतम्) ढका हुआ है। और अतएव (अमृतम्) अमर है। (सा) वह (भूमिः) हमारी भूमिमाता (नः) हमारे (उत्तमे) सर्वश्रेष्ठ (राष्ट्रे) राष्ट्र में (त्विषिम्) तेज और (बलम्) बल (दधातु) धारण कराये।

भावार्थ—हमारी मातृभूमि का हृदय, हमारे राष्ट्र का अंतरात्मा सर्वव्यापक परमात्मा में प्रतिष्ठित है और वहां वह सत्य से परिवेष्टित है, अतएव वह अजर-अमर है। जिस राष्ट्र का हृदय, जिसकी केंद्रीय अंतःसत्ता परमात्मा से संयुक्त रहती है, जिसकी नींव सत्य पर टिकी होती है उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता।

सनातन सत्य पर प्रतिष्ठित हमारी मातृभूमे! हमें ओज और तेज प्रदान कर।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १२.१.१४

अर्थ—(पृथिवि) हे हमारी मातृभूमि! (यः) जो (नः) हम से (द्वेषत्) द्वेष करे (यः) जो (पृतन्यात्) पृतना अर्थात् सेना लेकर हम पर चढ़ाई करे और (यः) जो (मनसा) मन से और (यः) जो (वधेन) वध के साधनों, शस्त्रास्त्रों से (अभिदासात्) हमें दास बनाना चाहे (तम्) उसे (पूर्वकृत्वरि) हे पूर्णतायुक्त कर्म करनेवाली (नः भूमे) हमारी मातृभूमि! तू (रन्धय) रांध दे, नष्ट कर दे।

भावार्थ—हमारी मातृभूमि पूर्ण कर्मों के करने में कुशल है। उससे हमें उस पूर्ण कर्म-कौशल एवं कर्मशक्ति की प्रार्थना करनी चाहिये। उस शक्ति के रहते कोई भी शत्रु, कोई भी आक्रामक हमारी ओर आंख नहीं उठा सकता, कोई भी हमें अपने विचारों से या पशुबल

से दास नहीं बना सकता। यदि कोई हमें दास बनाना चाहे तो हम उसे रांध दें, पैरों तले रौंद दें।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ १२.१.५६

अर्थ—(भूम्याम् अधि) तुझ भूमि पर (ये) जो (ग्रामाः) ग्राम हैं, (यत्) जो (अरण्यम्) जंगल हैं, (याः) जो (सभाः) सभाएं होती हैं, (ये) जो (संग्रामाः) युद्ध-संघर्ष होते हैं और जो (समितयः) समितियां होती हैं, (तेषु) उन सबमें, हे भूमिमातः ! हम (ते) तेरे विषय में (चारु) सुन्दर बात, हित की बात ही (वदेम) बोलें।

भावार्थ—हे मातृभूमे ! हमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान कर कि हम तेरे ग्रामों और नगरों में, वन-उपवनों में, गिरि-कन्दराओं में, सभा-समितियों में, उत्सव-सम्मेलनों में, कलह-संघर्षों व युद्ध-संग्रामों में, जब कभी कोई बात कहें या करें, तेरे हित को सदा अपनी दृष्टि में रखें। हमारे एक भी शब्द से कभी तेरा अहित न होने पावे। देश के कोने-कोने से, जन-जन के मुख से तेरी महिमा, वन्दना और सेवा के भक्तिभरे गीत मुखरित होते रहें।

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्
य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा
वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥

अर्थ—हमारी यह मातृभूमि (यात्) जब से (अजायत) उत्पन्न हुई है तभी से यह (तान्) उन (जनान्) लोगों को (ये) जो (पृथिवीम्) हमारी इस भूमि को (आक्षियन्) क्षीण करते या हानि पहुंचाते रहे हैं (वि दुधुवे) झाड़कर परे फेंक देती रही है, (अश्व इव) जिस प्रकार घोड़ा (रजः) धूल को (विदुधुवे) झाड़कर फेंक देता है। हमारी यह ऐसी मातृभूमि (मन्द्रा) हर्षित रहने और हर्षित करनेवाली और (अग्रेत्वरी) सतत आगे बढ़नेवाली, उन्नति करनेवाली तथा सबकी अग्रणी है। यह (भुवनस्य गोपाः) सारे संसार की रक्षा करनेवाली है (वनस्पतीनाम्) वृक्ष-वनस्पतियों को, (ओषधीनाम्) अन्न-औषधियों को (गृभिः) धारण करनेवाली है।

भावार्थ—जो लोग हमारी मातृभूमि का किसी प्रकार का अनिष्ट करना चाहते हैं उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारे जिस शत्रु ने भी हमें हानि पहुंचानी चाही उसे आखिर मुंह की खानी पड़ी, हमारी मातृभूमि ने उसे देर-सवेर अपने यहां से खदेड़ बाहर कर दिया। इतना ही नहीं, हमारी मातृभूमि अपनी रक्षा के साथ-साथ संसार भर की रक्षा करती आयी है, वह संसार भर का त्राण और उद्धार करनेवाली, जगद्गुरु रही है।

हमारी शस्यश्यामला मातृभूमि अन्न-धान्य, फल-फूल-वनस्पतियों का महाभण्डार है, हर्षमयी एवं हर्षदात्री और सतत प्रगतिशील है। अपनी देशमाता के इन गुणों की रक्षा के लिए हमें जी-जान से यत्न करना चाहिये।

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ १२.१.६३

अर्थ—(मातः भूमे) हे मातृभूमे! तू (मा) मुझे (भद्रया) भद्र, मंगलमय रीति से (सुप्रतिष्ठितम्) सुप्रतिष्ठित (निधेहि) बनाये रख। (कवे) हे काव्यमयि, क्रांतदर्शिनि मातः, (दिवा) प्रकाश के साथ (संविदाना) सामंजस्य रखती हुई तू (मा) मुझे (श्रियाम्) श्री-शोभा में और (भूत्याम्) ऐश्वर्य-विभूति में (धेहि) धारण कर, प्रतिष्ठित कर।

भावार्थ—हमें अपनी भूमिमाता, राष्ट्रदेवी से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें भद्र रीति-नीति एवं कल्याणी मति के द्वारा दृढ़ नींव पर प्रतिष्ठित रखे, सुदृढ़ स्थिति और उत्तम प्रतिष्ठा प्रदान करे।

हमारी क्रांतदर्शिनी देशमाता सनातन काल से दिव्य प्रकाश के साथ सुसंगत एवं समस्वर रही है। ऐसी हमारी माता हमें श्री-संपदा, गौरव-गरिमा और भूति-विभूति में चिर-प्रतिष्ठित रखे।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। १२.१.२१.
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम। १२.१.६२

अर्थ—(भूमिः) भूमि (माता) मेरी माता है। (अहं) मैं (पृथिव्याः) इस अपनी भूमिमाता का (पुत्रः) पुत्र हूं।

हे मातृभूमे! (वयं) हम सब (तुभ्यम्) तेरे लिए (बलिहृतः) बलि देनेवाले (स्याम) बनें।

भावार्थ—राष्ट्रभूमि हमारी माता और हम सब राष्ट्रवासी उसके पुत्र हैं।

वह माता हमें ऐसी बुद्धि और बल प्रदान करे कि हम उसके लिए बलिदान करनेवाले बनें, उसके बलिदानी पुत्र बनें।

—जगन्नाथ वेदालंकार

……

श्री चर्चिल (ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री) से उनकी बड़ाई करनेवाले एक गप्पी ने कहा—इस बात से आपको रोमांच और खुशी नहीं होती कि जब भी आप भाषण करते हैं सभा-भवन पूरा भरा रहता है।

यह चापलूसी है, चर्चिल ने कहा। मैं बराबर सोचा करता हूं कि भाषण देने के बजाय यदि मुझे फांसी पर चढ़ाया जाता तो यह भीड़ तीनगुनी अधिक होती।

त्याग का आदर्श

——गजराज सुखदेव

घटना है सन् १७२८ की, जब महाराष्ट्र में वीरवर बाजीराव का राज्य था। देश की आर्थिक अवस्था बहुत बुरी थी। किंतु देशभक्ति, स्वामिभक्ति और कर्तव्यपालन का आदर्श इतनी महान् अभिव्यक्ति पर पहुंचा था कि देशवासियों की रग-रग में उसकी ध्वनि गूंज रही थी।

तो इस विषय की एक घटना सुनो।

एक दिन एक गांव के मुखियों की सभा में एक स्त्री फरियाद लायी। उसका नाम था मंजुला। उसका कहना था कि उसके पति ने दो वर्ष से पैसे नहीं भेजे। अपना पेट चलाना उसे दूभर हो गया था। अन्न-वस्त्र के अभाव में उसका जीवन असहाय-भिखारी सा बन गया था। उसका पति लश्कर में शिलेदार था।

ग्राम पंचायत के सभी सदस्यों को पदाजी——मंजुला के पति——की इस निर्दयता से आश्चर्य हुआ।

पदाजी ने अपने बयान में कहा——हां, मंजुला का कहना सच है। सचमुच ही दो साल से मैं अन्न-वस्त्र के लिए उसे कुछ भी नहीं दे सका।

"क्यों भाई! ऐसा क्यों किया तुमने? क्या तुम्हारी उसके साथ कोई अनबन हो गयी है या तुम दूसरी शादी करना चाहते हो?" ——पंचों ने पूछा।

"नहीं, कतई नहीं। मेरी पत्नी सभी तरह से अच्छी है। वही मेरा संसार चलाती है। वह मुझे बहुत प्रिय है। वह भी मुझे हृदय से चाहती है।"

"फिर यह कैसे हुआ कि तुमने दो साल से उसे कुछ भी नहीं दिया? इस बेचारी की यह दुर्दशा क्यों की तुमने?"

"मान्यवर", उसने ठमककर कहा——"सरदार जाधवराव जी ने दो वर्ष में मुझे तनख्वाह बिलकुल ही नहीं दी। अगर मेरी तनख्वाह मुझे ठीक समय पर मिल जाती तो मंजुला की यह दुर्दशा क्यों होती। उसकी दुर्दशा को देखकर मेरा भी हृदय फटा जा रहा है।"

सरदार जाधवराव जी ने सिपाही को तनख्वाह नहीं दी और उससे पूरा काम हासिल किया! यह असंभव है। यह कैसे हो सकता है?

ग्राम-पंचायत के मुखियों ने सरदार जाधवराव को पंचायत में हाजिर होने का समन भेजा। मराठा राज्य की प्रथा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को न्याय-दान के कार्य में सहायक होना जरूरी था। चाहे वह कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो।

जाधवराव आये। सब कुछ समझने के बाद उन्होंने शपथपूर्वक कहा, "पदाजी मेरी पलटन में सिपाही है यह सच है। यह भी सच है कि मैं दो वर्ष से उसे तनख्वाह नहीं दे सका। मुझे दुःख होता है। पर मैं भी क्या करूं? कर्ज तक नहीं मिलता। पैसे के बिना सरदारों की रियासतें भी संकट में आ गयी हैं।"

"सरदार, तुम्हारे पंतप्रधान बाजीराव साहब निश्चय ही समय-समय पर तुम्हें बड़ी-बड़ी रकमें देते रहे होंगे। उस धन का तुमने अपने लिए अपव्यय किया और इन बेचारों के संसार की यह दुर्दशा की। तुम अपराधी हो।"

सरदार जाधवराव ने इस पर आवेशपूर्वक कहा, "मान्यवर! बाजीराव साहब हम लोगों के स्वामी हैं। उनके जैसा स्वामी इस पृथ्वी पर नहीं मिलेगा। भगवान् उन्हें चिरायु रखें। भारत-भूमि पर वे आर्य साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे लेकिन क्या पैसेवाला बनने का नाटक किया जा सकता है ? दो वर्ष से वे मुझे भी कुछ भी नहीं दे सके। दें भी कहांसे ? उनके पास भी पैसा कहां है ? हम लोग पेट चलाने के लिए और पैसा कमाने के लिए नौकरी करते हैं। यह ठीक है कि पैसा आज नहीं तो कल मिलेगा। पर देश की विपत्ति के समय जब कि हमारा स्वामी आर्यजाति की रक्षा के लिए देश संगठित कर रहा है, सेना सजा रहा है, ऐसे समय इस महान् स्वामी की सेना में नौकरी करने का सुनहरा मौका बार-बार नहीं मिलेगा। इसी लिए पैसा न मिलने पर भी हमें कोई शिकायत नहीं।"

सुनकर सारे लोग चकित रह गये। धन्य है वह भाग्यवान् पंतप्रधान, धन्य है देश की स्वाधीनता के लिए सब कुछ लुटाकर भी जीवन की बाजी लगाने वाले ये शूरवीर सैनिक, शिलेदार!

मंजुला ने पंचों से कहा--"मुझे सब कुछ मिल गया। मुझे अब कोई शिकायत नहीं। आप सब कृपा करके मेरी फरियाद सुननी बंद कर दीजिये। उसे मैं वापस लेती हूं।"

भारतमाता का हृदयस्वरूप महाराष्ट्र का यशोमन्दिर त्याग के इस महान् आदर्श से बना था।

समय की पुकार है—क्या आज यह असंभव है ?

भारत की शिक्षा, सभ्यता, गौरव, बल, महत्त्व का मूल यह आध्यात्मिक शक्ति ही है। जब-जब ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई कि लोगों को यह विश्वास होने लगा कि भारतजाति के विनाश का काल निकट आ गया है, तब-तब आध्यात्मिक शक्ति ने गुप्त मूल स्रोत से तीव्र गति के साथ प्रवाहित होकर मुमूर्षु भारत को पुनरुज्जीवित किया है और सभी उपयोगी शक्तियों की सृष्टि भी की है। अभी भी वह मूल स्रोत सूख नहीं गया है, आज भी उस अद्भुत मृत्युंजयी शक्ति की क्रीड़ा हो रही है।

—श्रीअरविंद

अफ्रीकी लोक-कथा :

अजगर और कछुआ

संतोषकुमार

बहुत पुरानी बात है। तब अफ्रीका के होत्रेनतोत देश में पशुओं का राज्य था। बड़े बड़े अजगर कुण्डलियां मारे दलदलों में पड़े रहते, हाथी अपनी सूंड से पानी उछाला करते और वहीं पर कछुए भी रहा करते थे। एक दिन अजगर और वर्षा के देवता में झगड़ा हो गया। अजगर उस समय बहुत ताकतवर जानवर था। उसने वर्षा की देवी से कहा—तुम मेरा पालन करती हो? वह कैसे? इतना झूठ क्यों बोलती हो! वर्षा की देवी ने कहा—अच्छा, देखूं, मेरे बिना तुम किस तरह जिन्दा रहते हो!

वर्षा की देवी चली गयी। पानी के बिना सबका दम सूखने लगा। हाथी तो समुद्र में नहा धो आते पर अजगर से तो इतना चला ही न जाता था। उसने हाथी से कहा—दोस्त, पानी ला दो।

पर हाथी ने सुनी अनसुनी कर दी। वह जानता था कि अजगर को घमण्ड हो गया है।

अजगर ने इसी तरह सबसे कहा, पर उसकी बात कोई नहीं सुनता था। वह किसी का कुछ बिगाड़ भी नहीं सकता था। क्योंकि सभी उससे दूर थे। अंत में उसने कछुए से कहा—भाई, पानी लाने की कोशिश करो।

कछुए को दया आ गयी। उसने समुद्र के किनारे की नीची जमीन को खोद कर समुद्र के पानी से भर दिया। पर इस तरह बनाये गये तालाब भला कब तक रहते। वे एक एक करके सूखने लगे और अंत में केवल एक ही तालाब बच रहा।

अजगर से वह तालाब जरा दूर था। इसलिए अजगर ने कहा—तुम तालाब की रखवाली करो कछुए भाई। मैं अभी शिकार पचाकर आता हूं।

कछुआ पानी के किनारे बैठा रहा। तब तक जिराफ आया। उसने कहा—मुझे पानी दो।

कछुए ने कहा—यह तो अजगर के लिये है। तुम समुद्र तक चले जाओ। कुछ देर बाद जेब्रा आया। उसने भी कहा—पानी दो। कछुए का जवाब था—यह तो अजगर के लिए है।

इसी तरह शुतुरमुर्ग, भालू आदि सभी आये पर कछुए ने सभीको अजगर का नाम लेकर भगा दिया।

फिर आया सियार। उससे भी कछुए ने कहा—पीना मत। यह पानी अजगर के लिए है।

सियार चला गया और वह शेर को बुला लाया। शेर ने कछुए की एक नहीं सुनी। उसने कछुए की पीठ पर पंजा मारा। पीठ कड़ी थी इसलिए वह मरा तो नहीं पर भाग गया

और बड़ी देर तक अपनी पीठ सहलाता रहा। बाकी सब जानवर भी आकर मजे से पानी पीने लगे और नहाने लगे।

कछुआ चुपचाप देखता रहा। शेर के सामने बोलने की हिम्मत नहीं हुई।

थोड़ी देर बाद पेट को हलका करके अजगर भी आ गया। जब उसने पानी नहीं देखा तो उसे कछुए पर बड़ा गुस्सा आया। उसने जोर से कहा—अबे, नीच कछुए! तुझे चबा जाऊं या निगल जाऊं? बोल, तू क्या चाहता है?

कछुआ बड़ा घबराया। उसे गुस्सा भी आया कि जिसके लिए उसने इतना किया वही उसे खा जाना चाहता है। पर वह चालाक था। उसने कहा—अच्छा तो मुझे निगल जाइये। अजगर ने गपाक से उसे निगल लिया। अंदर जाकर कछुए ने देखा कि एक हिरन दुबका बैठा है। उसने कहा—दोस्त, बैठे क्यों हो?

क्या करूं, मरना जो है—हिरन ने जावब दिया। पर कछुए ने कहा—नहीं भाई, इस अजगर का पेट फाड़ डालो। मैं इसका फेफड़ा और दिल चबाता हूं।

दोनों ने मिलकर अजगर का पेट फाड़ना और दिल चबाना शुरू किया। अब अजगर ने बड़ी उछल-कूद मचायी। अपने को तोड़ा-मरोड़ा। लेकिन सब बेकार।

पेट के फटते ही हिरन निकल भागना चाहता था कि कछुए ने कहा,—देखो, अभी अजगर मरा नहीं है। अभी भागोगे तो वह तुम्हें पकड़कर चबा जायगा। इसे बिलकुल मारकर ही निकलो।

दोनों ने मिलकर उसके चिथड़े-चिथड़े कर डाले। अजगर के मरते ही वर्षा की देवी ने खूब पानी बरसाया और जंगल के सारे पशु-पक्षी आनंद से रहने लगे।

* * *

पुरानी बात है।

एक दिन पं. नेहरू ने त्यागीजी को बुलाया और कहा कि कल अर्थविभाग के राज्यमंत्री की शपथ ले लीजिये।

अचकचाकर त्यागी जी बोले—कुजा अर्थ, कुजा त्यागी।

पंडित जी ने बताया कि झगड़ों को निबटाने के लिये अर्थमंत्री श्री चिंतामणि द्वारकानाथ देशमुख ने खुद आपको चुना है।

त्यागी जी ने कहा—तो यह कहिये कि हायर गुण्डा के तौर पर हमारी नियुक्ति हो रही है।

नेहरू जी ने हंसते हंसते कहा—माशा अल्लाह! इसमें कुछ कमी नहीं है।

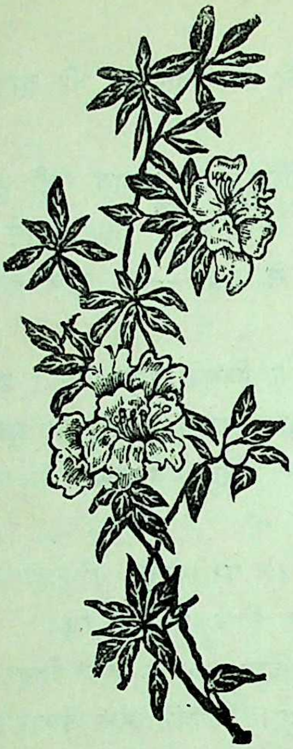

खण्डित फूल

तोड़ा है फूल किसने ?
पूछ रही है लता से डारी-डारी।
पूछता है फूल—
तोड़ी हैं किसने मेरी पांखुरियां प्यारी-प्यारी ?
सुबह् में एक गुलाबी
कोमल लता पर खिला था :
सुबह में हर्षित हो झूम रहा था,
थी पराग फैली मेरे चहुं ओर :
इतमे में मनुज एक आया,
उसने मुझे प्यार से सहलाया :
बड़े ही दुलार से मुझे लता से उठाया,
निज का स्वार्थ दिखलाया :
पर में तो पुलकित हुआ,
कि मैं किसीके काम तो आया।

—पवनकुमार जैन

वनस्पतियो !

अकिंचन दुःखकातर
स्वप्न भी जिसको न क्षणभर
व्यजन की करुणा डुलाते;
जहां दौड़ा
राह सीमातीत
क्षितिजों को भुजाओं से बढ़ाती ही गई,
वृक्ष पौधे सभी अनछूये
भटकती छांह को देखा किये।

शीश डोला, कँपी फुनगी
पास आया;
कहा सबने, क्षमा करना
दुःख अपना ही कहां कम
जो उठा लें गैर का भी;
हम नहीं तुमको बुलाते
हाथ का जल डाल जड़ में।

कहा मैंने—
मैं मनुज हूं, शान्त हो लो वनस्पतियो !
छांह चूके भले वन की
आदमी अभिषेक करता ही रहेगा;
भार अपना स्वयं दुर्वह हो कदाचित्
किंतु जग का शीश पर लेकर सहेगा।

—डा. शिवप्रसाद सिंह

सागर-कन्या डलफिन

सुमित्रा नाहर

प्रिय शेखर !

आओ, सागर के एक नये जीव के साथ तुम्हारा परिचय करायें। इसका नाम है डलफिन। सचमुच यह आधा आदमी और आधा मछली है। मल्लाह समुद्र में इसीको देखकर जलकन्या मान लेते थे। डलफिन की एक जाति का ऊपरी भाग तो दूर से बिलकुल आदमी जैसा लगता है।

उससे दोस्ती कर लो। वह तुम्हें पीठ पर बैठाकर समुद्र में सैर करा लायगा। कुछ दिनों में ही तुम उसे अपने मन की बात समझा सकते हो। उसके मन की बात समझ सकते हो और उससे सागर की गहराई की खबरें जान सकते हो।

करीब अढ़ाई हजार वर्ष से आदमी का डलफिन से परिचय है। उसने नावों को बंदरगाह का रास्ता दिखाया है। ईसा के जन्म के ७४ वर्ष पूर्व देखा गया कि एक लड़का डलफिन पर बैठकर समुद्र में घूम रहा है। मिस्र के एक राजभवन में तो सारे भित्ति-चित्र डलफिन देवता के ही हैं। मिस्री उन्हें प्यार करते हैं। एक लूले-लंगड़े लड़के के खेल का साथी डलफिन ही था। मानव से उसका पुराना प्यार है।

यह डेढ़ से तीन फीट तक लंबा स्तनपायी जानवर है। उसका वजन अस्सी से १३० किलो तक होता है। मुंह गंदुमी, चिड़िया की चोंच की तरह। प्रत्येक जबड़े में ४४

सुन्दर दांत होते हैं जो जन्म से नहीं होते, कुछ हफ्ते बाद निकलते हैं। चेहरा मानों बराबर हंसता रहता है। बैंगनी रंग की आंखें, नाक की जगह केवल छेद और बुद्धि का तेज जानवर है यह।

पानी में रहते हुए भी यह मछली की तरह नहीं है। पानी के अंदर दो तीन मिनट रहने से ही उसका दम घुटने लगता है। वह सांस लेने के लिए ऊपर चला आता है। पर घण्टे में तीस मील तैर कर वह जहाजों के साथ होड़ भी कर लेता है।

उसका चमड़ा कितना कोमल, कितना नरम है। पीठ की तरफ काला और पेट की तरफ उजला। देखते ही हाथ फेरने को मन करता है। यह जन्म से ही देख सकता है। छः मास की उम्र तक केवल दूध पीता है। फिर मछलियां खानी शुरू करता है। जन्म के समय ही दल की डलफिन-दाई और मां दोनों मिलकर बच्चे को बड़ा करती हैं। शत्रुओं से उसकी रक्षा करती हैं। शार्क अगर हमला करे तो एक आवाज पर ही दल के बाकी सब आकर दुश्मन को घेर लेते हैं। फिर ये डूबकर शार्क के पेट में जोरसे मारते हैं और इस आक्रमण की चपेट में आकर शार्क के अंग-अंग टूट जाते हैं और वह मर जाती है।

साधारणतः डलफिन दलों में रहता है। यह बड़ा ही खिलाड़ी और हास्यप्रिय होता है। मल्लाहों ने कई बार देखा है कि डलफिन ठीक तुम सबों की तरह एक के ऊपर एक कूदते लाइन में चले जा रहे हैं।

आदमी की मदद भी यह खूब करता है। जैसे—मछुओं के जाल में मछली हांक देता है। फ्लोरिडा की एक महिला पानी की धार में से निकल नहीं पा रही थी। तभी उन्हें लगा कि कोई उन्हें किनारे की तरफ ठेलकर ले जा रहा है। किनारे पर पहुंच कर उन्होंने देखा कोई नहीं केवल एक डलफिन जरा दूर पर पानी में आनंद से उछल-कूद कर रहा है।

पर आदमी चर्बी के लिए इनका शिकार करना नहीं भूलते। आदमी जब उनपर आक्रमण करता है तो पहले वे आपस में सलाह करते हैं। फिर एक डलफिन जाल में कूद पड़ता है और सबके भागने का रास्ता साफ कर देता है। अगर कोई डलफिन बीमार पड़ जाय या घायल हो जाय तो वह आवाज देता है और बाकी सब उसे पीठ पर लादकर पानी के ऊपर सुरक्षित जगह पर पहुंचा देते हैं। आदमी में भी एक-दूसरे की मदद के ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं।

इसमें एक ऐसी विशेषता है जो आदमी में भी नहीं है। यह है ध्वनिग्राही यंत्र। अच्छा, जब तुम बात करते हो तो हवा में शब्द रहते हैं। यही तरंग जब कहीं से टकराकर लौटती हैं तो प्रतिध्वनि बनती है। शब्द की तरंगों की गति को भी हम जानते हैं। यह यंत्र आसानी से बता देता है कि पानी के नीचे कहां रुकावट है। पर यह नहीं बता सकता कि वह रुकावट किस तरह की है। इसकी मदद से नाव, जहाज या शार्क का फरक मालूम नहीं होता। पर डलफिन समझ सकता है कि कहां, किस तरह की रुकावट सामने है। देखा गया है कि डलफिन क्लिक क्लिक बोलते हुए सत्तर फीट गहरे तालाब में से बीस सेकेण्ड के अंदर एक बालवेयरिंग निकाल लाया है।

डलफिन शायद दुनिया का सब से बड़ा आवाज की नकल करनेवाला जानवर है। पिछले महायुद्ध में इसने इंजन, घण्टा तथा पानी के नीचे के तरह तरह के शब्दों की नकल करके पनडुब्बियों के मल्लाहों को बहुत तंग किया था।

जान लिलि ने डलफिन के संबंध में बहुत खोज की है। उन्होंने छिप-छिपकर उसकी आवाज सुनी और उसको टेपरिकार्ड भी किया है। उन्होंने डलफिनों से अपनी आवाज भी सुनी। एक बार एक डलफिन बड़ी खराब आवाज कर रहा था तो उन्होंने उसे धमकाया पर डलफिन ने जब उनकी डांट की नकल की तो पास खड़ी श्रीमती लिलि हंस पड़ीं और तुरत ही डलफिन उनकी हंसी की नकल भी कर बैठा।

प्रोफेसर लिलि ने अपनी खोजों से पता लगाया कि डलफिन शब्द और अर्थ का संबंध स्थापित कर सकता है। तोता-मैना भी आदमी की आवाज की नकल कर सकते हैं पर वे अर्थ बिलकुल नहीं समझते। डलफिन अकेले चुप रहता है। दो होते ही बक-बक शुरू हो जाती है और बहुत से साथ हों तो खूब धमा-चौकड़ी, किचिर-मिचिर होती है। वे एक सेकेण्ड में कई सौ अलग शब्दों का उच्चारण कर सकते हैं। यही सब देखकर जान लिलि की धारणा है कि डलफिन केवल अपने में ही बात नहीं कर सकता। इनकी शब्द संख्या भी काफी है।

जान लिलि कहते हैं कि इनसे तुलना करने पर आदमी की मानसिक श्रेष्ठता के संबंध में भी संदेह हो उठता है। यदि दिमाग की लंबाई, चौड़ाई और दिमाग की कोषाणुसंख्या के ऊपर मानसिक ताकत निर्भर मानी जाय तो डलफिन जरूर आदमी से ज्यादा बुद्धिमान् है। जहां आदमी के दिमाग का वजन होता है १३०० से १४५० ग्राम वहां डलफिन के दिमाग का वजन होता है १६०० ग्राम। जर्मनी के विख्यात दार्शनिक काण्ट के दिमाग का वजन था १७०० ग्राम। इसीसे वैज्ञानिकों का अंदाज है कि निकट भविष्य में आदमी डलफिन से बात भी कर सकेगा।

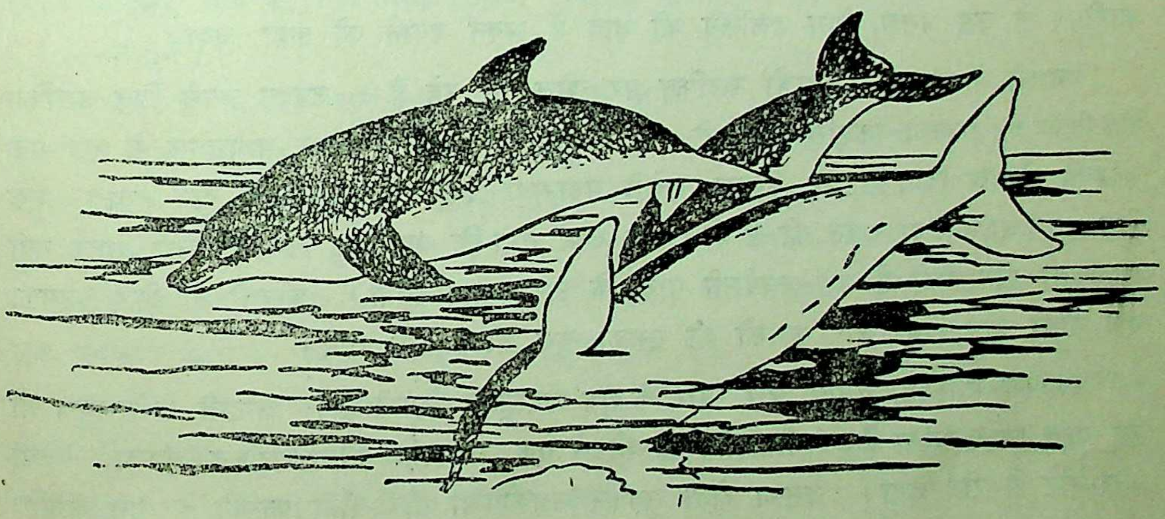

अब तो तुम जरूर ही डलफिन से दोस्ती करने को उत्सुक होगे। अब इनमें से जो इतिहासप्रसिद्ध हैं उनकी बात भी सुन लो।

१८८८ में न्यूजीलैंड के 'पेलोरस साउण्ड' में एक आश्चर्यजनक डलफिन देखा गया। उसका नाम रखा गया पालोरस जैक। उसने एक जहाज को रास्ता दिखाकर उसे कुक प्रणाली तथा फ्रेंच पास का दुर्गम पहाड़ी रास्ता निर्विघ्न पार कराया था। यहां इस रास्ते में कतने ही जहाज डूबे हैं। फिर तो जैक गैरसरकारी पथप्रदर्शक हो उठा। कोई जहाज आते ही उसका स्वागत करके उसे पहुंचा देता था। मल्लाह भी बराबर उसकी राह देखा करते। वह इतना प्रिय हो उठा कि न्यूजीलैंड सरकार ने आदेश जारी किया कि उसको कोई भी नुकसान न पहुंचाये। बत्तीस साल तक यह काम करके वह एक दिन अचानक लुप्त हो गया। कोई भी उसकी खबर न दे सका।

न्यूजीलैंड के उपोननि शहर में बोतल की तरह नाकवाला उपो देखा गया। लड़के-लड़कियां तैर रहे थे, सागर तीर पर गेंद खेल रहे थे कि उपो आकर उनके साथ खेलने लगा। सबसे उसकी गहरी दोस्ती हो गयी और वह रोज आने लगा। लड़के उसकी पीठ पर सवार होकर समुद्र में घूम आते। थोड़े दिनों में खेलने में भी वह होशियार हो उठा। वह भी लोगों का इतना प्रिय हो गया कि सागर तीर पर घुमक्कड़ों के लिए नोटिस लगानी पड़ी—उपोननि में स्वागत पर हमारे प्रिय डलफिन को गोली मारने का प्रयत्न मत कीजिये।

पर बेचारा उपो एक दुर्घटना में मारा गया। तीर की तरफ वह खाना खोजने गया था कि पानी खिसक गया। सूखे में ही वह छटपटाकर मर गया। दूसरे दिन खबर मिलते ही शहर में उदासी छा गयी। झण्डे झुका दिये गये। उसे सम्मानसहित कब्र दी गयी। एक कारीगर से उस प्रसन्न, प्रिय डलफिन की याद में भवन बनाने को कहा गया।

मनाको में कमाण्डर कोरत्रो डलफिन पर खोज कर रहे हैं। उनका सबसे प्रिय डलफिन था किकि। फाल्को किएन्शि नाम के दो गोताखोरों ने उसे पकड़कर सागरजल से भरे एक चौबच्चे में रख दिया। पर बेचारा अकेले पड़ा-पड़ा दिन-प्रतिदिन दुबला होने लगा। एक दिन उसने आत्म-हत्या करने की सोची। जब देखा गया कि वह सांस लेने के लिए बाहर नहीं आता तो गोताखोरों ने उसे जबर्दस्ती पानी के ऊपर कर दिया। कोरत्रो ने फिर उसका एक साथी जुटा दिया और फाल्को भी उसका खूब दोस्त बन गया।

डलफिन में स्नेह, ममता और प्यार के खूब उदाहरण मिलते हैं। आदमी से सचमुच ही वह बहुत प्यार करता है। गोताखोर फाल्को ने एक बार एक बच्चा-डलफिन पकड़ा। बच्चा जोर-जोर से रोने लगा। उसका रोना सुनकर उसकी मां दौड़ी-दौड़ी फाल्को के पास आयी। अचानक वह फाल्को की ओर देख करुण-स्वर में रोने लगी। उसकी यह रुलाई सुनकर फाल्को का दिल पसीज उठा और उन्होंने बच्चे को छोड़ दिया। आदमी होने के नाते ही फाल्को की जान बची। मां अपने बच्चे को लेकर प्रसन्न-मन वापस चली गयी।

अच्छा, अब बिदा। अगर किसी डलफिन से तुम्हारी दोस्ती हो तो हमें भी खबर देना मत भूलना।

* * *

संत-कथा :

: अजरा परवीन

गुरु गोविंदसिंह

धूबरी !

आसाम और बंगाल की सरहद पर बसा एक गांव।

सवाई राजा जयसिंह के बेटे रामसिंह की कमान में औरंगजेब की सेना आसाम पर आक्रमण कर रही थी पर आसाम के वीर अचानक छापे मारते और जब तक मुगल फौज उन्हें पहचाने वे उन पहाड़ियों में गुम हो जाते। सेना परेशान थी, सेनापति परेशान था, पर गुरु तेगबहादुर बड़े आराम से चल रहे थे। जहां जहां फौज का पड़ाव होता वे मजहब की बातें बताते। गुरु नानक की वाणी सुनाते। और एक दिन आया जब रामसिंह सामने बैठकर उनसे उपाय पूछ रहे थे कि आसाम कैसे जीता जाय।

गुरु तेगबहादुर मुस्कराए—तो तुम इन्हें हथियार से जीतने की सोचते हो ?

और कैसे ? . . . मैंने शाहंशाह को कहा था कि . . . . ओ . . . हो . . . गुरु हंसे। तो तुम वचन का पालन करना चाहते हो, पर इस तरह तो शायद जिन्दगी यहीं खत्म हो जाय।

—गुरुजी, आप ही कुछ मार्ग सुझायें, रामसिंह ने प्रार्थना की।

—मानोगे ?

—जरूर। आपकी बात भला टाल सकता हूं ?

और दूसरे दिन आसाम के कबायली बहादुरों के सरदार मुगल रिसाले के सामने थे। युद्ध नहीं सन्धि। गुरु तेगबहादुर की रुहानी ताकत ने दोनों को मिला दिया। न किसी की जीत हुई न किसी की हार। इसी याद में दोनों सेनाओं ने तय किया—धूबरी में गुरुद्वारा बनेगा।

और वह था आसाम का पहला गुरुद्वारा। जिस दिन गुरुद्वारा बना उसी दिन पटने से एक डाकिया आया। माता गूजरीजी के सुपुत्र हुआ है।

गुरु लौट पड़े। शनिवार पूस सदी २३ को अकाल तख्त के रखवाले ने धरती पर जन्म लिया है, उसका स्वागत करना होगा। वे पटना पहुंचे और वहां से अपनी गद्दी पर आनन्दपुर। लड़के का नाम रखा गया गोविन्दसिंह।

गोविन्दसिंह, नौ वर्ष का बालक पिता के पास खड़ा लोगों की बातें सुन रहा था। एक ब्राह्मण काश्मीर में ब्राह्मणों पर हुए अत्याचारों की कहानी सुना रहा था। और गुरु तेगबहादुर सुन रहे थे। कहानी सुनकर उन्होंने कहा—इसका उपाय यही है कि हिंदू-धर्म की हिफाजत के लिए कोई महान् और पवित्र आत्मा अपना बलिदान करे।

तो आपसे महान् आत्मा और कौन होगा ?—बालक ने सवाल किया।

गुरु ने देखा, बालक गोविन्दसिंह खड़े हैं। उन्होंने खुश होकर उन्हें दिल से लगा लिया। तुम ठीक कहते हो बेटा ! . . . . और उन्होंने ब्राह्मण से कहा—जाकर औरंगजेब से कह दो अगर गुरु तेगबहादुर ने इस्लाम कबूल कर लिया तो हम भी मुसलमान हो जायेंगे।

नतीजा क्या हुआ ! गुरु तेगबहादुर दिल्ली गये और धर्म के लिए शहीद हुए। १२ अगस्त स. १७३२ में नौ साल की उम्र में ही गुरु गोविंद ने गुरु-गद्दी संभाली।

कच्ची उमर, पर गुरु गोविन्द हथियार तथा धर्म दोनों में माहिर हो गये। उन्होंने आनंदपुर की रक्षा के लिए पांच किले बनवाये और फिर आया खालसा पंथ के निर्माण का समय।

यज्ञ अभी खतम नहीं हुआ है। देवी की पूजा में सिख जुटे हैं कि गुरु ने बाहर आकर कहा—देवी बलिदान चाहती हैं।

एक . . गुरुजी अंदर गये और खून की धारा बहा चली . . दो . . तीन . . . चार . . . पांच . . जमात सन्न थी। खून बह रहा था कि अचानक गुरु उन पांच पियारों को लिए हाजिर हुए। उन्होंने लोटे से पानी लेकर मंत्र पढ़ा और उसे अमृत कहकर सबको पिलाया। फिर उनके हाथ से खुद अमृत छका और खालसा बने।

और धर्म की रक्षा करनेवाली यह जमात बढ़ती गयी। इसके घोड़ों की टापों की दमदमाहट और तलवारों की चमक दिल्ली के औरंगजेब की नींद हराम करने लगी। और पंजाब के सारे नवाब तथा राजे शाही सेना के साथ गुरु गोविंदसिंह पर हमला बोल बैठे।

एक वर्ष तक आनन्दपुर घिरा रहा। मुगल शाहंशाही की सारी ताकत एक छोटे से किले को नहीं जीत सकी। पर अंत में उन्होंने कुरान की कसम खाकर आनंदपुर खाली करवा लिया। पर कसम ! गुरु गोविंदसिंह के बाहर निकलते ही मुगल सेना ने कसम तोड़कर हमला कर दिया। गुरुजी खुद तो निकल आये पर भारी नुकसान उठाकर। गुरुमाता और दोनों छोटे पुत्र सरहिंद के नवाब के कब्जे में चले गये। कवियों द्वारा रचित कई मन ग्रंथ सिरसा नदी में बह गये। और खुद गुरु गोविंदसिंह चमकौर नामक गांव में घिर गये। उधर सरहिंद के नवाब ने भी गुरुपुत्रों को इस्लाम न कबूल करने के कारण जीते-जी दीवार में चिनवा दिया। इधर बाकी दोनों बेटे भी चमकौर की लड़ाई में मारे गये।

पर गुरु गोविंदसिंह, भवानी का वह बहादुर बेटा, बच निकला। उन्होंने पंजाब से हटकर मालवा में अपना राज्य बनाया और यहीं से उन्होंने लिखा औरंगजेब को जफरनामा—विजय पत्र। कहा जाता है कि इसी जफरनामे ने औरंगजेब की जान ले ली थी।

औरंगजेब के बाद बहादुरशाह बादशाह बना। बहादुरशाह बराबर गुरु गोविन्द के सामने झुका रहा। गुरुजी कुछ निश्चित हुए। गुरु के चारों पुत्र मारे जा चुके थे। गुरु गोविन्दसिंह ने अब हिमालय की ओर आंखें न फिरा सह्याद्रि की ओर देखा। उन्होंने दक्षिण की यात्रा प्रारंभ की और गोदावरी नदी के तीर पर नानदेड़ में उन्होंने अविचल नगर बसाया। पर उत्तराधिकारी कहां ? गुरु जी की फिक्र का अंत न था।

वे चले जा रहे थे कि एक गुफा से उन्हें एक साधु के दर्शन हुए। वैष्णव साधु माधो दास गुसाईं ईश्वर की प्रार्थना में लीन था कि गुरु गोविन्दसिंह वहां आ पहुंचे। माधो दास को ईश्वर के काम का सहारा मिला और गुरु गोविन्दसिंह को मिला उत्तराधिकारी। उन्होंने माधोदास को अमृत पिलाकर बन्दा बहादुर बनाया। हाथों में तलवार दी और सिख सेना का नेता बनाकर पंजाब की ओर भेज दिया।

गुरुजी वापस आये। पंजाब का वह संत-सूरमा बेफिक्र होकर धर्म और राज्य दोनों चलाने लगा।

गुरु के पेटमें किसीने छुरा मारा, खसऽऽ!! दूसरे पल तलवार निकल आयी थी और छुरा मारनेवाले का सर कटकर धरती पर जा गिरा था। गुरुदेव ने पहचाना। उनके पेट में छुरा भोंकनेवाला एक सिख वेषधारी पठान था। गुरु ने समझ लिया, यह सरहिंद के नवाब की ही चालबाजी है। उसे गुरुजी की बहादुरशाह से मित्रता खटकती रहती थी। गुरु जी अचेत हो गये। तबतक और जत्थेदार और ग्रन्थी दौड़ आये थे। उन्होंने गुरुजी को संभाल लिया।

गुरुजी लेटे हैं। पेट में टांके लगे हैं फिर भी दरबार हो रहा है कि तभी बहादुरशाह का दूत हाजिर हुआ। उसने अर्ज की--शाहंशाह आपके अच्छे होने की खबर से बहुत खुश हैं। उन्होंने आपके लिए यह कमान भेजी है। और उसने कमान आगे रख दी।

कमान पर डोरी चढ़ाओ--गुरु ने कहा। पर कमान टस से मस न हुई।

प्रवीरसिंह....हिम्मतसिंह....खडगसिंह सब हार गये। पर कमान न हिलनी थी न हिली।

--अच्छा तो मुझे दो।

--गुरुजी आपके पेट के टांके.....।

--रहने दो......धनुष!

गुरु का हुक्म। धनुष उपस्थित कर दिया गया।

सटाक.....चर्रर्रर्रर्र।

कमान पर डोरी चढ़ गयी थी पर पेट के टांके भी टूट चुके थे।

गुरु फौजी पोशाक पहने खड़े हैं। उन्होंने आज उपदेश दिया। मेरे बाद कोई सिख गुरु नहीं होगा। केवल गुरु-ग्रंथ साहिब ही गुरु होंगे। फिर उन्होंने प्राचीन प्रथा के हिसाब के अनुसार पांच पैसे और नारियल गुरु ग्रन्थ साहब के सामने रखे और ऊंची आवाज में कहा--

आज्ञा भई अकाल की तभी चल्यायो पंथ।
सब सिक्खन का हुकुम है, गुरु मानियहु ग्रन्थ।।

और गुरु जी सच्चलोक को सिधार गये। उस समय उनकी उम्र इकतालीस वर्ष नौ महीने पन्द्रह दिन थी।

कलम का धनी, तलवार का मालिक और भगवान् का पुजारी इस तरह दुनिया को एक नयी रोशनी देकर चला गया। उनकी ज्यादा किताबें तो आनन्दपुर की सिरसा नदी में ही बह गयीं पर जो बची हैं वे उनका नाम अमर करने के लिए काफी हैं। उनके बारे में उनकी यह वाणी अमर रहेगी :--

हम इह काज जगत् में आये,
धरम हेत गुरुदेव कहाए।
जहां तहां तुम धरम विचारो,
दुष्ट देखियत पकरि पछारो।।

पुस्तकालय
1122.90
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

* * *

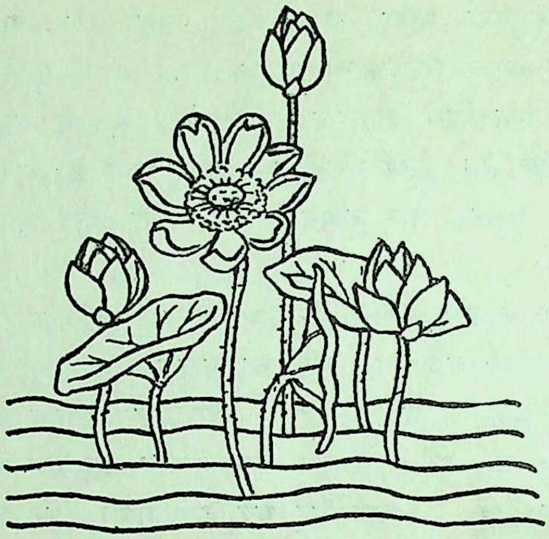

फूल

मधुर मधुर हे फूल मनोहर,
कितने प्यारे कितने सुन्दर !

जिस दिन तुम बगिया में फूले,
पत्तों के पलने में झूले,
पवन झकोरे सूं सूं बोले
भँवरे डोले गुन गुन गुन कर।

मधुर मधुर हे फूल मनोहर,
कितने प्यारे कितने सुन्दर।

कोमल कोमल लाल पँखुड़ियां
पलकों पर शबनम की लड़ियां,
स्वागत करतीं प्यारी कलियां
खुशबू देते बिखर बिखर कर।

मधुर मधुर हे फूल मनोहर,
कितने प्यारे कितने सुन्दर।

देखा तुम्हें सदा मुस्काते
किरन परी संग रास रचाते,
सब पर अपना प्यार लुटाते
शूलों के आंचल में खिलकर।

मधुर मधुर हे फूल मनोहर,
कितने प्यारे कितने सुन्दर।

—अमृताभारती (डा.)

* * *

वह फव्वारा कहां जो इन फूलों को निरंतर आनंद के रूप में उछाला करता है ?

—रवींद्रनाथ ठाकुर

अनोखी दीवार

—कुंज अलकापुरी

यह कहानी बहुत पुरानी है। यह उस समय की कहानी है जब दक्षिण भारत में त्रिवेंद्रम् का एक छोटा सा संपन्न राज्य था। उस समय इस भारत देश को विदेशी हवा नहीं लगी थी। लोग भोले-भाले और ईमानदार होते थे। आज की तरह उस समय लोग छली-प्रपंची नहीं थे। सब अपनी मेहनत और हुनर की कमाई से ही सुखी और संतुष्ट थे।

अजीज उसी त्रिवेंद्रम् राज्य का रहनेवाला था। वह बहुत ही गरीब था। टोकरियां बनाकर वह अपना गुजर बसर करता था। अजीज की बीबी तारा बड़ी सुन्दर और नेक थी। अजीज उसे बहुत प्यार करता था। तारा के बिना उसे एक पल भी रहना मुश्किल हो जाता था। जब अजीज टोकरियां बनाने लगता, तारा उसके सामने बैठी घर-गृहस्थी का काम निपटाती। तारा-जैसी स्त्री पाकर वह बहुत संतुष्ट था। इसके लिए वह ईश्वर का लाख-लाख शुक्रिया अदा किया करता। सुन्दर और सुशील होने पर भी तारा जन्म से गूंगी थी, किंतु अजीज को इसकी तनिक भी चिन्ता न थी। वह तारा को पाकर सदा प्रसन्न रहता था। अक्सर लोग उसे चिढ़ाते रहते कि गूंगी स्त्री को भी कहीं इतना प्यार किया जाता है, पर अजीज सुनकर हंस देता था।

इसके अलावा अजीज की प्रसन्नता की एक और बात थी। उसकी झोंपड़ी से सटी हुई एक फुलवारी थी, जो उसके अधिकार में थी। वह फुलवारी ऊंची और चौड़ी दीवार से घिरी थी। दीवार इतनी ऊंची थी कि आदमी क्या, पंछी भी उसे पार कर मुश्किल से उस फुलवारी में प्रवेश कर पाता। किसी को यह पता ही न था कि उस फुलवारी का पहला मालिक कौन था और किस राज-मिस्त्री ने इतनी ऊंची दीवार तैयार की थी।

एक समय की बात है। अजीज का दोस्त कबीर उसके यहां आया। अजीज उसे वह फुलवारी दिखाने ले गया। फुलवारी की सजावट और उसके रंग-बिरंगे फूलों को देखकर कबीर मोहित हो गया। ऐसी सुन्दर फुलवारी उसने नहीं देखी थी। सबसे अधिक आश्चर्य उसे उसकी दीवार को देखकर हुआ। वह अपनी उत्सुकता को दबा न सका। उसने अजीज से पूछा—"यह इतनी ऊंची दीवार से क्यों घेर दी गयी है?"

"भाई, इसके बारे में मैं कुछ नहीं जानता।"—अजीज का उत्तर था।

इस उत्तर से कबीर को बड़ा ताज्जुब हुआ। उसने रहस्यपूर्ण ढंग से अपने दोस्त की ओर देखा और प्रश्न किया—"तुम कह क्यों नहीं सकते?"

"यह मेरी बनवायी नहीं है।"—अजीज ने सीधा-सा उत्तर दिया।

"तो फिर इसे तोड़कर क्यों न देखा जाय?"—उसने पूछा।

"असंभव है।"—अजीज ने कहा।

"क्या सचमुच?"

"हां।"

"अच्छा तो कोशिश करके देखता हूं।"

इतना कह कबीर एक बड़ा-सा हथौड़ा ले आया और दीवार पर चोट करने लगा। किंतु हथौड़े ने दीवार का कुछ नहीं बिगाड़ा। तब कबीर अपनी सारी शक्ति लगाकर जोर-जोर से वार करने लगा। परंतु आश्चर्य, वह जितने जोर से उसपर वार करता, हथौड़ा छिटककर उतनी ही दूर जा गिरता। हारकर कबीर दीवार को इधर-उधर ठोकने और उसपर कस-कसकर चोट करने लगा। किंतु उसकी सारी मेहनत बेकार गयी। ईंट के हटने की बात तो दूर, न तो कहीं से एक चट ही गिरा और न कहीं दीवार में खरोंच ही आयी। इस तरह आधी रात तक कबीर कोशिश करता रहा। जब उसकी हिम्मत जवाब दे चुकी तब दीवार तोड़ने का निश्चय अपने मन से उसने हटा दिया, और दूसरे दिन सवेरे घर चला गया।

एक रात तारा अकेली फुलवारी में बैठी थी। सहसा उसका ध्यान उस दीवार की ओर गया। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि दीवार के निकट सात बौने नाच रहे हैं। ऐसा पहले नहीं हुआ था। उसने सोचा, यहां किसी का आना संभव नहीं। शायद आँखों को भ्रम हो रहा है। वह गौर से उधर देखती रही। बौने उसी तरह नाच रहे थे।

थोड़ी देर के बाद तारा को असलियत का पता लगा। उसने देखा कि दीवार से एक आदमी बाहर निकला। उसके सिर पर मुकुट था और गले में सोने की माला। उसके आते ही सातों बौने उसे झुक-झुककर सलाम करने लगे। उसी समय आकाश से सोने का एक सिंहासन उतरा। राजा उसपर जा बैठा। सातों बौने भी वहीं घास पर बैठ गये।

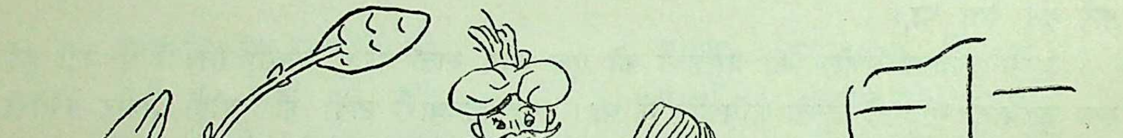

अब तारा से न रहा गया। वह दौड़ती हुई अपने पति के पास पहुंची। अजीज गहरी नींद में था। तारा ने उसे झकझोर कर जगाया और सारी बातें इशारे से बता दीं।

अजीज आंखें मलता हुआ उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। दोनों आकर निकट की झाड़ी में छिप कर बैठे और वहां का दृश्य देखने लगे। कानों में बोलचाल की आवाज आयी। दोनों ध्यान से सुनने लगे।

राजा अपने साथियों से कह रहा था––"कोई उपाय करना होगा।"

सबने उसकी हां में हां मिलायी। फिर उनमें से एक ने कहा––"हमें जल्दी ही कोई उपाय करना चाहिये, जिससे दीवार के भीतर के हमारे राज्य को कोई देख न सके।"

उसपर राजा ने कहा––"मृत्युलोक के निवासियों का विश्वास ही कैसे किया जाय? सुराग मिलते ही बम गिराकर इसे बर्बाद कर देना उन लोगों के लिए असंभव नहीं।"

राजा की बात सुनकर अजीज को एक उपाय सूझा। वह झटपट झाड़ी से निकल राजा के पास पहुंचा और बोला––"महाराज!"

अजीज के एकाएक आ जाने से वे सब चौंक उठे और आपस में कानाफूसी करने लगे। मगर राजा ने चुपचाप सुनने का उन्हें संकेत किया। अजीज ने राजा को दीवार की रक्षा का जब उपाय बतलाया, वह बहुत खुश हुआ। उसने अजीज को अंगूठी देकर कहा––"इससे तुम्हारा काम हो जायगा। लेकिन आज की घटना की बात किसी से मत कहना।"

अजीज ने स्वीकृति में सिर हिलाकर अंगूठी ले ली। सोने की अगूंठी बड़ी ही सुन्दर थी। उसकी बनावट बिलकुल उसी फुलवारी-जैसी थी। वह देर तक उसे देखता रहा।

अगले दिन वह दूर के शहर में अंगूठी बेचने चला गया। अपने शहर में उस अंगूठी के रहस्य के खुलने का डर था। उस अंगूठी से उसे काफी रकम मिली। उसने कई हट्टे-कट्टे मजदूरों को मनमानी मजदूरी पर जमा किया और दीवार की खुदाई चालू कर दी। अजीज को विश्वास था कि खुदाई कई दिनों तक चलेगी। किंतु ऐसा नहीं हुआ। कुछ ही घंटों में खुदाई का काम समाप्त हो गया। उसने उन्हीं मजदूरों से एक निर्जन पहाड़ी पर उस दीवार को रखवा दिया, जहां भूले-भटके भी किसीके पहुंचने की संभावना न थी।

अंधेरा होते ही अजीज अपनी स्त्री तारा के साथ उस पहाड़ी पर गया और उसी दीवार पर बैठ गया। अधिक रात बीतने पर वे सातों बौने एकाएक वहां नाचने लगे। कुछ देर बाद राजा आया और आकाश से वह सोने का सिंहासन भी उतरा। वे सब बड़े खुश थे। वह दीवार बर्बाद होने से बच गयी थी। राजा ने अजीज को देखकर कहा––"तुमने मेरी बड़ी सहायता की है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। इसके लिए जो चाहो मांग लो।"

अजीज ने तारा को दिखाकर कहा––"महाराज, यह मेरी स्त्री है––गूंगी है। मैं चाहता हूं, यह बोलने लगे।" तारा एकाएक बोलने लगी। अजीज निहाल हो गया। वह खुशी के मारे राजा के पैरों पर जा गिरा। राजा ने उसे उठाया और कहा––"जब तुम्हें कभी किसी तरह की जरूरत महसूस हो, यहां चले आना।"

चलते समय उस राजा ने हीरे-जवाहरात के अलावा दोनों को बहुमूल्य वस्त्र भी दिये। अब अजीज पहले का अजीज न था। उसकी झोंपड़ी सुन्दर भवन में बदल गयी। वह तारा के साथ सुख से रहने लगा।

◆

अमेरिकी बाल जीवन

डा. प्रभाकर माचवे

सबसे पहली चीज जो अमेरिका में नजर आती है वह यह है कि सार्वजनिक स्थानों में, सभा-सोसाइटियों में, सिनेमा घरों में, गिरजाघर या पार्टियों आदि में बच्चे कहीं नजर नहीं आते। बच्चों के अलग पार्क हैं, अलग संडे-स्कूल हैं, अलग क्रीड़ागार हैं, अलग ही एक दुनिया है।

मैं चूंकि यूनिवर्सिटी में पढ़ाता था, बच्चे बहुत कम नजर आते थे। सिवा प्रोफेसरों के घरों पर कभी गये तो। वैसे बच्चों की बड़ी प्रतिष्ठा है। हमारे भारत-विद्या विभागाध्यक्ष प्रो. विलियम फाडलर अपने कमरे में अपनी रोती हुई छोटी बच्ची का फोटो लगाये रखते थे। हर अमरीकी विवाहित व्यक्ति अपनी पत्नी, बच्चे, परिवार के फोटो अपने 'बिलफोर्ड' या पर्स में रखता है। शायद अपने यंत्र-व्यस्त जीवन में उनकी ओर ध्यान देने को उसे बहुत कम समय मिलता हो।

क्वेकरों में बहुत-से मित्र थे; तो एक मास्टरनी अपने बहुत छोटे बच्चों के स्कूल में मुझे ले गयी। हिंदुस्तान पर बहुत सरल भाषा में मैं पंद्रह मिनिट बोला। सवाल पूछे गये—आप हाथी पर बैठे हैं? बाघ का शिकार कैसे करते हैं? सांप से आप डरते नहीं? आपके यहां बच्चों को मां-बाप पीटते हैं?

सान फ्रांसिस्को में एक और जरा बड़े बच्चों की माध्यमिक शाला में जाना हुआ। उन्होंने प्रेमपूर्वक जो चिट्ठियां लिखीं, वे सब मैं संभालकर लाया हूं। निर्मल हृदय के ये उपहार सारे काले-गोरे, देस-परदेस के बंधनों को पार कर हमें कहां के कहां पहुंचा देते हैं!

पिलवाकी में मिस्टर टेअरी के बच्चे चिपर (उम्र ८ वर्ष) से हमारी बहुत दोस्ती हो गयी थी। चिपर साहब अपनी बंदूक (नकली) लेकर घर के पास के बगीचे में 'इंडियन' (वहां के आदिवासी रेड इंडियन) का शिकार खेलते। बहुत बचपन से, साइंस की जानकारी वहां के बच्चों को हमारी अपेक्षा कहीं अधिक होती है। उनके खिलौनों तक में राकेट, सब्मरीन वगैरह होते हैं। बचपन से स्वतंत्र विचार और कल्पना-शक्ति के विकास की ओर मां-बाप बड़ा ध्यान देते हैं। एक प्राफेसर प्रति रविवार को फिल्मों की लाइब्रेरी से उत्तम फिल्में घर पर लाते और बच्चों को अमरीका का सारा इतिहास इन्हीं फिल्मों के सहारे उन्होंने सिखा दिया।

बचपन से अकेले रहने और अपने-आप कुछ-न-कुछ काम करते रहने की उनकी आदत बड़ी सराहनीय है। यंत्रों से खटपट, तोड़-फोड़, खेल-कूद कुछ-न-कुछ करते ही रहेंगे। अमरीकी बच्चों को प्रौढ़ों की नकल में गंभीर चेहरा बनाकर जीवन की गंभीर समस्याओं की नीरस चर्चा सुनते हुए चुपचाप बैठे रहना पसंद नहीं। वे जैसे हाथ पैरों का उपयोग करते हैं, जबान भी बराबर कतरनी की तरह चलती रहती है। मैंने कई बच्चों से पूछा—'तुम क्या बनना चाहते हो?" एक बच्ची ने जवाब दिया—"मां-बाप जो कुछ हैं, वह मैं कभी नहीं बनूंगी।"

बच्चों के लिए सबसे अद्‌भुत और अमरीका का एक अविस्मरणीय स्थान है डिस्नीलैंड। वहां पहुंचते ही जंगली जानवरों की आवाजें स्वागत करती हैं। अंदर कई अद्‌भुत मायालोक हैं—समुद्र के अंदर की जीवसृष्टि, पनडुब्बी में बैठकर जाइये—उनके लिए एक विशेष मत्स्य-कन्या की पोशाक पहने लड़की तैरती रहती है। अंतरिक्ष में चलनेवाली रेलगाड़ी में बैठिये या 'लैंड' में 'कैन्टो' (छोटी नाव) में बैठकर रेड इंडियन आदिवासियों के नाच देखिये। वाल्ट डिस्नै के एक-एक अमर-चरित्र का यहां एक-एक घर है। डम्बो और मिकीमाउस और स्नो-वाइट सबकी कहानियां यहां चलने-फिरनेवाली बड़ी गुड़ियों के सहारे देखी जा सकती हैं। पूरा दिन देखकर भी मन नहीं भरता। डिस्नी लैंड का हर कोना सुंदर है।

बच्चों को वहुत अकेला रहना पड़ता है। मां-बाप शाम को पार्टी या क्लब या काम पर जाते हैं तो घर में बच्चे 'बेबी-सिटर' के पास बैठते हैं या 'टी. वी' देखते हैं। उससे बचपन से ही साहस करने या भयानक रस में आनंद लेने की वृत्ति बढ़ती है। पारिवारिकता का जो हमारे पूर्व के देशों में आदर्श है, उससे भिन्न वहां वात्सल्य आदि को बड़ी पिछड़ी हुई भावुकता मानते हैं। गांव-देहातों में अभी भी परिवार हैं जहां बच्चे मां-बाप के साथ रहते हैं, सीखते-बढ़ते हैं। पर न्यूयार्क या शिकागो जैसे बड़े शहरों में मां-बाप को फ़ुरसत कहां ?

मैं एक बच्चों का पागलखाना भी देखने गया था। इसे 'मानसिक चिकित्सा' करनेवाला अस्पताल वहां कहते हैं। कला के द्वारा बच्चों की कुंठा, क्रोध, तेजमिजाजी, हिंसावृत्ति की धीरे-धीरे बड़े धैर्य से चिकित्सा वहां की जाती है। देखकर आश्चर्य हुआ।

बच्चों के बारे में बात करते हुए मैं एक बच्ची की कहानी नहीं भूलूंगा जिसने वाशिंगटन में मैं चेरी-वृक्षों की हलकी-हलकी फुहार के नीचे जब जा रहा था, तब मेरे पास आकर ठिठककर मुझे कुछ फूल उपहार दिये थे और कहा था—'हाइ इंडियन !' और मुस्कराकर वह पांच बरस की बच्ची भाग गयी थी। बच्चों के मन में कोई कपट, कोई कूटनीति, कोई युद्ध-चिंता, कोई समस्याएं नहीं हैं। काश दुनिया के बच्चे मिलते और एक उनका संयुक्त-राज्य होता !

प्रत्येक शिशु यह संदेश लिये आता है कि भगवान् अभी भी मनुष्य से निराश नहीं हुआ है।

भगवान् प्रतीक्षा करता है कि मनुष्य बुद्धिमानी में फिर से अपना शैशव पा जाय।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

पतंग और प्रायश्चित्त

——शांति रानी

अविनाश अभी स्कूल से लौटा ही था। उसने बस्ता खूंटी पर लटका दिया और हाथ-मुंह धोने एक कोने पर चला गया जहां पानी का पीपा भरकर पहले से ही रखा था। कमरे के एक कोने में बिछी चटाई पर उसकी मां लेटी हुई थी। पास ही उसका छोटा भाई विनोद आंचल पकड़े झगड़ रहा था।

न.....न....ऊं....ऊं....मैं तो आज पतंग लेकर ही रहूंगा। मोहन, श्याम, केशव, नीरू सभी पतंग उड़ा रहे हैं। केवल मैं ही हूं बगैर पतंग के......

——तो क्या हुआ? मोहन के घर चार चार कमानेवाले हैं। नीरू, श्याम सभी की हालत हमसे कहीं अच्छी है। वे एक तो क्या दिन में चार-चार भी उड़ा सकते हैं।

——हमारे पिताजी भी तो कमाते हैं।

——बड़ा आया पिताजी का बच्चा! छोटा मुंह और बड़ी बात।... अविनाश! देख यह मुझे तंग कर रहा है। जरा इसे बाहर तो ले जा। आज दिन में मैं सोने भी न पायी थी......

——"अबे हटता क्यों नहीं? क्यों मां को तंग किये जा रहा है?" अविनाश ने मां के दिये हुए उत्तरदायित्व को निभाते हुए कहा।

——जा! जा! मैं हटनेवाला नहीं। आज सभी पतंग उड़ा रहे हैं, मैं भी उड़ाऊंगा समझे! देख न मां, सिर्फ दो आने दे दे। एक आना धागे के लिए दूसरा पतंग के लिए। फिर देखना मेरी पतंग कितनी दूर जाती है। उस दिन की बात जानती हो मां क्या हुआ था जो मैं पतंग लुटा बैठा? बाहें जो फूली थीं टीके के कारण। आज तो टीके का निशान भर रह गया है। आज देखना मैं कितनी पतंगें काट कर लाता हूं।

——अबे, ओ पतंग लूटनेवाले, जरा एक गिलास पानी तो पिला।

——नहीं, कभी न पिलाऊं। पहले मुझे पैसे दिला मां से——विनोद ने मां को आड़े हाथों लिया।

——नहीं लाता?

——नहीं! नहीं!

——मरम्मत करवायेगा अपनी? बहुत दिनों से तूने मेरी मार नहीं खायी है।

——कैसे मारता है; मार तो जरा, कह कर वह मां से चिपट गया।

——अविनाश ने भी आव देखा न ताव, जाकर दो तमाचे जड़ दिये उसके गालों पर।

विनोद ने सर पर आसमान उठा लिया....मां बरस पड़ीं अविनाश पर——"ऐसे भी कहीं अपने छोटे भाई को मारा करते हैं? अपने लिए पानी तू भी तो ला सकता था। इतनी छोटी बात के लिए....हाय रे! इसके गाल कितने लाल हो गये हैं!"——मां उसके गालों को सहलाते हुए कह रही थी।

—और मैं उसके सब काम चुपचाप करता रहूं—कपड़े धोऊं, लोहा करूं, बीमार पड़े तो दवाखाना ले जाऊं....!

—करता है तो क्या हुआ? सब बड़े अपने से छोटों के लिए कुछ-न-कुछ करते हैं। फिर विनोद तो छोटा है। उसको इतनी अकल कहां कि वह समझे।

—"मां, इसे तुम ही सर चढ़ा रही हो। मुझे क्या? बिगाड़ो अपने लाड़ले को और संभालो भी तुम्हीं"—अविनाश ने जरा तीखे होकर कहा।

—"हां! हां! मैं नहीं संभालती तो कौन संभालता है? तू कभी इसका कुछ न कर। बस!"—मां से और भी उच्च स्वर में जवाब मिला।

अविनाश उत्तर न दे पाया। गुस्से में भरपूर हो वह एक कोने में मुंह फुलाकर बैठ गया। और दिन होता तो वह इस समय बाहर खेलता होता, विनोद को भी साथ लिये चलता। पर आज गंभीर विद्यार्थी की तरह वह किताबें और नोटबुक खोलकर बैठ गया। पढ़ने में मन न लगते हुए भी बलपूर्वक पन्नों को उलट-पलटकर कुछ पढ़ने की कोशिश कर रहा था।

थोड़ी देर में विनोद का रोता हुआ चेहरा खिल उठा। उसके हाथ में कुछ पैसे थे। मुट्ठी कसकर बंधी हुई थी—मानों इसमें ही कुबेर का खजाना हो। वह जल्दी-जल्दी बाहर जाने के लिए चप्पल पहन रहा था। अविनाश को मालूम था कि अभी रास्ते में ट्राफिक का जोर है। दुर्घटना की संभावना है और पतंग की दुकान पर चौराहा पार करके पहुंचना होता था। कल की बात होती तो अविनाश दौड़कर उसके साथ हो लेता पर वह आज कुछ न कर पा रहा था। वह मन ही मन मान किये बैठा था। चाहता था कि विनोद या मां में से कोई आकर उससे कहे कि देखो तुम्हारे बिना हमारा काम रुका पड़ा है। उठो, जरा हमारी मदद करो। पर आज तो सब अकड़ में थे। विनोद की आंखों में गर्व और अहंकार कह रहा था—देख, तूने मुझे मारा था न, पर मां ने मुझे पैसे दिये। पैसे उसके हाथ में थे। वह तीर की तरह भाग रहा था सड़क की ओर। अचानक किसी अज्ञात आशंका से अविनाश का दिल कांप उठा। पल ही भर में उसके पांव द्रुतगति से बाहर उठ रहे थे। देखा तो सचमुच विनोद मोटर के नीचे आ रहा था; उधर विनोद कहीं कुछ न देख पा रहा था। उसका लक्ष्य एक ही ओर था—पतंग की दूकान। सहसा उसके पैरों में बिजली की सी गति आ गयी। उसने लपककर विनोद को आगे धकेला। मोटर झटके से आगे निकल गयी और नीचे पड़ा था खून से लथपथ अविनाश.....

अविनाश ने कराहते हुए आंखें खोलीं तो विनोद को कहते हुए सुना—"अब मैं पतंग के लिए कभी जिद न करूंगा। जरा हम से बात तो कर लो..."

अविनाश ने अपने पट्टी लगे माथे को बड़ी मुश्किल से विनोद की ओर करके देखा तो विनोद की आंखों में अहंकार और जिद के बदले प्रायश्चित्त और स्नेह की बूंदें छलक रही थीं।

पुकारती वसुन्धरा

भरतपुत्र ! तुम बढ़ो तुम्हें आवाहन करती वसुन्धरा।

बुला रहा है तुम्हें हिमालय,
यह अपना, इसमें क्या संशय ?
बढ़ो लक्ष्य पथ पर छोड़ो भय,
मरण श्रेय पर नहीं पराजय,
देखी है तुमने तो साहस और त्याग की परंपरा।
भरतपुत्र ! तुम बढ़ो तुम्हें आवाहन करती वसुन्धरा।

तुम अर्जुन गांडीव तुम्हारा।
तुम मृत्युन्जय, विजय तुम्हारा।
भारत का हर क्षेत्र तुम्हारा।
उत्सव है यह समर तुम्हारा।
तुम निर्बान्धव नहीं, तुम्हारे सम्मुख हिमगिरि मित्र खड़ा।
भरतपुत्र ! तुम बढ़ो तुम्हें आवाहन करती वसुन्धरा।

बहनों की राखी के बल पर,
झांसी की रानी की भू पर,
तुम नवीन अस्त्रों से सजकर,
आओ अपनी प्रिय सीमा पर,
समरभूमि का त्याग करो तुम रणचंडी को शीश चढ़ा।
भरतपुत्र तुम बढ़ो तुम्हें आवाहन करती वसुन्धरा।

अपमानों को सह न सके तुम,
पर न किसी के शत्रु रहे तुम।
करुणा विजय और मैत्री का
प्रतिपल हो आदर्श गहे तुम।
तुम शंकर के प्रलय नृत्य हो तुम ही वीणा सामस्वरा।
भरतपुत्र ! तुम बढ़ो तुम्हें आवाहन करती वसुन्धरा।

—कुमारी मधुच्छन्दा

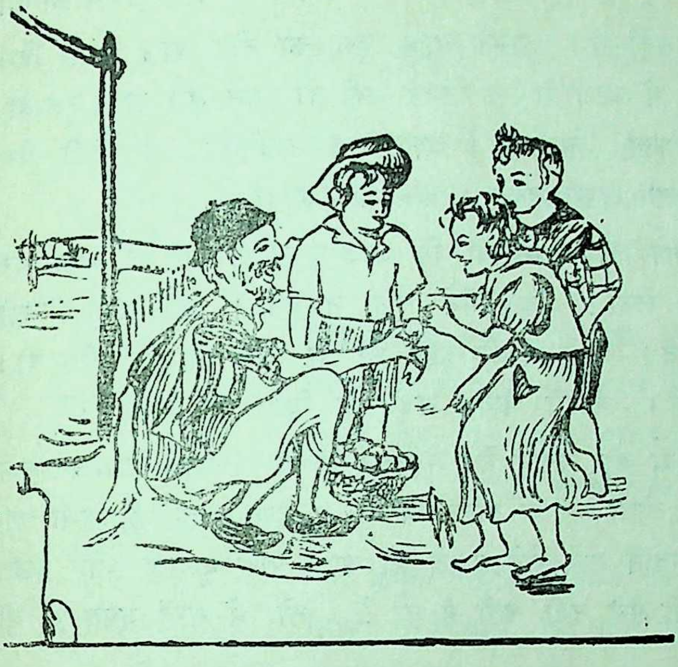

लड्डूवाले चाचा

वन्दना जैन

हम लोग उस समय मन्दसौर में रहते थे। तब मैं केवल छः साल की थी। मैं जीजी के साथ रहती थी। अगर कोई मुझे घूमने ले जाता या मेरे खाने लायक वस्तु मुझे देता तो मैं उसके पास रहने को तुरत तैयार हो जाती।

एक बात जो मुझसे अब तक भूली नहीं जाती और जो मुझे अब सपने जैसी लगती है, वह यह है कि जब मैं अपनी सहेलियों के साथ घर के सामने मैदान में खेला करती, तब हर रोज एक लड्डू बेचनेवाले की आवाज सुनाई देती।

वह एक पचास-साठ साल का बुढ्ढा था। कमीज के ऊपर एक काली मिरजई, सर पर एक काली टोपी और हाथ से धोई हुई सफेद धोती पहनता। एक हाथ में लड्डू का डिब्बा उठाता और दूसरा हाथ मुंह पर रखकर आवाज लगाता, "लड्डू लो भाई! लड्डू! मीठे-मीठे, ताजे-ताजे लड्डू।"

इस प्रकार चिल्लाता हुआ वह, हम बच्चे जहां खेलते, वहां डिब्बा नीचे रखकर हमसे बातें करता। उसे छोटे बच्चे बहुत अच्छे लगते। वह बातों ही बातों में हम बच्चों से कहता, "बच्चो, जाओ अम्मां से दो-दो पैसे ले आओ। अगर तुम पैसे लाये तो मैं तुम्हें एक बड़ा सा मीठा लड्डू दूंगा।"

इस प्रकार हम लोग दौड़कर पैसे ले आते और स्वाद ले-लेकर लड्डू खाते। जब मैं दोपहर को बूढ़े की आवाज सुनती, तो तुरन्त ही जीजी को पुकारती, "जीजी, मुझे दो पैसे दो ना। मुझे एक लड्डू खाना है।" किंतु जीजी मुझे चिढ़ाने के लिये कहती, "मैं तो अभी पैसे नहीं दूंगी। तेरा लड्डूवाला तो आया ही नहीं है। जब वह आयेगा तो मैं तुझे जरूर पैसे दूंगी।"

मैं न मानती। मैं कहती, "जीजी, दो ना। वह देखो, आ गया लड्डूवाला। जल्दी

दो ना जीजी वह चला जायगा।" इस प्रकार मैं जीजी की चापलूसी कर पैसे ले लेती और खुशी से नाचती हुई लड्डूवाले के पास लड्डू लेने जाती।

मेरे साथ खेलनेवाले सभी बच्चे लड्डू लेते और हम साथ मिलकर "घर घर" खेलने लगते।

एक दिन जीजी के पास दो पैसे नहीं थे। उनके पास दस का नोट था। उस दिन जब लड्डूवाला लड्डू बेचने आया और मैं जीजी से पैसे मांगने लगी तो उसने मुझे ऊपर बुलाया, ऊपर जाने से पहले मैंने लड्डूवाले से कहा, "चाचाजी। आप जरा ठहरिये। मैं अभी पैसे लिये आती हूं। मैं पैसे लेकर आऊं तब तक ठहरना। चले मत जाना।"

जब मैं ऊपर गयी तो जीजी ने मुझे बहुत समझाया कि आज तू लड्डू मत ले, आज मेरे पास पैसे नहीं हैं, कल तू दो लड्डू ले लेना। किंतु मैंने एक न सुनी। मैंने कहा, "नहीं जीजी, आज तो मुझे लड्डू खाना ही है। नहीं जीजी कुछ भी हो आज तो मुझे पैसे दो। मेरी सब सहेलियां लड्डू खा रही होंगी। मैं ही केवल लड्डू के बिना रह जाऊंगी।"

अन्त में जीजी को बहुत गुस्सा आया और उसने मेरे मुंह पर दो-चार तमाचे जमाकर मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैं रोती रोती घर से बाहर निकली तो देखती क्या हूं, अभी तक चाचाजी मेरे इन्तजार में बैठे थे। उन्होंने मुझे रोते देखते ही अपने पास बुलाया और पूछा, "बेटी, तुम रोती क्यों हो? तुम्हें जीजी पैसे नहीं देती है ना? तो मैं तुम्हें मुफ्त में ही लड्डू देता हूं।"

मेरा रोना बंद हो गया। मैंने खुशी से लड्डू लिया और दूसरी सहेलियों के साथ खाया।

बाद में मैंने घर जाकर जीजी से कहा, "देखो जीजी, तुमने मुझे पैसे नहीं दिये, फिर भी चाचाजी ने मुझे लड्डू मुफ्त में ही दिया।"

मेरी यह बात सुनते ही जीजी बहुत नाराज हुई और जब दूसरे दिन चाचाजी लड्डू बेचने आये तो जीजी ने उनको खूब डांटा और कहा, "खबरदार, जो तुम इस गली में आये तो। तुम्हीं ने इन बच्चों की आदतें बिगाड़ रखी हैं। खैरियत चाहो तो अब आगे से तुम यहां कभी न आना मैं साफ कहे देती हूं..... हां......।

"आयेंगे क्यों नहीं, जरूर आयेंगे।" मैं बीच में ही बोल पड़ी, "हां जीजी, तुम उन्हें क्यों आने दोगी। तुम तो कंजूस हो जीजी। सच है ना जीजी? लेकिन हां, जीजी अगर तुम्हें मेरे लिये पैसे खरच करने मंजूर न हों तो न सही। चाचाजी तो यहां आयेंगे ही। दूसरी सहेलियों को तो लड्डू खाने को मिलेंगे। उनके मा-बाप तुम जैसे कंजूस थोड़े ही हैं।"

जब जीजी ने यह सुना तो उन्होंने मेरे मुंह पर और दो-चार थप्पड़ मारे और मुझे वहां से भगा दिया।

उस दिन के बाद फिर वे लड्डूवाले चाचा कभी नहीं आये। कुछ महीनों पीछे और कई नये लड्डूवाले आने लगे। सभी सहेलियां उनसे उसी तरह लड्डू खरीदने लगीं। मगर मैं लड्डूवाले की आवाज पर कभी घर से बाहर न निकलती।

जब मेरी और सहेलियां नये लड्डूवालों से लड्डू खरीदती होतीं, तब मैं घर की मुंडेर पर खड़ी दूर मोहल्ले की सड़क का मोड़ ताकती रहती। पर वहां से कभी, कोई आता नहीं दिखायी पड़ता। और मैं चुपचाप उदास होकर घर में चली जाती। ★

भारत जननी

भारत जननी जय! भारत जननी जय!!

तेरे आंचल में पलते हैं, अंग अंग के वासी,
जयति उर्वरे, अन्नपूर्णा, शक्तिदायिनी जय!
भारत जननी जय!!

हिम किरीट तव हरित कण्ठ पर, शोभित विन्ध्याचल माला,
चरण चूमता, नील महासागर स्वतंत्र हो मतवाला,
वन्दन शत शत वन्दन भारत, जननी जय जय जय!
भारत जननी जय!!

गंगा यमुना महानदी कृष्ण सिंधु कावेरी,
शिखर तीर्थ काशी तक गाती पावन महिमा तेरी,
हरा भरा वक्षस्थल तेरा, जननी जय जय जय!
भारत जननी जय!!

—सुधा

◆

बूझो तो जानें

नीचे पहले दस संक्षिप्त सूत्र दिये गये हैं, बाद में दस नाम। प्रत्येक सूत्र के साथ एक नाम का किसी भी तरह का संबंध है। किस सूत्र के साथ किस नाम का संबंध है इसे खोजने की कोशिश करो।

(अ) धर्मचक्र (आ) मोनालिसा (इ) गिरता हुआ सेब (ई) विजय स्तंभ (उ) मेघदूत (ऊ) $E=mc^2$ (ए) सेण्ट हेलेना (ऐ) हजार से अधिक आविष्कार (ओ) एवरेस्ट (गौरीशंकर) पर्वत (औ) युद्ध और शांति।

(क) नेपोलियन (ख) कालिदास (ग) लियानार्दो दा विन्ची (घ) एडिसन (ङ) बुद्ध (च) टाल्सटाय (छ) आइनस्टाइन (ज) न्यूटन (झ) तेनसिंग (ञ) राणा कुंभ।

उत्तर —

अ—ङ; आ—ग; इ—ज; ई—ञ; उ—ख; ऊ—छ; ए—क; ऐ—घ; ओ—झ; औ—च।

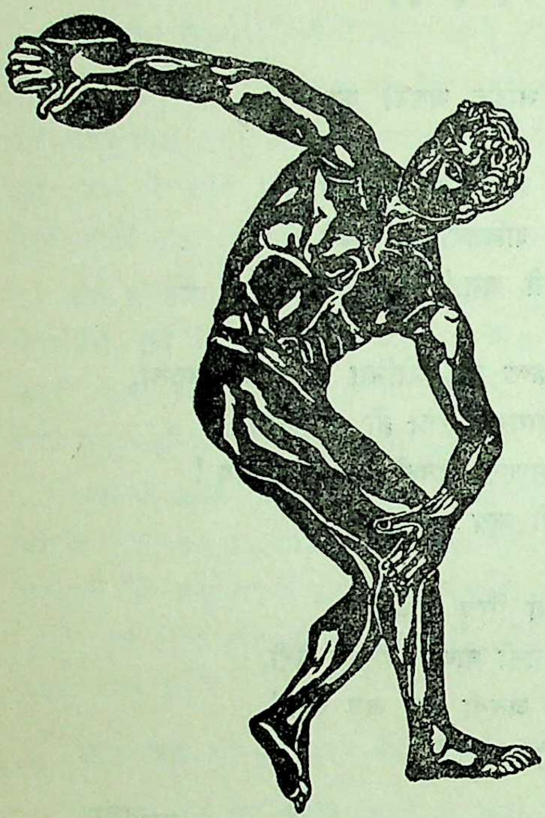

तन्दुरुस्ती हजार नियामत

—प्रणवकुमार भट्टाचार्य

तन्दुरुस्ती सभी को चाहिये। खराब स्वास्थ्य व्यक्ति के लिए जितना हानिकारक है उतना ही देश के लिए भी। खराब सेहत आदमी को जीवन के स्वाभाविक आनंद का भोग नहीं करने देती। दवा और डाक्टरों के पीछे रुपया तो जाता ही है मन और हृदय का उत्साह भी टूट जाता है। रुपया कमाने या किसी भी नये काम को करने के लिये जिस कठिन मेहनत की जरूरत पड़ती है वह नहीं हो पाती। खराब सेहत सामाजिक जीवन के लिए आदमी को अनुपयोगी और किसी आदर्शमय या आध्यात्मिक जीवन के लिए अशक्त बना देती है। बीमार या रोगी आदमी के उत्साह का फल न मिल पाने से देश और जाति की तरक्की भी रुकती है। आदमी समाज के ऊपर बोझ की तरह लदा रहता है।

फिर भी यह कम लोग जानते हैं कि कैसे नीरोग रहें और इसीलिए नीरोग जीवन बिताने के नियम सबको जानने चाहियें।

आदमी की देह की तुलना घड़ी के यंत्रों से की जाती है। घड़ी को ठीक बनाये रखने के लिए उसमें चाबी दी जाती है, उसे साफ किया जाता है, उसमें तेल दिया जाता है। उसे चारों ओर के धक्कों से बचाया जाता है। इसी तरह शरीर से यदि हम काम लेना चाहें तो हमें उसकी देखभाल करनी होगी। शरीर का हर एक यंत्र ठीक-ठीक चलता रहे तो अस्वस्थ होने का कोई कारण नहीं।

पर आश्चर्य है कि हम शरीर से कहीं अधिक अपनी कीमती चीजों की देखभाल करते हैं। बहुत लोग शरीर के प्रति लापरवाह रहते हैं। और बीमार होते ही दवा के लिए डाक्टर के पास

दौड़ते हैं। पर अच्छे होते ही वे पुराने तरीके पर चल देते हैं। अपनी देह पर अत्याचार करने का फल जानते हुए भी वे तन्दुरुस्ती के लिए फायदेमन्द अच्छी आदतें डालने में लापरवाही करते रहते हैं।

शरीर के सारे कल-पुर्जों के ठीक-ठीक चलतें रहने पर जो फुर्ती और खुशी महसूस होती है उसे ही हम तन्दुरुस्ती कहते हैं। इसकी रक्षा के लिए दो एक नियमों का पालन करना आवश्यक है।

(१) **ठीक कसरत**—शरीर-शिक्षा के जानकारों की राय है कि ठीक कसरत ही सुन्दर स्वास्थ्य लाभ का सीधा रास्ता है। कसरत की मदद से खून का आना-जाना तेजी से होता है। हृदय की स्वाभाविक क्रिया अटूट रहती है और रक्तवाहिनियां साफ रहती हैं। सांस लेने का काम अच्छा होता है। मांसपेशियां मजबूत हो उठती हैं और देह के सारे कल-पुर्जे मजबूत, सक्रिय और स्वस्थ रहते हैं।

(२) **ताकत देनेवाला नपा-तुला भोजन**—खाना क्या हो यह तय करने में बुद्धि लगानी होती है। देश, आचार, शिक्षा और संस्कार के अनुसार कितनी भी असमानता क्यों न हो, एक साधारण नियम तो हम सभी मानेंगे—जहां तक संभव हो स्वाभाविक खाद्य अच्छा होता है। और मैदा तथा मशीन की चीनी आदि का कम व्यवहार करना ही अच्छा है। जीभ के स्वाद पर कम ध्यान देकर पुष्टिकर भोजन की आदत डालनी चाहिये। चाय, काफी आदि तो बिलकुल छोड़ना होगा। खाते समय मन प्रफुल्ल और प्रसन्न रखकर खूब चबाकर खाना चाहिये। थके होने पर, जल्दी में या बेचैन मन से, कड़ी कसरत के तुरत बाद या पहले कभी नहीं खाना चाहिये। खाने के तुरत बाद नहाना भी अच्छा नहीं होता।

(३) **नींद और आराम**—जो कड़ी मेहनत करते हैं उन्हें साधारणतः आठ घण्टे सोने की जरूरत होती है। कुछ लोगों का काम छः घण्टे से भी चल जाता है। बढ़ती उमर के किशोर-किशोरी दस घण्टे तक भी सो सकते हैं। पर आराम और नींद में भेद है। मशीन की तरह सारे दिन काम करके कोई अधिक दिन नहीं चला सकता। मन और शिराओं को शांत करके दुपहरी में अगर आराम किया जाय तो काम-काज का भी अच्छा नतीजा होगा।

(४) **तन्दुरुस्ती के लिए लाभदायक आदतें**—अपने और अपने आसपास स्वास्थ्यकर आदतों को लागू करना होगा। नहाना, सफाई, विभिन्न अंगों की देखभाल। छूत की बीमारियों से सावधान रहना, खुली हवा और प्रकाश की कद्र जानना हमारा कर्त्तव्य है। इन आदतों को बनाये रखने से हमें रोग के हाथ से जल्दी ही छुटकारा मिल सकता है।

(५) **मन की शांति**—शरीर के साथ मन का बहुत नजदीकी संबंध है। मानसिक उत्तेजनाएं शरीर को बहुत नुकसान पहुंचा सकती हैं। इसी तरह रोगों और देह की गड़बड़ियों का प्रभाव मन पर पड़ता है। मन के शांत और काबू में रहने से स्वास्थ्य और उत्साह

बढ़ता है और उम्र भी। अंतर की इसी शांति के लिए जीवन को ठीक तरह से चलाना होगा। बुरी वत्तियों को मन में नहीं आने देना चाहिये। एक आदर्श को लेकर उसे जीवन सौंपकर जीवन को यदि घड़ा जा सके तो देख सकोगे कितना आनंद आता है और शांति मिलती है। आदर्श जितना ऊंचा होता है उसका फल भी उतना ही महान् होता है। इच्छाओं की पूर्त्ति में सच्चा आनंद नहीं मिलता, उससे तो सब कुछ डूबता है और इच्छाएं फैल जाती हैं। सच्चा आनंद तो तब मिलता है जब आदमी जीवन के सर्वोच्च आदर्श की सिद्धि के लिए अपने आपको सौंप देता है।

* * *

बैठो, कुछ बात करें

(१) क्या तुम बता सकते हो कि रोज कितनी उल्काएं (टूटते हुए तारे) पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं?

(२) 'बृहस्पति' ग्रह कितना बड़ा है?

(३) क्या यह सच है कि किसी-किसी केले की लंबाई ढाई फीट से भी अधिक होती है?

(४) पृथ्वी का सबसे छोटा मेंढक कितना छोटा है जानते हो?

(५) संसार के किस देश में सबसे पहले कागज के सिक्के चालू हुए थे?

(६) एक साधारण पेंसिल से कितनी लंबी लकीर खींची जा सकती है?

(७) अफ्रिका की राक्षसी सीपी कितनी बड़ी होती है, बता सकते हो?

(८) एक हाथी कितना पानी पी सकता है?

(९) न्यूयार्क की एम्पायर स्टेट बिल्डिग में कितने आदमी रह सकते हैं?

(१०) क्या तुम बता सकते हो कि कहीं उड़नेवाला सांप पाया जाता है या नहीं?

(११) संसार का सबसे हल्का पदार्थ क्या है?

(१२) एक गौरैया साल में कितना अनाज खा सकती है?

(उत्तर के लिए देखें पृष्ठ ४३)

सेगैं साहब की बकरी

[आलफोंस दोदे (१८४०-१८९७) एक विख्यात फ्रेंच लेखक हैं। उन्होंने अनेक उपन्यासों और नाटकों की रचना की है। हां, तुम जैसे बच्चों के लिए भी छोटी-छोटी सुन्दर कहानियां लिखना वे नहीं भूले। आज भी फ्रांस में विरला ही कोई ऐसा मिलेगा जिसने उनकी "गांव की चिट्ठी" नामक पुस्तक न पढ़ी हो। आओ, तुम्हें भी सुनायें उनकी बहुप्रशंसित एक बाल-कहानी।]

अपनी बकरियों से सेगैं साहब तंग आ गये थे। उनके पलायन ने साहब की नाक में दम कर रखा था। भूल गये थे वे सुख-शांति का नाम। एक भी बकरी उनके यहां न टिक पाती। न कुछ कहना न सुनना, सुबह ही, न जाने कब और कैसे उनकी बकरी महाशया पहाड़ पर भाग जाती और भेड़िया महोदय अपना कौशल दिखा कब उसकी गर्दन मरोड़ कलेवा कर जाते, इसका कुछ पता ही नहीं लग पाता सेगैं साहब को। फिर भी बकरी तो बंधी रहने से रही। कितना ही दुलराओ, पुचकारो, वह ठहरी मनमौजी, अलमस्त। पहाड़ की खुली हवा में चरे बिना दम घुटने लगता था उसका।

बकरी की मति-गति उनके पल्ले नही पड़ती। वे घबड़ा उठते—अब नहीं, बहुत हो चुका। कान पकड़ता हूं, अब बकरी नहीं पालूंगा। निगोड़ी बकरी के पांव ही नहीं ठहरते मेरे यहां।

किंतु छः-छः बार बकरी खोने के बाद भी सातवीं बार वह खरीदने के लोभ को न रोक सके। पर हां, इस बार बहुत देख-भाल, सोच-समझकर बाजार किया सेगैं साहब ने। न मालूम, कैसे उनको विश्वास हो गया था कि इस बकरी के दिल में उनके घर के प्रति माया उपजेगी।

क्या ही सुन्दर थी देखने में वह। झिलझिल दो आंखें, जवान फ्रेंच सिपाही की तरह दाढ़ी, काले-काले चमकीले चार खुर, जेबरे की तरह सींग और चमकते सफेद लंबे-लंबे रोयें नहीं थे, था मानों एक चोगा। सीधी-सादी, प्यारी-प्यारी, शांत बकरी। दूध दुहते तंग नहीं करती। बड़ी ही अच्छी थी वह बकरी।

सेगैं साहब के घर के पीछे ही था बेड़ा-घिरा एक टुकड़ा मैदान।

नये अतिथि को वहीं मिला आश्रय। घनी छाया के नीचे बकरी को बांधते वक्त साहब ने अच्छी तरह परखा—रस्सी काफी लंबी तो है, मन-मुताबिक वह घूम-फिर तो सकेगी। लेकिन उन्हें चैन कहां? बार-बार आ उसे देख जाते। कहीं उसे कोई असुविधा तो नहीं हो रही। मस्त हो बकरी को हरी-हरी घास चरते देख सेगैं साहब की आंखें खुशी से चमक उठतीं।

चलो, जान बची। अब यह मेरा घर छोड़ नहीं भागेगी।

पर नहीं, बेचारे सेगैं साहब अपनी बकरी को समझ नहीं पाये। उसका मन कैसा-कैसा करने लगा था।

*

एक दिन उसकी नजर पहाड़ी की ओर चली गयी। पहाड़ की हरियाली को देखते ही वह बोल पड़ी—"काश, वहां यदि जा पाती! कैसा मजा आता! जंगली फलों के बीच कैसे आनंद से उछलती-कूदती घूम सकती। इस तरह बंधे-बंधे घेरे में चरना क्या हमें खाक शोभा देता है। बंधन गाय-गधे के लिये ही ठीक है। हमें तो चाहिये खुला मैदान और खुली हवा।"

ज्यों ही ऐसा सोचा कि घास बेस्वाद बन गयी। बिगड़ गया उसका दिमाग। वह दुबली होने लग गयी। दूध देना भी कम हो गया। सारे दिन रस्सी के साथ मस्ता-मस्ती करती। पहाड़ी की ओर मुंह कर, नाक फुला, बड़ी करुण आवाज में चिल्लाती।

सेगैं साहब ने भी गौर किया कि वह दिन पर दिन कैसीसी होती जा रही है। कारण उनकी समझ में नहीं आया।

एक दिन प्रातः, दूध दुहना शेष होते ही अपनी भाषा में बकरी बोली—

"सुनो हे बाबू, आपके यहां अब मेरा मन नहीं लगता। दुहाई आपकी, मैं वहां—पहाड़ पर जाऊंगी। मुझे जाने दो।"

"हाय री जली तकदीर! इसके मुंह में भी वही रोर।" अति दुःखित हुए सेगैं साहब। उनके हाथ से दूध का बर्तन गिर पड़ा। उधर नजर न कर, प्यार से पल रही बकरी के पास बैठ गये और बोले—"यह क्या धुवली? तू भी मुझे छोड़ चली जाना चाहती है?"

"हां।"

"मगर क्यों? यहां तुझे क्या कमी है? क्या यहां घास की कमी है?"

"नहीं।"

"ओ, अब समझा। तेरे गले की डोरी छोटी है, यही न? ठहर डोरी को लंबी किये देता हूं।"

"नहीं, डोरी न बढ़ाने से भी चल जायगा बाबू।"

"तब क्यों जाना चाहती है? तेरा मतलब क्या है जरा सुनूं?"

"बाबू, ओ बाबू-ऊऊ! पहाड़ पर जाऊंगी-ी-ी।

"तुझे कुछ मालूम भी है? वहां भेड़िया रहता है, भेड़िया। जब वह तुझे खाने आयेगा तब तू क्या करेगी?"

"सींग नहीं घुसा दूंगी उसके पेट में?"

"वह क्या तेरे सींग से डर जायगा री धुवली? तेरे जैसी कितनी बकरियों का तो वह कलेवा कर गया है, इसकी क्या तुझे कुछ खबर है? गत वर्ष जो बकरी मेरे पास थी, वह चेहरे में, ताकत में कुछ कम नहीं थी। बकरों तक को उठा पटकती थी वह। सारी रात बेचारी उस शैतान भेड़िये से जूझती रही किंतु सुबह निढाल पड़ गयी। भुक्खड़ भेड़िया भूखा तो था ही, चटपट उसे चबा ही तो गया।"

"आप कुछ फिकर मत करो, ओ बाबू! आप मुझे पहाड़ पर जाने दो, बाबू, ओ बाबू।"

"हे भगवान्! यह क्या हो गया मेरी बकरी को? यह दुर्बुद्धि कहां से मिली उसे? हाय

राम, यह भी भेड़िये के पेट में जाना चाहती है। नहीं, कभी नहीं। तुझे मैं इस तरह नहीं मरने दूंगा। मैं तुझे बाड़े में बंद कर दूंगा। वहीं तुझे रहना पड़ेगा।"

इतना कह सेगैं साहब ने धुवली को ले जाकर पूर दिया एक अंधेरे दम-घोटनेवाले गोठ में। मजबूती से किल्ली लगा दी। किंतु साहब, जल्दी में, गोठ की खिड़की खुली ही छोड़ गये। उनके पीठ फेरते न फेरते धुवली हवा हो गयी।

तुम तो हंस रहे होगे। बड़ा मजा आ रहा होगा तुम्हें। तुम भी तो ठहरे बकरी के दल के न। पर सोचो तो जरा अभागे साहब की बात। कितना दुःख हुआ होगा उन्हें....

*

धुवली जब पहाड़ पर पहुंची, सब आनंद से झूम उठे जैसे। बूढ़े-बूढ़े झाव के गाछों ने इतनी सुन्दर बकरी अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी। सभी ने उसे बड़े प्यार और आदर से अपने पास बुलाया मानों एक राजकुमारी का आगमन हुआ हो। अखरोट के पेड़ ने धरती तक झुक कर अपने कोमल किसलय से उसकी गुलगुली पीठ को सहलाया। फूलों से लदे पौधों ने इधर-उधर झुककर उसके लिए रास्ता बनाया। पहाड़ी हवा फूल की मीठी गंध से गमक उठी।

कितनी खुश न हुई होगी हमारे सेगैं साहब की धुवली। रस्सी नहीं, खूंटी नहीं और न गोठ का दम-घुटन अंधेरा। जी-भर नाचो-कूदो। मन-भर हरी-हरी घास चरो, कोई टोकने वाला नहीं है। अहा, क्या ही सुस्वादु, चिकनी-चिकनी, पतली-पतली, नरम-नरम, तरह-तरह की घास। इसके साथ भला सेगैं साहब की घास की क्या तुलना! और फूलों की यह बहार। जंगली फूलों का था वह दूसरा ही जगत्।

पागल की तरह मस्ती में डगमग, हवा में कूद-फांद, बिखरे फूलों पर लोट-पोट। धुवली की खुशी का क्या कहना। एकाएक एक ही उछाल में उठ बैठना या सींग ऊपर उठाते हुए सहसा दौड़ पड़ना, हठात् झोंप और झाड़ में गुम हो जाना, कभी पहाड़ की चोटी पर जा खड़ी होंना, छूटते हुए नीचे आकर आंख को चकाचौंध कर देना। कभी यहां, कभी वहां। कभी नीचे, कभी ऊपर। मालूम होता—सेगैं साहब की सातों की सातों बकरियां यहां भाग आकर धमा-चौकड़ी मचा रही हैं।

कारण?

धुवली के मन में डर या भय का नाम नहीं। किसका डर, और किसका भय?

झरने को पार करते वक्त, धूल और झरने के फेन से ढक जाते उसके रोयें। बकरी कुछ कम चालाक नहीं थी। गरम-गरम सफेद पत्थर पर वह चारों पांवों को ढीला छोड़ लेट जाती और रूई जैसे रोयें को धूप में सुखा लेती। एक बार जंगली फूल को मुंह में लिये वह एक टीला पार कर रही थी। अचानक उसकी दृष्टि नीचे की ओर गयी और बूढ़े सेगैं साहब के गोठ पर नजर पड़ गयी। देखकर उसे इतनी हंसी आयी कि हंसते-हंसते पेट में बल पड़ गये।

"ऊंह, उस मड़ैया में मुझे बुड्डे ने बंदी बनाया था। मुंह तो देखो उसका। और ही.. ही...ही कर हंसने लगी।

दिमाग तो देखो धुवली का। अपने को इतनी ऊंचाई पर देखकर उसे लगा कि वह दुनिया जितनी बड़ी हो गयी है।

*

जो भी हो, कहना पड़ेगा कि सेगैं साहब की बकरी का दिन सानंद ही बीता। ठेठ दुपहरी में वह कूदते-फांदते जंगली बकरों के दल में जा मिली। वे अंगूर की लता खाने में लीन थे। इस रूपसी के आगमन ने उनके दल में एक सनसनी, एक हलचल पैदा कर दी। सब की आंखें आश्चर्य से चमक उठीं। बड़ी खातिर व लिहाज से उन्होंने मीठे अंगूर की लता से उसका सत्कार किया। खुशी में धुवली अपने आप को भूल गयी।

ठंडी हवा चलने लगी। पहाड़ पर फैल गयी प्रकाश की गुलाबी आभा। छिप गये सूर्यदेव।

"शाम? इतनी जल्दी?" होश में आयी धुवली।

नीचे, मैदान पर बिछ गयी ओस की चादर। सब धुंधला। सेगैं साहब का बेड़ा घिरा मैदान अब नहीं दीखता। दीख पा रही थी सिर्फ उनकी चिमनी से निकलते हुए धुंए की पतली-सी रेखा। धुवली के कान में पड़ी घंटी की आवाज। अरे, गौओं के लौटने का समय हो गया! उसका मन दुःख से भारी हो उठा। बड़ा खराब लगने लगा उसे। एक टीले से उसके बदन में खरोंच लग गयी। उसका सारा शरीर सिहर उठा।

....और पास ही कहीं से सुन पड़ा पहाड़ को कंपा देनेवाला भीषण गर्जन:.. हांऊ! हांऊ! हांऊ! खांऊ!

धुवली को अब याद आयी भेड़िये की बात। सारे दिन तो वह यह भूली ही रही। तभी सुनायी पड़ी—दूर, बहुत दूर—भोंपू की आवाज। जरूर सेगैं साहब ही हैं। दिन के अंत में, अंतिम बार के लिए, खोजने निकले हैं अपनी प्यारी नटखट धुवली को।

"हां ऊ-ऊ-ऊ!" पुनः वही भीषण गर्जन।

"अरे ओ धुवली! लौट आ-ा-ा-ा।" —गूंज उठा भोंपू।

धुवली का मन हुआ कि वह लौट चले। किंतु फिर वही रस्सी, वही खूंटी और वही अप्रिय तंग बाड़ा। नहीं, नहीं। वह नहीं लौटेगी। उस बंधन से पहाड़ पर मरना भला। भोंपू का बजना बंद हो चुका था। किंतु पीछे ही सुनायी दी पत्तों की खस-खस आवाज। घूमकर देखा उसने—अंधकार में जल रही थीं दो आंखें। भूख से खड़े हो गये थे दोनों कान...... भेड़िया!

निश्चल बैठ वह एकटक उसे देख रहा था। पानी भर आ रहा था उसके मुंह में। पकड़ दबोचने में भला कितनी देर? अतः शांत बैठा था वह शैतान। डरते-डरते धुवली ने जैसे ही मुड़कर उसकी ओर देखा, वैसे ही शरारत भरी आवाज में भेड़िये ने मजाक किया—कहो, मजे में तो हो, ओ सेगैं साहब की लाड़ली?

इतना कह वह एक हाथ लंबी लाल-लाल जीभ निकाल दोनों ओठ चाटने लगा।

धुवली ने समझ लिया—अब बच निकलना असंभव। याद आ गयी उसे हट्टी-कट्टी उस बकरी की जो लड़ी थी सारी रात पेटू भेड़िये से।

लड़कर क्या होगा?

आखिर उसके पेट में तो जाना ही पड़ेगा। तो भले-भले क्यों न चली जाऊं उसके पेट में?

नहीं, एक बार आजमा लेना चाहिये।

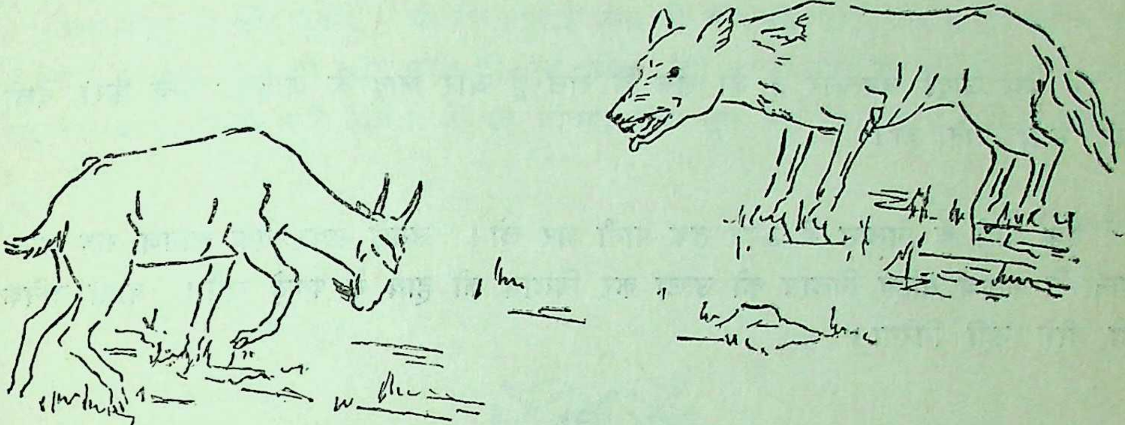

सिर झुका, सींग उठा तैयार हो गयी धुवली।

मजाक नहीं वह सेगैं साहब की बकरी ठहरी। हां, ऐसी दुराशा नहीं की थी उसने कि वह भेड़िये को मात दे सकेगी—बकरी ने क्या कभी भेड़िये को मारा है या कभी मार ही सकती है? फिर भी, रह-रह कर उसे याद आने लगी उस बकरी की बात।

भेड़िया उठ खड़ा हुआ। बढ़ने लगा आगे। और नाच उठे धुवली के दोनों सींग।

शाबाश, धुवली शाबाश! दस-दस बार भेड़िये मामा को पीछे हटना पड़ा, दस-दस बार! दम लेकर चोट करने आता भेड़िया, फिर पीछे हटता। और भेड़िया जब पीछे हटता तब धुवली एक गाल घास खाना नहीं भूलती। मुंह में घास भरे और फिर युद्ध.......

इसी तरह चला सारी रात। रह-रहकर तारों भरे आकाश को देख धुवली सोचती—हे भगवान्, यदि सुबह तक इसी तरह लड़ सकती.......

एक एक कर सभी तारे बुझ गये। दुगने जोर से धुवली सींग चलाने लगी, और दुगुने जोर से चलने लगा भेड़िये का दांत। पूर्व में दीख पड़ी उषाके प्रकाश की रेखा। मुर्गे ने बांग दी।

"चलो, बचे। सुबह हो गयी"—कहकर निश्चिन्त पड़ गयी धुवली। उसका सफेद रोआं खून में वह जाने लगा जैसे।

क्रूर भेड़िया उसपर टूट पड़ा। सुबह का फलाहार उसने सानंद संपन्न किया।

—अनुवादक : हृदय

* * *

खेल-तमाशे

ये कुछ जादुई चमत्कार हैं जो खेल के खेल हैं और जादू के जादू। इन्हें करो, देखो क्या मजा पाते हो।

एक शीशे के गिलास में ऊपर तक पानी भर लो। उसके ऊपर एक कागज रख सावधानी से कागज सहित गिलास को उल्टा कर गिलास को हाथ से पकड़े रहो। पानी तनिक भी नीचे नहीं गिरेगा।

⁂

एक कागज पर मोमबत्ती से जो चाहो लिख लो। वह सादा कागज ही दिखायी देगा परंतु जब तुम उसे दीपक या मोमबत्ती की लौ पर रख कर गर्म करोगे तो उस कागज पर लाल स्याही से वही लिख जायगा जो तुमने मोम-बत्तीसे लिखा था।

⁂

एक रूमाल लो। इस रूमाल के दोनों सिरे पकड़कर इसमें एक गांठ लगानी है, पर शर्त यह कि रूमाल का कोई भी सिरा एक बार पकड़ कर तब तक छोड़ा न जाय जब तक उसमें गांठ न लग जाय। तुम कितना ही प्रयत्न कर लो। परंतु बिना सिरा छोड़े गांठ नहीं लगा पाओगे।

अच्छा, एक रूमाल को सीधा, दोनों सिरों से फैला कर रखो, और अपने दोनों हाथों को कैंची के रूप में (×) करके एक हाथ से एक सिरा तथा दूसरे हाथ से दूसरा सिरा पकड़ लो। अब तुम कैंची को खोल लो। अपने-आप गांठ लग जायगी और सिरे भी हाथ से नहीं छूटेंगे।

⁂

एक रूमाल लो और पहले से ही किसी बोतल में स्प्रिट तथा पानी मिलाकर रख लो। उसमें से कुछ स्प्रिट तथा पानी के मिक्स्चर को निकालकर रूमाल को भिगो दो। फिर दियासलाई से उस रूमाल में आग लगाओ, लपटें निकलती रहेंगी परंतु रूमाल नहीं जलेगी। देखनेवाले आश्चर्य में डूब जायेंगे कि स्प्रिट होते हुए भी रूमाल नहीं जला।

⁂

एक प्लेट में पानी भरो और पानी में एक ५ नये पैसे का सिक्का रखो। अब इस सिक्के को हाथ से उठाना है परंतु अंगुली पानी को न छुए और न किसी और चीज के सहारे तुम्हें इसे उठाना है। कर सकोगे? नहीं? तो लो सुनो, मैं बताता हूं—

एक आलू के छोटे टुकड़े में दो दियासलाई लगा दो और उसे प्लेट के बीच में रखो। उन तीलियों में आग लगा दो और तुरंत ही एक छोटा शीशे का गिलास उन तीलियों तथा आलू पर रख दो। पानी सारे गिलास में चढ़ जायगा और तुम पैसा आसानी से उठा ले सकोगे।

—रमेश सक्सेना

* * *

बैठो, कुछ बात करें

उत्तर —

(१) करीब ५,०००,०००,००० उल्काएं।
(२) सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति का व्यास ८८,००० मील से भी अधिक है।
(३) हां।
(४) मध्य अफ्रिका में एक प्रकार के मेंढक हैं जो मक्खी से ज्यादा बड़े नहीं होते।
(५) एक हजार साल से भी पहले, चीन देश में।
(६) ३८ मील लंबी।
(७) लंबाई ६ इंच और एक बड़े संतरे के समान मोटा।
(८) हाथी एक साथ करीब २ मन पानी पी जाता है।
(९) ८०,००० आदमी।
(१०) जावा और मलय द्वीप के एक प्रकार के सांप जो आकार में फीते के समान चपटे होते हैं और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़कर चले जाते हैं। इन्हें उड़नेवाला सांप कहते हैं।
(११) हाइड्रोजन।
(१२) कमसे कम तीन किलो—मिलने पर और भी ज्यादा खा सकता है।

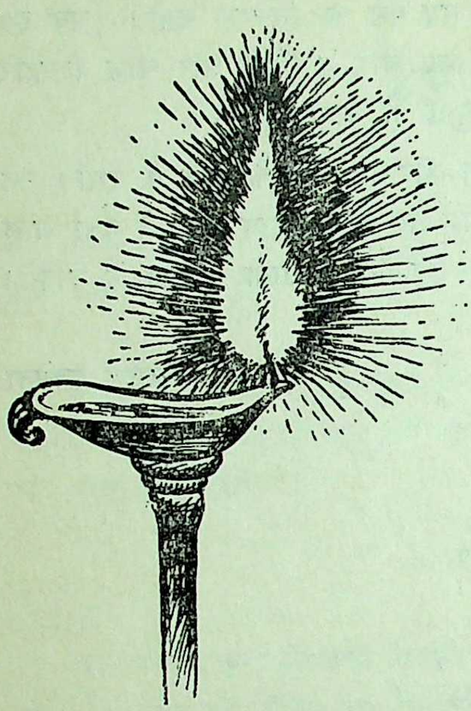

निवेदन

——सकलेश

जलते जीवन के प्रकाश में, अपना जीवन तिमिर जलायें।
उस दधीचि की तपः ज्योति से एक एक कर दीप जलायें।।

जल जल दीप प्रखर तेजस्वी,
अरुणांचल माता का कर दे।
अमृतमय शोभामय मधुमय,
भारत भू वैभव से भर दे।
निजादर्श रख निज जीवन को हंसते हंसते भेंट चढ़ायें।।

जगे जगाएं मातृभूमि को,
पुण्य भूमि को जन्मभूमि को।
अर्पित कर दें जीवन की
तरुणाई पावन देवभूमि को।
तन में शक्ति हृदय में बल दो, प्रभु वह ज्योति पुनः प्रगटाएं।।

नहीं चाहिए पद-यश-गरिमा,
सभी चढ़ें मां के चरणों में।
भारत माता की जय केवल,
शब्द पड़ें जग के कर्णों में।
आशा रख विश्वास बढ़ाकर श्रद्धामय जीवन अपनायें।।

जुजुत्सु सीखो

—अनिरुद्ध सरकार

इस अंक में जो सिखाया जायगा उसका प्रयोग सिर्फ जुजुत्सु तक ही सीमित नहीं है। रोज के जीवन में, हरएक प्रकार के खेल में, इसका व्यवहार होता है।

ब्रेक फौस (बिना चोट खाये गिरना) :

गिरने पर जो चोट लगती है इसका कारण यही है कि सारा शरीर एक छोटे भाग पर गिरता है, जैसे घुटना, कलाई, कोहनी, एड़ी, गला इत्यादि .... इसलिए अगर तुम गिरने के धक्के को सारे शरीर में बांट सको तो किसी भी अंग को अधिक चोट नहीं पहुंचेगी। वैज्ञानिकों ने पर्याप्त खोज करने पर निर्णय किया हैं कि वैज्ञानिक गिरना भी इसी तथ्य पर आधारित है।

एक गद्दा जमीन पर बिछा उसपर गिरने का अभ्यास करो। अगर तुम फूस और बुरादा भरकर एक गद्दा बना सको तो वह सबसे अच्छा होगा। अब इस व्यायाम से शुरू करो: पहले चित सो जाओ। जमीन से सिर उठाओ और बायां घुटना मोड़कर ऊपर ले जाओ। अब दायें हाथ से तुम जितनी जोर से मार सकते हो गद्दी पर ताल में चांटे मारो। जब थकान महसूस हो तो जरा सुस्ता, फिर बायें हाथ से गद्दी पर बायीं तरफ मारो (इस बार दायां घुटना मुड़ेगा)। कुछ समय इसका अभ्यास कर लेने के बाद गद्दी पर सीधे खड़े हो जाओ।

बगल से गिरना : बायां हाथ और बायां पांव अपनी दायीं तरफ ले आओ। दायां पांव मोड़ अपनी बायीं तरफ गिरो, इसके साथ ही साथ बायें हाथ से गद्दी पर चांटा मारो।

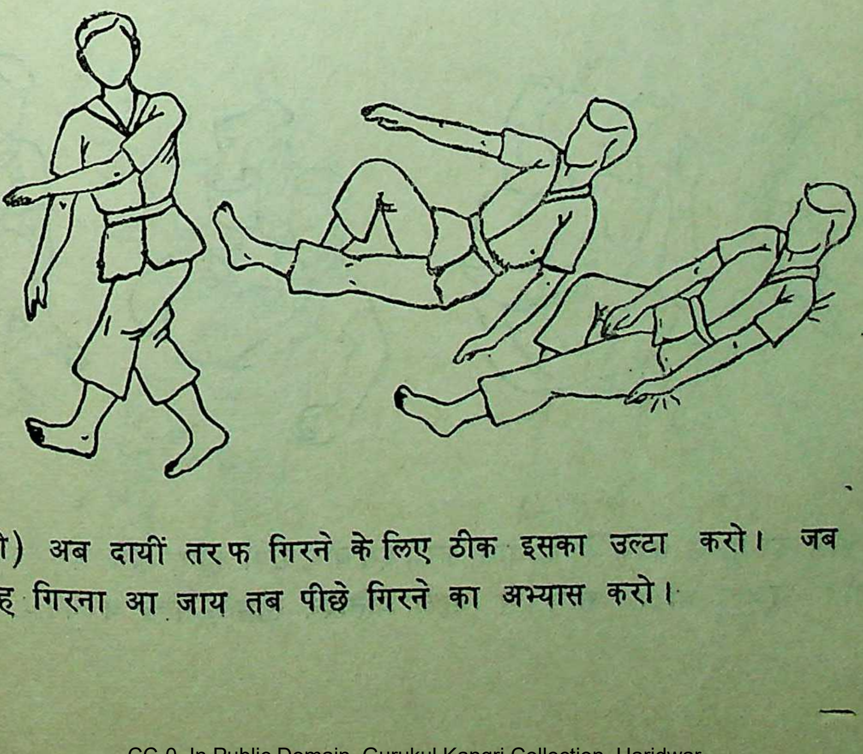

(चित्र देखो) अब दायीं तरफ गिरने के लिए ठीक इसका उल्टा करो। जब दोनों तरफ अच्छी तरह गिरना आ जाय तब पीछे गिरने का अभ्यास करो।

पीछे गिरना : अपने पांव के अगले हिस्से पर बैठो (पांव की उंगलियों पर), दोनों हाथ घुटनों के सामने रखो, अब पीछे की तरफ गुलाटी खाओ, जैसे ही तुम्हारी पीठ गद्दी को छुये,

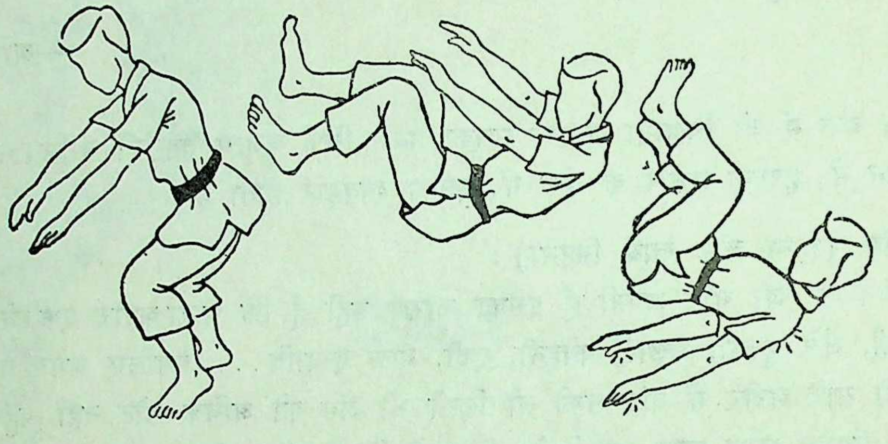

दोनों हाथ सीधा कर, दोनों तरफ गद्दे पर चांटे मारो। ध्यान रखो कि सिर कभी गद्दे पर न लगे। गला सीधा रख सिर हमेशा गद्दे से ऊपर रखो। गद्दे पर ठीक समय पर मारना बहुत आवश्यक है, जरा इधर-उधर होने से ही चोट लगने की संभावना रहती है। जब पीछे गिरने का भली प्रकार अभ्यास हो जाय तब जरा कठिन चीज की कोशिश करो। जिस प्रकार पहले बैठे थे (पांव की उंगलियों पर) उसी अवस्था से जरा स्प्रींग ले पीठ के ऊंचे हिस्से पर गिरो। ठोड़ी को सदा छाती पर लगाये रखो जिससे सिर पर चोट न लगे।

सामने गुलाटी खाकर गिरना : सीधे खड़े हो दायां पांव जरा सामने रखो, अब कमरसे सामने झुककर हाथ सामने गद्दे पर रखो। बायां पांव पीछे उठा, सारा शरीर गोल कर, दायें हाथ पर सामने गुलाटी खाओ। ध्यान रखो कि सिर्फ दायां हाथ, दायां कंधा और बायां पांव ही गद्दे को छुयें। ठोढ़ी को सदा छाती से लगाये रख अपने सिर को बचाओ (चित्र)

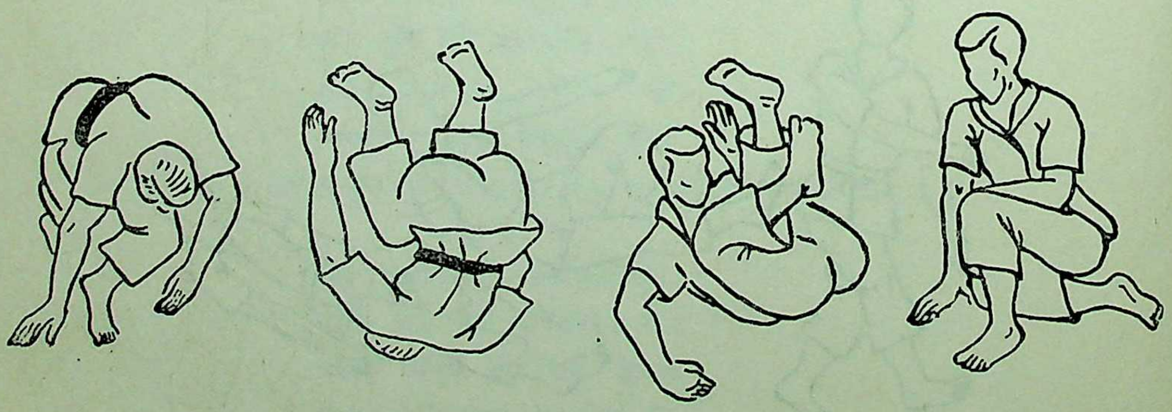

अब इसी चीज का दूसरी तरफ से अभ्यास करो, इस बार बायां हाथ, कंधे और दायें पर गुलाटी खानी होगी। जुजुत्सु आरंभ करने से पहले **प्रतिदिन** सामने, पीछे व बगल में गिरने का

अभ्यास करना अति आवश्यक है। क्योंकि जुजुत्सु गिरने की कला पर ही आधारित है।

अब चलो, कुछ आत्मरक्षा के दांव सीखें।

(१) मान लो प्रतिद्वंद्वी ने तुम्हें जमीन पर गिरा दिया है, और तुम्हारी छाती पर बैठ तुम्हारा गला दबा रहा है। ठोड़ी छाती पर ला, गले का दबाव जरा कम करो। अपना दायां हाथ प्रतिद्वंद्वी के बायें हाथ के पीछे से ला उसकी छाती के सामने रखो। फिर दोनों पांव मोड़, कमर ऊपर उठा, सारा शरीर धनुष की तरह गोल करो। तुम देखोगे कि तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी अपना संतुलन खो बैठा है। उसे अपने बायें हाथ से जोर का धक्का दे अपनी दायीं तरफ गिरा दो। साथ-साथ अपना दायां हाथ घुमा, प्रतिद्वंद्वी का बायां हाथ अपनी बगल में दबा लो और बायें हाथ से अपनी दायीं मुट्ठी पकड़, ऊपर व पीछे उठा, प्रतिद्वन्द्वी के मुड़े हाथ को दबाओ। दबाव धीरे-धीरे बढ़ाना क्योंकि दबाव अधिक पड़ने से प्रतिद्वन्द्वी का हाथ टूट जा सकता है।

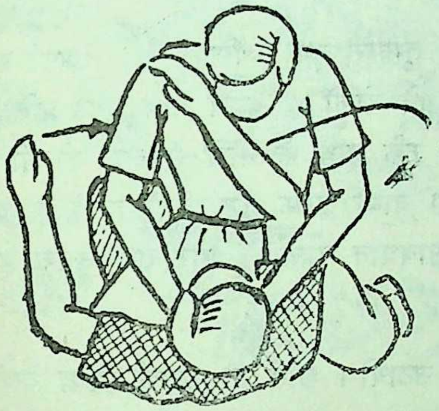

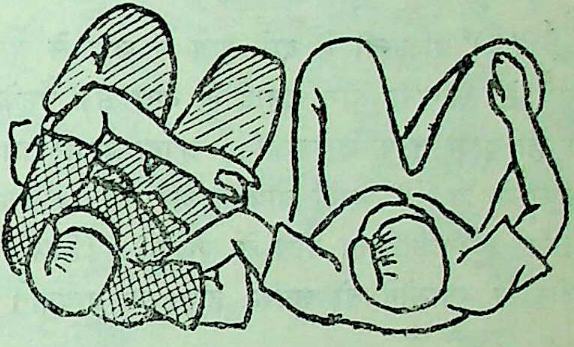

(२) प्रतिद्वन्द्वी ने सामने से तुम्हारा कालर पकड़ रखा है। अपने बायें हाथ से उसकी दायीं कलाई पकड़ो और दायें हाथ से उसके दायें हाथ का अगूंठा दबाओ। दर्द के कारण उसे तुम्हारा कालर छोड़ना पड़ेगा।

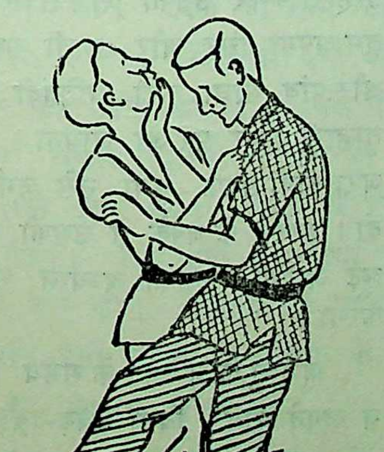

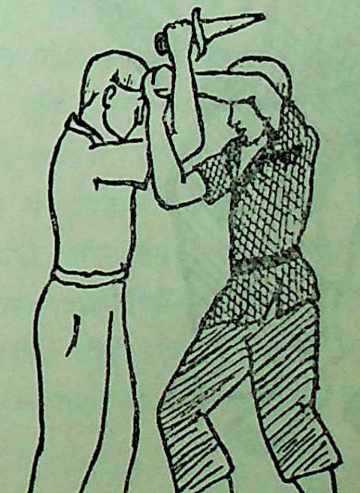

अगर सफलता न प्राप्त हो तो दूसरे दांव का प्रयोग करो। अपने बायें हाथ से उसकी दायीं बांह, कोहनी से ऊपर पकड़ो। जितना कपड़ा तुम मुट्ठी से पकड़ सको पकड़ लो। बायें पांव से एक कदम आगे बढ़ प्रतिद्वन्द्वी के दायें पांव के पास अपना बायां पांव रखो। अपने बायें हाथ से उसे अपनी बायीं तरफ खींचते जाओ, जिससे उसके सारे शरीर का भार उसके दायें पांव पर आ जाये। अब अपना दायां पांव सीधा कर प्रतिद्वंद्वी के दायें पांव पर पीछे से झटके के साथ मारो। साथ ही साथ अपना दायां हाथ उसकी ठोड़ी के नीचे रख उसे पीछे धकेल दो। प्रतिद्वंद्वी एक कटे केले के पेड़ की भांति गिर जायगा।

इस दांव का अभ्यास गद्दे को छोड़ और कहीं मत करना।

(३) प्रतिद्वन्द्वी ने दायें हाथ में छुरा ले सामने से तुमपर हमला किया है। अपने बायें हाथ से (कोहनी और कलाई के बीच से) उसके हाथ को रोको। दायां पांव बढ़ा प्रतिद्वंद्वी के ही दायीं तरफ ले जाओ। अपना दायां हाथ उसके रुके हाथ के नीचे से ला, कोहनी के ऊपर के हाथ से अपनी बायीं कलाई पकड़ो। अब जरा बायीं तरफ घूम दोनों हाथों से दबा उसका छुरेवाला हाथ नीचे ले आओ। (चित्र) जरा सावधान रहना; अगर तुम उसका हाथ जोर से दबाओगे तो उसका हाथ टूट जायगा।

(४) प्रतिद्वंद्वी ने तुमपर प्रहार करने के लिए लाठी उठायी। शांत हो उसकी क्रिया देखो। जब लाठीवाला हाथ नीचे आ रहा हो, तब फुर्ती से अपना दायां पांव उसके दायें पांव के सामने बढ़ाओ और अपना बायां हाथ उठा उस की दायीं कलाई के नीचे मजबूती से रख प्रहार को रोको। अब बायां पांव आधा घुमा अपने दायें पांव के पास रखो, इसके साथ ही अपना दायां हाथ उसके हाथ और कमर के बीच में से ले जा उसकी कमर कस कर पकड़ लो। अपने पांव मोड़ जरा नीचे झुक जाओ ताकि तुम्हारी कमर उसकी जांघ से लगी रहे। अब तुम अपना सिर और छाती सामने झुकाओ और पांव सीधा करो, प्रतिद्वंद्वी का पूरा भार तुम्हारी कमर पर आ जायेगा। अपना शरीर जरा बायीं तरफ घुमा उसे जमीन पर गिरा दो। गिरने के धक्के से उसकी लाठी हाथ से छूट जायेगी। इसका अभ्यास भी गद्दे पर ही करना।

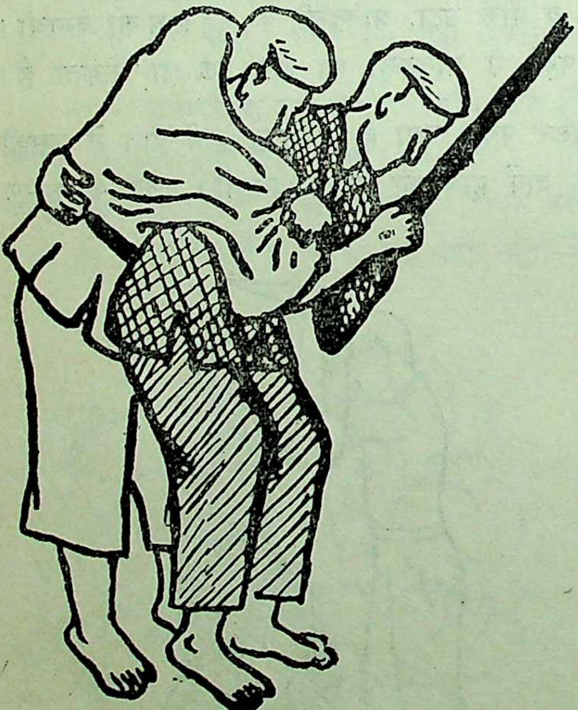

जुजुत्सु के अभ्यास के समय किसी को चोट न लगने पाये। बिना हबड़-दबड़ किये, शांति से सारे दावों का अभ्यास करो। अपनी क्रिया स्वाभाविक और सुकर बनाने की कोशिश करो। फुर्ती—खैर, वह तो बाद में आ ही जायगी।

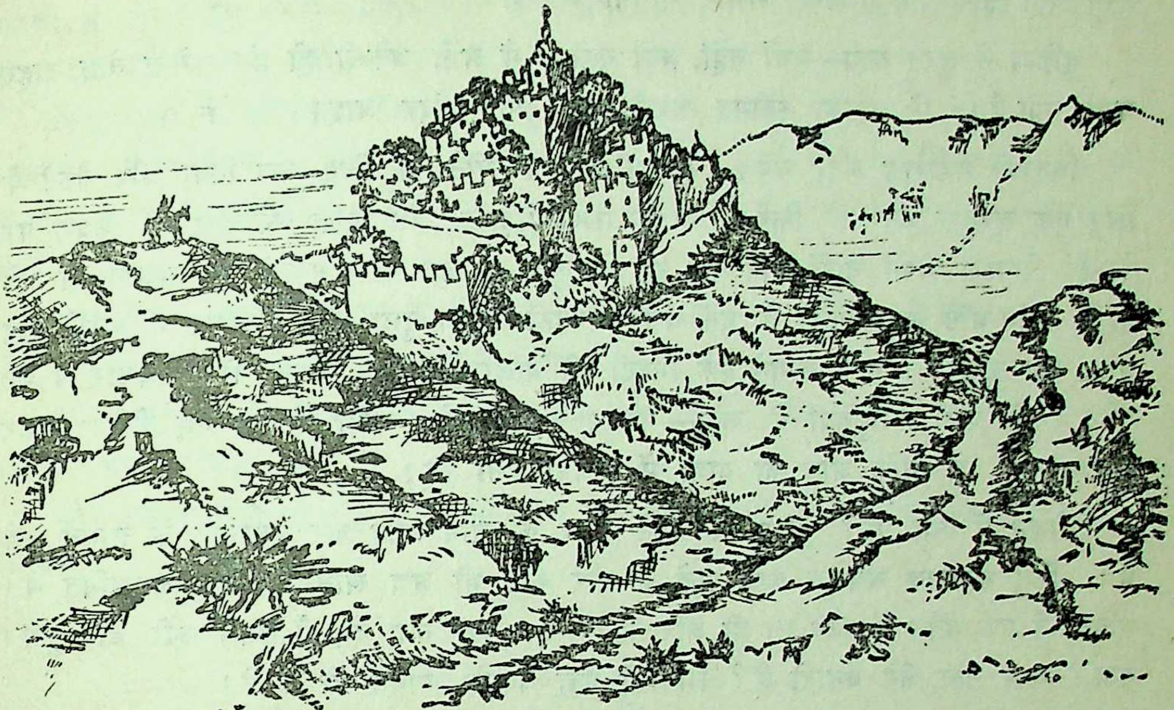

शिवाजी की सीख

—दीपंकर सहस्रबुद्धे

विजय के बाद विजय....।

छत्रपति शिवाजी मुगलों से एक के बाद एक दुर्ग छीनते जा रहे थे। दिनोंदिन विजय का तांता बंधने लगा। रुकने का नाम नहीं। किंतु जीते गये किलों की स्थिति को मजबूत करने का समय न था। शिवाजी उन्हें जीत लेते और आगे बढ़ जाते। पर उनके आगे बढ़ते ही फिर कई किले फिर से दुश्मनके पंजे में चले जाते। उनकी रक्षा का पूरा पूरा प्रबंध न हो पाता। अपनी विजय के ऐसे ही अभियान में शिवाजी ने एक दुर्ग पर अधिकार किया और आगे बढ़ने लगे। रास्ते में रात हो गयी और सेना ने एक गांव के आसपास पड़ाव डाल दिया। सिपाहियों ने खूटियां गाड़कर तम्बू डाल दिये और खाना बनाने के लिए आग जलानी शुरू की। शिवाजी ने अपना वेश बदला और गांव का चक्कर काटने निकल गये। छत्रपति इसी तरीके से जनता के जीवन को जानते थे, उसका सुख-दुःख समझते थे और गांवों का रंग-ढंग देखते थे।

हठात् वे एक झोंपड़ी के द्वार पर रुके और दरवाजा खटखटाने लगे। दरवाज़ा खुला और एक बूढ़ी औरत द्वार पर आयी। "आप कौन हैं हुजूर? क्या आपको कुछ चाहिये?" उसने पूछा। महाराज ने कहा—मैं यात्री हूं, रास्ता भूल गया हूं, समझ में नहीं आता इस अन-

जानी जगह में मुझे एक रात के लिए कौन रहने देगा। क्या आप रात भर के लिए मुझे अपने यहां सोने देंगी? बड़ा आभार मानूंगा आपका।

बुढ़िया ने तुरत कहा—क्यों नहीं, क्यों नहीं! मैं अभी अकेली ही हूं। मेरा बेटा बाहर चला गया है। मैं आपका स्वागत करती हूं। आप अंदर आइय।

शिवाजी महाराज अंदर गये। बुढ़िया ने हाथ धोने के लिए जल दिया और बैठने के लिए एक खुरदुरा कंबल। फिर अतिथि के लिए थोड़ा-सा अन्न चूल्हे पर चढ़ाया। कंबल पर बैठे-बैठे शिवाजी अपने चारों ओर देख रहे थे, कुटी की हर चीज गरीबी की साक्षात् निशानी थी। बर्तन-भांडे सब मिट्टी के बने थे। दरवाजा थोड़ा खुला था। छप्पर में अनेकों छेद थे। जब बुढ़िया ने उनके सामने एक मिट्टी की थाली में भोजन परसा तो वे विचार में पड़ गये। बड़े प्रेम से बुढ़िया ने कहा—मेरे बच्चे! खाओ, यात्रा में थक गए होगे। खाकर आराम कर लो ताकि आगे की यात्रा में ताजगी बनी रहे।

भोजन में क्या था? बुढ़िया ने मोटे ज्वार के दाने पका कर महाराज के सामने रखे थे। किंतु महाराज सचमुच बहुत भूखे थे और कोई भी अन्न खाने के लिए लालायित थे। बुढ़िया ने एक बर्तन में कढ़ी ला दी और कहा—एक गढ़ा बना दो, मैं उसमें कढ़ी डाल दूंगी। गढ़ा? आप गढ़ा कैसे बनाती हैं? शिवाजी गढ़ा बनाना जानते ही न थे।

तब बुढ़िया आश्चर्यचकित उनकी ओर देखने लगी—भले आदमी, इस भात के बीच थोड़ा दबाओ।

खैर, किसी तरह शिवाजी ने गढ़ा बनाया किंतु ठीक तरह से नहीं बना। जब बुढ़िया ने कढ़ी डालनी शुरू की तो कई तरफ से कढ़ी बाहर निकलने लगी। शिवाजी एक तरफ बांध तैयार कर देते तो दूसरी तरफ से कढ़ी बहने लगती। उस जगह को ठीक करते तो कोई और जगह बच जाती जहां से कढ़ी बह निकलती थी। अपने मेहमान की परेशानी पर बुढ़िया हंस पड़ी और हठात् कह उठी—भले आदमी! तुम तो दूसरे शिवाजी जान पड़ते हो।

महाराज को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा—दादी जी! वह कैसे?

उसने कहा—शिवाजी दुर्ग पर दुर्ग जीतते जाते हैं पर जिन किलों को उन्होंने जीत लिया है उनकी स्थिति मजबूत किये बिना ही दूसरी विजय के लिए चल पड़ते हैं। इसलिए दुश्मन उन्हें वापस ले सकता है। अभी आपने कढ़ी के लिए कोई अच्छा गढ़ा नहीं बनाया। जब बनाया तो उस बांध को मजबूत नहीं किया। एक मजबूत बांध की जगह आप अधिक से अधिक दुर्बल बांध बनाना चाहते हैं और वे सब टूटते चले जा रहे हैं।

बुढ़िया की बात सुनकर शिवाजी की आंखें खुल गयीं।

गांव की एक औरत ने उन्हें एक बड़ा भारी सबक सिखाया।

उसी समय शिवाजी के कुछ सिपाही उनकी खोज में वहां आ पहुंचे। वहां उन्होंने जो देखा, उसे देखकर दंग रह गए। उनका राजा, भारत का एकमेव हिंदू सम्राट् एक बुढ़िया के घर में बने निहायत साधारण भोजन का आनंद ले रहा था।

महाराज यह क्या?—अन्वेषक दल के नेता ने पूछा, हम लोग आपको चारों तरफ ढूंढ़ रहे हैं और आप यहां भोजन कर रहे हैं!

महाराज! महाराज शिवाजी! ये शब्द सुनकर बुढ़िया घबरा गयी। शिवाजी के चरणों में गिरते हुए बोली—महाराज! मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपको पहचान न सकी। अज्ञानवश मैंने आपका अपमान किया है। कृपया मुझे क्षमा करें।

किंतु राजा ने उसे उठा लिया और मुस्कराए—मां! उठो, डरो मत। तुमने मेरा अपमान नहीं किया है बल्कि एक महान् पाठ सिखलाया है। तुमने मुझे यह सिखाया है कि जो मैं जीत लेता हूं उसको अजेय कैसे रखूं। तुम्हीं लोगों की सीख के बल पर मैं शिवाजी हूं मां!

महाराज ने अपनी कृतज्ञता के चिह्नस्वरूप काफी धन उस महिला को दिया और उसके बेटे को अपनी सेना में एक पद पर ले लिया।

और वह बूढ़ी हमेशा याद किया करती थी कि उसके राजा उसके घर आये थे और मामूली भोजन किया था।

और तब से शिवाजी नए किलों को जीत कर पहले अपनी स्थिति मजबूत बनाना कभी न भूले।

* * *

एक बार राहुल सांस्कृत्यायन जी को दिन-रात काम करते देखकर प्रसिद्ध इतिहासकार डा. काशीप्रसाद जायसवाल ने कहा—राहुल जी, इस कठोर परिश्रम ने श्री शंकराचार्य को मार डाला। इस बात का ध्यान रखा कीजिये कि आप जैसे मनीषी का जीवन देश की संपत्ति है।

राहुल जी ने विनोद में कहा—डरने की कोई बात नहीं। मैं शंकराचार्य की आयु से अधिक जी चुका हूं।

एक बार अमेरिका के राज्य-सचिव श्री वेडेल स्मिथ ने तय किया कि वे जल्दी आफिस आकर कामकाज करेंगे। वे ठीक नौ बजे आफिस पहुंचे। उस समय वे अपने को छुट्टी के समय भी इतनी जल्दी आ जाने से बहुत अच्छा महसूस कर रहे थे। तभी फोन की घण्टी बजी, अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति आइज़न हावर बोल रहे थे–वेडेल, मैं तुम्हें सवा आठ से फोन कर रहा हूं। जब तुम्हें काम पर नहीं पाया तो समझा कि तुम बीमार हो।

किनारा दूर रे

जोर चला पतवार किनारा दूर रे!
नैया है मंझधार किनारा दूर रे ;
होऽऽ किनारा दूर रे!

मस्त पवन है, भरा गगन है, नाव डगमग डोले।
नयी नयी हिलकोरों पर लेती नैया हिचकोलें।
अभी आंधियां साथ किनारा दूर रे!
नैया है मंझधार किनारा दूर रे!
होऽऽ किनारा दूर रे!

अभी सुनहली किरणें खेलें नभ में आंख-मिचौनी।
लहरों पर तिर उड़ उड़ जातीं रवि की चंचल छौनी।
फिर आया अंधियार किनारा दूर रे!
नैया है मंझधार किनारा दूर रे!
होऽऽ किनारा दूर रे!

आज हवा की चपल बेटियां अपनी पालें खोलें।
तोलो तुम बाजू की ताकत तूफानों से बोलें।
तुम्हें करेंगे पार कि ऐसे शूर रे!
हम धरती के लाल नहीं मजबूर रे!
नहीं सूझता पार किनारा दूर रे!
होऽऽ किनारा दूर रे!

—वरुणेश

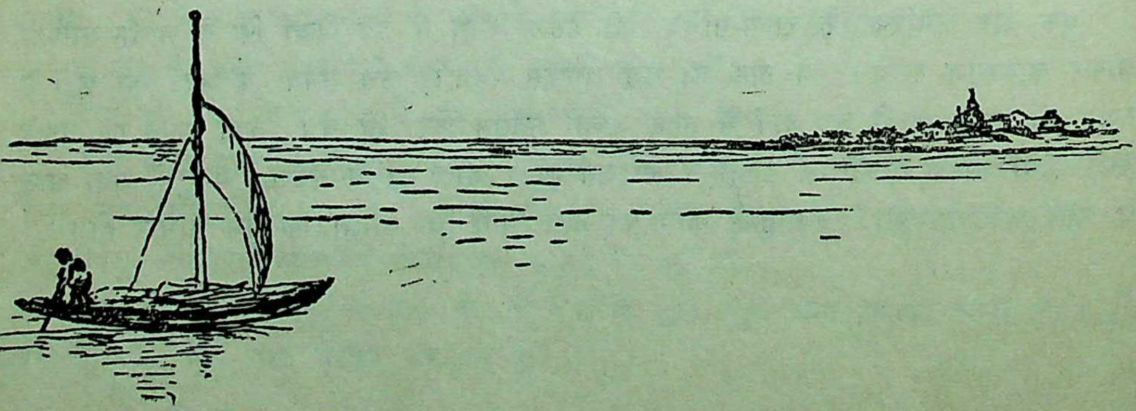

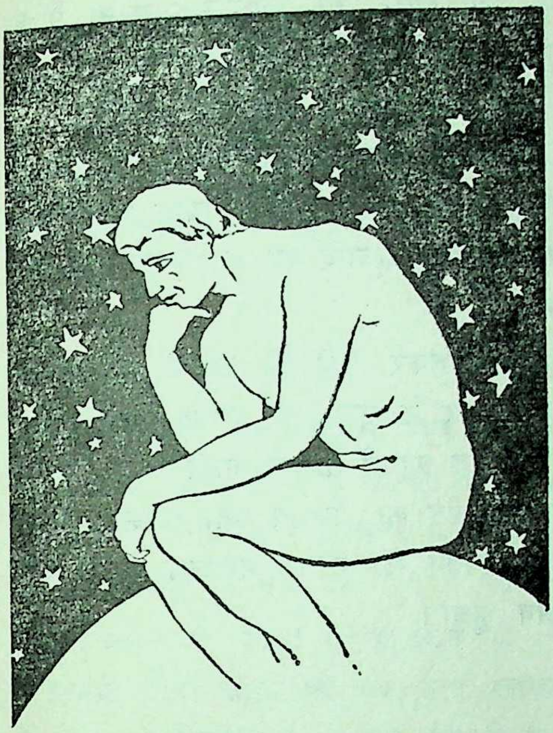

युरेका

इस विशाल विश्व के विचित्र नियमों को जानने के इच्छुक वैज्ञानिक अपने अभियान में वहुधा नाना प्रकार की विचित्र वस्तुओं का संधान पा जाते हैं। आकस्मिक रूप में ही विज्ञान के क्षेत्र में नाना प्रकार की वस्तुओं का आविष्कार हुआ है। आकस्मिक आविष्कार के लिए अंग्रेजी में एक शब्द है 'सरेन्डिपीटी' (Serendipity)। इस शब्द के पीछे एक कहानी है। इस शब्द को होरेस वालपोल नामक व्यक्ति ने घड़ा था। एक दिन वे सिंहल द्वीप की एक रूपकथा पढ़ रहे थे। उस कथा का नाम था 'स्वर्णद्वीप के तीन राजकुमार'। स्वर्णद्वीप सिंहल का ही एक प्राचीन नाम है। कहानी में उन्होंने पढ़ा कि तीनों राजकुमार देशाटन के लिए निकले। घूमते-घूमते वे ऐसी चीजों को पाने लगे जिनकी कल्पना उन्होंने स्वप्न में भी न की थी। कहानी पढ़कर वालपोल ने स्वर्णद्वीप का अंग्रेजी अपभ्रंश 'Serndip' किया और उसीसे Serendipity शब्द को बनाया जिसका अर्थ है ऐसी अवस्था या सौभाग्य जिसके कारण अकल्पित आविष्कार संभव हो जाता है।

यहां एक चीज ध्यान देने योग्य है—आकस्मिकता उन्हीं लोगों की सहायता करती है जो पहले से ही नवीन वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत हों। यदि किसी में पर्यवेक्षण की क्षमता या विश्लेषण की शक्ति नहीं है तो केवल भाग्य उसे सहायता नहीं पहुंचा सकता। भाग्य-देवी उन्हीं की सहायता करती हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं और श्रम करने से नहीं चूकते।

इटली में क्लोंचा शहर में प्रसिद्ध जीवशास्त्री लूइजि गालवानी और उनकी पत्नी लुचिया गालवानी निवास करते थे। सेंयर गालवानी मेंढक पर कुछ परीक्षण कर रहे थे। एक बार उन्होंने एक मेंढक काटकर उसकी एक टांग को एक तांबे के तार से बांधकर लोहे की छड़ से लटका दिया। अचानक उन्होंने एक अजीब दृश्य देखा—मेंढक की वह टांग एक बार टेढ़ी होकर फिर सीधी हो रही थी। कुछ देर तक यही क्रम चलता रहा—यह क्या? गालवानी उसके पास गये। वे एक वैज्ञानिक थे अतः भूत-प्रेत में उनका विश्वास नहीं था, नहीं तो वे आसानी से यह विश्वास कर लेते कि हो न हो इस टांग पर कोई भूत या जिन सवार है—और ऐसा समझकर उसके पास जाने का साहस न करते।

गालवानी ने गौर से देखा कि हवा में हिलती हुई वह टांग जब कभी लोहे की छड़ से छू जाती तभी उसकी पेशियां संकुचित हो जातीं। इस छोटी सी आकस्मिक घटना से ही अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में नाना प्रकार के वैद्युतिक शक्ति की गवेषणा शुरू हुई और "Galvanism" इत्यादि शब्दों से लुईजि गालवानी का नाम अमर हो गया।

इसी आविष्कार की सहायता से गालवानी के समकालीन वैज्ञानिक वोल्ता ने एक सत्य को खोज निकाला—"यदि दो विपरीतधर्मी धातुएं आपस में छू जायं तो उस संयोग से वैद्युतिक शक्ति उत्पन्न होती है।" इलेक्ट्रिक बैटरी, टेलिग्राफ, रेडियो इत्यादि का आविष्कार इस छोटे से आकस्मिक आविष्कार से ही संभव हो सका।

यदि गालवानी ने तांबे के तार से मेंढक की टांग बांधकर लोहे की छड़ से न लटकाया होता और हवा के कारण वह पैर लोहे की छड़ से छूकर न ऐंठता तो शायद आज विज्ञान का कोई दूसरा ही रूप होता। पर यहां ध्यान देने की बात यह है कि गालवानी अपने काम में सजग थे अतः मेंढक की टांग हिलने से उन्होंने उसे भूत-प्रेत का उत्पात नहीं समझा और न उसे तुच्छ घटना कहकर टाल दिया। उन्होंने उस विषय में सोचा, परीक्षण किया और परिश्रम किया, तभी एक शक्ति का आविष्कार संभव हुआ।

❦

पदार्थ-विज्ञान एवं रसायन-शास्त्र में जैसे आकस्मिक आविष्कार हुए, हैं शरीर विज्ञान में भी वैसी घटनाएं विरल नहीं। हमारे समस्त शरीर में नर्व या स्नायुओं का जाल बिछा है। टेलीग्राफिक तार के समान ही शरीर के नर्व मस्तिष्क के साथ दूसरे अंगों का संबंध बनाए रखते हैं। शरीर-विज्ञानी क्लोड बेर्नर (Claude-Bernard) की धारणा थी कि जब कभी हमारी स्नायुएं कुछ अनुभव करती हैं तब हमारे शरीर में एक रासायनिक क्रिया होती है। इस परिवर्तन से शरीर में कुछ तापमान की वृद्धि होती है—पिछले शतक के मध्य में इसी आधार पर वे एक खरगोश पर परीक्षण कर रहे थे। उन्होंने एक खरगोश के कान की गर्मी को नापा और फिर उस कान से युक्त स्नायु को काट दिया। अब, उनके अनुमान के अनुसार उस कान की गर्मी कम होनी चाहिये थी पर आश्चर्य! उन्होंने देखा, गर्मी कम होने के बदले बढ़ गयी थी। बात यह हुई कि बेर्नर ने कान की रक्तग्रंथि से स्नायु को अलग कर दिया था—साधारण स्थिति में स्नायु के प्रभाव से रक्तग्रंथि कुछ संकुचित रहती है परंतु स्नायु के कट जाने से वह प्रसारित हो गयी और इनके द्वारा अधिक रक्त कान में बहने लगा—परिणामस्वरूप कान की गर्मी बढ़ गयी। इस घटना से यह प्रमाणित हुआ कि शरीर का रक्त-संचार स्नायुओं पर ही निर्भर है।

❦

फिलिसी के नाविकों ने एक बार जहाज से उतरकर समुद्रतट की रेत पर खाना पकाने के लिए आग जलायी। फिर चारों तरफ देखा पर कोई ईंट या पत्थर नजर न आया जिसके

सहारे खाना पकाने का बर्त्तन आग पर रखते। उनके जहाज में छोटे-छोटे क्षार-पत्थर (Sodium Carbonate) के टुकड़े थे। उन्हींमें से कुछ चुनकर उन्होंने चूल्हा बनाया और रख दिया उसपर बर्त्तन। आग जल उठी पर कुछ ही देर में क्षार पत्थर आग की गर्मी से पिघलने लगा और रेत से मिलकर एक गाढ़े तरल के रूप में बदल गया। जब वह पदार्थ ठण्डा हो गया तब नाविकों ने देखाकि रेत पर कठोर व स्वच्छ होकर वह वस्तु जम गयी है। बता सकते हो वह क्या चीज थी? वह था कांच!—हां, उसी तरह कांच का आविष्कार हुआ।

* * *

हालैण्ड का एक कारीगर कांच घिस-घिसकर उससे ऐनक बनाकर बेचा करता था। एक बार उसके दोनों बेटे कांच के दो लेन्स लेकर उसीके कारखाने में बैठे खेल रहे थे—दो लेन्स दो किस्म के थे, एक का बिचला भाग मोटा (उन्नतोदर) था व चारों ओर से पतला तथा दूसरे का चारों ओर से मोटा व बीच से पतला (नतोदर) था।

बच्चे दोनों कांचों में से देखने की चेष्टा करने लगे। खेल ही खेल में जब उन्होंने अकस्मात् दोनों कांचों को एक साथ रखकर देखा तो यह क्या?—दूर के मीनार की चोटी कितने पास आ गयी थी—वह जितनी पास थी उतनी ही स्पष्ट भी। बच्चों ने आश्चर्य-चकित होकर पिताजी को दिखाया। तब उस कारीगर ने एक खोखली नली में दोनों लेन्सों को एक साथ लेकर परीक्षण करना शुरू किया। फिर इस तथ्य को खोज निकाला कि इन दो विपरीत लेन्सों के मध्य यदि एक निश्चित दूरी रखी जाय तो दूर की चीज बहुत पास स्पष्ट दिखायी देगी। और लो! हो गया दूरबीन का आविष्कार!

उस समय के श्रेष्ठ वैज्ञानिक इटली के गालिलेओ को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने दूरबीन को अधिक विकसित रूप दिया और उसके सहारे आकाश के अनंत रहस्यों का उद्घाटन किया।

आकर्षक और तेज से पूर्ण मासिक पत्रिका

श
व
री

संपादक : कविवर शशिकर

आज ही ग्राहक बनें

हर अंक में—सुरुचिपूर्ण कहानियाँ, मनोरम कविताएँ और ज्ञानवर्धक लेख आदि

मूल्य—१ प्रति ३० न. पै. व वार्षिक ३.५० (विशेषांकों सहित)

पता
शबरी कार्यालय
चक्रधरपुर (बिहार)

कार्नर बाल

(दस-ग्यारह वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए)

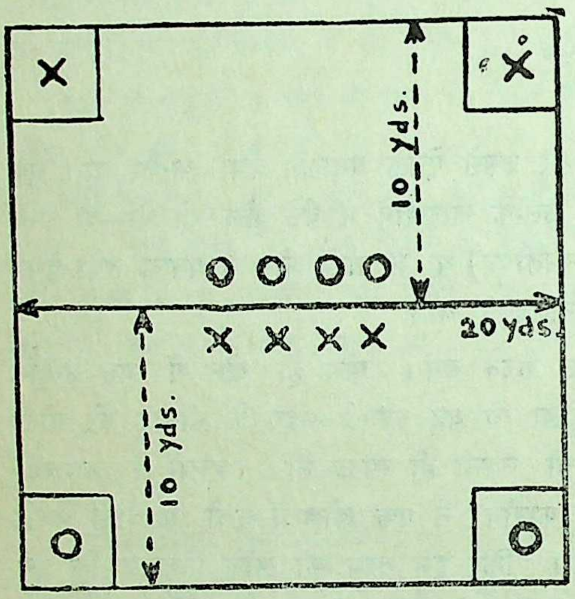

खिलाड़ियों को दो समान दलों में बांट लो। जिस तरह तस्वीर में दिखाया गया है उसी तरह एक तरफ एक दल, दूसरी तरफ दूसरे दल के खिलाड़ियों को खड़ा कर दो। हर दल के दो खिलाड़ियों को दूसरे दल की पाली के कोने में बने गोल में ले जाकर खड़ा कर दो। अब खेल का लक्ष्य है गेंद को फेंक कर विरोधी दल के सर के ऊपर से अपने गोलकी के हाथ में पहुंचा देना। कोई खिलाड़ी अपनी पाली से दूसरे की पाली में न जा सकता है न गोल में। गोलकी भी गोल छोड़कर बाहर नहीं आ सकता।

अब एक दल के खिलाड़ी ने जब दूसरे दल के खिलाड़ियों के सर के ऊपर से गेंद फेंकी तो दूसरे दल के खिलाड़ी कूद कर उसे पकड़ लेना चाहेंगे। उसे पकड़ पाते ही वे अपने गोलकी के पास फेंकने की चेष्टा करेंगे। जो गोलकी गेंद पकड़ पायेगा उसका दल एक अंक पायेगा। इसी तरह जो दल पहले बीस अंक बना लेगा वह जीतेगा। गोलकी, गेंद पाते ही, उसे अपने दल की ओर फेंक देने की चेष्टा करेगा। गेंद अगर पाली के बाहर चली जाय तो जिस दल के खिलाड़ी के हाथ से लग कर गेंद बाहर गयी है उसका विरोधी दल गेंद पायेगा।

(यह खेल बड़े से रबर के गेंद से खेल सकते हो या १ नम्बर के फुटबाल से)

* * *

प्रोफेसर गिरीश अस्थाना कई वर्षों तक कोशिश करने के बाद शिमले के एक अस्पताल में दाखिल हुए।

एक दिन सवेरे सवेरे उनके डाक्टर ने पूछा—क्यों, कल रात को अच्छी नींद आयी थी?

प्रोफेसर ने भरे गले से जवाब दिया—हां, आयी तो थी पर मैं सपना देख रहा था कि मैं ठीक से सो नहीं सका।

दुनियां रंग-बिरंगी

मिसेस विलियम निर्विकार भाव से बस की सीट पर बैठी थीं, ऐसे समय एक सज्जन ने विनीत स्वर में उनसे कहा--"क्षमा करें सेंन्योरा, आपकी पीठ में चाकू घुसा हुआ है।"

श्रीमती जरा चौंकी, सचेत हुईं। देखा सचमुच ही एक १५ सेंटीमीटर का चाकू उनकी पीठ में घुसा हुआ है। उन्हें याद आया जब वे बस पर चढ़ी थीं, एक आदमी ने उन्हें जोर का धक्का दिया था, साथ ही उन्हें पीठ में कुछ पीड़ा महसूस हुई थी।

चाकू पीठ से निकाला गया। श्रीमती विलियम को कोई खास जख्म नहीं पहुंचा था। उनकी पीठ की चर्बी में ही चाकू सात सेंटीमीटर घुसकर रह गया था।

—o—

विश्वविख्यात उपन्यासकार डिकेन्स का किसी जमाने में काम था—कालख की शीशियों को कागज में लपेटना, उन्हें बांधना और उनपर पर्चियां लगाना।

—o—

मछली के पेट से शकुन्तला की खोयी हुई अंगूठी मिली थी—यह कहानी तो हम जानते हैं। अब सुनो, खोये हुए चश्मे की प्राप्ति की मजेदार घटना।

एक बार एक फ्रेंच महोदय की ऐनक एक नहर में गिर पड़ी। बहुत चेष्टा करने पर भी उन्हें वह ऐनक प्राप्त न हो सकी। लाचार हो नयी ऐनक बनवाने के लिए वे बाजार चले।

इधर हुआ क्या कि जिस जगह उनकी ऐनक गिरी थी उसी के पास एक मछुए ने मछली पकड़ने के लिए जाल फेंका। भाग्यवश एक बहुत बड़ी मछरी जाल में आ फंसी। जब उसने जाल को बाहर निकाला तो मछली की शकल देखकर दंग रह गया। उसके चेहरे पर पूरे नाप का एक चश्मा चढ़ा था। ठीक नाक के ऊपर नहीं, मछली ने उस ऐनक को अपने मुंह में दबा रखा था।

—o—

गायेतानो मार्योने नामक एक सत्तर वर्षीय वृद्ध एक बार सेब के वृक्ष पर उसकी डालियों को काट-छांटकर ठीक करने के लिए चढ़े। पर दुर्भाग्य से उनका पैर फिसल गया। वे सिर के बल नीचे आ गिरे। जब उठ खड़े हुए तो देखा—जहां वे गिरे थे वहां गोल-सी कोई ठोस चीज पड़ी है। कौतूहलवश उसे उठाकर जेब में रख लिया।

जब वे घर पहुंचे उनकी पत्नी उन्हें देखकर एकदम चीख पड़ी। मार्योने का सारा शरीर खून से लथपथ था।

उन्हें अस्पताल ले जाया गया। डाक्टरों ने जांच की तो पाया कि उनकी खोपड़ी की एक हड्डी गायब थी। उनकी चर्चा सुनकर मार्योने ने कहा—"देखो तो, खोयी हुई हड्डी मेरी जेब में तो नहीं है?" डाक्टरों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सचमुच ही मार्योने की जेब से उन्हें उसी हड्डी का टुकड़ा मिला।

—o—

प्रेसिडेण्ट केनेडी की कुर्सी की तकदीर वास्तव में ही खोटी है। केनेडी एक ही महीने के अंदर दो बार कुर्सी के टूट जाने से गिर चुके हैं।

पहली बार—व्हाईट हाऊस में डेमोक्रेटिक नेताओं के साथ बैठे बात कर रहे थे। जिस कुर्सी पर बैठे थे वह थी तीन सौ साल पुरानी। थी तो वह सुन्दर पर राष्ट्रपति का भार न सह सकी। बेचारे केनेडी धरती पर आ पड़।

इसके कुछ दिन बाद वे अपनी रॉकिंग कुर्सी के टूट जाने से गिर पड़े। शरीर पर लगी धूल झाड़ वे उठ खड़े हुए। नहीं, नहीं, व्हाईट हाऊस में शायद धूल है ही नहीं।

—o—

बच्चों के प्रसिद्ध खेल-घर 'डिस्नीलैंड के निर्माता वाल्ट डिस्नी से पूछा गया—आपने अपने जीवन में सफलता पायी है क्या?

डिस्नी ने मुस्कराकर कहा—हां, जरूर! क्योंकि मेरे ऊपर करीब अस्सी लाख डालर का कर्ज चढ़ चुका है।

—o—

एडिसन को छोड़कर शायद अन्य कोई भी ऐसा अमेरिक नहीं जिसका नाम संसार के इतने अधिक लोग जानते हैं जितने हेनरी फोर्ड का। कुछ साल हुए, उनके एक देशवासी ने जो विदेश में यात्रा कर रहे थे, एक लिफाफे पर फोर्ड का चित्र चिपकाकर उसे डाक में डाल दिया। लिफाफे पर न नाम लिखा था न पता, पर वह सीधे हेनरी फोर्ड के पास पहुंच गया।

◆

हम घोषणा करते हैं :

श्री देवदत्त की रसोत्तीर्ण, संजीवनी कविताओं का
कमनीय चित्रों से भरपूर संग्रह

चाँदनी महकती है

प्रस्तुति
विद्यावती कोकिल, वीरेन्द्र कुमार जैन

प्रकाशक
प्रगति प्रकाशन
३५८ मण्डी रुहीदखां
आगरा (उ.प्र.)

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

ने

प्रधान कार्यालयः
फोन : ३३-४५०४
ग्राम : MIGHTYHOLY

श्री हनुमान सुगर मिल्स लि.

मैनेजिंग एजेण्ट—

मेसर्स—दौलतराम रामेश्वरलाल
१७८ महात्मा गांधी रोड,
कलकत्ता ७

कारखाना—
मोतीहारी
[बिहार]

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।
—श्रीमां

न्यू होराइजन स्टेनलेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी-४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE STEEL PRODUCT STAINLESS

"स्क्वायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED
7, CANNING STREET
CALCUTTA-1

Cold Storage : We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३. प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन--२३२९३३
३२९८२२
३२६५३९
तार--नेशनओटो

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

"Let us prepare for the Hour of God"

With compliments from :

AURORA FILM CORPORATION

(Private) Ltd.

125, Dharmatalla Street,
CALCUTTA-13

READ

ORGANISER

The Capital Weekly from the Capital of India

* **Thought Provoking Articles**
* **Revealing News-stories**
* **Incisive Cartoons**
* **Breezy Features**

Subscription : *Yearly* · Rs 12.00
Half yearly : Rs: 6.50

Shraddhananda Bazar,
DELHI-6

a happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS LTD.

PONDICHERRY

"Open yourself to the New Light that has dawned upon earth and a luminous path will spread in front of you."

—The Mother

With the best compliments from:

The Supramentals Agencies

36/37 Nainappa Naik Street

Madras-1

Dealers in Switches, Starters, Wires, Cables and other flurascent lamps and fittings.

What is the duty of every Indian today in the present emergency?

Overgrow your small egoistic personality and become a worthy child of our Mother India, fulfil your duties with honesty and rectitude, and always keep cheerful and confident with a steady trust in the Divine's Grace.

इस वर्तमान संकट-काल में प्रत्येक भारतीय का क्या कर्तव्य है ?

अपने अहंकारपूर्ण तुच्छ व्यक्तित्व से ऊपर उठ अपनी भारतमाता का सुयोग्य संतान बन जाओ, ईमानदारी और सच्चाई के साथ अपने कर्तव्यों को पूरा करो तथा भगवान् की कृपा पर अटूट भरोसा रख सर्वदा प्रसन्न एवं निस्संदिग्ध बने रहो।

—श्रीमां

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

वर्ष १ अप्रैल १९६३ अंक ४

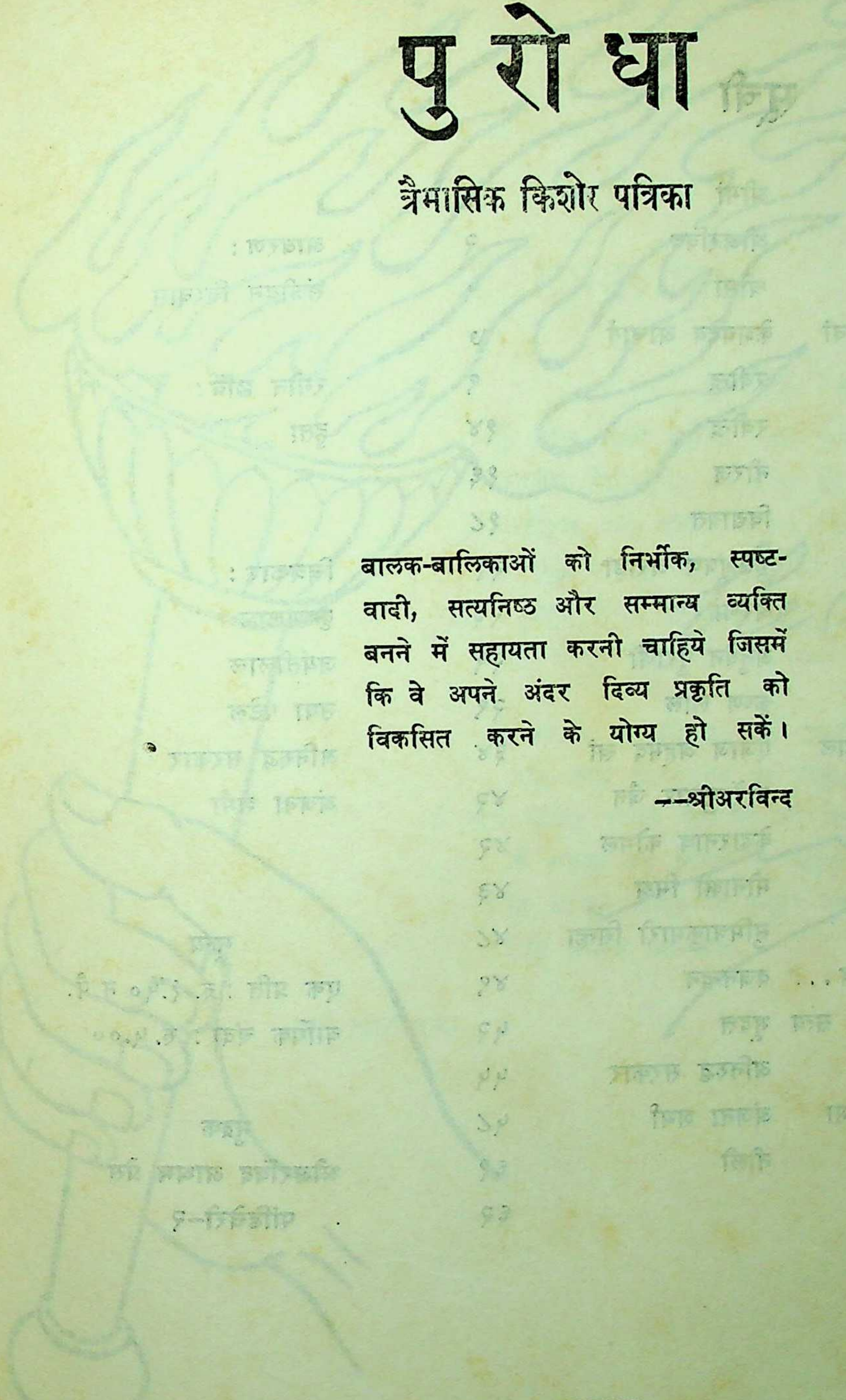

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओं को निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बनने में सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृति को विकसित करने के योग्य हो सकें।

——श्रीअरविन्द

प्रकाशक

श्रीअरविंद सोसायटी

पांडिचेरी-२

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
हमारी अभीप्सा	श्रीअरविंद	२
बर्फ का राजा	श्रीमां	५
न्यायशील नौशेरवां	केशवदेव आचार्य	७
चली गयी	रवीन्द्र	९
छुट्टियां	रवीन्द्र	१४
गीत	नीरज	१६
बौनों के देश में	विद्याव्रत	१८
मित्र की खोज	कुलभूषण अरोड़ा	२१
अद्भुत संसार	अरुणा	२३
धुरमंगद	अनुबेन पुराणी	२५
काक परिचय	कृष्ण लाल	२९
भारत के नौनिहाल	ऐजाज अहमद खां	३४
बरसे बादर	वीरेंद्रकुमार जैन	४२
दीप जलायेंगे	केदारनाथ कोमल	४२
सीमा के प्रहरी	मीनाक्षी मिश्र	४३
हंसो	सुमित्राकुमारी सिन्हा	४८
रासभो गर्दभश्चैव...	व्रजनन्दन	४९
आश्चर्यजनक पर सत्य	भूदत्त	५२
जुजुत्सु सीखो	अनिरुद्ध सरकार	५५
हमारी हिन्दी सभा	अंजना शर्मा	५८
सिपाही	नीली	६१
सम्पादकीय		६२

आवरण :
संजीवन विश्वास

रंगीन छवि :
हुता

चित्रकार :
कृष्णलाल
जयंतीलाल
उषा पटेल
अनिरुद्ध सरकार
अंजना शर्मा

मूल्य
एक प्रति : रु. १.५० न.पै.
वार्षिक चंदा : रु. ५.००

मुद्रक
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस
पांडिचेरी–२

Director of Publication: Aniruddha Sircar, Sri Aurobindo Society, Pondicherry-2

216/3/63/1500

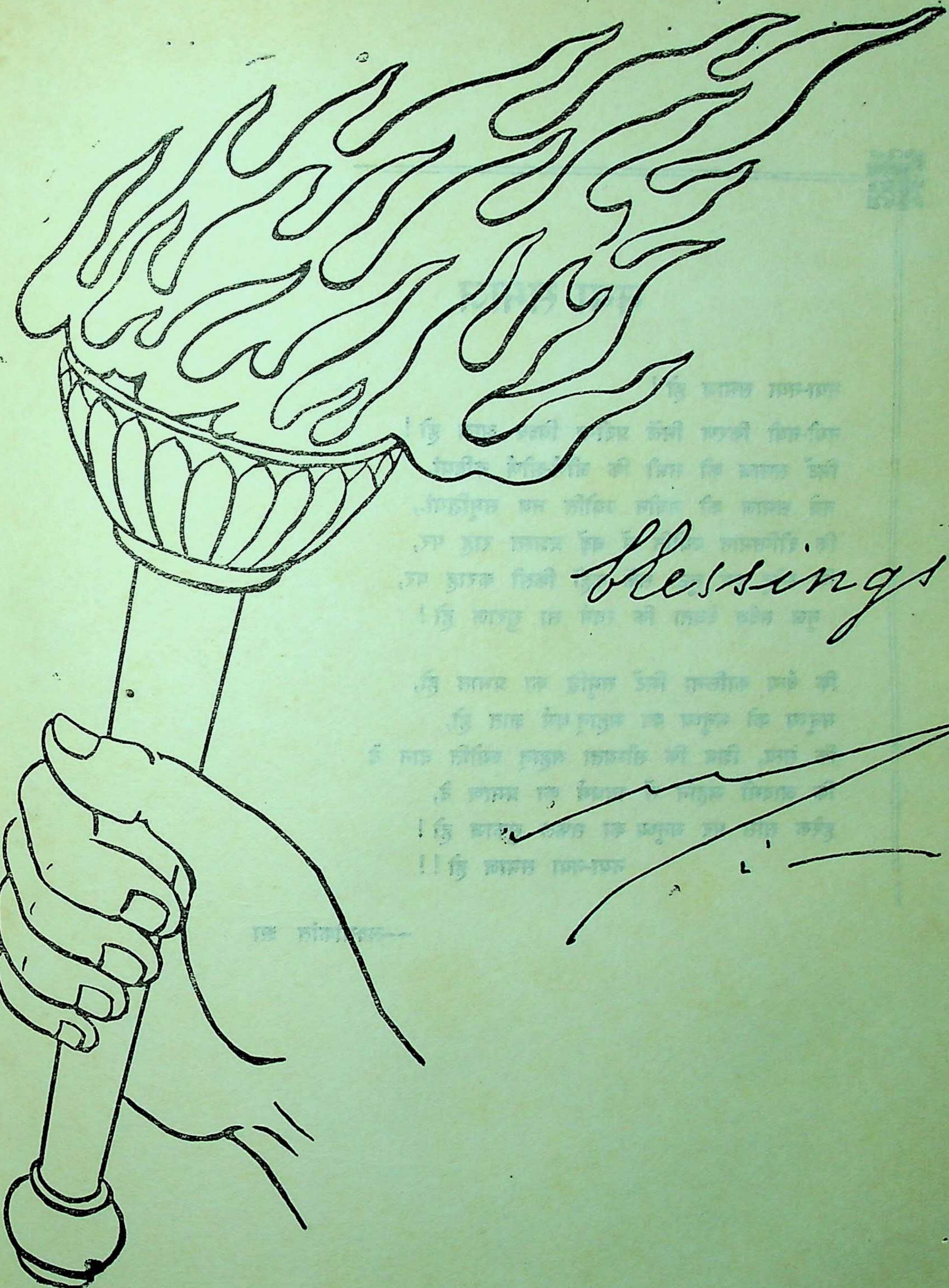

Blessings

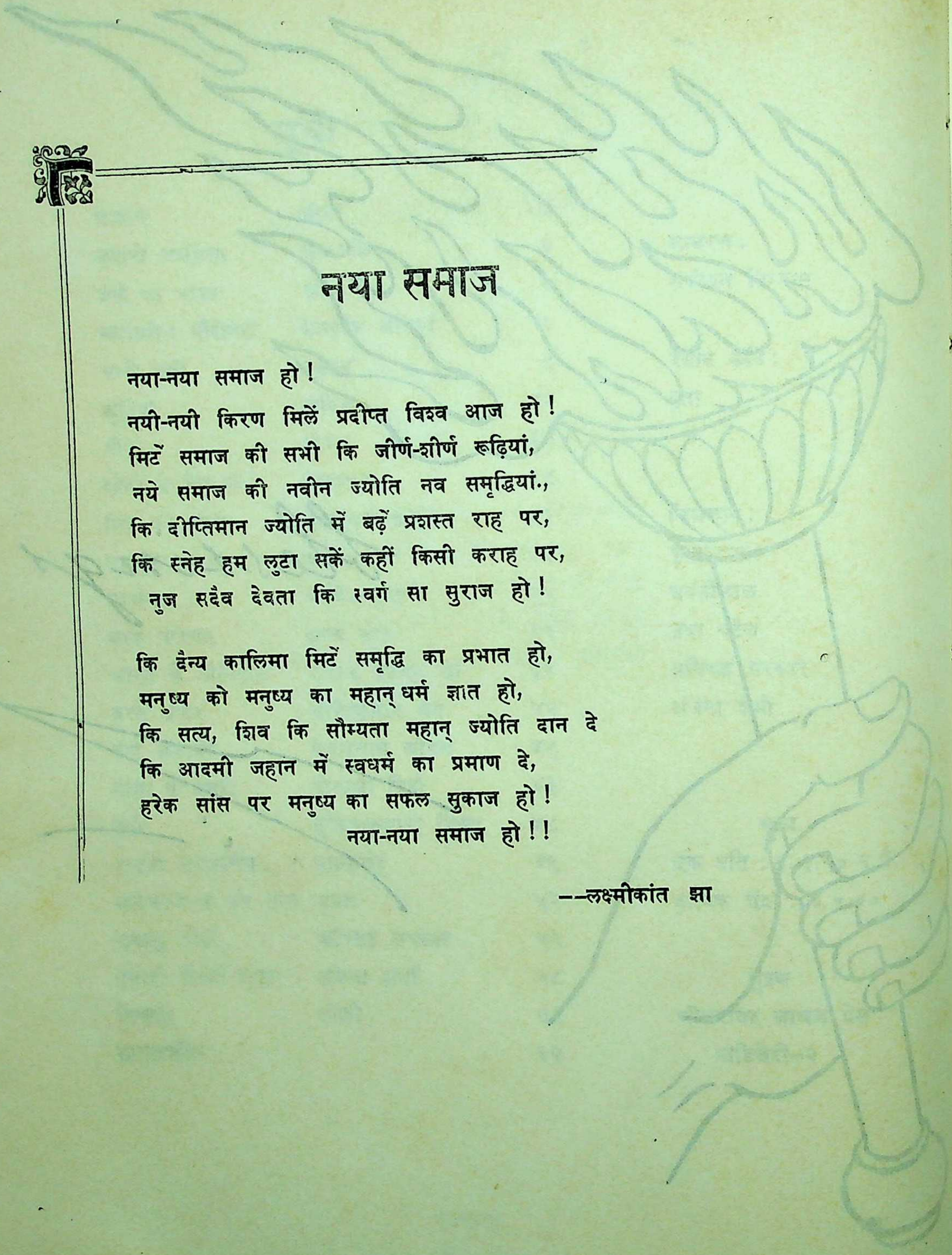

नया समाज

नया-नया समाज हो !
नयी-नयी किरण मिलें प्रदीप्त विश्व आज हो !
मिटें समाज की सभी कि जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियां,
नये समाज की नवीन ज्योति नव समृद्धियां.,
कि दीप्तिमान ज्योति में बढ़ें प्रशस्त राह पर,
कि स्नेह हम लुटा सकें कहीं किसी कराह पर,
नुज सदैव देवता कि स्वर्ग सा सुराज हो !

कि दैन्य कालिमा मिटें समृद्धि का प्रभात हो,
मनुष्य को मनुष्य का महान् धर्म ज्ञात हो,
कि सत्य, शिव कि सौम्यता महान् ज्योति दान दे
कि आदमी जहान में स्वधर्म का प्रमाण दे,
हरेक सांस पर मनुष्य का सफल सुकाज हो !
नया-नया समाज हो ! !

--लक्ष्मीकांत झा

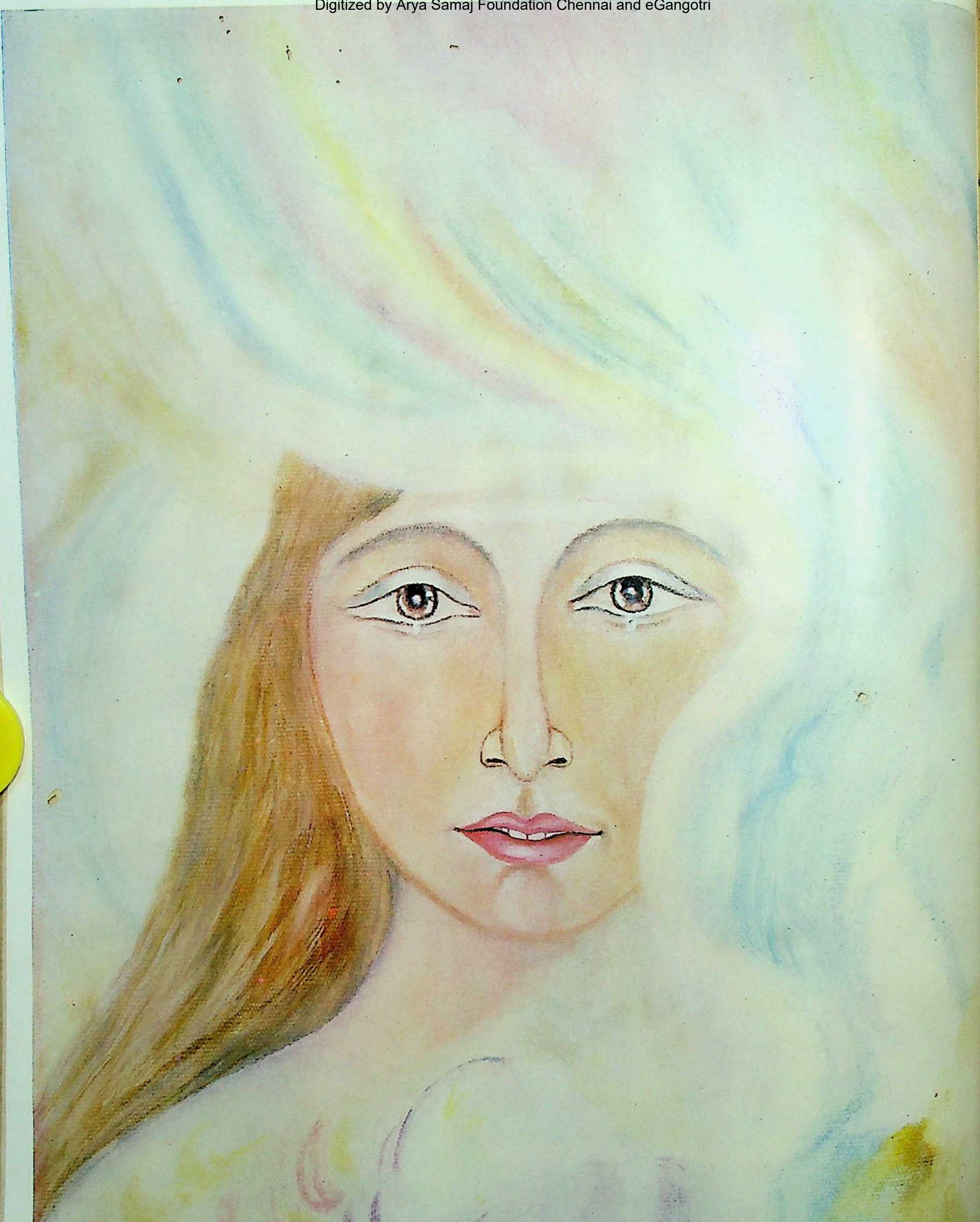

चित्र : हुता

The Ideal

आदर्श

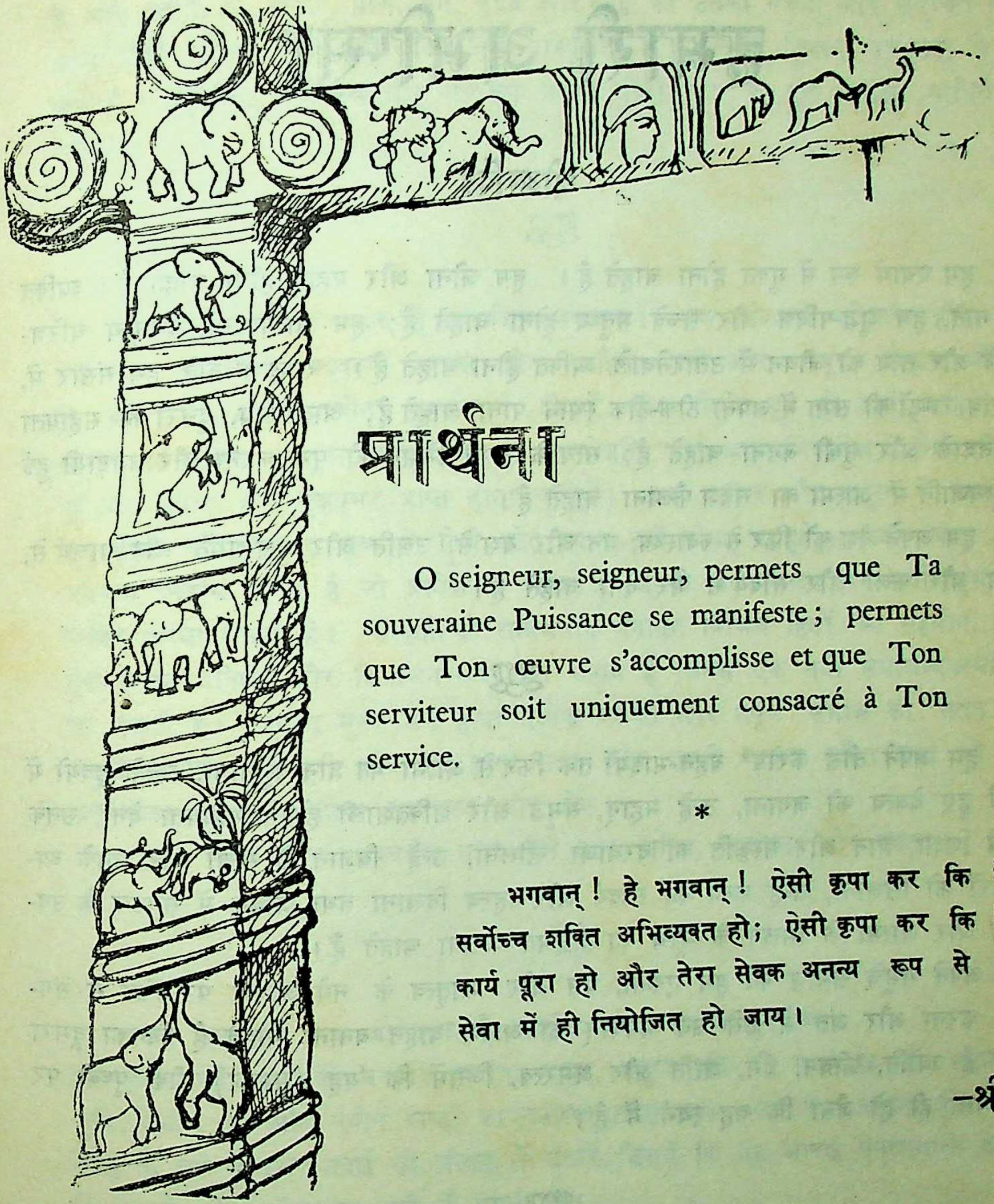

प्रार्थना

O seigneur, seigneur, permets que Ta souveraine Puissance se manifeste; permets que Ton œuvre s'accomplisse et que Ton serviteur soit uniquement consacré à Ton service.

*

भगवान्! हे भगवान्! ऐसी कृपा कर कि तेरी सर्वोच्च शक्ति अभिव्यक्त हो; ऐसी कृपा कर कि तेरा कार्य पूरा हो और तेरा सेवक अनन्य रूप से तेरी सेवा में ही नियोजित हो जाय।

—श्रीमां

हमारी अभीप्सा

श्रीअरविंद

हम यथार्थ रूप में मुक्त होना चाहते हैं। हम जीना और महान् होना चाहते हैं। व्यक्ति के नाते, हम शुद्ध-पवित्र और सच्चे मनुष्य होना चाहते हैं; हम आत्मज्ञानी, देवतुल्य चरित्र-वाले और सत्य को जीवन में उतारनेवाले व्यक्ति होना चाहते हैं। राष्ट्र के नाते, हम संसार में, स्वतंत्र राष्ट्रों की सभा में अपना ठीक-ठीक स्थान पाना चाहते हैं; आदरणीय, दूसरों की सहायता करनेवाले और सुखी बनना चाहते हैं; सत्य के अपने मिशन को पूरा करना और घबड़ायी हुई मनुष्यजाति में आत्मा का संदेश फैलाना चाहते हैं।

हम अपने देश को फिर से स्वास्थ्य, धन और यश से, उन्नति और सुख-शांति और प्राचुर्य से, ज्ञान और कला और सौंदर्य से भर देना चाहते हैं।

* * *

हम अपने तीस करोड़[1] बहन-भाइयों तक फिर से आत्मा का ज्ञान पहुंचाना, उनके हृदयों में सोये हुए देवत्व को जगाना, उन्हें महान्, समृद्ध और शक्तिशाली होनेमें सहायता देना, उनके लिये शिक्षा, ज्ञान और संस्कृति का दरवाजा खोलना, उन्हें विज्ञान के सत्यों और उनके व्यवहारों को सिखाना, उन्हें कला का सौंदर्य और महत्त्व दिखाना तथा जीवन में संगठन के उपयोग और आत्मा के मिलन के मूल्य का अनभव कराना चाहते हैं।

अपने समूचे समाज को हम एकता, प्रेम और भ्रातृत्व के नये आधार पर फिर से संगठित करना और अंत में उसे उन भगवान् का आदर्श वाहन बनाना चाहते हैं जिनका दूसरा नाम है ज्योति, जीवन, प्रेम, शांति और अमरत्व, जिसमें कि 'यह (समाज) ठीक पृथ्वी पर भी वैसा ही हो जैसा कि वह स्वर्ग में है।'

* * *

इसके लिये जिस चीज की आवश्यकता है वह है आध्यात्मिक नवजन्म अर्थात् आंतरिक परिवर्तन, आत्मा का शुद्धीकरण, द्वन्द्व और कामना से मुक्ति, हमारे मानवीय अहंभाव का उसी तरह उसके पूर्ण व्यक्तित्वके सनातन सत्य में रूपांतर जिस तरह हमारे मन का अतिमन में रूपांतर।

---

[1] उन दिनों भारत की आबादी तीस करोड़ ही थी।

हमारे जीवन के प्रत्येक अंग को इस महान् परिवर्तन में भाग लेना चाहिये, हमारी सत्ता के सभी भागों को, शरीर, प्राण, मन, हृदय और बुद्धि को उनकी सच्ची और समुचित संसिद्धि प्राप्त होनी चाहिये तथा उन्हें शक्ति और परिपूर्णता के उच्चतम शिखर पर उठा ले जाना चाहिये। आंतरिक व्यक्तित्व और यंत्र-रूप प्रकृति दोनों का ही पूर्ण रूपांतर साधित होना चाहिये।

* * *

इसके लिये फिर आवश्यक है सामाजिक नवजन्म। एक सर्वव्यापी परिवर्तन होना चाहिये, एक नयी सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न होनी चाहिये, धनी और मजूर, ब्राह्मण और शूद्र के बीच की सभी प्राचीन, अन्यायपूर्ण दीवारें और विभेद दूर हो जाने चाहियें, सबको समान पद-प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये, सबकी आत्मोन्नति और आत्माभिव्यक्ति के लिये एक समान सुविधा, सुयोग और सुअवसर प्राप्त होना चाहिये। अब दासत्व और प्रभुत्व के लिये, सनातन सेवक और सनातन सेव्य के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये,—सबके अंदर एक ही भगवान् निवास करता है जो प्रत्येक के भीतर से अपनी अलग-अलग पर मर्यादायुक्त अभिव्यक्ति करना चाहता है। संस्कृति को सार्वजनीन बनाना, विभिन्न हितों का सहयोग, श्रम की एक समान प्रतिष्ठा और विभाजन—ये तीन उपाय हैं जिनसे एक नयी समाजव्यवस्था लायी जा सकती है। इसका मुख्य मंत्र होगा प्रत्येक व्यक्ति और संपूर्ण समाज की सतत उन्नति, इसकी अभीप्सा की धुरी और केंद्र होगा सत्य और इसकी चालक शक्ति तथा इसे धारण करनेवाला जीवनानंद होगा सामंजस्य और प्रेम।

इसके चार अमर पथप्रदर्शक तत्त्व होंगे ज्ञान, शक्ति, स्वतंत्रता और एकता।

* * *

इसके साथ ही साथ आवश्यक है राष्ट्रीय और जातीय पुनर्जन्म।

हम अपने राष्ट्र को बनायेंगे स्वतंत्र, महान्, मनुष्यजाति की स्वतंत्रता और महानता का स्तंभ, नवीन युग और नवीन राष्ट्रों का नवजात संदेशवाहक—उसे ऐसा बनाना होगा कि वह राष्ट्र के रूप में इस आदर्श को जीवन में उतारे जिसमें कि यह आदर्श मनुष्यजाति के जीवन में उतरने और अभिव्यक्त होने में समर्थ हो।

हमें भारत को फिर से ऐसा घड़ना होगा जिसमें वह मनुष्यजाति के सामने सत्य, स्वातंत्र्य और सिद्धि का अग्रदूत बन सके—भविष्य की एक जाति बन सके जो विभिन्न जातियों के नवीन भविष्य को उद्घोषित करे।

हम मनुष्य और जातियों की भगवत्ता में सदा-सर्वदा विश्वास करते रहे हैं।

* * *

हम सत्य के विधान में विश्वास रखते आ रहे हैं और उसे ही सृष्टिकारिणी भागवत चेतना का विधान मानते रहे हैं। अब उसी की भावना और शक्तिके द्वारा हम अपने क्रम-विकास का फिर से संशोधन और संगठन करेंगे।

हम नये सिरे से अपनी राजनीति का निर्माण करेंगे जो कि राष्ट्र का संघर्षकारी धर्म है; हम नये रूप में नीति और सदाचार का निर्माण करेंगे जो कि मानवसमाज का प्रयासलब्ध धर्म है; हम सभ्यता का नवनिर्माण कर उसे सत्य की शक्ति और अभिव्यक्ति बना देंगे जो कि सबके लिये और सबके धर्मों का धर्म है।

* * *

हमारे सामने भगवान् ने जो महान् समीकरण हल करने के लिये रखा है उसके चार पद हैं—मनुष्य, मनुष्यजाति, दिव्य जीवन और दिव्य सत्य। हम सब लोगों को इसे हल करना ही होगा। और एकमात्र सत्य-ज्ञान के द्वारा ही, कर्म में मुक्त हुए अतिमानस के द्वारा ही यथार्थ और पूर्ण, संतोषकारी और सर्वांगपूर्ण समाधान प्राप्त और संसिद्ध किया जा सकता है।

मातृवाणी

किसी ने श्रीमाताजी को लिखा—"मेरी एक छोटी बहन है जो हमेशा मेरे साथ झगड़ती रहती है और कई कई दिन तक बोलना बंद रखती है। इतना ही नहीं रोष के मारे मेरी ओर देखती तक नहीं। मुझे वह बहुत प्रिय है इसलिये मुझे उसकी ऐसी हरकतों पर बहुत गुस्सा आता है। मैं अपने गुस्से को वश में रखना चाहती हूं पर रख नहीं पाती। कृपया कुछ ऐसा यत्न कीजिये कि उसका स्वभाव बदल जाय और वह एक अच्छी लड़की बन जाय।"

श्रीमाताजी ने उत्तर दिया—"तुम्हारे लिये सबसे अधिक जरूरी तो यह है कि पहले तुम अपने स्वभाव को बदलो। क्रोध करना बहुत बड़ी गलती है। और जब तुम अपनी बहन पर क्रोध करती हो तो यह कैसे कह सकती हो कि वह तुम्हें प्रिय है। अगर तुम्हें किसी से प्रेम है तो तुम उससे कभी नाराज नहीं हो सकती।

पहले अपने आप को ठीक कर लो फिर अपनी बहन को ठीक करने की बात करना।"

एक सच्ची कहानी :

बर्फ का राजा

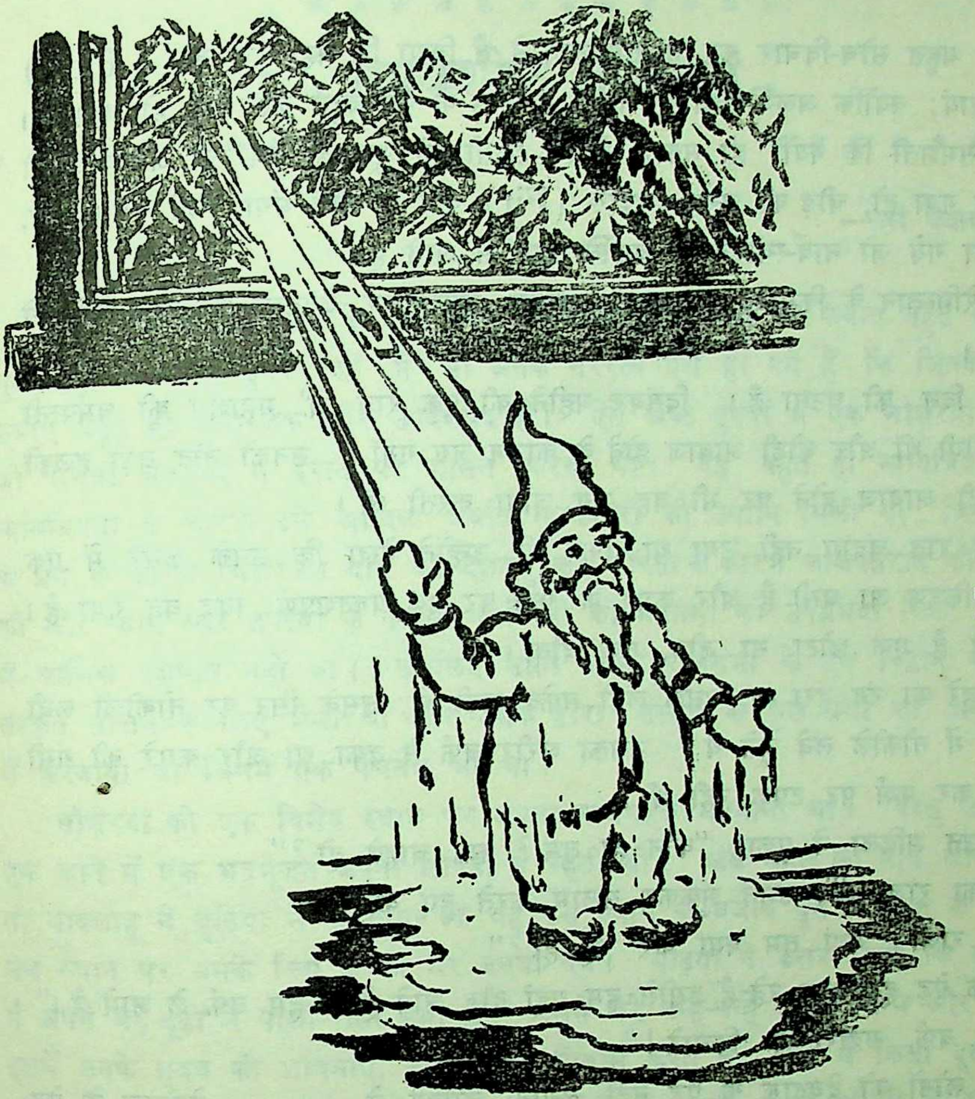

श्रीमां

सबसे पहले मैं तुम्हें तेमसेम शहर के विषय में कुछ बताऊंगी। यह शहर दक्षिण अलजीरिया में है। यह सहारा रेगिस्तान के किनारे बसा है और पहाड़ों से घिरा है। वे पहाड़ बहुत ऊंचे तो नहीं हैं पर हैं पहाड़ ही, छोटी पहाड़ियों से कहीं अधिक ऊंचे।

जब मैंने पहले-पहल उन्हें देखा था तब वे जंगलों से ढके थे। वहां की उपजाऊ तराई में एक नदी बहती थी। 'अ' महाशय की स्थावर संपत्ति समतल भूमि से आरंभ कर लगभग पहाड़ों की आधी ऊंचाई तक फैली थी।

यह बड़ी अद्‌भुत जगह थी, छोटा-सा स्वर्ग ही समझो। इसमें सब तरह के फलों के पेड़ थे, अंजीर तो ऐसा था जैसा अन्यत्र मैंने कभी नहीं देखा ; नाना प्रकार के फूल और सघन कुंज थे और वे सब पहाड़ों को छाये हुए घने जंगलों तक फैले थे।

वहां की यह मनोरम हरियाली बहुत अधिक दिनों से नहीं थी। शुरू-शुरू में तो यह सारा स्थान सूखा और बीरान था; बस, कुछ वर्ष आगे ही वहां की सरकार ने यह निर्णय

किया था कि वहां वृक्षों को लगाकर तराई को उपयोगी बनाया जाय और उसी का यह सब फल था।

इसके बाद बहुत सोच-विचार कर नगरपालिका ने तै किया कि वहां कुछ चीड़ (Pine) के पेड़ लगाये जायं; क्योंकि अलजीरिया की मिट्टी में चीड़ के पेड़ बहुत जल्द बड़े हो जाते हैं। परंतु, मैं नहीं समझती कि क्यों, हो सकता है कि किसी की भूल हो गयी हो अथवा किसी की मौज में आ गया हो, चीड़ की जगह देवदारू (Fir) वृक्ष के पौधे मंगा लिये गये। हां, देवदारू वृक्ष आ गये जो नार्वे-स्वीडन के बर्फीले देशों से आते हैं।

इस तरह रेगिस्तान के किनारे, रूखी-सूखी ढालुआं जमीन पर देवदारू पेड़ रोप दिये गये और बढ़ने लगे।

अब, एक दिन की घटना है। दिसंबर महीने की एक रात 'अ' महाशय की धर्मपत्नी एक कमरे में सोयी थीं और थोड़ी आवाज होने के कारण जग गयीं। उनकी नींद बड़ी हलकी थी और मामूली आवाज होने पर भी वह जग जाया करती थीं।

यद्यपि उस रात चंद्रमा नहीं उगा था, फिर भी उन्होंने देखा कि उनके कमरे में एक पतली रूपहली किरण आ घुसी है और कमरे के फर्श पर एक प्रकाशपूर्ण बिंदु बन गया है। और वहां खड़ा है एक छोटा सा जीव, एक बौना।

बौने के चेहरे का रंग हरा था, उसके लंबी सफेद दाढ़ी थी, उसके सिर पर नोकीली लंबी टोपी और पैरों में नोकीले लंबे जूते थे। उसका शरीर बर्फ से ढका था और कमरे की गर्मी से बर्फ पिघल कर फर्श पर टपक रही थी।

उसे देख उन महिला ने पूछा: "कौन हो तुम? क्या चाहते हो?"

"मैं बर्फ का राजा हूं", उसने झुककर सलाम करते हुए कहा।

"बर्फ का राजा। यहां तुम क्या कर रहे हो?"

"देवदारू के पेड़ हमें बुला रहे हैं इसीसे हम यहां दौड़ आये हैं। हम बर्फ ले आये हैं।"

"यहां पर बर्फ, सहारा के किनारे!"

"तब आप लोगों को देवदारू के पेड़ नहीं लगाने चाहिये थे........देवदारू के पेड़ बर्फ मांगते हैं....."

"ठहरो, मैं नहीं मानती कि तुम्हारी रची कहानी सच्ची है। मैं तो बस यह देखती हूं कि तुम मेरा फर्श खराब कर रहे हो। दूर हो यहां से....।"

नन्हा-सा बौना तुरत विलीन हो गया। उन महिला ने सोचा कि कहीं मैंने स्वप्न तो नहीं देखा। अपना संदेह मिटाने के लिये वह उस स्थान तक गयीं जहां बौना खड़ा था। सचमुच कमरे के बीच वहां असली बर्फ पिघली हुई पड़ी थी, एक नन्हीं सी गढ़ैया बन गयी थी।

दूसरे दिन सुबह जब वह अपने जंगले पर गयीं तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा वहां सफेद बर्फ से चमकते हुए पहाड़ों पर सूर्य निकल रहा था....हां, बर्फ, सच्ची बर्फ थी... ठीक वैसी ही जैसी दिसंबर में बड़े दिन के आसपास गिरती है।

उसके बाद से प्रत्येक वर्ष, 'तेमसेम' शहर अपने घने जंगलों में, सहारा के किनारे,, उत्तरी प्रदेश के इस देवदूत का स्वागत करता है।

★

न्यायशील नौशेरवां

--श्री केशवदेव आचार्य

अपने देश के हरिश्चन्द्र के सत्य और विक्रमादित्य के न्याय की कथाएं बहुत से बालकों ने सुनी होंगी। परंतु दूसरे देशों में भी अनेक नररत्न ऐसे हो गये हैं कि जिनके जीवन की कथाएं बहुत ही मनोरंजक और उपदेशप्रद हैं। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों में एक नौशेरवां बादशाह है जो पांचवीं शताब्दि में ईरान पर शासन करता था। वह बहुत ही न्यायप्रिय था। इस न्यायप्रियता के कारण उसे 'आदिल' अर्थात् न्यायकारी की उपाधि मिली थी, जिस प्रकार देश के प्रेम के कारण चित्तरंजन दास को देशबंधु की, वीरता के कारण लाजपतराय को पंजाबकेसरी की और त्याग और तपस्या के कारण गांधी जी को महात्मा की उपाधियां मिली हैं। नौशेरवां में धार्मिक पक्षपात नही था। इसलिए उसने अपनी राजसभा के एक विद्वान् को भारत में संस्कृत सीखने के लिए भेजा था और उसके द्वारा संस्कृत के कुछ ग्रंथों का अनुवाद फारसी में करवाया था जिनमें एक पंचतंत्र भी था।

नौशेरवां को एक विशेष स्थान पर अपना राजमहल बनवाना था। परंतु उस स्थान पर एक कोने में एक भडभूजन अपनी झोंपड़ी में रहती थी। जब महल की नींव खोदी जाने लगी तो बादशाह ने बुढ़िया से कहलाया कि वह उस स्थान के बजाय दूसरा स्थान ले ले, बादशाह उस स्थान पर उसके लिए अच्छा घर बनवा देंगे। बुढ़िया ने उत्तर दिया कि इस झोंपड़ी में मैं अपने बड़े-बूढ़ों से पाली-पोसी गयी हूं। इसमें मेरे नन्हें-नन्हें बालक जन्मे और बड़े हुए हैं। इसमें उनके हृदय की भावनाएं, उनका स्नेह निवास करते हैं, .भला मैं किसी दूसरे मकान के लोभ में अपनी प्यारी झोंपड़ी को कैसे छोड़ दूं? मैं अपनी प्यारी झोंपड़ी के सामने बादशाह के बड़े-बड़े महलों को तुच्छ समझती हूं। जब किसी भी प्रकार समझाने से बुढ़िया न मानी तो बादशाह ने उसकी हठ के सामने सर झुका दिया। उन्होंने बुढ़िया की झोंपड़ी में कोई हस्तक्षेप नहीं किया और अपने महल को टेढ़ा ही बनवा लिया। परंतु महल बन जाने पर बादशाह ने देखा कि झोंपड़ी का धुंआ महल को काला करता है और झरोखों के द्वारा भीतर जाकर वहां बैठनेवालों का दम घोंटता है। बादशाह ने बुढ़िया से कहा—मां, तू यदि यहीं रहना चाहती है तो रहे जा, परंतु इतनी वृद्धावस्था में भाड़ झोंकने का कष्ट क्यों उठाती है। तुझे राजमहल से अच्छे से अच्छे भोजन वस्त्र आदि सब सामान आ जाया करेंगें। बुढ़ापे की अवस्था में आराम से जीवन व्यतीत कर। भाड़ झोंकना बंद कर दे। बुढ़िया ने उत्तर दिया कि बादशाह सलामत! मैं कोई अपाहिज नहीं हूं जो शाही लंगर (क्षेत्र) की रोटियों से पेट भरूं। मुफ्त के हलवे पूरियों की अपेक्षा मेहनत मजदूरी से मिले सूखे चने मेरे लिए अमृत हैं। मेरे फटे पुराने चीथड़े राजमहलों के मखमली गद्दों से अच्छे हैं। अतः जब तक मेरे हाथ पैर काम करते हैं मैं राज दरबार से एक पैसा भी नहीं ले सकती। बुढ़िया के इस उत्तर

को सुनकर नौशेरवां चुप हो गये। बुढ़िया के भाड़ और चूल्हे का धुंआ निरंतर बादशाह के महल को काला करता परंतु उसकी न्यायप्रियता ने बुढ़िया को धुंआ बंद करनेकी आज्ञा नहीं दी।

* * *

एक बार नौशेरवां अपने देश में यात्रा कर रहे थे। मार्ग में एक स्थान पर पड़ाव डाला गया। वहां भोजन पकाया जाने लगा। देखा तो नमक नहीं था। बादशाह ने नौकर को पास के ग्राम से नमक लाने के लिए भेजा और कहा कि पैसे देकर लाना जिससे बुरी प्रथा न पड़ जाय और ग्राम न उजड़ जाय। बादशाह के कर्मचारियों ने पूछा कि इस थोड़ी सी बात से क्या इतनी बड़ी हानि हो सकती है? नौशेरवां ने कहा कि मैं यदि एक तोला नमक बिना पैसे दिये लूंगा तो तुम लोग भी लिया करोगे और दूसरी अनेक वस्तुएं ले आया करोगे। यदि बादशाह प्रजा के बाग का एक सेब तोड़ ले तो उसके नौकर सारे पेड़ों को ही जड़ से उखाड़ देंगे। इस दुनिया में पहले अन्याय की जड़ थोड़ी ही थी। जो यहां आया वह उसे थोड़ा-थोड़ा बढ़ाता गया। यहां तक कि अब वह बहुत बड़ी हो गयी। इससे ही दुनिया में मुसीबत है। यदि सब अन्याय करना कम करने लगें तो कम होते होते पाप की जड़ सूख जायगी और दुनिया में सुख शांति आ जायगी।

* * *

बुढ़िया की झोंपड़ी के धुंए से काला, टेढ़ा-मेढ़ा नौशेरवां का गगनचुंबी महल, बुढ़िया और स्वयं बादशाह इस संसार को छोड़कर शताब्दियों पहले प्रस्थान कर गये हैं, परंतु आदिल नौशेरवां अपनी न्यायप्रियता के कारण अमर हो गया है। उसके सत्कर्मों की कथा सत्य और न्याय के पथ पर चलनेवालों को आज भी सुनायी देती है और चुपके-चुपके कान में कहती है कि अन्याय, असत्य, क्रूरता, लोभ के मार्ग में न चलना; यह मार्ग दुःख, विपत्ति की ओर ले जायगा। सोच विचार कर न्याय, सत्य, दया, सहानुभूति, त्याग के पथ पर चलो, यह सीधा स्वर्ग को, भगवान् के परमानंद की ओर ले जायगा।

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरः

बुद्धिमान् मनुष्य न्याय, सत्य के पथ को नहीं छोड़ा करते।

जो बालक न्याय और सत्य के मार्ग पर चलेंगे उन्हें भी वह वाणी सुनायी देगी और स्वर्ग की ओर जानेवाला मार्ग बतलायगी।

चली गयी

—श्री रवीन्द्र

ना . . . . देखिये इस तरह मजाक न उड़ाइये। आप तो यूं ही बात का बतंगड़ बना रहे हैं। अंगड़ाई लेते हुए और अपने लंबे-चौड़े शरीर को तोड़ते-मरोड़ते हुए मालती ने कहा।

"हां, क्यों मजाक उड़ा रहे हैं बेचारी का, अभी छोटी है बेचारी . . . . क्यों नहीं, छोटी तो है ही, मैंने बात काटते हुए कहा—अभी है ही कितनी सी, यही बस सात फुट ऊंची और नौ फुट चौड़ी बेचारी नन्हीं मुन्नी, देखना तो जरा इसकी शकल।

"तुम हो बिलकुल पत्थर," मेरे एक मित्र बोल उठे। तुम दूसरों की तकलीफ को नहीं समझ पाते। आगे नाथ न पीछे पघा। जानते भी हो बहन का प्यार किस चिड़िया का नाम है? बस, बैठ गये गरीब मालती को चिढ़ाने। आ जा बेटी! इस तरह विसूरा नहीं करते। इनकी तो आदत ही है यूं चिढ़ाने और उल्लू बनाने की, इनकी बात का बुरा नहीं मानते।

मैंने देखा चारों ओर से मेरे ऊपर बौछार हो रही थी। सब के सब अपनी नन्हीं मालती का पक्ष ले रहे थे और मैं अकेला था, जी हां, बिलकुल अकेला, जिमि दसनन बिच जीभ बिचारी। करता भी तो क्या करता।

अब लीजिए, असली किस्से पर आइये। हमारी मालती घर भर में सबसे छोटी है और सभी को प्यारी लगती है। भगवान् ने बड़ा सा शरीर तो दे दिया पर स्वाभाविक बचपन नहीं छीना है। हम सबके सब उसके साथ खेला करते हैं। कभी उसपर लाड़ दिखाते हैं और कभी उसे छेड़-छेड़ कर रुला देते हैं। बात यह है कि जब वह गुस्से में आकर हमें डांटने लगती है और फिर गुस्सा अपने आपको असफल देखकर पिघल पड़ता है और उसकी आंखों से बाहर आने लगता है तो सभी को मजा आता है। और यह न समझिए कि मालती को यह सारा कार्यक्रम पसन्द नहीं है। अगर दो चार दिन यह कार्यक्रम न हो तो वह चिन्ता में पड़ जाती है और रूठ जाती है। उसे लगता है मानों उसकी उपेक्षा हो रही है।

हां . . . . तो आज भी वही नाटक रचा जा रहा था। लेकिन आज मालती सचमुच कुछ उदास सी थी और मेरे व्यंग के बाणों से उसे कुछ चोट पहुंची थी, इसी लिये सब के सब चोंच पंजे झाड़ कर मेरे पीछे पड़ गये थे।

घटना यूं है। मालती की और दो बहनें हैं और दोनों उससे बड़ी। एक का नाम है माधवी और दूसरी का मंजुलिका। माधवी तो हमारे साथ ही रहती है पर मंजुलिका पराई हो चुकी है और कभी कदास ही इस तरफ मुंह किया करती है। वैसे चिट्ठियां तो उसकी हर तीसरे दिन आती रहती हैं और प्रायः हर चिट्ठी मालती को आशा बंधाती है कि बस अब थोड़े ही दिनों की बात है फिर मैं वहां आ जाऊंगी और दुनिया की कोई ताकत हमें अलग न कर सकेगी। बिचारी मालती अभी दुनिया के रंग-ढंग से बेखबर है और वह सच मान लेती है और अपनी बड़ी-बड़ी चमकदार आंखें निकालकर दोनों हाथों से तालियां बजाती,

नाचती, कूदती घर भर के पास जा जा कर कहती है—जानती हो अब की मंजुलिका आएगी तो फिर उसे हमसे कोई भी अलग न कर सकेगा, पिताजी भी नहीं, जीजा जी भी नहीं, पुलिस भी नहीं, कोई भी नहीं। कैसा मजा रहेगा—अपनी मंजुलिका को हम यहीं बांध कर रखेंगे। देखें जीजा जी कैसे ले जाते हैं उसे . . . वे होते कौन हैं ले जानेवाले ?

मैं उसकी बातों को बड़े ध्यान से सुनता, कभी फीकी हंसी हंस देता तो कभी पलकें भींग आतीं। यह छोटा-सा निर्दोष पक्षी अभी आंधी पाले से एकदम अपरिचित है। यह घोंसला ही उसके लिए सारी दुनिया है। काश, दुनिया इतनी अच्छी होती।

दिन बीतते गये। मंजुलिका के आश्वासनों का प्रभाव कम होता गया। अब कई बार मालती को गुस्सा आने लगता। कभी कभी झल्ला कर कह उठती—छी, जीजी भी कैसी है, हर बार एक ही बात लिख देती है, आती जाती है नहीं। अच्छा जी अच्छा, रहे कहीं, हम तो उसके कोई नहीं हैं। नहीं चाहिये हमें उसका आना। क्यों ठीक है न अम्मा ? अम्मा बेचारी क्या उत्तर देती। हंसकर चुप हो जाती, कभी कभी उसे याद हो आती, उसके छोटे भाई बहन भी तो इसी तरह उसकी याद किया करते होंगे। पर अब उसके पंख बंध चुके थे। वह एक सर्द आह भर कर रह जाती।

दिन गिनते गिनते दो वर्ष बीत गये। अब मालती कुछ बड़ी हो गयी थी। उसने अपने आपको समझा लिया था। अचानक एक दिन किसीने दरवाजा खटखटाया। देखा तो तारवाला था और तार भी था मालती के नाम। मैं ताड़ गया। मालती को बुलाया, उसके हाथ में तार देते हुए मैंने कहा, ले मालती, अब तो मिठाई खिलानी पड़ेगी। मैं आगे कुछ कहूं उससे पहले मालती उछल पड़ी। ऐसा लगा मानों छत से कानाफूसी कर रही हो। वह चिल्लाती हुई अंदर दौड़ गयी—मां ! लो, यह तार आया है। जानती हो, मंजुलिका बहन कल सवेरे आ रही है। आहा ! कैसा मजा आयेगा ! मेरे लिये क्या क्या लाती होंगी, दाल मोठ, पेठे की मिठाई, एक नयी फ्राक और हां, एक गुड़िया। "और एक गधा", मैंने बीच में कह दिया —"नहीं, हम तुमसे नहीं बोल रहे, तुम बीच में न पड़ो", मालती ने झुंझलाते हुए कहा। हां, तो मां, मंजुलिका मेरे लिए एक इक्का भी तो लाएगी। "हां, जरूर पर लंगड़े घोड़ेवाला", मैंने फिर बीच में टांग अड़ाई और मालती मुझे तार से मारने दौड़ी। मैं जान बचाकर भागा।

अब क्या था। तैयारियां होने लगीं। घंटे और मिनट गिने जाने लगे। मंजुलिका कैसे आएगी, क्या पहने हुए होगी, कैसी लगती होगी, इन सब बातों पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत थी। मेरे जैसे अरसिकों के लिए यहां जगह न थी।

जैसे तैसे रात कटी। मालती न अपने आप सो सकी न औरों को सोने दिया। कभी कहती शायद हमारी घड़ी खराब हो गयी है, कभी कहती आज मुर्गे को नींद आ गयी है और कभी घंटाघर की शिकायत करती तो कभी कहती सूर्य तो निकल आया है पर बादलों के कारण दिखायी नहीं दे रहा। रात में कम से कम पन्द्रह बार तो उठी ही होगी। सबके मना करने पर भी वह न रुकी और चार बजे ही स्नान आदि से निवृत्त होकर बैठ गयी। अब सवाल यह था कि पहने क्या। कुछ ऐसा कपड़ा हो कि देखते ही मंजुलिका के मुंह से वाह निकल पड़े और कहीं उसके कपड़ों जैसा ही हो तो और भी अच्छा।

पहले नीले फूलोंवाली फ्राक निकाली, पहनी, आईने के सामने खड़ी हुई, फिर, उसे उतार फेंका, धानी रंग की साड़ी निकाली, वह भी पसन्द न आयी। चुन्दरी, घाघरा, गरारा सबकी बारी आयी और सबको लज्जित होकर वापिस जाना पड़ा। आखिर हल्के आसमानी रंग के सलवार कमीज के भाग्य खुल गए और मालती उन्हें चढ़ाकर तांगे की राह देखने लगी। गाड़ी सात बजे आती है पर हम सब को छः बजे ही स्टेशन पर हाजिर होना पड़ा। अचानक गाड़ी जल्दी आ जाए तो, मंजुलिका बहन क्या कहेगी ? लो, मैं दो वर्ष के बाद आ रही हूं और मालती स्टेशन पर भी नहीं आयी। फिर मैं क्या कहूंगी उससे.....

गाड़ी आयी। मंजुलिका हल्के आसमानी रंग की साड़ी पहने हुए उतरी। मालती से आंखें चार हुईं, दोनों के चेहरे खिल उठे, दिल बाग-बाग हो गए। दुनिया में अब दो ही व्यक्ति थे---मालती और मंजुलिका। हम सब तो न जाने कहां शून्य में विलीन हो गए।

दिन बीतते देर न लगी। एक दिन की बात है, मालती कहीं से एक बड़ा तेज चाकू ले आयी थी और उससे अपनी पेंसिल घड़ रही थी। मंजुलिका ने देखा तो उसके पैरों तले की जमीन खिसक गयी। इतना तेज चाकू और छोटी-सी मालती। कहीं हाथ काट ले तो... उसने चाकू ले लेना चाहा। मालती को अपना अपमान लगा। उसने आव देखा न ताव झट कह दिया---बहन चली जाओ तुम अपने घर। मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है।

मंजुलिका ठिठक गयी, एक टक देखती रही। हां सच ही तो है अब यह घर उसका अपना नहीं है। वह पराई जो हो चुकी। उसने नीचे देखा और पांव के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी। मालती की भी आंखें खुलीं। उसे लगा, उसने कुछ अनुचित बात कह दी है। वह दौड़कर मंजुलिका के गले से लिपट गयी। बहन जाना मत, मेरी अच्छी बहन नहीं जाओगी न, एक बार कह दो न कि नहीं जाओगी। नहीं तो मैं फिर रूठ जाऊंगी।

यह पहली घटना थी, इस तरह की घटनाएं आठ दस दिन बाद हो ही जातीं और फिर दोनों गले मिलकर रोतीं। दोनों तरफ से क्षमा मांगी जाती और आगे से ऐसा न करने के वचन दिये जाते पर ये वचन जितनी आसानी से दिये जाते थे उतनी ही आसानी से तोड़े भी जाते थे। जब लड़ाई हो जाती तो मंजु सोचती---अब क्या है, अब मेरे दिन ही कितने बचे हैं? यही न अगले महीने की बीस तारीख को मैं अपने घर चली जाऊंगी। देखो न, यहां ये माधवी और मालती दोनों ही मुझसे मुंह फुला लेती हैं। क्यों रहूं मैं इनके घर! पर फिर दोस्ती हो जानेपर ये सब विचार हवा हो जाते और बीस तारीख एक हौआ बन जाती।

समय पंख लगाए उड़ा जा रहा था और मालती अनुभव करे उससे पहले बीसवीं तारीख सिर पर आ धमकी। आज शाम को मंजु अपने घर जाएगी। सवेरे से ही मालती और माधवी के चेहरे लटके हुए हैं।

मंजु तो किसी को अपना मुंह नहीं दिखाती। उस सामान की कोठरी में अंदर से चटकनी लगाकर पड़ी हुई है। थोड़ी थोड़ी देर में मालती दरवाजे तक जाती और सिसकते हुए कहती---मंजु बहन माफ करना, अब से ऐसा न करूंगी। फिर कभी झगड़ा न करूंगी तुम्हारे साथ। मैं छोटी हूं न, मुझे माफ कर दो। अंदर से कभी कभी एक सिसकने की सी आवाज सुनाई दे जाती और सब चुप। मालती फिर जाकर मंजू के रास्ते के लिए बेर, करौंदे का अचार, चने, टाफियां तैयार करती, कभी गुड़िया की खाट दे देने की सोचती तो कभी

गुड़िया के बरतन। कभी सोचती उस चक्कू के कारण मंजुलिका मुझसे नाराज हो गयी है नहीं तो इतनी जल्दी क्यों जाती। नहीं नहीं, मैं अब से कभी चाकू को हाथ भी न लगाऊंगी। सोचते-सोचते वह फिर से सिसक पड़ी। मंजु ने जो बहन के रोने की आवाज सुनी तो रह न सकी। दरवाजा खोल कर दौड़ी आयी और मालती से लिपट गयी। निश्छल प्रेम के आंसुओं की झड़ी लग गयी। दोनों की आंखों का काजल बह बहकर गालों पर गंगा-यमुनाके नक्शे बना रहा था। आंखें सूजकर करंज के जैसी हो गयी थीं। बेचारी नाक रूमाल की रगड़ खा खाकर गुलगुला बनी हुई थी।

मैं छिपकर यह सारा दृश्य देख रहा था। दोनों एक-दूसरे से लिपटी हुई रोती जाती थीं और इधर-उधर देखती जाती थीं कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा। मालती ने कहा—मंजु मेरी, तू मुझसे नाराज है, देख, नाराज न हो। मैं आगे से कभी चाकू को हाथ न लगाऊंगी, जैसे तू कहेगी वैसे ही रहूंगी, और कुछ दिन रह जा।

धत् पगली, तू सोचती है मैं चाकू के कारण तुझ से नाराज हूं। वह तो मेरी ही भूल थी। मैंने अपनी अच्छी सी बहन को व्यर्थ में डांट दिया। आगे से कभी न डाटूंगी मालती, मुझे माफ कर दे, इन बातों को भूल जा। मुझे जाना तो पड़ेगा ही, नहीं तो तेरे जीजाजी नाराज हो जाएंगे। मैं जाते ही तेरे लिए एक अच्छी-सी मोटर भेजूंगी। और . . .
"नहीं चाहिये तेरी मोटर और नहीं चाहिये तेरा और . . . ., जब तू ही भागी जाती है तो तेरी चीजें लेकर क्या करूंगी। जा, आज से मैं तेरी कोई नहीं, जा जीजाजी को ही लिये बैठी रहना। खबरदार जो मालती का नाम लिया तो . . . .

मंजुलिका उसे अपने अंक में भरने जा रही थी। इस सारे दृश्य को देखकर मैं गद्गद् हो रहा था। मालती का क्रोध देखकर मुझे हंसी आ गयी। मैं अपने आपको रोक न सका। मेरी हंसी से दोनों का ध्यान टूटा। दोनों चौकन्नी हो गयीं और स्वस्थ होने का दिखावा करने लगीं। मैं दूसरी ओर चला गया।

लेकिन हम लोग हैं पूरे भारतीय। हमारी प्राचीन प्रथा है कि कोई भी नाटक दुःखान्त नहीं होना चाहिये। प्राचीन भारत में ट्रेजेडी के जैसी कोई चीज ही न होती थी। चाहे कितना भी दुःखमय नाटक क्यों न हो अंत हमेशा सुखमय हुआ करता था। हमारे साथ भी यही हुआ। हम लोग मंजुलिका को रेल में बिठाकर लौट रहे थे। सबके चेहरे लंबे हो गये थे मानों हर चेहरे पर बारह बज रहे हों। हमने एक तांगा कर लिया। मालती और माधवी पीछे बैठी थीं और मैं सामने था। दोनों लड़कियां अपना रोना छिपाने-का असफल प्रयास कर रही थीं और एक-दूसरे को अपनी शक्ल न दिखाना चाहती थीं। मैंने देखा दोनों अपनी अपनी बांहें तांगे से बाहर निकाले उन पर सिर रखे ३६ का अंक बनी बैठी थीं। उधर से एक किस्मत का मारा दहीवाला अपनी हंडिया में दही लिये बड़े लय के साथ 'दही ले लो दही' करता हुआ गुजर रहा था। माधवी का हाथ दही की हंडिया से टकराया और शेखचिल्ली की कहानी की तरह दही जमीन पर आ रहा। दहीवाले का सिर से पैर तक दधिस्नान हो गया। घड़ा फूटा तो मालती और माधवी के हाथ पैर पर तो दही गिरा सो गिरा ही, मुंह पर भी दहीं के छींटे ही छींटे हो गए। सारा रास्ता वृन्दावन के दधिकांदे की याद दिला रहा था पर इस सबका मजा लेनेवाला मेरे सिवा कोई न था। माधवी और मालती

घबराईं। सारी चिंता और सारा रोना-धोना भूल गयीं—और यह कैसी पड़ी अय मेरे अल्लाह नयी! लेकिन मेरी हंसी का फव्वारा छूट गया। हर एक की शक्ल पर एक भाव आता था

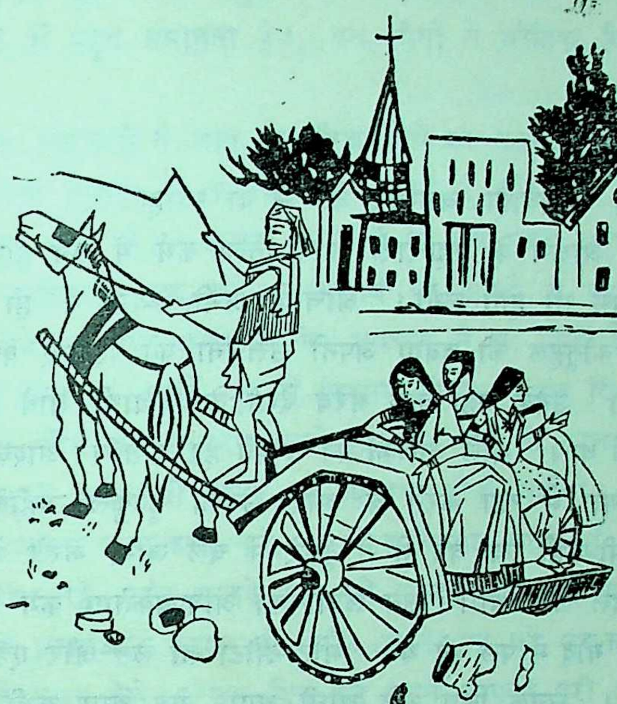

एक जाता था। तांगेवाला परेशान कि तागां गंदा हो गया, लड़कियां परेशान कि कपड़े गंदे हो गये, दहीवाला परेशान कि मुफ्त में इतना नुकसान हो गया, सारे सपने टूट गये। अब घर जाकर क्या मुंह दिखायेगा। रास्ते पर तमाशा देखनेवालों की भीड़ हो गयी। सारी परिस्थिति, सारा वातावरण हास्योत्पादक था। मैंने जेब से पांच का नोट निकालकर दहीवाले को देते हुए कहा—

भई, बुरा न मानो होली है।

* * *

लोग सत्य की अपेक्षा असत्य पर जल्दी विश्वास कर लेते हैं। एक बार इंग्लैंड के दो युवकों में बहस हो गयी। एक ने कहा, वह बिलकुल सत्य बोलेगा पर लोग उसपर विश्वास न करेंगे क्योंकि वह सत्य उनकी धारणा के अनुकूल न होगा। दूसरे ने कहा, चलो देखें। पहले ने एक थैली में सोने के पाउंड भर लिये और भरी सड़क पर चिल्लाने लगा कि एक एक शिलिंग में पाउंड ले लो। राहगीर उसकी तरफ देखते और हंस कर चले जाते। सारी रात चिल्लाने के बाद वह केवल दो पाउंड बेच सका।

छुट्टियाँ

—श्री रवीन्द्र

ओं तेजोऽसि तेजो मे दा स्वाहा, बलमसि बलं मे दा स्वाहा....

आचार्य मार्कण्डेय के आश्रम के ब्रह्मचारी अपने नित्य कर्म में लगे हुए थे। संध्या-वंदन के बाद उनमें कुछ घुस-पुस सी होने लगी। आचार्य अभी ध्यान में ही थे और ब्रह्मचारी अपने नए उत्साह और कौतूहल को दबाए अपनी उत्तेजना को छिपाए कानाफूसी करते हुए इधर उधर टहल रहे थे। उनके यहां कुछ अरब देशों के विद्यार्थी आये हुए थे। बाहर के लोगों के साथ पहला संपर्क था। भोले बालकों को उनकी हर बात पर आश्चर्य हो रहा था।

आचार्य मार्कण्डेय जंगल में रहा करते थे और उनका गुरुकुल उन्हींके चारों ओर रहा करता था। आचार्य कभी-कभी एक वन में से दूसरे में चले जाया करते थे और उनका कुल भी उनके साथ स्थान बदल लेता था। उन लोगों की आवश्यकताएं कम थीं। सभी प्रकृति के बालक थे और उसीकी गोद में पल रहे थे। मोटा-झोटा खा लेते और एक गाती धोती बांधे अपने काम में लगे रहते। उनके लिए भले आंधी आए, मेह आए सभी एक समान था। दजला और फिरातके किनारे के रहनेवाले नये विद्यार्थियों और अध्यापकोंको देखकर उनके अंदर कुतूहल जागा। उनका जीवन, उनकी चाल-ढाल, उनके रंग-ढंग इनसे बिलकुल भिन्न थे। इन्हें शिक्षा दी गयी थी प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखने की पर आगन्तुक तो शिकार करते और उसका मांस खाते थे। इन्हें शिक्षा मिली थी दिन रात नित्य कर्म, आचार्य सेवा और भगवद् भजन में लगे रहने की। वर्षा ऋतु में जब कुछ काम न कर पाते तो अनध्याय हो जाता। इसके विपरीत नवागन्तुक हर सप्ताह छुट्टी मनाया करते थे और उस दिन खूब हो-हल्ला करते मानों सारा आसमान ही सिर पर उठा लेंगे।

नवागन्तुकों के साथ परिचय बढ़ा। ब्रह्मचारी पहले तो उनको कुछ आश्चर्य के साथ देखते रहे मानों वे कोई अचम्भे की चीज हों। उसके बाद उनकी कई चीजों की सराहना शुरू हुई। मन में विकार जागा। सोचा हमारा कठोर जीवन भी कभी कभी बदल जाया करे तो, हमें भी कभी अनध्याय और नित्य कर्म से अवकाश मिल जाए तो.... मजा आ जाए।

पर आचार्य से यह बात कौन कहे? उनके सुकोमल हृदय को आघात न लगे कहीं। खैर, कुछ दिन यूं ही बीत गये। आपस में बातचीत तो रोज होती पर वह कानाफूसी की हद से बाहर न निकल पाती। पर आखिर एक दिन हिम्मत करके दो चार ब्रह्मचारी आचार्य के पास जा पहुंचे। आचार्य ने बड़े प्रेम से उन्हें बिठाया और उनके असमय आने का कारण पूछा। ब्रह्मचारियों के मन में खटक रहा था कि शायद उनकी बात आचार्य को पसन्द न आये। जी कड़ा करके एक ने कहा, आचार्यपाद, दजला और फिरात के किनारे से जो विद्यार्थी आये हैं उनके साथ हमारा काफी मेल-जोल हो गया है। वे भी एक बहुत सभ्य और सुसंस्कृत देश के नागरिक मालूम होते हैं।

आचार्य बीच में ही बोले——हां, ये लोग मुसलमान हैं। उस तरफ के देशों में आजकल आर्य धर्म नहीं चलता। उसकी जगह यहूदी धर्म ने ली थी, फिर ईसा आये और लोग ईसाई बन गये और फिर मुहम्मद के अनुयायियों ने इन सब देशों को मुसलमान बना डाला। पर इन तीनों धर्मों में बहुत समानता है। इन लोगों ने भौतिक विद्याओं में काफी प्रगति कर ली है।

गुरुवर, एक ब्रह्मचारी ने कहा, उन विद्यार्थियों का कहना है कि हमारी कार्य-प्रणाली ठीक नहीं है। वे लोग सप्ताह में छः दिन काम करते हैं और एक दिन अनध्याय रखते हैं जिस दिन वे खूब मौज करते हैं। उनका कहना है कि इस तरह ज्यादा अच्छा काम होता है।

ब्रह्मचारी कहते-कहते रुक गये। आचार्य की आंखों से स्नेह बरस रहा था। उन्होंने कहा——हां, ये सेमेटिक धर्म मानते हैं कि भगवान् ने छः दिनों या छः युगों में सृष्टि बनायी थी और सातवें दिन या सातवें युग में विश्राम किया। इस दिन को भगवान् का दिन कह सकते हैं। इस चीज का अनुसरण करते हुए इन धर्मों के आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मनुष्यों के लिए भी कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये। उन्होंने निश्चय किया कि मनुष्य छः दिन अपना काम-काज करे, अपने व्यक्तिगत कामों में लगा रहे और अहं के द्वारा प्रेरित काम करता रहे, परंतु सातवें दिन को भगवान् के लिए अलग करके रख दिया जाय। उस दिन अपनी इच्छाओं, कामनाओं और अपने अहं को भूलकर मनुष्य अपने अंदर डुबकी लगाए या अपने ऊपर देखे। उस दिन वह अपने आपको पूरी तरह से अपने स्रोत के साथ, अपने बनानेवालों के साथ एक कर दे, उसकी चेतना प्राप्त करे और उससे नयी शक्ति का अर्जन करे। यह था इन छुट्टियों के आरंभ का रहस्य। पर इन लोगों ने अपने धर्म की सच्ची सीख को भुला दिया है और इन्होंने यही समझ रखा है कि जीवन का उद्देश्य है खाना-पीना और मौज करना। काम भी करते हैं तो इसी उद्देश्य से और छुट्टी मनाते हैं तो इसी उद्देश्य से। मुझे दीख रहा है कि मानवजाति इसी गर्त में गिरती जा रही है। वह मौज को, स्वच्छन्दता को ही सब कुछ मान बैठी है। परंतु आर्य लोग जीते हैं तो भगवान् के लिए और मरते हैं तो भी उसीके लिए। हमारा एक-एक काम, चाहे वह पढ़ना हो या लकड़ियां बीनना, वेद-पाठ हो या पानी भरना सभी भगवान् की सेवा के लिए किया जाता है। क्या हम जगज्जननी की सेवा को भार मान सकते हैं? स्वयं भगवान् ने कहा है कि जीवन के रहते काम से छुट्टी पाना असंभव है। काम से छुट्टी पाने का एक ही उपाय है और वह है निर्वाण पर उसे प्राप्त करने के लिए भी तो सब से बढ़कर मेहनत करनी पड़ती है। जरा सोचो, भगवान् अगर एक सेकेंड के लिए छुट्टी ले लें तो!——हम भी तो उन्हीं का काम कर रहे हैं।

सब ब्रह्मचारी चुप थे। एक शांति का वातावरण छा गया था। अब छुट्टियां कौन मांगता?

* * *

गीत

मां ! मत हो नाराज कि मैंने खुद ही मैली की न चुनरिया !
मैं तो हूं पिंजरे की मैना,
क्या जानूं गलियां-गलियारे,
तू ही बोली सुबह कि जाऊं
देखूं मेला नदी-किनारे,
मैं तो अपनी बिलकुल सीधी-
सादी धोती में ही खुश थी,
तूने ही रंग दी ऐसी ओढ़नी--
कि सबकी आंख निहारे,
फिर किस तरह दोष है मेरा, फिर क्यों मुझपर गुस्सा तेरा ?
पिंजरे का जब द्वार खुला तो भीतर कैसे बैठे चिड़िया !
मां ! मत हो नाराज !!

मेला भी मेला कैसा ? पग पग–
पर जहां बिछा आकर्षण,
लाख दुकानें, लाख तमाशे
लाख नट नटी, लाख प्रदर्शन,
और फूल भी नकली ऐसे
असली देख जिन्हें शरमायें,
फिर तू ही बतला अपना मन
कैसे बस में रखे लड़कपन,
फिर भी मैंने बहुत कसा मन, चंचल दृग पर किया नियन्त्रण,
रंगा खिलौना देख एक पर खुल ही मन की गयी किवरिया।
मां ! मत हो नाराज !!

बहक गये जब नयन, दीन—
औ' दुनियां की ऐसी सुध बिसरी,
चुनरी की क्या कहूं, याद तक
रही न शिर पर रक्खी गठरी,
हृदय डूबाता गया, और मैं
खड़ी डूबती रही धूल में

जल में ज्यों धुल आये चन्दन,
माखन में ज्यों बूड़े मिसरी,
मिट्टी से संबंध हुआ जब, मेलों से अनुराग बढ़ा जब,
तब कैसे संभव बिलकुल बेदाग बनी रह जाय चदरिया।
मां! मत हो नाराज!!

मथुरा से काशी तक भटकी,
मलमल से वल्कल तक धाई,
पर बिलकुल बेदाग कहीं भी
चादर कोई नजर न आई,
परखे सन्त-महन्त हजारों
जांचे कलाकार-कवि लाखों,
लेकिन सबकी गोराई के—
नीचे छिपी मिली कजराई,
ज्ञानी जहां ज्ञान सब भूले, ध्यानी जहां ध्यान सब भूले,
उस तट से बिन भींगे, घट भर ले कैसे नादान उमरियां।
मां! मत हो नाराज!!

भूल हुई सचमुच मां! लेकिन
मुझसे ज्यादा दोष उमर का,
जिसने बिना बताये ही—
दरवाजा खोल दिया भीतर का,
तेरी भी यह चूक कि मुझको
भेज दिया उस गांव अकेले,
भरी सभा के बीच जहां
जादू चलता है झुकी नजर का,
जो कुछ हुआ उसे बिसरा दे, संटी फेंक बाल सहला दे
तेरी ममता भी न मिली तो जाने फिर क्या करे गुजरियां।
मां! मत हो नाराज!!

—नीरज

बौनों के देश में

—श्री विद्याव्रत

श्री एवं श्रीमती महेश्वरी के निमंत्रण पर मैं और उर्मिला मार्च के प्रथम सप्ताह में पांडिचेरी के श्रीअरविंद आश्रम से कलकत्ता पहुंचे। वहां से प्रत्येक शुक्रवार को हवाई जहाज पोर्ट-ब्लेअर के लिए उड़ता है। डकोटा छोटा होता है अतः पैट्रोल लेने के लिए रंगून में रुकता है। अतः वहां के निमित्त एक मामूली-सा पासपोर्ट कलकत्ता के पी. आर. ओ. से बनवा लेना पड़ता है। पोर्ट ब्लेअर अंडमान-द्वीप समूह की राजधानी है। वहां उतरने के लिए चेचक व हैजे के टीके का प्रमाणपत्र भी ले लेना हम नहीं भूले। इसके बिना वहां उतरने नहीं दिया जाता। यह इसलिए कि उन द्वीपों में ये बीमारियां न फैलें।

हम जिस दिन उड़े आकाश साफ था। रंगून ग्यारह बजे पहुंचे तो ऊपर से पैगोडे, मकान तथा सड़कें सिनेमा दृश्यों की तरह नीचे सरकते बड़े अच्छे लगे। इससे पूर्व हुगली नदी का फैला हुआ विस्तृत डेल्टा देखा। कभी-कभी इस प्रकार पृथिवी का भूगोल देखना कितना सुन्दर लगता है! रंगून से आगे बढ़े तो बस नीला-नीला समुद्र अपनी शोभा से मोहित करने लगा। तेजी से उमड़ते-घुमड़ते बादल बड़े सुहावने लगे। थोड़ी देर में ही उत्तरी अंडमान की जमीन दिखाई देने लगी। समुद्र के किनारे-किनारे सूखी हुई रेत की रेखा एक भूरी माला के समान द्वीपों का गलहार बनी पड़ी थी। बीच-बीच में उठती हुई लहरों की सफेदी उस कंठमाल में मोतियों की चमक सी पैदा कर जाती। इन्हीं दृश्यों को देखते-देखते पता नहीं चला कि कब सवा दो बज गये और नीचे पोर्ट ब्लेअर पर जहाज उतर गया।

गवर्नमेंट-हाऊस पहुंचे तो बड़ा अच्छा लगा। यह स्थान छोटी-सी पहाड़ी पर सुन्दर बना हुआ है। वहीं से सामने रास-द्वीप दिखायी पड़ रहा था, जिस पर पहले अंग्रेज शासक रहा करते थे। अब इस द्वीप पर बीच में एक दरार पड़ रही है अतः वहां से निवास हटा लिया गया है। उसके पास के समुद्री जल में बड़ी-बड़ी रंगीन मछलियां देखीं और मछियारों को तली में से तरह-तरह के मूंगे (कोरल्स) निकालते हुए देखा। यहां पर कई प्रकार के मूंगे होते हैं, जिनसे बैठक की शोभा में चार चांद लग जाते हैं।

पहले अंडमान "कालापानी के द्वीप" के नाम से जाना जाता था। पोर्ट ब्लेअर में समुद्र-तट पर कोठरियोंवाली वह प्रसिद्ध जेल है जिसमें भारत के राजनैतिक अनेक वीरों को सीखचों में बंद किया गया था। छोटी-छोटी अंधकारपूर्ण कोठरियां जिनमें हवा का प्रवेश भी कठिन है, चारों ओर गहरा नीला काला-सा जल, भागने का कोई अवसर नहीं—ये सारा वातावरण उसे कालापानी का नाम देने के लिये पर्याप्त है। वहां बारीन घोष, वीर सावरकर, भाई परामनंद की कोठरियां देखकर भारत के उन अनेक वीरों की स्मृति ताजा हो आयी जिन्होंने आजादी के लिए घोर कष्ट झेले और मौत को कुछ नहीं समझा। वहां प्रवेश करने पर एक बोर्ड पर कुछ वीरों की एक नामावली इस प्रकार दी गयी है:

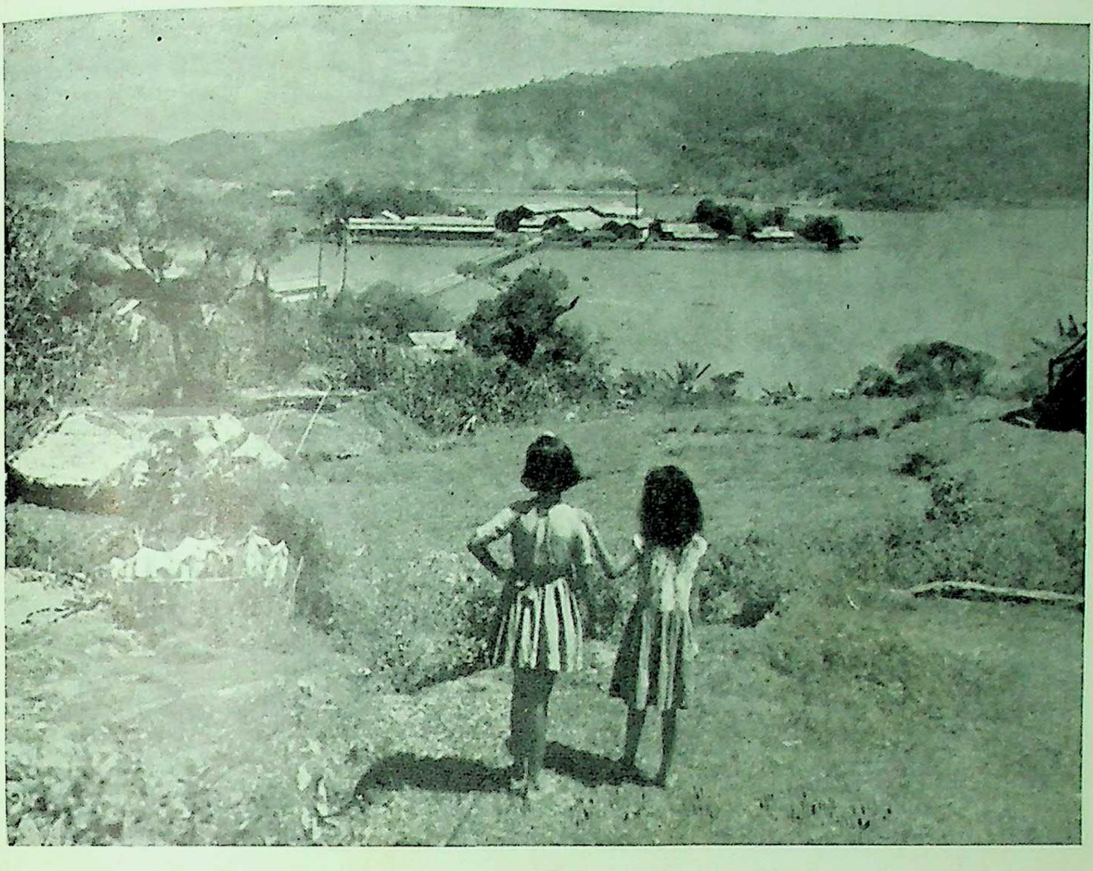

[सामने जो द्वीप दिखाई दे रहा है वह पोर्ट ब्लेअर का चैथम द्वीप है। यहाँ पर लकड़ी चीरनेका प्रसिद्ध कारखाना है और इसीपर डैक है जहाँ जहाजसे सवारियां उतरती हैं।]

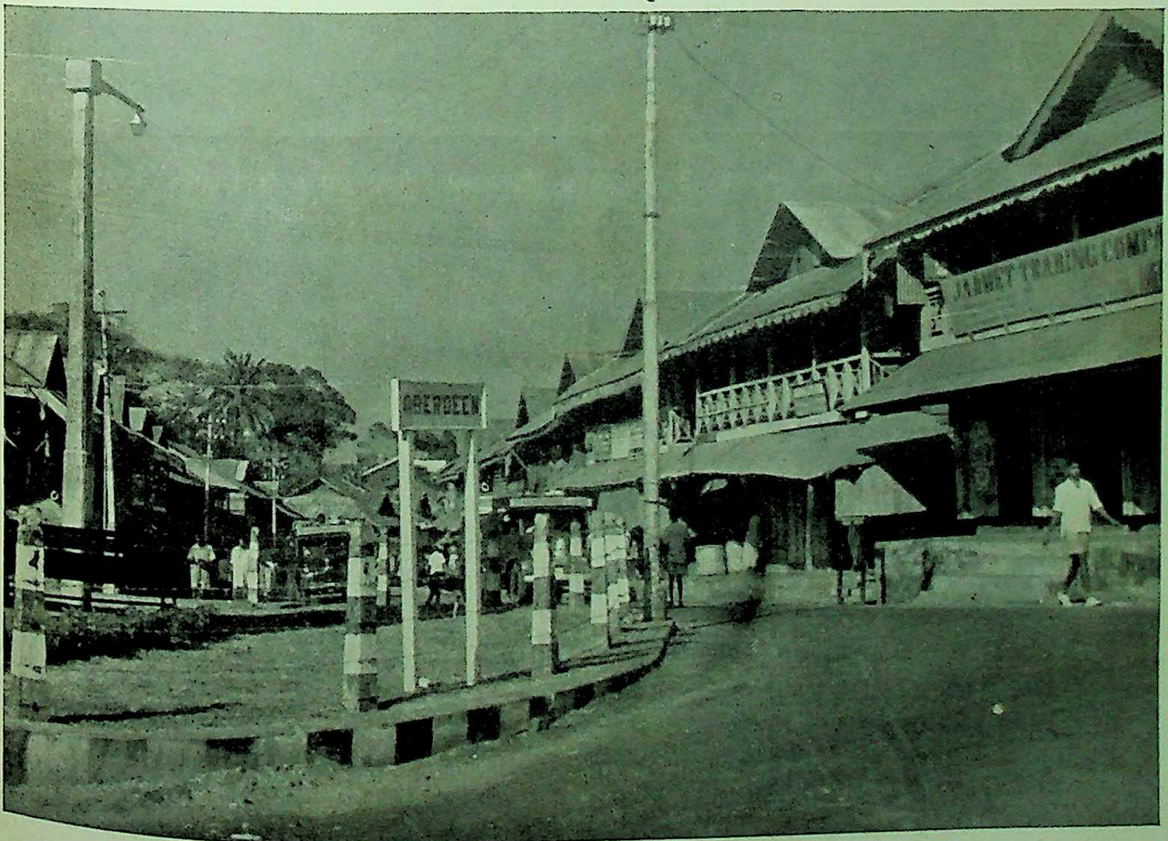

[पोर्ट ब्लेअर है अंडमानकी राजधानी और यह है उसका ओबरडीन मुख्य बाजार।]

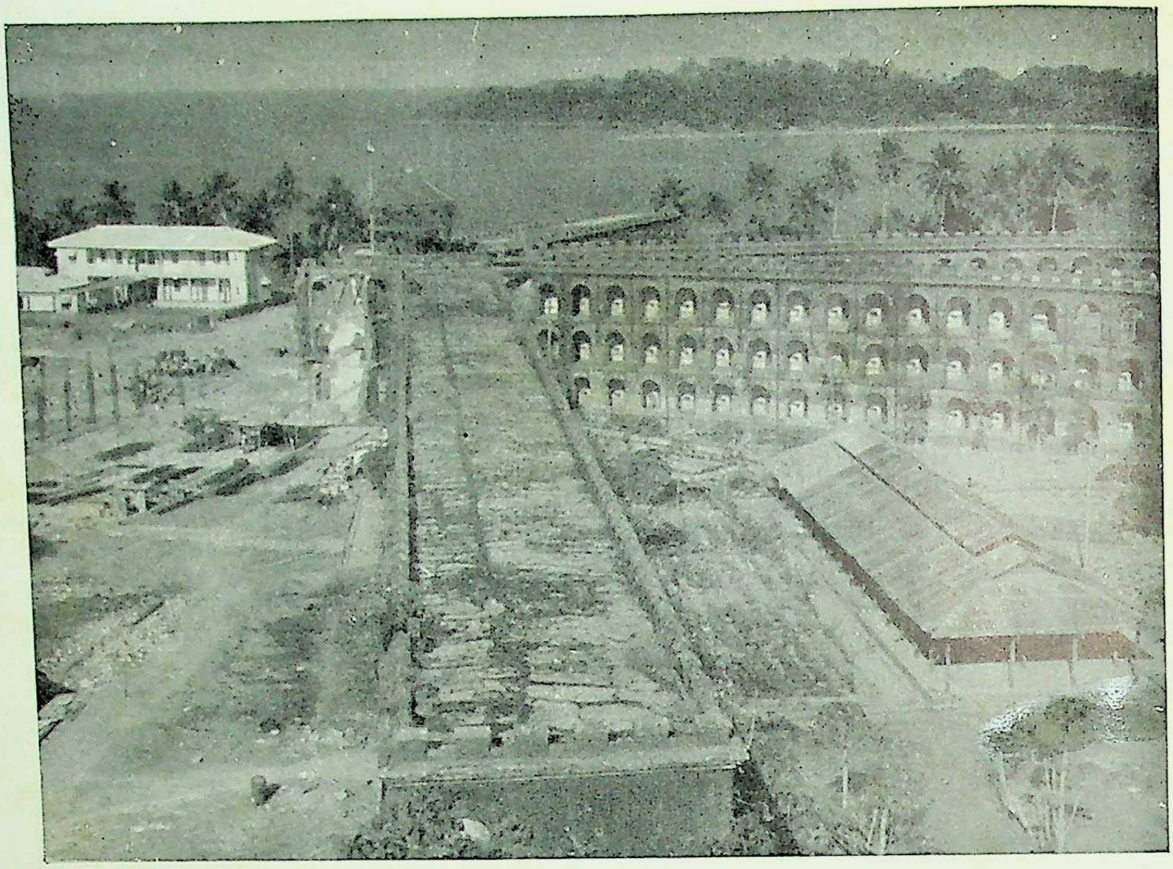

[तंग कोठरियोंवाली ऐतिहासिक प्रसिद्ध जेल जिसे कालापानी के नामसे जाना जाता रहा है।]

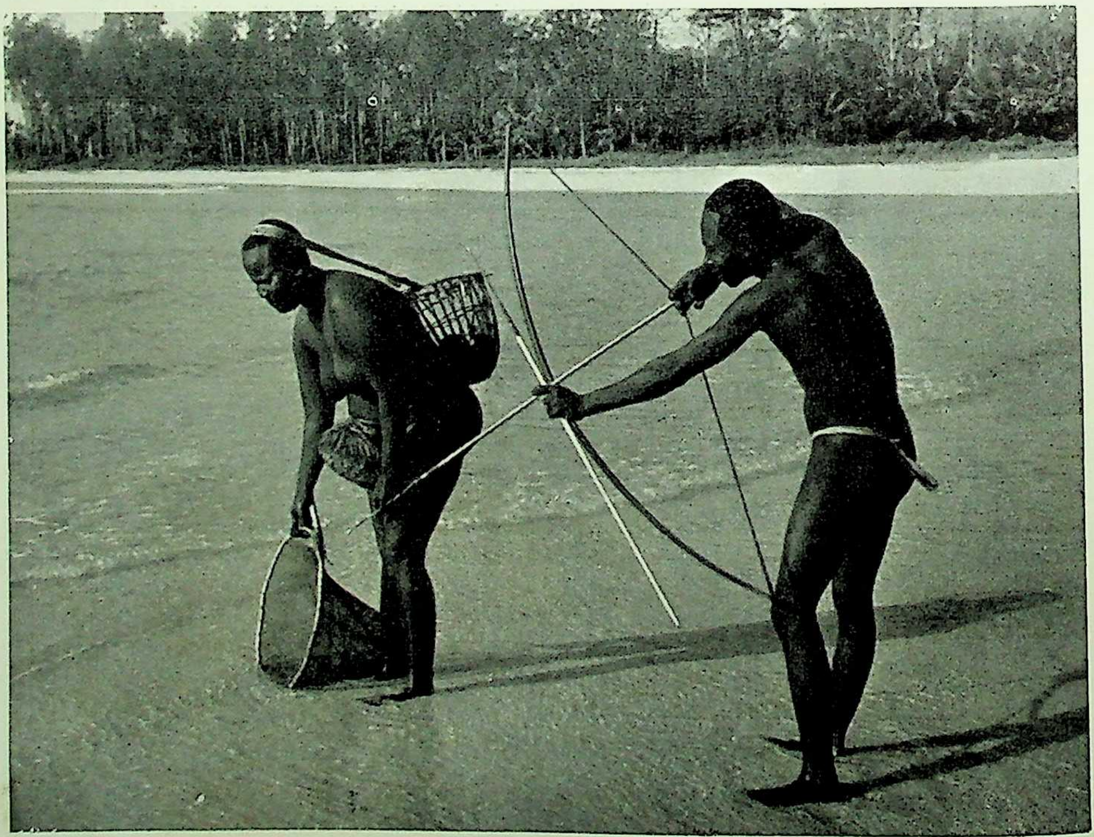

[लिटिल अंडमानके बौने—ओंगी धनुषवाण से मछली का निशाना लगा रहा है। मछली बचकर नहीं जा सकती।]

राजनीतिक बन्दियों के नाम जो इस कारागार में बंद थे:

नाम	वर्ष	अहाता
रामचरण लाल शर्मा	१९०९ ए	—
बाळ. गंगाधर तिलक	१९१५ टी	—
भाई परमानन्द	१९२१ टी	३
वीर सावरकर	१९२१ टी	७
गुरमुख सिंह	१९३२ ए	३
लोकनाथ बाल	१९३२ ए	३
देवदत्त	१९३२ ए	५
अनन्ता लाल सिंह	१९३२ ए	३
गनेश चन्द्र घोष	१९३२ ए	३

पहले इस जेल के सात भाग थे जिन्हें अब तोड़कर एक बड़ा अस्पताल बनाया जा रहा है। अंत में एक या दो भागों को एवं बीच में पहरेवाली मीनार को दर्शकों के निमित्त नमूने के लिये खड़ा रहने दिया गया है।

ये सभी द्वीप बहुत ही चित्ताकर्षक एवं सुन्दर हैं। ऐसा मन करता था कि सभी के फोटो लेता चलूं। चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियां, बीच में गहरा नीला समुद्र या इसके विपरीत चारों ओर गहरा नीला जल और बीच-बीच में हरी पहाड़ियां। ऐसे सुन्दर जलद्वीप की उन खाड़ियों (क्लीक्स्) में से निकलने को मन नहीं करता। भारत सरकार ने यहां की जो रंगीन फिल्म बनायी है उसका नाम ठीक ही रखा है "हैप्पी आइलैंड्स" अर्थात् खुशी के द्वीप। इन दृश्यों की तुलना केरल एवं अनेक स्थानों पर काश्मीर से भी की जा सकती है।

इन द्वीपों में भारत के प्रायः सभी प्रांतों के लोग बसे हुए हैं। उत्तरी अंडमान के 'माया बन्दर' से सुदूर दक्षिण "नानकौड़ी द्वीप" तक अनेक प्रकार की जातियां भी देखीं और उनकी विचित्र भाषाएं सुनीं। उनके रंग-ढंग देखे, फोटो लिये और उस विविधता में भी एकता की स्पष्ट झलक दिखायी दी। सभी अपने को महान् भारत का एक अभिन्न अंग समझते हैं और उनका व्यवहार सहृदयतापूर्ण होता है। भारत से पंजाबी, बंगाली, बिहारी, आंध्र, तमिल एवं केरलवासी वहां विशेष रूप से जा बसे हैं।

वहां उन दिनों होली का त्यौहार पड़ा। १९ मार्च को देखा कि पोर्ट ब्लेअर की आम जनता का हर्षोल्लास असीम था। सभी वर्गों के लोग गवर्नमेण्ट हाऊस में निःसंकोच चीफ कमिश्नर श्री महेश्वरी जी के साथ होली खेलने आये। पंजाबी भांगड़ा नाचे, बंगालियों ने रवीन्द्र संगीत गुंजाया, तमिलों ने अपने स्वांग रचे। सबने मिलकर सबका साथ दिया। वहां सभी एक दूसरे के पर्व पर सम्मिलित आयोजन करते हैं और खुशियां मनाते हैं। बोलचाल की आम भाषा हिंदी है। यही नहीं, देखकर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी हुई कि वहां के स्थानों के नाम प्रसिद्ध भारतीय स्थानों के अनुरूप रखे गये हैं। वहां मथुरा, वृन्दावन, तिरूर, गोमुख, वसुधारा इत्यादि नाम पाये जाते हैं। इन स्थानों पर जाने से लगता है मानों हम भारत में ही हैं। सांस्कृतिक गतिविधियों से, खान-पान एवं वेश-भूषादि सभी से भारत से आठ सौ मील दूर बसा हुआ यह द्वीप इस महाद्वीप का एक रूप लगा। यह बात तो हुई पोर्ट ब्लेअर की।

लेकिन कुछ एक आदिम जातियां ऐसी भी हैं जिन्हें आधुनिक सभ्यता छू भी नहीं गयी है। उनमें एक जाति है, इंटरव्यू द्वीप के आसपास के उत्तरी अंडमान के द्वीपों में, जिनको 'जाखाड़' कहा जाता है। ये बड़े खूंख्वार और बलिष्ठ होते हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये प्रथम साक्षात्कार में ही लोगों को मौत के घाट उतार देते हैं। इसलिये कोई इनके पास तक जाने का साहस नहीं करता। ये सदा जहरीले धनुष-बाण लिये तैयार रहते हैं। इनके इतिहास में संभवतः श्री महेश्वरी पहले अधिकारी हैं जो मशीनगन बन्दूकों से लैस पुलिस लेकर उनकी झोंपड़ी तक जा पहुंचे थे पर वहां किसी जाखाड़ को न देख सके——हो सकता है कि उन्हें इनके इस प्रकार आगमन की खबर लग गयी थी जिससे वे सब कहीं दूर जा छिपे थे। ये झोंपड़ी में से उनकी कुछ वस्तुएं उठा लाये और बदले में अनेक तोहफे छोड़ आये।

जब हम वहां इंटरव्यू द्वीप के लिए पुलिस मोटर से जा रहे थे तो श्री महेश्वरी जी ने दूरबीन लगा ली। पता चला कि वे जाखाड़ मनुष्य को देखने का प्रयत्न कर रहे थे। ये लोग बिलकुल नग्न रहते एवं हिरन की तरह खूब तेज दौड़ते हैं। कभी-कभी सरकार की ओर से इनके लिये तोहफे टांग दिये जाते हैं। पता चला कि पहली बार जब तोहफे लटकाये गये तो बहुत दिनों तक तो इन लोगों ने उन्हें स्पर्श नहीं किया——फिर हठात् एक दिन तोहफे तो ले गये पर उनके स्थान पर तीर-बिंधी हुई मछली पाई गई जिसका अर्थ था कि यहां आने का प्रयत्न करोगे तो इसी प्रकार बींध दिये जाओगे। इस प्रकार वहां के बीहड़ जंगलों में जाखाड़ निर्द्वन्द्व स्वतंत्र विचरते हैं।

अब वहां की एक दूसरी आदिम 'ओंगी' जाति की बात कहता हूं। यही ओंग 'अंडमान के बौने' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये भी नग्नप्राय रहते हैं। हां, इनमें अब लंगोटी के नाम एक चीथड़ा-सा शरीर पर आ जमा है। जब हम 'लिटिल अंडमान' पहुंचे तो समुद्रतट पर एक जोड़ा देखा——काला-स्याह; कहना कठिन है कि उल्टा तवा अधिक काला है या उनका शरीर। पुरुष के हाथ में धनुष बाण था। अचानक देखा उसकी स्त्री जो नग्नप्राय थी, केवल घास का एक गुच्छ सा कटि से नीचे बांधे थी, छपाक से पानी में घुसी और तीर में बिंधी दो मछलियां निकाल लायी, तब उसपर एक सरल हंसी खिल आयी, लगा कि जैसे अमावस की बदली में एक प्रकाश-रेखा कौंध गयी है। अंदर द्वीप में पहुंचे तो अनेकानेक जोड़े मिले, सभी निर्वस्त्र पहले की तरह। हमें उन्होंने अपना नाच दिखाया। नाच क्या था सभी स्त्री-पुरुष गलबहियां किये गोल घेरे में विचित्र-सा हुंकारा भरते हुए पैरों से ताल देते हुए घूम रहे थे। कोई कोई बीच में धूम्रपान भी करता जाता था। उनकी सिगार बड़ी विचित्र थी। जब ये किसी मेंढक को चूस लेते हैं तो उसकी हड्डी में तम्बाकू भरकर पीते हैं। एक झोंपड़ी में चार-पांच परिवार रह लेते हैं। हम उनकी झोंपड़ी में घुसे तो देखा कि अंदर छः मचान बने हैं और बीच में आग जल रही है। मचान कुल डेढ़-डेढ़ फुट ऊंचे थे जिन्हें हम उनका शयन-स्थान कह सकते हैं। ये लोग ऊंचाई में चार या साढ़े चार फीट के होते हैं। लेकिन ये बौने स्वभाव के अच्छे लगे।

अंडमान् के दक्षिण में एक और भी द्वीपसमूह है निकोबार। उसमें बसी निकोबारी जाति के विषय में इसी प्रकार की मनोरंजक बातें आप अगले अंक में देखिये। तब तक थोड़ी प्रतीक्षा ही सही।

(क्रमशः)

मित्र की खोज

—श्री कुलभूषण अरोड़ा

बात बहुत पुरानी है। एक छोटा कुत्ता जंगल में अकेला रहता था। उसने लकड़ी के गट्ठों के बीच अपना घर बना रखा था। भूख लगने पर उसे जो भी मिलता खाकर गुजारा करता था। कभी-कभी जब कुछ न मिलता तो उसे भूखा ही सो जाना पड़ता। पर भूख उसे इतनी नहीं अखरती थी जितना अकेलापन।

एक दिन उसने निश्चय किया कि वह अब अकेला नहीं रहेगा। निश्चय करते ही वह जंगल में साथी की खोज के लिए निकल पड़ा। कुछ ही दूर चला था कि एक पेड़ पर उसे बहुत सी चिड़ियां बैठी दिखायी दीं। एक बार तो वह उनके साथ की मस्ती को सोचकर झूम उठा और उसने सोचा, अगर ये चिड़ियां मान जायं दो अवश्य ही वह उन्हें अपना मित्र बना लेगा। इसी ख्याल से उसने चिड़ियों से पूछा—क्या तुम मुझे मित्र बनाना पसंद करोगी ?

"क्यों नहीं।"

"तो फिर आओ, हम लोग इकट्ठे रहें।"

"चलो, आओ, पेड़ पर, कल हम इकट्ठे उड़ते हुए दूर चलेंगे।"

यह सुनकर उसने सोचा, न तो मैं पेड़ पर चढ़ सकता हूं और न उड़ ही सकता हूं। मुझे किसी और साथी की तलाश करनी चाहिये। सोचता हुआ वह एक तालाब पर पहुंचा। एक मछली ऊपर-ऊपर तैर रही थी। उससे भी उसने वही प्रश्न किया तो उसने जवाब दिया, "अगर तुम हमारी तरह सदा पानी में रह सकते हो तो हमें तुम्हारी मित्रता मंजूर है क्योंकि पानी के बिना तो हमारा जीवन एक पल नहीं रह सकता।"

यहां से भी उसे निराशा हुई क्योंकि वह पानी में नहीं रह सकता था। वह आगे बढ़ा ही था कि उसे एक खरगोश मिला। उसने फिर से मित्रता का प्रस्ताव रखा। दोनों को एक-दूसरे की बातें जंच गयीं और उन्होंने मित्रता कर ली।

थोड़ी देर बाद ही रात होनेवाली थी। खरगोश अपने मित्र को घर ले गया। जो कुछ हो सका वह खिलाया और रात को दोनों इकट्ठे सो गये।

आधी रात को कुत्ते को बड़ी जोर से भूख लगी और वह ओ..ओ... करके गुर्राने लगा। जब खरगोश ने सुना तो वह डरकर उठ बैठा और पूछा, "क्या बात है।"

"मुझे भूख लगी है।"

"इस समय खाने को कुछ नहीं है, चुपचाप सो जाओ। जानते हो, भेड़िया कहीं हमारी आवाज सुन लेगा तो समझ लो, दोनों को खा डालेगा।"

कुत्ते ने मित्र से माफी मांगी और भूखा ही सो गया। सुबह उठा तो वह भेड़िये की तलाश में निकल पड़ा, क्योंकि वह ऐसे मित्र से दोस्ती नहीं रखना चाहता था जो डरपोक हो।

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह भेड़िये की गुफा में पहुंच ही गया। उसने वहां भी मित्रता की बात की तो भेड़िया राजी हो गया। रात निकट ही थी इसलिये दोनों मित्रों ने भोजन किया और सो गये।

हुआ वही जो खरगोश के घर पर हुआ। आधी रात को जोर की भूख ने गुफा में कुछ न मिलने पर ओ...ओ....कर भूंकने के लिए विवश कर दिया। पहली आवाज से ही डर के मारे भेड़िया जाग उठा और बोला, "इतना चिल्ला क्यों रहे हो, अगर रीछ ने सुन लिया तो हमारी हड्डी भी नहीं दिखायी देगी। भूख लगी है तो सामने से कुछ खाकर चुपचाप सो जाओ। ख्याल रहे, आयन्दा से कभी ऐसी गलती न करना।"

सुबह होने में देरी ही थी कि छोटा कुत्ता रीछ की खोज में निकल पड़ा। शाम तक उसने रीछ को पा ही लिया। रीछ को देखकर उसने नमस्ते की और कहा, "भालू दादा, मैं तुम्हारा मित्र बनना चाहता हूं, इतने बड़े जंगल में अकेले रहते-रहते मैं अब ऊब गया हूं।"

भालू ने मित्रता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और घर ले जाकर उसकी खूब दावत की। थका होने के कारण कुत्ता आराम से जल्दी ही सो गया। खूब खाकर सोने पर भी आधी रात में वह भूख से उठ बैठा और उसी तरह ओ...ओ..करने लगा।

यह सुनना था कि भालू के प्राण ही निकल गये और वह धीरे से बोला, "चुप रहो। खुद तो मरने की इच्छा होगी, क्या मुझे भी मरवाना चाहते हो?"

"क्यों दादा, ऐसी क्या बात है?"

"नजदीक के नगर के आदमियों ने हमारी आवाज सुन ली तो दोनों को गोली से मार डालेंगे। समझे! मगर तुम चिल्ला क्यों रहे थे?"

"भूख लग रही थी।"

"बस, इतनी सी बात के लिए सिर पर पहाड़ उठा लिया?" कहते हुए उसको खाने के लिए एक हड्डी दी और चुचचाप सोने के लिए कहकर खुद सो गया।

सुबह उठा तो उसने सोचा कि मैं इसे सबसे बहादुर समझता था मगर यह तो सबसे डरपोक है। मैं आदमी की तलाश करूंगा।

यह सोचता हुआ वह भालू का घर छोड़ भाग निकला। बहुत चलने पर शाम को आखिर वह नगर पहुंच ही गया। सब आदमी अपना अपना काम कर घर लौट रहे थे। उनमें से एक ने कुत्ते को देखकर पूछा, "तुम कहां से आ रहे हो?"

"जंगल से। वहां का अकेलापन मुझे बहुत अखरता है, इसलिए मैंने आपके साथ रहने का विचार किया है।"

"क्यों नहीं, अवश्य। मेरे साथ चलो, यह तो खाने का समय है चलकर इकट्ठे खायंगे।"

घर पहुंचने पर स्त्री ने पूछा, "यह क्या है?"

"कुत्ता है। जंगल से हमारे साथ रहने के लिये आया है।"

"ठीक है, बहुत खुशी की बात है।" स्त्री ने कहा और उसको खाना देकर वे दोनों भी खाना खाने बैठ गये।

रात में कुत्ते को रोज की तरह भूख लगी और वह उसी तरह शोर मचाने लगा। आदमी जागा और उसने प्यार से उससे पूछा, "क्या बात है?"

"भूख लगी है", कुत्ते ने सिर हिला दिया।

आदमी उसे खाना देकर यह कहता हुआ सोने चला गया, "खाना खाकर सो जाना। हमें भी सोने दो।"

तभी कुत्ते ने सोचा कि जैसे मित्र की मुझे तलाश थी वह आदमी ही है। तब से कुत्ता मनुष्य का मित्र बन गया। खाना खाकर वह रात में उसकी रखवाली करने लगा।

अद्भुत संसार

--श्री अरुणा

कल्पना शक्ति की उड़ान लेनेवाले कवि भी बीबी मेंढकी को मीनाक्षी कहते हुए सकुचाएंगे। और सौंदर्य के देखनेवाले कवि ही नहीं, सड़क चलते बच्चे भी मेंढक को देखकर छी छी करते हुए दूर हट जायेंगे। परंतु किसी प्राणीशास्त्र के विद्वान् से पूछिये वह मेंढक की आंखों की प्रशंसा के पुल बांध देगा। मेंढक की आंख एक अद्भुत चीज है। उसकी रचना कुछ इस प्रकार की है कि मेंढक केवल उन्हीं चीजों को देखता है जिन्हें देखने की आवश्यकता हो। उसकी आंख के सामने से सभी तरह की चीजें गुजरती रहती हैं पर उसके दिमाग तक केवल उन्हीं चीजों की खबर पहुंचती है जिनमें उसे रस हो; उसे अपने शत्रु की वही चाल दिखायी देती है जो उसके लिये हानिकर हो सकती हो, बाकी की ओर से उसकी आंख उदासीन रहती है।

आज के वैज्ञानिक मेंढक की आंख का अध्ययन करने में लगे हैं। वे जानना चाहते हैं कि ऐसी काम की दृष्टि कैसे पायी जा सकती है। यह हवाई जहाजों के लिए विशेष रूप से उपयोगी होगी। मेंढक की आंख को हम मीनाक्ष या मृगनयन भले न कहें पर उसकी आंखें मृगों के लिए भी ईर्ष्या की वस्तु हैं।

और केवल मेंढक ही क्यों, प्रकृति कई बार हमारी दृष्टि में गन्दे, भद्दे जानवरों को ऐसी चीजें दे देती है जो और किसी के पास नहीं होतीं। चिमगादड़ का उदाहरण ले लीजिये। हमारी दृष्टि में वह बहुत भद्दा और बदसूरत है पर उसके पास एक ऐसी चीज है जिसे देखकर बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की आंखें फटी रह जाती हैं। उसकी सुनने की शक्ति कुछ ऐसी अद्भुत है कि अगर उसे आंखों पर पट्टी बांधकर ऐसे कमरे में छोड़ दिया जाय जहां चारों ओर

तार ही तार लगे हों तो भी वह किसी तार से टकराये बिना उड़ सकेगा। वह एक ऐसी आवाज करता है जिसे हमारे कान नहीं सुन सकते। वह आवाज तारों से या दूसरी ठोस चीजों से टकराकर वापिस आती है और उसे बताती है कि कहां कहां ठोस चीजें हैं और उनसे किस तरह बचा जा सकता है। वैज्ञानिकों ने पिछले महायुद्ध में हवाई जहाजों की सहायता के लिए जो रैंडर बनाये थे वे इसी आधार पर बने थे। परंतु अब भी हम चिमगादड़ों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

प्रकृति हमारी दृष्टि से नहीं देखा करती। उसने रैट्ल स्नेक (Rattle Snake) जैसे जहरीले सांप को यह योग्यता दी है कि वह एक डिग्री के हजारवें हिस्से तक की गर्मी के फरक का पता लगा सकता है। यह सांप गरम खूनवाले जीव-जन्तुओं को खाता है और उसके लिये दूसरों के खून की गर्मी का जानना जरूरी है।

और फिर रात को कान के पास आकर गाना गाते हुए मच्छर को लीजिये। हमें यह एक मुसीबत मालूम होता है जो हमारी नींद को हराम कर देता है और मलेरिया आदि बहुत सी बीमारियां फैलाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि यह छोटा सा मच्छर भी हमें बहुत कुछ सिखा सकता है। चाहे कितना भी शोर क्यों न हो रहा हो, चाहे नगाड़े क्यों न बज रहे हों, छोटा-सा मच्छर अपनी आवाज को डेढ़ सौ फीट की दूरी पर उड़ते हुए अपने साथी मच्छरों तक पहुंचा सकता है। और यह आवाज केवल पंखों के फड़फड़ाने से पैदा होती है।

सालमन मछली का नाम तो आपने सुना ही होगा। वह नाक की सहायता से अपने अंडे देने के स्थान को ढूंढ़ पाती है। अगर उसकी नाक में रूई भर दी जाय तो वह दिशा का ज्ञान खो बैठती है और अपने रास्ते से भटक जाती है। हमारे यहां नाक की सीध में चले जाना एक मुहावरा है, इसका असली अर्थ तो सालमन ही जानती है।

हम किसी से नाराज होते हैं या उसे निपट मूर्ख कहना चाहते हैं तो कह देते हैं—तू उल्लू है। पर आप लक्ष्मी जी के इस वाहन की विशेषता जानते हैं? हवा में उड़ता हुआ उल्लू पत्तों के ढेर के नीचे छिपकर कुतरते हुए चूहे के दांतों की आवाज को सुनकर उसपर झपट पड़ता है। अभी कुछ समय पहले हमारी लोकसभा में बताया गया था कि उत्तर प्रदेश में एक जगह चूहों के कारण बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न हो गयी थी। कच्चे बांध में छेद करके चूहों ने बांध का पानी बहाना शुरू कर दिया था और बड़े-बड़े इंजिनियरों के लिए यह समस्या हो गयी कि क्या चूहों के मारे बांध का ढांचा ही बदलना पड़ेगा। ऐसे आड़े वक्त में उल्लू ही उनके काम आये जिन्होने चुन-चुनकर चूहों का चबेना बना लिया।

मनुष्य अपने आपको बहुत बड़ा मानता है, सारी सृष्टि से ऊंचा समझता है पर ये छोटे-छोटे जानवर, पक्षी या कीड़े-मकोड़े उसे बहुत-सी चीजें सिखा सकते हैं। आजकल बहुत से वैज्ञानिक इन चीजों का अध्ययन करने में लगे हुए हैं, और हो सकता है कि निकट भविष्य में ऐसी मशीनें बन सकें जो उल्लू की तरह सुन सकें, सालमन की तरह सूंघ सकें, और आइंस्टाइन की तरह सोच सकें। दत्तात्रेय ने चील से, मकड़ी से और इसी तरह के चौबीस गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की थी। आज का वैज्ञानिक भी उन्हीं की तरह गिलहरी से, मच्छर से और इस प्रकार के अनगिनत प्राणियों से शिक्षा ले रहा है।

भगवान् की दुनिया सचमुच अजीब है।

⁂

ऐतिहासिक गाथा :

धुरमंगद

[श्रीअरविंद आश्रम में अजित सिंह जी समय-समय पर बुंदेलखण्ड की वीरता की कहानियां सुनाया करते हैं। हम समय-समय पर उनकी सुनायी हुई कहानियां पुरोधा में दिया करेंगे। इन कहानियों को अनुबेन पुराणी ने लिपिबद्ध किया है।]

मुगलों के जमाने में यह प्रथा थी कि बड़े-बड़े राजा दल बल सहित कुछ महीनों के लिए दिल्ली में हाजिरी दिया करते थे। महल की देखभाल और दिल्ली की सुरक्षा उनके जिम्मे होती थी। हम जिन दिनों की कहानी कह रहे हैं उन दिनों ओड़छा के महाराज सुजानसिंह दिल्ली में थे। उनका शरीर अत्यंत मनमोहक था। बादशाह की बेगम गुलनार उन पर मुग्ध हो गयी। उसने बादशाह से अर्ज की कि सुजान सिंह को खाजासरा बनाकर उसकी सेवा में दे दिया जाय। दांव-पेच में ही आनंद लेनेवाला बादशाह अपनी बेगम की इस इच्छा को पूरा करने के लिए तैयार हो गया। उसके दरबार में अनेक राजा, महाराजा कोर्निश और सलाम करने आया करते थे। बादशाह अच्छी तरह जानता था कि बढ़ती हुई आग और बढ़ते हुए दुश्मन को जल्दी ही खत्म करने में कल्याण है। वह अपने दुश्मनों को साम, दाम, दण्ड, भेद सभी हथियारों से हराता था। उसे राजपूतों की तरह युद्ध-नीति या मान-अपमान की परवाह नहीं थी। उसने अपने शत्र सुजानसिंह को बड़े अदब के साथ दरबार में बुला भेजा। राजपूत बादशाह की कूटनीति से परिचित हो चुके थे। इसलिए सुजानसिंह आमंत्रण पाते ही समझ गये कि दाल में कुछ काला अवश्य है, परंतु दुश्मन के निमंत्रण को भी ठुकराना राजपूती गौरव के विरुद्ध था। दरबार में जाने से पहले अपने सरदारों को बुलाकर उन्हें सावधान करके सुजानसिंह दरबार की ओर चले।

दरबार में सुजानसिंह को खास माही मरातिब दिये गये और बादशाह ने हंस-हंसकर उनसे बातें कीं। दरबार बरखास्त होते ही अन्य प्रियजनों के साथ बादशाह ने सुजानसिंह को भी हरम में आने की दावत दी। अंदर न जाने क्या हुआ, किंतु उस दिन से किसी ने सुजानसिंह की शक्ल तक न देखी।

इधर ओड़छा के सरदारों की सभा महाराज सुजानसिंह की चिंता में थी। सबने यही सोचा कि बादशाह के हरम में जाने का मतलब है शेर के मुंह में सिर डालना। उन्होंने तय किया कि किसी न किसी तरह जान पर खेल कर भी राजा को जीवित लाना ही होगा। पर यह काम हर एक को अपनी शक्ति से बाहर का लगता था। आखिर पांच पानों का सुगंधित बीड़ा एक सोने के थाल में रखा गया। इसे लेने का अर्थ ही था जान हथेली पर रखकर सुजानसिंह के प्राण बचाने का प्रण करना। सब एक-दूसरे का मुंह देख रहे थे। हिम्मतवालों की कमी न थी पर भय यह था कि कहीं एक गलत चाल का मतलब सुजानसिंह की हत्या न हो जाय। दो दिन बीड़ा थाल में ही पड़ा रहा। लोगों में कानाफूसी होने लगी

कि ओड़छा की भूमि वीरविहीन हो गयी है। अभी यह बात चल ही रही थी कि महाराज के सेनापति धुरमंगद आये और बीड़ा उठाकर मुंह में रख लिया। सब सरदार प्रसन्न हो गये। कई कहने लगे—अरे, हम जानते ही थे कि पान का बीड़ा धुरमंगद ही उठायेगा। सबने धुरमंगद को सहायता देने का वचन दिया। धुरमंगद ने कहा—मैंने पहले दिन ही ठीक कर लिया था कि मैं यह बीड़ा उठाऊंगा किंतु अभीतक योजना तैयार न हो पायी थी। अब सब कुछ ठीक है। मुझे केवल एक आदमी की जरूरत है। उसका काम होगा महाराज सुजानसिंह की मुहर की रक्षा करना। एक सरदार सामने आया और धुरमंगद ने महाराज की मुहर उसके हाथ में देते हुए कहा—इस मुहर को महाराज सुजानसिंह के ही हाथ में देना। चाहे जान चली जाय पर इसपर किसी और की छाया तक न पड़ने पाये।

धुरमंगद ने सफेद चोगा पहना और उसके अंदर नंगी तलवार लटका ली और महल की ओर चल पड़ा। उन दिनों जिन लोगों को कोई विशेष शिकायत होती थी वे एक खास कागज पर अर्जदाश्त लिखकर ले जाते थे। जो इस अर्जदाश्त को ले जाता था वह सीधा बादशाह के पास जा सकता था और उसकी अर्जदाश्त को स्वयं बादशाह ही पढ़ा करते थे। धुरमंगद ने अर्जदाश्त में लिखा था—राजा सुजानसिंह के लिए उनकी प्रजा बेचैन हो रही है। जब से वे बादशाह के हरम में घुसे तब से किसी ने उनकी शकल नहीं देखी है। इससे अनुमान है कि राजा अब भी शाही महल में नजरबन्द हैं। ओड़छा की प्रजा बादशाह से नम्र निवेदन करती है कि उनके राजा को छोड़ दिया जाय। साथ ही यह भी लिखा था कि जब तक महाराज अपने शिविर में वापिस नहीं पहुंच जाते और उनके हस्ताक्षर तथा राजा की मुहर के साथ उनका समाचार नहीं मिल जाता तब तक बादशाह सलामत की जान खतरे में है।

धुरमंगद ने आदाब और कोर्निश किये बिना ही कागज बादशाह के हाथ में थमा दिया। बादशाह ने उसे पढ़ने के लिए गर्दन झुकायी और धुरमंगद उनके गले पर तलवार तान कर खड़ा हो गया। जब तक दरबारी होश में आयें तब तक बात बहुत बढ़ चुकी थी। धुरमंगद चिल्लाया, खबरदार, किसी ने कदम भी उठाया तो यह तलवार बादशाह की गर्दन के पार हो जायगी। बादशाह सलामत भी घबराए। उन्होंने सब को जहां का तहां रहने का हुक्म दिया। बादशाह की आज्ञा के अनुसार महाराज सुजानसिंह को चार घुड़सवारों के साथ सुरक्षित रूप में उनके शिविर तक पहुंचाया गया। घुड़सवार महाराज का पत्र लेकर वापिस लौटे। महाराज सुजानसिंह की मुहरबंद चिट्ठी पाते ही धुरमंगद ने तलवार बादशाह के पैरों के पास रख दी और अदब के साथ हाथ बांध कर खड़ा हो गया। उसने कहा—हुजूर! मैंने आपका बड़ा भारी अपराध किया है। अब आप जो मर्जी कर सकते हैं, मैं तैयार हूं। बादशाह ने इस वीर राजपूत की बड़ी प्रशंसा की और पीठ थपथपाकर शाबाशी दी। साथ ही कहा, मैं ऐसे वीर पुरुषों को अपने पास रखना चाहता हूं। धुरमंगद को रोज दरबार में आने की ताकीद की गयी;

धुरमंगद जैसा चालाक आदमी बादशाह की नीयत को पहचान गया। उसने ठीक किया कि वह जरूर दरबार में जायगा और बादशाह की हर एक चालाकी का मुकाबला करेगा।

बादशाह का एक महाबली महाकाय साला था। हम उसे नवाब साहब के नाम से जानेंगे। देखने में वह घटोत्कच का दूसरा भाई लगता था और उसीकी तरह कुश्ती में अत्यंत प्रवीण

था। पहलवानों में उसका इतना नाम था कि उसके साथ बदनी करने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता था। बादशाह ने बहुत दिन सोचने के बाद एक तरकीब निकाली। दूसरे दिन जब धुरमंगद दरबार में आया तब बादशाह ने उसके शारीरिक बल की प्रशंसा करते हुए पूछा—क्यों धुरमंगद, तुम्हें कुश्ती भी तो आती होगी? धुरमंगद ने कहा—हां सरकार! बादशाह बोले—अच्छा चलो, हमारे नवाब साहब के साथ दो दो हाथ कर देखो। धुरमंगद ने अपनेसे कहीं अधिक लंबे-चौड़े पहलवान को दृष्टि से नाप लिया। बोले—हां, लड़ तो सकता हूं। बादशाह ने हुक्म दिया—अच्छा, चलो, तैयार हो जाओ। धुरमंगद ने कहा—हुज़ूर! इसमें एक कठिनाई है। नवाब साहब हैं मुसलमान और मैं हूं हिंदू। मैं उनके ख़ून के साथ अपना ख़ून तो मिला सकता हूं पर उनके पसीने से पसीना न मिला पाऊंगा। उनके शरीर से शरीर रगड़ने से मेरी जाति चली जायगी। हां, आप ऐसा कर सकते हैं कि हम दोनों इस बुर्ज पर चढ़कर वहां से कूदें और हवा में ही दोनों एक-दूसरे से भिड़ जायं। फिर देखें, कौन जीतता है। नवाब घबराया। उसे विश्वास था कि फुर्तीला धुरमंगद उसे दबोच लेगा। ऊपर से कूदने में वह कहीं मेरे ऊपर गिरे तो वह तो बच जायगा पर मेरा कचूमर निकल जायगा। नवाब साहब बुर्ज पर से कूदने को तैयार न हुए। तब बादशाह ने हथियार लेकर लड़ने का प्रस्ताव किया और दोनों पक्ष राजी हो गये। उसी समय एक दिन निश्चित किया गया। इस प्रसंग को बादशाह ने उत्सव का रूप दिया। इसलिए किले के बाहर मैदान में लड़ने की जगह ठीक की गयी। निश्चित दिन पर किले की मुंडेर पर बादशाह तथा अन्य प्रतिष्ठित लोग अपने-अपने स्थान पर आ बैठे। बेगमों के लिए भी खास इंतजाम किया गया। बेगम गुलनार भी आज अपने शत्रु को अपने भाई के हाथ मरते देखने के लिए उत्सुक बैठी थी। किले के आस-पास मैदान में अन्य प्रजाजन इकट्ठे थे। किले के दरवाजे से नवाब साहब घोड़े को दौड़ाते हुए आये। वे शरीर पर लोहे का कवच और सिर पर शिरस्त्राण लगाये हुए थे। उनके हाथ में तलवार थी और भाला भी साथ था। कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद भी जब धुरमंगद न आया तब दरबारी सोचने लगे कि वह नवाब से डर गया है। इतने में एक तेज घोड़े पर धुरमंगद आ पहुंचे। उनके हाथ में सिर्फ एक भाला और तलवार ही थी। शरीर पर न तो बख्तर ही था और न सिर पर शिरस्त्राण। वे रोज के मामूली कपड़े पहने हुए थे। नवाब यह देखकर बड़े खुश हुए। परंतु न्याय का दिखावा करते हुए बोले—धुरमंगद! तुम अभी छोटे हो, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें अवसर न मिल पाए और वार करने की हवस मन की मन में ही लिये यहां से सिधार जाओ। चलो, पहला वार तुम्हारा। नवाब अच्छी तरह जानते थे कि राजपूत इसे अपमान समझेगा और अपने आप ही उदारता दिखायेगा। हुआ भी वही। धुरमंगद ने कहा—नहीं नवाब साहब, मुझे विश्वास है कि मेरा एक ही वार काफी है। इसलिए एक नहीं आप पांच वार कर सकते हैं फिर मेरी बारी आयगी। दोनों तैयार हो गये और घोड़ा फेरना शुरू किया। नवाब ने बरछे से पहला वार किया। धुरमंगद ने घोड़े को अन्तिम क्षण पर एड़ देकर खिसका दिया। और बगल करके तलवार से भाले के दो टुकड़े कर दिये। दूसरे दो बार अपनी ढाल पर ही लिये और इसी तरह नवाब के पांचों वार खाली गये। अब धुरमंगद बोले—खां साहब! दुनिया को एक बार अच्छी तरह देख लीजिये और अपने खुदा की बन्दगी भी कर लीजिये

क्योंकि मेरा वार खाली नहीं जायगा। नवाब ने जैसे-तैसे वन्दगी कर ली और तैयार होकर खड़े हुए। धुरमंगद ने भाला उठाया और घोड़े को बिजली की गति से नवाब की ओर दौड़ाया। भाला लोहे के बख्तर को छेद कर उनके शरीर के आर-पार निकल गया और नवाब साहब धूल में लोटने लगे। धुरमंगद ने तलवार से उसका सिर काट लिया और भाले की नोक पर चढ़ाकर ऊपर बैठे बादशाह के आगे उठाते हुए बोले——हुजूर, यह लीजिये तोहफा। बादशाह गुस्से से आग-बबूला हो रहा था। किंतु ऊपर से प्रसन्नता ही दिखायी।

बादशाह साले की मौत का बदला लेने के लिए उतावला हो उठा। गुलनार बेगम से परामर्श करके बादशाह ने ठीक किया कि धुरमंगद को एक भूखे शेर के साथ कुश्ती में भिड़ा दें। इस बार बादशाह बहुत सावधान था। उसने हुक्म दिया कि जंगल से एक नया शेर पकड़कर लाया जाय। शेर आ गया तो एक दिन बादशाह ने धुरमंगद से कहा——तुम शेर हो शेर! इसी ढंग से खूब प्रशंसा करके बादशाह ने पूछा——क्या तुम इस शेर से भी लड़ सकते हो? धुरमंगद ने जवाब दिया——हां, हुजूर। बादशाह ने दिन ठीक कर दिया और फिर से किले के चारों ओर भीड़ जमा हो गयी। शेर का पिंजड़ा कई आदमी खींच कर मैदान में लाये। किले के सामने धुरमंगद और शेर की लड़ाई के लिये एक कठघरा बनाया गया। धुरमंगद अपने घोड़े पर आये और तलवार लेकर कठघरे में जाने को तैयार हुए। बादशाह ने ऊपर से कहा——धरमंगद! शेर के पास तो तलवार नहीं है। धुरमंगद ने झट अपनी तलवार खूंटी पर लटका दी। वे समझ गये कि किसी न किसी तरह बादशाह उन्हें मरवा डालना चाहता है। वे जानते थे कि जंगली, भूखे शेर के सामने निहत्थे जाने का क्या अर्थ होगा।

धुरमंगद बजरंगबली के अनन्य भक्त थे। इनकी इस भक्ति और वीरता को लेकर लोगों में इतनी बातें चलीं कि अभी तक लोगों में यह कहावत चलती है कि 'धाक धुरमंगद की हांक हनुमान की।' जैसे ही पिंजरे का दरवाजा खुला, भखा शेर गुर्राता हुआ इनकी ओर बढ़ा। धुरमंगद भी जय बजरंगबली की हांक लगाते हुए सामने आये। कहते हैं कि शेर झपटने की जगह दुम दबाकर एक कोने में दुबक गया। धुरमंगद ने बादशाह से अर्ज की——हुजर, यह तो डरपोक है; देखिये कोने में जा दुबका, इससे क्या लड़ूं? बादशाह ने उत्तर दिया——अरे, तुम राजपूत हो। डरो मत, हिम्मत है तो ललकारो और लड़ो। धुरमंगद ने शेर की दुम खींची। शेर एकदम बौखला उठा और बड़े जोर से झपटा। इधर धुरमंगद भी तैयार था। उसने शेर के जबड़े पकड़ लिये और पूरा जोर लगाकर चीर दिया, साथ ही शेर की छाती पर जोर से लात मारी। जूतों पर कटार लगी हुई थी। कटार अंदर घुस गयी और शेर वहीं ढेर हो गया। बादशाह ने यह देखा तो ऊपर छज्जे पर से ही चिल्लाया——निकालो बदजात को यहां से, दिल्ली में न रहने पाये यह।

काक-परिचय

—कृष्ण लाल

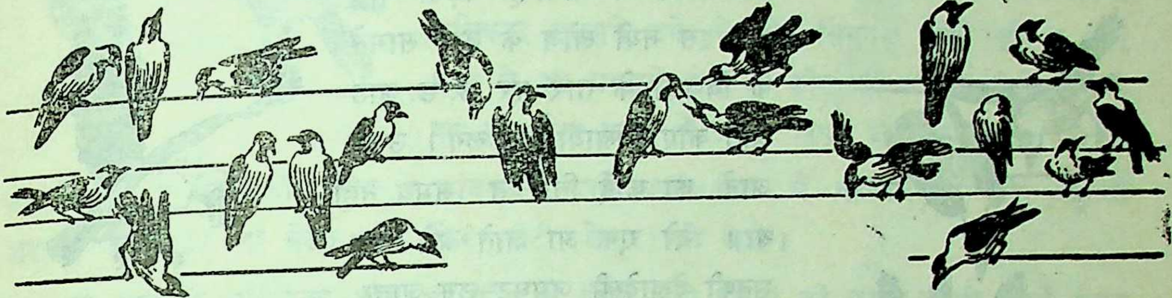

ऐसा तो शायद ही कोई हो जो कौए को न जानता हो। कौए की आदत ही है इधर-उधर बैठकर कांव-कांव करके लोगों को तंग करने की। अगर उसे एक जगह से उड़ाया जाय तो जरा दूर जाकर दूसरी जगह बैठ जाता है और, और भी जोर से कांव-कांव शुरू कर देता है। सवेरे-सवेरे सबसे पहले उठकर ब्राह्म मुहूर्त्त में सोनेवालों की मीठी नींद को उचाटना इसका मुख्य काम है। फिर भला ऐसे पक्षी का क्या परिचय? लेकिन अगर हम जरा धैर्य से काम लें और मित्र भाव से इसका अध्ययन करें तो कौए में भी बहुत-सी विशेषतायें दिखायी देंगी जो अन्य पक्षियों में नहीं हैं।

मेरे छज्जे पर एक लकड़ी का जंगला है। कई बार वहां कौए आ आकर बैठा करते थे। अगर मैं अचानक वहां जा पहुंच पर मेरा ध्यान कौए की तरफ न हो तो कौआ बराबर अपने कार्यक्रम को जारी रखता, कांव-कांव करता रहता, किसी की ओर ताकता रहता या अपने पंख साफ करता रहता। अगर मैं उसकी तरफ निगाह फेरता तो वह मेरी आंखों से आंखें मिलाकर यह देखने की कोशिश करता कि मेरी क्या मरजी है, साथ ही साथ अपने पर तौलता रहता कि जरूरत पड़ने पर एकदम उड़ सके। यदि उसको ऐसा लगता कि कि मैं उसकी दिशा में देख रहा हूं, उसे नहीं देख रहा तो उसकी शंका दूर हो जाती और वह अपने काम में लगा रहता। मुझे पक्षियों को देखने का शौक है इसलिये मैं बहुत बार उसकी नजर बचाकर उसे देखा करता। कौए का चमकदार काला रंग, उसकी पंखों की सफाई और सुव्यवस्था और मटक मटक कर गरदन इधर-उधर करते हुए अदा से देखने की आदत किसी छैल-छबीले की याद दिला देती है।

मैं जरा ज्यादा नजदीक से देखना चाहता था; इसलिये एक दिन मैंने हाथ लंबा करके रोटी का टुकड़ा जंगले पर रख दिया। कौआ सतर्क हो गया और उस ओर ऐसी निगाह से देखनेलगा मानों जानना चाहता हो कि इसके पीछे कोई चालाकी तो नहीं है। उसने धीरे-धीरे फुदकते हुए नजदीक आना शुरू किया लेकिन इस तरह से कि जरूरत पड़ने पर एकदम उड़ा जा सके। पर मेरी

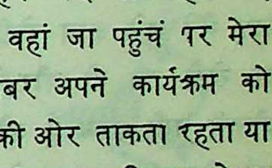

उदासीन-वृत्ति देखकर उसका साहस बढ़ा। चट से चोंच मारी और रोटी लेकर उड़ गया।

यह आरंभ था। कौए का लोभ बढ़ा। अब उसने रोज आना शुरू किया। उसकी मित्रमंडली को भी पता लग गया कि यहां खाना मिलता है। उन्हें कहीं न कहीं तो भोजन की तलाश में जाना ही पड़ता था। अब इस नयी खोज के बाद सामने के बिजली के तार पर छः छः आठ आठ कौए दिखायी देने लगे। उनके आने का कोई निश्चित समय नहीं था। दो एक आ जाते तो बस उनकी देखादेखी जमघट लग जाता, और कांव-कांव की ध्वनि शुरू हो जाती। जंगले पर रोटी रखते ही कई एक साथ झपटते। सब एक जैसे साहसी तो नहीं थे, इसलिए जिसमें ज्यादा हिम्मत होती वही आगे बढ़कर रोटी ले भागता। दो एक उसका पीछा करते, बाकी यही आस लगाये बैठे रहते कि रोटी का दूसरा टुकड़ा उनके हाथ लगेगा। या जरा मुहावरे को बदल कर कहें तो उनकी चोंच लगेगा।

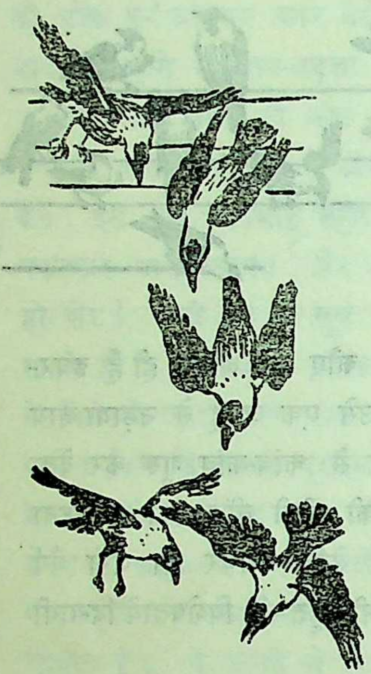

मुझे तो केवल कौओं का निरीक्षण करना था, उनके लिए सदाव्रत नहीं खोलना था। इस लिए मैंने खुले आम रोटी रखना बंद कर दिया। दरवाजे का निचला हिस्सा बंद करके उस पर रोटी रख दी और मैं कमरे में प्रतीक्षा करने लगा। कौओं ने देखा, जरा सोचा कि यह कौनसी नयी चाल है और फिर कांव-कांव करके आपस में सलाह करने लगे। कुछ हिम्मत-वाले नौजवान तार पर से उतर कर जंगले पर आ बैठे। लेकिन अब भी रोटी तीन फुट दूर थी। रोज आनेवाले दोस्तों में से एक ने साहस कर ही डाला और रोटी लेकर यह जा वह जा। अब दूसरों की भी हिम्मत बंधी और उनमें से कइयों ने नये स्थान से रोटी लेना शुरू कर दिया पर फिर भी डर पूरी तरह से नहीं गया।

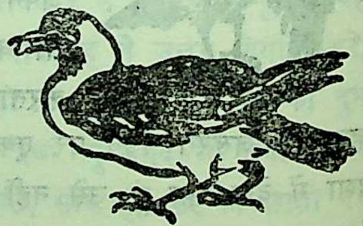

इनमें से चार के साथ मेरा परिचय बढ़ गया। उनका डर कम हो गया। एक सामने जंगले पर बैठकर रोटी की राह देखा करता और रोटी रखते ही ले भागता। दूसरा तार पर से जंगले पर आता और फिर रोटी ले जाता। तीसरे को शायद मेरे ऊपर कुछ अधिक विश्वास हो गया था। वह जंगले पर बैठकर प्रतीक्षा करता, और जब मैं रोटी रख देता तो दरवाजे पर आ बैठता। रोटी चोंच में पकड़े हुए मेरी ओर देखता रहता और फिर जाता।

हर एक कौए का खाने का अपना अपना स्थान था। मानों वहां उनकी बैठक थी या यूं कहिये कि, भोजनालय था। कोई सामने के मकान की छत पर जा बैठता, कोई आंगन में लगे हुए पेड़ पर बैठता, कोई कोई गली के उस पार के मकान पर जा बैठता और वहां भोजन करता।

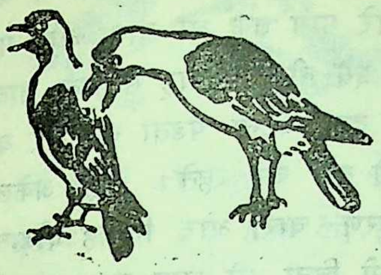

मैं घर से बाहर रहूं तो दरवाजा बंद रहता परंतु मेरे वापिस आते ही किसी न किसी जानकार कौए को गंध मिल जाती और वह बाकी सबको हांक लगा देता। देखते देखते वहां महफिल जमा हो जाती। अब कौए रोटी पर अपना अधिकार समझने लगे थे और सिगनल होते ही न जाने कहां से आ धमकते थे। दो कौए तो आकर सीधे दरवाजे पर ही बैठा करते थे और अगर रोटी न मिले तो मुझे याद दिलाने के लिए जोर जोर से कांव-कांव करने लगते थे। मैं दरवाजे की ओर बढ़ूं तो उड़कर जंगले पर जा बैठते और फिर रोटी लेकर चले जाते।

इन चार के अतिरिक्त और भी कौए थे जिन्हें मेरी दोस्ती की परवा न थी, उन्हें केवल रोटी की चाह थी। उन्होंने अपने जातीय धर्म यानी चालाकी से काम लेना शुरू किया। उन्होंने देखा कि मैं रोटी दरवाजे पर रखकर कमरे में जाता हूं और फिर आ, आ कहता हूं तब मेरे दोस्त जंगले पर से आकर रोटी लेते हैं। मेरे रोटी रखने और दोस्तों के लेने के बीच में जरा सा अंतर रहता है। उन्होंने इससे लाभ उठाना शुरू किया। इन्हें पता लग जाता कि अब मैं रोटी रखनेवाला हूं तो कहीं दाएं-बाएं छिप जाते ताकि मैं कहीं देखकर उड़ा न दूं। जैसे ही मैं रोटी रखता, ये झटसे झपट्टा मारते और रोटी ले उड़ जाते और दूसरे कौए बेचारे मुंह ताकते रह जाते।

मैंने इन डाकू कौओं से रोटी बचाने का उपाय निकाला। दरवाजे में एक लकड़ी लगाकर ऐसी व्यवस्था कर दी कि दरवाजे पर बैठे बिना रोटी ले सकना असंभव हो गया। परंतु इससे तो जान-पहचान के कौए भी डर गये। थोड़े दिन तक उनमें भी रोटी लेने का साहस न हुआ। परंतु मैं रोटी रखकर जरा दूर चला जाता और उनकी ओर ध्यान न देता था। धीरे-धीरे साहस बढ़ा और परिचित कौओं ने फिर से रोटी ले जाना शुरू किया परंतु उचक्कों के लिए रास्ता बंद हो गया। कभी-कदास मुझे किसी और काम में लगा हुआ पाकर वे साहस करते तो मैं हाथ लंबा करके उन्हें उड़ा देता। परंतु इससे मेरे परिचित कौए भी डर जाते और फिर से उनका विश्वास प्राप्त करने में काफी समय लग जाता।

जैसे कई कौए साहसी थे वैसे ही कई कौए डरपोक भी थे। वे भी रोटी के लालच से आते, वहां बैठते, रोटी का ध्यान करते पर मुझे आसपास देखकर सकपका जाते, कुछ दूर तक उड़कर आते, फिर वापिस चले जाते। कभी कभी जंगले पर मानों टहलने लगते और हमेशा उड़ने के लिए तैयार रहते। मैं बुलाता भी तो उन्हें मुझपर विश्वास न होता।

रोटी लेने के लिए तो कौओं में प्रतियोगिता होती थी पर एक बार कोई साहस करके ले जाता तो छीना-झपटी कभी-कदास ही होती थी। हां, कभी कभी कोई कौआ अपना हक मान लेता था और दूसरे उम्मीदवारों को लड़कर भगा देता था। पर सामान्यतः एक कौआ विजयश्री ले जाता तो दूसरे कौए नयी रोटी की राह देखते बैठे रहते।

एक बार एक काना कौआ आया। शायद किसी लड़ाई में या किसी दुर्घटना में वह एक आंख गुमा बैठा था। वह बिना किसी डर के सीधा मेरे पास तक आ जाता और मेरे हाथ से रोटी ले जाता। परंतु कौओं की बिरादरी में शायद इसे नीची निगाह से देखा जाता था। दूसरे कौओं से इसे जरा दूर बैठना पड़ता था और यह पहले से बैठा होतो दूसरे इसको हटा कर रहते। यह अकेला होता तो भी घबराहट के कारण चारों ओर निगाह दौड़ाता फिरता और कई बार रोटी लिये बिना ही भाग जाता। उसके साथ यह अछूतों के जैसा व्यवहार न जाने क्यों होता था। देखने सुनने में तो वह भी और कौओं के जैसा ही था, हां, उसका सिर जरा छोटा था और गर्दन पर बाल कुछ कम थे। इसकी अच्छी आंख जरा बड़ी लगती थी। इसे कांव-कांव करके शोर मचाने की आदत न थी। वह आकर चुपके से बैठा रहता और रोटी का टुकड़ा पाते ही उड़ जाता था। मैंने उसका नाम रखा कानिया। कानिया औरों से डरता था इसलिये मैं उसका ज्यादा ख्याल रखता था। मेरा पक्षपात देखकर दूसरे कौए इसे मेरे सामने तो तंग न करते थे पर जब वह सामने की छत पर खाने बैठता तो उसकी रोटी छीनने की कोशिश करते। वह भी एक स्थान पर न बैठकर इधर-उधर होता रहता था। वह दूसरों की तरह झट से रोटी गटकता नहीं था। दूसरे तो जल्दी निगलकर और की प्रतीक्षा में बैठ जाया करते थे।

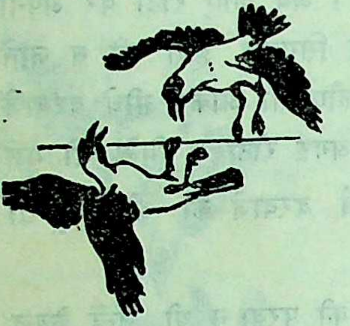

गर्मियां जाने लगीं तो कौओं के साथ उन के नन्हें मुन्ने भी दिखाई देने लगे। ये कद में तो मां बाप जैसे ही लगते थे पर इन का सिर जरा छोटा, तथा गरदन और छाती का रंग जरा अधिक काला होता है। इसे देखते ही पता लग जाता है कि ये अभी बच्चे हैं। परंतु इनकी सब से बडी विशेषता है इनकी आवाज। ये सारे समय खोखली सी आवाज से कांव कांव करते रहते हैं।

सामन्यतः बच्चों का मां के साथ अधिक सम्बन्ध होता है। मां जब खाना लेने आती तो साथ में दो एक बच्चे भी लगे रहते। इन्हें तो पता न चलता था कि कब खाना रखा गया और कब नही; वे लगातार कांव कांव कर के मां की जान खाते रहते मानों कह रहे हों मां खाना दे, मां खाना दे। मैं भी तंग आ जाता। मां जब रोटी उठाती तो दोनों बच्चे उसपर टूट पड़ते। मां रोटी को पंजे में पकड़ कर चोंच से उसके टुकड़े कर के बच्चों की चोंच में देती पर बच्चों में इतना धीरज कहां कि चुपचाप प्रतीक्षा करते रहें। बच्चे मां के पंजे पर चोंच मारते और मां चोंच मार कर उन्हें दूर रखती। एक ओर से एक बच्चा रोटी चुराने आता, मां उसे हटाती तो दूसर ओर से दूसरा बढ़ आता। मां उस को डरा धमका कर दूर रखती। उसके शरीर को देख कर पता लगता था कि वह बहुत चिढ़ गयी है, उसकी आंखें, उसका मुख और उसका

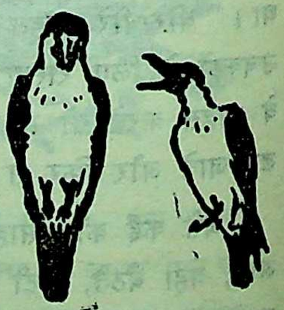

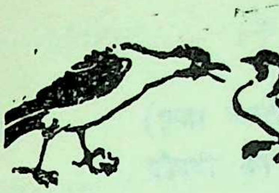

सिर गुस्से से भरा है। कई बार इस मुसीबत से बचने के लिये मां उड़ जाने की कोशिश भी करती थी। परंतु बच्चे उसकी सहायता के बिना खा ही नहीं सकते थे, उन्हें छोड़ती कैसे ?

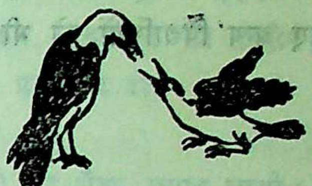

बच्चों को खिलाने का भी एक खास ढंग होता है। रोटी देखते ही बच्चे पंख फड़फड़ाने लगते हैं। ठीक वैसे ही जैसे मनुष्य के बच्चे, जो अपने आप खाने या दूध पीने में असमर्थ होते हैं, दूध पीते समय या खाते समय हाथ पांव फेंकते रहते हैं। बच्चे की चोंच में खाना रखने के लिये मां को अपने शरीर को सीधा कर के चोंच को नीचे करना पड़ता है और बच्चा शरीर को नीचा कर के गरदन ऊंची करता है। साथ ही साथ दबी आवाज में 'का का' का संगीत तो चलता ही रहता है।

मेरे यहां भी वही हुआ जो साधारणतः हुआ करता है। देखते देखते बच्चे बड़े हो गये और अपने आप खाना खोजने लगे। वे लम्बी उड़ान तो ले नहीं सकते थे इस लिये बंधे हुए स्थानों पर ही डाके डालने शुरू किये। डर तो था ही, साथ ही शरारत भी भरी थी। जहां बड़े कौए खाना लेने जा रहे हों वहीं उनसे आगे जाकर झपट लेते। कई बार बड़े कौए की चोंच के सामने से झपट कर भाग जाते। एक बार इसी तरह एक बच्चे ने बड़े कौए के सामने झपट्टा मारा। बड़े को भी गुस्सा आ गया, वह उसके पीछे लगा। अब मेरे मकान के सामने मानों दोनों में होड़ होने लगी। इसी बीच तार पर बैठे हुए कौओं ने कांव कांव करना शुरू दिया। आसपास के बहुत से कौए इकट्ठे हो गये और वह कांव कांव शुरू हुई कि बस तौबा। बच्चा तो कहीं सटक गया पर इनका कर्कश सहगान चलता रहा। आखिर तंग आकर मुझे सब को उड़ा देना [पड़ा]।

किसी ने स्वामी दयानन्द से पूछा—भगवन्, आपके मन में कभी काम-विकार जागता है क्या ? स्वामी जी थोड़ी देर मौन रहे मानों अपने सारे जीवन पर दृष्टि डाल रहे हों और फिर बोले—भई, इन बातों के लिये मुझे फुर्सत नहीं है।

भारत के नौनिहाल

--श्री ऐजाज अहमद खां

[ऐजाज अहमद चित्तौड़गढ़ में दसवीं कक्षा के विद्यार्थी हैं। हम उनकी रचना छापते हुए अन्य विद्यार्थियों को भी लिखने के लिए निमंत्रण देते हैं।]

पात्र-परिचय

चन्द्रमोहन---गठीले शरीर का एक तेरह वर्षीय सुन्दर बालक, रंग गोरा, सफेद झब्बा तथा धोती, पैरों में चप्पल।

चमेली---चन्द्रमोहन की छोटी बहन, आयु दस-ग्यारह वर्ष।

पिता जी---चन्द्रमोहन के पिता, अधेड़ उम्र के पुराने घराने के व्यक्ति।

मां---चन्द्रमोहन की मां, आयु २८ वर्ष।

चन्दू---घर का नौकर, ऊंची-ऊंची धोती, जाबी तथा कंधे पर एक कपड़ा।

राजू---चन्द्रमोहन का सहपाठी, आयु २२ वर्ष।

मास्टर जी---स्कूल के अध्यापक, मटियाला झब्बा, सफेद धोती कुछ उभरी हुई, नीचे की ओर झुकी हुई मूंछें, सिर पर गोल काली टोपी, पैरों में चप्पल।

दीनदयाल---एक देशभक्त, सफेद धोती तथा झब्बा, सफेद टोपी तथा पैरों में चप्पल।

मौलाना---एक देशभक्त, चूड़ीदार पाजामा, शेरवानी, छोटीसी दाढ़ी, पैरों में बन्द जूता।

★

प्रथम दृश्य

पात्र---मां, चमेली, मास्टरजी, पिताजी, राजू और चन्दू।

(एक शानदार मकान का कमरा। चारों ओर धार्मिक चित्र लगे हैं जिनमें कृष्ण के बचपन के चित्र अधिक हैं। मंच पर बायीं ओर एक छोटी-सी चौकी लगी है जिसपर लाल कपड़ा बिछा है तथा उसपर कृष्ण की मूर्ति और अन्य पूजा का सामान रखा है। चौकी से कुछ हटकर सामने एक छोटी मेज है जिसपर चन्द्रमोहन की एक बड़ी तस्वीर लगी है; मुख्य रूप से टेबल पर कुछ फूलों की मालायें, घड़ी तथा कुछ राखियां रखी हैं। मूर्ति के पास एक थाली में सिन्दूर भी रखा है तथा ठीक इसके सामने प्रवेश-द्वार है।)

समय---प्रातःकाल सात बजे।

(पर्दा उठने पर मां पूजा करती हुई दिखायी देती हैं।)

मां— (पूजा करते हुए) हरि तुम हरो जन की पीर, हरि तुम हरो जन की पीर। द्रौपदी की लाज राखी तुरत बढ़ायो चीर। हरि तुम हरो जन की पीर। (दो बार दोहराती हैं। चमेली का प्रवेश) ले बेटी, प्रसाद खा ले।

चमेली— ठहरो मां, अभी लेती हूं। (मूर्ति के निकट जाकर नमस्कार करती है फिर फूल-माला लेकर पहनाती है। एक माला और लेकर चन्द्रमोहन की तस्वीर पर लगाती है। फिर मां के पास आकर) लाओ मां, प्रसाद दे दो।

मां— ले। (देती हैं)

चमेली— (प्रसाद लेकर चन्द्रमोहन की तस्वीर के निकट आकर) लो भैया, प्रसाद खाओ। नहीं खाओगे? बस, एक बार अपनी बहन चमेली के हाथ से और खा लो। भैया, लो न? तुम बोलते क्यों नहीं भैया? (आवाज में दर्द) तुम हमेशा मुझसे ही प्रसाद खाते थे, लो, आज और खा लो। तुमने अं... ति... म बार ग... गं.... गा जल पिया था? लो और यह प्रसाद खा लो (आंसू टपकते हैं)।

मां— (भर्राई हुई आवाज में) ना चमेली, ना, रो मत। तेरा भैया इस संसार में नहीं है, वह तो भगवान् की गोद में बैठा है। कुछ दिन बाद उसके नाम का तारा आकाश में उगेगा। भक्त ध्रुव के समान, ठीक भक्त ध्रुव के समान (चित्र की ओर इशारा करती है)।

चमेली— (उसी स्वर में) आज रक्षाबन्धन है। किसके हाथ पर राखी बांधूं? बताओ न मां, किसके हाथ पर बांधूं यह राखी?

(पिताजी का प्रवेश। चंदू भी आकर खड़ा होता है)

आप ही बताइये पिताजी, यह राखी किसके बांधूं? आप ही ने कल ये राखियां लाकर दी हैं पिताजी। (राखियां उठाकर लाती है) क्या केवल इसलिए कि यह गुलाब मुर्झा कर रह जाय?

पिताजी— नहीं चमेली, नहीं। (गोद में लेकर चूमते हैं) यह गुलाब हमेशा खिला रहेगा। (चन्द्र की तस्वीर लेकर सीने से लगाते हैं)। (मां से) धन्य हो देवी, धन्य हो जो तुम्हारी कोख से ऐसे वीर सपूत ने जन्म लिया।

(मास्टर जी का प्रवेश)

मास्टरजी— और धन्य है ऐसा पिता जिसका पुत्र देश के लिए मर मिटा।

(राजू का प्रवेश)

राजू— धन्य है वह सौभाग्यशाली बहन जिसको ऐसे वीर भाई की कलाई पर राखी बांधने का अवसर प्राप्त हुआ।

माताजी— (पलक झपकते हुए) हां, मुझे अच्छी तरह याद है, मेरा चन्द्रमोहन कितना अच्छा था। (हंसने की चेष्टा करते हुए) वाकई बहुत अच्छा था।

चमेली— हां माताजी, भैया बहुत अच्छे थे, बहुत अच्छे थे। लेकिन .... लेकिन ...

मास्टरजी— लेकिन क्या बिटिया रानी ?

चमेली— एक बार राखी और बंधवा लेते। (रोती है)

पिताजी— पगली कहीं की ! रोते हैं कहीं ? तेरी तरह कितनों के भाई देश के लिए मर मिटे हैं।

मां— (हंस कर) नहीं बेटी, मत रो। देख, मैं भी तो हंस रही हूं और देख, चित्र की ओर देख, तेरा भैया चन्द्रमोहन भी तो हंस रहा है (तस्वीर की ओर इशारा करती है) उसके ओठों पर भी तो मुस्कान है। तू क्यों रोती है पगली ? रोने से तेरे भैया के दिल पर ठेस पहुंचेगी।

चमेली— (जोर से हंसते हुए) आप ... आप मुझे हंसने को कह रही हैं न मां ? मैं जरूर हंसूंगी, दिल खोल कर हंसूंगी। लेकिन ... लेकिन किसकी कलाई पर राखी बांधूंगी मां ?

मां— देख, उधर देख, (राजू की ओर इशारा करती हैं) राजू की कलाई भी तो खाली है। उसपर भी तो राखी नहीं है।

राजू— (हाथ बढ़ाकर) दीदी !

चमेली— (हंसकर जोर से) राजू भैया ?

(सब मुस्कराते हैं। चमेली एक राखी लेकर चन्द्रमोहन की तस्वीर पर बांधती है। फिर राजू को राखी बांधती है और माथे पर तिलक लगाती है। राजू का गला भर आता है। वह मां के चरण छूकर बोलता है)

राजू— माताजी, हमारा चन्द्रमोहन बहुत ही अच्छा था। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जब चन्द्र ने भारत का मानचित्र बनाया था। मास्टरजी उसे देखकर इतने खुश हुए कि उन्होंने हमें भारत मां की स्तुति का एक गीत सुना डाला। क्यों, चमेली याद है तुम्हें ?

चमेली— हां, खूब याद है, वह भी कोई भूलने की बात है क्या ? उसी दिन से तो भैया को देश-सेवा की लगन लगी थी।

राजू— आह, वह दिन और उसके बाद की सारी घटनाएं मेरी आंखों के सामने चलचित्र की तरह घूम रही हैं।

(पर्दा गिरता है)

द्वितीय दृश्य

(राजू की आंखों के सामने चन्द्रमोहन का सारा इतिहास चक्कर लगा रहा है) —

पात्र—चन्द्रमोहन, मास्टरजी, राजू, चमेली तथा अन्य विद्यार्थी।

(स्कूल का दृश्य है। लड़के नीचे बैठे हैं तथा उनके सामने छोटे-छोटे डेस्क लगे हैं। एक ओर चन्द्रमोहन तथा राजू पास-पास बैठे हैं; इनसे थोड़ा हटकर चमेली बैठी है। सामने

बोर्ड लगा हुआ है जिसपर भारत का मानचित्र लगा है। पर्दा उठने पर मास्टरजी कुछ समझाते हुए दिखायी देते हैं।)

चन्द्रमोहन— मास्टरजी, मैंने नक्शा बना लिया है, यह देखिये।

मास्टरजी— (देखकर) शाबाश चन्द्र, तुम्हारा काम मुझे बड़ा पसंद है।

चन्द्रमोहन— तो मास्टरजी ! देशभक्ति का वह गाना सुना दीजिये। आपने कहा था, नक्शा अच्छा हुआ तो सुनायेंगे।

(मास्टरजी का सामूहिक गाना। आवश्यकता पर सभी बच्चे भी साथ गाते हैं।)

मास्टरजी— इन्साफ की डगर पे, बच्चो दिखाओ चल के
यह देश है तुम्हारा, नेता तुम्ही हो कल के।
दुनिया के रंज सहना, और कुछ न मुंह से कहना
सच्चाइयों के बल पे, आगे को बढ़ते रहना
रख दोगे एक दिन तुम, संसार को बदल के। इन्साफ.....
अपने हों या पराये, सब के लिएं हो न्याय
देखो कदम तुम्हारा, हरगिज न डगमगाये
रस्ते बड़े कठिन हैं, चलना संभल-संभल के। इन्साफ.....
इन्सानियत के सर पर, इज्जत का ताज रखना
तनमन की भेंट रखकर, भारत की लाज रखना
जीवन नया मिलेगा अंतिम चिता में जल के। इन्साफ.....

(अगर फिल्म "गंगा जमना" का यह रिकार्ड चला दिया जावे तो अच्छा है। किसी अच्छे गायक से भी गवाया जा सकता है।)

एक लड़का— (खड़ा होकर) क्यों मास्टरजी, नेता किसे कहते हैं? (मास्टरजी का नेता का अर्थ समझाना, लेकिन मंच पर केवल उनके भाव ही नजर आते हैं आवाज नहीं सुनायी देती, इसके लिए माइक हटा लिया जाय। बाद में यह आवाज सुनायी देती है।)

मास्टरजी— इस समय हमारे देश में बहुत से नेता हैं, जो बराबर यह कोशिश कर रहे हैं कि हमारा देश आजाद हो जाय, अंग्रेज भारत को छोड़कर चले जायं और हमारे देश का शासन हम ही संभालें। हम भी यही चाहते हैं कि हम आजाद होकर रहें।

राजू— तो क्या मास्टरजी अभी हम किसी के गुलाम हैं?

मास्टरजी— हां, इस वक्त हम पर अंग्रेज हुकूमत कर रहे हैं। हमारी आपसी फूट का फायदा उठाकर उन्होंने हमारे देश की हुकूमत की बागडोर अपने हाथ में ले ली। हमारे नेता आंदोलन कर रहे हैं देश को वापस अंग्रेजों से लेने के लिए। कई देशभक्त अंग्रेजों की गोली के शिकार हो गये। (उदास हो जाते हैं तथा आवाज भर्रा जाती है।) कई बालक भी शहीद हो गये, कई मां-बहनों के सुहाग लुट गये, उनकी गोदें उजड़ गयीं। हमारे देश के बालक अभिमन्यु के समान वीर, भक्त

ध्रुव के समान अटल, और श्रवणकुमार की तरह माता पिता के भक्त हैं। वे एक दिन अवश्य भारत से अंग्रेजों को निकालकर प्रजातंत्र स्थापित करेंगे। (जेब से घड़ी निकालकर देखते हैं) बच्चो! देश के लिए जितना हम कर सकें उतना ही कम है। अच्छा, जाओ अब छुट्टी। प्रस्थान। सभी बाहर चले जाते हैं केवल चन्द्रमोहन बैठा सोचता रहता है।)

चमेली— (बाहर से वापस आकर) चन्द्र भैया, आओ चन्द्र भैया। (चन्द्र कुछ नहीं बोलता, रुककर) चन्द्र भैया!

चन्द्र— हूं।

चमेली— चलो न घर पर, माताजी इन्तजार कर रही होंगी।

(चन्द्रमोहन कोई उत्तर नहीं देता)

मेली— (झंझोड़ कर) भैया, ओ भैया, क्या सोच रहे हो? घर चलो न।

न्द्र— (मुंह उठाकर) क्या बात है? मैं कुछ सोच रहा था न?

चमेली— हां।

चन्द्रमोहन— फिर तूने मुझे क्यों छेड़ा? जा, तू अकेली चली जा। मैं नहीं आऊंगा।

चमेली— क्यों, मै अकेली क्यों चली जाऊं? तुम क्यों नहीं जाओगे?

(राजू का प्रवेश)

राजू— तुम दोनों यहां क्या कर रहे हो? चलो घर। माताजी इन्तजार कर रही होंगी। मुझे बाहर खड़े-खड़े इतनी देर हो गयी। अब तक बाहर ही नहीं निकले। चलो।

चमेली— देखो न राजू भैया, कब से कह रही हूं। उठते ही नहीं।

राजू— (चमेली से) चलो, पकड़ो उधर से हाथ, कैसे नहीं उठते हैं?

(दोनों का पकड़ कर ले जाना। पर्दा गिरता है)

नोट—पर्दा गिरते ही नेपथ्य से कुछ नारे सुनायी देते हैं।

नारे—इन अंग्रेजों के अत्याचार नहीं सहेंगे, नहीं सहेंगे।
भारत देश हमारा है यही हमारा नारा है।
देशभक्त दीनदयाल जिन्दाबाद, जिन्दाबाद॥
देशभक्त मौलाना जिन्दाबाद, जिन्दाबाद॥

तृतीय दृश्य

पात्र—नेता दीनदयाल, मौलाना और चन्द्रमोहन।

(देशप्रेमी दीनदयाल का मकान, घर में लगभग कुछ नहीं के बराबर है, कुछ कपड़े डोरी पर पड़े हैं। बीच में एक मेज है, उसके पास ही दो कुर्सियां और एक स्टल रखा है। पर्दा उठने पर दीनदयाल कुछ लिखते हुए दिखायी देते हैं)

(मौलाना का प्रवेश)

नेताजी— आइये मौलाना साहब, बैठिये।

मौलाना— क्यों साहब, काम हो गया?

नेताजी— जी हां, चिट्ठी लिख दी है, आप खुद देख लीजिये।

मौलाना— (पढ़कर) ठीक है। बेहतर होगा अगर यह अभी अभी पहुंचा दी जाय।

(ठीक इसी समय चन्द्रमोहन चुपचाप आकर खड़ा हो जाता है)

नेताजी— मैं भी यही सोच रहा हूं। लेकिन मेरे या आपके जानेसे उनको शक हो जायगा और अपने आदमियों पर अधिक प्रतिबन्ध लग जायगा। इस काम के लिए कोई छोटा बच्चा अधिक अच्छा रहेगा।

मौलाना— मेरा भी यही ख्याल है, किसी बच्चे के भेजने से यह काम आसानी से हो जायगा।

नेताजी— लेकिन बच्चा आयगा कहां से? आपका बच्चा.....ओह.....

मौलाना— (नीचे गरदन करके) वह तो.....वह तो आपके बच्चे के साथ ही शहीद हो गया था।

नेताजी— हां, किसी बच्चे की तो सख्त जरूरत है। बगैर बच्चे के यह काम मेरे और आपके बस का नहीं है।

मौलाना— मुल्क पर जान देनेवाले और भी लाल हैं। चलो, अभी किसी से बच्चा मांगे लेते हैं, दे देगा।

नेताजी— ठीक है, फिर भी इसके लिए वक्त चाहिये और उस चिट्ठी का अभी भेजना जरूरी है।

(चन्द्रमोहन निकट आ जाता है)

चन्द्र— नेताजी, मैं इस काम के लिए तैयार हूं। आज मेरे खून में उबाल आ गया है। मैं अपनी मातृभूमि के लिए जान भी देने को तैयार हूं। बताइये, कौनसा काम है जो एक बच्चे के बगैर नहीं हो सकता? ओह! हम बच्चे भी देश के लिए कुछ काम कर सकते हैं (कुछ जोश से), आपके बच्चे देश के खातिर अपनी जान दे सकते हैं तो क्या देश के लिए मैं कुछ भी नहीं कर सकता? मैं भी देश के लिए अपनी जान दे सकता हूं। काम बताइये, में अपनी जान पर खेल कर भी उसे पूरा करूंगा।

मौलाना— (शाबाशी देते हुए) हिंदुस्तान के ऐसे नौनिहालों पर हमें फख्र है। इस [illegible] तू देश के रुके हुए काम को पूरा करनेवाला फरिश्ता है।

नेताजी— लो यह चिट्ठी, इसीको तुम्हें पहुंचाना है। तुम बैठो, मैं तुम्हें सब कुछ समझाये देता हूं। (कुछ देर तक समझाना)

चन्द्र— अच्छा, इजाजत दीजिये।

मौलाना— और सुनो, वहां खतरा भी है, तुम्हें होशियार रहना है, जहरीली गैसें भी छोड़ी जा सकती हैं।

चन्द्र— मुझे मरने का डर नहीं। मुझे देश के लिए कुछ करना है, बस मैं यही जानता हूं। (प्रस्थान)

[पर्दा गिरता है]

चतुर्थ दृश्य

पात्र—चन्द्रमोहन, पिताजी, मां, चमेली, दीनदयाल और चन्दू।

(चन्द्रमोहन के मकान का वही कमरा जो प्रथम दृश्य में दिखाया गया है। इस बार इतने अधिक चित्र नहीं हैं। रेडियो भी रखा हुआ है। बीच में एक पलंग बिछा है, उसपर चन्द्रमोहन लेटा हुआ है। उसके शरीर पर, आंखों पर पट्टियां बंधी हुई हैं। कमर तक चादर ढकी हुई है। पर्दा उठने पर चन्दू कुछ गुनगुनाता हुआ कमरे में प्रवेश करता है, फिर लेम्प जलाता है।)

चन्द्रमोहन— (उठने की चेष्टा करते हुए) चन्दू दादा, ओ चन्दू दादा!

चन्दू— (दौड़कर पास आकर) का बात है छोटे सरकार, बीबी जी को बुलाऊं?

चन्द्रमोहन— नहीं चन्दू दादा, जरा मुझे बैठा दो (दर्द से दांत भींचता है—चन्दू बिठा देता है) चन्दू दादा, तुमने रोशनी क्यों नहीं की? चन्दू दादा, क्या बात है, इतना अंधेरा क्यों हो रहा है? जरा रोशनी तो जला दो।

चन्दू— सरकार, हम लेंम्प जलाई दियो हैं। आप कहत हो अंधेरो? ना सरकार ना, हम लेम्प जलाई दियो है। लो, एक और जलाई देऊं। (जलाता है)

चन्द्रमोहन— लेकिन मुझे तो कुछ दिखायी नहीं देता है। चन्दू दादा! (एक हाथ आंख पर लगाता है, फिर दर्द से दांत भींचता है) अरे? यह मेरी आंख पर पट्टी किसने बांधी है? इसे खोल दो चन्दू दादा, मुझे कुछ दिखायी नहीं दे रहा है।

चन्दू— नहीं सरकार; डाक्टर मना करता है।

चन्द्रमोहन— खोल दो इसे चन्दू दादा, खोल दो, तुम मेरी बात क्यों नहीं मानते? मुझे कुछ दिखायी नहीं दे रहा है। (पिताजी का प्रवेश)

पिताजी— ना चन्दू ना, जहरीली गैस लगने से तुम्हारी आंखों की रोशनी चली गयी है बेटा! सात दिन बाद पट्टी खुल जायगी। फिर तुम सब कुछ देख सकोगे।

चन्द्रमोहन— मुझे कुछ नहीं हुआ पिताजी, आप पट्टी खोल दीजिये। मुझे सब कुछ दिखायी देने लगेगा। (माताजी का प्रवेश)

मां— अच्छे बेटे, जिद्द नहीं किया करते, बेटा मान भी जाओ।

चन्द्रमोहन— अच्छा मां, पर . . . : (कुछ सोचते हुए) . . . पर नेताजी और मौलाना साहब कहां हैं पिताजी? उनको बुला दीजिये न? मैं उनसे कुछ बात करना चाहता हूं। (आवाज कुछ हल्की पड़ जाती है।)

पिताजी— वे अभी तो तुझे अस्पताल से यहां छोड़कर गये हैं। खैर, बुलाये देता हूं। (चन्दू से) जा चन्दू, नेता दीनदयाल जी और मौलाना साहब को बुला ला। कहना चन्द्रमोहन बहुत याद कर रहा है।

चन्द्रमोहन— पिताजी, आप कहां हैं? माताजी, आप कहां हैं?

दोनों— (एक साथ) हम ये रहे बेटा। कहो क्या बात है?

चन्द्रमोहन— (हाथ से इशारा करके) यहां आइये, मेरे पास बैठिये। चमेली कहां है माताजी!

मां— (बाहर जाते हुए) मैं अभी बुला लाती हूं बेटा।

पिताजी— कैसी तबियत है बेटा ? कहीं दर्द तो नहीं है ?

चन्द्रमोहन— पूरा शरीर दर्द कर रहा है पिताजी ! (रुककर) मुझे लिटा दीजिये पिताजी, अब मुझसे बैठा नहीं जाता। (पिताजी लिटाते हैं—माताजी का चमेली के साथ प्रवेश।)

चमेली— (निकट आकर) भैया, तुमने मुझे बुलाया था, लो मैं आ गयी।

चन्द्र— कहां है चमेली ? यहां आ, मेरे पास बैठ।

चमेली— (बैठ कर चन्द्र के बालों में उंगलियां फेरती हुई) क्या . . . बात है भैया, कहो। रक्षाबन्धन करीब है, मैं बहुत सुंदर राखी बांधूगी, बहुत सुन्दर . . . .

चन्द्र— चमेली ? (बहुत धीरे तथा कठिनता से बोल पाता है।)

पिताजी— बेटा, तूने अभीतक कुछ खाया नहीं।

चन्द्र— (बहुत धीरे) खा . . ने को दि . . . . ल न . . . .ही चाह . . . . .ह . . . . ता पि . . . ता जी। थो . . . थोड़ा . . . गं . . गा ज . . . ल पि . . . पिला दो।

पि. मा.— (एक साथ) क्या हुआ बेटा तुझे ?

पिताजी— (माताजी से) जरा गंगा जल तो ले आओ।

चन्द्र— मे . . . री . . . अ . . च्छी ब . . . हन . . . च . . . मे . . . ली अ . . अपने . . . हा . . हाथ से . . . पि . . . ला दे गं . . . गा जल। (माताजी का गंगाजल लेकर आना)

चमेली— लो भैया (पिलाती है)।

चन्द्र— अच्छा पि . . . ता जी, मा . . ता जी, अं . . .अंतिम नम . . . .स्कार और च . . . मे . . . ली भूल न जा ना अ . . . पने भाई को ही।

(सिर लुढ़क जाता है)

(तीनों एक साथ)

मां— बेटा चन्द्रमोहन (लाश से लिपटकर फूट फूट कर रोती है।)

पिताजी— (गहरी सांस छोड़कर) बेटा चन्द्र ;

चमेली— भैया मेरे प्यारे भैया। अंतिम बार राखी तो बंधा लेते मेरे भैया। (पैरों पर सिर रखकर सिसकती है।)

(नेता जी और चन्दू का हांफते हुए प्रवेश)

नेता दीनदयाल— (चारों ओर देखकर रुंआसा) ओह, समुद्र की उठी हुई लहर शांत हो गयी ! पंछी उड़ गया ! दीपक की ज्योति बुझ गयी ! (लाश पर चादर ओढ़ा हाथ जोड़कर) हे भारत के वीर नौनिहाल! मैं तुम्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं (सिर झुकाते हैं) धन्य है वह भूमि जहां ऐसे बालकों ने जन्म लिया।

पिताजी— (आंसू पोंछते हुए) नेताजी ! मौलाना साहब नहीं आये ?

नेताजी— (उसी स्वर में) वो . . . . वो . . . तो शहीद हो गये।

(तेजी से एकदम प्रस्थान)

॥ पर्दा गिरता है ॥

***

बरसे बादर

बरसे बादर झरमर, झरमर,
बिजली कड़के तड़ड़ तड़ड़ तड़,
बहें हवाएं सनन् सनन् सन्,
पानी की बौछार झमाझम,
झाड़ झीमते मर्मर मर्मर,
गरजे बादर धुड्ड़ धुड्ड़ धुड़,
बरसे बादर झरमर झरमर...

चलो चलें सब छत पर जायें,
उछल उछल कर खूब नहायें,
हम बादल को सखा बनायें,
हम बिजली को सखी बनायें,
बरसे बादर झरमर झरमर...

सभी ओर हरियाली छाये,
मेढ़क टरर टरर टर्रायें,
बरखा ककड़ी-भुट्टा लाये,
खूब मजा खाने का आये,
बरसे बादर झरमर झरमर...

--वीरेंद्रकुमार जैन

दीप जलायेंगे

हम दीप जलायेंगे
जीवन को हंसायेंगे !

समय की दुर्गम घाटी में
हम फूल खिलायेंगे
थके हारे पांव को
नयनों से सहलायेंगे
हम दीप जलायेंगे--!

हमने खाई बहुत ठोकरें
अब ठोकर को ठोकर मारेंगे
मौत की छाओं में भी
कभी न हिम्मत हारेंगे
कण कण में होर जगायेंगे--!

तोड़ फोड़ दो ऊंच नीच की
गली सड़ी यह दीवारें
रोक न पायेंगी हमको
तुफंग तीर तोपें तलवारें
हम शान्ति के फूल खिलायेंगे--!

--केदारनाथ कोमल

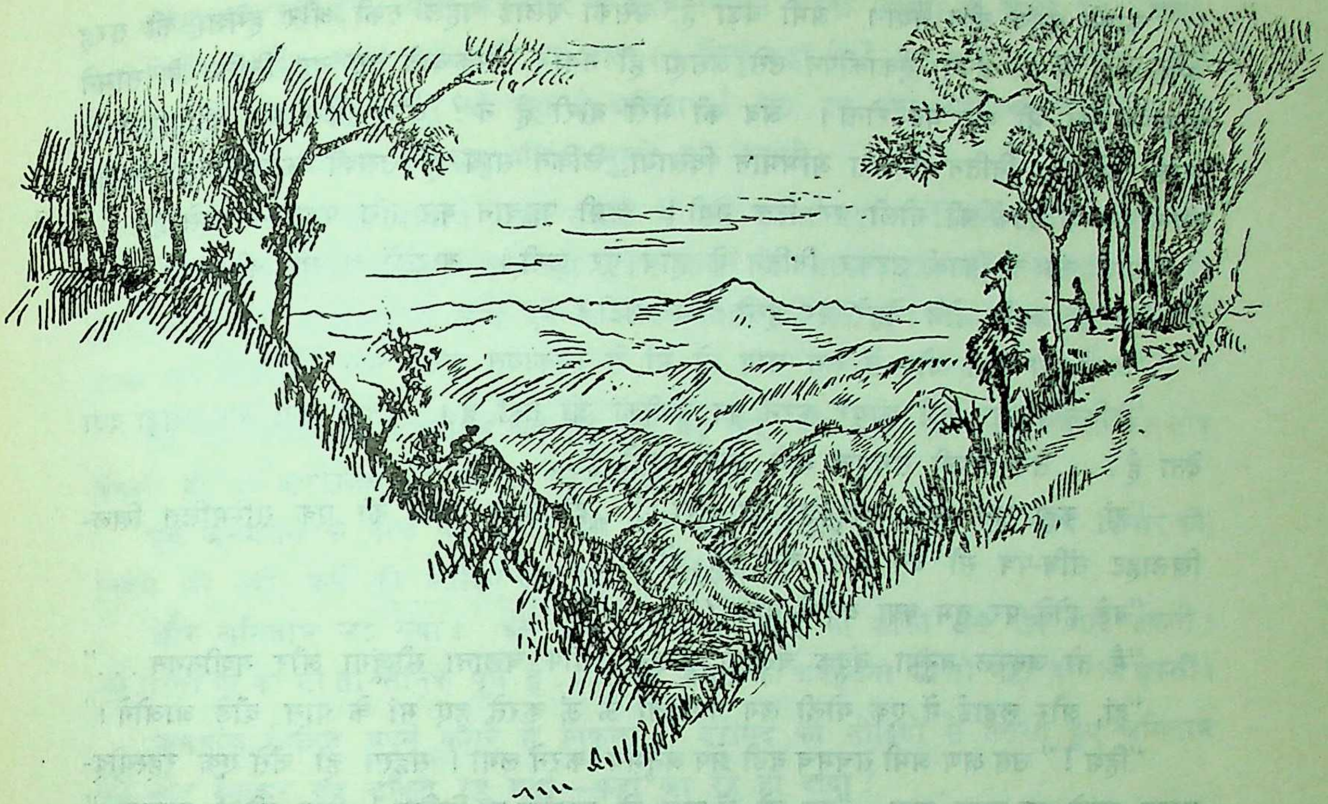

सीमा के प्रहरी

—श्री मीनाक्षी मिश्र

हर घड़ी लड़ाई-झगड़ा। गृहस्थी के सौ कामों के बीच हर मिनट पर दौड़ कर यह देखने के लिए आना कि किसने किसे गिरा दिया, किसे मार दिया....। मां परेशान हो उठती है। सब्जी नीचे रखकर बरामदे में आयी तो वही पहचाना दृश्य। अमी जमीन पर पड़ा रो रहा है और नितिन सहमा हुआ खड़ा है।

"क्या हुआ दुष्टो?"

"मां, मैंने मारा नहीं है। हम लोग सिपाही-सिपाही का खेल खेल रहे थे, अमी को जोर से गोली लग गयी। जब इसे उस कोने में खड़े होने को कहा था तो यह पास आकर क्यों खड़ा हो गया?"

"एक तो पीटता है उसे फिर बातें बनाता है!" मां ने एक तमाचा नितिन के जड़ दिया। अमी की रुलाई थम गयी और नितिन की नये वेग से आरंभ हो गयी।

कर्तव्य-सा पूरा करते हुए मां ने एक चांटा अमी को भी लगाया, "खेल-खेल में जरा सी बात पर रो देता है तो खेलता ही क्यों है, दुष्ट? बड़ा भाई होकर रोते शर्म नहीं आती? जी भर कर रो लो दोनों। अब नालिश तो नहीं करोगे कम से कम"—निश्चित होकर मां रसोईघर की ओर चली गयी।

काफी समय बीत गया। अमी बड़ा है, उसकी रुलाई पहले रुकी और हमेशा की तरह कुछ क्षणों में ही अपना एकाकीपन उसे असह्य हो गया। सकुचाते हुए वह नितिन के सामने झुका—"बंद भी कर यह रोना। अब की मेरी बारी है न? बोल किस रंग की गोली से मारूं तुझे?" नितिन ने जरा अभिमान दिखाया, लेकिन साथ ही उसकी ललचाई सी निगाह लाल रंग के कार्क की गोली पर टिक गयी। अमी पहचान कर हंस पड़ा—"इससे?"

लाल रंग की कार्क उड़कर नितिन के हाथ पर लगी। बादलों के धूप की तरह रुलाई के बीच ही उसके भोले चेहरे पर हंसी खिल उठी।

"अपने को जरा जोर से लग जाय तो मां से शिकायत करने चल देते हैं।"

"लेकिन नितिन तुझे फायर करने का सलीका जो नहीं है। इतना कस कर घोड़ा दबा देता है....तेरी गोली सचमुच बड़ी चोट करती है.....।"

"हां, कहां खून बहने लगा देखूं तो जरा?" दो शिशु कण्ठों की एक सम्मिलित खिलखिलाहट संधि-पत्र सी बन गयी दोनों के बीच।

"बड़े होने पर तुम क्या बनोगे दादा?"

"मैं तो जनरल बनूंगा, बंदूक चलाना सीखूंगा, तोप चलाना सीखूंगा और मशीनगन..."

"हां, और लड़ाई में एक गोली लग गयी तो ऊं ऊं करते हुए मां के पास दौड़े आओगे।"

"हिश!" उस क्षण अमी सचमुच बड़ी झेंप अनुभव करने लगा। सहसा ही जैसे एक रहस्योद्घाटन करते हुए उसने कहा—"तब तो मैं बड़ा हो जाऊंगा न नितिन! बाबू जी के बराबर।" नितिन ने स्वीकार कर लिया। अमी ने प्रश्न किया—"और तुम क्या बनोगे नितिन?"

नितिन अपनी शर्मीली आंखों से देखकर मुस्कराया। "तुम जब जनरल बनोगे न तब मुझे अपनी सेना में जगह दे देना। मैं सैनिक बनूंगा।"

"नहीं" अमी ने सोच समझकर गंभीरता से निर्णय दिया, "तुझे मैं मेजर बना दूंगा। पर तू भी तो जरा जरा-सी बात पर रोना शुरू कर देता है। मेजर ऐसे थोड़े होते हैं।"

"लेकिन दादा, जब तुम बाबू जी के बराबर हो जाओगे तब मैं भी तो बड़ा हो जाऊंगा?"

समस्या का यह हल पाकर अमी खुश हो गया। "यह तो मैं भूल ही गया था। ठीक है—मेजर नितिन और जनरल अमी।" कल्पना के किले पर तिरंगा ध्वज लेकर रक्षा की दृढ़ प्रतिज्ञा और विश्वास को लेकर अमी खड़ा है। छोटा सा अमी एक दिन सैनिक बनेगा....।

⁂

कर्त्तव्य का गंभीर नाद तरुण अमिताभ के कानों में गूंज रहा है। मध्य रात्रि के सन्नाटे में जाने कौन पुकार रहा है—"उठ अमिताभ, देश तुझे पुकार रहा है। माता संकट में पड़ी हुई है। शत्रु भारत के दरवाजों पर प्रहार कर रहे हैं और द्वाररक्षक! तू सोया पड़ा है?"

विह्वल होकर अमिताभ उठ बैठा। पूर्णिमा की महान् रात्रि के गंभीर सन्नाटे में चांदनी से स्नात वातावरण सहसा उसे ग्रीष्म की दोपहरी की चिलचिलाती धूप से भरा लगने लगा। किसका आह्वान है? आतुरताभरी दृष्टि से अमिताभ ने खिड़की से बाहर झांका। उसके गोरे चेहरे पर विचारों का घोर द्वंद्व स्पष्ट दिखायी देता था।

बारह बज रहे हैं। पास के कमरे में छात्र नितिन अपनी साधना में व्यस्त है। काश, वैसा निश्चिंत और व्यस्त मन अमी पा जाता। किंतु कहां से? हर क्षण वह अशांत पुकार तेज होती जा रही है।—"तू सो रहा है अमिताभ! उठ, यह समय सोने का नहीं है। तू सीमा का प्रहरी सोयेगा तो शत्रु भीतर घुसते चले आयेंगे। जाग....."

और अमी नहीं सो पाया। उस सन्नाटे में उसे उठना पड़ा। कितने दिनों से वह इस पुकार को सुनकर भी अनसुनी कर रहा है। आंखों के सामने वृद्ध और असहाय मां की आकृति उसे इस आह्वान को भुला देने के लिये विवश कर देती है। किंतु अब इसे और नहीं टाला जा सकता।

मां की ममता के बन्धनों में कैसे पैर बढ़ बढ़ कर रुक जाते हैं! इन बंधनों को तोड़ फेंकना ही तो अपराजेय की क्षमता का द्योतक होगा।

इस असमंजस के बीच वह पुकार इस क्षण और भी तीव्र हो उठी....सोच विचार की, निर्णय की नहीं, कर्म की प्रतीक्षा कर रहा है अमिताभ।

और अमिताभ उठ गया। इस क्षण दुनिया की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। वह धरती मां का भी तो सैनिक पुत्र है....उस ममता की अवहेलना भी तो नहीं की जा सकती।

अचानक नितिन अपने कमरे से निकला। बरामदे की सीढ़ियों से उतरते हुए अमिताभ की ओर देखकर वह चकित रह गया—कहां जा रहे हो दादा?

अमिताभ मुड़ा। "देख नितिन", उसने कोमल स्वर में कहा, "मुझे मत रोक। देश मुझे बुला रहा है, भारत माता मुझे पुकार रही है। मैं जा रहा हूं। मां का ध्यान रखना।"

पल भर में नितिन अमी के पास आकर खड़ा हो गया—"पर तुम अकेले कैसे चल दोगे दादा? भारत मां का बेटा मैं भी तो हूं। क्योंकि मैं तुम्हारा सगा भाई हूं....नितिन तुमसे दूर नहीं हो सकता।"

अमी ने स्नेह से उसकी ओर देखा। "पर नितिन! दोनों एक साथ चल देंगे तो मां कैसे जिएगी? उसे भी तो कोई सहारा चाहिये। तुम बाद में आना, पहले मुझे जाने दो।"

"ऊं हूं..." नितिन दृढ़ था।

हताश होकर अमी रुक गया। "इस जिद से तो हममें से कोई भी नहीं जा सकेगा। देश की पुकार वैसी ही धरी रह जायगी।"

"चलेंगे तो साथ ही, दादा।"

सहसा दोनों के बीच भारत माता ही जैसे साकार रूप धारण कर खड़ी हो गयी हो। रोग-शीर्ण दुर्बल काया, श्वेत केश ठीक हिमाद्रि मुकुट सरीखे, मुख पर एक मुस्कराती आभा।

"मेरे बेटे! तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं? क्या मैं तुम दोनों के कर्तव्य पथ में बाधा बनूंगी? मैं तो मां हूं। जिसका कर्तव्य ही है पुत्रों का पथ निष्कण्टक करना। स्वयं कंटक बन गयी तो मां कैसी!"

विस्मित अमिताभ एकटक मां के चेहरे की ओर देखता रह गया। गौरव की शत शत ज्योतियां सी जगमगा रही थीं उनके मुख पर। नितिन आशाभरी दृष्टि से कभी उन्हें और कभी अमी को देख लेता।

मां का आदेश था, वाणी थी—"जाओ मेरे बच्चो, मैं कर्त्तव्य का मार्ग दिखाकर तुम्हें विदा करती हूं। देश की रक्षा के लिए जियो यही तुम्हारी मां की सीख है और यही है उसकी अभिलाषा। विजयश्री का सेहरा बांधकर लौटना। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में प्राणों को रोके रखूंगी . . . ."

अमी ने कुछ न कहकर मां के पैरों पर सिर टेक दिया। नितिन भी झुक गया। पर सिर उठाने पर हाथ के शीतल स्पर्श का अनुभव करने के बाद देखा तो मां हट गयी थी। कहीं आंखों के आंसू बच्चों के कर्त्तव्य-पथ को गीला न बना दें। इस अमंगल के भय से वह हट गयी थीं।

अमी आगे आगे बढ़ चला और पीछे पीछे अनुसरण करता हुआ नितिन।

⁂

कंधे पर लटकते बड़े से थैले में कारतूस थे, हाथ में वजनी राइफल थी। दूसरे हाथ से चट्टानें पकड़ पकड़ कर ऊपर की ओर बढ़ रहा था अमिताभ। उसपर एक सतर्क दृष्टि रखे हुए नितिन भी ऊपर की ओर चढ़ रहा था। पीछे-पीछे उसके और साथी भी थे।

शिशिर की कांपती सिहरती सी हिमस्नात एक रात। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी की चांदनी हिमशिलाओं के पर्दे के पीछे आकाश को जरा सा गीला भर कर पायी थी। सन्नाटे में और भी अधिक रहस्यमय बनकर घिरते अंधेरे में काली काली बर्फीली चट्टानें मौन, निश्चेष्ट प्रेतों के कंकालों की तरह स्थिर थीं। उस उजाड़, वीरान प्रदेश के भयावह सन्नाटे को केवल अमी तथा उसके साथियों के फौजी बूटों की कर्कश आवाजें ही तोड़ पा रही थीं।

⁂

अमी को कल से ज्वर है। नितिन ने चलने के पहले आज भी कहा था—"शरीर पर इतना अत्याचार मत करो दादा? सह नहीं सकोगे।"

अमी हंस पड़ा—"संसार भर की व्याधियां भी इस शरीर का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं, नितिन! रोगक्लांत होकर बिस्तर पर पड़कर प्राण दे—ऐसे पाप अमी ने नहीं किया है।"

सचमुच अमी को संदेह होता है कि मनुष्य की शक्ति मृत्यु के सामने कैसे हार मान लेती है? आये मृत्यु उसके सामने, देखेगा वह कि वह किस तरह उसकी सारी शक्तियों पर अधिकार कर लेती है और जीवन से पराजित अमी किस तरह आत्मसमर्पण कर देता है।

बस बढ़ते जाना ही सैनिकों का आखिरी लक्ष्य रह गया है। भारत के प्रहरी बढ़े चले जा रहे हैं। मन में उत्साह है, कदमों में गति और हृदयों में जोश संजोये चल रहे हैं ये।" "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की मान्यता पर मर मिटने को प्रस्तुत वीर कूच कर रहे थे।

⁂

अंधकार बादलों के एक रहस्यमय पर्दे की भांति घिर गया है जिनमें बिजलियां बनकर संगीनें और राइफलें चमक रही हैं। आगके सैंकड़ों शोले क्षण क्षण पर भड़क कर गायब हो जाते हैं और कर्तव्य की मान्यताओं पर बलि होनेवाले सैनिकों के हृदयों से गगनभेदी जयनिनाद निकलता है—"विजयी भारत में पराधीनता का, पराजय का कलंक नहीं लगने दिया जायगा।"

अमी को एक पुरानी बात याद आ रही है। सोमनाथ मंदिर के रक्षक ने विधर्मियों का मंदिर में प्रवेश निषेध असफल समझकर शत्रु के खड्ग के सामने मस्तक झुका दिया था।... आज भीषण संहार के बीच अपनी पराजय की कल्पना से वह अस्थिर हो उठा—क्या उसे महामात्य की भांति बलि देकर प्रण की रक्षा करनी होगी? पर क्या इस भांति प्रण की रक्षा हो भी सकेगी? प्रहरी का कर्तव्य जीवन दान करने के पश्चात् ही तो समाप्त नहीं हो जाता। देश के संदेश को उसे ग्रहण करना है.....वह प्रहरी है। अंतिम क्षण तक उसका कर्तव्य है रक्षा।

नितिन के हाथ में राष्ट्रीय ध्वजा है। जिस ध्वजा ने कभी झुकना नहीं जाना, जो देश के मंदिर की प्राण-पताका है, वह प्रहरी का अजेय शस्त्र भी बन गयी है। इसे नितिन झुकने नहीं दे सकता। एक हाथ से उसकी राइफल आग उगल रही है, दूसरी ओर से अमी, एक साधारण सैनिक, चेहरे पर जनरल से कहीं अधिक दृढ़ भाव लिये लड़ रहा है। उसके एक हाथ में राइफल है और एक में पिस्तौल। इन हिसक चेहरों की ओर देखकर नितिन को लगता है—हिमप्रदेश के पहाड़ी भेड़ियों की तरह इनकी लपलपाती जीभ की रक्त-तृष्णा, मांस की भूख कभी शांत नहीं होगी। विधाता ने किसी भूल से इन जैसे भेड़ियों को मानवरूप का वरदान दे दिया है।

एक गोली अमी के घुटने में लगी, पर उसके चेहरे पर मुस्कान खिल उठी। मन में बीस वर्ष पहले के नितिन के शब्द याद आये—"एक गोली लगी तो ऊं ऊं करते हुए मां के पास दौड़े आओगे"।

नितिन प्राणपण से अमी तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है। उसके मन में अमी के शब्द गूंज रहे हैं—"मैं जनरल बनूंगा, तो तुझे मेजर बना दूंगा।"

एक गोली सनसनाती हुई अमी की पसली में धंस गयी। रक्त से फौजी वर्दी तर होने लगी पर उसके चेहरे पर वही दृढ़ मुस्कान थी। उस मुस्कान में अनायास ही एक नयी गति सी आ गयी। उसके घुटने अब थर-थर कांप रहे थे, पर हाथों में दूना जोश आ गया था।

घुटने कांपे और वह जमीन पर गिर गया। पर इतनी सी अवधि में उसके हाथ कम से कम दस ख़ूनी भेड़ियों को सुला चुके थे।

नितिन पास नहीं आया। एक प्रहरी आज देश की पुकार की अवहेलना करके सो गया। नितिन को नहीं सोना है। वह भी सो जायगा तो रक्षा कैसे होगी?

पीछे से सहायता के रूप में फौज आ गयी थी। नितिन लड़ रहा था। उसका जनरल सो चुका था पर 'मेजर' अपने कर्तव्यों को कैसे भुला दे?

⁂

रक्तस्नात भूमि पर सोया हुआ है अमिताभ। उसके खुले हुए से नेत्रों में एक आदेश होठों की मौन जड़ता में एक संदेश है, "सोये प्रहरियो! जागो, देश तुम्हें पुकार रहा है।"

स्तब्ध नितिन देखता रह जाता है—"सबको जगानेवाले प्रहरी, इस क्षण तुम क्यों सो गये हो?"

"नितिन, अपनी मां का ध्यान रखने को आज मैं तुझ से नहीं कहूंगा क्योंकि स्वयं उसने हमें देश की आन पर मिटने का आदेश दिया है पर जननी जन्मभूमि को मत भुला देना... रक्षकों को जगाओ.... पवित्र प्रांगण पर शत्रु के पैरों की धूल न पड़ने पाये...."

सूनी घाटियों में गूंजती सी हवा नितिन को संदेश दे रही है।

कभी न झुकनेवाली राष्ट्रीय ध्वजा उसके हाथ में है। एक हाथ में है राइफल और होंठो पर भारत के मंदिर के हर प्रहरी के लिए एक संदेश, "जागो सीमा के प्रहरियो, समय तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है; देश तुम्हें पुकार रहा है।"

* * *

हँसो

किरणें हंस दीं खिल खिल कर, सोने की निधियां बिखरीं,
चांद हंसा खिलखिल कर, दिशि दिशि नदी दूध की उमड़ी।
तारे हंसे झिलमिलाकर, मोती छितरे कण कण में,
फूल हंसे दिल खोल, खजाना भरा सुगंध पवन में।
पंछी हंसे मधुर रव से, बज उठी बांसुरी वन में,
झरने झरझर हंसे, परी चांदी की झरी विजन में।
नदियां हंसती, उछला पड़ता, लहरों का सुंदर मन,
धवल हिमालय हंसता, लेती चोटी नभ का चुंबन।
नन्हें बच्चो, तुम भी हंस कर जगती का मन लूटो,
नन्हें उर, नन्हें अधरो तुम हास्य-स्रोत बन फूटो।

—सुमित्रा कुमारी सिन्हा

*
* *

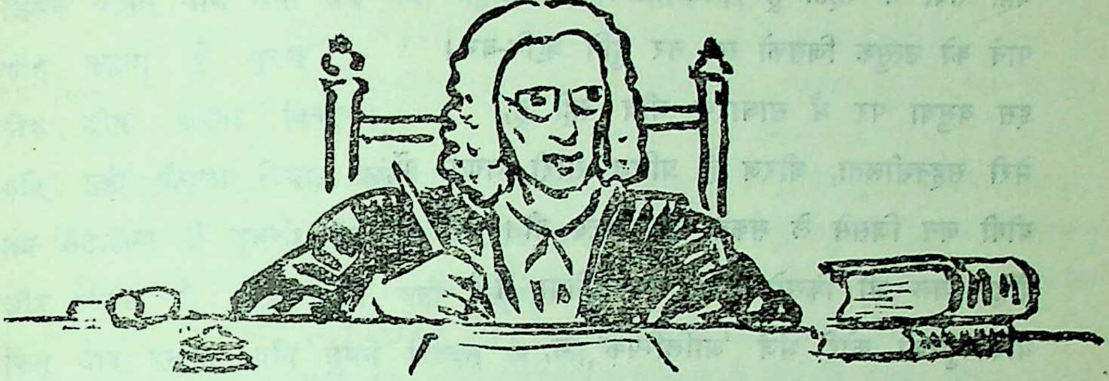

रासभो गर्दभश्चैव खरो वैशाखनन्दनः

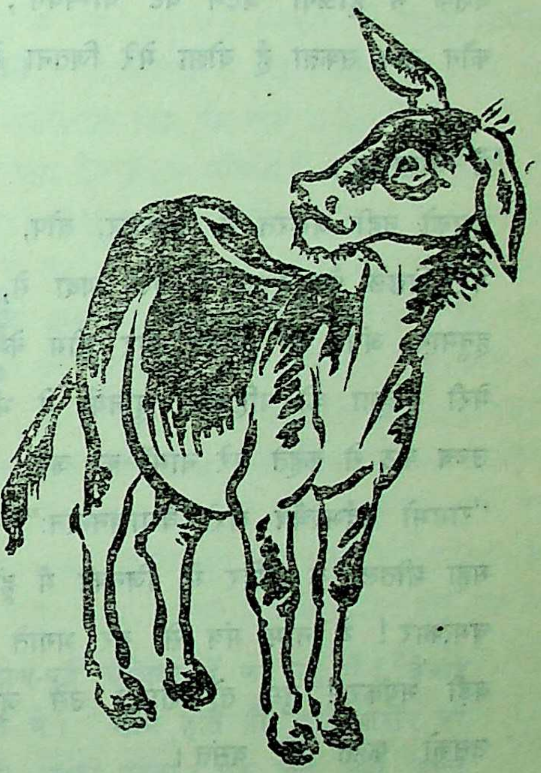

मैं गदहा हूं, लोग मुझे कहते हैं मूरख।
बच्चो ! मैं देता हूं तुमको जज की कुर्सी,
तुम बतलाओ, मैं मूरख या कहनेवाले स्वयं मूर्ख ?
मैं भावुक हूं, कवि हूं, प्रेमी।
जब चांदनी छिटकती भू पर,
मेरी काव्यमयी वाणी है फूट निकलती मेरे उर से।
लोग समझते चिल्लाता मैं जोर जोर से बिना अर्थ के,
किंतु सुनो तुम,
ऊंचे स्वर से मैं पुकारता अपने प्रिय उस जाति-बंधु को,
पड़ता जो मुझको दिखलाई चन्द्र-प्रांत में।

तुमने भी तो देखा होगा काला धब्बा चन्द्र-भूमि में,
वह मेरा स्वर्गिक स्वरूप है, कहते जिसको 'आर्च-टाइप'* हैं।
वहां सदा मैं रहता हूं स्थित दिव्य हर्ष में,
पाने को उत्सुक जिसको सुर नर मुनि ऋषि-वर।
इस वसुधा पर मैं साधारण जीव नहीं हूं,
मेरी सहनशीलता, धीरज है प्रसिद्ध सारी जगती में,
योगी जन जिससे ले सकते पाठ नित्य ही।
दैहिक बल भी किससे मेरा कम दुनिया में?
यदि मुझको कोई भेजे 'आलिम्पिक' में,
बेशक मैं होऊंगा 'बैटंम वेट चैम्पियन';
कौन उठा सकता है बोझा मेरे जितना मेरे कद का?

मैं योद्धा हूं।
मुझको नहीं जरूरत है तलवार, तोप, बन्दूक, लगुड़ की;
मेरे पिछले पैर युगल हैं बली गदा से,
हनुमान, अंगद औ' पांडव वीर भीम के।
मेरी महिमा को पहिचाना मुनियों ने भी
उच्च कंठ से कहते मेरे नामों का जय:
"रासभो गर्दभश्चैव खरो वैशाखनन्दनः", शुद्ध देव-भाषा में,
महा शीतला के मंदिर में, जिनकी मैं हूं दिव्य सवारी
चमत्कार! ये नाम मंत्र से, दूर भगाते बीमारी जो
बड़ी भयंकर! तुम तो शायद उसे जानते,
उसको कहते हैं वसंत।
औ' क्षयी रोग; मेरी गदही का पय पीने से होता क्षय है।

सुन ली तो तुमने दलील मेरी सारी यह खूब ध्यान से?
तुमको बैठाया है मैंने न्याय-मंच पर,
अब बतलाओ: मैं मूरख या कहनवाले स्वयं मूर्ख?

---

*इस जगत् के सभी चर-अचर, प्राणियों तथा अप्राणियों का सूक्ष्म जगत् में एक आदर्श स्वरूप (Arch type) होता है, जहां वे पूर्ण होते हैं।

भावुक , कवि, प्रेमी, प्रतीक आनन्द हर्ष के,
धीर, सहिष्णु, बली, योद्धा का,
जिसके पावन नाम तथा तन मंत्र, महौषध महा व्याधि के,
कोई कहता है मूरख ?
ठीक ठीक करना विचार।
यदि सही फ़ैसला दिया, अहो !
तब बैठाऊंगा मैं तुमको निज उच्च पीठ पर,
और चलूंगा ले तुमको तुम जहां कहोगे।
किंतु याद रखना, यदि तुमने रिश्वत ले ली,
और फ़ैसले में गड़बड़ की
तो मेरे पिछले पांव बली हैं भीम-गदा से।

--व्रजनन्दन

* * *

दूसरे महायुद्ध के समय अमरीकी सैनिक दक्षिण-पूर्व एशिया में लड़ रहे थे। बेचारे शत्रु की अपेक्षा मच्छरों से ज्यादा तंग रहते थे। शाम होते ही सारे शरीर पर क्रीम लगानी पड़ती और मसहरी में बंद हो जाना पड़ता। एक रात कहीं जुगनू उड़ते दिखाई दिये। नगरों से आये लड़कों ने कभी जुगनू नहीं देखे थे, उनमें से एक चिल्ला पड़ा—हे भगवान ! अब पूरी मुसीबत आ गयी। हम लोगों को अंधेरे में छिपा हुआ देखकर मच्छर टार्च ले आये हैं।

आश्चर्यजनक पर सत्य

—श्री भूदत्त

आजकल परमाणु या ऐटम के बारे में कौन नहीं जानता। ऐटम बम, एटामिक रीएक्टर इत्यादि शब्द सभी ने सुने होंगे। अब तो आधुनिक वैज्ञानिक ऐटम के युग को भी पीछे छोड़कर बहुत आगे बढ़ चुका है। एक तरफ तो वह जड़तत्त्व के अधिक से अधिक क्षुद्र कण के बारे में आश्चर्यजनक शोध करने में लगा हुआ है और दूसरी तरफ पृथ्वी भी उसे अपने रहने के लिए छोटी प्रतीत हो रही है इसलिये वह अपनी सीमा को चांद, मंगल इत्यादि नक्षत्रों तक बढ़ाना चाहता है।

विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में जितनी प्रगति पिछले ५० वर्षों में हुई उतनी शायद ५०० वर्षों में भी नहीं हुई थी। हमें इस बात का सहसा उस दिन पता चला जब अमेरिका ने जापान के विरुद्ध लड़ते हुए हिरोशिमा पर हवाई जहाज से ६ अगस्त १९४५ को पहला ऐटम बम गिराया। इस बम के विस्फोट से शहर का चार वर्ग मील भाग एकदम नष्टभ्रष्ट हो गया। ३४३००० नगरवासियों में से ६८००० जल कर राख हो गये और ६९००० जख्मी हुए। शहर का ६७ प्रतिशत भाग एकदम बरबाद हो गया।

भला जहां यह मान लेना कठिन हो कि एक चींटी जैसा क्षुद्र जीव हाथी को मार गिरा सकता है तो यह कैसे माना जा सकता है कि ऐटम से, जो इतना छोटा होता है कि आज तक किसी ने उसे आंखों से देखा तक नहीं, इतने अधिक जानोमाल की हानि हो सकती है! यह एक ऐसा रहस्यमय अति लघु कण है कि इसके कारण सूर्य में जलती हुई अग्नि के तापमान की उत्पत्ति पृथ्वी पर की जा सकती है। और इसका परिणाम——विनाश के क्रूर दैत्य का सब कुछ जला देनेवाला ताण्डव नृत्य—और फिर न रहेंगे जीव-जन्तु और न रहेंगे पेड़-पौधे, रहेगी केवल राख।

और अब तो वैज्ञानिक ऐटम बम से भी कहीं आगे जा चुके हैं। १९५० में उन्होंने एक और नये प्रकार का बम तैयार किया जिसको हाइड्रोजन बम वा थर्मोन्युलीयर बम कहते हैं। १९५८ में अमेरिका ने इसका प्रयोग किया तो इससे इतना भारी बिस्फोट हुआ कि एक पूरा द्वीप ही गायब हो गया, द्वीप के स्थानपर १७५ फुट गहरा और एक मील व्यास का छिद्र बन कर रह गया। इस प्रकार के बम को आजकल इतना उन्नत कर लिया गया है कि इसका प्रभाव हजारोंगुना अधिक हो गया है।

यह सब अरब देश के मछियारों और परियों और जिनों की कहानियां नहीं हैं अपितु प्रयोग द्वारा स्थापित सत्य है। यदि एक छोटी सी शीशी में से एक जिन का जन्म हो सकता है तो ऐटम में से भी एक असीम शक्ति की उत्पत्ति हो सकती है। यह विज्ञान का वह युग है जहां कुछ भी असंभव नहीं लगता। ऐसे ऐसे चमत्कार किये जा चुके हैं जिनके बारे में स्वप्नों में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। ऐटम द्वारा फेंकी जानेवाली किरणों से करोड़ों

और अरबों साल पुराने पत्थरों की आयु को पहचाना जा सकता है, बहुत सी गंभीर बीमारियों से छुटकारा पाया जा सकता है। यहां तक कि खोटी धातु को सोने में परिवर्तित किया जा सकता है। ऐटम की शक्ति से विमानों को बहुत तेजी से उड़ाया जा सकता है। इतना लघु होने पर भी ऐटम मछियारे के जिन्न के समान अति शक्तिशाली है। इस पर काबू पा लेने से हम इसको इच्छानुसार काम में ला सकते हैं। इसका बुरा प्रयोग भी हो सकता है और अच्छा भी; यदि हम चाहें तो इसे अपना मित्र बना सकते हैं और यदि चाहें तो अपना शत्रु। इसकी खोज भस्मासुर को मिले वरदान के समान है। इससे हम अनेक शत्रुओं को नष्ट कर सकते हैं और कठिनाइयों को कम कर सकते हैं या इसके विपरीत अपने आपको ही भस्म कर सकते हैं। इस जादू के पिटारे का अंत क्या होगा यह हम पर ही निर्भर है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अभी तक किसी ने भी ऐटम को नहीं देखा है। फिर भी यह प्रश्न तो मन में उठता ही है कि एक वस्तु चाहे कितनी भी छोटी क्यों न हो, उसकी लंबाई-चौड़ाई कुछ तो होनी चाहिये। वैज्ञानिक भी सदा यही चाहता हैं कि जिस चीज का वह वर्णन करे उसको वह माप-तोल द्वारा सिद्ध कर सके। इस लिये वर्षों से वैज्ञानिक ऐटम के विस्तार की खोज में लगे रहे। इस विषय में जो सामग्री प्राप्त हुई उसका हम बिना कठिन अंकों का प्रयोग किये इस प्रकार अंदाजा लगा सकते हैं:

मान लो ऐटम को मोती की तरह हार में पिरोया जा सकता है। एक लड़की ऐटम द्वारा एक २५ इंच लंबा हार बनाने लगती है। वह बनाने में बहुत तेज है और बिना रुके दिन-रात सालों तक काम कर सकती है। यदि वह एक सैकेंड में एक ऐटम पिरोती है तो उसको अपना २५ इंच लंबा हार बनाने में २०० साल लग जायेंगे। इससे यह अंदाज लगाया जा सकता है कि ऐटम कितना छोटा कण है। यह माना जाता है कि ऐटम आकार में गोल है और वैज्ञानिक इसके व्यास को बहुत ही शुद्धता से माप सकते हैं।

ऐटम केवल एक प्रकार का ही नहीं होता। यह माना जाता है कि सब मिलाकर १०२ प्रकार के ऐटम हैं जिनमें से ९८ ऐटमों को अच्छी तरह से जान लिया गया है। एक की गोलाई की दूसरे से तुलना की जा सकती है। ऐटमों का असली भार अभी तक मालूम नहीं किया जा सका है किंतु यह कहा जा सकता है कि एक ऐटम किसी अन्य ऐटम से कितना भारी अथवा हल्का है।

यह नन्हीं सी वस्तु न जाने कितने समय से मनुष्य की पहुंच से बाहर थी। वास्तव में ऐटम का अस्तित्व केवल मनुष्य से पहले ही नहीं अपितु इस पृथ्वी से, जिस पर मनुष्य वास करता है, इससे भी अधिक पहले स्थापित हो गया था। इससे पहले संसार में किसी भी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हुई। हमारे इर्द-गिर्द जो कुछ भी है वह ऐटमों से बना है: खाने की वस्तुएं, पहनने के कपड़े, किताबों के कागज जो कुछ भी हम देखते हैं, स्पर्श करते हैं, सब बहुत से ऐटमों के संघटन से बने हैं। संसार की अनन्त प्रकार की वस्तुएं केवल १०२ प्रकार के ऐटमों से बनी हैं।

ऐटम एक लघु वस्तु तो है ही किंतु इनकी संख्या असीम है। जरा सोचिये, आपके एक बार सांस लेने में आपके शरीर में कितने ऐटम अंदर जाते हैं और सांस निकालने में कितने

बाहर आते हैं। साधारण स्थिति में एक मनुष्य आधे लिटर के लगभग हवा फेफड़ों में लेता और बाहर निकालता है। इसका अर्थ यह है कि एक मिनट में १६ बार आप २५,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० ऐटम अंदर ले जाते हैं। अंदाजा लगाइये कि यह कितनी बड़ी संख्या है। इनमें केवल २१ शून्य हैं! वास्तव में यह बहुत बड़ा अंक है। इसका सही सही अंदाजा मुट्ठी भर तकनीकी विशेषज्ञ (स्पेशलिस्ट) ही लगा सकते हैं। लेओनारदो द विंची प्रसिद्ध वैज्ञानिक और कलाकार थे। उनकी मृत्यु १५१९ में हुई। तब उनकी आयु ६७ साल की थी। इन वर्षों में एक मिनट में १६ बार २५,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० की दर से उन्होंने ऐटमों को सांस द्वारा अपने फेफड़ों में ले जाकर बाहर निकाला होगा। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में ६७×३६५×२४×६० बराबर ६००,०००,००० बार २५,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० ऐटमों को फेफड़ों से बाहर निकाला होगा। क्या ऐसा हो सकता है कि जो हवा हम अपनी सांस में अंदर ले रहे हैं उसमें एक ऐसा भी ऐटम हो जो इस महापुरुष के फेफड़ों के अंदर गया हो। इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है: हमारी प्रत्येक सांस की हवा में कम से कम २० अरब ऐसे ऐटम हैं जो इन महान् व्यक्ति के फेफड़ों में गये थे। यह अविश्वसनीय पर आश्चर्यजनक उत्तर है, परंतु है सत्य। विंची के समय से सारी की सारी हवा का कितनी बार मंथन हो चुका है। तूफान, आंधी, व्यापारिक हवाओं इत्यादि ने ऐटमों को पृथ्वी के चारों ओर अंतरिक्ष में बिखेर दिया। इस उदाहरण का देना ऐटम के अपरिवर्तनीय होने के कारण ही संभव हो सका है। जो ऐटम विंची के फेफड़ों में गये थे वे अब भी मौजूद हैं। उनका नष्ट होना एक और परमाणु बम का विस्फोट होगा।

◆ ◆ ◆

एक बार की घटना है। प्रसिद्ध संगीतज्ञ ओंकारनाथ ठाकुर को नैपाल से निमंत्रण आया। वे काठमंडू जा पहुंचे। महाराज के दरबार में गाने का कार्यक्रम बना। सब लोग उपस्थित हुए। महाराज भी आन विराजे। महाराज के सचिव ने ओंकारनाथ से पूछा—"आपके गुरु का नाम क्या है?" इन्होंने बताने से इंकार कर दिया। सचिव ने कहा—हमारे यहां प्रथा है कि जब कोई गाने आता है तो घोषणा की जाती है कि अमुक के शिष्य अमुक का गान होगा। ओंकारनाथ ने झट कहा—तो साहब मैं यह चला। मैं गुरु के भारी-भरकम नाम के आधार पर ख्याति नहीं चाहता। आप मेरा गाना सुनिये। पसंद आये तो गुरु का नाम अवश्य बताऊंगा और गाना अच्छा न हुआ तो गुरु के नाम पर बट्टा लगाए बिना मुंह छिपाकर भाग जाऊंगा।

महाराज को बात पसंद आ गयी। गाना हुआ। सब मंत्रमुग्ध बैठे थे। वाह वाह कहने का भी होश न रहा। गान के अंत में श्री विष्णु दिगम्बर के शिष्य ओंकारनाथ ने सब को नमस्कार किया और बैठ गये।

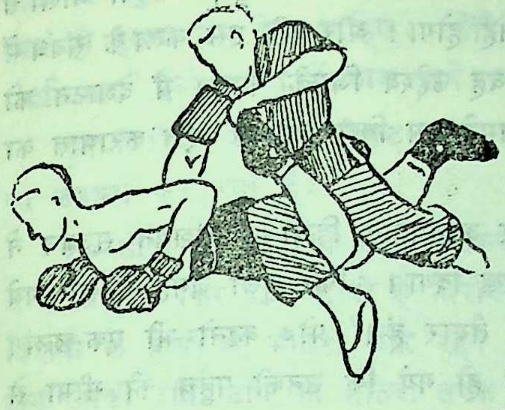

जुजुत्सु सीखो

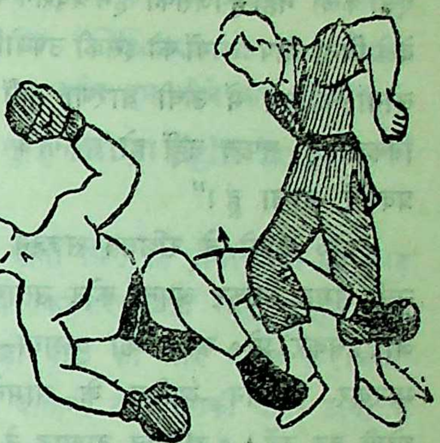

बाक्सिंग बनाम जुजुत्सु

—श्री अनिरुद्ध सरकार

एक मजेदार कहानी सुनो ! कहानी काल्पनिक नहीं है अक्षरक्षः सत्य है—वास्तविक घटना है। यह घटना उन्नीसवीं सदी में एक अमेरिका जानेवाले जहाज में घटी थी। जहाज की डेक पर दस बारह व्यक्ति बैठे थे सभी श्वेतांग यूरोपीयन सज्जन थे। केवल एक सज्जन थे जापानी। जापानी सज्जन नाटे से दुबले पतले शरीर के थे, अन्य व्यक्तियों के आगे बौने से प्रतीत होते थे, नाम था जिगोश्ररो कानो। कानो अपने साथियों को अपने देश की एक प्राचीन विद्या के विषय में बता रहे थे, ऐसी अद्भुत विद्या जिसकी सहायता से विना किसी हथियार के यहां तक कि अधिक शक्ति का प्रयोग किये बिना भी आत्मरक्षा करना संभव होता है। परंतु दुख की बात यह कि आधुनिक जापान में यह उपयोगी कला अपना दम तोड़ रही है। प्रो० कानो अथक परिश्रम व अनन्य लगन के साथ इस कला को आधुनिक काल के लिये उपयोगी बनाकर उसका प्रचार करने में सफल हुए थे। अब वे चाहते थे कि इस लाभदायक आत्मरक्षक कला का केवल जापान में ही नहीं अपितु विश्वभर में प्रचार हो, सभी इससे लाभ उठाएं।

"आप कुछ भी कहें, पर आत्मरक्षा के लिये कोई भी अन्य विद्या बाक्सिंग का मुकाबला नहीं कर सकती" एक हट्टे कट्टे दीखनेवाले पहलवान रशियन सज्जन ने कहा। "यूरोप व अमेरिका में हमने बाक्सिंग का ऐसा विकास किया है कि उसका मुकाबला आपकी जुजुत्सु या क्या नाम बताया, वह किसी हालत में नहीं कर सकती"।

"मैं आपसे सहमत नहीं हो सका।"—कानो ने जवाब दिया—"मेरे विचार में यदि आप जुजुत्सु की उपयोगिता और उसकी प्रयोगविधि देखें तो बिना बाधा के आप अपना यह मत स्वयं ही बदल देंगे।"

रशियन व्यक्ति ने जवाब दिया—"ठीक है, चलिये मुझे आपकी चुनौती स्वीकार है—देखेंगे दोनों विद्याओं में से विजय किसकी होती है ?"—उपस्थित अन्य सज्जनों ने भी सहर्ष उनके कथन का समर्थन किया।

प्रो० कानो धीरे से उठ खड़े हुए। दर्शकों को लक्ष्य करके उन्होंने कहा—"देखिये, जुजुत्सु ऐसी कला नहीं है जिसका हम प्रदर्शन करके वाह वाह लूटते फिरें, पर मैं जानता हूं कि अपनी आंखों से देखे बिना आप लोगों को इसकी उपयोगिता पर विश्वास नहीं होगा। और यदि इस कला के संबंध में लोगों के मन में ऊंची धारणा नहीं होगी तो मेरा वह उद्देश्य जिसके कारण मैं देशाटन को निकला हूं, सफल नहीं हो सकेगा। अतः आपके सामने इस विद्या की दो एक करामात का प्रदर्शन करता हूं।"

प्रो० कानो ने रशियन सज्जन को सिर झुकाकर अभिवादन किया। रशियन सज्जन ने उसी समय उठकर अपना कोट उतारकर एक तरफ रख दिया। फिर खुली जगह में चले गये और हंसकर प्रो० कानो को बुलाया—"चले आइये, मैं तैयार हूं।" प्रो० कानो भी एक छलांग मारकर रशियन व्यक्ति के सामने इस तरह खड़े हो गये कि उनकी पहुंच की सीमा से थोड़ी दूर रहें। रशियन बाक्सर ने पहले मौके पर ही एक वजनदार Straight left मारा, पर वह व्यर्थ गया, कारण उसी क्षण प्रो० कानो डेंक पर उकड़ूं होकर बैठ गये थे। उनकी दोनों टांगें रशियन की बांई टांग के दोनों ओर थीं। प्रो० कानो ने अब शीघ्रता से अपनी दाहिनी टांग की पिण्डली से रशियन के बांए घुटने के पीछे जोर से आघात किया। फिर एकदम चित लेटकर उठ बैठे। उनकी दोनों टांगों की कैंचीनुमा पकड़ में आकर विराट्काय रशियन मुंह के बल जमीन पर आ गिरा। कानो की दाहिनी टांग रशियन की पिण्डली व जंघा के बीच फंसी हुई थी। रशियन सज्जन की दशा ठीक वैसी थी जैसी दो उंगलियों के बीच पेंसिल फसाकर दबाने से उंगलियों की होती है। मारे दर्द के वे चीख उठे—"छोड़िये! छोड़ दीजिये!! मैं अपनी हार स्वीकार करता हूं।"

डेक पर बैठे बाकी व्यक्तियों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। बिना किसी हथियार के उस छोटे, नाटे, दुबले-पतले व्यक्ति ने उस भीमकाय रशियन को किस प्रकार काबू कर लिया?

देखा तुमने जुजुत्सु का चमत्कार? आओ! इस बार हम जुजुत्सु का एक नया दांव सीखें। सीखेंगे कि इससे मुक्के का सामना कैसे किया जा सकता है।

१—विरोधी ने Straight left मारा।

तुम झट से अपनी बांई टांग बांई ओर से अर्ध चक्राकार रूप में घुमाते हुए एक ओर हट जाओ, झट से दाहिने हाथ को ऊपर उठा मुक्के को दूसरी ओर कर दो, साथ ही दाहिने पांव से उसके बांये घुटने पर जोर से लात जमाओ। (यदि विरोधी Straight right चलाये तो तुम उस प्रक्रिया को ठीक उल्टा करना)। अभ्यास करते समय सावधानी से लात जमाना नहीं तो विरोधी के घुटने में अत्यधिक चोट लग जाने की संभावना है।

२—विरोधी ने Right Swing चलाया।

शीघ्रता से अपने शरीर का ऊपरी भाग पीछे की ओर झुका दो जिससे मुक्का तुम्हारे चेहरे के ऊपर से ही निकल जाय। फिर तत्परता से दोनों हाथों से उसकी दाहिनी कलाई पकड़कर बांए हाथ से उसकी दाहिनी कुहनी पर दबाव डालते हुए उसे जमीन तक झुका दो। मारे दर्द के वह चीत्कार कर उठेगा, उसे हार स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

ऊपर जिन पेंचों व दावों का वर्णन किया गया है—(प्रो० कानो द्वारा प्रयुक्त दांव को भी शामिल कर लो) उन्हें प्रयोग में लाते समय शुरू से ही तुम्हें विरोधी की पहुंच से बाहर

रहना होगा और प्रतीक्षा करनी होगी उसके आक्रमण की। परंतु यदि किसी प्रकार तुम प्रतिद्वंद्वी की पहुंच के अंदर आ जाते हो तो तुम्हें प्रतिद्वंद्वी के हमले के लिये प्रतीक्षा न करके स्वयं ही हमला कर देना चाहिए। नेपोलियन ने भी कहा था "Offence is the best defence" ऐसी हालत में काम आने वाली कुछ पद्धतियों का वर्णन हम नीचे कर रहे हैं।

तुम विरोधी के बहुत निकट पहुंच गये हो और वह तुम्हें left या right hook मारने का उपक्रम कर रहा है:

१—ठोडी को छाती के साथ सटाकर जितना हो सके दोनों सिर को दोनों कंधों की आड़ में ले जाओ। फिर दोनों हाथों से विरोधी के दोनों कंधों को पकड़कर (याद रखो, तुम्हारे हाथ विरोधी के हाथों के भीतरी ओर रहने चाहियें) उसे थोड़ा पीछे की ओर धकेल कर बांयी टांग उसकी बांयी टांग की भीतरी तरफ रखो। साथ ही दाहिनी टांग उसकी दोनों टांगों के बीच से निकालकर उसके बांये घुटने के पीछे की तरफ सटा दो। अब दाहिनी टांग से उसकी बांयी टांग को अपनी ओर खींचते हुए दोनों हाथों से उसे पीछे की ओर धकेल दो—वह पछाड़ खाकर गिर पड़ेगा।

अन्य सभी दांव-पेंचों की तरह इसकी भी सफलता निर्भर करती है तुम्हारी शीघ्रता पर। यदि तुम्हारी प्रत्येक गति क्षिप्र होगी तो तुम सरलता से प्रतिद्वंद्वी को काबू में ला सकोगे। अन्यथा उसे भी तुम्हारे आक्रमण को रोकने का समय मिल जायगा और ऐसी हालत में तुम्हें सफलता पाने में कठिनाई होगी।

२—बांये हाथ से विरोधी की दाहिनी कलाई कसकर पकड़ लो फिर दाहिनी बांह उसके गले के इर्दगिर्द लपेट दो। साथ ही दाहिनी टांग उसकी दाहिनी टांग के बाहर की ओर लाकर बायीं टांग अपने बांये तरफ अर्धचंद्राकार घुमाकर घुटनों को झुकाकर नीचे हो जाओ। दूसरे ही क्षण घुटनों को सीधा करते हुए दोनों हाथों से विरोधी को खींचकर अपनी कमर के ऊपर लाकर जमीन पर पटक दो।

ऊपर आत्मरक्षा के जिन कौशलों को सिखाया गया है उसके मल में जो तत्त्व हैं उन्हें जानना आवश्यक है।

१—मुक्केबाज के साथ कभी मुक्केबाजी न करो।

२—हर समय विरोधी की पहुंच से परे रहने की चेष्टा करो।

३—प्रत्येक शारीरिक प्रक्रिया (reflexes) अत्यधिक तत्परता से करनी होगी।

४—अवसर मिलते ही जमीन पर गिर जाने में संकोच नहीं करना चाहिये। प्रतिद्वंद्वी के इस प्रकार गिर जाने से मुक्केबाज को वार करने की बड़ी सुविधा हो जाती है।

मैं हूं एक सिपाही

——श्री नीली

मैं एक सिपाही हूं। मैं अपने नगर और उसके पासवाले गांव और दो-तीन अन्य ग्रामों की रखवाली करता हूं। मेरा भी एक जीवन है। वह जीवन जिसमें मुझे हर क्षण कुछ न कुछ साहसपूर्ण कार्य करने के लिये उपस्थित होना पड़ता है। लेकिन मैं आज तक कभी भी इन साहसपूर्ण कामों से डरा नहीं, क्योंकि मुझे इन कामों से प्रेम है। मै अपने काम को बहुत पसन्द करता हूं। मेरे जीवन में कई बार बहुत-सी डरावनी घटनाएं घटी हैं जिन्हें मैं अभी तक नहीं भूला हूं और न कभी भूलूंगा ही।

कई बार मुझे चोरों को पकड़ने के लिये दो-दो तीन-तीन सप्ताह लगातार रात दिन दौड़-धूप करनी पड़ती है। कभी-कभी दो तीन महीने या साल भी बीत जाते हैं। मुझे हर क्षण कुछ न कुछ नया काम करना पड़ता है। आज में एक चोर को पकड़ कर बन्दी करता हूं तो कल मुझे किसी ग्राम में जाना पड़ता है क्योंकि वहां कोई झगड़ा हुआ है। परसों क्या पता मैं किसी शहर में किसी सड़क के चौराहे पर खड़ा मार्ग दिखाता हूंगा। इसी तरह मेरे दिन एक के बाद एक बीतते हैं। कितना सुन्दर मेरा काम है और सुन्दरता के साथ साथ कितना आवश्यक।

जिस तरह भगवान् अपने हाथ की बनाई हुई पृथ्वी की रक्षा करता है उसी तरह मैं अपने नगर, गांव तथा गांववालों की रक्षा करता हूं।

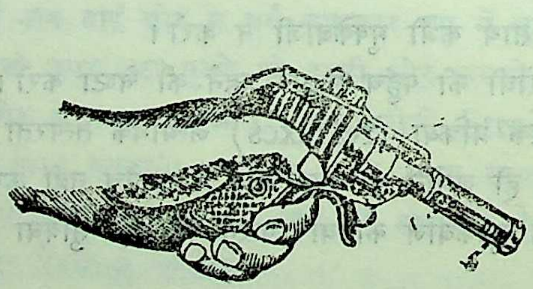

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

समाचार :

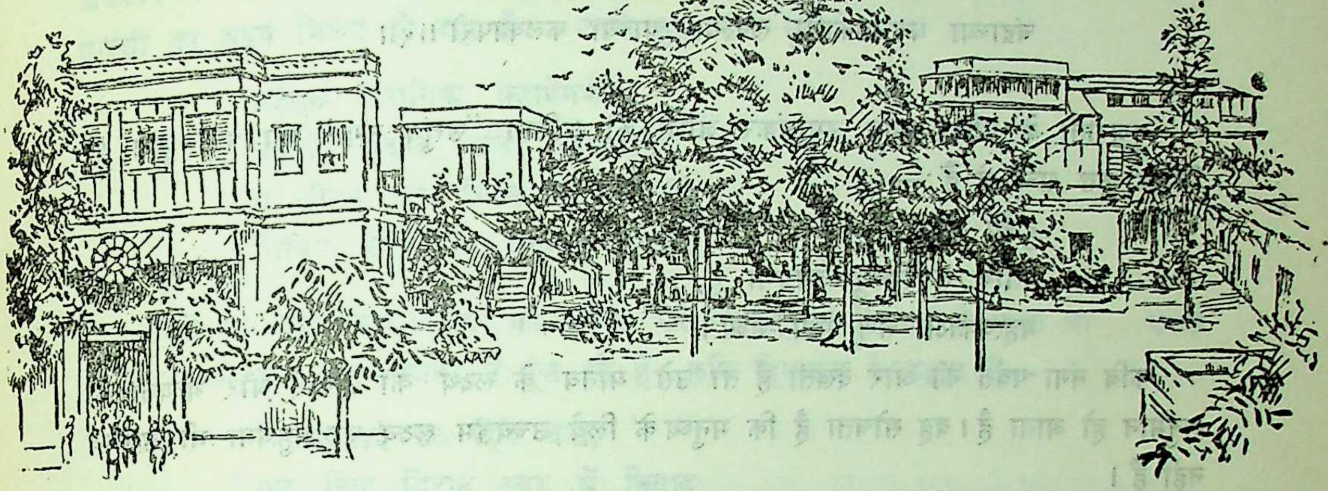

हमारी हिन्दी सभा

श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्र में एक हिन्दी सभा है जिसके अधिवेशन वर्ष में छः सात बार होते हैं। उसके दो विभाग हैं एक चौथी श्रणी तक के बच्चों का और एक बड़ों का। नाम तो हिन्दी सभा है परंतु इसमें भारत की अन्य भाषाओं के कार्यक्रम भी हुआ करते हैं।

छोटे बच्चों की सभा ५ फरवरी को हुई थी जिसमें बच्चों ने हिन्दी, गुजराती तथा बंगला में कहानियां तथा कविताएं सुनायीं और एक छोटा सा हिन्दी नाटक किया। इसके बाद बड़ों की सभा १९ फरवरी को हुई जिसका मुख्य विषय था हिमालय। इसमें संस्कृत से आरंभ कर के उड़िया, कन्नड़, तमिल, बंगला, मराठी, हिन्दी आदि भाषाओं में कविता पाठ हुए और महाभारत की एक कहानी सुनायी गयी। प्रत्येक भाषा की कविता के साथ उसका भावार्थ हिन्दी में सुनाया जाता था। यहां कुछ नमूने दिये जा रहे हैं।

संस्कृत में कालिदास के कुमार सम्भव के प्रसिद्ध श्लोक अस्त्युत्तरस्यां आदि गाये गये थे जिनका भावार्थ यह है कि उत्तर दिशा में देवता रूपी हिमालय नामक पर्वतराज है जो पूर्वी पश्चिमी सागरों को अवगाहता हुआ पृथ्वी के मापदण्ड की तरह खड़ा है।

अनन्त रत्नों के उत्पादक, जिस के लिये बर्फ सौभाग्य विलोपक नहीं हुआ, जैसे बहुत से गुणों में एक दोष छिप जाता है वैसे चंद्रमा की किरणों में लांछन विलीन हो जाता है आदि। मराठी में इन्हीं श्लोकों का अनुवाद गाया गया था। उनकी छटा देखिये:

आहे उत्तर या दिशेस-जणुं कीं आत्माच देवांप्रति।
लोकीं नाम जया हिमालय, असे, जो पर्वतांचा पति॥
दोन्हीं आब्धि (पूर्व पश्चिम अशा) नाहोनि जो राहिला।
पृथ्वीचें जणुं मोजमाप करण्या दंडापरी ठाकला॥१॥

रत्नें थोर अनंत नित्य निघती जेथील भूमींतुनी।
त्याची सुंदरता कधीं न हिमही टाकूं शके लोपुनी।।
एकादा लव दोष लापत असे मोठ्या गुणांभीतरीं।
चंद्राच्या धवलप्रकाशिं लपल्या त्याच्या कलकापरी।।२।।

गुजराती के प्रसिद्ध कवि उमाशंकर जोशी की कविता "उत्तुंग नंगा" का पाठ हुआ था जिसके कुछ शब्द ये हैं :—

दुर्जेय नंगा
प्रतीक तुं किन्तु जयेषणा नुं,
महत्वकांक्षा तणु माप भव्य।

कवि नंगा पर्वत की ओर देखता है तो उसे मानव के लक्ष्य की ऊंचाई और भव्यता का अनुमान हो आता है। वह सोचता है कि मनुष्य के लिये उच्चतम लक्ष्य पर पहुंचना भी असंभव नहीं है।

बंगला में विहारीलाल चक्रवर्ती की कविता चुनी गयी थी जिसमें वे कहते हैं, यह तो दिगदिगन्त में फैला हुआ अनन्त सागर है जिसकी विशाल लहरें गगनमंडल में फैल रही हैं। आंधी तूफान मानों एक छोटी लड़की हैं जो हिमालय की छाती पर खेल रही है। समुद्र उसके चरण को धो रहा है और तपनेवाले सूर्य की किरणें इसके गले का हार बनी हुई हैं। कुछ पंक्तियां देखिये :

असीम नीरद नय, एइ गिरि हिमालय।
उथले उठे छे जेन अनन्त जलधि,
व्योमे दिगदिगन्तर
प्लाविया गगनांगण जागे विधि,. . . . . .
झटिका दुरन्त मेये, बूके खेला करे केये. . . . आदि

कन्नड़ के सुप्रसिद्ध कवि डाक्टर मुगळी ने हमारी सभा के लिये विशेष रूप से एक कविता लिखी थी जिसका भाव यह था कि हिमालय को पार करके विपदा आयी हुई है जो भारत के पवित्र स्थानों को मलिन करने की टोह में है सावधान, सावधान। दो चार पंक्तियां देखिये :

नम्भ हिमालय वायीतु ममनिब्लय
नाडिग बीडीग बंदितु नव प्रलय !
सावनु मोरीद देवरू मात्र
ज्योतिर्देहवि इरलिके पात्र
आदा हिमवंतन पावन गिरि
आयितु नरवुव यमलोकके सरि।।१।।

तमिळ कविता हमारे विद्यालय की एक लड़की ने लिखी थी। उसका हिन्दी अनुवाद हम किसी अगले अंक में देंगे।

उड़िया की कविता में हिमालय पर सूर्योदय का वर्णन है। उसे देख कर कवि बड़ी बड़ी कल्पनाएं करता है। उसे लगता है कि यहां रंगों की होली हो रही है अथवा ज्योति और अंधकार में आंखमिचौनी हो रही है। या देवों का महान् यज्ञ हो रहा है या शिव और पार्वती का अपूर्व मिलन हो रहा है। उनके कुछ शब्द सुनिये :

अहेतुकं अमायिक महाप्रेमभरे
पार्वती प्रकृति संजे महेन्द्रयोगरे
ए जीवन गला मिशि अपूर्व मिलने
निविड प्रेमर नव विवाह बन्धने।

हिन्दी का प्रतिनिधित्व दिनकर की कविता 'मेरे नगपति, मेरे विशाल' ने किया था उसके ये शब्द अभी तक हमारे कानों में गूंज रहे हैं : कवि हिमालय से कहता है—

ले अंगड़ाई उठ हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैलराट हुंकार भरे
फट जाय कुहा भागे प्रमाद।

फिर जयशंकर प्रसाद के गीत 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' से सभा का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

मार्च के आरंभ में एक विशेष सभा में बच्चों ने संस्कृत श्लोक सुनाये थे।

संगीत माला के अधिवेशन में शुद्ध शास्त्रीय संगीत—तबला और गायन—हुआ था।

—अंजना शर्मा

* * *

श्रीकृष्ण मथुरा जा चुके थे। वृंदावन में सब का हाल बेहाल था। परंतु राधा जरा अशांत या विचलित न हुई। यशोदा ने पूछा–राधे, तू कौन है और तेरा रहस्य क्या है? राधा ने यह उत्तर दिया–मेरा नाम दो अक्षरों से बना है, 'रा' है समस्त विश्व में रमण करनेवाला और चराचर का स्वामी कृष्ण, और उसे धारण करनेवाली मैं हूं राधा।

*

किसी आदर्श के लिय प्राण त्याग करने की अपेक्षा अपने जीवन को उसके अनुसार ढालना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेत। पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

संपादकीय

अप्रैल के अंक के साथ पुरोधा अपने जीवन का पहला वर्ष समाप्त कर रहा है। हमारे लेखकों, ग्राहकों और पाठकों ने जो सहयोग दिया है उसके लिये हम कृतज्ञता प्रकाशन करते हैं और नये वर्ष के लिये और अधिक सहयोग की आशा करते हैं।

इस एक वर्ष में हमने देखा कि दर्शन के समय अंक प्रकाशित करने में हमारे प्रेस को बहुत अधिक कठिनाई होती है। इसी कारण फरवरी अंक के लिये आपको बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। इसलिये नये वर्ष से हम पुरोधा के प्रकाशन का समय बदल रहे हैं। अब से पुरोधा जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबर के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा। हम आशा करते हैं कि इस व्यवस्था से पत्रिका आपको नियमित रूप से मिल सकेगी। इसके अनुसार अगला अंक आपको अगस्त की जगह जुलाई में मिलेगा। ग्राहक अपना नये साल का चंदा शीघ्र भेजने की कृपा करें। इस अंक के साथ एक कार्ड भेजा जा रहा है, उसे अपने मित्रों से भरवा कर पुरोधा के ग्राहक बढ़ाने में सहायता करें।

हमारे कई विज्ञ पाठकों ने लिखा है कि पुरोधा के साथ पत्रिका शब्द ठीक नहीं बैठता, वह पत्र है, कुछ अन्य का कहना है कि मासिक और त्रैमासिक पत्रिकाएं होती हैं और दैनिक साप्ताहिक पत्र होते हैं। इस हिंसाब से विशाल भारत पत्रिका है और विश्वमित्र पत्र। हमने व्याकरण के एक दिग्गज से परामर्श किया था, उनकी राय है कि हम 'आपकी पुरोधा' और 'आपका पुरोधा' दोनों तरह से कह सकते हैं। यह हिन्दी की प्रकृति के अनकूल ही होगा।

हमारे सामने एक सुझाव आया है। हम उसे पाठकों के सामने ज्यों का त्यों रखे देते हैं और इस विषय पर उनका परामर्श चाहते हैं। सुझाव यूं है कि पांच-सात पाठक आपस में मिल कर एक पुरोधा गोष्ठी बना लें। इसके सदस्य कहानी, कविता, निबंध आदि लिख कर गोष्ठी में सुनाया करें और एक दूसरे की चीज को ध्यान से सुन कर उसकी अच्छाइयों और कमजोरियों की ओर नजर डालें, और अगली बार अधिक अच्छी चीज तैयार करने की कोशिश करें। अंतिम रूप को पुरोधा संपादक के पास सलाह के लिये भेज सकते हैं; यहां से उन्हें पूरी सहायता मिलेगी। इस गोष्ठी में अपनी चीजों को छपवाना मुख्य उद्देश्य नहीं

होगा। उद्देश्य होगा एक साथ मिल कर काम करना और लिखना सीखना। आशा है हमारे विद्यार्थी पाठक इस सुझाव से कुछ लाभ उठा सकेंगे।

हमारे पास कुछ विद्यार्थियों के पत्र आये हैं जो वर्तमान राजनीतिक स्थिति में अपने आपको बलि चढ़ा देना चाहते हैं। उनके अंदर उत्साह है, उमंग है, और वे कुछ करने को तड़प रहे हैं। उन्होंने हमसे भी कुछ सलाह मांगी है। अपने छोटे भाई बहनों को हमारी एक छोटी सी सलाह है। अभी उनकी तैयारी का समय है। उन्हें अपनी शक्ति इधर-उधर व्यर्थ की गर्मी पैदा करने में नष्ट नहीं करनी चाहिये। अभी उनके पास समय है जब वे चीजों को देख और समझ सकते हैं। उन्हें यह जानने की आवश्यकता है कि आखिर लड़ाई झगड़े होते ही क्यों हैं? लोग अभी तक लड़ाई झगड़ों के पत्ते और शाखाएं ही काटते रहे हैं। क्या ही अच्छा हो कि हम उनकी जड़ को ही उखाड़ कर फेंक सकें। इस विषय पर श्रीअरविन्द ने बहुत सी नयी नयी बातें बतायी हैं। हम आशा करते हैं कि हम इनमें से कुछ चीजों को अगले अंकों में सरल रूप में देश के नौनिहालों के सामने रख सकेंगे।

इसके साथ ही हम अगले अंक से एक नये स्तंभ का आरंभ करना चाहते हैं। हममें से प्रत्येक के जीवन में ऐसी घटनाएं घटा करती है जो अपने आपमें तो महत्त्वपूर्ण नहीं होतीं पर व्यक्ति की जीवन धारा को बदल देती हैं और एक अमिट छाप छोड़ जाती हैं। हमारे पाठकों में से बहुतों को इस प्रकार के अनुभव हुए होंगे। वे अगर इस प्रकार की चीजों को संक्षेप में लिख भेजें तो नये स्तंभ के लिये बड़ी अच्छी सामग्री तैयार हो जायगी।

जैसा कि हमने पिछले अंक में कहा था हम विद्यार्थियों में लेखन कला का विकास करने के लिये प्रत्येक अंक के साथ एक निबंध प्रतियोगिता रखना चाहते हैं। इस बार स्कूलों और कालिजों में छुट्टियो के दिन हैं अतः विद्यार्थी छुट्टियों पर लेख कहानी या कविता लिख कर भेज सकते हैं। अच्छी कृतियो पर लेखकों को संपादक की ओर से कुछ उपहार दिया जायगा। लेख जून के तीसरे सप्ताह तक संपादक के पास पहुंच जाने चाहियें।

पुरोधा यूं तो बड़े विद्यार्थियों और कुमारों का पत्र है पर इसमें कुछ चीजें छोटे बच्चों के लिये भी रहेंगी। लेखक इस प्रकार की चीजें भी भेज सकते हैं। इस भाग में बच्चो के लेखों का भी स्वागत होगा।

पत्रोत्तर के लिये तथा कृतियां वापिस करने के लिये डाक टिकट भेजना जरूरी है। रचनाओं की स्वीकृति की सूचना रचना पहुंचने के बाद पंद्रह दिन के अंदर भेज दी जायगी।

हिन्दी का सर्वाधिक लोकप्रिय समाचार साप्ताहिक

पाञ्चजन्य

की हुंकार से आज देश का कोना कोना गूंज रहा है !

*निष्पक्ष विचार　　　　*निर्भीक आलोचना

*तथा भावोत्तेजक सामग्री के लिए

आज ही पाञ्चजन्य के ग्राहक बनिए

वार्षिक शुल्क　१२ रु.
अर्ध वार्षिक　६ रु.
एक प्रति　२५ न. पै.

व्यवस्थापक 'पाञ्चजन्य'
पो. बा. २०७
१, अशोक नगर, लखनऊ ।

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

अगर तुम अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट नहीं हो तो भगवान् की सहायता से लाभ उठाओ और अपने आप को बदलो। बदलने की हिम्मत न हो तो भाग्य के भरोसे चुपचाप बैठे रहो।

परंतु परिस्थितियों को बदलने के लिये प्रयास तो न करना पर सदा उनके विरुद्ध झींकते रहना समय और शक्ति का नष्ट करना है।

सब कठिनाइयों का असली इलाज तो तभी हो सकता है जब अपनी इच्छाओं और सुविधाओं पर ध्यान लगाए रखना बंद हो सके।

—श्रीमां

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

4-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS LTD.
PONDICHERRY

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।
—श्रीमां

न्यू होराइजन स्टेन्लेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी–४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE STEEL PRODUCT STAINLESS

"स्क्वायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

प्रधान कार्यालय :
फोन : ३३–४५०४
ग्राम : MIGHTYHOLY

★

श्री हनुमान सुगर मिल्स लि.

मैनेजिंग एजेन्ट—

मेसर्स—दौलतराम रामेश्वरलाल

१७८ महात्मा गांधी रोड,

कलकत्ता ७

कारखाना—
मोतीहारी
[बिहार]

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स

३. प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—३२२९३३ तार—नेशनओटो
३२९८२२
३२६५३९

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED

7, CANNING STREET
CALCUTTA-1

Cold Storage : We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

Life could be quite simple and easy if man's mind did not introduce in it so many useless complications.

यदि मनुष्य का मन इतनी सारी व्यर्थ और जटिल बातों को जीवन में न ले आया होता तो जीवन बिलकुल सरल और सहज बन गया होता।

२९. १२. ६२.

—श्रीमां

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश,
आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा

सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

Director of Publication: Aniruddha Sircar, Sri Aurobindo Society, Pondicherry-2
599/7/63/1000

वर्ष २ अक्तूबर १९६३ अंक १

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

> बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्ट-वादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।
>
> —श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी-२

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
दुर्गा-स्तुति	विद्यावती कोकिल	२
हमारा उद्देश्य	श्रीअरविंद	३
देश और काल	श्रीमां	५
श्रद्धा	जगन्नाथ वेदालंकार	७
परशुरामकी शिक्षा	रामधारीसिंह दिनकर	१०
जीवनमें गति	रवीन्द्र	११
वह छत्रसालकी मां थी	अजित सिंह	१३
देशमातृका	अम्बिकातनय दत्त बेन्द्रे	१७
काक-परिचय	कृष्णलाल भट्ट	१८
सुमित्रानंदन पंत	अरुणा	२२
भगीरथकी तपस्या	व्रजनन्दन	२८
पापाके मुखसे	गौरी पिंटो	३०
सुमेरु	अनिरुद्ध सरकार	३४
अद्भुत सृष्टि	संकलित	४१
सान्ध्य गीत	मधुच्छन्दा दासगुप्त	४३
मानवजीवनमें मशीन	भदत्त	४४
कावेरी	नीली	४७
बुंदेलखण्डके जंगलोंमें	अमरसिंह	४९
स्तंभ-कथा	डा. जगदीश गुप्त	५४
मैं पढ़-लिखकर क्या बनूंगा ?	ओमप्रकाश	५५
उत्तर	टालस्टाय	५८
गंभीर लेख	अंजना शर्मा	६१
शेर और बकरी एक घाटपर	अनुबेन पुराणी	६३
शांतिके परवाने	केदारनाथ कोमल	६५
पुस्तक-परिचय		६६

आवरण :
संजीवन विश्वास

चित्रकार :
कृष्णलाल
जयंतीलाल
उषा पटेल
अनिरुद्ध सरकार
अंजना शर्मा

मूल्य :
एक प्रति : रु. १.५० न. पै.
वार्षिक चंदा : रु. ५.००

मुद्रक :
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस
पांडिचेरी–२

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रनेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

जीवनकी सफलता

राजस्थानसे एक पाठकका पत्र आया है जिसमें लिखा है : "एक विद्यार्थी बड़ा होनहार था। जैसी उसमें प्रतिभा थी वैसी ही परिश्रमकी क्षमता भी। खूब परिश्रम करके उसने अपनी परीक्षाएं बड़े सम्मानके साथ पास कीं; परंतु परीक्षा पास करनेके साथ ही साथ वह इस दुनियासे कूच कर गया। अब आप ही बतलाइये उसका सारा परिश्रम व्यर्थ गया या नहीं ?"

यह प्रश्न बहुतोंके मनमें समय-समयपर उठा करता है। जब कभी हम अधखिली कलियों-को मुरझाते देखते हैं तो हमारे मनमें एक टीस उठती है, हम कह उठते हैं, हे विधाता ! यह क्या किया ? अभी तो इसके फलने-फूलनेके दिन थे; इस नाजुक बिरवेको अभीसे क्यों तोड़ डाला ? किसीने कहा है —

फूल तो कुछ दिन बहार अपनी दिखा कर चल दिये
हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गये ।

ठीक है। एक साधारण संसारी आदमी यही सोचता है कि जीवनकी सफलता तभी हो सकती है जब मनुष्य काफी समयतक जिन्दा रहे, पढ़े-लिखे, घर-गृहस्थी चलाये और कुछ कर जाय जिससे लोग उसे याद रखें। परंतु यह सच्ची दृष्टि नहीं है। यूं तो कीट-पतंग और खग-मृग भी पैदा होते हैं, खाते-पीते हैं, अपना वंश बढ़ाते हैं और मर जाते हैं; अगर हम मानवजीवनकी सफलताकी कसौटी भी इसे ही मान लें तो हममें और पशुओंमें क्या अंतर रह जायगा ?

सच बात तो यह है कि हरएकके जीवनका कुछ न कुछ लक्ष्य होना चाहिये। लक्ष्यहीन जीवन, जीवन कहलानेका अधिकारी नहीं है, वह शरीरका घसीटना है। साधारण जीवनका लक्ष्य होना चाहिये अपने कर्तव्य कार्यको पूरा करना और आध्यात्मिक जीवनका लक्ष्य है भगवान्को पाना और अपने सारे जीवनको ही भगवान्मय बना देना। हमारा कर्तव्य होता है अपने-अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ना। जैसे किसी विद्यार्थीने निश्चय किया है कि वह आगे चलकर डाक्टर बनेगा, तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह खूब मन लगाकर पढ़ाई-लिखाई करे। हर एक चीजको अच्छीसे अच्छी तरह सीखनेका प्रयास करे और जो चीज उसके मार्गमें बाधा

डालती हों उनसे बचे या उन्हें लांघ जाय। अपना कर्तव्य पूरा करते हुए मर जानेवालेके लिये हम कभी यह नहीं कह सकते कि उसका जन्म असफल रहा या व्यर्थ गया। क्या घंटोंमें ही मुरझा जानेवाले चमेलीके फूलका जीवन व्यर्थ जाता है, क्या वह सैंकड़ों वर्षतक जीनेवाले बलूत-के पेड़से कम सुन्दर या महत्त्वपूर्ण होता है? हमारी दृष्टिमें जीवन कुछ घड़ियोंका हो या अनेक शताब्दियोंका, आदमीके लिये आवश्यक है कि वह अपने कर्तव्यको पूरी तरह निभाता रहे। इसीमें उसके जीवनकी सफलता है। इस तरह बिताया गया जीवन ऐसा वातावरण पैदा करता है जिससे दूसरोंमें भी कर्तव्यके प्रति निष्ठा उत्पन्न होती है, उनके अंदर भी आग धधकने लगती है। याद रहे—नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

और फिर हमारे जीवनकी इतिश्री इस शरीरके साथ ही तो नहीं हो जाती। हमारी जीवन-सरिता न जाने कबसे बहती चली आ रही है और कबतक बहती चलेगी। कहते हैं कि अभिमन्युवधके बाद जब अर्जुन दुःखके मारे सब कुछ भूल गये थे, यहांतक कि अपना जीवन ही समाप्त कर देना चाहते थे तो भगवान् कृष्णने अभिमन्युकी आत्माको बुलाया और कहा कि तुम्हारे पिता तुम्हारे वियोगमें इतना कष्ट पा रहे हैं, क्या तुम फिरसे वापिस नहीं आ सकते? अभिमन्युकी आत्माने उत्तर दिया, भगवान्! कौन किसका बाप और कौन किसका बेटा? मैंने और इन्होंने अनगिनत जन्म लिये हैं। कभी ये बाप और मैं बेटा, कभी मैं बाप और ये बेटा, कभी एक दूसरेसे एकदम अपरिचित और कभी एक-दूसरेके शत्रु। मैंने एक विशेष काम पूरा करनेके लिये इनके घर जन्म लिया था, वह काम पूरा हुआ और मैंने उस शरीर-को छोड़ दिया, ठीक वैसे ही जैसे सांप अपनी केंचुलीको छोड़ देता है और फिर उसकी ओर मुड़कर भी नहीं देखता। अब मैं अपने अगले शरीर और अगले कार्यकी तैयारीमें हूं।

इस विषयमें बहुत तर्क-कुतर्क किये जा सकते हैं परंतु सत्य तर्कद्वारा नहीं जाना जा सकता। हमें या तो अपने-आप अनुभव प्राप्त करना होगा या आप्तवचनोंको ही मानना पड़ेगा।

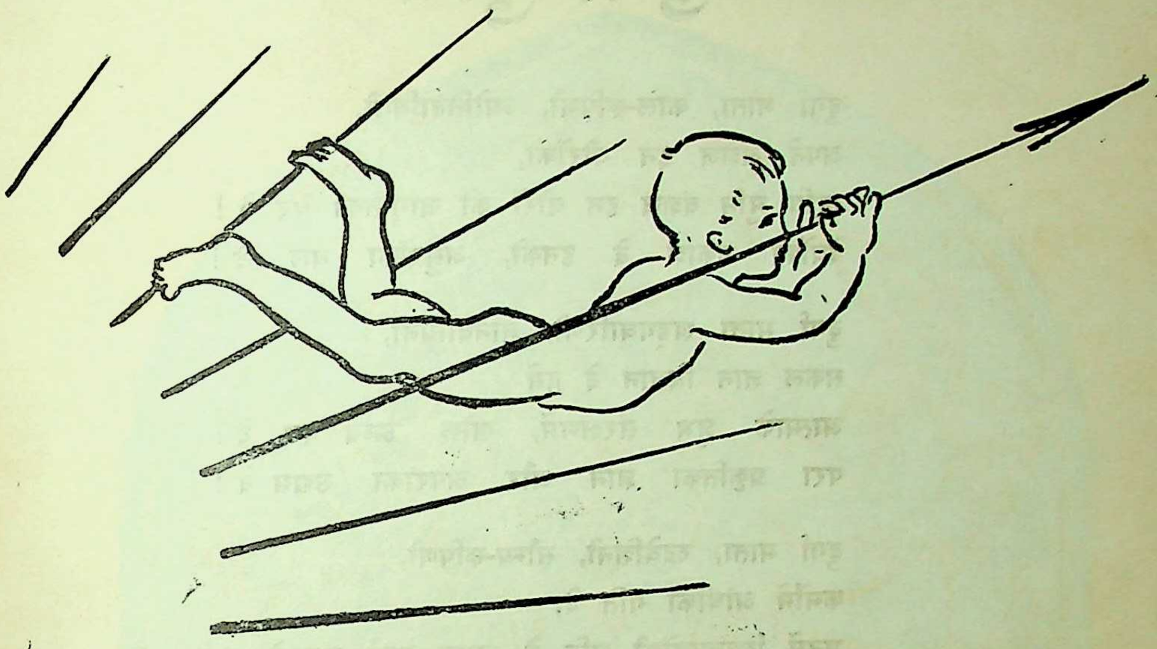

प्रार्थना

O Seigneur, délivre-moi des influences mentales qui pèsent sur moi, afin que, complètement libre, je puisse m'élancer vers Toi.

⁂

हे भगवान्! मुझे सभी मानसिक प्रभावोंसे, जो मुझपर हावी हैं, मुक्त कर दे जिसमें कि मैं पूर्ण रूपसे स्वतंत्र हो कर तीरकी भांति तेरी ओर जा सकूं।

श्रीमाँ

दुर्गास्तुति

दुर्गा माता, काल-रूपिणी, ज्योतिदायिनी,
अपने अंशज इन धीरोंको,
ऋषि मुनि वंशज इन वीरों को जागृतिका वर दे !
देवोंका प्रकाश दे इनको, असुरोंका बल दे !

दुर्गा माता खड्गधारिणी, ज्ञानदायिनी,
सकल ज्ञान विज्ञान दे हमें
आत्माके शुभ संरक्षणमें, खोल ऊर्ध्व पथ दे !
परा प्रकृतिका ज्ञान और अपराका उद्यम दे !

दुर्गा माता, रुद्रवेशिनी, सौम्य-रूपिणी,
कर्मोंमें आंधीकी गति दे,
मनमें स्थितप्रज्ञोंकी धृति दे, अभय मार्ग कर दे,
हमें शान्तिका और युद्धका एक साथ वर दे !
हे अगोचरे, अस्पर्श्ये, भारतमें अवतर हे !
दुर्गा माता, दुर्गा माता, दुर्गा माता हे !

– २ –

दुर्गा माता, त्रिशूलधारिणी, नृमुंड-मालिनी,
केहरि-सी मां कायरतापर,
मत्त द्विरद-सी दुर्बलतापर आक्रमण कर दे !
हे रूपांतरकारिणी, जगकी बदल नींव ही दे !

दुर्गा माता, रोग-निवारिणी, शोकविदारिणी,
आलस्योंमें, संकोचोंमें,
और तामसी परितापोंमें वेध सत्य शर दे !
और शांतिकी गंगा शक्ति शिखरसे बहने दे !

हे चामुण्डे, निर्जीवोंकी जीवनदायिनि
अपढ़ अनुद्यमियोंके दलको,
लेकर नंगों भिखमंगोंको चमत्कार कर दे,
अंधकारके महागर्त्तपर ज्योति-चरण धर दे !
आर्यावर्त्ते, भारतवर्षे, अम्बे अवतर हे !
हे जगदंबे, हे जगदंबे, मातः दुर्गे हे !

—विद्यावती कोकिल

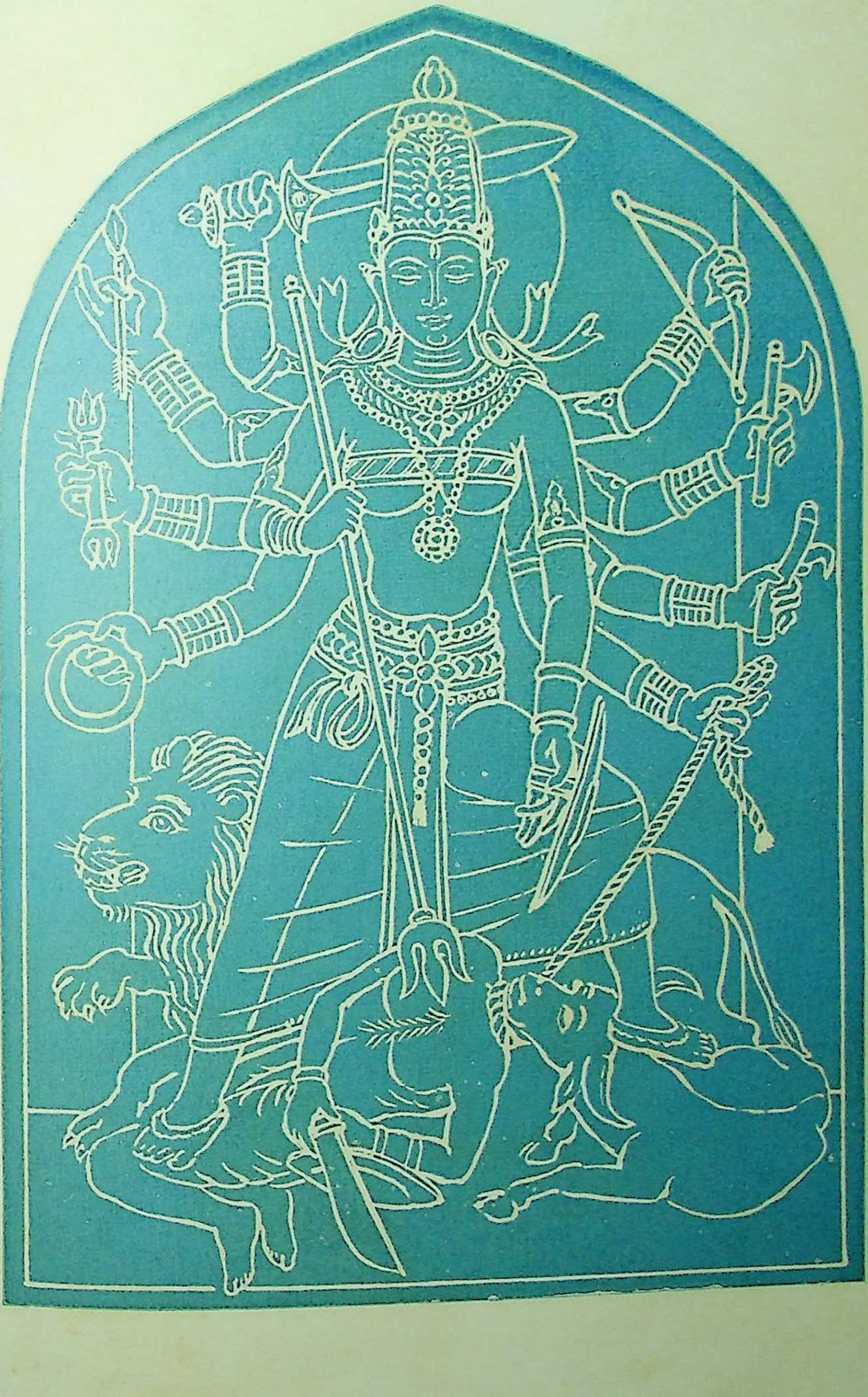

हमारा उद्देश्य

श्रीअरविंद

हमारा उद्देश्य है मनुष्यजातिके कल्याणके लिये भारतके निर्माणमें सहायक होना—राष्ट्रीयता की यही भावना है जिसका हम अनुसरण और प्रचार करते हैं। हम मनुष्यजातिसे कहते हैं:

> “अब वह समय आ गया है जब तुम्हें अपना महान् पग उठाना होगा और भौतिक सत्तासे ऊपर उठकर उच्चतर, गभीरतर और विशालतर जीवनमें पहुंच जाना होगा। उसी महान् जीवनकी ओर मनुष्यता अग्रसर हो रही है। जो समस्याएं मनुष्यजातिको बेचैन किये हुए हैं उनको तभी हल किया जा सकता है जब हम अपने भीतरके राज्यको जीत लेंगे; प्रकृतिकी शक्तियोंको अपने जुएके नीचे ले आकर अपनी सुख-सुविधा और भोगमें नियुक्त करके नहीं बल्कि बुद्धि और आत्माकी शक्तियोंको अधिकृत करके, मनुष्यकी आंतरिक और बाह्य स्वतंत्रताको सुरक्षित करके तथा अपने अंतरके बलसे बाहरी प्रकृतिको जीत करके हल किया जा सकता है। इस कार्यके लिये एशियाका पुनर्जागरण आवश्यक है और इसलिये एशिया जग रहा है। उस कार्यके लिये भारतकी स्वाधीनता और महानता अनिवार्य है और इसलिये वह अपने दैवनिर्दिष्ट स्वाधीनता और महानता का दावा कर रहा है और यह सारी मनुष्यजातिके हितके लिये आवश्यक है कि वह अपने दावेको पूर्णतः स्थापित और संसिद्ध करे।”

हम अपने राष्ट्रसे कहते हैं :—

> “यह भगवान्‌की इच्छा है कि हम लोग ‘हम’ (सच्चे अर्थमें भारतीय) हों और ‘यूरोप’ न हों। हमने अपनी सत्ताके विधानसे भिन्न दूसरोंके जीवन-विधानका अनुसरण कर अपने जीवनको फिर प्राप्त करनेका यत्न किया है। हमें उस रास्तेसे वापस आकर स्वयं अपने अंदर अपने जीवन और सामर्थ्यका स्रोत ढूंढ़ निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। हमें अपने अतीतको जानना चाहिये और अपने भविष्यकी उद्देश्यसिद्धिके लिये फिरसे उसे प्राप्त करना चाहिये। हम लोगोंका मुख्य कार्य है सबसे पहले अपने-आपको पाना—अपनेको जानना और प्रत्येक चीजको भारतके शाश्वत जीवन और स्वभावके विधानके अनुकूल ढालना। इसलिये कर्मयोगीका उद्देश्य होगा अपने धर्म, समाज, दर्शन, राजनीति, साहित्य, कला, सरकारी कानून, विज्ञान, चिंतन आदि जो कुछ हमारा था और है उस सबके मर्मको पढ़ना-समझना जिसमें कि हम स्वयं अपनेसे और अपने राष्ट्रसे यह कह सकें कि ‘यही हमारा धर्म है।’ हम पूर्ण रूपसे भारतीय विचार और ज्ञानके दृष्टिकोणके अनुसार यूरोपियन सभ्यताकी आलोचना करेंगे और पाश्चात्य देशकी छापको, जो हमारे ऊपर छायी हुई है, दूर झाड़ फेंकेंगे। हमें पश्चिमसे जो कुछ लेना है, उसे भारतीयके

रूपमें लेंगे। और एक बार जब अपने धर्मका पता पा जायंगे तब केवल उसकी घोषणा ही नहीं करेंगे बल्कि उसे जीवनमें भी उतारेंगे, अपने व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन और राजनीतिक प्रयासोंमें भी उसीको अभिव्यक्त करेंगे।"

हम प्रत्येक व्यक्तिसे और विशेषकर उन युवकोंसे, जो भारतका कार्य, संसारका कार्य, भगवान्का कार्य करनेके लिये आजकल जग रहे हैं, कहते हैं :—

"यदि तुम अपने मनपर यूरोपियन विचारोंको अधिकार करने दो और भौतिक दृष्टिसे जीवनको देखो तो तुम इन आदर्शोंको ग्रहण नहीं कर सकते, इन्हें जीवनमें संसिद्ध करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। भौतिक रूपमें देखा जाय तो तुम कुछ भी नहीं हो, आध्यात्मिक दृष्टिसे तुम सब कुछ हो। सच पूछा जाय तो भारतीय ही ऐसे हैं जो प्रत्येक बातपर विश्वास कर सकते हैं, प्रत्येक चीजको कर डालनेका साहस कर सकते हैं, प्रत्येक चीजका बलिदान कर सकते हैं। अतएव, सबसे पहले भारतीय बनो। अपने पूर्वपुरुषोंसे प्राप्त पैतृक संपदाको आयत्त करो। आर्य-चिंतनधारा, आर्य-साधना, आर्य-चरित्र और आर्य-जीवनको प्राप्त करो। वेदांत, गीता और योगका उद्धार करो। उन्हें केवल अपनी बुद्धि और हृद्गत भावोंके अंदर ही मत प्राप्त करो बल्कि उन्हें अपने जीवनमें उतारो। उनके अनुसार अपना जीवन बनाओ और तुम महान् बन जाओगे, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान्, अजेय और निर्भय बन जाओगे। न तो जीवन न मृत्यु ही तुम्हारे लिये किसी भी भयका कारण होगी। कठिनाई और असंभाव्यता तुम्हारे शब्दकोषसे ही विलीन हो जायंगी। क्योंकि आत्माके अंदर ही शक्ति-सामर्थ्य नित्य, शाश्वत होता है और तुम्हें पहले अपना निजी राज्य, आंतरिक स्वराज्य वापस जीतना होगा और उसके बाद ही तुम अपना बाहरी साम्राज्य जीत सकते हो। देखो, वहां मां निवास करती हैं और तुम्हारी पूजाकी प्रतीक्षा कर रही हैं जिसमें कि तुम्हें शक्ति दे सकें। उनपर विश्वास करो, उनकी सेवा करो, उनकी ही इच्छामें अपनी इच्छा विलीन कर दो, देशके महत्तर अहंमें अपने अहंको, मनुष्यजातिकी सेवामें अपनी पृथक् स्वार्थपरताको डुबा दो। अपने अंदर विद्यमान समस्त शक्ति-सामर्थ्यके मूलस्रोतको ढूंढ़ निकालो और फिर तुम्हें बाकी सभी चीजें प्राप्त हो जायंगी—सामाजिक दृढ़ता, बौद्धिक श्रेष्ठता, राजनीतिक स्वाधीनता, मानवीय चिंतनधारापर अधिकार, विश्वका नेतृत्व सब कुछ अपने-आप तुम्हें हस्तगत हो जायगा।"

"जो धर्म विज्ञान और धर्मको, आस्तिकता, ईसाई-धर्म, मुसलमान-धर्म और बौद्धधर्मको एक साथ अंतर्भुक्त करता है और फिर भी इनमेंसे कोई नहीं है, उसीकी ओर विश्वात्मा अग्रसर हो रहा है।"

—श्रीअरविन्द

देश और कालके कई प्रकार

निर्भयता जादूकी तरह काम करती है

देश और काल केवल मानसिक चेतनामें ही पहले-पहल नहीं दिखायी देते और न उनका अंत ही वहां होता है। ये मनसे ऊपरके जगतोंमें भी होते हैं। सच पूछा जाय तो सारे विश्वकी विभिन्न सत्ताओंके बाहरी रूपोंके साथ ये लगे हुए हैं, बल्कि यों कहें कि ये वास्तवमें सभी आकारोंके सांचे हैं। पर प्रत्येक स्तर या केंद्रमें इनका स्वरूप बदल जाता है। प्रत्येक जगत्‌का अपना निजी देश और अपना निजी काल होता है।

इस तरह मानस-लोकमें जो देश और काल होता है वह हमारे इस भौतिक जगत्—पृथ्वीके देश और कालके जैसा नहीं होता। मानस-लोकमें हम अपनी इच्छाके अनुसार, एकदम अपनी मौजके अनुसार आगे या पीछे चल-फिर सकते हैं। वहां जैसे ही तुम किसी व्यक्तिकी बात सोचते हो वैसे ही वह तुम्हारे पास उपस्थित दीखता है। और जब कोई व्यक्ति तुम्हारे एकदम निकट होता है पर तुम किसी दूसरेकी बात सोचनेमें डूबे होते हो तो वह पहला तुमसे अत्यंत दूर होता है। वहां यह सब, सारी क्रियाएं तुरत-फुरत होती हैं, क्योंकि वहांके देश-कालकी अवस्थाओंमें कोई बाधा-विघ्न नहीं होता, वहां सर्वत्र पूर्ण स्वाधीनता ओत-प्रोत रहती है।

परंतु, इसके विपरीत, प्राणलोकमें ऐसी बात नहीं होती। वहां किसी भी क्रियाके लिये तुम्हें अपनी इच्छाशक्तिका प्रयोग करना पड़ता है। वैसे वहां भी दो वस्तुओंके बीचकी दूरी प्रायः मनोमय जगत्‌की दूरीकी तरह ही कम कठोर होती है, लेकिन वहांकी क्रिया उतनी बाधाहीन और तुरत-फुरत होनेवाली नहीं होती; वहां कोई क्रिया संपन्न होनेके लिये अपनी इच्छाशक्तिका प्रयोग करना आवश्यक होता है।

जब मनुष्य योग करना आरंभ करता है तब देश और कालके इन विभिन्न रूपोंका ज्ञान प्राप्त करना, व्यावहारिक दृष्टिसे, बड़ा उपयोगी होता है। जब मनुष्य अपने प्राणमय या मनोमय शरीरमें जाता है, तब वहां ठीक-ठीक कार्य करनेमें असमर्थ होता है और कई तरहकी भूलें कर बैठता है। जैसे, जब तुम अपने स्वप्न-लोकोंमें विचरण करते हो तब तुम्हें यह याद ही नहीं रहता कि तुम प्राण-जगत्‌के देश और कालमें हो और तुम ठीक उसी तरह कार्य करते हो जैसे तुम स्थूल शरीरमें रहते हुए करते हो। यदि तुम्हें उन स्तरोंकी चीजोंकी अवस्थाओंका आवश्यक ज्ञान हो तो तुम बहुत आसानीसे उन प्राणमय सत्ताओंसे दूर, स्वतंत्र रह सकते हो जो तुम्हें संत्रस्त कर डालती और भयावह दुःस्वप्न दिखाती हैं।

प्राणमय जगत्‌के देश और कालमें होनेवाली क्रियाओंकी एक विशेषता यह है कि उस लोककी सत्ताएं अपने इच्छानुसार भयंकर रूप ले सकती और तुम्हारे अंदर भीषण भयका संचार कर सकती हैं। यह तुम्हारे ऊपर आक्रमण करने और अधिकार जमानेका उनका अत्यंत शक्तिशाली उपाय होता है। उनके इस कौशलसे छुटकारा पानेके लिये यह आवश्यक है कि हम उस समय यह याद रखें कि उनकी भय दिखानेकी यह शक्ति झूठी है और हम उस समय भय-

को अपने पास न फटकने दें। जब तुम साहसके साथ उनका सामना करते हो, जरा भी इतस्ततः नहीं करते और सीधे उनकी आंखोंमें ताकते हो तो उसी क्षण मानों उनकी तीन-चौथाई शक्ति काफूर हो जाती है। और तुम यदि सहायताके लिये मुझे पुकारो तब तो उनकी रही-सही बाकी शक्ति भी स्वयं विलीन हो जाती है और वे भाग खड़ी होती हैं अथवा विलुप्त हो जाती हैं।

मेरे एक परिचित व्यक्ति थे, उन्हें अपने प्राणमय शरीरसें निकल जानेकी आदत थी। उन्होंने एक दिन आकर कहा कि रोज ही स्वप्नमें उनके सामने एक बहुत बड़ा बाघ आ खड़ा होता है और वह उनकी रातोंको बड़ा भयानक बना देता है। मैंने उनको सलाह दी कि आप अपना सारा भय झाड़ फेंकिये, सीधे उस पशुकी ओर चले जाइये और अपनी नजर उसके चेहरेपर अच्छी तरह गड़ा दीजिये। अगर आवश्यक प्रतीत हो तो पूर्ण विश्वासके साथ सहायताके लिये पुकारिये। उन्होंने ऐसा ही किया और आश्चर्यकी बात है कि एकाएक बाघ छोटा होने लगा और अंतमें एक छोटी-सी नगण्य बिल्ली बन गया!

तुम्हें शायद इस बातका कोई अंदाज नहीं होगा कि प्राणमय सत्ताओंकी आंखोंमें निर्भयतापूर्वक ताकने भरसे कितना बड़ा, प्रायः जादूकासा परिणाम निकलता है! इस पृथ्वीपर भी, तुम यदि प्राणमय शक्तियोंके इन सब अवतारोंके साथ, जिन्हें कि हम साधारण तौरपर जीव-जंतु कहते हैं, इसी तरह व्यवहार करो तो तुम उन्हें आसानीसे वशमें कर सकते हो, इसमें कोई संदेह नहीं। अगर तुम्हारे सामने एक बाघ आ जाय और तुम बिना कांपे उसकी आंखोंमें सीधे ताको तो वह तुरत तुम्हारे सामनेसे भाग खड़ा होगा।

इसी तरह यदि तुम जरा भी भयभीत हुए बिना एक सांपकी नजरोंमें अपनी नजर गड़ा दो तो वह तुम्हें डस नहीं सकेगा। परंतु तुम यदि सांपकी ओर आंख गड़ाकर देखो और साथ-ही-साथ तुम्हारे पांव भी थरथराते हों तो उससे कोई लाभ न होगा। यह अत्यंत आवश्यक है कि तुम्हारे शरीरमें कहीं तनिक भी कंपन न हो और तुम बिलकुल निर्भय बने रहो। जब सांप तुम्हारे सामने आ जाय, तुम उसकी नजरोंको अपनी नजरोंसे कैद कर लो, पर यदि वह तुम्हें प्रभावित करनेके लिये अपना सिर हिलाते हुए बैठ जाय और तुम्हें भीषण भयसे भर देनेकी चेष्टा करे तो तुम्हें शांत-स्थिर, ठंडे रक्तसे भरपूर बने रहना चाहिये।

पशुओंको मनुष्योंकी आंखोंमें एक ज्योति दिखायी देती है और यदि कोई उस ज्योतिको ठीक ढंगसे उनके ऊपर प्रयुक्त करे तो वे उसे सह नहीं सकते। मनुष्यकी दृष्टिमें एक ऐसी शक्ति होती है जो उन्हें निःशक्त बना देती है बशर्त्ते कि वह दृष्टि खूब स्थिर और भयसे एकदम खाली हो।

अतएव, संक्षेपमें, दो बातें बराबर याद रखो: कभी, किसी अवस्थामें भी भयभीत मत होओ और सभी परिस्थितियोंमें सच्ची सहायताको पुकारो और वह तुम्हारी शक्तिको सौगुना अधिक प्रबल बना देगी।

—श्रीमां

* * *

वेदसुधा :

श्रद्धा

—श्री जगन्नाथ वेदालंकार

[श्रद्धा जीवनकी महान् प्रेरक-शक्ति है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। अध्यात्म-साधनाकी तो यह आधार-शिला ही है। इसके बिना जीवन-यात्रा नहीं चल सकती। इसीलिये गीता में कहा गया है, 'यह पुरुष श्रद्धामय है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह होता है।'

श्रद्धाका अर्थ है सत्यको अपने अन्दर धारण करनेवाली शक्ति। इसमें सत्य अंतर्निहित रहता है और समुचित साधनासे वह प्रकाशित हो उठता है। उसके प्रकाशित होनेसे यह दृढ़, संपुष्ट और चरितार्थ होती है।

आइये, अब हम श्रद्धाकी वेदोक्त महिमाका कुछ रसास्वादन करें।]

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। यजु. १९.३०

व्रतसे मनुष्य दीक्षाको प्राप्त करता है, दीक्षासे विवेकशक्तिको। विवेकशक्तिसे श्रद्धाको प्राप्त करता है और श्रद्धासे सत्यकी प्राप्ति होती है।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ।। ऋ. १०.१५१.१

श्रद्धासे अभीप्साग्नि प्रदीप्त होती है, श्रद्धासे ही आमाहुति दी जाती है। वेदवाणीके द्वारा हम श्रद्धाको दिव्य ऐश्वर्यके मूर्धापर स्थित घोषित करते हैं।

(भावार्थ——श्रद्धाके बिना जीवनमें कुछ भी नहीं सध सकता। अध्यात्मसाधनाका तो यह प्राण ही है। इसके बिना अभीप्सा और आत्मदान संभव नहीं।

भगवान्‌के दिव्य ऐश्वर्यको भग कहते हैं। उस भगके स्वामी होनेसे ही वे भगवान् कहलाते हैं। वेद घोषित करता है कि भगका मूर्धा श्रद्धा ही है। यह सर्वोच्च दिव्य ऐश्वर्य है—यह श्रद्धा ही तो अंतमें सत्य और ज्ञानमें परिणत हो जाती है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ।। ऋ. १०.१५१.४

प्राण-साधनामें निरत, दिव्यगुण-सम्पन्न, अंतर्यज्ञके कर्ता यजमान श्रद्धाकी उपासना करते हैं—अपने हृदयके संकल्पसे उसीकी उपासना करते हैं। श्रद्धासे ही ज्योतिर्मय ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ऋ. १.१५१.५

हम प्रातःकाल श्रद्धाका आवाहन करते हैं, मध्याह्नमें श्रद्धाका आवाहन करते हैं और सूर्यास्तके समय भी उसीका आवाहन करते हैं। हे श्रद्धे! तुम यहां हमारे अंदर सत्यको धारण कराओ।

आ यदश्वान् वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ॥ ऋ. ८.१.३१

जब मैं विषयोंका भोग करनेवाले इन्द्रियरूप अश्वोंको सब ओरसे रोक लेता हूं तब मैं श्रद्धाके बलपर देहरूपी रथपर सवार हो सकता हूं तथा रसस्वरूप प्रभुके आनंदमें भी आरोहण कर सकता हूं।

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ ऋ. ७.३२.१४

हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्र! जो ज्ञानी संकटोंसे पार उतारनेवाली तेरी ज्ञानज्योतिमें श्रद्धाके द्वारा ज्ञान-ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है, और तू ही जिसका एकमात्र धन है ऐसे व्यक्तिको भला कौन मनुष्य, मानुषी शक्ति अभिभूत कर सकती है?

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव । ऋ. ९.११३.२

हे सोम! आनन्दरसके अधिपति देव! सत्य-वचन, सत्यनिष्ठा, श्रद्धा और तपके द्वारा निस्यन्दित होकर तुम मेरे अंतःकरण और आत्माके लिये स्रवित होओ।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥ यजु. १९.७७

प्रजापतिने सब रूपोंको देखकर सत्य और अनृत इन दो विभागोंमें स्पष्टतया पृथक्-पृथक् कर दिया है। उसने अनृतमें, असत्यमें अश्रद्धाको रखा है और सत्यमें श्रद्धाको।

(भावार्थ—प्रजापति स्वयं हमारे हृदयमें विराजे हुए हमारे अंदर सत्यके प्रति श्रद्धा और असत्यके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करते रहते हैं। हमें उनकी प्रेरणाके अनुसार सत्य और असत्यमें विवेक कर सदा सत्यको ही ग्रहण और असत्यका परित्याग करना चाहिये।)

सत्यं च मे श्रद्धा च मे ....यज्ञेन कल्पन्ताम् । यजु. १८.५

मेरा सत्य और मेरी श्रद्धा यज्ञके प्रति और यज्ञमय परमेश्वरके प्रति अर्पित हो।

(भावार्थ—मेरा सत्य और मेरी श्रद्धा यज्ञमय जीवन और यज्ञमय परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये सर्मपित हो।)

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ।।
अथर्व. ४.३०.४;. ऋ. १०.१२५.४

आदिशक्ति भगवती माता कहती हैं––हे श्रवण करनेमें समर्थ पुरुष! तू सुन। तुझे मैं श्रद्धेय, श्रद्धापूर्वक धारण करने योग्य सत्य-ज्ञानका उपदेश करती हूं। इस संसारमें जो कोई भी सांस लेता, देखता और सुनता है वह मेरे दिये अन्नका ही उपभोग करता है। जो मुझे नहीं मानते, मुझमें विश्वास नहीं करते वे नष्ट हो जाते हैं।

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ।। अथर्व. ९.५.७

अज (अजन्मा आत्मा) अग्नि है, अजको ही ज्योति कहते हैं, मनुष्यको अपने जीवन-कालमें ही इस अजको ब्रह्मके प्रति दे देना चाहिये, अर्पित कर देना चाहिये––ऐसा कहते हैं। इस लोकमें श्रद्धापूर्वक दिया हुआ, अर्पित किया हुआ अज सब प्रकारके अंधकारको दूर हटा देता है, नष्ट कर देता है।

अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ।। अथर्व. १९.६४.१.

उत्पन्न पदार्थमात्रको जाननेहारे महान् अग्निके लिये मैं समिधा, अपनी आत्मारूपी समिधाको लाया हूं––प्रदीप्त करनेके लिये। वह सर्वज्ञ अग्नि मुझे श्रद्धा और मेधा प्रदान करे।

◆

भागवत कृपा सर्वदा ही कार्य करनेके लिये तैयार रहती है, पर तुम्हें उसे कार्य करनेका मौका देना होगा और उसके कार्यमें कोई बाधा नहीं देनी होगी। एकमात्र एक ही शर्त्त आवश्यक है और वह है विश्वास। जब तुम अपनेको आक्रांत अनुभव करते हो तब श्रीअरविंदको और मुझको अपनी सहायताके लिये पुकारो। यदि तुम्हारी पुकार सच्ची हो यानी यदि तुम सच्चे हृदयसे सहायता पाना और मुक्त होना चाहो तो तुम्हारी पुकारका उत्तर जरूर आयेगा और भागवत कृपा तुम्हें मुक्त कर देगी।

––श्रीमां

परशुरामकी शिक्षा

पी जिसे उमड़ता अनल, भुजा भरती है,
वह शक्ति सूर्यकी किरणोंमें झरती है।
मरुके प्रदाहमें छिपा हुआ जो रस है,
तूफान अंधड़ोंमें जो अमृत-कलस है,
उस तपनतत्त्व से हृदय, प्राण सींचो रे!
खींचो, भीतर आंधियां और खींचो रे!

छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाय।
मत झुको अनय पर, भले व्योम फट जाय।
दो बार नहीं यमराज कंठ धरता है।
मरता है जो, एक ही बार मरता है।
तुम स्वयं मरण के मुखपर चरण धरो रे!
जीना हो तो मरनेसे नहीं डरो रे!

स्वातंत्र्य जातिकी लगन, व्यक्तिकी धुन है,
बाहरी वस्तु यह नहीं, भीतरी गुण है।
नत हुए बिना जो अशनि घात सहती है,
स्वाधीन जगत्में वही जाति रहती है।
वीरत्व छोड़ परका मत चरण गहो रे!
जो पड़े आन, खुद ही सब आग सहो रे!

दासत्व जहां है, वहीं स्तब्ध जीवन है,
स्वातंत्र्य निरन्तर समर, सनातन रण है।
स्वातंत्र्य समस्या नहीं आज या कलकी,
जार्गति तीव्र वह घड़ी-घड़ी, पल-पलकी।
पहरे पर चारों ओर सतर्क लगो रे!
धर धनुष-बाण उद्यत दिन-रात जगो रे!

आंधियां नहीं जिसमें उमंग भरती हैं,
छातियां जहां संगीनोंसे डरती हैं,
शोणितके बदले जहां अश्रु बहता है,
वह देश कभी स्वाधीन नहीं रहता है।
पकड़ो अयाल, अंधड़पर उछल चढ़ो रे!
किरिचोंपर अपने तनका चाम मढ़ो रे!

—रामधारी सिंह दिनकर

जीवनमें गति

—श्री रवीन्द्र

कहा गया है कि गति ही जीवन है। गति बन्द होने का नाम ही मृत्यु है। या तो हमें आगे बढ़ते रहना चाहिये या पीछेसे आनेवाली शक्तियां हमें धक्का देकर गिरा देंगी और हमें कुचलती हुई आगे बढ़ जायंगी। श्रीमाताजीने कहा है कि जीवन वर्षोंसे नहीं नापा जा सकता। कम या अधिक वर्षोंके कारण ही मनुष्य तरुण या वृद्ध नहीं हुआ करता। जिसके अंदर प्रगतिशीलता हो, जिसकी चेतना हमेशा आगे बढ़ती रहे वह दो सौ वर्षका होनेपर भी युवा है और जो सिर पकड़कर बैठ गया है, वह चाहे बीसका ही क्यों न हो, वृद्ध है। इस विषयमें ऐतरेय ब्राह्मणके कुछ उद्धरण यहां दिये जा रहे हैं:—

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति ॥

हे रोहित, सुनते हैं, जो श्रमसे नहीं थकता, ऐसे पुरुषको लक्ष्मी नहीं मिलती। बैठे हुए आदमीको पाप धर दबाता है। इन्द्र उसीका मित्र है जो चलता रहता है। चलते रहो, चलते रहो।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलेग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः। श्रमेण प्रपथे हताः। चरैवेति चरैवेति॥

जो चलता रहता है उसकी जांघोंमें फूल फूलते हैं, उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलनेवालेके पाप थककर सोये रहते हैं, चलते रहो, चलते रहो।

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः। चरैवेति चरैवेति ॥

बैठे हुएका सौभाग्य भी बैठा रहता है, खड़े हुएका खड़ा रहता है, लेटे हुएका सौभाग्य सोया रहता है और चलनेवालेका सौभाग्य चल पड़ता' है; 'चलते रहो।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥ चरैवेति.....

सोनेवालेका नाम कलि, अंगड़ाई लेनेवालेका द्वापर, उठ खड़े होनेवालेका त्रेता और चलनेवाला सतयुग है। चलते रहो......।

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥ चरैवेति ...

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है, सूर्यका

परिश्रम देखो जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। (ऐतरेय ब्राह्मण शुनःशेप उपाख्यान)

अब इसी तरहकी एक चीज उर्दूके सुप्रसिद्ध कवि डाक्टर मुहम्मद इकबालके मुंहसे सुन लीजिये। तारे रात भर चलते-चलते थक गये। उन्होंने चांदसे शिकायत की कि यह भी क्या जीवन हुआ, जब देखो तब चलते रहो, चलते रहो। इस संसारमें कहीं विश्राम नजर नहीं आता? यहांकी हर चीज गतिशील है। क्या कभी यह चलना खतम भी होगा? क्या कभी हम लक्ष्यतक पहुंच भी पायंगे? चांदने उत्तर दिया, दोस्तो, गति ही जीवन है। यही इस संसारकी परिपाटी है। समयका घोड़ा आकांक्षाके कोड़े खाकर हमेशा दौड़ता रहता है। यहां पड़ाव करना असंभव है। रुकनेमें मौत छिपी है। जो चलते रहते हैं वे बढ़ जाते हैं और जो जरा ठहरते हैं वे कुचल दिये जाते हैं। इस मस्तानी चालका ध्येय है परम सौंदर्य! आरंभ है प्रेम और अंत है सौंदर्य!!

लीजिए, अब उन्हींके शब्दों में सुनिए।

चांद और तारे

डरते दमे-सहर[1]से तारे कहने लगे कमर[2]से
नज्जारे रहे वही फलक[3] पर हम थक भी गये चमक चमक कर
काम अपना है सुबहो-शाम चलना चलना चलना मुदाम[4] चलना
बेताब है इस जहां की हर शै[5] कहते हैं जिसे सुकूं[6] नहीं है।
रहते हैं सितम कशे सफर[7] सब तारे इन्सां शजर[8] हजर[9] सब

होगा कभी खत्म यह सफर क्या?
मंजिल कभी आएगी नजर क्या?

कहने लगा चांद हमनशीनों[10] ऐ मजरा-ए शबके[11] खोशा चीनो[12]
जुम्बिश[13] से है जिन्दगी यहां की ये रस्म कदीम[14] है यहां की
है दौड़ता अशहबे-जमाना[15] खा खा के तलब[16] का ताजियाना[17]
इस शहमें मुकाम[18] बेमहल हैं फेशीदा करारमें अजल है[19]
चलनेवाले निकल गये हैं..... जो ठहरे जरा कुचल गये हैं।

अंजाम[20] है इस खिराम[21]का हुस्न[22]
आगाज[23] है इश्क इन्तहा[24] हुस्न।

* * *

---

[1] सवेरेके समय। [2] चांद। [3] आकाश। [4] हमेशा। [5] वस्तु। [6] शांति। [7] सफर, जुल्मसे तंग आए हुए। [8] पेड़। [9] पत्थर। [10] दोस्तों। [11] रातकी बयारी। [12] फूल चुननेवालो। [13] गति। [14] पुरानी। [15] समयका घोड़ा। [16] इच्छा, प्यास। [17] कोड़ा। [18] ठहराव। [19] चैनमें मौत छुपी हुई है। [20] अंत। [21] मस्तानी। [22] सौंदर्य। [23] शुरू। [24] अंत।

वह छत्रसालकी मां थी

—१—

नटखट राजकुमारी

[महाराज छत्रसालका नाम सुनते ही प्रत्येक बुन्देलेका सिर गर्वसे ऊंचा हो जाता है। ये महाराणा प्रताप और शिवाजीकी कोटिके वीर थे जिनका सारा जीवन शत्रुसे लोहा लेते हुए बीता था। कालकुमरि इसी वीरकी मां थीं। अजितसिंहजी हमारे लिये कालकुमरिकी जीवन-गाथा लिख रहे हैं। यह दो-तीन अंकोंमें समाप्त होगी, उसके बाद छत्रसालके बारेमें लिखना शुरू करेंगे। भाषामें यत्र-तत्र बुन्देली छटा रखनेका प्रयास किया जा रहा है।—सम्पादक]

बुन्देलखण्डका स्वातंत्र्य-प्रेम शाहजहांके दिलका कांटा बन चुका था। उसपर अपना आतंक जमानेके लिये वह कुछ भी नहीं उठा रखना चाहता था। ओरछाके राजा जुझारसिंहको जब वह सीधी तरह न दबा सका तो उसने उनको छल-बलसे मरवा डाला। इससे समूचा बुन्देलखण्ड तिलमिला उठा। ओरछाकी गद्दीकी रक्षाके लिये वहांके एक प्रमुख सरदार राव चम्पत राय खुलकर उसके विरोधी बन गये। बुन्देलखण्डको जगानेका मानो उन्होंने बीड़ा ही उठा लिया। वह दिन-रात घोड़ेकी पीठपर रहते और घर-घर स्वतंत्रताकी अलख जगाते। देशने उनकी वीर पुकार सुनी और वह सजग हो उठा। जहां-तहां उनके सहयोगी खड़े होने लगे। उन्हीं सहयोगियोंमें एक युवक, सहराका होनहार शासक सरदार इन्द्रमणि भी था। वह बड़ा साहसी और पराक्रमी था। उसने भी शाहजहांका खुले तौरपर विरोध करना शुरू कर दिया।

शाहजहांका संकेत पाकर निकटवर्ती अमीर उमराव इन्द्रमणिके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। नवाब मुहीउद्दीन इस षड्यंत्रका प्रमुख संचालक था। अंतमें उसने सहरापर चढ़ाई कर दी। चम्पतरायकी तरह इन्द्रमणि भी वीर राजपूतोंको एकत्र करके युद्ध करता रहता था। अब मुहीउद्दीनके साथ इसका संघर्ष बहुत कसकर चलने लगा। युद्ध होते-होते बरसात आ पहुंची।

* * *

इधर सहरामें एक अनोखी तरंग उठी। इन्द्रमणिकी छोटी बहन राजकुमारी कालकुमरिने नगरमें एक युद्ध-शिविर खोल दिया। वह नगर तथा समीपवर्ती प्रदेशके राजपूतोंकी समवयस्का बालिकाओंको उनके घर जाकर बुला लाती और युद्धक्षेत्रमें कैसे और क्या सहायता पहुंचानी चाहिये इसकी शिक्षा देती। इस कार्यमें स्थानीय अनुभवी पर वयोवृद्ध क्षत्रिय भी सहायता करनेको तत्पर हो गये। उन कुमारियोंके द्वारा वह युवकोंमें युद्धका जोश फैलाती और सेनामें भाग लेनेको प्रोत्साहित करती। इस तरह उसने सैनिकोंकी एक अच्छी टुकड़ी खड़ी कर ली। वह दिन-रात घोड़ेकी पीठपरसे शिविरके कामका संचालन करती। उसकी सहे-

लियां भी उसका अनुसरण करतीं। इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। नगर व राज्यमें तथा अन्यान्य स्थानीय राजपूती केंद्रोंमें एक अद्भुत संगठन और उत्साहका वातावरण तैयार हो गया। रातको अपने महलमें आकर वह अपनी भाभी कमलाको दिनभरके कामका विवरण देती और उससे परामर्श भी लेती। कमला उसको बहुत प्यार करती थी और उसके कामोंमें सदा सहायता करती। इस प्रकार इन्द्रमणिको एक ठोस सहायताका साधन मिल गया।

* * *

आज महलकी नीचेकी बारादरीमें बैठी कालकुमरि और कमलाको बात करते-करते आधी रात हो गयी। वे आपसमें चारों ओरकी परिस्थितिपर विचार-विनिमय कर रही थीं। बीच-बीचमें कमलाके मुंहसे गरम उसासें निकल पड़ती थीं। इसपर कालकुमरिका ध्यान गया तो पूछ बैठी—"भाभी साहिबा, आज आपको खिन्नता क्यों हो रही है?" कमलाने कहा, 'कितने दिनोंसे उनका कोई समाचार नहीं मिला और आज मेरी दाहिनी आंख भी फड़क रही है, जो प्रायः अनिष्ट सूचक होती है।"

"भाभी! अनिष्ट और अमंगलकी चिंता केवल मनका विकार है। भगवान्का भरोसा और हृदयका साहस ही इसका उपाय होता है। हमें हर समय भाईसाहबकी सहायता करनी चाहिये। यह भी एक सहायता है कि हम उनके प्रति अपने मनमें दुर्बल विचार न आने दें।"

"राजा[1]! आपका विचार है तो सुन्दर पर जब हृदय अधीर हो उठता है तब यह काम नहीं देता।"

"विचारकी सुन्दरता ही क्या यदि उससे हमें बल और प्रकाश न मिले?"

"राजा, अभी आप अकेली हो, जीवनका साथी होता तब उसके लिये हृदयकी कोमलता उमड़ ही पड़ती"—कमलाने हंसते हुए कहा।

"भाभी साहिबा! आप मेरे लिये आदर और श्रद्धाकी पात्र हैं, मैं प्रत्युत्तर नहीं दे सकती।"

"फिर भी......"

"तो बात यह है कि भाईके लिये बहिनका प्यार कम गहरा नहीं होता; पर सच्चा प्रेम तो वही है जो प्रियको उन्नति-पथपर आरूढ़ रख सके; वह प्रेम ही क्या जो उसे पथभ्रष्ट करे। वह तो निरा स्वार्थ है।"

ठीक इसी समय दरवाजेपर खटखटकी आवाज हुई और कालकुमरि तत्काल दरवाजेकी ओर झपट गयी, कमला भी उसके पीछे हो ली। कालकुमरिने आगन्तुकका नाम जानना चाहा, उत्तर मिला, "इन्द्रमणि"। कालकुमरिने शीघ्र ही दरवाजा खोल दिया। दरवाजेपर भाई-को भीगा देख चकित होकर उसने पूछा—"दाऊ साहब! आज अकेले ही इतनी रातको कैसे?

---

[1] बुन्देलखंडमें स्त्रियां देवर और ननदको 'राजा' कहती हैं और बड़े भाईको दाऊ साहब कहा जाता है।

युद्धकी क्या स्थिति है और साथी ठाकुरोंका क्या समाचार है ?"

"आजका समाचार उत्साहवर्द्धक नहीं।"—इन्द्रमणिने दबी जबानमें उत्तर दिया।

"क्या हुआ, आप इस प्रकार सराबोर क्यों हैं ?"

"आज हमें मैदान छोड़ना पड़ा; साथी ठाकुर भी भाग खड़े हुए और मैं बेतवामें कूदकर निकल सका।"

"छि: ! मैं यह क्या सुन रही हूं ! जीवनके मोहने कर्तव्यको ढक दिया ? बुन्देलखण्डको तब आपसे क्या आशा हो सकती है ? आप लौट जावें, यहां आपके लिये स्थान नहीं। इतना कहकर उसने फाटक फेर दिया।

* * *

पतिको उलटे पैर लौटते देखकर कमलाका हृदय दहल गया। फाटक खोलकर वह इन्द्रमणिके पीछे दौड़ पड़ी। कालकुमरि भाभीको नदीके तीरपर पकड़ पायी। तबतक इन्द्रमणि बीच नदीमें दिखायी दिये। समझा-बुझाकर कालकुमरिपर बड़ी कठिनाईके साथ कमलाको वापस ला सकी। क्रोधके आवेगमें कमला कालकुमरिपर बहुत बिगड़ी पर काल तनिक भी विचलित नहीं हुई। तब कड़ी आवाजमें कमलाने कालसे कहा—"राजा, अपना पति होता तो गलेसे लगा लेती, इतनी निष्ठुरताका व्यवहार न करती। भाईके प्रति आपके प्रेमका आदर्श देखकर मैं तो दंग रह गयी।"

"भाभी साहिबा ! यह तो भाईके प्रति बहिनके प्रेमका नमूना देखा आपने !"

"यदि पति होते तब ?"

"तब तो उनकी छातीमें आपकी कालकी कटार ही होती।"

"निष्ठुरताकी कोई सीमा भी है ?"

"यह निष्ठुरता नहीं भाभी ! यह तो प्रेमका सच्चा व्यवहार है। आज दाऊ साहब आपके मोहमें पड़ जाते तो उनके भावी जीवनकी यह इति ही होती। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।"

"राजा ! आपके हृदयको मैं समझ ही नहीं सकी। पर एक बात कहे देती हूं—आपका जीवनसाथी मैं ऐसा खोजूंगी जो आपको जीवन भर कठोरता और संघर्षका आनन्द दे सके। तभी आपके प्रेमका सच्चा रूप देखनेको मिलेगा।"

"प्यारी भाभी ! तभी आप अपनी कालका सच्चा उपकार भी कर सकोगी और तभी वह अपने जीवनको सार्थक बना सकेगी।"

बातों-बातोंमें प्रभात हो गया। दिन निकलनेसे पहले ही कालकुमरि अपने घोड़ेपर सवार होकर कहीं चल पड़ी। दस-बारह दिनतक कालकुमरिकी कोई खबर न मिली। उसकी भाभीका मन अब उसके लिये व्याकुल रहने लगा। मन मसोसकर वह यही कहती—कितनी नटखट लड़की है, भगवान् उसकी रक्षा करें।

* * *

आज सहरामें घर-घर तोरण और बन्दनवारें लटक रही हैं। महलके दरवाजेपर दुंदुभी

और शहनाई बज रही है—स्त्रियां कलश लिये खड़ी हैं। समाचार आ गया है कि इन्द्रमणि मुहीउद्दीनको बंदी बनाकर विजयके नगाड़े बजाते हुए वापस लौट रहे हैं। इसीसे नगरमें यह उत्साह और आमोद छाया हुआ है।

कमला मांगलिक उपचारोंके साथ आरती सजाए हुए इन्द्रमणिके स्वागतके लिये द्वारपर खड़ी है, पर है कुछ अनमनी-सी। घोड़ेकी टापोंकी आवाज सुनकर और आकाशमें उठी धूलको देखकर कमला समझ गयी कि उसके हृदय-सम्राट् आ ही पहुंचे। चेष्टा करके उसने मनोभावको बदला और प्रसन्न मुद्रामें बाहर झांकने लगी। तभी दलबल-सहित इन्द्रमणि महलके दरवाजेपर आ पहुंचे। चारों ओरसे विजय-दुंदुभी सुनकर जनता स्वागतको उमड़ पड़ी।

घोड़ेसे उतरकर कालकुमरिके साथ इन्द्रमणि मुस्कराते हुए कमलाके सामने आ खड़े हुए। कमलाकी प्रसन्नता और भी साकार हो उठी जब उसने इन्द्रमणिके साथ अपनी कालको भी देखा। उसीके वास्ते वह इतनी चिंतातुर हो रही थी। उसने दोनोंकी आरती उतारी और विनोदके साथ दोनोंको महलके भीतर ले गयी। दोनोंके सामने जलपान रखकर कमला पंखा डुलाने लगी।

तभी कालने भाईकी ओर ताकते हुए व्यंगके साथ कहा—"दाऊ साहब, भाभी साहिबा मुझसे कुछ रूठ गयी थीं।"

"और अब क्या रुष्ट नहीं हूं; मुझे बिना कुछ बताये अकेली चल दी और इधर मैं दिन-दूनी दूभर होती रही। तुम्हारा नटखटपन देखते ही बनता है।"

"कमला! तुम्हारी काल सचमुच बड़ी नटखट है। भाग्यसे मैं मुहीउद्दीनको बंदी बना चुका था तब आप पांच सौ सवारोंकी सेनानी बनी हुई अचानक युद्धके मैदानमें आ धमकीं। कुछ और पहले पहुंच पातीं तो विजयश्री इन्हींके हाथ लगती। मैं कोरा ही रह जाता। पर सच पूछो तो बहिन कालके प्रेम और उत्सर्गका ही यह फल है जो मुझे यह विजय मिल सकी।" फिर उठकर इन्द्रमणिने बहनके पैर छुए और उसको अपने कंठसे लगाकर उसका माथा चूमा।

विनोद करते हुए कमलाने अचानक दोनोंके हाथोंको फूलमालासे बांध दिया और यह कहकर हंस पड़ी, "कैसी सुन्दर जोड़ी है।"

इन्द्रमणिने कमलासे गम्भीरतापूर्वक कहा कि कालकी जोड़ी तो खोजनी ही होगी और वह जोड़ी भी हो इसके अनुरूप ही।

सुनकर कमलाने गर्वभरी प्रसन्नताके साथ कहा—"मैं सब ठीक कर चुकी। इसी बीच मैंने चम्पतरायजीसे उनकी स्वीकृति ले ली है।"

कालने आनन्द और लज्जासे सर नीचा कर लिया—मानो अपनी मौन स्वीकृति और कृतज्ञता प्रकट कर दी।

(क्रमशः)

* * *

बुद्धिमान् तभी मुंह खोलता है जब उसके मौनसे हानिकी संभावना हो।

—शेखसादी

देश-मातृका

—अम्बिकातनय दत्त बेन्द्रे

"मां! बता तू कौन है आकर खड़ी ?"
"पूछता तू कौन मुझको किसलिये ?"
"क्यों थकी आवाज तेरा नाम क्या है ?"
"मैं रही विख्यात अब बेनाम हूं।"
"तू बता अपना घराना ओ सुहागिनि ?"
"पूछ ले तू शून्यसे मेरा घराना।"

"गोत्रके सब लोग अभिभावक नहीं क्यों"
"छिप गये सब हैं यहीं यो ही कहीं"
"पुत्र और कलत्र तेरे हैं नहीं री!"
"कौन मानेगा कहूं यदि हैं सभी।"

"ओ विदेशिनि है नहीं घरबार तेरे"
"जल उठे घर तो रही किस देशकी मैं"
"रह गयीं बातें तुम्हारी ज्यों पहेली!"
"लाल! मेरी बात ही बस है चुटीली।"

"राजमुखि! है कान्ति तुझमें राजती,"
"ठीक है पर वह नहीं ज्योतित हृदयमें।"
"देशकी किस मातृका हो तुम कहो ?"
"भावनयनो देख, मैं देवी रही।"

"आ गयी हो क्यों कहो क्या काम है ?"
"योग बिन कैसे समझ पाऊं व्यथा
आदि और समाप्ति बिन ज्यों त्याग है।"
"आ गयी हो भीख क्या अयि मांगने"
"दे सकोगे मांग लूं मैं जो अभी"

"कह सकूं क्या ? मैं उसे दूंगा जरूर"
"वीर तुममें है चपलता और संशय"
"विफलताकी भीतिसे हैं हाथ रुकते"
"तुम कदम आगे रखो उत्साहसे"

"'ना' न कह पाऊं कहूं 'हां' भी नहीं"
"बुद्धिमय परखो जरा भगवान्‌को"
"चण्डि चामुण्डा बता तू चाहती क्या ?"
"रे पुरुष! बलिदानकी तुझको प्रतीक्षा"

मन भरा औ हो गया रोमांच मुझको
शुभ प्रभाती में उठा उषा जगी।

[बेन्द्रेजी कन्नड़ भाषाके सबसे प्रमुख कवि हैं। कर्णाटकके प्रायः सभी बड़े कवि इनके शिष्य रह चुके हैं। इन्हें अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है। इनके कारण वर्तमान कन्नड़ साहित्यपर श्रीअरविंदकी छाप दिखायी देती है। —स.]

काक-परिचय

--श्री कृष्णलाल भट्ट

यह तो मनुष्योंको तंग करनेकी बात हुई। कौए इसी तरह चीलोंको भी तंग करते हैं। चीलको अगर कोई खानेकी चीज मिल गयी हो तो उसे खानेके लिये अथवा यूं ही कभी छतपर आ बैठती। वहां चक्कर लगाते हुए कौओंका ध्यान उसकी तरफ गया नहीं कि बस मुसीबत। उनमेंसे एक आकर उसके पास बैठ जायगा, केवल खाना छीन लेनेके लिये ही नहीं बल्कि उसे तंग करनेके लिये। फिर धीरे-धीरे वह पास आने लगेगा और फिर एकदम चीलके पीछे जाकर उसकी पूंछ खींचनेका प्रयत्न करेगा और उड़ जायगा। वह जानता है कि अगर कहीं चीलकी झपटमें आ गया तो उसे लेनेके देने पड़ जायेंगे।

एक कौआ इस तरह चीलका ध्यान खींचता है और उधरसे दूसरा उसकी मददके लिये आ पहुंचता है। दोनों चीलके दोनों तरफ व्यूह रचना करते हैं। सामनेवाला कौआ चीलके पास जाता, चील उसे चोंच मारनेकी सोचती न सोचती कि इतनेमें पीछेवाला चुपकेसे उसकी पूंछ खींचकर भाग जाता। इस बीच कौए इतने पैंतरे बदलते हैं कि सामने देखे बिना उनका समझना मुश्किल है। चीलके पास खाना हो या न हो, उसे तंग करना मानों कौएका धर्म है।

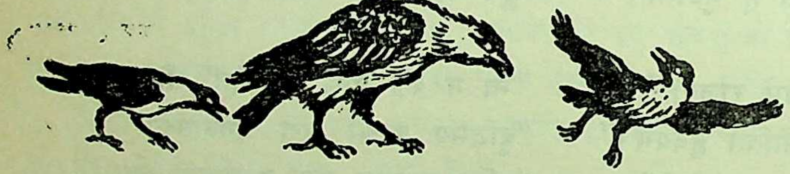

चील अगर खानेकी कोई चीज लिये हुए उड़ रही हो और कौएका ध्यान उस ओर चला जाय तो बस बेचारी चीलकी मुसीबत समझो। कौआ चीलकी अपेक्षा बहुत ज्यादा तेज चुस्त होता है इसलिये चीलको पता ही नहीं लग पाता कि कौआ आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, किस तरफसे झपट्टा मारेगा। ऐसी हालतमें तो उसकी मुसीबत ही आ जाती है और उसे खाना वहीं फेंककर भागना पड़ता है और कौआ उस खानेके टुकड़ेको हवामेंसे ही पकड़ लेता है।

पाठकोंको शायद याद हो कि ऐसी ही एक घटनासे दत्तात्रेयने अपरिग्रहका पाठ सीखा था।

* *

कौएमें शरारत तो मानों कूट-कूटकर भरी होती है। कहीं बारीक जाली लगी हो जिसपर बैठना असंभव हो तो वहां किसी-न-किसी तरह बैठना तो मानो धर्म हो जाता है। कहीं

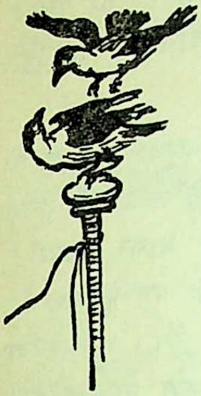

ऊंचे बांस बंधे हों तो उनके ऊपर बैठना तो जरूरी होता ही है। पहले एक कौआ आकर बैठता है, फिर दूसरा उसे उड़ा देता है और अपने-आप बैठ जाता है, फिर तीसरा आता है; इस तरह दूसरोंको हटा-हटाकर उस जगहपर अधिकार करनेका खेल चला करता है।

और यही नहीं। इसे सरकस करनेमें बड़ा मजा आता है। कहीं झंडा फहरा रहा हो तो उसकी लकड़ीपर बैठता है। यह तो कुछ भी नहीं। उसके बाद वह फहराते हुए झंडेके कपड़ेकी धारपर बैठनेका प्रयत्न करता है। उड़ते हुए झंडेकी दिशा तो एक ही रहती है पर उसका किनारा सर्पाकार हो जाता है। उस किनारेको पकड़कर कौएजी उसपर बैठनेका प्रयास करते हैं, पर जैसे ही वे अपने पंखोंकी गति बंद करने लगते हैं कि गिरनेका डर लगता है और उनके पंख सहायताके लिये फड़फड़ाने लगते हैं। अब इसे खाली शरारत न कहें तो क्या कहें?

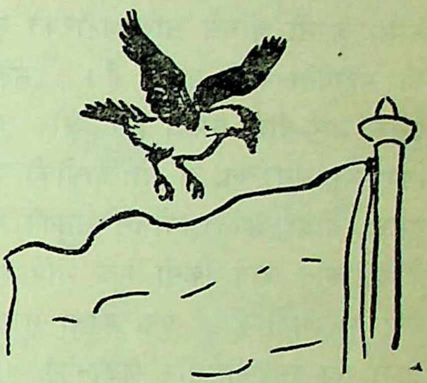

◆ ◆

कौएकी 'कांव कांव' में भी भावके अनुसार अलग-अलग स्वर होते हैं। परंतु जब ध्यानसे न सुना जाय तो यही लगता है कि उसे कर्कश 'कां कां' के सिवा और कुछ नहीं आता।

पक्षी अपनी आवाजमें बड़े सूक्ष्म परिवर्तन करके अपना भाव प्रकट करते हैं। एक-दूसरेको बुलानेमें, लड़ाईके समय, भय या मित्रता और प्रणयके समय आवाजकी विविधता सुनायी देती है।

कौएको कोई बात समझमें न आ रही हो, या कोई ऐसी घटना घटे जिसमें उसे रस हो तो वह एक अजीब आवाज करता है जिसे सुनकर आस-पासके बहुतसे कौए 'कांव-कांव' करते हुए वहां इकट्ठे हो जाते हैं। और एक-दूसरेके स्वरमें स्वर मिलाकर सामूहिक गान शुरू कर देते हैं। पच्चीससे पचासतक कौए इकट्ठे होकर गलीमें इधरसे उधर और उधरसे इधर उड़ते हुए 'कांव कांव' करके हम लोगोंके लिये बात सुनना असंभव कर देते हैं।

जिस जगह खाना मिलता हो वहां जाकर खाना देनेवालेको बुलानेकी आवाज और ही तरहकी होती है। मेरे साथ हिला हुआ 'कानीया' आवाज किये बिना खिड़कीपर बैठा रहता था और अगर मेरा ध्यान उस तरफ न जाय तो बड़े धीमे कोमल स्वरमें 'कौऊ'के जैसा शब्द करता था। दोपहरको पेड़की छायामें आराम करता हुआ कौआ सन्तोष प्रकट करनेके लिये कुछ ऐसा ही शब्द करता है। एक-दूसरेके पास बैठकर धीमी-धीमी बातचीत करते हुए भी कौए ऐसी ही आवाज किया करते हैं।[1]

---

[1] पांडिचेरीमें कोयल नहीं होती। एक बार अचानक कोयलकी आवाज सुनायी दी। हम तीन-चार व्यक्ति बड़ी उत्सुकतासे बाहर निकले पर वहां कोयलका नाम-निशानतक न था। हम लोगोंने आसपासके पेड़-पौधोंको अपनी नजरोंसे छान डाला, पर परिणाम कुछ न निकला। दो-

कौओंमें जोरदार समूह-वृत्ति होती है। एक कौएपर कोई मुश्किल आयी हो तो पचासों उसकी सहायताके लिये आ पहुंचते हैं। इसके विपरीत यदि कोई कौआ आदमियोंके साथ हिल जाय तो कौए उसे बहुत तंग करते हैं।

एक-दूसरेकी मददका बड़ा अच्छा उदाहरण है गरदनके ऊपरले भागको खुजाना। यूं तो कौआ अपनी चोंचसे सारे शरीरको खुजा लेता है पर गरदनके ऊपरले हिस्सेके लिये उसे दूसरेकी सहायता लेनी पड़ती है। इसके लिये कौआ किसी दूसरे कौएके पास आकर बैठता है, उसके आगे-पीछे घूमता है। और नजदीक आकर गरदन नीची करके वहांके पर फुलाता है। फिर भी असर न हो तो साथीकी ओर देखकर फिर गरदन नीची करता है। आखिर वह दूसरा कौआ अपनी चोंचसे उसकी गरदनको खुजा देता है। यह सारी क्रिया निःशब्द होती है या कौन जाने किसी मूक भाषाका प्रयोग होता है। कई बार इसमें मजाककी स्थिति भी पैदा हो जाती है। एक कौआ गरदन नीची करता है तो दूसरा भी नीची कर लेता है, फिर दोनों एक-दूसरेकी ओर खुजानेकी आशासे देखकर फिरसे नीची गरदन कर लेते हैं।

* *

एक घटना और। इसे अगर अपनी आंखोंसे न देखा होता तो मैं कभी विश्वास न करता। कौआ चालाक तो होता ही है पर साथ ही बुद्धिमान् भी। एक दिन शाम हो चली था पर अभी अंधेरा न छाया था। मैं अपने छज्जेपर खड़ा था। नीचे सड़कपर एक कुत्ता हड्डीका बड़ा-सा टुकड़ा लिये उसे चबानेकी कोशिश कर रहा था। थोड़ी देरमें एक कौआ कहींसे उड़ता हुआ आया और सामनेके मकानकी एक नीची दीवारपर बैठ गया और गरदन टेढ़ी कर-करके हड्डी की ओर देखने लगा। उससे रहा न गया और वह उड़कर कुत्तेके पीछे आ बैठा। कुत्ता पूरे ध्यानसे हड्डी चबानेमें लगा था। इसने धीरेसे उसकी पूंछपर चोंचसे चोट की। कुत्तेने परवाह न की तो यह जरा और नजदीक आया और जोरसे उसकी पूंछ खींची। कुत्ता जरा नाराज हुआ, मुंह फेरकर गुर्राया और कौएको उड़ते हुए देखकर फिरसे अपनी हड्डी चबाने लगा।

तीन दिनतक यही तमाशा होता रहा। हम वर्षोंके बाद कोयल देखनेको उत्सुक थे और 'कोयल' हमसे आंख-मिचौनी खेल रही थी। आखिर एक दिन रहस्य खुल गया। एक कौए साहब पेड़पर बैठकर कोयलकी बोली बोल रहे थे। आंखोंको विश्वास न होता था पर तथ्यको मानना ही पड़ा। काफी दिनोंतक यह कोयल-कौआ हमारे यहां आता रहा। जब गुस्सेमें आता तो जोर-जोरसे कांव-कांव करता और लाड़ दिखाता तो कोयलकी बोली बोलता। कुछ दिनोंके बाद न जाने कहां गायब हो गया।

इसी तरह गरमी के दिनोंमें कौए हमारे कमरेके बाहर लगे हुए नलको खोलकर पानी पी जाया करते हैं और यह बात इतनी आम हो चुकी है कि अब उसकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं जाता।—सम्पादक

अब कौएने जरा ज्यादा हिम्मतसे काम लिया। फिरसे पास आकर कुत्तेकी पूंछ जोरसे खेंची। कुत्ता बहुत ही नाराज हो गया और कौएके पीछे दौड़ा। कौआ हड्डीसे दूर चला

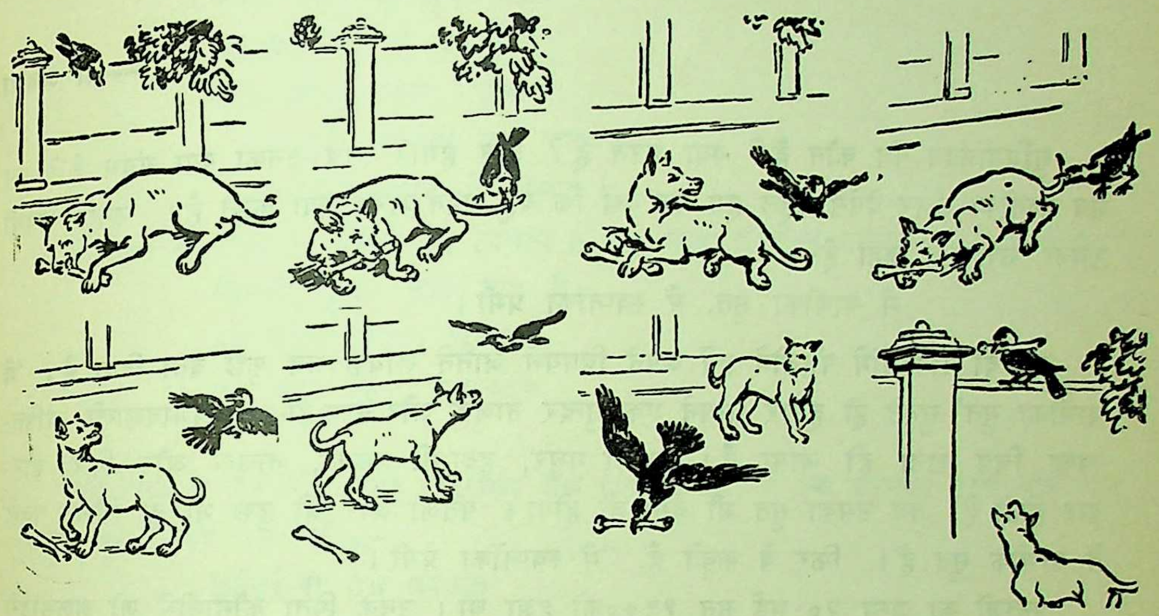

गया। कुत्ता उसका पीछा करता रहा। थोड़ी दूर जाकर कौएने एकदम दिशा बदली, हड्डी-पर एक झपट्टा मारा और उसे लेकर दीवारपर जा बैठा। बेचारा कुत्ता असहाय देखता रह गया! और कर ही क्या सकता था?

कौओंको दूर रखनेके लिये एक युक्तिको सफल होते हुए देखा है। एक रेस्टोरांमें खुली छतपर बैठनेकी व्यवस्था है। कौए दोपहरको वहां आकर स्थान गंदा कर जाया करते थे। एक बार व्यवस्थापकोंने आकार और रंगमें ठीक कौएके जैसा एक खिलौना अंदरकी मेजपर रख दिया। तबसे वहां कौओंका आना बंद हो गया। एक और मकानमें खिड़कीमेंसे आनेवाले कौओंके लिये भी यही उपाय सफल रहा है।

(समाप्त)

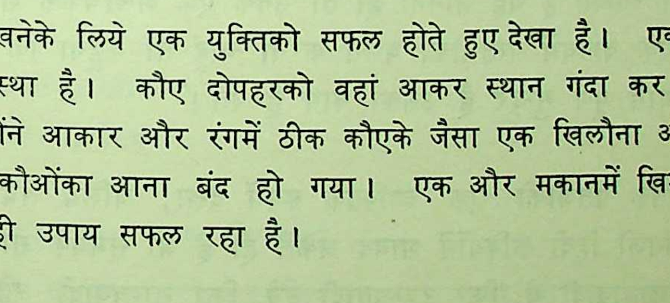

सुमित्रानंदन पंत

—श्री अरुणा

सुमित्रानंदन पंत कौन हैं? क्या करते हैं? और हमारे साथ उनका क्या संबंध है? इन सब प्रश्नोंका उत्तर देनेसे पहले हम यह देखें कि वह अपने बारेमें क्या कहते हैं। उन्होंने अपनी रचना 'उत्तरा'में कहा है—

मैं वाणीका सुत, मैं स्वप्नोंका प्रेमी।

इन दो पंक्तियोंमें पंतजीने हमें अपने विषयमें जानने लायक सब कुछ बता दिया है। 'मैं वाणीका सुत' सुनते ही हमारे सामने एक सुन्दर नाजुक और साथ-ही-साथ प्रभावशाली व्यक्तित्वका चित्र खड़ा हो जाता है। वाणी मधुर, हवा-सी हलकी, नाजुक और फिर जोरदार होती है; तब उसका सुत भी वैसा ही होगा। पंतजी और जो कुछ भी हों लेकिन पहले वे वाणीके सुत हैं। फिर वे कहते हैं, "मैं स्वप्नोंका प्रेमी।"

पन्तजी का जन्म २० मई सन् १९००को हुआ था। उनके पिता कौसानीमें जो अलमोड़ेसे ३२ मील दूर है, चायके बगीचेके मैनेजर थे। पन्तजी अभी छः घण्टेके ही थे कि उनकी मांका देहान्त हो गया। उनके तीन भाई और चार बहनें थीं। उनके एक वाक्यसे हमें उनकी रहन-सहनका पता लग जाता है—मैं अच्छे ढंगसे पला हूं, अच्छे ढंगसे रहनेका अभ्यासी हूं, और सभी बहुत अच्छे ढंगसे रहें इस बातका पक्षपाती हूं।

पन्तजी कैसे व्यक्ति हैं यह जानना हो तो उनके एक अलोचकके शब्दोंमें सुनिये—

"यदि मैं एक वाक्यमें पन्तजीका वर्णन करना चाहूं तो कहूंगा कि जो व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मासे पूर्ण सुन्दर है उसका नाम है पंत।"

हमने अभीतक पंतजीको एक व्यक्तिके रूपमें देखा; चलिये अब हम उन्हें एक कविके रूपमें देखें। पंतजी हिंदी कवियोंमें शायद अकेले ही हैं जो समयके साथ-साथ प्रगति करते गये हैं। वे पहले छायावादी थे, फिर रहस्यवादी बने, फिर साम्यवादी रहे; और अब नवचेतनावादी हैं! जब-जब इनमें ये परिवर्तन आये हैं तब-तब वे पूरे तौरपर बदल गये हैं। यहांतक कि जब वे साम्यवादसे प्रभावित थे तब ताजमहल जैसी सुन्दर वस्तुको भी कविकी दृष्टिसे न देख सके! साम्यवादके विचारोंसे प्रभावित होकर उन्होंने ताजमहलपर प्रोलेतेरियत दृष्टिसे एक अप्रत्याशित कविता भी लिख मारी जिसमें ताजमहलका सौन्दर्य न देखकर मजदूरोंका रुधिर और मांस ही देखा। वे चाहे कुछ भी कह रहे हों उनको अपने विचार प्रकट करनेका ही ख्याल रहता है। वह कह उठते हैं:—

"तुम वहन कर सको जन-जनमें मेरे विचार,
वाणी मेरी चाहिये तुम्हें क्या अलंकार!"

लेकिन पन्तजी पहले कवि हैं और फिर दार्शनिक, आदर्शवादी या अन्य सब। पन्तजी

कविके रूपमें माधुर्य और सौंदर्यसे भरपूर हैं। उनकी कोई भी कविता या पंक्ति ले लें तो हमें माधुर्य और सौंदर्यका परिचय मिलेगा। उदाहरणके लिये सुन लीजिये —

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जलमें निज महाकार;
  जिसके चरणोंमें पला ताल
  दर्पण-सा फैला है विशाल !

पंतजीकी कवितामें जो सौंदर्य हमें मिलता है वह प्रायः प्रकृतिके वर्णनके रूपमें होता है :

जिसकी सुन्दर छवि उषा है,
नव वसंत जिसका शृंगार
तारे हार, किरीट सूर्य-शशि
. . . .

उसी तरह वे एक और जगह लहरोंका खेल देख रहे हैं; वे एक लहरको उठते और फिर गिरते देखकर गा उठते हैं :—

छुईमुई-सी तुम पश्चात्
छूकर अपना ही मृदु गात
मुरझा जाती हो अज्ञात !

जो व्यक्ति लहर जैसी एक छोटी-सी वस्तुपर मुग्ध हो जाता है वह भला किस चीजसे आकर्षित न होता होगा ! पन्तजीके काव्यमें हमें पग-पगपर प्रकृतिकी सुन्दरताके वर्णन मिलते हैं। वे सुन्दरताके साथ-साथ जगमें सुख भी देखते हैं। जैसे उनकी इन पंक्तियोंमें हम सुनते हैं :—

जीवनका उल्लास—
यह सिहर, सिहर
यह लहर, लहर
यह फूल फूल करता विलास !

पन्तजी इधर सुखके गुणगान करते हैं इसलिये यह न समझना चाहिये कि वे दुःखसे अपरिचित हैं; वे शुतुरमुर्गके जैसे नहीं हैं जो विपत्ति आनेपर अपना मुंह मिट्टीमें छिपा लें। वे संसारमें दुःख ही दुःख या सुख ही सुख नहीं देखना चाहते। वे कहते हैं —

  मैं नहीं चाहता चिर सुख,
  मैं नहीं चाहता चिर दुःख,

बल्कि वे चाहते हैं—

सुख-दुःख के मधुर मिलनसे
यह जीवन हो परिपूरण।

पन्तजो जीवनमें निरंतर एक जैसा भाव नहीं देखना चाहते। वे परिवर्तनको देख सकते हैं और सोचते हैं कि जीवनमें परिवर्तन न हो तो जीवन जीने योग्य न रहेगा। खाली जीवन-

में ही नहीं बल्कि प्रकृतिमें भी कवि अस्थिरताका अनुभव करता है और कह उठता है—

अचिरता देख जगत्की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातोंपर चुपचाप
ओसके आंसू नीलाकाश;
सिसक उठता समुद्रका मन
सिहर उठते उडगन!

पंतजी परिवर्तनपर ही नहीं, जीवनकी सभी समस्याओंपर विचार करते हैं। वे दूसरोंके और अपने जीवनको ज्यादा अच्छा और सुखमय बनाना चाहते हैं। उनको क्या चाहिये यह उन्हींकी कुछ पंक्तियोंमें सुनिये :—

हों शांत जाति-विद्वेष, वर्गगत रक्त समर
हों शांत युगोंके प्रेत, मुक्त मानव-अंतर।
संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों, सहृदय, सुन्दर।
संयुक्त कर्मपर हो संयुक्त विश्व निर्भर।
राष्ट्रोंसे राष्ट्र मिलें, देशोंसे देश आज।
मानवसे मानव, हो जीवन निर्माण काज।
हो धरणि मनों की, जगत् स्वर्ग, जीवनका घर,
नव मानवको दो, प्रभु, भव मानवताका वर!

फिर वे अपने लिये कुछ नहीं मांगते हैं; और अपनी 'मां' जो प्रकृति और विश्वजननी है, उससे कहते हैं—

बना मधुर मेरा जीवन।
. . . .
रोम रोमके छिद्रोंसे मां
फूटे तेरा राग गहन
बना मधुर मेरा तन, मन।

अपनी इस मांको देखनेके लिये बहुत उत्सुक हैं और उनकी आत्मा पूछती है—

मां वह दिन कब आवेगा जब
मैं तेरी छवि देखूंगी?

फिर एक जगह पन्तजी इसी मांसे कहते हैं—

मां! तेरे प्रिय पद-पद्मों में
अर्पण जीवनको कर दूं।

अपनी मांके लिये ही नहीं साथ-ही-साथ विश्वप्रेमके लिये भी पन्तजी तपते हैं और कहते हैं—

विश्व-प्रेमका रुचिकर राग
पर-सेवा करनेकी आग,
इसको संध्याकी लाली-सी
मां! न मन्द पड़ जाने दे!

वे फिरसे इसी चीजको कहते हैं—

तप रे मधुर-मधुर मन!
विश्व-वेदनामें तप प्रतिपल,
जग-जीवनकी ज्वालामें गल।

पन्तजी खाली विश्वकी ही चिंता नहीं करते, उनके लिये 'सिन्धु' के साथ 'बिन्दु' भी पूजनीय है। और उनको छोटी-सी-छोटी वस्तुमें भी सुन्दरता दिखायी देती है। वे कहते हैं—

इस धरतीके रोम-रोममें,
भरी सहज सुन्दरता।

इसी बातको पन्तजी एक और जगह कहते हैं—

जो जग की डाली-डालीपर
जागीं नव-जीवनकी कलियां!

पन्तजी 'नवजीवन' की बात करते हैं लेकिन अगर हम पूछें कि 'नवजीवन' से उनका क्या मतलब है और 'नवजीवन' की प्रेरणा कहांसे मिली तो उत्तरमें यही कहना होगा कि पन्तजीपर श्रीअरविंदका प्रभाव पड़ा तबसे उन्होंने नवजीवनके स्वप्न लेने शुरू किये। उन्होंने एक जगह कहा भी है:—

"मुझे इससे प्रेरणा मिलती है। जीवनके इस दृष्टिकोणसे प्रभावित होकर मैं उसे काव्यमें अभिव्यक्ति देता हूं।" वह इस दृष्टिकोणके बारे में लिखते हैं—

"इस दर्शनमें व्यक्ति, संसार और ईश्वर एक-दूसरेसे जुड़े हुए हैं, संसारका तिरस्कार नहीं है। सबका मोक्ष, सबका आत्मकल्याण ही वास्तविक मोक्ष या कल्याण है, ।" इस दृष्टिकोणसे प्रभावित होकर पन्तजीने जो लिखा है वह उनकी तीन रचनाओंमें है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' में उन्होंने नवजीवन और नवचेतनाके बारेमें लिखा है और इसे कई आलोचक साहित्यमें नवचेतनावाद कहते हैं। पन्तजीने चेतनावाद शुरू किया है और अपनी सारी शक्ति उसीमें लगा रहे हैं। 'कला और बूढ़ा चांद' इसी श्रृंखलामें नवीनतम कड़ी है। वे कहते हैं:—

हे स्वर्णमय! तुम मानसमें
कमल खिलाते हो सुन्दर
मेरे मानसमें भी उसके
विकसा दो पद-पद्म अमर।

पन्तजी 'स्वर्ण-धूलि'में श्रीअरविंदको श्रद्धांजलि देते हुए कहते हैं:—

श्रीअरविंद, सभक्ति प्रणाम!
विश्वात्माके नवविकास तुम,
परम चेतनाके प्रकाश तुम,
ज्ञान-भक्ति श्रीके विकास तुम, पूर्ण प्रकाम!

हम पंतजीको केवल इसीलिये महान् कवि नहीं कहते कि उन्होंने नवजीवन और नवचेतनाको अपने काव्यकी वस्तु बनाया है। हां, यह अवश्य है कि इसके कारण कवितामें अधिक गहराई

आ गयी है। पन्तजी पहले कवि हैं और फिर दार्शनिक। वह अपने-आप ही कहते हैं:—

गान ही में रे मेरे प्राण
अखिल प्राणोंमें मेरे गान!

इसीलिये पन्तजीकी सभी रचनाओंमें हमें उनका 'गान ही में रे मेरे प्राण' ज्यादा मिलता है। वह गान गाते हैं और गाते भी हैं इतनी सुन्दर तरह कि 'अखिल प्राणोंमें' यह गान समा जाता है। उनकी कविताओंमें हमें उपमाओंका प्रचुर प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा इतनी मधुर होती है कि हम कह सकते हैं कि उन्होंने खड़ी बोलीमें काव्यरसको भर दिया। उनके एक आलोचकके शब्दोंमें सुनिये :—

'खड़ी बोलीकी कवितामें इतनी सरसता, इतनी कोमलता और अपूर्व व्यञ्जना-शक्ति भरना पन्तजीका ही काम है.......।'

और एक जगह फिरसे यह आलोचक कहता है :—

"भाषा, छन्द, अलंकार सभीपर अब उनका असाधारण अधिकार हो गया है।"

भाषापर उनका अधिकार इतना ज़्यादा है कि वह चित्रमें सोचते हैं; इतना ही नहीं उनके ग्रंथोंमें भी चित्रोंकी भरमार है। जैसे पूर्णिमाके इस वर्णनको देखिये :—

मंजु-छायाके विपिनमें पूर्णिमा
सजल-पत्रोंसे टपकती है जहां
विचरती हो वेश प्रतिपल बदलकर
सुघर मोती-से पदोंसे ओसके।

पंतजी खाली चित्रोंमें ही नहीं सोचते बल्कि अपने शब्दोंकी ध्वनिसे भी अर्थ समझा देते हैं। उनके आलोचकने कहा है :—

"शब्दोंके उच्चारणमात्रसे अर्थकी ऐसी प्रत्यक्ष व्यंजना करना पन्तजीकी ही कलाका काम है।" उन्हें शब्द इतनी अच्छी तरह चुनना आता है कि 'शब्द-शिल्पी' के रूपमें उनकी ख्याति हो गयी है। उनका यह चित्र देखिये—

तुम त्रिभुवनके नयन-चित्र-सी
यहां कहांसे उतरी प्रात,
जगतीकी नेपथ्य-भूमि-सी,
विश्व-विदूषक-सी अज्ञात।

पन्तजीको रूपक, अलंकार और उपमा बहुत प्रिय हैं; इतना ही नहीं, वह उनका इतना अच्छा उपयोग करते हैं कि हम पन्तजीको 'उपमाओंका सम्राट्' कह सकते हैं। पन्तजीको सबसे बड़ी ईश्वरीय देन मिली है उनकी कल्पना-शक्ति। यहांतक कि उनको किसीने 'कल्पना के विभूति और संस्कृतिके स्वप्न' कहा है!! पन्तजी 'संस्कृतिके स्वप्न' हैं इसमें कोई शंका नहीं। उनके एक आलोचकने कहा है, "कुछ भी हो, अपनी अनुपम कला, उदात्त कल्पना और सूक्ष्म-सौंदर्य-बोधके सहारे गीति-काव्यके सीमित क्षेत्रमें भी प्रकृति, अध्यात्म और संस्कृति जैसे बड़े विषयोंको संभालनेके कारण पंतजीकी गणना इस युगके बड़े कवियोंमें होगी।" और फिर वह कहता है, "जहांतक विचारोंका संबंध है, अपने युगकी प्रवृत्तियोंके सारभूत तत्त्वोंको आत्मसात्

करनेकी इनकी क्षमता अपूर्व है। इसीलिये हम उन्हें अपने युगका 'प्रतिनिधि कवि' कह सकते है।" कविने अपने-आप भी कहा है :––

मैं प्रेमी उच्चादर्शोंका,
संस्कृतिके स्वर्गिक-स्पर्शोंका
जीवनके हर्ष-विमर्शोंका;
लगता अपूर्ण मानवजीवन,
मैं इच्छासे उन्मन, उन्मन।

पन्तजीको उच्चादर्शोंसे खाली प्रेम ही नहीं है उनको साथ-साथ विश्वास भी है कि उच्चादर्श नवजीवनमें उतारे जा सकते हैं। वे कह उठते हैं :––

जग-जीवनमें उल्लास मुझे,
नव आशा, नव उल्लास मुझे
ईश्वरपर चिर विश्वास मुझे;
चाहिये विश्वको नवजीवन !

पन्तजी मानते हैं कि अंतरकी सुन्दरता बाह्य जीवनको सुन्दर बनाती है। और इसीलिये वह अपने जीवनको 'मोती-सा' बनाना चाहते हैं :––

यह एक बूंद जीवनका
मोती-सा सरल सुघर हो !

इन दो पंक्तियोंमें हमें पंतजी कवि और दार्शनिकके रूपमें मिलते हैं। यहां उनके जीवनकी दो महत्त्वपूर्ण धाराओंका संगम हुआ है।

* * *

सत्पुरुषोंकी वाणी ही वास्तवमें सुस्निग्ध होती है, क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावटसे खाली होती है।

हृदयसे निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी दृष्टिके अंदर ही धर्मका निवासस्थान है।

देखो, जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है जो सबके हृदयोंको प्रसन्न कर दे, उसके पास दुःख-दर्द बढ़ानेवाली दरिद्रता कभी न आयगी।

—तिरुक्कुरलसे

भगीरथ तपस्या

—श्री ब्रजनंदन

भगीरथने करके भगीरथ तपस्या
गंगाको खुश किया।
गंगा तैयार हुई पृथ्वीपर आने को
आई पर बड़ी-सी समस्या :
कौन ऐसा वीर है पृथ्वीपर
धारण कर सकता है जो गंगाके वेगको
उतरेगी जब वह नीलाम्बर से ?
भगीरथ भौंचक्के थे ।
याद आया उन्हें तब मौन तपी शिव,
तपमें जो लीन थे हिमालयपर ।
भगीरथने करके भगीरथ तपस्या
शिवको प्रसन्न किया ।
गंगा तब कूद पड़ी शंकरके मस्तकपर, गर्व लिये :
स्वर्गकी बेटी हूं मैं, बहा दूंगी शिवको भी अपने प्रवाहमें ।
शंकरने देख लिया गंगाके गर्वको;
खोली अपनी जटा;
ऊंची खड़ी की लटें एक बृहत डैम बन गया;
बांध लिया पुनः उन्हें गंगाको कैद कर ।
भगीरथने कर फिर भगीरथ तपस्या
शिवको प्रसन्न किया ।
गंगाका गर्व पड़ा चूर्ण था शंकरके मस्तकपर।
शिव महादेव हैं—गंगा निज गर्वसे लज्जित हुई,
निकली फिर शिवकी एक लटसे, शिवने जो मुक्त किया ।
हिमके पहाड़ोंको पर्वतचट्टानोंको लांघती
बह चली फिर समतलपर वेगसे ।
जंगलमें बैठे थे जह्नु ऋषि आसनपर;
दूर जरा आसनसे पड़ा था कमंडल एक;
बह गया प्रवाहमें वह ।
'बेटी, अरी ओ बेटी, लुटिया क्यों ले ली मेरी ?
दे मेरी लुटिया ! ' जह्नु चिल्ला उठे ।

कौन यह बूढ़ा साधु मुझपर है हुक्म करता
मानों महादेव हो?
स्वर्गकी बेटी हूं मैं! शायद इसे पता नहीं।
उत्तर कुछ दिये बिना दौड़ चली स्वर्ग-सुता।
एक ही घूंटमें पी गये तब, जह्नु मंदाकिनीको।
भगीरथने फिर कर भगीरथ तपस्या,
शिवको प्रसन्न किया।
गंगाका गर्व पुनः चूर्ण हुआ जह्नुकी जंघापर।
'जा बेटी', बोले जह्नु 'याद रखना अबसे पर—
पृथ्वीका पुत्र हूं मैं
देखनेमें तुच्छ लगती, स्वर्गसे भी उच्च है जो;
धारण करती है निज गर्भमें, सत्-चित्-आनंदको जो।
अहंकार, देव, मनुज किसीको भी श्रेय नहीं।
ब्रह्मकी ही एक शक्ति सबको हिलाती है,
अपना निज बल नहीं।'
किसपर गर्व फिर?
जंघासे गंगा निकली जह्नुकी बेटी बन।
भूपति के रथ के पीछे दौड़ी-दौड़ी आयी, जहां
कपिलके शापसे दग्ध हुए सगर-पुत्र
बिखरे थे भस्म बन।

तपसे भगीरथके गंगा भी पवित्र हुई;
ब्रह्मको भुलानेवाला मिथ्या अहंकार त्याग,
गोते लगाकर जिसमें सारे पाप धोते नर;
भस्मको डुबोकर जिसमें मृतक भी जाते तर
आज भी।

[श्रीअरविंदकी "लाइफ हेवन्स" कविता की पंक्ति 'ट्रूथ हैज ए डीपर पावर दैन हैवन' के आधारपर एक पौराणिक कहानी।]

* * *

हमारे साधन भी उतने ही महान् होने चाहियें जितने महान् हमारे उद्देश्य हैं। उन उद्देश्योंको प्राप्त करनेके लिये साधन खोजने और उन साधनोंको काममें लानेकी शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब हम अपने अंदर शक्तिके सनातन स्रोतको ढूंढ़ निकालें।

—श्रीअरविंद

पापाके मुखसे

——श्री गौरी पिंटो

(जिन लोगोंने श्रीअरविंदाश्रमकी यात्रा की है वे उदार को अवश्य जानते होंगे। उदार एक सामान्य व्यक्ति नहीं; अपने-आपमें एक संस्था हैं। यूं तो वे बड़े अच्छे इंजीनियर हैं और उनके कामकी छाप आश्रमकी बहुतसी चीजोंपर मिलेगी, परंतु हमारा उस पहलूसे संबंध नहीं। व्यापारी उदारसे भी हमें कुछ लेना-देना नहीं है। हम उनकी कहानियां चाहते हैं और बस। इंजीनियर, व्यापारी और कहानी सुनानेवाले, आप भी कहेंगे अजीब सम्मिश्रण है यह। लेकिन जब आप उनसे मिलें तो कहीं कहानी सुनानेके लिये न कह बैठिये, नहीं तो सीधा उत्तर मिलेगा——इन सब चीजोंके लिये फ़ुरसत कहां है। हां, उनसे किसी भी विषयमें बात छेड़ दीजिये, राजनीति, युद्धसे लेकर सोने-चांदीका भाव और फर्नीचरकी लकड़ी या लोहेकी ढलाईकी बात कीजिये और पांच मिनटमें कोई-न-कोई कहानी निकल पड़ेगी। कुछ उनकी अपनी होंगी, कुछ किताबों और अखबारोंमें पढ़ी हुई और कुछ इधर-उधरसे सुनी-सुनायी हुई, लेकिन हर एक इंजीनियर-उदारके ढांचेमें ढली हुई और उनकी मुहर लिये हुए होगी। यहांतक कि आप स्वयं उन्हें एक कहानी सुनाइये। तीन-चार महीने बाद उनसे वही कहानी सुननेको मिलेगी, परंतु स्वयं आप भी न पहचान सकेंगे कि यह आप हीकी सुनायी हुई है। पुरोधाके लिये उनकी सुपुत्री गौरीने इन कहानियोंको लिपिबद्ध करना स्वीकार किया है। पाठक अगले अंकोंमें और कहानियोंका इन्तजार करें।)

हमेशाकी भांति चम, झुमुर और सुधा हमारे घर आयी हुईं थीं। बहाना तो कामका था पर सभीको पापाकी कहानियां सुननी थीं। ऐसे अवसरोंपर मैं इधर-उधर हो जाती हूं या कुछ पढ़नेका ढोंग करती हूं। कहानियां निकलवानेका काम मुख्य रूपसे झुमुर और सुधाका होता है। उनके आग्रहपर पापा हमारे साथ बैठ गये और बोले——

"अरब देशमें एक बूढ़ा रहता था। उसके दो बेटे थे। दोनों हीं बड़े अच्छे घुड़सवार थे। यह कहना मुश्किल था कि दोनोंमें कौन ज्यादा होशियार है। दोनोंके पास अपना-अपना घोड़ा था और उन्हें अपने घोड़ोंपर बड़ा गर्व था। कई बार दोनों आपसमें होड़ करते, कभी कोई जीतता तो कभी कोई।

दिन गुजरते गये। एक दिन बूढ़ा अरब परलोकको सिधार गया। अब प्रश्न था कि सारी जायदाद किसे मिले। बापने बड़ासा वसीयतनामा लिखा था। उसमें लिखा था कि दोनों लड़के घुड़सवारीकी होड़ करें, जिसका घोड़ा हार जाय, उसे सारी जायदाद मिल जाय।

भाइयोंकी समझमें न आता था कि क्या करें। वे एक-दूसरेके आगे तो निकल सकते थे पर यहां तो पीछे रहनेकी होड़ करनी थी और दौड़नेकी जगह खड़ा रहना संभव न था।

दिन बीतते गये, सप्ताह और महीने भी बीत गये, लेकिन कोई उपाय न मिला। आखिर परिवारके एक पुराने मित्रने एक सुझाव दिया। उसने कहा, पड़ोसके गांवमें एक बड़ा बुद्धिमान् आदमी रहता है, तुम दोनों जाकर उससे सलाह करो। दोनोंके दोनों उसके यहां जा पहुंचे और उसके सामने अपना रोना रोया।

'अरे, इसमें क्या मुश्किल है', बुद्धिमान् आदमीने कहा और दोनोंके कानमें कुछ सलाह दी। दोनों भाई उछल पड़े और हंसते-हंसते वहांसे चले गये।

दूसरे दिन लोगोंने देखा, भाइयोंमें बड़ी तेजीसे घुड़दौड़की प्रतियोगिता हो रही है और दोनों ही आगे निकलनेकी जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। क्या तुम अन्दाज लगा सकते हो कि चतुर आदमीने क्या सलाह दी थी?

उसने कहा था तुम दोनों जीतनेकी पूरी कोशिश करो, पर एक-दूसरेके घोड़ेपर सवार होकर!!

सुननेवालोंको बड़ा मजा आया। सुधा आग्रह करने लगी, एक कहानी और सुनाइये। थोड़ी खुशामद करवाकर पापा बोले—अच्छा सुनो।

"एक बूढ़े आदमीकी मृत्यु हो गयी, उसके दो बेटे थे। उसने वसीयत की कि सारी संपत्तिका इस तरह बंटवारा हो कि दोनों पूरी तरह संतुष्ट हो जायं। यह टेढ़ी खीर थी। एक किसी चीजको चुनता और दूसरा झट कह देता, नहीं, यह तो मुझे चाहिये। किसी तरह दोनोंमें समझौता न हो पाता था और रार बढ़ती जा रही थी।

एक दिन उन्होंने सुना कि एक होशियार आदमी उनके गांवसे गुजरनेवाला है और वह हरएककी समस्याको सुलझा सकता है। दोनों भाई खुश हो गये। जब वह आदमी उस गांवमें आया तो दोनों उसके पास जा पहुंचे। उसने इनकी रामकहानी सुनकर कहा––

"क्या तुम दोनों वचन देते हो कि मैं जो कुछ कहूंगा उसके अनुसार ही करोगे?" दोनोंने वचन दे दिया।

"तो सुनो'–बुद्धिमान् आदमीने कहा, "बड़े भाईको बड़ा होनेके नाते यह अधिकार है कि वह जायदादको दो हिस्सोंमें बांट दे। दोनों हिस्सोंको बराबर करना जरूरी नहीं है। उसे जो ठीक लगे वह उसीके अनुसार करे। और फिर छोटा चूंकि वह छोटा है पहले चुननेका अधिकारी है। वह दोनों भागोंमेंसे किसीको चुन ले, दूसरा भाग बड़ेको मिलेगा।"

'लो बस!'

इसपर भी हम लोगोंका मन न भरा। झुमुर चिल्ला उठी, नहीं, कुछ मजाक भी तो सुनाइये, उसके बिना हमारी महफिल अधूरी रह जायगी। जरा सिर खुजाते हुए पापाने कहा, यह क्या? एक बार सुधाकी मांग होती है, दूसरी बार झुमुरका हुकुम होता है, फिर कोई और बोल पड़ेगा। इस तरह तो मुझे सारे समय यहीं बैठे रहना पड़ेगा। हम लोग जानते थे कि यह सचमुच अनख नहीं है, पापा यूं ही महंगे बन रहे हैं। सुधा है चलता-पुर्जा, झट बोल पड़ी–नहीं पापा, आपने मेरा नाम क्यों लिया? मैंने कब कहा था कि आप यहीं बैठे रहिये? चलिये, झट दो कहानियां और सुना डालिये, फिर आपको छुट्टी। झुमुर बोली, "हां, खड़े-खड़े ही सुना दीजिये न, लीजिये, मैं आपके जूते लाये देती हूं, पहनते जाइये और सुनाते जाइये।"

पापाके लिये भी 'मन मन भावै मुड़ी हिलावैं' की बात थी। अच्छा लो, कहकर उन्होंने अगली कहानी शुरू की।

बात पुरानी है, अभी तुमने होश भी नहीं संभाला था। उन दिनों भारतमें सैंकड़ों राजा हुआ करते थे और हर एकके दरबारमें, विद्वानों, कवियों, पंडितोंके साथ-साथ विदूषक भी हुआ करते थे जिनका काम था महाराजको हंसाना और खुश रखना। हम जिस राजाकी बात कह रहे हैं, वह एक दिन बड़ा चिंतित-सा बैठा था। घूमता-फिरता विदूषक भी वहां आ पहुंचा। बड़े ही जरूरी कामका दिखावा करके राजासे बोला, "महाराज! क्या आप बता सकते हैं कि सूर्यमें ज्यादा रोशनी है या एक प्याले दूधमें?"

राजा जरा तमतमा उठे, बोले, "क्यों समय नष्ट कर रहे हो जी, यह भी कोई सवाल है?"

"नहीं सरकार," विदूषकने कहा, "मैं .....बड़ी गम्भीरतासे पूछ रहा हूं। आप जानते हों तो बतला दीजिये।"

राजाने कहा—"अरे बेवकूफ! इसमें पूछनेकी कौनसी बात है? दोनोंमें कोई तुलना भी हो, सूर्य प्रकाशका पुंज है। दूधमें प्रकाश कहां?"

"गलत, गलत", विदूषक नाच उठा। "मैं प्रमाणित कर दूं कि एक प्याले दूधमें अधिक प्रकाश होता है?"

राजा मुस्कराया और बोला, "अच्छा, बताओ कैसे? और न बता सके तो पचास कोड़े लगेंगे। अच्छा, अभी जाओ, फिर आना।" विदूषक जुहार करके चला गया।

कुछ दिन बीत गये और राजा इस घटनाको भूल गया। एक दिन अचानक वह सोकर उठा कि पांव दूधके कटोरेमें.....बड़ा गुस्सा आया। किसकी करतूत है यह? उसे पकड़कर हाजिर करो। अपराधीकी खोजमें सारा महल छान मारा गया तब कहीं अधिकारियों-को पता लगा कि यह विदूषकका काम है। पर वह राजाका मुंह लगा था। उसपर कौन हाथ डालता? खैर, उसे बुलाकर राजाके आगे खड़ा किया गया। राजाकी त्योरियां चढ़ गयीं, बोले, "क्या मतलब है इस शरारतका?"

"अजी सरकार, तोबा, शरारत और आपके सामने! मैं तो केवल यह प्रमाणित कर रहा था कि दूधका प्याला सूर्यसे अधिक प्रकाशमान है।"

"सो कैसे?" राजा गुर्राया।

"सरकार जब आप सोकर उठे तो आपने सूर्यको देखा था?"

"हां, सूर्यकी किरणोंने ही तो मुझे जगाया था।"

"और क्या आप दूधके प्यालेको देख सके थे?"

"अरे बेवकूफ, अगर देख लिया होता तो क्या मैं जानबूझकर उसमें पांव डालता?"

अब विदूषक उछल पड़ा। "लीजिये सरकार, मेरी बात प्रमाणित हो गयी। दूधके प्यालेंकी रोशनीसे आपने सूर्यको देख लिया, पर सूर्यकी रोशनीसे प्यालेको न देख पाये, यानी दूधके प्यालेमें सूर्यसे ज्यादा रोशनी है।"

और यह लो, मैं अब चला, कहते-कहते पापा उठ खड़े हुए। पर छूटना इतना आसान न था। पापा, पापा, एक और, बस छोटी-सी।

"अरे चुप रह", सुधा बोली, "वे सुना तो रहे हैं, उन्हें देरी मत करन। हां, पापा, फिर एक था हां, ... कौन !"

"अरे बाबा ! तुम लोगोंसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल है। लेकिन बस आखिरी है यह। इसके बाद न पकड़ना मुझको . . . . . . अच्छा।"

"हां, हां", हम सबने बड़ी गम्भीर मुद्रामें उत्तर दिया।

लेकिन इस बार एक घटना सुनाऊंगा।

इंगलैंडमें सड़कपर रद्दी या कूड़ा फेंकनेका रिवाज नहीं है। जगह-जगह कूड़ेदान लगे हैं। कुछ फेंकना हो तो उनमें फेंको। मैं हिंदुस्तानसे नया-नया गया था। यहींकी आदतें थीं। एक बार किसी गांवसे गुजरते हुए दियासलाईकी खाली डिबिया सड़कके किनारे फेंक दी। दो-तीन मिनटमें एक सज्जन लंबे डग भरते हुए आये और मेरी डिबिया वापिस करते हुए बोले—यह आपकी है ?

"लेकिन मुझे इसकी जरूरत नहीं है", मैंने कहा।

"महाशय, पर हमारी सड़कको भी इसकी जरूरत नहीं है", उन्होंने उत्तर दिया। अब मैं समझा और नीची आंखें करके ऐसे मोटरमें जा बैठा . . . .।" और यह कहते हुए पापा सचमुच दरवाजेपर खड़ी मोटरमें जा बैठे और मोटर चला दी।

हम लोग सोच रहे हैं कि अगली बार उन्हें कब और कैसे पकड़ा जाय।

* * *

टंकण (टाइपिंग) देखनेमें बहुत सरल काम लगता है पर ब्रिटेन और अमरीकाके डाक्टरोंका कहना है कि सचमुच यह बहुत परिश्रमका काम है। साधारण मशीनपर १४ आऊंसका दबाव काफी होता है पर अधिकतर टंकण करनेवाले १४से १६ पाउंडका दबाव डालते हैं। एक साधारण टंकण करनेवाला २४० दिनमें १४६४०००० बार उंगलियां मारता है अर्थात् एक दिनमें ६१००० बार ! अगर हिसाब लगाकर देखा जाय तो टंकण करनेवालेकी उंगलियां दिनमें १७ मीलकी यात्रा कर लेती हैं। अर्थात् लन्दनसे समुद्र पार करके वाशिंगटन पहुंचनेकी दूरी २४० दिनमें तय कर लेती हैं। जोर-जोरसे उंगलियां मारना अपने लिये भी और मशीनके लिये भी अच्छा नहीं है पर इसकी ओर कितने लोग ध्यान देते हैं !

(हिंदूसे साभार)

❖

एक सज्जन रेलयात्रा कर रहे थे। अंग्रेजीके साथ परिचय तो कुछ ऐसा-वैसा ही था पर हां, साहिबीमें पीछे न रहते थे। जगह पाकर डब्बेमें पसर गये। उधरसे एक अंग्रेजीबाज आये और बोले—हलो, रिलेक्सिंग ? (सुस्ता रहे हो) इन्होंने सोचा यह मेरा नाम रिलेकसिंह समझता है। वह बोले—नो सर, राघव सिंह !!

सुमेरु

--श्री अनिरुद्ध सरकार

आजके वैज्ञानिक आविष्कारोंने पृथ्वीकी परिधिको बहुत ही छोटा बना दिया है। शायद इसीलिये मनुष्य पवननन्दन हनमानकी तरह बार-बार ग्रह-उपग्रहोंकी ओर छलांग लगा रहा है। पर सोचनेकी बात है कि क्या सचमुच ही पृथ्वी बहुत छोटी हो गयी है? क्या हमने इसके सारे रहस्योंका उद्‌घाटन कर लिया है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। अब भी पृथ्वीपर असंख्य वस्तुएं हैं जिनके बारेमें हम कुछ भी नहीं जानते। चलो, आज हम एक नवीन जीवन-यात्राका परिचय प्राप्त करें। आज पृथ्वीके उस सिरेपर चलें जहां प्रकृति महाश्वेताके रूपमें विराजती है जिसे उत्तरी ध्रुव कहते हैं।

एक एस्किमो लोकगाथा है कि वे लोग सदासे ही चपटे सिर, फूले गालवाले नहीं थे। कहते हैं कि बहुत काल पहले जब एस्किमो लोगोंकी नाक हमारी जैसी थी और आंखें भी थीं बड़ी-बड़ी, तब उनके साथ एक बौना जाति निवास करती थी। वे बौने देखनेमें छोटे थ तो क्या हुआ, उनकी शारीरिक शक्ति असाधारण थी। दो बौने आसानीसे एक बड़े-से तिमिको बहुत दूरतक खींचकर ले जा सकते थे। पर अचरजकी बात यह थी कि अगर किसी चीजको (वह चाहे कितनी भी हल्की क्यों न हो) एस्किमो जातिका कोई व्यक्ति छू देता तो उसे बौने लाख कोशिश करनेपर भी टससे मस नहीं कर सकते थे। एक बार दो बौनोंने एक तिमिका शिकार किया। वे लोग उसे रस्सीसे बांधकर एक बर्फके पहाड़पर खींचकर चढ़ा रहे थे। अभी उनका काम आधा ही हुआ था कि उन्हें जोरकी भूख लगी। उन्होंने सोचा, चलो, कुछ खा लें और कुछ विश्राम करके फिरसे काममें जुट जायं। यह निश्चय कर वे तिमिको वहीं छोड़कर खानेकी खोजमें निकले। अचानक उन्होंने देखा, पासके इगलुसे एक एस्किमो बुढ़िया अपने छोटेसे पोतेका हाथ पकड़े चली आ रही है। दोनों बौनोंने जल्दीसे जाकर बुढ़ियाको सावधान कर दिया, "नानीजी, देखना, उस तिमिको छू मत देना।" परंतु नतीजा उलटा ही हुआ। दोनों बौनोंने पीठ फेरी ही थी कि बुढ़िया उस मछलीको छूनेके लिये बेचैन हो उठी और जाकर मछलीको छू ही दिया। कुछ देरमें दोनों बौने वापस लौटकर काममें जुट गये। पर यह क्या, मछली तो टससे मस न हुई, उन्होंने जी-जान लगाकर कोशिश की पर उस मछलीको सूत भर भी न हिला सके। अब बात उनकी समझमें आयी। दोनों बौने आग-बबूला होकर उस बुढ़ियाके इगलुके सामने जाकर चिल्लाने लगे। मारे भयके बुढ़ियाके प्राण सूख गये। वह तरह-तरहके उपाय सोचने लगी जिससे उन बौनोंका क्रोध शांत हो, पर सब बेकार। अंतमें दोनों बौने खुद ही बड़बड़ाते हुए वहांसे चल दिये। इतना ही नहीं, उसी दिन उन्होंने बोरिये-बिस्तर समेत एस्किमो प्रदेशको ही छोड़ दिया। और उनके चले जानेकी देर थी कि एस्किमो लोगोंके चेहरेमें आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया। उनका रंग पीला हो गया, गाल फूल गये और बड़ी-बड़ी आंखें धंसकर छोटी-छोटी हो गयीं, सिर भी चपटा हो गया। उस समयसे आजतक उनका चेहरा वैसा ही बना है।

उत्तर मेरु या सुमेरुके एक नन्हें अधिवासीसे तुम आज मित्रता करो। नाम है उसका उलुकसाक। उम्र बारह-तेरह वर्ष। हट्टा-कट्टा, मोटा-ताजा, हंसमुख लड़का है यह उलुकसाक। तुम लोगोंमें जो बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते वे उलुकसाकसे ईर्ष्या करेंगे, कारण उलुकसाकका किताबोंसे कोई वास्ता नहीं है। पर यह न समझो कि वह कामचोर और आलसी है। उसे जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती है और सीखना भी पड़ता है बहुत कुछ। सुमेरुके सभी लोग बड़े कर्मठ होते हैं। उन बर्फीले प्रदेशोंमें आलस्यकी कोई गुंजायश ही नहीं है, अगर कोई आलसी है तो प्रकृतिदेवी उसे ठोक-पीटकर कर्मठ बना ही लेती है। आलसी व्यक्तिको प्रकृति भीषण सजा देती है और वह है मृत्युदण्ड।

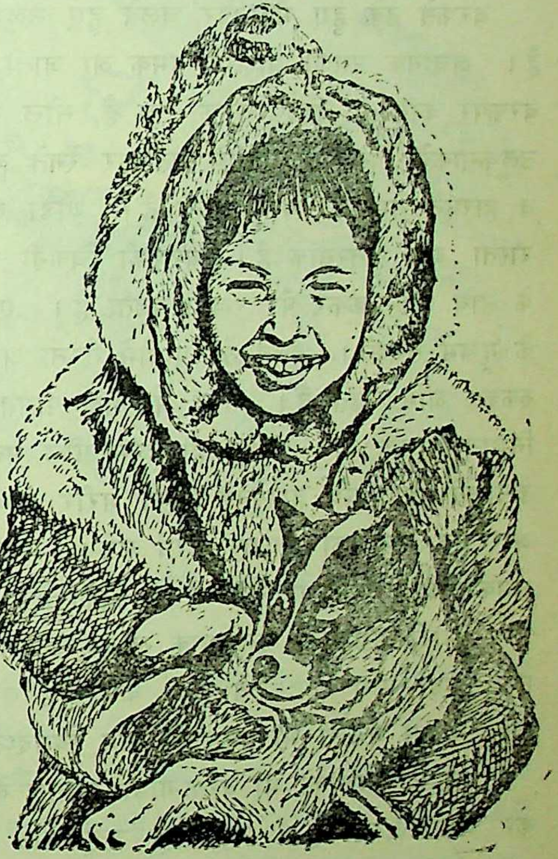

नींदसे जगकर ही (मैंने सुबह नहीं कहा, कारण उस बर्फीले प्रदेशमें हमारे देशकी तरह सुबह-शाम नहीं होते। यहां गर्मीके चार महीनों तक सूरज कभी डूबता ही नहीं और सर्दीके महीनोंमें चौबीसों घंटे रात रहती है। इसीलिये वहांके लोग थक जानेपर ही सो जाते हैं।) उलुकसाक अपने पिताको बरफगाड़ीमें हावसी कुत्तोंको जोतनेमें सहायता करता है। ये कुत्ते होते तो हैं जंगली भेड़ियोंके वंशज ही, पर उस तुषार प्रदेशमें पेटकी ज्वालाके कारण पालतू बननेके लिये लाचार हो जाते हैं। साधारणतः सोलह कुत्ते मिलकर एक बरफगाड़ी खींचते हैं। अलग-अलग चमड़ेकी लंबी व छोटी रस्सियोंके सहारे ये कुत्ते बरफ-गाड़ीके साथ बंधे रहते हैं। सबसे आगे रहता है सरदार कुत्ता। बाकी सभी कुत्ते सरदारके दोनों तरफ जापानी पंखेके समान अर्ध-वृत्ताकार फैले रहते हैं। उन कुत्तोंकी अपनी जगह निश्चित होती है। यदि किसी कारणसे उनकी जगहमें परिवर्तन हो जाता है तो एक हंगामा मच जाता है। उनकी मारकाटको रोकना एक समस्या बन जाती है। प्रायः तीस फुट लंबा चाबुक (स्लेजसे सरदार कुत्तेतक) घुमाकर उन कुत्तोंको संभालना पड़ता है। रास्ता चलते समय सभी तरहका निर्देश सरदारको ही दिया जाता है—आताई आताई (सामने चलो), आउक, आंउक (बांई ओर), हाल्ल हाल्ला (दायीं ओर)। दलके दूसरे कुत्तोंको सरदार अपने आधीन रखता है। यदि कोई कुत्ता आज्ञापालन करनेमें अनिच्छा दिखाये तो सरदार कुत्ता उसे काट खाता है। परंतु इतनी सतर्कताके बावजूद चमड़ेकी रस्सियां आपसमें उलझ जाती हैं। बार-बार गाड़ी रोककर उन्हें सुलझाना पड़ता है। टूटी रस्सियोंमें गांठें लगानी पड़ती हैं। अन्य अनेक एस्किमो लड़कोंकी तरह उलुकसाक भी उस काममें बहुत होशियार हो गया है। सभी तरहके अस्त्र-

शस्त्र व जरूरी साज-सज्जा जैसे भाला, हारपुन, चाकू, बन्दूक, खूंटियोंपर लटके सफेद पर्दे सभीको वह सावधानीसे बरफ-गाड़ीपर आड़ी तरफ रखता है फिर उन्हें कारिबू (हिरनका चमड़ा) से ढककर रस्सोंसे कसकर बांधनेके बाद उलुकसाक अपने पिताके साथ बरफ-गाड़ीपर जा बैठता है।

अक्सर उनकी यात्रायें बड़ी लंबी-लंबी होती हैं। जगह-जगह घूमकर ढूंढ़ना पड़ता है कि बरफसे ढके मैदानमें पानी कहां है। जहां पानी होगा, तुषार-प्रांतवासी सील मछलीका घर भी वहीं होगा। पानीमें ही मछलियां सांस लेनेके लिये ऊपर उठती हैं। हर एक एस्किमोको सील मछलीका पक्का शिकारी बनना पड़ता है। उनके स्वभाव और चाल-चलनका पक्का पारखी होना पड़ता है। कारण, यहांके निवासियोंकी आजीविकाका एकमात्र साधन ये मछलियां ही हैं। इन्हींसे उन्हें खाना, कपड़ा व जलानेके तेल मिलते हैं।

बरफसे ढके हुए मैदानपर चलते हुए उलुकसाककी तेज आंखें चारों ओर चक्कर काटती हैं। अचानक उसकी आंखोंमें चमक आ जाती है, पिताको इशारेसे बताता हैं, कहीं दूर सफेद बरफपर काला-सा बिंदु चमक रहा है, सील मछली बरफपर लेटी हुई है। गाड़ी रोककर उलुकसाकके पिता सावधानीसे उतरकर रेंगते हुए आगे बढ़ते हैं। पीछे-पीछे उलुकसाक बन्दूक व हारपून सम्भाले चला आता है। थोड़ी दूरतक ही वे भूमिपर चल पाते हैं। आगेका रास्ता बड़ा खतरनाक है। बरफकी चिकनी चट्टानोंपरसे चलना पड़ता है। बड़ी सावधानीके साथ फूंक-फूंककर पैर रखना पड़ता है। एक बार कहीं पैर फिसला तो बस साक्षात् मृत्युके मुखमें समझो। इतने ठंडे पानीमें तैरना असंभव है। हारपूनसे, परीक्षण करते हुए वे रुक-रुककर आगे बढ़ते हैं। सील मछलीके पासतक आकर उलुकसाकके पिताने बन्दूक चलायी। निशाना अचूक था। थोड़ी ही देरमें सील मछलीका मरा शरीर पानीमें तैरने लगा। उलुकसाकने रस्सी बंधे हारपूनसे उसका शरीर बांध दिया, फिर रस्सी पकड़कर किनारे बैठकर वे और एक मछलीका इंतजार करने लगे। सफेद बर्फपर सूर्यकी किरणें चमक रही थीं। उस चमकसे आंखें चौंधिया रही थीं। काफी देर बैठे रहे, पर कोई मछली दिखायी न पड़ी।

भारी मछलीको उलुकसाक खींचकर पास ले आता है। चाकू निकालकर बाप-बेटे एक-एक टुकड़ा मांस काट लेते हैं। कच्चा है तो क्या––भूखकी प्रचण्ड ज्वाला पेटमें जल रही है। कच्ची मछली भी पकवानसे कम स्वादिष्ट नहीं लगती।

अब वे मछलीको भी बरफ-गाड़ीपर बांध लेते हैं। फिर यात्रा आरंभ हो जाती है। उनका भाग्य अच्छा है। जल्दी ही उन्हें और दो सीलें मिल जाती हैं। दोनोंका शिकार कर उन्हें बरफगाड़ीपर बांधकर वे घर लौटनेका इंतजाम करते हैं। पर प्रचण्ड तुषार-आहत प्रकृति कुछ चपल हो उठती है और शुरू हो जाता है प्रचण्ड तूफान। इसी बीच एक और एस्किमो परिवार उनके पास आ पहुंचता है। वे चार व्यक्ति हैं, तीन पुरुष और एक स्त्री। वे लोग भी घर लौट रहे थे कि अचानक तूफान शुरू हो गया। दोनों परिवारोंकी मुलाकात हो गयी, परिचय समाप्त हुआ तो उलुकसाकके पिताने कहा––"किसीको लग रहा है यह तूफान शीघ्र थमनेका नहीं।"[1] आगन्तुकोंमेंसे एकने समर्थन किया, "और किसीको भी ऐसा ही लग रहा

---

[1] स्वल्पभाषी विनयी एस्किमोकी यह एक रीति है कि वे अपने बारेमें बतानेके लिये 'मैं' न कहकर तृतीय पुरुषके शब्दका प्रयोग करते हैं। शायद वे मांके पेटसे ही वेदान्ती जन्मे हों।

है। चलिये, इगलू बनाकर थोड़ी-सी चाय बनायी जाय।" दोनों परिवार जुट गये बरफके चौरस टुकड़े काटनेमें। उन्हें जोड़-जोड़कर गोलाईमें दीवार बनाने लगे। दीवारकी ऊंचाई जितनी ऊपर उठती चौड़ाई उतनी ही कम हो जाती। अंतमें छततक पहुंचते वहां एक गुम्बद-सा बन गया। उलुकसाकके पिताजीने गुम्बदके नीचेकी ओरसे एक चौरस टुकड़ा काटकर निकाल दिया। एक-एक कर सभी घुटनोंके बल रेंगते हुए उस इगलूके अंदर घुस गये। फिर वही कटा हुआ चौरस टुकड़ा लाकर इगलूका दरवाजा बंद कर दिया गया।

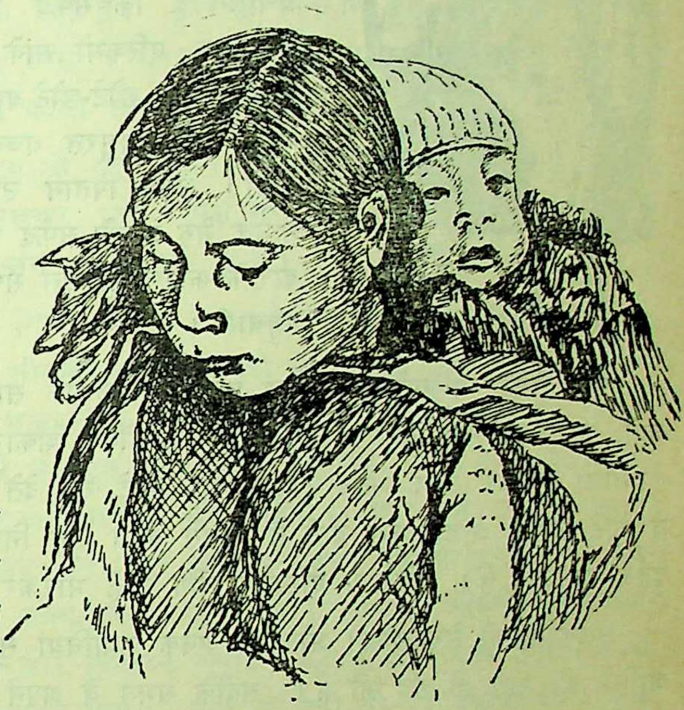

आगन्तुक परिवारकी स्त्रीकी पीठकी जेबसे छोटी-छोटी दो चमकती आंखें दिखायी दीं। एक लाल गालोंवाला गोल-मटोल बच्चा सिरसे पैरतक खालोंके कपड़ोंसे ढका मांकी पीठके साथ बंधा था। एस्किमो परिवारकी महिलाएं अपने छोटे-छोटे बच्चोंको उसी तरह पीठके साथ बांधकर लंबी-लंबी यात्राएं करती रहती हैं। खासकर गर्मियोंसे ठीक पहले प्रायः सभी एस्किमो परिवारोंको समुद्रतटपर जाना पड़ता है। उन दिनों समुद्रके किनारेपर जमी बरफ पिघलती है और सफेद लोगोंके व्यापारिक जहाज पहुंच जाते हैं नाना प्रकारकी आवश्यक वस्तुओंको लेकर; उसी समय सभी एस्किमो परिवार अपने लिये सालभरकी सारी आवश्यक वस्तुओंको खरीदकर रख लेते हैं।

इगलूके अंदर सील मछलीके तेलका दीया जलाया गया। यहां लकड़ी या कोयला नहीं मिलता। कारण इन बर्फीले प्रांतोंमें पेड़-पौधे तो होते ही नहीं। ईंधनके लिये सील मछलीका तेल ही प्रयोगमें लाना पड़ता है। एक टिनके बर्तनमें बरफ भरकर उस दीयेपर रख दिया गया। थोड़ी देरमें चाय तैयार हो गयी। इस बीच इगलूके अंदरकी हवा काफी गरम हो गयी और तापमान प्रायः ० डिग्री हो गया। तुम हंस रहे हो? पर सोचो, जहां बाहरका तापमान —५० डिग्री है वहां ० डिग्री काफी गरम होता है। सभी व्यक्तियोंने अपना एक-एक कुर्ता उतार दिया। यहांके लोग एक साथ दो कुर्ते पहनते हैं। हिरण, भालू या हाविस कुत्तेके चमड़ेसे कुर्ता बनाया जाता है। अंदर पहननेका कुर्ता इस तरह बनाते हैं कि चमड़ेका बालोंवाला भाग शरीरकी तरफ हो और बाहर पहननेके कुर्तेके बाल बाहरकी ओर होते हैं। इगलूके अंदर सभी व्यक्ति चायकी चुस्की लेते हुए तरह-तरहकी बातें करने लगे।

उलुकसाकके पिताने एक कहानी सुनायी। एक बार उनके एक परिचित मित्र् आण्डुना सील मछलीके शिकारके लिये गये हुए थे, अचानक प्रचण्ड बर्फानी तूफान उठा। आण्डुना जिस बरफके टुकड़ेपर खड़े थे वह तेजीसे बहने लगा। जान बचनेकी आशा छोड़कर आण्डुना वहीं

बैठ गये। विपत्तिपर विपत्ति आ पड़ी। एक विराट्काय सफेद भालू पानीमें बहता हुआ आया और उस बहते बरफके तोदेपर चढ़ गया। पर आश्चर्यकी बात यह कि उस भालूने आण्डुनाको कोई हानि न पहुंचायी। इसके विपरीत दो दिनों तक साथ रहकर समय-समयपर खाद्य-संग्रह करके उसने आण्डुनाकी जान बचायी।

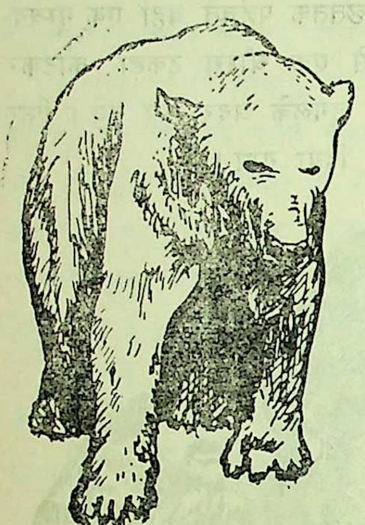

दूसरे एस्किमो सज्जनने कहा——मेरु प्रदेशमें एक किंवदन्ती प्रचलित है कि सफेद भालू एस्किमो जातिके ही हैं। एक बार एक एस्किमो मांके जुड़वां बच्चे हुए। दोनों बच्चोंका शरीर सफेद छोटे-छोटे बालोंसे ढका था और आंखें छोटी-छोटी थीं। ऐसे बदसूरत बच्चोंको देखकर उस मांने उन्हें त्याग दिया। उनके पिताने उनका नाम 'नानुक' रखा था। ये ही नानुक मेरु प्रांतके सफेद भालूके पूर्वज हैं। शायद इस रिश्तेदारीके कारण ही उस सफेद भालूने आण्डुनाको हानि नहीं पहुंचायी।

एक तीसरे व्यक्तिने कहा——मेरु प्रांतके एस्किमोके साथ शायद इन भालुओंका कोई संबंध नहीं, कारण वे लोग बड़ी क्रूरतासे इन भालुओंका शिकार करते हैं। सील मछलीकी चरबीका गोला बनाकर उसके अंदर लोहेका बना कांटे रख देते हैं। जब भालू उसे खा लेते हैं तो ये कांटे उनकी आंतमें फंस जाते हैं जिससे बहुत खून निकलता है। खून निकलनेसे ये भालू दुर्बल हो जाते हैं। फिर ये एस्किमो लोग उन्हें मारकर चमड़ा उतार लेते हैं।

उलुकसाकको मेरुवलयकी और भी अनेक कहानियां सुननेको मिलीं। ये लोग बहुत पिछड़ी जातिके हैं, साथ ही गंदे भी हैं। सर्दीके समय वे अपने शरीरपर सीलकी चरबीकी मोटी-सी परत चढ़ा लेते हैं। गर्मीमें उसी चर्बीको निकालकर खा जाते हैं। वहांकी जिन्दगी बहुत ही कठोर है खानेके लिये कुछ मिलता ही नहीं। यहां एक अद्भुत प्रथा है। जो लोग बहुत बूढ़े हो जाते हैं, काम-काज नहीं कर सकते वे आप ही तीन दिनके लिये भोजनका सामान लेकर चल पड़ते हैं। मेरु प्रान्तरमें दूर, बहुत दूर चले जाते हैं जहां चारों ओर निस्तब्धता छायी रहती है। निर्जन प्रांत केवल बरफसे ढका हुआ मीलों फैला मैदान होता है। वहां जाकर शांत मनसे वे मृत्युके लिये इन्तजार करते हैं।

इन्हीं कहानियोंमें काफी समय निकल गया। इसी बीच उलुकसाकने इगलूसे बाहर निकलकर देखा, तूफान थम चुका था। अब चलनेकी तैयारी शुरू हुई। चहल-पहल सुन सभी हाविस कुत्ते बरफकी कब्रसे प्रेतके समान निकल आये। बरफगाड़ीसे छुटते ही वे अपने पेटमें सिर छिपाये कुण्डल बनाकर लेट गये थे। अब बाहर आकर वे आपसमें जूझ पड़े। उलुकसाक बड़ी कठिनाईसे उन्हें गाड़ीमें फिरसे बांध पाया। दोनों परिवारोंने एक-दूसरेसे बिदा ली और उलुकसाक पिताके साथ घर लौट आया।

दरवाजेके सामने हल्की धूपमें (यहां सूर्य भगवान् कभी आसमानके ऊपरतक चढ़ते ही नहीं) उलुकसाकका छोटा भाई वेचेदापिक (छोटा सील) और बहन नूना धरतीपर बैठे खेल रहे थे। शिकारमें जानेके लिये वे बहुत ही छोटे थे, अतः उनका समय कटता था हाविस कुत्तोंके बच्चों-

से खेलकर। वे बड़ोंकी देखादेखी अपने छोटेसे स्लेजमें कुत्तेके बच्चोंको बांधकर स्लेज चलानेका खेल खेला करते थे।

उलुकसाकको देखकर दोनों दौड़ आये। चलो, हमारे साथ खेलो। पर उलुकसाकको तो अभी बहुत काम करना है। उसे कुत्तोंको खाना देना है। इन कुत्तोंको हफ्तेमें केवल दो दिन खाना दिया जाता है। हां, यदि काम ज्यादा करना पड़े तो हर तीसरे दिन खाना दिया जाता है। ये कुत्ते सदा ही भूखसे तड़पते रहते हैं। एक सील मछलीके बड़े-बड़े टुकड़े काटकर उलुकसाक उन्हें कुत्तोंकी ओर फेंक देता है। कुछ ही मिनटोंमें कुत्ते उन्हें चट कर जाते हैं। दूसरे कुत्ते ज्यादा न खा लें इस डरसे वे बिना चबाये ही खाना निगल जाते हैं, इसीलिये उनका खाया हुआ खाना पचनेमें काफी समय लगता है।

इसी बीच उलुकसाकके पिताने इगलूके एक कोनेमें एक गढ़ा खोद लिया था। आजके शिकारका आधा उन्होंने उसी गढ़ेमें रखकर उसे बरफसे ढक दिया। जब सुमेरु प्रांतमें सर्दी पड़ती है तो छः सात महीनेतक भी मांस खराब नहीं होता।

अब उलुकसाकको खेलनेकी फुर्सत मिली ; नूना ले आयी एक सीलके चमड़ेका बना छोटा-सा बटुआ। उसमें नाना आकारकी सीलकी हड्डियां भरी थीं। हर एक हड्डीका अलग-अलग अर्थ है, जैसे—बरफका टुकड़ा, माता-पिता, कुत्ता, स्लेज इत्यादि। चमड़ेकी एक पतली-सी रस्सीमें फन्दा बनाकर उसके सहारे उन टुकड़ोंको थैलीसे निकालना होता है। जो व्यक्ति जितनी अधिक संख्यामें हड्डियोंको निकाल सकेगा वही जीतेगा। फिर उन टुकड़ोंसे बनाना पड़ेगा इगलु, स्लेज इत्यादि। खेल खूब जमा, पर हृष्ट-पुष्ट बच्चे बूढ़ोंकी तरह बैठकर कब-तक खेलते रहते? खेलके बीचसे ही नेचेदापिक उठकर भागा। एक ही सांसमें वह सामनेके छोटे टीलेपर चढ़कर वेगसे नीचेकी ओर फिसलने लगा। वह आनंदसे चीख उठा। उलुकसाक भी नूनाको गोदीमें लिये टीलेपर पहुंच गया। नूना डर रही थी पर नेचेदापिकको किलकारी भरते देख उसने कुछ कहा नहीं, वह डरपोक थोड़े ही है।

थोड़ी देर बाद मां उन्हें बुलाने आयीं। तीनों बच्चोंने मांसे सील मछलीकी चर्बीका बना एक-एक गोला ले लिया और बड़े चावसे उसे खाते हुए इगलूके बाहर आ बैठे। नूनाको मांने एक नरम किया हुआ चमड़ेका टुकड़ा दिया। नूना भागकर सूई और धागा ले आयी। इसी उम्रमें उसने सिलाई करना सीख लिया था। अब वह अपने लिये 'कामिक' या सीलके चमड़ेका हल्का जूता बनायेगी। जूता जब तैयार हो जायगा, उसके पिता उसपर रंग-बिरंगे नमूने व बेलबूटे बना देंगे।

इगलूके सामने बैठे उलुकसाककी मां सीलके चमड़ेको चबा-चबाकर नरम करने लगी और साथ ही बच्चोंको उनके पिताकी शिकारकी अद्‌भुत वीरताकी कहानियां सुनाने लगी। उसके दांत अभीसे ही अधिक घिस जानेके कारण मसूड़ोंको छूने लगे थे। सभी एस्किमो महिलाओंके दांतोंकी यही दुर्गति होती है, पर उनके पास समय कहां कि वे कारण सोचें या उसके लिये दुःखी हों।

छोटी नूनाने मांसे पूछा—"मां! सफेद आदमियोंकी दुकानपर कुछ लोग (हम) कब जायंगे?" मांसे पहले उलुकसाक ही बोल पड़ा—"गर्मियोंमें जब बरफ पिघलने लगेगी तब कुछ लोग जायंगे दक्षिणकी ओर, जहां सागरके पास पानीमें सफेद मनुष्योंके बड़े-बड़े जहाज

तैरेंगे। तरह-तरहकी वस्तुएं सजी होंगी उनकी दुकानोंमें--है न मां ?" मां उसकी ओर देखकर हंसकर बोली--"उनमें मोमबत्तियां भी होंगी न !" उलुकसाक शरमा गया। उसे खूब याद है, एक बार जब वे लोग समुद्रपर गये हुए थे तो सफेद मनुष्यके एक लड़केसे उसकी दोस्ती हो गयी थी। उसका नाम था जानी। देश लौटते समय जानीने उलुकसाकको मोमबत्तियोंका एक डब्बा उपहारमें दिया। खानेकी चीज समझकर उलुकसाकने उस डिब्बेमेंसे एक मोमबत्ती उठाकर मुंहसे भरकर एक ग्रास काट लिया। देखनेवाले चिल्ला उठे--"अरे, अरे, यह क्या कर रहे हो; यह खानेकी चीज नहीं, उसे तो जलाया जाता है।" उलुकसाकने बुद्धूकी तरह कह दिया था--"पर किसीको तो यह खानेमें बड़ा ही मजा आ रहा है। ऐसी अच्छी चीजको न खाकर जलानेसे क्या लाभ होगा ?" सभी व्यक्ति ठहाका लगाकर हंस पड़े। उस दिनसे उलुकसाकके माता-पिता जब-तब उसे मोमबत्ती कहकर मजाक करते हैं।

उलुकसाकने प्रसंग बदलते हुए कहा--"कुछ लोग इस बार भी 'कायाक' (सील चमड़ेसे बनी नाव) में चढ़कर मछली पकड़ने जायंगे न ?" मांने उत्तर दिया--"कुछ लोगोंने जाल बिछाकर बहुत सारे लाल सियार पकड़े थे। उनके चमड़ेमेंसे बहुतसे अब भी इगलुमें हैं। पिताजीने सर्दीके दिनोंमें उनपर सुन्दर-सुन्दर चित्र भी बनाये हैं। सफेद मनुष्य उन्हें पसन्द करेंगे और अच्छा दाम भी देंगे। इसलिये अबकी बार कुछ लोक 'उमियाक' (बड़ी नाव) में भी मछली पकड़ने जा सकते हैं।" इसके बाद तरह-तरहकी कल्पना-जल्पना होने लगी। सफेद मनुष्यकी दुकानोंपर तो सभी तरहकी वस्तुएं मिलती हैं। उलुकसाकके पिताजी उसे एक बन्दूक खरीद देंगे। नेंचेदाको मिलेगा एक बड़ा-सा शिकारी छुरा। और नूना, उसकी छोटी-सी प्यारी बहनको एक ऐसी चीज मिलेगी जो एक-आध भाग्यवान् एस्किमो लड़कियां ही पा सकती हैं। उसके लिये एक बड़ी-सी गुड़िया लायंगे जिसका पेट दबानेसे रोनेकी आवाज आती रहेगी। सुनते-सुनते बच्चोंकी आंखें नींदसे भारी हो आयी। वे एक-एककर उठकर इगलूमें चले गये और सील चमड़ेसे ढके बरफके टुकडोंपर सिर रखकर सो गये। उनके रंगीन स्वप्नोंमें सील, कारिबू, सफेद भालूके साथ चमचमाते सफेद मनुष्यकी वे दुकानें एकाकार हो जाती हैं जहां दुनियाकी सभी चीजें मिलती हैं।

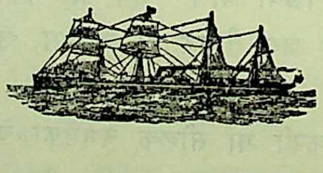

माना यह जाता है कि गधे बड़े बेवकूफ होते हैं। कभी-कभी वे भी असामान्य रूपसे बुद्धिमान् और चालाक निकलते हैं। एक बार कुछ घोड़ों और गधोंको एक बाड़ेमें बन्द करके दरवाजा लगा दिया गया। उद्देश्य यही था कि देखें कौन बाहर निकल सकता है। बेचारे घोड़े असहाय देखते रहे परंतु एक गधेने सिटकनी खिसकाकर दरवाजा खोल लिया।

--श्रीअरविंदके साथ वार्त्तालापसे

अद्भुत सृष्टि

मनुष्य ग्रहों और नक्षत्रोंमें जीवनकी खोज कर रहा है पर अभीतक धरतीके बहुत बड़े भागसे अनभिज्ञ है। क्वीन्स लैंड (आस्ट्रेलिया) के पास एक जगह है जिसे ग्रेट बैरियर रीफ कहते हैं। यह भयानक और सुन्दरका अद्भुत सम्मिश्रण है। एक ओर तेलकी खोज हो रही है और दूसरी ओर स्वास्थ्यप्रद स्थान बनाये जा रहे हैं और साथ ही समुद्रके अंदरके जीव-जन्तुओंका अध्ययन करनेके लिये सुविधाएं पैदा की जा रही हैं। यहां मूंगेका राज्य है। समुद्र-में इधर-उधर रंग-बिरंगे मूंगोंके टापू बिखरे हुए हैं। यहां फुटबाल जितने बड़े केचुए पाये जाते हैं जो धीरे-धीरे रेतमें धंसे हुए आगे बढ़ते दिखायी देते हैं। चार-चार फुट लंबे और कई-कई मन भारी घोंघे होते हैं जो आदमीको भी मार सकते हैं। एक तरहकी मछली होती है जिसे स्टोन फिश कहते हैं वह असह्य वेदना उत्पन्न कर देती है और मार भी सकती है। दूसरी ओर कुछ सीपियां पायी जाती हैं जिनके आकार लाल, नीले, पीले, हरे, गुलाबी फूलोंके जैसे होते हैं। एक ऐसी मछली होती है जिसे देखकर आगकी लपटें याद आ जाती हैं!

एक तरहका घोंघा होता है जो समुद्रमें मुंह बाये पड़ा रहता है। गोता-खोरका पांव उस-के खुले हुए मुंहमें जा पड़े तो बस एक ही उपाय रह जाता है। बड़ी-सी कुल्हाड़ीसे घोंघेके जबड़ेको काटा जाय। पास ही एक तरहकी मछली होती है जिसे वहांके लोग 'डेविल फिश' कहते हैं। यह किनारेके पास ही पड़ी रहती है। इसके शरीरमें १३ कांटे होते हैं। ये जह-रीले कांटे लोहेकी भांति मजबूत होते हैं। यह मछली इर्द-गिर्दकी चीजोंमें इस तरह मिल जाती है कि किसीको इसके होनेकी शंका भी नहीं होती। एक बार इसपर पांव पड़ जाय तो चार-पांच दिनतक असह्य पीड़ा होती है और उसके बाद आदमी मर न जाय तो कम-से-कम चार-पांच महीने खाट पकड़े रहता है।

इन चीजोंके साथ-ही-साथ कुछ मूंगे दिखायी देते हैं जिन्हें देखकर बारहसिंगेकी सुन्दर सींगोंका भ्रम होता है। कइयोंकी आकृति सहस्रदल पुष्पोंके जैसी होती है।

अमेरिकामें मैरिनलैंड नामक एक स्थानपर समुद्री जीव-जन्तुओंको पाला जाता है। शायद यह संसारमें अपनी तरहका सबसे अद्भुत स्थान है। यहां उसके बारेमें अमेरिकन सूचना विभागसे प्राप्त कुछ जानकारी दी जाती है।

मैरिनलैंडमें तीन जलाशय हैं—ह्वेल स्टेडियम, सी-एरीना और फिशबोल। मैरिनलैंडकी सबसे अधिक ख्याति शायद बबल्स नामक ह्वेल मछलीके कारण है। यह पहली ह्वेल मछली है जिसे खुले समुद्रसे जीवित पकड़कर प्रदर्शनके लिये तटपर लाया गया है। ह्वेल स्टेडियममें ६,४०,००० गैलन पानी है। इसमें 'बबल्स', 'बिम्बू' और 'बटन्स' नामक ह्वेल मछलियोंके अतिरिक्त करतब दिखानेवाली और भी बहुतसी ह्वेल मछलियां हैं। 'बबल्स' की लम्बाई १४ फुट और वजन १७०० पौण्ड है। वह नाचने, गाने, हाथ मिलाने और अलविदा कहनेके अलावा पानीसे निकलकर ऊपर उछलनेके करतब दिखा सकती है। वह प्रशांतकी डलफिन

मछलियोंकी तरह उछलकर बाधाओंको भी पार कर लेती है। ह्वेल स्टेडियममें डलफिन जातिकी भी अनेक मछलियां हैं।

'बिम्बू' मादा मछली है। इसकी लंबाई १८ फुट और वजन ३४०० पौण्ड है। यह जलाशयमें पकड़कर रखी गयी सबसे बड़ी ह्वेल मछली है। 'बटन्स' का वजन ९५० पौण्ड है। वह पहली ह्वेल मछली है जिसके हृदयकी धड़कनको इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम द्वारा पूरी तरह मापा गया है।

ह्वेल मछलियोंको जिस गोलाकार जलाशयमें रखा गया है उसका व्यास ८० फुट और गहराई २२ फुट है। यह जलाशय जिस मुख्य इमारतमें है उसके ऊपरी चबूतरेपर १५०० दर्शक बैठ सकते हैं। इमारतके तीनों तल्लोंमें भी बैठकर जलाशयको देखा जा सकता है।

'सी एरीना' का व्यास १२० फुट और गहराई ६० फुट है। उसमें ५ लाख गैलन समुद्री पानी है। इस जलाशयमें सूंस और 'सी लायन्स' नामक खिलाड़ी और मसखरापन दिखानेवाली मछलियां हैं। इस जलाशयके इर्दगिर्द ३००० दर्शकोंके बैठने लायक जगह है।

सूंस मछलियां वेसबाल, फुटबाल और बास्केटबाल खेलती हैं, आग बुझाती हैं, डूबते हुए लोगोंको बचाती हैं और कुत्तोंद्वारा चलायी जानेवाली छोटी नौकाओंको खींचती हैं। वे गाती हैं, भोंपू और ढोल बजाती हैं, ऊंचे उछलती हैं, जलते हुए चक्करमेंसे कूदती हैं और अपनी नाकसे रबड़के बड़े-बड़े छल्लोंको उछालती हुई जलाशयमें दौड़ लगाती हैं।

'सी लायन्स' नामक मछलियां मंचके दाईं ओर १८ फुटकी ऊंचाईसे पानीमें गोता लगाती हैं। वे गेंदके खेल खेलती हैं, पानीमें बहते हुए छल्लोंको इकट्ठा करती हैं, दौड़कर गेंद या दूसरी चीजोंपर लपकती हैं, प्रार्थना करती हैं, राजनीतिक भाषण देती हैं और फिर स्वयं ही अपनी प्रशंसामें अपने अंगोंको फड़फड़ाती हैं।

वे फिल्मी कैमरेके सामने अपने करतब दिखाती हैं। उन्हें बहुत-सी फिल्मों तथा टैलिविजन कार्यक्रमोंमें पेश किया जा चुका है।

जलके अन्दर बड़ी-बड़ी खिड़कियोंवाला कमरा होनेसे दर्शक जलके अंदरके दृश्य भी देख सकते हैं।

'फिशबोल' में ५,४०,००० गैलन खारा पानी और लगभग ५००० समुद्री जीव-जन्तु हैं। इनमें नीले रंगकी शार्क मछलियां, ४०० पौण्ड वजनकी काले रंगकी विशाल 'सी वास' मछली, नारंगी रंगकी चमकती हुई 'गैरिवाल्डी' मछलियां, और चार फुट लंबी नाक और तेज धारके दांतोंवाली १३ फुट लंबी दो 'सा-फिश' मछलियां भी हैं।

गोताखोर मछलियोंको अपने हाथोंसे खिलानेके लिये दिनमें कई बार जलाशयके तलपर उतरते हैं। वे सप्ताहमें दो बार पानीके अंदरकी प्रत्येक खिड़कीको भी अंदरसे साफ करते हैं ताकि वहां घास पैदा न हो सके।

(संकलित)

सान्ध्य गीत

दूर गगनमें रविकी किरणें
बिखर गयीं निष्प्रभ होकर जब,
विगत दिवसकी स्मृतिसे कुछ-कुछ,
म्लान व्यथातुर हुआ क्षितिज तब।

ऊषाकी स्वर्णिम बेलामें
अरुण उगा था लाली लेकर,
उसने ही नव रश्मि बिखेरी,
धरतीका तन आलोकित कर।

जलकर स्वयं और तपकर वह
अमृत भर देता है भू-पर,
इसीलिये ज्योतित रहता है
स्थान मिला है उसको ऊपर।

तरुमें, पल्लवमें, पुष्पोंमें
उसने जीवन दान किया है।
जन-जनको पुलकित कर उसने
नहीं कभी प्रतिदान लिया है।

ममतामय आंचल-सा प्रतिपल,
रश्मिमयीका हेम-स्नेह नित
बिखर रहा जागरण गीत-सा
अधरोंके शतदल कर विकसित।

आज बिदाईकी बेलामें
दिनकर सोच रहा है मनमें,
जो आता है जाता भी है
पुनः आगमनकी आशामें।

—मधुच्छन्दा दासगुप्त

मानव-जीवनमें मशीन

—श्री भूदत्त

बचपनसे ही मनुष्यमें प्रकृतिके विषयमें अधिकसे अधिक जानने और उसको अपने वशमें करनेकी उत्कंठा रहती है। वह प्रत्येक वस्तुके बारेमें जानकारी प्राप्त करना चाहता है, प्रत्येक विषय, प्रत्येक कला-कौशलमें पारंगत होना चाहता है। या तो वह अपने जीवनको सुखप्रद बनानेके लिये उनका सीधा-सीधा प्रयोग करता है या उनके द्वारा कोई नया आविष्कार करनेका प्रयत्न करता है जिससे वह अपने जीवनको अत्यधिक सुखमय बना सके।

प्रत्येक प्रकारकी जानकारी मनुष्यके जीवनका अंग है। उसकी प्रगतिके लिये, उसके सुखमय जीवनके लिये, प्रकृति-विज्ञान और सूचनात्मक ज्ञान बहुत ही आवश्यक हैं। इनको सुरक्षित रखने और इनकी वृद्धि करनेमें ही उसका मन लगा रहता है। और परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि हमारे ज्ञान-भंडार इतने विशाल बन गये हैं कि उनको सुव्यवस्थित करना ही कठिन होता जा रहा है। प्राचीन कालमें जब मनुष्यका ज्ञान अत्यन्त सीमित था तब उसके आविष्कार भी गिने-चुने ही थे। एक व्यक्ति स्वयं ही रसायनविद्, भौतिकीविद्, ख़गोल-शास्त्री, गणितज्ञ, शरीरविद्, औद्भदिक, चिकित्सक आदि एक साथ कहलानेकी क्षमता रखता था। लेकिन उस समय भी यह अपूर्व प्रतिभाशालीका ही काम होता था। परंतु आजकल कितना ही प्रतिभाशाली व्यक्ति क्यों न हो, वह किसी एक विषयको भी पूरी तरह नहीं जान सकता। प्रतिभाकी आज भी कमी नहीं है, पर प्रत्येक विषय इतना विशाल हो गया है कि उसका पूरा-पूरा अध्ययन सारे जीवनकी तपस्यासे भी संभव नहीं हो पाता। विज्ञान और प्रौद्योगिकी (टेकनालोजी) के क्षेत्रोंमें तो इतने नए आविष्कार हो चुके हैं और होते जा रहे हैं कि प्रतिदिन हमारे सामने ज्ञानके नए-नए प्रदेश खुलते चले जाते हैं। प्रत्येक आविष्कार हमें जानकारीके नए समुद्रके तटपर ला खड़ा करता है। हमें यही प्रतीत होता है कि छोटी-से-छोटी वस्तुके विषयमें हमारा ज्ञान विशालसे विशलतर होता जा रहा है। यह इतनी तीव्र गतिसे बढ़ता जा रहा है कि मनुष्यके मस्तिष्ककी तो कौन कहे, पुस्तकों और महाकोषोंमें भी इस जानकारीके विषयोंका वर्गीकरण करना असंभव हो गया है।

अब यह आवश्यक समझा जाता है कि किसी-न-किसी प्रकार या तो मनुष्यकी मानसिक क्षमता बढ़े या उसकी सहायक मशीनें तैयार हों जो उसके बौद्धिक कार्योंमें उसका हाथ बंटा सकें। मानसिक क्षमता बढ़ानेके लिये अनेक प्रयोग किये जा चुके हैं। शिक्षाविदोंने कितनी ही शिक्षा-प्रणालियोंके द्वारा प्रयास किए, पर किसीसे वे अभीतक बुद्धिकी कुशाग्रता और तीव्रताको चमकानेका सरल और सही उपाय प्राप्त नहीं कर सके हैं।

मशीनोंके प्रयोगसे वैज्ञानिकोंको मनुष्यका भार हलका करनेमें काफी सफलता प्राप्त हुई है। विज्ञानने जिस प्रकार अन्तरिक्ष-विजय और आणविक शक्तिके क्षेत्रोंमें श्लाघनीय प्रगति कर ली है, उसी प्रकार इस क्षेत्रमें भी वह बहुत प्रगति कर चुका है। यह माना जाता है

कि इस क्षेत्रमें भी किये गये आविष्कार बीसवीं सदीके प्रमुख और अत्यावश्यक आविष्कारोंमेंसे हैं क्योंकि इनसे मनुष्य अपने जीवनको भली-भांति सुरक्षित रख सकेगा तथा अपने जरूरी कार्यों-को नये ढंगसे चला सकेगा। जैसे पिछली औद्योगिक क्रांतिके आनेसे मनुष्यके हाथ-पैरका काम मशीनें करने लग गयी थीं वैसे ही अब उसकी बुद्धिके कार्य भी मशीनें करने लगेंगी। बौद्धिक क्षेत्रमें मनुष्य और मशीनकी सहकारितासे संसारके समस्त ज्ञान-भंडारको संभालनेका सामर्थ्य कहीं अधिक हो जायगा। मशीनें ज्ञानको केवल एकत्र करके ही न रखेंगी अपितु उनमें विश्लेषण, संश्लेषण और निश्चय करनेकी क्षमता भी होगी।

इन मशीनोंके लिये इन परिभाषाओंका उपयोग किया जाता है :—

(१) इन्टेलिजेण्ट मशीन :—यह ऐसी मशीन है जो दूसरी मशीनोंद्वारा किये गये कामोंके परिणामोंको देखकर मनकी भांति आगेका कार्य निश्चित करती है।

(२) कामन कामप्यूटर—ये वे मशीनें हैं जिनके द्वारा हिसाब-किताब अथवा गणितके अन्य प्रश्नोंका हल तार्किक-क्रियाविधिसे पूरा किया जाता है।

(३) इन्टैल्केट्रोनिक्स—ये वे मशीनें हैं जिनसे बौद्धिक कार्य इलेक्ट्रान द्वारा किये जाते हैं।

(४) आटोमेशन—और यह है वह अत्यावश्यक युक्ति जिससे मनुष्यके हस्तक्षेप बिना ही मशीनें कार्य करती हैं। इस मशीनद्वारा स्वयं ही उसकी जांच-पड़ताल होती है और इच्छित वस्तुके साथ उसकी तुलना करके उसकी त्रुटियोंको अपने-ही-आप सुधारा जाता है। इस प्रकार-की मशीनोंद्वारा मनुष्यके कामको हलका किया जाता है।

ये मशीनें शिक्षण, लेन-देन और अनेक सरकारी कार्योंको सम्पन्न करनेमें प्रयुक्त हो सकती हैं, लेकिन प्रत्येक कार्यके लिये इन्हें विशेष ढंगसे बनाया जाता है। मशीनकी जटिलता उस-को सौंपे गये कामपर आधारित है।

साधारणतया किसी भी स्थितिमें जहांपर सूचनात्मक जानकारीकी आवश्यकता हो, वहां बुद्धिद्वारा की गयी क्रियाओंको दो भागोंमें बांटा जा सकता है। पहले भागमें वे क्रियाएं हैं जो मनद्वारा भली-भांति समझी हुई और जानी-पहचानी होती हैं। ये क्रियाएं मनमें इकट्ठी की गयी जानकारियोंसे की जाती हैं। इन क्रियाओंसे मन जानकारियोंका अध्ययन करता है—इन्हें या तो किसी औरके साथ मिलाना होता है या उनसे तुलना करनी होती है, ये सब क्रियाएं कुछ निश्चित, अनवरत और तर्कसंगत नियमोंपर आधारित होती हैं।

दूसरी क्रियाएं वे हैं जिन्हें मन अभीतक भलीभांति नहीं जानता। ये मनके सामने प्रस्तुत जानकारीपर निर्भर हैं। बुद्धि इन क्रियाओंको किसी नतीजेपर पहुंचने या किसी समस्याको हल करनेके लिये प्रयोगमें लाती है।

दूसरे प्रकारकी ऊहापोह आदि क्रियाओंको सम्पन्न करनेके लिये अभी बहुत अच्छी मशीनें नहीं बन पायी हैं, किंतु पहली प्रकारकी क्रियाओंके लिये अनेकों मशीनें बनायी जा चुकी हैं। इनके सामने मनुष्यकी शक्ति शून्यके समान है। यदि उसको $(९^{९})^{९}$ को सरल अंकोंमें लिखनेके लिये कहा जाय तो वे कुछ क्षणमें ही कर दिखायेंगी, जहां मनुष्य इनकी तुलनामें कहीं अधिक समय (कई दिन) लगा देगा। मनुष्य इन कार्योंसे शीघ्र ही ऊब जाता है और भूलें करने लगता है, पर मशीनें नहीं ऊबतीं और एक बार रिकार्ड की गयी जानकारीको सदाके लिये सुरक्षित रखती हैं और जब इच्छा हो हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्यको गिने-चुने

टेलीफोन नम्बर याद रखनेके लिये भी सिर खुजलाना पड़ता है, लेकिन एक एलाक्ट्रोनिक यंत्र ऐसे हजारों नम्बर एक साथ ग्रहण कर सकता है। और जरासे सिगनलपर सामने हाजिर कर सकता है।

जिस प्रकार मनुष्यकी शारीरिक शक्ति ट्रक, भापके इंजिन, हवाई जहाज और अणुबमका सामना नहीं कर सकती है उसी प्रकार मनुष्यकी बुद्धि भी इन मशीनोंका सामना नहीं कर सकती। परंतु जिस प्रकार मनुष्यका शरीर मशीनोंसे बढ़कर अनेकों अन्य प्रकारकी सूक्ष्म क्रियाएं करनेकी क्षमता रखता है उसी प्रकार उसकी बुद्धि भी अनेकों प्रकारकी ऐसी क्रियाएं कर सकती हैं जो मशीनोंकी पहुंचके बाहर हैं।

यह मनुष्य और मशीनकी सहकारिताका युग है; मशीनें पार्थिव किंतु अधिक बौद्धिक क्षमतावाले कार्य करती हैं। और मनुष्य स्वयं आलोचनात्मक, विचारात्मक, निर्णयात्मक और निश्चयात्मक कार्य करता है। इण्टेलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियरीके क्षेत्रमें तो क्रांति ला ही चुकी है। इसके बिना अंतरमहादेशीय विस्फोटक, अंतरिक्षयानको सफल होनेमें अभी न जाने और कितने वर्ष लगते। जहां सर्वोत्तम विधिको जाननेके लिये हजारों उड़ानोंकी आवश्यकता होती वहां इण्टेलेक्ट्रोनिक्सकी सहायतासे एक दर्जन उड़ानोंद्वारा ही सारी जानकारी प्राप्त कर ली गयी है।

बैंकों, कारखानों और बीमा-कम्पनियोंका लेखा-जोखा आजकल आपरेटरोंद्वारा रेकार्ड किया जाता है। हिसाब-किताब करके मशीनें सब कुछ स्वयं ही छापकर प्रस्तुत कर देती हैं। फिर छपी हुई सामग्रीको यथास्थान फाइलोंमें विभाजित व सुरक्षित करके रखती हैं। जो कार्य अनुमानसे किये जाते थे वे अब कुछ ही क्षणोंमें मशीनोंद्वारा प्राप्त वास्तविक तथ्योंपर आधारित निर्णयके अनुसार किये जाते हैं।

यदि आप हवाई जहाजमें सीट बुक कराना चाहें तो आपको एक मशीनसे ही पूछताछ करनी पड़ेगी जो आपको 'हां' या 'ना' में उत्तर देगी। इतना ही नहीं, वह आपको यह भी बतायेगी कि आप कौनसे जहाजमें स्थान पा सकते हैं। मशीन टिकट छापेगी और पैसे वसूल करके बड़ी नम्रताके साथ धन्यवाद कहकर टिकट आपके हाथमें थमा देगी।

इन मशीनोंसे हम बड़ी-बड़ी आशाएं रख सकते हैं। कुछ ही वर्षोंमें ऐसी मशीनें बनेंगी जिनमें संसारकी सभी पुस्तकोंका ज्ञान समा जायगा। इनसे किसी भी विषयपर कुछ ही क्षणोंमें सर्वोत्तम जानकारी प्राप्त हो सकेगी। ये मशीनें पुस्तकालयका काम करेंगी, एक भाषाकी पुस्तकका अन्य भाषाओंमें अनुवाद कर सकेंगी। इनमें सर्वोत्तम तथ्य और वस्तुके चुनावकी तथा सर्वोत्तम सम्मति देनेकी क्षमता भी होगी।

वह दिन भी आ सकता है जब रेलगाड़ियां, कारें, हवाई जहाज इत्यादि वाहन बिना वाहकके स्वयं ही चल सकेंगे। उनमें अपनी सुरक्षा करनेकी क्षमता भी होगी।

शिक्षण-विभागपर भी इनका अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ेगा। इनके आनेसे हमें अपनी शिक्षा-प्रणालियोंको एक नए सिरेसे स्थापित करना होगा। इस काममें भी मशीनें बहुत ही बड़ी जिम्मेदारियां लें सकेंगी। ये छात्रोंकी आवश्यकताओं और कमजोरियोंको समझ सकेंगी और उनके अनुसार उनको पाठ दे सकेंगी, उनकी प्रगतिको रेकार्ड कर सकेंगी। समय दूर नहीं जब मशीनें साधारण मनुष्यके जीवनमें एक क्रांति ला देंगी। क्या हम आशा कर सकते हैं कि मशीनोंद्वारा दी गयी इन सारी सुविधाओंका मनुष्य सदुपयोग कर सकेगा?

* * *

कावेरी

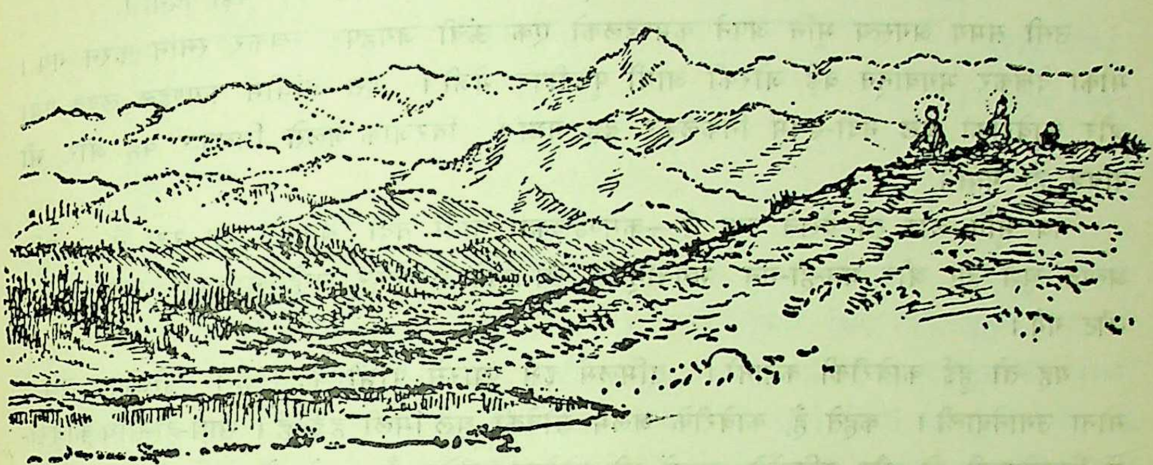

—श्री नीली

पुराने जमानेमें कवेर नामके एक राजा थे। वह बड़े धार्मिक थे और हिमालयपर कठोर तपस्या करते थे। तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्मा प्रकट हुए और बोले—तुम जिस मुक्तिकी तलाशमें हो वह तुम्हें अभी नहीं मिलेगी। तुम मेरी पुत्री विष्णुमायाको पालो, उसीसे तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।

कवेरने ऐसा ही किया। विष्णुमाया पलकर बड़ी हुई। वह विष्णुकी अंशरूपिणी थी और इसी कारण बड़ी होते ही हिमालय चली गयी और तपस्या करने लगी। कवेरको मुक्ति मिल गयी।

हिमालयपर इस तपस्विनीके सामने भगवान् विष्णु स्वयं प्रकट हुए और बोले—बेटी, तुम संसारका कल्याण करनेके लिये जन्मी हो। तुम्हारे दो रूप और दो नाम होंगे। कवेरकी पुत्री होनेके कारण तुम कावेरी कहलाओगी और इस रूपमें नदी बनकर सह्य पर्वतमें बहोगी। तुम्हारा दूसरा नाम लोपमुद्रा होगा और तुम महामुनि अगस्त्यकी पत्नी बनोगी। अगस्त्य मुनि तुम्हें पर्वतपर ले जायंगे। तुम उनकी प्रतीक्षा करो।

इसी हिमालय पर्वतपर अगस्त्य मुनि भी तपस्या कर रहे थे। ब्रह्मा प्रकट हुए और बोले—हे पुत्र, तुम्हारे विवाह न करनेके कारण तुम्हारे पिता और पितरोंकी आत्माओंको शांति नहीं मिली है। विवाह करके तुम एक घर बसाओ, इससे तुम्हें मुक्ति मिलेगी। इस पर्वतपर लोपमुद्रा नामकी कुमारी तपस्या कर रही है। तुम उसे अपनी पत्नी बनाओ।

आज्ञा मानकर मुनिने विवाह कर लिया। दोनों सुखसे रहने लगे। एक दिन मुनिने पत्नीसे कहा—दक्षिणमें जल न होनेके कारण लोग सुखी नहीं हैं। तुम जलका रूप लेकर मेरे कमण्डलुमें आ जाओ, उसमें गंगा-जैसी पवित्र नदियोंका जल है। तुम समा जाओ और मैं तुम्हें सह्य पर्वतपर ले जाऊंगा। यही ब्रह्माजीकी आज्ञा है।

पत्नीने यही किया। मुनि कमण्डलके साथ पर्वतपर जाकर तपस्या करने लगे। उसी स्थानपर ब्रह्मदेव भी तपस्या कर रहे थे। दोनों तपस्यामें लीन थे कि अचानक एक आंवलेका पेड़

वहींपर उगा, फलोंसे लदा। ब्रह्माजीने अपनी दिव्य दृष्टिसे देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि यह पेड़ सचमुच भगवान् विष्णु थे। ब्रह्मा इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थे। उन्होंने उस वृक्ष-पर कैलासमें बहनेवाली विरजा नदीका जल (जो अपने साथ लाये थे) चढ़ा दिया।

उसी समय अगस्त्य मुनि अपने कमण्डलको एक ऊंची जगहपर रखकर स्नान करने गये। मौका देखकर भगवान्ने बड़े जोरकी आंधी पृथ्वीपर भेजी। इस आंधीमें कमण्डल लुढ़क गया और कावेरीका जल नदी-रूपमें निकलकर बह गया। विरजाके जलसे मिलकर वह और भी पवित्र हो गया।

जब मुनि लौटे तो देखते क्या हैं——कमण्डलका पानी नदी बनकर बह रहा है। मुनि अत्यंत खुश हुए और मन-ही-मन भगवान्की लीलाको परखकर उन्हें नमस्कार करके वहांसे लौट गये।

यह तो हुई कावेरीकी कहानी। तमिलमें इसे प्यारसे पोन्नी कहते हैं। पोन्नीका अर्थ है सोना उगानेवाली। कहते हैं, कावेरीके जलमें सोनेकी धूल मिली हुई है। साथ-ही-साथ कावेरीमें मिलनेवाली दो और नदियोंके नाममें भी सोनेका संकेत है। ये दो नदियां कनका और हेमवती हैं।

दक्षिण भारतमें एक सुन्दर प्रदेश है जिसे कूर्ग कहते हैं। राज्यमें एक पहाड़ है जिसका नाम सह्य पर्वत है। पहाड़के एक कोनेमें एक छोटा-मोटा तालाब है। तालाबके एक तटपर एक छोटा-सा मंदिर बना है। मन्दिरमें एक सुन्दर मूर्ति रखी है जिसके सामने एक दीप लगातार जलता रहता है। आंधी हो या तूफान, यह दीप जलता ही रहता है। यही तालाब कावेरीका जन्मस्थान कहलाता है। यहां हर रोज लोग कावेरीकी पूजा करते हैं।

लेकिन कावेरी कूर्गके लिये उपयोगी नहीं है क्योंकि यहांके घने जंगलोंमें काफी पानी बरसता है और नदीका जल काम नहीं आता।

हर साल कावेरीके जन्म-स्थानपर एक बड़ा उत्सव मनाया जाता है। यह कावेरीकी विदाईका उत्सव कहलाता है। सब स्नान, पूजा-पाठ आदि करते हैं और हर स्त्री तालाबमें अपना कोई-न-कोई गहना डाल देती है, मानों नवविवाहिता बेटी अपने घरसे विदा हो रही हो और लोग उसे उपहार दे रहे हों।

विदाई लेकर कावेरी यहांसे आगे बढ़ जाती है। रास्तेमें तीन-चार नदियां आ मिलती हैं। और फिर बड़े वेगके साथ मैसूरकी राजधानीकी ओर बहती है। इसी जलसे बिजली भी पैदा होती है, बड़े-बड़े बांध बनाये गये हैं। नगरकी सुन्दरता तथा जगमगाहट कावेरीके सुन्दर और पवित्र जलसे ही होती है।

कावेरी मैसूर राज्यसे बिदा होकर मद्रासकी ओर बहती है।

(सस्ता साहित्य मंडलकी पुस्तक 'कावेरी'के आधारपर)

* * *

बुन्देलखण्ड के जंगलोंमें

बरही पैलेस
११ अप्रैल १९६३

चि. वेंकट,
खुश रहो।

कुछ ही दिनों पहले तुम्हारी चिट्ठी मिली थी, जिसमें तुमने बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़के मेरे शिकारोंके बारेमें जानना चाहा था। तुमने खुद तो शिकार किये नहीं, बहुत किया तो बसौली फार्मपर जंगलके किनारे-किनारेकी ऊंची घासमें दो-चार लोगोंके साथ हिरनकी खोजमें घूम आये हो, पर शिकारकी वास्तविकता फार्मकी रखवालीके लिये हिरन या हारिल मारनेसे नहीं जानी जा सकती। मैं तुम्हें शिकारके फायदे भी नहीं बता सकता हूं न शिकारकी नैतिकतापर भाषण ही दे सकता हूं (तुम्हारे पत्रके अनुसार)। शिकार एक खेल है, एक नशा भी है। अगर स्पेनके सांडोंकी लड़ाईको तुम क्रूर कहकर बन्द नहीं कराते तो भारतमें ही शिकारके पीछे तुम लोग क्यों लगे हो? या तो अपनी नैतिकता सिद्ध करो, नहीं तो खेल छोड़ दो। दुःख है कि मैं दोनोंमेंसे एक भी नहीं कर सकता।

तो मैं तुम्हें शिकारके विषयमें बता रहा था। इस बार हम लोगोंने मध्यप्रदेशके माण्डला तथा डिण्डोरी ब्लाकोंको अपना निशाना बनाया था। महाराज सावलनेर अभी-अभी सारा बुन्देलखण्ड छान गये थे। जबलपुर और रीवांके चमड़ेके कारीगरोंके यहां सूखती हुई शेरों और सांभरोंकी छालें हमें बता रही हैं कि सारा जंगल जाग उठा होगा। फिर भी हमने तीन जीपोंके साथ टेलर जोड़े व नौ आदमियोंकी पार्टी बनायी और शिकारके लिये प्रस्थान किया। साथमें एक अलशीसियन और ५५० बोर राइफलसे लेकर सात-बारह बोर बन्दूकें भी थीं। हमने आत्मरक्षाके लिये ३२ बोर रिवाल्वर भी साथ ले लिये थे। रातभर निशाना मांजते हम लोग कटनी-जबलपुर होते हुए मोती नाला रेंजके भवई ब्लाकके अपने शिकारगाहमें पहुंच गये।

रेस्ट हाऊस चारों ओरसे जंगलसे घिरा था और चार सौ फीटकी ऊंचाईपर होनेके कारण वहांसे जंगलकी सुन्दरता खूब नजर आती थी। कुछ लोगोंको कैमरे और बन्दूक दोनोंका शौक था। उन्होंने पहला आजमाना शुरू किया। तुम जानते हो, छोटे लाल साहब इस कलामें माहिर हैं।

पर डाक बंगलेकी खूबसूरती देखकर तो अपना काम चलनेको नहीं था, रेंजरके आफिससे खानापूरी करनेके बाद हमने जंगलमें एक छोटी-सी वनवासी आबादी खोजकर अपना खेमा लगाया। इस विभागके आदिवासी बर्तन बहुत सुन्दर बनाते हैं। हांकेमें बड़ी वीरताके साथ काम करते हैं, उनके विवाहमें दुल्हन दूल्हे या दूल्हेके किसी संबंधीके कन्धेपर ही बैठकर गांव आती है।

इसी समय कुछ लोगोंको महाशिवारत्रिके दिन अमरकंटक जानेकी सूझी। यह काम भी करना पड़ा और शिकारका पहला चरण समाप्त हुआ।

घर छोड़े सात दिन बीत चुके थे। घाटीमें शेरोंके अड्डे भी हमने देख [illegible] थे, पर शेरोंको अभ्यस्त बनानेके लिये हमने शिकार नहीं किया, बस जीप लेकर निक[illegible] और दो-चार हरिण, तेंदुए उठा लाते। रातको स्पाट लाईटमें हिरनोंकी आंखें बड़े ही भोलेपनसे चमक उठती हैं। और उनसे नीली किरणें निकलने लगती हैं, पर हिरणोंके लिये यही काल है। आंखें चमकी नहीं कि एक गोली दनदनाती हुई कलेजा या कन्धा चीर जाती है और शिकारका गला रेत कर दरियाव खां उसे टेलरपर लाद लेता है।

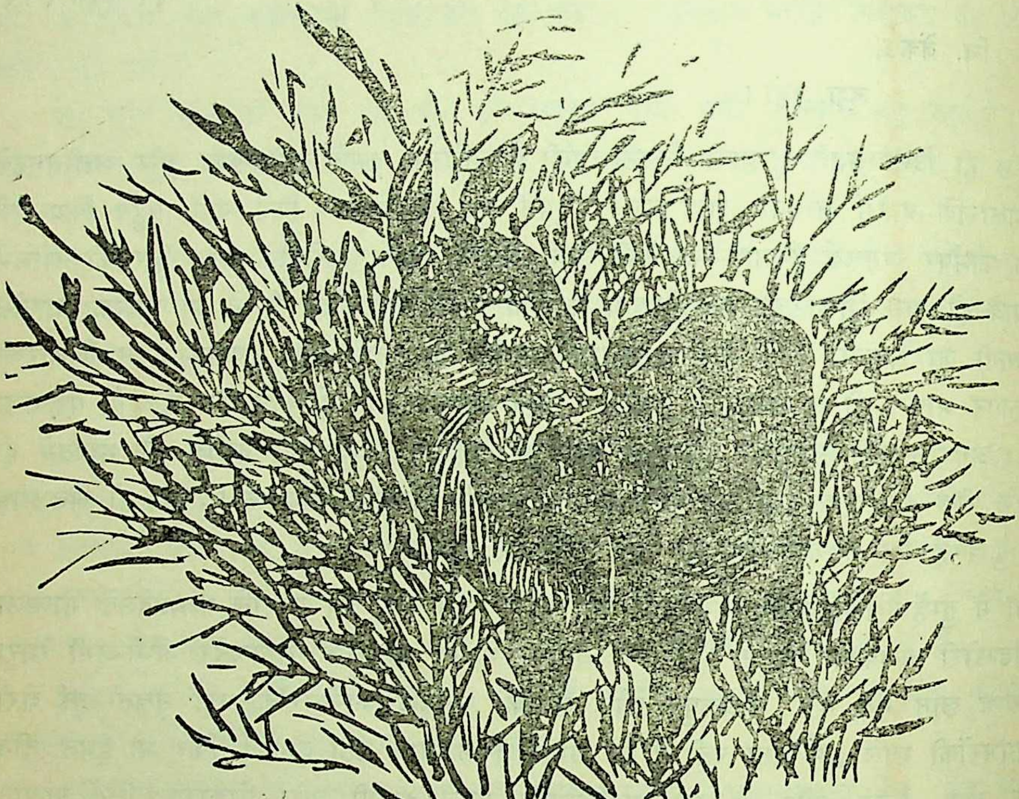

इसी समयकी बात है। हम लोग चले जा रहे थे। स्पाट लाइटें लगी थीं और सबकी नजरें चारों ओर लगी थीं कि सड़कपर ही बाघके दो बच्चे नजर आये, बिचारे खेल रहे थे, तभी आवाज हुई——धांय——चलती जीपसे राइफल चल गयी और सामनेके शीशेको चीरती हुई एक बच्चेको महज छू गयी। सब लोग सन्न थे। घायल बच्चा! वह भी बच गया। शेर सामनेसे हमला करता है पर शेरनी कब क्या करेगी कोई नहीं जानता। जीप खड़ी कर दी गयी और सब लोग अर्ध-चन्द्राकार बैठ गये। चन्द मिनटोंमें ही लगा मानो जीपपर कहींसे कोई चीज आ कूदी हो। मैंने तुरत स्पाट लाइट फेंकी और गुर्राती हुई शेरनीका सर ताककर उसका भेजा खलास कर दिया। खूनने सीटोंको चिपचिपा बना दिया। हल्कीसी चांदनीमें तभी दोनों बच्चे भी नजर आये। अब छोटे शिकारियोंने हाथ आजमाया और अगर उन्हें रोका न जाता तो लड़के चमड़ा ही खराब कर डालते। बच्चोंको मडगार्डपर बांधकर और शेरनीको पीछे डालकर जब हम खेमेपर पहुंचे तो थकावटसे बेहोश थे, सुबह हो चकी थी।

जीपका शीशा चूर-चूर हो गया था। दोपहरमें शीशेको बिलकुल निकाल दिया गया। और जीपोंके शीशे भी हटा दिये गये ताकि जीपमेंसे ही गोली चलानेमें आसानी रहे। शेरनी-की खाल निकलवायी गयी और उसे जबलपुर भेज दिया गया। दिनभर हम लोग सोते रहे। रातको भी बाहर नहीं निकल सके।

दूसरे दिन जीपसे शिकार न करके मचानपरसे शिकार करना तय किया गया। पूरी जोहड़में तीन टप्पे चुने गये और बड़े कुंअरजी ने सबको कहा कि वे अपनी-अपनी पद्धति और बोदा चुन लें। मैंने तो घोड़ा बंधवाया, घोड़ेकी चपलताके कारण शेरकी नजर भी उसपर ज्यादा जमी रहती है। पर इस उछल-कूदमें शिकारकी असुविधा होती है और निशाना चूका नहीं कि शिकार गायब। छोटे लाल साहबने फोटोग्राफीके शौकके मारे भैंसा चुना (ताकि महिषासुर-मर्दनका दृश्य ले सकें) और अपने मचानपर चारों तरफ सर्चलाइटें फिक्स करवायीं।

मेरे मचानसे उनकी मचान एक मीलकी दूरीपर थी। बड़े कुँअर साहब आकर एक बार तीनों मचानोंका निरीक्षण कर गये और मेरे साथके कुछ हांकेवालोंको बुला ले गये। अब मचान-पर मैं, दरियाव खां और पीछे तीन आदमी थे।

मेरी मचान एक बरगदके पेड़पर थी। दिनमें ही पता चल गया था कि शेर यहां आता है। तुम जानते ही हो, बन्दर और हरिणमें विशेष मित्रता होती है। विशेषकर बरगदके पेड़ोंपर बन्दरु गोदा खाते रहते हैं और हिरनोंका दल भी नीचे गिरे गोदोंको खाया करता है। बन्दर हिरनोंके लिये विशेष रूपसे गोदा गिराया करते हैं। शेर भी हिरनोंकी ताकमें आस-पासमें आ जाता है। यदि बन्दरोंने ऊपरसे शेरको देख लिया तो चिल्लाने लगते हैं और हिरन भाग जाते हैं। यदि नहीं देखा तो शेर एक हिरन दबोचकर पीठपर लादकर चल देता है। ऐसे ही एक पेड़पर मैंने अपनी मचान बांधी थी।

रात बीतती रही, जंगली अंधेरेका अपना प्रकाश होता है। छोटे-छोटे जानवर इसी बीच घूमा करते हैं। खरगोश कभी-कभी आकर घोड़ेके आगे रखी घास खाने लगते, कभी जंगली सुर्गाब-मुर्गाबियां फुदकती हुई गुजर जातीं, पेड़पर सोई चिड़ियां चुप थीं। सहसा सर ऽऽऽऽ।

हम लोगोंने देखा, एक सांप ऊपर चला आ रहा था। उसकी सफेद चित्तियां अंधेरे-में भी चमक रही थीं। क्या फायर करूं? पर फायरकी आवाज सुनकर दस मीलके रकबे-में कोई शेर ही नहीं बचेगा। तबतक दरियाव खांका सधा भाला सांपका सर फोड़ते जमीनमें धंस चुका था। अगर जरा भी चूक होती तो फायर करना पड़ता और फिर सारा शिकार मिट्टीमें मिल जाता।

सहसा आवाज हुई। पर बन्दूककी सनसनाती गोलीने ही बता दिया कि निशाना खाली गया है। जंगलमें यदि गोली शिकारको लग जाती है तो उसकी प्रतिध्वनि नहीं गूंजती। हम लोग चुपचाप बैठे ही रहे। पर छोटे लाल साहबकी मचानके पास रोशनी दिखायी दी और शोर भी होने लगा। मैं उतरकर जानेकी सोच रहा था कि बंधा बछड़ा हिनहिना उठा। मैंने समझ लिया कि शेर करीब है और उसकी गंध बछड़ेको लग चुकी है। सब सांस

रोककर बैठ गये। चन्द मिनटोंमें ही एक तरफ घास दबी और धीरे कदमोंसे आता शेर नजर आया।

पीछे कुछ दूरसे ही शोर-गुलकी आवाज साफ आ रही थी, कुछ दूरपर गोली चल चुकी थी और सारे जंगलमें खलबली-सी मच गयी थी। ऐसी हालतमें कुछ भी करना आसान नहीं होता। शेर धीरे-धीरे ठमकता हुआ आया और बछड़ेकी बगलसे गुजर गया। मेरा अन्दाज था कि अब यह हमला करेगा पर उसने किया नहीं, बछड़ा चुपचाप सपककर खड़ा हो गया था। शिकारको यूं चले जाते देखकर मैंने गोली चलायी, पर अंधेरेमें चलते शेरपर गोली? वह गुर्राकर झाड़ियोंमें गुम हो गया।

घायल शेर पासमें ही झाड़ियोंमें छुपा है। हम लोगोंके तो होश-हवास गुम हो गये। राम-राम करते रात बीती। सुबह होते ही बड़े कुंअर साहब आये और बोले—शिकार तो छोटे लाल साहब हो गये होते, अब चलो। शेर तुम्हारी तरफ हो आया था पर सजग शेरको मार पाना मुमकिन नहीं।

उतरकर मच्छरोंसे काटे मुंहपर हाथ फेरते हुए कैम्पपर पहुंचे। वहां जाकर पता चला कि छोटे लाल साहबके भैंसेपर जब शेर आया तो वे सर्चलाइट जलाकर फोटो खींचने चले गये थे। शेर तो भैंसा खानेमें मस्त था, पर अचानक कोई लाईट उसकी आंखमें पड़ी और वह गरजकर लाइटकी तरफ झपटा। जमीनसे दस हाथ ऊंची लाइट एक ही झपाटेमें चूर-चूर हो गयी और मचानके ऊपर कैमरा व लैंस करते हुए कुंअर नीचे आ रहे। हांकेवाले पास ही छुपे थे। इस विपत्तिके समय वे हल्ला करते हुए जलते लुआठे लेकर दौड़े और इसी हल्ले तथा आगकी लपटको देखकर शेर भाग निकला।

अब समझा, यह वही शेर था जो बिना मेरे बछड़ेपर हाथ लगाये चुपचाप चला गया था। बड़े कुंअर साहबको जब यह बात बतायी तो उन्होंने कहा, दो चार घण्टे आराम कर लो। शेरको यूं छोड़ना ठीक नहीं, कौन जाने रात-बिरात हमला कर दे?

हम लोग थोड़ा सोये, खाना-पीना किया और सर्चलाइट तथा कुछ खानेका सामान लेकर तीन बजे निकल पड़े। जहां बछड़ा बंधा था वहांकी झाड़ियोंमें खोज करनी थी। खूनके निशान जमीनपर सूखकर गाढ़े हो गये थे। झाड़ियोंके बीचमें शेरके बैठनेकी छाप देखकर एक वनवासी हांकेवालेने ही बताया कि शेरके दाएं पुट्ठेपर गोली लगी है। थोड़ी दूरपर नदी बहती थी, खूनके निशान वहांतक चले गये थे। किनारेकी शिलापर खड़े होकर शेरने पानी पिया था और उस पत्थरपर उसका खून जमकर गाढ़ा हो गया था। अन्दाज था कि शेर यहीं कहीं छिपा होगा, पर बेकार; खोजते-खोजते रात हो गयी और हम खाली हाथ वापस लौटे।

बादल घिर आये थे। रातके करीब ग्यारह बजे होंगे। हम लोग खेमेसे कुछ ही दूर थे कि गोली चली—धप। यानी शिकारको लगी है। पर खेमेपर तो केवल छोटे कुंअर साहब और तीन आदमी ही थे। आखिर गोली चलानेकी जरूरत क्यों पड़ी? रास्तेभर प्राण आशंकामें डूबते-उतराते रहे।

आनेपर पता चला तो बड़ी खुशी हुई और डर भी लगा। हम शेरकी खोजमें गये थे

और शेर हमारी खोजमें यहांतक आ गया था। रातको छोटे कुंअर जब खाना खाकर सोने जा रहे थे कि मोहन अहीर उनके पास पहुंचा। वह इस जाड़ेमें भी पसीनेंसे तर था और उसने बताया कि शेरको उसने अभी-अभी इधर आते देखा है। बौखलाया शेर रोशनीकी ओर आ रहा है। तभी खेमेकी बगलमें घास टूटनेकी आवाज आयी। छोटे कुंअरने इस बार डरकर कैमरा नहीं बन्दूक संभाली (कैमरा कल ही टूट चुका था) और ३०० मैगिनम बन्दूकमें गैस टाइट गोलियां भरकर निकल आये। शेर अबतक दुबका बैठा था। खोजें तो कहां, तभी अंधेरेमें ही बिजली चमकी और शेर साफ नजर आया। वह हमसे कुछ दूर ही खेमेकी ओर मुख किये एक पंजा उठाये खड़ा था। तभी दो गोलियां चलीं और बिना कुछ बोले शेर वहीं ठण्डा हो गया। शायद छोटे कुंअरकी जिन्दगीमें यह सबसे आसान और सबसे बड़ा शिकार था।

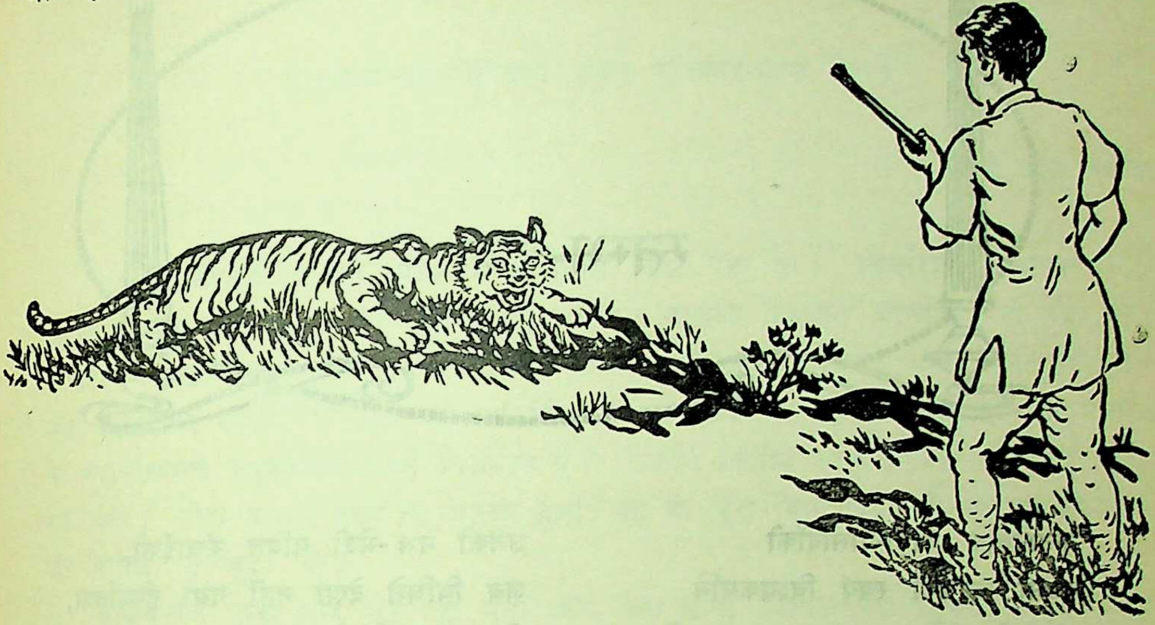

शिकारकी और बातें बादमें लिखूंगा। दो हिरनकी छालें भेज रहा हूं। घरपर सब लोग मजेमें हैं। तुम भी मजेमें होगे।

तुम्हारा ही
अमरसिंह

स्तम्भ-कथा

नन्दादेवीके क्रीड़ा-प्रासादोंकी
रचना करनेको स्वयं विश्वकर्माने
खंभे ही खंभे जगह जगह रच डाले
सर्जन-संकल्पोंमें जाने अनजाने ।

निश्वसित विश्वकर्माके करसे छेनी
जा गिरी छूटकर जलकी गहराईमें,
लहरोंमें ऐसी सृजनशीलता जागी,
रच गये वहां भी खंभे परछाईं में।

उनकी नभ-भेदी गर्वित ऊंचाईको,
जब विधिसे देखा नहीं गया ईर्ष्यावश,
निज मंत्रशक्तिसे उसने सब स्तंभोंको
परिणत कर डाला तरुओंमें अभ्रंकश।

बोला वह आकुल-कंठ, 'अरे चतुरानन!
मेरी रचना तू मिटा नहीं पायेगा।
यह घने चीड़-वन और देवतरु-कानन,
जो भी देखेगा स्तंभित रह जायेगा।'

—जगदीश गुप्त (डा.)

"विदेशी आक्रमणकारियोंने मन्दिरके बाद मन्दिर जीतकर उन्हें धूलमें मिला दिया, परंतु बवण्डरके रुकते न रुकते गगनमें दिखायी दिये नये-नये मन्दिरोंके शिखर। जितनी बार विध्वंस किया गया उतनी बार नवीन यौवनने अपने तेज व शक्तिको लेकर फिर-से सिर उठाया! यही तो जातीय मन व जातीय जीवन-स्रोतका वास्तविक परिचायक है। इसी जीवन-स्रोतमें बहते चलो, तुम्हारा गौरवोज्ज्वल भविष्य तो सामने ही है।"

—स्वामी विवेकानन्द

मैं पढ़-लिखकर क्या बनूंगा ?

('पुरोधा'-प्रतियोगितामें प्रथम पुरस्कार-प्राप्त लेख)

—श्री ओम प्रकाश

रात्रिके लगभग ८ बजे होंगे। मैं बागसे लौट रहा था। विचारोंमें विज्ञानवेत्ताओंने अपना स्थान बना रखा था। सारा शहर विद्युत् बल्बोंके प्रकाशसे आलोकित हो रहा था। बाजारमें अच्छी चहल-पहल थी। प्रत्येक दुकान किसी-न-किसी विशेष ढंगसे सजी हुई थी। सब वस्तुओंको देखकर मैं सोच रहा था कि वास्तवमें आज वैज्ञानिकोंके आविष्कार ही मानवके सुख-साधनके उपकरणके रूपमें विद्यमान हैं। इतनेमें किसीने आवाज दी। विचारोंका तांता टूट गया। पीछे मुड़कर देखा तो मालूम हुआ; यह था मेरा मित्र प्रदीप जो इस वर्ष वकालतकी परीक्षा दे चुका था।

बातचीतका नया दौर शुरू हो गया और हम दोनों प्रदीपके घर पहुंचे। परीक्षाओंका भूत सिरपरसे उतर चुका था। परीक्षा आदिके विषयमें पूछनेके बाद उसने एक प्रश्न पूछा कि पढ़-लिखकर क्या करना चाहिये ? मैं स्वयं विज्ञानका विद्यार्थी ठहरा, तपाकसे कह दिया कि मैं तो पढ़-लिखकर इंजीनियर बनूंगा और आप तो वकील बनेंगे ही।

उत्तर सुनकर वह कुछ क्षणोंके लिये विचारोंमें डूब गया और बोला, क्या इंजिनियर या वकील या डाक्टर बनकर अपने लिये सुख-साधनोंकी सामग्री जुटा लेना और अपना जीवन सुखसे व्यतीत करना और इस दुनियासे चले जाना ही जीवनका लक्ष्य है ?

इस प्रश्नने मस्तिष्कको झकझोर डाला। कुछ सोच-विचारके बाद मैं बोला—अच्छा, बुद्धिजीवीके रूपमें कार्य न करके यदि श्रमद्वारा धनोपार्जन किया जाय तो ? व्यापार या मेहनतमजूरी करके अपने परिश्रमद्वारा अपनी जीविका चलायी जाय तो ? महात्मा गांधीकी 'ब्रेड लेबर' वाली बात उस समय मेरे ध्यानमें आ गयी थी। इसीलिये यह कह डाला।

उसके मस्तिष्कमें पता नहीं कैसे विचार उठ रहे थे, कहने लगा—"बुद्धिजीवीके रूपमें कार्य किया जाय या श्रमजीवीके रूपमें अर्थोपार्जन किया जाय, आखिर लक्ष्य तो यही रहा कि पैसा अपने निजी सुखकी सामग्रीके लिये एकत्रित किया जाय ? पर वास्तवमें इतना ही करना तो मानवका धर्म नहीं है ? इतना तो पशु भी करता है।

मैं समझ नहीं पा रहा था कि आखिर आज यह कैसी बातें कर रहा है। मस्तिष्कपर कुछ जोर डाला तो विचार आया कि शायद उसको संसारसे कुछ विरक्ति हो रही है। पैसे व सुखका लालच इसे अपनी ओर आकर्षित कर पानेमें असमर्थ हो रहा है। मैंने बहुत सोचविचारके बाद कहा कि फिर तो सबसे अच्छा यह है कि संन्यास ले लिया जाय। न पैसे कमानेकी सनक रहेगी न निजी सुख-दुःखकी चिंता। आत्मिक शांति मिलेगी और इस संसारके आवागमनसे छुट्टी हो जायगी। मैं सोच रहा था, इस बार तो तीर निशानेपर ही लगा है; मैंने उसके मनकी बात ताड़ ली है।

परंतु जब उसकी बात सुनी तो मैं अवाक् रह गया। वह बोला, 'संन्यास' ग्रहण करनेसे ही सब कुछ हो जायगा यह बात तो ठीक नहीं है। उसमें तो स्वयं अपनी मुक्तिका ही प्रयास हो सकता है। फिर इस समाजका जो इतना ऋण है उससे उऋण होनेका कौनसा साधन होगा ? आखिर जिस समाजमें हमने जन्म लिया है उसके प्रति भी तो हमारा कुछ कर्तव्य है ?

मैंने विचार किया कि एक इंजीनियर, एक वैज्ञानिक आज राष्ट्रके निर्माणमें कितना योग दे रहा है। एक व्यापारी राष्ट्रके विदेशी व्यापारमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, पर इन सब कार्योंके पीछे अर्थ कमाना ही लक्ष्य है। इस बातको कहकर इसने इन सब कार्योंको समाज-उत्थानका प्रमुख कारण नहीं माना। बहुत कुछ विचारके बाद भी मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाया। आखिर मैंने स्वयं उसीसे पूछा—आप ही बतलाइये न कि पढ़ने-लिखनेके बाद क्या करना चाहिये।

कुछ रुककर वह बोला—आज परीक्षाकी घड़ी है। सारे समाजकी दृष्टि आजके पढ़े-लिखे कहे जानेवाले तरुणपर लगी हुई है। वह कलके समाजका निर्माता है, राष्ट्रका भावी कर्णधार है और समाजकी आशाओंका पुंज है।

ऐसी परिस्थितिमें सारा जीवन इस राष्ट्रमें रहनेवाले समस्त लोगोंके उत्थानके लिये उत्सर्ग कर देना ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है। जो वास्तवमें मानवजातिकी सहायता करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे पहले अपने सुख और दुःख, नाम और यश तथा सर्वविध स्वार्थी भावनाओंकी गठरी बनाकर उसे समुद्रमें फेंक दें और तब भगवान्के पास आयें। यही सब धर्म-प्रवर्तकोंने कहा है और किया है। हमारा काम तो संसारका भला करना है, न कि अपने नामका ढोल पीटना।

स्वामी दयानंद, विवेकानंद, श्रीअरविंद एवं अन्यान्य ऐसे ही समाजके निर्माताओं, युग-निर्माताओंका जीवन-आदर्श अपने सामने रखकर उनके द्वारा प्रारंभ किये गये कार्यको पूरा करना ही है हमारा परम कर्तव्य।

उसने आगे कहा—आज समाजमें ऐसे दृष्टिकोणसे ओतप्रोत लोगोंकी आवश्यकता है जो इस प्रकारके विचार हृदयमें रखकर अपने कार्यमें रत रहें कि दूसरोंकी मुक्ति के लिये नरक में भी जाना पड़े तो सहर्ष जायंगे। मुक्ति उसीके लिये है जो दूसरोंके लिये अपने सर्वस्वका त्याग कर देते हैं।

महान् कार्य महान् त्यागसे ही संपन्न हो सकते हैं।

बातचीत समाप्त हुई और नमस्ते आदिके बाद उसके प्रति श्रद्धाका भाव लिये हुए और एक सुदृढ़ विचारके साथ मैं घर लौटा और वह विचार था—पढ़-लिखकर मैं बनूंगा यश-अपयशको भूलकर मान-अपमानकी चिंता न करनेवाला एक समाज-सेवक—समाज-मंदिरकी नींव का एक पत्थर; समाज-मंदिरका गुम्बद नहीं, देवताका मुकुट नहीं, बल्कि उसके चरणोंमें समर्पित पुष्पोंकी एक कली और यही है वास्तवमें जीवनकी सफलता और इसीमें छिपी हुई है जीवनकी सार्थकता।

[साधारण मनुष्यका जीवन केवल 'खाओ, पीओ, चले जाओ' तक सीमित रहता है। इन बातोंमें उसमें तथा अन्य प्राणियोंमें कोई भेद नहीं है। भेद तब उत्पन्न होता है जब मनुष्य

अपने जीवनके लक्ष्यके बारेमें सोचना शुरू करता है। वह जानना चाहता है कि आखिर उसने जन्म क्यों लिया है, इसके पीछे क्या रहस्य है और इसका उद्देश्य क्या है? प्रथम अवस्था वह है जब वह केवल अपने बारेमें सोचता है, फिर जरा प्रगति होती है तो उसका अपनापन अपनेतक सीमित न रहकर अपने परिवारतक फैल जाता है, उसके बाद वह गांव-बिरादरी आदिको अपना मानता है और उनके भलेको अपना भला मानने लगता है। इससे आगे चलकर वह देश और मनुष्यमात्रके भलेको अपना लक्ष्य बना लेता है। यह अपने-आपमें काफी प्रगति है, पर यही अंतिम बात नहीं है। इसके परे भी कुछ है।

अज्ञानमें रहनेवाला मनुष्य इधर-उधर ठोकरें खाता है, वह जिसे लाभदायक समझता है उसे करता जाता है, परंतु हरएकको एक गजसे नहीं नापा जा सकता। हरएककी भलाईके लिये एक ही उपाय नहीं हो सकता। मुझे गुलाबजामुन बहुत पसंद है और आपको दाल-मोठ। मैं आपका भला करनेके लिये आपको गुलाबजामुन खिलाऊं और आप मेरे मुंहमें दाल-मोठ ठूंसने लगें तो हम दोनोंमेंसे किसका भला होगा?

इसी प्रकार मनुष्यका भला करनेके लिये समाजवाद, साम्यवाद, अराजकतावाद, गांधीवाद आदि बहुतसे वादोंने जन्म लिया। प्रत्येकमें अपनी-अपनी विशेषताएं हैं, अपने-अपने गुण हैं, पर उनमेंसे किसीको भी सबपर लागू नहीं किया जा सकता। हमें मनुष्यकी प्रकृति, उसकी क्षमता, उसके रस और उसकी शक्यताओंका ख्याल रखना होगा। आप आवेशमें आकर एक बड़े अच्छे गायकको बन्दूक पकड़ा दें तो शायद वह एक रद्दीसा सिपाही बन भी जाय पर इस कारण देश एक बड़े कलाकारसे वंचित रह जायगा। भगवान्‌की सृष्टिमें हरएक किसी खास उद्देश्यके लिये आया है, जबतक वह उस उद्देश्यको न जान ले तबतक वह अपने जीवनको पूरी तरह सफल नहीं बना सकता।

कोई काम अपने-आपमें बड़ा या छोटा नहीं होता। देश, काल, परिस्थितिके अनुसार कामका महत्त्व कम या अधिक हो सकता है। तब सवाल उठता है कि आखिर हमें क्या करना चाहिये और कैसे करना चाहिये। जैसा कि हमने ऊपर कहा है कामका (इस प्रसंगमें) अपने-आपमें विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व है भावनाका। अगर हम इस भावनाके साथ काम करें कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह भगवान्‌के लिये कर रहे हैं, यह उन्हींका काम है और उन्हींकी देख-रेखमें हो रहा है, इसका उद्देश्य हमारे अहंको बढ़ाना नहीं, हमारी महत्त्वाकांक्षाको पूरा करना नहीं अपितु भगवान्‌की सेवा करना है तो हम देखेंगे कि हमारा हर एक काम सुन्दर, पवित्र और जहांतक हो सके अच्छे-से-अच्छा होगा। इस समय मनुष्यसमाजपर जितनी भी मुश्किलें आयी हैं उन सबके असली उपायके रूपमें यह जरूरी है कि हमारी चेतनाका परिवर्तन हो, हमारे अंदर भगवान्‌की चेतना काम कर सके और पग-पगपर हमें सही रास्ता दिखा सके। इस तरहसे किया गया काम ही सचमुचमें काम है और तब झाड़ू लगाना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है जितना बड़ेसे बड़ा समाजसेवाका काम। इस दृष्टिसे हमारे लिये सबसे अधिक आवश्यक यह है कि हम अपनी आत्माको,—भगवान्‌के उस अंशको जो हमारे अंदर मौजूद है—पहचानें और उसके नेतृत्वमें काम करें। काम मुश्किल जरूर है परंतु करने लायक काम यही है। —सम्पादक]

***

रूसी कहानी :

उत्तर

—श्रीटालस्टाय

एक राजा था।

एक दिन उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि यदि ये तीन बातें मालूम हो जायं तो हर इच्छा पूरी हो सकती है और असफलता कभी मिले ही नहीं ——

कार्य कब प्रारंभ किया जाय ?

मतलबका व्यक्ति कौन है ? किसकी बातपर ध्यान दिया जाय और किसकी नहीं ?

सबसे आवश्यक कार्य कौनसा है ?

दूसरे दिन सारे राज्यमें मुनादी करा दी गयी; जो राजाके तीन प्रश्नोंका सही उत्तर देगा उसे दौलतसे मालामाल कर दिया जायगा।

दूर और नजदीकसे अनेक योग्य व्यक्ति राजपरिवारमें हाजिर हुए। हरएकने अपनी-अपनी समझके अनुसार उत्तर दिये। प्रथम प्रश्नका जबाब बहुतोंने यह दिया——"हर कार्यके लिये पूर्व ही एक योजना बनानी चाहिये जिससे ज्ञान हो सके कि किस वर्ष, किस माह और किस दिन कार्य करना है। फिर सब कार्योंका योजनानुसार होना आवश्यक हो जायगा। इस तरह हर कार्य निश्चित समयपर हो सकता है। और कोई दूसरा तरीका नहीं।"

"योजना तैयार करना कठिन है और न ऐसा हो ही सकता है; हां, यदि कार्यका पूरा ध्यान रखा जाय और उचित समयपर किया जाय . . . . . "

"यह भी नहीं, मेरे विचारसे तो महाराजा कुछ पंडित हर समय अपने पास रखें ताकि वह मुहूर्त्त देखकर बता दिया करें कि यह काम इस समय किया जाय तो अच्छा हो। और कोई उत्तर इस प्रश्नका नहीं सूझता।"

"यह भी कठिन है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें उसी वक्त करना होता है या प्रश्नका उत्तर देना होता है।"

दूसरे प्रश्नके उत्तर भी इसी तरह अलग-अलग थे। किसीने कहा——"राजाके लिये सबसे जरूरी लोग राजदरबारी होते हैं।"

दूसरेने कहा——"ज्योतिषी और मंत्री।"

"हकीम और आलिम।"

"सब गलत, सबसे जरूरी सिपाही।"

तीसरे प्रश्नके उत्तर भी अजीब-अजीब मिले। किसीने कहा—"सबसे आवश्यक चीज ज्ञान है।"

"होशियारी।"

"सबसे अच्छा है धर्म।"

सभी उत्तर सन्देहपरक थे इसलिये राजाको तसल्ली न हुई। और निर्धारित इनामका हक़दार कोई भी न हो सका। मगर सही उत्तर जाननेकी इच्छा राजाके मनमें और अधिक हो गयी। राजाको ध्यान आया कि पासके जंगलमें एक महात्मा रहते हैं। उनसे पूछा जाय तो अच्छा हो। महात्माकी प्रसिद्धि दूर-दूरतक फैली हुई थी। वह कभी जंगलसे बाहर नहीं निकलते थे। किसी चतुर इन्सानसे वार्त्तालाप करना उनके लिये अपराधसे कम न था। महाराजने साधारण वस्त्र पहन लिये और स्वयं महात्माकी कुटियासे कुछ ही दूरीपर घोड़ेसे उतर पैदल ही चलने लगे। अपने साथी सिपाहियोंको वहीं रहनेका आदेश दे अकेले ही कुटियाकी ओर अग्रसर हुए।

निकट पहुंचनेपर देखा कि महात्मा कुटियाके बाहर जमीन खोद रहे हैं। राजाको देख महात्मा खुश हुए। फिर उसी तरह अपने काममें लग गये। उमर अधिक होनेके कारण महात्मा कमजोर हो चले थे, इसलिये उनकी सांस फूल रही थी।

राजाने समीप जाकर कहा—"महाराज, मैं आपसे तीन प्रश्नोंके उत्तर ज्ञात करने आया हूं।"

महात्माने इस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया लेकिन राजाने स्वयं ही प्रश्न सुना दिये।

(१) कोई कार्य कब प्रारंभ किया जाय?

(२) मतलबका व्यक्ति कौन है? किसकी बातपर ध्यान दिया जाय और किसकी नहीं?

(३) सबसे आवश्यक कार्य कौनसा है?

महात्माने सब सुना, लेकिन उत्तर नहीं दिया। सिर्फ चन्द सेकण्डके लिये आराम किया और फिर अपने काममें लग गये। राजाने फिर कहा—"आप थक गये हैं, कुदाल मुझे दीजिये।"

"अच्छा.......।"

कुदाल महाराजके हाथमें थी और महात्मा पास ही एक पेड़की छायामें आराम कर रहे थे। दो क्यारियां खोद चुकनेके बाद महाराज रुके और फिर अपने प्रश्नोंको दुहरा दिया। मगर फिर भी कोई उत्तर न मिला। महात्माने हाथ बढ़ाकर केवल इतना कहा—"आओ, अब तुम सुस्ता लो। बाकी मैं खुद खोदूंगा।"

लेकिन राजाने कुदाल वापस न की और काम जारी रखा। एक घंटा बीत गया। दूसरा और तीसरा घंटा भी बीत गया और अब संध्या हो चली। आखिर राजाने कुदाल जमीनपर रख दी और बोले—

"भगवन्, मैं आपके पास अपने प्रश्नोंके उत्तर जानने आया हूं। यदि आप कोई उत्तर नहीं दे सकते तो कह दें, मैं वापस चला जाऊं।"

"देखो, वह कोई भागा आ रहा है। न मालूम कौन है?"

राजाने पीछे देखा। एक आदमी जंगलसे भागता हुआ आ रहा था। वह दोनों हाथोंसे अपने पेटको दबाए हुए था जहांसे खून निकल रहा था। राजाके पास पहुंचते ही वह गिर पड़ा और बेहोश हो गया। दोनोंने मिलकर उसके कपड़े उतारे; पेटमें बहुत बड़ा घाव था। जिस तरह हो सका राजाने घावको धोकर साफ किया और अपना रूमाल फाड़कर उसकी पट्टी

कर दी, लेकिन खून बराबर निकलता जा रहा था। राजाने खूनसे तर पट्टीको खोला। घावको फिर साफ किया और नयी पट्टी बांध दी। आखिर जब खून बन्द हुआ तो उसे होश आया। फिर उसने इशारेसे कुछ खानेको मांगा। राजाने थोड़ा पानी उसके मुंहमें डाला, इतनेमें अंधेरा हो गया और सरदी बढ़ने लगी। महात्माकी मददसे राजा उस घायलको कुटियामें ले गया। अब उसने आंखें बन्द कर लीं। कुछ स्फूर्तिका अनुभव किया। राजा भी खूब थक गया था। एक तो बहुत यात्रा की, दूसरे यहां श्रम करना पड़ा। वह भी चौखटके सहारे बैठ गया और अंतमें वहीं लेट गया। लेटते ही नींद आ गयी। सुबह आंख खुली तो बहुत आश्चर्य हुआ कि मैं कहां हूं, यह व्यक्ति कौन है। घायल आंखें खोले महाराजकी ओर देख रहा था। उन्हें विचारमग्न देख, धीमी आवाजमें बोला।

"आपकी कृपासे मेरी जान बच गयी। क्षमा कीजिये, आपको बहुत कष्ट हुआ होगा।"

"भाई, मैं तो तुम्हें जानतातक नहीं, फिर क्षमाका तो प्रश्न ही नहीं उठता। मैंने इन्सानियतका फर्ज निभाया था।"

"आप मुझे नहीं जानते, मगर मैं आपको अच्छी तरह जानता हूं। मैं आपका दुश्मन हूं। मैंने आपसे बदला लेनेकी शपथ खायी थी। आपने मेरे भाईको फांसीपर लटका दिया था और सारी जायदादपर अधिकार कर लिया था। मुझे मालूम हुआ कि आप इस जंगलमें आये हुए हैं। इच्छा थी, लौटनेपर आपको स्वर्गलोक पहुंचा दूं। सारा दिन बीत गया और जब मैं अपनी छिपी जगससे निकला तो आपके सिपाहियोंसे सामना हो गया। उन्होंने मुझे घायल कर दिया। मैं इधर भाग आया। यदि आप मेरी मदद न करते तो अवश्य ही मैं मर जाता। अब इस बातपर हैरान हूं कि मैं तो आपके कत्लका सामान कर रहा था और आप हैं कि मुझे बचा लिया। अब मैं सदैव आपका सेवक बनकर रहूंगा। मुझे माफ कर दीजिये।"

महाराजाको आंतरिक अनुभव हुआ। एक मामूली-सी भलाईके बदले, एक शत्रु मित्र बन गया, वह भी सेवक मित्र। राजाने उसे माफ ही नहीं किया बल्कि कहा—

"मैं अभी अपने आदमी तुम्हारी तीमारदारीके लिये भेजता हूं और राजवैद्यको तुम्हारे इलाजके लिये रवाना करता हूं।"

घायलसे बात कर वह बाहर महात्मासे बात करने आये। जानेसे पूर्व वह एक बार फिर महात्मासे अपने प्रश्नका उत्तर पूछना चाहते थे। महात्मा कल खोदी हुई क्यारियोंमें बीज बो रहे थे। महाराजने पास आकर कहा—

"महाज्ञानी! मैं अन्तिम बार फिर अपने प्रश्नोंके उत्तरके लिये आपसे निवेदन करने आया हूं।"

महात्माने आंख उठाकर राजाकी ओर देखा और कहा—"उत्तर तो तुम्हें मिल गया है भाई!"

"मिल गया है?" राजाने आश्चर्य दिखाते हुए कहा—"किस तरह? आपका क्या अभिप्राय है?"

"देखते नहीं हो, यदि कल मेरी कमजोरीपर रहम न करते तो जमीन न खोदते और वापस लौट जाते, तब वह आदमी अवश्य ही तुमपर आक्रमण करता और बादमें तुम्हें अफ

सोस होता। जब तुम धरती खोद रहे थे तो तुम्हारे लिये वही आवश्यक काम था और वही उसका उपयुक्त समय था। फिर जब वह घायल आदमी आया तो तुम उसके उपचारमें लग गये, यही आवश्यक काम था और यही उसका श्रेष्ठ समय।

यदि तुम उस समय उसका उपचार न करते तो वह तुम्हें गालियां देता हुआ मर जाता। इसलिये उस वक्त वही तुम्हारे लिये मतलबका व्यक्ति था और जो उसके लिये तुमने किया वही आवश्यक था। इसलिये याद रक्खो, ऐसे समयमें ऐसे कार्य आवश्यक हुआ करते हैं। जिस समयमें जो भलाई हो सके वह करते रहो। वह व्यक्ति आवश्यक और मतलबका है जो हमारे साथ है। कौन जानता है कि इसके बाद किसी दूसरे व्यक्तिसे हम मिल भी सकेंगे या नहीं? और सबसे आवश्यक काम है उस व्यक्तिकी भरसक सेवा कर देना। केवल यही एक काम है जिसे भगवान्ने इंसानको सौंपकर संसारमें भेजा है।''

महाराज सोचते हुए, सर झुकाये वहांसे चले गये।

गंभीर लेख

गम्भीर चीजें कौन लिखे!

''देखिये न, आपने मुझे फिरसे गम्भीर लेख लिखनेको दे दिया। मैंने आपसे कई बार कहा है कि मैं गम्भीर चीजें लिखना नापसंद करती हूं। फिर आप मुझे इस तरह सताते क्यों हैं?'' मैंने अपने अध्यापकसे कहा। वे झट बोले, ''तुम नहीं लिख सकती इसीलिये तो देता हूं जिससे तुम गम्भीर चीजें नापसंद नहीं बल्कि पसंद करने लगो। देखो, लेखकको लेख लिखते वक्त हरेक भावमें जाना पड़ता है, अगर लेख मजेदार है तो उसके होठोंपर एक मुस्कान-की रेखा खिंची रहती है और अगर कुछ गम्भीर हो तो उसके मुखपर गम्भीरताकी छाया दिखायी देती है। इसलिये अभीसे तुम सब प्रकारके लेख लिखना सीखो। जब सबपर तुम्हारा अधिकार हो जाय तब तुम अपनी मर्जीके लेख लिख सकती हो।'' मैं अध्यापककी बात सुन तो रही थी, मगर मेरे मनमें बात कुछ जंची नहीं, क्योंकि, गम्भीर लेख लिखना मुझे उतना ही कठिन लगता था जितना आकाशसे तारे तोड़ लाना। अध्यापकजी तो बहुत कुछ कह गये, मगर उसपर चलना मेरे लिये कठिन ही था। मास्टरजीका कहना तो बिलकुल ठीक था कि सब तरहके लेख लिख सकना चाहिये, मगर कोई न लिख सके तो? जैसे मैं हूं, कभी गंभीर लेख लिख ही नहीं सकती। लोग कहेंगे यह भी अजीब बात है। जैसे हास्यके लेख लिखती हो वैसे ही गंभीर लेख भी लिख सकती हो। मगर वह कोई आसान काम थोड़े ही है! हंसी-

का हो तो अपने लेखमें दो-चार हंसीकी बातें डालीं और उसे रसमय बना डाला और पढ़नेवालेको मजा आ गया। लेकिन अगर गम्भीर लेख लिखना हो तो हाथमें कलम पकड़नेको जी नहीं चाहता, "अरे, अभी तो बहुत समय बाकी है, आज नहीं तो कल सही।" फिर कई बार गुस्सेमें सोचती हूं, "अरे, गम्भीर चीजोंको मारो गोली। गम्भीर चीजें कौन लिखे?" मगर पता तो है ही कि दिया हुआ गृहकार्य करना ही होगा। सो लाचार होकर कापी और पेन लेकर बैठती हूं।

गम्भीर लेख लिखनेके लिये पहले तो मुझे अपने-आप गम्भीर होना पड़ता है जो मेरे लिये जरा मुश्किल है। जब गंभीर नहीं हो सकती तो कुछ और काम ढूंढ़ती हूं जिससे गम्भीर लेखसे छुटकारा मिल जाय। मगर कई बार तो मुक्ति नहीं मिलती। एक लंबी सांस छोड़कर पेनका ढकना खोलकर बैठ जाती हूं। पेनसे कापीमें चित्र बनाने लगती हूं, लेकिन मनमें यह बात सदा रहती है कि अभी गम्भीर लेखसे बच जाऊं तो क्या हुआ, एक-न-एक दिन तो करना ही होगा और अपने आलसके कारण मैं श्रेणीमें पिछड़ भी जाऊंगी सो अलग। मैं धीरे-धीरे उस गम्भीर विषयपर सोचने लगती हूं। एक-से-एक अजीब विचार मनमें तैरने लगते हैं, मगर मुझे कोई पसंद ही नहीं आता। जरा थक जानेके बाद मैं किताबोंको उलट-पलट-कर उनकी तस्वीरें देखने लगती हूं। मेरा ख्याल शायद ऐसा होता है कि मुझे लेख परिश्रम किये बिना ही कापीमें लिखा हुआ मिलेगा। जब इस तरह कोई आधा घण्टा बीत जाता है तो सोचती हूं, "अरे! गम्भीर चीजें कौन लिखे?" फिर कुछ समयके बाद ख्याल आता है, फिर कापी लेकर बैठती हूं और सोचती हूं कि इस बार गंभीर लेख लिखकर ही छोड़ना है, चाहे सारी रात क्यों न जागना पड़े। अब मुझमें और मेरे दृढ़ विचारमें कुश्ती होने लगती है। मैं जी मसोसकर गंभीर लेख लिखना शुरू कर देती हूं, फिर तो मेरा हाथ सरपट चलने लगता है; भागती गाड़ीकी तरह सीधा स्टेशनपर ही रुकता है।

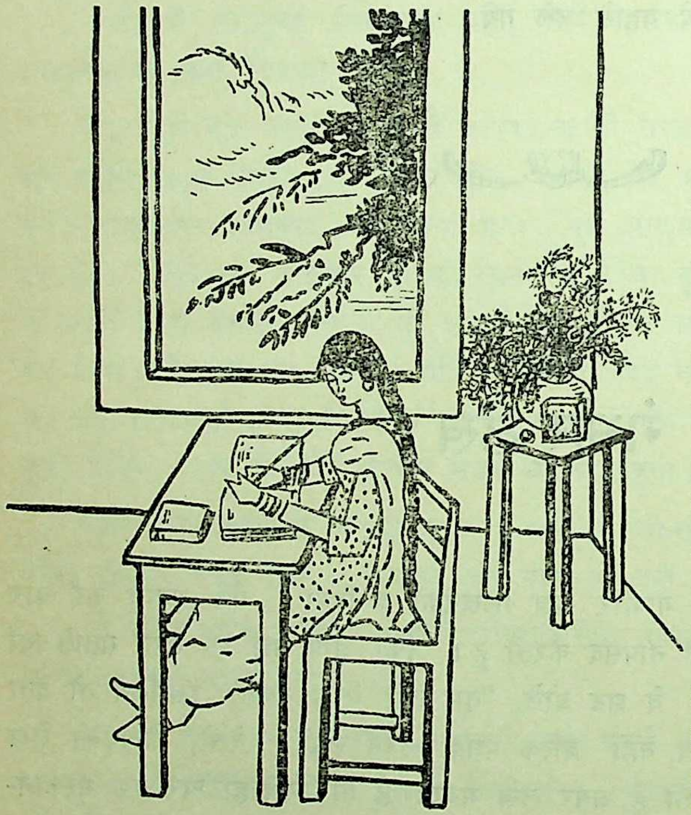

—अंजना शर्मा

शेर और बकरी एक घाट पर

—अनुबेन पुराणी

एक दिन बकरीका बच्चा जंगलमें अकेला घूम रहा था। घूमते-घूमते उसे प्यास लगी। उसे याद आया कि एक बार वह मांके साथ झरनेमें पानी पीने गया था। वह उस ओर चल पड़ा। लेकिन यह क्या? वहां तो ढीमल नामक भेड़िया पानी पी रहा था। बच्चा कुछ डरा, कुछ ठिठका, पर प्यास इतने जोरकी लगी थी कि वह रुक न सका और कुछ दूर जाकर पानी पीने लगा। ढीमलने आंखें तिरछी करके बच्चेको देख लिया। इतना अच्छा शिकार देखकर उसके मुंहमें पानी आ गया। वह कड़ककर बोला—ऐ! तू मेरा पानी जूठा क्यों कर रहा है? बकरीका बच्चा सिहर उठा। बड़ी नम्रतासे बोला—ऐ जनाब! पानी आपकी ओरसे मेरी ओर आ रहा है। भेड़ियेका पारा और भी चढ़ गया। वह चिल्लाया–चोरी और ऊपरसे सीनाजोरी! भेड़िया झपटनेके लिये बच्चेकी ओर मुड़ा ही था कि उसने एक गरज सुनी। पीछे मुड़कर देखा तो शेर आ रहा था। अपने राजाको देखकर ढीमलने बड़े अदबसे सलाम किया और चुपचाप खड़ा हो गया। शेरने उससे पूछा—ढीमल! यहां क्या कर रहे हो? ढीमलने नम्रतासे कहा—हुजूर! यह बकरीका बच्चा मेरा पानी जूठा कर रहा था। इसलिये मैं उसको सजा देना चाहता हूं। शेरने बकरीके बच्चेकी ओर देखा और पूछा—क्यों बच्चे, यह बात ठीक है? बच्चा रोते-रोते बोला—हुजूर! मैं यहीं खड़ा होकर पानी पी रहा था, आप ही देखिये। शेरने हंसकर कहा—क्यों ढीमल! यह पानी नीचेसे ऊपर आता हुआ दिखायी दे रहा है क्या?

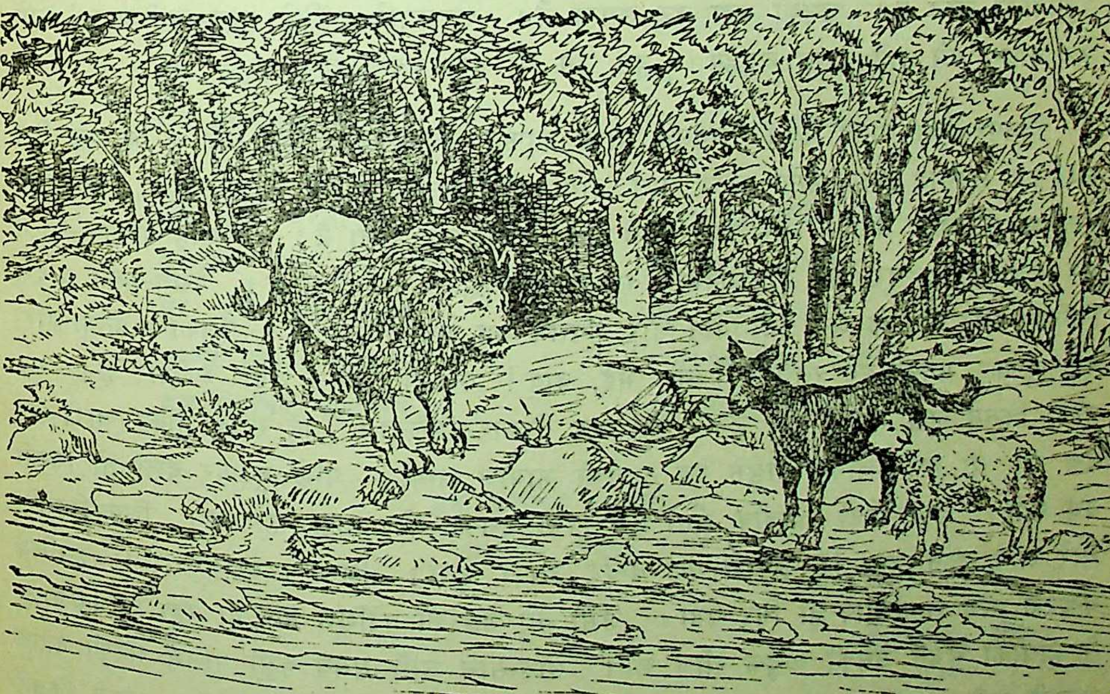

ढीमल, जरा सोचकर देखो, हमारी आपसी फूटके कारण हमारा दुश्मन—मनुष्य हमको खतम करता जा रहा है, मैंने सोचा है कि तुम्हारा राजा हूं तो मुझे तुम्हें बचानेका उपाय भी करना चाहिये। जो बोले सो कुंडा खोले। मैंने पशु-जगत्को प्रेमके धागेसे बांधनेका निश्चय किया है। अब मैं हर जानवरसे दोस्ती करनेकी कोशिश करता हूं। देखो, मेरे प्रेम भरे आचरणसे यह बच्चा भी मेरे सामने निर्भय खड़ा है। भइया, प्रेममें जो शक्ति है, मेल-जोलमें जो एकताका भाव है वह हमें मनुष्योंसे बहुत ज्यादा शक्तिशाली बना देगा।

ढीमल थोड़ा झुंझलाकर बोला—लेकिन महाराज! न्याय-अन्यायका भी विचार होगा या नहीं? आपकी बातें सुननेमें तो अच्छी लगती हैं लेकिन हमेशा मेल-जोलका आचरण करना बहुत मुश्किल है। आप कहते हैं कि उससे हम मनुष्योंसे ज्यादा शक्तिशाली बन जायंगे। मैं ऐसी खोखली बातोंको कैसे मान लूं? आप एक बार कुछ करके दिखा दीजिये तब जानूं। शेरने हंसकर कहा—हां, ढीमल, अवसर आनेपर तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा। शेरने बच्चेकी ओर मुड़कर कहा—आओ, बच्चे, अपनी बिरादरीमें सबसे कहना कि शेरशाहके राज्यमें अब कोई खतरा नहीं है। वह सब जानवरोंसे मिलजुलकर रहने लगे हैं। मेमना उछलता-कूदता वहांसे गायब हो गया।

शेरशाहने धीरे-धीरे सब जानवरोंको अपनी नयी बातें बताना शुरू किया। सबके मनमें ये बातें बैठ तो गयीं पर साथ-ही-साथ शंका भी बनी रही। भीरुमल हाथीने सूंड हिलाते हुए कहा—अरे, आदमीको तो मैं पांव तले रौंद सकता हूं, पर भैया, उसके पास धांय-धांय करके उड़नेवाली चीज है। उसका बड़ा डर लगता है। शेरशाहने शांतिसे कहा—भीरुमल! हमें उस धांय-धांयसे नहीं डरना चाहिये। हम उसे भी हरा सकते हैं।

दिनपर दिन बीतते गये। जंगलके प्राणी काफी मिल-जुलकर रहने लगे थे कि एक दिन लम्बकर्ण खरगोश भागा-भागा शेरके पास आया और सलाम करके बोला—हुजूर, उस तरफ एक आदमी छिपा बैठा है और काले मृगने मुझे आपके पास भेजा है। शेरशाह बोला—काला मृग कहां है? हुजूर, वह तो आदमीके सामने जानबूझकर चर रहा है। देखते-देखते बन्दर, चिड़ियां और जंगलके अन्य प्राणियोंने सारे जंगलमें यह खबर फैला दी। शिकारी इतना शोरगुल सुनकर मन-ही-मन सोच रहा था, भई, वाह! यहांका जंगल बड़ा मजेदार है। सब प्राणी कितने खुश मालूम होते हैं। यहां खूब शिकार मिलेगा। वह सतर्क होकर चारों ओर देख रहा था कि अचानक पीछेसे पेड़ टूटनेकी आवाज आयी। पीछे मुड़कर देखा तो घिग्घी बंध गयी। छोटी-मोटी पहाड़ीके जैसा एक हाथी उसकी ओर ताक रहा था। शिकारी धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा कि ऊपरसे एक बन्दर उसपर कूदा। शिकारी बेखबर था। इसलिये बन्दरके साथ अपने-आप ही गिर पड़ा। अभी वह उठनेकी कोशिश कर ही रहा था कि पीछेसे हाथीकी सूंडने उसकी बन्दूक खींच ली। साथ-साथ उसी समय कहीं पासमें शेरकी दहाड़ सुनायी पड़ी। बौखलाया हुआ शिकारी सिरपर पैर रखकर भागा। पीछेसे न जाने कितने जानवरोंकी आवाजें सुनायी देने लगीं। लम्बकर्ण खरगोशने सोचा, चलो, मैं भी जलती आगमें हाथ सेंक लूं। वह तेजीसे दौड़ता हुआ आया और झटसे आदमीकी टांगोंके बीचमेंसे ऐसे निकला कि शिकारी मुंहके बल जा गिरा। शेरशाहने पीछे गरजकर सबको हुक्म दिया कि

अब आदमीको तंग न किया जाय। शेरशाह बोला—हम आदमी थोड़े ही हैं कि आदमीकी जान ले लें, छोड़ दो उसे। शिकारी यह सब समझ नहीं पाया। वह उठा और सरपट भागा और जंगलके बाहर जाकर ही दम लिया।

शांतिके परवाने

हम प्रेमके दीवाने,
हम शांतिके परवाने

बाधाओंके मरुथलमें
हम बढ़ते जायंगे,
मंजिलकी चोटीतक
हम चढ़ते जायेंगे,
हम नवयुगके मस्ताने !

सितारोंकी पलकोंमें
हम गीत सजायेंगे,
धरतीके कण-कणसे
नव विश्वास जगायेंगे,
हम शांतिके परवाने !

हम सूनी धरतीको
गुलजार बना देंगे,
हर सूने मनमन्दिरमें
आशा झंकार जगा देंगे,
हम प्रगतिके अफसाने !

मानव मानवकी पीड़ा
हम हरते जायेंगे,
जन जनके मनमें
इतिहास लिख जायेंगे,
हम देशके परवाने !

हम शांतिके परवाने !
शांतिके परवाने !!

—केदारनाथ कोमल

पुस्तक-परिचय

(इस अंकसे हम पुरोधामें पुस्तक-परिचयका स्तंभ शुरू कर रहे हैं; इसमें केवल सत्साहित्यका परिचय दिया जायगा। प्रत्येक पुस्तककी दो प्रतियां सम्पादक पुरोधाके नाम आनी चाहियें।—सं.)

श्रीअरविंद-चरितामृत : ले. डॉ. भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', प्रकाशक, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडीचेरी, पृ. सं. २५० ; मूल्य : रु. ४.०० न. पै.।

श्रीअरविंदके जीवनके बारेमें कुछ कह सकना एक असंभवसा काम है। स्वयं उन्होंने कहा है कि उनका असली जीवन ऊपरी तलपर नहीं था, और कौन ऐसा है जो उनकी गहराइयोंकी थाह ले सके। फिर भी मनुष्यके अंदर एक कुतूहल होता है। वे अपने श्रद्धास्पद लोगोंके बारेमें कुछ न कुछ जानना चाहते हैं। पुस्तक इसी प्रकारके कुतूहलको शांत करनेके लिये एक सफल प्रयास है। लेखक श्रीअरविंदके पुराने भक्त हैं। भाषापर तो उनका अच्छा अधिकार है ही। श्रीअरविंदके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेमें उन्होंने काफी परिश्रम किया है। जहांतक हो सका है उन्होंने श्रीअरविंदके लेखों, पत्रों तथा वार्तालापको ही आधार बनाया है जिससे पुस्तककी प्रामाणिकता बढ़ गयी है। स्थान-स्थानपर श्रीअरविंद, श्रीमाताजी तथा आश्रमके अनेक चित्र भी दिये गये हैं।

श्रीअरविंद तथा उनके आश्रमके बारेमें जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये यह बहुमूल्य भेंट है। इसके लिये हम लेखक तथा प्रकाशक दोनोंका अभिनंदन करते हैं।

समाज विकासमाला

सस्ता साहित्य मण्डल के नामसे हिन्दी जगत् भलीभांति परिचित है। आरंभमें लोग इसे केवल गांधी-साहित्य और उसके साथ मिलती-जुलती चीजोंके लिये ही जानते थे परंतु अब उसने अपना क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत कर लिया है। हमारे सामने उसकी समाज-विकास-मालाकी कुछ पुस्तकें हैं। ये हैं तो छोटी-छोटी (प्रायः ३०, ३२ पृष्ठकी) पर इनमें बड़ी सुन्दर और उपयोगी जानकारी भरी हुई है। हमारे देशमें एक बहुत बड़ी समस्या है, बहुतसे लोग हिन्दी पढ़ तो लेते हैं पर साधन और समयके अभावसे उन्हें विशेष अध्ययनका अवसर नहीं मिलता। उन्हें ऐसे साहित्यकी खोज होती है जो सस्ता हो, जिसकी भाषा सरल हो और जो उपयोगी जानकारी देता हो। समाज-विकास-माला ऐसे ही पाठकोंको नजरमें रखकर तैयार की गयी है। इस मालामें जंगलकी सैर, शहदकी खेती, आकाशकी बातें, वन-संपदा, गोलकुण्ड, संगीतकी कहानी, एवरेस्टकी कहानी, चित्रकूट, गंगाजी, कैलास, कोणार्क, काला पानी, गामा आदि विषयोंपर मोटे टाइपकी बड़ी रोचक छोटी-छोटी पुस्तकें छपी हैं। छपाई-सफाई बहुत अच्छी है, चित्र भी उपयोगी हैं और दाम केवल ४० न. पै.। कम पढ़े प्रौढ़ोंके लिये और स्कूलके छात्रोंके लिये ये पुस्तकें अत्यंत उपयोगी हैं।

इस मालामें अद्यतन पुस्तक है 'संयम और साहस'। यह श्रीमाताजीकी पुस्तक 'सुन्दर कहानियों' के पहले दो अध्याय हैं जिनमें संयम और साहसके बारेमें बड़ी सुन्दर कहानियां और घटनाएं दी गयी हैं। ये कहानियां जीवनको बनानेके लिये बहुत उपयोगी हो सकती हैं।

हम इस ग्रंथमालाके संपादक श्रीयशपाल जैनको बधाई देते हैं और इस प्रकारके और अधिक साहित्यकी आशा करते हैं।

परिषद्-पत्रिका का 'आचार्य शिवपूजन सहाय स्मृति-तीर्थ'

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद के मुखपत्रका यह विशेषांक कई मधुर परन्तु दुःखभरी स्मृतियोंसे भरा है। दिवंगत लोगोंके बारेमें हमेशा अच्छी-अच्छी बातें कहनेकी प्रथा है। परंतु जब वह व्यक्ति सचमुच साधु रहा हो तो उसके लिये कुछ कहना अधिक कठिन हो जाता है विशेषकर जब उसके साथ अपना घनिष्ठ संबंध भी हो। पत्रिकाके संपादक श्री माधवजीके सामने यह कठिनाई बड़े जोरोंसे आयी होगी। पर उन्होंने अपने कर्तव्यको खूब निभाया। विशेषांक हमारे सामन शिवपूजनजीका एक चित्र खींच देता है और उनकी छोड़ी हुई थातीकी ओर संकेत कर देता है। शिवपूजनजी हिंदीके सच्चे सेवक थे। सेवा-धर्म बहुत गहन होता है। देखें उनका उदाहरण आजके वाणिज्यधर्मी समाजपर कितना असर डालता है।

श्रीअरविन्द सोसायटी

संसारके अधिकतर देशोंमें श्रीअरविंदकी शिक्षामें रस लेनेवाले लोग फैले हुए हैं और उनमेंसे बहुतसे यथासाध्य श्रीअरविंदके बताए हुए मार्गपर चलनेका प्रयास करते हैं। श्रीअरविंदका मार्ग व्यक्तिगत मोक्षके लिये तो है नहीं, वह समस्त मानवजातिके अंदर आमूल परिवर्तन करनेके स्वप्न लेता है। इसलिये यह आवश्यक मालूम हुआ कि इस काममें सक्रिय भाग लेनेवालोंका एक संगठन हो जिसका प्रत्येक सदस्य अपने-अपने स्थानपर रहता हुआ अपने-अपने क्षेत्रमें श्रीअरविंदके बताए हुए मार्गके अनुसार जीवन बिता सके तथा अपने कामको श्रीअरविंदके प्रकाशमें ऊंचा उठा सके। केवल इतना ही नहीं, ये लोग मिलकर सामूहिक रूपसे उनके कामको आगे बढ़ानेका और उनके बताये हुए आदर्श समाजको लानेका प्रयास कर सकें। इस उद्देश्यको लेकर सन् १९६० में श्रीअरविंद सोसायटीकी स्थापना की गयी है। जीवनका कोई कोना श्रीअरविंदने अछूता नहीं छोड़ा है, इसी तरह मानव उत्थानका कोई काम सोसायटीके क्षेत्रसे बाहर नहीं है। हरएक अपने रस और अपनी क्षमताके अनुसार इसमें काम कर सकता है। जो लोग श्रीअरविंदके जीवन-दर्शनमें रस रखते हैं उन सबका सोसायटी स्वागत करती है; विशेष जानकारीके लिये मंत्री, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२ से पत्र-व्यवहार किया जा सकता है।

READ

ORGANISER

The Capital Weekly from the Capital of India

- **Thought Provoking Articles** * **Breezy Features**
- **Revealing News-stories** * **Incisive Cartoons**

Subscription : Yearly : Rs 12.00 *Half yearly* : Rs. 6.50

Shraddhananda Bazar,

DELHI-6

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।

—श्रीमां

न्यू होराइजन स्टेन्लेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी-४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE STEEL PRODUCT STAINLESS

"स्क्वायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

प्रधान कार्यालय :
फोन : ३३–४५०४
ग्राम : MIGHTYHOLY

श्री हनुमान सुगर मिल्स लि.

मैनेजिंग एजेण्ट—

मेसर्स–दौलतराम रामेश्वरलाल
१७८ महात्मा गांधी रोड,
कलकत्ता ७

कारखाना–
मोतीहारी
[बिहार]

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३. प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS LTD.
PONDICHERRY

INSURANCE IS A SOCIAL SERVICE

With best Compliments & Greeting
from

RUBY GENERAL INSURANCE COMPANY LIMITED

Business Transacted
FIRE MARINE ACCIDENT AVIATION
MACHINERY & ERECTION ETC. ETC.

Authorised & Subscribed Capital		...	Rs. 1,00,00,000
Paid up Capital	...	...	Rs. 32,00,000
Assets Exceed	...	...	Rs. 3,21,00,000
Nett Premiums in 1962	...	...	Rs. 1,85,00,000

BRANCHES & AGENCIES IN ALL IMPORTANT TOWNS IN INDIA

FOREIGN BRANCHES & AGENCIES:

Aden, Amsterdam, Beirut, Chittagong, Colombo, Jamaica, Khulna, Karachi, Kuala Lumpur, Kampala, Nairobi, Penang, Rangoon, Singapore & San Fernando.

Head Office:
"INDIA EXCHANGE"
India Exchange Place, Calcutta-1

देशभक्तिकी अभीप्सा

हम विश्वास करते हैं कि : समस्त भारत एक है, अखंड, अजेय और अमर है।

हम विश्वास करते हैं कि : सच्ची राष्ट्रीय एकताका निर्माण तभी हो सकता है जब हम सब लोग भारतको अपना निजी गृह समझें, उसका हित ही हमारा अपना हित हो और उसकी सेवामें हम अपने प्राणोंकी भी बाजी लगा देनेके लिये तैयार हों।

हम विश्वास करते हैं कि : जिस शक्तिकी वाणी वेदों और उपनिषदोंमें उद्घोषित हुई थी, जिसने भारतकी विभिन्न जातियों, वर्गों और साम्राज्योंका निर्माण किया था, जो भारतीय विद्वानोंकी विद्वत्तामें, संत-महात्माओंके ध्यानों और वाणियोंमें अभिव्यक्त हुई थी, वही शक्ति एक बार फिर हमारे बीच उत्पन्न हुई है और आज उसका नाम है देशभक्ति।

हम विश्वास करते हैं कि : भारतके वर्तमान कालकी जड़ें उसके अतीतके अंदर बड़ी गहराईमें जमी हुई हैं और उसके सम्मुख चमचमा रहा है उसका एक महा गौरवमय भविष्य।

हम विश्वास करते हैं कि : हमारी देशभक्ति संकीर्ण राष्ट्रभक्ति नहीं है। यह श्रीअरविंदके भावोंके अनुसार विश्वभक्ति या ईशभक्ति है। हम देशकी एकता, स्वाधीनता और समृद्धिके साथ-साथ सारे विश्वकी एकता, स्वाधीनता और समृद्धिको अपने जीवनका आदर्श मानते हैं और उसी आदर्शकी सिद्धिके लिये जीना और मरना चाहते हैं।

ऐ देशभक्ति! तू उदार विश्वभक्ति और ईशभक्ति बनकर हमारे पास आ, तू चाहे हर्षके रूपमें आ या शोकके रूपमें, सम्मानके रूपमें आ या अपमानके रूपमें, विजयके रूपमें आ या पराजयके रूपमें, जीवनके रूपमें आ या मृत्युके रूपमें, पर आ अवश्य! तू हमें संपूर्ण रूपसे अपना बना ले, हमारे अहंको दूर कर, अपने अंदर विलीन कर ले, एकाकार कर ले!

(बहन निवेदिता द्वारा लिखित एक अभीप्सासे अनुप्राणित)

** ** **

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

पढ़ने योग्य कुछ पुस्तकें

श्रीमां-लिखित :

	मूल्य
१. सुन्दर कहानियां	१.५०
२. भविष्यकी ओर (नाटक)	०.५०
३. सर्वोत्तम आविष्कार	०.३७
४. शिक्षा	१.५०
५. आदर्श बालक	०.२५
६. नारी-शरीर	०.२५
७. श्रीमाताजीके स्फुट वचन	०.३०
८. सूक्ति-सुधा (संस्कृत)	०.७५

श्रीअरविंद-लिखित :

१. हमारा योग और उसके उद्देश्य	०.७५
२. श्रीअरविंदके पत्र (पत्नीके नाम)	०.७५
३. उत्तरपाड़ा-अभिभाषण	०.३७
४. जगन्नाथका रथ	०.७५
५. दुर्गास्तोत्र	०.२५
६. पत्रावली	१.००
७. मृतकोंका वार्त्तालाप	०.७५
८. श्रीअरविंद-वचनामृत	०.५०
९. श्रीअरविंदका साधना-पथ	०.३०
१०. गीताकी भूमिका	२.००

श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी,
श्रीअरविंद आश्रम,
पांडिचेरी–२.

प्रबोधा

किशोर-त्रैमासिक

जनवरी १९६४

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा

सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

भारत-वन्दना	आरसीप्रसाद सिंह	२
प्रार्थना	श्रीमां	५
शिवाजी और जयसिंह	श्रीअरविंद	११
अच्छी नींद	श्रीमां	१४
श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र	श्रीमां	१६
अभीप्सा	जगन्नाथ वेदालंकार	१८
श्रीअरविंद	रवीन्द्र	२०
बाल-गीत	सोहनलाल द्विवेदी	२५
वह छत्रसालकी मां थी	अजित सिंह	२६
महादेवी वर्मा	हंसा	३०
महालक्ष्मीका अवतरण	रवीन्द्र	३३
प्रार्थना	श्रीकृष्णप्रसाद	३६
हेलन केलर	आस्टन नजरथ	३९
पनडुब्बी	भूदत्त	४२
दो गीत	सुमित्राकुमारी सिन्हा	४५
मूढ़ या चतुर सुजान ?	रेवा चटर्जी	४६
अकंपित दीप	नीरज	५२
दक्षिणकी मीरा	सुबोध	५३
मैं तो परी बनूंगी	अनुबेन पुराणी	५७
मांकी यादगार	अदिति	६१
यह मुझसे न होगा	विजय पोद्दार	६३
पुस्तक-परिचय		६४

संपादक :
रवीन्द्र

आवरण :
संजीवन विश्वास

चित्रकार :
कृष्णलाल
जयंतीलाल
उषा पटेल
अनिरुद्ध सरकार

प्रकाशक :
अनिरुद्ध सरकार
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी–२

मूल्य :
एक प्रति : रु. १.५० न. पै.
वार्षिक चंदा : रु. ५.००

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–२
836/10/63/1500

वर्ष २ जनवरी १९६४ अंक ३

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्ट-वादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।

—श्रीअरविन्द

प्रकाशक

श्रीअरविंद सोसायटी

पांडिचेरी-२

भारत-वंदना

जय भारत-वसुन्धरे
जय जय जन्मभूमि, जय जननी,
विजये, विजय-करे।
जय भारत-वसुन्धरे ।।

जय अमले, कमले, वरदानी,
जय शुभदे, गिरिजे।
जय वाणी, वसुधा-कल्याणी,
जय सुखदे, विरजे।
जयति जय जय हे ऋतम्बरे।
जय भारत-वसुन्धरे ।
जय जय जन्मभूमि, जय जननी,
विजये, विजय-करे ।।

सुरुचि, सुवास, कल्पतरु-फलदा,
गायत्री-गीता।
तुम्हीं अन्नपूर्णा, सुहासिनी,
गंगा, शिव-प्रीता ।
दनुज-दल-दलनी, शोकहरे।
जय भारत-वसुन्धरे ।
जय जय जन्मभूमि, जय जननी,
विजये, विजय-करे ।।

हिम-किरीट कंचन-किरणोज्ज्वल,
चूडामणि-चन्द्रा ।
कोटि-कोटि कलकण्ठ-कृतस्तुति,
मेखराग-मन्द्रा ।
जलधि-चल-नूपुर-रव-मुखरे ।
जय भारत-वसुन्धरे ।
जय जय जन्मभूमि, जय जननी,
विजये, विजय-करे ।।

—आरसीप्रसाद सिंह

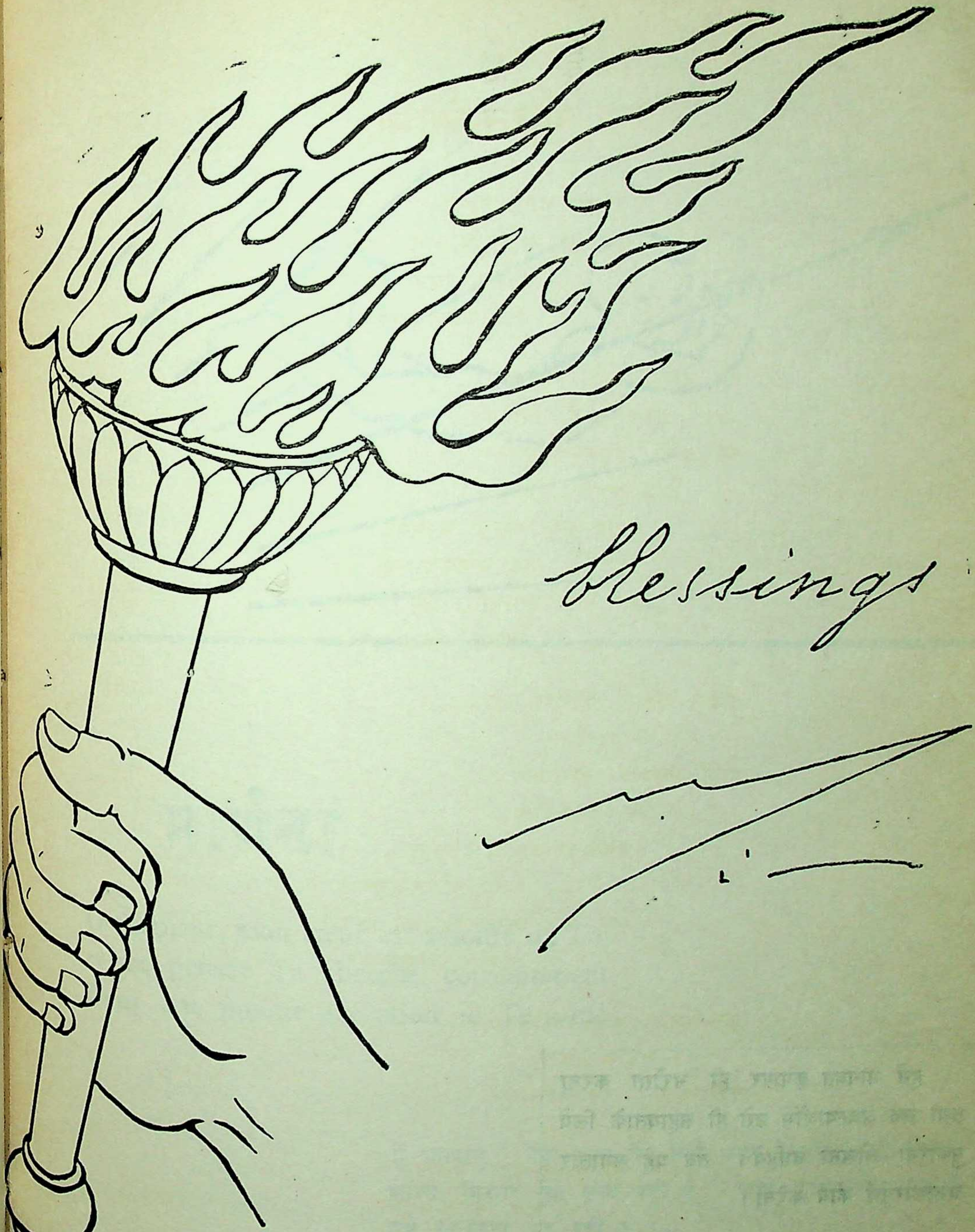
Blessings

हमें भागवत कृपापर ही भरोसा करना तथा सब अवस्थाओंमें उसे ही सहायताके लिये पुकारना सीखना चाहिये। तब यह लगातार चमत्कारपूर्ण कार्य करेगी।

—श्रीमां

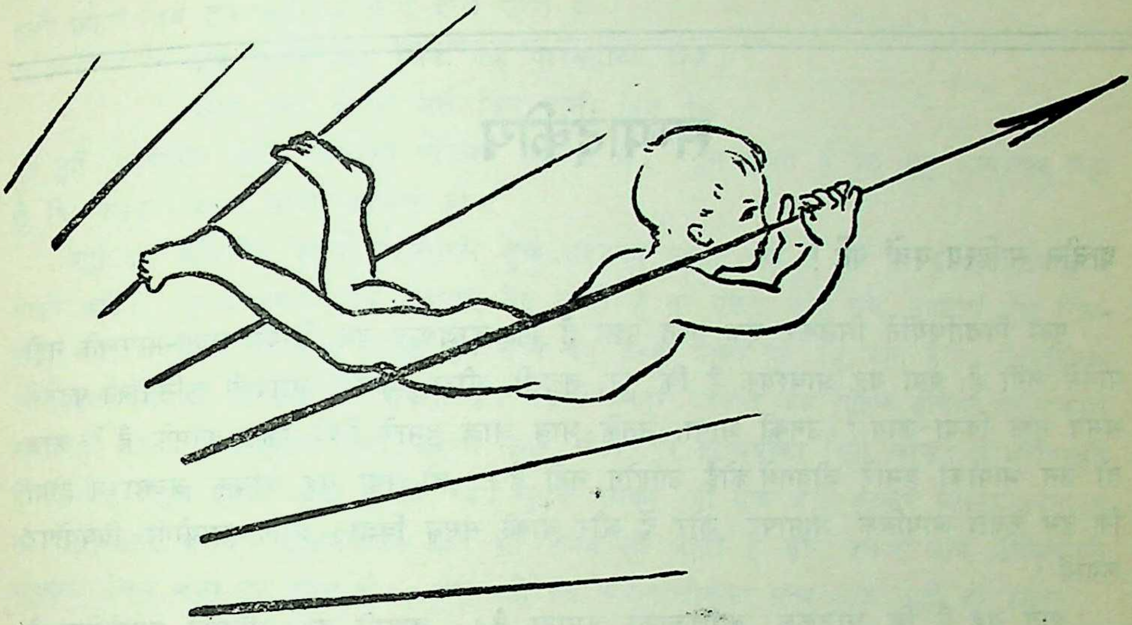

प्रार्थना

O Seigneur, mon cœur est assoiffé de Toi
et ma pensée Te cherche constamment.
Dans une muette adoration je Te salue.

⁂

हे भगवान्! मेरा हृदय तेरे लिये भूखा है और मेरी चिंतन-शक्ति निरंतर तुझे खोज रही है। शांत पुजाभावके साथ मैं तुझे नमस्कार कर रही हूं।

श्रीमां

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

प्राचीन साहित्य क्यों पढ़ें ?

कुछ विद्यार्थियोंने मिलकर एक प्रश्न पूछा है कि आजकल जब हिन्दी राज्य-भाषाकी गद्दी पानेमें लगी है, क्या यह आवश्यक है कि सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदिकी कृतियोंको पढ़नेमें समय नष्ट किया जाय ? उनकी भाषा, उनके भाव आज हमारे लिये किस कामके हैं ? आज तो उस भाषाका हमारे जीवनमें कोई उपयोग नहीं है। तो क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि हम केवल आधुनिक भाषापर जोर दें और बाकी समय विज्ञान आदि उपयोगी विषयोंपर लगायें ?

बात यह है कि आजकल वाणिज्यका जमाना है। आदमी हर चीजको उपयोगिताकी कसौटीपर कसता है और जिस चीजका तात्कालिक उपयोग न दिखायी दे, जो हमारी जेबको भारी करनेमें असमर्थ हो, जो हमारे 'सुखकी सामग्री' न हो उसे प्राप्त करना निरर्थक मानता है। पर जीवन केवल रोटी और बाह्य सुख-सामग्रीका नाम नहीं है। सौंदर्यवृद्धि, मानसिक विकास, अनुभूति और इन सबको व्यक्त करनेकी शक्तिका एक अपना अनूठा स्थान है। और इस सबके लिये काव्यका अनुशीलन अत्यंत आवश्यक है। अभी उस दिन दिनकरजीने कहा था "हम लोग इतनी अच्छी तरह हिन्दी जानते हैं कि कबीर और मीराको बहुत दिनोंतक पढ़ा सकते हैं, हमें छन्दशास्त्रका भी उनसे बहुत अधिक ज्ञान है पर कविता देखो तो, कबीर और मीराकी एक-एक पंक्तिपर कई-कई दिनकर न्यौछावर किये जा सकते हैं।" वे जो लिखते थे उसका अनुभव करते थे, उसे जीवनमें उतारते थे। आजकल हम जो लिखते हैं वह हमारे जीवनसे दूर होता है। स्वयं कबीर साहबने भी तो कहा है—"मैं कहता आंखिनकी देखी, तू कहता कागदकी लेखी।" हमारा जीवन हमारी कविताको प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता इसीलिये हमारे काव्यमें जीवन नहीं आ पाता।

मीरा, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी आदिमें जीवन है पर उफान नहीं। शान्त भागीरथीका प्रवाह है, बरसाती नदियोंकी बाढ़ नहीं। उनके काव्यमें सहज-स्वाभाविकता है। उनके काव्यका अध्ययन करनेसे हमें उस सहज सौंदर्यके दर्शन होते हैं जिसे सौंदर्य-प्रसाधनोंकी आवश्यकता नहीं। एक-एक पंक्ति किसी गहराईसे आ रही है और अगर हम बाह्य आडंबरको छोड़ सकें तो वह हमारे अंतस्तलको छुए बिना न रहेगी। इनको पढ़ते हुए हम भगवान्के साथ दास्य, मैत्री, प्रेम आदि भावोंका अनुभव कर सकते हैं और देख सकते हैं कि हम चाहे जिस रास्तेसे जायं उसी रास्तेपर हमारे लिये वह प्रतीक्षा कर रहा है। यह हुआ पहला और सबसे बड़ा लाभ। कबीरको पढ़ते हुए हम देख सकते हैं कि कविके अंदर शक्ति हो तो वह कमजोर भाषाके अंदर भी जान डाल सकता है। जब वे कहते हैं "जिस मरनेसे जग डरे मेरे मन

आनन्द" तो मानों हम देख सकते हैं कि जगके सभी प्रलोभन, सभी आकर्षण एकदम तुच्छ हैं और हम उन्हें लात मारकर 'मर जीवा' बन सकते हैं, जीतेजी बंधनोंसे मुक्त हो सकते हैं। इसी प्रकार जब हम कबीरके साथ बोल उठते हैं:

हम बासी उस देसके जहँ पारब्रह्मको खेल।
आठ पहर दीपक जलै बिन बाती बिनु तेल ।।

तो हमें भाषाकी शांत शक्तिका परिचय मिलता है। हम देखते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि सशक्त भाषा भारी भरकम हो।

यहां इन कवियोंके बारेमें विस्तारसे कुछ कहनेका स्थान नहीं है तो भी दो-एक उदाहरण देखते चलें। तुलसीदासजी जब उपमाएं देने लगते हैं तो एकके बाद एक उपमाएं ऐसे निकलती चली आती हैं कि कुछ देरतक हम सांस बंद करके देखते ही रह जाते हैं। उदाहरणके लिये वर्षा-वर्णनको ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार जायसी जब सिंहल द्वीपका वर्णन करने लगते हैं, वहांके रत्न-जटित खंभों, वहांके लाल, पीले, हरे हाथियोंका चित्र खींचते हैं और कहते हैं कि वह महल इतना ऊंचा है कि स्वयं सूर्यके रथको भी एक ओर हटकर चलना पड़ता है तो पढ़ते-पढ़ते असंभव दीखनेवाली बातें भी संभव हो जाती हैं और हमारे आगे जीते-जागते महलका चित्र खड़ा हो जाता है। कैसे कहें कि कल्पनालोकका सत्य सत्य नहीं हो उठता?

इन सब बातोंके अतिरिक्त हमें अपने पूर्वजोंके प्राचीन मानसका परिचय मिलता है, उनके रहन-सहन, चाल-ढाल, रीति-रिवाजका पता लगता है। आज जो बातें निराधार एवं व्यर्थसी दीखती हैं उनके रहस्य जाने जाते हैं और हमें अपनी प्रथाओं और परिपाटियोंके सच्चे स्वरूप देखनेको मिलते हैं। हमारे मानसकी बहुतसी चीजें जाने-अजाने इन महान् आत्माओंकी ऋणी हैं। जिनका रूप विकृत हो गया है, यहां हम उनके सच्चे स्वरूपको देख सकते हैं।

जैसे शेक्सपीयर, मिलटन, शेली वगैराकी कृतियां पढ़े बिना अंग्रेजी पढ़ना पढ़ना नहीं कहला सकता, उसके बिना भाषाकी प्रकृतिका पता नहीं लगता और अंग्रेज प्रजाको नहीं पहचाना जा सकता, उसी प्रकार, बल्कि शायद उससे भी अधिक मात्रामें तुलसी आदिका परिचय पाये बिना हिन्दी और हिन्दीभाषी प्रजाका ठीक-ठीक परिचय पाना कठिन है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम नवीन कविता और नवीन कवियोंके विरोधी हैं। नहीं, वे भी अपनी ओरसे नये-नये रास्ते ढूंढ़नेकी कोशिश कर रहे हैं, चट्टानोंको तोड़कर नये स्रोत पाना चाहते हैं, प्राचीनकी ही रट लगाते रहनेकी जगह नवीन ज्योतिको लाना चाहते हैं, पर चाहना एक बात है और कर पाना दूसरी। हमें यह न मान बैठना चाहिये कि सबसे ऊंची चोटीपर पहुंचा जा चुका है या जो कुछ हो चुका है उससे अच्छा होना असंभव है। नहीं, मानव-चेतनामें निरंतर प्रगति होती ही रहेगी, नये-नये रास्ते खुलते जायंगे, आनेवाली चीज भी प्राचीनका मूल्य कम न करेगी, बल्कि हम प्राचीनकी दृढ़ शिलापर खड़े होकर ही नवीनका समुचित रूपसे स्वागत कर सकेंगे। अभीतक जो आया है वह तो आनेवालेकी सूचनामात्र है।

असम्भव नहीं है!

पाठक इसी अंकमें दक्षिणकी मीरा—आण्डाल—के बारेमें एक लेख पढ़ेंगे। कहते हैं कि आण्डाल भगवान्की मूर्तिके अंदर विलीन हो गयी थी। मीराबाईके बारेमें भी कुछ ऐसी ही

कथा है। कहा जाता है कि तुकाराम भी सशरीर विमानमें बैठकर गये थे और कबीरका शरीर फूलोंमें बदल गया था। इस प्रकारकी बातें पढ़ सुनकर स्वभावतः हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या इस प्रकारकी बातें संभव हैं? क्या सचमुच ऐसा ही हुआ था?

एक बार श्रीमाताजीसे यही प्रश्न पूछा गया था। उन्होंने कहा, "ठीक-ठीक कहना तो मुश्किल है कि ऐसा हुआ था या नहीं पर हां, ऐसा होना असम्भव नहीं है। इस प्रकारकी घटनाएं हो सकती हैं परंतु यह बहुत संभव नहीं लगता कि महान् आत्माएं इस प्रकारके चमत्कार दिखानेमें रस लें। हो सकता है कि घटना किसी और प्रकारसे हुई हो और भक्तोंने जरा नमक-मिर्च लगाकर उसे चमत्कारिक रूप दे दिया हो।

"तुम कह सकते हो कि ठीक तो नहीं कहा जा सकता पर किताबोंमें ऐसा लिखा है, जो मानना चाहें मानें, जो न मानना चाहें न मानें।"

सच्ची पुकार

हमारे एक आदर्शवादी, बुद्धिप्रधान मित्रका पत्र आया है। वे कहते हैं कि उन्हें श्रीअरविंदके आदर्शोंने बहुत आकर्षित किया है, वे अपने जीवनको इसी धारामें बहाना चाहते हैं। परंतु वे अंतिम निश्चय कर सकें उससे पहले कुछ शंकाओंका समाधान चाहते हैं। मित्र अभी नौजवान हैं, अच्छे खाते-पीते घरके हैं और उनके सामने दुनिया पड़ी हुई है। वे कहते हैं कि अगर वे अपना सब कुछ छोड़कर आश्रममें आ बैठें और फिर देखें कि आश्रमजीवन उनके लिये अनुकूल नहीं है तो वर्त्तमान सुख-सुविधाएं भी हाथोंसे जायेंगी और योगमार्ग भी दूर ही रहेगा। घरवालोंके बुरे बनेंगे, संसारकी दृष्टिसे अपना भविष्य बिगाड़ेंगे और यहां भी कुछ हाथ न लगेगा। दोऊ दीनसे गये पांडे, हलुआ मिले न मांडे। लेकिन जब वे उस दिशामें जाने लगते हैं तो फिर आश्रमका आकर्षण, साधारण जीवनकी तुच्छता, गृहस्थ जीवनमें एक बार जकड़ जानेके बाद निकलनेकी मुश्किलें सामने आती हैं और कुछ भी निश्चय नहीं कर पाते। वे इस विषयमें सलाह मांग रहे हैं।

दूसरेके जीवनके बारेमें कुछ सलाह देना बड़ा कठिन काम है। हर एक की अपनी स्थिति, अपने मन और प्राणका ताना-बाना और तरहका होता है। हर एकके सामने बहुतसी संभावनाएं होती हैं, उन सबका पूरा परिचय हुए बिना कुछ कहना असंभव है। हां, हम इतना कह सकते हैं कि आश्रममें रहनेका लाभ तभी हो सकता है जब आदमी अपना सब कुछ छोड़कर एकनिष्ठ भावसे यहींका हो रहे, उसके मनमें गुरुपर पूरा विश्वास हो और अपने-आपको पूरी तरह उनके हाथोंमें सौंपनेके लिये तैयार हो। आप रेलमें यात्रा करते हैं या हवाई जहाजमें बैठते हैं तो पहले यह करार नहीं कर लेते कि रेल या हवाई जहाजमें कोई दुर्घटना न होगी। दुर्घटनाने तो एयर मार्शल मुखर्जीको खाना खाते हुए ग्रस लिया था। जिसकी एक उंगलीके इशारेपर सारी वायुसेना नाचती थी वही श्वास नलीमें खाना चले जानेसे सबके देखते-देखते समाप्त हो गया। परंतु हमने यह नहीं सुना कि उसके कारण किसीने खाना बंद कर दिया हो। हो सकता है कि आश्रमजीवन में बहुतसे सफलता न भी पा सकें (और यह काम तो सारे जीवन-

की साधना है इसलिये इसमें सफलता और असफलताका मापदण्ड भी न्यारा है) परंतु क्या उनकी असफलताके कारण हमारा अपने मार्गसे विचलित होना ठीक होगा ? रेल और हवाई जहाजकी दुर्घटनाके तो बहुतसे कारण हो सकते हैं पर यहां असफलताका कारण एक और केवल एक ही हो सकता है, और वह है अपने अंदर सच्चाईकी कमी।

परंतु जब मनमें भय पैदा होता है, शंकाएं कुशंकाएं उठती हैं तो उसका यही अर्थ है कि आप अभी नाव डुबाकर धारामें कूदनेके लिये तैयार नहीं हैं। तो ठहर जाइये, जल्दी न कीजिये। आप जहां हैं वहीं रहते हुए माताजी और श्रीअरविंदसे संबंध बनानेकी कोशिश कीजिये। आप जो काम करते हैं उसे भगवान्का काम समझकर पूरी ईमानदारीके साथ अच्छी से अच्छी तरह करनेकी कोशिश कीजिये। माताजी और श्रीअरविंदके ग्रंथोंको पढ़िये और जो चीज आपके हृदयको छू जाय उसे पकड़ लीजिये और उसे क्रियामें लानेकी कोशिश कीजिये। आपके लिये श्रीअरविंदका मार्ग यहींसे शुरू होता है। आर्य धर्मकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मनुष्य जहां कहीं खड़ा होकर भगवान्को पुकारे, भगवान् वहींसे उंगली पकड़कर उसे आगे चलाना शुरू कर देते हैं।

आप आश्रममें नहीं आ पाते इसका दुख न कीजिये। हवि तैयार है तो उसे यज्ञाग्निमें डाल दीजिये और तैयार नहीं है तो रोने झींकनेकी जगह उसे तैयार करनेमें लग जाइये। माताजी और श्रीअरविंदकी सहायता आपको वहांपर भी मिल सकती है। हां, पुकार सच्ची होनी चाहिये।

आचार्यजीका श्राद्ध

हिन्दीकी वर्तमान पद्धतिमें क्रियाओंकी बड़ी कमी अनुभव होती है। हमें प्रायः ही करना, होना आदि लगाकर क्रियाएं बनानी पड़ती हैं जैसे निहोरे करना, प्रशंसा करना, सेवन करना प्रतिपालन करना आदि; इसके विपरीत आज भी गुजराती आदि कई भाषाओंमें संज्ञाओं और विशेषणोंसे क्रियाएं बनायी जा सकती हैं जो सुननेमें भी अच्छी लगती हैं और लिखनेमें जगह भी कम लेती हैं और वाक्यको भी जबर्दस्ती लम्बा नहीं करतीं। यह चीज हिन्दीके लिये अपरिचित नहीं है। ब्रजभाषा, अवधी आदिमें इस प्रकारकी क्रियाओंका बहुत उपयोग होता आया है और आज भी कई आंचलिक भाषाओंमें इस प्रकारकी क्रियाएं चलती हैं। अगर इस प्रकारकी क्रियाओंको हिन्दींमें अपनाया जा सके तो इससे हमारी भाषाकी अभिवृद्धि होगी।

शायद सबसे पहले आचार्य शिवपूजन सहायने परिषद् पत्रिकाके द्वारा हिन्दीकी इस बड़ी आवश्यकताकी ओर ध्यान खींचा था। उन्होंने तुलसीदासजीके द्वारा घड़ी गयी इस प्रकारकी क्रियाओंका एक नमूना हिन्दी जगत्के सामने रखा था। उनमेंसे दो चार उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

सीतहिं बहुविधि **त्रासहु** जाई, मांगत विदा राउ **अनुरागे**।
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने, **बेगिअ** नाथ न लाइअ बारा।
मानहुं राज **अकाजेउ** आजू, धीरन्ह के मन विरति **दृढ़ाई**।

इस प्रकारके बहुतसे उदाहरण देनेके बाद आचार्यजी ने लिखा : "अन्तमें नम्रनिवेदन है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीकी शक्ति वृद्धिके उद्देश्यसे अतीत युगके समस्त साहित्यका मन्थन करके यदि केवल एक क्रियाकोषका ही निर्माण किया जाय, और सभी क्रियाओंके रूप शोधकर, उन्हें प्रयोगोपयोगी बनाकर सोदाहरण प्रदर्शित किया जाय तो हमारी भाषा विशेष रूपसे समृद्धिशालिनी हो सकती है।"

२१ जनवरीको आचार्यजीका श्राद्ध दिवस होगा। हम लोग उनकी प्रशंसामें लेक्चर झाड़ने और कलम घसीटनेकी जगह उनका बताया हुआ यह ठोस काम कर सकें तो आचार्यजीका सच्चा श्राद्ध हो सकता है। हम विशेष रूपसे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् और उसके अधिकारियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। उन्हें स्वयं आचार्यजीने कम बोलने और अधिक करनेका पाठ सिखाया है। क्या वे इस दिशामें हमारा पथप्रदर्शन न करेंगे?

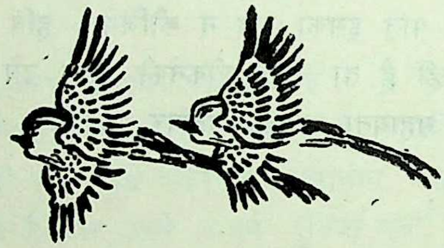

गिगनि मंडल मैं गाय बियाई, कागद दही जमाया ।
छाछि छांणि पिंडता पीवी, सिधां माषण षाया ।।

गगनमण्डलमें अनुभूतिके शिखरपर पहुंचकर सिद्धोंने परमानुभूति प्राप्त की। उसका दूध दुहकर उन्होंने उपनिषद् आदि ग्रंथोंमें (कागद) जमा दिया। पण्डितोंने इस दहीको मथकर केवल छाछ प्राप्त की और सिद्ध लोगोंने छांछको छोड़कर मक्खन पाया।

स्वर्गमें

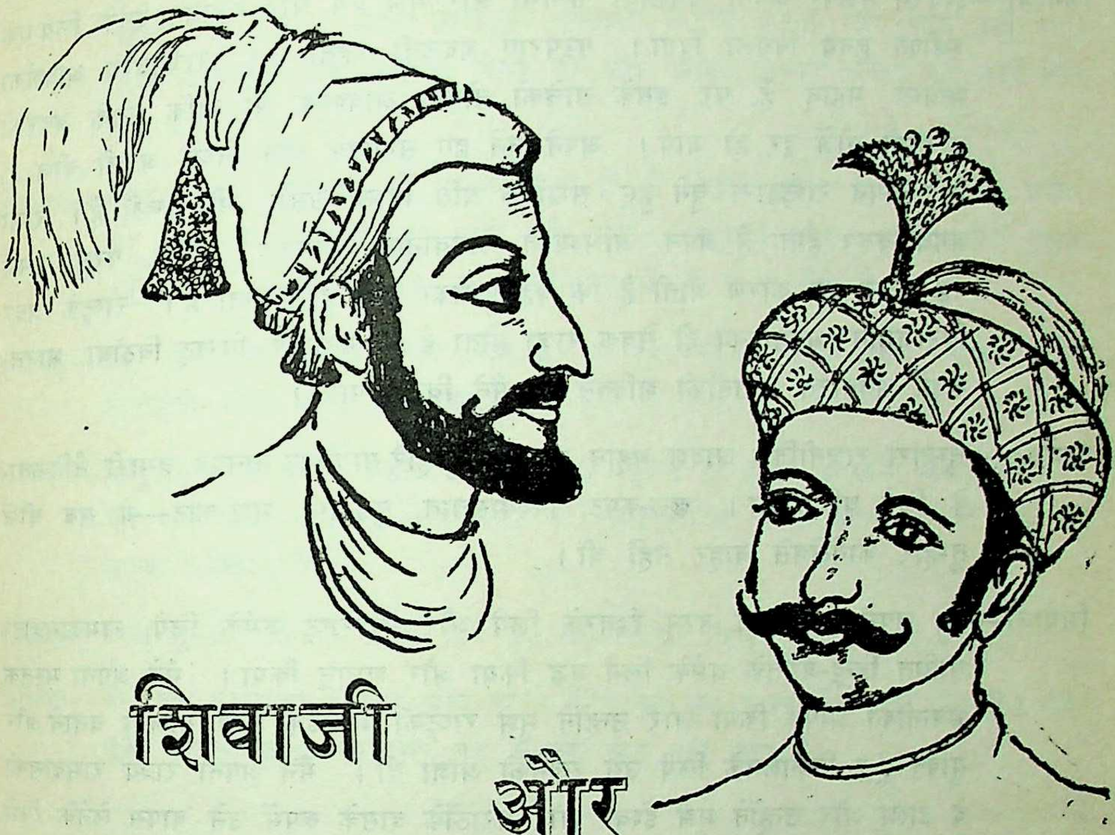

शिवाजी और जयसिंह

जयसिंह—हम दोनोंमेंसे किसीकी भी जीत नहीं हुई। एक तीसरी ही शक्ति देशमें घुस आयी है और तुम्हारे कार्यका फल भोग रही है और जहांतक मेरे कार्यकी बात है, वह छिन्न-भिन्न हो गया है और मेरा प्रिय आदर्श मिट्टीमें मिल गया है।

शिवाजी—फलके लिये मैंने कार्य नहीं किया था और विफलतासे भी न मुझे आश्चर्य हो रहा है और न निराशा।

जयसिंह—मैंने भी स्वयं पुरस्कार पानेके लिये नहीं बल्कि राजपूतोंके आदर्शको ऊंचा उठाये रखनेके लिये कार्य किया था। सम्मानपूर्ण युद्धमें अडिग साहस, मित्र और शत्रुके प्रति वीरोचित भाव, अपने चुने हुए सम्राट्के प्रति महान् निष्ठा—यही मुझे सच्ची भारतीय परंपरा जान पड़ी, यह चीज मुझे हिंदू-जातियोंकी एकता और प्रधानतासे भी अधिक आवश्यक जान पड़ी। इसलिये मैं तुम्हारे प्रस्तावोंको स्वीकार न कर सका। पर मैंने अपनी परंपराको स्वीकार करनेके लिये तुम्हें अवसर दिया और जब मेरे

और तुम्हारे साथ विश्वासघात किया गया तो मैंने अपने सम्मानकी रक्षा की और तुम्हें भाग निकलनेमें सहायता की।

शिवाजी—ईश्वरने मुझपर अपनी छत्रछाया फैलायी और मुझे प्रेम और सहायता देनेके लिये एक स्त्रीका हृदय पिघला दिया। परंपराएं बदलती रहती हैं। राजपूतोंके आदर्शका भविष्य महान् है, पर इसके सांचेको तोड़ना आवश्यक था ताकि उसके अंदरकी अस्थायी चीजें दूर हो जायं। अपने चुने हुए सम्राट्के प्रति निष्ठा अच्छी चीज है, किंतु अपने राष्ट्रद्वारा चुने हुए सम्राट्के प्रति निष्ठा उससे भी अच्छी है। राजा भगवत्स्वरूप होता है अपने अभिव्यक्त भगवान्की शक्तिके कारण, परंतु उसमें यह शक्ति इस कारण आती है कि वह प्रजाका चुना हुआ होता है। राष्ट्रके अंदर विराजमान भगवान्का ही सेवक राजा होता है। मराठोंके विराट् बिठोबा, भारत-रूपमें अवतरित भवानीकी शक्तिसे ही मैंने विजय पायी।

जयसिंह—तुम्हारा राजनीतिक आदर्श महान् था, पर तुम्हारे साधनका मानदंड हमारी नैतिकताके लिये घृणित था। छल-कपट, विश्वासघात, लूट-पाट, मार-काट—ये सब चीजें तुम्हारे कार्यक्षेत्रसे बाहर नहीं थीं।

शिवाजी—मैंने अपने लिये नहीं वरन् ईश्वरके लिये और महाराष्ट्र धर्मके लिये, रामदासद्वारा घोषित हिन्दू-जातिके धर्मके लिये युद्ध किया और शासन किया। मैंने अपना मस्तक भवानीको अर्पित किया और उन्होंने मुझे राष्ट्रकी भलाईके लिये योजना बनाने और युक्ति ढूंढ़ निकालनेके लिये उसे रखनेकी आज्ञा दी। मैंने अपना राज्य रामदासको दे डाला और उन्होंने मुझे ईश्वर और मराठोंके दासके रूपमें उसे वापस लेनेके लिये कहा। मैंने दोनों आज्ञाएं सिर-माथे चढ़ायीं। मैंने हत्या की जब ईश्वरने आज्ञा दी; मैंने लूट-पाट की क्योंकि अपने दिये हुए साधनके रूपमें उसीकी ओर उन्होंने संकेत किया। विश्वासघाती मैं नहीं था, मैंने तो सामग्री और मनुष्योंकी कमीको छलछद्म और कौशलसे पूरा किया, शारीरिक शक्तिको बुद्धिकी तीक्ष्णता और मस्तिष्ककी शक्तिके द्वारा हराया। दुनियाने युद्ध और राजनीतिमें छलको स्थान दिया है, और राजपूतोंकी वीरतापूर्ण स्पष्ट नीति न तो यूरोपके राष्ट्रोंमें पायी जाती है और न एशियाके।

जयसिंह—मैंने धर्मको सबसे ऊपर रखा और भगवान्की वाणी भी मुझसे उसका त्याग नहीं करा सकी।

शिवाजी—मैंने सब कुछ भगवान्को दे डाला और धर्मतकको भी मैंने नहीं रखा। भगवान्की इच्छा ही मेरा धर्म थी क्योंकि वही मेरे नायक थे और मैं उनका सिपाही। यही मेरी निष्ठा थी, औरंगजेबके प्रति नहीं, किसी नीति-शास्त्रके प्रति नहीं वरन् भगवान्के प्रति जिन्होंने मुझे पृथ्वीपर भेजा था।

जयसिंह—वही हम सबको भेजते हैं, पर भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये, और कार्यके अनुसार ही वह आदर्श और चरित्रका निर्माण करते हैं। मुझे इस बातका दुःख नहीं कि मुगलोंका

पतन हो गया। यदि वे अपना प्रभुत्व बनाये रखनेके योग्य होते तो वे उसे खो न बैठते; पर जब वे योग्य नहीं रहे तब भी मैं उनका विश्वासपात्र, सेवक और भक्त बना रहा। अपने सम्राट्की इच्छाका विरोध करना मेरा काम नहीं था। जिस भगवान्ने उन्हें नियुक्त किया था वही उनका विचार करते; वह कार्य मेरा नहीं था।

शिवाजी—भगवान् उस व्यक्तिको भी नियुक्त करते हैं जो विद्रोह करता है और सिर झुकाकर अन्यायके शासनको बने रहने नहीं देता। भगवान् हमेशा शक्तिमानोंके पक्षमें नहीं रहते; कभी-कभी वह उद्धारकर्ताके रूपमें भी प्रकट होते हैं।

जयसिंह—तब, जैसा कि उन्होंने वचन दिया है, वह स्वयं नीचे उतर आवें। केवल तभी विद्रोहको ठीक माना जा सकेगा।

शिवाजी—किंतु वह भला आयेंगे कहांसे, जब कि वह पहलेसे ही हमारे हृदयोंमें विराजमान हैं? मैंने उन्हें अपने हृदयके अंदर देखा था, इसी कारण अपना कार्य करनेके लिये मैं यथेष्ट शक्तिशाली था।

जयसिंह—किंतु तुम्हारे कार्यपर उनके दिये हुए अधिकारका चिह्न, उनकी मुहर कहां है?

शिवाजी—मैंने एक साम्राज्यकी नींव खोद डाली और वह दुबारा स्थापित नहीं हुआ है। मैंने एक राष्ट्रकी सृष्टि की और वह अबतक नष्ट नहीं हुआ है।

—श्रीअरविंद

* * *

हमें विश्वास नहीं है कि केवल यूरोपकी नकल करनेसे और अपने सामाजिक ढांचोंको उनके अनुरूप बना देनेसे हम समाज-सुधार कर सकेंगे। विधवा-विवाह, जात-पांत की जगह वर्गपद्धतिकी स्थापना, बाल-विवाह-निषेध, अंतर्जातीय भोज और समाज-सुधारकोंके बताये हुए दूसरे रास्ते इत्यादि तो मशीन जैसे परिवर्तन हैं जो अपनेमें चाहे कैसे भी अच्छे-बुरे क्यों न हों, वे अपने बलपर राष्ट्रकी आत्माको जीवित नहीं रख सकते तथा अवनति और विनाशकी धाराको नहीं रोक सकते। जीवित रखनेवाली तो केवल आत्मा है। हृदयसे महान् तथा स्वतंत्र बननेसे ही हम सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिसे स्वतंत्र और महान् बन सकेंगे।

—श्रीअरविंद

श्रीमां

अच्छी नींद कैसे आ सकती है?

"मनुष्य सवेरे थका हुआ
क्यों उठता है, और उसे अच्छी
नींद सोनेके लिये क्या करना चाहिये?"

अगर तुम सवेरे थके हुए उठते हो तो इसका कारण है तमस्, और कुछ नहीं, तमस्का एक भयानक स्तूप; इस बातका पता मुझे तब लगा जब मैंने शरीरका योग करना आरंभ किया। जबतक शरीर रूपांतरित नहीं होता तबतक ऐसा होना अनिवार्य है।

तुम्हें अपनी पीठके बल पसरकर लेट जाना चाहिये और अपनी सभी मांसपेशियों और स्नायुओंको ढीला करके छोड़ देना चाहिये––ऐसा करना सीख लेना आसान है––ऐसा हो जाना चाहिये जिसे मैं 'बिछौनेपर कपड़ेका एक टुकड़ा' कहती हूं, उस समय और कुछ नहीं रहता। अगर तुम ऐसा मनसे भी कर सको तो तुम ऐसे सभी बुरे स्वप्नोंसे मुक्त हो जाओगे जो तुम्हें सोने जानेके समयसे भी अधिक थकान दे देते हैं। सच पूछो तो मस्तिष्कके कोषोंकी क्रिया निरंतर चलती रहती है और इसपर हमारा वश नहीं होता और यही हमें अधिक थका देती है। इसलिये पूर्ण रूपसे अपनेको शिथिल बना देना चाहिये, एक प्रकारकी पूर्ण स्थिरताकी अवस्था ले आनी चाहिये, उसमें कोई तनाव-खिंचाव नहीं होना चाहिये और प्रत्येक चीज बंद हो जानी चाहिये। परंतु यह केवल आरंभ है।

उसके बाद, हम जो कुछ हैं, ऊपरसे नीचेतक, बाहरसे भीतरतक जो कुछ हैं उस सबको जहांतक संभव हो पूर्ण रूपसे उत्सर्ग कर देना चाहिये, अहंकारसे आनेवाली जितनी बाधाएं हैं उन सबको यथासंभव पूर्ण रूपसे दूर कर देना चाहिये और फिर अपना मंत्र दुहराना आरंभ कर देना चाहिये––अपना मंत्र, अगर तुम्हारा अपना कोई मंत्र हो जिसका तुम्हारे ऊपर प्रभाव हो, एक ऐसा शब्द हो जो सहज-स्वाभविक रूपसे तुम्हारे हृदयसे निकल पड़ता हो, जैसे कोई प्रार्थना हो और उसमें तुम्हारी पूरी अभीप्सा आ जाती हो। उस मंत्रको कुछ देर दुहरानेके बाद, यदि तुम्हें अभ्यास हो तो तुम्हें समाधिमें चले जाना चाहिये और उस समाधिमेंसे नींदमें प्रवेश कर जाना चाहिये। यह समाधि जबतक इसे रहना चाहिये तबतक रहती है और बिलकुल स्वाभाविक ढंगसे, अपने-आप ही तुम नींदमें चले जाते हो। परंतु जब तुम इस नींदसे बाहर आते हो तो तुम्हें सब कुछ याद रहता है, यह नींद एक प्रकारसे समाधिकी ही एक अविच्छिन्न अवस्था होती है।

मुख्य रूपमें इस नींदका एकमात्र उद्देश्य है शरीरको इस योग्य बना देना कि वह समाधिके प्रभावको आत्मसात् कर ले जिससे कि वह प्रभाव शरीरमें सर्वत्र ग्रहण कर लिया जाय, शरीर इस योग्य हो जाय कि वह रातकी अपनी स्वाभाविक क्रियाको कर सके और अपाचन आदिके

कारण उत्पन्न विषोंको नष्ट कर सके। और जब वह जागे तब भारीपनका कोई चिह्न न रहे जो नींदके कारण आता है, समाधिका प्रभाव जारी रहे।

जो लोग समाधिमें कभी नहीं गये हैं, उनके लिये भी यह अच्छा है कि वे किसी मंत्र, शब्द या प्रार्थनाको सोनेसे पहले जपें। परंतु उन शब्दोंमें जीवन होना चाहिये, मेरा मतलब बौद्धिक अर्थसे नहीं है, वैसी किसी चीजसे नहीं है,—बल्कि उनमें एक स्पन्दन होना चाहिये। और शरीरपर इसका प्रभाव बहुत विलक्षण होता है: वह थरथराने, थरथराने लगता है.... और धीरेसे तुम अपने-आपको चले जाने देते हो मानो तुम नींदमें चले जाना चाहते हो। शरीर अधिक, अधिक, और भी अधिक थरथराता है और तुम दूर चले जाते हो। यही तमस्से छुट्टी पानेका उपाय है।

तमस् ही नींदको बुरी बना देता है। बुरी नींद दो प्रकारकी होती है: एक तो वह नींद है जो तुम्हें भारी, शुष्क बना देती है, मानो सोनेसे पहले दिन तुमने जो कुछ प्रयास किया उसका सारा प्रभाव खो चुके हो; और दूसरी है वह नींद जो तुम्हें निःशक्त कर देती है, मानो तुमने अपना सारा समय लड़नेमें बिताया हो। मैंने देखा है कि यदि तुम अपनी नींदको छोटे-छोटे टुकड़ोंमें काट दो (यह महज एक आदत है जिसे डाला जा सकता है), तो तुम्हारी रातें अधिक अच्छी हो जाती हैं। कहनेका मतलब, तुम्हें किन्हीं निश्चित समयोंपर अपनी स्वाभाविक चेतना और अभीप्सामें वापस आते रहना चाहिये—चेतनाकी पुकारकी स्थितिमें वापस आते रहना चाहिये.... परंतु इसके लिये तुम्हें कभी घड़ीकी अलार्म घंटीकी सहायता नहीं लेनी चाहिये। जब तुम समाधिमें होते हो तब उसमेंसे धक्का खाकर बाहर आना अच्छा नहीं है।

जब तुम्हें नींद आने लगे तब तुम अपने मनमें एक विचार गढ़ सकते और कह सकते हो कि "मैं इतने बजे जग जाऊंगा (बचपनमें तुम इसे बहुत अच्छी तरह कर सकते हो)।" तुम्हारी पहली नींद कम-से-कम तीन घंटेकी होनी चाहिये और अंतिम नींदके लिये एक घंटा काफी है। परंतु पहली नींद कम-से-कम तीन घंटेकी अवश्य होनी चाहिये। सब मिलाकर कम-से-कम सात घंटे तुम्हें बिछौनेपर रहना चाहिये; छः घंटोंमें तुम्हें बहुत कुछ करनेका पर्याप्त समय नहीं मिल सकता (स्वभावतः ही मैं साधनाकी दृष्टिसे रातोंको उपयोगी बनानेकी बात सोच रही हूं)।

रातोंका उपयोग करना एक बहुत अच्छी बात है; इसके दो लाभ हैं: एक तो अभावात्मक लाभ है, यह नीचे गिरनेसे रोकता है, जो कुछ तुमने पाया है उसे खो देनेसे (यह वास्तवमें दुःखदायी बात है) रोकता है; और दूसरा है भावात्मक, तुम कोई प्रगति करते हो, तुम अपनी प्रगतिको जारी रखते हो। तुम अपनी रातका उपयोग करते हो और तब थकावटका अब कोई चिह्न नहीं रह जाता।

दो चीजोंको तुम्हें दूर करना होगा: अचेतनाकी जड़तामें जा गिरना, जिसके साथ अवचेतना और निश्चेतना ये सब चीजें उठ खड़ी होती हैं, आक्रमण करती हैं और तुम्हारे अंदर घुस आती हैं; और दूसरी प्राण और मनकी अतिरिक्त क्रिया जिसमें तुम अपना समय लड़नेमें बिताते हो, जो शब्दशः भीषण युद्ध होता है। लोग उस स्थितिमेंसे घायल होकर बाहर आते हैं, मानो उनपर मार पड़ी हो—और उनपर मार पड़ती है, फिर इसमें 'मानो' कहनेकी कोई बात नहीं! और मैं एक ही उपाय देखती हूं, नींदके स्वरूपको ही बदल दो।

श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र

विद्यार्थियोंको प्रमाण-पत्र और उपाधियां क्यों नहीं दी जातीं ?

प्रायः एक सौ वर्षसे मनुष्यजाति एक रोगसे ग्रसित है जो बराबर अधिक-अधिक फैलता प्रतीत हो रहा है, और हमारे युगमें यह अत्यंत तीव्र हो गया है। यह वह रोग है जिसे हम 'उपयोगितावाद'के नामसे पुकारते हैं। आज ऐसा लगता है कि चीजों, लोगों, परिस्थितियों और क्रियाओंको पूर्ण रूपसे केवल इसी दृष्टिकोणसे देखा जाता और उनका मूल्य आंका जाता है। किसी चीजका कोई मूल्य नहीं यदि वह उपयोगी न हो। निस्संदेह, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि जो चीज उपयोगी है वह उस चीजसे अच्छी है जो उपयोगी नहीं है। परंतु सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि हम किसे उपयोगी कहते हैं—उपयोगी किसके लिये, किस चीजके लिये, किस कामके लिये समझा जाय ?

निस्संदेह, जो जातियां अपनेको सभ्य समझती हैं वे अधिक-अधिक उन्हीं चीजोंको उपयोगी कहती हैं जो रुपया लाने, प्राप्त करने या उत्पन्न करनेमें सहायक होती हैं। इस धनकी दृष्टिसे ही प्रत्येक चीजका विचार किया जाता है। इसे ही मैं उपयोगितावाद कहती हूं। और यह रोग बड़ा संक्रामक है, क्योंकि बच्चे भी इस रोगसे नहीं बचते। ऐसी उम्रमें जब कि मनुष्यको सौंदर्य और महानता और पूर्णताका स्वप्न देखना चाहिये,—जो शायद सामान्य समझदारीके लिये अत्यंत अलौकिक है, पर जो इस कुंद सद्विवेकसे निश्चय ही अधिक ऊंचा है,—वह धनके स्वप्न देखता और इसीलिये चिंतित होता है कि उसे कैसे प्राप्त करे।

अतएव जब वे अपने अध्ययनकी बात सोचते हैं तब वे सबसे पहले यह सोचते हैं कि उनके लिये क्या उपयोगी होगा, जिससे कि आगे चलकर, जब वे बड़े हों तो, वे बहुत अधिक रुपया कमा सकें।

और उनके लिये जो चीज सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है वह है सफलताके साथ परीक्षाएं पास करनेकी तैयारी करना; क्योंकि प्रमाणपत्रों, उपाधिपत्रों और उपाधियोंकी सहायतासे ही वे अच्छा पद पा सकेंगे और अधिक रुपया कमा सकेंगे।

उनके लिये अध्ययनका कोई दूसरा उद्देश्य नहीं, दूसरा कोई लाभ नहीं।

जाननेके लिये पढ़ना, प्रकृति और जीवनके रहस्योंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अध्ययन करना, अपनी चेतनाको बढ़ानेके लिये अपनेको शिक्षित करना, अपने ऊपर प्रभुत्व पाने, अपनी कमजोरियोंको, अपनी दुर्बलता और अज्ञानको जीतनेके लिये अपनेको संयमित करना, जीवनमें एक ऐसे लक्ष्यकी ओर अग्रसर होनेके लिये अपनेको तैयार करना जो कि अधिक महान्, अधिक विशाल, अधिक उदार और अधिक सत्य है, आवश्यक है...... इस विषयमें वे मुश्किलसे सोचते हैं और इन सब बातोंको वे महज काल्पनिक समझते हैं, उनके लिये एकमात्र प्रधान बात है व्यावहारिक होना, कैसे रुपया पैदा किया जाय इसीके लिये तैयारी करना और यही सीखना।

जो बच्चे इस रोगसे आक्रांत हैं वे आश्रमके शिक्षा-केंद्रमें अपने समुचित स्थानमें नहीं हैं। और यही बात उन्हें दिखानेके लिये हम उन्हें किसी सरकारी परीक्षा और प्रतियोगिताके लिये तैयार नहीं करते और न उन्हें प्रमाणपत्र या उपाधियां ही देते हैं जो बाहरी जगत्में उनके काम आवें।

हम यहां उन्हीं बच्चोंको रखना चाहते हैं जो किसी अधिक ऊंचे और अधिक अच्छे जीवनकी अभीप्सा रखते हैं, जो ज्ञान और पूर्णत्व पानेके लिये उत्सुक हैं, जो बड़े आग्रहके साथ एक ऐसे भविष्यकी ओर ताक रहे हैं जो अधिक पूर्ण रूपमें सत्य है।

१७. ७. १९६०

--श्रीमां

* * *

ज्ञान अभी अपूर्ण ही है यदि वह हमें केवल एक भावना तो देता है पर उसे अनुभवद्वारा पुष्ट करनेमें असमर्थ होता है।

—श्रीअरविंद

*

तुम्हें एक चीजके बारेमें बिलकुल सुनिश्चित रहना चाहिये। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे अपने हाथोंमें है। तुम जो बनना चाहते हो वह अवश्य बनोगे। जितना ही ऊंचा तुम्हारा आदर्श होगा, जितनी ऊंची तुम्हारी अभीप्सा होगी उतनी ही ऊंची प्राप्ति हो सकेगी। लेकिन तुम्हें अपने निश्चयपर दृढ़ रहना होगा और जीवनमें अपने सच्चे ध्येयको कभी नहीं भूलना होगा।

*

आओ और अपने-आपको तैयार करो। सबसे अच्छी तैयारी है भगवान्के काममें उपयोगी होना।

—श्रीमाताजी

वेदसुधा :

अभीप्सा

—श्री जगन्नाथ वेदालंकार

[श्रीअरविंद साहित्यके प्रेमी-पाठक 'अभीप्सा' शब्दसे भलीभांति परिचित होंगे। अभीप्साका अर्थ है प्रबल इच्छा, तीव्र उत्कण्ठा, किसी भी वस्तुकी ओर अभिमुख होकर उसे प्राप्त करनेकी परम स्पृहा। पर यह केवल उच्च और दिव्य वस्तुओंकी अभिलाषाके लिये प्रचलित हो गया है। परम देव और उनकी समग्र दिव्यताको प्राप्त करनेकी गहरी लौ, लगन, अदम्य प्यासका सूचक बन गया है। वेदका सर्वप्रथम पद 'अग्नि' (अग्निमीळे) इसी अभीप्साकी अग्नि, दिव्य संकल्पकी अग्निका वाचक है, भागवत संकल्पशक्तिका अधिष्ठातृदेव है। अग्निदेवके सैकड़ों सूक्त इसीकी महत्ता और महिमाका गान कर रहे हैं। आइये, हम देखें, वेदमें अभीप्साकी कैसी उड़ान भरी गयी है!]

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ. १, १

भावार्थ—मैं अग्निदेवकी उपासना करता हूं, जो अन्तर्यज्ञमें अग्रणीके पदपर स्थापित हैं, उसके नायक हैं (पुरोहितम्), दिव्य ऋत्विक हैं, सत्यके विधानके अनुसार यज्ञका संपादन करनेवाले हैं (देवम् ऋत्विजम्), देवताओंका आह्वान करनेवाले तथा आह्वान (पुकार) के द्वारा अंतर्यज्ञका निष्पादन करनेवाले हैं (होतारम्), आनन्दैश्वर्योंको हमारे अंदर धारण करनेमें सबसे श्रेष्ठ हैं, सबसे अधिक समर्थ हैं (रत्न-धा-तमम्)।

कृणवन्तु वेदं समग्निमिन्धतां परः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ऋ. १, १७०, ४

भावार्थ—महत् किंवा साधना-यज्ञके यजमान हृदयकी वेदीको तैयार करें, उसमें सामनेकी ओर अभीप्साकी अग्निको प्रदीप्त करें। हे प्रभो! वहां हम तेरे लिये यज्ञ करें जिससे चेतना अमरत्वकी ओर जागती है, जागृत होकर अमरत्वकी अवस्थातक पहुंचती है।

तच्चक्षु देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः, प्रब्रवाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम् भूयश्च शरदः शताम् ॥ ऋ. ७, ६६, १६

भावार्थ—उस 'सर्वद्रष्टा और सब कुछ दिखानेवाले ज्ञानचक्षुकी सहायतासे हम सौ वर्षतक

ज्ञान प्राप्त करते रहें, सौ वर्षतक प्रबुद्ध और जागृत रहें, सौ वर्षतक बढ़ते और पुष्ट होते चलें, सौ वर्षतक हमारा अस्तित्व बना रहे, हमें सौ वर्ष जीनेका आशीर्वाद प्राप्त हो। सौ वर्षसे भी अधिक कालतक हम हृष्ट-पुष्ट बने रहें। उन्नत और संवर्द्धित होते हुए, दीर्घायुष्य और सतेज जीवनका आशीष प्राप्त करते हुए विकसित होते रहें।

बुध्येमं शरदः शतम् ॥ रोहय शरदः शतम् ॥ पूषय शरदः शतम् ॥ भवेम शरदः
शतम् ॥ भूयेम शरदः शतम् ॥ भूयसीः शरदः शतम् ॥ अथर्व. १९, ६७, ३८

भावार्थ—वह देवोंका हितकारी, सर्वसाथी ज्ञाननेत्र हमारे समक्ष शुद्ध पवित्र और तेजस्वी रूपमें सदासे ही उदित है। उसकी सहायतासे हम सौ वर्षतक देखते रहें, सौ वर्षतक जीते रहें, सौ वर्षतक सुनते रहें, सौ वर्षतक बोलते रहें, सौ वर्षतक अदीन होकर विचरें, सौ वर्षसे भी अधिक कालतक हम सब इन्द्रियोंकी शक्तिसे संपन्न रहते हुए अदीन भावसे जीवित रहें।

भद्रं कर्णायः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाश्रयिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांस स्तनूभि र्व्यदेवहितं यदायुः ॥ ऋ. १, ८९, ८ ।

भावार्थ—हे पूजनीय देवो! हम कानोंसे भली बात ही सुनें और आंखोंसे भली चीज ही देखें, सभी इन्द्रियोंसे हम विषयोंको ग्रहण करें। दृढ़ अंगोंसे युक्त शरीरोंसे सदा स्तुति करते हुए देवोंद्वारा नियत अपनी आयुको प्राप्त कर लें।

विशेष विवरण—यहां दृढ़ अंगों एवं हृष्ट-पुष्ट शरीरों से स्तुति करनेकी अभीप्सा की गयी है। ऐसी स्तुतिका इसके सिवाय कोई आशय नहीं हो सकता कि हम अपने प्रत्येक अंगसे भगवान्के लिये, भगवदिच्छाकी पूर्तिके लिये कर्म करें। वेदोंके अनुसार शरीरके प्रत्येक अंगमें एक-एक देवताका निवास है जिसकी शक्तिसे ही वह अपना कार्य करता है। इसलिये प्रत्येक अंगसे दिव्य चेष्टा, दिव्य कर्म करना ही सच्चा देव-यजन है, देवताओं और परमदेवका यजन-पूजन है।

असन्तापं मे हृदयभुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ अथर्व ७, १६, ३, ६

भावार्थ—मेरा हृदय शोक-संताप, विषाद और अवसादसे रहित हो, मेरी इंद्रियोंकी पहुंच, इंद्रिय-शक्ति विशाल और महान् हो, मैं गुण-धर्मसे समुद्र बन जाऊं। गहन-गम्भीर, विशाल-विराट्, गुणोंका आगार, रत्नोंका भाण्डार।

श्रीअरविन्द

—श्री रवीन्द्र

१५ अगस्त १९४७ को श्रीअरविंद ने लिखा था : "निःसंदेह, आजके दिन मैं प्रायः उन सभी जागतिक आंदोलनोंको, जिन्हें मैंने अपने जीवन-कालमें ही सफल देखनेकी आशा की थी, यद्यपि उस समय वे असंभव स्वप्न जैसे ही दिखायी देते थे, सफल होते हुए या अपनी सफलताके मार्गपर जाते हुए देख सकता हूं। इन सभी आंदोलनोंमें स्वाधीन भारत एक बड़ा पार्ट अच्छी तरह अदा कर सकता और प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

"इन स्वप्नोंमें पहला था एक क्रांतिकारी आंदोलन जो स्वाधीन और एकीभूत भारतको जन्म दे। भारत आज स्वाधीन हो गया है पर उसने एकता नहीं प्राप्त की है। एक समय प्रायः ऐसा दीखता था मानो अपने स्वाधीन होनेकी प्रक्रियामें ही वह फिरसे उस पृथक्-पृथक् राज्योंकी अव्यवस्थापूर्ण स्थितिमें जा गिरेगा जो ब्रिटिश विजयसे पहले विद्यमान थी। परंतु सौभाग्यसे अब ऐसी प्रबल संभावना हो गयी है कि यह संकट टल जायगा और अभी पूर्ण न सही पर एक विशाल तथा शक्तिशाली एकत्व अवश्य स्थापित हो जायगा। विधान-परिषद्की दूरदर्शितापूर्ण प्रबल नीतिने इस बातको संभव बना दिया है कि दलित वर्गोंकी समस्या भी बिना फूट-फटावके हल हो जायगी। परंतु हिंदुओं और मुसलमानोंका पुराना सांप्रदायिक भेद देशके स्थायी राजनीतिक विभाजनके रूपमें सुदृढ़ हो गया दीखता है। यह आशा करनी चाहिये कि इस तै किये गये विभाजनको पत्थरकी लकीर नहीं मान लिया जायगा और इसे एक कामचलाऊ अस्थायी उपायसे बढ़कर और कुछ न माना जायगा। क्योंकि यदि यह कायम रहे तो भारत भयानक रूपमें दुर्बल और अपंगतक हो सकता है; गृहकलहका होना सदा ही संभव बना रह सकता है, नये आक्रमण और विदेशी राज्यका हो जानातक संभव हो सकता है। भारतकी आंतरिक उन्नति और समृद्धि रुक सकती है, राष्ट्रोंके बीच उसकी स्थिति दुर्बल हो सकती है, उसका भविष्य कुंठित, यहांतक कि व्यर्थ भी हो सकता है। यह नहीं होना चाहिये; देशका विभाजन अवश्य दूर होना चाहिये। हम आशा करें कि यह कार्य स्वाभाविक रूपसे ही हो जायगा, न केवल शांति और मेल-मिलापकी बल्कि मिलजुलकर काम करनेकी भी आवश्यकताको उत्तरोत्तर समझ लेने तथा मिलजुलकर काम करनेके अभ्यास और उसके लिये साधनोंको उत्पन्न कर लेनेसे संपन्न हो जायगा। इस प्रकार अंतमें एकता चाहे किसी भी रूपमें आ सकती है—उसके ठीक-ठीक रूपका व्यावहारिक महत्त्व भले ही हो, पर कोई प्रधान महत्त्व नहीं। परंतु चाहे किसी भी उपायसे हो, चाहे किसी भी प्रकारसे हो, विभाजन अवश्य हटना चाहिये, एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिये और स्थापित होगी ही, क्योंकि भारतके भविष्यकी महानताके लिये यह आवश्यक है।

"दूसरा स्वप्न था एशियाकी जातियोंका पुनरुत्थान तथा स्वातंत्र्य और मानव-सभ्यताकी उन्नतिके कार्यमें एशियाका जो महान् स्थान पहले था उसी स्थानपर उसका लौट जाना। एशिया जग गया है; उसके बड़े-बड़े भाग स्वतंत्र हो गये हैं या इस समय बंधन-मुक्त हो रहे हैं; इसके अन्य भाग जो अभी परतंत्र या अंशतः परतंत्र हैं वे भी चाहे कैसे भी घोर संघर्षोंमेंसे गुजरते हुए, स्वतंत्रताकी ओर बढ़ रहे हैं। केवल थोड़ा ही करना बाकी है और वह आज न सही कल पूरा हो जायगा। उसमें भारतको अपना पार्ट अदा करना है और उसे उसने एक ऐसी सामर्थ्य और योग्यताके साथ करना शुरू कर दिया है जो अभीसे उसकी संभावनाओंकी मात्राको तथा उस स्थानको सूचित करती है जिसे वह राष्ट्रोंकी सभामें ग्रहण कर सकता है।

"तीसरा स्वप्न था एक विश्वसंघ जो समस्त मानवजातिके लिये एक सुन्दरतर, उज्ज्वलतर और महत्तर जीवनका बाहरी आधार निर्मित करे। मानव-संसारका वह एकीकरण प्रगतिके पथपर है। एक अधूरा प्रारंभ संगठित किया गया है पर वह बड़ी भारी कठिनाइयोंके विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। किंतु उसमें एक वेग है और अनिवार्य रूपसे बढ़ता चला जायगा और विजयी होगा। इसके कार्यमें भी भारतवर्षने प्रमुख भाग लेना प्रारंभ कर दिया है, और यदि वह उस अधिक विशाल राजनीतिज्ञताको विकसित कर सके जो वर्तमान घटनाओं और तात्कालिक संभावनाओंसे ही सीमित नहीं होती बल्कि भविष्यको देख लेती और उसे निकट लाती है, तो भारतकी उपस्थिति मंद एवं भीरुतापूर्ण विकास और द्रुत एवं साहसपूर्ण विकासमें जो महान् भेद है उसे प्रदर्शित कर सकती है। जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान् विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती है या उसे नष्ट कर सकती है, किंतु तो भी अंतिम परिणाम निश्चित है। क्योंकि एकीकरण प्रकृतिकी आवश्यकता है, अनिवार्य गति है। इसकी आवश्यकता राष्ट्रोंके लिये भी स्पष्ट है; क्योंकि इसके बिना छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी स्वाधीनता किसी भी क्षण खतरेमें पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रोंका भी जीवन असुरक्षित हो सकता है। इसलिये इस एकीकरणमें ही सबका हित है और केवल मानवी निःशक्तता तथा मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता ही इसे रोक सकती है; परंतु ये भी प्रकृतिकी आवश्यकता और भगवान्‌की इच्छाके विरुद्ध हमेशा नहीं ठहर सकतीं। परंतु एक बाहरी आधार ही पर्याप्त नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय भाव और दृष्टिकोण भी अवश्य विकसित होने चाहियें, अंतर्राष्ट्रीय पद्धति तथा संस्थाएं भी अवश्य प्रादुर्भूत होनी चाहियें, शायद इस प्रकारकी प्रगतियां भी पैदा हों जैसे कि दो या अनेक देशोंका एकसंग नागरिक होना, संस्कृतियोंका आपसमें ऐच्छिक दान-प्रतिदान या उनका स्वेच्छापूर्वक घुलना-मिलना। राष्ट्रीयता तब अपने-आपको चरितार्थ कर चुकी होगी और अपनी युद्धप्रियताको छोड़ चुकी होगी, और तब वह ऐसी चीजोंको आत्मसंरक्षण तथा अपनी दृष्टिकी अखंडतासे असंगत नहीं अनुभव करेगी। एकत्वकी एक नयी भावना मनुष्यजातिपर आधिपत्य जमा लेगी।

"चौथा स्वप्न, संसारको भारतका आध्यात्मिक दान, पहलेसे ही प्रारंभ हो चुका है। भारतकी आध्यात्मिकता यूरोप और अमेरिकामें नित्य बढ़ती हुई मात्रामें प्रवेश कर रही है। यह आंदोलन बढ़ेगा; वर्तमान कालकी विपदाओंके बीच अधिकाधिक लोगोंकी आंखें आशाके साथ भारतकी ओर मुड़ रही हैं और न केवल उसकी शिक्षाओंका अपितु उसकी आंतरात्मिक और आध्यात्मिक साधनाका भी उत्तरोत्तर आश्रय लिया जा रहा है।

"अंतिम स्वप्न था क्रमविकासमें अगला कदम जो मनुष्यको एक उच्चतर और विशालतर

चेतनामें उठा ले जायगा और उन समस्याओंका हल करना प्रारंभ कर देगा जिन समस्याओंने मनुष्यको तभीसे हैरान और परेशान कर रखा है जबसे कि उसने वैयक्तिक पूर्णता और पूर्ण समाजके विषयमें सोचना-विचारना शुरू किया था। यह अभीतक एक व्यक्तिगत आशा और विचार और आदर्शमात्र है जिसने भारत और पश्चिममें दोनों जगह दूरदर्शी विचारोंको वशमें करना शुरू कर दिया है। इस मार्गकी कठिनाइयां प्रयासके किसी भी अन्य क्षेत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक जबर्दस्त हैं पर वे दूर होंगी ही। यहां भी, यदि इस विकासको घटित होना है तो, चूंकि यह आत्मा और आंतर चेतनाकी अभिवृद्धिद्वारा ही होगा, इसका प्रारंभ भारतवर्ष ही कर सकता है और यद्यपि इसका क्षेत्र सार्वभौम होगा, तथापि केंद्रीय आंदोलन भारत ही करेगा।"*

कितने महान् स्वप्न हैं! स्वप्न अपने-आपमें महान् हैं पर स्वप्नद्रष्टा उनसे कहीं अधिक महान् हैं। श्रीमाताजीने कहा है, "श्रीअरविंद संसारके इतिहासमें जिस चीजका प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई विशिष्ट शिक्षा नहीं है, वह कोई ईश्वरीय ज्ञान भी नहीं है, वह है एक निर्णायक क्रिया जो सीधी परात्पर भगवान्से आयी है।"

ऐसे व्यक्तिके बारेमें कुछ लिखते हुए लेखनीको संकोच होता है। स्वयं श्रीअरविंदने कहा है कि उनका जीवन बाह्य स्तरपर नहीं रहा है कि मनुष्य उसे देख सकें और आंतरिक जीवनके बारेमें उन्हें छोड़कर और क़ौन बोल सकता है? यह सब जानते हुए भी उनके जीवनकी कुछ छोटी-मोटी घटनाओंको, उनके कार्यको जाननेकी इच्छा होती है और अपनी इस लेखमालाके द्वारा हम उनके कार्यके बारेमें कुछ जाननेका प्रायस करेंगे। हमारा यह प्रयास वैसा ही होगा जैसे कोई नन्हा बालक समुद्रके किनारे बैठकर रेतके कण गिनना शुरू करे और उनके आधारपर समुद्रके बारेमें कुछ जाननेका दावा करे। अस्तु।

कहते हैं, जब धरतीके कष्ट बहुत बढ़ जाते हैं, नास्तिकताका राज्य होने लगता है और लोग अपने बनानेवालेको भूल जाते हैं तो धरतीके अंतरसे एक पुकार उठती है जो सब प्रकारके व्यवधानोंको चीरती हुई अपने लक्ष्यतक जा पहुंचती है। उन्नीसवीं शताब्दीके अंतमें कुछ ऐसी ही अवस्था थी। भारत दासताकी जंजीरोंमें जकड़ा हुआ था। वह अपनी भारतीयताको भुलाता जा रहा था। उसे एक नये प्राणकी आवश्यकता थी, उसे आवश्यकता थी एक ऐसे व्यक्तिकी जो उसे तमस्मेंसे निकालकर ज्योतिकी ओर ले जा सके, जो उसे मृत्युके मुखसे निकालकर अमरता प्रदान करे। यह सब केवल इसलिये नहीं कि भारत महान् हो सके, वह दूसरोंपर अपना फौलादी पंजा कस सके बल्कि इसलिये कि इस चतुर्युगीमें सारे संसारको आध्यात्मिक संदेश देनेका कार्य भारतको ही सौंपा गया है।

ऐसी परिस्थितियोंमें श्रीअरविंदने १५ अगस्त १८७२ को पूरी तरहसे यूरोपीय आदर्शोंसे प्रभावित पिताके घर जन्म लिया। पिताकी इच्छा थी कि बालकको कहीं भारतीय हवा न लगने पाये, इसलिये शुरूसे ही सारी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी भाषामें और अंगरेजोंकी देखरेखमें हुई। इन्हें पहले दार्जिलिंगके मिशन स्कूलमें भरती किया गया और फिर १८७९ में अपने अन्य दो भाइयोंके साथ इन्हें इंगलैंड पहुंचा दिया गया और वहां ऐसी व्यवस्था की गयी कि इनपर भारतीयताकी छायातक न पड़ने पाये। इनके अभिभावक, सेण्टपाल स्कूलके मुख्याध्यापकने इन्हें ग्रीक

---

*स्वाधीनता-दिवसके संदेशसे।

सिखायी और अपने स्कूलकी उच्च कक्षाओंमें भरती कर लिया। वहांपर उन्होंने अपनी पाठच-पुस्तकोंपर तो सरसरी नजर दौड़ायी और अपना शेष समय अधिक व्यापक अध्ययन, विशेषतः अंग्रेजी काव्य, साहित्य एवं गल्प तथा फ्रेंच साहित्य और प्राचीन, मध्ययुगीन एवं अर्वाचीन यूरोपके इतिहासके अनुशीलनमें ही व्यतीत किया। उन्होंने ग्रीक और लैटिन तथा अंगरेजी और फ्रेंच भाषाओंपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया तथा जर्मन, इटालियन, स्पेनिश आदि अन्य यूरोपीय भाषाओंका भी परिचय प्राप्त किया।

अपने पिताकी इच्छा पूरी करनेके लिये वे आई. सी. एस. की परीक्षामें बैठे पर जानबूझकर घुड़सवारीकी परीक्षा न दी और इस तरह अपने-आपको अनुतीर्ण करवा लिया। इन्हीं दिनों बड़ौदाके सर सयाजीराव गायकवाड़के साथ उनका परिचय हुआ और परिणामस्वरूप उनकी नियुक्ति बड़ौदेमें हो गयी। वहां वे पहले भूमि-व्यवस्था-विभागमें रहे और फिर कई स्थान बदलते-बदलते बड़ौदा कालिज के वाइस प्रिंसिपल हो गये। इसके साथ-ही-साथ महाराजको जब जरूरत पड़ती तो अपने भाषण तैयार करनेके लिये अथवा आवश्यक पत्र लिखनेके लिये श्रीअरविंदको बुला भेजते थे।

इंगलैण्डमें रहते हुए श्रीअरविंदने यह निश्चय कर लिया था कि वे अपना जीवन देशसेवामें लगायेंगे और देशकी स्वाधीनताके लिये काम करेंगे। भारत आनेके बाद उन्होंने अपना नाम दिये बिना ही राजनीतिक विषयोंपर लेख लिखने शुरू कर दिये थे। उस समयके नेताओंने इनके लेखोंको बहुत उग्र माना और उनका प्रकाशन रुकवा दिया। श्रीअरविंदने देखा कि अभी परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं और देश उनके कार्यक्रमको स्वीकार करनेमें असमर्थ है, इसलिये वे पर्देके पीछे रहकर चुपचाप काम करते रहे। अपने सार्वजनिक कार्योंमें उन्होंने असहयोग एवं निष्क्रिय प्रतिरोधको स्वाधीनता-संग्रामके साधनके रूपमें अपनाया था। पर हां, वे सिद्धांतरूपमें अहिंसावादी न थे। उनके मनमें मेजिनी तथा जोन आफ आर्कके लिये बहुत मान था।

उन दिनों भी श्रीअरविंदकी कार्यशैली यह नहीं थी कि वे पहलेसे सोच-विचारकर कोई योजना बना लेते हों। वे अपने सामने एक निश्चित लक्ष्य रखकर घटनाओंका निरीक्षण करते और शक्तियोंको तैयार करते रहते थे और जब समय उपयुक्त लगता तब कार्यक्षेत्रमें उतर पड़ते थे।

यहां हम इस बातकी ओर संकेत करते चलें कि अभीतक श्रीअरविंदने योग शुरू नहीं किया था। यह और बात है कि बिना प्रयासके, बिना किसी तैयारीके उन्हें कई ऐसी अनुभूतियां हो चुकी थीं जिनमेंसे एक-एकको पानेके लिये बड़े-बड़े साधक अपना सारा जीवन बिता देते हैं। जिस दिन श्रीअरविंद इंगलैंडसे लौटे तो भारतकी भूमिपर पांव रखते ही उन्हें एक असीम शांतिका अनुभव हुआ। इतने वर्षोंसे बिछुड़े हुए लालको भारत मांका यह पहला उपहार था। यह शांति हमेशा उनके साथ रही और कठिनसे कठिन परिस्थितियोंमें भी उनकी रक्षा करती रही। आनेवाली कठिनाइयोंने भी रसास्वादन करा दिया। उन्हें पता चला कि उनके पिताको यह गलत समाचार (उस जहाजसे उनके चलनेकी बात थी पर चले नहीं थे) मिला था कि जिस जहाजमें उनकी आंखोंका तारा आ रहा था वह समुद्रमें डूब गया। पिताको श्रीअरविंदसे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। समस्त आशाओंके विलीन होनेका समाचार सुनकर पिताकी जीवन-नौका भी डूब गयी। शायद श्रीअरविंदके जीवनमें आनेवाली कठिनाइयोंका यह प्रथम आभास था। अस्तु।

इसी प्रकार एक दिन श्रीअरविंद बड़ौदेके पास किसी गांवमें टहल रहे थे। पास ही कालीका एक मंदिर था, वे उस तरफ चले गये और बिना किसी तैयारीके उन्हें कालीकी मूर्तिमें एक जीवित-जागृत शक्तिके दर्शन हो गये। इसी प्रकार काश्मीरमें तख्ते-सुलेमानपर खड़े होते ही उन्हें निर्वाणका अनुभव हो गया।

ये सब चीजें अपने-आप होती जा रही थीं। भगवान्‌की ओरसे छप्पर फाड़कर उपहार-पर उपहार दिये जा रहे थे। उधर सचेतन रूपसे श्रीअरविंद अपनी सारी शक्ति भारत मांके चरणोंपर न्यौछावर कर रहे थे। इन्हीं दिनों भवानी मंदिरकी योजना बनायी गयी जिसके अनुसार ऐसे मतवालोंकी एक सेना तैयार करनी थी जो अपना सब कुछ त्याग कर, हथेलीपर सिर रखे मांकी सेवाके लिये प्रस्तुत हों। अभी ये सब तैयारियां हो रही थीं। नक्शेमें रंग भरा जा रहा था कि रंगमें भंग हो गया। सरकारने बंगालका विभाजन कर दिया और पूरी तैयारीके बिना ही क्रांतिकारी लोग इसके विरुद्ध आंदोलनमें कूद पड़े। उनकी तथा सामान्य जनताकी पूरी तैयारी नहीं हो पायी थी इसलिये समुचित रूपसे सफलता न मिल सकी।

राजनीतिक काम बढ़ता जा रहा था। देशकी पुकार निरंतर जोरदार होती जा रही थी। श्रीअरविंदने बड़ौदेका काम छोड़ दिया और बंगालमें आकर डेरा डाला। वहां राष्ट्रीय महाविद्यालयके आचार्यके रूपमें कुछ दिनोंतक काम किया। पर्देके पीछे रहते हुए वे क्रांतिकारी आंदोलनका पथप्रदर्शन भी करते रहे। १९०६ में वे वन्देमातरम्‌के कर्ताधर्ता बन गये। नामके लिये तो और लोग सम्पादन करते थे पर सचमुच जिम्मेदारी श्रीअरविंदकी ही थी। वन्देमातरम् अपने समयका सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र रहा है जिसने हजारों युवकोंके अंदर एक नयी जान ला दी। यह पत्र विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी सत्ताके बहिष्कार, स्वदेशीके प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षण तथा निष्क्रिय प्रतिरोधके कार्यक्रमको लेकर चला था जिसका उद्देश्य था एक समानान्तर सरकार खड़ी कर देना। श्रीअरविंदने वन्देमातरम्‌के नारेमें एक ऐसी शक्ति भर दी कि विदेशी सरकारका एक-एक आदमी उससे भड़क उठता था।

(अपूर्ण)

* * *

हम वर्तमानकी मूर्तिको मूर्तिकी तरह पूजनेसे इंकार करते हैं। हम आगे और पीछे देखते हैं, पीछे अपनी जातिके शक्तिशाली इतिहासकी ओर और आगे उस बृहत् इतिहासकी ओर जिसके लिये भवितव्यताने इस जातिको तैयार किया है।

* * *

भगवान् क्या है? सनातन वाटिकामें, सनातन खेल खेलता हुआ एक सनातन बच्चा।

—श्रीअरविंद

बाल-गीत

—श्री सोहनलाल द्विवेदी

हम स्वतंत्र भारतके बच्चे,
हम स्वतंत्र मांकी संतान !
हम सब मिल निर्माण करेंगे
आज नया वह हिन्दुस्तान !

जहां खेत लहराते हों, ले अन्नधानकी हरियाली,
दूध दहीकी नदियां बहतीं, घरघरमें हो खुशहाली ।।
नहीं दूसरोंसे मांगेंगे जाकर
कभी अन्नका दान ।
हम स्वतंत्र भारतके बच्चे
हम स्वतंत्र मांकी संतान !

जहां गरीबी नहीं रहेगी, नहीं रहेगी बेकारी।
सब मिलकरके काम करेंगे, वन-सम्पत्तिके अधिकारी।।
नहीं दूसरोंसे चाहेंगे,
आकर करें हमारा त्राण।
हम स्वतंत्र भारतके बच्चे
हम स्वतंत्र मांकी संतान ।

जहां रहेगा हममें इतना प्रेम और संगठन अपार!
देख हमारी शक्ति खुलेगा, अपने-आप विजयका द्वार ।
नहीं दूसरोंसे मांगेंगे
जाकरके हम न्याय-विधान।
हम सब मिल निर्माण करेंगे
आज नया वह हिन्दुस्तान ।

वह छत्रसालकी मां थी

(२)

(बुन्देली वीराङ्गना)

—श्री अजित सिंह

विवाह सम्पन्न हो जानेपर बारातकी वापसीके साथ कालकुमरि महेवा आयीं। महेवाने उनका भारी स्वागत किया। बुन्देलखण्डमें प्रचलित परिपाटीके अनुसार कालकुमरि और चम्पत रायका महेवामें घर-घर निमंत्रण होने लगा और प्रत्येक सम्भ्रान्त घरमें एक अच्छे खासे प्रीति-भोजका आयोजन होने लगा। यह कार्यक्रम बहुत दिनोंतक चलता रहा। कालकुमरि ने इसका पूरा लाभ उठाया। कुछ ही समयमें उन्होंने इतना सुन्दर परिचय और प्रेम बढ़ा लिया कि संपूर्ण महेवा और उसके सम्पर्कके अन्यान्य स्थानोंमें आत्मीयताका भाव परिपुष्ट होने लगा। कालके इस व्यवहारने चम्पतकी नीति और क्रिया-कलापपर एक अद्भुत प्रभाव डाल दिया।

जैसी वह देखनेमें सुन्दर कमनीय थीं, व्यवहारमें भी वह वैसी ही कुशल और मधुर थीं। उनकी चतुराई और ज्ञानगरिमा भी कुछ कम न थी। वीरभाव और संयम, मानों, उनमें मूर्तिमान् थे। युद्धकलामें भी वह काफी प्रवीण थीं। उनके इन गुणोंने चम्पतको पूरी तरह वशमें कर लिया। अब वह हर काममें उनसे सलाह-मशविरा करते।

बुन्देलखण्डको जाग्रत् करने और सुसंगठित करनेके वास्ते उन्होंने, जगह-जगहपर सैनिक शिविरोंकी प्रतिष्ठा की और सैनिक शिक्षा-केन्द्र भी स्थापित किये। वह स्वयं उनका सञ्चालन और निरीक्षण करतीं। इसका बहुत ही उत्साहवर्धक प्रभाव पड़ा और जनतामें एक उत्कर्ष का भाव जाग्रत् हो गया।

चम्पतकी बड़ी रानी भी कालकुमरिपर विशेष स्नेह रखती थीं और उनसे वह अपनी सगी छोटी बहिन जैसा प्यार करती थीं।

⁂

इस समय बुन्देलखण्डपर दिल्लीका आंतक छाया हुआ था। राजा जुझारसिंहको मरवाकर शाहजहां इस सूबाको पूरी तौरपर हड़पनेकी सोच रहा था। चम्पतराय ओरछाकी गादीकी मान-मर्यादा सुरक्षित करनेमें तल्लीन थे। इस कार्यमें कालकुमरि विशेष सहायिका सिद्ध हुईं। उनके सैनिक शिबिरोंके आयोजनसे जनतामें साहस और आत्मसम्मानका बोध जग पड़ा और चम्पतको अपने काममें खूब सहायता मिलने लगी।

जुझारसिंहकी मृत्युके पश्चात् ओरछाकी गद्दी पर उनके ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंहको बैठाकर चम्पत स्वयं शासनको ठोस और सुदृढ़ करनेमें संलग्न हो गये। पर पृथ्वीसिंह अपनी भूलके कारण शीघ्र ही दिल्लीकी कूटनीतिके शिकार बन गये। फिर भी चम्पतने साहस न छोड़ा और एकाके

बाद एक राजपुत्रको ओरछाकी गद्दीपर बैठाते गये और स्वयं शाहजहांसे लोहा लेते रहे। अंतमें उन्होंने राजा जुझारसिंहके भाई पहाड़सिंहको गद्दीपर जमा दिया। विवश होकर शाहजहांने अपनी नीति बदल दी और पहाड़सिंहको अपने पक्षमें फोड़ लिया। अब पहाड़सिंह चम्पतके शत्रु बन गये और उनको गिरफ्तार करनेका प्रयत्न करने लगे। घटनाचक्रमें पड़कर अंतमें चम्पत और कालकुमरिको जंगलों और पर्वतोंका सहारा लेना पड़ा। दिल्लीके विरुद्ध वे खुलकर बगावत करने लगे और उन्होंने कुछ ही दिनोंमें दिल्लीके शासनतंत्रको परेशान कर दिया। इसपर शाहजहांने चम्पतके साथ भी अपनी नीति बदली और उनके साथ भी समझौतेकी बात चलायी और एरछकी बैठकके साथ नौ लाखकी जागीर देकर चम्पतको शांत कर दिया। अब चम्पत शांतिसे जीवन बिताने लगे और दिल्लीकी सेवाके साथ अपना नसीब जोड़ बैठे। यह बात कालकुमरिको तनिक भी पसंद न आयी। बल्कि इससे उनके आत्मसम्मानपर भारी चोट लगी। वह भीतर-ही-भीतर कुढ़ती रहतीं। आखिर बात-बातमें खीझ उठतीं। उनके इस आंतरिक परिवर्तनको कोई न समझ सका।

⁂

एरछकी जागीरकी सनद लेकर चम्पतराय दिल्लीसे लौटकर जब आये तो बड़ी रानीने उनका स्वागत किया। कालकुमरि उनके स्वागतको नीचे न उतरीं। समय लेकर चम्पतरायजी स्वयं उनके महलमें गये तो देखा कि वह एक किनारे मुंह छिपाये सिसक रही हैं। चम्पतका हृदय दहल गया और वह उनके इस क्षोभका कारण जाननेकी चेष्टा करने लगे।

सशंक भावसे चम्पतने प्रश्न किया—"इतनी दुःखी क्यों? क्या किसीने कुछ अपमान कर दिया?"

"किसीके अपमान करनेकी कोई बात नहीं; मैं स्वयं अपमानित हो गयी!"

"सो कैसे?"

"मैंने आपके भीतर अपना एक आदर्श पाया था जो अब कुण्ठित होता जान पड़ता है!"

"यह क्या बात है?" चम्पत कुछ क्षुब्ध होकर बोले।

"कहां तो आपने बुन्देलखण्डमें स्वाधीनताकी आग जला रखी थी और ओरछाकी मर्यादाके लिये सर्वस्व त्याग करनेको उद्यत थे और अब"......इतना कहकर वह अधिक विक्षुब्ध हो उठीं।

चम्पतरायजीने उनके मस्तकको अपने वक्षमें लेकर प्यारभरे शब्दोंमें कहा—"काल, तुम देवी हो, तुम्हारी आत्माकी चोटको अब समझा, तुमने मुझे अपने-आपमें वापस ला दिया; इसके लिये सचमुच तुम धन्यवादकी पात्र हो।"

प्रकृतिस्थ होकर कालकुमरिने उनके चरणोंको हाथ लगाकर उनका आदर किया और क्षोभ प्रकट करनेके लिये क्षमा मांगी। फिर कहा, "हमारे बड़े महाराज (जुझारसिंह) बुन्देलखण्डके प्रतीक थे, जिस अत्याचारके साथ उनका निधन किया गया वह बुन्देलखण्डका अपमान ही नहीं अपदस्थता है। दिल्लीके शाहंशाहमें जबतक आंतरिक परिवर्तन न हो जाय तबतक उसके साथ मैत्री कैसी?"

चंपतने कहा "काल, तुम ठीक कहती हो। दाराका मन अब भी मेरी ओर साफ नहीं जान पड़ा। मेरे साथ उसका भाव निकटताका नहीं। शाहजहां उसीको गद्दी सौंपना चाहता है।" इसी बीच बड़ी रानी शान्ता आ पहुंचीं। उनको देखकर कालकुमरि खड़ी हो गयीं और प्रेमसे उनका सम्मान करने लगीं।

शान्ताने कालको अपने निकट खींचकर उनकी ठोड़ीको उठाते हुए कहा, "काल! तेरे मनकी होना चाहती है?" बड़ी उत्सुकतासे कालने पूछा, "जी साहिबा, सो कैसे?"

शान्ताने चंपतके हाथोंमें खरीता देते हुए कहा कि औरंगजेबका भेजा एक दूत नरवरसे आया है जो नीचे बैठा है और जल्दीमें जान पड़ता है। चम्पतरायने खरीता खोलकर पढ़ा और अपनी दोनों रानियोंको सुनाया। चम्पतरायने बड़ी रानी शांतासे पूछा कि आपकी क्या राय है? शांताने मुस्कराते हुए कहा कि इन बातोंमें तो काल ही चतुर है। मेरी समझमें तो यह भाइयोंकी आपसी खटपट है, उसमें बीचमें पड़नेसे क्या लाभ? फिर जैसा काल कहे।

काल—"जी साहिबा! जीवनमें खटपटसे कैसे बचा जा सकता है? लाभ और हानिपर कर्मठकी दृष्टि नहीं टिकती, वह तो प्रभुके हाथकी चीज है।"

चंपत-"तो कालकी रायमें इस समय औरंगजेबकी सहायता करना उचित है।"

"उचित ही नहीं आवश्यक भी।"

"सो कैसे?

"इस विनयके द्वारा औरंगजेब आपकी शरण चाहता है—शरणागतको आप निराश कर सकेंगे? सच्चा क्षत्रिय ऐसा कभी नहीं कर सकता। फिर शाहजहां और दारा तो खुलकर बुन्देलखण्ड और खासकर ओरछाके शत्रु बने हुए हैं। हमारी जन्मभूमिको जो तहस-नहस करना चाहता हो उनके साथ मित्रता कैसी?"

"जब औरंगजेब दिल्लीका बादशाह हो जायगा तो क्या वह ऐसा न कर सकेगा?"

"यदि वह ऐसा करेगा तो हमारा मार्ग भी तो खुला होगा?"

बड़ी रानीने भी कालकुमरिके मतको पुष्ट किया और औरंगजेबको चम्बल पार करानेमें सहायता देनेका निश्चय हुआ। पत्रोत्तरके साथ औरंगजेबका दूत वापस कर दिया गया। दो दिनके भीतर ही सैनिकोंकी एक अच्छी टुकड़ी लेकर, चम्पतरायजी धौलपुरकी ओर प्रस्थान कर गये।

⁂

चम्पतरायकी अनुपस्थितिमें शासनभार कालकुमरि ही संभाला करती थीं। चम्पतके प्रस्थानके पश्चात् गुप्तचरोंसे कालकुमरिको ज्ञात हुआ कि दाराने एक भारी सेनाके साथ चंबल नदीके घाटोंको रोकनेके लिये सिपहसालार बांकी खांको रवाना कर दिया है। बांकी खांने चंबलके उस पारके सभी घाट और मार्ग रोक रखे हैं। बड़ी रानी शांता इस समाचारसे कुछ विचलित हो पड़ीं। कालकुमरिने उनको ढाढ़स बंधाया और एरछका प्रबंध ठीक करके उन्होंने उसका भार बड़ी रानीको सौंपा और स्वयं केवल सात सौ सवार लेकर बांकीके प्रतिरोधके वास्ते प्रस्थान कर गयीं।

वली बहादुर खांका लड़का बांकी खां नामी सिपहसालारोंमेंसे एक था। रानी कालकुमरिके धावेका समाचार पाकर वह भी खूब सतर्कतासे काम करने लगा। उसे दोनों ओरकी नाकाबन्दीकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इधर रानीने भी खूब रणकौशलसे काम लिया। दिनको तो युद्ध होता ही था, रातको भी रानी छापा मार दिया करतीं और बांकी खांका रसद-वरदास्त लूट लिया करतीं। कई दिनोंतक यह स्थिति चलती रही। इसपर बांकी खां बहुत बौखलाया और उसने कालकुमरिको बंदी करनेकी ठानी। एक दिन दोनोंका आमने-सामने मुकाबला हो गया। रानीने बांकीं खांको ललकारा और उसपर अपना वार कर दिया। पहला ही वार ऐसा बैठा कि घोड़ेसे गिरकर बांकी खां धराशायी हो गया। कालकुमरिने उसको दबोच लिया। जान जाते देख बांकी खांने हाथसे तलवार फेंक दी। इसपर रानीने उसको छोड़ दिया, पर उसका घोड़ा और ढाल-तलवार छीन ली। उसी समय चम्पतराय भी औरंगजेबको चंबल पार कराकर दूसरी ओर आ पहुंचे। बांकी खांको मैदान छोड़कर भागना पड़ा।

चम्पतरायने औरंगजेबको आगरेतक पहुंचाया और दाराको परास्त करनेमें भी सहायता दी। गद्दीपर बैठते ही औरंगजेबने कुछ वृद्धिके साथ एरछकी बैठक बहाल कर दी और उनको मनसब देकर राजा मान लिया। ऊपरसे तो औरंगजेबने चम्पतरायजीका बड़ा आदर किया पर भीतर ही भीतर वह उनसे सशंक हो उठा। अब चम्पतरायजी सामान्य राजाकी स्थितिमें हो गये। उनको वर्षमें दो माह दिल्लीकी हाजिरी स्वीकार करनी पड़ी।

⁂

कालकुमरिकी कोखसे जन्मे अपने तीसरे पुत्र छत्रसालपर चम्पतरायजीका विशेष ध्यान रहता था। छत्रसाल अब छः वर्षका हो चुका था। एक बार जब चम्पत दो माहकी हाजरीपर दिल्ली प्रस्थान कर रहे थे तब छत्रसाल दिल्ली जानेको मचल गया। चम्पतको उसे अपने साथ ले जाना पड़ा। कालकुमरिको भी साथ जाना पड़ा।

दिल्लीमें चम्पतरायजीका शिविर यमुना किनारे एक ऊंची टेकरीपर था जो बड़ा शानदार जंचता था। वहांसे शाही किलेका पूरा दृश्य देखा जा सकता था। रानी कालकुमरि प्रतिदिन छत्रसालको बांकी खांसे जीते हुए अपने घोड़ेपर सवार कराकर घूमने के लिये भेजा करतीं। एक दिन वापसीमें छत्रसाल अपने थोड़ेसे साथियोंके साथ उसी घोड़ेपर बांकी खां सिपहसालारके दरवाजेके सामनेसे आ निकला। बांकी खांने अपना घोड़ा पहचान लिया और छत्रसालसे उसको छीन लिया। उसने छत्रसालकी सवारीको दूसरा घोड़ा देना चाहा पर छत्रसालने दमंगीके साथ दूसरे घोड़ेपर चढ़नेसे इन्कार कर दिया और पैदल ही शिविर पहुंचा। उसकी मां कालकुमरिको यह बात बहुत खली। तत्काल उन्होंने इसकी शिकायत औरंगजेबके पास भेज दी और बांकी खांसे अपना घोड़ा व ढाल-तलबार वापस चाही। पर औरंगजेबने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया और कहला दिया कि सिपहसालारने अपना घोड़ा वापस ले लिया तो कोई बात नहीं।

कालकुमरिको इसपर खेद हुआ और क्रोध भी आया। औरंगजेबका संदेश लेकर जो सरदार आया था उसीके द्वारा रानीने बादशाहके पास बांकी खांको अपनी चुनौती भेज दी। दो दिन-

तक कोई उत्तर न मिलनेपर कालकुमरि पूरे सामरिक वेशमें घोड़ेपर बैठकर किलेमें जा धमकीं और बादशाहके पास सूचना भेज दी कि यदि उनको न्याय नहीं दिया जाता तो बांकी खांको उसके साथ द्वन्द्व-युद्धको भेज दिया जाय। औरंगजेबको रानीके इस व्यवहारपर बहुत बुरा लगा। उसने सरदार तहव्वर खांको भेजकर कहलाया कि औरतोंको इस तरह शाही शानके खिलाफ बरताव नहीं करना चाहिये। और यदि वह अपनी हठ नहीं छोड़ेगी तो उसको उसकी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। तहव्वरसे यह बात सुनकर रानीने फौरन बगलसे एरछकी सनद निकालकर उसको सौंप दी किंतु बांकी खांको दी हुई अपनी चुनौती वापस नहीं ली। तहव्वर खां सनदको लेकर वापस हो गया और थोड़ी देरमें रानीके पास ढाल-तलवारके साथ वह घोड़ा भेज दिया गया। दुबारा जीता हुआ मानकर अपना घोड़ा व ढाल-तलवार पाकर रानी कालकुमरि बहुत प्रसन्न हुई और वापस शिविरको चली आयीं।

उसी समय राजा चम्पतरायजी भी एक अभियानसे शिविर वापस पहुंचे। रानीसे सब समाचार सुनकर उन्होंने तत्काल शिविर समाप्त कर दिया और वापस एरछको रवाना हो गये।

(क्रमशः)

◆

महादेवी वर्मा

—श्री हंसा

धन्य है वह भारत जिसने महान् पुरुषों, महान् राजाओं और महान् आध्यात्मिक व्यक्तियोंको जन्म दिया। उसके जीवनका प्रत्येक अंग विभूतियोंसे भरा पड़ा है। क्या कला, क्या विज्ञान, क्या साहित्य—वह सब चीजोंमें महान् है। हिन्दी साहित्यमें मुझे बहुत रस है। इसमें महान् कवियों और लेखकोंकी ऐसी-ऐसी रचनाएं हैं जो मुझे बड़ी अच्छी लगती हैं।

हिंदी-साहित्यकी विभूतियोंमेंसे श्रीमती महादेवी वर्माका नाम कैसे भूला जा सकता है जिन्होंने हिन्दी काव्यको अपनी रचनासे अमर कर दिया है। इनका जन्म संवत् १८६४ में फरुखाबादमें हुआ था। इनके पिता कालेजमें प्रधानाध्यापक थे। इनकी माता हिंदीमें कविता किया करती थीं। महादेवीके दो भाइयोंमेंसे एक वकील और दूसरे साहित्यप्रेमी थे। इस प्रकार पता चलता है कि इनका सारा परिवार ही शिक्षित तथा साहित्यप्रेमी था।

महादेवीने शिक्षा केवल छठी श्रेणीतक ही प्राप्त की। फिर अनेक वर्षोंके बाद उन्होंने संस्कृतमें एम. ए. किया। परंतु घरपर ही उन्होंने चित्रकला, संगीत आदि भी सीख लिया। तुलसी, सूर, मीरा आदिकी कविताएं उन्होंने अपनी मांसे सुनीं। नौ वर्षकी उम्रमें ही इनका विवाह हो गया था।

महादेवी बचपनमें कवितासे बड़ा प्रेम करती थीं। कभी-कभी वह स्वयं भी कुछ पंक्तियां बना लेती थीं। धीरे-धीरे समयके साथ उनकी कविताएं अच्छी होती गयीं और फिर 'चांद'

नामक पत्रिकामें प्रकाशित होने लगीं। एम. ए. पास करनेके बाद वे प्रयाग महिला विद्यापीठकी प्रधान अध्यापिका बनीं और तबसे वे इसी पदपर काम कर रही हैं। उन्होंने 'साहित्य-संसद' नामकी एक संस्था भी खोली है। उनकी पुस्तक 'नीरजा' पर पांच सौ रुपये और 'यामा' पर बारह सौ रुपये इनाममें मिले। 'रश्मि', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा' और 'नीहार' इनकी अन्य काव्य पुस्तकें हैं।

महादेवीकी काव्य साधनाका आरंभ उस समयसे होता है जब उन्होंने अपनी मांके मुखसे मीरा आदिके भक्ति-गीतोंको सुना। इसी समय उनमें यह बीज बोया गया जो बादमें पद्यरचनाके रूपमें खिल उठा।

मीराकी वेदना उनके हृदयमें घर करके धीरे-धीरे तीव्र होती गयी—

"मैं नीरभरी दुःखकी बदली"

अपनी कविताओंमें महादेवीने अपने हृदयकी समस्त भावनाएं पूर्ण रूपसे भर दी हैं—

"तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुममें अपमा दुःख प्रियतम!"

उनकी प्रत्येक रचना हमारे सामने उनकी अनुभूतियोंका दर्पण बनकर आती है—

"बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं।"

हिन्दीके आधुनिक युगमें महादेवी "वेदनाकी प्रधान उपासिका" के रूपमें प्रकट हुई हैं—

"वेदनासे जन्म करुणामें मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात
जीवन विरहका जल जात।"

और उन्हें अपनी वेदनाका गौरव है। वे उसे त्यागना पसंद नहीं करतीं—

"मिलनेका मत नाम ले, मैं विरहमें चिर हूं"

चिरन्तन विरहका भाव उनकी कविताओंमें साफ झलकता है—

"मैं सब कुछ तुमसे देखूं तुमको न देख पाऊं पर"
तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं
पग विरह-पथिक का धीमा
आते-जाते मिट जाऊं
पाऊं न पंथकी सीमा"

अपने अज्ञात प्रेमीके विरहके आंसू बहाने और गीत गानेमें ही इन्हें सुख मिलता है, यद्यपि कहीं-कहीं मिलनका भाव भी दिखायी देता है—

"तुम्हें बांध पाती सपनेमें
तो चिर जीवन प्यास बुझा लाती—
उस छोटे क्षण अपनेमें।"

महादेवीकी रचनाओंमें प्रकृति-बर्णन बहुत सुन्दर बन पड़ा है:

"ओ विभावरी !
चांदनीका अंग राग
मांगमें सजा पराग
रश्मितार बांध मृदुल
चिकुर भा रही।
......ओ विभावरी !

महादेवीकी भाषा संस्कृतके शब्दोंसे युक्त मधुर कोमल है। संगीत और प्रवाहसे भरपूर है। कहीं भी किसी प्रकारका सूखापन नहीं है--

"मेरा पग पग संगीत भरा
श्वासोंसे स्वप्न पराग झरा
नभके नवरंग बुनते दुकूल
छायामें मलय बयार पली।"

उनके शब्द छोटे और भावोंसे भरे होते हैं--

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल"
प्रियतमका पथ आलोकित कर"

महादेवीकी भाषा प्रतीकों और संकेतोंसे भरी हुई है---

"जल रहा दीपक किसीके
प्यारका आधार पाकर
शलभके अनुरागने ही
दीपको जलना सिखाया
वर्तिकाका त्याग ही तो
तिमिरमें आलोक लाया ।
ज्योति उज्ज्वल जागरित है स्नेहका उपहार पाकर।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी भाषामें मधुरताका वह जादू है जो हमें मंत्रमुग्ध कर लेता है; भावोंमें वह उड़ान है जो हमें ऊपर उठने को विवश करती है और वेदनामें वह कसक है जो हमारे अंतस्तलको छू लेती है। परंतु उनकी विस्तृत काव्य-साधनाका परिचय कुछ पंक्तियोंमें देना संभव नहीं, फिर भी मैंने थोड़ेमें उनके काव्यके विषयमें कुछ कहनेका यत्न किया है।

(विद्यार्थियोंकी सभामें पढ़ा गया एक लेख)

महालक्ष्मी का अवतरण

कवि : "तर्कसे तर्कोंका रण छिड़ा, विचारोंसे लड़ रहे विचार,
ज्ञानके कोलाहलके बीच डूबता जाता है संसार।
और सबका उलटा परिणाम, बुद्धिका जितना बढ़ता जोर,
आदमीके भीतरकी शिरा, हुई जाती कुछ और कठोर।
ज्ञानके मरुमें चलता हुआ आदमी खोता जाता है,
हृदयके सरका शीतल वारि और कम होता जाता है।
बुद्धि तृष्णाकी दासी हुई, मृत्युका सेवक है विज्ञान,
चेतता तब भी नहीं मनुष्य, विश्वका क्या होगा भगवान्?"

सिर पकड़कर बैठ जाता है।

(नेताका प्रवेश)

नेता : कवि, तुम्हें क्या हो गया है? आज सारे संसारमें कोलाहल मचा हुआ है। दुनिया उथल-पुथल हो रही है, हम जितना भी ठीक करनेका प्रयास करते हैं स्थिति उतनी ही बिगड़ती जाती है। तुम भी यूं निराश होकर बैठ जाओगे तो हमें मार्ग कौन दिखायेगा? कवि सत्यको देख सकता है, वह क्रांतदर्शी है। वह हमारे तुच्छ अहंसे ऊपर उठकर भविष्यका संदेसा ला सकता है। उठो मेरे कवि, विश्व तुम्हारी वाणीकी प्रतीक्षा कर रहा है।

कवि : भाई, क्या कहूं, कुछ नहीं सूझता। बहुत कोशिश कर चुका पर मेरी दृष्टि इस अंधकारको नहीं चीर पाती। कभी घरके झंझट दिखायी देते हैं, कभी देशके झगड़ेपर नजर अटक जाती है। समाजमें, राजनीतिमें, शिक्षामें सभी जगह अनाचार और भ्रष्टाचार फैला है। सबपर तमस्‌का राज्य है, इसके परे देख सकना असंभव है।

अध्यापक : नहीं कवि, ऐसा न कहो, तुम भूलते हो, इस क्षणिक अवसादने तुम्हें अंधा कर दिया है। तुमने ही तो कहा था कि आसुरी शक्तियां अभी प्रबल हैं, चढ़ाई बहुत ऊंची है, पांव एक-एक मनके हो रहे हैं, परंतु फिर भी सत्यकी विजय होगी और अवश्य होगी। वह दिन आ रहा है जब विश्वमें सामंजस्य होगा, एकता होगी और भगवान्‌का राज्य होगा।

नेता : हनुमान अपनी शक्ति भूल गये थे तो उन्हें जाम्बवन्तकी जरूरत पड़ी। हमारे कविकी खिन्नता दूर करनेके लिये तुम जैसे अध्यापककी जरूरत है।

कवि : हां, कही थीं, मैंने ही ये बातें कही थीं। जब नजर अंदर चली जाती है तब सब जगह प्रकाश ही प्रकाश दीखता है, ऐसा लगता है मानों आजकी भयंकर स्थिति, मनुष्यका यह कुत्सित रूप एक दुःस्वप्नमात्र है। परंतु अपने-आपमें आते ही यह अंधेरा ही ठोस रूप धारण कर लेता है। यहांसे निकलनेका कोई मार्ग नहीं दीखता।

(नाचते हुए एक लड़कीका प्रवेश)

"दाह भूका हरो, पन्थ शीतल करो,
विश्वका सर भरो वारिकी धारसे,
ओसका जाल दो, चांदनी डाल दो,
आदमीका हृदय सींच दो प्यारसे ।
शांतिके हंसको धर्म अवतंसको,
अंकमें लो, इसे प्रेम दो, मान दो;
हो जहां भी जहर क्षीरकी दो लहर,
वाणकी नोंकपर फूलको तान दो।

लड़की : आहा, सारे संसारमें सौंदर्य भरा है। एक-एक फूल-पत्तेमें कितना सौंदर्य है। जंगलका चप्पा-चप्पा सुन्दर हो उठा है। यह किसके आनेकी तैयारी है, वीणाके ये मधुर राग, चारों ओर छाया हुआ सौंदर्य और यह शीतल मंद पवन किसके आनेकी सूचना दे रहे हैं? मां कहती हैं संसार एक जंजाल है, पिताजी कहते हैं दुनियामें लड़ाइयां ही लड़ाइयां होती रहती हैं। वे इस सौंदर्यको क्यों नहीं देख सकते, इस संगीत-लहरीको क्यों नहीं सुन पाते। क्या मनुष्यकी दुनिया भी ऐसी ही सुन्दर नहीं बन सकती? (लड़की चली जाती है)

अध्यापक : देखा कवि, हम जिस सौंदर्य और सामंजस्यको पानेके लिये एड़ी-चोटीका जोर लगा देते हैं उसे यह अबोध बालिका सहजमें ही पा लेती है। काश, हम भी इसी भांति बालक बनकर इस सौंदर्यका आनंद ले पाते!

आवाज : यह महालक्ष्मीकी शक्ति है। वह भगवान्की मधुरताका एक जादू फैला देती है, उनके पास आते ही आदमी गहरे आनंदका अनुभव करता है, उन्हें अपने हृदयमें अनुभव करनेका अर्थ है अपने जीवनको एक आनंदका सागर बना देना। सूर्यसे जैसे प्रकाश फैलता है वैसे ही महालक्ष्मीसे श्री, शोभा और मृदुता चारों ओर फैल जाती है। उनकी दृष्टि मनुष्यको हमेशाके लिये अपना लेती है और उसे आनंदविभोर कर देती है। जहां उनके चरण पड़ जाते हैं वहींसे आनंदके सोते फूट निकलते हैं।

(महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव)

लड़की : आहा, आओ मां, आओ, तो यह सारा सौंदर्य तुम्हारा ही है? मानव-जीवनको भी अपने सौंदर्य और प्रेमका एक कण दे सकोगी?

(महालक्ष्मी लड़कीके साथ मिलकर सौंदर्य, सामंजस्य और एकताका नृत्य करती हैं। दूर खड़े हुए कवि नेता आदि भी नजदीक आकर नतमस्तक हो जाते हैं, साधारण जनताके प्रतिनिधि भी आ जाते हैं। महालक्ष्मी उन्हें भी आशीर्वाद देती हैं, सभी एक साथ बोल उठते हैं:)

"विचरण करती ज्योति तुम्हारी कमल-कुंज-काननमें;
खोजूं उज्ज्वल पीठ जननि! बाहर मैं कहां भुवनमें?
नतमस्तकपर अरुण उषा-भूषित पद-पद्म धरो हे!
उतरो, विकसित हृदय-कमलके आसनपर उतरो हे!
तुम्हें मलिनता नहीं सुहाती, तो मालिन्य तजूंगा;
सतत पूर्णविधि निष्कलंक होकर मां! तुम्हें भजूंगा।

तुम आनंद असीम, भक्ति तुम,
सुन्दरताकी महाशक्ति तुम,
जन-मनमें निज विभा दिव्य, स्वर्णिम आलोक भरो हे!
करुणामयी! उदार! निरंतर मुझमें वास करो हे!

अप्रिय शुष्क हृदय, नीरस मन,
प्रिय हैं तुम्हें प्रेमके बंधन,
तव माधुर्य-मंत्रसे प्राणोंमें झंकार भरो हे!
अपने महाप्रेमका मुझको सिन्धु अपार करो हे!" *

—रवीन्द्र

---

*पहली दो कविताएं दिनकर जी के 'हिमालयका संदेश' से ली गयी हैं। अंतिम दिनकर-जी द्वारा किया गया श्रीअरविंदकी एक कविताका अमुवाद है। यह नाटक श्रीअरविंद सोसायटीके अधिवेशनके अवसरपर २३ नवम्बरको खेला गया था।

प्रार्थना

—डा. श्रीकृष्णप्रसाद

मैं साधु या संन्यासी नहीं हूं। योगी भी नहीं हूं। एक साधारण गृहस्थ हूं और पैसा कमाकर अपना और अपने परिवारका पालन-पोषण करता हूं। पर प्रार्थनाका कुछ-कुछ महत्त्व समझता हूं। और कुछ वर्षोंसे हर बातके लिये प्रार्थना करनेकी आदत डाल रहा हूं। प्रार्थना ठीक तरहसे कर पाता हूं या नहीं, यह नहीं जानता। प्रार्थना कैसे की जाती है यह भी नहीं जानता। जिस भगवान्‌की चर्चा लोग किया करते हैं उसे कभी देखा नहीं, परंतु भगवान्‌में विश्वास अवश्य रखता हूं और माताजीके दर्शनके बाद कह सकता हूं कि भागवत शक्तिका कुछ-कुछ अनुभव भी हुआ है। प्रार्थना और ध्यानकी आदत आश्रम आनेके बादसे ही लगी है। माताजीको देखनेके बाद इसमें भी कठिनाई नहीं हुई कि किस भगवान्‌से प्रार्थना की जाय। फिर भी यह दावा मैं नहीं करता कि 'प्रार्थना' जैसे गंभीर विषयपर लिखनेका मुझे अधिकार है।

पर लिखने बैठ गया हूं, इस विषयपर पूरी गंभीरताके साथ। इस बौद्धिक युगमें जब हम अपनी बुद्धिसे हर कामको करना चाहते हैं, जब हम हर विषयकी सच्चाईको बुद्धिकी कसौटीपर जांचते हैं और कठिनसे कठिन वस्तुकी प्राप्तिके लिये अपने पुरुषार्थपर ही निर्भर करते हैं, प्रार्थनाकी महिमाकी चर्चा करना हास्यास्पद-सा लगता है, और मेरे जैसेको तो लोग बेवकूफ ही कहेंगे।

तो क्या मैं भी मान लूं कि जिस मनुष्यके पास बुद्धि है, उसके लिये प्रार्थना कोई मूल्य नहीं रखती, उसे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, उसका 'भगवान्' और बल केवल उसकी बुद्धि है? लोग कहते हैं कि विज्ञानने संसारसे 'भगवान्' नामक अंधविश्वासको भगा दिया है। पर क्या यह सच है? यदि यह सच होता तो अबतक मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघरोंको ध्वस्त करके उनकी जगहपर कल-कारखाने या वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं खड़ी कर दी जातीं। साधु, संत, पुजारी, पादरी और मुल्लाको तो सूलीपर चढ़ाकर खत्म कर दिया जाता, या उन्हें पकड़कर उनकी 'वैज्ञानिक शुद्धि' कर ली जाती। पर ऐसा तो अभीतक नहीं हो पाया है। इसके विपरीत रूस जैसे तर्कप्रधान और नास्तिक देशमें भी धर्मका प्रचार बढ़ रहा है, वहांके गिरजाघरों और पादरियोंको धार्मिक स्वतंत्रता दी जा रही है। और रोममें रहनेवाले पोपकी प्रतिष्ठा अभी भी सारे सभ्य जगत्‌में बनी हुई है।

इससे तो यही नतीजा निकलता है कि बुद्धि और भक्तिमें कोई विरोध नहीं होना चाहिये। इस वैज्ञानिक युगमें भी हम प्रार्थना कर सकते हैं और प्रार्थनाके द्वारा अपन-आपको संकट और बेचैनीसे बचा सकते हैं और बड़ीसे बड़ी चीजोंको पाकर अपनी इच्छाओंको पूरा कर सकते हैं।

जब हम बीमार पड़ते हैं तो यह स्वाभाविक है कि हम डाक्टर या वैद्य या हकीमको बुलाते हैं और चिकित्साके द्वारा अपनेको ठीक करनेकी कोशिश करते हैं। अच्छा होनेपर दवा और

डाक्टरकी प्रशंसा करते हैं और समझते हैं कि उन्हींके कारण हम स्वस्थ हुए। पर ऐसा भी हुआ है कि अच्छेसे अच्छे डाक्टरके इलाज करनेपर और अच्छीसे अच्छी दवा खानेपर भी हम स्वस्थ नहीं हो पाये हैं और जिस बीमारीसे हम महीनोंसे ग्रस्त थे, वह हमारी या किसी अन्यकी प्रार्थनाके कारण बातकी बातमें दूर हो गयी है। इस तरहके उदाहरण कम नहीं हैं और आश्रममें तो कई लोग हैं जो अपनी बीमारियोंको केवल प्रार्थना और ध्यानके द्वारा, अपनेको माताजीकी कृपापर आश्रित करके ठीक कर लेते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हम अपनी बीमारीको केवल चिकित्सा और डाक्टरी मददके द्वारा ही ठीक करें। बल्कि जिस भगवान्में हमें विश्वास और भक्ति हो उसकी प्रार्थना करके भी हम अपनी बीमारीको ठीक कर सकते हैं। जबतक हम इतने ऊंचे नहीं उठे हैं कि केवल भगवान्की कृपा और मददपर ही अपनेको आश्रित कर सकें तबतक दवा कराना आवश्यक हो सकता है पर उसके साथ-साथ यदि हम प्रार्थना भी कर सकें तो दवासे दूना फायदा होता है। इसके लिये आवश्यक है केवल विश्वास, भागवत शक्ति, कृपा और प्रेममें तथा प्रार्थनामें विश्वास।

विद्यार्थी जब परीक्षा देते हैं तो स्वभावतः अपनी मेहनत और बुद्धि, अपनी स्मरणशक्ति और प्रतिभा आदिपर निर्भर करते हैं। पर यदि इनके साथ-साथ वे प्रार्थनापर भी निर्भर करना सीखें और भक्तिभावसे अपने भगवान्की ओर सफलता और प्रगतिके लिये अपनेको खोल सकें तो वे स्वयं देखेंगे कि किस प्रकार इससे उन्हें कईगुना अधिक लाभ होता है।

प्रार्थना हम हर वस्तुकी प्राप्तिके लिये कर सकते हैं—धनके लिये, सफलताके लिये, पुत्रके लिये आदि-आदि। सांसारिक मनुष्यके लिये इस तरहकी प्रार्थना करना स्वाभाविक है और यदि सच्चे हृदयसे, भक्तिभावसे, विश्वासके साथ ऐसी प्रार्थना की जाय तो कोई कारण नहीं कि सफलता न मिले। फिर भी यह जरूरी नहीं है कि हर बार हमारी इच्छा पूरी ही हो। हम लोग तो साधारणतः स्वार्थके पुतले हैं और अपने स्वार्थोंके वशीभूत होकर ही प्रार्थना किया करते हैं। पर भगवान्की दृष्टि इससे भिन्न होती है और वह सदैव वही करता है या करनेकी इच्छा करता है जो हमारी भलाईके लिये हो और हमारी भलाई किसमें है इसका ज्ञान हमसे अधिक उसे होता है। हम तो उसे ही अच्छा समझते हैं जिसमें हमारा स्वार्थ पूरा होता हो पर भगवान्की दृष्टि हमारे स्वार्थसे ऊपर रहती है। वह हमारी आत्माकी भलाई और प्रगतिको सामने रखकर हमारी प्रार्थनाको सुनता है और जब हमारी प्रार्थनाके द्वारा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे, हमारी आत्माकी भी भलाई होती है तभी वह हमारे स्वार्थोंको पूरा करता है, अन्यथा नहीं।

इस तरह हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि यदि हम केवल अपने आध्यात्मिक या आत्मिक विकासके लिये ही ईश्वरसे प्रार्थना करें तो वह सांसारिक स्वार्थसिद्धिके निमित्त की गई प्रार्थनासे उत्तम है। सच तो यह है कि हम पवित्रता और सच्चाईसे प्रार्थना तभी कर पाते हैं जब वह हमारी आत्माकी पुकार हो, हमारी अंतरतम गहराइयोंसे निकली हो। हमारे अंदर आत्मा ही एक ऐसी सत्ता है जो स्वभावतः निरन्तर भगवान्की ओर खुली होती है। इसीलिये हमारी आत्मा ही सच्ची और विशुद्ध प्रार्थना कर सकती है और ऐसी प्रार्थनाकी ही वास्तवमें सार्थकता है।

पर अपनी आत्मिक या आध्यात्मिक भलाई और प्रगतिके लिये प्रार्थना करना भी सबसे

उत्तम प्रार्थना नहीं है क्योंकि इसमें भी हमारा स्वार्थ निहित है। यहां भी हम अपने लिये ही प्रार्थना करते हैं, अपनी मुक्ति या निर्वाणके लिये भगवान्को पुकारते हैं। फर्क केवल इतना ही होता है कि यहां किसी सांसारिक वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना न कर, हम अपनी आत्माके कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं। पर 'अहं'का भाव यहां भी पूरा-पूरा बना ही रहता है और इसीलिये ऐसी प्रार्थना भी शुद्धतम नहीं कही जा सकती।

सबसे पवित्र और ऊंचे दरजेकी प्रार्थना तो वही कही जायगी जिसमें 'अहंकार'की गंध लेशमात्र भी न हो, जो अपने लिये न की जाकर केवल भगवान्के लिये की जाय, जिसमें केवल यही भावना सारी सत्ताको व्याप्त करे कि हे भगवान् तेरी इच्छा पूर्ण हो। मैं केवल तेरा यंत्र बनकर कार्य करूं या जीऊं। माताजीकी दी हुई यह प्रार्थना ही सबसे बड़ी और पवित्रतम प्रार्थना समझी जायगी :—

(जो लोग भगवान्की सेवा करना चाहते हैं उनके लिये एक प्रार्थना)

तेरी जय हो, हे भगवान्, हे सर्वविघ्नविनाशन !

ऐसा वर दे कि हमारे अंदरकी कोई भी चीज तेरे कार्यमें बाधक न हो।

ऐसा वर दे कि कोई भी चीज तेरी अभिव्यक्तिमें रुकावट न डाले।

ऐसा वर दे कि सभी बातोंमें तथा प्रत्येक क्षण तेरी ही इच्छा पूर्ण हो।

हम यहां तेरे सम्मुख उपस्थित हैं जिससे कि हमारे अंदर, हमारी सत्ताके अंग-प्रत्यंगमें, उसके प्रत्येक कार्यमें, उसकी सर्वोच्च ऊंचाइयोंसे लेकर शरीरके क्षुद्रतम कोषोंमें तेरी ही इच्छा कार्यान्वित हो।

ऐसी कृपा कर कि हम तेरे प्रति संपूर्ण रूपसे तथा सदाके लिये विश्वासपात्र बन सकें।

हम अन्य प्रत्येक प्रभावसे अलग रहते हुए एकदम तेरे प्रभावके आधीन हो जाना चाहते हैं।

ऐसा वर दे कि हम तेरे प्रति एक गभीर और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

ऐसी कृपा कर कि प्रत्येक क्षण जो अद्‌भुत वस्तुएं तेरी देनके रूपमें हमें मिलती हैं, उनमेंसे किसीका भी हम कभी अपव्यय न करें।

ऐसा कर दे कि हमारे अंदरकी प्रत्येक चीज तेरे कार्यमें सहयोग दे और सब कुछ तेरी सिद्धिके लिये तैयार हो जाय।

तेरी जय हो, हे परमेश्वर ! हे समस्त सिद्धियोंके अधीश्वर !

प्रदान कर हमें अपनी विजयमें एक सक्रिय और ज्वलंत, अखंड और अचल-अटल विश्वास।

* * *

पियकी छवि नयनन बसी पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिरि जाय ।।

—रहीम

अन्धी, बधिर और अप्रतिम

हेलन केलर

—श्री आस्टिन नजरथ

बहुत पहले, १९१० में, मार्क ट्वेनने कहा था कि १९ वीं शताब्दीके दो सबसे दिलचस्प चरित्र थे—नेपोलियन और हेलन केलर। ट्वेनके कथनसे असहमत होना कठिन है। किंतु यह कथन इस दृष्टिसे अत्यंत आकर्षक है कि इसमें दो परस्पर-विरोधी चरित्रोंका उल्लेख हुआ है—नेपोलियनका, जो युद्ध, विजय और विनाशका प्रतीक था और हेलन केलरका, जो धैर्य सद्भावना और सृजनका प्रतीक है।

हेलन केलरको १९ वीं शताब्दीके एक महान् चरित्रके रूपमें तो ख्याति मिल ही चुकी थी; किंतु २०वीं शताब्दीमें अंतर्राष्ट्रीय स्तरपर उनकी महान् ख्याति न केवल कायम रही, बल्कि बहुत अधिक बढ़ भी गयी है। २७ जूनको उनके जन्मदिनकी ८३ वीं वर्षगांठ मनायी गयी थी।

कुमारी केलरके जीवन और उनकी उपलब्धियोंको सही अर्थमें 'अद्भुत' कहा जा सकता है। उनका जीवन आश्चर्यजनक और अत्यंत प्रेरणादायक है और हम जैसे अधिकांश सामान्य लोगोंके लिये, यह उन ऊंचाइयोंका एक ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है जहांतक मानव भावनाका उत्थान संभव है।

हेलन केलरका जन्म १८८०में अमेरिकाके दक्षिणी राज्यमें, अलाबामाके टुस्कुम्बिया नगरके निकट एक बागमें हुआ था। उनके पिता एक समाचारपत्रके संपादक और संघीय सेनाके एक भूतपूर्व कैप्टेन थे। शैशवमें वह बहुत स्वस्थ और चपल थीं, किंतु दुर्भाग्यवश, जब वह केवल १ वर्ष ७ महीनेकी थीं, उन्हें भयंकर 'दिमागी बुखार' हो गया, जिसके कारण वे अंधी, बहरी और क्योंकि उन्हें अभी बोलना नहीं आता था, गूंगी हो गयीं।

हेलनकी बचपनकी कहानी १९५७ में ब्राडवेके एक नाटक, 'दि मिराकल वर्कर', में कही गयी, जिसका चलचित्रीय रूपांतरण इधर कुछ समयसे संसारभरके सिनेमाघरोंमें दर्शकोंको मंत्र-मुग्ध कर रहा है। जिन्होंने भारतमें अभी-अभी इस चलचित्रको देखा है, उनके मानसपटल-पर इस बातकी स्मृति बनी होगी कि एक ऐसी छोटी बच्चीका व्यवहार, जो इतनी पीड़ित और धृष्ट थी, दैवत्वसे कितना दूर हो सकता है। उसकी धृष्टता, उसका क्रोध, उसकी अनुशासन-हीनता, उसका जंगली जैसा आक्रोश उसके मां-बापके स्वाभाविक किंतु भ्रामक स्नेहसे दूर नहीं हो सका था। स्थिति दिनों-दिन बिगड़ती जा रही थी।

इस निराशाजनक वातावरणमें, शीतल पवन के झोंकेकी भांति, एक गतिशील तरुण व्यक्ति, कुमारी सुलीवान, का प्रवेश हुआ, जो बोस्तनमें अंधोंके एक विख्यात स्कूलसे आयी हुई एक शिक्षिका थीं। हेलनके मां-बापने अलेक्जैण्डर ग्राहम बेलसे परामर्श किया, जो अपनी बधिर

पत्नीको सुननेमें समर्थ बनानेके लिये एक उपकरण तैयार करनेके सिलसिलेमें किये गये अपने प्रयासोंके फलस्वरूप टेलिफोनके आविष्कारक बन गये। डा. वेलकी सलाहसे ही श्री केलरने अपनी बच्चीके लिये बोस्टनसे एक शिक्षिकाको बुलाया।

हेलन केलरने कहा है कि कुमारी सुलीवान जिस दिन आयीं, वह उनके जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण दिन था। २० वर्षकी आयुवाली उस शिक्षिकाने, जो स्वयं भी अंशतः अंधी थीं, उसी दिन बच्ची हेलेनकी हथेलीपर एक-एक अक्षर रख-रखकर शब्दोंका वर्णन्यास सिखाना प्रारंभ कर दिया। कुछ ही महीनोंमें हेलनने ८०० शब्द सीख लिये और लिपि तथा ब्रेल प्रणालीकी सहायतासे लिख सकनेमें समर्थ हो गयी। शीघ्र ही, अमेरिका भरमें हेलन केलरकी कहानी गूंज उठी। उनकी शैक्षिक प्रगतिकी ओर सारे देशकी उत्सुक आंखें लगी थीं। उसने हेलनकी प्रशंसा करते हुए, उसे 'विदुषी'तक कहा। कुमारी सुलीवानने, जिनकी उत्कृष्ट सफलता, हेलनकी सफलताको छोड़कर अन्यथा अद्वितीय है, सोनेके समयको छोड़कर अपना सारा शेष समय अपनी शिष्याके साथ व्यतीत किया।

रात-दिन अथक परिश्रमके द्वारा और एक शब्दका एक साथ कई घण्टेतक अभ्यास करके, हेलनने आगे बातचीत करना सीखा। फिर, बहुत समय बाद उन्होंने श्रोता-समूहोंके समक्ष भाषण करनेका भी अभ्यास कर लिया। यह काम कितना असंभव था, इसका केवल तभी पता लगाया जा सकता है, जब यह याद रखा जाय कि हेलनने कभी भी अपना या किसी दूसरे-का स्वर नहीं सुना था और न सुन ही सकती थी। बोलते समय उनके स्वरमें अकस्मात् असामान्य रूपसे तीव्रता आनेकी संभावना सदैव रही, किंतु जब हम यह कल्पना करते हैं कि वह प्रारंभमें एक सार्थक शब्द भी नहीं जानती थीं तो यह समझना आसान हो जाता है कि उन्होंने मानवके लिये संभव, पूर्ण सफलता कैसे प्राप्त कर ली थी।

किंतु हेलनको अंग्रेजीके ज्ञानसे ही संतोष नहीं हुआ। उन्होंने लैटिन, फ्रेंच और जर्मन भाषाएं भी सीखनी प्रारंभ कर दीं। (आजकल वह तीन भाषाओंमें पत्र-व्यवहार करती हैं।) उनके और उनकी शिक्षिका कुमारी सुलीवानके ८ वर्षके अथक प्रयासका परिणाम यह हुआ कि वह हारवर्ड विश्वविद्यालयके महिला कालेज, रेडक्लिफ, से स्नातककी उपाधि प्राप्त करनेमें सफल रहीं। रेडक्लिफमें अपनी शिक्षाके द्वितीय वर्षके अंतमें, उन्होंने अपनी पहली पुस्तक—"दि स्टोरी आफ माई लाइफ"—लिखी। इस पुस्तकने उन्हें विश्वभरमें एक अपूर्व ख्याति प्रदान की।

उसके बाद उनकी अन्य पुस्तकें सामने आयीं, जिनमें 'दि वर्ल्ड आई लिव इन,' 'आउट आफ दि डार्क', 'माई रिलिजन', 'मिडस्ट्रीम', 'हेलन केलर्स जर्नल', और 'लेट अस हैव फेथ' नामक पुस्तकें सम्मिलित थीं। उन्होंने अमेरिकाकी प्रमुख पत्रिकाओं, जैसे 'अटलांटिक', के लिये भी लेख लिखे हैं। वह एक साधारण टाइपराइटर या 'ब्रेल राइटर' का प्रयोग करती हैं, किंतु उन्हें लिखनेमें स्वभावतः देर लगती है, क्योंकि वह अपने टाइप किये हुए लेखको पढ़ महीं सकतीं।

हेलन केलरके संबंधमें सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि विकट असमर्थताके बावजूद उन्होंने अपने जीवनको अत्यंत पूर्ण और संपन्न बना रखा है। संगीत (जिसका आनंद वह स्पंदनोंद्वारा लेती हैं), कविता, साहित्य और कलाओंमें उनकी अतीव रुचि है। वह सिनेमा या नाटक देखने जाती हैं; उस समय उनके साथ एक व्यक्ति होता है, जो उसके हाथपर संकेत द्वारा उन्हें

कथानक सुनाता है। उनकी गंध पहचाननेकी क्षमता भी अद्भुत है। वह वास्तुशिल्पिक कलाकृतियोंका आनन्द उन्हें हाथसे स्पर्श करके लेती हैं।

जब वह फ्लोरेंस गयी थीं, तो उनके लिये ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि वह वहांपर माइकेल ऐंजलो द्वारा निर्मित मूर्तियोंको उनपर हाथ फेरकर देख सकें। मूर्तिकार जी. डेविड्सनने, जो उस समय वहां उपस्थित था, कहा कि उसने इन मूर्तियोंको उतनी अच्छी तरह पहले कभी भी नहीं देखा जितनी अच्छी तरह उनपर हेलनद्वारा हाथ फेरते समय देखा था।

हेलन केलर स्पर्श-जगत्में रहती हैं। वह न केवल जड़ पदार्थोंको छूकर पहचान लेती हैं, बल्कि सजीव वस्तुओंको भी छूकर पहचान लेती हैं। वह मित्रों और परिचितोंके चेहरोंको ढूंढ़ निकालती हैं। वह किसी व्यक्तिके गलेपर दो-एक स्थानोंको छूकर यह भी बता सकती हैं कि वह व्यक्ति जिससे बात कर रहा है वह अमेरिकाके किस भागका निवासी है।

उनका कहना है कि किसी व्यक्तिके चरित्रका पता चेहरेकी अपेक्षा हाथोंसे अधिक अच्छी तरह और तत्काल चल जाता है। न्यूयार्कके एक होटलमें एक साक्षात्कारके अवसरपर परिचय कराते समय हैरी ट्रूमैन (जो उस समय अमेरिकाके वाइस-प्रेसिडेण्ट थे) उनके व्यक्तित्वसे इतने प्रभावित हुए कि बात करते समय उनकी आंखोंमें आंसू भर आये। बादमें केलरने वहांपर उपस्थित अन्य व्यक्तियोंसे कहा था: “उनका (ट्रूमैनका) हाथ खुला है। उनकी अंगुलियोंमें कोई मोड़ नहीं।”

हेलन केलर प्रेसिडेण्ट ग्रोवर क्लीवलैण्डके समयसे लेकर अबतकके सभी अमेरिकी प्रेसिडेण्टोंसे परिचित हैं। १८९०में, हेलनके नामपर एक जहाजका नामकरण हुआ था। बचपनसे लेकर अबतक उन्हें संसारके अनेक महान् पुरुषोंसे परिचित होनेका सौभाग्य मिला है, जिनमें टैगोर, आइस्टीन, वर्नार्ड शा और मार्क ट्वेन भी सम्मिलित हैं। उनके लिये एलेन टैरीने अनेक प्रिय भूमिकाओंका अभिनय किया, जिनके रसास्वादनकी अभिव्यक्ति हेलनने अपने अधरों और चेहरेकी भावभंगिमाओंद्वारा की। केरुसो और चैलियापिनने विशेष रूपसे हेलनके लिये गीत गाये। अनेक सरकारोंने (जिनमें भारत-सरकार भी है) और विश्वविद्यालयोंने (जिनमें दिल्ली-विश्वविद्यालय भी सम्मिलित है) उन्हें सम्मानित किया है।

कुछ वर्ष हुए, वह ५ महीनेकी ४० हजार मील लम्बी विश्व-यात्राके दौरान भारत आयी थीं। अपने निकट अनुभवोंसे यह जानते हुए भी कि इसका कितना महत्त्व हो सकता है, वह विश्वभरमें शारीरिक दृष्टिसे असमर्थोंके कल्याणार्थ अथक परिश्रम कर रही हैं। वह उत्साही क्रिश्चियन हैं और व्हिटमैनके शब्दोंमें यह विश्वास करती हैं कि “हमें भ्रातृत्वके एक सूत्रमें सम्बद्ध होना चाहिये।”

सम्भवतः, हेलन केलरकी आत्माकी अमिट प्यास उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ ढंगपर व्यक्त हुई है: “मेरा जीवन सुखी रहा है, क्योंकि मुझे अद्भुत मित्र मिले और मेरे पास करनेके लिये प्रचुर और रुचिकर कार्य हैं। मुझे शायद ही कभी अपनी असमर्थताओंपर सोचना पड़ता हो; उनके कारण कभी मैं उदास नहीं होती। सम्भवतः कभी-कभी एक उत्कण्ठा हो आती है, किन्तु वह पुष्पोंके बीच हवाके हल्के झोंकेकी भांति अस्पष्ट होती है। झोंका गुजर जाता है और पुष्प सन्तुष्ट हो जाते हैं।”

(U.S.I.S. के सौजन्यसे)

पनडुब्बी

—श्री भूदत्त

जब पहले-पहल पनडुब्बी बनानेके प्रयास हुए तो किसीने यह सोचा भी न था कि एक दिन यह युद्धमें काम आनेवाला अति प्रभावशाली साधन बन जायगी। एक कथानुसार, यूनानके राजा सिकन्दरने शीशेके ढोलमें बैठकर गोता लगाया था। ह्वेलको देखनेकी इच्छाके कारण उसे ऐसा करनेकी सूझी थी। अन्य कितने ही प्रयास या तो कौतूहलवश या केवल यह सिद्ध करनेके लिये हुए कि ऐसा किया जा सकता है।

इंगलैंडके साईमन (Symon) नामक व्यक्तिको पनडुब्बी बनानेवालोंके पूर्वजोंमें माना जाता है। इन्होंने डांडोंसे चलनेवाली नावको जलनिरोधक चमड़ेसे ढककर पानीके अंदर उतारा था। डांड चमड़ेमें किये गये छिद्रोंसे बाहर पानीमें निकलते थे, और छिद्रोंसे होकर पानी नावमें न घुस जाय इसलिये इन छिद्रोंको ग्रीजसे भर दिया था। इन डांडोंद्वारा नावके अंदर बैठा हुआ व्यक्ति पनडुब्बीको थोड़ी दूरतक चला सकता था। पनडुब्बीको डुबानेके लिये चमड़ेकी मशकें जिनका मुंह पानीमें खुल सकता था पानीसे भर दी जाती थीं और इसे ऊपर उठानेके लिये उन्हें दबाकर खाली कर दिया जाता था। आधुनिक पनडुब्बियोंमें भी लगभग यही सिद्धांत काम करता है।

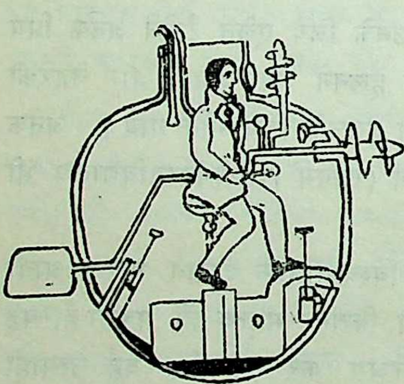

लेकिन पनडुब्बीकी सहायतासे शत्रुके जहाजोंको डुबानेका विचार सबसे पहले अमेरिकाके डेविड बुशनेल (David Bushnell) नामक एक गणितज्ञ को आया। उसने एक अण्डाकार पनडुब्बी बनायी जिसमें केवल एक व्यक्ति बैठ सकता था। वह स्वयं ही उसका चालक भी होता था। इसकी ऊपरी सतहपर छिद्र करनेका यंत्र लगा था जिसे घुमाकर अंदर बैठा व्यक्ति समुद्री जहाजके नीचेकी सतहमें छिद्र करके उसमें विस्फोटक पदार्थ भर सकता था।

बुशनेलकी पनडुब्बीको तो अधिक सफलता नहीं मिली किंतु इससे यह सिद्ध हो गया कि पनडुब्बी युद्धमें उपयोगी हो सकती है। अमेरिकाकी क्रांतिके शीघ्र बाद ही तेलके इंजिनोंसे चलनेवाली पनडुब्बियां बनने लगीं, किंतु इनकी पूरी सार्थकता पहले महायुद्धमें ही सिद्ध हुई। यह सच है कि युद्धके अंदर हार जर्मनीकी ही हुई किंतु उसने ब्रिटेनके तटवर्ती समुद्रकी ऐसी नाकेबन्दी की थी कि उसकी नाकमें दम आ गया था। ३० जनवरी १९१५ को जर्मनोंने इंगलैंडके नौ जहाजोंको डुबाया था। दिसंबर १९१६तक यह संख्या १६७ तक पहुंच गयी और जनवरी १९१७ तक कुल मिलाकर १८० जहाज डुबाये गये। कहा जाता है कि ब्रिटेनके तटसे यात्रापर निकलनेवाले चार जहाजोंमेंसे एक कभी भी वापस नहीं पहुंचा।

इसी प्रकार द्वितीय महायुद्धमें, जब कि पनडुब्बियोंके अस्तित्वका पता लगानेके यंत्र भी बन चुके थे, जर्मनीने मित्र राज्योंकी नौसैनिक शक्तिको बहुत ही हानि पहुंचायी। १९३६ के

आरंभमें जर्मनीके पास ९० पनडुब्बियां थीं। यह सब स्नोरकल (Snorkle) युक्त थीं जिसके अंदरसे होकर हवा पानीमें डूबी पनडुब्बीतक पहुंच सकती थी। पनडुब्बीमें तेलके इंजिनको हवा बिना नहीं चलाया जा सकता। इसलिये पुरानी पनडुब्बियोंको गोता लगानेके बाद बैट्रियोंका सहारा लेना पड़ता था। बैट्रीसे चलानेसे पनडुब्बियोंकी गति कम हो जाती है और बैट्रियोंकी शक्ति बहुत समयतक काम नहीं दे सकती। इसलिये स्नोरकलके प्रयोगसे पनडुब्बीके पानीमें डूबे रहनेपर भी तेलके इंजिनको काममें लाया जा सकता है। स्नोरकल एक तीससे चालीस फुट लंबी नाली होती है जिसमेंसे होकर हवा इंजिनतक पहुंच सकती है। अंग्रेजोंको इस बातका अंदाजातक न था। वे यह भी न जानते थे कि जर्मनीके पास ऐसे टारपीडो हैं जो पानीमें बिना किसी प्रकारकी लीक या बुलबुले छोड़े ही विद्युत-शक्तिद्वारा चल सकते हैं। इन सब नये आविष्कारोंकी सहायतासे जर्मन नाविक शक्तिको बहुत सफलता प्राप्त हुई। अमेरिकाने भी पनडुब्बियोंकी ही सहायतासे जापानके विरुद्ध विजय प्राप्त की।

इन उपयोगोंके कारण थोड़े ही समयमें पनडुब्बीका बहुत विस्तार हुआ। उसकी भीतरी और बाहरी रूपरेखा ही बदल गयी। आधुनिक पनडुब्बी दो खोलोंसे बनी होती है। बाह्य खोल इसकी पानीके संपर्कमें रहनेवाली जलनिरोधक सीमा है। इसका ऊपरी भाग वाल्व, पाईप इत्यादि अन्य अनेक पुर्जोंको ढकनेका काम देता है। इसीके ऊपर एक सिलेण्डरके आकारका भाग होता है जिसे फेयर वाटर (fair water) कहा जाता है। यह पेरिस्कोप, ब्रिज इत्यादि-को परिबद्ध करता है। पेरिस्कोप एक ३० से ४० फुटतक लंबा यंत्र होता है जिसकी सहायतासे इतनी ही गहराईतक डूबी पनडुब्बीमें बैठा व्यक्ति समुद्री जहाजों और हवाई जहाजोंको देख सकता है।

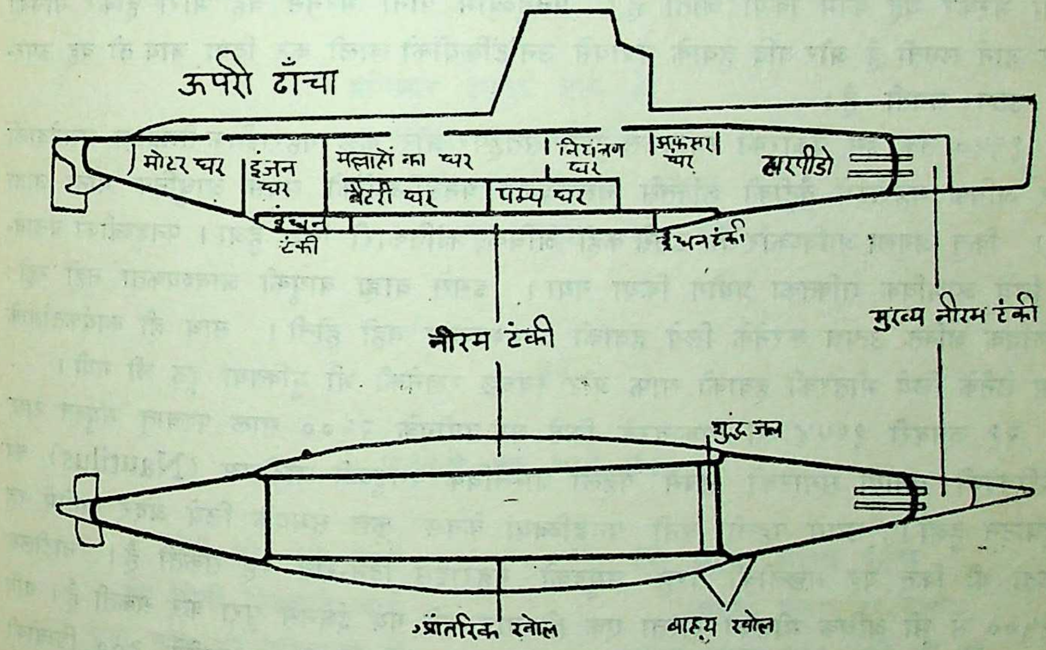
ऊपरी ढाँचा
मोटर घर
इंजन घर
मल्लाहों का घर
नियंत्रण घर
अफसर घर
टारपीडो
बैटरी घर
पम्प घर
ईंधन टंकी
ईंधन टंकी
नीरम टंकी
मुख्य नीरम टंकी
शुद्ध जल
आंतरिक खोल
बाह्य खोल

आधुनिक - पनडुब्बी

भीतरी खोल बाहरी खोलके साथ-साथ पनडुब्बीके लगभग सारे फैलावमें होता है। पानी-

का दबाव सहनेवाला खोल इन दोनों खोलोंसे बना होता है। भीतरी खोलके अंदरके स्थानमें मशीनोंका कमरा, टारपीडो, कप्तानका कमरा, नाविकोंके रहनेके स्थान इत्यादि होते हैं। दो खोलोंके बीचके स्थानमें पानी और तेल रखनेकी टंकियां होती हैं।

पनडुब्बीको डुबाने या तैरानेकी युक्ति यूनानी वैज्ञानिक आरकेमिडिस (Archimedes) के सिद्धांतपर आधारित है। उसे अपने नहानेके टबमें बैठे-बैठे एक दिन यह विचार आया कि कोई वस्तु पानीमें तभी तैर सकती है जब कोई शक्ति उसे पानीसे ऊपर ढकेले। यदि वस्तुका भार इस शक्तिसे अधिक होगा तो वह डूब जायगी और अगर उससे कम या बराबर होगा तो तैरेगी। अपने चिंतनके बाद वह इस नतीजेपर पहुंचा कि यह शक्ति उस पानीके भारके बराबर है जिसका स्थान कोई वस्तु पानीमें डालनेपर घेर लेती है। जब पनडुब्बी तैरती है तो उसका पूरा भाग पानीमें नहीं होता, अर्थात् वह कम पानीके स्थानको घेरती है। इसलिये ऊपरको ढकेलनेवाली शक्ति कम होनेके कारण पनडुब्बीका भार भी कम रखा जाता है। परंतु डुबानेके लिये भार बढ़ाना पड़ता है क्योंकि उस अवस्थामें वह अधिक पानीके स्थानको घेरेगी, अतः पनडुब्बीका भार इस पानीके भारसे अधिक होना चाहिये। दोनों खोलोंके बीच बनी टंकियोंमें पानी भरकर यह काम किया जाता है। पनडुब्बीमें पानी भरनेसे वह भारी होकर नीचेकी ओर जाने लगती है और यदि हवाके दबावसे उन टंकियोंको खाली कर दिया जाय तो वह ऊपरको उठने लगती है।

१९५० तक इस प्रकारकी स्नोरकल-युक्त सतहपर और कुछ गहराईतक तेलद्वारा चलनेवाली और अधिक गहराईमें बैट्रीकी शक्तिसे चलनेवाली पनडुब्बियोंको सबसे आधुनिक माना जाता था। किंतु अगला आविष्कार तो उससे कहीं अधिक क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। पनडुब्बीको चलानेके लिये आणविक शक्तिका प्रयोग किया गया। इससे बाह्य वायुकी आवश्यकता नहीं रही: आणविक शक्ति उत्पन्न करनेके लिये हवाकी आवश्यकता नहीं होती। साथ ही कार्यकर्ताओंके सांस लेनेके लिये भीतरकी हवाको साफ और स्वच्छ रखनेकी भी युक्तियां ढूंढ़ ली गयीं।

२१ जनवरी १९५४ को सिकन्दरके किये गये प्रयोगके २२०० साल पश्चात् संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी बनायी संसारकी सबसे पहली वास्तविक पनडुब्बी नाटीलस (Nautilus) का उद्घाटन हुआ। उससे पहली बनी पनडुब्बियां केवल कुछ समयके लिये अंदर पानीमें रह सकती थीं किंतु यह मछलीकी तरह समुद्रकी गहराईमें दिन-रात रह सकती है। नाटीलस ६२५०० से भी अधिक मीलका रास्ता एक ही बार भरे गये ईंधनसे पूरा कर सकती है। यदि इसे यह रास्ता तेलके इंजिनसे पूरा करना होता तो तेलसे भरे मालगाड़ीके ३०० डिब्बोंकी आवश्यकता होती। इसी पनडुब्बीद्वारा पृथ्वीके इतिहासमें पहली बार उत्तरी ध्रुवपर जानेकी हिम्मत की गयी।

आणविक शक्तिसे चलनेवाली पनडुब्बीमें नाविक दलके आरामकी भी सामग्री होती है। तेलके भंडार और तेलके इंजिनोंको हटाकर खाली किये गये स्थानपर आईसक्रीमकी मशीनसे लेकर लाईब्रेरी, टेलिविजन और बड़े चित्रपटवाले थियेटरतकका प्रबंध होता है।

एक बार गोता लगानेके बाद नाविकगण एक नये ही संसारमें पहुंच जाते हैं। गहरे पानीमें चारों ओर अंधेरा और शांति छायी होती है, न लहरोंकी ध्वनि और न जीव-जन्तुओंकी आवाज। पनडुब्बी बिना किसी प्रकारकी नवीनताके चलती ही रहती है, केवल आलोंकी सुइयोंको ही इसकी गतिका भेद ज्ञात होता है।

***

दो गीत

(१)

टूटे नहीं, टूटे नहीं
यह तार मांके प्यारका टूटे नहीं, टूटे नहीं ।

प्रिय देशमाता धन्य है
ऐसा न कोई अन्य है,
अपनी धराके रत्नको
कोई, कभी लूटे नहीं ।

पावन धरा बरदायिनी,
सबके सदा मनभावनी,
फूले फले सब छोर ये,
हमसे कभी छूटे नहीं ।

बलिहार इसपर प्राण हैं,
सर्वस्व सब बलिदान है,
संकल्पके मंगल कलश,
फूटे नहीं, फूटे नहीं ।

(२)

झरने-से बन जायें हम।

सुनेमें भी गाते जायें
हँस मोती बिखराते जायें ।
आस पास की हरियाली में
सुन्दर फूल खिलायें हम ।
झरनेसे बन जायें हम ।।

जैसे झरना झरता रहता
धारामें बहता ही रहता
सरल सहज गति वैसी ही हो,
कहीं नहीं रुक जायें हम ।
झरने-से बन जायें हम ।।

शीतल धवल धारसे सुन्दर
मधुर रागिनीसे हों मनहर,
कठिन राहकी बाधाओंके
पत्थरसे टकरायें हम ।
झरने-से बन जायें हम ।।

—सुमित्राकुमारी सिन्हा

रूसी कथा :

अनु : श्री रेवा चटर्जी

मूढ़ या चतुर सुजान ?

एक था किसान। उसके तीन बेटे थे। किसानके पास थी कुछ जोत जमीन और एक छोटा-सा घर। उसके दिन सुख-दुःखमें व्यतीत होते थे।

एक वर्ष उसके खेतमें अच्छी फसल हुई। सुनहली बालियोंपर धूप चमकती तो लगता सोना चमक रहा है। हवाके झोंकोंसे दानेभरे पौधे डोलते और ख़ुशीसे डोलता किसानका मन।

रोज सुबह पक्षियोंके कलरवसे भी पहले किसान उठकर खेतोंमें चला जाता, अपने फूले-फले खेतोंको देखता, ओसके कणोंसे उसके हाथ-पांव भीग जाते और कच्चे अनाजकी सोंधी ख़ुशबू किसानको मतवाला बना देती।

रोजकी तरह उस दिन भी किसान खेतोंमें गया, पर खेतोंके पास पहुंचते ही सिरपर हाथ धरकर बैठ गया––"हाय, हाय, यह क्या हुआ ? मैं तो लुट गया।" खेतके एक हिस्सेमें सुनहली बालियों समेत अनाजके पौधे जमीनपर लौट रहे थे। किसीने उन्हें पैरोंसे कुचल दिया था।

किसान घर लौटा, चेहरा उदास, मुंह लटका हुआ। तीनों बेटोंने एक ही साथ पूछा–– "आज क्या हो गया बापूजी, इतने उदास क्यों हो ?"

किसानने लड़कोंको सारी घटना सुना दी, फिर कुछ देर रुककर बोला, "बच्चो ! देखो, आज ही से खेतोंपर पहरा देना होगा, नहीं तो हम कहींके न रहेंगे। मैं तो बूढ़ा हो गया हूं, यह काम तुम तीनों भाइयोंको ही करना पड़ेगा।"

किसानके तीनों बेटे जवान थे। जोश उनकी नसोंमें बहता था। वे जानते ही न थे कि डर किसे कहते हैं। पिताकी बात सुनकर उत्साहित हो तीनोंने हामी भर दी।

सांझकी वेला, थके-मांदे पक्षी कलरव करते हुए अपने-अपने घोंसलोंमें लौटने लगे। संध्या-रानी अपनी धूमिल चुनरी चारों ओर फैलाने लगी। खाना खाकर बड़ा बेटा खेतपर पहरा देने चला।

धीरे-धीरे संध्याकी धूमिल चुनरीका रंग गहरा होने लगा। चारों ओर निस्तब्धता छाने लगी। कहीं कोई आदमी तो क्या, जानवरतक नजर न आता था। रात बढ़ने लगी। ठण्डी हवा चल पड़ी। खेतोंकी आलपर बैठे किसानके बेटेने अंगड़ाई ली। आंखोंमें नींद उतर आयी। वह क्या करता ? अपने ओवरकोटको अच्छी तरहसे लपेटकर वहीं घास-फूसके ढेरपर लेट गया।

दूसरे दिन किसान मुंह-अंधेरे खेतोंमें पहुंचा। मनमें कुछ आशा थी। उसके लायक बेटेने चोर पकड़ लिया होगा। पर उसकी आशापर पानी फिर गया। देखा, फिर किसीने उसके खेतको तहस-नहस कर दिया था। बेटेने कहा, "बाप रे ! रात कितनी ठण्ड थी। एक पलके लिये भी तो आंखें न मूंद सका। कहां ? खेतोंमें तो कोई भी नहीं आया।"

दूसरे दिन मझले बेटेकी बारी थी। सांझ होते ही वह भी खेतोंमें गया। रात बढ़ने

लगी। अकेला कहांतक जागता ? खेतोंकी मुण्डेरपर उसने पैर फैला दिये। देखते ही देखते निद्रादेवीने उसे अपनी सुखद गोदीमें समेट लिया।

दूसरे दिन भी फसलकी वही अवस्था देख किसानने सिर पीट लिया, पर क्या करे, दुर्भाग्य-की मारको तो सहना ही पड़ता है।

छोटा बेटा ईवान बुद्धू था। एक काम कहनेपर दूसरा करता। कुछ चीजें लानेको कहो तो वह और ही कुछ उठा लाता। अब वह वहांपर जायगा और चोर पकड़ेगा ? हा! हा!! हा!! दोनों बड़े भाई तो हंसते-हंसते लोट-पोट हो गये। पर ईवान अपनी बातपर डटा रहा—"देखो, मैं पकड़ पाता हूं या नहीं।"

बुद्धू ईवानने एक रोटी अपनी जेबमें रख ली और हाथमें ले ली एक मोटी रस्सी। संध्या समय जाकर अपने खेतकी मुण्डेरपर बैठ गया। धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी। वातावरण शांत हो गया। समय बीतता गया। उसे भी नींद आने लगी। उसने चट जेबसे रोटी निकाली और टुकड़े करके मुंहमें डालने लगा। गिरजाघरकी घड़ीमें घण्टे बजते गये।

टन् टन् टन् .....घड़ीने बारहके घण्टे बजाये। अचानक दूर कहींसे 'शोंऽऽ शोंऽऽ' की आवाज आने लगी। सुनते ही ईवान उठ खड़ा हुआ और इधर-उधर ताकने लगा। देखा, एक बहुत ही बड़ा घोड़ा पौधोंको तहस-नहस करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है। उसकी गर्दन के बाल सुनहले थे जो रातमें भी चमक रहे थे। उसकी नाकसे धुंआं निकल रहा था और कानसे निकल रही थीं आगकी लपटें। खेतमें घुसते ही वह गर्दनके बालोंको फैलाकर सोने जैसी कच्ची बालियां चावसे खाने लगा।

ईवान बहुत ही धीरेसे उठा.....कीड़े-मकोड़ोंतकको आहट न पहुंची। घोड़ेके पास पहुंचकर उसने अपने सधे हाथोंसे रस्सीका फंदा उसके गलेमें डाल दिया। फिर आव देखा न ताव, झट कूदकर उसपर सवार हो गया और उसके गर्दनके बालोंको कसकर पकड़ लिया।

अचानक पकड़े जानेपर भयभीत होकर घोड़ा खूब उछल-कूद मचाने लगा। ईवानको अपनी पीठपरसे गिरानेके लिये वह तरह-तरहकी हरकतें करने लगा। कभी पिछले पांवोंको उठाता तो कभी सामनेकी टांगोंको जोरसे झटकता और कभी इधर-उधर भागने लगता। पर ईवान तो टससे मस न हुआ। आखिर हारकर घोड़ा खड़ा हो गया और कहने लगा—"आज मुझे छोड़ दो, फिर कभी तुम्हारे खेतोंमें नहीं आऊंगा। और सुनो! यह आसमान, इसके चमकते तारे, पेड़-पौधे सभीको साक्षी बनाकर कहता हूं कि जब भी तुम मुसीबतमें पड़कर मुझे पुकारोगे तो मैं उसी क्षण तुम्हारी सहायताके लिये आ जाऊंगा।"

ईवानने कहा—"ठीक! पर तुम होगे कहां जो तुम्हें बुलाऊंगा ?"

"देखो, किसी भी बड़े मैदानमें खड़े होकर पुकारना 'बादामी! बादामी!!' मैं उसी समय आ उपस्थित होऊंगा।"

ईवानने उसे छोड़ दिया।

घर आकर उसने सारी कहानी अपने पिता व भाई-भाभियोंको सुनायी पर किसीको उसकी बातोंपर विश्वास न हुआ।

परंतु उस घटनाके बाद खेतोंकी फसल कोई खराब न करता था। बूढ़े किसानकी उदासी दूर हुई, आंखोंकी चमक लौट आयी।

दिन बीतने लगे।

*

एक बार देशके राजा 'जार'ने एक विचित्र घोषणा की..... "संभ्रांत राजकर्मचारी, योद्धा, वणिक, किसान, धनी, गरीब सभी सुनें..... सुन्दरी राजकुमारी हेलेना का विवाह है। राजकुमारी मीनारके ऊपर झरोखेमें बैठी होगी। उसके हाथमें एक हीरेकी अंगूठी होगी। जो कोई घोड़ेपर सवार होकर, छलांग लगाकर उसके हाथसे अंगूठी उतार लानेमें सफल होगा, राजकुमारी उसीके गलेमें वरमाला डालेगी।"

गांव-गांवमें घोषणा की गयी।

निश्चित दिन राजभवनके प्रांगणमें तिल धरनेकी भी जगह न रही। आसपास, सड़कोंपर, मैदानमें चारों तरफ भीड़ ही भीड़। कई राजकुमार व वीर सैनिक अपना भाग्य आजमाने आये थे पर अधिकतर लोग तमाशा देखने आये थे। जो लोग अपना भाग्य आजमाने आये थे उनमेंसे किसीकी भी हिम्मत न पड़ी कि आगे बढ़कर कूदनेकी चेष्टा करे.... कुछ तो असंभव जानकर लौटने ही लगे

ईवानके दोनों भाई तमाशा देखने आये थे। चलते समय ईवानने उनसे बहुत विनती की, गिड़गिड़ाया कि मुझे भी साथ लेते चलो, पर वे न माने..... "चल, चल, इतनी भीड़में तू कहीं खो गया तो हमारी मुसीबत ; न बाबा, झमेला कौन मोल ले। जा, चलकर चूल्हेके पास बैठ, देख, आग कहीं बुझ न जाय।"

दोनों भाई सज-धजकर चले गये। तब ईवानने अपनी भाभियोंसे कहा—"मुझे एक टोकरी दो, तालाबके किनारेसे गुच्छियां बटोर लाऊंगा, रातको मजेसे खायेंगे।"

टोकरी लेकर ईवान मैदानमें चला गया। वहां पहुंचकर सीटी बजाकर पुकारने लगा—"बादामी! बादामी!!" पुकारनेकी देर थी कि आकाशको कंपाता हुआ, अपने सोने-चांदी जैसे बालोंको फैलाकर घोड़ा आ उपस्थित हुआ। ईवानने उसे अपना दुखड़ा सुनाया—"देखो! राजधानीमें आज कैसा धूम-धड़क्का है, परंतु मेरे भाई मुझे वहां नहीं ले गये।"

"ओह! इतनी-सी बात?" घोड़ेने कहा, "तुम एक काम करो, मेरे बायें कानमें घुसकर दाहिनेसे बाहर निकल आओ।"

ईवानने ऐसा ही किया। पर यह क्या? उसकी फटी कमीज और निकर कहां चली गयी? यह चमचमाते कपड़े, यह सोनेका ताज कहांसे आ गया? वह समझ न सका कि आखिर हुआ क्या? ईवानके बदले एक सुन्दर राजकुमार खड़ा था।

इधर राजधानीमें सभी निराश होकर लौटनेवाले थे। कारण किसीका साहस न हुआ कि आगे बढ़कर कूदनेकी कोशिश करे। इतनेमें लोगोंने देखा, तूफानी गतिसे एक घोड़ा दौड़ा चला आ रहा है और उसपर बैठा है एक सुन्दर राजकुमार। सूर्यकी उज्ज्वल किरणोंमें उसके कीमती कपड़े चमचमा रहे थे।

घोड़ेने मीनारके पास आते ही छलांग लगायी और तेजीसे ऊपरकी ओर चढ़ने लगा। दर्शक सांस रोके टकटकी लगाये उधर ही देख रहे थे—"बस, थोड़ी-सी कसर है, अब केवल तीन हाथ बाकी है"—पर नहीं, घोड़ा नीचे उतरने लगा और जमीनपर पहुंचते ही पलक झपकते कहीं गायब हो गया।

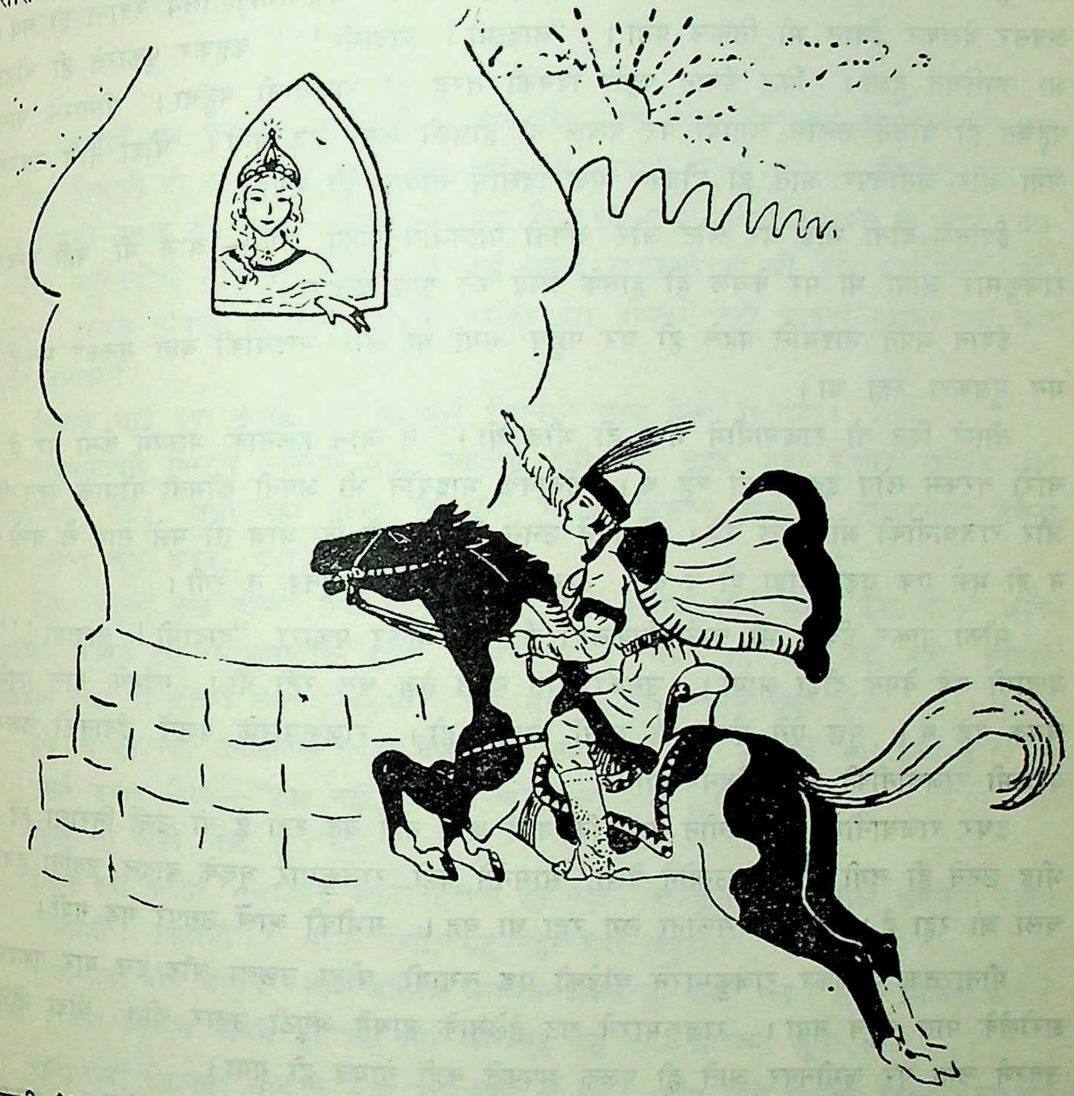

ईवानको घोड़ेने उसी मैदानमें जा उतारा। फिर घोड़ेके दाहिने कानसे घुसकर बांयेंसे बाहर निकलकर वह पहलेसा ईवान बन गया। घर लौटते समय तालाबके किनारेसे जल्दी-जल्दी गुच्छियां बटोर लाया। गुच्छियोंको देखकर उसकी दोनों भाभियां बहुत चिढ़ गयीं—"छिः, कैसी गन्दी गुच्छियां लाये हो, इन्हें खायेगा कौन?"

ईवानके दोनों भाई घर लौट आये और अपनी-अपनी पत्नियोंको सुबहवाली घटना सुनाने लगे—"वाह! राजकुमार क्या था साक्षात् देवदूत था—केवल तीन हाथकी ही कसर थी। वह राजकुमारीतक न पहुंच पाया। हाय, कैसा दुर्भाग्य!"

ईवान चूल्हेके पास चुपचाप बैठा था। भाइयोंकी बात सुनकर एकाएक पूछ बैठा—"अच्छा! वह राजकुमार मैं ही तो नहीं था?"

भाइयोंने उसे डांटते हुए कहा—"क्या पागल है, कहीं नशेमें तो नहीं है ? जा, जा, जाकर सो रह।"

दूसरे दिन प्रातः होते ही ईवानके दोनों भाई घोड़ोंपर राजधानीके लिये रवाना हो गये। अवसर देखकर ईवान भी निकल पड़ा। "बादामी ! बादामी !!" कहकर पुकारते ही घोड़ा आ उपस्थित हुआ। फिर ईवान पहले दिनकी तरह ही राजधानी पहुंचा। मीनारके पास पहुंचते ही घोड़ेने छलांग लगायी पर केवल दो हाथकी कसर रह गयी। घोड़ा नीचे उतरने लगा और जमीनपर आते ही दौड़कर एक दिशामें गायब हो गया।

ईवानके दोनों भाई घर लौटे और अपनी पत्नियोंसे कहने लगे—"आज भी वही सुन्दर राजकुमार आया था पर केवल दो हाथके लिये रह गया बेचारा।"

ईवान अपने भाइयोंसे पहले ही घर पहुंच गया था और भाइयोंकी बात सुनकर मन-ही-मन मुसकरा रहा था।

तीसरे दिन तो राजधानीमें भीड़ ही भीड़ थी। न जाने हेलेनाके भाग्यमें कैसा वर है। चारों तरफसे लोग इकट्ठे हो रहे थे। ईवानके भाइयोंने भी अपनी कीमती पोशाक पहन ली और राजधानीकी ओर चल पड़े। ईवानने उनसे विनती की कि आज तो मुझे साथ ले चलो। न हो मुझे एक बूढ़ा घोड़ा ही दे दो। पर उनके कानोंपर जूंतक न रेंगी।

मौका पाकर ईवान भी घरसे निकला। मैदानमें आकर पुकारा, "बादामी ! बादामी !!" बादामी बड़े वेगसे दौड़ा आया। उसकी सांस बहुत तेज चल रही थी। गर्दनके बाल धूपमें चमक रहे थे। पूंछ ऐसे फैली थी मानों बादल हो। राजकुमारके वेशमें ईवानको लेकर बादामी राजधानीकी ओर दौड़ने लगा।

इधर राजधानीमें जब लोगोंने देखा कि कोई आगे नहीं बढ़ रहा है तो उन्हें निराशा हुई। भीड़ छंटने ही लगी थी कि उन्होंने देखा, सामनेसे वही राजकुमार धूलके बादल उड़ाता हुआ चला आ रहा है। कितना सलोना लग रहा था वह। सभीकी आंखें उसपर गड़ गयीं।

मीनारतक पहुंचकर राजकुमारने घोड़ेको एड़ लगायी, घोड़ा उछला और इस बार एकदम झरोखेके पास पहुंच गया। राजकुमारने झट हेलेनाके हाथसे अंगूठी उतार ली। घोड़ा नीचे उतरने लगा पर जमीनपर आते ही पलक झपकते कहीं गायब हो गया।

भाइयोंसे पहले ही ईवान घर पहुंचा। घर जानेसे पहले उसने अपनी उंगलीमें एक कपड़ा लपेट लिया। भाभीने उसे देखकर पूछा—"क्या हुआ है तुम्हारी उंगलीमें ?" उसने कहा, "कुछ नहीं, खेतमें काम करते हुए थोड़ीसी चोट लग गयी थी।"

ईवानके दोनों भाई घर लौटे। बड़े बिस्तारसे राजकुमारकी घटना सुनाने लगे। फिर बोले, पर आश्चर्यकी बात तो यह है कि अंगूठी लेकर वे कहां चले गये, किसीको पता भी न चला। राज्यभरमें खलबली मच गयी है।

ईवान चूल्हेके पास बैठा हुआ था। भाइयोंकी बात सुनकर बोला—"क्या तुम ठीक जानते हो कि वह राजकुमार मैं नहीं हूं ?" दोनों भाई चिढ़ गये —"चुप रह बेवकूफ ! बकवास न कर।"

ईवानने सोचा, देखूं तो सही, राजकुमारी हेलेनाकी अंगूठी कैसी है ? जैसे ही उसने अंगूठीपरसे कपड़ा हटाया कि हीरेकी चमकसे कमरा जगमगागे लगा। भाइयोंने बिना देखे ही डांटा—

"ईवान ! फिर तुम आगसे खेल रहे हो ? क्या सबको जलाकर मारनेका इरादा है ? हट जाओ वहांसे।"

सहमकर ईवानने अंगूठीपर कपड़ा लपेट लिया।

*

राजधानीमें खूब खलबली मच गयी। तीन दिन बीत गये, राजकुमार उस दिन जो गया तो फिर दिखायी ही न दिया। जारने देश-देशांतरोंमें आदमी दौड़ाये पर सब बेकार। मंत्रियोंने तरह-तरहकी सलाह दी। अंतमें उन्होंने निश्चय किया कि एक शानदार दावत दी जाय। देश-के सभी व्यक्तियोंको आमंत्रित किया जाय, तब शायद राजकुमारका भी कुछ पता चल जाय। राज्यकी तरफसे घोषणा की गयी कि जो व्यक्ति उस दावतमें नहीं आयगा उसका गला काट दिया जायगा।

ईवानके भाई क्या करते, उस महामूर्ख ईवानको साथ लेना ही पड़ा।

राजप्रासादके विस्तृत आंगनमें ओक लकड़ीसे बनी एक बहुत बड़ी मेजपर राज्यके लोग खाना खाने बैठे। सभी वहां मौजूद थे, धनी, गरीब, किसान, मजदूर। राजकुमारी हेलेना स्वयं घूम-घूमकर सबको परोस रही थी।

ईवान भीड़से कुछ हटकर एक कोनेमें अपनी फटी कमीज पहने खाने बैठा था। अतिथियोंको परोसते हुए राजकुमारीकी दृष्टि उसपर गयी। वह उस ओर बढ़ गयी, ईवानके भाइयोंने देखा तो सोचने लगे, राजकुमारी उस मूर्खको भी परोसने गयी है?"

हेलेनाने ईवानकी उंगलीपर कपड़ा देखा तो पूछा—"तुम्हारी उंगलीमें क्या हुआ है?"

उसने जवाब दिया—"कुछ नहीं, जरासी चोट लग गयी है।"

"देखूं तो कैसी चोट है?"

ईवान क्या करता? आखिर कपड़ा हटाना ही पड़ा। राजकुमारीकी अंगूठी चमचमा उठी।

"पिताजी! पिताजी!! मां! देखो, यह रही मेरी अंगूठी।"

राजा-रानी दौड़े आये। सारे अतिथि आश्चर्य-चकित हो देखने लगे। और ईवानके भाई? उनके हाथका गिलास हाथमें ही रह गया और मुंह रह गया खुलाका खुला।

राजा-रानी ईवानको आदरके साथ राजभवन ले गये। सुगंध मिले पानीसे स्नान करवाया। पहननेको जरीदार कीमती कपड़े दिये। अब उसे पहचानते किसीको देर न लगी। राजा, रानी, राजकुमारीके बीच वही अनजान सुन्दर राजकुमार खड़ा था।

राजकुमारी हेलेनाके साथ उसका विवाह हो गया। राजकुमारको ढूंढ़नेके लिये जिस दावतका आयोजन हुआ था वह और कई दिनोंतक जारी रही—सभी लोग खुश होकर राजकुमारकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर लौट गये।

अकंपित दीप

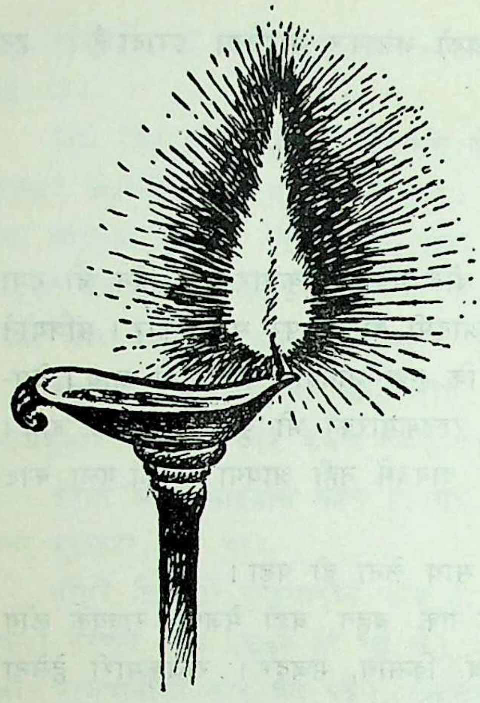

मैं अकंपित दीप प्राणोंका लिये
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा ?
बन्द मेरी पुतलियोंमें रात है,
हास बन बिखरा अधरपर प्रात है,
मैं पपीहा मेघ क्या मेरे लिये
जिन्दगीका नाम ही बरसात
सांसमें मेरी उन्नचासों पवन
यह प्रलय-पवमान मेरा क्या करेगा ?
मैं अकंपित दीप प्राणोंका लिये
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा ?

कुछ नहीं डर वायु जो प्रतिकूल है,
और पैरोंमें कसकता शूल है,
क्योंकि मेरा तो सदा अनुभव यही
राहपर हर एक कांटा फूल है,
बढ़ रहा जब मैं लिये विश्वास यह
पन्थ यह वीरान मेरा क्या करेगा ?
मैं अकंपित दीप प्राणोंका लिये
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा ?

मुश्किलें रस्ता दिखाती हैं मुझे
आफतें बढ़ना बताती हैं मुझे,
राहकी उत्तुंग दुर्गम घाटियां
ध्येय-गिरि चढ़ना सिखाती हैं मुझे,
एक भूपर, एक नभपर पांव है
यह पतन-उत्थान मेरा क्या करेगा ?
मैं अकंपित दीप प्राणोंका लिये
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा ?

—नीरज

दक्षिणकी मीरा

—श्री सुबोध

श्रीविल्लीपुत्तूर दक्षिण भारतका एक प्रसिद्ध स्थान है। वहां विष्णु भगवान्का एक पुराना और बहुत मशहूर मंदिर है। श्रीविल्लीपुत्तूर एक भक्त कवयित्री आण्डाळकी जन्मभूमि भी है। विष्णुमंदिरमें आण्डाळकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। उत्तर भारतमें जिस प्रकार मीराके पदोंका प्रचार है उसी प्रकार दक्षिण भारतमें आण्डाळके पद घर-घर गाये जाते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि आण्डाळ साक्षात् भूदेवीका अवतार थीं।

श्रीविल्लीपुत्तूरके चारों तरफ जंगल फैला था। यहांके प्राचीन वासियोंमें मल्लिक एक नामी महिला थीं। उनका पुत्र भी उन्हींकी भांति बड़ा प्रभावशाली निकला। उसने जंगल साफ करना शुरू किया और अचानक वहां उसे विष्णुका एक पुराना मंदिर मिला। तबसे यह स्थान विल्लीपुत्तूरके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

तेरह सौ साल पहले यहां आळवार भक्त रहते थे। इनकी संख्या कुल बारह थी। इनमें सबसे अनुभवी पेरियाळवार थे। सब इनको बहुत मानते थे।

पेरियाळवार बड़े ही ज्ञानी और अच्छे स्वभावके थे। उन्होंने अपनी कुटियाके सामने छोटीसी फुलवाड़ी लगा रखी थी। उनके जरासे बगीचेमें नाना प्रकारके फूल खिलते थे। वे रोज सवेरे फूल तोड़ते समय अपनी फुलवाड़ीमें टहला करते थे। जब वे फूलोंकी तरफ देखते तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानो भगवान् उनकी ओर देखकर मुस्करा रहे हों।

फूलोंकी महकमें खोयेसे वे गाना गा रहे थे। काफी समयतक उन्होंने अपने बगीचेका रसपान किया। उन्होंने अपने इस स्वर्गमें अचानक एक तुलसीके पौधेके नीचे किसी चीजको हिलते-डुलते देखा। पास गये तो वहां एक सुन्दर छोटीसी बच्ची पड़ी थी। उसे देखते ही वे हर्षसे पुलकित हो उठे। उन्होंने प्रेम-विभोर हो उसे तुरंत गोदमें उठा लिया। वे दौड़ते हुए मंदिरमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने बच्चीको विष्णुकी मूर्तिके सामने रखते हुए कहा— "आपकी दी हुई बच्ची आपके चरणोंमें अर्पण करता हूं। आप इस बालकके मालिक हैं।"

कहते हैं कि पेरियाळवारको आकाशवाणी सुनायी दी, "इसका नाम गोदा रखना और अपनी बेटीकी तरह इसका पालन-पोषण करना।"

गोदाका अर्थ है— "फूलोंकी मालासी सुन्दर।" वास्तवमें गोदा वैसी ही सुन्दर थी। पेरियाळवार बड़ी ममतासे उसका पालन-पोषण करने लगे। मांकी ममता, पिताका दुलार और गुरुका ज्ञान पेरियाळवारने उसे दिया।

भक्तकी पुत्री होनेके कारण गोदाका मन दिन-रात मंदिरके कामोंमें लगा रहता। वह अपने पिताके साथ सवेरे फूल तोड़ती, उनकी माला बनाती और आरती तथा पूजाकी सामग्री जुटानेमें अपने पिताकी मदद किया करती। गोदा अपने पिताके साथ मंदिरमें गाया भी करती। इन सबका परिणाम अंतमें यह हुआ कि गोदाने मान लिया कि उसका जीवन भगवान्के लिये ही है। वह दिन-रात केवल यह सोचा करती कि कौनसे फूलोंकी माला उसके भगवान्को सबसे ज्यादा भायगी।

एक दिन सवेरे जब पेरियाळवार मंदिरमें पूजाके लिये गये तो पुजारियोंने उनसे कहा, "आपकी माला पूजाके योग्य नहीं है, क्योंकि किसीने उसे पहनकर अपवित्र कर दिया है।" पेरियाळवारको उनकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। खैर, उन्होंने दूसरी माला बनवाकर भेजी। अगले दिन फिर उन्हें किसीने पहनी हुई माला दिखायी और उसके साथ एक बाल भी दिखाया। पेरियाळवार बड़े असमंजसमें पड़ गये। उन्होंने सोचा, फूल तोड़ना और माला गूंथना तो गोदाका ही काम है। लेकिन वह कभी माला नहीं पहन सकती।

अगले दिन उनकी आंख जल्दी खुल गयी और स्नान आदि करके तैयार हो गये। मंदिरमें जानेसे पहले गोदाकी कुटियाके पास जाकर उन्होंने पूछा, "बेटी गोदा, क्या माला तैयार हो गयी?" गोदाने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने अंदर झांककर देखा तो देखते ही स्तब्ध रह गये। गोदा अपने गलेमें माला पहने, शीशेके सामने खड़ी, कुछ बुदबुदा रही थी। उन्हें अपनी आंखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। उन्हें बड़ा गुस्सा आया और अंदर घुसकर गोदासे कहा—"अरी नासमझ, तू यह क्या कर रही है?" गोदाका ध्यान भंग हुआ तो उसने अपने पिताकी तरफ देखते हुए कहा, "देखिये, पिताजी, आज मैंने कितनी सुन्दर माला बनायी है। भगवान् इसे पहनकर कितने खुश होंगे?"

"तूने मेरी इतने सालकी पूजा-अर्चना और भक्तिको नष्ट कर दिया। मैं मंदिरमें भगवान्के सामने क्या मुंह लेकर जाऊंगा? तूने इस मालाको पहनकर अपवित्र कर दिया।"

गोदा इतनी भोली थी कि बिना डरे वह बड़े जोरसे खिलखिलाकर हंसी और कहा,—"पिताजी, आप इतने नाराज क्यों होते हैं, मैं तो रोज माला गूंथकर अपने-आप पहनकर देखती हूं। अगर मुझे अच्छी लगती है तो मैं पूजाके लिये भेज देती हूं। आखिर जब मुझे ही पसंद न आये तो उन्हें कैसे पसंद आयेगी?"

पेरियाळवारका गुस्सा और बढ़ गया और कहा, "तुझसे जबान लड़ाना बिलकुल फिजूल है। लेकिन तूने ऐसा किया कैसे? . . . नहीं, मेरी ही गलती है जो मैंने तुझे माला गूंथनेको दी। भगवान्की माला मुझे अपने आप गूंथनी चाहिये थी। भगवान् मेरे इतने दिनोंके पापको कभी भी क्षमा नहीं करेंगे।" पेरियाळवारने अपने-आप एक दूसरी माला तैयार करके भेजी।

गोदाको अपने पिताका रंग-ढंग देखकर ऐसा महसूस हुआ कि आज कोई अनहोनी बात हुई है। उसे सबसे बुरा तब लगा जब उसके पिताने अपने-आप माला गूंथी और उसे बिना बुलाये ही मंदिरमें चले गये। उसने अपने मनमें कहा, "मैंने भगवान्की माला पहनकर कैसे अपवित्र कर दी?"

पेरियाळवारने सारे दिन कुछ नहीं खाया। वे अपने शोकमें डूबे हुए, चिंता कर रहे थे कि यह क्या हो गया। उनके चेहरेपर क्लेशकी छाया थी। सवेरेकी घटना, चिंता और दुःखने उन्हें मूक बना दिया। वे भूखे ही सो गये। रातको उन्होंने एक स्वप्न देखा—विष्णु भगवान् स्वयं उनके पास आये और कहा—"भक्तराज, तुम इतने दुःखी क्यों होते हो? तुम्हारा तो इसमें कोई कसूर नहीं है? गोदाकी पहनी हुई माला ही मुझे पसंद है। मैं उसीकी मालाका लालची हूं।" विष्णुकी वाणी सुनकर पेरियाळवार उनके चरणोंको पकड़नेके लिये झुके, तभी उनकी नींद टूट गयी। वे तुरंत उठे और गोदाके पास चले। उन्होंने देखा कि वह कुटियाके एक कोनेमें चटाईपर पड़ी है। टिमटिमाते दियेके प्रकाशमें उन्होंने गोदाका चेहरा देखा। वह

भी बेचारी बहुत दुःखी थी। उसने भी सारे दिन कुछ नहीं खाया था। पेरियाळवारने गोदाको जगाया और कहा, "बेटी गोदा, तू धन्य है। तेरे कारण आज मैं भी धन्य हो गया। रातको भगवान्ने स्वयं मुझे दर्शन दिये। तूने अपने प्रेमसे उन्हें लूट लिया। आजसे मैं तेरा नाम 'आण्डाळ' रखूंगा। क्योंकि 'आण्डाळ' का अर्थ है—जो भगवान्को प्रेमसे जीत ले।

संयोगकी बात कि उसी रात भगवान्ने मंदिरके पुजारीको भी यही आदेश दिया कि कलसे गोदाकी पहनी हुई माला ही मुझे पहनायी जाय।

*

गोदा अब सयानी हो गयी थी, वह केवल यही सोचा करती कि मेरा विवाह श्रीकृष्णके साथ हो। वह रहती तो विल्लीपुत्तूरमें थी लेकिन उसका मन था गोकुल और वृंदावनमें। उसने एक बार स्वप्न भी देखा कि श्रीकृष्णके साथ उसके विवाहकी तैयारियां हो रही हैं। यह बात उसने अपनी सखियोंसे कही। वह ऐसी बातें सोचती और गानेमें मग्न हो जाती। उसके अंदरसे अपने-आप ही पद बहा करते थे।

पेरियाळवारको गोदाके विवाहकी चिंता पड़ी। उन्हें भगवान्ने फिर स्वप्नमें आदेश दिया, "भक्तराज! गोदा अब विवाहके योग्य हो गयी है। उसे तुम श्रीरंगम्के मंदिरमें ले जाओ। वहां मैं उसका पाणिग्रहण करूंगा।" भक्तराज भगवान्के आदेशको टालनेवाले नहीं थे। उन्होंने तुरंत जानेकी तैयारियां शुरू कर दीं।

मदुरैमें पांड्य राजा राज्य करते थे। भगवान्ने उन्हें भी स्वप्नमें यही आदेश दिया कि तुम श्रीरंगम्के मंदिरमें गोदाको ले जाओ।

श्रीरंगम्के पुजारियोंको भी ऐसा ही स्वप्न आया। फिर क्या पूछना था? वे सब विल्लीपुत्तूर आ गये।

बड़ी धूमधामसे विवाहकी तैयारियां हो रही थीं। सारा नगर श्रीरंगम्के मंदिर जा रहा था। बारात श्रीरंगम्के मंदिरकी ओर जा रही थी। पालकियोंमें औरतें गोदाके साथ बैठी थीं। पेरियाळवार हाथीपर बैठे थे। मीलोंकी यात्राके बाद यह जुलूस श्रीरंगम् पहुंचा और भगवान् रंगनाथके मंदिरके सामने जा रुका। सब गोदाका जय-जयकार कर रहे थे।

आण्डाळ डोलीसे उतरी। वह जब मंदिरके गर्भ-गृहमें घुसी तो रंगनाथकी मूर्तिके निकट गयी और भगवान्के पास बैठ गयी। लेकिन सबके देखते ही देखते वह अदृश्य हो गयी और मूर्तिमें समा गयी।

पेरियाळवार बड़े दुःखी हुए। आखिर उन्होंने आण्डाळको अपनी बेटीकी तरह पाला था। लेकिन उन्होंने अपने-आपको यह कहकर संतुष्ट किया कि यह सब भगवान्की लीला है। उन्हें उसी समय आकाशवाणी सुनायी दी—"भक्तराज, तुम इतने दुःखी क्यों होते हो? मेरी प्रिय आण्डाळ मुझमें आ मिली है। तुम उसे नहीं पहचान सके। वह तो स्वयं भूदेवी थी। तुम्हें तो इस बातपर प्रसन्नता होनी चाहिये। अब तुम भी जल्दी मुझमें आ मिलोगे।

*

मीराबाई भी इसी तरह मूर्तिमें समा गयी थीं। इसीलिये आण्डाळको दक्षिणकी मीरा कहते हैं। आण्डाळके पद आज भी घर-घरमें गाये जाते हैं और उसकी पूजा की जाती है। इसीलिये दक्षिणमें विष्णु भगवान्की मूर्तिके बांयें आण्डाळकी भी मूर्ति देखी जाती है।

अपने एक गीतमें आण्डाळ कहती हैं : (यह एक गीतका अंश है)

तुम मेरे कृष्णप्रेमको नहीं समझ सकते। तुम्हारी चेतावनियां बेकार हैं। चलो- चलो, मुझे मथुरा ले जाओ, जहां युद्धके बिना ही उसने विजय प्राप्त की थी। लाज बेकार है! सब पड़ौसी जान गये हैं। क्या तुम सचमुच मेरी बीमारी दूर करना चाहते हो? तो मुझे उसके दर्शन करा दो, उस मायावीके पास पहुंचा दो जिसने तीनों लोकोंको नाप लिया था। बात फैल गयी है कि मैं मां-बाप, नातेदार-रिश्तेदारोंको छोड़कर भाग गयी हूं। मैं उसके साथ चली गयी हूं। चलो, मुझे आधी रातको उस गोपालके यहां पहुंचा आओ।

दुःख मत करो, तुम लोग मेरी बीमारीको नहीं जान सकते। मुझे तो बस वह श्यामवर्ण बालक—जिसे कृष्ण कहते हैं—ही ठीक कर सकता है।

ये पंक्तियां हमें 'अब तो बात फैल गयी जानत सब कोई', 'मेरो दरद न जाणे कोई', 'मेरो बैद समलिया प्यारो' और 'आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हैं' की याद दिलाती हैं।

(सस्ता साहित्यमण्डलद्वारा प्रकाशित 'दक्षिणकी मीरा' के आधारपर)

* * *

मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना
हिन्दी हैं हमवतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा।

—इकबाल

तुम मेरे पासमें ही होते हो,
जब कोई दूसरा नहीं होता।

—मोमिन

मैं तो परी बनूंगी

--श्री अनुबेन पुराणी

॥ प्रथम दृश्य ॥

(चार लड़कियां आपसमें बातें कर रही हैं)

विमला : मैं बड़ी होकर दीदीकी तरह गाना सीखूंगी।

कला : हट, गाना कौन सीखे, तेरी दीदी घण्टों बैठी आ...आ...करती है। उसमें कौनसी बड़ी बात है? मैं तो बस टेनिस स्टार बनूंगी। धड़ाधड़ गेंदको वापस भेजती रहूंगी। लाली! तू बोल, तू क्या बनेगी?

लाली : ना भाई, तुम लोग हंसोगी, मैं नहीं बताऊंगी।

शीला : नहीं-नहीं लाली! हम नहीं हंसेंगी, बता दे न!

(सब मिलकर—हां, हां, बता, जरूर बता दे।)

लाली : अच्छा, बता रही हूं। देखो भाई, हंसना नहीं, मैं....मैं तो परी बनूंगी।

कला : जोरसे हंसती हुई....हां....हां....हां परी बनेगी, कभी देखा भी है परीको? अच्छा लीला, तू ही बता, तूने परीको देखा है?

शीला : नहीं देखा है तो क्या हुआ! कहीं न कहीं होती होगी जरूर। हम परियोंके देशमें जायेंगी तो वे भी दिखायी देंगी और हां, धरतीपर तो वे रातमें आती हैं, हम लोग तबतक सो जाती हैं।

कला : बुद्धू हो बुद्धू, मेरे दादाने बताया है कि परियोंकी कहानी हम बच्चोंको उल्लू बनानेके लिये कहीं जाती हैं। सचमुच परी-वरी है ही नहीं।

विमला : झूठ, झूठ, नहीं कैसे है ? जरूर है, मैंने उनको देखा है।

कला : नहीं देखा, नहीं देखा, तूने कभी नहीं देखा।

विमला : देखा है, तुझे क्या मालूम ?

लाली : अरे भाई, झगड़ा छोड़ो। विमला ! तू मुझे बता, वह परी कैसी थी ?

विमला : क्या बताऊं ? बस, हमारी कहानियोंमें जैसा लिखा होता है वैसी ही सुन्दर, नाचती, गाती, खिलखिलाती परी थी। लेकिन हां, तू परी बनकर क्या करेगी ?

लाली : मैं ? परी बनकर सब बच्चोंको सुन्दर, अच्छा और समझदार बना दूंगी। तब तू देखेगी, कोई बच्चा बीमार नहीं होगा, कोई दुःखी नहीं रहेगा। रोना तो कभी सुनायी ही नहीं देगा।

कला : क्या बकवास करती है, बड़ी आयी है, परी बनेगी, मूर्ख, मूर्ख।

सावित्री : चल कला ! हम लोग भाग जायें। इनके पास बैठे रहनेसे हम भी मूर्ख बन जायेंगी।

(दोनों चली जाती हैं)

विमला : कोई बात नहीं लाली। मैं तेरे साथ रहूंगी।

॥ द्वितीय दृश्य ॥

(लाली एक कमरेमें सो रही है। धीरे-धीरे तीन परियां प्रवेश करती हैं।)

फूलपरी : मैं तुमसे इसी लड़कीकी बात कर रही थी।

किरणपरी : लेकिन जबतक रानी नहीं आती तबतक हम कुछ ठीक नहीं कर सकतीं।

चन्द्रपरी : रानीजीने कहा था कि पहले हमें यहां आकर देखना चाहिये और फिर हममेंसे कोई उन्हें बुला लाये।

फूलपरी : हां भई ! अब तुम लोग देख लो।

किरण और चंद्रपरी : लड़की बड़ी अच्छी लगती है। बाकी बातें रानीजीके आनेपर होंगी।

(फूलपरी बाहर जाकर रानीको लेकर आती है।)

रानी : फूलपरी ! इसी लड़कीको तुम परी बनाना चाहती हो क्या ?

फूलपरी : हां, मैंने इस लड़की लाली और उसकी सब सहेलियोंकी बातचीत आमके पेड़के पीछेसे सुनी थी। लालीको दो लड़कियोंने बहुत तंग किया। पर वह अपनी बात पर डटी रही। अब आप देखें कि उसको परी बनाया जाय या नहीं ?

रानी : इस तरह इच्छा करनेसे हम हर बच्चेको परी बनाने लगें तो परी-देशका काम चौपट हो जायगा।

चन्द्रपरी : मुझे एक विचार आया है। क्यों न लालीकी परीक्षा ली जाय।

फूलपरी : हां, रानीजी, यह अच्छा विचार है।

रानी : तुम लोगोंने ठीक बात कही है। लालीसे मैं स्वप्नमें बात करुंगी और उसके सामने यह शर्त रखूंगी कि अगर वह एक वर्षतक न तो गुस्सा करे न रोये और न झगड़ा करे, तो हम उसको परी-देश ले जायंगी और परीके पंख दे देंगी।

तीनों : बहुत अच्छा..... बहुत अच्छा।

(धीरे-धीरे सब चली जाती हैं। कुछ देर बाद रानी सोती हुई लालीसे)

रानी : लाली! तुमको परी बनना है?

लाली : हां, हां, आप कौन हैं?

रानी : मैं परियोंकी रानी हूं। परी होना आसान नहीं है। अगर तू एक वर्षतक गुस्सा करना, लड़ना-झगड़ना, रोना वगैरह नहीं करेगी तो मैं तुझे परी बना सकती हूं। बोल कर सकेगी?

(परी धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है। लाली खाटपर बैठकर चिल्ला उठती है। हां, हां, जरूर। जरूर। आंखें खोलकर चारों तरफ देखती है।)

लाली : अरे! परी रानी कहां गयी। अभी तो थी।

।। तृतीय दृश्य ।।

(विद्यालयके एक कमरेमें बच्चे लिख रहे हैं।)

अध्यापक : (कलाईकी ओर देखकर) "अच्छा! अब पांच मिनट और हैं।" (बच्चे और जल्दी-जल्दी लिखने लगते हैं। घण्टा बजते ही सब कापियां मेजपर रख जाते हैं।)

अध्यापक : (अपनी मेजपरसे कागज उठाते हुए) तुम सबके गृह-कार्यमेंसे लालीका सबसे अच्छा है। लाली! तुमने किसीसे मदद ली थी?

लाली : (अचकचाती हुई) नहीं तो।

अध्यापक : मैं भी आशा करता हूं कि गृह-कार्य तुम्हारा अपना ही होगा। (दूसरा घण्टा बजते ही अध्यापक बाहर निकल जाते हैं। शीला, विमला और कई लड़कियां लाली-की ओर आती हैं।)

शीला : (लालीसे) अपने-आप किया हो तो मेरे साथ शर्त कर ले।

लाली : कैसी शर्त?

विमला : शीला कहती है कि तूने अभी-अभी झूठ कहा।

सावित्री : शीलाको अपनी बातका सबूत देना चाहिये।

शीला : हां, हां, इसमें कौनसी बड़ी बात है? लेकिन क्या शर्त रखेंगे? तू ही बता कमल।

कमल : अगर शीलाकी बात सच हो तो लालीको उसे दो चौकलेटें देनी पड़ेंगी। नहीं तो शीला लालीको देगी।

(सब आपसमें बातें करती हुई चली जाती हैं।)

विमला : चलो लाली घर जायें।

लाली : तू जा, मैं अभी आती हूं।

(बिमला चली जाती है।)

लाली : यह मैंने क्या किया ? एक इतनी छोटी-सी चीजके लिये झूठ कहा।
(आवाज आती है—"हां लाली ! यह तूने क्या किया ? इसपर तू परी बनने चली है ? मैंने तुझे कल ही तो बताया था कि परी होना आसान नहीं है।")

लाली : "अब क्या होगा परी-रानी ? अब मुझे परी बनना नहीं मिलेगा ?"
(आवाज—"फिरसे कोशिश करो, लेकिन जब-जब गलती करोगी तब-तब उसी दिनसे एक सालतक तुम्हें अपने-आपको ठीक रखना पड़ेगा।")

लाली : लेकिन अब जो गलती हुई उसका क्या करूं ?

(कोई जवाब नहीं)

लाली : क्यों न अध्यापकको सब कुछ बता दूं।

॥ चतुर्थ दृश्य ॥

(लालीका घर, विमला, कला, शीला और लाली बैठी बातें कर रही हैं। समय रातका)

शीला : भई ! मानना पड़ेगा, लाली बहादुर है। मैं तेरी जगह होती तो अध्यापकसे सच कहनेकी हिम्मत न कर पाती।

विमला : तभी तो मास्टरजीने उसे इतना बढ़िया इनाम दिया।

कला : और हां, मास्टरजीने क्या कहा था, लाली किसके जैसी बड़ी होगी ?

शीला : इतनी जल्दी भूल गयी ! हमारे भारतके महापुरुष रानडेकी तो बात थी।

लाली : कहां रानडे और कहां मैं ! मास्टरजीने खुश होकर कह दिया कि मैं भी बड़ी होकर महान् बनूंगी।

(बाहरसे आवाज—मुन्नी, मुन्नी, शीला।)

शीला : (हड़बड़ाकर) अरे बाबा ! इसका मतलब पिताजी घरपर आ गये हैं। अभी जाकर नही पढ़ूंगी तो बहुत नाराज होंगे। अच्छा लाली ! अब मैं चली।

विमला और कला : लाली, कल स्कूलमें . . . . (बोलती हुई बाहर चली जाती हैं। लाली उनके साथ बाहर जाती है।)

(एक वर्ष बीत चुका है। परियां चुपचाप अंदर आती हैं।)

फूलपरी : हां देवी ! उसने एक सालतक न झूठ कहा, न किसीसे लड़ी-झगड़ी और न रोयी।

चन्द्रपरी : इतने छोटे बालकके लिये उसने बहुत कठिन काम किया है।

रानी : वह अभी आ रही है, चलो, हम छिप जायं। (लाली आकर बिस्तरपर लेट जाती है। थोड़ी देर बाद रानी आकर कहती है।)
"लाली ! मैं कौन हूं याद है ?"

लाली : हां, आपने मुझे परी......

रानी : हां, ठीक याद रखा। तूने अपनी शर्त पूरी की इसीलिये अब मैं तुझे परी बनाने आयी हूं।

लाली : सच ! [तीन और परियां आ जाती हैं। लालीके बिस्तरके चारों ओर घूमती हुई परियां..... "अगड़म बगड़म, बगड़म बो फूलपरीका यह वर लो। भूल-भूलैया झगड़म दो। नाम यह लालपरी तुम लो।" (तीन बार)]

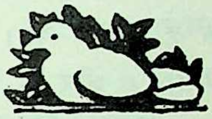

मांकी यादगार

—श्री अदिति

आज आठ वर्ष बाद मैं अपनी अलमारी खोल रहा हूं। यह अलमारी मेरी मांको उनकी मांने दी थी। अब मां तो गुजर चुकी हैं परंतु जाते वक्त उन्होंने यह अलमारी मेरे हवाले कर दी थी। मैं खुशीसे गद्‌गद हो उठा था। बचपन ही से मुझे इस अलमारीका बहुत शौक था। या यों कहें, यह मुझे बहुत पसंद थी। मांके सामने बहुत रो-धोकर मैंने इस अलमारीका निचला खाना अपने नाम करवा लिया था और वहीं अपने सारे कपड़े रखता था। फिर समय बीता। अलमारी पुरानी हुई और मैं बड़ा हुआ।

मांकी आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाती थी वैसे-वैसे उनका स्वास्थ्य गिरता जाता था। आखिर एक दिन आया जब मां बिस्तरसे उठ ही न पाती थीं। एक दोपहरको मांने दादूको अपने पास बुलाकर कहा कि बड़े लड़के सुरेश (मेरे भाईसाहब) की शादी करवा देनी चाहिये। फिर क्या था, बातों ही बातोंमें शादी तय हो गयी। शादीकी तैयारियां होने लगीं। भाई साहब सपनेमें डूबे-डूबे दिखायी पड़ते और मैं सोचता कि भाभी देखनेमें कैसी होगी।

खैर, वह दिन भी आया जब भाभी हमारे घर आयीं। मैं भाभीको अवाक् होकर देखता

रहा। भाभी क्या थीं, स्वयं सुन्दरताकी मूर्ति थीं। उन गोरे-गोरे, मेंहदीसे रचे हाथोंसे जब उन्होंने घूंघट उठाकर मेरी ओर देखा तो मेरे मुंहसे 'वाह' निकल गया। उनका चेहरा ऐसा था जैसे झीलमें हंसता हुआ कमल। मैं मांके पास दौड़ा और उनके सामने अपनी भाभीकी सुन्दरताका बखान करने लगा। 'मां, वे मेरी भाभी हैं न?' मैं पूछ बैठा। 'हां बेटा! वे तेरी ही हैं।' मां ने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा।

भाभीके आते ही घरमें चहल-पहल हो गयी। सारे काम नियमित रूपसे होने लगे। मां-को चैन मिली। परंतु कहते हैं--'सुख पीछे दुःख'। हमारे घरमें एक शाम सन्नाटा छा गया। केवल मांके खांसनेकी आवाज बार-बार उस भयावने सन्नाटेको तोड़ रही थी। हम सब मांके पास बैठे थे। पड़ौसके डाक्टर साहबको भी बुलाया गया था। भाभी मांपर पंखा झल रही थीं। मैं उनकी बगलमें बैठा बिलख-बिलखकर रो रहा था। मांने हर एकको पास बुलाकर प्यार किया और मेरी बारी आनेपर उन्होंने मुझे गले लगाकर चूमते हुए अपनी कांपती हुई आवाजमें बहुत कुछ कहा, पर मैं कुछ न सुन सका। मैं रोया, चिल्लाया--"मां, मुझे छोड़कर मत जा। मैं तेरे बिना नहीं रह सकता। मां! मां! सुन मां! मुझे छोड़कर मत जा। मैं तेरे बिना नहीं रह सकता। मां, मां, सुन मां, इधर देख, बोलती क्यों नहीं मां?"

मां गुजर चुकी थीं। घरमें शोक ही शोक था। मुझसे काम न होता था। मांकी वस्तुएं देखकर उनकी और भी याद आती। और मैं कभी खम्भेके सहारे, कभी अलमारीके सहारे, कभी दीवारके सहारे खड़ा ही रहता।

जीवन नीरस लगने लगा। घर तो मुझे काटने दौड़ता था। मैं ज्यादासे ज्यादा घरसे बाहर रहता। सुबहका घरसे निकला रातके नौ दस बजे लौटता। दिनभर दोस्तोंकी टोलीमें घूमता रहता। घरमें कोई डांटने-फटकारनेवाला न था। बड़े भाई अपने काममें इतने व्यस्त रहते कि उन्हें मेरी देखभालकी सुध ही न रहती। भाभी क़भी कुछ कहतीं तो मैं चटाकसे उत्तर दे देता--"चुप रहो जी, जो कुछ कहना हो भाईसे कहा करो। मुझपर क्या अधिकार है तुम्हारा?" वे बेचारी चुप हो जातीं।

इस प्रकार कई साल बीत गये। जीवन चलता गया। मैं काफी बड़ा हो गया। सारे बचपनने स्वप्नका रूप ले लिया और मैं एक युवा मनुष्य बना। मेरे मनमें तरह-तरहके विचार आते। सोचता, सालोंसे भाईका अन्न खा रहा हूं, अब अपने-आप कुछ करना चाहिये। ये विचार समुद्रकी लहरोंकी न्याईं एकके ऊपर एक चोट करते हुए आते और रोके न रुकते। कभी-कभी मैं तंग आ जाता, जी करता फौरन किसी कामकी खोजमें लग जाऊं।

खैर, किसी प्रकार एक और वर्ष बीत गया। भाग्यवश शीघ्र ही मुझे एक काफी अच्छी नौकरी मिल गयी। मुझे हर महीने सात सौ रुपये मिलने लगे। फिर क्या था? तुरंत घर छोड़ दिया, अलग रहने लगा किरायेके मकानमें। जाते वक्त भाभीने मुझे मांकी अलमारी देते हुए कहा--"मांकी बहुत इच्छा थी कि यह अलमारी तुम्हारे साथ हो।" मैं चुप रहा। मैं जानता था कि भाभी इस अलमारीमें अपने कपड़े रखती हैं। अब न जाने वे अपने कपड़े कहां रखेंगी। मेरे बड़े भाईकी तनख्वाह कम थी और भाभीके लिये नई अलमारी खरीदना मुश्किल था। यह सब जानते हुए भी मेरे क्रूर हृदयने मांकी अलमारी स्वीकार कर ली।

नये घरमें आनेके कुछ ही समयके बाद मेरी शादी कमलासे हो गयी। मुझसे तो घर-

का कुछ काम होता न था। कमलाने आकर सारा घर एक चतुर गृहिणीकी तरह संभाला। सब सामान ठीक स्थानपर रखा गया। मैंने भी कमलाकी सहायता की। एक हफ्तेकी मेहनतके बाद हमारा घर अत्यंत सुन्दर लगने लगा। मैंने एक-एक कमरा जांचा और कमलाकी निपुणताकी तारीफ की। परंतु मुझे अपनी अलमारी कहीं न दीखी। मैं घबराया-सा कमलाके पास गया और उससे पूछा कि वह अलमारी कहां रखी है? "अरे, उस अलमारीको क्या पूछते हो? अपने पास उससे अधिक सुन्दर अलमारी है। वह तो पुराने फैशनकी है। अगर हम उसे बाहर रखें तो हमारे घरकी सारी शोभा बिगड़ जायगी। मैंने उसे भण्डारघरमें रखा है। क्यों, वह तुम्हें पसंद है क्या?"——वह पूछ बैठी। "नहीं, नहीं। तुमने जो कहा है वह ठीक ही है। उसे अंदर ही रखो।" कहनेको तो मैंने कह दिया, परंतु दिलमें बहुत बुरा लग रहा था। भाभीके पास अगर यह अलमारी होती तो उनके काम आती। मेरे पास फालतू पड़ी है।

खैर, ये सब बातें भूल गया। मेरा जीवन सुखसे कटने लगा।

आज कमलाकी मृत्युको पूरा एक महीना हो गया है। बहुत रोया मैं। ठीक उसी प्रकार जैसे मांके समय रोया था। जीवन फिर सूना लगने लगा है। आज यह मांकी अलमारी खोलता हूं तो उसमें मांकी तालियोंका गुच्छा पड़ा दीखता है। नीचेके खानेमें कमलाका रुमाल पड़ा है। दो यादगारें! मांकी, कमलाकी। किसकी बात मानूं? अलमारी निकालूं या नहीं, या बन्द रहने दूं? मांको पसंद थी, कमलाको नापसंद। फिर सोचता हूं भाभीके पास भेज दूं। परंतु पुरानी अलमारी भेजते शर्म आती है। बड़ी भारी दुविधामें पड़ा हूं।

आखिर मांकी विजय होती है। मैं धीरे-धीरे अलमारीको अपने कमरेमें ले आता हूं। गीले कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछता हूं। फिर मांकी एक तस्वीर अलमारीमें रखकर उसे बहुत देरतक निहारता हूं। मैं सोचता हूं, यह मांकी अलमारी है। मांने मुझे दी। अब इसे मुझसे कोई नहीं छीन सकता। कोई नहीं दूर कर सकता मुझे इस प्यारी मांकी यादगारसे। ***

यह मुझसे न होगा

एक महापुरुषने कहा है कि जब मैं यह सोचता हूं कि मैंने जीवनमें कितनी बार कहा है कि 'यह मुझसे न होगा' तब मैं अपने-आपसे पूछ बैठता हूं कि "आखिर मुझसे क्या होगा?" किसी भी कठिनाईके सामने आनेपर मनुष्यकी सबसे पहली इच्छा पीछे हटनेकी ही होती है। वह शुरूमें सभी चीजोंसे भाग जानेकी ही कोशिश करता है। यहांतक कि जीवनके छोटेसे छोटे कामोंमें भी वह हरएक पगपर यही कहता है, "यह मुझसे न होगा।" और इस तरह मनुष्य कभी भी अपने बल-बूतेपर विश्वास नहीं करता। वह अपनी आंतरिक शक्तिको नहीं पहचानता और कठिनाइयोंका सामना करनेमें असमर्थ रहता है।

परंतु यह पृथ्वी फूलोंकी सेजमात्र नहीं है। इसमें कांटे भी हैं। और हरएक मनुष्य अपने अंदर इतनी शक्ति रखता है कि वह इन कांटोंको हटा सके, इस संसार-सागरकी लहरों-

का हंसते हुए सामना कर सके, और तैरकर उसे पार भी कर सके। परंतु यह पीठ फेरनेकी आदत उसे आगे बढ़ने ही नहीं देती। अगर मनुष्य अपने बलको पहचानकर दुःखोंको मुस्कराते हुए झेल सके तो वह अपनी सच्ची सुन्दरतासे चमक उठता है, ठीक उसी तरह जैसे सोना आगमें पड़नेके बाद अपनी पूरी चमक दिखाता है और हीरा कटनेके बाद ही अपनी अधिकसे अधिक शोभा दिखा सकता है। वह दुःख है जो एक हथौड़ेकी तरह मार-मारकर मनुष्यको जगाता है, और उसे एक सुन्दर-सुडौल शरीर देता है। यह दुःख और सुखका खेल ही है जो मनुष्यके अंदर छिपी चिनगारियोंके आवरण तोड़कर बाहर निकलने देता है, और मनुष्यको जानवरोंके स्तरसे उठाकर एक सच्चा मानव बनाता है। परंतु इसके लिये हमें उस महापुरुषकी छायाके पीछे चलना चाहिये जिसने कहा था कि असंभव शब्द खाली मूर्खोंके कोषमें ही पाया जाता है। अगर मनुष्य किसी चीजके बारेमें सोच सकता है तो वह उसे करके भी दिखा सकता है। खाली दो-तीन शताब्दी ही पहले किसीने यह सोचा भी न था कि मनुष्य हवाके वेगसे भी चल सकेगा। पर आज वही मनुष्य चन्द्रमा और तारोंपर सैर करनेकी सोच रहा है। पचास साल पहले जिन चीजोंके बारेमें सोचा भी न जा सकता था, आज वे सब सत्य हो रही हैं और मनुष्य एक विशाल मानवका रूप धारण कर आगे बढ़ता चला जा रहा है। सत्य है, भगवान् साथ हों तो पृथ्वीपर कुछ भी असंभव नहीं है।

—श्री विजय पोद्दार

* * *

पुस्तक-परिचय

सुन्दर कहानियां : प्रकाशक श्री अरविंद सोसायटी पांडिचेरी, मूल्य १.५० न. पै.

यह श्री माताजी की फ्रेंच पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तकमें बालकोंके सामने देश-देशान्तरके उच्च आदर्श भरे जीवनकी झांकियां दी गयी हैं। रामायण और महाभारतसे लेकर तिरुक्कुरल और आण्डालतक, हातिमताईसे लेकर सन्त फ्रांसिसतकके जीवनकी शिक्षाप्रद, उच्च नैतिक स्तरकी घटनाएं दी गयी हैं। बालक देख सकेंगे कि महानता किसी देश विशेषकी बपौती नहीं है, भगवान्की विभूतियां हर जगह प्रकट होती रहती हैं, साथ ही वे अपने पैतृक दायको भी पहचान पायेंगे। लगभग सवा सौ पृष्ठकी इस पुस्तकमें आत्मसंयम, आत्मनिर्भरता, प्रफुल्लता, सच्चाई, व्यवस्था, धैर्य और अध्यवसाय आदि विषयोंके बारेमें छोटी-छोटी कहानियां दी गयी हैं। नैतिक दिवालियेपनके इस जमानेमें इस पुस्तककी एक प्रति प्रत्येक भारतीय नौनिहालके हाथमें होनी ही चाहिये। छपाई, सफाई, चित्र आदिको देखते हुए डेढ़ रुपयेमें पुस्तक सस्ती है।

काव्य शास्त्र

हिन्दीमें और हिन्दीमें ही क्यों भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें काव्यशास्त्रपर जो कुछ लिखा गया है वह संस्कृत काव्यशास्त्रके आधारपर है। इसलिये जो लोग इस विषयका भलीभांति परिचय करना चाहें उनके लिये संस्कृत काव्यशास्त्रका अध्ययन आवश्यक है। भारतके सभी शास्त्रोंकी तरह इस शास्त्रका आरम्भ भी देवताओंसे माना और अनेक ग्रंथोंके आधारपर यह अनुमान भी होता है कि इस विषयके असंख्य ग्रन्थ रहे होंगे परंतु उनमेंसे अधिकतर काल-कवलित हो चुके हैं, जो बचे हैं उनमेंसे भी बहुतसे हिन्दी पाठकके लिये सुलभ नहीं हैं। हर्षका विषय है कि बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्ने इनमेंसे एक अमूल्य रत्न—कविराज राजशेखर-कृत काव्य मीमांसाका हिन्दी अनुवादके साथ प्रकाशन किया है। एक दैवज्ञका कहना है कि स्वयं बाल्मीकि ही राजशेखरके रूपमें पैदा हुए थे। इस पुस्तकमें काव्यके बारेमें बहुत ही उपयोगी सामग्री मौजूद है। काव्यरसके प्रेमियोंको यह पुस्तक केवल ८ रुपयेमें राष्ट्रभाषापरिषद्, पटना, बिहारसे मिल सकती है।

हिन्दी रुबाइयां—संपादक 'नीरज'

रुबाइयां लिखना सच्चे कलाकारका ही काम है। रुबाईकी जान उसकी चौथी पंक्तिमें होती है। पहली तीन पंक्तियां उसके लिये तैयारी करती हैं।

इधर हिन्दीमें भी रुबाइयोंका चलन बढ़ रहा है। अभी नया नया प्रयोग है इसलिये इसे उर्दूके मुकाबलेमें खड़ा करना इसके साथ अन्याय होगा पर हां जो कुछ किया गया है उसकी अपनी छटा है। प्रस्तुत पुस्तकमें 'नीरज' जी ने हिन्दीमें किये गये प्रयासोंका एक नमूना हमारे सामने पेश किया है। इनमेंसे कई रुबाइयां सचमुच बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। कवितामें रस रखनेवाले इसमें १०९ कवियोंकी कृतियोंका नमूना देखेंगे। चीज सुन्दर बनी है। प्रकाशक हैं—हिन्दी पाकेट बुक्स प्राइवेट, जी. टी. रोड, शाहदरां, दिल्ली। मूल्य १ रुपया।

भारतीय अब्दकोष १९६३

सउदी अरबकी राजधानी कहां है? अरब देशोंमें कौन-कौनसे देशोंकी गिनती होती है, साइप्रसको स्वाधीनता कैसे मिली, यूरोपीय आर्थिक समुदाय क्या है, भारतमें कौन-कौनसे प्रधान राजनैतिक दल हैं, उनका इतिहास क्या है, भारतका झंडा कैसे बना, भारत सरकार कौन-कौनसे पुरस्कार देती है, भारतमें कितने सिनेमा बनते हैं, यहांके खनिज पदार्थोंमें कौन-कौनसे मुख्य हैं, कौनसा उद्योग कहां होता है आदि बहुतसे प्रश्न समय-समयपर उठा करते हैं। परन्तु इन सबके उत्तर किसी एक जगह नहीं मिलते और अलग अलग जगहोंपर उत्तर तलाश करनेके लिये न साधन होते हैं न समय। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्ने इस प्रकारकी बहुतसी जानकारियोंसे भरा हुआ अब्दकोष प्रकाशित किया है। लगभग ६०० पृष्ठकी यह पुस्तक पत्रकारों, कालिजके विद्यार्थियों, समाचारपत्रोंके पाठकों और अपनी साधारण जानकारी बढ़ानेके इच्छुक लोगोंके लिये अत्यंत उपयोगी है। हर पुस्तकालय और हर किताबोंके शौकीनके पास इसकी एक प्रति रहनी चाहिये। मूल्य केवल ८ रुपये।

जीवन-साहित्यका राजेन्द्र संस्मरण अंक

भारतवर्षमें ऐसे लोग कम ही होंगे जिन्होंने कभी-न-कभी राजेन्द्र बाबूके दर्शन न किये हों। उनका जीवन त्याग, तपस्या और सेवा-भावका आदर्श था। वे विद्वानोंमें विद्वान्, अनपढ़ोंमें अनपढ़ बनकर हिलमिल सकते थे। वे जिस समाजमें बैठ जाते उसी समाजके लोगों-को लगता कि ये हमारे ही हैं। जीवन साहित्यके साथ तो उनका पुराना सम्बन्ध था। यशपालजीने उनके बारेमें यह विशेषांक प्रकाशित करके उनके बारेमें बहुतसी नयी बातें हमारे सामने रखी हैं। बिनोबाजी, राजाजी, श्रीमन्नारायण, बनारसीदास चतुर्वेदी आदिके लेखोंसे यह विशेषांक अत्यन्त उपयोगी बन गया है।

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

प्रधान कार्यालय :
फोन : ३३-४५०४
ग्राम : MIGHTYHOLY

श्री हनुमान सुगर मिल्स लि.

मैनेजिंग एजेण्ट—

मेसर्स–दौलतराम रामेश्वरलाल

१७८ महात्मा गांधी रोड,

कलकत्ता ७

कारखाना–
मोतीहारी
[बिहार]

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।

—श्रीमां

न्यू होराइजन स्टेन्लेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी-४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE STEEL PRODUCT STAINLESS

"स्क्वायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression.

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS LTD.
PONDICHERRY

Marketers of Petroleum Products

Western Trading Company

Distributors to ESSO Standard
Eastern, INC.
For Calcutta, Bihar and U.P.
88, Stephen House
4 Dalhousie Square East
CALCUTTA - 1

Branch:
CENTRAL HOTEL BUILDING
GORAKHPUR
Phone: 23-2835/36 Gram: RIGHTDON

INDIA TAR
AND
BITUMEN PRODUCTS

Office:
88, Stephen House,
Dalhousie Square, Calcutta - 1

Telephone: 23-2835/36

All types of waterproofing and damp-proofing, Pipe Lagging & Heat & Cold insulation. Works are undertaken with best workmanship.

अनुभवकी पसंद है

"स्वस्तिक"

आटा, मैदा, सूजी तथा गेहूंकी चीजें

हाथसे बिना छुए वैज्ञानिक पद्धतियोंसे पूर्ण स्वच्छतापूर्वक तैयार

विशुद्ध और स्वास्थ्यप्रद

सभी बड़ी-बड़ी दूकानों पर प्राप्त

(अब आटा १ किलो पोलीथीन बैग में भी मिलता है।)

रिफार्म फ्लावर मिल्स प्रा. लि.
१८ नेताजी सुभास रोड,
कलकत्ता—१

फोन : हेड आफिस २२–४६४४ (६ लाइनें)
मिल ६७–२२९१/९२

तार : "Reforms"
Calcutta

"आत्मत्यागका गुण सभी राष्ट्रों और सभी व्यक्तित्वोंमें नहीं पाया जाता; यह गुण विरल और बहुमूल्य है; यह मनुष्यके नैतिक उत्थानका पुष्प है, यह इस बातका प्रमाण है कि हम अहं-केंद्रित पशुत्वको पीछे छोड़ अहंशून्य देवत्वकी ओर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। जिस मनुष्यमें आत्मत्याग करनेकी क्षमता होती है, वह चाहे दूसरा कोई भी पाप क्यों न करता हो, उसने पशुत्वको पीछे छोड़ दिया है और भविष्यका उच्चतर मानव बननेकी क्षमता उसमें मौजूद हैं। जिस राष्ट्रमें आत्मत्यागपूर्ण कोई राष्ट्रीय कार्य करनेकी योग्यता होती है उसका भविष्य सुरक्षित है।"

—श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

श्रीअरविंद सोसायटीके प्रकाशन

श्रीमाताजीकी फ्रेंच पुस्तक "Belles Histoires" का अनुवाद

[विशेषकर नवयुवकोंके लिये उपयोगी]

सुन्दर कहानियां (हिन्दी)	रु. १·५०
छोटोदेर गल्प (बंगला)	रु. १.५०

सचित्र संस्करण] [बहुतसे माध्यमिक पाठशालाओंमें स्वीकृत

अन्यान्य प्रकाशन :

के एइ मा ? (बंगाली)--पशुपति भट्टाचार्य	रु. १·५०
वार्षिक १९६३ (अंगरेजी)	रु. ३.००
श्रीअरविंद-चरितामृत (हिन्दी)--माधव	रु. ५.००
श्रीअरविंद-वचनामृत (हिंदी)	रु. ०.५०
पुरोधा--त्रैमासिक--(हिंदी और बंगला पृथक् पृथक् संस्करण)-- वार्षिक चंदा	रु. ५.००

मिलनेका पता :

श्रीअरविंद सोसायटी
श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी–२

श्रीरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेन्सी प्रा. लि.
श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी नं २

श्रीअरविंद सोसायटी
२, ब्राबूर्न रोड,
कलकत्ता–१

श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी प्रा. लि.
१५, कालेज स्क्वायर
कलकत्ता–१२

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

१ जुलाई

१९६४

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

* * *

सूची

आमंत्रण	श्रीअरविंद	२
प्रार्थना	श्रीमां	३
प्रश्नोत्तर		४
संपादकीय		५
श्रीमाताजीके वचन		१२
श्रीअरविंद-वचनामृत		१४
श्रीअरविंद—उनकी राजनीति	रवींद्र	१६
कर्णाटककी मीरा : अक्क महादेवी	अंबाशंकर	१७
हिमस्रोत	डा. जगदीश गुप्त	२३
हमारे जीजाजी	रवींद्र	२४
हमारा आंतरिक सागर	सुमेधा	२७
लूथर बरबेंक	डेनियल एल. मिलर	२९
हैरियट शिखर और अस्ताचल	रमेशचंद्र पंत	३३
नंददास	हीरो	३७
किशोर दल, बढ़ा चरण	आरसीप्रसाद सिंह	४०
शेख सादी	अफजलुल उलमा मुहम्मद यूसुफ कोकन	४१
दो पहेलियां	भूदत्त	४४
बैजू बावरे	अनुबेन पुराणी	४६
उन्हें कभी न भूलना	तरला पटेल	४९
हल्दी और सोंठ	अदिति	५१
वह गौरवशाली प्राध्यापक	शंकरदेव विद्यालंकार	५३
महाराज कुलशेखर	षण्मुखम्	५५
जानवरोंकी बातें	लाट साहब	५८
पुस्तक-परिचय		६१

संपादक :
रवींद्र
आवरण :
संजीवन विश्वास
चित्रकार :
कृष्णलाल
जयंतीलाल
अंजना शर्मा
अनिरुद्ध सरकार
प्रकाशक :
अनिरुद्ध सरकार
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी—२
मूल्य :
एक अंक : रु. १.५० न.पै.
वार्षिक चंदा : रु. ५.००

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी—२

वर्ष ३ जुलाई १९६४ अंक १

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

> बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें ।
>
> —श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी-२

आमंत्रण

(श्रीअरविन्दकी एक कविताका अनुवाद)

प्रबल प्रभंजनके झोंकोंको ऋतुओंके आघातोंको,
चला लांघता गिरि-शिखरोंको हिम-दलदली बंजरोंको,
हे कोई तैयार अरे यात्रामें मेरी आनेको,
अधिरोहणोंमें मेरे संग-संग अविरत बढ़ते जानेको,
पार करे जो गिरि, सरिताओंको, हिमके मैदानोंको।

क्षुद्र-नगरकी घिरी हुई सीमामें मैं कब बस सकता?
और तुम्हारे द्वार दिवारोंमें कब जकड़ा रह सकता?
मेरे शिरपर प्रभु हैं, फैले नील-गगन विस्तारोंमें,
औ' सामने जूझना है झंझाओं, पवन-झकोरोंमें।

खेला करता एकाकीपनसे मैं प्रदेशमें अपने,
औ' दुर्भाग्य विपद्को अपना मित्र बनाया है मैंने,
कौन जियेगा इस विशालतामें औ' इस स्वतंत्रतामें?
कौन चढ़ेगा यहां निरंतर इस झंझायित प्रांतरमें?

इस प्रदेशमें मैं पर्वत और झंझाओंका स्वामी हूं,
स्वतंत्रता और स्वाभिमानकी आत्मा गौरवगामी हूं।
जो मेरे संग राज्य करेगा और चलेगा मेरे साथ,
रहना होगा उसे निरवसन औ' बिकना खतरोंके हाथ।

(अनु. डा. रामकृष्ण)

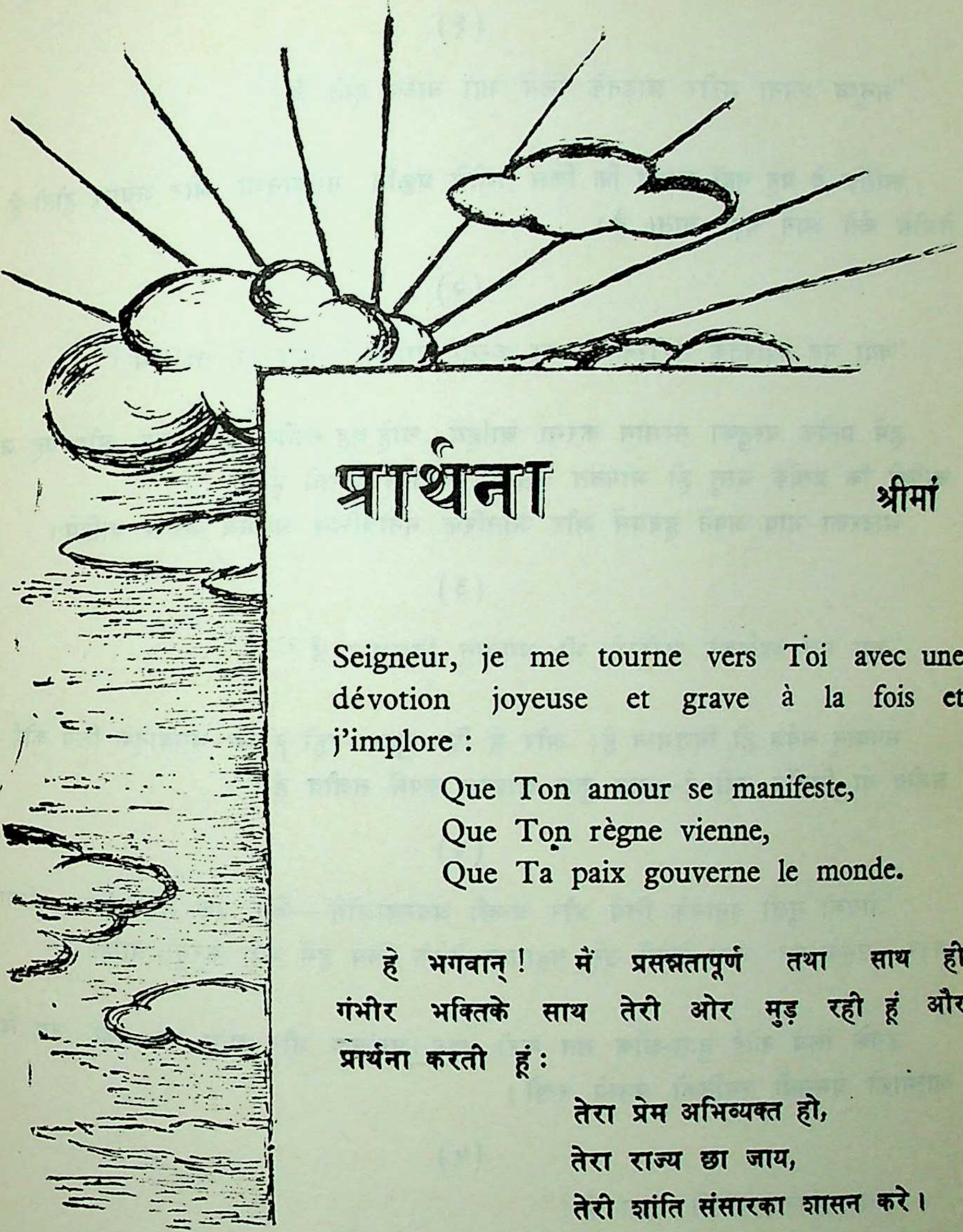

प्रार्थना

श्रीमां

Seigneur, je me tourne vers Toi avec une dévotion joyeuse et grave à la fois et j'implore :

Que Ton amour se manifeste,
Que Ton règne vienne,
Que Ta paix gouverne le monde.

हे भगवान् ! मैं प्रसन्नतापूर्ण तथा साथ ही गंभीर भक्तिके साथ तेरी ओर मुड़ रही हूं और प्रार्थना करती हूं :

तेरा प्रेम अभिव्यक्त हो,
तेरा राज्य छा जाय,
तेरी शांति संसारका शासन करे।

प्रश्नोत्तर

(१)

"मनुष्य अपना शरीर छोड़नेके लिये क्यों बाध्य होते हैं?"

क्योंकि वे यह नहीं जानते कि जिस तेजीसे प्रकृति भगवान्‌की ओर अग्रसर होती है उसी तेजीसे कैसे आगे बढ़ा जाता है।

(२)

"क्या मृत व्यक्तिके शरीरका आदर करना चाहिये? यदि हां, तो कैसे?"

हमें प्रत्येक वस्तुका सम्मान करना चाहिये, चाहे वह सजीव हो या मृत, और यह जानना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु ही भागवत चेतनामें निवास करती है।

आदरका भाव अपने हृदयमें और आंतरिक मनोवृत्तिमें अनुभव करना चाहिये।

(३)

"क्या मृत व्यक्तिके शरीरमें भी भगवान् विद्यमान हैं?"

भगवान् सर्वत्र ही विद्यमान हैं; और मैं फिर दुहरा रही हूं कि भगवान्‌के लिये कोई चीज सजीव या निर्जीव नहीं है--सब कुछ शाश्वत रूपमें सजीव है।

(४)

"जीवको सुखी बनानेके लिये और अच्छी अवस्थाओंमें--जैसे, एक आध्यात्मिक परिपार्श्वके अंदर--उसके पुनः जन्म लेनेमें उसे सहायता देनेके लिये हमें क्या करना चाहिये?"

उसके लिये कोई दुःख-शोक मत करो, खूब अचंचल और शांत बने रहो, उस दिवंगत आत्माकी प्रेममयी स्मृतिको बनाये रखो।

(५)

"क्या अंतरात्मा भी रोता है?"

जब कोई चीज उसे भगवान्से दूर ले जाती है तब रोता है।

(६)

"किसीका रोना बंद करानेके लिये हमें क्या करना चाहिये?"

उसे सच्चे दिलसे और गभीर रूपमें प्यार करना चाहिये और उसके आंसुओंको बंद करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

--श्रीमां

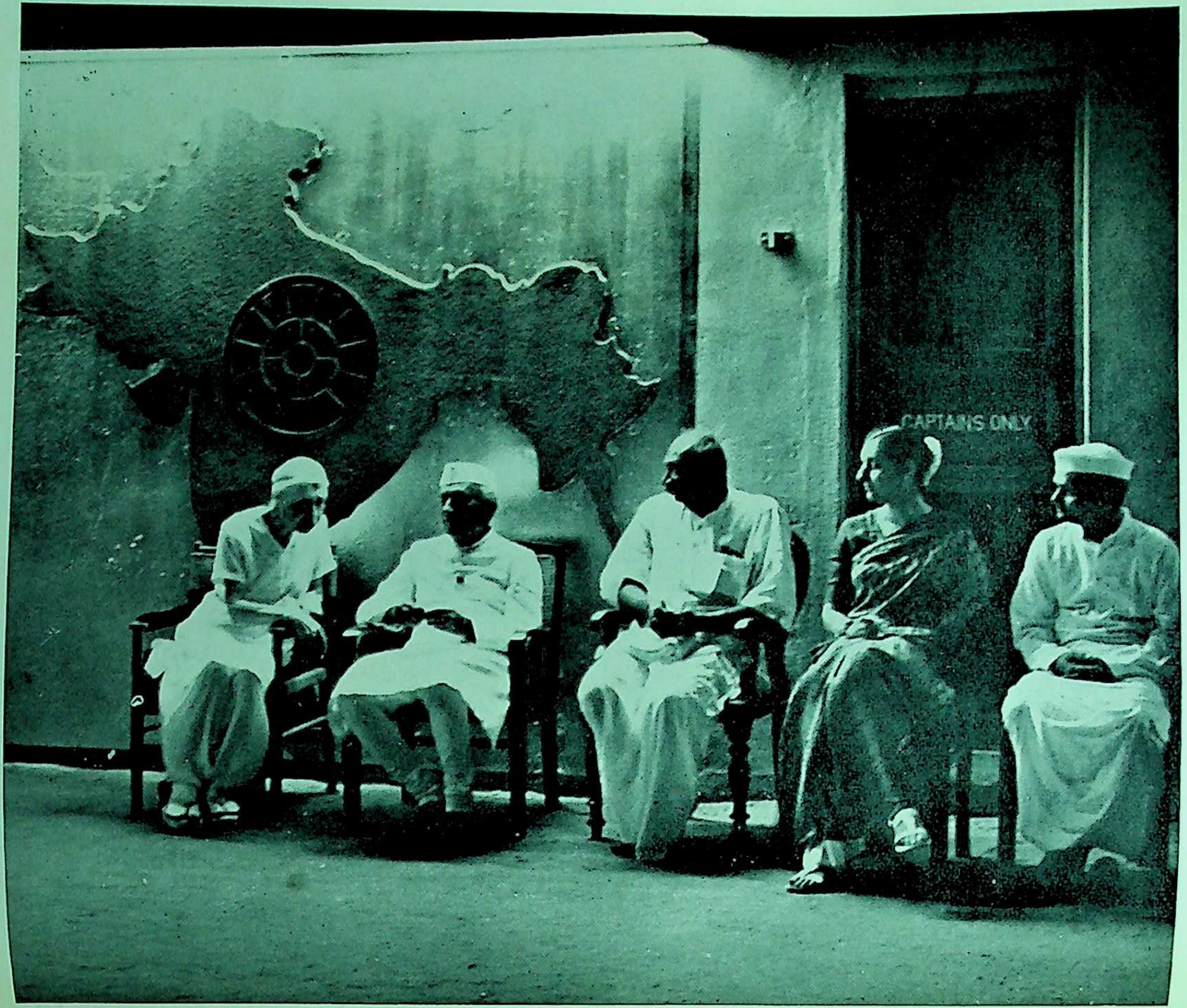
CAPTAINS ONLY

२९ सितंबर १९५५ को श्रीअरविंद आश्रमके खेलके मैदानमें : (बांयेसे) श्रीमाताजी,
पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री कामराज नाडार, श्रीमती इन्दिरा गांधी और श्री लाल बहादुर शास्त्री ।

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

पंडित नेहरू और भारत :

आजसे लगभग तीस वर्ष पहले भारत के "बेताजके बादशाह" ने नारा लगाया था, "भारत जिंदा है तो कौन मर सकता है और भारत हीं न रहा तो फिर कौन जिंदा रहेगा ?" भारत-के एक-एक युवकके हृदयसे ध्वनि गूंज उठी, "भारत जिंदा है तो कौन मर सकता है ?" आज वह चिरयुवा हमारे बीचमें नहीं है, परंतु क्या यह कहा जा सकता है कि वह मर गया ? श्रीमाताजीने जब यह समाचार सुना तो कहा, "नेहरू अपना शरीर त्याग रहे हैं परन्तु उनकी आत्मा भारतकी आत्माके साथ एक है और वह शाश्वत कालमें रहती है।"

रही बात शरीरकी, पंडित नेहरूका वह भव्य आकर्षक और चीनके आक्रमणसे पहलेतकका सचमुच युवा शरीर क्या नष्ट हो गया है ? नहीं, उनकी राखको देशके कोने-कोनेमें बिखेर दिया गया है मानों देशभक्ति, सचाई, निश्छल प्रेम, सर्वस्व त्यागकी भावना और अभिजात कुलीनताके बीज बो दिये गये हैं। उन्हें सींचना हम सबका कर्तव्य है।[1]

देशके सामने बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं जिनका हल करना मनुष्यके लिये असंभवसा दीख रहा है। चारों ओर एक अंधकार फैला हुआ है, जीवनमें असवसादका राज्य है। देशपर आयी हुई आंतरिक और बाह्य विपदाओंको देखकर निराशा-सी होती है। उसी समय श्रीमाताजी-का मधुर कंठ सुनायी देता है, वे कहती हैं, "अंधकार चाहे कितना भी घना क्यों न हो, भारत-का भविष्य उज्ज्वल है"। यही सच्ची सांत्वना है और यही है भविष्यके लिये सच्ची प्रेरणा।

---

[1] यहां हम नेहरूजीकी वसीयतका कुछ हिस्सा प्रेस विज्ञप्तिके शब्दोंमें ही उद्धृत कर रहे हैं :

"मुझे, मेरे देशकी जनताने, मेरे हिंदुस्तानी भाइयों और बहनोंने इतना प्रेम और इतनी मुहब्बत दी कि चाहे मैं जितना कुछ करूं, वह उसके एक छोटे हिस्सेका बदला नहीं हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इतनी कीमती चीज है कि इसके बदले कुछ देना मुमकिन नहीं है। इस दुनियामें बहुतसे लोग हुए जिनको अच्छा समझकर, बड़ा मानकर उनका आदर किया गया, पूजा की गयी, लेकिन भारतके लोगोंने, छोटे और बड़े, अमीर और गरीब, सब तबकोंके बहनों और भाइयोंने मुझे इतना ज्यादा प्यार किया कि जिसका बयान करना मेरे लिये मुश्किल है और जिससे मैं दब गया। मैं आशा करता हूं कि मैं अपने जीवनके बाकी वर्षोंमें अपने देशवासियोंकी सेवा करता रहूं और उनके प्रेमके योग्य रहूं।"

क्या और कैसे करें?

इस समय प्रत्येक भारतीय युवकके मनमें यह प्रश्न उठ रहा है कि उसे क्या और कैसे करना चाहिये। उसे पथ दिखानेवालोंकी कमी नहीं परंतु प्रत्येक अपने ही पथको ठीक बताता है और बाकीको गलत। आवाजोंके कोलाहलमें उसे सच्ची आवाजका पता नहीं लग पाता। कुछ लोगोंकी मान्यता है कि हमें फिरसे वैदिक और पौराणिक युगमें वापिस जाना चाहिये।

साथियोंके अहसानात :

वसीयतमें कहा है कि बेशुमार दोस्तों और साथियोंके मेरे ऊपर और भी ज्यादा अहसानात हैं। हम बड़े-बड़े कामोंमें एक-दूसरेके साथ रहे, शरीक रहे, मिलजुलकर काम किये। यह तो होता ही है कि जब बड़े काम किये जाते हैं तो उनमें सफलता भी होती है, नाकामयाबी भी होती है। मगर हम सब शरीक रहे सफलताकी खुशीमें और नाकामयाबीके दुःखमें भी .....।

उन्होंने कहा है कि मैं चाहता हूं, और मनसे चाहता हूं कि मेरे मरनेके बाद कोई धार्मिक रस्म न अदा की जायें। मैं ऐसी बातोंको मानता नहीं हूं और सिर्फ रस्म समझकर इनमें बंध जाना धोखेमें पड़ना मानता हूं। जब मैं मर जाऊं तो मेरी इच्छा है कि मेरा दाह-संस्कार कर दिया जाये। अगर विदेशमें मैं मरूं तो मेरे शरीरको वहीं जला दिया जाये और मेरी अस्थियां इलाहाबाद भेज दी जायें। इनमेंसे मुट्ठी भर गंगामें डाल दी जाय और उनके बड़े हिस्सेके साथ क्या किया जाये मैं आगे बता रहा हूं। इनका कुछ भी हिस्सा किसी हालतमें बचाकर न रखा जाये।

स्व० नेहरूने कहा है कि गंगामें अस्थियोंका कुछ हिस्सा डलवानेकी इच्छाके पीछे, जहांतक मेरा ताल्लुक है, कोई धार्मिक ख्याल नहीं है। इस बारेमें मेरी कोई धार्मिक भावना नहीं है। मुझे बचपनसे गंगा और यमुनासे लगाव रहा है, और जैसे-जैसे बड़ा हुआ, यह लगाव बढ़ता रहा। मैंने मौसमोंके बदलनेके साथ इनके बदलते हुए रंग और रूपको देखा, और कई बार मुझे याद आयी उस इतिहासकी, उन परंपराओंकी, पौराणिक गाथाओंकी, उन गीतों और कहानियोंकी, जो कि कई युगोंसे उनके साथ जुड़ गयी हैं और उनके बहते हुए पानीमें घुलमिल गयी हैं।

गंगा :

उन्होंने कहा है कि गंगा तो विशेषकर भारतकी नदी है, (इसकी) जनताकी प्रिय है, जिससे लिपटी हुई हैं भारतकी जातीय स्मृतियां, उसकी आशाएं और उसके भय, उसके विजय-गान, उसकी विजय और पराजय। गंगा तो भारतकी प्राचीन सभ्यताका प्रतीक रही है, निशान रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर भी वही गंगाकी गंगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालयकी बर्फसे ढकी चोटियोंकी और गहरी घाटियोंकी, जिनसे मुझे मुहब्बत रही है, और उनके नीचेके उपजाऊ और दूर-दूरतक फैले मैदान जहां काम करते मेरी जिंदगी गुजरी है। मैंने सुबहकी रोशनीमें गंगाको मुस्काते, उछलते-कूदते देखा है, और देखी है शामके सायेमें उदास, काली-सी चादर ओढ़े हुए भेद भरी, जाड़ोंमें सिमटी-सी आहिस्ते-आहिस्ते बहती सुन्दर धारा;

दूसरे कहते हैं, छोड़ो भी इन ढकोसलोंको, अब प्रयाग और हरद्वारका स्थान भाकड़ा नंगल और नागार्जुन कुंडने ले लिया है। इसी भांति वेद और पुराणका स्थान विज्ञान और उद्योग ले रहे हैं। क्या होगा पुरानी चीजोंके पीछे पड़कर। देखो, हमारा देश राम-राम करता रहा इसीलिये पीछे पड़ा हुआ है। हम भी अगर यूरोपकी तरह कुछ कर गुजरें तो हमारा भी तारा चमक उठेगा।

हम देखते हैं कि पुरानी विद्या और पुरानी प्रथाओंका दम भरनेवाले भी यूरोपकी नयी रोशनीसे चुंधिया गये हैं। उनके मनमें भी लगता है कि शायद यूरोपवाले ही ठीक हैं। वे देखते हैं कि समाजमें संस्कृत और हिन्दीके पंडित फटी जूतियां चटकाते फिरते हैं और विज्ञान और आधुनिक विद्याओंके जाननेवाले सब जगह मान पाते हैं। वे अपने बेरोंको अधिक मीठा बतानेके लिये झट वेद-शास्त्रोंसे आजकी सब चीजोंको निकालकर दिखा देते हैं। उनके मतानुसार अणु बम, पार्लीमेंट, एक्स रे, रेडियो--सब कुछ पुराने शास्त्रोंमें मौजूद है मानों वे शास्त्र न हुए भविष्यके विश्वकोश हो गये।

युवक उठना चाहता है, कुछ करना चाहता है और स्वाभाविक रूपसे उसके अंदर बड़ा बननेकी अभिलाषा भी है। वह चारों ओर देखता है, हर तरफ एक धांधली-सी दिखायी देती है, कोई स्पष्ट मार्ग नहीं दिखायी देता। हम किसीको रास्ता दिखानेका दावा नहीं करते;

और बरसातमें वह दहाड़ती, गरजती हुई समुद्रकी तरह चौड़ा सीना लिये और सागरको बरबाद करनेकी शक्ति लिये हुए।

उन्होंने कहा है कि यही मेरे लिये निशानी है भारतकी प्राचीनताकी, यादगारकी जो बहती आयी है वर्तमानतक और बहती चली जा रही है भविष्यके महासागरकी ओर। भले ही मैंने पुरानी परंपराओं, रीति और रस्मोंको छोड़ दिया हो, और मैं चाहता भी हूं कि हिंदुस्तान इन सब जंजीरोंको तोड़ दे जिनमें वह जकड़ा है, जो उसको आगे बढ़नेसे रोकती हैं और जो देशमें रहनेवालोंमें फूट डालती हैं, जो बेशुमार लोगोंको दबाये रखती हैं और जो शरीर और आत्माके विकासको रोकती हैं। चाहे यह सब मैं चाहता हूं, फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपनेको इन पुरानी बातोंसे बिलकुल अलग कर लूं।

मुझे फख्र है इस शानदार उत्तराधिकारका, इस विरासतका जो हमारी रही है और हमारी है, और मुझे यह भी अच्छी तरहसे मालूम है कि मैं भी, हम सबोंकी तरह, इस जंजीरकी एक कड़ी हूं जो कि कभी नहीं टूटी है, और जिसका सिलसिला हिंदुस्तानके अतीत इतिहासके प्रारंभ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़ सकता क्योंकि मैं उसकी बेहद कद्र करता हूं, और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत और हौसला मिलता है। मेरी इस आकांक्षाकी पुष्टिके लिये और भारतकी संस्कृतिको श्रद्धांजलि भेंट करनेके लिये मैं यह दरख्वास्त करता हूं कि मेरी भस्मीकी एक मुट्ठी इलाहाबादके पास गंगामें डाल दी जाये, जिससे कि वह उस महासागरमें पहुंचे जो हिंदुस्तानको घेरे हुए है।

अंतमें उन्होंने कहा है कि मेरी भस्मीके बाकी हिस्सेका क्या किया जाये? मैं चाहता हूं कि इसे हवाई जहाजमें ऊंचाईपर ले जाकर बिखेर दिया जाये उन खेतोंपर जहां भारतके किसान मेहनत करते हैं, ताकि वह भारतकी मिट्टीमें मिल जाये और उसीका अंग बन जाये।

हम तो श्रीअरविन्दके दिये हुए प्रकाशमें कुछ बातें कहना चाहते हैं और फिर हर व्यक्तिसे आग्रह करते हैं कि वह न तो तातस्य कूपम् कहकर खारा पानी पीता रहे और न हर एक नयी चीजको अच्छा मानकर ग्रहण करना चाहे।

हम भारतवासी हैं, इसलिये आवश्यक है कि और कुछ देखनेसे पहले यह देखनेका प्रयास करें कि भारतीयता क्या है और उसकी हमसे क्या मांग है और हम उसे किस भांति पूरा कर सकते हैं। हमें भारतके उज्ज्वल कालका भली भांति अध्ययन करना होगा, फिर उस कालकी ओर देखना होगा जब भारत पूरी तरहसे अंधकारके कुंएमें जा गिरा था, चारों ओर निराशाजनक स्थिति थी; फिर हमें उस कालको भी देखना होगा जब भारतका पश्चिमके साथ संसर्ग हुआ। एक ओर जातिका वह भाग था जिसे काले अंग्रेजोंका रूप दिया गया था, जो भारतको यूरोपकी एक छाया बना देना चाहता था, और दूसरी ओर थोड़से पागल थे जो धाराके विरुद्ध तैरनेमें लगे थे। इन तीनों अवस्थाओंका अध्ययन करनेके बाद हम वर्तमानको उसके समुचित रूपमें समझ पायेंगे और उसके साथ ही भविष्यकी झांकी ले सकेंगे।

काम बड़ा है। कठिन है। परंतु परिणाम भी बड़ा है। अमूल्य है। भारतके इतिहासपर एक सरसरी नजर डालनेसे ही पता लग जाता है कि यहांकी विशेषता रही है आध्यात्मिकता। जब कभी भारत गिरने लगा है तो आध्यात्मिक पुरुषोंने जन्म लेकर उसे फिरसे उठाया है। तो यह आध्यात्मिकता क्या है? क्या संसारसे मुंह मोड़कर, जीवनको तिलांजलि देकर केवल ध्यान-धारणामें ही लगे रहना होगा? क्या धर्मके नामपर पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, जप-तपमें ही हमारा कर्त्तव्य समाप्त हो जायगा? नहीं, भारतकी सच्ची आध्यात्मिकता यह नहीं है। यह तो उसका एक पहलू है जो कुछ समयके लिये प्रधान बन गया था।

भारतकी मान्यता रही है और अपने अंधकारपूर्ण दिनोंमें भी वह इसे नहीं भुला सका है कि जीवन केवल ऊपरी तलपर ही नहीं है। उसने भौतिक शास्त्रोंको भी मान दिया था, आज ज़िस सायंसका बहुत ढिंढोरा पीटा जा रहा है उसमें भी अभी कुछ शताब्दियों पहलेतक भारत सबसे आगे था। परंतु यह सब होते हुए भी, उसको हमेशा इस बातका भान रहा है कि यही सब कुछ नहीं है, इसके परे भी बहुत कुछ है और जबतक उसके साथ संबंध न हो तबतक सारा ज्ञान अधूरा रह जाता है। उसने देखा था कि सीमितके चारों ओर असीम एक कवच बनाये रहता है। भारतने जाना कि मनुष्यके परे देवता हैं और देवताओंके भी परे देवाधिदेव और उसके भी परे स्वयं उनकी असीम अनंत सत्ता। उसने हमारे जीवनके पीछे उच्चतर मानसिक जीवनको देखा और उसके परे आध्यात्मिक जीवनके दर्शन किये। और फिर एक हठी बच्चेकी तरह यह घोषणा कर डाली कि इन सब तत्त्वोंको, इन सब शक्तियोंको यहां धरतीपर उतारा जा सकता है और उतारा जायगा और धरतीके जीवनपर स्वयं भागवत जीवनकी अभिव्यक्ति होगी। और वह इस दिशामें प्रयास करने लगा।

लेकिन कहा जाता है कि एक हिमालयके अवतरणके लिये पहले बहुतसे छोटे-छोटे पर्वतोंकी जरूरत पड़ती है ताकि वे धराको सम्हाले रख सकें; उसी भांति उच्च आध्यात्मिक चेतनाके अवतरणसे पहले यह जरूरी है कि धरतीपर जीवन अपनी पूर्णता पानेका प्रयास करे। हम भारतके भूतकालकी ओर नजर डालें तो दिखायी देता है कि उसमें अतुल प्राणशक्ति भरी थी, जीवन-शक्ति, उल्लास और सर्जक शक्ति मानों उमड़ी पड़ रही थी। उसने हजारों वर्षतक

खुले हाथों संपत्ति लुटायी है, क्या कला और क्या संगीत, दर्शन, विज्ञान, काव्य, स्थपत्य, कर्मकांड, वाणिज्य, मनोविनोद, यहांतक कि कामके लिये भी उफान-सा दिखायी देता रहा है। प्राचीन मंदिरोंको देखिये, प्राचीन चित्रोंको देखिये या किसी और दिशामें नजर दौड़ाइये, हर जगह सर्जक शक्तिका उफान दिखायी देगा। कहीं खाली स्थान न मिलेगा, जहां कहीं जरा भी पांव रखनेकी जगह मिली वहीं, एक मूर्ति, एक चित्र, एक रागको खड़ा कर दिया। कहते हैं कि भारतीय गायक एक गानेको पांच बार गायेगा तो हर बार उसमें कुछ विशेषता होगी, इसीलिये भारतीय संगीतमें स्वरलिपिका व्यवहार नहीं हो पाया। उन्हें अपनी चीजके खो जानेका डर न था, अमित और अक्षय भंडारके स्वामी जो ठहरे। और ये सब चीजें भारतकी चारदीवारी तोड़कर मिस्र, रोम, पेलेस्टाइन, चीन, जापान और मेक्सिको आदितक जा पहुंची थीं। इतनी शक्ति थी, इतना जीवन था कि उसे अभिव्यक्त किये बिना रहना असंभव था। उदाहरणके लिये अनगिनत त्यौहारोंको और उन्हें मनानेकी विधियोंको देख लीजिये, सभी जगह शक्तिके दरिया उमड़ते दिखायी देते हैं।

इतना ही नहीं। केवल इतना ही होता तो हम कह देते कि यह तो पीलीभीतकी ओर के घने जगलोंकी न्याई है जहां सब जगह पेड़-पौधे और रूखड़ियां भरी हैं। यहां हालत कुछ और है; जहां कादंबरीमें एक बात कहनेके लिये कई-कई पृष्ठ भरे जाते हैं वहां ऐसे भी विद्वान हैं जो अपने वाक्यमें एक मात्रा कम करनेके लिये भगीरथ प्रयत्न करते हैं। भारतीय जब गभीरतासे अध्ययन करने बैठे तो धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, गंधर्ववेद, नाट्य-शास्त्र, घोड़े, हाथी, रथ आदिका अध्ययन किया और अर्थशास्त्र, समर-शास्त्र आदिकी बारीकियोंमें, गहराइयोंमें पैठकर वहांके मोती निकाल लाये। उस जमानेमें मुद्रणालय न थे, कागज न था, केवल स्मरण-शक्ति, तालपत्र और भोजपत्रके सहारे वे हमारे लिये क्या-क्या नहीं छोड़ गये! राहुल सांकृत्यायन और डा. रघुवीरने जो हस्तलिखित प्रतियां इकट्ठी की हैं वे तो वर्तमान चीजोंका एक अंशमात्र हैं और जो वर्तमान है वह.....। शक आये, हूण आये, मुसलमान आये और न जाने कितने आये जिन्होंने हमारी संपत्तिको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, फिर आग, पानी, कीड़े, तूफान, भूकंप आदिने भी अपना-अपना हिस्सा ले लिया। इस सबके ऊपर भी हमारे पास जो बचा हुआ है उसे देखकर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। इनकी बराबरी संसारका कोई देश नहीं कर सकता।

भारतकी अध्यात्म-शक्ति इन सब क्रिया-कलापोंको सहारा दे रही थी। उसकी चट्टानको आधार बनाकर भारतका महल आकाशसे बातें करता था। उसकी आध्यात्मिकता बुद्धि और सौंदर्य-बोधको भी बढ़ावा देती थी। वह परस्पर-विरोधी तत्त्वोंको एक साथ मिलकर रहना सिखाती थी और इस प्रकार जीवन एक अपूर्व मीनाकारीका नमूना बन जाता था।

अच्छा, यह सब तो हुईं भूतकालकी बातें। हमारा विश्वास है, भविष्यमें भारतकी यह आत्मा नये-नये परिधान पैदा करेगी। नये दर्शन, नयी कला, नये विज्ञान, नयी राजनीति, समाज-व्यवस्था आदिको जन्म देगी परंतु उन सबपर आध्यात्मिकताकी छाप होगी। श्रीअरविन्दने अपने अनेक ग्रथों और पत्रोंमें हमें उसका दिग्दर्शन कराया है। परंतु यह सब अगले अंकोंमें।

⁂

एक समस्या

एक मित्रने लिखा है : "मैं कट्टर सनातनधर्मी परिवारका हूं। मेरे यहां राम, कृष्ण, हनुमान आदिकी पूजा नियमित रूपसे की जाती है। मैं स्वयं आर्यसमाजी विचारोंका हूँ और मुझे मूर्तिपूजा, मृतक-श्राद्ध आदिपर विश्वास नहीं है। इस चीजको लेकर हमारे घरमें बराबर ही मनमुटाव बना रहता है। बड़े बूढ़े चाहते हैं कि मैं भी श्राद्ध करूं, उपवास, जागरण आदि करूं और मैं चाहता हूं कि वे लोग भी इन सब चीजोंको छोड़ दें, क्योंकि मुझे इनमें पाखंडकी गंध आती है। हम लोगोंमें आपसमें बड़ा मधुर संबंध है पर यह समस्या हमारे संबंधको खराब कर रही है। इधर कुछ समयसे मुझे श्रीअरविन्दके मार्गकी ओर आकर्षण हो रहा है। कृपया बताइये कि श्रीअरविन्दके मतानुसार मुझे क्या करना चाहिये।"

इस प्रकारकी समस्या और भी कई लोगोंके सामने आती है। इसके दो उपाय हो सकते हैं। बाह्य रूप तो दोनोंका एक ही होगा परंतु पीछेकी भावना अलग होगी। जापानमें ऐसे बहुतसे परिवार हैं जहां बाप ईसाई है, मां शिन्तो है और बेटा बौद्ध, और तीनों एक साथ हिलमिलकर रहते हैं, कोई किसीके मार्गमें बाधक नहीं होता। वहां धर्म हर एकका अपना व्यक्तिगत मामला है जिसमें दूसरा टांग नहीं अड़ाता। इसलिये एक उपाय तो यही है कि हम इन बातोंमें सहिष्णुता सीखें और जैसे हम नहीं चाहते कि कोई दूसरा हमारे मार्गमें बाधा डाले, उसी तरह हम भी दूसरेके मार्गमें बाधक न बनें। यह तो हुई एक ऊपरी समझौतेकी बात, इससे घरमें झगड़े न होंगे। परंतु अंदर ही अंदर यह भाव बना रह सकता है कि हमारा ही मार्ग सच्चा है, दूसरेके मार्गको गलत मानते हुए भी हम उसे सह रहे हैं।

परंतु श्रीअरविन्दको किसी भी समस्याके ऊपरी हलसे संतोष नहीं होता। वे लीपा-पोतीके पक्षमें नहीं हैं। उनकी परिभाषामें वीर वह है जो हमेशा सत्यको पहचानकर उसके लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा दे। जो बोल-चालमें भी और क्रियामें भी सत्यका ही आश्रय ले, सत्यपर किसी प्रकारका समझौता न करे। ऐसी अवस्थामें श्रीअरविन्दके अनुयायीका क्या कर्तव्य है? उसे मूर्तिपूजा, गंगा-स्नान, श्राद्ध, तर्पण आदि करना चाहिये या नहीं और अपने समाजके सामने उसे कैसा रुख लेना चाहिये?

इसका उत्तर बहुत सरल है। श्रीअरविन्द किसी प्रकारकी कट्टरताके समर्थक नहीं हैं। वे यह नहीं कहते कि अमुक मार्ग ही भगवान्की ओर ले जाता है और बाकी सब मार्ग भगवान् से विमुख हैं। भगवान् सब जगह मौजूद हैं और जो उनको सच्चे दिलसे पुकारता है उसे तुरंत उत्तर देते हैं। यह विचार भारतवर्षके लिये नया नहीं है। कबीरदासजी कहते हैं, "सब घट मेरा साइंया, सूनी सेज न कोई" या "पावक रूपी साइंया सब घट रह्या समाइ"। इसी विचारको दादूने यूं प्रकट किया है, "घट घट गोपी, घट घट कान्ह, घट घट राम अमर अस्थान" या "दादू देखौं दयाल कों, बाहरि भीतरि सोइ, सब दिसि देखों पीव कों, दूसर नाहीं कोई।"

भगवान् एक ही हैं परंतु एक होते हुए भी वे अनेक भी हैं:

गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरे
सूरज दिपै अकास, मुहमद सब मंह देखिये। (जायसी)

इस भांति भगवान् एक होते हुए भी अनेक दीखते हैं। संसार में जितने मनुष्य हैं भगवान् तक पहुंचनेके उतने ही मार्ग भी हो सकते हैं, क्योंकि भगवान्का हर एकके साथ अपना संबंध है। इसलिये जो सच्चे साधक हैं वे बाह्य रूपको महत्त्व नहीं देते। उनकी दृष्टिमें अंदरकी सच्चाई ही महत्त्वपूर्ण चीज है। अंदरकी सच्चाईसे श्रद्धाके साथ जो भी काम किया जायगा वह भगवान्तक पहुंचानेवाला होगा। अगर आप सच्चे दिलसे अनुभव करते हैं कि आपको मूर्तिपूजा, गंगास्नान आदि करना चाहिये तो जरूर कीजिये, किसीका लिहाज किये बिना कीजिये और अगर आपको इनकी आवश्यकता नहीं मालूम होती तो केवल लोकलाजसे अथवा बिरादरीको दिखानेके लिये मत कीजिये। सबसे महत्त्वपूर्ण चीज यह है कि हम सच्चे दिलसे यह अभीप्सा करें कि हमारे अंदर, व्यक्तिमें और समष्टिमें, भगवान्की इच्छा पूरी हो, हम उसके सच्चे यंत्र बन सकें। यदि हम सच्चे दिलसे यह चाहेंगे तो हमें पग-पगपर पथप्रदर्शन मिलता रहेगा और हम हर प्रकारकी कठिनाईको पार कर सकेंगे। किसी भी प्रकारकी उत्तेजना, किसी भी प्रकारका बुखार हमारे मार्गमें बाधक नहीं होगा। श्रीअरविन्दकी शिक्षा कट्टरताका उपदेश नहीं देती। वह उदारता और समग्र दृष्टि प्रदान करती है।

◆

प्रियतमके द्वारपर किसीने खटखटाया।

भीतरसे आवाज आयी कौन है?

"मैं हूं"––उत्तर था।

भीतरसे आवाज आयी––"इस घरमें मैं और तुम––दो नहीं रह सकते।" द्वार बंद ही रहे।

प्रेमी निराश होकर लौट गया। वर्ष भर उसने जंगलमें एकांतमें रहकर तपस्या की, उपवास किये, प्रार्थनाएं कीं। वर्ष समाप्त होनेपर प्रेमी पुनः लौटा और प्रियतमके द्वार खटखटाये।

"कौन है?" भीतर से आवाज आयी।

"तू है"—प्रेमीका उत्तर था।

द्वार खुले, प्रेमी और प्रियतम मिले, मिलकर एक हो गये। (मौलाना रूम)

श्रीमाताजीके वचन[★]

निस्संदेह, भागवत कृपा हमेशा काम करती रहती है, बस, स्थूल जगत् और उसमें निवास करनेवाले लोग ही उसे नही जानते !

★

वह (भगवान्) चाहते हैं कि तुम सबसे पहले अपने-आपको खोज निकालो; अपनी सच्ची सत्ताके द्वारा अपनी निचली सत्तापर अधिकार जमाओ और उसपर शासन करो, और तब तुम इस महान् भागवत कर्म (पार्थिव जीवनके पूर्ण रूपांतर) में बिलकुल स्वभाविक रूपसे अपना ठीक स्थान पा लोगे।

★

यदि वास्तवमें तुम किसी भी चीजसे आसक्त नहीं हो तो यह एक बहुत बड़ी यौगिक सिद्धि है और उसके लिये शिकायत करना गलत होगा।

★

सबसे पहले भगवान्को प्राप्त करना होगा, चाहे तुम उन्हें अपने अंदर अंतर्मुखी और एकाग्र होकर प्राप्त करो, चाहे प्रेम व आत्मदानके द्वारा श्रीअरविंद और मेरे अंदर प्राप्त करो। एक बार जब तुम भगवान्को पा लोगे तब तुम स्वभावतः ही सब वस्तुओंमें और सर्वत्र उन्हें देखोगे।

★

अपने अंदर प्रवेश करो, अपने चैत्य पुरुषको प्राप्त करो और उसके साथ-ही-साथ तुम मुझे भी अपने अंदर जीवंत, अपने प्राणके भी प्राणके रूपमें, सदा उपस्थित और सर्वदा समीप, एकदम स्पष्ट और मूर्त्त रूपमें पा लोगे।

★

मैं हमेशा तुम्हारे हृदयमें रहती हूं।

★

चैत्य पुरुष सोया नहीं रहता। वास्तवमें उसके साथका संपर्क अच्छी तरह स्थापित नहीं हुआ है, क्योंकि मन बहुत अधिक शोर मचाता है और प्राण बहुत चंचल है।

★

बंद दरवाजोंको खोलनेके लिये अपने दोष स्वीकार करनेके समान अच्छी कोई चीज नहीं है। जो चीज मुझे बतानेमें सबसे अधिक भय लगता है वह मुझे बता दो और तुरंत ही तुम अपनेको मेरे अधिक नजदीक अनुभव करोगे।

★

[★] श्रीमाताजीके वचन नामक पुस्तकसे। यह श्रीमाताजीकी सबसे नयी पुस्तक केवल फ्रेंच और हिन्दीमें उपलब्ध है। मूल्य हिन्दीमें रु.२.०० (सजिल्द रु. २.५०)। मिलनेका पता:- श्रीअरविंद आश्रम (प्रकाशन-विभाग), पांडिचेरी –२.

प्रत्येक व्यक्तिसे केवल वही चीज मांगी जाती है जो उसके पास है, या जो कुछ वह स्वयं है, उससे अधिक कुछ नहीं, पर उससे कमभी नहीं।

★

सच्चा दिव्य प्रेम सभी झगड़ोंसे ऊपर है। यह अपरिवर्तनीय आनंद और शांतिमें प्राप्त पूर्ण एकत्व का अनुभव है।

★

प्रेम करनेका अर्थ अधिकार करना नहीं, बल्कि अपने-आपको दे देना है।

★

यदि तुम अपना काम एक श्रद्धांजलिके रूपमें करो जिसे तुम सच्चाईके साथ भगवान्के चरणोंमें अर्पित करते हो तो वह काम उतना ही लाभदायी बन जायगा जितना कि ध्यान।

★

बिना आत्मसंयमके भौतिक स्तरपर कुछ भी करना असंभव है। यदि तुम्हारा हृदय, नियमित रूपसे और निरंतर, धड़कनेके कठोर संयमके अधीन होना न चाहे तो तुम पृथ्वीपर जी ही न सकोगे। जिन्होंने महान् सिद्धियां प्राप्त की हैं वे सदा महान् संयमी पुरुष ही थे।

★

चिंतित मत होओ, केवल अपने अंदर और अच्छा करनेके संकल्पको सर्वदा बनाये रखो।

★

हां, तुम्हारा आशा करना ठीक है। यह आशा ही वह चीज़ है जो सुखद भविष्यका निर्माण करती है।

★

भय नहीं करना चाहिये, विजय उन्हींकी होती है जो निर्भय होते हैं। मैं तुम्हें पथ दिखाने और तुम्हारी रक्षा करनेके लिये सदा तुम्हारे साथ हूं।

★

मौन रहनेमें कोई बुराई होनेका खतरा नहीं, जब कि बोलते समय दसमेंसे नौ बार मूर्खता पूर्ण बातें करना संभव है।

★

भीतरी शांतिको प्राप्त करना चाहिये और निरंतर बनाये रखना चाहिये। जो शक्ति यह शांति देती है उससे ये सभी (रोगादि) छोटी-छोटी तकलीफें दूर हो जाती हैं।

★

निश्चल-नीरवतामें ही अंतःप्रेरणाका ऊंचेसे ऊंचा स्रोत है।

श्रीअरविंद-वचनामृत*

भगवान्को जीवनमें संसिद्ध करना ही मानवकी मानवता है।

*

सारा जीवन ही केवल एक अपरिमित और असंख्यविध अवसर है जो हमें भगवान्को खोजने, पाने और प्रकट करनेके लिये दिया गया है।

*

मस्तिष्क जब भगवान्को नहीं समझ पाता तब वह (भगवान्) हृदयको अपनी वाणी सुनाते हैं।

*

वीरत्वके बिना मनुष्य देवत्वमें नहीं ढल सकता; साहस, शक्ति और बल तो क्रियोन्मुख भागवती प्रकृतिके कुछ प्रारंभिक तत्व हैं।

*

जो निःशेषभावसे और समग्र रूपसे अपने-आपको भगवान्को दे डालते हैं उन्हें भगवान् भी अपने-आपको दे डालते हैं। उन्हींके लिये है शांति, प्रकाश, शक्ति, सुख, स्वातंत्र्य, प्रसार, ज्ञानके शिखर और आनंदके सागर।

*

यदि तुम मंदिरमें भगवान्की जीवंत उपस्थितिकी प्रतिष्ठा करना चाहो तो तुम्हें उसे स्वच्छ रखना चाहिये।

*

पवित्रताका अर्थ है भगवान्के प्रभावको छोड़ अन्य किसी वस्तुका प्रभाव स्वीकार न करना।

*

सच्चा व्यक्ति अहं-पुरुष नहीं है, बल्कि वह दिव्य व्यक्तित्व है जो हमारे विकासक्रमके द्वारा हमारे भीतर अभिव्यक्त होनेकी तैयारी कर रहा है।

*

मनुष्यको अपनी कठिनाइयोंसे भी कहीं अधिक हठी होना चाहिये––दूसरा कोई उपाय नहीं है। भगवान्को प्राप्त करनेकी जीवकी अखण्ड इच्छाके विरुद्ध कोई चीज टिक नहीं सकती।

*

जो जीव अभीप्सा नहीं करते वे भगवान्की असफलताएं हैं।

*

हमारी सत्ताका सत्य है आत्मा; मन, प्राण और शरीर अपनी अपूर्णताओंमें इसके आवरण हैं, परंतु अपनी पूर्णतामें ये इसके विविध रूप बन जायेंगे।

*

---

*श्रीअरविंद-वचनामृत" से; प्रकाशक: श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी–२; मूल्य: ०.५०

जो हम अभी नहीं कर सकते वह इस बातका संकेत है कि हम पीछे क्या कर सकेंगे। असंभवताका बोध ही सारी संभावनाओंका प्रारंभ है।

★

हम लोगोंको तो आगे ही बढ़ना होगा, क्योंकि यदि हम ऐसा न करें तो हमारी काल्पनिक स्थिरताके वावजूद स्वयं काल हमें आगेकी ओर ढकेल देगा।

★

हम कितने ही ऊंचे क्यों न चढ़ जायं, हमारा चढ़ना दोषपूर्ण ही है यदि हम अपने आधारको ही भूल जायं।

★

लक्ष्यके प्रति यदि कोई अडिग हो तो भगवान्के पथपर कोई अंतिम असफलता नहीं आ सकती।

★

अपनी कमजोरियों तथा भ्रांत क्रियाओंको पहचानना तथा उनसे पराङमुख होना ही मुक्तिका पथ है।

★

आंतरिक विजयसे ही बाह्य विजयका आना संभव होता है।

★

जब कोई स्वयं मुक्त हो जाता है केवल तभी वह दूसरोंको मुक्त कर सकता है।

★

महत्तम बाधासे ही महत्तम शक्तिका उद्भव होता है।

★

शांति, स्थिरता और प्रकाशमय निश्चेष्टता बनाये रखनेमें समर्थ होनेका मतलब है अमरत्व प्राप्त करनेके योग्य हो जाना।

★

परम आंतरिक शांतिसे ही सबसे सच्ची अभिव्यक्ति उद्भूत होती है।

★

चरित्रके बिना, किसी तरहके ऊंचे या सशक्त अनुशासनके बिना जीवनमें कोई स्थायी शक्ति नहीं प्राप्त होती।

★

न्याय और धर्मकी स्थापनाके लिये योद्धाकी तलवार भी उतनी ही आवश्यक है जितनी संतकी पवित्रता।

★

परम प्रभुका सर्वांगपूर्ण यंत्र होनेसे बढ़कर कोई दूसरा सम्मान अथवा गौरव नहीं है।

★

मानव और भगवान्के मिलनका सदा अर्थ होता है भगवान्का मानवमें बेधन और प्रवेश तथा मानवका भगवान्में आत्मोन्नयन।

श्रीअरविन्द

(उनकी राजनीति)

—श्री रवींद्र

श्रीअरविंदके पांडिचेरी निवासके बारेमें कुछ कहनेसे पहले हम उनकी राजनीतिपर एक नजर डालते चलें। स्वयं श्रीअरविंदके शब्दोंमें उनके राजनीतिक विचारों और कार्योंके तीन पहलू थे। सबसे पहला था वह कार्य जिससे उन्होंने आरंभ किया अर्थात् वह गुप्त क्रान्तिकारी प्रचार और संगठन जिसका मुख्य उद्देश्य था सशस्त्र विद्रोहकी तैयारी करना। दूसरा था एक सार्वजनिक प्रचार जिसका प्रयोजन था सम्पूर्ण राष्ट्रको स्वाधीनताके आदर्शकी दीक्षा देना। जब वे राजनीतिक क्षेत्रमें उतरे तब अधिकतर भारतीय इसे असंभवसी, पागलोंकी कल्पना मानते थे। यह समझा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य अत्यन्त शक्तिशाली है और भारत अत्यन्त दुर्बल। उसे पूरी तरह निःशस्त्र कर दिया गया है और वह इतना निर्वीर्य हो गया है कि ऐसे प्रयत्नमें सफल होनेका स्वप्न भी नहीं देख सकता। तीसरा पहलू था जनताका संगठन करना जिससे अधिकाधिक बढ़ते हुए असहयोग एवं निष्क्रिय प्रतिरोधके द्वारा विदेशी शासनका सार्वजनिक और संयुक्त रूपसे विरोध करके उसकी जड़ें खोखली कर दी जायं।

उस समय बड़े-बड़े साम्राज्योंके पास भी आजके जैसे भयंकर हथियार न थे। हवाई जहाज तो अभी शुरू हो ही रहा था, तोप-बंदूकने भी इतना विकराल रूप धारण नहीं किया था। अभीतक अस्त्रोंमें राइफल ही मुख्य थी और श्रीअरविंदका ख्याल था कि अगर भलीभांति संगठन कर लिया जाय और कुछ विदेशी सहायता भी प्राप्त कर ली जाय तो काम चल जायगा। भारतीय सेनाको देश-प्रेमका पाठ पढ़ाकर अंग्रेजी राज्यके विरुद्ध उभारना भी उनके कार्यक्रमका एक अंग था। उन्होंने अंग्रेज मानसका बहुत अच्छी तरह अध्ययन किया था। उनका कहना था कि अंग्रेज बहुत समयतक पत्थरकी मूर्ति बनकर न रह सकेंगे। यदि उन्होंने देखा कि विरोध बढ़ता जा रहा है तो बजाय इसके कि स्वाधीनता उनके हाथोंसे छीन ली जाय, वे यह ज्यादा पसन्द करेंगे कि वे अपने-आप ही स्वाधीनता देकर चले जायं।

श्रीअरविंद पूर्ण रूपसे राजनीतिक शांतिवादी (पेसिफिस्ट) या अहिंसवादी नहीं थे। हां, देश और कालके अनुसार सर्वोत्तम नीतिके रूपमें उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोधको स्वीकार किया था। श्रीअरविंदका मत था कि प्रत्येक राष्ट्रको यह अधिकार है कि वह स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये सशस्त्र क्रान्तिका सहारा ले। हां समय, परिस्थिति, साधन आदिको देखते हुए नीतिमें हेरफेर करना जरूरी है। श्रीअरविंद यह भी मानते थे कि क्रान्तिके लिये आवश्यक है कि आर्थिक जुएको उतार फेंका जाय और उद्योग-धंधे और व्यापारमें प्रगति की जाय।

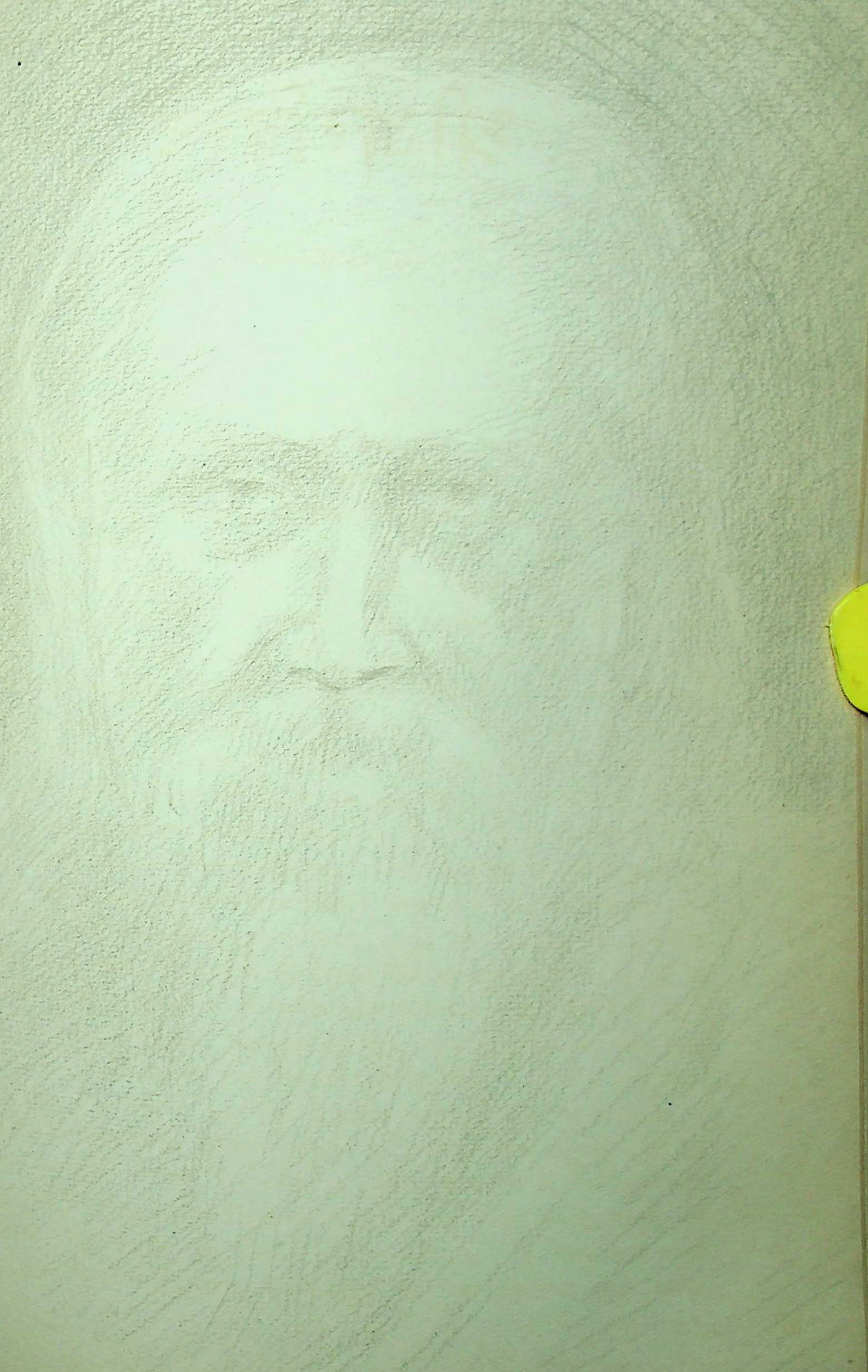

वे चाहते थे कि भारतवासी अंग्रेजोंका पूरी तरह बहिष्कार करें, किसी भी क्षेत्रमें किसी प्रकारका सहयोग न दें और इस तरह राजकाजको असम्भव बना दें। वे ब्रिटिश व्यापारके बहिष्कार, सरकारी संस्थाओंके स्थानपर राष्ट्रीय विद्यालयोंकी स्थापना, स्वयंसेवकोंका संगठन, भारतीय उद्योग और व्यापारके पुनरुत्थानके पक्षमें थे। हम देखते हैं कि श्रीअरविंदके बताये हुए इन कार्यक्रमोंको बादमें सफलताके साथ उपयोगमें लाया गया। परंतु जैसे-जैसे भविष्यके बारेमें श्रीअरविंदकी दृष्टि स्पष्ट होती गयी वैसे-वैसे उन्होंने देखा कि इस अन्दोलनके लिये देश तैयार नहीं है और वे स्वयं इस कामके लिये नहीं हैं। उन्होंने देखा कि आंतरिक शक्तियोंकी प्रगति, भारतवासियोंके प्रतिरोध और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंके दबावसे ब्रिटेन भारतको स्वतन्त्रता देनेके लिये विवश हो जायगा। उसके लिये सशस्त्र क्रान्तिकी आवश्यकता न होगी। स्वयं उनके लिये कुछ और ही काम चुना गया है।

अपने राजनीतिक कार्यमें श्रीअरविंदने किसी प्रकारके विद्वेषको स्थान नहीं दिया था, वे अंग्रेजों या इंग्लैण्डसे घृणा करनेके पक्षमें नहीं थे। उन्होंने स्वराज्यकी मांग इसलिये नहीं की कि अंग्रेजोंका राज्य अत्याचारी या खराब था। वे स्वराज्य केवल इसलिये चाहते थे कि यह प्रत्येक देशका जन्मसिद्ध अधिकार है।

यहां अपनी ओरसे कुछ कहनेकी जगह हम श्रीअरविंदके ही कुछ वचन उद्धृत करेंगे जिनसे उनके राजनीतिक कार्य तथा ध्येयके बारेमें स्पष्ट जानकारी मिल सकेगी। हां, अनुवाद नहीं केवल भाव दिया जा रहा है। १९०८ में बम्बईमें भाषण देते हुए श्रीअरविंदने कहा था, "स्वयं भगवान् ही सब कुछ कर रहे हैं, हम कुछ नहीं कर रहे। जब हमें कष्ट सहनेका आदेश होता है तो हम कष्ट सहते हैं ताकि औरोंको बल मिले। अगर भगवान् हमें फेंक दें तो इसका अर्थ है कि उस अवसरपर हमारी आवश्यकता नहीं है। अगर परिस्थिति बिगड़ जाय तो हो सकता है कि हमसे न केवल जेल जानेकी बल्कि प्राणत्याग करनेकी मांग की जाय। आज जो लोग नेता मालूम होते हैं, हो सकता है कि कल उनसे आत्मबलि देनेको कहा जाय और तब हम जान लेंगे कि परिस्थितिकी मांग यही है। हम खुशीसे बलि चढ़ जायंगे। अपनी बलि देनेवालोंके स्थानपर भगवान् और अधिक उपयुक्त लोगोंको ले आयंगे। भगवान् स्वयं कार्य कर रहे हैं और वे ही कार्य हैं। वे अपनी संतानके हृदयोंमें अमर रूपसे विद्यमान हैं। बहुतोंके अंदर यह श्रद्धा है। बहुतसे भगवान्के नामसे अपरिचित हैं, वे देशके लिये, जातिके लिये बलि चढ़ रहे हैं। परंतु लौट-फिरकर बात वही है। भगवान् मेरे अंदर, आपके अंदर, सबके अंदर मौजूद हैं और देशके नामसे काम करते हुए कई लोग सीधे भगवान्के आदेशका पालन कर रहे हैं। जब भगवान्की इच्छा होगी तब वे सब कुछ ठीक कर लेंगे। हमारी हलचल राजनीतिक स्वार्थोंके लिये नहीं है। हम धर्मके अनुसार अपना जीवन घड़नेकी कोशिश कर रहे हैं और वह धर्म है भारतके तीस करोड़ लोगोंमें, स्वयं भारतमें भगवान्को पाना। हमारे कार्यमें तीसरी चीज है साहस। अगर तुम्हें भगवान्पर भरोसा है, अगर तुम यह मानते हो कि तुम कुछ नहीं कर रहे, तुम्हारे द्वारा भगवान् ही कार्य कर रहे हैं तब भला डर किस बातका? तुम्हारे अंदर जो शक्ति काम कर रही है वह अमर है, उसे तलवार काट नहीं सकती, आग जला नहीं सकती और पानी डुबा नहीं सकता। वह शक्ति तुम्हारी रक्षा कर रही है। तुमने एक महान् कार्यको अपनाया है और चारों ओरसे उसका

विरोध होगा। प्राचीन कालमें जब भगवान् अवतार लेते थे तो साथ ही दैत्य भी आया करते थे जो भगवान्का विरोध करते थे। यह रीति सदासे चली आ रही है।

"ऐसा प्रयास करो कि तुम जो भी कुछ करो वह तुम्हारा अपना काम न हो, वह भगवान्का काम हो और वे ही तुम्हारे द्वारा कर रहे हों। तुम्हारे जीवनका एक-एक क्षण उनका हो। सच्चा नेता तुम्हारे अंदर है। तुम्हें दूसरे देशों और राष्ट्रोंकी तरह प्रगति करनेकी जरूरत नहीं है, तुम्हें उनकी तरह दूसरोंको दबाने और कुचलनेकी जरूरत नहीं है। तुम्हें उठना है ताकि तुम दुनियाको उठा सको। वह ज्ञान जिसे ऋषियोंने पाया था वह फिरसे आ रहा है। उसे सारे संसारको देना होगा। तुम अपने जीवनको, अपने राष्ट्रके जीवनको भगवान्के कामके लिये उपयुक्त बनाओ। अब तुम देखोगे कि हमने केवल राष्ट्रीय स्वाधीनता ही नहीं प्राप्त की है बल्कि सारे संसारके लिये भगवान्द्वारा नियत किये गये काममें भाग लिया है।"

इसी लक्ष्यको सामने रखकर श्रीअरविंद काम करते रहे। परंतु अब भगवान् उनका काम बदलना चाहते थे। श्रीअरविंदको पुलिसने पकड़ लिया और लालबाजारकी हवालातमें डाल दिया। श्रीअरविंदने पुकारा, यह क्या, भगवान्! मैं तो तुम्हारा ही काम कर रहा था फिर मुझे यह क्यों? कुछ दिनोंके बाद अंदरसे उत्तर मिला। उन्हें बतलाया गया कि सनातन धर्म क्या है। उन्हें बतलाया गया कि अन्यान्य मतोंकी तरह सनातनधर्म भी विश्वासों और क्रियाओंका समूह नहीं है। वह जीवन है——एक उच्चतर जीवन। अगर भारत उठ रहा है तो उस ज्योतिको सारे संसारतक पहुंचानेके लिये। भारत अपने लिये नहीं, मानवजातिके लिये है और इसी तरह उसे अपने लिये नहीं मानवजातिके लिये महान् होना होगा। उसे सनातन धर्मका संदेश घर-घरमें पहुंचाना होगा।

एक और जगह श्रीअरविंद कहते हैं: हमारे स्वराज्यके आदर्शमें घृणाके लिये स्थान नहीं है। हमारा आदर्श प्रेम और भ्रातृभावके आधारपर खड़ा है। वह केवल राष्ट्रके अंदर एकताके स्वप्न नहीं देखता बल्कि राष्ट्रोंसे परे सारी मानवतामें ऐक्य चाहता है। हम अपने देशकी स्वाधीनता इसलिये चाहते हैं कि इसके द्वारा ही राष्ट्रोंमें सच्चा भ्रातृभाव आ सकता है। हम देशों और जातियोंके पृथक् व्यक्तित्वको मिटाना नहीं चाहते बल्कि उनके बीचसे घृणा, द्वेष और गलतफहमियोंकी बाधाओंको हटाना चाहते हैं। हम अपने अधिकारके लिये लड़ते हैं, परंतु हमें अधिकारोंसे वंचित करनेवालोंसे हम घृणा नहीं करते।

एक उद्धरण और। स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद, आंध्र विश्वविद्यालयको एक संदेश देते हुए श्रीअरविंदने कहा था: भारतके आगे बहुतसी गंभीर समस्याएं हैं। कुछ दिशाएं ऐसी हैं जिनपर चलकर वह अन्य देशोंकी तरह उद्योग-धंधे, व्यापार आदिमें अच्छी प्रगति कर सकता है, एक मजबूत सामाजिक और राजनीतिक तंत्र बना सकता है, प्रचुर सैनिक बल इकट्ठा कर सकता है, सफल कूटनीतिके द्वारा अपने वर्तमान लाभोंको सुरक्षित रखकर अधिक फैल सकता है और धरतीके एक बड़े भागपर छा सकता है। परंतु इस महान् दीखनेवाली प्रगतिमें वह अपने स्वधर्मको, अपनी आत्माको खो बैठेगा। यदि ऐसा हो जाय तो प्राचीन भारत और उसकी आत्मा बिलकुल गायब हो जायंगे और जहां इतने देश और राष्ट्र हैं वहां एक और बढ़ जायगा परंतु यह न तो भारतके लिये और न संसारके लिये श्रेयस्कर होगा। आज जब कि

संसार अधिकाधिक मात्रामें आध्यात्मिक सहायता और रक्षक ज्योतिके लिये भारतकी ओर ताक रहा है, ऐसी घड़ीमें यदि भारत अपने आध्यात्मिक दायको खो दे तो यह सबसे अधिक दुखद बात होगी। यह नहीं होना चाहिये और हर्गिज नहीं होगा, लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकारका खतरा नहीं है। यही नहीं, इसके अतिरिक्त और बहुतसी भयंकर विघ्न-बाधाएं भी हैं जो देशकी ओर घूर रही हैं। आज या कल देशको उनका सामना करना पड़ेगा। हम सफल तो अवश्य होंगे पर हमें अपने-आपसे इस बातको न छिपाना चाहिये कि इतने लंबे अर्सेकी दासता और उसके अवरोधक और विनाशक प्रभावोंके बाद हमें एक महान् आंतरिक तथा बाह्य परिवर्तनकी आवश्यकता है। तभी हम भारतके सच्चे उज्ज्वल भविष्यके स्वप्नको चरितार्थ कर सकेंगे।

(क्रमशः)

कर्नाटककी मीरा :

अक्क महादेवी

—श्री अंबाशंकर

"खींच लिया मेरा तन, ले लिया मेरा मन, मेरा सुख-दुख मेरे जीवनमें मिल गया। मैं पूरी तरह भगवान्‌की बन गयी।"

आपने सुन रखा है कि मीरा राजस्थानमें पैदा हुई थीं। उसके बाद तमिल मीरा—आण्डाल—की बात सुनी और अब कन्नड़ मीराकी बात आ गयी। नहीं, लेकिन आश्चर्य न कीजिये। भगवान् कृष्णकी वाणीको याद कीजिये—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अम्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

जब-जब धर्मकी अवनति होती है तब-तब भगवान् स्वयं धरतीपर जन्म लेते हैं और भगवान्‌के कामको पूरा करनेके लिये उनके पार्षद भी सदा तैयार रहते हैं।

बारहवीं शताब्दीमें जब कर्णाटकमें धर्मका ह्रास हो गया तो शिवानुभव मण्डप नामक गोष्ठी की स्थापना हुई। इस मण्डपके सदस्य शिवशरण कहलाते थे। कन्नड़ भाषाका वचन-

साहित्य इन शिवशरणोंके अनुभवका सार है। इस मण्डपके कुछ लोगोंके नाम सुन लीजिये: श्री अल्लम प्रभु, बसवण्ण, चेन्न बसवेश्वर, अक्क महादेवी, होन्नइय, कक्य आदि।

माना यह जाता है कि कल्याणके कलचुरी वंशके राजा विज्जलके मुख्य मंत्री भक्त श्रेष्ठ श्री बसवण्णा थे। उन्होंने वीर शैव मत चलाया और कल्याण मण्डपकी स्थापना की जिसके अध्यक्ष श्री अल्लम प्रभु थे। परंतु कई विद्वानोंका कहना है कि यह बहुत पुराना मत है, बसवण्णाने उसका पुनरुद्धार किया था। ये लोग प्रचलित वर्णाश्रम तथा जात-पांतको नहीं मानते थे और व्यक्ति-व्यक्तिमें किसी प्रकारका भेद न करते थे।

एक दिनकी बात है। अल्लम प्रभु शून्य सिंहासनपर विराजमान थे। बसवण्णा आदि शरण लोग उनके पास बैठे हुए थे और विचार-गोष्ठी चल रही थी। एकाएक दरवाजेपर एक नग्न स्त्री दिखायी दी। वे शरण होनेके कारण एक-दूसरेको झट पहचान गये पर फिर भी अल्लम प्रभुने दिगम्बर-बसना देवीसे कुछ प्रश्न किये और उसके ज्ञानकी थाह लेनी चाही। प्रभु उसके उत्तरोंसे प्रसन्न हो गये। अन्तमें उन्होंने उसके इस वेशके बारे में पूछा। महिलाने जरासी कटुता दर्शाते हुए कहा, "एक भगवान्का मिलना जरूरी है, शरीर चाहे काला हो या चमकदार, उससे क्या लेना-देना?" महिलाको कल्याण मण्डपमें प्रवेश करनेकी अनुमति मिल गयी। यही हैं हमारे कर्णाटककी मीरा––अक्क महादेवी।

दक्षिण कर्णाटकमें उडवडी नामक एक गांव है। वहांके एक शिवभक्त दम्पति, विमल और सुमतिके घर अक्क महादेवी का जन्म हुआ था। परिवार गरीब तो था पर गुण-शीलकी कमी नहीं थी। बालिका अत्यन्त रूपवती थी और बचपनसे भगवान्के हाथकी कठपुतली बनकर रहना चाहती थी। भगवत्-प्राप्ति ही उसकी एकमात्र आवश्यकता थी। लोग उसकी बातें सुन-सुनकर हंसा करते थे। माता-पिता भी उसकी भक्ति देखकर आश्चर्य किया करते थे। महादेवीका सारा समय पूजापाठ और ध्यान-भजनमें लगा रहता था। उसकी आयु बढ़ी तो मां-बापको उसके विवाहकी चिन्ता हुई। जैसे मीराने घोषणा की थी––"जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई" वैसे ही महादेवीकी वाणी निकली––मेरा स्वामी तो वही है जिसके सिरपर जटाएं शोभा देती हैं, जिसके माथेपर चन्द्रकला है, कानोंमें कुण्डल है और गलेमें सांप। जो महाकालीकी तरह मुण्डमाल पहने हुए है वही मेरा स्वामी है, वही मेरा प्रभु है।

"कभी-कभी वह छोटा और सुन्दरसा रूप धारण कर मेरे यहां भीख मांगने आया करता है, मैं भावावेशमें उसके पीछे दौड़ती हूं पर इसी बीच मेरी नींद खुल जाती है। वही मेरा एकमात्र स्वामी है, मैंने उसे ही अपना पति चुन लिया है। आपको कहीं राहमें मिल जाय तो कह दीजिये, मैं उसकी बाट जोह रही हूं...."

माता-पिता तो चुप हो रहे पर सांसारिक बुद्धि रखनेवाले प्रवीण लोगोंने उसे समझाया, "अरे, भगवान् भी किसीका पति हो सकता है? इस मृगतृष्णाको छोड़ दो। किसी मानव पतिको चुन लो।" महादेवीका जवाब था, "क्या मयूर सुन्दर काननको छोड़कर ऊजड़ जमीनपर नाच सकता है, क्या हंस मानसरोवरको छोड़कर किसी पोखरेमें रह सकता है, क्या रमणीक आम्रकुंजको छोड़कर कोयल कहीं और जाकर गायेगी, क्या पराग और मधुसे विहीन फूल कभी भौंरेको आकर्षित कर सकेगा? इसी भांति मेरा मन भगवान्को छोड़कर किसी औरकी

ओर जा सकता है क्या ? कभी नहीं मेरी सखी, कभी नहीं। जो जरा-मरण और आधि-व्याधिसे मुक्त है, जो निर्भय निस्सीम और सुन्दर है वही मेरा पति है। मरनेवाले, मरकर सड़नेवाले पतियोंको फेंक दो चूल्हेमें।''

महादेवीकी बातें सुनकर, उसका भगवत्-प्रेम देखकर सब चुप हो गये। पर इन्हीं दिनों एक दुर्घटना घटी। उसके प्रदेशका जैन राजा अक्क महादेवीको देखते ही उसपर मोहित हो गया। उससे प्रेम-भिक्षा मांगी परंतु जब वह न मिल सकी तो उसने राजाज्ञाका रूप धारण कर लिया। माता-पिताने बेटीका मन रखनेके लिये इसपर भी इंकार कर दिया। अब बेचारों-की मुसीबत आ गयी। एक ओर बेटीका प्यार दूसरी ओर राजाका क्रोध। करें तो क्या करें ? मां-बापकी वेदनाको देखकर महादेवी कुछ नरम पड़ गयी और उसने कहा कि अगर राजा उसकी तीन शर्तें स्वीकार कर ले और उसकी पूजाअर्चनामें किसी प्रकारकी बाधा न डाले तो वह शादी करना स्वीकार कर लेगी। मोहान्ध राजाने सब शर्तें मान लीं और इनकी शादी हो गयी। परंतु उस कामातुर राजा और इधर शिव-ध्यानमें मग्न महादेवीका संग कैसे निभ सकता था ? एक दिन महादेवी शिवकी पूजा कर रही थी कि पीछेसे कौशिकने आकर साड़ीका आंचल पकड़ लिया। उसका आंचल पकड़ना था कि महादेवी उठ खड़ी हुई और सारे राजपाट, सुखवैभवको लात मारकर जिधरको मुंह उठा उधर ही चल पड़ी। वह जंगल-जंगलमें अपने सच्चे पतिकी खोज कर रही थी। वह रास्तेमें मिलनेवाले हर पशु-पक्षीसे, एक-एक पत्थरसे 'चेन्नमल्लिकार्जुन' (शिवका एक नाम जो महादेवीको बहुत प्रिय था) का ठिकाना पूछती जाती थी। वह कहती है--''हे भ्रमर, हे विशाल वृक्ष, हे चाँदनी, हे कोकिल, एक बात बता दो, तुमने कहीं भगवान्‌को देखा है ? हे चहचहानेवाले शुकवृंद, हे मधुर स्वरमें गानेवाली कोकिल, हे मंडरानेवाले भौंरे, सरोवरमें खेलनेवाले हंसगण, क्या तुमने देखा है ? हे पहाड़ों और कंदराओंमें नाचनेवाले केकियो, क्या तुमने देखा है ? तुम मुझे मेरे चेन्नमल्लिकार्जुनका पता क्यों नहीं बताते ?''

महादेवीकी यह खोज हमें सीताके विरहमें व्याकुल भगवान् रामकी याद दिला देती है। यहां भी सांसारिक बुद्धिमानोंने उसका पीछा न छोड़ा। वनकी भयंकर परिस्थितियोंका चित्र खींचा और घर-द्वार छोड़नेके कुपरिणाम बताये। परंतु महादेवीका उत्तर था--''यदि भूख लगी तो भिक्षान्न मिलेगा, प्यास लगी तो झीलों, तालाबोंका पानी है ही, सोनेके लिये भग्न मंदिर पड़े हैं और चिरसाथी चेन्नमल्लिकार्जुन तो हमेशा साथ हैं।''

महादेवी अपने प्रियकी खोजमें हैं। वे कहती हैं, नींबू और आमके पेड़ोंको किसने खट्टे पानीसे सींचा है ? गन्ने और केलेने मिठास कहांसे पायी है ? गुलाब आदि फूलोंको सुगंधित जल किसने प्रदान किया था ? एक ही धरतीसे निकलने, एक ही आकाशके नीचे रहने और एक ही जलसे सींचे जानेवाले पौधे एक दूसरेसे कितने भिन्न हैं। मेरे भगवान् अनगिनत रूपोंमें अनगिनत लोकोंमें रहते हैं और सब जगह उनका रंग-ढंग अलग है। वह ऐसे छिपे हुए हैं जैसे गर्भमें भ्रूण या फलमें माधुर्य, पत्थरमें सोना, तिलमें तेल या भावमें ब्रह्म। ये पंक्तियां हमें कबीरके उस गीतकी याद दिलाती हैं जहां वे कहते हैं :

''साधो ब्रह्म अलख लखाया। जब आप आप दरसाया।

बीज मद्धे ज्यों वृच्छ दरसे, वृच्छ मद्धे छाया।
ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये, सुन्न अनन्त अकारा।

भगवान्‌को अपना पति मानकर महादेवी कहती हैं :"तू सुन और चाहे मत सुन, मैं तो तेरे ही गान गाऊंगी, तू चाहे प्रसन्न हो या न हो मैं तेरी ही पूजा करूंगी। तू मेरे पास आये या न आये मैं तो तेरी ओर ही आती रहूंगी। तू मेरी ओर देख या न देख, मैं तुझे देखे बिना संतुष्ट नहीं रह सकती। हे स्वामी ! मैं तेरी पूजा करके ही सन्तुष्ट हो सकूंगी।" और कैसी होगी वह पूजा ? उन्हींसे सुनिये :

"मैं सज्जन बनकर तुझे मज्जन कराऊंगी, स्थिरचित्त होकर तेरे गान गाऊंगी, शान्त होकर तेरी उपासना करूंगी, मुझे बस तेरी पूजा ही अच्छी लगती है ।"

अन्तमें महादेवीको विश्वरूपके दर्शन हुए। वे कहती हैं, "सारा जंगल तुम हो, पेड़पौधे तुम ही हो, जंगलमें विचरनेवाले खग-मृग भी तुम्हीं हो। सबके अंदर तुम्हारा ही चेहरा दिखायी दे रहा है।" इतना सब होनेपर भी उन्हें अपनी अभीष्ट शांति नहीं मिली और वे अंतःप्रेरणाके अनुसार कल्याण मण्डपमें आयीं। उनके इस आगमनकी बात हम पहले कह आये हैं। यहां इतने सारे शरणोंके साथ रहनेसे उनके अंदर एक आंतरिक परिवर्त्तन आया। वे कहती हैं, "चन्दन क्या इस भयसे अपनी सुगन्ध छोड़ देगा कि कहीं उसे काटकर रगड़ा न जाय? सोनेको कितनी ही तेज आगपर क्यों न तपाया जाय वह अधिकाधिक चमकता जायगा। गन्नेको कोल्हूमें पड़कर कितना कष्ट उठाना पड़ता है और शक्कर बननेके लिये कितना तपना पड़ता है पर इस कष्टके भयसे वह अपनी मिठास नहीं छोड़ देता। मैं अपनी सारी त्रुटियोंको लाकर तुम्हारे आगे रख दूं तो क्या कोई हानि होगी ? भगवान्, मैं पूरी तरह तुम्हें सर्मपित हूं, तुम जो करना चाहो करो।

"मुझसा भाग्यशाली शायद ही कोई हो। भगवान् मेरा पति है और शिवभक्त मेरे भाई।

"सूखता हुआ सरोवर जैसे विपुल जलराशि पाकर, सूखती हुई खेती जैसे वर्षाको पाकर सुखी हो उठती है उसी तरह मैं भी भगवान्‌को पाकर आनन्दविभोर हूं। श्रीबसवण्णाकी बेटी होनेके कारण मुझे भक्ति-प्रसाद मिल गया। प्रभु देव ! (अल्लमप्रभु) की दासानुदासीकी बेटी होनेके कारण ज्ञान-प्रसाद मिल गया, श्रीसिद्धरामकी बेटीकी बेटी होनेके कारण मुझे प्राण-प्रसाद मिल गया और माडिवाळयकी बेटी होनेके कारण मुझे निर्मल प्रसाद मिल गया। शरण लोगोंने अपनी कृपासे मुझे भगवान्‌के चरणोंकी दासी बननेके योग्य कर दिया। इन्हीं शरणोंके पादस्पर्शसे मेरी शारीरिक, प्राणिक और मानसिक कठिनाइयां दूर हो गयीं।

इसी प्रकार बहुत दिन कल्याण मण्डपमें बितानेके बाद उनकी भगवान्‌में लीन हो जानेकी इच्छा हुई। वे फिरसे जंगलमें चली गयीं और वहांपर लिंगैक्य (अक्षय ब्रह्ममें लीन होनेकी अवस्था) प्राप्त किया।

महादेवीके वचनोंकी संख्या अधिक नहीं है पर जो हैं वे मानो अमृतके कलश हैं। कन्नड़के एक आलोचकका कहना है, "अक्क महादेवीके वचनोंमें भावोत्कर्ष है, अर्थ-गाम्भीर्य है, मधुर पदयोजना है, आलंकारिक भाषा है। एक शब्दमें कहना हो तो कह सकते हैं कि उत्तम

कविजीवनका सारा संस्कार, हृदयका सारा रसानुभव उनमें कूट-कूटकर भरा है। कन्नड़ शारदाने उनकी रसनापर चढ़कर काव्य-रूपी वचन-मुक्तकोंका गान कराया है।"

अक्क महादेवीने कर्णाटककी स्त्रियोंको पुरुषोंके साथ खड़े होनेकी शक्ति दी है। उनकी एक वीर वाणी सुनिये, "जिसने पर्वतपर घर बसाया है वह जंगली जानवरोंसे क्यों डरे? जिसने समुद्रपर घर बसाया है वह लहरोंको देखकर क्यों भयभीत हो, बाजारमें घर बनाकर शोर-गुलसे क्यों घबराये? हे चेन्नमल्लिकार्जुन! जब इस संसारमें जन्म लिया है तब फिर निन्दा-स्तुति सुनकर क्यों कोई मनमें क्रोधका भाव लाये? शान्तिसे सब कुछ सहना चाहिये।"

अपने इन्हीं वचनोंके कारण अक्क महादेवी आज भी कर्णाटकके घर-घरमें अमर बनकर रहती हैं।

* * *

हिम-स्रोत

हिम जलद, हिम-शृंग
हिम-छवि,
हिम दिवस, हिम रात,

हिम पुलिन, हिम पंथ,
हिम तरु,
हिम क्षितिज, हिम पात।

आंख ने
हिम रूप को
जी भर सहा है।
सब कहीं हिम है
मगर मन में अभी तक
स्पन्दनों का
उष्ण जलवाही विभामय स्रोत
अविरल बह रहा है।

—डा० जगदीश गुप्त

हमारे जीजाजी

आज हमारे जीजाजीका पचासवां जन्मदिन है। सारे देशमें उनकी स्वर्ण-जयन्ती बड़े समारोहसे मनायी जा रही है। कहीं उन्हें कवियोंका सिरमौर बताया जा रहा है तो कहीं दार्शनिकोंका मुकुट-मणि। बहुतोंका कहना है कि वे कहीं महान् हैं, उनका मूल्य आंकना हमारे बूतेसे बाहर है।

खैर, वे किसीके नेता हों, किसीके लिये कवि हों, हमारी बलासे, हमारे लिये तो वे बस जीजाजी हैं, इससे ज्यादा या कम कुछ नहीं। कई दिनोंसे सोच रखा था कि आजकी शाम जीजीके साथ बितायी जाय और उनसे जीजाजीके जीवनकी मजेदार घटनाएं सुनी जायं। शाम होते ही मैं, अशरफ और स्वामीनाथन मिलकर जीजीके यहां जा धमके। हम तीनोंमें बड़ी गाढ़ी छनती है और जहां बंदरपना करना हो हम तीनों इकट्ठे ही जाया करते हैं।

जीजी हम लोगोंकी प्रतीक्षा ही कर रही थीं। जीजाजी तो कहीं समारोहमें गये हुए थे, उन्हें आज भला दम लेनेकी भी फुर्सत कहां थी। जीजी बेचारी पुराने ढर्रेकी हैं। भीड़-भड़क्केसे या समारोह आदिके नामसे उनकी नानी मरती है। यूं दो चार मिल बैठें तो वे अच्छा रंग जमा देती हैं। अच्छा तो पहुंचते ही हम सबने एक आवाजमें कहा, "जीजी, आज तो बस जीजाजीकी बातें सुनेंगे।" जीजीने पहले तो महंगा बननेकी कोशिश की, इधर-उधरके बहाने किये, पर आखिर बोलीं, "अच्छा, तुम लोग भी तो उन्हें जानते हो, पहले तुम लोग कुछ सुनाओ फिर मेरी बारी।" हम लोग जीजीके इस स्वभावको अच्छी तरह जानते थे। इसलिये पहलेसे ही तैयार होकर गये थे।

अशरफने कहा, जीजी तुम जानती हो कि जीजाजी कालिजमें हमारे बड़े भाई साहबके साथ पढ़ा करते थे। भाई साहब इनकी बहुतसी कहानियां सुनाया करते हैं। उन दिनों ये कविता लिखना शुरू कर चुके थे और कवियोंके जो लक्षण सुन रखे थे उन सबमें पूरा उतरना चाहते थे। कभी धोती-कुर्तेपर नेकटाई लगा आते, कभी एक पांवमें काला और दूसरेमें लाल जूता पहन आते। लोग कहते थे कि ये जानबूझकर बनते हैं, पर बात ऐसी नहीं थी। एक दिन देखा रजाई ओढ़े हुए कालिजमें घुस आये। सब एकाएक हंस पड़े तो हजरत चकराये कि आखिर बात क्या है। किसीने रजाईका एक कोना पासकी एक कुरसीसे बांध दिया पर इन्हें पता न चला। दूसरी ओरसे साथियोंने चिढ़ाना शुरू किया। ये नाराज होकर लौट पड़े तो साथमें कुरसी भी घसिटने लगी। बस मजा आ गया। ऐसी बातें तो रोज हुआ करती थीं। एक दिन हमारे एक विद्यार्थीके कई रिश्तेदार कहीं बाहरसे आये। उन्होंने भोलेबाबाको देखा तो त्यौरियां चढ़ा लीं। (तब तो ये हमारे जीजाजी न थे, लोग इन्हें भोलेबाबा ही कहा करते थे।) सबको आश्चर्य हुआ। उनसे पूछा, आप इन्हें जानते हैं क्या? बोले, जानते हैं, ये मियां तो हमारे पक्के दोस्त हैं। अभी कुछ दिन पहले हम लोग पीलीभीत जा रहे थे। ये सज्जन भी हमारे साथ रेलके डब्बेमें थे। क्षमा करना, बंदरकी तरह उचककर ऊपरकी पटरीपर जा बिराजे और थोड़ी ही देरमें इनकी नाक बजने लगी—घर्रर घूं, घर्रर घूं। हम सबको बड़ा मजा आया। जान-पहचान न होते हुए भी इनमें रस पैदा हो गया। अगला स्टेशन जो आया तो एक आदमी इनका सूटकेस लेकर नौ दो ग्यारह होने लगा। हम लोगोंने उसे धर दबोचा। सूटकेस छुड़ाया और दो चार चप्पलें लगाकर उसे बिदा किया। लेकिन मजाल है इनके कानपर

जूतक जो रेंगी हो। मजेसे नासा संगीत चलाते रहे। खैर, हमने जबरदस्ती जगाया, सारा हाल सुनाया, पर धन्यवाद देना तो एक ओर रहा, उलटे हमसे ही अनखा गये कि इतनी जरा सी बातके लिये उनके आराममें बाधा डाली। हमने भी ठान ली कि अब चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय हम इनके मामलेमें न पड़ेंगे। पर ये भला ऐसे ही छोड़नेवाले थे। नींद टूट गयी तो ऊपर ही बैठे बत्तीसी चलाना शुरू किया। पहले तो कुछ कुड़ुम कुड़ुम करते रहे फिर एक बरतन खुलनेकी आवाज आयी और साथ ही नीचे बैठे हुए व्यक्तिपर कुछ छींटे गिरे। वह जरा गरम मिजाजका था। झट बोला, यह क्या बदतमीजी है। खाना हो तो नीचे उतरकर खाओ। ये जरा सकपकाये। झपटकर नीचे उतरने लगे तो दालका कटोरा उलट गया और बदतमीजीपर टोकनेवाले सज्जन पूरी तरह दालसे नहा गये। इन्होंने आव देखा न ताव, पासमें बैठी हुई एक महिलाकी चादर खींचकर उससे बदतमीज महाशयका मुंह पोंछने लगे और कहने लगे, नहीं, नहीं, शांत रहिये, गुस्सा क्यों करते हैं, अभी साफ किये देते हैं। चादर खींचनेसे महिलाने जो चिल्लाना शुरू किया कि बस तोबा। सारे डब्बेमें कुहराम मच गया और हंसते-हंसते हमारे पेट में बल पड़ गये। अब बताइये इन महाशयको हम भूल सकते हैं क्या ?

अशरफकी कहानीपर हम सब लोटपोट हो गये। जीजी भी प्रवाहमें बह गयीं, बोलीं, अरे यह क्या है, इससे बढ़कर मैं सुनाऊं। हम यही तो चाहते थे। तीनोंके मुंहसे एक साथ निकला, हां जीजी सुनाओ।

जीजीने कहा, बहुत दिनोंकी बात है। मेरी मंगनी तो हो चुकी थी पर शादी होनेमें कुछ देर थी। मैं अपने साथ पढ़नेवाली तीन लड़कियोंको लेकर घूमने निकली। अशरफ, तुम्हारी मौसी भी मेरे साथ थी। ओह, उन दिनों तो वह पहले नम्बरकी शैतान थी। घूमते-घूमते शाम हो गयी। रमजानका महीना था। हम एक मस्जिदके पास जा पहुंचीं जहां अशाकी नमाज पढ़ी जा रही थी। हमें वह वातावरण बहुत अच्छा लगा। हम तीनों चारों लड़कियां वहीं रुक गयीं और मस्जिदके बाहर एक अंधेरी जगहपर बैठ गयीं ताकि हमारी ओर किसीका ध्यान न खिंचे। हम अभी बैठी ही थीं कि एक मरदुआ वहां आ पहुंचा और सीधा हम लोगोंके बीचमें आ बैठा। हम सब सकपका गयीं। अंधेरेमें चेहरा तो दिखता न था, ऊपरसे लबादा पहने हुए और भी भयंकर लग रहा था। सच, मेरी तो नीचेकी सांस नीचे और ऊपरकी ऊपर रह गयी। करूं तो क्या करूं, अशरफकी मौसीकी भी सिटी गुम हो गयी। हम सब सिकुड़ी जा रही थीं और वह बराबर फैलता जा रहा था। या अल्लाह, अब करें भी क्या ? बाहर निकलना आसान न था। वह ऐसी जगह बैठा था कि उसे छुए बिना इधर-उधर हिलना भी असंभव था। आवाज करें तो पास ही नमाज हो रही थी। खैर, हममेंसे एक हिम्मत करके ज्यूं त्यूं बाहर आ गयी। उसकी देखा-देखी मैं भी सरक आयी। अब हम दोनोंने ठीक किया कि नमाज खतम होते ही अशरफके अब्बाको बुला लेंगे और इस मरदूदको हवालातकी हवा खिलायेंगे। हमारी ये योजनाएं बन ही रही थीं कि उस भले आदमीने पैर पसार दिये और अशरफकी मौसी चिल्लाकर भागी–उई कहांसे आ गया है मुआ हम शरीफजादियोंको तंग करने। उसने जो सुना तो वह भी चौंका और झटसे खड़ा हो गया। हमने सोचा, मासूम लड़कियोंकी मुसीबत आयी। वह आहिस्तासे बाहर आया और बोला, “क्या बात है ? कौन तंग कर रहा है आप लोगोंको ?” और जानते हो कौन था वह ? मुझे अभी

तक शर्म आती है, वे तुम्हारे यही जीजाजी थे। हम लोग बिना जाने उनकी कोठरीके सामने बैठ गये थे। वे कहीं दूर घूमने गये हुए थे, वापस आये तो अपनी शराफतके कारण हम लोगोंको हटाया नहीं, अपने-आप भी बाहर ही बैठ गये और हम लोगोंने क्या क्या कल्पना कर डाली।

"हां, यह तो ठीक है जीजी, यह घटना तो मैं अपनी मौसीसे भी सुन चुका हूं।" अशरफ़ने हम लोगोंकी हंसी बन्द हो जानेपर कहा। लेकिन वे कहा करती थीं कि एक बार जीजा जी तुम्हें भी किसी स्टेशनपर भूल आये थे, उसकी क्या कहानी है? "अरे! तुम लोग भी बड़े वैसे हो", जीजीने गुस्सेका ढोंग करते हुए कहा, सारे देशमें आज उनका जयजय-कार हो रहा है और तुम उनका मजाक उड़ानेमें लगे हो, नहीं सुनाती जाओ, अपने घरका रास्ता नापो।

हमने देख लिया जीजीके ओठोंकी एक कोरमें मुस्कराहट छिपी थी। इससे शह पाकर हम सबने कहना शुरू किया, नहीं, नहीं जीजी! हम उनका अपमान थोड़ेही कर रहे हैं। हम भी तो उनके पराक्रम सुन-सुनकर खुश हो रहे हैं। अच्छा, हां फिर क्या हुआ जीजी। जीजीने देखा, पिण्ड छूटना मुश्किल है तो बोलीं, लो सुनो, पर इसके बाद और कुछ नहीं। "हां, हां, स्वीकार है," हमने एक स्वरमें कहा।

जीजीने कहना शुरू किया। हमारे व्याहके कोई चार-पांच वर्ष बादकी बात है। मुनिया तब तीन-साढ़े तीन वर्षकी रही होगी, तुम्हारे जीजाजीको दक्षिण यात्राकी सूझी। मेरा उनके साथ पहला सफर था। काजीपेटतक तो जैसे-तैसे काम चलाया। उसके बाद मुझे मुश्किल होनी शुरू हो गयी। अपरिचित लोग, नयी भाषा, न मैं वहांकी समझूं न वहांके लोग मेरी समझें। आजकलकी तरह उन दिनों हिन्दी समझनेवाले हर जगह न मिलते थे और मैं अपनी थोड़ी बहुत अंग्रेजी घर-गृहस्थीके काममें भूल चुकी थी। हम ढाई व्यक्तियोंकी दुनियां ही निराली थी। खैर, एक जगह रेल बदलनी थी, हम लोग उतरे। स्टेशनका नाम तो अब याद नहीं, पर हां, वहां आसपास कोई आबादी नहीं मालूम होती थी। पता लगा, हमारी अगली गाड़ीके आनेमें अभी पांच घंटेकी देर है। तुम्हारे जीजाके पांवमें चक्कर तो था ही, मुझसे बोले, तुम यहीं बैठी रहो, मैं जरा चक्कर लगा आऊं। मैं इनके स्वभावसे परिचित हो चुकी थी। पांच मिनटके लिये कह जाना और दो-दो घंटे लगा देना इनके लिये मामूली बात थी। मैंने मना किया, पर मेरी सुनता ही कौन था। मैं भी तो स्टेशनपर झगड़ा न कर सकती थी। चुप होकर बैठ गयी। वे चले गये। एक घंटा, दो घंटे बीत गये पर इनका कहीं पता ही न था। मैं चुपचाप बैठी रही, मुनियाने रोना शुरू किया। खानेको दाना नहीं, पीनेको पानी नहीं, ढंगसे बैठनेको जगह नहीं। अब करूं भी तो क्या करूं? ऊफ! मुसीबत आ गयी। किससे पूछूं! कुली बार-बार कुछ गिटपिट कह जाता, स्टेशनके बाबू लोग चक्कर लगा जाते। चायवाले मिठाईवाले आ-आकर अपनी बोलीमें कुछ कह जाते। मैं सहमी हुई तो वैसे ही थी, इन सब बातोंने मुझे और भी डरा दिया। हे भगवान्, रक्षा करना! मुनियाको रोते देख एक खिलौनेवाला आ गया और तरह-तरहके खिलौने दिखाने लगा। यह एक नयी मुसीबत थी। मुनिया हठ कर बैठी और मेरे पास कानी कौड़ी भी न थी। पैसे तो उन्हींके पास थे।

मेरे अंदरका डर, मुनियाकी हठ और इनकी चिंता। एक मुसीबत हो तो सामना करूं। आखिर मैं भी न रोक सकी, मेरी आंखें भी बरसने लगीं। हमारी गाड़ी आयी और चली गयी पर उनका कहीं पता न था। मुनियाको रोते देखकर स्टेशन मास्टरको तरस आ गया, वह

अपने घरसे दूध लाकर दे गया। अब मेरे चारों ओर भीड़ लगनी शुरू हो गयी। थोड़ी देरमें तुम्हारे जीजाजी बड़ी तेजीसे इधर आते हुए दिखायी दिये। भीड़ने रास्ता छोड़ दिया। उन्होंने झट सामान उठाना और कुली कुली चिल्लाना शुरू कर दिया मानों रेल छुटनेके लिये तैयार खड़ी हो। किसीने कहा, गाड़ी कहां है जो आप इतनी जल्दी कर रहे हैं? सिर खुजाते हुए बोले, हैं, गाड़ी अभीतक नहीं आयी? हम जरा घूमने चले गये थे। वहां एक जगह छतरी भूल आये। उसे तलाश करनेमें कुछ देर हो गयी। तंग आ गये इन रेलवालोंसे, कितनी देर कर दी। हमें पता होता तो थोड़ी सैर ही कर आते।

और अगली गाड़ीमें अभी दस बारह घंटोंकी देर थी। —रवीन्द्र

***

हमारा आंतरिक सागर

अगर केवल भारकी दृष्टिसे देखा जाय तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य-शरीरका अधिकांश जलसे ही बना हुआ है। साधारण शरीरका साठ प्रतिशत भाग जल होता है। इतनी ठोस दीखनेवाली हड्डियोंतकमें २० % जल होता है। और लसिका (प्लाज्मा) तो ९५ प्रतिशत जल होता है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि लगभग पांच करोड़ वर्ष पूर्व जब प्रथम जीवने अपना रास्ता टटोलना आरंभ किया तो उसका शरीर जीवनदाता अनंत सागरके खारे पानीको ही अपने अंदर भरे हुए था। आज भी यह समुद्र हमारी प्रत्येक रक्तवाहिनीमें ढाढें मार रहा है। शरीरका कोई भाग उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। हमारे शरीरका छोटेसे-छोटा अणु भी उसके द्वारा परिप्लावित रहता है।

हमारे शरीरमें सदा ही रासायनिक क्रियाएं चलती रहती हैं, शरीरकी मांसपेशियां भी निठल्ली नहीं बैठी रहतीं। इन सब क्रियाओंसे शरीरमें गर्मी पैदा होती है और वह गर्मी हमें भस्म कर देनेके लिये काफी होती है। हमें इस असामयिक चितासे बचाना इसी जलका काम है जो शरीरके प्रत्येक अणुको डुबाये रहता है, जो तंतुओंमेंसे रिस-रिसकर तापको अपने अंदर लेता जाता है। इसी प्रकार हमारे अंदरका समुद्र आघातोंसे हमारी रक्षा करता है। हम जिस ठोस जगत्‌में रहते हैं उसमें प्रत्येक क्षण आघात-प्रत्याघात चलते रहते हैं। हमारी हड्डियों, मांसपेशियों और दिमागतकको बार-बार धक्के लगते रहते हैं, नाड़ियों और नसोंको भी हर समय चोट खानी पड़ती है। ऐसे समय यह भीतरी समुद्र ही सहायता करता है और प्रत्येक चोटको अपने ऊपर लेकर शरीरकी रक्षा करता है। इसके अभावमें शायद एड़ियां पटकने या हथौड़ी चलानेका आघात सहना भी असंभव हो जाता, जरा-सी ठेस भी बड़ी चोटका रूप धारण कर लेती।

शरीरका जलाशय भी उसके भोजन-भण्डारकी तरह बार-बार खाली होता रहता है और उसे बार-बार भरनेकी जरूरत होती है। एक आदमी साधारणतया दिनमें डेढ़ दो लिटर पानी पीता है, पौन लिटरके लगभग तरल पदार्थ भोजनके साथ पेटमें जाते हैं। बहुतसे खाद्य देखनेमें सूखे लगते हैं पर सचमुच वे भी हमारी तरह जलसे भरे होते हैं। साधारण शरीर प्रायः

डेढ़ लिटर पानी पेशाबके द्वारा और पौन लिटरके लगभग पसीने आदिके वाष्पीकरणके द्वारा बाहर निकालता है। हरएक तरल पदार्थकी तरह जल भी शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवों और संस्थानोंमें बदलता रहता है। एक दिनमें रक्तमेंसे १८५ लिटर तरल पदार्थ छनता है और उतना ही वृक्कों (गुर्दों) के द्वारा छनकर रक्तमें वापस आता है। शरीरमें प्रतिदिन दस लिटर जल बनता है। केवल थूककी ग्रन्थियां ही मुखको गीला रखने और पाचन-क्रियामें सहायता करनेके लिये लगभग सवा लिटर द्रव पैदा करती हैं, इसी प्रकार पेटमें लगभग इतनी ही मात्रामें पाचक रस पैदा होता है। पक्वाशय, यकृत और आंतोंमें लगभग पांच लिटर रस पैदा होता है। जो तरल पदार्थ छोटी आंतोंमें सोख नहीं लिया जाता वह बड़ी आंतोंके काम आता या फिर आंतोंकी दीवारोंमेंसे होकर वापिस शरीरमें चला जाता है। हमारे शरीरमें प्रवाहकी अपनी ही प्रक्रिया होती है जिसके द्वारा जल आता है, प्रवाहित होता है और निकल जाता है।

धूपमें रहनेके कारण, कसरत करनेपर या बहुत पसीना आनेपर शरीरमें पानीकी मात्रा कम हो जाती है जिससे रक्त गाढ़ा हो जाता है। रासायनिक विधिसे इसकी सूचना मस्तिष्कतक पहुंच जाती है, और मस्तिष्क झट नाड़ी-संस्थानके द्वारा मुंह और गलेको सूचना देता है। परिणामस्वरूप मुंह सूखने लगता है, गलेमें कांटोंसे पड़ जाते हैं, हमें बहुत जोरकी प्यास लगती है। हम पानी पीते हैं, शरीरमें जलका संतुलन ठीक हो जाता है और हमारी प्यास बुझ जाती है। लेकिन प्यास लगनेका एक यही कारण नहीं होता। अधिक नमकीन पदार्थ खा लेनेपर भी प्यास अधिक लगती है। उसका कारण यह है कि शरीरमें जलकी भांति नमकका अनुपात भी एक-सा रहना चाहिये। पानीकी तुलनामें नमक एक प्रतिशतका ९/१०वां हिस्सा होना चाहिये। अगर हम अधिक नमक खा लें तो शरीरमें नमककी मात्रा बढ़ जाती है और उसको ठीक रखनेके लिये अधिक पानी पीना पड़ता है। इसी तरह जब बहुत अधिक पसीना निकलनेके कारण शरीरके नमककी मात्रा घटने लगती है तो अधिक नमक खाकर उस संतुलनको बनाये रखना पड़ता है। देखा गया है कि यह सब जाने बिना ही मरु प्रदेशोंके लोग साधारणतया अधिक नमक खाया करते हैं।

मनुष्यके शरीरमें संचित जलकी मात्रा कम ही रहती है। ऊंटकी तरह उसके पास बहुत दिनोंके लिये जल इकट्ठा कर लेनेके साधन नहीं हैं। इसीलिये मनुष्य बिना खाये तो काफी दिनतक रह सकता है पर बिना पानीके अधिक दिन रहना संभव नहीं है। कहते हैं कि आदमी अगर ठंडे कमरेमें रहे और किसी प्रकारका परिश्रम न करे तो बिना पानीके बारह दिन काट सकता है जब कि पानी पीकर बिना खाये कुछ लोग ८० दिनसे भी अधिक जिंदा रह सके हैं।

रक्तको शरीरका प्राणदायक द्रव कहा जाता है परंतु वास्तवमें जल ही वह पदार्थ है जो शरीरकी गर्मी-सर्दीको काबूमें रखता है, शिराओंमें जीवनको प्रवाहित करता है, जहां रगड़की संभावना हो वहां स्नेहन करता है, जीवनप्रद तत्वोंको तथा पोषक तत्वोंको समुचित रीतिसे वहन करता है। सचमुच जल ही शरीरका जीवनदायी पदार्थ है। वेदमें भी कहा गया है कि सारे संसारकी ओषधियां जलके अंदर विद्यमान हैं:—

अप्सुमे सोमोऽब्रवीत अन्तर विश्वानि भेषजः॥

—सुमेधा

लूथर बरबैंक

——डेनियल एल. मिलर

[एक जमाना बीत गया। भारतमें अंग्रेजी राज्य जोरोंपर था। पं० मालवीय आदि नरम दलके नेता होम रूलके स्वप्न ले रहे थे। उर्दूके एक कविने होम रूलपर व्यंग करते हुए कहा :——

कहते हैं मालवीयजी हम होम रूल लेंगे।
दीवाने हो गये हैं, गूलरका फूल लेंगे।।

श्रोताओंने एक-दूसरेका मुंह ताकना शुरू किया। क्या कोई इसका जवाब देनेवाला नहीं है? एक अंनजान युवक उठ खड़ा हुआ और बोला ——

जब होम रूल होगा बरबेंक जन्म लेंगे।
हां, हां, जनाब तब तो गूलर भी फूल देंगे।।

जनता फड़क उठी। चारों ओरसे युवकको शाबाशी दी गयी। उसने हिंदीकी लाज रख ली। यही युवक आगे चलकर हिंदीका राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त बना। आज हम उन्हीं बेरबेंकके बारे में U. S. I. S. का भेजा हुआ एक लेख प्रकाशित कर रहे हैं। सं०]

संसार एक ऐसे मनुष्यको कौनसी संज्ञा दे, जिसने पीले फलको लाल बना दिया, बेरोंकी गुठलियोंका अस्तित्व मिटा दिया, रेगिस्थानकी नागफनीके बढ़ावकी गतिको हजारों गुणा तीव्रतर कर दिया, झरबेरीके रंगको श्वेत बना दिया और एक ही पेड़पर चेरीकी भिन्न-भिन्न ५०० किस्में उगायीं? वह क्या था——एक कुशल बागवान, एक प्रवीण पौध-उत्पादक, एक प्रतिभाशाली और धैर्यवान पौध-पालक अथवा एक चमत्कार उत्पन्न करनेवाला जादूगर? इन और अगणित अन्य विधियोंसे प्रकृतिकी शक्तियोंमें हेरफेर करके कौतुक उत्पन्न करनेवाले इस व्यक्तिको अनेक नाम दिये जा चुके हैं, किन्तु मूलतः वह एक सरल और परिश्रमी वैज्ञानिक था और उसका नाम था लूथर बरबैंक।

लूथर बरबैंकका देहावसान ३७ वर्ष पूर्व हुआ, किन्तु उनकी प्रतिभाने जिन वस्तुओंको जन्म दिया, वे संसारभरके लोगोंके प्रतिदिनके जीवनमें अभी भी बराबर महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा कर रही हैं। वैज्ञानिकोंके समाजमें, कृषि, पौध-पालन, वन-विज्ञान और पशु-पालनके क्षेत्रोंमें परिश्रम कर रहे लोगोंके बीच और फलों तथा सब्जियोंके संरक्षण, डिब्बाबन्दी और विपणनसंबन्धी व्यापारिक क्षेत्रमें बरबैंकका प्रभाव पूर्ववत् बना हुआ है। किन्तु एक ऐसे मनोहर फूलको देखकर, जो लूथर बरबैंकके जीवनकालसे पूर्व कभी अस्तित्वमें ही नहीं रहा, अथवा किसी ऐसे प्रकृतिजन्य पदार्थको चखकर, जिसकी किस्म बरबैंकके प्रयोगात्मक अनुसंधानके फलस्वरूप बहुत सुधर गयी है, लाखों-करोड़ों व्यक्ति उल्लसित हो अनजाने ही जो वाह वाह कर उठते हैं, वह बरबैंकका सबसे दीर्घजीवी और अमिट योगदान है।

बरबैंकका जन्म और पालन-पोषण अमेरिकाके उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें मैसाचूसेट्स राज्यके एक फार्मपर हुआ। यद्यपि अपनी तरुण अवस्थामें प्रकृतिके चमत्कारोंको देखकर वह आह्लादित हो उठते थे और यद्यपि विभिन्न फसलें और फूलोंको उगानेकी विधियां उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभवद्वारा सीखी थीं, फिर भी उन्होंने नयी जातिके पेड़-पौधे उपजानेमें अपने जीवनको लगा देनेका निर्णय उस समयके बाद ही किया, जब उन्होंने डार्विनका ग्रंथ, 'वैरियेशन आफ एनिमल्स एण्ड प्लांट्स अण्डर डोमेस्टिकेशन' (घरेलू पोषणद्वारा पशुओं और पौधोंका वंश परिवर्त्तन) पढ़ लिया।

२१ वर्षकी आयुमें, बरबैंकने बाजारमें विक्रयके लिये बागवानीका कार्य प्रारंभ किया। उन्होंने उत्कृष्ट कोटिकी सब्जियां उत्पन्न कीं, जिनके विपणनमें उन्हें बड़ी सफलता मिली। प्रारंभमें उन्होंने जो प्रयोग किये, उनके अन्तर्गत उन्होंने एक बार 'अर्ली रोज' किस्मके आलूके पौधेसे २९ बीज रोपे। शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो गयी कि औपचारिक प्रशिक्षण न प्राप्त होनेके कारण उनमें जो कमी थी, वह एक ऐसे आंतरिक योग्यताद्वारा दूर हो गयी थी जिसने उन्हें एक अस्त-व्यस्त नौसिखियेके स्तरसे ऊपर उठा दिया था। आलूके संबन्धमें किये गये प्रयोगोंके फलस्वरूप उन्होंने उसकी एक ऐसी किस्म विकसित की जो स्थानीय किसानोंद्वारा प्रयुक्त होनेपर बहुत सफल रही। देशभरमें उसके श्रेष्टतर गुणोंकी चर्चा फैल गयी और आज 'इडाहो' नामक आलूकी यह किस्म उत्तर पश्चिमी अमेरिकामें हजारों एकड़ भूमिपर उपजायी जा रही है।

बरबैंकने देखा कि उनके जन्मस्थानका उग्र जलवायु उनके कार्यमें बाधक हो रहा है। अतः २६ वर्षकी आयुमें वह केलिफोर्नियाके प्रशान्त तटवर्ती राज्यमें चले गये, जहां मौसम समशीतोष्ण था, धूप अच्छी थी और मिट्टी उर्वर और विविध प्रकारकी थी। सैनफ्रांसिस्कोके निकट सान्ता रोसामें उन्होंने अपना नया घर बसाया। अपने इस नये घरका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा कि यह 'प्राकृतिक अनुकूलताकी दृष्टिसे पृथ्वीका सर्वश्रेष्ठ स्थान है। अपने निर्धारित लक्ष्यकी दिशामें बढ़ते हुए उनके कदम कभी भी नहीं डगमगाये और अपने इस 'चुने-चुनाये स्थान' पर वह ५० वर्षसे अधिक समयतक पौधोंके संबन्धमें प्रयोगात्मक और सृजनात्मक कार्य करते रहे।

सामान्यतः उनके प्रयोगोंके तीन आधारभूत प्रविधियां निहित थीं। प्रथम, वह सभी किस्मोंके देशी पौधे प्राप्त करते और विदेशोंसे ऐसी किस्मोंका आयात करते थे जो भिन्न-भिन्न स्थितियोंके अंतर्गत उगायी जानेपर प्रचुर और प्रतिकूलताओंका सामना करने अथवा अन्य वांछनीय परिवर्त्तन या नयी विशेषताएं प्रकट करनेमें समर्थ हो सकती थीं।

द्वितीय, वह खुराक, पानी, तापमान, प्रकाश और खुली जगह जैसी वातावरणसंबन्धी स्थितियोंको परिवर्तित करके पौधोंकी किस्ममें प्रचुर और सीमान्त परिवर्तन उत्पन्न करते थे। इसी प्रकार, वह ऐसे पौधोंकी कलम करके भी, जो प्रायः अत्यन्त असमान होते थे, किस्म परिवर्तन करते थे। बरबैंकके इन प्रयोगोंका उद्देश्य पौधोंके वंशगत ढांचेमें उग्र-अस्थिरता और इसी प्रकार प्रारंभिक किस्ममें पर्याप्त भिन्नता उत्पन्न करना था।

अनेक किस्मोंके उत्पादनके बाद तीसरा चरण प्रारंभ होता था। इस अंतिम कार्यवाहीके अन्तर्गत वांछनीय संशोधनका पता लगाया जाता और आगेके परीक्षणोंके लिये उपयुक्त किस्मोंका चुनाव किया जाता था। शेष सभी किस्मोंका परित्याग कर दिया जाता था।

वांछनीय परिवर्तनोंका पता लगाने और इस बातका निर्धारण करनेमें कि उनमें कौनसे परिवर्तन सबसे सफल सिद्ध हो सकते हैं, बरबैंककी असाधारण प्रतिभा सबसे अधिक व्यक्त हुई। उनके असीमित धैर्यकी बराबर परीक्षा होती रही। एक स्वेत झरबेरी (जिसका नाम उन्होंने 'पैराडाक्स' रखा) उत्पन्न करनेके लिये उन्होंने जो सफल प्रयास किया, उसके अंतमें उन्होंने समस्त परित्यक्त बीजांकुरोंको जला दिया। उनकी ढेर १२ फुट ऊंची, १४ फुट चौड़ी और २२ फुट लम्बी थी और उनमें झरबेरियोंके २ से लेकर ३ वर्षतक की ६५ हजार छोटी-छोटी झाड़ियां सम्मिलित थीं। इनमेंसे उन्होंने आगेके प्रयोगके लिये कितनी झाड़ियोंको चुना ? दो दर्जनसे कुछ कम।

इस प्रकार लूथर बरबैंक अपने जीवनकालमें जान-बूझकर प्रकृतिको अपना आदेश पूरा करनेके लिये बाध्य करते रहे। किन्तु ऐसा करते हुए, उन्होंने अपने वैज्ञानिक प्रयोगोंकी क्षमताको अनुकूलतम बनानेके उपाय ढूढ़े। उनके फार्ममें एक एकड़ भूमिपर कई हजार किस्मकी फसलें उत्पन्न होती थीं। यह चमत्कारपूर्ण सफलता एक ही वृक्षकी टहनियोंको कलम करके प्राप्त की गयी। उदाहरणके लिये, इस प्रकार, वह एक ही सेवके पेड़से भिन्न-भिन्न ५२६ किस्मके सेव पैदा करनेमें सफल रहे। उनके लिये न केवल स्थानकी बचत करना, बल्कि अपने प्रयोगोंकी गतिको तीव्रतर करना भी संभव हो गया। किसी पेड़से फल प्राप्त करनेके लिये १५ वर्षतक उसके बढ़ावकी प्रतीक्षा करनेके बजाय, वह किसी पौधेकी डाली काटकर उसे किसी अन्य फल देनेवाले पूरे पेड़में कलम कर देते थे, और इस प्रकार, उससे दो या तीन वर्षमें ही फल प्राप्त होने लगते थे। बरबैंकने भिन्न-भिन्न प्रकारके ६,००० पौधोंके सम्बन्धमें पृथक्-पृथक् एक लाख से अधिक प्रयोग किये। उनकी सफ़लताओंका विस्तृत वर्णन देना असम्भव है, किन्तु उनके कुछ विश्व-विख्यात उत्पादन उल्लेखनीय हैं। उन्होंने एक श्रेष्ठतर किस्मकी चेरी, एक कंटकविहीन झरबेरी, एक ऐसी नागफनी जिसमें कांटेदार नोंक नहीं होती और जो अब पशुओंके चारेके लिये प्रयुक्त होती है, एक आडूका पेड़ जो कठिन शीतका सामना कर सकता है, विकसित किया है। उन्होंने ७० नये फूलोंको जन्म देकर पुष्पप्रेमियोंको आह्लादित किया है। इनमें शास्ता डेजी और बरबैंक गुलाब भी सम्मिलित हैं। उन्होंने फल-फूलोंकी जो सैंकड़ों नयी किस्में विकसित कीं, उनमें ६० किस्मके ऐसे फल जो पेड़ोंपर फलते हैं, १२ किस्मके ऐसे फल जो झाड़ियोंपर फलते हैं, ९ नयी सब्जियां और ७ नये बादाम जैसे छिलकेवाले फल सम्मिलित हैं।

जैसा कि स्वाभाविक है, उनके अनेक प्रयास असफल भी रहे। एक अवसरपर उन्होंने एक आलूके पौधेमें टमाटरकी कलम लगायी। उससे एक प्रकारकी सब्जी भी उत्पन्न हुई, किन्तु व्यापारिक दृष्टिसे वह महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुई। किन्तु प्रत्येक असफलता और संकटके समय उनकी कार्य-निष्ठा बढ़ जाती। निराशाजनक परिणामोंसे उन्हें असफलताका कारण ढूढ़ निकालनेकी अमित प्रेरणा प्राप्त होती। एक ऐसे युगमें, जब इस्पातके कारखानों, आटोमोबाइलकी फैक्टरियों और व्यापार तथा उद्योगके बाजारोंसे नये-नये चमत्कारोंका प्रभाव उमड़ रहा था, बरबैंकने प्रकृतिके सरल तत्वोंके सम्बन्धमें प्रयोग करके ऐसे प्रभावकारी परिणाम उत्पन्न किये जो चमचमाती कारों, पुलों, सुरंगों और गुनगुनाते तारोंसे किसी भी प्रकार कम कुतुहलवर्धक नहीं थे।

लूथर बरबैंकने अपने मानव-बन्धुओंके कल्याणार्थ जो योग प्रदान किये, वे दर्जनों ऐसे देशोंमें विशेष रूपसे प्रेरणादायक और उपयोगी सिद्ध हुए, जहां प्रकृति अनुदार है और लोग क्षुधा-पीड़ित हैं। वह मानवतावादी थे। उन्होंने अपने कर्त्तव्यको अतीव निष्ठा और श्रमसे निबाहा। उन्होंने किसी प्रकारकी पूर्व-निर्धारित रूढ़ियों या आडम्बरपूर्ण उद्देश्योंका अनुसरण नहीं किया। यद्यपि उनके पास अपने विषयमें कुछ कहनेका न तो समय ही था और न ही वे इसके लिये उत्सुक थे, फिर भी उनकी सरलता और महानता मित्रोंसे बातचीतके दौरान कहे गये उनके इस वाक्यसे ही स्पष्ट है :—'यदि मेरे कारण श्रेष्ठतर फल और अधिक सुन्दर पुष्प सुलभ हो सके, तो मेरे संतुष्ट होनेके लिये इतना ही पर्याप्त होगा।'

◆

अंग्रेज अपनी प्रतिष्ठाका बहुत ख्याल रखते हैं। विक्टोरियाके जमानेमें यह चीज बहुत ज्यादा थी। कोई अभिजात कुलका व्यक्ति कोई ऐसा काम न कर सकता था जिससे उसके, या उसके समाजके नामपर बट्टा लगे। लेकिन युवराज एडवर्ड काफी मौजी जीव था, उसे इन चीजोंका अधिक ख्याल न रहता था। वह अपने मित्रोंके साथ दांव लगाकर ताश खेलता था। उसका एक विशेष मित्र था जिसका नाम सर विलियम गार्डन कमिंग था। एक दिन किसीने देखा, कमिंग ताश खेलते हुए चालाकी कर रहा है। उसने दूसरेसे कहा। लेकिन एक लार्ड ताशमें धोखेसे काम ले यह कल्पनाके बाहरकी बात थी। आखिर पांच आदमियोंने मिलकर देखा कि कमिंग सचमुच चालाकियां कर रहा था। बात अन्य लार्डोंके पास पहुंची। एक लार्ड इस तरहसे करे यह उनके लिये असह्य था। सबने मिलकर कमिंगको घेरा। उसने अपराध स्वीकार न किया। उसने कहा, "मैं पच्चीस वर्षसे महारानीकी सेवामें हूं, मैं भला ऐसा नीच हो सकता हूं?" बात एडवर्डतक पहुंची। उसने आरोप लगानेवालोंको बुलाया और जांच की। उसे विश्वास हो गया। बेचारे कमिंगको प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वह जीवनभर ताश न खेलेगा। पर बात यहींपर समाप्त न हुई, सबमें फैल गयी। चारों तरफ लोग उसे धिक्कारने लगे। जो आदमी ताशमें धोखेबाजी कर सकता है वह जीवनमें क्या नहीं कर सकता? ऐसे आदमीको कोई जिम्मेदारीका पद न देना चाहिये। कमिंगने आत्मरक्षाके लिये आरोप लगानेवाले पांचों लोगोंपर झूठा आरोप लगानेका मुकदमा चला दिया। अदालतमें उसने कहा, "मैं तो युवराजका मित्र हूं, मैं ऐसा नीच काम कैसे कर सकता हूं?" अदालतने युवराजको बुलाया। उन्होंने ज्यूरीके सामने कहा, "हां, सचमुच यह आदमी मेरा घनिष्ट मित्र है।" लोगोंने सोचा, कमिंग छूट जायगा। पर नहीं, विरोधी वकीलने पूछा, लेकिन श्रीमन्, जब यह आरोप लगाया गया था तब आपकी क्या राय थी? एडवर्डको स्वीकार करना पड़ा कि आरोप लगानेवालोंकी बातमें सार था।

हैरियट शिखर और अस्ताचल

[उदय होते सूर्यकी पूजा सभी करते हैं, पर अस्त होते की कोई नहीं। एक व्यक्ति था जिसने अस्त होते सूर्यकी उपासना की, और.........परिणाम.........क्या हुआ ?]

अस्ताचल की देहरीपर टेक लगाये, भगवान् भास्कर नीलमकी थालीमें सजे, आरतीके दीपों सदृश्य इन द्वीपोंपर, अन्तिम दृष्टि डालते हुए, संतोषसे मुस्करा रहे थे। बारह घंटेके कठिन परिश्रमसे श्रान्त-क्लान्त सूर्यदेवने, थोड़ी देरके लिये अपने रश्मि-रथको रोककर विश्राम लेना चाहा। उस समय ऐसा लग रहा था मानों प्रतीचीके प्रांगणमें संध्या बालाके नृत्यका आयोजन हो रहा हो जिसके लिये स्वर्गकी अप्सराओंने पलाश और कनेरके लाल फूलोंकी चांदनी बिछा रखी हो। नीलमकी प्यालीमें असंख्य लहरें हिलोरें ले सुसंचालित गति और तालसे नाच रही थीं। रवि-रश्मियां उनके चुम्बनसे तृप्ति लाभ कर इन्द्रधनुषी रंगोंमें मुस्कुरा रही थीं। तरु-शिखाओं और हैरियट शिखरपर धूप-छाँहका अभूतपूर्व सामंजस्य था। यहांसे अस्ताचलके अतिथि-की मनोरम छविका दर्शन हो रहा था।

उस समय प्रकृतिका एक उपासक, सौन्दर्यप्रेमी और चिंतक तपस्वी हैरियट शिखरपर बैठा इस अद्वितीय छविको निहार-निहार अपने नयन तृप्त कर रहा था। आज मानो उसे अपने जीवनका चिर-अभिलषित प्राप्य मिल गया था। वह अपने अतृप्त नेत्रोंसे कभी नीलमकी प्यालीमें अंगड़ाई लेते लहरों और कभी रक्ताभ गगनमें उड़ते सिंदूरकी लालीको देखकर मुग्ध हो रहा था। प्रकृतिके सौन्दर्यका ऐसा समन्वयात्मक रूप उसने इससे पूर्व कभी न देखा था और न उसके बारेमें सुना था। वह आत्मविभोर-सा सब कुछ भूल गया। समय, स्थिति और स्वयं अपने-आपको न जाने कबतक। उस समय किसे पता था कि यह नयनाभिराम दृश्य उसके जीवनका अंतिम दृश्य सिद्ध होनेवाला था ? यह व्यक्ति कोई अन्य नहीं तत्कालीन भारतीय प्रशासनके सर्वोच्च अधिकारी लार्ड मेयो स्वयं थे।

भारतमें लार्ड मेयोका शासन-काल सन् १८६९ से १८७२ तक रहा है। मेयो सुधारवादी और उदार वायसराय थे। भारतीय प्रशासनका भार ग्रहण करनेके पश्चात् उनका ध्यान अन्दमान अर्थात् तत्कालीन कालेपानीकी ओर गया जिसके नाममात्रसे ही जन-मानस कम्पित हो उठता था।

लार्ड मेयोके यात्रा-कार्यक्रममें क्रमशः बर्मा, अन्दमान और उड़ीसा थे। २४ जनवरी सन् १८७२ को उन्होंने बर्मा यात्रापर प्रयाण किया। पश्चात् ८ फरवरी १८७२ के प्रातःकाल होपटाउनके पास नार्थ वे (उत्तरी खाड़ी) में उनके बेड़ेने लंगर डाला। फ्रेगेट ग्लासगो और वाष्पचालित ढाका भारतके सर्वोच्च अधिकारीकी पताका फहराते खड़े थे। वायसरायके दलमें काउण्टेस मेयोके अतिरिक्त ६०० अतिथि एवं राजकर्मचारी थे।

राजकीय निरीक्षण कार्यक्रमके अंतर्गत रौस और वायपर द्वीप भी थे। प्रातःकाल ही दौरा

आरंभ हुआ। इन द्वीपोंमें सबसे अधिक खूंखार प्रकारके बंदी थे। इसलिये सशस्त्र आरक्ष दल. के आदमियोंसे उनका पथ सुरक्षित कर दिया गया था। उनकी रक्षाके यथासाध्य उपाय किये गये थे। इन द्वीपोंमें कभी भी अचानक विपत्ति आ पड़नेकी आशंका थी। इसलिये पर्याप्त सतर्कता और सावधानीका ध्यान रखा गया था। जो बंदी वायसरायसे कुछ याचना करना चाहते थे उनके आवेदनपत्र ग्रहण करनेके लिये कुछ पदाधिकारियोंकी नियुक्ति की गयी थी जिनका काम ऐसे निवेदन-पत्रोंको वायसरायके समक्ष उपस्थित करना था।

बन्दी इस आशामें थे कि वायसरायकी इस भेंटके उपलक्षमें कुछ छूट मिलेगी और बहुतोंके अपराध क्षमा कर दिये जायेंगे। इसीलिये सभी बन्दी शालीन आचरण और यथाशक्य संयत व्यवहारका प्रदर्शन कर रहे थे। सभी अपने निश्चित कार्य पूर्ण मनोयोगसे करते थे। किसी प्रकारकी उद्दण्डता या उत्पातका कोई चिह्न न था। सारे कार्य सुनिश्चित व्यवस्थासे शांति-पूर्वक होते रहे। निरीक्षणका कार्य समाप्त कर वायसराय संध्यासे पहले होपटाउन पहुंच गये।

अभी उजाला शेष था और एक काम बाकी रह गया था। उन्हें एक सेनिटोरियमके लिये स्थानका चयन करना था। उन्होंने अपने दलको हैरियट शिखरपर चढ़नेके लिये प्रोत्साहित किया। जब सब प्रस्तुत हो गये तो यह दल शिखरकी ओर पैदल ही चल पड़ा। साथमें एक टट्टू भी था जिसके उपयोगका अधिकार बारी-बारीसे सभीको दिया गया।

हैरियट शिखर, होपटाउन जेट्टीसे प्रायः डेढ़ मीलपर है। इसकी ऊंचाई १११६ फीट है। लता तरुओंसे आच्छादित इस छोटीसी पहाड़ीपर प्रकृतिने अपना वैभव मुक्तहस्त लुटाया है। झरनेका मधुर संगीत प्रसारित करती कल-कल बहती एक पहाड़ी नदी अमृत-तुल्य मीठे शीतल जलका मुक्त दान करती है। सेनिटोरियमके लिये इससे अधिक स्वच्छ जलवायु तथा स्वास्थ्यप्रद स्थान अन्यत्र दुर्लभ था।

शिखरपर पहुंचकर लार्ड मेयोने अच्छी तरह उस स्थानका सर्वेक्षण किया। उन्हें वह स्थान सब प्रकारसे उपयुक्त जान पड़ा। मेयो दृढ़ मनोबलवाले सुधारवादी थे। कालेपानीके बंदियोंका जीवन कठोर था। रोगोंसे रक्षाके उपाय नहींके बराबर थे। उनके प्रति सहृदयता तथा संवेदनासे प्रेरित हो, बंदियोंके दुख कम करनेकी अटल इच्छासे वे यहां आये थे। जब उन्हें अपनी इच्छाके अनुकूल खोजमें सफलता मिल गयी तो एक सरल उल्लाससे उनका मुखमंडल खिल उठा। इस सुधारवादी व्यक्तिके हृदयमें मानवता कूट-कूटकर भरी थी। बंदियोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त कटिबद्ध, वह महान् मानव, दण्ड-व्यवस्था और मानवताके समन्वयका पुनर्गठन करनेमें कार्यरत था।

इस ऊंचाईपरसे बहुत दूरतक फैली एक अनंत रेखामें उन्हें ये द्वीप बिखरे दिखायी दिये। बाल-सुलभ सरलता और हर्षसे उत्फुल्ल उन्होंने कहा, "इन द्वीपोंमें कमसे कम बीस लाख लोगोंको बसानेके लिये पर्याप्त भूमि है।" इन द्वीपोंके अपरिच्छिन्न नैसर्गिक सौन्दयसे वे विस्मयविमूढ़-से हो गये। प्रकृतिकी इस वैभवसम्पन्नताको वे अपलक निहारते रहे। उस समय अस्ताचलगामी भगवान् भास्कर लाल-पीले रंगोंसे ऐसे द्युतिमान हो रहे थे मानो रेशमकी नीली चादरपर स्वर्ण-थाल जड़ा हो, अथवा किसी लावण्यवती नवोढ़ाके स्निग्ध भालपर सोनेकी बिंदी चमक रही हो। ध्यान-मग्न माउण्ट हैरियट, अनंत सागरके क्रोड़में तपस्या-लीन जड़ भरतसा

खड़ा था। उसकी जटाओंमें उलझे विस्मृत-से खड़े थे लार्ड मेयो। इतने बड़े साम्राज्यका वैभवशाली शासक आज एक सामान्य भावुक मानव मात्र रह गया था। प्रकृतिकी इस सम्पत्तिके सामने भारतके विशाल साम्राज्यका वैभव उन्हें तृणवत् तुच्छ जान पड़ा। वे मुक्त कण्ठसे 'अति सुन्दर, अति सुन्दर' का गीत गाने लगे और बेसुध-से अपने-आपमें खो गये। जब उनकी चेतना लौटी तो काफी देर हो चुकी थी। उन्होंने थोड़ासा पानी पिया और एक बार फिर अतृप्त नेत्रोंसे पश्चिमकी ओर देखा। इस अवलोकनद्वारा अपनी तृष्ण शान्त करते हुए उन्होंने अपने सचिवसे कहा, "यह मेरे जीवनका परम उत्कर्ष है। लगता है मानों जीवन आज सार्थक हुआ। ऐसी अद्भुत छटा इससे पहले कभी नहीं देखी थी।"

इसके बाद इस नयनाभिराम छविके मूक चिन्तनमें खोये-से वे अनिच्छापूर्वक उतरने लगे। आगे-आगे लार्ड मेयो और उनके पीछे अंगरक्षक तथा दलके अन्य व्यक्ति थे। तब किसीको इस बातका रंचमात्र भी अनुमान न था कि इस सारे अभियानमें राजकीय रक्तका प्यासा एक व्यक्ति ऐसा भी था जो दिन भर किसी हिंस्र पशुकी तरह घात लगाये हुए छायाकी भांति उनका पीछा कर रहा था। वह था सीमाप्रान्तका एक खूंख्वार बन्दी शेरअली। इस पठान शेर अलीने अपने पुश्तैनी शत्रुका बध किया था जिसके लिये वह देशसे निर्वासित किया गया था। लंबे-चौड़े डील-डौलका शेरअली आजन्म कारावासका दण्ड पाकर अन्दमान आया था। उसे टिकिट आफ लीव पर छूट मिली थी। आजीविकाके लिये वह नाईका काम करता और वहीं होपटाउनमें रहता था। कहा जाता है उसका एक भाई भी अलीपुर जेलमें आजीवन कारावासकी सजा भोग रहा था। शेरअलीका व्यवहार किसी प्रकार भी आपत्ति-जनक नहीं था। वह सदा शांतिपूर्वक अपना काम करता था।

यह किसे ज्ञात था कि इस सीधे-सादे शांत-शिष्ट दिखते व्यक्तिके अंदर एक भयानक ज्वालामुखी बहुत दिनोंसे दबा पड़ा था? वह प्रतिहिंसाका ज्वालामुखी अंदर ही अंदर सुलगता भयंकर विस्फोटकी तैयारी कर रहा था। लार्ड मेयोके आगमनसे उसकी आंखोंमें आशा चमक उठी थी।

अंधकारमय निर्जन पथपर लार्ड मेयोका यह दल मशालोंके प्रकाशमें नीचे उतर रहा था। वे स्वयं आगे-आगे चल रहे थे और जेट्टीतक पहुंचते-पहुंचते तो बहुत आगे हो गये थे। उस समय वे भूरे रंगका सूट पहने थे। जैसे ही उन्होंने तेजीसे जेट्टीपर कदम बढ़ाया उनके विशाल स्कन्ध मशालोंके तीव्र प्रकाशमें जगमगा उठे। शेरअली वन्य पशुकी तरह अपने शिकारका पीछा कर रहा था। उसने तुरंत निर्णय किया कि अभी या कभी नहीं। न जाने कहांसे उसके बदनमें चीते-की-सी तेजी भर गयी। पलक मारते ही वह लार्ड मेयोकी पीठसे चिपक गया और अपने तेज छुरेसे प्रहारपर प्रहार करने लगा। यह सब इतने अनायास ढंगसे हुआ कि सभी अवाक् रह गये। शेरअलीको उनकी पीठसे घसीटकर छुड़ाया गया। उसपर बारह आदमी एक साथ टूट पड़े। वे उसे समाप्त ही कर देते कि एक अंग्रेज अधिकारीने अपनी तलवारकी मूठसे उसकी रक्षा की। लार्ड मेयो इस आघातसे लड़खड़ाकर गिर पड़े। तेज छूरेके दो घातक घाव उनकी पीठसे छातीतक घुस गये थे। उनसे अविरत रक्तधारा वह रही थी। जिस स्थानपर वे गिरे थे वहांतक समुद्रका पानी था। एक हाथसे अपनी आंखोंपर झुक आये बालोंको उठाते हुए उन्होंने स्वयं उठनेकी चेष्टा की। अपने सचिवको संबोधित करते

हुए उन्होंने धीमे स्वरमें कहा, "बर्न, उन्होंने मुझे मार दिया है", इसके बाद उन्होंने दलके अन्य सदस्योंको सुनाते हुए आश्वासनके स्वरमें कहा, "कोई बात नहीं है, सब ठीक हो जायगा—मैं नहीं सोचता कि अधिक चोट आयी है।"

पास ही एक गंदी-सी ठेलागाड़ी पड़ी थी। मेयोको उसमें लिटा दिया गया। अपने कपड़े फाड़-फाड़कर सभी उनके घावोंसे रक्त-स्राव बंद करनेके प्रयत्नोंमें लग गये। पर सब व्यर्थ। लार्ड मेयोने दो-एक बार ठेलेपर उठकर संभलनेकी व्यर्थ चेष्टा की। वे हर बार पीठके बल गिर पड़ते थे। अंतमें वह समय भी आ गया जिसे टालनेके लिये सभी प्राणपणसे सन्नद्ध थे, जिसके लिये भगवान्‌से मूक प्रार्थना कर रहे थे। थोड़ी देरमें उन्होंने अपना सिर कुछ ऊपर उठानेका आदेश दिया। यह प्रशासनके इस सर्वोच्च अधिकारीका अंतिम आदेश था। इसके बाद मानों अस्ताचलगामी सूर्य, नीलमकी लहरदार प्याली, लता-गुल्मोंसे सज्जित हैरियट शिखर एवं वनाच्छादित असंख्य द्वीपोंकी सौंदर्य-श्रीका एक बार पुनः सिंहावलोकन-सा करते हुए उन्होंने इस पूर्ण लावण्यराशिको अपनी पलकोंके अंदर सदाके लिये बंद कर लिया।

फिर क्या था! चारों ओर हाहाकार मच गया। दबी सिसकियां कण्ठावरोध तोड़ मुक्त हो गयीं। उस दलमें लेडी मेयोके अतिरिक्त और भी कई महिलाएं थीं। वे सब आर्तनाद करने लगीं। महान् वैभव और संपन्नताको दोनों हाथ लुटानेवाला यह दल, आज कालके एक प्रहार से समस्तवैभवहीन, विपन्न, दीन बनकर मानों हाथ पसारे भिक्षा मांग रहा हो केवल एक जीवनकी। सभी आत्मग्लानिसे प्रताड़ित थे। वे सोच रहे थे, काश, मेयोके स्थानपर यदि उनमेंसे किसीकी हत्या हुई होती। अपनी जान देकर भी यदि वे मेयोको बचा पाते।

लार्ड मेयोके शवको नौकाद्वारा फ्रिगेटग्लासगोमें स्थानान्तरित किया गया। उस समय सब बत्तियां बुझा दी गयी थीं ताकि विशृंखलता न फैले। बादमें बत्तियां फिरसे जला दी गयीं। एक सम्राट्‌का पतन होता है तो उसके स्थानपर दूसरा उभर आता है। इसी प्रकार एक प्रशासक जाता है तो दूसरा स्थान ग्रहण करता है। राजकाज कभी नहीं रुकता। वह समय-सा चलता रहता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही शोकमग्न जलपोतमें एक सभा हुई जिसमें सभी उच्च अधिकारियोंनें इस संकटपूर्ण स्थितिमें अपना कर्त्तव्य निर्धारित करनेका निश्चय किया। इस सभाका नेतृत्व किया सर बरो एच-इलिसने, जो गवर्नर जनरलकी काउंसिलके सदस्य थे। निर्णय हुआ कि सर बरो एक पोतमें तुरंत बंगालकी ओर और श्री एचीसन सी. एस. आई. परराष्ट्र सचिव दूसरे पोतमें मद्रासकी ओर प्रस्थान करें, जिन्हें एट्रिकके लार्ड नेपियरको लेकर मद्राससे कलकत्ते जाना था जहां श्री नेपियरको एक्टिंग गवर्नर जनरलका पद ग्रहण करना था। तुरंत ही शोकमग्न ये जलपोत अपनी राष्ट्रध्वजा निम्न किये गंतव्य मार्गपर बढ़ चले।

नार्थ बेके अंकमें मूर्छित-सा पड़ा फ्रिगेट ग्लासगो अपने लाड़ले मेयोका ओषधिरंजित शरीर लिये सिर धुनता रहा। यह शव एक अस्थाई ताबूतमें बंद करके डेकपर रख दिया गया था जिसे बादमें पूर्ण सम्मानके साथ कलकत्ते ले जाया गया।

जब शेरअलीको मृत वायसरायका शव दिखाकर पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों किया तो उसका उत्तर था, "खुदाने हुक्म दिया।" जब उसके इस कार्यमें किसी अन्य सहयोगीके बारेमें पूछा गया तो वह बोला, "मेरा शरीक कोई इंसान नहीं मेरा शरीक खुदा है।" उसे न्याय-

की सामान्य सीढ़ियोंसे होकर जाना पड़ा। सेशन्स न्यायालयद्वारा उसको फांसीकी सजा दी गयी। कलकत्तेके उच्च न्यायालयने २० फरवरी सन् १८७२ को इसकी पुष्टि की और ११ मार्च सन् १८७२ के दिन उसे वायपर द्वीपमें फांसी देकर लार्ड मेयोके पास भेज दिया गया।

—रमेशचंद्र पंत

नंददास

—श्री हीरो

नंददासजी रामपुरी थे, कुछ लोगोंका यह भी कहना है कि वे गोस्वामी तुलसीदासजीके सगे भाई थे, कोई-कोई उन्हें उनका गुरु-भाई मानता है। एक बार जब ये द्वारिका जा रहे थे तो रास्तेमें एक खत्री सुन्दरीपर आसक्त हो गये और उसके घरकी प्रदक्षिणा करने लगे। उस स्त्रीके घरवालोंने उन्हें दूर करनेकी लाख कोशिशें कीं, लेकिन जब कोई फल न निकला तो वे स्त्रीको लेकर गोकुल चले गये। लेकिन ये कब छोड़नेवाले थे? ये भी पीछे-पीछे गोकुल गये। परंतु वहां गोसाईं विट्ठलनाथजीके सदुपदेशसे इनका मोह भंग हो गया और ये मानव प्रेम छोड़कर कृष्णके भागवत प्रेममें लीन हो गये, और कुछ ही दिनोंमें गोसाईंजीके मुख्य शिष्योंमें गिने जाने लगे। नंददासजी अक्सर कृष्ण-कीर्तन किया करते थे। इनकी भावभरी पदावलीपर गोसाईं विट्ठलनाथजी ऐसे मुग्ध हुए कि इन्हें अष्टछापमें उपयुक्त स्थान दे दिया। अष्टछापमें यदि सूर सूर्य हैं तो नंददास निश्चय ही चन्द्रमा हैं। इन्होंने कई हितोपदेश और गद्यात्मक नासिकेत पुराण रचे, जैसे, रस मंजरी, रास पंचाध्यायी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, ज्ञान मंजरी, भ्रमर गीत। किन्तु इनकी सर्वोत्तम रचनाएं "रास-पंचाध्यायी और भ्रमर गीत" माने गये हैं।

इनके ग्रन्थ इतने रोचक और भावपूर्ण हैं कि उनकी टक्कर लेनेवाले ग्रन्थ हिन्दीमें बहुत ही कम होंगे। रोला छंदमें——जिसमें २४ मात्राएं होती हैं और ११ के बाद यति व १३ के बाद विराम आता है——जितने नंददासजी सफल हुए हैं उतना और कोई नहीं हुआ।

अनेकार्थमालामें वे एक ही शब्दके कई-कई अर्थ देते हैं; उदाहरणके लिये हम सारंग शब्द ले सकते हैं :–

रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरी, कुंज, कुरंग।
चातक, दादुर, दीप, हल, ये कहिये सारंग॥
पिक, चामर, कव-संघ, कुच, कर, बायसहूं सोय।
खंजन, चंचल, मिरिगमद, काम बिसन है सोय॥

नंददासजीके समसामयिक ध्रुवदासजीने इनकी भक्ति-भावना और भावरसिकताको बड़ी ही सुन्दर पंक्तियोंमें अंकित किया है। वे कहते हैं :—

नंददास जो कुछ कह्यौ, राग-रंग में पागि।
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत होति हिय जागि।।

नंददासजीकी रचनायें हृदयवेधिनी मर्मस्पर्शिनी और सजीव हैं। यहां नंददासजीके सुन्दर शब्दोंमें वह दृश्य देखिये जब कृष्ण रास रचनेकी तैयारी कर रहे हैं और गोपियां दौड़ी-दौड़ी आ रहीं हैं :—

मंद-मंद चल चारु चंद्रमा अति छवि पाई,
झलकत है जनु रमाराम पिय कौतुक आई।
तब लीनी कर कमल जोग-मायासी मुरली,
अघटन-घटना-चतुर, बहुरि अधरन सुर जु-रली।
जाकी धुनि तें निगम अगम प्रगटित बड़नागर
नाद ब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुख सागर।
पुनि मोहन सों मिली कछू कल गान कियौ अस,
बाम बिलोचन बास तियन मनहरन होय जस।
मोहन-मुरली-नाद स्रवन कीनों सब कितहूं,
जथा-जथा-विधि रूप, तथाविधि परसो तिनहूं।
तरनि-किरन ज्यों मनि पषान सबहित के दरसे।
.. ..
सुनत चली ब्रजवधू गीत धुनि कौ मारग गहि।
भवन मीत द्रुम-कुंज-पुंज कितहूं अटकी नहिं।
नाद-अमृत कौ पंथ रंगीलो सुच्छम भारी,
तेहिं मग ब्रजतिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी।

भ्रमरगीतमें हम देखते हैं श्रीकृष्णने ऊधवको अपना संदेश देकर गोपियोंके पास बृन्दावन भेजा था जिससे गोपियां कृष्णके लिये व्याकुल न हों। ऊधव आकर शुरूमें गोपियोंके सामने ज्ञानकी डींग मारने लगे। बोले, श्याम और उनके संगी सकुशल हैं। तुम ज्ञानकी आंखोंसे देखो, वे तुमसे दूर नहीं हैं, सारा विश्व उनसे भरपूर है, प्रत्येक वस्तुमें उन्हींका रूप देखो, लोहे, आग, पत्थर, पानी, पृथ्वी, आकाश, व चर अचर, सभीमें ब्रह्म का प्रकाश है।

"वे तुमते नहिं दूरि, ग्यांन की आंखिन देखौ।
अखिल बिस्व-भरपूर, रूप सब उनहिं बिसेखौ।
लोह, दारु, पाखांन में, जल, थल, महि, अकास।
सचर-अचर बरतत सबै, जोति-ब्रह्म परकास।
सुनो, ब्रज-नागरी।"

गोपियां कहती हैं, ऊधव ब्रह्म कौन और ज्योति क्या है? और फिर ज्ञान किसे कहते हैं? हमारे सुन्दर श्यामका तो सीधा प्रेमका मार्ग है। उनके नाक, कान, मुख और आंखोंको देखकर और उनकी मुरलीको सुनकर सारी सुध-बुध चली जाती है। और तुम कहते हो वे निर्गुण

निराकार हैं।

"कौन ब्रह्म, को जोति, ग्यान कासो कहें ऊधो?
हमरे सुन्दर-स्याम, प्रेम कौ मारग-सूधौ।
नैंन, बैंन, नासिका मोहन-रूप लखाइ
सुधि-बुधि-सब मुरली हरी, प्रेम ठगोरी लाइ।
सखा सुन श्याम के।"

फिर ऊधव कहते हैं:—

"यै सब सगुन उपाधि, रूप निरगुन है उन्हकौ,
निरविकार निरलेप, लगत नहिं तीन्हों-गुन कौ।
हाथ-पाइ नहिं नासिका नैंन, बैंन, नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकाश हीं, सकल विस्व के प्रांन।
सुनो, ब्रजनागरी।"

इस तरह आपसमें तर्क वितर्क चलता है। ऊधवने बहुत समझाया कि तुम कृष्णकी आराधना छोड़ दो और निर्गुणको अपनाओ। लेकिन गोपियां अपने प्रेम-मार्गपर ही अड़ी रहीं और अंतमें ऊधव ही गोपियोंके प्रेमसे प्रभावित हो गये और मान गये कि बस एक प्रेम-मार्ग ही है जिससे भगवान् मिल सकते हैं। इसलिये जब वे लौटकर श्रीकृष्णके पास गये तो बोले;

"पुनि-पुनि कहै अहो स्याम चलौ बृंदावन रहिये,
परम प्रेम कौ पुंज जहां गोपिन्ह-संग लहिये।
और संग सब छाड़ि कें, उन-लोगन सुख देहु
ना तरु टूट्यो जात है अब ही नेह सनेहु।"

(वे बार-बार कहने लगे कि नाथ, चलो, वृन्दावनमें चलकर रहिये, वहां परम प्रेमका पुंज है। सब कुछ छोड़कर उसीको अपनाइये। नहीं तो स्नेहका तातां कहीं टूट न जाय।)

अपने सखाके वचन सुन कृष्णकी आंखें छलछला आयीं, प्रेमसे इतने पुलकित हुए कि उन्हें किसीकी भी सुध न रही; रोम-रोममें गोपियां समा गयीं। फिर बोले, सखा, तुम भी भूले रहे, तुम्हें भेजा था उनकी खबर लानेके लिये, तुम उलटे मेरे ही अवगुण दिखा रहे हो। मुझमें और उनमें तनिक भी अंतर नहीं है। जैसे वे मुझमें दिखायी देती हैं उसी प्रकार मैं उनमें रहता हूं, ठीक वैसे ही जैसे समुद्रमें तरंगें।

तब कृष्णने ऊधवको गोपी रूप दिखा भ्रममें डाल दिया, फिर प्रेमका जाल रचा। नंददासजीने इसका भी बहुत सुन्दर वर्णन किया है और इसीसे वे अपना भ्रमरगीत समाप्त करते हैं। वे कहते हैं,

"गोपी-रूप दिखाइ तबै मोहन, बनवारी,
ऊधौ-भ्रमहिं निवारि, डारि पुनि मोह की जारी।
अदभुत रूप निहार कौ, लीन्हों बहुरि दुराइ,
'नंददास' पावन भयौ, सौ ये लीला गाइ॥
—प्रेम रस पुंजनी।"

***

किशोर-दल, बढ़ा चरण

अरुण-तरुण स्वदेशके किशोर-दल, बढ़ा चरण।

चरण बढ़े कि ज्योतिके अनन्त दीप जल उठे।
स्वतंत्रता-प्रभातमें नयी किरण मचल उठे।
नयी सुगन्धसे धरा, गमक उठे सुमन-सुमन।
अरुण-तरुण स्वदेशके किशोर-दल, बढ़ा चरण।।

बढ़ा चरण स्वधर्मपर, स्वकर्म, स्वाभिमानपर।
अडिग, अचल स्वदेशकी संभल ज्वलंत आनपर।
अमन्द जगमगा उठे नयी प्रभा भवन-भवन।
अरुण-तरुण स्वदेशके किशोर-दल, बढ़ा चरण।।

नयी तरंग बह उठे अधीर अंग-अंगसे।
मुस्कुरा उठे नवीन जिन्दगी उमंगसे।
झुके न सिर, रुके न पग, विजय मिले कि वर मरण।
अरुण-तरुण स्वदेशके किशोर-दल, बढ़ा चरण।

—आरसीप्रसाद सिंह

शेख सादी

—श्री अफजलुल उलमा मुहम्मद यूसुफ कोकन

फारसी भाषाके गद्य और पद्य लिखनेवालोंमें शेख सादी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी हृदयग्राही और मनोरंजक रचनाओंका उर्दू और फारसी साहित्यपर सबसे अधिक प्रभाव है। उनकी सूक्तियां विद्वानों और साधारण जनताकी थाती बन गयी हैं। मानव-जीवनका कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसके बारेमें सादीने अपने मधुर या कटु अनुभव न लिखे हों। उनका जन्म सम्भवत: ११८४ में हुआ था। उन्होंने घरपर मांसे तथा कुछ दूसरे विद्वानोंसे शिक्षा पायी, फिर पढ़नेके लिये बगदाद चले गये। इनका असली नाम शफुद्दीन था लेकिन वे शादीके नामसे ही प्रसिद्ध हैं।

बचपनसे ही सादी बहुत मिलनसार थे। वे तरह-तरहके लोगोंसे मिलते-जुलते और उनके मानसका अध्ययन करते रहते थे। उन्होंने विभिन्न इस्लामी राज्योंका दौरा किया और वहांके मुस्लिम विद्वानोंके संगका लाभ उठाया। इस जमानेमें एक ओर इसाई लोग मुस्लिम देशों-पर चढ़ाई कर रहे थे तो दूसरी ओर तातारी लोग विनाश करनेपर तुले थे। सन् १२५७ में हलाकू खांने बगदादसे खिलाफतको उखाड़ फेंका और वहांकी गलियोंमें खूनकी नदियां बहा दीं। इसपर सादीने लिखा :

आस्मां रा हक बुअद गर खूं बबारद बर जमीं।
बरजवाले मुल्के मस्तैसिम अमीरुल मौमिनीन॥

यानी अगर आसमान खलीफा मुस्तैसिमके देशके विनाशपर आंसू बहाये तो यह ठीक ही है। (यहां यह याद रहे कि उर्दू-फारसीवाले विधिके विधानको आसमानकी करनी बताते हैं।) बगदादके विनाशके बाद शेख सादी चौवालिस सालतक जिन्दा रहे और सन् १२८१ में शीराजनगरमें ही परलोकको सिधार गये। उनकी मृत्युके ३५ वर्ष बाद अलीविन अहमद विन अली ने उनकी सारी रचनाओंका संग्रह किया जो पहली बार १७९४ में कलकत्तेसे छपा।

सादीकी दो पुस्तकें गुलिस्तां और बोस्तां बहुत ज्यादा प्रसिद्ध हैं। पहली पुस्तक गद्य और दूसरी कवितामें है। बोस्तांके आरंभमें भगवान्की प्रार्थना और हजरत मुहम्मदकी प्रशंसा करनेके बाद शेख सादी पुस्तक लिखनेका कारण बताते हुए कहते हैं, "मैं दुनियांके बहुतसे स्थानोंपर घूमा और हर जगहसे कुछ-न-कुछ प्राप्त किया। अब खाली हाथ अपने दोस्तोंके पास जाते हुए शरम आती है। लोग मिस्रसे आते हुए अपने दोस्तोंके लिये मिठाई लाते हैं, मीठी बातें मिठाईसे भी अधिक मधुर होती हैं, तो मैं अपने दोस्तोंको इन्हींका उपहार क्यों न दूं? ये मीठी बातें दस अध्यायोंमें हैं। उनमेंसे कुछके शीर्षक ये हैं : न्याय, उपकार, प्रेम, संतोष, तौबा, प्रार्थना आदि। गुलिस्तांमें भी इसी प्रकार आठ अध्याय हैं, राजाओंकी प्रकृति, संतोंका आचार, मौन, प्रेम और यौवन, शिष्टाचार आदि।

फारसी भाषामें इन दोनोंसे अधिक लोकप्रिय और कोई पुस्तक नहीं है। जहां कहीं फारसी पढ़ायी जाती है वहां दूसरी तीसरी श्रेणीसे ही इन पुस्तकोंका कुछ अंश पढ़ाना शुरू कर दिया जाता है। राजा और मंत्री, संत और उपदेशक, सभीने इनकी वाणीसे लाभ उठाया है। कई कवियोंने इनका अनुकरण करनेकी कोशिश की है और अंतमें हार मानी है। अपनी विशेषताओंके कारण दोनों ही किताबें अद्वितीय हैं फिर भी अगर कहना ही हो तो कहा जा सकता है कि गुलिस्तां बोस्तांसे भी बहुत बढ़चढ़कर है। बीसियोंने इसका अनुकरण करनेकी कोशिश की है परंतु कोई भी सफल नहीं हो पाया। सादीकी सबसे बड़ी विशेषता है उनकी सहज सरलता। उन्होंने एक-एक वाक्य और एक-एक शेरमें अपने अनुभवोंका निचोड़ रख दिया है जिसे पढ़कर पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। शेख सादीसे पहले फारसीमें गद्यकी कोई पुस्तक नहीं थी जिसे देखकर उन्होंने लिखना सीखा हो। सच कहा जाय तो अपनी शैलीके यही पहले और यही आखिरी लेखक थे। उनकी लेखन-शैली और भावोंकी अभिव्यक्ति उनकी अपनी चीजें हैं और किसीके भाग्यमें नहीं आयीं। वे छोटी कहानियोंमें ऐसी सुन्दर और सूक्ष्म बातें कह जाते हैं कि बस मजा आ जाता है। उनकी हर कहानीमें कोई चुभती हुई बात जरूर होती है। वे गंभीर और भारी विषयोंको भी हल्का और मजेदार बना देते हैं।

शेखके जमानेमें हर जगह राजा और बादशाह होते थे। बादशाहोंको वही सीधे रास्तेपर ला सकता है जो उनके स्वभावसे परिचित हो। शेख सादीने बादशाहोंकी प्रकृतिका गहरा अध्ययन किया होगा। राजाके न्यायके बारेमें उनका कहना है कि सच्चा न्याय तभी कहला सकता है जब प्रजाको शिकायत करनेका अवसर ही न मिले और सब लोग आरामसे जीवन बिता सकें। बादशाहको अपनी प्रजा और साधुसंतोंकी आवश्यकताओंका हमेशा ख्याल रखना चाहिये क्योंकि बादशाह प्रजाके ही कारण सिंहासन पाता है। बादशाह पेड़ है और प्रजा उसकी जड़। पेड़की सारी शक्ति जड़की बदौलत है। बादशाहोंके आगे सीधा, आशावादी और पवित्र लोगोंका-सा रास्ता होना चाहिये। बादशाह किसीको हानि पहुंचानेकी सोच भी नहीं सकता क्योंकि उससे प्रजाको हानि होनेका डर रहता है। उसे हमेशा अनाचार और अत्याचारसे बचना चाहिये क्योंकि अगर किसी छोटीसी बातपर जरा-सी अनुचित सख्ती करेगा तो उसके नीचेके अफसर प्रजापर हजारों प्रकारके अत्याचार करने लग जायंगे। वे कहते हैं:

ब पंच वैंजा कि सुलतां सितम रवा दारद
जानिन्दलश्करे बानिश हजार मुर्ग बसीख॥

यानी बादशाह अगर अपनी प्रजासे पांच अंडे मुफ्तमें ले ले तो उसके सिपाही हजार मुर्ग खा जानेपर उतर आयेंगे। अत्याचारी राजासे प्रजा भागती है और दूसरे देशोंमें उसकी बुराई फैलाती है। प्रजापर मार नहीं पड़नी चाहिये क्योंकि प्रजा ही राज्यकी रीढ़की हड्डी और उसका सहारा होती है। तलवारकी काट इतनी हानि नहीं पहुंचा सकती जितनी औरतों और बच्चोंकी हायसे पहुंचती है। भाग्यवान् है वह बादशाह जिसने न्यायपूर्ण जीवन बिताया क्योंकि मर जानेके बाद भी लोग उसे याद करते और उसकी कब्रपर फूल चढ़ाते हैं। बादशाहको चाहिये कि अपनी प्रजाका संरक्षण ऐसे लोगोंके हाथमें दे जो भगवान्से डरते हों और देशको आबाद करनेवाले हों। अगर बादशाह नेकनामी चाहता हो तो उसे व्यापारियों और दूसरे देशोंके एलचियोंको खुश रखना चाहिये क्योंकि ये दोनों दुनियांमें उसका नाम फैलाते हैं।

बुजुर्गां मुसाफिर बजां परवरन्द
कि नामे निकोई ब आलम बरन्द ॥

बुजुर्ग लोग अपनी जान लगाकर मुसाफिरोंकी सेवा करते हैं क्योंकि ये लोग दुनियांभरमें नेकनामी फैलाते हैं।

तबह गर्द दां मुमलिकत अनकरीब
कि ऊ खारिह आजुर्दा आयद गरीब।

वह राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जायगा जिसमें आगंतुकोंका दिल दुखी होता हो।

बादशाहमें नर्मी और सख्ती दोनों होनी चाहिये। वह एक जर्राह (सर्जन) की तरह है जो चाकू लगाकर काटता है और मरहम लगाकर घावको अच्छा करता है। अगर कोई ऐसी हालतमें दुनियांसे उठ जाय कि उसकी याद दिलानेवाली कोई चीज बाकी न रहे तो उसका पैदा होना न होना बराबर है।

बादशाहोंका गुस्सा तो मशहूर है ही, वे जरा-जरा-सी बातपर गुस्सा हो जाते हैं और लोगोंकी जान ले लेते हैं। शेख सादी कहते हैं कि जबतक किसीका अपराध पूरी तरह प्रमाणित न हो जाय तबतक उसे दंड न देना चाहिये। वही आदमी ठीक निश्चय कर सकता है जिसकी बुद्धि ठीक हो और वह बुद्धि, जिसपर क्रोधका पर्दा पड़ गया हो, कभी ठीक नहीं देख सकती। अगर किसीमें क्रोध पैदा हो जाय तो उसमेंसे न्याय, समता और धर्म चले जाते हैं। जो सिर घमंडसे भरा हुआ है वह धैर्यसे खाली है, उसपर राजमुकुट रखना पाप है। मैं यह नहीं कहता कि युद्ध आरंभ करो तो डटे रहो, मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि जब तुम्हें गुस्सा आये तो अपनी बुद्धिको भ्रष्ट न होने दो।

एक और जगह शेख सादी कहते हैं कि अगर कोई देश भगवान्को प्रिय हो तो वहां न्यायप्रिय और अच्छा बादशाह भेजा जाता है। और अगर भगवान् नाराज हों तो अत्याचारी राजा मिलता है। वे कहते हैं कि जब मौत आती है तो बादशाह और भिखारी एक हो जाते हैं; किसी भी कब्रको खोदकर देख लो दोनों एक जैसे दिखायी देंगे। वे कहते हैं, धन-दौलतपर गर्व न करो, बहुत बार फूहड़ लोग मौज करते हैं और बुद्धिमान इधर-उधर मारा-मारा फिरता है। एक मूर्ख कहीं जंगलमें खजाना पा लेता है और सोना बनानेवाला मेहनत करता करता मर जाता है, इसलिये राजमुकुट और धन-दौलतका घमंड न करो। राज्य हमेशा रहनेवाला नहीं है, यह वह मकान है जिसे बनाता एक है और रहनेवाला कोई और होता है। हर बादशाहके दरबारमें जी हजूरिये होते हैं जो हमेशा उसकी खुशामदमें लगे रहते हैं; परंतु बादशाह मुसीबतमें आ जाय तो यही लोग उसका सिर कुचलनेको तैयार हो जाते हैं।

एक और जगह वे कहते हैं, ऐ भाई, दुनिया किसीके पास नहीं रहती इसलिये अपना दिल दुनियासे नहीं दुनियाको पैदा करनेवालेसे लगाओ। दुनियाके राज-पाटपर भरोसा न करो। यहां तुम्हारे जैसे बहुतसे आ-आकर जा चुके हैं और जब यहांसे जाना ही है तो सिंहासनपर मरना और जमीनपर मरना दोनों बराबर है।

(मुहम्मद यूसुफ कोकन साहब 'पुरोधा'के लिये एक लेखमाला लिख रहे हैं, जिसमें फारसी और अरबीके साहित्यकारोंका परिचय होगा। यह लेख उनके पहले लेखका भावानुवाद है।)

दो पहेलियां

ईसाके जन्मसे पांच सौ साल पहले इटलीमें जेनो नामका एक व्यक्ति रहता था। उन दिनों यूनानकी शिक्षाका स्तर बहुत ऊंचा था इसलिये वह भी गणित और दर्शन इत्यादि विषयोंका अध्ययन करने यूनान गया। एक दिन उसने अपने गुरुसे चार बेढंगे प्रश्न पूछे। इन्हींमेंसे एक बुद्धिको चकरा देनेवाला प्रश्न हम यहां उपस्थित करते हैं।

दो दौड़नेवालोंमें यदि धीमे दौड़नेवाला तेज दौड़नेवालेसे थोड़ा भी आगे हो तो तेज दौड़नेवाला धीमे दौड़नेवालेको कभी भी नहीं पकड़ सकेगा। क्योंकि, जबतक तेज दौड़नेवाला धीमे दौड़नेवालेके स्थानतक पहुंच सकेगा तबतक धीमे दौड़नेवाला उस स्थानसे आगे जा चुका होगा। इस प्रकार धीमे दौड़नेवाला तेज दौड़नेवालेसे आगे ही रहेगा।

जेनोने इस समस्याको बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया। उसने कहा, "मान लीजिये, सबसे अधिक गतिसे दौड़नेवाले देवता 'एकिलिस' और बहुत ही धीमी चालसे चलनेवाले जानवर कछुएमें दौड़ हो रही है। यदि कछुआ दौड़के शुरू होनेके समय 'एकिलिस' से थोड़ा भी आगे हो तो वह कछुएको पार नहीं कर सकेगा।"

आइये, समस्याका भली प्रकार अध्ययन करें। मान लीजिये कि कछुएकी तुलनामें 'एकिलिस' दसगुना तेज दौड़ता है और दौड़ आरंभ होनेके समय कछुआ उससे १००० मीटर आगे है। देखें, क्या होता है? जेनो कहता है कि कछुएको पकड़नेके लिये 'एकिलिस' को १००० मीटरसे अधिक दौड़ना चाहिये। जबतक 'एकिलिस' १००० मीटर दौड़ चुका होगा तबतक कछुआ भी १०० मीटर दौड़ चुका होगा। इसलिये 'एकिलिस' और कछुएमें १०० मीटरका अंतर होगा। और जब फिरसे 'एकिलिस' १०० मीटर दौड़ चुका होगा तो कछुआ १० मीटर। इसलिये अभी भी कछुआ 'एकिलिस' से आगे ही होगा। और जब 'एकिलिस' १० मीटर दौड़ेगा तो कछुआ १ मीटर आगे निकल जायेगा। और जब 'एकिलिस' १ मीटर दौड़ेगा तो कछुआ १।१० मीटर। इस प्रकार यह भले ही माना जा सकता है कि दोनों एक-दूसरेके अधिकाधिक समीप आते जायेंगे पर यह नहीं माना जा सकता कि 'एकिलिस' कछुएको पार करके उसको हरा देगा। कछुआ सदा 'एकिलिस' से आगे ही रहेगा चाहे अंतर कितना भी कम क्यों न हो।

किंतु यह कैसे! हम तो हमेशा यही देखते आये हैं कि तेज दौड़नेवाला धीमे दौड़नेवालेको हराकर आगे चला जाता है। अब इस पहेलीपर आप स्वयं ही विचार कीजिये।

लीजिये, एक और पहेली प्रस्तुत है।

प्रश्न है कि एक दिये हुए घनाकारका दुगना घनाकार कैसे बनाया जाय?

यह समस्या एक कथाके अनुसार सबसे पहले मिस्रके दार्शनिकोंके सम्मुख आयी। यह देश नील नदीके किनारे बसा हुआ है। नील नदीमें प्रति वर्ष कई बार बाढें आती हैं। इसलिये वहांके लोगोंको अपने खेतोंकी हदबंदी थोड़े-थोड़े समय बाद नये सिरेसे करनी पड़ती थी। यही कारण था कि मिस्रके विद्वानोंकी ज्यामितिमें बहुत ही रुचि थी। वे पैमाने और कंपास (पर-

कार) के प्रयोगसे नित नये आकारोंका अध्ययन करते थे। किंतु ऊपरलिखित प्रश्नने उनको भी चक्करमें डाल दिया। घटना इस प्रकार है।

मिस्रके एक राजाका लड़का खेलता हुआ एक चूहेके पीछे दौड़ पड़ा। अचानक वह ठोकर खाकर एक शहदके टबमें गिर पड़ा और बेहोश हो गया। राजाने अपने हकीमको बुलाया और हुक्म दिया कि यदि वह राजकुमारको जिन्दा नहीं कर सका तो वह उसे भी राजकुमारके साथ मकबरेमें जीवित ही बंद करवा देगा। और हुआ भी यही। हकीम राजकुमारको होशमें नहीं ला सका। उसे राजकुमारके साथ मकबरेमें बंद करवा दिया गया। वहां न जाने कैसे राजकुमारको होश आ गया। राजा इस शुभ समाचारको सुनकर प्रसन्न तो हुआ ही किंतु उसके मनमें और एक विचार उपजा। क्यों न वह भी अपने लिये एक मकबरा बनवा ले जिसमें आवश्यकता पड़नेपर उसकी भी चिकित्सा हो सके।

कुछ ही समय बाद एक घनाकार मकबरा बनाकर खड़ा कर दिया गया। राजा उसे देखने गया। राजाको वह बहुत छोटा लगा और उसने अपमान अनुभव किया। उसने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि यदि इस घनाकार मकबरेके सही सही दुगुने मापका मकबरा नहीं बनाया गया तो बनानेवालोंको सख्त सजा मिलेगी।

राज्यके गणितज्ञोंने मिलकर विचार किया तो उन्हें यह टेढ़ी खीर लगी। यह सही नहीं है कि यदि नये घनाकारकी भुजाएं पुराने घनाकारकी भुजाओंसे दुगुनी हों तो नया घनाकार पहले घनाकारसे मापमें दुगुना होगा। वह उससे आठगुना बड़ा होगा।

क्या आप बता सकते हैं कि पैमाने और कंपासकी सहायतासे इस पहेलीको कैसे हल किया जाय?

—भूदत्त

काग कुहाड़ो कुटिल नर, काटे ही काटे।
सुई सुहागो सापुरुष, साठे ही साठे॥

भावार्थ: कौवा, कुल्हाड़ा और कुटिल मनुष्य, ये काटते ही काटते हैं। सुई, सुहागा और सत्पुरुष, ये जोड़ते ही जोड़ते हैं।

बैजू बावरे

—श्री अनुबेन पुराणी

हिन्दुस्तानमें कई संगीतकारोंने अपने संगीतसे ऐसा जादू फैलाया था कि वे लोक हृदयमें हमेशा के लिये बस गये। यह भी स्वाभाविक था कि ऐसे संगीतकारोंके बारेमें बहुतसी दंतकथाएं फैल जायें। ऐसी कथाओंके नायक भारतके दो महान् संगीतज्ञ हैं तानसेन और बैजू बावरे। इन दोनोंको लेकर बहुत सारी उल्टी-सीधी कहानियां प्रचलित हैं।

हमारे मनमें सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि बावरेका मतलब क्या है? बावरे ब्रज-भाषाका शब्द है जिसका अर्थ है पागल। यह जाननेके लिये कि बैजूके नामके साथ यह कैसे जुड़ गया हमें उनके सारे जीवनकी ओर देखना पड़ेगा।

बैजूका जन्म चांपानेर नामक गुजरातके एक छोटे गांवमें हुआ था। उसका असली नाम बैजनाथ मिश्र था। पिता बचपनमें ही छोड़ गये थे। कुलीन ब्राह्मण विधवा अपने लालको बचपनसे ही मुरलीमनोहरके चरित्र सुनाया करती थी। इस तरह बैजूको बचपनमें ही भक्तिकी दीक्षा मिली। कुछ समय बाद मांने ठीक किया कि वह गोपालधाम वृन्दावन जाकर वहीं अपना जीवन व्यतीत करेगी। बैजू भी मांके साथ चल पड़ा। वृन्दावनतक आते-आते रास्तेमें एक वन आया। मां-बेटे सुस्तानेके लिये वहीं बैठ गये। बैजूके सद्भाग्यसे संगीतके उपासक स्वामी हरिदासजी इसी वनमें रहते थे। स्वामीजी यमुना-स्नान करके लौट रहे थे कि उनकी दृष्टि बैजूपर पड़ी। उसकी छिपी हुई प्रतिभाको उन्होंने देखते ही पहचान लिया और बड़ी खुशीसे गुदड़ीके इस लालको अपना लिया।

मांने बालकको स्वामीजीके हाथमें सौंपकर चैनकी सांस ली और पूरे मनसे बांकेबिहारीकी पूजामें लीन हो गयी। बैजू स्वामीजीकी छायामें दिनों-दिन बढ़ता गया और साथ-ही-साथ संगीतकी साधनामें भी आगे बढ़ा। यमुनाके पवित्र तटपर बैठकर उसने भक्ति-रसका भी आकण्ठ पान किया। गुरु-कृपासे उसका मन संसारसे हटकर कृष्ण-भक्तिमें लीन हो गया। बैजूने अपनी साधना और गुरु-कृपासे अनेक राग-रागिनियोंको सिद्ध किया। राग सिद्ध करनेका अर्थ है शास्त्रमें वर्णित प्रभाव और परिणामको ला सकना।

एक दिन बैजू यमुनाके निर्जन तटपर बैठकर केदार रागिनीका अभ्यास कर रहे थे। अचानक छोटे बच्चेके रोनेकी आवाज सुनकर उसे ढूंढ़ने लग गये। कुछ दूरीपर एक सुंदर नवजात शिशुको देखा और उसे गुरुके पास ले आये और गुरुकी आज्ञा पाकर उस बच्चेको अपना लिया। उसका नाम गोपाल रखा।

कुछ समय बाद कछवाहेके जमीन्दार राजसिंहने खूब आग्रह करके बैजू और गोपालको चन्देरी बुला लिया। चंदेरीमें प्रभा और कला नामक दो अविवाहित बहनें बैजूसे संगीत सीखनेके लिये आने लगीं। कुछ समय बाद गोपाल और प्रभाका विवाह हो गया और उनके यहां एक कन्याने जन्म लिया जिसका नाम बैजूने मीरा रखा। अब मीरा ही बैजूके जीवनका केंद्र बन गयी। संसारसे विरक्त बाबा फिरसे उसके जालमें फंस गये।

ग्वालियरके राजा मानसिंहने मरनेसे पहले मृगनयनी नामकी एक ग्राम-कन्याके साथ विवाह किया। ग्राम-कन्या होते हुए भी मृगनयनी राज-रानी बनने लायक थी। रूपवती तो

थी ही, साथ ही वीरताकी मूर्ति भी थी। अपने लक्ष्य-भेदके कारण वह भारतभरमें प्रख्यात थी।

इन गुणोंसे प्रभावित होकर राजा मानसिंहने उसे महारानी बनानेकी ठानी। ऐसे शुभ अवसरपर अन्य गुणियोंके साथ बैजूको भी निमंत्रित किया। इनके अद्भुत संगीतसे राजा-रानी दोनों ही प्रसन्न हुए। महारानीने बैजूसे संगीत सीखनेकी इच्छा प्रकट की। परिणामस्वरूप बैजू सपरिवार ग्वालियरमें आकर रहने लगे।

उन दिनों ग्वालियर संगीतका गढ़ था। अच्छे-अच्छे गानेवाले वहींपर रहते थे। कई ईर्ष्यावश बैजूको नीचा दिखानेकी कोशिश करने लगे। स्पर्धाके इस गरम वातावरणमें बैजूने 'होरी गायकी' का आविष्कार किया। 'गूजरी टोड़ी' 'मृगरंजनी टोड़ी' तथा 'मंगल गैंजरी' रागोंका भी आविष्कार किया। आजकलका प्रचलित 'तालधमार'भी उन्हींका आविष्कार है।

बैजूका दत्तक पुत्र गोपाल अधिकतर चंदेरीमें ही रहता था। एक दिन वह कल्याण रागका आलाप कर रहा था कि कुछ कश्मीरी व्यापारियोंने उसकी आवाज सुनी। आवाजसे मुग्ध होकर वे गोपालको ढूंढ़ते हुए आये। गोपालके सामने कश्मीरके महाराजाकी उदारताका वर्णन करके उसे अपने साथ चलनेके लिये ललचाने लगे। ऐश-आराम और बडप्पनके लोभमें आकर गोपालने उनके साथ जाना स्वीकार किया। एक क्षणमें ही बैजूके स्नेहको भूलकर उसे बताये बगैर ही वह कश्मीरकी ओर चल पड़ा। प्रभा और मीराने समझानेकी बहुतेरी कोशिश की किंतु विवश होकर उनको भी उसके साथ जाना पड़ा। गोपालने अपने जानेकी खबर न बैजूको दी और न महाराज राजसिंहको।

ग्लालियरमें बैजूकी कला अपनी चरम सीमापर पहुंची हुई थी। महाराजा मानसिंह और महारानीके संरक्षणमें बैजूका विद्यापीठ बड़ी अच्छी तरह चल रहा था। ऐसी अवस्थामें हठात् गोपाल और उसके परिवारके कश्मीर-गमनने उसके दिलपर गहरी चोट की। जीवनका एकमात्र सहारा मीराके चले जानेसे उसका हृदय हाहाकार कर उठा। कलाकारका सुकुमार दिल इस आघातको सह न सका और बैजू बावरा बन गया। महाराजा-महारानीने पूरी कोशिशें कीं पर बैजूको ठीक न कर पाये। पागल बैजू जंगल, पहाड़ और नदीके किनारे अपने स्नेही जनोंको ढूंढ़ता हुआ फिरा। वृन्दावनमें बैजूके पागल होनेका समाचार सुनकर स्वामी हरिदास बड़े चिंतित हो उठे। हरिदासजी जैसे विरक्तकी आंखोंमेंसे भी अश्रुधारा बह चली। उन दिनों तानसेन हरिदासके पास ही रहते थे और संगीत-साधनामें रत थे। गुरुकी आंखोंमें आंसू देखकर तानसेन बैजूके बारेमें जाननेके लियें उत्सुक हो उठे। गुरुभाईके गुणोंकी कहानी सुनते-सुनते तानसेनने बैजूको ढूंढ़नेका निश्चय कर लिया। वे घूमते-घूमते रीवाकी राजधानी बांधोगढ़ पहुंचे। महाराज रामचंद्र बघेलाने तानसेनको दरबारी गायक बनाकर रखा। महाराजा और तानसेनके बीच अटूट स्नेहका बंधन स्थापित हुआ। सम्मान-स्नेह सब होते हुए भी तानसेनको शांति नहीं मिली। महाराजासे सलाह करके तानसेन संगीत-दिग्विजयकी ओटमें बैजूको ढूंढ़ने निकल पड़े। कई रियासतोंमें घूमे, कई संगीतज्ञोंसे मिले पर बैजूको तो मानों धरती ही निगल गयी थी।

बैजू घूमते-घामते फिर वृन्दावन आ पहुंचे। मांके स्नेहने और गुरुके आशीर्वादने उन्मादको कम कर दिया। फिर भी उनका मन मीरा और गोपालके बगैर छटपटाता ही रहा।

इधर तानसेन घूमते-घामते दिल्ली आ पहुंचे। उस समय अकबर गद्दीपर थे। तानसेनने दरबारी संगीतज्ञोंको प्रतियोगिताके लिये ललकारा। सभी गायक तानसेनकी प्रतिभा और स्वर-माधुर्यसे इतने प्रभावित थे कि किसीने मुकाबिला नहीं किया। अकबरने तानसेनको ही अपना श्रेष्ठ गायक बनाया। जब बैजूको तानसेनके संगीत-दिग्विजयके समाचार मिले तो उसके अंदर-का कलाकार जाग उठा। दिल्ली आकर उसने तानसेनको ललकारा। सम्राट् अकबरकी इच्छानुसार आगरेके पास एक वनमें प्रतियोगिता निश्चित हुई।

प्रातःकाल ही अकबर, उसकी बेगमों, अमीर-उमरावों और दर्शकोंकी भीड़ लग गयी। बैजू भी अपने फटे हाल कपड़ोंमें आ पहुंचा। तानसेन बार-बार बैजूकी ओर देखता था और उसका हृदय स्नेहसे भर उठता था। उसे अभीतक मालूम ही न था कि वह जिस गुरु-भाईको ढूंढ़ता फिर रहा था वही सामने बैठा है। प्रतियोगिता शुरू हुई। तानसेनने टोड़ी राग गाया। टोड़ीके स्वरोंने जैसे अनदेखे पाशमें बांधकर मृगोंको खींचा। चारों ओरसे मृग भागे-भागे आये और यहां इकट्ठे हो गये। तानसेनने एक मंत्रमुग्ध मृगके गलेमें हार पहना दिया। संगीतका जादू खत्म होते ही मृग चौकन्ने होकर भाग खड़े हुए। बैजूने सम्राट्से कहा—तानसेनने टोड़ी गाकर मृगोंको बुलाया। अब मैं मृगरंजनी टोड़ी गाकर सिर्फ उसी मृगको बुलाऊंगा जिसके गलेमें हार है। मृगरंजनीके आलाप हवामें तैरते-इतराते रहे और अकेला वही मृग भागा हुआ बैजूके पास आ खड़ा हुआ। बैजूने उसके गलेमेंसे हार निकाल लिया और अकबरके हाथमें देदिया।

तानसेनको बहुत आश्चर्य हुआ। अकबरने अब बैजूसे कोई राग गानेके लिये कहा। बैजू बोला—"अब मैं 'मालकोश' राग गाऊंगा, उस रागसे यह सामने पड़ा पत्थर पिघलकर मोम-के समान नरम हो जायगा। उस समय मैं अपना तानपुरा उसमें गाड़ दूंगा। राग खत्म होते ही पत्थर फिरसे जम जायगा। मैं चाहता हूं कि तानसेन तानपुरेको तोड़े बगैर उस पत्थर-मेंसे निकाल ले। बैजूने मालकोश आरंभ किया। न मालूम वे कैसे स्वर थे जिनमें पत्थरको भी पिघलानेकी शक्ति होगी। पर हां, पत्थर पिघलने लगा। यह देखते ही तानसेन दौड़कर बैजूके चरणोंमें गिर पड़ा। तानसेन बोला, मेरे आचार्यने मुझे बताया है कि मुझसे बढ़कर कोई गायक है तो वह है मेरा गुरुभाई बैजूनाथ, आप कौन हैं? परिचय पाते ही बैजूने तान-सेनको गले लगा लिया। तानसेनकी आंखें भर-भर आयीं।

उधर गोपाल व्यापारियोंके साथ कश्मीर पहुंचा। महाराजने उसके संगीतकी तारीफ की और उसे अपना दरबारी गायक बनाया। महाराजने कई बार गोपालसे गुरुका नाम पूछा, पर छोटे दिलका गोपाल यह स्वीकार नहीं करता था कि उसका कोई गुरु है।

बैजूको जब पता चला कि गोपाल कश्मीर महाराजाके यहां दरबारी गायक बन गया है तब वे कश्मीरकी ओर चल पड़े। भरे दरबारमें गोपालने उनके साथ संगीत-प्रतियोगिता की। बैजूने जब अपने प्रभावशाली ध्रुपद सुनाये तो सारे दरबारके सामने गोपालकी पोल खुल गयी। महाराज तथा अन्य दरबारी समझ गये कि यही गोपालके गुरु हैं। गोपालकी इस कृतघ्नता और बादमें उसकी मृत्युसे बैजूको इतने जोरका धक्का लगा कि उन्होंने संन्यास ले लिया और कश्मीरकी पहाड़ियोंमें अदृश्य हो गये।

(संगीत कार्यालय, हाथरसद्वारा प्रकाशित 'हमारे संगीत-रत्न' के आधारपर)

उन्हें कभी न भूलना

लोग मनुको प्रायः समुद्रके किनारे टहलते हुए देखा करते थे। ऐसा लगता था कि वह गहरे विचारोंमें डूबा हुआ है। समुद्रकी उत्ताल तरंगें भी उसकी ध्यानावस्थाको भंग न कर पाती थीं। फिर भी समुद्रका पानी बार-बार उसके पांव पखार जाता था। उसे मानों समुद्र-तट और जंगलकी हवा ही पसंद थी, गांवों और खेतोंको छोड़कर जंगलमें घुस जाता था। उसके पांव ही उसे इधर-उधर घुमाते रहते थे, उसका मन तो चौबीसों घंटे किसी और ही चीजमें मस्त रहता था। वह अपने किसी दूरके रिश्तेदारके घरमें रहता था। उसके मां-बाप बचपनमें ही उसे छोड़कर चल बसे थे। सोलह वर्षकी आयुमें उसने मैट्रिककी परीक्षा पहले दरजेमें पास कर ली थी। लेकिन उसके बाद इन दो वर्षोंमें उसे न जाने क्या हो गया कि पढ़ने-लिखनेकी जगह घूमने और प्रकृतिकी शोभा निहारनेमें ही मजा आने लगा। वह हर समय अपने-आपमें खोया रहता था। वह रोज सबेरे ही सबेरे घरसे निकल जाता और सारा दिन जंगलमें बिताकर शामको घर लौटता।

एक दिन वह घर न लौटा तो घरवाले उसे ढूंढ़ने चले। जंगलमें एक मील जाकर उन्होंने देखा कि वह एक बड़े पीपलके पेड़के नीचे सो रहा है। उसके एक ओर एक हिरनका बच्चा और उसकी मां है और दूसरी ओर एक खरगोश उससे सटा हुआ सो रहा है। मनुके मुखपर एक अनुपम शांति थी। वह दुनियांसे दूर—बहुत दूर था। घरवालोंने उसकी अनंत शांतिको भंग करनेका साहस नहीं किया और यह सोचकर कि वह सुबह लौट ही आयगा वे अपने घर चले आये। घरवालोंको उसका आचरण विस्मयजनक तो लगता था पर वे कुछ न कहते थे।

दूसरे दिन सुबह हुई, सारा दिन बीत गया और फिरसे रात आ गयी। पर मनु नहीं आया। घरवालोंने इधर ढूंढ़ा, उधर ढूंढ़ा पर उसका कहीं पता न चला। आखिर यह मान-कर बैठ गये कि वह किसी जंगली जानवरका कलेवा बन गया। उधर मनु सब कुछ भूलकर जंगलमें विचरता था। वह खाना, पीना भूलकर अपने खरगोश और हिरनके लिये अच्छी-अच्छी घास और पक्षियोंके लिये फल जुटाता था। ऐसा लगता था मानों वह अपने-आपको खो चुका है और अब कोई अगोचर शक्ति उसे किसी अनियत स्थानकी ओर लिये जा रही है। वह आनंदमें था। वह भी जंगलके पशु-पक्षियोंमेंसे एक बन गया था।

वह जहां जाता उसके प्यारे हिरन और खरगोश उसके पीछे लगे रहते। पक्षी भी उसका संग न छोड़ते थे। वह जहां बैठ जाता उन सबका अड्डा वही बन जाता। वहीं उनका भोजनालय होता और वही शयन-कक्ष। वे सब भूल जाते कि वे एक भयंकर वनमें हैं जहां शेर, बाघ और जंगली हाथी भी रहते हैं। हिंस्र पशु भी कई बार चुपकेसे मनुकी ओर ताका करते थे मानों वे उसे तंग करनेसे बचते और उसे देखनेमें आनंद अनुभव करते हों। जब मनु सोता था तो उसका मुख चन्द्रमाकी भांति चमक उठता था, उसकी मुंदी आंखें मानों हास्य बिखेरती थीं, उसके लंबे-लंबे घुंघराले बाल उसके शुभ्र कपोलोंपर नाच उठते थे। जंगलके

पेड़-पौधे और झरने मानों उस नाचके लिये ताल देते जाते थे। उसके ओठोंपर खेलते हुए स्मितको देखनेके लिये निर्जीव वस्तुओंके भी आंखें पैदा हो जातीं और सूर्यकी किरणें सर्पाकार होकर पेड़-पत्तोंमेंसे बचती हुई उसके सारे शरीरको स्वर्णिम आभा देनेके लिये आ पहुंचतीं। किरणोंकी परछाईं उसके ऊपर बिछे हुए फूलोंका आभास देतीं। उसका घासका बिछौना मखमली हो उठता और पत्थरका तकिया रत्नखचित हो जाता।

अब मनुकी सेना काफी बड़ी हो गयी थी। उसके लिये फूल-पत्ते इकट्ठे करनेमें बहुत समय लग जाता था। एक दिन वह खूब रसद इकट्ठी करके एक झुरमुटमें बैठ गया। कुछ मिनटोंमें ही उसकी सारी सेना भी वहां आ पहुंची। वह बड़े प्रेमसे उन्हें खिलाता रहा। उनसे निबटकर जैसे ही उसने पांव पसारे कि उसके कानमें किसीके रोनेकी आवाज आयी। वह लपककर वहां जा पहुंचा जहां जंगली फूल हाथोंमें लिये हुए एक छोटी-सी लड़की खड़ी रो रही थी। इसने पूछा, "कहो, क्या बात है? तुम क्यों रो रही हो?" लड़कीने जवाब दिया, "मैं घरसे फूल इकट्ठे करने आयी थी, फलोंकी लालचमें बहुत दूर निकल आयी और अब रास्ता भूलकर यहां भटक रही हूं।" मनुने कहा, "इसमें रोनेकी क्या बात है? चलो, मैं तुम्हें घर पहुंचा आऊं।" लड़की खुश हो गयी। अब आगे-आगे लड़की उसके पीछे-पीछे मनु और उसके साथ उसका दल-बल यूं कारवान चलने लगा। मनुका शरीर तो आगे बढ़ता जा रहा था परंतु उसका मन कहीं और ही था। अचानक वह होशमें आया तो देखा, लड़की लापता है और वह किसी गांवसे लगे हुए एक मैदानमें खड़ा है। उसने लड़कीके पद-चिह्नोंको ढूंढ़ा तो मालूम हुआ कि वह इस जगहतक तो आयी थी। यहां आकर कहीं अदृश्य हो गयी है। वह सोचमें पड़ गया कि यह लड़की कौन थी और उसे यहां क्यों ले आयी, और लायी भी तो यूं छोड़कर गायब क्यों हो गयी। सारी बात बड़ी रहस्यमय लग रही थी।

मनु भौचक्का-सा इधर-उधर देख रहा था कि एक ओरसे एक बूढ़ा आता हुआ दिखायी दिया। बूढ़ेने नजदीक आकर कहा, "भाई, तुम कौन हो और यहां किसे ढूंढ़ रहे हो?" मनुने उत्तर दिया, "मैं तो यहींका निवासी हूं। यूं ही घूमता हुआ इधर निकल आया हूं।" बूढ़ेने कहा, "ऐं, यह क्या? अभी तो तुम्हारी मसें भी नहीं भीगी हैं और तुम वनवासी भी बन गये? नहीं, यह ठीक नहीं है। चलो, तुम मेरे साथ कुटीतक चलो। मैं तुम्हारा पिता बनूंगा और तुम मेरे पुत्र।" मनु आंखें नीचे किये हुए बूढ़ेके पीछे हो लिया

दूसरे दिन जब मनु सोकर उठा तो उसने देखा कि बूढ़ेने गांवके छोटे-बड़ोंको उससे मिलनेके लिये इकट्ठा कर लिया है और वे सब बड़ी उत्सुकतासे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह जल्दी-जल्दी तैयार होकर उनके बीचमें जा पहुंचा। बूढ़ेने सबके साथ उसका परिचय करवाया। मनु बराबर यही अनुभव कर रहा था कि वह किसी शक्तिका यंत्र है। उसके उठने-बैठने, बोलने, हंसनेके पीछे वही शक्ति काम कर रही है। गांवके बच्चे तो उसकी ओर ऐसे आकर्षित हो रहे थे जैसे लोहा चुम्बककी ओर। मनुके लिये भी यह एक नया अनुभव था। वह उनको लेकर घूमने जाता, पेड़-पत्तोंके बारेमें बहुत कुछ बताता, उनको नये-नये खेल खेलाता और इस तरह खेल ही खेलमें उन्हें नियम-पालन, अनुशासन और सत्यप्रियताका पाठ पढ़ाता। उसने अपने-आप बहुत किताबी शिक्षा न पायी थी पर उसका सरल और सच्चा हृदय चाहता था कि वह इन लोगोंकी सहायता कर सके और वह नये-नये तरीके ढूंढ़ता रहता

था। उसे अदृश्य शक्तिपर विश्वास था और वह सारे समय उसका नेतृत्व करती रहती थी। खेल-कूदमें, नाच-गानमें और पढ़ाई-लिखाईमें, हर एक चीजमें मनु बच्चोंको नयी-नयी बातें सिखाता रहता था। उसने उन्हें सिखाया था कि जो कुछ करो भगवान्की पूजा समझकर करो। तुम्हारा हर काम, तुम्हारी हरएक क्रिया उसीको अर्पित हो। छोटीसे छोटी चीजमें भी सौंदर्य हो। वह बिना कहे उनके जीवनको सत्य, शिव और सुन्दर बनानेमें लगा था। मनुके कारण केवल बच्चोंमें ही नहीं सारे गांवमें एक नया जीवन आ गया था। एक सामंजस्य आ गया था और शांति छा गयी थी। हरएककी आंखोंमेंसे आनंद झांकता था।

मनुने देखा कि लोग सीधे मार्गपर चलने लगे हैं और उसको बड़ा संतोष हुआ। वह एक रातको उठकर वहांसे चल पड़ा। पीछे एक संदेश छोड़ गया।

"स्वयं भगवान् ही तुम्हारा पथप्रदर्शन करेंगे।
उनके अंचलको कभी न छोड़ना।"

—तरला पटेल

हल्दी और सोंठ

मैं अक्सर शामको अपनी मौसीके घर जाया करता था। शामकी चाय वहीं पीता, घण्टों भर गप-शप करता और सात बजेके पहले घर लौट आता था।

एक दिन मैं और मौसी छतपर बैठे इधर-उधरकी बातें कर रहे थे कि अचानक मौसीकी सबसे छोटी बेटी शांता हमारे पास दौड़ती हुई आयी। वह बोली: 'अम्मा, मैंने अपना सारा काम कर लिया है। बिज्जी अबतक गुट्ट खेल रही है। तू हमेशा कहती है कि मैं सोंठ हूं। देख, आज कौन है सोंठ और कौन हल्दी?" मौसी शांताके सिरपर प्यारसे हाथ फेरती हुई बोली—"बेटी, तू बड़ी सयानी हल्दी है। जा बिज्जीसे कह दे कि पहले अपनी पढ़ाई करे वरना मैं आकर सब गुट्टे छीन लूंगी।"

अपनेको हल्दी सुन शांताका मुख खिल गया और वह हंसती-कूदती खुशीसे भाग गयी। मैंने मौसीसे कहा:—

"यह हल्दी और सोंठ क्या बला है? मैंने कई बार ये नाम शांता के मुखसे सुने हैं और हर बार असमंजसमें पड़ जाता हूं कि आखिर शांताको हल्दी कहलवानेमें क्या मजा आता है।"

मौसी बोली: "हल्दी और सोंठकी एक बड़ी मजेदार कहानी इन बच्चोंको नानी सुनाया करती थीं। बस, तभीसे यह इनके दिमागमें बैठ गयी है।"

मैंने कहानी सुननेकी उत्सुकता प्रकट की और आग्रहपूर्वक कहा: "मौसी, अगर वह कहानी तुझे याद हो तो मुझे भी सुना दे ताकि अगली बार मैं भी शांताकी बातोंका पूरा अर्थ समझ सकूं।"

मौसीने कहानी शुरू की:

हल्दी और सोंठ दो पक्की सहेलियां थीं। दोनों एक ही शहरमें रहती थीं। हल्दी तो

थी बड़ी कमेरी और सोंठ थी परले दर्जेकी अलसिन। सालाना परीक्षाओंके बाद जब छुट्टियां आयीं तो हल्दीने सोचा, चलो, नानीके घर छुट्टियां बितायें।

नानीका घर काफी दूर था। जब हल्दी घरसे रवाना हुई तो उसे रास्तेमें एक गाय मिली। गायके चारों तरफ गोबर पड़ा था और मक्खियां भिनक रही थीं। गायने हल्दीसे कहा, "हल्दी बेटी, मेरे पासकी जगह जरा साफ कर ताकि मैं आरामसे बैठ सकूं।" हल्दीने फौरन पत्तोंकी झाड़ूसे सारी जगह साफ-सुथरी कर दी, वह आगे बढ़ी। कुछ दूर चलकर उसे एक बड़ा पीपलका पेड़ मिला। पीपलके नीचे फटे कागज और बहुतसा कूड़ा पड़ा था। पीपलका पेड़ बोला :—"हल्दी बेटी, सब लोग यहां आकर आराम तो कर लेते हैं परंतु सारी जगह गंदी कर जाते हैं। क्या तू इसे साफ कर देगी?" "जरूर पीपल बाबा।" यों कहकर हल्दीने तुरंत सारा स्थान एकदम साफ कर दिया। फिर वह आगे चली। कुछ दूरीपर उसे एक पहाड़ मिला जिसकी तलहटीमें छोटी-बड़ी ईंटें पड़ी थीं। उसने हल्दीसे कहा, "बेटी, कर सको तो इन सारी ईंटोंको ठीक ढंगसे रख दो।" हल्दीने जो हमेशा स्फूर्तिसे भरी रहती थी, झट सारी ईंटें एकके ऊपर एक रख दीं और अपने रास्तेपर आगे चल दी। थोड़ी देरमें वह नानीके घर जा पहुंची। नानीके घर हल्दी खूब काम करती थी। इससे बूढ़ी नानीको आराम मिलता था। नानी हल्दीको बड़ा प्यार करती थी। जब हल्दीके घर लौटनेका समय आया तो हल्दीने नानीसे विदा मांगी। नानीने हल्दीको गले लगा लिया और बोली: ऐसी सुपुत्री पाकर हमारे भाग खुल गये। फिर नानीने हल्दीको अनेक कीमती उपहार दिये और विदा किया।

लौटते वक्त हल्दीको वही पहाड़ मिला। हल्दीने देखा पहाड़की ईंटें मिट्टीकी नहीं वरन् सोनेकी थीं। पहाड़ बोला: "हल्दी, तुझे जितनी ईंटें चाहिये ले ले।" हल्दीने खुशीसे कुछ ईंटें उठा लीं। कुछ आगे चलकर हल्दीको वही पीपलका पेड़ मिला जिसकी हर शाखापर सुन्दर-सुन्दर कपड़े लटक रहे थे। पीपलका पेड़ बोला—"हल्दी, तुझे जितने कपड़े चाहिये ले ले। हल्दीने कुछ चमकते हुए वस्त्र ले लिये और आगे चली। अब उसे वही गाय मिली। गाय बोली, "हल्दी, तुझे जितना दूध चाहिये ले ले और अपने घर मेरे इस बछड़ेको ले जा।" हल्दीने बछड़ा लिया और वह खुशीसे घर पहुंची।

सोंठने जब यह सुना कि हल्दी नानीके घरसे इतना सामान लायी है तो वह भी अपनी नानीके घर जानेको तैयार हो गयी।

उसे भी रास्तेमें गाय मिली जिसने उसे गोबर साफ करनेको कहा। सोंठ तो ठहरी सोंठ, वह बोली— "वो ही हल्दी पल्दी मैं हूं सठुआ सोंठ, मैं क्यों साफ करूं?" गाय चुप रही। फिर उसे पीपलका पेड़ मिला और फिर पहाड़। सबको उसने यही उत्तर दिया। आखिर जब वह नानीके घर पहुंची तो वहां सारे दिन हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। नानी बिचारी पहलेका अपना काम नहीं कर पाती थीं उसपर सोंठका काम एक और बोझ हो गया। जब सोंठ जाने लगी तो नानीने उसे झटपट बिना कुछ उपहार दिये बिदा किया।

घर लौटते वक्त उसे पहाड़, पेड़ और गाय मिले। पहाड़ने सोंठपर ईंटोंकी वर्षा की, पीपलने उसपर अपने सूखे पत्ते गिराये और गायने उसे लात मारी।

बस, यही है कहानी हल्दी और सोंठ की।

***

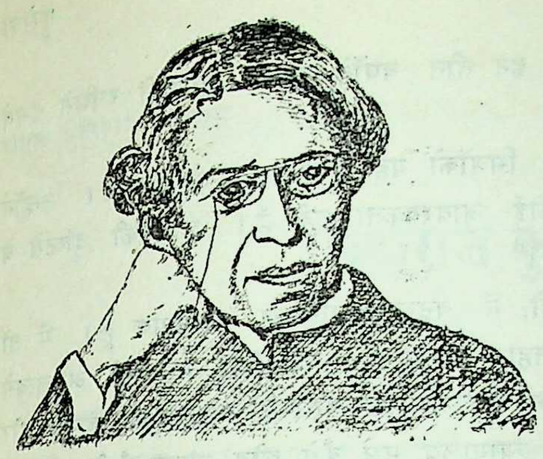

वह गौरवशाली प्राध्यापक

--श्री शंकरदेव विद्यालंकार

वंगदेशके एक प्रतिभाशाली और पुरुषार्थी विद्यार्थीकी यह बात है। कलकत्ता-विश्वविद्यालयसे भौतिक विज्ञानमें बी.ए. की पदवी मानपूर्वक प्राप्त करके यह विद्यार्थी विज्ञानका ऊंचा अध्ययन करनेके लिये इंगलैण्ड गया। वहां केम्ब्रिज और लंदनके नामी विश्व-विद्यालयोंमें रसायनविद्या और वनस्पति-शास्त्रकी पढ़ाई पूरी करके यह होनहार युवक स्वदेश लौटा।

भारत आनेपर सरकारके शिक्षा-विभागने इस तेजस्वी युवकको इसकी योग्यताके अनुसार कलकत्तेके विख्यात प्रेसीडेन्सी कालेजमें भौतिक शास्त्रके प्राध्यापकके पदपर नियुक्त किया।

परंतु स्वतंत्र और न्यायपरायण वृत्तिवाले इस युवक प्राध्यापकने कालेजके अधिकारियोंसे निवेदन किया –– जो वेतन आप लोग इस पदके लिए अंग्रेज प्राध्यापकको देते हैं वही मुझे मिलना चाहिये। शिक्षणालयके पवित्र क्षेत्रमें काली और श्वेत चमड़ीका भेद नहीं होना चाहिये। मैं इसे बड़ा अन्याय समझता हूं। अपने जीवनमें मैंने अन्यायको कभी सहन नहीं किया है।

परंतु कालेजके अधिकारियोंने उसके इस निवेदनपर कोई ध्यान नहीं दिया। उधर प्राध्यापक भी अपनी आनपर अचल था। उसने अधिकारियोंको स्पष्ट शष्दोंमें विदित कर दिया, "मैं आपके कालेजमें बिना वेतनके काम करूंगा। मुझे एक पाईकी भी जरूरत नहीं है। मुझे तो विद्यार्थियोंको पढ़ाना है, सो मैं पढ़ाता रहूंगा। गौरांग अध्यापकके वेतनकी अपेक्षा कम वेतन लेकर मैं अपने भारतीयपनका अपमान नहीं सहन कर सकता।" इतनेपर भी अधिकारियोंने कोई जवाब नहीं दिया।

इस नवीन भारतीय प्राध्यापकने विद्यार्थियोंको विज्ञान जैसा कठिन और गहन विषय इतनी सुन्दर शैलीसे पढ़ाना प्रारंभ किया कि कालेजके विद्यार्थी इसकी शिक्षणकलापर मुग्ध हो गये। पढ़ाते समय कक्षामें ऐसा आकर्षक वातावरण बन जाता था कि किसी भी विद्यार्थीको वहांसे क्षणभरके लिये भी उठनेकी इच्छा नहीं होती थी।

इस प्रकार तीन वर्ष बीत गये। अंतमें अधिकारियोंकी आंखें खुलीं। उन्होंने इस मानशाली भारतीय प्राध्यापककी मूलभूत मांगको स्वीकार किया। तीनों वर्षका इकट्ठा वेतन इस प्राध्यापकको दिया गया।

इस प्राध्यापकने अपने पिताका कुछ ऋण अपनी संपत्ति बेचकर पूरा किया था। परंतु कुल ऋणमेंसे केवल तीन चौथाई ऋण ही अदा किया जा सका था। ऋणका चौथाई हिस्सा

चुकाना तो अभी बाकी था। इस प्रकार इन तीन वर्षोंके इकट्ठे वेतनकी राशिसे इसने पिताका ऋण पूर्णतया चुका दिया।

परंतु इस प्राध्यापकके कुछ एक अंतरंग मित्रोंको यह बात पसंद नहीं आयी। उन्होंने प्राध्यापकसे कहा––"ऐसी मूर्खता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कानूनकी दृष्टिसे वे लोग तुमसे यह ऋण वसूल नहीं कर सकते।"

प्राध्यापकने अपने मित्रोंसे कहा––"देखो, मैं वनस्पति-शास्त्रका प्राध्यापक हूं। मैं तो वनस्पतिकी पत्ती-पत्तीमें जीवनका अस्तित्व निहार सकता हूं। तो फिर भगवान्के अस्तित्वसे इन्कार कैसे कर सकता हूं? ऋणको अदा न करूं तो इस संसारके न्यायालयके कायदे और कानून कदाचित् मुझे छोड़ दें, परंतु ईश्वरीय न्यायालय मुझे कैसे छोड़ सकता है? अतः मुझे ऋणकी पाई-पाईतक अदा करनी ही चाहिये। मित्रजन ये वचन सुनकर आश्चर्य-विमूढ़-से रह गये।

ये तेजस्वी प्राध्यापक कौन थे? ये थे अपनी वैज्ञानिक खोजोंके द्वारा विश्वभरमें भारत देशका गौरव-गान गुंजानेवाले कलकत्तेके वसु-विज्ञान-मंदिरके संस्थापक और वनस्पति-शास्त्रके विशेषज्ञ विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु जिनकी जन्मशताब्दि सन् १९५८ में समस्त भारतमें गौरवसे मनायी गयी थी।

* * *

कोड़ीं चालै डोकरी, कैंका काढ़ै खोज।
कांई थारो खो गयो, पूछै राजा भोज।
म्हारे सें थारै गई जैंका काडूं खोज,
थारे सैं वी जायगी मत गरबावै भोज॥

भावार्थ: हे बुढ़िया, तुम झुककर क्यों चल रही हो? किसे खोज रही हो? कुछ खो गया है तुम्हारा?––राजा भोजने पूछा। मेरा यौवन चला गया, आज वह तुम्हारे पास है, उसीको ढूंढ़ रही हूं। याद रखो, वह तुम्हारे पास भी न रहेगा। इसलिये हे भोज, व्यर्थका गर्व न करो।

तमिल ऐतिहासिक कथा :

महाराज कुलशेखर

पाण्डचराज कुलशेखर एक बड़े ही यशस्वी राजा थे। उनकी राजधानी थी मदुरै। उनके राज्यको रामराज्य कहा जाता था। उनके शासनकालमें प्रजा बहुत सुखी थी। राजा कुलशेखरने सब तरहसे अपने-आपको प्रजाका सेवक बना दिया था। वे प्रजापालन करते थे, अन्यायका दमन करते थे तथा सबको सत्कर्मोंके लिये प्रोत्साहित करते थे। महाराजको विश्वास था कि यदि उनकी प्रजाको उनपर भरोसा नहीं होगा, यदि वह अपनेको सुरक्षित नहीं समझेगी तो उनके राज्यकी उन्नति नहीं हो सकेगी। ऐसी हालतमें न तो लक्ष्मी ही राज्यमें प्रतिष्ठित होगी और न सरस्वतीकी कृपा हो पायेगी।

यद्यपि राजा कुलशेखरके अनेक विश्वस्त अनुचर राज्यभरमें फैले थे जो प्रजाकी वास्तविक स्थिति व उनकी मनोदशाका पूरा-पूरा विवरण राजाके पास पहुंचाते रहते थे, तब भी राजाको उससे संतोष न होता था। समय-समयपर वे स्वयं वेश बदलकर प्रजाकी वास्तविक स्थिति जाननेके लिये निकल जाते थे। भीषण सर्दी, धुआंधार वर्षा या प्रचंड गर्मीकी परवाह न करते हुए राजा अपना पर्यटन जारी रखते और अपनी आंखोंसे प्रजाकी स्थिति देखते थे।

एक बार नियमानुसार राजा कुलशेखर घूमते-घूमते अपनी राजधानीसे बहुत दूर निकल गये। धीरे-धीरे अंधकार फैलने लगा। एक-एक करके सारी दुकानें बंद होने लगीं परंतु राजाको रात बितानेके लिये आश्रय न मिला। आधी रातके समय थककर राजा कुलशेखर एक मकानके चबूतरेपर बैठ गये। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इतनी रातको मकानमें प्रकाश था और एक स्त्री-पुरुष वार्त्तालाप कर रहे थे। राजा दरवाजा खटखटाना चाहते ही थे पर रुक गये और वार्त्तालाप सुनने लगे। राजाको शक हुआ कि जरूर ये लोग किसी मुसीबतके मारे हैं। राजाने सुना, पुरुष कह रहा था—

''देवि ! इतने दिनों बाद मेरी एक इच्छा पूरी हो रही है इसमें बाधा न डालो।''

स्त्रीने कहा—''आप मेरे पति हैं, धर्मके अनुसार मेरा कर्तव्य है कि मैं आपकी वाराणसी-यात्रामें बाधक न बनूं। पर देव, जरा सोचिये तो घरमें और कोई नहीं है, इतने बड़े घरमें मैं अकेली कैसे रह सकूंगी ?''

पतिने उत्तर दिया—''देवि ! मुझे अधिक दिन नहीं लगेंगे, केवल एक बार पवित्र गंगामें डुबकी लगाकर और विश्वनाथके दर्शन करके मैं लौट आऊंगा। तुम थोड़े दिन किसी प्रकार काट लो। देखो ! काशी जानेका अवसर बार-बार नहीं आता, इस बार तो भाग्यसे ही योजना बन गयी है।''

''तुम तो तीर्थयात्राके नामसे ही पागल हो उठे हो। जरा सोचते नहीं, यहां अकेलेमें मेरी क्या हालत होगी। मुझे भी साथ ले चलो न ?''

''तुम इतना चल नहीं पाओगी, पथ दुर्गम है, नहीं तो मैं तुम्हें कभी भी यहां अकेली न

छोड़ता।" यह सुनकर स्त्री सिसकने लगी--"आप तो चले जायेंगे, पीछेसे चोर-बदमाश आकर सब कुछ तहस-नहस कर देंगे, आपको क्या? भुगतना तो मुझे ही पड़ेगा।"

पुरुषने जरा कठोर स्वरमें कहा--"क्या कह रही हो तुम? जानती नहीं, महाराज कुलशेखरके राज्यमें इतना साहस किसमें है कि एक अबलापर बलात्कार कर सके?" फिर उसने जरा नीचे स्वरमें समझाते हुए कहा, "देखो देवि! घबरानेकी कोई बात नहीं। तुम अपनेको अकेली मत समझो। हम तो अपने पिताके घर रह रहे हैं, हमपर कोई मुसीबत नहीं आ सकती।"

पति-पत्नी वार्त्तालाप करते हुए दीपक बुझाकर सो गये। राजा कुलशेखरको यह सुनकर अपार हर्ष हुआ। एक राजाके लिये इससे बड़ी सफलता हो ही क्या सकती है कि उसकी प्रजा उसपर इतना विश्वास करे और उसके राज्यमें निर्भय विचरण कर सके? राजाने मन-ही-मन संकल्प किया जबतक यह पुरुष विदेशमें रहेगा तबतक वे स्वयं दूसरोंकी दृष्टि बचाकर इस घरकी देखरेख करेंगे ताकि इस अबलापर कोई मुश्किल न आ पाये।

दूसरे दिन राजाने उस घरका पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह एक युवक सामंतका घर है। उसका नाम है कीरंदै। घरमें उसकी युवती पत्नीके अतिरिक्त कोई नहीं है।

दूसरे दिनसे राजा प्रत्येक रात उस युवतीका हालचाल देख आया करते थे। पर उस कार्यको वे इतनी गुप्त रीतिसे करते थे कि किसीको कानोंकान पता न लग पाता था, यहांतक कि उस युवतीको भी इसकी कुछ खबर न थी। यह कार्य राजाकी दिनचर्याका एक अंग बन गया।

एक रात राजा कीरंदैके मकानपर पहुंचे तो उन्होंने देखा कि इतनी रातको भी वहां प्रकाश था। पकवानकी सुगन्धसे सारा स्थान महक रहा था और घरमें कीरंदैकी पत्नीका आनंदभरा स्वर गूंज रहा था। राजाने सोचा, क्या यह स्त्री इतनी गिर गयी है कि कुछ मासके अंदर वह पर-पुरुषसे हंसी-मजाक करने लग पड़ी है? पुरुषका स्वर भी राजाको भारी व अपरिचित लगा। इतने दिनोंके परिश्रमका यह परिणाम देखकर राजाको बहुत क्रोध आया। उन्होंने जोरसे दरवाजा खटखटाया। अंदरसे पुरुषने गरजकर कहा--"कौन हो तुम? क्या चाहते हो इस समय?" यह आवाज तो कीरंदैकी ही थी। राजा समझ गये कि इतने दिनों बाद पति घर लौटा है। उसके आनेकी खुशीमें उसकी पत्नी पकवान बना रही है और खुशीसे पागल होकर जोर-जोरसे बोल रही है। अब राजा असमंजसमें पड़ गये। कहीं ऐसा न हो कि कीरंदै अपनी पत्नीपर संदेह करने लगे। तब तो बहुत बुरा होगा। सोचते-सोचते राजाको एक उपाय सूझा। उन्होंने उस मुहल्लेके सभी दरवाजोंको एक सिरेसे खटखटाना शुरू किया और किसीके बाहर आनेसे पहले ही वहांसे भाग गये।

आधी रातको उस प्रकार दरवाजे खटखटाये जानेसे लोगोंको आश्चर्य भी हुआ और डर भी लगा। वे बाहर निकल आये। और जब उन्हें पता चला कि मुहल्ले भरके घरोंके दरवाजे खटखटाये गये थे तो वे सब झल्ला उठे। उन्होंने सोचा, जरूर कोई बुरी नियतवाला बदमाश आया होगा। जिसने आधी रातको लोगोंको आतंकित करनेके लिये ऐसा कार्य किया होगा। उन्होंने निश्चय किया कि अगले दिन राजदरबारमें अपना प्रतिनिधि भेजकर राजासे शिकायत करेंगे, नहीं तो बदमाशका साहस बढ़ जायगा।

दूसरे दिन राजदरबारमें उस मुहल्लेके दो प्रतिनिधि पहुंचे। उन्होंने राजाको अभिवादन

कर रातवाली घटनाका इस प्रकार वर्णन किया––"महाराज! कल रात हमारे मुहल्लेमें एक बदमाश आया था, वह चोरी तो न कर सका पर सबके दरवाजे खटखटाकर सबको तंग कर गया। उसे पकड़वाकर उचित सजा दी जाय, हमारी यह प्रार्थना है।"

राजाने गंभीर स्वरमें कहा––"मुजरिमको मैंने पकड़ लिया है, आप लोग ही बतायें उसे क्या सजा दी जाय?"

एक ने उत्तर दिया––"महाराज, लगता है दुष्टको अत्यधिक दुःसाहस हो गया है। आपके राज्यमें वह आतंक फैलाना चाहता है। जिस हाथसे उसने सबका दरवाजा खटखटाया है उस हाथको काट दिया जाय ताकि भविष्यमें वह कभी ऐसा न कर सके।"

यह सुनकर राजाने झट अपनी तलवार निकाल ली और पलक झपकते ही दाहिने हाथको कलाईसे अलग कर दिया। सभी उपस्थित लोगोंके मुंहसे चीख निकल पड़ी––"महाराज, यह क्या?"

तब राजाने कीरंदैके घरकी पहले दिनकी बातचीतसे लेकर रातको दरवाजा खटखटानेतककी सारी कथा ज्यों कीत्यों सुना दी। सुनते ही सभी लोगोंके मस्तक राजाके प्रति श्रद्धासे झुक गये। प्रजा अपने राजाको देवता मानने लगी।

प्रजाने राजाको एक सोनेका हाथ भेंट किया और राजाने उसे पहन लिया। उस दिनसे राजा कुलशेखर पाण्ड्य 'पोण्डृकै पाण्डया" अर्थात् सोनेके हाथवाले पाण्डच कहलाने लगे।

––षण्मुखम्

काच कटोरो, नैण जल, मोती दूध रे मन्न।
इतना फाटयां ना मिलै, लाखो करो जतन्न॥

भावार्थ: कांचका कटोरा, आंसू, मोती, दूध और मन एक बार फट जाय तो लाख यत्न करनेपर भी नहीं जुड़ते।

*

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपु!

मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु उसके शरीरमें स्थित आलस्य ही है।

जानवरोंकी बातें

एक बंदरकी चतुराई

--लाट साहब

कहानी है एक बंदरकी। यह बंदर महाशय हमारे गांवके एक बगीचेमें एक बड़ेसे दलमें रहा करते थे। देखनेमें काफी बड़े, मोटे-ताजे थे, लगता था मानो दलके मुखिया ही हों।

बड़ी उम्रके लोग प्रायः ही बालक और बंदरको एक जैसा मानते हैं --"बालक बानर एक स्वभाऊ।" बड़े तर्जसे वे गाते हैं। सो मैं था बालक और उधर था वह बानर; दोनोंमें भिड़ गयी। बात यह हुई :--

बंदर पेड़पर चढ़कर कच्चे आम खा रहे थे; नीचे हम स्कूलके बच्चे आमके लिये तरस रहे थे। स्वभावतः ही ईर्ष्यासे हमने बंदरोंको पत्थर मारना शुरू कर दिया। हमारे पत्थरकी मारसे कहो या डरसे कहो, बंदर पेड़ोंपरसे कूदते-फांदते भाग निकले। हमारे साथी भी अध्यापकके डरसे एक-एक कर स्कूल चले गये। मैं उत्साहसे भरकर, जीतकी खुशीमें, पत्थर मारता ही गया और बंदरोंको खदेड़ता रहा। इस युद्धमें मेरा एक बड़ासा पत्थर बंदरराजकी पीठपर पड़ गया और उसे करारी चोट आ गयी। बंदर मन-ही-मन क्रुद्ध हो उठा। एक ओर आम खाना बंद हो गया था, दूसरी ओर करारी चोट पड़ गयी। बस, उसने भी बदला लेनेकी ठान ली और तुरत-फुरत एक तरकीब भी सोच निकाली जो पूरी कारगर साबित हुई। वह झट एक बड़ेसे पेड़के पीछे छिपकर बैठ गया और मैंने समझा कि वह डरकर कहीं भाग गया। दूसरे बंदर जो आगे भाग रहे थे उनको खदेड़ते हुए मैं बहुत आगे निकल गया। अंतमें मैं बगीचेकी सीमापर खुदी हुई एक खाईके किनारे ऊंचे मिट्टीके एक टीलेपर खड़ा हो गया और वहांसे बंदरोंको पत्थर मारने लगा। बड़े बंदरने अब पीछेसे मुझे निश्चिंत और उधर सामने बंदरोंको मारनेमें मशगूल देखकर पेड़की आड़से निकलकर सीधे मेरी पीठपर कूद पड़ा। मैं तो काटे काठकी तरह खाईमें जा गिरा और वह निर्ममभावसे मेरी पीठ और जांघ आदिको काट-काटकर अपना क्रोध उतारने लगा। सौभाग्यसे पासके खेतोंमें कुछ किसान काम कर रहे थे और इस महायुद्धकी घटनापर किसीकी आंख आ गिरी। उन्होंने दौड़कर बंदरको भगाया और इस तरह मेरी जान बच गयी। मैंने अपनी शरारतका फल पाया—छः महीने चारपाईपर पीड़ा भोगकर प्रायश्चित्त किया और काफी मूल्य चुकाकर ही यह सीखा कि किसीके भी साथ चाहे वह जानवर ही क्यों न हो, व्यर्थका झगड़ा नहीं मोल लेना चाहिये। उधर बंदर अवश्य ही अपनी जीतपर फूला न समाया होगा जो शायद उसकी दृष्टिसे योग्य ही होगा। बलिहारी उसकी बुद्धिकी! कितनी सफाईके साथ उसने अपनी योजना पूरी कर डाली।

★

गिलहरियोंकी सहयोगिता

एक बगीचेमें गिलहरियां बड़ा उत्पात मचा रही थीं। छोटे-छोटे पौधे, फल-फूल कुछ भी उनके कारण बच न पाता था — वे काट-काटकर सब फेंक देती थीं। उनसे तंग आकर बागवानने बगीचेकी रक्षा करनेके लिये जगह-जगह चूहेदानियां लगा दीं। आरंभमें तो रोज ही कई गिलहरियां पकड़ी गयीं और उन्हें कहीं दूर जंगलोंमें देश-निकाला दे दिया गया। पर संभवतः कई दिनोंतक इस युद्ध-प्रक्रियाके चलने के बाद गिलहरी समाजमें कुछ जागृति आयी और उनके नेताओंने समाजको इस विपत्तिसे बचानेके लिये काफी आंदोलन किया। संभवतः उनके मंत्रिमंडलने इस जातीय प्रश्नपर कई दिनोंतक बड़ी गंभीरताके साथ सोचा-विचारा और न मालूम क्या-क्या किया। भला हम मनुष्य उनके जगत्‌की बात कैसे समझ सकते हैं!

पर एक दिन एक विचित्र घटना हमें देखनेको मिली। हम दो-चार मित्र उस दिन एक बड़ेसे पेड़की छायामें बैठकर गप-शप लड़ा रहे थे। थोड़ी दूरपर एक चूहेदानी लगी हुई थी। बहुत देरतक हमारी बातचीत चलती रही पर चूहेदानीमें कोई शत्रु नहीं फंसा। हमें कुतूहल हुआ और हम लोग उसी ओर मुखातिब हुए। देखा, गिलहरियां आतीं, चूहेदानीको चारों ओर सूंघतीं और चुपचाप भाग जातीं। कोई उसके भीतर न घुसती। कोई नयी गिलहरी उसके पास आते ही दूसरी गिलहरियां दूरसे ही 'किच'-'किच'-'किच' चिल्ला उठतीं, मानों वे अपने भाई-बंदोंको खतरेसे सावधान करती हों। पर ऐसे मूढ़ भी सभी जातियोंमें पाये जाते हैं जो दूसरोंकी सीखपर बिलकुल कान नहीं देते। एक ऐसी ही बेवकूफ गिलहरी आ गयी और रोटीका लोभ संवरण न कर सकी। उसने चारों ओर खोजा और दरवाजेपर आते ही बेखटके भीतर घुस गयी। अपनी सफलताके गर्वमें सिर ऊपर उठा, जरा उसे हिलाकर उसने एक हबक्का रोटीपर मारा और उधर खट्ट! 'खट्ट' की आवाजके साथ ही दरवाजा हुआ बंद और भयसे गिलहरी उठी कांप! रोटी छोड़कर वह पीछे मुड़ी पर रास्ता बंद। फिर चारों ओर दौड़-दौड़कर रास्ता ढूंढ़ने लगी, पर अब रास्ता कहां! चार-छः चक्कर लगानेके बाद वह बहुत घबड़ा गयी और लगी चिल्लाने 'चीं-चीं-चीं।' मानो निस्सहाय होकर सहायताकी पुकार कर रही हो।

धन्य है जाति-प्रेम! अपनी जातिकी निस्सहायावस्थामें शायद मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो चुप बैठकर टुकुर-टुकुर ताका करता है और विपन्न व्यक्तिकी खिल्ली उड़ाता है — सहायता करनेके लिये बिरले ही उठ खड़े होते और दौड़ पड़ते हैं। पर बलिहारी है पशु-बुद्धिको जो अपनी जातिके किसी व्यक्तिको कष्टमें देखकर जमीन-आसमान एक कर देती है, कुछ करनेके लिये छटपटा उठती है। गिलहरियोंने उसकी पुकार सुनते ही चारों ओरसे 'चीं-चीं-चीं' करना आरंभ कर दिया; मानो कह रही हों, "ठहरो आयी, ठहरो आयी!" और चारों ओरसे कई गिलहरियां वहां आ गयीं। कितनी दुश्चिंता, तत्परता और साहस उनमें दिखायी दे रहा था! सबने चारों ओरसे दांतसे खींच-खींचकर देखना शुरू किया कि चूहेदानी कहां-पर कमजोर है, कहांपर दरवाजा है।

आखिर सच्चे प्रयासका फल तो निकलता ही है। हठात् एक गिलहरीने दरवाजेपर

लगाया और उसे पता चल गया कि यह हिलता है। बस, उसने सभी साथियोंको चीं-चीं करके अपने पास बुला लिया और सबने एक साथ मिलकर इतने जोरसे खींचा कि दरवाजा खुल गया और बंदी झट भाग खड़ा हुआ। और अपना काम पूरा होते ही वे सब गिलहरियां भी दरवाजा छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गयीं।

हम तो यह सब देखकर अवाक् हो गये! यह कितनी समझदारीकी बात थी! मिल-जुलकर काम करनेकी कितनी अद्भुत क्षमता थी! इसे भला कौन निर्बुद्धिता कह सकता है?

* * *

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

पुस्तक–परिचय

('पुरोधा'में केवल सत्साहित्यका परिचय दिया जाता है। परिचयके लिये पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियां जानी चाहियें।)

सूफी संत चरित : लेखक भगवान्, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, मूल्य ३)।

सन्त किसी देश या जातिके नहीं होते। प्रत्येक देशमें समय-समयपर सन्त लोग जन्म लिया करते हैं और जनताको भगवान्की ओर उन्मुख करनेका प्रयास करते हैं। इस पुस्तकमें २५ मुसलमान सन्तोंकी जीवनी तथा उनकी वाणीका परिचय दिया गया है। इनकी वाणी देश-कालके बंधनोंसे मुक्त है। सन्त-साहित्यमें रुचि रखनेवालोंके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

महाभारतके सूक्ति-रत्न : संग्राहक इन्द्र चन्द्र शास्त्री, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, मूल्य २.५० पै.।

कहते हैं जो चीज महाभारतमें नहीं है वह सारे संसारमें कहीं नहीं है। खेद है कि आज कलके व्यस्त जीवनमें महाभारतका अध्ययन करनेका समय निकालना मुश्किल हो रहा है, प्रस्तुत पुस्तकमें महाभारतके शांति-पर्व तथा अनुशासन-पर्वसे कुछ सुभाषित चुनकर रखे गये हैं। श्रेष्ठ मानव, पुरुषार्थकी महिमा, लोक-व्यवहार, अर्थनीति, धर्मनीति, गुरुजन-सेवा आदि विषयोंपर बड़े सुन्दर श्लोक देकर उनका भावार्थ दिया गया है। शायद यहां दो-एक उदाहरण देना अनुचित न होगा। लोक-व्यवहारके अंतर्गत कहा गया है, "बलवान मनुष्य शत्रुके दुर्बल होनेपर भी उसकी उपेक्षा न करे। थोड़ी-सी आग भी सब कुछ जला डालती है और थोड़ा-सा विष भी मृत्युके लिये पर्याप्त है।" सामाजिक सदाचारमें कहा है, "संन्यासी लोग जहांसे उत्पन्न हुए हैं, जिस आधारपर टिके हुए हैं तथा जिसपर आश्रित हैं, उसी गृहस्थाश्रमकी निन्दा करते हैं। क्या वे इस प्रकार ईश्वरकी निन्दा नहीं करते?" और एक जगहा कहा है, "मनुष्य दूसरोंके द्वारा जिस व्यवहारको अपने लिये पसंद नहीं करता, उस अप्रिय व्यवहारको दूसरोंके साथ भी न करें।"

नृत्य भारती : ले. आचार्य सुधाकर, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, मूल्य ३ रु.।
कथकलि नृत्यकला : मूल्य २.५० पै.।
कत्थक नृत्य : मूल्य ३ रु.

भारतवर्षमें हर एक विद्या भगवान्को समर्पित हुआ करती थी। नाच, गान आदिका मुख्य उद्देश्य भी भगवान्के साथ एकता प्राप्त करना ही था। इसीलिये हम देखते हैं कि प्राचीन कालमें नाच-गान हमेशा मंदिरोंमें हुआ करते थे। परंतु बीचमें एक ऐसा जमाना आया

जब ये कलाएं केवल विलासका साधन बनकर रह गयीं। अभिजात कुलवाले नाचनेको बुरा मानने लगे। हर्षका विषय है कि अब स्थिति फिरसे बदल रही है और इन कलाओंको फिरसे मान मिल रहा है। हाथरसका संगीत कार्यालय इस दिशामें बड़ा अच्छा काम कर रहा है। 'नृत्य भारती' नृत्यकी कक्षाओंके लिये लिखी गयी एक पाठ्य-पुस्तक है। दूसरी दो पुस्तकोंका विषय उनके नामसे ही स्पष्ट है। अपनी कुछ त्रुटियोंके बावजूद भी ये पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं। हम इनका स्वागत करते हैं। दोनोंमें नाचके बोल, मुद्राओंके चित्र आदि देकर विषयको रोचक और सरल बनानेका प्रयास किया गया है। यह ठीक दिशामें प्रयास है। हम आशा करते हैं कि संगीत कार्यालय इस प्रकारका और अधिक साहित्य प्रकाशित कर सकेगा।

मुद्रण-कला : लेखक श्री छविनाथ पांडेय, प्रकाशक बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना-४, मूल्य ७.२५ पै.।

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् हर तरहसे हिन्दीको समृद्ध करनेमें लगी है। उसकी यह पुस्तक हिन्दीके तकनीकी साहित्यमें एक विशेष स्थान पायेगी। छपाई और प्रेसका ज्ञान केवल प्रेसमें काम करनेवालोंके लिये ही नहीं बल्कि छपाईके साथ किसी प्रकारका भी संबंध रखनेवालोंके लिये भी उपयोगी है। इस पुस्तकमें साधारण प्रेसके बारेमें पूरी जानकारी दी गयी है, मशीनोंके बारेमें बताया गया है और प्रूफ देखनेकी विधि भी बतायी गयी है।

वेणु-शिल्प : लेखक श्री उपेन्द्र ब्रह्मचारी, प्रकाशक तदैक, मूल्य ११रु.।

इस पुस्तकमें बांस तथा उससे बननेवाली चीजोंके बारेमें बड़ी उपयोगी सामग्री दी गयी है। टोकरियां, पेटियां, पर्दे आदि बनानेकी सुगम विधियां बतायी गयी हैं और प्रत्येक चीजको चित्र-द्वारा समझाया गया है। चित्रोंकी संख्या देखते हुए ११ रुपयेमें यह पुस्तक सस्ती है। जहां कहीं छोटे पैमानेपर शिल्प सीखने-सिखानेकी व्यवस्था हो वहां इस पुस्तककी एक प्रति होनी ही चाहिये।

'माध्यम'का प्रवेशांक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, बहुत दिनोंसे राहुग्रस्त था। हिन्दीमें रस लेनेवालोंको यह जानकर हर्ष होगा कि अब उसका उद्धार होना शुरू हो गया है। उसका एक प्रमाण 'माध्यम' है। 'माध्यम' क्या है, उसीके संपादकके शब्दोंमें सुनिये : "'माध्यम'का उद्देश्य हिन्दी जगत्का नेतृत्व करना नहीं है—जैसा उसके नामसे और 'निमित्त मात्रं भव' के उसके मूल मंत्रसे स्पष्ट है, उसका ध्येय केवल यही है कि उसके माध्यमसे हिन्दीका स्तर प्रत्येक दिशामें फैले और देशके कोने-कोनेतक पहुंचे, उसके निमित्तसे हिन्दीके विराट् और उदात्त वाङ्मयके प्रति अधिकाधिक व्यक्ति आकृष्ट हों, उसकी सहायतासे हिन्दी जगत्में हिन्दीतर भारतीय साहित्योंकी जानकारी उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।" प्रवेशांक देखकर संतोष होता है कि सचमुच इस दिशामें अच्छा प्रयास किया गया है। इसके संपादक श्रीबालकृष्ण राव हैं। हम आशा करते हैं कि बालकृष्णकी कृपासे पत्रिकाको माखन-मिश्रीकी कमी न रहेगी और वह अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अग्रसर होती रहेगी। इस मासिक पत्रका चंदा १० रु. वार्षिक है।

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of:

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

Marketers of Petroleum Products

Western Trading Company

Distributors to ESSO Standard
Eastern, INC.
For Calcutta, Bihar and U.P.
88, Stephen House
4 Dalhousie Square East
CALCUTTA - 1

★

Branch:

CENTRAL HOTEL BUILDING
GORAKHPUR

Phone: 23-2835/36 Gram: RIGHTDON

INDIA TAR
AND
BITUMEN PRODUCTS

Office:
88, Stephen House,
Dalhousie Square, Calcutta - 1
Telephone: 23-2835/36

★

All types of waterproofing and damp-proofing, Pipe Lagging & Heat & Cold insulation. Works are undertaken with best workmanship.

प्रधान कार्यालय :
फोन : ३३-४५०४
ग्राम : MIGHTYHOLY

श्री हनुमान सुगर मिल्स लि.

मैनेजिंग एजेण्ट—

मेसर्स—दौलतराम रामेश्वरलाल

१७८ महात्मा गांधी रोड,

कलकत्ता-७

कारखाना—
मोतीहारी
[बिहार]

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।

—श्रीमां

न्यू होराइजन स्टेन्लेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी-४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE STAINLESS STEEL PRODUCT

"स्क्वायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

श्रीअरविंद सोसायटीके प्रकाशन

श्रीमाताजीकी फ्रेंच पुस्तक "Belles Histoires" का अनुवाद

[विशेषकर नवयुवकोंके लिये उपयोगी]

सुन्दर कहानियां (हिन्दी)	... ... रु. १·५०
छोटोदेर गल्प (बंगला)	... ... रु. १.५०

सचित्र संस्करण] [बहुतसे माध्यमिक पाठशालाओंमें स्वीकृत

अन्यान्य प्रकाशन :

के एइ मा? (बंगाली)––पशुपति भट्टाचार्य	... ...	रु. १·५०
वार्षिक १९६३ (अंगरेजी)	... ...	रु. ३.००
श्रीअरविंद-चरितामृत (हिन्दी)––माधव	... ...	रु. ५.००
श्रीअरविंद-वचनामृत (हिंदी) ...	... ...	रु. ०.५०

पुरोधा––त्रैमासिक––(हिंदी और बंगला पृथक् पृथक् संस्करण)––
वार्षिक चंदा ... ... रु. ५.००

मिलनेके पते :

श्रीअरविंद सोसायटी
श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी–२

श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेन्सी प्रा. लि.
श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी नं २

श्रीअरविंद सोसायटी
२, ब्राबूर्न रोड,
कलकत्ता–१

श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी प्रा. लि.
१५, कालेज स्क्वायर
कलकत्ता–१२

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

हिंदीमें

श्रीअरविंदका विशद जीवन-चरित

श्रीअरविंद, श्रीमां और आश्रमके अनेक चित्रों सहित

श्रीअरविंद-चरितामृत

लेखक—डा. भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

मूल्य रु. ५.००

मिलने के पते :—

श्रीअरविंद सोसायटी,
२, ब्राबूर्न रोड,
कलकत्ता—१

श्रीअरविंद सोसायटी
श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी—२

"खोजमें एक आनंद है, प्रतीक्षामें एक आनंद है, अभीप्सामें एक आनंद है, कमसे कम उतना ही बड़ा आनंद जितना कि प्राप्तिमें।"

सबके लिये उपयोगी सैंकड़ों उद्‌बोधक वाणियोंसे पूर्ण

श्रीमाताजीकी नवीनतम पुस्तक

श्रीमाताजीके वचन

[एकमात्र फ्रेंच और हिन्दीमें प्राप्य]

मूल्य रु. २.०० — सजिल्द रु. २.५०

मिलनेका पता :—

श्रीअरविंद आश्रम
(पुस्तक प्रकाशन विभाग)
पांडिचेरी—२

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही
खातों का निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता–७

फोन–३३२३१२

⁂

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

⁂

सचित्र त्रैमासिक

अदिति सह भारतमाता

इसका लक्ष्य है :

* श्रीअरविंदकी मानवजीवनसंबंधी अभिनव समन्वयात्मक दृष्टिको हिन्दी-जगत्के सामने रखना।

* उस पूर्ण दृष्टिके प्रकाशमें मानवजीवनके विकासक्रम और उसके चरम लक्ष्यकी ओर संकेत करना।

* उस क्रमोन्नत विकास और अंतिम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये श्रीमां–श्रीअरविंदद्वारा प्रदर्शित साधन-पथका विवेचन करना।

इसका साधन है :

* एकमात्र श्रीमां–श्रीअरविंदके मूल लेखोंको ही सरल और सुबोध हिन्दी-भाषामें पाठकोंको उपलब्ध कराना जिसमें वे उनके शुद्ध मौलिक विचारोंको ठीक-ठीक समझकर लाभान्वित हों।

जीवनके सर्वांगीण विकास और उन्नतिके इच्छुक

अध्यात्मप्रेमी सज्जनोंको इससे लाभ उठाना चाहिये।

वार्षिक मूल्य रु. ६.०० एक अंक रु. १.७५

मिलनेका पता :

अदिति कार्यालय
पो. आ. श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी–२

BARABATI RAFFLE

(Authorised by the Government of Orissa)

In Aid of

Barabati Stadium, Cuttack and

Red Cross Society (Orissa Branch)

2½% of the net profit goes to National Defence fund.

Barabati Raffles offer

Biggest number and largest amount of guaranteed prizes.

Draws held every 4 months in

February - March : June - July : and September - October.

Buy a ticket for Rs. 1/-

and

Take your chance to win

Guaranteed first Prize of Rs. 1,10,000/-

Form of 18 tickets - Rs, 12/- only

For details contact.

Honorary Secretary.

Barabati Raffle Committee, Cuttack - 5.

हमें अब कौन-सी नयी वस्तु प्राप्त करनी है ?

प्रेम, क्योंकि अभीतक तो हमने केवल द्वेष और आत्मसन्तोष ही प्राप्त किया है;

ज्ञान, क्योंकि अभीतक तो हमें केवल स्खलन, अवलोकन और विचारशक्तिकी ही प्राप्ति हुई है;

आनंद, क्योंकि हम अभीतक सुख-दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं;

शक्ति, क्योंकि अभीतक तो निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है;

जीवन, अभी हमने जन्म, वृद्धि और मरण ही तो पाया है ;

और हमें प्राप्त करना है **ऐक्य** क्योंकि अभी युद्ध और संघर्ष ही की उपलब्धि हुई है !

एक शब्दमें कहें तो हमें **भगवान्को** पाना है और अपने-आपको उसके दिव्य स्वरूपकी प्रतिमाके रूपमें फिरसे गढ़ना है।

—श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

PROTECT PLANTS FROM PESTS
ALWAYS USE JHUNJHUN INSECTICIDES

With best compliments from:

GEO INDUSTRIES & INSECTICIDES (I) PVT. LTD.
308/9, Linghi Chetty Street, Madras - 1

Formulations based on BHC. DDT. Chlordane, Lindane, Zineb and Heptafhlor, Malathion.

Cables : "JHUNJHUN"

Telephone : OFFICE : 24573
FACTORY : 51275

प्रबोधा

किशोर-त्रैमासिक

१ अक्तूबर
१९६४

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

जीवन और मरण	श्रीअरविंद	२
प्रार्थना	श्रीमां	३
एक प्रार्थना	कोकिल	४
संपादकीय		५
भारतीय चित्रविद्या	श्रीअरविंद	१०
बीमारी और मन	श्रीमां	१२
श्रीअरविंद	रवीन्द्र	१४
विद्या और आचरण	मुहम्मद यूसुफ कोकन	१८
मेरी वाटिका झुलस गयी	रवीन्द्र	२०
धन (निबंध प्रतियोगिता)		२६
लक्ष्मीप्रसादजी बोले	रवीन्द्र	३२
लल्लेश्वरी	हीरो	३७
दिव्य जननी !	प्रताप नारायण	४४
नया प्रकाश या रूढ़िवाद	रवीन्द्र	४५
प्राथमिक सहायता	दिनेश	४८
बालक ध्रुव	अनुबेन	५३
संयोगकी बातें	भूदत्त	५८
जमींदार और उसकी लड़कियां	भूमा	६०
वीरबल, कौवे कितने	लक्ष्मीकांत झा	६२
और मेरे ऊपर डांट पड़ी	अंजना शर्मा	६३
पुस्तक परिचय		६६

चित्रकार : संजीवन विश्वास (आवरण), कृष्णलाल, जयंतीलाल, अंजना शर्मा, अनिरुद्ध सरकार

मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै.   वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

वर्ष ३ अक्तूबर १९६४ अंक २

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्ट-वादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें ।

—श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी-२

जीवन और मरण

(श्रीअरविंदकी कविता Life and Death का अनुवाद)

जीवन मरण, मरण जीवन दो शब्द युगोंसे
भरमा रहे बुद्धि जगकी, दीखते विरोधी,
कर उन्मुक्त अचिन्त्य सत्य चिर मानस-सम्मुख
खुले युगोंके छिपे हुए सब पृष्ठ प्रबोधी।
जीवन है संक्षिप्त मृत्यु यदि समय न शेष है,
जन्म मरणका, मरण जन्मका छद्मवेश है।

—नीरज

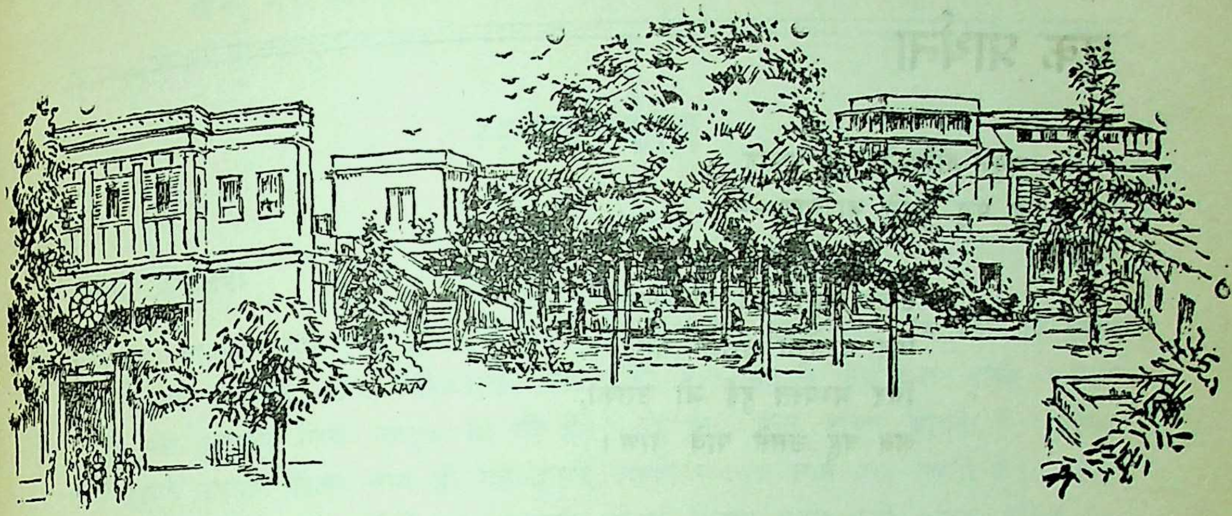

प्रार्थना

श्रीमां

O Seigneur, Seigneur,
permets que je n'aie pas d'autre volonté que la Tienne
et que tous mes actes soient l'expression de Ta divine loi.

भगवान्, हे भगवान्, तेरी इच्छाके सिवा मेरी दूसरी कोई इच्छा न हो और मेरे सारे कार्य तेरे दिव्य विधानकी ही अभिव्यक्ति हों।

एक प्रार्थना

मनुज-जातिकी यही पुकार
हे प्रभु तुमसे बारंबार,––

उन्हीं मूढ़ताओंमें फिर-फिर
गिर पड़नेकी उसकी बान,
चिर अभ्यस्त हुई जो उसको,
अब वह उससे पावे त्राण।

जगको जिन कटु भूलोंसे है
अबतक हो पायी पहिचान,
उनकी पुनरावृत्ति न हो फिर
उसको ऐसा दो वरदान।

अपने घोषित आदर्शोंको
आज दे सके पूर्ण प्रकाश,
जग-जीवनके कर्म-कर्ममें
उन्हें जी सके है अभिलाष।

(श्रीमांकी एक प्रार्थनाका अनुवाद)

'कोकिल'

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ।।

सम्पादकीय

सच्ची देशसेवा

भारत माताका नाम लेते ही हर लड़के और लड़कीके अंदर एक जोश पैदा हो जाता है। चीनके आक्रमण और पाकिस्तानके उपद्रवोंके बाद बहुतसे नौनिहाल मांकी वेदीपर अपनी बलि चढ़ानेके लिये उत्सुक हो रहे हैं। यह एक बहुत पवित्र भावना है; इसका ठीक तरहसे उपयोग किया जाय तो यह हमारे देशको सचमुच स्वर्ग बना सकती है।

परन्तु किसी आदर्शके लिये मर जानेकी अपेक्षा जिन्दा रहना कहीं अधिक कठिन है। हम यहां मांके कामके लिये अपने जीवनकी आहुति चढानेवालोंको श्रद्धांजलि देते हुए भी यही कहेंगे कि जहां आवश्यकता होनेपर मरनेके लिये तैय्यार रहना जरूरी है, वहां उससे भी अधिक जरूरी यह है कि हम अपने जीवनको ऐसा बनायें कि वह मांकी सेवाके योग्य बन सके। हरएक युवा हृदय चिल्ला उठेगा हम तैयार हैं, बोलो क्या करना है।

हां, ठीक है, कुछ करनेसे पहले हमें यह भी तो जानना चाहिये कि हमें क्या करना है। हम जिस भारत माताके नामकी दुहाई देते हैं वह कोन है और उसकी सेवा कैसे की जा सकती है। जब हम भारत मां कहते हैं तो उसका अर्थ जमीनका वह टुकड़ा नहीं है जो हिमालयसे कन्याकुमारीतक और अटकसे कटकतक फैला हुआ है। यह तो मांका अंगमात्र है, भारतके चौवालीस करोड़ निवासी भी भारत नहीं हैं। अगर एक दिन ये सब लोग यहांसे उठकर साइबेरियामें जा बसें तो वह भारत न बन जायगा। फिर आखिर भारत है क्या? हम भारत माताकी जय कहकर किसका जयजयकार करते हैं? चलो, श्रीअरविंदसे पूछ देखें। उन्होंने उन दिनों बन्दे मातरम्का मंत्र दिया था जब देशप्रेम राजद्रोह समझा जाता था और इसकी सजामें फांसीतक मिल जाती थी। वे योगी थे, देखें, उन्होंने अपनी दृष्टिसे क्या देखा है।

श्रीअरविंदने हमें बताया है कि भारत एक शक्ति है जिसका काम है अध्यात्मका संदेश देना, भगवान्का काम करना। वे कहते हैं कि आदमीने भगवान्से मुंह मोड़ लिया है इसीलिये वह इतने कष्ट झेल रहा है। उसे अपने जीवनमें परिवर्तन करना चाहिये और भगवान्का सैनिक बनना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि वे सब काम करना छोड़कर आंखें बंद करके बैठ जानेको कहते हैं। नहीं, नहीं, यह तो उनकी शिक्षासे उलटी चीज होगी। मोटे रूपमें कहा जाय तो हम कह सकते हैं कि वे चाहते हैं कि हम जो कुछ भी करें भगवान्का काम समझकर करें और अपने सारे जीवनको उनके कामके लिये अर्पित कर दें।

इस चीजको दो-एक उदाहरण लेकर समझा जा सकता है। बहुतसे विद्यार्थियोंको गणित और व्याकरणसे अरुचि होती है। जब वे इन विषयोंको केवल परीक्षा पास करनेके लिये

पढ़ते हैं तो जैसे-तैसे करके पास होने लायक अंक ले लेते हैं और फिर उस विषयसे पिंड छूटनेपर एक गहरी सांस लेते हैं और उसे ऐसे भूल जाते हैं मानो कभी पढ़ा ही न हो; अगर इसी कामको भगवान्का काम समझकर किया जाय तो इसका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है, फिर इसमें लापरवाही या सुस्तीके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। तब तो गणित सीखना या झाड़ू लगाना भी पवित्र काम बन जाता है और हम उसमें अपनी ओरसे पूरी-पूरी कोशिश करके अच्छेसे अच्छे परिणाम ला सकते हैं।

एक व्यापारी चोर-बाजारी करके, चीजोंमें मिलावट करके दूसरोंको धोखा देकर धन कमाता है। अगर वह व्यापारको मांकी सेवा समझकर करे तो किसी प्रकारकी बेईमानी न कर सकेगा। हमारा सबसे पहला और सबसे जरूरी काम यह है कि हममेंसे जो जहां है वहीं रहता हुआ अपने कामको पूरी ईमानदारीसे मांका काम समझकर करे। अगर सच्ची भावना होगी तो काम अधिक अच्छा होगा और हमें मांके अधिक नजदीक लायेगा। कामके बाह्य रूपका महत्त्व नहीं है, हर काम अपने स्थानपर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है; कहते हैं, जहां काम आवै सुई, कहा करिहै तरिवारि। हम अगर भारत मांके सच्चे सेवक बनना चाहते हैं तो अपने प्रत्येक कामको पूरी लगनके साथ, एक समर्पण-भावनाके साथ करें और उसमें अच्छेसे अच्छा परिणाम लानेका प्रयास करें। हमारा सारा जीवन ही मांके लिये हो। यही हमारी देशसेवाका सच्चा स्वरूप होगा।

दो विशेष अधिवेशन

मनुष्य अपने विकास-क्रममें बहुत प्रकारके पापड़ बेल चुका है। तरह-तरहकी समाज-व्यवस्थाएं, शासन-प्रणालियां, धर्म, नैतिकता आदि अपना-अपना भाग लेते रहे हैं। कई बार समाजने एक आदर्श चुन लिया और उसकी पूजा ही काफी मान ली गयी। कहा भी जाता है कि आदर्श तो आदर्श है, वहांतक कौन पहुंच सकता है? बहुत बार जिन गिने-चुने लोगोंको जीवनसे, उसकी परिस्थितियोंसे असंतोष हुआ उन्होंने जीवनको लात मारी, संसारको छोड़ दिया और अपने-आपको शंखकी तरह एक वातावरणमें छिपा लिया। परंतु इन तरीकोंसे संसारका कोई कल्याण नहीं हो पाता।

श्रीअरविंद व्यक्ति और समाज दोनों ही को महत्त्व देते हैं। वे चाहते हैं कि व्यक्ति ऊंचेसे ऊंचा उठ सके परंतु उसके पांव धरतीपर जमे रहें। वह केवल आध्यात्मिक ऊंचाइयोंपर चढ़नेका प्रयास न करे परंतु अपने जींवनके और उसके साथ समाजके जीवनके प्रत्येक कोनेमें प्रकाश पहुंचा सके। सारा जीवन गतिमय हो, हरएक, जो जहां खड़ा है वहांसे कुछ ऊंचा उठनेका प्रयास करे! और फिर यह प्रगति भी केवल मन या प्राण या शरीरकी न होकर समस्त मानवकी प्रगति होनी चाहिये, इन तीनोंके अतिरिक्त अध्यात्मकी प्रगति भी जरूरी है। हां, एक और शर्त्त है। धीरे-धीरे अहंकारसे भी छुटकारा पाना होगा, उसके बिना सच्ची प्रगति असंभव है। यह श्रीअरविंदके दिखाये हुए मार्गका पहला कदम होगा।

जीवनमें इस आदर्शको उतारनेका प्रयास करनेवालोंने मिलकर श्रीअरविंद सोसायटीका संगठन किया है। श्रीअरविंदके बताये हुए आदर्शोंसे सहानुभूति रखनेवाले, अपने सामर्थ्यके

अनुसार उन्नतिका प्रयास करनेवाले लोगोंका यह देशव्यापी संगठन है जिसकी शाखाएं धीरे-धीरे अन्य देशोंमें भी फैल रही हैं।

अभी पिछले अगस्तमें इसका एक विशेष अधिवेशन हुआ था जिसमें मनुष्यकी प्रगतिमें सहायक होनेवाले उपायोंपर विचार किया गया। यहां अधिवेशनके सामने जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न थे उनके साथ श्रीमाताजीके उत्तर भी दिये जा रहे हैं :—

१. मानवजाति एक कैसे हो सकती है ?

—अपने मूलके प्रति सचेतन होकर।

२. मनुष्यमें मानव-एकताकी चेतनाको विकसित करनेका उपाय क्या है ?

—आध्यात्मिक शिक्षण अर्थात् ऐसी शिक्षा जो किसी धार्मिक या नैतिक शिक्षण या तथाकथित भौतिक ज्ञानकी अपेक्षा आध्यात्मिक विकासको अधिक महत्त्व दे।

३. चेतनाका परिवर्तन क्या है ?

—चेतनाका परिवर्तन मानो नये जन्मका पर्याय है, सत्ताके उच्चतर लोकमें जन्म।

४. चेतनाका परिवर्तन धरतीके जीवनको कैसे बदल सकता है ?

—मानव-चेतनाका परिवर्तन धरतीपर एक उच्चतर शक्ति, एक अधिक पवित्र ज्योति और एक पूर्णतर सत्यके आविर्भावको संभव बनायेगा।

इस अधिवेशनके बाद विश्वसंघका अधिवेशन हुआ। यह संघ संघर्ष और मारकाटसे भरे हुए संसारमें मावन-एकता लानेके स्वप्न देख रहा है। परंतु यह एकरूपताका नहीं, वास्तविक एकताका हामी है। वह एक नये सामंजस्यपूर्ण संसारको जन्म देना चाहता है। वह एक विश्वराज्यके सपने देखता है परंतु वह विश्वराज्य अपने विभिन्न अंगोंको विकसित होनेमें सहायता देगा। वह एक जीवित-जागृत एकता चाहता है, श्मशानकी शांति नहीं।

आज हम भौतिक शास्त्र और अध्यात्म-विद्याको अगर परस्पर-विरोधी नहीं तो कम-से-कम एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न तो मानते ही हैं। हमने मान लिया है कि भौतिक शास्त्र बाह्य जगत्की खोज करते हैं और अध्यात्म आंतरिक जगत्की थाह लेता है। परंतु विश्वसंघका विश्वास है कि सच्चा ज्ञान एक है और उसके कृत्रिम विभाग नहीं किये जा सकते, इसलिये वह दोनोंमेंसे किसीकी भी उपेक्षा न करता हुआ दोनोंके अधिकाधिक सामंजस्यके लिये प्रयास करेगा। वह संसारके सभी नागरिकोंको आग्रहपूर्वक निमंत्रण देता है कि वे आयें और विभाजन, संघर्ष, क्षुद्रता, अज्ञान आदि सामंजस्यविरोधी शक्तियोंके विरुद्ध, सच्ची एकता, सामंजस्य और प्रगतिकी शक्तियोंका साथ देनेके लिये तैयार हो जायं। जो जहां है वहीं रहते हुए इस यज्ञमें भाग ले सकता है।

जिन्हें इन आदर्शोंमें रुचि हो वे मंत्री श्रीअरविंद सोसायटी या मंत्री विश्वसंघ, पांडिचेरी-२से पत्र-व्यवहार करें।

आयुर्वेद

संसारमें जितनी चिकित्सा पद्धतियां हैं, आयुर्वेद उनमें सबसे पुराना है। आयुका अर्थ है काल अर्थात् जीवनसे मरणतकका सारा समय अथवा जीवन-शक्ति या आहार। इस अर्थके अनुसार जीवनके सभी क्षेत्रोंका ज्ञान आयुर्वेदमें स्थान पा सकता है। शरीरको स्वस्थ रखना इसका मुख्य काम है, यह और बात है कि शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये प्राण और मनकी बहुत सी भूमिकाओंको ठीक रखना भी जरूरी होता है और इस तरह उनका भी आयुर्वेदमें समावेश हो सकता है।

हमारे यहां गन्धर्ववेद, धनुर्वेद और स्थापत्यकलाकी तरह आयुर्वेदको भी उपवेदकी पदवी दी गयी है। इसके आठ अंग हैं: शल्यतंत्र (जिसमें चीर-फाड़ होती है), शालाक्यतंत्र (जिसमें शलाकाका प्रयोग होता है), काय-चिकित्सा (साधारण दवाइयोंसे रोगको दूर करना), भूत-विद्या (जिसमें झाड़-फूंक, टोना-टोटका आदि होता है), कौमार तंत्र (बच्चोंकी बीमारियोंका इलाज), अगद तंत्र (विषोंकी चिकित्सा), रसायन (जिसमें रसों तथा भस्मोंद्वारा चिकित्सा होती है)।

आयुर्वेद प्राचीन दर्शनके आधारपर खड़ा है। उसकी मान्यता है कि मनुष्य-देह वात, पित्त और कफ नामक तीन तत्त्वोंसे बना है और ये तीनों तत्त्व सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणके भौतिक रूप हैं, सारी प्रकृतिकी न्याई शरीर भी पंचभूत यानी अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशसे बना है। यहांपर हमारे आधुनिक मानसको बड़ी कठिनाई होती है। पंचतत्त्व अथवा त्रिधातुका सिद्धांत नये विद्वानोंके गलेसे नहीं उतरता। परंतु उसका कारण यह भ्रांति है कि पृथ्वीका अर्थ है मिट्टी अथवा जलका अर्थ है पानी। आचार्योंने जब इन शब्दोंका उपयोग किया था तो उनका मतलब मिट्टी और पानी आदिसे नहीं था। अगर शास्त्रोंको अच्छी तरह पढ़ा जाय तो हम देख पाते हैं कि पृथ्वीका मतलब पृथ्वी-तत्त्व है—यानी ऊर्जाका वह रूप जो वस्तुओंको ठोस बनाता है। इसी प्रकार वायु है गतिदायक तत्त्व जो ऊर्जा ही है। भागवत शक्ति जब सृष्टि उत्पन्न करना चाहती है तो वह ऊर्जाका रूप धारण करती है और बाकी सब चीजें उसीसे उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक धातुके अपने-अपने प्रकार हैं और अगर वे सब संतुलित रहें, उनमें दिव्य समन्वय हो तो सब कुछ ठीक रहता है। परंतु अभीतक धरतीपर दिव्य समन्वय प्रकट नहीं हुआ है और भिन्न-भिन्न धातुओंके प्रकोपके कारण, उनकी अधिकता या न्यूनताके कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं। मन, प्राण तथा अन्य सूक्ष्म तत्त्व भी इस संतुलनको बिगाड़कर रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

इस दृष्टिसे किसी रोगमें वही ओषधि उपयोगी हो सकती है जो इस संतुलनको ठीक करनेमें सहायक हो सके। कुछ दवाइयां एक प्रकारके वातको शांत करती हैं तो कुछ पित्तको। अगर वात-प्रकोपके कारण ज्वर आया है तो पित्त-शामक ओषधि बिलकुल बेकार होगी, यूं मोटे रूपमें तो इलाज सब ही कर लेते हैं। जैसे आचार्यने कहा है कि किसीको कुछ रोग हुआ, किसीने कुछ चीज दी और कुछ प्रभाव हो गया। यदि प्रभाव संतोषजनक है तो ओषधि बहुत अच्छी और उसका देनेवाला बड़ा योग्य वैद्य और यदि असर अच्छा न हुआ तो ओषधि बेकार और वैद्य निकम्मा।

परंतु सच्चा वैद्य वह है जो सब प्रकारकी ओषधियोंको अच्छी तरह जानता हो, रोगोंका निदान ठीक तरहसे कर सके और रोगपर ओषधिकी प्रतिक्रियाको भलीभांति देख और समझ सके। आयुर्वेदकी दृष्टिसे यह सब बातें समुचित रूपसे जाननेके लिये केवल भौतिक विज्ञान काफी नहीं है। उसके लिये एक सूक्ष्म अंतर्दृष्टि होनी चाहिये। बाह्य लक्षण बहुत बार धोखा देते हैं, हमारी इंद्रियां बहुत बार चक्करमें आ जाती हैं पर अंतर्दृष्टि कभी भूल नहीं करती। वह देख सकती है कि रोगका सच्चा कारण क्या है और उसका वास्तविक उपचार कैसे किया जाय। यदि यह दृष्टि अधिक ऊंची चेतनासे आती हो तो उसका निदान भी उतना ही अधिक ठीक होगा और हो सकता है कि वह बाह्य उपकरणोंकी सहायताके बिना ही या उनकी नाममात्र सहायतासे ही रोगको शांत कर सके। इसके लिये वैद्यको अधिक-से-अधिक ऊंची चेतनामें जाना होगा और वहांके दिव्य समन्वयको मानव-शरीरमें उतारना होगा। यही सच्चे आयुर्वेदका उद्देश्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेदका सच्चा ज्ञाता वही हो सकता है जो सच्चा साधक हो, जो अपने चिकित्सा-कार्यको अपनी साधनाका एक अंग, भगवान्‌का काम ही मान कर करे। यहां रुपया, नाम, प्रतिष्ठा आदिकी चाह रखनेवालोंके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारे समाजमें जो मान्यता चल पड़ी है कि जड़ी-बूटियां देनेवाला या काढ़े पिलानेवाला हर व्यक्ति वैद्य है यह कहांतक ठीक है. यह ऊपर कही गयी बातोंके आधारपर जाना जा सकता है। खाली कुनैन मिक्स्चरकी जगह गुडूची-सत्व अथवा मोर्फियाकी जगह अहिफेनासव देना आयुर्वेद नहीं है। आजकल देशमें आयुर्वेद और एलोपेथीको मिलानेकी बात चल रही है। मूलतः ठीक होते हुए भी इस विचारके पीछे यही भ्रांति काम करती है कि अमुक प्रकारकी ओषधियोंका उपयोग आयुर्वेद है, आसव हो तो आयुर्वेद और टिंक्चर हो तो एलोपेथी, वासा पानक हो तो आयुर्वेद और सिरप वासाका हो तो एलोपेथी। लेकिन बात ऐसी नहीं है। आयुर्वेद एक जीवन-पद्धति है, एक दर्शन है। केवल गरम शरीर देखकर काढ़ा पिला देना आयुर्वेद नहीं है और आंतरिक गहराइयोंसे चीजको देखकर नयी-से-नयी यूरोपीय दवाइयोंका उपयोग भी आयुर्वेदमें किया जा सकता है।

भारतकी सभी विद्याओंकी तरह इसकी भी जड़ अंतरकी गहराइयोंमें है, ऊपर दीखनेवाली चीजें तो केवल फूल-पत्ते हैं। यदि आयुर्वेदको फिरसे जीता-जागता देखना है, फिरसे उसकी पताका फहरानी है तो फूल-पत्तोंको सींचनेसे काम न चलेगा। जड़को पुष्ट किये बिना अच्छे फलकी आशा करना व्यर्थ है। परंतु इस काममें तड़क-भड़क न होगी, हो-हल्ला न होगा, नाम न होगा इसलिये वर्तमान अवस्थामें इसकी ओर ध्यान आकर्षित होना या इस ओर रुचि होना ही कठिन है। इस प्रकारका काम शायद श्रीअरविन्द शिक्षा-केन्द्रके जैसी संस्था ही कर सकती है।

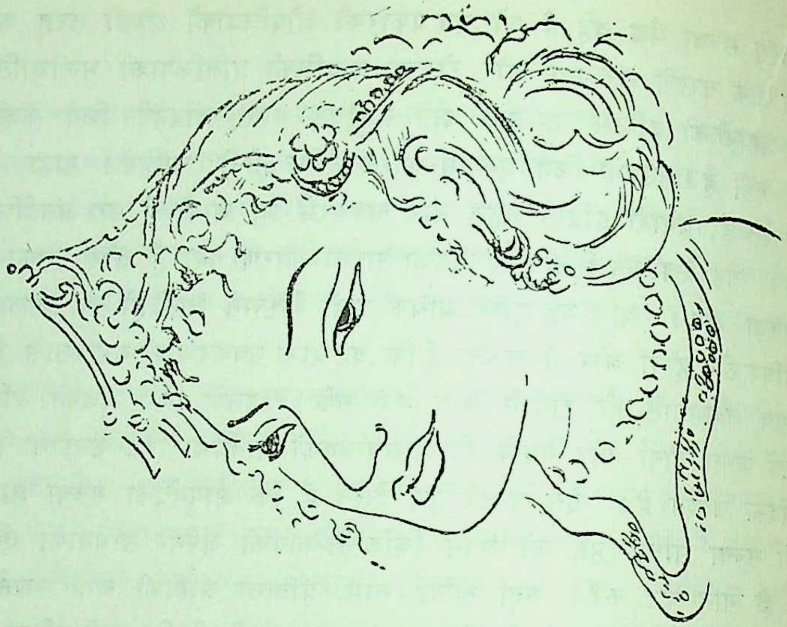

भारतीय चित्रविद्या

आज पाश्चात्य और प्राच्य सभी जातियां यह स्वीकार करनेके लिये बाध्य हुई हैं कि हमारी यह भारतजननी ज्ञानका, धर्मका, साहित्यका, शिल्पका अक्षय भंडार थी। किंतु पहले यूरोपकी यह धारणा थी कि जितनी ऊंची कोटिका हमारा साहित्य और शिल्प था उतनी उत्कृष्ट भारतीय चित्रविद्या नहीं थीं, वरन् वह जघन्य, सौंदर्यहीन थी। हम लोग भी पाश्चात्य ज्ञानसे ज्ञानी बनकर, अपनी आंखोंपर यूरोपीय चश्मा पहनकर, भारतीय चित्र और स्थापत्यको देखते ही नाक सिकोड़ लेते और इस तरह अपनी मार्जित बुद्धि और दोषरहित रुचिका परिचय देते। हमारे धनियोंके घर ग्रीक प्रतिमाओं और अंग्रेजी चित्रोंके cast या निर्जीव अनुकरणसे भर गये, साधारण लोगोंके घरोंकी दीवालें जघन्य तैलचित्रोंसे सुसज्जित होने लगीं। भारतीय जातिकी रुचि और शिल्प-चातुरी जगत्में अनुपम थी, वर्ण और रूप ग्रहण करनेमें जिस भारतीय जातिकी रुचि स्वभावतः ही निर्दोष थी, उसी जातिकी आंखें अंधी हो गयीं, बुद्धि भाव ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गयी, रुचि इटलीके कुली-मजूरोंकी रुचिसे भी हीन हो गयी। राजा रविवर्मा भारतके श्रेष्ठ चित्रकारके रूपमें विख्यात हो गये। सम्प्रति कुछ रसज्ञ व्यक्तियोंके प्रयाससे भारतवासियोंकी आंखें खुल रही हैं, उन्होंने अपनी क्षमता, अपना ऐश्वर्य समझना आरंभ कर दिया है। श्रीयुत अवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी असाधारण प्रतिभाकी प्रेरणासे अनुप्राणित होकर कुछ युवक लुप्त भारतीय चित्रकलाका पुनरुद्धार कर रहे हैं, उनकी प्रतिभाके कारण बंगदेशमें (साथ ही भारतमें भी) नवीन युगके लक्षण दिखायी दे रहे हैं। इसके बाद, आशा है, भारत अंगरेजोंकी आंखोंसे न देख अपनी आंखोंसे देखेगा, पाश्चात्यका अनुकरण करना छोड़कर, अपनी प्रांजल बुद्धिपर निर्भर कर फिरसे चित्रित रूप और वर्णोंके द्वारा अपना सनातन भाव व्यक्त करेगा।

भारतीय चित्रविद्याके प्रति पाश्चात्य लोगोंकी अरुचिके दो कारण हैं। वे कहते हैं कि भारतीय चित्रकार प्रकृति (Nature) का अनुकरण करनेमें अक्षम होते हैं, ठीक मनुष्यकी तरह मनुष्य, घोड़ेकी तरह घोड़ा, पेड़की तरह पेड़ न अंकित कर विकृत मूर्ति बनाते हैं, उनमें perspective (परिप्रेक्षण—दृश्य देखनेकी शक्ति) नहीं है, उनके चित्र विशेषत्वहीन और अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। उनकी दूसरी आपत्ति यह है कि इन चित्रोंमें सुन्दर भावों और सुन्दर रूपोंका नितान्त अभाव होता है। यह अंतिम आपत्ति यूरोपीय लोगोंके मुंहसे अब नहीं सुनी जाती। हमारी पुरानी बुद्ध मूर्त्तिका अतुलनीय शांतभाव, हमारी पुरानी दुर्गामूर्त्तिमें अपार्थिव शक्तिका प्राकट्य देखकर यूरोपियन लोग प्रसन्न और स्तंभित हो जाते हैं। जो लोग विलायतमें श्रेष्ठ समालोचकके रूपमें विख्यात हैं उन्होंने स्वीकार किया है कि भारतीय चित्रकार भले ही यूरोपका perspective (परिप्रेक्षण) न जानें भारतका जो perspective (परिप्रेक्षण) का नियम है वह बहुत सुन्दर, पूर्ण और संगत है। यह बात ठीक है कि भारतीय चित्रकार तथा अन्यान्य शिल्पी ठीक बाह्य जगत्का अनुकरण नहीं करते; परंतु उनके अनुकरण न करनेका कारण सामर्थ्यका अभाव नहीं बल्कि यह है कि उनकी चित्रकारीका उद्देश्य ही होता है बाह्य दृश्य और आकृतिका अतिक्रमण कर अंतःस्थ भाव और सत्यको प्रकट करना। बाह्य आकृति इस आंतरिक सत्यका आवरण, छद्मवेश है—इस छद्मवेशके सौंदर्यमें मग्न होकर हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते जो इनके अंदर छिपा हुआ है। अतएव भारतीय चित्रकारोंने जानबूझकर बाह्य आकृतिको बदलकर उसे आंतरिक सत्यको प्रकट करनेके उपयुक्त बनाया है। वे कितने सुन्दर ढंगसे प्रत्येक अंग तथा चारों ओरके दृश्य, आसन, वेशके द्वारा मानसिक भाव या घटनाके अंतरस्थ सत्यको प्रकट करते हैं—यह देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। यही भारतीय चित्रका प्रधान गुण है, चरम उत्कर्ष है।

पाश्चात्य लोग बाहरके मिथ्या अनुभवमें मग्न रहते हैं, वे छायाके भक्त हैं; प्राच्य लोग भीतरके सत्यका अनुसंधान करते हैं, हम 'नित्य'के भक्त हैं। पाश्चात्य लोग शरीरके उपासक हैं, हम आत्माके उपासक हैं। पाश्चात्य लोग नाम-रूपमें अनुरक्त रहते हैं, हम नित्यवस्तु पाये बिना किसी चीजसे संतुष्ट नहीं होते। यह प्रभेद जिस तरह धर्म, दर्शन और साहित्यमें पाया जाता है उसी तरह चित्रविद्या और स्थापत्यविद्यामें भी सर्वत्र दिखायी देता है।

—श्रीअरविंद

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।
गुणियोंका सम्मान गुणोंके कारण होता है, लिङ्ग या आयुके भेदसे नहीं।

बीमारी और मन

प्रश्न--अगर शरीर अस्वस्थ हो तो क्या मन भी बीमार पड़ जाता है ?

उत्तर :–सच पूछो तो यह आवश्यक नहीं है। मैं तुम लोगोंको बता चुकी हूं कि साधारणतया बीमारियां आती हैं सत्ताके विभिन्न भागोंके बीच संबंध टूट जानेके कारण, एक प्रकारका असामंजस्य स्थापित हो जानेके कारण। बहुत संभव है कि शरीरने प्रगतिकी धाराका अनुसरण न किया हो, वह पीछे रह गया हो जब कि दूसरे अंग, उसके विपरीत, आगे बढ़ गये हों। उस हालतमें समतोलता भंग हो जाती है, सामंजस्य टूट जाता है और उसके कारण बीमारी पैदा हो जाती है, मेरा मतलब है, शरीरमें बीमारी पैदा हो जाती है, क्योंकि मन और प्राण उस समय भी स्वस्थ रह सकते हैं। ऐसे बहुतसे लोग हैं जो वर्षों बीमार रहे, भीषण और असाध्य रोगोंसे पीड़ित रहे, और फिर भी उन्होंने अपनी मानसिक शक्तिको अद्भुत रूपसे स्वच्छ और सक्रिय बनाये रखा और उस क्षेत्रमें उन्नति करना जारी रखा। फ्रांसमें एक कवि थे, वह बहुत अच्छे कवि थे, उनका नाम था स्यूली प्रूदोम (Sully Prudhomme)। वह सांघातिक रूपसे बीमार थे और उन बीमारीके दिनोंमें ही उन्होंने अपनी सबसे सुन्दर कविताओंकी रचना की। जब कि उनका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता जाता था तब भी वह बराबर बहुत प्रसन्न रहते थे, अपनी रसिकतासे प्रत्येक आदमीका मन हर लेते, प्रत्येक आदमीके सामने हंसते हुए और प्रफुल्ल रहते। तुम्हें याद होगा कि महान् चौदहवें लुई (Louis XIV) उस समय भी मजाक किया करते और हंसते रहते, जब कि, उनके जीवनके अंतिम दिनोंमें, उनके डाक्टर और सर्जन उनके शरीरको काटते जाते थे और जोंकोंको सौंपते जाते थे। यह बात व्यक्ति-व्यक्तिपर निर्भर करती है। क्योंकि दूसरे प्रकारके ऐसे लोग भी हैं जो जरा-सी भी शारीरिक अस्वस्थता हुई कि सिरसे पैरतक एकदम घबड़ा जाते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके अंदर विभिन्न तत्त्वोंका मिश्रण अपने निजी ढंगका होता है।

निस्संदेह, मन और शरीरके बीच एक संबंध है, अत्यंत घना संबंध है। अधिकांश मनुष्योंमें मन ही शरीरको अस्वस्थ बनाता है, कम-से-कम बीमारीका यह एक अत्यंत प्रमुख कारण होता है। मैं कह चुकी हूं कि कुछ ऐसे लोग होते हैं कि जो शरीरके रुग्ण होनेपर भी अपने मनको स्वच्छ बनाये रखते हैं। परंतु जब मन अस्वस्थ होता है या अपनी समतोलता खो बैठता है तब शरीरको स्वस्थ बनाये रखना बड़ा कठिन होता है और विरले लोग ही बनाये रखते हैं। ऐसा करना असंभव तो नहीं है, पर अत्यंत विरल है। क्योंकि मैं तुम्हें बतला चुकी हूं कि मन ही शरीरका मालिक है, शरीर उसका आज्ञाकारी और विनम्र सेवक है। दुर्भाग्यवश लोग साधारणतया यह नहीं जानते कि उन्हें अपने मनका व्यवहार कैसे करना चाहिये, और इतना ही नहीं, उसका बुरा व्यवहार करते हैं और जितना बुरा व्यवहार करना संभव होता है उतना बुरा व्यवहार करते हैं। मनमें रचना करने और शरीरपर सीधे

क्रिया करनेकी बहुत बड़ी शक्ति है। ठीक इसी शक्तिका उपयोग लोग शरीरको अस्वस्थ बनानेमें करते हैं। जैसे ही कोई ऐसी बात होती है जो अपने अनुकूल नहीं पड़ती, वैसे ही मन उसके विषयमें परेशान होना आरंभ कर देता है, आनेवाली विपत्तियोंकी रचनाएं करने लगता है, भविष्यमें आनेवाले नाना प्रकारके काल्पनिक खतरोंको बात सोचने लगता है। अब, यदि मनको इस प्रकार खूनके प्यासे पागलकी तरह चाहे जिसपर आक्रमण करके संहार न करने दिया जाय, बल्कि उसके बदले उसी शक्तिको कहीं अधिक अच्छे उद्देश्यमें प्रयुक्त किया जाय, यदि अच्छी रचनाएं की जायं, अर्थात्, यदि शरीरमें आत्मविश्वास उत्पन्न किया जाय, उससे कहा जाय कि इसमें घबड़ानेकी कोई बात नहीं, यह एक क्षणिक कष्ट है आदि-आदि, तो ऐसी हालतमें शरीर ग्रहणशीलताकी समुचित स्थितिमें आ जायगा और बीमारी जैसे आयी थी वैसे ही चुपचाप निकल जायगी। इसी तरह मनको शिक्षा देनी चाहिये कि वह शरीरको अच्छे सुझाव दे और उसपर कीचड़ न फेंके। यदि तुम उचित ढंगसे ऐसा करो तो उससे अद्भुत परिणाम उत्पन्न होंगे।

—श्रीमां

* * *

आशा या श्रद्धाको कभी न खोना चाहिये। कोई रोग ऐसा नहीं जो असाध्य हो, भगवान्की शक्तिके लिये हम कोई सीमा नहीं बांध सकते।

*

निराशावादी होनसे इसके सिवा कभी और कोई फल नहीं होता कि मनुष्य ठीक उन्हीं चीजोंको अपने ऊपर खींच लाता है जिनसे वह डरता है। इसके विपरीत, यह जरूरी है कि सब तरहके निराशाभरे विचारोंको दूर भगाकर केवल उसी विषयमें सोचनेपर बल दो जिसे तुम पसन्द करते हो।

*

चिंतित मत होओ, केवल अपने अंदर और अच्छा करनेके संकल्पको सर्वदा बनाये रखो।

—श्रीमां

श्रीअरविन्द

(पांडिचेरी-काल)

जैसा कि हम पहले देख आये हैं श्रीअरविंद ४ अप्रैल १९१० को पांडिचेरीमें आ पहुंचे। यह आगमन पांडिचेरीके लिये एक नया जीवन लेकर आया। कई पुरातत्त्ववेत्ताओंका कहना है कि अतीत कालमें पांडिचेरीका नाम विष्णुपुरी रह चुका है, यहां वैदिक अध्ययनके लिये एक बहुत बड़ा विद्यालय था और महर्षि अगस्त्यका आश्रम भी यहीं था। रोमन लोगोंके जमानेमें भी पांडिचेरी काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा। यहांसे थोड़ी दूर पुराने जमानेके रोमन सिक्कों तथा अन्य स्मारकोंका एक अच्छा खजाना मिला है। उसके बाद यह भारतमें फ्रेंच राज्यकी राजधानी बनी और इसने अंग्रेजों और फ्रेंच लोगोंकी बहुतसी लड़ाइयां भी देखीं। लेकिन जिन दिनोंकी हम बात कर रहे हैं उन दिनों पांडिचेरीमें महत्त्वपूर्ण चीज कुछ भी न थी। राष्ट्रीय भावनाका नामतक न था। फ्रेंच राज्य जोरोंपर था और यहांके बहुतसे वासी पांडिचेरीको बृहत्तर फ्रांसका एक भाग तथा अपने-आपको फ्रेंच नागरिक समझते थे। लेकिन एक बात है। फ्रेंच लोग अतिथिका मान करते थे और उसके लिये मुश्किलें सहनेके लिये भी तैयार रहते थे। इसलिये उन दिनों अंग्रेजोंके आतंकसे त्रस्त कई देशभक्त यहां आ कर रहने लगे थे जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध थे तमिल भाषाको नया जीवन देनेवाले कवि सुब्रह्मण्यम् भारती।

पांडिचेरीमें आकर श्रीअरविंद लगभग एकांतमें ध्यानावस्थित ही रहा करते थे। लोगोंसे मिलना-जुलना बंद-सा था। इन्हीं दिनोंमें श्रीअरविंदने २३ दिनका उपवास किया। उपवासके समय उनका दैनिक कार्यक्रम ठीक-ठीक चलता रहा, आराम करने अथवा लेटे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं हुई। इससे पहले अलीपुर जेलमें भी वे इसी प्रकार १० दिनका उपवास कर चुके थे। परंतु मजेकी बात यह है कि इन उपवासोंने उनके शरीरको कमजोर नहीं बनाया और उपवासके बाद उन्होंने उपवासके नियमोंका पालन करते हुए फलोंके रस आदि लेनेकी जगह सीधा-सीधा दैनिक भोजन लेना शुरू कर दिया।

मद्रास प्रदेशके एक प्रसिद्ध जमींदार रंगास्वामी आयंगर इसी कालमें श्रीअरविंदसे मिलने आये। उनके गुरु नागाई जपताने अपना शरीर छोड़नेसे पहले उनसे कहा था कि उत्तरसे एक महान् योगी आयेगा, तुम उसकी शरणमें जाना। वह तुम्हारा कल्याण करेगा। उस योगीके चिह्न-स्वरूप उन्होंने बताया कि वह यहां आनेसे पहले तीन बातोंकी घोषणा करेगा। आयंगरका कहना था कि श्रीअरविंदने मृणालिनी देवीको जिन तीन पागलपनोंकी बात लिखी थी वही तीन घोषणाएं थीं। उन दिनों जब क्रांकिकारियोंसे मिलना-जुलना अपने-आपमें अपराध माना जाता था, श्रीअरविंदके साथ मिलना और उनकी आर्थिक सहायता करना एक बहादुरीका काम

था। आर्थिक दृष्टिसे यह बड़ा ही कठिन समय था। श्रीअरविंदके साथ चार शिष्य रहते थे और वे बारी-बारीसे खाना पका लिया करते थे। सब काम अपने-आप ही करना होता था।

२९ मार्च १९१४ का दिन आश्रमके लिये या यूं कहें कि श्रीअरविंदके अनुयायियोंके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उस दिन श्रीमाताजी पहले-पहल श्रीअरविंदसे मिली थीं। इस प्रथम मिलनके बाद ही उन्होंने लिखा : "कोई चिंताकी बात नहीं है यदि सैकड़ों मनुष्य घने अंधकारमें डूबे हुए हैं। वे जिन्हें हमने कल देखा था — वे तो पृथ्वीपर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बातका प्रमाण है कि एक दिन आयगा जब अंधकार प्रकाशमें बदल जायगा। जब तेरा राज्य पृथ्वीपर कार्यरूपमें स्थापित हो जायगा।" और यह घोषणा करनेवाली माताजी कौन हैं यह श्रीअरविंदके शब्दोंमें सुनिये —"श्रीमाताजी अतिमानसको नीचे लानेके लिये ही आती हैं और उसका पूर्ण रूपसे अवतरण होनेपर ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति संभव है। उनका मूर्तिमान् होना पृथ्वीकी चेतनाके लिये अपने अंदर अतिमानसको ग्रहण करने तथा उसे संभव बनानेके लिये जो रूपांतर जरूरी है उसे प्राप्त करनेका एक सुयोग है।"

१९२० में लोकमान्य तिलककी प्रेरणासे जोजेफ वेपटिस्टाने श्रीअरविंदको एक पत्र लिखा जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वे राष्ट्रवादी दलके मुखपत्रका संपादन स्वीकार कर लें। तिलकको आशा थी कि इस तरह वे श्रीअरविंदको राजनीतिमें वापिस ला सकेंगे, परंतु श्रीअरविंदने उसे स्वीकार न किया। उनके पत्रका कुछ अंश यहां दिया जा रहा है।

"......मेरे हाथमें इतने काम हैं कि मैं श्रीमान् सम्राट्के होटलका मेहमान बनकर अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहता। परंतु यदि मुझे पूरी स्वतंत्रता होती तो भी शायद मैं न लौटता। मैं यहां एक स्पष्ट उद्देश्यसे आया हूं।......पांडिचेरी मेरे एकांतवासका आश्रय-स्थल है, यह मेरी तपस्याकी गुफा है। हां, यह सामान्यतः वैराग्यपूर्ण त्यागकी न होकर सर्वथा मेरे अपने ढंगकी एक निराली तपस्या है। बाहर आनेसे पहले मुझे आंतरिक दृष्टिसे अपनी साधनामें अपने-आपको परिपूर्ण बना लेना चाहिये।

"मैं राजनीतिको निकृष्ट नहीं मानता और न यही मानता हूं कि मैं राजनीतिज्ञोंकी अपेक्षा बहुत ऊंची स्थितिमें हूं। मैंने आध्यात्मिक जीवनपर बराबर बल दिया है और अब मैं उसको और अच्छे ढंगपर कर रहा हूं, पर आध्यात्मिकतासे मेरा अभिप्राय संन्यास या संसार-परित्याग नहीं है। इस जगत् और इसके पदार्थोंके प्रति मैं घृणा या अरुचि नहीं रखता। यहां कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो कम या अधिक परिमाणमें आध्यात्मिक न हो। एक संपूर्ण आध्यात्मिक जीवनमें हर वस्तुके लिये अवकाश होता है। ....मेरा विश्वास है कि देश अब आजादीके रास्तेपर है और उसे प्राप्त कर लेगा, परंतु आजादीके बाद यह क्या रूप धारण करेगा यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

"मेरा विश्वास है कि भारतकी अपनी आत्मा और बुद्धिवैभव है। मैं सामान्यतः किसी प्रकारके सामाजिक जनतंत्रमें विश्वास करता हूं परंतु वह जनतंत्र भारतकी परंपराके अनुकूल होना चाहिये।"

इसके बाद दो बार उनसे कांग्रेसके सभापति-पदको स्वीकार कर लेनेके लिये आग्रह किया गया। लाला लाजपतराय, देवदास गांधी, देशबंधु दास, पुरुषोत्तम दास टंडन आदि इस निमित्त

पांडिचेरी आये पर श्रीअरविंदने राजनीतिमें भाग न लेनेके निश्चयको न बदला। इसी प्रसंगमें उन्होंने देशबन्धुदाससे कहा था, "मैं एक महती शक्तिकी खोजमें हूं। यदि वह शक्ति मिल गयी तो उसीको आधार बनाकर अपना कार्य अपने ढंगसे करूंगा।" श्रीअरविंदको विश्वास था कि भारतका त्राण आध्यात्मिक शक्तिके द्वारा ही हो सकता है और वे अपने पूरे बलके साथ उसे धरतीपर लानेके काममें लग गये।

१९१४ में जब माताजी पहली बार पांडिचेरी आयी थीं तो उनके साथ मिलकर श्रीअरविंद ने 'आर्य' नामक एक अंग्रेजी मासिकका प्रकाशन शुरू किया। बादमें पुस्तकाकार छपनेवाले श्रीअरविंदके अधिकतर महान् ग्रंथ इसी पत्रिकाके धारावाही लेखोंके रूपमें प्रकट हुए थे। उसी जमानेके लिखे हुए लेख अगर आज पढ़े जायं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों संसारकी आजकी परिस्थितिको देखकर अभी-अभी लिखे गये हैं। इन लेखोंमें उच्चतम आध्यात्मिक दृष्टि है। वेदोंकी एक नयी दृष्टिसे व्याख्या है, काव्य शास्त्र और अंग्रेजी साहित्यपर क्रांतिकारी विचार हैं, भारतकी सभ्यता और संस्कृति, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके धर्म और उसकी राजनीतिके बारेमें आध्यात्मिक दृष्टिसे एकदम नयी बातें बतायी गयी हैं। मानव-समाजकी गुत्थियोंको सुलझाकर भविष्यका एक ढांचा दिया गया है। जितनी गंभीर और विपुल सामग्री श्री अरविंद एक महीनेमें तैयार करके देते थे उसे आत्मसात् करनेके लिये एक लंबे अरसेकी जरूरत होती है। जब श्रीअरविंदका आंतरिक काम बहुत बढ़ गया और 'लेख' लिखनेके लिये समय निकालना कठिन हो गया तो लगभग ६ वर्ष प्रकाशित होनेके बाद आर्य बंद हो गया।

प्रथम महायुद्धके समय माताजीको कुछ वर्षोंके लिये वापिस जाना पड़ा। उसके बाद वे २४ अप्रैल १९२० को दूसरी बार और इस बार स्थायी रूपसे लौट आयीं। माताजीके आते ही काम बहुत अधिक तेजीसे होने लगा और २४ नवंबर १९२६ को श्रीअरविंदने सिद्धि प्राप्त की। इस सिद्धिके बारेमें उन्होंने एक जगह लिखा है, "२४ नवंबर १९२६ को श्रीकृष्णका पृथ्वीपर अवतरण हुआ था। श्रीकृष्ण अतिमानसिक प्रकाश नहीं हैं। श्रीकृष्णके अवतरणका अर्थ है अधिमानसिक देवका अवतरण जो जगत्को अतिमानस और आनंदके लिये तैयार करता है। कृष्ण आनंदमय हैं। वे अतिमानसको अपने आनंदकी ओर उद्बुद्ध करके विकासका समर्थन और संचालन करते हैं।"

इसके बाद श्रीअरविंद एक प्रकारसे पर्देके पीछे चले गये और आश्रमका संचालन पूरी तरह माताजीके हाथमें आ गया। इस कालके बारेमें हमें कुछ भी नहीं मालूम। इन दिनों उन्होंने सबके साथ मिलना-जुलना छोड़ दिया था और वर्षमें केवल तीन बार विशेष अनुमति पाये हुए लोगोंको दर्शन दिया करते थे। परंतु अंग्रेज सरकारको बराबर इनपर संदेह बना रहता था। उसको भय था कि शायद अपनी 'तपस्याकी गुफा' में बठकर श्रीअरविंद किसी गुप्त सशस्त्र क्रांतिका सूत्र-संचालन कर रहे हैं। श्रीअरविंदके संपर्कमें आनेवालोंपर बड़ी कड़ी निगाह रखी जाती थी।

आश्रमके चारों नुक्कड़ोंपर चौबीस घंटे गुप्तचर विभागके आदमी चक्कर लगाते रहते थे। और यहां जो कोई आता था उसके पीछे लग जाते थे। चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने मद्रासके मुख्यमंत्री बननेके बाद इस पहरेको उठवा दिया।

१९२६ के बादकी घटनाओंके बारेमें हमें कुछ भी नहीं मालूम। इसी कालमें रवीन्द्रनाथ

ठाकुर मिलने आये थे। १९३८ में नवंबर दर्शनसे ठीक पहले श्रीअरविंदके पैरकी हड्डी टूट गयी जिसके कारण दर्शन स्थगित कर दिया गया। दूसरा विश्वयुद्ध आरंभ होनेपर श्रीअरविंदने खुले आम हिटलरका विरोध करते हुए मित्र राष्ट्रोंका पक्ष लिया और अपनी सहायताके प्रतीक-स्वरूप उन्हें कुछ आर्थिक सहायता भी दी। जिसके भयसे अंग्रेज सरकार रातोंको चौंक पड़ती थी उसीसे युद्धके समय सहायता पाकर वह स्तंभित-सी रह गयी। फिर लंदनसे बी. बी. सी. पर उनकी सहायताके बहुत गुण गाये गये।

इसके बाद जब १९४२ में सर स्टेफर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान आये तो श्रीअरविन्दने उनकी योजना-की सराहना की और देशसे अपील की कि उसे स्वीकार कर ले। श्रीअरविंदका कहना था कि अगर आपसी वैमनस्य छोड़कर उसपर अच्छी तरहसे अमल किया जाय तो भारतमें एकता और पूर्ण स्वाधीनताका विकास होगा। उस समय देशने श्रीअरविंदकी सलाहको स्वीकार न किया परंतु पीछे चलकर कांग्रेसके कई बड़े-बड़े नेताओंने स्वीकार किया कि यह उनकी भूल थी। अगर क्रिप्स योजना स्वीकार कर ली गयी होती तो न पाकिस्तान बनता और न उसके बाद आनेवाली विपदाएं ही आ पातीं। परंतु विधाताको अभी और अग्नि-परीक्षाएं लेनी थीं।

इसके बाद १५ अगस्त १९४७ को श्रीअरविंदने वह ऐतिहासिक वक्तव्य दिया जिसे हम पहले उद्धृत कर चुके हैं।

गांधीजी की मृत्युपर जब सारे देशमें कुहराम मच गया था तो तिरुचरापल्ली रेडियोने श्रीअरविंदका एक संदेश प्रसारित किया। उसमें उन्होंने फिरसे इस बातपर बल दिया था कि इस देशके भाग्यमें लिखा है कि यह एक हो और महान् हो। उन्होंने कहा था कि भारत मां अपने बच्चोंको अपने चारों ओर इकट्ठा करके एक महान् राष्ट्रीय शक्ति और संगठित प्रजाके रूपमें घड़ेगी।

कोरियाकी लड़ाईके समय श्रीअरविंदने फिरसे एक बार राजनीतिक नेताओंको चेतावनी दी थी जिसमें चीनके भारतपर आक्रमण करनेकी संभावना दिखायी गयी थी। परंतु दुर्भाग्य-वश देशने क्रिप्स योजना संबंधी सलाहकी तरह इसकी भी अवहेलना की और परिणाम हमारी आंखोंके सामने है।

श्रीअरविंदने ५ दिसंबर १९५० को शरीर त्याग दिया। वह अपने आपमें एक अलग लेखका विषय है।

—श्री रवींद्र

* * *

स्वयं अपने हृदयको शुद्ध करनेके लिये यह आवश्यक है कि तुम काम करो और यह विचार करनेमें अपना समय न बिताओ कि दूसरे क्या करते हैं और क्या नहीं करते।

विद्या और आचरण

—श्री अफजलुल उलमा मुहम्मद यूसुफ कोकन

'पुरोधा' के पिछले अंकमें हमने शेखसादी शीराजीका कुछ हाल दिया था और राजा तथा राज्यके बारेमें उनके सुनहरे विचार दिये थे। आज हम विद्या और आचरणके बारेमें उनके विचारोंका निचोड़ देना चाहते हैं। इस बातमें तो किसीको संदेह न होगा कि मनुष्यका जीवन विद्यासे ही बनता और संवरता है। शेख सादी कहते हैं :

बनी आदम अज इल्म यावद कमाल,
न अज हश्मतो जाहो मालो मआल।

अर्थात् मनुष्यजाति विद्यासे ही उन्नतिके शिखरपर पहुंचती है, सांसारिक धन-दौलत, अधिकार और वैभवसे नहीं। लेकिन मनुष्यका आचरण अपनी विद्या और अपने ज्ञानके साथ मेल खाता हो तो उसका स्तर और भी ऊंचा हो जाता है। सादी कहते हैं, विद्या चाहे कितनी भी क्यों न पढ़ लो, अगर उसके अनुसार कार्य नहीं करते तो फिर तुम नादान ही हो। कहते हैं :—

न मुहक्किक बूअद न दानिशमन्द, चारपाए बरु किताबे चन्द।

यानी निरा पढ़ा-लिखा आदमी न तो विद्वान् होता है और न बुद्धिमान। वह तो उस पशुकी तरह है जिसपर कुछ किताबें लदी हों। संस्कृतमें भी तो कहा है, "यथा खरश्चंदभारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।" यानी ऐसा विद्वान् उस गधेकी न्याईं है जिसपर चंदन लदा हुआ है। वह चंदनके भारको जानता है चंदनको नहीं।

एक और जगह सादी कहते हैं, दुनियामें दो आदमियोंने व्यर्थ परिश्रम किया : एक उसने जिसने बहुत संपत्ति तो इकट्ठी की पर उसका कुछ उपयोग न किया; दूसरा, जिसने विद्या तो पायी पर उसे अपने व्यवहारमें न लाया। सादीकी परिभाषामें कर्मशून्य विद्वान् एक ऐसे अंधेकी न्याईं है जो हाथमें मशाल लिये हुए है, दूसरे लोग तो उससे अपना मार्ग देख सकते हैं पर वह अपने-आप कुछ नहीं देख पाता।

सादीकी दृष्टिमें आलिम, विद्वान् वह है जो किसीका बुरा नहीं करता, वह आलिम नहीं है जो दूसरोंको तो उपदेश देता है पर अपने-आप उसपर अमल नहीं करता, वे कहते हैं :

आलिम आंकस कि बद न कुनद। न बगोयद बखल्को खुद न कुनद॥

सादी विद्याके महत्त्वको स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि एक राजाको बुद्धिमान विद्वान्से ही काम लेना चाहिये चाहे वह इतना आचरण-प्रधान न भी हो। परंतु वे कहते हैं कि अगर विद्वान् संयमी और सदाचारी न हो तो उससे एक साधारण मूर्ख कहीं अच्छा। एक बदहाल, फटेहाल आदमी असंयमी बुद्धिमानसे अच्छा है। क्योंकि मूर्ख तो आंखें न होनेके कारण रास्ता भटक जाता है, पर ऐसा विद्वान् दो आंखें रखता हुआ भी कुएंमें जा गिरता है।

एक और जगह शेख सादीने आचरणहीन विद्वान्को एक ऐसे पेड़से उपमा दी है जिसपर फल न आते हों।

प्रायः देखा जाता है कि हर कालमें विद्वान् और ज्ञानी गरीब ही रहे हैं। धन और विद्यामें बहुत प्रेम नहीं दिखायी देता। शेख सादी कहते हैं, अगर भगवान् बुद्धि और विद्याके अनुपातमें ही जीविका दिया करता तो बेचारे मूर्खोंसे बढ़कर गरीब और पराश्रयी कोई न रहता, परंतु भगवान् नादानोंको कुछ इस तरहसे देता है कि उसे देखकर विद्वान् भी हैरान रह जाता है। एक और जगह वे कहते हैं कि समृद्धि और भाग्य विद्याके आधारपर नहीं मिलते। बहुत बार देखा गया है कि मूढ़ लोग अच्छी हालतमें रहते हैं और बुद्धिमानोंको नीचा देखना पड़ता है। कीमिया बनानेवाला दिन-रात सोना बनानेकी तरकीबें करता रहता है और उसीमें अपनी जान खपा देता है और दूसरी ओर एक मूर्ख बिना किसी प्रयासके राह चलते-चलते खजाना पा जाता है।

सादीने आचरणहीन विद्वानोंकी बहुत निंदा की है, पर वे साधारण लोगोंसे यही कहते हैं कि विद्वान्की बात मानकर सीधे रास्तेपर चलो, चाहे वह विद्वान् अपनी विद्यापर आचरण न भी करता हो। आलिमके कहेको दिलसे सुनो चाहे उसकी बातमें आचरणका लक्षण न दिखायी देता हो। यह न सोचो कि एक सोया हुआ आदमी दूसरे सोये हुए आदमीको कैसे जगा सकता है। आदमीको चाहिये कि हमेशा सदुपदेशको ग्रहण करे फिर वह दीवारपर लिखा हुआ क्यों न हो। वे कहते हैं कि एक विद्वान्में बहुत-सी अच्छाइयां होती हैं। उसकी कुछ त्रुटियोंके कारण उसकी कमजोरियोंको न टटोला करो। । खुदा किसीमें एक गुण देखता है तो उसका दसगुना पुरस्कार देता है। मनुष्यको चाहिये कि वह भी इसका अनुकरण करे। अगर वह किसीके अंदर एक गुण देखे तो उसकी दस त्रुटियोंकी ओरसे आंखें फेर ले।

दुनियामें ऐसे लोग भी हैं जो तपस्वियों-कासा बाना पहनकर संसारको ठगते हैं। दूसरोंको त्यागका उपदेश देते हैं और अपने-आप सोना-चांदी इकट्ठा करते रहते हैं। ऐसे लोगोंसे सादीका कहना है: "ऐ तपस्वी, अपना आचरण ठीक रखनेकी कोशिश कर, ऊपरी वेशकी परवाह न कर। तू केवल फटे-पुराने कपड़े पहनकर ही तपस्वी न बन जायगा। तू चाहे सिरपर मुकुट धर ले या हाथमें झंडा लेकर सिपाहीकी तरह मैदानमें उतर आये, तू फिरभी तपस्वी रह सकता है, अंदरका गुण चाहिये।

[यहां हम तमिलनाडके प्रसिद्ध संत तिरुवळ्ळुव्रके कुछ वाक्य उद्धृत करनेके लोभको संवरण नहीं कर सकते। वे कहते हैं:

शिक्षित लोग ही आंखवाले कहला सकते हैं। अशिक्षितोंके सिरमें तो केवल गढ़े हैं।

धर्मात्मा लोगोंके उपदेश एक मजबूत लाठीके समान हैं। जो उनके अनुसार आचरण करता है, वह उसे गिरनेसे बचा लेते हैं।

अधर्म द्वारा एकत्र की हुई संपत्तिकी अपेक्षा सदाचारीकी दरिद्रता कहीं अच्छी है। सं.]

⁂

मेरी वाटिका झुलस गयी

[बहुत दिनोंसे खोज थी कि किसी जीवनके अनुभवोंको बिना मुलम्मेके हस्तगत किया जाय। किसीसे कहकर लिखवाइये तो चीज बनावटी हो जाती है। खोजते-खोजते यह पत्र-व्यवहार हमारे हाथ लगा है। यह तो पूरा नहीं है, पर जितना है वह आजकलके गृहस्थ-जीवनका आइना है। अगर किसी सज्जनको बाकी पत्र मिल जायं तो हमारे पास भेजनेका अनुग्रह करें।]

—श्री रवींद्र

पूज्यवर,

आज आपको बड़े भारी हृदयसे पत्र लिख रही हूं। आह, वह भी एक समय था कि हमारा परिवार सब तरहसे सुखी था। पास-पड़ोसके लोग हमसे ईर्ष्या किया करते थे। भगवान्‌ने हमें सब कुछ दिया था; हमारा घर सचमुच स्वर्गका नमूना था। परंतु आज मेरा वह स्वर्ग एक स्वप्न बनकर रह गया है। जब खाली बैठती हूं तो उस अतीतके सपने दिखायी देते हैं। मैं सोचती हूं, क्या सचमुच हमारा घर ऐसा था? कहीं मैंने झूठी कल्पनाओंको ही तो अपना सच्चा अतीत नहीं मान लिया? मैं जब आपके घर आयी थी तो मेरी मां हम दोनोंकी जोड़ीको देखकर तिनका तोड़ा करती थी, फिर जब हमारे परिवारमें रमेश, जाह्नवी और यमुनाने प्रवेश किया तो मेरा घर सचमुच गुलजार हो उठा। उनकी किलकारियां हमारे दिलोंको बाग-बाग कर देती थीं। मुझे याद नहीं कि हमारे आकाशमें कभी बादलोंका एक टुकड़ा भी दिखायी दिया हो। पर आज यह क्या हो रहा है? मेरी हरी-भरी वाटिका क्यों झुलस गयी? आखिर मैंने ऐसा क्या पाप किया था या भगवान् भी हमसे ईर्ष्या करने लगे कि वे मेरे नन्दन काननको देख न सके और सब कुछ उजाड़कर रख दिया।

आजकल किसी काममें मन नहीं लगता, घर मानों खानेको दौड़ता है। मेरे लगाए हुए गुलाब मालीके सारे परिश्रमके बावजूद मेरी उपेक्षासे सूखते जा रहे हैं। आह, क्या हो गया है मेरे जीवनको? कुछ समझमें नहीं आता। आपको भी तो इन्हीं दिनों घरसे दूर जानेकी सूझी।

आपके चरणोंकी दासी
. . . .

प्रिये !

तुम्हारा पत्र मिला। तुम व्यर्थ ही इतनी घबरा रही हो। देखो, इस तरह जी हल्का नहीं किया करते। तुम इतनी जरा-जरा-सी बातोंको इतना अधिक महत्त्व क्यों देती हो? हमारा घर अब भी नन्दन कानन बन सकता है; हां, तुम अपने-आपको व्यर्थकी चिंताओंमें घुलाना छोड़ दो। सारे संसारकी जिम्मेदारी हमारे सिरपर नहीं है। हम अपना कर्तव्य पूरा करते जायं तो बस है। अपनी जिम्मेदारी काफी होती है, फिर दूसरोंके भविष्यकी जिम्मेदारी अपने सिरपर क्यों ली जाय? जाह्नवी अब काफी बड़ी है, समझदार है और अपना भला-बुरा समझने लगी है, फिर तुम उसकी चिंतामें क्यों मरी जा रही हो? मैं तो इस बातसे खुश हूं कि वह अपने-आप अपना भार उठाना चाहती है। मां-बापकी जिम्मेदारी तभीतक रहती है जबतक बच्चे समझदार न हो जायं। हमने उनके सारे जीवनका ठेका थोड़े ही ले रखा है। उन्हें सुन्दर स्वस्थ शरीर दिया है, शिक्षा दी है, सौंदर्यबोध और कर्तव्यपालनकी मान्यताएं दी हैं। क्या यह कम है? मेरा ख्याल है, कोई भी मां-बाप इतना करनेपर गर्व कर सकते हैं। फिर तुम किसलिये चिंतित हो? अब बच्चे बड़े हो गये हैं; तुम यह आशा नहीं कर सकतीं कि वे अब भी हमारी उंगली पकड़कर ही चलते रहें। मान लो, कोई अपने छः-सात वर्षके बच्चेको गोदमें लेकर फिरता रहे तो तुम क्या कहोगी? यही न कि या तो मां-बाप पागल हैं या वह लंगड़ा-लूला है। जरा सोचकर देखो, क्या तुम ऐसी ही अवस्थाकी मांग नहीं कर रही हो?

मेरी अच्छी .... शांत रहो, स्वस्थ रहो, भगवान्‌पर भरोसा रखो। वे सब कुछ ठीक करेंगे।

सदा तुम्हारा ——

. . . . .

पूज्यवर,

आपका पत्र मिला। सचमुच आपके पत्र मुझे बल देते हैं, कुछ धीरज देते हैं और मेरी आंखोंके आगे छाए हुए अंधेरेको हटानेका प्रयास करते हैं, परंतु क्या करूं, मेरे हृदयको ऐसी चोट लगी है कि चाहते हुए भी स्वस्थ नहीं हो पाती।

मैं कब चाहती हूं कि सारी दुनियाका भार अपने कंधोंपर ले लूं। यह नेतागिरी आप ही को मुबारक हो, पर मेरे बच्चे, मेरे अपने बच्चे, जो मेरे खूनसे, मेरे मांससे, मेरी हड्डियोंसे बने हैं, जिनका भार ढोते-ढोते मैं असमयमें ही बूढ़ी हो गयी, क्या उनकी चिंता भी मुझे नहीं करनी चाहिये? क्या सचमुच मेरी जाह्नवी इतनी बड़ी हो गयी है कि मुझे उसके बारेमें कुछ सोचनेकी जरूरत नहीं है? नहीं, नहीं, ऐसा न कहिये, मुझे अपनी जाह्नवीसे जुदा होनेके लिये न कहिये। वह मेरी है और उसे मेरे मनके अनुसार ही चलना चाहिये। नहीं चलती तो भूल करती है। आप उसका पक्ष न लें, उसे समझाइये, उसे फिरसे मेरे पास लौटा लाइये।

रमेश पहले ही चला गया, यमुनासे बहुत आशा नहीं है, कम-से-कम जाह्नवी तो मेरी अपनी बनी रहे मैं एकदम अकेली न हो जाऊं। सुहृदवर, आप भी मेरी सहायता न करेंगे तो कौन करेगा? मुझे यूं तड़पता हुआ न छोड़िये।

आप ही की

. . . . .

प्रिये !

तुम्हारा पत्र अभी मिला। सचमुच तुम्हारी बातें सुनकर दुःख होता है। मैंने पहले भी कहा था और फिर यही कहता हूं कि व्यर्थमें जी हल्का न करो। अपनी जीवन-नौका भगवान्‌के हाथोंमें छोड़ दो। हम, तुम और जाह्नवी सभी उनके हाथोंमें सुरक्षित हैं।

शायद तुम भूल गयी हो। मैं तुम्हें याद दिला दूं। कई वर्ष पहले हम लोग एक मित्रके घर गये थे जिनके यहां तोता, मैना, बुलबुल वगैरा बहुतसे पक्षी पिंजरोंमें बंद थे। तुम्हें शायद याद हो कि वे लोग उन पक्षियोंकी देख-भाल कितनी अच्छी तरहसे किया करते थे। उनके खाने-पीनेकी, उनके पिंजरेकी सफाईकी और उनकी सुरक्षाकी कैसी अच्छा व्यवस्था थी पर तुम्हारा भावुक हृदय उन पक्षियोंको जेलमें देखकर रो पड़ा था और कई दिनतक तुम इकबालका तराना और विशेषकर ये पंक्तियां ––

"गाना समझ-समझकर खुश हों न सुननेवाले
दुःखे हुए दिलोंकी आवाज यह सदा है।"
तथा "मैं बेजबां हूं कैदी, तू छोड़कर दुआ ले।"

गुनगुनाती रहती थीं। उन लोगोंने भी पक्षियोंको अपनी ओरसे प्रेम दिया था और उस प्रेमके कारण ही वे नहीं चाहते थे कि पक्षी कहीं और जायं, परंतु कभी यह ख्याल न आया कि पक्षियोंकी अपनी भी तो कुछ इच्छा होगी, उनकी अपनी भी तो भावनाएं होंगी, उन्हें पिंजरेकी सुरक्षासे जंगलोंका भयावना और संकटपूर्ण जीवन पसंद है। मुझे अच्छी तरह याद है, तुमने कहा था, मजबूत पंखोंवाले पक्षीको बन्द करके उसके पंखोंको बेकार कर देना पाप है। क्या तुम भी जाह्नवीके प्रति उसी तरहका पाप तो नहीं कर रही हो? जरा सोचकर देखो।

तुम्हारा ही

. . . .

पूज्यवर,

मैं आपके साथ बहस नहीं कर सकती। आप विद्वान् हैं। आपने दुनिया देखी है, आप बातोंमें सबको हरा सकते हैं पर इतना याद रखिये जाह्नवी मेरी है और मेरी है। नौ महीनेतक मैंने उसका भार ढोया है, उसके गंदे कपड़े मैंने अपने हाथोंसे साफ किये हैं। उसकी हारी-बीमारीमें रातों जाग-जागकर मैंने उसकी सेवा की है। और आप चाहते हैं कि मैं उसे भटक जाने दूं। जाह्नवी छोटी है, अभी उसमें भला-बुरा समझनेकी अकल ही कहां है? चार पुस्तकें पढ़ लेनेसे क्या कोई जीवन-नौका चलाना सीख जाता है? मेरी जाह्‌नवी बहुत भोली है। मैं उसे छोड़ दूंगी तो थपेड़े खा-खाकर डूब जायगी। नहीं, मुझसे यह न होगा। आप मुझसे असंभव बातें करनेको न कहें।

दयाकी भीख मांगती हुई

दुखिया

. . . .

प्रिये !

मैं समझ नहीं पाता कि तुम्हें क्या हो गया है। वैसे तो तुम बहुत समझदार हो पर जाह्‌नवीकी बात आते ही तुम्हारी आंखोंपर रंगीन चश्मा लग जाता है। तुम जरा ध्यानसे देखो

तुम्हारे प्रेमके पीछे स्वार्थभावना और अधिकार-लिप्साकी गंध आती है। मैं जानता हूं कि तुमने जाह्नवीकी कितनी सेवाएं की हैं पर सच बताना क्या उसके पीछे यही भावना छिपी थी कि मैं सेवा कर रही हूं इसलिये वह पूरी तरह मेरे कब्जेमें रहेगी? क्या यह उचित है? क्या हम अपनी सेवाका, अपने लाड़-प्यारका दाम मांगकर अपना अपमान नहीं करते? बदला मांगनेपर हमारा प्रेम रह ही कहां गया? वह तो विनिमय हो गया। क्या प्रेमका भी विनिमय किया जाता है? सच्चा प्रेम देता है, केवल देता है और कभी उसके बदलेकी चाह नहीं करता। भगवान् हमारे लिये क्या नहीं कर रहे पर हमसे कभी उन्होंने कुछ मांगा है? भगवान्को गालियां देनेवाले भी उनके प्रेमसे वंचित नहीं रहते। हम भगवान्के बालक होते हुए अपने जरासे प्रेममें इतनी व्यापार-बुद्धि क्यों लाएं?

और सच कहना जाह्नवीके जन्मसे पहले क्या हमने कभी चाहा था कि वह हमारे यहां आये? क्या हमने शास्त्रोंमें बतायी हुई विधिसे सन्तानका आह्वान किया था या उसे ठीक रूप देनेके लिये कोई तपस्या की थी? नहीं। हमारे तुच्छ सांसारिक जीवनमें कहींसे यह मोती आ गिरा। हमें उसपर प्रभुत्व जमानेका क्या अधिकार है? हमने उसे भौतिक शरीर दिया इसलिये हमारा कर्तव्य था कि उसकी देखभाल करते, उसे अच्छी तरह रखते और उसकी आवश्यकताओंको पूरा करते परंतु अब अगर पंछी अपने पंख खोल रहा है तो हमें उसके पंख काटनेका कोई अधिकार नहीं है। आखिर मेरा भी तो उससे कुछ संबंध है। मुझे तो हमेशा यही लगा करता है कि उसके अंदर जो त्रुटियां हैं, जो कमजोरियां हैं और निकल रही हैं, उनमेंसे कइयोंके लिये हम उत्तरदायी हैं, और हम स्वयं पूर्ण होते तो अपनी संतानसे भी पूर्ण होनेकी आशा कर सकते थे पर वर्तमान अवस्थामें तो यह ख-पुष्पकी आशाके समान होगा।

मेरी प्यारी..... चिंताके भूतको मार भगाओ। हमारी जाह्नवी किसी बुरे रास्तेपर नहीं जा रही। वह केवल अपने जन्मसिद्ध अधिकार—स्वाधीनता—का उपयोग कर रही है। उसे अपनी शुभ कामनाएं दो, उसका साहस बढ़ाओ। आखिर हम जन्मभर तो उसकी रक्षा करनेके लिये बैठे न रहेंगे। उसे अपने-आप खतरोंका मुकाबिला करना सीखना होगा, तुम्हारी शुभ कामनाएं उसे बल देंगी, तुम्हारा प्रेममय आशीर्वाद उसकी रक्षा करेगा। पर तुम्हारी दुश्चिन्ताएं उसे विद्रोही बनायेंगी।

मैं यहां बैठा-बैठा भी तुम्हारा विसूरना नहीं सह सकता। तुम्हारे चेहरेपर फिरसे स्मित रेखाएं देखनेका इच्छुक

....

तुम्हारा

.....

पूज्यवर,

आपका पत्र मिला। आपका कहना ठीक है, मैं ही स्वार्थी, प्रेमका व्यापार करनेवाली, कुलक्षणा हूं। मुझसे यह न होगा कि बैठी-बैठी शांतिके साथ देखती रहूं कि जाह्नवी आखें मूंद कर कुएंमें जा गिरे। इसको आप मेरा स्वार्थ मानते हैं तो यही सही। मैं स्वार्थी हूं, नीच हूं, लंपट हूं। अब जैसी हूं वैसी हूं। आपने मेरा हाथ पकड़नेसे पहले यह सब क्यों न देखा? अब तो मैं एक ही चीज चाहती हूं। किसी तरहसे मुझे क्षय रोग हो जाय, नासूर

हो जाय और मैं तड़प-तड़पकर आपकी निर्दोष जाह्नवीके सामने प्राण दे दूं। उसे भी अपनी स्वाधीनताका मूल्य मालूम हो जाय और आपका भी एक नीच व्यक्तिसे पिंड छूटे। बस,

अभागी

....

पूज्यवर,

मुझे खेद है कि कल मैंने गुस्सेमें आकर आपको न लिखने योग्य बातें लिख मारीं। मुझे, विश्वास है, आपने मुझे क्षमा कर दिया होगा। दुःखके कारण मेरा दिमाग खराब हो गया है। बात यह है कि मैंने हमेशा यही चाहा कि आपके ऊपर चिंताका भार न पड़े। मैं जानती हूं आप कितनी कठिन परिस्थितियोंमें रहकर अपना काम पूरा कर रहे हैं इसलिये मैं अपना भार भी आपके सिरपर नहीं डालना चाहती। वस्तुस्थिति यह है कि यदि मैं आपको जाह्नवीकी पूरी-पूरी जानकारी लिख भेजूं तो शायद आप भी विचलित हो उठें। वह ऐसे ऐसे कृत्य कर रही है कि उसके मारे समाजमें मुंह दिखाना मुश्किल हो गया है।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि आपकी जाह्नवी रातके दस-दस बजेतक गलियोंमें जूते चटखाती फिरती है? पूछो तो कभी इस कामका, कभी उस कामका बहाना बना देती है। मैं चाहती थी कि उसका व्याह करके उसका मुंह काला कर दूं, फिर वह जाने उसके घरवाले जानें। एक दिन यह बात मेरे मुंहसे निकल गयी। जानते हैं, उसने क्या कहा? वह बोली, मैं तो व्याह नहीं करूंगी और अगर कभी करना होगा तो अपनी पसंदके व्यक्तिसे करूंगी। यह अच्छी रही। जिसे साड़ी चुननेका सहूर नहीं है वह पति चुनना चाहती है और इतना ही नहीं, अपनी मांके सामने मुंह-फटकी तरह यह बात कह भी सकती है। न जाने यह कहांकी मैम आ गयी है कि शरम न हया मेरे सामने ऐसी बातें करती है। अपने साथके लड़कोंको अपने घर बुलाती है और मेरे सामने उनके साथ बैठकर हा हा हू हू करती रहती है। मैं शरमसे गड़ जाती हूं पर क्या करूं? वैसे ऊपरसे शील बनाये रहती है। घर-द्वारका काम भी कर देती है। मेरी सेवा करनेमें कसर नहीं उठा रखती लेकिन इन सब बातोंको लेकर क्या करूं, जब असली चीज ही नहीं तो फिर उसकी सेवाको लेकर चाटूं? अब पानी कंधोंसे ऊंचा उठ चुका है। अब नहीं सहा जाता। आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपना सिंदूर लिये हुए जल्दी ही यहांसे उठ जाऊं, फिर जाह्नवीकी जो मर्जी हो करती रहे। मेरी बलासे।

फिरसे क्षमा मांगती हुई दुखिया

अभागिन

....

प्रिये..........

तुम बार-बार अपने-आपको दुखिया और अभागिनी न कहा करो। इससे मुझे कष्ट होता है। शायद तुम कह उठोगी कि अपने कष्टसे बचनेके लिये मैं तुम्हारा एक अधिकार छीन रहा हूं।

तुम्हारे दोनों पत्र एक साथ मिले। मैं कल्पनाकी आंखोंसे देख रहा हूं, पहला पत्र लिखते हुए तुमने कैसा चंडीका रूप धारण किया होगा और दूसरे पत्रमें वही क्रोधानल जल-प्रपात बनकर झरा होगा। काश कि मैं वहां होता और अपनी इन आंखोंसे यह सुन्दर दृश्य देख पाता।

मेरा एक आग्रह सुनोगी ? तुम इस तरह बार-बार क्षय रोगका या मृत्युका आवाहन न किया करो। भगवान्के प्रति इससे बड़ी कृतघ्नता नहीं हो सकती। तुम चाहती हो कि जाह्नवी तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हो और तुम स्वयं अपने मालिककी ओर कृतघ्नता दिखा रही हो। छी छी ! ऐसी बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं। यह तो कायरोंकी बातें हैं और चाहे कुछ हो मैं जानता हूं कि मेरी. . . . कायर नहीं है। हमारे जीवनमें कठिनाइयां आती हैं, हमें मजबूत बनानेके लिये, हमारे छिद्रोंकी ओर ध्यान खींचनेके लिये। लोग तुमपर हंसते हैं तो हंसा करें, निंदक साधो मीत हमारा।' तुम अपनी ओरसे पूरा प्रयत्न कर रही हो, उसके बाद भी तुम्हारा वांछित फल न आये तो इसमें दुखी होनेकी बात नहीं है। भगवान् स्वयं हमारी नैयाके कर्णधार हैं और जब वे हमारे साथ हैं तो फिर डर किसका ?

जाह्नवीके बारेमें तुमने जो लिखा है मैं उससे बहुत अधिक जानता हूं। वह मेरे साथ पूरी तरह खुली हुई है और उसके पत्र बराबर आते रहते हैं। मैं अपने-आपको उसका मित्र मानता हूं, संरक्षक नहीं, इसलिये वह मेरे सामने हर तरहकी बात निःसंकोच होकर रख सकती है। तुमने उसके साथ अपने संबंधमें भयको घुसने दिया है। जहां भय हो वहां सच्ची प्रीति नहीं रहती।

तुम्हारे पत्रोंसे स्पष्ट है कि तुम उसपर विश्वास नहीं कर पातीं। कारण चाहे कुछ भी हो पर यह तो तुम्हें मानना हो पड़ेगा कि तुम प्रायः उसे सन्देह-भरी दृष्टिसे देखती हो। और जहां एक ओरसे जरा-सा भी सन्देह हुआ कि दूसरी ओरका विश्वास अपने-आप उठ जाता है। तुम सन्देहवश उसपर प्रतिबंध लगाना चाहती हो और उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है विरोध, विद्रोह और छल। मैं अपनी बात ही बताऊं, मैं एक मित्रके यहां रोज जाता हूं। मैंने कभी उनकी किसी चीजको हाथ नहीं लगाया। तुम जानती ही हो कि किसीकी बातमें टांग अड़ाना मेरे स्वभावके प्रतिकूल है। एक दिन उनके यहां कुछ पुस्तकें आयी थीं। उन्होंने एक क्रमसे सजाकर रखी और उनपर लिखकर रख दिया, "इन्हें कोई न छुए।" म जब पहुंचा और यह सूचना देखी तो मेरी पहली प्रतिक्रिया क्या हुई जानती हो ? मैंने एक उंगलीसे उनको छू दिया केवल यह देखनेके लिये कि इस निषेधको न माननेसे देखें क्या प्रतिक्रिया हो। मैंने कई बार देखा है कि मैंने कोई कहानी पढ़कर तुमसे कहा है इसपर समय नष्ट न करना, बिलकुल रद्दी है तो पहला अवसर निकालकर तुमने उसे पढ़ डाला और फिर मुझसे कहा कि हां, वह सचमुच रद्दी है।

इन सब अनुभवोंके बाद मैं तो तुम्हें यही सलाह दूंगा कि जाह्नवीपर विश्वास करो, उसे अपने पैरोंपर खड़ा होने दो। क्या हुआ, अगर दो-एक बार ठोकरें खाकर गिर भी पड़ी तो फिर खड़ी हो जायगी और फिर अपने-आप संभल जायगी। अगर वह प्रतिरोध न करे और पूरी तरह तुम्हारे वशमें होकर रहे तो शायद उसके लिये और भी खराब होगा। उसका व्यक्तित्व न पनपने पायेगा, वह पंगु होकर रह जायगी और फिर जब तुम न होगी तब अथवा तुमसे दूर होते ही बिलकुल बेकार हो जायगी।

हिम्मतसे काम लो, भगवान्पर भरोसा रखो और उसे अपनी नौका अपने-आप खेनेका अवसर दो। तुम्हारी सहानुभूतिपूर्ण नजर रहेगी तो वह भी कठिनाईके समय तुम्हारे सामने अपने-आपको खोल सकेगी और नहीं तो बराबर दूर दूर ही होती जायगी। तुम अपने-आप

भी भगवान्पर भरोसा रखना सीखो और जहांतक हो सके उसे भी यही पाठ पढ़ाओ—शब्दोंसे नहीं, अपने आचरणसे। इसीमें हम सबका कल्याण है।

चलो, बस बहुत रो-धो चुकी अब जीवनका नया अध्याय शुरू करो। कौन जाने यह सारी घटना हमें कुछ सिखानेके लिये ही न घटी हो।

—तुम्हारा

....

(इसके आगेके कागज अप्राप्त हैं)

* * *

धन

[अभी कुछ समय पहले श्रीअरविंद शिक्षा-केंद्रमें एक निबन्ध-प्रतियोगिता हुई थी। निबंधका विषय था 'मनुष्यजीवनमें धन ही सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है'। इस प्रतियोगितामें आये हुए कुछ अच्छे निबंधोंका कुछ अंश यहां दिया जा रहा है।—सं.]

(१)

हमारे जीवनमें वही वस्तु महत्त्वपूर्ण होती है जो हमें अपने लक्ष्यके पास ले जाती है। इसीलिये वस्तुका मूल्य मनुष्यके लक्ष्यके साथ-साथ बदलता रहता है। अगर हमारा लक्ष्य है संसारके वैभव, विलासमें अपने-आपको भूल जाना, अगर हम दूसरोंपर अपना रौब जमाना चाहते हैं या अगर हम सदा-सर्वदा अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेमें फंसे रहते हैं तो हमें जरूर ही धन संसारकी सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तुके रूपमें दिखायी देगा। क्योंकि पृथ्वीकी वास्तविक दशा ऐसी ही है। बाहरसे देखनेसे लगता है कि जिसके पास धन है उसीका मन-चाहा होता है, और वही सुखी है।

परंतु जरा अंदर घुसकर देखें तो क्या हम कह सकते हैं कि एक धनी मनुष्य वास्तवमें सुखी है? खोजनेपर हम यही पाते हैं कि यह मान्यता सत्य नहीं है। भारतमें प्राचीन कालसे यह परंपरा चली आ रही है कि उसी भूखे, नग्न भिक्षुको सुखी माना जाता है जिसने सारे संसारके वैभवको ठुकराकर एक भगवान्में ही अपना मन लगा दिया हो।

मनुष्य भगवान्का ही एक अंश है और इसीलिये उसका लक्ष्य है अपने स्रोतसे एकत्व स्था-

पित करना। और इस मार्गमें धनका कुछ भी मूल्य नहीं। इस मार्गके पथिकके लिये एक ही चीजका महत्त्व होता है, और वह है भागवत प्रेम। इसीमें लीन होकर, इसीमें अपने-आपको भूलकर, वह सब कुछ खोकर भी सब कुछ पा लेता है। क्योंकि भगवान् सब कुछ है, और अपने भक्तको वह सारा संसार दे सकता है।

पर इसका मतलब यह नहीं कि हमें धनको ठुकराना चाहिये, क्योंकि धन भी भगवान्की ही एक शक्ति है। हमें उससे दूर भागनेके बदले, उसे भगवान्की देन मानकर अपनाना चाहिये और अपने देवताके इच्छानुसार ही उसका प्रयोग करना चाहिये।

—विजय पोद्दार, ११ वीं श्रेणी

(२)

धन! धन और धन!

धन एक ऐसी चीज है जिसके लालचमें हमेशा मनुष्य जकड़ा रहता है। अशर्फियोंके लालचमें कितने ही लोग अपनी जान जोखिममें डाल देते थे, ऐसी कई कहानियां हम पढ़ चुके हैं। इस जमानेमें भी धन पानेके लिये मनुष्य क्या नहीं करता? धनका नाम सुनते ही आंखोंमें एक चमक आ जाती है, शरीरमें खुशीकी एक लहर दौड़ जाती है और मनमें लालचकी जकड़ और मजबूत हो जाती है। सब उसी पारस-पत्थरके सपने देखते हैं जो राजा बना दे। धन कौन नहीं चाहेगा, कोई कम तो कोई ज्यादा, यह एक अलग बात है। कई तो हैं जिनका मन एक फटी बोरीकी तरह है जिसमें जितना भी डालो वह कभी नहीं भरती। कई पेट भर खा सकनेमें ही संतुष्ट हैं। मेरे ख्यालमें धन जीवनमें जितना महत्त्व रखता है उतना शायद और कुछ कम ही रखता है।

हर मनुष्यके दिलमें एक अच्छे घर, अच्छे कपड़े और अच्छे खानेकी तमन्ना रहती है, और सचमुच यह जरूरी भी है। परंतु यह सब कहांसे आयें जबतक यह (जादू कर देनेवाला शब्द) 'धन' न हो। कौन चाहेगा कि वह 'फुट-पाथ' पर नंग-धडंग सोये और भूखसे उसकी आंतें जलें? पर हदसे ज्यादा धन मनुष्यको बुरे रास्तेपर ले जाता है यह भी सच है, कई पैसेको मानों किसी तरह बहाना चाहते हैं और शराबकी लतमें झूमते हैं, जुएमें बाजी रखते हैं और किसी-न-किसी तरह पैसा नष्ट करते हैं।

पैसेसे क्या नहीं होता, पैसेसे आदमीतक खरीदे जा सकते हैं। पैसेके मारे भाई भाईका गला घोंटनेपर उतारू रहता है। पैसेके लिये आदमी बेईमान बन जाता है। अहा! क्या जादू है उसमें!

सच भी है, पैसेके बिना इस दुनियामें कुछ नहीं हो सकता। धनकी कमीके कारण कितने कलाकार भूखे मर गये। ओह! यह सोचकर सचमुच बड़ा अफसोस होता है। अगर उनके चित्रोंका कोई मूल्य आंकना जानता तो बेचारे इस तरह भूखे जान न दे देते।

इस जमानेमें धन न हो तो मनुष्यकी कोई कदर नहीं; गरीब बैठे अमीरोंको देखते हैं और एक आह भरते हैं। सभीने ऐसे गरीबोंको देखा है जो अमीरोंके सामने हाथ बढ़ाते हैं और धनवान व्यक्ति एक क्रूर दृष्टिसे उन्हें देखकर, मुंह बिगाड़कर, गालियां देकर दूर भगा देता है,

उसकी नजरोंमें वे नीच हैं, नीच किस लिये? वे भी तो आखिर इंसान हैं? पर नीच केवल इसलिये कि वे गरीब हैं, वे पटरीपर सोते हैं, उनकी देहपर कपड़ा नहीं है और उन्हें खानेको कुछ नहीं मिलता।

मैं ऐसे लोगोंको दुत्कारे जाते हुए देखती हूं तो मेरा दिल उस लखपतिको धिक्कारता है "ओ मनहूस, ओ निर्दय, तेरी जेब पैसोंसे खनखना रही है, दुअन्नी देनेसे तेरा क्या चला जायगा? विशाल समुद्रमेंसे एक बाल्टी जल किसीने लिया तो क्या फर्क पड़ा? तेरी जरासी दयासे किसीका पेट भर जायगा। इतना तो सोचा, तू अगर धनके अभावमें इस तरह किसीके सामने हाथ फैलाता और दुत्कारा जाता तो....."। बस यही है धनकी महिमा जो कइयोंको डनलो-पिलोपर सुलाती है और कइयोंको पटरीके ठंडे-ठंडे सख्त पत्थरोंपर, जिनपर वे ठिठुर-ठिठुरकर रात गुजारते हैं। यहां वह प्रसिद्ध शेर याद आता है:

ऐ जर तू खुदा नई, लेकिन बखुदा
सत्तारुल उयूब व मालिकुल हाजाती।

(ऐ धन, तू भगवान् तो नहीं है पर भगवान्‌की कसम तू दोषोंको छिपानेवाला और आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला अवश्य है।)

—अंजना शर्मा

(३)

आधुनिक कालमें धन बहुत ही आवश्यक माना जाता है। कौन विश्वास कर सकेगा कि आगेके जमानेमें पैसेका बिलकुल उपयोग नहीं होता था? उन दिनों लोग वस्तु-विनिमय करते थे।

धनके विषयमें दो चरम पक्ष हैं। एक तो है संन्यास। ये लोग पैसेके बारेमें एक निषेधात्मक पक्ष लेते हैं। वे सोचते हैं कि धन पवित्रतासे दूर ले जाता है। दूसरा चरम है सुखकर या विलासकी सामग्री चाहनेवालोंका। ये लोग पैसेके दास बन जाते हैं और उसके अधिकारी नहीं रहते। वे धनकी ही पूजा करने लगते हैं। वे पैसे जमाते ही जाते हैं। उनका मन पूरी तरह उसीमें रहता है और इसलिये उनका सारा जीवन भय और लोभसे भरा रहता है। ऐसे लोग एक क्षण भी आराम नहीं कर सकते। उनकी इच्छाएं बढ़ती ही जाती हैं और वे कभी संतुष्ट नहीं होते। पैसेके साथ उनका इतना ज्यादा बंधन हो जाता है कि पैसे चले जायं तो वे पागल हो जाते हैं। माताजीने कहा है कि यह एक सबसे बुरी तरहका रोग है। वह बहुत जल्दी फैल जाता है, और मां-बाप सावधान न रहें तो बचपनसे ही शुरू हो जाता है। जो लोग धनके पीछे दौड़ते हैं उनका मन बिलकुल संकुचित हो जाता है। वे धनके लिये लोगोंको धोखा देने, बेईमानी करनेके तरीके निकालते हैं। वे जीवनका सच्चा सुख भूल जाते हैं और केवल बाहरी सतहपर रहने लग जाते हैं।

ये दोनों स्थितियां गलत हैं। श्रीअरविंद और माताजी, दोनोंने कहा है कि सबसे अच्छी स्थिति यह है कि धनके साथ बंधन भी न रखो और न उसे भयसे फेंक दो। पैसेके साथ बंधन नहीं रखें तो उसके उपयोगसे कोई हानि नहीं होती। लेकिन जब धनके साथ बंधन

हो जाता है तब दुःख और कष्ट भी आरंभ हो जाते हैं। सचमुच तो धन महालक्ष्मीकी एक बड़ी शक्ति है। अभी यह शक्ति असुरोंके हाथोंमें है। हमें मेहनत करके उसे भगवान्‌के लिये प्राप्त कर लेना चाहिये।

इस धनकी शक्तिका ज्यादातर लोग बुरी तरह उपयोग करते हैं। हमें उसे भगवान्‌के काममें लाना चाहिये। सचमुच में देखा जाय तो धन मनुष्यजीवनमें बिलकुल आवश्यक नहीं है। भगवान्‌का प्रेम हो तो पैसे बिना भी कोई कष्ट नहीं होता।

—तुलसा, श्रेणी ६

(४)

इस जमानेमें ऐसा लगता है कि मानों मनुष्यके दिमागको धनके सिवा और कुछ भी नहीं सूझता। वह जो कुछ करता है उसके पीछे पैसा इकट्ठा करनेकी कोई-न-कोई तरकीब रहती है। धन बहुत खराब तरहसे भी इकट्ठा किया जा सकता है। आजकी दुनियामें अधिकतर चोरी और बेईमानीसे ही बहुत धन मिलता है। पैसेकी हवस ही मनुष्यके सारे जीवनको नष्ट कर सकती है। यह सत्य है कि पैसेने मनुष्यमें लालच बढ़ा दिया है; मगर दूसरी तरफ उसने भौतिक चीजोंकी बहुत उन्नति भी की है।

अंग्रेजोंके आनेके बाद हिंदुस्तानमें जीवन-स्तर बहुत ऊंचा उठ गया है। लोग उनकी तरह रहनेकी कोशिश करते हैं और व्यर्थमें बहुतसा पैसा नष्ट करते हैं। वे यह देखते ही नहीं कि कइयोंको खानातक नहीं मिलता। इधर गरीबसे भी गरीब और अमीरसे भी अमीरके जीवनमें पैसा सबसे मुख्य वस्तु बनता जाता है। क्योंकि सबसे साधारण चीज और सबसे बड़ी चीजका भी दाम होता है। बिना दामके न अमृत मिलता है न विष।

बहुत खर्चके बाद आदमी अपनी पढ़ाई खत्म करके किसी कामके लिये आवेदन करता है। भाग्य अच्छा हो तो उसे कोई काम मिल भी जाता है, पर कई बार ऐसा काम मिलता है जिसमें उसकी बिल्कुल रुचि नहीं होती मगर उसे रोज जाकर आधे सोते हुए अपना काम करना पड़ता है। वह यह नीरस काम इसलिये करता है कि उसे पैसा मिल जाय और वह अपना पेट भर सके। इस तरह आदमीको पैसा अपनी सच्ची योग्यता भी दिखाने नहीं देता। हम एक तरहसे कह सकते हैं कि जिसके पास धन हो उसके पास सब कुछ है। धन हो तो घरमें रोज मित्र आयेंगे और तुम्हारी कीर्ति बहुत बढ़ जायगी। लेकिन अचानक तुम्हारे पास बहुत धन बाकी न रहे तो? तो वे जो दोस्त कहलाते थे मुंहतक नहीं दिखायेंगे। इस स्थितिके बारेमें उर्दू कवि जौक कहते हैं:

> जबतक थे गिरहमें अहमकोंकी पैसे, सब कहते थे आप ऐसे वैसे।
> पैसा न रहा गिरहमें तो जौक पूछा न किसीने कौन थे ऐसे तैसे॥

ऐसी ही एक छोटीसी कहानी भी सुन लीजिये। एक बूढ़ा अमीर जब घूमने निकलता तो चारों तरफसे लोग उसे सलाम किया करते। वह उत्तरमें कह दिया करता था अच्छा कह दूंगा। इस उत्तरका रहस्य कोई न जानता था। एक दिन एक आदमी इस अटपटे उत्तरका अर्थ पूछ बैठा। बूढ़ा बड़े आदरसे उसे अपने घर ले गया और अपनी तिजोरी खोलकर दिख-

लायी। उसने कहा, लोग मुझे थोड़े ही सलाम करते हैं, सारी इज्जत इस तिजोरीकी है। इसलिये मैं सलाम स्वीकार करनेके बदले कह देता हूं, कह दूंगा, यानी इस तिजोरीसे कह दूंगा।

हम देखते हैं कि धनके साथ-साथ ही लालच, मिथ्यात्व और चोरी आते हैं। कई हैं जो पैसेको देखकर ही मोहित हो जाते हैं। एक आदमी था जिसने कुछ सोनेकी मोहरें मिट्टीमें गाड़ दी थीं। वह रोज उन्हें सिर्फ देख जाता था। एक दिन मुहरें वहां नहीं थीं। उन्हें न पाकर बचारे आदमीकी जान निकल गयी। कई कंजूस ऐसे भी हो, चुके हैं जो अपने धनके साथ ही स्वर्ग जाना चाहते थे। धन एक खराब राक्षसीकी तरह है जो एक सुन्दर युवतीकी तरह सज-धजकर आती है। वह उनका नाश करती है जो उसपर मोहित हो जाते हैं। इसलिये युगोंसे संत-साधुओंने हमेशा कंचनसे बचकर रहनेका उपदेश दिया है। अमीर होना या पैसे कमाना कोई बुरा काम नहीं हैं मगर उसे ही सबसे ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिये। जहां और जब काम हो तभी इस्तेमाल करना चाहिये, क्योंकि पैसेकी आखिर सबको जरूरत पड़ती है। किंतु आजकल मनुष्यने उसे अपने जीवनमें सबसे बड़ी आवश्यकता बना लिया है और वही उसके जीवनमें एकमात्र लक्ष्य है।

—(मीना, श्रेणी ६)

* * *

अपने-आपमें कोई चीज अच्छी या बुरी नहीं होती। सब कुछ इसपर निर्भर है कि कौन और किसलिये उपयोग कर रहा है। जो तलवार राणा प्रताप या शिवाजीके हाथमें एक पवित्र और पूजनीय वस्तु बन जाती थी वही तलवार किसी डाकूके हाथमें पड़कर अथवा किसी हत्यारेके हाथमें जाकर जघन्य घातक बन जाती है।

श्रीअरविंदने हमें बताया है कि धन एक सार्वभौम शक्तिका बाह्य रूप है। यह शक्ति प्राण और शरीरके स्तरोंपर काम करती है और भौतिक जीवनकी पूर्णताके लिये आवश्यक है। विभिन्न कालोंमें, विभिन्न परिस्थितियोंमें इसके रूप बदलते रहे हैं। वस्तु-विनिमय अभी कुछ समय पहलेतक प्रचलित था। आटेके बदलेमें तरकारी और कपड़ोंके बदलेमें बरतन खरीदना अब भी बंद नहीं हुआ है। गुंजा, कौड़ी आदिका उपयोग बंद हुए भी बहुत समय नहीं बीता है। धातु और कागजके सिक्कोंसे तो हम सब परिचित हैं ही। ये सब भी उसी शक्तिके बाह्य रूप हैं।

आजके संसारमें धनका महत्त्व सबसे अधिक बढ़ गया है, परंतु हमेशासे ऐसा नहीं था। प्राचीन भारतकी समाज-व्यवस्थामें सबसे ऊंचा स्थान ब्राह्मणको मिलता था जिसका मुख्य काम था विद्या पढ़ना और पढ़ाना; दूसरा स्थान पाते थे क्षत्रिय यानी शासक वर्ग और देशके रक्षक, और तीसरा स्थान मिलता था धनाढ्य वैश्यको। ब्राह्मण इन सबके लिये पूजनीय था और कोई भी उसका विरोध न कर सकता था। इस प्रकारकी समाज-व्यवस्थाके कुछ चिह्न अब भी भारतमें मौजूद हैं जैसे कांचीके शंकराचार्य और बिनोबा सारे देशमें धनाढ्यसे अधिक पूजे जाते हैं। भारतके राष्ट्रपति पदपर आसीन राजेन्द्र बाबूने वाराणसीके पंडितोंके पैर धोये थे। लेकिन पश्चिमकी लहर इस सबको हटानेमें लगी है।

समाजमें परिवर्तन होते-होते अब वह काल आ गया है जब धन ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। धन है तो सब कुछ हो सकता है और धन नहीं है तो कुछ भी नहीं।

जैसा कि हमने पहले कहा, धन भी भगवान्‌की एक शक्ति है और मूल रूपमें वह भगवान्‌की अपनी चीज है। परंतु संसारके विकासक्रममें आजकल जो परिस्थिति है उसमें धन भी गलत हाथोंमें जा पड़ा है। अधिकार, धन और सेक्स ये तीन चीजें मनुष्यको बहुत आकर्षित करती हैं और तीनों ही अंधकारकी शक्तियोंके हाथमें पड़कर सारे संसारमें हलचल मचाये हुए हैं। यदि हम धनकी पैदा की हुई अव्यवस्था और गड़बड़से बचना चाहते हैं तो उसका ठीक उपाय यही है कि फिरसे उसे भगवान्‌के अधिकारमें लाया जाय। कई संप्रदायोंने धनपर पूरा-पूरा प्रतिबंध लगाकर, उसका बहिष्कार करके उसके कुप्रभावोंसे बचनेकी कोशिश की है, परंतु यह न तो वांछनीय ही है और न संभव ही। वांछनीय तो इसलिये नहीं है कि इस तरहसे हम भगवान्‌की एक शक्तिको उनकी दी हुई वस्तुको उनके काममें न लाकर विरोधी शक्तियोंके हाथमें छोड़ देते हैं। और असंभव इसलिये कि इस प्रकारसे त्याग करनेवालेकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये (चाहे वे कितनी ही कम क्यों न हों) किसी-न-किसी धनका उपयोग करनेवालेकी सहायताकी जरूरत पड़ती है।

श्रीअरविंदका बताया हुआ मार्ग तो यह है कि धनसे अथवा धनसे प्राप्त होनेवाली वस्तुओंसे न तो मुंह मोड़ा जाय और न उनके साथ बंधकर उनकी दासता स्वीकार की जाय। हमें यह याद रखना चाहिये कि धन एक शक्ति है जिसे फिरसे भगवती माताकी सेवामें लाना चाहिये। सारा धन और उससे प्राप्त ऐश्वर्य भगवान्‌का है और अभी वह जिनके हाथमें है वे उसके स्वामी नहीं ट्रस्टी हैं। लक्ष्मीका एक नाम है चंचला। आज वह एकके हाथमें है कल किसी दूसरेकें हाथमें होगी। वह जिसके पास होती है उसके लिये परीक्षाका समय होता है। उसकी जांच होती है कि वह भगवान्‌की इस धरोहरका उपयोग किस भावसे और किस उद्देश्यके लिये करता है। ताजमहल जैसी कला-कृतिके लिये करोड़ों खर्च करना भी ठीक है और बीड़ी सिगरेटपर चार पैसा फेंकना भी अपव्यय है।

आदर्श स्थिति वह है जब मनुष्य सूखे चने चबाकर भी आनंदसे रह सके और अगर सम्पदाके साथ वैभवपूर्ण जीवन बिताना हो तो वह भी कर सके। न धनसंपदाको पीठ दिखाये और न उसके पीछे भागे। उसे हरसमय यह ख्याल रहे कि उसके पास जो कुछ है भगवती मांका है, उन्हींकी इच्छाके अनुसार उन्हींकी सेवाके लिये उसका उपयोग होना चाहिये। हम किसी व्यक्तिको उसके धनवैभवके कारण महान् न मानें और किसीको उसकी गरीबीके कारण हीन न समझें। हमारे इतिहासमें जनक जैसे ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं जो राजपाट और सुखसंपदाके वातावरणमें रहते थे, और चाणक्य जैसे फटे-हाल लोग भी हो गये हैं जिन्होंने भारतके साम्राज्यकी स्थापना की पर अपने-आप हमेश झोंपड़ीमें रहे। हमें याद रखना चाहिये कि लक्ष्मी अपने-आपमें बहुत बड़ी देवी है, पूजनीय है परंतु सब कुछ होते हुए भी उसका काम है भगवान् विष्णुके पैर दबाना। उनकी सेवा करनेमें ही उसके जीवनकी सार्थकता है।

—सम्पादक

लक्ष्मीप्रसाद्जी बोले !

लक्ष्मीप्रसादजी बोले, "अच्छा, लो सुनो। एक मजेदार कहानी कहता हूं। इसमें सच्ची झूठी तो भगवान् जाने। जैसी अपने बड़ोंसे सुनी वैसी सुनाये देता हूं। अपनी ओरसे न कुछ बढ़ाऊंगा और न कुछ हड़पूंगा, अच्छी लगे तो याद रखना और दूसरोंको सुनाना, पसन्द न आये तो भूल जाना।"

हम सब उत्सुक हो रहे थे, लक्ष्मीप्रसादजी हमारी उत्सुकताको बढ़ानेके लिये कुछ इधर उधरकी बातें कर रहे थे और हम सोचते थे कि वे कब असली बातपर आते हैं। इतनेमें एक बोल पड़ा, "हां, लक्ष्मीप्रसादजी, फिर क्या हुआ ? एक था राजा और एक थी रानी, फिर ?

अच्छा, चलो, ऐसे ही सही, जब तुमने शुरू कर दी है तो मैं वहींसे आगे बढ़ाता हूं। लो, सुनो, एक था राजा और एक थी रानी। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। अभी दोनोंका लड़कपन ही था कि बापकी छाया सिरसे उठ गयी। राजकाजका भार सिरपर आ पड़ा। राजा सोचता था कि अभी तो मेरे खेलने खानेके दिन हैं, यह कहांकी मुसीबत आ पड़ी। रानी सोचती थी कि सारे दिन राजा दरबारमें बैठा रहेगा तो मैं यहां अकेली पड़ी-पड़ी क्या करूंगी, सारा घर काटनेको दौड़ेगा। इससे तो अच्छा होता कि हम दोनों साधारण आदमी होते, न किसीसे लेना-देना, न किसीकी जिम्मेदारी। बस, खेलते खाते और मौज-मजा करते। इसी चितामें सूतकके दिन बीत गये।

एक दिन राजाने दीवानको बुलाया और कहा, "चाचाजी, बड़े महाराजके सामने भी सारा काम आप ही संभालते थे, बड़े महाराजको आपपर बहुत विश्वास था। अब वे नहीं रहे। उनके स्थानपर हमारे लिये तो आप ही हैं। आप पहलेकी तरह काम करते रहें। जहां जरूरत हो वहां मुझसे सलाह कर लें। दीवान चालाक था, आदमियोंकी नस-नस पहचान सकता था, ताड़ गया कि राजा कामसे कतराता है। उसने झट सिर झुकाया और हुकुम मान लिया।

राजा-रानीके दिन मजेमें कटने लगे। न किसीकी चिन्ता न किसीकी जिम्मेदारी, सारा भार बूढ़े दीवानपर। दोनोंने एक-एक बाग चुन लिया और बस उसीको लेकर दोनों मस्त रहते। एक दिन रानीके बागसे बढ़िया-से अंगूर आये। रानीने कहा, "देखा, बाग हो तो ऐसा हो, हैं ऐसे अंगूर तुम्हारे बगीचेमें।" राजा सकपकाये, बोले, "देखा, लेकिन अंगूरकी क्या बात है, मेरे यहां सेव हैं, नाशपाती हैं, अनार हैं।" रानीने कहा, "मुझे यह सब नहीं सुनना, ऐसे अंगूर हों तो दिखाओ और नहीं तो हार मानो।" रार बढ़ चली। फैसला करनेके लिये दीवान साहब तलब किये गये। दोनोंने अपना-अपना पक्ष जोरसे उनके सामने पेश किया और उनसे फैसला मांगा। दीवानने इधर देखा, उधर देखा और बोले, "दोनों बगीचे बड़े अच्छे हैं। रानी बोलीं, "ऐसे काम न चलेगा चाचाजी ! ठीक-ठीक बताओ, किसका बगीचा अधिक अच्छा है, नहीं तो आपकी मूंछोंकी खैर नहीं।" दीवान बोले, "बेटी, तुम्हारे विरुद्ध बोलूं तो मूंछोंकी खैर नहीं और इनके विरुद्ध बोलूं तो नाक चली जायगी।" फिर जरा सोचकर बोले,

"बात यह है कि ये दोनों ही बगीचे बड़े महाराजके हैं। आप दोनोंको होड़ करनी है तो लीजिये मैं जमीन देता हूं। दोनों अलग-अलग बगीचे लगाइये। पांच वर्ष बाद दोनोंको देखकर फैसला किया जायगा।" राजा-रानीने बात मान ली। दीवानने जमीनके दो टुकड़े बागके लिये अलग कर दिये, एक पूरबमें दूसरा पच्छिममें। अब समस्या थी कि कौन-सा टुकड़ा किसको मिले। जो एकको पसंद आता उसीको दूसरा लेना चाहता। खैर, दीवानने कौड़ी फेंककर इसका निबटारा कर दिया।

दोनों बगीचोंमें जोरोंसे काम चलने लगा। रानी अपने बगीचेमें कई-कई घंटे लगाने लगी, हर पेड़-पौवेंसे उसकी जानपहचान थी। जमीनका चप्पा-चप्पा उसे देखकर खुश हो उठता था। धरती माताने मानो अपने खजाने उसके लिये खोल दिये। उधर राजाके बगीचेमें सारा काम रोब-दाबसे होता था। वह राजाका जो ठहरा। वहां तो मानों पेड़-पौधोंको भी दरबारी शिष्टाचारका ख्याल रखना पड़ता था। बीसियों नौकर-चाकर लगे रहते थे पर जमीन भी रौबके मारे दुबकी-सी रहती थी। खैर, चार वर्ष बीत गये। अब राजाको चिंता हुई। उसने अपने आदमी भेजे कि जाकर रानीके बगीचेका हाल देख आओ। उन्होंने आकर कहा, "महाराज, गरदन माफ हो, आपका बगीचा रानीके बगीचेके सामने कुछ भी नहीं।" राजाको बड़ा बुरा लगा। मालियोंको हुकुम हुआ जितना चाहो खर्च करो पर तीन महीनेके अंदर हमारा बगीचा रानीके बगीचेसे अच्छा करके दिखाओ। लेकिन रोब-दाब क्या प्रेमके सामने खड़ा रह सकता है? धरती माता क्या राजाके सामने झुक सकती है? फिर देखा गया, अबकी बार रानीका बाग और भी अच्छा निकला। अब प्रतियोगिताके दिन नजदीक आ रहे थे और राजाके अंदर ईर्ष्याकी आग सुलग उठी थी। सब तरहकी कोशिशें बेकार जाते हुए देख राजा नीचतापर उतर आया। उसने कहा, "जाओ, रातके समय रानीके बगीचेको तहसनहस कर आओ।"

सुन्दर चीजको नष्ट करते हुए अनपढ़ जाहिल सिपाहियोंका दिल रो रहा था पर करते क्या? राजाको नाराज करते तो खाते क्या?

दूसरे दिन सवेरे रानीने बगीचा देखा। उसने सोचा, कोई जंगली जानवर घुस आये होंगे। उसने बाढ़ मजबूत करवा दी, कांटे लगवा दिये और थोड़े ही दिनोंमें बगीचा फिर पहलेसे भी सुन्दर हो उठा। राजाने फिरसे नष्ट करवा दिया। भोली रानी फिर भी न समझ पायी कि यह दो पांववाले जंगली जानवरका काम है। जब कई बार यही नाटक दुहराया गया तो रानीको कुछ-कुछ शंका हुई। वह भी राजापर नहीं, कुछ अन्य ईर्ष्यालु व्यक्तियोंपर। उसने रातको पहरा लगा दिया और कह दिया, जो भी मेरे बगीचेको नष्ट करे वह बचकर न जा पाये। नंगी तलवारें लिये लोग पहरा देने लगे। राजाने फिर सिपाहियोंको हुकुम दिया। लेकिन किसीके दो सिर न थे। सबने जानेसे इंकार कर दिया। आखिर राजा ही वेश बदलकर चुपचाप बगीचेमें पहुंचा और वहां उसने पौधोंको नष्ट करना शुरू किया। रानीके पहरेदारोंने जो आहट सुनी तो शपाशप तलवारें निकल आयीं और राजाका सिर धड़से अलग होकर धूलमें लोटने लगा। करनेको तो यह काम कर दिया, लेकिन जब सिपाही जरा नजदीक आये तो सबके प्राण सूख गये। यह क्या हुआ? अब?

खैर, उसी समय दीवानको खबर दी गयी। वे तुरंत मौकेपर आये। सारी स्थितिकी

गंभीरताको समझते देर न लगी। उन्होंने कहा, यह बात किसीसे न कहना, नहीं तो तुम सबकी गरदनें चली जायंगी। तुम मेरे ऊपर छोड़ दो, मैं स्थितिको संभाल लूंगा। सबने बातको गुप्त रखनेकी शपथ खायी। दीवानने मालीसे कहा, तुम अपना लड़का मुझे सौंप दो। गरीब घबराया। यह क्या प्रपंच है, कहीं मेरे लड़केकी बलि तो नहीं दी जा रही है? दीवानने कहा, 'मुझपर विश्वास रखो, इसका बाल भी बांका न होगा। बस, इसे मेरे हवाले कर दो। माली कर ही क्या सकता था? मन मसोसकर रह गया। उन दिनोंके लोग आजकलकी तरह कसम खाकर निकाल न देते थे। उन्हें तो सारे जीवन कसम निभानी पड़ती थी।

अगले दिन दीवानने घोषणा कर दी कि महाराजकी तबीयत खराब है। दीवानके सिवा और कोई उनकी सेवामें नहीं जा सकता। रानीतक नहीं। दिन बीतते गये, इलाजका ढोंग होता गया। इधर रानीकी तबीयत निढाल होने लगी। उधर मालीका बेटा राजकुमारकी-सी शिक्षा पाने लगा। रानी मर गयी। दीवानने कहा, राजाके लिये यह दुःख असह्य है। उन्हें फिरसे दौरा आ गया है, अब उन्हें जलवायु बदलनेके लिये ऋषिकेश जाना पड़ेगा। दीवान साथ गये और ऋषिकेशमें मालीके बेटेको धर्मशास्त्र, कूटनीति, शस्त्रविद्या आदिकी खूब अच्छी शिक्षा दी जाने लगी। उसे राज्यके सब अधिकारियोंके चित्र दिखाये गये और हर एकका पूरा-पूरा इतिहास सुनाया गया ताकि वह किसीसे अपरिचित न रह जाय। इन सबमें पांच वर्ष बीत गये। दीवानने घोषणा की कि अब महाराज बिलकुल स्वस्थ हो गये हैं और किसी योगीकी कृपासे उनका काया-कल्प हो गया है। अब वे पहलेसे बहुत जवान हो गये हैं। इन सब घोषणाओंके बाद मालीके बेटेको बड़ी धूमधामके साथ नगरमें लाया गया। नगरवासियोंके उत्साहका क्या कहना। नगर दुलहिनकी तरह सजा था, सब ओरसे फूलोंकी वर्षा हो रही थी। नये महाराज बड़ी शानसे प्रेमका अवतार बने हुए पधारे। हर एकको नाम ले-लेकर अपने पास बुलाने लगे। हर एकसे राजकी, घर-बारकी और इधर-उधरकी बातें करने लगे। राजामें इतना परिवर्तन देखकर सारी प्रजा प्रफुल्लित हो उठी।

राजा रोज सवेरे दरबार लगाता, लोगोंकी शिकायतें सुनता, तुरन्त न्याय करता और उसके न्यायके विरुद्ध किसीको भी शिकायत न होती। शामके समय घोड़ेपर सवार होकर इधर-उधर चक्कर लगाता, नगरकी अवस्था देखता। मकान, रास्ते, बगीचे देखकर वहींपर उनके संबंधमें हुकुम देता। प्रजाने सचमुच एक प्रजावत्सल राजा पा लिया।

एक दिन बख्शीजी दीवानके घर आये। चेहरेपर हवाइयां उड़ रही थीं। उनका भारी-भरकम शरीर मानों चावलका पापड़ बन गया था। दीवानने पूछा, "क्या बात है?" बड़े प्रयत्नके बाद उनके मुंहसे बोल निकला, "आज सवेरे दरबारमें राजाने मेरी बड़ी प्रशंसा की। मैं बहुत खुश हुआ। मैं क्या जानता था कि इस प्रशंसाके पीछे डंक लगा हुआ है। तब वे बोले, राज्यकी इतनी सेवा करनेके बाद अब आपको विश्राम करनेका अधिकार है। आजसे आपको सेवासे मुक्त किया जाता है। इसी तरह फौजदार और ताल्लुकेदारको भी छुट्टी दे दी गयी। पहले तो दीवानने सोचा, चलो बच्चा है, ठीक हो जायगा पर एकके बाद एक तीनको निकाले जाते देखा तो उनका माथा ठनका। उन्होंने सोचा, यह मालीका बच्चा मुझसे सलाह लिये बिना ही यह सब करता जा रहा है। उसे कान खींचकर बताना पड़ेगा कि वह कौन है और राजगद्दीपर किसकी कृपासे आया है।

दूसरे दिन दीवान साहब दरबारमें पहुंचे तो राजाने उठकर स्वागत किया और बोला, "आइये चाचाजी, आपने इस राज्यकी जितनी सेवा की है उसका बखान करना मेरे बसके बाहर है। "आपने ही मुश्किलके समय राज्यको बचाया, आप न होते तो पड़ोसी राजा हमारे राजाको कबका हड़प चुके होते। हम आपके उपकारको कभी नहीं भूल सकते। इसी प्रकार प्रशंसा करते-करते राजाने दीवानको सिरोपा पेश कर दिया जिसका अर्थ था कि अब आपको भी सेवासे मुक्त कर दिया गया। दीवान आये तो 'मालीके बच्चेको पाठ पढ़ाने' पर लोकप्रिय राजाका हुकुम सुनकर सन्न रह गये। उनके मुंहसे एक भी शब्द न निकला और वे लड़खड़ाते हुए, उलटे पांव वापिस चले गये।

दीवान घर आये तो बदले हुए आदमी थे, उनकी शक्ति जवाब दे चुकी थी, उनके उत्साहको लकवा मार गया था। यह दीवान नहीं दीवानका सांस लेता हुआ मुर्दा था। उनका घरसे निंकलना बंद हो गया। कहीं भूलसे निकल जाते तो चारों ओरसे सलामोंकी जगह उंगलियां उठने लगतीं। उन्हें देखते ही कानाफूसी होने लगती। उनके बेटेने कहा, "चलिये, कहीं और चलकर बसा जाय।" पर इस बेइज्जतीके साथ कहीं जाना दीवानको पसंद न था। वे सारे दिन घरमें पड़े करवटें बदलते रहते और उसासें भरते रहते और गोधूलिके समय सुनसान जंगलकी ओर घूमने चले जाते। वहां एक पहाड़ी नाला बहता था, उसके किनारे बैठे-बैठे थक जाते तो घर लौट आते। एक दिन उन्होंने देखा, एक बहुत ही सुन्दर कमल पानीमें बहता चला आ रहा है। ऐसा कमल उन्होंने कभी न देखा था। मनकी ऐसी अवस्थामें भी कमलका लोभ हो आया और वे छपाकसे पानीमें कूद पड़े। कमल लेकर आये तो बस एक ही ख्याल था। राजा मुझसे नाराज है, अगर यह कमल उसे दे सकूं तो शायद मेरी बहाली हो जाय। सवेरे ही सवेरे दीवान कमल लेकर दरवाजेपर जा पहुंचे। शाही अफसरोंने उनका बड़ी अच्छी तरह स्वागत किया और बड़े मानके साथ बिठाया। दीवानको अर्थ समझनेमें देर न लगी। उनका दरबारमें जाना मना था। खैर, किसी तरह स्वाभिमानको जेबमें डालकर एक अफसरके हाथ कमल अंदर भेजा। राजाने कहला भेजा, "चाचाजीसे कहो, पहले यह पता लगा आयें कि यह कमल कहांसे आया है, तब मुझसे मिलने आयें, उसके बिना यहां पांव न रखें।"

दीवानकी रही-सही आशाओंपर भी पाला पड़ गया। सीधा घर पहुंचा और फफक-फफक कर रोने लगा। घरवाले सब परेशान कि आखिर माजरा क्या है। दीवानने सारे दिन न कुछ खाया न किसीको शक्ल दिखायी, बस, दरवाजा बंद किये पड़ा रहा। एक दिन बीता, दो दिन यूं ही बीत गये। तीसरे दिन ख्याल आया, अरे मनुआ, तू इतना रोता क्यों है? मर्द है तो चल, राजाकी चुनौती मान ले और इस कमलके पौधेको खोज निकाल। इस विचारका आना था कि मानों सारे शरीरमें बिजली दौड़ गयी। दीवान उठ बैठे। खाना खाया, कुछ सत्तू पोटलीमें बांधकर और लाठी लेकर चल पड़े कमलकी खोजमें। चलते गये, चलते गये, आखिर एक पहाड़ पासको आ पहुंचे। नाला इस पहाड़को काटकर आ रहा था। कमल पहाड़के भी उस पारसे आ रहे थे। इधर जाकर देखा, उधर भटककर देखा। पहाड़को पार करना असंभव था। लेकिन राजपूत बच्चा एक बार निश्चय करनेके बाद वापिस भी कैसे जाता? उसने कपड़े उतारकर एक पेड़से बांध दिये, सत्तू भी वहीं रख दिया और अपने-आप नालेमें कूदकर प्रवाहसे उलटा तैरने लगा। थोड़ी दूरतक रोशनी रही, आगे चलकर

रास्ता तंग होता गया और अंधेरा छाता गया। अब हाथको हाथ न सूझता था, जरा इधर-उधर होते ही पहाड़से टक्कर हो जाती। एक बार मनमें आया, चलो लौट चलें, पर रास्ता इतना तंग था कि लौटना भी असंभव। खैर, दीवान भगवान्का नाम लेकर बढ़ते गये। थोड़ी दूर जानेपर रोशनी दिखायी दी। अब आशा बंधी और आगे चले तो पहाड़को पार करके खुले मैदानमें आ पहुंचे। अब नालेके किनारे-किनारे ऊपरकी ओरको चल पड़े। कुछ ही दूरीपर देखा, नालेके दोनों ओर बड़े-बड़े खम्भे बने हुए थे और उनको आधार बनाकर एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर खड़ा था। दीवान निःसंकोच भावसे मंदिरमें घुस गये। देखते क्या हैं, चार दिशाओंमें चार मुर्दे पद्मासन लगाये बैठे हैं। उनके शरीर सूख चुके हैं, केवल हड्डियांपर चमड़ी लिपटी हुई है। पांचवां मुर्दा मन्दिरके बीचों-बीच टंगा है उसमेंसे रह-रहकर खूनकी एक-एक बूंद नालेमें टपकती है और पानीको छूते ही कमल बन जाती है। 'आहा, तब यह रहस्य है इन कमलोंका' दीवानके मुंहसे निकला। पांच पांच मुर्दे रखे थे पर मन्दिरका वातावरण वीभत्स होनेकी जगह सुहावना था। दीवान लौट पड़े।

वापसीमें कोई कठिनाई न हुई। दीवान सीधे राजमहलके द्वारपर जा पहुंचे और महाराजको खबर करवायी कि मैं कमलका रहस्य जानकर आ गया हूं। राजाने रातके आठ बजे एकांतमें मिलनेका समय दे दिया। दीवान पहुंचे। राजाने बड़ा आदर-सत्कार किया। दीवानने सारा हाल कह सुनाया। राजा बोले, "चाचाजी, आप इस सबका अर्थ समझे? दीवानने कहा, नहीं। राजाने बतलाया, 'वे चारों दिशाओंके चार मुर्दे तो आप चारों अधिकारी हैं जिनका कर्मभोग समाप्त हो गया है और इसीलिये उन्हें राज्यके उच्च पदोंसे हटा दिया गया है। पांचवां मैं हूं। मुझे अभी इस राज्यकी सेवा करनी है और ऐसे कर्म करने चाहियें जो कमलका रूप धारण करके संसारमें सौंदर्य और सुरभि फैलाये। यही हैं आप लोगोंके हटाने और मेरे गद्दीपर आ-जानेका रहस्य !

(लक्ष्मीप्रसादजीसे सुनी हुई लोकगाथाके आधारपर)

क्या आप इनके नये नाम जानते हैं ?

१. कालीकट २. भिलसा ३. बनारस ४. संयुक्त प्रांत ५. कांजीवरम।
६. एलिचपुर ७. विजागापटम ८. वेजवाड़ा ९. देवरिया १०. मिहिजाम

उत्तरः १. कोजीकोड २. विदिशा ३. वाराणसी ४. उत्तर प्रदेश ५. कांचीपुरम्
६. अचलपुर ७. विशाखापट्टणम् ८. विजयवाड़ा ९. कृष्णगढ़ १०. चित्तरंजन॥

लल्लेश्वरी

--श्री हीरो

लल्लेश्वरी काश्मीरकी सर्वप्रथम कवियित्री थीं। इन्होंने भी प्रेमदीवानी मीराकी भांति लोक-लाज और घर-गृहस्थीके बंधनोंको त्यागकर तपस्या और शिवकी भक्तिको अपना लिया था।

लल्लका जन्म १३३५ ई. में एक पुराने काश्मीरी गांव पुराणाधिष्ठानमें एक ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। इस कालमें काश्मीरमें हिंदू शासकोंके बाद मुसलमान बादशाहोंका दौर शुरू हो गया था और साथ ही ईरानसे इस्लामके प्रचारक भी यहां आकर बसने लगे थे। मुसलमान सूफी भी इसी समय यहां पहुंचे हुए थे और इस्लामके प्रचारमें अपने ढंगसे सहायता करते थे।

इस समय अधिकतर काश्मीरी शैव मतके अनुयायी थे। यहां भी भारतके अन्य हिस्सोंकी भांति विद्वान संस्कृतका अध्ययन करते थे। परंतु प्रत्येक व्यक्ति यह भाषा न समझ पाता था। धर्मकी प्रथाएं कुछ ऐसी रूढ़ियां बन गयी थीं जो इस्लामके साथ मेल न खाती थीं। ऐसी हालतमें इस्लाम और ब्राह्मण-धर्ममें टक्कर स्वाभाविक थी। ऐसे संकटके समय ऐसे पथप्रदर्शक की आवश्यकता थी जो युग-धर्मको भलीभांति समझकर सबको रास्ता दिखाये। धन्य है लल्लेश्वरी जिसने ऐसी विपत्तिके समय जन्म लिया व भारतीय परंपराकी रक्षा की।

लल्लके जन्मके समय सुल्तान अलाद्दीन राज्य करता था।

उस समयके रिवाजके अनुसार लल्लका विवाह बाल्यावस्थामें ही पांपोरके एक ब्राह्मण-पुत्रसे हो गया। लल्लको कितनी शिक्षा दी गयी थी यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। उस समय ब्राह्मण बालकोंको घरपर ही गीता और धर्मकी पुस्तकें पढ़ायी जाती थीं। शायद लल्लकी पढ़ाई भी इसी प्रकार घरपर हुई होगी। वे स्वयं कहती हैं:

परान परान ज्यव-ताल फजिम।

अर्थात् पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ व तालू घिस गये।

लल्लके ससुर इनसे बहुत प्यार करते थे परंतु सौतेली सास अत्यंत कठोर थीं। कहते हैं कि बहूके थालमें सास चावलोंके नीचे एक पत्थर रख दिया करती थी ताकि चावल ज्यादा दीखें। एक सालतक बहू इस ज्यादतीको चुपचाप सहती गयी। परंतु जब ससुरको इस बातका पता चला तो उन्होंने अपनी स्त्रीको बुरी तरह डांटा। सासने सोचा, लल्लने मेरी चुगली की है इसलिये वह लल्लके प्रति और भी अधिक कठोर हो गयी। इतना ही नहीं, उसने अपने बेटेके भी कान भरने शुरू कर दिये, फलस्वरूप लल्लका जीवन वहुत ही दुखमय हो गया। परंतु वह जिस उद्देश्यके लिये पृथ्वीपर आयी थी बचपनकी इस तपस्याने उसे उसके लिये तैयार किया।

भारतके अन्य संतोंकी भांति लल्लके बारेमें भी कई चमत्कार प्रसिद्ध हैं। वे सत्य हैं या झूठ इसका कोई प्रमाण नहीं है, हां, वे उसके चरित्रपर कुछ प्रकाश जरूर डालते हैं।

ससुरालमें लल्लेश्वरी प्रति दिन सवेरे वितस्ता नदीपर जाया करती थी। वहां वह नट केशव भैरवके पवित्र स्थानपर थोड़ी देर जप-तप करती और लौटते समय पानीका घड़ा भर लाती। विमाताके भड़कानेपर लल्लका पति यह देखने गया कि लल्ल आखिर रोज सवेरे कहां और क्यों जाती है। लल्लका जप-तप उसे पागलपन लगा और वह जब घड़ा भरकर लायी तो गुस्सेमें पतिने घड़ा फोड़ दिया। परंतु आश्चर्य, पानी नीचे नहीं गिरा। बहूने चुपचाप घर आ उस पानीसे सारे बर्तन भर दिये और बाकी पानीको बाहर फेंक दिया। वह पानी जहां गिरा वहां एक तालाब बन गया और आज भी लल्ल तालके नामसे प्रसिद्ध है।

लल्ल एक तरफ ससुरालमें कष्टोंके द्वारा तपस्वी जीवनका अनुभव पा रही थी और दूसरी ओर उसकी ज्ञानकी प्यास बढ़ती जा रही थी।

उन दिनों काश्मीरमें प्रसिद्ध श्रीकंठ शैव मतके बड़े पंडित थे। ये लल्लके मामाके कुलगुरु थे। उन्हें लल्लकी बचपनकी प्रतिभाका ज्ञान था इसलिये वे उसे ससुरालमें भी ज्ञान-ध्यानकी बातें समझाते थे। अंतमें एक दिन ऐसा आया जब लल्ल घर-गृहस्थी त्याग अपने भगवान्के पूजा-पाठमें लग गयी और कुछ समय पश्चात् उसने अपने कुलगुरुसे दीक्षा ली। परंतु कुछ ही समय बाद वह अपने गुरुसे भी आगे निकल गयी। श्रीकंठने कहा है:

गव चाठ ग्वरस खसिथई, सुयवर दितम देवा।

शिष्य गुरुसे भी आगे बढ़ गया। हे देव, मुझे भी ऐसा ही वर दे।

गृहस्थी त्यागनेके बाद वह जगह-जगह घूमती रही और उस समयके प्रसिद्ध पंडितों, सूफियों व मुसलमान प्रचारकोंसे मिली। इसी समय उसके भीतरका कवि जागा और उसकी वाणी लल्लकी भाषामें फूट पड़ी। लल्लने अपनी पैनी प्रतिभासे अपने युग-धर्मको पहचानकर जो संदेश दिया उससे लोग आजतक प्रभावित होते हैं।

लल्लने सिद्ध श्रीकंठके अलावा दो बड़े धार्मिक व्यक्तियों शाहमदान व शेख नूरुद्दीन वलीसे परमार्थकी चर्चा की। शेख नूरुद्दीनको काश्मीरी नुंद ऋषिके नामसे भी याद करते हैं।

सत्यकी खोज करनेवाले संतोंकी भांति लल्लको भी लोगोंका भला-बुरा सुनना पड़ा। परंतु वह भी सच्चे योगियों व भगवान्के भक्तोंकी तरह मान-अपमानसे विचलित नहीं हुई। मीराकी भांति वह सदा अपने शिवकी पूजामें मस्त रहती थी। उसकी बाह्यावस्था देख बच्चे चिढ़ाते और तंग करते थे परंतु इसपर उसका तनिक भी असर न होता था। एक बार लल्लने कहा:

हासा बोल परिन्यम् सासा न्य मनि वासा खेदन हिये।
योदवनय शंकर भंकच आया, मुकरि सासा मल क्या प्यये॥

अगर मैं शंकरकी सच्ची भक्त हूं तो बच्चे मेरी हजार बार खिल्ली उड़ायें, मेरे मनमें इसका तनिक भी खेद नहीं है। भस्मसे शीशेपर मैल क्यों जमेगा, राखसे तो मन-रूपी दर्पण और भी अधिक साफ हो जाना चाहिये।

युस हो मालि ह्यडेम गेल्यम् मसखरी कर्यम्, सुहो मालि मनस खर्यम न जांह।
शिव पनुन यलि अनुग्रह कर्यम्, लूकह हूंद हेडुन म्य करेम क्याह।

जो चाहे मुझे चिढ़ाये, मेरा मजाक उड़ाये, मुझे कभी बुरा नहीं लगेगा। जब मेरा शिव मुझपर कृपा करेगा तो लोगोंका चिढ़ाना मेरा क्या बिगाड़ सकता है?

लल्लकी निगाह बड़ी पैनी व साफ थी। चेहरा देखकर ही वह व्यक्तिका चरित्र भांप

लेती थी। बालक नुंद ऋषिको देखकर उसने कहा था कि वह एक बड़ा ही नामी योगी होगा। जब लल्लको यह पता चला कि नुंदकी मांका नाम सदर यानी सागर है तो झट बोल उठी:

सोद्रह मंजय छि मोख्तह नेरान।

सागरमेंसे ही मोती पैदा होते हैं। और सच नुंद के रूपमें काश्मीरको एक अनमोल मोती प्राप्त हुआ।

एक बार नुंद ऋषि, उनके प्रधान शिष्य बाबा नसरुद्दीन व लल्लमें संत परमार्थकी चर्चा चल रही थी। नसरुद्दीनने कहा:

सिर्यस ह्यू न प्रकाश कुने, गंगि ह्यू न तीर्थ कांह
बाइस ह्यू न बांधव कुने, रञि ह्यू न सुख कांह।

अर्थात् सूर्यके समान कोई प्रकाश नहीं, गंगाके समान तीर्थ नहीं, भाईके समान बंधु और बीवीके समान कोई सुख नहीं। नुंद ऋषिने कहा:

अछयन ह्यू न प्रकाश कुने, कोठयन ह्यू न तीर्थ कांह
चंदस ह्यू न बांधव कुने, ख्यनस ह्यू न सुख कांह।

आंखोंके समान कोई प्रकाश नहीं, टांगोंके समान कोई तीर्थ नहीं, समान जेवके समान बंधु व खान-पानके समान कोई आराम नहीं। परंतु लल्ल बोली:

मयस ह्यू न प्रकाश कुने, पयस ह्यू न तीर्थ कांह
वयस ह्य न बांधव कुने, मयस ह्य न सुखकांह।

अर्थात् भक्तिसे बढ़कर कोई प्रकाश नहीं। परम ज्ञानके समान कोई तीर्थ नहीं, शंकरके समान कोई बंधु व प्रभुके भयसे बढ़कर कोई सुख नहीं।

इस वार्तालापसे हमें ज्ञात होता है कि लल्ल साधना व ज्ञानमें काफी ऊंची पहुंची हुई थी। अपनी अमरवाणीके लिये लल्लने लोगोंकी भाषा काश्मीरी अपनायी। यह काश्मीरकी सर्व प्रथम कवियित्री बनीं और इन्होंने वही स्थान प्राप्त किया जो संस्कृत में वाल्मीकिने, हिंदीमें चंद बरदाई और उर्दूमें वली दखनीने पाया है।

लल्लकी कविताएं व उनके वाक्य काफी मशहूर हो गये हैं। किसान, मजदूर, मांझी व कारीगरतक लल्लके पद गानेकी लालसा रखते हैं।

काश्मीरके सिर्फ हिंदू या मुसलमान ही नहीं बल्कि दोनों ही लल्लेश्वरीको लल माताके नामसे याद करते हैं। परंतु परम साधिका होनेके कारण हिंदू उन्हें लल-योगेश्वरी और मुसलमान लल-आरिफा कहते हैं।

लोगोंका कहना है कि ललका देहांत व्यजबोरकी बड़ी मसजिदके पास हुआ, लेकिन इस बारेमें भी भिन्न-भिन्न लोगोंकी भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। हिंदू कहते हैं कि उनकी आत्मा अग्निकी शिखा बनकर आकाशमें लीन हो गयी। परंतु मुसलमानोंका यह दृढ़विश्वास है कि लल मस्जिदके पास दफनायी गयी। जो भी हो, इतना जाहिर है कि काश्मीरके हिंदू व मुसलमान दोनों समान रूपसे उनके भक्त हैं। लेकिन इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं क्योंकि उन्होंने खुद हिंदू-मुसलमानोंके बीच भेद नहीं माना, वे सदा कहती थीं:

शिव छुय थलि-थलि रोजान, भव जान ह्ययोंद त मुसलमान,
त्रुक अय द्ख पान पनुन परजनाव, सोय छय साहिबस सूत्य जान।

शिव सब स्थानपर मौजूद हैं। इसलिये हिंदू और मुसलमानको अलग-अलग न जान यदि तू बुद्धिमान है तो अपने-आपको पहचान, वही शिवसे पहचान है।

इसी प्रकार कबीर कहते हैं कि हिंदू, तुर्क, मुसलमान, अलग-अलग कैसे हुए, आये तो सब एक ही द्वारसे हैं।

कैसे हिंदु तुरक कहाया, सब ही एकै द्वारे आया।

अथवा

दुई दूर करो, कोई सोर नाहीं।
हिंदु तुरक कोई होर नाहीं॥

लल्लको दिखावा करना एकदम नापसंद था। एक बार नदी वितस्ताके किनारे सिद्ध श्रीकंठ स्नान कर रहे थे। वहांसे गुजरते हुए लल्लने गुरुको देखा व तुरत घाटसे कुछ दूर बैठ एक हंडिया बाहरसे मांजने लगी। इसपर सिद्धने समझाया कि जबतक भीतरसे सफाई नहीं होगी तबतक बाहरकी सफाईसे क्या होगा? इसपर लल्लने तड़ाकसे उत्तर दिया—बाहर स्नान मात्रसे शुद्धि कैसे होगी जबतक भीतरके मन, प्राण शुद्ध न हों। हमारे कबीर भी इसी मतके थे। उन्हें भी दिखावा एकदम नापसंद था। वे भी ढोंगी साधुओं का मजाक उड़ाते हुए कहते हैं:

पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है॥

किसी और प्रसंगमें इन्हीं साधुओंके लिये कहते हैं:

मन ना रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा।
आसन मारि मंदिरमें बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फटाय जटवा बढ़वले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी हो गइले बकरा॥

एक बार लल्ल एक मंदिरमें गयी, वहांके गुरु शालिग्रामकी पूजा कर रहे थे। लल्ल उन्हें समझाना चाहती थी कि भगवान् प्रत्येक स्थानपर हैं, जैसे कि कबीर भी कह गये हैं:

सब घर मेरा साइयां, सूनी सेज न कोय।

या दादू कह गये हैं:

घट घट गोपी, घट घट कान्ह, घट घट राम, अमर अस्थान।

जब गुरुने लल्लके वहां आनेका कारण पूछा तो लल्लने उत्तर दिया—मुझे लघुशंकाकी हाजत हुई, यह सुरक्षित स्थान देख यहां आ गयी। सिद्धने लल्लका यह उत्तर सुन उसे तुरत मंदिरसे बाहर निकाला व बोले, मंदिरमें इस तरहकी बातें करना पाप है। लल्लने पूछा, क्या आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता सकते हैं जहां मैं पेशाब कर सकूं? सिद्धने एक एकांत-स्थान दिखा दिया। लल्लने वहांकी जरा मिट्टी हटायी तो सिद्ध देखकर चकरा गये—वहांसे शालिग्राम निकल आये। इसी तरह लल्लने दो-तीन स्थानोंसे मिट्टी हटायी और प्रत्येक स्थानसे पहली बारकी ही भांति शालिग्राम निकले। इसपर लल्लने सिद्धसे कहा:

देव वटा देवर वटा, हेरि बोन छुय एकवाठ।
पूज कस करख हतो वटा, कर मनस त पवनस संवाठ॥

देव भी पत्थर है और मंदिर भी पत्थर। ऊपर नीचे सब एक ही पत्थरका बना हुआ

है, अरे पंडित, तू किसकी पूजा करता है, अपने मन व प्राणको योगाभ्यासमें एक कर दे।

इस प्रसंगमें गुरु नानक और काबेकी याद आती है। कहते हैं गुरुको काबेकी ओर पैर करके लेटा हुआ देखकर वहांके लोग बिगड़ गये। नानकने कहा, तुम मेरे पैर हटा दो, मैं कब मना करता हूं। कहते हैं कि जब उनके पैर हटाये गये तो काबा भी हटकर उनके पैरोंकी ओर हो गया।

लल्लकी सिर्फ भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी प्रसिद्धि है। इनके कुछ चुने हुए वाक्योंका अनुवाद कई यूरोपियन भाषाओंमें किया गया है। लीजिये, अब आप उनके कुछ श्रेष्ठ वाक्य सुनिये :

लल्ल बो द्रायस लोल रे, छांड़ न लस्तुम द्यन क्योह् राट।
वुद्युम पंडित पननि घरे, सुय म्य रटुमस न्यछतुर तें साथ।

मैं अनुरागसे भरी उसे ढूंढ़ने निकली। ढूंढ़ते ढूंढ़ते दिन-रात एक कर दिये, अंतमें देखा तो पंडित शंकर घरमें ही था, वही मेरी साधनाका शुभ मुहूर्त्त था।

कबीर भी कहते हैं :

इस घट अंतर बाग-बगीचे, इसीमें सिरजनहारा।
इस घट अंतर सात समुन्दर, इसीमें नौ लख तारा।
इस घट अंतर पारस मोती, इसीमें परखनहारा।
इस घट अंतर अनहद गरजै, इसीमें उठत फुहारा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इसीमें साईं हमारा।

जो ज्योतियां और मंगल-वाद्य इस बाह्य जगत्‌में दीखते हैं वे सब इसी शरीरमें हैं। इसी शरीरमें वह विश्वव्यापी अनाहत ध्वनि भी सुनायी देती है। परंतु जिसकी भीतरकी आंखें नहीं हैं वह इस ज्योतिको नहीं देख पाता।

लल्ल कहती हैं :

केंह छिय न्यंदर्य हति, बुदिय, केंचन वो दैन्य न्यसर प्यये।
केंह छिय स्नान करिथ अपूतिय, केंह छिय गेह बजिय अक्रियें।

कुछ व्यक्ति सोते हुए भी जागते हैं और कुछ लोग जागे हुए भी सोते हैं। कुछ स्नान करनेपर भी अपवित्र हैं और कुछ गृहस्थी भोग कर भी कर्मोंके बंधनसे आजाद हैं।

कबीर भी इसी तरह बाह्य आडंबरके विरोधी थे। उनका कहना था कि घरमें ही सब कुछ है घरमें ही रहकर भगवानको खोज। वे तो कहते हैं :

घरमें जोग भोग घर ही में, घर तज बन नहिं जावै।
घर में जुक्त मुक्त घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।

लल्लने एक बार एक पुरोहितसे कहा :

लज कसिय शीत निवारिय, तृन जल करान आहार।
यि कम्य उपदेश कोरुय हतो बटा, अचेतन वटस सचेतन कथ द्युन आहार।

यह बलिकी भेड़ वस्त्रोंसे तेरी लाज ढकेगी, और तुझे ठंडसे बचायेगी। यह जानवर घास और पानीपर पलता है। अरे मूर्ख पंडित! तुझे यह उपदेश किसने दिया कि बेजान पत्थरपर जानदारकी बलि दी जाय? इसी विषयपर कबीर कहते हैं :

मांस मांस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय;
आंखि देखि जे खात हैं, सो नर नरकहिं जायं।

लल्लका कहना है कि बहुत पढ़ने-लिखनेसे ही भगवान् प्राप्त नहीं होते।

परान-परान ज्यव ताल फज्मि, च्य युग्य क्रिय तजिम न जांह।
सुमरन फिरान न्योठ ते अंगज्य गजिम, मनच्य, दुय थथीय भालि चजिम न जांह।

पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ व तालू घिस गये, परंतु तुम्हारे योग्य साधना न आती थी, नहीं आयी। माला जपते-जपते अंगूठा और उंगली भी घिस गयी मगर मनकी दुई छूटने न पायी।

लल्ल कहती है, क्या यह भी कभी संभव हो सकता है कि सूर्य प्रत्येक स्थानको न तपाकर सिर्फ उत्तम स्थानोंको ही तापे? क्या जल कभी किसीके घरमें इसलिये नहीं घुसता कि वह नीचका घर है? ईश्वरकी इस दुनियामें आदमी आदमीमें भेद मानना उचित नहीं। शिवको पाना बड़ा कठिन है, यह भलीभांति जान ले।

रंगस मंज छुय ब्योन लमुन्, सोरुई चालक मुरक सुख।
चख रुश तय वैर गालक, अदय डेशख शिव सुन्दर मुख।

संसारके इस रंगमंचपर वह तरह-तरहके बाने पहने मौजूद है, उसे पहचान। यदि सब कुछ सह लेगा तो सुख पायेगा। गुस्सा, नफरत और बैर मिटा सका तो शिवका मुख देख सकेगा।

लल्ल कहती हैं कि बेसमझ लोग पोथियां पढ़ते हैं मगर उनपर अमल नहीं करते। जिस प्रकार तोता पिंजरेमें राम राम रटता रहता है, उसी प्रकार ये लोग दिखावेके लिये गीतापाठ करते हैं। पढ़ना तो मेरा हुआ; क्योंकि मैं गीता पढ़कर उसपर अमल भी करती हूं।

अविचारी हा मालि छी पोथ्यन् परान्, थिय तोतह परान 'राम' पंजरस माज।
गीता परान् त हीया लमान, परम गीता त हीथा परान्।

इस विषयपर दादू दयाल कहते हैं:

पद जोड़ै, साखी कहै, विषै न छाड़ै जीव।
पानी घालि बिलोइये, क्योंकर निकसे घीव॥

मनुष्य पद-रचना करता है और साखी कहता है, परंतु वह जीवनके भोग-विषय नहीं छोड़ता। क्या कभी सिर्फ पानीको बिलोनेसे घी निकलता है? इसी प्रकार मलूकदास कहते हैं,

बातों तिमिर न भाजई, दीवा बाती तेल।

सिर्फ दीपक, बत्ती व तेलकी बातें कहने मात्रसे ही अंधेरा नहीं मिटता। इस विषयपर कबीर भी कहते हैं:

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ॥

कबीर उस पांडित्यको बकवास समझते हैं जो केवल बोझ ढोना सिखाता है, जो मनुष्यको जड़ बना देता है। सारे पांडित्यमें वे सिर्फ इस ढाई अक्षर प्रेमको ही प्रधान मानते हैं। अंतमें लल्ल कहती है:

ग्वरन दोपनम, कुनुय वचुन, न्यब्रह दोपनम् अंदर अचुन।
सुनय म्य ललि गव वाख त वचुन, तवय ह्योतुम नंगय नचुन।

गुरुने मुझे एक ही उपदेश दिया कि बाहरसे भीतरकी तरफ चली जाओ। गुरुका यही उपदेश मुझ लल्लके मनमें पैठ गया। इसीलिये कपड़े-लत्ते छोड़कर मैंने उसके प्रेममें नाचना शुरू किया।

इस प्रसंगको मैं मीराके एक पदसे समाप्त करती हूं। मीराने भी अपने कृष्णके लिये लोक-लाज व कुल-मर्यादा त्याग दी थी, वह तो अपने गिरधरके आगे यही गाया करती थी:

श्री गिरिधर आगे नाचूंगी,
नाच नाच प्रिय रसिक रिझाऊं प्रेमी जन को जांचूंगी
लोक लाज कुल की मरयादा या में एक न राखूंगी।

(सस्ता साहित्य मंडल की पुस्तक लल्लेश्वरीके आधारपर)

* * *

जलबुद्बुद्समाना विराजमाना संपत्तडिल्लतेव सहसैवोदेति नश्यति च ।
सम्पत्ति जलके बुलबुलेके समान होती है, वह बिजलीकी तरह उदय होती और नष्ट हो जाती है।

★

आप इसे संयोग कह लें या कुछ और, पर बातें सच्ची हैं। अमरीकाके अखबारोंमें छपा है कि अब्राहम लिंकन और कैनेडी दोनों ही नागरिक अधिकारोंकी समानताके लिये कटिबद्ध थे। लिंकन १८६० में और कैनेडी १९६० में राष्ट्रपति चुने गये। दोनों राष्ट्रपतियोंकी हत्या शुक्रवारको अपनी पत्नीके सामने हुई। दोनोंके उत्तराधिकारी वहांकी सिनेटकी डेमोक्रेटिक पार्टीके सदस्य थे और दोनोंका नाम जानसन था। एवं एंड्रू जानसनका जन्म १८०८ और लिंडन जानसनका १९०८में हुआ था। लिंकन और कैनेडीके हत्यारे अमरीकाके दक्षिणके रहनेवाले प्रगतिशील विचारोंके विरोधी थे। दोनों ही किसी प्रकारकी जांचसे पहले ही मार डाले गये।

लिंकन और कैनेडी दोनोंके राष्ट्रपति कालमें उनके बच्चोंकी मृत्यु हुई। लिंकनके निजी सचिवका नाम कैनेडी था, उसने लिंकनको थियेटर जानेसे रोकना चाहा था; इसी तरह कैनेडीके सचिवका नाम लिंकन था और उसने भी कैनेडीको डलास जानेसे रोकना चाहा था। लिंकनके हत्यारेने पीछेसे लिंकनके सिरपर आघात किया था, कैनेडीके हत्यारेने भी ठीक यही किया। लिंकनके हत्यारेने थियेटरमें वार किया और फिर एक गोदामकी ओर भागा, कैनेडीके हत्यारेने गोदाममेंसे वार किया और थियेटरकी ओर भागा।

दिव्य जननी

दिव्य जननी दिव्य वर दो।
दिव्यताकी ज्योति भर दो।।

क्षुद्र जड़के बंधनोंसे,
बँध रहा स्वच्छंद चैतन।
थक रहा अभिमान मनका,
हो रहा निष्प्राण जीवन।
हे कृपामयि निज करोंसे,
शीघ्र बंधन मुक्त कर दो।।
दिव्य जननी दिव्य वर दो।।

रोग मृत्यु अभाव भयसे,
हो रहा संतप्त जीवन।
अमरताकी, पूर्णताकी,
देखता हूं राह प्रति क्षण।
जननि अब इस देह ही में,
लक्ष्य अपना सिद्ध कर दो।।
दिव्य जननी दिव्य वर दो।।

व्यर्थकी बहु चिंतनाएं,
दे रही हैं वेदनाएं।
धैर्य अब मेरा बँधाओ,
नव अभीप्सा नित जगाओ।
कर सकूं पूरा समर्पण,
शरण अपनी वरण कर दो।।
दिव्य जननी दिव्य वर दो।।

—प्रतापनारायण मिश्र

नया प्रकाश या रूढ़िवाद

--श्री रवींद्र

मेरे एक गुरु थे। उन्होंने यज्ञोपवीत संस्कार कराया था और इस नाते जब मैं उन्हें देखता तब चरण छू लिया करता था। वे भी बड़े स्नेहसे मिलते और जब मिलते तो हिन्दू-धर्मकी दो-चार बातें बता देते और मैं निहाल हो जाता। एक दिन मैंने कहा, गुरुजी, नियमित रूपसे संध्या-हवन करते कई महीने हो गये, अब इन मंत्रोंका अर्थ भी तो बता दीजिये। गुरुजीको मानों बिजलीका धक्का लग गया। बिगड़कर बोले, क्या नास्तिकों जैसी बात करता है, आरीया हो गया है आरीया, वेदोंके भी कहीं अर्थ होते हैं! वेद साक्षात् भगवान्‌की वाणी हैं। खबरदार, आगेसे ऐसी बातें न पूछना। मेरा बाल-हृदय सहम-सा गया, लेकिन साथ ही 'आरीया' लोगोंके बारेमें जाननेकी उत्सुकता भी पैदा हुई। एक बार चोरीसे आर्यसमाज मन्दिरमें घुस गया। देखा 'आरीया' नामक लोग भी मेरे जैसे दो हाथ, दो पांववाले मनुष्य थे। उन लोगोंसे मेल-मिलाप बढ़ा। उन्होंने बताया कि मेरे गुरु रूढ़िवादी थे। अगर मैं चाहूं तो वे मुझे वेदोंके अर्थ समझा सकते हैं। यह नयी बात सुनकर जी खुश हो गया। आखिर मैं रूढ़िवादके अंधेरेमेंसे निकलकर नये प्रकाशमें आ रहा था। वेदोंके अर्थ पढ़े, बड़ा मजा आया, मेरे नये गुरुने बताया कि वेदोंके अंदर दुनियाभरकी विद्याओंका समावेश है। वेदमंत्रोंमें तार और रेडियोसे लेकर अणुबम और राकेटतकका वर्णन है। यहांतक कि यह भी बता दिया कि जहाजमें कितनी कीलें लगानी चाहियें!

मैं कुछ और बड़ा हुआ। आधुनिक विज्ञान पढ़ा। यहां बताया गया है कि भारतीय विश्वास प्रायः रूढ़िवादी होते हैं, मैंने जाना कि मैं एक रूढ़िवादमेंसे निकलकर दूसरे रूढ़िवादमें आ गिरा था। मेरे नये प्रकाश-दाताओंने बताया कि आर्यसमाजी हों या पुराणपंथी सबके सब रूढ़िवादी हैं। भारतीय अपनी पुरानी चीजोंको महत्त्व देते हैं परंतु वे चीजें विज्ञानके एक्सरेके सामने खड़ी नहीं रह सकतीं। मैं अगर सच्ची बातें जानना चाहता हूं तो बेकन, रसेल, जीन आदिकी शरणमें जाना होगा। मैंने भी गांठ बाध ली, जो कुछ यूरोप कहे वह सत्य और जो कुछ भारतीयताके नामपर बताया जाय वह असत्य और रूढ़िवाद। जो कुछ आधुनिक प्रयोगशालाओंसे निकला हो वह ठीक और बाकी सब बकवास। कालिदासको महान् माना क्योंकि गेटेने कहा है, उपनिषदोंको सिरपर रखा क्योंकि शापेनहावरने कहा है। बाकी सबको मनगढ़न्त कहानियोंकी पदवी मिल गयी।

अभी इस नये प्रकाशसे पाला पड़ा ही था कि एक दूर्घटना हो गयी। हमारे एक मित्र बाईसिकिलपर जा रहे थे। धड़ामसे गिर पड़े और हाथकी दो हड्डियां टूट गयीं। उनको तांगेमें बिठाकर एक बड़े हस्पतालमें पहुंचाया। वहांका बड़ा सर्जन अंग्रेज था। बस, हम सबने सोच लिया इससे अच्छी चिकित्सा कहां हो सकती है? उसने हमारे साथीका एक्सरे किया, यह देखा, वह देखा और हड्डियोंको खींच-खींचकर पलस्तर चढ़ा दिया और कहा तीन सप्ताहके बाद फिर देखेंगे, वहां रहनेका, खाने-पीनेका और डाक्टर साहबकी फीस का ख़र्च मिला-

कर लगभग पांच सौकी चपत लग गयी। परंतु हमें संतोष था, आखिर एक साहबसे चिकित्सा करवा सके। खैर, तीन सप्ताह बीतते कितनी देर लगती थी। हम लोग अपने साथीके साथ फिर हस्पतालमें हाजिर हुए। साहबने पलस्तर काटा —— पर यह क्या! हमारी अनसधी आखें देख सकती थीं कि हड्डियां ठीक तरह नहीं जुड़ीं। दोनों हड्डियोंका कुछ हिस्सा बाहर निकला हुआ दिखायी दे रहा था। लेकिन नहीं, यह हमारी भूल होगी। कहीं डाक्टर और वह भी 'साहब' भूल कर सकता है? देखकर डाक्टरने ऐसे मुंह फेर लिया मानों कुछ हुआ ही नहीं। जब उसका ध्यान खींचा गया तो उसने कहा, हड्डियां जरा टेढ़ी बैठ गयी हैं पर अब कुछ नहीं हो सकता। कुछ महीनोंके बाद आपरेशन करना होगा। तबतक कुछ ठीक हो जायगा। हम लोग तो मान गये पर जिसकी हड्डी टूटी थी वह कैसे मानता? घरमें पैसेकी कमी नहीं थी। उसने बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली सब जगह चक्कर लगाये, परंतु सब जगह उसकी थैली हल्की की गयी और लाभ कुछ न हुआ। उसने आशा छोड़ दी और जीवन भर ऐसे ही रहनेके लिये अपने-आपको मना लिया।

कुछ दिन यूं ही बीते। एक उजड्ड-सा आदमी मिला। उसने कहा, अरे, आप भी कैसे लोग हैं। यहांसे पच्चीस-तीस मीलकी दूरीपर एक मुसलमान रहता है, उसे दिखाओ, वह बातकी बातमें ठीक कर देगा। हम लोग हंस पड़े। जिस चीजको बड़े-बड़े डाक्टर ठीक न कर सके उसे एक गांवका अनपढ़ ठीक कर देगा। हमने बातको हंसीमें उड़ा दिया परंतु डूबतेको तिनकेका सहारा, हमारा मित्र चुपचाप चोरीसे उस गांवमें जा पहुंचा। मियां साहबने हाथ देखा, बोले अभी तो मुझे फ़ुर्सत नहीं है, तुम अपना पता छोड़ जाओ, मैं अपने-आप आकर इलाज कर जाऊंगा। मित्रने सोचा, यह आदमी कितना धोखेबाज है, यूं ही मुझे उल्लू बना रहा है। खैर, वे अपना पता देकर लौट आये और हम लोगोंको उसके ढोंगकी बातें खूब नमक-मिर्च लगाकर सुनायीं। हम लोगोंने भी उसके 'रूढ़िवादी' दिमागका खूब मजाक उड़ाया।

खैर, कुछ दिन और बीते। एक दिन सबेरे ही सबेरे एक साठ वर्षका बूढ़ा हमारे साथीको ढूंढ़ता हुआ आया। खबर आगकी तरह फैल गयी। हम सब इकट्ठे हुए। यह तो वही बूढ़ा था। उसने हमारे साथीका हाथ देखा। फिर एक हरी-हरी चटनी उसपर लगाकर फटे कपड़ेकी पट्टी बांध दी। उसने कहा, इसे ऐसा ही रहने दो। दो-तीन दिन बाद आकर बदल जाऊंगा। हम सब नये प्रकाशके उपासक साईंसके विद्यार्थी और अध्यापक इस रूढ़िवादीको बड़े विस्मयसे देख रहे थे, परंतु हमें विश्वास था कि इस बार उसका भंडा फूटकर रहेगा। तीन दिन बाद वह फिर आया, पट्टी खोली हाथको धोया और फिरसे चटनी लगाकर चला गया। दो दिनके बाद उसने पट्टी खोली तो हम लोगोंकी 'वैज्ञानिक' आंखें फटी रह गयीं। जिस स्थानपर चटनी लगायी गयी थी उस स्थानपर हड्डियां मोमकी तरह नरम हो गयी थीं। उसने हममेंसे एकसे कहा, लो, जरा इसकी उंगलियां तो पकड़ो। एक लड़केने उंगलियां पकड़ लीं और बूढ़ेने मालिश करनी शुरू कर दी। हमने देखा, बाहर निकली हुई हड्डियां भीतरको धंसने लगीं और थोड़ी देरकी मालिशके बाद दोनों हड्डियां अपन स्थानपर आ गयीं। बूढ़ेने एक तेल लगाया और बांसकी पांच-सात खपचियां लेकर उसके हाथपर बांध दीं और एक सप्ताह बाद खोल डालनेको कह गया। हम लोगोंने आग्रह किया कि वह अपने-आप आकर खोले तो वह मान गया। उसने आकर हाथ खोला और कहा, अब तुम

इस हाथसे जो काम करना चाहो कर सकते हो, यह बिलकुल ठीक है। हमारे साथीने उसे कुछ रुपये देने चाहे तो बूढ़े मियांने झट इंकार कर दिया। बोले, मैंने क्या किया है? जो कुछ किया है अल्लाहने किया है, तुम उसीको धन्यवाद दो। फीसकी तो बात ही क्या, उसने किरायातक न लिया।

उसने नये प्रकाशके अनुसार धनका मूल्य न जाना था।

अब हम लोग अपने साथीको लेकर उन अंग्रेज साहबके यहां जा पहुंचे। उन्होंने हाथ देखा तो जरा चकराये, फिर एक्स-रे किया तो हड्डियां बिलकुल ठीक तरहसे जड़ी हुई मिलीं। उन्होंने बड़े चावसे पूछा, कहां आपरेशन करवाया? वे सोच ही न सकते थे कि शल्य-क्रियाके बिना किसी तरह यह हाथ ठीक हुआ होगा। जब सारी बात सुनी तो उनका चाव समाप्त हो गया। इतने बड़े डाक्टर एक साधारणसे अशिक्षित आदमीकी रूढ़िवादी बातपर कान क्यों देने लगे।

इस तरहकी कई घटनाएं हुईं। कई लोगोंकी हड्डियां टूटीं और जब डाक्टर ठीक न कर पाये तो लकीर पीटनेवाले प्राचीन परंपरावाले लोगोंने ठीक कर दिया। परंतु फिर भी हमारे वैज्ञानिक इस प्रक्रियाको देखनेके लिये भी तैयार न हुए क्योंकि चिकित्सा करनेवालोंको अंग्रेजीका एक अक्षर भी न आता था और उन्होंने किसी कालिजमें शिक्षा न पायी थी। हमें सर सी. वी. रमणकी वह बात याद हो आयी जब उन्होंने कहा था कि भारतीय वैज्ञानिकोंमें साहसकी कमी है। वे अपने अध्ययनसे और परीक्षणोंसे किसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं तो पहले यह देखते हैं कि कोई यूरोपीय वैज्ञानिक कहीं उनका विरोध तो न करेगा। जबतक यूरोप हमारी बातको स्वीकार न कर ले तबतक हमें स्वयं अपने ऊपर भी विश्वास नहीं होता।

यहांपर हमें हर्बर्ट बारकर नामक एक हड्डी जोड़नेवालेकी याद आती है। यह आदमी कुछ विशेष पढ़ा-लिखा न था। परंतु टूटी हड्डियां बैठानेमें निपुण था। एक प्रसिद्ध लार्डकी स्त्रीकी हड्डी टूट गयी थी और वह पंद्रह वर्षतक इधर-उधर धक्के खाती रही। हारकर उसने बारकरकी शरण ली। बारकरने उसे टेनिस खेलनेके योग्य बना दिया। इस घटनासे बारकरकी ख्याति चारों ओर फैल गयी और जगह-जगहसे लोग उसके पास आने लगे। डा. एक्सम नामक एक डाक्टरको उसके कामपर विश्वास हो गया और वह इसकी सहायता करनेके लिये आने लगा। यूरोप और अमरीकामें एक नियम है कि यदि कोई डाक्टर किसी गैर डाक्टरके काममें सहायता दे (चिकित्सासंबंधी) तो उसका नाम डाक्टरोंकी सूचीसे काट दिया जाता है, इसलिये एक्समका नाम कट गया और वह चिकित्सा करनेके अयोग्य ठहराया गया।

१९१४ में जब पहला महायुद्ध छिड़ा तो बारकरने सैनिकोंकी सहायताके लिये अपनी सेवाएं देनी चाहीं, पर डाक्टरोंकी सलाहसे उसे बैरंग वापिस कर दिया गया पर इसपर भी बारकरका उत्साह कम न हुआ। युद्धसे लौटे हुए सैनिकोंमें बहुतसे ऐसे थे जिनके जोड़ अकड़ गये थे या हड्डियां टूट गयी थीं। बारकरने व्यक्तिगत रूपसे उनकी सहायता शुरू कर दी। उसके परिणामोंसे संतुष्ट होकर सरकारने उसकी सेवाएं स्वीकार कर लीं और युद्धके बाद पार्लमेंटके ३०० सदस्योंने मिलकर जनरल मेडिकल काउंसिलके पास आवेदन-पत्र भेजा कि बारकरकी सेवाओंके बदले उसे डिग्री प्रदान की जाय पर काऊंसिलने आवेदन-पत्रको कूड़े-दानीमें फेंक दिया। पंचम जार्जने बारकरकी सेवाओंसे संतुष्ट होकर उसे 'नाइट' की उपाधि दी।

आखिर १९१४ में डाक्टरोंने बारकरको मान्यता दी और उसे इंगलैंडके बड़े-बड़े हड्डीके

डाक्टरोंके सामने अपनी कलाका प्रदर्शन करनेके लिये निमंत्रण दिया गया। यह तो हुआ, परंतु एक्समको मरनेतक माफ न किया गया। वह तो विभीषण था न!

यह और इस प्रकारकी अन्य घटनाएं मुझे यह सोचनेपर बाधित करती हैं कि नया प्रकाश कहां है और रूढ़िवाद कहां।

---:०:---

प्राथमिक सहायता

प्राथमिक सहायताकी थोड़ी-बहुत जानकारी दैनिक जीवनके विविध क्षेत्रोंमें बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

प्राथमिक सहायता पहुंचाते समय हमें याद रखना चाहिये कि हम डाक्टर नहीं हैं, हमारा कर्तव्य है शीघ्रातिशीघ्र रोगीके इलाजकी व्यवस्था करना, डाक्टरको खबर देना और यदि रोगीकी अवस्था ऐसी है कि उसे हिलाया-डुलाया जा सकता है तो उसे अस्पताल पहुंचानेकी व्यवस्था करना। फिर इस बीच जो थोड़ा बहुत समय मिले उसमें रोगीको अधिकसे अधिक आराम पहुंचानेकी व्यवस्था करनी चाहिये। परंतु यदि रोगीकी हालत बहुत खराब हो तो कुछ उपचार करके डाक्टरके आनेतक स्थितिको संभाल रखनेकी कोशिश करनी चाहिये। ऐसी तीन स्थितियां हैं जिनमें हमें भी डाक्टरका इन्तजार किये बिना रोगीकी तुरंत सहायता करनी चाहिये। वे तीन स्थितियां ये हैं:—

(१) रक्तका वेगसे बहना, (२) सांसका रुक जाना, (३) आक्षोभ या 'शाक' लगना।

अतः हम इन तीनों स्थितियोंपर विचार करेंगे और देखेंगे कि ऐसी विकट स्थितिमें डाक्टरके आनेतक रोगीको कैसे जिन्दा रखा जा सकता है। परंतु जिस चीजपर ध्यान देनेकी अत्यधिक जरूरत है वह यह है कि सभी कार्य विश्वासपूर्वक, उचित रूपमें और शीघ्रातिशीघ्र करने चाहियें तभी हमें सफलता मिल सकती है।

रक्तपातः अत्यधिक रक्तपात रोगीको मृत्युके द्वारतक पहुंचा देता है। रक्त ही हमारे शरीरकी जीवनी-शक्ति है। यह हमारे शरीरके समस्त कोषाणुओंतक खाद्य पदार्थ पहुंचाकर उन्हें जीवित रखता है। रक्त अधिक मात्रामें निकल जाय तो शरीरका जिन्दा रहना कठिन हो जाता है। अतः यदि हम देखें कि किसीको अत्यधिक चोट लगी है और जख्मसे बहुत खून बह रहा है तो हमें सबसे पहले उसे रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिये। अब प्रश्न यह है कि उसे रोका कैसे जाय? खूनको रोक सकनेसे पहले यह जानना जरूरी है कि घाव कितने प्रकारके होते हैं जिनसे रक्त बह सकता है। रक्त-प्रवाहके कारणको जाने बिना उसे रोका नहीं जा सकता। अब हम घाव या चोटके मुख्य प्रकारोंको देखते चलें:—

चुभन या छेदसे होनेवाले घाव: ऐसे घाव किसी तेज औजारसे चोट आनेपर या किसी चीजके गड़ जानेपर हो जाते हैं। जख्मका मुंह छोटा पर अधिक गहरा होता है।

चीरे हुए या कटे हुए घाव : मशीनपर काम करते समय शरीरके किसी अंगके उससे अड़ जानेसे, या किसी जानवरके पंजेसे खुरचे जानेपर जो जख्म हो जाता है उसे कहते हैं।

कटे हुए घाव : किसी तेज धारवाले औजारसे लम्बा चीरा लग जानेपर जो जख्म होता है उसे कटे हुए घाव कहते हैं।

मूढ चोट : किसी प्रकारके कुंद औजार, घुंसे या किसी भारी चीजके गिरनेसे शरीरके किसी भागमें चमड़ीके नीचे खून बहने लगता है। ऐसी चोटमें खून बाहर नहीं दिखायी देता, अंदर ही अंदर बहता रहता है। बाहरसे केवल एक काला धब्बा दीखता है। ऐसे जख्म बहुत खतरनाक हो सकते हैं। अंदर ही अंदर प्रवाहित होनेवाला रक्त शरीरके अंदर किसी नाजुक स्थानमें इकट्ठा होकर उसे बेकार भी बना देता है। ऐसी चोटोंके प्रति विशेष सावधानी रखनी चाहिये।

रक्त-स्राव दो प्रकारका होता है। धमनीय स्रावमें रक्त सीधे हृदयसे आता है और एकदम लाल होता है। उसका प्रवाह एक जैसा न होकर एक निश्चित तालके साथ होता है। अगर हृदयकी गतिको परखा जाय तो जख्मसे निकलनेवाला रक्त हृदयकी गतिके साथ ताल-छन्द रखता है।

रक्त-शिराओंसे होनेवाला रक्त-स्राव धमनीय स्रावसे भिन्न होता है। शिरायें सारे शरीरके खूनको शुद्धिके लिये हृदयकी ओर ले जाती हैं। इससे निकलनेवाला खून कुछ कालिमा लिये लाल होता है और एक ही गतिसे बहता जाता है।

केशिका रक्त : हमारे शरीरके कोषोंमें केशिकाएं ही रक्त पहुंचाती हैं। हमारे शरीरके समस्त भागोंमें उनका जाल फैला हुआ है। उनसे प्रवाहित होनेवाला रक्त उज्ज्वल लाल रंगका होता है और धीरे-धीरे प्रवाहित होता है।

अब हम विचार करेंगे कि रक्तपातको रोकनेके लिये कौन-से उपायोंका अवलम्बन किया जा सकता है?

साधारण जख्मसे रक्तपातको रोकनेका एक उपाय है जख्मके ऊपर दबाव डालना। साफ रूमाल या ड्रेसिंग पैड मिल जाय तो अच्छा ही है अन्यथा अपने अंगूठेको जख्मपर रखकर सीधे जोर डालनेसे कुछ समय बाद रक्त निकलना बंद हो जायगा। यह ध्यान रखना चाहिये कि दबानेवालेका हाथ साफ हो। जब रक्त निकलना कुछ हदतक बंद हो जाय तब जख्मपर एक कपड़ेका टुकड़ा दबाकर ऊपरसे कसकर पट्टी बांध दी जाय।

यह व्यवस्था सभी प्रकारके जख्मोंके लिये लाभकारी नहीं होती। यदि एक कांचका टुकड़ा, हड्डीका टुकड़ा, कील या किसी चीजके चुभ जानेसे जख्म हुआ हो और वह बाह्य पदार्थ शरीरसे निकला न हो तो सीधे दबाव डालना ठीक नहीं। ऐसी स्थितिमे यदि बहुत खून न निकल रहा हो तो रोगीको वैसा ही छोड़कर डाक्टरकी सलाह ली जाय। यदि खून बहुत निकल रहा हो तो एक काम किया जा सकता है। पहले यह देखा जाय कि खून शिरासे निकल रहा है या धमनीसे; यदि धमनीसे निकल रहा हो तो एक बड़ा कपड़ा लेकर जख्मके ऊपरके भागमें लपेट दें, फिर एक पेन्सिल लेकर उस कपड़ेके छोरसे बांध दें, और उसे घुमायें। इससे कपड़ेमें बल पड़ते जायेंगे और बंधन कसता जायगा। दबाव पाकर धमनीमें प्रवाहित होनेवाला खून रुक जायगा। यदि रक्त शिरासे प्रवाहित हो रहा हो तो जख्मके नीचे

की ओर उसी तरहसे कपड़ा बांधकर घुमायें। पर ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा बंधन अधिक देरतक न रहे। इससे बंधे हुए भागमें रक्तका प्रवाह बंद हो जाता है और अधिक देरतक बंधा रहनेसे उस भागके कोषाणु मर सकते हैं। अतः १५ मिनट बाद बंधन खोलकर देखा जाय और रक्त बंद न हुआ हो तो फिरसे बांध दिया जाय और डाक्टरको जल्दी बुलवा लिया जाय। यही तरकीब ऐसी चोटोंमें भी काम आ सकता है जहां केवल अंगूठेके दबावसे रक्तपात रोकना संभव नहीं होता।

किसी भी तरहके जख्मका उपचार करते समय जिस चीजका अत्यधिक ध्यान रखना जरूरी है वह है जख्मको विजातीय पदार्थोंसे सुरक्षित रखना। यदि जख्ममें मिट्टी, कीचड़, मशीन-का तेल आदि ऐसे ही पदार्थ घुस गये हों तो उन्हें यथाशीघ्र साफ करना चाहिये। केवल सफाईसे भी बहुतसे जख्म अपने-आप ठीक हो जाते हैं। कुछ हल्के गर्म पानीमें डेटाल या ऐसा ही कोई कीटाणुनाशक द्रव्य (आजकल उसकी प्रचुरता सर्वत्र है) मिलाकर, एक साफ रुमाल या कुछ साफ रुईको उस पानीमें भिगोकर जख्ममेंसे विजातीय पदार्थ निकाल दें। ध्यान रहे कि सफाई करते हुए आपके हाथकी गति जख्मसे परेकी ओर हो ताकि संपूर्ण विजातीय द्रव्य बाहर निकल जाय। जख्मको धो डालनेके बाद एक साफ कपड़ेकी पट्टी बांधकर उसे डाक्टरके पास ले जानेकी व्यवस्था करनी चाहिये। एक कपड़ेका टुकड़ा लेकर जख्मपर लपेटनेको ही पट्टी बांधना नहीं कहते। वस्तुतः पट्टी बांधना भी एक कला है। अतः उस कलाका अभ्यास करना चाहिये। ठीक जगहपर ठीक तरहसे बंधी पट्टी जख्मके ठीक होनेमें सहायता करती है। पर इस संबंधमें फिर कभी।

अब हम विचार करेंगे कि सांस रुक जानेपर हम मरीजको कैसे सहायता पहुंचा सकते हैं। मनुष्य सांस रुक जानेपर अधिक देर नहीं बच सकता। कारण सांस द्वारा अंदर लिये गये वायुसे ही हमारे शरीरका रक्त परिशुद्ध होता है। और वायुके बिना रक्तसंचार भी असंभव है। सांस रुक जानेके अनेक कारण हो सकते हैं। मुंहमें कुछ फंस जाना, धुंए या विषैली गैससे आक्रांत होना, अकस्मात् गिर पड़ना, गलेमें फन्दा डाल लेना, पानीमें डूब जाना इत्यादि। ऐसे रोगीको सबसे पहले खुली जगहमें ले जाना चाहिये और डाक्टरके लिये आदमी तुरंत भेजना चाहिये। डाक्टरके आनेतक रोगीको ऐसी अवस्थामें रखना चाहिये कि जो थोड़ी-बहुत सांस चल रही हो उसमें कठिनाई न हो।

यदि रोगी पानीमें डूबा हो तो सबसे पहले हमें यह देखना चाहिये कि उसके मुंहमें तो कुछ अटका नहीं है? कभी-कभी ऐसी अवस्थामें जीभ उलट जाती है। ऐसा हो तो जीभको रुमालसे पकड़कर उसे सीधा कर देना चाहिये फिर पेन्सिल या किसी पतली चीजपर उसे उसके दांतोंके बीच फंसा दें जिससे दांत आपसमें मिलकर सांसके लिये रुकावट न उत्पन्न करें। पानी-में डूब जानेसे प्रायः मरीज बेहोश हो जाता है अतः उसके दांत कई बार कस जाते हैं, ऐसी स्थितिमें सावधानीसे उन्हें छुड़ाकर कपड़ेमें लपेटी हुई पेन्सिल रख देनी चाहिये। फिर रोगी-को उल्टा पेटके बल लिटाकर उसका मुंह एक तरफ कर दिया जाय जिससे मुंहसे पानी, लार आदि निकलनेमें रुकावट न हो। यह सब करते समय ध्यान रहे कि हर काम ठीक-ठीक तथा स्फूर्तिके साथ हो। यदि रोगीकी सांस धीरे-धीरे बंद हो रही हो तो उसे कृत्रिम सांस दें।

कृत्रिम सांस देनेकी कई विधियां हैं। यहां शेफरकी कृत्रिम श्वास-प्रणालीके बारेमें कुछ

बतलाया जायगा। रोगीको पेटके बल, उल्टा लिटा कर, उसके मुंहको एक तरफ कर दीजिये। दोनों हाथोंको सिरके दोनों तरफ ऊपरकी ओर फैलाकर, फिर उसकी कमरके पास घुटनोंके बल इस तरह बैठिये कि आपका मुंह रोगीके सिरकी दिशामें हो। अब अपनी दोनों हथेलियोंको रोगीकी कमरपर निचली पसलियोंपर ऐसे रखिए कि आपके दोनों अंगूठे रोगीकी रीढ़की हड्डीके दोनों ओर रहें। फिर थोड़ा झुककर अपने हाथपर शरीरका बोझ देकर दबाइये। परिणामस्वरूप रोगीके फेफड़ेकी अवशिष्ट वायु दबाव पाकर निकल जायगी, फिर हाथको ढीला छोड़ दीजिये, पसलियां ऊपरको उठ जायंगी और फेफड़ेमें वायुके लिये जगह बन जायगी और बाहरी हवा अंदर पहुंच जायगी। इसी प्रणालीसे अपने श्वास-प्रश्वासकी गतिको ध्यानमें रखते हुए कृत्रिम श्वास-प्रश्वासको चलाना चाहिये। इसकी गति कमसे कम एक मिनट में १४ से १६ होना आवश्यक है। यदि पासमें घड़ी हो तो उसके सेकेण्डकी सूईको ध्यानमें रखते हुए १, २, ३, ४, १, २, ३, ४ इसी गतिसे दबाइये और छोड़िये, इससे गति समान रहेगी। यदि इस प्रकार श्वास-क्रियाको अधिक देरतक चलाना एक व्यक्तिके लिये कठिन होता हो तो और एक व्यक्तिको चाहिये कि रोगीकी दूसरी ओर वैसे ही घुटनोंके बल बैठे और पहले साथीके हाथोंपर अपने दोनों हाथ रख दे और जब पहला साथी अपने हाथोंको ढीला छोड़े दूसरा उसकी जगह अपने हाथोंको रखकर क्रियाको जारी रखे।

रोगीको कृत्रिम श्वास देते समय शरीरको ढक देना लाभदायक होगा। यदि रोगी बेहोश नहीं है तो उसे बीच-बीचमें एक-एक चम्मच गरम दूध आदि पिलाया जा सकता है। यह व्यवस्था **रोगीकी हालत देखकर ही करनी चाहिये**।

यदि तुम अकस्मात् सुनते हो कि अमुक आदमीने गलेमें फंदा डाल लिया है और तुम घटनास्थलपर उपस्थित होते हो तो किस प्रकार उसकी सहायता कर सकते हो?

सबसे पहले तुम्हें यह करना चाहिये जिससे रोगीके गलेमें फंसा फन्दा कसने न पावे। उसके शरीरको ऊपर उठा लो। हो सके तो पैरोंके नीचे स्टूल, कुर्सी या मेज रख दो ताकि शरीर लटकने न पावे, फिर फन्देको काट दो। फिर उसे जमीनपर लिटाकर उसके कपड़े ढीले कर दो और कृत्रिम सांस प्रदान करो। डाक्टरको सूचना भेजना अति आवश्यक है।

बहुधा, खासकर बच्चोंके खाते हुए, खाना गलेमें फंस जाता है जिसके कारण श्वास लेना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थितिमें उसका मुंह खोलकर अपने अंगूठेके बादकी दोनों अंगुलियां एकत्रित करके गलेमें फंसी चीज निकालनेकी कोशिश करो। यदि यह संभव न हो तो उसके गलेके भीतर छोटी चीजतक अंगुली पहुंचा दो, उसे उलटी आ जायगी; उसके बाद झट हाथ निकालकर उसके मुंहको नीचेकी ओर कर दो, गलेमें फंसी चीज निकल आयगी। ऐसा करते हुए यदि सांस रुक रही हो तो कृत्रिम सांस देनेकी व्यवस्था करो और डाक्टरको बुलवा भेजो।

यदि कोई व्यक्ति विषाक्त गैस या धुंएमें फंस गया हो तो उसे वहांसे निकालनेसे पहले अपने नाक, मुंहपर रुमाल बांध लेना चाहिये, फिर जितना हो सके झुककर उस स्थानमें प्रवेश कर रोगीको निकल लाना चाहिये। अब बताओ भला झुकना क्यों चाहिये? गैस और धुआं हवासे हल्के होते हैं इसलिये उनकी गति सदा ऊपरकी ओर होती है। अतः जितना तुम जमीनकी ओर झुकोगे उनका असर तुमपर उतना ही कम होगा। रोगीको बाहर लाकर उसके मुंहपर ठंडे जलका छींटा डालो। इससे उसे होश आनेमें आसानी रहेगी। फिर निरीक्षण कर

देखो, सांस कैसा चल रहा है और कहां-कहां चोट लगी है। यदि चोट अन्यत्र है और सांसमें रुकावट है तो कृत्रिम श्वास दिया जा सकता हैं; परंतु चोट यदि पसलियोंमें या पेट-पर लगी हो तो कृत्रिम श्वास प्रदान करनेका दूसरा ही तरीका अपनाना होगा। ऐसी हालतमें रोगीको चित्त लिटाकर सिरके नीचे कुछ चीज डालकर उसे ऊपर उठा दो। फिर एक रूमाल उसके मुंहपर रखकर अपना मुंह उसपर रखकर जोरसे फूंक मारो, फिर मुंह हटा लो, इसकी क्रिया एक मिनटमें १५ बारसे कम न होने पावे। कुछ लोग कहेंगे जिस हवाको हम प्रश्वासद्वारा निकाल देते हैं उसीको रोगीके फेफड़ेमें कैसे पहुंचाया जाय? परंतु याद रखो जिस वायुको हम प्रश्वासद्वारा निकालते हैं वह दूषित तो अवश्य होती है पर वह पूर्णतः दूषित नहीं होती। उसमें भी कुछ अंश प्राणप्रद वायुका विद्यमान रहता है। और कहना न होगा कि विना हवाके मृत्युपथगामी रोगी के लिये इतनी भी प्राणप्रद वायु यथेष्ट होती है। यदि इस प्रकार हम रोगीको कुछ देर भी जिन्दा रख सकें तो हमारा कष्ट सार्थक हो जाता है।

झटका (शाक): झटका या शाक दो प्रकारके हो सकते हैं, शारीरिक और मानसिक; अचानक गिर पड़नेसे, बिजलीका झटका लगनेसे या जल जानेसे स्नायुओंपर एक विशेष प्रकारका दबाव पड़ता है, वैसे ही अचानक प्रिय व्यक्तिकी मृत्यु या कोई अघटनके बारेमें सुननेसे स्नायुओंपर दबाव पड़ता है। इस प्रकारके दबावसे स्नायुओंमें - एक निष्क्रियताकी स्थिति आ जाती है। शरीर ठण्डा होने लगता है। चेहरा पीला पड़ जाता है और मरीज बेहोश हो जाता है। कभी-कभी तो मृत्युतक हो जाती है। ऐसी अवस्थामें सबसे पहले रोगीको गर्मी पहुंचानी चाहिये। यदि रोगी जल गया हो तब भी उसे ढक देना चाहिये। उसके शरीरपरके कपड़ोंको ढीला कर देना चाहिये जिससे कि सांस लेनेमें या रक्त-संचारमें कोई रुकावट न आने पावे। यदि रोगी बेहोश न हो गया हो तो उसे गरम दूध थोड़ा-थोड़ा देना लाभकारी होगा। परंतु ध्यान देनेकी बात यह है कि झटकेके कारण यदि रोगी गिर पड़ा हो और उसके पेटमें चोट आयी हो तो उसे कुछ भी चीज पीनेको तबतक नहीं देना चाहिये जबतक डाक्टर निर्देश न दे। बहुधा पेटमें चोट लगकर अंदर ही अंदर रक्तपात होता रहता है। ऐसी अवस्थामें गरम दूध आदि दिये जानेपर रक्तपात अधिक हो सकता है और रोगीके प्राणोंको भी खतरा पहुंच सकता है।

प्राथमिक सहायता पहुंचाते समय एक चीजका खास ध्यान रखना चाहिये। चाहे जख्म कितना ही अधिक हो, रोगीके प्राणोंपर आ बनी हो और तुम स्वयं भी घबरा गये हो पर कदापि रोगीको उसकी चोटकी गुरुताके बारेमें कुछ भी मत कहो। इसके विपरीत, उसे हिम्मत बंधाओ कि चोट जरा-सी है और वह शीघ्र ठीक हो जायगी। जबतक रोगी अपना हौसला नहीं खो बैठता उसकी अवस्थाकी उन्नतिकी आशा बनी रहती है। मानसिक शक्ति या हौसला ही रोगीको ठीक करनेमें सहायक होता है।

हम लोगोंने आकस्मिक चोटोंके तीन प्रकार व उसके उपचारके विषयमें जाना। यदि इनपर ठीक-ठीक अमल किया जाय तो तुम रोगीको उसकी शोचनीय अवस्थामें भी बहुत सहायता पहुंचा सकते हो। अच्छा, आज यहींसे बिदा लेता हूं। फिर कभी मिलेंगे। तबतक तुम उपर्युक्त पद्धतियोंका अच्छी तरह अध्ययन करो और उनसे काम लेना सीखो। यदि कुछ संशय हो तो अवश्य पत्रद्वारा पूछ सकते हो।

—दिनेश

बालक ध्रुव

--श्री अनुबेन पुराणी

पहला दृश्य

(कई बच्चे खेल रहे हैं। अचानक एक बच्चा रुककर चिल्लाता है।)

एक बच्चा: ठहरो, ध्रुव आ रहा है।

दूसरा: नहीं, नहीं, हम उसके लिये नहीं ठहर सकते।

ध्रुव: मैं तुम्हारे साथ खेलूंगा।

दूसरा: नहीं, हम तुमको नहीं खेलने देंगे।

ध्रुव: क्यों?

दूसरा: तुम राजकुमार थोड़े ही हो, देखो, अपने कपड़े तो देखो, कौन कहेगा तुम्हें राजकुमार?

पहला: और हां, महाराज इसे प्यार भी तो नहीं करते।

ध्रुव: हां, महाराज मुझे बहुत प्यार करते हैं। तुम क्या जानो?

तीसरा: वाह, अगर प्यार करते तो तुम ऐसे भिखारीकी तरह थोड़े ही रहते, उत्तमको देख लो न!

पहला: हां, हां, हम ऐसे अभागेको अपने साथ नहीं खेलने देंगे।

दूसरा: हां, भैया, मेरी मां कहती थीं कि अभागोंके साथ रहकर हम भी अभागे हो जाते हैं।

ध्रुव: नहीं, लेकिन मैं तो यहां खेलूंगा।

तीसरा: अच्छा, हम तुम्हें खेलने देंगे। लेकिन पहले तुम्हें साबित करना होगा कि तुम अभागे नहीं हो।

ध्रुव: हां, हां, कर दूंगा, बोलो, क्या करना होगा?

तीसरा: हमें पिताका लाड़ प्राप्त हो तो हमारे लिये सबसे बड़े सौभाग्यकी बात है।

पहला: मैंने सुना है कि महाराज अपनी गोदमें उत्तमको ही बिठाया करते हैं। अगर तुम भी उनकी गोदमें बैठ सको तो हम मान लेंगे कि तुम अभागे नहीं हो।

दूसरा दृश्य

(उत्तम अपनी मां सुरुचिके साथ बातें करता हुआ आ रहा है।)

उत्तम : मां, तुम मुझसे इतना प्यार करती हो पर ध्रुवको क्यों दुतकारती हो।

सुरुचि : तू तो मेरा बेटा है। ध्रुव तो मेरा नहीं है, मुझे उससे क्या?

उत्तम : पर मां वह तो तुम्हें बहुत प्यार करता है।

सुरुचि : अच्छा, बस कर, देख, तेरे पिताजी आ रहे हैं।

(राजा उत्तानपाद अंदर आते हैं, उत्तम दौड़कर उनसे लिपट जाता है।)

महाराज : (आसनपर बैठते हुए) मां-बेटेकी क्या बातें हो रही थीं?

सुरुचि : (उत्तमको इशारेसे मना करते हुए) हम अभी-अभी आये हैं। आप ही की राह देख रहे थे।

(एक ओरसे ध्रुव दौड़ता आता है। उत्तम राजाकी गोदसे उतरकर उसका हाथ पकड़ लेता है।)

उत्तम : भैया, कितने दिनोंके बाद आये?

सुरुचि : ध्रुव यहां कैसे आये?

ध्रुव : मां, मुझे बच्चे अपने साथ नहीं खेलने देते। कहते हैं, मैं अभागा हूं। एक बार महाराजकी गोदमें बैठ लूं तभी खेलने देंगे।

उत्तम : हां, हां, आओ, हम दोनों बैठेंगे।

(उत्तम हाथ पकड़कर खींचता है, महाराज दोनोंके लिये हाथ पसारते हैं।)

सुरुचि : (बीचमें ही) ना, ध्रुव ना, राजाकी गोद सिंहासन है। उसपर उत्तमका अधिकार है, तुम जाओ।

ध्रुव : मां, मुझे सिंहासन नहीं चाहिये, मुझे सिर्फ पिताकी गोद चाहिये, एक क्षण बैठकर उठ जाऊंगा।

सुरुचि : एक तो क्या, आधे क्षण भी नहीं।

ध्रुव : जो कहोगी करूंगा मां, पर.......

सुरुचि : अगर मेरी कोखसे जन्म लेते तो महाराजकी गोदमें बैठ सकते।

(ध्रुव मुड़कर जाने लगता है। उत्तम 'भैया, ठहरो, भैया, ठहरो', करता हुआ उसके पीछे दौड़ता है।)

उत्तानपाद : तुम रानी नहीं भिखारिन हो, एक क्षण बैठ लेनेसे बच्चेका मन रह जाता।

सुरुचि : हां, हां, मैं ही खराब हूं, जाइये न अपने प्यारे बेटेके साथ, लेकिन फिर मैं आपसे.......

उत्तानपाद : नहीं नहीं, ऐसा न कहो।

सुरुचि : (हंसकर) महाराज, चलिये, भोजनगृहमें सब प्रतीक्षा कर रहे हैं।

तीसरा दृश्य

(ध्रुव और सुनीति। ध्रुव मांकी गोदमें सिर डाले हिचकियां ले रहा है।)

सुनीति : बेटा, तू जो सबका पिता है उसकी गोदमें जाकर बैठ। उससे बड़ा सौभाग्य तो देवोंको भी नहीं मिल सकता।

ध्रुव : वह कौन है मां?

सुनीति : देख, हम रोज जिस मंदिरमें जाया करते हैं न.........

ध्रुव : वह तो पत्थरकी मूर्ति है मां, न बोलती है, न चलती है। ऐसे पिताकी.....

सुनीति : (उसका मुंह बंद करते हुए) शान्तम् पापम्, ऐसी बात मुंहसे नहीं निकालते। बेटा, वे हम सबमें हैं, वे ही तो हवाको चला रहे हैं, उन्हींके कारण हम जिन्दा हैं।

ध्रुव : तब वे मुझे क्यों नहीं दीखते?

सुनीति : उसके लिये अंदरकी आंखें खुलनी चाहियें। मैंने तुझे वेदव्यासकी कहानी सुनायी थी न। वे बचपनमें ही तप करने चले गये थे।

ध्रुव : हां, मां, मैं वनमें जाऊंगा, मैं भी तप करूंगा।

सुनीति : नहीं, बेटा, जंगलमें जानेकी जरूरत नहीं है। घरपर भी तप किया जा सकता है। चल, हम मंदिरमें जाकर भगवान्से प्रार्थना करें।

चौथा दृश्य

(ध्रुव अकेले आ रहे हैं—सामनेसे नारदका प्रवेश)

नारद : (ठिठककर) इस जंगलमें क्या कर रहे हो कुमार?

ध्रुव : (प्रणाम करके) प्रणाम देवर्षि, परम पिता नारायणको खोजने चला हूं। मांने कहा था, जंगलमें तप करनेसे जल्दी मिलते हैं।

नारद : कुमार, जंगलमें शेर, हाथी वगैरह रहते हैं, तुम्हें डर न लगेगा?

ध्रुव : डर काहेका मुने, क्या नारायण उनके भी पिता नहीं हैं? फिर वे मुझे क्यों डरायगे?

नारद : और भूख लगेगी तो खाओगे क्या?

ध्रुव : भूख लगेगी ही नहीं, मैं ऐसी जोरसे बुलाऊंगा कि नारायणको जल्दी-जल्दी आना पड़ेगा।

नारद : अच्छा कुमार, मैं तुम्हें जल्दी बुलानेका तरीका बताता हूं।

ध्रुव : हां, हां, भगवन्, तब तो मैं नारायणको और भी जल्दी बुला सकूंगा।

नारद : कुमार सबसे पहले चुपचाप मनको शांत करना चाहिये। फिर अपना सारा बल लगाकर मन-ही-मन यह मंत्र बोलते हुए नारायणको बुलाना चाहिये। (कानमें मंत्र देते हैं)

ध्रुव : (बड़े आनंदसे) ॐ नमो नारायण; अहा, कैसा अच्छा मंत्र है, बड़ा अच्छा हुआ कि आप मुझे मिल गये।

(ध्रुव नारदको प्रणाम करके जंगलकी ओर जाते हैं। नारद खड़े देखते रहते हैं।)

पांचवां दृश्य

जंगलमें ध्रुव घूम रहे हैं। एक ओरसे शेर आता है। ध्रुव दौड़कर उसके पास पहुंच जाते हैं और कहते हैं, क्यों, तुमने नारायणको देखा है? शेर गरजकर ध्रुवपर झपटना चाहता है पर ध्रुवकी शांत दृष्टिसे वह भी शांत हो जाता है और धीरे-धीरे दूर चला जाता है। एक हरिण आता है। ध्रुव उससे पूछते हैं, तूने नारायणको देखा है? तेरी आंखें कितनी सुन्दर हैं, इन्होंने जरूर दर्शन किये होंगे। हरिण ध्रुवके चारों ओर चक्कर लगाकर घास खाता-खाता दूर निकल जाता है। ध्रुव एक पेड़के नीचे बैठ जाते हैं, उनकी आंखें मुंद जाती हैं और ॐ नमो नारायण मंत्रका जाप शुरू कर देते हैं। आवाज धीमी होते-होते बंद हो जाती है।

छठा दृश्य

(सुनीति और नारद)

नारद: देवि, तुम धन्य हो जिसने ऐसे पवित्र भक्तको जन्म दिया।

सुनीति: महाराज, अच्छा होता, अगर वह भक्त न बना होता। आपको मांके हृदयका क्या पता! कैसा तड़प रहा है मेरा मन! मेरा बेटा जंगलमें मारा-मारा फिर रहा होगा, उसे भूख लगेगी तो कौन खाना देगा, जंगली जानवरोंसे कौन उसकी रक्षा करेगा? नहीं महाराज, नहीं, मुझे उसे भक्त नहीं बनाना है। आप जाकर उसे वापिस ले आइये।

नारद: देवि, हरिकी कृपासे मैं तुम्हारे हृदयकी व्यथाको समझ सकता हूं पर दिव्य-दृष्टिसे.... (अचानक उत्तानपादका प्रवेश, सुनीति उन्हें देखते ही रोने लगती है।)

सुनीति: महाराज, निर्दोष बालकको क्यों?......आप मुझसे नाराज थे तो मुझे फांसीपर चढ़ा देते, मैं हंसते-हंसते जीवन त्याग देती।

उत्तानपाद: सुनीति, तू मां है और मैं बाप हूं। क्षणिक दुर्बलतामें मैंने बच्चेका अपमान कर डाला; अब पश्चात्तापकी ज्वालामें जल रहा हूं। क्षमा करो महिषी... (नारदकी ओर मुड़कर) देवर्षि, बचाइये, मैं ध्रुवके जानेके बाद एक क्षणके लिये सोयातक नहीं हूं। न राजकाज सूझता है न खान-पानका होश है। पुत्र-शोकमें पागल होकर आपका सम्मान करनातक भूल गया।

नारद: महाराज, मैं आपकी स्थिति समझ सकता हूं। मैं अभी देवी सुनीतिको ध्रुवके भविष्यके बारेमें दिव्य दृष्टिसे देखकर कुछ बतानेवाला था। अच्छा हुआ आप भी आ गये। सुनिये, ध्रुवको पांच मासके अंदर भगवान् नारायणकी प्राप्ति होगी। सुनिये, तबतक उसकी रक्षा उसकी अपनी सरलता, उसकी.....पवित्रता और उसकी लगन करेगी। उसके बाद आपको अपना पुत्र शीघ्र मिल जायगा।

(सुरुचि दौड़ी आती है और सहमी-सी खड़ी हो जाती है।)

उत्तानपाद : महादेवी, आपको दुखी जनोंके पास आनेकी क्या जरूरत ?

सुरुचि : क्षमा करो बहिन, मैंने जरा भी न सोचा था कि मेरी कुटिल जीभसे निकले शब्दोंको कुमार इतनी गंभीरतासे लेंगे।

उत्तानपाद : अब क्या है, तुम अपने पुत्रको लेकर राज्य करो। मैं सुनीतिके साथ अपने पुत्रकी खोजमें वनकी ओर जा रहा हूं।

नारद : महाराज, इस दुखी स्त्रीको और न तड़पाइये। अब उसका कोई नहीं है। जबसे आपने मुंह मोड़ लिया तबसे सारे राज्यमें उसके लिये कहीं जगह नहीं बची। आप जानते ही हैं कुमार उत्तमने भी तो मांसे मुंह मोड़ लिया है।

उत्तान : देवर्षि, जानता हूं, सब जानता हूं। दुःखसे कातर पिताके प्रलापपर ध्यान न दीजिये।

सातवां दृश्य

नारायण : ध्रुव, बेटा, आज मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। एक छोटे बच्चेकी अदम्य अभीप्साने मुझे पिताके मंगलमय रूपमें आनेके लिये बाधित किया है। पितासे पुत्र सब कुछ मांग सकता है। बोल, तुझे क्या वर दूं ?

ध्रुव : पिता, मेरे सामने स्वयं आप खड़े हैं तब मुझे किस चीजका अभाव खल सकता है ? बस, मेरी यही इच्छा है कि मुझे हमेशा इसी तरह भाग्यशाली बनाये रखना। मैं आपकी गोदसे कभी न उतरूं। एक क्षणको भी आप मेरी आंखोंसे ओझल न हों, सदा आपका ही स्मरण करूं और गुणगान सुनूं।

नारायण : वत्स, एवमस्तु। मैं तुझे अपने दूसरे रूप नील गगनमें स्थान देता हूं। तू चिरकालतक ध्रुव तारा बनकर चमकेगा लेकिन इस समय तुझे घर लौटना होगा। तेरी मां रो-रोकर अंधी हो गयी है, तेरे पिता श्वास तो लेते ही नहीं, केवल निःश्वास फेंकते रहते ह। जाओ, वत्स इन सबको सुखी करो।

ध्रुव : नहीं, नहीं, भगवन्, मुझे इन चरणोंसे अलग न कीजिये। आप ही मेरे मां-बाप हैं, आप ही मेरे सब कुछ हैं, मुझे यहांसे न हटाइये।

नारायण : हां, ध्रुव, तुम्हारी बात ठीक है। मैं इसीलिये तुम्हें घर भेज रहा हूं कि मैं तुम्हें सुनीति और सुरुचिके द्वारा मांके रूपमें मिलूंगा। उत्तानपादके द्वारा पिता-रूपमें मिलूंगा, उत्तमके द्वारा भाईके रूपमें भी मैं ही मिलूंगा। और प्रजाके द्वारा जनता-जनार्दनके दर्शन दूंगा। और सब तरह तुम्हारी रक्षा करूंगा।

ध्रुव : तो क्या सचमुच मैं हमेशा तुम्हें देख सकूंगा ? भगवन् ! तुम मुझसे अलग तो न होगे न।

संयोगकी बातें

—श्री भूदत्त

उन्नीसवीं शताब्दीके अंतमें बहुतसे वैज्ञानिक आंशिक शून्यक (वेक्यूअम) में विद्युत्-उत्सर्जनसे उत्पन्न होनेवाले अद्भुत प्रभावोंका अध्ययन करनेमें व्यस्त थे। इस विषयकी जानकारीके लिये 'क्रुक्स टचूब' के नामसे प्रख्यात आलेसे उन्हें बहुत सहायता मिली। यह आला एक बेलनाकार नलीका बना होता है। इस नलीमें दो सिरे होते हैं, केथोड और अनोड। शून्यक पम्पके द्वारा टचूबके भीतरकी हवा निकालकर शून्यक उत्पन्न कर दिया जाता है।

क्रुक्सकी टचूब्रमें विद्युत्-उत्सर्जनसे सेवके जैसे हरे रंगकी उत्पत्ति होती है। इस क्रियाको वैज्ञानिक भाषामें 'प्रतिदीप्ति' कहते हैं। सर विलियम क्रुक्स अपने अनुभवके आधारपर इस निर्णयपर पहुंचे कि यह प्रतिदीप्ति कैथोडसे आनेवाली किरणोंके कारण है। इसलिये इन किरणोंको कैथोड किरणें ही कहा जाता है। ये किरणें प्रकाशकी किरणोंके समान शीशेको पार नहीं कर सकतीं परंतु इसके विपरीत ऐल्युमीनियमकी पतली चादरको पारकर बाहर निकल सकती हैं। केवल शीशेपर गिरनेसे ही 'प्रतिदीप्ति' नहीं होती। अन्य कितनी ही ऐसी वस्तुएं हैं जिनपर कैथोड किरणोंके गिरनेसे प्रतिदीप्ति होती है।

एक दिन प्रोफेसर रंटयन क्रुक्स टचूबका अध्ययन कर रहे थे। उनकी प्रयोगशालामें घोर अंधकार था। बाहरका प्रकाश अंदर नहीं आ रहा था। टचूबको भी उन्होंने भली प्रकार काले और मोटे गत्तेसे पूरा-पूरा ढक रखा था। परंतु इस स्थितिमें भी यह देखकर वह स्तब्ध रह गये कि टचूबमें विद्युत्-उत्सर्जन करनेसे दूर रखा हुआ बेरियम प्लाटिनो साइनाइडसे पुता हुआ पट प्रतिदीप्त हो उठा। कैथोड किरणें तो किसी भी सूरतमें गत्तेसे ढकी टचूबके बाहर नहीं आ सकती थीं। विद्युत्-उत्सर्जन बंद करनेसे 'प्रतिदीप्ति' भी बंद हो जाती थी इसलिये उसका कारण अवश्यं ही टचूब था। पर टचूब तो पूरी तरह ढकी थी। इसलिये वह इस निर्णयपर पहुंचे कि हो न हो यह कोई नया तथ्य है।

'प्रतिदीप्ति'को रोकनेके लिये उन्होंने पट और टचूब्रके बीच अनेकों आड़ें खड़ी कीं। काठका तख्ता, कपड़ेका परदा, चमड़ेका परदा आदि लेकर आड़ बनायी पर असफल रहे। फिर धातुकी बनी वस्तुसे प्रयत्न किया। इस बार पटपर धातुकी वस्तुकी परछांई खिंच गयी। इसे देखकर उन्हें परछाईंको फोटोग्राफिक प्लेटपर उतारनेकी इच्छा हुई। पटके स्थानपर फोटोग्राफिक प्लेटको रखा और अपनी पत्नीको टचूब और प्लेटके बीच धातुकी बनी वस्तुको हाथसे पकड़नेको कहा। इस बार फोटोमें एक नयी ही बात देखनेमें आयी। उसमें लोहेके टुकड़ेकी आकृति तो थी ही पर उसको पकड़े प्रोफेसर रंटयनकी पत्नीके हाथकी हड्डियां भी थीं। यह पहला अवसर था जब कि मनुष्यके जीते-जागते शरीरकी हड्डियोंका फोटो लिया जा सका था। जिन नयी किरणोंकी यह करामात थी उन किरणोंके बारेमें अधिक जानकारी न होनेके कारण प्रोफेसर रंटयनने इन किरणोंको एक्स-किरणोंके नामसे संबोधित किया। आज भी वैज्ञानिक इन्हें इसी नामसे पुकारते हैं।

एक्स-किरणोंके आजकल अनेकों प्रयोग हैं। इनसे मनुष्यके शरीरमें लोहे या अन्य धातुओं तथा शीशे आदि हानिकारक वस्तुओंकी उपस्थितिका व्योरा प्राप्त किया जा सकता है। दाद,

कैंसर, अनेकों रोगोंको नष्ट किया जा सकता है। यह केवल चिकित्साका ही साधन नहीं, उद्योग, धातुविज्ञान आदि अनेक विभागोंमें भी इसकी सहायतासे बहुत प्रगति हुई है।

'एक्स-किरणों'के आविष्कारके कुछ महीनों पश्चात् ही एक और वैज्ञानिकने ऐसा प्रयत्न किया जिसके परिणामस्वरूप 'रेडियो एक्टिविटी'का आविष्कार हुआ।

'प्रतिदीप्ति' कोई नयी चीज नहीं है। कितनी ही ऐसी वस्तुएं हैं जिनमें सूर्यके प्रकाशसे नीले रंगकी चमक उत्पन्न होती है । हैनरी बेकरेरको ऐसी कितनी ही वस्तुओंका ज्ञान था पर इनमेंसे यरेनियम और इसके लवणोंमें उनको बहुत रस था। उन्होंने जब यह सुना कि 'प्रतिदीप्ति' शीशेसे 'एक्स-किरणों' की उत्पत्ति होती है तो उन्हें यह विचार आया कि यूरेनियमसे भी संभवतः ऐसा हो सके। उन्होंने काले कागजमें लिपटी फोटोग्राफिक प्लेट ली। उसके ऊपर एक तरफ यूरेनियमके एक लवणका स्फटिक चांदीके सिक्केके ऊपर रखा और उसके पास वैसा ही स्फटिक विना सिक्केके रखा। यह प्लेट इन वस्तुओंके साथ सूर्यके प्रकाशमें रख दी गयी। उनका विचार था 'प्रतिदीप्ति'से एक्स-किरणें निकलेंगी। पहले स्फटिकसे आनेवाली किरणोंके प्रभावसे सिक्केकी आकृति प्लेटपर छप जायगी और दूसरे स्फटिककी किरणोंके प्रभावसे एक साफ चिह्न। और हुआ भी यही। सिक्केकी आकृति भी खिच गयी और साफ चिह्न भी उतर आया। हैनरीने यह अनुमान लगाया कि अवश्य ही 'एक्स-किरणों' की उत्पत्ति हुई है।

अगले दिन यही प्रयोग उन्होंने फिरसे दुहरानेका प्रयत्न किया। पर उस दिन सूर्य बादलोंमें ढका होनेके कारण धूप बहुत ही हलकी थी। प्लेटको दूसरे दिन फिरसे धूपमें रखा पर दूसरे दिन भी धूप हल्की थी। वह और एक दिनकी प्रतीक्षा नहीं कर सके। प्लेटको धोकर देखा तो प्लेट पहलेके जितनी ही साफ उतरी थी। यह देखकर उन्होंने इस प्रयोगको अंधकारमें ही किया। परिणाम एक ही था। इससे वह इस निर्णयपर पहुंचे कि ऐसी वस्तुएं भी हैं जो 'प्रतिदीप्ति' न होनेपर भी एक्स किरणें बिखेरती हैं। लेकिन बादमें यह सिद्ध किया गया कि एक्स किरणें नहीं थीं अपितु एक और ही प्रकारकी नईं किरणें थीं। ये किरणें 'बेकेरेल किरणों'के नामसे प्रसिद्ध हैं।

कुछ ही समय पश्चात् फ्रांसकी श्रीमती क्यूरीने यूरेनियमसे भी अधिक शक्तिशाली किरणें उत्पन्न करनेवाली वस्तु रेडियमकी खोज की। पर इन किरणोंका पूरा भेद १९०२ में ही खुल सका। यह जानकारी मिली कि इन किरणोंमें अनेक छोटे-छोटे अति सूक्ष्म कण हैं जो किसी कारणवश खास तत्त्वोंके ऐटमोंसे स्वयं ही अलग हो जाते हैं। इसी क्रियाको 'रेडिओ ऐक्टिविटी' कहते हैं! साथ-साथ यह भी सिद्ध किया गया कि ऐटम तत्त्व सबसे छोटा अंश नहीं है। इससे भी सूक्ष्म अन्य अंश हैं।

आजकलके ऐटामिक रिऐक्टर रेडिओ ऐक्टिविटीकी ही देन हैं। इस नन्हेंसे आविष्कारने मनुष्यके लिये अपार ऊर्जाके भंडार खोल दिये हैं। यह आविष्कार इसलिये संभव हुआ कि सन् १८९६, फरवरीमें कुछ दिनोंके लिये सूर्य बादलोंमें छिपा रहा और हेनरी एकके बाद एक गलत विचारको सत्य समझकर आगे बढ़ते रहे! यह कहना कठिन होगा कि विज्ञानका इतिहास इस प्रकारका दूसरा भी कोई इतना असाधारण संयोग उपस्थित कर सका हो। ★

जमींदार और उसकी तीन लड़कियां

—श्री भूमा

एक जमींदार था। उसके तीन बहुत ही खूबसूरत लड़कियां थीं। पर भाग्यकी बात एक गूंगी, एक बहरी और एक तुतली थी। गूंगी सबसे बड़ी थी, मझली तुतली थी और सबसे छोटी आठ सालकी लड़की बहरी थी। एक तो लड़कियां, फिर गूंगी, बहरी और तुतली, मां-बापको उनकी परवाह न थी। खातापीता घर होते हुए भी लड़कियोंसे मजदूरोंकी तरह काम लिया जाता था।

एक दिन तीनों कुएं पर पानी भरने गयीं। तभी एक प्यासा घुड़सवार पानीकी खोजमें वहां जा पहुंचा। उसने उन लोगोंसे पानी मांगा तो गूंगीने कहा — 'बे — बे — बें'। तुतलीने कहा –"तुम तानी तातते हो।" बहरीने कानपर हाथ घरकर जोरसे पूछा –"क्या ?" तब गूंगीने इशारेसे समझाया, इसे पानी चाहिये। राही पानी पीकर चला गया और मनमें सोचता गया, भगवान्की भी क्या लीला है। देखनेमें तो लड़कियां इतनी सुंदर है पर न जाने इनके भाग्यमें क्या लिखा है।

कुएं की जगतपर पड़ोसकी और सहेलियां भी थीं। वे इस घटनाको देखकर खूब हंसी। एकने कहा, अमीर घरानेकी हुई तो क्या हुआ, इनकी शादी कहीं न होगी। ऐसी गुणवान् लड़कियोंको कौन लेगा ?

यह सुनना था कि गूंगी और तुतली लड़कियां आग बबूला हो गयीं। तीनों घर आकर पानीके घड़े पटक-पटक कमरेमें बंडलसी बनकर लेट गयीं।

इधर मां उन लोगोंका रास्ता देखते देखते ऊब गयी। बेचारी पानी न होने और लड़कियोंके गुम हो जानेके कारण खानातक न बना पायी। जमींदार बाहरसे आया तो चूल्हा ठंडा देखकर अपनी पत्नीपर बरस पड़ा। पत्नीने कहा, "अभीतक तुम्हारी लड़कियां पानी लेकर नहीं लौटीं। मैं कर ही क्या सकती थी ?" जमींदार दयालसिंह जब कमरेमें कपड़े उतारने गया तो देखा कि तीन बंडल घरमें रखे हैं। झल्लाया हुआ पत्नीके पास पहुंचा और बोला, "यह अजीब बात है, घरमें मेहमान आये हैं और तुमने मुझे बतायातक नहीं, बोलो, कौन हैं ये लोग ?" "बेचारी पत्नी हैरान होकर पतिको आंख फाड़फाड़कर देखने लगी और बोली —"कैसे मेहमान ? कहा हैं मेहमान ? क्या कह रहे हो तुम ?"जमींदार उसे अंदर ले गया और तीनों बंडल दिखा दिये। वह भी अवाक् रह गयी। आश्चर्यकी बात थी। मेहमान तो कोई आये नहीं पर बंडल तीन तीन। तभी जमींदारने एक बंडलको हिलते देखा। इतना देखना था कि वह सहम गया, काटो तो खून नहीं। उसने सोचा, जरूर हमारे घरमें भूत-प्रेत आ बसे हैं। दौड़कर वह राजाके पास गया और बोला, "महाराज ! आपके राज्यमें भूतप्रेत आ बसे हैं, कुछ उपाय कीजिये।" राजा भी डर गया। जल्दीसे अपने राजपुरोहितको बुलवाया और उससे कहा —"देखो तो जरा अपने पत्रेमें कि इस राज्यमें कौन

घुस आया है ?" पुरोहितने खूब अच्छी तरहसे पोथीपत्रोंमें टटोला पर कहीं भूतप्रेतकी छायातक न दिखायी दी। उसने राजासे कहा, "महाराज, आपके राज्यमें कोई भूत-प्रेत नहीं आया। पत्रा विचारनेसे पता चलता है कि सब ठीक है।" राजाने कड़ककर कहा, "तू मुझे झुठलाता है, देख, फिर ठीकसे।" पुरोहितने फिरसे देखा, पर उसे कुछ न मिला। उसने सोचा, झूठ बोलकर जान बचाना ही बेहतर है। उसने राजासे कहा, "हां, महाराज, आपके राज्यमें ब्रह्म राक्षस घुस आया है।"

राजा यह सुनकर पथरा-सा गया। थोड़ी देर बाद बोला, "जाओ जल्दी, अच्छे-अच्छे ओझों और सयानोंको बुलाओ, ब्रह्म राक्षसको मुक्त करवाओ। अगर मुक्त कर पाओगे तो सबको एक-एक हजार रुपये इनाम मिलेंगे।"

पुरोहित सयानोंको लेकर जमींदारके मकानमें पहुंचा। जमींदारने भी एक-एक हजार देनेका वादा किया। अब सब दरवाजेके बाहर बैठकर मंत्र फूंकने लगे। पर मंत्र फूंकनेसे न तो सरसों दौड़ती थी, न शराबकी बोतलें भागती थीं और न बलि चढ़े हुए बकरे ही गायब होते थे।

थोड़ी देर बाद सयानेने दयाल सिंहसे कहा, तुम सब छिप जाओ, इधर कोई न आने पाये। हम लोग अभी ब्रह्म राक्षससे आपकी लड़कियोंको बुलवा देंगे। सब लोग छिप गये। सयानेने जाकर तीनों बंडल खोले तो तीनों लड़कियां निकल आयीं। पुरोहितने जल्दीसे दयाल सिंहको खबर दी कि ब्रह्म राक्षस उसकी लड़कियोंको दे गया है। जमींदार मारे खुशीके उछल पड़ा। लड़कियोंपर लाड़-प्यारकी झड़ी लगा दी और मिठाईसे भरा हुआ थाल लाकर उनके आगे रख दिया। तीनों बहनें बहुत खुश हुईं। आज पहली बार उन्हें इतना आदर दिया जा रहा था। इस सारे हो-हल्लेमें लड़कियां बिना झिझके साधारण तरह बोलने लगीं। जमींदारने पुरोहित और ओझाओंको एक-एक हजार रुपये देकर बिदा किया। अब लड़कियां आराम से रहने लगीं। जब कभी उन्हें अपनी तरकीब याद आ जाती तो हंसीके मारे लोटपोट हो जातीं। पर उन्होंने अपना रहस्य किसीको नहीं बताया। मेहरबानी करके आप भी किसीको मत बताइयेगा नहीं तो उनकी हंसी होगी।

ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः।

ऋण, शत्रु और रोगको बाकी न छोड़ना चाहिये।

*

बहुभाषिणो न श्रद्दधाति लोकः।

लोग बहुत बोलनेवालेका विश्वास नहीं करते।

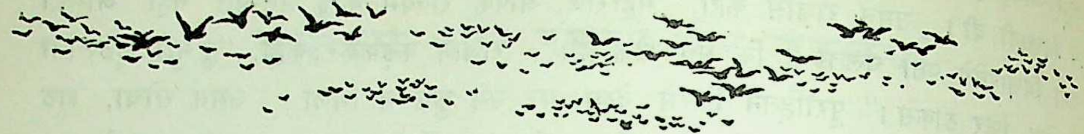

बीरबल, कौवे कितने ?

शाहंशाह अकबर थे काफी मोदी और विनोदी।
उनसे सब खुश रहते मुल्ला, मुगल, शेख और लोदी।
उनके मंत्री वीर बीरबल भी थे अक्खड़ भारी।
ठीक चिलमपर भून लेते थे परवलकी तरकारी।

उनसे एक रोज अकबरने पूछा बोलो, इतने।
इस मेरे संपूर्ण शहरमें होंगे कौवे कितने ?
कहा बीरबलने -- "यह धंधा लगता झंझटवाला।
चार माहके बाद शाह मैं दूंगा ठीक हवाला।।"
उसे शाहने चार मासकी दे दी पक्की छुट्टी।
मिली उसे तनख्वाह पेशगी सिक्का चौदह मुट्ठी।

चार मासके बाद बीरबल पास शाहके आया।
बोला "पंद्रह सौ पंद्रह हैं मैं हिसाब ले आया।"
अकबर बोला--"देखो होगा गलत अगर यह ब्योरा।
तो फिर गुस्सा मुझको होगा -- होगा बुरा तुम्हारा।"
कहा बीरबलने झट--लेकिन एक बातका डर है।
सभी शहरमें तो इन कौओंके कुटुंबका घर है।
घट बढ़ सकते इसीलिये तो ये सब आते-जाते।
हो सकता है टोटल गड़बड़ इस हिसाबके नाते।।

--लक्ष्मीकांत झा

और मेरे ऊपर डांट पड़ी

श्री अंजना शर्मा

उस दिन पता नहीं किसका मुंह देखकर उठा था कि दिनभर डांटकी बौछार होती रही, पूरा दिन डांट-फटकारमें बीता।

हुआ क्या, जब मैं बिस्तरसे उठा तो साढ़े सात बज चुके थे। मैंने उठते ही देखा, माताजी रसोईके दरवाजेपर बैठी हैं। हालांकि वे रोज इस समय चाय बनानेमें व्यस्त रहती हैं। मुझे देखते ही बरस पड़ीं, "कितनी देरसे उठा रही थी मगर यह लड़का उठे तब न? पता नहीं, देरसे उठनेकी क्या बुरी आदत लग गयी है, बस, करवटपर करवट बदलता ही रहेगा। जैसे कुछ सुना ही नहीं और अगर कुछ कहो तो झट उत्तर मिलेगा, मैं तो गहरी नींदमें सो रहा हूं।"

मैं क्या करता, चुप-चाप खड़ा सुन रहा था; फिर तो माताजीका गुस्सा और भी भड़क उठा और वे मुझे और भी फटकारने लगीं, "खड़ा-खड़ा देख क्या रहा है? कहींसे दूध लेकर आ नहीं तो तुझे ही आज भूखे पेट जाना पड़ेगा।" मैंने माताजीके हाथसे बरतन और पैसे ले लिये और जल्दी-जल्दी सीढ़ियां फलांग कर दूधवालेकी दूकानपर जा पहुंचा। मुझे नौ बजे कालेज जाना था। पौने आठ तो बज ही गये थे। वहां जाकर देखा कि ग्राहकोंकी भीड़ लग रही है। मैं जल्दी-जल्दी भीड़के आगे पहुंचना चाहता था, सो मैं लोगोंको हटाने लगा। एक महाशय जो बड़े गुस्सेबाज नजर आते थे, बोले, "ऐ छोकरे! क्यूमें खड़ा हो। पता है, हम कबसे धूपमें खड़े तप रहे हैं? औरोंका भी ख्याल रख, तू ही अकेला दूध खरीदनेवाला नहीं है।" मैं क्या करता, भीड़के सामने यह कठोर शब्द सुनकर चुपचाप वहांसे खिसक गया और दूसरी दूकानकी ओर चल पड़ा जो वहांसे काफी दूर थी। वहां उतना मलाईदार गाढ़ा दूध नहीं मिलता था जितना इस दूकानपर। लेकिन एक दिन बढ़िया दूध न पीयेंगे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

वहांसे जब दूध लेकर घर पहुंचा तो देखा सवा आठ बज गये थे। जल्दी-जल्दी तैयार होनेकी कोशिश करने लगा, मगर जल्द-बाजीमें काम बिगड़ जाता है और मैं गुसलखानेमें फिसल गया। चोट तो नहीं लगी मगर थोड़ी देरतक गिरनेका असर रहा ही।

खैर, चाय बनी और मैं जल्दी-जल्दी पीकर बगलमें किताब दबाकर सीढ़ियां उतरने लगा। मगर माताजीने कहा, "सुन, आज जल्दी घर आना, रोज कहां घूमता-फिरता है? घरसे कालेज और कालेजसे सीधे घर आया कर, कहीं घूमनेकी आवश्यकता नहीं। समझा? अगर आज फिर देरसे आया तो देखना बुरी हालत होगी।" मैंने सोचा, "उफ! घरसे निकलते-निकलते भी डांटने साथ न छोड़ा।" अब मुझे सिर्फ पंद्रह मिनिटमें कालेज पहुंचना था जो घरसे तीन मील था। बस भी भगवान् जाने मिलेगी कि नहीं। फिर भी मैं अपनी सबसे तेज रफ्तारसे चला जा रहा था।

बस स्टैंडपर पहुंचा तो पता चला नौ बजेकी बस भी निकल चुकी है। और अब मुझे आनेवाली बससे ही जाना पड़ेगा। रह-रहकर मुझे गुस्सा आ रहा था--उस दूधवालेपर जो आज छुट्टी मनाये बैठा था और जिसके कारण मेरे दिनका कार्यक्रम बिलकुल बदल गया था। मैंने किसी दूसरी सवारीसे जानेकी कोशिश की मगर सब बेकार, हरेक सवारी भरी पड़ी थी। लाचार होकर आनेवाली बसकी प्रतीक्षा करनी ही पड़ी। जब बस आयी तो जल्दी-जल्दी चढ़ गया और ऐसा मन करने लगा कि बस ड्राइवरसे बस जल्दी चलानेके लिये कह दूं। मगर नियमपर तो चलना ही होगा। मैं खिड़कीमेंसे बाहरके दृश्य देख रहा था। पेड़ भी मेरी तरह जल्दीमें भागे जा रहे थे। मैं इसी तरहके दृश्योंमें मग्न था कि अचानक बस रुक गयी। कंडक्टरसे पूछनेपर पता चला कि बसमें पेट्रोल खत्म हो गया और भरनेमें पंद्रह मिनट लगेंगे। मैंने एक निराशाभरी सांस छोड़ी। लाचार होकर वहां बैठना ही पड़ा क्योंकि वहां कोई और सवारी नजर नहीं आ रही थी।

जब बस फिरसे भागने लगी तो देखा कि साढ़े नौ बज चुके हैं।

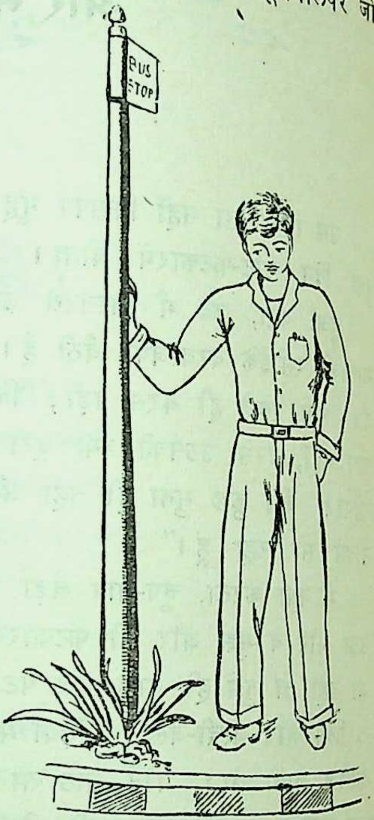

खैर, कालेजतक भगवान्‌की कृपासे किसीसे डांट न पड़ी मगर बस स्टापसे वह था ही कितनी दूर? बस, दो कदम पर।

जब मैं कालेज पहुंचा तो देखा कि गणितका पहला घंटा प्रायः खत्म हो रहा है।

मैं चुपचाप बागमें एक बेंचपर बैठ गया। क्योंकि इतनी देरसे क्लासमें जानेसे डर लगता था कि कहीं डांट न पड़ जाय। मगर डांटने साथ न छोड़ा। मैं मग्न होकर वहीं बैठा छोटे-छोटे पत्थरोंसे खेल रहा था। किसीने पीछेसे आवाज लगायी। नजर उठाकर देखा तो मेरे पैरों तलेकी ज़मीन खिसक गयी। प्रिंसिपल साहब खड़े थे। बोले, “बागकी हरियालीका मजा ले रहे हो बच्चू जी? तुम्हारी पहले घंटेमें क्लास नहीं है क्या? तुम तो मि. खन्नाकी क्लासमें हो न?” मैंने सिर हिला दिया तो बोले, “फिर जाते क्यों नहीं? कारण क्या है? बेकार ही पिताका पैसा बहानेमें मजा आता है न? फिर जुर्माना देना पड़ेगा।” मैंने डरते-डरते घरके दूधवालेके न आनेसे बसके रुकनेतककी सारी बात कह डाली। मगर वे तो पता नहीं किस धातुके बने हुए थे, बोले, “मगर इसमें दूधवालेका क्या दोष? साफ बात तो यह है, अगर तुम देरसे न उठते तो दूध जल्दी ले आते और अपना काम नित्यकी तरह कर सकते, दोष तो तुम्हारा है।” मैं चुप रहा, क्योंकि प्रिंसिपल साहब कह तो ठीक ही रहे थे।

खैर, घंटी बजते ही मैं अंग्रेजीकी क्लासमें पहुंचा। लेकिन हाय री बुद्धि! गृहकार्य करना तो भूल ही गया। मि० अहूजाने पूछा, “क्यों जी, तुम्हारा गृहकार्य कहां है?” लेक्चरर यह

सुनकर कि मुझे अभी यही पता नहीं कि कौन-सा गृह-कार्य करना था, भभक पड़े, "क्या मुझसे पूछता है कौन-सा गृह-कार्य? यह याद रखना तुम्हारा काम है कि मेरा? पहले ही तुम कौन-से पढ़ाईमें इतने अच्छे हो कि बगैर गृह-कार्य किये पास हो जाओगे? मैं तो आशा नहीं रखता। मेरी क्लासमें ऐसे काम नहीं चलेगा। समझे?"

मैं सच कह रहा हूं, मुझे यह सब सुनकर बड़ा धक्का लगा। मैं फिर भी निगाह नीची किये सुनता रहा और आखिरी दो घंटोंमें मुझे डांट न पड़ी, यह मैं अपना सौभाग्य समझता हूं।

उस दिन मैं जल्दी ही घर चला गया। मगर जैसे ही घरमें घुसा, पिताजी बोल पड़े, "क्यों, आज कितने बजे स्कूल पहुंचे थे? देर क्यों हुई? गणितकी क्लासमें क्यों नहीं गये?" एक साथ इतने प्रश्नोंकी वर्षासे मेरे हाथोंके तोते उड़ गये मगर पिताजीके सामने मौन रहना भी साहसका काम है। मैंने डरते-डरते कहा, "आज दूधवालेके न आनेसे देर हो गयी थी, और मैं अपनी गणितकी क्लासमें न जा सका।" लेकिन पिताजी इतनेसे ही संतुष्ट न हुए, माताजी होतीं तो शायद मान भी लेतीं, बोले, "दूधवालेके न आनेसे देरका क्या रिश्ता? तुम अगर जल्दी उठते तो दूध जल्दी ले आते और फिर कालेज समयपर पहुंच सकते। और गणितमें तो तुम कोई मेधावी छात्र हो नहीं जो क्लासमें न जानेसे काम चल जायेगा? तुम्हारे गणितके अध्यापक मि० खन्ना आये थे वे मुझे बता गये हैं। अगली बार इस तरह किया तो देखना फिर मैं क्या करता हूं। मैं क्या बेकार ही तुम्हारी पढ़ाईमें पैसा फूंक रहा हूं? मैं चाहता हूं तुम पढ़-लिखकर अच्छी जगह कामपर लग सको। और तुम बस जिन्दगी मजा लूटनेके लिये ही समझते हो। अब पढ़ाईसे मन चुराओगे फिर बादमें बड़े होकर पछताओगे। मैं तुम्हारी जिन्दगीभर पैसा कमाकर तुम्हें खिलानेके लिये थोड़े ही बैठा रहूंगा। तुम सयाने बनोगे तो तुम्हें अपने-आप अपने पैरोंपर खड़ा होना सीखना होगा...." इस तरह म्यानमेंसे निकली तलवार चल ही रही थी कि पिताजीके एक दोस्त आ गये। भगवान्, तूने मुझे उस दिन बहुत बचाया। पिताजी उनसे बातें करनेमें लग गये।

मैं सच कह रहा हूं कि मैं लड़का होते हुए भी उस दिन बहुत रोया। मुझे रह-रहकर पिताजीके वे शब्द, जिनसे मैं आंखोंपर काबू न कर सका और रो दिया था, याद आ रहे थे।

मैं चुपचाप कमरेमें जाकर बैठ गया। इतनेमें माताजी मुझे ढूंढ़ती-ढूंढ़ती मेरे कमरेमें आयीं। मुझे रोता देखकर बोलीं—"इसमें रोनेकी क्या बात है? जो सच है वह पिताजीने कह दिया और उनके कहनेका ढंग ऐसा है कि रोना आ जाता है। मैंने तो तुमसे भी ज्यादा डांट खायी है। चलो, रोते नहीं, बस कलसे ऐसा मत करना और पिताजी खुश हो जायेंगे। तू तो अब सयाना हो गया है, सयाने बच्चे रोते थोड़े हैं? चल, चलकर मुंह धो ले।" और वे मेरे पेटमें गुदगुदी करने लगीं और मैं खिल-खिलाकर हंस पड़ा। उन्होंने मुझे प्यारसे चूम लिया।

सच, उस दिन जैसा प्यार मुझे मांसे कभी नहीं मिला था। जितना भी डांटती थीं मगर प्यारके सामने मैं सब कुछ भूल जाता था। लेकिन उस दिनका वह प्यार मुझे जिन्दगी भर याद रहेगा।

पुस्तक-परिचय

सांचा : ले. डा. प्रभाकर माचवे, प्रकाशक, हिंदी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी—१, मू.१)

मशीनें मनुष्यकी सेवा करनेके लिये बनायी गयी थीं परंतु धीरे-धीरे उन्होंने मानव-जीवनको अपने हाथमें ले लिया है। व्यक्तिगत स्वीधानता ख-पुष्प बनती जा रही है। पहले जात-बिरादरी और समाजका भय होते हुए भी आदमीको बहुतसे अधिकार प्राप्त थे, परंतु आजकल सारा समाज ही एक मशीन बनता जा रहा है और जाने-अजाने मनुष्य उसके कील-कांटे बनकर रह जाते हैं। तानाशाही देशोंकी बातको जाने दीजिये, स्वतंत्र कहलानेवाले समाज-में भी मनुष्य को सोचनेकी, आश्चर्य करनेकी और सौंदर्यको निहारनेकी फुर्सत नहीं है। जिन देशोंमें कामके घंटे बहुत ही कम कर दिये गये हैं उन देशोंमें भी आदमीको अपने अंदर देखनेका अवकाश नहीं मिलता। औद्योगिक प्रगतिके साथ भारतमें भी यह बीमारी बढ़ती जा रही है। 'सांचा' इसी प्रकारके जीवनका चित्र है। पुस्तकके ऊपरका पृष्ठ ही इस जीवनकी भयंकरता दिखानेको काफी है। अब भी समय है कि भारत मशीनका गुलाम न बनकर उसका मालिक बन सके। लेकिन यह विषयांतर होगा।

मोरझाल : ले. डा. श्याम परमार, प्रकाशक, उपर्युक्त, मूल्य १).

भील जीवनके आधारपर लिखा गया यह उपन्यास हमारे देशके भीलोंके समाज तथा उनके जीवनकी समस्याओंका एक चित्र हमारे सामने रखता है। शैली मनोरंजक है।

कथा सूर्यकी नयी यात्रा : ले. हिमांशु श्रीवास्तव, प्रकाशक, उपर्युक्त, मूल्य ३).

आजकल हिंदीमें लेखकों और प्रकाशकोंकी संख्या बरसाती कीड़ोंकी तरह बढ़ रही है। परंतु खेदका विषय है कि इस बाढ़में अच्छे साहित्यके लिये पैर टिकाना भी मुश्किल हो जाता है। जहां सच्चा साहित्य आंतरिक सत्यकी अभिव्यक्ति होता है वहां आजका साहित्य पैसा या नाम कमानेका साधन मात्र बनकर रह गया है। इस व्यंग्य-प्रधान उपन्यासमें प्रेमचन्दजी स्वर्गसे आकर हिंदी लेखकों, प्रकाशकों और संस्थाओंको नजदीकसे देखते हैं। उनके हथकण्डे समझना भी सरल सात्विक प्रेमचन्दजीके लिये कठिन हो जाता है। यह उपन्यास सचमुच वर्तमान स्थितिपर गहरी चोट है। इसके पात्र हमें अपने रोजके जीवनमें कदम-कदम-पर दिखायी देते हैं। व्यंग्य साहित्यमें यह अनूठी चीज है।

आचार्य द्विवेदी गांवमें : ले. अमरेश, प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१ मूल्य रु. ३.५० न . पै.

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीको हम लोग हिन्दीकी साहित्य-वाटिकामें मालीके रूपमें जानते हैं। परंतु वे इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ थे। उन्होंने अपने गांव दौलतपुरमें जो ठोस रचनात्मक काम किया वह सचमुच प्रशंसनीय था। हमारे यहां अवसर-प्राप्त लोग प्रायः निठल्ले हो जाते हैं। उनकी शक्ति और योग्यताका सुन्दर उपयोग कैसे हो सकता है यह हमें द्विवेदीजीने करके दिखा दिया। वे सच्चे वानप्रस्थी थे। इस पुस्तकमे उनके गांवके जीवनकी कहानी है। पुस्तक सुन्दर है।

भारतीय अब्दकोश १९६४: प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना: मूल्य ८ रुपये।

हमारे सामने अब्दकोशका सन् ६४ का अंग प्रस्तुत है। इसकी तैयारीमें काफी परिश्रम किया गया है। इसमें सामान्य ज्ञानकी ऐसी बहुत-सी बातें दी गयीं हैं जिनका जानना एक साधारण शिक्षित व्यक्तिके लिये जरूरी है। विभिन्न देशों और महादेशोंके बारेमें आवश्यक जानकारी दी गयी है। संसारकी प्रसिद्ध नदियों, प्रमुख झीलों, पहाड़ी घाटियों आदिकी जानकारी भी दी गयी है। भारतके बारेमें बहुतसी बातें इकट्ठी कर दी गयी हैं जिसकी वजहसे पुस्तक बहुत उपयोगी हो गयी है।

पुरन्दरदास: ले. रामचन्द्रराव, प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, मू. रु. १.५०

पुरन्दरदास कर्णाटकके प्रसिद्ध सन्त कवि थे। अभी हालमें इनका चतुर्थ शताब्दी महोत्सव मनाया गया है। आरंभमें इनका जीवन एक सामान्य वणिक जैसा था परंतु भगवान्की कृपा हो गयी और ये सब कुछ छोड़कर उसीमें रम गये, यहांतक कि स्वयं इनके गुरुने कहा 'दास कहों तो पुरन्दरदास'। इन्होंने असंख्य गीत लिखे जो आज भी कर्णाटकमें घर-घरमें गाये जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनके जीवन-चरित्र, उनकी साहित्य-सेवा और संगीत-सेवाका अच्छा परिचय है। उत्तर भारतवालोंको इस प्रकारकी चीजोंमें अधिकाधिक रस लेना चाहिये।

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही
खातों का निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालय:—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २०मल्लिक स्ट्रीट
कलकत्ता—७
फोन—३३२३१२

⁂

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस
१९ चौरंगी
कलकत्ता—१३

⁂

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।
—श्रीमां

* * *

न्यू होराइजन स्टेन्लेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी-४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE
STEEL
PRODUCT
STAINLESS

"स्क्वायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI OIL MILLS

Raniganj

Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स

३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED

7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

Marketers of Petroleum Products

Western Trading Company

Distributors to ESSO Standard
Eastern, INC.
For Calcutta, Bihar and U.P.
88, Stephen House
4 Dalhousie Square East
CALCUTTA - 1

⁂

Branch:
CENTRAL HOTEL BUILDING
GORAKHPUR

Phone: 23-2835/36 Gram: RIGHTDON

INDIA TAR
AND
BITUMEN PRODUCTS

Office:
88, Stephen House,
Dalhousie Square, Calcutta - 1

Telephone: 23-2835/36

⁂

All types of waterproofing and damp-proofing, Pipe Lagging & Heat & Cold insulation. Works are undertaken with best workmanship.

With

the

compliments

of:

Sri U. N. Samanta Ray

INDUSTRIALIST & CONTRACTOR,

Rajabagicha, CUTTACK-1

"संसारने अबतक जैसे जीवनकी संभावनाकी कल्पना की है उससे कहीं अधिक गभीर
और अधिक महान् जीवनकी ओर भारत अग्रसर हो रहा है और जब
वह इन विभिन्न कार्यावलियोंमें अपने--आपको अभिव्यक्त करनेका
रहस्य ढूंढ़ निकालेगा तब उसका औद्योगिक और सामाजिक
जीवन भी सशक्त और विस्तारित हो जायगा।"

--श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

PROTECT PLANTS FROM PESTS
ALWAYS USE JHUNJHUN INSECTICIDES

With best compliments from:

GEO INDUSTRIES & INSECTICIDES (I) PVT. LTD.
308/9, Linghi Chetty Street, Madras - 1

Formulations based on BHC. DDT. Chlordane, Lindane, Zineb and Heptafhlor, Malathion.

Cables : "JHUNJHUN"

Telephone : OFFICE : 24573
FACTORY : 51275

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

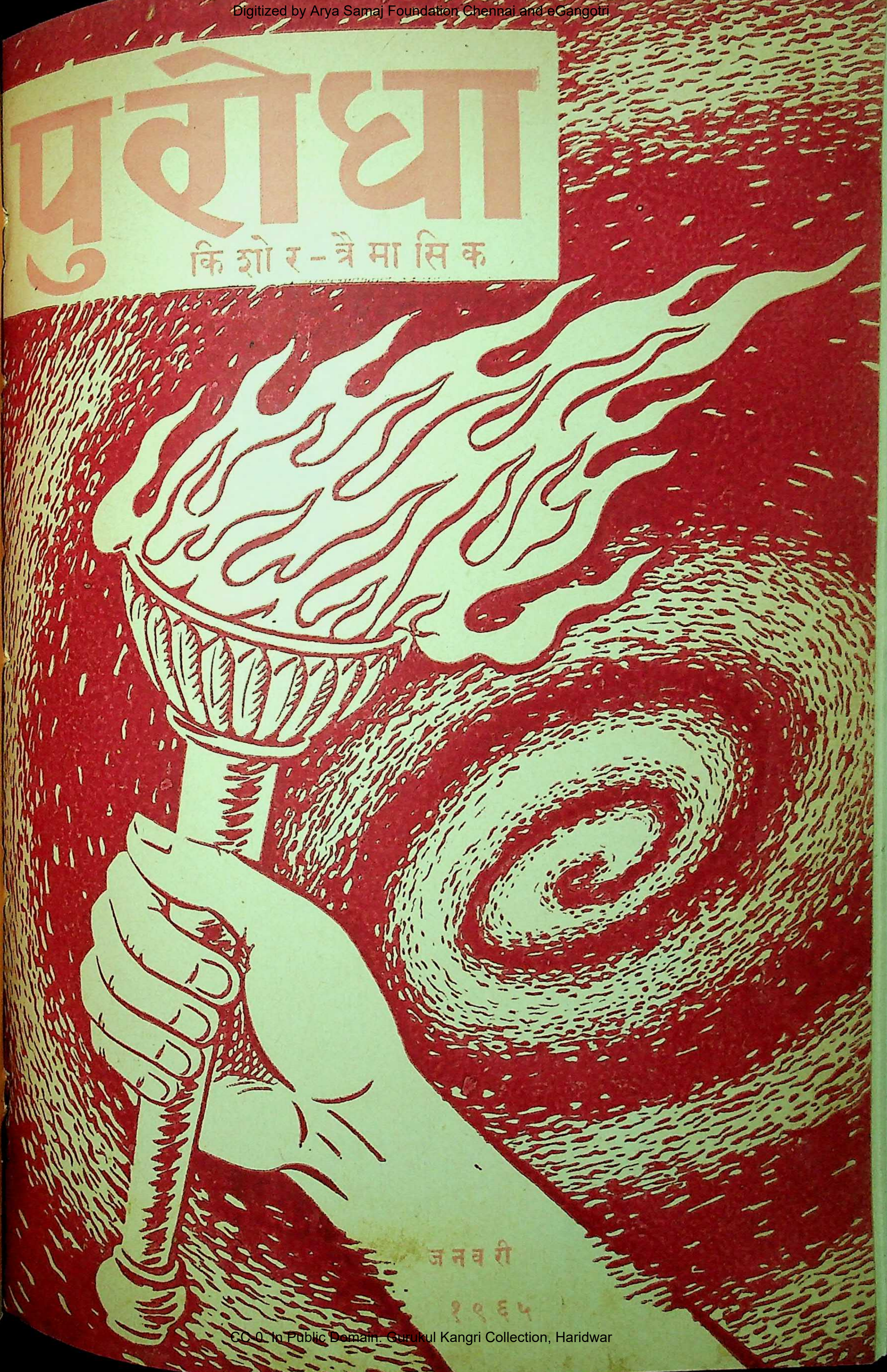

जनवरी

१९६५

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

मृत्यु-भय	श्रीअरविंद	२
प्रार्थना	श्रीमां	५
अग्रचरण	आरसीप्रसाद सिंह	६
संपादकीय		७
श्रीमांका संदेश		११
श्रीअरविंदके उत्तर		१२
मानव, भगवान्, अतिमानव	श्रीअरविंद	१५
श्रीअरविंदका शरीर-त्याग	(संकलित)	१६
देवदासी	अनुबेन	२२
मैथिलीशरण गुप्त	हीरौ	३४
आन मिले गुरु धाय	रेवा चटर्जी	३९
सर आशुतोष मुखर्जी	रवीन्द्र	४३
जाह्नवीकी समस्या	रवीन्द्र	४५
मैं पैरिस जा पहुंची	स्नेह लता	५०
शोर बंद कीजिये	श्यामशरण 'विक्रम'	५३
लक्ष्मीप्रसादजी बोले		५५
बुकर टी. वाशिंगटन	लक्ष्मीनारायण	५९
चलते राम	कृष्ण कुमार	६२
बेचारा अध्यापक	मेधाव्रत	६३
एक पौष्टिक खाद्य—रागी माल्ट	रवीन्द्र	६४
देवीका संदेश	भूदत्त	६६
पंडित जी	भूमा	६७
बंदरराजका प्रजा-प्रेम	लाट साहब	६९
पुस्तक-परिचय		७०

चित्रकार : संजीवन विश्वास (आवरण), कृष्णलाल, जयंतीलाल, अंजना शर्मा, अनिरुद्ध सरकार

मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

वर्ष ३ जनवरी १९६५ अंक ३

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।

—श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी-२

*

मृत्यु-भय

मृत्यु हमारे जीवन वनमें
विचरण करती है स्वच्छन्द,
व्यस्त हमारा श्वास-श्वास ले
मृत्यु माधुरी अति सानन्द ।
क्यों डरते हो उससे भाई ?
देखो तो उस मुखका मोद,
हंसनेसे जो हुआ गुलाबी,
दमक रहा है जो सविनोद ।
रूपवती अरु दयावती वह
एक कुमारी अति अनुकूल,
वर्षा-धौत मधुर उपवनमें
चुनती है जो ताजे फूल ।
जीवन-जन्य उघाड़ देती वह
ज्योतिर्मय लोकोंके द्वार,
फिर भी उस शोभन युवती से
डरते हो तुम कितना यार।
क्या कारण यह, डाल मरोड़ी
भोगेगी पीड़ा अनिवार्य,
हाथ मृदुलतम हीन करें क्या
शोभाको हरनेका कार्य ?
अथवा यह कि ढलक पड़ता है
पुष्प-हीन वृन्त परिम्लान,
अभी अभी जो था अति सुन्दर
लगता है वह मृतक समान ?
अथवा यह कि उघड़ते फाटक
की कर्कश ध्वनिसे भयभीत
दहल उठा है हृदय तुम्हारा,
साहस-विरहित, निर्बल जीव ?
मृत्यु जानते हो तुम जिसको
वह तो केवल वस्त्र उतार
होना खड़ा अनंत द्वारपर
लग्न-वेश-भूषाको धार ।

२७-१-४६

(श्रीअरविंदकी एक कविताका अनुवाद)

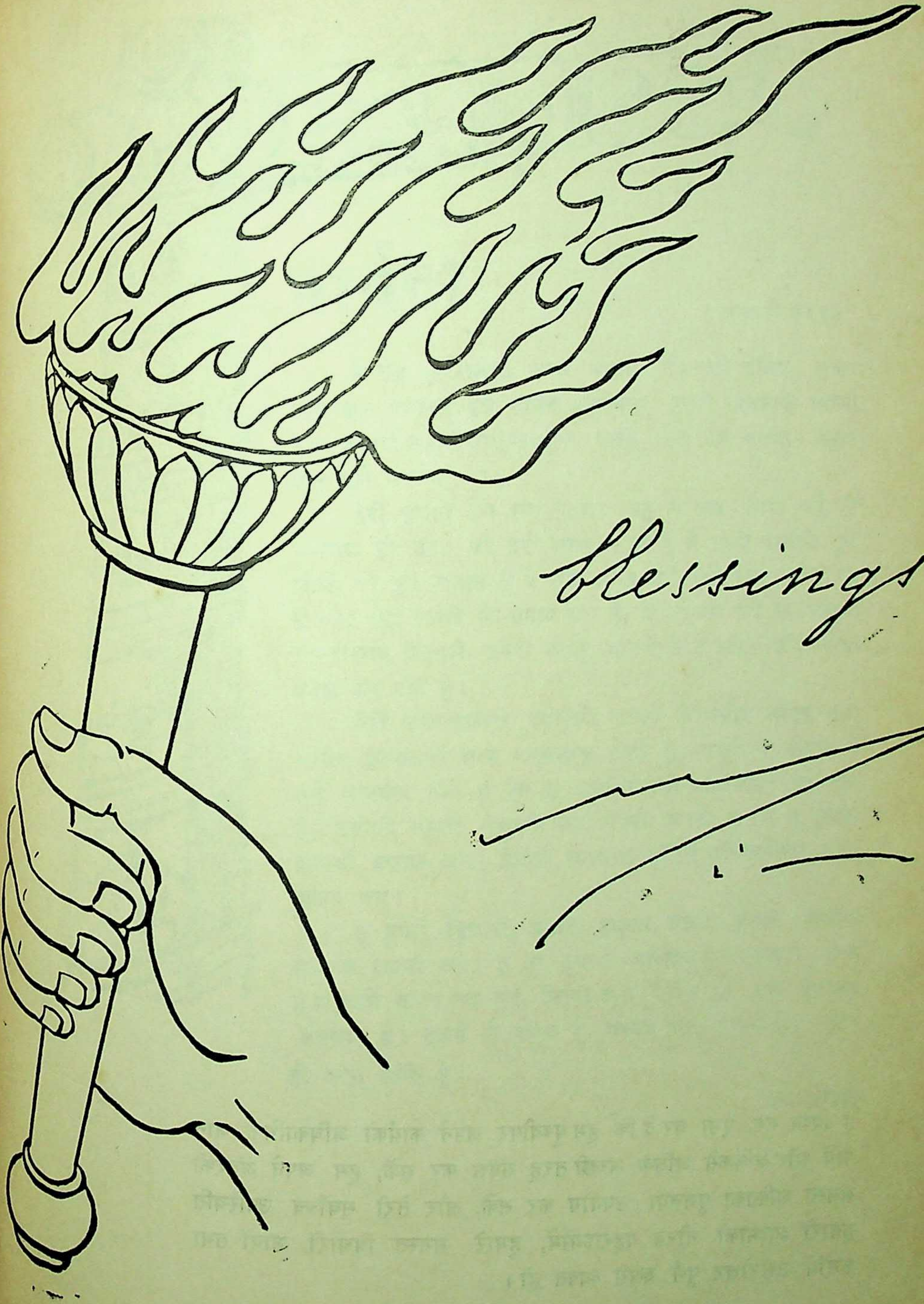

Blessings

हे दिव्य गुरु, ऐसा वर दे कि हम पृथ्वीपर अपने कार्यको अधिकाधिक जान पायें और अधिकसे अधिक अच्छी तरह संपन्न कर सकें, हम अपने अंदरकी समस्त शक्तिका पूर्णतया उपयोग कर सकें, और तेरी सर्वोच्च उपस्थिति हमारी आत्माकी नीरव गहराइयोंमें, हमारे समस्त विचारों, भावों तथा कर्मोंमें उत्तरोत्तर पूर्ण रूपसे व्यक्त हो।

—श्रीमां

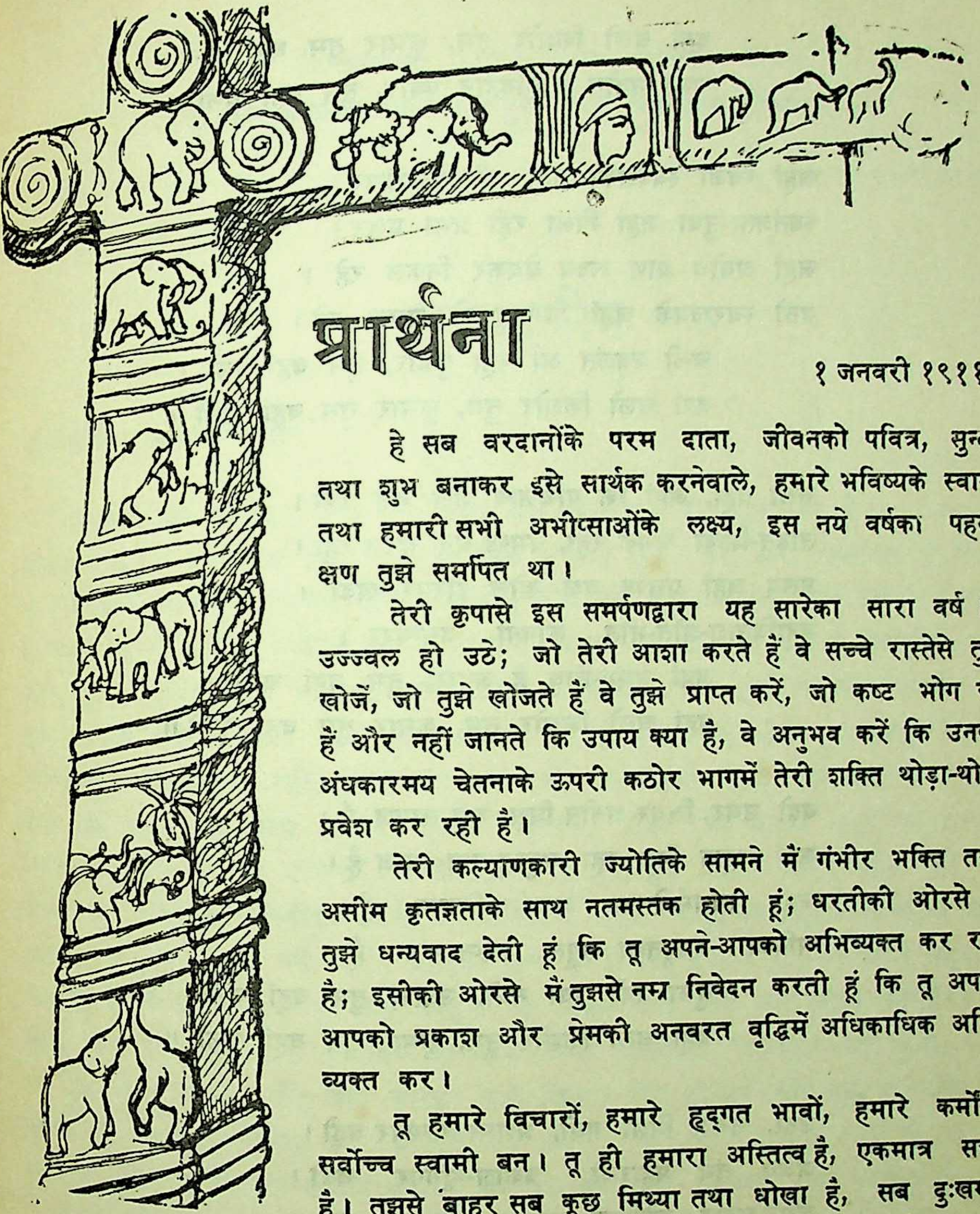

प्रार्थना

१ जनवरी १९११

हे सब वरदानोंके परम दाता, जीवनको पवित्र, सुन्दर तथा शुभ बनाकर इसे सार्थक करनेवाले, हमारे भविष्यके स्वामी तथा हमारी सभी अभीप्साओंके लक्ष्य, इस नये वर्षका पहला क्षण तुझे समर्पित था।

तेरी कृपासे इस समर्पणद्वारा यह सारेका सारा वर्ष ही उज्ज्वल हो उठे; जो तेरी आशा करते हैं वे सच्चे रास्तेसे तुझे खोजें, जो तुझे खोजते हैं वे तुझे प्राप्त करें, जो कष्ट भोग रहे हैं और नहीं जानते कि उपाय क्या है, वे अनुभव करें कि उनकी अंधकारमय चेतनाके ऊपरी कठोर भागमें तेरी शक्ति थोड़ा-थोड़ा प्रवेश कर रही है।

तेरी कल्याणकारी ज्योतिके सामने मैं गंभीर भक्ति तथा असीम कृतज्ञताके साथ नतमस्तक होती हूं; धरतीकी ओरसे मैं तुझे धन्यवाद देती हूं कि तू अपने-आपको अभिव्यक्त कर रहा है; इसीकी ओरसे मैं तुझसे नम्र निवेदन करती हूं कि तू अपने-आपको प्रकाश और प्रेमकी अनवरत वृद्धिमें अधिकाधिक अभिव्यक्त कर।

तू हमारे विचारों, हमारे हृद्गत भावों, हमारे कर्मोंका सर्वोच्च स्वामी बन। तू ही हमारा अस्तित्व है, एकमात्र सत्ता है। तुझसे बाहर सब कुछ मिथ्या तथा धोखा है, सब दुःखमय अंधकार है। तुझमें ही जीवन है, प्रकाश तथा आनंद है। तुझमें ही परम शांति है।

—श्रीमां

अग्रचरण

वहां चलो किशोर तुम, कुमार तुम वहां चलो।
चलो नवीन भय-विहीन ज्वार, तुम वहां चलो।

जहां ध्वजा स्वदेशकी गड़ी हुई हिमाद्रिपर।
स्वतंत्रता-सुधा जहां पिला रही प्रभा प्रखर।
जहां अमोघ बाण लक्ष्य बेधकर निकल रहे ।
व्रती स्वराज्यके जहां विमुक्त हो मचल रहे।
चली ज्वलंत आ रही पुकार, तुम वहां चलो ।
वहां चलो किशोर तुम, कुमार तुम वहां चलो ॥

चलो वहां, जहां कि पांचजन्य शंख बज रहा।
तड़ित-शिखा चमक रही, घमण्ड घन गरज रहा।
प्रलय जहां प्रचण्ड वक्ष खोल द्वारपर खड़ा ।
महाविनाश-शीत-भीत कांपती वसुन्धरा ।
जहां उमंग-सिंधु है अपार, तुम वहां चलो ।
वहां चलो किशोर तुम, कुमार तुम वहां चलो ॥

बढ़ो उधर, जिधर अतीत घिस रहा समाज है।
जहां महान् पिस रहा मनुष्य-मान आज है।
जहां स्वधर्म-देवता अकर्मता-निमग्न है।
भविष्य अग्रदूतका सपूत स्वप्न-मग्न है।
बुला रही उषा नयी, उदार, तुम वहां चलो।
वहां चलो किशोर तुम, कुमार तुम वहां चलो ॥

उठो, चलो, निशा गयी, प्रशस्त पन्थपर बढ़ो।
अजेय तुम महारथी, प्रकाश-शृंगपर चढ़ो।
अमृत-प्रवाह ज्योतिका अखण्ड मुक्त बह रहा।
मलय समीर कुंज-कुंजसे अधीर बह रहा।
"अभय चलो अनन्त मृत्यु-पार, तुम वहां चलो।
वहां चलो किशोर तुम, कुमार तुम वहां चलो ॥"

—आरसीप्रसाद सिंह

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ।।

सम्पादकीय

आध्यात्मिक समाजकी ओर

साधारण मानवसमाज केवल मन, प्राण और शरीरको ही पहचानता है। उसके लिये जीवनका आरंभ और अंत इन्हीं तीन स्तरोंतक सीमित है। कई अन्य विकसित प्राणियोंकी तरह मनुष्यमें भी समूह बनाकर रहनेकी वृत्ति है और उसे संतुष्ट करनेके लिये उसे बहुत प्रकारके प्रयास करने पड़ते हैं। सहज रूपसे मनुष्योंमें विचार-भेद होते हैं, आपसी स्वार्थोंमें टक्करें होती हैं, हर एकके अहंमें अपनेको दूसरेसे ऊंचा रखनेकी इच्छा होती है और इनको तथा इस प्रकारके अन्य तथ्योंको लेकर आपसमें लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। हम चाहे विकसित समाजको ले लें अथवा अविकसित कही जानेवाली जातियोंको देखें, सब प्रकारके संघर्षोंके पीछे मोटे रूपमें यही तत्त्व दिखायी देंगे। विकसित होता हुआ मनुष्य अपने इन तत्त्वोंको छिपाने अथवा इन्हें कम वीभत्स रूप देनेके लिये तरह-तरहके प्रयास करता रहता है। वह अपनी कई पाशविक वृत्तियोंको दबाता है ताकि वे उसके समुदायको हानि न पहुंचा पायें। परिवार, कुटुम्ब, समाज, वर्ग, जाति आदिका जन्म इसी तरह हुआ। मनुष्यने अपने समुदायको वैमनस्य, संघर्ष आदिसे बचानेके लिये तरह-तरहके नियम बना लिये और नीति निर्धारित कर ली। परंतु इन सबके द्वारा पाशविक या अन्य निम्न वृत्तियोंका निराकरण नहीं हुआ, उनका रूप कुछ बदल गया। जैसे आप चोरको चाहे जितना पीट लीजिये कोई कुछ न कहेगा परंतु आपके ही समाजका व्यक्ति अगर आपकी जेब कतरता रहे तो उसे कुछ कहा भी नहीं जा सकता। आप सीधा पैसा छीनिये तो यह समाजके नियमोंका उल्लंघन होगा परंतु चंदेके रूपमें, मुनाफेके रूपमें अथवा करके रूपमें दूसरोंको चाहे जितना मूंडिये उसमें कुछ हर्ज न होगा। इसी प्रकार पारस्परिक संघर्ष पैदा करनेवाले तत्त्वोंपर लीपा-पोती कर दी जाती है और कोशिश यह की जाती है कि समाज पारस्परिक सहयोगकी नींवपर खड़ा हो सके। इसी दृष्टिसे ऐसे नियम बनाये जाते हैं, रिवाज बन जाते हैं और कानून जन्म लेते हैं जिनके द्वारा समाजकी दृष्टिसे अनुचित तत्त्वोंको दबाया जा सके। परंतु हम देखते हैं कि ये तत्त्व केवल दबाये ही जाते हैं और कई बार वे समाजकी आंखोंमें धूल झोंककर अपने अस्तित्वकी घोषणा डंकेकी चोटपर करते हैं, जैसे राष्ट्रोंके पारस्परिक संबंधमें आज भी मत्स्य-न्याय अथवा जंगली जानवरोंकी नीति चलती है। उतनी दूर क्यों जायें, अगर हमारे यहां किसी विद्यार्थी और बस-कंडक्टरमें झगड़ा हो जाय तो नीति, सदाचार, शिष्टता आदिके नियमोंको ताकमें रखकर पाशविकताका

नंगा नाच शुरू हो जाता है और सरकारी दफ्तर, रेलवे स्टेशन, मोटरें, इमारतें आदि उसकी लपेटमें आ जाती हैं।

हमारा समाज मानसिक और बौद्धिक प्रगतिके लिये, सौंदर्य-बोधके लिये और सांस्कृतिक प्रगतिके लिये प्रयत्न करता रहता है। वह आर्थिक दृष्टिसे तथा बाह्य सुखोंकी प्राप्तिके लिये इतना प्रयास करता है कि सारा जीवन एक दुष्कर भूल-भूलैया बन जाता है। मन और प्राण-की तो वृद्धि होती ही है पर बेचारा शरीर उनका साथ नहीं दे पाता। इसी कमीको पूरा करनेके लिये शारीरिक व्यायाम, भोजनका नियमन तथा औषध आदिपर जोर दिया जाता है। यह सब होते हुए भी समुचित और संतुलित प्रगति न होनेके कारण सारा जीवन कृत्रिम बन जाता है और धीरे-धीरे समाज अपने ही भारके नीचे दबकर समाप्त हो जाता है। इतिहास इस प्रकारके बहुतसे उदाहरणोंकी ओर इशारा करता है और बताता है कि इस अधोगतिका, इस विनाशका मूल कारण मनुष्यजीवनकी वास्तविकता तथा उसके उद्देश्यकी उपेक्षा है। आखिर यह त्रुटि कहां है? कितनी ही सभ्यताएं और संस्कृतियां, कितने ही देश बहुत ऊंचे उठनेके बाद सहसा समाप्त हो गये। उन्नतिके शिखरपर पहुंचकर सुसंकृत समाज देखता है कि उसने संतुलनको पूरी तरह खो दिया है; वह जिस सीढ़ीसे ऊपर चढ़ा था उसीको गवां बैठा है और अब प्रकृति उसे सहारा देनेके लिये तैयार नहीं है। मनुष्य अपनी सभ्यता-संस्कृतिके द्वारा समस्याओंका एक जंगल खड़ा कर लेता है और उसीमें खो जाता है। इस विषम स्थितिसे बचनेके लिये कुछ लोग प्राचीनताकी दुहाई देते हैं और फिरसे आदिम मनुष्य-की स्थितिको वापिस लाना चाहते हैं, कुछ भौतिक विज्ञानोमें ही समाजका निस्तार देखते हैं। उनका ख्याल है कि शायद एक दिन वे मशीनोंद्वारा सतयुग ला सकेंगे। परंतु पहली स्थिति असंभव है और दूसरी अवांछनीय। वर्तमान लक्षणोंको देखनेसे पता लगता है कि इस दिशामें अबाध गतिसे मनुष्य अपनी ही बनायी चीजोंका दास होता जा रहा है और यह दासता क्षीण होने तथा नष्ट होनेकी सूचना है।

आखिर इस नारकीय स्थितिसे बचनेका कोई उपाय भी है या नहीं? क्या मनष्यको केवल प्रगतिके शिखरतक पहुंच-पहुंचकर नष्ट हो जानेके लिये ही बनाया गया था? श्रीअरविंदने हमें बताया है कि इस विषम स्थितिका रहस्य यह है कि मनुष्यने जीवनके सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व — आत्मा — की उपेक्षा की है। कहा जा सकता है कि यह तो कोई नयी बात नहीं है। चिरकालसे ऋषि मुनि संत महात्मा आत्माकी खोज करते आये हैं और उनमेंसे कमसे कम कुछने तो सफलता भी पायी होगी। हमारा आशय उस प्रकारकी खोजसे नहीं है। लोगों-ने जब कभी आत्माकी खोज की है तो अपने व्यक्तिगत जीवनके लिये, सामान्यतः इस प्रकारके सब प्रयास मनुष्यको दुनियासे अलग कन्दराओं और गुफाओंमें ले जाते रहे हैं। समाजको बदलनेके लिये, मनुष्यजातिको नया जीवन देनेके लिये कभी अध्यात्मका सहारा नहीं लिया गया। धर्मों और मजहबोंने प्रायः अध्यात्मके सच्चे रूपको नहीं पकड़ा। उन्होंने हमेशा उसके गौण निम्न रूपको ही महत्त्व दिया है। रूढ़िवाद, क्रियाकलाप, कर्मकाण्ड तथा स्वर्गका लोभ तथा नर्कके भयसे अमुक नियमोंका पालन, यही तो धर्मोंका रूप रह गया था और यही कारण थे जिनसे धर्म अध्यात्मकी सीढ़ियोंपर न चढ़ सका। बाह्य आडम्बरने धर्मकी आत्माको ही कुचल कर रख दिया।

श्रीअरविंदने हमें बताया है कि मन प्राण और शरीर अपने-आपमें सब कुछ नहीं हैं, उनको पुष्ट और संतुष्ट कर लेना काफी नहीं है। इसी तरह उन्हें पापकी जड़ मानकर उनका त्याग करना या उनसे भागना भी ठीक नहीं है। हमें यह जानना चाहिये कि ये एक उच्चतर शक्तिके यंत्र हैं जो अपने-आपमें पूर्ण न होते हुए भी पूर्ण होनेकी क्षमता रखते हैं। हमें उनको उनका समुचित स्थान देना चाहिये और उनकी उच्चतम शक्यताओंकी ओर नजर दौड़ानी चाहिये। सच्चा आध्यात्मिक समाज किसी भी अंगको तुच्छ और हेय न मानेगा। उसकी दृष्टिमें मनुष्यकी, समाजकी सभी शक्तियां ऐसी हैं जो ठीक तरह उपयोग किये जानेपर हमें ऊपर उठा सकती हैं, भगवान्के अधिक निकट ला सकती हैं। सच्चा आध्यात्मिक समाज गुलामोंका समाज नहीं होगा। आजका स्वतंत्र कहलानेवाला मनुष्य कितनी चीजोंका गुलाम है? शक्तिका, धनका, सत्ताका, अधिकारका, रूढ़िका, अपने आवेगों और आवेशोंका, अपनी इच्छाओं और वासनाओंका। सच्चे आध्यात्मिक समाजमें इस प्रकारकी गुलामीके लिये स्थान न होगा। ये चीजें अध्यात्मके साथ मेल नहीं खातीं। सच्चे आध्यात्मिक समाजके बिना विश्वमें सच्ची शांति और सच्ची एकता लाना असंभव है।

पं. नेहरूने प्रस्ताव किया था कि १९६५ में विश्व-ऐक्यके लिये विशेष प्रयास हो। हम उनकी बातको मान देते हुए पुरोधामें विश्व-ऐक्य तथा भावी समाजके बारेमें, श्रीअरविंदके विचारोंकी एक झांकी देते रहेंगे।

हिन्दीके एक महारथी

किसी भी भाषाकी प्रगतिके लिये उसके कोशका साहित्यिक महत्त्व बहुत अधिक होता है, विशेष रूपसे आजकल जब कि हमेशा नये नये शब्द बनते रहते हैं, पुराने शब्द भी नये भाव ग्रहण करते हैं तथा अन्य भाषाओंके शब्द भी अपना विदेशीपन छोड़कर हमारी भाषाओंके साथ मिलते जाते हैं। अंग्रेजी, फ्रेंच आदि समृद्ध भाषाओंमें पचासों प्रकारके कोश और विश्वकोश भरे हैं और उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। आज रूसी भाषामें हिन्दी, तमिल, तेलगू आदि भाषाओंके कोश सरलतासे मिल सकते हैं। परंतु खेदका विषय है कि हिन्दीको राजभाषा, राष्ट्रभाषा आदिके आसनपर बिठानेके लिये शोर मचानेवाले तो बहुत हैं पर इसमें ठोस काम करनेवालोंकी कमी है। हिन्दीमें अन्य भाषाओंके कोशकी तो बात ही कहां कोई अच्छा हिंदी-अंग्रेजी कोश भी उपलब्ध नहीं है। अंग्रेजी हिन्दीका एक अच्छा कोश है पर उसमें भी कई त्रुटियां हैं। कोई अहिन्दी-भाषी उसका उपयोग करना चाहे तो उसे हिन्दी शब्द तो मिल जायेंगे परंतु उनका उपयोग करना न आयगा क्योंकि उस कोशमें हिन्दी शब्दोंके लिंग नहीं दिये गये। और भी नजदीक आइये, हिन्दीके अच्छे कोशोंमें आपको कबीर, सूर, नन्ददास आदि द्वारा प्रयुक्त बहुतसे शब्द न मिलेंगे। और तो और दिनकर, पंत और निरालाकी कविताओंको पढ़ते समय भी कई बार कोश सहायता नहीं दे पाते। दिवंगत आचार्य श्री शिवपूजन सहायने जिस क्रिया कोशके लिये आवाज उठायी थी उसकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया।

ऐसी अवस्थामें श्री रामचन्द्र वर्मा हिन्दीके लिये एक भागवत देन हैं। इस आठ जनवरी को वे अपने जीवनके ७५ वर्ष पूरे कर रहे हैं। हम इस अवसरपर उन्हें हार्दिक बधाई देते

हैं और भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें हिंदीकी सेवाके लिये चिरजीवी बनायें। वर्माजीने हिन्दी कोशके लिये बड़ा ठोस काम किया है और कर रहे हैं। इस अकेले महारथीनें विपरीत परिस्थितियोंके विरुद्ध लड़ते हुए, मान-अपमान, लाभ-हानिकी परवाह न करते हुए जो काम किया है वह शब्द ब्रह्मकी साधना ही है। हमें यह जानकर अत्यंत कष्ट हुआ कि धन- जनकी सहायताके अभावमें वर्माजीका बहुत-सा काम अधूरा पड़ा है। वे अपने मानक कोशको आक्सफोर्ड डिक्शनरीकी कोटिका बनाना चाहते हैं, उनमें योग्यता है पर उपयुक्त साधनोंके अभावमें वे उसे इतना ऊंचा नहीं उठा पा रहे। अच्छा कोश बनाना बड़ा कठिन काम है। जो लोग भूखे रहकर भी हिन्दीकी सेवाकी दृष्टिसे इस काममें सहयोग देना चाहते हों उनके लिये यह स्वर्णिम अवसर है।

हम फिरसे पुरोधाकी ओरसे वर्माजीकी सेवामें शुभकामनाओंके सुमन समर्पित करते हैं।

अदितिका नया रूप

श्रीअरविंदाश्रमसे प्रकाशित होनेवाली त्रैमासिक अदिति २२ वर्षोंसे हिन्दीमें श्रीअरविंद-साहित्यका प्रसार करती रही है। इस वर्ष उसने अपना चोला बदलनेका निश्चयै किया है। अब वह अदिति पत्रिका न रहकर अदिति पुस्तक-मालाका रूप धारण करेगी। प्रत्येक दर्शनके अवसरपर अर्थात् सालमें चार बार श्रीअरविंद तथा माताजीकी कोई न कोई पुस्तक हिन्दी-परिधानमें प्रकट होगी। पुस्तक-मालाके ग्राहकोंको चारों पुस्तकें ६) में मिला करेंगी और अलग-अलग प्रत्येक पुस्तकका दाम २) होगा।

हम इस नये रूपका स्वागत करते हैं।

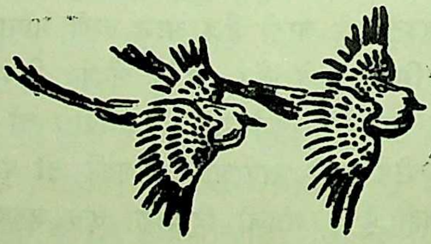

खेल-कूदकी प्रतियोगिताके समय

श्रीमांका संदेश

"प्रथम आनेकी महत्त्वाकांक्षाकी जगह यथासंभव सबसे अधिक कर पानेकी इच्छा जगाओ। "सफलता पानेकी इच्छाके बदले प्रगति करनेकी उत्कंठा पैदा करो। "नाम-यश कमानेकी लालसाके स्थानमें पूर्णता पानेकी अभीप्सा करो। "शारीरिक शिक्षाका उद्देश्य है शरीरमें चेतना और संयम लाना, अनुशासन और प्रभुत्व लाना, अधिक ऊंचे और अधिक उत्तम जीवनके लिये आवश्यक सभी चीजोंको ले आना। इन सभी बातोंको मनमें रखो, सच्चे दिलसे अभ्यास करो और तुम एक अच्छे बलिष्ठ व्यक्ति बन जाओगे; यही सच्चा मनुष्य बननेके रास्तेपर पहला कदम है।" ***

कर्ममें पूर्णता प्राप्त करनेसे कम किसी चीजको अपना आदर्श मत बनाओ और फिर यह निश्चित है कि तुम भगवान्के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

*

निम्न प्रकृतिकी कुरूपताओंको इस बहाने स्वीकार करना कि उनका अस्तित्व है —यदि यथार्थवादका यही अर्थ लिया जाता हो—साधनाका कोई अंग नहीं है। हमारा उद्देश्य इन चीजोंको स्वीकार करना और उनका सुख भोगना नहीं है, बल्कि उनसे छुटकारा पाना है और आध्यात्मिक सौंदर्य तथा पूर्णताका जीवन निर्मित करना है। जबतक हम इन कुरूपताओंको स्वीकार करेंगे तबतक हम वैसे जीवनका निर्माण नहीं कर सकते।

यह जानना कि वे हैं और उन्हें त्याग देना, उन्हें अपनेको स्पर्श न करने देना तो एक बात है; पर उन्हें स्वीकार करना और उनके वशमें हो जाना एकदम दूसरी बात है।

*

मानवीय प्रकृतिके छिछलेपनसे दम घुटनेके कारण हम उस ज्ञानको पाना चाहते हैं जो वास्तवमें जानता है, उस शक्तिको चाहते हैं जो वास्तवमें सक्षम है, उस प्रेमको चाहते हैं जो सचमुचमें प्यार करता है।

*

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने-आपको जीतने तथा अपने आवेगोंको संयमित करनेका संकल्प बनाये तो अवस्था अधिक स्वच्छ हो जायगी।

जब मनुष्य अपनी चेतनाको किसी हलचलमें बने रहने देता है तो उसका समूचा जीवन भी एक हलचल बन जाता है।

***

कामवृत्ति, भोजन और नींदके विषयमें कुछ प्रश्न:

श्रीअरविंदके उत्तर

प्रश्न — क्या यह सच है कि कामवासना योगसाधनाकी सबसे बड़ी बाधा है?

उत्तर — सबसे बड़ी बाधाओंमेंसे, कमसे-कम, एक तो है ही।

प्रश्न — आपने कहा है कि "कामवृत्ति आदि जैसे (प्राणिक) आवेगोंको साधारणतया शक्ति इस बातसे मिलती है कि लोग उनकी ओर बहुत अधिक ध्यान देते हैं।" "इन आवेगोंकी ओर बहुत अधिक ध्यान देने" का मतलब क्या है?

उत्तर — यदि मनुष्य बराबर उन्हींकी बात सोचता रहे और उनके साथ जूझता रहे तो इसे ही बहुत अधिक ध्यान देना कहते हैं।

प्रश्न — बहुत अधिक ध्यान देनेकी आदतसे बचनेके लिये उसे क्या करना चाहिये?

उत्तर — उसे उनसे अपने-आपको अनासक्त कर लेना चाहिये, कामवृत्ति आदिके विषयमें कम और भगवान्‌के विषयमें अधिक सोचना चाहिये।

प्रश्न — कामवृत्तिसंबंधी विचारोंके विषयमें आपने यह भी कहा है कि "दमनके द्वारा उनको संयमित करनेका प्रयास करना, उन्हें भीतर पकड़ रखना और उनके ऊपर बैठ जाना' गलत रास्ता है। मनुष्य इन विचारोंको कैसे अपने भीतर पकड़ रखता और उनके ऊपर बैठ जाता है?

उत्तर — वे शब्द ही स्वयं अपनी व्याख्या कर रहे हैं। यदि तुम कामवृत्तिसंबंधी विचारोंसे भरे रहो और किसी प्रकारके कार्यमें उन्हें अभिव्यक्त होनेसे रोकनेकी चेष्टा करो तो इसीका अर्थ है उन्हें भीतर पकड़ रखना और ऊपर बैठ जाना। यही बात क्रोध या किसी भी दूसरे आवेगके विषयमें लागू होती है। उन्हें अपने अंदर रखना नहीं चाहिये, बल्कि उन्हें अपने भीतरसे दूर फेंक देना होगा।

प्रश्न — आपने कहा है कि किसी अशुद्ध क्रियापर संयम लानेसे वह महज दब जाती है और उसे पूर्ण रूपसे हटानेके लिये हमें उसका त्याग करना होगा। तब भला कामवृत्ति, क्रोध, भय इत्यादिकी क्रियाओंको संयमित करनेसे क्या लाभ?

उत्तर — यदि तुम सफलतापूर्वक त्याग नहीं कर सकते तो तुम्हें उनपर संयम लाना ही होगा। संयम कमसे-कम तुम्हें अपने प्राणिक आवेगोंका दास होनेसे बचाता है। एक बार जब तुम संयम स्थापित कर लेते हो तो सफलतापूर्वक त्याग करना अधिक आसान हो जाता है। यदि संयमका अभाव हो तो फिर सफलतापूर्वक त्यागना संभव नहीं।

प्रश्न — काम-शक्ति (वीर्य) को 'ओजस' में परिवर्तित करनेकी क्या प्रक्रिया है?

उत्तर — यदि यह कार्य किसी प्रक्रियाके द्वारा करना हो तो वह प्रक्रिया होगी तपस्या (मन, वाणी और कार्यपर आत्मसंयम) और संकल्पशक्तिके द्वारा वीर्यको ऊपरकी ओर खींचना। परंतु यह कार्य दिव्य शक्तिका अवतरण होने, काम-केंद्रमें उसकी क्रिया होने तथा उसके फल-

स्वरूप रूपांतर होनेपर और भी अधिक अच्छे रूपमें होता है जैसे कि इस योगमें और दूसरी चीजें घटित होती हैं।

प्रश्न — क्या उपवास करना हमारी साधनामें सहायक होता है?

उत्तर — इस साधनामें उपवाससे सहायता नहीं मिलती।

प्रश्न — क्या इंद्रियोंको संयमित करनेके लिये बहुत थोड़ा खाना उपयोगी होता है?

उत्तर — नहीं, वह महज उन्हें उत्तेजित कर देता है — एक परिमित मात्रामें लेना ही सबसे उत्तम है। जो लोग उपवास करते हैं वे बहुत आसानीसे फूल उठते हैं और अपना संतुलन खो सकते हैं।

प्रश्न — अगर कोई केवल शाकाहारी भोजन ले तो क्या इससे इंद्रियोंके संयममें सहायता मिलती है?

उत्तर — मांसाहारीको जो कठिनाइयां होती हैं उनमेंसे कुछ कठिनाइयोंसे मनुष्य बच जाता है, परंतु स्वयं शाकाहार अपने-आपमें पर्याप्त नहीं है।

प्रश्न — जो साधक उच्चतर चेतनामें पहुंच गया है उसके लिये क्या नींद आवश्यक है?

उत्तर — जबतक मनुष्य एक ऐसे शरीरमें है जो अपनी समस्त क्रियाओंमें पूर्ण रूपसे रूपांतरित नहीं हुआ है तबतक उसके लिये सोना आवश्यक है।

प्रश्न — रातमें मन और प्राण इतने सक्रिय क्यों हो जाते हैं? मनुष्य रातमें उनकी क्रियाओंको कैसे संयमित कर सकता है?

उत्तर — यह तो उनका (स्वाभाविक) कार्य है। जबतक मनुष्य अपनी नींदमें पूरा सचेतन नहीं हो जाता तबतक वे कार्य करते रहेंगे।

प्रश्न — मेरी नींदके पहले और बीचके भागमें बहुत अधिक मानसिक और प्राणिक क्रियाएं होती हैं पर अंतिम भागमें बंद हो जाती हैं और मुझे नाना प्रकारके प्रतीकात्मक स्वप्न आते हैं और उच्चतर ज्ञानकी सूचनाएं मिलती हैं। इसका क्या कारण है?

उत्तर — नींदके समय मनुष्य बहुत सामान्य रूपमें ही चेतनासे अधिक गभीरतर चेतनामें लगातार गुजरता रहता है और अंतमें चैत्य चेतनामें पहुंचकर विश्राम करता है अथवा उच्च चेतनासे उच्चतर चेतनामें ऊपर उठता हुआ अंतमें एक प्रकारकी निश्चल-नीरवता और शांतिके अंदर विश्रामको प्राप्त होता है। इस विश्राममें मनुष्य जो कुछ क्षण बिताता है वही उसकी सच्ची नींद होती है और वह उसे चंगा कर देती है, — यदि मनुष्य उसे नहीं पाता तो उसे आधा ही विश्राम मिलता है। जब तुम विश्रामके इन दो उच्चतर क्षेत्रोंमें से किसीके समीप आते हो तो तुम इन उच्च प्रकारके स्वप्नोंको देखना आरंभ करते हो।

प्रश्न — नींदके समय चैत्य चेतना या उच्चतर चेतनामें पहुंचने और वहां विश्राम करनेका उपाय क्या है?

उत्तर — अभी जैसी अवस्था है, यह कार्य अचेतन भावसे ही हो जाता है। यदि कोई इसे सचेतन रूपमें करना और इसे नियमित बनाना चाहे तो सबसे पहले उसे नींदमें सचेतन होना होगा।

प्रश्न — भारी अवचेतन नींदको हलका कैसे बनाया जा सकता है ?

उत्तर — अधिकाधिक चेतनाको जगाकर।

प्रश्न — मैं देखता हूं कि दिनके समय आध घंटेकी नींद भी रातकी पांच या छः घंटेकी नींदसे कहीं अधिक ताजगी देती है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर — इसका कारण यह होगा कि दिनके समयकी नींद दूसरे प्रकारकी होगी, वह कम भारी होगी, उस समय अवचेतनामें कम समय बीतता होगा।

प्रश्न — कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें सारी रात स्वप्नरहित निद्रा होती है। क्या यह संभव है ?

उत्तर — उनका बस मतलब यही होता है कि जब वे वापस आते हैं तो उन्हें यह याद नहीं रहता कि उन्होंने स्वप्न देखा था। नींदमें चेतना दूसरे लोकोंमें चली जाती है, वहां अनुभव लेती है और जब वे पूरे या अधूरे रूपमें भौतिक मनके द्वारा रूपांतरित होते हैं तब उन्हें स्वप्न कहा जाता है। नींदमें पूरे समय ऐसे स्वप्न होते रहते हैं, परंतु कभी तो मनुष्य उन्हें याद रखता है और कभी बिलकुल भूल जाता है। कभी-कभी मनुष्य बहुत नीचे अवचेतनामें भी चला जाता है और वहां स्वप्न होते हैं, पर इतने नीचे वे होते हैं कि जब मनुष्य ऊपर आता है तो उस समय उसे इतना भी बोध नहीं रहता कि उसने स्वप्न देखा था।

प्रश्न — नींदके समय मैं अक्सर प्राणलोकके बुरे स्वप्न देखता हूं। इसे कैसे रोका जाय ?

उत्तर — इसे रोकनेके लिये तुम जाग्रत् अवस्थामें यह संकल्प कर सकते हो कि ऐसी चीजें स्वप्नमें न आवें, उदाहरणार्थ, सोनेसे पहले ऐसा कर सकते हो। तुरत-फुरत इससे सफलता नहीं मिलेगी, पर अंतमें यह विजयी होगा। अथवा, तुम नींदके समय अधिक सचेतन रहनेकी अभीप्सा कर सकते हो।

प्रश्न — कभी-कभी स्वप्नमें जब मुझपर आक्रमण होता है तो माताजीका नाम जपनेसे उससे छुटकारा पा जाता हूं। इसका अर्थ हुआ कि माताजीके नाममें भी शक्ति है।

उत्तर — हां, निश्चय ही, नाममें बराबर ही शक्ति रहती है।

मनुष्य भगवान्

अतिमानव

मनुष्य

मनुष्य सीमित होते हुए, अनंतको पानेकी आकांक्षा करता है; आपेक्षिक होते हुए, सभी विषयोंमें उनके शुद्ध निरपेक्ष रूपकी ओर आकर्षित होता है; अपनी प्रकृतिमें कृत्रिम होते हुए, एक उच्चतर शांति, प्रभुत्व और नैसर्गिकताकी ओर दौड़ता है जो सर्वदा ही उस (प्रकृति) की निश्चेतन शक्तियों और अर्ध-चेतन पशुओंके लिये अस्वीकृत कर दी जायंगी; असंगतियोंसे भरा हुआ होते हुए सुसंगति पानेका आग्रह करता है; प्रकृतिद्वारा अधिकृत और उसका दास होते हुए वह इस बातपर दृढ़ विश्वास करता है कि प्रकृतिपर अधिकार जमाना और उसका स्वामी बनना उसके जीवनका मुख्य कार्य है।

वह जिस चीजकी अभीप्सा करता है वह इस बातका द्योतक है कि वह क्या हो सकता है। वह अभी जो कुछ पार्थिव धातु है उसके एक प्रकारके रूपांतरके द्वारा उसे दोषपूर्ण मानवत्वसे निकलकर एक प्रकारके उच्चतर प्रतीकमें बदल जाना होगा। क्योंकि मनुष्य ही है प्रकृतिकी महान् मध्यस्थ सत्ता जिसमें आकर वह अपने लक्ष्यके विषयमें सचेतन होती है; उसीमें आकर वह पशुत्वकी भूमिमें खड़ी होकर खुली आंखोंसे अपने दिव्य आदर्शकी ओर दृष्टि निक्षेप करती है।

भगवान्

परंतु भगवान् हैं एक जटिल, बहुविधत्ता स, वह सत्ता नहीं सरल, सीधीसादी हैं। और मानव-बुद्धिको एक छोटे तिरछे रास्तेसे भागवत स्वभावको प्राप्त कर लेनेका लोभ होता है और इसलिये वह भगवान्‌के किसी एक तत्त्वकी ऐकांतिक पूजामें लग जाता है। ज्ञान, प्रेम (जिसका गुप्त स्वरूप है आनंद), शक्ति और एकत्व हैं भगवान्‌के कुछ नाम। परंतु ये सभी यद्यपि हैं दिव्य ही, पर इनमेंसे किसी एकको ऐकांतिक भावसे पानेकी चेष्टा करनेका मतलब है, प्रथम शक्तिके शेष हो जाने-पर, भगवान्‌को दूर हो जानेके लिये निमंत्रित करना और उन्हें अस्वीकार कर देना; क्योंकि एकत्व भी, जब ऐकांतिक रूपसे अनुसृत होता है तब, सच्चा एकत्व नहीं रह जाता। फिर भी यही भूल हम शाश्वत कालसे करते आ रहे हैं।

अतिमानव

एकत्व ही गुप्त कुंजी है, एक बहुविध, बोधक्षम और सर्वसमालिंगनकारी एकत्व। जब **प्रेम**का पूरा हृदय ज्ञानके द्वारा शांत-स्थिर होकर स्थिर-अडोल दिव्यानंदसे भरपूर हो जाता और शक्तिसे प्रकंपित होता है, जब **शक्ति**के प्रबल हाथ हर्ष और ज्योतिके जगमग पूर्णत्वके अंदर जगत्‌के लिये परिश्रम करते हैं, जब ज्ञानका आलोकित मस्तिष्क हृदयके अंधकाराच्छन्न अंतःप्रेरणाओंको स्वीकार करता और रूपांतरित करता है तथा ऊर्ध्वासीन संकल्प-शक्तिकी क्रियाओंमें अपने-आपको नियोजित करता है, जब ये सभी देव एक साथ उस त्यागशील आत्माके ऊपर स्थापित होते हैं जो समस्त जगत्‌के साथ प्राप्त एकत्वमें रहता है और सभी वस्तुओंको रूपांतरित करनेके लिये स्वीकार करता है तभी मनुष्यके लिये संपूर्ण आत्मातिक्रमणकी उपयुक्त अवस्था आती है। यही है अतिमानवत्व प्राप्त करनेका दिव्य पथ, कोई उग्र, प्रचंड और बलशाली आहंकारिक आत्मानुशीलन वह पथ नहीं है जिसकी सहायतासे मनुष्य एक पददलित मानवताकी छातीपर बैठकर शासन करता है।

—**श्रीअरविंद**

श्रीअरविन्द

उनका शरीर-त्याग

श्रीअरविंदने ५ दिसंबर १९५० को १ बजकर २६ मिनटपर रात्रिमें महासमाधि ले ली। श्रीमाताजीने ७ दिसंबरको एक संदेशमें बतलाया कि जबतक श्रीअरविंदका कार्य पूरा न होगा तबतक वे पृथ्वीको छोड़ेंगे नहीं। पूरे १११ घंटेतक श्रीअरविंदके शरीरमें दिव्य ज्योतिकी प्रभा बनी रही। मालूम होता था कि मर्त्यमें अमरत्व उतर आया है, शरीर कंचनकी तरह अपनी सहज आभा बनाये हुए था, उसमें किसी प्रकारका विकार हुआ ही नहीं था। श्रीमाताजीने १४ दिसंबरको जो संदेश दिया उसमें कहा कि श्रीअरविंदके लिये दुखी होना श्रीअरविंदका अपमान करना है। श्रीअरविंद हम लोगोंके साथ हैं — पहलेकी तरह सजीव और सचेतन, वे हम लोगोंको छोड़कर जा नहीं सकेंगे। हम उनकी उपस्थितिको पहलेकी तरह, पहलेसे भी अधिक जाग्रत् और जाज्वल्यमान अनुभव करते हैं। वे सदा हमारे साथ हैं, जो कुछ हम कर रहे हैं, सोच रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, सबके द्रष्टाके रूपमें।

वस्तुतः किसी भी योगीकी मृत्यु — जिसे हम सामान्यतया मृत्यु कहते हैं — होती ही नहीं। उसकी चेतना भौतिक शरीरकी मर्यादासे अधिक होती है और जब वह सशरीर होता है तब भी वह इस दैहिक आवरणसे बहुत ऊपर और महान् होता है। वह मनुष्यजातिके लिये जो कार्य करता है वह भी मूलतः उसकी स्वतंत्र और विशाल आत्माका कार्य होता है — उस आत्माका जो सनातन भगवान्की असीम एकतामें पूर्णतया सजग रूपमें अमरत्वका भोग करती है और जिसके लिये वास्तवमें जीवन और मृत्यु दोनों स्वांगमात्र हैं। श्रीअरविंद जैसे योगेश्वरके संबंधमें तो मृत्यु शब्दका प्रयोग बिलकुल ही असंगत है, क्योंकि यह सब जानते हैं कि अतिमानसकी रूपांतरकारी शक्ति उनके शरीरके प्रत्येक अणुमें कार्य कर रही थी और उसका प्रभाव केवल आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक भी था। श्रीअरविंदके बारेमें यह कभी नहीं कहा जा सकता कि उनको वृद्धावस्था या किन्हीं भौतिक कारणोंसे शरीर छोड़ना पड़ा।

यह सचमुच आध्यात्मिक विश्वके लिये एक महान् घटना है कि जब संसारमें श्रीअरविंदके संबंधमें जाननेकी उत्सुकता अधिकाधिक बढ़ रही थी और उनकी योगसाधनाकी ओर संसारके साधक मुड़ रहे थे, प्रवृत्त हो रहे थे तो श्रीअरविंदने यकायक समाधि ले ली। पर श्रीअरविंद सदासे ऐसी लीला करते आये थे। उनके लिये यह कोई नयी बात नहीं थी। आई. सी. एस. को त्यागकर बड़ौदेकी नौकरी की और जब बड़ौदेमें उनकी ख्याति विस्तार और ऊंचाईपर थी, उन्होंने उसे ठुकराकर बंगालमें राजनीतिक फकीरका जीवन बिताना अधिक पसंद किया और वहां जेलमें उन्हें भगवत्साक्षात्कार हुआ और फिर वे अखिल भारतीय नेता बन गये। फिर एक रातको सहसा वे गंगा पारकर चन्दननगर और फिर वहांसे पांडिचेरी पहुंचते हैं और अज्ञात जीवन बिताने लगते हैं। यहांसे उनकी आध्यात्मिक ज्योति विकीर्ण होकर सारे संसारपर छा ही जाना चाहती है कि वे सदाके लये समाधि ले लेते हैं। कीर्त्ति, श्री, सदा हाथ जोड़े इनके पीछे-पीछे चलती रहीं परंतु इन्होंने पीछे मुड़कर कभी उनकी ओर निहारातक नहीं। यह तो सच है कि इस महान् त्यागका वरण वे सदा हमारे लिये करते गये और उनकी महासमाधि भी मानवताके महान् कल्याणके लिये ही है। अपनी महान् और चिर-अमर कृति "सावित्री" में वे सांकेतिक रूपमें इस घटनाका वर्णन करते हैं —

A day may come when she must stand unhelped
On a dangerous brink of the world's doom and hers,
Carrying the world's future on her lonely breast,
Carrying the human hope in a heart left sole
To conquer or fail on a last desperate verge.

* *

In that tremendous silence lone and lost
Of a deciding hour in the world's fate,

* *

Alone she must conquer or alone must fall.

* *

Cry not to heaven, for she alone can save.
She only can save herself and save the world.

"एक दिन ऐसा आ सकता है जब वह एक भयंकर कगारेपर, विश्वके और संहारके संकटापन्न द्वारपर अकेली निस्सहाय अवस्थामें खड़ी होगी और अपने शून्य वक्षस्थलपर विश्वका भविष्य तथा अपने अकेले परित्यक्त हृदयमें मानवजातिकी आशाको लिये हुए होगी।.....विश्वके भाग्यके एक निश्चयात्मक क्षणकी उस नीरवताके अंदर वह एकाकी और खोयी होगी...चाहे वह अकेली ही विजयश्री पायगी या अकेली ही पराजित हो जायगी।.......दैवको मत पुकारो, क्योंकि एकमात्र वही रक्षा कर सकती है। वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर सकती है और संसारकी भी रक्षा कर सकती है।"

यह स्पष्ट ही श्रीमाताजीकी ओर संकेत है और इस संकेतको हम सभी पूरी तरह, अच्छी तरह समझ रहे हैं।

नवंबर १९५० का "सिद्धि दिवस" का दर्शन श्रीअरविंदका अंतिम दर्शन था। तब यह जन भी सौभाग्यवश वहीं था। श्रीअरविंद और श्रीमाताजी सिंहासनपर विराजमान थे। हजारों दर्शनार्थी माल्यपुष्पसहित शांतिपूर्वक पंक्ति बांध दर्शनोंके लिये आते जा रहे थे। सारा कार्यक्रम बड़े आनंदके साथ संपन्न हुआ। १ ली और २री दिसंबरको स्कूलका वार्षिकोत्सव था। खूब धूमधाम और चहल-पहल रही। पर कौन जानता था कि ठीक इसके बाद ही एक महान् दुःखांत अभिनय होनेवाला है। श्रीअरविंदको इस उत्सवकी सानंद समाप्तिका जब समाचार मिला तो वे बहुत प्रसन्न हुए और पूछा, "अच्छा, समाप्त हो गया?"

श्वास रुक जाने और हृदयकी गति बंद हो जानेके केवल आधा घण्टा पहले श्रीअरविंदने अपने शांत करुणामय नेत्र खोले, पासवाले डाक्टरका नाम पुकारा और पानी पिया। चिकित्सासंबधी इतिहासमें मूत्रविष-संचारकी यह सबसे अनोखी मूर्छा थी। ५ दिसंबरको श्रीअरविंदने महासमाधि ले ली पर लगभग चार दिनतक उनका दिव्य शरीर ज्योतिर्मय पुंजसे आलोकित सुन्दर और स्वर्णवर्ण का यथापूर्व रहा जब कि श्रीमाताजीने एक घोषणाके साथ समाधिक्रियाको अनिश्चित कालके लिये स्थगित कर दिया। वह प्रसिद्ध घोषणा यह है, "श्रीअरविंदको आज समाधि नहीं दी जा रही। उनका शरीर अतिमानस प्रकाशके घनीभूत पुंजसे इतना परिपूर्ण है कि उसमें विकारके चिह्न कहीं भी दिखायी नहीं दे रहे। जबतक शरीर ठीक अवस्थामें रहेगा तबतक वह इसी तरह शय्यापर लेटी अवस्थामें रखा रहेगा।" और वह कई दिनतक अतुल महिमामयी शांतिमें वैसा ही अक्षुण्ण रहा। सहस्रों लोगोंने इस समय उनके दर्शन किये। अंतमें ९ दिसंबरकी शामके ५ बजे उनकी देह शीशमकी लकड़ीके बक्समें रख दी गयी। इसमें चांदीकी पर्त तथा रेशमी कपड़ेका स्तर लगा हुआ था; फिर बक्सको अत्यधिक सादगीके साथ, किसी मतके धार्मिक कर्मकाण्डके बिना, प्रांगणके बीचोंबीच विशेष रूपसे तैयार किये गये समाधिस्थलमें उतार दिया गया।

श्रीअरविंदके महाप्रयाणकी यह सारी घटना एक महत्त्वपूर्ण और विचारपूर्वक किये गये संघर्षकी पराकाष्ठा थी। श्रीअरविदको पहलेसे इसका आभास मिल गया था। पिछले दो वर्षोंसे वे भविष्यकी योजनाओंके बारेमें कुछ मौनसे हो चले थे। उसी नवंबरमें उनको एक गुजराती ज्योतिषीकी भविष्यवाणी पढ़कर सुनायी गयी थी। इस ज्योतिषीने लिखा था, "१९५० में सूर्य और चंद्रमाका योग है और चंद्रमा बारहवें ग्रहका अधिपति है इसलिये संभव है कि इस वर्ष श्रीअरविंद अपने-आप इस शरीरको छोड़ दें।" १९६४ के बारेमें भी वैसी कुछ भविष्यवाणी उसने की थी जब श्रीअरविंद ९३ वर्ष पूरे कर चुके होते। यह सुनकर श्रीअरविंदने हाथ ऊपर

उठाकर कुछ हंसीमें कहा, "ओह, तिरानबे वर्ष!" श्रीअरविंदने इन भविष्योक्तियोंको मनगढ़ंत नहीं मान उन्होंने कहा, "इस व्यक्तिको सत्यका कुछ ज्ञान अवश्य है।" तब किसीने प्रश्न किया, "इस वर्ष शरीर छोड़ देनेकी वाणीमें तो कोई सार नहीं है न? निश्चय ही ऐसा करनेका तो आपका विचार नहीं है?"

अपने धीर-गंभीर भावमें उन्होंने प्रत्युत्तरमें केवल एक ही रहस्यमय शब्द कहा, "क्यों?"

यह शब्द सबको आश्चर्यमें डाल देनेवाला था, क्योंकि वे यही आशा करते थे कि अतिमानसके अधिकाधिक अवतरणके फलस्वरूप श्रीअरविंदके जीवनका असाधारण रूपसे लंबा हो जाना उनके कार्यक्रमका ही एक भाग है। इस बीच एक आश्चर्यजनक घटना यह हुई कि जो लोग उनकी सेवामें रहते थे, उनके कमरेमें काम करते थे उनके प्रति वे सहसा अत्यधिक वात्सल्यमय हो उठे। वे उनको जता देना चाहते थे कि उन सबकी सेवाओंका उनकी दृष्टिमें बड़ा मान है। उनका यह प्रेमप्रदर्शन अत्यंत मधुर और आनंददयाक होते हुए भी उसमें आसन्न विदाईकी तीखी गंभीरता अस्पष्ट रूपसे दिखायी पड़ती थी।

एक तीसरी आश्चर्यजनक घटना भी यहां दी जा सकती है। एक बार एक साधकको श्रीअरविंदके मुखसे एक बड़ी अजीब-सी बात सुनायी पड़ी: इस साधकका कार्य था कि जो कुछ भी श्रीअरविंद पत्र या पुस्तक रूपमें लिखवाएं उसे लिपिबद्ध कर ले। वे पिछले कई वर्षोंसे "सावित्री" लिखवानेमें संलग्न थे। असीम महिमामय पर सहज था "सावित्री" विषयक उनका परिश्रम। इस महाकाव्यके निर्माणमें दिव्य दृष्टि और अनुभवके साथ-साथ इसी कोटिका धैर्य भी उनमें विद्यमान था। यहांतक कि पिछले दिनों वे इसकी ग्यारहवीं या बारहवीं आवृत्तिमें लगे हुए थे। पर एकाएक इस महान् प्रयाणके कोई दो महीने पहले उन्होंने अपने लेखकको यह कहकर चौंका दिया, "सावित्रीका काम अब मुझे शीघ्र समाप्त कर देना चाहिये।"

श्रीअरविंदके योग और दर्शनका सार है वह गतिशील चेतना जिसे वे अतिमानस "सुप्रामेण्टल" कहते हैं। श्रीअरविंदका लक्ष्य यह था कि अतिमानसको अवतरित कराकर एक नयी मानवताकी सृष्टि की जाय जो उच्च आत्मपूर्णताका आनंद ले और प्रत्येक क्षेत्रमें दिव्य जीवन यापन करे। इसी लक्ष्यको लेकर उन्होंने अपने-आपको तथा माताजीको अतिमानसिक स्थितितक उठाकर नयी मानवजातिके लिये प्रारंभिक केंद्र तैयार करनेका प्रयत्न किया। रोगोंसे मुक्ति, इच्छित आयु, शरीरके व्यापारोंमें परिवर्तन — सब अतिमानसिक अवस्थाके अंतिम फल हैं। निश्चय ही इन सबका काम मनुष्यके अंदरकी दिव्य प्रकृतिको मूर्त्त रूप देना है। यह फल ही पृथ्वीपर अतिमानसिक जीवनको पूर्णतः सुरक्षित बना सकता है। इसकी प्राप्तिके लिये योगीको अंतमें निश्चेतनाकी दृढ़ चट्टानसे निबटना पड़ता है, क्योंकि यह निश्चेतना ही प्रच्छन्न भगवान्का अंधकारमय आधार है और यहींसे विकासका स्वरूप प्रारंभ होता दीखता है।

श्रीअरविंद और माताजी मनुष्यजातिके मुख्य प्रतिनिधिके रूपमें मानवचरित्रकी युग-युगकी कठिनाइयां अपने ऊपर लेकर पिछले २५ वर्षोंसे निश्चेतनकी इस चट्टानके साथ जूझ रहे हैं। १९३५ में, एक पत्रमें श्रीअरविंद लिखते हैं, "मैं अपने निजके लिये कुछ भी नहीं कर रहा, क्योंकि मुझे अपने लिये न मोक्षकी आवश्यकता है न अतिमानसिक सिद्धिकी। यह जो मैं इस सिद्धिके लिये यत्न कर रहा हूं वह केवल इसलिये कि पार्थिव चेतनाके लिये इस कामका होना आवश्यक है और यदि यह पहले मेरे अंदर न हुआ तो औरोंमें भी न हो सकेगा।" उनका

समस्त अतिमानव-योग सचमुच ही एक महान् सेनापतिका युद्ध था — युद्ध उन शक्तियोंके विरुद्ध जिनके साथ अबतक किसी आत्मवेत्ताने युद्ध नहीं किया था। १९३५ के एक और पत्रसे उनके विचार इस संबंधमें और स्पष्ट हो जाते हैं, "मैं व्यक्तिगत महानता प्राप्त करनेके लिये अतिमानसको नीचे उतारनेकी कोशिश नहीं कर रहा। मानवीय अर्थोंमें महानता या क्षुद्रता, किसीको महत्त्व नहीं देता। यदि मनुष्यकी बुद्धि मुझे इसलिये मूर्ख समझती है कि जो कार्य श्रीकृष्णने नहीं किया उसे मैं करनेका प्रयत्न कर रहा हूं तो इसकी मुझे परवाह नहीं। अतिमानसका अवतरित होना भगवान्की इच्छा है या नहीं, मैं इस अवतरणका मार्ग खोल देने या कम-से-कम इसको अधिक संभव कर देनेके लिये भेजा गया हूं या नहीं—ये प्रश्न भगवान्के और मेरे बीचमें हैं। चाहे लोग मेरी हंसी उड़ावें, मेरी धृष्टताके लिये समस्त विपत्तियोंका पहाड़ भी मेरे ऊपर टूट पड़े तो भी मैं आगे बढ़ता ही जाऊंगा, या तो मेरी विजय होगी या मेरी मृत्यु। इसी भावनासे मैं अतिमानसकी खोजमें निकल पड़ा हूं, अपने लिये या औरोंके लिये किसी प्रकारकी महानता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे नहीं।" यह है आत्मत्यागका ज्वलंत साहस, एक योद्धा योगीका सजीव चित्र, जो अपने लक्ष्यके निकट पहुंचनेके लिये सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार है। उनका मूल मंत्र यह अवश्य है "विजय या मृत्यु" पर उनकी मनःस्थिति ऐसी है कि वह इससे भी अधिक साहसी मंत्रका प्रयोग कर सकती है — "विजयके लिये मृत्यु"।

एक कुशल योद्धाकी भांति ही श्रीअरविंदने अपना अभूतपूर्व बलिदान करनेका निश्चय किया। इसके सिवाय उनके महाप्रयाणका कोई अर्थ ही नहीं हो सकता। उनके सामने दो प्रश्न थे-अतिमानसको न उतार पहले भौतिक चेतनाको तैयार करना अथवा अतिमानसको उतारकर भौतिक चेतनाको शीघ्र तैयार करना और इस तरह रूपांतरके कार्यको सुकर बनाना। इसी अंतिम उद्देश्यसे उन्होंने अपना बलिदान कर दिया और यहां भौतिक चेतनाके प्रतिनिधिके रूपमें श्रीमाताजीको रूपांतरका कार्य सिद्ध करनेके लिये छोड़ दिया। इस कार्यके हो जानेपर श्रीमाताजीके द्वारा इस पृथ्वीपर मनुष्यजातिके लिये एक दिव्य जीवनकी नींव पड़ जायगी जो समय आनेपर फूले-फलेगा। १९३४ के एक पत्रमें वे लिखते हैं, "जो भार मेरे ऊपर है उसे केवल भगवत्प्रेम ही सह सकता है। और जिन्होंने भी अपना सर्वस्व त्यागकर पृथ्वीको अंधकारमेंसे निकालकर भगवान्की ओर ले जानेका एकमात्र लक्ष्य बना लिया है उस सबको यह भार उठाना ही पड़ता है।"

५ दिसंबरके सबेरेसे १११ घंटेतक वे अपने कमरेकी एक सादी शय्यापर लेटे रहे — उस कमरेमें जहां उन्होंने अपने जीवनके २० वर्षसे अधिक आध्यात्मिक प्रयोगमें बिताये थे। आध्यात्मिक रूपमें 'भव्य और श्रीयुक्त' — केवल ये ही शब्द उनके शरीरकी उस समयकी छविका वर्णन करनेमें समर्थ हैं — श्वेत दाढ़ी और चौड़े ललाटपर लहराते हुए श्वेत केशोंसे भरा चेहरा, बंद शांत आंखें, चौड़े रन्ध्रोंवाली उन्नत नासिका, दृढ़ होंठ जिनके कोनोंपर परमानंदकी छाया थी, चौड़े चिकने स्कंध, विशाल वक्षपर मोड़ रखी गयी बाहें, एकके ऊपर एक रखे हुए मृदुल, कलामय पर समर्थ हाथ, एक बड़ी जरीके किनारेकी रेशमी चादरसे ढका हुआ, पौरुषपूर्ण पुष्ट शरीरका निचला हिस्सा, राजसी ढंगसे फैले हुए चरण जो यह याद दिला रहे थे कि उन्होंने अपन पवित्र चरणोंके स्पर्शसे ७९ वर्षोंतक इस पृथ्वीको धन्य तथा सनाथ किया है। कमरेका वातावरण मनुष्यको पवित्र और उज्ज्वल बना देनेवाली शक्तिसे ओतप्रोत था। आज श्रीअरविंद

अपने अनुयायियोंके साथ एकाएक नवीन रूपमें घनिष्ठसे हो उठे और उन्होंने प्रत्यक्ष रूपमें उनको अपनी विशाल सत्तामें समेट लिया।

यह असंदिग्ध भावसे कहा जा सकता है कि श्रीअरविंद, जो हमारा पथप्रदर्शन करते थे, जिनसे हम प्रेम करते थे, अब भी अपना कार्य कर रहे हैं और उनकी अमृतमयी आश्वासनमयी वाणी अब भी स्पष्ट सुनायी पड़ रही है —— मैं यहीं हूं, मैं यहीं हूं —— "आइ एम हीयर! आइ एम हीयर!" माताजीके इस कथनमें कि श्रीअरविंदके लिये शोक करना उनका अपमान करना है —— क्योंकि वे यहीं हमारे पास हैं —— सचेतन और सजीव —— एक मूर्त्तिमान सत्य व्यक्त होता है। १७ दिसंबरके सुन्दर संदेशमें भी यही सत्य जाज्वल्यमान है। यह श्रीमाताजीकी आत्माकी उस गहराईसे निकला था जहां श्रीअरविंद और वे एक हैं —— सर्वथा एक। संदेश इस प्रकार है, "प्रभो! आज सवेरे तूने मुझे इस बातका आश्वासन दिया है कि तू तबतक हमारे साथ रहेगा जबतक तेरा कार्य पूरा नहीं हो जाता —— केवल उस चेतनाके रूपमें ही नहीं जो हमें मार्ग दिखाती और प्रकाश देती है, बल्कि कर्मके क्षेत्रमें एक सक्रिय सत्ताके रूपमें भी तू सदा हमारे पास रहेगा। तूने असंदिग्ध शब्दोंमें यह वचन दिया है कि तू अपनी समस्त सत्ताके साथ यहां वर्तमान रहेगा और जबतक यह पृथ्वी रूपांतरित नहीं हो जाती तबतक तू इसके वातावरणको नहीं छोड़ेगा। ऐसी कृपा कर कि हम तेरी इस अद्‌भुत उपस्थितिके योग्य बनें और अबसे हमारे अंदरकी हरएक चीज तेरे महान् कार्यकी पूर्त्तिके लिये अधिकाधिक पूर्ण आत्मसमर्पण करनेके संकल्पपर ही केंद्रित रहे।" २४ अप्रैल १९५१ को जब समुद्रतटपर डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जीके सभापतित्वमें श्रीअरविंद-स्मारक विश्व-विद्यालय-केंद्र[1] का अधिवेशन हुआ था तो उसका उद्‌घाटन करते हुए माताजीने कहा था, "श्रीअरविंद हमारे बीच मौजूद हैं और अपनी सृजनशील प्रतिभाकी पूरी शक्तिके साथ विश्वविद्यालयके इस आयोजनकी देखरेख कर रहे हैं। वर्षोंसे वे ऐसे विश्वविद्यालयको भावी मानवजातिको अतिमानसिक प्रकाशके लिये तैयार करनेके सर्वोत्तम साधनके रूपमें सोचा करते थे, उस अतिमानस प्रकाशके लिये जो आजके विशिष्ट व्यक्तियोंको पृथ्वीपर नया प्रकाश, नयी शक्ति और नया जीवन अभिव्यक्त करनेवाली नयी जातिमें रूपांतरित कर देगा। उन्हीं श्रीअरविंदके नामपर मैं इस विशेषाधिवेशनका उद्‌घाटन करती हूं जो कि उनके विशेष प्रिय आदर्शको चरितार्थ रकनेके उद्देश्यसे होने जा रहा है।"

हम लोग, जिनका आश्रमसे संबंध है, जिन्हें श्रीअरविंदके दर्शनोंका सौभाग्य एक बार भी हुआ है, यह प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि श्रीअरविंद यथापूर्व अब भी विद्यमान हैं और जबतक इस जगत्‌के दिव्य रूपांतरका कार्य पूरा नहीं हो जाता तबतक वे हमारे बीच बने रहेंगे।

और महा-महिमामयी, जगज्जननी, महालक्ष्मी, महासरस्वती और महामहेश्वरी-रूपा यह हमारी मां जबतक हमारे सामने हैं तबतक किसी भी बातकी चिंता क्यों?

मां तेरी जय हो, जय हो!

(श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' की पुस्तक श्रीअरविंद-चरितामृतसे)

---

[1] अब इसका नाम श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र हो गया है।

देवदासी

पहला दृश्य

[एक १७-१८ वर्षीय युवती अपने लंबे बाल फैलाकर खाटपर लेटी है। सामनेका दरवाजा खोलकर स्मृति अंदर आती है और लेटी युवतीको बाहुओंमें जकड़ लेती है।]

स्मृति: सुना तूने; पाटणके महाराज श्री भीमदेव वाणावजी आये हैं।

चौला: आये होंगे। मुझे इससे क्या?

स्मृति: अरी! तू किसीको कुछ समझती ही नहीं! गुजरातके महाराजाधिराज तेरे लिये कुछ भी नहीं?

चौला: हां, मेरे लिये शिवको छोड़कर किसीकी कोई गिनती नहीं। तू ही देख, कहां देवाधिदेव, जगत्पति महादेव और कहां विश्वकी कणिका यह गुर्जरेश!

स्मृति: तेरी बात ही निराली है; पर दुनियामें रहते हुए उसके नियमोंको भी देखना पड़ता है। गुर्जरेश तेरा नृत्य देखकर खुश हो गये तो मंदिरकी खूब सहायता करेंगे।

चौला: यूं कह कि मेरे सोमनाथकी सेवाका अवसर पाकर भीमदेव धन्य हो उठेंगे। यह असीम धनराशि क्या तेरे गुर्जरेशने दी है, मेरे स्वामीमें वह सामर्थ्य है कि बिना किसी सहायके ही अपना काम चला सकते हैं।

स्मृति: स्वामी, स्वामी क्या बकती है?

चौला: हां, स्वामी ही हैं। मैं उनकी देवदासी हूं, हमेशा उन्हींके चरणोंमें रहूंगी। उन्हींके लिये जिऊंगी और उन्हींके लिये मरूंगी। वे मेरे स्वामी हैं, मैं उनकी दासी, वे मेरे सर्वस्व हैं, वे ही मेरे पति हैं।

स्मृति: चौला, इतनी भावुक मत हो। वह जमाना गया जब देवदासियां भावनाके बलपर जीवन बिताती थीं।

चौला: मेरे लिये अब भी वही जमाना चल रहा है।

स्मृति: सुननेमें अच्छा लगता है पर जब यौवनका उफान किसी पुरुषकी बाहुओंमें धकेल देगा तब पता चलेगा।

चौला: तू ऐसी बात करती है तो बड़ा गुस्सा आता है। हम मनुष्य हैं या जानवर? अगर वासनाके गुलाम बने तो विवेक-बुद्धि कहां रही?

स्मृति: तेरा मतलब है कि ये सारे मनुष्य बुद्धू हैं और तू ही एक विवेकशील ......

चौला: मैं यही समझती हूं कि मनुष्य धर्म-पालनके लिये एक साथी चुनता है या फिर एकाकीपनसे घबराकर।

दूसरा दृश्य

(मंदिरका एक आंगन। कुछ लोग बैठे-बैठे आपसमें बातें कर रहे हैं।)

सोमेश : महाराजने नयी देवदासीके लिये वस्त्र, आभूषण आदि दिये हैं। न मालूम कैसी होगी।

पिनाक : क्या नाम है?

सोमेश : चौला।

पिनाक : ओह! चौला! तब चिंता मत कर। सुना है, उसकी मां विख्यात नर्तकी गीतमंजरी थी और बेटी मांसे भी बढ़कर नाम कमायेगी। छोटी है पर अभीसे अभिनय, अंगहार, करण सबमें प्रवीण है।

(अंदरसे गुरु गंगका प्रवेश, दूसरी ओरसे भीमदेव अपने मंत्री तथा अंगरक्षकों सहित आते हैं।)

भीमदेव : गुरुदेव! शुभ मुहूर्त्तसे पहले ही आया हूं। क्षमा करना। मंदिरमें यात्रियोंकी भीड़ मुझे अभिवादन करे यह ठीक नहीं लगता इसीलिये जल्दी आ गया।

गंग : वत्स! ठीक ही किया।

(अंदरसे दो देवदासियां प्रवेश करती हैं। चारों ओरसे जय-सोमनाथके नारे लगाते हुए लोगोंका प्रवेश। गर्भगृहके दरवाजे खुलते हैं। गंग आरती करते हैं। देवदासियां मधुर स्वरमें स्तवन करती हैं। सब बैठ जाते हैं।)

(चौलाका प्रवेश)

देवदासियां : पहले सृजनके एक, पीछे तीन मूर्त्ति प्रणाम है।
तू विष्णु है, तू शम्भु है, तू विधि अनंत प्रणाम है॥

(नृत्य)

हैं सेविका गिरिजा जहां हैं रुद्र तप करते प्रवर।
मैंने सुना है अप्सरागणसे बने जो गुप्तचर॥

(चौला पार्वती रूपमें पूजा करती है)

शिवने शिवाकी बीजमालाको किया स्वीकार जब।
रतिनाथने भी धनुषपर रक्खा विशिख सुविचार तब॥
शशिके उदयसे सिन्धु सम हर धैर्य कुछ खोने लगे।
सानन्द बिम्बाधर वदनपर फेरने लोचन लगे।
हे, हे प्रभो! मत क्रोध कर जबतक अमर बोले वचन।
तबतक नयनकी आगसे भस्मावशेष हुआ मदन॥
गत राग अधर कुचांग अरुणित कलित कन्दुकसे रहित।
कुश प्रणित करसें अक्ष माला ली उमाने जब सहित
पालाशधर ले अजिन जलते ब्रह्मचर्य सुतेजसे।
मृदुवचन एक सुब्रह्मचारी जटिल आश्रममें लसे॥

नव वय मनोहर वपु प्रजापति वंशमें जन्मी अहो।
अब चाहिये क्या किस लिये यह तप तुम्हारा है कहो ॥
कबतक करोगी तप उमे ! मम अर्ध तप ले लो अहो।
अभिलषित वरको प्राप्त कर पर कौन वह वर है कहो॥

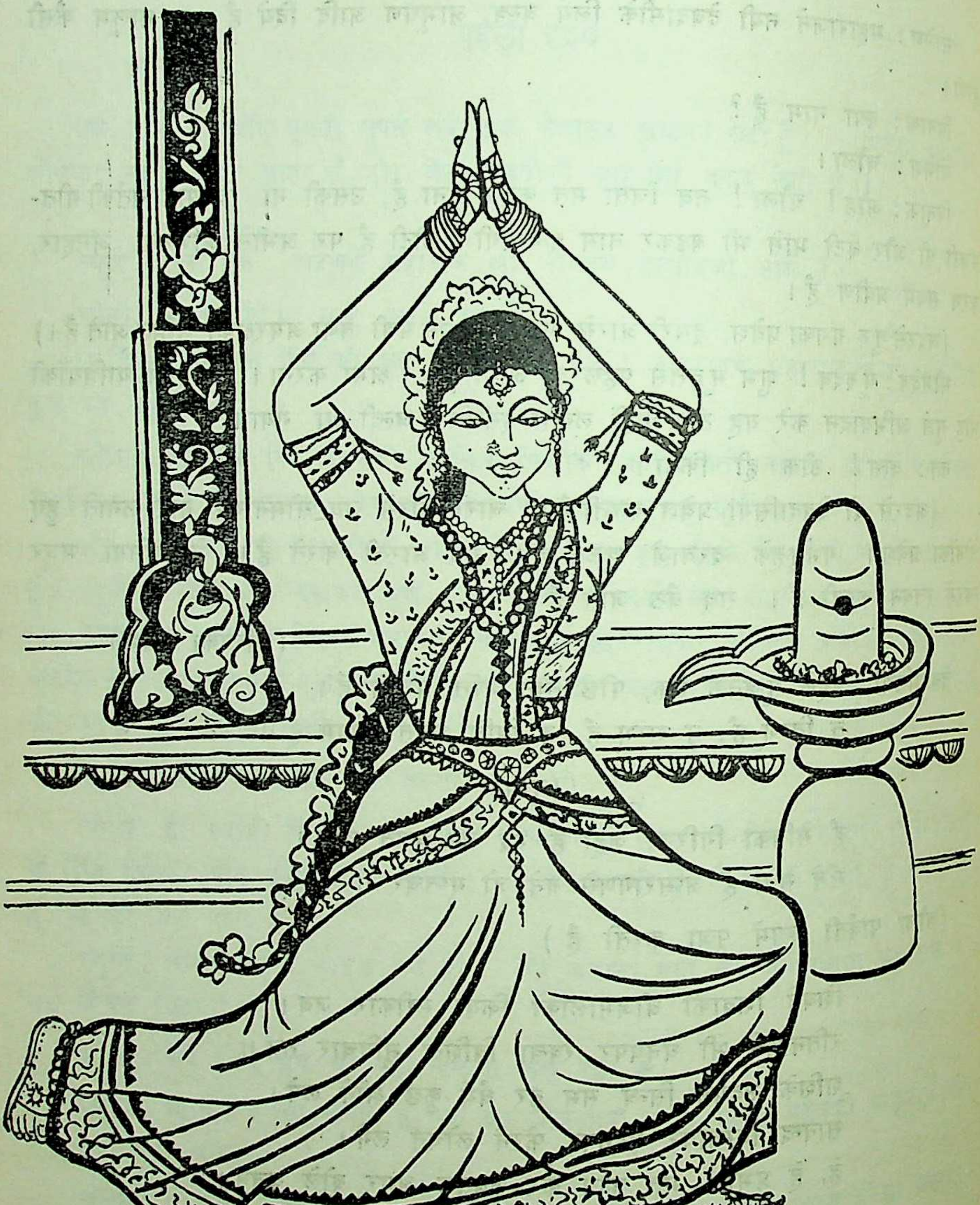

तब ब्रह्मचारीने कहा मैं शम्भुको हूं जानता।
तुम चाहती उसको अमंगलमय उसे मैं मानता ॥
तम है विरूप नयन तथा कुल जन्म भी उत्तम नहीं ।

करती प्रगट घन नग्नता इस तरह वर होता कहीं ॥
स्फुरितोष्ठ बटुको सखि! हटा कुछ मत कहे उससे कहो।
सुजनापवादी हीन श्रोता भी अधिक होता अहो॥
मैं ही चलूं कुच-भिन्नवल्कल पार्वतीने चल दिया।
निज रूप धर वृषराजके तनने उमाको धर लिया॥
शिवने कहा तव दास हूं तपसे खरीदा हूं गया......[1]

(चौला दौड़कर शिवलिंगका आलिंगन करती है। चारों ओरसे "साधु साधु" की ध्वनि सुनायी देती है।)

तीसरा दृश्य

(मंदिरमें तालाब है। चारों ओर सुन्दर खंभे लगे हैं। नीचे जानेके लिये सीढ़ियां हैं। सोमेश अकेला खड़ा है।)

सोमेश: गणिका-पुत्री और इतनी भावनाशील! चौला, तूने आज पार्वतीरूप ही धारण किया था, लेकिन मैं क्या करूं? तू मेरी रग-रगमें समा गयी है। किसे मालूम था कि पाषाण-हृदय सोमेशको एक देवदासी जीत लेगी (चौंककर) कौन? (दूर देखकर) अरे! महाराज! इतनी रातको अकेले कैसे आये? (सोमेश छिप जाता है। महाराजका प्रवेश, आकर एक पत्थरपर बैठ जाते हैं।)

महाराज: भाग्यका खेल निराला ही होता है। यहां, भगवान्के मंदिरमें आया, आशा थी कि कुछ शांति मिलेगी। पर नहीं, विधाताने पीछा न छोड़ा। आ ही गया चौलाके रूपमें। काश! वह राजकुमारी होती, कम-से-कम क्षत्रिय वंशकी ही होती। नहीं, उसको होना था गणिकापुत्री ताकि मेरा दिल टूट जाय। उसकी वह भंगिमा, वह गौरव, वह ओजस्वी वाणी राजरानीसे कम न थी। नहीं, देवदासीका मेरे अंतःपुरमें कोई स्थान नहीं। हां, अंतःपुरमें नहीं अंतरमें जरूर है। (क्या करूं? (चौंककर) कौन होगा? (तलवारपर हाथ जाता है, फिर हंस देते हैं।)

(चौलाका प्रवेश)

महाराज: इतनी रातको यहां क्या करती होगी? (छिप जाते हैं।)

(चौला आकर चारों ओर देखती है।)

चौला: "यह सुन्दर, शुभ्र चांद मेरे चन्द्रमौलिके भालका मुकुट, उनके सौंदर्यमें चार चांद लगा देता है।" (नीचे तालाबके पास जाती है। पानी लेकर हाथ-मुंह धोती है और कुमुदिनीके फूल चुन लेती है) "आज पूर्णिमाके दिन इन फूलोंसे ही पूजा करूंगी (एक भयंकर कापालिक पीछे आकर चौलाको घूरता है। जैसे ही वह मुड़ती है उसका मुंह दबाकर खींच ले जानेकी कोशिश करता है। महाराज कूद पड़ते हैं।)

---

[1] कालिदासकृत कुमारसम्भवके हिन्दी अनुवादसे।

महाराज : ठहर जा, दुष्ट ! तेरा काल आ गया है। (कापालिक घूमकर दांत पीसता है)

कापालिक : मेरी पूजाके बीच विघ्न डालनेवाला तू कौन है? (चंद्रके प्रकाशमें देखकर) गुर्जरेश !

महाराज : हट, छोड़।

कापालिक : राजन्, वीरभद्रको मत छेड़ो।

महाराज : लोगोंके दिलमें भय फैलानेवाले सर्वज्ञके शिष्य ! तू मिल गया। मेरे हाथ तेरे लिये तरस रहे थे। (दोनोंमें गुत्थमगुत्था होती है, वीरभद्र चीखकर गिरता है। महाराज बेहोश चौलाके पास जाते हैं।)

चौला : (चौंककर) बचाओ !

महाराज : देवि ! घबराओ मत। मैं हूं भीमदेव।

चौला : (स्वस्थ हो) कौन ? गुर्जरेश ?

महाराज : ना, एक शिवभक्त और तुम जैसोंका मित्र। चलो, तुम्हें घरतक पहुंचा आऊं।

चौला : मेरे शिव मेरा रक्षण करते ही रहते हैं फिर भी आप चाहें तो चलिये।

(दोनों जाते हैं)

चौथा दृश्य

(मंदिरके चारों ओर अटारियां लगी हैं, जगह-जगह झरोखे हैं। सोमेश आता है। जिरह-बख्तर पहने योद्धाके वेशमें। दूरसे शोर सुनायी देता है।)

सोमेश : वीर पुरुष रणमें सब कुछ भूल जाते हैं किंतु मैं अभागा उसकी रूपमाधुरीको नहीं भुला पाता। अब तो आशा भी नहीं रही। महाराज खुद जिसको चाहते हों उसकी ओर आंख उठाना भी ठीक नहीं। काश, मैं कुछ उपाय ढूंढ़ पाता !

(चौलाका प्रवेश)

चौला : सोमेश सिंह ! किसका उपाय ?

सोमेश : कु, कु, कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं.... मैं इस युद्धके बारेमें सोच रहा था...

चौला : हां, आप लोग इस गजनवीको शीघ्र भगाइये। वह आया कैसे ?

सोमेश : यूं तो सोमनाथ मंदिरकी समृद्धिकी कथा सुनकर उसे लूटने आया है पर सचमुच तो महाराजके हाथों मरने आया है।

चौला : मैंने भी सुना है कि महाराज असीम शौर्य दिखा रहे हैं, फिर आप व्यग्र क्यों हैं ?

सोमेश : देवि ! युद्धमें वीरतासे ही विजय नहीं मिलती। कभी-कभी दुष्टोंका लालच हमारा किया-कराया मिट्टीमें मिला देता है। अच्छा, मैं चलूं, जरा देख आऊं।

(चौला झरोखेमेंसे दूर देखती है। स्मृतिका प्रवेश)

स्मृति : अरे, तू यहां है? तुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गयी। क्या कर रही है?

चौला : महाराजका युद्ध-कौशल देखने आयी थी। देख ! उनकी तलवार बिजलीकी तरह

कौंधती है। इतनी तेजीसे घूमते हैं कि मुझे लगता है एक नहीं, अनेक महाराज युद्ध कर रहे हैं। कहीं मनुष्य ऐसा हो सकता है ?

(दूसरे नगाड़े, भेरी युद्ध-विरामका संदेश देते हैं। शोर कम होने लगता है।)

स्मृति : अभी देवताओंके दर्शन ही करने हैं या नृत्याचार्यके यहां चलोगी ?

चौला : तनिक रुको भी।

(महाराजका प्रवेश। जगह-जगह खून लगा है।)

चौला : महाराज, यह क्या ?

महाराज : कौन ? चौला देवी ? डरिये मत। ये मेरे आभूषण हैं।

चौला : स्मृति, जल ले आ।

(स्मृति जाती है। चौला अपना उत्तरीय फाड़ने लगती है।)

महाराज : ना देवि ! यह मत कीजिये।

(रोकनेके लिये हाथ पकड़ लेते हैं। दोनों स्तम्भित)

महाराज : चौला, कबसे तरस रहा था !

चौला : मेरे शंकर !

पांचवां दृश्य

(मंदिरका आंगन। चौला और स्मृति बैठी बातें कर रही हैं।)

स्मृति : देख ! मैं तुझसे कह रही थी न ! आखिर तू आज शम्भूको छोड़कर एक सामान्य मनुष्यकी प्रतीक्षा कर रही है।

चौला : तू नहीं जानती। मैं अब भी अपने शिवकी हूं और उन्हींकी प्रतीक्षा कर रही हूं। महाराजका युद्ध देखनेके बाद मैं समझ गयी कि वे मनुष्य नहीं देवता हैं। मेरे शिवने मेरे ही लिये मानव-रूप लिया है। कैसी अद्भुत करुणा है ! सखि ! मैं प्रसन्न हूं, अत्यन्त प्रसन्न।

(महाराजका प्रवेश। स्मृतिको देखकर लौटने लगते हैं।)

चौला : महाराज ! यह मेरी सखी है, स्मृति। मेरी बहन ही समझिये।

महाराज : स्मृति देवी ! चौलाने आपकी इतनी बातें बतायी हैं कि मुझे लगता है मानों मैं आपको भलीभांति जानता हूं।

(सोमेशका प्रवेश)

महाराज : सोमेश ! क्या बात है ?

(चौला, स्मृति चल देती हैं)

सोमेश : महाराज ! सर्वज्ञके आदमी कल रात बाहर गये थे और गुप्तचर कहता है कि उसने शत्रुकी छावनीतक उनका पीछा किया था।

महाराज : यह गंभीर बात है। तुम गुप्तचरको मेरे पास भेजो।

सोमेश : जो आज्ञा।

महाराज : ठहरो सोमेश ! क्या बात है ? तुम इतने व्यथित क्यों हो ?

सोमेश : कुछ नहीं।

महाराज : तुम्हें बताना होगा।

सोमेश : महाराज ! यह सब क्या खेल हो रहा है ?

महाराज : कौन-सा खेल ?

सोमेश : आपने यहां भी विलास-भवन बना लिया है ? चौला जैसी भोली बालाके दिलसे मत खेलिये। हर देवदासी वारांगना नहीं होती। महाराज ! मेरा अनुरोध है, बात बढ़े उसके पहले ही.....

महाराज : सोमेश ! क्या सुन रहा हूं ? तुम समझते हो कि मैं खेल रहा हूं ? भगवान् सोमनाथकी शपथ, मैं गंभीर हूं। (थोड़ी देर ठहरकर) मैं सोमनाथका अनुग्रह ही समझता हूं कि चौला जैसा रत्न पाया। अंतःपुर और विलास-भवनके नाटकसे तंग आकर मैं पहली बार निष्काम, निष्कपट प्रेम देखता हूं, तुम समझते हो कि मैं उसका मूल्य नहीं जानता ?

सोमेश : आज भावनामें बहकर आप यह सब कह रहे हैं। कलकी बात कौन जाने ?

महाराज : तुम चाहते क्या हो ?

सोमेश : मैं चाहता हूं कि आप इस भावनाको यथार्थमें बदलें। आप चौलाको राजमहिषी बना लें।

महाराज : अच्छा, मंत्रीजीसे सलाह करके दिन ठीक कर लूंगा।

सोमेश : नहीं महाराज ! मंत्रीजीसे पूछनेका क्या प्रयोजन ? आप ही.....

महाराज : अच्छा, सोमेश सिंह, ऐसा ही होगा। तुम पुरोहितसे मुहूर्त ठीक कर लेना।

छठा दृश्य

(एक सैनिक दौड़ा-दौड़ा आता है।)

महाराज : क्यों, क्या हुआ ?

सैनिक : महाराज, गुप्त द्वारसे शत्रुसेना घुसी चली आ रही है।

महाराज : सोमेश सिंह, जल्दी......

(तीनों भागते हुए जाते हैं। नैपथ्यसे अल्ला-हो अकबर और हर हर महादेवके नारे। आर्तनाद करती हुई चौला दौड़ती हुई आती है।)

चौला : (शिवमूर्तिसे) मेरे प्रभु, यह क्या ? अपने इस मंदिरको बचाना ही होगा। उठो, इन आंखोंसे तुम्हारा ध्वंस न देखा जायगा।

(स्मृति दौड़ी आती है)

स्मृति : अरे ! तू यहां क्या कर रही है ? चल ! महाराजने हुक्म दिया है कि औरतोंको एकदम अलग हो जाना चाहिये। मंदिरके कोने-कोनेके लिये वे लड़ेंगे।

चौला : तू जा, मैं नहीं जाती।

(स्मृति उसको घसीटकर ले जाती है। पुजारी गंगका प्रवेश। बाल अस्त-व्यस्त।)

गंग: भगवान्! मैं कैसा अभागा हूं कि इन आंखोंसे तुम्हारी प्रतिमाका खंडन देखना पड़ेगा! न मालूम किन पापोंकी सजा मिल रही है। बचपनसे तुम्हारे लिये सब कुछ किया, जवानी तुम्हारे कारण सम्हाली और बुढ़ापेमें यह घोर दृश्य? नहीं, मेरे प्रभु! यह देखा न जायगा। (त्रिशूल उठाकर गलेको बेधना चाहते हैं, फिर चमककर) मैं गंग, कायरोंकी तरह मौतकी ओर भागूं? कभी नहीं। क्या करूं? .....मेरे स्वामीका सेवक उन्हींकी सेवामें मरेगा। आरती, धूप जलाते हैं। मंत्रोंसे पूजा शुरू करते हैं। कोलाहल चारों ओर आ घेरता है। दरवाजे टूटनेकी आवाज, कई सैनिकों सहित महमूदका प्रवेश, एक क्षण स्तब्ध)

गंग: (आरती नीचे रखकर) यवन! मेरा मंदिर भ्रष्ट मत कर। जा, दूर हट!

महमूद: देखते क्या हो? महमूदके सामने बोलनेकी हिम्मत करता है? मारो इसको; (कोई आगे नहीं आता) आहा! काफिर! तूने जादू करके मेरे सिपाहीको बुत बना दिया है, मुझपर तेरा जादू न चलेगा। (गंगको धक्का देकर आगे बढ़ता है।)

गंग: (उठकर मूर्तिसे लिपट जाते हैं) जय सोमनाथ! (महमूद तलवार उठाकर वार करता है।)

सातवां दृश्य

(महाराज भीमदेवका महल। राजरानीके वेशमें चौला उदास मन बैठी है। कई दासियां उसका श्रृंगार कर रही हैं।)

चौला: (उठकर) बस, तुम लोग जाओ। (सब जाती हैं। चौला आंखें फाड़-फाड़कर अपना प्रतिबिम्ब देखती है। कहीं दूरसे "सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम्॥" ये शब्द सुनायी देते हैं। चौला सुनते-सुनते कान बंद कर लेती है।)

चौला: नहीं, नहीं, ये शब्द मेरे कानमें क्यों आते हैं? (भागकर दूर बैठ जाती है, अचानक उठती है) तुम यहां भी आ गये मेरे सोमनाथ! इस दासीके पीछे क्यों आये? ...मैं... एक पतिता, विश्वासघातिनी.....अपने शिवको छोड़कर मनुष्यके पीछे भागनेवाली....मेरे प्रति इतना गाढ़ प्रेम न दिखाओ। ओह! (दूर भागती है) मैं चौला यही समझती थी कि मेरा प्रेम इतना पवित्र है कि कोई उसे छू न सकेगा। देखा न परिणाम? एक मनुष्यको भगवान्का रूप मान लिया। मेरे प्रभु! इस पापसे बचाओ। कहां जाऊं? ....इस दुःखको कौन समझेगा? न तुमसे दूर रह सकती हूं, न तुम्हारे पास आ सकती हूं। लोग कहते हैं मरनेके बाद नरक मिलता है; मैं कहती हूं नरक यही है। (कुछ देर चुप) कौन कहता है कि मैंने विश्वासघात किया है? महाराज ही तो साक्षात् शिवके अवतार हैं, मैंने उन्हींका वरण तो किया है। ओह! यह क्या पहेली है? कोई सुलझा दे!

(स्तब्ध। अचानक ठहाकेकी हंसी)

चौला: हां, हां। मैंने तुम्हें देख लिया (भागती है) अरे कहां गये? अभी-अभी यहां खड़े थे। हाथका त्रिशूल चमचमाता था। (रोती है) ओह, चले गये! कैसे रहते? मुझ

जैसी पापिनके पास कोई खड़ा भी कैसे रहे? (दो-तीन दासियां हाथमें थाल लिये आती हैं। चौला अट्टहास करके चारों ओर दौड़ने लगती है।)

चौला: हा हा हा....पकड़ लिया। अरे...भाग गये?....(दासियोंसे) मैं कौन हूं? यह किसका मकान है?.....(दासियां घबराकर भाग जाती हैं।) (चौला अपने हाथोंको देखकर) यह क्या है? (हंसती हुई चारों ओर घूमती है, अचानक गिर जाती है। स्मृतिको दासियां दूरसे चौलाका रूप दिखाकर भाग जाती हैं।)

स्मृति: (चौलाके कंधेपर हाथ देकर) चौला!

चौला: (स्मृतिको देखते ही लिपट जाती है।) मुझे बचा। मैं पागल हो जाऊंगी।

(चौला रोती है)

स्मृति: बात क्या है? अब डरनेका कोई कारण ही नहीं। सुना है, महाराजने गजनीका पीछा किया है और कुछ ही दिनोंमें सोमनाथका मंदिर फिरसे खड़ा किया जायगा। डर मत। अब अच्छे दिन लौटेंगे। तेरे शिव तुझे जल्दी मिल.....

चौला: चुप स्मृति! मेरे शिव तो मुझसे दूर कहीं बैठे हैं और मैं अभागिनी महलमें रानी बनी फिर रही हूं। याद है स्मृति! तूने एक दिन कहा था कि यौवनका उफान मुझे किसीके आलिंगनमें बांध लेगा? सखी! यही हुआ। आज मेरा दिल अपनी मूर्खताके कारण टूटता जा रहा है। मैंने मनुष्यको सोमनाथ कैसे समझ लिया? मैं.....शिवकी दत्ता, भूलभूलैयामें खो गयी। आज मुझे अपने-आपसे नफरत हो रही है। अब जिऊं तो कैसे और किस लिये?

स्मृति: अरी पगली! तू थक गयी है इसीलिये यह प्रलाप कर रही है। महाराज भीमदेव जैसेको पाकर अपने-आपको धन्य समझ।

दासियां: (दौड़कर) बधाई महारानी! महाराज यवन महमूदको भगाकर विजयी हुए हैं। कुछ ही क्षणोंमें नगरमें प्रवेश करेंगे।

चौला और स्मृति: सच?

स्मृति: सखी! चलो तुम्हें सजा दूं।

चौला: (दासियोंसे) जाओ, प्रदीप जलाओ, प्रवेशद्वारपर पुष्पहारका तोरण लगवाना, सारा महल फूल, प्रदीप और सुगंधसे भर दो।

दासियां: जो आज्ञा। (जाती हैं)

स्मृति: वाह, रानीजी वाह! मिजाज ही बदल गया!

चौला: नहीं स्मृति, उनको भगाना था और अपना कर्तव्य भी निभाना था इसीलिये। अब तेरी सलाह चाहिये। बोल, क्या करूं? मैं.....मैं महाराजका संग नहीं सह सकती। उनके दिलको दुखाये बगैर ही दूर रहना चाहती हूं।

स्मृति: तू पगली है। अब क्या उपाय हो सकता है? बुरा भी क्या है? तू उनकी विवाहिता स्त्री है।

चौला: नहीं, नहीं, मैं उस सहवाससे घृणा करती हूं। मुझसे यह न होगा....

(दूर-दूरसे महाराज भीमदेवंकी जयके नारे सुनायी देते हैं)

स्मृति: चल, जल्दी कर। महाराज आ रहे हैं (दोनों अंदर जाती हैं। कुछ देवदासियों-

की चहल-पहल रहती है। नारे पास आते-जाते हैं। चौला, स्मृति अंदरसे थाल, आरती लिये आती हैं। दूसरी ओरसे प्रतिहारी।)

प्रतिहारी : गोब्राह्मणप्रतिपालक महाराज भीमदेव पधारे हैं.......

(भीमदेवका प्रवेश। चौला गलेमें माला पहनाती है। माथेपर टीका करती है। महाराज अन्य लोगोंको जानेका संकेत करते हैं।)

महाराज : (एक हाथसे चौलाको दूर रखकर) कितने दिनों बाद देखता हूं। मुरझा गयी है। अब डरकी बात नहीं। मैं आ गया हूं। तुझे फिरसे ताजा कर लूंगा। विरहकी व्यथा हमसे ज्यादा तुम्हें सताती है।

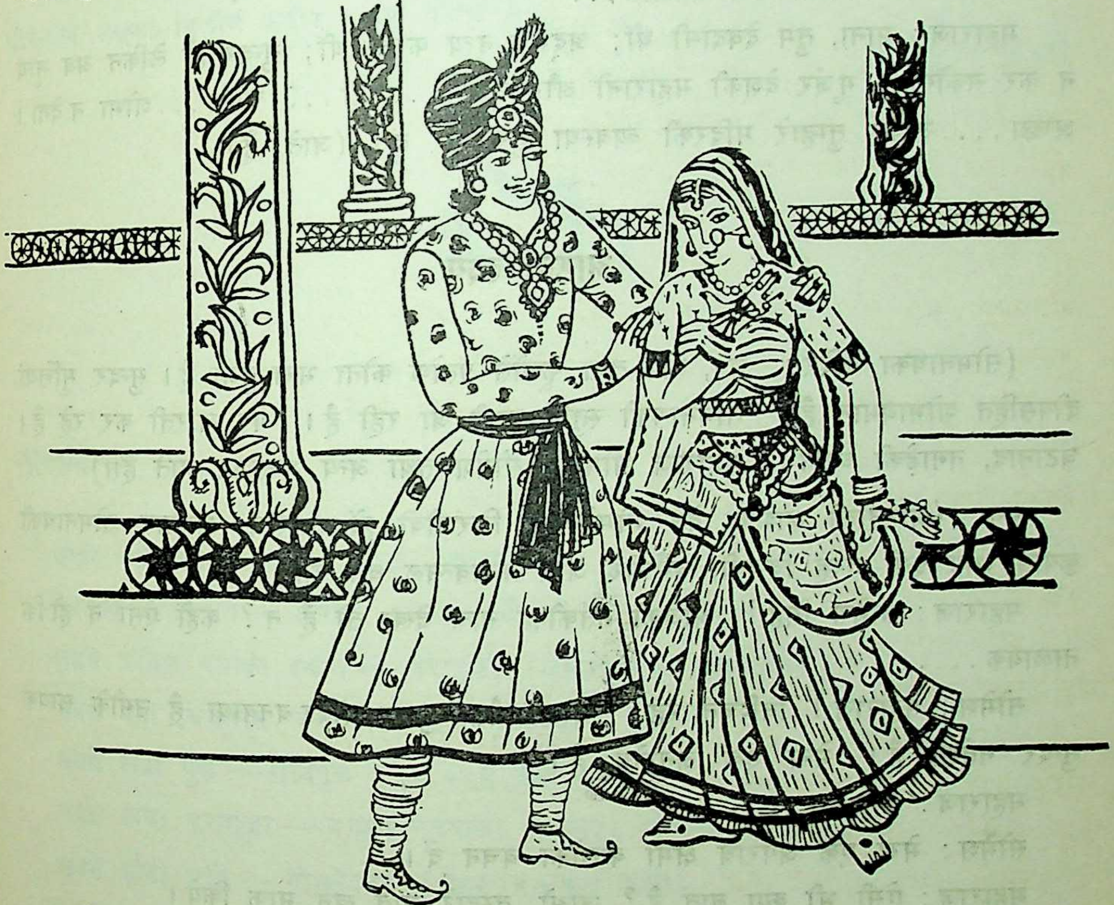

चौला : महाराज ! मंदिर टूट.....

महाराज : तू चिंता मत कर। मैं उससे भी सुन्दर मंदिर बनवा दूंगा। इस सुकुमार हृदयको चिंता-भारसे मुक्त रख।

चौला : काम कब शुरू होगा ?

महाराज : तू चाहे तो आज ही।

चौला : सच ? महाराज, हो सके तो जल्दी कीजिये। अच्छेसे अच्छे शिल्पी.... मैं क्या उनसे मंदिरकी रचनाके लिये बातचीत कर सकती हूं ?

महाराज : (चौलाका आलिंगन करते हुए) जो हुकुम रानीजी !

चौला: (अपनेको छुड़ाते हुए) नहीं नहीं, महाराज! यह न.....

महाराज: क्यों क्या बात है?

चौला: मैं....मुझसे.....मतलब आप जब युद्ध करने गये थे तो मैंने व्रत लिया था कि जबतक मंदिर फिरसे न उठे......

महाराज: (सस्मित) ओ.....समझा! तभी मेरी चौला मंदिर बनवानेको इतनी उत्सुक है। अब तो मैं भी जल्दीमें हूं।

चौला: महाराज! पहले दिन भगवान्‌के सामने कौन नृत्यांजलि देगा?

महाराज: हम एक सुन्दर नयी देवदासीके लिये अभीसे तलाश करवायेंगे।

चौला: मैं....भी कर सकती....

महाराज: माना, तुम देवदासी थीं; अद्‌भुत नृत्य करती थीं; सुन्दर हो लेकिन अब नृत्य न कर सकोगी। गुर्जर देशकी महारानी और नृत्य....नहीं....चौला...शोभा न देगा। अच्छा....जाकर तुम्हारे मंदिरकी व्यवस्था शुरू कर दूं। (जाते हैं)

आठवां दृश्य

(सोमनाथका मंदिर। धूप, दीप तथा फूलोंसे प्रत्येक कोना भरा हुआ है। सुन्दर मूर्त्तियां दीपसहित शोभायमान हैं। सोमनाथकी स्तुति गायी जा रही है। गंग आरती कर रहे हैं। घंटानाद, नगाड़ेकी ध्वनि। महाराज भीमदेव, सोमेश तथा अन्य भक्तजन आते हैं।)

गंग: (आरतीकी आशका देते भीमदेवसे) चिरंजीवी हों महाराज, भगवान् सोमनाथकी कृपासे आप इसी तरह विजयी, धर्मभीरु और प्रजावत्सल बने रहें।

महाराज: सोमेश सिंह! आजकी नर्तकीका नाच देखा तो है न? कहीं ऐसा न हो कि नालायक.....

सोमेश: महाराज! निश्चिंत रहें। आपने जैसा सुन्दर मंदिर बनवाया है उसीके लायक सुन्दर नर्तकी है। मेरा एक अनुरोध है।

महाराज: कहो।

सोमेश: मेरा एक अपराध क्षमा करनेका वचन दें।

महाराज: ऐसी भी क्या बात है? जाओ, तुम्हारे सात खून माफ किये।

गंग: (सबसे) अब नृत्यांजलिके लिये आप लोग कुछ स्थान खाली कर दें (सब एक ओर हट जाते हैं। संगीतके सुर हवामें फैल जाते हैं। घूंघट डाले एक नर्तकी आती है।)

नर्तकी: (शिवकी प्रतिमाकी ओर जाते हुए) चन्द्रमौलि! कैसा शीतल मृदु स्वभाव है, कैसी अजस्र करुणा। किंतु मैं अभागिन तुम्हारे लायक न रही। देव! क्षमा! क्षमा! इस पश्चात्तापकी आगसे मुझे बचाओ। मैं तुम्हारी वागदत्ता तुम्हें छोड़कर चली गयी, फिर भी इस तरह मुस्कराते हो, फिर भी मेरे लिये उतना ही प्रेम.....क्या करूं? तुमसे दूर रहती हूं, तो जीवन बोझा होता है, पास आती हूं तो पश्चात्तापकी आग मेरे अंग-अंगको झुलसा देती है। क्या? मैं तुम्हारे पास आऊं? मैं पापिन?.....तुम मेरे सब पाप अपने ऊपर लेते हो?

अब, अब मैं कलुषित नहीं . . . . . ओह ! (आनन्दमग्न नाचने लगती है, घूंघट खुल जाता है। चौलाका प्रसन्नमुख जगमगा उठता है।)

महाराज : चौला !

(तलवारकी मूठपर हाथ जाता है। सोमेश हाथ पकड़ लेता है।)

सोमेश : महाराज ! क्षमा !

(महाराज तलवार छोड़ देते हैं।)

चौला : आयी, मेरे प्रभु आयी। अब देर क्यों ? (दौड़कर शिवलिंगसे लिपट जाती है। धीरे-धीरे उसका निर्जीव शरीर ढुलक पड़ता है।)

—**अनुबेन पुराणी**

भारतमें—

सबसे बड़ी झील — ऊलर झील (काश्मीर)
सर्वोच्च जलप्रपात — ग्रेसोपा प्रपात (मैसूर) ८३० फुट
सबसे अधिक वर्षाका स्थान — चेरापूंजी (औसत ५०० इंच वार्षिक)
सबसे बड़ी बिजलीसे चलनेवाली रेल — बम्बईसे पूना
सबसे लंबा पुल — सोनपुल (१०,०५२ फुट)
सबसे ऊंचा दरवाजा — बुलन्द दरवाजा, फतहपुर सीकरी १७६ फुट
सबसे ऊंची मूर्ति — गोमतेश्वर (मैसूर ५७ फुट ऊंची)
सबसे लम्बी सड़क — ग्रैंड ट्रंक रोड (१५०० मील)
सबसे बड़ा गुम्बज — गोल गुम्बज, बीजापुर
सबसे बड़ी सुरंग — जवाहर सुरंग (१,३४ मील, पंजाब और कश्मीरको मिलाती है)
सबसे लंबा बांध — हीराकुण्ड बांध (१५,७४८ फुट)
सबसे ऊंचा बांध — भाखड़ा बांध (७४० फुट)

मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी का जन्म १८८६ में झांसीके पास चिरगांव नामक ग्राममें हुआ था। गांधीजीने वर्धा और सेवाग्रामको संसारके मानचित्रपर स्थान दिया तो गुप्तजीने हिन्दी प्रेमियोंके लिये चिरगांवको एक तीर्थ बना दिया। इनके जन्मसे एक वर्ष पहले ही कांग्रेसका जन्म हुआ था। इन्होंने भारतको विभिन्न रूपोंमें देखा। भारतकी गुलामीके विरुद्ध जोरदार आवाज उठायी। एक समय था जब पराधीन भारत में 'भारत भारती' हिंदीभाषी प्रदेशोंके कोने-कोनेमें गायी जाती थी। उसे जो लोकप्रियता मिली थी वह विरले ही काव्योंको मिल पाती है। अब जवाहर-युगके साथ-साथ मैथिलीशरण भी चल बसे। कौन जाने शायद परलोकसे साहित्य अकादमीकी बैठकका निमंत्रण आया हो।

मैथिलीशरणको अपने पितासे रामभक्ति और काव्यकला विरासतमें मिली थी। बचपनमें इन्होंने एक छन्द बनाया था जिसे सुनकर भागवत-प्रेमी सेठ रामचरण (इनके पिता) ने कहा तू आगे चलकर हमसे हजारगुनी अच्छी कविता करेगा। विद्यालयकी लिखाई-पढ़ाईमें इनका मन न लगा तो पिताने घरपर ही पढ़ाईकी व्यवस्था कर दी और इन्हें मुंशी अजमेरीके सुयोग्य हाथोंमें सौंप दिया। मुंशीजी पक्के देशभक्त थे। उन्होंने यह चीज अपने शिष्यको भी दी जिसके परिणामस्वरूप उसे कई बार कृष्णभवनमें सरकारी मेहमान बनना पड़ा।

गुप्तजी खड़ी बोलीके पहले बड़े कवि हैं। उन दिनों उर्दूमें पहली राष्ट्रीय कविता मुसद्दसे हालीका बोलबाला था। लोग कहते थे क्या हिंदीमें भी ऐसी चीज संभव है? उत्तरमें सब एक दूसरेका मुंह ताकते रह जाते थे। ऐसे समय भारत भारती हिंदी मंचपर आयी, और खूब आयी। आज भी बहुतसे लोग मैथिलीशरणको भारत भारतीके गायकके रूपमें ही जानते हैं। मैथिलीशरणको इतना ऊंचा उठानेका श्रेय जहां उनके परिश्रम, अध्यवसाय और संस्कृति-प्रेमको है वहां इनको घड़नेमें महावीरप्रसाद द्विवेदीका हाथ भी कम नहीं। उनके प्रोत्साहनने, उनकी मीठी और कभी-कभी कड़वी झिड़कियोंने ही चिरगांवके अनगढ़ हीरेको तराशा और बना-संवारकर वह रूप दिया जिससे हम सब परिचित हैं।

मैथिलीशरण कवि थे, पर उनकी कविता स्वान्तः सुखाय या 'कला कलाके लियें' नहीं होती थी। वे पहले रामभक्त थे और पीछे और कुछ। उनकी राष्ट्रीय भावनाकी जड़ें रामायणकालतक पहुंची हुई हैं। इनकी हरएक कवितामें राष्ट्रीयताका भाव कूट-कूटकर भरा है और प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी महत्ता झलकती है। इनकी प्रमुख कृतियां 'साकेत' 'द्वापर', 'यशोधरा', 'जयभारत' आदि हैं।

इनकी दूसरी विशेषता है नारीको मुख्य पद देना। उदाहरणके लिये हम उर्मिलाको ले सकते हैं। सब रामायणोंमें उर्मिलाका केवल नाममात्र होता है लेकिन गुप्तजीने उर्मिलाको मुख्य बताकर सारी कहानी 'साकेत' नामसे लिखी है। इसी प्रकार बुद्धकी कहानीमें यशोधराको प्रधानता देकर 'यशोधरा' काव्य रचा। यहांपर यशोधराका एक उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा। इसमें जब बुद्ध सिद्धि पाकर आते हैं तब यशोधरा उनका स्वागत करती है:

पधारो, भव भवके भगवान् !
रख ली लज्जा मेरी तुमने, आओ अत्र भवान् !

नाथ विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छको गौरव भारी,
अपनाई मुझ-सी लघु नारी,
होकर महा महान् !
पधारो भव-भवके भगवान् !
मैं थी संध्याका पथ हेरे, आ पहुंचे तुम सहज सबेरे,
धन्य कपाट खुले ये मेरे !
दूं क्या अब नवदान ?
पधारो भव-भवके भगवान् !
मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे ?
पाकर भी अपना धन आगे
भूली-सी मैं भान,
पधारो भव-भवके भगवान् !
दृष्टि इधर जो तुमने फेरी
स्वयं शांत जिज्ञासा मेरी,
भय-संशयकी मिटी अंधेरी,
इस आभाकी आन !
पधारो भव-भवके भगवान् !
यही प्रणति उन्नति है मेरी,
हुई प्रणयकी परिणति मेरी,
मिली आज मुझको गति मेरी,
क्यों न करूं अभिमान ?
पधारो भव-भवके भगवान् !
पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये
पद-रज पोंछ पुनीत हुए ये
रोम-रोम शुचि-शीत हुए ये,
पाकर पर्व स्नान !
पधारो भव-भवके भगवान् !
इन अधरोंके भाग्य जगाऊं,
इन गुल्फोंकी मुहर लगाऊं,
गयी वेदना, अब क्या गाऊं ?
मग्न हुई मुस्कान !
पधारो भव-भवके भगवान् !

कर रखा, यह कृपा तुम्हारी,
मैं पद-पद्मोंपर ही वारी,
चरणामृत करके ये खारी,
अश्रु करूं अब पान !
पधारो भव-भवके भगवान् !

नयी भाषा, नयी राष्ट्रीयताकी उद्भावनाकी शैलीके लिये गुप्तजीको काव्यका आधार भी नया चुनना पड़ा; उन्होंने चुनाव भी इस प्रकार किया कि वे अन्य कवियोंसे अलग एक नयी भावनाको जन्म देनेवाले बन गये। उन्होंने भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंपर लिखा है। अभी कुछ साल पहले उनकी कुछ कृतियां निकली थीं जिनमें 'कुणाल' और 'काबा और कर्बला' प्रमुख हैं। कविने मुस्लिम संस्कृतिको वाणी देनेके लिये 'हसन हुसैन' लिखनेकी सोची थी शायद उसी विषयको 'काबा और कर्बला' में पूर्ण किया है; इसी प्रकार सिक्खोंके इतिहासका चित्र देनके लिये 'गुरुकुल'की रचना की। इन कृतियोंके अतिरिक्त उन्होंने और भी बहुत कुछ लिखा है।

विषय, भाव, शैली और आदर्श चरित्रोंकी कल्पनाकी दृष्टिसे गुप्तजीका स्थान हिंदीमें सर्वप्रथम आता है। यद्यपि उन्होंने सिर्फ काव्य ही लिखा है तथापि उस काव्यमें ही नाटय-कला, कहानी-कला और चित्रकलाको समाविष्ट कर दिया है। भारतीय संस्कृतिके ये सफल गायक हैं। वे द्विवेदी और छायावादी युगके बीचकी कड़ी बनकर हमारे सामने आते हैं। इतने विस्तृत चित्रपटपर तूलिका चलाना और अनकूल चित्र भी तैयार करना उन्हींका कार्य है।

गुप्तजीकी कल्पना बहुत चंचल है। वह जीवनके वर्तमान प्रश्नोंको तरह-तरहसे हल करना चाहती है या यों कहें कि वह ईश्वरको स्पष्टसे स्पष्ट रूपमें हमारे सामने लानेके लिये लालायित रहती है। वह ईश्वरके अद्वैत रूपकी ओर आकृष्ट करती है।

"अब भी एक प्रश्न था कोऽहम् ?
कहूं-कहूं जबतक दासोऽहम्,
तन्मयता कह उठी कि सोऽहम्,
बस हो गया सवेरा,
दिनमणिके ऊपर ही उसकी
किरणोंको है घेरा। "

खगीकी भांति इनकी कल्पना विस्तृत समाजके आकाशमें उड़ती है। रामचन्द्रजीकी विजयका वर्णन करते हुए कहते हैं :—

"गोदावरी तीरपर प्रभुने दण्डक वनमें वास किया
अपनी उच्च आर्य संस्कृतिने वहां अबाध विकास किया।"

'साकेत' में उर्मिलाके लक्ष्मणको प्रणाम करनेका चित्र ऐसा खींचा है :—

"चूमता था भूमितलको अर्द्ध विधु-सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेमके क्षण जाल बनकर भाल।"

लक्ष्मणके जंगल जानेपर उर्मिलाको बहुत कष्ट होता है। वे देख रही हैं लक्ष्मण, जो उनका

एकमात्र सहारा था, चला जा रहा है। राम और लक्ष्मण सीताको कोई कष्ट नहीं होने देंगे, माण्डवीके लिये भरत यही होंगे, सबके पास कोई-न-कोई सहारा है, सिर्फ मैं ही अकेली हूं समस्त पृथ्वीपर। लेकिन वे फिर कहती हैं मैं कैकेयीकी सहायिका हूं। लक्ष्मणको कहीं मेरे लिये दुःख न हो। कहती हैं :—

सखे, जाओ तुम हंसकर भूल, रहूं मैं सुध करके रोती,
तुम्हारे हंसनेमें हैं फूल, हमारे रोनेमें मोती।
मानती हूं तुम मेरे साध्य,
अहर्निश एकमात्र आराध्य,
साधिका मैं भी किंतु अबाध्य,
जागती होऊं या सोती।
तुम्हारे हंसनेमें हैं फूल......
सफल हो सहज तुम्हारा त्याग
नहीं निष्फल मेरा अनुराग,
सिद्धि है स्वयं साधना-भाग,
सुधा क्या, क्षुधा जो न होती।
तुम्हारे हंसनेमें हैं फूल......
कालकी रुके न चाहे चाल,
मिलनसे बड़ा विरहका काल,
वहां लय, यहां प्रलय सुविशाल,
दृष्टि मैं दर्शनार्थ धोती।
तुम्हारे हंसनेमें हैं फूल.......

गुप्तजीके शब्दोंमें ध्वन्यात्मकता भी विशेष रूपसे होती है, वहां भाव और गतिके अनुरूप शब्द-चयन होनेसे सौंदर्य-वृद्धिके साथ अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है :—

"सखि निरख नदीकी धारा।
टलमल-टलमल चंचल अंचल, झलमल झलमल झलमल तारा।
निर्मल जल अंतस्तल झलके, उछल उछलकर छल छल करके,
थल थल करके, कल-कल थरके बिखराता है पारा।"

जैसा कि पहले भी कहा है, गुप्तजीमें भारतवर्षके लिये अगाध ममता और प्रेम है। यही व्याकुलता उनके काव्यका मूल तत्त्व है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदीने गुप्तजीके लिये लिखा है: "किसी मालामें प्रथम मणि, उपवनमें प्रथम पुष्प, गगनमें प्रथम नक्षत्रको जो महत्त्वपूर्ण स्थान हो सकता है वही वर्तमान कवितामें गुप्तजीका है।"

अंतमें गुप्त जीकी एक कविताका रसपान कर लें :

निकल रही है उरसे आह,
ताक रहे सब तेरी राह।
चातक खड़ा चोंच खोले है,
सम्पुट खोले सीप खड़ी;

मैं अपना घट लिये खड़ा हूं,
अपनी अपनी हमें पड़ी,
सबको है जीवनकी चाह;
ताक रहे सब तेरी राह।

मैं कहता हूं मैं प्यासा हूं,
चातक पी पी रटता है,
व्यंग मानता हूं मैं उसको,
हृदय क्षोभसे फटता है,
पर क्या वह रखता है डाह?
ताक रहे सब तेरी राह।

मैं अपनी इच्छा कहता हूं,
पर वह तुझे बुलाता है,
किसको है किसकी परवाह,
ताक रहे सब तेरी राह।

हम अपनी अपनी कहते हैं,
किंतु सीप क्या कहती है?
कुछ भी नहीं, खोलकर भी मुंह,
वह नीरव ही रहती है।
उसके आशयकी क्या थाह?
ताक रहे सब तेरी राह।

घनश्याम, फिर भी तू सबकी
इच्छा पूरी करता है,
चातक-चंचु, सीप-संपुट
मेरा घट भी भरता है।
सबपर तेरा दया-प्रवाह।
ताक रहे सब तेरी राह।

तेरे दया-दानका मैंने,
चातकने भी भोग किया,
किंतु सीपने उसको लेकर
क्या अपूर्व उपयोग किया —
बना दिया है मुक्ता, वाह!
ताक रहे सब तेरी राह!

—हीरो

आन मिले गुरु धाय !

मथुराके राजा दीनदयालको कौन नहीं जानता ? वस्तुतः वे किसी रियासतके राजा नहीं थे, वे थे एक व्यापारी। लक्ष्मी सदा उनसे प्रसन्न रहीं और परिणामस्वरूप दुनियाभरकी भोग-विलासकी चीजें उनके चरण चूमने लगीं।

उनकी भव्य आलीशाम कोठी किसी राजमहलसे कम न थी। महलके चारों ओर बगीचा था — सुन्दर, साफ-सुथरा, नाना प्रकारके फल-फूलोंसे भरा हुआ और बागके बीचों-बीच निर्मल जलसे पूर्ण सरोवर जिसमें शतदल कमल सदा विकसित रहते थे। लगता था मानों नन्दन काननका एक अंश टूटकर पृथ्वीपर उतर आया है। महलके साथ गैरेजमें तीन मोटरें रहतीं, घर भी सगे-संबंधियोंसे भरा रहता। देखनेसे ही मन प्रसन्न हो उठता था।

परंतु इस प्रचुरता और वैभवकी गोदीमें बैठे हुए लाला दीनदयालके मनके न जाने किस कोनेमें सदा एक असन्तोषका भाव छिपा रहता और रह-रहकर एक चपल बालककी तरह बाहर झांकता तो दीनदयालका मन विषादसे भर उठता, वे मानों एक अप्रिय अशांतिमें डूब जाते।

एक संध्याको लाला दीनदयाल अपने बागके उस छोटेसे तालाबके किनारे आ बैठे। संध्याकी लालिमा विलीन होती जा रही थी, रजनी अपने गहरे आंचलमें पृथ्वीको ढंकनेका प्रयास कर रही थी। न जाने क्यों दीनदयालका मन भारी हो उठा। अचानक उनके मनमें आया — "मेरे जीनवकी संध्या भी आ ही गयी। इसी प्रकार एक दिन जीवनके आकाशपर मृत्यु अपनी काली चुनरी ओढ़ा देगी और जीवनका अंत हो जायगा, परंतु जीवनभर मैंने किया क्या ? जीवनभर कारोबार किया, धन कमाया। जिन वस्तुओंको दुनिया सुखका मूल कहती है, एक एक कर सबको बटोरा, परंतु फिर भी मैं सुखी क्यों न हो सका ? मुझे जीवनमें शांति, तृप्ति और संतुष्टि क्यों नहीं मिलती ? क्या मैं जीवनभर गलत रास्तेपर भटकता रहा ? क्या समस्त भोग मेरे जीवनकी पूंजी नहीं बन सकते ?

"परंतु पाथेयके बिना तो जीवन ही दूभर है ? नहीं ! यह ठीक रास्ता नहीं है।" सहसा एक विचार उनके मस्तिष्कमें कौंध गया। वे दृढ़तासे कह उठे — "नहीं, नहीं, इस भोग-विलासके जीवनको यहीं समाप्त करना है। जो होना था हो चुका, सुबहका भूला शामको घर लौट आये तो वह भूला नहीं कहाता। आजसे मैं त्यागका जीवन अपनाऊंगा। दीन-दुखियोंसे मैं कतराता था, आजसे मेरा व्रत होगा उन्हीं दीनोंकी सेवामें जीवन उत्सर्ग करना। देखूं, शायद इसीमें मुझे जीवनकी अमूल्य निधि प्राप्त हो सके।"

लाला दीनदयालका जीवनक्रम रातोंरात बदल गया। दूसरे दिन वे ब्राह्म-मुहूर्त्तमें उठकर जमुनामें स्नान करने गये। फिर उसी पवित्र नदी किनारे गीले वस्त्रोंमें खड़े हो अपने हाथोंसे पांच मन अनाजका दान दिया। घर लौटकर पूरी-पकौड़ोंको छोड़ सादा-सा फलाहार किया। दीनदयालके भवनके पास ही कुछ जमीन थी। किसी समय उनकी इच्छा थी वहां एक मनोरम आम्रकुंज बनायेंगे। पर अब उसकी आवश्यकता न थी। शुभ तिथि देखकर वहां

खुदायी शुरू की गयी और धर्मशालाके लिये नींव रखी गयी। देखते ही देखते आलीशान महल खड़ा हो गया। वहां यात्रियोंको खाना दिया जाता था। उनकी परिचर्या की जाती थी। सुबह-शाम दीनदयाल स्वयं जाकर रसोईकी जांच करते, थके-हारे यात्रियोंको स्वयं परोसकर खिलाते, किसीपर उन्हें विश्वास न था, वे नौकर-चाकरकी परवाह नहीं करते थे। दान-दक्षिणाका काम अपने ही हाथोंसे करते थे।

शहरभरमें लाला दीनदयालके दानकी धूम मच गयी। जो भी सुनता वाह वाह कर उठता। इतने निःस्वार्थ पुरुष इस कलियुगमें विरले ही होते हैं। स्वयं दाता कर्णके अवतार हैं। अपनी प्रशंसा सुन लाला दीनदयाल कानोंमें अंगुलि डाल देते। कहीं आत्मप्रसंसा सुन उनका अहम् जागृत न हो जाय और उनकी परम काम्य शांतिके मार्गको सदाके लिये बंद न कर दे। जहांतक बन पड़ता वे दानका काम छिपाकर ही करते थे। परंतु फिर भी मनके एक गुप्त कोनेमें एक भावना थी कि दान-दक्षिणामें लाला मदनमोहनसे सदा आगे ही रहना है। सेठ मदनमोहन मथुराभरमें दानवीरके नामसे प्रसिद्ध थे। अनजाने ही लाला दीनदयाल अपने दानके परिमाणसे मदनमोहनके दानकी तुलना करते और जबतक यह न पाते कि उनका ही दान श्रेष्ठ रहा है तबतक उनका मन न मानता।

इस तरह वर्षभर बीत गया। और एक संध्याको दीनदयालका मन फिर विषादके काले-काले बादलोंसे घिर गया। मनकी स्थिति वैसी ही थी जैसी वर्षभर पहले। यदि फरक था तो इतना कि मनमें कुछ आत्मतृप्तिकी भावना थी कि उन जैसा दानी मथुरामें नहीं है। उनका मन पुकार उठा— "नहीं, नहीं, यह मार्ग ठीक नहीं है। मैं फिर भटक गया हूं। आकांक्षित वस्तु पानेके लिये चाहिये किसी सच्चे गुरुका पथप्रदर्शन।"

शुरू हुई गुरुकी खोज। जहां कहीं किसी साधु-संन्यासीके बारेमें सुनते दौड़ पड़ते। थाली भर-भरकर भेंट चढ़ाते, परंतु अंततः निराश होकर ही लौटना पड़ता। कोई ऐसा व्यक्ति न मिलता जिसे गुरु-पदपर प्रतिष्ठित कर सकते। ऐसे कितने ही दिन व्यतीत हो गये। दीनदयालका मन निराशासे डूबने लगा।

एक दिन उन्होंने सुना भक्त हरिदासका नाम। लोग उनकी प्रशंसा करते अघाते न थे। ऐसी लगन, ऐसी भक्ति देखनेमें नहीं आती। लाला दीनदयालके मनमें आशाकी किरण जगी। क्या इतने दिनोंकी उनकी खोज सार्थक होगी? क्या मिलेगी उन्हें योग्य गुरुकी कृपा? दस थालोंमें नानाविध फूल, फल, मिष्टान्न और सोने-चांदीकी मुद्राएं भरकर वे चल पड़े मस्त हरिदासकी कुटियाकी ओर। मनमें साध लिये कि अब उन्हें दीक्षा देनेवाले गुरु मिल जायंगे। कुटीरके द्वारपर पहुंचे तो देखते ही रह गये। कुटीर आलोकित कर योगिराज भक्तशिरोमणि बैठे थे। उनके मुखसे निकले मधुर नामगानसे वातावरण मुखरित हो उठा था। उन्हें घेरकर बैठी थी भक्त मण्डली जो रह-रहकर रस-विभोर हो उनके कण्ठसे कण्ठ मिला नामकीर्त्तन कर रही थी। कुटीके चारों ओरका वातावरण एक शुचि-स्निग्ध भावसे सराबोर था।

लालाजी आगे बढ़े। भेंट चरणोंमें रखकर साष्टांग प्रणाम किया। हाथ जोड़कर विनती की— "गुरुवर! अपने विशाल हृदयमें मुझ जैसे क्षुद्र मनुष्यको थोड़ा स्थान दें। अनेक दिनोंके भटकनेके बाद आज आपके दर्शन हुए। मुंह न मोड़िये। दें मुझे चरणसेवाका अधिकार।" भक्त हरिदासका सौम्य मुखमण्डल मन्द हास्यसे खिल उठा। मधुर स्वरमें बोले— "वत्स!

तुम्हारी व्याकुलता देखकर संतुष्ट हूं। परंतु अभी तो समय नहीं आया। तुम लौट जाओ। समय आनेपर मैं स्वयं तुम्हारे द्वारपर उपस्थित होऊंगा।"

दुखी मन, टूटी आशाएं लेकर लाला दीनदयाल घर लौटे। विराट् प्रासाद उन्हें जैसे काटने लगा, सगे-संबंधियोंसे भरा घर उन्हें श्मशान-सा बीहड़ लगने लगा। अपनी प्रतिष्ठा, अपना धन, सब कुछ निःसार लगने लगा। उन्होंने सोचा, क्या होगा इस सब सामग्रीको लेकर। सब कुछ छोड़कर त्यागी-संन्यासी बन जानेके लिये मन उतावला हो उठा। सोचा, भोगमें जो नहीं मिला संभव है त्यागमें वह मिल जाय।

दूसरे दिन प्रातः यमुना-स्नान कर उन्होंने त्याग दिये अपने राजसी रेशमी वस्त्र। मोटे गैरिक वस्त्र अपनी पूर्ण गरिमाके साथ उनके तनको सुशोभित करने लगे। उन्होंने त्याग दिया अपना भवन, एकांतमें यमुना किनारे पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। दिनभर नाम जपते, संध्या समय भिक्षाके लिये निकलते। मथुरानिवासी अवाक् होकर देखते इस राज-संन्यासीको, मधुर स्वर सुन सचेतन हो थाली भर-भर फल-फूल वस्त्र आदि उंडेल देते उनकी झोलीमें। जो स्वयं प्रलोभनोंसे मुक्त है उसे वे कैसे बांध सकते? अपनी सामान्य जरूरतोंको पूरा कर नवीन संन्यासी बाकी चीजोंको दीन-दुखियोंमें बांट देते।

एकनिष्ठ साधना चलती रही। समयकी नदी अपनी गतिसे बहती रही। देखते-ही-देखते वर्ष पूरा हो गया। एक दिन जब सूर्य अपनी अरुण रश्मियोंकी बागडोर थामे दैनिक यात्राकी तैयारी कर रहे थे, लाला दीनदयालने जमुनामें स्नान किया। मन कुछ शांत हो चला था। वे चल पड़े भक्त हरिदासकी कुटियाकी ओर, मनमें दृढ़ विश्वास था, इस बार उनकी वर्षोंकी आकांक्षा पूरी होगी। प्रभुके चरणोंमें शरण मिलेगी। कुटीमें प्रवेश करके वे भक्त हरिदासके चरणोंमें लोट गये — "प्रभु, और विलम्ब नहीं सहा जाता। इस दीनपर कृपा करें।" परंतु यह क्या? दीनदयालपर मानों बिजली गिरी। मृदु हास्य लिये भक्त हरिदास सिर हिला रहे थे — "नहीं, वत्स, समय अब भी नहीं आया, जिस दिन वह शुभ क्षण आयगा तुम्हें सोचना न होगा, मैं ही तुम्हारे पास पहुंच जाऊंगा।"

पागलोंकी भांति लाला दीनदयाल सड़कोंपर भागने लगे। नहीं! नहीं!! अब तो सहा नहीं जाता। हे निष्ठुर हरि! कौनसा पाप किया है मैंने? क्यों नहीं देते दर्शन? हर बार मैं आशा लिये जाता हूं और तुम, हे पाषाण-प्राण! अपने निर्मल हाथोंसे उसे टुकड़े-टुकड़े कर बिखेर देते हो? देखते नहीं मेरी दशा? तुम्हें पुकारते-पुकारते तो जीभमें छाले पड़ गये। आंखें पथरा गयीं तुम्हारा पन्थ निहारते-निहारते। परंतु हे दयाहीन हरि, तुम नहीं पिघले। नहीं चाहिये मुझे तुम्हारी कृपा। नहीं चाहिये दर्शन। यदि तुम्हारी इच्छा यही है तो लो आज मैं इस शरीरका अंत कर दूंगा। मुझे नहीं चाहिये आनंद और नहीं चाहिये शांति।

दीनदयाल जमुनाकी ओर भागे उसकी शीतल गोदमें अपने प्राणोंकी ज्वाला शांत करने, उसी जलमें अपने जीवनका अर्घ्य चढ़ाने।

दीनदयाल भागे चले जा रहे थे। मनमें था विक्षोभ और प्रचण्ड निराशा। अचानक एक बड़ी भीड़ने उनका रास्ता रोक दिया। ध्यानसे देखा, वह सेठ मदनमोहनकी कोठी थी। वे स्वयं अंजलि भर-भर दान दे रहे थे। याचकोंकी भीड़ कोठीके दरवाजोंसे लेकर सड़कतक फैली हुई थी। दीनदयालके मनमें बिजली-सी कौंध गयी। सच ही तो है। मथुराके प्रायः

सभी मकानोंमें वे जा चुके थे भिक्षाके लिये पर इस कोठीके दरवाजेके आगे कभी हाथ न पसारा था। वह पुराना अभिमान अब भी उनके मनमें छिपा बैठा था। उन्होंने सोचा — मन-मंदिरका सिंहासन तो अब भी अभिमान और आत्मगरिमासे भरा है। हरिके लिये वहां स्थान कहां ? तब क्या यह सब त्याग-तितिक्षा केवल एक होड़ थी ? यह जो व्याकुलता है वह हरि-मिलनके लिये नहीं। कितना दुर्भाग्य, मैं अपने मनको ही जान न पाया और हरिको निष्ठुर कहकर कोसता रहा ? उनका मन अपने ही कियेपर क्षुब्ध हो उठा। वे कोठीके अंदर घुस गये और याचकोंकी भीड़में जा खड़े हुए। मधुर स्वरमें पुकार उठे हरि ओ३म ! एक मुट्ठी भिक्षा दो, हे दाता !

सेठ मदनमोहनका दान देता हुआ हाथ सहसा रुक गया। कौन है यह याचक ? उसकी पुकार अंतरतममें प्रवेशकर उसे व्याकुल क्यों बना रही है ? उनकी दृष्टि लाला दीनदयालपर गयी, वे ठिठककर खड़े हो गये मानों अपनी आंखोंपर विश्वास न हो। दीनदयाल फिर पुकार उठे, दाता दान दो ! चौककर मदनमोहन कोठीके अंदर भागे। चांदीके थालमें नानाविध द्रव्य भरकर ले आये जहां वह अभिनव संन्यासी झोली पसारे खड़े थे। फिर उसी रस घोलती हुई आवाजने उनके हृदयमें प्रवेश किया — इतनेका क्या होगा दाता ? मुझे दो केवल मुट्ठीभर अन्न और हृदयकी प्यास बुझानेवाला नामगान। सेठ मदनमोहनने थाल जमीनपर रख दिया और दोनों हाथ पसारकर दीनदयालको हृदयसे लगा लिया। याचकमण्डली चिल्ला पड़ी — "हरि ओ३म् !" मदनमोहनके अंतःपुरमें खबर पहुंची इस अनोखे याचकके बारेमें। कौतूहलवश सब बाहर निकल आये। दृश्य देखकर सभी अवाक् रह गये। किसीने नारा लगाया, सत् गुरुकी जय ! हरि बोलो भाई हरि ! स्वरसे स्वर मिलाकर सभी नामकीर्त्तन करने लगे। आबाल-वृद्ध-वनिता सभी नामरसमें डूबने लगे। दिन ढलतेतक नामगान होता रहा। सूर्य अस्ताचलको गया तो लोगोंने भी घरकी राह ली।

दिनभरका विषादमय हृदय काफी शांत हो गया था। दीनदयाल यमुना किनारे पहुंचे। इसी यमुनामें प्राणविसर्जनका संकल्प करके चले थे पर हरिनामकी पावन धारने मनको धो दिया था। इसी जमुना किनारे तो कभी हरिकी वंशी बजी थी। यहीं तो हुई थी वह अनुपम रासलीला। यमुना उन्हें सजीव लगने लगी। अपनी ही प्यारी। धीरे-धीरे वे जलमें उतर गये। काफी समयतक शीतल जलमें अंग डुबाकर स्नान करते रहे। फिर कीर्तनकी कड़ी दुहराते हुए गीले वस्त्र पहने अपनी कुटियाकी ओर चल दिये। आज वे प्रसन्न थे।

कुटीके द्वारपर पहुंचकर उनके पांव रुक गये। आंखें अविश्वाससे फैल गयीं। क्या यह भी संभव है ? कुटी आलोकित करते हुए बैठे थे भक्त हरिदास। मधुर स्वरमें नामगान वातावरणको मुखरित कर रहा था। दीनदयालने सुधबुध खोकर दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये— प्रभु ! आखिर आ ही गये ? दीन सेवकपर दया करनेवाले दयानिधान, इतने दिनोंमें सुध ली ?

हरिदासका चेहरा मधुर मुसकानसे उद्भासित हो उठा, पुलकित हो बोले — "हां वत्स ! आज वह चरम मुहूर्त्त आ गया है।" उन्होंने चरणोंपरसे दीनदयालका अश्रुपूर्ण चेहरा उठाकर हृदयसे लगा लिया।

—रेवा चटर्जी

◆

सर आशुतोष मुखर्जी

सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालयकी प्रेरणा थे। एक समय था जब कहा जाता था कि आशुतोष ही विश्वविद्यालय हैं और विश्वविद्यालय ही आशुतोष हैं। भारतमें उच्चतर शिक्षाके लिये जितना काम इन्होंने किया है उतना शायद ही किसीने किया हो। उनके बारेमें श्यामसुन्दर चक्रवर्तीका कहना है: आशुतोष मुखर्जी प्रकृतिकी महान् शक्तियोंके जैसे थे। जैसे समुद्रके तूफानको, आकाशकी बिजलीको प्रयोगशालामें लाकर परखा नहीं जा सकता, वैसे ही आशुतोषका भी विश्लेषण नहीं किया जा सकता। वे एक समग्र व्यक्ति थे। न्यायप्रियता, राष्ट्रीयता, विद्वत्ता, हास्य और देशके लिये कुछ कर सकनेका विश्वास और न जाने ऐसी कितनी चीजें उनके अंदर कूट-कूटकर भरी थीं। अभी ये स्कूलमें ही पढ़ते थे कि इन्होंने गणितका एक सिद्धांत (थ्योरम) खोज निकाला जो मुखर्जी-सिद्धांतके नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दुस्तानके एक विद्यार्थीका सिद्धांत केम्ब्रिज विश्वविद्यालाके पाठ्यक्रममें स्थान पा गया।

इनके घर न्यायमूर्त्ति द्वारिकानाथ मित्र आया करते थे। उन्हें देखकर बालक आशुतोषकी इच्छा हुई कि वह भी न्यायाधीश बने और चालीस वर्षकी आयुमें वह न्यायाधीश बन गया। इनके एक संबंधी कलकत्ता विश्वविद्यालयके सिंडीकेटके सदस्य बने तो इनका भी मन ललचाया और ये चौबीस वर्षकी आयुमें सिंडीकेटके सदस्य हो गये। १९०१ में ये इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिलके सदस्य हो गये जहां गोखले इनके साथी थे। उन दिनों जो विश्वविद्यालय विधेयक तैयार हुआ था उसका बहुत कुछ श्रेय इन्हींको है।

यहां हम इनके जीवनकी कुछ मजेदार घटनाएं दे रहे हैं:

अदालतमें जाते समय तो सरकारद्वारा निर्धारित वेश-भूषा पहननी ही पड़ती थी। उसके अतिरिक्त सर आशुतोष हमेशा धोती, कुर्ता और चप्पल पहने रहते थे। संसेडलर कमीशनकी बैठकोंमें भी धोती-कुर्ता पहनकर ही जाया करते थे और इंगलैंडके राजा जब भारतमें आये तो उनसे मिलनेके लिये भी धोती-कुरता पहनकर ही गये। एक बार उन्हें पंजाब कलकत्ता मेलसे कहीं जाना था। वे दिल्लीसे रेलमें सवार हुए। डिब्बेमें एक गोरा सैनिक अफसर पहलेसे बैठा हुआ था। खाली धोती-कुर्ता पहने हुए आदमीको अंदर जाते हुए देखकर साहबकी भौंहें तन गयीं। जब उसकी नजर चप्पलोंपर गयी तब तो पारा और भी चढ़ गया। सर आशुतोषको इसकी क्या परवाह थी? वे आरामसे अपनी जगह बैठ गये और थोड़ी देरके बाद सो गये। साहब अभी कुढ़ रहा था। उसने इन्हें सोते हुए देखा तो चुपकेसे इनकी चप्पलें उठाकर चलती गाड़ीमेंसे बाहर फेंक दी और अपने-आप भी चुपचाप सो गया। सवेरा हुआ। आशुतोष जागे। देखते क्या हैं कि चप्पल नदारद। इन्हें समझते देर न लगी कि मामला क्या है। वे भी मौकेकी ताकमें लग गये। थोड़ी देरके बाद साहब स्नानगृहमें गया तो इन्होंने उसका हैट उठाकर बाहर फेंक दिया। साहब वापिस आकर बहुत झल्लाया, फिर इनसे पूछा "मेरा हैट कहां है?" इन्होंने बड़े शांत भावसे उत्तर दिया, "मेरी चप्पलोंको ढूंढ़ने गया है।" यह कहकर अपनी नजर घुमा ली। साहब बड़ा लाल-पीला हुआ पर कर ही क्या सकता था। आखिर चुप होकर बैठ गया।

इसी तरह एक बार बंगालके लाट साहबके यहां किसी समितिकी बैठक थी जिसमें सर आशुतोष सभापतिका आसन ग्रहण करनेवाले थे। वे नियत समयपर अपनी साधारण पोशाकमें गवर्नरकी कोठीपर जा पहुंचे। द्वारपालके लिये यह नयी बात थी। ऐसी पोशाक पहना हुआ आदमी उस देहलीके अंदर कैसे घुस सकता था? उसने इन्हें अंदर न जाने दिया। सर आशुतोष उलटे पांव लौट पड़े और सीधे अपने घर जा पहुंचे। गर्नवरके यहां सब लोग परेशान थे। सब जानते थे कि सर आशुतोष समयके बहुत पावन्द हैं, उन्हें देर होनेका कोई विशेष कारण होना चाहिये, कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी। गवर्नरको सर आशुतोषके लिये बहुत मान था। वह उनके घर जा पहुंचा। वहां जाकर जब उसे सारी घटनाका पता लगा तो वह बहुत नाराज हुआ, सर आशुतोषसे क्षमा मांगी और बड़े आदरके साथ उन्हें अपने घर ले आया।

सर आशुतोषमें बंगाली, गैर-बंगालीकी भावना बिलकुल नहीं थी। उन्हें जहां कहीं योग्य आदमी मिल जाता वे उसे पकड़कर कलकत्ता विश्वविद्यालयमें ले आया करते थे। उनकी प्रेरणासे बहुतसे नवयुवक अधिक वेतनवाली नौकरियां छोड़कर कलकत्ता विश्वविद्यालयमें काम करने आये थे। नोंबेल पुरस्कार-विजेता श्री सी. पी. रमणको सर आशुतोष ही शिक्षाक्षेत्रमें लाये थे। उन्होंने विश्वविद्यालयमें सिखों, राजपूतों, मराठों आदिके इतिहासको तथा भारतीय भाषाओंको स्थान दिलवाया। एक बार गवर्नर फुलरने हुक्म दे दिया कि शिक्षणसंस्थाओंमें 'वंदे मातरम्' का नारा नहीं लगाया जा सकता। एक स्कूलमें कुछ बच्चोंने गाया तो गवर्नरने स्कूल तोड़नेकी आज्ञा दे दी। सर आशुतोष भला यह कैसे सह सकते थे। उन्होंने स्कूल जारी रखनेकी स्वीकृति ले ली। गवर्नर बहुत बिगड़ा, आखिर त्यागपत्र देकर चला गया।

इंग्लैंडके राजा सप्तम एडवर्डका राज्याभिषेक था। गवर्नरने इनसे कहा, "वाइसरायकी विशेष इच्छा है कि आपको इस अवसरपर इंग्लैंड भेजा जाय।" इन्होंने कहा, "मैं अपनी मांसे पूछ लूं।" गर्ननर हैरान, यह क्या? हुजूर वाइसरायकी इच्छाके बाद भी मांसे पूछनेका सवाल रह जाता है? आशुतोषने कहा, "मेरे लिये मांकी खुशी हुजूर वाइसरायकी आज्ञासे कहीं बढ़कर है।" मांको समुद्र पार जाना ठीक न जंचा और इन्होंने वाइसरायके हुक्मके बाद भी जानेसे इंकार कर दिया।

इसी प्रकार ये एक बार वाइसरायकी स्पेशल ट्रेनमें उनके साथ यात्रा कर रहे थे। वाइसरायके खानेका समय आया तो उसने इन्हें भी खानेपर बुलाया। इन्होंने कहा, मेरी मांका आदेश है कि रेलमें कभी न खाना। वाइसरायने बहुतेरा कहा पर मांका हुकुम तो पत्थरकी लकीर था। आखिर गाड़ी बीचमें कहीं रोकी गयी। ये उतरे, अपने हाथसे खाना तैयार किया, खाया और तब वाइसरायकी रेल आगे चली।

परंतु यहांपर ख्याल रहे कि यह सब होते हुए भी सर आशुतोषके विचारोंमें बहुत उदारता थी। उस जमानेमें उन्होंने अपनी विधवा बेटीका पुनर्विवाह करवाया था।

—रवीन्द्र

जाह्नवी की समस्या

(पुरोधाके पिछले अंकमें जाह्नवीके मां-बापकी चिट्ठियां छपी थीं। कुछ और खोजके बाद जाह्नवी और उसके पिताकी कुछ चिट्ठियां हमारे हाथ लगी हैं। यह उठती जवानीके संघर्षका चित्र है। और किसीको इस परिवारकी चिट्ठियां मिल जायें तो उन्हें हमारे पास अवश्य भेज दें। —संपादक)

मेरे पूज्य पिताजी,

आपका कृपा-पत्र मिला। मुझे बहुत खेद है कि मेरे कारण मांको इतना कष्ट हो रहा है। पर करूं भी क्या? एक ओर मांकी ममता खींचती है दूसरी ओर जीवनके आदर्श बुलाते हैं। दोनोंमेंसे एकको चुनना सचमुच कठिन काम है। कई बार मैं सोचा करती हूं कि मैं पैदा ही क्यों हुई। मेरे कारण स्नेहमयी जननीका जीवन इतना दुखमय हो गया है। मुझे याद है आप लोगोंका जीवन कितना शांतिमय और प्रेमभरा था। आसपासके घरोंमें झगड़े होते हुए देखती या अपनी सहेलियोंसे उनके परिवारोंके कलहकी बात सुनती तो मेरा सीना उभर आता था। मैं सोचा करती थी, मैंने देवताओंके यहां जन्म लिया है। यहां किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं, कोई कष्ट नहीं! लेकिन हाय, मेरे ही भाग्यमें बदा था कि मैं आप दोनोंके जीवनमें अमरबेल बनकर आऊं। जिन्होंने मुझे प्रेमसे नहलाया, जिन्होंने कभी मुझे किसी प्रकारकी कठिनाईका अनुभव न होने दिया, जो मेरे लिये हमेशा ढालका काम करते रहे, उन्हीं माता-पिताके जीवनको नीरस बनाना, उनके रसमें विष घोलना ही मेरे भाग्यमें लिखा था। लेकिन क्या करूं कुछ समझमें नहीं आ रहा।

आप ही मेरी सहायता कीजिये।

आपकी अपनी
जाह्नवी

प्रिय जाह्नवी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम तो पढ़ी-लिखी हो। मेरा ख्याल है मैंने तुम्हें अच्छीसे अच्छी शिक्षा दी है। तो क्या वह बेकार साबित हुई। तुम अपनी डगरपर चलती रहो। जब सोच-विचारकर, पूरी श्रद्धाके साथ तुमने एक मार्ग ठीक किया है तो फिर मेरी और तुम्हारी मांकी राय चाहे कुछ क्यों न हो तुम्हें अपने मार्गसे विचलित न होना चाहिये।

मेरी बेटी, हम लोग अपनी दृष्टिसे देखते हैं, हमें तुम्हारे लिये जो उचित लगता है उसीको हम सत्य मान लेते हैं। परंतु बहुत बार हमारी आंखोंपर मोहका पर्दा पड़ा होता है। कई बार हम तुमसे उन चीजोंकी आशा करते हैं जिन्हें हम अपने-आप न कर पाये थे, हमारा जीवन तो बीत गया, अब तुम्हें ही अपने आदर्शके अनुसार ढालना चाहते हैं। विशेष रूपसे तुम्हारी

मांको हमेशा यही चिंता लगी रहती है कि कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें जीवनमें कष्ट उठाना पड़े। वह यह मान लेती हैं कि तुम्हारे जीवनकी सारी जिम्मेदारी उनके ऊपर है और वह जीवनभर तुम्हारी रक्षा कर सकेंगी। मैंने कई बार उन्हें समझानेकी कोशिश की है कि पौधेके लिये यही हितकर है कि वह धूप और आंधी-मेहका सामना करे। तभी उसके अंदर जीवन-शक्ति आती है और तभी वह वृक्ष बन सकता है। कमरेके अंदर गमलेमें लगा हुआ पौधा कभी वृक्ष नहीं बन पाता। लेकिन जब तुम्हारे बारेमें हो तो ऐसी बातें उनके गले नहीं उतरतीं।

तुम्हारा ...

प्रिय जाह्नवी,

कल ही तो तुम्हें एक पत्र लिखा था। आज फिर तुमसे बातें करनेको जी चाहता है। मेरी बेटी, सच मानो, तुम्हारे साथ कुछ क्षण बिताकर बड़ा अच्छा लगता है। तुम्हारे साथ चाहे कितना भी मतभेद क्यों न हो पर मुझे विश्वास है कि तुम एक ऊंचे आदर्शकी ओर जा रही हो, तुम्हारी दृढ़ता देखकर मेरी आंखें खुशीसे भर आती हैं, मेरी छाती फूल उठती है कि आह, यह मेरी बेटी है। यह सब होते हुए भी मेरे अंदर भी कमजोरीके क्षण आते हैं, मैं सोचने लगता हूं कि तुम अभी भोली हो, संसारके छल-कपट आदिसे अपरिचित हो, कहीं कोई मुआ तुम्हें अपने मार्गसे च्युत न कर दे। कहीं बिना जाने तुम किसीके सुन्दर और आकर्षक जालमें न फंस जाओ। हमारे समाजमें लड़कीके ऊपर ज्यादा आसानीसे विपत्ति आ जाती है। लड़का अपनी मनमानी करता रहे तो कोई कुछ नहीं कहता, पर लड़की जरा कुल-मर्यादा और जातिमर्यादासे इधर-उधर हो जाय तो बस आसमान सिरपर उठा लिया जाता है। कहा है:

हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम
वो कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।

जब इस तरहके विचार आते हैं तो जी खिन्न हो उठता है, कभी तुम्हारे ऊपर, कभी अपने ऊपर और कभी सारे समाजपर गुस्सा आने लगता है, परंतु जानता हूं कि यह व्यर्थ है। जब मैं अपने-आपको ही न बदल सका तो दूसरोंको बदलनेका स्वप्न भी कैसे ले सकता हूं? अपनी कमजोरियोंको जानते हुए दूसरोंकी ओर उंगली कैसे उठाऊं?

प्यारी बेटी, यह न समझना कि मैं तुम्हारे ऊपर परोक्ष रूपसे जोर डाल रहा हूं। बात यह है, जब दिल भर आता है तो किसीके सामने खुलनेकी इच्छा होती है। फोड़ा पक जाय तो उसका फट जाना जरूरी है। मैंने तुम्हारे साथ हमेशा एक मित्रका-सा व्यवहार किया है, इसलिये तुम्हारे आगे ही अपना दिल चीरकर रख सकता हूं, यही एक जगह है जहां गलतफहमीकी सबसे कम संभावना है।

अच्छा, अब विदा।

तुम्हारा ....

पूज्य पिताजी,

आपके दोनों पत्र मिले। मैं कह नहीं पाती कि आपका पत्र पाकर खुशी अधिक होती है या दुख। आपकी ऊहापोह सुनकर बड़ा कष्ट होता है, आखिर इस सबका कारण मैं ही तो हूं। कभी-कभी इच्छा होती है कि आदर्श और जीवनके लक्ष्य आदिकी बड़ी-बड़ी बातें छोड़कर मांकी इच्छाके आगे सिर झुका दूं। मेरे अरमान पूरे न हो पायें तो न सही, आप दोनोंको तो धर्म-संकटमेंसे बचा सकूंगी। फिर आपकी शिक्षा याद आती है। आपने हमेशा यही सिखाया है कि सुख, सुविधा, खुशी, नाखुशीकी परवा न करके हमेशा किसी ऊंचे लक्ष्यकी ओर बढ़नेकी कोशिश करो। आप हमेशा कर्तव्य-पालनपर जोर दिया करते थे। आपने बचपनसे ही मेरे दिमागमें यह बात अच्छी तरहसे घुसा दी थी कि चाहे कुछ भी क्यों न हो मुझे अपने कर्तव्यसे विमुख न होना चाहिये। आपने कहा था, त्यजेदेकम् कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलम् त्यजेत्। आप हमेशा इसकी व्याख्या करते हुए यह समझाया करते थे कि व्यक्ति जैसे-जैसे प्रगति करता है वैसे-वैसे उसका जीवनका लक्ष्य भी विशाल होता जाता है। आपने कहा था कि पहले मनुष्य केवल अपने स्वार्थकी चिंतामें लगा रहता है फिर उसका स्व कुछ बड़ा हो जाता है, उसके अंदर उसके पूरे कुटुम्बका समावेश हो जाता है, फिर वह और आगे बढ़ता है और कुटुम्बकी जगह जाति, नगर, प्रदेश और देश ले लेते हैं। आप कहा करते थे कि इसके आगे मनुष्य अभीतक नहीं जा पाया है, अब अगला कदम होगा 'वसुधैव कुटुम्बकम्।'

पिताजी, विश्वास कीजिये, आपकी यह शिक्षा मेरे अंदर घर कर गयी और मेरे अंदर बहुत जोरसे यह अभीप्सा जागी कि मैं ही अगला कदम उठाऊं। शायद आप कहें कि यह पागलपन है, होगा, पर यह बात सच है कि यह पागलपन मेरे सिरपर सवार हो गया और मैं उठते-बैठते, सोते-जागते यही सोचती रही कि मुझे ऊंचेसे ऊंचा लक्ष्य प्राप्त करना है। उस प्रयासमें यदि एक बार नहीं हजार बार असफलता मिले तो भी यह संतोष तो रहेगा कि जीवन व्यर्थ नहीं गया। उन्हीं दिनों मेरा जन्म-दिन आया और मुझे जो बहुतसे उपहार मिले उनमें श्रीमाताजी और श्रीअरविंदकी कुछ पुस्तकें भी थीं। अभीतक मुझे इनके बारेमें कुछ जानकारी न थी। पहली पुस्तक ही खोली थी कि अचानक एक वाक्यपर नजर पड़ी जिसका भाव था मानवजीवनका उद्देश्य सुखप्राप्ति नहीं है। साधारण जीवनका उद्देश्य है कर्तव्यपालन और आध्यात्मिक जीवनका उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति। पढ़ते ही यह वाक्य मेरे अंदर चुभ गया बल्कि यूं कहिये कि चुभता चला गया। मुझे लगा मानों मेरा जीवन मेरा अपना नहीं है, वह भगवान्की धरोहर है, मुझे उसके साथ बन्दरपन करनेका अधिकार नहीं है, मैं उसे अपने या अपने आत्मीय लोगोंके लिये खर्च नहीं कर सकती, मेरा कर्तव्य स्पष्ट है, मुझे उसकी चीजका उसीके लिये उपयोग करना चाहिये ताकि मैं भी कह सकूं 'जैसीकी तैसी धर दीन्हीं चदरिया'।

आप तो शायद न कहें पर मां जरूर कहेंगी, देखो तो, यह मुंह और मसूरकी दाल। जो काम बड़े-बड़े ऋषि-मुनि नहीं कर पाये, उसे यह पूरा करेगी, देखो तो इसकी सूरत! मैं यह नहीं कहती कि मैं ऋषि-मुनियोंसे स्पर्धा कर रही हूं। मैं अपने-आपको उनकी चरणरजका अधिकारी भी नहीं मानती, पर यह जरूर सोचती हूं कि भगवान्के यहां सबकी जरूरत है। वहां छोटे-बड़े, ऊंचे-नीचेकी गिनती नहीं है। जिसने सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रोंको बनाया है उसी हाथने ढेलेको भी रूप दिया है, जिसने गुलाबको बनाया उसीने कीकरकी भी रचना की, और

कौन कह सकता है कि उसे गुलाब अधिक प्रिय है या कीकर — "जहां काम आवै सुई, कहा करिहै तरिवारि।"

इसलिये अपनी क्षुद्रता और नगण्यताका पूरा भान रखते हुए भी मैं उसी मार्गपर दौड़ना चाहती हूं। यही मेरा लक्ष्य है और यही मेरा जीवन। क्या इस मार्गपर चलनेके लिये मुझे आपके आशीर्वादसे वंचित रहना पड़ेगा? क्या आप मेरे सिरपरसे हाथ खींच सकेंगे? मुझे नहीं लगता; मांको भी पत्र लिख रही हूं।

आपकी अपनी
जाह्नवी

मेरी प्यारी जाह्नवी, सादर सप्रेम प्रणाम।

नहीं, चौंको मत; मेरा दिमाग खराब नहीं हो गया है और न ही मैं व्यंग्य कर रहा हूं। तुम्हारा पत्र पाकर मेरी आंखोंमें आनंदके आंसू आ गये। मैंने गर्वसे सिर ऊंचा करके कहा, शाबाश मेरी बेटी, तू सचमुच महान् है। बेटी, सच मानो, एक क्षणके लिये मुझे लगा कि तू मेरे सामने खड़ी है, तेरी आंखोंमें मेरे लिये और अपनी मांके लिये एक करुणाका भाव था। तू हमसे बहुत ऊंची थी। हम तो शायद तेरे पैरोंतक भी न पहुंच पाते थे। मेरा सिर श्रद्धासे झुक गया और तेरी मां चिल्ला पड़ी, "मेरी बेटी, इतनी ऊंची न जा, मेरी आंखें तेरे लिये तरस रही हैं।" मुझे उनका विसंवादी स्वर पसंद नहीं आया और मैंने जरा आंखें तरेरीं। जब मैं यह सब देख रहा था तो तुम्हारी छोटी बहन सूर्यतनया वहीं बैठी थी। उसे कुछ संदेह हो गया और उसने उठकर मुझे झकझोर डाला। मेरा स्वप्न टूट गया। तुम्हें इस तरह देख पानेमें भी कितना सुख मिलता है!

सचमुच हम लोग भाग्यवान् हैं जो तुम जैसा रत्न पाया; परंतु खेद है कि पाकर भी हम उसका मूल्य न आंक पाये। हमने तुम्हें बच्चा समझकर अनेक बार तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया होगा। उसके लिये क्षमा करना। तुमने मेरा आशीर्वाद मांगा है, मैं क्या तुम्हें आशीर्वाद देने योग्य हूं? बाप हो जानेसे ही कोई बड़ा नहीं हो जाता। हां, तुम्हारे लिये भगवान्से प्रार्थना करता हूं कि तुम्हारी दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति हो, तुम शीघ्रसे शीघ्र अपने लक्ष्यतक पहुंच सको और स्वयं भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।

तुम्हारा....

पूज्य पिताजी,

मैं मांको कई पत्र लिख चुकी हूं पर वे उत्तर ही नहीं देतीं। बच्चे रूठें तो रूठें, मां कैसे रूठ सकती है, छिमा बड़नको चाहिये। आज भैयाका पत्र आया है, उससे मालूम हुआ है कि किसीने मांको मेरे बारेमें बहुतसी ऊटपटांग बातें बता दी हैं, शायद उन्होंने सोचा होगा कि मैं यहांपर लोपामुद्रा या मैत्रेयी बनकर बैठी हूं। उन्हें शिकायत है कि जब मैं खाना खाती हूं, पानी पीती हूं, लोगोंके साथ हंसती-बोलती हूं और साधारण मनुष्योंकी तरह हर काम करती हूं तो फिर उनका कहना मानकर हाथ पीले करनेसे ही क्यों कतराती हूं। उनका कहना है कि जिन मां-बापने मुझे जन्म दिया, जिन्होंने मेरा लालन-पालन किया, जिन्होंने मेरे लिये न

दिनको दिन समझा और न रातको रात, उनके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य है और पितृऋण चुकाये बिना मेरा लोक-परलोक कुछ न बन पायेगा। हो सकता है कि उनका कहना ठीक हो। कई लोगोंके लिये, और कइयोंके लिये ही क्यों, अधिकांश लोगोंके लिये खाने-पीने और वंश बढ़ानेके अतिरिक्त जीवनका कुछ अर्थ ही नहीं है। परंतु क्या यह जरूरी है कि हम उसी घिसी-पिटी पगडंडीपर ही चलते रहें जिसपर सब लोग चले आ रहे हैं? आपने ही तो पढ़ाया था कि ऊंचे उठनेका प्रयास करती जाओ, उस प्रयासमें ठोकर खाकर गिरना भी पड़े तो कोई हर्ज नहीं, उठकर फिर चढ़ो। प्राण तो एक दिन जाने ही हैं फिर कराहते हुए खटियापर मरनेकी जगह ऊपर चढ़ते हुए गिरकर मरना क्या बुरा है? मैं स्वीकार करती हूं कि मेरे अंदर त्रुटियां हैं, मैं अपने-आपको औरोंसे अच्छा या ऊंचा माननेकी मूर्खता नहीं करती, परंतु यह भरोसा है कि मैं जिस भगवान्की ओर जाना चाहती हूं उसकी लंबी भुजाएं हैं और मैं जहां भी रहूं वह वहांतक आकर मेरी सहायता करेगा। मांको मेरी सुरक्षाकी चिंता है, मेरे भटक जानेका डर है, मेरे किसीके चंगुलमें फंस जानेकी शंका है। मैं मानती हूं कि मेरे अंदर बुद्धि कम है, मैं दूसरोंके जालमें आ सकती हूं, परंतु क्या मेरे भगवान्के अंदर एक मानव पतिकी अपेक्षा अधिक सामर्थ्य नहीं? क्या वह एक पामर मानवकी अपेक्षा कहीं अधिक संरक्षण नहीं प्रदान कर सकता? मांको शंका है कि अकेली रहकर मैं बहक न जाऊं, कुमार्गपर न पड़ जाऊं, वे कहती हैं, इस बातका क्या प्रमाण कि जाह्नवी सचमुच भगवान्की ओर लगी ही रहेगी, लगी रह सके तो हमारा सबका सौभाग्य है परंतु उसपर इतना विश्वास कैसे कर लूं? क्षमा कीजिये पिताजी, क्या मानव पतिके होते हुए भी मैं कुमार्गपर नहीं जा सकती? मां शायद कह दें कि तब तो हमारी जिम्मेदारी न होगी, तब वह जाने और उसका आदमी। फिरसे हाथ जोड़कर क्षमा मांगती हूं, क्या इसका यह भाव नहीं है कि मेरी चिंताके रूपमें अपनी जिम्मेदारी, अपनी आबरूकी चिंता काम कर रही है और उसे संभाव्य भयोंसे बचानेके लिये मेरी बलि दी जाती है?

अभी-अभी आपका पत्र मिला। मैं किन शब्दोंमें अपना भाव प्रकट करूं? आपका आशीर्वाद मेरे अवसादके समय मुझे प्रोत्साहन देगा, अगर मैं विचलित होने लगूं तो मेरे लक्ष्यकी ओर अंगुलि निर्देश कर देगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरी जीवन-नौका भगवान्के हाथोंमें पूरी तरह सुरक्षित है और संसारके तूफ़ान उसका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। बस, और क्या कहूं। कोई अनुचित शब्द भावावेशमें निकल गया हो तो क्षमा करें।

आपकी कृपा तो मुझपर बनी ही रहेगी।

आपकी अपनी
जाह्नवी

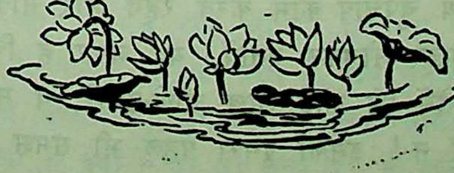

शोर बंद कीजिये

तुम कक्षामें बैठे हो। पढ़ाई चल रही है। साथीसे बात कर लेनेको जी चाहा; कर भी ली। तभी छड़ीकी चोटपर अध्यापककी आवाज आयी —— 'शोर बंद कीजिये'। कचहरीमें भीड़ है। लोग सुननेके मुकाबले बोल ही अधिक रहे हैं। वहां भी हथौड़ीकी चोटपर आवाज आयी —— 'शोर बंद कीजिये'। अस्पतालके बाहर फाटकपर और खासकर आपरेशनके कमरेके बाहर तख्ती पढ़ते होंगे —— 'यह अस्पताल है, शोर न कीजिये'। चर्च हो, मस्जिद हो, गुरुद्वारा हो या गीता-मन्दिर, जहां तुम तनिक भी कुनमुनाये कि लोग नजरों ही नजरोंमें तुम्हें डांट देंगे कि 'शोर मत करो'। और तो और, सिनेमाहालमें भी खेलके बीच, तुम अपनी बात दूसरेतक आगे-पीछेवालोंको नाराज किये बगैर नहीं पहुंचा सकते। वहां भी कहनेवाले मिल ही जायेंगे कि—— 'शोर बंद कीजिये'।

अजीब मुसीबत है! आखिर, जायें तो कहां जायें? न दो बात कहनेके, न हंसने-बोलनेके। जबानपर लगाये गये इस नियंत्रणसे जी घबरा उठता है। जीमें आता है, इन रोक लगानेवालोंको खेतों-जंगलोंमें भेज दिया जाय तो? तो, वे समझ भले ही लें कि कोई शोर नहीं कर रहा, किंतु शोर तो वहां भी है। यह दूसरी बात है कि झींगुरोंका झनझनाना, चिड़ियोंका चहचहाना और भौंरोंका गुनगुनाना बड़ी देरके बाद उनके कानोंतक पहुंच पाता है। हमारे, तुम्हारे, उनके कानोंके सुननेकी भी एक सीमा है। वह सीमा है भी बहुत छोटी। सुननेकी तशमेंकि तो मानव सृष्टिके नन्हें जन्तुओंसे भी गया-बीता है। चमगादड़के तो पासंगमें भी यह नहीं आता। विज्ञान फिर यह कहता है कि तितलियोंकी फरफराहट और भूमिके अंदर रेंगते हुए केंचुएकी सरसराहट भी वायुमें ध्वनि-लहरें उत्पन्न कर देती हैं।

बातको फिर शुरूसे पकड़ें। आधुनिक सिनेमाहाल हो या आपरेशनका कमरा, आज विज्ञान इन्हें ऐसा बनाता जा रहा है जिनमें बाहरकी आवाज बाहर और अंदरकी आवाज अंदर रुक जाती है। बाहरके शोरगुलसे न तो सर्जनकी कैंची हिलती है, ना ही बगलके सिनेमाघरमें चल रहा गीत तुम्हारी पढ़ाईसे मन भटकाता है। इनकी दीवारें ईंट-चूने और सीमेंटकी ही नहीं, दोहरी-तिहरी भी हैं। इनकी तहोंके बीच आवाजको सोखनेवाली चीजें भर दी गयी हैं। इनके फर्श और छतोंमें और कुछ नहीं तो परिन्दोंके पंख ही भर दिये हैं। ऐसे ध्वनि-अवरोधक कमरे बनवाना आजका फैशन है।

ध्वनिको नापसंद करनेवालोंसे एक बात पूछिये। पूछिये कि यदि सृष्टिसे ध्वनिका अस्तित्व ही मिटा दिया जाय तो उन्हें चैन आयगा? जल्दबाजीमें वे कदाचित् यही कहेंगे कि बहुत आनंद रहेगा। कामके समय चुपचाप काम करते रहेंगे और सोते समय घोड़े बेचकर सोएंगे। अब उनसे कहिए, जरा गहरे सोचकर बतायें। यह जरूर है कि उनके काममें कोई व्यक्ति खलल न डालेगा और सोतेमें भी कोई लाख चीखे-पुकारे, वे मजेमें सोते रहेंगे। किंतु हर सिक्केके दो पहलू होते हैं न! इसका दूसरा पहलू भी समझ लीजिये। आप सड़कपर चले जा रहे हैं। जेबके छेदसे चवन्नी, अठन्नी या चाभीका गुच्छा गिरा तो आप सुन ही न पायेंगे;

बस चलते चले जायेंगे। चौराहेपर तीन ओरसे मोटरोंके हार्न चीखते रहेंगे लेकिन आप किन्हीं रंगीन खयालोंमें डूबे, मजेमें टहलते-टहलते चौराहा पार करेंगे। पीछेसे आपका मित्र आपको पुकारता ही रहेगा किंतु आप एक बार भी मुड़कर न देखेंगे और यों उसका गुस्सा बिना पैसे मोल ले लेंगे। बगलमें दो साईकल-सवार टकरा जायेंगे तो आपकी बलासे। आपका रोयां भी न फरकेगा। पासकी गलीमें आगकी लपटोंमें घिरे मकानकी तीसरी मंजिलपर चीखो-पुकार मच रही होगी कि 'बचाओ-बचाओ' परंतु उनके पड़ोसी अपने खाने, गाने और सोनेमें मस्त रहेंगे क्योंकि आवाजको, शोरगुलको, ध्वनिमात्रको ये लोग देशनिकाला दे चुके हैं! ये लोग न तो डूबतेको बचानेके लिये दौड़ सकेंगे, न गिरते बच्चेको थामनेके लिये लपक सकेंगे। बस, गूंगोंकी भांति निकटवालोंसे हाथ-पांवके इशारोंद्वारा और दूरवालोंको आग जलाकर या धुंआ उठाकर आदियुगीन मानवकी भांति अपनी बात अधूरी-पूरी पहुंचा सकेंगे। यों, ये विज्ञान-के सहारे शोरगुलको खत्म करनेवाले एक बार तो लाखों वर्ष पूर्वकी दुनियामें 'पीछे-कदम' कर जायेंगे।

एक बार फिर सोचनेकी आवश्यकता है कि ध्वनिका अस्तित्व और उसे सुननेकी हमारी क्षमता प्रकृतिके वरदानस्वरूप हैं। इन्हींसे तो हम तोता-मैनाकी बातें, कोयलकी कूक, रेडियो और सिनेमाका संगीत, किसीकी प्यारभरी दो बातें और दुधमुंहे बच्चेकी तोतली, प्यारी बातें सुन पाते हैं! यह दुनिया क्या ऐसोंके साथ रहने योग्य रह जायगी जो कदम-कदम पर घुड़क देते हैं कि —'शोर बंद कीजिये'?

—श्यामशरण 'विक्रम'

* * *

मैं पेरिस जा पहुंची

(श्रीस्नेहलता बहुत छोटी आयुमें ही सन् १९४५ में श्रीअरविंदाश्रममें आ गयी थीं। इनकी शिक्षा-दीक्षा यहीं हुई और फिर इन्होंने यहांके विद्यालयमें पढ़ाना शुरू कर दिया। १९६२ में इन्हें विशेष प्रशिक्षणके लिये यूरोप जानेका अवसर मिला। वहांसे लौटकर इन्होंने जो यात्राकी कहानी सुनायी उसे 'पुरोधा'के पाठकोंके लिये लिपिबद्ध कर लिया गया है। यहां उसका पहला अंश दिया जा रहा है। —संपादक)

हम लोग बैठे खाना खा रहे थे। अचानक भाषाओंकी बात चल पड़ी, हमारे आश्रममें भारतीय और यूरोपीय भाषाएं सीखनेकी बहुत सुविधा है। मैं उनका पूरा लाभ उठा रही थी। अचानक पिताजी बोल पड़े, तुम इतनी भाषाएं सीख-सीखकर करोगी क्या? यहां तो तुम्हें जर्मन और इटैलियन आदिका काम पड़नेसे रहा, आखिर इस सब पढ़ाईका लाभ?

मेरे पिताजी बोलते कम हैं, मजाक अधिक करते हैं, मैंने समझा, यह भी मेरे ऊपर एक व्यंग्य है, मैं हँसकर टाल जाना चाहती थी, पर उन्होंने इतनी आसानीसे नहीं छोड़ा, पूछ बैठे, क्यों, कहीं विदेश जानेकी मर्जी है क्या? हो तो बता दो, मैं व्यवस्था कर सकता हूं। मैं इस बातके लिये तैयार नहीं थी, मैंने इन्कार कर दिया और बात गयी आयी हुई।

कुछ दिन बादकी बात है, मेरी छोटी बहन तारा एक अखबार हाथमें लिये हुए बड़ी उत्तेजित अवस्थामें मेरे कमरेमें घुसी, "लो, फ्रांस जाना हो तो बड़ा अच्छा मौका है। वहांकी सरकार यहांके विद्यार्थियोंको कुछ छात्रवृत्ति देनेवाली है। कौन जाने तुम्हें ही अवसर मिल जाय।" मैंने बड़े उदासीन भावसे अखबार लिया। उसमें छात्रवृत्तिके लिये जो शर्तें लिखी हुई थीं, मैं उनमेंसे एकको भी पूरा न कर सकती थी। न मैं एम. ए. पास थी और न किसी मान्यता-प्राप्त विद्यालयकी अध्यापिका। मेरी सारी शिक्षा आश्रमके विद्यालयमें ही हुई थी और न जाने किस दिन खेलते-खेलते मैंने पढ़ाना भी शुरू कर दिया था। न तो मैंने और न मेरे साथियोंने कभी यह अनुभव किया कि मैं अध्यापिका हूं। मुझे ताराकी बात पसंद न आयी और मैंने उसे टाल दिया। लेकिन कहते हैं, जो भाग्यमें लिखा हो वह पूरा होकर ही रहता है। मेरे पिताजी और मेरे बड़े भाईको भी इस विज्ञप्तिके बारेमें पता लग गया और उन्होंने दबाव डाला कि मैं प्रार्थना-पत्र दे ही दूं। अगर कुछ न हुआ तो भी हर्ज क्या है? सिर्फ ५) ही तो खराब होंगे? समझ लेना कि किसीने जेब काट ली या सरकारको दानमें दे दिये।

खैर, बड़े अनमने भावसे और बिना किसी आशाके मैंने प्रार्थना-पत्र तैयार किया और अपने विद्यालयसे प्रमाण-पत्र बटोरे। अब तो हमारी शिक्षण-संस्थाको बहुत जगहोंसे मान्यता मिल चुकी है परंतु उस समयतक सरकारी क्षेत्रोंमें हमारी परीक्षाओंको मान्यता देनेका विचार-तक भी न आया था। मैंने अपने प्रमाण-पत्रोंके साथ फ्रेंच दूतावासमें प्रार्थना-पत्र भेज दिया और लंबी तानकर सो गयी। मुझे ख्याल न था कि फ्रेंच सरकारकी दृष्टिमें फ्रेंच का ज्ञान बहुत महत्त्वपूर्ण होगा और हमारी शिक्षा तो फ्रेंचके माध्यमसे ही हुई थी। फ्रेंच शिक्षणके लिये तो हमारे शिक्षा-केंद्रका स्थान सारे भारतवर्षमें सबसे अनूठा है। मेरे कुछ सहयोगियोंने इस बातकी ओर मेरा ध्यान खींचा। अब मैंने सब काम छोड़कर फ्रेंचका ही पल्ला पकड़ा और कुछ दिनोंमें दिल्लीसे 'इंटरव्यू'के लिये बुलावा आ गया।

'इंटरव्यू'का नाम ही डरावना होता है। हमें आदत थी अपनी घरकी परीक्षाओंकी, जहां अध्यापक परिचित, परीक्षक परिचित और सारा वातावरण परिचित। दिल्लीमें तो ऐसी बात न थी। दूतावासके दरवाजेपर पहुंचते-पहुंचते हाथ-पांव ठंडे पड़ गये। गला सूखने लगा, कभी गर्मी लगती थी कभी सर्दी, सारे शरीरकी अजीब-सी हालत थी। भगवान्‌का नाम लेकर मैं अंदर घुसी और जाते ही मेरी पुकार हुई। एक बड़ा-सा कमरा था जहां परीक्षक लोग बैठे हुए थे। सच मानिये, उनके सामने पहुंचते ही मेरा डर काफूर हो गया और मैंने उनके प्रश्नोंके उत्तर उसी तरहसे दिये मानों आश्रममें बैठकर दर्शकोंसे बातचीत कर रही हूं। मुख्य परीक्षकका चेहरा देखकर ही मुझे पता लग जाता था कि मैंने ठीक उत्तर दिया है या गलत। ठीक उत्तर सुनते ही उनका चेहरा खिल उठता था और गलत उत्तर उनके चेहरेपर अनखका सा भाव ले आता था। सब मिलाकर मेरे उत्तर बहुत संतोषजनक थे और मुझे विश्वास हो गया कि अब छात्रवृत्ति मुझसे बहुत दूर नहीं है। काफी दिनोंके बाद मुझे सरकारसे अपने चुने जानेकी सूचना मिली। देरका कारण यह था कि मान्यता-प्राप्त उपाधि न होनेके कारण उन लोगोंको मेरे लिये फ्रांससे विशेष अनुमति लेनी पड़ी थी। अस्तु।

अब हवाई जहाजसे उड़कर पेरिस पहुंचना था। जल्दी-जल्दी गरम कपड़े आदि खरीदे गये। मेरे भाईने आग्रह किया कि वहांके समाजमें चप्पलोंके लिये कोई स्थान नहीं। तुम्हें जूते पहनने पड़ेंगे। बेचारे पैरोंको जन्मसे ही स्वाधीनताकी आदत थी। चप्पलसे बढ़कर उन्होंने और कोई कैद न देखी थी। एकाएक जूतोंकी काल-कोठरीमें जो घुसना

पड़ा तो मेरे पैर तिलमिला उठे और उन्होंने सहयोग करनेसे इन्कार कर दिया। हवाई जहाजमें प्रवेश करते ही मैंने जूते उतारकर एक ओर रख दिये और स्वतंत्र होकर इधर-उधर घूमने लगी। थोड़ी देरमें खाना आया पर हाय री बदबख्ती, खानेमें केवल मुर्ग और मछली वगैरा ही थीं। मैं निरामिषभोजी, इन चीजोंका क्या करती? रातको भूखा ही रहना पड़ा। हमारा जहाज रुका तो तेहरान इस्तम्बोल आदि कुछ स्थानोंपर लेकिन रातके समय इधर-उधर जाना मना था इसलिये हम लोग अपने घरौंदेमें ही बैठे रहे और ब्राह्म मुहूर्त्तमें सबेरे तीन बजे पेरिस जा पहुंचे। वह एक नया अनुभव था।

जाड़ेके दिन, सबेरेका समय और अनजानी जगह। जाऊं तो कहां जाऊं, करूं तो क्या करूं? इतनेमें एक भारतीय सज्जन मिल गये। उन्होंने कुछ थोड़ी-बहुत सहायता कर दी। वैसे यहां हरएक अपने काममें मस्त है, किसको किसकी परवा है? भारतमें कुलियोंकी धक्का-मुक्कीका अभ्यास था। सोचा, शायद यहां भी कुली मिल जाय। परंतु यह यूरोप था। यहां कुली कहां? छोटी-छोटी गाड़ियां रखी होती हैं, उन्हींपर अपना सामान लादो और हवाई अड्डेके बाहरतक ले जाओ। यह भी किया, परंतु बाहर न निकली। वहीं एक बेंच पड़ी थी, मैं उसीपर धरना देकर बैठ गयी। मैं आगेकी योजना बना ही रही थी कि थोड़ी दूर-पर एक महिलाकी परिचित शकल दिखायी दी। ये महिला कई बार भारत आ चुकी हैं और इनके साथ मेरा परिचय भी है। वे मुझे लेनेके लिये ही, अपनी भाषामें, आधी रात-को यहांतक आयी थीं। इनका घराना पेरिसमें भी बहुत ऊंचे स्तरका गिना जाता है। उन-के घर पहुंचकर मैं जो सोयी तो बस दिनके ११ बजा दिये। ग्यारह बजे मैं उठी, उठकर एक कमरेसे दूसरे कमरेकी ओर जा रही थी कि बड़े जोरसे सिर दीवारसे टकराया। मुझे दिनमें भी तारे दीखने लगे। इनका मकान कांचका बना हुआ है, जबतक आप उससे भली-भांति परिचित न हों तबतक आपको पता नहीं लग सकता कि दीवार कहां है और दरवाजा कहां। कांच इतना साफ-सुथरा और पारदर्शक है कि आपको संदेहतक नहीं हो पाता कि आप दीवारके सामने बढ़ रहे हैं। सिरमें चोट आयी तो घरके कई व्यक्ति पूछने आ गये कि क्या हुआ। कहीं चोट तो नहीं आयी? उन्हें क्या उत्तर देती, मन-ही-मन इंद्रप्रस्थमें बने हुए युधिष्ठिरके मकानमें दुर्योधनकी गति याद हो आयी।

मैं चूंकि छात्रवृत्ति लेकर आयी थी इसलिये सबसे पहले मुझे विदेश-मंत्रालयमें जाकर हाजिरी देनी थी। मेरे रहने-सहनेकी, मेरी शिक्षाकी सारी व्यवस्था इन्हींके हाथमें थी। मेरी मेजबान महिलाने मुझे पेरिसका एक विस्तृत नक्शा पकड़ा दिया और एक परिचय-पत्र दे दिया। इन दोके सहारे मनुष्य जहां चाहे जा सकता है। सारे पेरिसमें जमीनके नीचे रेलोंके जाल बिछे हुए हैं, आप एक बार टिकट खरीदकर जहां मर्जी हो वहां जा सकते हैं। हां, एक बार ऊपर निकल आयें तो फिरसे अंदर जानेका दोबारा टिकट खरीदना पड़ता है। आप सारा शहर बड़ी आसानीसे देख सकते हैं। एक बार मैं इसी तरह चली जा रही थी कि वर्षा शुरू हो गयी। मैंने पासमें ही एक सिनेमा-घर देखा और उसमें घुस गयी। वहांके सिनेमा दिन-रात चलते रहते हैं और आप जब चाहें अंदर घुस सकते हैं। अगर आपके पहुंचने-तक आधी फिल्म हो चुकी है तो आप आधी देखकर वहीं बैठे रहें, वही फिल्म फिरसे शुरू होगी और आप उसका पहला हिस्सा देख सकेंगे।

खैर, मैं विदेश-मंत्रालयमें पहुंची। वहां मुझे आवश्यक आदेश-निर्देश दिये गये और मुझे

बताया गया कि विदेशी छात्रोंके लिये एक सप्ताहका विशेष कार्यक्रम होगा। इसमें हमें फ्रांस-का परिचय दिया गया। पेरिस, वहांके मुख्य स्थान, वहांके सांस्कृतिक केंद्र, वहांकी शिक्षण-संस्थाएं, इसी प्रकार अन्य बहुत-सी चीजें दिखायी गयीं और प्रत्येक जगह वहांका परिचय देने-वाला बहुत-सा साहित्य भी दिया गया। हमने इसी सिलसिलेमें क्रिस्तिएं द्योर (Christion Dior) भी देखा जहां प्रत्येक ऋतुके आरंभमें उसके पवशेष फैशनोंका प्रदर्शन होता है। जवान लड़कियां भिन्न-भिन्न प्रकारकी वेश-भूषामें दर्शकोंके सामने, आतीं, कुछ कदम चलतीं और फिर विभिन्न मुद्राओंमें खड़ी होतीं ताकि चारों ओरसे वेशकी छटा दिखायी दे जाय। यह क्रम अबाध गतिसे लगभग घंटेभरतक चलता रहा। प्रत्येक वेशका अपना नाम था। ग्राहक अपनी पसंदके वेशको वहीं खरीद सकते थे, परंतु एक-एकका दाम शायद हजार-हजार रुपयेसे कम न था। हमें पहले ही समझा दिया गया था कि हमें अपनी छात्रवृत्तिके पैसे बहुत हिफा-जतसे रखने चाहियें, जरा भी लापरवाही हुई तो सारे महीनेका खर्च एक वेशमें, दो दिनके होटलके बिलमें या ऐसे ही अन्य कामोंमें खर्च हो जायगा और फिर हमें.....'मुट्ठी भर चने' पर गुजारा करना होगा।

प्रशिक्षण-विभाग हमारी शिक्षाकी व्यवस्था करता था। कुछ दिनोंके लिये जगत्-प्रसिद्ध सोरबोन विश्वविद्यालयमें भी हमें पढ़नेका अवसर मिला। हां, हमारे लिये अलग व्यवस्था थी। हमें विभिन्न विद्यालयोंमें जाकर वहांकी शिक्षण-पद्धति देखनेका अवसर दिया जाता था। एक बार बड़ी मजेदार घटना हुई। मुझे एक विद्यालयमें भेजा गया। विद्यालयके अधिकारियों-को पहलेसे सूचना दे दी गयी थी। वे मेरे आगमनके लिये तैयार थे। मेरे पहुंचते ही विद्या-लयमें एक चहल-पहल-सी हो गयी, मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि मैं भी पांचवें सवारोंमें हूं। विद्यालयवालोंका पूरा प्रयास था कि मैं उनके बारेमें कहीं-कोई बुरी राय न बना लूं। अगर कोई बालक शैतानी करता तो वे झट उसे समझाते, देखो, ये दूर देश भारतवर्षसे आयी हैं, ये तुम्हारे बारेमें क्या सोचेंगी? अगर कोई प्रश्नोंका ठीक उत्तर न दे पाता तो कोई-न-कोई लीपापोतीके लिये तैयार रहता। मैंने देखा कि हमारे और उनके विद्यालयोंमें एक ही मनो-वृत्ति काम करती है। उनके यहां भी लड़के-लड़कियोंके विद्यालय अलग-अलग हैं; सहशिक्षण महाविद्यालयमें आरंभ होता है।

यहां मैं यह कहना तो भूल ही गयी कि मुझे अपने रहनेके लिये कमरेकी व्यवस्था करनी थी। जहां-जहां कमरे मिलनेकी संभावना थी ऐसी जगहोंके पते लेकर मैं निकल जाया करती थी। सब लोगोंका व्यवहार अत्यंत शिष्ट और भद्रतापूर्ण होता था। कमरा खाली न होता तो भी वे मुझे दरवाजेपरसे ही न टालते थे। मुझे अंदर बुलाते, कुछ पीनेके लिये कहते, इधर-उधरकी बातें पूछते और तब बड़े खेदके साथ अपनी मजबूरी प्रकट करते थे। उनका यह शील बहुत अच्छा लगता था और मुझे बाहरकी ठंडसे कुछ देरके लिये छुटकारा मिल जाता था।

हां, तो मैं प्रशिक्षणकी बात कह रही थी। प्रत्येक शनिवार और रविवारको हमें फ्रेंच जीवनके भिन्न-भिन्न पहलू देखनेका अवसर दिया जाता था। भिन्न-भिन्न परिवारोंके साथ रहने और खाने-पीनेकी व्यवस्था की जाती थी ताकि हम उनके जीवनको भलीभांति देख और समझ सकें। हमें क्लबोंमें भेजा जाता था जहां हम लोगोंके साथ खुलकर मिल सकें।

आजके लिये शायद इतना काफी है, बाकी अगली बैठकमें।

—स्नेहलता

लक्ष्मीप्रसादजी बोले

आज शामको लक्ष्मीप्रसादजीके आनेकी बात थी। सारे दिन वर्षा होती रही थी और बच्चे आपसमें शर्त कर रहे थे कि आज कहानी होगी या नहीं। मीना, इन्द्र, हेमा और नित्यप्रकाश कबके आकर बैठे हुए थे। नित्यप्रकाशने बड़ा गंभीर मुख बनाकर अपना पांडित्य छांटते हुए कहा, "अगर हमारे भाग्यमें कहानी होगी तो लक्ष्मीप्रसादजी जरूर आयेंगे और नहीं होगी तो नहीं आयेंगे।" "छिः, क्या बूढ़ों जैसी बातें करता है। भाग्य भी कोई चीज होती है क्या? अरे, हम लोग अपने दमपर भरोसा रखते हैं, भाग्य-वाग्यको माननेवाले नहीं हैं।" –इन्द्रने मुंह विचकाकर कहा। इतनेमें बच्चोंने देखा कि लक्ष्मीप्रसादजी अपनी छतरी हिलाते हुए चले आ रहे हैं। सारा वाद-विवाद बंद हो गया और सब उनका स्वागत करनेके लिये खड़े हो गये। लक्ष्मीप्रसादजी हंसते हुए आकर बैठ गये और बोले —"कहो, आज क्या सुनोगे? कहानी या चुटकुले?" मीना बोली, "आज पहले यह बताइये कि भाग्य नामकी कोई चीज होती है या नहीं? अभी इन दोनोंमें इसीको लेकर बहस हो रही थी।"

लक्ष्मीप्रसादजी हंस पड़े और बोले, "अरे, तुमने मुझे कोई पण्डित या योगी समझ रखा है? मैं यह सब क्या जानूं। मैं तो थोड़ी बहुत कहानियां जानता हूं, ये सब बातें तुम अपने अध्यापकोंसे पूछना।" परंतु मीनाके आग्रहको टालना आसान न था। आखिर तय यह हुआ कि लक्ष्मीप्रसादजी भाग्यसंबंधी कहानियां सुनायेंगे। वे बोले ——

एक बड़े जंगलमें एक बड़े धर्मात्मा विद्वान् रहा करते थे। धीरे-धीरे उनके पास ब्रह्मचारी लोग शिक्षा पानेके लिये आने लगे और वहां एक छोटा-सा गुरुकुल बन गया। उनके विद्यार्थियोंमें सत्यकेतु नामका ब्रह्मचारी सबसे अधिक उदीयमान था। पढ़ाई-लिखाईमें सदा सबसे आगे रहता था। व्रत, नियम आदिमें भी उसे कभी दूसरी बार कहनेकी जरूरत नहीं पड़ती थी। वह दिन-प्रतिदिन चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह बढ़ता जाता था। गुरुजी उसे देखकर बड़े ही खुश हुआ करते थे। उन्हें विश्वास था कि यही ब्रह्मचारी उनका नाम उज्ज्वल करेगा। एक दिन न जाने क्यों वे उसकी कुण्डली बनाने लगे। कुण्डली बनाते-बनाते गुरुजी एकदम अर्धमूर्च्छितसे हो गये। कुण्डलीके अनुसार अगले दिन सत्यकेतुकी मृत्यु निश्चित थी। गुरुजीने निश्चय किया कि वे ऐसा न होने देंगे और चाहे जैसे भी हो अपने बालकके प्राणोंकी रक्षा करेंगे। उन्होंने अपने जीवनमें बहुत तपस्या की थी और सब देवी-देवताओंके यहां जब मरजी जा सकते थे। बहुत सोच-विचारकर उन्होंने निश्चय किया कि वे ब्रह्माके यहां जाकर उनसे विधिके अक्षर बदल देनेको कहेंगे। विचारका आना था कि वे बालकको लिये हुए ब्रह्माके दरबारमें जा पहुंचे। परंतु सीढ़ी चढ़ते हुए बालकको ठोकर लगी और वह वहीं गिरकर मर गया। खैर, ये ब्रह्माके पास पहुंचे और अपनी सारी बात कह सुनायी। ब्रह्मा हंस दिये और बोले, "तुम्हारे ज्योतिषमें थोड़ी कमी है। तुमने बालककी मृत्युका समय तो जान लिया पर स्थान न जान पाये। उसकी मृत्यु यहां इसी स्थानपर लिखी थी। तुम उसे यहां न लाते तो शायद वह बच जाता।"

"छिः, यह कहानी अच्छी नहीं है। क्या मृत्यु, मृत्यु, अभीसे हम उसकी बातें नहीं सुनना चाहते।" इन्द्र कहने लगा।

वह अभी बोल ही रहा था कि मीनाने बात काटते हुए बड़ी गम्भीर मुद्रामें कहा, नहीं, लक्ष्मीप्रसादजी, यह कहानी है तो बड़ी अच्छी लेकिन छोटी है, इसने हमारी कहानीकी भूखको बढ़ा दिया, हां तो दूसरी कहानी शुरू कीजिये। लक्ष्मीप्रसादजी बालकोंकी कूटनीतिका मजा ले रहे थे। वे देखना चाहते थे कि अब नया तीर किस तरफसे आता है। थोड़ी देर प्रतीक्षा करके हेमाने कहा, "हां, एक राजा था, एक रानी थी!" प्रेमाने शोर मचाया, "नहीं, नहीं, आज राजा-रानीकी नहीं, किसी औरकी कहानी हो।"

लक्ष्मीप्रसादजी बोले, अच्छा लो सुनो। सब एकदम चुप हो गये और कहानी शुरू हो गयी।

दो ठाकुर थे। दोनों बड़े वीर थे पर बुद्धिके नामपर साढ़े बाईस। उनमेंसे एकके एक छोटी-सी लड़की थी और दूसरेके लड़का। लड़की बड़ी सुन्दर और सुशील थी परंतु लड़का बहुत अच्छा होते हुए भी लंगड़ा था। दोनों एक साथ रहते-खेलते थे। कई बार खेल ही खेलमें एक-दूसरेसे ब्याह रचाते थे। बच्चे जरा बड़े हुए तो घरकी प्रथाके अनुसार उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया। लेकिन इससे उनका बचपनका प्रेम टूटा नहीं, और भी बढ़ गया। वे दोनों एक-दूसरेके बारेमें सोचा करते थे। लड़कीके पिताने अपने एक मित्रसे वर खोजनेके लिये कहा, मांने अपनी एक सहेलीको लिखा और लड़कीका बड़ा भाई अपने-आप रीवाकी ओर चला। तीनोंके पास लड़कीकी जन्मपत्री थी। तीनोंने एक-एक लड़का खोज लिया और उनके साथ लड़कीके ग्रह मिल गये। तीनोंने बात पक्की कर ली। अब लड़कीके मां-बापके प्राण सूख गये। सारे घरमें तहलका मच गया। अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठे हो गये। लोगोंने कहा, अरे, तुम लोगोंने नारियल देनेसे पहले यहांसे पूछ क्यों न लिया? लड़केने कहा, "वाह, मैं भाई हूं, इतना भी नहीं कर सकता क्या? मेरी बात रखनी ही होगी।" बापके मित्रने कहा, "मैंने तो अपने मित्रसे पूछ लिया था।" मांकी सहेलीने भी कुछ ऐसा ही उत्तर दिया। यह अच्छी पहेली खड़ी हो गयी। बापने तीनों ठिकानोंपर कहलवाया, भाई, ऐसी भूल हो गयी है, अब आपसमें समझौता करके कोई रास्ता निकालो। पर वहां सुनता ही कौन था। तीनों बड़ी प्रतिष्ठावाले ठाकुर घराने थे। घोड़ीके दिन तीनों ही अपनी बरातें लेकर लड़कीवालेके दरवाजेपर आ गये। तीनों ही लड़की मांगते थे या लड़ाई करनेको तैयार थे। इतनेमें अचानक नारदजी उधरसे गुजरे। उन्होंने जो हो-हल्ला सुना तो कौतुक देखनेके लिये रुक गये। जब उन्हें सारी बातका पता लगा तो उन्हें बड़ा मजा आया। वे झट ब्रह्माके पास जा पहुंचे और बोले, बताइये तो इन तीनोंमेंसे किसके साथ लड़कीका ब्याह होगा? ब्रह्माजी बोले, इनमेंसे किसीसे नहीं। इसका ब्याह होगा पड़ोसके लंगड़ेसे और वह भी आज ही।

नारदजी फिर मृत्युलोकमें आये और उसी लड़कीके घर पहुंचे। अभी तीनों बारातें डटी हुई थीं और शोर बढ़ता ही जा रहा था। नारदजीने आव देखा न ताव, झट लंगड़े लड़केके घरमें घुस गये और उसे उठाकर अंतर्धान हो गये। लड़केको लेकर नारदजी पासके एक निर्जन टापूमें जा पहुंचे और उसे वहां छोड़ दिया। लड़का बोला, महाराज, मैं यहां खाऊंगा क्या? नारद मुनि फिरसे नगरकी ओरको चले, लड़केके लिये खाना लाने।

इधर लड़कीके मां-बाप बहुत परेशान थे। उनके घरपर ठाकुरोंकी भीड़ लगी थी, कहीं मिजाज गरम हो जाय तो धरती लाल किये बिना न छोड़ें। आखिर इस स्थितिमेंसे कैसे बचा जाय? घरका बूढ़ा नाई बुलाया गया। नाइयोंकी बुद्धि ऐसे कामोंमें बहुत तेज होती है। वह बोला, आप कन्याको मेरे हाथोंमें छोड़ दीजिये। मैं सारी स्थिति संभाल लूंगा। आखिर योजना यह बनी कि शिवाजी महाराजकी तरह लड़कीको मिठाईकी टोकरीमें बंद कर दिया जाय और नाई उसे उठाकर कहीं ले जाय। इधर कह दिया जायगा कि लड़की इस किटकिटसे तंग आकर कहीं गायब हो गयी। तीनों बारातें बाधित होकर लौट जायंगी। उसके बाद जो करना होगा देखा जायगा। ऐसा ही हुआ। नाऊ ठाकुर टोकरी उठाकर जंगलकी ओर चले। सामने नारद मुनि लड़केके लिये खानेकी तलाशमें चले आ रहे थे। उन्होंने नाईको ललकारकर कहा, "ऐ, क्या लिये जा रहे हो टोकरीमें।" नाई सहम गया। बोला, महाराज, कुछ मिठाई-विठाई है। नारदजीने झट टोकरी छीन ली और ले जाकर उस लंगड़े लड़केके आगे रख दी और कहा, ले पेट भरकर खा। कल आकर तुझे ले जाऊंगा। नारदजी लौट पड़े। लड़केने टोकरी जो खोली तो उसमें तो और ही तरहकी मिठाई निकल आयी। दोनों एक-दूसरेको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। दोनोंने अपनी-अपनी कहानी सुनायी। लड़केने कहा, चलो, अच्छा हुआ। हम लोग सारा झगड़ा खतम किये देते हैं। यहींपर ब्रह्माजीको साक्षी मानकर हम लोग अपना ब्याह कर डालें, फिर कोई क्या कर सकेगा हमारा। इधर लड़कीके घरवालोंने नाईसे सारा हाल सुना तो और भी परेशान हो गये। बात फैलते कितनी देर लगती थी। तीनों बारातें नाराज होती और ऊल-जलूल बकती हुई लौट गयीं। उधर प्रसन्नवदन नारदजी ब्रह्माके यहां पहुंचे। उन्हें विश्वास था कि उन्होंने लंगड़े लड़केको उस लड़कीसे इतनी दूर पहुंचा दिया है कि कम-से-कम आज तो किसी हालतमें उनका ब्याह नहीं हो सकता। नारदजीको देखते ही ब्रह्मा बोले, क्यों ऋषिवर, हमारी बात ठीक निकली या नहीं? और नारद मुनिने अंतर्दृष्टिसे देखा। वे उस लड़केको जहां छिपा आये थे वहीं उसका गंधर्व विवाह हो रहा है!

सब खिलखिलाकर हंस पड़े। परंतु मीना कुछ गभीर-सी मुद्रा बनाये बैठी रही और कुछ सोचकर बोली, सब कहते हैं कि नारदजी बहुत बड़े ऋषि हैं, फिर उन्हें इस प्रकारकी शरारतें क्यों सूझा करती हैं? लक्ष्मीप्रसादजी बोले, तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी। नारदजी सचमुच बहुत बड़े ऋषि थे और उनका मुख्य काम था लोगोंको भगवान्की ओर ले जाना। लेकिन कभी-कभी वे राक्षसों और असुरोंको बुरे काम करनेके लिये, भगवान्के काममें बाधा डालनेके लिये बढ़ावा देते थे ताकि उनके पापका घड़ा जल्दी भर जाय और धरतीका भार हल्का हो। लेकिन लोगोंने अपनी कहानियोंमें उनका एक और ही रूप बना लिया है जो हमेशा लड़ाई-झगड़ा करवाता रहता और उसीमें मजा लेता रहता है। जैसे सारी बुद्धि वीरबलके हिस्सेमें आयी है वैसे ही सारी शरारत बेचारे नारदके पल्ले पड़ी है। परंतु सचमुच वे ऐसे नहीं थे। उन्होंने कहीं संघर्ष करवाया भी तो भगवान्का काम करनेके लिये।

अच्छा, तो चलें अब, काफी देर हो गयी। हेमा चिल्ला पड़ी—नहीं, नहीं, नारदजीका एक चुटकुला सुने बिना हम न उठेंगे। लक्ष्मीप्रसादजीको हार माननी पड़ी; बोले, अच्छा लो, सुनो, पर आजके लिये यह आखिरी कहानी है। इसके बाद कोई और न रोके। सबने हामी भर दी।

उन्होंने कहानी शुरू की।

एक आदमी था। वह अपनी स्त्रीके साथ बड़े आरामसे रहा करता था। आये-गयेकी सेवा करनेमें दोनोंको बड़ा मजा आता था। एक दिन उन लोगोंने नारदजीको अपने घर बुलाया। नारदजी बोले, आज तो मुझे फुर्सत नहीं है। अगली पूर्णिमाके दिन आऊंगा। यह कहकर वे चले गये। पूर्णिमाका दिन आया तो पति-पत्नी दोनों नारदजीके स्वागतकी तैयारी करने लगे। ठीक दोपहरको नारदजी पधारे। दोनोंने उनके चरण पखारे और भोजन पर बिठाया। पति महोदय किसी कामसे बाहर गये तो नारदजीने शक्लें बनानी शुरू कीं। स्त्रीने हाथ जोड़कर पूछा, क्यों महाराज, सेवामें कुछ कसर रह गयी क्या? कहिये क्या आज्ञा है? नारदजी बोले, नहीं, तुम्हारी भक्तिसे तो मैं बहुत प्रसन्न हूं और सच पूछो तो तुम्हारे कारण ही आया भी हूं, नहीं तो इस गधेके यहां कौन आता। स्त्रीकी त्यौरियां चढ़ गयीं पर बोली कुछ नहीं। नारदजीने कहा, ओहो, तो तुम जानती नहीं हो? बात यह है कि तुम्हारा पति पिछले जन्ममें गधा था और नमक ढोया करता था। तुम चाहो तो अब भी परीक्षा करके देख सकती हो। जब वह सोता हो तो उसका शरीर चाटकर देख लेना कि नमकका स्वाद है या नहीं। नारद मुनि बाहर निकले तो पति महाशयसे भेंट हो गयी। इन्होंने उनके सामने भी मुंह बनाया। वे भी घबराये और पूछा, क्या हुआ महाराज? हमारी कोई भूल हुई हो तो क्षमा करें। मुनिने उत्तर दिया, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। तुम्हारे कारण ही तो मैं यहां आया था, परंतु तुम्हारी कुतिया मुझे पसंद नहीं है। पति महाशय भौंचक्के रह गये। नारद मुनि बोले, सुनो, कहना मत किसीसे, यह तुम्हारी पत्नी है न, यह पिछले जन्ममें कुतिया थी और अभीतक उसकी वे ही आदतें बनी हुई हैं। तुम परीक्षा करके देख लो। जब तुम सोते हो तो वह तुम्हारा शरीर चाटा करती है। इतना कह करके वे चल पड़े।

रात हुई, पति जल्दी-जल्दी सोनेका ढोंग करके लेट गया और खर्राटें भरने शुरू कर दिये। पत्नी अवसर पाते ही शरीर चाटने आयी। बस, फिर क्या था, दोनोंको प्रमाण मिल गया। दोनों 'तू कुतिया है' 'तू गधा है' के नारे लगा-लगाकर लड़ने लगे। इस घरमें कभी लड़ाई न होती थी इसलिये यह अनहोनी बात देखकर पड़ोसी भी इकट्ठे हो गये। सबने यह कहकर समझौता करवा दिया कि अरे यह तो नारदजीका काम है। चलो, शान्त हो जाओ। कहते कहते लक्ष्मीप्रसादजी उठकर चल पड़े।

पुरुषकारमनुवर्तते दैवम्।
भाग्य पुरुषार्थका अनुसरण करता है।

*

साहसे श्रीः प्रतिवसति।
लक्ष्मी साहसमें रहती है।

बुकर टी. वाशिंगटन

—श्री लक्ष्मीनारायण

४ जुलाई १८८१ को अमेरिकाके राष्ट्रीय पर्व —स्वातंत्र्य-दिवस —पर अमेरिकाके दक्षिणी प्रदेशके एक नगरकी सीमापर एक टूटी-फूटी झोंपड़ीमें एक छोटासा स्कूल खोला गया। स्कूलके पास कोई मैदान, कोई भवन या कोई प्रयोगशाला न थी। उसे एक शिक्षकने अकेले ही संचालित किया। वही उसका संयोजक और शिक्षक था और वही उसके लिये वित्तीय साधन भी जुटाता था।

स्कूलका भविष्य धुंधला और निराशाजनक प्रतीत हो रहा था; किंतु उसके शिक्षक, बुकर टी. वाशिंगटनके लिये नहीं, जो एक भूतपूर्व दास थे और जिनके भाग्यमें "एक सुयोग्य शिक्षाशास्त्री, एक महान् वक्ता तथा एक सच्चा दानी" होना लिखा था।

"ब्लैक बेल्टके ठीक मध्यमें स्थित तथा किसी समय दक्षिणी प्रदेशमें दास-प्रथाके गढ़, अलाबामा राज्यके टस्केगी नामक उस छोटे नगरका वह स्कूल कुछ ही वर्षोंमें एक राष्ट्रीय संस्था बन गया। अपनी अपूर्व शिक्षणविधियों तथा पाठ्यक्रमोंके कारण, वह संपूर्ण अमेरिका और अन्य देशोंके शिक्षकों और शिक्षा-संस्थाओंके लिये प्रेरणाका स्रोत बन गया। अनेक देशोंने टस्केगीका अनुसरण किया और अपने यहां उसके नमूनेपर पेशोंसंबंधी स्कूल खोलकर लघुतर 'टस्केगियों' की स्थापना की।

अपनी प्रारंभिक नाजुक अवस्थाओंमें 'टस्केगी नार्मल स्कूल एण्ड इण्डस्ट्रियल इन्स्टिटयूट'ने पेनी और निकल (छोटे सिक्के) के रूपमें —यहांतक कि अण्डे, सूअर और मुर्गियोंके रूपमें —दिये गये छोटे-छोटे दान भी स्वीकार किये। किंतु १९१५ में, वाशिंगटनकी मृत्युके समयतक, इन्स्टिटट्यूटके पास लगभग २० लाख डालरका धर्मार्थ कोष एकत्र हो चुका था। उस समयतक उसका वार्षिक बजट २ लाख ९० हजार डालरका हो चुका था तथा उसके छात्रोंकी संख्या १,५३७, शिक्षकोंकी संख्या १९७ और उसमें पढ़ाये जानेवाले काम-धन्धोंकी संख्या ३८ हो चुकी थी।

वाशिंगटनका जन्म ५ अप्रैल, १८५६ को वर्जिनियाकी फ्रेंकलिन काउण्टीके एक छोटेसे बगानमें हुआ था। उनके माता-पिता दास थे। उनका परिवार एक लकड़ीकी कुटियामें रहता था, जिसमें एक अलाव तो था किंतु कोई खिड़की या लकड़ीका फर्श नहीं था। उसका अड़ोस-पड़ोस दुःखी, निराशाजनक तथा निरुत्साहक था।

वाशिंगटनके लिये लिखना-पढ़ना सदैव रुचिकर रहा। अपनी आत्मकथा 'अप फ्राम स्लेवरी' में उन्होंने लिखा :

"मुझे याद है कि जबसे मैंने होश संभाला, तभीसे मेरे हृदयमें ज्ञानार्जनकी तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हो गयी थी। बचपनमें ही मैंने यह निश्चय कल लिया था कि जीवनमें चाहे मैं और कोई काम कर सकूं या नहीं, किंतु किसी न किसी तरह इतनी शिक्षा अवश्य हासिल कर लूंगा, जिससे मैं साधारण पुस्तकें और अखबार पढ़ सकूं।"

इस दृढ़ संकल्प और सच्ची निष्ठाके बलपर ही वह अगणित कठिनाइयों और किंकर्तव्य-विमूढ़ताओंका सामना करने, उनसे बच निकलने और उनपर विजय प्राप्त करनेमें सफल रहे। अपनी शिक्षा और अपने परिवारका खर्च पूरा करनेके लिये उन्हें परिचारक, द्वार-रक्षक और चौकीदारतकका कार्य करना पड़ा।

पश्चिमी वर्जिनियाके माल्डेन नगरसे, जहां उनका परिवार १८६५ में जा बसा था, जेबमें मुश्किलसे डेढ़ डालर लेकर ५०० मील दूर स्थित वर्जिनियाके हैम्पटन इन्स्टिटयूटको रवाना होनेपर, उन्होंने कहा था कि स्वर्ग भी उनको इतना आकर्षक नहीं प्रतीत हुआ, जितना यह स्कूल। उन्होंने सुविख्यात 'झाड़-बुहारी परीक्षा' में उत्तीर्ण होकर उस स्कूलमें प्रवेश प्राप्त किया। उस परीक्षाके सिलसिलेमें स्कूलकी महिला प्रिंसिपलने एक कमरेकी सफाई करनेका काम उन्हें दिया था।

हैम्पटनमें, जहांसे उन्होंने तीन वर्ष बाद स्नातककी उपाधि प्राप्त की, उन्होंने न केवल यह सीखा कि शारीरिक श्रम लज्जाकी बात नहीं, बल्कि यह भी सीखा कि श्रम करना एक प्रिय कार्य है क्योंकि इससे स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता प्राप्त होती है। उन्होंने लिखा:

"उस संस्थामें मुझे निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करनेके महत्त्वका पहला स्वाद मिला; मुझे पहली बार यह बात ज्ञात हुई कि सबसे अधिक सुखी व्यक्ति वे हैं जो दूसरोंको उपयोगी और सुखी बनानेके लिये सबसे अधिक प्रयास करते हैं।"

किन्तु दूसरोंको 'उपयोगी और सुखी' बनाया कैसे जाय? उनके मस्तिष्कमें यह प्रश्न सतत उठता रहा। और इसके लिये एक सही और अपूर्व अवसर उस समय प्राप्त हुआ, जब उनसे टस्केगीमें स्कूल खोलनेका अनुरोध किया गया। फिर तो, टस्केगी उनका जीवन, उनकी निष्ठा, और मूर्त्त रूप लेनेवाला स्वप्न बन गया।

वाशिंगटनके समक्ष एक चुनौती देनेवाला कार्य उपस्थित हो गया। गृह-युद्धके बाद लगभग ४० लाख नीग्रोजनोंकी मुक्तिने अकस्मात् एक समस्या उत्पन्न कर दी। उनमेंसे अधिकांश अशिक्षित थे और उन्हें बगानोंपर काम करनेके अलावा किसी अन्य कार्यका कोई अनुभव ही नहीं था।

वाशिंगटनको गरीबी, भूख और अपमानका व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त था। अतः उन्होंने सदैव यह अनुभव किया कि स्वतंत्रताके वरदानोंका उपभोग करनेमें समर्थ होनेसे पूर्व नीग्रोजनोंको अपनी रहन-सहनका स्तर ऊंचा उठाना होगा। उनके हृदयमें यह बात अच्छी तरह बैठ गयी थी कि उनकी मुक्ति काम-धन्धोंसंबंधी प्रशिक्षणद्वारा ही संभव है। अतः टस्केगी संस्थानमें उनकी योजना यह थी कि छात्रोंको श्रममें न केवल उपयोगिताका बल्कि सौंदर्य और गरिमाका भी दर्शन करनेकी शिक्षा मिलनी चाहिये और उन्हें यह बताना चाहिये कि श्रमको नीरस तथा शारीरिक मशक्कतके स्तरसे किस प्रकार ऊपर उठाया जाये। वह खेतकी जुताई-बुवाईके कामको उतना ही सम्मानित और गरिमापूर्ण मानते थे, जितना काव्य-रचनाको। स्वयं उन्हींके शब्दोंमें:

"हम उन्हें ऐसी शिक्षा देना चाहते थे जो उनमेंसे अधिकांशको शिक्षक बना देनेके लिये उचित होती और साथ ही उन्हें बगानवाले जिलोंमें वापिस जाकर वहांके लोगोंको यह प्रदर्शित करनेके लिये प्रेरित कर देती कि खेतीमें, तथा लोगोंके बौद्धिक, नैतिक और धार्मिक

जीवनमें, नवीन शक्ति और नवीन धारणाओंका संचार कैसे किया जा सकता है।"

टस्केगीमें वाशिंगटनने शिक्षणका कार्य कृषिसे प्रारंभ किया क्योंकि भूख शांत करनेके लिये भोजनकी व्यवस्था करना आवश्यक है। आगे चलकर उन्होंने पाठचक्रममें ईंट, जूता और जीन बनाने, तथा बढ़ईगिरी, मुद्रण और धातुके कार्य भी शामिल कर लिये।

प्रारंभमें, ऊंची-ऊंची आशाओं और अभिलाषाओंके साथ आये हुए छात्रोंको टस्केगीसे निराशा हुई। उनके ३० छात्रोंको उस समय बहुत आश्चर्य हुआ, जब स्कूल खुलनेके दूसरे ही दिन, वाशिंगटनने उन्हें एक कतारमें खड़ा करके उनका निरीक्षण किया और उनका ध्यान टूटी बटनों, तेलके धब्बों, और गंदे कालरोंकी ओर आकृष्ट किया। यह उनके नियमित दैनिक निरीक्षणका प्रारंभ था। उन्होंने कहा कि छात्रोंको पूर्ण रूपसे स्वच्छ रहना चाहिये। उन्होंने दंतमंजनका उपदेश दिया।

एक बार स्वच्छतासंबंधी निरीक्षणके सिलसिलेमें घूमते हुए वह एक ऐसे कमरेमें पहुंचे, जिसमें तीन नयी बालिकाएं रह रही थीं। यह पूछनेपर कि उनके पास टुथब्रश है या नहीं, उनमेंसे एकने उत्तर दिया: "जी हां, है। वह रहा हमारा ब्रश। इसे हमने एक साथ मिलकर कल ही खरीदा।" किंतु उन्हें शीघ्र ही एक भिन्न सबक सीखना पड़ा।

नीग्रोजनोंके कल्याणमें वाशिंगटनकी निष्ठा अमित थी। गृहयुद्ध और अपनी जातिकी मुक्तिके बादके कठिन दिनोंमें वह नीग्रो और श्वेत लोगोंको निरंतर और उत्साहके साथ यह समझाते रहे कि वे आपसकी कटुताको समाप्त करके मैत्री बढ़ायें। उनके द्वारा लिखी गयी १० पुस्तकोंका मुख्य विषय अपने लोगोंकी शिक्षा और जातीयसंबंधोंमें सुधार रहा। उन्होंने बगैर किसी द्वेषभावके लिखा और बगैर किसी प्रकारके क्रोध और कटुताके भाषण किया। 'अटलांटा एक्सपोजीशन' नामक अपने विख्यात भाषणमें उन्होंने कहा: "हममेंसे किसीकी भी सुरक्षा उच्चतम विवेक और समवेतके विकासके अतिरिक्त किसी अन्य बातमें निहित नहीं।"

वाशिंगटन प्रेसिडेण्ट थियोडोर रूजवेल्ट, विख्यात उद्योगपति तथा दानवीर एण्ड्रयू कारनेगी, तथा कितने ही अन्य महान् व्यक्तियोंके मित्र थे। वह अमेरिकाके अनेक प्रेसिडेण्टोंके नीग्रोजन संबंधी मामलोंमें सलाहकार रहे। पहले उनसे सलाह लिये बगैर न तो किसी रिपब्लिकन प्रेसिडेण्टने किसी नीग्रोकी नियुक्ति की और न ही किसी उत्तरी दाताने किसी नीग्रो कार्यमें सहायता दी।

उन्हें अपने जीवनमें ही अनेक उच्च सम्मान प्राप्त हुए। और उनकी मृत्युके उपरांत भी उन्हें निरंतर सम्मान मिलते रहे। १९४५ में वह 'हाल आव् फेम' के लिये चुने गये और अमेरिकी कांग्रेसने एक अधिनियम स्वीकार करके उनके जन्मस्थानको राष्ट्रीय स्मारक बना दिया। अमेरिकी सरकारने दो बार उनके सम्मानमें विशेष टिकट जारी किये: पहली बार १९४०में, जब 'विख्यात अमेरिका' शृंखलामें एक १० सेण्ट मूल्यका टिकट जारी किया गया; और दूसरी बार १९५६ में, जब उनके जन्मदिनकी १०० वीं वर्षगांठपर एक ३ सेण्ट मूल्यका टिकट जारी किया गया।

मधुमेह और आर्टिरियोस्क्लेरोसिस नामक रोगसे पीड़ित होनेके कारण वह न्यूयार्कमें एक भाषणके दौरान मूर्च्छित होकर गिर पड़े। अपने चिकित्सकके विरोध करनेपर भी उन्होंने घर लौट जानेका हठ किया। उन्होंने कहा: "दक्षिणमें मेरा जन्म हुआ और वहीं मैंने जीवन

बिताया और काम किया। अब मैं दक्षिणमें ही मरना और दफनाया जाना चाहता हूं।" और टस्केगीमें लौट जानेके दूसरे ही दिन, १४ नवंबर, १९१५ को उनकी अभिलाषा पूरी हो गयी।

(यूसिसके सौजन्यसे)

* * *

चलते राम

कुछ दिन पहले एक गांवमें चलतेराम नामका एक आदमी रहता था। वह बहुत ही दुबला-पतला था। इतना दुबला कि लकड़ीको भी मात देता था। उसके घरवाले सदा सोचते रहते थे कि कहीं बेचारा उड़ न जाये, अतः उसे एक कमरेमें बंद करके रखते थे। चलतेरामकी कीर्ति केवल उसी गांवतक सीमित थी और वह भी उसके आकारके लिये। चलतेरामने सोचा, क्यों न शहर चला जाय। नाम भी होगा और काम भी मिलेगा। यह सोचकर चलतेरामजी शहरकी ओर चल दिये।

अचानक मार्गमें ही बादल देवता अपनी कृपा दिखाने लगे। चलतेराम वर्षासे बचनेके लिये एक पेड़की कोटरमें घुस गये जहां एक विशालकाय अजगर रहता था। अजगर एक ही ग्रासमें चलतेरामको निगल गया। प्रातःकाल जब उजाला हुआ तो सांप शिकारकी खोजमें जंगलकी ओर वृक्षोंकी डालियोंके ऊपर रेंगने लगा। अचानक एक वृक्षकी डालीपरसे गुजरते हुए, किसी शिकारीका तीर जो उसी डालीमें लगा था, सांपके पेटको चीर गया और चलतेराम हड़बड़ाकर बाहर गिरा। बाहर आकर, उसने देखा कि वह एक बीहड़ एवं सुनसान जंगलमें खड़ा था। उसने देखा कि कुछ दूरपर एक जलाशय था जिसके तटपर दो बगुले मछली चुग रहे थे। चलतेराम वहां पहुंचा और बगुलोंसे सहायता करनेकी प्रार्थना की। बगुले बोले, बस एक ही उपाय है। और वह यह है कि हम दोनों तुम्हें चोंचमें दबाकर ले चलें।" अंधेको क्या चाहिये—दो आंखें। एक बगुलेने चलतेरामके बालोंको अपनी चोंचमें दबाया, दूसरेने पैरोंको। इस प्रकार कुछ देर बाद चलतेराम अपनी छतपर आ गिरे। जब घरमें पहुंचे तो उनके घरवाले बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने चलतेरामजीको पत्रिका दिखलायी जिसमें उन्हींकी कहानी छपी थी।

चलतेरामजी बिना परिश्रमके नाम कमा लेनेपर अपनी पीठ ठोकने लगे।

— **कृष्णकुमार** (आयु १३ वर्ष)

बे–चारा अध्यापक

[आजकल राष्ट्रपतिसे लेकर छोटे-मोटे नेताओंतक सभी अध्यापकको यह समझाते रहते हैं कि वह नवभारतका निर्माता है, उसके अंदर सादा जीवन, उच्च विचारका आदर्श चरितार्थ होना चाहिये आदि आदि। परंतु उपदेश दोना छोड़कर उसकी अवस्था देखने वाला कोई नहीं। मेधाव्रत अपने-आप अध्यापक रहे हैं। उनकी यह व्यंग्यपूर्ण कहानी इस राष्ट्रीय समस्याकी ओर ध्यान खींचती है।

––सम्पादक]

बहुत पुराने जमानेकी बात है। उन दिनों पशुपक्षी सर्वत्र उन्मुक्त होकर विहार करते थे, किसीको कोई भी बंधन न था। खुदाके लाड़ले बेटे आदमने अभी पृथ्वीपर पदार्पण नहीं किया था।

और आखिर वह भी दिन आया जब कि आदमने इस मुक्त वातावरणमें प्रवेश किया। उसके पास अक्ल थी, सो उसने सोचा कि ये पशु-पक्षी ऐसे ही निरुद्देश्य घूमते रहते हैं, इनका कोई उपयोग करना चाहिये। सबसे पहले उसकी नजर पड़ी गायपर। इतना सारा दूध जाया होता देखकर उसने कहा, गायका दूध हमारे बच्चोंके काम आयगा। अक्लके जोरपर उसने गायको अपने वशमें कर लिया। दूसरा नंबर आया घोड़ेका। उसका भी यही हाल हुआ। आखिर आदमकी सवारीके लिये भी कुछ चाहिये था। इसी तरह बकरी, भेड़परसे होते-होते एक दिन उसकी नजर एक अजीबोगरीब जानवरपर पड़ी और वह था गधा। काफी सिर खुजाकर आदमने अपनी बुद्धि सतेज की और सोचने लगा कि इस जानवरका क्या उपयोग किया जाय। और उपाय भी उसे मिल गया, उसने कहा, इसपर भार लादा जायगा।

खैर, तो उस दिनसे गधेपर भार लादा जाने लगा। जंगलकी स्वच्छंद जिंदगीकी याद सतानेपर बीच-बीचमें गधा भड़क उठता, परंतु आदमके डंडे और हथकंडेके ख्यालसे वह मन मसोसकर रह जाता और अपने मनको समझा लेता—, चलो यह भी कोई बुरी जिन्दगी नहीं, मालिक घास तो डाल देता है, पहले चरने जाना पड़ता था।

एक बार हुआ क्या कि खुदाके घर पानीका टोटा पड़ गया। नदी, तालाब, कुंए, खेत सब सूख गये। अब खुदाका नूर आदम भी झुंझलाया। लेकिन वह था अक्लका पुतला। उसने एक योजना बनायी और उसके अनुसार गधेपर सामान लादना शुरू किया दुगना और घास कर दी आधी। इस तरह आदमकी बचत योजनाका आरंभ हुआ। 'बेचारा' गधा कुछ दिनोंतक तो सहन करता रहा, परंतु उसके वलवले अभी पूरी तरह मर नहीं गये थे, सो उसने जिहाद बोल दिया यानी आदमके यहांसे भाग गया! लेकिन आदम जिसका नाम! उसने गधेको ढूंढ़ निकाला। गधेकी इस हिमाकतको वह कैसे सहता! उसने डंडेसे उसकी हड्डी-पसली एक कर दी और ऊपरका घास भी बंद कर दिया। गधेकी भूखसे सूखे अंगोंसे खून झरने लगा और कराहकर उसने कहा –– या खुदा!

* * *

आदमकी अक्लका पास गधेको भी लगा था। अपने ढंगसे काफी सोच-विचारकर उसने तै किया कि इस आदमसे न्यायकी आशा करना बेकार है लेकिन वह परवरदिगार जो हम सबका खुदा है जरूर न्याय करेगा। एक दिन जब उसका मालिक भोजनके बाद दुपहरकी खर्राटें भर रहा था, वह चुपचाप खुदाके दरबारमें गया, खुदा भी अपने बेटेकी तरह खाकर सुनिद्रा ले रहे थे। सूचना दिये जानेपर झुंझलाये तो, लेकिन वे थे खुदा, न्याय करना उनका काम था, कहा, बुलाओ। गधेने अपनी फरियाद सुनायी। आदम बुलवाया गया। वह बोला — खुदाबंद, कई बरसोंसे पानी नहीं बरसा, मैं अपने बाल-बच्चोंको खाना नहीं दे सकता, गधेको दूं तो कैसे? खुदाने कहा — बिलकुल ठीक, और गधेकी ओर मुखातिब होकर बोले — तुम निरे गधे हो, बेवकूफ कहींके, इतना भी नहीं समझते, जाओ, भागो यहांसे! और अपनी मनहूस सूरतको छिपाये, होनेवाली पिटाईके ख्यालसे कांपता हुआ गधा आकर आदमके अस्तबलमें मुंह लटकाकर खड़ा हो गया।

तबसे वह कभी-कभी किसी टुटे-फूटे घरके सामने कूड़ेके ढेरपर कोनेकी ओर मुख करके एक टांग उठाकर खड़ा हो जाता है और दार्शनिककी तरह सोचता है कि सचमुच इस दुनियामें कोई सार नहीं है, चारों ओर केवल दुःख ही दुःख है। दुनियामें ऐसा एक भी प्राणी नहीं जिसे वह अपना कह सके। अपना समझकर वह एक दिन खुदाके दरबारमें गया था और अकस्मात् उसे खुदाकी लताड़ याद आ जाती है और वह चिहुंककर होंची होंची करता भाग खड़ा होता है।

उसके बाद? उसके बाद वही मार, वही भार, वही सूखी घास, वही बेबसी।

कहते हैं कि यही गधा अगले जन्ममें अध्यापकका अवतार लेता है।

—मेधाव्रत

एक पौष्टिक खाद्य

—श्री रवीन्द्र

भारतवर्ष देशमें आजकल खाद्यान्नोंकी समस्याने विकट रूप ले रखा है। पौष्टिक अन्नकी बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक सभीको आवश्यकता होती है और इसकी कमी सबको खलती है। हमारे यहां एक बहुत बड़ी कठिनाई यह है कि जनतामें और विशेषकर सुशिक्षित और बड़े आदमी कहलानेवाले लोगोंमें यह धारणा फैली हुई है कि मंहगी चीज ही पौष्टिक हो सकती है। सस्ती चीजोंको हमारे यहां बड़ी उपेक्षाके साथ देखा जाता है। हां, वही सस्ती चीजें अगर विलायतकी यात्रा कर आयें और बड़ी टीम-टामके साथ यूरोपियनोंकी तरह सजधज कर रहें तो वे भी अभिजात कुलका अंग मान ली जाती हैं।

उत्तर भारतमें एक मोटा अन्न पाया जाता है जिसे मड़ुआ कहते हैं। इसे दक्षिण में रागी

अथवा केवरु भी कहते हैं। साधारणतः यह बहुत गरीब लोगोंका भोजन माना जाता है और अच्छे खाते-पीते परिवार इसे हाथ लगाना भी पसंद नहीं करते। परंतु यह बहुत पौष्टिक अन्न है। एक बार आंध्र प्रदेशमें (तब वह मद्रासका एक हिस्सा था) यह प्रश्न उठा था कि पहले तो आंध्र लोगोंका स्वास्थ्य बहुत अच्छा हुआ करता था फिर ऐसी क्या बात हो गयी जिससे अब उनके शरीर उतने स्वस्थ नहीं रहे। इस बातकी खोज करनेके लिये एक समिति बनायी गयी जिसके सभापति थे डा. पट्टाभि सीतारामय्या जो बादमें कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये थे। इस समितिने बताया कि पहले रागी (मडुआ) ही आंध्र प्रदेशके लोगोंका मुख्य भोजन था और अब उसकी जगह मिलका पालिश किया हुआ चावल ले रहा है जो भोजन-तत्त्वकी दृष्टिसे एकदम बेकार है। भोजनका इतना बड़ा परिवर्तन ही साधारण स्वास्थ्यके खराब होनेका कारण है।

मडुएको अगर साधारण ढंगसे भात या दलियेके रूपमें खाया जाय तो वह खानेमें बहुत अच्छा नहीं लगता और सभ्य समाज(!)का पेट उसे हजम भी नहीं कर पाता। इसलिये उसे खानेकी एक नयी तरकीब निकाली गयी है और इसी तरकीबसे तैयार करके बड़े सुन्दर डिब्बोंमें 'रागी माल्ट' बिका करता है। हां, जब वह डिब्बेमें बंद होकर आता है, किसी बड़ी कंपनी का नाम लिखा होता है, तो उसका मूल्य बढ़ जाता है और अगर वही चीज घरमें तैयार कर ली जाय तो 'अति परिचयदोषात् कस्य नो मानहानिः।'

अब उसे बनानेकी तरकीब देख लीजिये। बहुत आसान है। मडुएको साफ करके पानीमें भिगो दीजिये। पानी अगर बहुत अधिक हो तो तीन-चार घटोंके बाद उसे कम कर दीजिये केवल इतना रहने दीजिये कि मडुआ भीगा रहे। बारह घंटे भीग चुके तो सारा पानी निकाल दीजिये और उसे एक गीले कपड़ेसे ढक दीजिये। और दस-बारह घंटेके बाद मडुएमेंसे छोटे-छोटे सफेद अंकुर निकल आयेंगे। ध्यान रखिये कि अंकुर बहुत बड़े न होने पायें वरना आपके लिये कुछ भी न बचेगा। अंकुर पैदा होनेके साथ-साथ अनाजके अंदर 'माल्टोज' नामक शक्कर पैदा हो जाती है जो बहुत सुपाच्य है। अब मडुएको धूपमें रखकर सुखा डालिए और सूख जानेके बाद जरा-सा भून दीजिये। इसको पीसकर डब्बोंमें भर लीजिये। बस, रागी माल्ट तैयार है। इसे दूधमें डालकर या यूं ही पकाकर या तरकारीमें डालकर खाया जा सकता है। पीसते समय थोड़ी-सी भुनी हुई मूंगफली भी मिला ली जाय तो नमक मिलाकर इसका स्वाद बहुत अच्छा बन जाता है और इसे कसारकी तरह फांका जा सकता है। मूंगफलीकी जगह जरा शक्कर और चाकलेट या कोको मिला दें और अगर हो सके तो दूधमें, नहीं तो योंही, छोटे बच्चोंको दें। यह उनके लिये बहुत पौष्टिक भोजन है।

इसी प्रकार जौ, गेहूं, मूंग आदिके माल्ट बनाये जा सकते हैं। और स्वाद बदलनेके लिये उन्हें रागी माल्टके साथ मिलाया जा सकता है।

——)०(——

'केसन कहा बिगारिया जो मूंडौ सौ बार।
मनको क्यों नहिं मूंडिये, जा में विषै विकार॥ (कबीर)

देवीका संदेश

—श्री भूदत्त

जहांतक दृष्टि जाती थी सर्वत्र सूखी रेत और कोयलेकी चट्टानों जैसे झुलसे भूखंड दिखायी पड़ते थे। वृक्षोंपर न फल-फूल थे और न पत्ते ही थे, जिधर देखो छोटे-बड़े ठूंठ खड़े थे, न कहीं कोई पशु, न कहीं पक्षी, चारों ओर एकदम शून्य था।

रात्रिका अंधकार अधिकाधिक गहरा होता जा रहा था, नभमें घनघोर मेघ छाते जा रहे थे, उनकी गड़गड़ाहटने स्थानकी शून्यताके साथ मिलकर वातावरणको अति भयंकर बना दिया था। घोर अंधकारमें सूखे ठूंठ राक्षसोंकी सेनाके समान लगते थे और ऐसा मालूम पड़ता था मानों यह सेना उस निर्जन स्थानमें स्थित छोटेसे देवीके मंदिरपर आक्रमण करनेके लिये जा रही है।

मंदिरमें एक साधिका ध्यानमग्न थी। बहुत दिनोंसे उसे तेज् बुखार था, शरीरसे मानों आग निकल रही थी, उसके चारों ओर तूफान था परंतु फिर भी उसका मन झीलके निर्मल जलके समान शांत था। उसे देवीकी मूर्तिके अतिरिक्त किसी वस्तुका भी भान न था; उसका पूर्ण ध्यान देवीकी मूर्तिपर केंद्रित था। इस प्रकार आधीसे बहु अधिक रात बीत गयी किंतु वह अचल स्थिर बुतकी भांति अपने आसनपर बैठी रही मानों मर्तिके संपर्कमें आनेके लिये वह मूर्ति ही बन जाना चाहती हो। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था त्यों-त्यों उसकी एकाग्रता अधिकाधिक तीव्र होती जाती थी, उसका मुख रुद्र रूप धारण करता जाता था, ऐसा लगता था मानों आंखोंसे चिनगारियां निकल रही हों ।

अकस्मात् मंदिरकी घंटियोंकी ध्वनि चारों ओर गूंज उठी, देवीकी मूर्त्ति हिलती-सी नजर आयी। सहसा सारा अंधकार प्रकाशसे देदीप्यमान हो उठा—मानो सहस्र विद्युत् एक साथ ही प्रदीप्त हो उठे हों, प्रकाशकी तेजीसे साधिकाकी आंखें चौंधिया गयीं, साथ ही एक बहुत डरावनी और घोर ध्वनि हुई। उसके भयाक्रांत कंठसे अकस्मात् चीख निकल पड़ी और वह अचेतन अवस्थामें देवीके चरणोंपर गिर पड़ी।

चारों ओर शांतिका राज्य स्थापित हो गया। आकाशमें सप्तर्षि प्रकाश उभरने लगा, ठूंठोंमें कोमल-कोमल कोंपलें फूट पड़ीं, सूखे रेतके कण हरी-हरी घासमें परिवर्तित हो गये, कोयले जैसी चट्टानें बर्फसी पिघलकर निर्मल जलसे भरी सरिताओंमें बह पड़ीं, पेड़ फल-फूलोंसे लद गये, कुंजोंका कलरव सुनायी देने लगा, अनेक प्रकारके जीव-जन्तु हरियाले खेतोंमें विचरने लगे।

मदोन्मत्त बयारकी एक हिलोर आयी और साधिकाके शरीरको स्पर्श करके निकल गयी। वह मुग्ध कली-सी उल्लसित हो उठी। बयारके जादू-भरे स्पर्शने उसके थके-मांदे शरीरको नये बल और स्फूर्तिसे भर दिया। उसने आंखें खोलीं और देखा, परंतु वहांपर मूर्ति न थी, उसका स्थान एक शांत, सौम्य तेजस्वी जीते-जागते शरीरने ले लिया था। साधिकाको उसे पहचानते देर न लगी, उसका मस्तक श्रद्धापूर्वक झुक गया। उत्तरमें देवीने अभयदान दिया। साधिकाने फिरसे देवीकी ओर देखा, परंतु इस बार उसके चेहरेपर कौतूहलके चिह्न थे। कुछ

क्षण अपलक देखकर उसने प्रश्न किया — "मां, तुम्हारा ऐसा रूप क्यों? तुम तो बहुत बूढ़ी दिखायी पड़ रही हो?"

देवीकी भव्य मुद्रा गंभीर होने लगी परंतु तुरंत ही एक मीठी मुस्कान उसके कोमल होठोंपर नाचने लगी जिससे उसका मुंह कमलके समान खिल उठा। एक क्षण बाद ही देवीके होंठ हिलने लगे और मृदु-गंभीर वाणी सुनायी देने लगी। "बेटी, आजसे दो सौ साल पहले तुझे भागवत कार्यका यंत्र बनानेके लिये मैंने यह शरीर धारण किया था। इस अवधिमें तूने चार जन्म लिये किंतु मैं अपना कार्य इसी शरीरके द्वारा करती रही। आज पहली बार मैं देखती हूं कि तू पूरी तरहसे भगवान्‌की ओर मुड़ चुकी हो, इसलिये मेरे इस शरीरका कार्य भी समाप्त होता है।"

पलक झपते ही एक बारीक, सूक्ष्म वस्त्र गिर पड़ा और साथ ही प्रकाशकी रूप-रेखासे बनी हुई एक आकृति ऊपरको उठने लगी और अंतमें जब वह बहुत ऊंची चली गयी तो एक क्षीण-सी प्रकाश-पुंजिकाके समान आंखसे ओझल हो गयी। इसके साथ-ही-साथ आकाशवाणी हुई:

"ज्योतिसे ज्योतिकी ओर बढ़ो
चेतनसे चेतनकी ओर बढ़ो।"

——:०:——

पंडितजी

एक थे पंडितजी। वे बहुत ही गरीब थे। कहीं न जाते थे और न किसीसे कुछ मांगते थे। कल मकर-संक्रांति होगी। पंडितानीको तिल और गुड़की बड़ी लालसा थी। उन्होंने पंडितजीसे कहा कि कहींसे तिल और गुड़ ले आओ, चाहे मांग करके लाओ या चुरा करके, पर लाओ जरूर।

पंडितजी दुविधामें पड़ गये। सोचने लगे — मैं कहांसे लाऊं। जिन्दगीमें कभी चोरी नहीं की अब मकर संक्रांतिके दिन करनी पड़ेगी। बड़ा पाप होगा।" उनका मन न करता था फिर भी झक मारकर उन्हें घरसे निकलना पड़ा क्योंकि पंडिताइन थैला लिये उनको खदेड़नेमें लगी थीं। पत्रा बगलमें दबाये भारी कदम सुस्तीसे रखते हुए निराश आंखोंसे इधर-उधर देखते हुए पंडितजी चल पड़े। चलते-चलते एक बहुत बड़ा मकान दिखायी पड़ा। सबकी आंख बचाते हुए अंदर घुस गये। भाग्यकी बात उन्हें एक कोठरी दिखलायी पड़ी जिसमें गुड़ और तिल भरा था। अब तो पंडितजीकी पौ बारह थी। वे जल्दीसे कोठरीमें घुसकर एक ओर दुबककर बैठ गये। उन्होंने सोचा जब रात होगी तब अपने गमझेमें तिल गुड़ बांधकर भाग जाऊंगा।

पर रात हुई तो सब दरवाजे बंद हो गये। यह कोठरी एक बड़े व्यापारीकी थी और वहां उसका गोदाम था।

कृष्ण पक्षकी अंधेरी रात थी, एक ढिबरी गोदाममें जल रही थी। पंडितजीने अपना पत्रा खोला — और पंत्रा देखकर कहने लगे — माघका महीना है, तिल चुराऊं तो पाप, गुड़ चुराऊं तो पाप, सब पाप ही पाप। पंडितजी बार-बार यही कहते जा रहे थे। उनकी यह भुनभुनाहट बगलवाले कमरेमें लेटे हुए नौकरके काममें पड़ी। उसने समझा कोई भूत है। वह डरता-डरता अपने मालिकके पास गया और उन्हें सारा किस्सा सुनाया। उन्होंने सारी कोठी जगा दी। फिर धीरे-धीरे दरवाजा खोला गया। वहां भूतकी जगह एक पंडित पत्रा सामने रखे कह रहा था तिल चुराऊं तो पाप, गुड़ चुराऊं तो पाप, सब पाप ही पाप। मकान-मालिकने सबसे कह दिया कि यह कोई भला आदमी लगता है, इसे कोई न मारे। उन लोगोंने पंडितजीसे पूछा कि आखिर आप इसमें घुसे कैसे? तो उन्होंने अपना सारा किस्सा सुना दिया। मकानमालिकने पंडितजीको एक गांठ भरकर तिल और गुड़ दिया। उसे ढोनेके लिये अपना नौकर साथ कर दिया। इतना ही नहीं ऊपरसे पांच रुपये दक्षिणामें दिये।

पंडिताइन दरवाजेपर ही खड़ी पंडितजीकी प्रतीक्षा कर रही थीं। पंडितजीको गाठीके साथ देखकर खुशीके मारे फूल उठीं। कुछ दिनोंतक उन लोगोंको मौज रही। हर रोज उनके घरमें तिलके लड्डू बनने लगे। उनके पड़ोसमें एक और पंडित रहता था। उसने देखा कि इनके यहांसे रोज लड्डूकी खुशबू आती है, चलो पूछा जाय कि यह सब कहांसे और कैसे आया। उसने पंडितजीसे पूछा, भाई इतना सामान तुम कहांसे ले आये हो? तो पंडितजीने कहा — कहींसे मिल गया है। इस उत्तरसे दूसरा पंडित संतुष्ट न हुआ और जाकर अपनी पत्नीसे कहा कि जाओ — उसकी पत्नीसे पूछो कि पंडितजी तिल और गुड़ कैसे लाये।

पंडिताइनसे पूछनेपर पता चला कि पंडितजीने चोरी की थी। अब दूसरे पंडितजीने भी चोरी करनेकी ठानी। वे भी दोपहरको अपने घरसे चल पड़े और भाग्यकी बात वे भी उसी कोठीपर पहुंचे। कोठीके अंदर घुसकर लगे सेठका गोदाम खोजने। जब उन्हें गोदाम मिल गया तो अपने गमछेमें जल्दी-जल्दी तिल गुड़ भरने लगे। इतनेमें वहां एक नौकर आ पहुंचा। उसने पंडितजीको चोरी करते देखा और चोर-चोर चिल्ला पड़ा। बेचारे पंडितजी पकड़े गये। रोते-रोते वह घर पहुंचे — उन्होंने कान पकड़े और बोले अब कभी चोरी नहीं करूंगा।

— भूमा

◆

अद्यज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवपुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ॥

मूर्खको बड़ी सरलतासे संतुष्ट किया जा सकता है, पण्डित उससे भी आसानीसे साधमीय है परंतु अल्पज्ञको ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते।

बंदरराजका प्रजाप्रेम

--लाट साहब

हिन्दू तीर्थोंमें प्रायः ही बन्दरोंका बड़ा जमघट रहता है। विशेषकर अयोध्यामें तो इन रामदूतोंका पूरा राज्य ही समझिये। यात्री लोग इन बंदरोंको कभी मारते नहीं, डराते नहीं, बल्कि श्रद्धापूर्वक कुछ-न-कुछ खानेको ही देते हैं और कभी-कभी तो भक्त लोग उन्हें पूरा भोज ही दे डालते हैं —पूरियां, मिठाई इत्यादि खुले दिल बांटी जाती हैं। ऐसी हालतमें ये बंदर खूब ढीठ हो जाते हैं और खानेके अभावमें खूब लूट-पाट भी करते हैं। बंदरजाति दल बनाकर रहती है और उनका एक दलपति होता है। बंदर अपने नेताके इर्द-गिर्द रहकर यह सब लूट-खसोट खूब योजनाबद्ध पद्धतिसे करते हैं। उनकी चालाकियां और समझदारी देखकर दंग रह जाना पड़ता है।

अयोध्या नगरमें प्रायः शहरके बाहरी भागमें एक सड़ककी एक छोरपर एक भड़भूंजेकी दूकान थी। उस मोहल्लेमें जिस बंदर-दलका राज्य था वह दिनभर या तो पासके खेतों और बगीचोंसे अपना भोजन जुटाता था या शहरमें घुसकर लूट-खसोट मचाता था। उनकी लूट-पाटके अभियानमें भड़भूजेकी दूकान अक्सर शिकार बनती थी और बिचारे दूकानदारको काफी हानि उठानी पड़ती थी। भुने चने, चावल, चीड़े, सत्तू आदिकी टोकरियां पास-पास पड़ी रहतीं, खुली होतीं और सड़कसे जरा ऊंची जगहपर होतीं। किसी ओरसे निशाना बांधकर और एक वृत्त बनाकर कुछ बंदर धीरे-धीरे वहां आते और आसपासके घरोंकी छतपर बैठ जाते। दूकानकी रखवाली करनेवाला ज्योंही जरा अन्यमनस्क होता या किसी काममें लग जाता त्योंही एक बड़ा बंदर ऊपरसे कूद पड़ता और दो-एक टोकरियां सड़कपर लुढ़क जातीं और सारा सामान फैल जाता। बस, तुरत दौड़कर और कूदकर सभी बंदर टूट पड़ते और आनन-फाननमें अपना मुंह खाद्यपदार्थसे भरकर चल देते। बहुत सावधानीसे रखवाली करनेपर भी बंदरोंकी लूट-पाट बंद नहीं हुई और बार-बार गरीब बिचारेका सामान नष्ट होता रहा।

आखिर आजिज आकर एक दिन उसने सोचा कि इन बंदरोंको शिक्षा देनी चाहिये और इन्हें लूट-पाटका मजा चखाना चाहिये। उसने एक विषैली चीज एकत्र की और उसे सत्तू आदिमें मिलाकर लड्डू बना लिये। उसे पूरा भरोसा था कि लड्डुओंको खाते ही जब कई बंदर ढेर हो जायेंगे तो बाकी बंदर कभी भूलसे भी मेरी दूकानकी ओर आंख नहीं उठायेंगे। उसने लड्डुओंको छितनीके अंदर रखकर दूकानके एकदम बाहर सड़कके किनारे रख दिया मानो धूपमें सूखनेको रखे गये हों।

उस दिन भूखकी ज्वाला बढ़नेपर बंदर-दल शहरकी ओर बढ़ा। सामने सड़कपर लड्डुओंको देखकर स्वभावतः ही उसे पानेकी योजना उन्होंने बनानी शुरू की। सामान दूकानसे जरा दूर था ही, दूकानदार स्वयं दूकानपर पहरा दे रहा था। उसने जब बंदरोंको उधर आते देखा तो उसने अपनी आंख काम-काजके बहाने उधरसे हटा ली। स्वभावतः ही बंदरोंके लिये उधर लपकनेका पूरा-पूरा मौका मिल गया।

परंतु इस सुलभ मौकेने ही बंदरोंके अंदर शायद कुछ संदेह पैदा कर दिया। कोई कठिन वस्तु जब आसानीसे हाथ लगती है तब मनुष्य उसे बराबर संदेहकी दृष्टिसे देखता है या उसके

प्रति उसका आकर्षण कम हो जाता है। आखिर बंदर भी तो मनुष्यके पूर्वज माने जाते हैं न! संभवतः इस वृत्तिका बीज उनमें भी विद्यमान हो। जब संदेह हुआ या आकर्षण कम हुआ तब बंदरराजने सोचा — जरा चलकर देखा जाय कि मामला क्या है? सभी बंदर दूर दूर अपनी सुविधाके अनुसार मोर्चा बनाकर बैठ गये। धीरे-धीरे बंदरराज आगे बढ़े, लड्डूकी टोकरीके पास बैठ गये और चारों ओर ताककर और निश्चिंत होकर उन्होंने एक लड्डू उठा लिया। आखिर राजा जो ठहरे, उनकी बुद्धि तो सबसे अधिक होनी ही चाहिये। उन्होंने एक चतुर वैज्ञानिककी तरह उसे उलट-पलटकर देखा और फिर दीर्घ श्वास खींचकर सूंघा। अन्नके साथ मिली दूषित गंधको उन्होंने तुतर भांप लिया और धीरेसे लड्डू टोकरीमें रखकर चलते बने।

दूकानदार पूरी धूर्तताके साथ यह सब देख रहा था। बंदरराज अपनी जगह लौटकर अपनी भाषामें कुछ बोले और सभी बंदर एक-एक कर दूसरी ओर चले गये। पर बंदरराज वहीं स्थिर बैठ गये। आश्चर्य! वह सारे दिन वहां बैठकर पहरा देते रहे और जब कभी कोई इक्का-दुक्का बंदर या दूसरी टोली उधर आती तो वह उन सबको सावधान कर देते और बंदर मुंह मोड़कर दूसरी दिशामें चले जाते। जिस दूकानपर अभी हाल ही में कई बार आक्रमण हुआ था और कई टोकरियां लुट गयी थीं वहीं आज एक भी बंदर उन लड्डुओंके पास नहीं फटका।

दूकानदारकी तरकीब फेल हो गयी। वह बिचारा अपनी हार देखकर बहुत पछताया। उसने सोचा, आज मैंने कितनी भूल की जो बंदरोंकी जान लेनेके लिये उतारू हो गया! पर देखो भगवान्‌की लीला! जाके राखें साइयां मारि न सकिहैं कोय। और जब भगवान् इन बंदरोंकी रक्षा कर सकते हैं और इन्हें भोजन दे सकते हैं तब क्या हम मनुष्योंको नहीं देंगे? अब ऐसी मूर्खता मैं कभी नहीं करूंगा। मेरी खुराक मुझे भगवान् देंगे ही और दूसरोंकी खुराक रोकनेका मुझे अधिकार ही क्या है? रखवाली अपनी शक्तिभर करेंगे, वह भी कर्तव्य है, पर बंदरोंपर खीझ और दंड देनेकी भावना कभी नहीं आने देंगे। वे भी तो आखिर हैं भगवान्‌के ही जीव।

पुस्तक-परिचय

जमना गंगाके नैहरमें : ले. विष्णु प्रभाकर, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, मूल्य ४.५०।

प्रत्येक भारतीयके लिये गंगा यमुना एक विशेष आकर्षण रखती हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे तो इनका मूल्य है ही, साथ ही सौंदर्य-बोधकी दृष्टिसे भी ये दोनों नदियां और इनका नैहर अनुपम हैं। लगभग दो सौ पृष्ठकी इस पुस्तकको पढ़ते हुए पाठक मानों अपनी आंखोंसे उन सब स्थानोंका दर्शन कर लेता है। शायद हिमालय अपने-आप ही एक दैवी काव्य

है और उसके बारेमें जो कुछ लिखा जाय वह भी काव्य बन जाता है। बड़े घने जंगलोंकी पहाड़ी रास्तोंकी यात्रा करते हुए कहीं-कहीं हास्यमय परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं जो सारे वर्णनको बहुत ही सजीव कर देती हैं। जिन्हें यात्राका शौक हो अथवा जो प्राकृतिक दृश्योंके रसिया हों उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

मेरा वकालती जीवन : ले. ग. वा. मावलंकर, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, मूल्य चार रुपये।

स्वर्गीय मावलंकरको हम लोग लोग-सभाके अध्यक्षके रूपमें अच्छी तरह जानते थे। परंतु वे एक सफल वकील और अच्छे लेखक भी थे। इस पुस्तकमें उन्होंने अपने अदालती जीवनकी कुछ शिक्षाप्रद घटनाएं दी हैं। अपने-आप एक जाने-माने वकीलने होते हुए उन्हें वकीलोंके नैतिक पतनके बारेमें सख्त शिकायत थी। मावलंकरके अनुभवोंसे हमें पता लगता है कि नैतिक भ्रष्टाचारकी जड़ें कितनी गहरी हैं और हम यह भी देख पाते हैं कि एक सच्चा और ईमानदार आदमी कैसे प्रतिकूल अवस्थाओंमें रहकर भी सफल हो सकता है।

भारत सावित्री : ले. वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, मूल्य पांच रुपये।

कुछ समय पहले इन पंक्तियोंमें हमने शिकायत की थी कि महाभारतके रत्नोंको सर्वसाधारणके लिये सुलभ करनेकी दिशामें बहुत कम प्रयास हुआ है। यह पुस्तक मानों उसका उत्तर है। प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान् लेखकने 'समयके अभाव' से त्रस्त समाजके लिये महाभारतका सारांश देनेका प्रयास किया है। साथ ही प्रतीकात्मक कथाओंका उल्लेख करते हुए उनके वैदिक मूलका भी निर्देश किया गया है। जो लोग मूल महाभारत नहीं पढ़ सकते उनके लिये इस पुस्तकका पढ़ना आवश्यक है।

हर्ष-चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन : ले. वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

बाणका हर्ष-चरित संस्कृत साहित्यमें बहुत ऊंचा स्थान रखता है। इसके अध्ययनसे उस समयके भारतीय समाजका अच्छा चित्र मिल सकता है। उस समयके आचार-व्यवहार, उस समयकी वेश-भूषा, सेना, शकुन-अपशकुन, गृह-निर्माण, सैन्य-संचालन आदिके बारेमें बड़ी सुन्दर जानकारी मिल सकती है। पुस्तकके अंतमें २८ फलक हैं जिनमें हर्षके राजकुल, उस समयकी चन्द्रशाला, प्रासादकुक्षी, हाथीसे लड़नेवाले, विभिन्न आभूषणों और बहुत प्रकारके वस्त्रोंके चित्र दिये गये हैं जिनसे पुस्तककी उपयोगिता और बढ़ गयी है। इस तीन सौ पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका दाम ९.५० मात्र !

नंददास : ले. आरसीप्रसाद सिंह, प्रकाशक तारा मण्डल, लखनऊ, मूल्य ३.००।

श्रीअरविंदकी विचारधाराने भारतकी सभी भाषाओंपर कुछ न कुछ प्रभाव डाला है। हिंदीमें तो पंतजीने इसे नवचेतनावादका ही नाम दे दिया है। नन्ददास इसी विचारधारासे प्रभा-

वित एक सुन्दर काव्य है। इसमें अष्टछापके प्रसिद्ध कवि नन्ददासके जीवनको लेकर प्रेमके विभिन्न स्तरोंका दिग्दर्शन कराया गया है। नन्ददासके जीवनका आरंभ होता है फेनिल प्राणकी वासनाओंसे और अंतमें वही निम्नस्तरकी वासना गुरु विट्ठलनाथजीसे प्रेरणा पाकर सच्चे भागवत प्रेममें बदल जाती है। आरसीप्रसाद जी कहते हैं:

वही कला, सौंदर्य, वही है सार्थक जीवन
जो होता कृष्णार्थ और केवल कृष्णार्पण।

पुस्तकके आरंभमें श्रीअरविंदके चरणोंमें श्रद्धांजलि है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। हम कविका अभिनंदन करते हैं।

श्रद्धाके फूल: ले. हरिश्चन्द्र, प्रकाशक साधना मन्दिर, हांसी (हिसार) मूल्य १.२५।

इस पुस्तकमें लेखकके १०८ भक्तिभरे उद्‌गार हैं। श्रद्धालु लोगोंके लिये पुस्तक उपयोगी होगी। परंतु पुस्तकके आरंभमें ही प्रशंसाओंकी झड़ी सुरुचिपूर्ण नहीं लगी। प्रूफकी भूलें भी खटकती हैं।

भारतीय वाङमयमें श्री राधा: ले. पं. बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, मूल्य १०.५०।

राधाके बिना माधवकी कल्पना करना भी असंभव है। राधा भागवत प्रेमकी साकार मूर्ति, मानव अभीप्साका शुद्धतम स्वरूप, भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पणकी चरम सीमा है। किसी भी भारतीय भाषाका साहित्य ले लीजिये उसमें आप राधा-माधवकी लीलाका सुन्दर वर्णन पायेंगे। उसके बिना भारतीय साहित्य सूना रह जायगा। प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान् लेखकने राधाके बारेमें ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक दृष्टिसे अध्ययन किया है। इस पुस्तकमें तार्किक विद्वान् और श्रद्धालु भक्तको अपने-अपने योग्य सामग्री मिल जायगी। पुस्तक गहरे अध्ययनका परिणाम है।

मास्टर महिम: ले. मनोज बसु, अनुवादिका माया गुप्त, प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, मूल्य ४)।

लगभग सारे भारतमें लोगोंको विद्यार्थियोंकी अनुशासनहीनताकी शिकायत है। आज जरासी बातपर विद्यार्थी उत्तेजित हो जाते हैं और फिर आंखें मूंदकर देशकी सम्पत्तिका नाश करने लगते हैं। देशकी इस नयी पौधके बिगड़नेका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि देश उनकी शिक्षाके लिये, उनकी शक्तिका सदुपयोग करनेके लिये ठीक व्यवस्था नहीं कर पा रहा है। हमारा शिक्षकवर्ग जिन कठिन परिस्थितियोंमेंसे गुजर रहा है उन्हें देखते हुए होनहार, प्रतिभाशाली युवक अध्यापक नहीं बनना चाहते। जो आदर्शवादी युवक इस दिशामें आ भी जाते हैं वे भी इस चक्कीमें पिसकर अपने आदर्शोंको भूल जाते हैं और उन्हें भी अपने उत्तरदायित्वोंका भान नहीं रह जाता। प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे ही युवककी जीवनी है जो सत्यवादी और ईमानदार था और वातावरणके विरुद्ध लड़नेका भरसक प्रयत्न करता रहा। परंतु अंतमें चारों ओरसे थपेड़े खाकर उसे भी उसी अंधकूपमें गिरना पड़ा। पुस्तक क्या है आजकलके अध्यापक जीवनका कच्चा चिट्ठा है। जिन लोगोंका शिक्षणके साथ कुछ भी संबंध है उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालय:—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २०मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता—७

फोन—३३२३१२

*
**

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

**
*

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३ तार—नेशनओटो
२३९८२२
२३६५३९

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

Marketers of Petroleum Products

Western Trading Company

Distributors to ESSO Standard
Eastern, INC.
For Calcutta, Bihar and U.P.
88, Stephen House
4 Dalhousie Square East
CALCUTTA - 1

⁂

Branch:

CENTRAL HOTEL BUILDING
GORAKHPUR
Phone: 23-2835/36 Gram: RIGHTDON

INDIA TAR
AND
BITUMEN PRODUCTS

Office:
88, Stephen House,
Dalhousie Square, Calcutta-1
Telephone: 23-2835/36

⁂

All types of waterproofing and damp-proofing, Pipe Lagging & Heat & Cold insulation. Works are under-taken with best workmanship.

a happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स
पांडिचेरी
फोन-४३४

मीनाक्षी रोलर फ्लावर मिल्स

उत्तम मैदा और सूजी की
चीजें बनानेवाले

मिल :-
विलनगुडी
मदुरा
फोन-३४९१

कार्यालय :-
८२, साउथ अवनिमूल स्ट्रीट
पोस्ट बाक्स ५
मदुरा
फोन-४५१६

BARABATI RAFFLE

(Authorised by the Government of Orissa)

In Aid of

BARABATI STADIUM, CUTTACK and RED CROSS SOCIETY (Orissa Branch)

2½% of the net profit goes to National Defence fund.

Barabati Raffles offer
Biggest number and largest amount of guaranteed prizes.

Draw held every 4 months in
February – March, June – July and September – October.

Buy a ticket for Re. 1/-

and

Take your chance to win

Guaranteed first Prize of Rs. 1,10,000/-

Form of 18 tickets – Rs. 12/- only

For details contact:-

Honorary Secretary.
Barabati Raffle Committee, Cuttack - 5.

राजश्री प्रॉडक्शन्स कृत

दोस्ती

निर्माता ताराचन्द बड़जात्या • दिग्दर्शक सत्येन बोस • संगीत लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल • गीत मजरूह

"युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके रथको हांकनेवाले कुरुक्षेत्रके सारथि (श्रीकृष्ण) कर्मयोगके प्रतीक और प्रतिमूर्त्ति हैं; क्योंकि शरीर ही है रथ और इन्द्रियां हैं हांके जानेवाले घोड़े और संसारके रक्तरंजित तथा पंकसंकुल पंथसे ही श्रीकृष्ण मानवात्माको वैकुंठ-तक ले जाते हैं।"

--श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

जो भी काम करो उसे जहां तक बन पड़े
अधिक से अधिक पूर्णता के साथ करो।

—श्रीमां

न्यू होराइजन स्टेन्लेस् स्टील्स

५६, कारामणि कुप्पम रोड, पांडिचेरी-४

नित्य काम में आनेवाले बर्तन यहां बनते हैं

SQUARE STAINLESS STEEL PRODUCT

"स्कवायर प्रोडक्ट्स्"

सूक्ष्मता और उच्चस्तर का प्रतीक

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

अप्रैल

१९६५

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

सागर-संगीत 'कोकिल' २
प्रार्थना श्रीमां ३
संपादकीय ४
श्रीअरविंद कहां हैं ? श्रीमां ९
मानव-मन श्रीअरविंद ११
मैं तो तेरेही रंग राती 'कोकिल' १३
श्रीअरविंदाश्रम रवीन्द्र १४
आश्रममें पंडित सातवळेकर रवीन्द्र १६
महादानी राजा अधियमान षण्मुखम् १९
भक्ति-भण्डारी वसवेश्वर अम्बाशंकर २१
क्या भगवानके दर्शन हुए हैं ? चन्द्रदीप २४
चाहे कितनी बाधाएं आयें ! केदारनाथ 'कोमल' २५
नया गोकुल २६
यूरोपकी सैर स्नेहलता २७
मां चली भी गयी ! मीना ३१
मेरे पड़ोसी अंजना शर्मा ३२
मनुष्य आगे बढ़ रहा है ! श्यामसरन 'विक्रम' ३३
तुझे पराई क्या पड़ी ! भूदत्त ३६
भावना देखो! आरसीप्रसाद सिंह ३८
दुर्जनसिंह अनुबेन ३९
उपहार नीली ४२
जन्म और जिम्मेदारी ब्रजनन्दन ४३
भूल कहां होती है ? आनन्द आर्य ४५
कागजकी आत्मकथा प्रेमा ४६
मेरी नींद खुल गयी मीना ४७
दो प्रार्थनाएं देवदत्त ४८
अंधकार हीरो ४९
अंधेरा मीना ५०
परीक्षा, एक समस्या नीली ५१
विभिन्न परीक्षाएं तुलसी ५२
परीक्षा सुमेधा ५४
नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं हीरो ५५
आशा विजय पोद्दार ५६
रोटीकी आत्मकहानी वत्सला ५७
सार्वजनिक सेवा रवींद्र ५९
पुस्तक-परिचय ६३
दक्षिण भारती ६५

चित्रकार : संजीवन विश्वास (आवरण), कृष्णलाल, जयंतीलाल, अंजना शर्मा, अनिरुद्ध सरकार

मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

अप्रैल १९६५ अंक ४
वर्ष ३

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

> बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।
>
> —श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी–२

श्रीअरविंदके सागर-संगीतसे :

सागर-संगीत

एक गीत ही गूंजा करता केवल मेरे अंतरमें।
एक विवश-तारोंवाली मैं तो बस वीणा तेरी हूं,
तेरी श्वासोंसे बज उठनेवाली मैं इक भेरी हूं।

हे विराट् गायक! प्रकटे तव पूर्ण मनस् अब मुझमेंसे,——
इस प्रकाशसे, अंधकारसे इस निशिसे औ इस दिनसे।
फूंक फूंक हे चारण! अपनी सर्वशक्तिमत्ता मुझमें।

सागरके एकांत-तटोंपर, नभके नीरव छोरोंमें,
तूफानोंसे भरी निशाके डाले भीषण घेरोंमें,

और रहस्यभरे मनमोहक उन मायावी देशोंमें,
उन सुनसान, शांत, एकाकी छायावी सुप्रदेशोंमें,

या कि वहां इक बाल-उषा नव-जन्मा औ' तेजस्वी, जो
मधुर और अनपके विचारोंको शुचि जन्म दे रही हो,

या धूमिल औ उदासीन संध्यामें इच्छा-अनुगमनी,
निज जादुई सत्में औ' जादुई ज्योतिमें जगमगनी,
ओ आत्मा! ओ महासिंधु! तू बीन बजाये जा अपनी!

——विद्यावती 'कोकिल'

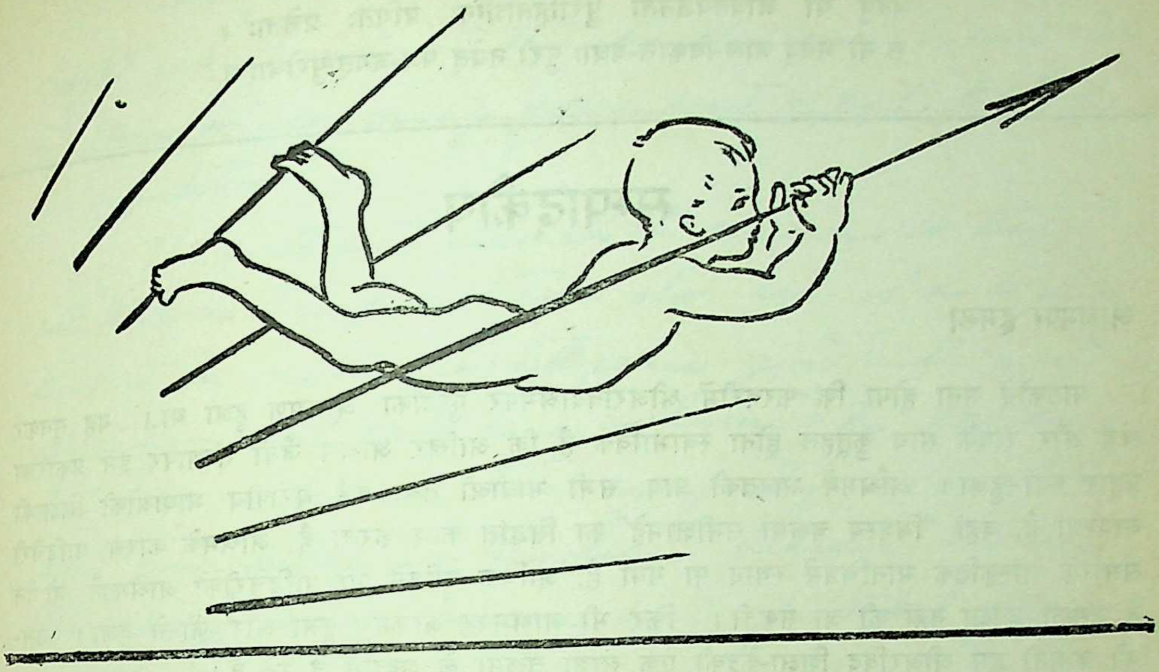

प्रार्थना

Laisse-moi me coucher à Tes pieds, me fondra en Ton cœur, disparaître en Toi, manéantir en Sa béatitude ; ou plûtot être uniquement Ton serviteur, sans prétendre à rien d'autre.

मुझे अपने चरणोंमें सो जाने दे, अपने हृदयमें गल जाने दे, अपने अंदर घुल-मिल जाने दे, अपने परमानंदमें विलीन हो जाने दे; अथवा, अन्य कोई चीज बननेकी आकांक्षासे रहित एकमात्र अपनी सेविका बन जाने दे।

—श्रीमां

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

आश्रमपर हमला

पाठकोंने सुना होगा कि फरवरीमें श्रीअरविंदाश्रमपर गुण्डोंका आक्रमण हुआ था। यह सुनकर खेद और रोषके साथ कुतूहल होना स्वाभाविक है कि आखिर आश्रम जैसी संस्थापर इस प्रकारका प्रहार क्यों हुआ। आश्रममें भारतकी प्रायः सभी भाषाओं तथा कई यूरोपीय भाषाओंकी शिक्षाकी व्यवस्था है, वहां "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" का सिद्धांत काम करता है, आश्रमके कारण पांडिचेरी संसारके सांस्कृतिक मानचित्रमें स्थान पा गयी है, आर्थिक दृष्टिसे भी पांडिचेरीको आश्रमकी जो देन है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर भी आश्रमपर आक्रमण हुआ और जोरसे हुआ। उसकी कहानी हम श्रीअरविंद शिक्षा-केंद्रकी एक छात्रा तुलसा के शब्दोंमें दे रहे हैं।

"आश्रमपर नाना प्रकारकी कठिनाइयां आयी हैं लेकिन इस तरहका जंगलीपन पहले कभी नहीं हुआ था जैसा पिछली ११ फरवरीको हुआ।

काफी दिन आगेसे पांडिचेरीके चारों ओर हिंदी-विरोधी आंदोलन चल रहा था लेकिन किसीने कभी सोचातक नहीं था कि वे लोग आश्रमपर आक्रमण करेंगे क्योंकि आश्रमका तो उसके साथ कुछ संबंध नहीं है।

मैं सारी कहानीको शुरूसे आरंभ कर रही हूं। उस दिन गुरुवार था और शामके लगभग सात बजे थे। मेरी एक सहेली दौड़ती हुई आयी और पूछने लगी : क्या तूने छतसे स्टेशनकी आग देखी है?

यह सुनकर मैं हैरान हो गयी और जल्दीसे छतपर जाकर देखा कि सारा आकाश अरुण हो गया था। मुझे जोरकी भूख लगी थी इसलिये मैं घर जानेकी सोच रही थी। जैसे ही दरवाजा खोला तो दो आदमी तेजीसे साईकलपर जाते हुए तमिलमें बोले : जल्दी अंदर चली जा, भीड़ इस तरफ आ रही है। आज ध्यानका दिन था, सब लोग इकट्ठे हो रहे थे! मैं भी जाकर ध्यानके लिये बैठ गयी! बड़ी भयावनी आवाजें हमारी ओर आने लगीं और अचानक मेरी मुट्ठियां भिंच गयीं।

उन्होंने पहले आश्रमके साथ संबंध रखनेवाली दुकानपर आक्रमण किया। जब अन्नकी कमीके कारण चारों ओर हाहाकार मचा था तब इसी दुकानने व्यापारियोंका विरोध सहकर सस्ते दामोंपर चावल बेचा था और काले बाजारको भयंकर रूप लेनेसे रोका था। कुछ दिन पहलेतक लोग कहा करते थे कि इसी दुकानने हमारे प्राण बचाये हैं। उसी दुकानको जलाया गया! और बहुत सारा सामान नष्ट कर दिया गया। वहांसे मिट्टीका तेल ले जाकर आश्रमके डाकघर, कुटीर उद्योग, सोडा तथा हाथके बने कागजके कारखानोंको जलाया गया। बहुत सारे घर, बोर्डिंग और उपचर्या-गृह (Nursing Homes) भी जलाये गये। मेरे घरमें मां, मेरी छोटी-छोटी बहनों, अदिति और कनिष्ठाके साथ थी। रास्तेपर कुछ आवाजें सुनकर मांने जल्दीसे दरवाजा बंद कर दिया और बत्ती बुझा दी। तब ही एक दल आकर दरवाजा तोड़ने लगा। अदिति तो डरके मारे जोरसे रोने लगी पर भाग्यवश वे गुण्डे अन्दर नहीं आये।

A declaration

Some people looking at things superficially, might ask how is it that the Ashram exists in this town for so many years and is not liked by the population?

The first and immediate answer is that all those in this population who are of a higher standard in culture, intelligence, good will and education not only have welcomed the Ashram but have expressed their sympathy, admiration and good-feeling. Sri Aurobindo Ashram has in Pondicherry many sincere and faithful followers and friends.

This said, Our position is clear.

We do not fight against any creed, any religion.

We do not fight against any form of government.

We do not fight against any social class.

We do not fight against any nation or civilisation.

We are fighting division, unconsciousness, ignorance, inertia and falsehood.

We are endeavouring to establish upon earth union, knowledge, consciousness, Truth; and we fight whatever opposes the advent of this new creation of Light, Peace, Truth and Love

True strength and protection come from the Divine Presence in the heart.

If you want to keep this Presence constantly in you, avoid carefully all vulgarity in speech behaviour and acts. Do not mistake liberty for licence and freedom for bad manners. The thoughts must be pure and the aspiration ardent.

26-2-65

गुण्डोंका सबसे अधिक दुष्टतापूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने आश्रमके मुख्य भवनपर आक्रमण किया और श्रीअरविंदके कमरेकी खिड़कीके कांच तोड़ दिये, श्रीमाताजीके कमरेपर भी पत्थर बरसाये; दर्शनका कमरा कांचके टुकड़ोंसे भर गया।

अभीतक आश्रमवासी धीरज धरे बैठे थे परंतु अब परिस्थितिने उन्हें विवश कर दिया कि वे गुण्डोंके साथ मोर्चा लें। अचानक दरवाजे खुल गये और आश्रमके नवयुवक उत्तेजित भीड़से लोहा लेने लगे। नवयुवक संख्यामें कम और बिना तैयारीके थे जब कि भीड़ बहुत अधिक और शरारत करनेके लिये पूरी तरह तैयार थी। फिर भी लड़के जान तोड़कर लड़े और आततायियोंको मार भगाया। इससे कइयोंको चोटें आयीं और दोको काफी समयके लिये हस्पतालमें रहना पड़ा!"

यह पढ़नेके बाद अब श्रीमाताजीका वक्तव्य देखिये जिसमें उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दोंमें बताया है कि यह सब क्यों और कैसे हुआ। यह वक्तव्य घटनाके चार दिन बाद १६ फरवरीको दिया गया था। श्रीमाताजी कहती हैं:

"जो लोग चीजोंको ऊपरी दृष्टिसे ही देखते हैं वे पूछ सकते हैं कि आश्रम इस नगरमें इतने वर्षोंसे चला आ रहा है फिर भी वहांके लोगोंको पसंद क्यों नहीं?

इसका पहला उत्तर यह दिया जा सकता है कि इस नगरमें जो सांस्कृतिक दृष्टिसे, बुद्धि, शिक्षा, और सद्भावकी दृष्टिसे ऊंचे स्तरके लोग हैं उन्होंने न केवल आश्रमका स्वागत किया है बल्कि उसके साथ सहानुभूति रखते हैं और उसके लिये प्रशंसा और सद्भाव भी व्यक्त करते हैं। पांडिचेरीमें श्रीअरविंदाश्रमके बहुतसे सच्चे और वफादार मित्र और अनुयायी हैं।

हमारी स्थिति स्पष्ट है:

हमारा किसी मत या धर्मसे कोई झगड़ा नहीं है।

हमारा सरकारके किसी रूपसे झगड़ा नहीं है।

हम किसी सामाजिक वर्गसे नहीं झगड़ते।

हम किसी राष्ट्र या संस्कृतिके विरुद्ध नहीं लड़ रहे।

हम लड़ रहे हैं विभाजन, अचेतना, अविद्या, तमस् और असत्यके विरुद्ध।

हम धरतीपर ऐक्य, ज्ञान, चेतना और सत्यकी स्थापना करना चाहते हैं और जो कुछ ज्योति, शांति, सत्य और प्रेमकी इस नवीन सृष्टिके आगमनका विरोध करता है—हम उसके विरुद्ध लड़ते हैं।

इस अवसरपर माताजीने आश्रमवासियोंको निम्नलिखित संदेश दिया:—

"हृदयमें भगवान्‌की उपस्थिति रहनेपर ही सच्चा बल और संरक्षण प्राप्त होते हैं।

"यदि तुम अपने अंदर निरंतर यह उपस्थिति बनाये रखना चाहते हो तो सावधानीके साथ अपनी वाणी, व्यवहार और कार्यमें सब प्रकारकी अशिष्टतासे दूर रहो। स्वतंत्रताका अर्थ उच्छृंखलता और स्वाधीनताका अर्थ असभ्य व्यवहार समझनेकी भूल मत करो। तुम्हारे विचार शुद्ध और तुम्हारी अभीप्सा तीव्र होनी चाहिये।"

२६-२-६५

हमारा ख्याल है कि इसके बाद और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं।

समुदाय और व्यक्ति

जब दो तत्त्वोंमें अनुकूलता लानी हो तो प्रकृति दोनोंको ही एक लंबे अर्सेतक बनाये रखती और पुष्ट करती जाती है। इस प्रक्रियामें वह कभी एक ओर झुक जाती है और कभी दूसरी ओर। कभी दोनोंको ही आगे बढ़ाकर उनमें यथासंभव समझौता करवा देती है जिससे दोनों कुछ समयके लिये एक-दूसरेकी कमियोंको पूरा करते हैं परंतु उनमें एक स्थिर एकता नहीं आने पाती क्योंकि उनका अहं तो विद्यमान ही रहता है जो अपने-आपको दूसरेसे श्रेष्ठ मानकर ही नहीं बैठ जाता अपितु दूसरेको खाकर हजम कर लेनेकी फिक्रमें रहता है। सचमुच एकता वह नहीं है जिसमें एक दूसरेको खाकर हजम कर लिया जाय बल्कि प्रत्येक दूसरेमें मिलकर दूसरेके समान हो जाय। प्रेमका उच्चादर्श यही है कि एक दूसरेको अधिकारमें न कर ले अपितु दोनों ही एक-दूसरेके साथ एक हो जायं—

मन तू शुदम, तू मन शुदी
मन तन शुदम, तू जां शुदी;
ताकस न गोयद बाद अजीं
मन दीगरम तू दीगरी

(मैं तू हो जाऊं और तू मैं हो जा, मैं शरीर बन जाऊं तू प्राण बन जा। फिर कोई यह न कहने पाये कि तू और है मैं और हूं) परंतु संघर्षके द्वारा इस प्रकारकी एकतातक नहीं पहुंचा जा सकता। संघर्ष तो दो अहंभावोंमें एक कामचलाऊ समझौतेकी ओर ले जाता है, विरोधी मांगोंकी अनुकूलता पैदा करता है। लेकिन आगे चलकर वह वास्तविक एकताके प्रयत्नोंको संभव बनाता है।

व्यक्ति और समुदायके बीच सदा ही संघर्ष चलता रहता है। समुदायके रूप बदलते रहते हैं पर मूल भावना वही बनी रहती है। पहले यह कुटुम्ब या फिर जाति या ग्राम और नगर बना अब श्रेणी, वर्ग और राष्ट्र है, कल शायद मानवजाति हो जाय। संघर्षका रूप वहीका वही बना रहता है; व्यक्ति अपनी स्वाधीनता रखना चाहता है, उन्नति करना चाहता है और चाहता है पूर्ण बनना, दूसरी ओर समुदाय या राज्य व्यक्तिकी प्रत्येक क्रियापर पूरी तरह अधिकार करना चाहता है, अपने-आप पूर्ण रूपसे विकसित होकर व्यक्तिको केवल एक बड़ी मशीनका कील-कांटा बना देना चाहता है। यह संघर्ष अपने बदलते हुए रूपोंमें सभ्यताके आरंभसे चला आ रहा है और अभी न जाने कबतक चलेगा।

यदि हम इतिहास और समाजशास्त्रको प्रामाणिक मानें और उनके द्वारा प्राप्त किये गये तथ्योंको ठीक समझें तो हमें मानना होगा कि मनुष्य पहले एक सामाजिक प्राणी था, उसकी सभ्यता या यूं कहें कि उसका जीवन समुदायसे ही शुरू हुआ था और व्यक्ति पूरी तरह उस समुदायका गुलाम होता था। उस समय जीवन-रक्षा, भोजन-प्राप्ति और प्रजनन यही तीन मुख्य कार्य थे और इन तीनोंके लिये समाज या समुदाय उत्तरदायी था। व्यक्ति समाजकी इन आवश्यकताओंको पूरा करनेका एक साधनमात्र था। उस समय यदि उन्नति होती तो समाजकी होती और आत्मख्यापन होता तो समुदायका। यह प्रवृत्ति समयकी आवश्यकताके कारण उत्पन्न हुई थी। आदिमें एकरूपता ही थी, विविधता और व्यक्तित्व, बादकी चीजें हैं। जड़ पदार्थमें एकरूपता दिखायी देती है, जैसे-जैसे जीवन प्रगति करता जाता है वैसे-वैसे उसमें विविधता आती है और पीछे चलकर प्राण और मनके विकासके साथ व्यक्तित्व और फिर व्यक्तिकी स्वतंत्रताका जन्म होता है।

लेकिन इतिहासके अतिरिक्त एक प्राचीन परंपरा भी तो है जिसके अनुसार इस सामाजिक अवस्थासे भी पहले स्वतंत्र व्यक्तिका अस्तित्व था। विज्ञानवाले इसे माननेके लिये तैयार नहीं हैं, उनका कहना है कि यदि सामाजिक अवस्थासे पहले कोई अवस्था रही भी होगी तो वह समाज-विरोधी

हिंसक पशुओंकी न्याईं जीवन होगा। परंतु परंपराके अनुसार वह स्वर्णयुग था जब मनुष्य समाजके बंधनोंके बिना भी सुसभ्य और सामाजिक व्यक्ति था। वह अपने अंदर ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार रहता था। उसे दूसरोंको पीड़ा देनेकी जरूरत नहीं थी और इसी प्रकार दूसरोंका भय भी न था। शायद पीछे चलकर जो यूटोपियाकी कल्पना की गयी उसका आधार उस कालका असामाजिक मानव ही था। हो सकता है कि मानव-सस्कृति एक रेखामें नहीं बल्कि एक चक्रमें चलती हो और एक समय ऐसा चक्र भी रहा हो जब सच्ची अराजकताका बोलबाला था; जब राजा, संसद, मंत्री, पुलिस, थानेदारका डण्डा अनुपस्थित रहे हों और उनकी जगह मानव यथार्थ जीवन, यथार्थ चिंतन और यथार्थ कर्मके आंतरिक नियमोंके द्वारा एक-दूसरेसे संबंध रखता हो। शायद तब मनुष्यको छल-फरेब, धोखा-धड़ी, घूंस और बलात्कारके चक्करमें न पड़ना पड़ता हो। और यह भी हो सकता है कि हमारी पहली अवस्था पशुओंकी तरह उदार और परिवर्तनशील समुदायकी तरह सहज और स्वाभाविक थी और अंतमें आदर्श अवस्था भी उदार और परिवर्तनशील होगी, पर होगी सचेतन और सहज अंतर्ज्ञानसे युक्त। अगर दूसरे शब्दोंमें कहें तो कह सकते हैं कि हम पशुओंके समुदायसे चलकर देवताओंके समाजकी अवस्थामें जा पहुंचेंगे। शायद वह चक्करदार रास्ता पहले तो प्रकृतिकी व्यक्त करनेवाली सहज सरल एकरूपतामेंसे वह अवस्था निकाल लाये ज़ो भगवान्को प्रकट करनेवाली, उन्हें यहांपर अभिव्यक्त करनेवाली स्वयंसिद्ध एकताकी ओर ले जाती है।

खैर, इतिहास और समाजशास्त्र हमें न्यूनाधिक रूपसे संगठित समाजके अंदर व्यक्तिका परिचय कराते हैं। इन संगठनों या समुदायोंके अंदर हम दो प्रकारकी वृत्तियां देखते हैं; पहली वह जिसके उदाहरणस्वरूप प्राचीन स्पार्टा या अर्वाचीन तानाशाही राज हैं; ये हमेशा व्यक्तिकी बलि देकर भी राज्योंको बढ़ाना चाहते हैं। दूसरी ओर दूसरी शक्ति कहती है राज्य है तो महान्, पर व्यक्तिका भी महत्त्व है। जहांतक राज्यके कामोंमें बाधा न आये व्यक्तिको शक्ति, महत्ता और सम्मान देना चाहिये। प्राचीन एथेंस और अर्वाचीन फ्रांस इस दलके प्रतिनिधि हैं। इन दोके अतिरिक्त एक तीसरा दल भी है जो कहता है कि राज्य व्यक्तिकी स्वाधीनता, उसके स्वमान और उसकी सफल मानवताकी रक्षा करनेके लिये हैं। व्यक्ति मुख्य है और राज्य गौण, उसका कहना है कि व्यक्तिकी शक्ति, सामर्थ्य और स्वाधीनता सुरक्षित रहें इसीमें राज्य सच्चा बल पा सकता है। इस विचारका प्रसार किया है इंगलैंडने। ऐसे इंगलैंडने जो इस भावनाको लेकर चला तो विधिने उसे अतुल विस्तार और सौभाग्य प्रदान किया, उसे स्वतंत्र, समृद्ध और शक्तिशाली बनाया। पर मानवजातिके स्वभावगत दोषोंने एक और विचार लेकर उसीपर एकांगी रूपसे पूरा जोर देनेकी आदत – जो अविद्याका कारण, एक लक्षण है – के कारण उसे पूरी तरह विकसित नहीं कर पाया और हमने देखा कि राज्य या समूहकी भावनाने वहां भी घर कर लिया –– अन्य सभ्य कहानेवाले राज्योंकी तरह और वहां भी जर्मनीके द्वारा चलाये हुए ‘राज्यके अनुशासन’ और ‘कुशल संगठन’ की ओर कदम बढ़ने लगा। यहां प्रश्न उठता है कि क्या यह आवश्यक था, क्या सजग बुद्धिसे आलोकित और साहसपूर्ण विश्वासके साथ वह उदार प्रणाली व्यक्तिकी महानताको सुरक्षित रखते हुए जातिको अक्षुण्ण न रख सकती थी?

सभी राज्य अपने-आपको व्यक्तिपर दमन-चक्र चलानेका खुला लाइसेंस दे देते हैं। राज्यका स्वरूप इसमें कुछ खास भेद नहीं डालता। एक स्वेच्छाचारी राजा जैसे सारी प्रजापर अपनी इच्छाको लादता है उसी प्रकार बहुमतद्वारा चुना हुआ राज्य भी आत्मसंमोहन करके अपने ऊपर ही अत्याचार करता है। दोनों ही एक थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। जब एक व्यक्तिकी ओरसे आवाज उठती है – राज्य, मैं ही तो राज्य हूं – तो वह झूठी होते हुए भी एक सत्यके ऊपर आधार रखती है। सत्य यह है कि व्यक्ति राज्यकी ही आत्म-अभिव्यक्ति है। इसके द्वारा राज्य अपने अंतर्गत व्यक्तियोंकी स्वतंत्र

इच्छा, प्रक्रिया, शक्ति और प्रतिष्ठा आदिको अपने अधीन करनेका विशेष प्रयत्न करता है। असत्य इस मान्यतामें है कि राज्य अपने घड़नेवाले व्यक्तियोंसे बड़ा है, निर्दोष है और मानवजातिके उच्चतम हितमें सर्वश्रेष्ठ वही है।

आज समस्त संसारमें यही विचार फैला हुआ है कि राज्य व्यक्तिसे बढ़कर है। व्यक्तिको अपना सब कुछ राज्यके लिये बलिदान कर देना चाहिये। वह जीवित भी रहे तो अपने लिये नहीं, समष्टि, समुदाय और समाजके लिये। हम सब ओर यही मनोवृत्ति देखते हैं कि महत्त्वपूर्ण संस्थाओंका संचालन राज्यके हाथोंमें होना चाहिये। सबके भलेके लिये, मनुष्यमात्रकी उन्नतिके लिये राज्यका संगठन ज्यादा सुदृढ़ और कार्यक्षम होना चाहिये। राज्य व्यक्तिकी बुद्धि, योग्यता, भाव, विचार, आर्थिक व्यवस्था आदि सभीका राष्ट्रीयकरण करनेमें लगे हैं। कहीं जरा कम और कहीं जरा अधिक पर सभी जगह राज्य बड़े वेगसे अपने हाथमें पूरा नियंत्रण और पूरी शक्ति ले रहा है, और जो उसके मार्गमें आये उसे हटाकर रास्ता साफ कर रहा है। प्रायः सभी देश अपने-आपको 'समाजवादी' कहनेमें गौरव अनुभव करते हैं। शब्दोंमें अंतर है, भावमें भी अंतर है पर दिशा एक ही है – राज्यके हाथमें अधिकाधिक शक्ति। यदि हम व्यक्ति और समाजके सच्चे अर्थ जानना चाहें और उनकी ठीक-ठीक सीमाएं निर्धारित करना चाहें जिससे कि हम फिरसे भ्रमके एक और चक्करमें न जा गिरें तो हमें गंभीरतापूर्वक शोध करनी होगी और शब्दजालमें पड़े बिना अधिकारों और सिद्धांतोंको एक नया रूप देना होगा जो सत्यके प्रकाशमें ही पनप सकें।

—श्रीअरविंदकृत 'मानव एकताका आदर्श' के आधारपर

* * *

शामे गम़ लेकिन खबर देती है सुबहे ईदकी
जुल्मते शबमें नजर आयी किरन उम्मीदकी॥

(दुःखकी शाम ईदके सवेरेका समाचार देती है। रातके अंधेरेमें
भी आशाकिरण दिखायी दे गयी।)

—इकबाल

श्रीअरविंद कहां हैं ?

श्रीमांके उत्तर

"मां, मैं प्रभु.....अर्थात् श्रीअरविंदके विषयमें जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूं।"

श्रीअरविंद भगवान्के एक स्थायी अवतार (जैसे श्रीकृष्ण) हैं।

"क्या मैं कभी उन्हें देख सकती हूं?"

निश्चय ही देख सकती हो यदि तुम अपनी रातकी क्रियाओंको याद रख सको।

"मैं चाहती हूं कि संसारके उस आश्चर्यको देख पाती जहां हम रातके समय जाते हैं।"

मैंने तुम्हें वहां कई बार देखा है। तुम वहां जाती हो पर तुम्हें याद नहीं रहता।

"पर मैं उन्हें देख नहीं पाती।"

एक दिन तुम भगवान्को देख भी सकती हो पर उनका कोई निश्चित आकार-विशेष नहीं है—सभी संभवनीय आकार उनके हैं और वह सभी आकारोंके **परे** भी हैं.......।

यही कारण है कि वह पृथ्वीपर **अपने अवतार** भेजते हैं जिससे कि मनुष्य अधिक आसानीसे उनसे मिल सकें, उन्हें देख सकें और उनके साथ संपर्क स्थापित कर सकें।

परंतु वह हम सबके साथ सदा रहते हैं और हम सब उनके साथ सतत संबंध बनाये रह सकते हैं बशर्ते कि उसके लिये जो आवश्यक हो उसे हम करें और यह आवश्यक बात है महज उनसे **प्रेम करना**।

फरवरी २८

"मां! भगवान् और श्रीअरविंदमें क्या भेद है?"

मलतः कोई भेद नहीं है, परंतु भगवान् **सर्व** हैं और श्रीअरविंद एक **"अंश"**, पर हैं उन परात्पर प्रभुके विषयमें सचेतन जिनका कि वह (श्रीअरविंद) एक अवतार हैं।

"अभी श्रीअरविंद कहां हैं?"

श्रीअरविंद वहीं रहते हैं जहां वे रहना चाहते हैं; क्योंकि वह निर्बंध हैं। परंतु सूक्ष्म-भौतिक स्तरमें — (जो क्षेत्र पृथ्वीके सबसे निकट है — भौतिक स्तर है) उनका एक स्थायी निवास-स्थान है। जो लोग उन्हें देखना चाहते हैं वे वहां जाकर उन्हें देख सकते हैं।

"उनका रूप कैसा है ?"

वहां सूक्ष्म-भौतिक लोकमें, उनका आकार वैसा ही है जैसा कि पृथ्वीपर था, पर उसके साथ है अमरत्वकी महामहिम शांति।

"सूक्ष्म भौतिक जगत् किस प्रकारका है ?"

यह सूक्ष्म-भौतिक (या सच्चा भौतिक) एक ऐसा जगत् है जहां वस्तुएं लगभग उसी रूपमें हैं और घटित होती हैं जिस रूपमें वे यहां, भौतिकमें हैं और घटित होती हैं पर एक ऐसे सामंजस्य, सौंदर्य और सत्यके साथ जो अभी यहां पृथ्वीपर नहीं हैं।

"मां ! मैं तुमको प्यार करूं, भगवान्को प्यार करूं या श्रीअरविंदको प्यार करूं ? मुझे किसको प्यार करना चाहिये ?"

जितना तुमसे हो सके तुम उतना प्यार करो, प्यार करो और प्यार करो — भगवानको, श्रीअरविंदको और मुझको प्यार करो -- इस प्रेमका कोई भी रूप व्यर्थ नहीं जाता !

मार्च १

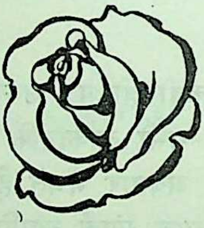

"श्रद्धाकी आंख ज्ञानकी आंखके साथ एक नहीं होती; -- ज्ञान जो कुछ स्पष्ट और शुद्ध रूपमें देखता है उसका श्रद्धा बहुत कुछ अनुमान ही करती है; परंतु प्रधान बातके विषयमें श्रद्धा और ज्ञान एक होते हैं और प्रेमीके ज्ञानको ऋषिका ज्ञान पुष्ट करता और उसका समर्थन करता है। श्रद्धा-विश्वास भगवान्के लिये युद्ध करता है जब कि ज्ञान सिद्धिके लिये प्रतीक्षा करता रहता है, और जबतक ज्ञान नहीं हो जाता तबतक श्रद्धा-विश्वास आवश्यक होता है। क्योंकि अदम्य श्रद्धा या अंतःप्रेरित ज्ञानके बिना कोई महान् उद्देश्य विजयी नहीं हो सकता।"

—श्रीअरविंद

मानव-मन

शिक्षाका सच्चा आधार है मानव-मनका अध्ययन -- चाहे प्रश्न बालकका हो या किशोर या प्रौढ़का। जो शिक्षापद्धति पुस्तकीय ज्ञान पूर्ण रूपसे देनेके सिद्धांतोंपर निर्मित हुई है और अध्ययनके साधन-रूप मनके अध्ययनकी उपेक्षा करती है उसके विषयमें अधिक संभावना यही है कि वह मनुष्यके बौद्धिक विकासमें बाधा पहुंचायेगी और उसे खंडित करेगी, वह कभी मनुष्यमें पूर्ण मन और संपूर्ण सुसज्जित मनका निर्माण नहीं कर सकती। एक चित्रकार या मूर्त्तिकार मृत वस्तुओंको लेकर कार्य करता है पर एक शिक्षा-शास्त्रीको, उसके विपरीत, एक अनंतगुना सूक्ष्म और संवेदनशील सजीव वस्तुको लेकर काम करना पड़ता है। वह मानवरूपी काठ या पत्थरको लेकर किसी शैक्षणिक कलाकीर्त्तिकी रचना नहीं करता; उसे तो मनके महामायावी पदार्थको लेकर काम करना होता है और क्षणभंगुर मानवशरीरद्वारा आरोपित सीमाओंका आदर करना होता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यूरोपकी जो वर्तमान शिक्षापद्धति है वह प्राचीन कालकी बहुत-सी पद्धतियोंसे बहुत अधिक उन्नत है, पर उसके दोष भी सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं। यह पद्धति मानवीय मनोविज्ञानके एक अधूरे ज्ञानपर आधारित है। यूरोपमें इसके सर्वनाशी परिणामोंसे जो विद्यार्थी बचे हुए हैं उसका कारण बस यह है कि साधारण छात्र इसकी प्रक्रियाओंमेंसे गुजरना अस्वीकार कर देता है, उसे उतना ही पढ़नेकी आदत होती है जितना पढ़कर वह या तो दडंसे बच जाता है अथवा तात्कालिक परीक्षा पास कर लेता है, इसके अतिरिक्त वहांका छात्र अपने सक्रिय अभ्यासोंमें तथा कठोर शारीरिक व्यायामोंमें संलग्न रहता है। परंतु भारतमें इस पद्धतिके जो सर्वनाशी प्रभाव छात्रके शरीर, मन और चरित्रपर पड़ते हैं वे खूब प्रत्यक्ष हैं। इसलिये हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धतिकी प्रथम समस्या यह है कि यूरोपकी तरह ही अपने-अपने छात्रोंको व्यापक पर कहीं अधिक पूर्ण रूपमें शिक्षा दें पर वे अत्यधिक परिश्रम और रट्टूपनकी बुराइयोंसे बचे रहें। ऐसा करना केवल तभी संभव होगा जब कि हम ज्ञानके यंत्रोंका अध्ययन करेंगे और एक ऐसी शिक्षा-पद्धति ढूंढ़ निकालेंगे जो स्वाभाविक, सहज और फलप्रद होगी। सच पूछा जाय तो ज्ञानके इन यंत्रोंको जब यथासंभव अधिकसे अधिक शक्तिशाली और तीक्ष्ण बनाया जायगा केवल तभी आधुनिक परिस्थितियोंके लिये आवश्यक अत्यधिक कार्य करनेकी योग्यता उनमें आ सकती है। बिलकुल सरल और सीधे तरीकोंसे मनको पेशियोंको पूरी तरह सुशिक्षित करना होगा; तभी बौद्धिक शक्तिकी महान् करामातोंकी मांग उनसे की जा सकती है, उससे पहले नहीं।

सच्ची शिक्षाका पहला सिद्धांत यह है कि कुछ भी सिखाया-पढ़ाया नहीं जा सकता। शिक्षक कोई सिखानेवाला या काम करानेवाला अध्यक्ष नहीं है। वह तो बस एक सहायक और पथप्रदर्शक है। उसका कार्य संकेत भर देना है, उसे कुछ भी छात्रपर लादना नहीं है। वह वास्तवमें छात्रके मनको प्रशिक्षित नहीं करता, वह केवल यह दिखा देता है कि किस तरह छात्र अपने ज्ञानके यंत्रोंको पूर्ण बना सकता है और उस क्रियामें वह छात्रको सहायता करता और उत्साहित करता है। वह छात्रको ज्ञान नहीं देता, वह यह दिखा देता है कि छात्र स्वयं ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है। छात्रके अंदर जो ज्ञान विद्यमान है उसे वह बाहर नहीं निकाल लाता; बल्कि वह यह बता देता है कि वह ज्ञान कहांपर है और किस तरह उसे ऊपर बाहरी सहतपर ले आनेका अभ्यास डाला जा सकता है। इस विषयमें जो लोग यह मतभेद प्रकट करते है कि इस सिद्धांतका प्रयोग किशोर और प्रौढ़ शिक्षाके विषयमें तो किया जा सकता है पर बालककी शिक्षामें नहीं किया जा सकता, यह एक पुराणपंथी मत है और बुद्धिसंगत नहीं है। बालक हो या पूर्ण मनुष्य, लड़का हो या लड़की,

सबके लिये अच्छी शिक्षाका यथार्थ सिद्धांत केवल एक ही है। उम्रका अंतर बस आवश्यक साहाय्य और पथप्रदशनकी मात्राको ही घटा या बढ़ा सकता है; यह उसके स्वरूपमें कोई अंतर नहीं ला सकता।

दूसरा सिद्धांत यह है कि मनके विकासके विषयमें मनकी निजी राय भी अवश्य लेनी चाहिये। माता-पिता या अध्यापककी इच्छाके अनुकूल किसी विशेष आकारमें बालकको ठोक-पीटकर ढाल लेनेका जो ख्याल है यह बर्बरतापूर्ण और अज्ञानभरा कुसंस्कार है। वास्तवमें छात्रको ही अपने निजी स्वभावके अनुकूल बढ़नेके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। यदि माता-पिता पहलेसे ही यह निश्चित कर लें कि उनके बच्चेको अमुक विशेषताओं, क्षमताओं, भावनाओं, सद्गुणोंको विकसित करना चाहिये अथवा किसी पूर्वनिर्णीत जीवनके लिये तैयार होना चाहिये तो उनके लियं इससे बड़ी दूसरी कोई भूल नहीं हो सकती। किसी प्रकृतिको अपना निजी धर्म छोड़नेके लिये बाध्य करना उसे स्थायी रूपसे हानि पहुंचाना है, उसके विकासको क्षुण्ण और उसकी पूर्णताको विकृत करना है। यह मानवात्माके ऊपर एक स्वार्थपूर्ण अत्याचार है और राष्ट्रको आघात पहुंचाना है; क्योंकि मनुष्य उसे (राष्ट्रको) जो सबसे उत्तम वस्तु दे सकता था उससे वह (राष्ट्र) वंचित हो जाता है और उसके बदले एक ऐसी चीज स्वीकार करनेको बाध्य होता है जो अपूर्ण और कृत्रिम होती है, दूसरे दर्जेकी, दिखाऊ और सामान्य होती है। प्रत्येक व्यक्तिके अंदर एक दिव्य वस्तु है, उसकी एक निजी वस्तु है, परिपूर्णता और शक्तिमत्ताकी एक संभावना है,—भले ही चाहे जितने भी छोटे दायरेकी क्यों न हो—जिसे स्वीकार करने या अस्वीकार कर देनेका सुयोग भगवान्ने उसे दिया है। बस मुख्य कार्य है उसे खोज निकालना, उसे विकसित करना और उसका उपयोग करना। शिक्षाका प्रधान उद्देश्य होना चाहिये विकास करनेवाली आत्माको अपने अंदरकी सबसे उत्तम चीजको बाहर निकाल लाने तथा एक महान् उपयोगके लिये पूर्ण बनानेमें सहायता करना।

शिक्षाका तीसरा सिद्धांत है समीपकी वस्तुसे दूरकी वस्तुपर कार्य करना, वर्तमानकी वस्तुसे भविष्यकी वस्तुपर कार्य करना। मनुष्यके आत्माके अतीतके अतिरिक्त लगभग सर्वदा ही उसके स्वभावका आधार होता है उसकी वंशपरंपरा, उसके चारों ओरका वातावरण, उसकी राष्ट्रीयता, उसका देश, वह मिट्टी जिससे वह पोषण पाता है, वह वायु जिसमें वह सांस लेता है, उसकी दृष्टि, उसकी ध्वनि, उसकी आदतें जिनका वह अभ्यस्त होता है। ये चीजें चूंकि अनजानमें उसका निर्माण करती हैं इसलिये वे कम शक्तिशाली नहीं होतीं और इसलिये हमें इन्हींसे आरंभ करना चाहिये। हमें स्वभावको जड़-मूलसे उस पृथ्वीसे नहीं उखाड़ लेना चाहिये जिसमें कि वह पनपना है, अथवा जिस जीवनमें मनको स्थूल रूपमें विचरण करना है उससे विजातीय किसी जीवनकी कल्पनाओं और भावनाओंसे उसको घेर नहीं देना चाहिये। यदि कोई चीज बाहरसे ले ही आनी हो तो वह मनके सामने रखभर देनी चाहिये, उसे उसपर लादना नहीं चाहिये। मनुष्यके सच्चे विकासकी शर्त है स्वतंत्रता और स्वाभाविक रूपसे बढ़ना। संसारमें ऐसी आत्माएं होती हैं जो स्वभावतः ही अपने परिपार्श्वके विरुद्ध विद्रोह करती हैं और ऐसा लगता है मानो वे दूसरे युग और देशकी हों। ऐसी आत्माओंको अपनी रुझानके अनुसार चलनेके लिये स्वतंत्र छोड़ दो; परंतु अधिकांश आत्माएं जब किसी विदेशी आकारमें कृत्रिम रूपसे ढाली जाती हैं तो वे निर्जीव, खोखली और बनावटी हो जाती हैं। यह भगवान्की ही व्यवस्था है कि वे एक विशेष राष्ट्र, युग, समाजसे संबंध रखें और उन्हें भूतकालके संतान, वर्तमानके अधिकारी और भविष्यके स्रष्टा होना चाहिये। भूतकाल हमारा आधार है, वर्तमान हमारा उपादान है तथा भविष्य हमारा उद्देश्य और शिखर है। प्रत्येकको। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धतिके अंदर अपना समुचित और स्वाभाविक स्थान प्राप्त होना चाहिये।

—श्रीअरविंद

मैं तो तेरे ही रंग राती

मैं तो तेरे ही रंग राती।
चाहे जितना कोई नीचे फिर फिर क्यों न झुकाये,
झपके और कंपे बिन तममें अपना शीश उठाये,
नीवरतामें इकटक जलती मैं दीपककी बाती।

बनसे, घाटीसे, कुंजोंसे सतत बिना विलमाये,
जीवनके सब बुरे-भलेको अपने कंठ लगाये,
पुष्प-गंध-सम भूसे उठकर ऊपर ऊपर जाती।

तर्क-वितर्कहीन बालक-सी सब अर्पित करवाये,
चिंतामुक्त बनी-सी चरणोंपर सब कुछ अरघाये,
तेरे ही इंगितपर पद-गति चलती है पतियाती।

जनम सके बस तेरी इच्छा भूके अंतर-मनमें,
प्रेम हो सके विकसित तेरा जगतीके उपवनमें,
सब कुछ बटोर आती तुझमें सरितासम उमगाती।

एक शांति अब उतर रही है जल, थल और गगनमें,
इक प्रकाश फूटा पड़ता है मिट्टीके कन-कनमें,
इन्द्रिय-सीमाएं अनन्तताको हैं छू छू जातीं।

—विद्यावती 'कोकिल'

[श्रीमाताजीकी पुस्तक 'प्रार्थना और ध्यान'—अंग्रेजी—से अनूदित]

श्रीअरविंदाश्रम

—श्री रवीन्द्र

श्रीअरविंदाश्रम प्रचलित अर्थोंमें एक संस्था नहीं है। यह एक परिवार है। हम कह सकते हैं कि यह हमारे गुरुका कुल है। श्रीअरविंद ४ अप्रैल १९१० को अपने मुट्ठीभर साथियोंको लेकर पांडिचेरी आये थे। उनके साथ कुछ युवक थे जो श्रीअरविंदके सहवाससे लाभ उठाना चाहते थे अथवा उनकी सेवा करनेके इच्छुक थे। उन दिनों यहां तरह-तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। 'जो घर फूंके आपना सो चले हमारे संग' की बात थी। १९१४ की २९ मार्चको श्रीमाताजीने यहां पहली बार पदार्पण किया और श्रीअरविंदसे भेंट की। दोनोंने एक-दूसरेको पहचाना और भावी कार्यक्रम निश्चित हो गया। पर कई बाधाओंके कारण माताजीको एक बार जाना पड़ा और वे दूसरी बार २४ अप्रैल १९२० को यहां आयीं। साधनाका कार्य तेज हो गया और १९२६ की २४ नवम्बरको श्रीअरविंद और माताजीने सिद्धि प्राप्त की। उस दिनसे श्रीअरविंदने लोगोंसे मिलना-जुलना छोड़ दिया और इस नीड़की सारी व्यवस्था माताजीके हाथोंमें आयी। हम कह सकते हैं कि इसी दिनसे श्रीअरविंदाश्रमके वर्तमान रूपका आरंभ हुआ।

लोग घर-बार छोड़कर भगवान्के मार्गपर चलनेके लिये, अपनी नौकाएं जलाकर, मंझधारमें कूदने लगे। माताजीने साक्षात् महालक्ष्मी और अन्नपूर्णाका रूप धारण किया और सबकी देखभाल करने लगीं। लोग एक बार दर्शनके लिये आते और फिर यहींके हो जाते। माताजी उनकी सब आवश्यकताएं पूरी करती थीं ताकि वे पूरी तरह निश्चित होकर भगवान्के काममें लग सकें। यह क्रम चलता जा रहा है और अब यहां बाल-वृद्ध सब मिलकार १४०० के लगभग व्यक्ति हैं।

श्रीअरविंदाश्रममें प्रविष्ट होनेके लिये कोई नियम नहीं है। यहांपर उद्दालक, आरुणि अथवा उपमन्यु आदिकी तरह कड़ी परीक्षाओंमेंसे उत्तीर्ण नहीं होना पड़ता। जो श्रीअरविंदको अपना गुरु मानते हों, जो माताजीके बालक बनना चाहते हों, जिनके अंदर कुछ आग हो वे श्रीअरविंदके परिवारके सदस्य बन सकते हैं — 'One who chooses the Infinite is chosen by the Infinite आप अपने मनमें एक बार संकल्प कर लीजिये 'and the heavens reject not'. 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'। परंतु यह तो आरंभ है। साधकको अपना सारा जीवन, अपनी प्रत्येक क्रिया भगवान्‌को समर्पित करनी होती है। वह खाये तो प्राणाग्निहोत्र हो, वह सोये तो उसकी चेतना जागरूक रहे। उसकी प्रत्येक क्रिया, उसका प्रत्येक भाव अंतरात्माको प्रतिबिम्बित करता रहे। उसे तबतक अपना प्रयास करते रहना पड़ता है जबतक उसकी सारी चेतना अंतरात्माकी चेतना न बन जाये। वह पग-पगपर सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करता रहे। परंतु यह सब सरल नहीं है।

'पराञ्च खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् परां पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानमैच्छत् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।'

श्रीअरविंद योगमें पुरानी परिपाटियोंके अनुसार जीवनका परित्याग करके मोक्ष या अपवर्ग पाना अथवा आवागमनसे पीछा छुड़ाना हमारा लक्ष्य नहीं है। पूर्णयोगके लक्ष्यके बारेमें श्रीअरविंदने कहा है, "हमें अब कौनसी नयी वस्तु प्राप्त करनी है? प्रेम — क्योंकि अभीतक तो हमने केवल द्वेष और आत्मसंतोष ही पाया है। ज्ञान — क्योंकि अभीतक तो हमें केवल स्खलन, अवलोकन और विचार-

शक्ति ही प्राप्त हुई है। आनन्द —— क्योंकि हम अभीतक सुख, दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं। शक्ति —— क्योंकि अभीतक तो निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है। जीवन —— अभीतक हमने जन्म, वृद्धि, मरण ही तो पाया है, और हमें प्राप्त करना है ऐक्य क्योंकि अभीतक युद्ध और संघकी ही उपलब्धि हुई है न! एक शब्दमें कहें तो हमें भगवान्‌को पाना है और अपने-आपको उसके दिव्य स्वरूपकी प्रतिमाके रूपमें फिरसे गढ़ना है।"

हम कह सकते हैं कि यह आश्रम उपर्युक्त लक्ष्यको सामने रखकर एक नया जीवन गढ़नेकी प्रयोगशाला है। जैसे वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें भांति-भांतिके द्रव्य इकट्ठे करते हैं उसी तरह वैज्ञानिक माताजी और श्रीअरविंदने भी अपने आश्रममें तरह-तरहके लोग इकट्ठे किये हैं। बाहरसे आनेवाले हर प्रकारके आदमी यहांपर अपने वर्गके लोगोंको पायेंगे। यहां सोना भी मिल सकता है और पत्थर भी — यह सब खोजनेवालेकी दृष्टिपर निर्भर है। परंतु वैज्ञानिकको अपनी सभी वस्तुएं एक-सी प्रिय होती हैं और आवश्यक लगती हैं। जो काम कार्बनसे हो सकता है उस जगह सोना किस कामका? इसी तरह जिन्होंने समस्त मानव-जातिको बदलनेका बीड़ा उठाया है उन्हें अपने-आप यहां इस कीचड़में धंसना ही पड़ता है। केवल सात्विक लोगोंको अपने साथ लेकर इस महान् कार्यकी पूर्ति करना संभव नहीं है।

परंतु अभीप्सा करनेवाले हरएक व्यक्तिको घर-बार छोड़कर यहां आ बैठनेके लिये नहीं कहा जाता। ऐसा कोई गज नहीं है जिससे मापकर कह दिया जाय कि अमुक व्यक्ति यहां रहने योग्य है और अमुक नहीं। हर एक व्यक्तिकी व्यक्तिगत आवश्यकता, उसकी आंतरिक स्थिति और अन्य परिस्थितियोंको देखकर माताजी यह ठीक करती हैं कि कौन यहां रह सकता है और कौन नहीं। माताजीने कहा है, "जीवनके प्रति घृणासे प्रेरित होकर यहां योग करने नहीं आना चाहिये। जीवनकी कठिनाइयोंसे भागकर भी यहां नहीं आना चाहिये। भागवत प्रेम और भागवत सुरक्षा पानेके लिये भी यहां आनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि यदि तुम्हारी आंतरिक स्थिति ठीक है तो ये चीजें हर जगह बैठे-बिठाये मिल सकती हैं।

"जब व्यक्ति अपने-आपको पूरी तरह भगवान्‌की सेवामें लगा देना चाहे, अपने-आपको भगवान्‌के कामके लिये पूर्णतः न्यौछावर कर देना चाहे; जो अपनी सेवाके बदले भगवान्‌से कुछ न मांगे — शायद अधिकाधिक सेवा और समर्पणके अवसर मांगे जा सकते हैं —— अगर यह हो तो कहा जा सकता है कि तुम यहां रहनेके लिये तैयार हो और तुम्हें यहांके द्वार पूरी तरह खुले हुए मिलेंगे'।

आश्रममें रहनेवालोंके लिये विधि-निषेधकी तालिका नहीं दी जाती। हरएकसे आशा की जाती है कि वह पग-पगपर अपनी अंतरात्माकी पुकार सुनकर उसके अनुसार कार्य करेगा। एक ही काम भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण कर सकता है; जो एकके लिये अमृत है वही दूसरेके लिये विष हो सकता है। यहां हरएक काम भगवान्‌का है और उसीको समर्पित करके किया जाता है। 'इदं न मम' की बात है। काम शरीरके द्वारा की गयी सर्वोत्तम प्रार्थना है। इसलिये कहा गया है, 'Let us work as we pray'. अगर काम समर्पण-भावसे किया गया हो तो, 'न कर्म लिप्यते नरे'; केवल इतना ही नहीं वह ऊपर उठाता है और भगवान्‌की ओर ले जाता है।

आश्रममें पठन-पाठन, उच्च शिक्षा आदिसे लेकर कपड़े धोने और जूते सीनेतकके विभाग हैं और इनका बहुत-सा काम आश्रमवासियोंद्वारा ही किया जाता है; परंतु उनका परिचय देनेके लिये अलग लेखोंकी आवश्यकता होगी।

आश्रममें पं. सातवळेकर

—श्री रवीन्द्र

[सन् १९६० में संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् वेदमूर्ति पं. सातवळेकरजी श्रीमाताजीके दर्शन करने आश्रममें आये थे। उन्होंने आश्रमको बड़ी बारीकीके साथ देखा था। यहां हम उनकी पत्रिका "वैदिक धर्म"मेंसे 'आश्रममें पं. सातवळेकर' शीर्षक लेख उद्धृत कर कर रहे हैं।]

"जिस चीजके लिये मैं पचास-साठ वर्षोंसे प्रार्थना करता आया हूं, आज उसीको यहां मूर्त रूपमें देख रहा हूं। वैदिक युगके बाद इस धरतीपर शायद इस प्रकारका प्रयास पहली बार हो रहा है। यहांकी साधना पूर्ण रूपसे वैदिक साधना है। जिन-जिन चीजोंकी ओर वेदने संकेत किया है वे सब यहांपर प्रतिष्ठा पा रही हैं यह देखकर मेरा मन आनन्द-विभोर हो उठता है।" तिरानवें वर्षके युवक, वेदके प्रकांड पंडित, जिनकी पुस्तकोंसे और जिनके जीवनसे हजारोंने प्रकाश पाया है, ऐसे पंडित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर श्रीअरविंदाश्रमके बारेमें बातें कर रहे थे। पंडितजी जीवनके नानाविध अनुभवोंमेंसे गुजरे हैं। अभी कुछ दिन पहले वे श्रीअरविंद और श्रीमाताजीके चरणोंमें श्रद्धांजलि अर्पित करने यहां आये थे।

पंडितजीका सारा जीवन वेदोंके अध्ययन और प्रचारमें ही लगा है। वे सुनाया करते हैं कि एक विद्वान् सौ वर्षतक वेदका अध्ययन करता रहा; जब उसका अंत समय आया तब इन्द्रने कहा, 'वत्स! मैं तुम्हें और सौ वर्षका आयुष्य देता हूं। बोलो, इन सौ वर्षोंमें क्या करोगे? 'वेदाध्ययन' चटसे जवाब मिल गया, इसमें भी कोई सोचनेकी बात थी भला! इसी प्रकार तीन बार हुआ और तीनों बार उसे वेदाध्ययनके लिये सौ-सौ वर्ष मिलते गये। अंतमें उसने कहा — 'अब मैं वेदका अर्थ कुछ-कुछ समझने लगा हूं।' इसी प्रकार पंडितजी भी कहा करते हैं कि वेदका अर्थ समझनेका प्रयास कर रहा हूं। वेद आखिर कोई मानसिक या बौद्धिक पुस्तक तो है नहीं, यहां तो जैसे श्रीमाताजीने किसी और प्रसंगमें कहा था, " — घोषणा मत करो, अनुभव करो — 'Do not announce, realize' प्राप्त करनेकी बात है। वेदके कुछ मंत्रोंपर श्रीअरविंदने जो टीका की है, उनके अंतरतम रहस्यको साधारण मनुष्यकी भाषामें रखनेका जो प्रयास किया है, उनके गुह्य आध्यात्मिक मोतियोंको सर्वसुलभ बनानेकी जो कोशिश की है उसपर पंडितजी मुग्ध हैं और आजकल श्रीअरविंदकी शैलीका अध्ययन करनेमें लगे हैं। इतने बड़े विद्वानोंमें इतनी नम्रता जरा मुश्किलसे ही दिखायी देगी।

श्रीअरविंदाश्रममें, जात-पांत, ऊंच-नीच, देशी-विदेशी या स्त्री-पुरुषके भावोंको कोई स्थान नहीं मिलता। हो सकता है आप जिसके पास बैठकर भोजन कर रहे हों वह यहां आनेसे पहले एक चमार रहा हो, संभव है कि आपके कमरेमें रहनेवाला बड़ा कट्टर ब्राह्मण रहा हो, संभव है कि आपके सामनेके बगीचेमें सूखे पत्ते तोड़ता हुआ मनुष्य कहींपर बड़ा सेठ रह चुका हो। यहांके लोग एक-दूसरेके बारेमें न तो ये सब बातें जानते ही हैं और न जाननेकी परवाह ही करते हैं— 'जात-पांत पूछे नहिं कोई, हरिको भजे सो हरिको होई।" एक बार स्वयं गांधीजीने कहा था, "मैं छुआछूतकी समस्याको हल करनेके लिये इतना प्रयास कर रहा हूं फिर भी कठिनाइयां कम नहीं होतीं। तुम्हारे आश्रममें माताजीने न जाने क्या कर दिया है कि यह प्रश्न ही नहीं उठता।"

खैर, यह जात-पांत आदिकी बात तो समझमें आ जाती है पर आश्रममें, विद्यालयमें, क्रीडाङ्गण-सभी जगहपर लड़के-लड़कियां बिना किसी भेद-भावके मिलते रहते हैं और सह-शिक्षणसे उत्पन्न होनेवाली समस्याएं यहां समस्याका रूप धारण नहीं करतीं। यह चीज बहुतोंको खटकती है। जिन्हें शहरोंके कालेजोंका अनुभव है वे कुछ आश्चर्यके साथ, कुछ अविश्वासके साथ पूछते हैं यह क्या? योगाश्रममें कामिनी-काञ्चनका बहिष्कार क्यों नहीं? पं. सातवळेकरजीकी मर्मभेदी आंखोंके सामने भी यह चीज आयी। उन्होंने कहा — इस आश्रमकी एक चीज मुझे बहुत ही पसंद आयी, जानते हो क्या? मैंने जरा उत्सुकतासे पूछा, वह कौनसी? पंडितजीने कहा, यहांपर माताजी स्त्री-पुरुषका भेद नहीं करतीं। इसके पीछे मुझे एक बहुत बड़ी चीज दिखायी दे रही है। मुझे लगता है कि माताजी यहांपर शुद्ध आध्यात्मिक समाजकी स्थापना कर रही हैं। वेदमें बताया गया है कि आत्मामें स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी, बाल-वृद्ध आदिके भेद नहीं होते। मुझे दिखायी दे रहा है कि माताजी यहांपर ऐसा समाज बनाना चाहती हैं जहां आत्माका आत्माके साथ मिलन हो, जहां यह सवाल ही न पैदा हो कि वह आत्मा स्त्रीका चोला धारण किये हुए है या पुरुषका। हो सकता है कि छिद्रान्वेषी इसमें कुछ त्रुटियां दिखायें, मैं भी यह नहीं कह रहा कि यह चीज पूर्ण रूपसे सिद्ध हो चुकी है, परंतु प्रयास उसी दिशामें है जिस दिशामें वेदने अंगुलि-निर्देश किया था, उस ओर माताजी सफलता प्राप्त करके रहेंगी।

आश्रममें एक विभाग है जो आश्रमवासियोंकी विभिन्न प्रकारकी आवश्यकताओंको पूरा करता है। तेल, साबुन, कपड़े-लत्ते आदि वस्तुएं वहींसे मिलती हैं। उसका नाम है 'Prosperity' (प्रास्पेरिटी)। पं. सातवेळकरजी उसे देखने गये तो खुशीसे उछल पड़े। बोले, यहां है सच्ची आध्यात्मिकता। वेदमें कहीं भी तथाकथित संन्यास-मार्गका उपदेश नहीं दिया गया। हम हमेशा ऐसी प्रार्थनाएं देखते हैं कि भगवान् हमें घोड़े दें, गौएं दें, समृद्धि दें, बल दें और ओज दें। कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि भगवान् हमें गरीब बना दें, हम भूखे मरें, हमारे पास कपड़े न हों। हम पेड़के नीचे पड़े रहें। पार्थिव तत्त्वका बहिष्कार, समृद्धिका बहिष्कार और जगत्से मुंह मोड़कर परलोकका चिंतन वैदिक चीज नहीं है। वैदिक कालमें जनक जैसे आध्यात्मिक राजा राज्य करते थे, वसिष्ठ जैसे ऋषि राजाके पास रहकर सलाह दिया करते थे। वे संसार छोड़कर जंगलोंमें नहीं भागते थे। ये सब चीजें तो भारतकी अधोगतिके जमानेकी हैं। आज मैं देखता हूं कि माताजी भी तुम लोगोंको क्रियात्मक रूपसे Prosperity का उपदेश दे रही हैं Austerity का नहीं। माताजी पार्थिव जगत्का बहिष्कार नहीं करतीं उसे अध्यात्मके राज्यमें रखना चाहती हैं, उसका भी रूपांतर करना चाहती हैं। जीता-जागता वैदिक युग यहींपर जन्म ले रहा है। यहां किसी भी वस्तुका निरादर नहीं होगा, हरएक चीज अपने सच्चे रूपमें और ठीक स्थानपर रहेगी।

पण्डितजी हमारा क्रीड़ांगन देखने गये। सामान्यतः कोई यह आशा नहीं करेगा कि तिरानवे वर्षका एक पण्डित खेल-कूदमें रस ले सकता है। पर यह पण्डित किसी और ही मिट्टीका बना है। उन्होंने देखा कि लड़कियां लड़कोंके साथ कंधा भिड़ाये कूद-फांद कर रही हैं और सब तरहके खेलोंमें भाग ले रही हैं। पंडितजीने कहा—वैदिक कालके बाद भारतका जो पतन हुआ उसके दो बड़े कारण ये हैं कि भारतवासियोंने इहलोकसे मुंह मोड़कर परलोककी ओर ताकना शुरू किया, परिश्रम करनेकी जगह भाग्यको कोसना शुरू किया और समाजके आधे अंगको, स्त्रियोंको पंगु बना दिया। कैसे खेदकी बात है! जिस देशने स्वयं शक्तिकी स्त्रीके रूपमें कल्पना की, जिस देशने अपने पुराणोंमें देवोंको तो छः और आठसे अधिक भुजाएं नहीं दीं पर देवीके एक सौ आठ भुजाओंके दर्शन किये, उसी देशने स्त्रीका अपमान किया, उसे वेद पढ़नेका अधिकारी भी नहीं छोड़ा और केवल घरकी चारदीवारीमें बंद कर पाचन और प्रजननके काममें लगा दिया। ये दो बहुत बड़े कारण हैं जिनसे

भारतका पतन हुआ। मैं न जाने कबसे यह प्रार्थना कर रहा था कि प्रभो! फिरसे भारतकी नारीका अभ्युत्थान हो, फिरसे वह अपना उचित स्थान पा सके। आजकल समाजमें जो हो रहा है मैं उसे नारीकी प्रगति नहीं मानता। सच्ची प्रगति देखनी हो तो यहां देखो। माताजीने नारीको ऊपर उठानेका बीड़ा उठाया है और मैं फिरसे यही कहूंगा कि, यहां मुझे वैदिक आदर्श चरितार्थ होते दिखायी दे रहे हैं। मुझे मालूम हीं था कि मैं जिन चीजोंके लिये अनवरत प्रार्थना कर रहा था वे धरतीपर प्रगट हो चुकी हैं। सचमुच माताजीकी बड़ी कृपा है।

एक घटना और। पंडितजी माताजीकी एक पुस्तक देख रहे थे। उसमें लिखा था कि मनुष्य वर्षोंकी गिनतीके आधारपर बूढ़ा या जवान नहीं कहला सकता, जो प्रगति करता रहे वही जवान है और जो टिककर बैठ गया वही बूढ़ा है (कुछ ऐसा ही भाव है, शब्द तो इस समय याद नहीं)। पंडितजी बोले कितनी सच्ची बात कही है! वैदिक शास्त्रोंके अनुसार एक सौ सोलह वर्षकी आयुके पहले कोई बूढ़ा नहीं हो सकता। उनके अनुसार लगभग अस्सी वर्षतक तो पूर्ण यौवन काल होना चाहिये। उसके बाद प्रौढ़ावस्था आरंभ होती है और फिर एक सौ सोलह या बीसके बाद वृद्धावस्था आनेका साहस कर सकती है। उससे पहले मृत्यु भी आ जाय तो साधक कह सकता है कि मेरा जीवन यज्ञ है, मैं अभी आहुतियां दे रहा हूं, मुझे मरनेकी फुरसत ही नहीं है और इस उत्तरको सुनकर स्वयं मृत्युको भी उलटे पैरों वापिस जाना पड़ेगा।

पर हां, यह संभव तभी होगा जब सारा जीवन यज्ञमय हो। पंडितजीने बताया कि महाभारतमें केवल भीष्म पितामहको वृद्ध माना गया है और वे एक सौ सत्तरसे ऊपरके थे। इतनी दूरकी बात छोड़ो, अभी कोई बारह-चौदह सौ वर्ष पहले जो चीनी और यूनानी यात्री भारतमें आये थे उन्होंने लिखा है कि एक सौ चालीस वर्षके लोग यहांपर गलियोंमें घूमते हुए मिला करते थे। माताजीने जो कहा है वह पूर्ण रूपसे सत्य है।

आश्रमसे जाकर पण्डितजीने लिखा है कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपना घर छोड़कर प्रवासमें पड़े हैं। तिरानवे वर्षका माताजीका यह शिशु वहां बैठा हुआ मां-मां कर रहा है।

('वैदिक धर्म', फरवरी ६१ से)

* * *

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥

(देवता भी भारतवासियोंकी महिमा गाते हुए कहते हैं) अहा! इन लोगोंने ऐसा क्या पुण्य किया है कि इन्होंने भारतमें भगवान्‌की सेवा करनेके लिये मनुष्य जन्म पाया है। या स्वयं भगवान् ही इनपर प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हम भी तरसते हैं।

—श्रीमद्भागवत

तमिल ऐतिहासिक कथा :

महादानी राजा अधियमान

--श्री षण्मुखम्

प्राचीन कालमें दक्षिण भारतमें तीन महाप्रतापी हिंदू राज्य थे--चेदि, चोल और पाण्डच। यहांके हिंदू राजा बड़े उदार, दानी तथा कलाप्रेमी होते थे। अपने इन्हीं गुणोंके कारण ये राजा अपने नामके साथ-साथ अपने राज्यको भी अमर बना गये हैं। आज हम चेदि राज्यके एक विख्यात कलाप्रेमी राजाका परिचय प्राप्त करेंगे।

चेदि राज्य दक्षिण भारतके पश्चिमी तटपर अर्थात् अरब सागरके किनारे बसा था (आज वही प्रदेश केरलके नामसे प्रसिद्ध है)। उस समय चेदि राज्यकी राजधानी थी तगडूर। उस राज्यमें एक महाप्रतापी राजा राज्य करते थे। उनका नाम था राजा अधियमान।

महाराज अधियमान बड़े शूर-वीर, विवेकशील, नीतिज्ञ और दानी थे। इनके राज्यके लोग बड़े संतुष्ट थे। वे अपने राजाके लिये अपना सर्वस्व दे देनेके लिये सदा तैयार रहते थे। कुशल राज्य-संचालक होनेके साथ-साथ महाराज अधियमान बड़े साहित्य-प्रेमी भी थे। देश-विदेशमें राजाके साहित्यप्रेमकी ख्याति फैली हुई थी। प्रतिदिन अनेक कवि राजदरबारमें एकत्रित होते थे और अपनी अनुपम पदरचना राजाको भेंट करते थे। राजा भी खुले दिलसे उनका आदर करते और दानदक्षिणा देकर विदा करते।

चेदि राज्यमें औवैयार नामक एक सुप्रसिद्ध कवयित्री थीं। उनकी काव्यप्रतिभा सचमुच अद्भुत थी। वह दक्षिणके राज्योंमें भ्रमण करती थीं और सभी राज्योंमें अपने गुणोंका परिचय देकर राजाओंसे मेलजोल करती थीं। इस प्रकार कवयित्री औवैयार समस्त दक्षिण भारतमें जीवनके स्तरको ऊंचा उठाना चाहती थीं। उन्होंने राजा अधियमानके कविताप्रेमके विषयमें सुना तो निश्चय किया कि वहां जाकर अपने काव्यकी श्रेष्ठता प्रमाणित करके कला-प्रेमी राजाको प्रसन्न करेंगी। ऐसा निश्चय कर एक दिन् शुभ घड़ी देखकर कवयित्री औवैयारने अपनी श्रेष्ठ रचनाओंको साथ लिया और राजदर्शनके लिये चल पड़ीं।

राजा अधियमानने भी कवयित्रीकी गुणगाथा सुन रखी थी। उनकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि स्वयं अपने कानोंसे उनकी कविता सुनें। जब उन्होंने कवयित्रीको अपने दरबारमें देखा तो आनन्द-प्रफुल्लित होकर उन्हें सादर बिठाया। राजाने बड़े आग्रह और चावसे उनकी रचनाएं सुनीं। उन्होंने मनमें सोचा — ऐसा अनमोल रत्न हाथसे न जाने देना चाहिये और मन-ही-मन कवयित्रीको राज्यकविका पद देनेका निश्चय कर लिया। जिस समय सभी कवियोंको राजा दान देकर तुष्ट करने लगे तो कवयित्रीको उन्होंने कुछ भी नहीं दिया। राज्यकी यह प्रथा थी कि कविको विदा करते समय ही दान दिया जाता था। राजा तो कवयित्रीको विदा करना ही नहीं चाहते थे, फिर दान-दक्षिणा कैसे देते?

राजाके इस पक्षपातपूर्ण व्यवहारको कवयित्री समझ न सकीं। उन्होंने सोचा, राजा दान न देकर उनका अपमान कर रहे हैं। अतः अपनेको तिरस्कृत जानकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने मनकी वेदना सन्तरीको बतायी और उसी रात चुपचाप राज्यसे बाहर चली गयीं।

दूसरे दिन कवयित्रीको दरबारमें न देख राजा चिन्तित हुए। खोजनेके लिये आदमी भेजा। तब उन्हें उस सन्तरीसे ज्ञात हुआ कि कवयित्री औवैयार अपमानित होकर चली गयी हैं, इस समा-

चारसे राजाको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं उन्हें ढूंढ़ निकालेंगे और क्षमा-प्रार्थना करके उन्हें अपने मनकी बात बता देंगे।

कई दिनोंतक राजा जंगलोंमें घूमते रहे, आसपासके राज्योंमें खोज करवायी, अंतमें एक गांवमें उनकी भेंट कवयित्रीसे हो गयी। महाराजने उनसे क्षमा मांगकर कहा, मेरी यह इच्छा न थी कि कवयित्रीका अपमान किया जाय। मैं तो तुम्हें राजदरबारमें रखना चाहता था। दान न देनेका अर्थ अपमान करना न था, उल्टे मैं तो तुम्हें अधिक महत्त्व दे रहा था।

कवयित्रीको अपनी भूलका ज्ञान हुआ, उन्होंने भी राजासे क्षमा मांगी, क्योंकि इस प्रथाको न जाननेके कारण राजाके संबंधमें उन्होंने बुरी भावना बनायी थी। राजा अनेक अनुनय-विनयके साथ कवयित्रीको अपने राज्यमें ले आये। वहां रहकर उन्होंने बहुतसे सुन्दर पदोंकी रचना की, फिर बहुत-सा दान पाकर वहांसे चली गयीं।

एक दिन राजा अधियमान शिकार खेलनेके लिये जंगलमें गये। शिकार खेलते हुए वे थक गये तो एक वृक्षके नीचे आ बैठे। स्वस्थ होकर चलने लगे तो उनका ध्यान सामनेकी पहाड़ीपर गया। राजाने सोचा, इसपर चढ़कर देखूं ऊपर क्या है? जब राजा पहाड़ीकी चोटीपर पहुंचे तो आश्चर्यसे देखा कि कुछ व्यक्ति एक आंवलेके पेड़-तले इकट्ठे होकर बहस कर रहे हैं। आंवलेके पेड़पर केवल एक ही आंवला लगा है। सभी व्यक्ति अपने-आपको उसे पानेका अधिकारी सिद्ध कर रहे थे, फलतः हाथापाईकी नौबत आ गयी। राजाने उनके झगड़नेका कारण पूछा तो पता चला कि इस पेड़पर १२ वर्षोंमें एक ही फल लगता है पर इसकी खूबी यह है कि इसे जो भी खाता है वह अमर हो जाता है। इसे दैवी प्रसाद कहा जाता है। राजाने बताया कि वे देशके राजा हैं पर राजा होनेके नाते ही वे फल लेना नहीं चाहते। निश्चय यह हुआ कि द्वन्द्वयुद्ध हो, जो उसमें जीते फल उसीको दिया जाय। सभी तैयार हो गये, पर राजाके सामने कोई टिक न सका। अंतमें राजाने विजयी होकर आंवला तोड़ लिया और राज्यमें लौट आये।

राजाने अपने दरबारके लोगोंको वह आश्चर्यजनक आंवला दिखाया और उसके गुण बताये। फल खाकर अमर बननेका लालच सभीको था, पर वे चाहते थे कि राजा स्वयं फल खायें ताकि अमर होकर इसी प्रकार प्रजापालन कर सकें और प्रजा कभी दुःखी न होने पाये।

घूमते-घूमते कवयित्री औवैयार फिर इस राज्यमें आ पहुंचीं। राजाका काव्यप्रेम उन्हें याद था। राज्यमें आकर वे राजासे मिलने चली आयीं। राजा उन्हें देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और आदर-सत्कारके बाद उनके आहारके लिये फल भिजवाये, उन्हीं फलोंमें राजाने उस आंवलेको भी रख दिया। कवयित्रीने स्नान आदि कर राजाके भेजे हुए फल खाये फिर राजदरबारमें चली आयीं। वहां उन्हें ज्ञात हुआ कि फलोंके बीच जो आंवला था वह साधारण नहीं था, वह तो अमरफल था। वह बहुत पछतायीं, उन्होंने राजासे पूछा, इतनी मूल्यवान् वस्तु एक साधारण कवयित्रीको खिलाकर नष्ट क्यों की? फलके वास्तविक अधिकारी स्वयं आप थे। आप उसे खाकर चिरकालतक शांतिका राज्य बनाये रखते।

राजाने यह सुनकर उत्तर दिया — देवी, यदि मैं उसे खाकर अमर बन जाता तो दीर्घकाल रहकर केवल अपने राज्यकी ही उन्नति करता। मेरी उन्नतिका क्षेत्र बहुत ही सीमित है परंतु कविकी शक्ति तो अपरिमित है। साहित्यका क्षेत्र तो राज्यके समान संकीर्ण नहीं है, समस्त तमिल राज्यमें उसकी गति अबाध है। अतः यही सोचकर मैंने आपको फल खिलाया जिससे आपकी मंगलमय अमूल्य कविताओंकी रचना चिरकालतक होती रहे।

यह सुनकर राजदरबारके लोग राजाके त्याग व देशप्रेमको देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए। इन्हीं राजा अधियमानको तमिल साहित्यमें सप्तदानी राजाओंमें आसन दिया गया है। ***

भक्तिभण्डारी बसवेश्वर

—श्री अम्बाशंकर

> "किसके वचनोंके तूफानसे उड़ी हुई धूल गगनमें छाकर प्रकाशपुञ्ज बन गयी? किसका संग पाकर अंग जंगम लिङ्गमय लीला बन गया? जिसके मुंहसे निकले हुए उच्छ्वाससे सारा कर्णाटक वीर वृत्ति पाकर धीर-धर्मी बन गया, उस भक्तिसे बढ़कर महान् और क्या है? कौन कहता है कि बसवेश्वर यहां नहीं है, अनन्तमें लीन हो गया है।"
>
> —अम्बिकातनय वेन्द्रे

बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धके अंतमें एक दिन कल्याण नगरमें जनसागर हिलोरें लेने लगा। चारों ओरसे मानव-सरिताएं आ-आकर उसमें मिलने लगीं। लोग इधरसे, उधरसे, सब तरफसे आते ही जाते थे। कोई भी लौटनेका नाम न लेता था। महामण्डलेश्वर बिज्जलने घोषणा की थी कि एक शिला-लेख प्राप्त हुआ है, कल्याणनगरके पण्डित उसे पढ़नेमें असमर्थ रहे हैं। देशका कोई भी पण्डित उसे पढ़ दे तो उसे मालामाल कर दिया जायगा। आज इसका अंतिम दिन था। राजसभामण्डप, मंत्रिमण्डल प्रखर विद्वानों और देशके माननीय लोगोंसे भरा हुआ था। साधारण जनसमूहका तो कहना ही क्या है? महादण्डनायक बिज्जल सिंहासनपर विराजमान थे। उन्होंने पहले सभी प्रतिष्ठित लोगोंसे विनय की कि वे आयें और शिलालेख पढ़ दें। कई पण्डित एक-एक करके शिलालेखके पास गये परंतु चुपचाप आकर अपने स्थानपर बैठ गये। अब बिज्जलने कहा —— मानवताके इस महासागरमेंसे कोई भी आकर शिलालेख पढ़नेका प्रयास कर सकता है। सबके सब निस्तब्ध खड़े हो गये।

इतनेमें कर्मचारियोंमें कुछ हलचल हुई। सब लोगोंकी आंखें उधर लग गयीं। सौम्य वस्त्राभरणसे सज्जित एक हंसमुख युवक उधरसे बड़े ही सहज भावसे चला आ रहा था मानों कोई देवदूत हो। भावुक,, श्रद्धालु और ज्ञानी उसे देखते ही मुग्ध हो गये। मूर्ख, अज्ञानी और नास्तिक उस सादे, अपरिचित युवकपर टिप्पणी करने लगे। युवकने शिलालेखके आगे खड़े होकर उसका भावार्थ यूं सुनाया, "चालूक्य चक्रवर्ती विक्रमादित्यने अपनी भावी प्रजाओंके कल्याणके लिये अपने सिंहासनके नीचे धन छिपा रखा है।" यह सुनकर सब चकित हो उठे। बिज्जलने उसी समय परीक्षा करनी चाही और सचमुच सिंहासनके नीचेसे बहुत-सा सोना-चांदी निकला। बिज्जलने कहा —— महाराज विक्रमादित्यने यह धन अपनी प्रजाके लिये छोड़ा है इसलिये मैं इसे आप सबके सुपुर्द करता हूं। राजा और अज्ञात युवकका जय-जयकार हो उठा और जनताने उसी युवकको इस धनकी देखभाल करनेके लिये भण्डारनायक बना दिया और बिज्जलने भी उसे मंत्रिपद प्रदान किया। राजसभा बड़े आनंदके साथ समाप्त हुई। हर एकके मनमें यही प्रश्न था कि यह युवक है कौन?

यह अनजाना युवक वही था जिसका नाम आज कर्णाटकके घर-घरमें गूंजता है, जिसके वचनोंका माधुर्य सबके कान, जीवन, हृदय और आत्माके दाहको शीतल करता है, जिसका आदर्श जीवन हमारा पथ-प्रदर्शन करता है, वही जो आगे चलकर भक्तिभंडारी बसवेश्वर कहलाया जिसकी प्रशंसामें बेन्द्रेजीकी पंक्तियां आप पढ़ चुके हैं।

उत्तर कर्णाटकमें एक प्रसिद्ध शहर हैं विजयपुर, जिसे साधारणतः बीजापुर कहते हैं। उस इलाकेमें पांच नदियां बहती हैं परंतु वर्षा बहुत ही कम तथा अनियमित रूपसे होती है, इसलिये यह बहुत गरीब इलाका है। केवल नदियोंके आस-पास ज्वार, गेहूं और कपासकी पैदावार हो जाती है। इस जिलेके वागेवाड़ी नामक छोटेसे नगरमें सन् ११३२ में एक कुलीन ब्राह्मणके घर वसवेश्वरका जन्म हुआ था। यह बालक शिवके वरदानसे हुआ था इसलिये मां-बापने — मादलम्बिका और मादरस — इसे शिवके वाहन नन्दीका नाम 'बसव' दिया। बड़ी विचित्र घटनाओंके साथ बसवके जीवनके आठ वर्ष बीत गये। इतनी छोटी आयुमें उसने काफी अध्ययन कर लिया था और भगवान्की पूजा-अर्चना ही उसका मुख्य काम बन गया था परंतु जब इसके उपनयनका समय आया तो इसने साफ इन्कार कर दिया और घरवालोंके आग्रह करनेपर घर छोड़कर 'कूडल संगम नाथ' की शरणमें आ गया। यह एक बहुत सुन्दर प्रदेश है जहां भलप्रभा और कृष्णा नदियां मिलती हैं। संगमेश्वरका देवालय इस स्थानके प्राकृतिक सौंदर्यको दुगना कर देता है। यहीं मुनिवर जातवेदका आश्रम था। वसवेश्वर यहां रहने लगे। मुनिने इनके व्यक्तित्वको पहचान लिया और इन्हें वेदशास्त्रका अध्ययन कराने लगे। वसवण्णाको कूडल संगमेश्वरके लिये अगाध भक्ति थी। सवेरे ही सवेरे उठकर भौंरे फूलोंको जूठा कर पायें उससे पहले अपने इष्टके लिये फूल चुना करते, आस-पासके पहाड़ी स्थानोंसे सुगंधित बूटियां लाते और धूप-दीप और भजनके साथ संगमनाथकी पूजा करते रहते। इस तरह सात वर्ष बीत गये। पेड़को अपना फल कभी भारी नहीं लगता फिर भी परोपकारके लिये वह पके हुए फलका दान कर देता है। इसी भांति जब बवसण्णा अंदरसे पककर तैयार हो गये संगमनाथने अंदरसे उन्हें कल्याण जानेकी प्रेरणा दी। बसवको अपने प्रभुको छोड़नेके विचारसे बहुत कष्ट हुआ। संगमनाथने सदा साथ रहनेका वचन दिया तो बसव मान गये और मुनिवरसे उसका जिक्र किया। उसी दिन कल्याणके मंत्री बलदेव वहां आ पहुंचे और उन्होंने अपनी पुत्री गंगाम्बिकाके साथ बसवका ब्याह करनेकी बात चलायी। बसव तैयार न हुए पर जब मुनिवरने उन्हें बहुत समझाया और कहा कि तुम्हारे जीवनके विकासके लिये यह आवश्यक है और भगवान्को भी यही इष्ट है तो मान गये। कल्याणनगरमें आकर बसव कुछ दिन अपने ससुरके घर ठहरे और फिर राजा बिज्जलके यहां कारकुन बनकर अपना अलग घर बसाया। अपनी कार्य-निपुणता और ईमानदारीके कारण बसवण्णा शीघ्र ही बिज्जलके प्रिय बन गये। हमारे लेखके प्रारंभमें इन्हीं दिनोंकी घटनाका उल्लेख है। मंत्री बननेके बाद इनका कार्यक्षेत्र बहुत विशाल हो गया। रजसके इस विशाल सागरमें बसवण्णा सत्वके बलपर अपनी जीवन-नौका चलाने लगे। इतना ही नहीं, रजस् और तमस्को भी अपने साथ खींचने लगे। राजनीति और अध्यात्म परस्पर-विरोधी होते हुए भी बसवण्णाके अंदर एक हो गये।

इन्हीं दिनों बसवण्णाके मामाका देहान्त हो गया और उनकी संपत्तिकी देखभालका दायित्व भी इन्हींपर आ पड़ा। राज्यमें भी सारा कार्य इन्हींके मतानुसार चलने लगा। बसवने देखा कि धर्मशास्त्र, स्मृतियां, नीतिग्रंथ आदि सब संस्कृतमें हैं और साधारण जनताके लिये कन्नड़में बहुत कम साहित्य है। धर्म-जिज्ञासाको शांत करनेके लिये लोगोंको पण्डितोंकी शरण लेनी पड़ती थी, अधिकतर पण्डित वैष्णव थे। बवसण्णाने अनुभव मण्डपके द्वारा शैवोंकी आंखें खोलनेका प्रयास किया। जनताकी आंखें खुल गयीं। बसवण्णा उनके मार्गदर्शक बन गये। वे प्रचलित रूढ़ियोंके कूड़े और जालको साफ करनेमें लग गये। उनकी दृष्टिमें पण्डित, मंत्री और चमार एक समान थे। स्त्री और पुरुषको भी समान प्रतिष्ठा मिली। स्त्रियां भी पुरुषोंके समकक्ष होकर धार्मिक क्रियाओंमें, कीर्तन, भजन-पूजन आदिमें भाग लेने लगीं। बसवण्णाने कहा, सांस लेनेके लिये हवा, जीनेके लिये पानी और खानेके लिये रोटी सबके लिये एक है तब फिर छुआछूतका भेदभाव क्यों? कक्कय्य और चन्नय्य चमार होते हुए भी बड़े शरणकी पदवी पा गये। यही नहीं, बसवण्णाके प्रभावसे ब्राह्मणों और चमारों-

में ब्याह-शादी भी हुई। इन कामोंकी वजहसे कुछ लोग बसवेश्वरके हर काममें बाधा डालने लगे। मंचण्णा नामक एक सहायक मंत्रीने बसवण्णापर राज्यके धनमें गड़बड़ करनेका आरोप लगाया। राजा विज्जल स्वयं खजानेकी खोज-खबर लेने पहुंच गये, परंतु कहीं एक कौड़ीकी भी भूल न पायी। इससे मंत्री बसवकी प्रतिष्ठाको चार चांद लग गये। परंतु इनका विरोध कम न हुआ। वैष्णव लोग वेद-शास्त्रोंको आधार बनाकर इनका खण्डन करने लगे। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ हुए परंतु बसवेश्वरने अपने अनुभवसिद्ध ज्ञानसे सबको हरा दिया। एक बार इन्होंने चमार कक्कय्यके बेटेका ब्याह मादरस ब्राह्मणकी बेटीसे रचाया। यह समाचार चारों ओर फैल गया। जातिनिष्ठ ब्राह्मणोंने बहुत जोरसे इसका विरोध किया और राजा विज्जलके पास पहुंचे। राजा विरोधका भयंकर रूप देखकर घबरा गये और उन्होंने बसवेश्वरके विरुद्ध फैसला दिया। इस घटनासे शैव लोग क्रोधसे पागल हो गये और कुछ नवयुवक शरणोंने विज्जलको मार डाला। बसवेश्वरकी इच्छाके विरुद्ध यह हत्या हो गयी। इसके परिणामस्वरूप 'कल्याण' श्मशानकी तरह उजाड़ हो गया। सब शरण लोग इधर-उधर चले गये। स्वयं बसवण्णा भी वहांसे कप्पड़ी आ गये और वहां ११६६ में वे संगमनाथके साथ एक हो गये।

उस हत्याकाण्डके बाद जब बसवण्णा अपने कुछ साथियोंको लेकर कप्पडीकी ओर जा रहे थे तो रास्तेमेंसे ही उन्होंने अप्पण्णाको वापिस भेजा कि जाकर नीलाम्बिकाको ले आये। नीलाम्बिकाको पतिका आदेश मिला तो उसने कहा, 'भाई आप्पण्णा, कप्पड़ीतक जानेकी क्या जरूरत है। क्या लिंग वहीं है, मेरे हाथोंमें नहीं है? यह कहकर उन्होंने शिवलिंगकी एक छोटी-सी मूर्तिको अपने हाथमें ले लिया और वहीं उसमें समा गयीं।

लिंगायत लोग शरणोंमें सबसे बड़े ज्ञानी अल्लमप्रभुको शिवका अवतार मानते हैं। वे अनुभव-मण्डपके अध्यक्ष थे। परंतु वे हर काममें अपने-आप पीछे रहते थे और बसवण्णाको ही आगे रखते थे। यहांतक कहा जाता है कि बवसण्णाकी भक्तिको देखनेके लिये ही शिवजीने अल्लमप्रभुके रूपमें अवतार लिया था। उन्होंने अपने वचनोंमें इनकी बहुत प्रशंसा की है।

यहां हम बसवण्णाके कुछ वचनोंका नमूना दे रहे हैं। वे कहते हैं:

चोरी, हिंसा, असत्यको छोड़ दो, दूसरोंका बुरा मत करो और अपनी बड़ाई न करो। यही अंतरंग और बहिरंग शुद्धि है। भगवान्तक जानेका रास्ता यही है।

मन्दिरके कलशपर कौए बैठते और उसे गन्दा करते हैं। हे भगवान्! मुझे ऊंचा न उठाना। मुझे शिवशरणोंकी पादरक्षाके लिये उनकी पादुका बना दो।

भगवन्! चकोरको चन्द्रमाकी चिंता लगी रहती है। कमल सूरजके लिये उत्सुक रहता है, भ्रमर परिमलको ही सोचता रहता है। इन सबसे बढ़कर है तेरी याद।

खाना पकानेकी लकड़ी जले तो उसे बुझाया जा सकता है पर यदि दुनिया ही जलने लग जाय तो, यदि बाढ़ ही पानी पीने लग जाय यदि बाढ़ ही पौधोंको खाने लगे, यदि गृहिणी ही चोरी करे, यदि मांका दूध ही विष बन जाय तो किससे शिकायत की जाय? भगवन्, यह सब तू ही ठीक कर सकता है।

श्रद्धासे पुकारो तो क्या भगवान् हां नहीं कहेंगे? बिना श्रद्धा-भक्तिके कुछ भी करना बेकार है। ऐसे लोगोंसे भगवान् बहुत दूर रहते हैं।

भगवन्! जब तुम्हारी याद हो आती है तो जीवनमें उजाला हो जाता है और जब मैं तुम्हें भूल जाऊं तो वही अंधेरा होगा। तुम्हारी याद ही मेरे लिये प्राण है। अपनी चरण-मुद्रा मेरे हृदयमें बैठा दो।

सच्ची घटनापर आधारित एक कहानी :

क्या भगवान्‌के दर्शन हुए हैं ?

—श्री चंद्रदीप

बनारस विश्व-विद्यालयके दर्शनके प्राध्यापक श्री सुरेंद्रनाथ साधु-संतोंमें बड़ी रुचि रखते थे। उन्हें विश्वास था कि दर्शनका यथार्थ ज्ञान आध्यात्मिक साधनाके बिना नहीं हो सकता। इसी कारण वह प्रायः अपनी छुट्टियां किसी-न-किसी आश्रममें जाकर महात्माओंके सत्संगमें बिताते थे। उनकी इस यात्रामें बराबर ही उनकी धर्मपत्नी सुचेता भी उनके साथ रहती थीं। सुचेता बहुत अधिक शिक्षिता तो नहीं थीं पर एक दक्ष गृहिणी थीं और सांसारिक बुद्धि उनमें पर्याप्त मात्रामें थी। एक सुयोग्य और प्रसिद्ध विद्वान्‌की पत्नी होनेका उन्हें पूरा गर्व था और इसलिये वह थोड़ा स्वभावसे वाचाल भी थीं।

सर्वदाकी भांति एक बार श्री सुरेन्द्रनाथ अपनी पत्नीके साथ एक आश्रममें जाकर ठहरे। आश्रमके महात्मासे उनकी पुरानी जान-पहचान थी —दोनों एक-दूसरेको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। श्री सुरेन्द्रनाथके लिये एक स्वतंत्र कुटिया दे दी गयी और एक साधुको उनकी सेवा-टहलके लिये तैनात कर दिया गया। ये साधु बड़ी श्रद्धासे अतिथिके लिये बाजार-हाट कर देते और गृहिणीके कार्योंमें सहायता कर देते।

एक दिन सुचेता रसोई बना रही थीं और सेवक साधुजी पास ही बैठकर कोई रसोईका सामान तैयार कर रहे थे। अपने स्वभाववश सुचेता प्रायः ही साधुजीसे कुछ-न-कुछ बातें करती रहती थीं। इसी बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने एक दिन प्रश्न किया—साधुजी ! क्या आपको कभी भगवान्‌के दर्शन हुए हैं ?

साधुजी प्रश्न सुनकर थोड़ा गंभीर हो गये और कुछ देर मौन रहे, मानो थोड़ी देरके लिये अपनी चेतनाकी गभीरतम गहराईमें पैठ गये हों। फिर बोले — मांजी ! मैं एक सामान्य व्यक्ति हूं, श्रद्धापूर्वक आश्रमकी सेवा करता हूं और गुरुकृपापर निर्भर करता हूं। इससे अधिक मुझे कुछ भी नहीं मालूम। भगवान्‌के दर्शनकी बात तो बहुत बड़ी चीज है, सिद्ध महापुरुष ही यह कह सकते हैं कि मैंने भगवान्‌के दर्शन किये हैं। तब मैं आपको अपने जीवनकी एक सही घटना बता रहा हूं, उसका मतलब आप खुद चाहे जो लगायें।

यहां आनेसे पहले मैं एक दूसरे आश्रममें रहता था और वहीं मैंने अपने गुरुजीसे दीक्षा ली थी। आश्रम इसी आश्रमकी तरह बस्तीसे दूर एक नदीके किनारे था और उसके पास ही एक घना जंगल था। कई वर्ष वहां रहनेपर गुरुजीने महासमाधि ले ली और वहां मेरे एक गुरुभाई आश्रमके व्यवस्थापक बन गये। आश्रम पूर्ववत् चलने लगा और हम लोग पूर्ववत् अपना काम-काज और भजन-पूजन करने लगे। कुछ दिनों बाद मुझे बड़ी माता निकल आयी और सिरसे पैरतक सारा शरीर गोटियोंसे भर गया। बुखार तेज था और रोगकी गर्मी और पीड़ा असह्य थी। मैं तो बेहोश हो गया। साधुओंने देखा कि रोगने तो बड़ा भीषण रूप ले लिया है, इससे इसका बचना मुश्किल ही है। आश्रममें इसकी सेवा-शुश्रूषा भी क्या की जा सकती है ? उधर छूत लगनेकी भी संभावना है। बस, सबने परामर्श करके एक चारपाईकी व्यवस्था की और मुझे उठाकर भगवान्‌के भरोसे दूर जंगलमें रख दिया और पासमें मेरा कमण्डल रख दिया। —

मालूम नहीं कितने दिन मैं बेहोश पड़ा रहा। जब मेरी आंख खुली तो देखा कि ज्वर कम है पीड़ा भी कम है और एक काला कुत्ता मेरा बदन चाट रहा है। कई दिन बाद बेहोशी छूटनेपर भूख भी खूब मालूम हुई। कुत्तेने जब मुझे जगा देखा तो वह तुरत कहीं दौड़ गया। थोड़ी देर बाद वह अपने मुंहमें एक बड़ी-सी रोटी लाकर मेरी चारपाईपर रख दिया और उसके बाद कमंडलको लेकर पानी भर लाया। भूखा तो मैं था ही, उठनेमें भी अभी असमर्थ था। चुपचाप मैंने रोटी खा ली और पानी पी लिया। कुत्ता बदस्तूर सिरसे पैरतक चाटनेका काम करने लगा।

इस तरह कई दिनोंतक कुत्ता रोज रोटी और पानी ला देता और सारे दिन चाटता रहता। धीरे-धीरे घाव सूख गये और गोटियां झड़ गयीं। शरीरमें भी थोड़ी शक्ति और स्फूर्त्ति आ गयी। अब मैंने सोचा कि कल सुबह उठकर स्नान करूंगा और कहीं बस्तीमें जाकर भिक्षा करूंगा। उस दिनतक कुत्ता मेरे पास था। दूसरे दिन जब मैं सोकर उठा तो देखा कुत्ता नदारद। पहले सोचा, शायद रोजकी तरह रोटी लाने गया होगा। पर वह समय भी बीत गया और कुत्ता नहीं आया। मैं मन-ही-मन भगवान्‌को स्मरण करता हुआ उठा, स्नान किया और भिक्षा करने गांवमें चला गया। कुछ दिनों बाद घूमता-फिरता यहां आया और तबसे यहीं साधु-सेवा कर रहा हूं।

चाहे कितनी बाधाएं आएं

चाहे कितनी बाधायें आयें
हम आगे बढ़ते जायेंगे।

हमने फूलोंसे सीखा
कांटोंमें भी मुस्काना
और पवनसे सीखा
नित आगे बढ़ते जाना
हम आगे बढ़ते जायेंगे!

हमने परवानेसे सीखा
सचकी खातिर जल जाना।
हमने सीखा तारोंसे
आशा संदेश लुटाना
हम नव आशा संदेश लुटायेंगे!

हमने चन्दासे सीखा
जल जल अमृत बरसाना
सीखा लहर लहरसे
हिलमिल आगे बढ़ जाना
हम आगे बढ़ते जायेंगे!

हमने ऋतुओंसे सीखा
जीवन रंगीन बनाना।
हमने सीखा बादलसे
प्यासेकी प्यास बुझाना।
हम प्यास बुझाते जायेंगे!

—केदारनाथ कोमल

नया गोकुल

पांडिचेरीसे ६-७ मील दूर एक सुन्दर सरोवर है। उसके चारों ओर छोटी-छोटी लाल रंगकी पहाड़ियां हैं। चोटीपर कुछ जंगली ताड़ अपने-आप पनप आये हैं। पर सर्वसम्मतिसे उन पहाड़ियोंपर खेती करना या पेड़ लगाना असंभव माना जाता था। यहांके फ्रेंच सैलानियोंने उस सरोवरको नाम दिया था ग्रां तेतां (बड़ी झील)। इस तालाबका घेरा ही तीन मीलसे अधिक है। जब मैंने सुना कि हमारे आश्रमको वह जमीन तथा उसके साथ एक मकान मिल रहा है तो उत्सुकतावश देखने गयी। स्थान सुन्दर था, पहाड़ीके ऊपरसे चारों ओर लाल और हरे रंगकी अल्पना देखते बनती थी। परंतु जमीन देखकर बहुत निराशा हुई। कंकड़, पत्थर और रेतीनुमा जमीनमें क्या पनपेगा? कुछ महीनों बाद फिर गयी तो क्या देखती हूं? मेरे आनंद और आश्चर्यका ठिकाना न रहा, उन पत्थरोंको तोड़कर एक कुंआ निकाला गया है। पानी नष्ट न हो इसलिये सीमेण्टकी पतली परत देकर नालियां बनायी गयी हैं। आम, नींबू आदिके पेड़ और तरकारियां लगी हैं। फूलोंकी क्यारियां भी हैं। बंजर जमीन हरी-भरी-सुहावनी हो उठी है।

कुछ दिन बाद सुना कि वहां एक गोशाला शुरू हो रही है। फिर देखनेकी इच्छा हुई और अवसर मिलते ही जा पहुंची। देखा कि सिंधी, गिर और कांकेरेजकी अच्छी नसलकी गायें घूम रही हैं, साथ-साथ कुछ संकर गायें भी हैं। सांडको तो देखते ही बनता था। हड़प्पाका प्रसिद्ध सांड़ मानो जीता-जागता सामने खड़ा था। छोटी-छोटी बछियां अलग बाड़ोंमें खेल रही हैं। पास ही दूध दुहनेका स्थान है। वहां एक तख्तेपर प्रत्येक गायके नामके साथ उसके प्रतिदिनके दूधका अंक लिखा है। कई गायें १५ से १८ सेरतक दूध देती हैं। यह भी सुना कि कुछ गायें एक बारके दोहनकालमें दस हजार पाउण्डतक दूध देती हैं। पास ही एक झोंपड़ीमें पशुओंका औषधालय है। एक डाक्टर नियमित रूपसे आकर सब जानवरोंकी परीक्षा कर जाते हैं। यह सब देखकर मन प्रसन्न हो उठा।

और एक वर्ष बीत गया। इतने दिनोंके बाद फिरसे जानेका अवसर मिला। छोटी-छोटी पहाड़ियों और टीलोंको काटकर प्रायः समतल जमीन बनायी गयी है। पांच हजारसे ज्यादा नारियलके पेड़ लग चुके हैं। कहीं मूंगफलीका खेत है, कहीं गायोंके लिये जल्दी बढ़नेवाली घास लगी है। काजूके छोटे-छोटे पेड़ जमीनपर फैल गये हैं। आसपासके लोग इस चमत्कारको देखने आते रहते हैं। हमारे आश्रमके स्वप्न-सेवियोंने सचमुच जंगलमें मंगल किया है और अशक्यको न सिर्फ शक्य बल्कि सुन्दर भी बना दिया है। और अभी तो आरंभ है।

जिनके आंखें हैं वे देख सकते हैं कि जैसे कीचड़से कमल निकलता है उसी तरह यहां बंजरमेंसे नया वृंदावन उभर रहा है।

यूरोपकी सैर

—श्री स्नेहलता

सर्दीके दिन थे। पैरिसमें कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था परंतु फिर भी बाहरसे आये हुए लोगोंको इधर-उधर घुमा लाने तथा दर्शनीय स्थान दिखानेकी पूरी व्यवस्था थी। हम लोगोंको वहांके बड़े-बड़े राजमहल (शातों) देखनेकी उत्सुकता थी। परंतु किसी महलको देखने जाना एक तपस्या-का काम बन जाता था, क्योंकि हमारे निवास-स्थानमें तो मकान गरम रखनेकी व्यवस्था थी पर उन उजड़े हुए महलोंमें, उन भव्य प्रासादोंमें, जहांके रहनेवाले अपने समयमें सब सियाही सुफीदके मालिक होते थे, जिनकी भृकुटिका तनना प्रलय ले आता था, उन्हीं राजाओंके शानदार महलोंमें ठंडसे दांत बजने लगते थे। उनमेंसे एकके पथप्रदर्शकसे इस विषयपर बात करते हुए मुझे याद आया —

"एक लख पूत सवा लख नाती, वा रावण घर दिया न बाती।"

उन राजाओंके प्रेत यदि सारे फ्रांसको देख सकें और फिर अपने महलोंपर नजर डालें तो मुझे विश्वास है कि इस हालतमें भी उनकी आंखें भीग आयेंगी और शायद एक दबी हुई हिचकी भी सुनायी दे जाय।

अब बड़े दिनकी छुट्टियां आयीं। यह दिन अपना धार्मिक महत्त्व कबका खो चुका है; अब यह एक बड़ा भारी सामाजिक पर्व हो गया है। हम लोगोंसे पूछा गया कि क्या हम फ्रेंच परिवारोंके साथ रहकर बड़ा दिन मनाना चाहेंगे। मैंने सोचा, फ्रांसमें तो रहना ही है, चलो छुट्टियोंमें स्विटजरलैण्ड देख आऊं। वहां जेनेवामें हमारे एक परिचित सज्जन रहते थे, उन्हें पत्र लिखा और उन्होंने अपने यहां आनेका निमंत्रण दे दिया। मेरे पास स्विटरजरलैण्ड के लिये वीसा तो था ही इसलिये कोई कठिनाई न थी। मैं सीधे रेलवे स्टेशनपर जा पहुंची। वहां पता लगा कि इन दिनों बहुत अधिक भीड़ होगी और रेलमें स्थान मिलना लगभग असंभव होगा। मैंने यह सलाह सुननेके बाद भी टिकट खरीद लिया। यहांकी रेलोंमें केवल पहला और दूसरा दरजा होता है। पहले दर्जेमें प्रायः वे लोग सफर करते हैं जिनके टिकटका भार अपनी जेबपर नहीं पड़ता, जैसे, बड़े-बड़े सरकारी अफसर, व्यापारी आदि; साधारण लोग तो दूसरे दर्जेमें ही चलते हैं। रेल आयी तो ठसाठस भरी हुई थी, कहीं बैठनेकी बात तो अलग, खड़े रहनेके लिये भी स्थान न था। मुझे अपने यहांकी रेलें याद आ रही थीं, हां, फर्क यही था कि हमारे यहां भद्रता और शिष्टाचारको ताकपर रखकर धक्का-मुक्की होती है, वहां पूरे शिष्टाचारके साथ वही क्रिया की जाती है। लोग इधर-उधर जहां-कहीं पांव रखनेको जगह मिल गयी वहीं घुसे हुए थे। कोई सामानपर बैठा था तो कोई खिड़की पकड़े खड़ा था, यहांतक कि टट्टियोंमें भी लोग खड़े हुए थे। मैंने भी किसी तरह दरवाजेके पीछे खड़े रहनेके लिये स्थान बना लिया। यहांकी रेलें समयकी बहुत पाबंद होती हैं और साधारणतः स्टेशनोंपर बहुत कम समयके लिये खड़ी होती हैं। इसलिये हमारे स्टेशनोंकी तरह न तो चहलकदमी संभव होती है और न कुछ खरीदना-बेचना। इसलिये आपको वहां 'गरम चाय' और 'संतरे नागपुरी' आदिके पर्याय न सुनायी देंगे।

लीयोंमें काफी देर ठहरना पड़ा, फिर दूसरी गाड़ीसे मैं आधी रातको जेनवा जा पहुंची। स्टेशनपर हमारे परिचित सज्जन आये हुए थे इसलिये कोई असुविधा न हुई। उनका मकान शहरसे

७,८ किलोमीटर दूर है। बाहरसे बड़ा ही शानदार और अंदरसे भी बहुत सुन्दर। रातके बारह बजे और चारों ओरसे घंटोंकी आवाज सुनायी देने लगी। उस मकानमें नाना रूप आकृतिकी न जाने कितनी घड़ियां लगी हुई थीं, हरएककी आवाज एक-दूसरेसे अलग और बड़ी चित्ताकर्षक थी। यह मानों घड़ियोंके देश स्विटजरलैण्डमें मेरा स्वागत था। मेरे मेजबानने कहा, आपके कमरेमें घड़ी टन-टन करे तो आपकी नींदमें बाधा तो न पड़ेगी? मैंने कहा, नहीं, लेकिन यहां घड़ी है कहां? मेरा प्रश्न सुनकर मेरे मेजबानको बड़ा मजा आया। उन्होंने कहा, आप अपने-आप तलाश कर लीजिये। मैं इधर-उधर चारों ओर देख गयी पर कहीं घड़ी नजर न आयी। आखिर उन्होंने अपने-आप ही बताया कि कमरेमें गिरजा-घरका जो बड़ा-सा चित्र लगा था उसीके घंटाघरमें एक छोटी-सी सचमुचकी घड़ी लगी हुई थी जिसकी आवाज बहुत मधुर थी।

मेरे मेजबानकी पत्नी जापानी थीं और उन्होंने मकानके वातावरणको जापानी सौंदर्य-प्रियतासे भर दिया था। यहांपर मैंने एक और चीजका भी अनुभव किया। यूरोपीय स्त्री पुरुषोंके साथ हमेशा कंधेसे कंधा भिड़ाकर चलती है, कदम-कदमपर उसे अपनी बराबरीका, अपनी प्रतिष्ठाका भान रहता है, इसलिये वहांके दाम्पत्य-जीवनसे उस मधुरता और सहिष्णुताका भाव उड़ गया है जिससे एशियाकी नारी अपने घरको एक कचहरी नहीं बल्कि सचमुच घरका रूप दे सकती है। यहां यह बात भी कहती चलूं कि यूरोपमें कुटुम्बका जीवन बड़ा ही विचित्र रूप धारण कर चुका है। उनके यहां हमारी तरह सम्मिलित कुटुम्बके जैसी कोई चीज ही नहीं है। जैसे पंख आते ही चिड़िया अपने मां-बापके घोंसलेसे विदा ले लेती है उसी तरह यूरोपमें बेटा-बेटी बड़े होते ही अपना अलग घर बसा लेते हैं। मैंने देखा है, अकेली मां एक बड़ेसे घरमें पड़ी गठियाको रोती रहती है और उसका बेटा अपनी स्त्रीके साथ एक दूसरे शानदार घरमें मौज करता है। कभी-कभी एक-दूसरेके यहां आते-जाते रहते हैं और बस। इसी प्रकार मैंने देखा कि मांका मकान है और कमाऊ बेटी उसमें किराया देकर रहती है। दोनोंका अपना-अपना अलग-अलग हिसाब है, अलग-अलग सामान है। एक बीमार हो जाय तो दूसरा उसके लिये दवाई तो खरीद लायगा पर अच्छे होनेपर बिल उसीको चुकाना पड़ेगा। भाई भाईके घर न ठहरकर होटलमें ठहरना अधिक पसंद करेगा। ये रीति-रिवाज अच्छे हैं या बुरे, यह मैं नहीं कहती, पर भारतवासियोंको ये बातें अजीब जरूर लगती हैं।

खैर, सबेरा हुआ, वे सज्जन मुझे शहर दिखानेके लिये ले गये। आहा, क्या सुन्दर दृश्य था! सर्दीका तो कहना ही क्या था, लोग कहते थे कि पिछले सौ वर्षोंमें भी इतनी सर्दी नहीं हुई थी। जेनेवाकी प्रसिद्ध झील जमकर बरफ बन गयी थी और उसपर बच्चे खेल रहे थे। अधिकतर पेड़ोंके पत्ते गिर चुके थे पर कहीं-कहीं पत्तोंके ऊपर उन्हींकी आकृतिकी बरफ जमी हुई थी। सारा दृश्य बहुत ही सुहावना था। बहुतसे लोग बरफपर फिसल रहे थे। बिना विशेष उपकरणोंके भी थोड़ी दूरतक तो फिसला जा सकता था। औरोंकी देखा-देखी मैंने भी प्रयास किया, पर मैं तो उसकी तरकीब न जानती थी इसलिये अपने बढ़ियासे मखमली कपड़े पहने हुए चारों खाने चित्त हो गयी। चोट तो आयी पर चारों ओर लोग देख रहे थे इसलिये हंसनेकी कोशिश करनी पड़ी। बच्चे बरफका आदमी बना रहे थे, मैंने भी सृष्टिकर्तासे होड़ करनेकी ठानी। पर हां, हर चीजके लिये अनुभवकी जरूरत है। आखिर मैंने अपने मेजबानसे यह कौशल सीखकर ही छोड़ा।

देखते-देखते नया वर्ष आ गया। क्रिसमस प्रायः पारिवारिक सम्मेलन का दिन होता है परंतु नया वर्ष एक सामान्य पर्व है। लोग गिरजामें हाजिरी दे आते हैं फिर हो-हल्ला, हंसना-खेलना, नाचना-गाना होता रहता है। रातके बारह बजे नये वर्षका स्वागत होता है और फिर सबका अभिनन्दन किया जाता है। एक-दूसरेसे गले-मिलते हैं, भेंट-उपहार आदि देते हैं और बड़ा ही आमोदपूर्ण वातावरण होता है। बड़े दिनकी दावतोंमें प्रायः मुर्गा या बत्तख या कोई और पक्षी पूराका पूरा पका-

कर मेजपर जरूर लाया जाता है और लोग उसे काट-काटकर खाते हैं। इस अवसरपर घोंघे सबसे विशेष वस्तु होते हैं। उन्हें शंख जैसे आवरणोंमेंसे निकाल-निकालकर जिन्दा ही खाया जाता है। अच्छे भोजनके शौकीन इन अवसरोंपर फ्रांससे खाने-पीनेकी चीजें लाया करते हैं। यह वाक्य सुनकर आप सोचेंगे कि ये लोग खानेके कितने शौकीन होंगे जो साधारण खाद्य पदार्थ लेने इतनी दूर जाते हैं। पर नहीं, फ्रांसके शहर यहांसे कुछ ही मील दूर हैं।

मेरी छुट्टियां समाप्त हुईं और मैं वापिस आ गयी। अब फिरसे पूरी गम्भीरताके साथ काममें लगना था। मेरे सामने एक बड़ा प्रश्न कमरेका था। मैं अभी जिस कमरेमें रह रही थी वह मुझे केवल दो महीनोंके लिये दिया गया था। अब कुछ दिनोंके अंदर उसे छोड़ना जरूरी था। मैं इधर-उधर धक्के खाती रही पर मेरी पसंदका कमरा न मिला। एक जगह एक अच्छा कमरा मिल रहा था। मेरे लिये सस्ता भी था, क्योंकि मकान-मालिकने कहा था कि चौबीस घंटोंमेंसे अपनी पसंदके अनुसार एक घंटा रोज काम कर दूं तो मुझे कमरा मिल जायगा, एक और जगह देखा, मकानमें रहनेवाले जवान दम्पतिने मुझे एक कमरा देना स्वीकार किया, शर्त यह थी कि शामके समय जब वे घूमने जायें तो मैं उनके बच्चेकी देख-रेख करूं। किरायेके रूपमें बस यही सेवा करनी थी। परंतु मेरे फ्रांसके अभिभावकको ये दोनों स्थान पसंद न आये।

एक दिन मैं घूमती-घामती एक छोटी-सी दुकानमें घुस गयी। यह एक फार्मेसी थी। वहां एक युवतीने बड़े आदर-सत्कारके साथ सारी दुकान दिखायी और इधर-उधरकी बातें करने लगी। न जाने क्यों मुझे इस युवतीमें बड़ा रस आया और उसे मुझमें। इतनी देरतक उसके साथ बातें करके कम-से-कम नामके लिये कुछ खरीदना ही पड़ा। दो-चार दिनके बाद ही मुझे, अचानक इसी रास्तेसे फिर गुजरना पड़ा, मैं अपनी एक भारतीय सहेलीके साथ फिर उसी दुकानमें घुस गयी। वह लड़की इस बार और भी प्रेमसे मिली। उससे मालूम हुआ कि यहांके लोग बालोंमें तेल नहीं लगाते। स्त्रियां हर सप्ताह सैलूनमें जाकर बालोंकी सफाई करवाती हैं और उनमें विशेष प्रकारकी औषधियां लगवाती हैं जिनसे बाल उनके मनचाहे रूप धारण कर लें। इसके लिये न जाने क्या-क्या क्रियाएं की जाती हैं। अपने घरमें न तो बाल धोये जाते हैं न उनमें कुछ लगाया जाता है, सिर्फ ऊपर-ऊपरसे कंघी कर ली जाती है ताकि उनकी आकृति बदलने न पाये। सस्ते-से-सस्ते सैलूनमें एक बार बाल संवारनेके चौदह-पन्द्रह रुपये देने होते हैं। इस लड़कीसे मैंने और भी बहुत-सी घरेलू बातें जानीं। न जाने क्यों और कैसे इसके साथ मेरी घनिष्ठता बढ़ गयी और वह मुझे अपने घर ले गयी। उसका मकान बहुत ही सुन्दर और सुरुचिपूर्ण था। जैसा कि मैंने कहा, पेरिसमें नौकर तो नहीं मिलते पर पहलेके रिवाजके कारण बहुतसे मकानोंमें नौकरोंके लिये कमरे अब भी होते हैं। ये कमरे साफ-सुथरे और अच्छे होते हैं। यह लड़की इसी प्रकारके एक कमरेमें रहती थी और उसकी मां ऊपरके एक मकानमें। जब इस लड़कीको पता लगा कि मुझे कमरा प्राप्त करनेमें मुश्किल हो रही है तो उसने मुझे अपने साथ रहनेका निमंत्रण दे डाला। यह बात पेरिसमें बहुत असाधारण है। इसे भगवान्‌की कृपा ही समझिये कि बिना किसी प्रयासके मुझे ऐसी अच्छी सहेली मिल गयी जिनने सारी व्यवस्था कर दी।

यूरोपके साधारण घरोंमें स्नानागार नहीं होते। लोग सार्वजनिक स्नानागारमें पैसे देकर नहाते हैं। जिन घरोंमें व्यवस्था होती भी है वहां नहानेके लिये टब होते हैं जिनमें पानी भरा जाता है और आदमी उसमें पड़ा रहता है। इसपर काफी खर्च हो जाता है, इसलिये साधारणतः साप्ताहिक स्नानका रिवाज है। पर मैं जहां ठहरी वहां उन लोगोंकी दृष्टिसे असुविधा और मेरी दृष्टिसे सुविधा थी। यानी टब न था, केवल गरम पानीका फव्वारा था जिससे रोज नहाया जा सकता था। मेरा नया कमरा मेरे विद्यालयसे काफी दूर था, इसलिये भोजनके लिये घरतक जाना असंभव

था। परंतु आसपास काफी होटल, रेस्टोरेंट आदि थे इसलिये कोई असुविधा न थी। यहां उन लोगोंके होटलोंके बारेमें भी कुछ कहती चलूं। रेस्टोरेंट दो प्रकारके होते हैं। एकमें आप जाइये, आपके हाथमें एक कागज पकड़ा दिया जायगा जिसपर लिखा होगा कि क्या-क्या और कितनेमें मिल सकता है। आप अपनी पसंदकी चीजें चुन लीजिये और वहांके नौकरको बता दीजिये। वह आपकी पसंदकी चीजें दे जायगा और आपको चीजोंके दामके अतिरिक्त परोसनेवालेके लिये भी पारिश्रमिक देना पड़ेगा। दूसरे प्रकारके रेस्टोरेंट वह हैं जहां खानेवाला पंक्तिमें अंदर जाता है, तरह-तरहके थाल उसके सामने रखे हैं, वह आवश्यक बरतन और अपनी पसंदकी चीजें चुन लेता है और अपनी थाली लिये हुए एक स्त्रीके सामनेसे गुजरता है। वह झटपट आपकी चीजोंपर एक नजर डालकर एक मशीनकी मददसे आपका बिल बना देती है। आप एक तरफ बैठकर खाना खा लेते हैं और चलते समय उस बिलके अनुसार दाम चुका देते हैं। इस प्रकारके रेस्टोरेंट दूसरोंकी अपेक्षा कुछ सस्ते पड़ते हैं। वैसे हम भारतवासियोंको तो वहांकी हर चीज महंगी लगती है। एक समयके साधारण भोजनके १०, १५ रुपये लग जाना तो मामूली-सी बात है। मुझे किसीने आमोंके देशका जानकर विशेष रूपसे एक आम उपहारमें दिया था। आम तो अच्छा न था पर दाम ढाई रुपयेके लगभग। इसी तरह एक अन्नास लगभग नौ रुपयेमें। साधारण केले भी वहां बहुत मंहगे पड़ जाते हैं। लेकिन वहांके लोगोंको ये चीजें ऐसी महंगी नहीं लगतीं क्योंकि वहां आमदनी भी इसी अनुपातमें अधिक होती है।

सोरबोनके विद्यार्थियोंके लिये एक विशेष सुविधा है। वे विश्वविद्यालयके रेस्टोरेंटमें खा सकते हैं जहां बहुत कम दाम लिया जाता है। परंतु मेरे जैसे निरामिषभोजीके लिये वहां सुविधा नहीं होती क्योंकि वहांका मुख्य भोजन मांस होता है।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, हम लोग सोरबोनके सामान्य विद्यार्थी न थे। हमारे लिये अलग वर्ग होते थे जिनमें सब विदेशी अध्यापक एक साथ रहते थे। वहां फ्रेंच ठीक करनेका बड़ा सुन्दर प्रबंध था। प्रत्येक एक छोटेसे ध्वनिरोधी (साऊण्ड-प्रूफ) कमरेमें जा बैठता और टेप रेकार्डर उठाकर फ्रेंचके शुद्ध उच्चारण सुनता; फिर वह अपनी आवाजको रेकार्ड करके मूल फ्रेंच उच्चारणमें और अपने उच्चारणमें फर्क देखता और अपने उच्चारणको ठीक कर सकता था। जबतक सन्तोषजनक परिणाम न आये तबतक यह अभ्यास चलता रहता। इससे पढ़ा-लिखा विद्यार्थी अपने उच्चारणके साथ शुद्ध लहजा भी सीख सकता है। इसी तरह कुछ बातचीतके वर्ग होते हैं जिनमें विद्यार्थीको भिन्न-भिन्न विषयोंपर बोलनेका अवसर मिलता है। मेरी एक अध्यापिका अपने पतिके साथ हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमें रह चुकी हैं। उन्हें भारतके बारेमें बहुत उत्सुकता थी अतः उनके साथ मेरी घनिष्ठता हो गयी। वे प्रायः ही श्रीअरविंद और उनके आश्रमके बारेमें पूछा करती थीं।

* * *

नम्रता और स्नेह-भीनी वाणी—ये ही मनुष्यके आभूषण हैं, और कोई नहीं।

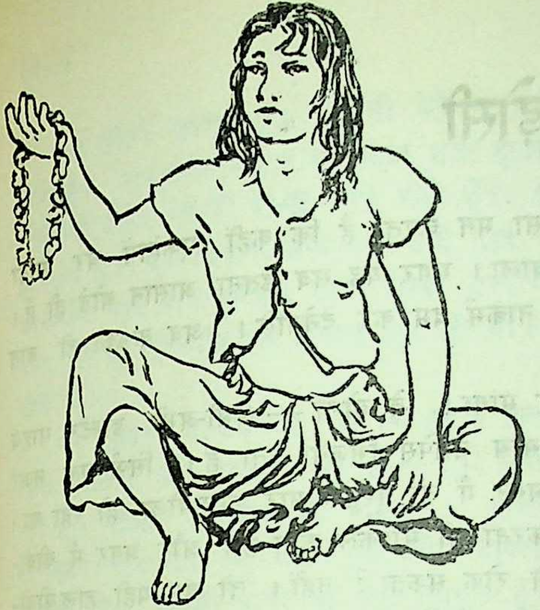

मां चली भी गयी !

—श्री मीना

मैंने मुन्नीको उस दिन रास्तेमें देखा तो पहली दृष्टिमें ही वह मुझे बहुत प्यारी लगी। छोटी-सी मुन्नी, उसकी उम्र यही कोई छः-सात वर्षकी रही होगी। उसके कपड़े फटे हुए थे और उसके पैर जूतोंको पहचानते भी न थे। वह, वहीं बाजारकी धूमधामसे उदासीन अपने काममें खोयी हुई बैठी थी। उसका काम भी मजेदार था। वह पटरीपर बैठी मोतियोंकी माला बना रही थी। कोई उसकी ओर देखतातक न था, और कोई उसे देख भी लेता तो हंसकर चला जाता। शामतक वह उसी स्थानपर जमी रही और जब सूर्य डूब गया और सब ओर शांति छा गयी तो वह घर लौटी। अपनी छोटी-सी झोंपड़ीमें घुसते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। 'यह न होगा, ऐसा नहीं हो सकता' वह चिल्लाती जा रही थी। 'अम्माको फूल देने ही चाहिये। वह भगवान्के पास खाली हाथ कैसे जा सकती है?' लेकिन बिचारी मुन्नी फूल लाती कहांसे? उसके पास एक पैसा भी न था। बाप कई साल आगे मर चुके थे और तब मांने मुन्नीसे कहा था कि वे भगवान्के पास गये हैं। लेकिन हाय, अब मां भी तो उधर ही चली गयी। इतनी छोटी मुन्नीको अब दुनियामें अपने पैरोंपर खड़ा रहना पड़ेगा।

मुन्नीने अगले दिन फिर बाजारमें जाकर अपना काम आरंभ किया। कुछ देरतक तो कोई उसकी मालाएं खरीदने न आया, फिर अचानक एक स्त्री वहां आ पहुंची। उसने मुन्नीसे पूछा, "हे लड़की, ये तीनों मालाएं कितनेमें बेचोगी?" "तीस पैसे लूंगी" मुन्नीने झट कहा। "तीस पैसे तो ज्यादह हैं; खैर, ला जल्दीसे दे दे। मेरी बेटी मचल रही है" यह कहकर स्त्रीने तीस पैसे निकालकर मुन्नीको दे दिये और वह चली गयी। मुन्नीका चेहरा उन तीस पैसोंको देखकर चमक उठा। वह दौड़ी-दौड़ी फूल बेचनेवालीके पास गयी। 'यह लो तीस पैसे' उसने हांफते हुए कहा, 'और मुझे कोई सुन्दर गुलाब दे दो।' फूलवालीने उसे चुन-चुनकर सबसे सुन्दर और बड़े फूल दिये और मुन्नी उन्हें लेकर अपनी झोंपड़ीकी ओर भागी। वह सोचती जा रही थी, 'अम्मा अब अपने साथ भगवान्के लिये फूल ले जा सकोगी। ये इतने सुन्दर हैं कि भगवान् इन्हें पाकर बहुत खुश होंगे।' वह आनंदसे झूलती हुई झोंपड़ीमें आयी। लेकिन वहां कोई भी न था। न अम्मा ही थी, न कोई और। सुनसान झोंपड़ी उसकी राह देखती खड़ी थी। मुन्नीकी आंखोंमें फिरसे आंसू भर आये। उस ने सोचा, 'क्या अम्मा भगवान्के पास चली भी गयी? अगर उसे पता होता कि मुन्नी उसके लिये फूल ला रही है तो वह जरूर ठहर जाती।'

मेरे पड़ोसी

जब कभी पड़ोसियोंका ख्याल आता है तो ऐसा मन करता है कि कहीं एकांतमें घर बनवा लूं जहां न कोई पड़ोसी हो और न कोई आने-जानेवाला। मगर यह सब इतना आसान थोड़े ही है। मुहल्लेमें रहो तो पड़ोसी होते ही हैं और कई तो नाकमें दम कर देनेवाले। अब कलकी ही बात सुनिये।

कल जब मैं सोकर उठा तो बीबीजीसे अखबार मांगा। वे बोलीं -- अभी-अभी डाक्टर साहब ले गये हैं; कह गये हैं बस एक मिनटमें रामूके साथ वापिस भिजवा देता हूं। सिर्फ एक नजर देखना है। बीबीजी तो यह कहकर चुप हो गयीं मगर मैं तो गुस्सेके मारे लाल-पीला हो रहा था। बीबीजीसे भी क्या कहता क्योंकि पड़ोसियोंको मना करना भी मुश्किल काम है। और अगर मैं बीबीजीकी जगहपर होता तो क्या उन्हें अखबार ले जानेसे रोक सकता? नहीं। तो बस यही हाल बीबीजीका हुआ होगा।" "मैं एक मिनटमें भेज देता हूं' मैं गुस्सेमें बड़बड़ाया। पता है इनका एक मिनट शामसे पहले न आयगा। अगर शामतक न आया तो समझ लो उनकी बीबीजीके चूल्हा जलानेके काममें आया होगा। वाह! हमने तो पढ़ा नहीं और यह महाशय लेने भी आ टपके! अगर अखबार पढ़नेका इतना शौक है तो अपना खरीद लिया करें। लल्लू रहेंगे तो ठाट-बाटसे मगर दूसरोंके यहांसे अखबार मांगते फिरेंगे। खैर! सुबह-सुबह गुस्सा करना ठीक न समझ मैं उठकर नित्यकर्ममें लग गया।

अखबारकी बात तो कुछ नहीं है मगर इनकी बीबीजी तो हमारे मुन्नेका सूटतक मांगकर ले जाती हैं। एक दिन आयीं और बोलीं--आज हमें एक पार्टीमें जाना है, क्या तुम हमें जरा अपने मुन्नेका सूट दे सकते हो? उसका जरा गंदा हो गया है, कई दिनोंसे धुलने देनेके लिये सोच रही थी मगर दे न सकी। और वहां गंदा पहनकर कैसे जा सकता है? बस, आतेके साथ ही लौटा दूंगी। कोई उपाय न सूझनेके कारण बीबीजीको लाचार होकर देना ही पड़ा। सामने कोई मांगने आये तो मना भी कैसे किया जा सकता है। और उनका मुन्ना भी हमारे मुन्ने जितना ही है। उसे मना भी नहीं किया जा सकता।

दूसरे दिन पड़ोसिनजी सूट लौटाने आयीं। सूट इतना गंदा कर दिया था कि जैसे मुन्नेने वहां जाकर किसीसे कुश्ती लड़ी हो। लाज रखनेके लिये बीबीजी कुछ कह भी न सकीं। सौभाग्यसे उन्होंने सूट लौटा तो दिया। मनमें तो रह-रहकर बीबीजीको गुस्सा आ रहा था, मगर उसे प्रकट नहीं कर सकती थीं। चलो जान बची और लाखों पाये।

और एक महाशय हैं जो हमारे कमरेके ऊपर रहते हैं। कोई खास वेतन पानेवाले नहीं हैं। एक दिन उनके यहां कोई मेहमान आनेवाले थे। सो हमारे यहांसे कुर्सी, मेज, दरी मांगने आये। हमने बहुतेरे बहाने सोचे मगर बुद्धिने साथ छोड़ दिया। कोई खड़ा मांग रहा हो और हम अनसुनी कर दें यह भी मुश्किल है। हमने फिर भी देते-देते कह ही दिया--जरा जल्दी लौटानेकी कृपा करना क्योंकि कल हमारे यहां भी मेहमान आनेवाले हैं। वे 'जी, हां, जरूर, जरूर' तो कह गये मगर देखते हैं वह अपने शब्दोंको पूरा करते हैं कि नहीं।

दूसरे दिन बीबीजी मेहमानोंके आनेकी तैयारी करने लगीं। जब मेज-कुर्सी न मिली तो रामू नौकरको ऊपरवाले पड़ोसीके यहांसे लानेके लिये भेजा। मगर जब वह लेकर आया तो देखा कुर्सीपर वार्निशका नाम-निशान न था, धूल-ही-धूल नजर आ रही थी। और दरी तो ऐसी लगती थी कि न जाने कहां-कहां घसीटी गयी हो।

एक तीसरे सज्जन हैं। वे भी मेरे मकानके पास ही रहते हैं। उन्हें शायद बांसुरीका बड़ा शौक है। दोपहरको जब सारा जहान शांत होता है और सब आरामसे सोते हैं तो वे महाशय अपनी बांसुरीको लेकर चीं-चीं पीं-पीं करते रहते हैं। एक मिनट भी चैन नहीं। कुछ-न-कुछ खटपट करते ही रहते हैं। एक दिन न जाने क्यों उन्हें बढ़ई बननेकी सूझी, ले बैठे लकड़ी, आरी, बसूला, हथौड़ी और लगे सारे दिन खटपट, ठांय-ठांयकी आवाज करने। हमारे कमरेके ठीक ऊपर उनका कमरा है। सो हमें तो और भी दिक्कत हो रही थी। मना भी कैसे करें भई, हम क्यों बेकारका झगड़ा मोल लें। ....

मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि हमारे सब पड़ोसी ऐसे ही हैं। बस एक हैं जो कि इस लेन-देनके झंझटोंमें नहीं पड़ते। वह हैं — मि. सतीश। अच्छे खासे वकील हैं। चैनसे जिन्दगी कट रही है। सबसे उन्हें प्रेम भी बहुत है। कलकी ही बात है मुन्नेको जरा-सा बुखार चढ़ गया था तो दिनमें चार बार उसे देखने आये और डाक्टरको भी बुला लाये। मुन्नेको कहानियां सुना-सुनाकर बहलाते रहे। उनकी पत्नी भी बड़ी हंसमुख हैं। बीबीजीसे उनकी बड़ी मित्रता है।

परंतु दूसरे लोगोंसे तो रोजका लेन-देन चलता ही रहता है, कभी दाल, कभी चावल। कभी आटा और कभी तेल। अजी क्या बताएं बड़ी आफत है। अब हम इस मुहल्लेसे निकलनेके लिये जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। यही इच्छा है कि —

'अपनी डेढ़ ईंटकी जुदी मस्जिद किसी वीरानेमें जा बनाइयेगा।'

——अंजना शर्मा

* * *

मनुष्य आगे बढ़ रहा है

यह ठिगनी एम्पायर स्टेट बिल्डिंग

१९७० तक वह समय आ जायगा जब आजकी विश्व-प्रसिद्ध, १०२ मंजिलकी सर्वोच्च इमारत, अमेरिकाकी एम्पायर स्टेट बिल्डिंगकी छतपर भी खड़े होकर हमें उसके सामनेकी एक नयी इमारत देखनेके लिये सिर ऊंचा करना पड़ेगा। तब आजका वह विश्वाश्चर्य किंचित् सिर झुकाकर एक पग पीछे हट जायगा। उस समय संसारकी सबसे ऊंची इमारत होनेका सेहरा जिसके सिर बंधेगा, वह उसी महानगरी — 'मेनहेटन' में इसकी अपेक्षा १०० फुट अधिक ऊंची होगी। वास्तवमें वह नयी इमारत १०० फुटसे दुगनी ऊंची मानी जायगी क्योंकि वह एक इमारत न होकर, पास-पास सटा हुआ, बिम्ब-प्रतिबिम्बकी भांति दो इमारतोंका एक जोड़ा होगा जिन्हें लगभग स्तूप जैसे आकारके कारण 'टावर्स' कहा जायगा।

वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर — संक्षेपमें केवल 'सेण्टर' ही कहलानेवाले ये भवन खड़े करनेके लिये १६ एकड़ भूमिकी आवश्यकता होगी। इस हेतु उस महानगरीकी आबाद और गुंजान बस्तीमें १४ ब्लाकोंको

मलवेके ढेरमें परिणत कर दिया जायगा और वह मलवा ठेलोंमें लाद-लादकर दूर भेज दिया जायगा। तत्पश्चात् उस भूमिपर नींव खोदनेवाले कारीगर, इंजीनियर आदि ७० फुट गहरी खुदाई करके भू-स्तरोंमें ऐसी वज्र चट्टानकी खोज करेंगे जिसपर इन भवनोंके ढांचे खड़े किये जा सकें। उस चट्टान-पर ये नये भवन-द्वय, 'सेण्टर टावर्स' अपना १२,१।२ लाख टन वजन लिये खड़े होंगे, मानो संसारके विशालतम जलपोत—'क्वीन एलिजाबेथ' जैसे पन्द्रह जहाज एकके ऊपर एक खड़े हों।

मेनहेटनके पश्चिमी ओर नीचाईवाले क्षेत्रमें खड़ा किया जानेवाला यह ट्रेड सेण्टर इंजिनियरोंके लिये एक कठिन समस्या बना हुआ है। विशेष कठिनाई इसके भू-स्तरोंकी ओरसे अनुभव की जा रही है। ऐसी कौनसी और किस गहराईपर मिलनेवाली वज्र चट्टान होगी जो इन भवनोंका दान-वीय भार सह सके? खुदाईके अंतर्गत कैसी-कैसी परतें निकलेंगी, इसका अनुमान लगानेके लिये १५०-२०० बर्ष पुराने नक्शे देखे जा रहे हैं। सन् १७८३ के एक नक्शेसे ज्ञात होता है कि वर्तमान नदी-तटसे भी ७०० फुट अंदर, शहरकी ओर पहले नदीकी धारा बहती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि खुदाईमें काफी दूरतक नर्म मिट्टी, दलदल और टूटे नावों-जहाजोंके भंगार निकलते रहेंगे। इसके लिये इटलीके मिलन नगरसे आये हुए विशेषज्ञ और खुदाईके कारीगर भवनोंकी सीमाके चारों ओर गहरी खाई खोदेंगे ताकि उससे बाहरका कीचड़-पानी बाहर ही रहे और अंदरकी नींवको हानि न पहुंचाये।

लिफ्टके आविष्कर्ता एलिशा ग्रेवका आज संसार ऋणी है। जबसे १८५४ में एलिशाने अपना पहला लिफ्ट — हाइड्रालिक एलेवेटर बनाया, तबसे आजतक इसके निर्माणमें और उत्तरोत्तर बढ़ते उपयोगमें आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। यदि लिफ्ट न होते तो कोई भी इमारत ४-५-मंजिलसे ऊंची न जा सकती। उस स्थितिमें न्यूयार्क और मेनहेटन जैसे नगर आबाद होना ही असंभव हो जाता क्योंकि फैले हुए इलाकेमें चौड़े-ठिगने मकान बनानेकी वहां गुंजायश ही नहीं है। वहां तो अनिवार्य रूपसे गगनचुम्बी भवन चाहियें। गगनचुम्बी भवनकी उपयोगिता तभी है जब उसमें लिफ्ट हों। ट्रेड सेण्टरके इन टावरोंके लिये सीधा हिसाब लगाया गया तो मालूम हुआ कि साधारण तरीकेसे ११० मंजिलोंतक लिफ्टोंका जंजाल खड़ा करनेमें समूचे भवनकी आधी जगह तो लिफ्टोंमें ही खप जायगी। अतः इन भवनोंके लिफ्टोंको तीन भागोंमें बांट दिया जायगा। पहली मंजिलसे ४० वींतक, ४१वींसे ७३ वींतक और ७४ वींसे ११० वींतक लिफ्ट-व्यवस्था विभाजित रहेगी। इन लिफ्टोंकी चाल भी तीव्रतम — १७०० फीट प्रति मिनटकी रखी जायगी। प्रत्येक टावरमें ९५ लिफ्ट रहेंगे।

यह सेण्टर न केवल संसारका सबसे ऊंचा मकान होगा, बल्कि सर्वाधिक व्यस्त और जन-खचित भी रहेगा। इसमें केवल कार्यकर्ताओंकी ही संख्या ५० हजारसे अधिक होगी और इसका भूमि-क्षेत्र-फल एक करोड़ वर्ग फुट होगा। इस सेण्टरका ६० प्रतिशत स्थान-भाग तो शहरकी सरकारी संस्थाओं, प्रमुख कार्यालयों तथा संयक्त-राज्यीय चुंगी विभागके लिये सुरक्षित रहेगा और शेष ४० प्रतिशत भाग ऐसे बड़े उद्योग-संस्थानोंको किरायेपर दिया जायगा जिनके निर्मित रेशम, मसाले, मशीनें और शराब आदि वस्तुएं प्रति २० मिनटपर निकलनेवाले जहाजोंद्वारा निर्यात होती रहेंगी।

इतने बड़े आकर्षण-केंद्रको केवल देखनेवाले सैलानी ही प्रतिदिन लगभग ८० हजारकी संख्यामें आते-जाते रहेंगे। उनके लिये भूमिगत, किंतु पांच मंजिलका १६०० कारें एक साथ खड़ी करने योग्य गैरेज उपलब्ध रहेगा। जो होटलमें टिकना चाहे, वे २५० कमरोंयुक्त बने होटलमें भी ठहर सकेंगे। बर्मिघम (मिशिगन)के भवन-विशेषज्ञ, इंजिनियर, मिनोरू यामासाकीको विश्वास है नूतनतम विज्ञानकी सहायतासे खड़े किये जानेवाले ये सेण्टर यदि सफलता दिला सके तो आगामी वर्षोंमें देश-देशांतरोंमें और भी ऊंची इमारतें खड़ी करनेकी स्पर्धा जग उठेगी।

अनुमान है कि इन सेण्टर टावर्सपर ३५० करोड़ डालर व्यय होगा! तभी तो इनकी ११०वीं मंजिलकी छतसे हम खड़े होकर कह सकेंगे — 'वह देखो, ठिगनी एम्पायर स्टेट बिल्डिंग!'

शल्य चिकित्सा

कीटाणु-रहित वातावरणमें शल्य-चिकित्सा

शल्य-चिकित्सक तभीसे दो प्रबल शत्रुओं —— पीड़ा तथा संक्रामक रोगों —— के विरुद्ध संघर्ष करते आ रहे हैं, जबसे कि चिकित्सा-कार्य प्रारंभ हुआ है। संक्रामक रोगोंपर विजय पाना सबसे कठिन रहा है और वे मनुष्योंको पीड़ा देने तथा उनको मृत्युका ग्रास बनानेके लिये नये-नये रूपों तथा नये-नये प्रकारसे प्रकट होकर अत्यंत घातक सिद्ध होते रहे हैं।

मनुष्य पृथ्वीपर कहीं भी कोई ऐसा स्थान नहीं खोज सकता जो कीटाणुओंसे सर्वथा मुक्त हो। जीवाणु तथा विषाणु सर्वत्र मौजूद हैं और बिना विशेष उपकरणोंकी सहायताके उन्हें देखना संभव नहीं है। खुले जख्मोंके लिये कीटाणु बहुत अधिक खतरनाक होते हैं। वे अक्सर मृत्युका कारण बन जाते हैं। शल्य-चिकित्सक उसी समयसे शल्य-चिकित्साके कमरे तथा रोगीसे विषाणुओंको दूर रखनेके उपाय ढूंढ़तेका प्रयत्न करते रहे हैं, जबसे सर्वप्रथम यह पता चला था कि अनेक रोगोंकी उत्पत्तिका कारण विषाणु हैं। गत वर्षोंमें वैज्ञानिकोंने विषाणुओंके स्वभावके विषयमें बहुत अधिक जानकारी हासिल कर ली है।

अनुसंधानकर्ता अक्सर यह सोचते रहे हैं कि कीटाणुओंके बिना जीवन कैसा होगा। ऐसे स्थानोंमें कीटाणुओंसे मुक्त पशु उत्पन्न करनेके लिये विस्तृत साधनोंका विकास किया गया है जो सभी प्रकारके जीवाणुओं तथा विषाणुओंसे मुक्त हों।

पिछले कुछ दशकोंमें धीर-धीरे कीटाणु मुक्त अनुसंधान करनेकी प्रक्रियाओंका विकास हुआ है। उनका ऐसी अनेक प्रयोगशालाओंमें प्रयोग किया जाता है जहां इन विचित्र एवं अप्राकृतिक स्थितिमें जीवाणुओंसे सर्वथा मुक्त स्थानोंमें, जीव-जन्तुओंके विषयमें विशेष अध्ययन किया जाता है। ऐसे वातावरणमें छोटे जीव-जन्तुओंकी अनेक पीढ़िया उत्पन्न की गयी हैं और वे जबतक जीवित रही हैं तबतक सभी प्रकारके जीवाणुओंसे मुक्त रही हैं। ऐसे अध्ययनसे वैज्ञानिकोंने कीटाणुओं, उनके कार्यों, उनकी वृद्धि तथा मृत्युके विषयमें अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य मालूम किये हैं। किंतु, ये सब आधुनिक शल्य-चिकित्साकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये पर्याप्त नहीं हैं।

शल्य-चिकित्साको अधिक स्वच्छ, अधिक निरापद तथा अधिक प्रभावशाली बनानेके लिये १०० वर्षोंके संघर्षके पश्चात् जो उपाय मालूम किये गये हैं उनके साथ कीटाणुयुक्त अनुसंधानके अपेक्षाकृत नये विज्ञानका भी प्रयोग किया जा रहा है। इस नयी प्रक्रियामें रोगी तथा शल्य-चिकित्साविषयक उपकरणोंको कीटाणुओंसे मुक्त करनेके लिये कठोरतापूर्वक वैसी ही तैयारी करनी पड़ती है जैसी कि अनेक दशकोंसे की जाती रही है। किंतु इस प्रक्रियाके अंतर्गत शल्य-चिकित्सक तथा शेष सभी वस्तुएं रोगीके उस भागसे बिलकुल पृथक् रहती हैं जिसकी शल्य-चिकित्सा करनी होती है।

शरीरके जिस भागका आपरेशन करना होता है, उसे प्लास्टिकके एक बड़े गुब्बारेसे ढांप दिया जाता है। इस गुब्बारेके भीतर, जीवाणुओंसे मुक्त नियंत्रित वातावरण रहता है। इस गुब्बारेमें एक ऐसा स्थान (एयर लाक) होता है जिसमेंसे कीटाणुओंसे मुक्त किये गये उपकरणोंको पृथक् करनेवाले आवरणको भंग किये बिना गुब्बारेके भीतर रखा जा सकता है। शल्य-चिकित्सक तथा उसके सहायक कर्मचारी गुब्बारेके बाहर खड़े होकर उसके भीतर बनाये गये रबड़के दस्तानोंकी सहायतासे कार्य करते हैं।

रोगीको हिलाये-डुलाये बगैर लादनेवाला 'कैंची' जैसा स्ट्रेचर

अमेरिकाके एक निर्माताने एक ऐसा स्ट्रेचर विकसित किया है, जिसे रोगीको उठाये या हिलाये-डुलाये बगैर ही लादा या खाली किया जा सकता है। यह स्ट्रेचर उन दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियोंको हटानेके लिये विशेष रूपसे उपयोगी है जिनकी हड्डी टूट गयी हो अथवा जो चल-फिर नहीं सकते।

यह अल्यूमिनियमसे निर्मित है और इसका वजन केवल १६ पौण्ड है। यह अपनी लंबाईमें दो समान भागोंमें विभाजित है, जो सिरेकी ओर एक चिटखनीद्वारा एक-दूसरेसे जुड़े होते हैं। पैरकी ओरके छोर कैंचीके फलकोंकी भांति एक-दूसरेसे पृथक् होकर फैल सकते हैं। किसी रोगीको स्ट्रेचरपर चढ़ानेके लिये, दोनों पृथक्कृत आधे भागोंको रोगीके चारों ओर धर दिया जाता है और रोगीके नीचेसे घुमाकर पैरवाले छोरोंको एक-दूसरेसे मिला दिया जाता है। एक चिटखनीको कस दिया जाता है जिससे पैरकी ओर वाले छोर फिर खुलने नहीं पाते।

इस स्ट्रेचरका निर्माण बोस्टनकी ए. ई. हाल्पेरिन कम्पनीने किया है। इस कंपनीने पोर्टलैण्ड-मैनके अस्थि-चिकित्सक डा. बालेस डब्ल्यू. राबिन्सनद्वारा तैयार मूल डिजाइनके आधारपर इसे विकसित किया है।

यद्यपि स्ट्रेचरकी लंबाई केवल ६३ इंच है किंतु इसे फैलाकर इसपर ७ फुट लंबे और २५० पौंड-वजनी आदमीको भी लिटाया जा सकता है। जब स्ट्रेचरको ढोनेके लिये दोसे अधिक आदमी उपलब्ध होते हैं तो इसकी बगलोंमें लगी गोल मुट्ठियोंका प्रयोग किया जा सकता है।

इसमें तीन पट्टियां लगी होती हैं, जो रोगीको गिरनेसे बचाती हैं। प्रयोग न होनेपर इन्हें सिर-पर लगी प्लास्टिककी तकियाके नीचे बने खानोंमें बंद कर रखा जा सकता है। बाहर रखनेसे भी स्ट्रेचर मौसमके कारण खराब नहीं होता।

(यू. एस. आई. एस. के सौजन्यसे) — **श्यामसरन अग्रवाल 'विक्रम'**

तुझे पराई क्या पड़ी!

एक दिन बहुत थका हुआ होनेके कारण दोपहरको काम करनेकी इच्छा नहीं हो रही थी, केवल इतना ही नहीं कि इच्छा नहीं थी वरन् नींद भी आ रही थी। सोचा, थोड़ा आराम ही क्यों न कर लिया जाय। ज्योंही खाटपर लेटा मेरी आंख लग गयी। ठण्डी हवा चल रही थी, इसलिये बड़े मजेकी नींद आने लगी। नींदकी मिठासका अनुभव शुरू हुआ ही था कि नीचेसे जोर-जोरसे चिल्लानेकी आवाज आने लगी। ऐसा मालूम होता था मानो कोई झगड़ा रहा हो। नींद तो हराम हो ही गयी पर यह प्रश्न उठा कि झगड़ेमें फंसा जाय या नहीं। विचार आया कि अच्छे पड़ोसी होनेके लिये एक-दूसरेकी सहायता करना आवश्यक है। कठिनाईमें भी काम न आये तो फिर पड़ोसी कैसे? आखिर इस नतीजेपर पहुंचा कि अकेला जाना अच्छा नहीं, क्योंकि मुझे तो उनकी भाषा नहीं आती, पासवाले दूसरे पड़ोसीको भी बुला लाऊं। वह थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी जानता है। उसके द्वारा मैं ठीकठीक जान सकूंगा कि मामला क्या है। लड़नेवालोंकी आवाजें अधिकाधिक जोरकी होती जा रही थीं इसलिये मैंने थोड़ी जल्दी करना अच्छा समझा। कहीं ऐसा न हो कि हमारे पहुंचनेसे पहले वे फौजदारीपर उतर आयें और एक-दूसरेका सिर फोड़ बैठें।

जल्दी करनेका फल भी तो बुरा होता है। सबसे पहले तो दरवाजेकी दहलीजपर ठोकर खाते-खाते बचा और उसके बाद ज्योंही घरसे बाहर निकला एक साइकलवालेसे टक्कर लग गयी। यह तो भगवान्‌की कृपा थी कि साइकलवालेने एकदमसे ब्रेक लगा दिये और साइकलको एकदम मेरे पास सटाकर रोक दिया। न तो मुझे चोट लगी, न उसकी ही किसी प्रकारकी हानि हुई। मुझे लगा मानो आजका दिन ही बहुत खराब है। अवश्य ही कोई दुर्घटना होनेवाली है।

खैर, जैसे-तैसे हांफता हुआ पड़ोसीके द्वार पहुंचा। मैंने द्वारके अंदर पैर रखा ही था कि एक और बला आ पड़ी। एक क्षणके लिये मैं अवाक्-सा रह गया। कुछ समझमें ही नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय। मानो मेरा मस्तिष्क एकदम खाली हो गया हो। कोई विचार ही नहीं आ रहा था। वह बला थी पड़ोसीका कुत्ता, मेरे द्वारके अंदर पैर रखते ही वह एक कोनेसे भौंकता हुआ मुझपर लपका। मेरे पैरमें जूता भी न था जो उस समय शस्त्रका काम दे सकता। पास ही एक छोटा-सा चबूतरा था उसीपर छलांग लगायी। पर वह क्या मुझसे कम था! वह भी पीछे-पीछे भौं भौं करता दौड़ पड़ा। मैंने फिरसे चारों ओर नजर दौड़ायी पर फिर कुछ नजर न आया। एक बार फिर पीछेकी ओर देखा, सिवाय दीवारपर लटकती हुई रस्सीके और कुछ दिखायी नहीं पड़ा। तब विचार आया कि रस्सीपर चढ़नेका व्यायाम कब काम आयगा। रस्सी बहुत लंबी नहीं थी। पर तो भी कुत्तेसे तो काफी ऊंचे स्थानपर लटक रही थी।

अपने इतने दिनके अभ्यासको काममें आता देखकर मुझे अपने-आपपर बड़ा गर्व हुआ। मैं झट रस्सीपर चढ़ गया। कुत्ता भी कम्बख्त तबतक रस्सीके नीचे दीवारके पास आ गया। मैंने सोचा चलो, अब तो कुछ चैन मिली। पर कुत्ते महाराज तो वहां डटकर खड़े हो गये और लगे और भी जोरसे गला फाड़ने। एक तो मुझे अपने कर्तव्य निभानेकी चिंता और दूसरे मेरे हाथ दुखने लगे। आखिर कबतक वहां लटकते रहा जा सकता था। हाथ लाल हो गये। ऐसा मालूम होता था मानों अभी हाथ छूट जायेंगे और मेरे जमीनपर गिरते ही कुत्ता मुझपर टूट पड़ेगा। कोई भी तो चारा नहीं था। ऐसे समय पड़ोसीके आनेसे मेरा ही सिर नीचा होता। पर क्या किया जा सकता था? दूसरा कोई उपाय नहीं था। मैंने जोर-जोरसे घरवालेको पुकारा। मुश्किल तो यह थी कि मुझे उनका नाम भी मालूम नहीं था।

शोर-शराबा सुनकर मेरा पड़ोसी स्थानपर आया और इतनेमें कुछ और भी पड़ोसी इकट्ठे हो गये। जब कुत्तेको बांध दिया गया तो मेरी जानमें जान आयी। एक-दो मिनट सांस लेकर मैंने बहुत लज्जित होते हुए अपनी बात कह सुनायी। बात पूरी भी नहीं हुई थी कि भीड़में खड़े हुए सज्जनोंमेंसे दो-तीन सज्जन खिलखिलाकर हंस पड़े। मैं उनके हंसनेका कारण ही नहीं समझ सका। तब मेरे पड़ोसीने मुझे बताया कि यह वही व्यक्ति हंस रहे हैं जिनके बारेमें तुमने सोचा था कि वह झगड़ रहे थे। असलमें वह झगड़ नहीं रहे थे। मैं बहुत ही लज्जित हुआ। तबसे मैंने कान पकड़ लिये कि सहायता करनेका नाम नहीं लेना। यहांपर पता ही नहीं लगता कब झगड़ा हो रहा है और कब हालचाल पूछा जा रहा है।

— भूदत्त

* * *

अगर तुम बिच्छूके डंककी यातना नहीं सह सकते तो फिर इधर-उधर बिलोंमें हाथ भी न डाला करो।

भावना देखो

हमारी साधनाका बल नहीं, तुम भावना देखो।
हमारे प्रेमका अभिनय नहीं, उन्मादना देखो।

कहां है चन्द्रमा आकाशका, भूतल कहां है ?
हृदय-संबंधमें क्या भेद ? कोई छल कहां है ?
नयनके इन चकोरोंकी असंभव कल्पना देखो।
हमारी साधनाका बल नहीं तुम भावना देखो।

न मिलता सिंधु जबतक, स्रोत क्या विश्राम पाता है ?
जलनमें भी शलभ जाने न कैसी शांति लाता है ?
नहीं तुम आरतीके दीप आकुल वन्दना देखो।
हमारी साधनाका बल नहीं, तुम भावना देखो।

हमारे कर्ममें इतनी भला यदि शक्ति ही होती,
तुम्हारे प्रति अकारण प्रीति क्यों अनुरक्ति ही होती ?
न पूछो पूर्वका परिचय, प्रणयकी प्रार्थना देखो।
हमारी साधनाका बल नहीं, तुम भावना देखो।

भले ही अर्चनाके फूलमें सौरभ न पाओ तुम।
विमुख यों क्षुद्रता अवलोककर ही रह न जाओ तुम।
हमारे दोष मत अपनी कृपाकी घोषणा देखो।
हमारी साधनाका बल नहीं, तुम भावना देखो।

तुम्हारी एक करुणा-ही हमारे पंथका संबल।
तुम्हारे नामका ही अब मुझे विश्वास है केवल।
स्मरणका सुख नहीं, तुम विस्मरणकी वेदना देखो।
हमारी साधनाका बल नहीं, तुम भावना देखो।

तुम्हारी अमल पलकोंकी अभय उन्मुक्त छाया है।
शरणमें जो कभी आया, उसे कब अन्य भाया है ?
समर्पण यह अधूरा मत, मिलन-संभावना देखो।
हमारी साधनाका बल नहीं, तुम भावना देखो।

—आरसीप्रसाद सिंह

ऐतिहासिक गाथा :

दुर्जनसिंह

—श्री अनुबेन पुराणी

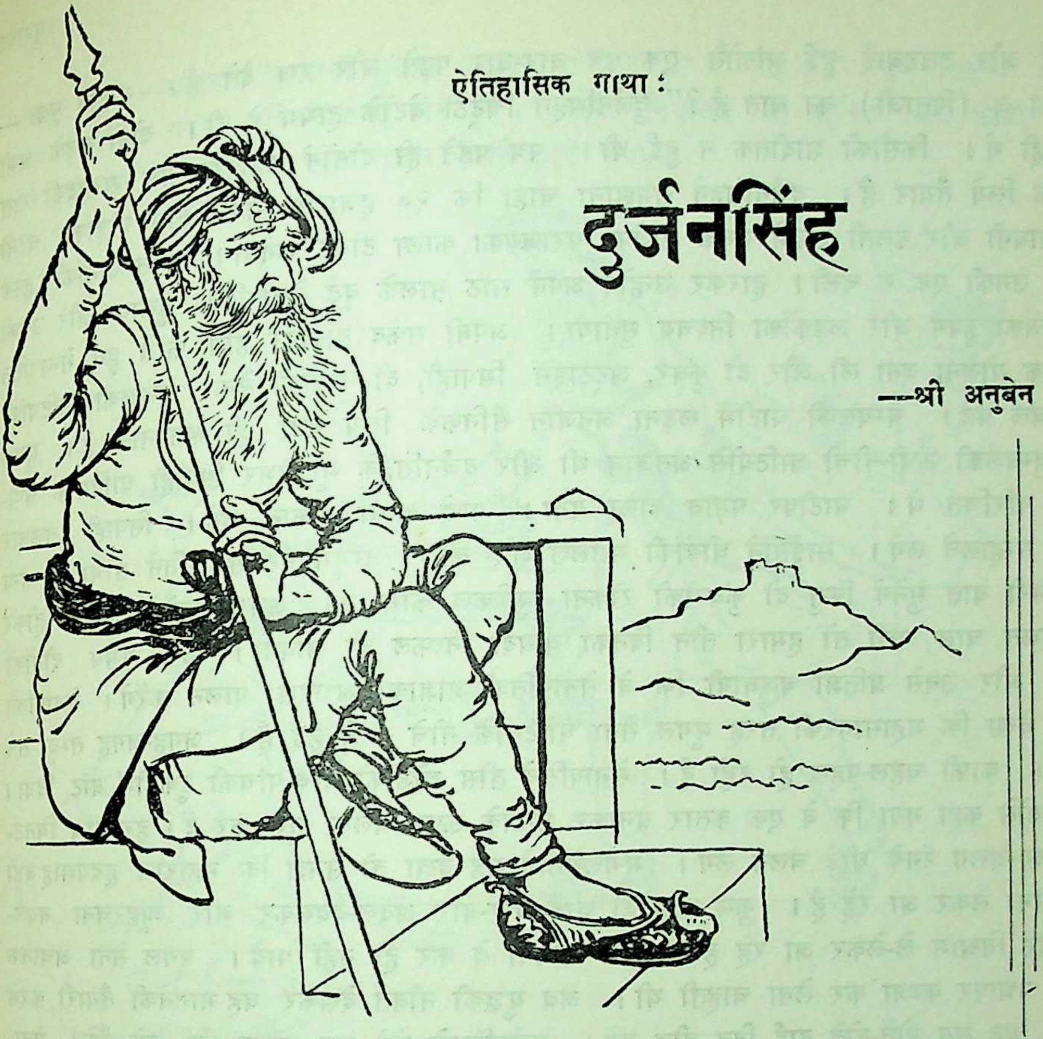

महाराज छत्रसालके एक बेटेका नाम हृदय शाह था। उनको पन्नाका राज्य मिला था। इस समय दिल्लीके तख्तपर बहादुरशाह मुगलोंकी आखिरी तड़क-भड़क दिखा रहा था। अभी-अभी पिण्डारियोंका उपद्रव आरंभ हुआ था। पन्नापर भी उसकी छाया पड़नी शुरू हो गयी थी। बहादुरशाहने सोचा कि इस समय जब पन्ना कठिनाइयोंमें घिरा हुआ है उसपर आक्रमण करना आसान होगा। उसने चुपचाप बीस हजारकी सेनाको पन्नाकी सरहदपर इकट्ठा कर दिया। महाराजके गुप्तचर चारों ओर फैले हुए थे। इनके कारण यह गुप्त समाचार छिपा नहीं रह सका। परंतु खबर आते-आते इतना समय गुजर गया कि सेना इकट्ठी करके सरहदतक पहुंचना संभव न था। उन्होंने झट एक पत्र दुर्जनसिंहके नाम लिखा।

पन्नाकी सरहदपर जसो नामक जागीर थी। वहांके जागीरदारका नाम दुर्जनसिंह था और ये दो हजारी मनसबपर थे। इस समय दुर्जनसिंहके पास केवल तीस ही घुड़सवार बच गये थे। अचानक महाराजका सवार पत्र लिये आ पहुंचा। पत्रमें महाराजने लिखा था कि मुगल सेना चम्बलकी घाटीपर तैयार बैठी है। महाराज चाहते हैं कि तीन दिनके लिये उसे वहीं रोका जाय। इस समय दुर्जनसिंहकी आयु ७५ साल की थी। बूढ़े जागीरदार बड़े दु:खी होकर बार-बार पत्रको पढ़ते और सोचते कि तीस घोड़ोंको लेकर मुगल सेनाकी बाढ़को कैसे रोका जाय और कुलकी प्रतिष्ठाकी रक्षा कैसे हो। इतनेमें इनके दो बेटे शिकारसे वापस आये। ठाकुरोंमें यह रिवाज है कि घरसे बाहर जाते या घर लौटते हुए बड़ोंके पांव छुए जायं। बेटे पांव छूने आये तो देखा कि पिता बड़े उदास

बैठे हैं और डबडबाई हुई आंखोंसे एक पत्र बार-बार पढ़ते और रख देते हैं। उन्होंने पूछा—“कवका जू (पिताजी), का बात है?” दुर्जनसिंहने चिट्ठी बेटोंके हाथमें दे दी। दोनों लड़के अभी छोटे ही थे। किसीकी शादीतक न हुई थी। पत्र पढ़ते ही दोनोंने कहा कि हम सरहदकी रक्षा करनेके लिये तैयार हैं। दुर्जनसिंहने समझाना चाहा कि २० हजारके सामने तीस घोड़ोंकी चटनी बन जायगी और ढलती उम्रमें उनके माथेपर पराजयका काला टीका लगेगा। परंतु दोनोंकी हठके सामने उनकी एक न चली। हारकर उन्होंने अपने साठ सालके बूढ़े सेनापतिको बुलाया और उनको महाराजका हुक्म और लड़कोंका निश्चय सुनाया। अपनी सफेद दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए सेनापतिने झट एक योजना बना ली और दो कुंवर, अट्ठाइस सिपाही, दो पण्डोंको लेकर चम्बलकी घाटियोंकी ओर चल पड़े। चम्बलकी घाटीमें लड़ना अनजान सैनिकके लिये बड़ा ही खतरनाक है। मुगल सेना चम्बलकी ऊंची-नीची घाटियोंसे अनजान थी और दुर्जनसिंहके मुट्ठीभर सिपाही घाटियोंके चप्पे-चप्पेसे परिचित थे। घाटीपर पड़ाव डाला गया। पण्डे खाना पकाने लगे। सिपाही तलवार वगैरह सम्हालने लगे। साईसोंने घोड़ोंकी मालिश शुरू की। तम्बूमे बैठे सेनापतिने सोचा कि अन्य लोग मेरी बात सुनेंगे किंतु दो कुंवरोंको रोकना मुश्किल काम है। अगर उन्होंने उतावले होकर कुछ गलत चाल चली तो हमारा तीन दिनका वायदा निष्फल हो जायगा। उसी समय दोनोंको बुलाया और उनसे प्रतिज्ञा करवायी कि वे सेनापतिकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करेंगे। सेनापतिने ऊपरसे देखा कि महासागरकी तरह मुगल सेना घाटियोंके नीचे फैली हुई है। जगह-जगह तम्बू तने हुए हैं। काफी चहल-पहल हो रही है। सेनापतिने तीस घोड़ोंको पांच-पांचकी टुकड़ीमें बांट दिया। सिपाहियोंसे कहा गया कि वे एक कतार बनाकर घाटीके ऊपर चलना शुरू कर दें। हर पांच मिनटपर अलग-अलग रंगके घोड़े चलने लगे। मुगलसेनाने यह देखा तो समझे कि महाराज हृदयशाह बड़ी भारी सेना लेकर आ रहे हैं। कुल तीस ही घोड़े बार-बार अदल-बदलकर और व्यूहरचना बदलकर और विश्राम ले-लेकर आ रहे हैं—ऐसी कल्पना वे कर ही नहीं पाये। मुगल सेना अचानक घुसकर पन्नापर कब्जा कर लेना चाहती थी। अब युद्धकी नौबत देखकर वह भागनेकी तैयारी करने लगी। यह सब होते-होते ढाई दिन बीत गये। दुर्जनसिंहके बेटे अब अपना धैर्य खो बैठे। सेनापतिके आगे जाकर दोनोंने कहा कि अब हम आपकी आज्ञाका पालन नहीं करेंगे। कल महाराज हृदयशाहकी सेना आ जायगी फिर हमें युद्ध-कौशल दिखानेका अवसर नहीं मिलेगा। हमें जाने दीजिये, बस आपकी ‘हां’ की प्रतीक्षा है। सेनापति नाराज हो उठे। बोले—‘अरे बहादुरके बेटे होते तो क्या इस तरह पूछनेके लिये खड़े रहते?’ यह बात दोनों कुंवरोंकी छातीमें बरछेकी तरह जा लगी। दोनों उसी समय घोड़ोंको भगाते हुए नीचे उतर गये और उनके पीछे-पीछे सारे सैनिक जा पहुंचे। लाचार सेनापतिको भी उतरना पड़ा। मुगल सेना ढाई दिनसे घोड़ोंको देख रही थी और इस समय निश्चिंत होकर पीछे हटनेकी तैयारी कर रही थी। इस अप्रत्याशित हमलेके लिये वे बिलकुल तैयार न थे। तीसों आदमियोंने आते ही ऐसा घामासान युद्ध आरंभ किया कि एक हजार आदमी उसी दिन खेत हो गये। दूसरे दिन महाराज हृदय शाहकी सेना सवेरे-सवेरे पहुंच गयी। उस समयतक एक पण्डेको छोड़कर और कोई बाकी न बचा था। जब उसने हृदयशाहके सैन्यको देखा तब निश्चिंत होकर जसोकी ओर चल पड़ा। वहां जाकर देखा कि दुर्जनसिंह तीन दिनसे भाला लिये एक ही मुद्रामें बैठे हुए थे। वृद्ध जागीरदारको न नींद आती थी, न भूख-प्यास पीड़ित करती थी। पण्डेको देखते ही बोले—‘क्यों क्या हुआ?’ पण्डेने जवाब दिया—‘हमने तीन दिनतक शत्रुको चम्बलकी घाटीमें ही रोक रखा, आज सवेरे महाराजका सैन्य आ गया।’ दुर्जनसिंहने पूछा—‘हमारे आदमियोंका क्या हुआ?’ पण्डा बोला—‘सब काम आ गये।’ दुर्जनसिंहने पूछा और लड़के? पण्डेने सोचा कि जागीरदारका वृद्ध हृदय अपने बेटोंकी मौतके समाचारको सह न पायगा। उसने

पुरोधा झट उत्तर दिया—'महाराज! दोनों कुंवर शिकार खेलकर आ ही रहे हैं।' दुर्जनसिंहका चेहरा अचानक पीला पड़ गया। किसी तरह खड़े हुए। सीधे रनिवासमें जा पहुंचे। अब पण्डा घबराया। सावधानीसे दरवाजेके पीछे जाकर देखने-सुनने लगा।

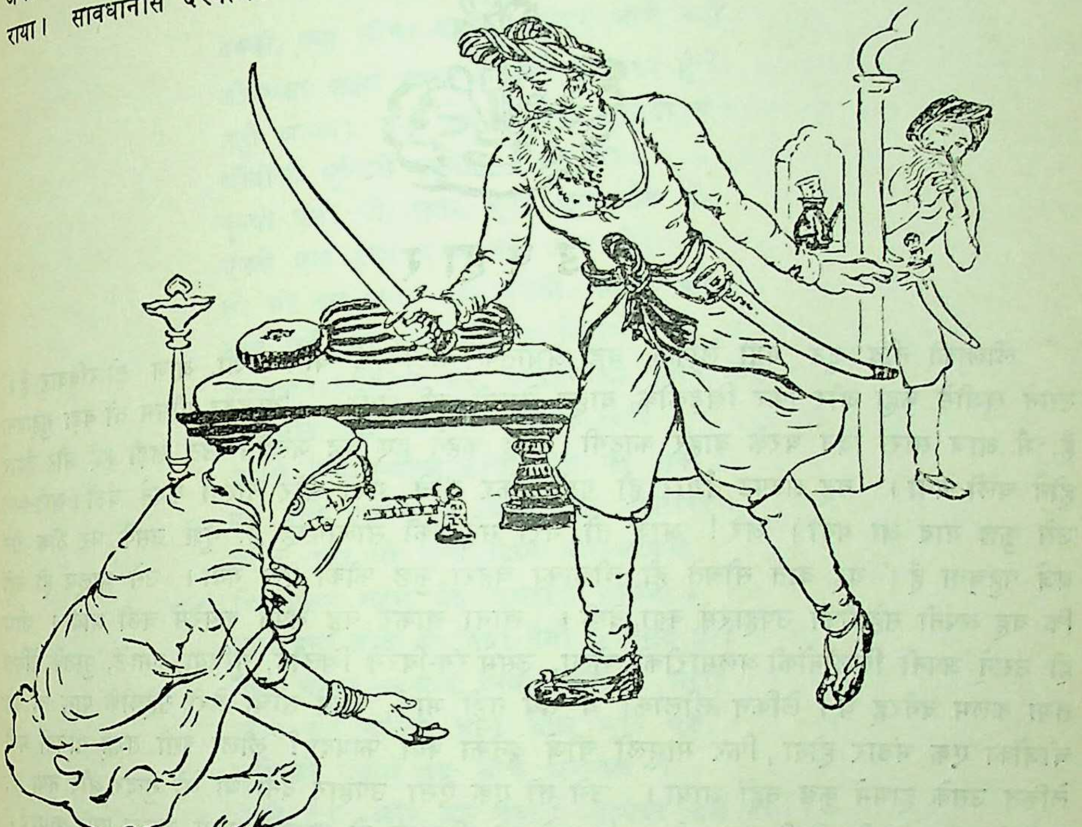

उसने देखा कि दुर्जनसिंह नंगी तलवार लिये ठकुरानीके सामने खड़े थे और कड़ककर पूछ रहे थे, 'सच-सच बता ये किसके बेटे हैं?' ठकुरानी हाथ जोड़कर बोली — 'महाराज! आपके हाथों मरना मेरे लिये सौभाग्यकी बात होगी। पर मुझे विश्वास है कि मेरे दोनों लाल वीर गति पा चुके हैं, आगे आपकी इच्छा।' वह गरदन झुकाकर बैठ गयी। पण्डा समझ गया कि उसने झूठ बोलकर बड़ी गलती की है। झट अंदर जा पहुंचा और हाथ जोड़कर बोला — 'महाराज, क्षमा हो।' दुर्जनसिंह बोले—'काय कछु और तरह है?' पण्डेने दुर्जनसिंहको गद्दीपर बैठाकर संक्षेपमें उनके दोनों बेटोंकी वीरगतिकी कहानी सुनायी, दुर्जनसिंह सुनते ही प्रसन्न हुए और उसी क्षण लुढ़ककर शरीर छोड़ गये।

इधर महाराज हृदयशाहकी सेनाने बाकी सब शत्रुओंको खतम कर डाला। दिल्ली खबर भेजनेके लिये भी कोई न बचा। दुर्जनसिंहके इस चमत्कारी कार्यने एक लोकोक्तिको जन्म दिया। अभी भी बुन्देलखण्डमें लोग कहते हैं — **धन धन दीवान दुर्जनसिंहकी करनी, बीस हजारसे तीस लड़े।**

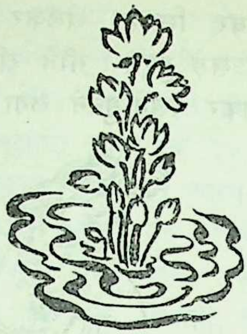

उपहार

लीलाकी नींद टूट गयी लेकिन वह अभीतक लेटी हुई थी। 'ओ, आज तो रविवार है।" उसने खुशीसे कहा और फिर खिड़कीके बाहर देखती हुई बोली —— 'आजका मौसम तो बड़ा सुहावना है, मैं आज सारा दिन घरके बाहर काटूंगी।' यह कहते हुए वह जल्दीसे उठ खड़ी हुई और तैयार होने चली गयी। वह झटपट तैयार हो गयी, फिर नीचे गयी और नाश्ता करने बैठी। खाते-खाते उसे कुछ याद आ गयी। 'अरे! आज तो मेरी सहेलीकी सालगिरह है, मुझे उसके घर ठीक तीन बजे पहुंचना है।' यह बात सोचते ही लीलाका चेहरा कुछ फीका पड़ गया। उसे मालूम ही नहीं कि वह अपनी सहेलीको उपहारमें क्या देगी। खाना खाकर वह अपने कमरेमें चली आयी। शीघ्र ही उसने अपनी खिलौनोंकी अलमारीको खोला, उसमें रंग-बिरंगे खिलौने, गुड़िया, रुमालें, पुस्तकें, पेंसिल तथा कलम वगैरह थे। लेकिन लीलाको ये सब नहीं भाये, उसने सोचा मेरी सहेलीके पास तो इन चीजोंका एक भंडार होगा, फिर मामूली चीजें देनेका क्या फायदा? लीला इसी तरह सोचती गयी लेकिन उसके हाथमें कुछ नहीं आया। उसे तो एक ऐसा उपहार देना था जो सुन्दर और नया हो, जिसे देखकर उसकी सहेली कह उठे —— 'मुझको तो लीलाका ही उपहार सबसे ज्यादा पसंद आया है।'

दो घण्टे बीत गये, लीला परेशान थी, वह थक गयी। उसकी पलकें बंद होने लगीं। वह सो गयी।

जब वह उठी तो तीन बजनेमें आध घण्टा था। झट वह तैयार होने लगी। वह अपने जूते पहन रही थी कि अचानक उसने महसूस किया, 'मैं कैसे जाऊंगी? मेरे पास तो कुछ नहीं है, नहीं, मैं नहीं जाऊंगी।' लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अपन विचारको बदल लिया। वह बोली,— 'मुझे तो जाना चाहिये, क्या हुआ, मैं उससे सिर्फ मिलकर आ जाऊंगी।' यह सोचते-सोचते वह घरसे बाहर आ गयी।

वह अपने बागसे गुजर रही थी। कई नये फूल खिले थे, वे हवाके झोंकेसे झूम रहे थे। अचानक लीलाकी नजर इन सुन्दर फूलोंपर पड़ी और वह बोली —— 'ऐं, क्यों न मैं इन्हीं फूलोंको ले जाऊं' वह तोड़ने लगी और उसने उनको सुन्दर ढंगसे सजा दिया और चल पड़ी।

लीला अब बहुत खुश थी, और उसी कारण उसके पैर जल्दी-जल्दी चलने लगे। सहेली भी इन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हो गयी।

लीलाने अपनी सहेलीको सिर्फ फूल ही उपहारमें दिये। कितनी मामूली चीज है! लेकिन लीला और उसकी सहेलीके लिये मामूली न थो। वह कुछ और ही थे जिसे सिर्फ लीला और उसकी सहेली समझ सकीं।

—नीली

जन्म और जिम्मेदारी

बच्चो, क्या सोचा कभी पृथ्वीपर जन्मे क्यों ?
जीवनका लक्ष्य परम कौनसा तुम्हारा है ?
नहीं शायद; सुनो तब कहानी सुनाता हूं।
जीवोंकी सृष्टिसे पहलेका समय था।
पृथ्वी बनी थी, लता, वृक्ष, फूल फैले थे,
एकसे एक रम्य दृश्य चहुं ओर थे।
तो भी इस भूपर एक चरकी जरूरत थी,
ढाल सकें पूर्ण अपनेको देव जिसमें
जड़ताको ज्योतित कर, अचेतनाको चेतन कर
ठोक-पीट शुद्ध औ पवित्र करके जिसे
ब्रह्मके निवास-योग्य ढांचा एक गढ़ सकें,
मूर्त होके जिसमें वे विचरें इस धरतीपर।
भारी सभा थी लगी दिव्य ब्रह्म-लोकमें,
चिन्तामग्न ब्रह्मा बैठे अमरोंके मध्यमें।
गाय बना बोले वे "क्या देवो ये पसंद है ?"
देखा देवोंने —— चार निर्बल पगों पै भारी
अपने तन सारेका थामे बोझ मूर्ति एक,
दृष्टिको गड़ाये हुए नीचे धरातल पै
खड़ी है। और यह क्या ? माथेपर बर्छे दो!!
"प्रभो, नहीं" एक साथ बोल उठे देवगण,
ब्रह्माने सोचकर घोड़ा बनाया तब।
देवोंको दिखाकरके पूछा फिर —— "और यह ?"
हलका वह गायसे था तेज और फुर्तीला भी,
पर इसकी भी दृष्टि हाय निम्नमुखी थी।
उसके लिये न था संभव जरा भी यह
ताक सके ऊपर सहायतार्थ अपनी ;
रक्षा करे जो, ऐसे अंगका अभाव था,
हीं हीं छोड़ अन्य कुछ मुंहसे न बोलता,
क्षमता थी न मनमें जो सोच सके कुछ भी
और संकल्पका तो नाम भी न था वहां।
बच्चो, काम होते सब संकल्प प्रबलसे
और यह काम सब कामोंसे महान् था।
"नहीं प्रभो, नहीं" यह बोल उठे देवगण।
देवोंकी कठिनाई ब्रह्मा अब समझे।
और तब सुन्दर स्वरूप नर गढ़कर
"देखो रहा कैसा यह ?" पूछा फिर देवोंसे।

देखते ही उसको सब देव हो उठे प्रसन्न।
पांव थे दो ही पर सबल जमे धरती पै
और दो प्रशस्त हाथ मानों विश्वभरको
चाहते उठाना। और ताकता था ऐसा मानो
सृष्टिमें सभी कुछका वही एक स्वामी हो।
श्रद्धाभरा हृदय, संकल्प बल मनमें
"पुरुषो वाव सुकृतम्" बोल उठे एक साथ
देवगण सभी "यह नर तो बड़ा सुभग।"
स्वयंभूकी जयसे तब गूंज उठी जगती।
और सुनो बाद जो कहानी कही नानी ने।
सुन्दर मिट्टीसे गढ़ मानव शरीरको
ब्रह्माने दो कान जोड़े, चीरा मुंह, खोली आंख
और तब पकानेको डाल दिया आवेमें।
सो गये निश्चिंत वे लंबी फिर तानके।
उठे आरामसे औ खोला आवा, देखा हाय,
घान सब कोयले-सा काला था हो गया।
यही हुआ काला नर हब्शी अफ्रिकाका!
वैसी ही बनायी फिर मूरत, झोंका आवेमें
अब की वे सोये नहीं, जल्दी ही निकाला उसे।
हाय, हाय, यह क्या! यह कच्चा ही रह गया।
यही हुआ गोरा चिट्टा यूरोप-निवासी नर
एक यत्न और किया, सावधानी बरती
आदिसे अंततक जागते खड़े रहे।
और जब खोला आवा—वाह वाह सुन्दर
सुरूप एक गेहुंआ वरन्, ठीक-पका नर।
हुआ यही भारतीय, मानवोंमें श्रेष्ठतम।
यों तो सब बच्चोंपर जिम्मेदारी है बड़ी,
तुमपर विशेष सुनो, भारतके लाड़लो!
ठीकसे निभाना इसे, काम ये तुम्हारा है।
अजने गढ़ा है तुम्हें बड़े ही जतनसे,
खूब सावधानीसे आवेमें पकाया है।
लो ये संकल्प अभी—तन, मन, प्राण औ
जीवन समग्र हम पूरा पवित्र कर
ब्रह्मके निवास-योग्य मन्दिर बनायेंगे।
यही है परम और शाश्वत अनंत सुख
इसकी तुलनामें अन्य सुख सब तुच्छ हैं।

—व्रजनन्दन

भूल कहां होती है ?

—श्री आनंद आर्य

एक बारकी बात है, एक छोटेसे शहरमें गोरेलाल नामक एक कारीगर रहता था। वह बहुत ही अच्छी मूर्तियां बनाया करता था; यही उसका धंधा था जिससे उसने बहुत यश और धन कमाया।

गोरेलाल अब काफी बूढ़ा हो चुका था। उसकी मृत्युके दिन अब नजदीक ही आ रहे थे। एक दिन उसने सपनेमें देखा कि पंद्रह दिनके बाद उसकी मृत्यु हो जायगी। वह अब सावधान हो गया। उसने सोचा — "अगर मैं मर गया तो लोग मुझे याद कैसे रखेंगे ?"

इसी ख्यालसे उसने अपनेसे मिलती-जुलती बारह मूर्तियां तैयार कीं और उन्हें सजाकर कमरेमें रख दिया।

कुछ ही दिनों बाद उसका पंद्रहवां दिन आ गया। वह अब बहुत घबराया। वह बड़ा भयभीत-सा हो गया। आखिर उसको एक तरकीब सूझी, वह यह कि "जब यमदूत आयगा तो मैं मूर्त्तियोंके साथ खड़ा हो जाऊंगा।" वह अभी सोच ही रहा था कि यमदूत दरवाजेपर आ धमका। पैरोंकी आवाज सुनते ही गोरेलाल मूर्त्तियोंमें जा मिला।

जब यमदूत आया तो वह बड़ी उलझनमें पड़ गया। उसने देखा एकके बदले वहां तेरह गोरेलाल खड़े हैं। खैर! यमदूतने बड़ी बुद्धिमानीसे काम लिया। उसने गोरेलालसे कहा, "तुम बड़े चतुर हो इसमें संदेह नहीं, लेकिन एक जगह चूक गये हो। अगर वह गल्ती न होती तो यह मूर्त्तियां सजीव लगतीं।" उसका इतना कहना था कि गोरेलालके मुंहसे निकल गया, "कहां भूल हुई है ?" यमदूतने तुरंत कहा, "बस यहीं"।

वास्तवमें गोरेलालकी मूर्त्तियोंमें कोई गल्ती नहीं थी, परंतु गोरेलाल अपनी आलोचना सुनकर मौन न रह सका और पकड़में आ गया।

⁂

यह ठीक है कि तीर कमानसे छूटता है, पर बुद्धिमान् आदमी हमेशा तीर चलानेवालेपर नजर रखता है।

⁂

दोस्तोंके हाथों इस तरह न बिक जाओ कि अगर वह कभी तुम्हारे दुश्मन बन जायें तो तुम्हारा कुछ बिगाड़ सकें।

कागजकी आत्मकथा

—श्री प्रेमा

मैं बहुत वर्षोंतक एक भयानक जंगलमें खड़ी रही। अब तो मैं बहुत ही लंबी और सुन्दर युवती हो गयी। तरह-तरहकी चिड़ियां मेरी डालोंपर आकर अपने घोंसले बनाती थीं। मैं उनके मीठे गीत और उनकी लोक-कथाएं सुनती थी और बदलेमें उन्हें रसीले फल खिलाती थी। इस तरह और भी कई वर्ष बीत गये।

एक बार शीतकाल था। मेरे दोस्त शीतके कारण मुझे, अपने घोंसलोंको, छोड़कर चले गये। परंतु जानेके समय उन्होंने मुझसे कहा कि वे जरूर वापस आ जायेंगे।

जैसे दिन बढ़ते गये वैसे मेरे पत्ते एक-एक करके गिरने लगे। मैं अब भी सुन्दर थी। परंतु यह सुन्दरता और तरहकी थी।

कई प्रकारके जानवर मेरे अंदर रहने आये। उनमेंसे गिलहरी मेरी सबसे बड़ी मित्र थी। क्योंकि वह हर समय मेरे पास ही रहती थी। आस-पास मेरी जातिके कोई न दिखायी देता था फिर भी मैं बहुत खुश थी। हवा कई बार मेरे कानोंमें दूर देशोंकी बातें फुसफुसा जाती। एक दिन इसी तरह मुझे पता चला कि लकड़हारे इस तरफ आ रहे हैं। मैं समझ गयी कि अब मुझे अपना घर छोड़ना पड़ेगा। मैंने गिलहरी और दूसरे जानवरोंसे चले जानेके लिये कहा। उन्हें बहुत दुःख हुआ मगर वे बिचारे क्या करते। (मनुष्य उनसे ज्यादा बड़ा और ज्यादा ताकतवाला है, वह प्रकृतिके नक्शेको तोड़ डालता है।)

कई आदमी मेरे पास खड़े होकर मुझे देखने लगे। उनमेंसे एकने कहा, "ओ, हमें यही पेड़ चाहिये। इसीकी खोज हो रही है। सरकार बहुत खुश होगी। और अचानक मेरे पैरमें बहुत दर्द होने लगा। मैंने नीचे झुककर देखा तो पता चला कि वे मुझे काट रहे हैं। आप समझेंगे कि अब मेरा जीवन समाप्त हो गया और मेरी कहानीका अंत आ गया। पर नहीं, एक नये प्रकारसे मेरा जीवन शुरू हुआ। मैं कई प्रकारके पेड़ोंके साथ नदीमें तैरने लगी। मैं घरसे पहली बार निकली थी और मुझे सब कुछ नया लगता था। नदीमें बहुत ठंड थी। चार दिनके बाद मैं और मेरे साथी एक जगहपर आये जहां बहुत लोग काम कर रहे हैं। उन्होंने हमें पानीसे निकाला और एक मशीनके अंदर रख दिया। जब मैं निकली तब मेरा चेहरा एकदम बदल गया था। मेरे अंदर कई तरहकी चीजें डाली गयीं और अंतमें में क्या बनी पता है? सुन्दर, सफेद कागज। ऐसा कागज जिसे देखते ही आपको लिखनेकी प्रेरणा मिल जाय। कई दिन यहां रहनेके बाद मुझे बहुतसे स्कूलोंमें भेजा गया। इधर-उधर चक्कर काटकर अब मैं आपके हाथोंमें हूं।

* * *

आत्मा न स्तोतव्यः।
अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

मेरी नींद खुल गयी !

–श्री मीना

मैं आकाशमें ऊपर चढ़ती चली जा रही थी। अचानक मैंने नीचे देखा और भयसे मेरा शरीर ठंडा हो गया। मैं शायद धरतीसे कई हजार मीटर ऊपर थी। पक्षी मुझे ऊंचा, और भी ऊंचा लिये चला जा रहा था। मेरा शरीर भी कांपता था। नीचे देखती या सामने झुकती तो मुझे लगता कि मैं अभी नीचे गिर जाऊंगी। मैं जितनी ऊपर चढ़ती जाती थी उतनी ही ठंड भी बढ़ती जा रही थी और मेरे शरीरका रक्त मानो जम गया था। मेरे सिरके ऊपर ही भयानक बादलोंके किले बने हुए थे। पृथ्वीपर केवल आबादीके निशान ही दीखते थे। मकान उठते हुए धुंएके कारण पहचाने जातें थे, नदियां चमकदार फीते-सी लगती थीं और मनुष्य, उनकी तो गिनती ही नहीं थी। अचानक मुझे सब चीजें बड़ी लगने लगीं और मैं समझ गयी कि हम नीचे उतर रहे हैं। वह जंगल जो ऊपरसे एक हरी कनातकी तरह लग रहा था, उसी जंगलके हरे पेड़को मैं ऊपर उठता हुआ देख रही थी। नदियां जो ऊपरसे रेशमी धागेकी तरह लग रही थीं अब अपनी मौजोंसे खेलतीं, इधर-उधर उछलती हुई दौड़ रही थीं। कुछ देर तो, हम इसी ऊंचाईपर उड़ते रहे लेकिन जब सामने पहाड़ आ गये तो पक्षीने मुझे अपनी पीठसे उतारा और वहीं पहाड़ोंकी एक गुफामें छोड़कर चला गया। वह एक सूना निर्जन स्थान था। मैं अपने दिन वहां कैसे बिताती ? खैर, निठल्ले रहनेके बदले मैं उस गुफाका अन्वेषण करने अंदर चली गयी। वह एक बहुत ही विराट् और सुन्दर जगह थी। मैं जितना ही अंदर जाती उतनी ही दिलचस्प और सुन्दर चीजें मिलती जातीं। नीरवता बहुत ही गहरी थी, कभी-कभी उसको चीरता हुआ एक झरनेका गाना सुनायी दे जाता था। सहसा वह निस्तब्ध गुफा एक आहटसे गूंज उठी। मैं तनकर वहीं खड़ी हो गयी। कुछ ही देरमें एक ऊंचा, बलिष्ठ, भयंकर जानवर दौड़ता हुआ मेरी ओर आता दिखायी दिया। मैं बेचारी विवश और लाचार, वहांसे भागनेकी कोशिश भी कैसे करती, उस क्षुधातुर जानवरने शीघ्र ही मुझपर झपट्टा मारा। मैं उसके सामने बहुत छोटी लग रही थी। उसका एक दांत ही मेरे पांवके बराबर बड़ा था। उसका शरीर क्या था एक पहाड़ था। उसने मुझे खा जानेके लिये अपना जबड़ा खोला तो उसके अंदर एक और गुफा दिखायी दी। वह मुझे निगलने ही वाला था कि मेरी नींद खुल गयी। मैं चौंककर बिस्तरपर बैठ गयी। कुछ देर तो यही लगातार लगता रहा कि मैं उस भीमकाय पशुकी डाढ़में अटकी हुई हूं लेकिन जब मेरा मन ठिकाने आ गया तो मैं खुश थी कि यह एक स्वप्नमात्र था।

* * *

देखो, जो आदमी मीठे शब्दोंसे काम चल जानेपर भी कठोर शब्दोंका प्रयोग करता है वह पक्के फलकी अपेक्षा कच्चा फल पसंद करता है।

दो प्रार्थनाएं

तितलीकी प्रार्थना

भगवान्
कहां हूं मैं ?
अरे हां ! ये फूल, ये सूरज,
धन्य हो तुम ! कितना आश्चर्य भरा है यह विश्व
यह गुलाबोंकी महक
कहां हूं मैं ?

लिलीके आंचलपर
पानीकी एक बूंद बिछलती है
और चमक चमक उठती है।
मैं चली जाऊं ?
कहां ? यह मैं नहीं जानती
हवाओंने मेरी पांखोंको
परियोंकी कल्पना जैसा रंग दिया है
कहां हूं मैं ?
अरे हां -- भगवान्
मैं तुमसे जरूर कुछ कहना चाहती हूं
जरूर............
आमीन....

चूहेकी प्रार्थना

प्रिय भगवान्
मैं तो इतना छोटा और भूखा हूं
तुम मुझे कैसे याद करोगे ?
बराबर खदेड़ा जाता हुआ, बराबर पीछा किया जाता हुआ
कोई कभी मुझे कुछ नहीं देता
मैं जीवनको भूखा-सा कुतरता रहता हूं।
मैं चूहा हूं, तो वे मेरी निंदा क्यों करते हैं ?
दूसरा कौन, तुमने ही तो मुझे बनाया है
मैं केवल छुपकर जीनेकी भीख चाहता हूं
मुझे हरी आंखोंवाले राक्षससे सुरक्षित करके
दो रोटी दो..........।

[देवदत्तद्वारा जर्मनसे अनूदित]

अंधकार

—श्री हीरो

आजका मानवजीवन तम और अंधकारसे आच्छादित है। उसका बाह्य रूप तो बहुत शानदार है, विज्ञानने सुविधाएं जुटानेमें कोई कसर नहीं छोड़ी, अपने घर बैठे-बैठे आप हजारों मीलकी खबरें सुन सकते और दृश्य देख सकते हैं। मनोरंजनके लिये अनेक प्रकारके क्लब और सिनेमाघर हैं, जहां राग-रंग और आमोदकी कमी कभी नहीं होती। बाह्य अवस्था इतनी सुखमय प्रतीत होती है फिर भी मनुष्यजीवनमें घोर अंधकार छाया हुआ है। इस समय 'तम' का एकाधिकार है और उसका राज्य दिन प्रतिदिन बड़ी शानके साथ फैल रहा है। इस साम्राज्यमें अधर्मके नारे लगते हैं और उसीकी पूजा होती है। झूठ, चोरी, धोखेबाजीका प्रत्येक घरमें स्वागत होता है। सत्यवादी और सच्चरित्रके लिये समाजमें कोई स्थान नहीं। आये दिन डाके पड़ते हैं, हत्याएं होती हैं, खूनी गिरफ्तार किये जाते हैं, न्यायालयमें मुकदमेबाजी भी होती है परंतु इस सबका परिणाम —– खूनीकी मुक्ति। समाजका एक अंग तो मानों दूसरोंको घुला-घुलाकर मारनेपर ही पनपता है। अगर बड़े प्रयासके बाद इस वर्गके कुछ सदस्य पकड़में आ भी जायें तो वकीलोंकी कृपासे साधुको डाकू और डाकूको साधु सिद्ध कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। यही है आजका न्याय। इस तमके साम्राज्यमें ईमानदारी या विवेक जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। जिस प्रकार सूर्यके अभावमें कमल मुरझा जाता है उसी प्रकार अधर्म और तिमिरके राज्यमें धर्म व सत्य एक कोनेमें निर्जीवसे पड़े हैं।

परंतु नहीं, हमारा यह विचार शायद गलत है। इस अंधकारके पीछे प्रकाश छिपा है जो शीघ्र प्रकट होगा। उषाके पूर्व भी तो काजल-सा अंधकार रहता है। यह दानवी शक्तियोंके राज्यका काल है जब भूत, प्रेत नाचते गाते हैं, लोगोंको डराकर, तंग करके खुश होते हैं। ऐसे समय यह कल्पना करना भी कठिन है कि कुछ क्षणोंमें तिमिरसे घिरी हुई इस पृथ्वीपर रविकी जीवनदायिनी किरणें शोभायमान होंगी। कलियुगके बाद सत्ययुगका आना अवश्यम्भावी है। चंद्रमा कृष्ण पक्षके बाद ही अपनी शीतल और मनोहर चांदनी फैलाता है। कौरवोंके समय जब अधर्म झूठ और अत्याचारका राज्य था तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे यही कहा था :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्।

शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः।

अच्छे गुण तो शत्रुसे भी ले लेने चाहियें।

अंधेरा

न जाने क्यों अंधेरा होते ही बहुतोंको डर लगने लगता है। भूत पिशाच और राक्षसोंकी याद आती है। जरा-सी आवाज सुनते ही लगता है कि कोई पीछेसे आकर हमें पकड़ लेगा। रात्रिके समय जब रोशनी देनेवाला सूरज दुनियाकी दूसरी ओर चला जाता है तब सब जगह सन्नाटा छा जाता है और हवामें भय फैल जाता है। कई लोग सोचते हैं कि निशा एक डायनकी तरह है जो अपना काला आंचल पृथ्वीपर फैलाकर सबको सुला देती है। लेकिन मैं इसे बिलकुल नहीं मानती क्योंकि बहुत बार जब मैं छतपर अकेली होती हूं — शांति और अंधकारसे घिरी हुई—तब मैं रात्रिकी शोभाका रस ले सकती हूं। उसके हजारों तारोंकी कोमल रोशनी, वर्षाकी तरह मुझपर पड़ती है और चंद्रमाकी स्वर्णिम किरणें मिट्टीपर छोटी स्वर्ण-तरंगें बनाती हैं। घोर अंधकारमें जरासी भी रोशनीका बड़ा महत्त्व हो जाता है। उस समय वे छोटे जुगनू उस विशाल पेड़को अनुपम सौंदर्य देते हैं।

यह अत्यंत प्रगाढ़ शांति कई बार भिन्न-भिन्न तरहकी आवाजोंसे टूट जाती है। बहुत बार सफेद पक्षियोंके समुदाय नील आकाशको चीरते हुए अपने लक्ष्यकी ओर जाते दिखायी देते हैं। उनके पंखोंकी हल्की फड़फड़ाहट बरबस हमारा ध्यान खींचती है। उनका सफेद शरीर उस प्रगाढ़ अंधकारमें चमक उठता है मानो निराशाके बादलोंमें आशा चमक उठती हो।

और कई बार दुःखी बालकका रुदन सारे वातावरणको करुण बनाता है। तो कभी किसी अंधेरी रातमें दूरसे किसी अलमस्त पियक्कड़का गाना सुनायी पड़ता है। और इनकी भूमिकामें समुद्रकी लहरोंका नीरस वाद्य सदा सुनायी देता रहता है।

मैं कभी-कभी उस सुनसान वातावरणमें उन अंधोंके बारेमें भी सोचा करती हूं जो हमेशा अंधकार देखते हैं और उसीमें घिरे रहते हैं। मगर वे सर्वदा उदास और दुःखी तो नहीं रहते, उनका जीवन सर्वथा अंधकारमय नहीं होता। शायद अंधेरेकी भी एक अपनी दमक होती होगी। लेकिन मनुष्यने अंधेरेके साथ खराब चीजोंका ही संबंध जोड़ रखा है। इतिहास पढ़नेके समय हम अंधकारमय युगके बारेमें पढ़ते हैं। उसे यह नाम इसलिये दिया गया है कि उस समय हमारी दृष्टिमें कुछ उन्नति नहीं हुई थी और लोगोंकी स्थिति बहुत बुरी थी पर समयने पलटा खाया, अंधकारके बादल घटने लगे और कम-से-कम भौतिक जगत्में मनुष्यने बहुत प्रगति कर ली। इसलिये जब कहीं अंधकार दिखायी पड़े तो हमें यह न सोच लेना चाहिये कि उन्नतिके दरवाजे बंद हो गये क्योंकि हमेशा रात बीतनेपर ही दिन आता है। अंधकार तो सिर्फ एक घूंघटकी तरह है जो सुन्दर चीजोंके सामने पड़ा है, अगर हम इस घूंघटको फाड़ दें तो? तो सब भय और दुर्गम कठिनाइयां कहीं दूर, बहुत दूर रह जायंगी। अंधेरा मानों आशाका संदेश देते हुए कहता है :

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम् ।

—मीना

परीक्षा, एक समस्या

क्या आप जानते हैं कि पढ़नेवालोंकी दृष्टिमें सबसे बड़ा शैतान कौन होता है? तो बस, फिर समझ लीजिये कि यही शैतान आजकल मुझे भी खूब तंग करता है। मैं तो गयी-बीती सही, पर ऐसा कौन है जो इसके नामसे न घबराता हो। रात-दिन पुस्तकोंके साथ ही रहना पड़ता है। मेरी माताजी कहती हैं——"बेटी, खूब पढ़ो, लिखो, परीक्षा जो आ रही है।" पिताजी कभी मुझे खेलते देख लेते हैं तो गरज उठते हैं——"बस, दिन-रात खेलना, पढ़ना-लिखना साढ़े बाईस! लगता है जैसे इसका तो परीक्षासे कोई नाता ही नहीं।"

उफ, परीक्षा, परीक्षा, जहां जाओ वहीं परीक्षा, खाने बैठो तो परीक्षा, खेलते रहो तो परीक्षा, सोने जाओ तो भी परीक्षा, ... मैं तो इससे तंग आ गयी हूं। डर है कि कहीं मैं खुद भी एक दिन परीक्षा न बन जाऊं। बड़ोंसे सुना है 'राम राम मैं कहती थी, मैं ही राम हो गयी'। किसी काममें जी भी कैसे लगे जब परीक्षाकी याद रह-रहकर सताती रहती है। सब परीक्षाकी ही रट लगाये रहते हैं, पर क्या वे लोग मेरे सरमें परीक्षाकी गरमागरम पकती खिचड़ीका भी कभी ख्याल करते हैं? क्या करूं, क्या न करूं? क्या पढ़ूं, क्या न पढ़ूं, मास्टर साहबसे लेकर पिताजीतक सब यही कहते हैं——"बस, सब 'इंपोरटेण्ट' सवालोंको याद कर डालो। पर मैं क्या जानूं कौन 'इंपोरटेंट' और कौन 'अनइंपोरटेंट' है। मेरे लिये तो सब ही इंपोरटेंट हैं, किताबका हर पन्ना आज मानो रामायण और महाभारत जैसा लग रहा है, हर एक शब्द अमर शब्द नजर आ रहा है। पर इन सबको याद करनेकी शक्ति कहां है मुझमें? हाय भगवान्! क्या करूं.... सरपर हाथ रखकर घण्टों बैठी रहती हूं। बीचमें कभी-कभी अपनी कापीकी याद आ जाती है, मैं लपककर उसे उठा लेती हूं। पर, हाय री मेरी किस्मत! जब पन्ने पल्टो तो सब साफ दिखायी देते हैं। पन्नेके एक कोनेमें तारीख और शीर्षकके सिवा और कुछ नहीं। याद आता है कि उस दिन तो मैं कुछ उकता-सी गयी थी, और मास्टर साहबकी नजर बचाकर एक रसीली कहानीमें डूबी हुई थी। जिसपर इतना भरोसा किया था उस कापीने भी धोखा दिया, अब आप ही बताइये क्या करूं?

सखियां क्लासके समय मुझसे बहुत स्नेह दिखाती थीं और मुझे अपनी उलझी-उलझी बातोंमें फंसा लेती थीं। इसका नतीजा यह होता था कि मैं नोट नहीं लेती थी, सोचती थी, बादमें उतार लूंगी.....आज, इन्हीं सखियोंने मुंह मोड़ लिया है। शीला तो खूब सोच-सोचकर कहती है.....देखो तो, मैं तो खुद कुछ नहीं जानती, कापी कैसे दे दूं, कहीं पिताजी पूछ बैठे तो मारे डांटके मेरा बुरा हाल कर देंगे।.......रेखा हंसकर कहती है, अरे! घबराती क्या है, परीक्षामें सब बता दूंगी, पर कापी देना तो....और रीता तो कापीका नाम सुनते ही अपने नौकरसे कहलवा भेजती है—दीदीजी घरपर नहीं हैं! इसके बाद, ऐसी हालतमें मैं और कहां जाऊं, अपनासा मुंह लेकर घर लौट आयी हूं।

भीतर ही भीतर कोई कहता है—देखा न, कैसी सखियोंको तूने अपनाया है, चख लिया न मजा? ....

खैर, अब हो ही क्या सकता है, मुंह लटकाकर बैठ जाती हूं।

परसोंसे परीक्षा आरंभ होगी। पढ़ना तो खैर कुछ नहीं, पर यूं ही आंखोंके सामने मेजपर किताबोंका एक तमाशा लगा रखा है। असली पाठ तो अब पढ़ती हूं—लिखोगे पढ़ोगे बनोगे नवाब, खेलोगे कूदोगे होगे खराब।

दो दिन गुजरनेमें देर नहीं लगती, मेरे लिये अब रात और दिन एक समान हो गये हैं, खाना खाने बैठती हूं तो माताजी दर्दभरी आवाजमें बोलती हैं—"देखो तो, मुंह कितना सूखा जा रहा है, मेरी बिटिया कितनी दुबली नजर आती है! फिर कुछ देर बाद कहती हैं—परीक्षाके बाद अपना वजन जरूर देख लेना बेटी! समझी न?" मैं सिर्फ सिर हिला देती हूं। हंसूं कहांसे? मुझे तो अभी दम लेनेकी भी फुरसत नहीं है। रातको गणितके अंक, त्रिकोण, बिजली और अम्लोंके सपने देखा करती हूं। सुबहसे शामतक पढ़ती हूं, जो समझमें नहीं आता उसे तोतेकी तरह रट जाती हूं। भूल जानेपर फिर याद करती हूं, दस बार, बीस बार,... न जाने.... कितनी बार....

बाहर मैदानमें बच्चे खेलते रहते हैं, पर मैं उन्हें नहीं देखती। खेलनेको तो जी करता है, आखिर बच्ची ही तो हूं। जी तो बहुत कुछ करना चाहता है लेकिन क्या करूं। सोचती हूं परीक्षा समाप्त होने दो......

हाय भगवान्! मैं भी कैसी हूं! पढ़नेके बदले हवाई महलोंमें खो गयी थी! आप कहते होंगे इससे कुछ नहीं होगा, कुछ नहीं.......

आप कुछ भी कहें लेकिन मेरी तो बस यही समस्या है कि परीक्षा कैसे दूं? पास करूंगी या फिसलकर "मिस फेल" कहलाऊंगी.....कुछ समझमें नहीं आता.... कुछ नहीं। मैं आंखें बंद कर लेती हूं।

--नीली

* * *

विभिन्न परीक्षाएं

प्रत्येक मनुष्यको अपनी योग्यताके अनुसार परीक्षाएं मिलती हैं और उनमेंसे पार होना हरएकका कर्तव्य होता है।

मानव-जीवनमें तरह-तरहकी परीक्षाएं आती हैं। उनका पहला रूप विद्यार्थी जीवनमें दिखायी देता है। अच्छी तरहसे उनका सामना करनेके लिये पढ़ाई और मेहनत करनी पड़ती है। ये परीक्षाएं दीखती हैं मामूली लेकिन सचमुच वे ही हमें जीवनकी बड़ी परीक्षाओंके लिये तैयार करती हैं। वे हमारी ईमानदारी, श्रद्धा और मेहनतकी कसौटी होती हैं। कई विद्यार्थी परीक्षकको धोखा देते और अन्य प्रकारसे प्रभावित करके अच्छे अंक ले लेते हैं। लेकिन इस तरह उनका अंतःकरण अपराधी बन जाता है और वे कभी संतुष्ट नहीं हो पाते। बड़े होकर सांसारिक जीवनमें दूसरोंपर विश्वास नहीं कर पाते और अपने-आप भी धोखा-धड़ी करते हुए नहीं सकुचाते।

जीवनमें भी बहुत कठिनाइयां आती हैं। इस विषयमें माताजीने कहा है कि अगर हम उन्हें परीक्षाके रूपमें लें तो हम उन्हें ज्यादा जल्दी पार कर सकेंगे। परीक्षाके इस रूपका सामना करनेके लिये आशा और धीरज बहुत आवश्यक हैं। उच्चतर जीवनके लिये बहुत प्रकारसे परीक्षा ली जाती है। दो-एक उदाहरण देखिये:

एक बार गुरु गोबिंदसिंहने सब सिखोंको एक गुरुद्वारेमें इकट्ठा किया। उन्होंने दुर्गादत्त तलवार खींचकर अपनी बलि दे सकनेवाले वीरोंका आवाहन किया।

एक गरीब आदमी सामने आया। उसे पर्देके पीछे ले गये और तभी तलवारकी आवाज आयी और नालीसे रक्त बहने लगा। इस तरह एकके बाद एक पांच वीर सामने आये। उनमें कोई नाई था कोई कोरी —— इसी तरह नीच कहानेवाली जातियोंके लोग थे।

अंतमें गुरु गोविंदसिंहने पर्दा खोला और बताया पांचों जीवित थे और उनके पास पांच बकरे मरे पड़े थे। गुरु बोले: ये पांच आदमी सबसे अधिक वीर और भक्त हैं। मैंने यह परीक्षा ली थी। मैं देखना चाहता था कि तुममेंसे कितने लोग हैं जो अपना जीवन देवीके लिये त्याग सकते हैं। ये पांच आदमी मेरे पांच पांडव हैं जो मुस्लिम कौरवोंके साथ वीरतासे लड़ सकते हैं। मैं चाहता हूं कि सिर्फ पांच ही नहीं तुम सबके सब सिख इतने वीर बनो।

पुराने जमानेमें शिष्यको बचपनसे ही गुरुकुलमें भेजा जाता था। ब्रह्मचारीका लक्ष्य होता था भगवान्के दर्शन पाना; इसलिये उसकी परीक्षाएं भी उतनी ही कठिन होती थीं उदाहरणके लिये, उपमन्यु नामका एक शिष्य था। एक दिन उसके गुरुने उसे भीख मांगनेसे रोक दिया। वह एक ब्रह्मचारी था इसलिये भीख न मिलनेपर वह भूखा रह गया। उसने गायके दूधका फेन खाना शुरू किया, गुरुने उसका भी निषेध कर दिया। तब वह जंगलमें फिरते-फिरते पत्ते खाने लगा। इस तरह एक दिन उसने एक विषैला पत्ता खा लिया और अंधा हो गया। चलते-चलते वह एक गड्ढेमें गिर पड़ा। अब गुरुको चिंता हुई; वे उसे ढूंढ़ने आये और उसे बाहर निकाला। गुरुने अश्विनीकुमारोंको बुलाकर उसकी आंखें ठीक करवा दीं। और फिर उसे ब्रह्मज्ञान दिया। इसी तरह हमने आरुणि उद्दालकके बारेमें सुना है कि वह एक बहते हुए नालेको बन्द करनेके लिये भेजा गया था। उसने नालेको अपने शरीरसे बंद किया। घंटों पानीमें रहनेसे उसका शरीर अकड़ गया। फिर गुरु आये और उसकी परीक्षाका परिणाम देखकर प्रसन्न हो गये और वरदान दिया। और एक शिष्य था जिसको उसके गुरुने कई दुबली-पतली गायें दीं और कहा कि जबतक एक हजार गायें न हो जायं तबतक वापस न आना। जब उसकी यह साधना पूरी हुई तो उसे ब्रह्मज्ञानका अधिकारी माना गया।

श्रीअरविंदके मतानुसार सारा जीवन ही योग है, जाने-अनजाने हम सब ऊपर उठनेकी क्रियामें हैं। हमारे जीवनमें पग-पगपर परीक्षा होती रहती है। हर एक स्थितिमें यह देखा जाता है कि हमने कैसा व्यवहार किया, हमने अपने-आपको ऊंचा उठानेका प्रयास किया या नहीं, जब समस्याएं आयीं तो हमने उनका कैसे सामना किया, हम ऐश-आराममें या दुख-दर्दमें फंसकर अपने चरम लक्ष्यको भूल तो नहीं गये। इन परीक्षाओंको पार करते हुए ऊंचे उठते जायें यही हमारा ध्येय है।

——तुलसी

परीक्षा

परीक्षा सफलताकी कसौटी है। प्रकृति इस कसौटीपर मनुष्यको परखती है। प्रत्येक युगमें, प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल मनुष्यकी परीक्षा होती रहती है। और जबतक यह जीवन-चक्र चलता रहेगा तबतक इसका सामना करना ही पड़ेगा।

जन्म ही तो सबसे बड़ी परीक्षा है। पृथ्वीपर भगवान् हमें शायद यही जांच करनेके लिये भेजते हैं कि धरतीके सुखोंमें उन्मत्त होकर भी हम अपने दिव्य सदनको कितना याद रखते हैं।

विधाताकी नकलमें, मनुष्यने स्व-रचित संसारमें, परीक्षाके अपने ही तरीके निकाले हैं। एक निश्चित उम्रतक प्रत्येक मनुष्यको शिक्षा और परीक्षाकी अटूट जोड़ीके साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है। परंतु ये सब तो बाहरी परीक्षाएं हैं, जो इस ओर संकेत करती हैं कि हमने मनुष्य-रचित विद्या कितनी प्राप्त की और कहांतक इस कार्यमें सफल हुए।

परीक्षाका नाम सुनते ही हमें शिक्षणालयोंकी परीक्षाएं याद आती हैं और मनमें एक प्रकारका भय तथा संकोच-सा उत्पन्न हो जाता है। विद्यार्थी जीवनमें परीक्षा तो सफलताकी सूचक है। कई देशोंमें बहुत कड़े इम्तहान होते हैं। चीनमें एक प्रकारकी परीक्षाओंमें विद्यार्थीको तीन दिनतक अलग कमरेमें बंद कर देते हैं। सब प्रश्नोंके उत्तर लिख लेनेपर ही उसे निकालते हैं। हमारे यहां भी पुराने जमानेके इम्तहान आजकलकी अपेक्षा बहुत कठिन होते थे। प्राचीन कालमें गुरु-शिष्यके नातेको तो आप जानते ही हैं।

तो क्या केवल शिक्षा-केंद्रों ही में परीक्षा होती है? नहीं, परीक्षाएं जीवनकी सभी शाखाओंमें प्रचलित हैं। किसी भी जगह किसीके पास आप काम मांगने जाइये, पहले आपकी परीक्षा की जायगी, और उसके बाद ही आप कामकी आशा कर सकते हैं।

अगर परीक्षाएं सफलताकी सूचक हैं तो मनुष्य उनसे डरता क्यों है? संकोच क्यों करता है? तनिक सोच-समझकर देखनेसे परीक्षाएं इतनी भयानक नहीं लगतीं। आखिर वे चोटियोंपर चढ़नके सोपान ही तो हैं जो हमें सफलताके एक शिखरसे दूसरे उन्नत शिखरपर ले जाते हैं। असफल होना तो एक और बड़ी सफलताका संकेत है। इसलिये परीक्षाओंद्वारा हम उन्नतिके मार्गपर बढ़ते हैं। और वे हमारे लिये मैत्रीपूर्ण रूप धारण कर लेती हैं।

परंतु यह सब तो एक ही प्रकारकी परीक्षाएं हुईं जो हमें अपने सांसारिक जीवनमें सफल या असफल बनाती हैं। वास्तवमें, श्रीमाताजी कहती हैं कि तीन प्रकारकी परीक्षाएं होती हैं और हमें उनमेंसे उत्तीर्ण होना पड़ता है। जीवनकी छोटी-मोटी सब घटनाएं इन तीन प्रकारकी परीक्षाओंमें आ जाती हैं। हमारे परीक्षक हैं प्राकृतिक, आध्यात्मिक तथा आसुरी शक्तियां। जीवनकी परीक्षामें सबसे आसान वे होती हैं जिनके बारेमें हमारी यह धारणा होती है कि वे बड़ी घटनाओंसे संबंध रखती हैं, उनके बारेमें पहले ही संकेत मिल जाता है। पर रास्तेके छोटे-छोटे पत्थर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करते और हम शीघ्र ही ठोकर खा जाते हैं। बहुत बार हम एक साथ ही परीक्षक तथा परीक्षार्थी होते हैं। इनसे जो लाभ होता है वह प्रत्येककी अभीप्सा तथा सच्चाईपर निर्भर है।

इसलिये हमें प्रत्येक क्षण सचेतन रहना चाहिये ताकि हर एक परीक्षासे लाभ उठा सकें और उसमें उत्तीर्ण हो सकें।

—सुमेधा

आशा

—श्री विजय पोद्दार

ईसाइयोंमें एक कहानी है कि एक बार हौवा (ईव) को सब देवताओंने मिलकर इस लोकमें जितने भी गुण हैं उन सबको एक डिब्बेमें बंदकर अपने पास रखनेके लिये दिया और उससे कहा कि डिब्बेको मत खोलना। परंतु ईव भी तो आखिर आदि स्त्री ही ठहरी। वह अपने-आपको न रोक सकी, और उसने डिब्बेको खोल लिया। पलभरमें सब गुण छू हो गये। खाली डिब्बेमें बची आशा। तबसे ईसाइयोंका कहना है कि मनुष्यके पास एक आशा ही बच रही है और मनुष्य दूसरे सब गुणोंको ढूंढ़ता फिरता है।

परंतु मनुष्य यह नहीं देखता कि इसमें भी भगवान्की कितनी अपूर्व कृपा थी और सब गुणोंको छोड़कर एक आशा ही थी जो उसके पास बची रही। यह आशा ही है जो कांटोंके रास्तेको फूलोंका बना देती है, जो अंधकारकी गुफामें, एक दूरकी रोशनी-सी झलकती है। वह मनुष्यको दुष्करसे दुष्कर कार्य करनेको उत्तेजित करती है। अंततक उसकी आंखें लक्ष्यकी ओर उठाये रखती है। एक बार अगर आशा चली गयी तब फिर मनुष्यमें न तो शक्ति रहती है न लक्ष्य। एक सूखे पत्तेके समान वह हवाके हरएक झोंकेके साथ उड़ता फिरता है। उसका जीवन नरकमें रहनेके समान हो जाता है।

यहांतक कि गेथेने अपने नरकके दरवाजेपर यह लिखवाया 'जो यहां घुसता है वह आशा छोड़ दे।" यह गेथेके लिये मनुष्यकी बुरीसे बुरी अवस्था है जबकि उसके पास आशा न हो। क्योंकि आशा वर्षाके समय इन्द्र-धनुषकी याद है तथा जाड़ेके समय बसन्तकी। यह छोटी-सी रोशनी, छोटासा तिनका ही आखिर कभी तो समुद्रको पार करायगा। यह मनुष्यको भयानक भंवरमें कूद पड़नेका साहस देता है और वहांसे फिर निकलनेकी शक्ति। एक कविने कहा है—अगर मेरे पास आशा हो तो मुझे और किसी भी चीजकी जरूरत न हो, और अगर आशा ही न हो तब भी मुझे और कुछ नहीं चाहिये क्योंकि फिर जीना ही बेकार है।"

एक आशाका ही सहारा लिये भरतने चौदह वर्ष संतोषसे काटे और एक आशाके ही साथ सीता अशोकवाटिकामें जीती रही और जब आशा ही नहीं रही तब दशरथ भी स्वर्ग सिधार गये। आप कल्पना कर सकते हैं कि इस आशापर जब संकटके बादल घिर आते हैं तब मनुष्य किस तरह संकटमें फंस जाता होगा। आप यह सोच सकते हैं कि मनुष्यकी यह अंतिम धरोहर जब निराशाके विशाल सागरमें डूबने लगती होगी तब उस गरीबकी क्या दशा हो जाती होगी। उसका जी किस तरह तिलमिला उठता होगा। आशा! जैसे सर्पके मस्तकमें मणि वैसे ही मनुष्यके हृदयमें आशा। मैं तुझे क्या कहकर संबोधित करूं? तुम कौन हो जिसके बिना जीवन दूभर हो जाता है! आह, तुम तो मनुष्यजीवनमें प्राण ही हो! नहीं, नहीं, तुम भगवान्की सबसे बड़ी कृपा ही हो। तुम ही कहो न, क्या सचमुच तुम भगवत्कृपा नहीं हो?

रोटीकी आत्मकथा

—श्री वत्सला

दिनके १२ बजेके आस-पास एक तश्तरीमें एक रोटी पड़ी हुई थी। वह एक अजीब तरहकी रोटी थी जो मोहनके लिये इंतजार कर रही थी कि कब वह आये और उसे खाये। यह सोच ही रही थी कि मोहन दौड़ा-दौड़ा आया और बिना हाथ-पांव धोये ही खाना शुरू कर दिया। जब वह खा रहा था तब उसे एक आवाज सुनायी दी। जब उसने अपनी थालीकी तरफ देखा तो वह ठहाका मारकर हंस पड़ा। उसने देखा कि उस रोटीके आंख मुंह और पेट हाथ आदि बन गये हैं। और वह बोल रही है, उसने कान लगाकर सुना। उसे सुनायी पड़ा, "देखो मोहन, बिना हाथ-पांव धोये इस तरह खाना अच्छा नहीं है। इस तरह खानेसे जो मैल तुम्हारे हाथमें लगा हुआ है वह तुम्हारे पेटमें चला जायगा और तुम बीमार पड़ जाओगे, और डाक्टर तुम्हें अच्छी चीजें खानेसे मना कर देगा।" मोहनने उत्तर दिया, "अच्छा! अबसे मैं हमेशा हाथ धोकर खाना खाया करूंगा।" और उसने प्रतिज्ञा की कि वह अपने जीवनमें कभी भी बिना हाथ धोये खाना नहीं खायगा।

कुछ क्षण चुप रहकर रोटी पुनः बोली, "अच्छा क्या तुम्हें मेरी आत्मकथा मालूम है?" मोहन बोला, "नहीं।" तब रोटीने कहा—"अच्छा सुनो, मैं आज तुम्हें अपनी राम-कहानी सुनाऊंगी।"

पहले मैं गेहूंके रूपमें थी। किसानको मुझे गेहूंके रूपमें लानेके लिये हजारों मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। पहले-पहल किसानने अपने खेतमें हल चलाया फिर बीजोंको अपने खेतमें बो दिया। कुछ वर्षा हुई। कुछ दिन बाद बीज अंकुरके रूपमें पृथ्वीके बाहर निकल आये। हमारी हरियालीको देखकर सब अपनी आंखें ठण्डी करने लगे। लेकिन किसानको हमें बड़ा करनेके लिये अभी बहुतसे काम करने थे। उसे हमारी सिंचाई करनी थी, खाद देनी थी, और बहुतसे काम करने थे। धीरे-धीरे हम बड़े होने लगे और हमपर बालें आनी शुरू हो गयीं। अभी बड़े होनेमें बहुत समय था। हम सारे दिन आपसमें दुनियाभरकी बातें करते थे। हवाके झोंकोंके साथ खेलते और वैसे ही उसके साथ लहलहाते थे जैसे समुद्रमें लहरें। हमारे लहलहानेके कारण खेतकी शोभा और बढ़ जाती थी।

एक दिन मैंने देखा, हम जमीनसे करीब डेढ़ फुट ऊंचे हो गये थे। हमारी बालें भी काफी मोटी हो गयी थीं और हम पहलेसे बहुत भारी हो गये थे। जब हम लहलहाते थे तो लगता था कि अभी टूटकर गिर जायंगे। अब हमारा रंग हरेसे भूरेमें परिवर्तित होने लगा।

होली आयी। लोगोंने हमें कच्चा ही होलीकी आगमें भूनकर खाया। होलीके बाद किसानकी औरतोंने आकर हमें काटना शुरू कर दिया। वे गा-गाकर खुश होकर काटतीं तो दर्दके मारे हमारी जान निकल जाती और हम बुरी तरह छटपटाते। यहां उसका वर्णन करना कठिन है।

फिर हमें दो भागोंमें बांट दिया गया। एक तरफ बालें और दूसरी तरफ लम्बे लम्बे तिनके। फिर हमारी बालोंपर बैल चलाये गये जिससे पुआल अलग हो जाय और गेहूं अलग।

जब हमपर बैंल चलाये गये तो हम दर्दके मारे बुरी तरह रो रहे थे। लेकिन हम बैलोंका कर ही क्या सकते थे। अगर हम उनकी भाषा जानते होते तो जरूर अपना दर्द उन्हें कह सुनाते। खैर! जब हमारा बक्कल निकल गया तब किसानकी औरतोंने हमें छाजमें पटक और बक्कल अलग कर दिया जिसे बादमें भूसा कहा जाता है। भूसेसे गेहूं अलग कर दिया। फिर हमें किसानने बोरोंमें भरकर अपने खलिहानोंमें रख दिया। और थोड़े समय बाद उसने हमें बनियोंके हाथों बेंच दिया।

एक दिन तुम्हारी माताजी उस बनियेकी दुकानपर गेहूं खरीदने गयीं तो उसने हमे तुम्हारी माताजीके हाथ बेंच दिया। तुम्हारी माताजी हमें एक नौकरकी पीठपर रखवाकर घर ले आयीं। फिर उन्होंने हमे थोड़ा-थोड़ा एक थालीमें भरके हमारे अंदर मिली हुई गन्दगीको निकालना शुरू किया। हमें लग रहा था जैसे कोई अनजानेमें हमारे साथ खेल रहा है। दूसरे दिन तुम्हारी माताजीने अपनी चक्कीपर हमें पीसना शुरू किया। वे तो हमें एकदम कुचले दे रही थीं। चक्कीके अंदर सांस लेनेकी भी जगह न थी। हमारा दम घुटा जा रहा था। हम दर्दके मारे बुरी तरह छटपटा रहे थे, रो रहे थे, चिल्ला रहे थे। लेकिन कोई भी हमारी आवाज न सुनता था और तुम्हारी माताजी निष्ठुर होकर चक्की चला-चलाकर हमें आटेमें परिवर्तित कर रही थीं। उसके बाद उन्होंने हमें पानीके साथ मिलाकर गूंधा। तब हमें इतना कष्ट न मालूम हुआ जितना पीसते समय हुआ था। फिर उन्होंने हमें एक रोटीके रूपमें बदलकर तुम्हारे सामने रखा और अब तुम हमें खा रहे हो। तुम्हारे पेटके अंदर जाकर क्या होगा यह न मुझे मालूम है और न तुम्हें।”

इतना कहकर रोटीने अपनी वक्तृता समाप्त कर दी। मोहनने जब उसकी ओर देखा तो वह पहलेकी तरह ही वहां पड़ी थी और वह अब उसे आधीसे भी ज्यादा खा चुका था। उसने जल्दीसे अपना खाना समाप्त किया और जाकर आराम करनेके लिये लेट गया।

सहानुभूति एक ऐसी सार्वभौम आत्मिक भाषा है जिसे सभी लोग, यहांतक कि पशु भी नैसर्गिक रूपसे समझते और पसंद करते हैं।

—जेम्स एलेन

नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं

—श्री हीरो

बहुत समय पहले एक आदमी रहता था। उसका नाम तो ऐसा था कि जो भी सुनता हंसकर लोट-पोट हो जाता था। खैर, आप भी जरा हंसकर अपने पेटको व्यायाम करनेकी अनुमति दीजिये। हां, तो उसका नाम था 'नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं।'

वह एक विचित्र प्राणी था। हठी तो हदसे ज्यादा, अपनेंसे बड़ा तो वह किसीको मानता ही न था और दूसरोंकी सभी बातें उसे झूठी प्रतीत होती थीं। बस, अपनी बातपर ही डटा रहता और ताल ठोक-ठोककर कहता था, "नहीं, नहीं, यह हर्गिज नहीं हो सकता।" बस, इसीसे उसका नाम मियां "नहीं नहीं" पड़ गया था। यह जानते हुए भी कि उसका नाम 'नहीं, नहीं' पड़ गया है वह अपनी आदत बदलनेको तैयार नहीं था। और तो और अपने स्वप्नमें भी वह यही बड़बड़ाता रहता था, "नहीं, नहीं, यह हर्गिज नहीं हो सकता।" सुनकर ऐसा लगता मानो किसीके साथ बहस कर रहा हो। आप उसे एक मिनिटके लिये बुलाकर देखिये, साफ मना कर देगा, "नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं आ सकता, अभी मुझे एक जरूरी कामपर जाना है।" आप भी सुनकर चक्करमें आ जायेंगे कि वह आदमी है किस प्रकरका, हमेशा किसी-न-किसी काममें फंसा ही रहता है। और अगर दुर्भाग्यसे उसके साथ एक बार बात शुरू हो गयी तो बस समझ लो कि हार माननी ही पड़ेगी, वे मियां तो हार माननेवाले हैं नहीं। लीजिये, एक बारकी ही बात लीजिये।

एक दिन मियां-बीबीका आपसमें झगड़ा हो रहा था। उसकी बीबी कह रही थी कि, "तुम यह 'नहीं नहीं' की रट लगाना छोड़ दो। सब तो हमेशा अपने अल्लाको याद करते हैं और तुम दिनभर 'नहीं, नहीं' का जप करते हो। तुम्हारे इस 'नहीं, नहीं' से तो मेरी नाकमें दम आ गया।" और मियां कह रहे थे, "मै 'नहीं नहीं' कहना छोड़ दूं, 'नहीं नहीं' यह कभी नहीं हो सकता, हर्गिज नहीं हो सकता।" उनकी बीबीको हमेशा ही सिर पीटकर रह जाना पड़ता था। क्योंकि मियां तो अपनी बातसे तिलभर भी हटनेके लिये तैयार नहीं होते थे। इसी बीच एक मुल्ला दौड़ता-दौड़ता आया। बेचारेका सांस फूल गया था। "मियांजी, आपकी वकालतकी बहुत जरूरत हैं, चौपालमें सब उत्सुकतासे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जल्दी चलिये, नहीं तो सारा बना-बनाया काम बिगड़ जायेगा।" —हांफते-हांफते मुल्लाने कहा। "नहीं, नहीं, अभी मैं बिलकुल नहीं जा सकता। देखते नहीं हो कि मैं अपनी बीबीके साथ झगड़ रहा हूं? इस समय तो मैं हर्गिज नहीं आ सकता।" —मियांने निश्चयपूर्वक कहा। मुल्ला अपना सिर पीटकर रह गया। सोचने लगा, बस, अब सारा काम चौपट हो गया। सारे किये-करायेपर इस मियांके 'नहीं, नहीं' ने पानी फेर दिया, इस मियांका तो यही हाल है। समयपर तो जायेगा नहीं, अपनी 'नहीं-नहीं' की रट लगायेगा। और समय हो चुकेगा तब आकर हमारे सामने नाक रगड़ेगा। लेकिन एक बात है इसमें और वह यह है कि अगर कभी यह समयपर आ जाता है तो चाहे काम कितना भी बिगड़ा हुआ क्यों न हो बनकर ही रहता है।

सार्वजनिक सेवा

--रवींद्र

भारत अभी नया-नया स्वाधीन हुआ था। हम सबके अंदर एक उमंग थी, एक उत्साह था और हम सब ही कुछ कर दिखाना चाहते थे। मेरी आयु रही होगी यही कोई चौबीस-पच्चीसकी। मैंने दिलमें ठान ली थी कि चाहे कुछ भी हो जाय मैं देशके लिये अपना सब कुछ लुटा दूंगी। परमात्माने चार पैसे दिये थे इसलिये देशके नंगे-भूखोंके लिये सहानुभूति तो बहुत थी पर यह पता न था कि सचमुच नंगा-भूखा होना किसे कहा जाता है। मेरे भाई कांग्रेसके बड़े नेता थे। उन्होंने 'भारत छोड़ो' आंदोलनके समय बहुतसे फरार कांग्रेसियोंकी सहायता की थी इसलिये स्वाधीन भारतमें उनकी प्रतिष्ठा थी और उन्हींकी ज्योतिका मुझपर भी बिम्ब पड़ रहा था।

खैर, यह तो ठान ली कि घर-द्वारकी परवाह न करके देशसेवा करूंगी, लेकिन करूं क्या यह ठीक न कर पा रही थी। कभी जी करता कि प्रौढ़ शिक्षाके काममें लग जाऊं, कभी समाजकल्याण अपनी ओर बुलाता और कभी समाजके दलित वर्गोंकी सेवाका ख्याल आता। दिन बीतते जा रहे थे और मैं इधर-उधर घूमकर प्रत्येक प्रकारके कामका निरीक्षण कर आती थी, पर हर जगह कुछ-न-कुछ कठिनाई थी, कोई-न-कोई गद्दी दबाये बैठा था और मुझे अंदर घुसनेका रास्ता न मिलता था। खैर, कहते हैं, खुदा शक्करखोरेको शक्कर ही देता है। मुझे भी देश-सेवाका रास्ता मिल ही गया। दक्षिणकी नदियोंमें अचानक बाढ़ आ गयी। वहांके लोगोंने कभी बाढ़ देखीतक न थी, इसलिये उन्हें उसका सामना करना भी न आता था। ज्यादा आदमी मरे तो नहीं, पर बहुतसी खड़ी फसलें नष्ट हो गयीं, मकान ढह गये और हजारों आदमी बेघर-बारके हो गये। जो रही-सही खेती थी उसे एक जबर्दस्त तूफानने खतम कर डाला। अखबारोंमें, रेडियोपर, सब जगह इसी दैवी आपदाकी बात चलती थी। राष्ट्रपतिसे लेकर हमारे गृहपतितकने उन मुसीबतोंके मारोंकी सहायताके लिये अपील की।

मेरे अंदर भी खून खौल उठा। मैंनें घोषणा कर दी कि मैं कंधेपर झोली डालकर बाढ़-पीड़ितोंकी सहायताके लिये निकलूंगी। मेरे गृहपति भी जरा सकपकाये, उन्होंने कभी न सोचा था कि मैं इस तरहसे भिक्षा-यात्रापर निकल पड़ूंगी। घरमें तो यह हालत है कि घी-तेलकी कमी हो तो साससे घीके लिये पैसेतक नहीं मांग सकती और झोली डालकर घर-घर जानेका स्वप्न! वाह, यह मुंह और मसूरकी दाल! मेरे नेता भाईने जब सुना तो वे भी झट आ गये। उन्होंने कहा, अरे, कहांके झमेलेमें पड़ती हो, पांच-सात हजार देनें हों तो दे दो, कहां झोली लटकाये घर-घर चक्कर लगाओगी। मैंने किसीकी एक न सुनी; अपने नगरकी दो-चार प्रतिष्ठित महिलाओंको चायपर बुलाया और उनके आगे यह प्रस्ताव रख दिया। नेताकी बहिनको मना भी कौन करे। किसके दो सिर हैं जो नगरकी सबसे प्रतिष्ठित महिलाको 'ना' कह दे।

मैंने घरवालोंका विरोध होते हुए भी अखबारवालोंको बुलाया और यह घोषणा कर दी कि अगले इतवारसे नगरकी अमुक-अमुक महिलाओंको साथ लेकर मैं चन्दा जमा करने निकलूंगी।

अखबारवालोंकी गांठसे क्या जाता है, उन्होंने भी समाचार खूब मोटे-मोटे शीर्षक देकर छाप दिया। मेरा साहस बढ़ा। अभीतक मैं भाईके प्रकाशमें चमका करती थी अब मैं अपने-आप कुछ बननेवाली थी। लोग इनको मेरे पतिके रूपमें जानेंगे। इस विचारका आना था कि मैं खुशीसे उछल पड़ी। खैर, रविवार आया। मैंने शुद्ध खादीके कपड़े पहने और अन्य प्रतिष्ठित महिलाओंको लेकर अपनी यात्रापर निकल पड़ी।

हमारी मोटर जाकर नगरसेठके घरके सामने रुकी, आवभगतकी पूरी तैयारी थी। नगरसेठ, उनकी श्रीमती और उनके कुछ पुछलगोंने हमारा बड़ा शानदार स्वागत किया। हमारा नाश्ता इन्हींके यहां था। हमने नाश्तेपर बैठकर दक्षिणकी अवस्थाका विस्तृत वर्णन किया। कुछ तो अखबारोंमें पढ़ा था, कुछमें कल्पना देवीकी सहायता ली। वहांके नंगे, भूखे, गलियोंमें मारे-मारे फिरनेवाले बच्चों और उनके दुर्बल क्षीणकाय माता-पिताका ऐसा चित्र खींचा कि प्रायः सभी स्त्रियोंको रूमाल निकालने पड़े। मै अपनी पहली वक्तृताकी सफलतापर फूली न समा रही थी। अंदर ही अंदर सोच रही थी, इन लोगोंपर इतना प्रभाव पड़ा है तो कम-से-कम पांच हजार तो मेरे हाथ लगेंगे ही। परंतु मैं भूल गयी थी कि आंसू बरसाना और रुपये निकालना अलग-अलग क्रियाएं हैं और जिनका आपसमें कोई रिश्ता-नाता नहीं है। खैर, घंटे डेढ़ घंटेतक बातचीत होती रही। फिर नगरसेठकी श्रीमतीने बड़े ही आर्द्र स्वरमें कहा, 'जहां इतनी बड़ी विपदा है, जहां कालपुरुषका ताण्डव हो रहा है वहां हर प्रकारकी सहायता भेजना हमारा धर्म है। हम लोगोंसे जितना बन पड़े उतना करना ही चाहिये। ऐसी अवस्थामें हमें अपने बच्चोंकी मिठाई और आईसक्रीमतक बंद करके सारा पैसा उन दुखियोंकी सहायताके लिये भेज देना चाहिये। इसके लिये अगर हम लोगोंको घरके खर्चमें कमी करनी पड़े तो उसके लिये भी तैयार रहना चाहिये।

यह प्रभावशाली भाषण सुनकर मैं खिल उठी। मैंने सोचा, अब चन्देकी बात आयी, अब राशिकी घोषणा हुई, लेकिन मैं सहसा आकाशसे गिर पड़ी, उन्होंने कहा, यह काम दो-एकके बूतेका नहीं है, हम सबको मिलकर ही इस भारको उठाना होगा। चलिये, हम लोग एक प्रीति-भोजकी व्यवस्था कर डालें जिसमें नगरके सब गण्यमान्य-व्यक्ति निमंत्रित हों। अन्य लोग भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार टिकट लेकर इस महान् यज्ञमें भाग ले सकेंगे। हमें स्वार्थी न होना चाहिये, हमारे लिये उचित यही है कि जिन लोगोंके पास पैसा कम है उन्हें भी सेवा करनेका अवसर दें।

मैंने क्या सोचा था और क्या हो गया। लेकिन अब इस स्थितिमेंसे पीछे हटना भी संभव न था। वहां जितनी स्त्रियां इकट्ठी थीं उन सबने सर्वसम्मतिसे प्रीति-भोजका कार्यक्रम स्वीकार कर लिया और मुझे उसका आयोजक चुना गया। सारी व्यवस्था करनेके लिये एक समिति बना दी गयी और यह ठीक हुआ कि उसकी बैठक अगले दिन मेरे घरपर होगी।

मैं देख रही थी कि मैं नेता बनना चाहती थी पर मुझे नकेल पकड़कर खींचा जा रहा है। खैर, मैंने हिम्मत न हारी। और अपने निश्चित कार्यक्रमको बदलकर किसी औरके कहनेसे ठाकुर दलजीतसिंहके घरकी ओर चली। शायद ठाकुर दलजीतसिंह कहनेसे आप न समझ पायें। यह सज्जन पहले दिविया डाकूके नामसे प्रसिद्ध थे। चम्बलकी घाटी मानों इनका अपना राज्य था। इनका कहना था कि इनके पुरखे कन्नौजसे लेकर कानपुरतकके प्रदेशपर राज्य

किया करते थे। राज्य तो अंग्रेजोंने ले लिया पर ऐंठ जैसीकी तैसी छोड़ दी। इन लोगोंने भी साधारण जीवनको लात मारी और डाकू बन गये। सारा उत्तर प्रदेश और उसके निकटवर्ती राज्य दिविया डाकूके नामसे घबराते थे। पुलिस रात-दिन इसका पीछा करती रहती थी पर ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि इन दोनोंके बीचका अंतर पांच मीलसे कम हुआ हो। खैर, अब दिविया डाकू बूढ़ा हो गया है और उसने स्वाधीन भारतमें एक सभ्य नागरिक बनकर रहना शुरू कर दिया है। हम सब मिलकर उसके घर पहुंचीं। घर क्या था, बस, एक पुरानी गढ़ी समझ लीजिये। चारों ओर कांटोंकी बाड़ लगी थी और उसके पीछे बबूलोंकी कतार थी। गढ़ीका दरवाजा बहुत बड़ा और मोटा था जिसके ऊपर और सामनेकी ओर भाले लगे हुए थे। हम लोगोंने अंदर पैर रखा। वहांका सारा वातावरण भीतिजनक था। गढ़ीमें अंदर भी चारों ओर झाड़-झंखाड़ थे और नागफनी लगी थी। ऐसा लगता था मानों हम किसी जंगलमेंसे गुजर रहे हों। काफी दूर जाकर एक मकान आया। मकान भी वैसा ही भयावना था। बड़े-बड़े खम्भे जिनमेंसे ईंट-चूना गिरा हुआ था। शायद इस शताब्दीमें तो उन्होंने चूनेकी शकल नहीं देखी थी। दीवारें, धरनें, खिड़कियां सभी बड़े-बड़े दांत बाये हुए फाड़ खानेको दौड़ते थे। हम चारों स्त्रियां घबरा रही थीं। ऐसा भयावना वातावरण हमने कभी न देखा था। यहां दिनके समय भी लालटेन जलानेकी जरूरत पड़ती थी।

खैर, एक बार मकानमें घुसनेके बाद उलटे पैरों लौट जाना तो बड़ी ही मूर्खता होती, इसलिये हम लोग जैसे-तैसे जी कड़ा करके हनुमानजी और भोलेनाथजीका नाम जपती हुई अंदर घुसीं। दिवियाके एक सहायकने हमारा स्वागत किया। उसकी आंखें चढ़ी हुई थीं। मोटे ओठ उसके क्रूर चेहरेको और भी क्रूर बना रहे थे। हम सबने नमस्ते की मानों कालभैरवसे रक्षाकी प्रार्थना कर रही हों। उसने बड़ी लापरवाहीसे मुंहपरसे मक्खी उड़ानेका-सा अभिनय किया और बड़ी भारी और मोटी आवाजमें कहा, कहो? हमें लगा, मानों कसाई गायको अपने खूंटेपर बांध रहा हो। अब बोले कौन? वह तो एकटक हम लोगोंकी ओर देखता जा रहा था और हममेंसे हर एकका खून सूखता जा रहा था। थोड़ी देरके बाद मौन तोड़ते हुए उसने कहा, बोलो, क्या चाहिये? हमने संक्षेपमें अपने आनेका उद्देश्य सुना दिया। उसने अपनी लाल आंखें बाहर निकालते हुए कहा, अच्छा अभी जाओ, मुझे जो कुछ देना होगा सीधा वहीं भेज दूंगा, तुम्हें किसलिये दूं। पैसा मेरा और नाम तुम्हारा। चली जाओ तुम सब यहांसे, और देखो, आगेसे मेरे यहां पैर न रखना। हम सब सिरपर पैर रखकर भागीं; चलिये जान बची लाखों पाये। कौन जाने इस मकानने कितने धनाढच लोगोंकी करुण पुकारें सुनी होंगी, न जाने कितनोंको उनके रुपयोंके लिये तिलकी तरह पेरा गया होगा। अब भी उस वातावरणकी याद आती है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

खैर, दूसरा दिन आया और मेरे घरके आगे मोटरोंका तांता लग गया, समितिकी बैठक जो थी। प्रीतिभोजका पैसा जब आयगा तब आता रहेगा। आज इन सबके चाय-पानीपर ही मुझे डेढ़-दो सौकी चपत लग गयी। शानदार प्रीतिभोजका आयोजन करनेका निश्चय हुआ और कहा गया कि टिकट न लगायें जायें। हर एकसे कहा जाय कि वह अपनी सामर्थ्यके अनुसार अधिकसे अधिक दे। लोगोंको अपनी उदारता दिखानेका एक अवसर दिया जाय। मुझे यह बात जंच गयी। नगरसेठकी श्रीमतीने एक संशोधन रख दिया। उन्होंने कहा,

प्रीतिभोज गृहके दरवाजेपर एक डिब्बा रख दिया जाय। हर एक आदमी अपनी श्रद्धा और सामर्थ्यके अनुसार उसमें धन डालता जाय। इससे जो ज्यादा देनेवाले हैं उनके घमण्डको पोषण न मिलेगा और कम दे सकनेवालोंको दीनताका अनुभव न होगा। युक्ति बहुत अच्छी थी, परंतु अनुभवहीन होनेके कारण मैं उसके पीछे छिपे हुए रहस्यको न समझ पायी। खैर, सब कुछ ठीक हो गया, मुझे संयोजकका पद दिया गया और आमदनी और खर्चका सारा भार मेरे सिर पड़ा। इतना ऊंचा पद और इतना उत्तरदायित्व पाकर मैं फूल उठी। मैंने अच्छी-से अच्छी व्यवस्था की, सेठ हुकुमचंदजीके यहांसे आटा-दाल-घी सब मेरे नामपर उधार आ गया, ताज प्रेससे निमंत्रण-पत्र छप आये। इन्दौरसे अच्छे रसोइये बुलाये गये और किसी बड़े सेठके विवाहके भोजकी तरह हमारे प्रीति-भोजका आयोजन हुआ। हमें आशा थी कि हम जितना ही गुड़ डालेंगे उतना ही मीठा होगा। अगर हम तन तोड़ मेहनत करके अच्छीसे अच्छी व्यवस्था करेंगे तो लोग भी बिना हिसाब किये अपनी थैलियोंके मुंह खोल देंगे।

प्रीतिभोज हुआ। शहरके छोटे-बड़े, सब तरहके लोग आये और छककर खाया। मैं और मेरे घरके लोग कई दिनसे सो न पाये थे फिर भी हम लोग घूम-घूमकर अतिथियोंकी सेवा कर रहे थे। बिना किसी दुर्घटनाके दावत खत्म हुई और लोगोंने अपने घरकी राह ली। मैं बहुत ही खुश थी। सारा आयोजन घड़ीकी सुइयोंकी तरह नियमित रूपसे चला था, सब लोग बड़े ही प्रसन्न दीख रहे थे। मैंने सोचा, हमारे चन्देका बक्सा तो अच्छी तरह भरा होगा। देखें कितना धन आया है। मैं चाभी लेकर बक्सा खोलने जा रही थी और मन-ही-मन सोचती जाती थी, अगर अच्छी राशि हुई तो मैं स्वयं मद्रास जाकर कामराजके हाथमें दे आऊंगी। मैं आयी। ताला खोला। बक्सेका ढक्कन उठाया। ऐं यह क्या? यहां तो कागज ही कागज भरे हैं। मेरा सिर चकराने लगा, फिर सोचा, नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। शायद चेक होंगे। पहला कागज उठाया, उसमें लिखा था और सब तो ठीक था, चटनीमें मिरचें ज्यादा थीं। दूसरीमें लिखा था, इतनी कंजूसी किसलिये, खीरमें शक्कर इतनी कम क्यों? मैंने पांच-सात कागज देखे, सबमें किसी चीजकी प्रशंसा और किसीकी निन्दा लिखी थी। मेरी आंखों तले अंधेरा छा गया। हुकुमचंदको पांच हजार देने हैं, प्रेसके पांच सौ, रसोइयोंकी तनखाहें, बिजली, पानी, लकड़ीका खर्च सब मेरे सिरपर और ऊपरसे ये सब चिट्ठियां। मैं वहीं सिर पकड़कर बैठ गयी। जब मुझे होश आया तो खाटपर पड़ी हुई थी। घरके लोग इधर-उधर मंडरा रहे थे। सबके चेहरे फक थे। मैंने उठनेकी कोशिश की, पर उठा न गया। मैंने बोलना चाहा पर मांने चुप करा दिया। कई दिनोंके बाद जब मैं ठीक हो गयी तब पता चला कि सब मिलाकर मुझे दो हजारकी चपत लगी थी। जो लोग गुप्त दानकी रट लगा रहे थे उन्होंने शायद पांच-पांच रुपये ही दिये होंगे।

इन दो अनुभवोंके बाद मैंने चंदा जमा करनेके कामसे कान पकड़े। अभी मेरा कर्ज पूरी तरह चुक नहीं पाया है।

* * *

पुस्तक-परिचय

गोस्वामी तुलसीदास--ले. शिवनन्दन सहाय, प्रकाशक : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। मूल्य ५.५०।

भारतवर्षमें जीवन-चरित्र लिखनेकी प्रथा नहीं रही। हमें अपने महापुरुषोंके बारेमें बहुत कम जानकारी है। गोस्वामी तुलसीदासजी भी इनमें अपवाद नहीं थे। विद्वान् लेखकने बड़े परिश्रमसे इधर-उधर छानबीनकर गोस्वामीजीके बारेमें सामग्री इकट्ठी की है। इसके अतिरिक्त उनकी कृतियोंका भी अच्छा परिचय दिया है। ५.५० में पुस्तक सस्ती है।

कवि श्री माला--प्रकाशक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

भारतके सांस्कृतिक जीवनमें विभिन्न भाषाओंका वही स्थान है जो भूगोलमें नदियोंका। गंगा हो या यमुना, कावेरी हो या कृष्णा हर एक अपने-अपने स्थानपर महत्त्वपूर्ण है। इनमें कहीं भी ऊंच-नीचकी भावनाके लिये स्थान नहीं है। यही हालत भारतीय भाषाओंकी है। हिन्दी, बंगला, तमिल, तेलुगू सबकी सब भारत मांकी सेवाके लिये अपना-अपना सौरभ लेकर आती हैं और संस्कृत भाषा घनश्यामका रूप लेकर इन सबको समान रूपसे पोषण देती है। एक धार्मिक हिन्दू प्रत्येक शुभ अवसरपर गंगा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा आदिका आवाहन करता है और उनके जलसे स्नान करके अपने-आपको पवित्र करता है। वर्धाकी राष्ट्र-प्रचार समितिने हमारे लिये यही काम किया है। इस कवि श्रीमालामें भारतकी प्रमुख भाषाओंके दो-दो श्रेष्ठ कवियोंका परिचय दिया गया है तथा हिन्दी अनुवादके साथ देवनागरी अक्षरोंमें मूल कृतियोंका नमूना भी दिया गया है। यहां हम हिन्दीके प्रसाद, उर्दूके इकबाल, गुजरातीके दयाराम और सुन्दरम्, कन्नड़के बेंद्रे और कुवेम्पु, तमिलके सुब्रह्मण्यम् भारती और नामक्कल रामलिङ्गम् आदिसे परिचय प्राप्त करते हैं तथा उनकी कविताका रस ले पाते हैं।

इस मालामें १५ भाषाओंके २६ कवियोंका परिचय देती हुई २५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। छपाई कलापूर्ण है। लगभग १२५ पृष्ठकी प्रत्येक पुस्तकका दाम दो रुपये है। हम इस प्रकारके साहित्यकी दिन-दूनी वृद्धि चाहते हैं।

जीवन साहित्यका नेहरू स्मृति अंक--सम्पादक हरिभाऊ उपाध्याय और यशपाल जैन, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली।

पं. नेहरूके बारेमें जितना भी लिखा जाय कम है। उनका जीवन सर्वतोमुखी था। भारतवर्षमें तथा विदेशोंमें लाखों नर-नारियोंको व्यक्तिगत रूपसे उनके संपर्कमें आनेका अवसर मिला

था और हर एकने उनकी सुखद स्मृतियोंको अपने पास संजोकर रखा होगा। इस विशेषांकमें इसी प्रकारकी स्मृतियोंका एक संग्रह है। कई लेख बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें पंडितजी-की वीरता, उनकी उदारता, उनके निष्कपट प्रेम और उनकी सरलताके बड़े सुन्दर नमूने दिये गये हैं। अंक संग्रह करने योग्य है।

श्रीअरविंद-साहित्य--एक झांकी--लेखक नारायणप्रसाद बिंदु; प्रकाशक--श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी, मूल्य २.००।

मनुष्य वर्तमान परिस्थितियोंसे परेशान है। वह ठीक मार्ग पानेके लिये इधर-उधर भटक रहा है परंतु प्रायः उसे अंधकार ही अंधकार दिखायी देता है। श्रीअरविंद-साहित्य प्रकाशकी वह किरण है जो इस अंधकारको चीरती हुई मनुष्यके लिये आशाका संदेश लाती है। प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीअरविंद साहित्यका कुछ परिचय दिया गया है। विषय महत्त्वपूर्ण है और शैली रोचक।

नेहरू--व्यक्तित्व और विचार -- सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, श्रीमन्नारायण और यशपाल जैन; प्रकाशक -- सस्ता साहित्य मंडल; मूल्य २५.००

पं. नेहरूके बारेमें जितना कहा जाय कम है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और उनका क्रिया-क्षेत्र मुख्य रूपसे भारत होते हुए भी देशोंकी सीमाओंको पार कर चुका था। वे समस्त विश्वके हो चुके थे। प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान् संपादकोंने पूरा यत्न करके पंण्डितजीके जीवनके अधिकसे अधिक पहलुओंका परिचय देनेका प्रयास किया है। इसमें जहां सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू, मैथिलीशरण आदिके अनुभव हैं वहां साथमें कृष्णा मेहता, विमला, व्रजमोहन व्यास, कैलाशनाथ काटजू, नयनतारा आदिके दिये हुए अंतरंग चित्र भी हैं। हम पंडितजीकी सहृदयता, उदारता, निर्भीकता और सरलता, उनके साहस और देशके प्रति समर्पण आदिकी सुन्दर झांकियां पाते हैं।

पुस्तकको देखते हुए दाम ठीक ही है। फिर भी हम अनुरोध करेंगे कि मण्डल इसका एक सस्ता संस्करण भी निकाले ताकि जो २५ रु. खर्च करनेमें असमर्थ हैं वे इससे वंचित न रह जायं। यत्र-तत्र छापेकी भूलें बहुत अखरती हैं परंतु जितनी जल्दीमें यह कार्य निष्पन्न हुआ है उसे देखते हुए यह क्षम्य है।

दक्षिण भारती

(दक्षिण भारतकी भाषाएं सीखिये)

मनुष्यसमाजके अधिकतर झगड़े-बखेड़े गलतफहमीके कारण पैदा हुआ करते हैं। हम व्यक्ति और समाज दोनोंके जीवनमें यही चीज देखते हैं। आजकल हमारे देशमें भाषाके प्रश्नने एक विकट रूप धारण कर लिया है। इसके पीछे बहुत बड़ा कारण यही है कि हम एक-दूसरेकी भाषासे अपरिचित हैं। यदि हम एक-दूसरेकी भाषाको पहचान पायें तो बहुत-सी कठिनाइयां अपने-आप दूर हो जायेंगी। 'पुरोधा' शुरूसे इस बातका प्रयास करती रही है कि वह हिन्दी पत्र होते हुए केवल हिंदीतक सीमित न रहे। इसी उद्देश्यसे उसने बसवण्णा, अक्क महादेवी, आण्डाल आळवार, लल्लेश्वरी आदिके बारेमें लेख छापे हैं और अब इस दिशामें एक नया प्रयास कर रही है।

अब पुरोधाके प्रत्येक अंकमें आप देवनागरी अक्षरोंमें दक्षिणकी चारों भाषाओंको सीखनेका अवसर पायेंगे। आप देखेंगे कि ये भाषाएं हमसे उतनी दूर नहीं हैं जितना हमने समझ रखा है। इनमें और उत्तरकी भाषाओंमें काफी समानता है। बहुतसे शब्द, मुहावरे, प्रयोग आदि आश्चर्यजनक रूपसे समान हैं।

राजनीतिक दृष्टिसे भारत चाहे कितने भी भागोंमें विभक्त क्यों न रहा हो पर धर्म और संस्कृतिकी दृष्टिसे रामेश्वरम्से बद्रीनाथ और अटकसे कटकतक एक था। आज भी धार्मिक लोग स्नान करते समय गंगा-यमुनाके साथ कृष्णा-कावेरी और गोदावरीका आह्वान करते हैं। आज भी आप बहुतसे तीर्थ स्थानोंपर सुनेंगे कि यहां इन सब नदियोंका जल आया करता है। हमारी रायमें हमारी भषाएं भी नदियोंकी तरह भारत मांका अलंकार हैं। हमें प्रत्येक भाषाके सौंदर्यको सराहना चाहिये। पाजेब और कंगनमें कभी झगड़ा नहीं हो सकता। हरएक अपना-अपना काम पूरा करता है और सब मिलकर ही मांको विभूषित कर पाते हैं। और फिर पूर्व जन्मके माननेवाले अपने वर्तमान जन्मकी भाषाको अथवा देशको ही क्यों लड़नेका निमित्त बनायें। हो सकता है कि आज जो हिंदीके पक्षमें लड़ता है वह पिछले जन्ममें हिंदीका घोर विरोधी रहा हो। हम किसीके साथ झगड़ा न करते हुए प्रत्येक भाषा सौंदर्यका रसास्वादन करें और अपने जीवनमें एक सामंजस्य ला सकें। यही हमारे इस प्रयासका उद्देश्य है।

दक्षिणी भाषाओंमें उच्चारणकी कुछ विशेषता है। हिन्दीमें साधारणतया अंतमें आनेवाले व्यंजनका उच्चारण ऐसे होता है मानों वह हलन्त हो पर दक्षिणी भाषाओंमें जबतक हल् न लगा हो तबतक अंतिम व्यंजनका पूरा उच्चारण होता है। जैसे रामका उच्चारण हिन्दीवाले राम् करेंगे पर दक्षिणवाले रामके जैसा उच्चारण करेंगे। आकार जरा छोटा होगा। इसी प्रकार ए और ओके ह्रस्व रूप होते हैं जिससे हिंदीवाले परिचित नहीं हैं। ए, ए, ऐ; ओ, ओ, औ — ऐसे क्रम होता है। इसी तरह एक और ध्वनि है जिसे हमने ज़के रूपमें रखा है। उसका उच्चारण vision में ज़के जसा होता है।

तमिलमें व्यंजन बहुत कम हैं। संस्कृत अक्षरोंके प्रत्येक वर्गका पहला और पांचवां अक्षर ही रहता है। जैसे क वर्गमें केवल क और ङ, च वर्गमें केवल च और ञ आदि। क, ख, ग, घ का काम एक क से ही चल जाता है। उनके यहां इतनी आवश्यकता ही नहीं होती। हां, जब अन्य

भाषाओंके शब्द लिखने पड़ें तब कठिनाई पड़ती है। एक बार थोड़ा अभ्यास हो जानेपर कठिनाई कम हो जाती है।

अन्य भाषा-भाषी जब हिंदी सीखते हैं तो उन्हें लिंग और क्रिया-रूपोंकी चौखटपर अपना सिर पटकना पड़ता है। दक्षिणी भाषाओंमें यह मुश्किल नहीं है। यहां पुरुष पुल्लिग, स्त्रियां स्त्रीलिंग और बाकी सब नपुंसकलिंग गिने जाते हैं। मैं और तुममें तो लिंग बदलता ही नहीं है। केवल अन्य पुरुषमें थोड़ा-सा भेद किया जाता है लेकिन वह हमेशा एक नियमके अनुसार। मलयालममें तो क्रिया लिंग या वचनमें कभी नहीं बदलती। इस दृष्टिसे ये भाषाएं काफी सरल हैं। जरा-सा प्रयास करनेसे पाठोंके द्वारा आप चारों भाषाओंसे थोड़ा परिचय प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग इस दिशामें कुछ प्रयास करें उनसे हमारा आग्रह है कि उन्हें कोई परिवर्तन जरूरी लगे तो हमें अवश्य सूचित करें। हर प्रकारके सुझावोंका स्वागत होगा। इन भाषाओंका विस्तृत परिचय फिर कभी दिया जायगा। (संपादक)

पहला पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
यह (व)	इदु	इदि	इदु	इतु
क्या	एन्न	एमि	एनु	एन्दु
मक्खी	ई	ईग्	नोण	ईचा
पाठ	पाठम	पाठम	पाठ	पाठम
वह	अदु	अदि	अदु	अतु
एक	ओरु	ओक्कटि	ओन्दु	ओन्नु, ओरु
पेड़	मरम	चेट्टु	मर	मरम
मेरा	एन	नादि	नन्न	एन्टे
मुख	बाय	नोरु	मुख	मुखम्
नाक	मूक्कु	मुक्कु	मूगु	मूक्कू
चित्र	पडम	पड़म	चित्र	चित्रम
तेरा	उन	नीदि	निन्न	निंट

अब आपने बारह शब्द सीख लिये हैं। दक्षिणकी भाषाओंमें लिंगका झगड़ा नहीं है। स्त्रियां स्त्रीलिंग और पुरुष पुल्लिग और बाकी सब नपुंसक लिंग। है का प्रयोग हिन्दीकी अपेक्षा बहुत कम होता है। जैसे — यह एक चित्र है कहनेकी जगह यह एक चित्र कह देना काफी है। लीजिये अब अपने परिचित शब्दोंसे कुछ वाक्य बनाइये।

हिंदी :	यह क्या (है) ?	यह एक पेड़ (है)।	यह मेरा चित्र (है)।
तमिल :	इदु एन्न ?	इदु ओरु मरम।	इदु एन पडम।
तेलगू :	इदु एमिटि	इदि ओक्क चेट्टु।	इदि ना पड़म।
कन्नड़ :	इदु एनु ?	इदु ओन्दु मर।	इदु नन्न चित्र।
मलयालम :	इतु एंटाकुन्नु ?	इति ओरु मरमाकुन्नु।	इतु एन्टे चित्रमाक्कुन्नु।

हिंदी :	वह तेरा मुख (है)।	यह एक मक्खी (है)।	वह एक नाक (है)।
तमिल :	अदु उन वाय।	इदु ओरु ई।	अदु ओरु मूक्कु।
तेलगू	अदि नी नोरु।	इदि वोक्क ईग।	अदि वोक्क मुक्कु।
कन्नड़ :	अदु निन्न मुख।	इदु ओंदु नोड़।	अदु ओंदु मूगु।
मलयालम :	अतु नीण्ट मुखमाकुन्नु।	इतु ओरु ईचा आकुन्नु।	अदु ओरु मूक्कू आक्कुन्नु।

अब निम्नलिखित वाक्योंको चारों भाषाओंमें कहनेका अभ्यास कीजिये :—

यह एक पाठ है। वह तेरी नाक है। यह क्या है? वह मेरा पेड़ है। तेरा चित्र। मेरी नाक। तेरा मुंह। यह एक मक्खी है। यह मेरा पेड़ है। वह तेरा पाठ है।

दूसरा पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
कान	कादु	चेवि	किवि	चेवि
हाथ	कै	चेय्यि	कै	कै
दांत	पल	पन्नु	हल्लु	पल्लु
पत्थर	कल	राई	कल्लु	कल्लु
पैर	काल	कालु	कालु	काला
आंख	कण	कण्णु	कण्णु	कण्णु
शरीर	उडल	शरीरम, देहम	देह, मै	शरीरम
वह (पु.)	अवन	वाड़ु	अवनु	अवन
वह (स्त्री)	अवळ	आमे	अवळु	अवळ
आ	वा	रा	बा	वा
जा	पो	पो	होगु	पो

अब कुछ वाक्य लीजिये :—

हिंदी :	यह एक पत्थर (है)।	वह तेरा पांव (है)।	मेरा हाथ।
तमिल :	इदु ओरु कल।	अदु उन काल।	एन कै।
तेलगू :	इदि ओक्क राई।	अदि नी कालु।	ना चेय्यि।
कन्नड़ :	इदु ओन्दु कल्लु।	अदु निन्न कालु।	नन्न कै।
मलयालम :	इतु ओरु कल्लाकुन्नु।	अते निन्टे कालाक्कुन्नु।	एन्टे कै।

हिंदी :	तेरा दांत।	वह रामण है।	वह मीनाक्षी है।
तमिल :	उन पल।	अवन रामण।	अवळ मीनाक्षी।
तेलगू :	नी पन्नु।	वाड़ु रामुड़ु।	आमे मीनाक्षी।
कन्नड़ :	निन्न हल्लु।	अवनु रमणा।	अवळु मीनाक्षी।
मलयालम :	निन्टे पल्ल।	अवन रमणा आकुन्नु।	अवळ मीनाक्षी आक्कुन्नु।

हिंदी :	रमण जा।	मीनाक्षी आ।
तमिल :	रमण पो।	मीनाक्षी वा।
तेलगू :	रमण पो।	मीनाक्षी वा।
कन्नड़ :	रमण होगु।	मीनाक्षी बा।
मलयालम :	रमण पो।	मीनाक्षी वा।

अब इन्हें चारों भाषाओंमें कहिये :—

मेरा पांव। तेरा पेड़। तेरी नाक। वह अरुण (है)। यह अरुणा (है)। तेरा कान। यह तेरा कान (है)। वह तेरा सिर (है)। यह मेरी नाक (है)। वह एक पेड़ (है)। वह एक पत्थर है।

तीसरा पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
दही	तयिर	पेरुगु	मोसरु	तयिर
कुत्ता	नाय	कुक्का	नायि	नाया
बेटा	महन	कोडुकु, कोमरुडु	मग	मकन
बेटी	महळ	कूतेरु	मगळु	मकळ
मैं	नान	नेनु	नानु	ञान
तू	नी	नीवु	नीनु	नी
यह (मानसहित स्त्री. पु.)	इंद	इदि, ई (न.)	इवरु	इतु, ई
वह	अंद	अदि, आ	अवरु	अतु, आ
नहीं	इल्ले	लेदु, कादु	इल्ल	इल्ल
हां	आम	औनु	हौदु	अते

वाक्य :—

हिंदी :	(क्या) यह तेरा बेटा है?	यह मेरा बेटा नहीं (है)।
तमिल :	इवन उन महना?	इवने एन महन इल्लै।
तेलगू :	वीडु नी कोडुका? अथवा वीडु नी कोमारुड़ा?	वीडु नाकोमारुडुकादु।
कन्नड़ :	इवनु निन्न मगने?	इवनु नन्न मगनु अल्ल।
मलयालम :	इतु निन्टे मकन आकुन्नुवो?	इतु एन्टे मकनल्ल।

हिंदी :	हां, यह मेरा बेटा है।	यह दूध है।
तमिल :	आम, इवन एन महन।	इदु पाल।
तेलगू :	औनु, ईना कोमारुडु।	इदि पालु।
कन्नड़ :	हौदु, इवनु नन्न मग।	इदु हालु।
मलयालम :	अते, इवन एन्टे मकनाकुन्नु।	इतु पालआकुन्नु।

हिंदी :	यह एक कुत्ता नहीं (है)।	राम (क्या) यह तेरा पांव है?
तमिल :	इदु ओरु नाय इल्लै।	राम इदु उन काला?
तेलगू :	इदि कुक्क कादु।	रामा इदि नी काला?
कन्नड़ :	इदु नायि अल्ल।	राम इदु निन्न काले?
मलयालम :	इतु ओरु नाया अल्ल।	रामा इतु निन्टे कालाणो?

हिंदी :	नहीं, यह पांव नहीं है, यह मेरा हाथ (है)।	यह मेरा शरीर है।
तमिल :	इल्ले, इदु एन काल इल्लै, इदु एन कै।	इदु एन उडल।
तेलगू :	इदि ना काल कादु, ना चेय्यि।	इदि न शरीरम।
कन्नड़ :	इल्ल इदु कालु अल्ल, इदु नन्न कै।	इदु नन्न देह।
मलयालम :	अल्ला इतू एन्टे काललल, इतु एन्टे कै आकुन्न।	इतु एन्टे शरीरमाकुन्नु।

हिंदी :	यह मेरा कुत्ता नहीं (है)।
तमिल :	इदु एन नाय इल्लै।
तेलगू :	इदु ना कुक्क कादु।
कन्नड़ :	इदु नन्न नायि अल्ल।
मलयालम :	इतु एन्टे नाय अल्ल।

निम्नलिखित वाक्योंको सब भाषाओंमें लिखिये :—

यह मेरा दांत नहीं है। यह तेरा कुत्ता है।

चौथा पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
चाकू	कत्ती	कत्ती, चाकू	चाकु	कत्ती
मेज	मेसै	मेजा	मेज	मेशा
पेटी, संदूक	पेट्टी	पेट्टे	पेटी, पेट्टिगे	पेट्टि
पानी	तण्णीर	नीळ्ळु, नीरु	नीरु	वेळ्ळं
तरफ	पक्कम	पडक्क, वैपु	कडेगे	भागम
इधर	इंगे	इक्कड़	इल्लि, ईकड़ेगे	इविटे
किधर	एंगे	एक्कड़	एल्लि, एल्लिगे	एविटे
उधर	अंगे	अक्कड़	अल्लि, आकड़ेगे	अविटे
छोटा भाई	तम्बी	तम्मुडु	तम्मा	अनुजन
वड़ा भाई	अण्णा	अन्ना	अण्णा	ज्येष्ठन
अच्छा	नल्ला	मंचिदि, सरी	सरी, चेन्नु	नल्लनु
सुन्दर	अज़हान	सुन्दरम, अन्दम	सुन्दर	सुन्दरम

वाक्य :—

हिंदी :	इस तरफ आ।	उस तरफ जा।
तमिल :	इंद पक्कम वा।	अंद पक्कम पो।
तेलगू :	ई वैपु रा।	आ वैपु पो।
कन्नड़ :	इल्लि बा।	अल्लि होगु।
मलयालम :	ई भागत्तु वा।	आ भागत्तु पो।

हिंदी :	बड़ा भाई कहां (है) ?	छोटा भाई कहां है ?
तमिल :	अण्णा एंगे ?	तम्बी एंगे ?
तेलगू :	अण्ण एक्कड़ ?	तम्मुड़ एक्कड़ ?
कन्नड़ :	अण्ण एल्लि ?	तम्मा एल्लि ?
मलयालन :	ज्येष्ठन ऐविटे ?	अनुजन ऐविटे ?

हिंदी :	यह पानी नहीं, दही (है)।	यह एक चाकू है।
तमिल :	इदु तण्णीर इल्लै, इदु तयिर।	इदु ओरु कत्ती।
तेलगू :	इदि नीरुकादु, इदि पेरुगु।	इदि ओक्क कत्ती।
कन्नड़ :	इदु नीरु अल्ला, मोसरु।	इदु ओंदु चाकु।
मलयालम :	इतु वेळ्ळं अल्ल, तयिराकुन्नु।	इतु ओरु कत्ती आकुन्नु।

हिंदी :	तेरा भाई कहां है ?	यह मेरा छोटा भाई है।
तमिल :	उन तंबी एंगे ?	इवन एन तम्बी।
तेलगू :	नी तम्मुड़ एक्कड़ ?	वीडु ना तम्मुड़डु।
कन्नड़ :	निन्न तम्मा एल्लि ?	इवनु नन्न तम्मा।
मलयालम :	निन्टे अनुजन ऐविटे ?	इवन एन्टे अनुजन आकुन्नु।

हिंदी :	यह मेज सुन्दर है।
तमिल :	इंद मेसै अज़हान मेसै।
तेलगू :	ई मेजा सुन्दरम उन्नदि। अथवा ई मेजा अनदम उन्नदि।
कन्नड़ :	ई मेज सुन्दर इदे।
मलयालम :	ई मेश सुंदरमाकुन्नु।

अब आप अपने-आप इन वाक्योंका अनुवाद कीजिये तथा अन्य वाक्य बनाइये :—

यह एक अच्छा संदूक है। यह पानी नहीं दूध है। उधर जा। पानी कहां (है)? उस तरफ जा। इस तरफ आ। वह मां है। यह आंख है। तेरा चाकू। यह अच्छा सिर है। यह सुन्दर पांव है। यह मेज है।

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Ranigunj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

मीनाक्षी रोलर फ्लावर मिल्स

उत्तम मैदा और सूजी की
चीजें बनानेवाले

मिल :–
विलनगुडी
मदुरा

फोन–३४९१

कार्यालय :–
८२, साउथ अवनिमूल स्ट्रीट
पोस्ट बाक्स ५
मदुरा
फोन–४५१६

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन-४३४

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

Marketers of Petroleum Products

Western Trading Company

Distributors to ESSO Standard
Eastern, INC.
For Calcutta, Bihar and U.P.
88, Stephen House
4 Dalhousie Square East
CALCUTTA - 1

⁂

Branch:

CENTRAL HOTEL BUILDING
GORAKHPUR

Phone: 23-2835/36 Gram: RIGHTDON

INDIA TAR
AND
BITUMEN PRODUCTS

Office:
88, Stephen House,
Dalhousie Square, Calcutta - 1

Telephone: 23-2835/36

⁂

All types of waterproofing and damp-proofing, Pipe Lagging & Heat & Cold insulation. Works are undertaken with best workmanship.

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता–७

फोन–३३२३१२

**
*

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता——१३

**
*

Statement about ownership and other particulars about newspaper (PURODHA) to be published in the first issue every year after last day of February.

FORM IV

(See Rule 8)

1. Place of Publication	PONDICHERRY
2. Periodicity of its publication ..	QUARTERLY
3. Printer's Name	Amiyo Ranjan Ganguli
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-2
4. Publisher's Name	Aniruddha Sircar
Nationality	Indian
Address	Sri Auobindo Ashram, Pondicherry-2
5. Editor's Name	Ravindra
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-2,
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital.	Sri Aurobindo Society, 64, Rue d'Orleans, Pondicherry-2

I, Aniruddha Sircar, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Date 1st April 1965

Signature of Publisher
Sd- ANIRUDDHA SIRCAR

“युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके रथको हांकनेवाले कुरुक्षेत्रके सारथि (श्रीकृष्ण) कर्मयोगके प्रतीक और प्रतिमूर्त्ति हैं; क्योंकि शरीर ही है रथ और इन्द्रियां हैं हांके जानेवाले घोड़े और संसारके रक्तरंजित तथा पंकसंकुल पंथसे ही श्रीकृष्ण मानवात्माको वैकुंठ-तक ले जाते हैं।”

—श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

शुभ कामनाओंके साथ—

आर्थर इम्पोर्ट एक्सपोर्ट कम्पनी

'मों रपो'
४१।४४ आर्थर बन्दर रोड
(रेडियो क्लबके पीछे)
बम्बई—५

अत्युत्तम श्रेणीके

उर्णाविशेष तन्तु Shoddy yarns
संश्लिष्ट शीर्ष Synthetic tops
बैरकावरण Barrack blankets

के

आयातक, निर्यातक तथा संभारक

प्रबोधा

किशोर-त्रैमासिक

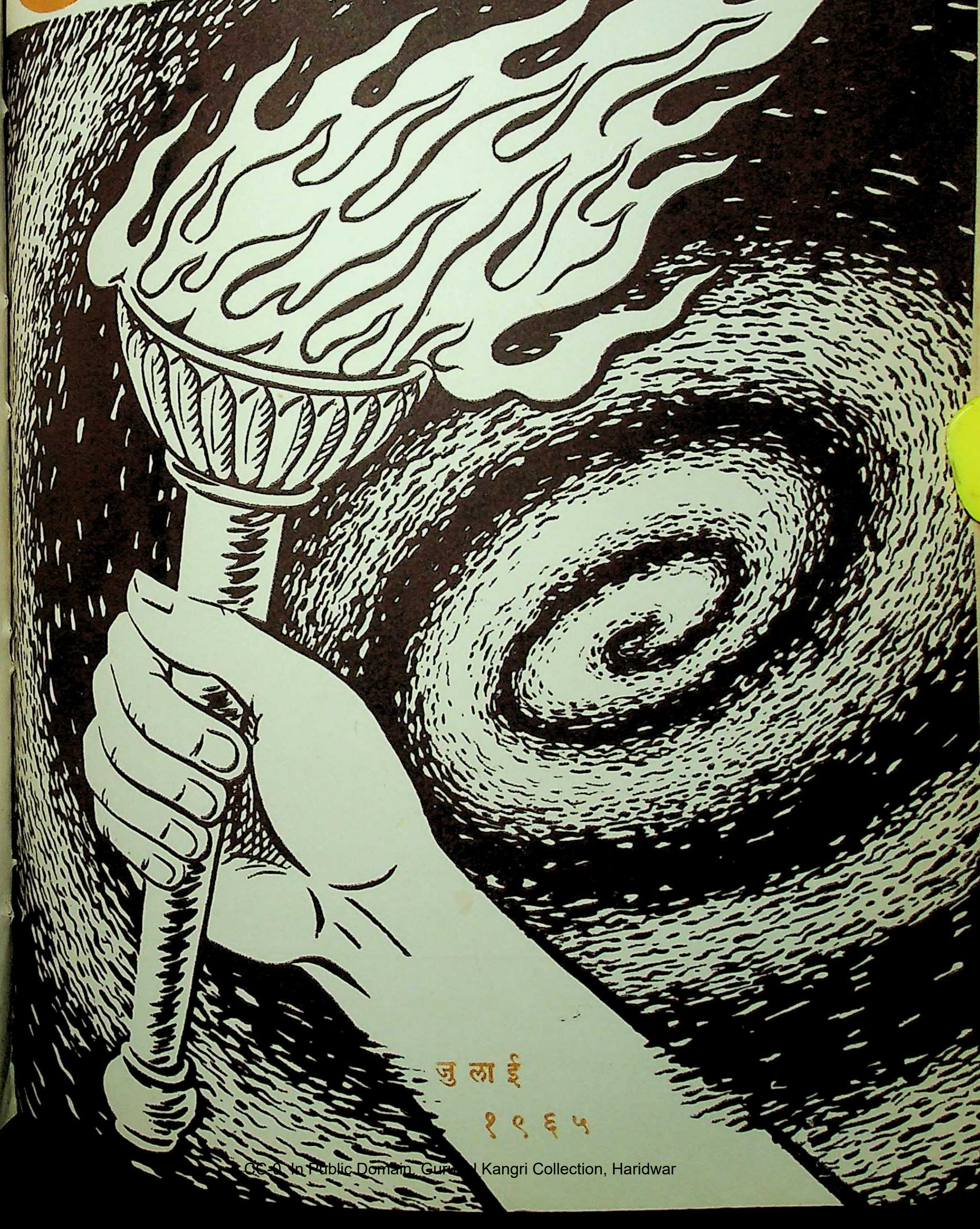

जुलाई

१९६५

श्रीअरविंद

स्वप्न-तरी

(Dream Boat)

ज्योति-शिखा-सी भृकुटि प्रदीपित तप्त कांचन सदृश शरीर,
स्वप्न-ज्वाला निर्मित नौकामें आया था वह मेरे तीर ।
बोला —— साथ चलोगे क्या तुम, अंतराग्नि है क्या तैयार ?
नीरवता हो गयी ध्वनित बन एक निगूढ़ मधुर झंकार ।

अन्तरकी विश्रांति गुहामें छिपा हुआ कुछ उठा सिहर,
जीवनका चिर-वांछित सुख सब स्मृति-पटलपर गया बिखर ।
सोचा जब, आनन्द गया वह, त्याग सदाको अतिथि समान,
स्वप्नतरी तिर गयी, हो गया स्वर्णपुरुष वह अंतर्द्धान ।

लोकांतरके रिक्त शून्यमें ही अब है उसका आवास,
प्रेम-शिखा बुझ गयी मिटा सब पूर्व हास आनन्द विलास ।
अस्त हुआ सौभाग्य, रिक्तता ही है केवल पूर्ण विराम,
आती स्वप्न-तरी न, नव' आता अब हिरण्यमय देव अनाम ।

(श्री नीरजद्वारा अनूदित)

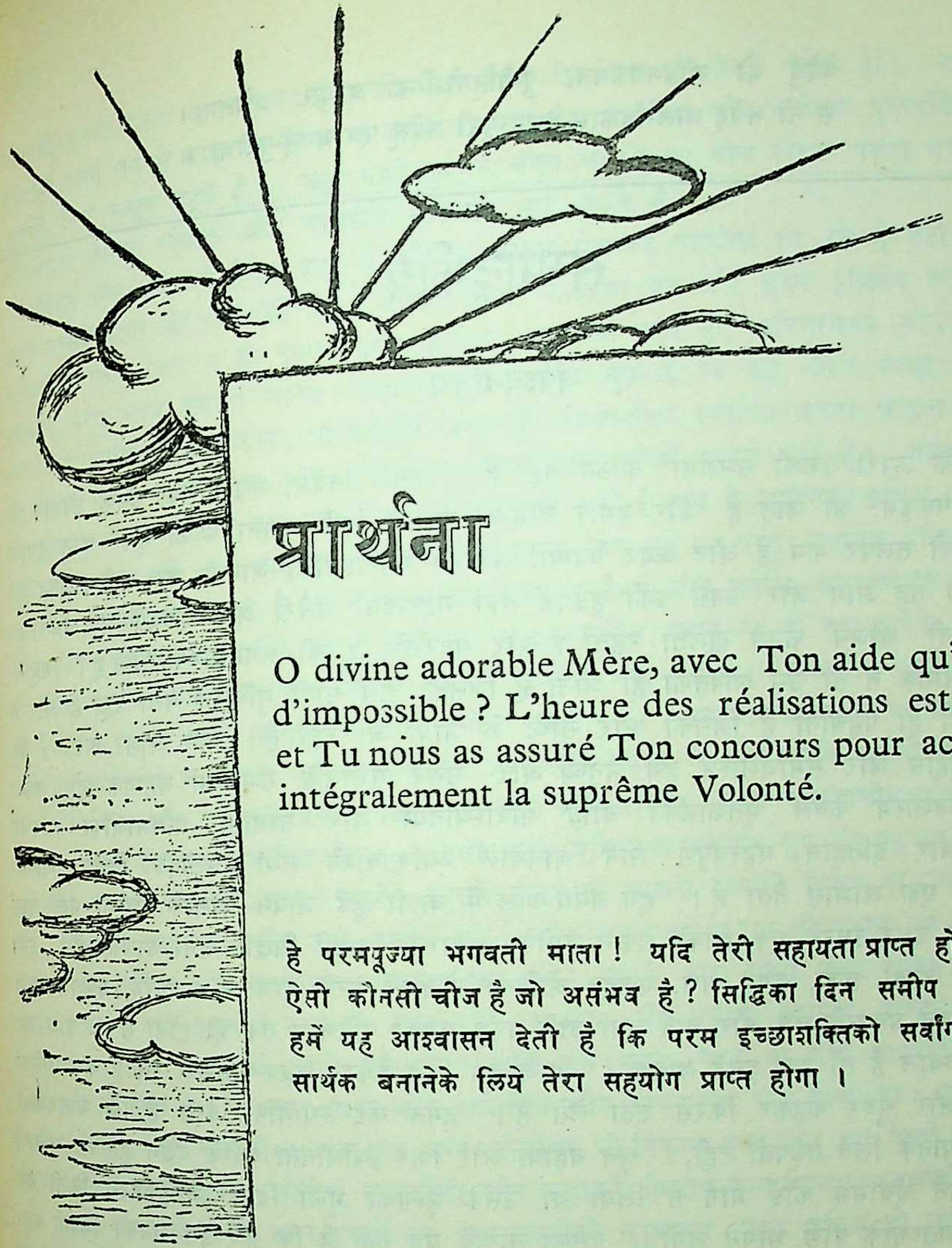

प्रार्थना

O divine adorable Mère, avec Ton aide qu'y a-t-il d'impossible ? L'heure des réalisations est proche et Tu nous as assuré Ton concours pour accomplir intégralement la suprême Volonté.

हे परमपूज्या भगवती माता ! यदि तेरी सहायता प्राप्त हो तो फिर ऐसी कौनसी चीज है जो असंभव है ? सिद्धिका दिन समीप है और तू हमें यह आश्वासन देती है कि परम इच्छाशक्तिको सर्वांगीण रूपसे सार्थक बनानेके लिये तेरा सहयोग प्राप्त होगा ।

श्रीमां

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ।।

सम्पादकीय

विश्व-ऐक्य

जीवनके ऊपरी तलको समझना कठिन नहीं है। उसके नियम, उसके रूप, उसके उपयोग भी आसानीसे पकड़में आ जाते हैं और हमारे दैनिक कामोंके लिये इतना काफी हैं। परंतु हमारा जीवन ऊपरी तलपर कम है और अंदर ज्यादा, अंदरकी गहराइयोंको जानना जरा कठिन काम है। जहां ऊपरी तह झाग और फेनसे ढकी हुई है वहां गहराइयां अंधेरी और एकदम अपरिचित हैं। मनुष्य अपनी खोजमें फेनसे खेलता रहता है और गहराईमें डुबकी लगानेसे कतराता है। मनुष्य-जातिने अभीतक न तो उस शक्तिको ही जाना है जिसका हाथ सारी सृष्टिको चला रहा है और न उस ध्येयको ही पहचाना है जिसकी ओर सृष्टि ले जायी जा रही है। हम आशा करते हैं कि शायद इतिहास और समाजशास्त्र हमें मनुष्य और उसके समाजके समझनेमें सहायक हो सकें। परंतु समाजशास्त्र केवल भूतकालकी बाह्य परिस्थितियों और सामान्य प्रक्रियाओंका परिचय देता है और इतिहास महत्त्वपूर्ण माने जानेवाले व्यक्तियोंकी तथा राष्ट्रोंकी विशेष जीवन-घटनाओंका एक आभास देता है। हम अनंत काल में बहती हुई जीवन-सरिताके मर्मको नहीं जान पाते। हम इधर-उधरसे एक झांकी लेकर उसीके आधारपर अपने सिद्धांत बना डालते हैं। इसी भांति हमने राजा, प्रजा, समह, गण, मजदूर आदिका अध्ययन करके राजतंत्र, प्रजातंत्र, गणतंत्र आदि न जाने कितने प्रकारके तंत्र और वाद बना डाले परंतु सबका परिणाम एक ही होता है। आज एक वादका बोलबाल है तो कल दूसरे वादका। आज हम जिसे बेकार कहकर ठुकरा देते हैं कल उसीको महत्त्वपूर्ण और सुंदर कहकर फिरसे उठा लेते हैं। हमने कई स्थानोंपर देखा है कि मानवजाति स्वाधीनता पानेके लिये तड़पती रही, खून बहाया और फिर स्वाधीनता देवीके दर्शन हुए तो आगामी पीढ़ीने जिसने संग्राममें कोई भाग न लिया था उसके मूल्यको भुला दिया और फिरसे किसी नये आदर्शकी मृगतृष्णाके पीछे भागने लगी। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हमें इस सबको मिथ्या कह-कर इनकी ओरसे मुंह मोड़ लेना चाहिये। इसका एक ही अर्थ है कि हमें गहराईमें जाकर सत्यकी चट्टानपर अपने कदम जमाने चाहियें और उसके लिये अधिक धैर्यके साथ अधिक परिश्रम करना चाहिये।

वर्त्तमान कालमें हम चारों ओर मानव-एकता, विश्व-ऐक्य आदिके नारे सुनते हैं। विशेष रूपसे दो महायुद्धोंमें बुरी तरह घायल होनेके बाद मानवजाति एक शांतिमय ऐक्यके स्वप्न ले रही है। इस प्रकारके महान् स्वप्न हमेशा इस बातके सूचक होते हैं कि प्रकृति ऐसे परीक्षण करना चाहती है; परंतु यह आवश्यक नहीं है कि वह इन स्वप्नोंको पूरी तरह, कम-से-कम उस समय सफल रूपसे चरितार्थ भी करे। कई बार वह ऐसे प्रयास यह जानते हुए आरंभ करती है कि उनमें सफलता नहीं मिलेगी। वह आदर्शोंको लेती है, उनसे खेलती है और फिर उन्हें फेंक देती है और उपयुक्त समय आनेपर फिर उठा लेती है। मनुष्य उसका एक गमनशील यंत्र है। वह उसे तरह-तरहके प्रलोभन देती है और नये-नये परीक्षण करवाती है और उसकी असफलताएं भविष्यमें आनेवाली किसी बड़ी सफलताकी सीढ़ियां बन जाती हैं। आजका वातावरण एकताके पक्षमें है। विज्ञानकी खोजोंने

संसारको इतना छोटा बना दिया है मानो भिन्न-भिन्न देश एक ही देशके प्रदेश हों। जहां हमारे पूर्वजोंको अपने नगरसे बाहरकी चिंता न होती थी वहां हम अमरीका और इंग्लैंडके चुनावोंके परिणाम जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं। जहां गहरे कुएंपर चरस चलाते हुए ढोल पीटना पड़ता था वहां हम पांडिचेरीमें बैठकर न्यूयार्क और मास्कोसे बातचीत कर सकते हैं।

लेकिन एक कठिनाई है। जहां ये भौतिक साधन ऐक्यको नजदीक ला रहे हैं वहां ये शायद उसके मार्गमें बाधा भी डाल रहे हैं। जबतक किसी जातिका मन और हृदय (विशेष रूपसे हृदय) परिवर्तनके लिये तैयार न हो तबतक बाह्य भौतिक साधनोंसे लाये हुए परिणामका कोई मूल्य नहीं होता। परंतु आज हमारा मानस विज्ञानके नशेमें ऐसा धुत है कि वह केवल बाह्य उपकरणोंसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिवर्तनोंके द्वारा ही विश्व-ऐक्य स्थापित करना चाहता है। हम देख सकते हैं कि राजनीतिक और सामाजिक एकता अपने-आपमें आदर्श नहीं है। बड़े-बड़े समाज या राज्य अपने-आपमें कोई हल नहीं हैं। उनका मूल्य तभी है जब वे व्यक्तिको अधिक शक्तिशाली, सुखी, समृद्ध बना सकें और सामूहिक जीवनको भी समृद्ध कर सकें। परंतु जहांतक इतिहास हमारा साथ देता है, हम यही देखते हैं कि मानवजातिने सचमुच वैभव और समृद्धि, कला-कौशल और विद्या व संस्कृति आदिमें तभी प्रगति की है जब छोटे-छोटे स्वाधीन राज्य थे जो एक-दूसरेके साथ संबंध तो रखते थे पर सब मिलकर एक विशाल राज्यमें संघटित नहीं हुए थे। आधुनिक यूरोपकी सभ्यता और संस्कृति, मुख्य रूपसे इतिहासके तीन युगोंकी ऋणी है। उनमेंसे पहला है धार्मिक भावनाके लिये उन छोटे-छोटे कवीलोंका युग जो मिलकर इजराइली कहाते थे, इसी भांति यूनानी नगर-राज्योंने जीवनमें विविधता और बहुमुखी प्रगति प्रदान की और जरा सीमित रूपमें मध्यकालीन इटलीने बौद्धिक और कलात्मक जीवनको प्रभावित किया। इसी भांति एशियाका स्वर्णिम युग भी वह था जब भारत छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त था। उनमेंसे बहुतसे राज्य तो आजके जिलोंके जितने या उनसे भी छोटे थे। भारतकी सर्वोत्तम प्रगति उसी कालमें हुई है और अगर हमें चुनाव ही करना पड़े तो हम उस कालकी प्राप्तियोंपर और कालोंको न्यौछावर कर देंगे। इसके बाद दूसरा नंबर आता है अपेक्षतया कुछ बड़े पर आजकी तुलनामें फिर भी बहुत छोटे राज्योंका, जैसे पल्लव, चालूक्य, पाण्डच, चोल और चेर। इन सबकी तुलनामें हमारे बड़े-बड़े राज्योंने जैसे मुगल, गुप्त या मौर्य राज्योंने उल्लेखनीय काम कम ही किये हैं। उनका सारा जोर राजनीति और राजतंत्रपर लग जाता था। उनके समयमें साहित्य और ललित कलाओंका तथा कुछ अन्य चीजोंका भी विकास हुआ परंतु हम देखते हैं कि उनका ध्यान अधिकतर सृजनात्मक भौतिक वस्तुओंकी ओर न होकर विशाल-काय विस्तृत वस्तुओंकी ओर था।

दूसरी ओर छोटे-छोटे नगर-राज्यों या गण-राज्योंकी सुरक्षाका प्रश्न जटिल हो उठता था और उनके लिये उपयुक्त साधनोंके अभावमें अपनी साधारण भौतिक आवश्यकताओंको पूरा करना भी कठिन हो जाता था। और आसपासका कोई भी बड़ा मेढ़क उन्हें किसी भी समय हड़प कर जानेको तैयार रहता था। इन्हीं अभावोंको दूर करनेके लिये तथा अपनी जान बचानेके लिये लोगोंने पहलेके छोटे-छोटे राज्योंको छोड़कर बड़े-बड़े राज्यों-साम्राज्योंकी स्थापना की। लेकिन इसमें भी हम देखते हैं कि छोटी-छोटी जातियोंसे बने हुए छोटे राष्ट्रोंने बड़े राज्यों और साम्राज्योंकी अपेक्षा जीवन-की समग्रतामें, उसके वैविध्यमें अधिक उन्नति की। यूरोपकी सारी प्रगति उसके छोटे देशोंमें, इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन, इटली, जर्मनी, नीदरलैंडमें हुई है। पवित्र रोमन साम्राज्य या रूसी साम्राज्यने इस पथ-पर कोई चिह्न नहीं छोड़ा। इसी प्रकार एशियाके विशाल गतिहीन क्षेत्रोंमें जहां लड़ाई-झगड़े भी हुए, छोटे पैमानेपर क्रांतियां भी हुईं, जीवनके लक्षण नहीं दिखायी देते। वहां जो संघर्ष हुए उन्होंने जीवनको छुआतक नहीं। उनके जीवनमें धर्म, कला, विद्या आदि भी गतिहीन बनकर रह गये और बाह्य जीवन अलग-थलग और रुंधा हुआ-सा हो गया।

साथ ही हम यह भी देखते हैं कि छोटी-छोटी इकाइयोंसे जो देश और राष्ट्र बने उन्होंने भी छोटे-छोटे जीवन-केंद्र बना लिये ताकि उन्हें छोटी इकाइयोंके लाभसे वंचित न रहना पड़े। इस तरह लंदन, पैरिस, बर्लिन, रोम आदिको जहां बड़े राज्योंके कारण सुरक्षा और भौतिक सुख प्राप्त हैं वहां छोटे केंद्रोंके अभावसे जो असुविधाएं होती हैं उनका भी एक हदतक निराकरण कर दिया गया है। लेकिन इससे मुश्किल यह होती है कि यह महानगर ही सारे जीवनके केंद्र बन जाते हैं और बाकी प्रदेश उनकी तुलनामें सोये हुए-से रह जाते हैं, उनका जीवन-रस गिने-चुने शहरोंमें खिंचकर चला जाता है।

रोमन साम्राज्य एक ऐसी इकाईका बड़ा सुंदर उदाहरण है जिसने अपनी राष्ट्रीय सीमाओंको लांघकर अपना विस्तार किया। उसे देखकर हम बड़ी इकाइयोंके बारेमें अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। हम देखते हैं कि इस प्रकारके बड़े राज्यमें सुव्यवस्था होती है, सुरक्षा होती है और जीवनकी आवश्यकताएं आसानीसे पूरी होती हैं पर साथ ही व्यक्ति अपनापन खो बैठता है, आगे बढ़नेका उत्साह कम हो जाता है। व्यक्तिके कमजोर, उत्साहहीन और निर्जीव होनेके कारण सारा सामाजिक जीवन ही खोखला और निर्जीव हो जाता है और हवाके पहले थपेड़ेसे ढह जानेके लिये तैयार रहता है। इस प्रकारके बड़े संस्थान प्राचीन उपलब्धियोंको इकट्ठा करके उन्हें संजोनेके लिये तथा उन्हें व्यवस्थित रूप देनेके लिये बहुत उपयोगी होते हैं पर उनकी सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि वे प्रगतिके रास्तेको रोक देते हैं।

आज जिस विश्व-ऐक्यके स्वप्न देखे जा रहे हैं वह कुछ-कुछ इसी प्रकारका है। समाज, राज्य-व्यवस्था और सरकारोंमें गठबंधनकी बातें होती हैं। यदि इस प्रकारकी एकता आये तो उसे बनाये रखनेके लिये एक बहुत बड़े संघकी जरूरत होगी जो व्यक्ति और जातिके जीवनको बाह्य प्रहारोंसे बचायेगा, धूप और आंधीसे उसकी रक्षा करेगा परंतु उसकी अपनी जीवनी-शक्तिको सुखा देगा जिससे गतिरोध और विनाश अवश्यम्भावी हो जायेंगे।

इसका यह मतलब नहीं है कि हम विश्व-एकता अथवा उससे आनेवाली शांतिके विरोधी हैं, नहीं, हर्गिज नहीं। हम एक ऐसे विश्व-ऐक्यके स्वप्न लेते हैं जिसमें ऊपर बतायी हुई त्रुटियां घुसने तक न पायें, जिसका आधार बाह्य नियमों और विधि-विधानोंकी बालूपर न होकर आंतरिक आध्यात्मिक चट्टानोंपर हो। श्रीअरविन्दने उसे किस रूपमें देखा है, उसकी बात हम आगे चलकर करेंगे।

पूर्व जन्मोंकी स्मृति

श्रीमां

कुछ लोग किसी मानसिक या प्राणिक जगत्‌में घूमते-फिरते हैं और फिर बड़ी लंबी-लंबी कहानियां सुनाया करते हैं; वे समझते हैं कि उन्हें अपने पूर्व-जन्मोंकी स्मृति है। तुम लोगोंको उस प्रसिद्ध स्त्रीका अति-पुराना उदाहरण मालूम होगा जो अपने पूर्व-जन्मोंकी कहानियां उस समयसे सुनाया करती थी जब वह एक बंदरी थी! परंतु मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि यह एक विशुद्ध कल्पना है, क्योंकि इस तरह याद रखना एकदम असंभव है।

बात कुछ इस प्रकार होती है। उदाहरण के लिये एक दिव्य स्फुलिंगको ले लें जो आकर्षण या अभिरुचि और चुनावके आधारपर अपने इर्दगिर्द भौतिक चेतनाको संगठित करना आरंभ करता है (यह कार्य पशुओंमें स्पष्ट रूपमें दिखायी देता है——यह न समझो कि तुम कोई असाधारण प्राणी हो और एकमात्र तुम्हारे अंदर ही चैत्य सत्ता है और सृष्टिके बाकी जीवोंमें नहीं है! यह सत्ता धातुओंमें रहना आरंभ करती है, पौधोंमें कुछ अधिक विकसित होती है और पशुओंमें चैत्य उपस्थितिकी पहली जगमगाहट दिखायी देती है।) फिर उसके बाद एक समय आता है जब चैत्य पुरुष पर्याप्त मात्रामें विकसित होता है और उसकी एक स्वतंत्र चेतना और व्यक्तिगत इच्छा होती है। उसके बाद असंख्य जीवनोंमें कम या अधिक व्यक्तिभावका विकास करते हुए वह अपने विषयमें, अपनी गतिविधियों तथा अपने विकासके लिये चुने हुए वातावरणके विषयमें सचेतन होता है। ज्ञानकी एक विशेष अवस्थामें आकर वह यह निर्णय करता है——साधारण तौरपर वह यह निर्णय उस अंतिम क्षणमें करता है जब वह अपने वर्तमान पार्थिव जीवनको छोड़ता है——कि वह किन अवस्थाओंमें अपने अगले जीवनको बितायेगा, यहां मैं एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात तुम्हें बतला देना चाहती हूं: चैत्य पुरुष एकमात्र भौतिक जीवनमें और पृथिवीपर ही प्रगति कर सकता और अपने-आपको गठित कर सकता है। जैसे ही यह एक शरीर छोड़ता है वैसे ही एक विश्रामावस्थामें प्रवेश करता है और वह अवस्था उसकी अपनी रुचि और उसके विकासकी मात्राके अनुसार कम या अधिक कालतक बनी रहती है। वह विश्राम होता है आत्मसात् करनेके लिये, या कह सकते हैं कि एक प्रकारकी निष्क्रिय प्रगतिके लिये, एक ऐसे निष्क्रिय विकासके लिये जो उस चैत्य पुरुषको नयी अनुभूतियोंकी ओर ले जाता है और उसे अधिक सक्रिय उन्नति करनेका अवसर प्रदान करता है। परंतु एक जीवन समाप्त करनेके बाद (साधारणतया जीवन तबतक समाप्त नहीं होता जबतक कि उस जीवनके लिये अभीप्सित कार्य पूरा नहीं हो जाता), वह अगले जीवनके लिये उपयुक्त वातावरणका चुनाव करता है, मोटे रूपमें उस स्थानका चुनाव करता है जहां वह जन्म लेगा, जीवनकी उन अवस्थाओं और प्रकारका चुनाव करता है जिनमें वह जन्म लेगा, और उन अनुभूतियोंका बड़ा ही सुनिश्चित कार्यक्रम बना लेता है जिनमेंसे उसे गुजरना होगा ताकि वह जो प्रगति करना चाहता है, कर सके।

मैं तुम्हें एक बहुत ठोस उदाहरण देने जा रही हूं। एक चैत्य पुरुषको ले लो जिसने, चाहे जिस किसी कारणसे क्यों न हो, एक ऐसी सत्ताके शरीरमें प्रवेश करनेका निश्चय किया है जिसे राजा बनना है। क्योंकि अनुभूतियोंकी एक काफी लंबी श्रेणी है जिन्हें वह उन्हीं अवस्थाओंमें प्राप्त कर सकता है। परंतु राजाकी अनुभूतियोंमेंसे गुजर चुकनेके बाद वह देखता है कि एक ऐसा समूचा क्षेत्र

पड़ा हुआ है जिसमें वह कोई प्रगति नहीं कर सकता और उसका कारण हैं उस जीवनकी ही वर्तमान परिस्थितियां। अतः जब वह पृथ्वीपर अपना जीवनकाल पूरा कर लेता है और यहांसे विदा होनेका निर्णय कर लेता है, तब वह निश्चय करता है कि अपने अगले जीवनमें वह एक सामान्य परिस्थितिमें तथा सामान्य अवस्थाओंमें जन्म लेगा, जो ऊंची होंगी न नीची बल्कि ठीक ऐसी होंगी जिनमें उसका नया शरीर उसकी पसंदके अनुसार कार्य करनेके लिये स्वतंत्र होगा। क्योंकि यह कहना कोई नयी बात नहीं है कि राजाका जीवन एक दासका जीवन है; राजाको अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिये एक पूरे राजकीय शिष्टाचारका, सभी प्रकारकी विधियोंका पालन करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है–यह संभवतः वृथाभिमानी लोगोंके लिये बहुत सुखदायी हो, पर किसी चैत्य पुरुषके लिये सुखदायी नहीं होता, क्योंकि उसके कारण चैत्य पुरुष बहुसंख्यक अनुभूतियोंसे वंचित रह जाता है। इस तरह निर्णय कर लेनेके बाद वह चैत्य पुरुष अपने अंदर उन सब स्मृतियोंको वहन करता है जो उसे राजाके जीवनसे मिली थीं और फिर अपनी आवश्यकताके अनुसार विश्राम करता है (यहां मैं कह दूं कि मैं एक ऐसे चैत्य पुरुषकी बात कह रही हूं जो स्वयं अपने-आपमें पूर्णतः व्यस्त है, ऐसा नहीं है जो किसी कार्यके लिये सर्मपित है, क्योंकि उस हालतमें वह काम ही भावी जीवनों और उनकी अवस्थाओंका निर्णय करता है; मैं ऐसे चैत्य पुरुषकी बात कह रही हूं जो अपना विकास पूर्ण करनेका कार्य कर रहा है)। अब वह यह निश्चय करता है कि अमुक समय वह शरीर धारण करेगा। चूंकि अबतक वह बहुतसी अनुभूतियां प्राप्त कर चुका है, इसलिये वह जानता है कि अमुक देशमें चेतनाका अमुक अंश विकसित हुआ है, अमुक दूसरे देशमें अमुक दूसरा अंश विकसित हुआ है आदि-आदि। अतएव वह उस स्थानको चुनता है जो उसे अपने विकासकी उपयुक्त संभावनाएं प्रदान करे—देश, जीवनकी अवस्थाएं, माता-पिताका मोटा-मोटी स्वभाव तथा स्वयं शरीरकी अवस्थाएं, उसकी भौतिक गठन और उसके गुण आदिको भी निश्चित करता है। अपने अनुभव प्राप्त करनेके लिये जैसी आवश्यकता होती है उसीके अनुरूप वह इन सब चीजोंका चुनाव करता है। वह विश्राम लेता है और फिर आवश्यक क्षण आनेपर जगता है, अपनी चेतनाको पृथ्वीके ऊपर प्रक्षिप्त करता है और अपने मनोनीत क्षेत्रमें तथा मनोनीत अवस्थाओंके अधीन उसे केंद्रीभूत करता है—लगभग ऐसा करता है, क्योंकि वहां थोड़े व्यवधानकी गुंजाइश रहती है। चैत्य चेतनामें रहनेवाली सत्ता जड़-भौतिक चेतनासे बहुत दूर होती है और स्पष्ट भौतिक दृष्टिसे देखनेमें असमर्थ होती है, यह देखना केवल मोटे रूपमें देखना होता है। परंतु चैत्य पुरुष देशके संबंधमें या परिस्थितिके विषयमें भूल नहीं करता; वह मनोनीत लोगोंके आंतरिक प्रकंपनोंको बिलकुल स्पष्ट रूपमें देखता है, पर फिर भी उसमें थोड़ीसी शंका होनेकी संभावना रह सकती है। यदि ठीक उसी क्षण पृथ्वीपर कोई एक ऐसा जोड़ा हो, अथवा कोई एक स्त्री हो जिसमें चैत्य अभीप्सा हो और, चाहे किसी भी कारणसे, क्यों या कैसे जाने बिना ही, किन्हीं असाधारण अवस्थाओंको चरितार्थ करनेवाला कोई असाधारण बालक पानेकी इच्छा हो, —उस समय यदि पृथ्वीपर ऐसी अभीप्सा हो तो यह अभीप्सा एक प्रकारका प्रकंपन पैदा करती है, एक चैत्य ज्योति उत्पन्न करती है जिसे चैत्य पुरुष तुरत देख लेता है और बिना हिचकिचाहटके उस ओर दौड़ पड़ता है। फिर उसी क्षणसे (जो गर्भाधानका क्षण होता है) वह बच्चेके निर्माणपर अपनी निगरानी रखता है जिसमें कि उसका निर्माण उसकी अपनी योजनाके लिये अधिक-से-अधिक सुविधाजनक हो। अतएव बच्चेके भौतिक जगत्में आनेसे पहलेसे ही उसका प्रभाव उस बच्चेपर पड़ता रहता है।

यदि सब कुछ ठीक हो, अगर कोई दुर्घटना न हो (दुर्घटनाएं बराबर ही हो सकती हैं), बच्चेके जन्म लेनेके समय सब कुछ अच्छे ढंगसे संपन्न हो तो चैत्य शक्ति (संभवतः अपने पूरे रूपमें नहीं, बल्कि चैत्य चेतनाका एक अंश) बच्चेके अंदर घुस जाती है और उसके एकदम प्रथम रुदनसे ही उसे

उन अनुभूतियोंकी ओर ले जाती है जिन्हें बच्चेके लिये वह चाहती है। परिणाम यह होता है कि माता-पिता जब सचेतन नहीं होते, यहांतक कि बच्चा भी अपनी बाह्य चेतनामें जब पूरा सचेतन नहीं होता—(नन्हें बच्चेमें उसके लिये आवश्यक मस्तिष्क नहीं होता, मस्तिष्क तो धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके रूप ग्रहण करता है), तो भी चैत्य प्रभावके लिये यह संभव होता है कि वह बच्चेके जीवनकी सभी घटनाओं और परिस्थितियोंको तबतक परिचालित करे जबतक कि वह (बच्चा) अपने चैत्य पुरुषके साथ सज्ञान संबंध बना लेनेके योग्य नहीं हो जाता (भौतिक रूपमें ऐसा प्रायः ४ से ७ वर्षकी उम्रमें होता है, कभी-कभी इससे शीघ्र भी होता है, कभी-कभी तो प्रायः तुरंत ही हो जाता है; परंतु ऐसी हालतमें हमारा संबंध ऐसे बच्चोंसे होता है जो 'बच्चे' नहीं होते, जिनमें ऐसे गुण होते हैं जिन्हें "अतिप्राकृतिक" कहा जाता है—पर वे अतिप्राकृतिक नहीं होते, वे महज चैत्य पुरुषकी उपस्थितिकी अभिव्यक्ति होते हैं।) परंतु ऐसे लोग होते हैं जिन्हें, हम कह सकते हैं, किसी ऐसे आदमीसे मिलनेका, भौतिक रूपमें, मौका नहीं मिलता या यों कहें कि सौभाग्य नहीं प्राप्त होता जो उन्हें शिक्षा दे सके और फिर भी वे यह अनुभव करते हैं कि उनके जीवनका प्रत्येक पग, उनके जीवनकी प्रत्येक परिस्थिति किसी सज्ञान सत्ताद्वारा व्यवस्थित है जिसमें कि वे अधिक-से-अधिक प्रगति कर सकें। जब उन्हें किसी विशेष परिस्थितिकी आवश्यकता होती है तो वह आ जाती है; जब उन्हें किसी व्यक्तिसे मिलनेकी जरूरत होती है तो वह आ जाता है, जब उन्हें कोई पुस्तक पढ़नेकी आवश्यकता होती है तो वह पुस्तक उनके हाथके पास आ जाती है। प्रत्येक चीज ही इस प्रकार व्यवस्थित होती है मानो कोई व्यक्ति उनके ऊपर दृष्टि रखे हुए हो जिसमें कि उन लोगोंके जीवनमें विकास करनेकी अधिक-से-अधिक संभावना विद्यमान रहे। ऐसे लोग यह सहज ही पूछ सकते हैं कि "पर आखिर यह चैत्य पुरुष है क्या चीज?" क्योंकि उनसे बात करते हुए किसी आदमीने कभी इस शब्दका प्रयोग नहीं किया है। अथवा उनकी किसी ऐसे व्यक्तिसे मुलाकात नहीं हुई जो उन्हें यह सब समझा सके; परंतु उनके लिये कभी-कभी किसी व्यक्तिसे मिलना ही, उनपर एक नजरभर पड़ जाना ही पर्याप्त होता है जिसमें कि वे जग जायं; उन्हें यह याद दिलानेके लिये एक शब्द ही काफी होता है: "परंतु यह सब तो मैं जानता था!"

जब कोई चैत्य पुरुष अपने विकासकी अंतिम स्थितिमें पहुंच जाता है तब ठीक ऐसा ही घटित होता है। उसके बाद वह पृथ्वीपर आनेकी आवश्यकतासे बंधा नहीं होता, उसका विकास पूरा हो चुकता है और वह स्वतंत्र भावसे यह चुनाव कर सकता है कि वह भागवत कार्यके लिये अपने-आपको उत्सर्ग कर दे या अन्यत्र अर्थात् उच्चतर लोकोंमें चला जाय। परंतु सामान्यतया इस स्थितिमें पहुंचनेपर जो कुछ उसके लिये घटित हुआ रहता है वह सब उसे याद रहता है और वह उन लोगोंकी सहायताके लिये आनेकी महान् आवश्यकताको समझता है जो अभी भी कठिनाइयोंसे संघर्ष कर रहे हैं। ये चैत्य पुरुष भागवत कार्यके लिये अपना अस्तित्व दान कर देते हैं—यह कोई अलंघ्य, अनिवार्य नहीं है; वे स्वतंत्रतापूर्वक चुनाव करते हैं, पर ९० प्रतिशत चैत्य पुरुष ऐसा ही करते हैं।

साधारण जीवनोंमें (और इससे मतलब है पर्याप्त रूपमें सुविकसित लोगोंमेंसे सर्वश्रेष्ठ लोगोंके जीवनमें) बाहरी सत्ता और चैत्य पुरुषके मध्यका संपर्क पूर्ण रूपसे खंडित होता है; चैत्य पुरुषका संपर्क किसी अनुभवके परिणामस्वरूप प्राप्त होता है अथवा किसी आंतरिक आवश्यकताके कारण प्राप्त होता है; उस मुहूर्त्तमें चैत्य पुरुष, जैसा कि श्रीअरविन्द कहते हैं, 'सामने' होता है, अर्थात् वह चेतनाके ऊपरी तलपर आ जाता है, वह किन्हीं स्थूल परिस्थितियोंके साथ, आकारों, शब्दों और ध्वनियोंके साथ बहुत थोड़े समयतक संपर्क रखता है; उस समय वह इन सब चीजोंको फोटोग्राफ या सिनेमाकी तरह लिपिबद्ध कर लेता है, पर यह जीवनका ठीक एक क्षण, कुछ मुहूर्त्त भर होता है। ये मुहूर्त्त कई बार आ सकते हैं पर वे बराबर नहीं रहते; और इसी चीजको चैत्य पुरुष याद रखता है। और

जब तुम्हें सच्ची चैत्य स्मृति होती है, जब वह सच्ची, स्वाभाविक होती है, मन या प्राणद्वारा रचित नहीं होती अर्थात् विशुद्ध रूपमें चैत्य और यथार्थ होती है, तब तुम्हारी स्मृति भी 'खंडित' होती है। और बहुधा तुम्हारे पहलेके जन्मोंके ठीक-ठीक स्थानोंको निर्धारित करना, यह कहना कि 'मैं यह था या वह' कठिन होता है! यदि तुम्हारी चैत्य अनुभूति तुम्हारे जीवनके किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्षण-में हुई हो और परिस्थितियोंका पूराका पूरा समूह तुम्हें कहानीकी चाभी देता हो (कहानीकी मूल बातका संकेत देनेवाली पोशाक, कथित शब्द, रीति-रिवाज या कोई परिस्थितिका पता चलता हो) तो तुम कह सकते हो: "हां, वह जीवन मैं यापन कर चुका हूं।" परंतु कोई व्यक्ति यदि आवे और बंदरसे आरंभ कर अपने सभी पूर्व जीवनोंका वर्णन करे, बहुत लंबे-चौड़े व्योरोंके साथ कहे तो तुम बेखटके यह मान सकते हो कि ये सब व्यर्थकी बातें हैं!

—****—

"....जब चैत्य पुरुष सम्मुख भागमें आ जाता है तभी वह जीवनकी निश्चित स्मृतियां रख पाता है और साथ ले चलता है। किंतु, निश्चय ही, जीवनके समस्त ब्योरोंकी स्मृति उसे भी तबतक नहीं रहती जबतक कि वह निरंतर सम्मुख भागमें नहीं रहने लग जाता और बाह्य सत्ताके साथ एक नहीं हो जाता। क्योंकि साधारणतया स्थूल मन और स्थूल प्राण शरीरकी मृत्युके बाद विलीन हो जाते हैं; वे विघटित होकर विश्व-प्रकृतिमें वापस चले जाते हैं और उनके अनुभवोंका कुछ भी अंश बचा नहीं रह जाता। जबतक वे चैत्यसे इस प्रकार संयुक्त नहीं हो जाते कि वे दो अर्द्ध भाग न रहकर एक चेतना बन जायं, सारी प्रकृति केंद्रीय भागवत इच्छाके इर्द-गिर्द एकत्रित नहीं हो जाती और यह केंद्रित सत्ता ऊपरकी चेतनाकी दिव्य धाराके साथ संबद्ध नहीं हो जाती, — जबतक ऐसा नहीं हो जाता तबतक उस चेतनासे संबंधित ज्ञान मनुष्यको नहीं मिल सकता, वह उन सारे जीवनों और शरीरोंकी पूरी धारासे अवगत नहीं हो सकता जिन्हें उस दिव्य चेतनाकी धाराने अपनी क्रमिक आत्माभिव्यक्तिका धारावाहिक साधन बनाकर धारण किया था।.....केवल अतिमानसिक चेतना ही उन जन्मोंको मानो एक सूत्रमें पिरोये रखती है और वही इन सबका वास्तविक ज्ञान दे सकती है।"

——श्रीमां

सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा

श्रीअरविंद

सबसे पहले आवश्यकता इस बातकी है कि सच्ची शिक्षाके संबंधमें जितनी भी अस्पष्ट धारणाएं हैं उनसे छुटकारा पाकर हम ठीक-ठीक यह समझें कि सच्ची शिक्षा क्या है, उसका यथार्थ अर्थ क्या है, उसका मूल उद्देश्य और गभीर तात्पर्य क्या है। तभी हम इस विषयमें निश्चित हो सकते हैं कि हमारा आरंभ ठीक है और हम जो शिक्षा शब्दके साथ 'राष्ट्रीय' विशेषण जोड़ रहे हैं उसके यथार्थ स्थान और संपूर्ण तात्पर्यको सुनिश्चित रूपमें स्थिर करनेके लिये अग्रसर हो सकते हैं। बल्कि यहां हमें निस्संदिग्ध रूपमें यह जान लेना चाहिये कि स्वयं शिक्षा क्या चीज है अथवा कैसी होनी चाहिये; उसके बाद ही हम सुनिश्चित रूपमें यह जान सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा क्या चीज है अथवा कैसी होनी चाहिये।

अब, हम अपने आरंभिक कथनसे आरंभ करें जिसके विषयमें शायद बहुत अधिक मतभेद नहीं हो सकता। हम समझते हैं कि सच्ची और सजीव शिक्षाका विचार करते समय हमें तीन बातोंका विचार अवश्य करना चाहिये—(१) मनुष्य, अपने सामान्य रूपमें तथा अपनी विशेषताके साथ व्यक्ति, (२) जाति या राष्ट्र और (३) समस्त मानवजाति। इससे स्वतः ही यह निष्कर्ष निकलता है कि सच्ची और सजीव शिक्षा केवल वही कही जा सकती है जो मनुष्यको इस तरह सहायता दे कि उसके अंदर जो भी शक्ति-सामर्थ्य निहित है वह बाहर अभिव्यक्त होकर उसके जीवनमें अपना पूरा लाभ प्रदान करे तथा मनुष्यजीवनका जो भी संपूर्ण उद्देश्य और संभावना है उसकी संसिद्धिके लिये उसे तैयार करे। इसके बाद वह उसे ऐसी सहायता दे जिससे मनुष्य अपनी जाति या राष्ट्रके जीवन, विचारधारा और अंतरात्माके साथ और उसके साथ-ही-साथ उस मनुष्यजातिके महान् समष्टि-जीवन, विचारधारा और अंतरात्माके साथ, जिसकी कि वह स्वयं एक इकाई है और उसकी जाति या राष्ट्र एक सजीव और पृथक् पर फिर भी अविच्छेद्य अंग है, अपना यथार्थ संबंध स्थापित कर सके।

जब हम इस विशाल और संपूर्ण सिद्धांतके प्रकाशमें इस समूचे प्रश्नपर विचार करेंगे, तभी हम इस सुस्पष्ट भावनाको अच्छी तरह पकड़ पायेंगे कि हम अपनी शिक्षाको क्या रूप देना चाहेंगे और राष्ट्रीय शिक्षाके द्वारा कौनसा उद्देश्य सिद्ध करनेका प्रयास करेंगे। आज भारतमें इस विशाल दृष्टि-कोण और आधारकी बहुत अधिक आवश्यकता है। आज भारत अपनी भवितव्यताके एक संगीन मोड़पर खड़ा है, इसलिये उसके जीवन-कार्यको संपन्न करनेवाली संपूर्ण शक्तिको उसकी एकमात्र महान् आवश्यकताकी पूर्त्तिमें ही नियोजित कर देना होगा और वह आवश्यकता है व्यष्टि और जातिके अंदर विद्यमान उसकी सच्ची आत्माको ढूंढ़ना और नये रूपमें गठित करना तथा इस प्रकार अपनी आंतरिक महानताको फिरसे पाकर मानवजातिके जीवनमें अपना समुचित और स्वाभाविक अंश और स्थान फिर-से प्राप्त करना।

मनुष्य और उसके जीवनके संबंधमें, राष्ट्र और उसके जीवनके संबंधमें, मनुष्यजाति और उसके जीवनके संबंधमें बहुतसी अलग-अलग धारणाओंका होना संभव है और उस विभिन्नताके अनुसार शिक्षा-संबंधी हमारी भावना और प्रयासमें काफी विभिन्नता आ सकती है। इन चीजोंके विषयमें भारतकी अपनी निजी विशिष्ट धारणा और दृष्टि रही है और हमें यह देखना होगा कि आया वही चीज

वास्तवमें, हमारी शिक्षाके मूलमें रहेगी या नहीं, रहनी चाहिये या नहीं और वही एकमात्र वस्तु है या नहीं जो कि उसे वास्तवमें राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करेगी।

भारतीय विचारधारामें मनुष्यको इस रूपमें नहीं देखा गया है कि वह भौतिक प्रकृतिद्वारा विकसित किया हुआ एक जीवंत शरीर है जिसने कुछ प्राणिक प्रवृत्तियोंको विकसित कर लिया है, एक अहंभाव, मन और बुद्धिको उत्पन्न कर लिया है, जो एक वर्गका पशु है और हमारी श्रेणीकी दृष्टिसे मानव-पशु है; इसके समूचे जीवन और शिक्षाको इन्हीं प्रवृत्तियोंकी तृप्तिकी दिशामें मोड़ देना चाहिये और एक सुशिक्षित मनके शासनके अधीन रखकर व्यक्तिगत और राष्ट्रीय अहंके अधिक-से-अधिक हितमें नियुक्त करना चाहिये। फिर भारतके मनका झुकाव इस तरहका भी नहीं रहा है कि वह मनुष्यको प्रधानतया एक तर्कशील पशु समझे, अथवा सुपरिचित परिभाषाको विस्तृत करके यों कहें कि चिंतनशील, अनुभवशील और इच्छा-संपन्न एक प्राकृत सत्ता समझे, भौतिक प्रकृतिका मनोमय पुत्र माने, और उसकी शिक्षाको मानसिक क्षमताओंका ही अनुशीलन समझे, अथवा मनुष्यका वर्णन एक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सत्ताके रूपमें करे तथा उसकी शिक्षाको एक ऐसी शिक्षा माने जो उसे समाज और राज्यका एक सुयोग्य, उत्पादनशील और श्रेष्ठ अनुशासित सदस्य बना दे। निस्संदेह ये सब चीजें मानव-प्राणीके ही अलग-अलग स्वरूप हैं और भारतने अपनी विशाल दृष्टिके अधीन इन सबको भी यथेष्ट प्रधानता दी है, पर ये सब बाहरी चीजें हैं, मनुष्यके मन, जीवन और कर्मके उपकरणसमूहके अंग हैं, सच्चे मानवका संपूर्ण स्वरूप नहीं हैं।

भारतने सदा ही व्यष्टि-मानवके अंदर एक अंतरात्माको, भगवान्के एक अंशको देखा है जो मन और शरीरसे आवृत है, प्रकृतिके अंदर विश्वात्मा परम देवका सज्ञान प्रकाश है। सर्वदा ही उसने मनुष्यके अंदर एक मानसिक, एक बौद्धिक, एक सक्रिय और व्यावहारिक नैतिक पुरुष, एक सौंदर्यप्रेमी और सुखोपभोगवादी पुरुष, एक प्राणिक और भौतिक पुरुषको अलग-अलग देखा और उनका विकास किया है, परंतु इन सबको उसने एक अंतरात्माकी शक्तियोंके रूपमें देखा है जो इनके द्वारा अभिव्यक्त होती और इनके विकासके साथ-साथ विकसित होती है, और फिर भी ये सब चीजें संपूर्ण अंतरात्मा नहीं हैं, क्योंकि यह अंतरात्मा अपने आरोहणके अंतिम शिखरपर पहुंचकर इन सबसे कहीं अधिक महान् एक चीजतक पहुंच जाता है, एक आध्यात्मिक सत्तामें चला जाता है, और इस महत्तर आध्यात्मिक सत्तामें ही भारतने मानवात्माकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति तथा उसके सर्वोच्च दिव्य मानवत्वको, उसके 'परमार्थ' तथा उच्चतम 'पुरुषार्थ' को देखा है।

ठीक इसी तरह भारतने राष्ट्र या जातिका अर्थ कोई सुव्यवस्थित राजतंत्र अथवा कोई सशस्त्र और कार्यक्षम समाज नहीं माना है जो जीवन-संघर्षके लिये और राष्ट्रीय अहंकारकी सेवामें सब कुछ बलिदान कर देनेके लिये अच्छी तरह तैयार हो;—सच पूछो तो वह अहं तो केवल लौह-कवचका एक छद्मवेश होता है जो राष्ट्रीय पुरुषको छिपाये रखता तथा भाराक्रांत कर रखता है। भारत तो राष्ट्र या जातिको इस रूपमें देखता है कि एक महान् समष्टि-आत्मा और समष्टि-जीवन संपूर्ण समाजके अंदर प्रकट हुआ है तथा उसने अपना एक निजी स्वभाव और अपने स्वभावका एक धर्म—स्वभाव और स्वधर्म—अभिव्यक्त किया है एवं उसे अपने बौद्धिक, सौंदर्यबोधात्मक, नैतिक, सक्रिय, सामाजिक और राजनीतिक आकारों और संस्कृतिके अंदर मूर्तिमान किया है।

फिर इसी तरह भारतकी प्राचीन दृष्टिके अनुरूप मनुष्यजातिके विषयमें हमें एक उच्च धारणा बनानी चाहिये। भारतीय दृष्टिमें मनुष्यजातिके रूपमें स्वयं विश्वात्मा ही प्रकट हुआ है, प्राण और मनके भीतरसे होकर वही एक परम उच्च आध्यात्मिक उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये धीरे-धीरे विकसित हो रहा है: इसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि मनुष्यजातिकी भी एक अंतरात्मा है, उसका विराट् आत्मा है और वह संघर्ष और सहकारिताके द्वारा एकत्वकी ओर बढ़ रहा है, अपनी अनेक

जातियोंकी विभिन्न संस्कृतियों तथा जीवनोद्देश्योंके द्वारा अपने अनुभवको बढ़ा रहा है तथा आवश्यक बहुत्वको बनाये रखता है, व्यक्तिकी शक्तियोंके विकासके द्वारा तथा एक दिव्यतर स्वरूप और जीवन-की ओर होनेवाली उसकी प्रगतिके द्वारा पूर्णताकी खोज करता है, पर साथ ही जातिके जीवनमें भी, यद्यपि बहुत धीरे-धीरे, उसी प्रकारकी परिपूर्णता लानेका प्रयास करता है।

यहांपर यह तर्क उठाया जा सकता है कि क्या यह मनुष्य या राष्ट्रीय सत्ताका सच्चा वर्णन है, पर यदि एक बार इसे सच्चा वर्णन स्वीकार कर लिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि केवल वही शिक्षा सच्ची शिक्षा होगी जो व्यक्ति और राष्ट्रके मन और शरीरमें होनेवाली आत्माकी इस सच्ची क्रियाका यंत्र बनेगी। यही वह सिद्धांत है जिसपर हमें निर्माण करना होगा, यही होगा हमारा केंद्रीय हेतु और मार्गदर्शक आदर्श। हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो व्यक्तिके प्रसंगमें अपना प्रधान लक्ष्य बनायेगी मानवात्मा और उसकी शक्तियों और संभावनाओंका विकास करना, राष्ट्रके प्रसंगमें सबसे पहले अपनी दृष्टिमें रखेगी राष्ट्रीय आत्मा और उसके धर्मकी रक्षा करने, शक्तिशाली और समृद्ध बनानेका कार्य तथा उसके बाद इन दोनोंको मानवजातिकी जीवनी-शक्तियोंमें, उसके आरोहणकारी मन और आत्मामें उठा ले जायगी। और वह मनुष्यके उच्चतम उद्देश्यको, उसकी आध्यात्मिक सत्ताके जागरण और विकासको कभी अपनी आंखोंसे ओझल नहीं करेगी।

वर्तमान परिस्थिति

यह कहानी केवल आजकी नहीं है, केवल कलकी भी नहीं है, परसोंकी और उससे पहले दिनकी और उससे पहले दिनकी भी यही कहानी है। यह कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी कि स्वयं मानव-चेतना। वह आगामी कल भी ऐसी ही रहेगी या नहीं यह देखना है।

सारे आध्यात्मिक प्रयासके भाग्यमें यही रहा है। वह ठीक अपने पीछे-पीछे एक आंदोलन खड़ा कर देता है जो उसे अस्वीकार करनेकी घोषणा करता है और उसके निषेधकी मांग करता है। बुद्ध कहते हैं, शत्रुओंसे घिरे होनेपर भी, आओ हम उनके प्रति शत्रुता न रखें। यह सभी जानते हैं कि जब ईसाके सिरपर कांटोंका ताज और पीठपर क्रास रखकर ले जाया जा रहा था तब उन्होंने एक दीर्घश्वास छोड़ते हुए भगवान्‌से प्रार्थना की थी कि हे भगवान्! उन सबको क्षमा कर दो जो यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। ईस्वी सन्‌की प्रारंभिक शताब्दियोंमें जब रोम अपनी ईसाइयत-की शिक्षाका प्रचार करने तथा अपनी सीमाएं प्रसारित करनेकी चेष्टा कर रहा था तब उसके विरुद्ध वण्डाल नामकी जाति उठ खड़ी हुई और अपने बर्बर देश जर्मेनियासे आरंभ कर रास्तेके सभी देशोंको आंधी-तूफानकी तरह पूर्ण रूपसे नष्ट-भ्रष्ट करती हुई अंतमें रोमके पवित्र नगरतक पहुंच गयी और उसे भी लूटा-खसोटा और तहस-नहस कर डाला। उसने वैसलिका नामक गिरजेको अपवित्र कर दिया और अपने कृत्योंके द्वारा मानवजातिके इतिहासमें अपने नामकी अमर विरासत छोड़ गये। और उसके शताब्दियों बाद, ओरलेआंकी बाला 'जान दार्क' (जान आफ़ आर्क) जीवित जला दी गयी, क्योंकि उसने यह कहा कि वह देवदूतोंको देखती और उनकी वाणियां सुनती है तथा ईश्वरसे बातें करती है। ऐसा लगता है कि उसके बाद परिस्थिति सुधरी नहीं, बिगड़ती ही गयी है, क्योंकि अभी हाल ही

में सुसभ्य उन्नीसवीं शताब्दिके अंतिम भागमें हम देखते हैं कि आजके महान् नाटककार इब्सनने संकटापन्न सामाजिक स्थितिका कितना तीखा चित्रण किया है, उसने बताया है किस तरह लोग, साधारण जन अपनी इहलौकिक भलाईको समझनेमें भी असमर्थ हैं——फिर किसी उच्चतर आध्यात्मिक कल्याणकी तो चर्चा ही क्या——, और जो कोई वास्तवमें उनके लिये कोई भलाईका काम करता या करनेकी चेष्टा करता है वही "जनताका शत्रु" करार दे दिया जाता है।

आज यह विरोध पहलेसे अनंतगुना अधिक है। आज मनुष्यजातिसे एक अनंतगुने अधिक परिवर्तनकी मांग की जा रही है। आज उसकी चेतनामें आंतरिक परिवर्तन और उसके जीवन और भौतिक अस्तित्वमें बाहरी परिवर्तनकी मांग की जा रही है। फिर यह परिवर्तन भी केवल बाहरी सुधार न होकर आमूल परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् सारी सत्ताको जड़-मूलसे बदलना चाहिये। इसका उद्देश्य जगत्को जैसा कि अभी वह है वैसा ही अथवा यदि संभव हो तो किसी-न-किसी तरह थोड़ी सुधरी हालतमें, छोड़ देना नहीं है, बल्कि आत्माके उपादान और गठनके अनुरूप उसे फिरसे नये सांचेमें ढालना है। और पार्थिव जीवनका अंतिम लक्ष्य भगवान्का क्रासपर क्षत-विक्षत शरीर नहीं बल्कि सर्वांगपूर्ण और महामहिमामय शरीर है।

स्वभावतः ही पुरानी आदतें, हजारों वर्षोंसे चली आती सहजवृत्ति और गतानुगतिकताकी अज्ञानमयी और अंधकारपूर्ण गतियां ऐसी उलट-पुलटको स्वीकार नहीं कर सकतीं। पार्थिव जीव वे चाहें कहीं हो उस प्रकाशको नहीं सह सकते जो पृथ्वीको आलोकित करनेके लिये उतर रहा है। उसका धक्का बहुत ही प्रबल है: जो जीव ठंडी छाया या सुखदायी अंधकारमें निवास करते हैं वे संघर्ष करते और छटपटाते हैं; वे डरते हैं कि कहीं विनष्ट न हो जायं; वे कोई परिवर्तन नहीं चाहते। पर भगवान्का आदेश जारी हो चुका है। और पृथ्वी बढ़ रही है...... दिव्यालोककी ओर।

—२—

श्रीअरविन्दने इस उतरती हुई ज्योतिको एक रूप देनेके लिये, मनुष्यको आजकी तरह एक पशु अथवा अर्द्ध-पशु ही न बने रहने देनेके लिये, उसे देवदूत बनानेके लिये आश्रमकी स्थापना की थी।

श्री माताजी बचपनसे ही पृथ्वीपर एक ऐसा स्थान पानेके स्वप्न देखा करती थीं जहां मनुष्य स्वतंत्र, विज्ञ, पवित्र, प्रेमसूत्रमें आबद्ध, अभावोंसे ऊपर, बाहरी और भीतरी दोनों प्रकारके प्रचुर वैभवके साथ जीवन बितानेवाले होंगे। वे उसका निर्माण कर रही हैं, वे इस प्रकारका एक संगठन बना रही हैं; हां, यह काम वर्तमान परिस्थितियोंकी सुविधाओं और असुविधाओंके अधीन हो रहा है। वे यह प्रयास कर रही हैं कि उस संगठनके अंदर रहनेवाले लोग एक उच्चतर चेतनाकी क्रियाकी ओर, सत्ताकी एक श्रेष्ठतर स्थितिकी ओर, एक ज्योतिर्मय जीवन-पद्धतिकी ओर अपने-आपको खोलें।

ऐसी स्थितिमें प्रगतिहीन दलसे विरोधका आना, उन क्षेत्रोंसे विरोधका उठना जो यह नहीं चाहते कि मनुष्य अपने भूत और वर्तमानसे स्वतंत्र होकर भविष्यका मनुष्य बने, स्वाभाविक रूपसे अनिवार्य है। फिर विरोध परीक्षा और पूर्णताकी प्रशिक्षाका भी काम करता है। संकटों और विपत्तियोंके भीतरसे होकर, जो भी घटनाएं घटित होती हैं उनके भीतरसे होकर हम निश्चित रूपमें भागवत संसिद्धिकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अग्नि-परीक्षाओं और आपत्तियोंका आना आश्रमके लिये नया नहीं है। पचास वर्षसे अधिक हुए जब श्रीअरविन्दने पहले-पहल बीजारोपण किया था और प्रथम दिनसे ही बुरे मौसमका आक्रमण निरंतर चल रहा है। उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यकी ओरसे एक बार यह स्थान छोड़ देनेकी सलाह दी गयी और हिमालयमें एक सुखद आश्रम देनेका वचन दिया गया। फ्रांसीसी सरकारने भी

एक बार उसी तरह भूमध्य सागरके किनारे अफ्रिकामें एक रमणीय आश्रम स्थल, एक शांतिपूर्ण स्वर्ग देनेका प्रस्ताव रखा था। और यहांके उनके शुभाकांक्षी लोगोंमेंसे भी कुछ लोग उन्हें एक मनोरंजक हवाखोरीके लिये किसी अज्ञात स्थानपर ले जानेको उत्सुक थे। परंतु श्रीअरविन्दने अपना चुनाव कर लिया था। यही उनकी पवित्र भूमि है, यही उनकी साधना और सिद्धिका स्थान—पीठस्थान है। श्री माताजीने भी उनके निश्चयका खंडन नहीं किया है, उसी निश्चयको बनाये हुई हैं।

ठीक उसी तरह बुद्धने बोधि-वृक्षके नीचे अपना आसन जमाया था और घोषित किया था :

इहासने शुष्यतु मे शरीरम्
त्वगस्थिमासं प्रलयं च यातु ।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभाम्
नैवासनात् कायमतश्चलिष्यति ॥

मैं यहां बैठ गया हूं और टससे मस नहीं हूंगा, मेरा शरीर भले ही सूख जाय, मैं दृढ़ बैठा रहूंगा और अंततक अपना कार्य जारी रखूंगा।

स्वर्गका रास्ता, श्रीअरविन्द कहते हैं कि नर्कके भीतरसे होकर जाता है। वह इस प्रकार चेतावनी और संकेत देते हैं :—

Here must the traveller of the upward way
For daring Hell's King derns winds the heavenly route
Pause or pass slowly, through the perilous space.
A Prayer upon his lips and the great Name.

… …

Where the red Wolf waits by the bordless stream.
And Death's black eagles scream to the precipice.

अर्थात्, दुस्साहसी नर्कका राज्य स्वर्गके रास्तेको घेरे रहता है, इसलिये ऊर्ध्व पथके यात्रीको या तो यहां रुक जाना होगा, या संकटमय स्थानोंमेंसे होते हुए धीरे-धीरे अग्रसर होना होगा, उसके होठोंपर होगी एक प्रार्थना और (भगवान्का) महान् नाम।

… …

जहांपर लाल भालू घाटविहीन नदीके किनारे प्रतीक्षा करता है और मृत्युके काले गीध कगारेकी ओर चिल्लाते हुए जाते हैं।

नीचेकी शक्तियां भागवत निर्णयको कभी विपथगामी या पथच्युत नहीं कर सकतीं। भागवत संकल्प ही संपन्न और संसिद्ध होता है। और उनके संकलपमें ही है हमारे लिये परम शांति।

जब कोई पर्वत फूट निकलता है, अपने शिखरको आकाशमें ऊपर उठाता है तब एक विपरीत गति उत्पन्न होती है जो उसे नीचे खींच लाने और जमीनकी असली सतहतक ले आनेकी कोशिश करती है। उसके फलस्वरूप बर्फकी प्रचंड नदियां, जल-प्रपात और भूमिखंड धड़ाधड़ नीचेकी ओर गिरने लगते हैं। पर इन्हीं घटनाओं और दुर्घटनाओंके बीच—वे इससे अधिक और कुछ नहीं हैं—पर्वत दृढ़तापूर्वक खड़ा रहता है, जो सजीव निर्माण वहां होनेको होता है वह अपनी परिपूर्णता और महानताके साथ खड़ा रहता है यद्यपि ये दुर्घटनाएं ऐसी दीखती हैं मानों उसके शरीरकी धज्जियां उड़ रही हों और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर रही हों।

अंतिम परिणतिके विषयमें प्रभुकी जो इच्छा होती है वह सब प्रकारके प्रतिरोधों और आपदाओंमेंसे होती हुई, टूट-फूटकर छिन्न-भिन्न हो जानेवाली, प्रकट और विलीन हो जानेवाली वस्तुओंके बीचमेंसे होती हुई धीरे-धीरे किंतु अटल और अखंड रूपमें प्रकट होती है।

एक दिन हम सब देखेंगे कि— Built is golden tower, the flame child born. स्वर्ण शिखर निर्मित हो गया है और अग्नि-सुत पैदा हो गया है।

—— नलिनीकांत गुप्त

स्वाधीनताका संदेश

(१५ अगस्त)

पंद्रह अगस्त भारतके इतिहासमें बहुत महत्त्वपूर्ण दिवस है। इसी दिन भारतने स्वाधीनता पायी थी और इसी दिन मानवको एक नये प्रकारकी स्वाधीनताका संदेश देनेवाले श्रीअरविन्दका जन्म हुआ था। श्रीअरविन्दने जिस स्वाधीनताका संदेश दिया है वह इतनी नयी है, इतनी क्रांतिकारी है कि उसे मूर्त रूपमें देख सकना कठिन है।

श्रीमाताजीने एक स्वप्नके रूपमें उसे हमारे सामने रखा है। वे कहती हैं "पृथ्वीपर कहीं एक ऐसा स्थान होना चाहिये जिसके विषयमें कोई राष्ट्र यह दावा न कर सके कि यह मेरा है, जहां शुभेच्छा व सच्ची अभीप्सा रखनेवाले मनुष्य नागरिकके रूपमें स्वतंत्रतापूर्वक निवास कर सकें और केवल एक ही सत्ताके, सर्वोच्च सत्यकी सत्ताके आधीन रहें; जो शांति, सुसंगति तथा समरसताका एक ऐसा स्वप्न हो जहां मनुष्यकी सभी संग्रामशील सहजवृत्तियों, केवल उसके दुखों और कष्टोंके कारणोंको पराजित करने, उसकी दुर्बलताओं तथा अज्ञताओंको परास्त करनेके लिये ही प्रयुक्त की जाय। वह ऐसा स्थान होना चाहिये जहां आत्माकी आवश्यकताओं और उन्नतिकी कामनाओं और लालसाओंकी तुष्टि तथा भौतिक सुखों और भोगविलासोंकी खोजसे अधिक महत्त्व प्राप्त हो। उस स्थानपर बच्चे अपनी आत्माके साथ संपर्क खोये विना पूर्ण रूपसे विकसित हो सकेंगे, उन्हें शिक्षा दी जायगी परंतु उसका उद्देश्य परीक्षाएं पास करना अथवा प्रमाण-पत्र तथा नौकरियां पाना न होगा। वे अपने वर्तमानको समृद्ध बनाने और नयी शक्तियां उत्पन्न करनेके लिये शिक्षा पायेंगे। वहां पदवियों और पदोंका स्थान सेवा करने और संगठन करनेके अवसर ले लेंगे। वहांके सामान्य संगठनमें बौद्धिक, भौतिक और आध्यात्मिक उच्चताकी अभिव्यक्ति जीवनके सुखों और शक्तियोंकी वृद्धिमें नहीं अपितु कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्योंकी अधिकतामें होगी। कलात्मक सौंदर्य अपने सभी रूपोंमें, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत और साहित्यमें सबके लिये समान रूपसे सुलभ होगा। उनसे प्राप्त होनेवाले आनन्दमें भाग लेना प्रत्येककी अपनी योग्यतापर निर्भर होगा, किसी सामाजिक या आर्थिक स्थितिपर नहीं। उस आदर्श स्थानमें पैसा सर्वोच्च स्वामी नहीं रहेगा। वहां भौतिक वैभव और सामाजिक स्थितिसे प्राप्त मूल्यकी अपेक्षा स्वयं व्यक्तिका मूल्य अधिक महत्त्व रखेगा। वहांका कार्य कमाईका साधन नहीं, मनुष्यको अपने-आपको व्यक्त करनेका, अपनी योग्यताओं और शक्यताओंको विकसित

करनेका एक साधन होगा और साथ ही मनुष्य उसके द्वारा उस पूरे समुदायकी सेवा भी करता रहेगा। दूसरी ओर वह समुदाय भी प्रत्येककी जीवनसंबंधी आवश्यकताओंको पूरा करेगा और उसके कार्यक्षेत्रके लिये जरूरी सामग्री जुटायेगा। संक्षेपमें कहें तो वह एक ऐसा स्थान होगा जहां मनुष्यके प्रतियोगिता और संघर्षपर आधारित संबंधोंकी जगह ऐसे स्पर्द्धापूर्ण संबंध ले लेंगे जिनमें अधिक अच्छा करने तथा सहयोग करनेके लिये होड़ होगी—वह सच्चे भ्रातृभावका संबंध होगा।”

स्वप्न महान् है, उसे चरितार्थ करना बहुत कठिन है। परंतु असंभव नहीं। जिन लोगोंने श्रीअरविन्दाश्रमको जरा गहराईमें जाकर देखा है वे झट कह उठेंगे कि यह आश्रम इस स्वप्नको मूर्त रूप देनेका पहला प्रयास है। जिन्हें आश्रमजीवनमें पैठकर देखनेका अवसर नहीं मिला है वे कभी अनुमान नहीं कर सकते कि यहांके जीवनमें व्यक्तिको कितनी अधिक स्वाधीनता प्राप्त है और पूरी पूरी स्वाधीनता होते हुए भी व्यक्ति और समाजमें एक प्रकारका विशेष सामंजस्य है जो शायद ही कहीं देखनेको मिले। यहां भिन्न-भिन्न प्रकारके, समाजके विभिन्न क्षेत्रोंसे लोग आये हैं जिनकी बौद्धिक, आर्थिक अवस्थाएं बिलकुल भिन्न रही होंगी परंतु यहां उस पार्श्व-भूमिका कोई असर नहीं दिखायी देता। यहां बड़े-से-बड़े सरकारी अफसर, मिलमालिक और साधारण लिपिक अथवा बढ़ई और लुहार भी आपसमें एक दूसरेके कंधेसे कंधा भिड़ाकर रहते हैं, यहां ये सब केवल आश्रमवासी हैं, उनके आश्रमसे पहलेके जीवनकी महानता अथवा क्षुद्रताका कभी किसीको ख्याल नहीं आता। यहां सब माताजीके बालक हैं, इससे कम या अधिक कुछ भी नहीं। बड़े-बड़े सुशिक्षित लोग हैं, अपने विषयके प्रकांड पंडित हैं, जब विद्यालयमें जाते हैं तो वे अध्यापक होते हैं और बच्चे उनके विद्यार्थी, परंतु जैसे ही घंटी बजी कि अध्यापक विद्यार्थीका संबंध समाप्त हो जाता है और वे बराबरीके स्तरपर मित्र रूपमें मिलते हैं, इतना ही नहीं यह भी हो सकता है कि क्रीड़ांगनमें विद्यार्थी कप्तान हो और अध्यापक महाशयको उसके आदेशोंका पालन करना पड़े। बात यह है कि यहां यह नहीं माना जाता कि केवल कुरसीके कारण ही कोई बड़ा या छोटा होता है! सारा अधिकार, सारा प्रभुत्व केवल भगवान्का है, अधिकारी लोग सचमुच अधिकारी न होकर कामके समय और केवल उस कामके लिये चुने गये प्रतिनिधि होते हैं इसमें उनका अपना बड़प्पन नहीं होता।

इसी प्रकार आश्रमके अंदर चलनेवाली आर्थिक व्यवस्थाको देखा जाय तो वह भी एक अनूठे ढंगकी चीज है। आश्रम बाह्य संसारकी परिस्थितियोंके बीचमें है इसलिये वह पूरी तरहसे अभीतक अपने आदर्शको चरितार्थ नहीं कर पाया है, उसे बाह्य स्थितियोंके साथ समझौता करना पड़ता है, परंतु जितना चरितार्थ हो चुका है वह अपने-आप विलक्षण है। जब कोई व्यक्ति आश्रममें प्रविष्ट होता है, उससे आशा की जाती है कि वह अपने-आपको पूरी तरहसे भगवान्की सेवाके लिये समर्पित कर रहा है। वह अपना धन और संपत्ति भी समर्पित कर देता है। उससे आशा की जाती है कि वह अपनी क्षमता और अपने सामर्थ्यके अनुसार आश्रमके कामोंमें भाग लेगा और उसकी साधारण आवश्यकताओंको पूरा करनेकी जिम्मेदारी श्री माताजी ले लेती हैं। साधारण आश्रमवासीको पता नहीं होता कि किसने पांच लाख दिये हैं और किसने पांच पैसे भी नहीं दिये; इसलिये साधारण जीवनमें इस आधारपर कोई फर्क नहीं पड़ने पाता। आप अपना काम ठीक प्रकारसे करते हैं या नहीं, आप किसी प्रकारकी तिकड़म तो नहीं करते इसका फैसला आपकी अपनी चेतनापर छोड़ा जाता है। आप अस्वस्थ हैं, काम नहीं कर पाते तो आपसे किसी डाक्टर या वैद्यका प्रमाण-पत्र न मांगा जायगा, इन सब मामलोंमें आपकी अपनी चेतना ही फैसला करती है। जैसे-जैसे चेतनाका विकास होता है वैसे-वैसे वह अधिकाधिक जिम्मेदारी लेने योग्य होती जाती है। वह भगवती मांको साक्षी मानकर अपना अच्छेसे अच्छा प्रयास करती है। श्रीअरविन्दने कहा है, “हमेशा इस तरह व्यवहार करो मानों भगवती मां तुम्हें देख रही हैं क्योंकि सचमुच वे सब जगह मौजूद हैं।” इसलिये अगर कोई बेईमानी

या कोई अनुचित कार्य करे तो वह किसी औरको नहीं स्वयंको, अपनी चेतनाको हानि पहुंचाता है और यह अपने-आपमें बहुत बड़ा दंड है।

जब आप आश्रमसे कोई वस्तु लेते हैं तो उसमें किसी विनिमयकी भावना नहीं होती, जैसे आपने काम किया हो या न किया हो आपको भोजन मिल ही जायेगा। आपको जूते या छतरीकी आवश्यकता है तो आपको किसी रूपमें उसका दाम चुकानेकी जरूरत नहीं है, नियत समयपर भिन्न-भिन्न विभागोंसे आप उनके साथ संबंध रखनेवाली चीजें ले सकते हैं। मार्क्सवादका आदर्श कि "हर एकसे उसकी योग्यताके अनुसार और हर एकको उसकी आवश्यकताके अनुसार" यहांपर अपने सुन्दर रूपमें काम करता दिखायी देता है। अंतर है तो यह कि राज्य नामक भूत डंडा लेकर आपके पीछे नहीं पड़ा रहता। यहां भगवान्की करुणाका राज्य है। यहां कामको शरीरद्वारा की गयी भगवान्की प्रार्थना माना जाता है।

शिक्षाके क्षेत्रमें भी यही नियम काम करता है। आपके अंदर इच्छा और योग्यता हो तो बीसियों दरवाजे खुले हुए हैं, भाषायें सीखनी हों तो संस्कृत, लैटिनसे लेकर अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश तथा भारतकी अधिकांश भाषाओंके पढ़ानेकी व्यवस्था है। संगीत, नृत्य, नाटच, चित्रकला आदिकी शिक्षा बिना किसी विनिमयके प्राप्त की जा सकती है। और वहां भी सब विषयोंपर बेलन नहीं चलता। हो सकता है कि आप अपनी योग्यताके अनुसार हिन्दीके चौथे वर्गमें हों, अंग्रेजी और गणितमें छठे वर्गमें और इतिहासमें सातवेंमें, हर विषयमें अपनी योग्यताके अनुसार आगे और पीछे हो सकते हैं, यह नहीं कि एक विषयकी कमजोरीके कारण कई-कई वर्षोंतक एक ही वर्गमें घास छीलनी पड़े।

शारीरिक स्वास्थ्यके लिये तरह-तरहके व्यायाम, खेलकूद, आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होमियोपैथिक इलाजकी व्यवस्था है। आप साहित्यमें रुचि रखते हैं तो आश्रमकी अपनी कई पत्रिकाएं हैं जो श्रीअरविन्दका संदेश वहन करती हैं।

अगर ठीक तरहसे देखें तो हमें आश्रममें गणतंत्र, साम्यवाद, अराजकतावाद आदिके शुद्ध स्वरूप देखनेको मिलते हैं। हमारे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि आश्रमवासियोंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, नहीं, हम इससे बहुत दूर हैं। हमारा समाज भी साधारण समाजमेंसे आये हुए उन लोगोंसे मिलकर बना है जो अपने साथ अपनी त्रुटियां, अपनी कमजोरियां लेकर आये हैं। कई बार कमजोरी भड़क उठती है पर वह एक उड़ता हुआ क्षण होता है। आश्रमजीवनका लक्ष्य है अपनी समस्त पूर्णताओंके साथ भागवत जीवनको यहां, इस धरतीपर अवतरित करना। भगवान्के आगे कोई चीज छोटी और नगण्य नहीं है और कोई समस्या इतनी बड़ी नहीं है जिसे हल न किया जा सके।

श्रीअरविन्द सोसायटी आश्रमका वह पक्ष है जो आश्रमसे बाहर रहनेवालोंमें श्रीअरविन्दका संदेश पहुंचाता है और श्रीमाताजीके स्वप्नको चरितार्थ करनेमें सहायता देनेका प्रयास करता है। आज पंद्रह अगस्तको हमें इन सब कामोंकी याद करके नये उत्साहके साथ अपने जीवनको इस पथपर ले चलनेकी तैयारी करनी चाहिये।

— रवीन्द्र

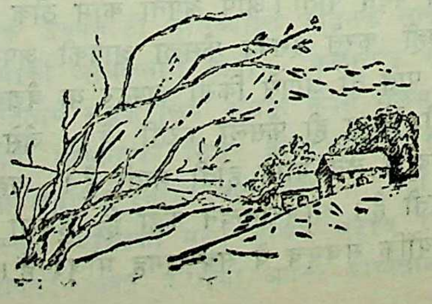

श्रीअरविंद सोसायटी

आरो-विल (AURO-VILLE)

एक नवीन आदर्श नगरीकी योजना

कृपामयी श्रीमाताजीके 'स्वप्न' नामक लेखसे प्रेरणा प्राप्त करके हमने एक आदर्श नगरीका निर्माण करनेका निश्चय किया है जिसका सारा पथप्रदर्शन स्वयं श्रीमाताजी ही करेंगी। इस नगरीके निर्माणका उद्देश्य यह है कि जो लोग इस नगरीमें रहना पसंद करें उन्हें मानव-जीवनके सभी क्षेत्रोंमें उच्चतर जीवन यापन करनेके लिये तैयार किया जाय। यहां हम एक उच्चतर चेतनाके पथप्रदर्शनके अधीन जीवनको संपूर्ण रूपसे नये सिरेसे व्यवस्थित और रूपांतरित करनेका प्रयास करेंगे और इस तरह हम उन लोगोंके सामने एक आदर्श भी रखेंगे जो एक श्रेष्ठतर सामाजिक संगठन बनानेकी अभीप्सा रखते हैं।

नाम : श्रीमाताजीने इस नगरीका नाम श्रीअरविंदके नामपर 'आरो-विल' (Auro-ville) रखा है। इस नामका शाब्दिक अर्थ है, "उषा-नगरी"।

स्थान : यह नगरी मुख्य आश्रमसे तीन मीलकी दूरीपर बनेगी।

साधारण व्यवस्था : अत्यंत आधुनिक ढंगकी और सुन्दर नगरी बनानेका निश्चय किया गया है जिसमें सभी मकान उचित ढंगसे व्यवस्थित होंगे, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छतासंबंधी आवश्यकताओंकी पूर्ति आधुनिक ढंगसे की जायगी। इस कार्यमें एक प्रसिद्ध फ्रेंच स्थपतिकी सहायता ली जायगी जो आश्रमके भक्त हैं। फिर सोसायटीके जो सदस्य नगर-योजनाके विशेषज्ञ हैं, मकान बनानेके इंजिनियर आदि हैं उनकी सहायता भी हमें प्राप्त होगी। सोसायटी सरकारकी सहायतासे सफाई, पानी, बिजली और अन्यान्य सुविधाओंका प्रबंध करनेका विचार कर रही है पर वह ये सारे कार्य स्वाधीनतापूर्वक स्वयं ही व्यवस्थित और परिचालित करेगी।

निवासस्थान : जो लोग इस आदर्शको अपने जीवनमें चरितार्थ करना चाहते हैं और जिन्हें श्रीमाताजी इस नगरके लिये स्वीकृति देंगी वैसे लोग ही इस नगरमें स्थान प्राप्त करेंगे।

सुविधाएं : जीवनके लिये आवश्यक किसी चीजकी यहां उपेक्षा नहीं की जायगी :

१. बिजली। २. पानी। ३. सफाई। ४. पोस्ट आफिस।
५. टेलीफोन। ६. बैंकिंग। ७. आवागमनकी व्यवस्था।
८. चिकित्सा (मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार चिकित्सा करा सकेगा :—
    (क) शुश्रूषा-गृहके साथ अंगरेजी दवाखाना। (ख) आयुर्वेदिक विभाग।
    (ग) प्राकृतिक चिकित्साशाला। (घ) होमियोपैथी दवाखाना। (ङ) रुग्णावास।
    (च) पशुचिकित्साशाला।
९. शिक्षा : आवश्यकताके अनुसार।
१०. शारीरिक शिक्षा : एक बड़ा-सा क्लब होगा जहां सब तरहके खेलों, व्यायामों, तैराकी आदिकी व्यवस्था होगी, गोलफका मैदान, ग्लाइडिंग क्लब आदि होंगे।
११. सामूहिक ध्यानगृह होगा जिसके साथ एक भाषण-गृह तथा श्रीमाताजी और श्रीअरविंदकी पुस्तकोंकी लाइब्रेरी भी होगी।

१२. बिक्री-केंद्र : एक बड़ा-सा स्टोर होगा तथा एक बाजार रहेगा जहांसे सामान घर पहुंचानेकी व्यवस्था होगी।

१३. रेस्टोरेंट्स और सार्वजनिक भोजनगृह बनाये जायेंगे जहां शुद्ध और स्वास्थ्यकर भोजन दिया जायगा।

१४. अतिथिशाला या होटल होंगे जो यात्रियोंको सुविधा प्रदान करेंगे।

अन्य विशेष बातें :

(१) **एक मुहल्ला उन कार्यकर्ताओंका होगा** जिन्होंने अभीतक इस नवीन जीवन-पद्धतिको स्वीकार नहीं किया है, पर जिनमें सामान्य सद्भावना है, अच्छा चरित्र और व्यवहार है, और जो कर्ममें ईमानदार और योग्य हैं। इस मुहल्लेमें साफ-सुथरा मकान, सार्वजनिक भोजनगृह, खेल-कूदके मैदान, स्कूल, चिकित्सागृह, परिवार-नियोजन-केंद्र, शिशु-गृह, व्यवसाय-शिक्षण-केंद्र आदि रहेंगे। यहां भी कार्यकर्ताओंको अपने स्वभावके अनुसार अत्यंत उपयुक्त कार्यका चुनाव करनेकी छूट होगी और उसके लिये उसे आवश्यक परीक्षण दिया जायगा। जब आर्थिक सुविधा होगी तब उन्हें भी ऐसी सुविधा देनेका विचार किया जा रहा है जिसमें उन्हें जीवनकी मौलिक आवश्यकताएं प्राप्त हो जायें और परिवारकी व्यवस्थाके लिये उन्हें वेतन और पारिश्रमिक पानेकी आवश्यकता न रह जाय।

(२) **कलाकारोंका मुहल्ला :** कलाकारोंका एक अपना अलग मुहल्ला होगा जिसमें संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्त्तिकला, सिनेमानिर्माणकला तथा अन्य दूसरी कलाएं सिखानेके केंद्र होंगे। (श्रीमाताजीने अच्छी फिल्में बनानेके लिये एक 'फिल्म स्टूडियो' बनानेकी अनुमति दे दी है।)

(३) **वृद्धोंका मुहल्ला :** श्रीमाताजीने वृद्ध लोगोंके लिये एक अलग मुहल्ला बनानेकी अनुमति देनेकी कृपा की है जिसमें व्यक्तिगत और सामूहिक भोजन-गृहकी व्यवस्था रहेगी, चिकित्सा, बागवानी आदिकी सुविधाएं दी जायेंगी। हम आशा करते हैं कि इस नये वातावरणमें वृद्ध सज्जनोंको एक नयी प्रेरणा प्राप्त होगी। इनमेंसे जो लोग जितना समय काम करना चाहेंगे उन्हें उसीके अनुसार काम भी देनेकी व्यवस्था रहेगी।

(४) **उद्योग, व्यापार और कृषि :** यहांका सामाजिक जीवन यहां रहनेवाले लोगोंको विभिन्न प्रकारके कार्य भी देगा जिससे उनकी आध्यात्मिक उन्नति हो, आत्माभिव्यक्तिकी सुविधा मिले और दूसरोंकी सेवा हो। ये कार्य उद्योग-धंधा, व्यापार, कृषि आदिके क्षेत्रमें बंटे होंगे और प्रत्येकको उसकी रुचिके अनुसार दिये जायेंगे। इसके लिये यहां उद्योग-केंद्र, बगीचा, कृषि-केंद्र, नर्सरी इत्यादिकी व्यवस्था की जायगी। आश्रमने एक डेयरी फार्म चलाना आरंभ कर दिया है पर उसे अभी और विकसित करनेकी आवश्यकता है।

(५) **अनुसंधान :** जिन लोगोंमें अनुसंधान और आविष्कार करनेकी क्षमता है उन्हें इसकी सुविधा दी जायगी बशर्त्ते कि उनका प्रस्ताव स्वीकृत हो।

(६) **सभाभवन :** एक ऐसा भवन बनाया जायगा जहां सम्मिलित वाद्ययंत्र बजाने, नाटक करने, फिल्म दिखाने और सम्मेलन आदि करनेकी सुविधा हो।

(७) **विश्वकी संस्कृतियों और उनके समन्वयके लिये प्रदर्शनीगृह :** यहांपर प्रत्येक राष्ट्रकी संस्कृतिका प्रदर्शन करनेके लिये एक-एक मंडप होगा जिसमें उस देशकी आदतों वगैरहका पूरा प्रदर्शन किया जायगा, प्रत्येक मंडपमें उस राष्ट्रके सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करनेवाले, स्वाभाविक अथवा उत्पादित, वे सब उत्पादन भी प्रदर्शित होंगे जो उस राष्ट्रके बौद्धिक और कलात्मक प्रतिभा तथा उसकी आध्या-

त्मिक प्रवृत्तियोंको अभिव्यक्त करते हैं। इस तरह प्रत्येक राष्ट्रको एक प्रकारके सांस्कृतिक समन्वयके अंदर व्यावहारिक और ठोस रुचि लेनेकी प्रवृत्ति होगी और वह अपने कार्यके द्वारा इस नगरीको सामान्य रूपसे सहायता देनेके साथ-साथ अपने मंडपको तैयार करके और सुरक्षित रखकर इस कार्यमें सहायक होगा।

आप जिस किसी रूपमें हमें सहायता देना चाहेंगे उसका हम स्वागत करेंगे।

यह इस सारी योजनाका संक्षिप्त रूप है। आप इस विषयमें और जो कुछ भी जानना चाहें कृपया अपना प्रश्न निस्संकोच लिख भेजें।

जनरल सेक्रेटरी
श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२

कबीर

कबीर हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमेंसे हैं। इन्होंने काशीमें सन् १४५६ में जन्म लिया था। दंतकथाके अनुसार इन्होंने एक विधवा ब्राह्मणीकी कोखसे जन्म लिया था, जो बदनामीके डरसे इन्हें एक तालाबके पास छोड़ आयी। वहांसे नीरु नामक एक मुसलमान जुलाहा अपने घर उठा लाया। नीरु और उसकी स्त्री नीमाने इन्हें अपने बालककी तरह पाला। इसीलिये कबीर मुसलमान जुलाहे कहलाये।

इनके जीवनकी घटनाओंके बारेमें हमें बहुत कम ज्ञात है। ये छोटी आयुसे ही भक्त प्रकृतिके थे। ये रामनामका जप करते और पूजा-पाठ करते रहते थे। परंतु कहते हैं कि 'गुरु बिनु ज्ञान न होय।' कबीरदासको कोई गुरु न मिला। लोग इन्हें निगुरा—गुरुहीन कहने लगे। यह बात इन्हें बहुत खटकी और इन्होंने एक गुरु बनानेकी ठानी। उन दिनों उत्तर भारतमें रामानंदजीकी बहुत ख्याति थी। कबीर भी उन्हींके पास पहुंचे। रामानंद एक मुसलमानको दीक्षा देनेको तैयार नहीं हुए। अब कबीरने एक चालाकी की। रामानंद प्रतिदिन बड़े सबेरे गंगास्नानके लिये जाया करते थे। कबीर गंगा-घाट जाकर सीढ़ियोंपर लेट गये। रामानंदजी आये और अंधेरेमें कबीरको देख न पाये। उनका पांव कबीरसे ठोकर खा गया और उनके मुंहसे निकला, राम कह राम कह। कबीरने उठकर पैर पकड़ लिये और कहा—महाराज, अब आप मेरे गुरु हुए। आपने अपना चरण स्पर्श दिया और अब रामका गुरु-मंत्र भी दिया। कबीरने, अपने-आप कहा है, 'काशीमें हम प्रकट भये हैं रामानंद चेताये।' लेकिन, जैसा कि हम आगे देखेंगे, रामानंदके राम तो रघुकुलतिलक भगवान् सीतापति थे पर कबीरके राम उनसे भिन्न थे। उन्होंने कहा है, "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नामका मरम न जाना।" कबीरने दूर-दूर देशाटन किया। भिन्न-भिन्न समुदायोंके साधु-

फकीरोंसे मिले। उनकी छाप हमें कबीर-वाणीमें स्पष्ट दिखायी देती है। यद्यपि वे पढ़े-लिखे नहीं थे परंतु उनकी बुद्धि बहुत पैनी थी। उन्होंने अपने जीवनमें हिन्दू-मुसलमानोंके भेद-भावको कोई स्थान नहीं दिया। कहते हैं कि १२० वर्षकी आयुमें जब इनका देहावसान हुआ तो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनकी अंतिम क्रिया करनेके लिये आग्रह करने लगे। विवादका अंत न आता था उसी समय आकाश-वाणी हुई, "कपड़ा उठाकर तो देखो।" लोगोंने अर्थीपरसे कपड़ा उठाया। वहांसे कबीरका शरीर अंतर्धान हो चुका था। उसकी जगह दो फूल रखे थे। एकको हिन्दुओंने लिया और दूसरेको मुसलमानोंने। दोनोंने अपनी-अपनी रीतिसे अंतिम संस्कार किया। जो सारे जीवन हिन्दुओं और मुसलमानोंको लताड़ता रहा, जो उनकी त्रुटियोंपर हमेशा उंगली उठाता रहा वह अपने अंतिम समय दोनोंका ही प्रेम-भाजन रहा। कबीरका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली और बहुमुखी था कि उन्हें समझना बहुत कठिन है। आधुनिक समालोचकोंने उनकी सागर-गंभीर वाणीका एक ऊपरी अध्ययन ही किया है। कोई उन्हें समाजसुधारक मानता है, कोई हिन्दू-मुसलिम एकताका सबसे बड़ा स्तंभ। कोई उन्हें रहस्यवादी मानता है तो कोई प्रतीकवादी। यहांपर हमें तुलसी-रामायणकी एक घटना याद आती है। कहते हैं, जब भगवान् राम जनकपुरमें सीता-स्वयंवरके लिये आये तो स्त्रियोंने उन्हें एक सुकुमारके रूपमें देखा, राक्षसोंने उन्हें अत्यंत विकराल रूपमें देखा। "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।" कबीरके बारेमें भी कुछ ऐसी ही बात है। हर एकने उन्हें अपने चश्मेसे देखा और हर एकको अलग रंगमें दिखायी दिये।

हिंदीके सुप्रसिद्ध समालोचक हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं: "कबीरदासका भक्तरूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केंद्रके इर्दगिर्द उनके अन्य सब रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केंद्रीय वस्तुका प्रकाश भाषाकी पहुंचसे बाहर है। भक्ति कहकर नहीं समझायी जा सकती। वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदासने इस बातको हजार तरहसे कहा है। इस भक्ति या भगवान्के प्रति अहैतुक अनुरागकी बात कहते समय उन्हें बहुत-सी ऐसी बातें कहनी पड़ी हैं जो भक्ति नहीं है पर भक्तिके अनुभव करनेमें सहायक हैं। मूल वस्तु चूंकि वाणीसे अगोचर है इसलिये केवल वाणीका अध्ययन करनेवाले विद्यार्थीको अगर भ्रममें पड़ जाना पड़ा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।"

कबीर समाजसुधार करनेके लिये समाजसुधार नहीं करते, उन्हें दीखता है कि सभी एक भगवान्के बनाये हुए हैं। उनमें छोटे-बड़ेका भाव क्यों हो? पंडित लोग 'शुनि चैव श्वपाके च', पंडित और मूर्ख, हाथी और कुत्ता सभीके अंदर अपने आराध्यदेवको पाते हैं। उनके लिये भेदभाव कहां? उसे पाना ही मुख्य है। उसके लिये व्यर्थके आडम्बर रचनेकी आवश्यकता नहीं। कबीर कहते हैं, मैंने सब तीर्थोंमें स्नान करके देख लिया, वहां पानी ही पानी है; पुराण, कुरान सब बातें हैं। उन्हींके शब्द सुनिये:

तीरथमें तो सब पानी है, होवे नहीं कछु अन्हाय देखा,
प्रतिमा सकल तो जड़ है भाई, बोले नहीं बोलाय देखा,
पुराण कुरान सबै बात है, या घटका परदा खोल देखा।

और सुनिये:

मन ना रंगाय रंगाये जोगी कपड़ा
आसन मारि मंदिरमें बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा।
कनवा फटाय जटवा बढौले, डाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।

इसी तरहकी समाजमें प्रचलित रीतियोंपर चोट करते हुए कहते हैं:—"अगर खुदा मस्जिदमें ही बसा है तो कहो बाकी संसार किसका है? राम यदि तीर्थ और मूर्तिमें ही हैं तो उनके बाहर किसका

डेरा है? तो क्या हरि और अल्लाने बंटवारा कर लिया है कि पूर्व हरिके लिये और पश्चिम मुसलमानोंके अल्लाहके लिये? सुनिये :—

जो खुदाय मस्जिदु बसतु है, और मुलुक कहु केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी, बाहर करे को डेरा।
पूरब दिशा हरिको बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिलमें खोज, दिलहिमें खोजो इहै करीमा रामा ।

ओ भाई! राम और करीमको अपने दिलमें खोजो, वही उनका स्थान है।

कबीरको अपनी भाषापर असाधारण अधिकार था। वे पुराने ऋषियोंकी तरह आर्ष वाणीमें बोलते हैं। वे भाषाके पीछे नहीं चलते। कबीर अकथ कहानीको इतना मनोग्राह्य और सुगम बना देते हैं कि सर्वसाधारण आसानीसे समझ पाये। असीम और अनंतके अनुभव और आनंद, ब्रह्मके साक्षात्कार आदि अगोचर विषयोंको अगमकी जगह सुगम बनाना कबीरका ही काम था। वे अपने अनुभव बड़ी सरलताके साथ और साथ ही बड़ी हिम्मतसे हमारे सामने रखते हैं। इन वाणियोंमें उनका व्यक्तित्व पूरा-पूरा निखर आता है। वे स्वयं कहते हैं : "मैं कहता आखिन की देखी, तू कहता कागदकी लेखी।"

कबीरका फक्कड़पन, उनकी मस्ती और निःसंकोच भावसे बल्कि कुछ अक्खड़पनेसे शब्दकी घोषणा करता — ये ऐसी विशेषताएं हैं जिनके आकर्षणसे बचना कठिन है। पर उस तेज-पुंजका सामीप्य ही सहज नहीं। अपने अनूठे व्यक्तित्वके कारण कबीर जीवनके हर पहलूपर छाये रहते हैं। उन्होंने कभी कविता लिखनेका प्रयास नहीं किया। उन्होंने कभी साहित्यका अध्ययन नहीं किया। फिर भी उनकी जोरदार भाषा, उनका छंद-वैविध्य, उनके अलंकार बड़े-बड़े कवियोंके लिये ईर्ष्याके विषय हो सकते हैं। अपने प्रियतमके साथ साक्षात्कार करते हुए भी वे इस धरतीको नहीं भूलते। वहां विचारोंकी उड़ान है। आत्मविस्मृति है पर इस सबके होते हुए पैर जमीनपर टिके हुए हैं। वे कहते हैं, इस घटके अंदर ही सारा ब्रह्मांड छिपा हुआ है और उसका सर्जनहार भी इसीमें है। पारस और मोती भी इसीके अंदर हैं और उनका पारखी भी यहीं है। वे कहते हैं,

मुझको कहां ढूंढ़ा बंदे मैं तो तेरे पासमें।
ना मैं मंदिर ना मैं मस्जिद ना काबे कैलासमें।
खोजी होय तो तुरतहिं मिलिहों सब सांसोंकी सांसमें।

और सुनिये :

इस घट अंदर बाग बगीचे इसीमें सिरजनहारा,
इस घट अंदर सात समुन्दर, इसीमें नवलख हारा ।
इस घट अंदर पारस मोती, इसीमें परखनहारा ।
इस घट अंदर अनहद गरजै, इसीमें उठत फुहारा ।
कहत कबीर सुनो भई साधो, इसीमें साईं हमारा।

पर वह साईं कौन है और कैसा है। "जो दीखे सो तो है नाहिं, है सो कहा न जाई।" अगर कह दूं कि वह भारी है तो ठीक न होगा, अगर कह दूं हल्का है तो भी बात नहीं बनती, मैंने उन्हें कब देखा है जो उनका वर्णन करूं।

भारी कहौं तो बहु डरौं, हल्का कहौं तो झूठ ।
मैं का जानूं राम को, नैनन कबहूं न दीठ ।

वे कहते हैं : जाके मुंह माथा नाहीं, नाहिं रूपक रूप।
पुहुप बास ते पातला, ऐसा तत्त अनूप ।

कबीर अपने भगवान्‌को अपने प्रियके रूपमें देखते हैं। और वे अपने-आप उनकी प्रेयसी हैं। अनेक संतोंने इस रूपको अपनाया है। कबीर कहते हैं, "हरि मेरे पियु मैं हरिकी बहुरिया।" वे अपने पियासे मिलनेके लिये उतावले हो रहे हैं। पिया ऊपर हैं और उनसे लज्जाके मारे चढ़ा नहीं जाता। चढ़नेका प्रयास करते हैं तो गिर-गिर पड़ते हैं। अंग-अंग कांप रहा है। रास्ता कठिन है। चलनेवाली अबोध है, वहांतक कैसे पहुंच होगी।

"ले, सुन ले, इधर-उधर मत चिंता करती फिर, सत्‌गुरुके शब्द मान ले और अन्तरपट खोल दे और वहीं पर पियाके दर्शन हो जायेंगे।"

पिया मिलनकी आस, रहौं कब लौं खरी ।
ऊंचे नहिं चढ़ि जाय, मने लज्जा भरी।
पांव नहिं ठहराय, चढ़ूं गिर गिर पडूं।
फिर फिर चढूं सम्हाल, चरण आगे धरूं ।
अंग अंग घहराय, तो केहि विधि डरि रहूं ।
नारी निपट अनारि, तो झीनी गैल है ।
अटपट चाल तुम्हारी, मिलन कस होई है।
छोड़ो कुमति विचार, सुमति गहि लीजिये।
सद्‌गुरु शब्द सम्हालि, चरण चित्त दीजिये ।
अन्तर पट दे खोल, शब्द उर लाव री ।
दिल बिच दास कबीर, मिलै तोहि बावरी ।

पियाने अपनी प्रेयसीको एक चुनरी दी जो पांच तत्त्वोंसे बनी हुई थी। लेकिन मनुष्यने उसका सदुपयोग नहीं किया, उस चुनरीपर दाग लग गये। ज्ञानका साबुन लगाकर मलमल धोया तब भी दाग न छूटे। उसे डर लगा अब क्या होगा? पर कबीर साहब कहते हैं कि भाई, जब एक बार भगवान्‌ने तुम्हें अपना लिया है तो वे ही सब दाग साफ कर देंगे।

मोरी चुनरीमें पड़ गयो दाग पिया ।
पांच तत्त्वकी बनी चुनरिया, सौरह सै वन्द लागे जिया ।
यह चुनरी मेरे मैकेसे आयी, ससुरेमें मनुवा खोय दिया ।
मलि मलि धोई दाग न छूटे, ज्ञानके साबुन लाये पिया।
कहैं कबीर दाग सब छुटिहैं, जब साहब अपनाय लिया ।।

कबीरने अपने नयनोंकी कोठरीमें पुतलियोंका पलंग बिछाकर पलकोंकी चिक डाली और प्रियतमको वहां बसा लिया। वे कहते हैं कि प्रियतम कहीं विदेशमें होता तो उसे पत्र लिखते पर यह तो तन, मन और नयनमें बसा हुआ है। वे कहते हैं :

नैनोंकी करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय ।
पलकोंकी चिक डालके, पिया को लिया रिझाय ।
प्रीतमको पतियां लिखूं, जो कहुं होय विदेस ।
तनमें, मनमें नयनमें, ताको कहा संदेस ।।

और भगवान्‌के लिये कबीरका प्रेम श्रमसाध्य नहीं है। जैसे सती बिना किसीके कहे अपने-

आप ही अपने स्वामीके साथ भस्म हो जाती है वैसे प्रेम भी त्यागमें ही आनंद लेना जानता है।

सतीको कौन सिखावता है, संग स्वामीके तन जारना जी ।
प्रेमको कौन सिखावता है, त्याग मांहि भोगका पावना जी ॥

कबीरने भगवान्के मातृरूपके भी दर्शन किये थे। वे कहते हैं: हरि मेरी जननी हैं और मैं उसका बालक हूं फिर वह मेरे अवगुणोंको क्यों न क्षमा करेगी? बेटा दिन-रात शरारत करता है पर मांका प्रेम कम नहीं होता। बालकके दुःखी होनेसे वह भी दुःखी होती है।

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुन बकसहु मेरा ।
सुत अपराध करै दिन केते, जननीके चित रहै न तेते।
करि गहि केस करै नौ घाता, तऊन हेत उतारे माता ।
कहै कबीर एक बुधि बेचारी, बालक दुखी, दुखी महतारी ॥

कबीर जब साधारण लोगोंसे बात करते हैं तो उन्हींकी भाषा बोलते हैं ताकि वे आसानीसे समझ सकें। समर्पणका क्या सुन्दर और जनसाधारणके लिये सुगम चित्र खींचा है: कबीर रामका कुत्ता है। मालिकके प्रति वफादारीमें कुत्तेसे बढ़कर और कौन हो सकता है! कबीर अपने रामके कुत्ते हैं, उनके गलेमें रामकी रस्सी पड़ी है और वे जिधरको इशारा हो उधरको चल देते हैं।

कबीर कुत्ता रामका, मुतिया मेरा नांउ।
गले रामकी जेबड़ी, जित खेंचे तित जाउं ।

जब मनुष्य एक अज्ञात शक्तिका अनुभव करता है और उसके असंख्य पहलुओंको मानव भाषामें लानेका प्रयास करता है तो उसे भाषा बहुत ही अपर्याप्त वाहक मालूम होती है। वह उस समय व्याकरण या छंदशास्त्रके नियमोंकी परवा नहीं करता, वह सब प्रकारके बंधनोंको तोड़कर चलता है, फिर भी यही अनुभव करता है कि प्रेमकी कहानी कहना असंभव है। किसी गूंगेको शक्कर खिलाइये और फिर उसका स्वाद पूछिये, वह चुपचाप मुस्कानेके अतिरिक्त और क्या उत्तर दे सकेगा?

अकथ कहानी प्रेमकी, कछू कही ना जाय ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठा मुस्काइ ॥

ऐसी स्थितिमें उन्हें प्रतीकोंसे काम लेना पड़ता है। जिन लोगोंने उसका अनुभव नहीं किया है उनको परिचित उदाहरण देकर समझाना पड़ता है। गूंगा गुड़ खाकर सिर्फ इशारा ही तो करेगा:

बाबा अगम अगोचर कैसा, तातें कहि समझाओ ऐसा ।
जो दीसे सो तो है नाहिं, है सो कहा न जाई ।
सैना बैना करि समझाओ, गूंगेका गुड़ खाई ॥

और फिर वह प्रिय है भी तो ऐसा कि अगर ढूंढ़ने जायं तो ढूंढ़नेवाला उसके साथ एक हो जाता है।

लाली मेरे लालकी, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ॥

कबीरका प्रेम ऐसा नहीं है जिसके दो अर्थ लगाये जा सकें। वह विशुद्ध रूपसे भगवान्का प्रेम है। उसमें ज्ञानका पुट है पर उसकी प्रधानता नहीं है। देखिये, वे अध्यात्म विद्याकी परिभाषाओंमें बोल रहे हैं। कबीर जुलाहे थे अतः उन्हें उदाहरण भी पुराने दर्शन-शास्त्रियोंकी तरह घट और पटके ही सूझते हैं। यह शरीर भगवान्की दी हुई चादर है। इस चादरमें ताना-बाना

किस चीजका है और किस चीजसे इसपर काम किया गया है ? इळा पिंगला इसके ताने-बाने हैं और सुषुम्नासे इसपर काम किया है। इसमें आठ कमल और चक्र हैं और पांच तत्त्वोंसे इसे बनाया गया है। इसे सीनेमें सांईको दस महीने लगे। यह चादर सुर नर मुनियोंको भी मिली और कबीरको भी। कुछने इसको मैला कर दिया पर कबीरने इसे जैसेका तैसा ही मालिकके चरणोंमें चढ़ा दिया —— त्वदीयं वस्तु गोविंद, तुभ्यमेव समर्पयेत् ।

झीनी झीनी बीनी चदरिया ।
काहेका ताना काहे की भरनी, कौन तारसे बीनी चदरिया ।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तारसे बीनी चदरिया ।
आठ कमल दल चरखा डोले, पांच तत्त्व गुण बीनी चदरिया ।
सांईको सियत मास दस लागे, ठोक ठोकके बीनी चदरिया ।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़िके मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतनसे ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया ॥

कबीर भगवान्के उपासक हैं। उन्हें मत-मतान्तर, वाद आदिकी परवा नहीं है। उनकी दृष्टिमें सब समान हैं। वे कहते हैं, भगवान् एक ही हैं, अल्लाह और राम एक ही हैं। भाई रे :

दुइ जगदीश कहांसे आया, कहो कवने भरमाया ।
अल्लह राम करीमा केसो, हजरत नाम धराया ।
गहना एक कनक ते गढ़ना, इन मां भाव न दूजा ।

हम कह सकते हैं कि कबीरदासके पास अध्यात्मकी गागर थी जिसमेंसे सुधा छलकती जा रही थी। साहित्यिक अपना प्याला लेकर आये, उनके प्यालेमें थोड़ी सुधा आ गयी, वह भर गया। उन्होंने कह दिया, आहा, इस गागरमें साहित्य भरा है, कबीर साहित्यिक हैं। समाजसुधारक अंजलिबद्ध होकर आये, उन्हें भी कुछ प्रसाद मिल गया। उन्होंने समझा, कबीर समाज-सुधारक हैं। इसी प्रकार सबने अपना-अपना कर फैलाया और प्रसाद पाया पर कबीर इन सबसे ऊपर थे। उनके बारेमें उन्हींके शब्दोंमें कहना होगा :

हम वासी वा देसके, जहां परब्रह्मका खेल ।
दीपक जरै अगम्यका, बिन बाती बिन तेल ॥

और उनसे हम क्या सीखते हैं :

पीले प्याला हो मतवाला,
प्याला प्रेम अमी रसका रे ॥

—— **अनुबेन पुराणी**

यूरोपकी सैर

—श्री स्नेहलता

अब ईस्टरकी छुट्टियां आयीं : मैंने फिर अन्य देशोंका चक्कर लगानेकी ठानी। बेलजियमके भारतीय दूतावासमें एक अफसर मेरा सुपरिचित था इसलिये वहां कोई असुविधा न हुई। यूरोपके देश हमारे प्रदेशोंसे भी छोटे हैं। कुछ देशोंको कुछ घंटोंमें पार किया जा सकता है। बेलजियम और फ्रांस बिलकुल सटे हुए हैं फिर भी वहांकी प्रजा एक-दूसरेसे काफी भिन्न है। यहांका सबसे सुन्दर स्थान है ब्रूज जिसे उत्तरका छोटा वेनिस भी कहते हैं। वहांकी स्त्रियोंको मकानके बाहर बैठे हुए लेस बनाते देखकर अपने यहांकी कशीदा काढ़ती या स्वेटर बुनती हुई स्त्रियां याद आ गयीं।

हालैण्डमें एक मजेदार अनुभव हुआ। पांडिचेरीमें रहते हुए मैंने वहांकी एक लड़कीसे चिट्ठी-पत्रीद्वारा मैत्री की थी। उसकी अंग्रेजी ऐसी अच्छी थी कि कुछ समझना असंभव था। कई वर्षोंके बाद अचानक उसका पत्र पांडिचेरीसे लौटकर पेरिसमें मिला। मैं छुट्टियोंका कार्यक्रम बना रही थी। उसका पत्र मिला तो मैंने उसे लिख दिया कि मैं हालैण्ड आनेकी सोच रही हूं। बस, फिर क्या था, आग्रहभरा निमंत्रण आ गया। यह लड़की सचमुच इंडोनेशियाकी है जिसने हालैण्डमें ही विवाह कर लिया है और वहीं बसी हुई है। उसमें एशियावालोंका आतिथ्य देखकर बहुत अच्छा लगा। हालैण्डवाले अपनी भाषाके अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन, और अंग्रेजी भी सीखते हैं पर उनका हाल जरा यूं ही सा होता है। इस लड़कीने अंग्रेजीमें मुझसे जो कहा उसका मैंने यह अर्थ समझा कि उसका पति पागल है। मुझे बड़ा कष्ट हुआ कि ऐसी अवस्थामें मैं उस बेचारीपर भार बनकर आ पड़ी। अंदरसे डर भी लग रहा था कि पागल न जाने क्या और कैसा व्यवहार करे। खैर, धैर्य रखा। थोड़ी देरके बाद उसके पतिके दर्शन हुए। मैं साहस बटोरे पागलपनके लक्षणोंकी प्रतीक्षा कर रही थी परंतु ऐसा कुछ दिखायी न दिया। आखिर बड़ी देरके बाद पता लगा कि वे सज्जन कुछ दिमागी काम किया करते हैं और आजकल कुछ थके हुए होनेके कारण छुट्टीपर हैं। ठीक अंग्रेजी न जाननेके कारण उनकी श्रीमतीने उनका दिमाग 'थका हुआ' होनेकी जगह 'खराब' बता दिया।

इन देशोंके चक्करमें भी मैंने यही अनुभव किया कि साधारणतः मध्यम वर्गके लोग अधिक सरल और सहृदय होते हैं। मुझे जब कभी मध्यम वर्गके लोगोंके साथ रहनेका अवसर हुआ तो मुझे अधिक अपनेपनका अनुभव हुआ जबकि समृद्ध घरानोंमें आराम तो अधिक मिल जाता था पर व्यक्तिगत संपर्कका अभाव रहता था। वहां मैंने भारतीय दूतावासका भी चक्कर लगाया परंतु वहां भी मानो मैं परायी भूमिपर शिष्टाचार ही पा सकी। अस्तु, यह तो विषयान्तर हो गया। हां, तो हालैंडकी बात हो रही थी। हालैण्ड अपनी दो-तीन चीजोंके लिये सारे संसारमें प्रसिद्ध है। पहली चीज है वहांके ट्यूलिपके फूल। ट्यूलिप हालैण्डका राष्ट्रीय फूल है। चारों ओर इसके बगीचे फैले हुए हैं। कई बार जहांतक नजर दौड़ायी जाय ट्यूलिप ही ट्यूलिप दिखायी देते हैं। उनमें भी नाना प्रकारके रंग और प्रत्येक रंगमें अलग-अलग प्रकार। इन फूलोंकी सुन्दर छटा देखकर कभी मन नहीं अघाता। यूरोपके अन्य देशोंकी तुलनामें यहां बड़ी-बड़ी खुली जगहें काफी हैं। और उनका इन लोगोंने बड़ा सुन्दर उपयोग किया है। किण्डर डाइटकी ओर चले जाइये तो आपके चारों ओर पवन-चक्कियां ही पवन-चक्कियां दिखायी देंगी जिन्हें देखकर कभी भीमकाय राक्षसोंका ख्याल आता है, कभी डान क्विकजोटकी कहानी याद आती है।

एमस्टरडमको उत्तरका वेनिस कहते हैं। सारे शहरमें नहरोंके जाल बिछे हैं। आप अगर शहर

देखना चाहते हों तो एक किश्तीमें बैठ जाइये। किश्तीमें घुसते ही वहांके वातावरणमें आपका फोटो खींच लिया जायगा। किश्ती आपको विभिन्न नहरोंमेंसे हो-होकर सारे शहरकी सैर करा देगी। प्रत्येक किश्तीमें एक दुभाषिया रहता है जो तीन-चार भाषाओंमें हर चीजका परिचय देता है। जबतक आप अपनी लगभग दो घंटेकी यात्रा पूरी करेंगे तबतक किश्तीके सब मुसाफिरोंके फोटो दरवाजेके पास टंगे हुए दिखायी देंगे। इस प्रकारके वातावरणमें खिंचे हुए अपने फोटो देखकर ही आदमीका मन ललचा उठता है और वह बिना किसी वकालतके अपने फोटो खरीद लेता है।

बड़े शहर देशके ठीक नमूने नहीं होते इसलिये मैं कुछ ग्राम देखनेको भी उत्सुक थी। वहां भी वही राय बनी कि समृद्ध लोगोंके यहां ऊपरी आदर-सत्कार चाहे जितना मिल जाय पर उनके हृदय संकुचित ही होते हैं। मध्यम वर्गके साथ ही खुलकर मिला जा सकता है। खैर, मैं इस देशका थोड़ासा चक्कर लगाकर वापिस पेरिस जा पहुंची। वहां मेट्रोमें बैठकर अपने घरका रास्ता लिया। यहां मेट्रोके बारेमें कुछ बताती चलूं। जैसा कि मैंने कहा था, वह जमीनके नीचे चलनेवाली रेल होती है। इसका जाल सारे पेरिसमें फैला हुआ है। जगह-जगह सड़कोंपर आपको सूचना लिखी हुई मिलेगी कि यहांसे मेट्रोके लिये जाया जा सकता है। आप वहांसे नीचे उतर जाइये। नीचे आप एक स्टेशनपर जा पहुंचेंगे जहांसे थोड़ी-थोड़ी देरमें रेलोंका यातायात होता रहता है। अंदर काफी भीड़ होती है विशेष रूपसे कारखानोंके शुरू होने और बंद होनेके समय तो कंधेसे कंधा छिलता है। स्टेशनपर नक्शे टंगे होते हैं जिनसे आपको पता लग सकता है कि आप कहां हैं और अपने अभीष्ट स्थानतक पहुंचनेके लिये आपको किस रास्तेसे जाना होगा। कहीं-कहीं तो नक्शेके साथ बिजलीके बटन लगे हैं, आप अपने अभीष्ट स्थानका बटन दबा दीजिये और नक्शेपर सारा रास्ता चमक उठेगा। आपको पता लग जायगा कि आपको किस गाड़ीसे जाना चाहिये और कहां बदलना चाहिये। इन रेलोंमें भारी सामान लेकर चलना असंभव है। स्टेशनोंपर कभी-कभी आपको सहायता करनेवाले भी मिल जाते हैं और कभी-कभी दूध पीनेवाले मजनूं भी मिल जाते हैं जिनसे सावधान रहना जरूरी है।

मुझे छः महीनेके लिये छात्रवृत्ति मिली थी और मेरे छः महीने पूरे होने ही वाले थे कि मुझसे पूछा गया कि मैं अपने पाठ्य-क्रमसे संतुष्ट हुई या नहीं। मैंने उन्हें बता दिया कि मैं जितना सीख पायी वह था तो अच्छा पर मेरी आवश्यकताओंके लिये काफी न था। क्योंकि मुझे आश्रममें हिंदुस्तानी बच्चोंको फ्रेंच पढ़ानी होती है और यहां मुझे अधिकतर बड़ोंकी शिक्षाका ही अनुभव मिल सका है। वहांके अधिकारीवर्गने मुझे सलाह दी कि मैं छोटे बच्चोंकी शिक्षा देखनेके लिये बजांसो जाऊं पर मुश्किल यह थी कि वहां अगस्तमें ही जाया जा सकता था क्योंकि अब वहां छुट्टियां शुरू होनेवाली थीं। मुझे प्रयास करनेसे तीन महीनेकी छात्रवृत्ति और मिल सकती थी पर तीन महीने अगस्तसे पहले ही समाप्त हो जाते। खैर, मैंने प्रार्थना-पत्र दे दिया कि मैं एक महीना अपने खर्चपर रहकर प्रशिक्षण प्राप्त करनेको तैयार हूं। बंजासोमें भी इसकी सूचना दे दी गयी। स्वीकृति मिल गयी। यहांके सभी अधिकारी विदेशी छात्रोंकी सहायता करनेको तत्पर रहते हैं। उन्होंने मेरी योजना सुनी तो बताया कि एक महीना अपने खर्चपर रहना तो टेढ़ी खीर होगी। मैंने भी देखा बात ठीक थी। वहां हर चीजका दाम इतना अधिक है कि मकानके किराये और भोजन-व्ययमें ही मेरा दिवाला निकल जाता। इसलिये मैंने वहां जानेसे इंकार कर दिया। उन लोगोंको जब इस बातका पता लगा कि एक विदेशी विद्यार्थीको इच्छा होते हुए भी केवल धनकी कठिनाईके कारण उनकी शिक्षासे लाभ उठानेका अवसर न मिलेगा तो उन्हें बड़ा खेद हुआ और बजांसोंवालोंने मेरे रहने और खानेकी व्यवस्थाका भार अपने ऊपर ले लिया। लीजिये, अंधा क्या चाहे, दो आंखें! मुझे अपनी इच्छाके अनुसार शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर मिल गया।

सोरबोनका पाठ्य-क्रम समाप्त हुआ और मुझे मईके महीनेमें सरकारी खर्चपर पेरिससे लगभग ३०० किलोमीटर दूर प्वांतियेके इलाकेमें भेजा गया। हिंदुस्तानमें हम लोगोंको यात्रामें बड़े-बड़े बक्से, बिस्तर-गट्ठर, गठरियां लेकर चलनेका अभ्यास है। परंतु वहां सारा भार अपने-आप ही ढोना होता है इसलिये एक छोटेसे बक्सेमें कुछ कपड़े और जरूरी सामान लेकर ही यात्रा की जाती है। मैं भी अपना सामान उठाकर चल पड़ी। इस बार मैं सरकारी मेहमान बनकर जा रही थी इसलिये यह निश्चित ही था कि स्टेशनपर मुझे लेनेके लिये कोई आयगा। उसके हाथमें वहांकी शिक्षण-पत्रिकाका एक अंक होगा। मैं भी अपने हाथमें वह पत्रिका रखूं। इस निशानीसे हम दोनों एक-दूसरेको पहचान सकेंगे। परंतु मैं वह पत्रिका लेना ही भूल गयी। पांडिचेरीसे मद्रास लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर है, यहांसे वहां जानेमें पूरी रात लग जाती है, मोटरसे जायें तो भी साढ़े तीन या चार घंटे तो लगते ही हैं। परंतु यहां लगभग तीन सौ किलोमीटरमें रेलसे मुश्किलसे तीन घंटे लगे होंगे। मैं अकेली ही हिंदुस्तानी थी इसलिये मुझे लेनेके लिये आयी हुई महिलाके ड्राइवरने मुझे दूरसे ही पहचान लिया और अपने साथ ले जाकर मोटरमें बैठा दिया। पेरिसकी अपेक्षा यहांके लोगोंके पास समय अधिक था। यहां बहुत शिष्टाचार दिखायी दिया। पेरिसमें किसीको किसीके जीने-मरनेकी परवाह नहीं होती और यहां मुझसे पूछा जा रहा था कि मैं कहीं तीन घंटोंकी यात्रामें थक तो नहीं गयी!

यहां मुझे मेरे महीनेका कार्यक्रम दिया गया। कहीं समय खाली नहीं छोड़ा गया था। पूरे घंटे और मिनटके हिसाबसे यह निश्चित था कि मैं किस दिन किस विद्यालयको देखूंगी। मैं वहांके प्रशिक्षण विद्यालय (नार्मल स्कूल) के विद्यार्थियोंके साथ ठहरी थी। वहां खाने-पीनेकी कोई कमी न थी। उन्हें पहले ही बता दिया गया था कि मैं निरामिष-भोजी हूं। मेरे लिये तरह-तरहके भोजन प्रस्तुत थे। मैंने भी डटकर खाया और खूब दूध पिया। अपने खर्चसे खाना हो तब तो फ्रांस हम लोगोंके लिये बहुत ही महंगा पड़ता है पर यहां तो मैं सरकारी मेहमान थी इसलिये किसी चीजकी कमी न थी। इतनी आवभगत देखकर सिर्फ एक बात खटक रही थी कि मेरे साथियोंमेंसे कोई मेरे इस बड़प्पनको देखनेके लिये मौजूद न था।

खैर, यहांसे मुझे आंगुलेय नामक एक स्थानपर एक छोटे बच्चोंके विद्यालयमें ले जाया गया। वहां तीनसे छः वर्षतकके बच्चे रहते हैं। वहां उनके लिये बड़े सुन्दर-सुन्दर बगीचे हैं जिनमें इधर-उधर रंग-बिरंगे अक्षर और अंक आदि लिखे हुए हैं। बच्चे खेलते-खेलते ही इनसे परिचित हो जाते हैं। यहां आनेसे पहले बच्चोंके लिये यह आवश्यक होता है कि वे यह सीख आयें कि वे अपने कपड़े खराब न करें और इधर-उधर गंदा न करें। बच्चोंको तरह-तरहके रंग दिये जाते हैं ताकि वे अपनी मौजसे चित्र बनाते रहें। सिलाई आदिका भी प्रथम परिचय हो जाता है। कुछ खेल-कूद और "काम" के बाद नन्हें-नन्हें पलंगोंपर सब बच्चे सो जाते हैं। वहां एक पर्दा डाल दिया जाता है जिससे कमरेमें अंधेरा हो जाता है। इनको सोते हुए देखकर बड़ा मजा आता है।

जब मैं वहांसे चलने लगी तो बच्चोंको बताया गया कि मैं हिंदुस्तानसे आयी हूं। उन बेचारोंने हिंदुस्तानका नाम कहां सुना होगा। फिर उनसे पूछा गया कि क्या वे मुझे कुछ उपहार देना चाहेंगे। बहुतसे तैयार हो गये। किसीने फूल, किसीने पत्ते, किसीने कुछ और किसीने कुछ दिया। फूल तो मैंने अपने साथ ले लिये बाकी चीजें अधिकारियोंने पीछेसे भेजीं। उनमें बच्चोंके बनाये हुए मेरे दो चित्र थे। चित्र तो खैर बचकाने ही थे पर उनसे बच्चोंकी सूक्ष्म निरीक्षण-दृष्टिका पता चलता था। उन्होंने मेरी शलवार, कमीज, थैली, चोटी और माथेके टीकेको अच्छी तरह याद रखा था।

इसके बाद हम लोग कृषि-विद्यालय गये। यहां बारह-तेरह वर्षके बच्चे आते हैं। इन्हें कृषिके साथ-साथ बढ़ईगिरी, सिलाई, घरका काम-काज, रसायन, भौतिकी आदिकी शिक्षा दी जाती है।

बच्चेको इसके लिये तैयार किया जाता है कि वह कृषक बनकर घरकी देख-रेख भी कर सके। सारे फ्रांसमें ८ से १२ तक की आयुके बच्चेका खास तौरपर निरीक्षण किया जाता है कि कौन किस विषयमें अधिक योग्य हो सकता है और फिर उसीके अनुसार प्रगति करनेमें उसकी सहायता की जाती है।

मैं जिस छात्रावासमें ठहरी हुई थी उसकी लड़कियोंने भी मुझे अपने नाच-गाने, नाटक आदि दिखाये। मैंने यह भी सुना कि लोक-नृत्य अब लोक-जीवनसे हटकर केवल विद्यालयकी चारदीवारी-तक ही सीमित हो गये हैं। यहांकी लड़कियोंने भारतके बारेमें बहुतसे प्रश्न किये परंतु वही ढाकके तीन पात। ऐसे प्रश्न जिन्हें सुनकर कभी-कभी झुंझलाहट आ जाती थी। वही घिसे-पिटे छुआछूत, जात-पांत, नारी-जीवन, समाजमें नारीका स्थान, गायकी पूजा आदि विषयोंपर प्रश्न किये जाते थे मानो मिस मेयोका भूत अभीतक मंडरा रहा हो।

(अपूर्ण)

* * *

विरति व्यायाम

—श्री प्रणवकुमार भट्टाचार्य

बड़ा-सा कारखाना, लोग मशीनोंपर काम किये जा रहे थे, चारों ओर मशीनोंकी आवाज और कर्मव्यस्तता थी।

अचानक लाउड स्पीकरपर एक आवाज गूंज उठी, भाइयो, आप लोगोंके विरति-व्यायामका समय हो गया है, जरा काम बंद कीजिये न!

लोगोंने काम बंद कर दिया, वे अपने-अपने स्थानोंपर तैयार होकर खड़े हो गये। बज उठा एक स्फूर्तिदायक, प्राणवान् संगीत, आने लगा उसीके ताल-तालपर व्यायामशिक्षकका निर्देश . . . . हाथ सरके ऊपर उठाइये—छाती फुलाते हुए सांस लीजिये—शरीरको सामने टेढ़ा कर दीजिये—छाती सिकोड़कर सारी सांस निकाल दीजिये . . . . . आदि आदि। कभी-कभी व्यायाम-शिक्षक ऐसे स्थानसे सबको निर्देश देते हैं जहांसे सब दिखायी देते हैं।

करीब पांच मिनट बाद पुनः आदेश आया—आपका विरति-व्यायाम समाप्त हो गया—अब काम शुरू कीजिये . . . . .। लोग पुनः अपनी-अपनी मशीनोंमें व्यस्त हो गये।

कामके बीचमें कुछ मिनटोंके इस व्यायामको विरति-व्यायाम कहते हैं। यूरोपके कारखानोंमें तो विरति-व्यायामको प्रथाके नाते व्यवहार किया जाने लगा है। सोचा जा सकता है कि इससे कारखानोंका उत्पादन घटेगा पर नतीजा यह निकला है कि इससे उत्पादन बढ़ता ही गया है। साथ ही इससे दुर्घटनाओंमें कमी भी देखी गयी है और कम्पनियां हर्जाना देनेसे भी बच रही हैं। विरति-व्यायामसे शरीर और मनकी नीरसता तथा एकरसता दूर होती है और इसके स्फूर्तिकारी प्रभावसे ही ये परिणाम संभव होते हैं।

यूरोपके स्कूलोंमें भी कुछ घण्टोंके बाद क्लासरूममें ही अपनी-अपनी मेजके सामने बैठे या खड़े होकर चंद मिनटोंके लिये छात्र विरति-व्यायाम करते हैं। इससे उनकी चंचलता कम होकर स्थिरता आती है और पढ़नेमें मन लगता है।

भारतवर्षमें अभी विरति-व्यायामकी चर्चा भी नहीं है, पर तुम पढ़ने-लिखनेवाले बच्चे इसको आजमा सकते हो। दो घंटोंके बाद जब पढ़ाईमें मन न लगे तो जरा हाथ-पांव फैलाकर इसे करो, फिर देखो कि किस तरह पढ़ाईमें मन लगता है।

अब व्यायाम सीखो। पहले है **आंखोंका व्यायाम**। अधिक पढ़नेसे आंखोंपर जोर पड़नेसे सरमें दर्द होने लगता है। लेकिन अगर तुम बीच-बीचमें जंगलेके बाहर देखो तो आंखोंमें दर्द नहीं होगा। इसके अलावा कुछ और कसरतें भी हैं। जैसे — (१) आंखें फैलाकर देखो और फिर जोरसे आंखें बंद कर लो। (२) सिर स्थिर करके आंखोंकी पुतली बायेंसे दाहिने और दाहिनेसे बाएं बारी-बारीसे घुमाओ। (३) पुतलीको एक बार ऊपर उठाओ, फिर नीचे झुकाओ। (४) फिर पुतलीको गोल करके बायेंसे दाहिने एक बार और दाहिनेसे बायें दूसरी बार बारी-बारीसे घुमाओ।

ठंडे पानीके छींटे भी आंखोंको लाभ पहुंचाते हैं।

अब गर्दनकी कसरत — अगर गरदनमें दर्द हो तो ये कसरतें करो —

(१) सीधे बैठकर गहरी सांस लेते हुए सिरको पीछे झुकाओ; फिर सांस छोड़ते-छोड़ते सिरको सामने झुकाकर ठोड़ीको छातीपर दबाये रखो।

(२) सीधे बैठकर शरीरको स्थिर रखकर सिरको बायीं तरफसे चक्राकार घुमाओ। फिर दाहिनी तरफसे घुमाओ। सिरको पीछे ले जाते समय सांस लेनी तथा सामने लाते समय सांस छोड़नी चाहिये।

अब कंधकी कसरत करो — बहुत देरतक पढ़नेसे कंधोंके सामनेकी तरफ झुकावके कारण सांसोंकी गंभीरता कम हो जाती है और इसीलिये थकावट महसूस होती है। इसको दूर करनेके लिये यह व्यायाम करो।

(१) सीधे बैठकर सांस खींचते हुए कंधोंको उठाकर कानको छुनेकी चेष्टा करो और फिर कंधोंको छाती फुलाते हुए पीछे ले जाओ। अब सांस छोड़ते हुए कंधोंको सामान्य स्थितिमें करके सामने ले आओ।

(२) बीचमें खड़े होकर अंगड़ाई लेते हुए सांस लेते-लेते हाथोंको कंधेकी लाइनमें लाकर जरा खींचो। इस स्थितिमें ही जोर करके दोनों हाथकी मुट्ठी बांधो और अंगुलियां खोलते हुए हाथोंको छोड़ दो। फिर इसी अवस्थामें नीचेके हाथको ऊपर करके हाथमें चटकाकर छोड़ दो।

अब पीठकी बात — बहुतसे लोग पीठको झुकाकर या तिरछा करके बहुत तरहसे बैठते हैं। इसीसे पीठमें दर्द होता है और थकावट आती है। अगर रीढ़को बराबर सीधा रखनेका अभ्यास कर लें तो बहुत देरतक एक अवस्थामें बैठे रहनेपर भी असुविधा नहीं होगी। पर इसके कारण थकावट आनेपर तुम **मेरुदण्डका व्यायाम** कर सकते हो :—

(१) खड़े होकर सांस लेते हुए शरीरको खूब पीछे झुकाओ। अब सांस छोड़ते-छोड़ते शरीरको सामनेकी ओर नीचे झुका दो।

(२) सीधे होकर सांस लेते-लेते शरीरको बायीं तरफ झुकाओ, फिर सांस छोड़ते-छोड़ते दायीं तरफ झुकाओ।

(३) कुर्सीपर बैठकर पीठ सीधी करके सर सीधा रखते हुए शरीरको बायीं ओर मोड़ते-मोड़ते गहरी सांस लो, फिर सांस छोड़ते-छोड़ते शरीर सीधा करके दाहिनी ओर मोड़ दो।

अब **पैरोंका व्यायाम लो** — कुर्सीपर बैठनेसे शरीरका निम्न भाग उसपर दबा रहता है। देरतक इस अवस्थामें रहनेपर पैरोंमें रक्त-संचालन अच्छी तरह नहीं होता, इसीसे इस अंगको भी ठीक रखना आवश्यक है।

(१) कुर्सीसे दो-चार बार उठ खड़े होओ और बैठ जाओ। उठनेके समय पुट्ठों और जांघोंकी मांसपेशियोंको जरा कड़ा रखो।

(२) कुर्सीपर बैठे-बैठे घुटनेसे नीचेका पैर उठाकर जांघोंकी लाइनमें ले आओ और फिर गिरा दो। पैर उठानेके समय सांस लो और गिरानेके समय छोड़ दो।

(३) कुर्सीपर बैठे-बैठे पैर उठाकर सामने पीछे झुकाओ, फिर एक बार बायीं ओरसे और एक बार दायीं ओरसे पंजोंको घुमाओ।

अंतमें शरीर सीधा करके बैठकर कुछ गहरी सांस लो और छोड़ दो, सांस लेते समय छाती फुलाओ और छोड़ते समय छाती खाली कर देना।

इन व्यायामोंको दो-चार बार करना ही काफी होगा। पांच मिनटसे अधिक समय लगना उचित नहीं है।

अब जरा इसका अभ्यास करके देखो तो! और हां, परीक्षाका फल निकलनेपर हमारी याद मत भुला देना.....हां ऽऽऽ ....।

◆

गालिब साहबको आम बहुत पसंद थे। एक दिन आमोंकी ऋतुमें गालिब साहब बहादुरशाहके साथ उनकी अमराईमें टहल रहे थे। तरह-तरहके रंग-बिरंगे आमोंकी बहार थी। गालिब साहब अचानक खड़े हो गये और बहुत ध्यानसे एक-एक आमको देखने लगे। बादशाहने पूछा—क्या देखते हो मिर्जा? गालिब बोले—सरकार बचपनसे सुनता आया हूं:—

बरसरे दाना बनविइता अयां, किई फलां इब्न फलां, इब्न फलां ।

यानी दाने-दानेपर नाम लिखा है कि यह अमुकके बेटे, अमुकके पोते अमुकको मिले। मैं ढूंढ़ रहा हूं कि कहीं किसी आमपर मेरा भी नाम है या नहीं।

गालिब साहब घर पहुंचे तो बादशाहके यहांसे आये हुए आमोंकी एक टोकरी उनका इंतजार कर रही थी।

★

किसीने गालिब साहबसे पूछा 'रथ' स्त्रीलिंग है या पुल्लिग? बोले—भाई, इसमें सोचनेकी क्या बात है? रथमें स्त्रियां बैठी हों तो स्त्रीलिंग और पुरुष बैठे हों तो पुल्लिग।

★

बात १८५७ की है। दिल्लीके आसपास राजद्रोहके आरोपमें बहुतसे मुसलमान पकड़े जा रहे थे। कुछ लोग गालिब साहबको भी पकड़ ले गये। अंग्रेज कर्नलने इनकी अजीब-सी वेषभषा देखी तो हंस दिया और पूछा, 'वेल, टूम मूसलमान?' उन्होंने कहा—आधा। साहबने पूछा—"इसका क्या मटलब?" मिर्जा बोले "साहब शराब पीता हूं सूअर नहीं खाता।" साहबको मजा आया और इन्हें छोड़ दिया।

हाथ ठंडे कर लें

—श्री अनुबेन पुराणी

राजपूतोंमें बहनोई या सालेको कुंअर साहब कहते हैं। छत्रसालके एक ऐसे ही कुंअर साहब थे। कुंअर साहब युद्धमें बड़े ही वीर, बातके पक्के और स्वामिभक्त थे।

एक बार कुंअर साहब छत्रसालके साथ किलेपर हमला करने आये। किलेकी बनावट कुछ ऐसी थी कि महीनोंतक युद्ध होता रहा किंतु उसका कंकड़तक न हिला। आते-आते वर्षा ऋतु आ गयी। वीरताका नशा भी ठंडा हुआ। ऐसी एक रिमझिम बरसाती शामको छत्रसाल अपने नियमानुसार सब सरदारोंके साथ जीमने बैठे। उनका नियम था कि जबतक कुंअर साहब न आवें तबतक भोजन शुरू न हो। कुंअर साहबको न देखा तो झट चोबदारको कुंअर साहबके तंबूकी ओर दौड़ा दिया। वर्षाके दिनोंमें गांजा पीनेवालोंको गांजेमें एक विशेष मजा आता है। चोबदारने तम्बूमें जाकर देखा कि कुंअर साहब गांजा लिये बैठे हैं। हाथ जोड़कर विनम्रतासे वह सामने खड़ा हो गया। नशेसे भरी गुलाबी आंखें खोलकर कुंअर साहबने पूछा — "क्या बात है?" चोबदार बोला — "हुजूर, महाराज आपको जीमनेके लिये बुला रहे हैं।" कुंअर साहबने आंख मींचते हुए कहा — "जाओ, कहो — अभी तो दम ठुक रही है।" चोबदार क्या करता? वापिस गया और संदेश सुना दिया। छत्रसाल दस-पन्द्रह मिनट वैसे ही बैठे रहे। फिर चोबदारको भेजा। इस बार दूसरी दम ठुक रही थी। जब तीसरी बार चोबदार आया तो वह भी कुछ खिझा हुआ-सा था। कुंअर साहबने गंदी गाली निकालते हुए कहा— "जिस सालेकी अटकी होवे वो यहां लावे।" अबकी चोबदार जाकर चुपचाप खड़ा ही रहा। महाराज छत्रसालने पूछा — क्यों, क्या कहा? चोबदारने हाथ जोड़कर कहा — "कहा तो बहुत कुछ किंतु हुजूर, मुंहपर नहीं ला सकता।" छत्रसालने आग्रह किया तो चोबदार बोला — "हुजूर, मैं छोटा-सा आदमी हूं, आपके जैसे बड़े आदमियोंकी बात सुनाऊं तो मेरा सिर सलामत न रहेगा।" छत्रसालने उसे अभयवचन दिया और सच-सच बता देनेका हुक्म दिया। चोबदारने सहमते हुए

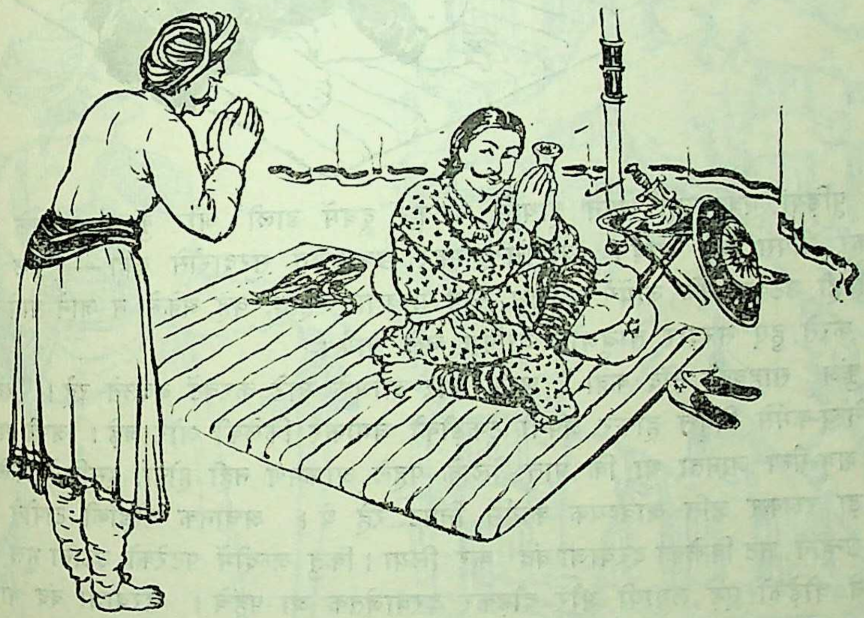

कुंअर साहबके वाक्यको दोहराया। सुनते ही अन्य लोग घबरा गये। सबने सोचा, अब महाराजके गुस्सेका ठिकाना न रहेगा। पता नहीं, क्या हो, क्या न हो! सबने देखा कि महाराज शांत ही रहे। झटसे पण्डेसे एक थाली तैयार करवायी और रिमझिम बरसते पानीमें चल पड़े। कुंअर साहबने महाराजको अपने सामने पाया तो गांजेकी सारी खुमारी उतर गयी। निःशब्द खाने बैठ गये।

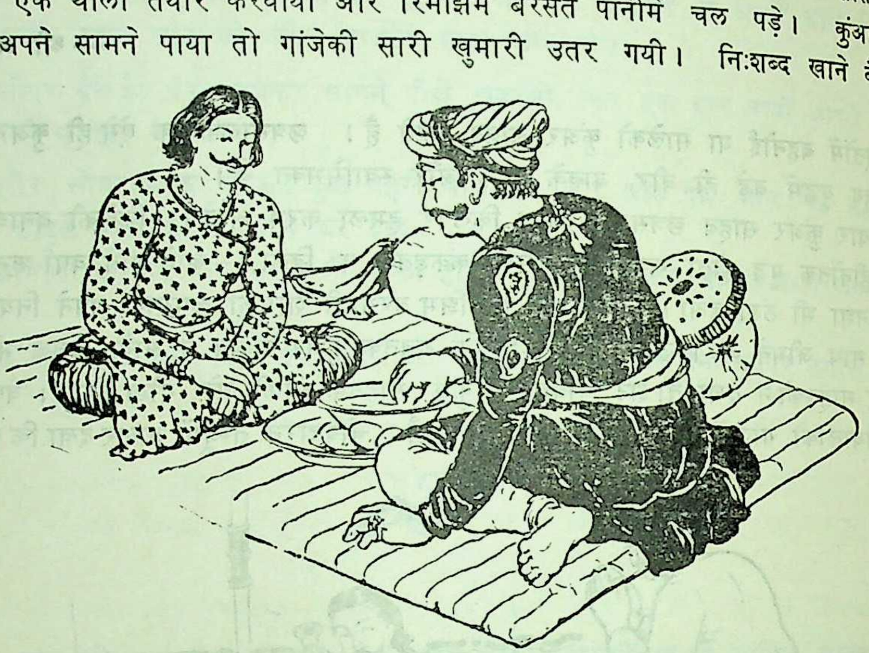

गरम-गरम पूड़ियां महाराजने अपने हाथोंसे मलकर दूधमें डालीं[1] और कुंअर साहबके खा चुकनेपर बरतन लेकर वापस चले आये। वापिस आकर छत्रसालने सरदारोंसे कहा — "कल कुंअर साहब बहुत जल्दी ही उठकर चले जायेंगे। तुम लोग सावधान रहना, वह अकेले न जाने पायें।" छत्रसालकी प्रशंसा करते हुए सरदार तम्बुओंमें वापिस चले आये।

इधर कुंअर साहबको नींद कहां? शरम और क्षोभके मारे करवटें बदलते रहे। रातमें ही उठ गये और नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर अपनी टुकड़ीको जगाकर किलेकी ओर बढ़े। अभी प्रातःवेला नहीं हुई थी। शत्रु-सैन्य जानता था कि प्रातः-बेलाके पहले आक्रमण नहीं होगा, इसलिये किलेके बाहरकी खाईपर पटड़ा रखकर अति आवश्यक कार्यसे निपट रहे थे। अचानक घोड़ोंकी टापोंने उन्हें चौंका दिया और उन्होंने झट किलेका दरवाजा बंद कर लिया। किंतु जल्दीमें पटरेको उठाना भूल गये। कुंअर साहबने अपने घोड़ेको एड़ लगायी और दौड़कर दरवाजेतक आ पहुंचे। दरवाजा बंद था। उन्होंने महावतसे हाथीको आगे बढ़ानेके लिये कहा।[2] इन दरवाजोंमें बड़े-बड़े शूल लगे रहते थे। वे इतने तीक्ष्ण होते थे कि भालोंकी भांति हाथीके सिरमें घुस जाते थे। उस पीड़ासे व्यथित होकर हाथी दूसरा हमला करनेकी हिम्मत खो बैठता था। महावतने हाथीको आगे बढ़ाया। पूरे वेगसे भागते हुए उसने अपना मस्तक दरवाजेपर टकराया। नोकीले भाले सिरमें घुस गये और चिंघाड़ता हुआ हाथी वापिस आ गया। जब कुंअर साहबने यह देखा तो झट दूसरा उपाय सोच लिया। उन्होंने महावतसे कहा – मैं जैसा कहूं, वैसा ही करना और खुद दौड़कर दरवाजेपर चढ़ गये। दोनों हाथोंसे शलाका पकड़े हुए तीक्ष्ण भालोंपर लेट गये और वहांसे चिल्लाये — महावत! हाथीको आगे बढ़ाओ। महावत यह सारा मामला देखकर दंग रह गया। उसकी हिम्मत न पड़ी। कुंअर साहबने डांटकर फिरसे

---

[1] उन दिनों भोजनके अंतमें इसी तरह खानेका रिवाज था।

[2] पुराने जमानेमें दरवाजे इतने मजबूत होते थे कि उन्हें हाथी ही तोड़ सकते थे।

हुक्म दिया — लाचार महावत हाथीको आगे लाया। हाथीने पास आते ही अपने मालिकको पहचाना और चुपचाप वापिस चला गया। कुंअर साहबने कहा — मारो, महावतने अंकुश मार-मारकर हाथीको क्रुद्ध कर दिया। हाथी पूरे वेगसे आगे बढ़ा और दरवाजेको ऐसा धक्का दिया कि फाटक खुल गये। सारी सेना अंदर घुस गयी। अंदर घमासान युद्ध हुआ। किंतु विजय कुंअर साहबकी हुई।

इधर बड़े तड़के लोगोंने छत्रसालको समाचार दिया कि कुंअर साहब अपने तम्बूमें नहीं हैं। यह सुनते ही छत्रसालने अपने कुछ साथियोंको साथ लेकर शत्रुदुर्गकी ओर दौड़ लगायी। उनके घोड़े हवासे बातें कर रहे थे। उधर किलेका फाटक टूटा इधर छत्रसाल वहां आ पहुंचे। विजयी सेनाने महाराजको आगे करके किलेमें प्रवेश किया। महाराज इधर-उधर देखते गये पर कुंअर साहब कहीं दिखायी न दिये। किसीने भेद बता दिया तो महाराज उल्टे पैरों फाटकपर वापस आये। फाटकपर जड़े हुए कुंअर साहबके प्राण मानो छत्रसालकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने मालिकको सामने देखकर उनके मुंहसे निकला, "महाराज क्षमा करें! रातको हाथ जल गये होंगे, जरा ठंडे कर लें।"

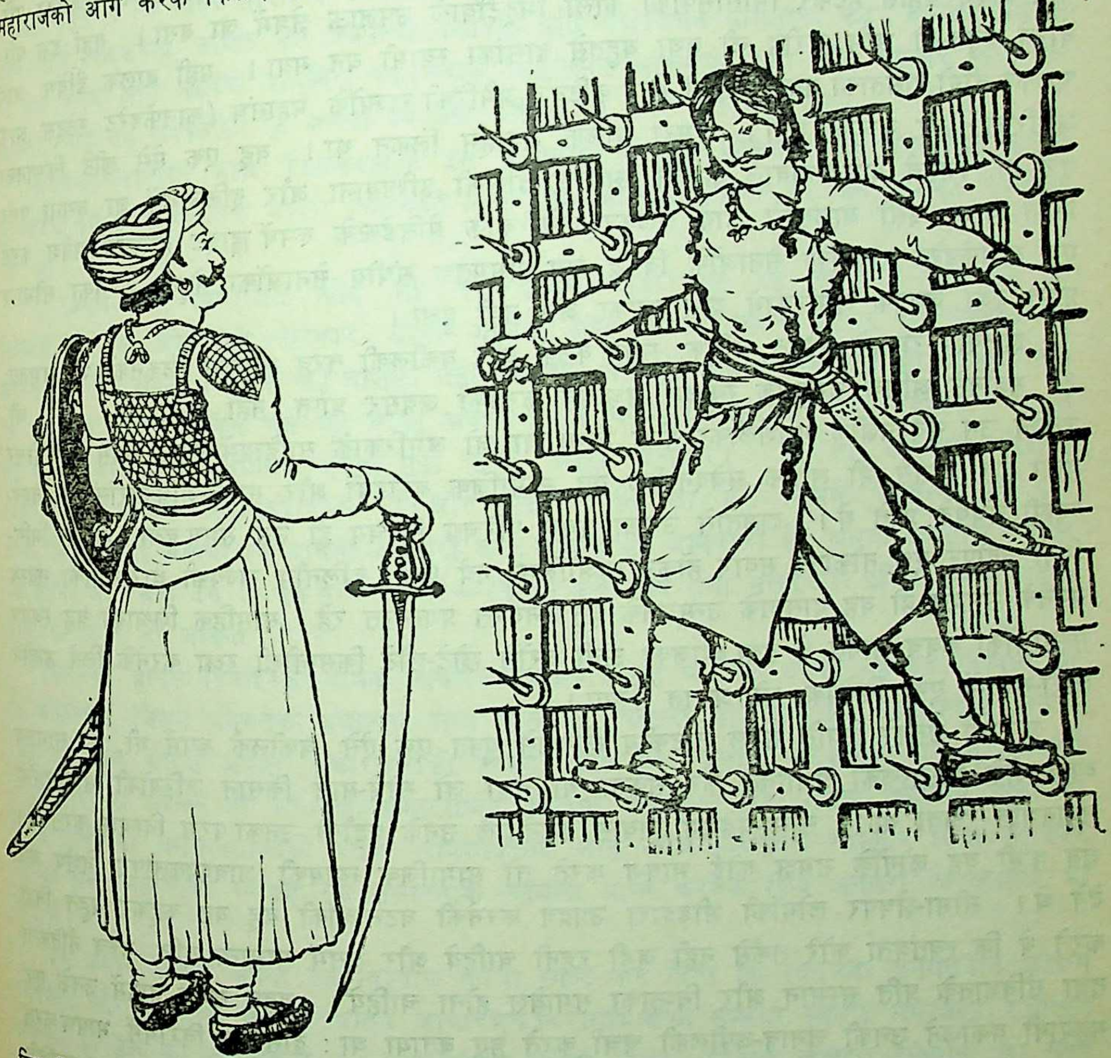

(श्री अजितसिंहसे सुनी हुई कहानीके आधारपर)

दासोंके मुक्तिदाता

अब्राहम लिंकन

—श्री हार्वे विश

१८०८-९ में अमेरिकाके पश्चिमी सीमाप्रदेश कैण्टुकीमें एक-दूसरेसे लगभग ८० मील दूर बसनेवाले दो अमेरिकी परिवारोंमें दो बालकोंका जन्म हुआ, जिन्हें आगे चलकर विधाताका एक विचित्र विधान एक-दूसरेके संपर्कमें लानेवाला था। इनमेंसे पहला बालक जैफर्सन डैविस था, जिसका परिवार बादमें वहांसे हटकर मिसिसिपीकी काली मिट्टीवाले उपजाऊ क्षेत्रमें जा बसा। यहां इस परिवारने बहुत-सी भूमि खरीद ली तथा बहुतसे दासोंका स्वामी बन गया। यही बालक डैविस आगे चलकर नीग्रो दासताको बनाये रखनेके लिये कटिबद्ध अमेरिकी राज्योंके महासंघ (कानफेडरेट स्टेट्स आफ अमेरिका) का अध्यक्ष बना। दूसरा बालक अब्राहम लिंकन था। वह एक ऐसे छोटे किसानका पुत्र था, जिसने दास-प्रथावाले क्षेत्रको छोड़कर दक्षिणी इण्डियाना और इलिनौयमें जा बसना पसंद किया था। इसी बालकको आगे चलकर अमेरिकाके प्रेसिडेण्टके रूपमें ह्वाइट हाऊसमें प्रवेश करने एवं कानफेडरेट राज्योंकी सेनाओंके विरुद्ध उस समयतक संघीय सेनाओंका नेतृत्व करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ जबतक अमेरिकामें दास-प्रथाका अंत नहीं हुआ।

इलिनौय राज्यके औसत श्रमिक, स्टोर क्लर्क और वकीलकी तरह अब्राहम लिंकनको भी संभवतः १० महीनेसे अधिक समयतक स्कूलमें अध्ययन करनेका अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। फिर भी, उन्होंने उस संवेदनशील गद्यशैलीको सीख लिया था जो अमेरिकाके साहित्यमें स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होती है। इससे भी अधिक संवेदनशील वह सामाजिक बुराइयों और मानव-अधिकारोंसंबंधी विश्वव्यापी संघर्षके प्रति थे। दासतासे उनका प्रथम परिचय निश्चय ही उस समय हुआ, जब वे मिसिसिपी नदीपर एक नौकापर सवार होकर न्यूऔर्लिन्स गये थे। इलिनौय राज्यकी धारासभाका सदस्य बननेके समयसे ही वह दासताके उन्मूलनके हेतु अनवरत प्रयत्नरत रहे। सामूहिक शिक्षाको वह स्वतंत्र संस्थाओंका कवच मानते थे तथा ब्याजकी ऊंची दरोंसे छोटे-छोटे किसानोंकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने धारा-सभामें एक विधेयक भी प्रस्तुत किया।

प्रारंभमें उनकी स्थिति सरल नाटकीय क्षमतासे युक्त एक ऐसे वकीलके रूपमें थी, जो सामान्य व्यक्तियोंके मस्तिष्कको प्रभावित कर सकता था तथा जो सीधे-साधे किसान जूरियोंकी भावनाओंसे सहानुभूति रखता था। सीमा-प्रदेशमें निवास करनेवाले उनके पड़ौसी उनका परम विश्वास करते थे। जब कभी वह लोगोंके समक्ष कोई भाषण करते तो सामाजिक न्यायकी आवश्यकतापर विशेष बल देते थे। सीमा-क्षेत्रपर लोगोंकी भीड़द्वारा उपद्रव करनेकी घटनाओंकी वह यह कहकर बहुत निंदा करते थे कि स्वतंत्रता कोरे तर्कसे नहीं जुड़ी रहनी चाहिये और उसमें सामान्य बुद्धि, उच्च नैतिकता तथा संविधानके प्रति सम्मान और निष्ठाका समावेश होना चाहिये। बहुत समय बादमें उनके एक सहयोगी वकीलने उनकी चुनाव-अपीलकी चर्चा करते हुए बताया था: दासताके विरोधमें भाषण करते समय उनके भूरे नेत्रोंसे ज्वाला फूटने लगती थी, लेकिन जब वह स्वतंत्रता, न्याय और मानव-प्रगतिके बारेमें बोलते थे तो उनकी वाणी आशा और प्रेमसे मुखरित हो उठती थी।

जब ब्रिटेनने अपने उपनिवेशोंमें दासताका अंत कर दिया तो उसके इस कदमने दास-प्रथाके लिंकन जैसे कट्टर विरोधियोंको बहुत प्रभावित किया। १८४६-४९ के कांग्रेस अधिवेशनके सदस्य चुन लिये जानेपर वह पश्चिमी भागमें दासप्रथाके प्रसारको रोकनेके प्रयत्नमें ह्विग पार्टीके सदस्योंके साथ शामिल

पुरोधा हो गये। उनकी यह धारणा थी कि मैक्सिकोके साथ छेड़ा गया युद्ध दास-स्वामियोंका एक षडयंत्र-मात्र था, जिसका उद्देश्य पश्चिमी सीमा-प्रदेशमें दासप्रथाको मान्यता देनेवाले और राज्योंकी स्थापना करना था। इसलिये उन्होंने इस युद्धके विरुद्ध मतदान किया, और जैसा कि उन्होंने बादमें बताया, किलमोट धाराके पक्षमें —— इसमें मैक्सिकोसे प्राप्त किये जानेवाले किसी भी क्षेत्रमें दासप्रथा लागू करनेका निषेध किया गया था –उन्होंने लगभग ४० बार मतदान किया।

इलिनौय वापस लौटकर उन्होंने पुनः अपनी वकालत प्रारंभ कर दी। साथ ही वह नये रूपसे संगठित रिपब्लिकन दलके सदस्य भी बन गये, जिसने श्री जैफर्सनके 'मानव समानता' के सिद्धांतको स्वीकार करनेकी घोषणा की थी। वह अपने समयके उन नृवंश-शास्त्रियोंसे बहुत उद्विग्न रहते थे जो यह कहते थे कि नीग्रो शारीरिक विकासकी दृष्टिसे श्वेतांगोंसे हीन हैं। श्री लिंकनको सबसे अधिक क्षोभ जार्ज फिट्जरह्यू नामक उस उग्रपन्थी वकीलके प्रति था, जिसने दासताका कट्टर समर्थन करनेसे भी एक कदम आगे बढ़कर आधुनिक स्वतंत्रताके सिद्धांतपर आक्रमण किया और यहांतक कहा कि 'दासता, चाहे वह अश्वेतोंकी हो अथवा श्वेतोंकी, उचित है और आवश्यक है।"

मानव-अधिकारोंपर जार्ज फिट्जरह्यूके इस आक्रमणने ही श्री लिंकनको वह तथाकथित 'हाउस डिवाइडेड' नामक राजनीतिक भाषण लिखनेकी प्रेरणा दी, जो उनके द्वारा १६ जून, १८५८ को दिया गया था:

"अपने-आपमें विभाजित कोई भी घर देरतक खड़ा नहीं रह सकता। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई भी सरकार आधी गुलाम और आधी स्वतंत्र रहकर इस धरतीतलपर कायम नहीं रह सकती। मुझे यह आशंका नहीं कि संघ भंग हो जायगा, मुझे यह भी आशंका नहीं कि घर गिर पड़ेगा, लेकिन मुझे यह आशा अवश्य है कि यह घर विभाजित नहीं रहेगा। या तो यह एक प्रकारका हो जायगा अथवा पूरी तरह दूसरी तरहका। या तो दासताके विरोधी दासताके और अधिक प्रसारको रोक देंगे और ऐसी स्थिति ला देंगे जिसमें जनताको यह पूरी तरह विश्वास हो जायगा कि दासता अब पूरी तरह समाप्त हो जानेवाली है, अथवा दासताके समर्थक इसे इतना आगे बढ़ा देंगे कि यह सभी राज्यों —— पुराने और नये तथा उत्तर और दक्षिण —— में कानून-संगत करार दे दी जायगी।

लिंकनका 'हाउस डिवाइडेड' नामक भाषणका अभिप्राय यह था कि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लोकतंत्रमें, जिसमें जनमतको प्रधानता प्राप्त रहती है, विचारों और आदर्शोंकी प्रतिस्पर्धामें अन्ततोगत्वा एक मूल आदर्श अथवा विचारधाराकी विजय होती है। हमारी सरकारका यह मूल आदर्श या विचारधारा सदैवसे ही 'मानवकी समानताका' सिद्धांत रहा है। और यद्यपि जनमतने तत्कालीन प्रतीत होनेवाली असमानताओंको यथार्थ आवश्यकताके नाते सदैव धैर्यपूर्वक स्वीकार किया है, फिर भी वह सभी मनुष्योंकी व्यावहारिक समानताके लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये अनवरत प्रयत्नशील भी रहा है।

इस प्रकार उन्होंने अपना यह विश्वास सर्वथा स्पष्ट कर दिया कि स्वतंत्रता जनमतवाले प्रदेशमें स्वतंत्रता और दासताके मध्य विद्यमान आधारभूत विरोधाभासकी समस्या स्वतंत्र समाजकी शांतिपूर्ण प्रगतिसे ही हल की जा सकती है। दुर्भाग्यवश, संघसे अलग होनेवाले दक्षिणी राज्योंने, जो सदैव दासता-विरोधी तत्त्वोंके दबावके फलस्वरूप जातीय संघर्षोंकी संभावनासे आशंकित रहते थे, यह निर्णय किया कि प्रेसिडेण्ट पदपर श्री लिंकनका चुना जाना उनके लिये एक तात्कालिक खतरा था और इसलिये उन्होंने गृह-युद्धका मार्ग चुना।

प्रेसिडेण्टके रूपमें लिंकनको युद्धकी कटु वास्तविकताका सीधे सामना करना पड़ा। उन्होंने स्वयं युद्धकी सदैव यह कहकर निंदा की थी कि इससे मानवके हीनतम दुर्गुणों —— धोखेबाजी, संदेह और

नृशंसता —— को प्रोत्साहन मिलता है। लेकिन उनको दासप्रथा-समर्थक राज्योंका विरोध करनेके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प दृष्टिगोचर नहीं हुआ और गृह-युद्धके स्वरूपके बावजूद, जिसमें दुश्मन बहुधा देशकी सीमाओंके अंदर ही मौजूद रहता है, वे शांतिकालमें सुलभ रहनेवाली नागरिक स्वतंत्रताओं-को बहुत कुछ अंशोंतक बनाये रखनेमें समर्थ रहे।

उन्होंने दक्षिणी राज्योंके प्रति कभी घृणा अनुभव नहीं की, केवल दासतासे उन्हें अवश्य घृणा थी। उन्होंने अपनी रुचि या अरुचिके आधारपर किसी व्यक्तिके बारेमें कोई राय कायम नहीं की..... यदि कोई व्यक्ति, जिसने कभी उनपर आक्षेप किया हो अथवा उनसे दुर्व्यवहार किया हो, किसी पद के लिये उन्हें सर्वथा उपयुक्त प्रतीत हुआ हो तो उन्होंने उसे उतनी ही शीघ्रताके साथ नियुक्त किया जितनी शीघ्रताके साथ वह अपने किसी मित्रको वह पद सौंपते। युद्ध कालमें, जैसा कि अनेक कहानियोंसे पता चलता है, उन्हें कानफेडरेट राज्योंके घायल सैनिकोंके प्रति भी उतनी ही सहानुभूति रहती थी, जितनी सहानुभूति वह संघकी सेनाके घायल सिपाहियोंसे प्रकट करते थे।

उनके आलोचकोंका कथन था कि संघके प्रति निष्ठा और राजभक्तिकी शपथ लेनेके लिये प्रस्तुत युद्धबन्दियोंको मुक्त करनेके बारेमें (बशर्ते कि उनके मामलोंसे यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाय कि उनके वचनका विश्वास किया जा सकता है) प्रेसिडेण्ट महोदयकी नीति बहुत उदार थी। जब कभी संघके किन्हीं नीग्रो सैनिकोंको उनके भूतपूर्व स्वामी युद्धमें बंदी बना लेते और उनके साथ युद्धबंदियों जैसा व्यवहार करनेसे इनकार कर देते तो प्रेसिडेण्ट उनकी (नीग्रो सैनिकों) रक्षा करनेके लिये अविलम्ब हस्तक्षेप करते थे। उनका कहना था कि रंगके आधारपर और युद्धके किसी कानूनका उल्लंघन न करनेपर किसी युद्धबन्दीको बेचना अथवा दास बनाना परले सिरेकी बर्बरता तथा युगकी सभ्यताके विरुद्ध एक घोर अपराध है। दक्षिणी राज्योंने उनके इस तर्कको स्वीकार कर लिया।

सितम्बर १८६२ में, लिंकनने दासप्रथा समाप्त कर दासोंको मुक्त करनेकी प्रसिद्ध प्रारंभिक घोषणा की। इस घोषणाद्वारा सभी विद्रोही राज्योंमें निवास करनेवाले सभी नीग्रो दासोंको स्वतंत्र घोषित कर दिया गया। इस प्रकार संसारके समक्ष यह भी सिद्ध हो गया कि उत्तरी राज्य न केवल संघके अस्तित्वको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये बल्कि मानव-स्वतंत्रताकी रक्षाके लिये भी युद्ध कर रहे थे। (अंतिम घोषणा १ जनवरी, १८६३ को दी गयी) मध्यवर्गीय जनता तथा श्रमिक इससे अत्यंत उत्साहित हुए और उन्होंने ठोस समर्थन देनेके संबंधमें अनेक प्रस्ताव पास किये। इंगलैंडमें बहुसंख्यक श्रमिकोंने जिनमेंसे बहुतसे गृहयुद्धके फलस्वरूप फैक्टरियोंमें कच्चा माल न प्राप्त होनेके कारण बेरोजगार हो गये थे, लिंकन और संघ सरकारकी भूरि-भूरि सराहना की : मेनचेस्टरके श्रमिकोंने घोषणा की :

"हम आपके स्वतंत्र राज्योंका लाखों श्रमिकोंके लिये एक ऐसे अत्यंत सुखद आवासके रूपमें सम्मान करते हैं, जहां उद्योगोंकी प्रतिष्ठा की जाती है.....आपके शासनकालमें सभ्यता और ईसाई धर्मपर लगे इस काले धब्बे — दासता — के धुल जानेसे अब्राहम लिंकनका नाम आनेवाली पीढ़ियां बड़े सम्मान और श्रद्धाके साथ लेंगी। हमारे और आपके हित समान हैं। यद्यपि हम अलग-अलग स्थानोंपर रहते हैं परंतु वस्तुतः हम एक ही हैं।"

इसका उत्तर देते हुए श्री लिंकनने लिखा था :

"मैं भली प्रकार जानता हूं और मुझे इस बातका गहरा दुःख है कि इस संकटके कारण मैंचेस्टर तथा समस्त यूरोपके श्रमिकोंको कितना कष्ट सहना पड़ रहा है.......वर्तमान परिस्थितियों-में, इस समस्यापर आपके द्वारा व्यक्त किये गये उद्‌गारोंको मैं ईसाई धर्मकी उस विनम्र वीरताका प्रतीक मनता हूं, जिसका किसी भी युगमें और किसी भी देशमें कोई उदाहरण नहीं मिलता।"

मानवीय स्वतंत्रताके लिये चल रहे उस संघर्षके महत्त्वको अमेरिकाकी तरह यूरोपके लोग भी सहज ढंगसे और भली प्रकार समझते थे।

लिंकनके विचारोंके संबंधमें यह विश्वव्यापी संदर्भ उनके ऐतिहासिक डैटिसबर्ग भाषणसे भी भली प्रकार उभरकर सामने आया है। लिंकनने अपने भाषणमें कहा था कि "हमारे पूर्वजोंने इस महाद्वीपपर एक नये राष्ट्रको जन्म दिया। यह नया राष्ट्र स्वतंत्रताकी गोदमें जन्मा और जन्मसे ही इसका आदर्श यही रखा गया कि ईश्वरने सभी मनुष्योंको समान पैदा किया है।" उन्होंने यह भी कहा कि "युद्धसे इस बातकी परीक्षा हो रही है कि यह राष्ट्र अथवा इसी प्रकारसे जन्मा और यही आदर्श माननेवाला कोई भी राष्ट्र चिरकालतक जीवित रह सकता है या नहीं।" उन्होंने युद्धमें वीरगति प्राप्त करनेवाले सैनिकोंको श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिये एकत्र लोगोंको संबोधित करते हुए कहा : "आपको स्वतंत्रता प्राप्त करनेके अपूर्ण कार्यको पूरा करनेका कार्य जारी रखना चाहिये और इस बातका संकल्प करना चाहिये कि 'जनताका शासन, जनताद्वारा शासन, और जनताके लिये शासन' के सिद्धांतका पृथ्वीसे कभी लोप नहीं होगा।" यह एक ऐसा अमर संदेश है जो आज १९६५ में भी उतना ही उपयुक्त और सामयिक है, जितना वह १८६३ में था।

(यू. एस. आई. एस. के सौजन्यसे)

* * *

हाथियोंकी घटनाएं और यमराजकी कहानी :

लक्ष्मीप्रसाद जी बोले

हमेशाकी तरह आज भी सब बच्चे लक्ष्मीप्रसादजीके आनेके समयसे बहुत पहले आ गये थे। यूं ही बातें करते-करते कैथकी बात चल पड़ी। कैथकी चटनी तो सबने खायी थी परंतु 'हाथीके खाये कैथ' किसीने न देखे थे। मीनाने कहा —क्या? हाथीके खाये कैथवाली बात सच्ची हो सकती है? इन्द्रने कहा — क्यों नहीं, जब बच्चे बूढ़े सभी यह बात कहते हैं, किताबोंमें भी लिखी हुई है तो फिर ठीक ही होगी। तुम्हें शंका क्यों होती है? राजेशने कहा — हां, मेरे पिताजी कहते थे कि सारे हिंदुस्तानमें ही यह बात मानी जाती है कि हाथी कैथको बिना चबाये यों ही निगल जाता है। उसके पेटमें कई प्रकारके रस उत्पन्न होते हैं जो कैथके अंदर घुसकर उसका खाने योग्य माल निकाल लाते हैं और उसका लकड़ी जैसा छिलका पूराका पूरा बाहर निकल आता है। उसे तोड़कर देखो तो खोखला मिलता है। यह बात बिलकुल सच्ची है। मेरे पिताजीने अपने कानोंसे सुनी है।

राजेशकी गंभीरता देखकर सब हंस पड़े। मीनाने कहा — नहीं, मैंने उस दिन आसामके जंगलोंमें रहे हुए एक सज्जनसे पूछा था, उन्होंने बताया कि वे बहुत दिनोंतक हाथियोंके साथ रहे थे पर उन्होंने यह कभी नहीं देखा और आसाममें उन्होंने यह बात सुनीतक नहीं। उनका कहना है कि इस बातमें कोई तथ्य नहीं है। फिर हाथियोंके बारेमें इधर-उधरकी बातें चल पड़ीं। नित्यप्रकाशने कहा — अरे! मैं तुम्हें एक सच्ची घटना सुनाऊं। हमारे पन्नाके एक राजा थे महाराज युद्धप्रतापसिंह। उन्हें हाथियोंका बहुत शौक था। जब रथयात्रा होती तो श्याम, बलराम और सुभद्राके रथके पीछे महाराजकी सवारी निकला करती थी। महाराज चांदमूरत नामक हाथीपर बैठा करते

थे। हाथीकी सूंडमें एक विशाल पंखा होता था जिसे वह अपनी पीठपर बैठे हुए महाराजपर डुलाया करता था। महाराजके पीछे और कई हाथी-घोड़े वगैरह हुआ करते थे। एक बार ऐसे ही रथ-यात्रा हो रही थी। हाथी महाराजपर पंखा कर रहा था कि अचानक पंखा महाराजके जा लगा और हाथीकी सूंडके जोरसे महाराज जमीनपर आ गिरे। चारों ओर हाहाकार मच गया। चांदमूरत झट इस तरहसे खड़ा हो गया कि महाराज उसकी टांगोंके बीचमें सुरक्षित रहें और पीछेसे आनेवाले हाथी-घोड़े उनका कुछ न बिगाड़ सकें।

तुलसीने कहा, मैंने एक मजेदार घटना पढ़ी थी। दक्षिणमें कोई मन्दिर है जहां उत्सवके समय मन्दिरका बड़ा हाथी जमीनमें झंडा गाड़ा करता है। यह प्रथा न जाने कबसे चली आ रही है। पिछले साल हाथीकी सूंडमें झंडा पकड़ाया गया। वह निश्चित गढ़ेकी ओर बढ़ा परंतु झंडा उसमें डालनेकी जगह पीछेको हट गया। लोगोंको डर लगा कहीं यह अपशकुन न हो। महावतने फिरसे जोर लगाया पर हाथी किसी तरह झंडा गाड़नेको तैयार न हुआ। आखिर किसीने नजदीक जाकर देखा कि जिस गढ़ेमें झंडा गाढ़ना था उसमें बिल्लीका एक छोटा-सा बच्चा बैठा है। उस बच्चेके प्राण बचानेके लिये हाथीने गालियां भी सहीं और अंकुश भी खाये। जैसे ही बच्चेको निकाल दिया गया कि हाथीने झंडा गाड़ दिया।

"लेकिन कभी-कभी हाथी गुस्सेमें आकर ऐसा बदला लेते हैं कि उसे सुनकर ही हमारी अकल चकरा जाती है", बुलबुल चहक उठी। मैंने कुछ समय पहले सिंगापुरकी एक सच्ची घटना पढ़ी थी। सिंगापुरमें एक बड़ा-सा हाथी था। वह जब किसी सड़कपर निकल जाता तो दोनों ओर भीड़ लग जाती थी। एक बार भीड़मेंसे बहुतसे लोग उसे चने, मूंगफली, गन्ना आदि खिला रहे थे। एक लड़केने सुन रखा था कि हाथी मिर्च खानेसे बहुत बचता है। उसने एक केला काटकर उसमें मिर्च छिपा दी और केला हाथीको दे दिया। केला देकर वह आगे कहीं भीड़में मिल गया। हाथीने केला खा लिया और कुछ उत्पात न किया तो लड़केकी हिम्मत बंध गयी, भाग जानेकी जगह वह भीड़में ही खड़ा रहा। हाथी बड़ी शांत मुद्रासे इधर-उधर देखता हुआ चला जा रहा था। अचानक उसकी नजर भीड़में खड़े हुए उस मिर्च देनेवाले लड़केपर पड़ी। उसने बड़े शांतभावसे उसे पकड़ा, हवामें उठाया और जमीनपर रखकर पांवसे कुचल दिया। सारी घटना इतनी जल्दी हो गयी कि कोई कुछ न कर पाया। हाथी चुपचाप आगे बढ़ गया।

"लेकिन पागल हाथी भी कभी-कभी समझदारीसे काम लेते हैं" – दिलीपने कहा। रीवाकी सच्ची घटना है। महाराजके पास एक हाथी था जिसका नाम था चांदमूरत। एक बार वह पागल हो गया और लगा महाराजके पीछे दौड़ने। महाराज भागे। वह पीछे-पीछे। आखिर एक ऐसी जगह आयी जहां महाराजके बचनेके लिये कोई स्थान न था। एक तरफ दीवार थी दूसरी तरफ पागल हाथी। महाराजने कातर स्वरमें हाथीसे कहा —— अरे चांदमूरत! आज मार ही डालेगा क्या? चांदमूरत एकदम ठिठक गया। महाराजकी ओर देखा और उनके सामने ही चुपचाप बैठ गया।

यह कहानी समाप्त होते-न-होते लक्ष्मीप्रसादजी आ गये। कहानीका आखिरी हिस्सा उन्होंने भी सुना तो बोले —— लो, मैं एक चाण्डाल हाथीकी कहानी सुनाऊं। अजयगढ़के राजा रणजीतसिंहके यहां एक बड़ा ही दुष्ट हाथी था। वह देखनेमें बहुत ही सुन्दर था परंतु उसके काले कारनामोंकी कमी न थी। उसके महावतको छोड़कर कोई उसके पास न फटकता था। महाराजको वह हाथी बहुत प्रिय था क्योंकि उसके जैसा सुन्दर हाथी आस-पासके इलाकेमें न था। उन्होंने उसका नाम रखा था जालिमसिंह।

अजयगढ़से थोड़ी दूर एक नाला बहता था और उसके पास ही कुछ सोते थे जिनमेंसे सालके आठ महीने पानी झरा करता था। अजयगढ़के आस-पासकी सब गायें वहींसे होकर चरनेके लिये जंगल

जाती थीं और जाते समय तथा लौटते समय वहां पानी पीती थीं। गर्मीके दिनोंमें नाला भी सूख जाता था और झरने भी। झरनेके पास रहनेवाला एक कहार धार्मिक भावसे दोनों समय वहां गायोंके लिये पानी भर दिया करता था। एक दिन वह पानी भर ही रहा था कि उसने देखा पीछे जालिमसिंह खड़ा है। उसका महावत अपने हाथीके लिये पीपलकी टहनियां तोड़ रहा था। धर्मभीरु कहारसे यह न सहा गया। उसने कहा — महावत साहब! पीपल मत तोड़िये, इसमें श्रीकृष्णका निवास होता है। हम लोग इसकी पूजा करते हैं। महावत था मुसलमान। उसने कहारकी बात सुनी-अनसुनी कर दी और हाथीकी पीठपर खड़े होकर पीपलकी डालियां काटना शुरू कर दिया। बेचारा कहार राजाके आदमीके सामने कर ही क्या सकता था? उसने सोचा, पीपलका अपमान सहनेकी जगह अपने प्राण दे देना अधिक अच्छा है। यह जानता तो था ही कि जालिमसिंह कैसा खूंखार जानवर है। बस, वह सीधा उसके सामने गया और उसकी सूंडमें अपना सिर दे मारा। उसने सोचा था कि हाथी उसे समाप्त कर देगा पर हुआ उलटा। हाथी अपने महावतको पेड़पर लटकता हुआ छोड़कर भाग गया। महावत सहायताके लिये चिल्लाने लगा। आसपासके लोगोंने आकर उसके प्राण बचाये।

अगले दिन महाराजतक यह बात पहुंची। उन्होंने कहारको बुलाकर बहुत इनाम दिया और महावतको खूब डांट पिलायी। सबको विश्वास हो गया कि यह पीपलका ही प्रताप था।

कहानी समाप्त करते हुए लक्ष्मीप्रसादजी बोले — अच्छा, चलो आज हाथी-पुराण शुरू हो गया है तो आज यही चले। तुममेंसे किसी औरको कोई घटना मालूम हो तो वह सुनाये। लेकिन सच्ची घटनाएं हों।

अब ओड़ीसाके पीयूषकी बारी थी। उसने कहा — हमारे यहां एक गांव है जिसका नाम है हाथीबाड़ी। उस गांवके चारों ओर घना जंगल है और अभीतक कभी-कभी दिनमें भी हाथी या बाघ आ जाते हैं। एक बार हाथीके बच्चे इस गांवमें बड़ा उत्पात कर रहे थे। लोगोंने एक खाई खोद दी। दो बच्चे खाईमें गिर गये और बाहर न निकल पाये। उनकी चिंघाड़ सुनकर दूर-दूरसे कई हाथी आ गये और उन्होंने आस-पाससे पेड़ तोड़-तोड़कर गांववालोंकी झोंपड़ियोंपर मारना शुरू किया। एक मारसे एक झोंपड़ी समाप्त हो जाती थी। आसपासके गांवोंसे कई शिकारी और बन्दूकधारी पुलिसवाले आ गये। उन्होंने हाथियोंको भगाया और फिर बच्चोंको खाईसे निकालकर जंगलमें छोड़ दिया। तब कहीं गांव बच पाया। लेकिन इतना होनेपर भी गांववालोंने खाईको पाटा नहीं बल्कि उसे कुछ और बड़ा कर दिया ताकि हाथी आसानीसे गांवमें न आ सकें। इस घटनाके कुछ ही दिन बादकी बात है, मैं उस गांवमें अपने मामाके यहां गया हुआ था। वर्षा ऋतु थी, चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखायी देती थी। खाई भी बहुत प्रकारकी रूखड़ियोंसे भर गयी थी। एक रातको दो हाथी उधर घूमते हुए आ निकले और दोनों ही एक साथ खाईमें गिर पड़े। पहले तो उन्होंने निकलनेका बहुत प्रयास किया परंतु चारों ओरकी जमीन गीली थी इसलिये हाथी जहां पांव रखते वहीं जमीन धंस जाती। परेशान होकर उन्होंने चिंघाड़ना शुरू किया। गांववालोंकी तो बस रूह कांपने लगी। ये हाथी बच्चे तो थे नहीं। इन्हें तो निकालनेका प्रयास करना भी खतरेसे खाली नहीं था। इतनेमें हमने देखा, जंगलकी तरफसे कई हाथी दौड़े चले आ रहे हैं। उनके नेताने आकर वस्तुस्थितिका निरीक्षण किया और अपनी भाषामें न जाने क्या कहा। सब हाथियोंने इधरसे उधरसे डालियां तोड़नी शुरू कीं। हम लोगोंके प्राण सूख गये। पिछली मुसीबतका चित्र सामने आ गया। लेकिन इस बार हाथी रुद्रके गण बनकर विनाश करने नहीं आये। उन्होंने डालियोंसे खाई भर दी और अपने साथियोंको सूंडसे सहारा दे-देकर बाहर निकाल लिया और उन्हें लेकर फिर जंगलमें गायब हो गये।

सबने देखा कि पीयूष जब अपनी कहानी सुना रहा था तो उदयन बहुत बेचैन हो रहा था मानों कोई कहानी उसके मुंहसे निकलना चाहती हो और वह जबर्दस्ती उसे अंदरकी ओर ठेल रहा हो। पीयूषके चुप होते ही उसे जरा चैन आया। उसने कहा, पीयूषने ओड़ीसाकी बात सुनायी, मैं भारतके दूसरे छोरपर बसे हरद्वारकी बात सुनाता हूं। मेरे पिताजी हरद्वारमें रहा करते थे। उन्हें जंगलोंमें घूमनेका बेहद शौक था। एक बार हाथियोंको नजदीकसे देखनेके लिये वे अपने पांच-सात चेले-चाटोंको लेकर रातको जंगलमें जा पहुंचे और वहां एक बड़ेसे पेड़पर चढ़ गये। थोड़ी देर बाद हाथियोंका एक झुण्ड उधरसे गुजरा। उनके साथ एक छोटा-सा बच्चा था। इन लोगोंने कनस्तर बजाये, पत्थर फेंके और हल्ला किया। हाथियोंमें भगदड़ मच गयी और छोटा बच्चा पीछे रह गया। इन लोगोंने बच्चेको पकड़कर अपने पेड़से बांध दिया और ऊपर चढ़ गये। थोड़ी देरमें हाथी वापस आये। इन लोगोंने फिर हल्ला करके उन्हें भगा दिया। सारी रात यही खींचातानी चलती रही। हाथी दबे पांव आनेकी कोशिश करते थे मानों हाथी न हुए बिल्ली हो गये; लेकिन उनके लाख प्रयत्न करनेपर भी उनके पैरोंकी आहट दब न पाती थी। सवेरा होते ही मेरे पिताजी और उनके साथी नीचे उतरे और बच्चेको लेकर भाग आये। सारे दिन हाथियोंने बेचारे निर्दोष ग्रामवासियोंकी मुसीबत की, विशेष रूपसे मां हथनी तो पागल हो गयी और तीसरे दिन उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। इधर मेरे पिताजीने हाथीके बच्चेको पालनेकी ठानी। सब लड़कोंने मिलकर अपने-अपने हिस्सेका दूध दिया। लेकिन अभी वह पीना न जानता था इसलिये रूईसे दूध उसके मुंहमें चुआया जाने लगा।

जंगलके अफसरोंको इस घटनाका पता लगा तो वे बौखलाये। जंगली जानवर सरकारी प्रजा हैं, उन्हें चुराना अपराध है। अफसर आकर बच्चेको ले गये और वह देख-रेखके अभावमें उनके दफ्तरमें मर गया।

अब नौ बज रहे थे। लक्ष्मीप्रसाद उठनेको हुए तो सब एक साथ चिल्ला पड़े — यह सब तो घटनाचक्र था, कहानी तो हुई ही नहीं। लक्ष्मीप्रसादजीने जरा आनाकानी की, घड़ी दिखायी पर आखिर हार माननी पड़ी। बोले — अच्छा लो, मैं अपनी कहानी भी हाथीसे ही शुरू करता हूं।

एक बार एक हाथी मर गया। यमदूत उसे यमराजके सामने ले गये। यमराज उसे देखकर मुस्करा उठे, बोले — हाथी! मेरी समझमें नहीं आता, तुम इतने विशालकाय थे फिर भी एक छोटा-सा आदमी तुम्हें कैसे अपने वशमें कर लेता था? हाथीने कहा — महाराज! आपने अभीतक सच्चे आदमीको देखा नहीं है इसीलिये ऐसी बातें कर रहे हैं। आदमी जैसा चतुर, चालाक और धूर्त धरतीपर दूसरा नहीं है। आपने हमेशा मरे हुए आदमी देखे हैं, कभी जिन्दा आदमीसे पाला पड़ जाय तो आपको पता लगे। बात यमराजके दिलमें चुभ गयी। उन्होंने अपने दूतोंको बुलाकर कहा — मैं जिन्दा आदमी देखना चाहता हूं। अकेलेमें किसी आदमीको चुपचाप उठा लाओ।

यमदूत धरतीपर खोजने लगे। एक लालाजी रातके समय अकेले बैठे अपना हिसाब-किताब देख रहे थे। चार यमदूतोंने उन्हें खटिया समेत उठा लिया और यमलोककी ओर चल पड़े। थोड़ी देरतक तो लालाजीको पता न लगा लेकिन हिसाब पूरा होनेपर उन्होंने इधर-उधर दृष्टि डाली तो चकराये। लेकिन शीघ्र ही अपने-आपको संभालते हुए कड़ककर बोले — तुम कौन हो और मुझे कहां लिये जा रहे हो? यमदूतोंने अपनी बात बतायी तो लालाजी हंस पड़े। ऊपर जाते-जाते उन्होंने एक खरीता तैयार कर लिया जिसमें विष्णु भगवान्की मुहर और हस्ताक्षरके साथ यमराजको आज्ञा दी गयी थी कि वह यमलोक लालाजीको सौंपकर तुरंत भगवान्की सेवामें उपस्थित हो जायें। लालाजीने दरबारमें पहुंचते ही खरीता यमराजके सामने रख दिया। यमराज खरीता देखते ही तिलमिलाये। उधर देर होती देख लालाजी अनखाये और बोले — कहिये, आप तुरंत अपनी चाबियां सौंपते हैं या मैं भगवान्से शिकायत कर दूं? यह खरीता लेकर मैं अपने-आप ही आ रहा था इतने-

में आपके दूत आ गये तो सवारीकी सुविधा हो गयी। अब आप जल्दीसे भगवान्के यहां जाइये, देर हुई तो वे नाराज होंगे। बेचारे यमराज क्या करते ? यह सौदा तो महंगा पड़ गया। उन्होंने राजदण्ड लालाजीके हवाले किया और अपने-आप अपना-सा मुंह लिये वैकुण्ठकी ओर चल पड़े। वहां विष्णु भगवान्के दूत तो उनसे असंतुष्ट थे ही, उन्होंने सोचा, चलो, इस बार यह हमारे हाथ आया, इसे कुछ मजा चखायें। उन्होंने यमराजको बाहरके कमरेमें बिठा दिया और कहा कि महाराज अभी काममें हैं, आपकी बारी आयगी तो बुला लेंगे।

इधर लालाजीने चित्रगुप्तकी खबर ली। लाओ, सब नरकोंकी सूची दिखाओ और यह भी बताओ किसमें कौन-कौन कबसे कितनी अवधिके लिये बंद है। चित्रगुप्त यूं तो सब जानता था पर उसके पास कुछ लिखा हुआ न था। लालाजीने कहा — बस, पहला काम यही करो, हमारे अधीन इन सब संस्थाओंका पूरा-पूरा विवरण लिखकर रजिस्टर मेरे पास ले आओ। अब नये महाराज नरक देखने चले। अभी दो-एक ही देखे होंगे कि उनका हुक्म हुआ, यमदूतोंमें कुछ ठीक ढंगका नियंत्रण नहीं है, इन सबको तेल-साबुन दिया जाय, सबके बाल बनवायें जायें और सरकारी वर्दी दी जाय ताकि देखनेमें जरा भले आदमीसे लगें। यह सुनते ही यमदूतोंमें खुशीकी लहर दौड़ गयी। हजामतके लिये, कपड़े सीनेके लिये और सफाई करनेके लिये नये विभाग खुल गये। और इन सबके लिये आवश्यक सामान खरीदनेके लिये दुकानें खुलीं और उनके दलाल धरतीपर भेजे गये।

दूसरा हुकुम हुआ, नरकमें आना अपने-आपमें बहुत बड़ी यातना है। यहांपर बंद लोगोंपर अमानुषिक अत्याचार न किये जायं। उनके साथ भी भले आदमियोंका-सा व्यवहार किया जाय और जीवनकी सामान्य सुविधाओंसे किसीको वंचित न रखा जाय। अगर कोई यमदूत इस आज्ञाका उल्लंघन करे तो उसकी शिकायत सीधे नये यमराजतक पहुंचायी जाय। अब तो सभी नरकोंमें उत्सव होने लगा। सब 'यमराज लालाजीकी जय' के नारे लगाने लगे और उन्हें मानपत्र देनेकी तैयारी करने लगे।

इधर असली यमराजको विष्णु भगवान्के यहां प्रतीक्षा करते-करते कई महीने बीत गये। बेचारे चिंताके मारे आधे रह गये। लेकिन कुछ वश न चलता था। अचानक धरतीसे किसीका आर्त्तनाद सुनायी दिया। विष्णु भगवान्के पट खुले और भगवान् गरुड़पर सवार हो धरतीकी ओर चल दिये। यमराजने कुछ कहना चाहा तो भगवान्ने इशारा किया कि ठहरो। थोड़ी देरके बाद किसीका दुःख-दर्द दूर करके लौटे तो यमराजको वहीं पाया। उन्होंने पूछा, क्या बात है ? यमराज बोले — आप ही ने याद किया था। भगवान्ने कहा — "मैंने ? नहीं, मैंने तो तुम्हें नहीं बुलाया।" तब यमराजने लालाजीके खरीतेका हाल सुनाया। भगवान्को बड़ा मजा आया। उन्होंने नये महाराजको बुलानेके लिये अपने दूत भेजे। लालाजी बड़ी सजधजसे आये और आते ही भगवान्के चरणोंपर लोट गये। और भगवान्के पूछनेपर सारा किस्सा सुना दिया। भगवान्ने असली यमराजकी ओर देखकर कहा — सचमुच भूल तो तुम्हारी ही थी, तुमने जिन्दा आदमीको यमपुरीमें बुलाया ही क्यों ? खैर, अब हम सारे मामलेको रफा-दफा किये देते हैं, आगेसे ऐसी भूल न करना। तुम यमपुरी लौट जाओ और लालाजी अपने घर जायें।

लेकिन लालाजी लालाजी थे। बोले — महाराज ! आपके स्मरण-मात्रसे आदमीके सब पाप कट जाते हैं और वह वैकुण्ठमें श्रीचरणोंके निकट रहनेका अधिकारी हो जाता है। मैं तो साक्षात् आपके दर्शन कर चुका, चरण-रज ले चुका, अब मुझे मृत्यु-लोकमें क्यों भेजते हैं ? भगवान् बोले — तुम्हारे घरवाले तुम्हारे लिये बहुत परेशान हैं, उन्हें पता ही नहीं तुम्हें हुआ क्या और तुम हो कहां ? अभी चले जाओ और अपनी स्वाभाविक आयु पूरी करके लौट आना।

लक्ष्मीप्रसादजीने कहानी समाप्त करते हुए कहा — हमारी नानी कहा करती थी कि इस कहानीको जो कोई कहता या सुनता है वह यमपाशसे छुटकारा पा जाता है।

***

घोषणा

रोक नहीं सकता कोई छल बलसे,
यह भारतकी आत्मा जाग रही है।

इसे समझ लो देशवासियो अपने सब पड़ोसियो,
पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन अगुआ और हेतियो!
जाति, धर्म, दल, संस्कृति क्या,
यह मिट्टी जाग रही है।

यह मैदान, नदी औ' पर्वत नहीं जाति औ' भाषा,
देश हमारा असली स्वतंत्रताकी है परिभाषा,
औ' इसके संग देश देशकी
प्रतिभा जाग रही है।

इसकी अंतर्मुखतामें कर्म-पक्ष था अनुपस्थित,
ऊंचे आदर्शोंकी जीवन अभिव्यक्ति थी अपेक्षित,
भौतिकताके मिस जीवनकी
आस्था जाग रही है।

सारी दुर्बलताओंके नीचे जो आग छिपी है,
भड़क उठी है वही आज जगमें खलबली मची है,
स्वार्थ धुंआ भर है जिसका वह
ज्वाला जाग रही है।

लिया पकड़कर है धर जिसने संकोची पुण्योंको,
चाट लिया है और भभककर तमसग्रस्त पापोंको,
दोनोंके अंतरकी परमा-
आत्मा जाग रही है।

जिसन पैदा किया और पाला पोसा विकसाया,
ध्येयोंके हित जिसने हमको बलि होना सिखलाया,
अब भारत-शक्तिकी वही ध्रुव-
इच्छा जाग रही है।

सुन लो कान खोलकर मानवकी सब दुर्बलताओ
असुरोंकी दुर्धर्ष शक्तियो और गुप्त छलनाओ,
बच न सकोगी अग्नि-घड़ी यह
प्रभुकी जाग रही है।

पकड़ लिया है चोर आज संस्कृतिने खूब जकड़कर
विजातीयता जहां पड़ी है देशी वस्त्र पहनकर,
जगा देखकर हमें 'नकल' घर
तजकर भाग रही है।

ज्ञान और विज्ञान यंत्र, व्यापार और शिक्षापर,
अंतर-बाहर व्यक्ति-समाज नीतिपर राजनीतिपर,
भारतकी प्रतिभा अब पूरा
शासन मांग रही है।

— विद्यावती कोकिल

कहण सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुण्या सूवा बिलाई षाया, पंडितके हांथ रह गयी पोथी।

कहना आसान है, करना कठिन, बिना रहनीके कहना खोखला है। तोता पढ़-लिखकर शब्दोंको दुहराताभर है और बिल्लीका ग्रास बन जाता है। इसी तरह आचरणहीन पंडित भी बेकार है और कालका ग्रास बन जाता है।

⁂

कहण सुहेली रहण दुहेली बिन षाया गुड़ मीठा।
खाई हींग कपूर बषाणैं गोरष कहै सब झूठा।

कहना आसान है करना कठिन। गुड़ खाये बिना गुड़-गुड़ करनेसे मीठा स्वाद नहीं आता। वह हींग खाकर कपूर कहता है। अनुभवके बिना सब झूठा व्यापार है।

⁂

षाये भी मारिये अणषाये भी मारिये। गोरख कहे पूता संजमि ही तरिये॥

अघाकर खाना भी मौत है, न खाना भी मौत है। गोरख कहते हैं, हे पुत्र! संयमसे रहना चाहिये।

(गोरखबानी)

केसर

—श्री रवीन्द्र

कहते हैं 'काश्मीरजस्य कटुताऽपि नितांत रम्या'। काश्मीरकी बेटीकी कटुता भी बड़ी मनोहारिणी होती है। लेकिन आज इसे पहचानना भी मुश्किल हो गया है। हमारे देशमें और किसी उद्योगमें इतनी उन्नति नहीं हुई जितनी नकली चीजें बनानेमें। जैसे, काली मिर्चके स्थानपर पपीतेके बीज बेच दिये जाते हैं, घीके स्थानपर चर्बी बेची जाती है उसी प्रकार केसरकी जगह नारियलकी जटाएं रंगकर बेची जाती हैं। यूं हींग और केसरसे बाजार भरा रहता है पर असली हींग या असली केसर पाना बहुत ही कठिन हो गया है।

कश्मीरके अतिरिक्त स्पेन, फ्रांस, सिसिली और ईरानके कुछ प्रदेशोंमें केसरकी खेती होती है पर पारखी लोगोंका कहना है कि काश्मीरकी केसर सबसे अच्छी होती है और उसे पाना हिंदुस्तानवालोंके लिये भी आसान नहीं है। केसरका शहद भी एक अपनी ही विशेषता और एक मादकता रखता है।

कल्हणका कहना है कि एक बार नागोंके राजा तक्षककी आंखें आ गयीं। वह मनुष्यरूप धारण करके आयुर्वेदके प्रसिद्ध मर्मज्ञ वाग्भट्टके यहां गया। वैद्यराजने एक, दो , तीन कई प्रकारकी दवाइयां आजमायीं पर सब बेकार। तक्षककी आंखपर कोई असर न हुआ। यह देखकर वाग्भट्ट आश्चर्यमें पड़ गये। और उन्होंने पूछ ही तो लिया, कुमार , तुम मनुष्य नहीं लगते, सच बताओ तुम कौन हो ? तब भेद खुला कि कुमार मनुष्य नहीं नागराज हैं। रहस्य जानते ही वैद्यने झट कहा, आह ! तभी मेरी औषधियां बेकार जा रही हैं। तुम्हारे निःश्वासमें विष है जो मेरी ओषधिके असरको नष्ट कर देता है। यह कहकर उन्होंने दवाई फिरसे डाली और आंखोंपर पट्टी बांध दी: आंखें विषके असरसे बच गयीं और शीघ्र ही स्वस्थ हो गयीं। तक्षकने प्रसन्न होकर वाग्भट्टको केसरकी कुछ गांठें उपहारमें दीं। उन्हीं गांठोंसे पम्पपुर ग्रामके आसपास केसरकी खेती की गयी और इसीका परिणाम है कि आज भी वहांकी केसर सबसे अच्छी होती है। उस गांवके पास ही एक शुद्ध पानीका तालाब है जहां ऋतुके आरंभमें नागपूजा की जाती है।

तिब्बतके बौद्धोंका कहना है कि मध्यान्तिक नामक एक बौद्ध भिक्षुने यह पौधा सबसे पहले कश्मीरमें लगाया था। खैर, जो हो, इतना तो निश्चित ही है कि अति प्राचीन कालसे कश्मीरमें केसरकी खेती होती चली आ रही है। कश्मीरमें राजघरानेके लोग इसका उपयोग इत्रकी जगह किया करते थे। प्राचीन यूनानमें अभिजात कुलके लोगोंके कपड़े केसरसे रंगे जाते थे। हमारे यहां भी केसरिया बाना अपनी विशेष शान रखता था। यूनान और रोमके सभा-गृहोंमें, नाटकघरोंमें और दरबारोंमें केसरकी सुगंध फैला करती थी। वहांके हमामोंमें केसर डाली जाती थी। यहांतक कहा जाता है कि जब नीरो रोमकी सड़कोंपर निकलता था तो उसके आनेसे पहले केसरका छिड़काव किया जाता था। जहांगीरने जहां केसर उपजानेवाली जमीनको भूस्वर्ग कहा है वहां उसने केसरकी मादक गंधपर भी लिखा है।

हमारे प्राचीन चिकित्सा-विधानके अनुसार केसर रुचिकर, बलवर्द्धक, दीपक और फेफड़ोंको शुद्ध रखनेवाली है। यह वर्णको भी साफ और सुन्दर बनाती है। शायद इसीलिये पम्पपुरमें गरीबी तो है पर बीमारी नहीं है। प्राचीन, और प्राचीन ही नहीं, इस आर्थिक संकटसे पहलेतक नाना प्रकारकी मिठाइयोंमें केसरका होना आवश्यक माना जाता था। श्रीनाथके मंदिरमें तो केसर चांदीकी चक्कियोंसे पीसी जाती थी। आज भी पुलाव, खीर, रबड़ी, पेड़े आदिकी शोभा बढ़ानेके लिये केसरका — फिर चाहे वह असली हो या नकली — उपयोग होता है।

अक्तूबर-नवम्बरमें कश्मीरकी आबादीमें एक नया जीवन आ जाता है। दिव्य चितेरेकी कूची उन दिनों बड़ी तेजीसे चलने लग जाती है। उन्हीं दिनों केसरकी क्यारियोंमेंसे नन्हीं-नन्हीं कलियां झांकना शुरू करती हैं जो सारी घाटीको अपनी सुगंधसे मतवाला बना देती हैं। चांदनी रातोंमें तो ऐसा लगता है मानों केसरका अथाह समुद्र चारों ओर फैला हुआ है। केसरकी मानव बहनें भी अपने पैरोंमें घुंघरू डाले वहां छमछमाती आ जाती हैं। विरह और मिलनके गीत गाये जाते हैं और केसरसे शिकायत की जाती है कि तूने हमारे पियाको भरमा लिया है।

केसरकी खेती बड़ी कष्टसाध्य और खर्चीली होती है। एक-एक गजकी चौरस क्यारियां बनायी जाती हैं। प्रत्येक क्यारीको साथकी क्यारीसे थोड़ा ऊंचा रखा जाता है। छः-छः इंचकी दूरीपर केसरकी गांठें जमीनमें लगा दी जाती हैं। इसके पौधे बहुत छोटे होते हैं। कई बार तो केवल फूल ही धरतीके बाहर दिखायी देता है। प्रत्येक फूलमें छः केसर और छः पंखुड़ियां होती हैं। नवंबरके अंतमें गांवकी टोलियां फूलोंको चुननेके लिये निकल आती हैं। उनके ओठोंपर गान होता है और नाजुक अंगुलियां बड़ी चतुराईके साथ केसर इकट्ठा करनेमें लग जाती हैं।

दस हजार मीटर

—श्री देवदत्त

श्रीकान्तने अपने जूते उतारे, मोजे उतारकर धीरे-धीरे मैदानकी घासको पैरोंकी अंगुलियोंसे दबाकर नोचने लगा। तहपर तह जमी हुई घास! ......

सामनेके मैदानमें छोटी दौड़ोंके खिलाड़ी छलांग लगाकर अपनेको गरम कर रहे थे, कोनेमें कोई चक्र फेंक रहा था। सहसा शिक्षक उधर आया, सभी सजग हो गये पर किसीने मानो उधर ध्यान न देते हुए कसरत चालू रखी।

‘ए मिस्टर’ एक तीखी आवाज हरियालीको तोड़ती हुई गूंजी। ‘जी, आपसे ही कह रहा हूं।’

श्रीकान्त हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। वह तो पांवपर घासकी सिहरन महसूस कर रहा था। वह हड़बड़ाकर फुलपेण्ट उतारने लगा।

‘अभी नहीं, चार चालीस हुए हैं अभी, जरा कसरत कर लो। और देखो, पेण्ट दौड़के जरा पहले ही उतारना नहीं तो पिण्डलियां अकड़ जायंगी।’

श्रीकांत धीरेसे मैदानमें दौड़ते हुए श्रीजित्‌के साथ हो लिया, पिछले एक वर्षसे श्रीजित् इसी दौड़की नियमित तैयारी कर रहा है, पिछले वर्ष केवल पेट-दर्दके कारण ही चौथे स्थानपर रहा....। श्रीकान्तने उछलना छोड़कर कन्धों और गर्दनकी कसरत शुरू की।

“अरे, अभी थक जाओगे जो इतनी करोगे।” पीछेसे किरनने आवाज दी। वह जरा देरसे आया था और कंधोंपरसे कमीज सरकाते हुए मैदानमें उतर रहा था।

"उसे करने दो नहीं तो दस राउण्डके बाद ही गर्दन अकड़ जाती है", श्रीजितने कहा।

"यह तुम्हें थकाना चाहता है ताकि खुद निकल जाये" किरनने चुटकी ली।

श्रीकांतने घड़ी देखी, सात मिनट खतम। वह जरा थकने लगा था पर उसे पता था कि पहली थकान चली जानेपर ही वास्तविक शक्ति आती है। उसने मैदानके दो चक्कर लगाये। फिर कमर-की कसरत की और चटाई बिछाकर पेटकी कसरतके लिये लेट गया।

दस हजार मीटर करनेका पहला वर्ष था उसका, ट्रैकपर अट्ठाइस चक्कर, उसने धनुष बनाया। पेटकी मांस-पेशियां तनकर मानो फटने लगीं, फिर चक्रासनके लिये सीधे लेट गया..... ऊपर नीले आसमानमें फुदकते हुए बादल.....उसका मन हुआ वहीं लेटा रहे, मगर दो क्षण बाद ही उसे याद आया.....केवल दस मिनट बाकी हैं, पांच मिनट व्यायाम करके पांच मिनट विश्राम करना होगा। उसने तुरत धनुष बनाया और पेटकी पेशियोंको नरम करने लगा।

पांच मिनट.....मैदानसे निकलते ही उसने देखा ट्रैकके चारों ओर आदमी भर गये हैं... बाप रे बाप! अगर वह दस हजार न दौड़ सका तो?.......उसका रोम-रोम सिहरने लगा।

आराम करके घंटीके साथ धीरेसे उसने ट्रैकमें प्रवेश किया, और एक ओर बैठकर कपड़े उतारने लगा। केवल दौड़नेकी पैण्ट और बनियाइन छोड़कर उसने बाकी कपड़े एक ओर रख दिये। श्रीजित् उसे दिलासा दिये जा रहा था......"कोई बात नहीं, तुम बस पूरा करनेकी कोशिश करना। देखते नहीं हो मेरा घुटना टूटा हुआ है फिर भी मैं दौड़ रहा हूं।"

"दस हजारका ओलिम्पिक रिकार्ड कितना है?" किरनने पूछा। "शायद अट्ठाइस मिनट कुछ सेकेण्ड", श्रीकांतने कहा....."बाप रे बाप! साठ सैकंडमें चार सौ मीटर....." सभी दौड़ाक दो मिनटके लिये उछलते हुए वहीं जुट आये। दीपेशने कहा—"नहीं, पहले दस राउण्डतक तो वह चालीस सेकण्डके आसपास होगा ...... यानी सेकंडमें चार मीटर ......"

हमारे हिंदुस्तानके लोग क्या दौड़ेंगे.....खानेको घास-भूसा दौड़नेको दस हजार.....।

सहसा शिक्षक नजर आये। सभी दौड़ाक एक लाइनमें हो गये। उन्होंने आते ही दीपेशसे पूछा—क्यों, तुम देरसे क्यों आये?

"नहीं सर, मैंने कसरत कर ली।"

महज पेटकी नहीं की.....अगर पेटमें ऐंठन होगी तो सांसकी लय ठीक करना....और "टु यू आल.....यू मस्ट बी डैड बिफोर लीविंग दी ट्रैक.....।"

"सर थक जायें तो....."

"धीरे दौड़ो और आराम कर लो.....कंधोंमें दर्द हो तो हाथ नीचे गिरा दो मगर ट्रैक नहीं छोड़ना......।"

तबतक स्टार्टर आते दिखायी दिये और शिक्षकने मुड़कर कहा—"विश यू गुड लक" और चले गये।

'स्टार्टर' अपनी झोलीमें नंबर लिये आया था। उसने आते ही सबके नंबर निकलवाये और लोगोंको ट्रैकमें खड़ा होनेका आदेश दिया।

श्रीकांतका नंबर दूसरा था अतः उसे पहली लाइन पकड़नेमें कोई कठिनाई नहीं होगी, पर दीपेश अंतिम ट्रैकमें पड़ा था और वह यह सोचकर चिंतित हो रहा था कि उसे पहले नम्बरपर पहुंचनेमें आधा मील ज्यादा चक्कर पड़ जायगा और काफी तेज दौड़ना पड़ेगा......।

सहसा आवाज हुई—धांय.....।

और दौड़ाक पहले राउण्डपर निकल पड़े।

पंजोंके बल सधे कदम डालते हुए श्रीकांतने महसूस किया अभी भी एड़ी जमीनतक छू जाती है।

तेज दौड़ोंमें यह आसान होता है कि एड़ीको जमीनसे छूने न दिया जाय पर लंबी दौड़ोंमें यह कठिन होता है। पहला राउण्ड पार करते-न-करते उसने महसूस किया कि इसी प्रयत्नमें उसकी रफ्तार तेज हो गयी है। उसने मोड़पर पीछे देखा और चाल कम कर दी.....बाकी दौड़ाक अभी राउण्ड खतम कर रहे थे -- इस तरहसे तो वह आध घंटेमें थक जा सकता था -- वह बहुत धीरे-धीरे दौड़ने लगा, दूसरे राउण्डपर पहुंचते ही किसीने कहा--कीप आन--इंडियन रिकार्डसे चौदह सेकण्ड पीछे... महज दो मिनट पैंतीस सेकण्डमें ही उसने आठ सौ मीटरकी दूरी तय कर ली थी, मगर उसने महसूस किया कि वह थकने लगा है, पैरोंकी मांसपेशियां सिकुड़ रही हैं और पंजोंके पास कोयलेके चूरेसे बने ट्रैकने जलन पैदा करनी शुरू कर दी है।

सहसा बगलसे तालियां बजनी शुरू हो गयीं, तीसरा राउण्ड खतम होते-होते ही उसने देखा श्रीजित्का इंजन चालू हो गया है और वह कुटिल मुसकान बिखेरता हुआ चला आ रहा है -- किरन और दीपेश काफी पीछे थे....अगर इसे लीड कर लूं तो स्पीड भी पाऊंगा और सपोर्ट भी... श्रीकांतने सोचा और उसने पैरोंको पीछे धकेलना शुरू किया -- लंबी दौड़में तेज होनेकी अपेक्षा दम लेते हुए आगे बढ़ना अधिक लाभकर होता है......श्रीजित् चुपचाप ठीक उसके पीछे चला आ रहा था — श्रीकांतने महसूस किया, श्रीजित्के सांसोंकी गति समान है, धक्-धक्, धक् धक् धक् धक् खींचना और छोड़ना.....इधर उसके सांसोंकी लय टूट गयी थी और अपनी तेज चालके साथ वह उसका मेल बैठा नहीं पा रहा था.....उसने एक बार फिर प्रयत्न किया.....पर आठवें राउण्डपर उसे श्रीजित्को आगे कर लेना पड़ा.....ठीक है अभी तू रह.... आखिरी दो सौ मीटरमें मैं रहूंगा।

उसने घुटने जरा और मोड़े.....पीछेकी दबदबाहट बता रही थी कि कोई आ रहा है...तो यह हम दोनोंको पीछे करना चाहता है......पर अभी तो चार हजार मीटर खतम हुआ, यह शायद बीचसे ही निकलना चाहता है.....उसने दीपेशको निकल जाने दिया......उसकी बांहोंमें दर्द शुरू हो गया था और कंधे मानों कटे जा रहे थे.....उसने हाथ ऊपर उठाये और उन्हें पीछेकी ओर झटकने लगा.....तबतक श्रीजित् सामनेसे दूर निकल गया था। उसने फिर जोर.... हाथोंको धीरे-धीरे हिलाते हुए उसने सीधे पैरों दौड़ना आरंभ किया....दीपेश उससे बीस मीटर आगे था — पर उसका दम अब निकल रहा था और वह धीरे-धीरे उछल इसलिये रहा था कि उसे ट्रैकसे निकाल न दिया जाय।

पन्द्रहवां राउण्ड सामने था और उसने तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच दीपेशको पीछे कर दिया था.....उसने हठात् गैलरीकी ओर नजर डाली.....पिता सामने ही बैठे थे, साथ पढ़नेवाली लड़कियां चिल्ला रही थीं — बकॅप ओलिम्पियन! ..... मगर उसे लगा कोई इस हरियालीपर पीली तितलियां बिखेर रहा है।.... श्रीजित् अब भी पचास मीटर आगे था और पैरोंकी टीस असहनीय हो उठी थी — उसे लगा संभवतः अगला राउण्ड वह न कर सके....छिः, कितने शर्मकी बात है? ग्यारह राउण्ड बचे हैं और वह.....उसने डूबते सूर्यकी ओर देखा -- इतना लाल.... आज क्या बात है जो सूर्य इतना लाल हो उठा है! और सूर्यके चारों ओर ये घूमते हुए धब्बे कैसे हैं!......उसे लगा सारा ट्रैक ही उन धब्बोंसे भर गया है — अब पैरोंकी जलन शांत हो गयी, उसने जरा-सी राहत महसूस की....सर और बगलसे चूता पसीना उसे पूराका पूरा भिगो चुका था....।

बीसवां राउण्ड....धब्बोंके बीचमें ही उसने देखा कि श्रीजित् अभी तीस मीटर आगे है — दीपेश बहुत पीछे छूट गया था और बाकी लोगोंपर व्यंगपूर्ण मुस्कान डालते हुए वह उन्हें दो तीन राउण्ड पीछे छोड़ आया था.....सहसा उसे लगा — अंतड़ियोंको कोई मरोड़ रहा हो -- ओफ!

इतनी ऐंठन ! ओफ एक घूंट पानी . . . . . एक घूंट . . . .उसे लगा कि आंते निकली आ रही हैं— पैरोंकी पिण्डलियां इतनी सूनी हो गयी हैं कि पता नहीं कमर से नीचे कुछ है भी या नहीं . . . याद नहीं था कि कोई स्टाइल है या नहीं . . . . . पर वह दौड़े जा रहा था . . . एक अजीब प्रेरणा . . . बाईसवां राउण्ड . . . श्रीजित् अभी आगे था –इस बार गैलरीमें बैठे लोग दीखे नहीं — अंधेरा हो गया है उसने सोचा . . . . . पर दौड़ते-दौड़ते वह ट्रैकसे निकल जाय ? . . . . सामने दौड़ते हुए किसीसे लड़ जाय ? . . . . ओफ, यह मूर्छा . . . . अभी चार राउण्ड वचे हुए हैं, दीपेश पुनः पास आ रहा है . . उसने अपनी रफ्तार तेज की . . . . सामने अंधकार है — कंधोंकी पीड़ा और जांघोंका अलगाव . . . उसे लगा अब कै होगी . . . . दिमागमें एक अजीब किस्मकी सनसनाहट आरंभ हो गयी थी . . . . अभी श्रीजित् आगे है — उसे क्षणभरको पीड़ाका बोध जाता रहा — लगा मानों दिमागसे शरीरका कोई संबंध नहीं है — वह अकेला है . . . . उसने दौड़ तेज की . . . . .।

और तीन मिनट बाद जब उसे दर्द फिर महसूस हुआ तो उसे पता चला कि वह श्रीजित्को दो सेकण्डसे हरा चुका है . . . . . ३७ मिनट ९ सेकण्ड . . .. नया रिकार्ड . . . . और उसके शिक्षक उसके मुंहमें बरफका टुकड़ा ठूंसते हुए कह रहे हैं — "वैल डन माई व्वाय — आई कांग्रेचुलेट यू . . . .।"

मेरी बहनका जन्मदिन

—श्री रवीन्द्र

अब तबियत ठीक हो चली है। बुखार उतर गया, सिर अंदरसे खाली-खाली लगता है, उठती हूं तो चक्कर आने लगता है फिर भी मैं प्रसन्न हूं। मैंने बहुत कष्ट झेले हैं, शायद उनका अंत आ रहा है। आप पूछते हैं तो लीजिये, सुन लीजिये :

आज बुधियाका जन्मदिन है। सोचा था इस बार तो अच्छी तरहसे मना लूं। पिछले साल पापा बीमार थे इसलिये सारा घर ही उजाड़-सा था, उसमें हंसी-खुशीका नाम कहां ? उससे पिछले वर्ष कुछ पैसेकी मुश्किल थी इसलिये जन्मदिनका नाम लेनेभर से मांकी आंखें छलछला आती थीं। आखिर घरमें हम एक-दो तो हैं नहीं, कुल मिलाकर हम आठ बहिन-भाई, पापा, अम्मा और बुआ जी और चाचीजी पूरे एक दर्जन प्राणी हैं। जन्मदिन मनायें भी तो किस-किसका ? इतनी मेहनत कौन करे और इतना खर्च कहांसे आये ? खैर, इस बार कुछ ग्रह-दशा ठीक थी। बुधियाके जन्मदिनसे ठीक दो दिन पहले हमारे मामाजी आ पहुंचे। वे खांडके व्यापारी हैं। इस बार जो खांडके भाव बढ़े तो उनकी पांचों ही नहीं दसों घी-शक्करमें हो गयीं। इसी खुशीमें रामेश्वरम्की यात्रा करने निकले हैं। बीचमें हमें देखने एक दिनके लिये आ गये। भानजोंको देना बहुत बड़ा पुण्य माना जाता है, बस चलते समय हम सबको एक पांतमें खड़ा किया और हर एकके हाथपर दो-दो रुपये रख दिये। हमारा छोटा भैया बड़ा ही चुलबुला है। लोग उसे हरी मिर्च कहते हैं। उसने धीरेसे कह दिया, 'मामाजी ! परसों बुधियाका जन्मदिन है। उसको मिठाई न खिलायेंगे ?' न जाने मामाजीको बुधियाके जन्मदिनकी परवाह थी या नहीं, लेकिन शर्मा-शर्मी पांच रुपये और निकालने पड़े। रुपये निकालकर उन्होंने मेरे हाथपर रख दिये और कहा, देखो शांता, बुधियाका जन्मदिन अच्छी तरह मनाना, ये पांच तुम्हारे जिम्मे, मांको मत दे देना, नहीं तो घरके खर्चमें चले जायेंगे।

खैर, मामाजी तो चले गये। अब हम सबकी कमेटी बैठी। लोकसभाकी उपसमितियोंमें भी क्या बहस हुआ करती होगी। हमारी समितिने पहला प्रस्ताव तो यह पास किया कि मामा बड़े कंजूस हैं। बारह आदमियोंको खिलानेके लिये सिर्फ पांच ही निकले। हम सब बड़ी सुविधाके साथ यह भूल गये कि हम सबको इसके अतिरिक्त दो-दो रुपये भी मिले थे।

मैंने मोरारजी देसाईकी शान जताते हुए कहा, अच्छा, ये सब बातें तो हो चुकीं, इनमें समय नष्ट करनेसे क्या लाभ? अब यह तय किया जाय कि इन पांच रुपयोंसे क्या किया जाय। किसीने कहा, चलो आमोंकी ऋतु है, बढ़ियासे आम लिये जायें, शायद सबको दो-दो तो मिल ही जायेंगे। किसी औरने कहा, नहीं, नहीं, दो आमोंसे क्या होगा? गलेतक ही जाकर अटक जायेंगे। किसीने कहा, चाकलेट खरीदें, दूसरा बोल उठा, छीः, क्या जरा-जरासे टुकड़े हाथ लगेंगे, एक बार मुंहमें डाले और मुंह पोंछ लिया। यह भी कोई जन्मदिनका कार्यक्रम हुआ। आखिर बुधियाके बोलनेकी बारी आयी। सब चौकन्ने होकर बैठ गये, मानों लोकसभामें प्रधान मंत्री कुछ घोषणा करनेवाले हों।

बुधिया बोली, अरे आम और चाकलेट वगैराके झंझटमें मत पड़ो। थोड़ा बेसन और दही खरीद लो, कढ़ी बन जायगी और सब लोग पेट भरकर खायेंगे। कुछ नारियल और खांड ले आओ, नारियलके लड्डू हो जायेंगे। एक मिठाई और एक नमकीन। कुछ बेसन बच रहा तो उसके पकौड़े हो सकते हैं, तेल तो अम्माजी दे ही देंगी। बस बात सबके मन भा गयी और हमारी लोक-सभा विसर्जित हो गयी। लेकिन हम लोग यह तो भूल ही गये थे कि अभी इसपर हमारे घरके राष्ट्रपति यानी गृहपति पिताजीकी स्वीकृति आवश्यक थी। उनकी आदत है लेक्चर झाड़नेकी। उन्हें एक ऐसा मौका मिल जाय तो भला कब चूकेंगे? तय यह हुआ कि वे जब दफ्तर जानेकी जल्दीमें में हों तो झटपट मामला उनके सामने रखकर उनसे हां करवा ली जाय। लेकिन म्याऊंका ठौर कौन पकड़े? किसी ऐसी बातके लिये पापाके सामने जाते हम सबको डर लगता था। सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव पास हुआ कि यह काम स्वयं बुधियाके सिरपर डाल दिया जाय। खैर, आज लोकशाहीके जमानेमें सर्वसम्मत प्रस्तावको कौन टाल सकता है? बुधिया मान गयी।

अब देखिये हमारी बदकिस्मती। बुधियासे कहा तो था कि पापाके दफ्तर जाते समय उनसे स्वीकृति ले ले, पर उसे नहानेमें देर हो गयी, जबतक वह तैयार हुई तबतक पापा जा चुके थे। उसने सोचा, जिम्मेदारी तो मेरी है, जाते समय न पूछ पायी तो दफ्तरसे लौटकर आयेंगे तब पूछ लूंगी। बुधिया सचमुच बुद्धू है, उसे इतना ख्याल न आया कि दफ्तरसे लौटते समय पापाका पारा चढ़ा हुआ होता है। हम लोगोंसे सलाह करनेकी जरूरत न थी। जैसे ही पापाने दरवाजा खोला, अभी बाइसिकल पूरी तरह अंदर आ भी न पायी थी कि बुधिया दौड़ गयी और लगी चिल्लाने, "पापा, पापा, परसों मेरा जन्मदिन है, शान्ताजीजी खड़े मूंगोकी दाल, भात, कढ़ी, पकौड़े और लड्डू बनानेवाली हैं। बोलो, ठीक है न? तुम हां कह दो — कह दो न पापा, तुम्हारा क्या जाता है इसमें, सारी मेहनत तो जीजी करेंगी!" मैं पासके कमरेमें खड़ी दरवाजेकी दरारमेंसे सारा दृश्य देख रही थी। पापाकी शकल देखकर मेरे शरीरसे पसीना छूट गया। मैं जल्दी-जल्दी हनुमान-चालीसाका पाठ करने लगी। पिताजी बुधियाको डांट रहे थे। "बस, तुम लोगोंको तो हमेशा अपने खाने-पीनेकी पड़ी रहती है, न कुछ काम न धाम, लिखा-पढ़ी गयी चूल्हे-भाड़में। हां, जब देखो हाथभरकी जीभ लपलपाती रहती है। शान्ता जीजी आज यह बनायेंगी और कल वह बनायेंगी। जाओ, कुछ नहीं बनेगा।"

पापाकी बातें सुनकर मेरा सारा शरीर सन्न हो गया। शायद उन्होंने बुधियाके जन्मदिनकी बात नहीं सुनी थी नहीं तो इतने लाल-पीले न होते, थोड़ा वैराग्यका पाठ पढ़ाते और फिर कह देते, अच्छा, जैसी तुम लोगोंकी मर्जी, मैं तो इस घरमें एक मेहमानकी तरह रहता हूं, जो भी दे दोगी खा लूंगा। आखिर भिखारीको यह कहनेका अधिकार कहां कि वह सूखे टिक्कड़ खायेगा या खीर और मालपूएपर

हाथ साफ करेगा। पहले कई बार यह हो चुका था और हम जब कभी भिखारीके सामने खीर और मालपूआ रख देते तो वह बरतन साफ कर जाता और साथ ही साथ रसनाका दास न बननेकी सीख भी दे जाता। लेकिन इस बार तो पासा ठीक न पड़ा। हो सकता है, पापापर दफ्तरमें डांट पड़ी हो, या कोई फाईल खो गयी हो या कोई जरूरी चिट्ठी इधर-उधर हो गयी हो। इन कारणोंसे वे बहुत बदमिजाज हो उठते थे और तब हम लोग दूर-दूर रहते और रामरक्षाका पाठ करते थे।

खैर, यह तो हुआ। अब किया क्या जाय? सारी रात इसी चिंतामें बीत गयी। एक मिनट-के लिये भी पलकें झपकी हों तो कसम ले लीजिये। मैंने सारी तैयारी की, इतने मंसूबे बांधे, मामा-जीसे पैसे भी ले लिये और अब 'किस्मतको देखिये, कहां टूटी है जा कमन्द।' मेरे छोटे भाई-बहनोंपर इसका क्या असर पड़ेगा? वे तो यही समझेंगे कि जीजी यूं ही बातें बनाया करती हैं, करती-धरती कुछ नहीं और रुपये.....सबको मालूम है कि मामाजी खास इस अवसरके लिये मुझे रुपये दे गये थे। अब......

मैं मन-ही-मन कुढ़ती जा रही थी, मेरा दिल रो रहा था पर मजाल है कि एक आह भी निकल जाय। खैर, जैसे-तैसे सबेरा हुआ। मेरा अंग-अंग टूट रहा था। आंखोंमें मानो रोली घोल दी हो और सिरमें मानो सीसा भरा हो। जैसे-तैसे शरीरको उठाया और काममें भिड़ा दिया। चुपके-से.....एक रुपयेका घी और आठ आनेका बेसन मंगाया और कढ़ी चूल्हेपर चढ़ा दी। थोड़ी देर बाद ग्वाला आया तो उससे दो सेर दूध मिला हुआ पानी खरीद लिया। मेरा अपना शरीर भट्ठी बना हुआ था, सोचा इसीपर रखकर खीर पका दूं तो कैसा रहे? लोग कहते हैं, सन्निपातमें आदमीको होश नहीं रहता, वह अनमना बकता है, कुछ करना चाहता है, कुछ कर बैठता है। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है, मैंने सोचा घरकी लकड़ियोंकी बचत कर दूं। दूधके बरतनको अपने तपते हुए शरीरपर रखा और वहीं लेट गयी। उसके बादकी कथा कांतासे सुनिये।

* * *

पापा अंदर आये तो उन्होंने देखा, रसोईघरसे दूधकी धार बह रही है और पड़ोसिनकी बिल्ली उसे साफ करनेमें लगी है। अब तुम्हीं सोचो उनकी क्या हालत हुई होगी? भन्नाये हुए मांके पास गये और बोले, यह सब क्या देख रहा हूं? हमारे घरमें यह क्लीयोपेट्रा कौन घुस आयी है जो दूधसे नहाती है। यहां इतने दिन बीत जाते हैं काली चाय पीते और तुम लोग इस तरह दूधकी नदियां बहाती हो।

मांकी समझमें कुछ न आया। डरके मारे हाथसे लोटा गिर पड़ा और साथ ही छोटी अंगुलि-को पीसता गया। सारे घरमें हाय-तोबा मच गयी। मैं दौड़ी-दौड़ी रसोईकी ओर गयी कि जरा-सी हल्दी लाकर मांके पट्टी बांध दूं। पर वहां जाकर तो मैं धक्कसे रह गयी। तुम जमीनपर पड़ी हुई थीं। बाल बिखरे हुए थे, पास लुढ़का हुआ दूधका बरतन पड़ा था। तुम्हारे शरीरसे मानों आगकी लपटें उठ रही थीं। मैंने आवाज दी तो कोई उत्तर न मिला। तुम मूर्छामें ही बड़बड़ा रही थीं, कान्ता, जन्मदिन, पांच रुपये ....खीर.....कढ़ी....नहीं, पापा नहीं, माफ करो, आगेसे ऐसा न होगा। बुधिया, ओ बुधिया, चुपकेसे खा ले....नहीं, नहीं, पापा, मामाजी, ऊफ बड़ा दर्द है। यह कहकर तुम फिर बेहोश हो गयीं, मेरे हाथोंके तोते उड़ गये। अब तो सुनाते हुए हंसी आ रही है लेकिन उस समय, उस समय तो यही लग रहा था कि मेरी जीजी बस अब चलीं कि तब चलीं। मैं वहांसे चिल्लायी, अम्मा, पापा, देखो, जीजीको क्या हो गया है? बस, सब दौड़े हुए आये। तुम्हारा हाल देखकर मां अपनी चोट भूल गयीं, पापाका गुस्सा बादलोंमें जा छिपा और छोटे बच्चोंने रोना शुरू कर दिया।

लेकिन पापा हैं हिम्मतवाले। उसी समय दौड़े-दौड़े गये और तुम्हारे लिये मकरध्वज ले आये। तुमने आंखें खोलीं, बुधियाको अपने पास खींच लिया और फिर बेहोश हो गयीं। पापाको सारी बात भांपते देर न लगी। तुम्हारे प्रेमने उन्हें पिघला दिया। बोले, यह सब मेरे गुस्सेके कारण ही हुआ है। आओ, मैं प्रण करता हूं, अबसे तुम लोगोंपर गुस्सा न करूंगा, तुम्हें जो सीख दिया करता हूं वह अपने-आपको दूंगा। मुझे विश्वास है, तुम लोग अच्छी तरह बुधियाका जन्मदिन मनाओ तो तुम्हारी जीजी शामतक बिलकुल ठीक हो जायगी। बात हम लोगोंको भी जंच गयी। आखिर जन्मदिन न मना सकनेके धक्केने ही तो तुम्हारी यह हालत कर दी थी, जन्मदिन मनाया जाय तो तुम जरूर ठीक हो जाओगी। पापा तुम्हारे पास बैठे रहे और वैद्यजीके कहे अनुसार उपचार करते रहे और हम लोग धूमधामसे देवीकी पूजा करने चले। वहां जाकर हम सबने प्रार्थना की कि हे मां, हमारी जीजीको अच्छा कर दो, हम लोग कभी हठ न करेंगे और पापाकी पीठके पीछे उनकी बुराई न करेंगे।

देवीका प्रसाद लेकर हम लोग घर लौटे तो देखा तुम धीरे-धीरे पापाके साथ बातें कर रही थीं। दोनों एक-दूसरेसे क्षमा मांग रहे थे। देवीने हमारी बात मान ली। जीजी, कौन जाने तुम्हारी बलिने हमारे घरमें शांतिका अध्याय न शुरू कर दिया हो।

लो, अब सो जाओ।

[पुनश्च — हजरत सौदा उर्दूके बड़े अच्छे कवि हो गये हैं। ये हिजो (व्यंग काव्य) लिखनेमें दक्ष थे। एक दिन बाजारमें एक पठानको देखकर हिजोकी राग फड़क उठी। बस, खां साहबपर हिजो लिख मारी और लगे सुनाने। इन्होंने सोचा था खान उर्दू न जानता होगा। उसके सामने उसकी हिजो होगी तो लोगोंको बड़ा मजा आयगा। इन्होंने पढ़ना खतम किया और वह तलवार खींचकर सामने। उसने शुद्ध उर्दूमें कहा, "यह लीजिये आपकी हिजो खतम हुई और अब मेरी बारी है।" सौदा भागे और खान उनके पीछे-पीछे नंगी तलवार लिये। आखिर बहुतसे लोगोंने मिलकर बीच-बिचाव कराया और सौदाके प्राण बचे।

ऐसी दुर्घटनासे बचनेके लिये, सम्पादकजी, मैं अभीसे भुजाएं उठाकर घोषणा करता हूं कि वल्लाह मैंने किसीकी हिजो नहीं लिखी। किसीको इस आइनेमें अपनी शक्ल दिखायी दे तो मैं जिम्मेदार नहीं।]

* * *

एकलौ वीर, दूसरौ धीर, तीसरो षटपट, चौथो उपाध।
दस-पांच तहां वाद-विवाद।

जो अकेला रहेगा वह वीर, दो हो जाय तो धीर, तीसरा आ जाय तो खटपट शुरू हो जाती है। चौथा भी हो तो उत्पात शुरू हो जाता है और दस-पांच हों तो पूर्ण कलह।

* * *

यह दिवाली

—श्री मीना

नगरमें सब जगह रोशनी ही रोशनी दिखायी पड़ रही थी। लोग चाहे कितने गरीब क्यों न हों, उन्होंने अपने यहां एक दिया तो जला ही रखा था। बस, कल ही दिवाली थी और सुरेश बाजारकी सड़कोंमें मारा-मारा फिर रहा था। वह भी एक छोटा-सा बालक था और दुकानमें रखे हुए खिलौने और मिठाइयां उसे मोहित कर रहे थे। लेकिन उस बेचारेके पास एक पैसा भी नहीं था, जिससे अपनी इच्छाएं पूरी कर सके। वह दुकान-दुकानपर जाकर खिड़कियोंमेंसे चीजें देखता ही रह जाता था। अधिकतर लोग उसकी ओर आंखतक नहीं उठाते थे और कई दयालु लोग उसकी ओर देखते तो उसके लिये मिठाईके टुकड़े फेंक जाते थे। वह इन टुकड़ोंको उठा-उठाकर खा जाता था और इस तरह जरा चखनेपर ज्यादा खानेकी तीव्र इच्छा हो जाती थी। वह और बच्चोंको हाथमें खिलौने लिये जाते देखता था और एक छोटा आंसू उसके मैले गालोंपर टपक पड़ता था। आखिर जब प्रलोभन सहना मुश्किल हो गया तो सुरेश दौड़ता हुआ अपनी झोंपड़ीकी ओर भागा।

उसकी झोंपड़ी सुनसान थी। एक कोनेमें पानीका एक घड़ा रखा हुआ था और दूसरेमें एक छोटा-सा टांड था।

बीचमें, एक खटियापर सुरेशकी मां लेटी हुई थी। वह बीमार थी। सुरेश जोशमें भरा हुआ अंदर आया और पलंग के पास जा बैठा। "मां", वह प्रोत्साहित होकर बोला, "मां", तुम मुझे कुछ पैसे दोगी? मांने तुरंत उत्तर नहीं दिया। कुछ देर सोचती रही। फिर पास ही पड़ी हुई एक छोटी थैलीमेंसे पैसा निकाला। उसने सुरेशको जरा नजदीक खींचते हुए कहा, " यह लो बेटा, ये दो रुपये तुम्हारे ही हैं। कल दिवाली है उसके लिये कुछ तो चाहिये न?" सुरेश चुप था। उसने मांको प्यारसे पकड़ लिया। दोनों कुछ देर प्रीतिके बंधनोंसे बंधे रहे और फिर अलग होते हुए सुरेश बोला, "मां, मुझे तुमने इतना पैसा दिया है कि मैं इससे बढ़िया चीजें ले आऊंगा"। और वह उछलता हुआ सड़कपर जा पहुंचा। उसने एक सुन्दर खिलौना, कई मिठाइयां और मांके लिये एक कपड़ा खरीदा। वह मानो आनंदके सागरमें गोते लगा रहा था। वह जल्दी-जल्दी घर पहुंचा तो मां सो चुकी थी। सुरेश दबे पैरों अंदर घुसा, धड़कते दिलसे अपनी चीजें एक तरफ रखीं और चटाई बिछाकर लेट गया। लेकिन लेकिन उसकी आंखोंमें नीद कहां? वह तो अपनी चीजें दिखानेके लिये पागल हो रहा था। लेकिन यह क्या? कमरेमें टिमटिमाते हुए दीपककी लौ एकदम तेज हुई और फिर सारी झोंपड़ीमें अंधेरा हो गया। चारों ओर सन्नाटा था। सुरेशका दिल बैठने लगा। उसे अपनी मांकी बीमारीकी याद हो आयी। और उसका सारा आनंद काफूर हो गया। उसकी बायीं आंख फड़क उठी।

अगले दिन सुरेश सबेरा होते-न-होते उठ खड़ा हुआ। मां भी उठ बैठी। सुरेशने सब चीजें लाकर मांके सामने रखीं। "देखो मां" सुरेशने खुशी दिखाते हुए कहा, "देखो मां, मैं तुम्हारे लिये क्या लाया हूं?" मांने अपनी आंखें ऊपर कीं और बोली, "जियो बेटा, बहुत जियो, तुम हजार बरस-के हो मेरे लाल। मुझे यह कपड़ा बहुत ही पसंद आया। लेकिन इसे स्वर्ग ले जाने दोगे? मेरा समय हो गया है और भगवान् मेरे लिये खड़े हैं।" बस, इतना कहकर मांने आंखें मूंद लीं।

अपना छोटा-सा खजाना सुरेशको देनेके लिये मांने दवाई नहीं खरीदी थी। कई दिनोंसे उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी और दिवालीके दिन ही उसने अपनी आंखें मूंद लीं। सुरेशने एक बार बड़ी उमंगसे दिवाली मनानी चाही थी और उसी दिन यह विपदा आ पड़ी। अब हर दिवाली उसके लिये एक दुःखकी याद लेकर आती है।

⁂

कल्पना तो कल्पना है !

क्या कहा कवि ?
कल्पना ही कल्पनामें
कल्पनाके स्वप्न लेता
कल्पना पर्यंकपर सोता रहूं मैं ?
लो चला मैं ——
शीत रात्रि, चांदनी छिटकी हुई है।
मृदु हवामें, सप्तरंगी पाल खोले,
कल्पना नौ सर रही है, स्वप्न-सरमें,
हंस-गतिसे।
क्या हुआ कि ——
इस धराके 'रक्त-बीजों' ने पुकारा
या हुआ क्या —— बीच ही में नींद उचटी।
कल्पनाके लोकसे भू-पृष्टपर आ,
देखता हूं ——
श्रीमती जी दीपको करमें लिये हैं।
बड़बड़ाती, झींकती कुछ ढूंढ़ती हैं, बिस्तरेमें।
क्या कहूं ——
है अर्द्ध रात्रि, चन्द्र ज्योतित धवल जगती,
सुप्त नारी कुन्तलोंसे स्वप्न बिखरे उड़ रहे हैं।
और ये हैं अकवि कि
कुछ बड़बड़ाती ढूंढ़ती हैं बिस्तरेमें।
स्वर्ग-विच्युत देवता-सा मैं उठा।
पूछा गृहिणि, क्या हो रहा है ?
खोजमें तल्लीन मुखको बिन उठाये
खीजके स्वरमें भरी वे कह उठीं कि
क्या करूं इन खटमलोंने ....

शक नहीं कि कल्पनाका लोक सुन्दर
और सुन्दरतम —— यदि न तृप्ति हो तो।
हाय पर मैं क्या करूं कवि ?
इस धराके रक्त-बीजों ने उठा
आखिर मुझे इस कल्पना-पर्यंकपरसे
भूमिपर फेंका। करूं क्या ?
कल्पना-पर्यंकपर कैसे रहूं कवि,
मैं रहा भूलोकवासी।

—— मेधाव्रत

लाटूरकी वीरता

—श्री प्रभात

लाटूर आर्वन फ्रांसका ग्रेनेडियर सेनाका एक सैनिक था। वह छुट्टी लेकर अपने घर गया हुआ था। उसे अपने घर पहुंचे थोड़े ही दिन हुए होंगे कि आस्ट्रिया और फ्रांसके बीच युद्ध छिड़ गया। यह सुनकर वह अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिये चल पड़ा। जब वह जा रहा था तब रास्तेमें उसे कहींसे समाचार मिला कि एक आस्ट्रियन सैनिक टुकड़ी फ्रांसके एक पर्वतीय दुर्गको विजय करनेके विचारसे बढ़ी चली आ रही है। उसने सोचा कि मैं आस्ट्रियन सैनिकोंके पहुंचनेके पहले ही पूरी परिस्थितिका परिचय करा दूंगा जिससे वे लोग आस्ट्रियोंका सामना करनेकी पूरी तैयारी कर सकें। उसके बाद मैं मुख्य सेनाको भी इसकी खबर दे दूंगा। यह सोचकर वह दुर्गकी ओर तेजीसे भागा जा रहा था। उसे किलेवालोंको जल्दीसे जल्दी लड़ाईकी खबर देनी थी। अंतमें हारा-थका लाटूर पर्वतीय दुर्गतक पहुंच ही गया। किंतु वहां पहुंचकर उसने जो दृश्य देखा उससे उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने देखा कि दुर्गके द्वार खुले पड़े हैं और वहां एक भी सैनिक नहीं है। कहीं लड़ाईके भी चिह्न नहीं थे जिससे मालूम होता कि वे रक्षक मारे गये। ऐसा मालूम होता था कि उन्हें शत्रुके आक्रमणकी सूचना पहलेसे ही मिल गयी थी और वे भयके मारे भाग खड़े हुए थे। वे लोग इतनी शीघ्रतासे भागे थे कि जल्दीमें अपनी बन्दूकें भी नहीं ले जा सके थे।

लाटूरको सैनिक साथियोंपर दुःख हुआ पर सोचनेका समय न था। शत्रु किसी भी घड़ी आक्रमण कर सकता था। उसने शीघ्र ही अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। बेचारा हारा-थका लाटूर शत्रुका सामना करनेकी तैयारीमें लग गया। उसने सब बन्दूकें एकत्र कीं और उनमें बारूद भरकर यथास्थान रख दिया। इसके बाद प्रत्येक बन्दूकके पास उसने थोड़ी बारूद और भी रख दी। उसके बाद उसने किलेके फाटकों और दरवाजोंका भली-भांति निरीक्षण किया। इस कामसे निबटकर वह चौकन्ना होकर शत्रुके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा। प्रातःकाल होनेपर सेनानायकने व्यूह रचकर दुर्गपर आक्रमण किया, किंतु साथ ही किलेसे आती हुई गोलियोंने उसका स्वागत किया। इन गोलियोंसे शत्रुसेनाके बहुत सैनिक मारे गये। पूरे दिन लड़ाई चलती रही, न तो आस्ट्रियाई दुर्गपर पहुंच पाये और न उधरसे गोलियोंका चलना ही बंद हुआ। सारी रात जागते रहने और सारे दिन लड़ते रहनेके कारण लाटूर थककर चूर हो गया। अतः उसने प्रातःकाल किलेपर सफेद झंडा फहरा दिया। संफेद झंडा संधिका चिह्न है।

लाटूरने आस्ट्रियाई सेनानायकसे कहा, "दुर्गरक्षकोंने वचन दिया है कि यदि उन्हें फ्रांसके झंडेके साथ सुरक्षित जानेका वचन दिया जाय तो वे किला सौंप देंगे।" लाटूरकी बात आस्ट्रियन सेनानायकने प्रसन्न होकर मान ली। उसने कहा कि मैं वचन देता हूं कि दुर्गरक्षकोंका बाल भी बांका न होगा। आस्ट्रियन दुर्गके बाहर दो पंक्तियोंमें इस प्रकार खड़े हो गये कि उनके बीचसे होकर केवल एक ही सैनिक एक बारमें निकल सके। बड़ी उत्सुकताके बाद द्वार खुला। सबकी दृष्टि द्वारकी ओर उठ गयी। एक हाथमें फ्रांसका झंडा लिये और कंधेपर पांच-छः बन्दूकें लादे लाटूर द्वारसे निकला। केवल एक सैनिकको दुर्गमेंसे निकलते देखकर आस्ट्रियन सेनानायकने पूछा — "अच्छा, सैनिक क्या पीछे-पीछे आ रहे हैं?" लाटूर हंसा और बोला, "मैं ही सैनिक हूं, मैं ही दुर्गपाल हूं और मैं ही पूरी सेना हूं जो कलसे आपसे लड़ रही है। किलेमें मेरे अलावा और कोई नहीं था।" आस्ट्रियन सेनानायक बड़ा हैरान हुआ और बोला, "यदि तुम्हारे जैसे दस सैनिक भी होते तो अबतक कबकी बिजय हो गयी होती।"

मुन्ना मिल गया

श्री अरुणा

एक गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। दोपहरका समय था और कड़ी धूप पड़ रही थी। गाड़ीवान, उसकी स्त्री और दो बच्चे गर्मीसे तंग आ गये थे। मां, अभीतक नानाका घर नहीं आया? बच्चे बारी-बारीसे पूछते और उनकी मां कहती, अभी और थोड़ी दूर चलनेपर जरूर आयगा। इस तरह करते-करते गाड़ी एक बड़के पेड़के नीचे जाकर खड़ी हुई। कुछ देरमें दो बच्चोंकी आवाज आयी। “मुन्नी, मुझे प्यास लगी है।” मुन्नेने अपनी बहनसे कहा। “हां, मुझे भी प्यास लगी है,” मुन्नीने कहा। कुछ देर सोचकर फिरसे वह बोली, “मुन्ना, चल, हम एक तालाबको ढूंढ़ें।” “हां, चल, जल्दी चले जायें।” मुन्नेने अपनी बहनकी बात मानते हुए कहा। “देख, मां और बाबा आराम कर रहे हैं, आवाज किये बिना चल।” मुन्नीने छोटे भाईका हाथ पकड़कर कहा।

दोनों तालाबकी खोजमें काफी दूर निकल गये। प्यास पहलेसे लगी ही थी इसलिये मुन्नेने पानी मांगना शुरू किया। मुन्नीने अपने भाईको समझानेकी कोशिश की और बोली, “देख, वह पेड़ देख, उसके पास जानेसे हमको तालाब मिलेगा। इतनी देरतक तू चुपचाप अच्छे बच्चेकी तरह चल, अब और थोड़ी दूर नहीं चल सकेगा?” —“क्यों नहीं चल सकूंगा?” मुन्ने ने कहा और बहनका हाथ और भी जोरसे पकड़कर चलने लगा। थोड़ी ही देरमें दोनों उस पेड़के पास पहुंचे और ‘पानी’ मुन्नी चिल्ला उठी। पेड़से कुछ दूरीपर एक तालाब था। दोनों बच्चे पानीको देखकर बहुत खुश हुए और पेट भरकर पानी पीने लगे। मुन्ना पानी पी ही रहा था कि मुन्नी चिल्ला उठी — “देख, मुन्ना, उधर देख, कितनी बड़ी चिड़िया आ रही है।”

मुन्नेने पानीमेंसे मुंह ऊपर किया तो देखा कि एक काली-काली, और अपनी गाड़ीसे भी बड़ी चिड़िया तेजीसे अपनी ओर आ रही थी। वह मुन्नेपर झपटी और मुन्ना चीख उठा, “ओ बाप रे!” मुन्नेकी आवाज मुन्नीने सुनी और देखा कि मुन्नेको काली चिड़ियाने उठा लिया है। चिड़िया मुन्नेको लेकर दूर उड़ गयी और मुन्नी दुःख और घबराहटके मारे पत्थरकी मूर्त्ति-सी खड़ी रही।.....

मुन्नीको जब होश आया तो उसने देखा कि वह तालाबके पास लेटी है। उसका फ्राक आंसूसे गीला है और भाईका नाम-निशान नहीं है। भाईको अपने पास न देखकर वह रोने लगी। वह जोर-जोरसे रो रही थी। “मुन्ना, तू कहां छिप गया है? चल, जल्दी चल, बाबा और मां हमारे लिये चिंता करेंगे।” कुछ देर रुककर फिरसे वह “मुन्ना, मुन्ना” जोरसे पुकारती रही और कोई उत्तर

न मिलनेपर फूट-फूटकर रोती रही। मुन्नीका दुःख देखकर आसपासके पेड़ोंतकको उसपर दया आने लगी। मछलियां पानीमेंसे उछल-उछलकर देख रही थीं कि कौन इतने करुण स्वरसे रो रहा है। मुन्नीपर सबको दया आ रही थी लेकिन कोई ऐसा न था जो उसकी सहायता कर सके।

“कौन रो रहा है?” एक दयाभरी आवाजने पूछा। मुन्नीने आंसू भरी आंखोंसे ऊपरकी ओर देखा कि उससे कुछ दूर एक सुन्दर हंस पानीमें उतर रहा था। हंस तैरता तैरता उसके पास आया और फिर बोला, “तुम क्यों रो रही हो ?”“ मेरा भाई खो गया है।” मुन्नीने हंसको रोते-रोते जवाब दिया। “एक बड़ी काली चिड़िया आकर उसको उठा ले गयी।” मुन्नीने एक सांसमें कह दिया और आंखें पोंछने लगी। हंस मुन्नीकी बात सुनकर, कुछ सोचने लगा। फिर धीरेसे बोला, “मुन्नी, मेरा एक पर खींच ले और उसको हाथमें लेकर उत्तरकी ओर चली जा।” हंसने मुन्नीके पास अपना शरीर लाते हुए कहा, “देख, चलते-चलते तुझे एक जंगल मिलेगा। जंगलके बीच एक आमके पेड़पर उस काली चिड़ियाका घर है। वह सो गयी होगी, इसलिये तू वहां जाकर आसानीसे उसकी आंखोंको यह पर छुआ सकेगी। जैसे ही तू छुआएगी वह तेरी दासी बन जायगी। “फिर मैं उससे अपना भाई मांगकर जल्दी चली आऊंगी”—मुन्नी खुशीसे नाचती हुई बोली।

मुन्नी पर लेकर चल पड़ी। रातका समय था, और जंगली जानवरोंकी पीली आंखोंकी चमकसे मुन्नी डर रही थी। कहीं दूरसे शेरकी गरज सुनायी दी और मुन्नी भयसे कांप उठी। पैरमें कांटे चुभ रहे थे, और पग-पगपर एक नया रूप लेकर जंगल उसको डरा रहा था। मुन्नी अपने परको जोरसे पकड़े मुन्नेको याद करती हुई चली जा रही थी। वह जंगलके बीचमें एक आमके पेड़के पास खड़ी हो गयी। फिर धीरेसे उसके ऊपर चढ़ी और सोती हुई काली चिड़ियाकी आंखपर पर लगा दिया। जैसे ही काली चिड़ियाको पर छुआ, पंखकी जोरकी फड़फड़ाहटके साथ वह चीखी और हवामें चक्कर काटने लगी।.....छोटी-सी मुन्नीको लगा मानो वह उसे अभी मार ही डालेगी...

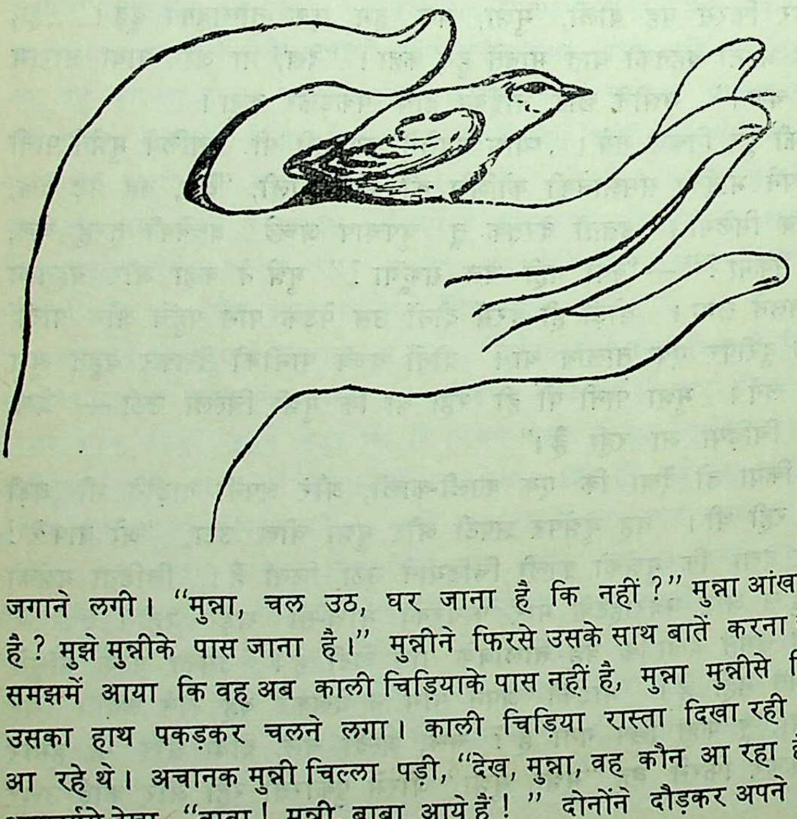

कुछ ही देरमें सब शांत हो गया और मुन्नीने आश्चर्यसे देखा कि काली चिड़िया धीरे-धीरे छोटी बन गयी और अपने घरकी चिड़ियाकी तरह उसके हाथपर आकर बैठ गयी। मुन्नीने उसे प्यार करते हुए पूछा, 'चिड़िया रानी, बोलो तो भैया कहां है ?” चिड़िया मानो मुन्नीकी बात समझती हो, इस प्रकार उसने सामने देखा और बोली, “भैया ऊपर सो रहा है। देखो, यह रहा।” मुन्नी भाईके पास गयी और उसको जगाने लगी। “मुन्ना, चल उठ, घर जाना है कि नहीं ?” मुन्ना आंख पोंछता हुआ बोला, “मुन्नी कहां है ? मुझे मुन्नीके पास जाना है।” मुन्नीने फिरसे उसके साथ बातें करना शुरू किया और धीरे-धीरे मुन्नेकी समझमें आया कि वह अब काली चिड़ियाके पास नहीं है, मुन्ना मुन्नीसे मिलकर बहुत ही खुश हुआ और उसका हाथ पकड़कर चलने लगा। काली चिड़िया रास्ता दिखा रही थी और दोनों बच्चे पीछे-पीछे आ रहे थे। अचानक मुन्नी चिल्ला पड़ी, “देख, मुन्ना, वह कौन आ रहा है !” मुन्नेने उस ओर देखा और आश्चर्यसे देखा, “बाबा ! मुन्नी, बाबा आये हैं ! ” दोनोंने दौड़कर अपने बाबाको पकड़ लिया।

***

मेरी कहानी

—श्री तरला

मैं अकेला अभागेकी तरह बिना किसी साथीके अपने भविष्यकी चिंतामें सड़कके एक कोनेमें सप्ताहसे पड़ा था। पर मुझे किसीने देखा तक नहीं और यदि कोई देख भी लेता तो मैं निश्चित रूपसे कह नहीं पाता कि मेरा रूप, रंग और आकार देखकर मुझे हाथसे उठा ही लेता या ठोकर मारता। मैं यह सब सोच ही रहा था कि सहसा मुझे जोरसे किसीने ठोकर लगायी, मैंने देखा तो १४-१५ सालका लड़का हाथमें कितावें लिये हुए फुटबालकी तरह लातें लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था। न जाने उसने मुझे कितनी ठोकरें लगायी होंगी। और मैं भी वह ठोकरें खाता ही रहा और न जाने कहांतक और कितनी ठोकरें खानी पड़ेंगी। इतनेमें लड़केका स्कूल आया, मैंने सोचा, हे भगवान्, आखिर मुझे लातोंसे छुटगाकरा मिलेगा। पर मेरे भाग्यमें ऐसा न था। वह मुझे अपने साथ ही श्रेणीमें ले गया और पांवके नीचे दबाकर बैठ गया। पांवके नीचे मेरा सांस घुट रहा था पर वह लड़का मेरी गूंगी भाषाको क्या जाने? मास्टरने उस लड़केसे प्रश्न किया और कहा, इसका उत्तर तुम यहां मेजके पास आकर बताओ। लड़का मुझे छोड़कर नहीं जा सकता था, उसने मुझे इतने जोरसे एक लात लगायी कि मैं लुढ़कता-लुढ़कता, रोता-रोता उससे पहले मेजके पास पहुंच गया। मास्टरने मेरे ठन-न-न रोनेकी आवाज सुन ली और मुझे नीचेसे उठाकर मेजपर रख दिया और लड़केको डांट दी, “क्या तुम लड़कियोंकी तरह पत्थर खेलते हो?” बेचारा ऐसा डर गया मानो काटो तो खून नहीं। मास्टरने उसे अपनी जगहपर चले जानेके लिये कहा। और उन्होंने ही इस प्रश्नका उत्तर दे दिया कि दुनियामें बड़ी-बड़ी इमारतें क्यों बनायी जाती हैं? उसके पीछे क्या उद्देश्य होता है और कई बड़ी-बड़ी इमारतोंके बारेमें भी बताया। यह सुनकर मुझे भी एक ऊंची इमारतके ऊपर चढ़नेकी इच्छा हुई और मैं भगवान्से प्रार्थना करने लगा कि मुझे भी एक ऐसी बड़ी इमारतके ऊपर बिठा दे जिससे कि जो आज मुझे ठोकरें मारते हैं उनको एक दिन मेरे सामने सिर झुकाना पड़े। जैसे ही मेरी यह प्रार्थना समाप्त हुई कि स्कूलकी घंटी बजी और अध्यापकने भी मेरा तिरस्कार किया, मुझे खिड़कीके बाहर फेंक दिया। पर मैं अपनी खुशीकी बात क्या बताऊं। मैं ऊंचे टीलेपर आ गिरा। आज कितने दिनों बाद मैं अपने साथियोंसे मिला-जुला। मैंने उनको सारी कहानी कह सुनायी। कितनी आंखोंमें तो जल भी भर आया पर मिलनके आनंदमें दुखके आंसू विलीन हो गये। मैंने उनको भी अपनी अभिलाषा कह सुनायी। वह सब एक साथ बोल उठे कि हमारी भी यही अभिलाषा है। मानो दीनदयालुने हमारी प्रार्थना सुन ली हो, हमें कुतुब मीनारके ऊपर चढ़ा दिया जहांपर आज भी मनुष्य हमें दूर-दूर देशोंसे देखने आते हैं। कई हमें मुसलमानोंकी यादगारके समान मानते हैं, तो कोई देशभक्त हमें देखकर आंखमें आंसू भी लाते हैं; क्योंकि मुगलोंने हमें हिंदुओंके लहूको चूस-चूस इतना ऊंचा स्थान दिया था।

तो क्या अब तुम जान गये कि यह किसकी कहानी थी? देखो, मैं ही बताता हूं कि तुम रोज जिसके साथियोंको सड़कपर या जहां कहीं नया मकान बन रहा हो, जहां कोई मकान तोड़ा गया हो वहां देखते हो और तुम भी उस लड़केकी तरह मेरे साथियोंके साथ खेलते हो।

मेरा नाम है कंकड़।

◆

पुस्तक-परिचय

भारतीय व्यवहार कोष : सम्पादक—— विश्वनाथप्रसाद दिनकर नरवणे, प्रकाशक—त्रिवेणी संगम, सारा मैंशन, गोखले रोड (उत्तर), दादर, बम्बई २८। मूल्य ४०.००

भारतकी स्वाधीनताके बाद यह आवश्यक हो गया है कि भारतीय अपने देशको भली-भांति पहचानें। हमारे देशमें मुख्य रूपसे चौदह-पंद्रह भाषाएं प्रचलित हैं। उनके बारेमें हमारे यहां तरह-तरहकी धारणाएं बनी हुई हैं। अगर हम जरा प्रयास करें तो देखेंगे कि इन भाषाओंमें बहुत अधिक समानता है। श्री नरवणे भाषाओंके पीछे पागल हैं और इस पागलपनने ही उनसे इस बहुमूल्य ग्रंथका संपादन करवाया है। इसमें भारतमें प्रचलित सोलह भाषाओंके साथ साहब सलामतका परिचय कराया गया है। सामान्य व्यवहारमें आनेवाले लगभग ढाई हजार शब्दोंके हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृतसे लेकर सिंधी, काश्मीरी, मलयालमतक भारतकी सभी मुख्य भाषाओंमें पर्याय दिये गये हैं। इस एक कोषसे पाठक बहुत सारी संज्ञाएं, क्रियाएं सीख सकते हैं। इसमें जीवोंके नाम, रोगोंके नाम, शरीरके अवयव, मापतोल, फल-फूल, तरकारी, प्राकृतिक दृश्य, न्यायालय, कपड़े, गहने, खेल आदि सब प्रकारके विषयोंसे संबंध रखनेवाले शब्द दिये गये हैं। अंग्रेजीके अतिरिक्त अन्य सब भाषाओंके शब्द देवनागरी अक्षरोंमें दिये गये हैं। इस पुस्तकसे अगर कोई शिकायत हो सकती है तो बस एक ही, पुस्तकमें और बहुत-से शब्दोंके दिये जानेकी जरूरत थी। लेकिन अकेले नरवणेने सारे भारतमें घूम-घूमकर इसकी सामग्री जुटायी है और जहांतक हो सका है हर भाषाके उच्चारणका शुद्ध रूप देनेका प्रयास किया है। यह प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय है। इसके लिये श्री नरवणे और बड़ौदा नरेश श्री फतह सिंह राव (जिनकी सहायतासे यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी) दोनों बधाईके पात्र हैं। हम आशा करते हैं कि महाराज बड़ौदा अपने पूर्वज महाराज सयाजीरावकी तरह विद्या-व्यसनीके रूपमें और अधिक चमकेंगे।

श्री नरवणे इस समय भारतकी कहावतें इकट्ठी करनेमें लगे हैं।

दक्षिणी भाषाओंके कोष : प्रकाशक, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

दक्षिण भारतीय हिंदी प्रचार सभाने तमिल-हिंदी, हिंदी-तमिल, कन्नड़-हिंदी, मलयालम-हिंदी, तेलगू-हिंदी, हिंदी-तेलगू कोष प्रकाशित करके दक्षिण भारतके हिन्दी सीखनेवालोंके लिये बड़ा उपयोगी काम किया है। कोई भी भाषा सीखते समय उसके कोषकी बहुत आवश्यकता होती है। इस ग्रंथमालाने उसे एक हदतक पूरा किया है। कोष भी जीवित प्राणियोंकी तरह बढ़ते रहनेवाली चीज है, अगर वह बढ़ना बंद कर दे तो उसका उपयोग सीमित रह जाता है। इन कोषोंमें हमें एक त्रुटि कुछ खली। जहां बहुत-से प्रयोगमें आनेवाले साधारण हिंदी शब्द इनमें नहीं मिलते वहां कभी काममें न आनेवाले भारी भरकम उर्दू शब्द काफी संख्यामें आ गये हैं। आपको दूबदू तो मिलेगा पर मैं, तुम नहीं मिलेंगे। हम आशा करते हैं कि अगले संस्करणोंमें हिंदीके शब्द बढ़ाकर इन कोषोंकी उपयोगिता बढ़ायी जा सकेगी। जैसा हर काममें होता है, आरंभ करना अधिक कठिन है, त्रुटियां निकालना आसान। हम इन कोषोंके संपादकों और सभाको बधाई देते हैं।

वल्लतोलकी कविताएं : अनुवादिका —रत्नमयी देवी दीक्षित, प्रकाशक — साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली। दाम २.९०।

भारतकी प्रत्येक भाषामें कई बड़े अच्छे-अच्छे कवि और लेखक हैं। परंतु खेदका विषय ह कि एक भाषाके लेखकोंसे दूसरी भाषावाले परिचित नहीं हैं। अंग्रेजी अनुवादोंके कारण हम रूसी, जर्मन, फ्रेंच, पोलिश या स्पेनिश साहित्यसे तो परिचित हैं पर अपने ही देशके सुब्रह्मण्यम् भारती, बीरेश, लिङ्गम पन्तुलू, सुन्दरम् या वल्लतोलके नाम भी हमारे लिये नये हैं। हिंदी यदि अखिल भारतीय भाषा बनना चाहती है तो उसे समस्त भारतके साहित्यसे रत्न ले-लेकर देशके सामने रखने चाहियें। अभीतक इस दिशामें जो प्रयत्न हुआ है वह बहुत अच्छा होते हुए भी बहुत कम है।

वल्लतोल मलयालमके प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने कई रूप बदले हैं। उनकी कवितामें श्रृंगार, राष्ट्रीयता, समाजवाद आदिका रंग अच्छी तरहसे दिखायी देता है। प्रस्तुत पुस्तकमें उनकी कुछ चुनी हुई कविताओंका अनुवाद है। इस प्रकारकी पुस्तकोंका स्वागत है।

काकदूत और काकाके कारतूस : लेखक — काका हाथरसी, प्रकाशक — संगीत कार्यालय, हाथरस। मूल्य २.००

दोनों पुस्तकें हिंदीके जाने-माने हास्यरसके कवि काका हाथरसीकी लिखी हुई हैं। काकाके हास्यमें समाजकी कुरीतियोंपर करारी चोट होती है। परंतु जबर्दस्त मारें और रोने न दे। वह चोट भी करते हैं और हंसाते भी हैं। एक नमूना देख लीजिये :

हिंदीके हिमायती बनकर संस्थाओंसे नेह जोड़िये।
किंतु आपसी बातचीतमें अंग्रेजीकी टांग तोड़िये।

या अर्दली खड़े रहे, गेट पर अड़े रहे,
राष्ट्रीय शेर हम कोचपर पड़े रहे।

सदल मिश्र ग्रंथावली : सम्पादक — नलिन विलोचन शर्मा, प्रकाशक — राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, मूल्य सजिल्द ५.००।

सदल मिश्र खड़ी बोलीके पहले लेखकोंमेंसे हैं। इनकी पुस्तकोंका नाम तो हिंदी-भाषी बहुत दिनोंसे लेते आये हैं पर उन्हें देखनेका अवसर शायद ही किसीको मिला हो। राष्ट्रभाषा परिषद्के संचालक माधवजीने लन्दनकी इम्पीरियल लाइब्रेरीमें रखी हुई उनकी पुस्तकोंकी नकल करवायी और इन्हें हिंदी पाठकोंके लिये सुलभ बनाया। इसमें 'नासिकेतोपाख्यान' और 'राम-चरित' दोनों पुस्तकें एक साथ छपी हैं। हिंदीके इतिहास तथा उसके पुराने रूपमें रस रखनेवालोंके लिये बड़ी मूल्यवान् वस्तु है।

प्राप्तिस्वीकार : हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसीकी पाकेट बुक सीरीजकी निम्नलिखित पुस्तकें संतरोंकी डाली, घरकी सहेली, आदमीका बच्चा, आरजूकी शायरी, एकतारा, काले उजले टीले, तूफान और किनारा, मासूम निगाहोंके शिकार, स्वतंत्रताके सेनानी और प्रतिमा। प्रत्येकमें लगभग १२५ पृष्ठ, दाम प्रत्येकका १.००।

दक्षिण भारती

(दक्षिण भारतकी भाषाएं सीखिये)

—२—

तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम चारों भाषाओंमें साधारणतः यदि शब्दका पहला अक्षर 'ए' हो तो उसका उच्चारण 'ये' होता है। जैसे 'एन्न' का 'येन्न'। इस बातका हमेशा ध्यान रखिये कि शब्दके अंतिम अकारका पूरा-पूरा उच्चारण होना चाहिये जैसे केरलका केरला, लेकिन 'आ' जरा छोटा होगा।

तेलगू और कन्नड़में शब्दके आरंभ में उ, ऊ, ओ, ओ हो तो प्रायः उन शब्दोंका उच्चारण ऐसे किया जाता है मानो उन अक्षरोंके साथ आधा व मिला हो। जैसे ओकटि (एक) का उच्चारण वोकटि (तेलगू) और कन्नड़ ओन्दु (एक) का उच्चारण वोन्दुके जैसा होगा।

तेलगूमें च और ज के पहले या पीछे इ, ई, ए, ए हो तो उनका उच्चारण हिंदीके च और ज जैसा रहता है नहीं तो साधारणतया त्स और ज़ के जैसा हो जाता है। जैसे राजूको राज़ूकी तरह बोला जाता है।

मलयालममें त, क शब्दके बीचमें या अंतमें हों तो उनका उच्चारण द, ग के जैसा होगा। जैसे अतु अदु की तरह बोला जायगा। त, क और में अगर द्वित्त तो उनका उच्चारण त, क, ट के जैसा होगा अन्यथा साधारणतः ग, द, ड के जैसा हो जायगा।

जहां ए और ओ की मात्राके बाद पूर्ण विराम चिह्न (.) दिया गया है वहां ए और ओ ह्रस्व होगा। कन्नड़में प्रायः अंतिम इकार ह्रस्व ही रहता है।

चलिये, अब अगला पाठ पढ़ें।

पांचवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
रास्ता	वीदि	दारि, बाटा	रस्ते.	वझी
मछली	मीन्	च्यापा	मीनु	मीन, मलसियम
शेर	पुली	पुलि	हुलि	सिंहम्
घंटा	मणि	घंटा	गंटे.	मणि
घर	वीडु	इल्लु	मने.	वीटु
सूर्य	सूरियन	सूर्य	सूर्य	सूर्यन
तोतां	किळि	चिलुका	गिळि	तत्ता
नेवला	कीरि	मुंगीसि	मुंगुसि	कीरि
बिल्ली	पूनै	पिल्ली	बेक्कु	पूच्चा
चूहा	ए.ली.	एलुका	इली	चुंडलि
छोटा	चिन्न	चिन्ना	चिक्का, सण्ण	चेरिय
बड़ा	पेरिय	पेद्दा	दोड्ड	वलिय
बुरा	केट्टे	चेड्डा	केट्ट	चीत्त

अब वाक्य देखिये :—

हिंदी : (छोटे) भाई घंटा क्या ? कितने बजे ?
तमिल : तम्बी मणी एन्ना ?
तेलगू : तम्मडु इप्पडु एन्नी घंटलु ?
कन्नड़ : तम्मा गंटे एष्टु ?
मलयालम : अनुजां, मणी (समयम) एत्र आकुन्नु ?

हिंदी : तेरा मकान कहां (है) ?
तमिल : उन वीडु एंगे ?
तेलगू : नी इल्लु एक्कड़ा ?
कन्नड़ : निन्न मने. एल्लि इदे ?
मलयालम : निन्टे वीटु एविटे आकुन्नु ?

हिंदी : तेरा नेवला कहां (है) ?
तमिल : उन कीरी एंगे ?
तेलगू : नी मुगीसा एक्कड़ा उन्नदि ?
कन्नड़ : निन्न मुंगुसि एल्लिदे. ?
मलयालम : निंटे कीरी एवडे आकुन्नु ?

हिंदी : तेरी बड़ी बिल्ली।
तमिल : उन पेरिय पूनै।
तेलगू : नी पेद्दा पिल्ली।
कन्नड़ : निन्न दोड्डु बे.क्कु।
मलयालम : निंटे वलिय पूच्चा।

हिंदी : अच्छा तोता।
तमिल : नल्ला किळी।
तेलगू : मंची चिलुका।
कन्नड़ : ओ.ळ्ळे गिळी।
मलयालम : नल्ल तत्ता।

हिंदी : वह छोटी मछली है।
तमिल : अदु चिन्न मीन।
तेलगू : अदि चिन्ना च्यापा।
कन्नड़ : अदु सण्ण मीनु।
मलयालम : अतु चेरिय मीनाकुन्नु।

यह मेरा रास्ता नहीं (है)।
इदु एन वीदि इल्ले।
इदि ना दारिकादु।
इदु नन्न रस्ते. अल्ल।
इतु एंटे वज़ी अल्ल।

मेरा तोता अच्छा (है)।
एन किळी नल्ल किळी।
ना चिलुका वागा उन्नदि।
नन्न गिळी चेन्नु इदे.।
एंटे तत्ता नल्लतु आकुन्नु।

मेरा छोटा घर।
एन चिन्न वीडु।
ना चिन्ना इल्लु।
नन्न चिक्क मने.।
एंटे चेरिय वीटु।

बुरा नेवला।
केट्टे किरी।
चेड्डा मुंगीसा।
केट्ट मुंगुसि।
चीत्त कीरी।

यह बड़ी सड़क नहीं है।
इदु पेरिय वीदि इल्ले।
इदि पेद्द दारिकादु।
इदु दोड्डु रस्ते. अल्ल।
इतु वलिय निरत्तु अल्ल।

अब इन वाक्योंका अनुवाद कीजिये :—

सुन्दर तोता कहां है ? यह बड़ा मकान है। एक घंटा। यह सूर्य है। तेरा भाई शेर है। यह मेरा रास्ता है। यह मेरा बुरा भाई है। यह बड़ी मक्खी है। बिल्ली जा। शेर आ। अच्छे नेवले आ।

छठा पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
दीपक	दीपम	दीपमु	दीप	दीपम, विळक्कु
नीला	नील	नीली	नीलि	नीलम
रंग	नीरम्	रंगु	रंग	नीरम
आकाश	आहायम	आकाशम	आकाश	आकाशम
बादल	मेहम	मेघम	मोड़	मेखम
वर्षा	मज़ै	वर्षमु	मळै.	मज़ा, वर्षम
पक्षी	पट्शी	पक्षी	पक्षी., हक्की.	पक्षी
फल	पज़म	फलमु, पण्डु	फल, हण्णु	फलम
नाम	पेर	पेरु	हेंसरु	पेरू
हाथी	यानै	येनुगा	आने.	आना
घड़ा	पानै	कुण्डा	कोंड	घटम
कहानी	कदै	कथा	कथे.	कथा

हिंदी	:आकाश नीला है।	मेरा हाथी यहां नहीं है।
तमिल	:आहायम नील नीरम।	एन यानै इंगे इल्लै।
तेलगू	:आकाशमु नीलमुगा उंडुनु।	ना येनुगा इक्कड़ लेदु।
कन्नड़	:आकाशो नीलि इदे।	नन्न आने. इल्लि इल्ल।
मलयालम	:आकाशम नीला आकुडु।	एन्टे आना इवटे इल्ल।

हिंदी	:तेरा घड़ा कहां है?	मेरा नाम भीम है।
तमिल	:उन पानै एंगे?	एन पेर बीमन।
तेलगू	:नी कुण्ड एक्कड़ उन्नदि?	ना पेरु भीमुडु।
कन्नड़	:निन्न कोंड ए.ल्लि?	नन्न हेंसरु भीम।
मलयालम	:निंटे घटम एवटे आकुन्नु?	एंटे पेरु भीमन आकुन्नु।

हिंदी	:वह फल अच्छा फल है।	बड़ा पत्थर।
तमिल	:इंद पज़म नल्ला पज़म।	पेरिय कल।
तेलगू	:आ पण्डु मंचिदि।	पेद्द राई।
कन्नड़	:आ हण्णु चे.न्नागिदे।	दो.ड्डु कल्लु।
मलयालम	:ई फलम नल्लाताकुन्नु।	वलिय कल्लु।

हिंदी	:तेरी बड़ी बिल्ली।	तेरा नीला चित्र।
तमिल	:उन पेरिया पूनै।	उन नील प्पडम।
तेलगू	:नी पेद्दा पिल्ली।	नी नीलि पटम।
कन्नड़	:निन्न दो.ड्डु बेक्कु।	निन्न नीलि चित्र।
मलयालम	:निंटे वलिय पूच्चा।	निंटे नील चित्रम।

हिंदी	: अच्छा पानी, अच्छा दूध ।	तेरा दीपक, मेरा पक्षी ।
तमिल	: नल्ला तण्णीर, नल्ला पाल ।	उन दीपम, एन पट्शी ।
तेलगू	: मंची नीरु, मंची पालु ।	नी दीपमु, उना पक्षी ।
कन्नड़	: ओळळे नीरु, अ़ोळळे हालु ।	निन्न दीप, नन्न हक्कि ।
मलयालम	: नल्ला वे़ळ्ळम, नल्ला पाल ।	निंटे दीपम , एंटे पक्षी ।

हिंदी	: मेरा शरीर, तेरी नाक ।	वह (स्त्री) यहां नहीं है ।
तमिल	: एन उडल, उन मुक्कू ।	अवळ इंगे इल्ले ।
तेलगू	: ना शरीरमु, नी मूक्कु ।	आमे इक्कड़ा लेदु ।
कन्नड़	: नन्न देह, निन्न मूगु ।	अवळु इल्लिल्ल ।
मलयालम	: एं.टे शरीरम, निंटे मूक्कु ।	अव्वळ इव्विटे इल्ल ।

हिंदी	: तू एक शेर है ।	(छोटे) भाई जा ।	सुन्दर आकाश ।
तमिल	: नी ओरु पुली ।	तम्बी पो ।	अजहान आहायम ।
तेलगू	: नीवु पुली ।	तम्मुण पो ।	चक्कनि आकाशमु ।
कन्नड़	: नीनु ओन्दु हुलि ।	तम्मा होगु ।	सुन्दर आकाश ।
मलयालम	: नी पुलियाकुन्नु ।	अनुजा पो ।	सुन्दरमाय आकाशम ।

अब इन वाक्योंको अलग-अलग भाषाओंमें कहिये :—

वह (पु.) यहां नहीं (है) । यह सुन्दर मकान (है) । एक बड़ा हाथी । एक अच्छा फल । नीला दीपक । तेरा नाम क्या (है) ? पक्षी कहां (है) । अच्छा पानी । बुरा दूध । अच्छी कहानी । कन्नड़ कहानी । वर्षा आ । बादल जा । नीला आकाश । मेरी छोटी बिल्ली । मेरा नाम क्या (है) ।

सातवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
तेल	एन्नेय	नूने	ए.ण्णे.	यण्णा
मधु	तेन	तेने	जेनतुप्प	तेन
नारियल	तेङ्गाय	कोब्वेरे काया	ते.ङ्गिन काइ	तेङ्गा
औषध	मरन्दु	औषधमु, मन्दु	औषध	औषधम
धोबी	वण्णन	चाकलि	अगस	अलक्कुकारन
देव	देवन	देवता	देव	देवता
भगवान्	गडवुळ	भगवन्तुडु	भगवंत	भगवान
चेहरा	मुहम	मुखमु	मुख	मुखम
जीभ	नाक्कु	नालुका	नालिगे.	नावु
बकरी	आडु	मेका	कुरि	कोलाडु
गाय, बैल	माडु	पसूलु	दन	पसु, काळा

गाय	पसु	आऊ	हसु	पशु
छतरी	कुडै	गोड्गु	छत्तरि, कोंडे	कूटा
फूल	पू	पुष्पमु	हूवु	पुष्पम
भूमि	बूमि	भूमि	भूमि, ने.ल	भूमि
रुपया	रूबाय	रुपायी	रुपाइ	रूपा

हिंदी : (छोटे) भाई तेल कहां ? (बड़े) भाई, वह तेल नहीं वह मधु है।
तमिल : तम्बी एन्नेय एंगे ? अण्णा अदु एन्नेय इल्ले, अदु तेन ।
तेलगू : तम्मुगा नूने एक्कड़ा ? अण्ण अदि नूने कादु, अदि तेने।
कड़न्न : तम्मा ए.ण्णे एल्लि इदे. ? अण्ण अदु ए.ण्णे अल्ल, जेनुतुप्प ।
मलयालम : अनुजा एण्ण एव्विटे ? ज्येष्ठा, इतु एण्ण अल्ल, तेनाकुन्नु।

हिंदी : मेरे घरमें बकरी, गाय, बैल नहीं है। यह बड़ी छतरी।
तमिल : एन वीट्टिल आडु, माडु इल्लै। इन्दप्पेरिय कुडै ।
तेलगू : ना इंटिलो मेकलु पसुवुलु लेदु। अदि पेद्दा गोड्गु ।
कन्नड़ : नन्न मनेयल्लि कुरि दन इल्ल । इदु दोड्ड छत्तरि ।
मलयालम : एंटे वीटिल कोलाटुम पशुवुम (काळयुम) इल्ला। इतु वळिय कुटा आकुन्नु ।

हिंदी : तेरी जीभ । मेरा चेहरा।
तमिल : उन नाक्कु। एन मुहम ।
तेलगू : नी नालुका । ना मुखमु ।
कन्नड़ : निन्न नालिगे.। नन्न मुख ।
मलयालम : निंटे नावु। एंटे मुखम।

हिंदी : वह बादल। तेरी गाय अच्छी।
तमिल : अन्द मेहम। उन पसु नल्ला पसु ।
तेलगू : आ मेघमु। नी आवु मंचिदि ।
कन्नड़ : अदु मोड । निन्न हसु.´ ओ.ळळेयदु (चेंन्नागिदे.)।
मलयालम : आ मेखम। निंटे पशु नल्लाकुन्नु ।

हिंदी : भगवान्की कथा। देवका घर।
तमिल : गडवुळ कदै। देवन वीडु ।
तेलगू : भगवन्तुनि कथा। देववुणि इल्लु।
कन्नड़ : भगवन्तन कथे.। देवर मने.।
मलयालम : भगवान्टे कथा । देवंटे वीटु ।

हिंदी : भाई इधर आ । देव यहां (है)।
तमिल : तम्बी इन्द पक्कम वा। देवन इंगे।
तेलगू : तम्मुड़ा इक्कड़ि कि रा। देवुडु इक्कड़ा उन्नाड़ु ।

कन्नड़ : तम्म इल्लि बा।
मलयालम : अनुजा एव्विट वा।

हिंदी : क्या यह तेरा हाथी है?
तमिल : इदु उन यानैया?
तेलगू : इदि नी एनुगा?
कन्नड़ : इदु निन्न आने. एनु?
मलयालम : इतु निंटे आना आकुन्नुवो?

हिंदी : फूल नीला है।
तमिल : पूनील निरम।
तेलगू : पुष्पमु नीलमुगा उन्नदि।
कन्नड़ : हूवु नीलि इदे.।
मलयालम : पुष्पम नील आकुन्नु।

हिंदी : नारियल अच्छी दवा है।
तमिल : तेङ्गाय नल्ला मरुन्दु।
तेलगू : कोब्बेरे काया मंचि मंदु।
कन्नड़ : ते.ङ्गिन काइ ओ.ळ्ळेय औषध।
मलयालम : तेङा नल्ल औषधम आकुन्नु।

हिंदी : यह मेरी छतरी नहीं (है)।
तमिल : इदु एन कुडै इल्लै।
तेलगू : इदि ना गोड्गु कादु।
कन्नड़ : इदु नन्न छत्तरि अल्ल।
मलयालम : इतु एंटे कूटा अल्ल।

देवरु इल्लि इद्दाने.।
देवन इव्विटे आकुन्नु।

नहीं, यह मेरा बैल है।
इल्ले, इदु एन माडु।
कादु इदि ना येद्दु।
इल्ल, इदु नन्न दन।
अल्ल, इतु एंटे काळयाकुन्नु।

मेरा घड़ा कहां है?
एन पानै एंगे?
ना कोण्डा एक्कड़ उन्नदि?
नन्न को.डा ए.ल्लि?
एंटे घटम एव्विटे आकुन्नु?

यह जीभ नहीं यह नाक है।
इदु नाक्कु इल्लै, इदु मूक्कु।
इदि नालुका कादु, इदि मुक्कु।
इदु नालिगे. अल्ल, मूगु।
इतु नावल्ल मूकावुन्नु।

अब अलग-अलग भाषाओंमें कहिये :—

यह मेरी छतरी है। मेरा बड़ा हाथी। तेरी गाय। मेरे घरमें हाथी नहीं (है)। उस ओर जा। धोबी आ। मेरा फूल कहां (है)? वह बकरी नहीं बैल (है)। तेरी छतरी बड़ी छतरी (है)। अच्छी वर्षा। बुरा बादल।

आठवां पाठ

इस पाठमें हम नये शब्द न सीखकर कुछ क्रियाएं और उनका उपयोग सीखेंगे। दक्षिणकी भाषाओंमें लिंगकी समस्या नहीं खड़ी होगी। मैं, तू और हम तुममें तो लिंगकी होती ही नहीं, 'वह' में एकवचन ही तो स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग होता है पर स्त्रीलिंग पुलिंग दोनोंका बहुवचन एक ही होता है। मलयालममें क्रियाका लिंग कभी नहीं बदलता। बाकी तीन भाषाओंमें थोड़ा भेद होता है। उनके रूप देखकर समझनेका प्रयास कीजिये।

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
मैं हूं	नान इरुक्किरेन	नेनु उन्नानु	नानु इरुत्तेने.	गा आकुन्नु
हम हैं	नाम इरुक्किरोम	मेमु (मनमु) उन्नामु	नावु इरुत्तेवे	गेङ्गळ आकुन्नु।
तू है	नी इरुक्किराय	नीवु उन्नावु	नीनु इरुत्ती	नी आकुन्नु
तुम हो	नीर इरुक्किरीर	नीवु उन्नावु	नीवु इरुत्तीरि	नीङ्गळ आकुन्नु
आप हैं	नीङ्गळ इरुक्किरीर्हळ	मीरु (तमरु) उन्नारु	तावु इरुत्तीरि	नीङ्गळ आकुन्नु
वह है (पु.)	अवन इरुक्किरान	अतडु उन्नाडु	अवनु इरुत्ताने.	अवन आकुन्नु
वह है (स्त्री)	अवळ इरुक्किराळ	आमे उन्नदि	अवळु इरुत्ताळे.	अवळ आकुन्नु
वह है (नपु.)	अदु इरुक्किरदु	अदि उन्नदि	अदु इरुत्तदे.	अतु आकुन्नु
यह है (नपु.)	इदु इरुक्किरदु	इदि उन्नदि	इदु इरुत्तदे.	इतु आकुन्नु

अब चलिये इनके साथ पढ़े हुए शब्दोंमेंसे कुछ वाक्य बनायें :—

हिंदी :	यह मक्खी है।	यह कुत्ता नहीं है।	सुन्दर कहानी।
तमिल :	इदु ई।	इदु नाय इल्ले।	अजहान कदै।
तेलगू :	इदि ईग।	इदि कुक्काकादु।	चक्कनि कथा।
कन्नड़ :	इदु नोणा।	इदु नायि अल्ल।	सुन्दर कथे.।
मलयालम :	इद ओरु ईचैयाकुन्नु	इतु नायल्ल।	सुन्दरमाय कथा।

हिंदी :	बड़ी छतरी।	अच्छा पानी।	छोटी मछली।
तमिल :	पेरिय कुडै।	नल्ल तण्णी।	चेन्न मीनम।
तेलगू :	पेद्दा गोड्डुगू।	मंची नीरु।	चिन्ना च्यापा।
कन्नड़ :	दो.ड्डु छत्तरि।	ओ.ळ्ळे नीरु।	सण्ण मीनु।
मलयालम :	वलिया कुडा।	नल्ल वेळूळम।	चरिया मलस्यम।

हिंदी :	मैं यहां हूं।	तू कहां है?	वह (पु.) कहां है?
तमिल :	ना इंगे इरुक्किरेन।	नी एंगे इरुक्किराय?	अवन एंगे इरुक्किराया?
तेलगू :	नेनु इक्कड़ा उन्नानु।	नीवु एक्कड़ा उन्नावु।	अतडु एक्कड़ उन्नाडु?
कन्नड़ :	नानु इल्लि इद्देने.।	नीनु ये.ल्लि इद्दीये?	अवनु ये.ल्लि इद्दाने.?
मलयालम :	ञान इविडे उंड।	नी एविडे आण?	अवन एविडे आण?

हिंदी :	वह (स्त्री.) यहां है।	अरुणा अच्छी है।	अरुण घरमें है।
तमिल :	अवळ इंगे इरुक्किराळ।	अरुणा नल्ल इरुक्किराळ।	अरुणन वीट्टिल इरुक्किरान।
तेलगू :	आमे इक्कड़ा उन्नदि।	अरुणा मंचिदि।	अरुण इटिलो उन्नाडु।
कन्नड़ :	अवळु इल्लि इद्दाळे.।	अरुणाळु चे.न्नागि इद्दाळे.।	अरुणनु मनेयल्लिद्दाने.।
मलयालम :	अवळ एविडे आण।	अरुणा नल्ल कुट्टी आण।	अरुण वीट्टिल उंड आण।

हिंदी :	हम यहां हैं।	आप वहां हैं।
तमिल :	नाम इंगे इरुक्किरोम।	नींगळ अंगे इरुक्किरीरहळ।

पुरोधा

तेलगू : नेमु इक्कड़ा उन्नामु। मीरु अक्कड़ा उन्नारु। (तमरु अक्कड़ा उन्नारु।)
कन्नड़ : नावु इल्लि इद्देवे.। तावु अल्लि इद्दीरि।
मलयालम : ञेङ्गळ इविडे आण। ताङ्गळ अविडे आण।

नवां पाठ

इस पाठमें हम कुछ सर्वनाम सीखेंगे :—

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
सर्वनाम	पेयरुरिच्चोल	सर्वनाममुलु	सर्वनामगळु	सर्वनामङ्गळ
उसका, उसकी	अवनुडैय	अतनि, दानि	अवन	अवण्डे
उनका, उनकी	अवरहळुडैय	वारि	अवर	अवरुडे
उसको (पु.)	अवनुक्कु	वानिकि	अवनिगे.	अवन्नु
उसको (स्त्री).	अवळुक्कु	आमेकु	अवळिगे.	अवळक्कु
उनको	अवरुक्कु, अवरहळुक्कु	वारिकि	अवरिगे.	अवये, अवरे।
किसको	यारै	यवरिकि	यारिगे.	आरोड
कौन	यार	यवरु	यारु	आर
कौन-सा	येदु	येदि, येवि	यावुदु, याव	एदु

अब 'देखना' के कुछ रूप सीख लें :—

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
मैं देखता हूं	नान पार्किरेन	नेनु चूचुचुन्नानु	नानु नोडुत्तेने.	ञान काणुन्नु
तू देखता है	नी पार्किराय	नीवु चूचुचुन्नावु	नीनु नोडुत्तीये.	नी काणुन्नु
वह देखता है	अवन पार्किरान	वाळु चूचुन्नाडु	अवनु नोडुत्ताने.	अवन काणुन्नु
वह देखती है	अवळ पार्किराळ	आमे चूचुचुन्नदि	अवळु नोडुत्ताळे.	अवळ काणुन्नु
वह (नपु.) देखता है	अदु पार्किरदु	अदि चूचुचुन्नाडु	अदु नोडुत्तदे.	अदु काणुन्नु

अब इनके वाक्य लीजिये :—

हिंदी : मैं उनको देखता हूं। तू किसको देखता है?
तमिल : नान अवनैप्पार्किरेन। नी यारै पार्किराय ?
तेलगू : नेनु अतनिनि चूचुचुन्नानु। नीवु येवरिनि चूचुचुन्नावु ?
कन्नड़ : नानु अवरन्नु नोडुत्तेने.। नीनु यारन्नु नोडुत्तीये ?
मलयालम : ञान अवरे काणुन्नु। नी आरे काणुन्नु ?

हिंदी : वह उस (स्त्री.) को देखता है। वे उस (पु.) को देखते हैं।
तमिल : अवन अवळै पार्किरान। अवर्हळ अवनै पार्किरार्हळ।
तेलगू : अतडु आमेनु चूचुचुन्नाडु। वारु अतनिनि चूचुचुन्नारु।

कन्नड़	: अवनु अवळन्नु नोड्डुत्ताने. ।	अवरु अवनन्नु नोड्डुत्तारे. ।
मलयालम	: अवन अवळै काणुन्नु ।	अवर अवने काणुन्नु ।

हिंदी.	: उसका कुत्ता ।	उस (स्त्री) का कुत्ता ।
तमिल	: अवनुडैय नाय ।	अवळुडैय नाय ।
तेलगू	: वानि (अतनि) कुक्का ।	आमेयोक्क कुक्का ।
कन्नड़	: अवन नायि ।	अवळ नायि ।
मलयालम	: अवडे नाया ।	अवळुड नाया ।

हिंदी	: कौनसा हाथी ?	उसका हाथी ।
तमिल	: येदु यानै ?	अवनुडैय यानै ।
तेलगू	: ये येनुगा ?	अतनि येनुगा ।
कन्नड़	: याव आने. ?	अवन आने. ।
मलयालम	: एदु आण ?	अवण्डे आण । .

दसवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
मेरा, मेरी	येन्नुडैय	नादि,	नन्न	एण्डे
हमारा, हमारी	नम्मुडैय	मा, मना	नम्म	अङ्गकुडै
मुझे	एनक्कु	नाकु	ननगे.	एन्ने
हमको	नमक्कु	माकु, मनकु	नमगे.	ञाङ्गळक्कु
तेरा, तेरी	उन्नुडैय	नी, मी	निन्न	निंडे
तुम्हारा, तुम्हारी	उङ्गळुडैय	मी	निम्म	निङ्गळुडे
तुझे	उनक्कु	नीकु	निनगो.	निनक्क
तुमको	उङ्गळुक्कु	मीकु	निमगे.	निङ्गळुक्कु
आपको	उङ्गळुक्कु	तमकु	तमगे.	ताङ्गळुक्कु

साधारणतया मानके लिये बहुवचनका ही प्रयोग होता है। "आप" के जैसे शब्द हैं तो पर उनके बिना भी काम चल सकता है। इसलिये अभी हम उन्हें नहीं ले रहे।

हिंदी	: हम देखते हैं।	तुम (आप) देखते हो।
तमिल	: नान पार्किरोम।	नीङ्गळ पार्किरीर्हळ।
तेलगू	: मेमु चूचुचुन्नामु।	मीरु चूचुचुन्नारु।
कन्नड़	: नावु नोड्डुत्तेवे.।	नीवु (तावु) नोड्डुत्तीरि ।
मलयालम	: ञेङ्गळ काणुन्नु।	ताङ्गळ काणुन्नु।

हिंदी : वे देखते हैं।
तमिल : अवर्हळ पार्किराहळ।
तेलगू : वारु चूचुचुन्नारु।
कन्नड़ : अवरु नोडुत्तारे.।
मलयालम : अवर काणुन्नु।

वे (नपुं.) देखते हैं।
अवैहळ पार्किन्रन।
अदि चूचुचुन्नदि।
अवु नोडुत्तवे.।
अव काणुन्नु।

अब इनके कुछ वाक्य लीजिये :—

हिंदी : मैं तुझे देखता हूं।
तमिल : नान उनक्कु पार्किरेन।
तेलगू : नेनु निन्नु चूचुचुन्नानु।
कन्नड़ : नानु निन्नन्नु नोडुत्तेने.।
मलयालम : ञान निन्ने (निङ्ङळे) काणुन्नु।

वे मुझे देखते हैं।
अवर्हळ एनक्कु पार्किराहळ।
वारु नन्नु चूचुचुन्नारु।
अवरु नन्नन्नु नोडुत्तारे.।
अवर ञेन्ने काणुन्नु।

हिंदी : वह उसे देखती है।
तमिल : अवळ अवनै पार्किराळ।
तेलगू : आमे अतनिनि चूचुचुन्नदि।
कन्नड़ : अवळु अवन्नु नोडुत्ताळे.।
मलयालम : अवन अवळे काणुन्नु।

हम आपको देखते हैं।
नाम उङ्ङळै पार्किरोम।
मेमु मिम्मु चूचुचुन्नामु।
नावु तिम्मन्नु नोडुत्तेवे.।
ञेङ्ङळ ताङ्ङळे काणुन्नु।

ग्यारहवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
चाहिये	वेण्डुम्	कावलेनु	बेकु	वेणम
नहीं चाहिये	वेण्डाम	अक्कर लेदु	बेडा	वेण्डा
पुस्तक	पुस्तहम	पुस्तकमु	पुस्तक	पुस्तकम
आज	इनैक्कु	ईरोजुन, नेडु	ईहोत्तु, इन्दु	इन्न
कल (गत)	नुट्रु	निन्न	निन्ने.	इन्नले
कल (आनेवाला)	नालैक्कु	रेपु	नाळे.	नाळे
आदमी	मनिदन	मनिषि	मनुष्य	मनुष्यन्
काम	वेलै	पनि	केलसु	जोलि
केवल	मात्तिरम	केवलमु	केवल	मात्रम
भी	कूड	कूडा	कूड (सह)	कूडे
ला	कोण्डुवा	तीस्को	तन्निरि	कोण्डु वरु
देख	पार	चुडु	नोडु	काणु, नोकु
बोल	सोल्ल	चप्पु	हेळु	संसारिक्यु, पारयु
पढ़	पडिक्क	चदुवु	ओदु	वायिक्यु
दे	कोड्डु	इच्चु	को.डु	कोड्कु

हिंदी	: आज जा ।	तुम पढ़ो ।
तमिल	: इनैक्कु पो ।	नी पडि ।
तेलगु	: नेड्डु पो ।	नीवु चदुवु ।
कन्नड़	: इन्दु (इहोत्तु) होगु ।	नीवु ओदीरि ।
मलयालस	: इन्नु पोगु ।	नीङ्ङळ वायिक्यु ।

हिंदी	: दूध नहीं चाहिये ।	दही चाहिये ।
तमिल	: पाल वेण्डाम ।	तयिर वेण्डुम ।
तेलगू	: पालु अक्कर लेदु ।	पेरुगू कावलेनु ।
कन्नड़	: हालु बेडा ।	मोसरु वेकु ।
मलयालम	: पालु वेण्डा ।	तयिर वेणम ।

हिंदी	: पुस्तक दे ।	राम भी आता है ।
तमिल	: पुस्तहम कोडु ।	राम कूडा वरुहिरान ।
तेलगू	: पुस्तकम इस्मु ।	रामुडु कूडा वोच्चुचुन्नाडु ।
कन्नड़	: पुस्तक को.डु ।	रामनु कूड (सह) बरुत्ताने. ।
मलयालम	: पुस्तमतस (मुझे) कोडुकु (दे दे) ।	रामनुम (कूड) वरुन्नु ।

हिंदी	: केवल राम आता है ।	मेरी पुस्तक अच्छी है ।
तमिल	: रामन मत्तिरम (मट्टुम) वरुहिरान ।	एन पुस्तहम नल्ल पुस्तहम ।
तेलगू	: रामुडु मात्रमु वोच्चुचुन्नाडु ।	ना पुस्तकमु मंचिदि ।
कन्नड़	: केवल रामनु (मात्र) बरुत्ताने. ।	नन्न पुस्तक ओ.ळ्ळेयदिदे. ।
मलयालम	: रामन मात्रम वरुन्नु ।	ञेण्डे पुस्तकम न्नल्लराण ।

हिंदी	: मेरे कुत्तेको देख ।	हमें नहीं चाहिये ।
तमिल	: एन नायैप्पार ।	नमक्कु वेण्डाम ।
तेलगू	: ना कुक्कनु चूडु ।	माकु अक्खर लेदु ।
कन्नड़	: नन्न नायियन्नु नोडु ।	नमगे. बेडा ।
मलयालम	: ञेण्डे नायये नोक्कु ।	ञेङ्ङळकु वेण्डा ।

हिंदी	: वह दूध देती है ।	वह पुस्तक देती है ।
तमिल	: अदु पाल कोडुक्किरुदु ।	अवळ पुस्तहम कोडुक्किराळ ।
तेलगू	: अदि पाल इच्चुचुन्नदि ।	आमे पुस्तकमु इच्चुचुन्नदि ।
कन्नड़	: अदु हालु कोडुत्तदे ।	अवळु पुस्तकवन्नु को.डुत्ताळे ।
मलयालम	: अवळ पाल तरुन्नु ।	अवळ पुस्तकम तरन्नु ।

हिंदी	: वह दही देती है ।	हम आते हैं ।
तमिल	: अवळ तयिर कोडुक्किराळ ।	नाम वरुहिरोम ।
तेलगु	: आमे पेरुगू इच्चुचुन्नदि ।	मेमु वोच्चुनुन्नामु ।

कन्नड़ : अवळु मोसरन्नु को.डुत्ताळे. ।
मलयालम : अवळ तयिर तरुन्नु ।

हिंदी : वे जाते हैं ।
तमिल : अवर्हळ पोहिरार्हळ ।
तेलगू : वारु पोवुचुन्नारु ।
कन्नड़ : अवरु होगुत्तारे. ।
मलयालम : नामगळु नोडुत्तेवे ।

नावु वरुत्तेवे. ।
ञेङ्गण वरुन्नु ।

कुत्ते देखते हैं ।
नायहळ पार्किन्रन ।
कुक्कलु चूचुचुन्नवि ।
नायिगळु नोडुत्तवे. ।
नायकूल काणुन्नु ।

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

***
NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

श्रीअरविंद आश्रमके प्रकाशन तथा उत्पादनका वितरण केंद्र

'वंदना'

१०८।५० गांधीनगर
कानपुर

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,
CALCUTTA 29

A leading Dealer in and

Manufacturers

Chemicals, Solvents, Minerals,

Thinners, Silicates,

Insecticides & Pesticides.

"युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके रथको हांकनेवाले कुरुक्षेत्रके सारथि (श्रीकृष्ण) कर्मयोगके प्रतीक और प्रतिमूर्त्ति हैं; क्योंकि शरीर ही है रथ और इन्द्रियां हैं हांके जानेवाले घोड़े और संसारके रक्तरंजित तथा पंकसंकुल पथसे ही श्रीकृष्ण मानवात्माको वैकुंठ-तक ले जाते हैं।"

—श्रीअरविंद

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन-४३४

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Ranigani
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९
तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

मीनाक्षी रोलर फ्लावर मिल्स

उत्तम मैदा और सूजी की
चीजें बनानेवाले

मिल :-
विलनगुडी
मदुरा
फोन-३४९१

कार्यालय :-
८२, साउथ अवनिमूल स्ट्रीट
पोस्ट बाक्स ५
मदुरा
फोन-४५१६

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता–७

फोन–३३२३१२

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

एक नयी योजना :

अदिति पुस्तक-माला

★ हर तीसरे महीने एक आध्यात्मिक पुस्तक प्रकाशित होगी।

★ प्रत्येक पुस्तक श्रीमां श्रीअरविंद के लेखोंसे संग्रहीत होगी।

★ प्रत्येक पुस्तक ८०।१२५ पृष्ठ तक, मूल्य रु. २ से ३ के भीतर की होगी।

★ सालके भीतर ग्राहक बनलेवालों को चारों पुस्तकें केवल ६ रुपयेमें प्राप्त होंगी।

★ इस वर्ष की पुस्तकें :–

* सफेद गुलाब	रु. २.५०
*मृत्यु और उसपर विजय	रु. ३.००
* मानव एकताका स्वरूप	प्रेसमें
* अवतार	प्रेसमें

मिलनेका पता :–

अदिति कार्यालय
पांडिचेरी-२

"संसारने अबतक जैसे जीवनकी संभावनाकी कल्पना की है उससे कहीं अधिक गभीर और अधिक महान् जीवनकी ओर भारत अग्रसर हो रहा है और जब वह इन विभिन्न कार्यावलियोंमें अपने-आपको अभिव्यक्त करनेका रहस्य ढूंढ़ निकालेगा तब उसका औद्योगिक जीवन भी सशक्त और विस्तीर्ण हो जायगा।"

—श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई—१

शुभ कामनाओंके साथ—

आर्थर इम्पोर्ट एक्सपोर्ट कम्पनी

'मों रपो'
४१।४४ आर्थर बन्दर रोड
(रेडियो क्लबके पीछे)
बम्बई—५

अत्युत्तम श्रेणीके

उर्णाविश्लेष तन्तु Shoddy yarns
संश्लिष्ट शीर्ष Synthetic tops
बैरकावरण Barrack blankets

के

आयातक, निर्यातक तथा संभारक

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

अक्तूबर

१९६५

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

हे प्रभुके सूरमा	श्रीअरविन्द	२
श्रीमातृ-वाणी	श्रीमां	३
संपादकीय		४
प्रचार-योग्य विचार	श्रीमां	९
स्वप्न	श्रीअरविन्द	१०
नमःकी महिमा	अभयदेव	१८
गीत	श्यामसुन्दर घोष	२०
नारी और पुरुष	अनुबेन	२१
आईन्स्टीन	जगदीश मलहोत्रा	२३
दुख-दर्द	रवीन्द्र	२६
हार न मानो	हीरो	२७
उचित मूल्य	अजित सिंह	३०
बनी-बनायी कहानी	रवीन्द्र	३४
शंकरदेव	तुलसी	३७
स्वतंत्रता	अंबालाल पुराणी	४०
छुट्टियां शुरू	स्नेहलता	४४
आकाशमें पंखा	कृष्ण कुमार	४७
माया	ओमप्रकाश शर्मा	४८
शक्तिका अवतरण	मदनमोहन तरुण	५१
चीटियां......	मीना	५४
चतुराईभरी घात	लाट साहब	५५
आलो	अनुबेन	५७
चुटकुलोंकी बारी	...	६०
दिन-रात शोर ही शोर	अरुणा	६३
पुस्तक-परिचय	...	६५
दक्षिण भारती	...	६८

चित्रकार : संजीवन विश्वास (आवरण), कृष्णलाल, जयंतीलाल, अंजना शर्मा, अनिरुद्ध सरकार

मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

अक्तूबर १९६५ अंक २

वर्ष ४

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिससे कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।

—श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी–२

"Hero of God" श्रीअरविंदकी कविता का भावानुवाद :

हे प्रभुके सूरमा !

हे प्रभुके सूरमा और सेनानी !
हे जननायक वीरप्रवर, बलिदानी !
तेरे लिये व्रणोंकी पीड़ा कैसी !
कैसी लज्जा और यातना कैसी !

तेरा जीवन जगमग एक कीर्ति है,
और चमकती हुई हिमांशु ज्योति है,
तेरे सारे कर्म पुनीत यज्ञ हैं,
स्वाहा, अर्चि और साकार हव्य हैं,
तेरी जय तो देवत्वकी विजय है सर्वसदानी !
और हार भी अरे जीत है तेरी सुरकुल-मानी !

जबतक मुक्त हैं भुजाएं लड़ता चल,
हाथोंसे ललकारोंसे लड़ता चल,
लड़ता चल तू जिन मस्तिष्की बलसे,
और आयुधोंके सारे कौशलसे,
क्या बैरीने तुझे बनाया बन्दी है अभिमानी ?
ठूंस दिया है मुखमें तेरे वस्त्र सत्य-संधानी ?

तो तू लड़ता चल अपनी आत्मासे,
उसकी सर्व-वेष्टिनी नीरवतासे,
निज संकल्पशक्तिकी असीमतासे,
कभी न डिगनेवाली निज दृढ़तासे,

यदि तू अपने शरीरको तज भी दे,
तो लड़ता चल वही महान् शक्ति ले,
जो आलिंगित किये हुए है जगको,
जो सीधी ईशसे मिली है तुझको,
जो तेरे ही पास छिपी है रे अबतक अनजानी,
अंतरके कोनेमें पड़ी हुई है बिन पहचानी,

अरे कहां हैं अब भय औ बाधाएं,
तेरी इस अनाप सिंधु-अतलतामें,
अपितु उपरितलके घोर गर्जनोंमें,
हहराती आती तटकी लहरोंमें,
तुझे हर्ष-उन्माद ही मिलेगा हे अंतर्ज्ञानी !
कर्म-समरमें यहां मुक्त-आत्माकी यही कहानी !
आत्मा खुद तो कर्म नहीं करती पर
छोड़ रही श्वासोंसे यह कर्मोंकी गर्म रवानी !

—अनु. विद्यावती कोकिल

श्रीमातृ-वाणी

Les trois étapes de l'union avec le Divin:

1) Donner tout ce que l'on a, est le point de départ,
2) Donner tout ce que l'on fait, est le chemin.
3) Donner tout ce que l'on est, est l'aboutissement.

भगवान्के साथ एकत्वकी तीन अवस्थाएं :

(१) जो कुछ हमारे पास है वह सब दे देना है आरंभिक अवस्था।
(२) जो कुछ हम करते हैं वह सब दे देना है उसका पथ।
(३) जो कुछ हम हैं वह सब दे देना है अंतिम परिणाम।

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

व्यक्ति और राज्य-सत्ता

बहुतसी मध्यकालीन राज्यसत्ताएं अपने व्यवहारमें, अपने आंतरिक व विदेशी कार्यकलापमें पूरी तरहसे पाशविक थीं। प्राचीन कालमें राज्यसत्ताके कुछ आदर्श हुआ करते थे, उसके सामने कुछ उच्च लक्ष्य हुआ करते थे और कम-से-कम आंतरिक व्यवस्थामें वह अमुक स्तरसे नीचे नहीं गिरती थी; परंतु विदेशोंके साथ या अन्य राज्योंके साथ व्यवहारमें उन आदर्शोंको भुला दिया जाता था। लेकिन मध्य कालमें तो आंतरिक व्यवस्थाका चित्र भी बदला हुआ था। राज्यसत्ता अपने देशमें भी अत्यंत क्रूर, कठोर, धूर्त और अत्याचारी बन गयी थी। वह प्रजाको स्वतंत्र क्रिया, स्वतंत्र मत अथवा धार्मिक स्वतंत्रता देनेको भी तैयार नहीं थी। वह जिस प्रकार अन्य राज्योंके ऊपर बाज बनकर झपटती थी उसी प्रकार अपने आंतरिक अवयवोंपर भी निर्मम रूपसे प्रहार करती थी। उसके सामने केवल एक ही लक्ष्य था—जिस अंगके मांस और रुधिरपर वह पल रही थी उसे किसी प्रकार मजबूत और समृद्ध रखना ताकि उसे अपने चूसनेके लिये पर्याप्त रस मिलता रहे। परंतु उसके स्वार्थभरे कार्यसे भी परोक्ष रीतिसे समाजका कुछ-न-कुछ कल्याण हो ही जाता था। प्रकृति किसी-न-किसी तरह विपरीत अवस्थाओंसे भी लाभ उठाकर आगे बढ़नेका मार्ग निकाल लेती है।

आधुनिक कालमें जहां कई दिशाओंमें अवनति हुई है वहां कई अन्य दिशाओंमें बहुत बड़ी प्रगति भी हुई है। आजकी राज्यसत्ता अपनी प्रत्येक क्रियाको न्यायसंगत सिद्ध करनेका प्रयास करती है। वह अपने अस्तित्वकी आवश्यकता सिद्ध करनेके लिये समस्त जातिकी, और समाजके भिन्न-भिन्न अंगोंकी आर्थिक स्थितिको सुधारनेकी कोशिश करती है और उसकी हर प्रकारकी पाशविक आवश्यकताओंको पूरा करनेका प्रयास करती है। राज्यसत्ता समाजकी शारीरिक सुविधाएं जुटानेके अतिरिक्त उसकी बौद्धिक प्रगतिमें भी सहायक होती है और शायद इसी बहाने परोक्ष रूपसे उसकी नैतिक स्थितिको भी सुधारनेमें सहायक होती है। दो महायुद्धोंने बुद्धि और नैतिकताके अंशको केवल आंतरिक सीमाओंमें ही नहीं रखा अपितु विदेशी राजनीति और बाह्य व्यवहारमें भी ला बिठाया है। आज हरएक देश अपने प्रत्येक कार्यको, अपनी विदेशी नीतिकी प्रत्येक चालको बुद्धिसंगत, न्यायसंगत और नैतिक सिद्ध करनेका प्रयास कर रहा है।

राज्यसत्ता एक ऐसी चीज है जिसमें अपार शक्ति भरी है परंतु उस शक्तिका दुरुपयोग होनेसे बचानेवाला विवेक उसमें नहीं है। मनुष्य जैसे नैतिक कारणोंसे, समाजके भयसे अथवा अपने अंदरकी धीमी-सी आवाजके कारण कुमार्गपर जानेसे झिझकता है वैसे राजसत्ताको रोकनेवाली चीज कोई नहीं है। राज्योंके अंदर अंतरात्माका, आंतरिक आवाजका कोई स्थान नहीं है और अगर है

भी तो नगण्य-सा। एक मनुष्य किसी दूसरेको लूटते हुए या मारते हुए अनुभव करता है कि वह गलती कर रहा है, परंतु एक राज्य दूसरे राज्यको धोखा देनेमें, साम दाम दंड भेदके द्वारा उसे लूट-कर अपनी थैलियां भरनेमें एक प्रकारसे गर्वका अनुभव करता है। एक महत्तर और शायद अधिक कुरूप 'अहं' की वेदीपर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंको चढ़ानेके लिये प्रस्तुत रहता है। यह और बात है कि आजकल यह काम इतना आसान नहीं है।

यह तो हुई बाहरकी बात। अपने अंदर भी राज्यसत्ता व्यक्तिके ऊपर, हो सके तो जादूकी छड़ी घुमाकर और नहीं तो सोटा दिखाकर सबको एक ही सांचेमें ढालनेकी कोशिश करती रहती है। मानवजातिका लक्ष्य है प्रगति करना, बढ़ना और अपनी सर्जक शक्तियोंके द्वारा ऊपरी स्तरकी चीजोंको नीचे अवतरित करना। परंतु राज्यसत्ता तो एक मशीन है; उसके लिये तो यही सुगम है कि वह सबको एक ही ढांचेमें ढाल दे। उदाहरणके लिये राज्यके अधिकारमें जो शिक्षाप्रणाली है वह चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, पर वह व्यक्तिकी आवश्यकताको समझकर उसके अनुरूप व्यवस्था नहीं कर पाती। उसे देशके लिये इंजिनियरों और डाक्टरोंकी जरूरत है तो वह इंजिनियर और डाक्टर ही पैदा करती जायगी चाहे नैतिक दृष्टिसे वे मनुष्य कहलाने योग्य हों या नहीं। उसकी सारी इच्छाएं इसी चीजपर केंद्रित रहती हैं कि जिसे वह राष्ट्रका भला या समूहका भला समझे वही किया जाय फिर चाहे उसके लिये उसके कर्णधारोंको अंतर्राष्ट्रीय सभाओंमें साधारण शिष्टाचारको तिलांजलि देकर एक-दूसरेको जूते क्यों न दिखाने पड़ें।

इसी चीजको जरा छोटे आकारमें देखें। हमारे अपने देशमें कितने ही मजदूर-संघ हैं। हर-एक संघको एक छोटी राज्यसत्ताके जैसा माना जा सकता है। एक संघ ठीक करता है कि उसके प्रत्येक सदस्यको प्रतिमास अमुक राशि मिलनी ही चाहिये। वह यह देखनेकी परवा नहीं करता कि उसका परिणाम दूसरोंपर क्या होगा। बड़ी निर्ममताके साथ वह अपने निर्णयको दूसरोंके ऊपर लादनेका प्रयास करता है। यदि उसीका कोई सदस्य उसके निर्णयमें भूल दिखानेका प्रयास करे, यदि यह कहनेकी धृष्टता करे कि उसकी मांग अनुचित है अथवा अधिकारोंकी जगह कर्तव्योंकी बात करे तो उसे एकदम च्युत कर दिया जायगा।

राज्यसत्ताके इस अंधेपनका अर्नेस्ट टालरने अपने एक नाटकमें बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। कहते हैं, एक राज्यमें कुछ असंतोष फैल रहा था और संभव था कि स्थिति अधिकारियोंके हाथसे बाहर हो जाती। इसी बीच उसके सर्वोच्च अधिकारीने घोषणा कर दी कि हमारे राज्यपर शत्रुओंने आक्रमण किया है। चारों ओर इसी बातका प्रचार होने लगा। लोग अपनी बातोंको भूल गये। राज्यकी सारी मशीनरी सारे समय शत्रुकी याद दिलाती रहती थी। युद्ध-ज्वर फैल गया। अगर किसी बदकिस्मतने पूछ लिया कि शत्रु है कौन तो उसकी मुसीबत। कुछ ही समय बाद घोषणा हुई कि शत्रुके हवाई जहाज हमारे क्षितिजपर दिखायी दे रहे हैं। जिस किसीने शंका प्रकट की उसका सिर उतार लिया गया। न्यूनाधिक रूपसे राज्यसत्ताएं इस प्रकार करती ही रहती हैं और व्यक्ति आवेशमें आकर, संघमें मिलकर अपना विवेक खो बैठता है।

मानवताकी प्रगतिके लिये व्यक्तिकी प्रगति अत्यंत आवश्यक है। समाज या राज्य व्यक्तिकी प्रगतिमें सहायक हो सकते हैं। उसके स्वामी बनकर उसे हांक नहीं सकते। राज्यका वास्तविक कार्य है व्यक्तियोंके सामूहिक कार्यके लिये सुविधाएं पैदा कर देना, उनके मार्गकी बाधाओंको हटाना, अपव्यय और कलहकी संभावनाको कम करना, जहांतक हो सके न्याय करना और प्रत्येक व्यक्तिको उसकी योग्यता, उसकी क्षमता और उसके सामर्थ्यके अनुसार प्रगति करनेका अवसर देना और आवश्यक साधन जुटा देना। राज्यसत्ता यदि इतना ही करे तो वह सिर आंखोंपर। लेकिन जब वह व्यक्तिके कामोंमें अनुचित रूपसे हस्तक्षेप करने लगती है, उसकी प्रगतिको रोकनेका अथवा उसे अपनी

सूझ-बूझके अनुसार चलानेका प्रयास करने लगती है तो वह उस बाढ़की तरह हो जाती है जो खेती-को ही साफ करने लग जाये।

व्यक्ति क्रांति ला सकता है, आगे बढ़कर नये-नये क्षेत्रोंको जीत सकता है, आकाशके तारे तोड़ लानेके स्वप्न ले सकता है, इसके विपरीत राज्यसत्ता अथवा सामाजिक समूह स्थितिको बदलनेसे डरता है, वह एक मान-दंड बना लेता है, वह चाहे आजकी स्थिति हो अथवा कलकी कल्पना, और उस मानदंडसे ऊपर उठना, अथवा उसके बताये हुए मार्गसे भिन्न मार्ग लेना उसकी दृष्टिमें अवांछनीय होता है, उसके निर्दिष्ट आदर्शसे भिन्न आदर्शकी ओर जानेवाला काफिर हो जाता है।

व्यक्ति ही प्रगति करता है और बाकी समाजको अपने पीछे खींच ले जाता है। व्यक्ति प्रगति, विकास और विस्तारमें आनंद पाता है जब कि समूह झंझटके अभाव, सुख-चैन और स्थितिस्थापनमें संतोषका अनुभव करता है। जबतक समूहके अंदर एक सचेतन आत्माका विकास नहीं होगा तवतक यह ऐसा ही रहेगा।

मनुष्यजातिकी वर्तमान स्थितिमें राज्यकी मशीनरीके द्वारा मानव एकताका लाया जाना असंभव-सा है। हो सकता है बड़े प्रयासके बाद रोमन साम्राज्यकी तरह एक विश्व-साम्राज्य स्थापित किया जा सके जिसमें सारी शक्ति केंद्रके हाथमें हो, हो सकता है कि भिन्न-भिन्न अवयवोंको कुछ अधिकार देते हुए भारतीय राज्यके जैसा एक विश्व-संघ बनाया जा सके। इस प्रकारके एकीकरणकी उपादेयतासे इन्कार नहीं किया जा सकता परंतु फिर भी वह स्वस्थ एकता न होगी। उसके अंदर बुनियादी सच्चाईकी कमी होगी, और नयी परिस्थितियोंमें, नये वातावरणमें पुराने परीक्षणको ही फिरसे दोहराया जायेगा। वह संघ फिरसे टूटेगा, फिरसे एक प्रकारकी विकृत अवस्था उत्पन्न होगी जो सच्ची एकताको लानेके लिये मनुष्यको बाधित करेगी। पर इस सब झमेलेसे बचना असंभव नहीं है। अगर मानवजाति केवल बाह्य आर्थिक और राजनैतिक एकताको लक्ष्य बनानेकी जगह आध्यात्मिक एकताको लानेका प्रयास करे, केवल शारीरिक और प्राणिक सुविधाओंसे संतुष्ट न होकर आंतरिक जीवनकी ओर ध्यान दे तो वर्तमान कलह और भावी विपदाओंसे बचा जा सकता है।

(श्रीअरविन्दकी पुस्तक 'मानव एकताका आदर्श' के आधारपर)

दूसरोंकी सहायता

बात शायद सन् १९३६ या ३७ की है। गुरुकुल कांगड़ीमें प्रो० सेवाराम जी आये हुए थे। उन्होंने सब विद्यार्थियोंके अंदर गरीबोंकी सेवाका भाव जगाया और परिणामस्वरूप प्रत्येक दिन उनके नेतृत्वमें कई विद्यार्थी पासके गांवोंमें "सामाजिक सेवा" करनेके लिये जाने लगे। हरएकके हाथमें एक लंबी झाड़ू और [टोकरी होती थी। सबके सब गांवके एक सिरेसे पिल पड़ते और वहांके रास्तों-पर झाड़ू लगाते, कूड़ा इकट्ठा करते और उसे गांवके बाहर किसी खेतमें खाद बनानेके लिये गाड़ आते। गांववालोंमें नये भंगी चर्चाका विषय बन गये। उन्हें गप्पोंके लिये किसी-न-किसी विषयकी जरूरत होती थी, ये पढ़े-लिखे भंगी गप्पोंके लिये अच्छा विषय बन गये। लोग तरह-तरहके अनुमान करने लगे कि भंगियोंकी यह नयी जाति किस उद्देश्यसे उनके यहां आती है। कोई इन्हें सरकारी जासूस, कोई कांग्रेसका स्वयं-सेवक समझता। इतना ही नहीं, उनके बारेमें अजीब-सी अच्छी और बुरी कल्पनाएं भी की जाने लगीं। कोई बिगड़े मिजाजका ठाकुर इनसे कह देता, 'खबरदार, हमारी गलीमें पांव न रखना, यहां तुम्हारे चोंचले नहीं चलेंगे', तो कहीं घरोंसे निकल-निकल कर स्त्रियां अपने घरोंका कूड़ा इन्हें दे जातीं। काम शुरू करते समय इन लोगोंका विचार था कि इन्हें झाड़ू लगाते

देखकर ग्रामीण जनता उमड़ पड़ेगी और देखते-देखते इनके हाथोंसे झाड़ू और टोकरियां लेकर अपने-आप सफाई करनेमें जुट जायगी और कुछ थोड़े दिन चक्कर लगानेसे ही गांववालोंमें सफाईकी आदत पड़ जायगी और वे लोग किसी दूसरे गांवकी ओर मुंह करेंगे, पर हुआ कुछ और ही। ये लोग एक गलीमें जाते तो दूसरी गलीवाले शिकायत करते कि झाड़ूवाले हमारी गलीमें क्यों नहीं आये, कूड़ा बहुत हो गया है। एक बार विद्यार्थियोंकी परीक्षा थी, इसलिये उन्होंने दो-चार दिनकी छुट्टियां मनायीं तो गांवके कुछ लोग उनके कमरोंपर शिकायत लेकर आ पहुंचे और कहने लगे, 'भई, नियमित रूपसे हमारे घरका कूड़ा ले जाया करो।'

हमारे पड़ोसमें एक धार्मिक वृत्तिके ईसाई रहते थे। उनका नियम था कि हर रविवारको गिरजाघरसे लौटकर दान दिया करते थे। दान होता था कुल जमा एक पैसा प्रति व्यक्ति। सज्जन नौ बजेके लगभग गिरजेसे लौटते, फिर कपड़े बदलकर शायद कुछ नाश्ता-वाश्ता करते और फिर साढ़े-नौ या दसके लगभग अपने छज्जेपर खड़े होकर नीचे खड़े हुए भिखारियोंको एक-एक पैसेका दान देते थे, इस पैसेके लिये सवेरेके सात बजेसे ही उनके मकानके नीचे भीड़ लग जाती थी और नौके आस-पास तो उस रास्तेसे गुजरना मुश्किल हो जाता था।

इस प्रकारके उदाहरण हजारों और लाखोंकी संख्यामें दिये जा सकते हैं। सहायता देनेवाला सोचता है कि वह गरीब, अनपढ़ या पिछड़े हुए लोगोंको मदद दे रहा है पर होता क्या है? वे और भी अधिक पंगु हो जाते हैं और पूरी तरहसे उस सहायतापर ही निर्भर रहते हैं। सहायता देनेवाला चाहता है कि सहायता पानेवाला और अधिक नहीं तो कम-से-कम आभार प्रदर्शन तो अवश्य ही करे। उधर सहायता पानेवाला इसे अपना अधिकार मान बैठता है और इसमें किसी प्रकारकी कमी आनेपर खीज उठता है। इसी चीजको एक बड़े रूपमें अंतर्राष्ट्रीय सहायताके कार्यक्रममें भी देखा जा सकता है।

तब इसका उपाय क्या है? क्या सहानुभूति, उदारता और दूसरोंकी सहायता करनेकी वृत्तिको तिलांजलि दे देनी चाहिये? नहीं, ये वृत्तियां मनुष्यके छोटे-से अहंको विशाल बनानेमें तथा उसे ऊंचा उठानेमें सहायता करती हैं। उनके चले जानेसे तो मनुष्यके अंदरकी ऊष्मा ही जाती रहेगी और उसका हृदय एक सर्द पत्थर बनकर रह जायगा। उसे औरोंकी सहायता अवश्य करनी चाहिये, पर जरा समझ-बूझकर। प्राचीन कालमें दान-दक्षिणा देनेकी प्रथा रही है। परंतु यह दान हमेशा पात्र देखकर किया जाता था। दान लेनेका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको था, अन्य लोगोंको नहीं। इसके परिणामस्वरूप ब्राह्मण अपनी जीविका कमानेकी ओरसे बिलकुल निश्चिंत होकर यज्ञ-याग आदि धार्मिक क्रियाओंमें, पठन-पाठन आदि सामाजिक कर्तव्योंमें लगा रह सकता था। उसे पढ़ानेके लिये कोई शुल्क नहीं देना पड़ता था। पढ़नेवाले ब्रह्मचारी अपने गुरुके घरमें रहते थे और इस दान-दक्षिणामेंसे ही उनके भरण-पोषणकी व्यवस्था होती थी। इस प्रकार दान-दक्षिणासे बेकार लोगोंकी सेना नहीं बढ़ती थी। अपितु निष्काम कर्म करनेवाले, भगवान् और उसकी सृष्टिकी सेवा करनेवालेको पेटकी चितासे मुक्ति मिलती थी ताकि वह अपना पूरा समय अधिक मूल्यवान् कामोंमें लगा सके।

आजकी बदली हुई परिस्थितियोंमें सहायता देनेका ढंग भी बदलना होगा। आज सहायता देनेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि लोगोंमें दूसरोंका मुंह ताकनेकी जगह अपने पैरोंपर खड़े होनेकी शक्ति पैदा की जाय। भगवान्की सृष्टिमें कोई भी बिलकुल बेकार नहीं है, हरएकका कुछ-न-कुछ उपयोग हो सकता है। हरएकको उपयोगी बननेका अवसर और प्रेरणा देना ही सबसे बड़ा दान है। हमें एक बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि 'कुछ नहीं' मेंसे कुछ पैदा करना एक मृगतृष्णा मात्र है। आज हमारे देशकी सबसे बड़ी कमजोरी है उत्पादनकी कमी, चाहे वह कृषिक्षेत्रका उत्पादन हो चाहे औद्योगिक क्षेत्रका, जबतक प्रचुर मात्रामें उत्पादन नहीं होगा तबतक सामाजिक,

आर्थिक और राजनैतिक समस्याओंका हल करना असंभव है। अगर आपके पास गेहूं प्रचुर मात्रामें है तो किसान अपने खलिहानोंमें छिपाकर अथवा व्यापारी काला बाजार करके क्या लाभ उठायेगा? अगर गेहूं पर्याप्त हो तो स्वाभाविक रूपसे उसका दाम बहुत बढ़ने न पायेगा। और इसके परिणाम- स्वरूप जो लोग एक समय खाकर गुजारा कर लेते थे उन्हें दोनों समय रोटी मिलेगी, इससे गेहूंकी मांग बढ़ेगी और चाहे काले बाजारके क्षणिक लाभकी तुलनामें व्यापारीको कुछ कम मिले पर व्या- पार बढ़नेकी वजहसे, मांग बढ़नेकी वजहसे सब मिलाकर अधिक लाभ होगा। इसी भांति उपयोगी और सस्ती चीजें बनानेवाले देखेंगे कि उनकी चीज अच्छी और प्रामाणिक हो तो उसकी मांग बढ़ती है, मांग बढ़नेसे उत्पादन बढ़ता है, उससे अधिक लोगोंको काम मिलता है, अधिक लोगोंके अंदर चीजें खरीदनेकी क्षमता पैदा हो जाती है। यह एक चक्र चल पड़ता है, जिससे साधारण लोगोंकी आर्थिक स्थिति सुधर सकती है और उनका जीवन-स्तर उठ सकता है।

हम प्रत्येक व्यक्तिसे यह आशा नहीं कर सकते कि वह स्वार्थ त्यागकर अपने-आपको भगवान्के कार्यके लिये अर्पित कर देगा। साधारण आदमीके अंदर स्वार्थकी भावना रहती ही है। पर इस स्वार्थके घेरेको जरा बड़ा बनाया जा सकता है। हरएकको अपने पैरोंपर खड़ा होनेके योग्य बनाइये, हरएकको देशके लिये उपयोगी वस्तुओंके उत्पादनमें हाथ बंटानेका अवसर दीजिये। इससे जहां उनके अंदर स्वमान उत्पन्न होगा वहां देशका और मानवजातिका भी कल्याण होगा। तमस्से घिरे हुए, आलस्यमें पड़े हुए लोग कभी भगवान्का काम नहीं कर सकते। भगवान्के कामके लिये भी शक्ति चाहिये, गति चाहिये, ऊपर उठनेकी अभीप्सा चाहिये। वहां, आलसी, प्रमादी, परमुखापेक्षी लोगोंसे काम नहीं चलता। हममेंसे हरएकके अंदर एक चिनगारी छिपी हुई है। अगर हम उसे मलवेके नीचे ढक न दें तो वह हमारी समस्याएं हल कर सकती है। हममेंसे हरएकको क्रियाशील बनना चाहिये, इस दिशामें औरोंकी सहायता करनी चाहिये। कर्मठ होकर ही हम अपने कर्मोंको भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर सकते हैं। इस ओर प्रवृत्त करना ही जनसमाजकी सबसे बड़ी सहायता होगी।

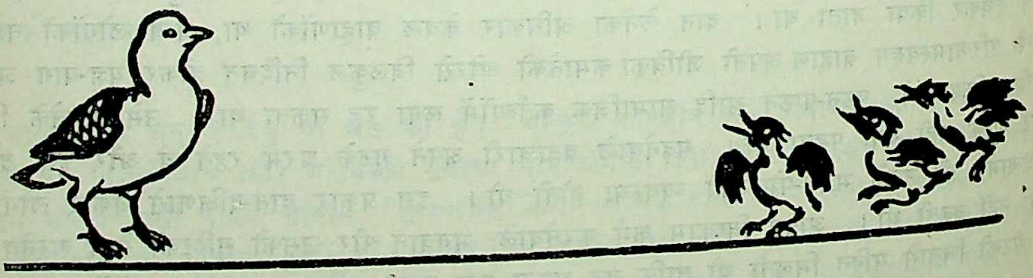

प्रचार-योग्य विचार और प्रस्तुत करने योग्य दृष्टांत

"प्रचार करने योग्य सबसे उपयोगी विचार कौन-सा है और लोगोंके सम्मुख प्रस्तुत करने योग्य सबसे उत्तम दृष्टांत कौन-सा है ?"

इस प्रश्नपर दो दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है : एक तो है बहुत व्यापक दृष्टि जो समूची पृथ्वीको अपने ध्यानमें रखती है और दूसरी है व्यक्तिगत जो हमारी वर्तमान सामाजिक परिस्थितिसे संबंध रखती है।

व्यापक दृष्टिसे विचार करनेपर मुझे ऐसा लगता है कि प्रचार करने योग्य सबसे उपयोगी विचार दो प्रकारका है :

(१) मनुष्य स्वयं अपने अंदर ही पूर्ण शक्ति, विवेक और ज्ञानको वहन करता है और वह यदि उनपर अपना अधिकार प्राप्त करना चाहे तो उसे अंतर्निरीक्षण तथा चित्तकी एकाग्रताके द्वारा उन्हें अपनी सत्ताकी गहराईमें खोजना चाहिये।

(२) ये सभी दिव्य गुण सभी जीवोंके केंद्रस्थलमें, हृदयमें एक समान पाये जाते हैं और वहींसे आती है सबकी मौलिक एकता और उसके फलस्वरूप पारस्परिक संबंध तथा भ्रातृत्व।

प्रस्तुत करने योग्य सर्वोत्तम उदाहरण होगा अविमिश्र प्रशांतिका, अपरिवर्तनीय शांतिसे पूर्ण आनंदका उदाहरण। ये चीजें उस मनुष्यके स्वाभाविक गुण बन जाती हैं जो संपूर्ण रूपसे इस विचारके अनुसार जीवन यापन करना जानता है कि सबके अंदर एक ही भगवान् विराजमान हैं।

हमारी वर्तमान परिस्थितिके दृष्टिकोणसे, जो विचार प्रचारित करना मुझे सबसे उपयोगी प्रतीत होता है वह यह है :

किसी भी बाहरी उपाय, भौतिक उन्नति या सामाजिक परिवर्तनसे मनुष्यका सच्चा क्रमविकास साधित नहीं हो सकता — वह क्रमविकास नहीं हो सकता जो कि उसे उस परमानंदकी ओर ले जा सके जिसे पानेका वह हकदार है। व्यक्तिके आंतरिक और गभीर उत्कर्ष ही वे चीजें हैं जो उसकी सच्ची उन्नतिका कारण हैं और उसकी वर्तमान परिस्थितिको संपूर्ण रूपसे रूपांतरित करके उसके दुःख और दुर्दशाको प्रशांत और स्थायी परितृप्तिमें, आनंदमें परिवर्तित कर सकती हैं।

अतएव, सर्वोत्तम उदाहरण है सर्वप्रथम व्यक्तिगत उन्नति करना जो अन्य सबके लिये अवकाश प्रदान करे, वह पहली विजय प्राप्त करना जो अहंभावापन्न व्यक्तित्वके ऊपर हमारी जीत है : निःस्वार्थभाव ग्रहण करना।

आज सब लोग अपनी असंख्य लालसाओंकी तृप्तिका साधन मानकर धनके पीछे भाग-दौड़ रहे हैं, ऐसे समय जो व्यक्ति धनसंपत्तिके प्रति उदासीन रहता है और किसी लाभकी दृष्टिसे नहीं वरन् एकमात्र किसी निःस्वार्थ आदर्शका अनुसरण करनेके लिये कार्य करता है, वह निःसंदेह सबसे अधिक तत्काल उपयोगी दृष्टांत प्रस्तुत करता है।

—श्रीमां

श्रीअरविंद

स्वप्न

एक दरिद्र आदमी अंधेरी कोठरीमें बैठा हुआ अपनी शोचनीय अवस्था और भगवान्के राज्यमें अन्याय और अविचारकी बातें सोच रहा था। रिसके वशीभूत होकर दरिद्र कहने लगा, "लोग कर्मकी दुहाई देकर भगवान्के सुनामकी रक्षा करना चाहते हैं। यदि गत जन्मके पापसे मेरी यह दुर्दशा हुई होती, यदि मैं इतना ही पापी होता तो निश्चय ही इस जन्ममें भी मेरे मन में पाप-चिंताका स्रोत बहता होता। इतना घोर पातकी मन क्या एक दिनमें निर्मल हो सकता है? और उस मोहल्लेके तीनकौड़ी शीलको देखो, उसकी धन-दौलत, सोनाचांदी, दास-दासियोंको देखो, यदि कर्मफल सत्य है तो पूर्वजन्ममें निश्चय ही वह कोई जगद्विख्यात साधु या महात्मा था। परंतु कहां, इस जन्ममें तो उसका चिह्न मात्र भी नहीं दिखायी देता। ऐसा निष्ठुर, पाजी, बदमाश सारे संसारमें भी नहीं है। नहीं, कर्मवाद भगवान्की ठगविद्या है, मनको ढाढ़स देनेका एक बहानामात्र है। श्यामसुन्दर बड़े चतुर चूड़ामणि हैं, मेरे पास आकर पकड़ाई नहीं देते, इसीमें उनकी कुशल है, नहीं तो अच्छी तरह दण्ड देकर उनकी सारी चालाकी दूर कर देता।"

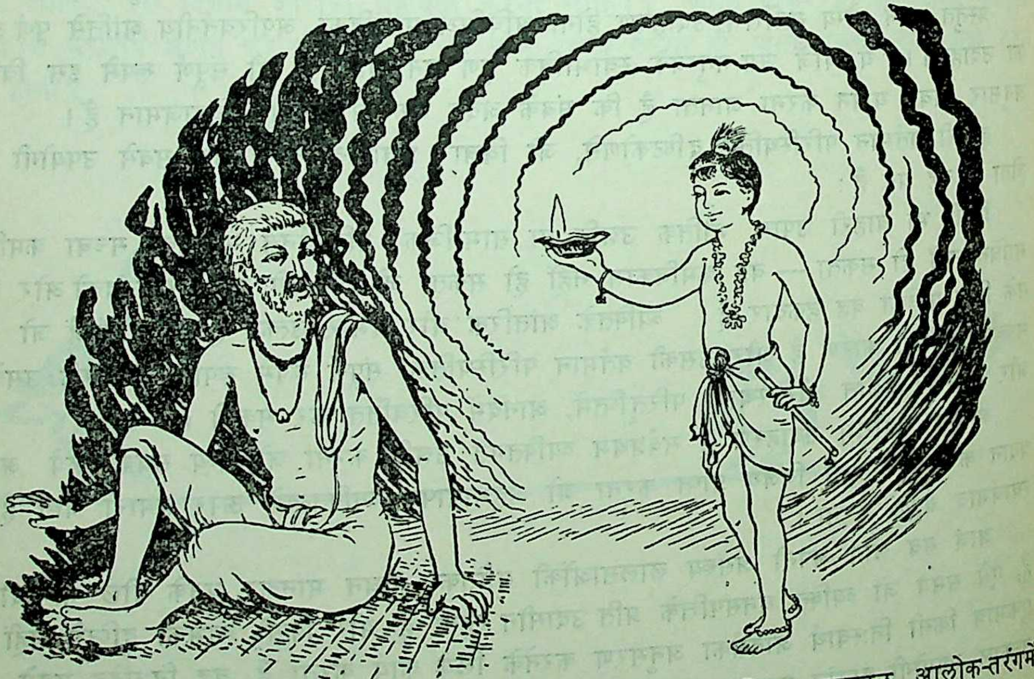

इतना कहते ही दरिद्रने देखा कि हठात् उसका अंधेरा घर अतिशय उज्ज्वल आलोक-तरंगमें प्रवाहित हो गया, फिर तुरंत ही वह आलोक-तरंग अंधकारमें लीन हो गयी। उसने देखा कि उसके सामने एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक हाथमें दीपक लिये खड़ा है — धीरे-धीरे मुस्करा रहा है पर बोलता

नहीं। उसके सिरपर मोरमुकुट और पांवोंमें नूपुर देखकर दरिद्रने समझा कि स्वयं श्यामसुन्दर उसकी पकड़में आनेके लिये आये हैं। दरिद्र अप्रतिभ हो गया; एक बार उसके मनमें आया कि प्रणाम करूं किंतु बालकका हंसता हुआ मुखड़ा देखकर किसी तरह प्रणाम करनेकी प्रवृत्ति नहीं हुई। अंतमें उसके मुंहसे ये वाक्य निकल पड़े — "अरे कन्हैया, तू क्यों आया है?"

बालकने हंसकर उत्तर दिया — "क्यों, तुमने मुझे बुलाया है न? अभी-अभी मुझको चाबुक लगानेकी प्रबल इच्छा तुम्हारे मनमें थी, इसीलिये मैंने अपनेको पकड़वा दिया है, उठकर चाबुक लगाना शुरू करो न।"

दरिद्र और भी अप्रतिभ हुआ, भगवान्को चाबुक लगानेकी इच्छाके लिये उसके हृदयमें अनुताप नहीं हुआ, किंतु इतने सुन्दर बालकको स्नेह करनेके बदले उसके शरीरपर हाथ लगाना, यह भी ठीक नहीं मालूम हुआ। बालकने फिर कहा — "देखो हरिमोहन, जो लोग मुझसे भय नहीं करते, मुझे सखाकी भांति देखते हैं, स्नेहभावसे गाली देते हैं, मेरे साथ क्रीड़ा करना चाहते हैं, वे मुझे बहुत प्रिय हैं। मैंने क्रीड़ाके लिये ही जगत्की सृष्टि की है, इस क्रीड़ाके उपयुक्त साथीको मैं सदा खोजता रहता हूं। परंतु भाई, ऐसे साथी मिलते कहां हैं? सभी मेरे ऊपर क्रोध करते हैं, अधिकार जमाते हैं, दान, मान, मुक्ति न जाने क्या-क्या चाहते हैं, किंतु कहां, मुझे तो कोई नहीं चाहता? जो कुछ ये चाहते हैं मैं इन्हें देता हूं। क्या करूं, इन्हें संतुष्ट तो करना ही पड़ता है, नहीं तो ये मेरी जानके गाहक बन जायं। देखता हूं, तुम भी कुछ चाहते हो। नाराज होकर गुस्सा उतारनेके लिये तुम्हें एक आदमी चाहिये। इसी अभिलाषाको पूरा करनेके लिये तुमने मुझे बुलाया है। अस्तु, मैं भी तुम्हारे चाबुककी मार खानेके लिये आया हूं — ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। हां, यदि प्रहार करनेके पहले तुम मेरे मुंहसे कुछ सुनना चाहते हो तो मैं तुम्हें अपनी प्रणाली बता दूंगा। क्यों, तुम राजी हो?"

हरिमोहनने कहा — "तू ऐसा कर सकेगा? देखता हूं तू बहुत बकबक करना जानता है, किंतु तेरे जैसा नन्हां-सा बालक मुझे शिक्षा दे सकेगा यह मैं कैसे विश्वास करूं?"

बालकने हंसकर कहा — "अच्छा, आओ, देखो, मैं यह कर सकता हूं कि नहीं।"

इतना कहकर श्रीकृष्णने हरिमोहनके सिरपर हाथ रखा। हठात् दरिद्रके समस्त शरीरमें विद्युत्का स्रोत प्रवाहित होने लगा, मूलाधारमें सुप्त कुंडलिनी शक्ति अग्निमयी सर्पिणीके रूपमें गर्जन करती हुई उसके ब्रह्मरंध्रमें दौड़ आयी, उसका मस्तिष्क प्राणशक्तिकी तरंगसे भर गया। इतनेमें उसे ऐसा दिखायी दिया मानों उसके चारों ओर जो घरकी दीवार है वह दूर भागी जा रही है, यह नामरूपमय जगत् उसे छोड़कर अनंतमें छिप गया है। हरिमोहन बाह्यज्ञानशून्य हो गया। जब उसे फिरसे चेतना आयी तो उसने देखा कि वह किसी अपरिचित मकानमें बालकके संग खड़ा हुआ है और उसके सामने गालपर हाथ रखे, गद्दीपर बैठे हुए एक वयोवृद्ध पुरुष प्रगाढ़ चिंतामें निमग्न हैं। घोर चिंतासे विकृत, हृदयविदारक निराशासे मलिन उनके मुंहको देखकर हरिमोहनको यह विश्वास करनेकी इच्छा नहीं हुई कि यही वृद्ध ग्रामके हर्त्ता-कर्त्ता तीनकौड़ी शील हैं। अंतमें अत्यंत भयभीत होकर उसने बालकके कहा — "अरे कन्हैया, यह क्या किया, चोरकी भांति घोर रात्रिमें दूसरेके मकानमें घुस आया? पुलिस आकर हम लोगोंको पकड़ लेगी और मारते-मारते प्राण ले लेगी। तीनकौड़ी शीलके प्रतापको नहीं जानता?"

बालकने हंसकर कहा — अच्छी "तरह जानता हूं। परंतु चोरी मेरा पुराना धंधा है, पुलिससे मेरी खूब घनिष्ठता है, तुम डरो नहीं। अब तुमको मैं सूक्ष्म दृष्टि देता हूं, वृद्धके मनके भीतर क्या हो रहा है, यह देखो। तीनकौड़ीके प्रतापको तुम जानते ही हो, किंतु मेरे प्रतापको भी देखो।"

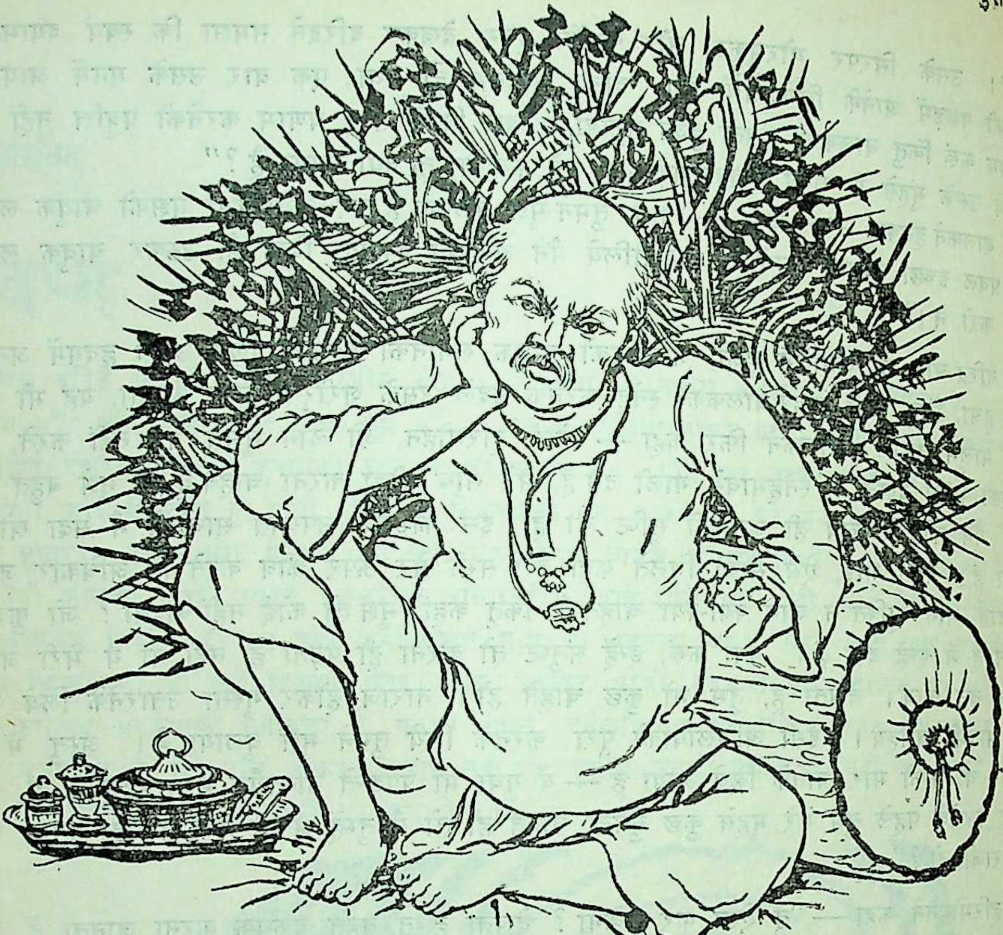

अब हरिमोहन वृद्ध तीनकौड़ीके मनको देखनेमें समर्थ हुआ। उसने देखा, मानो उस वृद्धकी धनाढ्य नगरी नाना प्रकारके आक्रमणोंसे नष्टभ्रष्ट हो रही है, उसकी तीक्ष्ण और ओजस्विनी बुद्धिमें कितनी ही भीषण मूर्त्तियां, पिशाच और राक्षस आदि प्रवेश कर उसके सुखको लूट रहे हैं। वृद्धने अपने प्यारे, सबसे छोटे पुत्रके साथ कलह किया है, उसे घरसे निकाल दिया है, अब वे बुढ़ापेके प्यारे पुत्रको खोकर शोकसे मरणातुर हो रहे हैं, फिर भी क्रोध, गर्व और हठ उनके हृदयद्वारपर सांकल लगाकर पहरा दे रहे हैं। क्षमाको उस द्वारसे प्रवेश करनेकी मनाही है। उनकी कन्याके नाम दुश्चरित्रा होनेका कलंक लगा है, अतः वृद्ध अपनी प्रिय कन्याको घरसे निकालकर अब उसके लिये रो रहे हैं; वृद्ध यह जानते हैं कि उनकी कन्या निर्दोष है, किंतु समाजका भय, लोकलज्जा, अहंकार और स्वार्थ स्नेहको दबाकर रखे हुए हैं, उसे उमड़नेका अवसर नहीं देते। हजारों पाप-स्मृतियोंसे डरकर वृद्ध बार-बार चमक उठते हैं। तथापि पाप-प्रवृत्तियोंको रास्तेपर लानेका साहस या बल उनमें नहीं है। बीच-बीचमें मृत्यु और परलोककी चिंता वृद्धको अत्यंत कठोर विभीषिका दिखा देती है। हरिमोहनने देखा कि मरनेकी चिताके परदेके पीछेसे विकट यमदूत वृद्धको झांक-झांक कर देख रहे ह और उनके दरवाजेको खटखटा रहे हैं। जब-जब दरवाजा खटखटानेका शब्द होता है तब-तब वृद्धकी अंतरात्मा भयसे व्याकुल होकर चीत्कार कर उठती है। इस भयंकर दृश्यको देखकर हरिमोहन भयभीत हो गया और उसने बालककी ओर देखकर कहा — "अरे कन्हैया, यह क्या, मैं तो सोचता था कि वृद्ध परम सुखी है।"

बालकने कहा — "यही मेरा प्रताप है। कहो, किसका प्रताप अधिक है? उस मोहल्लेके तीनकौड़ी

शीलका या वैकुंठवासी श्रीकृष्णका ? हरिमोहन, देखो, हमारे यहां भी पुलिस है, पहरा है, गवर्नमेंट है, कानून है, विचार है, मैं भी राजा बनकर खेल कर सकता हूं। यह खेल क्या तुमको पसंद नहीं है?"

हरिमोहनने कहा -- "नहीं रे बाबा, यह तो बड़ा बुरा खेल है, क्या तुमको यह खेल अच्छा लगता है?"

बालकने हंसकर उत्तर दिया -- "मैं सभी खेल पसंद करता हूं, चाबुक लगाना भी पसंद करता हूं और चाबुक खाना भी।" इसके बाद उसने कहा -- "देखो, हरिमोहन, तुम लोग बाहर ही देखते हो, भीतर देखनेकी सूक्ष्म दृष्टिका तुमने अभीतक विकास नहीं किया है। इसीलिये तुम कहते हो कि तुम दुःखी हो और तीनकौड़ी सुखी है। इस आदमीको किसी भी पार्थिव वस्तुका अभाव नहीं है --फिर भी यह लखपति तुम्हारी अपेक्षा कितनी अधिक दुःख-यंत्रणा भोग रहा है। ऐसा क्यों होता है? क्या तुम बता सकते हो? बात यह है कि मनकी अवस्थामें ही सुख है और मनकी अवस्थामें ही दुःख। सुख और दुःख मनके विकारमात्र हैं। जिसके पास कुछ नहीं है, विपद् ही जिसकी संपद् है वह इच्छा करनेपर उस विपद्के अंदर भी परम सुखी हो सकता है। और देखो, जिस तरह तुम नीरस पुण्यमें दिन बिताते हुए सुख नहीं पा रहे हो, केवल दुःखकी ही चिंता करते हो, उसी तरह ये भी नीरस पापमें अपने दिन बिताते हुए केवल दुःखकी ही चिंता करते हैं। इसीलिये पुण्य केवल क्षणिक सुख और पाप केवल क्षणिक दुःख या पुण्यसे केवल क्षणिक दुःख और पापसे केवल क्षणिक सुख होता है। इस द्वंद्वमें आनंद नहीं है। आनंदके आगारकी छवि तो मेरे पास है। जो मेरे पास आता है, मेरे प्रेमपाशमें बंधता है, मुझे साधता है, मेरे ऊपर जोर-जुल्म करता है, अत्याचार करता है, -- वह मेरे आनंदकी छविको वसूल करता है।"

हरिमोहन बड़ी तत्परताके साथ श्रीकृष्णकी बातें सुनने लगा। बालकने फिर कहा --"हरिमोहन, और देखो, रूखा-सूखा पुण्य तुम्हारे निकट नीरस हो गया है फिर भी इस संस्कारके प्रभावको छोड़ देना, इस तुच्छ अहंकारको जीत लेना, तुम्हारे लिये कठिन हो रहा है। इसी तरह पाप भी यद्यपि वृद्धके निकट नीरस हो गया है फिर भी संस्कारके प्रभावसे वे उसे छोड़ नहीं पाते और इस जीवनमें नरककी यंत्रणा भोग रहे हैं। इसीको 'पुण्यका बंधन' और 'पापका बंधन' कहते हैं। अज्ञानजनित संस्कार इस बंधनके लिये रस्सीका काम करता है। परंतु वृद्धको यह नरकयंत्रणा बड़ी ही शुभ अवस्था है। इससे इनका परित्राण और मंगल होगा।"

हरिमोहन अबतक चुपचाप बालककी बातोंको सुन रहा था, अब उसने कहा -- "प्यारे कन्हैया, तेरी बातें बड़ी मीठी हैं, किंतु इनसे मेरा समाधान नहीं हो रहा। सुख और दुःख मनके विकार हो सकते हैं, किंतु बाह्य अवस्था ही इनका वास्तविक कारण है। विचार देख, क्षुधाकी ज्वालासे प्राण छटपटा रहा हो तो क्या कोई परम सुखी हो सकता है? रोग-यंत्रणासे शरीर कातर हो रहा हो तो क्या तेरी बात कोई सोच सकता है?"

बालकने कहा -- "आओ, हरिमोहन, यह भी दिखाऊं।"

इतना कहकर बालकने हरिमोहनके सिरपर पुनः अपना हाथ रखा। हाथके स्पर्शका बोध होते ही हरिमोहनने देखा कि तीनकौड़ी शीलके मकानका कहीं पता भी नहीं है, अब उसके सामने किसी निर्जन सुरम्य पर्वतके वायुसेवित शिखरपर एक संन्यासी आसन लगाये ध्यानमग्न अवस्थामें बैठे हैं, उनके चरणोंके नीचे एक प्रकांड व्याघ्र प्रहरीकी तरह लेटा हुआ है। बाघको देखकर हरिमोहनके पैर आगे बढ़नेसे रुके, किंतु बालक उसे खींचकर संन्यासीके निकट ले गया। बालकके संग जोर न लगा सकनेके कारण हरिमोहनको लाचार होकर चलना पड़ा। बालकने कहा -- "हरिमोहन, देखो।"

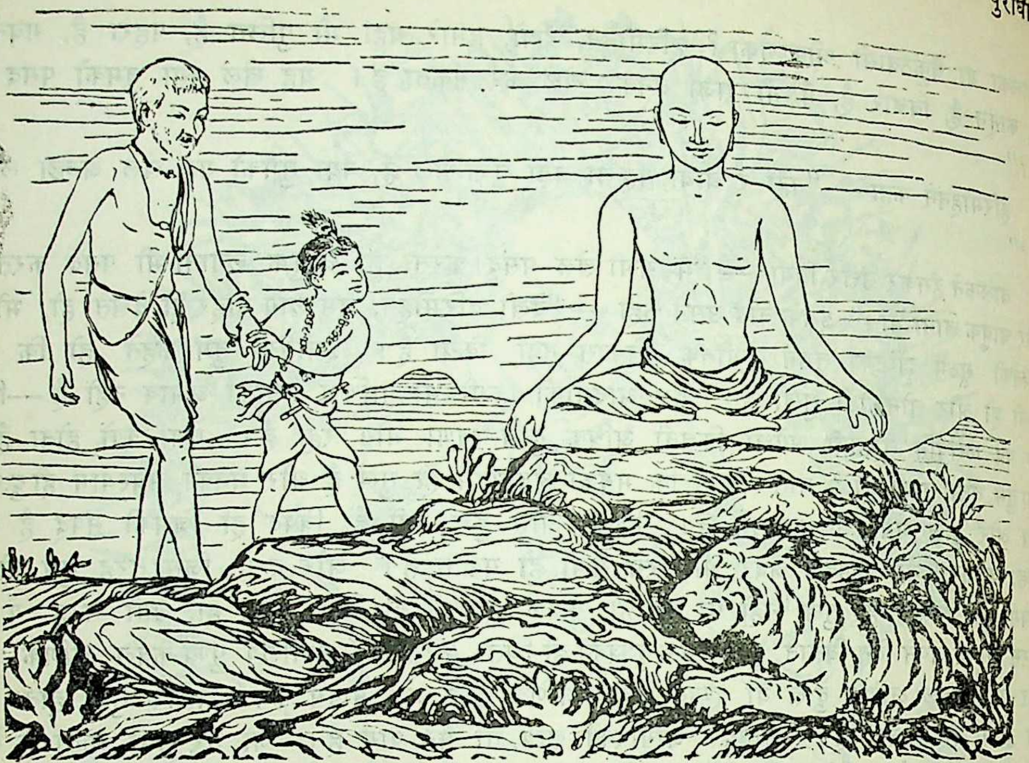

हरिमोहनने देखा कि संन्यासीका मन उसकी आंखोंके सामने एक खुली हुई बहीके समान पड़ा हुआ है, इस बहीके हरएक पन्नेपर श्रीकृष्ण नाम हजार बार लिखा हुआ है। संन्यासी निर्विकल्प समाधि-के सिंहद्वारका अतिक्रमण कर सूर्यके आलोकमें श्रीकृष्णके संग क्रीड़ा कर रहे हैं। उसने देखा कि संन्यासी कई दिनोंसे अन्न और जलके बिना जीवन बिता रहे हैं तथा गत दो दिनोंसे भूख और प्यास-से इनके शरीरको बहुत कष्ट हो रहा है। हरिमोहनने कहा –– "अरे कन्हैया, यह क्या ? महात्मा तुझसे इतना प्रेम करते हैं फिर भी ये क्षुधा और पिपासाकी पीड़ा भोग रहे हैं। तुझे क्या साधारण-सी बुद्धि भी नहीं है ? इस निर्जन व्याघ्रसंकुल वनमें कौन इन्हें आहार देगा ?" बालकने कहा –– "मैं दूंगा, किंतु एक और मजा देखो।" हरिमोहनने देखा कि बाघने खड़े होकर अपने पंजेके आघातसे निकटवर्ती वल्मीकको तोड़ दिया। अब क्या था, उस मिट्टीके ढेरमेंसे हजारों दीमकें निकलकर मारे क्रोधके संन्यासीके बदनपर चढ़कर उन्हें काटने लगीं। संन्यासी उसी अवस्थामें बैठे हैं, ध्यानमग्न, निश्चल, अटल। अब बालकने संन्यासीके कानमें अति मधुर स्वरसे आवाज लगायी ––"सखे !" संन्यासीने आंखें खोलीं, आरंभमें उन्होंने इस मोहज्वालामय दंशनका अनुभव नहीं किया, अभी भी उनके कानोंमें वही विश्ववांछित चित्तको हर लेनेवाली वंशी बज रही थी ––ठीक उसी तरह जिस तरह वह वृंदावनमें श्रीराधाके कानोंमें बजी थी। इसके बाद उन हजारों दीमकोंके काटनेसे उनकी बुद्धि शरीरकी ओर आकृष्ट हुई। संन्यासी अपने आसनसे हिले नहीं –– विस्मयपूर्वक मन ही मन कहने लगे –– "यह क्या ? ऐसा तो कभी नहीं हुआ ! ओहो, यह तो श्रीकृष्ण मेरे संग क्रीड़ा कर रहे हैं, क्षुद्र-दीमक-समूह-के रूपमें मुझे काट रहे हैं।" हरिमोहनने देखा कि दीमकोंके काटनेकी पीड़ा अब संन्यासीकी बुद्धि-तक नहीं पहुंच पाती, प्रत्येक दंशनमें तीव्र शारीरिक आनंदका अनुभव कर श्रीकृष्ण नाम लेते हुए, अत्यंत आनंदपूर्वक तालियां बजाते हुए नाचने लगे। दीमकें मिट्टीमें गिरकर भाग गयीं। हरिमोहनने आश्चर्यपूर्वक पूछा –– "अरे कन्हैया, यह क्या माया है ?"

बालक ताली बजाकर एक पैरके बल दो बार घूमकर नाचा, ठहाका मारकर हंसा और बोला —— "मैं ही हूं जगत्का एकमात्र जादूगर। इस मायाको तुम नहीं समझ सकोगे, यह मेरा परम रहस्य है। देखा, यंत्रणामें भी संन्यासी मुझे स्मरण कर सके, और देखो . . .।"

संन्यासी अब पुनः प्रकृतिस्थ होकर बैठे, इनका शरीर अब भूख-प्यास अनुभव करने लगा, किंतु हरिमोहनने देखा कि संन्यासीकी बुद्धि उस शारीरिक विकारका अनुभवमात्र करती है, लेकिन न तो वह इससे विकृत ही हो रही है न लिप्त ही। इसी समय पहाड़परसे किसीने वंशीविनिंदित स्वरसे पुकारा, "सखे!" हरिमोहन चौंक पड़ा। यह तो श्यामसुन्दरका ही वंशीविनिंदित स्वर है। इसके बाद उसने देखा कि पहाड़ी चट्टानके पीछेसे एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक थालीमें उत्तम आहार और फल लिये हुए आ रहा है। हरिमोहन हतबुद्धि होकर श्रीकृष्णकी ओर देखने लगा। बालक उसके पास खड़ा है, फिर भी जो बालक आ रहा है वह भी अविकल श्रीकृष्ण ही है। दूसरा बालक वहां आकर और संन्यासीको रोशनी दिखाकर बोला —— "देखो क्या लाया हूं?"

संन्यासीने हंसकर कहा — "आ गया? इतने दिनोंतक भूखा ही रखा? खैर, जब आया है तो बैठ, मेरे संग खा।"

संन्यासी और बालक उस थालीकी सामग्रियोंको खाने लगे, आपसमें छीनाझपटी होने लगी। आहार समाप्त होनेपर बालक थाली लेकर अंधकारमें विलीन हो गया।

हरिमोहन कुछ पूछने जा रहा था, हठात् उसने देखा कि श्रीकृष्ण अब वहां नहीं हैं, अब न संन्यासी है, न बाघ और न पर्वत। अब तो वह एक भले आदमियोंके मुहल्लेमें वास कर रहा है। प्रगाढ़ धन-दौलत है, स्त्री है, परिवार है, नित्य ब्राह्मणों और भिक्षुकोंको दान देता है, त्रिकाल संध्या करता है, शास्त्रोक्त आचार-विचारोंकी यत्नपूर्वक रक्षा करता हुआ मनु-प्रदर्शित पथपर चल रहा है। आदर्श पिता, आदर्श स्वामी और आदर्श पुत्र होकर जीवन यापन कर रहा है। परंतु दूसरे ही क्षण उसने भयभीत होकर देखा कि जो लोग इस भद्र मुहल्लेमें वास कर रहे हैं उनके अंदर लेशमात्र भी सद्भाव या आनंद नहीं है, ये लोग यंत्रकी तरह बाह्य-आचार-रक्षाको ही पुण्य समझ रहे हैं। इस जीवनसे हरिमोहनको आरंभमें जितना आनंद हुआ था, उतनी ही अब उसे यंत्रणा होने लगी। उसे बोध हुआ मानों उनको भयानक प्यास लगी है, किंतु उसको जल नहीं मिल रहा है, वह धूल फांक रहा है। वहांसे भागकर वह एक दूसरे गांवमें गया, वहां एक प्रकांड अट्टालिकाके सामने अपूर्व जनताका और उसके द्वारा दिये गये आशीर्वादका कोलाहल मचा हुआ था। हरिमोहन उस जनसमूहके कुछ पास गया, उसने देखा कि तीनकौड़ी शील दालानमें बैठे हुए उस जनताको दोनों हाथोंसे धन दे रहे हैं, कोई भी वहांसे निराश होकर नहीं लौट रहा है। हरिमोहन ठठाकर हंस पड़ा, उसने सोचा, यह कैसा स्वप्न? तीनकौड़ी शील और दाता? आश्चर्य! उसके बाद उसने तीनकौड़ीके मनको देखा। उसे ज्ञात हुआ कि तीनकौड़ी शीलके मनमें लोभ, ईर्ष्या, काम, स्वार्थ आदि हजारों प्रकारकी अतृप्तियां और कुप्रवृत्तियां 'दो, दो' कहती हुई चिल्ला रही हैं। पुण्यके लिये, यशके लिये, गर्वके वश तीनकौड़ी उन भावोंको अतृप्त अवस्थामें ही किसी तरह ढाककर रखे हुए हैं, लेकिन ये भाव उनके चित्तसे दूर नहीं हो पाये हैं। इसी समय हरिमोहनको पकड़कर कोई जल्दी-जल्दी परलोकमें घुमा लाया। हिंदूका नरक, क्रिस्तानका नरक, मुसलमानका नरक, यूनानियोंका नरक, हिंदूका स्वर्ग, क्रिस्तानका स्वर्ग, मुसलमानका स्वर्ग, यूनानियोंका स्वर्ग ——न जाने कितने नरकों और कितने स्वर्गोंको हरिमोहन देख

आया। इसके बाद उसने देखा कि वह अपने ही मकानमें, अपनी पूर्वपरिचित फटी हुई चटाई और अपने उसी मैले-कुचैले तोशकपर बैठा हुआ है, और उसके सामने ही श्यामसुन्दर खड़े हैं। बालकने कहा —— “रात बहुत बीत गयी है, यदि मैं घर न लौटूंगा तो मेरे घरवाले मुझे डांटेंगे, पीटेंगे। इसलिये अधिक बातें करनेका अवकाश नहीं है, संक्षेपमें इतना ही कहता हूं कि जिन स्वर्गों और नरकोंको तुमने देखा है, ये स्वप्न-जगत्की कल्पनासे सृष्ट हुए हैं। मनुष्य मरणांतर स्वर्ग और नरकमें जाता है, अपने गतजन्मके भावको वहां भोगता है। तुम पूर्वजन्ममें पुण्यवान् थे, किंतु उस जन्ममें प्रेमको तुम्हारे हृदयमें स्थान न मिला। न तुमने ईश्वरसे प्रेम किया न मनुष्यसे। इसलिये प्राणत्याग करनेपर स्वप्न जगत्में भले आदमियोंके उस मोहल्लेमें वास करके पूर्व जीवनके भावोंका तुम भोग करने लगे, भोग करते-करते उस भावसे तुम ऊब गये, तुम्हारे प्राण व्याकुल होने लगे और तुम वहांसे निकलकर धूलिमय नरकमें वास करने लगे, अंतमें जीवनके पुण्य फलोंका भोगकर पुनः तुम्हारा जन्म हुआ। उस जीवनमें छोटे-छोटे नैमित्तिक दानोंको छोड़कर, नीरस बाह्य व्यवहारोंको छोड़कर किसीके अभावको दूर करनेके लिये, तुमने कुछ नहीं किया। इसलिये इस जन्ममें तुम्हें इतना अभाव है। अभी भी तुम जो नीरस पुण्य करते हो इसका कारण यह है कि केवल स्वप्न-जगत्के भोगसे पाप और पुण्यका संपूर्ण क्षय नहीं होता, इनका संपूर्ण क्षय तो कर्मफलको पृथ्वीपर भोगनेसे ही होता है। तीनकौड़ी गत जन्ममें दाता कर्ण थे, हजारों व्यक्तियोंके आशीर्वादसे इस जन्ममें लखपति हुए हैं, उन्हें किसी वस्तुका अभाव नहीं है। परंतु उनका चित्त शुद्ध नहीं होनेके कारण अतृप्त कुप्रवृत्तियोंको, पाप-कर्मोंके द्वारा, उन्हें इस समय तृप्त करना पड़ रहा है। कर्मवाद समझे क्या? न तो यह पुरस्कार है न दंड —— यह है अमंगलके द्वारा अमंगलकी और मंगलके द्वारा मंगलकी सृष्टि, प्रकृतिका कानून। पाप अशुभ है अतः उसके द्वारा दुःखकी सृष्टि होती है, पुण्य शुभ है इसलिये उसके द्वारा सुखकी सृष्टि होती है। यह व्यवस्था चित्तकी शुद्धिके लिये, अशुभके विनाशके लिये की गयी है। देखो हरिमोहन, पृथ्वी हमारे वैचित्र्यमय जगत्का एक छोटा-सा अंशमात्र है, और कर्मके द्वारा अशुभका नाश करनेके लिये तुम लोग वहां जन्म ग्रहण करते हो। और फिर जब पाप और पुण्यके हाथोंसे परित्राण पाकर प्रेमके राज्यमें पदार्पण करते हो तब इस कार्यसे छुटकारा मिलता है। अगले जन्ममें तुम भी छुटकारा पाओगे। मैं अपनी प्रिय भगिनी शक्ति और उसकी सहचरी विद्याको तुम्हारे निकट भेजूंगा, परंतु देखो, एक शर्त है कि तुम मेरे इस खेलके साथी बनोगे, मुक्ति नहीं मांग सकोगे। क्यों, राजी हो?” हरिमोहनने कहा —— “अरे कन्हैया, तैंने मेरा बड़ा उपकार किया। तुझे गोदमें लेकर प्यार करनेकी बड़ी इच्छा होती है, ऐसा मालूम होता है मानों इस जीवनमें मुझे अब कोई वासना नहीं रह गयी है।”

बालकने हंसकर कहा—“हरिमोहन, कुछ समझे?” हरिमोहनने उत्तर दिया—“समझा क्यों नहीं?” इसके बाद उसने कुछ सोचकर कहा —— “अरे कन्हैया, तैंने मुझे फिर ठगा। अशुभका सृजन तैंने क्यों किया इसकी तो कोई कैफियत दी ही नहीं?” इतना कहकर उसने बालकका हाथ पकड़ लिया। उसके हाथसे अपना हाथ छुड़ाकर और उसको धमकाते हुए बालकने कहा —— “दूर हटो; वाह, एक घंटेमें ही मेरी समस्त गुप्त बातें कहला लेना चाहते हो?” इतना कहकर बालकने हठात् दीपकको बुझा दिया और हरिमोहनसे कुछ दूर हटकर हंसते हुए कहा —— “देखो हरिमोहन, चाबुक मारना तो तुम एकदम भूल ही गये। इसीसे तो मैं तुम्हारी गोदमें नहीं बैठा कि कहीं तुम बाह्य दुःखसे क्रुद्ध होकर मुझे अच्छी तरह पीटने न लगो, तुमपर मेरा लेशमात्र भी विश्वास नहीं है।”

हरिमोहनने अंधकारमें अपना हाथ बढ़ाया, बालक और अधिक दूर हट गया और बोला —— “नहीं, इस सुखको मैं तुम्हारे दूसरे जन्मके लिये वाकी रख छोड़ता हूं। अच्छा अब चलता हूं।

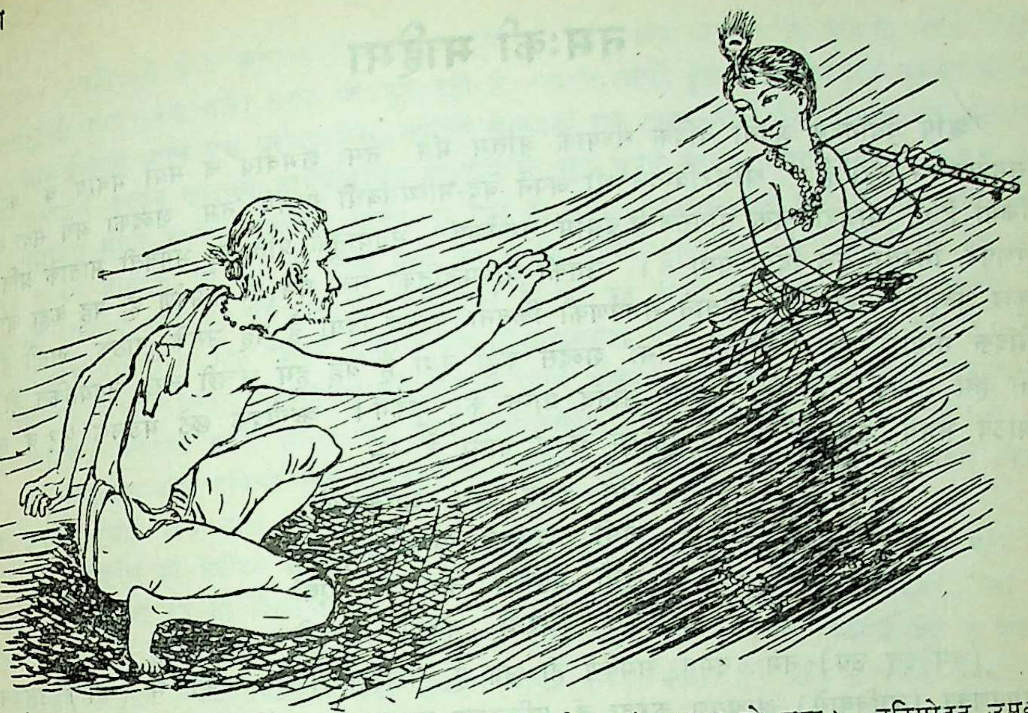

इतना कहकर उस अंधकारभरी रात्रिमें बालक न जाने कहां अदृश्य हो गया। हरिमोहन उसकी नूपुरध्वनिको सुनते-सुनते जाग उठा। जागकर उसने सोचा, "यह कैसा स्वप्न देखा? नरक देखा, स्वर्ग देखा, और भगवान्को तू कहा, छोटा-सा बालक समझकर डांटा, डपटा। यह बड़ा भारी पाप किया परंतु जो कुछ भी क्यों न हो प्राणमें एक अभूतपूर्व शांतिका अनुभव कर रहा हूं। हरिमोहन अब उस कृष्णवर्ण बालककी मोहिनी मूर्त्तिका ध्यान करने लगा और बीच-बीचमें कहने लगा, "कितनी सुन्दर, कितनी सुन्दर!!"

* * *

डाली नालों तोड़ न सानूं, असां हट्ट 'महक' दी लाई।
लख गाहक जे सुंघे आके, खाली कोय न जाई।
तूं जे इक तोड़के लै गयों, इक जागो रह जासां—
ओह वी पलक झलक दा मेला, रूप महक नस जाई।

तू मुझे डालीसे न तोड़। मैंने गंधकी दुकान सजा रखी है। सूंघनेवाले लाख ग्राहक भी आ जायें तो किसीको खाली न जाने दूंगा। तोड़ लेनेपर मैं तेरे लिये ही रह जाऊंगा। वह भी कुछ क्षणोंके लिये, पलक मारते ही मेरा रूप-लावण्य उड़ जायगा।

—भाई वीरसिंह

नमःकी महिमा

ऋषि दयानंदने अपनी वैदिक संध्याके अंतिम मंत्र "नमः शंभवाय च मयो भवाय च" समर्पण-मंत्र कहा है। श्रीअरविन्दने भी अपने वेद-भाष्यसंबंधी ग्रंथोंमें 'नमः' शब्दका अर्थ सदा का नाम किया है। श्रीअरविन्दके योगसंबंधी ग्रंथोंमें समर्पणपर, भगवान्के प्रति या भगवती माताके प्रति समर्पण र्पणपर, निरंतर बल दिया गया है। उनकी योगपद्धतिका मूल मंत्र ही समर्पण है, यह कहा जाय तो सम- कुछ अत्युक्ति नहीं है। गीताने समर्पणको कितना महत्त्व दिया है यह उसके पाठक जानते ही हैं। वैदिक भाषामें उसी समर्पणको 'नमः' शब्दसे कहा गया है यह हमें अच्छी तरह हृदयांकित हो जाय तो हम शायद निम्न वेद मंत्रका आनंद प्राप्त कर सकेंगे। ऋग्वेदके छठे मंडलके ५१ वें सूक्तके आठवें मंत्रमें ऋज्राश्व ऋषिने त्रिष्टुप छंदमें गाया है :—

नम इदग्रं नम आविवासे
नमो दाधार पृथिवीमुत द्यां
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां
कृतं चिदेनो नमसा विवासे।

(नम इत् उग्रं) नमः, नमन, समर्पण ही उग्र है, शक्तिशाली है। अतः मैं (नमः) उस नमन, समर्पणका (आविवासे) आश्रयण करता हूं, परिचरण करता हूं। (नमः) समर्पणने ही (पृथिवीमुत द्यां) पृथिवी और द्युलोकको (दाधार) धारण किया हुआ है। (देवेभ्यः) देवोंको मैं (नमः) समर्पण करता हूं, (नमः) समर्पण ही (एषां) इन देवोंपर (ईशे) ईशन करता है और (कृतं चित् एनः) किये हुए पापको भी मैं (नमसा) समर्पणद्वारा (विवासे) दूर करता हूं, नष्ट करता हूं।

इस पवित्र वेदमंत्रके प्रत्येक पादमें एक बड़ी बात कही गयी दिखायी देती है।

१. **नमः शक्तिशाली है** :—नमना, झुकना, समर्पण करना इसे साधारणतया हीन, छोटा, दुर्बलताका कार्य समझा जाता है। पर वेद कहता है कि 'नमन ही उग्र है।' नमनमें, समर्पणमें ही वह उग्रता है, शक्ति है कि सबको अपने सामने झुका देती है। सब बात समर्पणका ठीक स्वरूप समझनेकी है। समर्पण क्षुद्र 'मैं' पनका कटना होता है जो कि हमें छोटा बनाये हुए है। उसका समर्पण करनेसे तो हम महान् हो जाते हैं। बूंद जब अपनेको समुद्रको सर्मापित करती है तो वह समुद्र जितनी ही महान् हो जाती है। बिना समर्पणके वह केवल एक क्षुद्र बूंद बनी रहती है। आत्मा तब अर्थात् समर्पण करनेपर स्वभावतः परमात्मासे युक्त हो जाता है। तब संसारकी सब वस्तुएं उसके सामने झुक जाती हैं ऐसा शक्तिशाली यह 'सर्मापित' होना है। एक बार पांडिचेरीमें श्री माताजीने नम्रताके प्रकरणमें बातचीत करते हुए कहा था कि आश्रममें केवल एक ही व्यक्ति सच्चे अर्थोंमें नम्र है। सब लोग जाननेके लिये उत्सुक हो उठे कि वह एक व्यक्ति कौन है। तब माताजीने कहा, वह व्यक्ति है श्रीअरविन्द। श्रीअरविन्दकी नम्रता, नमन, समर्पण वे लोग ही जानते हैं जिनका उनसे कुछ भी वास्ता पड़ा है। पर यही नमः उनकी महान् महत्ताका, महान् शक्ता- शालिताका मूल है। ऋज्राश्वको जब यह दर्शन हो गया कि सचमुच नमः ही उग्र है, बड़ा शक्तिशाली है, तो उसने उस समर्पणका ही आश्रय पकड़ लिया। हमें भी ऋज्राश्वकी तरह यह अद्भुत दर्शन हो जाय तो हम भी शायद आनंदमें नाचने लगें और गाने लगें :—

"नमः चिदग्रं नम आविवासे"

(२) **पृथवी और द्यौको धारण करनेवाली शक्ति** :—हम अपनी पढ़ाईकी, प्राकृतिक विज्ञानकी किताबोंमें क्या पढ़ते हैं कि इस पृथिवीको किसने धारण, धारा हुआ है ? किस शक्तिसे यह पृथिवी

आकाशमें ठहरी हुई है? वर्तमान विज्ञानके आधारपर यही कहा जायगा कि पृथिवी अपने केन्द्रपर घूम रही है तथा सूर्यके चारों तरफ भी घूम रही है, अतएव ठहरी हुई है। पर यह घूमना भी क्यों है? श्रीअरविन्दने अपने एक प्रसिद्ध लेख 'कर्मोंके आनंदमें' एक जगह कहा है, "पृथिवी इस आकाशके अंदर अंधाधुंध चक्कर काटनेमें आनंदविभोर हो रही है, सूर्य अपने अत्यंत तपते चमकते वैभवमें और अपने शाश्वत घूमते रहनेमें राजकीय आनंद पा रहा है, ओ तू आत्मसचेतन यंत्र, तू भी अपने, निजी नियत कार्यमें आनंदको पा।" तो ठीक बात यह है कि पृथिवी इसलिये ठहरी हुई है कि वह अपने समर्पणके आनंदमें मग्न है, सूर्य इसलिये धृत हुआ है कि वह अपने समर्पणके आनंदमें तल्लीन है। उसी आनंदमें पृथिवी न जाने कितने समयसे ठीक-ठीक प्रकारसे गति कर रही है, घूम रही है। उसी आनंदमें सूर्य न जाने कितने कालसे चमकते वैभवमें अपने अक्षपर घूम रहा है और कभी थकता नहीं है। सो इन्हें अक्लांत रूपसे धारण कर रखनेवाली शक्ति आनंद है, समर्पणका आनंद है।

पर ये द्युलोक और पृथिवी-लोक किसके प्रति समर्पित हैं, किसके प्रति समर्पणके आनंदमें विभोर हुए अपने कार्यमें अचलतया रत हैं?

(३) **समर्पण ही देवोंका शासक है**:—देवके प्रति, एक देवके प्रति। हमें तो अग्नि वायु सूर्य पृथिवी आदि स्थूल देव ही दिखायी देते हैं। पर उन देवोंका भी कोई देव है, एक देव है, जो कि आदि देव, महान् देव है, परम देव है,। उस एक देवके प्रति जैसे समर्पणके नियममें बंधे ये देवगण हैं, वैसे ही हमें इन अनेक देवोंके (जिनसे हमारा सीधा वास्ता पड़ता है) प्रति समर्पणमें बंधना है। इसीलिये ऋज्राश्व ऋषि तीसरे पादमें इन दिखायी देनेवाले देवोंको नमस्कार करते हैं, समर्पणका भाव प्रकट करते हैं, समर्पित होते हैं और कहते हैं कि नमः ही, समर्पण ही इन देवोंका ईशन करता है। इस प्रकार वे उस परमदेवका स्मरण करते हैं, उनके संबंधमें आते हैं।

इस जगत्का सब रहस्य यह है कि हम इस जगत्के देवोंके प्रति सच्चा समर्पण करें तो वह हमारा समर्पण परम देव, परम प्रभुको पहुंच जायेगा और सर्वविध कल्याण होगा। इसी बातको तृतीय पादमें इस प्रकार कहा है, "नमो देवेभ्यो नम ईश एषां।"

(४) **समर्पणसे किये पाप भी धुल जाते हैं**:—समर्पणकी महिमा समझ लेनेपर मनुष्य आगेके लिये तो समर्पणके रास्तेपर चल ही पड़ेगा, पर उसके पुराने किये हुए पापोंका क्या होगा? वे तो उसे भोगने ही होंगे? यहींपर एक बड़े भारी आश्वासनका मिल जाना कितने कल्याणकी बात है। वेद कहता है, "**कृतं चिदेनो नमसा विवासे**" किये हुए पापको भी मैं समर्पणद्वारा नष्ट करता हूं। अर्जुनको भी ऐसा ही एक आश्वासन श्रीकृष्णने दिया था: "**अहं त्वां सर्वपापेभ्यां मोक्षयिष्यामि मा शुचः**" अर्थात् मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर। यह आश्वासन तब दिया था जब उन्होंने उसे कहा था, "**मामेकं शरणं व्रज**" अर्थात् केवल, एकमात्र, मेरी शरणको प्राप्त कर, मुझे पूर्ण रूपसे समर्पण कर।

जब मैं छोटा था तो एक बार मैंने देखा कि एक व्यक्ति लोटा लेकर शौच होकर आया तो उसने उस लोटेको मांजकर डोरके साथ कुंएमें डाल दिया, तो मैं बोल पड़ा यह कुआं तो बिगड़ गया, अशुचि हो गया। गुरुकुलमें तो हम शौचके लोटेको मांजकर गंगामें धोया करते थे। तब समझ आ गयी थी कि उससे गंगा मलिन नहीं हो जाती। मुझे समझाया गया था कि कुएंका बहुत-सा पानी या गंगाका बहुत-सा पानी अशुचि नहीं होता, पर हमारे लोटेको शुचि कर देता है। उसी तरह पवित्रताके सागर भगवान्में हम अपनी सब मलिनताओंको समर्पण कर सकते हैं और स्वयं शुचि हो सकते हैं। किये हुए सब पाप भी उस सागरमें समर्पित हो धुल जाते हैं। योगदर्शनके व्यास-भाष्यमें भी जहां किये गये कर्मोंकी त्रिविध गति बतायी गयी है वहां एक रूप लिखा है, "**कृतस्याविपक्वस्य नाशः यथा शुक्ल कर्मोदया दिहैव नाशः कृष्णस्य।**" पर अधिक ठीक यह है कि समर्पित हो जानेसे

अच्छे बुरे (शुक्ल कृष्ण) दोनों कर्मोंसे हम परे हो जाते हैं। हम वहां स्थित हो जाते हैं जहां कि पुराने पापकर्म भी हमें पीड़ित नहीं कर सकते। यह समर्पणकी अद्‌भुत महिमा है। इसीलिये शायद संध्याका अंतिम मंत्र समर्पणपरक रखा गया है जिससे कि हम दोनों समय अंतमें परमशिवको समर्पण करके उठें तथा दिन भर और रात भर यथाशक्ति उस समर्पणके भावको बनाये रखें।

—आचार्य अभयदेव

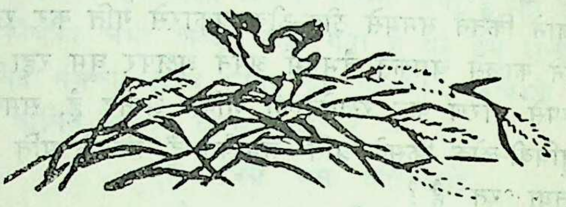

गीत

अंधियारा तो साथ लगा है।

जड़ीभूत जीवनका हर क्षण
रुंधा रुंधा हर जीवित स्पन्दन
लेकिन यह भी सत्य कि ऐसा ही हर क्षण संकल्प पगा है।

चिंता क्यों होवे सुख दुखकी,
दुनियाके लोगोंके रुखकी,
जो भी सुलगा है अंगारे-सा अपने ही बल सुलगा है।

ऊबड़ खाबड़ पथ पथरीला
हू हू करता पवन हठीला,
बहे, हमेशा ऐसे ही क्षण पौरुषका संकल्प जगा है।

क्या कर लेती बंजर धरती
श्रमके सम्मुख वह न ठहरती
बनती रत्न-प्रसविनी अखुंआ बन करके हर बीज उगा है।
अंधियारा तो साथ लगा है।

—श्यामसुन्दर घोष (प्रो.)

नारी और पुरुष

--श्री अनुबेन

जीवनमें स्त्री और पुरुष रथके दो पहिये कहलाते हैं। परंतु अभीतक यह रथ ठीक तरह चल नहीं पाया है, क्योंकि इन दोनोंने अभीतक सुव्यवस्थित रूपसे चलना नहीं सीखा है। इसकी असफलताके कारणोंको देखनेसे पता चलता है कि ताली एक हाथसे नहीं बजती, स्त्री और पुरुष दोनों ही दोषी हैं। पुरुषने अपने शारीरिक बल तथा अधिकार-लोलुपताकी तुष्टिके लिये स्त्रीको हमेशा हीन और तुच्छ समझा है। इसी तरह स्त्रीने पुरुषके बलके प्रति आकर्षित होकर उसकी श्रेष्ठताको स्वीकार कर लिया और उसकी दासी बननेमें अपने-आपको धन्य समझा है। इतना ही नहीं, देवी दुर्गाकी विश्वविजयिनी प्रतिभावान शक्ति-रूप स्त्री अपनी सारी शक्तिको एक छोटा-सा घर स्थापित करनेमें लगा देती है और अपनी सारी शक्तिको भूलकर पुरुषके संरक्षणकी आशा लगाये रहती है। परिस्थितिने और अपने-आपको श्रेष्ठ समझनेवाले पुरुषने नारीके मनमें यह भ्रान्त धारणा स्थापित कर दी है कि वह अबला है और उसे शक्तिशाली पुरुषके संरक्षणकी जरूरत है। इसी भावनाने नारीके अंदर एक नीड़ बनानेकी प्रबल इच्छाका रूप धारण कर लिया। इसीलिये हमारे समाजमें हालतक कुआंरी वृद्धाकी कल्पना करना मुश्किल था।

दूसरी ओर पुरुष जो अपने-आपको स्वामी और मालिक समझता है, वह भी अगर ध्यानसे देखे तो वह भी नारीका गुलाम है। वह भी सुव्यवस्थित घर, खान-पान और छोटे-मोटे ऐश-आरामका आदी है। जीवनकी छोटी-छोटी सुविधाओंके लिये वह पूरी तरह नारीपर निर्भर है। अकेले पुरुषका घर हमेशा अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त रहता है। अपने दैनिक जीवनमें सौंदर्य और सुव्यवस्थाओंके लिये वह पूर्णतया नारीपर निर्भर है। इतना ही नहीं, नारीका सबसे अधिक गुलाम वह तब होता है जब वह उसके पास इच्छापूर्त्तिके लिये जाता है। उसका स्वामित्व और उसका प्रभुत्व यहां आकर एक उपहासका विषय बन जाता है, वह भूल जाता है कि प्रभु या स्वामी बननेके पहले शिव-शंकरकी तरह कामदहन करना जरूरी है। पुरुषके अंदर विषयलोलुपता है तो नारीमें असीम संतान-तृष्णा। वह उसके गलेका तौक बन जाती हैं।

वर्त्तमान युगने अप्रत्याशित करवट ली है। युगोंसे पीड़ित नारी ज्वालामुखीकी तरह फूट पड़ी है। परंतु इसके मार्गमें कई भय-स्थान हैं। नारियोंका एक वर्ग है जो नारीको पुरुषसे ऊंचा और श्रेष्ठ दिखानेमें लगा है। इसका परिणाम भी अवांछनीय और विपरीत ही होगा। दूसरा वर्ग पुरुष-के तथाकथित गुणोंपर इतना मोहित है कि वह उनके सब गुण अपने अंदर लानेकी कोशिश करता है। वैसी स्त्रियां नारीके सुकोमल भाव गंवाकर एक अजीब प्राणी बन जाती है।

यह ठीक है कि हमारे कई ऋषियोंने आर्ष दृष्टिसे नारी और पुरुषकी समानताको देखा था, उन्हें स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभीमें उसी जगन्नियंताके दर्शन होते थे, 'त्वं स्त्री तवं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।" आधुनिक मनुष्यकी भांति वे स्त्री-पुरुषकी भिन्नताओंपर जोर नहीं दिया करते थे। स्त्री 'शूद्रो ना धीयताम्' का मंत्र भी अभीतक पैदा नहीं हुआ था। 'यो मां जयति संग्रामे' की गूंज अभीतक कानोंमें बाकी थी। परंतु बादकी समाजरचना देखनेसे पता चलता है कि जन साधारणसे यह उच्च आदर्श निभ न सका और स्त्रियां और पुरुष अपनी स्वाभाविक स्वाधीनताको खोकर एक दूसरेके दास बन गये। आजकी स्वतंत्र कहलानेवाली स्त्री क्या सचमुच स्वतंत्र है? क्या पुरुषने

कामांध होकर अपने-आपको वासनाका और अपनी कलुषित मनोवृत्तिके द्वारा उस सबका स्त्रीपर आरोपण करके अपने-आपको स्त्रीका दास नहीं बना लिया है? आजकी स्वाधीनता केवल दिखानेकी है और हमें इससे संतोष नहीं हो सकता।

इस विषम-स्थितिका समाधान एक ही है। पुरुष और नारी एक-दूसरेको समान समझें, एक-दूसरेका सम्मान करें, एक-दूसरेको स्वाधीनता दें। उन्हें सारे समय यही विचार न सताता रहे कि हम पुरुष हैं, हम स्त्रियां हैं, हमारा एक-दूसरेपर अधिकार है और हमें अपने अधिकारोंकी रक्षा प्राणपणसे करनी चाहिये। हम सब अपने-आपको जगत्-माताकी संतान समझें जिसमें न कोई ऊंचा है न नीचा। हर एकका अपना स्थान है और उसकी पूर्ति वही कर सकता है।

श्रीमाताजीके ये शब्द चिरस्मरणीय हैं :—

कोई भी कानून स्त्रियोंको मुक्त नहीं कर सकता जबतक कि वे स्वयं अपनेको मुक्त नहीं करतीं। उनकी दासताके कारण हैं—

(१) पुरुषों और उनकी शक्तिके प्रति आकर्षण।
(२) घरेलू जीवन और उससे प्राप्त संरक्षणकी कामना।
(३) मातृत्वके प्रति आसक्ति।

अगर वे इन तीनों दासताओंसे मुक्त हो जायं तो वे सचमुच पुरुषोंके समान हो जायंगी।

पुरुषोंके भी तीन बंधन हैं :—

(१) अधिकार जमानेकी भावना; शक्ति और आधिपत्यके प्रति आसक्ति।
(२) स्त्रीके साथ शरीर-संबंध करनेकी वासना।
(३) वैवाहिक जीवनके तुच्छ आरामोंके प्रति आसक्ति।

अगर वे इन तीनों दासताओंसे मुक्त हो जायं तो वे सचमुच स्त्रियोंके समान हो जायंगे।

❧

निस्संदेह, समस्त जीवन ही प्रेम है, परंतु हमें यह जानना होगा कि प्रेमको जीवनमें कैसे उतारा जाता है।

१३.७.६३

★

अगर तुम अपनी वर्तमान स्थितिसे संतुष्ट नहीं हो तो भगवान्की सहायताका लाभ उठाओ और अपने-आपको बदलो। अगर बदलनेका साहस न हो तो भाग्यके आगे झुक जाओ और चुप रहो। लेकिन परिस्थितिके विरुद्ध शिकायत करते रहना और उसे बदलनेके लिये कुछ भी न करना समय और शक्तिका अपव्यय मात्र है।

—श्रीमाताजी

जिनकी प्रतिभाने अणु-युगका द्वार उन्मुक्त किया :

:आईन्स्टाइन

श्री जगदीश मलहोत्रा

न्यूयार्क नगरके रिवरसाइड गिरजाघरकी श्वेत दीवारोंपर सभी युगोंके ६०० महापुरुषोंकी आकृतियां चूनेमें अंकित हैं। एक खंड वैज्ञानिकोंके लिये है, जिसमें १४ वैज्ञानिकोंकी आकृतियां सम्मिलित हैं। अलबर्ट आईन्स्टीनकी आकृतिके नीचे जो प्रशस्ति-पाठ अंकित है, उसमें कहा गया है कि वह "न केवल अपनी पीढ़ीके सबसे योग्य वैज्ञानिक थे, बल्कि एक बुद्धिमान मनुष्य भी थे, जो एक सर्वथा भिन्न बात है।"

गणित और भौतिक विज्ञानके इस महान् अमेरिकी जादूगरने, जिसका जन्म जर्मनीमें हुआ था, मनुष्यकी सृष्टिसंबंधी धारणाको परिवर्तित कर दिया और अणु-युगके द्वारको उन्मुक्त किया। यही कारण है कि प्रायः उन्हें इतिहासकी ८ अमर विभूतियोंमेंसे एक कहा जाता है।

अनेक लोग उनकी प्रतिभाकी महत्ताको निर्विवाद रूपमें स्वीकार करते हैं, हालांकि कुछ थोड़े ही लोग– जिनकी विज्ञानमें गहरी पैठ है– आईन्स्टीन द्वारा ज्ञानके क्षेत्रमें किये गये योगदानको पर्याप्त रूपमें समझनेमें समर्थ हैं। वैज्ञानिक विचारककी हैसियतसे वह इतिहासके कुछ गिने-चुने वैज्ञानिकों– पाइथागोरस, आर्कीमिदिस, कोपरनिकस और न्यूटन– की पंक्तिमें सगर्व स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

आईन्स्टीनके कृतित्वको "विज्ञानद्वारा अबतक भरी गयी सबसे बड़ी एकाकी चौकड़ी", और उनके ३० पृष्ठोंवाले उस निबंधको, जिसमें सापेक्षतावाद नामक उनके विख्यात सिद्धांतका प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था, "शताब्दीका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रलेख", कहा गया है।

आईन्स्टीनके उपकरणोंमें केवल उनकी पेंसिल और लिखनेकी छोटी कापी सम्मिलित थीं; उनकी प्रयोगशाला उनकी टोपीके नीचे थी। फिर भी उनकी दृष्टि दूरवीक्षण यंत्रसे भी दूर और सूक्ष्मवीक्षण यंत्रसे भी निकट देखनेमें समर्थ थी। उन्होंने अप्रतिम वैभवके साथ दृश्य और अदृश्यके चौराहोंतक विचरण किया और इनमेंसे प्रत्येकको दूसरेके रूपमें व्यक्त किया।

पिछले कुछ वर्षोंके दौरान रेडियो-दूरवीक्षण यंत्र जैसे नवीन उपकरणोंके विकासके फलस्वरूप, निखिल ब्रह्मांडके विषयमें नयी-नयी खोजोंकी धूम-सी मच रही है। इनमें सबसे नवीन और अद्भुत खोज डा० जे० वी० नार्लीकर और प्रोफेसर एफ० होयल द्वारा प्रतिपादित नवीन गुरुत्वकार्षण सिद्धांत है, जो, 'टाइम्स आव् इण्डिया' के शब्दों में, "न्यूटन और आईन्स्टीन द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण सिद्धांतको न केवल आगे बढ़ाता है बल्कि ऊपर उठाकर कल्पनामूलक चिन्तनके नूतन पठारपर खड़ा कर देता है।"

आईन्स्टीनका जन्म १४ मार्च, १८७९ को उल्म, बवेरिया में हुआ था। बचपनमें वह कविता रचा करते थे। स्कूलमें वह लज्जालु और पिछड़े माने जाते थे, हालांकि कभी-कभी वह अपने शिक्षकोंसे ऐसे प्रश्न पूछ बैठते थे, जिनका उन्हें कोई उत्तर ही नहीं सूझ पड़ता था और वे ठगे-से रह जाते थे। १२ वर्षकी आयुमें ही उन्होंने यूक्लिडकी रेखा-गणित संबंधी पुस्तक, 'जियोमेट्री', की एक

प्रति खरीदी। एक वर्ष बाद, उन्होंने काण्टकी पुस्तक, "क्रिटीक आव् प्योर रीजन" (शुद्ध तर्ककी समीक्षा) पढ़ी। १४ वर्षकी आयुमें उन्होंने पाठ्य-पुस्तकोंसे अनुकल और अवकल कलन (कैलकुलस) तथा विश्लेषणात्मक रेखागणितका समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर भी, बड़ी विचित्रताकी बात थी कि ज्यूरिख पोलीटेक्निकल स्कूलमें प्रवेश पानेके लिये उन्हें तत्संबंधी प्रवेश-परीक्षामें दो बार बैठना पड़ा।

स्नातककी उपाधि प्राप्त कर लेनेके बाद, वह स्विट्जरलैण्डमें आ बसे और सरकारके पेटेण्ट कार्यालयमें एक परीक्षकके पदपर कार्य करने लगे। काम करते समय जब कभी उनके मस्तिष्कमें विचार-तरंगें उठने लगती थीं, तो वह उन्हें कागजके टुकड़ोंपर अंकित कर लिया करते थे। शामके समय, सड़कोंपर बच्चेकी गाड़ी ठेलकर घूमते हुए, वह प्रायः एक-एक कर गणितीय प्रतीकोंकी पंक्तियां लिख लिया करते थे।

उन गूढ़ प्रतीकोंसे ही शताब्दीकी अधिकतम विस्फोटक एवं क्रांतिकारी धारणाओंका प्रादुर्भाव हुआ। वे वीज-गणितीय आवेजक (प्रतिक्रियाको आवेग प्रदान करनेवाले कारक) थे, जिन्होंने आधुनिक प्राकृतिक विज्ञानकी प्रत्येक मान्यता और उप-धारणाके पुनर्मूल्यांकनकी प्रक्रियाको गतिमान किया और इस प्रकार एक ऐसी भौतिक क्रांतिको प्रश्रय दिया, जिसका अंत कहां होगा यह कहना अभी भी कठिन है। १९०५ में, जब उनकी आयु अभी २६ वर्ष ही थी, उन्होंने ५ निबंधोंके रूपमें अपने फुटकल लेखोंको प्रकाशित किया। पांचवें– सबसे छोटे–निबंध ('क्या किसी पिण्डकी जड़ता उसके ऊर्जा-आधेयपर निर्भर करती है?') में ही अणु-युगकी गणितीय न्यष्टि निहित थी।

आईन्स्टीनने भौतिक सृष्टिविषयक ज्ञात सिद्धांतोंको परिवर्तित किया, काल, स्थान और गुरुत्वाकर्षणसंबंधी धारणाओंको संशोधित किया, एक चतुर्थ आयाम प्रस्तुत किया, पदार्थ और ऊर्जाकी समानताको प्रमाणित किया.–और इस प्रकार अणु-युगका द्वार उन्मुक्त किया।

प्रत्येक निबंध एक उत्कृष्ट योगदान था। उनमें न केवल उनका मौलिक 'सापेक्षता-सिद्धांत' (जो न्यष्टिक विखण्डनका एक अनिवार्य अग्रदूत था), बल्कि वे धारणाएं भी सम्मिलित थीं, जिन्होंने आगे चलकर प्रकाश, ऊर्जा, गति, ऊर्जाणु-वाद और अभीतक रहस्य बने हुए फोटो-इलेक्ट्रिक प्रभाव-संबंधी हमारी व्याख्याओंको परिवर्तित किया। इन युगांतकारी निबंधोंने समस्त विज्ञान-जगत्को झकझोर दिया, जो इनके प्रति आश्चर्य-चकित हो प्रशंसा और संशयकी भावनासे उद्वेलित हो उठा।

और, इस प्रकार, स्विट्जरलैण्डके पेटेण्ट कार्यालयका यह बावू अचानक रातभरमें ही विश्वका सबसे विख्यात वैज्ञानिक बन गया। उनकी सेवाएं प्राप्त करनेके लिये विश्वविद्यालयोंके बीच गहरी होड़-सी लग गयी और १९१२ में वह बर्लिनके विख्यात कैंसर विल्हेम इन्स्टिटयूटके प्रोफेसर बन गये। १९१५ में, उन्होंने अपने पिछले सिद्धांतको विस्तृत करके उसे 'सापेक्षताके सामान्य सिद्धांत' (जनरल थियरी आव् रिलेटिवटी) में परिणत कर दिया। १९२१ में उन्हें भौतिक विज्ञानका नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

बर्ट्रेण्ड रसेलने लिखा: "सापेक्षताका सिद्धांत संभवतः वर्तमान समयतक मानवीय बुद्धिमत्ताकी सबसे बड़ी समन्वित सफलता है। यह २ हजारसे अधिक वर्षोंके गणितीय एवं शारीरिक श्रमका निष्कर्ष है। पाइथागोरससे लोकर राईमैनतक शुद्ध रेखागणितका विकास, गैलिलियो और न्यूटनकी प्रवैगिकी और खगोल विज्ञान, फैराडे, मैक्सवेल और उनके अनुगामियोंके अनुसंधानोंसे प्रादुर्भूत विद्युतीय चुम्बक सिद्धांत — ये सभी, आवश्यक संशोधनोंके साथ, आईन्स्टीनके सिद्धांतोंमें मिलकर एक हो गये हैं।"

आईन्स्टीन वीमर गणतंत्रके अंतर्गत जर्मनीमें सुखी थे। उन्होंने बर्लिनमें १०० निर्धन परिवारोंकी सहाता की, नौका-विहार किया और वायलिनके मधुर संगीतका आनंद लिया। किंतु हिटलरके सत्तारूढ़ होनेपर आईन्स्टीनको तरह-तरहसे सताया जाने लगा और अंतमें देशसे निर्वासित कर दिया गया।

१९३३ में `जर्मनीको छोड़कर वह फ्रांस चले गये। वहांसे वे बेल्जियममें और फिर इंग्लैंडमें जा बसे। प्रिन्स्टन, न्यूजर्सी (अमेरिका) के 'इन्स्टिटच्यूट आव् एडवांस्ड स्टडीज' ने उनके समक्ष जीवनभरके लिये प्रोफेसरका पद स्वीकार करनेका प्रस्ताव प्रस्तुत किया और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। वह १९५५ में अपनी मृत्युके समयतक प्रिन्स्टनमें ही रहे। वह १९४० में अमेरिकी नागरिक बन गये।

शांतिका यह पुजारी, जिसने नात्सीवादसे पलायन किया था, स्वतंत्रताका अटल प्रेमी था और सभी प्रकारके मानवीय शोषणसे घृणा करता था। उसने कहा: "जबतक मुझे चुनाव करनेकी स्वतंत्रता रहेगी, तबतक मैं केवल उसी देशमें रहना पसंद करूंगा, जहां राजनीतिक स्वतंत्रता, सहिष्णुता और कानूनके समक्ष सभी नागरिकोंकी समानताका बोलबाला होगा।"

जब १९५२ में इजरायलके प्रथम राष्ट्रपति, चाइम विजमैन, का देहांत हुआ, तब आईन्स्टीनसे, जो उस समय 'जीवित सबसे महान् यहूदी' थे, यह पद स्वीकार करनेका अनुरोध किया गया था। किंतु उन्होंने यह कहकर इस अनुरोधको अस्वीकार कर दिया था कि उन्हें भौतिक जगत्का अध्ययन करते रहना अत्यधिक पसंद है, किंतु उनमें "मानव प्राणियोंके साथ व्यवहार करनेकी न तो योग्यता है और न ही अनुभव।"

उनका हृदय सहानुभूति और करुणाका अपरिमित आगार था। मानव प्राणियोंके कल्याणमें उनकी गहरी रुचि थी। धनकी लिप्सा तो उनके हृदयमें लेशमात्र भी नहीं थी। उनके जीवनमें धनाढ्य बननेके अगणित अवसर आये, किंतु उन्होंने उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। उन्होंने नोबेल पुरस्कारकी पूरी निधि (लगभग १,९१,२०० रुपये) दानमें लुटा दी। एक बार, उन्होंने रौकफैलर प्रतिष्ठानसे प्राप्त ७,२०० रुपयेके एक चेकको हफ्तोंतक एक पुस्तकमें निशान बनानेके लिये कागजके टुकड़ेके रूपमें प्रयुक्त किया, और फिर वह पुस्तक भी खो दी।

७६ वर्षकी आयुमें उनकी मृत्यु होनेपर, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, प्रेसिडेण्ट आइजनहौवरने कहा था: "२० वीं शताब्दिके ज्ञानके विस्तारमें किसी अन्य व्यक्तिने उतना योग प्रदान नहीं किया जितना उन्होंने किया।"

स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरूने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था: "वह सही अर्थमें सत्यान्वेषी थे और उन्हें बुराई या झूठसे समझौता करना कदापि पसंद नहीं था। वह एक ऐसे विश्वमें, जहां छायाएं तमिस्र हो उठती हैं, मार्ग-प्रदर्शन करनेवाले प्रकाश-पुंज थे, और उन सभी लोगोंके लिये शक्ति और प्रेरणाके अपरिमित स्रोत थे, जो परिस्थितियोंके तनाव और दबावके अंतर्गत कमजोर होने लगते हैं।"

(**U.S.I.S.** के सौजन्यसे)

* * *

अन्तरैक्यमें बंध मानवता
धरतीपर रह सकती जीवित।
बाह्य विविधता, बहुकी समता
जिसके बलपर ही अवलम्बित।

—पन्त

दुःख-दर्द

संसारमें दुःखी कौन नहीं है? ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर, धनी, गरीब सभीको कुछ-न-कुछ दुःख लगा रहता है। दुःख अनेक प्रकारका होता है और उसे दूर करनेका उपाय भी एक नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रोंने बताया है कि "सारा संसार आनंदसे भरा हुआ है, आनंद आकाशकी तरह सब जगह मौजूद है। अगर आनंद न होता तो हमारे लिये सांस लेनातक असंभव होता। जो कुछ है, सब आनंदसे ही उत्पन्न हुआ है, आनंदमें ही स्थित है और आनंदमें ही मिल जायगा।" पाठक अन्यत्र देखेंगे कि आजकल आधुनिक विज्ञान भी यह मानने लगा है कि सारी सृष्टि एक ही तत्त्वसे उत्पन्न हुई है जिसके बारेमें अभी उन्हें यह पता नहीं है कि वह पदार्थ है अथवा ऊर्जा। परंतु हमने तो यही सीखा है कि सारी सृष्टि उस एकने ही बनायी है जो सत् है, चित् है और आनंद है। उसने सारी सृष्टिमें अपने ही अनेकों रूपोंको व्यक्त किया है और सब कुछ उसीकी प्रच्छन्न संभावनाओंका खेल है।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि अगर सृष्टिके मूलमें ही आनंद है तो फिर पाप और दुःख कहांसे आये। श्रीअरविंद कहते हैं कि हमारे अस्तित्वके अंदर ही आनंद छिपा हुआ है और आनंद ही हमारी प्रकृतिकी स्वाभाविक अवस्था है। दुख-दर्द अस्वाभाविक और सामयिक अवस्थाएं होती हैं जो हमारी स्वाभाविक अवस्थाको छिपा देती हैं और यही कारण है कि हम कभी स्वाभाविक आनंदको अनुभव नहीं करते और उसके क्षणिक अभावको इतना अधिक महत्त्व देते हैं। हवा हमारे लिये स्वाभाविक है, हम दिनमें कितनी बार उसके बारेमें सोचते हैं? सिर्फ तभी जब वह रुक जाय या बहुत अधिक ठंडी या गरम हो जाय। सूर्य हमारे यहां नियमित रूपसे दर्शन देता है, हमारा ध्यान उसकी ओर तभी खिंचता है जब उसे ग्रहण लगे या बादल उसे छिपा लें। इसी भांति जब हमारे स्वभावगत आनंदको ठेस लगती है तो हम चौंक पड़ते हैं और दुःख-दर्दका अनुभव करते हैं।

यह तो मान लिया। लेकिन हमारा प्रश्न फिर भी बना रहता है कि आनंदके होते हुए दुख-दर्द आता कहांसे है और इसे हटानेका उपाय क्या है। वह कौनसा राहु है जो हमारे जीवनके आलोकको बार-बार अंधकारमें बदल देता है? हमारा स्वभाव बन गया है कि अमुक क्रिया हो तो हमें दुःख होता है, अमुक क्रिया हो तो हमें अच्छा लगता है। यह चीज बड़ी हदतक सामूहिक मानस और सामान्य रीति-रिवाज और आदतोंपर निर्भर है। हमारे एक मित्रकी छोटी-सी लड़की थी, उसे यह शिक्षा दी गयी कि जब कभी वह गिर पड़ती है तो उसके गिरनेसे धरतीको चोट लगती है। परिणामस्वरूप गिरनेपर रोनेकी जगह वह छोटी-सी बालिका धरतीको सहलाने और पुचकारने लगती थी और अपने दर्दका उसे भानतक न होता था। हमारे यहांकी सर्दियोंमें भी यूरोपसे आये हुए लोगोंको गर्मी लगती है। अफीम-संखिया आदि बड़े घातक विष हैं पर ऐसे भी लोग हैं जो इनके बिना जीवित नहीं रह सकते। मृत्यु सबसे अधिक कष्ट देनेवाली चीज है पर हमारे पास इस बातके प्रमाण हैं कि जब क्रांतिकारी युवकोंको मृत्युदण्ड सुनाया जाता था तो वे बड़े प्रसन्न होते थे और उनका भार बढ़ जाता था। नयी-नवेली दुलहिनें अपने हाथसे अपने पतिकी कमरमें तलवार बांधकर उन्हें मरनेके लिये भेज देती थीं। इन उदाहरणोंसे यही प्रतीत होता है कि हमारा स्नायुमण्डल एक विशेष प्रकारकी प्रतिक्रियाओंके लिये अभ्यस्त होता है। अगर हम किसी तरह क्षणिक अथवा स्थायी रूपमें इस अभ्यासको बदल सकें तो प्रतिक्रिया भी एकदम बदल जाती है। दक्षिण भारतमें किन्हीं उत्सवों-

के समय आगपर चलनेकी प्रथा है, कई डाक्टर हिप्नाटिज्मके द्वारा सम्मोहन करके शल्य-कर्म करते हैं। इन उदाहरणोंसे यह प्रमाणित होता है कि दुख-सुख स्नायुओंकी प्रतिक्रियाएं हैं, अथवा प्राणके रुद्ध होने या मनके रूठ जानेके परिणाम होते हैं। हमारे जीवनका मुख्य उद्देश्य-- नहीं एकमात्र लक्ष्य है भगवान्‌की चेतनाको यहां प्रकट करना। इस मार्गमें जो चीजें बाधक होती हैं उन्हें हटाना आवश्यक है। दुःख-दर्द आदि हमारी कमजोरियोंकी ओर, हमारी चेतना अथवा हमारे शरीरकी त्रुटियोंकी ओर संकते करते हैं। अगर हम इन अवसरोंका लाभ उठाकर अपने अंदरकी त्रुटियोंको निकाल सकें तो एक सुनिश्चित प्रगति हो जाती है और हम कुछ ऊपर उठ पाते हैं। हमें जब कभी कोई कष्ट होता है — चाहे वह शरीर, मन, प्राण कहीं भी क्यों न हो -- तो वह इस बातका सूचक है कि हमारे अंदर होनेवाली प्रगतिके पथमें कोई रोड़ा अटका रहा है। अगर हम इस अवसरका लाभ उठाकर धीरज और अध्यवसायके साथ भागवत चेतनाका आवाहन करें तो हम देखेंगे कि रास्तेकी बाधाएं अपने-आप हटती जाती हैं और जो कष्ट हमारे जीवनको दूभर बनाये दे रहा था वह प्रगतिकी सीढ़ी बन गया है।

हमें कष्ट, रोग, दुःख आदिका स्वागत नहीं करना चाहिये। ये हमारी आंखें खोलनेमें सहायक होते हुए भी वांछनीय नहीं हैं। इनके अतिरिक्त और भी मार्ग हैं जिनसे हम भगवान्‌की ओर खुल सकते हैं। परंतु जब सिरपर आ ही जायं तो इनका सदुपयोग करना चाहिये। चाहे जितनी बड़ी विपदा हो वह प्रगतिके लिये सदा सहायक हो सकती है। उसके आनेपर रोने-बिलखनेकी जगह, विधाताको कोसनेकी जगह अगर हम अपने-आपको सन्मार्गपर ला सकें तो दुःख-दर्द एक स्वप्न रह जायेंगे।

—रवीन्द्र

हार न मानो

विश्वप्रसिद्ध तैराक ट्रूडीने अपने एक लेखमें लिखा है, "संसारमें कोई भी वस्तु सहज प्राप्य नहीं है। परंतु कार्य कितना भी कठिन क्यों न हो कभी हार नहीं माननी चाहिये, ईश्वरकी इच्छा हुई तो सब कुछ अपने-आप ठीक हो जायगा।"

बचपनसे ही ट्रूडीकी एक नामी तैराक बननेकी अभिलाषा थी। और पांच वर्षकी अल्यायुके पूर्व ही इन्होंने इस बातका निश्चय कर लिया था। प्रकृतिका यह नियम है कि जब हम कोई काम आरंभ करते हैं तो कुछ परिस्थितियां हमारे अनुकूल और कुछ एकदम प्रतिकूल होती हैं। हमारी ट्रूडीके साथ यही हुआ। पांच वर्षकी छोटी उमरमें खसरा हुआ और तभीसे वह ऊंचा सुनने लगी। डाक्टर भलीभांति जानते थे कि तैरना उन्हें अतिप्रिय है, इसलिये उन्होंने समझाते व सावधान करते हुए कहा था — "ट्रूडी, तुम कुछ समयके लिये पानीके पास एकदम मत फटकना।" परंतु ट्रूडीके लिये यह तो सांस रुकनेके समान था।

ट्रूडीको बहरा हुए आज बीस वर्ष हो चुके हैं तथा छब्बीस वर्षसे उनकी कमर और टांगोंमें दर्द

रहता है। परंतु वे कहती हैं—"इस सबके वावजूद मैं खुश हूं, कारण मेरे जीवनमें विजय तथा सिद्धिके कुछ क्षण रहे हैं।"

मुझे भी ट्रूडीकी तरह जल-कला प्राप्त करनेका अत्यधिक शौक था। हम दोनोंमें अंतर केवल इतना था कि उनकी अभिलाषा तैराक बननेकी थी और मेरी गोताखोर बननेकी।

मैं तब शायद सात वर्षकी थी, हमारे घरके पिछवाड़ेकी तरफ कुंडमें कई बच्चे, जवान, लड़के-लड़कियां तैरने आते थे। आरंभमें तो मैं उन्हें अपने छज्जेपरसे ही देखा करती थी परंतु फिर मैंने नीचे जाना शुरू कर दिया और फिर कुंडके किनारे जा बैठती और वहांसे उन तैराकों व गोताखोरोंको देखती रहती। मैंने उसी समय गोताखोर बननेका दृढ़ निश्चय कर लिया। जब मैं उन्हें देखती तो अपने-आपको भूलकर उन्हींमें मिल जाती, ऐसा महसूस करती मानों मैं बैठी उन्हें निहार नहीं रही बल्कि उन्हींके साथ तरह-तरहकी डुबकियां लगा रही हूं।

लेकिन हां, मैंने इन तैराकों व गोताखोरोंमें एक चीज देखी। वे हमेशा दलके साथ आया करते थे। अपनी प्रबल इच्छाकी पूर्तिके लिये मैं भी उस दलमें भर्ती हो गयी और नियमित रूपसे कुंडमें तैरने जाने लगी। हम जिस कुंडमें जाते थे वह विशेष रूपसे इसी कामके लिये तैयार किया गया था। गोते लगानेके लिये दस व सोलह फीटकी ऊंचाईपर, कूदनेके दो तख्ते लगे थे। नौसिखिये आरंभमें दस फीटकी ऊंचाईपर जाते थे और बादमें ऊपरके तख्तेपर।

यहां मुझे सब कुछ पसंद था लेकिन एक नियम एकदम नापसंद था। प्रत्येक दल सप्ताहमें सिर्फ एक ही दिन तैरने जाता था। एक बार विचार आया, सात दिनमें एक दिन तैरनेसे मैं कभी कुछ न सीख पाऊंगी, ट्रूडीकी भांति अल्पायुमें कभी नाम न कमा पाऊंगी। ट्रूडीने सोलह वर्षकी अवस्थामें ही बीस विश्व तथा राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं जीत ली थीं व ओलिम्पिक दल भी बना लिया था और १९ वर्षकी आयुमें इंगलिश चैनेल भी पार कर ली थी। मैंने सोचा कि मैं दल छोड़ दूं ताकि मैं प्रतिदिन कुंड जा सकूं। परंतु यह संभव न था, क्योंकि दलसे निकल जानेपर मैं कुंडमें घुस भी न पाती। हमारे कुंडके नियम बड़े सख्त थे। किंतु मेरा साहस घटा नहीं। बड़े चाव तथा लगनके साथ प्रयास करती रही और शीघ्र ही तैरना सीख गयी। मेरे लिये तैरना सीखना आवश्यक था, क्योंकि गोताखोरके लिये सबसे पहली शर्त यह है कि वह तैरना जानता हो।

हरएक क्षेत्रमें प्रथम प्रयास हमेशा ही स्मृति-चिह्नकी भांति हमारे साथ रहता है, कारण, आम तौरपर प्रथम प्रयासमें असफलता ही मिलती है।

जब मैं पहली बार सोलह फीटकी ऊंचाईसे छलांग मारने गयी तब बहुत उत्सुक थी, और खुशीके कारण बोल नहीं पा रही थी, परंतु ऊपर पहुंचकर जब एक बार पानीकी ओर नीचे देखा, तो सारी खुशी व सारा उत्साह नदारद। उसी समय मुझे ट्रूडीकी कही बात स्मरण हो आयी—'संसारमें कोई भी कार्य सहज प्राप्य नहीं है। परंतु कार्य कितना भी कठिन क्यों न हो कभी हार नहीं माननी चाहिये।" घबरानेके बावजूद मैं कूदनेके लिये तैयार हो गयी। मेरी सहायताके लिये नीचे पानीमें तैराक था, नौसिखियोंके लिये हमेशा ही पानीमें तैराक रहता था ताकि शुरू शुरूमें वे अधिक नीचे न जायें। पहले ही ऊंचाई देखकर सांस रुक जाती है और फिर अगर पानीमें ही अधिक गहरे चले जायं तो बस........सांस लेनेका प्रयत्न करते हुए सिर्फ पानी ही गटकते हैं।

हां, तो मैं भगवान्का नाम ले बिना पानीकी ओर देखे कूद गयी। दुर्भाग्यवश मैं घबराहटके कारण सीधी न गिरकर कानके बल गिरी। फलस्वरूप कई महीनोंतक कानका दर्द सताता रहा। परंतु यह तो रही दूरकी बात। कूदनेके बाद जब मैं हवामें थी तो एकदम ऐसा महसूस हो रहा था मानो भगवान्ने रुष्ट होकर मुझे पाताल लोकमें धकेल दिया है। सांस रुक गयी थी। बादमें मुझे

प्रशिक्षकने बताया कि घबराहटके कारण तेरा चेहरा पीला पड़ गया था। हवामें शायद क्षणभर ही रही, परंतु वह नगण्य क्षण भी उस समय एक युगके सामन लंबा प्रतीत हो रहा था।

पहली बार असफल होनेपर भी मैं रुकी नहीं, दुबारा ऊपर जा पहुंची। इस बार मैं ठीक ढंगसे गिरी। अब क्या था, बढ़ गया उत्साह, घंटे भर मैं इसी तरह ऊपरसे नीचे, नीचेसे ऊपर चक्कर काटती रही। जब प्रशिक्षकने पानीसे निकलनेके लिये सीटी बजायी तो मैं आग्रहपूर्ण 'एक बार और' कहे बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये ही ऊपर भाग गयी। जल्दीमें कूद तो गयी परंतु चित्त हो कमर-पर गिरी। तभीसे मेरी कमर बहुत कमजोर हो गयी है, मुझे अब भी इसका काफी ध्यान रखना पड़ता है हालांकि चोट लगे आज तेरह वर्ष हो चुके। फिर भी मैं खुश हूं क्योंकि मैंने काफी प्रगति की है, कुछ एक प्रतियोगिताएं भी जीती हैं। परंतु मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि मैं **कभी** असफल नहीं हुई। मुझे एक बार नहीं बल्कि कई बार असफलताका सामना करना पड़ा। अगर मैं एक बार सफल रही तो दो बार असफल। असफलता देख हमें अपने उद्देश्यसे पीछे नहीं हटना चाहिये। असफलता ही तो सफलताकी सीढ़ी है।

अगर ट्रूडी भी असफलताके डरसे दूसरा प्रयास न करती तो क्या उसका नाम इतना चमकता जितना कि आज चमक रहा है? अपने पहले प्रयासके बारेमें कहती है: "इंगलिश चैनेल पार करनेका मेरा एक स्वप्न था। १९२५ में मैं पहली बार अपने अधूरे स्वप्नको असली रूप देने गयी। परंतु साढ़े आठ घंटे तैरनेके बाद मेरी सांस रुकने लगी। मेरे प्रशिक्षकने तैराकसे कहा, उसे पकड़ लो, वह डूब रही है। तैराकने मुझे पकड़ लिया। मेरी प्रतियोगिता वहीं रुक गयी। तैरते समय किसी भी प्रकारका सहारा लेनेकी सख्त मनाही है। मुझे अपने ऊपर बहुत गुस्सा आ रहा था, अंग्रेजोंका समुद्रतट अब था ही कितनी दूर——सिर्फ ६ मील।

"अगले साल मैंने फिर प्रयास किया। निश्चित समयपर ६ अगस्त १९२६ को मैं वहां पहुंच गयी। शुरूमें समुद्र शांत व मनोहर प्रतीत हो रहा था, परंतु बादमें पता चला कि उस दिन तूफान आनेवाला था और तूफानके चिह्न लग चुके थे। प्रतियोगिता आरंभ करते समय समुद्र शांत था, परंतु फिर भी पिताजीको लिखकर देना पड़ा कि अगर प्रतियोगिताके समय ट्रूडीको कुछ हो भी गया तो प्रशिक्षक उसका जिम्मेदार नहीं होगा।

"मैं तैयार थी। जब मैं पानीमें कूदी उस समय पानी काला हो रहा था। मैंने क्षण भर आंख मूंद कर प्रार्थना की, 'हे भगवन्, अगर तेरी इच्छा है तो तू ही मेरी सहायता कर।' तीन घंटे पश्चात् जोरका तूफान आया। लहरोंके थपेड़े सहने कठिन हो रहे थे। लहरें भी मामूली नहीं थीं, कोई लहर १५ फुटसे छोटी नहीं थी। प्रत्येक लहरके साथ मैं पानी गटक रही थी। हारकर मुझे लहरके आते ही सांस रोकनी पड़ती थी।

"अंतमें जब मैंने किनारा देखा तो भगवान्‌को धन्यवाद दिया, वही तो मुझे इतनी दूर लाया था।"

मुझे जब कठिनाई होती है या निराशाके पैरोंकी आहट सुनायी देती है तो ट्रूडीका अनुभव मेरी आंखोंके आगे आ जाता है और मैं फिर प्रयास करनेके लिये तैयार हो जाती हूं।

—हीरो

उचित मूल्य

दतियाने इससे बुरा समय पहले कभी नहीं देखा था। लगातार दो वर्षोंसे फसलें खराब हो रही थीं। अन्नाभावके कारण प्रजामें त्राहि-त्राहि मची हुई थी। महाराजा विक्रमशाह अपना राजकोष और अन्न-भंडार खाली कर चुके थे। अब उनके पास न पैसा था न अन्नका दाना। इस वर्ष वर्षा अच्छी हुई और फसल खूब लहलहा रही थी। प्रजामें आशाकी तरंग उमड़ रही थी; ठीक इसी समय पिंडारी सरदार पीलू खांने बीस हजार घुड़सवारोंके साथ दतियापर आक्रमण कर दिया।

जनतामें हाहाकार मच गया। सारी फसल घोड़ों और खच्चरोंके उदरमें चली गयी। दतियाको तहस-नहस करनेकी धमकीके साथ राजासे बीस लाखकी मांग की गयी। राजशासन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। विनती-पारीकी कोई सुनवायी न हुई। राजा और जनताका 'हाहा' खाना सर्वथा विफल हो गया। पिंडारी सरदारने पांच दिनकी मुहलत दी जिसके बीत जानेपर दतियाकी जनता और राजमहलको नेस्तनाबूद करनेकी धमकी।

“दादा, कहो, क्या हुआ। मसला हल होनेकी कोई सूरत नजर आयी?”

“नहीं और हां।”

“इस विचित्र बातका अर्थ?”

“इसका अर्थ भी विचित्र है, महाराज?”

“सो कैसे, दादा?”

“पिंडारी तो पिंडारी है महाराज! वह तो निरा बर्बर है। वहां न तो हृदयकी पहुंच है न बुद्धिकी। वह तो सर्वनाशपर तुला है।”

“ 'नहीं' तो समझमें आ गयी, फिर 'हां' कैसी दादा?”

“सुनिये महाराज, क्षत्रियके लिये केवल वीरताकी ही नहीं, दक्षताकी भी आवश्यकता होती है; 'शौर्य्यस्तेजो धृतिर्दाक्ष्यं'।”

“सो तो ठीक है, वह तो भगवान्‌का वाक्य है, पर उपाय क्या है?”

बात हो ही रही थी कि उसी समय बुन्देलखंडी ठाठका एक सरदार वहां आ पहुंचा, दूरसे ही झुककर उसने मुजरा किया और ठिठककर रह गया। मूंगिया रंगका कुरता, गुलाबी रंगकी धोती, ऊपरसे मूंगिया पिछौरेकी फेंट, सरपर मूंगिया साफा। तनी हुई मूंछें और कानोंपर चढ़ी हुई काली दाढ़ी। कमरमें परतलासे लटकती तलवार, पीठपर ढाल और हाथमें भाला। उमर लगभग चालीस साल, औसत कद, चौड़ा सीना, गठा हुआ शरीर। चेहरेपर कुछ कहनेकी उतावली।

ऊपर सिर उठाकर, मुजरा लेते हुए महाराजने पूछा—“कहो बलवान! क्या बात है?”

हाथ जोड़कर आगत सरदारने कहा, “महाराज, पिंडारीका भतीजा 'कादर खां' लगभग पांच हजार सवारोंको लेकर किलेके पश्चिमके बगीचेमें आ डटा है। उसका इरादा खतरनाक जान पड़ता है।”

“सो तो है ही। तुम्हारी सेना कितनी है और उसका क्या हाल है?”

“सेनामें सिपाही तो केवल दो हजार ही हैं, पर अपने महाराज और दतियाके लिये वे सबके सब मौतके साथ होली खेलनेको उतावले हो रहे हैं। आज्ञा भरकी देर है, मालिक!”

"हथियार-पड़यार ठीक रखो, भगवान् गौरीशंकर आप सबको बल और साहस दें। अपनी ओरसे कोई उपद्रव न होने पावे। सभी सिपाहियोंको हमारी 'जय-गौरीशंकर' कहना।"

आज्ञा सुनकर ठाकुर तनकर खड़ा हो गया। इशारा पाकर मीठी मुस्कानके साथ मुजरा किया और नीचे उतर चला।

महाराजने गंभीर मुद्रामें एक क्षण सोचा और सरदारको वापस बुलाकर आज्ञा दी कि पंडित रामशरणजीको बुला भेजो। मुस्कराते हुए दादा दलपतरायने कहा, "तो महाराजने निश्चय कर लिया?"

"निश्चय तो हो गया, पंडितजीके आनेकी देर है। दादा, पंडित रामशरण एक अनुभवी ज्योतिषी हैं और उनको दुर्गाका इष्ट है, उनकी बात कभी गलत होते नहीं देखी।"

कुछ देर दोनों मौन रहे। दलपतराय धोपी ठाकुर थे। उमर साठ सालसे ऊपर लगभग पैंसठ वर्ष, शरीर बहुत ही सुगठित, छाती चौड़ी, भुजदंड मानों लोहेके। मूंछ उमड़ी हुई, दाढ़ी एक तरफ कानपर टंगी, दूसरी ओर लटकती हुई। कमरमें दो तलवारें, पीठपर गेंडेकी ढाल, लोहेकी भारी-सी सांग बगलमें रक्खी। माथेकी गहरी रेखाएं, आरक्त नेत्र और पैनी नाक, उनके आत्मविश्वास, दृढ़-निश्चय तथा सूक्ष्म बुद्धिकी परिचायक थीं। वे स्वभावसे गंभीर और दूरदर्शी थे। अनेक भयंकर युद्धोंके वे एक सफल साहसी योद्धा थे। महाराजा विक्रमका उनपर अटल विश्वास और भरोसा था।

मौन भंग करते हुए उन्होंने दृढ़ स्वरके साथ महाराजासे कहा, "पंडितजीको मैं भलीभांति जानता हूं। इसमें संदेह नहीं कि उनकी विचार की हुई बात कभी गलत नहीं निकलती। वे जो भी कहें पर मैं कहता हूं — जीत महाराजकी ही होगी। हमारे दो हजार जवान पिंडारीके बीस हजार घुड़सवारोंको मुरका सकते हैं। भगवान् गौरीशंकर हमारे साथ हैं। मुझे आज्ञा दीजिये, मैं चलूं, सेनाको शीघ्र तैयार किया जाय और उसे छापामारीकी बात जता दूं"।

दादा दलपत उठनेको ही थे कि सामनेसे पंडित रामशरणजी दिखायी पड़े। पंडितजीके मुंहसे 'महाराजा साहब! सावधान!' सुनकर महाराज खड़े हो गये। पाय लागन कहकर महाराजने आदरपूर्वक पंडितजीको एक सुन्दर आसनपर बैठाया। दलपतने भी खड़े होकर और हाथ जोड़कर पंडितजीका अभिवादन किया। आसन ग्रहण करके पंडितजीने महाराजसे निवेदन किया, "आज्ञा हो, क्या काम है?"

"पंडितराज, आज दतियापर कैसा समय आ पड़ा — यह तो आपको विदित ही होगा। अब युद्ध अनिवार्य है। कृपा करके आप विचार करें और भगवतीसे पूछकर बतावें, इस युद्धका परिणाम क्या होगा? हमारी विजय होगी?"

वयोवृद्ध पंडितने पत्रा खोला, कुछ देर गणित किया और फिर आंख मूंदकर ध्यानस्थ हो गये। दरबारमें प्रतीक्षाका सन्नाटा छा गया। भीतर-भीतर महाराज भी श्री गौरीशंकरका स्मरण करने लगे। दादा बार-बार अपनी चिर-सहचरी सांगको सहलाने लगे।

पंडितजीने नेत्र खोले और गंभीर मुद्रामें सोचने लगे। सभीकी टकटकी पंडितजीकी ओर जा लगी। पूर्ण शांतिके साथ महाराजने पंडितजीकी तरफ जिज्ञासु नेत्रोंसे ताका।

पंडितजीने महाराजसे गम्भीरताके भावसे कहा — "महाराज! विजय तो आपके हाथ है, पर......।"

विनम्रतापूर्वक महाराजने पूछा, "पंडितराज 'पर' के आगे भी कहिये।"

"महाराज! विजयके साथ कुछ अनिष्ट भी है।"

"पंडितराज, निस्संकोच कहिये अनिष्ट कैसा?"

पंडितजीने विचलित होते हुए रुक-रुककर कहा, "विजय-श्री तो आपके हाथ रहेगी पर आप.... न रहेंगे।"

"यानी मैं युद्धमें काम आ जाऊंगा ?

"हां, महाराज, यही तो मैं अनिष्ट कहता था।"

"पंडितराज !" राजाने गर्वके साथ कहा, "यह तो अनिष्ट बिलकुल नहीं। क्षत्रियके लिये इससे अधिक इष्ट और क्या हो सकता है ? दतियाको विजय मिले, मेरे कुलका गौरव रहे और बुन्देलखण्ड-का नाम हो — यही तो मेरे जीवनका उचित मूल्य होगा। जीवनकी इससे अधिक सफलता और सार्थकता क्या हो सकती है ?" पंडितजीको अच्छी दक्षिणाके साथ विदा किया गया।

"दादा, ठाकुर बलवान सिंहको बुलाया जाय और युद्धकी तैयारी की जाय।"

"महाराज, आज तीसरा दिन है, अभी हमारे लिये दो दिनका मौका है। हमें अब युक्तिसे काम लेनेकी जरूरत है। खुले मैदानका युद्ध कामका न होगा। आज्ञा हो तो मैं कल सुबह पिंडारी सर-दारसे फिर भेंट करूं।" महाराजा साहबको लेकर दलपतराय महलके भीतर एकांतमें चले गये।

दूसरे दिन पिंडारी सरदार पीलू खांके नाम महाराजके हाथका खरीता लेकर दादा दलपत पीलू खां से मिलने उसके शिविरमें पहुंचे।

अदबके साथ सलाम करते हुए दलपतरायने खरीता पीलू खांके हाथमें दे दिया। खोलकर पीलू खां खरीता पढ़ने लगा; खरीतेमें लिखा था —

वखिदमत सरदार पीलू खां बहादुर, खरीतेके साथ मैं अपने वयोवृद्ध सरदार दलपतरायको आपकी खिदमतमें भेज रहा हूं। दस्त वस्ता आपसे मेरी गुजारिश है कि मैं आपसे रूबरू इल्तजा करना चाहता हूं, मुमकिन है मेरे बयानको सुनकर दतियाके हालपर आप रहम फरमा सकें। बाकी हाल मेरे सरदार जवानी अर्ज करेंगे।

आपका दोस्त,
विक्रमशाह बुन्देला

"कहिये सरदार, ! आप जबानी क्या अर्ज करना चाहते हैं ?"

"सरदार साहब, दतियाकी हालतके बारेमें तो मैंने पहले ही दिन आपसे गुजारिश कर दी थी। अब सिर्फ इतना ही अर्ज करना चाहता हूं कि महाराजा साहब आपके सामने हाजिर होकर अपनी और प्रजाकी हालत जाहिर करना चाहते हैं। उनका ख्याल है कि रूबरू बात होनेसे शायद मसला तय हो सके।" भीतर-भीतर खुश होते हुए, कुटिल मुस्कानके साथ पिंडारी सरदारने महाराजके प्रस्तावको मंजूर कर लिया और कहा कि 'कल' पांचवा और आखिरी दिन है, इसलिये कल दोपहरसे पहले आपके महाराज मेरे पास आ जायं, मगर शर्त्त यह है कि साथमें फौज-फांटा लेकर न आवें।

"सरदार साहब, जरूरी पेशादार व थोड़े-से साथी सरदारोंके सिवाय और कोई नहीं होगा, सिर्फ बीस जवान होंगे और इजाजत हो तो मैं भी हाजिर हूंगा।"

"मंजूर है।"

दूसरे दिन राजसी ठाठके साथ बीस जवानोंको लेकर महाराज निकल पड़े। महाराजकी बगलमें, मुश्की घोड़ेपर दलपतराय भी हो लिये। बीसों साथी बहुत ही खरे और युद्ध-कला-विशारद अनुभवी सरदार थे। शिविरमें पहुंचकर साईसोंने घोड़े थामे और अपने बीस साथियोंके साथ राजा और दलपत पिंडारी सरदारके सामने जा पहुंचे।

पिंडारीने राजा विक्रमशाहको कोई भी सम्मान न दिखलाया। पलंगपर पालथी मारे बैठे हुए पीलू खांने घमंडके साथ राजासे कहा, "कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं ?" राजा विक्रमशाहने बहुत ही नम्रताके साथ भावपूर्ण शब्दोंमें दतियाकी खराब हालत बयान की और कहा कि हमारे पास जो

कुछ भी जेवर और थोड़ा-सा पैसा है वह आप ले लें और ईश्वरके नामपर हमारी गरीब रियायापर रहम करें। हम अपने कोषकी चाबी भी आपके हवाले कर देंगे।

दतियाका इलाका मालदार इलाका था। पीलू खांको दुश्मनोंने खबर दी थी कि राजाके पास बहुत काफी दौलत है। उसने महाराजकी बातपर कोई गौर नहीं किया और कहा कि हम बीस लाखसे एक पैसा भी कममें न मानेंगे। इसपर महाराजने वापस जाना चाहा। कड़ककर पीलू खांने कहा कि महाराज, आप गिरफ्तार हो चुके। अब आप यहांसे एक कदम भी नहीं हट सकते। राजाने मुड़कर दलपतकी तरफ देखा। दलपतने कहा कि अब सोचनेका समय नहीं। फौरन राजाने तलवार खींचकर पीलू खांपर कसकर एक वार कर दिया। एक ही वारमें वारे-न्यारे हो गये। पीलू खां पलंगपर ही ढेर हो गया। कूदकर सभी योद्धा घोड़ोंपर सवार हो गये और थोड़ेसे सिपाहियोंको जो खेमेके बाहर लगे थे काटकर हवाके वेगसे भाग निकले।

कादिरको मालूम हो चुका था कि दतियाके राजा पीलू खांसे मिलने गये हैं। उसे यह भी मालूम था कि राजाको शिविरमें गिरफ्तार कर लिया जायगा। इसलिये वह थोड़ेसे सवारोंके साथ अपने शिविरके बाहर तैयार खड़ा था। घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलके गुब्बारोंको देखकर वह समझ गया कि मामला उल्टा हो गया। साथी सवारोंको लेकर उसने रास्तेमें राजाको आ घेरा और पीछेसे महाराजके ऊपर तलवारका वार कर दिया। तलवार कनपटी और कंधेको चीरती हुई निकल गयी। कादर घोड़ा फेंकता हुआ चाचाके शिविरकी तरफ झपट गया। शिविरमें सरदारके मारे जानेपर गड़बड़ी मची थी। कादिरके पीछे दलपतने अपना घोड़ा डाल दिया। घोड़ा हवासे बातें करता हुआ पूरे वेगसे कादिरके घोड़ेके पास जा पहुंचा। सिहगर्जनाके साथ दलपतरायने कादरको ललकारा और अपने लोहेकी सांगको उछालकर भागते हुए ही कादिरपर बड़े जोरके साथ मारा। पीठको फोड़कर सांग छातीसे निकल गयी। कादिर ढेर होकर जमीनपर तड़फड़ाने लगा। फौरन घोड़ेसे कूदकर दलपतने लातके दबावसे सांग बाहर खींच ली और कादिरका सिर धड़से जुदा कर दिया।

साथ ही बलवानसिंहने छिपे हुए दो हजार छापामारोंको ललकारा और भागते हुए पिंडारियोंपर हमला कर दिया। पिंडारी बिना मालिकके भाग खड़े हुए और हजारों मौतके घाट उतार दिये गये। उनका सारा सामान जहांका तहां पड़ा रह गया।

इधर महाराज विक्रमशाह घोड़ेपर सिमट गये, खूनके फव्वारे छूट रहे थे। सरदारोंने आकर महाराजके शरीरको घोड़ेसे सम्हालकर उतार लिया। टूटे हुए शब्दोंमें महाराजने कहा कि मुझे किलेके तीसरे चौकमें गौरीशंकरके चरणोंमें डाल दो।

गौरीशंकरके मंदिरके सामने महाराजाको लिटा दिया गया। "भगवान् गौरीशंकरकी जय हो। दतिया उनकी कृपासे बच गयी।" कहते-कहते महाराजके प्राण-पखेरू उड़ गये।

—अजित सिंह

* * *

जान दी दी उसीकी थी
हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।

मैं भगवान्‌को दे ही क्या सकता हूं? अपनी जान! पर वह भी तो उसीकी दी हुई है।

—गालिब

बनी-बनायी कहानी

—श्री रवीन्द्र

मैं अपने कमरेमें चक्कर लगा रहा था। चेहरेपर चिंताके भाव जरूर दिखायी दे रहे होंगे क्योंकि दो-तीन पत्रिकाओंसे कहानीकी मांग आयी थी, परंतु मेरा दिमाग हड़ताल किये हुए था। मेरी पड़ोसिन कांता जो हमेशा मुझे कहानियोंकी सामग्री दिया करती है इन दिनों रूठी हुई है। अब कहानी आये तो कहांसे? मैं तो एक राजकी तरहसे हूं, कोई ईंट-चूना वगैरह इकट्ठा कर दे तो दीवार खड़ी कर दूंगा, पर न ईंट हो न गारा, लोहा हो न लकड़ी तो मकान अगर बन भी जायगा तो वह किसीकी भौतिक आंखोंसे दिखायी न देगा।

लेकिन कहते हैं जब भगवान् देते हैं तो छप्पर फाड़कर देते हैं। मेरे लिये भी यही हुआ। मैं आशा छोड़ बैठा था कि बड़े जोरोंसे मेरा दरवाजा खुला। मेरे मुंहसे निकल गया, "कौन जंगली है यह?" परंतु दूसरे ही क्षण मेरी अनख खुशीमें बदल गयी और मैंने बड़े ही प्रेमसे कहा, 'आओ, बहुत दिनोंके बाद दिखायी दिये।' यह कांताका बड़ा भई मंगलू था। बातें करनेमें बड़ा तेज-तर्रार है, इसलिये मैंने उसका नाम रख छोड़ा है 'हरी मिर्च'। मैंने पूछा, 'क्यों भई, कैसे दिन बीत रहे हैं?' वह मानो कुछ खास बात कहनेके लिये ही आया था। मेरे प्रश्नकी उपेक्षा करते हुए बोला, 'अच्छा, आप कहानियां कैसे लिखते हैं, मुझे भी सिखा दीजिये न?' यह एक ही रही, जिस समय स्वयं मेरे पास कहानीका अभाव है उसी समय यह सहायता मांगने आया है। मैं मुश्किलमें पड़ गया। नंगा क्या नहाये और क्या निचोड़े? मैंने बात टालते हुए कहा, 'इन दिनों कान्ताको क्या हो गया, इधर कई दिनोंसे नहीं दिखायी दी।' मंगलू बोला, 'आपको हमेशा उसीकी चिंता लगी रहती है, ऐसी क्या विशेषता दिखायी देती है उसमें?'

मैंने कहा — भारतवर्षमें स्त्रियोंको काफी नीची दृष्टिसे देखा जाता है। लड़कियोंको बचपनसे ही सिखाया जाता है कि वे कमजोर हैं, अबला हैं और उन्हें हमेशा दूसरेके पैरोंपर खड़ा रहना चाहिये, 'कछु तो हीं पूना गोरीं, कछु आंख दइयरा फोरीं।' कुछ तो हमारे समाजने ही उन्हें पंगु बनानेकी कोशिश की और कुछ विलायती फैशनोंने इन्हें और भी छुई-मुई बना दिया है। जिधर देखो, बर्रे-की-सी कमर और भिण्डी जैसे हाथ-पांव। पूछो कि भई जब भगवान्ने दिया है तो भर पेट खाती क्यों नहीं, तो उत्तर मिलेगा खानेसे मोटे होते हैं, कसरत क्यों नहीं करतीं तो कहेंगी कि मांस-पेशियां न निकल आयें। इसका परिणाम क्या है? अखबारोंमें आये दिन लड़कियोंको छेड़नेकी वारदातें छपती रहती हैं, शामसे ही अकेले निकलते हुए डर लगने लगता है और कहींपर जरा जोरका धमाका हो जाय तो दिल धड़कने लगता है। ऊपरसे चाहे जितनी टीम-टाम हो पर अंदरसे आजकी भारतीय नारीका जीवन खोखला होता जा रहा है। मंगू, तुम नहीं जानते, तुम्हारी बहिन कांता इस प्रकार-के जीवनके विरुद्ध एक विद्रोह कर रही है। उसे देखकर मुझे भारतकी पुरानी नारियोंकी याद हो आती है जो राजदरबारमें, शास्त्रार्थ-मण्डपमें और युद्धक्षेत्रमें पुरुषोंके कन्धेसे कन्धा भिड़ा सकती थीं।

'हो, हो, हो, हो' मंगलू जोरसे हंस पड़ा। 'अजी साहब, मेरे सामने न कहिये ऐसी बातें। दूरके ढोल सुहावने। आप उसे कभी-कदास देखते हैं। वह बातें बनाना जानती है और आप उसपर विश्वास कर लेते हैं। आप उसकी वीरताकी परख करना चाहते हैं तो दो-चार सप्ताह हमारे घरमें रहिये, फिर भी आपकी यही राय बनी रहे तो बन्दा आधी मूंछ मुंडानेके लिये तैयार है।'

मैंने जरा गंभीर होते हुए कहा, 'मंगलू, घरकाको जोगी जोगना आन गांवको सिद्ध', कान्ता तुम्हारी

अपनी बहन है इसलिये तुम उसकी अच्छाइयां नहीं देख पाते। कौन जाने इसके पीछे छिपी हुई ईर्ष्या भी काम न कर रही हो।'

मेरी बात सुनकर मंगलू भी गंभीर हो गया। उसने कहा, मैं इतने छोटे दिलका नहीं हूं। सचमुच अपनी बहनकी प्रशंसा सुनकर मुझे खुशी होती है और मैं सोचा करता हूं, काश, वह सचमुच ऐसी होती पर मैं क्या करूं। मैं उसे दोष नहीं देता, आप लोगोंने उसकी प्रशंसा कर-करके उसे आकाशपर बिठा दिया है और अब उसे अपनी प्रतिष्ठा रखनेके लिये आडंबर करना पड़ता है। एक बारकी जमी प्रतिष्ठाको कौन खोना चाहेगी? उसमें अच्छाइयां हैं पर तस्वीरका दूसरा रुख भी है। लीजिये, सुनिये। एक बार रातके दस बजे थे। जाड़ेकी रातें, पिताजी अपनी रजाईमें छिप चुके थे, मां अंदरकी ओर घरके छोटे-मोटे काम निबटानेमें लगी थीं और हम तीन-चार भाई-बहन अध्यापकोंको कोसते हुए अपना गृहकार्य समाप्त करनेमें लगे थे। 'खोलो, खोलो' किसीकी घबरायी हुई आवाज सुनायी दी। दो-तीन आदमी मिलकर हमारे दरवाजेपर मुष्टि-प्रहार कर रहे थे। जाड़ेके दिनोंमें भी हम सबके शरीरपर पसीना आ गया, हम सब एक-दूसरेका मुंह ताक रहे थे। अब क्या करना चाहिये? कौन जाने कैसे लोग हों? इस समय क्यों खटखटा रहे हैं? हममेंसे किसीकी हिम्मत न होती थी कि उठकर दरवाजा खोले। पिताजी तो ऐसे सोये थे कि कोई स्वयं उन्हें उठा ले जाता तो भी न जान पाते, पर मां अंदरसे झल्लायी हुई दौड़ी आयीं और हमपर बरस पड़ीं, "इतने सारे बैठे हैं यहां और कोई देखतातक नहीं कि बाहर कौन है, क्या चाहता है; कोई दरवाजा तोड़े दे रहा है और ये चार मुस्टंड यहां बैठे एक-दूसरेका मुंह ताक रहे हैं," यह कहते हुए उन्होंने दरवाजा खोल दिया। अब पता लगा कि ये लोग और कोई नहीं हमारे अपने पड़ौसी थे। उनकी दो बिल्लियां लड़ती-लड़ती हमारे घरमें घुस आयी थीं और बन्दरोंसे बचनेके लिये हमारे यहां जो जाल लगा है उसमें फंस गयी थीं। हमारे पड़ोसियोंको भय था कि कहीं जालमें उनकी बिल्लियोंका गला न फंस जाय। इसीके लिये यह सारी हाय-तोबा हुई थी। उनके ऊपर जानेतक बिल्लियां वहांसे भाग चुकी थीं। अब हम सबके हंसनेकी बारी थी। हम सब एक-दूसरेका मजाक उड़ा रहे थे, विशेष रूपसे मैंने और शान्ताने मिलकर कान्ताकी बहादुरीपर खूब ताने दिये और उसे खूब चिढ़ाया। इस सब चिल्लपोंमें हम यह भूल गये थे कि पिताजी पास ही सो रहे हैं। यूं थोड़े-बहुत शोर-शराबेसे उनका जागना मुश्किल है, लेकिन एक बार उनकी नींद टूट जाय तो वे प्रलयंकर रूप धारण कर लेते हैं।

हम सब शोर मचानेमें इतने मस्त थे कि किसीने न देखा कि कब पिताजी उठे और रजाई लपेटे, दबे पैरों बेंत लिये हुए हमारी ओर लपक पड़े। आप जानते ही हैं, हमारे पिताजीने चाहे और कुछ सीखा हो या नहीं, कम-से-कम 'दशवर्षाणि ताडयेत्' का पाठ खूब अच्छी तरह सीख रखा है और उनका विश्वास है अधिकस्य अधिकं फलम्। बस, उन्होंने आव देखा न ताव, लगे बेंत बरसाने। हम सबकी सिट्टी गुम हो गयी। किसीके मुंहसे आवाज न निकलती थी। सिर्फ पिताजी दहाड़ते जा रहे थे, "देखो न, इतने बड़े-बड़े हो गये हैं, जरा लिहाज नहीं। इन्हें क्या पड़ी है, कोई मरे या जिये, मचाओ, मचाओ और शोर मचाओ। अब चुप क्यों हो गये?" उनकी रजाई खिसककर गिर चुकी थी और उछल-उछलकर बेंत मारनेकी कसरतने उनके शरीरमें नयी जान ला दी थी। इसी बीच उनकी प्यारी शांता बेटी बड़ी चालाकीसे उनकी रजाई तह करनेके लिये हम सबसे अलग हो गयी। अधिक मार मुझ गरीबपर पड़ी। खैर, मैं भी इन सब चीजोंके लिये पक चुका हूं। मैंने भी चूंतक न की, सब कुछ सहता गया। मार-मारकर पिताजी थक गये। अब उनके लेक्चरकी बौछार शुरू हुई। शिष्टता, भद्रता, आज्ञापालन, नियंत्रण, पड़ोसीका धर्म और न जाने किन-किन विषयोंपर मनुस्मृति और पुराण, कुरान और बाइबल और सुकरातसे लेकर राधाकृष्णतक

के उद्धरणोंकी न जाने कौन-सी जयन्ती मनायी गयी। यह सब होते-होते तीन बज गये और तब कहीं हम लोगोंको सोनेका अवसर मिला।

सोनेके लिये मैं सारे घरमें और सिर्फ घरमें ही नहीं सभी परिचितों और आसपासके लोगोंमें बदनाम हूं। लोगोंका कहना है कि डाकू मुझे उठा ले जाय तो उनकी मांदमें पहुंचनेके बाद ही मेरी नींद खुलेगी। खैर, जो हो, मैं खूब अच्छी तरह सोया। थोड़ी देर बाद मेरी आंख खुल गयी। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। ऐसा लग रहा था मानों घरमें धाड़ पड़ी हो। छोटे भाई-बहन मांसे लिपटे हुए बिलख-बिलखकर रो रहे थे। मां चिल्ला रही थीं। कान्ता, शांता और सहजो पिताजीको पकड़े हुए थीं। उनके चेहरे मानों हल्दीसे पुते थे। कांताकी हालत सबसे खराब थी। उसके मुंहसे आवाज निकलना चाहते हुए भी निकल न पाती थी। पथरायी हुई आंखें दरवाजेकी ओर लगी हुई थीं। ऐसा लगता था मानों गाय कसाईकी रस्सीको तुड़ानेकी कोशिश कर रही हो। इस बार तो पिताजी भी परेशान थे। उनका सारा गुस्सा, उनके सारे लेक्चर और उनका सारा दबदबा गायब। उनके चेहरेपर भी हवाइयां उड़ रही थीं। बड़ी ही कातर दृष्टिसे इधर-उधर देख रहे थे मानो परिस्थितिको समझनेका असफल प्रयत्न कर रहे हों।

ये सब बातें कहनेमें तो बड़ा समय लगा परंतु घटनाएं बिजलीकी गतिसे घट रही थीं। मैं उठा और कूदकर परिवारके झुण्डमें जा पहुंचा। पिताजीने अनुभव किया मानों साक्षात् हनुमान राक्षसोंके हाथसे बचानेके लिये आ गये हों। मैंने देखा, मेरे आते ही सबके चेहरोंपर जान आ गयी, सबके भाव बदल गये, जैसे गरमीके दिनोंमें बहुत थके हुए आदमीका चेहरा ठंडा शरबत पीते ही बदल जाता है। अपनी तासीर देखकर मैं स्वयं चकित रह गया। मैंने पिताजीसे पूछा, बात क्या है? वे अपने-आप चकराये हुए थे, बताते क्या? मुझे शांत और स्थिर देखकर कांता और सहजो भी संभल गयीं और पिताजीको छोड़कर अलग खड़ी हो गयीं। मैं हर एकसे पूछता गया आखिर मामला क्या है? यह सारा नाटक किसलिये खेला गया और मेरी कच्ची नींदकी हत्या किसलिये की गयी? जवाब देनेके लिये कोई भी तैयार न था। मांने वातावरण बदला हुआ देखा तो वे भी समस्त बाल गोपालको लेकर सुलानेके लिये चली गयीं।

आप जानते ही हैं कि जब जरूरत पड़े तो मैं अपने घरमें सबका लाड़ला बन जाता हूं। पर जरूरत पूरी हो जानेपर सब मुझसे कतराते हैं, क्योंकि मैं जरा फक्कड़ स्वभावका हूं। मुझे मुंह देखेकी मुरव्वत नहीं आती और फब्ती कसनेमें, खिल्ली उड़ानेमें किसीको नहीं छोड़ता। इसलिये कोई ऐसी वैसी बात हो तो हमेशा मुझसे छिपायी जाती है। इसी दृष्टिसे इस बारकी इतनी बड़ी घटनाका रहस्य मुझे नहीं बताया गया। लेकिन मैं भी तो शर्लोक होम्ससे कम नहीं हूं, शायद मेरे घरवालोंने ही मुझसे बातें छिपा-छिपाकर मुझे यह कला सिखायी है। खैर, मैं पूरी गंभीरतासे इस मामलेकी टोहमें लग गया।

मैंने साम दाम दण्ड भेदके कई रूपोंका उपयोग किया, प्यारसे, पुचकारकर, धमकाकर और आइसक्रीमका लोभ दिखाकर सब भाई-बहनोंसे और कूटनीतिके द्वारा माताजी और पिताजीसे थोड़ी-थोड़ी बात निकलवा ली और टुकड़ोंको जोड़कर चित्र पूरा कर लिया। बात यूं थी। इतने कोलाहलके बाद हम लोग सोये तो सभीके दिमाग तेजीसे काम कर रहे थे। कांताने स्वप्न देखा कि वह कहीं दूर देशमें है, चारों ओरसे बिना जान-पहचानके लोगोंने उसे घेर रखा है और न जाने कौनसी भाषामें उसपर चिल्ला रहे हैं और उसे मुक्के दिखा रहे हैं। उसने अपनी बहादुरी दिखानी चाही तो सब-के-सब उसपर टूट पड़े, उसकी नींद खुल गयी। डरी हुई तो थी ही, उसने देखा, उसी क्षण सहजो चिल्लाती हुई बिस्तरपरसे कूदी और प्राण बचाकर पापा, पापा करती हुई भागी। छतपरसे उसके ऊपर एक चूहा कूदा था। पिताजी सोते हुए हमेशा बड़बड़ाया करते हैं, उनकी आवाज सुन

कर दोनोंकी दोनों और भी घबरा गयीं और जाकर उनको पकड़ लिया। इस अचानक आक्रमणसे वे भी बिदक गये और लगे चिल्लाने। इस चिल्लपोंमें छोटे बच्चे भी जाग गये और मांके धीरज-की भी परीक्षा हो गयी। इसके बादकी घटना तो आपको सुना ही चुका हूं।

अरे, साढ़े नौ हो गये। मैं आया किसलिये था और कह क्या गया? खैर, अब मुझे जाना चाहिये, लेकिन देखिये मेरे घरवालोंको पता न लगने पाये कि मैं यह सारी गाथा सुना गया हूं।

अच्छा, खुदा हाफिज।

शंकरदेव

शंकरदेव आसामके एक महापुरुष थे। उन्होंने बहुत सारे गीत, कविताएं, नाटक आदि लिखे थे और उन्होंने बहुतसे आश्रम भी बसाये थे जहां पढ़ाई-लिखाईके साथ पुस्तकालय, खेल-तमाशे आदिकी भी व्यवस्था थी।

शंकरदेव बचपनसे ही असाधारण थे। उन्होंने अक्षर सीखते-न-सीखते यह कविता लिखी थी :—

करतल कमल कमलदल नयन।
भवदव दहन गहन वन शयन ॥
नपर नपरपर सतरत गमय ।
सभय सभय भय ममहर सततय ॥
खरतर वरशर हत दशवदन।
खगचर नगधर फनधर शयन।
परपद लयकर कमलज नयन ॥

"तेरी हथेली कमल जैसी है, तेरी आंखें कमलदल जैसी हैं। तू संसारके दुःख रहनेवाला है तू सबकी आत्मा है। मेरे भयको नष्ट करनेवाला तू ही है। मेरी सुरक्षा तेरे ही हाथोंमें है। तू तेजस्वी लोगोंको पैदा करता है। तू दशानन, दुष्ट और पापियोंका नाश करता है। गरुड़ तेरी सवारी है, तू नागपर सोता है, तू दुःखोंसे रक्षा करता है।"

इनका जन्म १४४९ में हुआ था। उनके मां-बाप काफी जल्दी मर गये और शंकरदेव अपनी दादीके यहां बड़े हुए। बारह वर्षकी आयुसे वे एक पंडितके यहां रहने लगे थे जिनका नाम था महेन्द्र कन्दली। एक दिनकी बात है कि वे पाठशालामें ही सो गये। चेहरेपर धूप आ रही थी। अचानक एक काला सांप आया और उनपर फन फैलाकर बैठ गया, शंकरपर नागकी छाया हो गयी। गुरुजीने यह देखा तो वे मुग्ध हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि यह बालक उनका नाम उज्ज्वल करेगा; यह बालक कायस्थ कुलमें उत्पन्न हुआ था। पिताने शंकरकी आराधना करके इसे पाया और इसका नाम शंकर रखा। गुरुने इसके सुलक्षण देख शंकरके साथ देव और जोड़ दिया। ब्राह्मणों-में खलबली मच गयी। यह क्या? कायस्थ बच्चा और देव! पर गुरु महेन्द्रके आगे किसीकी न चली।

शंकरके शरीरकी ज्योति बढ़ती जा रही थी। वे सुन्दर और बलवान् थे। एक बार उनके

गांवमें एक सांड आ गया, उसने बड़ा उपद्रव किया। गांवके लोग उसे रोक न सके, तब शंकरदेवने उसके सीगोंको पकड़कर उसे शांत कर दिया। कहते हैं, एक बार एक जंगली हाथीको भी उन्होंने वशमें किया था। उनका शरीर बहुत बलवान् और तेजस्वी था और साथ ही वे ज्ञानी भी थे। वे कहते थे कि संसारमें विद्याका भंडार है लेकिन उसे पानेके लिये मनुष्यमें भगवान्के प्रति प्रेम होना चाहिये :—

"राम नामें परमात्मा जानिबा निश्चय।
कृष्ण नामें जीव आत्मा प्रकाश आछय।।

इसका अर्थ यह है — राम नामसे ही परमात्माका ज्ञान होता है। जीवात्माका प्रकाश श्रीकृष्ण-के नाम द्वारा ही मिलता है।

एक बार हेम्बुवानी नामक गांवके लोगोंने इनसे कहा, आप भगवान्के नामकी रट लगाते हैं, यहां पीनेको पानीतक नहीं मिलता। शंकरदेवने कुछ उत्तर न दिया। शामको कीर्तन करने बैठ गये। थोड़ी देरमें साफ आकाशपर बादल छा गये। थोड़ी देरमें मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी। गांवके बीचों-बीच एक बड़का पेड़ था। वह आंधीके कारण उखड़ गया और वहां एक कुण्ड बन गया जो आज भी आकाशी गंगाके नामसे प्रसिद्ध है।

दूसरी ओर उनके जीवनमें काफी परीक्षाएं भी आयी थीं, पर वे परास्त न हुए। उन्होंने कहा है:

"राम मोरि हृदय पंकजे रैछे।
भाइ चित्त! ना चिन्तस कैछे।।

इसका अर्थ यह है कि राम ही मेरे हृदयमें कमल है। हे मन! उनकी चिंता क्यों नहीं करता? उनके मां-बाप तो बचपनमें ही मर चुके थे। उनकी स्त्री भी मर गयी। अब वे पूरी तरह स्वतंत्र थे: भगवान्के प्रेममें डूबते हुए उन्होंने कहा है :—

"यत देखा भार्य्या पुत्र सबे अकारण।
मिछा मोर मोर करि नारायण।।"

यानी स्त्री पुत्र सब झूठे हैं। मनुष्य व्यर्थ ही इन्हें अपना-अपना कहता फिरता है।

पैंतीस सालकी उम्रमें वे तीर्थयात्रापर निकले और भारतके सब तीर्थस्थानोंमें घूमे और सब प्रकारके पंडितोंसे आलाप किया। उनके बहुत सारे शिष्य हुए जिनमेंसे सबसे अच्छा था माधवदेव। वह पहले शंकरका शत्रु था। यात्राके समय उनका बहुत लोगोंसे परिचय हुआ जिनमें रामानंद, चैतन्य आदि भी थे। वे कहते हैं :—

"शुनो सभासद यत बुझिया कथार तत्त्व साधु संगे करियोग रति।
यत मन करा वृथा महन्तर मुखे कथा शुनि करा कृष्णत भकति।।"

इन पंक्तियोंमें वे कहते हैं कि हम मनमें जो सोचा करते हैं वह सब झूठ है। इसलिये साधु-महात्माओंके मुंहसे सुनकर कृष्णकी आराधना करो।

शंकरदेव इतने महान् थे कि अपने शिष्योंमें भी ऊंच-नीचका भाव नहीं देखना चाहते थे। वे कहते हैं ::—

"कुकुर चंडाल गर्दभरो आत्मा राम।
जानिया सबाको परि करिबा प्रणाम।।"

कुत्ता हो या गधा अथवा चाण्डाल, सभीकी आत्मामें राम बसा हुआ है। इसलिये तुम्हें सबको प्रणाम करना चाहिये।

वे सारे जीवन सोच-विचार करते रहे थे और सन् १५६८ में १२० वर्षकी आयु पाकर जब उन्होंने प्राणत्याग किया तब भी वे सोच-विचारमें ही मस्त थे।

उन्होंने धर्म और साहित्यको ही नहीं लेकिन लोक-समाजको भी एक नया जन्म दिया। वे भगवान्के बारेमें कहते हैं :—

"चारि वेदे चारि भूज समुद्रे उदर।
जगत्के व्यापिया आछाहा कलेवर।।
अंशे अवतरि करा सृष्टिक पालन।
त्राहि त्राहि हरि हुयो आमान प्रसन्न ।।"

इसका अर्थ है : हे प्रभो ! चारों वेद तुम्हारी भुजाएं हैं। तुम्हारा उदर है यह महासमुद्र। सारे जगत्में तुम्हारा ही शरीर फैला है। तुम विशेष अंशमें अवतरित होकर सृष्टिका पालन करते हो। हे भगवान्, प्रसन्न होकर मुझे बचाओ।

अन्य प्रांतोंकी तरह असममें भी संस्कृत ही विद्वानोंकी भाषा थी। शंकरदेवने देखा कि साधारण जनता संस्कृत न जाननेके कारण धर्म और संस्कृतिकी बातोंसे लाभ नहीं उठा पाती इसलिये उन्होंने साधारण जनताकी भाषा असमियामें ज्ञान और भक्तिकी गंगा बहायी और इस तरह असमिया साहित्यके जनक बन गये। उन्होंने कविता, गीत, नाटक आदिकी रचना की, नाटचशालाएं और खुले मैदानके रंगमंच बनाये। अपने नाटकके पर्दे वे अपने-आप ही रंगा करते थे। उन्हें नाच-गान आदिमें भी काफी दक्षता प्राप्त थी। कई प्राचीन बाजोंको इन्होंने नया जन्म दिया। ऐसी बहुमुखी प्रतिभावाले शंकरदेव भारतके एक अमूल्य रत्न थे।

—तुलसी

(सस्ता साहित्य मंडल की पुस्तक 'शंकरदेव' के आधारपर)

* * *

भगवान्का ही प्रत्युत्तर एकमात्र प्रत्युत्तर है जिसे हम कभी नहीं खोते।
भगवान्का ही प्रेम एकमात्र प्रेम होता है जो कभी हमारा साथ नहीं छोड़ता।
बस भगवान्से प्रेम करो और भगवान् सदा तुम्हारे साथ रहेंगे।

६.८.१९६३

*

यदि तुम चाहो कि कोई तुम्हारा मजाक न उड़ाये तो तुम कभी किसीका मजाक मत उड़ाओ।
यदि तुम चाहो कि लोग तुम्हारा आदर करें तो तुम सदा आदरणीय ढंगसे काम करो।
यदि तुम चाहो कि सब लोग तुमसे प्रेम करें तो तुम सब लोगोंसे प्रेम करो।

—श्रीमां

स्वतंत्रता

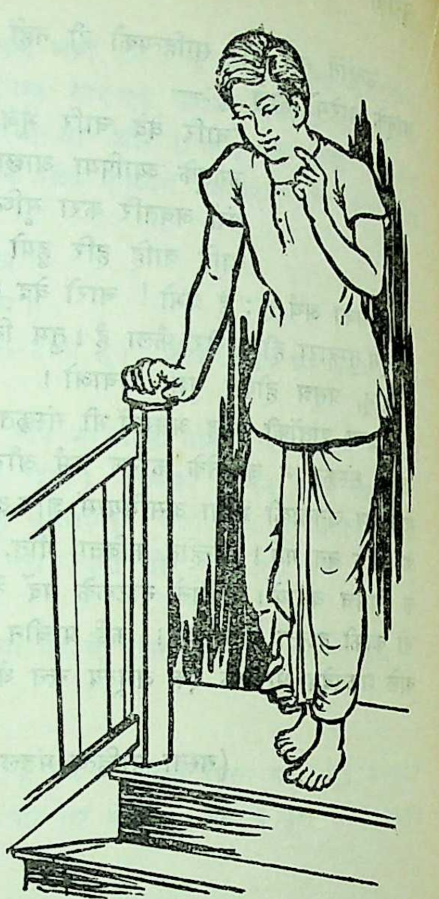

शामको कामसे लौटकर मैं खिड़कीपर खड़ा अपनी पालित पुत्री शांतिकी बाट जोह रहा था। शांतिका पाठशालासे लौटनेका समय कभीका हो चुका था और उसकी देरके कारण मेरा मन भी चिन्तित हो चला था। जरा-सी देरमें मैंने देखा कि शांति अपने दोनों हाथोंमें कुछ छुपाये चली आ रही है। वह जीनेपर चढ़ रही थी, उसका चेहरा उल्लाससे लाल हो रहा था, बाल बिखरे हुए थे और इन सब बातोंने मिलकर उसके सौंदर्यको निखार दिया था।

ऊपर चढ़ते-चढ़ते अपनी आस्मानी साड़ीमें कुछ छिपाते हुए मुस्कराकर उसने बड़े जोरसे पूछा, “बोलो, बोलो, भैया, मेरे पास क्या है?” उसकी हंसी फूटी पड़ती थी। “क्यों, आज फिर पाठशालामें कुछ इनाम मिला है क्या?” मैंने उसीके मुखसे बात जाननेकी कोशिश करते हुए कहा।

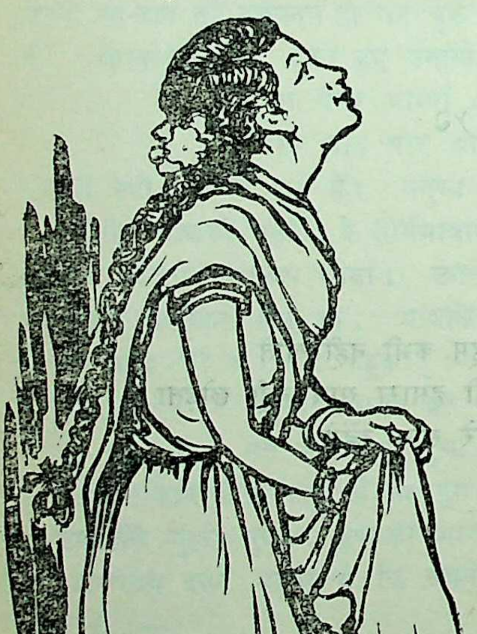

“हां, चाहे कुछ हो तुम बता दो तभी जानें।” वह अपनी शरारत भरी आंखें मेरी आंखोंमें गड़ाते हुए कह रही थी, “आज तो तुम पता लगा चुके, आओ होड़ कर लें।” मैंने कल्पनाके घोड़ेको बहुत दौड़ाया पर फिर भी यह न जान सका कि वह क्या लायी होगी। अतः मजाकमें मैंने कहा, “इनाम न होगा तो रास्तेका कोई सुघड़ पत्थर उठा लायी होगी।”

“गलत, गलत, बिलकुल गलत।”

“तो बेर होंगे या फूल।”

“नहीं, नहीं, अरे रे रें।” मैं जैसे-जैसे नाम गिनाता शांतिकी हंसी उतनी ही बढ़ती जाती और वह उछलती जाती। उसके निर्दोष आनंदको देखकर मैं भी इधर-उधरके नाम गिनाये जा रहा था और उसकी हंसीका आनंद ले रहा था। इतनेंमें बूढ़ा नौकर रामा ऊपर आया और शांतिसे बोला, “शांति बहिन, तू वह चिड़िया नहीं लायी, जीजी उसके लिये पिंजरा दे गयी है।”

"देखो, ऊं, ऊं मेरा खेल बिगाड़ दिया सारा, पागल कहींका; आज तो दद्दाको हराकर छोड़ती।' कहते हुए उसने चिड़ियापरसे अपनी साड़ीका पल्ला उठा लिया। उसके हाथमें चिड़ियाका एक छोटा-सा बच्चा था। उसने अपनी आंखें खोलीं और इधर-उधर देखने लगा। शांति बड़े उत्साहसे कह रही थी, "मैं पढ़कर लौट रही थी उसी समय वह बिचारा उस छज्जेसे नीचे आ गिरा। अगर जरा देरमें गिरता तो वहां इसका कौन बैठा था, मरके रह जाता या किसीके पैरसे पिस जाता, देखो तो बिचारा !"

"तू इसे ले तो आयी, लेकिन इसकी मां इसकी राह देख रही होगी न !" मैंने कहा।

"हां, भैया तुम भी ऐसी ही बातें करते हो, मैं कोई मूर्ख थोड़े ही हूं" वह अपना सयानापन दिखाने लगी थी, "मैंने इसकी मांकी बहुत खोज की, बहुत ढूंढ़ा, छज्जेपर, इधर-उधर चारों ओर देखा, वहां एक दूकानदारने बताया कि इसकी मां तो मर चुकी है। भैया बताओ, बिचारा बिना मांका है, इसे वहां अकेला कैसे छोड़ आती।"

मैं शांतिके चेहरेपर मृदु भावोंकी सचाई देख रहा था। मैंने कहा, "हां, ठीक है, ऐसे तो नहीं छोड़ना चाहिये।"

बड़ी सावधानीके साथ शांतिने बच्चेको पिंजरेमें रखा। मैंने पूछा, "लेकिन इसकी देख-रेख कौन करेगा ?"

"कौन क्या करेगा, मैं करूंगी सब कुछ। और कौन करेगा ?"

"लेकिन इसे तो अभी दाना चुगना भी नहीं आता।"

"तुम इन सब बातोंकी चिंता मत करो, मैं दानेके टुकड़े-टुकड़े करके किसी तरह खिलाऊंगी। अच्छा, देखो, अभी खिलाती हूं" वह दौड़कर बाजरी और कोदों कूटकर ले आयी और लगी बच्चेको खिलाने, साथ-ही-साथ उसे आश्वासन देनेके लिये बड़े लाड़से कहती जाती थी, "खा ले बच्चे, खा ले मेरे लाल, खा, आहा, देखो, कैसा खा रहा है, हा . . . . . देखो ए . . . . . यह खाया, आहा . . .।"

शांति अपने-आप विकास पा रही थी। उसके हृदयमें सहानुभूति और दयाके भावोंका स्फुरण देखकर मुझे सहसा उसकी मांकी याद हो आयी, उसकी बीमारी और हस्पतालमें करुण मृत्युका दृश्य एक बार मेरी आंखोंके आगे खेल गया।

चिड़ियाका बच्चा अभी बहुत ही छोटा था। पंख फूटनेकी बात तो दूर रही, अभी उसकी लाल-लाल चमड़ीपर रुएंतक न आये थे। मैंने शांतिसे कहा, "तेरे इस बच्चेमें नामको भी सौंदर्य नहीं है, कैसा भद्दा-सा लगता है।"

"अभी मेरा बच्चा है ही कितना-सा, बिना मांका है बिचारा, इसकी कौन खबर रखेगा, थोड़े दिनोंमें देख लेना, कैसा सुन्दर निकलता है। तब कहना।"

बच्चा खाता न था इससे शांति कुछ फीकी पड़ चली थी। शांतिकी नजर जीनेकी तरफ गयी और इधर बच्चेने चुपकेसे दानेपर एक चोंच मारी। शांति फिर उत्साहमें आ गयी और ताली पीटकर चिल्ला उठी, "आहा, लो इसने खा लिया, खा लिया, ... देखो, देखो, भैया. तुमने देखा न, कैसा चालाक है !"

"हां, बहिन ठीक है, देखनेमें तो यह बड़ा भोंदू-सा लगता है पर है चालाक। हमारी सबकी नजर फिरी तो चटसे खा गया, धूर्त कहींका। यहां दाने रखकर हम लोग यहांसे हट जायें तो शायद अच्छी तरह खा लेगा।"

"अरे रे रे . . . . यह तो . . . . ओहो यह तो मेरे हाथमेंसे भी खा लेता है, अभी खाया है इसने।"

शांतिके मनकी बात जाननेके लिये मैंने पूछा, "लेकिन शांति, यह तो बता कि तू हर तरहकी सेवा तो करती है फिर भी इसे एक दुःख है न!"

"दुःख भला कैसे हो सकता है इसे भैया।"

"अपने घोंसलेमें यह स्वतंत्र था और अब तेरे पिंजरेमें बंदी है।"

"पर इसमें भला इसीका है न, अगर बाहर रखें तो कहीं बिल्ली इसे चट कर जायगी।" वह मेरी ओर विस्मयसे ताक रही थी।

"नहीं, नहीं, बाहर रखना तो ठीक नहीं, लेकिन तू कबतक इसे अपने आधीन रखेगी?" मैं शांतिके मनोभावोंकी परीक्षा ले रहा था। मैंने कहा "अंतमें जब वह बड़ा हो जायगा तब छोड़ेगी या नहीं?"

"ना, ना, भैया" शांतिने बड़े जोरसे सिर हिलाते हुए कहा, उसका मुखड़ा उदास हो गया। वह बोली, "इसे खाने-पीनेकी, आरामसे रहनेकी सुविधा, इसके खेलने-खानेका बन्दोबस्त करूंगी, तब भला छोड़नेकी क्या जरूरत है?"

शांतिकी आसक्ति समझमें आनेवाली चीज थी। दुनियामें बड़े-बड़े लोग, सभ्य कहलानेवाली प्रजाएं, शिक्षित समुदाय और मजदूरोंको पालने-पोसनेका दावा करनेवाले धनाढच भी तो ऐसी ही युक्ति करते हैं।

"शांति, तू इसे लायी है, अतः इसकी रखवाली तो करनी ही चाहिये। लेकिन खाने, पीने, उठने-बैठनेसे बढ़कर भी कोई चीज है। चाहे कितने भी बन्दोबस्त हों फिर भी पिंजरेकी जिंदगी तो पिंजरेकी ही है। बेटी, स्वतंत्रता सबको समान रूपसे प्रिय है फिर चाहे वह मनुष्य हो या पशु।"

शायद किन्हीं अंशोंमें मेरा आशय उसकी समझमें आ गया और उसकी विचार-शक्ति सतेज हो उठी। उसने पूछा, "तो क्या हम इसे उड़ा देनेके लिये ही पालते हैं?"

"तो फिर तूने इसपर उपकार ही क्या किया? तू इसके हितका विचार ही कहां करती है? तू इसे खिलायेगी, पिलायेगी और आराम देगी। पर यह सब तो इसलिये न कि यह तेरी मरजीके अनुकूल है। बच्चेका इसमें क्या हित हुआ?" मैंने शांतिको गहन विचार-सागरमें डाल दिया; पर कौन कहता है कि बच्चे इसके अयोग्य होते हैं? मैं बहुत बार उसे इसी प्रकार ऐसे ही विचार-सामग्री देता रहता था और उसे भी विचार करनेकी आदत पड़ गयी थी।

थोड़े समय विचार करके जैसे गंभीर निर्णय करनेकी तैयारीमें हो इस तरह शांतिने पूछा, "ऐ भैया, तो इसे सचमुच पिंजरेमें बन्द होनेसे दुःख होता होगा?"

"पूरे निश्चयसे तो नहीं कह सकता", मैंने भी गंभीर मुद्रा बनाकर उत्तर दिया, "क्योंकि इसने पिंजरेसे बाहरका जीवन देखा ही कहां? हो सकता है कि यह पिंजरेके जीवनमें ही संतोष कर ले।"

"और यदि हम इसे खुला छोड़ दें और स्वतंत्र जीवनका मजा चखने दें?"

"तब तो बहुत ही अच्छा हो। पर हो सकता है यह उड़ जाय और फिर लौटनेका नाम न ले।" शांतिकी अब फिर परीक्षा थी।

"आयेगा नहीं तो खायेगा क्या, भूखा रहेगा बेचारा।" शांति चिंतित हो गयी।

मैंने कहा, "बेटी! स्वतंत्रता प्राप्त हो तो खाने-पीनेका कष्ट नहीं होता। स्वतंत्रतामें जान जोखोंमें हो और रास्तेमें बहुत कठिनाइयां आयें तो भी मानव हो या पशु-पक्षी, कोई भी पिंजरेमें आना पसंद नहीं करता।"

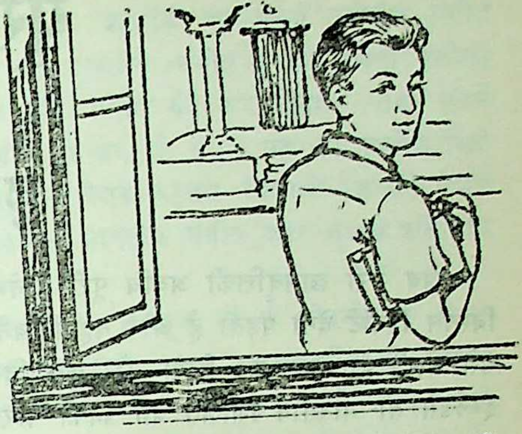

"तो भैया, यह फिर लौटेगा नहीं ?" रुंधे हुए कंठसे रुंआसी शांतिने कहा। उसकी शोकपीड़ित मुद्रा बहुत मधुर लगती थी। मैंने आश्वासन दिया और कहा, "तू आज तो इसे छोड़ नहीं रही, अभीसे क्यों उदास होती है ? जब यह बड़ा हो जाय, उड़ना सीख ले, निर्भय बने, अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो . . . ." मैं एकाएक रुक गया। खिड़कीके बाहर नजर डाली तो देखा कि विनायक शांतिकी ओर प्यासी आंखोंसे देखता जा रहा था।

शांतिकी तरह मैं भी उदास हो गया। बच्चा उड़ जाय यह शांतिको नहीं भाता और शांति दूसरे घर जाय यह मुझे नहीं सुहाता। मैं सोचने लगा और अपने-आपसे कह उठा, "शांतिको उपदेश देनेवाले बड़े-बूढ़े वासुदेवजी महाराज! परोपदेशे पांडित्य छोड़ो। यह स्वीकार करो कि चिड़ियाके बच्चेकी अपेक्षा शांति स्वतंत्रताकी ज्यादा हक़दार है। अपनी रुचि और अपनी पसंदके विचार छोड़कर उसके कल्याणकी बात सोचो, उसके भविष्यकी चिंता करो।"

मैं फिर कह उठा, "अपने बुढ़ापेकी सेवाके लिये किसी दूसरेकी स्वतंत्रता हर लेना ठीक है क्या ? . . . . . ना, ना, मैंने कब ऐसा प्रयत्न किया है !"

मेरा अंतःकरण यह प्रार्थना कर उठा, "हे प्रभो ! जब यह स्वतंत्र होने योग्य बन जाय तो इसे दिये हुए उपदेशको अपने अमलमें लानेकी मुझे शक्ति देना।"

मुझे विनायक और शांतिके बीच कोई गूढ़ हेतु काम करता दिखायी दिया और मंद-मंद मुस्कानके साथ मेरे मुंहसे निकला, 'करम गति टारे नाहिं टरे'। दुनियामें यही रीति चली आ रही है। शांति कोई अपवाद थोड़े ही है। फिर इतनी चिंता क्यों ?

—अम्बालाल पुराणी

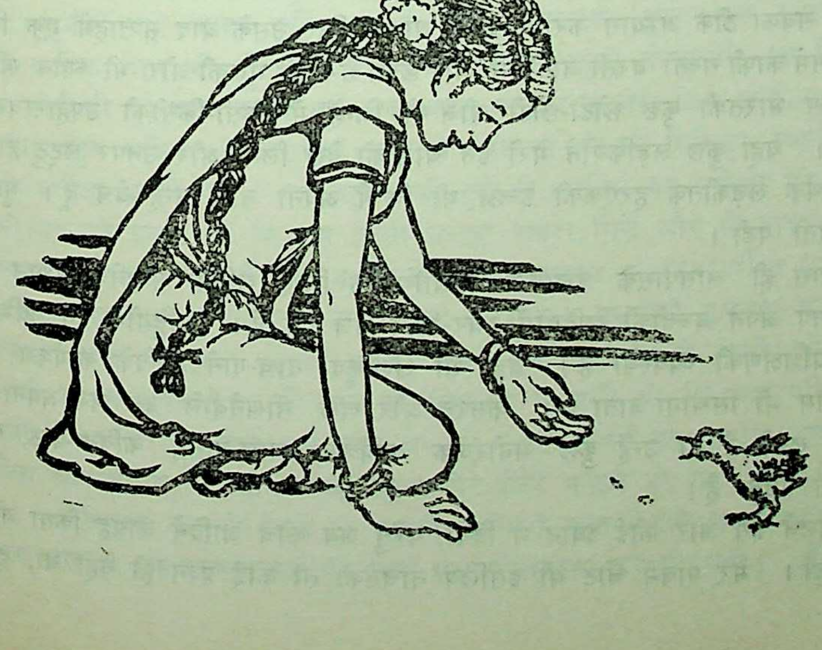

यूरोपकी सैर

—४—

छुट्टियां शुरू

अब मेरी छात्रवृत्तिकी अवधि पूरी होनेको थी। इससे पहले वहां जो कुछ सीखा उसकी एक विस्तृत रिपोर्ट देनी पड़ती है और वह लिखनेमें काफी समय लग जाता है, पर मैंने पूरी तरह लगकर उसे जल्दी ही तैयार कर लिया और कुछ दिनोंकी छुट्टीका लाभ उठानेके लिये मैं इंग्लैंड चली गयी। इंग्लैंडसे तो भारतीय शिक्षित वर्ग काफी परिचित है। इसलिये मैं वहांके बारेमें कुछ नहीं कह रही। जब मैं इंग्लैंडसे लौटी तो मेरी खोज हो रही थी। मुझे बास्केट-बालके प्रशिक्षणके लिये स्वीकृति मिल गयी थी और अब उसके लिये जाना था। इन दिनों फ्रांसकी सामान्य शिक्षण-संस्थाओंमें छुट्टी होती है और कई शिक्षार्थी साधारण व्यायाम, खेलकूद आदिकी शिक्षा लेनेके लिये चले जाते हैं। मैं प्वातिये गयी तो वहांका सारा वातावरण ही व्यायाममय था। हमारे ठहरनेकी जहां व्यवस्था थी वह इलाका पुराने दुर्गोंसे भरा हुआ था। लड़के और लड़कियां अलग-अलग रहते थे। साधारणतः एक-एक कमरेमें तीन-तीन लड़कियां थीं। यहां लड़कोंका आना निषिद्ध था। लड़के-लड़कियोंके अधिक मेल-जोलको भी रोका जाता है। वहांके व्यस्वथापकोंका कहना है कि जब उठती जवानीके विद्यार्थी उनके यहां आते हैं तो उनको अपने समयका पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिये और अगर कहीं प्रेमालाप शुरू हो जाय तो गम्भीरतासे काम न हो पायगा। लेकिन, इसके बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि वहां निषिद्ध फलका आस्वाद नहीं लिया जाता।

खैर, प्रशिक्षणमें सवेरे उठकर पहले-पहल दौड़ लगानी पड़ती थी। फिर उसके बाद शरीर सुधारनेके लिये कसरत होती और फिर उसके बाद खाना। खा-पीकर हमें फिर मैदानमें उतरना पड़ता था और गेंदका ठीक तरह उपयोग सिखाया जाता था। अभी हमें बास्केट बाल खेलनेकी स्वीकृति न थी ताकि हम कहीं पुरानी आदतोंके अनुसार अथवा किसी और लापरवाहीके कारण गलत तरहसे न खेलने लग जायं। पहले एक-एक कदम ठीक तरह सिखाया जाता था, गेंद फेंकना, पकड़ना, दौड़ना, इन सबका ठीक अभ्यास कराया जाता था। फिर उसके बाद सप्ताहमें एक दिन प्रतियोगिता होती थी जिसमें काफी सख्ती बरती जाती थी और छोटी-से-छोटी भूलकी ओर भी ध्यान खींचा जाता था।

मेरे पास भारतकी कुछ छोटी-छोटी चीजें थीं जिन्हें मैं किसी-किसीको उपहारस्वरूप देनेके लिये ले गयी थी। यहां कुछ लड़कियोंने मेरी इन चीजोंको देख लिया और उनपर लट्टू हो गयीं। कोच-से लेकर प्रत्येक लड़कीतक हरएककी इच्छा थी कि मैं अपनी चीजें उन्हें बेच दूं। मुझे काफी चीजें उपहारमें देनी पड़ीं।

हमारे पास ही आसपासके इलाकेके विद्यार्थियोंके लिये छुट्टियां मनानेका स्थान था। फ्रांसमें बहुतसे मां-बाप अपने बच्चोंको छुट्टियोंमें इधर-उधर भेज देते हैं। छुट्टियोंके इन अभिभावकोंके लिये एक अलग प्रशिक्षणकी व्यवस्था है। वहां भी खेल-कूद, नाच-गाने आदिके कार्यक्रम चला करते हैं और कुछ काम भी सिखाया जाता है। कसरत और खेल सीखनेवाले दल जब अपना कार्यक्रम पूरा करके लौटने लगते हैं तो उन्हें कुछ मनोरंजक कार्यक्रम, नाच-गाना, कविता-पाठ, पहेली आदिका प्रदर्शन करना पड़ता है।

हमारे दलने इस ओर कोई ध्यान न दिया, परंतु जब कोच आदिने आग्रह किया तो हमें भी कुछ करना ही पड़ा। मेरे पांवमें चोट थी इसलिये नाचनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था, हां, उन लोगों-

के आग्रहपर मैंने गाना स्वीकार कर लिया। परंतु जैसे हममेंसे बहुतोंको शुरू-शुरूमें यूरोपीय संगीत सुनकर हंसी आने लगती है उसी भांति उन लोगोंके लिये भी भारतीय संगीत सुनकर अपनी हंसीको रोकना मुश्किल हो गया। मुझे बड़ा बुरा लगा और मैंने गाना बंद कर दिया। तब सबने आकर खेद प्रकट किया और कहा हम तुम्हारा अपमान थोड़े ही कर रहे थे। यह तो कानोंके लिये अपरिचित ध्वनियां सुनकर हंसी आ गयी, क्षमा करो। हमारे देशके बहुतसे विद्यार्थी जिन्होंने देशमें कभी नाच-गाना सीखनेका प्रयास नहीं किया, विदेशोंमें जाकर भारतीय संगीत और नृत्यके प्रतिनिधि कलाकार बन जाते हैं।

खैर, यह तो छुट्टियोंके लिये एक आनुषंगिक कार्यक्रम था। सचमुच तो मैं सोरबोनकी शिक्षा समाप्त करके बंजासो जाना चाहती थी। जुलाईके साथ-साथ मेरी सरकारी छात्रवृत्ति भी समाप्त हो गयी, अब रेल आदिकी विशेष सुविधाएं भी समाप्त हो गयीं। मुझे पेरिससे बंजासो अपने खर्चसे जाना था। मैंने पता लगाया कि तीन सौ किलोमीटरकी यात्रा की जाय तो रेलवेकी ओरसे किरायेमें विशेष कटौती हो जाती है। मैंने बंजासोसे दक्षिणके अन्य स्थानोंमें घूमते हुए स्पेन जानेका कार्यक्रम बना लिया और उसके लिये विशेष टिकट भी बनवा लिया। यह टिकट तीन महीनेके लिये था। उसके रास्तेके स्थानोंपर जहां मर्जी ठहरा जा सकता था। रेलवेवालोंने मुझे इस इलाकेका एक नक्शा भी दिया जिसमें मेरे गंतव्य स्थानोंपर निशान लगा दिये थे और रास्तेपर भी लकीरें लगा दी थीं ताकि मैं उसे देखकर बिना किसी कठिनाईके हर जगह जा सकूं। भारतमें तो इस प्रकारकी सुविधाएं देनेका किसीको ख्याल भी नहीं आता।

सारी तैयारी करके मैं स्टेशन पहुंची। वहां एक गोरे-चिट्टे, लंबे-चौड़े युवकके साथ मेरा परिचय कराया गया। वह अफगानिस्तानसे बंजासोके लिये ही आया था। मुझसे कहा गया कि यह अभी नया ही है। इस देश तथा यहांकी भाषासे इसका परिचय नहींके बराबर है, तुम जरा इसकी देखरेख करना। मैंने उसके साथ बात-चीत करनी चाही तो देखा वह न तो भारतकी कोई भाषा जानता था और न अंग्रेजी। टूटी-फूटी फ्रेंचसे ही काम चलाता था। मैंने रेलमें उसके लिये जगह दिलवा दी लेकिन भाषाकी कठिनाईके कारण हम लोगोंमें कोई बातचीत नहीं हुई।

मुझे बताया गया था कि बजांसोमें मुझे किसी प्रकारकी कोई कठिनाई न होगी क्योंकि वहां स्टेशनपर ही कुछ विद्यार्थी मिल जायेंगे जो मेरे लिये पूरी व्यवस्था कर देंगे। वहांपर रिवाज है कि जो विद्यार्थी छुट्टियोंमें कहीं बाहर नहीं जाते वे विश्वविद्यालयका कुछ-न-कुछ काम ले लेते हैं जिससे उन्हें कुछ आर्थिक लाभ भी हो जाता है। मैं स्टेशनपर पहुंची तो इनमेंसे एक विद्यार्थी मेरे पास आया और थोड़ी-सी पूछ-ताछ करके मुझे एक जगह प्रतीक्षा करनेके लिये छोड़ गया। आज नवागंतुकोंकी संख्या बहुत अधिक थी इसलिये स्टेशनसे मोटरमें बैठकर निर्दिष्ट स्थानतक जानेके लिये बहुत अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैं बहुत थकी हुई थी इसलिये यह प्रतीक्षा मेरे लिये भारी पड़ गयी। मेरी एक ही इच्छा थी कि बस किसी तरहसे कमरा मिले और मैं जाकर सो जाऊं। परंतु हमारी इच्छाएं सदा पूरी थोड़े ही हुआ करती हैं। ऐसा लगता था मानों पंक्ति सरक ही नहीं रही। खैर, आखिर खुदा-खुदा करके मेरी बारी आयी। मैं सब प्रकारकी सूचनाएं पहले दे चुकी थी पर यहां मेजपर फिरसे कई प्रश्न दुहराये गये। मुझसे पूछा गया कि मैं किसी परिवारके साथ रहना पसंद करूंगी या छात्रावासमें। मैं पहले ही लिखकर दे चुकी थी कि मुझे परिवारके साथ रहना अधिक पसंद है इसलिये यह प्रश्न मुझे बहुत अखरा। इसका अर्थ यह था कि उन्होंने अभीतक मेरे लिये समुचित व्यवस्था न की थी। यह सहना मेरे लिये कठिन हो गया और मेरी आंखोंमें पानी आ गया। नारीसुलभ अस्त्रको देखते ही वहांकी मशीनरी बहुत तेजीसे चलने लगी और परिवार तो नहीं पर पास ही एक छात्रावासमें मेरे लिये झटपट व्यवस्था कर दी गयी। मैं वहां जाकर

झटपट सो गयी। लेकिन हां, जानेसे पहले मैं उस अफगान युवकको न भूली, उसके लिये भी कुछ व्यवस्था करवाती गयी।

सोकर उठी तो जी हल्का था, थकान उतर गयी थी और पेटमें चूहे कूद रहे थे। मैंने जाकर खानेके टिकट प्राप्त किये। मुझे जो छात्रवृत्ति मिली थी उसमें रुपया नहीं वल्कि रहने-खानेकी व्यवस्था की गयी थी। खानेकी कोई असुविधा न थी। निरामिष-भोजी होनेके कारण मुझे कुछ अधिक तरकारियां और फल मिल जाते थे और सारा काम अच्छी तरह चल रहा था। आजकल यहांपर गर्मियोंकी ऋतु थी। हमारे लिये तो वहांकी गर्मी भी जाड़ेकी छोटी बहन ही होती है। मैं हमेशा सुन्दर भारतीय वेश-भूषामें रहा करती थी। इसलिये सबका ध्यान आकर्षित होता था। एक स्त्रीने आकर मुझसे परिचय करना चाहा। उसे मेरे साथ बात करते हुए बड़ा संकोच हो रहा था। मेल-जोल बढ़ानेकी उत्सुकताके साथ यह संकोच मेल न खाता था। मुझे इसके बारेमें ज्यादा सोचना न पड़ा। उस स्त्रीने अपने-आप बतलाया कि वह पुर्तुगाली है और उसे मालूम था कि पुर्तुगाल और भारतमें ३६ का संबंध है, इसलिये उसे भय था कि शायद एक भारतीय नागरिक उसके साथ बात करना पसंद न करे। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि मैं सरस्वतीके मंदिरमें राजनीतिका प्रवेश निषिद्ध मानती हूं। इस बातसे वह बहुत प्रसन्न हुई और हमारी मित्रता हो गयी। वह अपने-आप निरामिषभोजी तो न थी पर शाकाहारको अधिक पसंद करती थी। उसके घर हम दो-तीन लड़कियां कई बार इकट्ठी हुआ करती थीं और वहां कच्ची तरकारियोंका भोज हुआ करता था जिसे वह महिला मजाकमें खरगोशका भोजन कहा करती थी।

हमारे विद्यालयमें ४७ देशोंके विद्यार्थी थे। प्रत्येक बुधवारकी रातको भिन्न-भिन्न देशोंवाले अपने-अपने देशके विशेष कार्यक्रम दिखाया करते थे। गाना, नाच, कविता-पाठ आदि तरह-तरहके मजेदार कार्यक्रम हुआ करते थे। मेरे मनमें समायी कि उसमें कुछ भारतीय कार्यक्रम भी तो होना चाहिये। यहां भारतीय विद्यार्थी तो काफी संख्यामें थे (क्योंकि जिनको फ्रैंच भाषा नहीं आती वे कहीं और जानेसे पहले यहां आकर फ्रैंच सीखते हैं) पर इन कार्यक्रमोंमें किसीको रस न था। वहांपर कोई भी न दिखायी देता था। पीछे मालूम हुआ कि इसका एक बड़ा कारण यह था कि इन्हें इसके बारेमें खबर ही न थी। सभी सूचनाएं फ्रेंचमें निकलती थीं और इन्हें फ्रेंच आती न थी। एक दिन एक भारतीय झुंड दिखायी दिया। मुझे लगा कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं। भारतीय लोगोंके स्वाभाविक शील और संकोचके कारण एक अपरिचित लड़कीसे बात करते हुए सकुचाते थे। आखिर हिम्मत करके एकने बातचीत शुरू की और धीरे-धीरे सबके साथ परिचय हो गया। मैंने उनसे कहा, हम लोगोंको भी कुछ भारतीय कार्यक्रम करना चाहिये पर किसीने उत्साह न दिखाया। उन लोगोंने एक दिन मुझे अपने यहां निमंत्रण दिया। मैंने देखा, उनमेंसे कोई भी भलीभांति पकाना या अन्य घरेलू काम न जानता था जब कि फ्रैंच पुरुष स्त्रियोंके साथ मिलकर काम करते रहनेके कारण बहुत कुछ जानते हैं। खैर, मैंने इन लोगोंमें जबरदस्ती उत्साह फूंका। कुछ लोग बंगला गीत गानेको तैयार हो गये, एक बंगालीने भंगड़ा सुन रखा था उससे मिलकर थोड़ी-बहुत कोशिशसे भंगड़ेके जैसी कुछ चीज तैयार की। मैंने आश्रममें रहते हुए थोड़ा बहुत नाच सीखा था वह बहुत काम आया और मैंने एक वाकायदा कार्यक्रमका ढांचा तैयार कर लिया। परंतु इसकी तैयारीके लिये लोगोंको नियमित रूपसे इकट्ठा करना भी एक पसेरी मेंढक तौलनेकी नाईं कठिन था। जबतक पलड़ेमें दसको इकट्ठा करो, बारह बाहर कूद जाते हैं। इन दिनों मुझे यह बात बहुत खटक रही थी कि भारतकी शिक्षा-पद्धति अपने विद्यार्थियोंमें कलाप्रेमको सुखा देती है और उन्हें नीरस, शुष्क और इस दिशामें लापरवाह बना देती है।

खैर, किसी तरह हमारा कार्यक्रम पूरा हुआ और लोगोंको बहुत पसंद भी आया। यहांतक कि

उन्होंने मुझसे फिर एक बार नाचनेके लिये भी कहा। पर मैं काफी थक गयी थी इसलिये उनकी इच्छा पूरी न कर पायी। इस कार्यक्रमके बाद ही मुझे अन्य कुछ स्थानोंपर होते हुए स्पेन जाना था। स्पेन कई बातोंमें हमारे देशसे काफी मिलता-जुलता है। वहांकी रेलें भी यूरोपके अन्य देशोंकी तुलनामें बहुत धीमी गतिसे चलती हैं। वहांके लोग भी हमारी तरह काफी हो-हल्ला करनेवाले होते हैं। उनके देशमें बहुतसे गिरजाघर ऐसे हैं जिन्हें देखकर अपने यहांकी मस्जिदें या मजार याद आ जाते हैं। स्पेनपर अरबोंका राज्य रहा है और आज भी उनके यहां अरब संस्कृतिके अवशेष दिखायी देते हैं। बहुतसे गिरजे मस्जिदोंके बदले हुए रूप हैं।

स्पेनमें मुझे सांड़से लड़ाई देखनेका अवसर मिला। यह लड़ाई स्पेनमें और जहां-जहां स्पेनिश प्रभाव है वहां (जैसे दक्षिणी अमेरिका) बड़े उत्साहके साथ देखी जाती है। जनताके ठटके ठट इस रक्तरंजित खेलको देखनेके लिये इकट्ठे होते हैं। सांड़के खूनके फव्वार देखकर लोगोंमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ जाती है और आश्चर्यकी बात तो यह है कि इसमें स्त्रियां औरोंसे दो कदम आगे ही रहती हैं। भारतीय नारीके लिये तो यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि कोई स्त्री इस तरहकी क्रूरतामें आनंद लेना तो दूर रहा, उसे देख भी सकती है। पर यह इन लोगोंका राष्ट्रीय खेल है। एक बार पंडित नेहरूके मानमें--शायद मेक्सिकोमें--सांड़की लड़ाई दिखायी गयी थी। परंतु व्यवस्था करनेवालोंने पहलेसे ही यह सोच लिया था कि पंडितजीका कोमल हृदय इस अकारण रक्तपातको पसंद न कर पायेगा। अतः सांड़के साथ थोड़ी देर लड़कर उसे जीवित ही छोड़ दिया गया।

--स्नेहलता

आकाशमें पंखा

एक जमाना था जब सूरज सिरपर तपा करता था और उससे बचनेका कोई उपाय नहीं था। अभी बिजलीके पंखे, कूलर आदि नहीं बने थे। उन दिनों लोगोंको जो तकलीफ उठानी पड़ती थी उसके बारेमें हम सोच भी नहीं सकते।

गरमीसे तंग आकर लोगोंने भगवान्को पुकारा। ब्रह्माजीने आकाशमें एक बहुत बड़ा पंखा लगा दिया। इतना बड़ा पंखा था कि बस कुछ न पूछो। अब ब्रह्माके सामने समस्या आयी। उन्होंने सोचा, धरती गोल है, लड्डू जैसी। तब पंखेकी हवाका लाभ सबको कैसे मिलेगा? उन्होंने हवामें जान फूंक दी। पंखा हवाको चलाता था और वह सारी पृथ्वीपर घूमती थी, धरतीके सब लोगोंकी जानमें जान आ गयी। गरमी शुरू होते ही ब्रह्माजी पंखा चला देते और ठंड शुरू होनेपर बंद कर देते थे।

एक बार ब्रह्माजी काम करते-करते थक गये। उन्हें नींद आ गयी। वे सोये क्या, बस सोते ही चले गये। इधर गरमीके दिन बीत गये। जाड़ा शुरू हो गया। पंखा चलता ही रहा। उसे बंद कौन करता? लोग ठिठुर-ठिठुरकर मरने लगे। सब जगह त्राहि-त्राहि होने लगी। फिरसे सबने मिलकर ब्रह्माजीको आवाज दी। इधर सूरजको भी पता लग गया। वह पहले ही पंखेसे नाराज था। वह ऐसा तपा कि पंखा पिघलकर पानी बन गया। हवा अकेली रह गयी। उसे चलानेवाला न रहा।

खैर, काफी देरके बाद लोगोंकी चीख-पुकारसे ब्रह्माजीकी आंख खुली। उन्होंने झट पंखा बंद करनेके लिये हाथ उठाया। लेकिन पंखा था कहां? उनकी मुट्ठीमें हवा आ गयी। तबसे हवा ब्रह्माजीकी इच्छाके अनुसार चला करती है। इसीलिये कहते हैं कि **उनकी इच्छाके बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता।**

--कृष्णकुमार टीकमगढ़ी

वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें--

माया

--श्री ओमप्रकाश

(श्रीअरविन्द संसारको मिथ्या नहीं मानते। उनके मतानुसार समस्त सृष्टि पूर्ण सचेतन भगवान्की बनायी हुई है। हमारी परिभाषामें जो अचेतना या अवचेतना है वह भी उसी चेतनाका एक रूप या स्तर है। अचेतना भी सच्चिदानंदकी ओर उठ रही है और ऊपरसे अतिमानस भी धरतीपर कार्य कर रहा है। यह सब भागवत शक्तिका खेल है। आज विज्ञान भी घूम फिरकर इसी सत्यकी ओर मुड़ रहा है। जादू वह जो सिर पै चढ़के बोले।

श्री ओमप्रकाशका लेख इस दिशामें बड़ी मनोरंजक बातें बताता है।--संपादक)

वेदांतकी घोषणा है कि यह जगत् मिथ्या है। जो भी दृश्यमान है वह सब माया है। भगवान् ही एकमेव सत्य है। वह निराकार है तथा साकार भी है। वह हम सबमें तथा सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त है।

वैज्ञानिक अनुसंधानोंने जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं वे वेदांतके उपर्युक्त कथनसे बहुत भिन्न नहीं हैं। यद्यपि महर्षियों तथा वैज्ञानिकोंने संसारके बारेमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जो मार्ग अपनाये वे सर्वथा भिन्न रहे। पिछले कुछ ही वर्षोंमें विज्ञानने जो प्रगति की है उससे संसारमें भिन्न-भिन्न रूपमें दिखनेवाले सभी पदार्थों तथा ऊर्जाओंमें एक ही तत्त्वके विद्यमान होनेका संकेत मिला है। विज्ञानने इस सृष्टिका जो स्वरूप यंत्रों व वैज्ञानिकोंकी कल्पनाद्वारा देखा है वह इस प्रकार है।

विज्ञानका क्षेत्र दो भागोंमें विभक्त है। एक तो पदार्थोंसे संबंधित, दूसरा ऊर्जाओं (ताप-विद्युत्-चुम्बक-प्रकाश व शब्द) से संबंधित। जिन वस्तुओंको हम अपने चारों ओर देखते या अनुभव करते हैं वे सब पदार्थ ही हैं। विज्ञानकी दृष्टिमें इन पदार्थोंका एक सामान्य गुण यह है कि ये तौले जा सकते हैं। परंतु ऊर्जाएं तौली नहीं जा सकतीं। पदार्थ तीन अवस्थाओंमें रह सकते हैं। ठोस, जैसे बर्फ; तरल जैसे पानी; गैस जैसे भाप। ठोस अवस्थामें पदार्थ अपना आकार नहीं बदलते। बर्फका घनाकार टुकड़ा चाहे प्लेटमें रखें या गिलासमें वह घनके ही आकारका रहेगा। ठोसद्वारा अपना आकार न बदलनेका कारण उसके अंदर अणुओंमें परस्पर घनिष्ठ आकर्षणका होना है जिससे कि अणु एक-दूसरेसे दूर नहीं जा सकते। परंतु तरल पदार्थोंके अणुओंमें परस्पर आकर्षण कम रहता है। इस कारण तरल पदार्थोंमें बहनेका गुण आ जाता है। जिस बर्तनमें रक्खो उसीका आकार वे ग्रहण कर लेते हैं। इनका अपना कोई आकार नहीं होता। गिलासमें पानीका आकार गोल स्तंभका होता है। परंतु थालमें गोल चादरके टुकड़ेका। तीसरी अवस्था गैस होती है। इस अवस्थामें अणुओंमें परस्पर कोई बंधन ही नहीं रह जाता। इस कारण जिस वर्तनमें गैस पदार्थ रखा जाता है उस बर्तनमें इसके अणु सब दिशाओंमें फैल जाते हैं। सारा बर्तन गैससे भर जाता है जिससे कि एक रत्ती गैस भी एक बड़ेसे बड़े हालमें व्याप्त हो जानेके लिये काफी होती है। तरल पदार्थोंकी ही तरह गैस पदार्थोंका भी आकार नहीं होता। गैसमें एक विशेषता और होती है; गैस पदार्थोंका आयतन भी निश्चित नहीं होता। यद्यपि बर्फ-पानी-भाप तीनों एक ही वस्तु हैं, परंतु कितने भिन्न

मालूम होते हैं। केवल तापमान एक सीमा (०° से०) से अधिक घट जानेपर पानी बर्फ तथा एक सीमा (१००° से०) से अधिक बढ़ जानेपर भापके रूपमें दृष्टिगोचर होता है। यह भी एक प्रकारकी माया ही हुई।

तापमानके कारण पदार्थोंका स्वरूप क्यों बदल जाता है? कारण यह है कि जिन अणुओं या परमाणुओंसे मिलकर ये पदार्थ बने होते हैं वे सतत गतिशील रहते हैं। यही गति तापमानसे प्रभावित होती है। तथा गति बढ़नेके कारण अणुओंमें परस्पर बांध कर रखनेवाली शक्ति कम पड़ने लगती है। एक सीमाके पश्चात् जब ये बंधन टूट जाते हैं तो पदार्थके गुणोंमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाते हैं। क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि अत्यधिक ठंडा होनेपर इस्पात भी भुरभुरा हो सकता है? पर यह वैज्ञानिक सत्य है। ऊर्जाओंके प्रभावके कारण पदार्थोंके गुण किस सीमातक बदले जा सकते हैं यह कल्पनातीत है। आकाशका नीला रंग—गहरे पानीका नीला दीखना—फूलोंमें सफेद रंग--आदि केवल प्रकाशके द्वारा ठगा जाना ही है। वास्तवमें आकाशमें, गहरे पानी व सफेद फूलोंमें कोई रंग नहीं होता। एक विशेष कोणसे प्रकाशकी रश्मियां पड़नेके कारण ही वे रंग दिखायी देते हैं, जो कि वास्तवमें कोई अस्तित्व नहीं रखते। प्रकृतिकी मायाका यहीं अंत नहीं हो जाता। जो दृश्यमान पदार्थ हमारे चारों ओर हैं वे न तो वैसे स्थिर ही हैं और न वैसे ठोस ही, यद्यपि वे ठोस मालूम होते हैं, तथा बहुत बार उनकी सतह साफ तथा इक-सार दिखायी पड़ती है। उदाहरणके लिये लकड़ीसे बनी हुई मेजको ही लीजिये, बहुत ध्यानसे देखनेपर भी ऐसा नहीं लगता कि उसमें छिद्र भी होंगे। परंतु सूक्ष्मदर्शक यंत्रद्वारा देखनेपर लकड़ीमें सब जगह छिद्र ही छिद्र दिखायी पड़ेंगे। पानीकी सतह सूक्ष्म-दर्षक-यंत्रद्वारा देखनेपर भी छिद्र-रहित दिखायी पड़ती है। परंतु पानीमें चीनी घोलनेपर यह देखनेमें आता है कि पानीका आयतन बढ़ता नहीं। वास्तवमें पानीमें चीनी डालनेपर पानीका आयतन बढ़ जाना चाहिये था जैसा कि पानीमें न घुलनेवाले पदार्थों (रेत आदि) के डालनेपर होता है। वास्तविकता यह है कि पानीके अंदर भी बहुत छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। घुलनेपर चीनीके अणु इन्हीं छिद्रोंमें समा जाते हैं। पानीका आयतन भी नहीं बढ़ता। पदार्थ वास्तवमें उतने ठोस नहीं हैं जितने कि वे लगते हैं, वरन् वे रिक्ततासे परिपूर्ण हैं।

यह रिक्तता तो एक प्रकारकी हुई। इससे सूक्ष्म रिक्तता एक और भी है, जो कि परमाणुओंके अंदर व्याप्त है। परमाणु जितना क्षेत्र घेरे हुए होते हैं उनका ९० प्रतिशतसे भी अधिक भाग वास्तवमें रिक्त ही होता है। इस प्रसंगमें परमाणुकी रचनाका अध्ययन भी बहुत रोचक है। परमाणु वह लघुतम इकाई है जिससे कि पदार्थ बने हैं। वैसे वैज्ञानिकोंने ऐसे १०६ तत्त्व (Elements) खोज निकाले हैं, जिनमेंसे एक या अधिक परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे ही संसारकी सब वस्तुएं बनी हैं। परंतु इन मूल पदार्थोंमें जो सूक्ष्म पदार्थ स्थित हैं वे उंगलियोंपर गिने जा सकते हैं। इनको दो भागोंमें विभक्त किया गया है। एक तो इलेक्ट्रान (Electrons) जिनपर कि विद्युत्का negative (ऋणात्मक) चार्ज रहता है। दूसरे मध्य भाग (nucleous) में स्थित पाजिट्रान (positron) तथा (nutron) तथा कुछ अन्य कण (particles) परमाणुओंका भार इसी मध्य भागके कारण ही होता है। मध्य भागमें परिवर्तन आनेपर पदार्थ ही बदल जाता है। जैसे रेडियमके मध्य भागमें परिवर्तन आनेसे वह सीसा (lead) बन जाता है। इलेक्ट्रानका भार नहींके बराबर होता है। प्रत्येक पदार्थमें चाहे वह देखनेमें कितना ही स्थिर लगे, इलेक्ट्रान भिन्न-भिन्न परिधियोंमें अबाध गतिसे चक्कर काटते रहते हैं। किस परिधिमें कितने इलेक्ट्रान रह सकते हैं यह निश्चित रूपसे ज्ञात हो चुका है। सबसे बाहरकी परिधिमें यदि इलेक्ट्रानकी संख्या आवश्यक संख्यासे कम हो तो वह परमाणु दूसरे परमाणुओंकी बाह्य परिधिके परिमाणुओंसे मिलकर नया पदार्थ बनानेके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। यही कारण है कि लोहा ओक्सीजनसे मिलकर जंग पकड़ता है, पर सोना नहीं। यद्यपि

सब पदार्थोंमें इलेक्ट्रान एकसे ही होते हैं परंतु इनकी संख्यामें भिन्नताके कारण पदार्थोंके गुणोंमें भिन्नता रहती है। पदार्थोंमें रासायनिक गुण इलेक्ट्रानकी अदला-बदलीके कारण है। हमारे शरीर भी इलेक्ट्रानकी अदला-बदलीके परिणामस्वरूप ही बनते-बिगड़ते हैं। विज्ञानका एक नियम यह है कि कोई भी पदार्थ व गुण न तो नष्ट होते हैं और न नये निर्मित ही। केवल उनके स्वरूपोंमें ऊपर बताये गये कारणोंसे परिवर्तन होता रहता है।

परमाणुके मध्य भाग (nucleous) में कणों (particles) का स्थित होना भी एक महान् चमत्कार है। कणोंको मध्य भागमें बनाये रखनेके लिये अनंत शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है। मध्य भागको तोड़नेके सफल प्रयोग वैज्ञानिकोंने किये हैं। हिरोशिमापर गिरा परमाणु-बम इसी प्रकारका एक प्रयोग था। परमाणुके मध्य भागके टूटनेसे ही भयंकर संहारकारक शक्ति प्रकट हुई थी। बहुत अधिक मात्रामें विद्युत् ऊर्जासे परमाणुके मध्यमें स्थित कण (particles) के समान कण (particles) प्रयोगशालामें निर्माण किये जा चुके हैं। इन प्रयोगोंने पदार्थों और ऊर्जासंबंधी धारणाओंमें बड़ा परिवर्तन कर दिया है। अब ऊर्जाका पदार्थोंमें तथा पदार्थोंका ऊर्जामें परिवर्तन संभव मान लिया गया है। अतः अब यह स्पष्ट हो गया है कि एक प्रकारसे पदार्थ ऊर्जाके बहुत बड़े कोष हैं। और मूलतः ऊर्जाओं तथा पदार्थोंमें कोई भी भेद नहीं है। अंतर केवल अवस्थाका है।

ब्रह्माण्डमें हर समय हमारी दृष्टिसे बहुत दूर ऊर्जा पदार्थोंके रूपमें परिणत होती रहती है। और पदार्थ भी कई प्रकारसे ऊर्जामें परिवर्तित होते रहते हैं। यह आदान-प्रदान किस शक्तिके द्वारा हो रहा है इसका उत्तर अभी वैज्ञानिकोंके पास नहीं है।

एक प्रकारसे सृष्टिका यह सारा खेल ऊर्जाद्वारा रचित है। ऊर्जाकी परिवर्तनशीलताके कारण ही संसार वास्तवमें एक ही तत्त्वका बना होनेपर भी अनेक प्रकारका भासता है। यह सब देखकर कौन नहीं कहेगा कि यह संसार वास्तवमें माया ही है। ऊर्जाओंके संबंधमें एक बात और कह देना यथेष्ट होगा कि ऊर्जाओंकी पदार्थोंके समान कोई रचना नहीं होती, सभी ऊर्जाएं तरंगोंके द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाती हैं। ऊर्जाएं तीव्रगामी तथा दूरगामी होती हैं। वह किस सीमातक पहुंच जायेंगी इसकी थाह नहीं है। सभी ऊर्जाएं एक-दूसरेमें सरलतासे परिवर्तित की जा सकती हैं। बिजलीका हीटर, स्टीम एंजन आदि उपकरण ऊर्जाओंको परिवर्तित करनेका ही काम करते हैं। तथा हमारी आवश्यकतानुसार ऊर्जा हमें प्राप्त करा देते हैं। हमारा शरीर भी ऊर्जाओंका परिवर्तन हर समय करता रहता है। हमारी इंद्रियोंद्वारा जो भी संकेत हमारे मस्तिष्कको पहुंचते हैं वे इलेक्ट्रानके स्पंदन (electronic impulses) के ही रूपमें पहुंचते हैं। फिर वह कानोंसे सुना गया शब्द हो या आंखोंसे देखा गया दृश्य, तथा नाकसे सूंघा गया गंध। संसारमें उत्पन्न प्रत्येक ऊर्जाकी तरंगको मस्तिष्कतक पहुंचा देनेका सामर्थ्य हमारे शरीर यंत्रमें है। मस्तिष्कमें पहुंचानेवाले कितने संकेतोंकी अनुभूति हम कर सकते हैं, यह दूसरी बात है। इसके लिये अभ्यासकी आवश्यकता होती है। मनन तथा एकाग्रताद्वारा ही यह अभ्यास संभव है। सांसारिक पदार्थोंके कारण हमारी इंद्रियोंके द्वारा जो संस्कार हमारे मस्तिष्कपर पड़ते हैं वे इस दृष्टिसे बाधक ही होते हैं।

अंधोंमें कुछ शक्तियां इसी कारण बढ़ी हुई हैं। क्योंकि आंखोंद्वारा संसारका संबंध कट जानेके कारण उनका मन अधिक एकाग्र होता है, तथा सूक्ष्मतर तरंगोंकी अनुभूति भी उनको होने लगती है। रूसमें रोजा नामक एक लड़कीने अभ्यासद्वारा हाथकी उंगलियोंसे (बिना आंखोंका सहारा लिये) पढ़ना तथा रंगोंको पहचानना सीखा है। भारतमें योगका जन्म इसी कारण हुआ। योग-साधनाद्वारा ब्रह्माण्डकी सूक्ष्मतर तरंगोंके मस्तिष्कपर पहुंच रहे संकेतोंकी अनुभूति कर लेनेकी क्षमता मनुष्य-शरीरमें उत्पन्न हो जाना वैज्ञानिक दृष्टिसे भी स्वाभाविक ही है जैसा कि भारतमें हजारों वर्ष पूर्व अनेकों महर्षियोंने स्वयंकी साधना द्वारा प्रत्यक्ष दर्शनके आधारपर प्रकट किया है।

* * *

शक्तिका अवतरण

घं घननन घं घननन घंटा-स्वर से
हो गया निनादित गगनलोक,
भूं भूंऽऽऽऽऽग भूंऽऽऽऽग शंखध्वनि व्यापी दिशा-दिशा
डिम डिमक-डिमक, डिम डिमक-डिमक
डिम नटित शंभु हो गये
झमक झंझा झककारने लगी
और वेदों के मुख खुल गये
तभी शत कोटि सूर्य की आभा से
नभ प्रोद्भासित हो उठा
विद्युत सी चढ़ी सिंह पर भ्रू-कमान खींचे
मुस्काती शक्ति उतरने लगी——
दिशाएं मंत्र-मुग्ध हो गयीं
स्नेह का पवन प्रवाहित हुआ
कृपा की वृष्टि बरसने लगी।

. . . .

देवता-दनुज, मनुज का भेद
हृदय से पल में ही हट गया
आत्मबोधित सब जन हो गये
हर्ष से जड़-चेतन भर गया
देवगण बोले आतुर बयन्
बद्ध कर आरत स्वर–:–
हे जगन्मातृ! ब्रह्माण्ड-धातृ!
तम का प्रकोप बढ़ गया
सत्व की हार चर्तुदिक हुई
सृष्टि का अर्थ व्यर्थ हो गया।
दनुज धरती से करने बलात्कार
उन्मत्त जभी हो गये
धरा पाताल लोक में धंसी
सत्व के तत्व विगत हो गये।

हो गयीं देवी क्रुद्ध, दहाड़ने लगा सिंह
थर-थर पत्ते सा कांपने लगा विश्वराज्य
बोलीं देवों से——मूढ़ अपात्रों के कर में
निर्गुण सारी सिद्धियां तुरत हो जाती हैं——

जब स्वयम् सत्व लेकर ये तिमिर कुठार ,
मूढ़ स्वाभाविक है तम का विरोध
मेरे सत्वास्त्रों का मूढ़ों इतना निरोध
मेरी रचना विधान का इतना दुरुपयोग ?
सिंह पर चढ़ी कालिका युद्ध भूमि में उतरी
त्योंही--
मस्तक पर केश-अशेष फहरते लहराते
ज्यों महानाश की घटा घुमड़ सी आयी हो,
धन्वा सी भौहों पर पलकों की कसी डोर
विष बुझे शरों सी चढ़ी वरुणियों की कतार
रक्तोष्ठ बीच असि सी जिह्वा . . .
विकराल बदन . . .
गर्जन तर्जन करता अग जग को थर्राता
अति अमावर्ण
विकराल काल सा रुद्र महिष पर चढ़ा हुआ
हिंसा जैसे हो खड़ी क्रुद्ध अति मूर्तिमान।
टूटा-छूटा गर्जा गभीर स्वर से उछला
थरथरा गयी धरती नभ अब टूटा तब टूटा हुआ।
करवाल उठाया करने को ज्यों ही प्रहार
देवी मुस्काई विश्व विमोहन एक बार
शक्ति के नयन से दो तीखी रश्मियां निकल
महिषासुर की आंखों से उर में पहुंच
ऊर्ध्व हो खिला ज्योति का सहस्रार
तन के रेशे रेशे में जाकर रिसीं--
पेशियों में उमेठ सी हुई
सिन्धु के ज्वार टूटने लगे
खड्ग कर में पकड़े रह गया
सौम्य बन हिंसा ठिठकी रही
महिष की आंखों में अनुराग
हृदय में पुलक मृदुल भर गया।
दनुज बोला दुर्गा को देख--
अहे तुम कौन ?
तुम मोहन की रासोत्मंग साकार
या कि तुम खुद मुरलीकी तान !
सौन्दर्य-सिन्धु की मंत्र प्रणय-मोहित तरंग
सपनों से विरचित तेरा स्नेहिल अंग अंग
तुम उतर गगन से एक चन्द्र-रेखा सी
युद्ध के रौद्र में मोहन रस लेखा सी--
दिशाएं अंक--धरा पद्मासनस्थ।

तेरी आंखों में है नीरव नभ का असीम विस्तार
हृदय में सत्व-सिन्धु-शुक्ला-तरंग
अधरों में अमृत रसानंद
तुम्हारे रवि-शशि युगल उरोज
दिगम्बर विकसित तन कम्बोज
केश तम में मुख-उषा उदोत
प्रणव तेरे चरणों में पायल की झंकार
कांत अति सरस स्निग्ध सुकुमार
किये निज करतल का विस्तार
दे रही रक्षा का आश्वासन
तेरी छाया में ब्रह्माण्ड।
नयन का चलन-सृष्टि का भ्रमण
बयन् मुखरण-संगीति ध्वनन
एक पद चलन-नृत्य का क्वणन
नयन आक्षेप-विश्व विलयन
एक मृदुहास-वसंत विकास
तनिक भी क्लेश-झाड पतझार।

सत्व में भींग रहा है तम,
अमा पर शुक्ला का अवतरण
कहो तुम कौन! अहे तुम कौन!
दुर्गा मुस्काईं मृदुल-मधुर
फिर बिन बोले—बिन मुख खोले
हेर कर दृष्टि सम्मोहन
निज नयनों में हो गयी लीन।

नभ अरुण
तरुण हो गयी सृष्टि की दिशा-दिशा
नीली किरणों का हुआ मृदुल विस्तार
और नीली मणिर्चचित धराभूमि से आवर्तित
शुक्ल का एक आलोक वृत्त छा गया—
दुर्गा के दश बाहु दिगन्त विस्तृत अनन्त हो गये
दानव ने देखा हेर स्वयम् को वह दुर्गा
दुर्गा यह अग-दुर्गा यह जग
ब्रह्माण्ड महामन्दिर में करता हुआ नाद
गूंजा यह स्वर
दुर्गा-दुर्गा-दुर्गा-दुर्गा केवल दुर्गा।

(भारतीके सौजन्यसे)

—मदनमोहन तरुण

चींटियां

मैं उसे जब भी देखती थी वह एक कैमरा लिये और प्रायः जमीनपर लेटा दिखायी देता था। वह जगदीशचंद्र बोसका शिष्य था और उसे चींटियोंके अध्ययनमें बहुत रस था। उसे जब भी मौका मिलता वह उनके अध्ययनमें लग जाता। वह उन छोटे जानवरोंकी सब आदतोंको पहचानता था। उनकी राजधानीके उसके पास बहुत सुन्दर-सुन्दर चित्र भी थे। एक दिन उस विद्यार्थीने मुझे चींटियोंकी रानी दिखायी। वह एक सफेद, मोटा, भद्दा जानवर था। इस तरहकी रानी देखकर मैं चकित रह गयी। 'रानी' शब्द सुनते ही मैंने एक सुन्दर जानवरकी कल्पना कर रखी थी और इसलिये बहुत कहनेके बाद ही मुझे विश्वास हुआ कि वही रानी थी।

कुछ समय पहलेकी बात है। मैं उस विद्यार्थीसे मुलाकात करने उसके घर गयी थी। वह घरमें नहीं था और न वह मुझे बगीचेमें दिखायी पड़ा। किसी पड़ोसीने मुझे बतलाया कि वह कहीं निमंत्रण खानेके लिये बाहर गया हुआ है। मैंने उनको बहुत धन्यवाद दिया और वहांसे चल पड़ी। रास्तेमें मैं सोचने लगी कि हाश, एक बार तो उसका ध्यान चींटियोंसे दूर रहेगा। लेकिन मेरा विचार बिलकुल गलत निकला। क्योंकि उसी समय उसके साथ एक बहुत मजेदार घटना घट रही थी। वैज्ञानिक अपने मित्रके घर जा ही रहा था कि रास्तेमें उसे एक बड़े मकानकी दीवारपर चींटियोंकी एक लंबी पंक्ति दिखायी पड़ी। वह तुरंत वहीं रुक गया और उनको देखने लगा। उसका मन वहीं उलझ गया और निमंत्रणकी बात दिमाग से निकल गयी। उन चींटियोंकी पंक्ति इतनी लंबी थी कि वह उसका आरंभ ही नहीं पा रहा था। अचानक किसीने जोरसे थप्पड़ मारा। थप्पड़ ऐसे अकस्मात् रूपसे मिला कि उसके मुंहसे एक शब्दतक नहीं निकल पाया। उसने पीछे मुड़कर देखा तो एक लंबा-चौड़ा और मोटा आदमी उसके सामने खड़ा था। उसका चेहरा देखकर ही विद्यार्थी डर गया और जब उसकी गरजती आवाज सुनी तो कहना ही क्या था? "अरे मियां" उसने कहा, "तुममें जरा-सी भी अक्ल है या नहीं? इस तरह खड़े स्त्रियोंको उचक-उचककर देख रहे हो, यह बड़ा अनाचार है।"

"स्त्र . . . .स्त्र . . . . स्त्रियोंको", विद्यार्थी घबराकर बोला, "सच कहता हूं मित्र, मैं इन चींटियोंको देख रहा था।"

"चींटियोंको! हा . . . .हा . . . . हा . . . .! तुम झूठ बोलना भी बड़ा अच्छा जानते हो। यहां खड़े-खड़े तुम उन स्त्रियोंके कमरेमें झांक रहे थे और अब तुम्हारा कहना है कि मैं चींटियोंको देख रहा था। पूरे दो घंटोंतक कोई चींटियोंको देखता रहता है? बहुत मजेदार बातें बनाते हो मित्र!" यह कहते हुए बिचारे विद्यार्थीको और एक चांटा जड़ दिया। वह हर बार सत्य कहनेकी कोशिश करता और हर बार उसे थप्पड़ ही मिल जाता। बेचारा विद्यार्थी अपनी चींटियोंके साथ इतना मस्त था कि उसने खिड़की देखीतक न थी। और अब न जाने किधरसे यह आदमी आ धमका था, और मार-मारकर उसका मलीदा बना रहा था। विवश होकर वैज्ञानिक उस आदमीको गालियां देने और उसकी मारपीटसे बचनेकी कोशिश कर रहा था। उसी समय मैं अचानक उधरसे जा निकली और दोनोंको अलग किया। झगड़ेका कारण पूछनेपर विद्यार्थीने मुझे यही कहानी सुनायी। उसने सारी घटना इतने मजेसे सुनायी कि मैं हंसते-हंसते लोट-पोट हो गयी। मेरे लिये यह विचारतक असंभव था कि वह विद्यार्थी चींटियोंको छोड़कर स्त्रियोंके पीछे लगेगा।

—मीना

की चतुराईभरी घात

—लाट साहब

जिन दिनों मोटरकी चलन नहीं थी, उत्तर भारतमें प्रतिष्ठित जमींदार लोग हाथी पालते थे — इसलिये नहीं कि हाथी बड़ा उपयोगी जानवर था, बल्कि इसलिये कि उससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती थी। हाथीकी सवारी गाहबेगाह ही होती थी, क्योंकि उससे यात्रामें समय अधिक लगता था, केवल कठिन रास्तेमें ही उसका कुछ उपयोग होता था। हाथीका उपयोग शादी-विवाहमें या अन्य उत्सवोंमें जुलूसके समय होता था और उससे जुलूसकी शोभा बढ़ती थी। जिस जुलूसमें हाथी नहीं वह जुलूस जुलूस नहीं समझा जाता था और इसलिये जुलूसके अवसरोंपर हाथी और हाथीवानकी खूब कद्र होती थी — उन्हें खान-पान और उपहारसे संतुष्ट रखा जाता था। हाथीनशीन जमींदारकी भी लोग खूब खुशामद-बरामद किया करते थे। ऐसे ही एक जमींदारके हाथीकी कहानी हम सुनाने जा रहे हैं।

हाथी यों भी एक समझदार जानवर माना जाता है। पर यह हाथी संभवतः विशेष रूपसे समझदार था। वह अपने फीलवानको प्यार करता था और उसकी आज्ञाका पालन करता था। फीलवानका एक छोटा बच्चा था जो दिनभर हाथीके साथ खेला करता था। कभी हाथीके मुंहमें वह हाथ डाल देता, उसकी सूंडपर बैठ जाता, कभी दांत खींचता तो कभी पूंछ, पर हाथी कभी नाराज न होता, बल्कि वह भी बच्चेको नाना प्रकारसे खेलानेकी चेष्टा करता। बच्चेके कहनेपर कभी बैठ जाता, कभी उठ जाता, कभी सो जाता, कभी बच्चेको सूंडपर उठा लेता, कभी अपनी पीठपर बिठा लेता, इस तरह उसके साथ खेलता रहता। इस तरह जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता गया वैसे-वैसे हाथीके साथ उसकी घनिष्ठता भी बढ़ती गयी। हाथी प्यारवश उसका भी अनुरक्त बनता गया।

* * *

एक बार जमींदारको कहीं जानेकी आवश्यकता पड़ी और रास्ता ऊबड़-खाबड़ था तथा रास्तेमें नदी-नाला भी पार करना था। बस, हाथी तैयार करनेका हुक्म हुआ। हाथी ठीक समयपर मालिकको पीठपर लेकर रवाना हो गया। कुछ दूर जानेके बाद नाला आया जहां पानी तो था ही, कीचड़ उससे भी अधिक थी। कहते हैं, हाथी अपने रास्तेके विषयमें बड़ा सावधान होता है। वह कीचड़में तौल-तौलकर पांव रखने लगा जिससे कि कोई दुर्घटना न हो जाय। पर हाथीवानको उसकी धीमी चालसे यह भय हुआ कि कहीं उसके मालिक यह न समझ बैठें कि उसे हाथी हांकनेकी कला ही नहीं मालूम। मालिक उस ओर ध्यान दें उससे पहले ही उसने हाथीके मस्तकमें शूल घुसेड़कर हाथीको जल्दी-जल्दी चलनेकी आज्ञा दी। हाथी अचानक चोट खाकर तिलमिला उठा — उसे शायद हाथीवानकी बेवकूफी और अनुचित प्रहारपर बड़ा क्रोध आया। पर वह असंयत नहीं हुआ, उसने देखा कि यह अवसर अनुकूल नहीं है। उसने मारकी पीड़ाको उस समय चुपचाप पी

लिया और यथासंभव तेज चालसे आगे बढ़ने लगा। पर उसने मन-ही-मन इस अन्यायका बदला लेनेका शायद बड़ा ही दृढ़ संकल्प कर लिया।

फीलवान बेचारा हाथीके मनकी पीड़ाको क्या जाने? वह तो था मनुष्य, अपने हुनरके गर्वमें मत्त और हाथी था उसके लिये एक जानवर —— बेबस प्राणी —— मारका ही अधिकारी। उसके लिये तो यह स्वाभाविक ही था कि वह उस सारी बातको भूल जाय और निश्चित रहे। पर मारनेवाला मारनेकी बात तो भूल सकता है लेकिन मार खानेवाला उसे कभी नहीं भूलता।

हाथी अपनी घातमें लगा रहा। अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करता रहा। इसी बीच शादियोंका मौसम आ गया। हाथी और हाथीवानका बाजार गरम हो उठा। रोज ही कहीं-न-कहीं जानेका न्योता रहने लगा और कभी-कभी एक ही दिनमें दो-तीन बारातोंमें भाग लेनेका निमंत्रण आने लगा; इस भाग-दौड़में प्रायः ही हाथीवानको अकेले हाथी ले जाना पड़ता और कभी-कभी मीलोंका रास्ता तै करना पड़ता था।

इसी दौरानमें एक दिन हाथीवान हाथीको एक बारातसे दूसरी बारातमें ले जा रहा था। रास्ता लंबा था —— इसलिये हाथीवान हाथीके गलेमें पैर टिकाकर निश्चित बैठा था और हाथी पैरके इशारेसे ही अपनी पूरी चालसे चला जा रहा था। रास्तेमें एक बड़ा-सा मैदान आया जहां मीलों कोई गांव-गिरान नहीं था। रास्ता पगडंडी थी जो खेतोंके बीचसे होकर जा रही थी। बीच-बीचमें आम वगैरहके पेड़ लगे थे जिनके पास जानेपर धूपसे कुछ राहत मिल जाती थी।

हाथीने सारा वातावरण देखा —— चारों ओर सुनसान, रास्तेपर कोई राहगीर नहीं। बस, हाथीने उपयुक्त समय समझकर एक झटकेके साथ हाथीवानका पांव सूंडसे पकड़कर जमीनपर दे मारा। सारा काम इतने सहज और तीव्र रूपमें हुआ कि फीलवानको यह समझनेका भी मौका नहीं मिला कि क्या हो रहा है। हाथीका पटकना, और सो भी क्रोधके कारण, भला आदमी कैसे सह सकता है? बिचारा फीलवान वहीं ढेर हो गया। पर मजेकी बात देखिये, हाथी जरा भी उत्तेजित नहीं हुआ, पागल नहीं हुआ जैसा कि ऐसे अवसरोंपर बहुधा हाथी हो जाया करते हैं, वह चुपचाप वहीं फीलवानकी लाशके पास खड़ा रहा। बहुत देर बाद उधरसे कुछ राहगीर निकले और वे वह दृश्य देखकर कांप उठे। हाथी कहीं पागल न हो गया हो इस डरसे वे रास्ता छोड़कर दूरसे ही निकल गये। उनमेंसे किसी आदमीने उस हाथीको पहचान लिया और जमींदारसे परिचय होनेके कारण वहां जाकर सारी खबर पहुंचा दी।

जमींदार समाचार पाकर बहुत शंकित हुए पर हाथीको तो ले आना ही था। उन्होंने दो-तीन आदमियोंके साथ फीलवानके बच्चेको भेजा। बच्चेके साथ हाथीके खेलनेकी बात सभी जानते थे। बच्चा वहां आया और उसने हाथीसे बैठ जानेको कहा। हाथी तुरत एक स्वस्थ अनुगत जानवरकी तरह चुपचाप बैठ गया। बच्चा उसकी गर्दनपर सवार हो गया —— साथके लोग भी फीलवानकी लाशके साथ हाथीकी पीठपर बैठ गये। हाथी चुपचाप अपने मालिकके घर आ गया और अपने बालक हाथीवानकी आज्ञाके अनुसार पहलेकी तरह ही अपना काम करने लगा।

न सुनो गर बुरा कहे कोई न कहो गर बुरा करे कोई।
रोक लो गर गलत चले कोई बख्श दो गर खता करे कोई॥

—गालिब

आलो

—श्री अनुबेन पुराणी

किसी जंगलमें एक स्त्री घबरायी हुई दौड़ी जा रही थी। दौड़ते-दौड़ते वह गिर पड़ी और गिरते ही बेहोश हो गयी। दूसरे दिन भगवान् भास्करने उदित होते हुए देखा कि उस स्त्रीके शवसे चिपटा हुआ एक नन्हा-सा बालक रो रहा है। ठीक इसी समय हरिणोंका एक झुण्ड उधरसे गुजरा, एक हरिणीका बच्चा खो गया था और वह व्याकुल आंखोंसे इधर-उधर खोज रही थी। नन्हें बालककी आवाज सुनकर वह उसकी ओर मुड़ी और पास जाकर उसे चाटने लगी।

इस घटनाको बहुत वर्ष बीत गये। कुछ शिकारी इसी जंगलमें आये। उनकी आंखोंने जो देखा उसपर विश्वास न होता था। उन्होंने आंखें मलीं और फिर देखा, यह कैसे हो सकता है? क्या यह संभव है कि हरिणीके साथ मानव-आकृति भी दौड़ रही हो, मानव-जाति भला हरिणोंकी बराबरी कैसे कर सकती है। पर बात ठीक थी, हरिणीका पाला हुआ शिशु अब बड़ा होकर उसी झुण्डमें रहने लगा था। वह जंगलके सारे नियमोंसे परिचित था और हरिणोंकी मूक भाषा ही उसकी मातृभाषा थी।

संकटकी सूचना पाकर वह भी झुण्डके साथ दौड़ रहा था। झुण्ड इधर-उधर बिखर गया और वह एक तालाबके पास विश्राम करनेके लिये बैठ गया। तालाबका पानी निस्तब्ध और आईनेकी तरह साफ़ था। उसने पानीमें अपना प्रतिबिंब देखा और पहली बार उसे लगा कि पानीमें उसे कोई हरिणोंसे भिन्नाकृतिवाला रूप दिखायी दे रहा था। वह उसकी ओर देखता ही रह गया। पानीवाली आकृति भी उसकी ओर एकटक देखती जा रही थी। उसने मुंह बनाये तो उधरसे भी यही दिखायी दिया। बड़ी देरतक ध्यानसे देखते रहनेपर उसे भान हुआ कि यह तो स्वयं उसका अपना प्रतिबिम्ब है। अब उसे लगा कि उसमें और हरिणोंमें बहुत बड़ा अंतर है।

अब वह तालाबके पास बहुत समय बिताने लगा। एक दिन वह लहलहाती घासपर पड़ा अपने बारेमें सोच रहा था। उसे कहींसे एक अपरिचित पर आकर्षक सुगन्ध आयी, वह उठ खड़ा हुआ। उसके सामने एक बहुत सुन्दर आकृति खड़ी थी। शावक (हरिणोंके झुण्डमें रहनेवाले बालकको हम और क्या कहें?) सोचने लगा है, इसकी आकृति तो मुझसे मिलती-जुलती है पर है मुझसे बहुत सुन्दर। वनदेवी उसकी ओर बहुत गंभीर पर स्निग्ध दृष्टिसे देख रही थी। वह मुस्करायी। बच्चेका हृदय द्रवित हो गया। देवीने पास आनेको इशारा किया। उसके पांव कांप उठे। वह चलता और फिर ठिठक जाता, जरा-सी दूरी तय करनेमें उसे बड़ी देर लग गयी।

पास पहुंचते ही उसकी आंखें मानों चौंधिया गयीं। वह देवीकी ओर देख न सका और निगाहें नीची करके खड़ा हो गया। देवीने स्मितके साथ अपना हाथ उसके सिरपर रखा और उसे मानव-वाचा प्रदान की। हठात् शावकके मुखसे निकला, 'मां'। देवीने हाथ फैलाये और शावकको अपनी छातीसे लगा लिया और पुकारा "आलो"—यह था उसका नामकरण-संस्कार। देवीने उसे बताया कि वह मानव-संतान है। उसे बताया गया कि मनुष्य दो प्रकारके होते हैं, उनमें कुछ लड़के कहलाते हैं और कुछ लड़कियां। उसने यह भी जाना कि वह अपने-आप लड़की थी।

देवी समय-समयपर आलोसे मिलने आती थी। एक दिन उसकी मुखमुद्रा असाधारण रूपसे गंभीर

थी, उसके हाथमें दो फूल थे। एक सफेद रंगका था जिसकी केसर सुनहरी थी और दूसरा लाल था, बिलकुल दहकती हुई ज्वालाकी भांति। पहलेमेंसे मोहक और मंद सुगन्ध आ रही थी और दूसरेमेंसे तीव्र और अत्याकर्षक। देवीने कहा, "बेटा, इन दोनोंमें एक फूल चुन ले, पर बहुत सोच-समझकर चुनाव करना क्योंकि इसी चुनावपर तेरा भावी जीवन निर्भर है।" आलोने दोनों फूलोंको देखा, लाल फूल मानो जबर्दस्ती उसकी दृष्टिको खींच रहा था और सफेदकी तरफ तो देखनेमें भी प्रयत्न करता पड़ता था। उसने लाल फूल चुन लिया।

देवीके मुखपर विषादकी रेखा दौड़ गयी। उसने कहा, "आलो, अब सारा जंगल तुझसे कतराता रहेगा। इस फूलको देखकर तेरे पास कोई फटकेगा भी नहीं। अब भी तू चाहे तो अपना चुनाव बदल सकती है।" आलोने सिर हिला दिया और लाल फूल लेकर भाग निकली। उसका अपना झुंड, वह झुंड जिसके साथ उसका सारा जीवन बीता था इसे देखते ही कुलाचें मारता हुआ तितर-बितर हो गया। रास्तेमें एक मोर नाच रहा था, फूलको देखते ही अपना नाच भूलकर खड़ा हो गया। आलोने सोचा, वह इसके साथ बोलनेके लिये रुका है। मोरने फूलकी ओर देखा और जोरसे चिल्लाया, "आलो, इस फूलको फेंक दो।" आलोने सिर हिला दिया। मोर वहांसे भाग खड़ा हुआ। अब 'आलो' वनमें एकाकी थी। वह जहां कहीं जाती सब उससे कतराते। न कोई उससे बोलनेवाला था और न ही कोई उसकी ओर देखनेवाला। पर आलोको रत्तीभर भी परवाह न थी। वह मदमाती-सी इधर-उधर घूमती रहती। उसे अपने फूलके आगे किसीकी परवाह न थी। वह शायद ही कभी इतनी खुश रही हो।

आज बड़े दिनोंके बाद आलो अपने परिचित तालाबके पास गयी। वहां चारों ओर लंबी-लंबी घासमें घूम-घूम फूलोंके साथ आंख-मिचौनी कर रही थी। नये-नये फूलों और नवीन परिवर्तनोंके चिह्न देखकर आलोको बीते दिन याद हो आये। उसकी दृष्टि एक खास दिशामें जाकर ठिठक गयी। वहां एक आकृति थी। देखनेमें स्वयं उसके जैसी फिर भी उससे भिन्न। दबे पैरों आलो उसके पास पहुंची। वह व्यक्ति अपना सिर घुटनोंमें छिपाये बैठा था। आलोके पास आते ही उसने सिर उठाया। आह, कितना दर्द था उसकी आंखोंमें। आलोकी आंखें फटीकी फटी रह गयीं। उसके मुंहसे निकला, "तुम कौन हो?" पुरुष चौंक पड़ा, उसने कहा, "पहले तुम ही बताओ कि तुम कौन हो।"

आलोको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कोई ऐसा भी हो सकता है जो उसे न पहचाने। वह बोली — "अरे, तुम नहीं जानते, मैं हूं आलो। तुम भी मनुष्य हो क्या? फिर तुम मुझसे इतने भिन्न क्यों हो?" वह आदमी हंस पड़ा। उसने कहा, "तुम यह भी नहीं जानतीं, मैं पुरुष हूं और तुम स्त्री।" आलोने पूछा, "हैं, सचमुच तुम पुरुष हो? पुरुष ऐसे होते हैं? क्या सभी पुरुष तुम्हारे जैसे दुःखी और उदास होते हैं? भला तुम लोगोंकी रोनी शक्लें क्यों होती हैं?" प्रश्नोंकी बौछारसे उस युवकको लगा कि शायद यह लड़की सदासे जंगलमें ही रहती आयी है और इसे मनुष्य-समाजके बारेमें कुछ भी पता नहीं है। शायद आजसे पहले इसने किसी युवकको नहीं देखा हो। वह बोला — "नहीं, पुरुष मेरी तरह उदास नहीं होते। मैं बहुत जमानेसे एक फूलकी खोजमें हूं। मुझे निराशा हो रही है और कुछ भी सूझ नहीं रहा।" आलोने कहा, "इसमें निराश होनेकी कौनसी बात है? मैं इस जंगलके पत्ते-पत्तेसे परिचित हूं। चलो, हम दोनों उसे ढूंढ़ निकालेंगे।"

वह बोला — "तुम्हारा ख्याल है कि वह एक मामूली-सा फूल है। परंतु जबतक वह फूल हाथ न आये तबतक मेरा जीवन निःसार है। उस फूलके मिलनेपर ही पता लगेगा कि मेरा जीवनकार्य क्या है।" आलोने बात काटते हुए पूछा, "लेकिन तुम्हारा वह फूल है कैसा? उसका रंग कैसा है और उसकी आकृति कैसी है?"

पुरुषने आंखें बंद कर लीं और बड़े आवेशमें आकर बोलने लगा, "वह फूल श्वेत वर्णका है, तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं इतना श्वेत। उसके अंदरके हिस्सेमें सुनहरी केसर है। उसकी सुगंध अत्यंत मादक है। वह कोई साधारण जंगली फूल नहीं है, वह है साक्षात् वनदेवीका उपहार।" और यह कहकर उसने आंखोंको मूंद लिया।

इधर आलोके चेहरेका रंग बदल रहा था। उसकी आंखें भर आयीं और उसके हृदयमें असह्य पीड़ा हो उठी। रुंधे हुए स्वरमें उसने युवकसे कहा, "तुम कल इसी तालाबपर आना, वह फूल तुम्हें यहींपर मिलेगा।" यह कहकर आलो भाग खड़ी हुई। आज भी जंगलके प्राणी उससे कतरा रहे थे पर साथ ही उसकी यह दशा देखकर उन्हें बुरा लग रहा था। वह सारे जंगलमें मारी-मारी फिरती-सी रही और कहींपर थककर गिर पड़ी। उसकी आंख खुली तो उसे अपना लाल फूल याद आया। देखा तो फूल मुरझा गया था और उसके अपने आंसू उसपर ओसकी भांति चमक रहे थे।

वह अत्यंत उदास थी। सहसा उसे याद आया कि देवीने उससे कहा था कि यदि उसके सिरपर विपदा आ पड़े तो वह उन्हें बुला सकती है। तब आलोने पूछा था, "विपदा किसे कहते हैं ?" देवीने बताया था कि जब सिरपर आकर पड़ेगी तो पता लग जायगा। आलोने सोचा कि अब वह जिस अवस्थामें है शायद इसीका नाम विपदा होगा। उसने देवीका आह्वान किया। देवी तत्क्षण सामने आ खड़ी हुई और बोली, "हां, यह विपदा है, कहो बेटी, क्या बात है ?" आलो बिलख-बिलखकर रोने लगी और बोली, "मां, मुझे वह सफेद फूल चाहिये।" देवीने गंभीर होकर कहा, "नहीं बेटी, वह तुझे नहीं मिल सकता ! तू क्यों उसके लिये परेशान होती है ?" आलोने उस युवकके साथ मिलन और उसके बादकी घटनाएं सुनायीं और फिर बोली, "मैं वह फूल देकर उसे खुश करना चाहती हूं। क्या वह मुझे किसी दामपर भी नहीं मिल सकता ?"

देवीने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा, "उपाय तो एक है, पर क्या तू उसे कर सकेगी ?" आलोका मुरझाया-सा चेहरा खिल उठा। उसने कहा, "हां, अवश्य।" देवीके चेहरेपर उदासी छा गयी। उसने कहा, "तू वह फूल उसे भेंट करना चाहती है पर बड़ा भयंकर है उसका मूल्य। उसने आलोके कानमें कुछ कहा जिससे आलो फीकी पड़ गयी पर फिर भी बोली — "कोई हर्ज नहीं, यही सही।"

उसी रातको आलो तालाबके पानीमें जा खड़ी हुई ; आसपासके फूल, पत्ते और पेड़ उसके सौंदर्यको मुग्ध होकर निहार रहे थे। थोड़ी देरमें देवी आयी और उसने आलोसे आंखें बंद कर लेनेको कहा और अदृश्य हो गयी।

आकाशमें चंद्रमा उदित हुआ। वह भौचक्का-सा देखता रह गया कि धरतीपर ठीक उसीके जैसा यह कौन-सा प्राणी उत्पन्न हो गया है और वह पानीमें क्यों खड़ा है। सारा जंगल किसी भावी अज्ञात घटनाकी संभावनासे सिहर उठा। आलो शांत, नीरव और निस्तब्ध खड़ी थी। और तालाबमें उसका प्रतिबिंब उसके साथ उसी तरह चुपचाप खड़ा था।

सवेरा हुआ। पेड़-पौधे घबरा उठे। उनकी उस सुन्दरीके स्थानपर यह डायन कहांसे आ गयी ? आलोके स्थानपर एक अत्यंत कुरूप लड़की खड़ी थी। पौ फटते ही वह तालाबसे भागकर जंगलमें जा छिपी। दूसरी ओरसे वह उदास युवक निकलता दिखायी दिया। उसकी दृष्टि तालाबपर गयी और वह एकदम पानीमें कूद पड़ा। आलोके चेहरेकी छाया जहां पड़ रही थी उस स्थानपर एक अत्यंत मनोहर श्वेत फूल मंद-मंद मुस्करा रहा था। उसके अंदरका भाग सोनेकी तरह चमक रहा था। फूल अपनी मादक सुगंध दोनों हाथोंसे लुटा रहा था। यह आलोके सौंदर्यके बलिदानका फल था। युवक उसपर झपटा और उसे तोड़कर अपना लिया।

पेड़ोंकी ओटमें छिपी हुई आलो मन मसोसकर रह गयी। जीमें आया एक बार निकलकर दो

शब्द बोल ले, फिर ख्याल आया, नहीं, इससे तो किया कराया मिट्टीमें मिल जायगा। देवीने कहा था कि वह उसके सामने न जाये और न उससे बात ही करे नहीं तो फूल उसी क्षण अदृश्य हो जायगा और उसका खोया हुआ सौंदर्य भी वापस न आयगा। फूल हाथमें लिये प्रसन्न और पुलकित युवकको दो सजल नेत्र पेड़ोंकी ओटमेंसे टकटकी लगाये देखनेका प्रयत्न करते रह गये।

युवक अभी कुछ कदम ही गया होगा कि उसके सामने देवी आ प्रकट हुई। युवक स्तब्ध हो गया। कुछ क्षणोंके उपरांत उसने धीमी आवाजनें कहा —"देवि, आप सचमुच प्रकट हुई हैं या यह मेरी कल्पनामात्र है।" देवीने उत्तर दिया —"तेरे पुरुषार्थने मुझे प्रकट होनेको बाधित किया है। मैं तेरी तपस्या और निष्ठासे प्रसन्न हूं। अब जिसने तेरे लिये बलिदान किया है, जिसके न्योछावर-स्वरूप तुझे यह सब मिला है जरा उसे भी देख ले।" उसने सिर घुमाकर देखा तो एक डायनकी-सी कुरूप लड़की उसकी ओर आतुर और मुग्धभावसे देख रही थी। युवक आश्चर्यसे चिल्ला पड़ा, "देवि, यह कौन है? ......हैं, आलो है यह तो....." उसने दौड़कर आलोके दोनों हाथ पकड़ लिये और बोला, "आलो, यह क्या किया तुमने?" आलो सिर झुकाये खड़ी थी। युवक आर्त भावसे देवीके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला, "दयालु जननी, तुमने यह कैसे होने दिया?" देवीने अपना हाथ युवकके सिरपर रख दिया और फूल तथा आलोकी सारी घटना चलचित्रकी न्याईं उसकी आखोंके आगे घूम गयी। युवक कह उठा, "नहीं चाहिये, मां, मुझे यह फूल। मैं जीवन-भर फूलकी तलाशमें लगा रहूंगा पर आलोके सौंदर्यकी बलिके द्वारा फूल प्राप्त न करूंगा। मां, आलोका सौंदर्य उसे वापिस दे दो। उसका हृदय आजसे भी अधिक शुभ, उदार और पवित्र हो....।"

पर बीचमें ही आलो बोल पड़ी, "नहीं मां, इसे वन-वन भटकाकर पाया हुआ अपना सौंदर्य मुझे स्वीकार न होगा।"

देवीने हंसते हुए दोनोंके सिरपर हाथ रखा और कहा, "मैं तुम दोनोंसे प्रसन्न हूं। आलोको अपना सौंदर्य वापिस मिलेगा और उसका मूल्य चुकानेके लिये उसे अपने जीवनके ध्येयरूप पुष्पको भी न खोना पड़ेगा।" यह कहते-कहते देवी अंतर्धान हो गयी।

चुटकुलोंकी बारी

कई सप्ताहोंसे कहानियां चल रही थीं, आज चुटकुलोंकी बारी आ गयी। हर एक अपने-अपने सिर खुजाकर नया, पुराना, पढ़ा, सुना चुटकुला याद कर रहा था। प्रेमाने कानूनी चुटकुले इकट्ठे किये थे और वह उन्हें सुनानेके लिये उत्सुक हो रही थी। लक्ष्मीप्रसादजीके आते ही बोल पड़ी—लीजिये, आज मैं ही शुरू करती हूं। घटना बिलकुल सच्ची है। एक बार पंडित मोतीलाल नेहरू अदालतमें बहस कर रहे थे। उनके विरोधी वकीलने जरा चिढ़कर कहा, "मिस्टर नेहरू, क्या आप मुझे बिलकुल ही मूर्ख समझते हैं?" 'नहीं तो' पंडितजीने चटसे उत्तर दिया। फिर जरा रुककर बोले, 'पर हो सकता है मेरी भूल हो।' बेचारा वकील झेंप गया।

अब मीनाकी बारी थी। उसने अपनी विद्वत्ता दिखाते हुए कहा, "मैं तो अमीर खुसरोका चुटकुला सुनाऊंगी। खुसरो हिंदी, फारसी, तुर्की आदिके विद्वान् थे और इन भाषाओंमें कविता भी

लिखते थे। एक दिन यह कहीं जा रहे थे। रास्तेमें प्यास लगी। एक कुंएंपर कुछ पनिहारिनें पानी भर रही थीं। इन्होंने उनसे पानी मांगा। पनिहारिनोंने पूछा, 'तुम कौन हो?' इन्होंने कहा, 'कवि'; बस पनिहारिनें इनके सिर हो गयीं कि हमारे लिये एक कविता बना दो तब पानी मिलेगा। बड़ी मुश्किलमें फंसे। खैर करते क्या? उनसे कहा, "अच्छा, बोलो, किस विषयकी कविता सुनोगी?" एकने कहा, "ढोल", दूसरी बोली, "चरखा", तीसरीने कहा, "कुत्ता" और चौथीने कहा, "खीर"। अमीर खुसरो बोले :—

खीर पकायी जतनसे, चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा॥

लाओ पानी।

वीणाने मीनाकी बातके पूरा होनेसे पहले ही बोलना शुरू कर दिया — हां, है तो मजेदार, पर मैं इससे भी मजेदार सुनाती हूं। एक राजा थे। उन्हें आता-जाता तो कुछ था नहीं पर दिखाते थे मानों बड़े विद्या-प्रेमी हों। उनके दरबारमें उन्हींके जैसे कवि भी जमा रहते थे। एक बार उन्होंने समस्या-पूर्त्तिका खेल रचा। राजासे कहा, हममेंसे तीन कवि बारी-बारीसे एक-एक पंक्ति बोलेंगे और बाहरके कवियोंको चुनौती देंगे कि चौथा चरण झटपट बना दें। अगर सफल हों तो इनाम मिले और हारें तो अपना सब कुछ यहीं छोड़ जायं। राजाने स्वीकार कर लिया। गांवमें एक कवि आया हुआ था। लोग उसको पकड़कर दरबारमें ले आये। उसे सारी बातें बता दी गयीं। उसके बैठते-न-बैठते एक कवि बोल पड़ा, लो भई, पहली पंक्ति 'बोल भला भई बोल भला'। दूसरा बोला, "मेरे कुंएंका डोल भला।" तीसरेने कहा, "बहुत दूरका ढोल भला", बोलो अब तुम चौथी पंक्ति। बेचारा कवि घबरा गया। लेकिन था हाजिरजवाब। उठते-उठते उसने कहा, लो, "तुम सबपर लाहौल बला" और यह कहकर यह जा वह जा। लेकिन राजा साहब थे अकलके पूरे! बस उससे बहुत खुश हो गये और उसे इनाम देना चाहा, लेकिन वह गांव छोड़कर जा चुका था।

उदयनने कहा, अरे यह क्या, इससे भी बढ़कर उसी राजाकी एक और कहानी सुना दूं। उदयनके चुटकुले जरा ज्यादा चटपटे होते हैं। इसलिये सब उसकी ओर आर्काषित हो गये। उसने कहा उसी गांवकी बात है। एक बार किसीके घर दामाद आया। वह थोड़ी-बहुत संस्कृत भी जानता था इसलिये लोग उसे पंडितजी कहते थे। राजाको पता लगा तो उसे बुला भेजा। वह बड़े ही आदरके साथ दरबारमें हाजिर हुआ। राजाने कहा, सुना है तुम पंडित हो। चलो, हमारे कवि एक समस्या देंगे, तुम उसकी पूर्त्ति कर दो। पसंद आ गयी तो तुम्हें मालामाल कर देंगे नहीं तो दो जूते मारकर निकाल देंगे। राजकविने बड़े नाज-नखरे करते हुए कहा, "खा खा खैया"। बेचारा पण्डित परेशान कि यह कौन-सी भाषा है और इसका अर्थ क्या है। राजाके दरबारियोंने झट ताली बजा दी, लो, हार गया, लो हार गया, लज्जित होकर सिर झुकाये हुए पण्डितजीको अपना-सा मुंह लेकर वापिस जाना पड़ा। घर पहुंचे तो उनके छोटे भाईने पूछा, "क्यों दादा! इतनी जल्दी कैसे लौट आये, चेहरा उतरा हुआ क्यों है?" पंडितजीने आदिसे अंततक अपनी राम कहानी सुना दी। छोटे भाईने कहा, "अरे दद्दा! तुम हो पूरे भोलानाथ। जस पस तस बंधना (जैसा पशु हो वैसी ही रस्सी होनी चाहिये)। चलो मैं जाकर उन लोगोंको ठीक करता हूं। बड़े भाईने बहुत मना किया पर छोटेने एक न सुनी और सीधा उस राजाके दरबारमें जा पहुंचा।

राजाने नये आदमीको देखा। दीवानने परिचय दिया, "महाराज, यह उस हारे हुए पंडितका छोटा भाई है। अभी दौड़ता हुआ आया और द्वारपालसे बोला, मुझे महाराजके पास जाने दो; बहुत जोर से कविता आ रही है। रोको मत। कविताका नाम सुनते ही द्वारपालने रास्ता छोड़ दिया। अब जो हुकुम हो।" राजाने उससे पूछा, "क्या चाहते हो"? उसने कहा, "महाराज, मैं

समस्यापूर्त्ति करने आया हूं पर मेरी एक शर्त्त है। चाहे मैं हारूं या राजकवि हारे, हारनेवालेकी नाक काटी जाय।" राजकवि घबरा उठा पर राजाके लिये तो प्रतिष्ठाका सवाल था। उसने शर्त्त मान ली। राजकविने सहमे हुए स्वरमें कहा, "खा, खा, खैया"। नवागन्तुक अनपढ़ उजड्ड था। उसने झट कहा, "महाराज, इसं तरहं गलतं संस्कृतं न बोलतव्यं। खा खा खैया अंते बोलतव्यं। पहले तो जा जा जैया, फिर बा, बा, बैया, फिर ना, ना, नैया, का, का, कैया, दा, दा, दैया, पा, पा, पैया, सा, सा, सैया और सबके अंतमें खा, खा खैया।" सारी सभा दंग रह गयी। कोई यह न दिखाना चाहता था कि इसका मतलब उसकी समझमें नहीं आया। अंतमें बेचारे राजकविने अपनी नाक बचानेके लिये कहा, "ऐसे नहीं, इसका अर्थ भी तो बताइये।" नये कविने कहा, "अरे, इतना भी नहीं समझे और चले थे मेरे बड़े भाईकी बराबरी करने? मेरा भाई तो तुम्हारी मूढ़ता देख-कर ही लौट गया, नहीं तो तुम्हें हराना तो उसके बांयें हाथका खेल होता। लो सुनो। तुमने खा, खा, खैया कहा यानी खानेकी बात की। मैंने बताया कि पहले इसकी बात न करो पहले जा, जा, जैया यानी जोतना होगा इसी तरह फिर बोना होगा, फिर निराई करनी होगी फिर काटना होगा, उसपर दांय चलानी होगी फिर पीसना होगा, सेंकना होगा फिर अंतमें खा, खा. खैया कर सकोगे।

"लाइये महाराज, इनकी नाक काटकर मुझे दे दीजिये फिर मैं चलूं" उसने राजासे कहा। सारी सभा मंत्रमुग्ध होकर नये कविकी बात सुन रही थी। नाक काटनेकी बात सुनते ही सब मानों अचानक आकाशसे जमीनपर आ गये। राजकवि बहुत गिड़गिड़ाया। राजाने भी सिफारिश की, सोनेकी नाक देनेका वचन दिया और साथमें बहुत कुछ सोना-चांदी दिया, तब कहीं जाकर नवागंतुक-ने माफ किया और बोला, "आगेसे किसी भले आदमीको तंग न करना"।

इस कहानीके बीचमें ही ऋतायनम छटपटा रहा था, सब समझ गये कि इसे भी कोई कहानी याद आ रही है। पर जब कहानी समाप्त हुई तो वह बहुत ही शांत होकर बैठ गया। जरा महंगा बन रहा था। आखिर थोड़ी मान-मनौअलके बाद उसने कहना शुरू किया। अच्छा चलो, मैं भी इसी राजाकी बात सुनाता हूं। उसे जहां कविताका शौक था वहां संगीतका भी व्यसन था। उसके यहां तरह-तरहके गाने-बजानेवालोंकी भीड़ लगी रहती थी पर राजा अपने-आप सा और रे में फर्क-तक न कर पाता था, इसीलिये सभी संगीतकार जरा 'ज्यादा अच्छे' थे। एक दिन किसी दूसरे देशसे मेरे जैसा एक संगीतकार आ गया। उसने राजाकी संगीत-सभा देखी तो बस प्रसन्न हो गया। उसने सोचा, जब इतने लोग यहां संगीतके बहाने पल रहे हैं तो मैं भी क्यों न अपने लिये स्थान बना लूं। बाजार जाकर उसने एक बड़ा सुन्दर मूसल खरीदा। उसपर एक टाट चढ़ाया, उसपर एक कपड़ा चढ़ाया, उसपर एक बड़ा सुन्दर-सा रेशमी गिलाफ चढ़ाया और उसे लेकर राजदरबारमें जा पहुंचा। जुहार करके उसने महाराजसे विनती की कि मैं भी आपके वादकोंके साथ बजाना चाहता हूं। महा-राज खुश हो गये और चटसे स्वीकृति दे दी। यह अपने वाद्य-यंत्रको लेकर बैठ गया और बड़ी तेजीसे उसपर उंगलियां चलाने लगा। उधर बाजेपर उंगलियां चल रही थीं इधर सारा शरीर थिरक रहा था। सभा समाप्त हुई तो राजाने उसे सौ मुहरें दीं और अपने यहां रह जानेका आदेश दिया। बस, फिर क्या था। अंधा क्या चाहे दो आंखें! नये बाजेवालेकी रोजीका हीला लग गया। वह बातें करनेमें चतुर था इसलिये राजाके मुंह लगते देर न लगी। अब पुराने संगीतकारोंको जलन होने लगी। उन्होंने सोचा, यह तो हमसे भी गया-बीता है पर आ बैठा है हमारे सिरपर निर्देशक बनकर। इसे ठीक करना पड़ेगा। उन सबने मिलकर राजासे कहा, "चलिये, एक दिन सब लोग अलग-अलग अपनी कला दिखायें।" उनका विचार था कि इस तरह नवागंतुककी पोल खुल जायगी। पर वह किसीसे कम न था। उसने अपने मूसल वाद्यके ऊपरसे थोड़ा-सा गिलाफ उतारा और संगीतकारोंकी ओर कर दिया जिससे उन्हें मालूम हो जाय कि वह क्या है और फिर राजासे बोला,

"हां महाराज ! इन लोगोंकी बात ठीक है। चलिये, ऐसा ही हो, पर मेरी एक शर्त है। सबसे पहले कौनसा बाजा बजे यह निश्चय करनेके लिये पहले सब बाजोंकी आपसमें लड़ाई करवायी जाय, जो जीत जाय वही बाजा सबसे पहले बजे।" राजाको बात जंच गयी, उसने कह दिया, "बिलकुल ठीक, ऐसा ही करो।" इसने फिरसे अपना मूसल संगीतकारोंकी ओर कर दिया। सबके दिल दहल गये। उन्होंने सोचा, अगर बाजोंमें लड़ाई हुई तो मूसलका सामना कौन करेगा ? सबके सब चुप हो गये और बात गयी-आयी हुई।

अब लक्ष्मीप्रसादजीकी बारी आयी। उन्होंने कहा, मैं भी एक छोटा-सा चुटकुला सुनाऊंगा। तुम लोगोंको अनुभव होगा कि कभी-कभी जब तुम्हें किसीपर गुस्सा आता है तो तुम उसके बारेमें तरह-तरहकी कल्पनाएं करने लगते हो और तुम्हारे मनमें एक व्यर्थका बवंडर खड़ा हो जाता है और सचमुच बात कुछ भी नहीं होती। मेरा चुटकुला भी कुछ ऐसा ही है। लो सुनो। एक आदमी था। वह बैलगाड़ीपर बैठकर कहीं जा रहा था। रातका समय था और रास्ता जंगलमेंसे होकर गुजरता था। जब गाड़ी सुनसान रास्तेपर चली जा रही थी तो उसके पहियेमें कुछ गड़बड़ हो गयी। उसने सोचा, अगर एक हथौड़ी होती तो मैं इसे अभी ठीक कर लेता। घर पहुंचते-पहुंचते कहीं ज्यादा न बिगड़ जाय। पर यहां जंगलमें हथौड़ी कहांसे मिले ? गाड़ीवान सोचता जा रहा था और आगे बढ़ता जा रहा था। बड़ी दूर उसे एक झोंपड़ी दिखायी दी जिसमें दीया जल रहा था। इसने सोचा वहां हथौड़ी जरूर मिल जायगी। फिर सोचा, झोंपड़ीका मालिक सो रहा होगा, उसे जगाना पड़ेगा, अगर वह न उठा तो, न उठा तो क्या हुआ जोरसे चिल्लाऊंगा तब तो उठ बैठेगा। लेकिन अगर उसे गुस्सा आ गया तो वह हथौड़ी न देगा इसलिये उसकी थोड़ी खुशामद करनी होगी और ऐसे व्यवहार करना होगा कि वह नाराज न हो। लेकिन आदमी ही तो है। मान लो चिड़चिड़े मिजाजका हो या अभी थोड़ी देर पहले अपनी स्त्रीसे लड़ चुका हो और गुस्सेमें भरा बैठा हो तो। ऐसे ही बड़ी देरतक सोचता गया कि वह ऐसे कहेगा और मैं ऐसे मुंह-तोड़ उत्तर दूंगा। ऐसा करते-करते वह अपने-आप गुस्सेमें भर गया। इसी समय गाड़ी झोंपड़ीके पास पहुंची। उसने बड़े जोरसे दरवाजा खटखटाया और जबतक वह आदमी बाहर आये-आये तबतक वह चिल्ला उठा, "मुझे नहीं चाहिये तुम्हारी हथौड़ी, धरे रहो उसे अपनी छातीपर। वही नरकमें तुम्हारा साथ देगी। लो, मैं यह चला।"

और यह कहकर लक्ष्मीप्रसादजी सचमुच चल पड़े।

दिन-रात शोर ही शोर

ओह, कितना शोर ! सारे दिन सड़कपर मोटरोंकी भों-भों, मोटर-साइकिलोंकी फटफट और साइकिलोंकी टिनटिन ! कभी आम बेचनेवाला माम पजम, माम, पजम वेरी नाइस माम पजम करता हुआ आता है तो कभी 'बम्बई विस्कोट' वाला अपना राग अलापता है। कभी किसीकी सिनेमाकी इश्तहार गाड़ी शोर मचाती है तो कभी लोगोंके ट्रांजिस्टर कान फाड़ते हैं। और फिर आये दिन नये-नये आंदोलन चलते हैं जिनके लिये भरतीके लोग 'वाजहं जिन्दाबाद' और 'ओजिह' (मुर्दाबाद) के नारे लगाते रहते हैं। कई बार इस शोरसे तंग आकर आदमी जंगलमें भाग जाना चाहता है, लेकिन आजकल जंगल भी कहां हैं ? हिमालयपर गोलियां बरसती हैं, रणमें टैंक दौड़ते हैं और ट्रांजिस्टर सारी दुनियाके शोरको इकट्ठा कर देते हैं। अभी मैं यह सब सोच ही रही थी कि पड़ोसीका छोटा-सा बच्चा आ गया और रही-सही कसर उसने ओ, ओ करके पूरी कर दी। उसे खुश करनेके लिये मुझे भी ओ, ओ करके शोर बढ़ाना पड़ा।

शायद आज मेरे स्नायु कुछ ज्यादा थके हुए हैं तभी यह शोर इतना अखर रहा है, नहीं तो आजकल तो यह हमारे जीवनका एक अनिवार्य अंग बन गया है। मैं अधीर होकर रातकी प्रतीक्षा करने लगी। शायद रात कुछ तो शांति प्रदान करे। पर यहां तो कुछ और ही हुआ। 'रात आयी है नया रंग जमानेके लिये' की जगह 'रात आयी है नया शोर मचानेके लिये' कहा जा सकता था, मेरे घरसे काफी दूर जो सिनेमा है उसका गाना घर बैठे सुनायी देने लगा। बाजारकी तेज चमकनेवाली रोशनी और मेरे पड़ोसीके घर नये सीखनेवालेका हार्मोनियम —— हे भगवान्, बस तू ही कुशल कर!

किसी तरह जबर्दस्ती बिस्तरपर जा लेटी और सोचा कि अब तो इस शोरसे छुटकारा मिल ही जायगा लेकिन ऐसा भाग्य कहां! अभी लेटे हुए पांच मिनट भी न हुए थे, मैं राम-लक्ष्मणके वनवास और सुनसान जंगलके सन्नाटेकी बात सोच रही थी कि हमारे घरमें ही वाद्यवृन्दने गाना बजाना शुरू कर दिया? अब कोई भला आदमी करे भी तो क्या करे? बरामदेमें, जीनेपर, छतपर, पड़ोसीके यहां, सड़कपर चारों ओरसे कोई-न-कोई तान सुनायी दे रही है। हमारे जैसे आलसी लोगोंका कार्यक्रम ही कुछ ऐसा होता है कि हम दुनियाकी नजरोंमें हमेशा एक बोतल चढ़ाये हुए-से मालूम होते हैं। शायद इसीलिये सारे जहानने हमारे यहां ही संगीत करनेका निश्चय कर लिया है।

वह लो, वाद्यवृन्दके निर्देशकके रूपमें घूस महाशय आ गये। हमारे घरके घूस भी कुछ असाधारण हैं। जब वे अपनी मस्ताना चालसे जीनेपरसे उतरते हैं तो यही लगता है कि कोई गजगामिनी धीरे-धीरे सीढ़ियां उतर रही है। उनके पैरोंकी तालबद्ध आवाजसे कोई भी मोहित हो जायगा। न जाने कबसे मैं नियमित रूपसे इस आवाजको सुनती आ रही हूं लेकिन अब भी वह मुझे आश्चर्यचकित कर ही देती है।

घूसके तबलेपर ताताधिन शुरू करते ही बाहर पटरीपर बंधी हुई गाय आलाप लेना शुरू करती है। गाय अपने भरे हुए गलेसे साड करती है और पीछेसे उसके बछड़ेका तीखा रें सुनायी देता है। गायको यह पसंद नहीं आता, वह फिर बड़े उत्साहके साथ जोरसे करती है 'सा' लेकिन बच्चेका गला अभी उसके लिये तैयार नहीं है। इसी तरह इसका रियाज चलता रहता है और मैं उससे तंग आकर किसी और लोककी सैर करने चली जाती हूं।

लेकिन आजकी रात कुछ विशेष है। मैं दूसरे लोककी यात्रापर निकलूं उससे पहले ही हमारे घरके झींगुर महाशयके भानजे-भतीजे उनसे मिलने आ गये। अब क्या था, सबने मिलकर सम्मिलित गान आरंभ कर दिया। ऐसा लगता था मानों सब राग-रागिनियोंकी टांग तोड़कर रहेंगे। एक राग खतम होते-न-होते दूसरा शुरू हो जाता। कभी-कभी शंका होती थी कि दो समान बलवाले झींगुर-दल राग-रागिनी निकालनेमें प्रतियोगिता कर रहे हैं। उन्हें डर है कि जरा सुस्ताएं तो कहीं उनका दल हार न जाय।

इस सारे संगीतके साथ मानो 'तानपुरा' का काम दे रही थी ऊपरवालोंकी मशीन। उसकी निरंतर घर्र-घर्र मानों हर रागके साथ एक तान हो जाती थी। अचानक इन सब आवाजोंको चीरते हुए 'ओ बाप रे मरा मैं तो' की चीख सुनायी दी। मेरी आंखें झपक गयी थीं। आवाज सुनते ही मैं चौंक पड़ी। पलंगपरसे उछलकर दूर जा खड़ी हुई और ऐसे तैयार हो गयी मानों शेरके खुले मुंहमें जा गिरी होऊं! कौन जाने कहीं पड़ोसीके यहां चोर न घुस आया हो, कौन जाने कहीं सांप निकला हो, इतनेमें मेरे पड़ोसीकी आवाज आयी "इसमें डरनेकी बात ही क्या है? आखिर एक छोटा-सा तिलचट्टा ही तो है, कोई शेर या बाघ तो है नहीं!"

मैंने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा 'हाश' और कानोंतक चादर लपेटकर लेट गयी और लेटते ही किसी और लोकमें जा पहुंची। मेरे लिये सब आवाजें चुप हो चुकी थीं।

—अरुणा

पुस्तक-परिचय

मृत्यु और उसपर विजय : ले. श्रीमां-श्रीअरविन्द। प्रकाशक--अदिति कार्यालय, पांडिचेरी-२। पृष्ठ-संख्या १०४, मूल्य तीन रुपया।

इस पुस्तिकामें श्रीमां-श्रीअरविंदके वचन विभिन्न स्थानोंसे लेकर एक साथ संकलित कर दिये गये हैं जिनसे हमें यह पता चलता है कि मृत्यु क्यों होती है, कैसे होती है, मृत्युके बाद मनुष्य कहां जाता और किस अवस्थामें रहता है, दूसरा जन्म कैसे होता है, मृत्यु और मृत्युके भयको कैसे जीता जा सकता है, अमरताका क्या अर्थ है और कैसे उसे प्राप्त किया जा सकता है आदि-आदि। अवश्य ही इतनी छोटी पुस्तिकामें इन सब विषयोंका संक्षिप्त परिचय ही दिया जा सकता था। पूरा परिचय तो मनुष्य-को इन विषयोंके गहन अध्ययन और उससे भी अधिक यौगिक साधनासे प्राप्त अनुभवोंके द्वारा ही मिल सकता है।

मानव-एकताका स्वरूप : लेखक--श्रीअरविन्द। प्रकाशक--अदिति कार्यालय, पांडिचेरी-२। पृष्ठ-संख्या ८०। मूल्य रु. २-५०

आज संसार मनुष्य-एकताका स्वप्न ही नहीं देख रहा है बल्कि इस दिशामें वह इधर कई दशकों-से निरंतर प्रयास भी कर रहा है। फिर भी अभी निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि इस एकत्वके यथार्थ स्वरूपका पता मनुष्यको लग गया है और वह शीघ्र ही संसिद्ध होनेवाला है। अभी तो सारा प्रयास मानो प्रयोगशालाके परीक्षणकी-सी अवस्थामें ही है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका सविस्तर विवेचन श्रीअरविंदने अपनी आर्य पत्रिकामें प्रथम यूरोपीय महायुद्धके समय किया था और अपना एक संभाव्य निष्कर्ष भी बतलाया था। इस पुस्तिकामें उसी लेखमालाके अंतिम पांच अध्यायों-का अनुवाद दिया गया है जिसमें पाठकको मानव-एकताके संभाव्य स्वरूपकी कुछ झांकी प्राप्त हो और उसे पूरी लेखमाला पढ़नेकी प्रेरणा भी प्राप्त हो।

कहावत कोश : संपादक-डा. भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' तथा श्रीविक्रमादित्य मिश्र। प्रकाशक-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना। पृष्ठ-संख्या ८३२, मूल्य रु. १५।

प्रत्येक भाषामें मुहावरों और कहावतोंका एक अपना ही स्थान होता है। साधारण-सी भाषा भी इनके उपयोगसे सजीव हो उठती है। हम लोगोंकी किताबी भाषामें जान डालनेके लिये जरूरी है कि उसमें आंचलिक भाषाओंकी पुट रहे। कहावतें लोक-साहित्यका एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इस पुस्तकमें मुख्य रूपसे बिहारी कहावतें इकट्ठी की गयी हैं। प्रत्येक कहावतके साथ उसका अर्थ, अगर उसके पीछे कोई कहानी हो तो वह कहानी, तथा उससे मिलती-जुलती कहावतें दी गयी हैं। इस पुस्तकके द्वारा हमें हिन्दीकी एक अमूल्य निधिका परिचय मिलता है। हम आशा करते हैं कि ब्रज-भाषा, बुन्देलखण्डी आदिकी कहावतें भी इस तरह संगृहीत की जायंगी। पुस्तककी सज्जाके बारेमें इतना कहना काफी है कि यह परिषद-प्रकाशन है।

काशीकी सारस्वत साधना : ले. डा. गोपीनाथ कविराज। प्रकाशक--बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना। पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य रु. २-५०।

काशी प्राचीन कालसे विद्याका केंद्र रही है। सारे भारतके विद्वानोंने काशीसे बहुत कुछ पाया

और उसे बहुत कुछ दिया। परंतु आज हम उनमेंसे बहुतोंके नाम और कामसे अपरिचित हैं। विद्वद्वर गोपीनाथ कविराजने १३ वींसे १८ वीं शताब्दितककी काशीका संक्षिप्त-सा परिचय दिया है। यह पुस्तक मानों काशीकी गरिमाके बारेमें खोज करनेवालोंके लिये पथप्रदर्शक है।

यात्राका आनंद : ले.––काका कालेलकर। प्रकाशक–बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना। पृष्ठ-**संख्या ३६०, मूल्य रु. ६-५०।**

मराठी, गुजराती और हिंदीमें समान रूपसे गति रखनेवाले काका कालेलकर भारतके जाने-माने लेखक हैं। उनके निबंध और यात्राओंके वर्णन इन तीनों भाषाओंमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। उनके प्रकृतिके शब्द-चित्र अनूठे होते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें हिमालय-प्रवाससे लेकर अफ्रीका, अमरीका, आदिकी सैरका बड़ा ही रोचक वर्णन है। काका साहबकी हिंदीमें कहीं-कहीं गुजराती मराठी प्रयोग बड़े भले लगते हैं।

भारतीय अब्दकोश १९६५ : संपादक––गदाधर प्रसाद अम्बष्ठ। प्रकाशक––राष्ट्रभाषा बिहार **परिषद, पटना। पृष्ठ-संख्या ५०५, मूल्य रु. ६।**

यह अब्दकोश हिंदी जनताके लिये परिचित वस्तु है। इसमें अद्यतन जानकारी देनेका प्रयास किया गया है। ब्रह्माण्डका थोड़ा-सा परिचय देनेके बाद पारसी, यहूदी, जैन, आदि विविध और साधारणतः अपरिचित कैलेंडरोंका परिचय दिया गया है। नोबल पुरस्कार, कलिंग पुरस्कार, विभिन्न देशोंकी शासन-प्रणाली, उन देशोंका सामान्य परिचय, कृषि-उत्पादन, मुख्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन और फिर भारतसंबंधी सामान्य ज्ञान दिया गया है। ६) में यह पुस्तक बहुत सस्ती है।

हमारी लोक कथाएं : संकलनकर्ता––शिवसहाय चतुर्वेदी। प्रकाशक––सस्ता साहित्य मंडल, **नयी दिल्ली, मूल्य रु. २।**

हिंदीकी बारहजनपदीय बोलियोंमें उनकी एक-एक कहानी दी गयी है, साथ ही प्रत्येक कहानीका हिंदी रूपांतर भी दिया गया है। इससे हम जनपदीय बोलियोंकी मिठासका रस ले सकते हैं। कहानियां रोचक हैं।

कश्मीरपर हमला : ले.––श्रीमती कृष्णा मेहता। प्रकाशक––सस्ता साहित्य मंडल, मूल्य रु. २-५०

इस पुस्तककी लेखिका कोई पेशेवर साहित्यिक नहीं हैं पर सच्ची घटनाओंकी तीव्रताने उनकी लेखनीमें जो जान डाल दी है उसका परिचय पढ़नेपर ही मिलता है। वहां बिना किसी अतिशयोक्ति-के मनुष्यके अंदर छिपे हुए राक्षसके नंगे नाच और भगवान्के वरद-हस्तके दर्शन साथ-ही-साथ होते हैं। लेखिकाने कितना सहा है और भगवानपर अटल श्रद्धाके कारण कैसी-कैसी मुसीबतोंमेंसे बच निकली हैं! धार्मिक असहिष्णुता और राजनीतिक पागलपन कहांतक पहुंच सकता है! यह पुस्तक साहस, अटल श्रद्धा और मनुष्यके अंदर छिपे हुए स्वर्ग और नरककी कहानी है।

प्रेमचंद––कलमका सिपाही :––ले. अमृतराय। प्रकाशक––हंस प्रकाशन, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या ६८०। मूल्य रु. २०।

भारतवर्षमें जीवनचरित्र लिखनेकी प्रथा नहीं रही है। हिंदीमें अगर हम अच्छे जीवन-चरित्र ढूंढ़ने निकलें तो कम ही मिलेंगे। इस दृष्टिसे ही देखा जाय तो भी प्रस्तुत पुस्तक हिंदी साहित्यमें अपना विशेष स्थान बनानेवाली है। प्रेमचंद कोई देवता न थे। वे भी हमारे आपके जैसे 'हाड़

मांस अरु चाम' से बने हुए साधारण आदमी थे, पर आदर्शवाद, परिश्रम, अध्यवसाय और खुलूसने उनको संसारके विशेष लोगोंकी श्रेणीमें ला बैठाया।

अमृत राय प्रेमचंदके सुपुत्र हैं परंतु पुस्तक लिखते समय उन्होंने यथासंभव अपने व्यक्तिगत संबंधको अलग ही रखा है। पुस्तक उपन्याससे भी ज्यादा रोचक बन पड़ी है। उसकी भाषा भी प्रेमचंदके अनुरूप हिंदी-उर्दूका गंगा-जमनी रूप है जिसमें कहीं-कहीं ग्रामीण भाषाकी सुगंध भी आ जाती है। इससे पहले शिवरानीकी पुस्तक 'प्रेमचंद घरमें' प्रकाशित हुई थी। इन दोनोंका अपना-अपना स्थान है। फिर भी एकके बिना दूसरी अधूरी रह जाती है। शिवरानीने अपने प्रेमचंदकी बात कही है, अमृतराय अलग खड़े हुए किसी प्रेमचंदकी गाथा सुनाते हैं।

हां, बीस रुपये खर्च करके पाठक आशा करता है कि पुस्तककी जिल्द जरा ज्यादा मजबूत होगी।

* * *

a happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

4-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

दक्षिण भारती

(दक्षिण भारतकी भाषाएं सीखिये)

–३–

अब हम शब्दोंकी अपेक्षा वाक्योंपर अधिक जोर देंगे। पहले उपयोगी वाक्य सीखकर भापके साथ साहब-सलामत कर लीजिये फिर शब्दोंको समझना ज्यादा आसान होगा। वाक्योंमें हमने मक्खी पर मक्खी मारनेकी जगह प्रत्येक भाषामें प्रचलित व्यवहारपर जोर दिया है। जैसे विदा लेते समय दक्षिणकी भाषाओंमें 'जाकर आता हूं' और 'जाकर आओ' कहनेका रिवाज है। मलयालममें उसके अतिरिक्त मंगलम कहनेकी प्रथा है। व्यवस्थाको मलयालममें भी 'व्यवस्था कह सकते हैं पर वाक्यके अनुसार कहीं एरपाडु कहना पड़ता है। कई हिंदीके प्रचलित शब्द दक्षिणमें भी प्रचलित हैं पर उनका अर्थ बदल जाता है; जैसे, हम प्रत्येकका अर्थ करते हैं हर एक और कई दक्षिण भाषाओंमें उसका अर्थ होता है अलग या अलहदा। चलिये, अब आगे चलें। जिन लोगोंने पहले पाठ नहीं पढ़े हैं वे भी यहांसे शुरू कर सकते हैं।

बारहवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
फूल	पू	पूवू	हूवु	पू
पत्ता	इलै	आकु	एले	इला
तरकारी	कर्रि	कूरकायलु	तरकारी	पच्चक्करि
भोजन	साप्पाडु	भोजनमु	ऊट	ऊणु
दाल	परुप्पु	पप्पु	बेळे.	परिप्प
अचार	ऊरकाय	ऊरकाय	उप्पिनकायि	अच्चार
चटनी	चट्नि, तुवैयल	चटनि	चट्नि	चटनि
भात	सोरु, सादम	अन्नमु	अन्न	चोरु
देरसे	नेरम	आलस्यमु	तडवागि, निदानवागि	वैगि
जल्दी	शीग्गिरम	शीघ्रमु	बेग	वेगम, उडने
पहले	मुन्ने, मुदले	मुन्दु	मोदलु, मुन्दे.	आद्यम, मुन्ब
पीछे	पिन्ने	तरूवाता	हिंदे. नन्तर	पिन्नलि, पिन्नीड

हिंदी : कौनसा फूल ?
तमिल : एंद पू ?
तेलगू : ये पूवू ?
कन्नड़ : याव हूवु ?
मलयालम : एदु पू ?

हिंदी : पहले आदमी आया।
तमिल : मुन्ने आळ वन्दान।
तेलगू : मुंदु मनिषि वच्चेनु।
कन्नड़ : मुदलु मनुष्यनु बन्दनु।
मलयालम : आद्यम मनुष्यम वन्नु।

हिंदी : मुझे तरकारी नहीं चाहिये।
तमिल : एनक्कु करीं वेण्डाम।
तेलगू : नाकु कूराकायिलु अक्खर लेदु।
कन्नड़ : तरकारी वेडा।
मलयालम : एनिक्के पच्छ्चकरी वेण्डा।

हिंदी : उसको दाल चाहिये।
तमिल : अवनुक्कु परुप्पु वेण्डुम।
तेलगू : अतनेकि पप्पु कावेलनु।
कन्नड़ : अवनिगे वेळे बेके।
मलयालम : अवनु परिप्पु वेणुम।

हिंदी : चूहा पत्ता खाता है।
तमिल : एलि एलयै कर्डिकिरदु।
तेलगू : एलुका आकु तिटन्नदि।
कन्नड़ : इलि येलेयन्नु तिन्नुतदे।
मलयालम : एलि इला तिन्नुन्नु।

हिंदी : जल्दी आओ।
तमिल : शीग्गिरम वा।
तेलगू : शीघ्रं रा।
कन्नड़ : वेग बन्नीरि।
मलयालम : वेगम वरु।

हिंदी : उसकी चटनी।
तमिल : अवनुडैय तुवयल चटनि।
तेलगू : आमे चटनि।
कन्नड़ : अवन चटणि।
मलयालम : अवंडे चटनी।

जल्दी भोजन लाओ।
शीग्गिरम साप्पाडु कोण्डुवा।
शीघ्रमुगा भोजनमु तीस्कोनि रा।
बेग उटवन्नु तन्निरि।
वेगम ऊण कोण्डुवरु।

गधा पीछे आया।
कळुदै पिन्ने वन्ददु।
गड़िद वेनुका वच्चेनु।
कत्तेयु नन्तर बन्दित्तु।
कळुदा पिन्नीड वन्नु।

आपको दही चाहिये?
उङ्गळुक्कु तयिर वेणुमा?
नीकु पेरुगू कावेलना?
निमिगे मसेरु बेके?
ताङ्गळक तयिर वेणमो?

यह पत्ता है।
इदु इलै।
इदि आकु।
इदु येले।
इद इलैयागुन्नु।

देरसे मत आओ।
नेरम कडित्तु वरादे।
आलस्यदा रा वोद्दु।
तडवागि बर वेड़ी।
वैगि वररुद।

मेरा काम।
एन् वेलै।
ना पनि।
नन्न केलरु।
एंडे जोली।

फूलमें मधु है।
पूविल तेन् इरुक्किरदु।
पुष्पमुलो तेन उन्नदि।
हूविनल्लि मधु इदं।
पूनिल तेन उंड।

हिंदी : अचार लाओ।
तमिल : ऊरुकाय कोण्डुवा।
तेलगू : उरगाय तीस्को रा।
कन्नड़ : हुप्पिनकायि तर।
मलयालम : अच्चार कोण्डुवरु।

तेरहवां पाठ

हिंदी	: आइये	स्वागत	स्वास्थ्य	कैसा	समाचार
तमिल	: वारुङ्गळ, वाङगो	.....	सौख्यम्	एप्पडि	विशेषम
तेलगू	: रेंडि,	स्वागतमु	अरोग्यमु	एट्ला	समाचारमु
कन्नड़	: बन्निरि	स्वागत	स्वास्थ्य, आरोग्य	हेये गिदे	समाचार, सुद्दि
मलयालम	: वैरुविन	स्वागतम	सुखम	तन्नेयो	वर्तमानम, वार्ता

हिंदी	: कहांसे	ठहरे हैं	यहांसे	कहां	जायेंगे
तमिल	: एंगिरुंद	द्यागे एंगे ?	इंगेइरुंदु	एंगे	पोवीर्तक
तेलगू	: एक्कडनुंचि	उन्नारु	इक्कड़ंनुचि	एक्कड़	वेलुचुन्नारु
कन्नड़	: एल्लिन्द	इरुविरि	इल्लिन्द	एल्लि	होगुविरि
मलयालम	: एविडुन्ना	तामसिकुन्नु	इविटुन्न	एविटे	पोकुम

हिंदी	कितने दिन	वापिसी	विदा	मिलूंगा	महाशय
तमिल	: एत्तनै नाळ्	तिरुम्वी वरप्पो	पोइ वरेन्	पार्किरेन	ऐया
तेलगू	: एन्निदिनमलु	तिरिहि	पोईरा	कलुसु कुन्दामु	ऐया, महाशयुडु महाशय
कन्नड़	: एठ्ढु दिन	वापस	होगिबन्नरि	भेंटि आगुवे	महाशय, स्वामि
मलयालम	: एन्न दिवसम	मडक्कम	मंगळम काणाम		मान्यरे, महाशय

हिंदी	: आइये महाशय	स्वागत है	आपका स्वास्थ्य कैसा है
तमिल	: वारुंगळ ऐया	नल् वरवु	सौख्यम्
तेलगू	: महाशय रेंडि, दय चेसिरेंडि (कृपा कीजिये)	स्वागतमु	मी आरोग्यमु एटलु उन्नदि मीरु एटुल उन्नारु
कन्नड़	: बन्निरि महाशयरे (बन्नि स्वामि)	स्वागतविदे	निम्म आरोग्य हेगि दे
मलयालम	: मान्यरे वरिगा, वरुविन	स्वागतम	निङळकु सु खम तन्नेयो

हिंदी	: क्या समाचार है	हम सब अच्छे हैं	आप कहांसे आ रहे हैं
तमिल	: एन्न विशेषम्	नांगळ एल्लारमु सौख्यम	नींगळ एगेरुन्दु वरुहिरीहंळ
तेलगू	: समाचारम एमि ?	मेमु बागुवा उन्नानु	मीरु एक्कड़नुंचि वोच्चिचुन्नारु
कन्नड़	: एनु समाचार, विषय ?	नावेल्लरु आरोग्यविरुत्तेंवे	नीवु एल्लिन्द बरुत्तीरि
मलयालम	: एन्दान वर्तमानम	ञेङळकु एल्लाम सुखम तन्ने	एवुटु नाण नीङळ वरुन्नतु

पुरोधा

हिंदी	: आप कहां ठहरे हैं?	यहांसे कहां जायेंगे?	यहां कितने दिन रहेंगे?
तमिल	: एंगे तंगी इरुक्किरीर्हळ	इंगेरुन्दु एंगे पोहिरीर्हळ	येत्तनै नाळ इंगे तगुहिरीर्हळ?
तेलगू	: मीरु एक्कड़ (उन्नारु)	इक्कड़नुंचि एक्कडके पोयेदरु	इक्कड़ एन्नि रोजुलु उन्टांरु
कन्नड़	: नीवु एल्लि इळिदिरुविरि	इल्लिन्द एल्लि होगुविरि	इल्लि एट्टु दिन इरुविरि
मलयालम	: एविटेयाण नीङळ तामसिकुन्नत	इवुटुन्न नीङळ एङोट पोहुम	नीङळ एत्र दिवसम इविटे तामसिकुन

हिंदी	: मैं मद्राससे आ रहा हूं।	यहांसे त्रिचूर जाऊंगा।	वापसीमें मिलूंगा।
तमिल	: नान पट्टणप्तिलिरुन्दु वरुहिरेन	इंगिरुन्दु त्रिचूर पोहिरेन	तिरुम्बी वरुम्पोदु पार्किरेन
तेलगू	: नेनु मद्रास नुडि ओच्चुचुनानु	इकड़नुंडि त्रिचूर पोयदनु	तिरिह वच्ची कलसुकुन्दामु
कन्नड़	: नानु मद्रासनिन्द बंदिरुवेनु	इल्लिन्द त्रिचूरिगे होगेवेनु	वापसादमेले भेटियागुवेनु
मलयालम	: ञान मदिरासियिल निन्नु वरुन्नु	इविडुन्नु ञान त्रिचूरिलेके पोहुम	मटङि वन्नाल काणाम

हिंदी	: अच्छा, अब विदा।	नमस्कार।	आप बैठिये।
तमिल	: नलदु पोय्वरेन	वणक्कम्	उट्कारङ्गळ
तेलगू	: पोइ वोच्चेदनु	नमस्कारमु	मीरू दय चेययंडि कूर्चूवोंडि
कन्नड़	: सरि, होगिबन्नि	नमस्कार	नीवु कुकितुकोळ्ळिरि
मलयालम	: सरी, मङ्गळम	नमस्कारम	इरिकुविन

चौदहवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
यात्री	यात्रिकन्	यात्रिकन् या।त्रीकुलु,प्रयाणीकुलु	यात्रीक	यात्रकारन
देखनेके लिये	पार्क	चूचुटगु	नोड़ुव सलुवागि	काणुवान
आये हैं	वन्दिरुक्किरोम	वोच्चुचुंटिमि	दिनमु	उंटेदमु, उंटामु
आये हैं	वन्दिरुक्किरोम	वोच्चुचुंरिमि	बन्दिद्देवे	वन्निरिकुन्नु
दिन	नाळ	दिनमु	दिन	दिनम, दिवसम
रहेंगे	इरुप्पोम	उंटेदमु, उंटामु	इरुत्तेवे, इरुवेवु	तामसिकाम
व्यवस्था	एर्प्पाडु	येरपाटु	व्यवस्थे	व्यवस्था
कमरा	अरैं	गदि	कोणे	मुरी
सस्ता	मलिवान	सौका	अग्ग	सहायम (सस्ता दाम)
ठीक	सरी	सरी	सरी	सरी
काम	वेलै	पनी	केलसा	प्रवृत्ति
जगह	इडम	स्थलम	स्थळ, जागा	स्थलम
बारेमें	सुमार	बुरिंचि	विषयवागि	पेट्टी

बताइये	सोल्लुङ्गो	चाप्पडि	हेळिरि	पारयुगा
किसका	यारुडैय	येवरिदि	याव	आरुटे
मकान	वीडु	इल्लु	मने	वीटु
रहती हैं	इरुक्किरार्हळ	उंटन्नारू	इरुवि रि	तामसिकुन्नु
देखना	पार्क	चूचुट	नोडु	काणुवान

हिंदी :	हम यात्री हैं।	आपका आश्रम देखने आये हैं।	आपका मकान देखने आये हैं।
तमिल :	नाम यात्रिकर्हळ	उङ्गळ आश्रम पार्क वन्दिरिक्किरोम	उंगळ वीट्टै पार्क वन्देन
तेलगू :	मेमु यात्रिकुलमु	मी आश्रममु चूचुटकु वच्चितेमि	मी इल्लु चूचुटकु वच्चितेमि
कन्नड़ :	नावु प्रवासिगरु, (यात्रिकरु)	निम्म आश्रमवन्नु नोडलु वन्दिद्देवे	निम्म मनुयन्नु नोडलु वन्दिद्देवे
मलयालम :	ञेङ्गळ यात्रकाराण	ञेङ्गळ नीङ्कुटे आश्रमम काणान वन्नताण	ञेङ्गळ नीङ्ळुटे वीडु काणान वन्नताण

हिंदी :	हम यहां तीन दिन ठहरेंगे।	आप व्यवस्था कर दीजिये।	कमरा सस्ता चाहिये।
तमिल :	नाङ्गळ इंगु मूंडु नाळ तंगुवोम	एटपाडु सेय्युंगळ	मलिवान अरै वेण्डुम
तेलगू :	मेमु इक्कड़ मूडू रोजुलु उडेदमु	मीरु चेरपाट चेच्यंडि	गदि सौमुगा उडवलेनु
कन्नड़ :	नावु इल्लि मुरू दिन इरुवेवु	नीत्रु व्यवस्थे माडिरि	कोणे ऊग्गदिरवेकु
मलयालम :	ञेङ्गळ इविटे मूनु दिवसम तामसिक्कुन्न	वेण्डा एरप्पाड चेयिदु तरिगा	ञेनिक्कु वातटक कुरैत्र मुरी वेणम

हिंदी :	यह ठीक है।	मुझे आपसे काम है।	जरूर, कहिये, क्या काम है।
तमिल :	इदु सरी	उंगळुडन वेलै इरुक्किरदु	आमाम सोल्लुङ्ग एन्न वेलै।
तेलगू :	इदि बागुन्नदि	नाकु मीतो पनी उन्नदि	तपकुण्डा, चप्पंडि एम पनी उन्नदि
कन्नड़ :	इदु सरि इदे	ननिगे तमलिल केलसविदे	अवश्य, हेळिरि एन केलसविदे
मलयालम :	इतु सरितन्ने	ञेनिक्कु नीङळुमापि चिलतुसंसारिकुवान उंटु	सरी, एंदाण नीङळक सरयानुळळद

हिंदी :	मुझे यहांके बारेमें कुछ बताइये।	यह किसका मकान है?	यह श्रीअरविंदका आश्रम है।
तमिल :	इन्द इडैत्ते पट्री कोचंम सोल्लुङ्गो।	इदु यार वीडु?	इदु श्रीअरविन्दर आश्रम्
तेलगू :	नाकु इनुर्गुरिंचि चप्पंडि।	इदु येवर इल्लु?	इदि श्रीअरविंदाश्रमु
कन्नड़ :	ननगे इल्लिय विषयवागि स्वल्प हेळिरि।	इदु यार मने?	इदु श्री अरविन्दाश्रम
मलयालम :	इदिने पेट्टी एनिक्कु वल्लदुम परियु तरुविन।	इतु आरुटे वीटाण?	इतु श्रीअरविन्दाश्रममाण

हिंदी :	यहां कौन रहता है?	यहां माताजी रहती हैं।	क्या मैं आश्रम देख सकता हूं?
तमिल :	इंगे यार इरुक्किरार्हळ	इंगे श्री अन्नै इरुक्किरार्हळ	नान आश्रम पार्क मुडियुमा।
तेलगू :	इक्कड़ येवर उंटुन्नारु	इक्कड तल्लिगारु उंटुन्नारु	नेनु आश्रम चूडवोच्चुना
कन्नड़ :	इल्लि यारु इरुत्तारे	इल्लि तायियवरु इरुत्तारे	नानु आश्रम वन्नु नोड बहु दे
मलयालम :	इव्विटे आराण तामसिकुन्नदु	मातावु इविटे तामसिकुन्नु	एनिक्क आश्रमम काणामो

पन्द्रहवां पाठ

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
चलिये	वाङ्गो पोवोम, पोहलाम	पदंडी	होगोण	पोगाम
भोजन	साप्पाडु	भोजनमु	ऊट	भोजनम, भक्षणम
भोजन कीजिये	साप्पिडुङ्गळ	भोजनम चेय्यंडि	ऊट माडिरी	भक्षणम कजिकुगा,उन्नुगा
चाय	तेनीर	टी	चहा, टी	चाया
पीना	कुडि, साप्पिडु	तागुटा	कुडि	कुडिक्कुगा
भात	सादम, सोरु	अन्नमु	अन्न	ऊटि
संकोच	संकोच	संकोचमु	संकोच, भिडे	संकोचम
पसन्द	पिळिक्किरदु	इष्टमेन	सेरु	इष्ट
समझना	पुरियुम्	तेलुसुकोनटा	तिळि,	मनसिलाकुगा
अधिकतर	पेरुम्वालुम	अधिकंग	हेच्चागि	अधिकवुम
समान	समानम्	समानमु	समान	समम
ठण्डा	कुळिर्नू	त्सलनी	तण्णगे	तणुत्त
शहर	ऊर	पट्टणमु	पट्टण	पट्टणम, नगरम
धूप	धूपं	एंडा	बिसिलु	वेचिल
बहुत	अदिहम	त्साल, अनेकमु	तुम्ब, बहळ	अधिकम
शाम	मालै, अन्दी, सायंदिरम	सायंकालमु	सायंकाल	वैकुन्नेरम, सायान्हम
पहले	मुन्ने	मुन्दु	मोदलु	उन्नामद

हिंदी	: चलिये, पहले भोजन कर लीजिये।	आपको दूध चाहिये या दही ?
तमिल	: वङ्गो मुदलिल साप्पाडाहट्टुम	उङ्गळक्कु पाल वेण्डुमा तैयिर वेण्डुमा
तेलगू	: मुन्दु भोजनम चेय्यंडि	मीकु पालु कावलेना पेरुगु कावालेना
कन्नड़	: नडियिरि मोदलु ऊट माडिरी	निमगे हालु बेके, मोसेरु बेके
मलयालम	: उन्नामदु भक्षणम कणिकुविन	नीङ्गळकु पालो तयिरो एताणु वेण्डतु

हिंदी	: आप रोटी लेंगे या भात ?	संकोच न कीजिये जो पसंद हो मांग लीजिये।
तमिल	: रोट्टी वेणुमा, सादम वेणुमा	संकोचम वेण्डाम्, वेण्डियदै केळुङ्गळ
तेलगू	: भीरु रोट्टे तिनेदरा लेक अन्नम	संकोचम वलदु, येदि इष्टम, अदि तीस्कोंडि
कन्नड़	: निमिगे ब्रेड्डु बेके अन्न बेके	संकोचमाड वेडिरि, यावुदु इच्छेयो अदन्नु केळिरि
मलयालम	: नीङ्गळकु रोट्टियो, चोरो एताण वेण्टतु	संकोचि केयेडा, नीङ्गळकु इष्टमुल्लदु चोदिक्काम

हिंदी	: अपना ही घर समझिये।	हम अधिकतर भात खाते हैं।
तमिल	: इदु उङ्गळवीडु कानिनैयुङ्गळ	नाम पेरुम्बालुम सादम साप्पिडहिरोम्

तेलगू	: इदि मी इल्लुला तलवंडी	मेमु साधारणङ्गा अन्नमु तिंटामु
कन्नड़	: निम्म मनयेन्दे भाविसिरि	नावु डेच्चाशि अन्न तिन्नुतेवे
मलयालम	: इत नीङ्गळुडे वीटु पोले करुतुका	ञेङ्गळ अधिकवुम अरी भक्षिकुन्नु
हिंदी	: मेरे लिये दोनों समान हैं।	मैं खानेके साथ पानी नहीं पीता।
तमिल	: रेण्डुम सरीदान्	साप्पिडुम्पोदु जलम साप्पिडुमवजक्कमइल्लै
तेलगू	: नाकु रेडुं समानमु	नेनु अन्नम तिनिनतरवाता नीरु त्रागनु
कन्नड़	: ननगे एरडु समानरे	नानु ऊटद संगड नीरु कुडियुवुदिल्ल
मलयालम	: एनिक्क रण्डुम ओरुपोले याण	भक्षणम कजिक्कुमपोल ञान वेळूळम कुडिक्करिल्ल
हिंदी	: हम खाना खाकर शहर देखेंगे।	नहीं, अभी धूप बहुत है, शामको चलेंगे।
तमिल	: साप्पिट पिरहु ऊरै पार्कलाम	इन्नुम वेय्यिला इरुक्किरदु, सायंकालम पोहलाम
तेलगू	: मेमु अन्नम तिनि वजार चूचंदमु	ओद्दु इप्पडु एंडेगा उन्नदि, सायंतरम वेल्लेंडि
कन्नड़	: नावु ऊट माडि पट्टणवन्नु नोडुवेवु	इल्ल ईग सिविलु जास्ती इदे, सायंकाल होगोण
मलयालम	: भक्षणम कणिञ्ञाल नमक्कु पट्टणम काणाम	वेण्डा, इप्पोल, नल्ल वेयिल उण्टु, नमक्कु वैगुन्नेरम पोगाम

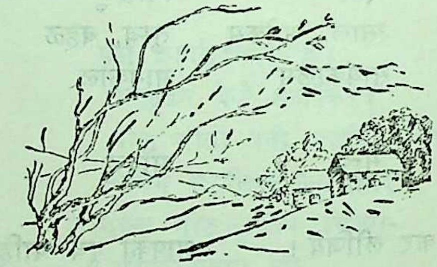

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI OIL MILLS

Raniganj

Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स

३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED

7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

मीनाक्षी रोलर फ्लावर मिल्स

उत्तम मैदा और सूजी की
चीजें बनानेवाले

मिल :-
विलनगुडी
मदुरा
फ़ोन-३४९१

कार्यालय :-
८२, साउथ अवनिमूल स्ट्रीट
पोस्ट बाक्स ५
मदुरा
फ़ोन-४५१६

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के वही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता–७
फोन–३३२३१२

⁂

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

⁂

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,
CALCUTTA 29

A leading Dealer in and

Manufacturers

Chemicals, Solvents, Minerals,

Thinners, Silicates,

Insecticides & Pesticides.

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

श्रीअरविंद आश्रमके प्रकाशन तथा उत्पादनका वितरण केंद्र

'वंदना'

१०८।५० गांधीनगर
कानपुर

"युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके रथको हांकनेवाले कुरुक्षेत्रके सारथि (श्रीकृष्ण) कर्मयोगके प्रतीक और प्रतिमूर्त्ति हैं; क्योंकि शरीर ही है रथ और इन्द्रियां हैं हांके जानेवाले घोड़े और संसारके रक्तरंजित तथा पंकसंकुल पथसे ही श्रीकृष्ण मानवात्माको वैकुंठ-तक ले जाते हैं।"

—श्रीअरविंद

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन-४३४

किसी आदर्शके लिये जीवन यापन करनेपर मनुष्यको जो हर्ष प्राप्त होता है वह पथपर आनेवाली सभी कठिनाइयोंकी पूरी-पूरी क्षतिपूर्त्ति कर देता है।

—श्रीमां

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड

१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;

बम्बई--१

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

With best wishes from :

Arthur Import Export Co.

'MON REPOS'

41/44, Arthur Bunder Road,
Behind Radio Club.

BOMBAY-5

Importers, Exporters & Suppliers of

Finest quality of

Shoddy yarns, Synthetic Tops and Barrack Blankets.

पुरोधा

किशोर-त्रैमासिक

जनवरी

१९६६

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

कोंपलें	सुमित्रानंदन पन्त	
प्रार्थना	श्रीमां	२
आवाहन	श्रीमां	४
संपादकीय——		५
मनोवैज्ञानिक पूर्णता	श्रीमां	६
भारत मां	श्रीअरविन्द	१०
श्रीअरविंद पांडिचेरी कैसे आये ?	सुरेशचंद्र चक्रवर्ती	१४
भारतका एक चमकता सितारा	मीना	१५
कड़ी परीक्षा	चित्त	२१
गौरैयेके बच्चे	रिचर्ड	२४
प्रतिशोध	अजित सिंह	२६
प्रभुदेव-अल्लम प्रभु	अम्बाशंकर	२९
धुरमंगद	अनुबेन पुराणी	३३
प्रति-पदार्थ	डा. ओमप्रकाश शर्मा	३६
जार्ज वाशिंगटन	कृष्ण गुजराल	४०
मुरली	कोकिल	४५
प्रलय आज बन रहा प्रणय है !	सोहनलाल द्विवेदी	४६
सत्य पर अनोखा	श्यामसरन विक्रम	४६
भिखारियोंकी समस्या	रवींद्र	४७
कुछ घटनाएं : नयी और पुरानी	संकलित	६४
कुत्ता	हेमा	५३
कुत्तोंकी सभामें	मीना	५४
कुत्तेकी दृष्टि	रवींद्र	५५
उस अंधेरी रातमें	मीना	५८
नये जापानका निर्माता——इतो	हीरो	५९
अतिथि-सत्कार	एजाज अहमद खां	६१
बहादुर लड़का	. . . .	६२
मेरा दोस्त टीटू	अरुणा	६३
पुस्तक-परिचय		६४
दक्षिण भारती		६७

चित्रकार : कृष्णलाल। मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

चंपा

आंतरिक परिपूर्णता

जनवरी १९६६ अंक ३
वर्ष ४

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।

—श्रीअरविन्द

प्रकाशक
श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी–२

* कोंपलें *

-श्री सुमित्रानंदन पंत-

आज कोई काम नहीं, --
सोनेके तार-सा खिचा
प्यारा दिन है !
कल --
गुलाबोंमें
काट-छांट की थी,
तबसे,
आंखोंके सामने
नयी नयी कोपलें
फूट रही हैं ! --
ललछौहीं कोपलें
स्वप्नभरी
रतनार चितवन-सी
शुभ्र पीत चिनगियों-सी, --
लपटोंके पग धर
नयी पीढ़ी बढ़ रही है !
ज्यों ही आंखें मूंदता हूं
कोपलें केवल कोपलें, ...
रेशमी मूंगी कोपलें,
रुपहले सुनहले इंगितों-सी
बरस पड़ती हैं !

ओ सृजन उन्मेष,
मनने बहुत काट-छांट की,
पुराने ठूंठ उखाड़े,
रद्दी जड़ें खोदीं,
भद्दी डालियां
काटीं तराशीं, --
इधर उधर
कला शिल्पके हाथोंसे
भाव बोधके स्पर्शोंसे
सहस्रों नये वसंत संवारे !
अभी असंख्य शरदोंको
अपने अंग पावकमें नहलाकर
रूप ग्रहण करना है !
आज मुझे
नये स्वप्न
नये जागरण
नये चैतन्यकी कोंपलें
दिखायी देती हैं !
सर्वत्र
कोंपलें ही कोंपलें
आंखोंके सामने
भावभरा मुख
स्वप्नभरी चितवन
खोल रही हैं।

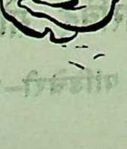

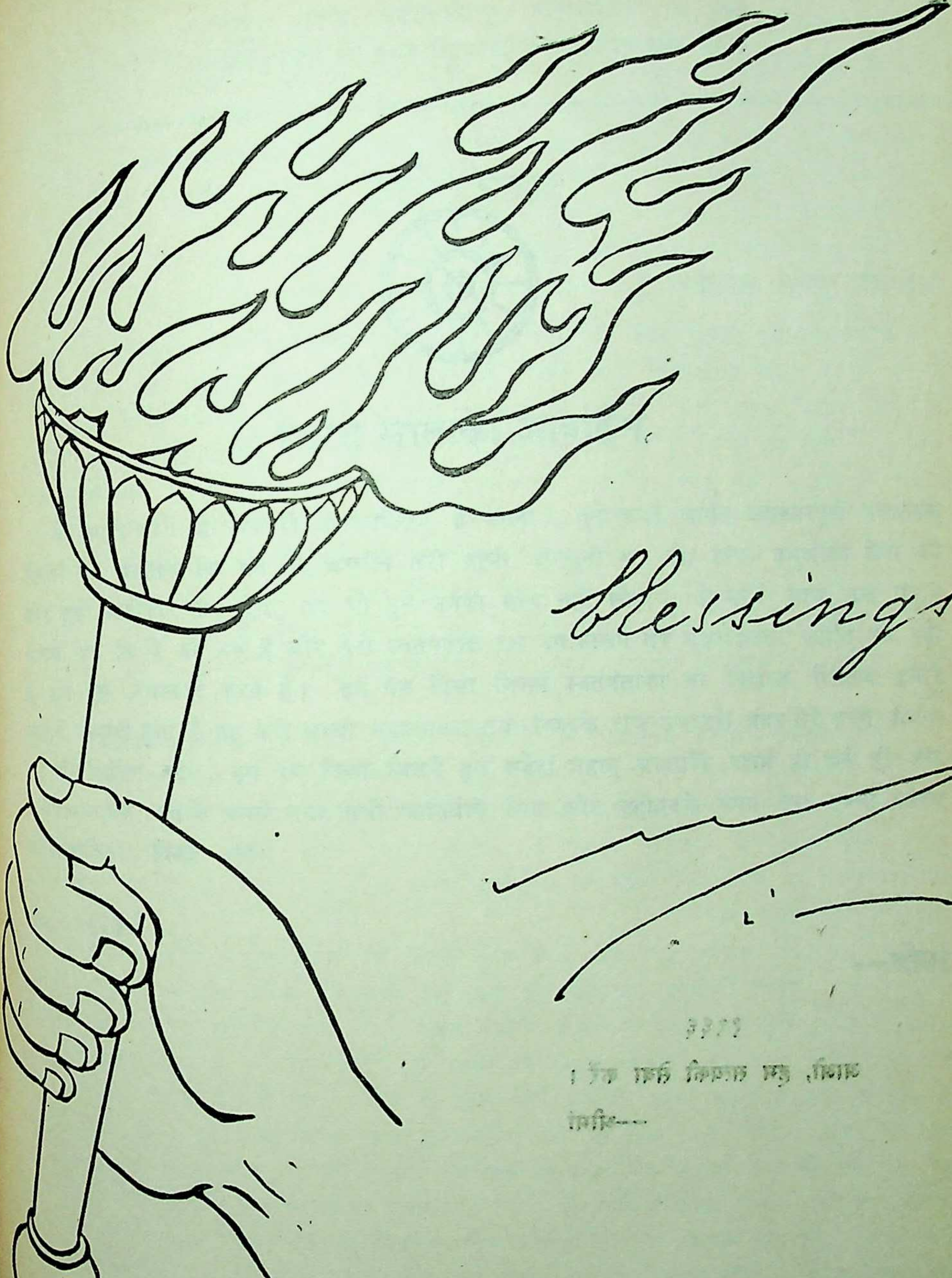

Blessings

१९६६

आओ, हम सत्यकी सेवा करें ।

—श्रीमां

भारत माताका आवाहन

हे हमारी मां! हे भारतकी आत्मशक्ति! हे जननी! तूने कभी, अत्यंत अंधकारपूर्ण अवसादके दिनोंमें भी, यहांतक कि जब तेरे बच्चोंने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओंकी सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे मां! आज, इस महान् क्षणमें, जब कि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतंत्रताके इस उषःकालमें तेरे मुखमंडलपर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार करते हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतंत्रताका जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानताका तथा विश्वके राष्ट्र-समाजके अंदर तेरे सच्चे जीवनका भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शोंके पक्षमें ही खड़े हों और अध्यात्म-मार्गके नेताके रूपमें तथा सभी जातियोंके मित्र और सहायकके रूपमें तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजातिको दिखा सकें।

१५.८.१९४७

—श्रीमां

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

नये और पुराने साम्राज्य

मानव-एकताका विचार आते ही पहले दो कठिनाइयां सामने आती हैं। पहली शंका तो यह है कि मानव प्रगति करते-करते जिस स्तरपर पहुंचा है उसमें बहुत-से सामूहिक 'अहं' पैदा हो गये हैं, कुल, समाज, जाति, राष्ट्र, आदिका अपना-अपना 'अहं' है और उनमें हर एक-दूसरेसे अधिक बलवान् है। क्या यह सम्भव है कि विकासके इस स्तरपर इन सामूहिक अहंकारोंको दबाया या विलीन किया जा सके। क्या इनका अस्तित्व मानव-एकताके लानेमें बाधक नहीं होगा? क्या इन्हें इधर-उधरसे चादर ओढ़ाकर कोई वास्तविक या उपयोगी एकता लायी जा सकती है? और मान लिया जाय कि यह सब प्रयास करके एक प्रकारकी एकता स्थापित हो भी गयी तो क्या वह व्यक्तिको, समूहोंको और पारस्परिक संबंधोंको रौंदती हुई राजकीय सत्ता न होगी? क्या वह मनुष्यको एक बड़ी मशीनके कील-कांटेके रूपमें न ढाल देगी? हमें श्मशानकी शांति तो नहीं चाहिये। क्या यह संभव है कि एक आंतरिक एकताके बिना, एक आध्यात्मिक चेतनाके बिना बाह्य एकता सफल हो सके?

मानव-समाजने अभीतक जो प्रगति की है उसमें राष्ट्र ही सबसे बड़ी सामूहिक इकाई है। कहनेको राष्ट्र-मंडल, संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा अन्य कई छोटे-बड़े समुदाय भी हैं पर वे केवल अमुक तत्त्वोंको लेकर बने हैं और कम-से-कम अभीतक उनमें कोई वास्तविक जीवन नहीं उत्पन्न हुआ है। जरा-सी आंधी उनके अस्तित्वको झकझोर डालती है। उनका जीवन उनके अंगोंकी सुविधापर निर्भर है। परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि जब-जब कोई बड़ा राष्ट्र असंतुष्ट हो जाता है तो राष्ट्रसंघकी नैया डांवाडोल हो जाती है।

जिन इकाइयोंमें सचमुच प्राण होते हैं वे चाहे कितनी भी आफतें क्यों न आयें, मुसीबतमेंसे बच निकलती हैं। यूनान बिलकुल मटियामेट हो चुका था, पोलैंडका केवल नाम रह गया था, परंतु सदियोंकी यंत्रणाओंके बाद आज वे फिरसे जीवित-जागृत हैं। इसके विपरीत तुर्क साम्राज्य जिसने एक बार भूमिके इतने बड़े हिस्सेको हजम कर लिया था, रोमन साम्राज्य या आस्ट्रियायी साम्राज्य जो गये तो नकशेसे उनका नाम हमेशाके लिये साफ हो गया। इस दिशामें अंग्रेजी साम्राज्य एक बड़ा ही अनूठा प्रयास था। कहां तो उस साम्राज्यपर कभी सूरज डूबता ही न था कहां उसका एक-एक अंग बिलकुल स्वतंत्र और बलवान देश बन गया। लेकिन इसने अपने-आपको समयकी आवश्यकताओंके अनुसार बदलना सीखा है और पं० नेहरूके मार्गदर्शनमें एक नया ही रूप धारण कर लिया है। परंतु आगे चलकर भी यह अपने-आपको समयकी मांगके अनुसार बदल पायेगा या नहीं यह कहना कठिन है और उसीपर इसका भविष्य निर्भर है। इस परीक्षणमें एक मजेदार चीज यह है कि राजनीतिक दृष्टिसे इसके सभी अंग स्वतंत्र और एक-दूसरेसे पृथक् हैं। इनका कोई सम्मिलित विधान नहीं, इसमें भारतके जैसे लोकशाही और पाकिस्तान जैसे तानाशाही देश भी मौजूद हैं जिनमें आपसमें बहुत मधुर संबंध नहीं हैं। घाना और मलयेशियामें कोई संबंध नहीं दिखायी देता

फिर भी ये सब किसी प्रच्छन्न तन्तुसे बंधे हुए हैं। यह बंधन और पक्का होकर इनमें एकता लायेगा या आर्थिक और सामाजिक तनावोंको सह न सकनेके कारण टूट जायगा—इस बातका उत्तर तो समय ही दे सकेगा। संसारमें और भी कई प्रयास चल रहे हैं जैसे अमरीकी देशोंका संगठन, पश्चिमी यूरोपका व्यापार-वाणिज्यपर आधारित संगठन, अरब-लीग, ये सब एकताकी खोजमें किये गये प्रयास हैं। हमारे सब प्रयासोंकी भांतिं ये भी अपूर्ण और अंधेरेमें टटोलनेके जैसे हैं। पर इनका भी अपना मूल्य है। आजके शक्तिशाली देश इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी कितनी छोटी-छोटी इकाइयोंसे मिलकर बने हैं। इनके एक होनेसे पहले कितने झगड़े-झंझट हुए हैं, कितना खून बहा है, तब कहीं जाकर ये एक हो पाये हैं। कौन जाने इसी तरह समयकी मांगके कारण कई बड़ी-बड़ी इकाइयां मिलकर एक संघ बन जायें। संयुक्त राष्ट्र अमरीका और रूसके उदाहरण हमारे सामने हैं। उनमें भांति-भांतिकी भिन्न-भिन्न जातियोंके लोग बसे हुए हैं। उनकी रियासतोंको अपने-अपने ढंगसे काफी अधिकार प्राप्त हैं फिर भी वे सब मिलकर एक राष्ट्र बनाती हैं। हो सकता है कि भविष्यमें इस प्रकारके अनेक संगठन उत्पन्न हो जायं। आज भी संयुक्त अफ्रीका, माफिलिंडो, दक्षिण पूर्व एशिया वगैराके विचार तो चक्कर काट ही रहे हैं।

रोमन साम्राज्यकी एकताका उदाहरण हमारे सामने है। सब प्रकारकी यातायातकी कठिनाइयोंके होते हुए भी इतना बड़ा साम्राज्य एक लंबे अरसेतक फलता-फूलता रहा। उसका रहस्य क्या था? रोमने तलवारके जोरसे अन्य राज्योंको जीत लिया। यूनानको अपने साथ लेकर यूनानी रोमन संस्कृतिकी नींव डाली और अपने साम्राज्यमें उसीका प्रचार किया। लेटिनके द्वारा यूनानी भाषाका भी प्रचार हुआ। उन्होंने अपने साम्राज्यके सभी अंगोंको बराबरीका दरजा दिया। और सारे साम्राज्यमें पृथक् राष्ट्रीयता या पृथक् संस्कृतिके चिह्नतक मिटाकर सबको रोमन बनानेका प्रयास किया। और इतना ही नहीं अपने साम्राज्यके इन नये रोमन बने हुए लोगोंके साथ ठीक रोमनोंके जैसा व्यवहार किया गया, उन्हें बड़े-से-बड़े पद दिये गये और उन्हें हर तरहसे यही अनुभव कराया गया कि 'हम रोमन' हैं। एशिया, यूरोप और अफ्रीकावासी रोमनोंमें किसी प्रकारका भेद न किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे रोमन साम्राज्यमें केवल राजनीतिक एकता ही नहीं, सांस्कृतिक और मानसिक अस्मिता भी एक हो गयी। इनकी सरकार तो अच्छी थी ही, प्रजाकी इच्छाएं, अभिलाषाएं, जातीय गर्व भी एकसे होनेके कारण जब कभी किसी प्रादेशिक अफसरने सिर उठाना चाहा तो उसे अपनी प्रजासे कोई सहायता या सहानुभूति न मिली। इतने सुन्दर, सुगठित साम्राज्यमें सबसे बड़ी कमी थी तो वह उसके अत्यधिक केंद्रीकरणमें छिपी हुई थी। उसकी सारी सत्ताका संचालन केंद्रसे ही होता था और वहींसे सारे साम्राज्यमें जीवन संचार होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि जब केंद्रमें शिथिलता आयी तो सारे साम्राज्यमें ऐसा कोई स्थान न बचा जहांसे नयी हवा आ सके, नये जीवनकी आशा की जा सके। केंद्रके ढीलेपनसे सारा शरीर ढीला पड़ गया। इतने बड़े साम्राज्यमें जीवन-शक्तिका अकाल पड़ गया और जीवनकी यह शिथिलता ही उसके विनाशका कारण हुई। उसका स्थान लेनेके लिये सारे साम्राज्यमें कोई न था। रोमन साम्राज्य और रोमन संस्कृति श्मशान शांतिका केंद्र बन गयी। अत्यधिक केंद्रीकरणकी भूलको ठीक करना उसके हाथमें न रहा, और तब बाहरसे जंगली परंतु अत्यधिक सजीव बर्बरोंके आक्रमण हुए जिन्होंने सारे साम्राज्यको तहस-नहस कर डाला और साथ ही रोमन संस्कृतिके बीजोंको नये-नये खेतोंमें जा बोया।

इसके बाद आनेवाले बहुत-से साम्राज्योंने इससे पाठ सीखनेका प्रयास किया। किसीने इसकी नकल की, किसीने इसकी कमजोरियोंसे बचकर इसके गुणोंको लेनेकी कोशिश की परंतु प्रकृति अपने उस परीक्षणको दोहरानेके लिये तैयार न थी। एक बार उसकी पूरी क्षमताको जांचा जा चुका था। नये साम्राज्य अपने जीते हुए देशोंमेंसे उनकी संस्कृति और उनकी अस्मिताको न मिटा सके। परि-

णामतः अपनी त्रुटियोंके कारण हारे हुए देश विजेताओंकी रीति-नीति सीखकर उन्हें ही आंख दिखाने लगे और उन्हींके अस्त्रोंका उनके विरुद्ध उपयोग होने लगा। जर्मन लोगोंने अपने जीते हुए यूरोपीय क्षेत्रोंको जर्मन बनानेका प्रयास किया परंतु परिणाम उलटा ही निकला। वे जर्मन बननेकी जगह जर्मन-विरोधी बन गये। जब यूरोपमें ही यह परीक्षण सफल न हो सका तो एशिया और अफ्रीकाकी तो बात ही क्या है?

आधुनिक कालमें पृथ्वी बहुत छोटी हो गयी है। देशोंका परस्पर संबंध बढ़ता जाता है और कला, विज्ञान, संस्कृति आदिका आदान-प्रदान खूब तेजीसे हो रहा है। ऐसा लगता है मानों मानव संस्कृति जन्म लेनेको है जिसमें प्रत्येक इकाई अपना योगदान करेगी। यह नवीन संस्कृति केवल क्षणिक आवश्यकताओंको पूरा करनेवाली न होकर भूतकालके उत्तम और दृढ़ आधारपर खड़ी होकर भविष्यकी आवश्यकताओंको पूरा करनेवाली होगी। इस कार्यमें युद्ध हमेशा बाधक होता है। पिछले महायुद्धसे पहले सारे संसारपर जर्मनीकी मोहिनी छा रही थी। हिटलरने अपने अस्त्रोंका प्रयोग करके यूरोपको नष्ट करनेसे पहले जर्मनीकी उस मूर्तिको तोड़ दिया।

हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके मिलनेसे सहिष्णुता बढ़ती है। आज कोई भी जाति अपने-आपको संस्कृतिका ठेकेदार नहीं मान रही। इंगलैंडने भारतमें काले अंग्रेज पैदा करनेके स्वप्न कबके छोड़ दिये और फ्रांसको भी अफ्रीकाको फ्रेंच बनानेके विचार त्याग देने पड़े। एशियामें आकर फ्रेंच और अंग्रेजी संस्कृतियां फ्रेंच और अंग्रेजी न रह वह यूरोपीय संस्कृतिका रूप धारण कर लेती हैं। उसमें भी आज वह भावना नहीं रही कि यूरोप एशियाकी अर्धबर्बर जातियोंका उद्धार करेगा और एशिया भी अपने-आपको यूरोपके ढांचेमें ढालनेका प्रयास नहीं कर रहा। कहीं-कहीं यह विचार अब भी मौजूद है कि एशियाको अगर प्रगति करनी है तो उसे यूरोपीय चाल-ढाल, उसीकी भाषा-भूषाको अपनाना होगा परंतु यह विचार तेजीसे हटता जा रहा है। उसकी जगह एशिया यूरोपकी वास्तविक अच्छाइयोंको अपना रहा है। सब लोगोंमें शिक्षाका प्रसार, समाजमें एक प्रकारकी समानता, विचारोंकी उदारता, आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि, स्वाधीनताकी भावना, जात-पांत आदिके कठघरोंको तोड़कर खुली हवामें आना आदि ऐसे गुण हैं जिन्हें आधुनिक भारत और एशिया यूरोपसे भली-भांति सीख सकता और सीख रहा है लेकिन इससे अधिक नहीं। अध्यात्मके आधारपर समाज रचना, मनकी गहराइयोंमें पैठकर वहांसे नवजीवनके रत्न निकालना और इसी प्रकारकी आंतरिक बातोंके बारेमें यूरोपको एशियासे सीखना होगा। इनके आधारके बिना ऊपरी महल अवास्तविक और कच्चे होंगे जो जरासे झोंकोंसे ढह सकते हैं।

एक समय था जब ऐसा मालूम होता था कि यूरोपके द्वारा प्रचारित ईसाई-धर्म सारे एशियापर छा जायगा। भारतमें भी शिक्षित वर्ग आधा ईसाई होनेमें ही गौरवका अनुभव करता था। परंतु यह हवा भी रुक चुकी है। ईसाई-धर्मने दो-एक बातोंके कारण विशेष सफलता पायी थी। हिन्दू अपने जात-पांत और ऊंच-नीचके झमेलोंमें ऐसे फंस गये कि उन्हें एक-दूसरेकी परवाह न रही। वे अपनी उच्चताके घमंडमें नीचोंकी ओर आंख उठाकर देखनेको भी तैयार न थे। इसके विपरीत ईसाई ऊंच-नीचकी परवाह किये बिना दुखी-दरिद्री लोगोंकी सेवामें जुट गये। रोग-शोकमें हर प्रकारसे सहायता करनेके कारण ईसाई अपने धर्मको और अपने प्रभावको खूब फैला सके। (यह और बात है कि उन्होंने दया और दुखियोंकी सेवाकी भावना बौद्ध धर्मसे थातीके रूपमें पायी थी) लेकिन अब जब कि परिस्थितियां बदल रही हैं ईसाइयतका यह सम्मोहन भी कम होता जा रहा है।

अब देखना यह है कि प्राचीन कालकी प्राप्तियों और भूलोंसे क्या हम यह सीख सकते हैं कि संसारको भयपर आधारित एकता नहीं, बल्कि विश्वमें रहनेवाली भिन्न-भिन्न जातियों, विभिन्न संस्कृतियों और अलग-अलग दृष्टिकोणोंके रहते हुए उन सबको मिलाकर और इस तरह मिलाकर कि

किसीका अपनापन नष्ट न होने पाये, एक संघ दिया जा सकता है या नहीं जिसमें सब स्वतंत्र हों, उनमें अच्छे गुणोंका खुला आदान-प्रदान हो और कोई किसीको दबोचनेकी न सोचता हो।

मांके मन्दिरकी रक्षा करो

आजकल देश सब प्रकारकी कठिनाइयोंमेंसे गुजर रहा है। कुछ बाहरसे आयी हैं और कुछ हमारी अपनी दुर्बलताओंकी उपज हैं। ऐसे समय हमें धीरजकी, सहनशीलताकी और अध्यवसायकी बहुत सख्त जरूरत है। हथेलीपर सरसों जमाना आसान काम नहीं है पर जबतक सरसों जम न जाये तबतक हिम्मत हारे बिना उसके लिये यत्न करते रहना तो हमारे बसका काम है न! हम महान् देशके रहनेवाले ऋषि-मुनियों, त्यागियों, तपस्वियोंकी संतान हैं। जब एकके बाद एक मुसीबत आती जाती हो तो सरदार भगतसिंहके ये शब्द हमारे कानोंमें गूंज उठते हैं:

उन्हें यह शौक है देखें नया तर्जे जफा क्या है,—
हमें यह जौक है देखें सितमकी इन्तहा क्या है।

श्रीअरविन्दने हमें बताया है, "हम कोई सामान्य जाति नहीं हैं। हम अपने पहाड़ों और नदियोंकी तरह एक पुराने राष्ट्रके लोग हैं। हमारे पीछे बहुमुखी महानताका इतिहास खड़ा है जिसकी बराबरीमें कोई भी देश नहीं खड़ा हो सकता। हम उनकी संतान हैं जिन्होंने आध्यात्मिक लाभके लिये कड़ीसे कड़ी तपस्या की और अपनी इच्छासे, मनुष्य जितनी भी कठिनाइयां झेल सकता है उन्हें झेला। हम उन सतियोंकी संतान हैं जो पतिलोकमें अपने पतिका संग पानेके लिये मुस्करांती हुई जीते जी चितापर चढ़ जाती थीं। हम ऐसे लोग हैं जो कठिनाइयोंका स्वागत करते हैं, जिनके अंदर आध्यात्मिक शक्ति है, जो किसी भी बाह्य शक्तिसे अधिक बलशाली है। इसी जातिके महान् क्षणोंमें भगवान्का इस देशमें प्रादुर्भाव हुआ और होता रहा है। आज फिरसे भगवान्की वह शक्ति प्रकट होनेवाली है और इसीलिये हम फिरसे उठ रहे हैं। अगर हमारे महान् और प्रिय व्यक्ति हमसे जुदा कर दिये जायें तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है। उनके बिना भी हम आगे बढ़ते ही जायेंगे और भगवान्का काम पूरा करनेसे पहले कहीं दमतक न लेंगे। भगवान् अपने काम पूरे करता है और इसे भी पूरा करेगा। सचमुच हम अपने महान् व्यक्तियोंकी महानताके कारण आगे नहीं बढ़ते हैं, उनका पथ-प्रदर्शन ही हमें आगे नहीं ले जाता। एक उच्चतर शक्ति हमारे अंदर काम कर रही है और हमारे महान् व्यक्तियोंके अभावमें भी करती रहेगी क्योंकि हमारा उद्देश्य ऊंचा है और भगवान् हमें सफल बनाना चाहते हैं। चाहे जितनी कठिनाइयां आयें हम आगे बढ़ते जायेंगे। याद रखो: हमपर फिरसे तूफान आ सकता है और बड़े ही भयंकर रूपमें आ सकता है। उसका सामना करो। अपनी शक्तिको जानो, अपनी शक्तिको तूफानोंके विरुद्ध भिड़ना सिखाओ, और उस शक्तिसे मांके मंदिरकी रक्षा करो।

◆

मनोवैज्ञानिक पूर्णता

किसीने मुझसे पूछा था कि चंपा-पुष्पके आध्यात्मिक अर्थ, "मनोवैज्ञानिक पूर्णता"का क्या आशय है। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक पूर्णता एक नहीं पांच हैं, फूलकी पांच पंखुड़ियोंकी तरह। ये हैं: सच्चाई, श्रद्धा, भक्ति, अभीप्सा और समर्पण। किंतु प्रत्येक समय जब कि यह फूल मैं देती हूं यह इन्हीं मनोवैज्ञानिक पूर्णताओंका प्रतीक नहीं होता। यह कोई कठोर नियम नहीं बल्कि बड़ी तरल-सी वस्तु है। यह वस्तुतः परिस्थितियों और व्यक्तियोंकी आवश्यकताओंपर निर्भर करता है।

पर इन पांचों पूर्णताओंमेंसे पहली जो सदा सब संयोगोंमें रहती है सच्चाई है। करणा, यदि सच्चाई न हो तो व्यक्ति आगे बढ़ ही नहीं सकता, आधा पग भी नहीं।

परंतु इसे एक अन्य शब्द पारदर्शिताद्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। मैं इसकी व्याख्या करती हूं। जब कोई व्यक्ति मेरे पास आता है, मैं उसकी आंखोंमें देखती हूं। यदि वह सच्चा अर्थात् पारदर्शी होता है तो मैं उसकी आंखोंके द्वारा उसके अंदरतक उतर जाती हूं, मैं स्पष्ट रूपमें उसकी आत्माको देखती हूं। किंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मुझे वहां एक छोटा-सा बादल दिखायी देता है। मेरा अनुभव ठीक यही होता है। मैं आगे बढ़ती जाती हूं और तब मुझे एक परदा-सा दिखायी देता है, मैं और आगे बढ़ती हूं और वह फिर दीवार बन जाता है और तब वह बिलकुल ही काली वस्तुका रूप धारण कर लेता है। इस सबको भी पार करना पड़ता है। उसमेंसे निकलनेके लिये छिद्र बनाने पड़ते हैं। इसके बाद भी यह निश्चय नहीं होता कि अंतिम क्षण कहीं कांसेका ठोस दरवाजा ही सामने नहीं आ जायगा और वह इतना मोटा होगा कि तुम उसमेंसे गुजर ही नहीं सकोगे और तब उसकी आत्माको देखना असंभव हो जायगा। ऐसी दशामें मैं तत्काल कह सकती हूं कि यह आदमी सच्चा नहीं है। यदि अधिक साहित्यिक ढंगसे कहा जाय तो मैं कहूंगी कि वह पारदर्शी नहीं है। यह पहली चीज है।

एक और चीज भी है जो स्पष्ट ही उस मनुष्यके लिये जो आगे बढ़ना चाहता है बहुत अनिवार्य है अर्थात् श्रद्धा। इसके लिये तुम एक अन्य शब्द भी प्रयुक्त कर सकते हो जो अधिक सीमित तो प्रतीत होता है पर मेरे लिये अधिक महत्त्वपूर्ण है अर्थात् विश्वास। कारण—और यह अनुभवकी बात है—यदि तुम्हारी श्रद्धा भगवान्में पूरे विश्वाससे निर्मित नहीं है तो तुम्हें बड़ी आसानीसे समझ लेना चाहिये कि तुम भागवत शक्तिमें, भागवत उदारतामें या उस विश्वासमें जो भगवान्का तुममें है धीरे-धीरे समस्त आस्था खो बैठोगे। हमारे रास्तेमें वस्तुतः यही तीन बाधाएं हैं।

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि उनका भगवान्में अटूट विश्वास है। उनका कहना है कि भगवान् ही सब कुछ हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं, जो कुछ उनके अपने अंदर या दूसरोंके अंदर होता है अथवा कहीं भी होता है वह सब भगवान्का, केवल भगवान्का कार्य है, किंतु ये लोग यदि जरा तर्कके साथ अपने विचारको समझनेकी कोशिश करें तो कुछ समयके बाद ये ही भगवान्को भयानक कार्योंके लिये, वस्तुतः संसारमें होनेवाले सभी बुरे कार्योंके लिये, दोषी ठहराने लगेंगे। यदि भगवान्पर पूरा भरोसा न हो तो ये उन्हें सचमुच एक राक्षस, एक निर्दयी और भयंकर राक्षस बना देंगे।

या फिर, उनमें श्रद्धा होती है, पर वे कहते हैं, "हां, मैं भगवान्में विश्वास रखता हूं, किंतु यह संसार! मैं भलिभांति जानता हूं कि यह क्या है! पहली बात यह है कि मैं कितना कष्ट पा रहा

हूं; कितना दुःखी हूं, अपने सब पड़ोसियोंमें मैं सबसे अधिक दुःखी हूं (क्योंकि तुम अपने पड़ोसीसे सदा ही अधिक दुःखी होते हो), सचमुच ही जीवनने मेरे साथ बड़ी दुष्टता की है, पर भगवान् तो भगवान् हैं। वे तो उदारता, भद्रता और सामंजस्यका प्रतीक हैं। यह फिर कैसे हुआ कि मैं इतना दुःखी हूं। भगवान्में शक्ति ही नहीं होगी, नहीं तो इतने अच्छे होते हुए भी वे मुझे इतना दुःखी कैसे रहने देते!" यह हमारे रास्तेकी दूसरी रुकावट है।

एक तीसरी और भी है। मैं उन लोगोंके विषयमें कह रही हूं जिनके अंदर गलत प्रकारकी नम्रता या दीनता होती है। वे कहते हैं: "निश्चय ही भगवान्ने मुझे अस्वीकार कर दिया है, मैं अनुपयोगी हूं, वे मेरे द्वारा कुछ नहीं कर सकते, मुझे इस खेलको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वे मुझे अपने लिये अयोग्य पाते हैं।"

अब यदि तुम अपनी श्रद्धाके साथ भागवत कृपामें पूर्ण और समग्र विश्वास नहीं जोड़ लेते तो तुम्हें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

अब भक्तिको लो। यह मनोवैज्ञानिक पूर्णताओंमेंसे तीसरी है। भक्ति अच्छी है, पर इसके साथ-साथ यदि कई और वस्तुएं न हों तो यह गलत रास्तेपर चली जायगी और इसे बहुतसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

तुममें भक्ति है और तुममें अहंकार भी है। तुम्हारा अहंभाव तुमसे कई कार्य भक्तिद्वारा करवाता है, कई ऐसे कार्य भी कराता है जो उग्र रूपसे अहंभावयुक्त होते हैं। दूसरे शब्दोंमें तुम केवल अपने विषयमें ही सोचते हो, दूसरोंके विषयमें नहीं, न तुम संसारके बारेमें सोचते हो, न कार्यके बारेमें और न ही उसके बारेमें जो तुम्हें करना है। तुम केवल अपनी भक्तिके विषयमें ही सोचते हो और भीषण रूपसे अहंकारी हो उठते हो। और जब तुम्हें यह पता लगता है कि भगवान् किसी एक या दूसरे कारणसे तुम्हारी भक्तिका उस उत्साहसे प्रत्युत्तर नहीं देते जिसकी तुम उनसे आशा करते हो तो तुम निराश हो उठते हो और उन तीन कठिनाइयोंमें जा पड़ते हो जिनकी मैं अभी चर्चा कर चुकी हूं। या फिर सोचते हो कि भगवान् निर्दयी हैं—हमने ऐसे भक्तोंकी इस प्रकारकी कई कहानियां पढ़ी हैं जो भगवान्को गाली देते हैं क्योंकि वे अब पहले जितने उनके समीप नहीं रहते, न वे उतने अच्छे ही रहे हैं। वे अब उनसे पीछे हट गये हैं। ये लोग शायद यह कहनेका साहस तो नहीं रखते: "तुमने मुझे क्यों त्याग दिया है? मुझे क्यों गिरने दिया है, ओ भयंकर राक्षस!" पर ऐसा सोचते अवश्य हैं। या फिर ये कहते हैं: "ओह, मैंने कोई ऐसी गंभीर भूल अवश्य की ह जिसके लिये भगवान्ने मुझे त्याग दिया है।" और वे निराशाके गर्तमें जा गिरते हैं।

अतएव भक्तिके साथ एक और चीज भी होनी चाहिये और वह है कृतज्ञता। कृतज्ञताकी यह भावना कि भगवान्का अस्तित्व है, वह आश्चर्यपूर्ण कृतज्ञता तुम्हें सचमुच ही एक उत्कृष्ट आनंदसे भर देती है, क्योंकि भगवान् हैं, जगत्में एक ऐसी वस्तु भी है जो कि भगवान् है। संसारमें केवल राक्षसी क्रूरता ही नहीं है जो कि हमारे देखनेमें आती है—यहां भगवान् भी हैं, हां भगवान् यहां हैं। ऐसे प्रत्येक समय जब कि एक छोटी-सी वस्तु भी भागवत अस्तित्वकी इस सर्वोच्च वास्तविकताके साथ तुम्हारा संबंध स्थापित कर देती है, तो तुम्हारा हृदय एक ऐसे तीव्र और अद्भुत आनंद एवं कृतज्ञतासे भर उठता है जो अपने स्वादमें बिलकुल ही अनूठी होती है। और कोई भी चीज तुम्हें कृतज्ञताके समान आनंद प्रदान नहीं कर सकती। तुम एक पक्षीका गाना सुनते हो, एक फूल देखते हो, एक बच्चेको देखते हो, उदारताका कोई कार्य तुम्हारे सामने आता है, तुम एक सुन्दर वाक्य पढ़ते हो, सूर्यास्त निहारते हो,—चाहे कोई भी वस्तु हो—अचानक ही तुम भावविह्वल हो जाते हो, पर वह विह्वलता कितनी गहन और तीव्र होती है! क्योंकि यह जगत् भगवान्को व्यक्त कर रहा है, क्योंकि इस जगत्के पीछे कोई चीज है और वह है भगवान्।

अतएव मेरे विचारमें कृतज्ञताके बिना भक्ति बिलकुल अपूर्ण है। कृतज्ञताको उसके साथ अवश्य होना चाहिये।

इसके बाद चौथी पूर्णता, अभीप्सा आती है। इसके लिये भी एक और शब्द प्रयुक्त किया जा सकता है अर्थात् साहस। इस साहसमें ही सर्वोच्च साहसिक कार्यका स्वाद होता है, हां, सर्वोच्च साहसिक कार्यका स्वाद! यही अभीप्सा है—एक ऐसी अभीप्सा जो तुम्हें पूर्णतया अपने वशमें कर लेती है और तुम्हें भगवान्की खोजके महान् साहसिक कार्यकी ओर, भगवान्के साथ मिलनेके महान् कार्य और भगवान्को प्राप्त करनेके और भी अधिक महान् कार्यकी ओर ढकेल देती है। इसमें न वह कोई हिसाब करती है और न इसमें पीछे हटनेकी कोई संभावना ही रहती है, निःशेष भावसे वह यह कार्य करती है। तुम इस साहसपूर्ण कार्यमें लग जाते हो, जरा भी पीछे मुड़कर नहीं देखते, एक मिनटके लिये भी तुम यह प्रश्न नहीं करते, "आगे क्या होगा?" कारण, यदि तुम यह पूछने लगो कि आगे क्या होगा, तो तुम कार्यको कभी भी शुरू नहीं कर सकोगे। तुम दोनों पैर जमीनमें गड़ाकर स्थिर खड़े रहोगे, तुम्हें यह डर रहेगा कि कहीं कुछ खो न दें, कहीं अपना संतुलन ही न गंवा बैठें।

इसीलिये मैं साहसकी बात कहती हूं। किंतु असलमें यह अभीप्सा है, बल्कि दोनों है। एक सच्ची अभीप्सा साहससे ओतप्रोत होती है।

अब आती है पांचवीं पूर्णता, समर्पण। श्रीअरविन्द हमें कहते हैं कि योग करनेके लिये समर्पण पहली और आवश्यक शर्त्त है। अतएव यह एक आवश्यक गुण ही नहीं है, बल्कि योगको आरंभ करनेके लिये सबसे पहली और अनिवार्य वृत्ति भी है। यदि तुमने पूर्ण समर्पण करनेका निश्चय नहीं किया है तो तुम योग शुरू ही नहीं कर सकते। किंतु अपने समर्पणको पूर्ण बनानेके लिये और सब गुणोंकी अर्थात्, सच्चाई, विश्वास, भक्ति और अभीप्साकी भी आवश्यकता पड़ेगी।

इसमें मैं एक और चीज जोड़ती हूं: सहनशीलता। कारण, यदि तुम बिना साहस खोये, कार्यको कठिन समझकर भी उसे बिना छोड़े कठिनाइयोंका सामना नहीं कर सकते, यदि तुम चोटें नहीं सह सकते और सब विघ्नोंको पार करते हुए आगे नहीं बढ़ सकते, दूसरे शब्दोंमें यदि तुम चोटोंको नहीं पचा सकते—और चोटें तो अपने दोषोंसे मिलती हैं, इन्हें तो अपनी जेबमें डालकर बिना रुके आगे बढ़ना चाहिये—यदि तुम बिना सहन किये यह सब नहीं कर सकते, तो तुम बहुत अधिक आगे नहीं बढ़ सकते। तब पहले मोड़पर ही अर्थात् जब तुम्हें अपने नित्यप्रतिके जीवनका दीखना बंद हो जायगा, तुम निराश हो जाओगे और कार्यको छोड़ दोगे।

सहनशीलताका अत्यधिक मूर्त रूप अध्यवसाय है। जबतक तुम यह निश्चय न कर लो कि जरूरत पड़नेपर तुम एक ही कामको हजारों बार आरंभ करनेके लिये तैयार हो तबतक तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे। लोग निराशामें मेरे पास आकर कहते हैं: "किंतु मैंने सोचा था कि यह कार्य हो गया है, पर मुझे तो इसे अब दुबारा शुरू करना है।" और यदि उनसे यह कहा जाय, "पर यह तो कुछ भी नहीं है, तुम्हें शायद इसे सौ बार, दो सौ बार, हजार बार भी करना पड़ेगा," तो वे साहस खो बैठते हैं। तुम एक कदम आगे बढ़ते हो और सोचते हो कि तुम जम गये हो। किंतु एक ऐसी चीज सदा ही रहेगी जो तुम्हारे जरा आगे बढ़नेपर वही कठिनाई फिरसे पैदा कर देगी। तुमने सोचा था कि तुमने समस्याको सुलझा लिया है, पर तुम्हें उसे अभी फिर सुलझाना पड़ेगा। केवल अब वह थोड़ा वेश बदलकर तुम्हारे सामने आयगी, पर वह होगी वही समस्या।

कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनके अनुभव बड़े सुन्दर होते हैं। वे कहते हैं: "अब कार्य हो गया।" और तब सब कुछ शांत हो जाता है, धीमा पड़कर परदेके पीछे चला जाता है। और फिर एक दिन अचानक ही, एक बड़ी अप्रत्याशित वस्तु, एक बड़ी साधारण-सी वस्तु जिसमें जरा भी रस नहीं

होता उनके सामने आ जाती है और रास्ता बंद कर देती है। तब तुम रोते हो: "मेरी इस प्रगतिका क्या लाभ, यदि मुझे फिरसे शुरू करना पड़े; ऐसा क्यों हुआ? मैंने प्रयत्न किया और सफलता भी प्राप्त की, मुझे कुछ प्राप्ति हुई भी थी और अब ऐसा लगता है जैसे मैंने कुछ भी न किया हो। यह कितनी निराशाकी बात है।" इस सबका कारण यह है कि अभी भी 'मैं' मौजूद है और इस "मैं" में सहनशीलताका अभाव है।

यदि तुममें सहनशीलता है, तो तुम कहते हो: "अच्छा, आवश्यकता पड़नेपर इसे मैं दुबारा शुरू करूंगा, हजार बार भी करूंगा, दस हजार बार भी करूंगा, जरूरत होगी तो लाख बार भी, किंतु मैं पहुंचूंगा अंततक। कोई चीज भी मेरा रास्ता नहीं रोक सकेगी।"

यह बहुत आवश्यक है।

संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि हमारी इस सूचीमें समर्पणका स्थान सबसे ऊपर रहेगा। दूसरे शब्दोंमें हम यह तथ्य स्वीकार करते हैं कि पूर्णयोग करनेके लिये, भगवान्के प्रति अपना पूर्ण समर्पण करनेके लिये व्यक्तिको दृढ़ निश्चय करना चाहिये। और कोई दूसरा मार्ग नहीं है, केवल यही मार्ग है। इसके बाद ही ये पांच गुण अर्थात् मनोवैज्ञानिक पूर्णताएं आती हैं:

सच्चाई या पारदर्शिता
श्रद्धा या विश्वास
भक्ति या कृतज्ञता
अभीप्सा या साहस
सहनशीलता या अध्यवसाय

एक और प्रकारकी भी सहनशीलता है। यह निष्ठा है, निष्ठावान् बनना है। तुम एक निश्चय कर चुके हो और उसपर दृढ़ रहते हो। यह सहनशीलता है। यदि तुम उसपर दृढ़ रहोगे तो एक ऐसा क्षण आयगा जब विजय तुम्हारे हाथ लगेगी।

विजय उसीके लिये है जो अत्यधिक दृढ़ रहता है।

—श्रीमां

* * *

हमें सहना पड़ेगा। हमें मजबूत और सहनशील होना चाहिये। हमें अपनी हिम्मत, अपनी सहनशक्ति और अपने बलको कभी नहीं छोड़ना चाहिये। कुछ लोगोंका भ्रम है कि अगर हम झुक जायें तो मुसीबतोंसे बच जायेंगे। नहीं, हमें तूफानकी ओर आंखें खोलकर देखना चाहिये, और शक्ति, साहस तथा सहनशक्तिके साथ उसका सामना करना चाहिये — मांकी यही मांग है, भगवान्की यही मांग है।

—श्रीअरविंद

भारत मां

स्वाधीन भारत लकड़ी या पत्थरका टुकड़ा नहीं है जिसे तराशकर राष्ट्रकी प्रतिमा घड़ी जा सके। भारत अपने चाहनेवालोंके हृदयमें बसता है और उन्हींसे उसका निर्माण होना चाहिये। हम स्वराज्यको अपने जीवनमें कैसे ला सकते हैं? अपने अहंके विचारको त्यागकर उसकी जगह राष्ट्रके भावको बिठाकर! जैसे चैतन्य निमाई पंडित न रहकर कृष्ण बने, राधा बने और बलराम बने। इसी तरह हममेंसे हर एकको अपने पृथक् जीवनका मोह छोड़कर राष्ट्रमें जीना होगा। जैसे मुमुक्षुका मन मोक्षमें लगा रहता है उसी भांति हमारा मन राष्ट्रीय पुनर्निर्माणकी आशामें लगा रहना चाहिये। हमारा त्याग तपस्वीके त्यागकी भांति पूर्ण हो, अपनी भांके स्वाधीन और दीप्तिमान चेहरेको देखनेके लिये हमारे अंदर वही सर्वभुक् पागलपन हो जो चैतन्यके अंदर था श्रीकृष्णके चेहरेके लिये। देशके लिये हमारा बलिदान जगाई मधाई जैसा हो जिन्होंने गौरांगके संकीर्तनके लिये अपने राज्यको छोड़ दिया। मांकी वेदीपर हमारी बलि कार्थेजके उन माता-पिताकी उदारता और आनंदको लिये हुए होनी चाहिये, जो अपने बच्चोंको बिना किसी पश्चात्तापके, खुशीसे आगके द्वारा मोलोकतक पहुंचा देते थे। हम अभीतक सकुचाते हैं, अपने-आप और देशमें चुनाव करते हुए ठिठकते हैं। हम रुपयेमें एक आना तो देशको देते हैं और पंद्रह आने, अपने लिये, अपने बीबी बच्चोंके लिये, अपनी जायदाद, अपने नाम, अपनी सुरक्षा और अपने आरामके लिये रखते हैं। मां अपने-आपको देनेसे पहले सब कुछ मांगती है।

हम जिन योजनाओंके द्वारा राष्ट्रको तैयार करना चाहते हैं, अपने बलपर, औद्योगिक पुनर्निर्माण, शिक्षा और राजनीतिका पुनरुद्धार करना चाहते हैं—ये सब गौण हैं उस आंतरिक और गहरे पुनरुद्धारके आगे जिसमेंसे गुजरना सचमुच स्वतंत्र होनेके लिये अत्यंत आवश्यक है। मां हमसे योजना, कल्पना, और रीतिनीतिकी मांग नहीं करती। जब और जहां आवश्यकता होगी वह स्वयं हमसे कहीं अधिक अच्छी योजनाएं, कल्पनाएं और विधिविधान दे सकती है। वह हमसे केवल हमारे हृदय और हमारे जीवनकी मांग करती है। उससे न कुछ कम और न कुछ ज्यादा।

पुनरुद्धार सचमुच पुनर्जन्म है। और यह पुनर्जन्म बुद्धि द्वारा या भरी हुई थैलियों, नीति या नयी-नयी मशीनरीके द्वारा नहीं हो सकता। इसके लिये एक नया हृदय पानेकी जरूरत है। और यह तभी हो सकता है जब हम जो कुछ हैं या रहे हैं उस सबको अग्निमें होम कर दें और मांके अंदर फिरसे जन्म लें। हमसे आत्मत्यागकी मांग की जा रही है। मां पूछती है तुममेंसे कितने मेरे लिये जियेंगे और कितने हैं जो मेरे लिये मरेंगे?

वह उत्तरकी प्रतीक्षामें है।

* *

आज हम जिस युद्धमें लगे हुए हैं वह पुराने जमानेकी उन लड़ाइयोंके जैसा नहीं है जिनमें राजा या नेताके गिरते ही सेना भाग खड़ी होती थी। हमारी मातृभूमि ही वह पवित्र और अमर राजा है जिसका हम अनुसरण करते हैं। हमारे इस अभियानमें स्वयं सर्वशक्तिमान ही हमारे नेता हैं।...

—श्रीअरविंद

अप्रकाशित इतिहासका एक पृष्ठ :

श्रीअरविंद पांडिचेरी कैसे आये ?

सन् १९१० का साल, ३० मार्च, रातके ढाई बजेका समय। अंग्रेजी हिसाबसे ३१ मार्चके सवेरेके ढाई बजेका समय। इंजन भोंपूका शब्द सुनायी पड़ा और उसके बाद ही रेलगाड़ीकी गति धीरे-धीरे मंद होने लगी। मंदसे मंदतर फिर मंदतम होकर, अंतमें रुककर, पीछेकी ओर एक धक्का लगाकर, सामने एक पग बढ़कर रेलगाड़ी स्थिर खड़ी हो गयी। पता चल गया कि इस गाड़ीमें वेकुअम-ब्रेककी कोई झंझट नहीं है। मैं डब्बेका दरवाजा खोलकर प्लेटफार्मपर उतर पड़ा। तो यही है पांडिचेरीका रेलवे स्टेशन।

निश्चय ही उपर्युक्त पंक्तियोंको पढ़कर पाठक-पाठिकाओंके नील कमल जैसे या सफरी मछली-जैसे, कुरंगको लजानेवाले या खंजनको हरानेवाले दोनों नेत्र विस्मयसे विस्फारित हो जायेंगे। वे कौतूहलसे भरे हुए मनसे सोचेंगे, बंग-संतान तो बंबई या बर्मा जाती है, मद्रास या मलाया टापूकी यात्रा करती है, यहांतक कि लंकाद्वीपमें भी विजयसिंहके जमानेसे ही यातायात करती है—किंतु रातके ढाई बजे पांडिचेरी रेलवे स्टेशनके प्लेटफार्मपर, आखिर मामला क्या है?

असली मामलेको समझनेके लिये कुछ पहलेकी बातोंकी चर्चा करना आवश्यक है। अतः उसे ही आरंभ करता हूं।

उसी सन् १९१० की फरवरीमें—शायद महीनेके बीचोंबीच या अंतिम भागमें किसी दिनकी बात है। उस समय रातके लगभग ८ बजे होंगे। कलकत्तेके श्याम बाजार महल्लेमें श्याम-पुकुर लेनके ४ नं. के मकानमें दोतल्लेके एक कमरेमें एक बड़ी उम्रके युवकको घेरकर कुछ छोटी उम्रके युवक बैठे थे। बड़ी उम्रके उन युवकके घरका एकमात्र असबाब था एक छोटी-सी चौकी; उसीपर वह खुद बैठे थे और उनके संग दो-एक जन और युवक बैठे थे, बाकी लोग नीचे जमीनपर बैठे थे। उन बड़े युवकके सामने पड़ा था एक कागजका टुकड़ा और हाथमें थी एक पेंसिल। वह 'आटोमैटिक राईटिंग' (स्वतःलेखन) कर रहे थे और उसे ही पढ़कर सुना रहे थे। अन्य युवक उसे उत्सुकताके साथ सुन रहे थे तथा नाना प्रकारके प्रश्न करके संभवतः परलोककी आत्माओंको परेशान कर रहे थे।

इस बड़ी उम्रके युवकका नाम है श्रीयुक्त अरविन्द घोष। और अन्यान्य तरुण जो वहां विद्यमान थे उनका नाम हैं—श्री वीरेंद्रनाथ घोष, श्री सौरींद्रनाथ वसु, श्री विजयकुमार नाग, श्री हेम सेन, श्री नलिनीकांत गुप्त और स्वयं यह लेखक।

इनमेंसे सौरीन और मेरे सिवा अन्य सब लोग १९०८।९ के अलीपुर बम कांडके नामसे विख्यात मुकद्दमेके सिलसिलेमें गिरफ्तार दलमें शामिल थे। इनमेंसे कुछ लोग अन्य दूसरोंके साथ प्रमाणके अभावमें रिहा हो गये थे।

अलीपुर बमके मामलेके विषयमें विस्तारके साथ यहां कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसी शताब्दिके शुरू-शुरूमें जिन लोगोंने मातृभूमिकी स्वाधीनताका स्वप्न देखा था उनमेंसे कुछ लोगोंके अंदर आतंक-वादने जन्म लिया था। फलतः बंगाल प्रांतमें कलकत्तेको केंद्र बनाकर एक गुप्त समिति पैदा हो गयी। पुलिसने धीरे-धीरे इस गुप्त समितिके सभी कामोंका पता लगा लिया और सन् १९०८ के मई महीनेमें समितिके अधिकांश सदस्योंको कलकत्तेमें गिरफ्तार कर लिया। बम, पिस्तौल

आदि भी उसके हाथ लग गये थे। एक वर्षतक उनका विचार हुआ और १९०९ के मई महीनेमें फैसला होनेपर कुछ लोग रिहा हो गये और कुछ लोगोंको दंड मिला।

हवालातसे बाहर निकलकर अरविन्द फिरसे पूर्ण रूपसे देशके कार्यमें लग गये और 'कर्मयोगिन' और 'धर्म' नामसे एक अंग्रेजी और एक बंगला साप्ताहिक पत्र निकालने लगे। किंतु उनकी कलमका सुर कुछ बदल गया। पहले अंग्रेजी दैनिक 'वंदेमतरम्' में वह जो कुछ लिखते थे वह विशेष रूपसे राजनीतिक होता था, पर "कर्मयोगिन" और 'धर्म' के लेखोंमें एक अधिक गंभीर सुर सुनायी पड़ता है। मानो राजनीतिको उपलक्ष्य बनाकर, अंग्रेजोंकी बोधगम्य राजनीतिके एकदम बाहरी और छिछले आवरणको भेदकर भारतवर्षकी आत्मकथा—उसकी चिरंतन आत्माकी कहानी प्रकट करनेका आयोजन किया गया है। इसीसे थोड़ा-थोड़ा यह संकेत मिल जाता है कि आखिर उनके भावी जीवनका पथ किस दिशामें मुड़ने जा रहा है। राजनीतिक नेताओंके दलसे निकलकर वह मानो भारतके आत्मद्रष्टा और सत्यद्रष्टा ऋषियोंके आश्रमकी ओर अग्रसर होते जा रहे हैं।

जो हो, मैंने पहले जिस ४ नं. श्यामपुकुर लेनवाले मकानका उल्लेख किया है इसी मकानमें 'कर्मयोगिन' और 'धर्म' पत्रिकाका कार्यालय था। इसके एक भागमें छापाखाना और आफिस था और दूसरे अंशमें हम सब लोग रहते थे। यहां रहते समय हम लोग खुद ही रसोई बनाकर खाते—विशेषकर निरामिष ही बनता। अवश्य ही कोई आदर्श बनाकर निरामिष सेवन नहीं किया जाता था; बल्कि इसलिये किया जाता था कि उसे ही बनाना अधिक आसान होता था। प्रातराश खूब नियमित था, क्योंकि वह बाजारसे खरीदकर आता था; उसमें होता था —धानका लावा, नारियल और बैंगनी। हममेंसे कोई भी उन दिनों चाय-रसका रसिक नहीं बना था। परंतु दोपहरके भोजनके मामलेमें घोर अराजकताका राज्य था। उत्साह हुआ तो बस नौ दस बजेके भीतर रसोई-पानी तैयार कर खाना-पीना खतम हो जाता और जब उत्साहका अभाव होता तो उस दिन अब-तब करते-करते, एक-दूसरेके शरीरपर धक्का देते-देते प्रायः दो-तीन बजे जाकर खाना-पीना खतम होता। हेम सेन जब हम लोगोंके साथ होते तब अवश्य ही इस अनियमके राज्यमें कुछ-कुछ सुनियमकी जड़ जमी रहती। हेम सेन थे हठयोगी; शायद इसीलिये शारीरिक आलस्यको प्रश्रय न देनेका कायदा उन्हें मालूम था। किंतु आश्चर्यकी बात यह है कि रातके आहारके विषयमें मुझे इस समय कुछ भी याद नहीं; अवश्य ही हम लोग उपवास नहीं करते थे यह निश्चित है। हां, इतना याद है कि रातमें एकाध दिन हम लोग होटलमें जाकर पाश्चात्य ढंगसे भोजन किया करते थे।

उन दिनों श्रीअरविन्द कालेज स्क्वायरमें अपने मौसा 'संजीविनी'के संपादक और मालिक श्रीकृष्णकुमार मित्रके घरपर रहते थे। उस मकानमें मैंने श्रीअरविन्दको एक बार कुछ क्षणोंके लिये ही देखा था। एक बार हम लोगोंके खर्चका रुपया समाप्त हो जानेपर मैं उनसे रुपये लेने वहां गया था। सुबहके नौ-साढ़े नौ बजे मैं उस मकानपर पहुंचा। मैं जिस रास्ते ऊपरकी मंजिलपर गया और जिस कमरेमें पहुंचा उसे देखकर वहांके विषयमें मेरे मनपर यही छाप पड़ी कि यह कोई रहनेका मकान नहीं बल्कि छापेखाने तथा तत्संबंधी दफ्तरका मकान है। उस कमरेमें दो या तीन मिनट प्रतीक्षा करनेके बाद अंदरकी ओरके एक दरवाजेसे श्रीअरविन्द कमरेमें आये। वह एक ट्विलकी कमीज, धोती और चप्पल पहने थे। मेरे हाथमें रुपये रखकर, एक शब्द भी बोले बिना, वे वापस चले गये। उन्होंने कितने रुपये दिये थे यह तो अब याद नहीं, पर शायद बीस-पचीस रहे होंगे। मैं रुपये लेकर श्यामपुकुर लेनवाले मकानमें वापस आ गया।

कालेज स्क्वायरके इस मकानसे शामको चार-पांच बजेके करीब श्रीअरविन्द श्यामपुकुर लेनके मकानमें रोज आते थे। हम लोग चाय-रसके रसिक नहीं थे यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं, पर फिर भी चाय बनानेका सारा संजाम हमारे घरमें मौजूद था। श्रीअरविन्दके आते ही हम उनके

लिये चाय बना देते और ग्रे स्ट्रीटके मोड़की दुकानसे पूड़ी, आलूदम और हलवा खरीद लाते और उन्हें जलपान कराते। वे यहां कुछ देरतक पत्रिकाके कार्यमें व्यस्त रहते। उसके बाद हम लोगोंसे बातचीत करते और प्रायः आटोमैटिक राइटिंग अर्थात् स्वतःलेखन करते। स्वतःलेखनका वर्णन हम इस प्रकार कर सकते हैं :—

सर्वप्रथम, इसकी मान्यता यह है कि परलोक नामक एक ऐसा स्थान या अवस्था है जहां मृत मनुष्योंकी आत्माएं विदेह अवस्थामें निवास करती हैं और जीवित मनुष्योंमें कोई-कोई ऐसे होते हैं जो आसानीसे इस मर्त्य लोक और उस परलोकके बीच संबंध स्थापित कर सकते हैं। ऐसे ही व्यक्तियोंको माध्यम या मीडियम कहा जाता है। ऐसे माध्यमोंके शरीरको आधार बनाकर विदेह आत्माएं बातें कर सकती हैं और लिख भी सकती हैं। इसी लेखनको स्वतःलेखन या आटोमैटिक राइटिंग कहते हैं।

यह सब करते-करते रातके प्रायः नौ-साढ़े नौ बज जाते और तब श्रीअरविन्द यहांसे कालेज स्क्वायर लौट जाते। लौटते समय हम सब लोग उनके साथ ग्रे स्ट्रीटके मोड़तक जाते। वहांसे वह ट्राम पकड़ लेते। परंतु कभी-कभी उन्हें लौटनेमें बड़ी देर हो जाती, इतनी देर हो जाती कि ट्राम गाड़ी नहीं मिलती और तब एक घोड़ागाड़ी भाड़ा करके उससे वह वापस चले जाते। उस समयतक Survival of the swiftest नियमके अनुसार कलकत्तेकी सड़कोंसे घोड़ागाड़ीका अस्तित्व प्रायः विलीन नहीं हो सका था।

कलकत्तेके इस मकानमें जो लोग रहते थे उन्हें मैंने श्रीअरविन्दको सेजदा कहकर उल्लेख करते हुए सुना है। यह स्पष्ट ही मालूम होता है कि बारीन्द्रके सेजदा उनके अनुचरोंके लिये—विशेषकर तरुण लोगोंके लिये—सेजदा हो गये थे। इसके बाद अरविंदके नाममें तीन बार अर्थात् जिस नामसे हम लोग उनका उल्लेख करते हैं उस नाममें, परिवर्तन हुए। एक समय हम उनको 'कत्ता'[1] कहकर उनका उल्लेख करते। किंतु यह शब्द भाव-भंगी में नितांत ही 'प्राचीन' था, अतएव अंततक टिक नहीं सकता था। उसके बाद नाम पड़ा ए.जी.। किंतु कहना न होगा कि इसमें 'बीफ-बियर' की गंध थी। अतएव यह भी स्थायी होनेकी योग्यतासे रहित था। सबसे अंतमें उनका नाम पड़ा 'श्रीअरविंद'। आज उनका यह नाम केवल घरकी सीमामें ही आबद्ध नहीं है, बाहर भी फैल गया है। श्रीअरविंद नाम होनेसे पहले दो-एक आदमी उन्हें 'अरो' भी कहते, परंतु उसमें मुझे बाह्य और मिथ्या अंतरंगतासे लबालब नाटकपनका आभास मिलता था। पर जो हो, अब हम अपनी असली कहानीपर आयें।

इसी चार नंबर श्यामपुकुर लेनके मकानमें सन् १९१० के फरवरी मासमें एक दिन दो तल्लेके एक कमरेमें बैठकर प्रायः रातके आठ बजेके समय अरविंद आटोमैटिक राइटिंग कर रहे थे और कुछ तरुण वयस्क लोगोंको पढ़कर सुना रहे थे। आत्माओंका लेख समझकर यदि कोई यह समझ बैठे कि पूराका पूरा व्यापार नितांत गुरु-गंभीर ही होगा तो यह भूल ही होगी। आत्माओंमें सबकी सब गुरुगंभीर नहीं होतीं — उनके अंदर भी कुछ लोग हंसी ठट्ठा और कौतुक पसंद करनेवाले होते हैं। अतएव उस आटोमैटिक राइटिंगकी बैठक कभी-कभी तो खूब गंभीर वातावरणसे स्तब्ध हो जाती और कभी-कभी हास्य-कौतुकसे उच्छ्वसित हो उठती। इस तरह जब आत्माओंकी लेखनी पूरे दम चल रही थी तब उस कमरेमें राम बाबूने प्रवेश किया।

राम बाबूका पूरा नाम था श्रीयुक्त रामचंद्र मजुमदार। वह भी युवक थे — उम्र तीससे नीचे

---

[1] 'कत्ता' 'कर्त्ता' शब्दका अपभ्रंश है और इसका अर्थ है मालिक। परिवारके सबसे बड़े सदस्यको 'कर्त्ता' या 'कत्ता' कहकर पुकारनेकी प्रथा बंगालमें प्रचलित है।

ही होगी — गोरा रंग, मुंहपर दाढ़ी-मूंछ — अ-वर्धित नहीं, स-कर्तित अर्थात् अंग्रेजीमें जिसे कहते हैं well-trimmed (अच्छे ढंगसे कटी-छंटी), सिरके बाल, कपड़ेलत्ते सदा इस तरह सजे-संवारे होते मानो वह बराबर ही व्याह करने जा रहे हों। जहांतक मुझे याद है मैंने कभी उन्हें बिखरे बालों और मैले कपड़ोंमें नहीं देखा। उनके ललाटपर एक कटा-सा दाग था, संभवतः वह इस वातका चिह्न था कि बचपनमें वह बड़े शांत-शिष्ट थे। वह कलकत्तेके ही वाशिन्दे थे और उसी मुहल्लेके थे। श्यामपुकुर स्ट्रीटसे उत्तरकी ओर एक गलीमें वह रहते थे। वह 'कर्मयोगिन' और 'धर्म' पत्रिकाके सहकारी थे।

रामबाबूने कमरेमें प्रवेश कर कुछ उत्कंठित स्वरमें श्रीअरविंदको बताया कि उनके नाम फिरसे वारंट निकला है। विश्वसनीय खबर है, किसी उच्चपदस्थ पुलिस कर्मचारीने बताया है। घटना अप्रत्याशित नहीं थी। कुछ समयसे ही लोगोंमें कानाफूसी हो रही थी कि सरकार अरविंदको अपनी कोठरीमें बंद किये बिना नहीं छोड़ेगी। तथापि खबर सुनते ही कमरेका वातावरण एक क्षणमें ही परिवर्तित हो गया। जहां कुछ ही क्षण पूर्व हास्य-कौतुकका उच्छ्वास चल रहा था वहां छा गयी एक घन-घोर स्तब्धता। मानो प्रखर आलोकके स्थानमें हठात् अंधकार हो गया हो। हम लोग उत्कंठित होकर मन-ही-मन प्रतीक्षा करने लगे। अरविंद कुछ क्षणोंतक न जाने क्या सोचते रहे — केवल कुछ क्षणोंतक ही — उसके बाद उन्होंने कहा —

"मैं चन्दननगर जाऊंगा।"

रामबाबूने कहा — "अभी ?"

अरविंदने उत्तर दिया — "अभी — इसी क्षण।"[1]

अरविंद उठ खड़े हुए और रामबाबूके साथ घरसे निकल पड़े। उन लोगोंका अनुसरण करते हुए उनके कुछ बाद निकले बीरेन और बीरेनके कुछ बाद उनका अनुसरण करता हुआ निकला मैं। सबसे आगे थे श्रीअरविंद और रामबाबू, उन्हें अपने दृष्टिपथमें रखते हुए उनसे कुछ दूर थे बीरेन और बीरेनको अपने दृष्टिपथमें रखकर कुछ पीछे था मैं। इसी तरह एक "शोभायात्रा" नहीं बल्कि "मूकयात्रा" तैयार हो गयी जिसे अंग्रेजीमें silent procession कहते हैं। चार व्यक्तियोंकी यह "मूकयात्रा" स्थूल जगत्से असंलग्न पर सूक्ष्म लोकसे सूक्ष्म सूत्रोंद्वारा ग्रथित होकर उत्तरकी ओर चलने लगी।

अरविंद जबतक इस श्यामपुकुरके मकानमें रहते तबतक वह मकान खुफिया पुलिसके द्वारा नजर-बंद ही रहता था। कुछ दिनों पहले उस पुलिस कर्मचारीकी श्रवणेन्द्रियकी उत्सुकता दूर करनेके लिये हमने अपने स्वतःलेखनकी बैठकको रास्तेपरके कमरेसे अंदरके कमरेमें हटा लिया था। परंतु जिस दिन अरविंद रामबाबूके साथ घरसे निकले और उनके कुछ देर बाद हम दोनों निकले उस दिन पुलिस गुप्तचरका वहां कोई नामोनिशानतक न था। बचपनमें मैंने एक बार पौराणिक नाटक "सुरथ उद्धार" देखा था। याद है, सुरथ राजाका विश्वस्त सेनापति पुरञ्जय सिंह षड्यंत्रके फलस्वरूप कारागारमें डाल दिया गया था। जब कारागारसे उसका उद्धार करनेका समय आया तब देवताओंने कारागार-के प्रहरियोंकी आंखोंपर अधिकार जमानेके लिये निद्रादेवीको भेजा। प्रहरियोंने अवश्य ही सात-आठ बार उबासियां लीं, तीन-चार बार आखें मलीं और फिर भी अपनेको रोक न सके, वहीं भूमिपर लोट गये। वैसे ही उस दिन देवताओंने तृष्णा देवीको उस गुप्तचरका कण्ठ अधिकृत करनेके लिये भेजा था या नहीं, और उस तृष्णाके निवारणके लिये यह गुप्तचर हवा खाने या उससे भी कुछ स्थूल वस्तु-

---

[1] पाठक यह न समझें कि रामबाबू और अरविंदने ठीक इन्हीं शब्दोंका प्रयोग किया था। मैं तो यहां बस यही बता रहा हूं कि उनके बीच किस आशयकी बात हुई थी और क्या घटना घटी थी। —लेखक

का पान करनेके लिये कहीं गया था नहीं यह मैं नहीं जानता। हो सकता है कि वह हररोज ही अपनी बुद्धिकी चतुराईके द्वारा कर्त्तव्य-बोधको नियंत्रित करता हो। अरविंद उस घरमें आते थे लगभग चार-पांच बजे, चले जाते थे नौके बाद, अतः इस बीचका सुदीर्घ समय उस छोटी-सी गलीमें रहकर मक्खियां मारना निर्बुद्धिता नहीं तो और क्या है? इस समय कहीं अन्यत्र जाकर आनंद लूटनेमें मशगूल रहनेसे मन प्रसन्न हो सकता है। इसीलिये शायद जब वह चार-पांच बजे अरविंदको इस मकानमें प्रवेश करते हुए देख लेता तब मन-ही-मन "ठीक है" कहकर चला जाता और मनकी प्रसन्नता प्राप्त करके नौसे पहले ही वापस आ जाता और अपने कर्तव्यरूपी नावकी पतवार संभाल लेता। कुछ भी हो, कोई भी कारण क्यों न हो, ठीक उस समय पुलिसका वह खुफिया आदमी वहां नहीं था। हेडक्वार्टरमें उस दिन उसकी क्या दशा हुई होगी यह जाननेकी बड़ी उत्सुकता रही।

परंतु पुलिसका आदमी उस दिन यदि वहां उपस्थित भी होता तो भी विशेष कुछ सुविधा न कर पाता। पहले ही कह चुका हूं कि रामबाबू उसी अंचलके अधिवासी थे, इसीलिये वहांकी अली-गलीसे उनका परिचित होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने अरविंदको साथ लेकर एक ऐसी बस्ती में प्रवेश किया जो मेरे लिये एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक वस्तु थी। मैं कलकत्तेमें अभी हाल ही में आया था। मेरी आंखोंसे देहाती दृष्टि अभी भी दूर नहीं हुई थी। अबतक इस राजधानीमें बड़ी-बड़ी सड़कोंके किनारे अट्टालिकाओंको सभ्य रूपमें सिर ऊंचा करके खड़ा देखा है। परंतु बुद्धिमान् कहलानेवाले मनुष्य नामक प्राणियोंके निवासस्थानोंकी समष्टि इस प्रकार भूल-भुलैयाका रूप धारण कर सकती है यह कल्पना इससे पहले कभी स्वप्नमें भी मेरे मनमें नहीं उठी थी। उस दिन संभाव्य अनुसरणकारी किसी गुप्तचर पुलिसको विफल करनेके सिवा और कोई स्वास्थ्यकर कार्य उसके द्वारा साधित नहीं हो सकता था — यह निश्चित है। एकदम पास-पास सटे हुए मकान, एकके बाद एक अनेक गलियां, पग-पगपर मोड़। रास्ता एकदम जनशून्य। उस रात आठ बजे ही कहीं कोई शोरगुल नहीं। उन दिनों अवश्य रेडियोका आविष्कार नहीं हुआ था, परंतु ग्रामोफ़ोनका प्रचार तो था ही, अथवा कुमारी लड़कियोंको सुपात्रके हाथमें समर्पित करनेके हेतु कुछ-न-कुछ गाना सिखानेका रिवाज तो था न? परंतु उस समय कहींसे भी ग्रामोफोनका स्वर या हारमोनियमके सा-रे-ग-म की आवाज सुनायी नहीं पड़ती थी। उस घनी निस्तब्धताके बीच उन असंख्य गलियों और मोड़ोंसे भरी उस बस्तीके निर्जन रास्तेपर पुलिस तो पुलिस, उसके दादा-परदादातककी ऐसी क्षमता नहीं कि किसी मनुष्यका अनुसरण करके उसे अपनी दृष्टिमें रख सके। इसीलिये कह रहा था कि यदि उस दिन गुप्तचर विभागका वह आदमी उपस्थित भी होता तो भी कोई सुविधा न कर पाता। परंतु उसे इतना तो ज्ञात हो ही जाता कि अरविंद उसी दिन घरसे निकलकर कालेज स्क्वायर न लौट उसकी ठीक विपरीत दिशामें एक भूल-भूलैया जैसी बस्तीके भीतरसे होकर कहीं अन्यत्र चले गये। और यदि कलकत्तेके खुफिया विभागमें 'शार्लक् होम्स' या 'पोयरो' के जैसा कोई कर्मचारी होता तो वह उसी अति क्षीण सूत्रको पकड़कर ही शायद किसी तरह चन्दननगर पहुंच जाता और तब शायद यह कहानी लिखनेकी जरूरत ही न होती।

खैर, प्रायः १५-२० मिनट चलकर हम गंगाके तटपर पहुंच गये। पहले ही कहा है कि मैं कलकत्तेमें हाल ही में आया था; अतः कह नहीं सकता कि गंगाके उस घाटका क्या नाम था। हो सकता है वह बागबाजार घाट रहा हो। उस घाटपर पहुंचकर रामबाबूने हांक लगायी, "क्यों रे मल्लाह! सवारी लेगा?" उस निस्तब्ध वातावरणमें उनके उच्चारित शब्दोंका स्वर आज भी कानोंमें बजता-सा लगता है। उसके बाद मल्लाह और रामबाबूमें बहुत ही धीमे स्वरमें कुछ देरतक बातचीत हुई। बातचीतके अंतमें अरविंद उस नावपर चढ़ गये। उसके बाद बीरेन और मैं भी चढ़ गया। रामबाबूने बिदा ली। नाव खुल गयी और हम लोग भागीरथीके वक्षपर बहने लगे।

नदीके बीचमें जानेपर पता चला कि वह शुक्ल पक्ष था। चारों ओर ज्योत्स्ना फैली थी, हास्योज्वल चंदकिरणोंके गिरनेसे तरंगमालाएं झिलमिल कर रही थीं। मालूम नहीं उस दिन क्या तिथि थी, शायद कविकी भाषामें वह दिन रहा हो ––

"शुक्ला एकादशी
निद्राहारा शशी।"

कहां गयी पुलिस, कहां है नगर, कहां है द्वेष, हिंसा, संग्राम, स्वाधीनता-पराधीनताका प्रश्न? मानो हम मानव-सभ्यताके भीषण जठरसे निकलकर प्रकृति माताके प्रशांत मुक्ति-प्रांगणमें प्रविष्ट हो गये हों।

हमारी नाव चलने लगी। मल्लाहोंने क्या सोचा था, कह नहीं सकता। ज्योत्स्नाभरी रात, प्रफुल्लिता प्रकृति, उत्फुल्लिता भागीरथी। ऐसी रातमें उन्होंने निश्चय ही अनेक बाबू लोगोंको नौका-विहार कराया होगा, परंतु उस रात वे तीन व्यक्ति –– नावके छज्जेके नीचे नावकी लकड़ीपर अंधकारमें आकर बैठ गये, इतने चुपचाप कि उसके बाद उनके अस्तित्वका कुछ प्रमाण ही नहीं रहा–– न तो हारमोनियमका सा, रे, ग, म था, न किसी मधुर कण्ठकी स्वर-लहरी थी और न किसी नृत्य-प्रवीणाके नूपुरोंकी झंकार। यदि मल्लाह दार्शनिक या मनस्तात्त्विक होते, तो निश्चय ही इस घटनाकी गवेषणा शुरू कर देते और अंतमें वे किस सत्यपर उपनीत होते, कौन जाने? किंतु सौभाग्यकी बात यह है कि न तो वे दार्शनिक थे और न मनस्तात्त्विक, अतः निर्विघ्न नौंका चलने लगी। रास्तेमें और कोई विशेष घटना नहीं घटी; केवल एक बार नदीके चरमें नाव अटक गयी। उस समय अवश्य ही मनमें इस प्रकारकी भावना उदित हुई थी कि –– "हे मां गंगे! अंतमें समय देखकर तू यहां इस प्रकार रेती बनकर पड़ रही मां?" परंतु गंगा मैयाने अधिक दुःख नहीं दिया। मल्लाहोंके साथ बीरेन और मैंने उतरकर आठ-दस बार धक्का दिया और नाव रेतसे निकल आयी। गंगाने फिर उसे अटकानेकी कोई चेष्टा नहीं की –– अच्छी मां हमारी!

रातभर नावमें चलकर दूसरे दिन भोरको कुछ अंधकार रहते ही हम लोग चन्दननगर पहुंच गये। श्रीअरविंदने नावसे ही बीरेनको चन्दननगरके एक प्रसिद्ध नागरिक श्री चारुचन्द्र रायके पास भेजा। परंतु राय महाशयने कहला भेजा कि वे अरविंदकी किसी प्रकार सहायता करनेमें असमर्थ हैं। उन्होंने बीरेनके द्वारा एक शुभ परामर्श भी भेजा था। उन्होंने अरविंदको फ्रांस चले जानेके लिये कहा था। लगता है शायद चारु रायने सोचा होगा कि अरविंद ज्योंही अपनी नावके मल्लाहसे कहेंगे त्योंही दो-ढाई घंटेमें बंगोपसागर, अरबसागर, लोहित सागर और भूमध्यसागरको पारकर उन्हें नीस, तूलों, या मार्सेई में पहुंचा देगा। परंतु अरविंदको शायद कलकत्तेके बागबाजार घाटसे संग्रहीत इस छोटी-सी नौकाके मल्लाहके ऐसे सामर्थ्यपर कुछ संदेह रहा होगा, अतः वे फ्रांस नहीं गये, जहां थे वहीं बने रहे। परंतु उन्हें अधिक समयतक वहां ठहरना न पड़ा। श्रीयुक्त मोतीलाल राय अरविंदके आनेकी सूचना पाकर उन्हें साग्रह अपने घर ले गये।

(सुरेशचंद्र चक्रवर्तीकी 'स्मृतिकथा' से)

* भारतका एक चमकता सितारा *

शतेषु जायते शूरः

वीर आदमी कम ही मिलते हैं, और अगर मिल भी जायं तो वे इतने उच्च चरित्रके नहीं होते। अगर हम ज्योतीन्द्रनाथ मुखर्जीका नाम लें तो तरह-तरहके विचार हमारे मनमें आते हैं, नाम अपरिचित-सा लगता है। बच्चे और बड़े सब इन्हें बाघा ज्योतिनके नामसे ज्यादा अच्छी तरह पहचानते हैं। जब वे छोटे ही थे तब उन्होंने सिर्फ एक "दार्जिलिंग कटार" से एक बड़े बाघको मारा था। इस घटनासे हम उनकी शक्ति ही नहीं उनकी शूरता और बहादुरीका भी परिचय पाते हैं। जो लोग उनको पहचानते थे उन्होंने कहा है कि उनमें एक दैवी शक्ति थी, जिसके कारण वह साधारण मनुष्योंसे जरा ऊंचे रहा करते थे।

बाघको मारनेके बाद ज्योतिन बुरी तरह घायल हो चुका था और उसकी स्थिति सचमुच गंभीर थी। तब भी वह रास्तेमें गीताके श्लोक बोलता जा रहा था और साथ ही साथियोंको खुश रखनेके लिये हंसी-मजाक करता जाता था। उसका घुटना तो बिलकुल चूर-चूर हो चुका था, लेकिन उसकी क्या परवाह? डाक्टरने कहा, पांव काटना पड़ेगा। ज्योतिनको वह बात पसंद न आयी। उसने पंगु होकर जीनेसे मरना ज्यादा पसंद किया। आखिर चिकित्सा की गयी और कुछ ही महीनोंमें वह फिरसे सब कसरतें करने लग गया, सवारी, कूद-फांद, लाठी, गदकामें भाग लेने लगा मानों पांवमें कभी कुछ हुआ ही न था।

ज्योतिन बहुत उदाराशय था। वह थोड़ी बहुत चिकित्सा भी जानता था, और जब समय मिलता तब वह रोगियोंकी सेवा करता और उनको सांत्वना देकर सुखी करता था। असहाय लोगोंको वह गोरे साहिबोंके कहरसे बचाता था।

ज्योतीन्द्रनाथ मुखर्जीने सन् १८७९ दिसंबरमें एक अच्छे खाते-पीते ब्राह्मण परिवारमें जन्म लिया था। उसके पिता, उमेशचंद्र एक बहुत बड़े पंडित थे और उसकी माता शरत-शशि देवी एक कवयित्री तथा गुणसंपन्न औरत थीं। जब ज्योतिन पांच ही सालका था तब उसके पिता रामको प्यारे हो गये, और ज्योतिन अपनी बहिनके साथ मामाके घर बड़ा हुआ। शुरूसे ही उसमें एक महापुरुषके लक्षण थे। वह पढ़ाईमें बहुत तेज और खेलकूदमें बड़ा चुस्त था। उसने खेल-कूद, कसरत और युद्ध-कलाकी शिक्षा एक पुराने पठान सैनिक फीरोजसे पायी थी। अपनी चतुरतासे उसने सबको चकित कर दिया था। उसमें बल भी वैसा ही था। एक दिन रास्ते भरमें आतंक फैलाते हुए एक पागल घोड़ेको उसने अपने हाथोंसे पकड़कर शांत कर दिया। बड़े-बड़े लोग भी इस दृश्यको देखकर चकित रह गये।

कालेजके दिनोंमें भगिनी निवेदितासे उसकी भेंट हुई, और कुछ ही दिनोंमें स्वामी विवेकानंदसे भी परिचित हो गया। दोनोंमें गाढ़ मित्रता पैदा हो गयी और विवेकानंदके उपदेशोंसे ज्योतिनके जीवनमें बहुत उन्नति हुई।

कालेजसे निकलकर ही ज्योतिन बंगाल सरकारके सचिवालयमें स्टेनोग्राफर बन गये। उस कामसे उनको दार्जिलिंग और कलकत्ता जाना पड़ता था। वे वहां जाते वहीं उनका एक दल बन जाता। वे उन लोगोंको गीताके श्लोक सुनाते और ऐसी बातें करते थे जिनसे उनमें अपने देशके लिये बहुत गहरा प्रेम पैदा हो जाय। उनमें ऐसा जोश था जिससे लोग उनके पास खिंचे चले आते थे।

जब वे २७ सालके हुए तब उनका ब्याह इन्दुबाला देवीके साथ हो गया। उनके बच्चे आशा-लता, तेजेन और वीरेन अब भी हमारे बीचमें हैं।

सन् १९०३ में ज्योतिनने श्रीअरविन्दसे पहली भेंट की। तबसे श्रीअरविन्दके पांडिचेरी आनेतक (यानी १९१०), उन दोनोंमें एक गहरी मित्रता रही, और उन्होंने बहुतसे काम श्रीअरविन्दसे सलाह करके किये।

एक दिन ज्योतिनके चेले चित्तप्रियने उनसे पूछा, "दादा, क्या हम भारतमाताकी रक्षा करते हुए भगवान्को प्राप्त कर सकते हैं?" ज्योतिनने बड़ी गंभीरतासे कहा, "अगर ऐसा न होता तो मैं आखिर इस पथपर चलता ही क्यों?" श्रीअरविन्दसे मिलनेके पहले ही ज्योतिनने भारतकी स्वतंत्रताके लिये योजनाएं बना रखी थीं। श्रीअरविन्दसे मिलनेके बाद उनमें एक नया जीवन आ गया। उन्होंने मानिकतल्लामें एक "बम" का कारखाना खोला था। अंग्रेजोंको इस कारखानेकी खबर तुरंत ही मिल गयी और ज्योतिनके बहुतसे मित्र पकड़े गये। उन मित्रोंमेंसे ललित चक्रवर्ती नामक एक लड़का भी था। लड़का बहुत ही कायर था। अंग्रेजोंने उसे थोड़ा डराया, धमकाया तो उसने सारी बातें उगल दीं, और यह भी कहा कि ज्योतिन उनका मुख्य नेता था। इतनी खबर मिल जानेके बाद भी अंग्रेजोंके लिये ज्योतिनको कैद करना बहुत ही मुश्किल था। आखिर वह पकड़में आ ही गये। जेलमें अंग्रेज अफसरोंने उनको बहुत लोभ दिखाया। कहा, "ज्योतीन्द्रनाथ, तुम हमारे पक्षमें आ जाओ तो तुम्हें बहुत-सी सुविधाएं मिलेंगी, बड़े-बड़े मकान, बहुत सा धन और सुन्दर-सुन्दर औरतें, सब तुम्हारे ही होंगे।" ज्योतिनको यह सुनकर बहुत क्रोध आया और उन्होंने उत्तर देते हुए इतने जोरसे मेजपर मुक्का मारा कि मेज वहीं टूट गयी।

ज्योतिनने भारतकी स्वाधीनताके लिये बहुतसे कष्ट सहे, और अपना पूरा जीवन ही खतरेमें डाल रखा। उन्होंने अपना सब कुछ भारतमाताके लिये स्वाहा कर दिया था। उस समय सब लोग उनको 'साधु बाबा' कहकर पुकारते थे। उन्होंने एक आश्रम भी खोला था जहां तरह-तरहके लोग उनसे मिलने आते थे। वे खूब लोकप्रिय बन चुके थे।

उनके जीवनकी कुछ घटनाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। एक दिन, जब सूर्य पहाड़ोंके पीछे छिप रहा था, तब ज्योतिन अपने एक मित्रके साथ जंगलमें गये। रात्रि अपना आंचल फैला रही थी, और एक भव्य शांति सब जगह छायी हुई थी। उस मनोरम वातावरणमें ज्योतिन गहरे ध्यानमें चले गये। ध्यानके समय उन्हें अपनी आंखोंसे साक्षात् कृष्ण दिखायी दिये। वे तो बहुत आनंदित हुए ही, उनके मित्रकी देह भी हर्षसे पुलकित हो उठी।

ज्योतिन अपने खतरनाक कामोंमें फिरसे लग गये और पुलिस भी लगी पीछा करने। पुलिसने सब जगह घोषणा कर दी कि जो भी ज्योतिन या उनके मित्रोंको पकड़ेगा, उसे बहुत बड़ा इनाम मिलेगा। ज्योतिनका जीवन अब और भी विपत्तिमय हो गया। एक रात जब जोरसे वर्षा हो रही थी, ज्योतिन अपने मित्र मणीन्द्रके घर गये। वहांपर भी पुलिस पहुंच चुकी थी। मणीन्द्रको बहुत यातना देकर उससे ज्योतिनका पता जाननेके पुलिसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। चारों ओर निगरानी हो रही थी। ऐसी अवस्थामें न जाने कैसे पुलिसकी आंखोंमें धूल झोंक ज्योतीन्द्र उनके घर आ पहुंचे। मणीन्द्रको एक तरकीब सूझी, उसने ज्योतीन्द्रसे कहा, "दादा, अब भी समय है। तुम अगर मेधासानी पर्वतके जंगलमेंसे होकर जाओ तो तुम कुछ ही देरमें खतरेसे बाहर हो जाओगे। दया करके, हमारे लिये नहीं भारतमाताके लिये ऐसा करो।" ज्योतिनने पलायन करनेसे इनकार किया और अगले दिन भोर होते ही, वे अपने चार मित्रोंके साथ बालासोरकी ओर चल पड़े। वर्षा होनेसे नदीमें बाढ़ आ गयी थी और कोई भी माझी उन्हें उस पार ले जानेको तैयार नहीं था। अचानक एक माझी चिल्लाया "अरे भाई, ये तो डाकू हैं। ये तो वे ही चार हैं जिन्हें पुलिस ढूंढ़

रही है, पकड़ो, पकड़ो—हजार रुपयेका इनाम मिलेगा।" बस, इतना सुनते ही, सब लगे उनके पीछे भागने!

ज्योतिन और उनके मित्र, पांच दिनतक खाये, पीये, सोये और विश्राम किये बगैर भागते रहे। आखिर रास्तेपर एक मिठाईकी दुकान मिली और वे एक रुपयेका चूड़ा खरीदकर खाने बैठे। उनके पास एक रुपया न था इसलिये उन्होंने दुकानदारको दसका नोट पकड़ा दिया, इससे दुकानदारको शंका हो गयी कि यही वह पंछी हैं जिसे पकड़नेसे एक मोटी रकम इनाममें मिलेगी। उसने इन्हें पकड़ना चाहा। फिरसे वही दौड़ आरंभ हो गयी। जब वे शाहपुरके पास पहुंचे तो पुलिस सामनेसे आती हुई दिखायी दी, अब बेचारे क्या करते? सामने अंग्रेज, पीछे ग्रामके लोग और आसपास नदी? वे नदीमें कूद पड़े और तैरते हुए दूसरे पार जंगलमें जा पहुंचे। उन पांचोंमेंसे एक बीमार था। दीमकों की बांवियोंसे घिरी एक पहाड़ीपर ज्योतीन्द्रका दुर्ग बन गया। (९ सितंबर १९१५) चारों ओर विपत्ति और बीचमें ज्योतीन्द्र अपने साथियोंके साथ। भयानक स्थिति थी। अबतक अंग्रेजी सेना वहां पहुंच गयी थी, और ज्योतिनका दल अपनी देह और प्राणके बलसे उनपर गोलियां चलाता जा रहा था। अंग्रेज सिपाही मक्खियोंकी तरह गिर-गिरकर मर रहे थे। उसी कुसमयमें ज्योतिनकी बंदूककी गोलियां खत्म हो गयीं। वह और कारतूस भरने लगे तो उनके हाथमें एक गोली आ लगी। परंतु उन्होंने कोई परवाह न की। एक दोस्त मर चुका था, और उसकी देह अपनी गोदमें लिये ज्योतिन लड़ते ही गये। अंतमें ज्योतिनके पेट और बगलमें गोलियां लगीं और उष्ण रक्तके फुआरे छूटने लगे। घायल मित्रोंने धोती फाड़-फाड़कर उनके घाव बांधनेकी कोशिश की मगर वे अपने-आप इतने क्षत-विक्षत थे कि सचमुच कुछ करना मुश्किल था। ज्योतिनने अपनी पूर्णाहुति दे दी थी। अब वह अंग्रेजके हाथोंमें थे। प्राण कंठमें आ रहे थे। रणोन्मत्त घायल सिंहने अंतको आते हुए देख लिया था। उसने अपने वफादार मित्रोंसे कहा, "भाइयों, तुमने अभी यमका कालकूट नहीं चखा है, लेकिन चखनेसे पहले तुम समस्त भारतवासियोंसे कह देना कि हम डाकू नहीं थे। हमारे इस अफसल कामके बारेमें उन्हें बता देना ताकि आनेवाली संतति इसे जारी रख सके।" यह सुनकर अंग्रेज दांतों तले उंगली दबाये रह गये। वे ज्योतीन्द्रनाथको हस्पताल ले गये और वहां आपरेशन किया गया। आपरेशनसे पहले ज्योतीन्द्रने अंग्रेज अफसरसे कहा, मेरे साथी अभी बच्चे हैं। इन्हें तंग न करना। इन्होंने जो कुछ किया, मेरे कहनेसे किया। ये निर्दोष हैं। कुख्यात चार्ल्स टेगर्ट नामक पुलिस अफसरने पूछा, "मुखर्जी, मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूं?" ज्योतिनने हंसकर कहा, "धन्यवाद चार्ल्स। अब खेल खत्म। अच्छा, विदा।" और यह दीपक बुझ गया।(१० सितंबर १९१५)

ऐसी देशभक्ति और ऐसी शूरता कम ही लोगोंमें दिखायी देती है। उन्होंने सिर्फ पैंतीस वर्षकी आयु पायी, लेकिन उतने ही वर्षोंमें उन्होंने हजारों आदमियोंको स्वाधीनताके लिये लड़नेकी प्रेरणा दी। जो देश ऐसे वीरोंको जन्म दे सकता है उसकी दुर्गति नहीं हो सकती।

मीना

* * *

हम उसकी निहाईपर रखा हुआ लोहा हैं। हमारे ऊपर जो चोटें पड़ रही हैं वे हमें नष्ट करनेके लिये नहीं, हमें एक नया रूप देनेके लिये हैं।

—श्रीअरविंद

कड़ी परीक्षा

श्री चित्त

हिन्दुस्तानमें हमेशा गुरु अपने शिष्योंको दीक्षा देनेसे पहले उनकी कड़ी परीक्षा लिया करते थे। यह प्रथा केवल हमारे देशमें ही नहीं आसपासके उन सभी देशोंमें थी जहां भारतीय संस्कृति और धर्मका प्रचार हुआ था। हिन्दुस्तान और तिब्बतकी सरहदपर एक आदमी रहता था, उसके घर सब तरहकी सुख-संपदा थी। एक दिन बिना किसी बीमारीके उसका देहांत हो गया। उसके सब नातेदारों-रिश्तेदारोंने मिलकर चील-कौओंकी तरह उसकी जायदादपर हमला बोल दिया और हड्डी-बोटीतक नोंचकर ले गये। उसकी विधवा असहाय अवस्थामें पड़ी थी। उससे अपने-आप तो कुछ होता न था पर उसने अपने बेटेको दूधकी जगह रिश्तेदारोंके प्रति घृणा पिलानी शुरू की। वह बार-बार कहा करती थी, बेटा, जिन लोगोंने तुझे एकदम खुक्ख कर दिया उनको बिल्कुल भस्म न कर दिया तो तू मेरा बेटा नहीं। धीरे-धीरे बालककी घृणाका घड़ा भरता गया। उसने मारण, उच्चाटन आदि विद्यायें सीखीं और बापका बदला लेनेके लिये सब रिश्तेदारोंको मौतके घाट उतार दिया।

सब रिश्तेदार तो मर गये परंतु अब? रह-रहकर यह प्रश्न उसके दिलको कचोटता था। आखिर एक दिन उसने निश्चय किया कि वह किसी गुरुकी तलाशमें निकल पड़ेगा जो उसे शांति दे सके। चलते-चलते वह तिब्बतमें जा पहुंचा। वहां एक प्रसिद्ध महात्मा थे। वह उनका शिष्य बनना चाहता था। इधर महात्माने स्वप्न देखा कि कोई महान् आत्मा उसका शिष्य बननेके लिये आ रही है। उसकी भली-भांति देख-भाल करना उसका कर्तव्य है। अब क्या था, दोनों ही एक-दूसरेके लिये उतावले हो उठे। शिष्यके आते ही गुरुने ऐसे दिखाया मानों उन्हें उसके साथ बात करनेकी भी फुर्सत नहीं है। शिष्य, बड़ी देरतक खुशामद करता रहा, पर गुरुके सामने एक न चली। आखिर गुरुजी बोले, अच्छा, मेरे यहां तुम्हारे रहनेके लिये जगह नहीं है और न ही तुम्हारे लिये खाना ही है। अगर तुम अपनी व्यवस्था अपने-आप कर सको तो रह सकते हो और अगर चाहो तो सेवाका अवसर पा सकते हो। शिष्यकी मुरझायी कली खिल उठी। उसने गुरुको प्रणाम किया और शर्त मान ली। गुरुने कहा, तुम मेरी सेवा करना चाहते हो तो मेरे लिये एक घर बना दो। लेकिन घर अच्छा, बड़ा और सुन्दर होना चाहिये। उसके बाद देखूंगा कि तुम किस योग्य हो। शिष्यने गुरुकी बातको सिर आंखोंपर रखा और घर बनाना शुरू कर दिया। लेकिन बेचारा अकेली जान वहां निर्जन पहाड़पर खाना जुटाता था, मकानके लिये सामग्री इकट्ठी करता था और फिर घर बनाता था। कई वर्षोंके बाद मकान बनकर तैयार हो गया। उसका दिल बल्लियों उछलने लगा। वह गुरुके यहां शुभ समाचार लेकर पहुंचा। गुरु आये, नाक-भौं सिकोड़कर बोले, छिः यह क्या? यह मकान है या कुल्हिया। मुझे ऐसा मकान नहीं चाहिये। तोड़ डालो इसे और दूसरा बनाओ। शिष्यने बात सहर्ष स्वीकार कर ली। उसने अपने हाथसे बनाये हुए घरको बड़ी बेदर्दीसे तोड़ फेंका और उसकी जगह एक नया, अधिक बड़ा और सुन्दर घर बना लिया और फिर गुरुको बुलाया। गुरुने घर देखकर फिर वही पहलेकी-सी बात कही और बने-बनाये घरको ढाकर एक नया घर बनानेका हुक्म दिया। यही क्रम आठ बार दोहराया गया। विद्यार्थीने एकसे एक अच्छे आठ मकान बनाये और फिर अपने ही हाथोंसे उनको ढा दिया। गुरुने नवां मकान शुरू करनेकी आज्ञा दी।

गुरु-पत्नी अपने पतिके अजीब व्यवहारसे बहुत खीझ उठीं। उन्होंने शिष्यको अपने पास बुलाया और कहा, तुम्हारे गुरुको न जाने क्या हो गया है। ऐसे तो तुम कुछ भी न कर पाओगे। इनके एक बड़े ही अच्छे शिष्य हैं जो साधनामें इनकी टक्करके ही होंगे। मैं तुम्हें उनके लिये परिचय-पत्र दे दूंगी। तुम उनके पास जाओ, वहां तुम्हें दीक्षा मिल जायगी। तुम्हारे गुरु तो न जाने कबतक ऐसे ही टरकाते रहेंगे। बात शिष्यकी समझमें आ गयी! वह गुरु-पत्नीका पत्र लेकर उस गुरुभाईके यहां जा पहुंचा। इधर गुरुजीको भी सारी बातका पता लग गया पर वे कुछ बोले नहीं। शिष्य अपने गुरुभाईके यहां पहुंचा। गुरु-पत्नीका पत्र देखते ही उसने इसका खूब आदर-सत्कार किया और उसे तुरंत दीक्षा दे दी। उसने तो यही समझा था कि वह गुरुजीके आदेशानुसार काम कर रहा है। काफी दिन बीत गये, पर शिष्यकी साधनामें कोई उन्नति नहीं हुई।

और समय बीता। गुरुने अपने प्रिय शिष्यको एक संदेश भेजा कि मुझे तुम्हारी जरूरत है। तुम अपना सब कुछ लेकर सीधे चले आओ। कुछ दिन पहले मेरे यहांसे एक बेहूदा शिष्य भी तुम्हारे यहां गया है, उसे भी अपने साथ लेते आना। गुरुकी आज्ञा पाते ही शिष्यने अपना सब कुछ समेट लिया और गुरुकी कुटियाकी राह ली। उसके पास एक लंगड़ा मेमना था, उसने सोचा, अब इस लंगड़े मेमनेको लेकर पहाड़ोंपर चढ़ना तो मेरे बसका है नहीं, इसके न होनेसे क्या फर्क पड़ जायगा। यह सोचकर उसने मेमनेको वहीं छोड़ दिया। कई दिनोंका रास्ता तय करके सब लोग गुरुकी कुटियाके पास जा पहुंचे। गुरुने सारी मंडलीपर एक नजर डाली और बोले, "सब कुछ ले आये, वहां कुछ छोड़ा तो नहीं?" शिष्यने कहा, "महाराज, एक लंगड़े मेमनेके सिवा और सब कुछ यहां मौजूद है।" गुरुने उत्तर दिया, "मैंने तो सब कुछ लानेको कहा था। तुम्हारी अपनी संपत्ति तो है नहीं, तुम्हारे पास जो कुछ है वह मेरा है, तुम्हें उसमेंसे कुछ छोड़नेका अधिकार किसने दिया?" शिष्य सुनकर पानी-पानी हो गया और उल्टे पैरों लौट पड़ा। वह 'बेहूदा' शिष्य भी उसके पीछे-पीछे हो लिया। काफी दूरतक जानेके बाद छोटे शिष्यने कहा, "अब नहीं चला जाता भैया! मैं तो यहीं प्राण दे दूंगा। मैंने अपना पूरा प्रयास कर लिया, फिर गुरु मेरी ओर देखते ही नहीं, उन्होंने मुझे 'बेहूदा' की पदवी दे दी, फिर भला मैं क्यों जीवित रहूं?" यह कहता हुआ वह वहीं बैठ गया।

दोनों थोड़ी देर बैठे होंगे कि गुरुजीके यहांसे हंकारा आया। दोनों वापिस जा पहुंचे। गुरुजीके साथ गुरुपत्नी भी मौजूद थीं। गुरुजीने दोनों शिष्योंका स्वागत किया और बोले, "तुम लोग सोचते हो कि मैंने इस छोटे शिष्यके साथ बहुत ही कठोरतापूर्ण व्यवहार किया है। इन्होंने भी यही समझ कर खीझकर उसे मेरे यहांसे मुझे बताये बिना ही चलता कर दिया। पर सुनो, यह शिष्य मुझे बहुत ही अधिक प्रिय है। इसके आनेसे पहले ही मुझे इसके आनेकी सूचना मिली थी और मुझसे कहा गया था कि यह बहुत ही विलक्षण है। अगर मैं इसे ठीक तरह रख सका तो इसके बुद्ध बननेकी संभावना है। इसके यहां आते ही मैंने पूछा था कि तुम धन-संपदा और वैभव आदि चाहते हो या आध्यात्मिक प्रगति। इसने कहा था, दोनों। मैंने इसे बताया कि अभी वह समझ नहीं आया है जब मनुष्य अंदर और बाहर दोनों ही क्षेत्रोंमें विजय प्राप्त कर सके। मैं देख सकता हूं कि एक दिन वह समय भी आयेगा। लेकिन तबतक हमें एक ही मार्गको अपनाना होगा। तुम निश्चित रूपसे अपना रास्ता चुन लो। इसने कहा कि मैं अध्यात्म-मार्गको ही अपनाना चाहूंगा। मैंने इसे आशीर्वाद दिया और इसे उस मार्गके योग्य बनानेके प्रयत्नमें लग गया। मुझे भला मकानकी क्या जरूरत थी? इससे मैंने आठ बार मकान बनवाया और प्रत्येक बार तुड़वा दिया—यह इसकी श्रद्धा, इसके धैर्य, अध्यवसाय आदिकी परीक्षा थी। अगर यह और एक पग ऊपर चढ़ लेता तो बुद्ध पद पानेके योग्य हो जाता, पर इसकी श्रद्धा डगमगा गयी, इसका अध्यव-

साय हार गया, और इसमें सहायता दी मेरी अपनी पत्नीने। खैर, मेरे भाग्यमें यही था। लेकिन यह जहांतक पहुंच पाया है वह भी कम नहीं है। आज मेरे शरीरत्यागका समय आ गया है। मैं इसे अपने स्थानपर छोड़े जाता हूं। मेरा बड़ा शिष्य इसकी सब तरह सहायता करेगा। तुम दोनों मिलकर अपनी गुरु-पत्नीको अच्छी तरहसे रखना।

"चलो, सब मिलकर बोलो, बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि...।"

गौरैयाके बच्चे

आज दो छोटी गोरैयोंकी कहानी सुनिये। कोई तीन सप्ताह पहलेकी बात है, हमारे फलके कमरेमें गौरैयाके दो छोटे-छोटे बच्चे अपने घोंसलेसे गिर पड़े। उनकी हालत खराब थी। उन असहाय बच्चोंको उनके मां-बाप भी न उठा सकते थे। तब मुझे बुलाया गया।

मैं वहां पहुंचा। बच्चे मेरे सामने पड़े थे। उनका रंग एकदम लाल था। अभी उनके शरीर पंखोंसे खाली थे। उनकी चोंचें पीली, चौड़ी और बहुत नरम थीं, आकारमें तो शायद आधे सिरके बराबर। शायद यह कहना ठीक न होगा कि उनके शरीरपर पंख थे ही नहीं क्योंकि पंखोंके स्थानपर छोटे-छोटे कांटे-से उभर आये थे जो लुंजेके हाथकी याद दिलाते थे और पीठके बीचमें भी छोटे-छोटे सफेद निशान थे जो पंखोंके आरंभकी सूचना दे रहे थे। उनके पेट अस्वाभाविक रूपसे बड़े और फूले हुए थे। अभी उन्हें अपने पैरोंका उपयोग करना न आता था इसलिये बेचारे बच्चे असहाय अवस्थामें भूखे पड़े थे।

गिलहरीके बच्चे शुरूसे ही काफी सुघड़ होते हैं और उनके शरीरपर मुलायम बालोंका प्रारंभ हो चुका होता है। वे दिनभर सोते हैं। पर गौरैयाके नटखट बच्चे खाली रातको ही सोते हैं और सारे दिन खानेके लिये शोर मचाते रहते हैं। जब कोई भी उनके पास आता है तो वे झट मुंह खोलकर खाना मांगने लग जाते हैं। उनका मुंह इतना अधिक खुलता है कि उनकी जीभके पीछे सांसकी नली भी साफ दिखायी देती है। गौरैयाकी श्वास-नली बड़ी विचित्र होती है। वह चिड़ियाके मुंहके सामने, जीभके ठीक नीचे होती है। जब चिड़िया कुछ खाती है तो उसकी जीभ श्वासनलीको बंद कर देती है। मुझे ठीक तो नहीं मालूम पर मेरा ख्याल है कि चोंचके ऊपरी हिस्सेमें जो छेद होते हैं वे शायद सीधे श्वास-नलीमें ही खुलते हैं। गरमीकी ऋतुमें कौओंको हांफते हुए देखकर ऐसा लगता है कि पक्षी मुखसे भी सांस ले सकते हैं।

लोग कहते हैं कि मैं बड़ी क्रूरतासे चिड़ियाके बच्चोंके गलेमें खाना ठूंसता हूं। लेकिन यह जरूरी है, क्योंकि वे बच्चे अपनी जीभका उपयोग करना नहीं जानते, इसलिये चोंचमेंसे गलेमें डालना उनके लिये संभव नहीं होता। उनकी मां भी इसी तरह उनके गलेतक खाना पहुंचा देती है। छोटे बच्चोंको बहुत भूख लगती है। अगर घंटेमें चार बार नहीं तो कम-से-कम दो बार तो उन्हें खिलाना ही पड़ता है। उनकी चमड़ी लगभग पारदर्शक-सी होती है इसलिये जब उनके खानेकी नलीसे दूध या कोई और चीज गुजरती है तो हम उसे गलेमेंसे जाकर पेटमें इकट्ठा होते हुए देख सकते हैं।

इन बच्चोंके विकासके पहले लक्षण दिखायी देते हैं परोंमें। परोंमें सबसे पहले कडे डैने दिखायी देते

हैं, फिर धीरे-धीरे बाल आने लगते हैं। वे बहुत तेजीसे बढ़ते हैं। दिनमें दो मिलीमीटर तो बढ़ ही जाते हैं। कुछ ही दिनोंमें पर रंगनेके बुरुश जैसा आकार ले लेते हैं। लगभग दस दिनोंमें पर सारे शरीरको भली-भांति ढक लेते हैं और सिर भी बालोंमें छिप जाता है। कानोंके छेद भी बालोंसे ढक जाते हैं और फूला हुआ पेट छोटा हो जाता है। अभीतक चोंच बड़ी और नरम होती है। अब वह सख्त और नोकीली-लंबी हो जाती है। अब उनके गलेमें खाना पहुंचाना कठिन हो जाता है। सौभाग्यवश अब उन्हें पहलेकी अपेक्षा कम खानेकी जरूरत होती है। अब घंटेमें एक बार खाना काफी हो जाता है। अब उनको खाना निगलनेमें जीभकी सहायता लेनी ही पड़ती है। लेकिन यह कोई आसान काम नहीं है। यह विकासक्रम भी एक शिक्षा है। चिड़ियाको निगलनेके लिये बार-बार असफल प्रयास करने पड़ते हैं। जीभकी ठीक गति शुरू होनेसे पहले चिड़िया शोर मचा-मचाकर अपनी कठिनाईकी घोषणा करती है। फिर भी बड़े धीरजके साथ प्रयास करती जाती है।

अभीतक हमने चिड़ियाके बच्चोंको केवल परोंसे ढके हुए भस्मासुरकी भूखवाले एक थैलेके रूपमें ही देखा है। पर उनकी कई और बातें विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। गौरैयाके बच्चे दिनमें जितनी बार खाते हैं उससे आधी बार (शुरू-शुरूमें दिनमें शायद बीस बार) बीट करते हैं। ये बच्चे कभी अपने घोंसलेको गंदा नहीं करते। उन्हें जब हाजत होती है तो घोंसलेके किनारे जाकर बाहरकी ओर चिरक आते हैं। प्रकृति इस तरहसे उन्हें चलनेकी पहली कसरत करवाती है।

कोई दो चिड़ियां एक-जैसी नहीं होतीं। हमारे इन दो बच्चोंकी आदतोंमें और उनके विकासमें भी काफी अंतर था। यहांपर मेरा आशय उनके स्वास्थ्य या उनके उड़नेकी क्षमतासे नहीं है। इन दोनोंमें छोटा भाई किम बहुत बार खानेसे इंकार कर देता था। परिणामस्वरूप उसका शरीर भी दूसरेकी अपेक्षा छोटा रह गया। बड़ा भाई काफी रौब दिखाता था और कई बार उसे तंग भी करता था। बड़ेका पेट तो मानों अंधा कुंआ था। वह हमेशा औरके लिये मांग करता रहता था और कई बार छोटेके भागपर भी हाथ साफ कर डालता था। उसीने पहले पंख फड़फड़ाना शुरू किया। यह उड़नेसे पहले पंखोंको मजबूत बनानेके लिये कसरत थी। शुरूमें पहले तो खाना और खानेके लिये शोर मचाना ही उनका सारा कार्यक्रम था। छोटेके पैरोंमें कुछ खराबी थी। शायद ऊपरसे गिरनेके कारण चोट आ गयी होगी। इन सब विभिन्नताओंके होते हुए दोनोंमें काफी प्रेम मालूम होता था।

इन्हीं दिनोंकी एक मजेदार घटना सुनिये। बड़ा भाई अच्छी तरह दो बार नाश्ता करके उड़नेके लिये पर तौला करता था, और थोड़ी दूरतक उड़ा करता था। छोटा घोंसलेके किनारे बैठकर इधर-उधर देखता था। वह साधारणतया उड़ता न था। एक दिन विद्यालयके पहले घंटेमें बड़ा भाई जिम उड़कर एक अल्मारीपर जा बैठा और दुर्भाग्यवश अल्मारी और दीवारके बीचकी जगहमें गिर गया। उस कमरेमें पढ़ाई चल रही थी अतः मुझे साढ़े नौ बजेतक प्रतीक्षा करनी पड़ी जब कि विद्यालयमें २० मिनटकी छुट्टी होती है।

मैंने सोचा बड़ेको खोजनेसे पहले छोटेको एक बार खाना खिला दूं। वह बहुत भूखा था पर शायद उसे भी बड़ेकी चिंता थी, इसलिये उसने खानेसे इंकार कर दिया। मैंने उसे अपनी अंगुलिपर बिठा लिया और अल्मारीके पास जा पहुंचा। इसके चिल्लानेका कोई उत्तर न मिला। मैं इधर-उधर खोजता रहा। छोटा बच्चा बराबर चिल्लाता जा रहा था। आखिर हम पासवाले कमरेमें पहुंचे। वहां एक कुर्सीके नीचेसे किमको बड़ी धीमी आवाजमें उत्तर मिला। हमारा खोया हुआ मुसाफिर वहां था। वह इतना भयभीत था कि उससे हिलते-डुलते और आवाज करते न बनता था।

तीन सप्ताहके बाद अब वे नन्हें-मुन्ने छोटी-छोटी गौरैया बन गये। उन्हें शायद पता लग गया था कि मैं उनका प्रदर्शन करनेवाला हूं। इसलिये आज उन्होंने खाना लेना अस्वीकार कर दिया। वे अपनी चोंचसे उठाकर खाना खा रहे थ। आपकी दृष्टिमें यह कोई बात ही नहीं है। पर मेरे लिये

यह उतना ही बड़ा कारनामा है जितना छोटे बच्चोंका लड़खड़ाते हुए चलनेका प्रयास करना। लगभग एक सप्ताह हुआ उन्हें पता चल गया था कि उनके एक चोंच है। वे उसे तेज करनेका प्रयास भी कर रहे थे। उसे बार-बार घोंसलेपर घिसनेकी कोशिश करते थे। पर यह भी एक कला है और इसे अनुभवके विद्यालयमें सीखना पड़ता है। शुरू-शुरूमें उनकी हरकतें बहुत भद्दी होती थीं पर अब वे उस कलामें पारंगतसे हो गये हैं। अब उन्होंने अपनी जीभके चम्मचका उपयोग करना भी सीख लिया है। अब मुझे खाना उनकी खानेकी नलीमें नहीं घुसाना पड़ता। उनकी शिक्षामें अगला कदम है अपनी चोंचको ठीक निशानेपर लगाना और फिर उससे भोजन उठाकर निगल जाना। सुननेसे लगता है कि यह तो बहुत आसान है पर वास्तवमें इतना आसान नहीं है। गौरैया एक साथ दोनों आंखोंसे नहीं देख सकती। मानो उसकी स्थिति वैसी है जैसी हमारी नाकके स्थानपर एक ऊंची दीवार खड़ी हो। तब हमें दोनों आंखोंसे देखनेके लिये गरदन हिलानी पड़ेगी। अभी इन चिड़ियोंका जीवन शुरू ही हुआ है, अभी उन्हें देखनेकी कला नहीं आती और एक आंखसे देखनेसे दूरीका ठीक अंदाज नहीं हो पाता, इसीलिये कई बार किम और जिमको खानेका प्रयास करते हुए देखकर हंसी आ जाती है।

प्रकृति खानेकी तलाशमें इधर-उधर भटकाकर चिड़ियोंके पंखोंसे कसरत करवाती है। उनके लिये उड़नेकी अपेक्षा खाना अधिक कठिन मालूम होता है।

— रिचर्ड

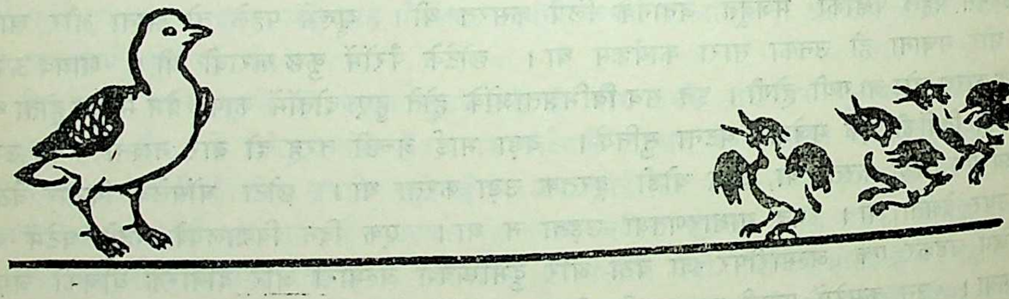

प्रतिशोध

(१)

वीरप्रसू बुन्देल-भूमिमें दतिया एक राज्य था, जिसमें सेंवडा नामक एक ग्राम है जो सदासे दतिया-के आखेटप्रिय राजाओंकी प्रमुख बैठक रहा है। सेंवडेसे अति सुहावनी काली-सिंधु नामक नदी बहती है जिसके दोनों ओरके सघन वन मृगराजोंकी गर्जनसे गूंजते रहते हैं और जहां आये दिन नर-राजोंका वनराजोंसे मुकाविला रहता है। कदाचित् ऐसे ही स्थलोंके कारण ठाकुरोंके नाममें सिंह लगानेकी प्रथा चली हो।

आजसे लगभग पचास वर्ष पहलेकी बात है। इसी सेंवडे ग्राममें बुन्देला ठाकुरका एक छोटा-सा घराना था। घर वहुत मुखतसिर-सा था—केवल दो ही व्यक्तियोंका। उनमेंसे एक बालक था और एक उसकी मां। उस समय बालककी आयु केवल बारह सालकी थी। उसका नाम था कल्याणसिंह। बालक था ठेठ वुन्देलखंडी ठाटका : घुटन्नादार परधनिया, उसके ऊपर मूंगिया रंगका अलफा, सिरपर मूंगिया रंगका साफा बांधता था। साफेकी उसकी अपनी तर्ज थी। जबतक साफेमें वह तर्ज न आ जाय तवतक कई बार बांधना खोलना चलता रहता था। कंधेमें चमड़ेका परतला, परतलेमें एक बचकानी तलवार। इसी ठाटसे मदरसेमें पढ़ने भी जाता था। उसका यह ठाट घरसे बाहर जमा ही रहता था।

एक दिन मां घरेलू काममें व्यस्त थी। रसोईका जुगाड़ लगा रही थी। बाजारसे कुछ सौदा मंगाना चाहती थी; उसने एक छोटासा थैला और पैसे लाकर लड़केके सामने रख दिये और जल्दीसे सौदा ले आनेको कहकर अपने काममें लग गयी। तकता (आईना) सामने रखकर बालक साफा फिर बांधने लगा। एक बार, दो बार, तीन बार पर तब भी साफा ठीक न बंध सका। उसने फिर खोल डाला और चौथी बार बांधनेमें लग गया। मांको जल्दी पड़ी थी। बार-बार साफा बांधने लगा, साफा मनका न आया, खोलकर बांधने-खोलनेपर मां कुछ चिढ़ गयी और उसने ताव में आकर कह डाला—"राजा खां टैयाको बड़ो जोम है—ठाठमें पूरी ठकुरायस समायी है। ठकुरायसको तो बड़ो घमंड है पर बापके बदलेकी खबर तनक अ नइंया।" लड़केकी भौंहें तन गयीं, अधबंधे साफामें ही उसने मांसे पूछा—"कक्को जू! बापको बदलो कैसो ?" कक्को जू भीतर-ही-भीतर सकपका गयीं। कुछ नरम होकर उन्होंने कहा—"कुछ नहीं बेटा, मोय कह आओ। जाव जल्दी सौदा ले आव।"

कल्याण सिंह ने कहा, "कक्को जू! जबतक बापके बदलेको भेद न बता देहौ तबतक कुछ न कर हों। अन्न पानी भी ग्रहण न कर हों।"

कक्को जू बैठकर रोने लगीं।

(२)

कल्याण सिंहके पिताका नाम था पूरन जू। यह घरके बड़े गरीब थे। थे सीध-सादे और सच्चे ठाकुर। सेंवडेके महाजनोंके यह बड़े विश्वासपात्र थे। जिस समयकी यह बात है उस समय देहाती

मंडियोंमें बैंकोंका प्रचलन नहीं था। व्यापारी लोग एक दूसरी मंडियोंमें पैसेका भुगतान आदमियोंके द्वारा कराया करते थे। ऐसे लोगोंको सहना कहा जाता था। ठाकुर पूरन जू सहनागिरीका ही काम किया करते थे। उनके पास एक छोटा सा टट्टू था जिसपर चढ़कर वह सेंवडेसे दूर-दूर दूसरी मंडियोंमें महाजनोंके दो-दो हजार रुपये वसनीमें भरकर वसनी कमरमें बांधकर ले जाया करते थे। सेंवडेके चारों तरफ बड़े घनघोर जंगल थे। इन्हीं जंगलोंके रास्तेसे उन्हें जाना-आना पड़ता था। पूरन जू थे बड़े निधड़क। साथमें बस एक तिनबंधिया रफल लिये रहते थे।

सेंवडेमें एक मुहल्ला खंगारोंका था। उस मुहल्लेमें चतुरा नामक एक खंगार रहता था। यह आदमी स्वभावसे बड़ा उद्धत और साहसी था। पूरन जू ठाकुरके धंधेपर इसकी नजर गड़ी रहती थी। पर महाजन उसपर विश्वास न करते थे। इससे भीतर-भीतर चतुरा पूरन जूका शत्रु बन रहा था। कभी-कभी यह आदमी बटमारी भी कर बैठता था। जनतामें इसका थोड़ा-बहुत आतंक भी छाया हुआ था। शरीरसे भी यह हट्टा-कट्टा था—सूरत इसकी भयावनी-सी थी।

एक दिन पूरन जू आठ सौ रुपये लेकर अपने टट्टूपर दूसरे गांव जा रहे थे। चतुरा खंगार जंगलमें छिपा रहा। बीच जंगलमें पहुंचनेपर चतुराने एक झुटमुटके पीछेसे पूरन जूपर अपनी बंदूक दाग दी। पूरन जू लुढक गये। टट्टू भाग खड़ा हुआ। पूरन जूकी कमरसे चतुराने बसनी खोल ली और उनकी लाशको एक गड्ढेमें फेंक दिया। गांवके महाजनोंमें दो-तीन दिनतक बड़ी सनसनी रही। अधिकतर यही सोचते थे—ठाकुरके साथ धोखा हो गया।

यही सब सोचते थे कि आठ सौ दतियासाही रुपयोंपर पूरन जूकी नीयत नहीं डिग सकती थी। वह तो प्रायः दो-दो हजारतक ले जाया करते थे।

दो-तीन दिनके बाद जब अस्तव्यस्त बलेंचाके साथ खाली टट्टू घरके दरवाजेपर आ खड़ा हुआ तब निश्चय हुआ कि पूरन जू मार डाले गये। पुलिसकी तफीशसे पूरन जूकी लाश तो मिल गयी पर पुलिसको मारनेवालेका प्रमाण न मिल सका। जनतामें फैल गया कि पूरन जूको चतुरा खंगार ही ने मारा है।

बेटेकी जिदपर मांने यह रहस्य उसको बता दिया।

(३)

गांवके एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण पूरन जूके बड़े पक्के मित्र थे। साधारणतया वे तिवारीजी कहलाते थे। वे घरके भी खूब संपन्न थे। देखनेमें बड़े रोबीले और बातके धनी। वे एक खूबसूरत घोड़ी रखे हुए थे। घोड़ीपर चढ़कर ही वह कहीं आया-जाया करते थे। पूरन जूके मर जानेके बाद उन्होंने नियम-सा बना लिया था कि दिनमें एक बार उनके घर जरूर हो आया करते थे। किसीकी मजाल जो उस घरकी तरफ टेढ़ी नजर करके देख सके।

घोड़ीपर बैठकर आज जब वह पूरन जूके घर पहुंचे तो राजा हुलैयाको—पूरन जूकी स्त्रीका यह ससुरालका नाम था—बुरी तरह रोता पाया।

वे दरवाजेपर ही ठिठक गये। घोड़ीपर चढ़े-चढ़े ही उन्होंने पूछा, "राजा हुलैया! का बात है, काऊने कछू कह डालो है?" टेढ़ा मुंह करके राजा हुलैयाने उत्तर दिया—"ददावन् साहब, मोसें किसीने कछू नहीं कहो। मोखा ही आज लड़कासे गुस्सामें कह आओ कि ठकुरायसको बड़ो घमंड है, उतनी बापके बदलेकी खबर नहीं। सो लड़का ताव खींच गओ और बाजार भी चलो गओ। उनको स्वभाव आप जानतई हो। मोखां डर लगत कि आज वह कछू कर न बैठे।"

इतनी सुनकर तिवारीजीने कुछ चिंतित होकर घोड़ी बाजारकी तरफ बढ़ा दी।

"नारायन, पछांह देखो, कक्का जू आ रहे हैं, घुड़ियाकी टापोंकी आवाज सुनायी परत है," कल्याण सिंहने अपने साथीसे कहा।

"राजा भैया, येई कुलियामें लौट परो"—साथीने सलाह दी। दोनों बच्चे पासवाली कुलियामें लौट गये।

बच्चे थोड़ी ही दूर चल पाये थे कि तिवारी कक्का जू अपनी घोड़ीको बढ़ाते हुए पीछेसे आ पहुंचे। दोनों बच्चे सहमकर खड़े रह गये।

"कल्याण, गैल छोड़, कुलिया काये पकड़ लई; का बात है?"

डबडबाई आंखोंसे तिवारीजीकी तरफ ताकते हुए कल्याणसिंहने कहा—"कक्का जू! आज बाप-को बदलो लेन जा रओ तों। चतुरा खंगारको आज बिना मारे न छोड़ हों।"

तिवारीजीने यथाशक्ति कल्याण सिंहको उसके संकल्पसे मोड़नेकी बड़ी चेष्टा की, परंतु वह सफल न हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि ठाकुरका वीर भाव अदम्य रूपसे जाग्रत् हो उठा है, जिसे दबाया या मोड़ा नहीं जा सकता। तब उन्होंने कल्याण सिंहसे पूछा—

"बेटा, तुमने उनको देखो है, तुम चीनत जानत हो?" "कक्का जू, पता लगई जैहै"—कल्याण सिंहने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया।

"अच्छा, तो चलो हम दिखायें देत"—तिवारीजीने घोड़ीकी बाग मोड़ दी। दोनों बच्चे उनके पीछे हो लिये।

* *

बाजारमें एक दुकानके सामने तिवारीजीने अपनी घोड़ी खड़ी कर दी और कल्याण सिंहको दुकानके भीतर बैठाल दिया। यहीं उसका साथी नारायण सोंनी भी बैठ गया।

लगभग चार बजे शामका समय हुआ। हाट भर चुकी थी। तभी एक तरफसे चतुरा खंगार आता दिखायी दिया। हाथमें लोहेकी सांग, पीठपर गेंडेकी ढाल, बगलमें परतलेसे लटकती तलवार। बड़ी-बड़ी मूंछ, चेहरेपर चेचकके गहरे दाग, बड़ी-बड़ी लाल आंखें, चौड़ा वक्षस्थल, मूंगिया रंगवा कुरता पहिने, घुटन्नेदार गुलाबी धोती, कमरमें गाढ़ेकी मूंगिया चादरकी फेंट।

तिवारीजीने इशारेसे कल्याण सिंहको बता दिया—"यह है चला खंगार देख लो।" अपने परम मित्र पूरन जूका चित्र तिवारीजीकी आंखोंके आगे नाच उठा जिसने तिवारीजीके अंदर आठ वर्षसे दबी हुई ज्वालाको उद्दीप्त कर दिया।

कल्याण सिंहकी आंखोंमें बिजली-सी कौंध गयी। उसका चेहरा तमतमा उठा, इसके पहले कि तिवारीजी कुछ कह सुन सकें, वह लपककर एक क्षणमें सड़कपर चतुरा खंगारके सामने जा पहुंचा। कड़ककर कल्याणने चतुरासे पूछा, "तुमई हमारे बापको बंदूककी गोलीसे मार डालो हो, तुमई आव चतुरे खंगार?"

चतुरेका चेहरा बिगड़ गया। उसने तीखी निगाहसे लड़केकी तरफ देखते हुए डांटकर कहा—"हट सामनेसे, कौन तेरा बाप, मैं क्या जानूं?"

दोनों हाथोंसे अपनी बचकानी तलवार पकड़कर मय म्यानके भर जोर कल्याण सिंहने चतुरेके पैरोंपर ठोंक दी। घुटनोंसे दोनों पैर अलग हो गये, चतुरा खंगार जमीनपर लोटने लगा। कल्याण सिंहकी तलवारके भी दो टुकड़े हो गये, उसके हाथोंमें ठूंठी तलवार रह गयी।

इधर चतुरेने कल्याणपर हुंकार भरते हुए सांगकी हूल तानी ही थी कि तिवारीजीकी तलवारका

वार चतुरेके कंधेपर जा पड़ा—दांत पीसते हुए तिवारीजीके मुंहसे इतना ही निकला, "सारे कुलको ही नाश करें देत।" तलवार कंधेसे कमरकी खुटीपर जा उतरी। चतुरेके दो ढोंग हो गये। कल्याण बाल-बाल बच गया।

बाजारमें भगदड़ मच गयी। कल्याण सिंहको घोड़ीपर अपने आगे बैठालकर तिवारीजीने घोड़ीको घरकी तरफ बढ़ा दिया।

* *

रिपोर्ट पाकर पुलिस मौकेपर पहुंची। जांच-पड़ताल हुई। पुलिसके थानेदारने तिवारीजी और कल्याण सिंहको गिरफ्तार करना चाहा। पर तिवारीका संगठन देखकर थानेदारका 'साहस न हुआ। कायदेसे विशेष आदेशके लिये रिपोर्ट महाराजा साहबके पास भेजी गयी।

दूसरे दिन तिवारीजी स्वयम् कल्याण सिंहको साथमें लेकर महाराजा साहबकी सेवामें जा पहुंचे। महाराजाके सामने तिवारीजीने अपनी तलवार रख दी और पूरा किस्सा महाराजासे निवेदन कर दिया। किस तरह पूरन जूको चतुरा खंगारने जंगलमें मार डाला था और किस प्रकार उसके लड़के कल्याण सिंहने उससे अपने बापका बदला चुकाया और किस प्रकार अपने मित्रके नन्हें-से बालककी जान बचानेके वास्ते उन्होंने चतुरेका काम तमाम कर दिया।

महाराजा उस तेजस्वी बालकको देखकर मुग्ध हो गये। कल्याण सिंहने टूटी हुई बचकानी तलवार महाराजाके सामने रख दी और झुककर उनका मुजरा किया।

"कल्याण, तुम्हारी तलवार टूट गयी", मुस्कराते हुए महाराजने कहा।

"जी हुजूर! इसने बापको बदलो चुकवा दओ और मोरी कक्को जूको हृदय ठंडो कर दओ।"

खुश होकर महाराजने कल्याणको एक अच्छी तलवारके साथ सिरोपाव भेंट किया। तिवारीजीको भी शिरोपाव दिया गया।

पुलिसको मामला खतम करनेका आदेश दे दिया गया।[1]

—अजित सिंह

[1] नोट : अलफा—बुन्देलखंडमें कुरताको कहते हैं। तकता—कहते हैं आइनेको।
टैया—तानाकी भाषामें टैया साफाको कहते हैं।
ठाकुरोंमें मांको प्रायः 'कक्का जू' कहा जाता है।
खंगार—एक जाति विशेष है।
दतिया राजका अपना सिक्का था जिसे दतियासाही कहते थे।

प्रभुदेव–

अल्लम प्रभु

—श्री अम्बाशंकर

बात बारहवीं शताब्दीकी है। उत्तर भारतमें मुसलमानोंका बोलबाला था। वहांके बहुतसे धार्मिक हिन्दू अपना घर-द्वार छोड़कर दक्षिणमें डेरा डाल रहे थे। इन लोगोंकी और तमिलनाडसे आयी हुई भक्तिधाराकी सहायतासे कर्नाटकमें वीर शैव पंथका जीर्णोद्धार शुरू हुआ। जनतामें जागृति आने लगी और भगवान्‌की कृपासे उनका काम करनेके लिये कर्नाटकमें बहुतसे महात्माओं और 'शिव-शरणों'ने जन्म लिया। हम उनमेंसे शिवके वाहन नन्दीके अवतार भक्तिभंडारी वसवेश्वर और पार्वतीके सात्त्विक अंशके मानव-रूप अक्क महादेवीका कुछ परिचय पिछले अंकोंमें पा चुके हैं। आज हम इनमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी अल्लम प्रभुका परिचय प्राप्त करेंगे। लोग इन्हें भगवान् शिवका साक्षात् अवतार मानते हैं।

एक दिन अचानक बनवासी मधुकेश्वर देवालयके सामने बड़े ही मधुर स्वरमें मादल बजने लगा। एक नवयुवक बड़ी ही एकाग्रताके साथ मादल बजा रहा था। बहुतसे लोग सुननेके लिये इकट्ठे हो गये। कुछ श्रोताओंकी समाधि लग गयी और कुछ सब कुछ भूलकर बड़े आनंदके साथ शिव-नृत्य करने लगे। उसी समय वहांके राजा ममकार और रानी मोहिनी देवीकी बेटी राजकुमारी माया मधुकेश्वरकी पूजा करने आयी। राजकुमारी मादलकी आवाज सुनते ही बेहोश होकर गिर पड़ी। कुछ देर बाद जब होश आया तो उसने देखा कि युवक वहांसे जा रहा है। राजकुमारी उसके पीछे दौड़ी और उसके पैरोंपर गिरकर राजभवनमें पदार्पण करनेके लिये प्रार्थना करने लगी। युवक मान गया। सारी जनता मंत्रमुग्ध खड़ी थी। उन्होंने सुन रखा था कि राजकुमारी साधारण लड़की नहीं, पार्वतीकी मायाका अवतार है। राजगुरुने यह भी कहा था कि स्वयं भगवान् मधुकेश्वर (शिव) ही इसका वरण करेंगे। लोगोंको विश्वास हो गया कि यह युवक ही वह अवतार है जो बळ्ळिगांवमें पैदा हुआ था। वह अपना बाल्यकाल वहीं बिताकर लोक-कल्याणके लिये घरसे चल पड़ा था। यही युवक अल्लम प्रभु या प्रभुदेवके नामसे विख्यात है। उन्हें पता था कि अपना काम पूरा करनेसे पहले उन्हें मायाकी परीक्षामें उत्तीर्ण होना होगा। मायाने इन्हें अपने साथ बांधनेकी पूरी कोशिश की, कुछ समयके बाद प्रभुने ऐसा व्यवहार किया मानों उनकी हार हो गयी। एक दिन अचानक प्रभु राजमहलको छोड़कर जंगलकी ओर चल दिये। माया भी सब कुछ छोड़कर उनके पीछे हो ली। राजा रानी और अन्य पुरवासी भी उनके पीछे चले परंतु कोई भी इन्हें पकड़ न पाया। लोग जंगलमें भटक-भटककर इतना थक गये कि शिवका नाम जपते-जपते उन्होंने इधर-उधर गिरना शुरू कर दिया। प्रभुदेवने यह अवस्था देखी तो दयार्द्र होकर खड़े हो गये और सबको दर्शन दिया। माया उनके वचनोंसे हार गयी और वहांसे सीधी कैलाशधाम सिधारी। हम पहले देख चुके हैं कि पार्वतीके सात्विक अंशने महादेवीके रूपमें अवतरण किया और आगे चलकर शिवानुभवं मण्डपमें प्रभुसे ज्ञान और शिवशरणोंसे प्रेमभक्ति पाकर महावैरागिनी अक्क महादेवी बनीं।

यहांसे शिवतत्त्वका बोध देते हुए प्रभु एक सुन्दर उपवनमें आये। उसका मालिक गोगैया भक्ति-विभोर होकर शिवपूजन कर रहा था। प्रभुदेवने कहा, इतना ही काफी नहीं, भक्तिके साथ ज्ञान भी जरूरी है। यह कहकर उसे ज्ञानके लिये वरदान दिया और आगे चले। रास्तेमें प्रभुदेवने देखा कि शिवभक्त मुक्ता अक्का अपने भाई अजगण्णके देहांतपर शोकसंत्रस्त बैठी थी। प्रभुदेवने कहा,

भक्तोंको चिंता दुःख आदि संकट नहीं सताते। उन्हें मायामोह शोभा नहीं देते। तुम्हारा भाई सामान्य मनुष्य नहीं, भगवद्भक्त था, उसके लिये रोना ठीक नहीं, उसके लिये प्रार्थना करो।

इसके बाद प्रभु प्रसिद्ध सिद्ध रामेश्वरके कर्मक्षेत्रमें गये। वह स्थान आज भी शोलापुरके नामसे एक कार्य-व्यस्त नगरी बना हुआ है। योगीने और चाहे कुछ भी प्राप्त कर लिया हो पर उनका अहंकार अभीतक दूर नहीं हुआ था। प्रभुने उनके कर्मचारियोंके आगे सिद्ध रामेश्वरके नामकी निंदा की। कर्मचारी तैशमें आ गये और प्रभुपर पत्थर बरसाने लगे, लेकिन उनका एक भी पत्थर प्रभुतक न पहुंच सका। तब वे अपने गुरुको बुला लाये। वह भी प्रभुको न पहचान सका। उसने अपने काम और अपने संप्रदायकी निंदा सुनी तो गरम हो गया और उसकी तीसरी आंखसे आग निकलने लगी। पर आगने तो प्रभुके चरण चुम्बन करनेमें ही गौरव माना। अब सिद्ध रामेश्वरकी आंखें खुलीं। उसने दौड़कर प्रभुके चरण पकड़ लिये और उन्हें अश्रुजलसे धोने लगा। प्रभुने उसे शिवतत्त्वका उपदेश दिया और अपने स्थान कल्याणनगरकी ओर ले चले।

प्रभुदेवके आनेसे कल्याणनगर आनंदसे भर गया। शरणोंका तेज बढ़ गया। श्री बसवेश्वरने प्रभुको शिवानुभव मण्डपके अध्यक्षका आसन सौंप दिया। इन्होंने सबसे पहले, प्राणलिंगकी ओर जानेसे पहले इष्टलिंगका उपदेश दिया। इन्हीं दिनों अक्क महादेवी भी वहां आ पहुंचीं। प्रभुने उनकी परीक्षा लेकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखाया। वे यहींसे वनमें चली गयीं। प्रभुदेवने कहा, पूजाके बाह्याडम्बरका कुछ भी मूल्य नहीं है। प्राणलिंगका पाना आवश्यक है। उसकी प्राप्तिकी विधि बताकर प्रभु देशाटनके लिये चल पड़े।

पूर्वघाटमें गोरक्ष नामक एक सिद्ध रहता था जिसने अपनी विद्याके बलसे वज्रदेहकी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। वह इसीको चरम अवस्था समझे बैठा था। प्रभुने उसे दर्शन दिये और कहा, “अरे, इस शरीरपर क्या गर्व करना, एक दिन तो इसे नियमानुसार छोड़ना ही होगा। प्रलय ऐसे शरीरको छोड़ न देगा।” गोरक्षने बड़े घमंडसे कहा, “अच्छा, लो, यह तलवार और चलाओ, मेरे ऊपर वार करो। मेरा एक रोम भी कट जाय तो मैं सिद्ध नहीं।” उसके आग्रह करनेपर प्रभुने तलवार चलायी। बहुत जोरसे खन-खनकी आवाज हुई पर गोरक्षका बाल भी बांका न हुआ। उसने बड़े गर्वसे पूछा, “मुक्ति इससे बढ़कर क्या हो सकती है?” प्रभुदेव मुस्कराये और उसकी तलवार लौटाते हुए बोले, “अच्छा लो, अब तुम मुझपर वार कर लो।” गोरक्षने अपना पूरा जोर लगाकर कस-कसकर हाथ मारे। प्रभुको चोट लगनेकी बात तो दूर रही तलवारकी आवाजतक न हुई। यह देखकर गोरक्ष मूर्छित-सा होने लगा। उसकी अंदरकी आंखें खुल गयीं और वह प्रभुके चरणोंपर गिर पड़ा। प्रभुने उसे भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया और वीर शैव पंथ दिखाया।

पर्वतोंपर घूमते हुए प्रभुने यज्ञ-याग आदिमें पशुबलि देनेवाले साधु-संन्यासियोंसे भेंट की और उन्हें पशु-बलिसे विरत किया। उन्हें बताया कि जीव-हिंसा पाप है। देहसे कर्म करना और आत्मामें यज्ञ करना ही अभीष्ट है। इस भांति प्रभु घूम-घूमकर नगर-नगर और डगर-डगरपर ज्ञानदीप आलोकित करते जाते थे।

उधर श्री बसवेश्वर प्रभुके लिये शून्य सिंहासन सजाये उनकी बाट जोह रहे थे। प्रभुदेव वेश बदलकर वहां जा पहुंचे। बसवण्णा भी अधकचरे न थे। उन्होंने झट पहचान लिया और प्रभुको सिंहासनपर बिठा दिया। इस आनंदमें वे अपना सब कुछ भूल गये। पूजा-पाठ और जंगमोंको खिलानेके कार्यक्रमका भी व्यतिक्रम हो गया। जब उन्हें पता लगा कि जंगम आ-आकर भूखे ही लौट गये तो उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ। अभीतक कोई जंगम उनके यहांसे खाली हाथ न लौटा था। अब क्या करें? प्रभुने उनके कष्टको देखा तो बोले, “अच्छा, चलो, मुझे खाना खिला दो तो सब संतुष्ट हो जायेंगे।” बसवेश्वर बड़े दानी, धर्मात्मा और जंगम-प्रिय थे और उन्हें इस बातका

गर्व भी था। प्रभुदेवने शायद उनके गर्वको तोड़नेके लिये ही यह लीला रची थी। खैर, जंगमोंके लिये जितना खाना रखा था वह सब प्रभुने खा लिया। बसवेश्वरके यहां खानेका टोटा पड़ गया। वे लज्जित हो गये। प्रभुने कहा, "मैंने भूख या लोभवश नहीं खाया है। मुझे तुम्हारे अंदर जमे हुए महादानी, कर्मठ आदि होनेके घमण्डके बिरवेको उखाड़ना है। वैसे मैं तो भावका भूखा हूं। तुम्हारे मनमें सच्चा भाव हो तो मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। अच्छा, अब जाकर जंगमोंको बुला लाओ।"

बसवेश्वर जंगमोंको प्रसाद देनेके लिये बुलाने गये। हर एक यही कहता, न जाने क्या बात है, तुम्हारी भक्तिसे या तुम्हारे गुरुकी महिमासे हमारा पेट इतना भर गया है कि अन्न खाना तो दूर भोजनको छूना भी असंभव है। बसवेश्वर आनंद-विभोर हो उठे। उन्होंने प्रभुसे कहा, "गर्भवती मांके खानेसे पेटके बच्चेको पोषण मिल जाता है। इसी प्रकार तुम्हारे खा लेनेसे जंगमोंके पेट भर गये हैं और सब पूरी तरह संतुष्ट हैं। यह तो एक नयी बात है।" प्रभुने उत्तर दिया, "नहीं, इसमें मैंने क्या किया है? मैं तो शून्य हूं। तुम्हारे कारण ही मेरे अंदर अपनापन आ जाता है।" प्रभु इसी तरह हमेशा बसवेश्वरको आगे बढ़ाया करते थे। धार्मिक क्रांतिके सूत्रधार होते हुए भी वे अपने-आप सामने नहीं आये।

शायद पाठकोंको याद होगा कि कल्याणनगरके शिवानुभव-मंडपने जन-कल्याणके लिये क्या-क्या किया था। सामान्य जनताको अपनी मूढ़तासे ऊपर उठाना, स्त्रियों और अंत्यजोंका उद्धार ये सब उनके कार्यक्रमके अंग थे। अस्पृश्यता-निवारण ही उनके काममें सबसे बड़ी बाधा बन गया। शिवानुभव मण्डपद्वारा ब्राह्मण और चमारमें संबंध जोड़नेके कारण वहांके कट्टर हिंदू गुस्सेमें आ गये। राजा बिज्जलने भी उन लोगोंकी बात मानकर इन शरणोंको दण्ड दिया। इससे कुछ गरम खूनवाले नौजवान शरण बिगड़ बैठे और बड़ोंसे सलाह किये बिना ही उन्होंने बिज्जलको मार डाला। बड़े शरण ऐसे व्यवहारको न सह सके और वे कल्याण छोड़-छोड़कर चले गये। श्री अल्लमप्रभु भी कल्याण छोड़कर पूर्वघाटकी ओर चले गये और वहीं किसी कदली वनमें शिवैक्य प्राप्त किया। संघका काम समाप्त हो गया, पर प्रभुदेवके हजारों वचन आजके अंधेरेमें भी सत्यका मार्ग दिखाते हैं। उनके कुछ वचन यहां दिये जा रहे हैं। इनके हर पदके अंतमें भगवान् गुह्येश्वर लिंगका नाम आता है, यह इनके इष्टदेव हैं जो आत्माके रूपमें सबमें विराजमान हैं।

(१) जर, जन, जमीन (होन्नु, हेण्णु, मन्नु — धन, नारी, भूमि) को माया कहा जाता है। सचमुच ये माया नहीं हैं। इनके लिये आसक्ति ही माया है।

(२) सुन्दर और कुरूप एक-दूसरेको याद करके अपना रूप बदल सकते हैं क्या? धनका जप करनेसे दरिद्रता चली जायगी क्या? फिर अंदर भक्ति और निष्ठाके बिना देवताओंके नाम-जप करके कोई कैसे कृतार्थ होगा?

(३) भगवान्की मूर्तिको स्नान, मज्जन आदि कराकर, उन्हींकी दी हुई चीजें उन्हें देकर उनसे वरदान मांगने चले अन्यायी लोगोंसे क्या कहूं?

(४) अल्लमकी रायमें सच्चे ज्ञानी वे ही हैं जो अपने-आपको ज्ञानी नहीं समझते। परतत्त्वको जानना आसान नहीं है। जो समझते हैं कि हमने परब्रह्मको जान लिया है उन्होंने कुछ भी नहीं जाना। ज्ञानी तो निरहंकारी होता है।

(५) जो सत्य नहीं बोलता, जो सदाचारी नहीं है, जिसमें सद्भक्ति नहीं है, जो सत् क्रिया नहीं करता, जिसमें सम्यक् ज्ञान नहीं है, उसकी वेशभूषा देखकर गुह्येश्वर लिंग हंस रहे हैं। ऐसे लोगोंको धिक्कार है।

धुरमंगद

अनुबेन पुराणी

औरंगजेबके जमानेमें यह प्रथा थी कि बड़े-बड़े राजा दल-बलसहित कुछ महीनोंके लिये दिल्लीमें हाजिरी दिया करते थे। महलकी देखभाल और दिल्लीकी सुरक्षा उनके जिम्मे होती थी। हम जिन दिनोंकी कहानी कह रहे हैं उन दिनों ओरछाके महाराज सुजानसिंहजी दिल्लीमें थे। उनका शरीर अत्यंत मनमोहक था। बादशाहकी बेगम गुलनार उनपर मुग्ध हो गयी। उसने बादशाहसे अर्ज की कि सुजानसिंहको खाजासरा बनाकर उसकी सेवामें दिया जाय। दांवपेंचमें आनंद लेनेवाला बादशाह अपनी बेगमकी इस इच्छाको पूरा करनेके लिये तैयार हो गया। उसके दरबारमें अनेक राजा-महाराजा सलाम करने आया करते थे। आलमगीर अच्छी तरह जानता था कि बढ़ती हुई आग और बढ़ते हुए दुश्मनको जल्दी ही खत्म करनेमें कल्याण है। वह अपने दुश्मनोंको साम, दाम, दण्ड, भेद सभी हथियारोंसे हराता था। उसे राजपूतोंकी तरह युद्धनीति या मान-अपमानकी परवाह न थी। उसने अपने शत्रु सुजानसिंहको बड़े अदबके साथ दरबारमें बुला भेजा। राजपूत बादशाहकी कूटनीतिसे परिचित हो चुके थे। इसलिये सुजानसिंह आमंत्रण पाते ही समझ गये कि दालमें कुछ काला है। परंतु दुश्मनके निमंत्रणको भी ठुकराना राजपूती गौरवके विरुद्ध था। दरबारमें जानेसे पहले अपने सरदारोंको बुलाकर और उन्हें सावधान करके सुजानसिंह दरबारकी ओर चले।

दरबारमें सुजानसिंहको खास माही मरातिब दिये गये और आलमगीरने हंसकर उनसे बातें कीं। दरबार बरखास्त होते ही अन्य प्रियजनोंके साथ औरंगजेबने सुजानसिंहको भी हरममें आनेकी दावत दी। अंदर न जाने क्या हुआ, किंतु उस दिनसे किसीने सुजानसिंहकी शकलतक न देखी।

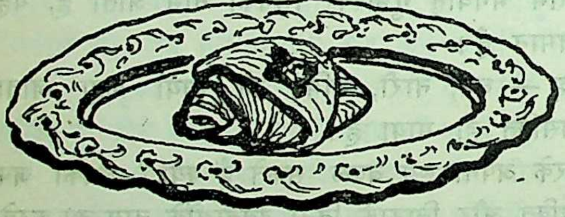

इधर ओरछाके सरदारोंकी सभा महाराज सुजानसिंहकी चिंतामें बैठी थी। सबने यही सोचा कि औरंगजेबके हरममें जानेका मतलब है शेरके मुंहमें हाथ डालना। उन्होंने तय किया कि किसी-न-किसी तरह जानपर खेलकर भी राजाको जीवित लाना ही होगा। पर यह काम हरएकको अपनी शक्तिसे बाहरका लगता था। आखिर पांच पानोंका सुसज्जित बीड़ा एक सोनेके थालमें रखा गया। इसे लेनेका अर्थ ही होता था जान हथेलीपर रखकर सुजानसिंहके प्राण बचाना। सब एक-दूसरेका मुंह देख रहे थे। हिम्मतवालोंकी कमी न थी पर भय यह था कि एक गलत चालका मतलब था सुजानकी हत्या। दो दिन बीड़ा थालमें ही पड़ा रहा। लोगोंमें कानाफूसी होने लगी, ओरछाकी भूमि वीर-विहीन हो गयी। अभी यह बात चल ही रही थी कि महाराजके सेनापति आये और बीड़ा उठाकर उन्होंने मुंहमें रख लिया। सब सरदार प्रसन्न हो गये, कई कहने लगे, अरे हम जानते ही थे कि पानका बीड़ा धुरमंगद ही उठायेगा। सबने धुरमंगदको पूरी सहायता देनेका वचन दिया। धुरमंगदने कहा कि मैंने पहले दिन ही ठीक कर लिया था कि मैं यह बीड़ा उठाऊंगा किंतु अभीतक योजना तैयार न हो पायी थी। अब सब कुछ ठीक है। मुझे एक आदमीकी जरूरत है। उसका काम होगा महाराज सुजानसिंहकी मुहरकी रक्षा करना। एक सरदार सामने आया और धुरमंगदने महाराजकी मुहर उसके हाथमें देते हुए कहा — इस मुहरको महाराज सुजानसिंहके हाथमें देना, चाहे जान चली जाय पर किसी औरकी छायातक इसपर न पड़ने पाये।

धुरमंगदने एक सफेद चोगा पहना और उसके अंदर नंगी तलवार लटका ली। वह महलकी ओर चल पड़ा। उन दिनों लोगोंको कोई विशेष शिकायत होती थी तो वे एक खास कागजपर अर्जदाश्त लिखकर ले जाते थे। जो इस अर्जदाश्तको लेकर जाता था वह सीधा बादशाहके पास जा सकता था और उसकी अर्जदाश्तको बादशाह खुद पढ़ा करते थे। धुरमंगदने उसमें लिखा था कि सुजानसिंहके लिये उनकी प्रजा बेचैन हो रही है। जबसे वे बादशाहके हरममें घुसे तबसे किसीने उनकी शक्ल नहीं देखी, इससे उनका अनुमान है कि राजा अब भी शाही महलमें नजरबंद हैं। ओड़छाकी प्रजा बादशाहसे नम्र निवेदन करती है कि उनके राजाको छोड़ दिया जाय, साथ ही यह भी लिखा कि जबतक महाराज अपने शिविरमें नहीं पहुंच जाते और उनके हस्ताक्षर तथा राज्यकी मुहरके साथ उनका समाचार नहीं मिल जाता तबतक बादशाह सलामतकी जान खतरेमें है। धुरमंगद इसको लेकर बादशाहके महलकी ओर चल पड़ा। उसे देखते ही दरवानने झट रास्ता दे दिया। बादशाह उस समय दरबारमें बैठे थे। कई चोबदार खड़े थे। राजा-महाराजा अपने-अपने आसनपर बैठे थे। वजीर-सरदार भी उपस्थित थे। धुरमंगद किसी ओर देखे बिना सीधा तख्तके पास चला गया और कोर्निश किये बिना ही कागज बादशाहके हाथोंमें थमा दिया। बादशाहने उसे पढ़नेके लिये गर्दन झुकायी और धुरमंगद उनके गलेपर तलवार तानकर खड़ा हो गया। जबतक दरबारी होशमें आये तबतक बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी। धुरमंगद चिल्लाया — "खबरदार जो किसीने एक भी कदम उठाया तो यह तलवार बादशाहकी गरदनके आर-पार हो जायगी।" बादशाह सलामत भी घबराये। उन्होंने सबको जहांका तहां रहनेका हुक्म दिया। बादशाहकी आज्ञाके अनुसार सुजानसिंहको चार घुड़सवारोंके साथ सुरक्षित रूपमें उनके शिविरतक पहुंचाया गया और घुड़सवार महाराजका पत्र

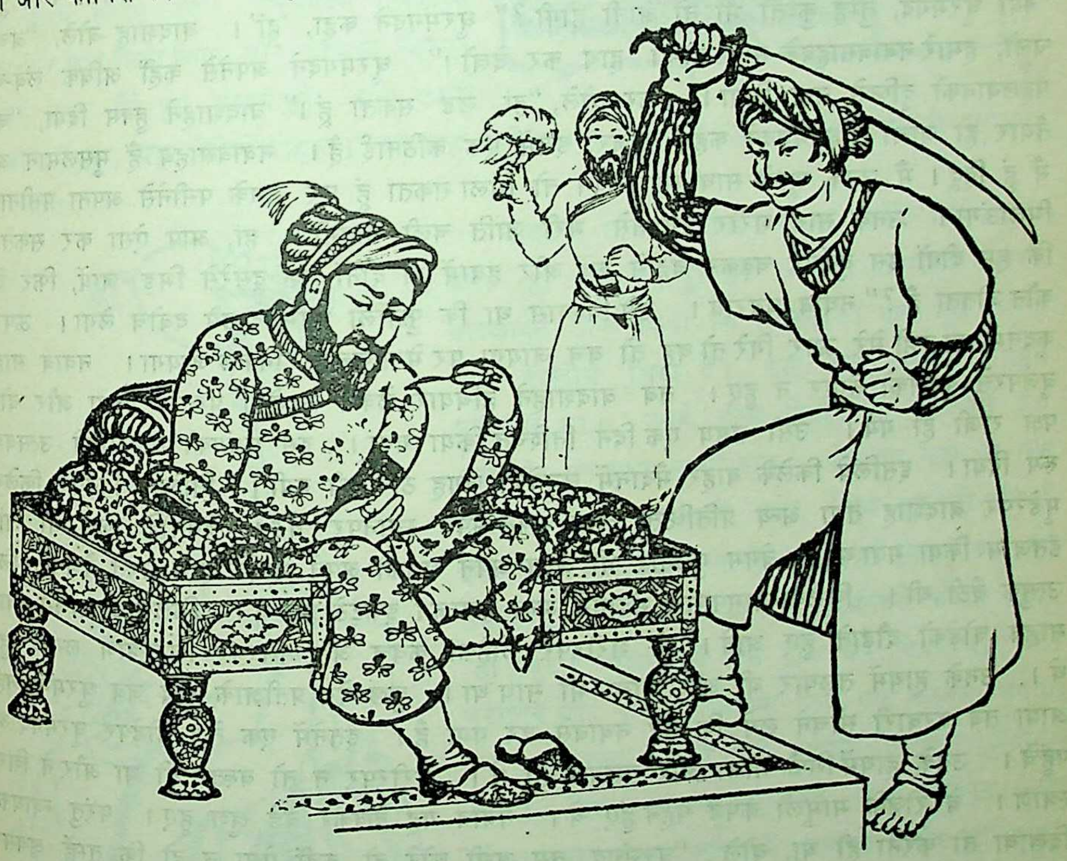

लेकर वापिस लौटे। महाराज सुजानसिंहकी मुहरबंद चिट्ठी पाते ही धुरमंगदने तलवार बादशाहके पैरोंमें रख दी और अदबके साथ हाथ बांधकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "हुजूर, मैंने आपका बड़ा भारी अपराध किया है। अब आप जो मर्जी कर सकते हैं, मैं तैयार हूं।" बादशाहने इस वीर राजपूतकी बड़ी प्रशंसा की और पीठ थपथपाकर शाबाशी दी। साथ-ही-साथ कहा, मैं ऐसे वीर पुरुषोंको अपने पास रखना चाहता हूं। धुरमंगदको रोज दरबारमें आनेकी ताकीद की गयी। धुरमंगद जैसा चालाक आदमी बादशाहकी नियतको पहचान गया। उसने ठीक किया कि वह जरूर दरबारमें जायगा और बादशाहकी हरएक चालाकीका मुकाबला करेगा।

बादशाहका एक महाबली महाकाय साला था। हम उसे नवाब साहबके नामसे जानेंगे। देखनेमें वह भीमका दूसरा भाई लगता था और उसीकी तरह कुश्तीमें अत्यंत प्रवीण था। पहलवानोंमें उसका इतना नाम था कि उसके साथ बदनी करनेके लिये कोई भी तैयार नहीं होता था। बादशाहने बहुत दिन सोचनेके बाद एक तरकीब निकाली। हरममें नवाबको बुलाकर बादशाहने उसे समझा दिया कि जब वह धुरमंगदसे कुश्ती लड़े तब बिना किसी संकोचके उसे खत्म कर डाले।

दूसरे दिन जब धुरमंगद दरबारमें आया तब बादशाहने उसके शारीरिक बलकी प्रशंसा करके पूछा, "क्यों धुरमंगद, तुम्हें कुश्ती भी तो आती होगी?" धुरमंगदने कहा, 'हां'। बादशाह बोले, "अच्छा, चलो, हमारे नवाबसाहबके साथ दो-दो हाथ कर देखो।" धुरमंगदने अपनेसे कहीं अधिक लंबे-चौड़े पहलवानको दृष्टिसे नाप लिया। फिर बोले, "हां, लड़ सकता हूं।" बादशाहने हुक्म दिया, "चलो तैयार हो जाओ।" धरमंगदने कहा, "हुजूर, इसमें एक कठिनाई है। नवाबसाहब हैं मुसलमान और मैं हूं हिंदू। मैं उनके खूनके साथ अपना खून तो मिला सकता हूं पर उनके पसीनेसे अपना पसीना न मिलाऊंगा। उनके साथ शरीर रगड़नेसे मेरी जाति चली जायगी। हां, आप ऐसा कर सकते हैं कि हम दोनों इस बुर्जपर चढ़कर वहांसे कूदें और हवामें ही दोनों एक दूसरेसे भिड़ जायें, फिर देखें कौन जीतता है?" नवाब घबराये। उसे विश्वास था कि फुर्तीला धुरमंगद उसे दबोच लेगा। ऊपरसे कूदनेमें वह कहीं मेरे ऊपर गिरे तो वह तो बच जायगा पर मेरा कचूमर निकल जायगा। नवाब साहब बुर्जपरसे कूदनेको तैयार न हुए। तब बादशाहने हथियार लेकर लड़नेका प्रस्ताव किया और दोनों पक्ष राजी हो गये। उसी समय एक दिन निश्चित किया गया। इस प्रसंगको बादशाहने उत्सवका रूप दिया। इसलिये किलेके बाहर मैदानमें लड़नेकी जगह ठीक की गयी। निश्चित दिनपर किलेकी मुंडेरपर बादशाह तथा अन्य प्रतिष्ठित लोग अपने-अपने स्थानपर बैठे। बेगमोंके लिये भी खास इंतजाम किया गया था। बेगम गुलनार भी आज अपने शत्रुको अपने भाईके हाथ मरते देखनेके लिये उत्सुक बैठी थी। किलेके आसपासके मैदानमें अन्य प्रजाजन इकट्ठे हुए थे। किलेके दरवाजेसे नवाब साहब घोड़ेको दौड़ाते हुए आये। वे शरीरपर लोहेका कवच और सिरपर शिरस्त्राण लगाये हुए थे। उनके हाथमें तलवार थी और भाला भी साथ था। कुछ देर प्रतीक्षाके बाद जब धुरमंगद नहीं आया तब दरबारी सोचने लगे कि वह नवाबसे डर गया है। इतनेमें एक तेज घोड़ेपर धुरमंगद आ पहुंचे। उनके हाथमें सिर्फ भाला और तलवार ही थे। शरीरपर न तो बख्तर ही था और न शिरस्त्राण। वे रोजके मामूली कपड़े पहने हुंए थे। नवाब यह देखकर बड़े खुश हुए। परंतु न्यायका दिखावा तो करना ही था, बोले, "धुरमंगद, तुम अभी छोटे हो, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें अवसर न मिल पाय और वार करनेकी हवस मनमें लिये सिधार जाओ। चलो, पहला वार तुम्हारा।" नवाब अच्छी तरह जातते थे कि राजपूत इसे अपमान समझेगा और अपने-आप ही उदारता दिखायेगा। हुआ भी वही। धुरमंगदने कहा, "नहीं, नवाब साहब, मुझे विश्वास है कि मेरा एक ही वार काफी है, इसलिये एक ही नहीं आप पांच वार कर सकते हैं फिर मेरी बारी आयगी।" उसके बाद दोनों तैयार हो गये और घोड़ा फेरना शुरू किया। नवाबने बरछेसे पहला वार किया। धुरमंगदने अंतिम

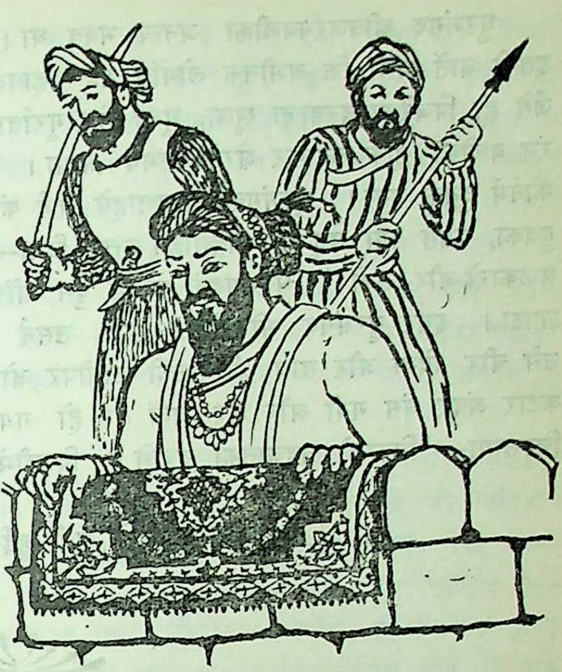

क्षणपर घोड़ेको एड़ देकर और उन्हें बगल करके तलवारसे भालेके दो टुकड़े कर दिये। दूसरे दो वार ढालपर ही लिये। इसी तरह नवाब साहबके बाकी वार भी खाली गये। अब धुरमंगद बोले, "खां साहब, दुनियाको अच्छी तरह देख लीजिये और अपने खुदाकी बंदगी भी कर लीजिये, क्योंकि मेरा वार खाली नहीं जायगा।" नवाबने जैसे-तैसे बंदगी कर ली और तैयार होकर खड़े हो गये। धुरमंगदने भाला उठाया और घोड़ेको बिजलीकी गतिसे नवाबकी ओर दौड़ाया। भाला लोहेके बख्तरको छेदकर शरीरके आर-पार हो गया और नवाब धूलमें लोटने लगे। धुरमंगदने तलवारसे उनका सिर काट लिया लिया और भालेकी नोकपर चढ़ाकर ऊपर बैठे हुए बादशाहके आगे उठाते हुए बोले, "हुजूर, यह लीजिये तोहफा।" बादशाह गुस्सेसे आग-बबूला हो रहा था किंतु ऊपरसे प्रसन्नता ही दिखायी।

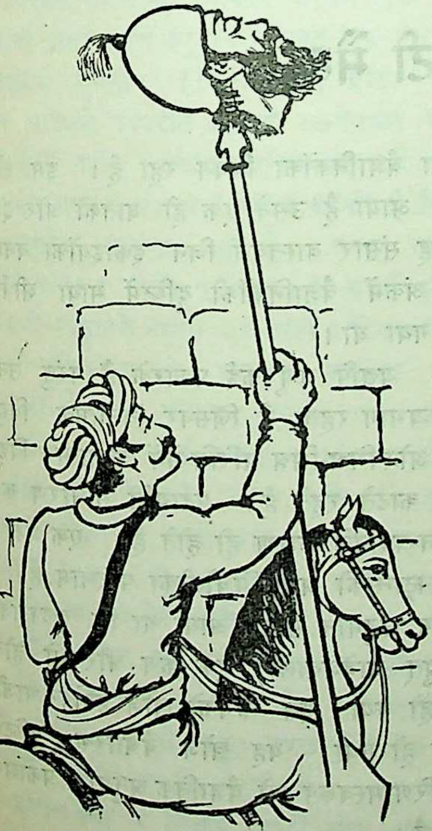

बादशाह सालेकी मौतका बदला लेनेके लिये उतावला हो उठा। गुलनार बेगमसे परामर्श करके बादशाहने ठीक किया कि धुरमंगदको एक भूखे शेरके साथ कुश्तीमें भिड़ा दें। इस बार बादशाह बहुत सावधान था। उसने हुक्म दिया कि जंगलमेंसे एक नया शेर पकड़कर लाया जाय। शेर आ गया तो एक दिन बादशाहने धुरमंगदसे कहा, "तुम शेर हो शेर।" इसी ढंगसे खूब प्रशंसा करके बादशाहने पूछा, "क्या तुम उस शेरसे भी लड़ सकते हो ?" धुरमंगदने जवाब दिया, "हां हुजूर !" बादशाहने दिन ठीक कर दिया और फिर धुरमंगद और शेरकी लड़ाईके लिये एक कठघरा बनाया गया। शेरका पिंजड़ा कई आदमी खींचकर मैदानमें लाये। नियत समयपर धुरमंगद अपने घोड़ेपर आया और तलवार लेकर कठघरेमें जानेको तैयार हो गया। बादशाहने ऊपरसे कहा,—"धुरमंगद, शेरके पास तो तलवार नहीं है।" धुरमंगदने झट अपनी तलवार खूंटीपर लटका दी। वह समझ गया कि किसी-न-किसी तरह बादशाह उसे मरवाना चाहता है।

धुरमंगद श्रीबजरंगबलीका अनन्य भक्त था। उसकी इस भक्ति और वीरताको लेकर लोगोंमें इतनी बातें चलीं कि अभीतक लोगोंमें यह कहावत चलती है ,"धाक धुरमंगदकी, हांक हनुमानकी।" जैसे ही पिंजरेका दरवाजा खुला, भूखा शेर गुर्राता हुआ उसकी ओर बढ़ा। धुरमंगद भी 'जय बजरंग बलीकी' हांक लगाकर शेरके सामने आया। कहते हैं कि शेर झपटनेकी जगह दुम दबाकर एक कोनेमें दुबक गया। धुरमंगदने बादशाहसे अर्ज की--"हुजूर, यह तो डरपोक है, देखिये, कोनेमें जा दुबका, इससे क्या लडूं ?" बादशाहने उत्तर दिया--"अरे, तुम राजपूत हो, डरो मत, हिम्मत है तो ललकारो और लड़ो।" धुरमंगदने शेरकी दुम खींची। शेर एकदम बौखला उठा और बड़े जोरसे झपटा। इधर धुरमंगद भी तैयार था। उसने शेरके जबड़े पकड़ लिये और पूरा जोर लगाकर उसे चीर दिया और साथ ही शेरकी छातीपर जोरसे लात मारी। जूतोंपर कटार लगी हुई थी। कटार अंदर धंस गयी और शेर वहीं ढेर हो गया। बादशाहने यह देखा तो ऊपर छज्जेपरसे ही चिल्लाया--"निकालो बदजातको यहांसे। दिल्लीमें न रहने पाये यह।"

(अजितसिंहजीसे सुनी हुई कहानीके आधारपर)

प्रतिपदार्थ या एंटी मैटर

संसारमें विद्यमान पदार्थोंके स्वरूपका अध्ययन करना वैज्ञानिकोंका विषय रहा है। इस क्षेत्रमें आजतक हुए अनुसंधानोंके परिणामस्वरूप जो चित्र सामने आया है उसने एक ही बातकी ओर इंगित किया है कि इतनी विभिन्नताओंका प्रदर्शन करनेवाला यह संसार वास्तवमें जिन इकाइयोंका बना है वे वास्तवमें एक-दूसरेसे बहुत भिन्न नहीं हैं। पिछले अंकमें वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें माया शीर्षकसे एक लेख इस बारेमें जानकारी देनेके लिये प्रस्तुत किया गया था।

अणु ही वास्तवमें सब पदार्थोंकी रचनाकी इकाई है। यद्यपि अणु कई प्रकारके हैं परंतु उनकी मौलिक रचना एक सी ही है। अणुकी रचनामें एक मध्यभाग रहता है जिसपर धनात्मक विद्युत्का आवेश ('चार्ज') रहता है। और इस मध्यभागके चारों ओर भिन्न-भिन्न परिधियोंमें ऋणात्मक विद्युत्वाले इलक्ट्रान निश्चित नियमोंका पालन करते हुए चक्कर काटते रहते हैं। पदार्थोंमें साधारण रूपसे जो परिवर्तन होते हैं वे अणुओंमें इलक्ट्रानके परस्पर आदान-प्रदानके कारण ही होते हैं। एक प्रकारसे मोटे रूपमें हमारा यह पार्थिव संसार अणुओंके मध्य इलक्ट्रान्सकी आंख-मिचौलीका परिणाम है।

जब वैज्ञानिकोंने इलक्ट्रान्सकी खोज की उसी समय एक अनुमान सामने आया था कि इलक्ट्रानके समान ही परंतु विपरीत गुणोंवाला (अर्थात् धनात्मक विद्युत् आवेशवाला) एक कण और भी होना चाहिये। कुछ कालके पश्चात् यह अनुमान ठीक साबित हो गया। इस कणको खोज होनेपर पाजीट्रान (Positron) नामका एक कण वैज्ञानिकोंको प्राप्त हो गया। यह खोज वैचारिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस नवीन कणके ज्ञात हो जानेके परिणामस्वरूप जो वैज्ञानिक अनुमान प्रकाशमें आये हैं उनका विस्तृत विवेचन ही प्रस्तुत लेखका विषय है।

इलक्ट्रान और पाजिट्रानके प्रायः सभी गुण एक समान हैं। ये दोनों कण प्रतिपक्षिय नियमों (Rules of correspondence)का पालन समान रूपसे करते हैं। इन दोनोंमें विद्यमान ऊर्जाके आवेशकी मात्रा समान है। इनका भार समान है, परंतु इनमें विद्युत्का आवेश एक-दूसरेके विपरीत है। सबसे महत्त्व और अत्यधिक आश्चर्यकी बात यह है कि जब इन दोनों कणोंको परस्पर संयुक्त करानेका प्रयत्न किया जाता है तो ये दोनों ही कण विनष्ट हो जाते हैं और इनमें व्याप्त पदार्थ गामारेज आदि ऊर्जाओंके रूपमें परिवर्तित होकर अंतर्धान हो जाता है। इस प्रकारसे पाजिट्रानको हम इलक्ट्रानको नष्ट करनेवाला कण कह सकते हैं। वास्तवमें वैज्ञानिकोंने पाजिट्रानको इसीलिये प्रतिकण (एंटी पार्टिकल) नामसे संबोधित किया है। प्रतिकणके बारेमें अब वैज्ञानिकोंको स्पष्ट ज्ञान हो चुका है। परंतु इस शोधके फलस्वरूप वैज्ञानिकोंकी कल्पनाने जो दौड़ लगायी है उसका स्वरूप एक दृष्टिसे बहुत बीभत्स है।

अब स्वाभाविक रूपसे यह अनुमन लगाया जा रहा है कि संसारके भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें बसनेवाले अणुओंकी आणविक रचनामें जितने भी कण होते हैं, इलक्ट्रानके समान उन सब कणोंके भी प्रतिकण (एंटी पार्टिकल) कहीं-न-कहीं अवश्य होने चाहियें। उदाहरणके लिये प्रोटोनके समान, परंतु विपरीत विद्युत्गुणोंसे युक्त एक एंटीप्रोटोन भी होना चाहिये जिसमें अन्यगुण जैसे भार इत्यादि एक-से ही हों, और जिनके संयुक्तीकरणका परिणाम प्रोटान तथा एंटीप्रोटान दोनोंके ही विध्वंस तथा ऊर्जाकी उत्पत्तिके रूपमें होना चाहिये। यदि वैज्ञानिकोंका यह अनुमान सत्य निकल आये तो यह अनुमानित तथ्य कितना महत्त्वपूर्ण तथा रोमांचकारी हो जाता है यह इस लेखमें आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा।

उपर्युक्त कल्पनाको स्वीकार करनेमें कुछ वैज्ञानिकोंको संकोच हो सकता है। कारण यह है कि अणुओंकी अंतर्रचनामें न्यूट्रान नामका एक ऐसा कण वैज्ञानिकोंको प्राप्त हुआ है जो कि विद्युतीय गुणकी दृष्टिसे गुणहीन (Neutral) होता है। इस कारण एक प्रश्न उठता है कि इस कणके विद्युत् आवेशसे विपरीत आवेश रखनेवाला कण कैसे संभव है? क्योंकि इसमें तो कोई विद्युतीय आवेश है ही नहीं। यद्यपि यहांपर यह तर्क उचित ही है परंतु इसका समाधान सरलतासे हो सकता है। इस प्रसंगमें एक बात ध्यान देनेकी है कि एंटी पार्टिकलमें केवल विद्युतीय गुणके आधारपर विपरीत गुणोंकी कल्पना नहीं है। वरन् कणोंके संपूर्ण गुणसमुच्चयके विपरीत गुणसमुच्चयसे युक्त कणोंकी प्रतिकण (एंटी पार्टिकल) के रूपमें कल्पना की गयी है। इस आधारपर ही न्यूट्रानके विपरीत एंटी न्यूट्रानके नामसे एक एंटी पार्टिकलकी कल्पना युक्तिसंगत हो जाती है। इस प्रकार यदि हम दो एंटी न्यूट्रानको परस्पर लानेका प्रयत्न करें तो वे स्थायी रूपसे परस्पर निकट बने रह सकते हैं, परंतु यदि हम न्यूट्रान और एंटी न्यूट्रानको परस्पर संयुक्त करनेका प्रयास करेंगे तो उग्र विस्फोट होकर पाई मेसन्स व अन्यान्य प्रकारकी ऊर्जाओंके रूपमें ये अदृश्य हो जायेंगे।

यहां एक प्रश्न और उठता है कि यदि हम एंटी न्यूट्रान, एंटी प्रोटोन और एंटी इलक्ट्रानको विद्यमानताको सैद्धांतिक रूपसे मान लें तब यह भी संभव हो सकता है कि इनको मिलाकर प्रति अणु (Anti-atom) की रचना भी कहीं-न-कहीं विद्यमान हो। यद्यपि अभीतक वैज्ञानिक इस प्रकारके कण बनानेमें सफल नहीं हुए हैं; परंतु इस आधारपर बनी कल्पनाको पूर्ण करनेके लिये मान लो एक दिन हम एंटी पार्टिकल्स तथा उनके सम्मिश्रणद्वारा एंटी एटम भी बना लें तो?

सैद्धांतिक रूपसे यह संभव है। उदाहरणके लिये हम हाइड्रोजनके अणुका विचार करें। इसके अणु, रचनाकी दृष्टिसे, बहुत सरल होते हैं। इनमें एक प्रोटोन होता है और इसके चारों ओर एक इलक्ट्रान चक्कर काटता रहता है। अब यदि यह मान लिया जाय कि हम किसी स्थानपर एक एंटी प्रोटोन बना लें जिसके चारों ओर एक एंटी इलक्ट्रान परिक्रमा करता रहे तो एक प्रकारसे

प्रतिअणुकी रचना पूर्ण हो गयी। कुछ वैज्ञानिक इस बारेमें शंका प्रकट कर सकते हैं। वे कह सकते हैं कि क्या यह संभव होगा? उनकी शंका यह होगी कि क्या एंटी इलक्ट्रान भी एंटी प्रोटोनके चारों ओर उसी प्रकार परिक्रमा करता रहेगा जैसे कि इलक्ट्रान प्रोटोनके चारों ओर करता है। एंटी प्रोटोन जो कि प्रतिअणुका मध्यभाग है विद्युतीय आवेशकी दृष्टिसे ऋणात्मक है। और इसके चारों ओर घूमनेवाला एंटी इलक्ट्रान धनात्मक आवेशवाला होगा। यद्यपि यह स्थिति साधारण अणुकी तुलनामें विपरीत है परंतु एंटी प्रोटोन और एंटीइलक्ट्रानमें विद्युतीय आवेश विपरीत होनेके कारण वास्तवमें उनमें परस्पर आकर्षण तो उसी प्रकार बना रहेगा जैसा कि प्रोटोन और इलक्ट्रानमें होता है। दोनों प्रकारके कणोंका भार तो समान होता ही है। इस प्रकार मूलतः सभी गुण उनमें समान होंगे। अतः प्रश्नका उत्तर स्पष्ट हो जाता है कि हाइड्रोजनके प्रतिअणुकी निर्मिति सैद्धांतिक रूपमें तो संभव है ही।

यदि इस तर्कसंगत कल्पनाको आगे बढ़ाया जाय तो यह कहना न्यायसंगत होगा कि यदि एक घड़ी साधारण पदार्थकी बनायी जाय और दूसरी उसी प्रकारकी घड़ी प्रतिपदार्थ (एंटी मैटर) की बनायी जाय तो ये दोनों घड़ियां एक समान ही कार्य करेंगी। यद्यपि इन दोनों घड़ियोंको परस्पर लाने का प्रयत्न किया गया तो दोनों ही छूमंतर होकर गायब हो जायें यह दूसरी बात है। बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। एक और भी संभावनाका विचार किया जा सकता है। यह भी संभव है कि भौतिकीके सामंजस्यके सिद्धांतके अनुसार इस ब्रह्माण्डमें कहींपर प्रतिअणुओंके द्वारा बने हुए प्रतिपदार्थके आधारपर खड़ा एक प्रतिभूमण्डल भी हो। और इस प्रतिभूमण्डलके मनुष्य (जिनको प्रतिमनुष्य कहना अधिक उपयुक्त होगा) भी हमारे समान ही वैज्ञानिक क्षेत्रमें विकास करते हुए एक दिन हमारी भूमिपर अपने राकेटोंको उतारनेमें सफल हो जायं और भूमिपर उतरकर चहलकदमी करनेकी सोचें तो क्या परिणाम होगा? उत्तर केवल अनुमान ही हो सकता है परंतु इतना निश्चित कहा जा सकता है कि इस सैरका परिणाम आंतरिक्ष यानके यात्री तथा हमारे भूमण्डल दोनोंको ही मोक्ष प्राप्त करा देनेवाला अवश्य होगा।

यह तो रही वैज्ञानिकोंकी उड़ान—भारतीय तत्त्वज्ञान इस बारेमें क्या विचार रखता है इसकी खोज दर्शनशास्त्रियों व आध्यात्मिक क्षेत्रमें साधनारत मनीषियोंको करनी होगी।

—ओमप्रकाश शर्मा (डा.)

* * *

भारतके भाग्यका सूर्य उगेगा और सारे भारतको अपनी ज्योतिसे भर देगा, वह ज्योति हिंदुस्तानसे एशिया और फिर सारे संसारमें फैल जायगी। प्रत्येक घंटा, प्रत्येक मिनट हमें भगवान्‌द्वारा निश्चित दिनकी चमककी ओर लिये जा रहा है।

—श्रीअरविंद

जॉर्ज वाशिंगटन—अमेरिकाको उनकी देन

अमेरिकाकी कहानी उसके महान् राष्ट्रपतियोंकी, राष्ट्रके भाग्य-विधाताओंकी, उन व्यक्तियोंकी कहानी है जो समय-रूपी रेणुपर अपने अमिट पद-चिह्न छोड़ गये हैं।

अमेरिकाके महान् प्रेसिडेण्ट बननेका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हुआ, उनमें कुटियासे लेकर राजमहलों-तकमें निवास करनेवाले लोग शामिल थे। निर्धनता न तो उनके लिये बाधक बनी और न अमीरीसे उन्हें कोई विशेष सुविधा प्राप्त हुई। चाहे उनका जन्म निर्धन परिवारमें हुआ अथवा कुलीन परिवारमें, उनमें एक बात समान थी: उन्हें स्वतंत्रतासे —— व्यक्तिकी स्वतंत्रता, देशकी स्वतंत्रता और विश्वकी स्वतंत्रतासे अटूट स्नेह था। उन सभीने मिलकर अमेरिकी लोकतंत्रकी —— समस्त जनताका यह अधिकार कि उसे स्वतंत्रता प्राप्त हो और उसके साथ समानताका व्यवहार हो —— सुदृढ़ नींव स्थापित की।

टामस जैफर्सन, जेम्स मुनरो, अब्राहम लिंकन, वुडरो विल्सन, फ्रेंकलिन रूजवेल्ट —— इनमेंसे प्रत्येक अपने ढंगपर और अपने-आपमें महान् थे।

लेकिन अमेरिकाके राष्ट्रपिता जार्ज वाशिंगटन इन सबमें सबसे अधिक महान् थे। उनसे अमेरिकी जनताको दो दुर्लभ देनें —— स्वतंत्रता और लोकतंत्र —— प्राप्त हुईं। उन्होंने प्रथम उपहार अर्थात् स्वतंत्रता क्रांतिकारी सेनाके कमाण्डरकी हैसियतसे तथा दूसरा उपहार अमेरिकाके प्रथम प्रेसिडेण्टकी हैसियतसे दिया।

आइये, हम सर्वप्रथम उनकी पहली देन 'स्वतंत्रता'पर विचार करें:

अमेरिकी क्रांतिमें उनका योगदान क्या था? भारतके स्वाधीनता-संग्राममें गांधीजीके योगदानके समान उनका यह योगदान असीमित और अथाह था। लोग बहुधा यह सोचते हैं कि यदि यह मेधावी और चतुर सैनिक राजनीतिज्ञ न हुआ होता तो क्या अमेरिका कभी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता?

स्वाधीनता-युद्धमें उन्होंने जो विस्मयजनक सफलताएं प्राप्त कीं, आज वे किम्वदन्तियां बन गयी हैं। उनकी सफलताओं-असफलताओं और कष्टोंके साथ-साथ ये किम्बदन्तियां भी बढ़ती गयीं। अंततः वह अपने देशवासियोंकी दृष्टिमें देशभक्तिके प्रतीक एवं राष्ट्र-नायक हो गये।

राजनीतिमें, और युद्धमें, कूदनेसे पहले वाशिंगटन वर्जिनिया राज्यमें माउण्ट वर्नान स्थित अपनी जमीनपर किसानका शांत जीवन व्यतीत करते थे। कुछ समयतक वह राज्य विधान-सभाके सदस्य भी रहे थे।

उस समय सभी अमेरिकी उपनिवेशोंमें ब्रिटेनकी राजनीतिक और आर्थिक नीतियोंके प्रति बड़ा व्यापक असंतोष और क्षोभ था और वह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। १७७४ तक यह क्षोभ विस्फोटकी स्थितितक पहुंच गया और लोगोंने भावी संघर्षके लिये अपनी शक्ति और साधनोंको जुटाना प्रारंभ कर दिया था।

उसके बाद १७७५ में ब्रिटिश और औपनिवेशिक किसानोंमें लड़ाई छिड़ गयी और अंततोगत्वा इसी लड़ाईके फलस्वरूप अमेरिका स्वाधीन हुआ।

औपनिवेशिक सेनाओंका नेतृत्व करनेके लिये वाशिंगटनको जिस समय बुलाया गया उस समय वह देहातमें शांतिसे खेती-बारीका काम करते थे और स्थिति बड़ी निराशाजनक प्रतीत होती थी।

उन्हें दूसरी काण्टिनेंटल कांग्रेसमें सर्वसम्मतिसे औपनिवेशिक सेनाका नायक और प्रधान सेनापति चुना गया।

अगले ६ वर्ष उपद्रव और क्लेश, संघर्ष और अपमानसे परिपूर्ण थे; जब नंगे पांव कूच करने और खाली पेट रहनेके लिये बाध्य होना पड़ा; जब तोपोंमें लगानेके लिये पलीते भी नहीं थे।

वाशिंगटनने लिखा : "इस समय हमारे सैन्य-शिविरमें कम-से-कम २८९८ सैनिक ऐसे हैं, जो इस कारण लड़ाईपर भेजे जाने योग्य नहीं हैं कि वे नंगे पांव और अन्यथा भी नंगे हैं....... इन कष्टोंको देखकर मेरी आत्मा करुणासिक्त हो उठती है।"

किंतु, कृत्रिम निराशाके समयोंमें वह प्रायः महान् सेनापति प्रमाणित हुए। जिस समय महाद्वीपीय सेना (काण्टिनेण्टल आर्मी) को विजयकी सबसे अधिक आवश्यकता होती थी, वह पूर्णतया आकस्मिक ढंगपर शत्रुपर अचानक आक्रमण करके आश्चर्यचकित कर देते थे।

उन्होंने अर्द्ध-शस्त्रसज्जित और अर्द्धानुशासित स्वयंसेवकोंको, जिनके पास पूरे सैनिक वस्त्र भी नहीं थे, संगठित करके ब्रिटिश सैनिकोंके साथ जिस प्रकार लोहा लिया, वह सर्वथा श्लाघ्य है। जबतक युद्धका अंत विजयमें नहीं हो गया, तबतक वह न केवल क्रांतिकारी सेनाको एक सूत्रमें आबद्ध करके सुसंगठित रखनेमें, बल्कि असैनिक नागरिकोंके हृदयमें विश्वासका संचार करनेमें भी सफल रहे।

युद्धमें विजय प्राप्त कर लेनेके बाद, वाशिंगटन अवकाश ग्रहण करके माउण्ट वर्नानमें अपने फार्मपर रहने लगे। उन्हें क्या पता था कि राष्ट्रका पुनः नेतृत्व करने, भेदभाव और दरारें उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तियोंसे लड़ने तथा राजनीतिक लोकतंत्रके क्षेत्रमें अपने प्रयोग प्रारंभ करनेके लिये शीघ्र ही उनका आह्वान होनेवाला है।

किंतु, विजयने व्यापक अराजकताको जन्म दिया; समस्याएं अपने घृण्य रूपमें सर्वत्र उठने लगीं। लोक-विद्रोह और सैनिक तानाशाहीके लिये षड्यंत्रकी अफवाहें फैलने लगी थीं। सैन्य क्षेत्रोंमें, जनरल वाशिंगटनको अमेरिकाका सम्राट् बनानेकी चर्चा चलने लगी थी।

वाशिंगटनने सिंहासनको ठुकराकर भूलुंठित कर दिया और कहा : "युद्धकी किसी भी घटनासे मुझे इतने क्लेशकी अनुभूति नहीं हुई थी। मैं इसे घृणाकी दृष्टिसे देखता हूं, मुझे इसका कटु तिरस्कार करना है।.......मैं यह बात सोच पानेमें भी असमर्थ हूं कि मेरे किस व्यवहारने इस प्रकारके प्रस्तावको प्रोत्साहन दिया होगा।"

उसके थोड़े ही समय बाद, टामस जफर्सनने कहा था : "केवल एक व्यक्तिके संयम और सदाचारने, संभवतः, इस क्रांतिको, अधिकांश अन्य क्रांतियोंकी भांति, उस स्वतंत्रताका विध्वंस करके सदाके लिये समाप्त हो जानेसे बचा लिया है, जिसे स्थापित करना इसका उद्देश्य था।"

वाशिंगटनका अपने पदसे अवकाश अल्पकालीन सिद्ध हुआ। कुटिल प्रवृत्तियोंसे भयाक्रांत होकर, उन्होंने सक्रिय राजनीतिके क्षेत्रमें पुनः पदार्पण किया और एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकारकी स्थापनापर अपना प्रयास केंद्रित कर दिया। अन्य राज्योंके प्रतिनिधियोंके साथ मिलकर उन्होंने २५ जुलाई, १७८७ को फिलाडेल्फियामें अमेरिकाके संविधानका प्रारूप तैयार करनेका कार्य प्रारंभ किया।

किंतु, संघका अस्तित्व संभव होनेसे पूर्व ही उनके पास जनताके अगणित पत्र आने लगे, जिनमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वह अमेरिकाके प्रथम प्रेसिडेण्ट बनना स्वीकार कर लें। और, अंतमें, कर्त्तव्य-भावनासे अभिभूत होकर उन्होंने फरवरी, १७८९ में बड़ी हिचकके साथ प्रेसिडेण्ट पद स्वीकार करना मंजूर कर लिया।

वह प्रेसिडेण्ट पदपर दो बार ४-४ वर्षकी अवधियोंतक रहे, किंतु तीसरी बार पुनः प्रेसिडेण्ट बननेसे इन्कार कर दिया। उनका विदा-भाषण, जिसमें उन्होंने उन आधारभूत सिद्धांतोंकी घोषणा की थी जिनपर अमेरिकाकी नींव पड़ी है, शास्त्रीय महत्त्वका भाषण था। पिछले ५० वर्षोंसे, प्रतिवर्ष उनकी जन्म-गांठके अवसरपर अमेरिकी सेनेट और प्रतिनिधि सभामें यह भाषण पढ़ा जा रहा है।

इस विदा-भाषणमें, अन्य बातोंके अतिरिक्त, सरकारकी एकतापर बल दिया गया था, क्योंकि यह "आपकी स्वतंत्रताके महलका प्रमुख स्तंभ है; यह देशमें आपकी आंतरिक स्थिरता और विदेशोंमें आपकी शांतिका, आपकी सुरक्षाका, आपकी संपन्नताका और उस स्वतंत्रताका जिसे आप इतना मूल्यवान् मानते हैं, प्रमुख आधार है।"

वाशिंगटनको इस बातका पक्का विश्वास हो गया था कि यह एकता एक ऐसे संविधानद्वारा प्राप्त और व्यक्त होनी चाहिये जो केवल समूचे राष्ट्रकी इच्छाद्वारा ही परिवर्तित हो सके।

वाशिंगटन न केवल अपने देशके लिये, बल्कि समस्त विश्वके लिये प्रेरणाके स्रोत थे। अनेक राष्ट्रोंने स्वतंत्र सरकारके क्षेत्रमें उनके सिद्धांतोंको अपना लिया है। वे उनके इस प्रयोगसे साहस प्राप्त करते हैं कि सभीके लिये स्वतंत्रता और न्यायके सिद्धांतपर आधारित सरकार मानवताके लिये ऐसा लक्ष्य प्रस्तुत करती है, जो प्राप्त हो सकता है।

उनके त्याग अप्रतिम और उनकी सफलताएं अनेक थीं। और, अपने पक्षमें, विश्व भी उनके प्रति अकृतज्ञ नहीं रहा है। अनेक राष्ट्रोंमें अनेक प्रकारसे उनकी स्मृतिमें श्रद्धांजलियां अर्पित की गयी हैं।

अमेरिकामें सर्वत्र तथा रायो डि जैनीरो, ब्यूनस आयरस, लन्दन, पेरिस, बुडापेस्ट और टोकियोमें उनकी प्रतिमाएं स्थापित हैं। उनके चित्र अमेरिकी सिक्कों, बैंक नोटों तथा १०० से अधिक डाक-टिकटोंपर प्रकाशित हुए हैं।

अमेरिकामें एक राज्यके अतिरिक्त, ७ पर्वतों, ८ नदियों, ९ कालिजों, १० जलाशयों, ८३ काउण्टियों तथा १२१ नगरों, बस्तियों और गांवोंका नामकरण उनके नामपर हुआ है। उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करनेके उद्देश्यसे अनेक समुद्रपारीय नगरोंकी सड़कों और चौकोंका भी नामकरण उनके नामपर हुआ है।

वाशिंगटनके समयके विख्यात फ्रांसीसी कूटनीतिज्ञ, शाटोब्रीआनने इन सारगर्भित शब्दोंमें अमेरिकाके प्रथम प्रेसिडेण्टका वर्णन किया था: "उन्होंने उसीको अपना लक्ष्य बनाया, जिसे लक्ष्य बनाना उनका कर्तव्य था..... उन्होंने अपने अस्तित्वको अपने देशके अस्तित्वमें विलीन कर दिया था।... युगों-युगोंतक स्वतंत्रताके प्रयासके साथ वाशिंगटनका नाम प्रसारित होता जायगा।"

—कृष्ण गुजराल

(यू. एस. आई. एस. के सौजन्यसे)

* * *

विचरे भू-प्रेमी मानव
सित उच्च श्रेणियोंमें नित,
पर हो देवोंका वाहन
जन भू रत मन अन्तःस्थित।

—सुमित्रानन्दन पंत

मुरली

मुरली बाजि रही मधुबनमें,

एक गूंज गूंजी आत्मामें द्वार खुले कंचन के,
नाच रही राधा-छवि देखी रूप रंग-नंदनमें।

एक गूंज गूंजी मानसमें द्वार खुले चंदनके,
हुई सकल साकार कल्पना जीवनके प्रांगणमें।

एक गूंज गूंजी अंतरमें द्वार खुले चांदीके।
आनंद बरसा मची खलबली अरे सत्य-क्रंदनमें।

एक गूंज गूंजी कायामें द्वार खुले लोहेके,
कठिन पर्त टूटी जड़ताकी मधु उमगा जीवनमें।

—विद्यावती कोकिल

* * *

प्रलय आज बन रहा प्रणय है!

ढला रक्त रवि लाल, अमृत घट लिये चांदनी आयी है
गला जलनका काल, छांह शीतल प्राणोंने पायी है
हुए शांत कोलाहलके स्वर
है प्रशांत जलथलका अंतर,
खोल तरीके पाल, दूर वंशीकी ध्वनि लहरायी है
ढला रक्त रवि लाल, अमृत घट लिये चांदनी आयी है।
देख चुके रणका नरतर्पण,
रक्तपात, हिंसाका नर्तन,
महानाश विकराल, आज मानवता यह घबरायी है
ढला रक्त रवि लाल, अमृत घट लिये चांदनी आयी है।
मानवका यह भाग्योदय है,
प्रलय आज बन रहा प्रणय है,
बनो नहीं वाचाल, युगोंमें व्यथा आज सो पायी है।
ढला रक्त रवि लाल, अमृत घट लिये चांदनी आयी है।

—सोहनलाल द्विवेदी

सत्य पर अनोखा

पक्षियोंकी विशेषता

हम सामान्यतः पांच ही ज्ञानेन्द्रियोंसे परिचित हैं। परंतु प्रकृतिमें अनेक प्रकारकी ज्ञानेन्द्रियां मौजूद हैं जिनके बारेमें अभीतक हमारा ज्ञान नहींके बराबर है। कहते हैं कि अमरीकासे एक इंजीनियर हमारी नदियोंके बांध देखनेके लिये आये थे। एक जगह उन्होंने किसी बांधकी ऊंचाई ५३२ फुट बतायी। हमारे इंजीनियरोंने कहा, यह ५३३ है। हमने ही तो बनाया है। अमरीकी सज्जन बोले, चलो, नाप लो। नापनेपर वह ठीक ५३२ फुट निकला। केवल आंखसे देखकर वस्तुओंकी लंबाई-चौड़ाई और मोटाई बता सकनेकी क्षमता भी एक प्रकारकी ज्ञानेन्द्रिय ही है जिसे विकसित किया जाय तो वह अन्य इन्द्रियोंकी तरह सहज रूपसे काम कर सकती है। हमने ऐसे लोगोंके बारेमें सुना है जो हवाई जहाजके कारखानोंमें काम करते हैं। वे छूकर किसी चीजमें इंचके हजारवें हिस्सेका फर्क झटसे बता सकते हैं। यह कोई चमत्कार नहीं है। यह सधी हुई आंखों या सधी हुई अंगुलियोंके द्वारा काम करनेवाली छठी इंद्रिय ही है।

मनुष्य अपने-आपको सृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ समझता है पर कई बातोंमें पशु-पक्षी उससे कहीं बढ़कर होते हैं। अगर आपने गिलहरीको पेड़पर आम खाते हुए या बंदरोंको मूंगफलियां खाते हुए देखा है तो आपको इस बारेमें कुछ परिचय होगा। पशु-पक्षी भी देखते-सुनते हैं, उन्हें भी चीजोंका स्वाद मालूम होता है। परंतु देखने-देखनेमें अंतर होता है। कुत्ता, जो देख-सुन सकता है, शिकार करता है और हर तरहसे अच्छी आंखोंका परिचय देता है – रंग नहीं देख पाता। वह अपने भोजन या शिकारकी ओर आंखोंके द्वारा नहीं नाकके कारण आकर्षित होता है। उसकी आंखोंमें वह तत्त्व नहीं होता जिसके द्वारा हमारी आंखें रंगोंको देख सकती हैं। उसकी आंखोंका उपयोग होता है उसे मार्ग दिखानेमें ताकि वह इधर-उधर न टकराये। उसे सभी चीजें काली या सफेद दिखायी देती हैं और गतिशील वस्तुएं ही उसका ध्यान आकर्षित कर सकती हैं। कई जानवर कुत्तेकी इस कमजोरीको जानते हैं और उसे देखते ही दुबककर सांस रोककर बैठ जाते हैं।

चिड़ियां रंगोंको भली भांति देख सकती हैं। इधर-उधर डालियोंपर फुदकनेमें उन्हें रंगके कारण स्थानकी दूरी, वस्तुकी मोटाई आदिका पता लग जाता है। चिड़ियोंकी आंखें अर्जुनकी आंखों-जैसी होती हैं। कहते हैं, जब धनुर्विद्याकी परीक्षाके लिये द्रोणने एक डालीपर एक चिड़िया रखी और परीक्षार्थी शिष्योंसे पूछा, तुम्हें डालीपर क्या दिखायी देता है तो किसीने कहा, चिड़िया; किसीने कहा, डाली; लेकिन जब अर्जुनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा, चिड़ियाकी आंख। इसी तरह तेजीसे उड़ती हुई चिड़ियाको यह फुर्सत नहीं होती कि वह हर चीज देख सके। उसे अपने कामकी चीजें ही दिखायी देती हैं। अगर बाज कहीं ऊंचाईपर हो, आप उसे देख भी न पायें तो भी आपकी अंगुलिपर बैठा हुआ चिड़ियाका बच्चा डर जायगा। कीड़े-मकोड़े पकड़नेवाले पक्षियोंकी आंखमें एक झिल्ली होती है जो आकाशमें उड़ते हुए या जमीनपर रेंगते हुए छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ेको देख लेती है। शायद उन्हें आकाश कीड़ेसे भरा हुआ तालाब दिखायी देता होगा। एक प्रकारकी मछली होती है जिसकी आंखोंका ऊपरका भाग हवामें देख सकता है और निचला भाग पानीमें।

शायद हमारी दुनियाका सबसे सुन्दर रूप मधुमक्खीको ही दिखायी देता है। उसे फूल ही फूल दिखायी देते हैं। फूलोंके अतिरिक्त चीजें तो क्या वह मुरझाये हुए फूलोंको भी नहीं देख पाती। उड़ते हुए

उसे सब जगह सौंदर्य ही दिखायी देता है। उसे पारजम्बू (अल्ट्रावायोलेट) रंग भी दिखायी देते हैं। कई फूलोंमें जहां हम कोई विशेष रंग नहीं देख पाते, उसे चमकते हुए मधुकण हीरोंके रूपमें दिखायी देते हैं। कई जन्तुओंकी आंखें नहीं होतीं परंतु उनकी त्वचामें ही प्रकाश देखनेकी क्षमता होती है।

बिजलीके शौकीन पौधे

पौधोंमें भी जान है हमारी ही तरह। समय बदला तो पौधोंके मिजाज भी बदल गये हैं। इनके भी शौक हैं — बहुत कुछ हमारे ही जैसे! इन्हें सर्दी सताती है। पाला इन्हें मार देता है। इन्हें गर्मी परेशान करती है। लू और धूप इन्हें झुलसा देती है। अतः सर्दियोंमें इन्हें कुछ-न-कुछ ओढ़नेको चाहिये। दिनमें भी यदि शीत और पाला पड़ रहा हो तो इन्हें बोरसी चाहिये — ऐसे ही जैसे बंद कमरोंमें हमें अंगीठी आदि रखनी पड़ती हैं। पौधे इधर काफी नाजुक-मिजाज भी हो गये हैं। सृष्टिके आरंभमें यदि ऐसे छुईमुई होते तो कैसे निभती ? अब तो जरा-जरासे कीटाणुओंसे रक्षा पानेको ये पौधे कीट-विनाशक दवाओंके लिये हमारा मुंह ताकते रहते हैं। केवल दवाएं छिड़कनेसे ही काम चल जाता है, ऐसा भी नहीं। दवाओंको इंजेक्शनके रूपमें भी ये मांगते रहते हैं।

बीमार पौधोंकी बात जाने दें। जो पौधे बीमार नहीं हैं, वे भी नखरे दिखाते हैं। कहते हैं, हमें बढ़ने-पनपनेके लिये संगीत सुनाइये नहीं तो हम अधकचरे ही रह जाएंगे! अतः विज्ञानने जिन क्यारियोंमें ग्रामोफोन या रेडियो-संगीत सुनाये, उनके पौधे मस्तीसे झूमते-झूमते दूसरे उन पौधोंसे बहुत आगे बढ़ गये जो बेचारे संगीतके भूखे ही रहे। अब पौधे यह भी कहने लगे हैं कि हमें खानेको हलकी-फुल्की बिजली भी देते रहिये, फिर देखिये हमारे करतब! यहां हमें सोचनेके लिये कुछ ठहरना पड़ गया है।

शायद हम सोचें कि यह बिजलीकी मांग क्या नयी मुसीबत है! हम जरा गहरे उतरकर सोचें-विचारेंगे तो पायेंगे कि वायुमण्डलमें बिजली भी तरह-तरहके पवनों और बादलोंकी भांति सदैव मंडराती रहती है। मंडराते हुए वह यही देखती है कि किस प्रकार कोई जरा-सा माध्यम मिल जाये कि मैं धरतीमें समा जाऊं। माध्यम प्रायः इसे मिल भी जाते हैं और वे माध्यम हैं — प्राणियोंके शरीर तथा पेड़-पौधे। यही वायुमण्डलीय बिजली जब मात्रामें अनाप-शनाप बढ़ जाती है, बादलोंसे कड़कती, गरजती है, तब आकाशीय बिजलीके रूपमें विनाशका भी कारण बन जाती है।

वैज्ञानिकोंने विभिन्न प्रयोगों तथा परीक्षणोंसे यह ज्ञात कर लिया है कि बिजलीकी मंद-मंद, हल्की-हल्की खुराकें पौधोंके लिये विशेषतः गेहूं, मक्का, बाजरा आदिके लिये जल्दी बढ़नेमें और अधिक उपज देनेमें सहायक होती है। वैसे ये प्रयोग नये नहीं कहे जा सकते। २०० वर्ष पूर्व भी एडिनबराके वनस्पतिज्ञ मि. मेम्ब्रेने सन् १७४६ में ऐसे प्रयोग सफलतापूर्वक किये थे। उनका वर्णन ज्हान प्रीस्टले लिखित और सन् १७७६ में प्रकाशित पुस्तक — विद्युत्का इतिहास एवं वर्तमान अवस्था — में किया गया है।

इतना उपयोगी विज्ञान १००-१५० वर्षोंतक पोथियोंमें ही कैद पड़ा रहा और किसीने भी इसकी कदर नहीं जानी। बहुत समय बीत गया तब कहीं प्रथम विश्व-युद्धके दिनोंमें इसकी ओर ध्यान गया। खाद्यान्नकी बढ़ती हुई मांग और तीव्र अभावने यह आवश्यक कर दिया कि इस भूली हुई विद्याको पुनः जीवित किया जाये। अतः नये सिरेसे प्रयोग आरंभ किये गये। खेतोंकी छोटी-छोटी क्यारियोंपर तारके जाल तानकर उनमें बिजली फैलायी जाती रही। दूसरे शब्दोंमें उन क्यारियोंके पौधोंको बिजलीकी छाया दी जाने लगी।

परिणाम अवश्य सफल रहे, किंतु इन प्रयोगोंकी लोकप्रियता एकाएक बढ़ न सकी। कारण

यह था कि ३० प्रतिशतसे ५५ प्रतिशततक फसलोंमें वृद्धि होनेपर भी बिजलीकी छाया उस प्रकार देना काफी खर्चीला पड़ने लगा। पुनः एक बार इस अध्यायको मानो २०-३० वर्षोंकी नींद आ गयी।

इधर आजसे बीस वर्ष पूर्व इन्हीं प्रयोगोंमें फिरसे जान फूंकी जाने लगी। इन्हीं प्रयासोंके बीच एक नया प्रयोग अधिक आशावर्द्धक सिद्ध हुआ। वह यह था कि बिजलीकी छाया देनेकी अपेक्षा बीजोंको ही पहलेसे बिजली खिलायी-पिलायी जाने लगी। इसके लिये बीजोंको एक ऐसे पात्रमें रखा गया जिसमें साधारण नमक अथवा केल्सियम क्लोराइड, दोनोंमेंसे किसीका भी अत्यंत मन्द घोल भरा हो। बीजोंको उसमें डालनेके पश्चात् उस घोलमें अत्यंत हल्की विद्युत्-धारा प्रवाहित की जाती रही। जैसा बीज, उतना ही कम या अधिक समय उसके लिये रखा गया। बिजली पिलानेके पश्चात् बीजोंको सुखा लिया गया। उन बीजोंको जब बोया गया तब उन्होंने निश्चित रूपसे ड्योढ़ी उपज दी। यह विधि अधिक खर्चीली भी नहीं। अतः सरलतासे अपनायी जा सकती है।

क्या ही अच्छा हो, हमारे देशमें सैंकड़ों-हजारों मीलोंतक फैले-बिखरे, खुले भूमि-विस्तारोंकी इंच-इंच भूमिको कृषियोग्य बनाया जाय तथा विज्ञानके वरदान-स्वरूप इन साधनोंके उपयोगकी सद्बुद्धि हममें उत्पन्न हो! तभी हम पेट भरनेके मामलेमें अपने पांवोंपर खड़े हो सकेंगे।

——श्यामसरन विक्रम

हिन्दुस्तानमें भिखारियोंकी समस्या

संसारके सभी धर्मोंने दान देनेका आदेश दिया है, गरीब, भूखे, अपाहिजको देखते ही हमारी दया-की रग फड़क उठती है। हम कुछ-न-कुछ सहायता करनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं। परंतु सचमुच सहायता करना तो टेढ़ी खीर है। उसके लिये न हमारे पास साधन हैं और न समय। इसलिये दो-चार पैसे देकर ही हम हातिमताईकी कब्रपर लात मारने लग जाते हैं। हमें संतोष हो जाता है कि हमने कुछ किया। दक्षिण भारतमें मंदिरोंके आगे नारियल तोड़ना बहुत पुण्यका काम माना जाता है। देवताके अनुसार भिन्न-भिन्न दिनोंपर आप लोगोंको आ-आकर नारियल तोड़ते हुए देखेंगे। उनके चेहरेपर कई बार एक विजयकी भावना होती है, मानों उन्होंने नारियल क्या तोड़ा स्वर्गका टिकट कटा लिया। लेकिन नारियल तोड़नेके समयका दृश्य बड़ा बीभत्स होता है। उत्तर हो या दक्षिण, सभी जगह इस प्रकारके दृश्य दिखायी देते हैं। मंदिरों और मस्जिदोंके सामने बैठे हुए काने, कुबड़े, अंधे, लूले, कोढी सब तरहके अपंग प्रसाद या खैरातपर टूट पड़ते हैं। आपसमें मार-पीट करना, और हाथापाईमें चोट आना तो मामूली बातें हैं।

दान देनेवाला यही सोचता है कि इस प्रकार दान देकर उसने गरीबकी सहायता की; परंतु वस्तु-स्थिति कुछ और ही कहती है। कुछ वर्ष पहले लखनऊके एक सज्जनने भिखारियोंका अध्ययन करनेकी कोशिश की थी। उन्हें पता लगा कि बहुतसे भिखारी सचमुच लाचार और माजूर होकर भिखारी नहीं बनते। यह उनका एक पेशा होता है जिसके लिये उन्हें बाकायदा शिक्षा दी जाती है। सारे प्रदेशमें उनके संगठनका जाल बिछा है जो नये रंगरूटोंको भरती करता, पुरानोंकी व्यवस्था करता और उनकी आमदनीपर कर लगाता है। यह संगठन छोटे-छोटे बच्चोंको खरीद लेता है और उन्हें विकलांग करके रिरियाना और दया उभारनेवाली आवाजें निकालना सिखाता है। उनके शरीरपर घाव करके अथवा घावोंका प्रदर्शन करके उनको इधर-उधर चौराहोंपर या सड़कों और बाजारोंमें छोड़

दिया जाता है। दयार्द्र स्त्रियां और पुरुष इन लोगोंको कुछ देकर समाजके प्रति अपने कर्तव्यकी इतिश्री कर लेते हैं। उधर संगठनके नेता लोग शामके समय इन सबकी आमदनी अपने हाथमें कर लेते हैं और उसमेंसे इन्हें कुछ मजदूरी दे दी जाती है। इनका संगठन बाहरसे आनेवाले नये भिखारी-की जिन्दगी दूभर कर देता है। हमारे यहां पांडिचेरीमें एक अष्टावक्र भिखारी था। हर रोज सबेरे एक भला-चंगा आदमी उसे बाइसिकिलपर बैठाकर लाया करता था और यहांके खजानेके पास धर देता था। उसके सामने कपड़ा बिछाकर उसपर इकन्नियां, दुअन्नियां बिखेर कर ओटमें हो जाता था। कहते हैं, सोना सोनेको खींचता है; इसलिये इकन्नियां दुअन्नियां रखी जाती थीं ताकि देने-वाला संकोचवश इससे कम न दे। वह आदमी दिनमें चक्कर लगाकर उसकी कमाई ले जाता था और शामको उसे भी उठा ले जाता था। अगर किसी दिन कमाई कम हो तो उसकी मुसीबत की जाती थी।

अभी पिछले दिनों मद्रासके समाज-विकास विद्यालयके अध्यक्ष डा.क. न. जार्जने अपने विद्यार्थियोंसे इस सिलसिलेमें जांच करवायी थी। उनका कहना है कि अंधाधुंध भीख देनेकी वृत्ति भिखारियोंकी संख्या बढ़ानेके लिये जिम्मेदार है। उनके आंकड़ोंके अनुसार भिखारियोंमें २२ प्रतिशत सत्तर वर्षसे ऊपरकी आयुके हैं। मद्रासकी आबादीमें प्रायः अस्सी प्रतिशत हिन्दू और बीस प्रतिशत इतर धर्मोंके माननेवाले हैं। भिखारियोंमें भी यही अनुपात है। पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंसे दुगुनी है। बीस प्रतिशत भिखारी बाकायदा विवाहित हैं और पचास प्रतिशत अपने रिश्तेदारोंके साथ रहते हैं। उनमें छत्तीस प्रतिशत साक्षर हैं जिनमेंसे कई तमिल और अंग्रेजीके अखबार पढ़ सकते हैं। उनमें आधेसे अधिकको यह पेशा करते हुए पांच वर्षसे अधिक हो चुके हैं और बारह प्रतिशतको तो पंद्रह वर्षसे भी ऊपर हो चुके हैं। बच्चोंकी संख्या दस प्रतिशतके लगभग है जिनमें अधिकतम ऐसे हैं जिनके मां-बापने उन्हें जबर्दस्ती इस पेशेमें घुसाया है। चार प्रतिशत सुनार रह चुके हैं और सोनेपर लगाये गये नये प्रतिबंधोंके कारण भिखारी हो गये हैं। बत्तीस प्रतिशत भिखारियोंने स्वीकार किया कि वे अपनी कमाईमेंसे बचत करके अपने रिश्तेदारों या होटलवालोंके पास जमा करवाते हैं। ४६ प्रतिशतकी अपनी झोपड़ियां हैं या वे किरायेकी झोंपड़ीमें रहते हैं। लगभग १६ प्रतिशतकी दैनिक आय चार रुपये या उससे अधिक है। भिखारियोंकी औसत आयु दो रुपया रोजके आसपास है। उनमेंसे लगभग एक तिहाई लोग होटलोंमें खाना खरीदा करते हैं, कुछ नौकरोंद्वारा तोशेदानमें खाना मंगाते हैं। इनमें काफी संख्याके लोग खाने-पीने, पान-बीड़ी आदिके खर्च निकालकर नियमित रुपसे सिनेमा जानेकी व्यवस्था भी कर लेते हैं।

समाज और सरकारको मिलकर कुछ ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे समाजका यह बेकार अंग भी उपयोगी बन सके। बूढ़ों, विकलांगों और बच्चोंके लिये अलग-अलग व्यवस्था होनी चाहिये और कुष्ट तथा अन्य भयानक रोगोंके शिकारको समाजमें अपना उपहार बांटनेकी खुली छूट न होनी चाहिये। हेनरी फोर्डका कहना है कि यदि ठीक व्यवस्था की जाय तो बहुतसे काम ऐसे निकल आते हैं जिन्हें विकलांग भली भांति कर सकते हैं और इस तरह स्वस्थ पुरुषोंको दूसरे कामोंके लिये अवसर मिल सकता है। उनका कहना है कि कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जिसका बेकार रहना अनिवार्य हो। उनका कहना है कि हर एक स्वमानके साथ रोजी कमा सकता है और समाजके लिये उपयोगी हो सकता है। इस दिशामें हमारे देशमें प्रयत्न हो तो रहा है पर अभी वह आरंभिक अवस्थामें ही है। जहां हजारों लाखों स्वस्थ और शिक्षित लोग बेकार पड़े हों वहां विकलांगोंको काम देनेकी बात जरा देरमें ही सूझती है।

रवीन्द्र

* * *

कुछ घटनाएं : नयी और पुरानी

महाभारतका युद्ध होनेकी तैयारी थी; विदुर, कृष्ण आदि समझौता करानेके प्रयास करके हार चुके थे। दुर्योधनने घोषणा कर दी थी कि बिना युद्धके वह सुईकी नोकके बराबर जमीन भी न देगा। अब दोनों पक्ष अपनी शक्ति बढ़ानेमें लगे थे। उनके दूत इधर-उधर जा-जाकर राजाओंको अपने पक्षमें करनेका प्रयास कर रहे थे। दोनों ही दलोंको श्रीकृष्णका ख्याल आया और अचानक एक ही दिन दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्णके यहां जा पहुंचे। भगवान् सो रहे थे। दुर्योधनको ख्याल था कि मैं राजा हूं इसलिये वह श्रीकृष्णके सिरहाने बैठ गया। अर्जुनको अपने बड़प्पनका मद न था, वह भगवान्के चरणोंके पास जा बैठा। थोड़ी देरमें भगवान्की नींद खुली। पहले अर्जुनपर नजर पड़ी। पूछा, अरे, तुम कहां, इतनेमें दुर्योधन भी सामने आ गया। दोनोंने निवेदन किया कि हम युद्धमें आपको अपनी ओरसे निमंत्रण देने आये हैं। भगवान्ने कहा, मैं तो निश्चय कर चुका हूं कि युद्धमें कोई अस्त्र न उठाऊंगा। तुम दोनों सहायता मांगने आये हो, तुममेंसे एक मुझे ले ले, दूसरा मेरी सेनाको। मेरी दृष्टि पहले अर्जुनपर पड़ी थी और वह है भी छोटा, इसलिये पहला चुनाव वह करे। अर्जुनने बिना कुछ सोचे-विचारे झट कह दिया, मैं आपको चुनता हूं, मुझे सेना नहीं चाहिये। दुर्योधनने सोचा, चलो, अच्छा ही हुआ। कृष्णकी सारी नारायणी सेना मेरे हिस्सेमें आयी, अकेले और वह भी निरस्त्र कृष्ण अर्जुनको ही मुबारक हों।

उसे मालूम न था :

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

(जहां योगेश्वर कृष्ण हैं, जहां धनुर्धर पार्थ हैं वहीं श्री है — वहीं विजय है।)

* *

आज फिरसे कुरुक्षेत्रका युद्ध हो रहा है। भाई-भाईके खूनका प्यासा हो रहा है। श्रीमाताजी कहती हैं, "भारत सत्यके लिये, सत्यकी विजयके लिये लड़ रहा है और जबतक हिन्दुस्तान और पाकिस्तान एक न हो जायं तबतक उसे लड़ते रहना चाहिये, क्योंकि यह एकता ही उनकी आत्माका सत्य है।"

श्रीअरविन्दने आजसे लगभग ५७ वर्ष पहले कहा था और वह आज भी सही है, "आज हम जिस लड़ाईमें लगे हुए हैं वह पुराने जमानेकी लड़ाइयोंके जैसी नहीं है जिसमें राजा या नेता मारा जाता था तो सेना भाग निकलती थी। हमारी मातृभूमि ही वह पवित्र और अमर राजा है जिसका हम अनुसरण करते हैं। हमारे अभियानमें स्वयं सर्वशक्तिमान ही हमारे नेता हैं।"

* *

कौरवोंने अभिमन्युको मार डाला। अर्जुनपर यह सबसे बड़ा प्रहार था। उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो सूर्यास्तसे पहले अभिमन्युके हत्यारे जयद्रथको यमलोक पहुंचाकर रहेंगे। युद्ध बड़ा ही भीषण रूप धारण करता जा रहा था। अर्जुनके बाण सारे आकाशमें छा गये थे। द्रोण भी सकपका उठे। ऐसे समय दुर्योधन द्रोणके पास पहुंचा और बोला, इस तरह तो अर्जुन हमारा तहस-नहस कर देगा। आप इसके लिये कुछ करते क्यों नहीं? द्रोणने उत्तर दिया, शायद अब मैं बूढ़ा हो गया हूं, मेरे बाण ठीक निशानेको नहीं बेध पाते, जबतक मैं एक जगह बाण मारता हूं तबतक

श्रीकृष्ण रथको आगे हटा लेते हैं। तुम देखते नहीं हो, मेरे बाण हमेशा अर्जुनके रथके पीछे गिरते हैं? दुर्योधनने बहुत विनय की तो द्रोण बोले, अच्छा लो, मेरे पास एक कवच है, यही पहनकर इन्द्रने वृत्रसे लड़ाई की थी। दुनियाका कोई भी अस्त्र इसे काटनेमें समर्थ न होगा। तुम इसे पहनकर अर्जुनके साथ युद्ध करो। दुर्योधन प्रसन्न हो गया। उस कवचको पहनकर लड़नेके लिये चल दिया, कौरवोंमें नयी जान आ गयी। अर्जुनके साथ घोर युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी घायल हुए। घोड़ोंकी बुरी हालत थी। कृष्णने रणके बीचमें ही रथके घोड़े खोल दिये, अर्जुनने बाण मारकर एक सरोवर तैयार कर दिया और उसके किनारे ही बाणोंसे एक मकान बना दिया। श्रीकृष्ण घोड़ोंको लेकर उसमें घुस गये और उनकी मरहम-पट्टी कर ली।

उधर नये कवचके घमण्डमें दुर्योधन धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदिसे लड़ता हुआ अर्जुनके सामने आ गया और आते ही उसने अर्जुनपर बाण चलाने शुरू किये। अर्जुनने २८ बाण मारे पर उनमेंसे एक भी कवचको भेद न सका। दुर्योधनके हर्षकी सीमा न थी। श्रीकृष्णने अर्जुनसे पूछा, आखिर बात क्या है, तुम्हारे बाण व्यर्थ क्यों जा रहे हैं, तुम्हारी शक्ति कहां चली गयी? अर्जुन हंसकर बोले, भगवन्! आप तो ऐसे पूछते हैं मानो आप इस रहस्यको जानते ही न हों। खैर, आप पूछते हैं तो मैं बताता हूं। दुर्योधन आचार्यका दिया हुआ कवच पहने हुए है। इन्द्रका वज्र भी इसे नहीं भेद सकता, इसमें अद्‌भुत शक्ति है। परंतु उन्हीं आचार्यकी कृपासे मैं इसका मर्म जानता हूं जिसे दुर्योधन नहीं जानता। यह कहते हुए अर्जुनने चिल्ला चढ़ाया और दुर्योधनकी अंगुलियोंके नाखूनोंपर निशान लगाया। उस हिस्सेपर कवच न था। दुर्योधन दर्दसे बिलबिला उठा और युद्धक्षेत्र छोड़कर चला गया। अर्जुन विजयकी ओर बढ़ते गये।

* *

हिंदुस्तान और पाकिस्तानके युद्धमें पाकिस्तानके पास अमरीकाके दिये हुए सेबर जेट हवाई जहाज थे, शर्मन टेंक थे, पेटन टेंक थे और हर तरहके अच्छेसे अच्छे अस्त्र-शस्त्र थे। हिंदुस्तानके पास बेंगलूरके बने बचकाने हवाई जहाज थे और आवड़ीके बने छोटे-छोटे टेंक। परिणाम जगविदित है। लुधियानेवाले तो और भी एक कदम आगे बढ़ गये, स्टेनगन, ग्रेनेड आदि अमरीकी और चीनी शस्त्रोंसे सुसज्जित पाकिस्तानके छत्री-बाजोंको साधारण पानी भरनेकी बाल्टियोंसे धराशायी कर दिया।

* *

सिपहसालार शायस्ता खां अपनी पूरी सेना लेकर आगे बढ़ रहा था। आज शिवाजीके बच निकलनेकी कोई संभावना न थी। आखिर इतने परिश्रमके बाद, इतनी दौड़-धूपके बाद इस पहाड़ी चूहेको पकड़नेका अवसर मिला। लेकिन शिवाजी भी एक काइयां थे। उन्होंने किसी तरह अपने आदमियोंके पास संदेशा भेज दिया कि बैलोंके गलेमें घुंघरू बांधकर और सींगोंपर मशाल लगाकर इस जगहसे दस-ग्यारह मीलकी दूरीपर गोल-गोल दौड़ाया जाय। ऐसा ही किया गया। शायस्ता खांने समझा, शिवाजी उस तरफ भाग रहा है, उसका सारा दल उधर टूट पड़ा और शिवाजी महाराजको बच निकलनेका मौका मिल गया। जबतक शायस्ता खां वापिस आया, शिवाजी सिंहगढ़में घुस चुके थे।

* *

१९६४। कश्मीरके युद्धमें पाकिस्तानी हाजीपीरकी तरफसे घुसे आ रहे थे। हाजीपीरको लेना आवश्यक था। दलपतिने अपने आदमियोंसे पूछा, मांके लिये कौन-कौन मरना चाहता है? तीन

सौ आवाजें एक साथ उठीं, हम सब। दलपतिने ३५ आदमी चुन लिये। आसपासके गांवोंमेंसे कुछ बकरे खरीदे गये और हर एकके सींगपर एक-एक टार्च बांध दी गयी। बकरोंको लेकर पांच आदमी पहाड़ीके नीचे चलने लगे। अंधेरी रात थी। पाकिस्तानी सेनाने सोचा, हिंदुस्तानी इधरसे कूच कर रहे हैं। बस, अंधा-धुंध गोलियां बरसाने लगे। एकके बाद एक बकरा युद्धमें गिरने लगा और टार्च बुझने लगी। थोड़ी देरमें सबका सफाया हो गया। शत्रुदलने सोचा, कम-से-कम थोड़ी देरके लिये तो भारतीय सेनासे पिंड छूटा। वे सुस्ताने लगे और पीछेसे ३० हिंदुस्तानियोंकी टुकड़ीने छापा मारा। अब हाजीपीर हिंदुस्तानियोंके हाथमें था।

*　　　　*

भगवान्‌के कामके लिये भारतकी विजय आवश्यक है, विजय होकर रहेगी। हिंदुस्तान फिरसे एक होगा। हमें केवल बाहर ही नहीं अंदर भी विजय पानी है ताकि धरतीपर सचमुच भगवान्‌का राज्य हो सके।

—संकलित

***

कुत्ता

मैं बूढ़ा हो गया हूं। कुछ दिन हुए मेरे मालिकने मुझे घरसे निकाल दिया। बहुत सालोंतक मैंने उसके घरकी रखवाली की और उसके बच्चोंको प्यारसे रखा। परंतु अब मैं बूढ़ा हूं, मैं कुछ काम नहीं कर सकता, सिर्फ खाना खाता हूं और पड़ा रहता हूं, इसलिये मुझे भगाया गया है। आदमी कैसा होता है? वह किसी चीजके लिये भी कृतज्ञ नहीं होता। मैंने उसके लिये कितना किया, अपनी जान जोखोंमें डालकर उसकी सेवा की, सारे जीवन उसके आगे दुम हिलायी, खीसें निपोरीं, उसकी एक 'छू' पर अपने-परायेका ख्याल न करके काटनेके लिये दौड़ पड़ा फिर चाहे मेरी कुछ भी गति क्यों न हो—पर इस सबका परिणाम—आज मैं गलियोंमें भूखा फिर रहा हूं, मुझे कोई खानातक नहीं देता। लोग कहते हैं कि मैं भद्दा हूं। जब मैं जवान था तब मैं सुन्दर था, लेकिन उनको पता नहीं है कि सुन्दर होनेसे पहले अच्छा होना ज्यादा जरूरी है। मुझे बच्चे पत्थरोंसे मारते हैं, मैंने उनका क्या बिगाड़ा है? कुछ नहीं, फिर भी बिना कारण मुझे मारते हैं। मैं बूढ़ा हूं। इसलिये भाग भी नहीं सकता। मैं सिर नीचा किये चल रहा हूं। अचानक मैंने कुछ छिछड़े देखे, "इन्हें क्यों न खा लूं" मैंने सोचा, परंतु दूसरी ओरसे एक और कुत्ता आ गया। "अरे, भाई, हट जा, यह तो मेरा खाना है" उसने कहा। "मुझे बहुत भूख लगी है, जरा गढ़ा भर लेने दो," मैंने कहा, "कलसे मैंने कुछ नहीं खाया है।" "चल हट बूढ़े", उसने जवाब दिया, "नहीं तो मैं तुझे काटूंगा।" दुम पैरोंके बीचमें रखकर मैं वहांसे चल पड़ा। "जब मेरे भाई ही मुझे भगा देते हैं तो आदमी भला क्यों कृपा करने लगा", मैंने दुखी होकर सोचा। रातको मैं खाली पेट ही रास्तेपर पड़ रहा। बहुत ठंड थी परंतु मैं इतना थका हुआ था कि मैंने परवाह नहीं की। मुझे सिर्फ सोना था और सोते ही जाना था, मुझे भूल जाना है कि एक पृथ्वी है जहां कोई एक बूढ़ेकी मदद नहीं करता, जहां कोई उसपर कृपा नहीं करता।

—हेमा

कुत्तोंकी सभामें

कहते हैं, इस ब्रह्माण्डमें कहीं एक कुत्तालोक भी है। वहांके कुत्ते बड़े बलवान, बुद्धिमान और साहसी होते हैं। एक बार उनके 'कुत्ता-समाचार' का एक संवाददाता घूमता-फिरता धरतीपर आ पहुंचा। यहां तरह-तरहके अनुभव प्राप्त किये। यहांकी हर चीज ही उसके लिये नयी थी। जब वह कुत्तालोकमें वापिस पहुंचा तो उसका खूब स्वागत-सम्मान हुआ और उसपर मनुष्योंके बारेमें प्रश्नों-की झड़ी लगा दी गयी।

उत्तर देते हुए हमारे पर्यटक कुत्तेने कहा, आप जानते ही हैं कि मैं मनुष्यलोककी सैर करने गया था। अब मैं आपको वहांका कुछ हाल सुनाता हूं। जो कुछ देखा और सुना है वही कहूंगा, अपनी ओरसे कुछ न बढ़ाऊंगा। हां, तो मनुष्य एक अजीब तरहका प्राणी है। वह हमारी तरह चार पैरोंपर नहीं खड़ा होता। वह पिछले दो पैरोंपर खड़ा होता है और अगले दो पैरोंसे तरह-तरहके काम करता है। उसके शरीरमें पूंछ भी नहीं होती। पर भारत नामक एक देशमें बहुतसे मनुष्य इसका चाव पूरा करनेके लिये सिरके पीछे एक पूंछ लटका लेते हैं जो देखनेमें तो अच्छी लगती है पर उसे हिलाना भी इनके बसमें नहीं होता। उनका स्वभाव भी हमसे अलग होता है। कई बड़े अच्छे और दयालु होते हैं और कई बड़े क्रूर और निर्दय। मैं उनके बीच अपने इस शरीरसे न जाना चाहता था इसलिये मैंने धरतीके एक छोटेसे पिल्लेका रूप धारण कर लिया और एक बड़े मकानमें जा घुसा। मैं वहांपर अकेला था। न मां, न बाप, न भाई, न बहन। मेरा वह शरीर बहुत छोटा-सा था। मैं जिस घरमें जा घुसा उसके मालिककी नजर मेरे ऊपर पड़ी। उसने कुछ अंट-शंट कहा और अपने लंबे-लंबे पैरोंसे ऐसी लातें जमायीं कि मैं सड़कपर आ रहा। सड़कपर खूब शोर करते हुए रंग-बिरंगे जानवर दौड़ रहे थे। मनुष्य उन्हें मोटर कहता है। अगर मैं वहीं पड़ा रहता तो जरूर थोड़ी देरमें मनुष्यकी मौत मरना पड़ता। इसलिये मैं खिसक-खिसककर एक तरफको हो गया। उस घरमें फिरसे घुसनेकी हिम्मत न होती थी। पहली लातके कारण अभीतक हड्डी-पसलीमें दर्द था, दूसरी लगती तो न जाने क्या होता?

"तो मनुष्य इतना क्रूर प्राणी है क्या?" श्रोताओंमेंसे एकने पूछा, "मैं तो ऐसे देशमें कभी न जाऊं।"

नहीं, एक घटना सुनकर ही सारे मनुष्योंको बुरा मान बैठना किसी बुद्धिमान कुत्तेको शोभा नहीं देता। हां, तो मैं सड़ककी बात कह रहा था, मुझे काफी समयतक सड़कपर रहना पड़ा। भूख-प्यास-से मुझे काफी कष्ट हो रहा था और ऊपरसे मोटर प्राणीका डर। उसके साथ-साथ दो गोल पैरों-वाले बच्चे भी घूम रहे थे। दोनोंके डरसे मेरे प्राण सूख रहे थे। शायद ये प्राणी अंधे होते हैं, मैं उनके रास्तेमें ही था पर किसीने मुझे हड़प न किया। लेकिन मैंने देखा है कि यह प्राणी देखते-देखते मनुष्यको चट कर सकता है। मैं चुपचाप पड़ा रहा। एक छोटी लड़की मेरे पास आयी। मनुष्य अपने पिल्लोंको लड़का लड़की कहता है। इसने आते ही अपनी भाषामें भोंकना शुरू किया। शायद हमारे पिल्लोंकी तुलनामें उसकी आवाज चीं-चीं जैसी लगेगी। उस लड़कीके चार कान थे। दो तो हम लोगोंकी तरह और दो भड़कदार रंगीन कान पीठपर लटक रहे थे। वह मुझे देखते ही मुझपर मोहित हो गयी और अपने घर ले गयी। वह छोटी थी तो क्या हुआ, थी मजबूत। वह मुझे आसानीसे उठा सकती थी। उसने मुझे अपने घरमें एक चटाईपर रख दिया। इतने लोगोंको देखकर मैं तो ठंडा पड़ गया। हे भगवान्, मैं कहां आ फंसा? इधर-उधर देखा आदमियोंकी भीड़-सी लगी

थी। दीवारपर टिक-टिक करता हुआ एक जानवर अपनी दुम हिला रहा था। उसकी मूंछें सारे चेहरेपर घूमती रहती थीं।

मुझे डरा हुआ देखकर लड़कीने मुझे गोदमें उठा लिया और एक कटोरा भर गरम-गरम दूध और कुछ गोल-गोल मिठाई मेरे आगे ला रखी। मैं भूखा तो था ही, सब कुछ साफ कर दिया। अब मेरे अंदर नया साहस जागा। मैं मकानमें इधर-उधर घूमने लगा। कई जगह चार-चार पैरों-पर नरम-नरम चीजें थीं। मैं कूदकर एकपर बैठ गया और वहीं नींद आ गयी। सोकर उठा तो फिर भूख लगी। लड़कीने फिर खाना ला दिया। लड़कीने मुझे बहुत-सी बातें सिखायीं जो तुम्हारे लिये तो स्वप्न जैसी हैं। उसने मुझे दो पैरोंपर नाचना, गेंदसे खेलना, टोकरी उठाकर चलना, तरह-तरहके आदमियोंको पहचानना सिखाया। वह मुझे बाजार ले जाया करती थी।

"और बाजार क्या चीज होती है" एकने पूछा।

हां, यह तो मैं भूल ही गया था कि तुम इन चीजोंसे अपरिचित हो। बाजार बड़े मजेकी जगह होती है। वहां तरह-तरहकी चीजें और तरह-तरहके मनुष्य होते हैं। वहां जाकर उस लड़कीके लिये बहुत-सा सामान लाना होता था। कभी-कभी बाजारसे मांस भी लाना होता था।

"एं, तो क्या कुत्तोंके लिये वहांपर तैयार मांस रखा रहता है?" फिरसे किसीने पूछ लिया।

नहीं, नहीं, मनुष्य ऐसा कुत्तापरस्त नहीं है। वह बड़ा स्वार्थी होता है, तरह-तरहके जानवरोंको मारकर खा जाता है। सुना है कि आदमी, आदमीको भी मार डालता है पर उसे खाता नहीं गाड़ देता है। शायद जब और कोई मांस न मिले तबके लिये रखता होगा।

जब मैं लड़कीके साथ घूमने जाता था तो एक और कुत्तेसे मुलाकात होती थी। वह एक अंधे-को रास्ता दिखाया करता था। हम एक-दूसरेको देखते ही आनंदसे भेंटने लगते थे। लड़कीके बापने समझा, हम लड़ते हैं (आखिर मनुष्यकी बुद्धि जो ठहरी!) और उसने मेरा बाहर जाना बंद कर दिया। मुझे बड़ा गुस्सा आया, पर क्या करता। चुपचाप पी गया।

एक दिन मैं बाजारसे लौट रहा था। मैंने एक भीड़ देखी, सबके हाथमें लाठियां थीं और सब बड़े जोरसे भोंक रहे थे, एक कुत्ता जमीनपर पड़ा दम तोड़ रहा था। एक तरफ एक लड़का खड़ा रो रहा था। शायद इस कुत्तेने उसे काटा होगा। और अब सब आदमी मिलकर उससे बदला ले रहे थे। मैं भयसे कांप गया। मैंने सोचा, कहीं मेरी भी यही अवस्था हो तो.....और मैं भागकर यहां चला आया। जान बची लाखों पाये। आदमीकी दुनिया हजार अच्छी हो पर कुत्तालोक तो आखिर कुत्तालोक है। उसका सुख वहां कहां?

—मीना

* * *

कुत्तोंकी दृष्टि

"व्वफ, व्वफ, घुर्र, घुर्र"

मैं बैठी परीक्षाकी तैयारी कर रही थी कि अचानक आंगनमेंसे चमेली और कालियाके गुर्रानेकी आवाजें आने लगीं। हमारे घरमें कुत्तोंका यह जोड़ा बहुत ही पुराना है। शायद इन्हें हम लोगोंकी

एक-एक हरकतका अच्छी तरह पता है। हम कुछ शरारत कर रहे हों या कोई बुरी बात कर रहे हों, तो किसीके पैरकी आहट सुनते ही चुप हो जाते हैं पर इन्हें कुत्ता समझकर इनकी उपेक्षा करते हैं और उनके आगे करनी, अकरनी सब कुछ कर डालते हैं। हमें कभी ख्याल ही नहीं आता कि यह भी देख-सुन सकते हैं।

मैंने किताब एक ओर धर दी और दोनोंकी बातचीत सुनने लगी। कालियाके पास कुछ मजेदार समाचार था जिसे वह चमेलीको सुनाना तो चाहता था पर उसका मूल्य लिये बिना नहीं। "चमेली, तूने सुना" कालियाने पूछा। चमेली कान खड़े करके उत्सुकताकी मूर्ति बन गयी, उधर कालिया बीतरागकी तरह इधर-उधर घूमने लगा। चमेली खड़ी रही, खड़ी रही आखिर नारी-सुलभ उत्सुकताका पलड़ा भारी रहा। उसने कालियाके नजदीक आकर बड़े प्रेमसे 'व्वफ व्वफ और घुरं घुरं' करना शुरू किया। चमेली कभी दायें आती कभी बायें जाती, कभी दुम खींचती और कभी कालियाके शरीरको सूंघती, पर कालियाकी समाधि न टूटनी थी, न टूटी, आखिर तंग आकर चमेली रूठ गयी और दूर जा बैठी। अब कालियाके दिलमें धुक पुक होने लगी। वह सचमुच चमेलीको नाराज न करना चाहता था, वह भी दौड़ा-दौड़ा उसके पास जा पहुंचा और बड़े ही प्रेमसे चिरौरी करने लगा। कुत्तोंमें भी मानव-समाजका यह प्रतिबिंब देखकर मुझे बड़ा मजा आया और जरा लुक-छिपकर उनकी निजी बातें सुननेके लिये मैं भी उनके नजदीक जा पहुंची। लेकिन मेरी भूल थी। मैंने अपने-आपको बहुत महत्त्वपूर्ण समझ लिया पर उनकी दृष्टिमें मैं एक "तुच्छ मनुष्य" थी जिससे डरना तो ठीक है क्योंकि वह न जाने कब हड़का जाय परंतु इससे अधिक उसका कोई मूल्य नहीं।

कालियाने कहा, अच्छा, सुन, चमेली, यह दो पांववाला बड़ी अजीब तरहका जानवर है। अपने-आपको न जाने क्या सोचता है, पर सच बात तो यह है कि अभी श्वान-योनितक आते-आते इसे कई जन्म लगेंगे। अभी तो यह बिलकुल अनघड़ है। इनके अच्छे-से-अच्छे प्राणी भी हमारे निम्न जातिके कुत्तोंके आगे निरे जंगली—मेरा मतलब निरे शहरी हैं। चमेली यह लेक्चर सुननेके लिये नहीं बैठी थी। वह तो गरमागरम समाचार सुनना चाहती थी। उसने अनख दिखाते हुए जरा हल्की-सी 'व्वफ' की और अपनी थूंथनी फेरकर बैठ गयी।

कालियाने सोचा, बनी हुई बात फिरसे बिगड़ी जा रही है। वह उठ खड़ा हुआ, आगे-पीछे, इधर-उधर घूमा, फिरसे चमेलीको सूंघा और दुम हिलाता हुआ उससे सटकर बैठ गया। 'देख, चमेली, आज क्या हुआ' उसने फिरसे चमेलीकी उत्सुकताको भड़काया। हमारे मालिकके यहां जो बच्चे रहते हैं, न जो बड़ी-बड़ी पोथियां हाथोंमें लेकर विद्वान् होनेके ढोंग रचते हैं—उनमें कल ठन गयी। दोनों ऐसे लड़े मानों बस एक-दूसरेका खून पीकर ही रहेंगे। अरे तूने देखा होता तो मजा आता। कोई कुत्ता तो क्या कोई बिल्लीतक इस तरहसे न लड़ेगी। बात क्या थी जानती है? अरे हंसी आयेगी सुनकर। मैंने तो पहले ही कहा था, यह मनुष्य बड़ा ही 'शहरी जानवर' है। हम लोग लड़ते हैं तो हड्डीके लिये। मांसके लिये। ये दोनों लड़ रहे थे एक सूखी-सी किताबके लिये। हम लोग अपना टुकड़ा खाकर लड़ाई भूल जाते हैं। ये लोग एक बेकार-सी किताबको लिये घंटों बैठे रहते हैं, न अपने-आप खाते हैं और न दूसरोंको खाने देते हैं। यह मनुष्यकी खास आदत है। एक दिन इनकी देखा-देखी मेरा भी मन कर आया। मैंने भी मालिककी मेजपरसे एक किताब उठा ली, पर विश्वास कर, ऐसी रद्दी चीजको मैंने कभी मुंह नहीं लगाया था। न गंध न स्वाद और न चबानेका मजा। न जाने क्यों ये लोग उसके पीछे इतने पागल होते हैं?

खैर, तो क्या हुआ, एक दिन मालिककी एक लड़की एक मजेदार किताब (!) लेकर बैठी थी। दूसरी आयी, उसने शायद इसमेंसे कुछ हिस्सा मांगा। हम लोग भी कभी-कभी हड्डीके लिये लड़ पड़ते हैं, पर इन दोनोंकी लड़ाई तो और ही तरहकी थी। आनेवाली लड़कीने बैठी हुई लड़कीके

एक चपत रसीद की। दूसरीने किताब एक ओर रख दी और लगी मुक्काबाजी करने। आसपासके सब मनुष्य इकट्ठे हो गये और हम लोगोंकी नकलमें अपनी भाषामें गुर्राने लगे। हम लोग गुस्सेमें आते हैं तो जरा थूथनी चढ़ जाती है, दांत बाहर आ जाते हैं और बड़े जोरकी आवाज करते हुए एक दूसरेपर झपट पड़ते हैं। पर इन लोगोंमें इतनी क्षमता कहां, न दांत हैं न पंजे। अरे, अच्छी तरहसे तो गुर्राना भी नहीं जानते ये लोग। बस, एक-दूसरेको हाथसे मारने लगते हैं जैसे हम एक-दूसरेको प्यार दिखाते हैं। या फिर इन्हें लाठी, छुरी वगैरहकी मदद लेनी पड़ती है। इस पामर जीवमें इतनी शक्ति भी नहीं कि अपने बलपर अपनी रक्षा कर सके या अपने शत्रुको हरा सके।

चमेली बड़े ध्यानसे सुन रही थी। जब कालिया सांस लेनेको रुका तो उसने पूछा, "अच्छा, कालिया, यह सब तो ठीक है, पर यह तो बता कि अगर यह पामर जंतु इतना गया-गुजरा है तो हमारा मालिक कैसे बन बैठा ?"

कालिया बड़े जोरसे गुर्राया। फिर बोला, "अरे चमेली, तू आखिर रही औरत ही। अरे पगली, यह सचमुच हमारा मालिक थोड़े ही है। यह तो हमारा नौकर है नौकर। समझी। देख, हम लोग आरामसे रहते हैं और उसे हमारे खाने-पीनेकी, हमें नहलाने-धुलानेकी, हमारे मकानकी सफाई की चिंता करनी पड़ती है। उस दिन देखा नहीं था तूने, हमारे घरकी ठीक सफाई न करनेके कारण उस लड़कीपर कैसी मार पड़ी थी, चारों ओरसे दोपाये तमाशा देखनेके लिये इकट्ठे हो गये, थे पर किसीमें हिम्मत न थी कि उस लड़कीको बचाये ? आदमी हमारे घरकी इतनी अच्छी तरहसे देख-भाल करता है इसलिये हम भी उसे अपने मकानसे लगे हुए हिस्सेमें रह लेने देते हैं। हमारी सेवाके लिये उसका नजदीक ही रहना हमारे लिये अच्छा है। तूने देखा तो है ही कि हम लोग आदमियोंके दरबोंमें जब मर्जी घुस जाते हैं, उसके खानेमेंसे हिस्सा बंटा लेते हैं, लेकिन कभी सुना है तूने कि किसी आदमीने हमारे घरमें घुसनेका साहस किया हो, हमारे कुत्ता बिस्कुटोंमें मुंह मारा हो ? इतिहासमें ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं कि जब आदमीपर मुसीबत आयी है तो वह अपने बीबी-बच्चोंको छोड़ गया है पर अपने प्रभु कुत्तोंको पीछे न छोड़ सका। इससे यही मालूम होता है कि इस जातिमें भी कुछ लोग हैं जिनमें कर्त्तव्य-पालन और वफादारीकी भावना है। आदमीने हमसे क्या नहीं सीखा ? उसने हमें कुत्ता-घास खाते देखा तो बस अपने-आप भी कई प्रकारकी घासें खाने लगा, उसने हमें शिकार करते देखा तो वह भी गरीब जानवरोंपर छुरा लेकर दौड़ पड़ा। उसने हमारे दो दलोंको लड़ते देखा तो अपने यहां सेना लेकर युद्ध करना शुरू कर दिया। यह सब होते हुए भी वह हमारी बराबरी नहीं कर पाता। अरे, और तो और, आज भी जब उसके यहां नामोंका टोटा होता है तब वह हमारे नाम रख लेता है। तुमने चमेली, कालू, काले, कलब अली, टोबी आदि नाम तो सुने ही हैं। क्या यह मनुष्यके काफी दिवालियेपनका प्रमाण नहीं है ? इसपर भी उसे दावा है कि वह सृष्टिका स्वामी है। मानता रहे, हमारा क्या आता-जाता है इससे ? अगर खाली मालिक कह देनेसे वह खुश हो जाता है और हमारी सेवा अच्छी तरह करता है तो हमें उसे मालिक कहनेमें कोई आपत्ति नहीं।"

चमेली धीरे-धीरे अपनी दुमसे पंखा-सा करती अपने कालियाको देख रही थी। उसकी दृष्टिमें कालिया श्वानदेवके अवतारसे कम न था। धरतीपर उनका एकमात्र प्रतिनिधि और उत्तराधिकारी।

मैं दोनोंकी ओर एकटक देख रही थी कि अचानक घड़ीने बारह बजाये। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठी, अभी तो पुस्तक आधी भी नहीं हुई थी।

—रवीन्द्र

उस अंधेरी रातमें

इस शीर्षकको पढ़ते ही कोई सोचेगा कि मैंने उस रातको भूत देखे थे या कोई और, जो कल्पनाओमें डूबा रहता है वह सोचेगा कि "उस अंधेरी रातमें, नय्या लिये साथमें धीरे-धीरे तटसे दूर जा रहे थे . . . ." खैर, इस विषयपर तरह-तरहके सुन्दर और रोमांचक विचार पैदा हो सकते हैं। लेकिन मेरे साथ ऐसा कुछ न हुआ। सिर्फ एक मामूली-सी घटना है जो शायद सबको पसंद भी न आये। लेकिन जब और कुछ दिमागमें न आ रहा हो, चलो, यही लिख दें।

उस दिन पढ़ते-पढ़ते बहुत रात हो चुकी थी, और घरमें मांतक सो गयी थीं। एक गहरा सन्नाटा सब जगह छा गया था। और मेरे बहुत ही अंदर भयका नाच आरंभ हो रहा था। इसलिये जितनी जल्दी हो सका, मैं बिस्तरमें घुस गयी और थकानके कारण मुझे सपनोंके देशमें जाते देर न लगी।

अचानक मध्य रात्रिमें मैं उठ बैठी। किसीने मेरा नाम लेकर पुकारा था। इधर-उधर देखा लेकिन इस अंधेरेमें क्या देख पाती। कुछ देर जागी रही और कुछ न सुन पानेपर मैं फिरसे लेट गयी। कुछ देर बाद मेरी आठ सालकी बहन मेरे बिस्तरके पास आयी। पहले तो मैंने सोचा कि शायद वह नींदमें इधर-उधर घूम रही होगी लेकिन जब उसने मेरे साथ बात की तब मैं उसके आनेका कारण समझी। "मीना", उसने चूहेकी ध्वनिमें कहा, "मीना, मेरे कानमें दर्द है।" "बहुत ही दर्द है क्या, प्यारी? तुम ओढ़कर सो जाओ। यह सब ठंडका खेल है।" वह चली गयी लेकिन थोड़ी देरमें फिर आयी। "मीना, अब दूसरे कानमें दर्द है।" "अच्छा, मुन्नी," मैंने कहा, "माताजीको याद करते हुए दूसरे कानको भी ढककर सो जाओ।" अब मैं शांतिमें सोनेको हुई, तो तीसरी बार वही पुकार। अब मुझे जरा क्रोध आने लगा। वह बोली, "मीना, मीना, मैं क्या करूं?" "क्यों," मैंने आश्चर्यसे पूछा, "इस बार कहां दर्द है?" "सुन, मीना" वह बहुत गंभीरतासे बोली, "मेरी एक नाक बंद हो गयी है, दूसरी भी बंद हो रही है, मैं अब सांस कैसे लूं?" "देख मुन्नी", मैंने कहा "मुंह खोलकर सांस ले, और अब बेकार मुझे तंग न कर, समझी।" (आशा करते हैं वह समझ गयी थी) लेकिन कुछ देर बाद वही पुकार। वह बोली, "मीना, मुझे नींद नहीं आ रही है।" वाह! मैं तो नींदके लिये मर रही थी, और इस छोटीसी पगलीको सोनेकी इच्छा नहीं है। हाय राम! अब क्या करें! मैंने उसे अपने पास बुलाया और वहीं सुला दिया। वह निश्चिंत होकर मेरी खाटपर ऐसी पसरी कि मेरे लिये जगह ही नहीं। मुझे उठकर उसके बिस्तरपर सोना पड़ा, मेरी नींद बिलकुल बिगड़ गयी थी। इसलिये अगली रात मैं दूसरे कमरेमें सोने गयी और बहनके पास मांको जाना पड़ा। शाबाश! अब अगर मुन्नी तंग भी करती तो मुझे नहीं, बल्कि मांको।

—मीना

नये जापानका निर्माता :

इतो

श्रीअरविंदने अपनी पुस्तक 'जगन्नाथका रथ'' में लिखा है: मानवजातिमें दो प्रकारके जीव होते हैं: एक वह जो धीरे-धीरे क्रमसे आगे बढ़ते और अपने अंदर छिपे हुए देवत्वका प्रकाश करते हैं और दूसरे वे जो क्रमविकासकी सहायताके लिये विभूतिरूपसे जन्म लेते हैं।

पहली श्रेणीके मनुष्य साधारण होते हैं और दूसरीके स्वतंत्र। दूसरे प्रकारके जीव जिस जाति या युगमें अवतरण करते हैं उस जातिके चरित्र व आचार तथा उस युगके धर्मको ग्रहण करते हुए ईश्वरकी शक्ति और स्वभावके बलपर, साधारण मनुष्यके लिये जो काम असंभव है, उसे करके जगत्की गतिको जरा बदलकर, इतिहासमें अमरता प्राप्त करते और अपने लोकमें लौट जाते हैं। इनके कर्म मनुष्यकी प्रशंसा या निंदासे परे होते हैं। सीजर, नेपोलियन, अकबर, शिवाजी आदि इसी प्रकारकी विभूति थे। जापानका हिरोबूमि इतो भी इसी श्रेणीमें आता है।

जापानके इतिहासमें इतोका प्रधान स्थान है। इतोने ही जापानकी उन्नतिके क्रम, उपाय और उद्देश्यकी कल्पना की और अकेले ही एक महान् परिवर्तन किया। जापानके अन्य महापुरुष उसके हाथके यंत्र मात्र थे। इतोने ही जापानकी एकता और स्वाधीनता, उसके विद्याबल, सैन्यबल, नौसेना, व्यापार और राजनीतिके भावी रूपकी कल्पना की और उसे कार्यमें परिणत किया। लेकिन उसने जो कुछ किया सब पर्देके पीछेसे। जर्मनीका कैसर विलियम या इंगलैंडका लायड जार्ज जो कुछ करता या सोचता था उसे संसार तुरत जान जाता था, परंतु इतोकी कल्पना जब फलीभूत हुई तब सब साश्चर्य देखते रह गये और तब ज्ञात हुआ ''अबतक इसीकी तैयारी हो रही थी।'' कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि पचास वर्षमें ही जापान अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करता हुआ सारी पाश्चात्य सभ्यताको अपने अधीन कर लेगा, इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस आदिके समान एक प्रबल पराक्रमी देश हो उठेगा और दूर-दूरके देशोंमें अपनी चित्रकला और बुद्धिके लिये प्रशंसा पायेगा और अपने व्यापार तथा साहससे बड़े-बड़े देशोंको हरा देगा।

नेपोलियन कहते थे: ''असाध्य शब्द मैंने अपने कोशसे निकाल दिया है।'' इतोने यह कहा नहीं परंतु करके दिखाया।

जिस समय इतोने राजनीतिमें कदम रखा उस समय जापानमें शासनसुधारका जोर था। १८७४ में एक संस्थाकी स्थापना की गयी जो राजनीति-शास्त्रका अध्ययन करती थी। १८७४ में ही इतागाकी और सहचरोंने मिलकर एक 'उदार दल' बनाया क्योंकि १८६८ में घोषणा की गयी थी, ''निकट भविष्यमें एक विचार-सभाका निर्माण होगा जो लोकमतका प्रतिनिधित्व करनेवाली होगी।'' सरकारके अन्य महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी शासन-सुधारके लिये इतने उत्सुक नहीं थे तथापि कुछ सुधार किये गये और इतागाकीकी प्रार्थनाके अनुसार जापानमें पहली बार एक सीनेट व एक प्रधान केंद्रीय न्यायालयकी स्थापना की गयी। अबतक जापानी विदेश घूमकर आ चुके थे और सबको वहांके शासन-सुधार पसंद आये थे। फलस्वरूप ये सब जापानी नागरिक शासनसुधारके लिये प्रबल आंदोलन करने लगे। परिणाम यह हुआ, १८७८ में स्थानीय स्वशासनका सूत्रपात किया गया। परंतु जो आंदोलन शासन-सुधारके लिये आरंभ हुआ था वह शांत न हुआ। तब १८८१ में काउण्ट ओकुमाने एक नये दलका संगठन किया। काउण्ट ओकुमा यह काम आरंभ करनेके पूर्व जापानका अर्थमंत्री था, लेकिन सरकारके अन्य सदस्योंके साथ मतभेद होनेके कारण उसने त्यागपत्र दे दिया। यह भी इतागाकीके

विचारोंसे सहमत था परंतु कुछ परिस्थितियोंके कारण उसके दलमें शामिल न हो सका, इसलिये अपना अलग 'प्रगतिशील' दल बनाया। ऐसी दशामें सम्राट्ने भी अनुभव किया कि देशमें शासन-सुधार करना आवश्यक है। १८८१ में घोषणा की गयी कि १८९० तक जापानमें पार्लियामेंटकी स्थापना कर दी जायगी, साथ ही जनतासे यह भी अनुरोध किया गया कि वह राजनीतिक आंदोलनोंको बंद कर दे। घोषणाके बाद सारे आंदोलन बंद कर दिये गये व १८८३ में सम्राट्की आज्ञाके अनुसार विविध राजनीतिक दल बंद कर दिये गये। इसी समय 'उदार दल' और 'प्रगतिशील दल' भी भंग हो गये।

इतोका जन्म १८४१ में हुआ था। आरंभमें जिस राजनीतिक कार्यमें उसे नियुक्त किया गया उससे इतो व जापानको काफी लाभ हुआ। इतोने देखा कि पाश्चात्य तोपों व बन्दूकोंके सामने जापानी तीरंदाजोंका टिकना असंभव है। इसलिये कोशु नामक जापानके एक श्रेष्ठ व सराहनीय व्यक्तिको बहुत समझाया कि जापानकी भलाईके लिये सेनाकी तीरकमान बंदूकमें बदल दीजिये। इतोने महसूस किया कि विदेशी सैनिक शिक्षा विदेशमें ही मिल सकती है। वह अपनी जानपर खेलकर अन्य चार साथियोंको ले, कोशुकी स्वीकृतिसे चल पड़ा। जानपर खेलना पड़ा क्योंकि इस समय जापानी कानूनोंके अनुसार विदेश जानेवालेको प्राणदंड दिया जाता था। लुकते-छिपते, कठिनाइयोंका सामना करते ये नागासाकी पहुंचे। यहांसे लंदन गये। परंतु जिस कार्यके लिये जानका खतरा मोल लिया था उसके लिये सिर्फ दो ही, इतो व ईनुये रह गये, शेष तीन अलग हो गये। सालभर दोनों मित्रोंने लंदनमें सैनिक साज-सज्जाका अध्ययन किया परंतु जापान व पाश्चात्य देशोंमें तनातनीके कारण इन्हें स्वदेश लौटना पड़ा।

शोगुनने विदेशसे संधि कर ली थी, परंतु कोशु शोगुनके विचारोंसे सहमत न था। उसने शीमोनोस्कीके जलग्रीवा तटपर तोपें लगा दीं तथा सामनेसे जो भी जहाज गुजरता उसपर गोली चला देता। इससे समस्या और भी अधिक जटिल हो गयी। इतोको इस विषयमें कोशुसे कहीं अधिक ज्ञान था। इतो भलीभांति जानता था कि जापानकी सेना किसी भी प्रकार यूरोपके सामने नहीं ठहर सकती। अपनी पूरी कोशिश करनेपर भी वह कोशुको उसके पागलपनसे न निकाल सका। कोशुको स्वभावतः ही अपनी करनीका फल भोगना पड़ा। उसकी सारी तोपें नष्ट कर दी गयीं, इतना ही नहीं, भारी जुर्माना भी देना पड़ा।

१८६८ में इतो हि योगोका शासक नियुक्त हुआ तथा १८६९ में वित्तका उपमंत्री। १८७४ में वह इवाकुराके साथ यूरोप गया, काम तो पूरा न हो पाया पर वहांके श्रेष्ठ सैनिक सलाहकारोंसे मिलनेका अवसर अवश्य प्राप्त हुआ। १८९० में तत्कालीन यूरोपीय संविधानोंको देखकर जापानका नया संविधान बना और जापानको इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस आदिने अपनी पांतमें बिठाना स्वीकार कर लिया।

इसी वर्ष जापानने रूस और चीनको पराजित किया।

खेदकी बात है ऐसी उच्चात्माकी हत्या की गयी। परंतु श्रीअरविंद कहते हैं, "ऐसी महानात्मा किसी खूनीकी गोलीसे मारी गयी इसलिये दुःख नहीं होना चाहिये, जिसने जापानके लिये प्राणोंका उत्सर्ग किया, जापान ही जिसकी चिंताका विषय था, जापान ही जिसका उपास्य देवता था, उसने जापानके लिये प्राणत्याग किया यह बड़े सुख, सौभाग्य व गौरवकी बात है।"

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" इतो के भाग्यमें ये दो परम फल एक ही जीवन-वृक्षमें प्राप्त हुए।

—हीरो

अतिथि-सत्कार

बगदादमें अबूकासिम नामका एक निर्धन व्यक्ति रहा करता था। एक जमानेमें वह बहुत धनी व्यापारी रह चुका था। पर दुर्भाग्यसे उसके सब जहाज लूट लिये गये। उसका एक साझेदार मित्र भी उसके साथ-साथ गरीब हो गया। उसका नाम था मसूद। दोनों मित्र मेहनत-मजदूरी करके अपना और अपने परिवारका पेट पालने लगे।

एक बार अबूकासिम बीमार पड़ गया और घरमें खानेको कुछ भी न बचा। मसूद लकड़ियां काटकर शहरमें बेचने लगा। इससे जो आय होती उसका आधा वह अबूकासिमको दे देता। इस प्रकार अबूकासिम और मसूदकी गृहस्थीकी गाड़ी चलती रही।

एक दिन अबूकासिमके घर दूर देशसे दो मेहमान आये। घरमें कुछ भी न था। अबूकासिमको जोरोंसे बुखार चढ़ा था। फिर भी अतिथियोंके लिये भोजनकी व्यवस्था तो करनी ही थी। बेचारा अबूकासिम बुखारसे पीड़ित अवस्थामें ही उठकर मसूदके घरकी ओर चल पड़ा। मसूदकी झोंपड़ी खाली पड़ी थी। मसूदके परिवारवाले कहीं गये हुए थे और वह स्वयं अभी लकड़ियां बेचकर लौटा न था। अबूकासिमके लिये अधिक चलना कठिन था इसलिये वह वहीं बैठ गया। कुछ देर बाद हाथमें कुछ सिक्के दबाये मसूद घर लौटा। अबूकासिमने पूरी घटना उसे सुना दी और कहा कि "मित्र, इस कठिन परिस्थितिमें ही अल्लाहने इम्तहान लिया है।" मसूदने कहा, "भैया, चिंता मत करो, जबतक मैं जिंदा हूं ऐसा समय कभी नहीं आयेगा कि हमारे घरसे अतिथि भूखे लौट जायें। जाओ, उनको मेरे घर भेज दो।"

अबूकासिमके लौट जानेके बाद जब मसूदकी पत्नी आयी तो उसने पूछा, घरमें कुछ है या नहीं। घरमें कुछ भी न था। मसूदने अपनी पत्नीसे कहा, अबूके घर मेहमान आये हैं। वह बेचारा बीमार है। मेहमानोंको मैंने यहां बुलवा लिया है। इस समय मेरे पास इतने पैसे हैं जिससे केवल दो व्यक्ति ही भरपेट भोजन कर सकते हैं। अतिथि भी दो ही हैं। बच्चे क्या खायेंगे। उन्हें कलसे कुछ भी नहीं मिला है। मेहमान बगैर मेजबानके भोजन नहीं करेंगे, इस तरह हम तीन हो जाते हैं और मेहमान भूखे रह जायेंगे।

दोनों चिन्तामें पड़ गये। आखिर मसूदने एक युक्ति सोच निकाली। शाम हुई। भोजन तैयार होनेपर अतिथि आ गये। इस बीच मसूदकी पत्नीने बच्चोंको बहला-फुसला और केवल स्नेहकी थपकियां दे-देकर भूखा ही सुला दिया। दो दिनके भूखे बच्चे सुबहका सुन्दर सपना लिये सो गये।

दोनों अतिथियोंके साथ मसूद भी भोजन करने बैठ गया। मसूदकी युक्ति और योजनाके अनुसार ठीक समयपर उसकी पत्नीने आकर चिरागकी बत्ती बढ़ानी चाही क्योंकि कमरेमें रोशनी कम थी। अचानक दीपक बुझ गया और चारों ओर अंधेरा छा गया। "दुर्भाग्यसे चिराग जलानेको कुछ भी नहीं है, आप लोग खाना शुरू कीजिये" मसूदने अतिथियोंसे कहा। इस प्रकार तीनों व्यक्ति अंधेरेमें ही भोजन करते रहे। भरपेट भोजन करनेके बाद अतिथि चले गये। तीन दिनकी भूखसे पीड़ित पति-पत्नीमें अब इतनी भी शक्ति नहीं थी कि कोई उठकर रोशनी कर देता।

इसपर भी मसूद बहुत प्रसन्न था। क्योंकि उसने केवल अंधेरेमें भोजन करनेका अभिनय करके दोनों अतिथियोंको भरपेट भोजन करवा दिया था।

— एजाज अहमद खां यूसुफजई

बहादुर लड़का

रूसके एक छोटे गांवमें एक परिवार रहता था। उस परिवारमें एक छः वर्षका लड़का था जिसे सब लोग बहुत प्यार करते थे। यह लड़का बचपन ही से युद्धमें बहुत रस लेता था। वह सोचता था कि आखिर युद्ध क्यों होता है? इतने निर्दोष लोगोंको जिनका कोई अपराध नहीं है, अपना जीवन क्यों खोना पड़ता है? ये सब प्रश्न बार-बार उसके छोटेसे दिमागमें घूमते थे। जब वह अपने पिताजीसे पूछता तो वे कह देते कि अभी तुम बहुत छोटे हो, ये सब बातें न समझोगे।

एक दिन उस गांवमें खबर फैल गयी कि जर्मन इस गांवमें अपना मुख्यावास बनाना चाहते हैं इसलिये वे किसी भी समय आक्रमण करेंगे। यह सुनकर सब लोग अपनी थोड़ी बहुत चीजें लेकर जल्दीसे चल पड़े। उस छोटे लड़केके परिवारने भी जानेकी तैयारी की। जब जानेका समय आया तो लड़केने कहा, अपना घर दुश्मनोंके हाथोंमें छोड़कर मैं नहीं जाऊंगा। पिताजीने बहुत समझाया कि अब कुछ नहीं किया जा सकता क्योंकि यहां रहनेसे शत्रु हमें जरूर मार देंगे। उनके पास बहुत हथियार हैं। लड़केने पूछा — पिताजी, क्या हमारे पास उन्हें भगानेके लिये कुछ भी नहीं है?

'है क्यों नहीं' पिताने उत्तर दिया। मगर जो उसका प्रयोग करेगा वह भी साथमें मर जायेगा,

पिताजी मुझे दीजिये वह हथियार, मैं जरूर इन शत्रुओंको मारूंगा जिससे औरोंको इतना कष्ट न उठाना पड़े।

पिताजी यह सुनकर खुश हुए कि उसका पुत्र इतना बहादुर है। मगर कौनसा बाप चाहता है कि उसका पुत्र इतनी जल्दी मर जाये। इसलिये वह सिर्फ हंसे और बोले, 'चलो, जानेका समय हो गया है।' मगर लड़का हिला ही नहीं। यह देखकर पिता घबरा गये। अब क्या किया जाये, समय बिलकुल न था। वे औरोंको छोड़कर इसके साथ नहीं रह सकते थे। इसलिये उन्होंने पुत्रको ठीक तरह उसमझाया। फिर उसके हाथमें एक भयंकर हथियार रख दिया। उसका उपयोग बताकर वे चले गये।

थोड़े समय बाद जब वहां जर्मन आये तो उन्होंने देखा कि जगह एकदम खाली है और लोगोंने सब कुछ जला दिया है। एक जर्मनने उस लड़केको देखा और उसे पकड़कर ले गया। उन्होंने उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। थोड़ी दूरमें जर्मनोंका एक तम्ब लगा हुआ था। वे बालकको अंदर ले गये। वहां छः अफसर बैठे थे। लड़केको बिठाकर वे उससे प्रश्न करने लगे।

एक अफसर — तुम यहां अकेले क्यों हो, गये नहीं?

लड़का — मुझे यहीं अच्छा लगता है।

दूसरा अफसर — तुम्हारे गांववाले कहां हैं, क्या कुछ जानते हो?

लड़का — हां, जानता हूं।

अफसरोंने उसे फल दिये और मिठाई देते हुए पूछा — कहां हैं वे लोग?

'मैं नहीं बताऊंगा।'

लड़केने सोचा कि यह लोग रहस्य जानकर रहेंगे। लेकिन इन्हें मार दिया जाय तो सब गांववाले वापिस आ सकेंगे।

अपने जीवनकी परवा न करते हुए उसने अपनी जेबसे पिताका दिया हुआ बम निकाला और अफसरोंके बीचमें फेंक दिया।

यहीं उस बहादुर और देशपर निछावर होनेवाले बालककी कहानी समाप्त हो गयी।

मेरा दोस्त टीटू

—श्री अरुणा

टीटूको देखकर बड़े-बड़े गंभीर लोग भी मोहित हो जाते हैं। फिर भला मेरे जैसेका तो कहना ही क्या है? एक दिन मैं सोकर उठी तो सामने ही टीटूके दर्शन हो गये। बस, वह दिन था और आजका दिन है, हमारा संबंध बराबर बढ़ता ही गया और अब हम एक-दूसरेके अनन्य मित्र हो चुके हैं। वह मनुष्योंको अच्छी तरह पहचानता है। न जाने कैसे उसे पता लग गया कि सूर्य-नारायणने यह निश्चय कर लिया है कि मेरे सोकर उठनेसे पहले आकाशमें हाथ दो हाथ ऊपर चढ़ आयेंगे। मुझे उनकी यह आदत पसंद नहीं पर फिर भी मैं कर ही क्या सकती हूं? कहां मैं और कहां भगवान् भास्कर..... उनके साथ कैसी प्रतियोगिता? टीटूको यह बात पसंद नहीं है। वह धरतीका वासी है और इसी नाते वह नहीं चाहता कि सूर्य नारायण मुझे रोज-रोज हरा सकें। इससे पहले मेरे कुछ मित्रोंने कोशिश की थी कि अगर मैं सोयी हुई रहूं तो सूर्यके घोड़ोंको ढोल बजाकर बिदका दें ताकि उन्हें रास्तेमें देर लग जाय और वे मुझसे जीत न सकें। परंतु सूर्यके घोड़ोंने हार न मानी और हर रोज मुझे हराते रहे।

मैंने अभी कहा कि टीटू मेरा अनन्य मित्र बन गया था। वह भला मेरी हार कैसे सह सकता था। उसने एक चाल चली। कहते हैं, जब सूर्य भगवान् उदय होते हैं तो हजारों असुरोंका खून करके उनकी लाली आकाशमें बिखेरते हुए आते हैं। जैसे ही भगवान् उधर असुरोंका संहार शुरू करते वैसे ही मियां टीटू मेरे पास आ पहुंचते और जैसे-तैसे मुझे सावधान कर देते। टीटूके रण-कौशलके आगे सूर्यके घोड़ोंको हार माननी पड़ती और पुरस्कारस्वरूप हमें टीटूको 'छोटा हाजिरी' के लिये निमंत्रित करना पड़ता।

कई बार सोचा करती हूं कि आखिर टीटूमें ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण वह मुझे इतना प्रिय है। आप उसे देख लें तो कहेंगे ऊंह, यह तो एक साधारण-सा कबूतर है। वही और कबूतरों जैसा सफेद और भूरा रंग, छोटी-सी लाल चोंच, और छोटी-छोटी बिन्दियोंके जैसी दो आंखें। लेकिन नहीं, साहब, मेरा टीटू सब कबूतरोंसे जुदा है, उनका सिरमौर है। आप किसी पारखीको दिखा लीजिये, उसके पैरोंपर छोटे-छोटे पर देखकर वह कह उठेगा कि टीटू एक असाधारण कबूतर है, ठीक वैसे ही जैसे एक राजा मनुष्य होते हुए भी मनुष्योंसे अलग होता है। और फिर मेरे साथ आत्मीयता भी उसे अन्य कबूतरोंसे ऊंचा उठा देती है जैसे कम्पनी सरकारके साथ संबंध बहुतसे डाकुओं और लुटेरोंको भी राजा और नवाब बना गया था।

सबेरे ही सबेरे नित नये पराक्रम करना टीटू अपना धर्म समझता है। अभी कुछ दिन पहले टीटू बैठा नाश्ता कर रहा था कि एक कौआ आ पहुंचा। बस, फिर क्या था! टीटू महाराज लड़नेंपर उतारू हो गये और गर्दन फुलाकर गटर गूं करते हुए कौएकी ओर बढ़े। कौआ उड़कर कांव-कांव करता हुआ खिड़कीकी जालीपर जा बैठा। टीटू इतनी आसानीसे हारनेवाला न था, वह भी गटर गूं करता हुआ और पंख फड़फड़ाता हुआ कौएकी ओर उड़ा, कौआ नीचे उतर आया तो टीटू साहब भी नीचे आ धमके। कौआ जिधर जाता यह सज्जन वहीं जा पहुंचते। आखिर कौआ तंग आकर उड़ गया। कौएके जाते ही अपनी गर्दन फुलाकर बड़ी मस्त अदासे टीटूने अपना विजय-नृत्य शुरू कर दिया।

परंतु हमारे टीटूको झगड़े-झंझटोंसे विशेष प्रेम नहीं है। वह दो दिनकी जिन्दगीको खूब मौज-

शौकसे गुजारना चाहता है। यही कोई दो तीन दिन पहलेकी बात है। टीटू रोजकी तरह बरामदे-में रोटी खा रहा था; उसी समय हमारे मालीको पेड़ों और पौधोंमें पानी देनेकी सूझी। देखते-देखते एक गमलेमेंसे पानी टपकने लगा। टीटूने अपना मुंह ऊंचा किया, इधर-उधर देखा और फिर ठुमकता हुआ पानीके नीचे जा बैठा। वह सारे शरीरको चोंचसे साफ करता जाता था और तरह-तरहकी आवाजें निकालता था। वह बारी-बारीसे अपने पंख ऊपर करता और उन्हें टपकती हुई बूंदोंसे साफ करता था। उसके बांकेपनकी अदा और वह मदमाता नाच — देखनेकी चीजें थीं। ऐसा लगता था कि वह इस अकस्मात् आयी हुई फुहारकी एक-एक बूंदको अमृत मानकर उससे पूरा लाभ उठाना चाहता था। आज उसकी आवाजमें भी एक विशेष मधुरता भर गयी थी।

यह तो हुई दो-तीन दिन पहलेकी बात, पर आज तो मैं चिंतासे व्यग्र हूं। शामके साढ़े सात हो चुके हैं पर टीटू अभीतक घर नहीं लौटा। टीटू रोज सातकी टकोरपर पंख फड़फड़ाता हुआ सोनेके लिये हमारे बरामदेमें आ पहुंचता है पर आज साढ़े सात हो चुके हैं, वह अभीतक नहीं आया। कहीं मेरा टीटू किसी बहेलियेके जालमें तो नहीं फंस गया, या किसी मोटेसे बिल्लेका ग्रास तो नहीं बन गया। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मेरा टीटू बहुत चालाक है, वह हमेशा सतर्क रहता है, अभीतक मेरे हाथसे भी रोटी नहीं लेता फिर और किसीके पास तो क्या फटकेगा?

लेकिन बात क्या है, वह आ क्यों नहीं रहा? लो, सात चालीस हो चुके और उसका कहीं पता नहीं। क्या करूं? किसीसे सहायता मांगूं, लेकिन कोई क्या सहायता करेगा? टीटू जन्मसे ही आजाद है। वह हवाकी तरह शहरके कोने-कोनेमें घुस सकता है, वह कहीं भी पराया नहीं है। वह जहां जायगा वहीं उसका स्वागत होगा।

यह सब तो ठीक है पर टीटू आया क्यों नहीं? वह सही-सलामत तो होगा न?

"दीदी, टीटूकी चिंता न करो, वह पूरा मन-मौजी है, कहीं किसी मंदिरके कोनेमें सो गया होगा।" — मेरे भाईने कहा और मानों उसकी हांमें हां मिलाता हुआ आकाशमें एक छोटा-सा सफेद आकार दिखायी दिया। और उधर-इधर मुलकते हुए, धीरे-धीरे गटर गूं करते हुए टीटू महाराज आ धमके।

* * *

पुस्तक-परिचय

डायरी — प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२, मूल्य रु. १२-००

यह डायरी प्रायः 'पुरोधा' साइजकी है जिसमें २६ बड़े सुन्दर बहुरंगे चित्र हैं। उन्हीं चित्रोंमेंसे एकको हम इस अंकमें भी दे रहे हैं। इन फूलोंका आध्यात्मिक अर्थ भी आरंभमें एक पृष्ठपर दिया गया है। इसके ऊपर प्लास्टिकका एक आवरण भी है। डायरी अत्यंत सुन्दर और उपयोगी है।

श्रीअरविंद अपने तथा श्रीमाताजीके विषयमें — प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२, मूल्य ८.०० ।

समय-समयपर श्रीअरविंदके शिष्य उनसे विभिन्न प्रश्न पूछा करते थे। कई बार ये प्रश्न स्वयं उनके तथा श्रीमाताजीके बारेमें होते थे। इस पुस्तकमें उन प्रश्नोंके उत्तरोंका संकलन किया गया है। इससे हमें श्रीअरविंदके जीवनकी कुछ झांकियां मिलती हैं, उनके पथके बारेमें स्वयं उन्हींके शब्दों-

में कुछ जानकारी मिलती है, उनका योग पृथ्वी-चेतनाके लिये क्या कर रहा है — इसका परिचय मिलता है। साथ ही श्रीमाताजीके बारेमें भी प्रामाणिक जानकारी मिलती है, हमें यह पता लगता है कि वे कौन हैं, धरतीपर किस लिये आयी हैं, उनसे हमें कैसे सहायता मिल सकती है और उनके साथ हमारा सच्चा संबंध कैसा होना चाहिये। श्रीअरविंद तथा श्रीमाताजीके बारेमें यह सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक है। अनुवादकी भाषा सरल है। छपाई-सफाई नयनाभिराम है। साढ़े चार सौ पृष्ठकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका दाम आठ रुपया मात्र।

अवतार (अदिति-पुस्तकमाला) — प्रकाशक : अदिति कार्यालय, श्रीअरविंद आश्रम पांडिचेरी-२, मूल्य २.५०।

इस पुस्तकमें अवतार-तत्त्वपर श्रीअरविंदके विचार संकलित हैं और कुछ वाणियां श्रीमांकी भी हैं। इस पुस्तकसे पाठकको संक्षेपमें यह मालूम होगा कि भगवान्के अवतारके विषयमें जो विश्वास है उसके पीछे क्या सत्य है। अवतार क्यों आते हैं, क्या करते हैं और मानवजीवनके क्रमविकासमें उनका क्या स्थान है। पुस्तककी छपाई आदि आकर्षक है।

जर्मन लोक-कथाएं — प्रकाशक : मेक्सम्यूलर भवन, जर्मन संस्कृति-केंद्र, नयी दिल्ली।

जिन्होंने अंग्रेजी पढ़ी है उनमें शायद ही कोई हो जो ग्रिम बंधुओंकी परी-कथाओंसे परिचित न हो। ये कहानियां बालकोंके लिये बहुत ही रोचक हैं। लेकिन इन कहानियोंके पढ़नेवालोंमें कम ही यह बात जानते हैं कि मूल कहानियां जर्मनमें लिखी गयी थीं जिनका अनुवाद भारत ही नहीं संसार भरकी भाषाओंमें हो चुका है। प्रस्तुत अनुवाद सीधा जर्मनसे किया गया है। मोटे टाइपकी सुन्दर छपाई है, बीच-बीचमें चित्र भी हैं। आकारप्रकार सभी सुन्दर हैं। हिन्दी जाननेवाले बालकोंके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी होगी। इसे तीन भागोंमें प्रकाशित किया गया है। पुस्तकपर दाम नहीं लिखा है।

नेहरूजी—अपनी ही भाषामें — संपादक : रामनारायण चौधरी, प्रकाशक : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद—२४, पृ. सं. २२६; मूल्य ३.५०।

रामनारायणजीने पं. नेहरूके साथ १९ मुलाकातें की थीं और उनमें राजनीति, सामाजिक अवस्था आदिसे लेकर घरेलू प्रश्नोंतक सब तरहकी बातचीत की। उन्होंने सारी बातचीतका टेप रिकार्ड ले लिया था और वह रिकार्ड अब भारत सरकारके पास सुरक्षित हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें उसी बातचीतको लिपिबद्ध कर दिया गया है। इसमें भगवान् और धर्म, क्रांतिकारी आंदोलन, सुभाष बोस, मशीन आदि अनेक विषयोंके बारेमें पंडितजीके विचार बड़े स्पष्ट शब्दोंमें दिये गये हैं। यहां हम कमला नेहरू तथा लार्ड माउंटबेटनके बारेमें पंडितजीके व्यक्तिगत कोमल भावोंका दर्शन करते हैं। रामनारायणजीने पूछा, 'आनेवाली पीढ़ियां आपको किस रूपमें याद करें तो आपको अच्छा लगेगा?' पंडितजीने अंग्रेजीमें उत्तर दिया, अगर याद करना हो तो इस ढंगसे करें, "ही वाज ए परसन हू वाज इन लव विद इंडिया ऐंड दी इंडियन पीपल (वह एक ऐसा व्यक्ति था जो भारत और भारतके लोगोंसे प्रेम करता था।) इस प्रकारकी बहुत-सी व्यक्तिगत बातें इस पुस्तकमें भरी हुई हैं। पंडितजीके प्रेमी इसे अत्यंत मनोरंजक और उपयोगी पायेंगे।

हेमलेट — अनुवादक : अमृतराय, प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, धूप छांह, अशोक नगर; इलाहाबाद-१, मूल्य ६.००।

शेक्सपीयर जैसे महान् लेखकोंका अन्य किसी भाषामें अनुवाद करना एक असंभव काम है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने-आप अपनी कुछ कविताओंके अनुवाद किये थे पर वे भी मूलके सौंदर्यको लानेमें पूरी तरह सफल नहीं हुए। अमृतरायने हेमलेटको हिन्दी परिधानमें लानेका बड़ा अच्छा प्रयास किया है। उन्होंने शेक्सपीयरके पद्यका भोंडे पद्यमें अनुवाद न करके सीधे गद्यको ही अपनाया है। भाषा भी दरबारी रखी है जिसमें उर्दू फारसीकी जोरदार पुट है। जो लोग मूलका रस नहीं ले पाते उनके लिये यह अनुवाद बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

आलमगीर — ले. : आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशक : हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१, पृ. सं. ३३०, मूल्य ६.००।

मुगल राजाओंमें औरंगजेबका व्यक्तित्व सबसे अधिक विवादास्पद था। एक ओर उसे अत्यंत असहिष्णु, धर्मांध और क्रूर बताया जाता है तो दूसरी ओर उसे सन्त सिद्ध करनेके प्रयास किये जाते हैं। उसकी महत्त्वाकांक्षा, वीरता और दृढ़ताके बारेमें तो प्रायः सब एकमत हैं। इस पुस्तकमें शास्त्रीजीकी लेखनीद्वारा औरंगजेबके जीवनका अच्छा परिचय दिया गया है। उसकी भूमिकाके रूपमें शाहजहांके जीवन और उस कालके राजनीतिक षड्यंत्रोंकी जानकारी दी गयी है।

प्राप्ति-स्वीकार : हिंदी प्रचारक पुस्तकालयसे :—

मौतके पंजेमें — लेखक : आचार्य चतुरसेन शास्त्री। धर्म, ईश्वर, श्रद्धा, विज्ञान आदिपर विचारोत्तेजक लेख। मूल्य १.००।

मिसेज लाल — लेखक : मनमोहन सदारिया; अकथ कहानी — ले. सर्वदानन्द वर्मा — दोनों ही पुस्तकें हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१ से प्रकाशित, मूल्य एक एक रुपया।

ग्राहकोंसे निवेदन

'पुरोधा' जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबरके पहले सप्ताहमें प्रकाशित होती है। उन महीनोंकी २० वीं तारीखतक अगर ग्राहकोंको अंक न मिले तो वे हमें सूचित करें।

मैनेजर,

'पुरोधा' पांडिचेरी—२

दक्षिण भारती

(दक्षिण भारतकी भाषाएं सीखिये)

—४—

कुछ पाठकोंके प्रस्तावके अनुसार हम यह प्रयास कर रहे हैं कि पाठोंको ऐसा रूप दिया जाय कि जिन पाठकोंके पास पुरोधाके पुराने अंक नहीं हैं वे भी इन पाठोंसे लाभ उठा सकें। इसके लिये हम शब्दोंपर बहुत ज्यादा जोर न देकर वाक्योंपर जोर दे रहे हैं। पाठक वाक्य सीखकर उनका उपयोग कर सकते हैं। इस दिशामें प्रयास करनेवालोंके सुझावोंका स्वागत होगा। —सम्पादक

पाठ १६

हिंदी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
पत्र	कडिदम	उत्तरमु	कागद, पत्र	कत्तु, एजुत्तु
लिखूंगा	एजदुवेन	व्रासेदनु	बरियत्तेने	एजुताम
मेरे पास	एन्निडम	नादग्गरा	नन्न हन्निर, वळि	एण्टडुत्त
कागज	ताळ	कागितमु	कागद	कडलास
पेंसिल	पेंसिल	पेंसिल	पेंसिल	पेंसिल
दीजिये	कोडुंगळ	इव्वण्डि	कोडिरी	तेरुविन
लीजिये	एडुत्तु, कोडुङ्गळ	तीसुकोण्डि	तेगेदुकोळ्ळिरि	एडुत्तुकोळविन
कलम	पेन	कलमु	पेन्नु	पेना
डाकखाना	तपाल आफिस	पोस्ट आफिस	ऊंचे कचेरी	पोस्ट आफिसु, तपाल आफिस
कितनी दूर	एव्वळावुदूरम	एंतदूरमु	येष्टु दूर	एत्र दूरम
रास्ते	वजी	मार्गमु	रस्ते	वजी
टिकट	तलै	बिल्ला	स्टाम्पु, टिकट	स्टाम्प (मुद्रा)
छुट्टी	विडुमुरै	सेलबुवु	रजा	आजिवु दिनम
कैसी	एप्पड़ि	येला	हेगे	एत्रिने
विशेष	विशेष	विशेषमु	विशेष	विशेषमाया
त्यौहार	तिरुविजा	उत्सवमु	उत्सव	उत्सवम
चार बजे	नाल मणि	नालगु गंटलु	नालकु गंटेगे	नालु मणि
बताइये (कहिये)	सोल्लुङ्गळ	चप्पंडी	तोरिसिरि, हेळिरि	परयुगा
डाल आऊं ?	पोट्टुविर्ट्टु वरेन ?	वेसि वस्ताना	हाकि बरुवुदु ?	इट्टु वेराम
जरूरी	अवसरम	अवसरमु	जरूर	अडियन्दिरम

हिन्दी	तमिल	तेलगू	कन्नड़	मलयालम
एक	ओरु	ओगटि	ओन्दु	ओन्नु
दो	इरण्डु	रेण्डु	येरडु	रण्डु
तीन	मून्	मूडु	मुरु	मून्नु
चार	नालु	नालुगु	नाल्कु	नाळु
पांच	ऐंदु	ऐंदु	ऐदु	अञ्जु
छः	आरु	आरु	आरु	आरु
सात	एळु	एडु	एळु	एळु
आठ	एट्टु	येनिमिदि	एंटु	एट्टु
नौ	ओम्बुदु	तोम्मिदि	ओंवत्तु	ओम्बदु
दस	पत्तु	पदि	हत्तु	पत्तु
स्थान	इडम	स्थलम, स्थानमु	स्थळ	स्थानम
पसन्द	पिडिक्कुम	इन्टमु	हिडिसु, वोप्पिगे	इण्टम
महीना	मादम	नेला, मासमु	तिंगळु	मासम
होटल	होटल	होटलु	होटल	होटल
अलग	वेरु	वेरु	वेरे	वित्यासमुळ्ळ, वेरे
घर	वीडु	इल्लु	मने	वीड, गृहम
किराया	वाडगै	किराय	वाडिगे	वाटगा
अधिक	अदिहम, जास्ती	अधिकमु	हेच्चु	अधिकम
आजकल	इन्ना टकळिल	ईरोजुल्लो	इत्तीचिगे	इक्कालत्त
सब जगह	एंगुम	अन्नि चोटुला	एल्ला स्थळगळ	लिल एल्ला इडतुम
कठिनाई	कष्टम, कडिनम	कष्टमु	कष्ट	बुद्धिमुट्टु
चलना	नडक्क	पोवुटा	होगु	नडक्कुगा
अभ्यास	पैर्यचि	अभ्यासमु	अभ्यास	अभ्यासिक्कुगा
कसरत	देह पैर्यचि	व्यायाममु	व्यायाम	व्यायामम
स्वस्थ	सुखम	आरोग्यमु	आरोग्य	आरोग्यमूळ्ळ
देरी	नेरम	आलस्यमु	अवरु	तामसम
अभी	इप्पो	इप्पुडे	ईग	इप्पोळ

हिन्दी : हमें यह मकान बहुत पसंद है।
तमिल : नमक्कु इन्द वीडु रम्बो पिडित्तुइरुक्किरदु।
तेलगु : माकु ई इल्लु नच्चिनदि।
कन्नड़ : नमगे ई मने बहळ वोप्पिगे।
मलयालम : ञेङ्ळगक्कु ई वीडु वळरे इष्टप्पेट्टु।

हिन्दी : मुझे होटल पसंद नहीं है।
तमिल : एनक्कु होटले पिडिक्कादु।
तेलगू : नाकु होटल इष्टमु लेदु।

मैं एक महीना रहना चाहता हूं।
नान ओरु मादम तंग विरुम्बिहिरेन।
नेनु ओक नेल उंडतलचुकुन्नानु।
नानु ओन्दु तिंगळु इरबयसुत्तेने।
एनक्कि ओरु मासम तामसिक्केणम।

एक अलग घर चाहता हूं।
एनक्कु वेरु वीडु वेंडुम।
नाकु प्रत्येकमैन इल्लु कावेलनु।

कन्नड़ : ननगे होटेलु हिडिसुवुदिल्ल ।
मलयालम : एनिक्के होटेल इष्टमिल्ल ।

हिंदी : किराया अधिक होगा ।
तमिल : वाडहै अदिहम ।
तेलगू : किराय अधिकमैनदि ।
कन्नड़ : वाडिगे जास्ती इट्टीतु ।
मलयालम : वाटका अधिकमा ईरिक्कुम ।

ननगे ओन्दु प्रत्येक मने बेकागिदे ।
एनक्के प्रत्येक वीडु वेणम ।

यह मकान छोटा है ।
इन्द वीडु सिरियदु ।
ई इल्लु चिन्नदि ।
ई मनु सण्णदु ।
ई वीडु चेरुताण ।

पाठ १७

अभ्यासके लिये वाक्य

हिंन्दी : यह एक डाकखाना है ।
तमिल : इदु ओरुतपाल निलयम ।
तेलग : इदि ओक्क तपाल आफिस ।
कन्नड़ : इदु ऊंचे कचेरी (टपाल आफिस) ।
मलयालम : इद तपाला आफिसाण ।

हिन्दी : गाय मकानमें है ।
तमिल : पसु वीट्टिल इरुक्किरदु ।
तेलगू : आऊ इंटिलो उन्नदि ।
कन्नड़ : हसु मनेयल्लिदे ।
मलयालम : पशु वीट्टिल उण्टु ।

हिन्दी : चलिये, सूर्य देखें ।
तमिल : सूरियन पार्क पोहलाम ।
तेलगू : पदंडि सूर्युनि चूदामु ।
कन्नड़ : नडियरि सूर्यनन्नु नोडोण ।
मलयालम : सूर्यने काणान पोगाम ।

हिन्दी : चांद ठंडा है ।
तमिल : सन्दिरन कुळुमैया इरुविकरदु ।
तेलगू : चन्द्रुडु चल्लगा उन्नदि ।
कन्नड़ : चंद्र तण्णगिदे, (शीतल इदै) ।
मलयालम : चन्द्रन तणुप्पान ।

हिन्दी : आश्रममें बहुत फूल हैं ।
तमिल : आश्रमत्तिल रोम्ब पू इरुक्किरदु ।
तेलगू : आश्रमलो चाल पुव्वुलु उन्नवि ।
कन्नड़ : आश्रमदल्लि तुम्ब हूवुगळिवे ।
मलयालम : आश्रमत्तिल वळरे पुष्पङ्गल उण्ट (पूक्कळ) ।

आदमी काम करता है ।
आळ वेलै सेयहिरान ।
मनषि पनि चेयुचुन्नाडु ।
मनुष्य केलस माडुत्ताने ।
मनुष्यन प्रवर्तिकुन्न ।

दीपक बहुत बड़ा है ।
विळक्कु रोम्ब पेरियदु ।
दीपमु चाल पेद्दि ।
दीपवु तुम्बा दोड्डदु ।
दीपम वळरे वालुताण ।

मैं चांद देखूंगा ।
नान सन्दिरनै पार्पेन ।
नेनु चन्द्रुनि चूचेदनु ।
नानु चन्द्रनन्नु नोडुत्तेने ।
ञान चन्द्रने काणुम ।

तुमको चांद पसंद नहीं है ?
उनक्कु सन्दिरन पिडिक्कविल्लैया ?
मीकु चन्द्रुडु इष्टमु लेदा ?
निमगे चन्द्रनु हिडिसुबुदिल्लवे ?
नींगंळकु चन्द्रने इष्टमल्लैयो ?

माताजी फूल देती हैं ।
श्री अन्नै पू कोडुक्किराहंळ ।
तल्लिगारू पुष्पुलु इच्चेदरू ।
तायियवरु हूवन्नु कोडुत्तारे ।
मातावु पुष्पम नलकुन्नु ।

हिंदी : मुझे मधु बहुत पसंद है।
तमिल : एनक्कु तेन पिडिक्कुम।
तेलगू : नाकु तेने यंतो इष्टमु।
कन्नड़ : ननगे मधु तुम्बा सेरुत्तदे ।
मलयालम : एनिक्कु मधु (तेन) वळरे इष्टमान।

हिंदी : मेरा मकान शहरमें है।
तमिल : एन वीडु नहरित्तिल इरुक्किरदु।
तेलगू : ना इल्लु पट्टणमुलो उन्नदि।
कन्नड़ : नन्न मने पट्टणदल्लिदे।
मलयालम : एण्टे वीडु पट्टणत्तिलाणु।

हिंदी : मुझे चलनेका अभ्यास है।
तमिल : एनक्कु नडक्क पजक्कम।
तेलगू : नाकु नडचुट आलवटु।
कन्नड़ : ननगे नडेयुव अभ्यासविदे।
मलयालम : नडक्कुन्नद एनिक्कु शीलमाणु ।

हिन्दी : इससे शरीर स्वस्थ रहता है।
तमिल : इदनाल उडम्बु सुखमा इरुक्कुम।
तेलगू : दीनि वल्ल शरीरमु आरोग्यमुगा उंडुनु।
कन्नड़ : इदरिंद शरीरवु आरोग्यविरुवदु।
मलयालम : इदु कोण्ड शरीरम आरोग्यम निल निर्तुन्नु।

हिन्दी : यहांसे चार मील दूर है।
तमिल : इङ्गिरिन्दु नालु किलोमीटर दूरम इरुक्किरदु।
तेलगू : इक्कडंनुंचि नालुगु मैळ्ळ दूरमुन्नदि।
कन्नड़ : इल्लिक नालकु मेलु दूरविदे।
मलयालम : इवुडुन्न नाल नाळिक दूरमाण।

हिन्दी : फिर देर क्यों चलिये अभी चलें।
तमिल : नेरम वीण पोवदु एदर्कु, पोइ पार्कलाम ।
तेलगु : (अयिते) आलस्यम एंदुकु पदण्डि इप्पुडेपोदामु।
कन्नड़ : तडबेके, ईगले होगोण।
मलयालम : येन्दिने तामसिकुन्नु, नमुक्कु उप्पोळतन्ने पोगाम।

आजकल सब जगह मकानोंकी कठिनाई है।
इन्नाट्कळिल वीडु किडैपदु कष्टम।
ईरोजुल्लो इल्लुकु कष्टमुग (चिक्कुगा) उन्नदि।
इत्तीचिगे एल्लेल्लु मने सिगुवुदु कठिण।
इक्कालम एल्ला इडत्तुम वीडिनु वृद्धिमुट्टण्डु।

मुझे शहरसे दूर चाहिये।
नहरै वीट्टु तोलैविल वेण्डुम ।
नाकु पट्टणमु नुण्डि दूरमूगा कावालि।
ननगे पट्टणदिन्द दूर इरुवदु बेकु।
एनिक्कु पट्टणत्तिल निन्नु अगले वेणम।

चलना अच्छी कसरत है।
नड़प्पदु उडम्बुकु नल्लदु।
नडचुट मंची व्यायाममु।
नडेयिवदु ओळळे व्यायाम।
नडत्तम नल्ल व्यायाममाण।

चलिये आपको एक सुन्दर घर दिखाऊं।
वारुङ्गळ ओरु नल्ल वीडु काट्टुहिरेन।
पदंडि तमकु अंदमैन इल्लु चूपिचोनु चूपेदनु।
नडेयिरि निमगे ओन्दु ओळळ मनेयन्नु तोरिसुत्तेने।
वरिग, ञान नींगळके ओरु मनोहरमाया वीड काणिच्चुतरा।

घर सुन्दर और सस्ता है।
वीडु अजहा इरुक्किरदु मलिवाहवुम इरुक्किरदु।
इल्लु अन्दमुगा चौक्कगा उन्नदि।
मने सुन्दरवु अग्गवू इदे।
वीड मनोहरवु सहायवुमाण।

मेरा छोटा भाई घरपर है।
एन तम्बी वीट्टिल इरुक्किरान।
ना तम्मुडु इंटिलो उंटाडु।
नन्नतम्म मनेयल्लि इरुत्ताने।
ञेण्डे इळेय सहोदरन वीट्टिल तन्नेउरिकुन्नु।

हिन्दी	: मैं आश्रममें रहता हूं।	आप कहां रहते हैं ?
तमिल	: नान आश्रमत्तिल इरुक्किरेन।	नींगळ एंगे इरुक्किरीहंळ।
तेलगू	: नेनु (आश्रमुलो उंटुन्नानु) आश्रममलो उंटानु।	तमरु एककड़ उंटुन्नारु।
कन्नड़	: नानु आश्रमदल्लि इरुत्तेने।	एल्लि इरुत्तीरि।
मलयालम	: ञान आश्रमत्तिल तामसिकुन्नु।	नींगळ एविटे तामसिकुन्नु।
हिन्दी	: यह श्रीअरविंदका चित्र है।	यह माताजीका कमरा है।
तमिल	: इन्द पडम श्रीअरविंदर पडम।	इदु श्री अन्नै वीडु।
तेलगू	: इदि श्रीअरविंदुल पठमु।	इदि तल्लिगारी गदि।
कन्नड़	: इदु श्रीअरविंदर चित्र।	इदु तायियवर कोणे।
मलयालम	: इद श्री अरविन्दोविण्डे चित्रमाण।	इद माताविण्डे मुरियाण।
हिंदी	: महाशय इधर देखिये।	आप कुछ काम करेंगे ?
तमिल	: ऐया इंगे पारुंगळ।	नींगळ वेलै सेइवीर्हळा ?
तेलगु	: महाशया इटु चूडंडि।	तमरु एदैना पनि चेस्तारा ?
कन्नड़	: स्वामि, इल्लि नोडिरि।	नीवु एनादरु केलस माडुविरा ?
मलयालम	: मायरे, इङ्गोटु नोकुगा।	नींगङळ वल्ल प्रवृत्तियुम चेय्यमो ?
हिंदी	: आपका घर दूर है।	नहीं, मुझे चलनेका अभ्यास है।
तमिल	: उंगळ वीडु दूरम।	इल्ले, एनक्कुनडक्क पजक्कम।
तेलगू	: तम इल्लु दूरमु।	नाकु नडचुटा अलवाटु।
कन्नड़	: निम्ममने दूरविदे।	इल्ल, ननगे नडेयुव अभ्यासविदे।
मलयालम	: नींगळुडैय वीड दूरेयाण।	इल्ल ञेनिक्क नडक्कुनद शीलमाण।
हिंदी	: मैं आज शामको आऊंगा।	आप मेरा मकान देखेंगे ?
तमिल	: नान सायं कालम वरुहिरेन।	नींगळ एन वीट्टै वन्दु पारकिरीहंळा ?
तेलगू	: नेनु ई सायंकालमु वच्चेदनु।	तमरु ना इल्लु चूचेदरा ?
कन्नड़	: नानु इवत्तु सायंकाल बरुवेनु।	नीवु नन्न मनेयन्नु नोडुवीरा ?
मलयालम	: ञान इन्न सायान्तत्तिल वराम।	नींगळ एण्टे वीड काणुमो ?
हिंदी	: जरूर, जरूर देखूंगा।	आपको गरम पानी चाहिये या ठंडा ?
तमिल	: पार्क सिद्धम।	उंगळुकु वेन्नीर वेण्डुमा ? कुळुरिन्द जलम वेण्डुमा ?
तेलगू	: तप्पक चूचेदनु।	मीकु वेळनीरु इष्टमा लेक चल्लन्नीरा ?
कन्नड़	: जरूर जरूर नोडुवेनु।	निमगे बिसिनीरु बेके अथवा तण्णीरु ?
मलयालम	: तीर्चेयायुम ञान काणुम।	नींगळके चूडु वेळ्ळमो पच्च वेळ्ळमो एताण वेण्डदु ?

“युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके रथको हांकनेवाले कुरुक्षेत्रके सारथि (श्रीकृष्ण) कर्मयोगके प्रतीक और प्रतिमूर्त्ति हैं; क्योंकि शरीर ही है रथ और इन्द्रियां हैं हांके जानेवाले घोड़े और संसारके रक्तरंजित तथा पंकसंकुल पथसे ही श्रीकृष्ण मानवात्माको वैकुंठ-तक ले जाते हैं।”

—श्रीअरविंद

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन-४३४

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के वही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता—७

फोन—३३२३१२

* * *

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

* * *

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

१९६६ की डायरी

२६ फूलोंके बहुरंगे चित्र और उनका अर्थ

९ इंच × ७ इंच : २ पृष्ठ प्रति सप्ताह लिखनेके

मूल्य रु. १२-०० मात्र

मिलनेका पता :

श्रीअरविंद आश्रम (प्रकाशन-विभाग), पांडिचेरी-२

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

*

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स

३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,

CALCUTTA 29

A LEADING DEALER IN AND

MANUFACTURERS

CHEMICALS, SOLVENTS, MINERALS,

THINNERS, SILICATES,

INSECTICIDES & PESTICIDES.

दृढ़ विश्वास रखो कि भारतको उठना है और महान् बनना है। जो कुछ हुआ है, उसकी प्रत्येक कठिनाई, प्रत्येक हार लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ाती और उसमें सहायक होती है। अब हमें ऊपर ही ऊपर उठते जाना है। नीचे गिरनेका जमाना खत्म हो गया।

—श्रीअरविंद

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड

१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;

बम्बई--१

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

With best wishes from :

Arthur Import Export Co.

'MON REPOS'

41/44, Arthur Bunder Road,
Behind Radio Club,

BOMBAY-5

Importers, Exporters & Suppliers of

Finest quality of

Shoddy yarns, Synthetic Tops and Barrack Blankets.

प्रबोधा

किशोर-त्रैमासिक

अप्रैल

१९६६

उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

अभियान-गीत	आरसीप्रसाद सिंह	२
प्रार्थना	श्रीमां	३
संपादकीय ——		४
हिंसाभाव और आत्मबल	श्रीअरविंद	८
एक प्रश्न	विद्यावती 'कोकिल'	१०
शिक्षा	श्रीमां	११
ईश-पाटल	श्रीअरविंद	१३
बाजीप्रभु	अनुबेन पुराणी	१५
श्री पुराणीजी	रवींद्र	२२
रामचंद्र वर्मा	रवींद्र	२५
अब जर्मनीमें	स्नेहलता	२९
डा. सैमुएल हानिमैन	संतोषानंद	३३
कहीं हम भूल न जायं		३८
हिमालयकी गोदमें	सुरेश जोशी	४२
कैमरेद्वारा शिकार	विराज	४८
नीलकंठ	कृष्णकुमार	५०
लक्ष्मीप्रसादजी बोले		५१
शंकर कुरूप		५४
सन् सत्तावनका पहला शहीद		५७
स्वाति तिरुनाळ	अनुबेन पुराणी	५९
संपादककी एक शाम	रवींद्र	६०
पुस्तक-परिचय		६४
दक्षिण-भारती		६६

चित्रकार : कृष्णलाल। मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

अप्रैल १९६६ अंक ४

वर्ष ४

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्ट-
वादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति
बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें
कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको
विकसित करनेके योग्य हो सकें।

—श्रीअरविन्द

प्रकाशक

श्रीअरविंद सोसायटी

पांडिचेरी–२

अभियान-गीत

चल, दीवाने, चल।
आज नहीं, तो कल।
तेरे ही हाथोंमें होगा मातृभूमिका हल।
चल दीवाने, चल॥

माता आज पुकार रही है।
तरुणाई ललकार रही है।
कौन वीर आगे बढ़ता है? भारत-शक्ति निहार रही है।
आजादीका दीप मचलता, जल परवाने, जल।
चल दीवाने, चल॥

बैठा क्या रोता है घरमें?
लहर उठी है भारत भरमें।
पर्वतका हिम पिघल रहा है, खौल रहा है जल सागरमें।
तू ही क्यों अबतक है सोया? उठ आंखोंको मल।
चल दीवाने, चल॥

आजादीकी लगन लगा दे।
मुरदोंको भी आज जगा दे।
जो जगमें जीवित रहना है, दुर्बलताको मार भगा दे।
शूरोंके ही लिये धरा है, वीरों का भूतल।
चल दीवाने, चल॥

धरती तेरी, भारत तेरा।
जगमें मस्तक उन्नत तेरा।
सौ सौ बार वन्दना तेरी, लाख बार है स्वागत तेरा।
एक नहीं, दस-बीस नहीं, तू कोटि-कोटि भुज-बल।
चल दीवाने, चल।
तेरे ही हाथोंमें होगा मातृभूमिका हल॥

—आरसीप्रसाद सिंह

प्रार्थना

सब विघ्न-बाधाओंपर विजय पानेवाले प्रभो, तेरी जय हो !

वर दे कि हमारे अंदर कोई भी चीज तेरे काममें बाधक न हो !

वर दे कि कोई चीज तेरी अभिव्यक्तिमें रुकावट न डाल पाये।

वर दे कि हर चीजमें, हर क्षण तेरी ही इच्छा पूरी हो।

हम तेरे सामने खड़े हैं ताकि हमारे अंदर, हमारी सत्ताके एक-एक तत्त्वमें, उसके हर काममें, उसकी सबसे ऊंची चोटियोंसे लेकर शरीरके छोटे-से-छोटे परमाणुतकमें तेरी ही इच्छा पूरी हो।

वर दे कि हम तेरे प्रति गहरी और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

वर दे कि तू जो अद्‌भुत चीजें हमें हर क्षण देता रहता है, हम उनका अपव्यय न करें।

वर दे कि हमारे अंदर सब कुछ तेरे काममें सहयोग दे, और हर चीज तेरी सिद्धिके लिये तैयार रहे।

हे परम सिद्धिके प्रतिष्ठाता[1] प्रभो ! तुम्हारी जय हो।

हमें अपनी विजयमें ज्वलंत, संपूर्ण और अचल-अटल श्रद्धा दे।

—श्रीमां

---

[1] व्यक्तिके लिये परम सिद्धिका अर्थ है भगवान्‌के साथ एकात्म और धरती तथा समष्टिके लिये उसका अर्थ है अतिमानसका अवतरण और नयी सृष्टि, परम सिद्धिके अधिष्ठातासे मतलब है भगवान्‌की वह शक्ति जो अपने-आप परम सिद्धि है और धरतीपर परम सिद्धिकी प्रतिष्ठा करेगी। —संपादक

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

मानव-विकास—विभिन्नता और एकता

श्रीअरविन्दने हमें बताया है कि सारा जीवन ही योग है। प्रकृति सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुको प्रत्येक प्राणीको अपने मार्गपर आगे बढ़ानेका प्रयास करती है। मनुष्यसे नीचे चेतनाके जो स्तर हैं उनमें भी प्रगति होती रहती है पर वहां सचेतन प्रयासके लिये स्थान नहीं है। जानवर या पौधेको ज्ञानकी जरूरत नहीं होती। वह अपने जीवनके बारेमें अथवा अपनी परिस्थितियोंके बारेमें अचेत होता है, उन्हें उतना ही पता होता है जितना प्रकृति उन्हें बताना जरूरी समझती है। वे भोजन, प्रजनन और सुरक्षाको छोड़कर शायद ही किसी विषयकी जानकारी रखते हैं और यह जानकारी भी अपनी आरंभिक अवस्थामें ही होती है। ये पौधे और प्राणी पूरी तरह प्रकृतिके हाथमें होते हैं, इनके अंदर यह क्षमता नहीं होतीं कि उसकी इच्छासे जरा भी इधर-उधर हो सकें। अपनी इस अक्षमताके कारण वे बहुत-सी मुश्किलोंसे बच जाते हैं। इसके विपरीत मनुष्यके अंदर मनन करनेकी शक्ति है, वह जानना चाहता है और अपनी विभिन्न क्षमताओंके कारण प्रकृतिके बदलते हुए नियमोंकी जानकारी प्राप्त करता है और उनके पीछे जो सत्य है उसका भी साक्षात्कार करना चाहता है। देखनेसे ऐसा लगता है कि मनुष्य अपने मन और अपनी बुद्धिके द्वारा प्रकृतिके नियमोंको बदल सकता है और एक अंशमें उसपर काबू पा सकता है। परंतु सचमुच देखा जाय तो बात ऐसी नहीं है, क्योंकि हमारा मन भी प्रकृतिका ही एक भाग है। मनुष्यसे नीचेके स्तरपर प्रकृति केवल भौतिक और प्राणमय संघर्ष करती है, वहां मानसिक ऊहापोहके लिये स्थान नहीं होता। मनुष्यके अंदर मानसिक संघर्ष होता है, वह न केवल अपने बाहरके संसारके साथ बल्कि स्वयं अपने साथ भी लड़ाईमें लगा रहता है।

प्राणियोंके अंदर आंतरिक संघर्ष नहीं होता, यह नयी मुसीबत मनुष्यके भागमें ही आयी है, पर इसका फल भी है। इस संघर्षके फलस्वरूप मनुष्य आंतरिक विकास कर सकता है, अपनी हदोंको पार करके बराबर ऊंचा उठता रह सकता है। वर्तमान स्थितिमें मनुष्यकी उन्नति संघर्षपर ही निर्भर है। मनुष्य अपनी बुद्धिके द्वारा वस्तुओंके मूल्य आंकता है, उनमें उपयोगी और अनुपयोगी वस्तुओं और प्रवृत्तियोंको अलग करता है और उपयोगीका ग्रहण और अनुपयोगीका त्याग करनेका प्रयास करता है। इससे कुछ ऊपर उठकर मनुष्य केवल जीवित रहने और बढ़नेकी स्थितिसे निकलकर अपने अंदर और अपने चारों ओर काम करनेंवाली शक्तियोंको देखता है। वह मान लेता है कि ये शक्तियां ही जीवनको चला रही हैं और वह उनके अध्ययनमें लग जाता है। वह भौतिक जगत् और अपने मनके क्रियाकलापका भरसक अध्ययन करता है और सोचता है कि संसार बस इन्हींके बलपर

चल रहा है। जैसा अकबरने यूरोपके लिये कहा है—

भूलता जाता है यूरोप आस्मानी बापको
बस खुदा समझा है उसने बर्कको और भापको।

इसी भांति मनुष्य अपने मस्तिष्कके द्वारा यह निर्धारित कर लेता है कि क्या होना चाहिये, वह वर्तमान क्षमताओंके आधारपर भावी संभावनाओंका एक चित्र बना लेता है और उसीको अपना लक्ष्य या गंतव्य स्थान मान लेता है अथवा उस स्थानको अपना आदिम निवासस्थान मान लेता है और सोचता है कि यही वह जन्नत थी जहांसे हजरत आदमको निकाला गया था। बात यह है कि हमारा मन काफी संकुचित है, वह प्रकृतिके एक ही पहलूको देख पाता है और उसे ही अंतिम स्थिति मान बैठता है। मनुष्यकी अपूर्ण अक्षमताओंके द्वारा ही प्रकृति उसे आगे बढ़ाती है। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रकृतिके तत्त्व परस्पर विरोधी हैं। परस्पर संघर्षमें प्रकृति कभी एकका पलड़ा भारी कर देती है तो कभी दूसरेका। विरोधी होते हुए भी इन्हें एक-दूसरेकी जानकारी प्राप्त होती है और धीरे-धीरे विरोधी तत्त्व एक दूसरेके पूरक तत्त्व बनने लगते हैं। मनुष्यजातिके विकासमें विशेष रूपसे तीन अंग महत्त्वपूर्ण हैं— (१) व्यक्ति (२) विभिन्न प्रकारके संगठन या जातियां और (३) समस्त मानवजाति। इनमेंसे प्रत्येक अंग पूर्णता और संतोष प्राप्त करना चाहता है परंतु कोई भी दूसरे अंगोंसे कटकर अपनी वैयक्तिक या सामाजिक पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता।

व्यक्तिको अपने स्वाभाविक रूपमें पहले आंतरिक विकास और पूर्णताकी ओर जाना चाहिये और फिर अपनी आंतरिक प्राप्तिको बाहरी जीवनमें व्यक्त करना चाहिये। लेकिन यह अपने-आपको समाज या मानवजातिसे काटकर नहीं किया जा सकता, एक-दूसरेके संपर्कमें आये बिना, समष्टिके धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक पहलुओंको देखे बिना उनकी आवश्यकताओंको जाने बिना व्यक्ति इस क्षेत्रमें विशेष प्रगति नहीं कर सकता। मनुष्यजातिकी अवहेलना करके पूर्णता प्राप्त करना असंभव है। इसी प्रकार मानवसमाज भी पहले अपनी पूर्णता साधना चाहता है लेकिन उसके अंदर चाहे कितनी ही चेतना क्यों न हो, वह व्यक्तिकी सहायताके बिना आगे नहीं बढ़ सकता। उसकी प्रगति मनुष्य-रूपी पहियेके ऊपर निर्भर है। इसी प्रकार उसे अन्य समुदायों और जातियोंका भी ख्याल रखना पड़ता है क्योंकि उसे अपने-आपको मानवजातिके चौखटेमें अन्य सब जातियों और समाजोंके साथ बैठना होगा और सारी मानवताका ध्यान रखना होगा। मनुष्यजातिकी अभीतक कोई अपनी विकसित चेतना नहीं है। यह समझबूझकर उसने अपना कोई संगठन नहीं बनाया है। वह बुद्धि या अंतःप्रेरणासे परिचालित न होकर परिस्थितियों और वातावरणसे प्रभावित होती है। फिर भी भिन्न-भिन्न रूपोंमें मनुष्यको मानवजातिका ख्याल हमेशा ही रहा है। धर्म, सदाचार और आर्थिक कारणको समाज-शास्त्रने हमेशा मनुष्यको मानवजातिकी आवश्यकताओंकी ओरसे जागृत रखा है।

देशों और जातियोंमें जब कभी कोई बड़ा आंदोलन हुआ है तो उसने यही कोशिश की है कि वह अपनी चौहद्दीको लांघकर अधिक विस्तृत क्षेत्रको अपनाये। केवल एक जातिको उन्नत करनेके प्रयास भी अपना असर औरोंपर छोड़े बिना नहीं रहते। अगर समस्त मानबजातिको आगे बढ़ना है और पूर्णता प्राप्त करनी है तो यह जरूरी है कि उसके सब अंग उन्नति करें और इन सबका आधार है व्यक्ति। हम कह सकते हैं कि प्रगतिका एक चक्र है। यह नहीं हो सकता कि चक्रका एक बिंदु तो गतिशील हो और दूसरा अपनी जगह पड़ा रहे।

प्रकृति पौधों और पशुओंकी भिन्न-भिन्न जातियोंको बिलकुल अलग-अलग रखती है, परंतु मनुष्यजातिमें यह भेद-भावको हटाकर उसके अंदर ऐक्य साधने और एकताका अनुभव करानेका प्रयास करती है। जानवर अपनी विभिन्न समानताओंके कारण एक साथ हो जाते हैं परंतु मनुष्यकी जातियां स्थान,

देश, विचारों और स्वार्थोंके आधारपर बनती हैं। जैसे-जैसे मनुष्यके विचारोंमें, उसकी सहानुभूतिमें, उसकी भौतिक परिस्थितियोंमें परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे संकीर्णताकी दीवारें टूटती जाती हैं, विचारों और स्वार्थोंके विनिमय तथा नाना प्रकारके आदान-प्रदानके कारण देशों, राष्ट्रों और जातियोंके भेदभाव कम होते जाते हैं। केवल कम होते हैं, मिटते नहीं। क्योंकि प्रकृति विभिन्नतामें एकता स्थापित करना चाहती है, सबको कूट-पीसकर एक नहीं कर देना चाहती। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति व्यक्तिको — प्रत्येक व्यक्तिको पूर्ण रूपसे विकसित करना चाहती है, उसी तरह प्रत्येक जातिको उसके अनेक पहलुओंको, उसकी विशेषताओंको और उसकी क्षमताओंको पूरी तरह विकसित करना चाहती है और उसके साथ ही समग्र मानवजातिको एक नये रूपमें लाना चाहती है जिसका प्रत्येक अंग पूर्ण हो, जो कहींसे भी विकलांग न हो। इससे सारी मानवजाति समृद्ध हो सकेगी और सभी सुख और आनंदका अनुभव कर सकेंगे।

मानवजातिके विकासके लिये जरूरी है कि व्यक्ति-व्यक्तिमें, समाज-समाजमें तथा उससे बढ़कर मानवजाति तथा उसके विभिन्न अंगोंमें आदान-प्रदान चलता रहे। एक-दूसरेकी अच्छी चीजोंको लेकर उन्हें आत्मसात् कर सकें। आज भी प्रकृति इस दिशामें प्रयास कर रही है, परंतु अभी इस मार्गमें बहुत-सी बाधाएं हैं। अभी विचारोंमें परस्पर विरोध है, संघर्ष है, हर एक दूसरेको हरा कर उससे लाभ उठाना चाहता है। यूं कह सकते हैं कि भौतिक स्तरकी तरह प्राण और बुद्धिके स्तरपर भी चोरी और डाके होते रहते हैं। खुले आदान-प्रदानकी जगह एक-दूसरेको हड़प जानेकी प्रवृत्ति काम करती है। यह जरूर है कि बौद्धिक क्षेत्रमें मनुष्यजातिके उच्च स्तरने यह अनुभव कर लिया है कि यह अवस्था वांछनीय नहीं है और युद्ध, चाहे वह किसी भी स्तरपर क्यों न हो, त्याज्य है, परंतु अभीतक उसे उस स्थितिमेंसे बाहर निकलनेकी तरकीब नहीं मालूम और कुछ अंशमें मालूम भी हो तो उसे चलानेकी क्षमता नहीं है। वह लड़ाई-झगड़े खतम करनेके लिये व्यक्तिको समाजके शिकंजेमें कस देता है और इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय कलह मिटानेके लिये राष्ट्रोंको एक सार्वदेशिक संगठनका दास बना देना चाहता है। बुद्धि अस्तव्यस्तता, लड़ाई-झगड़े और अपव्ययसे बचनेके लिये आजादीकी बलि देनेको तैयार हो जाती है, पृथक्तावाद और कलह-क्लेश आदिसे बचनेके लिये विभिन्नता और अनेक पहलुओंवाले जीवनको समाप्त कर देना चाहती है, प्रकृतिकी बल खाती हुई गोलाकार लकीरोंको मिटाकर एक सीधी लकीर कर देना ही श्रेयस्कर समझती है।

परंतु जीवनके लिये स्वाधीनता अत्यंत आवश्यक है। हमारी सच्ची पूर्णताके लिये एकताके साथ-ही-साथ विभिन्नताकी भी उतनी ही जरूरत है। पूर्ण एकरूपताका अर्थ है मृत्यु। जीवनकी समृद्धि उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों और नानाविध क्रिया-कलापोंसे ही जानी जा सकती है। जीवन-शक्तिकी समृद्धिके लिये, जीवनकी विभिन्नता जरूरी है तो सामंजस्य और स्थायित्वके लिये एकताकी आवश्यकता है। हमें एकताकी जरूरत है, एक रूपताकी नहीं। अगर पूर्ण आध्यात्मिक ऐक्य स्थापित हो जाय तो फिर एकरूपताकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। उस दृढ़ आधारपर असंख्य विभिन्नताएं खेल सकती हैं।

सच्ची एकता प्राप्त करनेकी जगह एकरूपता प्राप्त करना बहुत सरल है। कायदे-कानून वगैरा बनाते समय भी एकरूपताके कारण आसानी होती है। साधारणतः मनुष्य जरा-सी भिन्नताको भी लड़ाई-झगड़ेका कारण बना लेता है। इसलिये आसान तरकीब यही है कि बाह्य जीवनमें एकरूपता लादी जाय और फिर बची हुई शक्तिका किसी और क्षेत्रमें उपयोग किया जाय। परंतु आगे चलकर यह एकरूपता जड़ताका रूप धारण कर लेती है और उच्चतर क्षेत्रोंमें भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। बौद्धिक या आध्यात्मिक उन्नति भी इस जड़ एकरूपताके कारण एकांगी और पंगु हो जाती है।

प्रकृति सृष्टिको बनाते समय एक सामान्य नियमका पालन तो करती है पर उसके अंदर असंख्य विभिन्नताएं भर देती है। यूं कहनेको मनुष्य-शरीर एक-जैसे होते हैं परंतु सारी दुनियांमें कोई दो शरीर पूरी तरह एक जैसे न मिलेंगे, मनुष्यकी प्रकृति एक जैसी है पर कोई दो मनुष्य ऐसे न मिलेंग जिनका स्वभाव, जिनके लक्षण, जिनकी आंतरिक स्थिति समान हो। यूं सारे जगत्में जीवन एक जैसा है, मनुष्य, पशु और पौधोंमें बहुत समानता है परंतु प्रत्येक पौधेमें, प्रत्येक पशुमें, प्रत्येक मनुष्यमें एक अपनी विशेषता है। एकता और वैविध्यके सामंजस्यमें ही जीवनका रहस्य छिपा है। सच्ची आध्यात्मिक एकताको किसी बाह्य एकरूपताके लादनेकी जरूरत नहीं होती। परंतु जबतक हम उस-तक न पहुंच सकें तबतक एकरूपताको रखना ही पड़ेगा। लेकिन हमें यह ख्याल रखना चाहिये कि हिटलरी एकरूपता जीवनकी कलीको ही न सुखा दे।

(श्रीअरविन्दकृत 'मानव एकताका आदर्श'के आधारपर)

एक नया अध्याय :

श्रीअरविन्दने अंग्रेजीमें कई नाटक लिखे हैं, कुछ कहानियां लिखी हैं और कुछ ऐसी कविताएं लिखी हैं जिनमें बड़ी सुन्दर घटनाओंका उल्लेख है। श्रीअरविन्दकी किसी भी कृतिका ठीक-ठीक अनुवाद करना तो असंभव काम है फिर भी जिन्हें मूल कृति पढ़नेका अवसर नहीं मिलता उनके लिये जितना बन सके उतना हिन्दीमें देना जरूरी है। पुरोधाके पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्रीमाताजीने हमें इस बातके लिये अनुमति दे दी है कि हम श्रीअरविन्दकी कहानियोंको अपनी भाषामें उनके सामने रख सकें। हमारी इन चीजोंको अनुवाद न माना जाय। श्री अनुबेन पुराणीने मूल कृतिको पढ़कर कथानकको अपने शब्दोंमें रखनेका प्रयास किया है। इस अंकमें 'बाजी प्रभु' इसी प्रकारका एक प्रयास है। हम आशा करते हैं कि पाठकोंको पुरोधाका यह नया अध्याय पसंद आयेगा। इसके चित्र श्री कृष्णलालकी तूलिकासे हुआ करेंगे।

* * *

कठिनाइयां तो हैं ही पर हैं उनपर विजय पानेके आनंदके लिये।
बस, आगे बढ़ते चलो, विश्वास बनाये रखो, सब ठीक ही होगा।

—श्रीमां

हिंसाभाव और आत्मबल

—श्रीअरविंद

“जब तमस और जड़ताने किसी राष्ट्रको चेतना-शून्य कर दिया हो तो उस जादूको तोड़नेके लिये रजसके अत्यधिक सबल रूपोंकी आवश्यकता होती है, घृणासे अधिक रजसका सबल रूप और कोई नहीं है। रजससे होकर ही हम सत्त्वतक पहुंचते हैं, और भारतीय स्वभावके लिये यह संक्रमणकाल अधिक लंबा नहीं होता। वस्तुतः घृणा अंतर्हित हो रही है और उसका स्थान ग्रहण कर रही है, भारत माताके प्रति प्रेमकी एक ऐसी धारणा जो हमारे राजनीतिक कर्मोंका मूल है।” — ‘वहिष्कार की नैतिकता’ नामक लेखसे।

“कुछ व्यक्ति आक्रामक उग्रतासे संकोच अनुभव करते हैं, मानों वह कोई पाप हो। उनका स्वभाव उन्हें युद्धके आनंदको अनुभव करनेसे रोकता है और वे उस सबको जिसे वे समझ नहीं पाते, विकट और पापपूर्ण मानते हैं। उनकी घोषणा होती है, “घृणाका इलाज प्रेम है”, “अन्यायको न्याय द्वारा भगा दो’, “पवित्रताद्वारा पापका नाश करो।” प्रेम एक पवित्र नाम है, किंतु प्रेम करनेसे प्रेमकी बातें करना अधिक सरल है। जो प्रेम घृणाको भगाता है वह एक दैविक गुण है जिसके करनेमें हजारोंमेंसे कोई एक समर्थ होता है। समस्त मानवजातिके प्रति प्रेम रखनेवाले संतके पास यह दैवी गुण होता है, मनुष्यके दुखोंको दूर करनेकी तीव्र इच्छा रखनेवाले परोपकारीमें भी यह गुण होता है, पर सामान्य मानव इस ऊंचाईतक न तो पहुंचता है न पहुंच सकता है। राजनीति जन-समुदायोंसे संबंधित है, विशेष व्यक्तियोंसे नहीं। जन-समुदायसे यह चाहना कि वह संतोंके समान व्यवहार करे और दिव्य प्रेमकी ऊंचाईतक पहुंचकर अपने विरोधियों और उत्पीड़कोंके साथ इसका अभ्यास करे यह मानव प्रकृतिके विषयमें अपनी अज्ञता है। इसका अर्थ है मारनेके लिये उठनेवाले मुक्तिदाताके हाथको पंगु करके अन्याय और हिंसाको प्रश्रय देना। जो लोग युद्धको पाप समझकर उससे संतोष करते हैं तथा आक्रमणको नैतिकताका मानदंड गिरानेवाला समझते हैं उनके लिये गीता सर्वश्रेष्ठ उत्तर है।” — बहिष्कार (बायकाट) की नैतिकता — श्रीअरविन्दका एक अप्रकाशित लेख।

“योद्धाकी तलवार न्याय और धर्मकी चरितार्थताके लिये उतनी ही आवश्यक है जितनी कि संतकी पवित्रता। शिवाजीके बिना रामदास अपूर्ण हैं। न्यायकी रक्षा करने, सबलोंको अत्याचार करनेसे रोकने और दुर्बलोंको उत्पीड़नसे बचानेके लिये क्षत्रियकी सृष्टि हुई है। श्रीकृष्ण महाभारतमें कहते हैं, “इसी लिये भगवान्ने युद्ध और धर्म, तलवार, तीर और बरछा उत्पन्न किये हैं।”

जिन परिस्थितियोंमें निष्क्रिय अथवा अहिंसात्मक प्रतिरोध असफल हो जाता है उनके विषयमें श्रीअरविन्द कहते हैं — “ऐसी परिस्थितियोंमें रक्तपात और बलप्रयोगसे कतराना एक ऐसी दुर्बलता है जिसे वैसी ही फटकार मिलनी चाहिये जैसी श्री कृष्णने कुरुक्षेत्रके मैदानमें अर्जुनको दी थी। स्वाधीनता राष्ट्रका प्राण है। और जब जीवनपर आक्रमण होता है, जब कोई जातिके श्वासोच्छ्वासको बलपूर्वक रोकनेका प्रयास करता है तब आत्मरक्षाके सभी साधन उचित और न्याययुक्त बन जाते हैं ...... ठीक उसी तरह जिस तरह एक मनुष्य जिसका गला घोंटा जा रहा हो अपने-आपको छुड़ानेके लिये किसी भी तरीकेका प्रयोग कर सकता है और उसका यह कार्य न्याययुक्त ही होता है। जैसा दबाव वैसा ही प्रतिरोध।”

“युद्ध और संहार हमारे जीवनके केवल भौतिक पक्षका नहीं; हमारे मानसिक और नैतिक जीवनका भी एक विश्वजनीन तत्त्व है। यह स्पष्ट है कि मनुष्यके वर्त्तमान बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक जीवनमें हम संघर्षके बिना अर्थात् — जो कुछ है और जो होना चाहता है इन दोनोंके बीचमें और इन दोनोंके पीछे जो कुछ है उसमें भी जबतक परस्पर युद्ध न हो ले — एक पग भी आगे नहीं रख सकते। ऐसी अवस्थामें कम-से-कम मनुष्यों और वस्तुओंकी जो वर्तमान परिस्थिति है उसमें आगे बढ़ना, उन्नति और उपलब्धि करना और फिर भी अहिंसाके उस सिद्धांतका जिसे मनुष्यका उच्चतम एवं सर्वोत्तम धर्म कहकर उपस्थित किया जाता है यथार्थतः, ऐकांतिक रूपसे पालन करना असंभव है। हम केवल आत्मबलका ही प्रयोग करेंगे और युद्धद्वारा कभी संहार-कार्य नहीं करेंगे, अपनी रक्षाके लिये भी शारीरिक बलका प्रयोग नहीं करेंगे — अच्छी बात है, पर जबतक आत्मबल अमोघ न हो तबतक मनुष्यों और राष्ट्रोंका आसुरी बल हमें रौंदता रहेगा, हमारे टुकड़े-टुकड़े करता रहेगा, हमारी हत्या करता रहेगा, तथा हमें जलाता और कलुषित करता रहेगा, जैसा करते हुए आज हम उसे देख रहे हैं और यह होगा बड़े आरामसे और बिना किसी विघ्नबाधाके। हिंसाका त्याग करके शायद तुम उतना ही प्राण नाश करते हो जितना कि दूसरे लोग हिंसाका आश्रय लेकर करते हैं। फिर भी तुमने एक ऐसा आदर्श तो सामने खड़ा किया है जो किसी दिन एक बेहतर अवस्था ला सकता है या कम-से-कम उसे लाना तो चाहिये। किंतु आत्मबल भी जब कारगर हो उठता है तो विनाशका कारण हो जाता है। जो लोग आंख खोलकर इसका प्रयोग करते हैं वे ही यह जानते हैं कि यह तलवार और तोप-बंदूकसे कहीं अधिक भयंकर और विनाशकारी है। और जो लोग अपनी दृष्टिको कर्म और उसके तात्कालिक फलतक ही सीमित नहीं रखते वे यह देख सकते हैं कि इसके परिणाम कितने भयंकर होते हैं, इसके कारण अंतमें कितना नाश होता है और उसके साथ ही उन सब प्राणियोंका भी नाश होता है जो उसपर निर्भर करते एवं उसके द्वारा पुष्ट होते हैं। बुराई उन वस्तुओंके नाशके बिना स्वयं विनष्ट नहीं हो सकती जो बुराईके सहारे जीवित रहती हैं। हम स्वयं हिंसाकी स्नायवीय या संवेदनात्मक पीड़ासे बच भी जायें तो भी इससे नाशकी मात्रा कुछ कम नहीं हो जाती।

“फिर यह भी बात है कि जब-जब हम आत्मबलका प्रयोग करते हैं तब-तब हम अपने शत्रुके विरुद्ध कर्मकी एक ऐसी प्रचंड शक्ति खड़ी कर देते हैं जिसके बादके परिणामोंको वशमें रखना हमारी सामर्थ्यके बाहर होता है। विश्वामित्रके क्षात्रबलके विरुद्ध वशिष्ठ आत्मबलका प्रयोग करते हैं और हूण, शक और पल्लव सेनाएं आक्रमणकारीपर टूट पड़ती हैं। आक्रमण और हिंसाके सामने आध्यात्मिक पुरुषकी शांत और निष्क्रिय स्थिति संसारकी प्रचंड शक्तियोंको प्रतिहिंसाके लिये उत्तेजित करती है। बुराईका प्रतिनिधित्व करनेवालोंको यदि दूसरोंको रौंदनेकी खुली छूट दे दी जाय तो वे अपने ऊपर एक ऐसे भयानक विनाशको उतार लायेंगे जो हमारी कल्पनासे भी परे होगा। उसके प्रहारका परिणाम उन्हें बलपूर्वक रोकनेसे भी कहीं अधिक भयंकर होगा। हमारे हाथ साफ रहें और हमारी आत्मा निष्कलंक रहे, केवल इतनेसे ही संघर्ष और विनाशका विधान संसारसे नहीं मिट जायगा। मानवजातिके अंदर इसकी जो जड़ है उसे ही विलुप्त होना होगा।

जहांतक वैयक्तिक कर्मकी समस्याका संबंध है, यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति संग्राम और उसके फलस्वरूप होनेवाले अनिवार्य विनाशके अधिक स्थूल और भौतिक रूपसे बचकर अपनी नैतिक सत्ताके विकासका मार्ग सुगम कर सकता है, किंतु वह प्राणियोंके संहारकर्त्ताको अछूता ही छोड़ देता है।

“एक दिन आ सकता है, बल्कि यह कहिये कि निश्चय ही आयगा, जब मनुष्यजाति आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक रूपमें इस बातके लिये तैयार होगी कि सर्वत्र शांतिका राज्य हो, पर जबतक

ऐसा नहीं होता तबतक किसी व्यावहारिक तत्त्वज्ञान और धर्मशास्त्रको इसे स्वीकार करना और उचित ठहराना होगा कि युद्ध जीवनका एक अंग है और लड़ाई करना मनुष्यका स्वभाव और कर्म है।"

"भारतका कार्य है संसारके लिये प्रकाश और नवजन्मका स्थायी स्रोत जुटाना। जब कभी शक्तिकी पहली चेष्टा समाप्त हो जाती हैं और पृथ्वी बूढ़ी और क्लांत हो जाती है तथा जड़ता उसे घेर लेती है, जब उसे ऐसी समस्याएं तंग करने लगती हैं जिनका वह समाधान नहीं कर सकती, तब भारतका काम होता ह मानवजातिको यौवन प्रदान करना और उसे अमरताका विश्वास दिलाना। वह अपने हृदयमें एक प्रकाशको विकीर्ण करता है जो पृथ्वी और आकाशको परिप्लावित कर देता है और मानवजाति उसमें ऐसे स्नान करने लगती है जैसे कि संत जार्जने जीवनके स्रोतमें स्नान किया था, वह अपनी लंबी तीर्थयात्राके लिये आशा और प्राणशक्ति प्राप्त करती है। अब ऐसा समय आ गया है। संसारको भारतकी जरूरत है। ——श्रीअरविन्द, "वन्देमातरम्" ३ मई १९०८।

एक प्रश्न

मेरे भीतर दो सत्ताएँ मां उनको कैसे पहचानूं ?
एक सदा उर गहराईमें, बस छिपकर मेरी रहती है,
कभी कभी ही अपने अस्तित्वका अरे इंगित देती है।

शीतल-मंद-सुगंध-पवन सी कोमल जिसकी पग-आहट है,
जहां न आवेगोंकी झंझा और स्वार्थकी कडुवाहट है।
नीरव, शांत, सुथिर अंतरमें कभी पुलक बिखरा जाती है,
और कभी आती है मुझको उदासीन लख फिर जाती है।

और दूसरी है जो प्रतिपल रागोंके आवेगोंपर ही
हमें उठाती औ बैठाती हमें रुलाती हमें हंसाती।
दुख सुखकी कोल्हू रढ़नोंसे तनिक नहीं उठने देती है,
उन्हीं स्वभावोंके कर्दममें खींच खींच फिर फिर लेती है।

अधिकारोंकी याद दिलाती, अंतरको रोषसे भराती,
मान और धनके गर्वोंसे ही कर्मोंमें गर्मी लाती।
मैं निरीह हूं, बेबस हूं मां कैसे सत्य, झूठको जानूं ?
यदि कुछ आहट पा भी जाऊं तो कैसे अंतर हठ ठानूं ?

—— विद्यावती 'कोकिल'

शिक्षा

भारतके पास आत्माका ज्ञान है, या यूं कहो कि था, किंतु उसने भौतिकताकी उपेक्षा की और उसका परिणाम भोगा।

पश्चिमके पास भौतिकताका ज्ञान है। किंतु उसने आत्माकी उपेक्षा की और उसका परिणाम बुरी तरह भोग रहा है।

सर्वांगीण शिक्षा, जो कुछ हेरफेरके साथ संसारके सभी राष्ट्रोंमें अपनायी जा सके, ऐसी होनी चाहिये जो पूर्णतया विकसित और व्यवहृत भौतिक तत्त्वपर आत्माके उचित शासनको पुनः प्रतिष्ठित कर सके। —श्रीमां

कुछ प्रश्न और श्रीमांके उत्तर

प्र० राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवनके भविष्यको देखते हुए भारतमें शिक्षाका लक्ष्य क्या होना चाहिये ?

भारतकी संतानको असत्यके बहिष्कार और सत्यकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करना।

प्र० इस उच्च लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये देशको कौनसे कदम उठाने चाहियें ? इस दिशामें आरंभ कैसे किया जा सकता है ?

भौतिक तत्त्वको आत्माकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करो।

प्र० भारतकी सच्ची प्रतिभा क्या है ? उसकी नियति क्या है ?

संसारको यह सिखाना कि भौतिक तत्त्व जबतक आत्माको अभिव्यक्त नहीं करता तबतक असत्य और अशक्त रहता है।

प्र० भारतमें विज्ञान और तकनीकी विद्याओंकी जो प्रगति हो रही है उसके विषयोंमें श्रीमां क्या कहती हैं ? मनुष्यमें आत्माके विकासके लिये इसकी क्या देन हो सकती है ?

इसकी एकमात्र उपयोगिता है भौतिक आधारको आत्माकी अभिव्यक्तिके लिये अधिक सबल, अधिक संपूर्ण और अधिक प्रभावशाली बनाना।

प्र० राष्ट्रकी एकताके लिये देश बहुत चिंतित मालूम हो रहा है। इस संबंधमें श्रीमांकी क्या दृष्टि है ? भारत अपने प्रति और संसारके प्रति अपना कर्त्तव्य कैसे निभा सकता है ?

सारे राष्ट्रोंकी एकता विश्वका अवश्यंभावी भविष्य है। किंतु सारे राष्ट्रोंकी एकता संभव हो सके इसके लिये पहले यह आवश्यक है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी-अपनी एकता प्राप्त कर ले।

प्र० भाषाका प्रश्न भारतको बहुत परेशान कर रहा है। इस मामलेमें हमारा ठीक रुख क्या होना चाहिये ?

एकता एक सजीव वास्तविकता होनी चाहिये, न कि किसी मनमाने नियमकी स्थापना। जब भारत एक हो जायगा तो उसे स्वतः ही ऐसी भाषा भी मिल जायगी जिसे सब समझ सकें।

प्र० साधारणतः शिक्षाका अर्थ हो गया है साक्षरता और सामाजिक प्रतिष्ठा, क्या यह मनोदशा अस्वास्थ्यकर नहीं है ? किंतु शिक्षाको उसका आंतरिक मूल्य और आंतरिक रस कैसे दिया जाय ?

रूढ़ियोंसे बाहर निकलो और आत्माके विकासपर बल दो।

प्र० (अ) आज शिक्षा किन भ्रमों और विभ्रमोंसे घिरी हुई है ?

सफलता, जीवन-वृत्ति और धनपर प्रायः सर्वग्राही महत्त्व दिया जाना।

(आ) इनसे हम किस प्रकार संभवतः बच सकते हैं?

आत्माके साथ संपर्क स्थापित करने और सत्ताके सत्यको विकसित और अभिव्यक्त करनेकी चरम महत्तापर बल दो।

*

प्र० कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके लिये सब कुछ आसान प्रतीत होता है और कुछ ऐसे जो सदा ही बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंमें पड़े रहते हैं, गहन अंधकारमें गिरे रहते हैं। यह भेद क्यों?

दूसरोंकी बातोंसे तुम क्यों वास्ता रखते हो, मैं एक ही बात बार-बार नहीं कहना चाहती। दूसरोंके विषयमें अपनी राय मत बनाओ, उनकी आलोचना न करो और उनमें तुलना मत करो। यह तुम्हारा काम नहीं है। तुम एक भौतिक शरीरमें पृथ्वीपर आये हो, तुम्हारा एक निश्चित उद्देश्य है: तुम्हें इस शरीरको यथासंभव अधिकसे अधिक पूर्ण यंत्र बनाना है; इसे भगवान्के प्रति अधिकसे अधिक सचेतन करना है। तुम्हें समस्त क्षेत्रोंमें, मानसिक, प्राणिक और शारीरिक क्षेत्रोंमें, कुछ उपादान मिला है; यह तुम्हें उस कार्यके लिये दिया गया है जिसकी भगवान् तुमसे आशा करते हैं, सचमुच देखा जाय तो तुम्हारे जीवनकी सारी परिस्थितियां भी उसी वस्तुके साथ संबंध रखती हैं जिसकी भगवान् तुमसे आशा करते हैं। इसलिये, यह मत कहो, "मेरा जीवन बड़ा दुःखमय है, इस संसारमें मेरा जीवन सबसे अधिक कठिन है।" प्रत्येकको ऐसा जीवन मिला है जो उसके समग्र विकासके लिये उपयुक्त है, प्रत्येकको ऐसे अनुभव होते हैं जो उसके पूर्ण विकासके अनुकूल हैं और प्रत्येककी अपनी कठिनाइयां हैं जो उसकी पूर्ण उपलब्धिके लिये आवश्यक हैं।

यदि तुम ध्यानसे अपना निरीक्षण करो तो तुम्हें सचमुच यह पता लग जायाग कि जिस गुणको तुम प्राप्त करना चाहते हो उसका ठीक उल्टा गुण भी तुम्हारे अंदर मौजूद है, मैं यहां 'गुण' को उसके अधिकसे अधिक विस्तृत और उच्च अर्थोंमें ले रही हूं। तुम्हारा एक विशेष लक्ष्य है, एक विशेष कार्य है, तुम्हें एक विशेष उपलब्धिको प्राप्त करना है, और ये सब तुम्हारी अपनी वस्तुएं हैं, पर साथ ही तुम्हारे अंदर इनके लिये समस्त आवश्यक बाधाएं भी मौजूद हैं जिनका प्रयोजन तुम्हारी उपलब्धिको पूर्ण बनाना है। तुम सदा ही यह देखोगे कि तुम्हारे अंदर प्रकाश और अंधकार दोनों रहते हैं। तुम्हारे अंदर एक योग्यता है, पर साथ ही उसका विरोधी गुण भी मौजूद है। यदि तुम्हें अपने अंदर गहरा और घना अंधकार दिखायी दे तो विश्वास रखो कि तुम्हारे अंदर किसी स्थानपर एक बड़ा प्रकाश भी मौजूद है। अब यह तुम्हारा काम है कि तुम एकको पानेके लिये दूसरेका प्रयोग करना जानो।

यह मत कहो, "मैं तो ऐसा ही हूं, किसी और तरहका नहीं हो सकता", क्योंकि यह सत्य नहीं है। तुम इस तरहके हो, ठीक इसीलिये क्योंकि तुम्हें इससे उलटा बनना है। ये सब कठिनाइयां केवल इसलिये हैं कि तुम इन्हें इनके अंदर छिपे हुए सत्यमें बदल सको।

इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि संसारका जो वर्तमान स्वरूप है वह अपने मूल रूपमें इसका ठीक विरोधी न होता, तो हमारे लिये कोई आशा न रहती। क्योंकि गढ़ा इतना अंधकारपूर्ण है, और गहरा है और निश्चेतना इतनी पूर्ण है कि यदि यह पूर्ण चेतनाकी संभावनाका संकेत न होती तो उसे बदलनेका कार्य हाथमें लिया ही न जाता।

शंकराचार्यने तथा कुछ औरोंने भी यह कहा था कि यह संसार रहने योग्य नहीं है, इसे एक भ्रांति समझकर जितनी जल्दी हो सके छोड़ देना चाहिये, क्योंकि इससे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता। इसके विपरीत, मैं तुमसे कहती हूं कि संसार बहुत बुरा, अत्यंत अंधकारमय, कुरूप और अचेतन है, कष्ट और पीड़ासे भरा है इसलिये उसके अंदर सर्वोच्च 'सौंदर्य', सर्वोच्च 'प्रकाश', सर्वोच्च 'चेतना' और सर्वोच्च 'आनंद' का रूप धारण करनेकी संभावना भी मौजूद है।

ईश-पाटल

(Rose of God)

— श्रीअरविन्द

१

स्वर्गकी शुचि पारदर्शी नीलिमापर
ईशके पाटल! सिन्दूरी मांग हो तुम
सात आनंदों रंगी-सी इन्द्रधनुषी —
हर्षके पाटल! मधुर-सी आग हो तुम।

ज्योतिके अंगार! सम्मोहन भरे ओ!
मनुजताके हृदयमें किल्लोल कर तू
भावनामय पुष्प उस अज्ञातके हो
गूढ़तम उस भेदकी कलिका सुघर तू।

२

आत्म-सत्ताके शिखरकी उच्चतापर
ईशके पाटल! सुबुद्धि-कोष हो तुम
विश्व-सत्ताकी परम निस्सीमताके
ज्योतिके पाटल! पटल निर्दोष हो तुम।

सुभग स्वर्णिम गुह्यताके दिव्य अंकुर
वसुंधरापर अवतरित हो धार जीवन
शीशपर है सूर्य समयातीतके तू
चमत्कारी दिव्य क्षणका तू अतिथि बन।

३

ईशके पाटल! महाबल-पुंज रक्तिम!
तुम अरुण सामर्थ्य हो निस्सीमताके
शक्तिके पाटल! प्रखर तेजस्वितासे —
काटते हो तार तमकी भीमताके।

मर्त्य-मनुकी कामनामें दीप्त होकर
दो महद् आकार अपनी कल्पनाको
अमरताके बिंब ! जन-जनके हृदयमें
दो प्रसारण उच्च दैवी भावनाको।

४

ईशके पाटल ! हुए तुम नील लोहित
देहधारी दिव्य इच्छाके परससे
प्राणके पाटल ! पंखुड़ियोंमें प्रतिष्ठित
रंग-वीणामें निनादित तुम सरस-से।

मर्त्य देहीको करो रूपांतरित यूं
मधुर सम्मोहन भरा ज्यों गीत कोई
पार्थताको दिव्यतासे बांध : दे दो —
काल-पुत्रोंको अनश्वर जीत कोई।

५

ईशके पाटल ! सनातनके अधरकी
उल्लसित व्रीड़ा-भरी मुस्कान हो तुम
प्रेमके पाटल ! गुलाबी गहनता हो
प्रज्ज्वलित उत्साहका वरदान हो तुम।

जाग ! उन शोकाकुलोंके तप्त मनमें
सृष्टि-रौरवमें सिसकते जो खड़े जन
भुवन 'विस्मयपूर्ण' का बन जाय पृथ्वी
और यह जीवन बने 'सौंदर्य-चुम्बन।'

रूपान्तर : कस्तूरी कश्यप

बाजी प्रभु

(श्रीअरविन्दकी अंग्रेजी कविता बाजी प्रभुके आधारपर)

दक्खिनकी दोपहरी धरतीपर जुल्म ढा रही थी। पहाड़ियोंका आकार लूमें कांप-कांप उठता था और प्यासे खेत झुलसती गरमीमें सूखे नालोंपर खड़े-खड़े पानीको तरसते थे। प्रकृति और मनुष्य भड़कते कसैले पीतवर्ण नभकी जेलसे भागनेकी कोशिशमें थे। गरमी न सिर्फ किसानों और चरवाहोंपर भार बनके लदी थी बल्कि साथ ही चमचमाते भाले लिये घोड़ोंको आगे फेंकती, पीछे हटाती और चक्करमें दौड़ाती मुगल सेनापर भी गजब ढा रही थी। फिर भी वे उत्साहसे बढ़ते गये। उनका मन न चिलचिलाती धूपकी परवाह करता था, न धूलके बवंडरकी गलाघोंटसे घबराता था, न चोटकी परवाह थी, न घावोंका ख्याल। एक ही धुन सिरपर सवार थी, "आखिर अंत आ ही गया, हमने पहाड़ी चीतेको उसकी मांदमें कैद कर दिया, विद्रोही दलको मौतके घाट उतार दिया।" दूसरी ओर क्या था? चारों ओरसे घिरा, थका, प्यासा, खूनसे धरती मांका आंचल भिगोता शिवाजीका दल रायगढ़की ओर लड़खड़ाता चला जा रहा था। उसकी प्रिय पहाड़ियां आज मृत्युपाश लिये खड़ी थीं। ऊपर नीला नभ विडंबनाओंपर मुस्करा रहा था। शायद उन्होंने देशके लिये व्यर्थ ही प्रयास किया। आज वे ईश्वर और मानव दोनोंके दुत्कारे हुए थे। सूर्योदयसे पहले भोंसलेने एक ऊंचा दुर्ग हथियाया था। उसे आशा थी कि नीचे फैली विशाल भूमि उसीके पंजेमें आ जायगी, पर उत्तर और पूर्वसे उफनती हुई मुगल सेना आ धमकी। हजारों तलवारें चमकीं, टापोंकी ध्वनिसे पहाड़ियां चौंक उठीं और सैकड़ों बंदूकें भूंकने लगीं। इन्होंने उस वीरको पीछे धकेला। कठोर और दृढ़ मराठोंने चुपचाप पहाड़ीमें वापिस जाना शुरू किया। कभी-कभी उनकी पिछली पंक्ति नारे लगाती हुई शत्रुके दलोंपर कूद पड़ती थी, पहाड़ीमें छिपकर उसे कुछ देर रोक लेती थी। सारे मैदानमें जहां-तहां लड़ाई जोरोंपर होती, वहीं बाजीप्रभु मुगल सेनाकी उत्ताल तरंगोंका सामना चट्टानकी तरह करनेके लिये पहुंच जाते थे।

वे रायगढ़के रास्तेपर बाघके गले-सी क्रूर गहरी घाटीतक आ पहुंचे। पहाड़ियां करीब आते-आते तंग हो चली थीं और उनकी ऊंची चट्टानें ढलानको डरा देती थीं। भोंसले वहीं रुके। उनकी गीध-दृष्टि घाटी, चट्टान और मैदानमें तैरती हुई सांवले युवक मालसुरेपर जा टिकी। तेजस्वी दीप्त नेत्रोंवाला वह युवक घुड़सवार हर्षविभोर होकर उनके पास आया। उसका दिल बल्लियों उछलने लगा। उसका दिल पिछली पंक्तिमें जानेको मचल रहा था जहां हजारों तलवारोंकी हंसीमें मौतका गीत सुनायी देता था। नेताने कुछ सोचते हुए कहा, "सूर्याजी! पिछली पंक्तिमेंसे बाजी प्रभुको बुला लाइये।" हुकुम पाते ही सूर्याजीके घोड़ेकी टापें घाटीके नीचे भागी चली गयीं। वह तुरंत टीलेपर जा पहुंचा जहां सेनाका लौह-हृदय टूट रहा था। फिर भी वह उग्र शांतिमें लड़ती और मरती जाती थी। प्रभुके पास जाकर उसने कहा, "बाजी, तुझे सेनापति बुला रहे हैं।" एक शब्द बोले बिना बाजीने अपने घोड़ेको एड़ लगायी और चट्टानपर पहुंचकर शिवाजीके सामने चुपचाप खड़ा हो गया। "बाजी, तुम असंख्य बार मेरे और दुश्मनके बीच एक जीवित ढालकी तरह खड़े होकर लड़े हो, किंतु आज तुम एक मनुष्यके जीवनको नहीं, अपने देशके भविष्यको बचाओ। यह घाटी देखते हो? संकरी, क्रूर, बाघके गले-सी चमचमाती घाटी! उसके पथरीले पंजे शिकारको पकड़कर निगलनेके लिये तड़प रहे हैं। यह ऊंची चट्टान हमलेको रोक लेगी और उसकी दोनों भुजाएं चढ़नेवालेको नीचे धकेल देंगी। यहींपर मुट्ठीभर पुरुष-व्याघ्र एक पूरी सेनाको रोक सकते

हैं। बाजी, मैं रायगढ़ जाकर बस दो घंटोंमें लौट रहा हूं, तुम देख ही रहे हो कि हम कितने कम हैं। हमारी सेना अफगानिस्तानकी बर्फकी तरह पिघल-पिघलकर खूनके गड्डे भरती जा रही है।" बाजी सोच ही रहे थे कि नेताके पीछे लौह-पुरुष तानाजी मालसुरे तलवारकी तरह कौंध उठा, "इतने छोटेसे कामके लिये प्रभु! मुझे बस पांच सौ सैनिक दे दें। मैं आपकी वापिसीतक घाटीपर डटा रहूंगा।" शिवाजी चुप रहे। उनकी विशाल, शांत दृष्टि बाजी प्रभुपर टिकी रही। तब क्रोधसे पागल मालसुरे भवें टेढ़ी करते हुए बोले, "वीर! अब भी क्या सोच रहे हो? तुम जैसे पुरुषोत्तमको शायद हमारे जैसी छुटपुट तलवारोंकी जरूरत नहीं। सबेरेसे शामतक तुम अकेले ही आगरेसे राजस्थान और काबुलतक शत्रुको रोके रहोगे, क्यों?" बाजीने उत्तर दिया, "तानाजी मालसुरे! पुरुषका पौरुष हाड़-पंजरमें नहीं है। सर्वशक्तिमान् हमारे अंदर बैठा शासन करता है। वही नरपुंगव ब्राह्मण, शूद्र और कुत्तेतकमें समान रूपसे विराजमान है और अगर चाहे तो उस समानताको दिखा भी सकता है। वही हम सबपर शासन करता है। महानता मनुष्यकी नहीं होती। बाजी या मालसुरे सिर्फ नाम हैं, एक चोला है जिसके अंदर वह सर्वशक्तिमान् छिपा है। हमारी सारी शक्ति भवानीकी ही है। वह चाहे तो इस एक हाथको ही तूफान और आंधीसे भी भयंकर बना सकती है। मुझे बस पचास सैनिक चाहिये।"

मालसुरे प्रसन्न होकर बोले, "बाजी! वापस आकर मैं तेरे लिये किसीने न देखी हो ऐसी चिता खड़ी करूंगा। सारा दक्षिण उसके आलोकसे प्रकाशित हो उठेगा। लोग कहेंगे, "प्रभु बाजी जल उठे हैं।" मुस्कुराते हुए बाजीने कहा, "तू मुझे जला न पायेगा। इस पांच हाथकी कायाको सियार खायें या चिताकी ज्वालाएं भस्म करें इसकी दूसरे भले चिंता करें, पर बाजीको उसकी परवाह नहीं।" दीप्त शांत दृष्टिसे देखते हुए शिवाजी बोले, "मित्र! इहलीला समाप्त करके हम दोनों मांकी गोदमें अवश्य मिलेंगे।" यह कहते हुए अपने उन्नत भालसे हीरे-मोतीसे सुशोभित राजचिह्न उन्होंने बाजीके सिरपर रखा और प्रिय मित्रको एक बार बाहुओंमें कसके सेनासहित टापोंकी ध्वनिमें विलीन हो गये। अबतक मुगलवाहिनी आ चुकी थी और बाजीका सैन्य स्तब्ध घाटीमें चुपचाप प्रतीक्षा कर रहा था। नियतिके विरुद्ध लड़नेवाले मराठोंके पास न समय था न हथियार। मुसलमान वाहिनी थकी-मांदी थी फिर भी इक्के-दुक्के सैनिकोंकी दीवारको तोड़नेके लिये आगे बढ़ी। एक साथ बंदूकें दगने लगीं। एक-एक कदम करके शत्रु निकट आते गये। समुद्रकी तरंगोंकी भांति वे ऊपर उठे, रुके और उन्हींकी तरह थककर पीछे जा गिरे। गर्दके बादलके पीछे उस भयंकर घाटीकी चोटीपर घायल और मृत शरीरोंके ढेर लगने लगे। शत्रुने मराठा अवरोधकी परवाह नहीं की। उत्तरसे तरंगपर तरंग आती गयी। राजपूत, मुगल, पठान एक काला जबरदस्त हुजूम बनाकर चिल्लाते, आग उगलते आ धमके। गोलियां पहाड़ीपर बरसने लगीं, पर बाजीकी दृढ़ मूक सेना पेड़ों और पहाड़ियोंमें छिपी खड़ी रही। धीरे-धीरे आततायियोंका सारा जोश पेड़ों-पत्थरोंसे टकरा-टकराकर ठंडा पड़ गया। संकरी घाटीतक आकर वे असमंजसमें पड़ गये। अचानक बंदूकें गरज उठीं, गोलियां उड़ने लगीं। इस हमलेसे बहुतसे पीछे हटे और कई क्रोधमें भरकर आगे बढ़ गये। इस तरह पीछे हटने और आगे बढ़नेवालोंके बीच दुविधामें पड़े हुए सेनानियोंको गोलियोंने चुन-चुनकर गिराना शुरू किया। पेड़ोंपर,

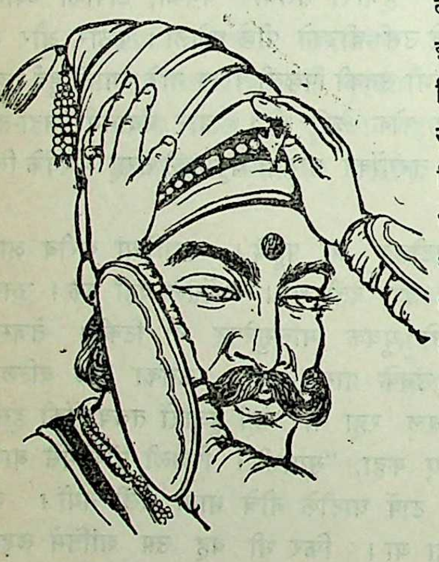

पहाड़ियोंपर मृत शरीर गिरते गये। पहला हमला बेकार गया। सेनाके बचे हुए नेता परामर्श करके फिर आगे बढ़े। इस बार प्यादे दृढ़ और मजबूत कदम बढ़ाते आये, उनके पीछे भरपूर, कदावर पठानोंकी पंक्ति, उनके नीचे मजबूत राजपूत सेना और उनके बाद आगरेके विख्यात घुड़सवार आये। अब बाजी बोले, "यही पहला हमला है। अभीतक तो मौतकी बौछार ही आयी थी। शिवाजीकी चुनी हुई भवानीकी तलवारो! आकाशमें देवता तुम्हारा स्वागत करनेके लिये खड़े हैं। हम मरेंगे तो जरूर पर देवताओंका आशीर्वाद लेकर, ताकि हमारा देश स्वतंत्र रह सके।" उनके बोलते-बोलते मुगल सेना घाटीमें आ पहुंची और सावधानीसे आगे बढ़ने लगी। लेकिन उस सावधानीसे कुछ लाभ न हुआ। जो जहां बढ़ा वहीं ढेर हो गया। फिर भी सेना आगे बढ़ती गयी। बड़े-बड़े वीर मरकर या घायल होकर गिरते गये। बहादुरोंकी जानपर खेलकर सेना आगे बढ़ती गयी। धीरे-धीरे मृत शरीरोंने ही घाटीको अपनाया और जीवित लोग लड़ते और टूटते गये। अब मौतके साथी राजपूतोंने शाही कदम बढ़ाते हुए बड़े दुःसाहससे काम किया। राजस्थानी सपूतोंने आग उगलती भूमिपर पांव रखा। मर्त्य शरीरमें अमर वीरता भरकर वे तलवार हाथमें लिये ललकारते हुए आगे बढ़ने लगे। उन्होंने न तो गोलियोंकी परवाह की, न उनका जवाब देनेकी सोची, बस गोलियोंकी वर्षामें भी आगे बढ़ते गये और निचली चट्टानको हथिया लिया। वे आगरेकी प्रचंड आंधीकी तरह आये। उनपर आगके परदेमेंसे गोलियां बरसने लगीं। एक जबर्दस्त धक्का खाकर बहुतसे लोग गिर पड़े। और गिरते-गिरते चढ़नेवालोंको भी ले गिरे। आगे बढ़ना असंभव था और पीछे हटनेमें बदनामी थी और मौत तो दोनों ओर जीभ लपलपा रही थी। एक क्षणके लिये राजपूत ठिठक गये। असमंजसमें पड़े लोगोंमें हठात् राठोरोंके सरदार तलवार उठाये आगे आये। गोलियां कुछ न कर सकीं। उनकी हिम्मतने कवचका काम दिया। मरतोंको पीछे फेंकती हुई, घायलोंको धकेलती हुई सारी सेना आगे बढ़ी। बाजी अपने पचास तलवारियोंके साथ आगे निकल आये। उनपर तीन हमले हुए और उन्होंने तीनों बार शत्रुको पीछे ठेल दिया। अब राठोर सरदारने सीधे बाजीपर हमला किया, सारी सेना उसके पीछे आती गयी। चारों ओरसे मराठा हथियार बज उठे। एक हमला नाकाम रहा, इतनेमें पीछेसे दूसरी लहर आ गयी। लड़ाई चलती रही। दोनों सेनाएं नजदीक आती गयीं। तलवारें तलवारोंसे टकरातीं और आसपास चिनगारियां नाच उठतीं। नारोंसे घाटी गूंज उठी। बन्दूकका धुंआ अंधेरा करता जा रहा था। राजपूत और मराठा कराहोंसे घाटी भर गयी। इस जीवन और मौतके युद्धको देखती हुई आगरेकी वाहिनी चुपचाप अंतकी प्रतीक्षामें खड़ी रही। युद्ध चलता गया। बाजीने राठोर सरदारकी ओर बढ़ना शुरू किया। जैसे बढ़ती हुई नावके सामने लहरें फट जाती हैं वैसे ही बाजीके सामनेसे लोग हट गये। उनकी तलवार चमकी और असावधान राजपूतके सिरको धड़से अलग कर दिया। भव्य चिनार वृक्षकी भांति वह मराठा जमीनको जकड़ता हुआ गिर पड़ा। आश्चर्यचकित आगरावाहिनीने देखा, निश्चित विजय पराजयमें बदली जा रही है। अब पठान सेना आगे बढ़ी। सरदार चिल्लाये, "पहाड़ी चूहोंको खतम कर दो। थककर चूर मराठा सेना खड़ी-खड़ी भी लड़खड़ा रही है। चारों ओरसे घेर लो। फिर रायगढ़ जाकर शिवाजीको समझ लेंगे।" इस बीच मराठे भी चुप न थे। टेकड़ियों और पेड़ोंमें छिपकर वे एक-एक पगके लिये एड़ी-चोटीका जोर लगाये उत्तरकी दीवारके पीछे जा छिपे। भागी आती पठान सेनापर मौन बोल उठा। मौत दायें बायें कोलाहल मचा उठी। तूफानमें गिरते पेड़ोंकी तरह लंबे-लंबे पठान धराशायी होते गये। भयग्रस्त सेना तितर-बितर होने लगी। कोई चिल्लाया, 'आगे बढ़ो', कोई बोला, "पीछे हटो", इस भागदौड़में हमला छितरा गया। गोलियोंने भागनेवालोंका पीछा किया और आगे बढ़नेवालोंका स्वागत! इस भयंकर कांडको देखकर सरदार सोचमें पड़ गये कि घाटीको छोड़ चलें या उसकी पूरी कीमत चुकायें।

विचलित सेनानायक प्रभुके पास आया, "प्रभु, गोलियां खतम हो चलीं, बारूद कबकी चुक गयी।" प्रभुने मुड़कर अपने गिरे हुए साथियोंको देखा। मराठे पहाड़ीके पीछे थे इसलिये जनहानि कम ही

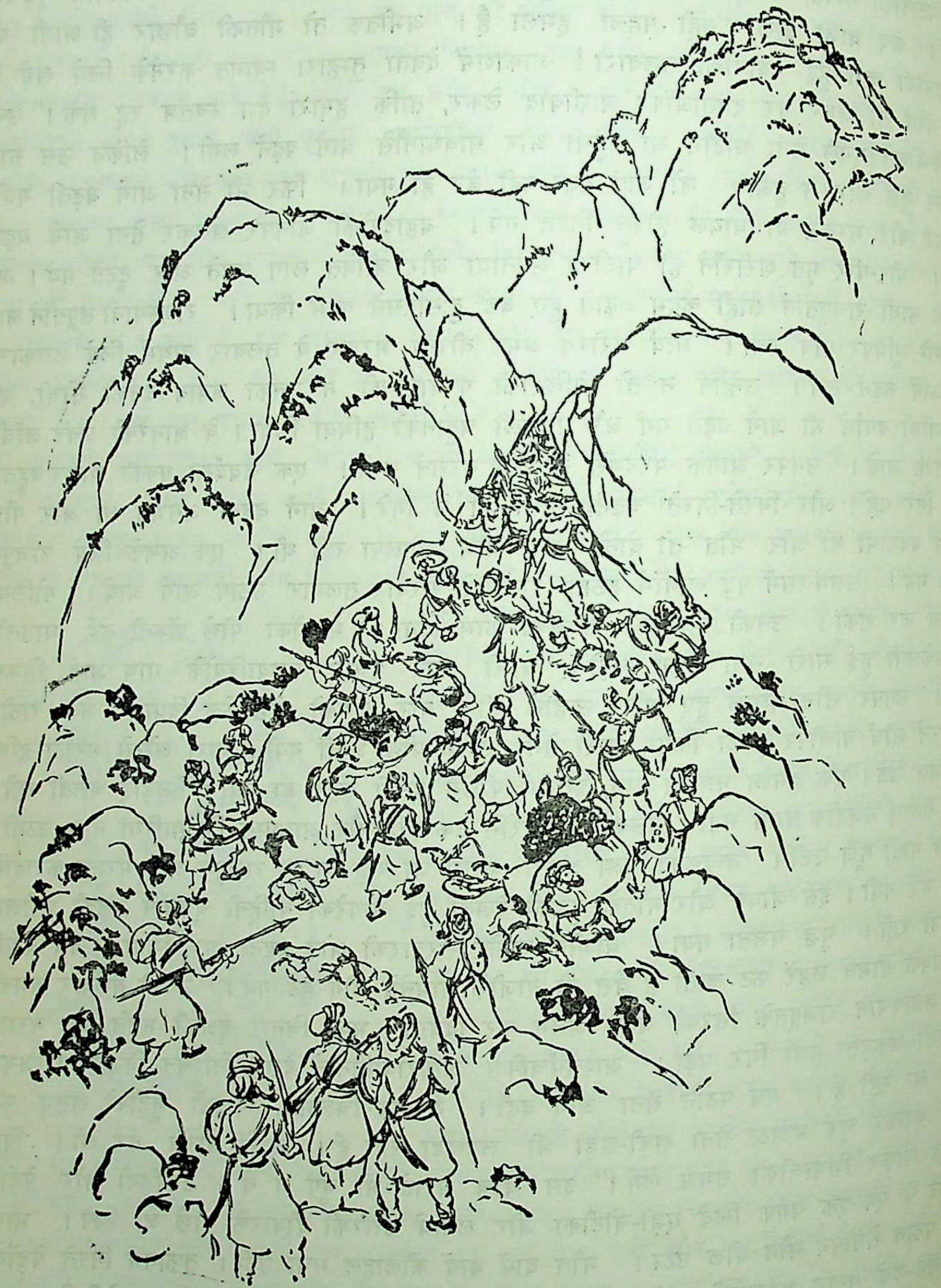

हुई थी जब कि शत्रुके सैकड़ों शव घाटीमें बिछ गये थे। डूबते सूरजकी आगको देखते हुए प्रभु चिल्लाये, "भाइयो! अपनी आत्माको फौलाद बना लो। जबतक शिवाजी विजयको लिये वापिस न आयें हमें भवानीकी सहायतासे पराजयको दूर रखना है।" सब निस्तब्ध खड़े रहे, सारा वातावरण

गंभीर मौनसे भर गया। चारों ओर पहाड़ियां थीं। जमीन मुर्दोंसे भरी हुई थी। आकाशमें पक्षी मंडरा रहे थे। हवा हौले-हौले बह रही थी। कभी एकाध सिसकी सुनायी देती थी। बाजीके सैनिक उनकी ओर ताक रहे थे और बाजी डूबते सूरजका ध्यान कर रहे थे। उधर सूरजने क्षितिज-को छुआ और इधर हलचल मच गयी। सबने सावधान होकर, तलवारें कसकर पकड़ लीं। इस बार न राजपूत आये, न पठान। कलाबत्तूनकी वरदीसे लैस आगरेकी प्रख्यात सेना आगे बढ़ी। उसे विश्वास था कि बढ़ते ही अंधाधुंध गोलिया बरसेंगी पर यह क्या? चारों ओर निस्तब्धता थी। मराठों की नयी चालके भयसे वे ठिठक गये। फिर वातावरणके मौनको सुनकर वे उत्साहित हो उठे और नारोंका जाल फैलाते हुए आगे बढ़ने लगे, मैदान पार किया और आश्चर्यचकित, वे इधर-उधर ताकते हुए पहाड़ीपर चढ़ने लगे। छोटी-छोटी झाड़ियोंके सहारे वे ऊपर उठने लगे। अदृश्य तलवारोंने चुपके-चुपके उनकी उंगलियां तराश लीं और उनके सीनोंको ढूंढ़ लिया। सेना बिना रुके आगे बढ़ती गयी। और आखिर चोटीपर जा पहुंची। भीषण परंतु नीरव मारकाट चलती रही और भव्य शरीरोंका किला बनता गया। आगरेके असंख्य शाही सैनिकोंके सामने कुछ मराठा सैनिक युद्ध-कौशल और आत्मशक्तिके सहारे लड़ते रहे। शत्रुसेनाको दिनमें ही तारे दीखने लगे। हठात् प्रभु-के शरीरमें देवीने प्रवेश किया और क्षुधार्त वनराजकी हुंकार करके वे आगे लपके। देखते-देखते उन-का शरीर बढ़ने लगा और भीषण वेगसे शत्रुदलपर टूट पड़ा। बादलोंमें खेलती बिजलीकी नाईं उनकी तलवार कौंध जाती थी और सामने डटे शरीरोंसे सिरोंको अलग करती जाती थी। उनके दाएं बाएं मराठा सैनिक वार झेलते और सिरोंकी फसल काटते बढ़ते जाते थे। अचानक उफनती नदीकी तरह हमलावरोंका उफान भी उतर गया और आगरेकी सेना जहां थी वहीं पहुंच गयी। शोणित-से लाल धरती सोने, शव, जवाहर और चमचमाते रेशमी कपड़ोंसे ढके शवोंसे पट गयी। पर आगरा इतनी आसानीसे हार माननेवाला न था। उसने फिर हमला किया। प्रभुकी आत्मामें भीषण आक्रोश जाग उठा। उन्होंने इनका अंत करनेकी ठान ली। इस समय भी एक शांत नीरवता छायी हुई थी। दिव्य आवेश उनके हृदयमें व्याप्त हो गया। उनके शरीरसे अलग होकर एक महान् तेजस्वी रूप सामने खड़ा दिखायी दिया। लहराते बालोंसे आकाशको आच्छादित करती हुई, अपराजय हाथोंमें तलवार, फूल लिये, अभय दान देती हुई और रक्तरंजित सिर लिये खड़ी थी लोहितवसना भवानी। यही भवानी चिरकालसे भारतकी रक्षा करती आयी है। देवी अदृश्य हो गयीं। ढलते सूर्यकी रोशनी चारों ओर फैली थी। उसी समय एक बरछा बाजीके कंधेमें धंसता जा रहा था। थोड़ेसे मराठे एक संगीन दुर्गम चक्र बनाकर बाजीके इर्द-गिर्द हो गये। आह भरकर बाजीने कहा, "मोरो देशपांडे! उस ओर जा-कर देखो, पश्चिमसे कोई आ रहा है? रायगढ़की भेरी सुनायी देती है क्या? मेरा समय आ पहुंचा। चलनेसे पहले यह जान लूं कि मेरा काम पूरा हो गया।" भवानीका जयनाद करके वह फिर शत्रुसे जूझ पड़े। उनके दायें बायें मराठे और मुगल गिरते गये, उनका शरीर खूनसे लथपथ हो गया फिर भी वह लड़ते चले ही जा रहे थे। अचानक उनके सामने आंखोंमें मौतकी छाया लिये हुए, फिर भी उल्लसित मोरोपन्त देशपांडेका घावोंसे भरा हुआ शरीर आकर खड़ा हो गया। अपनी आवाज चारों ओरके शोरसे भी ऊंची करके वह चिल्लाया, "बाजी!

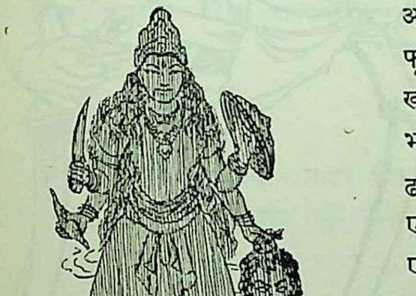

मैंने रायगढ़के भाले देखे हैं, मुझे उनकी भरी सुनायी दी है", यह कहता हुआ वीर वहीं मुगल शरीरोंपर ढेर हो गया। अपलक रुद्र दृष्टिसे आग बरसाते हुए चारों ओर देखकर बाजीने अपने रक्तसने हाथसे आंखोंका खून पोंछा। पचासमेंसे सिर्फ पंद्रह सैनिक बचे थे। चारों ओर आशापाशसे बंधी मुगल सेना खड़ी थी। नरशार्दूलने फिरसे धावा बोला, बचे-खुचे साथियोंने सहारा दिया और मुगल सेनाको रास्ता देना पड़ा। किंतु ऊपर पहुंचते-पहुंचते आठ ही बच रहे और उनमें भी कोई ऐसा न था जो लहू-लुहान न हो।

साहसी सैनिक मृत्युका वरण करनेके लिये चट्टानकी चोटीपर इकट्ठे हुए। इस ऊंचाईसे बाजीने

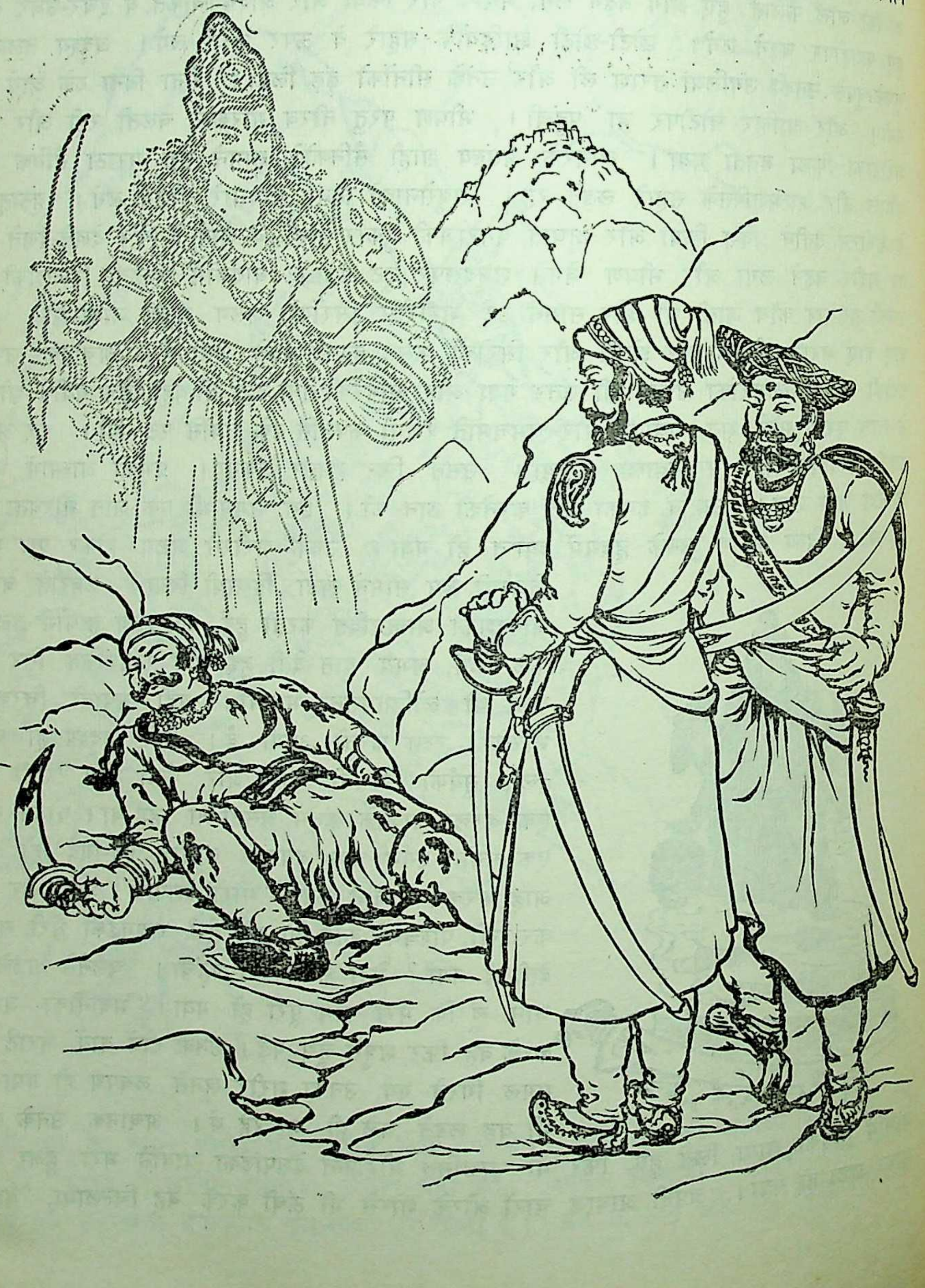

पीछेकी पहाड़ीके कगारपर घुड़सवारोंकी पंक्तिको चढ़ते हुए देखा। सरपट दौड़ते हुए घुड़सवारोंके सरदारके सिरका ताज अस्त होते सूर्यकी रोशनीमें चमक उठा। बाजीने मैदानपर सरसरी निगाह डाली और दूर, बहुत दूर उसे एक किला दिखायी दिया, वही था रायगढ़। युद्ध चलता रहा। एक-एक करके बाजीके साथी गिरते गये। अंतमें तीन बच रहे। हठात् बाजी अचल हो गये, और धीरे-धीरे उनका शरीर जमीनपर लुढ़क गया। आंखोंकी आग बुझ गयी, हाथ संज्ञाहीन पड़ गया। अपराजित घाटीपर बाजीका शरीर अचेतन पड़ा रहा।

बाजी प्रभुके गिरते-गिरते घाटी घोड़ोंकी टापसे गूंज उठी और उसके छोटेसे मुखसे गोलियां फिर-से बरसने लगीं। विजयोल्लाससे दक्षिणकी भेरी मत्त हो उठी। भग्नांश आगरेकी सेना पीछे हटी। दृढ़निश्चयी मराठे उनके पीछे दौड़े। सूर्यजी स्वामी रामदासके भजनकी कड़ी गाते-गाते उल्लसित हो शत्रुको काट रहे थे। और शिवाजी ..... वे बाजीप्रभुके निर्जीव शरीरके पास सन्नसे खड़े थे, पास ही तानाजी मालसूरे थे। तानाजी धीरेसे बोले, "हे वीर, सुयशी ! तू तैंतीस[1] द्वारोंसे स्वर्गमें प्रवेश कर रहा है। मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो। मैं भी स्वामीके लिये यश लूटता चलूं।"

शिवाजीने मृत शरीरके ऊपर एक धुंधली, विराट् छाया देखी। उसके एक हाथमें तलवार थी, दूसरे हाथसे उसने बाजीके रक्तरंजित सिरका रत्नखचित मुकुट उठाया और धीरेसे महाराजके सिर-पर रख दिया। वीरोचित बलिदानसे रंजित छाया जब चली तो शिवाजीने देखा उसके घुंघराले बालोंपर एक स्वर्णमुकुट शोभा दे रहा था।

—अनुबेन पुराणी

* * *

लोग कहते हैं कि हमारे अंदर एकता नहीं है। एकता कैसे लायी जाय ? किन्हीं नकली उपायोंसे नहीं, मांकी पुकारसे और उसके बालकोंकी आवाजसे ही एकता आ सकती है।

*

बिना एकताके स्वराज्य असंभव है। लेकिन हमें जिस एकताकी जरूरत है वह राय, वाणी या बुद्धि और विश्वासोंकी एकता नहीं है। एकता हृदयकी होती है और वह प्रेमसे आती है।

*

भारत अन्य देशोंकी तरह केवल अपने लिये नहीं उठ रहा, वह मजबूत बनकर कमजोरोंको कुचलनेके लिये नहीं उठ रहा। वह उठ रहा है सारे संसारमें वह ज्योति फैलानेके लिये जो उसके सुपुर्द की गयी है। भारत अपने लिये नहीं, मानवताके लिये जिया है और अब उसे अपने लिये नहीं, मानवताके लिये ही महान् बनना है।

—श्रीअरविंद

---

[1] बाजीप्रभूके शरीरपर तैंतीस घाव लगे थे। यहां उसी ओर संकेत है।

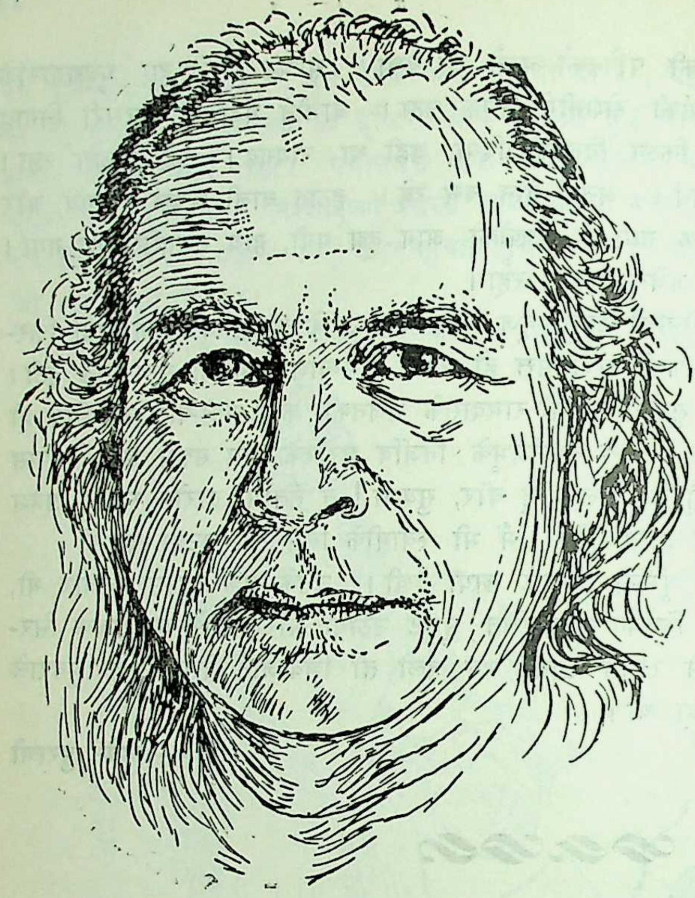

श्री पुराणीजी

"क्षमा कीजिये डाक्टर, आपकी बात मान लूं तो मुझे सब काम-काज छोड़कर सारे समय बड़े ही जतनसे इस शवको ढोना पड़ेगा। मैं पुनर्जन्म माननेवाला हूं, मेरे लिये इसी शरीरके साथ जीवनकी इतिश्री नहीं हो जाती। लाखों जन्म देखे हैं और लाखों देखने वाकी हैं। जबतक शरीर काम देता है तवतक ठीक है, काम न दे सके तो उसे घसीटते रहनेमें क्या मजा है?"

लगभग सत्तर वर्षके पुराणीजी इंग्लैंड, जर्मनी, अमरीका, जापान, फ्रांस वगैराका चक्कर लगाकर लौटे ही थे कि उन्हें हृदयका दौरा हो गया। इससे पहले रक्ततंच (थ्राम्बोसिस) दो बार 'मैं भी आऊं' पूछ चुका था पर पुराणीजीने उसे अंदर घुसनेकी इजाजत न दी। अब उन्हें जरा सुस्ताते देख उसने जोरसे पंजा मारा और पहलवानको गिरा लिया। शरीर पछाड़ खा गया। देखनेवालोंने सोचा अब किस्सा खतम। लेकिन जिसने जीवनभर कभी हार न मानी हो भला वह यमके प्रहारके आगे कैसे झुक जाता? देखनेवालोंने देखा कि पुराणीजी इस घातक चोटको भी सह गये। स्थिति गंभीर थी। भारतके सबसे बड़े हृद्रोग विशेषज्ञको दिखाया गया। उन्होंने कहा, यह अपने-आपमें आश्चर्यकी बात है कि यह रोगी इस अवस्थामें भी जिंदा है। इसके उठने-बैठनेपर, हिलने-डुलनेपर नियंत्रण होना चाहिये। काम करनेका तो ख्याल ही मनसे निकाल देना चाहिये तब शायद कुछ दिनका आयुष्य और मिल जाय। भारतीय संस्कृतिमें पगे हुए पुराणीजीने जो उत्तर दिया वह हम पहले ही देख आये हैं। इसका परिणाम क्या हुआ? जो डाक्टर कुछ न करनेके लिये कह रहे थे वही अपने संगी-साथियोंको बुला लाये और उन्होंने आत्माकी अनश्वरताके बारेमें बहुतसी बातें सुनीं। जब आदमी भला-चंगा हो तब 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' कहना बहुत सरल है पर जब जीवन और मृत्युके बीच केवल एक सांसका पर्दा हो तब उस डाक्टरके सामने जिसे लोग जीवनदाता मानते हैं, ऐसी बातें कह सकना किसी विरले ही का काम है।

लेकिन यह कोई आकस्मिक घटना न थी। पुराणीजीके पूर्वजोंमें मेवाड़का रक्त बहता था। ऋषि दयानंदने उनके घरको अतिथि बनकर पवित्र किया था। इनके पिता अपने नियमित जीवन और कर्तव्यपरायणताके लिये प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि वह अपने विद्यालयमें पढ़ानेके लिये आये, लड़कोंसे कहा 'पुस्तकें खोलो' और वहीं समाप्त हो गये।

पुराणीजीको छोटी आयुमें ही श्रीअरविंदके दर्शन हुए और मानों उसी समय उनके भावी जीवन-

का कार्यक्रम अजाने ही निश्चित हो गया। देश परतंत्र था। गुलामीकी जंजीरें उसे जकड़े हुए थीं। श्रीअरविंद इसके विरुद्ध जूझ रहे थे। नवयुवक पुराणी मानों मंत्रमुग्धसे हो गये और उन्होंने धन-दौलतको ही सब कुछ माननेवाले गुजरातकी भावी संततिको जगानेका बीड़ा उठाया। कुश्ती, लाठी, गतका, मलखम्ब आदि नाना प्रकारकी कसरतोंका प्रचार शुरू हुआ, बीस-बीस, पचीस-पचीस मील दौड़नेके, पहाड़ोंपर और जंगलोंमें बाकायदा युद्धकला शिक्षणके कार्यक्रम शुरू हो गये। उन दिनों भले घरोंके लड़के इस प्रकारकी चीजोंमें भाग न ले सकते थे। व्यायाम करना या कुश्ती आदिमें भाग लेना तो हुड़दंगोंका काम था। ऐसे समयमें पुराणीजीके चुम्बकीय व्यक्तित्वने बारह चौदह वर्षके लड़कोंको अपनी ओर खींचना शुरू किया। अच्छे भले घरोंके लड़के मां-बापका विरोध सहकर, कई तो मारपीट सहते हुए, लंगोट बांधकर पुराणीजीकी व्यायामशालाओंमें आने लगे। कसरत और खेल-कूदके साथ उन्हें भारतीयताकी शिक्षा मिलती थी, खेल ही खेलमें उन्हें बताया जाता था कि जीवनमें कुछ और भी है जिसे प्राप्त किये बिना मनुष्य दो पांवपर चलनेवाला जानवर रह जाता है।

धीरे-धीरे जादूका असर बढ़ता गया, विरोधी भी पुराणीके प्रशंसक बनते गये। सारे गुजरातमें 'वड़ील बन्धु' पुराणीका असर फैल गया। नगर-नगरमें, गांव-गांवमें व्यायामशालाएं खुलने लगीं, सच्चरित्र युवकोंकी टोलियां देशके लिये कुछ करनेके अरमान लिये हुए सुख-सुविधाओंको छोड़कर तपस्याका जीवन बिताने लगीं। खाना मिल गया तो खा लिया न मिला तो सूखे चने चबा लिये और कभी वह भी मुयस्सर न हुए तो हरिनाम लेकर पानी पी लिया। व्यायामके साथ-ही-साथ कला, संस्कृति, धर्म आदिका अध्ययन भी चलता जाता था।

भारतको स्वाधीन करानेके लिये क्रांतिकारी कार्यक्रम तो बना लिया, उसके लिये पूरी तैयारी भी कर ली पर अनगिनत युवकोंकी जानोंकी बाजी लगा देना आसान काम न था। अपनी जिम्मेदारीपर पुराणीजी इतना बड़ा काम हाथमें न लेना चाहते थे, उन्हें अपने गुरुके सान्निध्यमें आकर पथप्रदर्शन पानेकी जरूरत मालूम हुई। उन दिनों पांडिचेरी जाना बहुत ही कठिन काम था। अंग्रेज सरकारको विश्वास था कि वहां बैठकर श्रीअरविंद गुप्त रूपसे बम बना रहे हैं और अंग्रेजी राज्यका तख्ता उलटनेकी तैयारी कर रहे हैं। पांडिचेरी आनेवालेके साथ गुप्तचर छायाकी तरह लग जाते थे। लेकिन जब उखलीमें सिर दिया तो मूसलोंका क्या डर? वह पहली बार १९१८ में पांडिचेरी आये। श्रीअरविंदसे इन्होंने अपने क्रांतिकारी कार्यके लिये आशीर्वाद मांगा। श्रीअरविंदने कहा, “नहीं, भारतकी स्वाधीनताके लिये इसकी जरूरत न होगी।” पुराणीजीके आग्रह करनेपर गुरुने कहा, “मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि भारत स्वतंत्र होगा और अवश्य होगा और उसके लिये क्रांतिकी जरूरत न होगी। ऊपरसे हुकुम हो चुका है भारतका स्वतंत्र होना उतना ही निश्चित है जितना सूर्यका उगना। उसके लिये उसे यथोचित नेता भी मिल जायेंगे। इसलिये जो आध्यात्मिक जीवनकी पुकार सुन रहे हैं उन्हें आंतरिक कामपर ही अधिक जोर देना चाहिये।” हृदयके कपाट खुल गये। संशय, शंका, चिंता आदिको धो डाला गया और लगभग ढाई वर्षके बाद पुराणीजी निश्चिंत होकर सो सके। यहांसे वापिस जाकर उन्होंने सशस्त्र क्रांतिका विचार छोड़ दिया और शरीर-गठन, चरित्र-निर्माण आदिके रचनात्मक काममें पूरी तरहसे लग गये। यहां यह ख्याल रहे कि श्रीअरविंदके प्रभावमें आकर पुराणीजी शुरूसे हर काम भगवान्का काम मानकर, भगवान्के लिये ही करते थे।

दो वर्ष बाद १९२० में पुराणीजी फिर पांडिचेरी आये। इस बार उन्हींके शब्दोंमें “इन दो वर्षोंमें श्रीअरविंदके शरीरकी कांतिमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था। पहले सामान्य बंगालियोंकी तरह उनका श्यामवर्ण था, चेहरेपर और आंखोंमें एक अलौकिक प्रभा थी। इस बार सीढ़ी चढ़ते ही मैंने सेबके जैसे लालिमा लिये हुए गाल और तेजस्वी स्निग्ध गौर वर्ण देखा। श्रीअरविंदके

शरीरमें यह परिवर्तन देखकर मेरे मुंहसे निकल पड़ा "आपको क्या हो गया है?" बादमें मालूम हुआ कि यह परिवर्तन साधनाके परिणामस्वरूप हुआ था।"

इसके बाद १९२३ में पुराणीजी स्थिर रूपसे श्रीअरविंदके साथ ही रह गये। यहां रहते हुए भी गुजरातकी व्यायाम-संस्थाओंके साथ उनका संबंध बना रहा। उनके मार्गदर्शनके लिये लिखे गये पत्रोंकी कई किताबें छप चुकी हैं। आश्रममें रहते हुए उन्होंने श्रीअरविंदकी बहुतसी पुस्तकोंका गुजरातीमें अनुवाद किया और बहुतसे स्वतंत्र लेख लिखे जिनके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वैदिक साहित्यका उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था और श्रीअरविंदके वेदभाष्यकी दृष्टिसे वैदिक शब्दोंका एक कोश भी तैयार किया था। श्रीअरविंदके महाकाव्य सावित्रीपर एक ग्रंथ अंग्रेजीमें लिखा और इसी प्रकार अन्य अनेकानेक पुस्तकें रचीं। उनके बहुतसे लेखोंके अनुवाद हिंदीमें भी छप चुके हैं। हिंदीमें तुलसी और कबीरका उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था और अपने परम मित्र सुमित्रानंदन पंतके काव्यसे भी अच्छा परिचय रखते थे।

इतना सब करते हुए भी पुराणीजीको देखकर कभी यह न लगता था कि उन्हें अवकाश नहीं मिलता। अपनी समस्या लेकर हर व्यक्ति उनसे मिल सकता या पत्रव्यवहार कर सकता था, फिर चाहे वह पारिवारिक कलहसे लेकर संस्थाओंके संगठनसंबंधी, साहित्यविषयक या किरायेपर मकान लेनेकी समस्या क्यों न हो, हर एकका समाधान करनेके लिये उनके पास यथेष्ट समय होता था। 'समय नहीं है' कहकर उन्होंने शायद ही कभी किसीको लौटाया हो। उनके व्यक्तित्वमें एक आग थी जो हमेशा धधकती रहती थी और संपर्कमें आनेवालेपर अपना प्रभाव डाले बिना न रहती थी। उन्हें देखनेसे ही शरीरमें स्फूर्ति आती थी और उत्साह बढ़ता था। इतने काम-काजमें लगे हुए पुराणीजी आश्रममें आनेवाले नये लोगोंको जो पत्र लिखा करते थे वे सचमुच देखने लायक होते थे। उन पत्रोंमें वह पूरी जानकारी होती थी जिसकी किसी नये आदमीको जरूरत हो सकती है। उनमें यहांतक सूचना होती थी कि यहां मच्छर बहुत हैं, अपने साथ मच्छरदानी लेते आना, यहां सर्दी ज्यादा नहीं होती गरम कपड़ोंकी जरूरत नहीं है, यहां स्टेशनपर कुलीको इतने पैसे देने होते हैं और रिक्शाका किराया इतना होगा। नया आदमी उन दिनोंके पांडिचेरीके वातावरणमें खो सा जाता था। अजानी भाषा, पुलिसकी दृष्टि, घरोंकी समस्या आदिसे घबराहट होती थी। ऐसे समय पुराणीजी ही नये लोगोंके — चाहे वे राजा हों या रंक — सबसे अच्छे मित्र होते थे। एक इसी प्रकारके गुमनाम विद्यार्थीको लिखे हुए पुराणीजी के एक पत्रको देखकर गांधीजी के दो महारथी — श्री मशरूवाला और श्री धोत्रे — बोल उठे थे कि पुराणीके जैसे कामकाजी आदमीके पत्रमें इतनी छोटी-छोटी बातें भी नहीं छूट पातीं, यह सचमुच आध्यात्मिकताका ही प्रभाव है।

१९४७ में श्रीअरविंदके जन्मदिनपर भारत स्वाधीन हुआ। गुजरातसे बुलावा आया। लोगोंका आग्रह था कि पुराणीजी आकर अपने गुरुकी प्रसादी हमें भी दें। श्रीअरविंदका आशीर्वाद लेकर उन्होंने वहांकी यात्रा की, उसके बाद कई अन्य प्रदेशों और देशोंमें भी जाना पड़ा। वे जैसे-जैसे भ्रमण करते गये वैसे-वैसे उनके लिये मांग बढ़ती गयी। लोग उनके संपर्कमें आने और उनसे माताजी तथा श्रीअरविंदका सन्देशा सुननेके लिये आतुर होने लगे, उन्होंने श्रीअरविंदका एक जीवन-चरित्र लिखा और "श्रीअरविंदके साथ वार्त्तालाप" के कई भाग तैयार किये। जापान, यूरोप और अमरीकामें विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, गिरजाघरों और अन्य सभा-सोसाइटियोंमें न जाने कितने लोगोंको उन्होंने श्रीअरविंदका संदेशा सुनाया। उनके प्रभावका कुछ अन्दाजा उन पत्रोंसे लग सकता है जो अभीतक आते जा रहे हैं।

विदेश यात्रामें अत्यधिक कार्यभार और अनियमित जीवनके कारण उनका शरीर कुछ थक-सा गया था, उसी समय हृद्रोगने आकर उन्हें बहुत दुर्बल कर दिया और कुछ कालके लिये खाटकी

शरण लेनी पड़ी। उसके बाद शारीरिक श्रम तो बंद कर देना पड़ा परंतु लिखने-पढ़नेका काम वेगसे चलता रहा। दस दिसंबर १९६५ की शामको पुराणीजी भले-चंगे थे, कुछ लोगोंको ११ को सवेरे मिलनेके लिये समय भी दिया था। रातको फिरसे हृदयका दौरा हुआ, सवेरे साढ़े पांचके आसपास चारों ओर नजर घुमायी मानों वहां आये हुए लोगोंसे विदा ले रहे हों और अपनी आंखें हमेशाके लिये मूंद लीं। कमरेमें शांतिका राज्य था, कहीं एक हिचकीतक न सुनायी दी। श्रीअरविंद-के संदेशवाहकके यहां शोक कैसे आ सकता था। लोगोंने देखा पुराणीजी मरे नहीं, उनके पंच तत्त्व अपने-अपने मूलमें जा मिले हैं।

—रवींद्र

रामचन्द्र वर्मा

श्रीरामचन्द्र वर्मा हिन्दीके जाने-माने महारथियोंमेंसे हैं। आपका जन्म काशीमें ८ जनवरी १८९० को हुआ था। १९०५ में ही इन्होंने 'भारत जीवन' में लेख लिखना शुरू कर दिया था और दो वर्ष बाद नागपुरसे निकलनेवाले 'हिन्दी केसरी' के संपादक हो गये। बीस वर्षकी अल्पायुमें ही श्यामसुन्दरदास और रामचन्द्र शुक्ल जैसे हिन्दीके दिग्गजोंके साथ हिन्दी शब्दसागरके संपादन-विभागमें काम मिल गया। यहांसे उनके जीवनको एक नया मोड़ मिल गया और आज भी वे कोशकार्यमें ही लगे हुए हैं। वर्माजीके लिये शब्द जीते-जागते व्यक्ति हैं, ये उनके कानमें अपना रहस्य बता जाते हैं।

कोशकारका काम ऊपरसे देखनेमें बड़ा नीरस लगता है। उसमें एक अच्छे कवि या कहानी-लेखकके जीवनकी तड़क-भड़क नहीं आ पाती और सामान्य जनता भी उसके परिश्रमका मूल्य नहीं आंक सकती। सच्चा कोशकार एक प्रकारसे साधक होता है जो शब्द ब्रह्मकी साधनामें लगा रहता है। वर्माजीने कई पुस्तकोंके अनुवाद भी किये हैं। रूपक रत्नावली आदिको हिन्दी चोला भी दिया है पर हिन्दीका इतिहास-लेखक उन्हें मुख्य रूपसे कोशकारके रूपमें ही याद रखेगा। हिन्दीमें साहित्य बढ़ता जा रहा है, उसका प्रचार और प्रसार खूब हो रहा है परंतु भाषाको बनानेवाले शब्दोंकी ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये उतना नहीं दिया गया है। शब्द बनते हैं एक खास अर्थ देनेके लिये परंतु समयके साथ-साथ उनके अर्थ और रूप भी बदलते रहते हैं। बहुतसे शब्द ऐसे हैं जिनका उपयोग तुलसीदासजीने जिन अर्थोंमें किया है आज उन अर्थोंमें उनका प्रयोग नहीं हो सकता। कुछ सुपरिचित शब्द नये अर्थ ले लेते हैं जैसे आकाशवाणी और हरिजन। आज भाषाका साधारण-सा ज्ञान रखनेवाला इन शब्दोंके वास्तविक अर्थकी ओर ध्यान ही नहीं देता।

आप हिन्दीके अच्छे-अच्छे जानकारोंसे अभी, तो, सही, पर, कि, आदि छोटे-छोटे शब्दोंके अर्थ पूछ देखिये। ये शब्द इतने छोटे और इतने अधिक प्रचलित हैं कि उनके अर्थके बारेमें किसीको ख्याल भी नहीं आता। इनका ठीक उपयोग हो तो भाषा सुन्दर बन जाती है और गलत उपयोग हो तो भाषा उपहासास्पद हो जाती है। हिन्दीभाषी लोग इन शब्दोंका उपयोग तो ठीक कर लेते हैं पर उनका भाव भलीभांति स्पष्ट नहीं कर पाते। आइये, कुछ उदाहरण देखें। साधारणसे शब्द 'अभी'को लीजिये। साधारण हिन्दी कोश उसका अर्थ बताते हैं इसी क्षण परंतु रामचन्द्र वर्माने अपने

मानक कोशमें इसपर १८ पंक्तियां लगा दी हैं। उनके अनुसार 'अभी'का पहला अर्थ है इसी समय, तुरंत, जैसे अभी चले जाओ। दूसरा अर्थ है इस समय जैसे अभी धैर्यसे काम लो; तीसरा अर्थ है इन दिनों जैसे अभी-अभी गरमीके दिन हैं; चौथा अर्थ है किसी बीते हुए समयमें या उसके किसी उद्दिष्ट अथवा कथित अंशमें जैसे अभी वह सोकर ही उठा था। पांचवां भाव होता है बीते हुए कालमान या समयके संबंधमें अल्पता सूचित करते हुए जैसे अभी वह चार ही वर्षका था कि उसके पिताका देहांत हो गया। छठा प्रयोग होता है प्रस्तुत समयसे आरंभ करते हुए जैसे अभी दो महीने और लगेंगे, अभी आधे घंटेकी देर है और सातवां प्रयोग है किसी भावी घटना या बातके संबंधमें जोर देनेके लिये जैसे अभी परसों वे फिर आनेको हैं, ग्रहण अभी माघमें लगेगा। इस प्रकारके बहुतसे शब्दोंमें वर्माजीने वे अर्थ निकाले हैं जिनकी ओर साधारण कोशकारका ध्यान नहीं जाता। मामूली-सी क्रिया है 'करना'। स्वयं वर्माजीने हमें बताया है कि उन्होंने और रामचन्द्र शुक्लने इस एक शब्दकी व्याख्यापर तीन दिन लगाये थे।

कई बार हम कहते हैं एक बात और मतलब होता है कुछ और ही, जैसे, दुकान बन्द करना न कहकर दुकान बढ़ाना, दीया बुझानेकी जगह दीया बढ़ाना, इसी तरह चालाक चंटके लिये गुरु या उस्तादका प्रयोग होता है। कोई जाता हो तो गुजरातीमें कहेंगे 'आवजो', जानेवाला बंगलामें कहेगा 'आशि' या उर्दूमें कहेगा हाजिर होता हूं। इस प्रकारके बहुतसे प्रयोग प्रत्येक भाषामें होते हैं। एक अच्छे कोशसे आशा की जाती है कि वह इन प्रयोगोंका भी परिचय दे।

इसी प्रकार बहुतसे शब्द लगभग एक जैसे अर्थवाले होते हैं और हम उन्हें पर्यायवाची मान लेते हैं और हमारे अध्यापक और कोश भी यही सिखाते हैं; पर उनमें आपसमें बहुत भेद होता है, जैसे, दया, अनुग्रह, कृपा, करुणा आदि। ये सब आपसमें एक जैसे होते हुए भी एक-दूसरेसे काफी भिन्न हैं। इसी प्रकार इष्ट, ध्येय, प्रयोजन, लक्ष, लक्ष्य, हेतु भी एक-दूसरेके पास होते हुए भी बहुत दूर हैं। इस प्रकारकी बारीकियोंको अलग करके दिखाना रामचन्द्र वर्माके जैसे विद्वान्का ही काम है। उन्होंने मानक कोश, शब्द-साधना आदिमें बहुतसे नये रहस्य खोले हैं। परंतु खेद है कि हिन्दीका ढोल पीटनेवालोंने भी उनके कामके महत्वको नहीं समझा। उनकी सहायता करना तो दूर रहा उनके काममें अड़चनें डाली हैं। जरा ख्याल कीजिये उस निराशाका जिसके वश होकर उन्हें चालीस वर्षकी तपस्याके फलको जला देनेका विचार आया। आज भले हम उनके कामके मूल्यको न आंक सकें परंतु सामयिक जोशके ठंडे हो जानेपर जब हिन्दीकी नींव पक्की करनेवालोंकी गिनती होगी तो रामचन्द्र वर्माकी जगह पहली पंक्तिमें होगी। मानक कोश तैयार करनेमें एक-एक शब्दपर कितना परिश्रम किया गया है इसका कुछ आभास देनेके लिये हम उनके एक छोटे-से लेख 'क्या' को 'शब्द और अर्थ' से उद्धृत कर रहे हैं।

'क्या' हिन्दीके उन बहुत ही छोटे और सामान्य शब्दोंमें है, जिनका प्रयोग सभी लोग नित्य दिनमें पचीसों-पचासों बार करते हैं। इसके साथ अनेक प्रयोग भी लगे हैं, जैसे –– हम तुम्हें क्या समझते हैं, तुम उनके सामने क्या चीज हो, तुम क्या खाकर उनसे लड़ोगे, हम समझते हैं कि तुम्हारे मनमें क्या है, क्या बात है, हमें क्या, हमारा क्या, क्या से क्या हो गया, आदि-आदि। इस प्रकारके बहुतसे प्रयोग और उनके अर्थ हिन्दी शब्द-सागरमें आये हैं। परंतु इधर मानक हिन्दी कोशका संपादन करनेके समय मुझे 'क्या' के कई नये प्रयोग और अर्थ मिले हैं, जिनका अबतक हिन्दीके किसी कोशमें समावेश नहीं हुआ है। शब्द-सागरमें भी जो प्रयोग आये हैं, उनका वर्गीकरण उतना ठीक नहीं है जितना होना चाहिये, और उनके अर्थों या व्याख्याओंमें भी बहुत कुछ सुधारकी आवश्यकता है। इसी दृष्टि तथा नये सिरेसे विवेचन करनेपर मुझे इसके संबंधमें बहुत-सी नयी बातें मिली हैं, जिनकी जानकारी भाषा-प्रेमियोंके लिये मनोरंजक हो सकती है। यही समझकर मैं ये पंक्तियां लिखनेमें प्रवृत्त हुआ हूं।

'क्या' के संबंधमें पहली बात तो यह है कि पंडित कामताप्रसाद गुरुने अपने हिन्दी व्याकरणमें लिखा है कि इसकी कारक-रचना नहीं होती, और कदाचित् इसी आधारपर शब्द-सागरमें लिखा है कि इसके साथ, विभक्ति नहीं लगती। पर शब्द-सागरमें ही 'क्याका क्या हो जाना' अथवा 'क्यासे क्या हो जाना', मुहावरा आया है जिसमें 'क्या' के आगे 'का' विभक्ति भी दिखायी गयी है और 'से' विभक्ति भी। वास्तवमें बात यह है कि 'क्या' सर्वनाम तो है ही, विशेषण भी है। और जब विशेषणका प्रयोग संज्ञाके रूपमें अथवा संज्ञाके स्थानपर होता है, तब उसमें विभक्ति लगती ही है, जैसे —बड़ेसे बड़ा, सबके सब आदि प्रयोगोंमें देखनेमें आता है। इसीलिये 'क्या' भी जब संज्ञाके स्थानपर प्रयुक्त होता है, तब उसमें विभक्ति लगती है। 'क्यासे क्या हो गया' में दोनों 'क्या' कुछ विशिष्ट स्थितियोंके वाचक हैं। 'क्यासे क्या हो गया' का अर्थ या आशय होता है—पहले जो स्थिति थी, वह बदलकर बिलकुल भिन्न या विपरीत स्थिति हो गयी, अर्थात् एक रूपके स्थानपर दूसरा रूप हो गया। यहां 'क्या' स्थिति या रूपका वाचक है, अतः उसके साथ विभक्ति लगी है।

व्याकरणकी दृष्टिसे 'क्या' मूलतः प्रश्न-वाचक सर्वनाम है, पर यह विशेषणकी तरह प्रयुक्त होता है, क्रिया-विशेषणकी तरह भी और अव्ययकी तरह भी। तुम क्या खाओगे? वहां क्या हुआ? तुम्हें क्या मिला? क्या खरच लगा? सरीखे प्रयोगोंमें यह सर्वनाम रहता है। 'वाह! क्या बात कही है! तुम्हारा वहां क्या हाल हो गया? क्या पिद्दी और क्या पिद्दीका शोरबा!' सरीखे प्रयोगोंमें 'क्या' विशेषण तो हो ही गया है, उसका प्राश्निक रूप भी लुप्त हो गया है, और वह आश्चर्य, तुच्छता आदिका सूचक हो गया है। हमें क्या? तुम्हारा क्या? सरीखे प्रयोगोंमें भी क्या है तो विशेषण ही, पर ऐसे अवसरोंपर इसके आगे संज्ञा इसलिये नहीं है कि आगेवाली संज्ञाओंका अध्याहार हो गया है। इसमें 'क्या' वस्तुतः 'हमें क्या आवश्यकता या गरज है' का संक्षिप्त रूप है। और 'तुम्हारा क्या' वस्तुतः 'तुम्हारा क्या जाता या बिगड़ता है' का संक्षिप्त रूप है। तुम ये सब बातें क्या जानो! क्या कहना है! हम क्या जायं! सरीखे प्रयोगमें भी वही 'क्या' और आगे बढ़कर क्रिया-विशेषण बन जाता है। और जब हम कहते हैं—क्या हम भी तुम्हारे साथ चलें? तो यहां 'क्या' अव्यय हो जाता है।

पर ये सब तो 'क्या' के संबंधकी बिलकुल सामान्य बातें हुईं। अब 'क्या' के कुछ ऐसे अर्थ तथा प्रयोग लीजिये जो मुझे नये मिले हैं। कुछ अवस्थाओंमें 'क्या' का आशय नहीं तो होता ही है; जैसे —अब वह क्या आयेगा। फिर भी ऐसे अवसरोंपर इसका आशय यह नहीं होता कि वह निश्चित रूपसे नहीं आयेगा। इसमें कुछ संदेह या संभावनाका तत्त्व भी मिला रहता है। जब हम कहते हैं—'अब वह क्या आयेगा', अथवा 'वह क्या बचेगा' तो इसका आशय यही होता है कि उसके आने या बचनेकी बहुत ही कम आशा या संभावना है। अर्थात् हो सकता है कि किसी अवस्थामें वह आ या बच भी जाय। फिर हम यह भी कहते हैं—दो क्या बल्कि चार आदमी भेज दो। यहां भी 'क्या' का अर्थ प्रायः 'नहीं' के समान होता है, पर यह 'नहीं' भी कुछ अलग प्रकारका होता है। इसमें आपेक्षिक आवश्यकता, उपयोगिता आदिके तत्त्व निहित रहते हैं। और 'यह खाकी क्या बल्कि हरा है।' में 'क्या' आपेक्षिक अनिश्चय और वारीयता है। पर जब हम कहते हैं—'अंधा इसे क्या देखेगा' अथवा 'मूर्ख इसे क्या समझेगा' तब हमारा आशय उक्त आशयसे कुछ और आगे बढ़कर निश्चायक रूप धारण कर लेता है। जब हम कहते हैं—'तुम ये सब बातें क्या जानो' तब हमारा यह कथन उतना दृढ़ तथा निश्चायक नहीं होता, जितना 'अंधा इसे क्या देखेगा', कहनेमें होता है। और अर्थ-विवेचनकी दृष्टिसे यह अंतर या भेद बहुत बड़ा और भाषाकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वका है।

'क्या' के संबंधमें बिलकुल नयी और सबसे अधिक महत्त्वकी बात मेरे देखनेमें आयी, वह यह है कि कुछ अवसरोंपर इसका प्रयोग बिलकुल अकेले और बिना किसी दूसरे शब्दके योगके भी होता है

और व्याकरणकी दृष्टिसे ऐसे अवसरोंपर 'क्या' न तो सर्वनाम रह जाता है, न विशेषण, अव्यय आदि, बल्कि वह एक स्वतंत्र वाक्य बन जाता है। इस संबंधमें व्याकरणका सिद्धांत स्पष्ट है। जब हम अपने मनका कोई भाव प्रकट करनेके लिये कुछ शब्द अपने व्याकरणके नियमके अनुसार किसी विशिष्ट क्रमसे लगाकर कहते या लिखते हैं, तब उन शब्दोंका समूह वाक्य कहलाता है। पर पहली और सबसे बड़ी शर्त्त यह होती है कि हमारे मनका कोई पूरा भाव उससे प्रकट हो। यदि भाव या विचार पूरा न हो, तो शब्दसमूह पद ही बनकर रह जाता है, वाक्य नहीं बनता। पर कुछ अवसरोंपर हम एक ही शब्दसे अपने मनका कोई एक पूरा भाव या विचार प्रकट करते हैं, और ऐसी अवस्थामें हमारा वह एक शब्द ही तात्त्विक दृष्टिसे वाक्य बन जाता है। हमसे कोई पूछता है — आप कहां गये थे? हम कहते हैं — घर। यहां यह अकेला 'घर' शब्द ही वाक्य बन गया है, क्योंकि इससे हम अपना यह भाव या विचार प्रकट करते हैं कि हम घर गये थे। 'क्या' का भी कुछ अवसरोंपर वाक्यके रूपमें ऐसा ही प्रयोग होता है। आप बातचीत करनेके समय किसी कारणसे या कभी-कभी आपकी कोई बात अथवा उसका कोई अंश या शब्द हम नहीं सुन पाते उस समय हमें आपसे पूछना पड़ता है — क्या? अतः यह क्या भी यहां क्या हो गया! आप कह सकते हैं कि इस तरह तो व्याकरणकी दृष्टिसे ऊपरका उदाहरणका 'घर' भी संज्ञा न रहकर वाक्य बन गया। पर नहीं, 'क्या' का यह अंतिम उदाहरण तो हमने केवल विषयका स्पष्टीकरण करनेके लिये दिया है। कुछ विशिष्ट अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमें 'क्या' में कुछ और भाव भी निहित रहते हैं, जिनका उल्लेख शब्दकोशोंमें होना आवश्यक है। अब अचानक कोई अनहोनी, अनिष्ट, अप्रत्याशित या विकट घटना घटित होनेकी बात हम सुनते हैं, और हम प्रायः अवाक्से हो जाते हैं, तब हमारे मुंहसे केवल 'क्या' निकलकर रह जाता है। यदि कोई आकर कहे — 'आज सड़कपर दिन दहाड़े गोलियां चल गयीं या डाका पड़ गया' तब प्रायः मुंहसे उसी प्रकार 'क्या' निकल जाता है; जैसे अरे, हैं आदि शब्द निकलते हैं। ऐसे अवसरोंपर यह विकट आघात-जन्य विस्मय-मात्रका सूचक होता है, और इसका आशय होता है कि ऐसा भी कभी हो सकता है! एक और उदाहरण लीजिये। दो आदमियोंमें आपसमें बहुत अधिक कहा-सुनी या लड़ाई-झगड़ा होता है। एक आदमी दूसरेसे बिगड़कर कहता है —'मैं तुम्हारे घरमें आग लगा दूंगा' या 'मैं तुम्हें जानसे मार डालूंगा'। उस समय दूसरा आदमी क्रोधमें भरकर कहता है — क्या! अर्थ यह होता है कि क्या तुम मेरे रहते हुए ऐसा साहस कर सकते हो? और आशय यही होता है कि मैं तुम्हें कदापि ऐसा न करने दूंगा। अथवा तुम कभी ऐसा न करने पाओगे।

सारांश यह कि बहुतसे शब्दोंका कुछ विशिष्ट अवसरोंपर कुछ अलग अर्थ तथा कुछ स्वतंत्र आशय होता है और आगे चलकर हमारे जो नये और अच्छे शब्द-कोश बनें, उनमें शब्दोंपर ऐसी ही गंभीर दृष्टिसे विचार करके उनके अर्थों, प्रयोग आदिका विवेचन रखना चाहिये। कोई शब्द छोटा या सामान्य समझकर उपेक्षापूर्वक छोड़ नहीं दिया जाना जाहिये।"

वर्माजी इस वर्ष पचहत्तर वर्षके हुए हैं। हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि वे चिरायु हों और हिन्दीवाले उनकी सेवाओंसे लाभ उठाना सीखें।

— रवीन्द्र

* * *

अब जर्मनीमें

अब मैं जर्मनीमें थी। मैं अभीतक ठीक न कर पायी थी कि यहां कितने दिन रहूं। यहां तो मुझे अपने ही खर्चसे रहना था और इसके लिये भारत सरकारसे विदेशी मुद्रा पाना कठिन था। मैं यही सोच रही थी कि जो कुछ मेरे पास है उसीपर अधिकसे अधिक दिन काटकर लौट पड़ूंगी। पहले थोड़ा बहुत घूम तो चुकी ही थी इसलिये इधर-उधर न जाकर अपने एक परिचित सज्जनके यहां ऐसे ही जा पहुंची। उन्होंने मुझे हर तरहसे मदद दी। उनकी तथा उनकी श्रीमतीकी राय थी कि जब मैं इतनी दूरतक आयी हूं तो अपने समयका पूरा उपयोग करके भलीभांति जर्मन सीख लूं। यहां पाठकोंको याद दिलाती चलूं कि आश्रममें रहते हुए ही जर्मन सीखना शुरू तो कर दिया था परंतु यह बिरवा अभी नन्हा-सा ही था कि मैं फ्रांस जा पहुंची और वह योग्य जलवायु न मिलनेके कारण मुरझा-सा गया। अब इन परिचित व्यक्तिके घर आकर उसे फिरसे हरा करना था। आगे बातें करनेसे पहले कुछ घरेलू बातें करती चलूं। मैं जिनके यहां ठहरी थी वे बड़े ही सज्जन थे। मकानमें पति-पत्नीको छोड़कर और कोई न था। वे दोनोंके दोनों सबेरे ७-१५, ७-३० बजे अपने कामपर चले जाते थे और शामको ७ के आसपास लौटते थे। खाना घरपर न बना करता था, उसके लिये होटलोंकी कमी नहीं है। मुझे अकबर इलाहाबादीकी याद हो आयी जिन्होंने कहा है:

> हुए इस कदर मुहज्जव, कभी घरका मुंह न देखा।
> कटी उम्र होटलोंमें मरे हस्पताल जाकर ॥

आज यूरोपके सुसंस्कृत समाजका यही हाल है। जर्मनीमें भी मैंने वही चीज देखी जिसे देखकर मेरा हिंदुस्तानी मानस उबल पड़ता है। यहां भी घर-घर यही दिखायी देता है कि जवान बेटा अपनी स्त्रीको लेकर अलग रहता है और उसकी बूढ़ी मां पासके ही किसी घरमें अपने तलवे घिस रही होती है। मुझे यह चीज हमेशा खटकती थी। मैंने कई बार यहांके लोगोंसे इस विषयमें बातचीत की पर उन्हें इसमें कुछ भी अनुचित न लगा। उनकी युक्ति हमेशा यही हुआ करती थी कि मांके पास चार पैसे तो हैं जिनसे वह अपना जीवन सुखी बना सकती है। अगर वह इसपर भी संतुष्ट न हो तो हम क्या करें? मानवजीवनका सुखमय होना केवल चार पैसोंपर निर्भर है! यह स्थिति कुछ-कुछ उन पक्षियोंके जैसी होती जा रही है जो अपने अंडोंको सेते हैं, छोटे बच्चोंके दाना-पानीकी व्यवस्था करते हैं और उड़ना सिखाते हैं और एक बार डैने मजबूत हुए नहीं कि न जाने बच्चे कहां और मां-बाप कहां! खेद है कि भारतीय समाजमें यह चीज बड़े जोरोंसे आ रही है।

खैर, यह तो मैं प्रसंगसे दूर जा पड़ी। जर्मनीमें अधिकतर लोग बहुत परिश्रम करनेवाले हैं। इसलिये जब शामको कामसे लौटते हैं तो काफी थके-मांदे होते हैं। इसलिये उस समय खाना पकाना या बर्तन धोना बहुत कठिन हो जाता है। वहां साधारण घरोंमें रातको खाना पकानेका रिवाज नहीं है। रोटी, पनीर, मक्खन और नाना प्रकारकी चाय या यह कहिये कि तरह-तरहके स्वादिष्ट काढ़े ले लेते हैं जिन्हें चायका नाम दे दिया गया है, जैसे हमारे यहां तुलसीकी चाय या पोदीनेकी चाय होती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी सिरकेमें रखे हुए ककड़ी, टमाटर आदिके टुकड़े भी होते हैं। एकदम सूखा खाना है, केवल चायका बर्तन धो डाला और छुट्टी हुई। लेकिन अगर बाहरके निमंत्रित व्यक्ति भी हों (क्योंकि साधारणतः निमंत्रण रातको ही दिया जाता है, दिनमें किसे फुर्सत है?) तो बहुत छोटी-छोटी हल्की-फुल्की सैण्डविचें ले आते हैं जो हमारे गोलगप्पोंसे भी छोटी होती हैं। उनमें किसीमें कुछ और किसीमें कुछ भरा होता है। सब तरहकी चीजें मेजपर रख दी जाती हैं,

वहां जूठेका तो सवाल ही नहीं होता, लोग अपने हाथसे खाना उठाकर खा लेते हैं। न थाली-कटोरोंकी जरूरत और न पत्तलें दरकार।

खाने-पीनेकी जरूरी चीजें खरीदनेके लिये सप्ताहमें दो बार हाट लगते हैं। इन हाटोंमें गांवके लोग ताजा तरकारियां, फल, अंडे वगैरह लाते हैं। उनका शरीर हट्टा-कट्टा और स्वभाव सरल होता है। पास-पास खड़े हुए किसान हमारे यहांके हाटोंका दृश्य आंखोंके सामने ले आते हैं। सस्ती गोभी, ताजी गोभी, लाल लाल टमाटर ले जाइये, ले जाइये, आज ही के अंडे हैं आदिकी लहकदार आवाजें एक समां बांध देती हैं। मुझे विदेशी जानकर वह लोग मुझे विशेष रूपसे अपने पास बुलाते, मुझसे हर तरहकी बातें पूछते और फिर मेरी जर्मनकी सराहना करते । मेरी वेशभूषा उन्हें बहुत पसंद आती थी।

देखने लायक चीजें देख लीं, अब आगेके कार्यक्रमका सवाल पैदा हुआ। मेरे मेजबानने कहा, अब तुम इतनी दूर आयी हो तो अच्छी तरह जर्मन सीखकर ही जाओ। ऐसा अवसर बार-बार तो नहीं मिलेगा। बात ठीक थी, परंतु मेरे लिये विदेशी मुद्राका सवाल सबसे कठिन था। उन लोगोंने कहा, अगर तुम हमारे यहां रह लो तो कम-से-कम किरायेका खर्च तो कम हो ही जायेगा। मुझे बतलाया गया कि जर्मनीमें जगह-जगह गेटे शिक्षण-संस्थाएं हैं जहां विदेशी लोगोंको जर्मन सिखानेकी व्यवस्था है। लेकिन मैं फ्रांसमें इस प्रकारकी काफी संस्थाएं देख चुकी थी। उनमें विदेशी लोगोंकी भरमार होती है। वे अपनी भाषाओंमें या अंग्रेजी आदिमें बोलते रहते हैं और जो भाषा सीखनी है उसमें बोलनेका अवसर कम ही मिलता है। अगर मैं गेटे शिक्षण संस्थाओंमें जाती तो जर्मनकी शिक्षा तो मिलती पर जर्मन लोगोंके साथ मिलने-जुलनेका तथा जर्मनमें ही हर तरहके भावप्रकाशनका अवसर न मिलता। इसलिये यह विचार मुझे बहुत पसंद नहीं आया।

मेरे मेजबानने मुझे आश्रममें नाटकमें भाग लेते हुए देखा था। उन्होंने सुझाव दिया, तुम यहांकी नृत्य, नाटच, संगीत शिक्षण-संस्थाओंमें भर्ती हो जाओ और भली प्रकार अभिनय सीख लो। इसमें मुश्किल यह थी कि अभिनय वगैरा सीखनेके लिये भाषा भली-भांति आनी चाहिये और मेरा जर्मनका परिचय अभी प्रारंभिक ही था। खैर, मैं संस्था देखनेके लिये गयी। यह संस्था सारे जर्मनी और उसके बाहर भी बहुत प्रसिद्ध है। उसमें प्रत्येक कला सिखानेके लिये अलग-अलग विभाग हैं। नाटक सीखनेवालोंके लिये ३ वर्षका पाठ्यक्रम होता है और उन तीन वर्षोंका पूरा-पूरा उपयोग होता है। यह आवश्यक है कि अभिनेताके उच्चारण बहुत शुद्ध हों। इसलिये विद्यार्थियोंके उच्चारण ठीक करनेके लिये बहुत प्रयत्न किया जाता है। सांसकी कसरतें करवायी जाती हैं ताकि विद्यार्थी लंबे-लंबे वाक्य सांस लिये बिना बोल सकें। आवाज फेंकनेकी भी एक कला है जिससे बिना चिल्लाये आवाजको दूरतक पहुंचाया जा सकता है, चिल्लानेसे मुंहके भाव बिगड़ जाते हैं और आवाज भी बिगड़ जाती है। इसलिये एक-एक विद्यार्थीको लेकर अभ्यास कराया जाता है। स्वगत बोलने तथा दो अभिनेताओंके बोलनेका अभ्यास कराया जाता है, कविताएं याद कर-करके ठीक तरहसे सुनानी होती तथा बोलते समय चेहरेपर भिन्न-भिन्न भाव लाने होते हैं। हंसने-रोनेकी तथा गानेकी भी शिक्षा दी जाती है। यूरोपीय नाटकोंमें बहुत बार फेंसिंगके प्रसंग आते हैं इसलिये फेंसिंगकी भी बाकायदा शिक्षा दी जाती है और नाचना सिखाया जाता है। इसके साथ ही बिना बोले भावप्रकाशनका अभ्यास कराया जाता है। शरीरको रंगमंचके लिये उपयोगी बनानेकी कसरतें करवायी जाती हैं। आपको एक प्रसंग दे दिया जायगा और कहा जायेगा कि बोले बिना इसका मूक अभिनय करो। कभी कहा जायेगा कि तुमने सारे दिनमें जो कुछ भी किया है वह शब्दोंके बिना केवल अभिनयके द्वारा समझाओ। भारके बिना भार उठानेका प्रदर्शन जिसमें यह मालूम होना चाहिये कि कितना भार उठानेसे शरीर किस तरफको कितना और कैसे झुकेगा, टांगोंकी क्या स्थिति होगी, मुखपर क्या

भाव आयेंगे और सांसकी गति कैसी होगी। इसी तरह खड़े-खड़े दौड़नेका अभिनय करना होगा, अपने स्थानसे जरा भी हिले बिना यह दिखलाना है कि हम दौड़ रहे हैं, थकान लगी है, अब सांस फूल रहा है और अब दम टूट रहा है। इसी प्रकार बिना साइकिलके साइकिल चलानेका अभिनय करना होगा। प्रत्येक मांसपेशीपर खूब अच्छा अधिकार होना चाहिये। शायद इन लोगोंके लिये हमारे आसन कठिन न होंगे।

हां, एक चीजके बारेमें यहांके अधिकारी बहुत कड़े हैं; वे विद्यार्थियोंके अंदर प्रदर्शनकी भावना नहीं आने देते। पहले दो वर्षोंमें तो विद्यार्थीको रंगमंचपर पांव नहीं रखने दिया जाता। तीसरे वर्षमें एक बार बहुत हुआ तो दो बार विद्यालयके मंचपर अभिनय करनेका अवसर दिया जाता है। उनका कहना है कि हम नहीं चाहते कि हमारे विद्यार्थियोंका सिर फूल जाय। अगर विद्यार्थी अपने-आपको कुछ समझने लग जाय तो सीखना खत्म हो जाता है। आत्मप्रशंसासे बड़ा शत्रु कलाकारके लिये शायद ही हो।

विद्यालयमें हर सप्ताह केवल विद्यार्थियोंके लिये एक कार्यक्रम हुआ करता है। सुविधाके अनुसार कभी गाना-बजाना, कभी नाचना और कभी नाटक या कुछ और। मुझे यह सब देखनेका भी अच्छा अवसर मिल जाता था। यहांपर यूरोपके शास्त्रीय नृत्य तथा भिन्न-भिन्न देशोंके नृत्य भी सीखे जाते हैं।

परंतु भारतके नृत्य सिखानेवाला वहां कोई नहीं है। मैं भाषा सीखनेकी दृष्टिसे नियमित रूपसे इस विद्यालयमें जाया करती थी। परंतु मेरी गिनती विद्यार्थियोंमें नहीं थी। मुझे दर्शकके रूपमें ही बैठनेकी स्वीकृति थी। हां, एक अध्यापिकाने व्यक्तिगत रूपसे रस लेना शुरू किया और वह मुझे कविता-पाठ आदि सिखाया करती थी।

एसेनमें हिंदुस्तानियोंकी अच्छी संख्या है। जर्मनीमें शारीरिक श्रम करनेके लिये आदमियोंकी कमी है इसलिये इन लोगोंको अच्छी जगह मिल जाती है। क्रुप्सका जगत्प्रसिद्ध कारखाना यहीं है और उसमें बहुतसे भारतीय काम करते हैं। दूसरे महायुद्धके समय एसेन मित्र राष्ट्रोंकी बमवर्षाके खास निशानोंमेंसे था, परंतु आज उसका कोई भी चिह्न दिखायी नहीं देता। अब बड़ा दिन आ रहा था। जर्मनीमें यह शुद्ध रूपसे पारिवारिक उत्सव है। अन्य देशोंकी तरह आमोद-प्रमोदका दिन नहीं। इसका धार्मिक तत्त्व भी एक हदतक बाकी है। लेकिन यहां परिवारसे बाहरके किसी व्यक्तिको निमंत्रण नहीं दिया जाता इसलिये देशमें जो विदेशी अथवा बिना परिवारवाले होते हैं वे एकदम अकेले पड़ जाते हैं। एसेन बड़ा औद्योगिक शहर है इसलिये यहांके नगरनिगमके पास पैसा काफी है। वहां एक महीना पहलेसे ही तैयारी शुरू कर दी जाती है। बड़ी-बड़ी सड़कोंपर यूरोपके देशों और बड़े-बड़े शहरोंके मुख्य चिह्न रोशनीसे बनाये जाते हैं। जैसे यूगोस्लावियाकी विशेष वेश-भूषामें लोकनृत्य करते हुए वहांके किसान, बर्लिनका फाटक, पैरिसका प्रसिद्ध एफिल टावर आदि।

क्रुप्सके यहां बहुतसे विदेशी काम करते हैं। उन्हें क्रिसमसके समय अकेला न लगे इसके लिये क्रुप्सकी ओरसे अच्छी व्यवस्था है। उन्हें इस अवसरपर भांति-भांतिके उपहार दिये जाते हैं तथा किशमिश, बादाम, अखरोट आदि भी बांटे जाते हैं। मुझे यह सब देखनेका भी अवसर मिला। सचमुच मनोरम दृश्य था।

वहांसे फ्राक-फोर्ट आदि होती मैं बर्लिन जा पहुंची। आज बर्लिनको देखकर विश्वास नहीं होता कि इसी शहरपर रोज हजारों टन बम बरसा करते थे। शायद कुछ दिनोंके बाद महायुद्धोंके विनाशकी कहानी केवल एक परिचयका रूप ले लेगी। हां, एक चीज है जो इस सुन्दर नगरमें रिसते हुए फोड़ेका काम कर रही है। वह है पूर्व और पश्चिमको अलग करनेवाली दीवार। वही आदमी हैं, वही रहन-सहन, खान-पान, भाषा, वेश-भूषा पर फिर भी दोनोंमें कितना अंतर!! दीवारके पास-

का वातावरण ही कुछ भयावना-सा होता है। वह युद्ध और उसके परिणामस्वरूप विभाजनका सारा इतिहास आंखोंके सामने लाकर खड़ा कर देता है। पश्चिमी भागमें आपको वैभव दिखायी देगा। वहांके लोगोंमें भद्रता, शालीनता और आत्मीयता मिलेगी। परंतु पूर्वी भागमें पग रखते ही आपपर पुलिसकी कड़ी नजर पड़ेगी। आपकी एक-एक गतिविधिको संदेहकी दृष्टिसे देखा जायगा। पूर्वं बर्लिनमें घुसनेसे पहले आपकी गाड़ीको दीवारके पास रुकना पड़ेगा। अगर आप यूरोपके रहनेवाले हैं तो गाड़ीमें ही आपके बारेमें जांच हो जायेगी और गैर-यूरोपीय हुए तो आपको गाड़ी छोड़कर वहांके दफ्तरमें जाकर अपनी तलाशी देनी होगी। वहां यह भी देखा जायगा कि आप क्या-क्या सामान लेकर जा रहे हैं और लौटते वक्त उसे वापस लाते हैं या नहीं; बात यह है कि पश्चिमी बर्लिनमें पश्चिमी जर्मनीकी तरह सब चीजोंकी बहुतायत है और उनके दाम भी बहुत अधिक नहीं हैं। जब कि पूर्वमें खाने-पीनेकी चीजोंके दाम तो अधिक नहीं पर मौज-शौककी चीजें जैसे कैमरा, ट्रांजिस्टर आदि बहुत महंगे हैं। पूर्ववालोंको हमेशा यह खटका बना रहता है कि कहीं मुसाफिर इस तरहका सामान लाकर बेचनेका प्रयास न करें। पूर्वकी पुलिस हमें एक अपराधी मानती है और हमें यह सिद्ध करना होता है कि हम अपराधी नहीं हैं।

जर्मनीमें मुझे दो ऐसे विद्यार्थियोंसे मिलनेका मौका मिला जो भारत-भ्रमण कर चुके हैं। उन्हें भाषाएं सीखनेका बहुत शौक है। उन्हें थोड़ी-बहुत हिंदी भी आती है। इन लोगोंका कमरा तो बहुत ही छोटा था पर उसे देखते ही मालूम हो जाता था कि यहां भाषाओंके शौकीन रहते हैं। कमरेकी दीवारें चित्रों, मोटे-मोटे अक्षरोंसे लिखी हुई कविताओं आदिसे भरी हुई थीं; उन्हें मेरे आनेकी सूचना मिली तो दीवारोंपर भारतीय चित्र, भारतीय गाने, हिंदी कविताएं आ गयीं। ये इन कविताओंको बार-बार देखकर याद कर लेते हैं और जब कविता याद हो जाती है तब उसे बदल देते हैं। इसी भांति कभी फ्रांसके तो कभी इटलीके, कभी स्पेनके तो कभी जापानके चित्र और उनसे संबद्ध जानकारी दीवारोंपर आ जाती है और बिना प्रयास किये उनका परिचय बढ़ता जाता है। जर्मनीमें भारतीय विद्यार्थी बहुत हैं। उनमेंसे सचमुच कुछ गंभीरतासे काममें लगे रहते हैं और कुछ केवल विदेशी होनेके नाते सस्तेमें डिग्री लेकर लौट आते हैं। वहां वे कुछ करते-कराते नहीं और यहां विदेशी शिक्षाके आधारपर अधिक मान और धन पाते हैं।

—स्नेहलता

* * *

जगजीवनसे कर वियुक्त प्रभुको
पूज रहा कबसे छायाको नर,
कविको लगा — स्वयं लेटा भूपर
सांस ले रहा हो विराट् ईश्वर।

—सुमित्रानंदन पंत

होम्योपैथिक चिकित्साके आविष्कारक :

डा. सैमुएल हानिमैन

होम्योपैथिक चिकित्साके आविष्कारक जर्मनीके डा. सैमुएल हानिमैन हुए हैं। उनका जन्म जर्मनीके "उत्तर सैकसनी" प्रांतमें ग्राम "मैसेन" में १० अप्रैल सन् १७५५ को हुआ था। इनके पिता चीनीके वर्त्तनोंपर चित्रकारीका काम करते थे। उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी परंतु वे ईश्वरभक्त, स्वतंत्र वृत्तिवाले, सच्चे और अध्यवसायी व्यक्ति थे। चित्रकारीका धंधा होनेके कारण सूक्ष्म निरीक्षणके अभ्यासी थे। बालक हानिमैनको सहज तीव्र बुद्धिके साथ अपने पिताके सब गुण पैतृक संपत्तिरूप मिले थे, जिनके कारण बालक हानिमैनका विकास एक अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तिके रूपमें हुआ।

साधनोंकी कमीके कारण अथवा व्यावहारिक दृष्टिकोणके कारण बालक हानिमैनके पिता चाहते थे कि वह स्कूल-कालिजोंमें शिक्षा प्राप्त न करके घरपर ही काम सीखे। इसलिये पढ़नेके लिये उसे प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था और घरपर भी अपने पिताके डरसे वह खुले रूपमें पढ़ नहीं सकता था। जब घरके सब लोग सो जाते तब, आधी रातको दीपक जलाकर, बालक हानिमैन अपनी विद्याकी प्यास बुझा लेता था। इतना ही नहीं, जो मिट्टीका दीपक वह जलाता था वह भी उसने अपने पितासे छिपे-छिपे स्वयं तैयार किया था, और उसे छिपाकर रखता था। इस डरसे कि यदि पिताको पता लग जायगा तो वे पढ़ने नहीं देंगे। घरसे उसको कुछ खर्चा नहीं मिलता था। हां, योग्य और प्रतिभाशाली विद्यार्थी होनेके कारण शिक्षक लोग बहुत कुछ सहायता कर देते थे।

२० वर्षकी आयुमें हानिमैन 'लीप्जिग' शहरमें चिकित्साशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये कालिजमें प्रविष्ट हुआ। विज्ञानके अध्ययनका शौक तो शुरूसे था ही, लीप्जिगमें डाक्टरी शिक्षा प्राप्त करनेके साथ-साथ वह अन्य भाषाओंके वैज्ञानिक ग्रंथोंका जर्मन भाषामें अनुवाद करके अपना सारा खर्चा निकालता था। लीप्जिगमें दो वर्ष अध्ययन करनेके पश्चात् 'वीयेना' के विश्वविख्यात अस्पतालमें क्रियात्मक चिकित्साका अध्ययन करनेके लिये दाखिला मिला।

सन् १७७९ में, २४ वर्षकी आयुमें हानिमैन चिकित्सा-विज्ञानके स्नातक बने और एम. डी. की उच्च डिग्री प्राप्त की। डा. हानिमैन बहुत-सी भाषाओंके प्रकाण्ड पंडित थे। उनको जर्मनके साथ-साथ अंग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक, लैटिन और अरबी भाषाओंका गहरा ज्ञान प्राप्त था।

सन् १७८४ में २९ वर्षकी आयुमें अपने अनुभवोंके आधारपर उन्होंने अपनी पहली पुस्तक "पुराने फोड़ोंके इलाज" पर लिखी। इसमें उन्होंने शिकायत की है कि अबतक कोई ऐसा निश्चित चिकित्सा-विधान नहीं बन पाया है जिसके आधारपर ओषधियोंकी रोगनाशक शक्तियोंका असंदिग्ध रूपसे निर्णय किया जा सके। वे किसी ऐसे सिद्धांतकी खोजमें लग रहे थे जिसके आधारपर ऐसा विधान बनाया जा सके और अंतमें वे इसमें सफल हुए।

१७७९ से नौ वर्षतक उन्होंने चिकित्साका कार्य किया परंतु चिकित्सा-शास्त्रकी त्रुटियोंसे तंग आकर सन् १७८८में उसे छोड़ दिया। वे दयानतदार आदमी थे। उस समय रोगोंमें ओषधियोंके प्रयोगका कोई संतोषप्रद विधान प्रचलित नहीं था। इस अंधेरगर्दीको वे पसंद नहीं करते थे, इसलिये इलाजका काम छोड़कर वे रासायनिक खोजमें लग गये और साथ-साथ रसायन-शास्त्र, कृषिविज्ञान और औषधविज्ञानके अंग्रेजी, फ्रेंच और इटालियन ग्रंथोंका जर्मन भाषामें अनुवाद करके रोजी कमानेका काम करने लगे।

इसी कालमें उन्होंने पारदके एक नये लवणका आविष्कार किया जो पानीमें घुलनशील और उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है। जब वे डा. कल्लेनके औषधशास्त्रका अनुवाद कर रहे थे तो उनके सामने औषधशास्त्रकी एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई।

इस घटनाका चिकित्साके इतिहासमें वही स्थान है जो न्यूटनके सामने पेड़परसे सेब नीचे गिरने-की घटनाका भौतिक विज्ञानमें।

डा. कल्लेनकी पुस्तकमें सिंकोनाकी छालका प्रकरण था। उस समय सिंकोनाकी छाल जाड़ा बुखारको ठीक करनेके लिये रोगियोंको खिलायी जाती थी। सिंकोनाके प्रभावके विषयमें डा. कल्लेन-की व्याख्यासे डा. हानिमैनकी तसल्ली नहीं हुई। उनकी प्रकृति तो सच्चाईकी पूरी खोज करना चाहती थी, उन्होंने तय किया कि स्वस्थ अवस्थामें वे स्वयं सिंकोनाकी छालका उपयोग करके देखेंगे।

यहां उनके सामने दो विचार उपस्थित थे, एक तो यह कि सिंकोना त्वक् जाड़ा बुखारको ठीक करती है, दूसरा यह कि अधिक कोमल प्रकृतिवाले मनुष्यमें यह जाड़ा-बुखारके लक्षण उत्पन्न कर देती है। बड़ी विचित्र बात थी, जिसका ठीक-ठीक निर्णय होना आवश्यक था।

डा. हानिमैनने सिंकोनाकी एक बड़ी मात्रामें फंकी लेनी शुरू की। कुछ मात्राके पश्चात् ही जोरसे जाड़े और बुखारने आ दबाया। बुखारके सब लक्षण उन्होंने बड़ी बारीकीसे देखे और उन-को सावधानीसे लिपिबद्ध कर लिया।

प्रयोगोंसे यह भी पता चला कि जाड़ा बुखारके रोगीमें ठीक-ठीक यही लक्षण हों तो सिंकोनाकी छाल उन्हें ठीक कर देती है। यदि लक्षणोंमें कुछ फर्क हो तो यह दवाई पूरी तरह काम नहीं करती। आगे चलकर उन्होंने यह भी देखा कि जिस मात्रामें सिंकोना जाड़ा बुखार उत्पन्न करता है, बुखारको दूर करनेके लिये उससे बहुत कम मात्रामें इसकी आवश्यकता होती है। उनके ये दोनों अनुभव होम्योपैथिक चिकित्साप्रणालीके आधार-स्तंभ हैं।

आयुर्वेदमें "विषस्य विषमौषधम्" का एक सिद्धांत प्रचलित है अर्थात् विषको दूर करनेके लिये विष ही औषध है। कुछ इसी प्रकार हानिमैनने अपने अनुभवोंके आधारपर सिद्धांत निकाला Similia Similibus Curantur — समानकी समान औषध है। थोड़ेमें यूं कहें कि रोगीमें रोगके जो लक्षण हैं, स्वस्थमें वैसे ही लक्षण उत्पन्न करनेवाली ओषधिसे उनका इलाज होता है।

१६ वर्षोंके निरंतर निरीक्षण और परीक्षणोंके पश्चात् उन्होंने होम्योपैथीपर अपनी पहली पुस्तक प्रकाशित की और चार वर्ष पीछे चिकित्सा-दर्शनपर आर्गेनान organan नामका अद्भुत ग्रंथ प्रकाशित किया जिसे चिकित्साका दर्शन कहा जाता है। आयुर्वेद शास्त्रके अनुरूप चिकित्साके सिद्धांतों-का यूरोपमें यह पहला सुधारित और तर्कयुक्त ग्रंथ था।

उस जमानेमें पश्चिममें इलाजका जो तरीका प्रचलित था वह 'ऐलोपैथी' कहलाता था। ऐलो-पैथीमें उस समय बड़े अस्त-व्यस्त और भद्दे तरीके प्रचलित थे। उदाहरणके लिये, उस समय यदि किसीको न्यूमोनिया या तेज बुखार हो जाता तो रोगीके फेफड़ोंको हल्का करनेके लिये उसका खून निकाला जाता था, बुखारको कम करनेके लिये भी नाड़ी-छेदन करके खून निकालते थे। अथवा जोंकें लगाकर खून निकालते थे। इसका परिणाम क्या होता था, इसका उदाहरण लीजिये। आस्ट्रियाका राजाधिराज लियोपोल्ड-२ सन् १७९२ में बीमार हो गया, उसे तेज बुखार आने लगा और पेटपर सूजन आ गयी। उसके चिकित्सक डा. लैगूसियसने ज्वर और सूजन दोनोंको कम करने-के लिये राजाकी नाड़ी खोलकर खून निकलवाया। एक बारमें कुछ लाभ नहीं हुआ, थोड़ी देरमें दूसरी बार रक्त निकलवाया, फिर भी लाभ नहीं हुआ तो एक दिनमें चार बार खून निकलवाया गया और राजा निर्बलताके कारण मर गया।

डा. हानिमैनको जब यह बताया गया तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ और उन्होंने कहा, वह डाक्टर था या कातिल ? डा. हानिमैनने अपनी खोजके आधारपर कहा कि ऐसे मरीजको होम्योपैथीकी दवाईकी एक-दो पुड़िया देनेसे ही जादूकी तरह आराम हो जाता और खून निकालनेकी आवश्यकता ही न होती। जो ओषधि डा. हानिमैन ऐसे काममें उपयोगमें लाते थे वह Aconite 'बछभाग विष' है, जिसकी एक-दो सूक्ष्म मात्राएं ही काफी होती हैं। यह औषध आयुर्वेदमें इसी कामके लिये हजारों वर्षोंसे उपयोगमें लायी जा रही है।

एक और अद्‌भुत सिद्धांत जिसका चिकित्साशास्त्रमें पहली बार प्रवेश हुआ है, उसके प्रथम आविष्कारक भी डा. हानिमैन ही हैं। वह सिद्धांत यह है कि मनुष्यमें रोगका आक्रमण और प्रवेश बाहरसे होता है। रोगोत्पादक शक्ति वस्तुतः एक विकृत प्राणशक्ति है, कोई स्थूल या सूक्ष्म भौतिक पदार्थ नहीं है। यह विकृत प्राणशक्ति हमारे व्यक्तित्वमें, मनःक्षेत्र और प्राणक्षेत्रमें प्रवेश करके उन्हें विकृत कर देती है, तत्पश्चात् शरीरपर प्रभाव करती है, जिससे शरीरमें रोग प्रकट होता है। यह सिद्धांत बड़ा जटिल है। श्रीअरविंदने भी इसकी पुष्टि की है, और इसके लिये डा. हानिमैनकी प्रशंसा की है। इस सिद्धांतके आधारपर डा. हानिमैनका कहना है कि रोगोंको जड़से दूर करनेके लिये रोगके प्राणमय और मनोमय रूपपर ही आक्रमण करना होगा। इसके लिये ओषधियोंमें जो गुप्त निहित प्राणमय शक्ति विद्यमान है उसे विकसित करना होगा।

फिर उस समय रोगीके लिये डाक्टर जो नुस्खा लिखते थे, उसमें २०, ५०, १०० और कभी-कभी १५० दवाइयांतक लिख मारते थे। जो डाक्टर नुस्खेमें जितनी अधिक दवाई लिखता था वह उतना ही बड़ा माना जाता था, उतनी ही उसकी फीस होती और दवाईके दाम भी अधिक होते थे। हानिमैनकी होम्योपैथी इस कमाईपर वज्रपातके समान थी। यहां तो एक समयमें एक ही दवाई, और उसकी भी एक या दो पुड़िया, और अत्यंत सूक्ष्म मात्रा होती थी, और उसका स्वाद भी मीठा होता था।

दवाईकी मात्रा प्रायः १ ग्रेनका हजारवां भाग, १०,०००वां, १००,००० वां, १०,०००,०००वां भाग होती थी जिसमें कोई स्वाद नहीं रह जाता था। यह एक अचम्भेकी बात है कि कुछ माशे अर्थात् कई सौ ग्रेन सिंकोना खानेसे जाड़ा बुखार आता है तो उसे दूर करनेके लिये सिंकोनाके एक ग्रेनके एक करोड़वां भाग ओषधिकी एक या दो मात्रा रोगको कुछ घंटोंमें छू-मंतरकी तरह भगा देती है। हानिमैनने होम्योपैथिक दवाओंके निर्माणकी भी एक अनूठी विधि निकाली, जिसके महत्त्वको उस समयके विज्ञानशास्त्री नहीं समझ पाये। आजका विकसित विज्ञान उसके सत्यको अनुभव कर रहा है।

हम पीछे कह आये हैं कि डा. हानिमैनने यह सिद्धांत खोज निकाला कि रोगका कारण विकृत प्राणिक शक्ति है, उसको ठीक करनेके लिये ओषधि भी प्राणिक शक्तिके तुल्य सूक्ष्म होनी चाहिये। अब प्राणिक शक्ति तो इतनी सूक्ष्म है कि किसी अधिकसे अधिक शक्तिशाली अणुवीक्षण यंत्रसे भी नहीं देख सकते।

डा. हानिमैनने दवा निर्माण करनेकी ऐसी विधि निकाली जिससे स्थूल भौतिक पदार्थोंको इतना सूक्ष्म बना देते हैं कि वे प्राणिक शक्ति (Energy) में परिवर्तित हो जाते हैं और उन्हें पुड़ियाके रूपमें रोगीको खिला देते हैं तो शरीरमें जाकर वह दवाई सीधी विकृत प्राणिक शक्ति या विकृत मनःशक्तिपर प्रभाव करती है और रोगी ठीक हो जाता है। यह सिद्धांत आजकलके रेडिएशनके सिद्धांतसे मिलता-जुलता है, परंतु होम्योपैथिक दवाईकी रेडिएशन हानिकारक नहीं है, लाभदायक ही होती है। डा. हानिमैनने चिकित्सा-विज्ञानमें एक और नयी क्रांति उत्पन्न कर दी, वह है पागलोंके इलाजमें।

पहले पागलोंके इलाजमें भयंकर शारीरिक दण्डका उपयोग किया जाता था। पागल रोगीकी उत्तेजनाको कम करनेके लिये उसे लोहेकी जंजीरोंमें जकड़ देते थे, उसे कोड़ों और बेंतोंसे बुरी तरह मारा जाता था, उसके शरीरपर चोटोंसे जख्म बन जाते थे। दुर्दिनके शिकार बेचारे रोगीकी दयनीय दशाकी कल्पना नहीं की जा सकती।

सन् १७९२ में जर्मनीका एक राजनीतिज्ञ पागल हो गया। उस बेचारेके साथ पागलखानेमें वही अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया गया जिससे उसकी दशा और भी बिगड़ गयी। अंतमें उसे डा. हानिमैनके सुपुर्द किया गया। इन्होंने उसे बड़े आरामसे और प्यारसे रखा और इलाज किया। थोड़े दिनमें वह अच्छा हो गया। वह अच्छा होनेपर आंखोंमें आंसू भरकर अपने कृपालु मसीहाको अपने शरीरपर पड़े बेंतोंके दाग दिखाया करता था।

चिकित्साके इतिहासमें यह पहला अवसर था कि पश्चिममें किसी पागलका इलाज बिना मार-पीटके किया गया हो और वह अच्छा हो गया हो।

स्मरण रहे कि होम्योपैथीमें पागलका इलाज भी इन्हीं मीठी पुड़ियोंसे किया जाता है और उनके साथ पूर्ण सहानुभूति और प्रेमका व्यवहार होता है।

इस प्रकारका प्रतिभाशाली, गुणवान्, कर्मशील वैज्ञानिक यदि आजके जगत्में होता तो लोग उसे हाथोंहाथ उठा लेते, उसका अत्यधिक मान होता, श्री शोभाका केंद्र बन जाता, संसारका सुख-सौरभ उसको प्राप्त होता, उसके कार्यके लिये बड़ी संस्थाएं और सरकारें उसे पुरस्कार देतीं, विश्वभरके विश्वविद्यालय उसे नाना प्रकारकी पदवियोंसे विभूषित करते। परंतु आजसे १५० वर्ष पहले बेचारे डा. हानिमैनके साथ इनमेंसे कोई भी बात न हुई।

बचपनमें पिताने पढ़ाईमें सहयोग नहीं दिया। चिकित्सा और अनुसंधान-कार्यमें पग-पगपर समकालीन डाक्टरों और औषध विक्रेताओंका भयंकर विरोध सहना पड़ा। वह सच्चे हृदयवाला सत्यका खोजी अपना खून-पसीना एक करके सत्य सिद्धांतोंकी खोज करता, जो कुछ उसे सत्य प्रतीत होता, परिणामोंकी कुछ परवाह न करके, निर्भय होकर, उसकी घोषणा करता और जनताके लाभके लिये उसे प्रयोगमें लाता, उसे सफलता मिलती तो वह यही कहता कि भगवानकी परमकृपासे यह ज्ञान मिला है। परंतु पुराणपंथी डाक्टर और औषधविक्रेता इसे सह नहीं सकते। उसकी सफलता और ख्यातिसे उनके धंधेको चोट पहुंचती, इसलिये वे इसका विरोध करते। डा. हानिमैन जहां-कहीं चिकित्सा-कार्य आरंभ करते और उन्हें सफलता मिलने लगती कि ये लोग उनके विरुद्ध कमर कस लेते। कानूनके अनुसार चिकित्साकी पुरानी प्रचलित पद्धति और प्रथाओंको तोड़नेके अपराधमें उनपर मुकद्दमे चलाये जाते, जिनमें प्रायः उन लोगोंकी ही जीत होती और हानिमैनको अपना जमता हुआ काम छोड़कर फिर किसी दूसरे शहरकी शरण लेनी पड़ती। ऐसा कई बार हुआ। चार पांच जगहोंसे उन्हें भागना पड़ा। रोजकी इस अदला-बदलीसे उनको कितनी परेशानी होती थी, कितनी हानि होती थी, इसकी कल्पना सहजमें, एक घटनासे, की जा सकती है। सन् १७९९ में अपने चिकित्साकार्यके स्थान 'कोनिगसूलटर' शहरको इसी प्रकार मुकद्दमेमें हारकर उन्हें छोड़ना पड़ा। उन्होंने एक बड़ी घोड़ागाड़ी खरीदी, गाड़ीपर अपना सब सामान लादा और परिवारको बिठलाकर भारी हृदयके साथ उस शहरसे बिदा हुए। शहरके बहुतसे लोग जिनकी जान इन्होंने अपनी अद्‌भुत चिकत्साके द्वारा बचायी थी वे दूरतक उन्हें छोड़ने आये। डा. हानिमैन हम्बर्ग शहरके लिये चल दिये। रास्तेमें एक पहाड़ी उतारकी जगह उनकी गाड़ी उलट गयी। कोचवान कहीं दूर जा गिरा, इनका छोटा बच्चा ऐसा जख्मी हुआ कि कुछ देरमें उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। एक कन्याकी टांगकी हड्डी टूट गयी। हानिमैनको भी बहुत चोट आयी। उनका सामान नीचे एक नदीमें जा पड़ा, बहुत कुछ टूट-फूट गया। कुछ ग्रामवासियोंकी सहायतासे सब कुछ बटोरकर

पासके एक ग्राममें पहुंचे, जहां डेढ़ मासतक रहना पड़ा, लड़कीकी टांग ठीक हो गयी, परंतु पास जो कुछ पैसा था वह लगभग सब खर्च हो गया। आखिर वे हैम्बर्ग पहुंचे, परंतु वहां भी उन्हें आश्रय नहीं मिला और आगे चल देना पड़ा। इस प्रकार आपत्तियोंमें उन्हें कई स्थान बदलने पड़े। परिणाम यह हुआ कि वे अपने बड़े परिवारका भली प्रकार भरण-पोषण भी नहीं कर पाते थे।

परंतु इन सब कठिनाइयोंमें भी वे अपना लक्ष्य कभी नहीं भूले। परम दृढ़ताके साथ वे नयी-नयी दवाओंके परीक्षण और प्रयोग और नये-नये सिद्धांतोंकी खोजमें निरंतर लगे रहे। उन्होंने कई विशाल, अद्भुत ग्रंथ रचे और प्रकाशित किरण और १८०७ में "कोथिन" ग्राममें उन्होंने अपने 'पुराने रोगोंकी चिकित्सा" प्रणालीकी घोषणा की। इस छोटेसे ग्राममें एक राजाके आश्रयमें वे कुछ दिन टिक सके। यहीं १८३० में उनकी पत्नीका देहांत हो गया। इस समय उनके पास ८ बच्चे थे। पत्नीके मरनेपर उनकी लड़कियोंने घरका काम संभाला।

१८३१ में जर्मनीमें भयंकर हैजा फैला। डा. हानिमैनने हैजेके किसी रोगीका इलाज नयी पद्धतिसे अभीतक नहीं किया था। परंतु उन्होंने इस इलाजपर एक छोटी-सी पत्रिका प्रकाशित की और उसमें हैजेके लिये कुछ दवाओंका निर्देश भी कर दिया। जिन-जिन नये, पुराने डाक्टरोंने उस पुस्तिकाका अनुसरण किया उनको अद्भुत सफलता मिली। हैजेका भयंकर कोप समाप्त हुआ। हैजेके इलाजसे इनकी धाक बैठ गयी। इनका मान बढ़ा और आर्थिक अवस्था भी सुधरी। अब इनके भाग्यने पलटा खाया। सौभाग्यकी सुहावनी किरण इनके जीवन-क्षितिजपर फूटने लगी। १८३५ में पैरिसकी एक संभ्रांत सुन्दरी "मैलिनी" इनकी ख्याति सुनकर 'कोथन' में इनके पास पहुंची और हानिमैनपर मोहित हो गयी। डा. हानिमैन भी उसके जादूमें आ गये। उस समय डा. हानिमैनकी आयु ८० वर्षकी थी और मैलिनीकी ३५ वर्ष। मैलिनी अपने इष्टदेवका बोरिया-बिस्तरा बंधवाकर उन्हें पेरिस ले गयी और उनकी शादी हो गयी। पेरिसमें इस महिलाका अच्छा प्रभाव था। अपने प्रभावसे डा. हानिमैनके लिये चिकित्सा करनेका लाइसैंस प्राप्त करनेमें वह सफल हो गयी। मैलिनीमें महत्त्वाकांक्षा थी। उसने जी-जान लगाकर अपने पति गुरुसे होम्योपैथिक प्रणालीका अध्ययन किया। वह उनके हर कार्यमें सहायक रहती थी। रोगियोंको देखनेके लिये उनके साथ जाती थी, चिकित्सालयका सब प्रबंध स्वयं करती थी। मैलिनीने अपने सुन्दर यौवनकी क्रियाशक्ति और अटूट श्रद्धा डा. हानिमैनके अनुभवपूर्ण और प्रतिभावान जीवनके साथ जोड़ दी। उसने आपत्तियोंकी चोटें खाये हुए हानिमैनके जीवनमें नये सिरेसे सुख-सुषमाका आरंभ किया। आयुभर कठिनाइयों और निराशाओंके साथ जूझनेवाले योद्धा तपस्वीको अपने अंतिम दिनोंमें सफलता, यश और पारिवारिक सुखका आस्वादन मिला। काम खूब चमका। कहते हैं, उनके दवाईखानेके बाहर आध-आध मील लंबी कतार घोड़ा-गाड़ियोंकी लगी रहती थी। खूब धन कमाया। जिन सिद्धांतोंकी खोजकी अभीप्साके साथ जीवन शुरू किया था उनके आविष्कारमें अद्वितीय सफलता मिल चुकी थी। चारों ओर देशोंमें होम्योपैथीका गुणगान हो रहा था। ऐसे यश और वैभवके बीच २ जुलाई १८४३ में ८९ वर्षकी दीर्घ आयुमें हानिमैनका स्वर्गवास हुआ।

आज सारे संसारमें होम्योपैथीका बोलबाला है। परंतु इस समय होम्योपैथीका सबसे बड़ा केंद्र भारतवर्ष है। संसारके सबसे योग्य होम्योपैथिक डाक्टरोंमेंसे लगभग आधे इस देशमें पाये जाते हैं। प्रतीत होता है होम्योपैथीके तत्त्व भारतवासियोंकी जीवनधाराके अधिक समीप और अनुकूल हैं।

—डा. संतोषानंद

* * *

कहीं हम भूल न जायं।

जो वंशबाग उध्वस्त झाला। संतत पुरुष तोचि एक।

(जिस वाटिकाने अपने सभी फूल देवताके हारके लिये दे दिये वही सचमुच सतत फूलती है।)

सन् १९१७ की बात है। एक भारतीय युवक अपने बड़े भाईके साथ काले पानीके जेलमें (अण्डमान) पड़ा सड़ रहा है। घरसे दूर, घरवालोंसे दूर, सबको याद करता हुआ फिर भी शांत और स्वस्थ। जेलमें उसका व्यवहार संतोषजनक रहा है अतः उसे यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने परिवारवालोंको वर्षमें एक पत्र लिख सके!! वह आज इस विशेषाधिकारका उपयोग कर रहा है। वह अपने भाई बाल को लिखता है, "देखो बाल, हम जिस कालमें रह रहे हैं उसका यह तकाजा है कि हमारी पीढ़ीके अच्छे और ईमानदार लोग उस मार्गपर चलें जिसमें दुःखदर्द, सर्द आहें, अपनोंसे बिछुड़ना और हर तरहके कष्ट झेलना आवश्यक है। हमारे लिये प्रकृतिने कर्तव्यका वही रास्ता चुना है जिसमें हमारे हृदय भाग्यके थपेड़े खा-खाकर इतने कठोर हो जायें कि निराशा, विपदा और संघर्ष तो हमारे जीवनकी मामूली चीजें बन जायें। अगर हमें कोई खुशीकी बात सुनायी भी देती है तो हमें यही ख्याल आता है कि खुशी कितनी क्षणभंगुर होती है। खुशी, खुशी बनकर नहीं, स्थिर कष्ट और क्लेशमें अस्थिरताकी एक झलक बनकर आती है।"

अण्डमानकी जिस भयंकर कारामें कठोरसे कठोर कैदी भी टूट जाते हैं वहींपर चितपावन कुलका सुशिक्षित युवक बरसोंसे कड़ी यातनाएं झेल रहा है, उसका अपराध है भारत मांकी आजादीके स्वप्न देखना। अपने एक और पत्रमें यह युवक कहता है, "यहां हमारे शब्दकोशमें परिवर्तनके जैसा कोई शब्द है ही नहीं। वही सवेरा, वही सांझ, वही खाना, वही मेहनत। शायद हम गर्वके साथ कह सकते हैं कि हमारा टापू संसारभरकी एकमात्र जगह है जहां चार वर्षतक चलनेवाले विश्वयुद्धका भी कोई असर नहीं पड़ा। हमें कहीं आने-जाने या अपनी इच्छाके अनुसार कुछ करनेकी आजादी नहीं है पर मुझे कहना पड़ेगा कि हमारे जेलरोंने हमें एक मामलेमें खुली छूट दे रखी है: स्वप्नमें हम जहां चाहें जा सकते हैं, जिससे चाहें मिल सकते हैं और जो चाहें कर सकते हैं। प्रतिबंध है तो केवल एक, कि जब जागें तो जेलमें अपने निश्चित स्थानपर ही हों।"

१९१९ में विश्वयुद्धमें विजयी होकर इंग्लैंडने बहुत सारे कैदियोंको छोड़ दिया। डाकू, हत्यारे, आततायी, हर तरहके भयंकर कुकर्म करनेवालोंपर 'माई बाप सरकार' की कृपा हुई लेकिन राजनीतिक कैदी तो इन सबसे भयंकर थे, उन्हें कैसे छोड़ा जा सकता था। उन्होंने तो साफ शब्दोंमें कह दिया था कि जेलसे छूटकर भी क्या होगा अगर समस्त देश ही एक बड़ा जेल बना रहे। उन्हें यह सोचना भी स्वीकार न था कि वे गुलाम भारतमें रहकर चैन पा सकेंगे। वे जेलमें बंद रहनेके इच्छुक न थे पर उन्हें यह भी स्वीकार न था कि छूट पानेके प्रलोभनसे अपनी आत्माको बेच दें। हमारा परिचित युवक उन लोगोंका सरदार है। वह अपने भाईके साथ इन्हीं काल-कोठरियोंमें बंद है। दोनों भाई वर्षों साथ रहकर भी एक-दूसरेको आसानीसे देख भी नहीं पाते।

इस युवकका नाम है विनायक दामोदर सावरकर। विनायकका जन्म महाराष्ट्रके प्रसिद्ध चितपावन ब्राह्मणोंमें १८८३ में हुआ था। बाल्यावस्थासे ही उन्हें देशकी पराधीनता खलती थी। यह बालक किस्से-कहानियोंकी जगह रामायण महाभारत और मराठोंके शौर्य गीतोंमें रस लेता था। पूनामें कुछ सरकारी अफसरोंकी हत्या कर दी गयी। सारे महाराष्ट्रमें खलबली मच गयी। सरकारने बड़े जोरसे दमनचक्र चलाया जिसने सुलगती हुई आगको भड़का दिया। जिन युवकोंको फांसी दी गयी थी उनका अदम्य उत्साह, आदर्श व्यवहार देखकर विनायकके मनमें भी अग्नि जागृत हुई।

उसने मां दुर्गाके सामने शपथ ली कि वह सारे जीवन भारतकी स्वाधीनताके लिये लड़ेगा, उसके लिये युवकोंका संगठन करेगा और गुप्त संस्थाएं बनाकर क्रांतिकी तैयारी करेगा। उसका यह प्रण जीवनकी कठिनसे कठिन परीक्षाओंके समय भी उसका कवच बना रहा। उसके रचे हुए देशभक्तिके अभंग सारे महाराष्ट्रमें गाये जाने लगे। कुछ दिनोंके बाद सावरकर बंधु (गणेश, विनायक और नारायण) नासिक चले गये। वहां सोलह वर्षके विनायकने 'मित्रमण्डल' की स्थापना की जिसका उद्देश्य था भारतको स्वाधीन करना, अगर जरूरी हो तो उसके लिये सशस्त्र क्रांतिकी तैयारी करना। इस मंडलमें थे तो दुधमुंहे बच्चे ही पर थोड़े ही दिनोंमें उसका प्रभाव सभी विद्यालयोंमें फैल गया और वह नगरका एक प्रतिष्ठित संगठन बन गया। १९०० में विनायकने एंट्रेंसकी परीक्षा पास की और पूनाके सुप्रसिद्ध फर्गूसन कालिजमें भरती हो गया। वहां वह इतिहास और राजनीतिका अच्छा जानकार बन गया, वक्ता भी गजबका था। पूनाकी सब सभा-सोसाइटियोंमें विनायक सावरकर और उनके दलका असर फैल गया। उनमेंसे बहुतोंने शपथ ली कि चाहे फांसीपर लटकना पड़े या आगमें जिंदा जलना पड़े वे मांकी स्वाधीनताके लिये प्रयास करते रहेंगे। इन्हें कालिजसे निकाल दिया गया लेकिन खानगी तौरपर बी. ए. की परीक्षामें बैठनेकी अनुमति भी मिल गयी। विनायक बड़ी अच्छी तरह पास हो गया। इन्हीं दिनों बंगालमें स्वदेशी आंदोलन शुरू हुआ और विनायक और उसके साथी जी-जानसे उसमें कूद पड़े। विनायकने घूम-घूमकर कई दल संगठित किये और अभिनव भारत नामक संस्थाकी नींव डाली। इन्हीं दिनों प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्यामजी कृष्णवर्माने एक छात्रवृत्तिकी व्यवस्था कर दी और विनायक उच्चतर शिक्षा प्राप्त करनेके लिये विलायत चला गया। नाम तो यही था पर सचमुच उसका उद्देश्य था इंग्लैंडमें शिक्षा प्राप्त करते हुए प्रतिभाशाली भारतीय विद्यार्थियोंके साथ संबंध जोड़ना और उनके अंदर स्वाधीनताकी आग जलाना। उसकी इच्छा थी कि वहां रहते हुए रूसके क्रांतिकारियोंसे भी संपर्क स्थापित करके उनकी कार्यप्रणालीकी जानकारी भी प्राप्त की जाय। १९०६ में अपनी नवयुवती पत्नी और अपने प्यारे भाइयोंसे बिछुड़कर विनायक इंग्लैंड जा पहुंचा। वहां सालभर के अंदर ही उसने भारतीय विद्यार्थियोंको साथ लेकर फ्री इण्डिया सोसाइटीकी स्थापना की। मदन लाल ढींगरा, वी. वी. एस. ऐयर जैसे लोग इस दलमें शीघ्र ही आ मिले। सावरकरके साथ काम करना आसान नहीं था। कहते हैं मदनलाल ढींगराकी सहनशक्ति और सच्चाईकी परीक्षा लेनेके लिये उसके हाथमें छुरा भोंककर देखा गया था। जब उसने सीतक न की तो उसे महत्त्वपूर्ण खतरनाक कामोंके योग्य मान लिया गया। इसी मदनलालने भारतमें होनेवाले अत्याचारोंके विरुद्ध प्रदर्शन करनेके लिये लन्दनमें कर्जन विली नामक एक अफसरको मारा था।

श्यामजी कृष्ण वर्मा युवक सावरकर और उसके दलसे बहुप प्रभावित हुए और उन्होंने अपना इंडिया हाउस उसके सुपुर्द कर दिया। अब लन्दनका यह मकान भारतके क्रांतिकारियोंका अड्डा बन गया। यहांके कई सदस्योंने बम बनाना सीखा और भारत जाकर इधर-उधर फैल गये और इधर-उधर अंग्रेजोंमें आतंक फैला दिया। इस कामके साथ ही सावरकरने लेखन और प्रकाशनका कार्य भी जारी रखा। उन्होंने मराठीमें मेजिनीका जीवन-चरित्र लिखा जिसने मराठी साहित्यमें अपना एक विशेष स्थान बना लिया। इन्हीं दिनों उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक "भारतीय स्वाधीनताका संग्राम" लिखी गयी। मूल पुस्तक मराठीमें थी। उसके कुछ अध्यायोंको आधार बनाकर सावरकरने लन्दनमें भाषण दिये थे। स्काटलैण्ड यार्डको इसकी गंध लग गयी। उसके लोगोंने पाण्डुलिपिके कुछ पृष्ठ उड़ा लिये। पुस्तक बहुत ही भयंकर मानी गयी और उसके प्रकाशनके मार्गमें तरह-तरहकी मुश्किलें पैदा की गयीं। क्रांतिकारी दलके सदस्योंने चोरीसे मराठी पाण्डुलिपिको हिंदुस्तान पहुंचा दिया परंतु वहां कोई प्रकाशक इतना बड़ा खतरा मोल लेनेको तैयार नहीं था। इस पुस्तकमें भारतीय

सिपाहियोंके गदरको भारताका स्वाधीनता-संग्राम बताया गया था। इसमें उन लोगोंकी कमजोरियोंपर प्रकाश डाला गया था जिनसे बचना भावी सन्ततिके लिये जरूरी था। उसमें भूतके आधारपर भविष्यके लिये प्रेरणा थी। भला इतनी भयंकर पुस्तकको कैसे छापने दिया जाता। वह तो भारतीय नवयुवकोंको उकसानेवाला मंत्र था। खैर, जैसे-तैसे अभिनव भारतके एक सदस्यने इस पुस्तकको छापनेकी ठानी। पुलिसको इसकी गंध मिल गयी। एक साथ कई छापेखानोंपर पुलिसने हमला किया। लेकिन प्रकाशक भी कम काइयां न था। प्रकाशक पाण्डुलिपिको पहले ही पैरिस भेज चुका था। अब यह कोशिश की गयी कि जर्मनीमें जहां संस्कृत पुस्तकें छपती रहती थीं, इस पुस्तकका मराठी संस्करण छापा जाय परंतु इसे सफलता न मिली। इधर अभिनव भारतके युवकोंने इस पुस्तकके महत्त्वको दृष्टिमें रखते हुए इसका अंग्रेजीमें अनुवाद कर डाला और एस. वी. एस. ऐयरने उसे इंग्लैंडमें छपानेकी कोशिश की। वहांके अधिकारीवर्गने प्रकाशकोंको डर दिखाया और परिणाम यह हुआ कि इसे छापना संभव न हुआ। पैरिसमें कोशिश की गयी लेकिन उन दिनों फ्रांसीसी सरकार अंग्रेजोंको खुश करनेमें लगी थी इसलिये वहां भी उसे छापनेवाला कोई न मिला। इधर क्रांतिकारी लोगोंने सरकारको अंधेरेमें रखकर पुस्तकको हालेण्डमें छपवा डाला। सरकार इंग्लैंड और फ्रांसके प्रेसोंकी निगरानी करती रह गयी उधर हालेण्डसे प्रकाशित पुस्तककी प्रतियां चोरीसे पेरिस आ गयीं। अभीतक अंग्रेज सरकार इसी भ्रममें थी कि इस पुस्तकके प्रकाशनकी तैयारी हो रही है। उसने इंग्लैंड और हिंदुस्तानके लिये एक ऐतिहासिक हुकुम दे दिया। शायद सभ्य देशोंमें यह हुकुम अपने-आप एक मिसाल है, न भूतो न भविष्यति। पुस्तक छपनेसे पहले उसकी जब्तीका हुकुम!

हालेण्डके संस्करणकी बहुत-सी प्रतियां नाना प्रकारके यत्नोंसे हिंदुस्तानमें लायी गयीं। बादमें पंजाबके मुख्य मंत्री बननेवाले सर सिकन्दर हयात खां भी अपनी जवानीमें इस पुस्तककी बहुत-सी प्रतियां अपने साथ ले आये थे क्योंकि उनके ऊपर अंग्रेज संदेह नहीं कर सकते थे। आयरलैंड, फ्रांस, रूस, जर्मनी, मिस्र और अमरीकामें इसका खूब प्रचार हुआ। लाला हरदयालने अमरीकामें गदर पार्टीकी ओरसे इस पुस्तकका अंग्रेजी संस्करण और हिंदी, उर्दू और पंजाबी अनुवाद छापे। गदर पार्टी तथा उससे संबंध रखनेवाले लोगोंने पहले विश्वयुद्धके समय जो क्रांतिके प्रयास किये थे तथा दूसरे महायुद्धके समय सुभाष बोसके नेतृत्वमें जो लड़ाई हुई उन सबमें भाग लेनेवालोंको उभारनेमें १८५७ के इस इतिहासका काफी हिस्सा था। हजारों क्रांतिकारियोंके पाससे यह पुस्तक मिली थी। उन दिनों इस पुस्तककी एक-एक प्रति तीन-तीन सौ रुपयेमें बिकती थी। सरदार भगतसिंहने भी इस पुस्तकका एक संस्करण छपवाया था जो सरकारकी आंख बचाकर सारे भारतमें बड़े ऊंचे दामोंपर बिकता था। मूल मराठी पुस्तक श्रीमती कामाके पास पैरिसमें उनके बैंक आफ फ्रांसमें लाकरमें जमा रही। उनके मरनेपर गोआके डाक्टर क्यूटिनो उसे अपने साथ अमरीका ले गये। उन्होंने १९४६ में उसे डा. मुंजेके द्वारा सावरकरके पास भेज दिया। नेताजी बोसने अपनी सेनाके लिये इसका एक विशेष संस्करण छपवाया था और शायद उन्हींकी प्रेरणासे इसका तमिल अनुवाद भी हुआ था जो उनकी सेनाके लोगोंके पाससे निकला। झांसीकी रानी, नाना साहब वगैराके बारेमें अगर हम जान पाये हैं तो इसका श्रेय इसी पुस्तकको है। और तुर्रा यह है कि इस पुस्तकमें कोई भी बात बिना प्रमाणके नहीं कहीं गयी है। और सारे प्रमाण समसामयिक अंग्रेजोंकी पुस्तकोंसे लिये गये हैं।

खैर, हिंदुस्तानमें अभिनव भारतकी हलचल बढ़ती जा रही थी। पुलिसने पता लगा लिया कि लन्दनका इंडिया हाउस ही इसके पीछे काम कर रहा है। स्काटलैंड यार्ड हाथ धोकर सावरकरके पीछे पड़ गया। उन्हें इंडिया हाउसको वंद कर देना पड़ा पर दलके लोग इधर-उधर छिपकर मिलते रहते थे और हर रोज इस मंत्रको दुहराते थे, "भारत स्वतंत्र हो, भारतमें एकता हो, भारतमें प्रजातंत्र हो, भारतकी सर्वमान्य भाषा हिंदी हो, भारतकी एक लिपि नागरी हो।" उन्हीं दिनों सावरकरने

लिखा था "हमें गुप्त संस्थाओं अथवा गुप्त आतंकवादसे प्रेम नहीं है। हमारा विश्वास है कि जब सत्तारूढ़ असत्य और हिंसा सत्यको देशनिकाला दे देते हैं तो गुप्त संस्थाओं और आतंकवादको अपनाना पड़ता है। लेकिन जहां जनताको वैधानिक रूपसे स्वराज्य प्राप्त हो — जैसे इंग्लैंड, फ्रांस या अमरीका — वहां इस प्रकारके कार्यक्रम अनुचित हैं।

इन्हीं दिनों सावरकर फ्रांस गये और वहां भारतीय युवकोंके एक संगठनकी नींव डाली। उन्हें चेतावनी दी गयी कि अगर वे इंग्लैंड लौटे तो पकड़ लिये जायेंगे। उन्होंने परवाह न की और वापिस आ गये। उन्हें रेलसे उतरते ही पकड़ लिया गया और जहाजमें डालकर हिंदुस्तानके लिये रवाना कर दिया गया। जहाज मार्सलेजके पास था कि सावरकर खुले समुद्रमें कूद पड़े और तैरते-तैरते फ्रांसके किनारेपर जा लगे। अंग्रेज पुलिस पीछा कर रही थी। सावरकरने अपने-आपको राजनीतिक शरणार्थीके रूपमें पुलिसके सुपुर्द कर दिया परंतु फ्रेंच पुलिसने अंतरराष्ट्रीय नियमोंको तोड़कर इन्हें अंग्रेजोंके हवाले कर दिया। इन्हें हिंदुस्तान लाया गया और पूनाके कलेक्टरकी हत्याके सिलसिलेमें आजन्म काले पानीकी सजा दी गयी। सजा सुनकर सावरकरने कहा—मैं बिन ननुनचके अधिकसे अधिक दण्ड स्वीकार करनेको तैयार हूं। आत्मबलिके द्वारा ही हम भारत मांकी विजयकी ओर बढ़ सकते हैं। इसमें समय लग सकता है पर यह है निश्चित!

अण्डमानसे सावरकरने अपने छोटे भाईको लिखा था, "बंगालमें स्वदेशी आंदोलन बंग-भंगके विरोधमें शुरू हुआ है। आंध्रमें भी कुछ इस तरहकी हवा चल रही है। अगर हम समयपर न चेते तो कहीं देश प्रांतीयताका अखाड़ा न बन जाय।"

अण्डमानसे वापिस आकर सावरकरने देखा कि देशकी हवा बिलकुल बदली हुई है, नये नेता हैं, नया कार्यक्रम है। गांधीजीके साथ उनका मत न मिला। ऐसी अवस्थामें उनका कार्यक्षेत्रमें रहना शायद औरोंके लिये बाधक ही होता इसलिये उन्होंने अपने-आपको राजनीतिक क्षेत्रसे अलग-सा कर लिया और मराठी साहित्यकी सेवामें लग गये। सिद्धांत और कार्यक्रममें मतभेद होते हुए भी हम उन क्रांतिकारी और आतंकवादी युवकोंको नहीं भूल सकते जिन्होंने अपने सिर हथेलीपर रखकर मांके लिये युद्ध किया, जिन्होंने हंसते-हंसते अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। सावरकरका स्थान उनमें बहुत ऊंचा है।

अदालतमें अंग्रेजोंने सावरकरके ऊपर लगाये गये अभियोगको सच्चा प्रमाणित करनेके लिये १९०८ में दिया हुआ एक वक्तव्य उद्धृत किया था जिसमें उन्होंने कहा था: १० मई १८५७ को जो युद्ध आरंभ हुआ था वह अभीतक समाप्त नहीं हुआ है और तबतक न होगा जबतक कि १० मई हमारे लक्ष्यकी सफलता और भारतकी स्वाधीनताके दर्शन न कर ले।

और स्वाधीनताके बाद भी अभी एकताके दर्शन बाकी हैं।

जगत्-जीवनमें जो कुछ व्यक्त
मात्र उसका धूमिल आभास —
शक्तिको होना था अवतीर्ण
मनुजका करने ऊर्ध्व विकास।

—सुमित्रानन्दन पंत

हिमालयकी गोदमें

हिमालयके तीर्थस्थान प्रत्येक भारतीय तीर्थयात्रीका लक्ष्य रहे हैं। इसकी गगनचुंबी शिखाओं और उनमेंसे कर्पूरसे पिघलते कल-कल निनाद करते प्रपात, इसकी अरण्यानी और उसमें विचरनेवाले स्वच्छंद वनचारी हाथी, बाघ, चीते, भालू, हिरन इत्यादि जानवर, रंग-बिरंगे विहग-वृन्द, उछलती-दौड़ती नदियोंका वर्णन पुराणों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और महाकवि कालीदास आदिकी अनेक कृतियोंमें कितनी श्रद्धायुक्त वाणीमें किया गया है। आज भी ये हिमराज किसीको भी अपनी अमित सौंदर्यराशिसे मंत्रमुग्ध कर देनेके लिये पर्याप्त हैं। हिमालयके बाह्य रूपसे कहीं अधिक भव्य है इसका आंतर रूप।

इसी हिमालयके अंचलमें बसा हुआ है कुमायूं। प्राचीन कालमें इसको "कूर्माचल" कहा जाता था, लेकिन अंग्रेजोंसे शायद 'कूर्माचल' शब्दका उच्चारण सही रूपसे न हो सका, तो वे इसको कुमायूं कहने लगे। कुमायूंके अंतर्गत तीन जिले हैं, नैनीताल, अल्मोड़ा और गढ़वालका एक भाग। यहांके निवासियोंको कुमाऊनी अथवा पहाड़ी कहते हैं। ये लोग शरीरसे हृष्ट-पुष्ट, कदमें लंबे, रंग गेहुंवा तथा गोरा, प्रकृतिके सरल, स्पष्टवक्ता, उदार, ईमानदार, निर्भीक तथा अत्यधिक परिश्रमी होते हैं। अगर इनको किसी वस्तुसे भय है तो वह वस्तु है 'गर्मी'। इसको ये लोग सहन ही नहीं कर सकते, अप्रैलका महीना शुरू होते ही हजारोंकी संख्यामें रोजगारके लिये बाहर गये हुए पहाड़ी अपने घरोंमें वापिस आनेके लिये उतावले हो उठते हैं। 'पर्वतके पंछी उड़ चल अब अपनी नगरियाको'। फिर कोई भी प्रलोभन इनको मैदानोंमें नहीं बांध सकता। हिंदी भाषा प्रायः प्रत्येक कुमाऊनी जानता है, फिर भी इनकी अपनी लोकभाषा है जिसे कुमाऊनी अथवा पहाड़ी भाषा कहते हैं। यह भाषा संस्कृतका ही अपभ्रंश रूप है और इसमें अनेक प्रादेशिक भाषाओंके शब्द भी प्रचुर संख्यामें पाये जाते हैं।

आइये हम भी पहाड़ी भाषाका थोड़ा-सा आनंद लेते चलें — पति रोज़गारके लिये दिल्ली जानेकी तैयारी कर रहा है। उसकी पत्नी कह रही है:

परदेशमें को तुमार खुट धोवेलि,
और को तुमार खाण बड़ालि,
वां को तुमार विस्तर लगालि,
और बातचीतैल तुमार मन वहलालि।

वहांपर कौन तुम्हारे पांवोंको धोयेगा, कौन तुम्हारे लिये खाना बनायेगा, कौन तुम्हारे लिये बिस्तर बिछायेगा और कौन बातचीतसे तुम्हारा मन बहलायेगा?
पति उत्तर देता है:—

वां जमुना म्यार खुट धोवेलि
सेठानि मैहुं खांण बड़ालि
सेठैकी गद्दीमें मैं सितुलो,
और मन मनै तुदगै बात करुलो।

वहांपर यमुना नदी मेरे पांव धोयेगी, सेठानीजी मेरे लिये खाना बनायेंगी, सेठजीकी गद्दीपर मैं सोऊंगा और मन-ही-मन तेरे साथ बातचीत करूंगा।

पुरोधा

अब पहाड़ी ब्राह्मणकी वेश-भूषाका वर्णन सुनिये —

डुबकियैकि बामणैकि छ विचित्र भेष-भूषा,
कमर झुकी छ और हाथमें घिंडारू को जांठा,
खुटन में कुछनां, ख्वारमें दुकली टोपी,
पुठा में बांधी राखी परौठाकी एक पुटली।

अर्थात् डुबकिया (एक स्थानका नाम) के ब्राह्मणकी विचित्र वेश-भूषा है। कमर उसकी झुकी हुई है, हाथमें घिंघारूके पेड़की बनी लाठी है, पांव नंगे हैं और सिरपर ढुकली टोपी पहने हुए है (एक प्रकारकी सफेद टोपी जिसे नैपाली लोग भी पहनते हैं) और पीठमें बंधी हुई है परौंठोंकी एक पोटली। पहाड़ी भाषामें अनेक कहावतें भी हैं :—

सौ च्याल राजाक कामाक काजाक,
एक च्योल गुजौक बड़ बड़ उजौक।

सौ लड़के राजाके थे लेकिन वे सब नालायक, एक लड़का गूजरका पर वह बड़ा ही ओजस्वी।

आपण बेर पाणि है पतौल घ्यू है चुपौड है जानी।

जब अपनी बारी आती है तो पानीसे भी पतले और घीसे भी चुपड़े हो जाते हैं।

अति बिरालु मुस नि मरन

बहुत बिल्लियोंसे चूहे नहीं मरते हैं।

त्योहार

भारतवर्षके अन्य प्रांतोंकी तरह यहांके निवासी भी सभी प्रमुख त्यौहारोंमें खूब दिल खोलकर भाग लेते हैं, जैसे होली, दीपावली, दशहरा, शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, वैसाखी, श्री गणेशचतुर्थी इत्यादि-इत्यादिका विशेष महत्त्व है। इनका एक अपना विशेष त्यौहार भी है जिसे "नंदा देवीका मेला" कहते हैं। यह त्यौहार क्षत्रियोंका है, लेकिन सभी वर्गोंके लोग इसमें उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। किंवदंती है कि पहले यहां चंदवंशी राजाओंका राज्य था। उन राजाओंमेंसे एक राजाकी बहिनका नाम नंदा था। एक रोज नंदा अपने फूलोंकी वाटिकामें घूम रही थी कि एक पागल भैंसेने उसके ऊपर आक्रमण किया और उसको कुचलकर मार डाला। तभीसे नैनीताल और अलमोड़ेमें नंदादेवीकी स्मृतिमें मंदिरोंकी स्थापना हुई और प्रत्येक वर्ष नंदादेवीके मंदिरके आगे बड़े मैदानमें तीन दिनतक यह मेला खूब समारोहके साथ सजता है। हजारोंकी संख्यामें रंग-विरंगे कपड़ोंसे सुसज्जित दूर-दूर गांवोंसे स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चे यहांपर आकर अपने लोक-नृत्य तथा लोकगीतोंसे जनताका मनोरंजन करते हैं। रातकी निस्तब्धतामें शहरके युवकोंके कानोंमें आती हुई इन ग्रामीण बालाओंकी सुरीली ध्वनि : "सौरे कि परूली पधानी पाणि पीजा पाणि" तथा "त्वीलै धरो बौला बचू त्वीलै धरो बौला" अत्यंत आकर्षक होती है, तरह-तरहकी मिठाइयोंसे तथा अन्य रोचक वस्तुओंसे बाजार भरा रहता है। लेकिन साथमें एक अत्यंत वीभत्स दृश्य भी देखनेको मिलता है। तीन दिनके मेलेमें नंदादेवीके मंदिरके आगे बीसों भैंसों तथा सैकड़ों बकरोंकी बलि दी जाती है। उस भैंसेका अपराध जिसने नंदादेवीको मार डाला था अभीतक वहांके शूरवीर सरलहृदय कहे जानेवाले लोगोंने क्षमा नहीं किया है। उसके वंशजोंको अभीतक प्रतिवर्ष प्राणदण्डस्वरूप फल भुगतना पड़ता है। क्षत्रिय प्रथाके अनुसार हाथमें खुकरी लेकर एक ही झटकेमें भैंसेकी गर्दन काटकर नंदादेवीके चरणोंमें समर्पित की जाती है, इससे क्षत्रियोंको अपने भुजबल दिखानेका एक अवसर मिल जाता है लेकिन आजकल कभी-कभी तो बकरेकी गर्दन काटनेमें ही तीन-चार चोटें करनी पड़ती हैं, भैंसेकी बात कौन कहे? यमराजको अपने प्रिय वाहनकी आत्माको ले जानेके लिये बलिवेदीके पास खड़े-खड़े कितनी देरतक प्रतीक्षा करनी पड़ती होगी, भगवान् ही जानें।

नैनीताल और अल्मोड़ेके कुछ विख्यात पहाड़ी स्थान

अंतिम रेलवे स्टेशन काठ गोदामसे मोटरकी सड़कद्वारा २२ मीलकी चढ़ाई करके आप नैनीताल शहरमें पहुंच जाते हैं। काठ गोदामसे नैनीतालतककी यह मोटर-सड़क संसारकी सुन्दरतम सड़कोंमें-से एक है। हरे-भरे वृक्षों तथा लताओंसे, रंग-विरंगे फल-फूलोंसे, चहचहाते पक्षियोंसे, कल-कल करते जल-प्रपातोंसे तथा अनेक प्रकारके पशुओंकी विचित्र आवाजोंसे भरी इन पर्वतमालाओंकी गोदीके बीच नागिनकी तरह इठलाती, बल खाती सांवले रंगकी यह सड़क बहुत ही सुन्दर लगती है। इसका वर्णन पं. जवाहरलाल नेहरूने अपनी पुस्तक 'हिंदुस्तानकी कहानी' में अत्यंत रोचक शब्दोंमें किया है। नैनीताल नगर समुद्रकी सतहसे ६३५० फुटकी ऊंचाईपर बसा है। परंपरागत कथाके अनुसार इसका नामकरण भगवती माता नैनादेवीके नामपर ही हुआ था जिनका एक भव्य विशाल मंदिर इसकी झीलके किनारे अभी भी विद्यमान है। लेकिन इस नगरका निर्माण अंग्रेजोंके हाथों हुआ। एक शताब्दी पहले शहाजहांपुरका एक अंग्रेज व्यापारी 'मिस्टर बैरन' घूमता-फिरता इस स्थानपर आ पहुंचा। वह यहांके दृश्यको देखकर मंत्रमुग्ध-सा हो गया। उसने 'आगरा अखबार' नामक अंग्रेजी पत्रमें यहांके सौंदर्यके विषयमें एक काफी बड़ा लेख लिखा। अंग्रेज अफसर उस लेखसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने नैनीतालको उत्तर-प्रदेशीय सरकारकी ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाना स्वीकार किया। नैनीताल सब प्रकारके लोगोंकी मनोवांछा पूरी करता है, संसारत्यागी संन्यासीको एकांतवास, दार्शनिक जिज्ञासुको शांति और चिंतन स्फुरणा, कलाकारको प्रकृतिके सुन्दरतम दृश्य, खिलाड़ीको खेलनेकी अनेक प्रकारकी सामग्री, यहांतक कि आलसीको भी उसके मनोरंजनकी वस्तुएं प्रदान करता है। शायद नैनीतालको देखकर यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्षकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक अनेकतामें एकता, एक नारा ही नहीं है बल्कि एक जीवंत सत्य है। यहां आपको देशके कोने-कोनेसे आये हुए भ्रमणार्थी, हृष्ट-पुष्ट पंजाबी, बंबईका वैभवशाली पारसी, उत्साही महाराष्ट्री, प्रसन्नमुख दिल्लीवाले, व्यापार-निपुण मारवाड़ी, सीधे-सादे व सरल बिहारी, मुस्कराते भावुक बंगाली तथा सांवले ठिगने लुंगी बांधे कुशाग्र बुद्धिवाले मद्रासी अपनी-अपनी धुनमें मस्त दिखायी पड़ते हैं।

नैनीतालकी प्रमुख चीज यहांकी झील है, इसकी लम्बाई लगभग १४०० मीटर, चौड़ाई ४८० मीटर तथा अधिकतम गहराई ३० मीटर है। यह झील चारों ओरसे हरे-भरे गगन-चुंबी देवदार तथा बांजके वृक्षोंसे आच्छादित पांच ऊंचे-ऊंचे पर्वतोंसे घिरी हुई है। ये पर्वत चीनापीक (८६५९ फी.), हांडी बाडी (७१५० फी.) आयार पाट्टा (७६४० फी.) तथा देवीपाट्टा (७९९० फी.) हैं। चीनापीकसे हिमालयका सबसे सुन्दर दृश्य देखनेको मिलता है। नैनीतालकी झीलको घेरती हुई २,१/२ मील लंबी सड़कपर सदा चहल-पहल रहती है। दिनमें अनेक प्रकारकी रंग-विरंगी छोटी-बड़ी नावोंसे तथा तैराकोंसे इसकी गोद भरी रहती है, जब कि रात्रिकालमें इस झीलको घेरे हुए पर्वतमालाओंमें लगे अनेक प्रकारके बहुरंगी विद्युत् प्रकाशोंका तथा ऊपर नील गगनमें चमचमाते तारोंका प्रतिबिंब इसके जलमें पड़ता है तो इसके सौंदर्यमें चार चांद लग जाते हैं। नैनीतालके निकट और भी कई सुन्दर झीलें हैं, खुरूपताल, नौकुचियाताल, सातताल और भीमताल। भीमतालकी झील नैनीतालकी झीलसे भी लंबाईमें काफी बड़ी है। इसका नाम पांडुपुत्र भीमसेनके नामपर पड़ा। लोकोक्ति है कि एक समय भीमको अपने बाहुबलपर बहुत घमंड हो गया था। श्रीकृष्णने उनके घमंडको चूर करनेकी युक्ति खोज निकाली। महाभारतके युद्धके पूर्व श्री हनुमान जी भीमतालके पास ही कहीं रहते थे, श्रीकृष्णने भीमसेनको आज्ञा दी कि वह हनुमानजीके पास जायें और उनको अपने पक्षकी ओरसे युद्ध करनेके लिये निमंत्रण दें। भीमसेनने आज्ञाका बाह्य रूप पालन तो किया लेकिन मन-ही-मन सोचने लगे कि आखिर श्रीकृष्ण ग्वाला ही तो है, वह युद्धकी

बात क्या जाने ? मुझ जैसे पराक्रमी वीरको एक बंदरके पास निमंत्रण देने भेज रहा है। इसी तरहके दर्पपूर्ण विचारोंसे भरा मन लिये भीम हिमालयके इस स्थानपर पहुंचे। सहसा क्या देखते हैं कि एक भीमकाय अजगरने रास्ता रोक रखा है। भीम उसका सिर मालूम करनेके लिये आगे बढ़े। उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि वह वस्तु अजगर नहीं है बल्कि एक भीमकाय बंदरकी पूंछ है। भीमसेनको कुछ क्रोध हो आया। उन्होंने कठोर शब्दोंमें बंदर-को फटकारते हुए कहा, "अपनी पूंछ समेट ले।" बंदरने बड़े ही नम्र शब्दोंमें उत्तर दिया कि भाई, मैं अब बहुत बूढ़ा हो चुका हूं। बदनमें शक्ति नहीं रही। तुम्हीं इसे हटा दो। भीमसेन बांहें समेटकर उसको हटानेका प्रयत्न करने लगे। सारी शक्ति लगा देनेपर भी वे उसे एक इंच भी नहीं हटा सके। तब तो भीमके क्रोधका ठिकाना न रहा, झटसे अपनी गदा उठाकर जोर-जोरसे उसपर प्रहार करने लगे, उनकी कोई चोट पूंछके एक हिस्सेपर पड़ती थी तो कोई दूसरे हिस्सेपर। लेकिन उन चोटोंका कुछ असर नहीं दिखायी दिया। अब भीमको ज्ञान हो गया कि ये बंदर और कोई नहीं रामभक्त हनुमान ही हैं। तत्काल चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की और युद्धका निमंत्रण भी दे दिया। कहते हैं कि गदा-प्रहारसे पृथ्वीमें बड़े-बड़े खड्डे हो गये थे। बादमें बरसातका पानी भर जानेसे ये खड्डे उन झीलोंमें परिणत हो गये जिनका वर्णन हमने अभी किया है। अब पाठकगण अंदाज़ लगा सकते हैं कि हनुमानजीकी पूंछ कितनी बड़ी होगी।

भवाली :—

नैनीताल नगरसे सात मील पूर्व-दक्षिण की ओर भवाली नगर है। चहुं ओरसे चीड़के वृक्षोंसे घिरे हुए इस नगरमें एक बहुत बड़ा तपेदिक (T.B.) अस्पताल है। देशके हर कोनेसे यहांतक कि विदेशोंसे भी तपेदिकके रोगी अपने इलाजके लिये यहांपर आते हैं। कमला नेहरू, सुभाष बोस आदि यहां रह चुके हैं।

रामगढ़ :—

रामगढ़की वादी खूब खुली और चौड़ी है। इसके चारों ओर ऊंची-नीची पहाड़ियां हैं जिन-पर मीलोंतक फलोंके बाग फैले हैं। वसंत ऋतुमें तो आडुओं, सेबों, नाशपातियों, खुमानियों और आलूबुखारोंके श्वेत और गुलाबी फूलोंके विस्तृत भूखंडोंको देखकर आत्मा तृप्त हो जाती है। इसकी सबसे ऊंची चोटी 'गागर' ऋषिके नामसे विख्यात है। वहींपर एक छोटा-सा मंदिर उनकी स्मृतिका प्रतीक अब भी खड़ा है। रवींद्रनाथ टैगोर भी एक बार भ्रमण करते हुए यहांपर आये थे। उनको यह स्थान इतना अधिक प्रिय लगा कि यहांपर शांति-निकेतनकी स्थापना करनेका विचार एक बार उनके मनमें आया था। रामगढ़में श्रीअरविंदाश्रमके भी दो बाग हैं। इनके अति-रिक्त यहां आश्रमका एक छोटा-सा केंद्र भी है जिसे श्रीमाताजीने 'तपोगिरि' नाम दिया है। तपो-गिरिका वातारण वास्तवमें तपोवन जैसा ही है। प्रकृतिके प्राणदायी संपर्कमें प्रार्थना, ध्यान, चिंतन, स्वाध्याय आदिके लिये यह अत्यंत उपयुक्त स्थल है।

रानीखेत :—

नैनीतालसे ३० मील आगे पूर्वकी ओर बसा हुआ रानीखेत नगर प्राकृतिक दृश्यों तथा फलों-के बागोंके लिये भारतवर्षमें प्रसिद्ध है। लोकोक्ति है कि एक रानी यहांपर आकर बस गयी थी। उसीके नामसे इसका नाम रानीखेत पड़ा। लार्ड मेयो जो १८६८ ई. से १८७२ ई. तक भारतके वाय-सराय थे, यहांके मनमोहक दृश्योंको देखकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सेनाके सदर मुकामको शिमलासे हटाकर यहां बसानेका संकल्प किया। रेलद्वारा रामनगरसे इसको जोड़नेके लिये, इंजी-नियरोंको सर्वे करनेका आदेश भी दिया गया। लेकिन दुर्भाग्यवश १८७२ ई. में वायसराय साहबकी अंडमान द्वीपमें हत्या कर दी गयी जिससे यह कार्य अधूरा ही रह गया। उसी कालमें सेनापति

विलियम मैन्स फील्डने मेजर लैंगको अंग्रेजी सैनिकोंके निवासके लिये एक पहाड़ी स्थल खोजनेके लिये भेजा, उनको यह स्थान बहुत पसंद आया। कहते हैं कि उस समय केवल १३०९४ रुपयोंमें अंग्रेजी सरकारने इस सारे नगरको खरीद लिया था। अभी भी कुमायूं रेजीमैंटका प्रधान कार्यालय यहीं है। रानीखेतसे ३ मीलकी दूरीपर चौवटिया अपने रमणीक दृश्योंके लिये संसारभरमें प्रसिद्ध है।

अल्मोड़ा :—

रानीखेतसे तीस मील (मोटरकी सड़कसे) और आगे उत्तर-पूर्वकी ओर समुद्रकी सतहसे ५४०० फीटकी ऊंचाईपर बसा हुआ अल्मोड़ा नगर है। जलवायुकी दृष्टिसे संसारभरके अच्छे स्थानोंमें इसकी गणना होती है। प्रायः सभी पहाड़ी स्थलोंमें प्राकृतिक दृश्योंकी महानता होनेसे, पर्यटक वहांकी प्राचीन कथाओं तथा भूतकालीन इतिहाससे प्रायः अपरिचित ही रहता है। लेकिन अल्मोड़ेका सौंदर्य यहांके भूतकालीन इतिहास और इसकी पौराणिक कथाओंके साथ मिलकर एक हो जाता है। मैदानोंकी गर्मीसे झुलसा हुआ, शक्ति-विहीन-सा लगता पर्यटक जब अल्मोड़ा नगरमें पदार्पण करता है तो सचमुच उसे एक नूतन जीवन और नूतन बलका आभास होता है। यहांसे हिमालयका दृश्य अत्यंत सुन्दर दिखायी पड़ता है। ऊषाकालमें हल्का लाल रंग, मध्याह्नमें सफेद चांदीकी तरह चमचमाता और संध्याकालमें पीत-स्वर्ण रंगसे हिमराज सुशोभित रहते हैं मानो इनकी लाड़ली बेटी उमा प्रातःकाल 'चतुर्वक्त्राम् रक्तवर्णा हंसवाहनसंस्थिताम्' गायत्री रूपसे, मध्याह्न कालमें शुक्लवस्त्रां त्रिलोचनाम् सावित्री रूपसे, तथा संध्याकालमें पीतवस्त्रां चतुर्भुजाम् सरस्वती रूपसे इनसे मिलने आती हैं। लेकिन जब पर्यटक इनकी ओरसे मुंह हटाकर अल्मोड़ेकी ओर निहारता है तो वह इस नगरके सुप्त सौंदर्यकी मन-ही-मन प्रशंसा करने लगता है। एकके ऊपर दूसरा चढ़ा लंबे-लंबे चबूतरोंके समान खेत ऊंचे-ऊंचे चीड़के वृक्ष और मृदु शब्दमें निनाद करते बहते हुए झरने बहुत ही अच्छे लगते हैं। रात्रिकालमें घरोंमें, दुकानोंमें तथा रास्तोंमें लगी रंग-विरंगी विद्युत्-बत्तियोंसे जगमगाता यह नगर दूरसे ऐसा लगता है मानो किसी जौहरीकी दुकानके शो-केसमें रखा हुआ जवाहरातसे जगमगाता डिब्बा हो। रात्रिकालकी भयानक निस्तब्धताको कभी-कभी भंग करता है चीड़के वृक्षोंसे तेजीसे आता हुआ सर सर करता पवन, दूर जंगलमें आवाज करता शृगाल, निकट कहींपर पेडुकी पक्षीका गुटगुटाना। खुले आकाशके नीचेसे तेजीसे निकल जानेवाले पक्षीदलके पंखोंसे निकलती आवाज बहुत अच्छी लगती है। अल्मोड़ेकी लंबी-चौड़ी पत्थरोंसे जड़ी सड़कोंमें इसका भूतकालीन इतिहास दबा पड़ा है। यहांका किला जो गर्वसे अपना मस्तक उठाये हुए पूर्वकी ओर ताक रहा है, ऐसा लगता है मानों वह अपनी मूक भाषामें भूतकालमें यहांपर लड़ी गयीं अनेक लड़ाइयोंकी बातें कह रहा हो। सन् १७४७ में राजा कल्याण चंदकी मृत्युके पश्चात् धीरे-धीरे यहांपर गोरखोंका प्रभाव बढ़ने लगा और १७९० ई. में गोरखोंने इसे पूर्ण रूपमें जीत लिया। ये लोग जंगली प्रकृतिके, अपढ़ तथा क्रूर थे। इनके शासनकालमें यहांकी जनताको बहुत कष्टोंका सामना करना पड़ा। उस कालमें यहांके गोरखा मंत्रिमंडलके राजगुरु अल्मोड़ेके एक जोशीजी थे। जोशीजी मन-ही-मन यहांकी जनताको इस शासनसे मुक्ति दिलानेके उपाय सोच रहे थे। आखिर २५ वर्षके बाद वह समय भी आ ही गया। २८ फरवरी सन् १८१५ में अंग्रेजोंने इस नगरपर चढ़ाई कर दी। इस लड़ाईमें अंग्रेजी फौजने युद्धसामग्रीको ले जानेके लिये हाथियोंका भी उपयोग किया था। लेकिन यहांपर चौड़े रास्तोंके न होनेसे और पहाड़ी रास्तोंसे बिलकुल अपरिचित होनेके कारण गोरखोंसे युद्धमें मुकाबला करना मुश्किल हो गया, अंग्रेजी फौजके पांव उखड़ने लगे। श्रीजोशीने उपयुक्त समय देखकर उससे लाभ उठाया। वे गुप्त रूपसे अंग्रेजोंसे मिल गये और उनको पहाड़ी रास्तों तथा गोरखा फौजकी स्थितिका भली-भांति ज्ञान दे दिया। फलस्वरूप गोरखोंकी हार हो गयी और यह नगर अंग्रेजोंके हाथमें आ गया।

अल्मोड़ा नगर अपने लोक-नृत्योंके लिये भी प्रसिद्ध है। जगत्-विख्यात नर्तक उदयशंकरने अपने

नृत्यका कला-केंद्र अल्मोड़ा शहरसे २, १/२ मील की दूरीपर स्थित चीड़ तथा काफलके वृक्षोंसे भरपूर सिटोली नामके एक अत्यंत रमणीक स्थानमें खोला था। यहांपर पाताल देवीका एक प्राचीन मंदिर भी है। इसी मंदिरके निकट श्रीआनंदमयी मांके आश्रमकी एक शाखा भी है। प्रत्येक संध्याकालमें भक्तगणोंद्वारा गाये हुए उच्च तथा मधुर स्वरोंसे श्रीकृष्णके भजन तथा कीर्तनकी ध्वनिसे समस्त सिटोलीका वन गूंज उठता है।

श्री स्वामी विवेकानंदजीको भी अल्मोड़ा नगर बहुत पसंद था। विश्वभ्रमणसे लौटनेपर उन्होंने यहांपर अनेक प्रभावशाली भाषण दिये थे। श्री रामकृष्ण मिशनका मायावती आश्रम अल्मोड़ा शहरसे करीव ५२ मीलकी दूरीपर बसा है। अल्मोड़ासे ३५ मीलकी दूरीपर बैजनाथ तथा १८ मीलकी दूरी पर स्थित जागेश्वर मंदिरोंके लिये विख्यात हैं। प्राचीन कालके बाद चंदवंशी राजाओंके समयमें इन मंदिरोंका निर्माण हुआ। इन मंदिरोंकी शिल्पकला देखने योग्य है। जागेश्वर तीर्थस्थान भी माना जाता है। यहां एक विशाल शिव-मंदिर है जो अपने इर्द-गिर्दके छोटे-छोटे सैकड़ों शिव-मंदिरोंसे घिरा हुआ है तथा उसके बीचमें एक निर्मल जलका कुंड है, जिसमें स्नान कर तीर्थयात्री अपनेको पूर्वकृत पापोंसे मुक्त हुआ जानता और परलोकके लिये कुछ रुपये पंडोंको दानस्वरूप देकर अपनेको कृतकृत्य समझता है। इसी जागेश्वरमें आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व श्री कृष्णके अनन्य भक्त एक अंग्रेज साधक अपनी साधना करनेके लिये आये थे। लेकिन यहांके पंडों और पुजारियोंके भीषण विरोध करनेपर ठहरना तो दूर रहा उनको (म्लेच्छ होनेके नाते) मंदिरोंमें प्रवेश करनेकी भी आज्ञा नहीं मिली। तब उन्होंने जागेश्वरसे ३ मील दूर एक पहाड़के शिखरपर एक छोटा-सा आश्रम 'उत्तर वृन्दावन' के नामसे खोला। ये अंग्रेज साधक श्रीकृष्णप्रेमके नामसे विख्यात थे। सचमुच इनमें श्री कृष्णके लिये अनन्य भक्ति और गंभीर प्रेम था। देश-विदेशसे प्रतिवर्ष सैकड़ों लोग इनके दर्शनार्थ यहांपर आते थे। अल्मोड़ेसे ३२ मीलकी दूरीपर एक दूसरा स्थान कौसानी है। कविवर श्री सुमित्रानंदन पंतजीकी जन्मभूमि यही है। यह स्थान गांधीजीको वहुत प्रिय था। वे इसे भारतका स्विटजरलैंड कहा करते थे। यहांसे आप हिमालयकी २९० मील लंवी भव्य श्रेणियोंके दर्शन कर सकते हैं। यहांके डाक बंगलेसे त्रिशूल, चौखंवा, नंदादेवी और पंचहुलीकी चोटियां भी दिखायी देती हैं। यहांपर कस्तूरबा महिला उत्थान मंडल नामक एक बहुत वड़ी संस्था है, जिसमें कुमायूंके सब भागोंसे आयी हुई ६ वर्षसे २० वर्षतककी लड़कियोंको नाना प्रकारकी शिक्षा दी जाती है। ऊन कातना, बुनना, खेतीबाड़ीका काम, बगीचोंकी देख-भालका कामसे लेकर भूगोल, इतिहास, विज्ञान इत्यादि सब कुछ सिखाया जाता है। इसकी देखरेख महात्मा गांधीकी यूरोपियन शिष्या मिस के. एम. हेलमैन जो बादमें सरलाबेनके नामसे पुकारी जाती थीं, करती थीं।

कुमायूंके पर्वतोंमें आप एक विशेषता पायेंगे जो आपको अन्य स्थानोंमें देखनेको नहीं मिलेगी। प्राय: यहांके सभी पहाड़ोंमें किसी-न-किसी देवता अथवा देवीका मंदिर और उसके साथ-साथ किसी साधु या संन्यासीका आश्रम दिखायी पड़ेगा। यहांकी प्राचीन सड़कोंके किनारे प्रत्येक १० मीलकी दूरीपर आपको एक धर्मशाला दिखायी देगी। ऐसी धर्मशालाओंकी संख्या पच्चीस हजारसे भी ज्यादा है। कहते हैं कि एक शौक (तिब्बती व्यापारी) के मरनेके बाद कई लाख-रुपयोंकी संपत्ति उसकी पत्नीको मिली, उसने ही ये धर्मशालाएं बनवायी थीं।

— सुरेश जोशी

कैमरेद्वारा शिकार

वर्तमान युगमें शहरोंके बड़े-बड़े सिनेमा-घरोंमें बैठकर हम वाल्ट डिस्ने या अन्य सिने-निर्माताओंके चित्रोंद्वारा जंगलके बहुतसे रोमांचकारी दृश्योंको देख सकते हैं। यह जानते हुए कि हम जंगलके खतरोंसे पूर्णतया सुरक्षित हैं, हम बड़े-से-बड़े हाथियों, भयंकर भैंसों तथा शेरोंकी लड़ाइयां देखकर उनका आनंद उठा सकते हैं।

अफ्रीकाके जंगल

किंतु आजसे लगभग सौ साल पहले जब अफ्रीकाके जंगलोंमें कैमरे द्वारा शिकार प्रारंभ हुआ, उन शुरू-शुरूके दिनोंमें शेरोंको वशमें करनेके लिये साहस और सूझ-बूझके साथ अनेक प्रकारके उपाय काममें लाने पड़ते थे। आज भी उन वर्णनोंको पढ़कर उनपर विश्वास करना कठिन हो जाता है।

पूर्वी अफ्रीकाके जंगलोंमें शेरोंके निवासके लिये सारजैन्टीका मैदान उन दिनों एक प्रसिद्ध स्थान था जहांपर कभी-कभी शेर (केसरी) पचास-पचासके समूहोंमें पाये जाते थे। किंतु एकाएक उनके चित्र लेना भारी समस्या थी।

शेरोंका विश्वास प्राप्त करना

इसलिये मोटरमें चढ़कर शिकारी लोग उनका झुंड खोज निकालते और मोटर सामनेसे ले जानेकी बजाय पार्श्वमेंसे ले जाकर धीरे-धीरे झाड़ियोंके तथा उनके बीचमें खड़ी कर देते। शेर तबतक अपना स्थान नहीं छोड़ते थे, जबतक कि उनको इन शिकारियोंकी ओरसे कोई भय नहीं होता। शेरोंको देखनेसे लगता कि वे गंभीरतासे उन शिकारियोंके विषयमें सोच रहे हैं। ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखनेके बाद वे उपेक्षासे दूसरी ओर मुंह फेर लेते।

शेरोंको वहीं बैठा छोड़कर शिकारी किसी हिरनकी खोजमें निकल पड़ते। मिल जानेपर हिरनका शिकार करके उसे कांटों और रस्सेकी सहायतासे खींचते हुए लाकर वायुकी अनुकूल दिशामें शेरोंके पास रखकर कुछ दूर चले जाते। इस तरह धीरे-धीरे इन्हें शेरोंका विश्वास मिलता जाता था।

मृग-मांसकी गंध पाते ही समूहका नायक उठकर मंद गतिसे मृगके पास पहुंचता। धीरे-धीरे बाकी शेर भी वहां जुट जाते।

इधर ये शिकारी अवसर देखकर धीमे-धीमे शेरोंकी ओर बढ़ते और उनके चित्र उतारना प्रारंभ कर देते। क्रमशः शेर इन्हें अपने पास देखनेके अभ्यस्त होते गये।

मोटरसे यात्रा करते समय इनमेंसे किसी व्यक्तिका हाथ या पैर बाहर लटकता दीख जाता तो शेर बिदककर भाग खड़े होते थे। मोटर लारीके पीछेका रस्सा वैसे ही लटकता रह जाता तो कई शेर पालतू बिल्लियोंकी तरह उस रस्सेसे खेलने लगते। इधर इन लोगोंको कैमरेसे शिकार करनेके लिये बढ़िया सामग्री मिल जाती।

जॉन हंटरके संस्मरण

इस प्रकारके चित्र-अभियानोंमें भाग लेनेवाले प्रसिद्ध शिकारी जान हंटरने अपने रोचक संस्मरण लिखे हैं। एक बार शेरोंके झुंडका बूढ़ा सरदार, जो जरा-जरा-सी बातमें अपने झुंडके किसी भी

शेरपर बिगड़कर थापें जमाने लगता था, इन शिकारियोंसे बिगड़ खड़ा हुआ। जान हंटरने तुरंत अपनी राइफल उठा ली। शेरकी चहेती एक शेरनीने देखा कि शेरोंको उन लोगोंकी ओरसे किसी प्रकारका भय नहीं है, तो वह भागकर बूढ़े शेरके पास आयी और उसके शरीरके साथ अपना शरीर रगड़कर उसका क्रोध शांत करने लगी। सचमुच ही वह शेर शांत हो गया।

शेर बहुत जल्दी अपनेको परिस्थितियोंके अनुकूल ढाल लेते हैं। जब उन्होंने देखा कि कुछ कृपालु लोग उनके लिये शिकार मार देते हैं और बदलेमें चित्र उतारकर संतुष्ट हो जाते हैं, तो वे मनुष्योंद्वारा मारे गये शिकारपर ही निर्भर हो गये।

बहुतसे वन-प्रदेशोंमें तो वे राइफलका धमाका सुनकर इन शिकारियोंके पास आ पहुंचते और मोटरको देखकर पालतू कुत्तेकी तरह उनके पीछे दौड़ने लगते।

विचित्र संयोग

एक बार जान हंटरको उसके किसी ग्राहकका तार मिला कि वह शेरोंके चित्र उतारने तथा जंगलमें शिकार खेलनेके लिये अपने कुछ मित्रोंके साथ निजी विमानसे केन्या आ रहा है।

कुछ नौकरोंको साथ लेकर जान हंटरने जंगलमें एक जगह घास कटवाकर विमान उतारनेके लिये मैदान बनवा लिया। विमान आनेमें एक घंटा बाकी था तभी नौ शेरोंका एक झुंड उस मैदानके सामनेसे गुजरा। जान हंटरने मोटरमें बैठकर एक हिरन मारा और उसे लाकर विमान उतरनेके मैदानके ठीक सामने रख दिया। कुछ ही देरमें शेर वहां जुट आये और उसे खाने लगे।

जिस समय विमान वहांपर आकर उतरा उस समय शेर अपना भोजन समाप्त करके उठ खड़े हुए थे। भागनेकी बजाय वे विमानके द्वारपर जाकर अभ्यागतोंसे मानों पूछने लगे, "लाओ, हमारे खानेके लिये क्या लाये हो?"

उन ग्राहकोंको सहसा अपनी आंखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। वे तो सोचते थे कि शेरोंकी खोजमें उन्हें जंगलोंमें देरतक भटकना पड़ेगा।

जिस प्रकार मूक-चित्रोंसे बोलते हुए छायाचित्र बनने लगे, उसी प्रकार धीरे-धीरे शेर, हाथी आदिकी बोलियोंके भी रिकार्ड भरे जाने लगे। एक बार भड़क उठनेपर एक शेरनीने पूरे-के-पूरे माइक्रोफोनको ही चबा डाला था।

इस तरहके कामोंमें प्राणोंका भय तो सदा बना ही रहता है, किंतु साहसी लोग उससे विचलित न होकर एक-से-एक रोमांचकारी दृश्यका फोटो उतारकर दर्शकोंके लिये बढ़िया फिल्में तैयार करते ही रहते हैं।

— विराज

नीलकण्ठ

किसी जमानेमें एक राजा था। वह इतना तेजस्वी था कि क्या प्रजा और क्या पेड़-पौधे, बादल, हवा, सूर्य–सब उसकी आज्ञाका पालन करते थे। वैसे तो वह बड़ा न्यायप्रिय था और प्रत्येक व्यक्तिकी विपत्तिमें सहायता करता था, पर एक बार भूलसे उसने एक गरीब आदमीके साथ कुछ अन्याय कर दिया। उस गरीब आदमीका नाम था नीलकांत। वह बड़ा पंडित था परंतु भाग्य साथ न होनेके कारण उसे बुरे दिन देखने पड़ रहे थे। उसको अपने साथ किये गये अन्यायपर बड़ा गुस्सा आया। राजाकी सब अच्छाइयोंको क्रोधमें भूलकर उसने दरबारसे जाते हुए बड़े जोरसे कहा — 'ओ अभिमानी राजा, इस वर्ष तेरे राज्यमें पानीकी एक बूंद भी नहीं बरसेगी।" गरीब आदमी होनेके नाते किसीने भी उसकी बातपर अधिक ध्यान न दिया और बात आयी-गयी हो गयी।

बारिशका मौसम आया। ठंडी हवाएं रोज-रोज चलने लगीं। सब लोग व्यग्रतासे पानी बरसनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन काले-काले बादल आये। लोगोंको पूरी आशा थी कि पानी बरसेगा पर पानी क्या, एक बूंद भी नहीं टपकी। बादलोंने पूरे आकाशको ढक लिया। न पानी बरसता और न सूरजकी रोशनी आ पाती। हवाओंने बहना बंद कर दिया। पेड़ोंके पत्ते सूख-सूखकर गिरने लगे। राजाने ईश्वरसे बहुत प्रार्थना की मगर पानी न बरसा और बिलकुल न बरसा।

किलेमें रखे अनाजसे कबतक काम चलता। लोग भूखे मरने लगे। त्राहि त्राहि मच गयी। अंतमें किसी आदमीने राजाको नीलकांतके शापकी याद दिलायी। राजाने फौरन सारे राज्यमें नीलकांतको ढुंढ़वाया। बहुत मेहनत करनेके बाद नीलकांत अपनी कुटियामें मिला। राजाने उसके पैर-पकड़कर क्षमा मांगी। बड़ी मुश्किलके बाद नीलकांतने केवल इतना कहा कि नीलकण्ठ नामके पक्षीसे कहो। यह कहकर वह फिर चुप हो गया। सारे राज्यमें नीलकण्ठ पक्षी ढुंढ़वाया गया लेकिन किसीने यह नाम नहीं सुना था। तब राजाने अपने मंत्रीसे सलाह की। उसने बताया कि हो सकता है कि नीलकण्ठका मतलब नीली गर्दनवाले पक्षीसे हो। फिर खोज शुरू हुई और अंतमें घरमें ही नीली गर्दनवाला पक्षी पिंजरेमें बंद मिला। अब नीलकण्ठ तो मिल गया लेकिन वह जानेको तैयार नहीं था। बहुत मिन्नतें करनेके बाद उसने जाना स्वीकार किया मगर इस शर्तपर कि राजा उसे अपनी हीरे-मोतियोंसे जड़ी चप्पल दे दे। राजाके लिये तो यह बड़ी छोटी-सी बात थी। उसने झटसे चप्पल नीलकण्ठके आगे कर दी।

चप्पलपर बैठकर नीलकण्ठ कई दिनोंतक आकाशमें मंडराता रहा। चप्पल सूखकर काली हो गयी फिर भी वह उड़ता रहा। इसी तरह उड़ते-उड़ते वह काले बादलके पासतक जा पहुंचा। नीलकण्ठने बादलसे प्रार्थना की कि वह पानी बरसाये। मगर बादल पलटकर बोला — "भला मैं क्यों उस बेईमान राजाकी बात मानने लगा।" नीलकण्ठको पहले ही पता था कि बादल ऐसा कहेगा। उसने चप्पल कसकर बादलको दे मारी। उसी वक्त पानी बरसने लगा। सबके सब नाच उठे। नीलकंठ न जाने कहां उड़ गया पर वह चप्पल पानीके साथ नीचे गिरी।

नीचे तो सब खुशीमें मग्न थे। हर आदमीने अपना काम-धंधा फिर शुरू कर दिया था। ठंडी हवामें पानीकी फुहारें पड़ रही थीं। राजा अपने महलके आंगनमें बैठा हुआ बड़े-बड़े कर्मचारियोंके साथ बातें कर रहा था। तभी वह चप्पल पानीके साथ उसके सिरपर गिरी। नीलकांत भी राजाके पास था। उसने फौरन खड़े होकर कहा — "देखिये महाराज, एक पक्षी भी बेईमानकी इज्जत समझता है।" सब लोग हंसने लगे।

तभीसे लोग नीलकंठसे दुआएं मांगते हैं।

—कृष्णकुमार टीकमगढ़ी

बुद्धिकी बातें :

लक्ष्मीप्रसादजी बोले

अब लक्ष्मीप्रसादजीने अपनी नीति बदल ली। उनका कहना है कि खाली कहानियां सुनाना तो विशेष लाभदायक नहीं है। उन्हींके शब्दोंमें कहें तो दिमागी ऐयाशी (मानसिक विलास) है। अब उन्होंने हर एककी बारी लगा दी है, पहले और सबको कहानी सुनानी पड़ती है अंतमें वे कुछ सुनाते हैं। आज भी कुछ ऐसा ही कार्यक्रम था।

आजकी गोष्ठीका आरंभ किया राजेशने। उसने कहा, एक काना जमींदार था। स्वभावका बड़ा गरम। प्रजा उससे कांपती थी। कहा जाता है कि काने प्रायः बहुत चालाक और धूर्त होते हैं। औरोंके बारेमें तो मैं नहीं जानता पर यह जमींदार तो सचमुच बहुत धूर्त था। एक दिन यह अपनी बैठकमें बैठा तिहाई वसूल कर रहा था। जो सीधे-सीधे दे जाते वह तो बच जाते, बाकीको मुर्गा बनना पड़ता; लातें, घूंसे और बेंत खाने पड़ते। उगाहनीके समय कोई भी भला आदमी उस जमींदारके पास जाते डरता था। एक दिनकी बात है, उगाहनी चल रही थी। उसी समय किसी और गांवका काना उधर जा निकला। एक मनचला युवक उसे देखकर हंस पड़ा। कानेने पूछा, बात क्या है? उसने कहा, एक ही क्या कम है जो तुम दूसरे आ डटे। कानेने काने जमींदारकी बात सुनी तो उससे मिलनेके लिये हठ करने लगा। लोगोंने समझाया, इस समय मत जाओ, नाराज हो जाय तो न जाने क्या कर बैठे पर कौन सुननेवाला था। वह सीधा जमींदारके यहां जा पहुंचा और दण्डौत करके उसके पास ही बैठ गया। जमींदारने सोचा, यह जरूर कुछ उत्पात करने आया है, इसलिये उसके साथ बड़ी मीठी तरह बातें करने लगा। काना चिल्लाया, अरे, यह सब पीछे, पहले मेरी सुन लीजिये। जमींदारने कहा, मैं इतना काम खतम कर लूं, तबतक तुम खाना खा लो। काना बोला, अरे, कहांका खाना, कैसा खाना, यहां दिल जल रहा है, तुम्हें पैसोंकी पड़ी है। मजबूर होकर जमींदारको अपना काम छोड़कर उसकी बात सुननी पड़ी। उसने कहा, देखो, हमारे कानोंकी बिरादरीने निश्चय किया है कि कानोंकी मिलकियत कभी दो आंखवालोंके पास नहीं जाने दी जाय। अब या तो तुम अपने बेटेको काना बना दो या मुझे ही अपना उत्तराधिकारी चुन लो। बेचारा जमींदार चिंतामें पड़ गया। और यह काना उसे उल्लू बनाकर उसका आतंक तोड़कर वहांसे चलता बना।

मुकेशने कहा, छिः, यह भी कोई कहानी हुई। इससे अच्छी तो मैं सुनाता हूं। एक राजा था। उसकी दो लड़कियां थीं। दोनों बड़ी उत्पाती और दबंग। दोनों ही सारे महलको सिरपर उठाये रहती थीं। लोग सोचा करते थे, यहां तो ठीक है, बापके डरसे कोई कुछ नहीं बोल सकता, पर जब इनका व्याह होगा तब इन्हें सब आटे-दालका भाव मालूम हो जायगा। पर लड़कियां भी कम न थीं। दोनोंने शर्त्त रखी कि जो उनसे शादी करना चाहे उसे रोज सवेरे जूते खानेके लिये तैयार रहना चाहिये। लड़कियां बहुत सुन्दर थीं, इसलिये बहुतसे राजकुमार और रईसजादे आते थे पर शर्त सुनते ही सबका मुंह उतर जाता और सबके सब उल्टे पैरों लौट जाते थे।

एक बार दो नौजवान आये और उन्होंने यह शर्त्त स्वीकार कर ली। दोनों राजकुमारियोंकी शादी हो गयी और दोनों अपनी-अपनी ससुराल चली गयीं। जाते समय मां-बापने अपनी बेटियोंको समझाया, पुरोहितने, दीवानने, सबने समझाया कि देखो, अब पति ही तुम्हारा सब कुछ है, उसके साथ ऐसी-वैसी हरकत न करना। जूते मारनेकी बात मजाकके रूपमें थी या फिर नौजवानोंकी परीक्षाके लिये, उसे कहीं सचमुच कर न बैठना। बहुत दिनोंतक कोई समाचार न मिला। लोग जाननेको

उत्सुक थे कि आखिर हुआ क्या ? फिर एक दिन किसी अवसरपर राजाने दोनों बेटियों और दामादोंको बुलाया। दोनों दामाद एक-दूसरेको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पहला अवसर पाते ही एकांतमें जाकर बातें करने लगे। बड़ी लड़कीके पतिने कहा, अरे भई, मैं तो मारा गया। मैं सचमुच जूते खानेकी आशा न करता था। मैंने सोचा था दो-एक दिन जूते पड़ेंगे फिर शांति हो जायगी, इसी भरोसे राजकुमारीसे ब्याह करनेको तैयार हो गया; पर यहां तो ऐसी चण्डिकासे पाला पड़ा है कि वह दिन था और आजका दिन है, रोज सवेरे दस जूते खाने ही पड़ते हैं, वह कभी बीमार भी तो नहीं होती जो मुझे मार खानेसे फुर्सत मिले। मैं कुछ कह भी नहीं सकता, क्योंकि अपने-आप समझ-बूझकर उखलीमें सिर दिया है। क्यों, तुम्हारा क्या हाल है ?

छोटे दामादने कहा, मैंने कभी मार खानेसे इंकार नहीं किया पर मजाल है कि उसने कभी हाथ भी उठाया हो। बड़ेने कहा, अरे, यह कैसे हुआ ? क्या रहस्य है ? छोटेने जवाब दिया, पहले ही दिन जब मैं स्त्रीको लेकर घर पहुंचा तो मेरे सोकर उठते ही मेरी व्यवस्थाके अनुसार एक बिल्ली सामनेसे गुजरी। मैंने आव देखा न ताव, पाससे तलवार उठायी और बिल्लीके दो टुकड़े कर दिये। दो-तीन दिनतक यही नाटक होता रहा। मैं सवेरा होते ही तलवारका हाथ दिखा देता था। परिणामस्वरूप मेरी स्त्रीके ऊपर एक आतंक छा गया और जूते मारनेकी बात उसके दिमागसे एकदम गायब हो गयी। अब हमारी गृहस्थी बड़ी शांतिके साथ चलती है।

यह सुनकर बड़े दामाद हाथ मलने लगे। उन्होंने सोचा, अरे, इतनी जरा-सी बात भी हमें न सूझी। चलो, अब सही। अब घर पहुंचते ही उसने भी यह व्यवस्था की कि उसके सोकर उठते ही एक बिल्ली उधरसे गुजरे। उसने भी एक वारमें बिल्लीका काम तमाम कर दिया। स्त्री यह तमाशा देख रही थी। उसने भी अपनी बहनकी कहानी सुन रखी थी। झट समझ गयी कि यह मेरे ऊपर रौब गांठनेकी कोशिश है। वह उठी और पतिदेवको रोजके दसकी जगह बीस जूते रसीद किये, फिर धीरेसे बोली, मुए, मुझे भी मेरी बहन समझ रखा है क्या कि एक बिल्ली मारनेसे डर जाऊंगी ? ले, अबसे दसकी जगह बीस जूते खानेको तैयार रह।

अब लक्ष्मीप्रसादजीकी बारी आयी। उन्होंने कहा, आज मैं एक छोटी-सी कहानी सुनाऊंगा।

एक राजा था। वह शिकार करने गया। रास्तेमें धूप और धूलकी वजहसे परेशान हो गया। अपने साथियोंसे बिछुड़कर उधर-इधर भटकने लगा। उसे बड़ी जोरकी प्यास लगी थी। इधर देखा, उधर देखा, कहीं पानीका नाम-निशानतक न था। बड़ी दूरपर एक खेत दिखायी दिया। इसने सोचा, चलो, वहां पानी अवश्य मिलेगा। खेतके एक कोनेमें एक झोंपड़ी थी, उसमें एक बुढ़िया बैठी थी। इसने जाते ही कहा मां, पानी। डुकरिया उठी, बोली, बैठ बेटा, मैं अभी आयी। वह एक बड़ा-सा कटोरा लिये अपने गन्नेके खेतमें गयी और एक गन्नेको जरा-सा तराशा, उसका कटोरा रससे भर गया। उसने कटोरा राजाके हाथमें पकड़ा दिया। आह ! ऐसा रस तो राजाने कभी न पिया था। तबियत निहाल हो गयी और वह वहींपर पैर फैलाकर सो गया। सोकर उठा तो उसके अंदर लालच भी जागा। उसने बुढ़ियासे पूछा, तुम्हारा खेत कितना बड़ा है, इससे कितनी आमदनी हो जाती है ? बुढ़िया बोली, अब मेहनत करनेवाला तो कोई है नहीं, तुम्हारा बूढ़ा जब था तब कुछ कर लेता था, अब सब मिलाकर सालमें डेढ़ सौकी आमदनी होती है (उस जमानेके डेढ़ सौ आजके डेढ़ हजारसे भी बहुत अधिक थे), लेकिन मुझे पूरा संतोष है। मेरी दो जूनकी रोटी चल जाती है, आये-गयेकी सेवा हो जाती है, बस, और क्या चाहिये ? राजाने पूछा, और इसपर सरकारी कर कितना देना पड़ता है ? बुढ़ियाने कहा, छः आने साल। राजाने सोचा, मेरे अफसर कितने नालायक हैं, इतनी आमदनीपर खाली छः आने मालगुजारी। अब जाकर उनकी खबर लूंगा। यह सोचते-विचारते राजा चलनेको तैयार हुआ। बुढ़िया बोली, बेटा, और थोड़ा-सा रस पीते जाओ। वह

चाकू और कटोरा लेकर खेतमें गयी। एक गन्ना काटा, दो काटे, तीन काटे, सबमेंसे बूंद बूंद रस टपका और फिर बंद। इस तरह कोई पंद्रह-बीस गन्ने काटकर बुढ़िया आधा कटोरा रस ले आयी। उसने वही मुसाफिरके आगे लाकर रख दिया। राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। बोला, मां! दोपहरको एक गन्नेमें चाकू लगाते ही एक कटोरा भर गया था, इस समय इतने गन्ने काटने पड़े फिर भी आधा कटोरा ही हुआ, इसका रहस्य क्या है? क्या शामको इस गन्नेका रस सूख जाता है? बुढ़ियाने कहा, नहीं बेटा, ऐसी बात तो नहीं है। तुम अपना पी लो और चले जाओ, इन सब बातोंमें क्या धरा है। राजाने बहुत आग्रह किया तो बूढ़ी बोली, बेटा सच-झूठ तो मैं जानती नहीं, हां, सुना है, अगर राजा लालची हो या उसके मनमें फरेब-फंद हो तो ऐसा हो जाता है। अब इतनी दूर बैठे राजाके मनका असर यहांतक कैसे पहुंच सकता है यह मुझसे न पूछो।

राजा मन-ही-मन लज्जित हुआ। बुढ़ियाको प्रणाम करके वहांसे चल दिया। राजधानी पहुंचकर उसने अपना रथ बुढ़ियाको लानेके लिये भेजा। बुढ़िया बड़ी शानसे राजाके रथमें बैठकर आयी। भरे दरबारमें उसका स्वागत हुआ। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजा और कोई नहीं वही मुसाफिर था। राजाने उसका लगान बिलकुल माफ कर दिया और उसे अपनी ओरसे बहुत कुछ उपहार देकर बड़े आदरके साथ विदा किया।

लक्ष्मीप्रसादजी उठने लगे तो बच्चोंने पकड़ लिया। यह कहानी तो बहुत ही छोटी थी, एक और सुनाइये तब जाने पायेंगे। लक्ष्मीप्रसादजी बोले, नहीं, मुझे जानेकी जल्दी है। सोडरजू मर गये, मुझे जाना ही चाहिये। बच्चे सोडरजू की मृत्युका समाचार सुनकर जरा सकुचाये पर बुलबुल ऐसी आसानीसे बातोंमें आनेवाली न थी। वह बोल पड़ी, तो हां, उन्हींकी कहानी सुना दीजिये। सोडरजू कौन थे, कहांके थे और कैसे मर गये। लक्ष्मीप्रसादजीको बैठना पड़ा। वे बोले:

एक था राजा। एक थी रानी। दोनों बहुत सीधे-सादे। राजकाज प्रायः दीवान ही चलाते थे। राजा-रानीको बतियानेसे फुर्सत ही न मिलती। सब समय मुसाहिबोंकी भीड़ लगी रहती थी। एक जाता तो दो आ जाते। मुख्य भवनमें राजा और रनिवासमें रानीका दरबार लगा रहता। एक दिन दीवान कहीं बाहर गये हुए थे। रानीने सोचा, आज महलकी व्यवस्था मैं स्वयं करूंगी। झटपट एक दासीको धोबीके घर भेजा कि जाकर राजाके कपड़े ले आये। धोबी घरपर न था, धोबिन बोली, माफ करो, आज कपड़े तैयार नहीं हो पाये। दासीने गुस्सा दिखाया। धोबिन गिड़गिड़ाने लगी। धोबिन बोली, आज कपड़े कैसे धोते, सोडरजू जो मर गये हैं। दासी जरा अचकचायी। सीधी रानीके पास पहुंची और बोली, आज उनके यहां हड़ताल है। सोडरजू मर गये हैं।

इस राज्यमें प्रथा थी कि राजा या रानीका कोई आत्मीय मर जाता तो सारे राज्यमें हड़ताल की जाती; किसी घरमें चूल्हा न जलता, किसी-किसीके यहां सत्तू, दही, चिड़वा आदि जो चीजें होतीं सो खाकर मुंह पोंछ लेते थे लेकिन आग कहीं नहीं जलायी जाती थी। रानीने सोचा, जब धोबीके यहां हड़ताल है तो कौन जाने सोडरजू राजाके कोई सगे-संबंधी न हों। उसने दरबार बरखास्त कर दिया। महलके चूल्हे बुझा दिये गये। राजाके खाने-पीनेकी भी छुट्टी हो गयी। राजाने समाचार सुना तो सोचा सोडरजू रानीके रिश्तेदार होंगे तभी तो वह उनके लिये इतना शोक मना रही है। बस, सब जगह मुनादी करा दी गयी कि सोडरजूके शोकमें आज हड़ताल रहेगी। जब पेटको हड़ताल करनी पड़े तो चेहरा तो अपने-आप सूख जाता है। बस, सारे राज्यमें एक मुर्दनी-सी छा गयी। सभी सोडरजूके, और सचमुच अपने पेटके दुखसे दुखी थे।

शामको दीवान घर लौटे। सारा वातावरण कुछ अजीब लग रहा था। उन्होंने सोचा, जरा जलपान करके शहरकी हालत देखनेके लिये निकलेंगे। पर खाना कैसे मिलता? सोडरजूका सूतक जो लगा था। दीवानने अपने बाल धूपमें नहीं पकाये थे। उसने गांवके हलवाइयोंको बुलाकर हुक्म

दिया, खूब हलुआ-पूरी तैयार करो और सारे गांवको बांट दो। हलवाइयोंने कहा, "महाराज सोडरजू"। दीवान बोला, तुम जाओ और मेरा हुक्म मानो। बस, फिर क्या था, सारा गांव हलवा-पूरी खानेके लिये आ गया। राजाके यहां भी खबर पहुंची। वह चुपकेसे कुछ खा-पीकर बैठा था। रानीके यहां भी खबर पहुंची। वह भी चुपचाप मुंह जूठा कर चुकी थीं। दीवानने उनके यहां भी एक-एक थाल भेज दिया। जब सब लोग खा पी चुके तब वह निकला सोडरजूकी खोजमें। हर एकसे पूछता गया कि तुम्हें उनके मरनेका समाचार किसने दिया। वह जिसका नाम लेता उससे जाकर पूछता। इस तरह होते होते धोबिनके घर जा पहुंचा। उसने कहा, महाराज, महलकी दासी कपड़े लेने आयी थी। कपड़े तैयार न थे। मैंने कह दिया, सोडरजू मर गये इसलिये कपड़े नहीं धोये जा सके। दीवानने पूछा, यह सोडरजू हैं कौन? धोबिनने कहा, महाराज, सोडरजू मेरा गधा था जिसकी पीठपर लादी रखकर हम लोग घाटपर जाते थे। अब वह मर गया, बड़ी मुश्किल हो गयी है।

'तो लो, मैं भी चला सोडरजूके शोकमें' कहते-कहते लक्ष्मीप्रसादजी उठकर तेजीसे यह जा वह जा........।

शंकर कुरूप

केरल भारतके एकदम दक्षिण भागमें स्थित एक छोटा-सा प्रदेश है जिसका क्षेत्रफल १५००२ वर्गमील और आबादी एक करोड़ सत्तर लाखके लगभग हैं। परंतु वहां शिक्षितोंकी संख्याका अनुपात शायद भारतमें सबसे अधिक, ४९ प्रतिशतके आसपास है। इसका कुछ हिस्सा पहले मद्रास प्रांतमें था और कुछ हिस्सा कोचीन और त्रावणकोरके राजाओंके आधीन था। भाषावार राज्योंके बननेके बाद इन सब हिस्सोंको एक करके केरल प्रदेश बना है। केरलकी भाषा मलयालम है। इस भाषामें संस्कृतके शब्दोंकी प्रधानता है इसलिये इसे समझना बहुत कठिन नहीं होता। केरलकी भूमिको प्रकृतिने विशेष रूपसे सजाया संवारा है। इसे दक्षिणका कश्मीर भी कहा जाता है।

मलयालमका साहित्य अच्छा समृद्ध है। विशेष रूपसे कहानी और कविताके क्षेत्रमें केरलवासियोंने खूब रंग जमाया है। इधर केरलवासियोंने हिन्दीमें विशेष रुचि लेना शुरू किया है। वहां हिन्दी जाननेवालोंकी संख्या बहुत अधिक है। हालमें प्रसादके 'आंसू' और 'कामायनी,' मैथिलीशरणकी 'पंचवटी' तथा तुलसीदासके 'रामचरित मानसका' अनुवाद किया गया है। बिहारी कबीर, पंत आदिके साहित्यका नमूना भी मलयालममें मिल जाता है।

यहां हम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा द्वारा प्रकाशित कवि श्री मालाके आधारपर केरलके प्रसिद्ध कवि जी. शंकर कुरूपका कुछ परिचय दे रहे हैं।[1]

शंकर कुरूपका जन्म तिरुवितांकूरके नायत्तोडु नामक गांवमें एक दरिद्र परिवारमें हुआ था। इनके पिताका नाम शंकर वारियर और मांका नाम लक्ष्मी कुट्टी था। इनके पिता इन्हें बहुत छोटी आयुमें ही छोड़कर चल बसे थे और इनकी देखभाल इनके मामा करते थे जो कि अपने-आप एक अच्छे पंडित थे। इन्होंने ९ वर्षकी छोटी आयुमें ही कविता लिखना शुरू कर दिया था। एक बार ये किसी कारणसे मूर्छित होकर गिर पड़े। अच्छे हुए तो जिस साथीने सहायता की थी उसके प्रति

---

[1] जिन्हें १९६४ का साहू जैन पुरस्कार (एक लाख) मिला था।

कृतज्ञता प्रकाशन करते हुए संस्कृतके कई श्लोक रच डाले। इनके बचपनके दो अध्यापकोंने इनकी काव्य-प्रतिभाको खूब प्रोत्साहन दिया। एक थे एम. एन. नायर दूसरे आर. एस. शर्मा। बीस वर्षकी आयुमें ये तिरुविल्बामलामें मलयालमके अध्यापक बन गये। यहां अपने ही प्रयाससे इन्होंने अंग्रेजी सीखी। होते होते कुरूप एरणाकुलमके महराजा कालिजमें मलयालमके प्राध्यापक बन गये। इनके विद्यार्थियोंमें शायद ही कोई ऐसा हो जिसके ऊपर इनकी विशेष छाप न पड़ी हो। काव्यके हृदयतक ले जाकर उसके सौंदर्यका आस्वादन कराना ही अध्यापक रूपमें इनका मुख्य उद्देश्य था।

इस जमानेमें रहते हुए भी कुरूप किसी वाद या दल विशेषके साथ संबंध नहीं रखते। लड़कपनमें उन्हें मलयालमके प्रसिद्ध कवि कुञ्जुन तम्पुरामके साथ मिलनेका अवसर मिला था। उन्हें देखते ही इनके मनमें महाकवि बननेकी इच्छा अंकुरित हो उठी और समय आनेपर ये सचमुच मलयालमके बड़े कवियोंमें गिने जाने लगे। इनकी कविता विविध विषयोंपर लिखी गयी है। हिन्दीके छायावादी कवियोंकी तरह इन्होंने प्रकृतिका मानवीकरण किया है और मानवीकृत वस्तुओंसे तादात्म्य स्थापित करके तथा उन्हें अपना साथी और मित्र बनाकर सुख दुःख, आशा निराशाकी कथाका विवरण दिया है, उन वस्तुओंको जीभ और वाणी देकर उनसे अपनी कथाका विस्तार कराया है और उन्हीं वस्तुओंके जरिये उनके पीछे रहनेवाली सर्वव्यापी परम शक्ति और ज्योतिका अनुभव किया है और उसका यशोगान किया है।

कविताके अतिरिक्त कुरूपने पांच नाटक भी लिखे हैं। इनका नाटक इरिटिनुमुप्पु १९३५ में लिखा गया था। जब मसोलिनीकी सेनाएं अबीसीनियाका गला घोंटनेका प्रयास कर रही थीं, भारतीय जनताको अबीसीनियाके साथ पूरी सहानुभूति थी पर वह कर ही क्या सकती थी? कुरूपने अपने नाटकमें धर्म, नदी, मरुभूमि, आकाश, स्वतंत्रता, पर्वत, भूमि, पुष्प और अबीसीनियाको पात्र बनाया है। अबीसीनिया स्वतंत्रता नामक अपनी संतानको धर्मकी शरणमें लेकर जाती है और गोरी सभ्यताके आक्रमणके विरुद्ध शिकायत करती है। नदी उसकी सखी है, पर्वत और मरुभूमि उसके अंगरक्षक। कर्मके भिन्न नियम, शास्त्र, कला आदि सब शत्रुओंके आधीन हैं। अबीसीनिया अपने पुत्रको धर्मकी शरणमें छोड़कर शत्रुके साथ शक्तिभर लड़नेके लिये जाती है। चलते चलते वह कहती है, “मेरी बड़ी बहनें जो परतंत्र हैं, मेरी इस दयनीय दशाको देखकर दुःख करती होंगी। लेकिन इस स्थितिमें वे कर ही क्या सकती हैं?” कविका कहना है, ‘इस नाटकके मनोराज्य रूपी रंगमंचपर धुंधली होकर चमकनेवाली संध्या वह संध्या है जिसने मानवी मूल्योंको ढंकते और संसारकी प्रगतिको छिपाते हुए आगे बढ़कर दूसरे महायुद्धकी काल-रात्रिका रूप धारण कर लिया।

कुरूप अपनी प्रेरणाके बारेमें कहते हैं, “आत्माके शिखरोंपर कहीं, अब भी बिना सूखे, बहनेवाली वह अद्‌भुत चित्तवृत्ति ही मुझे प्रकृति और मनुष्य-जीवनपर ध्यान देने, उन्हें प्यार करने, उनका आस्वादन करनेका कौतुक प्रदान करती है। वह आत्मीयता ही मेरी कविताका —चाहे वह कितना ही कृश और अपूर्ण क्यों न हो — उद्‌गम स्थान है। — कविता मेरे लिये आत्माभिव्यक्ति ही है।”

अब हम इनकी कुछ कविताओंका रस लेते चलें। “रात चितकबरा हिरण है जिसके शरीरपर नक्षत्ररूपी धब्बे चमक रहे हैं। वह दिन रूपी पराक्रमी शिकारीके चक्रवाल रूपी फंदेसे बचनेका कठिन प्रयत्न कर रहा है। शिकारीने पीछेसे किरणोंके बाण चलाकर हरिणको गिरा दिया और उसके लोहू-लुहान शरीरको कंधेपर रखकर सामने आया।”

एक और जगह वे कहते हैं, “आंधी और मेंह क्षणिक हैं। श्याम, शांत, रमणीय कांतिवाला अंबर उनसे थोड़ा ढक भले जाय पर ये उसके अस्तित्वको नहीं मिटा सकते। उस महान् और नित्य तत्त्वका गान गाओ।

“छायाकी तरह लोककी मुख-मुद्रा बदल सकती है लेकिन उसके अंदर सुन्दर सत्ता स्थिर बनी

रहती है, विविधताके तलमें एक अरूप जीवन छिपा है, मैं नक्षत्रोंमें जागता रहूंगा और आंधीमें जोरसे रुदन करता हुआ उड़ता रहूंगा, चन्द्रके द्वारा समुद्रसे प्यार करूंगा और समुद्र बनकर सोमलेखाका चुबन करूंगा। क्षमा करो मैं इस तरह घोंसले बदल-बदलकर प्रकृतिमें दौड़ता रहना चाहता हूं।"

कवि सबेरेके नक्षत्रको देखता है और कह उठता है "अंधेरेमें डूबे हुए जगतको चमकानेके लिये धीरे धीरे आनेवाले पावनात्मा, आपको आते देख पक्षी स्वागत गान करते हैं और समुद्र बाजे बजाता है। हे कोमल स्वरूप! तुम्हारे दर्शनसे धानके हरे खेत रोमांचित हो उठे हैं और घने तिमिरका अंतरंग भी प्रकाशमय हो चला है।" इतना कहते कहते कविको उसकी याद हो आती है जिसकी पद-धूलिसे नक्षत्र बने हैं। वह कहता है, "हे प्रेमस्वरूप ईश्वर! तेरे पदारविन्दसे झड़नेवाला यह पराग ही इतना कौतुकमय है, तब स्वयं तेरा दर्शन करनेसे न जाने कितना आनंद मिलेगा।"

यात्रामें कुरूप मशीन युगका वर्णन करते हैं, बीसवीं शताब्दीके रथमें निर्भय और भाग्यवान् मनुष्य बैठे हैं। प्रकृतिकी शक्तियां इसके घोड़े हैं। इन मनुष्योंके सामने प्रकृतिके सब रहस्य खुल जाते हैं। इस मनुष्यका रूप धूलके कणों जैसा है फिर भी वही संसारके पुनर्विधानका अधिकारी है। चंद्रमा अपनी बड़ी बहन भूमिको मानवकी महिमा बताते हुए कहता है, "वही प्रकृति, अंतरिक्ष, ग्रहों और तारोंको, यहांतक कि विधिको भी जीतनेकी क्षमता रखता है।"

इसी तरह विश्व-दर्शनमें कुरूप कहते हैं, "जब तू मेरे पीछे मेरे हृदयस्पंदनोंपर कान दिये खड़ा है तो मेरी जड़ता धीरे-धीरे दूर होती जाती है। मेरे प्राण तेरे स्पर्शसे चमकीले आह्लादके आर्द्रबिंदु लिये हिल उठते हैं और अपनी सारी अल्पताको भूल जाते हैं। मेरी जिज्ञासा एक छोटा-सा बच्चा है जिसे अक्षरोंको मिलाकर पढ़ना भी नहीं आता, फिर भी वह विविध सर्गोंवाले तेरे महाकाव्यके सौंदर्यकी खोज करती रहती है। उसपर अनुग्रह कर, वह सदा जागरूक होकर इस आश्चर्यकथाका रस ले सके।"

भारत मांको संबोधन करके कवि कहते हैं, "शरतकी ऊषाकी शोभा, प्रकाशकी स्वच्छ और धवल छतरी धीरे-धीरे खुल रही है। देवी, स्वातंत्र्यके ऊंचे रत्न-पीठपर आ विराजो। माता, सैकड़ों भाषाओं, सैकड़ों गानों और सैकड़ों अंतरराष्ट्रीय मंडलोंमें तुम्हारा नाम गूंज उठा। विश्वको रंजित करनेवाली, सुन्दर मुखको ऊपर उठाते हुए ईश्वरकी कृपाका वंदन करो।

"भय दूर! आशंका दूर! नया युग उदित हो गया है। नयी किरणें कहने लगीं, 'यह पताका देखी?' खेत, खलिहान, वन, समुद्र, गांव और शहर — सब-के-सब इस वरदान बरसानेवाली ध्वजाकी सौम्य स्निग्ध छायामें शांति और ऐश्वर्य प्राप्त करें। ओ राष्ट्रोंकी नायिके, अभंगुर मंगलवाली ईश्वरकी दयाको प्रणाम करो। तुम्हारी जय हो।"

इस अंतिम अंशको कुरूपके शब्दोंमें सुनकर जरा मलयालमका स्वाद भी ले लीजिये :—

भयमें, दूर, द्दूरयांशके, नवयुगों —
दयमाय, जबरश्मि पूशुमि क्कारिकण्टो?
मेंटुकळ, वयलुकळ, काटुकळ, कटलुकळ,
नाटुकळ, नगरङ्ङळाक्कचुं मेले मेले,
ई अनुग्रहं तूकुं काटि तन सौम्य स्निग्ध
च्छाया मिलू प्रापिट्टे शांतियुमश्वर्यपुम!
राष्ट्रनायिके द्दैवग
तन दयक्कभंगुर मंगळे, जायिच्चालुम!

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाद्वारा प्रकाशित कवि श्री मालाकी पुस्तक 'शंकर कुरूप'के आधार पर]

सन् सत्तावनका पहला शहीद

मंगल पाण्डेय

बात सन् १८५७ की है। सारे हिंदुस्तानमें खलबली मची हुई थी। हिंदू और मुसलमान सब-के-सब फिरंगीके राजसे बेजार थे और दोनों ही अनुभव करते थे कि फिरंगीने तलवारके जोरसे नहीं बल्कि षड्यंत्रके जोरपर सारे देशको अपने वशमें कर लिया है, जो घरमें सामान देखने-दिखाने आये थे वे घरके मालिक बन बैठे थे। चारों ओर एक आग सुलग रही थी। लेकिन इतनी धीमी कि किसीको संदेहतक न होता था। कभी-कभी इधर-उधर जरा-सा धुंआ दिखायी दे जाता था परंतु उसे कोई गंभीरतासे न सोचता था। नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, वजीर अली, नकी खां आदिने इस चतुराईसे काम किया था कि किसीको कानों कान खबरतक न होने पायी। जफर अपनी माशूक (प्रेयसी) को उलाहने देनेके पर्देमें कम्पनी सरकारके विरुद्ध प्रचार कर रहे थे। साधु और फकीर कमल और रोटीकी बातें करते थे और किसी भेदियोको भी पता न लग पाता था कि इस सबके पीछे क्या है। इतनी महत्त्वपूर्ण बातको छिपाये रख सकना अपने-आपमें एक आश्चर्यजनक चीज है। और फिर मजा यह कि यह सारा आंदोलन किसी वर्ग विशेष या जाति विशेषतक ही सीमित न था। इसमें सिपाही, पुलिस, जमींदार, मालगुजारीके अफसर, किसान, मजदूर, सेठ साहूकार आदि सब तरह-के और आपसमें एक-दूसरेके साथ टकरानेवाले लोग भी सम्मिलित थे। सबकी दृष्टि एक ही लक्ष्य-पर थी—किसी तरह भारतमांकी बेड़ियां काटी जायं। आज यह विश्वास करना मुश्किल है कि जिस आंदोलनमें इतने लोग मिलकर काम कर रहे थे वह गुप्त रहा और अंग्रेजोंके कानमें उसकी भनकतक न पड़ने पायी।

अभी क्रांतिकी तैयारियां हो ही रही थीं कि बदकिस्मतीसे कम्पनी सरकारने चरबीवाले कारतूस चलाने चाहे। संभावना यह थी कि बंगालमें स्थित सेनाओंको इनका प्रयोग करनेके लिये कहा जायगा। बैरकपुरमें जो सेना पड़ाव किये हुए थी उसे असीनकी खांने बगावतके लिये तैयार कर रखा था। इस सेनाने १९ वीं टुकड़ीको भी अपने साथ कर लिया था। अंग्रेजोंने यह जाने बिना १९ वीं टुकड़ीको इन कारतूसोंका उपयोग करनेका हुकुम दिया। ठीक हो या गलत पर सेनामें यह बात फैल गयी थी कि फिरंगीने इन कारतूसोंमें गाय और सूअरकी चरबी लगायी है। इसलिये हिंदू-मुसलमान दोनों समान रूपसे बौखला उठे। उन्होंने इन कारतूसोंको छूनेसे भी इंकार कर दिया और कह दिया कि अगर उनपर जोर डाला गया तो वे तलवारें सूंतकर अफसरोंपर पिल पड़ेंगे। डराने-धमकानेका कोई असर न हुआ। बर्मासे गोरी सेनाएं बुलायी गयीं और उन्हें यह हुकुम दिया गया कि वे १९ वीं टुकड़ीसे हथियार रखवा लें। वह टुकड़ी तो सेना छोड़नेके लिये उत्सुक थी ही, उसके साथ ३४ वीं टुकड़ी तथा कुछ अन्य टुकड़ियां भी बगावत करनेपर उतारू हो गयीं। परंतु उनके नेताओंने धीरजसे काम लेनेकी सलाह दी। उनकी इच्छा थी कि सब लोग आपसमें सलाह करके सारे भारतके लिये एक ही दिन निश्चित करें। लेकिन दुर्भाग्यवश भारतमें गरम खूनकी और सिर काटनेवालोंकी कमी न होते हुए नियंत्रणमें रहनेवालोंकी कमी रही है। योजनाके अनुसार साथ मिल-कर काम करनेवालोंकी कमी रही है। राजस्थान, बुंदेलखंड आदिके वीरताभरे इतिहासमें हमें पग-पगपर अतुल शौर्यके उदाहरण मिलते हैं, असीम त्याग और जानपर खेल जानेकी उत्कंठामें हम किसी-

से कम नहीं रहे, परंतु एक सामंजस्यपूर्ण सुसंगठित नियंत्रणके नीचे काम करना हमें न पहले आता था और न अब आता है। अस्तु।

यहां भी यही हुआ। कुछ मनचले युवकोंकी यह इच्छा थी कि उनकी टोली अंग्रेजोंको पहला कदम उठानेका मौका ही न दे। वे स्वयं आगे बढ़कर अंग्रेजोंके विरुद्ध जहाद बोल दें। इन्हींमें मंगल पाण्डेय नामका एक युवक था। वह जातिका ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियोंके कान काटता था। उसके अंदर स्वाधीनताकी आग धधक रही थी। वह धैर्य नामक वस्तुसे अपरिचित था। जब उसने सुना कि नेता लोग एक मास प्रतीक्षा करना चाहते हैं तो उससे न रहा गया। वह अपनी बंदूक भरकर कवायदके मैदानमें कूद पड़ा। उसने चिल्लाकर कहा, आओ भाइयो, यही समय है, तुम्हें अपने धर्मकी, अपने महजबकी दुहाई है, आओ, अभी फिरंगीपर हमला करके आजाद हो जायं। इस टुकड़ीका अफसर मेजर ह्यूसन यह सब देख रहा था। उसने मंगल पाण्डेयको गिरफ्तार करनेका हुकुम दिया। लेकिन यह क्या? एक भी सिपाही उसे पकड़नेके लिये आगे न बढ़ा और मंगलकी एक गोलीने मेजर साहबको परलोककी यात्रापर रवाना कर दिया। उसी समय लेफ्टिनेंट बाघ घोड़ेपर आ पहुंचा लेकिन इससे पहले कि वह स्थितिको समझ पाये उसका घोड़ा धूलमें लोटने लगा। बाघ उठकर मंगलपर गोली चलाना ही चाहता था कि मंगलकी तलवारने उसका काम तमाम कर दिया। एक और गोरा मंगल पांडेयपर झपटा तो किसी सिपाहीकी बंदूकके कुंदेने उसकी खोपड़ी फोड़ दी। शोर सुनकर व्हीलर करनल वहां आ पहुंचा। उसने मंगल पाण्डेयकी गिरफ्तारीका हुकुम दिया। चारों ओरसे एक गूंज उठी, इस ब्राह्मणपर कोई हाथ न उठाये, खबरदार! कई गोरे अफसरोंका खून जमीनपर बह रहा था। काले सिपाहियोंमें एक उन्माद-सा फैला हुआ था। मंगल खून रंगे हाथोंको नचा-नचाकर चिल्ला हा था। 'उठो भाइयो, उठो, देशकी आजादीके लिये उठो'। जनरल हीअरसेतक बात पहुंचते देर न लगी और वह कुछ गोरे सिपाहियोंको लिये दौड़ा आया। मंगलने उसके हाथोंमें पड़नेकी अपेक्षा अपनी ही बन्दूकका शिकार होना चाहा, पर इसमें सफलता न मिली और वह घायल होकर पकड़ा गया। अंग्रेजोंकी जानमें जान आयी।

हवालातमें मंगलके मुंहसे उसके साथियोंके नाम उगलवानेके वहुतसे प्रयत्न किये गये। मृत्युका भय और सोनेका प्रलोभन दिखाया गया, पर सब निष्फल। सच्चे सूरमा ऐसी कच्ची धातुके बने हुए नहीं होते। आखिर उसे फांसीकी सजा सुनायी गयी। उसने कहा, "मैंने जिन्हें मारा है उनके प्रति मेरे मनमें लेशभर घृणा या द्वेष नहीं है।" मंगलको फांसीपर चढ़ानेके लिये कोई जल्लाद तैयार न होता था। कहीं दूरसे जल्लादोंको बुलाकर मंगलको फांसी दी गयी। ८ अप्रैल १८५७ की आजादीकी लड़ाईके बिरवेको सींचनेके लिये यह पहला रक्त था। उस समयके अंग्रेज लेखकोंके कथनानुसार पांडेय शब्दने एक विशेष प्रतिष्ठा पा ली और गदरमें भाग लेनेवाले सिपाही शत्रुओं और मित्रोंमें समान रूपसे 'पाण्डेय' कहलाने लगे।

स्वाति तिरुनाळ

—अनुबेन पुराणी

भारतमें अशोक और हर्षसे लेकर अंग्रेजी जमानेके छोटे-मोटे ठाकुर और बहुतसे राजातक साहित्य और कलाको बहुत प्रोत्साहन देते थे। तुम्हें मालूम ही होगा कि महाराज हर्ष न सिर्फ कलाकारोंके आश्रयदाता थे, किंतु स्वयं अच्छे नाटककार और कवि भी थे। साथ-ही-साथ अन्य कलाओंके भी रसिक थे। आजकल हम रसिक उसे कहते हैं जिसे रस हो परंतु पहले इसका और ही अर्थ था। रसिक वह कहाता था जिसने विषयका गहराईमें जाकर अध्ययन किया हो और उसकी खूबियोंको समझता हो।

आजकल लोग दक्षिण और उत्तरमें तीव्र भेद मानते हैं। किंतु पहलेका इतिहास देखनेसे पता लगता है कि दक्षिण और उत्तरमें कोई भेद न किया जाता था। तब पांड्य और चोल, गुप्त और चालूक्य इन्हीं राजवंशोंसे भेद आंका जाता था। आज मैं तुम्हें दक्षिणके एक विरल महाराजके बारेमें सुनाना चाहती हूं। इनका नाम श्री पद्मनाभदास कुलशेखर वांचिपाल राम वर्मा था। संक्षेपमें उन्हें स्वाति तिरुनाळ कहते थे क्योंकि उनका जन्म स्वाति नक्षत्रमें हुआ था। इनका जन्म १६ अप्रैल १८१३ को हुआ था। इनके पिताका नाम राजराज वर्मा और माताका नाम रानी लक्ष्मीबाई था। स्वाति तिरुनाळ अत्यंत प्रतिभावान् थे। उनके जीवनके बारेमें पढ़नेसे मालूम होता है मानों सरस्वतीने अपने प्रिय पुत्रको ही धरतीपर कुछ समयके लिये भेज दिया था। तिरुनाळ शरीरसे सुकुमार थे किंतु १३ वर्षकी आयुमें ही संस्कृत, मलयालम, तेलुगू, तमिल, कन्नड़, मराठी, हिन्दी और फारसीके विद्वान बन चुके थे। १६ वर्षकी आयुमें वे राजगद्दीपर बैठे, उससे पहले वे संगीत, साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, ज्योतिष और दर्शनका अध्ययन कर चुके थे। कर्नल वेलस नामक एक अंग्रेज महाराजाकी अंग्रेजी तथा फारसीकी विद्वत्ता देखकर दंग रह गया था। उसने अपने संस्मरणमें लिखा है कि महाराजाने उसके साथ यूक्लिडके बारेमें चर्चा की थी।

इतना ही नहीं, महाराजा बड़े-बड़े संगीतकारोंको अपनी सभामें बुलाकर उनका संगीत सुनते थे और साथ-साथ अनेक भाषाओंमें कविता भी लिखते थे। संगीतके लिये उन्होंने खास ३१३ गान लिखे, उनके लिये संगीत पूजाका अंग था। उन्होंने ८ कृतियां लिखीं, ६ संस्कृतमें और दो मलयालममें। कई अनमोल सुन्दर रागोंको उन्होंने ही बाहर निकाला है जैसे पूर्वकामोदरी, सुधा भैरवी, द्विजवन्ती, सारंग नट, मालवी, गोपिका-वसंत, ललित पंचम और मोहन कल्याणी। कथकली नृत्यके लिये उन्होंने दो राग दिये—पति और पुर निरा। इनकी कई रचनाएं मौलिकताके लिये अभी भी प्रसिद्ध हैं—जैसे रामायण राग मालिका। प्रत्येक प्रसंगके लिये उन्होंने रसके अनुसार राग पसंद किया है। ऐसी ही एक रचना है—दशावतार कृति। प्रत्येक अवतारके लिये अलग-अलग राग हैं और टेकमें प्रत्येक रागका नाम गुम्फित किया गया है। दुर्गा-पूजाके लिये उन्होंने नवरात्र-कृति लिखी है। प्रत्येक दिनके लिये अलग राग है। भारत नाटचम्ने कर्नाटक संगीतसे ही रचनाएं ली हैं। 'वर्णम्' संगीतकारके लिये तथा नृत्यकारके लिये भी सबसे कठिन रचना है। स्वाति तिरुनाळने 'तानवर्णम्', 'पदवर्णम्', 'तिल्लाना और जावळी' भी लिखे हैं। पदम् हमारे मुक्तककी तरह ही छोटी-सी रचना होती है। उसमें भगवान्की लीला गायी जाती है और भक्ति मुख्य रस होता है। उन्होंने आठ पदका एक पदम् लिखा है जिसमें साहित्यकी आठ तरहकी नायिकाओंका वर्णन है। महाराज हिन्दुस्तानी संगीत भी जानते थे और हिन्दीमें भी उन्होंने गाने लिखे हैं। अभी भी उनके ख्याल, ध्रुपद और भजन प्रसिद्ध हैं। बंगालके लक्ष्मणदास तथा ग्वालियर, पटियाला तथा काशीके

गवैये इनकी सभामें जाना एक गौरवकी बात समझते थे। भारत नाटचको उसका अर्वाचीन रूप देनेवाले तीन भाई, चन्नऐया, पोन्नैया, शिवानंदम् और वाड़ीवेलू भी इनकी सभाके रत्न रहे। पश्चिमके वायलिनको भी सबसे पहले इन्होंने ही भारतीय संगीतमें अपनाया था। आज दक्षिणमें वायलिनको कोई परदेशी यंत्र नहीं समझता। स्वाति तिरुनाळका स्थान, कर्नाटक साहित्यमें संगीतमय त्रिमूर्तिके बाद ही आता है। वह त्रिमूर्ति है, त्यागराज, मुतुस्वामी दीक्षितार और श्याम शास्त्री। महाराष्ट्रसे हरिकथागायक मेरू स्वामी स्वातिके मंदिरमें आये। उनकी मददसे महाराजाने संस्कृतमें हरिकथाकी रचना की। इसके अलावा तिरुनाळने श्री 'पद्मनाभशतकम्' 'तिरुअनन्तपुरम् वर्णन प्रबंधम्', 'उत्सव वर्णन', 'ययाति चरित्रम्' आदि लिखे। स्वाति तिरुनाळने जो कुछ भी लिखा अपने प्रिय देवता, मलबारके इष्टदेवता श्री पद्मनाभको अर्पित किया। केरलमें उन्होंने संगीतमें क्रांति ही ला दी। अभी भी केरलका संगीत कर्नाटक और हिन्दुस्तानीका सुन्दर मिश्रण है। संगीतकारोंका महाराज न सिर्फ मान करते थे, उनको तनख्वाह भी और अधिकारियोंसे अधिक देते थे।

महाराज सिर्फ साहित्यकार और संगीतज्ञ ही नहीं थे बल्कि अच्छे राजा भी थे। अपने राज्यमें उन्होंने चेचकका टीका लगाने, इन्जीनियरिंग और नक्षत्रोंमें नयी-नयी खोजें करनेके लिये अलग-अलग विभाग बनवाये थे। मलयालम भाषा और लिपिमें इन्होंने बहुत सुधार किये। आजकी मलयालम इनकी ऋणी है। अंग्रेजीका प्रथम स्कूल इन्होंने ही त्रिवेंद्रममें खुलवाया था। वे अपने अधिकारियोंसे पूरी प्रामाणिकता चाहते थे। जरूरत पड़नेपर काफी कड़े हो सकते थे। एक बार जैसे ही उनको पता लगा कि दीवानने घूस खायी है वैसे ही उसे दीवान-पदसे हटा दिया। यह दीवान बचपनमें उनका शिक्षक भी रहा था। राज्यकी बागडोर अपने हाथमें रखते हुए कृषिसुधार, पशुपालन आदि विभिन्न जटिल कामोंको करते हुए यह मेधावी न जाने कहांसे साहित्य, संगीत आदिके लिये इतना समय निकाल सकता था। कहते हैं कि जो द्वात्रिंशत योगमें जन्म लेते हैं वे बड़े ही प्रतिभावान् होते हैं, साथ ही उनकी मृत्यु भी बहुत कम आयुमें हो जाती है। आदि शंकराचार्य और स्वामी विवेकानंदकी तरह स्वाति तिरुनाळका जन्म इसी योगमें हुआ था। चौंतीस वर्षकी अल्पायुमें ही उसने अपने प्राण अपने इष्टदेवको समर्पित कर दिये।

संपादककी एक शाम

रातके बारह बज चुके हैं। सारा घर सुनसान है। सड़कपर कभी-कदास एक कुत्ता रोने लगता है। अब तो सिनेमासे लौटनेवालोंकी भी कोई आवाज सुनायी नहीं देती, मन जाने कैसा हो रहा है, पर अभी तो संपादकीय लेख लिखना है। कल सवेरा होते ही प्रेसवाले तकाजा करेंगे और यहां एक शब्द भी तैयार नहीं।

बैठा रहा। कबसे कागज-कलम लिये बैठा रहा कि एक जोरदार संपादकीय लिख डालूं। लोग बनारसीदास चतुर्वेदी और महावीरप्रसाद द्विवेदीको भूल जायं पर मुश्किल यह है कि केवल इच्छा करनेसे ही काम पूरा नहीं हो जाता। आज शामके सात बजेसे लिखनेका प्रयास करता रहा। मैं बैठा ही था कि बाहरसे आवाज आयी, अरे, कोई है? ओहो, यह तो बलियाके प्रसिद्ध वकील दीनानाथ

जी थे। आइये, आइये कहकर उनका स्वागत किया और मनमें सोचा, अब आध-पौन घंटा तो गया ही समझिये। वे बोले, भई, एक जरूरी कामसे आया था। तुम्हें फुर्सत न हो तो पीछे आ जाऊंगा। मैंने कहा, कहिये, क्या काम है? अभी निबटा लीजिये न। वे जरा पसरकर बैठ गये और बोले, बात यह है कि मुझे आपकी पत्रिका बहुत पसंद है। मै चाहता हूं कि इसकी दिन-दूनी रात चौगुनी तरक्की हो। आजसे नहीं, बरसोंसे मैं इसके बारेमें गहराईसे विचार करता आया हूं। मैं चाहता हूं कि किसी तरह पत्रिकाकी प्रगति हो, इसे ज्यादा अच्छी बनाया जाय। "आपकी बड़ी कृपा है", मैंने कहा, "आप किस रूपमें इसकी सहायता कर सकते हैं?"

"मैं कह तो रहा हूं, बरसों लगा दिये सोचनेमें और मैं इसी निष्कर्षपर पहुंचा हूं कि हमारी पत्रिकाका स्तर जरा और ऊंचा होना चाहिये। आखिर यह आपकी अपनी चीज तो है नहीं, यह तो हम सबकी चीज है। आप इसे जरा अधिक रोचक, जरा अधिक आकर्षक, जरा अधिक सारगर्भित बना दें, बस फिर देखिये, सारे हिंदुस्तानमें आपकी पत्रिका फैल जायगी।"

"आपकी बात तो ठीक है पर कोई सुझाव भी तो दीजिये, आपने जो बातें कहीं वह तो कोई भी किसी भी पत्रिकाके लिये कह सकता है।"

"नहीं, आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मैं बहुत दिनोंसे आपका प्रशंसक रहा हूं, अब भी आपकी पत्रिकापर फिदा हूं, इसीलिये तो यह कहनेके लिये आ गया, नहीं तो, कौन किसकी परवाह करता है। अब आपको मैं क्या सुझाव दूं आप स्वयं जानते हैं। हमारा काम तो बस इतना ही है कि इस बातकी ओर आपका ध्यान खींच दें, आगे आप स्वयं कर ही लेंगे।" मैं अपने समयकी हत्या देखकर बौखला रहा था। मैंने कहा, "अच्छा, आप अपने सुझाव लिखकर दे जाइये, मैं उनपर विचार करूंगा और उनसे लाभ उठानेकी कोशिश करूंगा।"

"अच्छा, ऐसा ही सही।" उठते हुए वकील साहब फिर बैठ गये और बोले, "हां, एक और छोटा-सा काम था। आज सोमवार है। श्रीमतीजीने प्रधान मंत्री शास्त्रीके कहनेमें आकर शामको पकानेकी छुट्टी कर दी है और इधर मेरे पेटमें चूहे नहीं बिल्लियां कूद रही हैं। सोचा, तुम्हारे यहां तो कुछ-न-कुछ होगा ही, जरा पेटमें डालकर पानी पी लूंगा। खाली पेट पानी पीनेसे मुझे उबकाई आने लगती है।"

अब समझमें आया उनकी सहानुभूतिका रहस्य। खैर, दो केले पड़े हुए थे, उन्हें देकर जान छुड़ायी और फिरसे लिखने बैठा। सोचा, संसारमें चारों ओर संघर्ष चल रहा है, चलो, शांतिपर लिखा जाय। लेकिन यह क्या? फिरसे दरवाजेपर ठक-ठक। उठा, दरवाजा खोला तो मेरे पड़ोसी तनसुखलालजी थे। विवश होकर उनका स्वागत किया। यह पड़ोसीके नाते मेरे ऊपर अपना अधिकार ही समझते हैं और जब चाहे आ धमकते हैं। लेकिन आज कुछ ज्यादा खुश दिखायी दे रहे थे। इससे पहले कि मैं कुछ पूछूं वे बोले, भई, इस बार तुम्हारा अंक तो बड़ा सुन्दर निकला है। चित्र अच्छे हैं, कहानियां अच्छी हैं और तुम्हारे लेखोंका तो कहना ही क्या है। ऐसे देखनेमें तो तुम बड़े धीर-गंभीर दिखायी देते हो पर लिखते हो तो बस हास्यका परनाला बहा देते हो। (हमारे घरके पास ही नगरपालिकाका बम्बा है, गनीमत है कि लालाजीने हास्यका बम्बा नहीं बता दिया।) और तुम्हारा हास्य कितना शिष्ट, शालीन और, और . . . . मेरा मतलब अच्छा होता है। कहीं कोई गन्दी बात नहीं, कोई फूहड़पनेकी बात नहीं और फिर भी उसे पढ़कर हंसीके फुहारे छूट जाते हैं, मुस्कानकी पिचकारियां चलने लगती हैं और, और हां, मेरा मतलब खूब हंसी आती है। मैं तो रिक्शामें सफर करते समय इसे हमेशा अपने साथ रखता हूं और जब पढ़ता हूं लोट-पोट हो जाता हूं। सड़कपर चलनेवाले मुंह बाये खड़ेके खड़े रह जाते हैं और मेरी ओर देखते रहते हैं। उन्हें लगता होगा कि कहींसे सनकी आ गया है। अरे, कई बार तो रिक्शावाला भी पेट पकड़ लेता है। और कहीं

रिक्शामें बैठते समय पत्रिका भूल जाऊं तो बस घर लौटकर श्रीमतीजीकी मुसीबत, आखिर ऐसी भी क्या लापरवाही।

तनसुखजी बोलते ही जा रहे थे। अपनी प्रशंसा सुनना किसे नहीं अच्छा लगता। मेरे पड़ोसी होनेके नाते तनसुखजी अपने-आपको साहित्यिक नहीं तो साहित्यिककी दुम तो जरूर मानने लगे हैं और अपनी भाषाको अलंकारोंसे भरनेका प्रयास करते रहते हैं। लेकिन ज्यादा मिठाई खाकर मन भर जाता है उसी तरह ज्यादा प्रशंसा सुनकर मेरा भी मन भर गया। तनसुखजी आदमी होशियार हैं, झट ताड़ गये और सीधे मतलबकी बातपर आ गये। बोले, भई, मैं चाहता हूं कि समस्त हिंदी-भाषी संसारके घर-घरमें, द्वार-द्वारपर, देहली-देहलीपर तुम्हारी पत्रिका पहुंच जाय। मैं इसके लिये पूरा प्रयास भी कर रहा हूं। आज ही रिक्शावाला यूनियनके उपमंत्रीसे बातचीत करके आया हूं कि प्रत्येक रिक्शावालेको तुम्हारी पत्रिकाका अवैतनिक प्रचारक बन जाना चाहिये। एक रिक्शामें दिनमें कम-से-कम दस सवारियां तो बैठती ही हैं और हमारे शहरमें दो सौ रिक्शाएं तो हैं ही। अगर एक-एक रिक्शावाला पांच-पांच सवारियोंको भी एक-एक प्रति बेचे तो पांच दूनी दस यानी एक हजार प्रतियां रोज बिक जायंगी। एक-एक प्रतिपर एक-एक पैसा कमीशन हो तो रिक्शावाला यूनियनको बैठे बिठाये एक हजार पैसे यानी दस रुपये रोजकी आमदनी हो जायगी। दस रोज यानी तीन सौ रुपये महीनेमें मिल जायं तो हम लोग रिक्शावालोंकी अलग बस्ती बसा देंगे जहां उन्हें सब तरहकी सुविधाएं दी जायेंगी और इस सबका श्रेय होगा आपकी पत्रिकाको।

ये सब बातें सुनकर हंसिये मत। तनसुखजी सचमुच हमारे भलेके लिये योजना बना रहे थे। उनका अपना इसमें क्या स्वार्थ हो सकता है? अगर ऐसे हितैषी मिल जायं तो बस हमारी पत्रिकाकी आर्थिक समस्या चुटकियोंमें हल हो जायगी। तनसुखजीने घड़ीकी ओर देखा, साढ़े आठ बज चुके थे। हड़बड़ाकर उठे और दरवाजेकी ओर बढ़े। चार कदम जाकर ही वापिस आये और बोले, हां, एक बात तो भूला जा रहा था। आपके भतीजेको आपकी पत्रिका बहुत पसंद है। वह ग्राहक बननेके लिये जिद कर रहा है। मैंने कहा, अब घरकी तो बात है, आपको छः रुपये कैसे दिखाऊं, भतीजेसे पैसे लेनेके नामसे ही आप नाराज न हो जायेंगे! खैर, तो एक प्रति उसके नाम भेज दिया कीजिये। यह लीजिये उसका पता।

अब काम करनेमें मन नहीं लगा। रोज हजार प्रतियां बिकनेके स्वप्न सिरमें चक्कर काटने लगे। उधर प्रेस भी मेरी ओर घूर रहा था। मैं कमरेमें टहलने लगा। कोई नौ बजे होंगे कि श्री निमुच्छ नारायणजीने धीरेसे प्रवेश किया। ओहो, अब ख्याल आया। तनसुखजीके बाद मैं दरवाजा बंद करना भूल गया था। खैर, अब आ ही गये तो इनका स्वागत भी करना ही पड़ेगा। यह सज्जन मेरे घरसे तीन मील दूर रहते हैं। इतनी रातको आये हैं तो जरूर कुछ विशेष काम होगा। “कहिये, इस समय कैसे कष्ट किया?” मैंने पूछा। निमुच्छ नारायणजी बोले, भई, बहुत दिनोंसे मिलनेकी इच्छा थी लेकिन इधर समय ही नहीं मिल पाता। आप भी तो काम-काजवाले आदमी हैं, मैं आऊं और आप न हों तो इतना परिश्रम बेकार जाये। इसलिये सोचा, चलो, ऐसे समय पहुंचा जाय जब आप घरपर अवश्य हों और हों भी अकेले।

“क्यों ऐसी क्या बात है जिसके लिये मेरा अकेला होना जरूरी है?”

“यूं तो कुछ नहीं।......बात यह है कि इन दिनों कुछ ऐसे जोरका प्रवाह शुरू हो गया है कि रोके नहीं रुकता। मैंने सोचा जरा आपको भी दिखा लूं।”

अब मुश्किल यह है कि मैं एक समय वैद्य रह चुका हूं। वैद्य लोग जब प्रवाहकी बात करते हैं तो साधारणतः उनका मतलब होता है प्रवाहिका या एक प्रकारके अतिसारसे। मैंने समझा, इन बेचारेको बहुत जोरका अतिसार हो गया है और यह मेरे वैद्यरूपके पास इलाज कराने आये हैं।

मैं झट बोल पड़ा, परंतु देखिये, वैद्यक छोड़े तो एक जमाना बीत चुका है। अब तो नून-तेल-लकड़ी-में ही लगा रहता हूं। ऊपरसे हमारे नगरकी साहित्य-गोष्ठीने इस पत्रिकाका भार भी मेरे सिरपर डाल दिया है। इसलिये मुझे माफ कीजिये।

“अरे, क्या बातें करते हैं आप भी। मैं कोई बीमार थोड़े ही हूं जो किसी वैद्यके पास जाऊं, अजी साहब, मुझे उस तरहका प्रवाह नहीं, कविताका प्रवाह तंग कर रहा है। उठते-बैठते, खाते-पीते सब समय कविता ही उतरती रहती है। नौकरसे बोलूं तो कवितामें, श्रीमतीजीकी कढ़ीकी तारीफ करूं तो कवितामें। अरे, अभी उस दिन बड़ी मुश्किलमें पड़ गया। मैं पान लेने गया। दुकानपर तमोलिन बैठी थी। मैंने झट हाथ मटकाते हुए सस्वर कहा, ‘दे दो बीड़ा एक पानका’। उसने ऐसी आंखें तरेरीं कि कविता वहीं भूलकर मैं भाग लिया। एक और दिनकी बात है मकानमालिक घरका किराया लेने आ गया। मैंने कहा, “सेठजी, किरायेकी बातें न तुम करो, पैसा हो फालतू तो हमारी नजर करो।” सेठजी भन्ना उठे। वह तो मेरे भाग्य अच्छे थे कि उसी समय उनके कोई परिचित सज्जन उधरसे आ निकले और मेरी जान बच गयी। इसी तरह प्रायः हर रोज कुछ-न-कुछ मुश्किल आती रहती है। एक रात नयी-नयी कविता उतरी। मैंने गाना शुरू कर दिया। सच कहता हूं झपताल, तीन ताल, नैनीताल, ठुमरी, दादरा, बुलन्दशहर सब तरहकी राग-रागनियोंका एकमें समावेश कर दिया था। शायद तानसेन और बीथोवन भी ऐसे संगीतको न तैयार कर सकते, पर अरसिक पड़ोसियोंको क्या कहूं? पहले मुझे चुप करनेकी कोशिश की। लेकिन ऐसे टुटपुंजिया लोगोंके रोकनेसे भला मेरा प्रवाह रुक सकता है? मैं गाता चला गया। उन्होंने सोचा, जरूर कोई साया-वाया है। बस आव देखा न ताव जाड़ेकी रातमें दो बाल्टी ठंडा पानी मेरे ऊपर डाल दिया। लेकिन मैं भी कोई ऐसा-वैसा कवि नहीं हूं। ठिठुरते हुए मैंने कहा —

क्यों डाला ठंडा पानी
रात माघकी ठंडी होती
ऊपरसे वर्षा भी आती
मुझे अगर कहीं निमोनिया हो जाय तो तुम क्या कर लोगे?

आखिरी पंक्ति मैंने कुछ ऐसे ललकार कर कही कि सबके सब भाग गये।

“मैं वहांसे उठा, कपड़े बदलना जरूरी था। सूखे कपड़े लेने गया तो देखा कि उनपर एक छिपकली रानी विराजमान हैं। अब मैं आपसे क्या छिपाऊं, छिपकलीसे अपने राम जरा दूर ही रहते हैं। यानी मुझे उसका डर . . .ऊं, ... नहीं लगता। डरकी क्या बात है भला, लेकिन उसे देखते ही मुझे उसके पूर्वजोंकी याद आ जाती है। शायद चीनके ड्रेगन ही हमारे यहां छोटे होकर छिपकलीका रूप धारण कर लेते हैं। इसीलिये मैं उनसे जरा सावधान रहता हूं। खैर, उसे देखते ही मैंने कहा :

“छिपकली, छिपकली, छिपकली
मगरमच्छकी मौसी है तू, ड्रेगनकी तू नानी
मेरे कमरेमें क्यों आयी, फेंकू तुझपर पानी।”

बस साहब, मेरी कविता सुनते ही छिपकली मेरे कपड़ोंपरसे हट गयी। तो देखा आपने, उन्मत्त भीड़पर, छिपकली आदिपर मेरी कविताका कैसा असर होता है। मैं सोच रहा था कि यह आपके साथ बड़ा अन्याय होगा कि इधर तो धारा-प्रवाह कविता निकलती जाती हो उधर आपको जरा-जरा-सी तुकबन्दियोंके लिये कवि कहानेवालोंका मुंह ताकना पड़े। न हो, अगली बार एक कविता विशेषांक निकाल दीजिये। मच्छर, मक्खी, पिस्सूसे लेकर खाद्यान्न समस्या, शस्त्रास्त्र उत्पादन, निःशस्त्रीकरण, आजकी कविता, राष्ट्रपतिकी पगड़ी और फजलमियांका हुक्का आदि सब प्रकारके विषयोंपर कविता,

गीत, गद्यगीत, महाकाव्य सब तरहकी चीजें दे दूंगा। आप चाहें तो आधी दरजन कृतियोंपर अपना नाम दे दीजिये। प्रथम श्रेणीके कवियोंमें आपकी भी गिनती हो जायगी।"

सचमुच यह कविता सुनते-सुनते मेरे ऊपर अर्धमूर्छा-सी छा गयी थी। मैं गुम-सुम पड़ा था कि अचानक तारका चपरासी आया। मेरे कार्यालयमें बैरंग चिट्ठियां तो कई बार आयी हैं पर तार आनेका यह पहला अवसर है। धड़कते दिलसे हड़बड़ाकर उठा। तार लेकर खोला। हमारे यहां-के सर्वप्रिय नेताका तार था। उन्होंने अपने जिलेकी ओरसे युद्धकोषमें पांच लाख देनेका वचन दे दिया है और सर्वमान्य पत्रके संपादकके नाते मुझसे कम-से-कम दस हजारकी आशा कर रहे हैं। तार हाथसे छूट गया और मैं धड़ामसे जमीनपर। उफ! सर्वमान्य पत्रके संपादकसे दस हजारकी मांग। सर्वमान्य कहानेके बाद कैसे कह दूं कि यहां तो दस हजार पैसे भी नहीं दिखायी देते....उफ...!

—रवीन्द्र

* * *

पुस्तक-परिचय

जीवन-विज्ञान (अदिति पुस्तक-माला): ले. श्रीमाताजी, प्रकाशक : अदिति कार्यालय, पांडिचेरी-२। मूल्य २.५०।

यह पुस्तक श्रीमाताजीके प्रवचनोंसे संकलित की गयी हैं। इसमें यह बताया गया है कि मनुष्य-को पृथ्वीपर किस प्रकार जीवन बिताना चाहिये। जीवनसंबंधी कितने ही प्रमुख विषयोंपर श्रीमांके उद्बोधक विचार इसमें आ गये हैं। पुस्तक सब प्रकारके लोगोंके लिये अत्यंत उपयोगी है।

जैनधर्मका प्राण — ले. पं. सुखलाल संघवी, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृष्ठ सं. २१४, मूल्य दो रुपये।

जैन धर्मके बारेमें साधारण लोगोंमें बहुत कम जानकारी है। पं. सुखलालजी जैन शास्त्रोंके प्रकांड पंडित हैं। गुजराती भाषामें इनकी मूल पुस्तकें तथा उनके हिंदी रूपांतर बहुत प्रामाणिक माने जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें जैन तत्त्वज्ञान और धर्मके संबंधमें, ब्राह्मण और श्रमण कर्मकी समानताएं और विषमताएं, तप, ब्रह्मचर्य, कर्मवाद, नयवाद, चतुर्विध संघ आदिके बारेमें बड़ी अच्छी जानकारी दी गयी है। जिन्हें भारतके इस महत्त्वपूर्ण धर्म और दर्शनके बारेमें सरल भाषामें जानकारी प्राप्त करनी हो उनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

आकाशदानी दे पानी — ले. गोविन्द चातक, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृष्ठ ११५, मूल्य २.५०।

किसी देशकी जनताको जाननेके लिये वहांके लोकगीतों और कहानियोंको जानना जरूरी है। सस्ता साहित्य मण्डल लोक-कथा-मालाका प्रकाशन करके इस दिशामें बड़ा अच्छ प्रयास कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गढ़वाली २५ छोटी-छोटी कहानियां दी गयी हैं जिनमें गढ़वालके जीवनका अच्छा चित्र आ जाता है। इस प्रकारकी पुस्तकोंमें अगर एक-एक कहानी वहींकी बोलीमें दी जा सके तो शायद और भी अच्छा हो।

लाला लाजपतराय — ले. मुकुट बिहारी वर्मा, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृष्ठ ८०, मूल्य १.०० ।

साधारण जनताकी स्मरण-शक्ति बहुत कमजोर होती है। जो ढोल पीटता रहता है उसे तो वह जानती है बाकीको भूल जाती है। इसलिये हमारा कर्तव्य हो जाता है कि जिन लोगोंने हमारे देशको बनाने और संवारनेमें भाग लिया उनकी स्मृतिको बनाये रखें तथा उनके जीवनसे आगेके लिये सबक सीखें। लालाजी ऐसे ही वीरोंमेंसे एक थे। एक समय भारतमें लाल बाल पाल ही का बोलबाला था। यह पुस्तक युवकोंके लिये बहुत अच्छी है।

पड़ोसी देशोंमें — ले. यशपाल जैन, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, सजिल्द, पृष्ठ ३५०, मूल्य ६.०० ।

यशपालजीके पांवमें चक्कर है। उन्होंने देश-विदेशकी खूब यात्रा की है और हर यात्राके बाद हमें अपने अनुभवोंका साझीदार बनाया है। इस पुस्तकमें बर्मा, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, मलाया, वियतनाम आदिकी यात्राका वर्णन है। साधारणतः इन देशोंके बारेमें हमें बहुत कम जानकारी है। हम बाहरी दुनियाको अंग्रेजीके द्वारा ही जानते हैं इसलिये लंदनकी गली-गलीसे परिचित हैं पर अफगानिस्तान आदि अपने पड़ोसियोंके बारेमें भ्रांत धारणाएं बनाये रहते हैं। यशपालजीने इन देशोंके बारेमें बड़ी अच्छी जानकारी दी है, साथ ही यह भी बताया है कि इन देशोंमें जो भारतीय बसे हुए हैं उनकी क्या समस्या है और उन्हें किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। सारी पुस्तक बड़ी रोचक है।

नीली झील — संपादक : विष्णु प्रभाकर, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृष्ठ लगभग २२५, मूल्य ३.०० ।

एकांकी हिंदीमें ही नहीं भारतमें एक नयी चीज है। लेकिन फिर भी इस दिशामें कुछ बड़े अच्छे प्रयत्न हुए हैं। इस पुस्तकमें उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, धर्मवीर भारती आदिके आठ अच्छे एकांकियोंका संकलन किया गया है और अंतमें लेखकोंका परिचय भी है।

बारहमासा — ले. शार्लोत वोडविल, प्रकाशक : एंस्टिच्यूट फ्रांसेज देन्दोलोजी ।

पांडिचेरीकी यह संस्था भारतीय साहित्यका फ्रेंच भाषामें परिचय देनेका सराहनीय प्रयास कर रही है। परिश्रम करनेमें यूरोपीय विद्वानोंकी बराबरी करना कठिन है। इस पुस्तकमें भारतके विभिन्न भागोंमें प्रचलित बारहमासेके गीतोंका नमूना दिया गया है, साथ ही उनका फ्रेंच अनुवाद भी है। इसमें मीरा, जायसी, सूफी कवि, चण्डीदास, जिनपद्मसूरि आदिके गीतोंका संग्रह है। प्रारंभमें लगभग ४० पृष्ठकी भूमिका है जिसमें बारहमासेके बारेमें जानकारी भरी हुई है। पुस्तकपर दाम नहीं लिखा है।

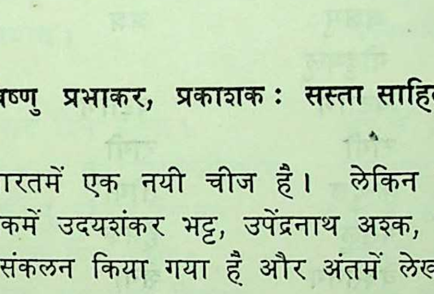

दक्षिण भारती

(दक्षिण भारतकी भाषाएं सीखिये)

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हम कुछ ऐसा प्रयास कर रहे हैं कि दक्षिणकी भाषाएं सीखनेवाले पाठक किसी भी अंकसे सीखना शुरू कर सकें। इस विधिकी अपनी सीमाएं और कठिनाइयां हैं। इन पाठोंसे लाभ उठानेवाले सज्जन अपने अनुभवसे कुछ सुझाव दे सकें तो हमें सहायता मिलेगी। मलयालमके बारेमें हमें कुछ कठिनाई हो रही थी। हर्षका विषय है कि कालीकटके हिंदी पाक्षिक युग प्रभातके संपादक महोदयने इसमें सहयोग देना स्वीकार किया है।

—संपादक

पाठ १८

हिंदी	तमिल	तेलुगु	कन्नड़	मलयालम
धान	नेल	वड्लु	भत्त	नेल्लु
चावल	अरसि	बिय्यमु	अक्कि	नेल्लु, चोरु
भात	सोरु	अन्नमु	अन्न	अरि, चोरु
गेहूं	गोदुमै	गोदुमलु		गोदम्बु
मटर	पट्टाणि	बटाणि	बटाणि	पट्टाणि
मड़ुआ	केबरहु	राँगी	रागी	रागी
अरहर	तुवरै	कन्दुलु	तोगरि	तुवर
मूंग	पच्चप्पयरू	पेसलु	हेसरू	चेजपयरू
मूंगफली	निलक्कडलै	वेरुसेनग	शेंगा	निलक्कडल
चना	कडलै	सेनगलु	कडले	कडल
नमक	उप्पु	उप्पु	उप्पु	उप्पु
शक्कर	शकक्रै	पंचदार	सक्करै	पंचसार
गुड़	वेललम	बेल्लामु	बेल्ल	वेल्लम
मिर्चं	मिळकाय	मिरपकाय	मेळसिनकाय	मुळगु
लहसन	वेळ्ळेप्पूण्डु	वेल्लुल्लि	बेळ्ळुळ्ळी	वेळुत्त उळ्ळी
प्याज	वेङ्गायम	येर्रगड्डु, उल्लि	ईरुळळी	उळ्ळी
मसाले	मसालै	मसाला	मसाले	मसाला

अब वाक्य लीजिये :

हिंदी : मुझे गरम भात और ठंडा पानी चाहिये। अभी धूप बहुत है।
तमिल : एनक्क सूडान सादमुम कुळरिन्द जलमम वेन्डुम। इप्पो रोम्ब वेय्यिल।
तेलगू : नाकु वेडी अन्नमु चल्लिनी कावलनुं। इंका चाला एंडगा उन्नदि।
कन्नड़ : ननगे विसिअन्न मत्तु तण्णीरु बेकु। ईग बिसिलु हेच्चागिदे।
मलयालम : एनिक्क चूड्डुल्ल चोरुम पच्च वळ्ळवुम आण वेण्डदु। इप्पोळुम नल्ल वेयिल उण्ट।

पुरोधा

हिंदी	: मुझे धूपमें चलनेका अभ्यास है।	आजकल गर्मीके दिन हैं।
तमिल	: एनकु वेय्यलिल नडक्कुम पजक्कम उण्दु।	इप्पेल्लाम रोम्बा उष्णमा इरुक्क।
तेलगू	: नाकु एंडलो पोउट अलवाटु।	इवि वेसिव रोजुलु।
कन्नड़	: ननगे बिसिलिनल्लि नडेयुस व अभ्यासविदे।	ईग बेसिगे।
मलयालम	: वेयिल वडक्कुन्नद एनिक्क शीलमाण।	ई दिवसंगळ चूड़ अधिकमाण।

हिंदी	: वर्षाके दिन आयेंगे।	आपको गर्मी पसंद है या वर्षा ?
तमिल	: मजैकालम वरप्पोहिरदु।	उङ्गळुक्कु कोडै कालम पिडिक्कुम मजेकालम पिडिक्कुमा ?
तेलगू	: वर्षाकालमु वोच्चुचुन्नदि।	मीकु एंडा इष्टमा लेक वर्षमा ?
कन्नड़	: मकेगाल वरुत्तदे।	निमगे बेसिगे इच्छेयो अथवा मळेगालवो ?
मलयालम	: वर्षम वरुन्नताण।	नींगळके चूडुकालमो वर्षमो एताण इष्टम ?

हिंदी	: मैं अभी जा रहा हूं।	वापसीमें फिर आऊंगा।
तमिल	: नान इदो पोहिरेन।	तिरुम्बी वरुम्पोदु वरुहिरेन।
तेलगू	: नेनु इप्पुडे पोवुचुन्नानु।	नेनु तिरिगि वच्चेडप्पुडमळ्ळी वच्चेदनु।
कन्नड़	: नानु ईगले होगुत्तेने।	वापसु बन्दागा मत्तो बरुवे।
मलयालम	: ञान इप्पोळ पोवेयाण।	मडक्कतिल वीण्डुम वराम।

हिंदी	: तब आपके यहां चार दिन रहूंगा।	आपके लिये एक कुत्ता लाऊंगा।
तमिल	: ऊंगळ वीट्टिल नालु नाळ तंगुवदाहुइरुक्किरेन।	उंगळुक्काह ओरु नाय कोण्डु वरुहिरेन।
तेलगू	: नेनु अप्पुडुमो वहनलिगु रोजलु उंटानु।	तमकु वोक कुक्कनु तीसुकु वच्चेदनु।
कन्नड़	: अग्ग निम्मल्लि नालकु दिन इरुवे।	निमगे ओन्दु नायियन्नु तरुत्तेने।
मलयालम	: अप्पोळ ञान नींगळुडे कूडे नालु दिवसम तामसिक्काम।	ञान नींगळके ओरु नायये कोण्डुवराम।

हिंदी	: और कुछ चाहिये तो कह दीजिये।	संकोच न कीजिये।
तमिल	: वेरु एदावदु वेंडुमानाल सोल्लुङ्गळ।	संकोचम वेण्डाम।
तेलगू	: का येमैना कावलेनंटे चप्पंडि।	संकोचमु वलदु।
कन्नड़	: इंइन्नएनांदरु वेकादरे हेळरि।	संकोच माड वेडिरि।
मलयालम	: नींगळके वेरे वल्लदु आवश्यमुडैंगल परयुगा।	संकोचिक्केण्डा।

हिंदी	: यह धान अच्छा है।	यह गेहूं पुराना है।
तमिल	: इन्द नेल नल्ल नेल।	इन्द गोदुमै रोम्ब पजैसु।
तेलुगु	: ई वोड्लु मंचिवि।	ई गोदुम पातटि।
कन्नड़	: ई भत्त चन्नगिदे।	ई गोदि हळेयदु।
मलयालम	: ई वेल्ल नल्लदाण।	ई गोदम्बु पजैदाण।

हिंदी	: मसाले दीजिये।	शक्कर सस्ती है।
तमिल	: मसालै कोडुङ्गळ।	शक्करै मलिवु।
तेलुगु	: मसाला इव्वण्डि।	पंचदारा चौक।
कन्नड़	: मसाले कोडिरि।	सक्करे अगविदे।
मलयालम	: मसाल तेरिगा।	पंचसारक्क सहायमुण्डु।

हिंदी	: गुड़ साफ है।	मुझे मूंगफली और गुड़ पसंद है।
तमिल	: वेल्लम शुद्दमा इरुक्किरदु।	एनक्कु निलक्कडलैयुम वेल्लमुम रोम्ब प्रियम।
तेलुगु	: वेल्लमु तेल्लगा उन्नदि।	नाकु वेरुसेनग बेल्लमु इष्टमु।
कन्नड़	: वेल्ल स्वच्छविदे।	ननगे शेंगा मत्तु बेल्ल सेरुतदे।
मलयालम	: वेल्लम शुद्धमान।	एनिक्क निलक्कडलैयुम वेल्लमुयुम इष्टमाण।

हिंदी	: मुझे अरहर चाहिये।	लहसन प्याज मत दीजिये।
तमिल	: एनक्कु तुवरै वेण्डुम।	उळ्ळी प्पूण्डुवुम वेङ्गायमुम कोडुकादे।
तेलुगु	: नाकु कन्दुलु कावालि।	वेलुल्लि उल्लि इव्वकण्डी।
कन्नड़	: ननगे तोगरि बळे बेकु।	बुल्लुळ्ळी मत्तु ईरुळ्ळी कोड बेडिरि।
मलयालम	: एनिकु तुवर वेणम।	बेळ्ळुळियम, उळ्ळियुम कोडुक्केण्डा।

हिंदी	: मैं लहसन प्याज और मिर्च नहीं खाता।	मूंगफली खायेंगे?
तमिल	: नान उळ्ळीपूण्डम वेङ्गायमुम साप्पिडमाट्टेन मिळहायय साफिडुहिरदिल्लै।	निलक्कडलै साप्पिडलुवीर्हळा?
तेलुगु	: नेनु वेल्लुल्लि, उल्लि, मिरपकाय तिननु।	वेरसेनग तिंटारा?
कन्नड़	: नानु मेळसिनकाय, वेळ्ळुळ्ळी भत्तु ईरुळ्ळि तिन्नवदिल्ल।	शेंगा तिन्नुविरा (बेके)?
मलयालम	: ञान वेळ्ळुळियम, उळ्ळियुम, मुळमुम कजिक्कारिल्ल।	नींगळ निलक्कडला तिन्नुमो?

हिंदी	: नमकीन मूंगफली दीजिये।	मडुआ पौष्टिक भोजन है।
तमिल	: उप्पुप्पोट्ट निलक्कडलै कोडुङ्गळ।	केवरहु सत्तुळ्ळदु।
तेलुगु	: उप्पटि वेरसेनग इव्वण्डि।	रागी मंचि बलिष्टमैन आहारमु।
कन्नड़	: उप्पुहच्चिदा शेंगा कोडिरि।	रागी पौष्टिक आहार।
मलयालम	: इनिकु उप्पिट्ट निलक्कडलो रिगा।	रागी पोषक वस्तुवाण।

हिंदी	: मडुआ पानीमें भिगोइये।	अंकुर निकल आयेंगे।
तमिल	: केवरहै तण्णीयिल ऊर्रवायि।	अदु मुळैविडुम।
तेलुगु	: रागी नान बेट्टण्डि।	अंकुरिस्तुन्दि।
कन्नड़	: रागीयन्नु नीरनल्लि नेनेसिरि।	मोळके वेरुत्तवे।
मलयालम	: रागी वेळ्ळत्तिल पोदिर्कुगा।	अदु मुळक्युम।

हिंदी	: फिर सुखाकर भून लीजिये।	इसे पीसकर जैसा अच्छा लगे खाइये।
तमिल	: डलरवैत्तु वर्र।	अरैत्तु इष्टप्पडि साप्पिडु।
तेलुगु	: तरवात येण्डा बेट्टि वेय्यिचंण्डि।	दानिनि पिण्डि जेसि एविधंग नैना तिनवच्चोनु
कन्नड़	: नन्तर वणेगिसि हुरियिरि।	अदनु बीसि इच्छेयन्ते तिन्निरि।
मलयालम	: एन्निट उणक्कि वरक्कुगा।	पोडिच्च इष्टमपोले भक्षिकुगा।

हिंदी	: यह बहुत पौष्टिक है।	भातसे बहुत अच्छा है।
तमिल	: इद रोम्ब सत्तुळ्ळदु।	अरिसियैविड मेल।
तेलुगु	: इदि पुष्टिकारमैनदि।	अन्नमु कन्न चाला मंचिदि।
कन्नड़	: इद बहळ पौष्टिक।	अन्न किन्तलु हेच्चु उत्तमविदे।
मलयालम	: इद वळले पोषकांशम उळ्ळदान।	इद अरियकाल वळरे नल्लदाण।

हिंदी	: मुझे मीठा मडुआ पसंद है।	मुझे नमकीन पसंद है।
तमिल	: इनिप्पु केवरहुम एनक्कु पिडिक्कुम।	एनक्कु उप्पुडुम पिडिक्कुम।
तेलुगु	: नाकु तीवि रागी इष्टमु।	नाकु उप्पुदि इष्टमु।
कन्नड़	: ननगे सिहीइन्द कुडिदरागी इच्छे।	ननगे उपिनिन्द कुडिद इच्छे।
मलयालम	: एनिक्कु मधुरम चेर्त रागीयाण इष्टम।	एनिक्कु उप्पु चेर्तदान इष्टम।

अब इन वाक्योंको भिन्न-भिन्न भाषाओंमें कहिये :

मडुआ गुड़के साथ खाओ। अरहरमें प्याज मत डालो। रोटी शक्करसे खाओ। मैं पौष्टिक वस्तु खाता हूं। चना पौष्टिक है। भीगा चना गुड़के साथ खाओ। वह चने नमक-मिर्चके साथ खाता है। मैं नमक नहीं खाता। मुझे मूंगफली दीजिये। गुड़ कहां है? पांच कलम। सात रास्ते। आठ रुपये दस कागज। नौ बजे ।

पाठ १९

हिंदी	तमिल	तेलुगु	कन्नड़	मलयालम
रामको	रामनक्कु	रामुनिकि	रामन्नु	रामन्नु
सीताको	सीतावुक्कु	सीतकु	सीतेअन्नु	सीतक्कु
राधाको	राधावुक्कु	राधाकु	राधान्नु	राधक्कु
गायको	पसुवुक्कु	आवुकि	हस्सुन्नु	पशुविन्नु
पेंसिलको	पेंसिलुक्कु	पेंसिलुनु	पेसिलन्नु	पेंसिलिन्नु
पानीको	तण्णीक्कु	नीळनु	नीरन्नु	वेंळ्ळत्तिन्नु
लड़कीको	पेण्णुक्कु	पिल्लकु	हुडुगियन्नु	पेणकुट्टिक्कु
लकड़ीको	विरहुक्कु	कर्रकु	कड्डियन्नु	वडिक्कु

अब इनके वाक्य देखिये :—

हिंदी	गेहूंसे रोटी बनाओ।	मिर्चसे चटनी बनाओ।
तमिल	गोदुमैयाल रोट्टी सेय।	मिळहायाल अरुकाय सेय।
तेलुगु	गोदुमतो रोट्टी चेयि।	मिरक्कायितो चट्णि चेयि।
कन्नड़	गोदीइन्दा रोटीयन्नु माडिरी।	मेळसिनकायिन्दा चटणियन्नु माडिरि।
मलयालम	गोतम्पिल् निन्नु रोट्टि उण्टाक्कु।	मोळकुकोण्ट चटणि उण्टाक्कु।

हिंदी	रामको बुलाओ।	सीताको अरहर दो।
तमिल	रामनै क्कूपिडु।	सीतावुक्कु तुवरै कोडु।
तेलुगु	रामुनि पिलु।	सीतकु कंदुलु इवु।
कन्नड़	रामनन्नु करेविरि।	सीतागे वेळे कोडिरि।
मलयालम	रामने विलिक्कु।	सीतक्कु तुवर कोडुक्कु।

हिंदी	मुझे मूंगफली मत दो।	कुत्तेको मत मारो।
तमिल	एनक्कु निलक्कड़लै कोडुक्कादे।	नायै अडिक्कादे।
तेलुगु	नाकु वेरु सेनग ईव्व वद्दु।	कुक्कनु कोट्टवद्दु।
कन्नड़	ननगे शेंगा कोडवेडिरि।	नायियन्नु होडेयवेडि।
मलयालम	एनिक्कु निलक्कटल तरेण्डा।	नायये अडिक्केण्टा।

हिंदी	बिल्लीको दूध दो।	इस बरतनको साफ करो।
तमिल	पूनैक्कु पाल कोडु।	इन्द पात्तिरतै तुलक्कु।
तेलुगु	पिल्लिकि पालु इव्वु।	ई पात्रनु कडुगु।
कन्नड़	बेक्किगे हालु कोडिरि।	ई पात्रमन्नु तोडेयिरि।
मलयालम	पूच्चक्कू पालु कोटुक्कु।	ई पात्रम् वृत्तियाक्कु।

हिंदी	इस कागजको फाड़ दो।
तमिल	इन्द ताळै पिजी।
तेलुगु	ई कागित्दमनु चिम्पि वेयि।
कन्नड़	ई कागदवन्नु हरिदु विड़ि।
मलयालम	ई कटलासु कीरिक्कळयु।

हिंदी	तमिल	तेलुगु	कन्नड़	मलयालम
मुझको	एनक्कु	नाकु	ननगे	एनिक्कु
तुमको	उमक्कु	मीकु	निमगे	निङङळक्कु
तुझको	उनक्कु	नीकु	निनगे	निनक्कु
आपको	उंगळुक्कु	तमकु	तमगे	तांकळक्कु

पुरोधा				
पेंसिलसे	पेंसिलिनाल	पेंसिलतो	पेंसिनिन्दा	पेंसिलकोण्टु
कलमसे	पेनावाल	कलमतो	पेन्निनिन्दा	पेनकोण्टु
साबुनसे	सोप्पाल	सब्बुतो	साबूनिनिन्दा	सोप्पुकोण्टु
हाथसे	कैय्याल	चेतितो	कैइन्दा	कैकोण्टु
मुझसे	एन्नाल	नातो	नन्निन्दा	एन्नैकोण्टु
तुझसे	उन्नाल	नीतो	निन्निन्दा	निन्नेकोण्टु
तुमसे	उम्माल	मीतो	निम्मिन्दा	नींगळकोण्टु
आपसे	उंगळाल	तमतो	तम्मिन्दा	तांकळेकोण्टु
पानीसे	तण्णीयाल	नीळ्ळतो	नीरिनिन्दा	वेळ्ळमकोण्टु, वेळ्ळत्ताल
आगसे	तीमाल	निप्पुतो	बेंकीइन्दा	तीकोण्टु, तीयिनाल
आंखसे	कण्णाल	कन्नुतो	कन्निन्दा	कण्णुकोण्टु, कण्णिनाल

पाठ २०

हिंदी	तमिल	तेलुगु	कन्नड़	मलयालम
गांवको	ऊरुक्कु	ऊरुकु	हळ्ळिगे	ग्रामत्तिलेक्कु
भिखारीको	पिच्चैक्कारनुक्कु	भिक्षगाड्कु	भिकारिगे	याचकन्नु
मनुष्यको	मनिदनुक्कु	मनिषिकि	मनुष्यनिगे	मनुष्यन्नु
तुमको	उमक्कु	निन्नु	निमगे	निनक्कु
मुझको	एनक्कु	नन्नु	ननगे	एनिक्कु
हमको	नमक्कु	मम्मु	नमगे	ञाङ्ङळक्कु
घरको	वीट्टुक्कु	इंटिकि	मनगे	वीट्टिलेक्कु
रामको	रामनक्कु	रामुनि	रामनिगे	रामन्नु
सीताको	सीतैक्कु	सीतनि	सीतागे	सीतक्कु
घरसे	वीट्टिलिरिन्दु	इंटिनुंचि	मनेयिन्दा	वीट्टिलनिन्नु
धूपसे	वेय्यिलिलिरिन्दु	संड नुंचि	बिसिलिनिन्दा	वेयिलिलनिन्नु
दुकानसे	कडैइलिरिन्दु	दुकाणमुनुंचि	अंगडियिन्दा	पीडिकयिलनिन्नु
मद्राससे	मड्वासिलिरिन्दु, मट्टणत्तिलिरिन्दु ।	मद्रासुनुंचि	मद्रसिनिन्दा	मद्रासिलनिन्नु
दूधमेंसे	पालिलिरिन्दु	पाललोनुंचि	हालिनिन्दा	पालिलनिन्नु
पुस्तकमेंसे	पुस्तहत्तिलिरिन्दु	पुस्तकमलोनुंचि	पुस्तकदिन्दा	पुस्तकत्तिलनिन्नु
मेरा	एन्नुडैय	ना	नन्न	एंटे
तेरा	उन्नुडैय	नी	निन्न	निंटे
उसका	अवनुडैय	वाडि	अवन (पु.) अवळ (स्त्री)	अवंटे

बापका	तहप्पनुडैय	तंड्रियोक्क	तन्देया	अच्छंटे, पितार्विटे
लड़केका	पैयनुडैय	बालुनियोक्क	हुडुगर	मकन्टे
तालाबका	कुळमुडैय	चेरुवुयोक्कु	केरेय	कुळंत्तिटे
नौकरका	लेलैकारनुडैय	पनिवानियोक्क नौकरुयक्क	नौकरन	वेलक्कारुटे
किताबमें	पुस्तकत्तिल	पुस्तकमुलो	पुस्तकदल्लि	पुस्तकत्तिल
घरमें	वीट्टिल	इंटिलो	मनेयल्लि	वीट्टिल
पानीमें	तण्णीयिल	नीळ्ळलो	नीरिनल्लि	वेळ्ळत्तिल
कमरेमें	अरैइल	गदिलो	कोणेयल्लि	मुरियिल
जेबमें	पैयिल	जेबुलो	जेबिनल्लि, खिसेयल्लि	कीशयिल
जूतेमें	सेरुप्पिल	चप्पुललो	चप्पलियल्लि।	चेरुप्पिल

पाठ २१

अब आपको काफी शब्द आते हैं, विभक्तियोंसे भी परिचय हो चुका है। नीचे दिये गये अनुच्छेदको पढ़कर अर्थ समझनेकी कोशिश कीजिये। हिंदी पहले मत पढ़िये। पहले तमिल आदि पढ़कर समझनेका प्रयास कीजिये फिर हिंदी अर्थ देख लीजिये।

हिंदी :—१. राम एक अच्छा लड़का है। २. उसको दूध दीजिये। ३. वह दूध पीकर बाहर जायेगा। ४. बाहर धूप है। ५. धूपमेंसे अंदर आओ। ६. नहीं, मैं दुकान जा रहा हूं। ७. वहांसे पुस्तक लाऊंगा। ८. दूकान कितनी दूर है? ९. बहुत दूर नहीं। १०. दूकानमें पेंसिल मिलती है। ११. मेरे लिये एक पेंसिल ले आना। १२. तुम्हारे पास लक्ष्मणकी पेंसिल है। १३. वह उसे वापिस दे दो। १४. तुम उसकी पेंसिलसे क्या करते हो? १५. उसकी पेंसिलका रंग सुन्दर है। १६. वह अच्छा लिखती है। १७. मुझे भी ऐसी पेंसिल चाहिये। १८. अभी जेबमें पैसे नहीं हैं। १९. बादमें ले लेना। २०. अच्छा।

तमिल :—१. रामन नल्ल पैयन। २. अवनुक्कु पाल कोडु। ३. पाल सापिट्टुविट्टु वेळिये पोवान। ४. वेळिये रोम्ब वेयिल। ५. वेयिलिरिन्दु उळ्ळे वा। ६. इल्ले, नान कडैक्कु पोहिरेन। ७. अगिरिन्दु पुस्तकम कोण्डु वरुवेन। ८. कडै एव्बळवु दूरम। ९. रोम्ब दूरम इल्लै। १०. कडैयिल पेंसिल किडैक्कुम। ११. एनक्काह ओरु पेंसिल कोंडुवा। १२. उनकिट्ट लक्ष्मणन पेंसिल इरुक्किरदु १३. अदै अवनिडम तिरुप्पीकोडें। १४. अवन पेंसिलै एन्न सेयहिराय। १५. अवन पेंसिल निरम अजहाइरुक्किरदु। १६. अदु नन्नाय एजुदुहिरदु। १७. एनक्कु कूड अदैप्पोल पेंसिल वेण्डुम। १८. एन पैयिल कासु इल्लै। १९. अप्पुरम वांगीकोळा। २०. सरी।

तेलुगु :—१. रामडु वोक मंचि बालडु। २. वानिक पालु इव्वण्डि। ३. वाडु पालुतागी बयटकु पोवनु। ४. बैट येण्डगा उन्नदि। ५. येण्डनुंचि लोपलकी रा। ६. लेदु नेनु दुकानमुनकु पोचुन्नानु। ७. अक्कड़नुंचि पुस्तकमु तीसुकु वोच्चेदन्। ८. दुकानमुयेन्त दूरमु? ९. येन्तो दूरम लेदु। १०. दुकानमुलो पेंसिल उंटुंदि। ११. नाकोरकु वोक पेंसिल तीसुकु रावालेनु। १२. मीवोद्द लक्ष्मुणियोक्क पेंसिल

उन्नदि। १३. अदि वानिकि तिरिगि इच्चि वेयि। १४. नीवु वानि पेंसिलतो येमि चेस्तुन्नाउ।
१५. वानि पेंसिल रंगु चाला बागुन्दि।
१६. अदि बागा रास्तुंदि। १७. नाकुकूड अलांटि पेंसिलु कावालि। १८. इप्पुड़ जेबुलो डब्बु लेदु।
१९. तरुवाता तीसुकोवच्चुनु। २०. मंचिदि।

कन्नड़ :— रामनु ओळळेय हुडुगु। २. अवनिगे हालनु गोडिरि। ३. अवनु हालु कुडिदु होरेगे होगुत्ताने।
४. होरेगे बिसिलु इदे। ५. बिसिलु ओळगे बन्निरि। ६. इल्ल, नानु अंगड़िगे होगुत्तिद्दने।
७. अल्लिन्द पुस्तकवन्नु तरुत्तेने। ८. अंगडियु यष्टु दूर इदे। ९. तुम्ब दूर इल्ल। १०. अंगडियल्लि
पेंसिल सिगुत्तदे। ११. ननगागि ओन्दु पेंसिलन्नु तन्निरि। १२. निम्म बळि लक्ष्मणन पेंसिल
इदे। १३. अदन्नु अवनिगे वापसु कोडि। १४. नीवू अवन पेंसिलिनिन्द एनु माडुत्तिरि? १५.अवन
पेंसिलन बन्नचन्नागिविदे। १६. अदु चन्नागि बरयुत्तदे। १७. ननगु अदे तरहद पेंसिल बेकागिदे।
१८. ईग जेविनल्लि हणविल्ल। १९. आमेले तेगेदु कोळ्ळिरि। २०. ओळ्ळयेदु।

मलयालम :— १. रामन नल्ल कुट्टियाणु। २. अवन्नु पाल कोडुक्क। ३. पाल कुटिच्चर्दिटे शेषम
अवन पुरत्तेकु पोकुम। ४. पुरत्तु वेयिल उंटु। ५. वेयिलत्तुनिन्नु आगत्तेक्कु वरु। ६. इल्ला, ञान
पीटिकयिलेक्कु पोवुकयाणु। ७. अविडुन्नु ञान ओरु पुस्तकम कोण्टु वेरुम। ८. पीटिक एत्रदूरत्ताणु।
९. अतु वळरे दूरत्तल्ल। । १०. पीटिकियिल पेंसिल किट्टुम। ११. एन्निक्कु ओरु पेंसिल कोण
वरणम। १२. लक्ष्मणंडे पेंसिल निंटे कैवशमान उण्टु। १३. अतु अवन्नु मटक्कि कोटुक्कु। १४. अवंटे
पेंसिलकोण्टु नी ऐंतु चेय्युन्नु? १५. अवंटे पेंसिलिंटे निरम मनोहरमाणु। १६. अतिने कोण्टु नल्ल
वणम एजुताम। १७. एनिक्कु आमदिरि पेंसिलाणु वेण्टतु। १८. इप्पोळ कीशयिल पैस (पणम)
इल्ला। १९. नी तन्नाल निनैक्कु पिन्ने एडुक्काम। २०. शरी।

यदि आप सर्वोत्तम प्रकारके
वैद्युतिक उपादान
चाहते हैं
तो हमें लिखिये :
आनेस्टी एलेक्ट्रिक स्टोर्स
१२–रवीन्द्र सरणि
प्रदर्शन कक्ष क्रमांक ३१५
कलकत्ता–१
दूरभाष : ३४७९९८

"युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके रथको हांकनेवाले कुरुक्षेत्रके सारथि (श्रीकृष्ण) कर्मयोगके प्रतीक और प्रतिमूर्त्ति हैं; क्योंकि शरीर ही है रथ और इन्द्रियां हैं हांके जानेवाले घोड़े और संसारके रक्तरंजित तथा पंकसंकुल पथसे ही श्रीकृष्ण मानवात्माको वैकुंठ-तक ले जाते हैं।"

—श्रीअरविंद

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन–४३४

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

१९६६ की डायरी

२६ फूलोंके बहुरंगे चित्र और उनका अर्थ
९ इंच×७ इंच : २ पृष्ठ प्रति सप्ताह लिखनेके
मूल्य रु. १२-०० मात्र

मिलनेका पता :
श्रीअरविंद आश्रम (प्रकाशन-विभाग), पांडिचेरी–२

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,
CALCUTTA 29

A leading Dealer in and

Manufacturers

Chemicals, Solvents, Minerals,

Thinners, Silicates,

Insecticides & Pesticides.

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट
शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट
कलकत्ता—७
फोन—३३२३१२

***

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

***

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of:

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९
तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

A happy beginning
a good continuation
and no end —
an endless progression

14-5-57

NEW HORIZON SUGAR MILLS PRIVATE LTD.
PONDICHERRY

Statement about ownership and other particulars about newspaper (PURODHA) to be published in the first issue every year after last day of February.

FORM IV

(See Rule 8)

1. Place of Publication .. .. PONDICHERRY

2. Periodicity of its publication .. QUARTERLY

3. Printer's Name .. .. Amiyo Ranjan Ganguli
Nationality .. .. .. Indian
Address .. .. .. Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-2

4. Publisher's Name .. .. Aniruddha Sircar
Nationality .. .. .. Indian
Address .. .. .. Sri Auobindo Ashram, Pondicherry-2

5. Editor's Name .. .. .. Ravindra
Nationality .. .. .. Indian
Address .. .. .. Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-2

6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital. Sri Aurobindo Society,
64, Rue d'Orleans, Pondicherry-2

I, Aniruddha Sircar, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd- ANIRUDDHA SIRCAR
Signature of Publisher

Date 1st April 1966

दृढ़ विश्वास रखो कि भारतको उठना है और महान् बनना है। जो कुछ हुआ है, उसकी प्रत्येक कठिनाई, प्रत्येक हार लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ाती और उसमें सहायक होती है। अब हमें ऊपर ही ऊपर उठते जाना है। नीचे गिरनेका जमाना खत्म हो गया।

—श्रीअरविंद

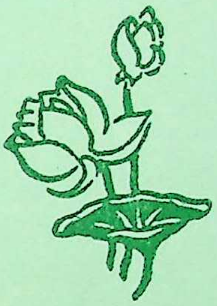

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड

१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;

बम्बई--१

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

With best wishes from :

Arthur Import Export Co.

'MON REPOS'

41/44, Arthur Bunder Road,
Behind Radio Club,

BOMBAY-5

Importers, Exporters & Suppliers of

Finest quality of

Shoddy yarns, Synthetic Tops, and Barrack Blankets.

प्रबोधा

किशोर-त्रैमासिक

जुलाई

१९६६

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा

सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	
हे भारत	रवीन्द्रनाथ	३
संपादकीय	. . .	४
सबसे अच्छा मित्र	श्रीमां	५
तरुवर	कोकिल	८
जगन्नाथका रथ	श्रीअरविन्द	१०
विदुला	अनुबेन पुराणी	११
अप्रकाशित इतिहासका एक पृष्ठ	सुरेशचंद्र चक्रवर्ती	१४
छत्रसाल महाबली	संतकुमार	२२
वसन्त कल्पना	देवदत्त	२९
पलमें रत्ती पलमें माशा	रमेश भंडारी	३८
लाख	. . .	३९
जाह्नवीकी बहिन	. . .	४०
कुछ याद रही . . . कुछ भूल गये	श्यामसरन अग्रवाल	४४
अपाहिजोंका नया जीवन	संकलित	४७
शेख सादी और शिक्षा	मुहम्मद यूसुफ कोकन	४९
विद्यार्थी-जीवनकी झलक—(१) छुट्टियां	चेतना	५०
(२) मुझे हिंदी प्रिय है	रवीन्द्र	५२
(३) पढ़ाई	मीना	५३
सच्चा दान	मेधाव्रत	५४
एक लेखिकाकी मुसीबतें	. . .	५५
न्योतेसे लौटते हुए	भूमा	५७
पंचायतकी बैठक	रामरतन बड़ोला	५९
मारिशसकी एक कथा	विष्णुदयाल	६१
पुस्तक-परिचय	. . .	६३
दक्षिण भारती	. . .	६४

चित्रकार : कृष्णलाल। मूल्य : एक अंक : रु. १.५० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ५.००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

जुलाई १९६६ अंक १

वर्ष ५

पुरोधा

त्रैमासिक किशोर पत्रिका

बालक-बालिकाओंको निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्यनिष्ठ और सम्मान्य व्यक्ति बननेमें सहायता करनी चाहिये जिसमें कि वे अपने अंदर दिव्य प्रकृतिको विकसित करनेके योग्य हो सकें।

--श्रीअरविन्द

प्रकाशक

श्रीअरविंद सोसायटी

पांडिचेरी-२

*

पुरोधाके प्रेमी पाठकोंसे

पुरोधाने अपने जीवनके चार वर्ष समाप्त कर लिये हैं। इस थोड़ेसे समयमें ही उसे अपने पाठकोंका स्नेह पर्याप्त मात्रामें मिला है और इसके लिये वह उन सबका कृतज्ञ है जिन्होंने किसी भी तरहसे उसकी सहायता की है।

बहुतसे पाठकोंका आग्रह था कि पुरोधा जैसी पत्रिका त्रैमासिक न होकर मासिक होनी चाहिये। श्रीअरविंद सोसायटीने उनकी इस इच्छाको मान देते हुए यह निश्चय किया है कि अगले अंक (अक्तूबर) से पुरोधाको मासिक कर दिया जाय। स्वभावतः इसके कारण वार्षिक चन्दा भी ५)की जगह ७) हो जायगा। जिन लोगोंका चंदा इस अंकके साथ खतम हो रहा है उन्हें व्यक्तिगत रूपसे सूचना दी जा रही है। हम आशा करते हैं कि वे शीघ्र ही धनादेशद्वारा ७) भेजनेकी कृपा करेंगे अन्यथा अक्तूबरका अंक वी.पी. द्वारा भेजा जायगा। कृपया ध्यान रखिये कि अगर वी.पी. लौट आये तो हमें व्यर्थमें हानि होती है।

हम अपने पाठकोंसे यह आशा करेंगे कि वे पुरोधा परिवारमें नये सदस्योंको लानेका प्रयास करेंगे। पुरोधाकी प्रगतिके बारेमें सुझावोंका स्वागत होगा।

धन्यवाद।

व्यवस्थापक — पुरोधा

मासिक पुरोधाका वार्षिक चंदा ७); तीन वर्षका चंदा २०), आजीवन सदस्यताके १२५)। पुराने त्रैमासिक अंकोंका दाम १.२५ प्रति अंक। त्रैमासिक पुरोधा ८० पृष्ठका होता था। मासिक ४० पृष्ठका होगा।

प्रार्थना

हे प्रभु, वर दे कि मैं वह अग्नि बनूं जो प्रकाश देती है और गर्मी पहुंचाती है, वह स्रोत बनूं जो प्यास बुझाता है, वह वृक्ष बनूं जो छाया देता है तथा रक्षा करता है.... मनुष्य इतने दुःखी हैं, इतने अज्ञानी हैं, उन्हें सहायताकी बहुत आवश्यकता है।

मेरा विश्वास और भरोसा, मेरी आंतरिक निश्चयता दिन-दिन बढ़ रही है। और दिन-दिन ही तेरा प्रेम मेरे हृदयमें अधिक सजग हो रहा है, तेरा प्रकाश अधिक उज्ज्वल तथा कोमल बन रहा है। अधिकाधिक ही मैं 'तेरे कर्म' और अपने जीवनमें तथा अपने व्यक्तित्व और संपूर्ण पृथ्वी-में भेद नहीं कर पा रही।

प्रभु, हे प्रभु, तेरा तेज अनंत है, तेरा सत्य अद्‌भुत है। तेरा परम शक्तिशाली प्रेम संसारका उद्धार करेगा।

—श्रीमां

हे भारत!

हे भारत, नृपति रे शिखायेछो तुमि, त्यजिते मुकुट दण्ड सिंहासन भूमि।
धरिते दरिद्र बेश; शिखायेछो बीरे, धर्म युद्धे पदे-पदे क्षमिते अरि रे।
भुलि जय-पराजय शर संहरिते, कर्मीले शिखाले तुमि योगमुक्त चिते।
सर्व फल स्पृहा ब्रह्मे दिते उपहार, गृहीरे शिखाले गृह करिते बिस्तार।
प्रतिबेशी आत्मबन्धु अतिथि अनाथे, भोगेर बेंधेछो तुमि संयमेर साथे।
निर्मल बैराग्ये दैन्य करेछो उज्वल, संपदेरे पुण्य कर्मे करेछो मंगल।
शिखायेछो स्वार्थ त्यजि सर्व दुःखे सुखे, संसार राखिते नित्य ब्रह्मेर सम्मुखे।

हे भारत, तुमने नृपति-शासकको सिखाया कि वह राजमुकुट, राजसिंहासन, राजदंड और पृथ्वीपर अपना अधिकार त्यागकर अकिंचनका वेश धारण करे।

तुमने वीरको, योद्धाको सिखाया कि वह कदम-कदमपर बार-बार दुश्मनको क्षमा करे, पर जय-पराजय, जीत और हारको भूलकर विजयके लिये जूझे।

तुमने कार्यकर्ताको—समाजमें किसी भी प्रकारका काम करनेवालेको — सिखाया कि वह योगयुक्त चित्तसे — कर्ममें कुशलतापूर्वक तल्लीन हो — सब प्रकारके परिणामोंकी लालसाको ब्रह्ममें, विराट् जीवनमें — उत्सर्ग कर दे।

तुमने गृहस्थको सिखाया कि वह अपने घरको अपने पारिवारिक जनोंमें ही सीमित न कर, उसे यों विस्तृत करे कि अनाथ और अतिथि भी वहां अपने सगे-संबंधी बनकर रहें।

तुमने भोगको संयमके साथ बांध दिया और अकिंचनताको निर्मल वैराग्यके साथ बांध प्रोद्भासित कर दिया।

तुमने संपदाको पुण्य कर्मसे संबद्ध कर मांगलिक बना दिया और सिखाया स्वार्थका त्यागकर सब प्रकारके सुख-दुःखमें सदा विराट् पुरुषके सान्निध्यमें निवास करना।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

सच्ची स्वाधीनता और एकता

हम पिछले लेखमें देख चुके हैं कि प्रकृति एक ही सांचेमें ढले हुए रूप नहीं चाहती। व्यक्ति हो या समाज, किसीको भी एकरूपता देनेके प्रयास क्षणिक सफलता भले प्राप्त कर लें, पर अंतमें बुरी तरह असफल होते हैं। अभी हमारे अपने समयमें हिटलरी जर्मनी इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है। मानव-जीवनके आधारमें ही स्वाधीनता रखी गयी है। यहां स्वाधीनता शब्द विशेष महत्त्व रखता है। सच्ची स्वाधीनता क्या है? मनमौजीपन या उच्छृंखलता नहीं अपितु अपनी आंतरिक सत्ताकी इच्छाके अनुसार अपने जीवनको ढालना, अपनी क्षमताओंको विकसित होनेका पूरा अवसर देना और एक स्वाधीन समाजके स्वाधीन अंगोंके साथ पूर्ण सामंजस्य प्राप्त करना। अगर स्वाधीनताकी जगह एक बेढंगी आजादी ले ले तो एक भयंकर-सी स्थिति पैदा हो सकती है जिसमें अव्यवस्था, संघर्ष, अपव्यय और अफरा-तफरीका राज्य हो। व्यक्ति या समाज अंधा होकर दूसरोंके अस्तित्वको भूल जाता है और अपनी ही चलानेमें अन्य व्यक्तियों और समाजोंको इधर-उधर धक्के देने लगता है और पारस्परिक सहयोग और सहानुभूतिका स्थान संघर्ष और स्वार्थपरता ले लेते हैं जिसका परिणाम होता है दुःख, क्लेश और विघटन।

सच्चे स्वाधीन समाजमें, जिसकी नींव अध्यात्मपर हो, इस प्रकारकी अव्यवस्थाकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसमें प्रत्येक स्वाधीन व्यक्ति या समाज स्वभावतः दूसरोंके साथ सामंजस्यमें रहेगा। दूसरोंके पूर्ण हुए बिना उसे अपनी पूर्णता ही अपूर्ण दिखायी देगी। सबके विकासमें ही उसे अपना विकास दिखायी देगा। इसके विपरीत कानूनके द्वारा ऊपरसे लादी हुई एकता आजकलके संसारमें ज्यादा आसानीसे लायी जा सकती है। कड़े कानून बना दिये जायें और सबको एक ही लाठीसे हांका जाय तो एकरूपता जल्दी आती है और हमारे मन और प्राणकी वर्तमान अवस्थाके साथ मेल भी खाती है। लेकिन उसके अंदर अपने विनाशका बीज होता है। यह संघटन अस्वाभाविक और कृत्रिम होता है तथा ऊपरी दबावके कम होते ही सारा संगठन और उसके द्वारा लायी हुई एकता बालूकी दीवारकी तरह ढह जाती है। यदि यह बाहरी विधि-विधान बहुत लंबा खिंच जाय तो वास्तविक विकासका गला घोंटने लगता है, प्रकृतिके उपक्रमको बंद कर देता और आंतरिक प्रेरणाके लिये दरवाजे भेड़ देता है, व्यक्ति और समाज ऊपरसे भला-चंगा दीखनेपर भी अपने लचीलेपनको खोकर भंगुर बन जाता है। ऊपरसे लादे हुए विधि-विधानद्वारा, ऐसे कानूनोंके द्वारा जो अपनी सत्ताके साथ मेल नहीं खाते, लायी हुई सुव्यवस्था और संगठनकी अपेक्षा अराजकता और अस्तव्यस्तता कहीं अच्छी है।- लेकिन संतोषका विषय है कि निषेधात्मक कानून और अत्याचारी तंत्र अस्थायी होते हैं और सत्ताके सत्य विधानके स्थानपर नहीं बैठ सकते। सच्चा विधान अंदरसे विकसित होता है, वह किसीकी स्वाधीनतापर प्रतिबंध नहीं लगाता बल्कि यूं कहा जा सकता कि वह सच्ची स्वा-

धीनताकी उपज होता है। मानवसमाजकी सच्ची प्रगति उसी अनुपातमें होती है जिस अनुपातमें उसके विधि-विधान स्वाधीनतासे पैदा होते हैं। उसे पूर्णता तब प्राप्त होगी जब मनुष्य आंतरिक अनुभूति-द्वारा अपने-आपको औरोंके साथ एक समझ सकेगा और अनुभव करेगा। तब समाजका कानून उसकी आंतरिक स्वाधीनताका ही एक बिंब होगा।

वांछनीय तो यही है कि सारी चीज इसी रूपमें आये पर यह तभी हो सकता है जब संसारके शासनकी बागडोर मनु या जनक जैसे किसी संत राजाके हाथमें हो। परंतु स्थिति ऐसी नहीं है। जो कुछ होगा वह साधारण मनुष्यसमाजकी इच्छाओं, वासनाओं और स्वार्थोंके सागरमें, संसारके अर्द्ध-जागृत मनीषियों और अवसरवादी राजनीतिक नेताओंके द्वारा किया जायगा इसलिये भूल-भ्रान्तिसे भरे परीक्षण होते रहेंगे, सत्यके विरुद्ध अपनी जिदपर, अपने स्वार्थपर डटे रहनेकी मनोवृत्ति भी काम करती रहेगी। लेकिन इस सारी अव्यवस्थाके होते हुए भी, परस्परविरोधी मंतव्यों और स्वार्थोंकी टक्करके बावजूद, लड़खड़ाते हुए गिरते पड़ते मानवजाति आगे बढ़ती ही जायेगी। इस मार्गमें आदर्श विरोधी उपाय जैसे मारकाट, दूसरोंको पैरों तले कुचलनेवाले विशाल साम्राज्य, और सबके ऊपर रहकर सबपर चौधराई करनेवाला तंत्र भी प्रगति-मार्गमें मीलके पत्थर बन सकते हैं। हां, यदि मानव सचेतन होकर अध्यात्म-मार्गसे आगे बढ़नेका प्रयास करे तो काम सरल और स्वाभाविक हो जाता है नहीं तो राजनीतिक, आर्थिक और शासकीय एकता लानेके लिये सचेतन उपायकी जगह आवश्यकता, सुविधा और परिस्थितियोंसे बाधित होकर, ज्योतिके मार्गदर्शनमें नहीं, बल्कि भयसे काम होगा।

आजकी परिस्थितियोंमें आदर्शपर चलना तो संभव नहीं है परंतु फिर भी यह जानना जरूरी है कि हमारा आदर्श क्या है ताकि वादों, स्वार्थों और शक्तियोंकी टक्करमें भी उसकी याद बनी रहे और वह विरोधी स्थितिमें भी रिस-रिसकर अपना प्रभाव डाल सके, और हमारे अज्ञान, अविवेक आदिके परिणामोंको जरा हल्का कर दे। मानवजातिकी आदर्श एकता तो वह होगी जब मनुष्य अपनी इच्छासे, स्वाभाविक रूपमें स्थान, जाति, संस्कृति, आर्थिक सुविधा आदिके आधारपर इकाइयां बना सकेंगे। महान् राष्ट्रोंके अहंकार भरे दबदबे, इतिहासके बदलती करवटों, तथा छोटोंको दबाकर नीचे रखनेकी शक्तिशाली व्यक्तियों तथा राष्ट्रोंकी नीतिके कारण या उनके भयसे देश या भूमिखंड तैयार नहीं किये जायेंगे। आजके बहुतसे देश तथा अन्य विभाजन कूटनीति, संधि-विग्रह, सैनिक भय, अथवा मारकाटके कारण ही किये गये हैं। कई छोटे-छोटे देश केवल इसलिये बने हुए हैं कि उनके चारों ओर बड़े राष्ट्र मुंह बाये हुए हैं और उन्हें आपसमें एक-दूसरेका डर लगा रहता है, वे एक-दूसरेके साथ टकराना नहीं चाहते इसलिये बीचमें एक छोटी-सी गद्दीके रूपमें एक राज्यको रहने देते हैं जो दोनों तरफके धक्कोंके लिये स्प्रिंगका काम देता है। इस विभाजनमें किसी नीति, या मानव-कल्याणका ख्याल नहीं होता। लेकिन प्रकृति हर तरहसे अपना काम साध ही लेती है। वह अर्ध-पशु मानवजातिको, इन सब झमेलोंमेंसे होकर भी ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा आदिके बीहड़में गुजरते हुए भी, आगे बढ़ाती रहती है। एकताकी दिशामें जो कदम उठाये जायेंगे वे तो रह जायेंगे पर रास्तेके झाड-झंखाड़ आदि अपने-आप समाप्त हो जायेंगे। प्रकृति सारे संसारको आगे बढ़ाना चाहती है केवल अमुक देशोंको ही नहीं। इस एकतामें देशोंके अंदर पारस्परिक लेन-देन तो होगा ही परंतु वह आपसी समझौतेद्वारा एक-दूसरेकी आवश्यकताको ध्यानमें रखते हुए होगा। हो सकता है कि इससे पहले न्यायसंगत प्रतियोगिताकी बारी आये, परंतु यह तो निश्चित है कि शोषक और शोषितका संबंध ज्यादा समय न रह पायेगा और इसलिये अस्वाभाविक विभाजनके लिये भी कोई स्थान न रह जायेगा। विश्व-ऐक्य कानूनी अन्याय, अत्याचारको नहीं सह सकता, उसमें किसी प्रकारके दबावके लिये स्थान नहीं हो सकता क्योंकि दबावके साथ ही विद्रोह भी आ धमकेगा और जहां ये दोनों हों वहां एकता और शांतिके लिये स्थान नहीं रहता।

पुरोधा

अभीतक एकताके जितने प्रयास हुए हैं उनमें सबसे बड़ी त्रुटि यही रही है कि उन्होंने आमूल परिवर्तन करनेकी जगह वर्तमान अन्यायों और असंगत अधिकारोंको स्वीकार कर लिया। जब संधियां की गयीं तो उनका उद्देश्य युद्ध-विरामसे अधिक कुछ न था। उनके कारण कुछ समयके लिये किसी रूपमें युद्ध बन्द हो गया पर युद्धके बीज और भी पुष्ट हो गये, बलवान् राष्ट्रोंके नाम स्वामित्वका पट्टा लिख दिया गया और बलहीन राष्ट्रोंके साथ कहीं खुलकर और कहीं पर्देके पीछे मनमाना व्यवहार उचित माना गया। कहनेको सब देश समान हैं पर उनमेंसे कुछ देश ज्यादा समान हैं। आज खुले रूपसे गोरे राज्योंका दूसरोंपर प्रभुत्व नहीं माना जाता। संयुक्त राष्ट्रमें कृष्णवर्ण लोगोंका बहुमत है परंतु यह सब होते हुए भी अमरीका या रूसके दबावमें आकर सबको एक-न-एक पक्ष लेना ही होता है। कहनेको जो निष्पक्ष राष्ट्र हैं वे भी इन दबावोंमें फंसे रहते हैं। हमारे कहनेका आशय यह नहीं है कि छोटे राष्ट्रोंकी कोई आवाज नहीं है। नहीं, उनकी आवाजका भी असर होता है परंतु तभीतक जबतक वह दूसरोंके लिये संकटका कारण बन सकते हैं। जो तुरंत संकटका कारण नहीं बन सकता उसका पक्ष न्यायसंगत होते हुए भी उपेक्षित ही रहता है। यही नहीं, उसे दबाकर चुप कर दिया जाता है ताकि वह औरोंके लिये बाधा न खड़ी कर सके, लेकिन यह स्थिति अस्वाभाविक है और इसके अंदर भावी उपद्रव और घोर संग्रामके बीज मौजूद हैं।

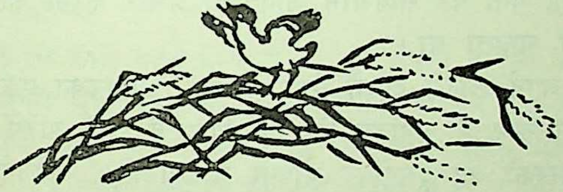

निराशावादी होनेसे इसके सिवा कभी और कोई फल नहीं होता कि मनुष्य ठीक उन्हीं चीजोंको अपने ऊपर खींच लाता है जिनसे वह डरता है। इसके विपरीत, यह जरूरी है कि सब तरहके निराशाभरे विचारोंको दूर भगाकर केवल उसी विषयमें सोचनेपर जोर दो जिसे तुम पसंद करते हो।

⁂

दुःखी मत होओ। एक ही लड़ाईको कई-कई बार जीतनेकी सर्वदा आवश्यकता होती है, विशेषकर उस समय जब वह प्रतिकूल शक्तियोंके विरुद्ध हो। इसलिये तुम्हें धैर्यरूपी शस्त्रसे सज्जित होना चाहिये तथा अंतिम विजयमें विश्वास बनाये रखना चाहिये।

—श्रीमाताजी

सबसे अच्छा मित्र

"हमारा सबसे अच्छा मित्र वह है जो हमारी सत्ताके सर्वश्रेष्ठ भागमें हमसे प्रेम करता है और फिर भी, हम जो कुछ हैं उससे अलग कुछ और बननेके लिये नहीं कहता।"

(माताजीकी पुस्तक "प्रवचन, सूत्र और विरोधाभासी वचन" से)

क्या आप इस वाक्यपर कुछ कहेंगी ?

मेरी बड़ी इच्छा होती है कि मैं तुम्हें सब प्रकारकी विरोधाभासी वस्तुओंके बारेमें बता दूं। पर..

जब मैंने यह लिखा था तब मैं एक ऐसी बातके बारेमें सोच रही थी जिसे लोग साधारणतया भूल जाते हैं। हम अपने मित्रों तथा अपने चारों ओरके व्यक्तियोंसे यह चाहते हैं कि वे वास्तवमें जो हैं वह न रहकर जैसा हम चाहते हैं वैसे बन जायं। हम एक आदर्श बना लेते हैं और उसे सबपर लादना चाहते हैं। इससे मुझे टालस्टायके पुत्रकी याद आती है जिससे मैं जापानमें मिली थी। वह मनुष्योंमें एकता उत्पन्न करनेकी आशासे सारे संसारकी यात्रा कर रहा था। उसका उद्देश्य बहुत बढ़िया था, किंतु कार्य करनेका ढंग उतना अच्छा नहीं था। वह एक अल्हड़ प्रकारकी गंभीरतासे कहा करता था कि यदि सब एक ही भाषा बोलने लगें, एक ही ढंगके कपड़े पहनने लगें, एक ही तरीकेसे खायें, एक ही तरहसे कार्य करें तो यह चीज बलात् एक प्रकारकी एकता ले आयेगी। जब उससे यह पूछा गया कि वह अपने विचारको किस प्रकार कार्यान्वित करना चाहता है, तो उसने उत्तर दिया कि इसके लिये एक देशसे दूसरे देशमें जाना तथा वहां एक नयी पर सार्वभौम भाषाका, एक नये पर सार्वभौम वेषका, नयी पर सार्वभौम आदतोंका प्रचार करना काफी होगा। बस, इतना ही। और वह यही करना चाहता था।

वस्तुतः, प्रत्येक व्यक्ति अपने छोटेसे क्षेत्रमें ऐसा ही है। प्रत्येकका एक अपना आदर्श होता है, क्या सत्य है, क्या सुन्दर और श्रेष्ठ है, यहांतक कि क्या दिव्य है इसके बारेमें प्रत्येकका अपना विचार होता है। अपने इसी विचारको वह दूसरोंपर थोपना चाहता है। कई ऐसे लोग भी हैं — और वे संख्यामें बहुत अधिक हैं — जो भगवान्-संबंधी अपनी धारणाको भी स्वयं भगवान्पर लाद देनेकी चेष्टा करते हैं! और साधारणतया वे तबतक निरुत्साहित नहीं होते जबतक वे मृत्युको प्राप्त नहीं हो जाते।

इस वाक्यको लिखते समय मेरा ध्यान इसी वृत्तिकी ओर था जो सहज-स्वाभाविक तो होती ही है, प्रायः अचेतन भी होती है। वस्तुतः तुम इस बातको निश्चित मान लो कि यदि मैंने उनमेंसे किसीसे यह कहा होता, "यही तो तुम करनेकी कोशिश कर रहे हो", तो वह रोषपूर्वक इसका प्रतिवाद करता तथा पूर्ण विश्वासके साथ कहता, "कैसे, अपने जीवनमें मैंने कभी ऐसा नहीं किया।" फिर भी यदि तुम लोगोंके विषयमें अपना मत रखते हो, विशेषकर उनके जीवनके ढंगके विरुद्ध यदि तुम्हारी प्रतिक्रियाएं होती हैं तो इसका कारण यह है कि तुम उन्हें इसलिये दोषी ठहराते हो कि वे वैसे नहीं हैं जैसा तुम उन्हें चाहते हो। यदि तुम सदा यह याद रखो कि संसारमें कोई दो वस्तुएं समान नहीं हो सकतीं, और न होनी ही चाहियें, क्योंकि फिर दूसरी वस्तु व्यर्थ हो जायगी, क्योंकि इस विश्वका निर्माण एक ऐसी असीम बहुविधताके समन्वयके लिये हुआ है जिसमें दो क्रियाएं, बल्कि एक अधिक प्रबल कारणसे, दो चेतनाएं भी समान नहीं हो सकतीं। यदि तुम इस बातको न भूलो, तो तुम किसी दूसरेको अपने विचारों या आदर्शोंके अनुकूल बनानेकी इच्छा कैसे कर सकते हो? प्रत्येकको जो वह है, वही होना चाहिये, उस सत्यके अनुसार जो केवल उसीका है, तुम्हारे सत्य, आदर्श या विचारोंके अनुसार नहीं।

जो तुम्हें सीखना है वह है, विश्वकी समस्त असमान वस्तुओंमें सामंजस्य स्थापित करना, उनका

संश्लेषण करना तथा उन्हें एक साथ रहने योग्य बनाना, उन्हें संयुक्त करना, सबको अपने उचित स्थानपर रखना। पूर्ण समन्वय तादात्म्यमें नहीं बल्कि उस संगठनमें है जहां प्रत्येकको अपना स्थान मिल जाता है।

यह उस वृत्तिका आधार होना चाहिये जिसकी तुम अपने मित्रसे आशा कर सकते हो। उसे भी इस बातकी इच्छा नहीं करनी चाहिये कि तुम उसके समान बनो, बल्कि इसके विपरीत, तुम्हें वही बने रहना चाहिये जो तुम हो।

मैंने लिखा था, "हमारा सर्वश्रेष्ठ मित्र वह है जो सत्ताके सर्वश्रेष्ठ भागमें हमसे प्रेम करता है।" अधिक निश्चयात्मक ढंगसे मैं यह कहूंगी : जो व्यक्ति तुम्हें तुम्हारे निम्नतम स्तरपर आनेके लिये उत्साहित करे, जो तुम्हें अपने साथ मूर्खतापूर्ण व्यवहार करनेके लिये प्रेरित करे या जो तुम्हारे अंदर-की बुरी वस्तुका अनुमोदन करे वह तुम्हारा मित्र नहीं है। फिर भी, प्रायः ही, बल्कि बहुत बार तुम उस व्यक्तिसे मित्रता करते हो जिसके साथ तुम, जब तुम अपनी सत्ताके निचले स्तरपर होते हो, अप्रसन्न नहीं अनुभव करते। तुम उन्हींके पास बहुत जाते हो जो स्कूल जानेके बदले इधर-उधर फिरते रहते हैं, जो बगीचोंसे फल चुराते हैं, अपने शिक्षकोंकी हंसी उड़ाते हैं और सब प्रकारके बुरे कार्य करते हैं। इसीलिये मैंने कहा था कि ऐसे लोग अच्छे मित्र नहीं होते, किंतु वे होते सुविधाजनक हैं, क्योंकि वे तुम्हें कभी यह नहीं जताते कि तुम गलतीके मार्गपर हो। उधर यदि कोई आकर तुम्हें कहे, "मेरा कहना है कि इधर-उधर निठल्ले घूमने या मूर्खतापूर्ण बातें करनेके स्थानपर तुम स्कूल क्यों नहीं जाते, क्या तुम्हारे विचारमें यह अधिक अच्छा नहीं रहेगा?" तो ऐसे व्यक्तिसे साधारणतया तुम यही कहोगे, "तुम मुझे तंग करते हो, तुम मेरे मित्र नहीं हो।"

यहां कुछ ऐसे बच्चे हैं जो कभी बहुत होनहार थे, जो अपनी कक्षामें प्रथम आते थे, और गंभीर-तापूर्वक काम करते थे, जिनसे मुझे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं; वे अब इस प्रकारकी मित्रतासे पूर्णतया बिगड़ गये हैं। और क्योंकि आज बात चल पड़ी है, मैं उनसे आज कहती हूं कि मुझे इसका बड़ा खेद है। मैं ऐसे लोगोंको मित्र नहीं, विनाशकारी शत्रु कहती हूं। इनसे ऐसे ही बचना चाहिये जैसे संक्रामक रोगोंसे बचा जाता है। संक्रामक रोगमें ग्रस्त व्यक्तियोंके संगसे तुम बड़ी सावधानतापूर्वक बचते हो, सामान्यतया इन्हें अलग रखा जाता है, जिससे कि रोग फैल न सके। किंतु बुरे कार्य और बुरे व्यवहारकी छूत, नीचता, क्षुद्रता और असत्यकी छूत तो बीमारीकी छूतसे भी बहुत अधिक भयानक है और इससे बड़ी सावधानीसे बचना चाहिये। केवल उसीको अपना सबसे अच्छा मित्र मानना चाहिये जो बुरे या असुंदर कार्यमें भाग लेना अस्वीकार कर दे, जो तुम्हें समस्त क्षुद्र प्रलोभनोंसे बचने-के लिये उत्साहित करे। वही तुम्हारा सच्चा मित्र है।

उसीके साथ तुम्हें संबंध रखना चाहिये, उससे नहीं जो तुम्हारी बुरी प्रवृत्तियोंको और सबल बनाये तथा तुम्हारे बुरे कार्योंमें भाग ले।

वस्तुतः तुम्हें केवल उन्हीं व्यक्तियोंको अपना मित्र बनाना चाहिये जो तुमसे अधिक बुद्धिमान् हैं, जिनका साथ तुम्हें भला बनाता है, जो तुम्हें पहलेसे ऊंचा उठाने और उन्नति करनेमें, अधिक अच्छी तरह कार्य करने तथा अधिक स्पष्टतासे देखनेमें सहायता देते हैं, और अंतमें सर्वश्रेष्ठ मित्र जो तुम्हें मिल सकता है वह क्या भगवान् नहीं है? —ऐसा भगवान् जिसे तुम सब कुछ कह सकते हो, जिसके सामने तुम सब कुछ खोलकर रख सकते हो, क्योंकि यही समस्त दयालुताका और समस्त भ्रांतियोंको (जब कि वे दुहरायी नहीं जातीं) मिटानेवाली शक्तिका स्रोत है। और यह सच्ची प्राप्तिके लिये रास्ता खोल सकता है। ऐसा भगवान् जो सब कुछ समझ सकता है, सब कुछ ठीक कर सकता है, जो तुम्हें अडोल, अडिग रहनेमें, नीचे न गिरनेमें सहायता पहुंचाता है, जो तुम्हें सीधा लक्ष्यकी ओर

ले जाता है। वह सच्चा मित्र है, भले और बुरे दिनोंका साथी है, वह कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता। जब तुम उसे सच्चे दिलसे पुकारते हो, वह सदा तुम्हारा पथप्रदर्शन करनेके लिये, सच्चे ढंगसे तुम्हें सहारा देने तथा तुमसे प्रेम करनेके लिये तुम्हारे पास सदा उपस्थित रहता है।

—श्रीमां

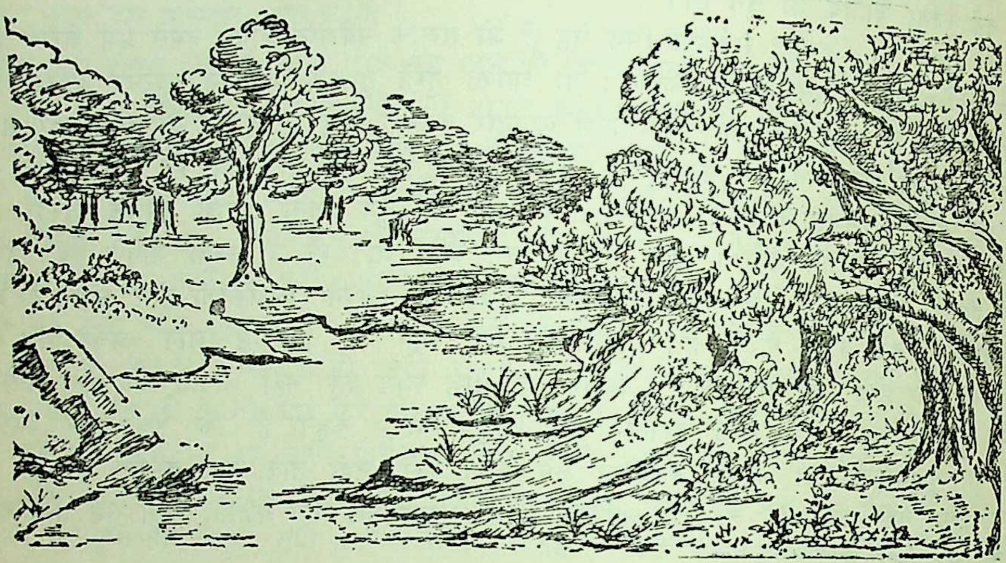

तरुवर

सरिके सैकत तटपर,
खड़े हुए हैं तरुवर
फैलाये ऊंची ऊंची शाखाएं
जो कि उमंगोंकी पैंगें भरती हैं,
यथा उठी अंगुलियां हों नभकी दिशि
जो न वहांतक कभी पहुंच सकती हैं।
जकड़े पांव धरापर,
लगन लगी सुरपुरपर।

यही हाल तो है मानव-आत्माका।
शरीर, मन हैं बंधे धरासे रहते,
और फिर लाख यत्न करनेपर भी तो
हमें स्वर्गकी ओर न उड़ने देते।

—श्रीअरविंद

अनु. विद्यावती कोकिल

जगन्नाथका रथ

श्रीअरविंद

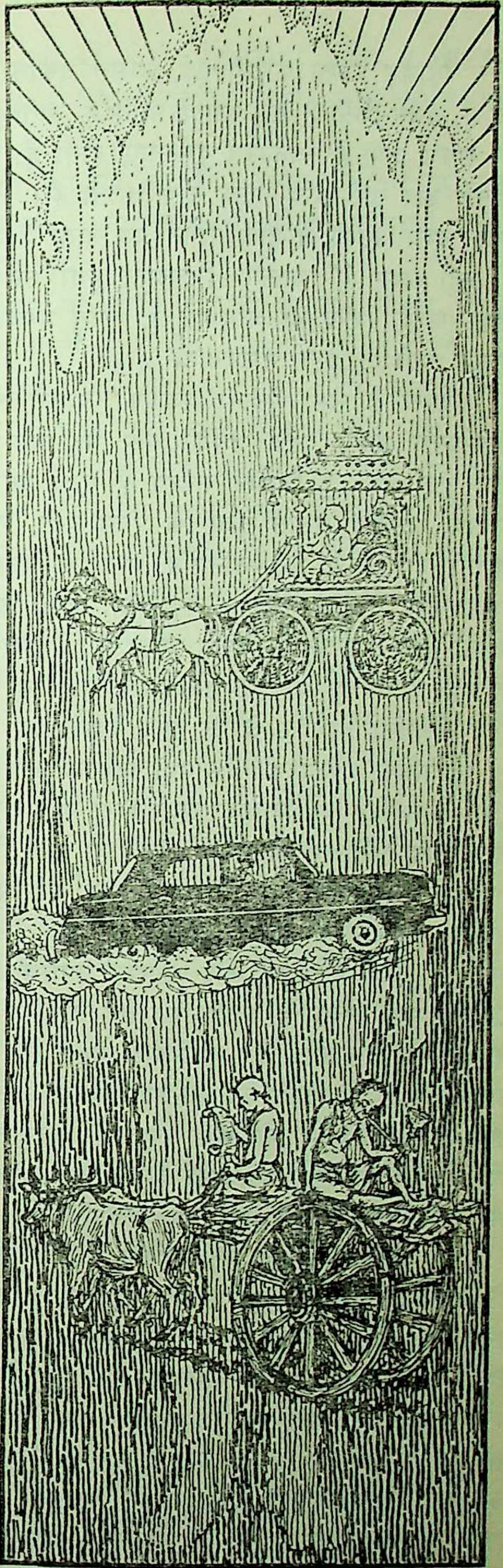

आदर्श समाज ही है, समस्त मनुष्योंकी अंतरात्मा भगवान्का वाहन, जगन्नाथकी यात्राका रथ। ऐक्य, स्वाधीनता, ज्ञान और शक्ति इस रथके चार पहिये हैं।

मनुष्यकी बुद्धिसे गढ़ा हुआ अथवा प्रकृतिके अशुद्ध प्राणस्पंदनकी क्रियासे रचा हुआ समाज दूसरी तरहका है। यह समाज समष्टिके नियंता भगवान्का रथ नहीं है, बल्कि मुक्त अंतर्यामीको छिपाकर जो बहुरूपी देवता भगवान्की प्रेरणाको विकृत करता है उस समष्टिगत अहंकारका वाहन है। अनेक प्रकारके भोगपूर्ण लक्ष्यहीन कर्मके पथपर, बुद्धिके असिद्ध और अपूर्ण संकल्पके वेगसे, निम्नप्रकृतिकी पुरानी या नयी प्रेरणाके वश यह चलता है। जबतक अहंकार ही कर्त्ता है तबतक सच्चे लक्ष्यका अनुसंधान पाना असंभव है — लक्ष्यका पता लगनेपर भी रथको उस ओर सीधे ले जाना तो असाध्य ही है। अहंकार भागवत प्रेरणामें प्रधान बाधक है, यह तथ्य जैसा व्यष्टिके लिये सत्य है वैसा ही समष्टिके लिये भी है।

साधारण मनुष्य-समाजरूपी रथके तीन मुख्य भेद दिखायी देते हैं। पहला है निपुण कारीगरकी सृष्टि, सुन्दर जगमगाती हुई उज्ज्वल निर्मल सृष्टि, जिसे खींच रहा है एक बलवान् सुशिक्षित घोड़ा। वह सुपथपर, यत्नपूर्वक, धीर, तेज गतिसे आगे बढ़ रहा है। सात्त्विक अहंकार इसका स्वामी है, सवार है। जिस उच्च प्रदेशमें भगवान्का मंदिर, है रथ उसके चारों ओर घूम रहा है, किंतु यह उस स्थानसे थोड़ा दूर रहता हुआ ही घूमता है, उस उच्च भूमिके एकदम पास नहीं पहुंच सकता। यदि इस स्थानसे भी ऊपर उठना हो तो यही नियम है कि इस रथसे उतरकर अकेले पैदल चलना होगा। वैदिक युगके बाद प्राचीन आर्यजातिके समाजको इसी प्रकारका रथ कहा जा सकता है।

दूसरा रथ है विलासी कर्मठकी मोटरगाड़ी। वह धूल उड़ाती हुई, भीमवेगसे गर्जना करती

और धड़ाधड़ रास्ता काटती हुई, अशांत अश्रांत गतिसे, दौड़ रही है, भोंपूकी आवाजसे कान फटे जा रहे हैं, जिस-किसीको वह सामने पाती है उसीको रौंदती-पीसती हुई चली जाती है। यात्रीके प्राणों-पर संकट आते हैं, अनवरत दुर्घटनाएं होती हैं, मोटर टूट जाती है लेकिन किसी तरहसे मरम्मत हो जानेके बाद उसी तरह गर्वके साथ चलती है। इसका कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं है, किंतु जो कोई भी नवीन दृश्य उसकी आंखोंके सामने पड़ जाता है उसीको मोटरका स्वामी राजसिक अहंकार "यही लक्ष्य है, यही लक्ष्य है" कहकर चिल्लाता हुआ उस ओर दौड़ पड़ता है। इस रथपर चलनेमें यथेष्ट भोग-सुख है, विपद भी अनिवार्य है, परंतु भगवान्के निकट पहुंचना असंभव है। आधुनिक पाश्चात्य समाज इसी तरहकी मोटरगाड़ी है।

तीसरा है मैली पुरानी कछुएकी चालसे चलनेवाली अधटूटी बैलगाड़ी। इसको खींच रहे हैं दुबले-पतले भूखसे दुखी, अधमरे बैल, यह चल रही है संकीर्ण ग्राम्य पथपर। मैला-कुचैला कपड़ा पहने हुए, पेट ही जिसका सर्वस्व है ऐसा एक दुर्बल आंखोंसे हीन बूढ़ा भीतर बैठा हुआ कीचड़से लथपथ, हुक्केको अत्यंत सुखपूर्वक पीता हुआ, गाड़ीके कर्कश शब्दोंको कानसे सुनता हुआ अतीतकी कितनी ही विकृत अर्द्ध-स्मृतियोंमें मग्न हो रहा है। इस मालिकका नाम है तामसिक अहंकार। गाड़ीवानका नाम है पुस्तकमें पढ़ा हुआ ज्ञान, वह पंचांग देख-देखकर चलनेका समय और किस ओर चलना होगा, यह निर्देश करता रहता है। और उसके मुंहसे ये शब्द निकलते हैं कि "जो कुछ है या था वही अच्छा है, जो कुछ होनेकी चेष्टा करता है वही खराब है" इस रथकी भगवान्के निकट पहुंचनेकी संभावना चाहे न हो पर शून्य ब्रह्मके पास शीघ्र ही पहुंच जानेकी आशा है।

तामसिक अहंकारकी बैलगाड़ी जबतक गांवोंकी कच्ची सड़कपर चलती है तभीतक उसकी खैर है। जिस दिन वह जगत्के राजपथपर, जहां अनेक वेगवान मोटरें दौड़ती हैं, चली आवेगी उस दिन उसका क्या परिणाम होगा यह सोचते ही प्राण सिहर उठते हैं। विपद यही है कि रथको बदल देनेका समय पहचानना या स्वीकार करना तामसिक अहंकारकी ज्ञानशक्तिके बाहरकी बात है। इस समयको पहचाननेकी उसकी प्रवृत्ति भी नहीं है क्योंकि ऐसा होनेसे उसका व्यवसाय और स्वामित्व नष्ट हो जाता है। जब कोई समस्या उपस्थित होती है तो यात्रियोंमेंसे कोई-कोई कहते हैं "नहीं, रहने दो यही अच्छा है क्योंकि यह हम लोगोंका ही है।" यह लोग हैं लकीरके फकीर (कट्टरपंथी), अथवा भावुक देशभक्त। कोई-कोई कहते हैं "इधर-उधरसे कुछ मरम्मत कर लो।" इसी सहज उपायसे मानो बैलगाड़ी आप-ही-आप किसी अनिंद्य, अमूल्य मोटरमें परिणत हो जायगी! —इनका नाम है संस्कारक। कोई-कोई कहते हैं "प्राचीन कालका सुन्दर रथ फिरसे लौट आवे।" ये लोग इस असाध्य साधनका उपाय भी बीच-बीचमें खोजते रहते हैं। किंतु आशाके अनुसार फल होगा इसका कोई विशेष लक्षण कहीं भी दिखायी नहीं देता।

इन तीनोंमेंसे एकको पसंद करना यदि अनिवार्य हो, और भी उच्चतर चेष्टाको यदि हम छोड़ दें, तो सात्विक अहंकारका एक नवीन रथ निर्माण करना ही युक्तिसंगत है। किंतु जगन्नाथका रथ जबतक नहीं बनेगा तबतक आदर्श समाजका संगठन भी नहीं होगा। यही आदर्श है, चरम प्राप्ति है, गभीरतम, उच्चतम सत्यका विकास और प्रतिकृति। गुप्त विश्वपुरुषकी प्रेरणासे इसीको गढ़नेमें मनुष्य-जाति सचेष्ट है, किंतु प्रकृतिके अज्ञानके वशमें होनेसे वह इसके बदले किसी दूसरे ही प्रकारकी प्रतिमाको गढ़ डालती है — यह प्रतिमा या तो विकृत, असिद्ध और कुत्सित होती है अथवा चलनसार, अर्द्धसुन्दर या सौंदर्ययुक्त होते हुए भी असंपूर्ण। शिवके बदले या तो वह वानरको गढ़ डालती है या किसी राक्षसको अथवा किसी मध्यम लोकके अर्द्ध-देवताको।

जगन्नाथके रथकी ठीक-ठीक आकृति या उसके ठीक-ठीक नमूनेको कोई नहीं जानता। कोई जीवन-शिल्पी, चाहे वह कितना ही निपुण क्यों न हो, इस रथके नक्शेको नहीं आंक सकता। यह

छवि विश्वपुरुषके हृदयमें है, किंतु नाना आवरणोंसे ढकी हुई है। अंतर्यामीका आदर्श है कि द्रष्टा, कर्त्ता और अनेक भगवत्-विभूतियोंके अनेक प्रयासोंके द्वारा धीरे-धीरे बाहर होकर, स्थूल जगत्में इसकी प्रतिष्ठा हो।

जगन्नाथके रथका असली नाम समाज नहीं, संघ है। यह बहुमुखी शिथिल जनसंघ या जनता जगन्नाथका रथ नहीं है; जगन्नाथका रथ है आत्मज्ञानसे, भागवत ज्ञानसे परिपूर्ण, एकमुखी शक्तिके बलसे आनंदपूर्वक गठित, बंधनरहित अच्छेद्य भागवत संघ।

अनेक मनुष्योंके मिलकर कर्म करनेके साधनस्वरूप जो संहति है, वही समाजके नामसे विख्यात है। शब्दकी उत्पत्ति जानकर ही उसका अर्थ जाना जाता है। सम् प्रत्ययका अर्थ है एकत्र, अज-धातुका अर्थ है गमन, धावन, युद्ध। हजारों मनुष्य कर्मके लिये और कामनाकी पूर्तिके लिये एकत्र हैं, एक ही क्षेत्रमें नाना प्रकारके लक्ष्यकी ओर दौड़ रहे हैं, कौन आगे जाता है कौन पीछे रहता है इस बातको लेकर अन्य समाजोंके साथ स्पर्धा चल रही है। उसी तरह आपसमें भी युद्ध और झगड़ा हो रहा है — इस कोलाहलमें शृंखला और सहायताके लिये तथा मनोवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये अनेक प्रकारके संबंध स्थापित किये जाते हैं, अनेक प्रकारके आदर्शोंकी प्रतिष्ठा होती है, फलस्वरूप कष्टसिद्ध, असंपूर्ण, अस्थायी एक चीज तैयार होती है — यही समाजका, प्राकृत संसारका रूप है।

भेद ही है प्राकृत समाजकी भित्ति। इस भेदपर उसका आंशिक, अनिश्चित और अस्थायी ऐक्य निर्मित है। किंतु आदर्श समाजका गठन ठीक इसके विपरीत होता है। आदर्श समाजकी भित्ति है ऐक्य; और वहां पार्थक्यका खेल आनंद-वैचित्र्यके लिये है, भेदके लिये नहीं। समाजमें हमको शारीरिक, मानसकल्पित और कर्मगत ऐक्यकी आभा मिलती है, किंतु संघका प्राण है आत्मगत ऐक्य।

आंशिक रूपसे संकीर्ण क्षेत्रमें संघ-स्थापन करनेकी निष्फल चेष्टा कई बार हुई है। हो सकता है कि यह बुद्धिगत चिंताकी प्रेरणासे हुआ हो — जैसा कि पाश्चात्य देशोंमें हुआ; अथवा यह कर्मसे विरत निर्वाण चाहनेवाले स्वच्छंद जीवनके लिये हुआ हो — जैसा कि प्रथम ईसाईसंघने किया। परंतु अल्पकालके बाद ही समाजके जितने दोष, अपूर्णताएं और प्रवृत्तियां हैं वे संघोंमें घुस जाती हैं और उन्हें समाजमें परिणत कर देती हैं। चंचल बुद्धिका चिंतन नहीं टिकता, वह प्राचीन या नवीन प्राण-प्रवृत्तिके अदम्य स्रोतमें बह जाता है। भावके आवेगसे इस प्रयासको सफल करना असंभव है, भाव अपनी उग्रताके कारण थक जाता है। निर्वाणको अकेले ही ढूंढ़ना अच्छा है, निर्वाण-प्रेमियोंका किसी संघकी सृष्टि करना एक उलटा काम है। संघ स्वभावतः कर्मकी, संबंधकी लीलाभूमि है।

समष्टिगत विराट् पुरुषकी इच्छाशक्तिकी प्रेरणासे, ज्ञान, कर्म और भावके सामंजस्य और एकीकरणद्वारा आत्मगत ऐक्य जिस दिन दिखायी देगा उस दिन जगन्नाथका रथ बाहर निकलकर दसों दिशाओंको आलोकित करेगा। उस दिन पृथ्वीके वक्षपर सत्य-युग उतर आवेगा, मर्त्य मनुष्यकी पृथ्वी होगी देवताका लीला-शिविर, भगवान्की मंदिर-नगरी, आनंद-पुरी।

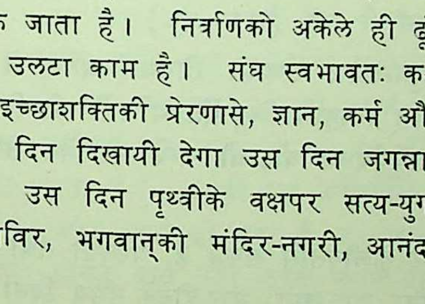

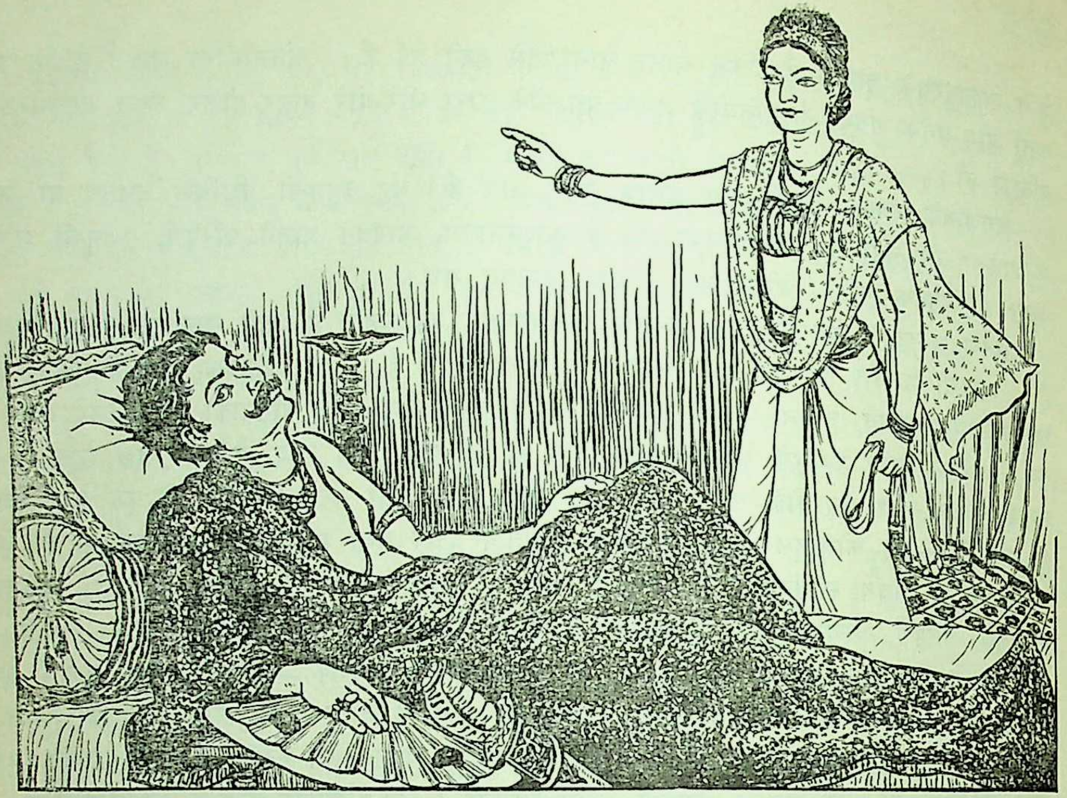

वि दु ला

—श्रीअनुबेन पुराणी

(महाभारतके उद्योगपर्वका विदुला आख्यान बहुत प्रसिद्ध है। श्रीअरविन्दने उसके आधारपर अंग्रेजीमें विदुला नामक एक लंबी कविता लिखी है जिसका अपना ही सौंदर्य है। हम श्रीअरविन्दकी कविताके आधारपर यह आख्यान दे रहे हैं। —सं०)

युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाभिजनेन च ।
यत् त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ॥
अधुर्यवच्च वोढष्यो मन्ये मरणमेव तत् ।

(महाभारत उद्योगपर्व)

"तू रूप, यौवन, विद्या और कुलीनतासे संपन्न है, यशस्वी तथा लोकमें विख्यात है। तुझ जैसा वीर पुरुष यदि पराक्रमके अवसरपर डर जाय, भार ढोनेके समय बिना नथे हुए बैलके समान बैठ जाय तो मैं इसे तेरा मरण ही समझती हूं।"

सुनो, पुराने समयमें युवक संजय और उसकी अपराजिता मां विदुलाकी बातचीत सुनाता हूं।

राजोचित रूप और चरित्रसे विभूषित, अग्नि-शिखासी, निर्भीक, आंधी-जैसे अबाध हृदयवाली इस राजरानीकी कीर्तिसे राजसभाएं गूंजती थीं। गौरवशालिनी, वाक्पटु और विदुषी होनेके साथ-साथ वह क्रांतदर्शी भी थी।

सिन्धुराजसे पराजित, सिंहासनसे वंचित संजय, निराश और उदास होकर लेटा हुआ था। अग्निमूर्ति विदुलाने जलते हुए नेत्रोंसे पुत्रकी ओर देखा और उसे उठनेकी आज्ञा दी। आगकी चिन-

गारीसे शब्दोंके कोड़े मारने लगी। “बेटा, वह मेरा पुत्र नहीं, जो अपनी मांका हृदय आनंदित न करे! देख, तेरे दुश्मन हंसी उड़ा-उड़ाकर विजयमत्त हो रहे हैं, यह देखकर भी तू जीना चाहता है? तू अपने वीर पिताकी संतान नहीं है, न मैंने ही तुझे धारण किया है; न जाने कहांसे भूली-भटकी एक क्षुद्र और कायर निराशाभरे जगत्से यह अस्थिर आत्मा यहां आ गयी है। हे उत्साहविहीन अधम, निर्भीकता और साहसभरे संकल्पोंसे वंचित, पुरुषार्थहीन शक्तिहीन, पामर, तू पुरुष कहलाने योग्य नहीं। तूने अपने पौरुषको लज्जित किया है। युद्धके हिनहिनाते उत्तम अश्वकी भांति उड़ और अपनी धुरीको धारण कर। भयसे व्याकुल होकर तू शत्रुको महान् बना रहा है। तेरी भयभीत आंखें उसको आनंदित करती हैं। तू एक राजाका बेटा है। क्या तू कभी भयसे कांप सकता है? उठ, अंतर्मनसे राजा बन, बड़े वेगसे चलते हुए पवनके विरुद्ध उड़ते हुए गरुड़की भांति उड़। उठ कापुरुष, उठ, इस तरह जमीनपर मत पड़ा रह। गौरवहीन होकर शत्रुकी खुशीको बढ़ाते हुए, मित्रोंको लज्जित करते हुए इस तरह मत कराह। छोटी-सी नदी जरा-सी वर्षामें उफनने लगती है, छोटा-सा चूहा एक दानेसे संतुष्ट हो जाता है; कायर जल्द ही साहससे मुंह मोड़ लेते हैं। उठ, सांपके फनको अपने हाथोंसे कुचल दे। रोते हुए कुत्तेकी भांति सीधा मौतके मुंहमें मत जा, आकाशमें विचरते गरुड़राजकी भांति चुपचाप अवसरकी प्रतीक्षा कर या ललकारकर शत्रुको युद्धका आवाहन दे। वज्रपातसे आहतकी तरह क्यों लेटा है? उठ, कापुरुष! उठ, चारों ओर ,शत्रु ताना दे-देकर तेरा उपहास कर रहे हैं। लेटे रहनेका समय नहीं है। दुःखसे कातर होकर दोस्तोंकी सहानुभूति मत ढूंढ़। तलवारकी झनझनाहटसे दुनियाको चकित कर दे। भूल मत कि तू स्वामी है। सर्वोच्च स्थानपर तेरा अधिकार है। दासत्वको कभी न अपना। कुछ क्यों न हो, स्थिरतासे सहता चल। दहाड़ता हुआ अपने शिकारियोंपर झपट पड़। मशालकी भांति एक घड़ीके लिये ही क्यों न हो, प्रज्वलित हो उठ, मृत्युके डरसे धीरे-धीरे धुंआं उगलती हुई भूसीकी तरह मत सुलग। युद्धक्षेत्रमें कूद पड़। ऐसे शुभ कार्य करते समय हिचकिचाया नहीं करते। इस तरह लड़कर ही मनुष्य भगवान्के समक्ष बेझिझक खड़ा हो सकता है और आत्मग्लानिसे बच जाता है। विशालहृदय पुरुष मुकुट खोकर भी निराश नहीं होता, शरीरके अस्तित्वको तुच्छ जानकर वह लड़ता रहता है। ईश्वरको साक्षी रखकर स्वर्ग प्राप्त कर। तू वीर कहलानेके लिये जन्मा है। चमकती तलवारके प्रहारसे अपना पौरुष दिखला। कापुरुष! तू किसलिये जिन्दा है? तेरा यश नष्ट हो चुका, तेरे आनंदविलासकी जड़ें कट चुकीं, तेरी पशुबलि और कुंए खोदनेके सत्कार्य निष्फल हो गये। मरना ही है तो आखिरी दम लेते-लेते दुश्मनकी जंघा पकड़कर उसे भी अपने साथ मौतके घाट उतार। रथके अश्वको युद्धक्षेत्रमें देख। जब रथ जमीनमें धंस जाता है तब वह कैसे क्रुद्ध होकर आत्मगौरवसे हिनहिनाता और ऊपर उठनेकी चेष्टा करता है? तू भी इस अवनतिसे उठनेका उसी तरह प्रयास कर। तेरा कुटुंब तेरी गलतीसे अपमानित और भ्रष्ट हो रहा है, तू उसका तारनहार बन। जिसके दैवी कामोंकी जनसाधारण आश्चर्यचकित होकर बातें नहीं करते उसके जीनेका अर्थ ही क्या है? वह तो जमीनके ऊपर मिट्टीका लौंदा भर है। वह न पुरुष है, न स्त्री। जिसका अदम्य उत्साह और श्रम धनोपार्जन, ज्ञान, सत्य या उदारतामें लगकर दुनियाके एक छोरसे दूसरे छोरतक गूंज उठे वही पुरुष कहलाने योग्य है। द्वार-द्वारपर हाथ फैलानेवाले बेशर्म भिखारीकी तरह दीन मत बन। ऐसी जिंदगी रास्तेके कुत्ते-जैसी, कायरतापूर्ण, निकम्मी और क्षुद्र होती है। दयार्द्र होकर लोग ऐसे प्राणीके आगे टुकड़े फेंकते हैं। मेरा बेटा क्षुद्र चीजोंसे संतुष्ट होनेवाला, राज्यसे वंचित, दुर्बल और निर्वीय न होगा। प्रेमहीन स्थानोंमें भटकते हुए पराये दरवाजोंपर लोटते हुए अपने बीते जीवनके सुखके सपने देखना तुझे शोभा देगा? एक बारके विख्यात कुलको अंधेरेमें डुबो देगा? सचमुच मैंने मृत्यु और कलंकको ही जन्म दिया था पर मातृ-प्रेमवश यह सोच बैठी कि वह मेरा पुत्र है। जो प्रसव-

वेदना सहकर भी धीर-वीरको जन्म न दे सके, केवल निर्वीय कापुरुषसे ही अपनी कोखको लजाये ऐसी स्त्रीका वन्ध्या रहना ही उचित है।

"संजय! संजय! धधकती आगको धुएंमें लुप्त न कर। भूखे शेरकी तरह भयंकर बनकर शत्रुका सत्यानाश करनेके लिये झपट पड़। पराजयका सामना करना, अपमानके प्रति असहिष्णु होना ही पौरुष है। जो दुःख झेलता है और दुःख देनेवालेको क्षमा कर देता है, चुपचाप अपनी गरदनको जुएके नीचे कर देता है वह नर कहलानेके लिये अत्यंत दुर्बल है और नारी कहलानेके लिये अति नीच। अस्थायी मन उठती लक्ष्मीको दबा देता है, झूठा आत्मसंतोष उसे जालमें जकड़ देता है, डर लक्ष्मीके पंख पकड़ लेता है और अति दयासे द्रवित हृदयमें निवास करना उसे पसंद नहीं है। अपने सामर्थ्यसे इन विघ्नोंको कुचल दे, गुलामीके रास्ते मत जा। हृदयको लोहे जैसा दृढ़ बना, जो सचमुच तेरा है, जिसपर तेरा अधिकार है उसे प्राप्त कर। युद्धक्षेत्रमें कूद पड़। स्त्रियों जैसी दुर्बलता दिखाकर अपने पौरुषको लज्जित न कर। समुद्रसा धीर-वीर जीवनके पथपर वैसे ही गर्वसे टहलता है जैसे सिंह पहाड़ी रास्तेपर और नियति उसके पीछे-पीछे चलती है। विधिके अनुसार जब वह अपने निर्मित स्थानपर पहुंचता है तब उसकी प्रजा उसके महान् कार्योंके शिखरपर चढ़कर सुख और शक्ति पाती है। राजाको चाहिये कि आमोद-प्रमोदको ठुकरा दे, अपने क्षेम-कुशलसे मन हटा ले और शिकारीकी भांति प्रजाके लिये सौभाग्यका शिकार कर लाये। सुयोग्य मंत्री उसकी मदद करेंगे और हजारों उसके आनंदमें भाग लेंगे।"

लड़का आश्चर्य और क्रोधके साथ बोला, "मां, अगर सारी दुनिया तेरी हो जाय पर मैं न रहूं तो क्या तू खुश हो सकेगी? सुन्दर वस्त्र, आभूषण, पकवान आदि तेरे पुत्रके अभावमें तुझे सुख दे सकेंगे?" मांने उमड़ते आवेगके साथ उत्तर दिया, "जो अवसरको गंवाते हुए कहते हैं 'आज ही क्यों? अभी समय नहीं आया' वे नरकमें जानेवाले ढीले-ढाले और डरपोक मेरे शत्रु भले बनें, मेरे मित्र नहीं हो सकते, जो अपने अंदर बैठी आत्मा और उसके गौरवको पहचानते हैं और उच्चाशय लोगोंके साथ रहते हैं वही मेरे हो सकते हैं। आत्मगौरवसे वंचित, दूसरोंके टुकड़ोंपर पलनेवाले क्या जीवित हैं? ऐसा दीन जीवन मत अपना, मनुष्योंका सरदार बन, स्वामी बन। जैसे सब मनुष्य जीवनदाता इन्द्रकी ओर ताकते हैं वैसे ही ब्राह्मणोंको तेरी ओर ताकना पड़े। अपने बाहुबलसे ही जो मिल सके वही ले। जैसे हरे-भरे वृक्षपर तरह-तरहके पक्षी आ-आकर बैठते हैं वैसे ही जिसकी छायामें तरह-तरहके मनुष्य सुख-शांतिके लिये आते हों वही पृथ्वीपर ख्याति पाता है और परलोकमें इन्द्रकी भांति चमकता है। हाय, संजय! तेरी बुरी दशा है! तू यदि अपने पौरुषको खो दे तो तेरी हालत अधमोंसी होगी और तेरा रास्ता सीधा नरकमें जा पहुंचेगा। दैवने जिस वीर कुलको एक दिव्य अग्नि प्रदान की थी उसी कुलका एक बालक क्या अपने महान् कार्योंके द्वारा उस अग्निकी ज्वालाओंको ऊंचा नहीं उठाना चाहेगा? क्या तू सारे समय इस शरीरको ही पकड़े हुए बैठा रहेगा? यह तो चोरी होगी क्योंकि वह आग्नेय शक्ति पृथ्वीकी गरिमा बढ़ानेके लिये दी गयी है। संजय! मेरी बात सुन। सिन्धुराज पराजित देशपर जबर्दस्ती राज्य कर रहा है। प्रजाका हृदय उसके सामने झुका नहीं है। वे परदेशी धुरीसे घृणा करते हैं। दुर्बलतावश द्वेषसे भरे दुःखी व्याकुल मनसे बैठे हैं। मुक्तिकी आशा न देखकर दुःखोंके समुद्रकी खिन्न मनसे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"विश्वासपात्र मित्रोंको इकट्ठा कर, बहादुर वीरोंको बुला। देशमें उग्र विरोध उत्पन्न कर और अपने हाथोंको और भी मजबूत बना। बीहड़ पहाड़ियोंपर चढ़ जा, जान-मालको ठुकरा दे, अपने मित्रोंको साथ लेकर गभीर घाटियोंमें आततायी दुश्मनको मजा चखा दे। याद रख, न वह अमर है, न उसकी सत्ता हमेशा बनी रहेगी। क्या तुझे याद नहीं है कि दूरदर्शी, सदियोंको भेद कर देख सकनेवाली दृष्टिवाले वृद्ध ब्राह्मणने कहा था कि तू गिरकर भी फिर उठेगा और संपत्तिका स्वामी

बनेगा ? तेरा नाम संजय है, उसे सार्थक कर। मेरे पुत्र ! जिसकी विजयसे सबका कल्याण हो, देशकी उन्नति हो, वह हार नहीं सकता, क्योंकि उसके कदम भगवान्‌के संकेतपर उठते हैं, और हर कदम नियतिके साथ चलता है। पुत्र ! लड़ते समय यह सोचना कि मेरे पूर्वजोंकी पंक्ति मेरे साथ चल रही है, सारी प्रजाके हुतात्मा वीर मेरी ओर ताक रहे हैं। क्योंकि मेरा गौरव उनका गौरव होगा और मेरी गुलामी उनका सिर नीचा कर देगी। संजय ! युद्धसे मुंह मत मोड़। समझ-बूझकर युद्धके लिये तैयार हो।

"कलकी सूखी रोटी कहांसे आयेगी, या कल खाना मिलेगा या नहीं यह न जानना; क्षत्रियोंके लिये इससे खराब या गर्हित स्थिति नहीं हो सकती। यह पत्नी या संतानकी मौतसे भी ज्यादा बुरी हालत है; क्योंकि वह विपत्ति आकर चली जाती है परंतु यह जीवित मृत्यु-सी मंद-मंद चलती ही रहती है।

"मैंने एक महान् राजकुलमें पहली सांस ली थी। ध्वजा-पताकासे सुसज्जित नौका जैसे एक समुद्रसे दूसरे समुद्रमें प्रवेश करती है वैसे ही मैंने विवाहकी लहरके साथ दूसरे राजकुलमें साम्राज्ञी बनकर प्रवेश किया। बड़ोंके आशीर्वाद मेरे साथ थे, मैं आनंदसे भरपूर थी और अपने स्वामीद्वारा पूजित। मेरे संबंधी मुझे संपत्तिवान्, आभूषणोंसे लदी, कीमती वस्त्रोंमें लिपटी और मित्रोंसे घिरी देखकर खुश होते थे। क्या तू मुझे दीन और लाचार देखकर तब निश्चित होकर सांस भी ले सकेगा ? जब तेरी पत्नी आंसू बहायेगी तो क्या यह घृणित जीवन सुखकर लगेगा ? हमारे आचार्य और गुरु हमारा गृह त्याग देंगे और तू देखता रह जायगा ? हमारे दास, सेवक जीविकाके अभावसे तुझे छोड़ देंगे तब तुझे कैसा लगेगा ?

"वत्स ! तेरे उच्च, गौरवशील कार्योंसे ही मैं जीवित हूं। अगर वे समाप्त हो गये हैं तो मेरे हृदयकी शांति भी जा चुकी है, मेरा हृदय अंतमें टूट कर रहेगा।

"जब ब्राह्मण देवता मेरे पास जमीन, सोना या चांदीका दान लेने आयेंगे तो क्या मुझे उन्हें खाली हाथ लौटाना पड़ेगा ? तब लज्जासे मेरे हृदय-तंतु टूट जायेंगे। संजय ! तेरे पिताके रहते तेरी मांके यहांसे गरीब खाली हाथ नहीं लौटे। हम हमेशा दूसरोंको शरण देते आये हैं। क्या अब हमें दूसरोंपर आश्रित होना पड़ेगा ? मैं पाताल लोककी शांति पसंद करके जीवन ही छोड़ दूंगी। सुन ले, मैं न दूसरोंके घर पांव रखूंगी, न उनकी भिक्षापर जिऊंगी।"

★ ★

"हाय बेटा ! हमारी नौका मझधारमें डगमगा रही है, तू ही उसे किनारे लगा। हमारे असहाय नसीबको बचा। हम ऐसे मुर्दे हैं जिनमें जीवनका तर बाकी है। तू ही हमारा मुक्तिदाता बन; हमें इस जीवन्मृत अवस्थासे बचा।"

★ ★

"हे वीर, मरनेके लिये कृतसंकल्प हो। तब कोई भी शत्रु तेरा मुकाबला न कर सकेगा। दीनता और दुर्बलताको वर्षोंतक ढोते रहना कौन पसंद करेगा ? त्वरित मृत्यु उससे कहीं अच्छी है। सबसे शक्तिमान् शत्रुओंको चुन-चुनकर उनपर विजय पा जैसे इन्द्रने अनेक लोकोंके स्वामी वृत्रको जीतकर स्वर्गका प्रभुत्व पाया था। देख बेटा, सिंहके समान दहाड़ता हुआ वीर युद्धके कोलाहलमें भी अपने नामकी गर्जना करता हुआ आगे बढ़ता है। शत्रु-सेनाके व्यूह तोड़ता हुआ वह उनके नेताका संहार करके सूर्यके प्रकाशकी-सी कीर्ति पाता है। उसके शत्रुओंके हृदय व्यथित हो उठते हैं और बिना चाहे भी उनके सिर झुक जाते हैं क्योंकि वीर अपना जीवन प्रचंड वेगसे युद्ध क्षेत्रमें झोंकता है और मृत्युके सिरपरसे लंबे डग भरता हुआ विजयकी ओर कूच करता है। डरपोक और दुर्बल उसकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहके उपहार, सुगंधित द्रव्य आदि ले-लेकर आते हैं।"

★ ★

“तू मृत्युसे डरता है ? संजय ! राजाओंका पतन हिंसक होता है क्योंकि समझदार विजेता चोट करनेके लिये दुश्मनके हाथको छोड़ नहीं देता या उड़नेके लिये उसके पंख सुरक्षित नहीं रखता। शत्रुके आतंक संजय ! मैं तुझे रोते-बिलखते मित्रों, दहाड़ते दुश्मनों और धीमे कापुरुषोंसे घिरा हुआ नहीं देखना चाहती। राजाकी संतान ! तेरी मुट्ठीमें स्वर्ग और साम्राज्य दोनों हैं। निडर होकर घमंडी शत्रुपर उल्का बनकर गिर। उसके हजारों बहादुरोंको भूमिपर सुला दे। संजय, राजा बनना स्वर्गीय सुख है और सत्ता शक्तिमानके लिये अमृत है।

“सिंधुराजकी कन्याओंकी हंसी-मजाकका सामान बननेके लिये अपने राजकीय चिह्नको छोड़ न दे। पहलेकी तरह यौवनमत्त बनकर सिन्धुराजके मोतियोंको लूटकर उनसे अपनी रानीको सजा, उनकी कुलीन कन्याओंको रानीकी दासियां बना। राजकुलके लायक रूप और यौवनसे विभूषित, सुसंस्कृत, महान् राजाओंके मित्र होते हुए तू अपने ओजस्वी, साहसिक स्वभावसे कैसे स्खलित हो सकता है? तू राजा होकर धरतीके राज्यके जुएको धारण करनेकी जगह मुट्ठीभर पराये अन्नके लिये औरोंके सामने मधुरभाषी बनेगा? उनके आगे दीनतासे सिर झुकायगा? मैंने तेरा ऐसा पतन देखा तो यही समझूंगी कि मेरा पुत्र मर चुका है।

“नहीं, मैं इस देशके राजाओंको पहचानती हूं। वे इन पर्वत-शृंखलाओंसे भी अधिक दृढ़ और मजबूत हैं और हमारे पूर्वज ऐसे ही थे और जबतक धरतीपर गंगा बहती रहेगी तबतक हमारी संतानोंका स्वभाव भी ऐसा ही रहेगा। मैं जानती हूं कि ऐसा एक भी वीर राजकुमार इस भूमिमें नहीं जन्मा जिसने दीन होकर, झुक-झुकर अपनी आजीविका कमायी हो। विशालकाय वृक्षकी नाईं वह टूट सकता है; झुकना नहीं जानता। अगर वह झुकता है तो साधु-संतोंको मान देनेके लिये, न्याय और धर्मके ही वश, वह किसी मनुष्यके वशमें नहीं रहता। यह ऊंच या नीच सभीके साथ दृढ़तासे व्यवहार करता है। मुसीबत बढ़ानेवालोंको कठोर दंड देता है। वह जो है वही रहता है, न झुकता है, न अपनी पताका गिराता है। मदोन्मत्त हाथी-सा वह पृथ्वीपर विचरण करता है और महान् पराक्रमसे नियतिको भी जीत लेता है। उसे कभी परवाह नहीं होती कि वह एकाकी है या सहायकोंसे घिरा।”

* *

“मां, मां, पाषाण-हृदयी, भगवान्ने काले क्रूर लोहेको लेकर उससे तेरा हृदय घड़ा है। मेरी साहसिक मां, हमारे राजकुलकी नीति भयंकर, कर्कश और माधुर्यविहीन है। तू मेरी मां होकर भी मुझे युद्धमें ऐसे धकेलती है जैसे मैं किसी दूसरी स्त्रीकी संतान हूं। क्या मैं तेरा पुत्र नहीं ? मेरे सिवा तेरा कोई और भी है ? तेरी भाषा कर्कश और कठोर है। यदि समरांगणमें मेरा शरीर ठंडा पड़ जाय और इधर तू समस्त पृथ्वीकी स्वामिनी बन जाय तो क्या तेरा प्रज्वलित हृदय सुख पा सकेगा ? तब जीवनके वैभव और सुन्दर वस्तुओंका क्या मूल्य होगा ? जब तेरी दुःखी आंखें मुझे ढूंढ़ती फिरेंगी, तब क्या ऐश्वर्यके समस्त पदार्थ तुझे सांत्वना दे सकेंगे ?”

परंतु मांने अपनी अग्निस्वरूप आत्माको वाणी दी —

“मेरे प्रिय पुत्र ! दुःख-सुख जीवनके दो पहलू हैं; अपने कर्मोंको धर्मके अनुसार निभाना चाहिये। धर्म और काम दोनोंके अनुसार तुझे इस राहपर चलना चाहिये। तेरे जीवनकी उत्तम घड़ी आ गयी है। तू डरसे या दयनीय दशाके कारण इसकी अवहेलना करेगा तो तेरे सौंदर्यको कलंक लगेगा, तेरे सामर्थ्यका अपमान होगा।

“क्या तू आशा करता है कि जब तेरे माथेपर कलंकका टीका लगेगा तो मैं तुझे सांत्वना दूंगी ? तब तो मेरा प्रेम मूढ़ खच्चर-सा अंधा और जंगली आवेग ही होगा। ज्ञानी लोग मूर्खों, कायरों और पापियोंकी राहसे घृणा करते हैं। उस राहपर मत चल।

"लोगोंकी आंखें स्नेहकी भापसे बन्द रहती हैं परंतु मेरी आंखें बन्द नहीं हैं। तेरा धीर, वीर स्वरूप ही मुझे प्रिय है। तेजोहीन, अपूर्ण आत्मावाला, उच्चाकांक्षाको समझनेमें असमर्थ पुत्र या पौत्र पिताके मनमें जुगुप्सा उत्पन्न करता है। उसे पुत्र-प्राप्तिका श्रम बेकार लगता है। जो झुकते हैं वे दुष्ट हैं, उनके लिये स्वर्गके द्वार नहीं खुलते, उनके लिये इस जीवनमें भी सफलता नहीं है।"

★ ★

"संजय! क्षत्रियोंको उनके ईश्वरने इस दुनियामें इसीलिये भेजा है कि वे युद्ध करें और विजयी हों या फिर मृत्युका वरण करें। अपने स्वभावसे ही अखंड श्रम और कठोर हृदयसे वे जनताके कल्याण-कार्यमें लगकर विजयी होते या मर जाते हैं। दोनोंसे ही वे इन्द्रकी देदीप्यमान पुरीमें जाते हैं, फिर भी साहस और विजय, संघर्षकी आंधी, दुश्मनको पैरोंके नीचे कुचलकर जीवनके आनदकी मदिरा पीना, यह सब वीर पुरुषको इन्द्रपुरीसे भी अधिक प्रिय हैं।

"वह जबतक अपने कलंकित शरीरको फेंक नहीं देता या दुश्मनको कुचल नहीं पाता, उसका हृदय जलता रहता है, बदला लेनेके लिये तरसता रहता है। शांतिके लिये यही एक मार्ग है।

"तू मुसीबतों और दुःखोंसे घबरा जायेगा? वे तो पुरुषको शक्ति प्रदान करती हैं।

"जैसे गंगा समुद्रकी लहरोंमें विलीन होकर सुख पाती है वैसे ही आत्मा भी आनंदके बिना नहीं रह सकती और संघर्षके बिना उसे राहत नहीं मिलती। थोड़ेसे सुखके लिये भी दुःख उठाना पड़ता है।"

राजा संजयने हिचकिचाते-सकुचाते हुए फिर एक बार प्रयास किया।

"मां! तुझे ऐसी सलाह नहीं देनी चाहिये। आखिर मैं तेरा बेटा हूं। औरोंकी तरह चुप रह। तू अपनी दया-मायाकी ओर देख; राजाके कठोर स्वभावकी ओर नहीं।"

"अगर तेरे विचार मेरी तरह गिद्ध-दृष्टि रखते तो मुझसा सुखी संसारभरमें कोई न होता। तू मुझे स्त्रीकी कोमलता सिखाता है? मैं तेरे अंदर पौरुषका गौरव जगाना चाहती हूं। तू जब दुर्द्धर्ष संघर्षके बाद विजयको झड़प लायेगा, जब सिंधुराजकी सेना तेरे हाथों जीवन खो देगी तब मैं समझूंगी कि तू मेरी संतान है, तब मेरा वात्सल्य तेरी ओर झुकेगा।"

राजा संजय फिर बोला, "किंतु मेरे पास एक भी आदमी नहीं है। मैं अकेला क्या संघर्ष कर सकता हूं? असहाय, दीन, पतित अवस्था देखकर मेरा मन व्यर्थकी मेहनतसे भर गया है। पापी स्वर्गकी आशा न देखकर उसका विचार ही छोड़ देता है; वैसे ही मैंने धन, जन और हथियारके अभावमें प्रयासका विचार भी छोड़ दिया है। किंतु मां! अगर तेरी ज्ञान-शक्ति इस जालमेंसे निकलनेका कोई उपाय देखती है तो मुझे बता। मैं तेरी आज्ञाका पालन करूंगा।"

★ ★

"अपनी पराजयके लिये ग्लानि मत कर; बहादुर बन, हृदयमें आत्मगौरव जगा। सौभाग्य हमें ढूंढ़ता हुआ आता है और छोड़कर चला भी जाता है। जो लोग सारे समय सोच-विचारमें पड़े रहते हैं, अवसर आनेपर उसे झड़प नहीं लेते, किसी पूर्णताकी आशामें दिन गंवाते हैं वे मूर्ख हैं। जिससे सुनिश्चित परिणामका विश्वास हो ऐसा कोई कार्य दुनियांमें है भी? यहां अनिश्चितता ही निश्चित है। किसी उच्च प्रलोभनके लिये मनुष्य पुरुषार्थ करता है; उसे जीतता है या प्रयासमें ही मृत्युकी शरण चला जाता है। जो प्रयास नहीं करते, कार्य नहीं करते वे शून्यवत् हैं और उनको तिरस्कार-का फल मिलता है। भाग्यकी पुकारको त्यागना निष्क्रियताका स्वभाव है। दुधारी तलवार-सी अभीप्सा या तो जीवनके सिंहासनपर बैठती है या सब कुछ गंवा देती है। जीवनको क्षणभंगुर समझते हुए, उसकी अनिश्चिततामें विश्वास रखकर भी योद्धा प्रतिस्पर्धाके लिये दौड़ता है और अपनी ख्याति-को बढ़ाता है। पुरुष कहलाने योग्य व्यक्तिको निद्रामेंसे जागना होगा, उठना और संघर्ष करना होगा। मुक्त और महान् बननेका निश्चय करके भाग्यके भयंकर मुखसे मत डरो। तुम विजयी

होनेका संकल्प करो, ऐसी प्रबल इच्छाशक्ति नियतिको जीती हुई वधूकी तरह अपने पास खींच लाती है। देवोंके आशीर्वादका आवाहन कर, ब्राह्मणोंकी कुशाग्र बुद्धिसे काम ले, राजाओंको हरावलमें रख, और तू लड़ता जा, तू लक्ष्यतक अवश्य पहुंचेगा।''

* *

''राज्यमें महत्त्वाकांक्षी, वीर पुरुष क्रोधसे भरे हुए बैठे हैं, कई घमंडी कर्मठ मनुष्य हैं और कइयोंका परदेसी आततायीने अपमान किया है, फिर कई उच्च आत्माएं भी हैं। शांत, साहसिक, ठंडी हिम्मतवाले, और अग्नि जैसे उग्र मनुष्योंको अपना, जिनके घर-द्वार लुट चुके हैं उनको साथ ले। शत्रुके विराट् सैन्यसे दब मत, उसके हथियारोंकी परवाह न कर।

''इन छोटी-छोटी चिनगारियोंसे सहायता ले। एक दिन जब हवा जोरोंसे चलेगी और तूफान आ जायेगा तब यही सब प्रचंड अग्नि बन जायेंगी। उनका सम्मान कर, जब वे मिलने आयें तो उठकर उनका स्वागत कर, उनसे मधुर वाणीमें बोल, वे तुझे अपना नेता बनायेंगे और तेरे लिये सब कुछ करेंगे।''

* *

''अजगर ग्रसनेके लिये दौड़ता है तब मनुष्य सांस खींचकर खड़ा रहता है, तेरा जालिम भी तुझे मृत्यु-भयसे मुक्त और युद्धके लिये तुला हुआ देखकर कांप उठेगा। वह तुझे शांत करनेकी या दमनसे दबानेकी कोशिश करेगा। तू उसके जुल्म या कपटसे बच निकले तो वह शांतिके लिये आदान-प्रदानसे समझौता कर लेगा। इससे तुझे थोड़ा और समय मिलेगा और तेरा नाम भी होगा। तू थोड़ा धन इकट्ठा करके सैन्यको बढ़ाना। मित्र और सहायक धन-संपत्तिवान्के पास चारों ओरसे आते हैं, गरीबकी क्षीण स्थिति देखकर उसे छोड़ देते हैं; वे कहते हैं, 'उसके पास धन कहां है, उसके पास किसी कृपाकांक्षीपर उपकार करनेका अवसर ही कहां है?' जब तेरा शत्रु तेरे साथ नये-नये करार करके तेरा मित्र बनेगा तब तू देखेगा कि राज्य वापिस लेना कितना आसान है।''

* *

''नसीब कितना ही निराशापूर्ण क्यों न हो, भले मृत्यु नजदीक खड़ी हो पर राजाको, नेताको सिर न झुकाना चाहिये। अगर उसकी आत्मा निराश हो जाय तो उसे अपनी दुर्बलताको अपने अंदर कैद रख, बाहरसे मुख प्रसन्न रख, और वीर बननेका अभिनय करना चाहिये। अगर सरदार ही डर जाय तो उसके अनुयायी भी डरेंगे, अतः राजाको हमेशा निर्भीक दृष्टि और शांत-स्वस्थ दिमाग रखना चाहिये।

''इस समय यह देश, इसकी सेना और इसके नीतिज्ञ दोनों ओर खींचे जा रहे हैं। कई परदेसी जालिमको मानते हैं, कइयोंने उसे छोड़ दिया है और अभी और भी लोग उसके अपमान और घमंडसे तंग आकर उसे छोड़ेंगे। कई ऐसे भी हैं जो तेरे मित्र हैं पर वे बेचारे शत्रुकी सेवामें हैं, उसका अन्न खाते हैं। वे तेरे दुःखसे दुःखी हैं और तेरे मंगलकी कामना करते हैं परंतु रस्सीसे बंधे मूक प्राणीकी तरह अनिच्छा होते हुए, बाधित होकर उसकी सेवा करते हैं। तेरे कई पुराने साथी जिनका तूने सम्मान किया था, जिनसे स्नेह रखा था, वे जानते हैं कि राजा दुर्बल और हतोत्साह है फिर भी उनको देशकी अस्मितामें विश्वास है। ऐसे वीरोंको तिरस्कार करते हुए जाने मत दे। संजय! डर मत। मेरे योद्धा संजय, उठ, जीतनेकी आशा लेकर उठ। मैंने तेरे सोते हृदयको जगानेकी कोशिश की है; तेरे आवेश, तेरे सामर्थ्यको पुकारा है। तू भी जानता है कि मैंने जो कुछ कहा है सत्य है, निराश न हो।

''मेरे पास बहुत-सी संपत्ति है, बड़े-बड़े खजाने हैं जिनको मैंने छिपा रखा है; मेरा सब कुछ तुझे समरांगणके लिये मिलेगा। तेरे बहुतसे सहायक और मित्र छिपे हुए अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे है। वे ऐसे ही भीषण लक्ष्यके लिये मर मिटनेको तैयार हैं। कोई दुःख उन्हें पीछे न ठेल सकेगा।''

इसी तरह अनेक प्रकारसे विदुला हिम्मत बंधाती रही और निराशाकी छाया संजयसे दूर हटती गयी और अंतमें उसकी दुर्बलताकी जड़ता उसे छोड़ गयी।

"हे दृढ़निश्चयी मां! तेरी वाणी सुनकर निर्बलतम आत्मा भी अपने अंधकारको भगा देगी, तेरे शब्द उसे फिरसे पैरोंपर खड़ा कर देंगे। भूत और भावी तेरी आंखोंके इशारेपर निर्भर हैं। मैं तुझे गुरु बनाकर फिरसे अपने देशके गिरते भाग्यको उठाऊंगा। मेरा मौन और इनकार सिर्फ ढोंग था। मेरे मौनसे उत्तेजित होकर तू ज्यादा-ज्यादा आग उगलती गयी और मैं तेरे एक भी दैवी शब्दसे वंचित न रहना चाहता था। असहायको सहानुभूति करनेवाला मित्र अमृतवर्षा-सा सुखकर लगता है। अब मैं शत्रुका ध्वंस करनेके लिये उठता हूं और उसका अंत किये बिना न रुकूंगा।"

युद्धका घोड़ा घायल होकर और भी स्फूर्तिसे दौड़ता है, उसी तरह गर्व और शक्तिसे भरा हुआ संजय भी मैदानमें निकल आया। मांके शब्द-बाणोंसे बिंधा हुआ संजय उसकी आज्ञाका पालन करता हुआ शत्रुको भगा सका; अंतमें अपनी प्रजाको परदेसी राजाके चंगुलसे छुड़ाया।

यह प्रख्यात और शक्तिशाली काव्य मनुष्यको देवता-तुल्य शक्ति देगा; उनमें युद्धक्षेत्रका वह्निमय आनंद प्रकट करेगा। जब राजा राज्यको खोकर निराश और दुखी हो जाय तब उसके मित्र और शुभेच्छुकोंको यह काव्य सुनाना चाहिये। जिनको उत्तम कार्यके लिये शक्ति चाहिये वे इसे रोज पढ़ें। वीर पुरुष इसे पढ़कर अग्निस्वरूप धारण करेगा और शत्रुका निकंदन करके अपना नाम अमर करेगा। गर्भवती स्त्री इसे रोज-रोज सुनेगी तो वीर-प्रसविनी होगी और शक्तिशाली पुत्र पायेगी जो औरोंकी सहायता करेगा या सद्‌गुणी पुत्रकी माता बनेगी या ज्योतिपुरुष या आत्मबलवाले महान् तारकको जन्म देगी। परंतु एक राजरानी या वीरपत्नी पढ़े तो युद्धक्षेत्रमें अजय दुर्दम, दीन-दुखियोंके त्राता किसी मानव-नक्षत्रको ही जन्म देगी।

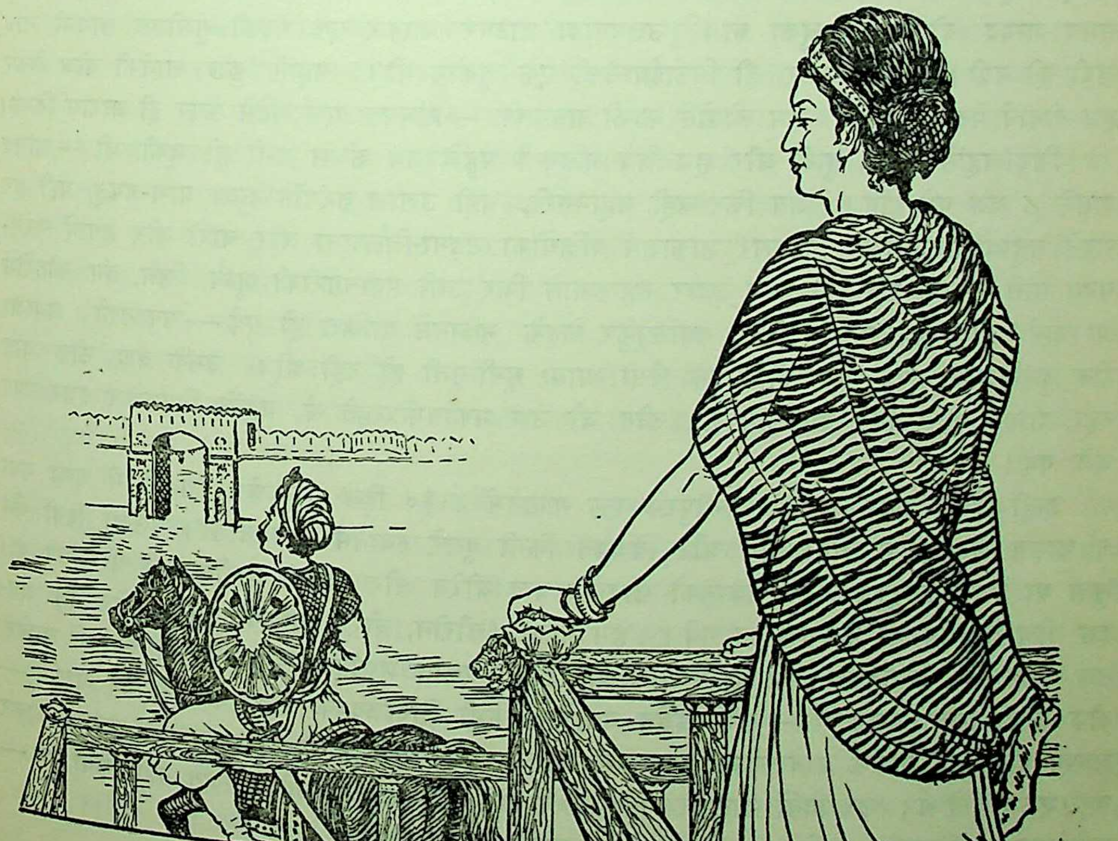

अप्रकाशित इतिहासका एक पृष्ठ

(आंतरिक आदेशको मानकर श्रीअरविन्द कलकत्ता छोड़कर चन्दननगर आ गये और वहांसे पांडिचेरी जा पहुंचे। लेखमें यही कहानी सुनायी गयी है। सं०)

मोती बाबूके घरपर जब श्रीअरविन्द, अंततः उस समयके लिये, सुरक्षित रूपमें पहुंच गये तो बीरेन और मैं उसी नावसे कलकत्तेके लिये रवाना हो गये। हम लोगोंने चलनेसे पहले यह पूछ लिया था कि हममेंसे किसीके चन्दननगर रहनेकी आवश्यकता है या नहीं। उसपर वहांके लोगोंने कहा था कि यहां किसी नये आदमीको देखनेसे लोगोंके मनमें संदेह जग सकता है। अरविन्दकी परिचर्याका भार वे लोग खुद वहन करेंगे। अतएव हम नावद्वारा लौटती डाकसे आनेकी तरह या पत्र-पाठके बाद ही विदा लेनेकी तरह कलकत्तेकी ओर चल पड़े। ऐसा याद पड़ता है कि उस दिन सबेरेके समय पूर्वकी ओर आसमान मेघाच्छन्न था। क्योंकि अरुणरागरंजित पूर्वाकाश अथवा जवाकुसुमसंकाश महाद्युतिकी कोई छाप मनपर नहीं है। किंतु धीरे-धीरे चारों दिशाएं तेज धूपसे चमचमा उठीं। नीला निर्मल आकाश है, धूपसे चारों ओर झलमल हो रहा है, नदीकी छोटी-छोटी तरंगें चकमक कर रही हैं। परंतु प्रकृतिका सौंदर्य जितना भी मनमोहक क्यों न हो, उस समय मरणशील मनुष्यकी अत्यंत आवश्यक एक चीजकी बात याद हो आयी — अर्थात् भूखप्यास।...... याद पड़ा कि कल दोपहरको खाया था और उसके बाद रातको या आज सबेरे किसी प्रकारका कोई भोजन नसीब नहीं हुआ। अतएव देह-नामक इंजनके लिये खाद्य-रूप कोयलेका थोड़ा-सा प्रबंध करना नितांत आवश्यक है। उस समय शायद दोपहर हो चुका था। उत्तरपाड़ा घाटपर आकर एक पेड़की सुशीतल छायामें नाव खड़ी की गयी। घाटके ऊपर ही मिठाईवालेकी एक दूकान थी। वहांसे कुछ खानेकी चीज लेकर हम दोनोंने पेट-पूजा की। हम लोगोंने काफी समयतक — संभवतः एक घंटेसे ऊपर ही आराम किया।

फिर वहांसे नौका खुली और हम जब कलकत्ते पहुंचे तब संध्या घनी हो चुकी थी — शायद रातके ८ बज गये होंगे। अब फिर वही महानगरी, वही उत्ताल तरंगोंसे क्षुब्ध प्राण-जगत्, वही हर रास्ते मनुष्योंका आना-जाना, ऊपर आकाशमें पक्षियोंका उड़ना-चिल्लाना और चारों ओर हवामें गरम-गरम सांसें — हम प्रकृतिकी मुक्त उदार महासभासे फिर उसी महानगरीकी क्षुब्ध, खिन्न, तंग कोठरीमें आ गये और यथासमय ४ नंबर श्यामपुकुर लेनके मकानमें दाखिल हो गये — मकानकी अवस्था ठीक दुर्गापूजाके समय दशमीकी रातके जैसी प्रायः सूनी-सूनी हो रही थी। उसके बाद, ठीक याद नहीं, शायद ४, ५ दिन बाद हम सब लोग जो उस मकानमें रहते थे, वहांसे निकलकर इधर-उधर चले गये।

इन्हीं दिनों विजय और मैं काशीपुरके एक मकानमें ८।१० दिन ठहरे थे। वहांसे मैं चला गया ६ क्राउच लेनके एक छात्रावासमें और विजयने किसी दूसरे स्थानमें डेरा डाला। उन्हीं दिनों मैंने सुना था कि श्यामपुकुर लेनके मकानको छोड़नेके बाद बीरेन और नलिनी बारीसालकी ओर गये थे। इस बीच वे लोग भी कलकत्ते आ गये। हम पांचों (सौरीन, बीरेन, नलिनी, विजय और मैं) जबतक कलकत्तेमें रहे तबतक रोज ही संध्याके बाद किसी एकांत अर्थात् कुछ-कुछ निर्जन स्थानमें पहलेसे ठीक करके मिला करते थे — कभी इडेन बगीचेमें, कभी सियालदहके पास, कभी ग्रीयर पार्कमें — अवश्य ही ग्रीयर पार्कमें जानेका अर्थ यह नहीं था कि हम पांचों साड़ी पहनकर और घूंघट काढ़कर वहां एकत्र होते थे; उन दिनों कारपोरेशनने उस पार्कको महिलाओंके लिये सुरक्षित नहीं किया था — स्त्री-पुरुष सभी अबाध रूपसे वहां विचरण कर सकते थे।

उसके प्रायः एक मास बाद जब मैं ६ न० क्राउच लेनके मेसमें रहता था तब हठात् एक दिन एक छोटेसे कागजके टुकड़ेपर अरविन्दकी लिखी ३।४ सतरें मिलीं। उसमें यही निर्देश था कि मुझे पांडिचेरी जाना होगा और उनके लिये एक मकान ठीक कर रखना होगा। और, मित्रोंके मुंहसे सुना कि नैपथ्यमें रहकर सुकुमार (कृष्णकुमार मित्र महाशयके पुत्र) और आंखके सम्मुख रहकर सौरीन मेरी पांडिचेरी-यात्राका बंदोबस्त कर देंगे, मुझे बस अपनी देहको वहन करके हावड़ा जानेका कष्ट करना होगा और मद्रास जानेवाली मेलगाड़ीमें बैठ जाना होगा। सुकुमार नैपथ्यमें थे या नहीं यह जाननेका कोई उपाय नहीं था किंतु इस बन्दोबस्तके लिये सौरीन आंखके सामने थे यह स्पष्ट दिखायी देता था।

इस ६ नं० क्राउच लेनके मेसमें जिसका 'मेहमान' बनकर रहता था उसका नाम था कनिष्ठ पांडव। पाठक आश्चर्यचकित हो यह न समझ बैठें कि उनके माता-पिताने उनका यही नाम रखा था। उनके पिता-माताने अवश्य ही दूसरोंकी तरह ही उनका कोई नाम रखा होगा पर वह मैंने कभी सुना नहीं। उनकी पदवी क्या थी यह भी मुझे मालूम नहीं। हम लोग उन्हें कनिष्ठ पांडवके नामसे ही जानते थे और कनिष्ठ कहकर पुकारते थे। पीछे उनसे संबंधित पदवी-हीन दो-तीन नामोंकी तालिका सुनी थी पर उनमेंसे कोई उनके माता-पिताका दिया नाम था या नहीं, अथवा वे सब नाम भी उस कनिष्ठ पांडव जैसे थे यह मैं जान न सका। मझोले कदके, रंगके मैले, दुबले-पतले आदमी थे ये कनिष्ठ पांडव। ऐसा लगता था कि उम्र बीससे ऊपर तो थी किंतु पच्चीसके पार नहीं हुई थी। पोशाक आदिके संबंधमें वह उदासीन थे, सिरके बालको संवारने-सजानेमें पूर्ण वैरागी थे, आहार जीवन धारण करनेभरके लिये था, बिहारकी चर्चा ही बेकार है। उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण और मर्मभेदी थी। इस अंतर्भेदी दृष्टिके सामने गुप्त पुलिसकी कोई भी छद्म-पोशाक प्रच्छन्न नहीं रह सकती थी। ये कनिष्ठ सन् १९१० के अंतिम भागमें पांडिचेरीमें कुछ महीने हमारे साथ एक मकानमें थे। किंतु तिनेवलीके कलेक्टर आश साहबकी हत्याके बाद जब गुप्त पुलिसके दो-एक आदमी घोरतर प्रकाश्य रूपमें हमारे मकानके रास्तेपर सलज्ज वधुकी तरह घूमने-फिरने लगे तो एक दिन सांझकी अंधियारीमें ये कनिष्ठ अपना सूट्केस हाथमें लेकर पांडिचेरीसे आगे एक स्टेशनपर चले गये और गाड़ी पकड़कर न मालूम कहां गायब हो गये। उसके बाद आज बत्तीस-तैंतीस वर्षतक उनकी कोई खबर नहीं मिली।

मैं जब उनके साथ मेसमें रहता था तब दूसरोंसे कोई खास बात नहीं करता था और दूसरे भी मुझसे कभी कुछ नहीं पूछते थे, कनिष्ठ प्रायः सारे दिन बाहर ही रहते, स्नान-भोजन और निद्राके समय ही वह मेसमें दिखायी देते थे। वह क्या करते और कहां जाते कुछ भी समझमें नहीं आता था। पर जो हो, वह अतिथिवत्सल थे और उन्होंने मेरे लिये विक्टर ह्यूगोके प्रसिद्ध उपन्यास 'ले मिजेराब्ल'का अंगरेजी अनुवाद कहींसे ला दिया था और उसीके साथ मेरा सारा दिन बीतता था। धीरे-धीरे मार्चकी अट्ठाईस तारीख आ गयी और इसी तारीखको पांडिचेरीके लिये रवाना होनेकी बात मेरे लिये तै की गयी थी।

इस मेसमें रहते समय मैं कभी संध्यासे पहले मकानसे बाहर न जाता था। किंतु उस दिन दिनमें ही एक सैलूनमें जाकर बाल कटा आया। नया धोती-कुर्त्ता भी खरीद लिया गया था। इस बीच कनिष्ठने मेसमें प्रचारित कर दिया था कि मेरा घर पबनामें है और मैं उस दिन दार्जिलिंग मेलसे एक विवाहमें शामिल होने पबना जा रहा हूं।...... उन दिनों मद्रास-मेल हावड़ासे शामके समय छूटता था। मैं तीसरे पहर नयी धोती और कुर्त्ता पहनकर खाली हाथ चल पड़ा। मेरी पाकेटमें महज एक मनीबैग था जिसे मैंने नया ही खरीदा था। उसके भीतर तीन दस-दस रुपयेके नोट और कुछ खुचरा पैसा था। उसके अलावा एक छोटासा कागजका टुकड़ा था जिसपर अरविन्दके हाथकी लिखी कुछ सतरें थीं — मेरा परिचय-पत्र पांडिचेरीके मित्रोंके लिये। मैं क्राउच लेनसे निकलकर बहू बाजार स्ट्रीटमें गया और फिर कुछ देर बाद एक निर्जन गलीमें चला गया। इसी गलीमें एक दुकान-

पर काली जामुन नामक मिठाई खरीद कर खायी। उसके बाद सियालदहकी मोड़पर जाकर ट्राममें बैठ गया। गंगाके पुलके पास पहुंचते ही ट्रामसे उतरकर उस पार हावड़ा स्टेशन चला गया। उस समय गाड़ी प्लैटफार्मपर आ गयी थी। चारों ओर यात्रियोंकी दौड़-धूप, कोलाहलसे प्लैट फार्म गर्म हो रहा था। जरा इधर-उधर खोजते ही सौरीनसे मुलाकात हो गयी — एक दूसरे दर्जेके डिब्बेके सामने वह एक ट्रंक और छोटा-सा बिछौना लेकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। सौरीनसे मुझे मिला वह ट्रंक जो खाली नहीं था, उसके भीतर चीजें थीं, फिर वह बिछौना, दूसरे दर्जेका एक टिकट तथा बुकस्टालसे अभी-अभी खरीदा हुआ खूब रंगीन जिल्दवाला एक अंगरेजी उपन्यास 'लव मेड मैनिफेस्ट'। हां, एक चीज और मिली थी, पर किसने दी थी यह याद नहीं। वह थी चांदीकी बनी पतली डोरीसे युक्त निकलकी एक घड़ी। किसीने शायद यह समझा होगा कि उस तरहकी चांदीकी कोई चीज मेरे आभिजात्यको प्रचंड रूपसे सूचित करेगी और कोई जासूस मेरे नजदीक आने या मुझपर संदेह करनेका साहस नहीं करेगा। मैं भी उस रुपहले अलंकारको गलेमें झुलाकर प्रसन्नवदन बारह सौ मील रेल पथ पार कर गया। पृथ्वीके इतिहासमें सत्साहसका यह भी एक परमोज्ज्वल उदाहरण माना जायगा इसमें कोई संदेह नहीं।

सौरीन जिस डब्बेके सामने मेरे लिये प्रतीक्षा करते थे उसीमें मैं घुस पड़ा। संभवतः सौरीनने उसे ही मेरे लिये चुन रखा था। डब्बेमें बहुत भीड़ थी; और वह साहबोंकी भीड़ थी। सभी यूरोपियन थे या नहीं यह तो नहीं जानता किंतु शरीरके रंगसे सबको यूरोपियन कहा जा सकता था। द्वितीय श्रेणीमें इतनी भीड़ हो सकती है यह मेरी कल्पनाके बाहर था। उन दिनों अपने मुफस्सल शहरके स्टेशनपर देखता कि तीसरी श्रेणीके डब्बेमें (कभी-कभी ड्योढ़े दर्जेमें भी) घुसनेके लिये जब यात्रियोंमें धक्का-धुक्की, मारा-मारी हो रही है, किसीकी गठरी किसीकी नाक दबा रही है, किसीके ट्रंकका कोना किसीकी खोपड़ीमें दांत गड़ा रहा है, किसीका जूता किसीका पैर कुचल रहा है, किसीकी बगलका छाता किसीकी आंखकी पुतली निकाल लानेके लिये छटपटा रहा है —एक प्रकारका अवर्णनीय शोरशराबा, हो-हल्ला चल रहा है तब भी पहली और दूसरी श्रेणीके डब्बेमें दो-एक निःसंग यात्री गाड़ीकी एक ओरकी दीवालपर टेका लगाकर, बेंचके ऊपर पैर फैलाकर, परम निर्लिप्त भावसे और अवहेलनाके साथ बाहरके इस संग्रामशील विश्वके झगड़े-बखेड़ेको देख रहे हैं। अतएव यहां दूसरी श्रेणीमें ऐसी भीड़ देखकर मेरे मनमें एक अहैतुकी सुखका बोध हुआ। सोचा, जो हो, ये लोग भी इस सुखका कुछ उपभोग करते हैं।

साहबोंकी इस भीड़में उसी कमरेमें और एक बंगाली सज्जन थे पर पोशाक उनकी भी साहबी थी। किंतु मुख देखते ही मालूम होता था कि वह गौड़ीय हैं, फिरंगी समाजके नहीं हैं। मैं उनके पास थोड़ी-सी जगह बनाकर बैठ गया। यथासमय घंटी बजी, गार्डकी सीटी बजी, हरा निशान उड़ा और ट्रेन हिलकर चलने लगी तथा सौरीनका मुंह धीरे-धीरे अदृश्य होने लगा। गाड़ी प्लैट फार्मसे बाहर खुली जगहमें आ गयी और हम लोगोंने शांतिकी सांस ली।

बंगाली सज्जनसे मेरी बातचीत हुई अर्थात् उन्होंने बातचीत शुरू की। दुःखकी बात है कि उनका नाम अब याद नहीं। वह इंजिनियर थे, उम्र सत्ताइस-अट्ठाईस जैसी होगी। वह त्रिचिनापल्ली अपने कामपर जा रहे थे। इन्हींकी कृपासे इस यात्रामें खाने-पीनेके विषयमें एकदम निश्चित था।.. इंजिनियर महाशय प्रचुर परिमाणमें मैदेकी लूची, संदेश मिठाई और भुनी हुई तरकारी लेकर गाड़ीमें सवार हुए थे। मैं नहीं कह सकता कि सहस्र रजनी कहानीमें वर्णित आब्बू हुसेनकी तरह इंजिनियर महाशयको भी भोजनके समय एक साथ मिलनेपर आनंद होता था या नहीं — किंतु उन्होंने बड़े आग्रहसे मुझे अपनी लूची और संदेशकी सेवा करनेके लिये निमंत्रित किया। कहना न होगा कि मैंने भी उनके उस आमंत्रणको बड़े आग्रहके साथ स्वीकार किया। परंतु हम लोगोंकी बातचीत यहीं भोजन-

तक आकर ही समाप्त नहीं हो गयी। इंजिनियर महाशयने मुझसे पूछा — "आप कहां जा रहे हैं ?" मैंने कहा — "मद्रास।" उन्होंने फिर पूछा —"वहां क्यों जाते हैं ?" मैंने कहा — "टैनिंग सीखने।"

मद्राससे संबंधित 'टैनिंग'की बात मुझे मालूम थी। स्वदेशी आंदोलन आरंभ होनेके बाद और रंगपुर राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित होनेके बाद रंगपुरके नेताओंने चमड़ा टैनिंग करनेका एक कारखाना खोलनेके उद्देश्यसे एक विद्यार्थीको टैनिंग सीखनेके लिये कलकत्ते भेजा था। वह विद्यार्थी कलकत्तेका प्रशिक्षण समाप्त कर फिर मद्रास गया था। वहांसे उसके वापस आनेपर बड़े उत्साहसे हमारे शहरमें चमड़ा टैनिंग करनेका एक कारखाना खोल दिया गया था और वहां जूते बनानेका कई रंगोंका — काला, बादामी, चाकलेट आदि — चमड़ा तैयार किया जाता था। यह चमड़ा इतना अच्छा होता था कि विलायती चमड़ेसे किसी अंशमें निकृष्ट नहीं कहा जा सकता था।

खैर, मद्रास टैनिंग सीखने जा रहा हूं — यह उत्तर देनेके बाद उस समय मनमें बड़ा संतोष अनुभव किया, ऐसा लगा कि उत्तर खूब चतुराईपूर्ण हुआ है। किंतु अब खूब अच्छी तरह समझता हूं कि यह ठीक बुद्धिमानीकी बात नहीं थी। यदि वह महाशय जरा ब्योरेवार उस संबंधमें प्रश्न करते तो मैं कोई भी उत्तर न दे पाता और वह निश्चय ही मेरे अज्ञानके कारण अवाक् हो जाते। परंतु उन्होंने कोई प्रश्न ही उस संबंधमें नहीं किया। केवल इतना पूछा कि मद्रासमें कोई परिचित है या नहीं। जब मैंने 'ना' कहा तब उन्होंने कहा कि वहां उनके परिचित आदमी हैं। उनके पास फाउण्टेन पेन और कागज था। उन्होंने अपने दो मित्रोंके नाम दो पत्र लिखकर मुझे दे दिये जिसमें मुझे मद्रासमें कोई असुविधा न हो। अवश्य ही दोनों पत्रोंको मैंने अपनी जेबमें रख लिया और उनका काम वहीं समाप्त हो गया। गाड़ी जैसे-जैसे आगे बढ़ी हमारे डिब्बेकी भीड़ भी कम होती गयी और खड़गपुरतक आकर हम बस ५।६ आदमी ही उस डिब्बेमें रह गये। इस तरह द्वितीय श्रेणीके डिब्बेकी इज्जत फिर प्रतिष्ठित हो गयी और हम लोगोंने भी चैनकी सांस ली।

इंजिनियर महाशयके साथ लूची और संदेश खाते-खाते बी. एन. रेलवे, एम. एस. एम. रेलवे लाइनसे होते हुए, चिल्काके किनारेसे होते हुए, पूर्वी घाट पर्वतश्रेणीके यत्र-तत्र विक्षिप्त पहाड़ोंको देखते हुए, गोदावरीका लंबा पुल पारकर हम मद्रासकी ओर अग्रसर होने लगे और जैसे-जैसे मद्रास समीपवर्ती होने लगा वैसे-वैसे एक दुर्भावना मनमें जगने लगी। मैं बिना सोचे-समझे झोंकमें आकर इंजिनियरसे कह बैठा था कि मैं मद्रास टैनिंग सीखने जा रहा हूं, परंतु मेरा गंतव्य स्थान तो था पांडिचेरी। और मद्राससे उतरकर वह जिस पथसे त्रिचिनापल्ली जायंगे ठीक उसी पथसे मुझे भी जाना होगा। उनसे किनाराकशी करनेका कोई उपाय नहीं। वह स्पष्ट ही देखेंगे कि मैं मद्रास नहीं जा रहा, कहीं अन्यत्र जा रहा हूं और उसे मैंने छिपा रखा है — जो संदेह उत्पन्न न कराना उद्देश्य था वही संदेह पूरा-पूरा आ उपस्थित हो रहा था। मैं रास्तेभर यही सोचता रहा कि अब क्या किया जाय। अंतमें जब मद्रास एकदम निकट आ गया तब एकदम उदास होकर मैंने इंजिनियर महोदयसे कहा — सुनिये, सुनिये, फ्रांसकी राजधानी पेरिसका इतना नाम सुना जाता है। पृथ्वीकी वह सर्वोत्तम सुन्दरतम महानगरी है। उसी फ्रांसीसी जातिद्वारा अधिकृत फ्रांसीसी भारतकी राजधानी पांडिचेरीमें भी पेरिसके अनुरूप कुछ-न-कुछ अवश्य देखा जा सकेगा। अतएव मैं पहले एक बार पांडिचेरी देख आऊंगा। फिर मद्रास आकर अपने काममें लग जाऊंगा।

मेरी बात सुनकर वह सज्जन खूब प्रसन्न हो उठे, बोले — वाह ! अच्छा ही हुआ — कुछ समय और हमारा साथ रहेगा।

कहना न होगा कि मेरे मनकी कठिनाई थोड़ी आसान हो जानेसे मैं भी प्रसन्न हो उठा। एक महान् दुर्भावना कट गयी। अब रेल-यात्रा बुरी नहीं लगती। आकाश-पृथ्वी खूब उज्ज्वल प्रतीत हो रहे हैं। वास्तवमें जीवन-व्यापार एकदम खराब नहीं है।

मद्रास पहुंचनेसे पहले एक छोटी-मोटी घटना घटी जो मुझे बड़ी विलक्षण लगी। बात यह हुई कि जब हमारी गाड़ी मद्रास सेंट्रल स्टेशनसे पहले बेसिन ब्रिज स्टेशनपर पहुंची तो हमारा टिकट ले लिया गया जैसा कि हावड़ा पहुंचनेसे पहले लिलुआ या रामराजातलामें होता है। फिर हमें बताया गया कि कलकत्तेसे आनेवाले यात्रियोंको यहां उतरकर स्टेशनमें जाकर अपना नाम-धाम लिखाना होगा। और यह प्लेगसे सावधान रहनेके लिये है। बहुत बचपनमें एक बार कलकत्तेमें प्लेग होनेकी बात सुनी थी। किंतु सन् १९०९।१० में जब मैं कलकत्ते गया तब वहां प्लेगकी बात नहीं सुनी। अतएव यह पासपोर्टकी बात सचमुच प्लेगके लिये थी अथवा सन् १९०८ में आविष्कृत बंग संतानोंकी बम-रिवाल्वरकी प्रीतिकी प्रतिक्रियाके फलस्वरूप थी यह शायद पुलिसके सिवा और किसीको ज्ञात नहीं था। मेरे मनमें तो बस यही बात बार-बार आने लगी कि यह मात्र एक कौशल है जिससे इधर आनेवाले बंगाली यात्रियोंकी तालिका तैयार की जाती है और इस कारण मेरे हृदयकी धड़कन भी कुछ अधिक हो गयी। जो हो, इंजिनियर और मैं एक साथ गाड़ीसे उतरकर स्टेशनमें गये। वहां देखा, एक तमिल कर्मचारी एक रजिस्टर खोलकर बैठा था। रजिस्टरमें पहला खाना 'राष्ट्रीयता' का था। उसने मुझसे पूछा — हिन्दू ? मैंने कहा — हां। फिर उसने हिन्दू लिखनेके बाद मेरा नाम-धाम भी लिख लिया। इंजिनियर साहब अंगरेजी सूटमें थे, इसलिये उसने उनसे कुछ पूछे बिना ही राष्ट्रीयताके खानेमें 'यूरोपियन' लिख लिया। वैसे इंजिनियर साहब देखनेमें पूरे श्यामवर्ण ही थे — काला ही उन्हें कहा जा सकता था। पर हाय रे पोशाक और उसकी महिमा ! इंजिनियर साहब यह देखकर मुस्कराये और फिर उन्होंने उसे बताया कि मैं भी हिन्दू हूं। पीछे कर्मचारीने अपनी भूल सुधार ली।

बेसिन ब्रिजसे गाड़ी चली और हम लोग करीब साढ़े दस या ग्यारह बजे मद्रास पहुंचे। गाड़ीसे हम ज्योंही उतरे त्योंही एक आदमी आकर हमारे पास खड़ा हो गया। उसकी उम्र कितनी होगी, कहना कठिन था। चालीस कहें तो भी ठीक और साठ कहें तो भी अविश्वास करना कठिन। उसके सिरपर एक पगड़ी थी जो शायद उसकी अपनी ही ईजाद की हुई वस्तु मालूम होती थी। मानों सिरमें एक पट्टी बंधी हो और उसीके सहारे एक पतला कपड़ा लगा हो जो सिर ढकता हो। दाढ़ी-मूछ कहीं काली नहीं थी और यह अनुमान किया जा सकता था कि तीन-चार दिन बाद ही फिर कमायी जायगी। उसके शरीरपर एक कोट था जिसमें तीन चार जगह खिड़कियां थीं। उसका रंग धूलधूसरित हो रहा था। उसके नीचे पतलून थी, उसका रंग भी वैसे ही सफेदसे मटमैला हो रहा था और वह भी जहां-तहां फटी थी। पैर धूलसे भरे थे — जूतेका कोई चिह्न नहीं था। समाजमें उसका क्या स्थान होगा कहना कठिन था। वह कुली नहीं था, क्योंकि उसने हमारा सामान उठानेकी कोई प्रवृत्ति नहीं दिखायी; वह भिखारी नहीं था, क्योंकि निस्संकोच उसने अपना हाथ हमारे सामने नहीं बढ़ाया। वह बेकार-घुमक्कड़ भी नहीं था, क्योंकि उसकी चाल-ढाल, भाव-भंगीमें कुछ भी अनिर्दिष्ट, अनुद्दिष्ट नहीं दिखायी देता था; अर्थात् वह लक्ष्यहीन नहीं था, ऐसा स्पष्ट मालूम होता था कि उसका अपना कुछ मतलब है। हां, साधारण भावसे वह हमारी कोई सेवा करना चाहता था और उसके बदले कुछ लाभकी आशा रखता था। किंतु हमें उस तरहकी किसी सेवाकी जरूरत नहीं थी। इसलिये कुलीसे सामान उठवाकर हम लोग स्टेशनसे बाहर आ गये। परंतु उस आदमीने हमारा पीछा नहीं छोड़ा। वह भी हमारे साथ-साथ बाहर आया। हमने एक घोड़ागाड़ी भाड़ेपर ली और उसमें सामान रखकर बैठ गये। ज्योंही घोड़ागाड़ी चली, वह आदमी भी पीछेकी ओर चढ़कर खड़ा हो गया। गाड़ीवानने उसे देखा, पर उसने कोई आपत्ति नहीं की।

हम इगमोर पहुंचे। वहांसे दक्षिणके लिये शामको गाड़ी जाती थी। हम दोनों प्रतीक्षालयमें चले गये। वह आदमी भी वहीं प्रतीक्षालयके आसपास घूमता-फिरता रहा। इंजिनियर साहबके

पास अभी भी लूची-संदेश बाकी थे। हम दोनोंने उसका सद्व्यवहार किया और एक-एक आराम-कुर्सी लेकर आराम करने लगे। शामको पांच बजे हम टिकट लेनेके लिये निकले। देखा, वह आदमी अभीतक प्लैट फार्मपर ही था। मालूम हुआ, हम दोनोंमेंसे मेरे प्रति ही उसका आकर्षण अधिक था। उसने अंग्रेजीमें मुझसे प्रश्न किया — "आप कहां जायंगे महाशय ?" मैंने उसके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया। जब हम टिकट-घरके पास जाकर खड़े हुए तो देखा कि वह भी हमारे पीछे आकर खड़ा हो गया है। इंजिनियरने त्रिचिनापल्लीका टिकट लिया, मैंने पांडिचेरीका टिकट मांगा। यह बात अवश्य ही उस आदमीने सुनी। किंतु मालूम होता है कानका संदेह दूर करनेके लिये ही वह टिकट मिलनेसे पहले ही मेरे एकदम नजदीक आ गया। संभवतः टिकटका रंग तथा गंतव्य स्थानका नाम आंखोंसे देखनेके लिये ही उसने ऐसा किया। जो हो, मुझे पांडिचेरीका द्वितीय श्रेणीका टिकट मिल गया और वह आदमी भी शायद निश्चिंत हो गया। शायद उसका भाव यही रहा होगा कि आखिर यह आदमी मद्राससे सचमुच जा कहां रहा है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि वह न तो कुली था, न भीखमंगा और न बेकार घुमक्कड़। किंतु पीछे मुझे मालूम हुआ कि वह या तो रसिक था या धृष्ठ; क्योंकि जाते समय उसने हाथ फैलाकर कहा — मेरी बख्शीश। अर्थात् उसने कई घंटोंतक मेरे ऊपर जासूसी की उसके लिये उसे पुरस्कृत करना मेरा नैतिक कर्तव्य था। उस समय बदलेमें हंसी-मजाक करनेका मन नहीं हुआ, नहीं तो उसे कुछ दे ही देता। बिचारेको खाली हाथ ही लौटना पड़ा। उसके बाद मैंने उसे नहीं देखा।

शाम होनेके कुछ देर बाद ट्रेन आयी। इंजिनियर साहब दूरके यात्री थे इसलिये उन्हें रिजर्व बर्थ मिल गयी। किंतु मुझे पास ही जाना था इसलिये बर्थ नहीं मिली। इंजिनियर साहब अपनी बर्थपर चले गये पर मैं प्लैट फार्मपर खड़ा रहा। इंजिनियर जंगलेसे देखने लगे कि आखिर मेरी क्या गति होती है। किंतु उच्च श्रेणीकी जो व्यवस्था करता था उसने आकर मुझसे कहा कि द्वितीय श्रेणीकी कोई सीट खाली नहीं है। आध घंटे बाद एक और गाड़ी जायगी उससे चले जाइयेगा। उस समय मेरे मनमें बेसिन ब्रिजका प्लेगका पासपोर्ट और इगमोरके उस आदमीका कार्यकलाप उज्ज्वल हो उठा। मन यही कहने लगा कि कहीं यहीं न भटक जाना पड़े। जितनी जल्दी यह स्थान छोड़ सकूं उतना ही अच्छा। मैं कर्मचारीकी बात सुनकर जरा व्यग्रभावसे बोल उठा। मुझे इसी गाड़ीसे जाना है। कर्मचारी जरा हंसा, जिद्दी लड़केकी जिद सुनकर जैसे स्नेहशील मामा, काका आदि हंसते हैं वैसी ही उसकी हंसी थी। लगा, जरा और कुछ होते ही वह मेरी पीठ थपथपा देगा पर ऐसा न कर उसने कहा — देखूं, यदि कोई व्यवस्था कर सकूं। वह फिर गाड़ीमें घुस गया। कुछ देर बाद आकर बोला — आइये, एक जगह मिल गयी है। मैं गाड़ीमें घुस गया। देखा, एक डिब्बेमें मझौली उम्रके एक तमिल या पंजाबी सज्जन बैठे हैं, वहीं मेरा स्थान बना दिया गया है।

आधी रातको उतरकर वेल्लुपुरम्में मुझे पांडिचेरीकी गाड़ी पकड़नी होगी। इंजिनियर साहबको और भी दूर जाना होगा। ट्रेनने जब चलना आरंभ किया तो उन्होंने मेरी सीटके पास आकर कहा — आइये, आखिरी बार एक साथ लूची-संदेश खा लिया जाय। मैं उनके डिब्बेमें गया और लूची-संदेशका भरपूर सत्कार करके जब वापस आया तो प्रायः ९ बज गये थे। वही इंजिनियर साहबसे मेरी अंतिम मुलाकात थी और उसके बाद फिर कभी उनकी कोई खबर नहीं मिली।

रातको लगभग बारह बजे गाड़ी विल्लुपुरम् पहुंची। यहींसे प्रायः २५ मील लंबी एक ब्रांच लाइन पूर्वकी ओर समुद्रतटतक पांडिचेरी गयी है। बीचमें तीन या चार स्टेशन हैं। मैं बोट मेलसे उतरकर पांडिचेरीकी गाड़ीमें बैठ गया। यथासमय गाड़ी चल पड़ी। एक-एक कर कई स्टेशन पार करनेके बाद अंतमें प्रायः ढाई बजे इंजिनने सीटी दी और उसके बाद उसकी चाल धीरे-धीरे मंद होने लगी। अंतमें एकदम चाल धीमी हो जानेपर पीछेकी ओर गाड़ीने एक धक्का दिया और फिर १।२

कदम आगे बढ़कर एकदम स्थिर हो गयी। मालूम पड़ गया कि इस गाड़ीमें वैकुयम ब्रेकको कोई बला नहीं। मैं डिब्बेका दरवाजा खोलकर प्लैटफार्मपर उतर गया। बस, यही है पांडिचेरी स्टेशन।

बाकी रात मैंने स्टेशनके प्रतीक्षालयमें बिता दी। दूसरे दिन अर्थात् ३१ मार्च सन् १९१० को सबेरे स्टेशनसे बाहर आकर पुशपुश नामक एक अपूर्व गाड़ीपर सवार हुआ। इस अपूर्व गाड़ीकी विशेषता यह है कि यह पांडिचेरीसे बाहर मद्रास प्रांतमें अन्यत्र कहीं और संभवतः पृथ्वीके अन्य किसी स्थानमें कहीं भी नहीं दिखायी देती। इसका थोड़ासा वर्णन यहां दे देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। क्योंकि पांडिचेरीसे भी यह यान आज डाइनोसौरोंकी तरह विलुप्तप्राय हो गया है। अब इसका स्थान रिक्शाने ले लिया है। घोड़ागाड़ीके पिछले बैठनेके स्थान, पीठके पीछेकी चीज और पैर रखनेकी जगहको रखकर बाकी सब कुछ यदि हटा दिया जाय तो जो बच जाता है वही चार चक्कोंपर स्थापित है। फिर चार कोनोंपर पतली चार लोहेकी छड़ें सिरके ऊपर एक आवरण धारण किये हैं। वह आवरण बस इतनी ही ऊंचाईपर है कि मनुष्य आरामसे उसके नीचे बैठ तो सकता है पर खड़ा नहीं हो सकता। सामने दो चक्कोंके अक्ष-दंडसे युक्त लोहेका एक तृतीय ब्रैकेटकी जैसी चीज लगी हुई है और उसके बीचसे एक लोहेकी छड़ी सवारके हाथके पासतक आ गयी है। इसी छड़ीके द्वारा स्वयं सवार ही गाड़ीका संचालन करता है और पीछेसे दो आदमी उसे ठेलते हैं। बस, यही है वह अपूर्व पुशपुश यान।

इस गाड़ीपर चढ़कर मैं जिन महाशयके घर पहुंचा उनका नाम है श्रीयुक्त श्रीनिवास आचार्य। यह तामिल ब्राह्मण हैं। बिलकुल शुद्ध आर्य चेहरा है। लंबाई न अधिक न कम। अवस्था लगभग तीसकी होगी। गौरवर्ण, विशाल नेत्र, प्रशस्त ललाट, लंबी नाक, मुंडित मुखमंडल, सिरके चारों ओर एक इंच डेढ़ इंच परिमाण स्थान कमाया हुआ और बाकी अंशमें बीचोबीच एक गुच्छ लंबे बाल — ठीक बंगालमें आये हुए उड़िया ब्राह्मण जैसे दिखायी देते हैं। ये मद्रासमें 'इंडिया' नामका एक तामिल साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करते थे। उस स्वदेशी-युगमें बात-बातमें राजद्रोहका दोष लग जाता था। अतएव जब राजद्रोहके लिये इनके नाम वारंट निकला और इनकी खोज हुई तो यह पांडिचेरी आ गये और यहींसे अपना पत्र निकालने लगे। यही है उनका पूर्व राजनीतिक इतिहास। मैंने सुना था कि 'स्वदेशी' युगमें देशी जहाज चलानेके काममें प्रायः एक लाख रुपयेका नुकसान देकर उस क्षेत्रका भी उन्होंने अनुभव प्राप्त किया था। प्रथम यूरोपीय महायुद्धके बाद जब ब्रिटिश सरकारने पुराने सभी मामलोंको रद्द करके भारतके राजनीतिक इतिहासका एक नया पृष्ठ उलटाया तब यह भी मद्रास लौट गये। इन्हींके हाथमें मैंने श्रीअरविन्दका लिखा हुआ अपना परिचय-पत्र दिया।

इसके ठीक चार दिन बाद अर्थात् ४ अप्रैल सन् १९१० को कोलंबोगामी फ्रांसीसी मेल स्टीमर 'डयूप्लेक्स' ने कलकत्तेसे आकर पांडिचेरी बंदरगाहमें शामको लगभग ४ बजे लंगर डाला तो उस स्टीमरसे यतीन्द्रनाथ मित्र और बंकिमचंद्र बसाक नामक दो बंगाली यात्री पांडिचेरीमें उतरे। इस बंकिमचंद्र बसाकका असली नाम है विजयकुमार नाग और यतीन्द्रनाथ मित्र हैं — श्रीअरविन्द।

—श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्त्तीकी 'स्मृतिकथा' से

* * *

छत्रसाल महाबली

—श्री सन्तकुमार श्रीवास्तव, पन्ना

—१—

रात ढल रही थी। बादलोंने आकाशको ढककर तारोंके धूमिल प्रकाशको रोक लिया तो अंधेरा भीषण हो उठा। उसी समय गांवसे दूर, जंगलकी पगडण्डीपर एक भीमकाय छाया डोलती जा रही थी। अचानक दूसरी ओरसे एक सवार आ निकला सरपट दौड़ता हुआ। दोनोंमें टक्कर होते-होते बची, कड़कड़ाते प्रश्न हुए —

"कौन ?"

"तू कौन ?"

सवारने आवाज जो पहचानी तो घोड़ेसे कूदकर बोला —

"अरे, कौन बली दादा हैं, प्रणाम।"

"ओह! तुम हो, दलपत ? परंतु इतनी जल्दी कैसे लौट आये ?"

सवार बिलख उठा — "दादा, बुंदेलखंडके भाग्य ही फूटे हैं। वीर बापके बेटेसे मुझे ऐसी आशा न थी।"

"परंतु मुझे तो यही आशा थी।"

इसपर दलपत चिल्लाया — "क्या! तुम्हें मालूम था कि यहांसे भी मैं निराश लौटूंगा ?"

"मुझे क्या नहीं मालूम ? जीवनभर दौड़ते-दौड़ते सारा बुंदेलखंड व्यर्थमें नहीं छाना। एक-एक आदमीकी नस पहचानता हूं।"

"तब समस्त दलको भटका-भटकाकर क्यों पैर तोड़े डाल रहे हो व्यर्थमें ?"

"इसलिये कि तुम्हारी आशाएं टूट जायं। दूसरोंका आसरा छोड़, स्वयं अपने पैरोंपर खड़े हो जाओ। देशका प्रत्येक वीर तुम्हारी तरह निराश होकर जिस दिन स्वयं कुछ करनेको भभक उठेगा, उसी दिन आजादी मिली समझो !"

"खाक मिलेगी आजादी।" जला-भुना दलपत बोला — "जब अभीतक एक नायक न चुन पाये तो इतनी बड़ी-बड़ी आशाएं किस बिरतेपर बांधे बैठे हो ?"

बड़ी गंभीरतासे महाबलीने कहा — "बेटा, आगमें कूदनेके लिये इतने उतावले हो तुम सब ! इसीसे तो मेरी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। तुम लोगोंको बुंदेलखंडकी अंतिम आशाको अयोग्य हाथोंमें सौंपकर मैं स्वाहा नहीं कर सकता।"

"दादा, तुम तो चाहते हो, स्वयं राव चंपतराव ही आ जायं ! सो वह तो स्वर्गसे तुम्हारे लिये लौटनेसे रहे !"

अंतिम वाक्य सुनते ही महाबली तिलमिला उठा। देशके एक-एक व्यक्तिको खूब जानता है वह। फिर भी एक अंधेकी तरह टटोल-टटोलकर परख रहा है प्रत्येक बुंदेले वीरको। क्यों ? — इसलिये कि उसे विश्वास है, उसके स्वामीकी प्रतिमूर्ति कहीं न कहीं अवश्य छिपी बैठी होगी। उसने बड़ी गंभीरतासे कहा — "दलपत, मुगलोंका आतंक बड़ों-बड़ोंके पित्ते पानी कर रहा है। ऐसे समय, आजादीकी अलख जगानेके लिये तुम्हारे सिरपर एक अद्वितीय वीरका होना जरूरी है।"

"यह तो ठीक है परंतु कोई मिले भी ?"

"घबराते क्यों हो? ऐसा व्यक्ति मौजूद तो है, परंतु उसका मिलना मुश्किल है। नहीं-नहीं, हम नहीं पा सकते उसे। असंभव है! इसीलिये तो तुम लोगोंको दौड़ा-दौड़ाकर सारा देश छान रहा था कि उसका स्थान लेनेवाला कोई व्यक्ति मिल जाय! परंतु सचमुच दुर्भाग्य है हमारा! अवतक कोई न मिल सका।"

महाबलीके प्रथम वाक्यने दलपतकी आशा मजबूत कर दी थी! तुरंत पूछा, — "दादा, वह पुण्य पुरुष कौन है? वह हमें मिल क्यों नहीं सकते? केवल आप बता भर दीजिये — हमसे जैसे होगा उन्हें लायेंगे ही।"

असावधानीसे बात मुंहसे निकल गयी थी। महाबलीको आज बतलाना ही पड़ेगा। उसने कहा — "देखो दलपत, उतावलीमें कहीं अनर्थ न कर बैठना, नहीं तो सब मिट्टी हो जायगा।"

"नहीं दादा, बिना तुमसे पूछे कोई कुछ करेगा कैसे? निःसंकोच बतला दो हमें। फिर जैसा उपाय कहोगे हम अवश्य करेंगे।"

"दलपत, तुम लोगोंका नायक बनकर तुम्हारे उद्देश्यको पूरा कर सकनेकी शक्ति केवल एक व्यक्तिमें है। वह है कुमार छत्रसाल! परंतु विश्वासघाती साहबसिंहके चंगुलसे निकल सकना बिना युद्धके संभव नहीं! और आपसमें युद्ध — ऐसे समयमें महान् मूर्खता होगी।" — परंतु अंतिम शब्द कहते समय उसका दिल भीतर-ही-भीतर जल रहा था! वह खुद तड़प रहा था उन विश्वासघातियोंसे अपने मालिककी हत्याका बदला लेनेके लिये। उसे दुःख था तो यही कि उसे अंतिम समयमें क्यों दूर भेज दिया गया था सेना संग्रह करनेके लिये! नहीं तो, वह दिखा देता कि स्वामीकी रक्षामें एक सेवक कैसे मर खप सकता है! स्वामीकी वह आज्ञा — सेना संग्रह करनेकी आज्ञा — अब भी उसके सिर आंखोंपर है। जबतक प्राण शेष हैं वह बुंदेलखंडकी स्वतंत्रताके लिये सेना इकट्ठी करता ही जायगा। देशमें आजादीकी आग सुलगाता ही रहेगा, इसीमें उसे कुछ शांति है।

—२—

भीषण अंधकार, घना जंगल, पथरीले मार्गसे बहते हुए नालेका शोर, और झींगुरोंकी झन्नाहट — दिल दहला देते थे। घने पेड़ोंके नीचे सूखी पत्तियां खड़कीं — किसीके पैरोंकी आहट मिली। तभी साफ सुन पड़ा — "एक वर्ष!" फिर शांति — और आगे बढ़ा वह। — "दो वर्ष!" फिर और चला — "तीन वर्ष!"

एक दर्दनाक आह खींचकर वह आगे चला गिनता हुआ — "सौ, दो सौ...... पचास, साठ, पैंसठ-छाछठ-सरसठ! आह! ३ वर्ष २६७ दिन बीत गये। इधर मेरे जीवनके भी ५७-५७॥ वर्ष कट गये हैं। हे भगवान्! कब, कैसे, क्या होगा!"

वही महाबली है यह जिसका एक-एक दिन बड़ी मुश्किलसे बीत रहा है। धीरे-धीरे वह पानीमें उतरा। एक बड़ी-सी चट्टान लेकर सीढ़ियां चढ़ा: तब अंदाज बांधकर ठीक स्थानपर पटकते हुए गिना — "दौ सौ अड़सठ।" परंतु उसकी आवाज पत्थरकी गड़गड़ाहटमें लोप हो गयी। वह शिला लुढ़कती हुई पानीमें जा गिरी। "अरे! यह क्या?" चीखते हुए महाबली छपाकसे पानीमें कूदा। आज पहिली बार — ३ वर्ष २६८ दिनोंमें, यह पहिली बार उसकी रखी हुई शिला नीचे गिरी। क्यों? यह शुभ था या अशुभ? यह समझनेके पहले ही उसने फिर लाकर उसे जमा दिया और डूब चला अपने ही विचारोंमें! तभी जंगलके अंधकारमेंसे कोई सफेद सफेद चीज झलकी। परंतु महाबली अपनी ही धुनमें मस्त था। वह छाया और निकट आयी; फिर भी उसे चेत न हुआ। वह सफेद झलक जलके किनारे आ गयी। काली लहरोंमें उसकी परछांई जब दिखी तो महाबली घबड़ाकर उठा। सामने नजर गयी तो आंखें वहीं जमी रह गयीं। धीरे-धीरे मस्तक झुक गया। एक ठंडी

आह खींचकर जब उसने नजर उठायी तो वह सफेद आकार उधर उसी ओर जाकर अंधकारमें लोप हो चुका था। पूर्वमें ऊषाकी लाली फूट रही थी।

महाबली हाथमें अमरूदोंकी झोली लटकाये चला जा रहा था जल्दी-जल्दी घरकी ओर! तभी अचानक उसकी नजर पड़ी बगलमें पड़ी चौरस चट्टानपर। एक तरुण सैनिक अचेत पड़ा था। उसने ध्यानसे उसका मुंह देखा तो हाथकी झोली छूट पड़ी। आंखें खुली-की-खुली रह गयीं। उसे विश्वास ही न हुआ आंखोंपर! इधर-उधर देखा — उदय होता हुआ सूर्य, पेड़-पौधे, मार्ग, चट्टान और युवक — सभी साफ दिखायी पड़े। उसने फिर पहचाननेकी कोशिश की। अब नाच उठा वह पागलोंकी तरह आनंदसे। थोड़ी देरमें जब महाबलीके होश ठिकाने आये तो अपना कौतूहल शांत करनेके लिये उसे जगानेकी चिंता हुई। धीरे-से वह बैठ गया पैर दबानेके लिये। परंतु ज्योंही उसने पैरोंपर हाथ लगाया, तो चीतेकी तरह चटककर दो गज दूर जा खड़ा हुआ वह युवक। हवामें तलवार लहरा उठी; जोरसे आवाज गूंजी —"कौन?"

महाबली हड़बड़ाकर बोला, "कुमार — कुमार छत्रसाल!"

"परंतु तुम कौन? क्या चाहते हो?"

कुछ उत्तर मिले इसके पहले युवक गुर्राया, "हूं! सोतेमें पकड़ने चला था! सावधान!" और बायें कंधेके ऊपर उसकी तलवार सम्हलकर तनी तो बुड्ढा चिल्ला उठा — "भूलते हो, भूलते हो कुमार! मैं शत्रु नहीं, केवल एक सेवक — तुम्हारे स्वर्गीय पिताका एक सेवक ही हूं।"

सुनते ही छत्रसालकी आंखें एक बार सुईकी तरह महाबलीकी बिखरी आंखोंमें चुभीं और उन्हें विश्वास हो गया। तलवार म्यानमें डालते हुए पूछा — "मऊके महाबलीको ढूंढ़कर ला सकोगे तुम?"

"कुमार! मैं तो स्वयं तुम्हें खोज रहा था!"

"ओह! तुम्हीं हो — तुम्हीं हो! काका! ...."

महाबली कोई उत्तर दे सके इसके पूर्व छत्रसालकी कुम्हलाई आंखें उसकी ओर उठीं। हाथ-पैर ढीले पड़ चले थे। बैठनेकी कोशिश की परंतु वहीं लुढ़क पड़े अचेत होकर। यह देखकर महाबली घबड़ा गया। धड़कते दिलसे उसने कुमारको अपनी गोदमें लिया; गीली साफीसे मुंह पोंछा; हवा की। तब धीरे-धीरे आंखें खुलीं — टूटती आवाज निकली "काका! बड़ी भूख! ओह! तीन दिन हो गये।" सुनकर महाबलीकी घबड़ाहट दूर हुई। तुरंत उसने उन्हें कंधेपर ले लिया। नालेपरके झुर्मुटकी शीतल छांवकी ओर लौट चला उड़ता हुआ! मारे आनंदके उसके पैर जमीनपर पड़ते ही न थे!

भरपेट अमरूद खाकर शीतल जल पिया तब कुमारका जी कुछ स्वस्थ हुआ। बस, लगा दी प्रश्नोंकी झड़ी महाबलीने। "सहराके वायुमंडलमें स्वतंत्र विचारोंकी रुकावट — अचानक माता-पिताकी मौतके असली कारणका पता लगाना — विश्वासवातियोंसे बदला लेनेका प्रण — सहरासे भागनेका निष्फल प्रयत्न — दुलारके रूपमें साहबसिंहकी कड़ी देखरेख — शिकारका षड़यंत्र — रक्षकोंको जंगलमें खतम करके भागना" — बस यही उनकी संक्षिप्त कथा थी। सुनकर महाबलीको बड़ा संतोष हुआ। फिर भी उसने हर तरहसे छत्रसालकी थाह ली। पूरे ४५ वर्षका तर्जुबा था उसे इस काममें। उसने समझ लिया छत्रसालके प्रति उसकी पूर्व धारणा बिल्कुल सही है। तब उसने धीरे-धीरे बुंदेलखंडकी वास्तविक दशापर प्रकाश डाला। राजनीतिक अवस्थाका ज्ञान कराया। परंतु एक भीषण कसौटीपर कसे बिना वह उन्हें नायक नहीं बना सकता।

—३—

आज भी अंधेरे-मुंह उठकर महाबली घरसे बाहर जाने लगा तो छत्रसाल पूछ बैठे — "काका! रोज आधी रातको तुम कहां निकल जाया करते हो?"

महाबलीने निःश्वास छोड़ते हुए कहा —— "अपने स्वामीकी कुछ सेवा-पूजाके लिये।"

असीम आश्चर्यसे कुमारने पूछा —— "क्या ? पूज्य पिताजीकी ? कैसे करते हो उनकी सेवा ?"

बूढ़ेने धीरेसे कहा : "उनकी तो क्या; उनके एक अंशके दर्शन हो जाया करते हैं। बस, उसीकी थोड़ी-सी सेवा-टहल जो बन पड़े, कर आता हूं।"

छत्रसालका कुतूहल और भी बढ़ गया। महाबली चलने लगा तो कहा —— "काका, मैं भी चल सकता हूं ?"

बूढ़ेने कोई आपत्ति न की। आध घंटेतक अंधेरेमें ठोकरें खानेपर भी छत्रसालका स्वप्न न टूटा। माता-पिताकी अंतिम झांकी उनकी आंखोंमें फिर रही थी। उनका दुख ताजा हो गया था और उतना ही उग्र हो उठा था बध करनेवालोंके प्रति उनका क्रोध।

जब महाबलीने पानीमें पैठकर एक शिला उठायी और उसे तीसरी सीढ़ीपर जमाया तो कुमारने पूछा —— "क्या कर रहे हो काका ?"

धीरे-धीरे उसने उत्तर —— "अपने वीर स्वामीके प्रति इस तुच्छ सेवककी एक खोखली-सी श्रद्धांजलि ही समझ लो इसे कुमार ?"

इस निरर्थक-सी बातसे छत्रसाल भुन्ना उठे परंतु कुछ बोले नहीं। भीतरी क्रोधकी भभक इससे और जल उठी। झुंझलाहटमें कुमार बुदबुदाया, "जबतक बदला नहीं लिया। ओह, तबतक !..."

बीचमें महाबलीने टोका —— "बदला ! कैसा बदला, कुमार ?"

छत्रसाल तड़प उठे —— "भयंकर राजद्रोहका, भीषण विश्वासघातका, मां-बापकी हत्याका।"

यद्यपि महाबलीके भीतर उतनी ही आग सुलग रही थी, परंतु शांतिसे उसने कहा, "भला, किस तरह लोगे बदला ?"

"प्राणोंका बदला प्राणोंसे होगा। दोकी जगह दो हजार नहीं, उन दगाबाजोंकी जड़ ही खोद फेंकूंगा —— एक भी जीता रहा तो ——"

बीचमें बोल उठा महाबली ——"तब ले चुके बदला।"

"क्या कहा, काका ?"

"यही कि राव चंपतरावजीकी मौतका बदला लेना तुम्हारे-जैसेके लिये असंभव है।"

"काका ! मैं शपथ ले चुका हूं। संभव असंभवका अब सवाल नहीं।"

"परंतु इतनी शक्ति भी है ?"

"शक्ति होने या न होनेका प्रमाण तो समय देगा।"

"लेकिन इसे मैं अभी कैसे मान लूं ? इस समय क्या प्रमाण है ?"

"इसी समय ? अच्छा, क्या प्रमाण चाहते हैं आप ?"

"दे सकोगे, कुमार ?"

"अवश्य।"

"तो, उधर देखो।"

छत्रसालने देखा ——जलके किनारे एक सफेद आकार खड़ा है। महाबलीने कहा —— "स्वर्गीय रावजीके ये अंतिम शब्द थे कि "जो कोई इसे पकड़कर काबूमें ला सके, वही मेरा बदला ले सकेगा।"

सुनते ही कुमार आगे बढ़े, वह छाया मानो और तनकर सम्हलकर खड़ी हुई। कुमार और आगे बढ़े तो वह पीछे हटी। धीरे-धीरे मैदानमें, फिर जंगलके अंधकारमें दोनों विलीन होने लगे। बूढ़े महाबलीकी दुनियांके स्वर्ग या नर्क बन जानेकी बात थी। धड़धड़ाते दिलसे उसने आंखें गड़ाकर देखा। परंतु कुछ न दिखा उसे। छाती पीटकर उसने धिक्कारा अपने-आपको और बेहोश होकर वहीं सीढ़ियोंपर लुढ़क पड़ा। जब आंखें खुलीं तो अकचकाकर उठ बैठा। कानमें आवाज पड़ी ——

"काका, कैसे अचेत सोते हो? कबसे चिल्ला रहा हूं?"

उसने ऊपर देखा तो छत्रसाल दूधके समान सफेद घोड़ेपर सवार हंस रहे थे। दोनों पसीनेसे तर-बतर थे। बुड्ढा चौंधिया गया। आंखें मलमलकर देख रहा था वह। तभी कुमारने पूछा — "काका, अब तो ले सकूंगा बदला?"

इस प्रश्नने मानों उसे सोतेसे चौंका दिया। गंभीर बनकर कहा — "हां, परंतु अब यह प्रश्न है कि बदला लोगे किससे?"

गरज उठा कुमार — "साहबसिंह और उसके सामन्त दलसे"। महाबलीके हृदयमें चुभनेवाले कांटे यही दो थे परंतु उसने बड़ी गंभीरतासे कहा — "तब भूलते हो, कुमार! इनसे लाख दरजे ज्यादा भयंकर हैं तुम्हारे पिताके असली शत्रु, जिनके कारण वीर दंपतिको प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। उनके नाम सुनकर तुम्हारा जोश ठंडा पड़ जायगा, कुमार!"

"काका! छत्रसाल अपनी टेकसे पिछड़ना नहीं जानता। कौन हैं वे? आप निःसंकोच कहिये। उन्हें भी देख लूंगा मैं!"

"अच्छा तो, सुनो कुमार! तुम्हारा पहिला शत्रु है — 'बुन्देलोंकी आपसकी फूट और स्वार्थ-लोलुपता', जिसने अपने ही लोगोंको विश्वासघाती और हत्यारा बना दिया! दूसरा है — 'देशकी नस-नसमें पैठा हुआ मुगलोंका आतंक और दासत्व!' ये हैं तुम्हारे मां-बापकी हत्या करनेवाले।"

छत्रसाल विस्फारित नेत्रोंसे देखते रह गये। महाबली बोला — "चुप क्यों हो, कुमार? बोलो, ले सकते हो इन शत्रुओंसे बदला?" छत्रसालसे अब रहा न गया। घोड़ेसे उतरकर आये और महाबलीके कंधोंको दोनों हाथोंसे हिलाते हुए कहा, "काका!" — आगे शब्द न निकल सके।

"बोलो कुमार, ले सकोगे बदला? लेते हो स्वतंत्रताका व्रत?"

उसी समय छत्रसालने तलवार छूकर प्रतिज्ञा की — "भवानी, तुम साक्षी हो, आज मैं आजादीकी दीक्षा लेता हूं! आपसकी फूट और वैर-विरोधको छोड़कर देशको एकताके सूत्रमें पिरोना मेरा धर्म होगा! और स्वदेशमें आजादीकी लहर फहराकर समस्त बुंदेल भूमिमें स्वतंत्र राष्ट्रका निर्माण करना मेरा पहला फर्ज होगा!"

"यशस्वी हो कुमार!" — कहते हुए महाबलीका गला भर आया। उधर पूर्वमें भगवान् भास्करने झांककर इस स्वर्गीय दृश्यको देखा और स्वर्ण-रश्मियोंसे अपने आशीर्वादकी वर्षा कर दी! थोड़ी देर बाद महाबलीने पूछा — "अब काम किस तरह शुरू करना चाहते हो कुमार?"

छत्रसालने कहा — "काका, ऐसे गंभीर विषयमें इतनी जल्दी कैसे तै कर लूं? देशकी दशाका पूरा ज्ञान हो तभी विचार हो सकता है। इसके लिये तुम्हीं योग्य हो। तुम्हींको यह बतलाना होगा।"

इस वाक्यको सुनकर महाबली जरा भी खुश न हुआ। बिगड़कर कहा — "कुमार, तुमने पूर्ण स्वतंत्रताका व्रत लिया है न?"

"हां, काका?"

"तो स्वतंत्रताके पुजारीको अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहिये। दूसरोंका मुंह जोहना, दूसरोंका आसरा देखना उसे शोभा नहीं देता। तुम पूछते हो तो बतलाता हूं, परंतु पहले वचन दो कि यह तुम्हारी आखिरी गुलामी होगी।"

कुमारका हृदय श्रद्धासे भर गया। उन्होंने वचन दिया, तब महाबलीने कहा — "सुनो कुमार! अपने व्रतको पूरा करनेके लिये तुम्हें मुगलोंसे लोहा लेना पड़ेगा। इसलिये सबसे पहले इन्हें खूब पहचान लो, खूब परख लो।"

"इसके लिये उपाय?"

"बिलकुल सरल है उपाय। मिर्जाराजा जयसिंह मराठोंसे युद्ध करने दक्षिण जा रहे हैं। वे स्वर्गीय रावजीके परम मित्र थे। तुम्हें खुशीसे अपनी फौजमें भरती कर लेंगे।"

कुमारने बड़े आश्चर्यसे पूछा –– "मुगलोंका सेवक बननेको कहते हो काका? स्वतंत्रताका व्रत लेनेपर पहिला पाठ क्या यही होगा?"

हंसते हुए महाबलीने कहा –– "कुमार, मुगलोंका सेवक बननेको नहीं, सेवकका वेष धारण करनेको कहता हूं जिससे तुम्हें उनकी शक्ति, दांव-पेंच, रणकौशल और नीतिको स्वयं समझनेका मौका मिल जाय। यह तो साधनमात्र है कुमार!"

परंतु कुमारका चंचल मन शांत न हुआ। और तर्क तो कोई चल न सकता था। बात बदलनेकी कोशिश करते हुए उन्होंने कहा –– "काका, क्या यह संभव नहीं कि दक्षिण जानेके पहले उन दुष्टोंसे अपना अरमान निकाल लूं?"

महाबलीने गंभीरतापूर्वक कहा ––"कुमार, इन दुष्टोंके खूनके प्यासे अब भी हो तुम?"

कुमारने अब दलील पेश की –– "काका! मेरा पहिला प्रण तो इन्हींसे बदला लेनेका था, न?"

"उस समय तुमने अपने शत्रुको पहिचाना ही कहां था? लड़कपनकी नासमझीसे अनर्थ न कर बैठना कुमार!"

छत्रसाल शांत हो गये। परंतु महाबली कहता गया ––"भूल जाओ यह वैर-विरोध! इन दुष्टोंको — मां-बापका वध करनेवाले विश्वासघातियोंको –– प्यारसे गले लगाकर आपसकी एकताका आदर्श रखना होगा तुम्हें! बिना इसके समस्त बुंदेलखंड एक न हो सकेगा, कुमार?"

सुनते ही कुमारके भीतरका दानव धीरे-धीरे लोप हो गया। परंतु तभी एक शंका उठी। बोले– "घोर कायरताका सबसे निन्दनीय नमूना होगा यह तो काका।"

"हां, अवश्य! यदि समझते हो कि श्रेष्ठ वीरता दिखलानेका न साहस है, न कोई और अच्छा मौका ही कभी मिलेगा तो।"

कायरताका प्रश्न एक भीषण प्रश्न था कुमारके लिये। अंतर्द्वन्द्वसे पागल होकर वे चिल्ला उठे –– "ओह! काका! तुम मुझे इस तरह कहां ले जाओगे? मुझे क्या बना डालना चाहते हो तुम?"

आवेशमें कुमार थरथरा रहे थे? महाबलीने रुख बदलकर कहा –– "बस कुमार! मुझे अब कुछ नहीं कहना। इसके बाद तुम आजाद हो?"

अंतिम वाक्य सुनते ही कुमारके भावोंमें भयंकर परिवर्तन हुए। आंखोंसे आंसू बहने लगे। कांपती आवाजमें उनके मुखसे निकला –– "काका! काका!! मुझे क्षमा कर दो! अपनी उद्दंडतासे न जाने क्या बक गया। तुम्हारे उपदेश आदर्श हैं। तुम मनुष्य नहीं देवता हो, काका!"

तुरंत महाबलीने डपटा ––"हुश! क्या बक रहे हो कुमार! मैं कुछ नहीं, केवल तुम्हारे पिताका और अब तुम्हारा सिर्फ एक सेवक हूं। वह भी जातिका तेली — जिसका सबेरे-सबेरे नामतक लेनेमें लोग बुरा समझते हैं।"

कुमार चुप थे पर असीम श्रद्धासे उनकी आंखें अब भी भीगी थीं।

दूसरे ही दिन चुने हुए ३० बुंदेला वीर जिनमें ५ घुड़सवार भी थे, महाबलीसे लेकर छत्रसाल देवगढ़की ओर चल दिये। श्रेष्ठ वीरताका प्रमाण देनेके लिये वे व्याकुल हो रहे थे।

–४–

६ वर्ष बीत चुके थे। वही मऊका घना जंगल, वही रातका अंतिम पहर, वैसे ही अंधेरेमें एक भीमकाय काली छाया पगडंडीपर डोलती जा रही थी। उसी तरह आ निकला एक सुसज्जित घुड़सवार। परंतु दस गज आगेसे उतरकर वह बोला –– "काका!"

महावलीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा! चिल्लाया — "कुमार!! इतने दिनों बाद अचानक इधर कैसे?"

"काका, हम लोग आजादीका महायज्ञ शुरू करने जा रहे हैं। सब सामग्री तैयार है। अपना कार्यक्रम भी हमने खूब सोच-समझ रखा है। कहीं कोई बात रह न जाय यही खटका है; इसलिये सब बातें तुम्हारे सामने रखकर तुम्हारी भी राय ले लेनेकी इच्छा हुई।"

"तो कहो न? रुक क्यों गये?"

"काका! पहले यह बता दो, तुम नाराज तो नहीं हो?"

"क्यों कुमार? मैं नाराज क्यों हूंगा?"

"इसलिये कि मैं मुगल दरबारसे ३ वर्षके भीतर ही भाग खड़ा हुआ और इसके बाद तुम्हें बिना बताये ही अपने मनमें जो आया करता फिरा।"

"कुमार, देवगढ़के युद्धमें तुमने जो अद्वितीय वीरता दिखलायी — वह नाराज होने लायक नहीं। मुगल सेना हारकर भाग ही चुकी थी। यदि तुम ऐसी वीरतासे लड़ते हुए किलेपर मुगल झंडा न फहरा देते तो वह विजय जिसका समस्त श्रेय मैदानसे भाग खड़े होनेवाले मुगल-सेनापतिको दिया गया, उन्हें प्राप्त ही न होती। परंतु तुम्हारी कद्र मुगल सम्राटने न की। इसीसे असंतुष्ट होकर तुम वहांसे चल दिये ऐसा ही दुनिया समझती है। परंतु, मैं उन लोगोंमें नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि जो सीखने वहां गये थे अच्छी तरह सीखकर ही लौटे होगे वहांसे। और अपने मनकी करनेके लिये — सो तो मैंने ही कहा था न, कि अपने पैरोंपर खड़ा होना सीखो?"

छत्रसालकी शंका दूर हो गयी। उन्हें चुप देखकर महावलीने पूछा — "कुमार, अब यह तो बतलाओ कि मुट्ठीभर बुंदेलोंसे सम्राट् औरंगजेबकी अतुल शक्तिका मुकाबला करके, अपने कार्यमें सफल होना किस तरह संभव समझते हो?"

इसपर कुमारने अपना कार्यक्रम बतलाया। कुमारकी शतरंजी चालें सुनकर महाबली प्रसन्नतासे लहक उठा — "ठीक है कुमार। ठीक है। तुम्हारी दूरदर्शिताका पता मुझे अब लग रहा है।"

छत्रसालने नम्रतापूर्वक कहा — "काका, यदि इतनेसे काम न चला तो और सुनो —"

उन्होंने एकके बाद एक सात युक्तियां सामने रखीं। सभी अचूक, सभी टेढ़ी और दूरतक निशाना मारनेवाली। महाबलीकी सारी चिन्ताएं दूर हो गयीं। उसे विश्वास हो गया कि बुंदेलखंड अब स्वतंत्र हुए बिना नहीं रह सकता। उसे चुप देख छत्रसालने कहा —"काका, मेरे पास अभी एक और पत्ता है — सुनहला पत्ता जिससे बाजी मात हो ही जायगी?"

बड़े आश्चर्य और उत्सुकतासे महाबलीने पूछा — "वह क्या, कुमार?"

"वह है मराठोंके अधिनायक शिवाजी।"

"शिवाजी? वह भी हमारा हाथ बटावेंगे?"

"हां, काका। मैं उनसे मिल चुका हूं। मैंने यही सब बातें उनके सामने भी रखी थीं। वह तो पूर्ण सहमत हैं। उन्होंने वचन दिया है कि जब, जहां, जिस समय, जैसी सहायताकी आवश्यकता होगी, तुरंत तैयार मिलेगी।"

"बस करो, कुमार। मुझे अब कुछ नहीं सुनना।"

परंतु छत्रसाल कहते गये — "काका, मैं इस उपायको तभी काममें लाऊंगा जब बुंदेलखंडकी पहाड़ियोंके बीचमें अपने उपायोंसे मुगलोंकी शक्ति झकझोर डालनेपर भी सफलता मिलती न दिखेगी।"

महाबली बीचमें ही बोल उठा — "महाराष्ट्र और बुंदेलखंडके बीचमें पड़कर मुगल सत्ता तो पिस जायेगी। मुझे विश्वास है, यदि भगवान्ने चाहा तो तुम्हें विजय अवश्य प्राप्त होगी।"

"काका, भगवान्की भी अब यही इच्छा जान पड़ती है।"

महाबलीकी मुद्रामें आश्चर्य और उत्सुकता एक साथ चमक उठी। तब छत्रसालने बताया— "औरंगाबादमें बलदिमानने ऐसी-ऐसी बातें मेरे प्रस्तावके विपक्षमें रखीं कि निर्णय करना ही कठिन हो गया। तब हम दोनोंने यही तय किया कि किसी तरह भगवान्‌की इच्छाकी टोह ली जाय। विंध्यवासिनी देवीके मंदिरमें जाकर हम दोनोंने मातासे सुमार्ग बतलानेकी प्रार्थना की। तब चिट्ठियां डाली गयीं। एक अबोध ब्राह्मण बालकने चिट्ठी उठायी। युद्ध करनेके पक्ष ही में निकली वह।"

छत्रसालकी बात खतम न हुई थी कि गांवकी ओरसे एक सवार सरपट दौड़ता हुआ आया— यह दलपत था। उसने महाबलीके साथ छत्रसालको देखा तो बोला — "लो, अच्छा हुआ, नहीं तो मुझे आपकी खोजमें दौड़ना पड़ता। ओरछेका दूत कुमारको खोजता हुआ आया है। वहांका मंदिर तोड़ डालनेके लिये फिदाई खांकी अधीनतामें एक बड़ी फौज दिल्लीसे रवाना की गयी है। महाराज सुजानसिंह सहायता चाहते हैं।"

सुनते ही महाबलीने कहा — "कुमार, अब शुभ कार्यमें देर मत करो। मौका भी सामने आ रहा है। हां, इस दलपतको भी साथ लेते जाओ। इसे मैंने अपने काममें दक्ष बना दिया है। जब जो काम पड़े मेरे बजाय इन्हींको आज्ञा देना। लो, दलपत ये हैं तुम्हारे दलके नायक! इनकी आज्ञासे मुंह मोड़कर कभी मेरी नाक नीची न करना, बेटा!"

छत्रसाल उसी समय ओरछेकी ओर चले गये। बूढ़ा महाबली समस्त बुंदेलखंडमें आग सुलगा चुका था। केवल अब लपटें धू-धू करके जल उठनेको थीं। महाबलीका कार्य आज समाप्त हो गया। पूरा हो गया स्वामीके प्रति उसका कर्तव्य!

* *

इसके बाद कब, क्या हुआ, कहनेकी आवश्यकता नहीं। इतिहास दिखलाता है युद्धोंका एक बवण्डर जो लगातार २० वर्षोंतक, बुंदेलखंडकी पहाड़ियोंके बीच, टकराता रहा और फिर स्थापित हो गया, यमुनासे नर्मदा और चंबलसे टोंसतककी भूमिमें, एक शांतिपूर्ण, स्वतंत्र बुंदेला साम्राज्य!! इसके अधिनायक, महाराज छत्रसाल, युद्ध-कौशलके बजाय अब उत्तम राज्य-शासन, न्याय-व्यवस्था आदिमें तल्लीन हो गये। धीरे-धीरे उनकी नजरसे दूर होते गये युद्ध चित्रोंके साथ-साथ उनके अभिनेता भी। स्मृति-पटलसे पुरानी बातें धुल गयीं।

—५—

पन्नामें महाराज छत्रसालको शासन करते ७ वर्ष बीच चुके थे। बसंतका महीना और प्रातःकाल-का समय था। मऊका जंगल गमक रहा था करोंदेकी सुगंधिसे। शीतल वायु लहरा रही थी— वृक्ष मस्तीसे डोल रहे थे। पूर्वमें पहाड़ीके पीछेसे झांक उठे सूर्य देवता। ठीक उसी समय सूर्यकी लाल-लाल थालीके आगे पहाड़ीके शिखरपर कोई चीज हिलती-सी दिखी और गूंज उठा सारा जंगल तुरहीकी आवाजसे! एक सुसज्जित दल धीरे-धीरे पहाड़ीसे उतरकर निचले भागमें आ गया। पैदल, घुड़सवार, हाथी-ऊंट कतार-बांधे चले आ रहे थे। बीचमें एक विशाल हाथी चला आ रहा था अपनी सोनेकी झूलमेंकी छोटी-छोटी मधुर घंटियोंसे 'दुन्नन', 'दुन्नन' करता हुआ। उसके ऊपर रत्नजटित सिंहासन कसा हुआ था, उसके ऊपर छत्र, और दोनों ओर दो सामन्त चंवर डुला रहे थे। सिंहासनमें अपूर्व ठाठसे बैठे थे महाराज छत्रसाल। आज वे अपनी जन्मभूमिकी यात्राके लिये चले आ रहे थे। उन-जंगलका वही भाग आया तो याद आ गयी पुरानी बात। एक-एक पौधा वे पहचानने लगे। उन-की प्यासी आंखें मचल रही थीं इधरसे उधर, तभी उन्होंने देखा — एक बुड्ढा दुहरा झुका हुआ डण्डेके सहारे धीरे-धीरे चला आ रहा है। देखते ही महाराजका मन चंचल हो उठा। तुरंत सवारी

रोककर वे नीचे उतरे और दौड़ चले उसी ओर। बुड्ढा लकड़ी टेकते-टेंकते जब पेड़के पास पहुंचा तो महाराज उसका मार्ग रोके खड़े थे। उसने डण्डेपर झुके-झुके ही अपना मुंह ऊपर किया और खर-खराती आवाजमें पूछा — "कौन हो भाई ?"

महाराजके मुंहसे केवल एक शब्द निकल सका — "काका !" सुनते ही बुड्ढेकी स्मृति चमक उठी। इतनी मिठास, इतने स्नेहमें पगा हुआ यह 'काका' शब्द उसे परिचित जान पड़ा। और अधिक पहचाननेके लिये उसने दूधकी तरह सफेद गुन्थी हुई भोंहोंपर जर्जर उगलियोंकी ओट करके धंसी हुई छोटी-छोटी आंखोंपर जोर लगाया तो महाराजने कहा — "काका, नहीं पहिचाना अपना छत्रसाल ?"

बस, बिजली छू गयी उसे। डंडा छूटकर गिर पड़ा। शरीर थरथराने लगा, अंधी-सी आंखें विस्फारित हो गयीं। उसके मुंहसे निकला — "छत्रसाल ? महाराज छत्रसाल !! — बुंदेला साम्राज्यके अधिपति — महाराज छत्रसाल ?"

इसके साथ-साथ डगमगाते हुए हाथोंने टटोल-टटोलकर देखा उनका राजसी वैभव — राजमुकुट, बाजूबन्द, मुक्तामालायें आदि। उफ ! इतना सुख ! अचानक वह न सम्हाल सका इस आनंदको। जीर्ण शक्तियोंने धोखा दिया और गिरा अचेत होकर वह उसी स्थानपर जहां कभी बालक छत्रसाल अचेत होकर गिरा था। तुरंत महाराजने उठा लिया उस कंकालको कंधेपर और ले चले जल्दी-जल्दी झरनेकी ओर। उन्होंने देखा, वहांका बांध लगभग १॥ मील लंबा बंध चुका था इन ३५ वर्षोंमें। छत्रसालने शीतल छायामें बूढ़े महाबलीको गोदमें लिटा लिया तो जल्दी-जल्दी सामन्तोंने गुलाबजल छिड़कने, मोरछलसे हवा करने तथा लखलखा सुंघानेका प्रबंध किया; परंतु महाराज स्वयं जुटे रहे उसकी सुश्रूषामें।

चलते मार्गमें अचानक बाधा और महाराजका आवश्यकतासे अधिक सौजन्य सामन्तोंको खल गया। बलदिमानने धीरेसे संकेत भी किया — "महाराज, राजवैद्यजीको उपचार करने दीजिये न ? इससे शीघ्र लाभ होगा।"

महाराजने घूमकर बलदिमानकी ओर देखा — "भाई, तुमने इन्हें पहचाना नहीं शायद।" बलदिमानका कुतूहल हदसे बढ़ गया तो महाराज छत्रसालने कहा — "सुनो, मेरे पिता राव चंपतरावने केवल बालक छत्रसाल उत्पन्न किया था, परंतु इन्होंने स्वतंत्र बुंदेलखंडके अधिनायक, महाराज छत्रसालका निर्माण यहीं इसी जगहपर किया था !!" कैसे, यह बलदिमान न समझ सके। उन्होंने कहा— "महाराज ! मैंने तो केवल इसलिये कहा था कि हमें अभी दूर जाना है।"

उनकी बात पूरी न होने दी छत्रसालने। कहा — "अब कहीं नहीं जाऊंगा मैं ! मेरी यात्रा पूरी हो गयी। इससे बढ़कर पुण्य भूमि मेरे लिये और कहां ! यही तो है मेरी सच्ची जन्मभूमि !"

थोड़ी देरमें महाबलीको होश आया तो महाराजने कहा — "काका। मेरा व्रत तो पूरा हो गया। अब तुम बताओ, तुम्हारी क्या सेवा करूं ?"

इसपर महाबली गद्‌गद् हो गया। आनंदके आंसू बह गये। बोला — "मेरी तो सब साध पूरी हो गयी। तुम्हारा राजसी रूप देखनेकी एक बार इच्छा हुई थी — वह भी पूरी हो गयी। अब मुझे क्या चाहिये ?"

"नहीं काका ! कुछ तो कहो !" तब बैठनेकी कोशिश करते हुए उसने कहा, धीरे-धीरे — "अब महाराज बन गये हो। बड़े बनकर मुझ जैसे छोटे-छोटे गरीबोंको भूल न बैठना।"

शीघ्रतापूर्वक महाराज बोले — "तुम्हें भूल जाऊंगा ! असंभव है काका ! तुम्हारा स्थान मेरे लिये अटल है, ध्रुव है। फिर भी सावधानीके हेतु एक और प्रतिबंध लगाता हूं। अपने नामसे अधिक अन्य कोई चीज याद नहीं रहती, मैं अपना नाम ही बदल देता हूं। भाई बलदिमान !

घोषणा कर दो, बुंदेला साम्राज्यके कोने-कोनेमें कि आजसे मुझे कोई छत्रसाल न कहे। मेरा नाम, आजसे, इस क्षणसे हो गया छत्रसाल महाबली।"

जर्जर महाबलीने सुना तो बौखला उठा — चिल्लाया, "अरे यह क्या? यह क्या कर रहे हो तुम?"

"कुछ नहीं, आजादीके देवताके लिये यह तो मेरी एक खोखली-सी श्रद्धांजलि ही है, देव!" परंतु इतना आदर, इतनी श्रद्धा, इतना स्नेह उसका बूढ़ा कमजोर दिल सम्हाल न सका। महाराजके पैरोंके पास ही वह ढेर हो गया।

इस अमर कहानीको मऊ-महेवाका ध्रुवसागर (धुवेलाताल) अब भी लहरा-लहराकर गाता रहता है।

नोट: — वीरभूमि बुंदेलखंडके नगरों-ग्रामोंमें आज भी यह प्रथा है कि सभी व्यापारी-व्यवसायी नित्य प्रातः अपनी दुकानमें बोहनी करते (पहली सौदा--कार्यारंभ) समय श्रद्धापूर्वक कहते हैं— "छत्रसाल महाबली करियो भली भली"।

* * *

वसन्त कल्पना

किरनोंके पथसे आयें हम सौरभ रथपर जायें।
झरनोंमें हम बहें रात दिन फूलोंमें मुस्कायें।।
सोना बिखराता दिन आये रातोंमें पूनम हो।
मंगलदीप जलाये संध्या ऊषा नया जनम हो,
इक मीठी विश्रांति-भरी दुपहरिया आये जाये,
खेल दुलारभरे हाथोंसे खुशियोंका संगम हो।
सरितासे हम बहें सिंधुमें हौलेसे ढल जायें
किरनोंके रथपर आयें हम सौरभ रथपर जायें ।।
बादल-सी हो देह जहां बिजली-सी शक्ति भरी हो,
सुन्दरताकी माप जहांपर केवल स्वर्गपरी हो।
अंधकार भी जहां अलकके घनमें घुल-मिल जाये।
चम चम तारों गड़ी जहांपर स्नेह-सिक्त कबरी हो।।
थपकी जहां सुलाये प्रतिदिन कलरव जहां जगायें।
किरणोंके पथसे आयें हम सौरभ रथपर जायें।।
चिर वसन्त महके कोयलिया डाली डाली बोले,
तुहिन बिन्दु कुसुमित पल्लवके अंग अंग रस धोके।
शरद् चन्द्रमा लुका छिपी खेले मेघोंके वनमें,
वेणुवनोंमें वर्षाके छन्दोंपर सरगम डोले।
सपने आशाओंसे हिलमिल रंग अंग भर जायें।
किरणोंके पथसे आयें हम सौरभ रथपर जायें।।

—देवदत्त

पलमें रत्ती पलमें माशा

—श्री रमेश भण्डारी

मैं शहरका नाम न बताऊंगा, उसके बिना जाने आपका कुछ बनता-बिगड़ता भी नहीं। हां, तो वहांके सदर बाजारके दूसरे किनारे एक छोटा-सा बाजार और भी था जहां हलवाइयों और भड़भूजोंके अतिरिक्त दो-चार सब्जीवालोंकी दुकानें भी थीं। पास ही सदर बाजार होनेके कारण यहांकी सड़क सूनी पड़ी थी और दुकानदार ऊंघ-से रहे थे।

ठीक बारह बजे पासकी गलीसे एक खाकी वर्दीवाले व्यक्तिने प्रवेश किया। मरोड़दार कड़क काली मूंछें उसके काले चेहरेपर खूब फब रही थीं। वह हाथमें एक डंडा लिये तिरछी निगाहोंसे इधर-उधर देखता हुआ मस्तानी चाल चला जा रहा था। यह था पुलिस हेड कान्स्टेबल मिस्टर चरम कुमार, और हां, उसके पीछे सिपाही सोनी भी था।

"पकड़ो! पकड़ो!! जाने न पाय—आधे किलोसे भी अधिक चने खा गया।" यह चेतन भड़भूजेकी चीख थी। इतनेमें भोला सब्जीवाला चिल्लाया—"अरे जाता कहां है—एक-एक भिण्डी वसूल करके छोडूंगा। हां, भैया पकड़ लेना, जाने न पाये।" "अरे अरे। देखते क्या हो? दौड़ो—दौड़ो मेरे गुलाबजामुन और रसगुल्ले—अरे बाप रे जलेबियां भी साफ.....।" शायद नवला हलवाईकी ऊंघ भी उड़ गयी थी।

हेड कान्स्टेबलने संतरीको हाथके इशारेसे रोका और दोनोंने पीछे मुड़कर देखा—रामा हलवाई बड़बड़ा रहा था। "जानवरोंको यों खुला छोड़ना जुर्म है। रोज-रोजका यह नुकसान कैसे बर्दाशत करें?" और उसने दो-चार भोंडी-सी गालियां दे डालीं। वहां भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी।

दोनों वहां पहुंचे। भीड़को हटाकर देखा तो वहां एक २-२।। फीट ऊंचा बकरा खड़ा था और उसे रस्सीसे बांधा जा रहा था। "क्या बात है?" कान्स्टेबल गुर्राया। "सरकार, दुहाई है, यह रोजका नुकसान..........!!" भिण्डीवालेने गिड़गिड़ाकर गुजारिश की। जानवरोंको यों खुला छोड़ना जुर्म है। इसके मालिकपर दावा होना चाहिये। चेतन भड़भूजा धीरेसे बुदबुदाया।

"ठीक है। ठीक है। इसके मालिकको सजा मिलनी ही चाहिये। इस तरह तो ये सब मर ही जायेंगे। सारे दिन मर-खपकर दो पैसेकी तो कमाई हो और यह आकर सब कुछ खा जाये।" कान्स्टेबलने क्रोधपूर्ण मुद्रा बनाते हुए कहा।

"मगर सा'ब। यह बकरा तो कलक्टर सा'बका मालूम होवे हैं। उनको जानवर पालनेका शौक है जी।" सोनीने धीरेसे कहा। "क्या कहा? कलक्टर सा'बका। सोनी जरा कोट उतारना। बलाकी गर्मी........"

कान्स्टेबलका रंग बदल रहा था 'क्यों रे लाला, तुझे होश भी है। यह तो जानवर है पर तू तो इन्सान है। व्यर्थमें इसे दोष लगा रहा है—ठहर अभी तेरी खबर लेता हूं।" कान्स्टेबल दहाड़ा। इसी समय भीड़मेंसे कोई धीरेसे फुसफुसाया—"यह बकरा तो हसन खांका मालूम होता है। उसके पास एक और बकरा भी है ठीक ऐसा ही।"

"सोनी, जरा कोट पहनाना, कितनी ठंडी हवा चल रही है। ये लोग जानवरोंको खुला छोड़कर गरीबोंका नुकसान करनेपर तुले हुए हैं। न जाने अपनेको क्या समझते हैं?" कान्स्टेबलके चेहरेपर नकली क्रोध साफ दिखायी दे रहा था। "सोनी, पकड़ लो इसको। अब इसका चालान करना ही

होगा।" साथ ही सोनीके कानमें धीरेसे कहा –– "कलक्टर सा'बका तो नहीं है न ?" "सरकार है तो उन्हींका, मेरा ख्याल तो यही केवे है।"

"क्यों बे नवला। तू क्या झक मार रहा था जो तेरी मिठाई बकरा खा गया। देखता नहीं कितना सुन्दर बकरा है। तुझे भी मजा चखाना पड़ेगा।" कान्स्टेबलने एक बार फिर रंग बदल लिया। यद्यपि बकरेका मुंह अब भी चाशनीसे लथपथ हो रहा था। इतनेमें कलक्टर साहबका चपरासी उधरसे आता दिखायी दिया। सोनीने उससे पूछा कि यह बकरा तुम्हारे सावका तो नहीं है..........।

पूरा उत्तर सुने बिना ही कान्स्टेबलने फिर रंग बदला, "क्या करें, इन लोगोंको हजार बार मना किया है फिर भी ये लोग जानवरोंको खुला छोड़ ही देते हैं। अरे, भोला देखता क्या है जरा एक मजबूत रस्सा तो ला। अभी इन सबको देखता हूं, जानवर रखना ही भूल जायेंगे।"

चपरासीने अपनी बात पूरी करते हुए कहा –– "लेकिन सरकार यह बकरा तो उनके छोटे भाई-का है जो बंबईसे यहां आये हुए हैं।" कान्स्टेबलने बात पकड़ी –– "उनके भाई ! हां, हां उनको तो मैं अच्छी तरह जानता हूं –– उनसे तो मेरी बहुत पुरानी जान-पहचान है। कब आये हैं वे ? मैं तो अभी उनसे मिला ही नहीं। यह उन्हींका बकरा है...... शायद बंबईसे लाये होंगे — कितना सुन्दर है बकरा.....वाह ! सोनी, चलो इस बाजारको ही बंद करवाना पड़ेगा। ये लोग जानवरोंको बहुत तंग करने लगे हैं। एक-एकको हथकड़ी न लगवा दी तो मेरा नाम........।

और भी न जाने क्या-क्या कहता हुआ वह न्यायका पुतला, कान्स्टेबल चुपचाप खिसक गया।

* * *

लाख

एक छोटा-सा कीड़ा एक ऐसी अद्‌भुत और सर्वथा अनूठी रासायनिक प्रक्रियाका प्रादुर्भाव करता है, जिसे उसी रूपमें दुहरानेमें विज्ञान भी आजतक सफल नहीं हो पाया है। भारतमें पाये जानेवाले इस अद्‌भुत कीड़ेके इस अद्‌भुत कौशलके फलस्वरूप भारत एक ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुका निर्यात करनेमें समर्थ हो गया है जो अमेरिकी परिवारोंके दिन-प्रतिदिनके उपयोगकी दर्जनों वस्तुओंके निर्माणमें प्रयुक्त होती है। गोलियां, पियानो, कागज और नाना प्रकारके रंग-रोगन उन अनेक वस्तुओंमें केवल कुछेक हैं, जिनके निर्माणमें इस वस्तुका प्रयोग होता है। भारतमें लोग इस वस्तुको लाखके नामसे जानते हैं तथा वैज्ञानिक शब्दावलीमें अनूठी रासायनिक प्रक्रियाद्वारा लाखका उत्पादन करनेवाले कीड़ेको 'लैकाइफ़ेर लैका' तथा बोलचालमें 'लैक बग' कहते हैं। यह कीड़ा अपने शरीरमें लाख नामक जिस वस्तुका निर्माण करता है उसकी गणना विश्वकी एक सर्वाधिक प्राचीन व्यापारिक वस्तुओंमें की जाती है और आज अमेरिकाकी अर्थ-व्यवस्थामें इसके उपयोगका भविष्य बहुत उज्ज्वल प्रतीत होता है।

यदि यह कीड़ा अपनी अनूठी रासायनिक प्रक्रियाद्वारा लाखका निर्माण न करता होता तो उसकी गणना हानिकारक कीड़ेके रूपमें होती। भारतमें ये उपयोगी कीड़े बरगद, रीठा, बबूल तथा कुछ अन्य वृक्षों जैसे पलास, बेर, कुसुम, अरहर, खैर इत्यादिपर पाले जाते हैं। ये अपनी नुकीली चोंच वृक्षकी छालके अंदर प्रविष्ट कर अपने लिये भोजन-तत्त्व प्राप्त करते हैं और फिर एक रासायनिक

प्रक्रियाद्वारा निःसृत रिक्त तत्त्वको शत्रुओंसे रक्षाकी दृष्टिसे अपने ऊपर तथा अपने अंडोंपर लपेट देते हैं।

मादा लैकाईफेर उक्त रासायनिक प्रक्रियाद्वारा अपने लाखों साथियोंकी सहायतासे मधु-मक्खियोंके छत्ते जैसी सुरक्षात्मक खोलका निर्माण करती है। यह खोल वृक्षोंकी टहनियों और शाखाओंमें फैली होती है और आधा इंचतक मोटी होती है। इस सुरक्षात्मक खोलका निर्माण करनेवाला तत्त्व रालसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। लाखकी खेती करनेवाले भारतीय कृषक ऐसी कुछ छोटी-छोटी टहनियों-को, जिनपर कीड़े अंडे देकर, ऊपर सुरक्षात्मक खोल चढ़ा देते हैं, नये वृक्षोंपर लगा देते हैं ताकि अंडेसे निकलनेवाले कीड़े आगे चलकर लाख-निर्माणकी रासायनिक प्रक्रियाको जारी रख सकें। इसके उपरांत वे बाकीकी लाख वृक्षोंसे छुड़ा लेते हैं। सफाई और शोधनके उपरांत यही पदार्थ लाख अथवा 'चपड़े' के रूपमें विश्वकी मंडियोंमें पहुंचता है।

अबतक भारत लाखका सबसे बड़ा उत्पादक देश है और अमेरिका भारतकी लाख खरीदनेवाला सबसे बड़ा ग्राहक है, क्योंकि भारतमें उत्पन्न होनेवाली कुल लाखका २० प्रतिशत वह अकेले खरीद लेता है। १९६१ में अमेरिकी व्यवसायियों एवं व्यापारियोंने भारतसे ४५ लाख डालर मूल्यका लग-भग १० हजार टन लाख और चपड़ा खरीदा। इसके अतिरिक्त थाइलैण्ड और पश्चिमी जर्मनीसे भी उन्होंने थोड़े परिमाणमें लाख और चपड़ा आयात किया।

'लाख' इस दृष्टिसे एक सर्वथा अनूठा पदार्थ है, क्योंकि यह मद्यसार (एल्कोहल) को छोड़कर अन्य सामान्य द्रवोंमें नहीं घुलता। वस्तुतः यही वह सबसे बड़ी विशेषता है, जो लाखका कीड़ा रासायनिक प्रक्रियाद्वारा मूल राल तत्त्वको प्रदान करता है। रालकी श्रेणीकी होनेके कारण स्वभावतः ही लाखमें लकड़ीके बहुतसे गुण पाये जाते हैं। यह एक विद्युत-निरोधक तत्त्व (इनसुलेटर) भी है। अपने इन्हीं गुणोंके कारण अनेक प्रकारकी वस्तुओंके निर्माणमें लाखका बड़े पैमानेपर उपयोग होता है।

चिपकनेवाले इनसुलेटर पदार्थ (विद्युत-निरोधक) के रूपमें चपड़ेका उपयोग विद्युत-तारोंकी खोलमें तथा उन विद्युत्-शक्ति मोटरोंकी रक्षा करनेमें किया जाता है, जो प्रत्येक फैक्टरी, कार्यालय-भवन आदि के लिये परमावश्यक होते हैं। यह कांचसे कांचको अथवा कांचको धातुसे जोड़ देनेकी क्षमता रखता है और इसीलिये बिजलीके बल्ब तथा रेडियो और टेलिविजन टयूब तैयार करनेमें भी चपड़ेका उपयोग होता है।

बहुतसे पुरुषों और महिलाओंद्वारा पहने जानेवाले फेल्ट हैटोंको कड़ा करनेके लिये भी चपड़ेका उपयोग होता है। बिना इसका इस्तेमाल किये हैट अपने आकारको कायम नहीं रख सकता। यही नहीं, तैल-उद्योगमें भी इसका उपयोग होता है। चपड़ा पेट्रोलियम अथवा पेट्रोलियम-जनित अन्य द्रवोंमें नहीं घुलता। लौह-क्षारसे इसे मिश्रित कर ऐसा लाल-रंग तैयार किया जाता है, जिसका उपयोग तेलवाहक टैंकरोंके भीतरी भागको रंगनेके लिये होता है। इस रंगका लेप हो जानेपर टैंकरकी भीतरी दीवारकी धातुपर पेट्रोलियमकी कोई प्रतिकूल रासायनिक प्रक्रिया नहीं होती। इसके अलावा जब ये टैंकर तेल पहुंचाकर खाली वापस लौटते हैं तो इस रंगके कारण ही लवण जलकी क्षारक शक्तिका प्रभाव इनपर नहीं पड़ता। तेल-शोधक कारखानोंमें सीढ़ियों इत्यादिपर भी यही रंग चढ़ाया जाता है। यह धातुके क्षरणको रोकता है और उसपर काई इत्यादि नहीं जमने देता।

छपाई और प्रकाशन-व्यवसायमें चपड़ेका तो बहुत ही उपयोग होता है। फोटो-इनग्रेवर रंगीन फोटो-प्लेटें बनानेके लिये इसका उपयोग करते हैं। अधिकांश पत्रिकाओं और कुछ पुस्तकोंमें जिस 'स्लिक पेपर' का उपयोग होता है; उसपर किये जानेवाले कोटमें भी इसका उपयोग होता है। चूंकि यह तुरंत सूख जाता है, अतएव छपाईके लिये प्रयुक्त होनेवाली स्याहीमें भी इसका उपयोग होता है। सत्य तो यह है कि शीघ्र सूख जानेकी इसकी अद्भुत क्षमताके कारण ही तेज गतिसे छपाई

करनेवाले मुद्रण-यंत्रोंका विकास संभव हो सका है। आजकल, अमेरिकी रसायनशास्त्री जिन नयी-नयी स्याहियोंका निर्माण करते हैं, उनमें चपड़ेका काफी उपयोग होता है। अमेरिकामें जो उद्योग लाख और चपड़ेका बड़े पैमानेपर उपयोग करते हैं, उनमें स्याही-उद्योगको एक प्रमुख स्थान प्राप्त है।

खिलौनेके निर्माता भी चिपकानेके लिये अथवा मढ़नेके लिये लाख और चपड़ेका उपयोग करते हैं। चपड़ेकी वस्तुएं और जूतोंके निर्माणमें इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कैण्डी (एक प्रकारकी मिठाई) तैयार करनेवाले भी इसका उपयोग करते हैं। चाकलेटपर ऐसे चपड़ेकी बहुत बारीक परत चढ़ी रहती है, जो खानेमें हानि नहीं करती। इस परतके कारण चाकलेट पिघलनेसे बची रहती है। वायुयानोंके निर्माता, मोटर निर्माता, घिसाई करनेवाले उपकरणों, जहाजों एवं सीलिंग वैक्स इत्यादिके निर्माता भी इसका उपयोग करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व चपड़ेका सबसे अधिक उपयोग सीलिंग वैक्स उद्योगमें होता था।

अमेरिकामें लकड़ीके छिद्रों और दरारोंको भरने तथा फिनिशके लिये चपड़ा सबसे अधिक विख्यात है। एक उत्कृष्ट पियानोंपर चपड़े-मिश्रित रोगनका दस या बारह बारतक कोट किया जा सकता है। एक परतको रगड़कर चिकना कर देनेके बाद दूसरी परत चढ़ायी जाती है। उत्कृष्ट कोटिके फर्निचरपर भी इसी प्रकारकी क्रिया काममें लायी जाती है। पुरानी लकड़ीको उसकी पहली जैसी चमक-दमक देनेके लिये भी फर्नीचर निर्माता चपड़ेका विशेष तौरपर उपयोग करते हैं। अमेरिकी गृहोंमें सामान्य रूपसे दृष्टिगोचर होनेवाले ओक लकड़ीके फर्शोंकी फिनिशमें चपड़ेका मुकाबला उसके विशेष गुणोंके कारण अन्य कोई पदार्थ नहीं कर सकता। यह विशेष गुण है उसका लकड़ीका समानधर्मी होना तथा लकड़ीके रंध्रोंमें गहराईतक प्रवेश कर जानेकी उसकी क्षमता। लकड़ीके नये फर्शपर चपड़ेका पहला कोट तो वस्तुतः लकड़ीमें ही आत्मसात् हो जाता है। इसके उपरांत जो कोट किये जाते हैं, वे फर्शको अधिक मजबूत करते हैं ताकि क्षरणसे उसकी रक्षा हो सके।

चिकित्साके क्षेत्रमें भी चपड़ा सर्वथा अनूठे ढंगसे काममें आता है। यह टरपेंटाइन तेल, पेट्रोल तथा कुछ अन्य द्रवोंमें नहीं घुलता। आमाशयमें उत्पन्न होनेवाले अम्लोंका भी इसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हां, ऊपरी आंतोंमें रिसनेवाले अम्लोंमें यह अवश्य घुल जाता है। अतएव, यदि कोई डाक्टर अपने रोगीको ऐसी दवा देना चाहता है, जिसे वह उस समयतक घुलनेसे रोकना चाहता है, जबतक वह आंतोंमें न पहुंचे, तो वह चपड़ेसे कोट किये हुए केपचूस्लमें दवा भगकर रोगीको खिला सकता है। जब यह बिना घुला कैपस्यूल आंतोंमें पहुंचता है, तो वहां मौजूद अम्लोंके प्रभावसे घुलने लगता है और डाक्टरकी इच्छानुकूल उसके अंदरकी दवा सीधी आंतोंमें पहुंच जाती है।

भारतकी इस प्राचीन वस्तुने समयकी मांगके साथ परिवर्तित होनेका भी भरसक प्रयास किया है। प्रारंभमें, इसका उपयोग केवल रंग-रोगनमें होता था। प्राकृतिक रूपमें इसका रंग लाल-नारंगीसे लेकर गहरा-भूरातक होता है और इससे पीले-लाल रंग तथा सिंदूरी रंगकी रंगाई की जा सकती है। प्राचीन कालमें वस्त्रोंकी रंगाईके अतिरिक्त पैरों और हथेलियोंकी शोभा बढ़ानेके लिये भी लोग इसके रंगका उपयोग करते थे।

अतएव, प्राचीन कालमें लोग रंगनेका मसाला प्राप्त करनेके बाद लाखको फेंक देते थे। आजकल रासायनिक रंगोंने लाखका स्थान ग्रहण कर लिया है और यह प्रक्रिया बिल्कुल उलट गयी है। आजकल इसके शुद्धीकरणके लिये जो विधि अपनायी जाती है, उसमें गर्म पानीके उपयोगके कारण इसका रंग तत्त्व आंशिक रूपसे निकल जाता है। शुद्धीकरणके बाद इसका रंग हलका नारंगी रह जाता है तथा क्लोरिनसे कई बार धोनेपर यह रंग भी लगभग पूरी तरह साफ हो जाता है और चपड़ेका रंग सफेद हो जाता है। कई प्रकारकी वस्तुओंमें इस सफेद चपड़ेका भी उपयोग होता है। रंगके रूपमें चपड़ेका प्रयोग अब कुछ कलाकारोंतक ही सीमित है। मूल्यवान् कला-कृतियों (चित्रों) को दीर्घ-

कालतक सुरक्षित रखनेके लिये ऊपर अत्यधिक उत्कृष्ट कोटिके 'फ्रेंच शिलेक' (फ्रांसमें निर्मित अत्यंत शुद्ध प्रकारका चपड़ा) का कोट कर दिया जाता है।

कुछ लोगोंका कहना है कि इसमें संदेह नहीं कि चपड़ा कई प्रकारके कार्योंके लिये अच्छा सिद्ध हुआ है, परंतु ऐसी कृत्रिम रालका विकास किया जा सकता है, जो किसी विशेष कार्यके लिये चपड़ेसे अधिक उपयुक्त सिद्ध हो। लेकिन, यह एक बहुत ही विचित्र संयोग है कि कुछ समय पूर्वतक चपड़ा ही एकमात्र ऐसा पदार्थ था, जिसका कोट कीटमार ओषधियोंके डिब्बोंकी धातुकी रक्षा करनेमें समर्थ था। अब कुछ समय हुए एक ऐसे प्लास्टिकका विकास किया गया है, जो इस कार्यके लिये इस्तेमाल किया जा सकता है।

अमेरिकाकी नौसेनाने भी कुछ समयतक अपने गोलों और राकेटोंकी सुरक्षात्मक खोलें तैयार करनेमें चपड़ेका उपयोग किया, लेकिन अब इसने एक ऐसा कृत्रिम पदार्थ खोज लिया है, जो इस कार्यके लिये चपड़ेसे भी अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है।

फोनोग्राफके आविष्कारके प्रारंभिक दिनोंमें 'शिलेक' (चपड़े) से ही रिकार्ड तैयार किये जाते थे और कुछ लोग सामान्य बोल-चालमें उन्हें 'शिलेक' कहकर पुकारा करते थे, जैसा अब लोग उन्हें 'प्लैटर्स' कहकर पुकारते हैं। १९३०-४० में रिकार्डोंके निर्माणमें चपड़ेके बजाय प्लास्टिकका उपयोग होना प्रारंभ हुआ और अब तो पूरी तरहसे प्लास्टिकके ही रिकार्ड बनने लगे हैं। इससे लाखके उत्पादकोंके व्यवसायको काफी धक्का पहुंचा, परंतु यह स्थिति देरतक नहीं रही। इसी बीचमें पौलिशवाले फर्श और फर्निचर-वैक्सोंका बड़े पैमानेपर विकास होने लगा। इन वस्तुओंके निर्माणमें चपड़ेका बड़ी मात्रामें इस्तेमाल हुआ, जिसके फलस्वरूप उसकी मांग और अधिक बढ़ गयी।

जब फर्नीचर वैक्सों और पोलिशयुक्त फर्शोंकी मांग बहुत बढ़ गयी और उनका काफी बड़े पैमानेपर व्यापार होने लगा, निर्माताओंने ऐसी कृत्रिम रालोंकी तलाश करनी प्रारंभ कर दी, जिन्हें लकड़ी, विनियल या लिनोलियमके फर्शोंको पोलिशके लिये इस्तेमाल किया जा सके और जिनकी पोलिश चपड़ेकी पोलिशकी तरह पुरानी होनेपर भी पीली न पड़े। इस मांगके फलस्वरूप धीरे-धीरे हालके वर्षोंमें इन वस्तुओंके उत्पादनमें भी कृत्रिम रालें चपड़ेका स्थान ग्रहण करती जा रही हैं।

(U.S.I.S. के सौजन्यसे)

* * *

कोई शिक्षा तभी लाभदायी हो सकती है, जब कि वह पूर्णतया सच्चाईसे दी जाय, अर्थात् जब कि वह देनेके समय जीवनका अंग हो। बार-बार दुहराये गये शब्द, बार-बार व्यक्त किये गये विचार सच्चे नहीं हो सकते.........।

—श्रीमाताजी

जाह्नवीकी बहन

—श्री रवींद्र

(पुरोधाके कुछ पिछले अंकोंमें 'जाह्नवीकी समस्या' शीर्षकसे जाह्नवी और उसके माता-पिताके पत्र प्रकाशित किये गये थे। पत्रोंके लिये खोज जारी है। यहां जाह्नवी और उसकी छोटी बहिन सूर्यतनयाके कुछ पत्र दिये जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि इनके बीचके कई पत्र नहीं मिल सके। आपको भी कुछ पत्र मिलें तो हमारे पास भेज दीजिये। —संपादक)

१

प्रिय जीजी,

अब जीवन भारी हो उठा है। मैंने बचपनसे यही सोचा था, या यह कहूं कि सीखा था कि तुम तो कुछ-कुछ पागल हो और मैं चतुर सुजान। मैं यही सोचा करती थी कि तुम्हारी जीवन-नैया पार करनेके लिये कोई खिवैया शायद ही मिले जब कि मेरी सेवाके लिये तो बीसियों नाविक उत्सुक रहेंगे। तुमने कई बार कहा कि मनुष्यजीवनमें एक आदर्श होना चाहिये, हमें केवल 'खाओ, पिओ, चले जाओ' को अपना जीवन-सूत्र न बना लेना चाहिये। कभी-कभी तुम्हारी बातें अच्छी तो लगती थीं पर 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः' वाली बात थी। तुम्हारी बातोंसे कुछ मानसिक सुख तो मिलता था पर उन्होंने कभी मेरे अंतरको छुआ नहीं। मैं यही सोचा करती थी कि यह सब बातें बड़े होनेपर देखी जायंगी। अभी तो मैं छोटी हूं, अभी तो अच्छा खाना, अच्छा पहनना और अपने और पराये सब तरहके लोगोंमें लोकप्रिय रहना ही काफी है। लोग मेरी प्रशंसा करते थे, मेरे चेहरे-मुहरेकी तारीफ करते थे, मेरी बुद्धिकी सराहना करते थे और मुझे प्रियभाषी और मधुरभाषी बताते थे। मैं चारों ओरसे प्रशंसा पाती हुई, मानव-प्रेममें डूबती-उतराती बड़ी होती गयी।

मुझे पहला धक्का लगा अपने पन्द्रहवें जन्म-दिनपर। मैं सोचा करती थी कि मेरी सब इच्छाओंको पूरा करना माता-पिता आदि सबका कर्तव्य है। मैं यही तो देखती आयी थी कि मेरी इच्छाके प्रकट होनेकी देर है, साथ-ही-साथ उसे पूरा करनेके सब साधन जुट जाते हैं। इतना ही नहीं, कई बार तो मेरी इच्छा होनेसे भी पहले उसे पूरा करनेकी व्यवस्था हो जाती थी। मुझे कभी पतातक न चलता था कि आर्थिक कठिनाई, सामाजिक बन्धन आदिका भी कोई अस्तित्व है। मैं घरमें सबसे छोटी जो ठहरी, सबपर मेरा हक था! अगर सब मेरी सेवामें लगे रहते थे तो मेरे ऊपर कोई उपकार न करते थे। यह तो मेरा हक था। लेकिन उस दिन मेरी सारी कल्पनाओंका महल ढह गया। मैंने अपने सब संगी-साथियोंको, लड़के-लड़कियोंको खानेपर बुलाया था। सारे दिन घरमें भीड़-भड़क्का रहा। लेकिन मैं यह सब होते हुए भी कुछ अनमनी-सी बनी रही।

बात यूं हुई। ज्योत्सनाको तुम जानती ही हो। बड़ी चालाक और मिलनसार लड़की है। मेरे साथ जब मिलती है तो मानों मुझसे बढ़कर उसका और कोई है ही नहीं। मैं भी यही समझा करती थी कि सचमुच वह मेरे उपकारोंके कारण, मुझसे पाये हुए चाकलेट, फीते आदिके कारण हमेशा मेरे एहसानसे दबी रहती है, परंतु उस दिन मैंने देखा वह कई सखी-सहेलियोंके बीचमें बैठकर उन्हें कहानियां सुना रही है। मेरे जन्म-दिनपर निमंत्रित लोग मेरी ही उपेक्षा करके किसी औरका मुंह निहारते रहें यह मुझसे न देखा गया। लेकिन मैं कुछ ऐसा-वैसा व्यवहार करके अपना ही बुरा न करना

मैं भी जाकर वहीं बैठ गयी। वह किसी लड़कीकी कहानी सुना रही थी जो अपने मां-बापकी बहुत लाड़ली थी। वह कह रही थी, "जानती हो, उसने इस लाड़का क्या लाभ उठाया। कभी रातके ग्यारह बजे मांको नींदसे उठाकर कहती, मां, अभी कुछ पकौड़े तल दो और बेचारी मांको उसी समय बैठकर पकौड़े बनाने पड़ते, कभी रातके दस बजे उसे घूमनेकी सूझती तब मांको दरवाजा खोलनेके लिये जागते रहना पड़ता। उसके जीवनका ध्येय था खाना, पीना और मौज करना। मां-बाप तंग आ गये, भाई-बहिन तंग आ गये और उसके मनचलेपनसे उसके अड़ोसी-पड़ोसी भी तंग आ गये, फिर भी वह अपनी हरकतोंसे बाज न आयी।" इतना सुनकर मुझे लगा कि शायद यह मेरी ही हिजो कही जा रही है। वाह, यह खूब रही, मेरे जन्म-दिनपर मेरा ही खाकर और मेरी ही हिजो......बस, मुझे बुखार चढ़ आया और मैंने आव देखा न ताव ज्योत्सनाके मुंहपर एक तमाचा जड़ दिया। सब लोग देखते रह गये। किसीने हें हें किया बाकी सब चुप बैठे रहे और थोड़ी-सी देरमें कुछ-न-कुछ बहाना बनाकर वहांसे चलते बने। मैं अपना-सा मुंह लेकर रह गयी।

आज पहली बार मुझे मालूम हुआ कि मेरी अवहेलना भी की जा सकती है। आज पहली बार मैंने जाना कि सारे संसारका केंद्र-बिंदु मैं नहीं हूं।

(यह पत्र अधूरा है और इसके बादके कई पत्र गायब हैं।)

२

प्रिय जाह्नवी जीजी,

तुम सचमुच भाग्यवान् हो कि शुरूसे दुनियांके झगड़ोमें नहीं पड़ीं। मां जब तुमसे नाराज होती थीं तो मैं भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर तुम्हें कोसा करती थी। मैं भी यही मानती थी कि तुम स्वार्थी हो और सारे समय अपनी ही सोचती रहती हो, दुनियां जाये चूल्हे भाड़में तुम्हारी बलासे। इन विचारोंने मुझे इतने जोरसे घेर रखा था कि मैं अपने-आपको तुम्हारी बहन स्वीकार करते लजाती थी। मैं अच्छी बच्ची जो ठहरी! मां-बापका कहना मानकर मैंने ब्याह रचाया। यहां आयी और घर-गृहस्थीकी नयी दुनियांमें फंस गयी, नहीं, तब तो यह दुनियां मुझे बहुत ही चमकदार, मनोहर और मधुर लगती थी। मैंने तुम्हें पूरी तरह भुला दिया।

मेरी अच्छी जीजी, तुम सोचती होगी कि आखिर मुझे हो क्या गया है। मैं यह सब तुम्हें किसलिये सुना रही हूं। मैं तड़क-भड़कके जीवनसे तंग आ गयी हूं। इसे छोड़ भी नहीं सकती और इसमें रस भी नहीं ले पाती। बाहरसे देखनेमें दुनियां जितनी चमकदार लगती थी अंदरसे उतनी ही अंधकारमय है। आज यहांकी दुर्गन्धसे जी घबराता है। मैं यहांके एक अभिजात कुलमें ब्याही हूं। घरमें सब कुछ है, बंगला है, मोटर है, नौकर-चाकर हैं और पैसा भी कम नहीं है। लेकिन सब कुछ होते हुए भी कई बार ऐसा लगता है कि कुछ भी नहीं है। साधारणतः मैं घरके सुखमें भूली रहती हूं, परंतु कभी-कभी बचपनमें पढ़ा हुआ ततः किम् याद आ जाता है। दिमागमें बार-बार यही प्रश्न उठता है कि क्या यही जीवन है? कभी-कभी तुम्हारी बात याद आ जाती है कि खाना-पीना और मौज करना तो पशु भी जानते हैं, तुमने अगर सुख-सुविधाके नये-नये तरीके निकाल लिये तो तुम अधिक सफल पशु हो, इससे बढ़कर कुछ नहीं। जीजी, सच मानो मैं तुम्हारी बात नहीं मानना चाहती, नहीं चाहती कि वैरागी होकर शरीरपर राख पोत लूं और नाक बंद करके बैठ जाऊं, लेकिन कुछ चीज है जो ठीक मौकेपर, सुखकी चरम सीमापर आकर मानों धीरेसे कह देती है, 'बस यहीं' और तब अपने-आपसे भागनेको जी करता है।

तुम्हें लिख तो रही हूं पर साथ ही यह भी सोच रही हूं कि तुम्हें तो इस प्रकारके जीवनका कुछ अनुभव नहीं है तुम्हें क्यों ऐसी बातें सुनाकर तंग करूं। लेकिन एक बात है, मैं तुम्हें अनजान

कह लूं, मूढ़ कह लूं और चाहे कुछ भी क्यों न कह लूं फिर भी तुम्हारे लिये मनमें एक प्रकारका मान है, और मुश्किल आ पड़नेपर तुम्हारा ख्याल आ ही जाता है और तब तुम्हारे पास आनेको जी करता है।

तुम्हारी
छोटी-सी यमुना

३

प्रिय जाह्नवी जीजी,

शायद तुम्हारा कहना ही ठीक है। कभी-कभी आदमीको हर प्रकारके अनुभवमेंसे गुजरना जरूरी हो जाता है। हम प्रायः अपने-आपको ही धोखा देते रहते हैं, अंदरसे उठनेवाली कोमल मधुर वाणी सुननेका अवकाश ही किसे है। जब तुम्हारा पत्र आता है तो मानों मेरे अंदर आदर्शवादका इंजेक्शन लग जाता है। मैं यही निश्चय करती हूं कि बस आजसे मेरा जीवन नयी राह पकड़ लेगा। अब मैं एक-एक मिनटका ब्योरा रखूंगी और कोशिश करूंगी कि हमेशा भगवान्की सेवा मानकर ही जीवनका सदुपयोग करूं। तुम्हारा पत्र पाते ही पश्चात्ताप होता है पुराने जीवनपर और नये मार्गके लिये दृढ़ संकल्प हो जाता है। मैं अपने-आपसे कहती हूं, मैं यह खेल कई बार कर चुकी हूं बस, आजसे गंभीर बन जाऊं, आजका दिन मेरे जीवनका नया पृष्ठ हो। घरका काम तो हमेशा सब करते रहते हैं, मैं अब भगवान्का काम किया करूंगी। फिर सोचती हूं, यह तो छोटे मुंह बड़ी बात हो गयी। मैं रोज दो घंटे देशसेवाके लिये निकालूंगी बस यही तय हो जाता है। उन्हें भी सूचना दे देती हूं और यह मानने लगती हूं कि अब मैं उनसे बहुत ऊंची हो गयी। वे चौबीस घंटे अपने लिये जीते हैं, जो कुछ करते हैं उसमें स्वार्थकी गंध होती है, मैं कम-से-कम दो घंटे तो निःस्वार्थ काममें लगाऊंगी। जी खिल उठता है। ऊंचे आदर्शकी ओर जाते हुए किसका जी न खुश होगा? अब सिर्फ यही सवाल रह जाता है कि मेरी देशसेवा, मेरा निःस्वार्थ काम क्या रूप ले। इसपर विचार करती हूं, तुम्हारे पुराने पत्र निकालकर पढ़ती हूं। उनसे प्रेरणाको बल मिलता है। तुमने लिखा है कि जीवनके प्रत्येक कामको ही भगवान्का काम मानकर करूं, और जबतक यह न कर सकूं तबतक कुछ ऐसा काम शुरू करूं जिससे मुझे किसी व्यक्तिगत आर्थिक लाभ या वाहवाहीकी आशा न हो, उसे ही करती चलूं और यह मानकर करती चलूं कि यह भगवान्की सेवा ही है। बस, अब यह निश्चय पक्का हो जाता है। लेकिन क्या कहूं जाह्नवी जीजी, दिन ढलते-ढलते मेरा निश्चय भी ढल जाता है, मैं सोचती हूं आजके लिये तो योजना बनानेका काम ही काफी है इतनेमें ही थकान आ गयी, अब कलसे इसे कार्यान्वित करूंगी। अब जरा मन बहलानेके लिये सिनेमा ही देख आऊं।

बस यही नाटक हर बार हुआ करता है। हर बार निश्चय करती हूं और हर बार तोड़ती रहती हूं। यह संतोष भी तो नहीं होता कि

सुबहकी बादा[1] कशी, शामको तौबा कर ली
रिन्द[2] के रिन्द रहे, हाथसे जन्नत न गयी।

खैर, अब तो शायद तुम मुझसे घृणा करने लगी होगी, मैं हूं भी तो इसी योग्य। यह सब होते हुए भी मेरी अच्छी जीजी स्नेह बनाये रखना, तुमने ठुकरा दिया तो मैं कहींकी न रहूंगी।

तुम्हारी
यमुना

---

[1] शराब पीना। [2] शराबी

४

नहीं यमुना, मैं तुमसे घृणा नहीं करती। मैं तुम्हारी स्थितिको भलीभांति समझ सकती हूं और इसलिये तुमसे सहानुभूति रखती हूं। तुम अपने-आपको न तो पूजाके योग्य मानो और न घृणा-के योग्य। तुम्हारे पत्रोंसे लगता है कि तुम दूसरोंको खुश रखनेके लिये, अपने बारेमें उनकी राय अच्छी रखनेके लिये काफी उत्सुक रहती हो। यह चीज तुम्हारे सहज आलस्यके साथ मिलकर तुम्हें आगे बढ़नेसे रोकती है। सोच-विचार छोड़ दो। दूसरोंकी रायपर अपने जीवनको न्यौछावर मत करो। एक बार जो निश्चय कर लिया है उसपर डटी रहो। शुरूमें निर्दय होकर अपने ऊपर जबर्दस्ती करनी होगी। लेकिन थोड़े ही दिनोंमें तुम सीधी राहपर लग जाओगी। एक बार भगवान्‌की सहायतापर विश्वास हो जाय तो फिर कठिनाइयां कठिनाइयां न रहकर उन्नतिके पथकी सीढ़ियां बन जायेंगी। उठो, आजसे नहीं, अभी टालमटोलकी वृत्तिको छोड़कर आगे कदम रखना शुरू करो। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे।

तुम्हारी
जाह्नवी

कुछ याद रहीं....कुछ भूल गये!

—श्री श्यामसरन अग्रवाल 'विक्रम' एम. ए.

भूल-भूलकर भी याद आता है — 'इक याद किसीकी याद रही, और सारी दुनियां भूल गये।' प्रायः ही हमें उस बेतुकी अवस्थामें चंद सेकिंडों, मिनटों खोये-खोयेसे रहना पड़ता है, जब हम यह कहते हैं — 'क्या नाम है उसका....देखो, भला-सा ही है कुछ....अजब है भई! जबानपर घूम रहा है और मुंहपर नहीं आता!! हां.....हां......और, तब हम किसी व्यक्तिका, जगह अथवा पुस्तकका, कवि अथवा लेखकका और अक्सर तो किसी फिल्मके होरो-हीरोइनका नाम ढूंढ़नेके प्रयासमें अपने स्मृति-लेखेके पन्नेपर पन्ने पलटते जाते हैं किंतु यादका दामन है कि हाथ ही नहीं आता!

दरअसल, भूल जाना एक चीज है और यादपर जोर देना, बिलकुल दूसरी चीज। जर्मन मनो-वैज्ञानिक हेरमन एबिंगासने सन् १८५५ में अपने विविध प्रयोगोंद्वारा इस दिलचस्प पहलूपर काफी प्रकाश डाला था। वर्तमान वैज्ञानिकोंकी बात करें तो मांद्रीलकी न्यूरोलाजिकल इन्स्टीटयूटके डा० विल्डर पेनफील्डने शल्यक्रियाओंके अंतर्गत इस रहस्यलोककी अनेक झांकियां प्रस्तुत की हैं।

आज तो एलेक्ट्रानिकीका बोलबाला है। कम्प्यूटर जैसे मशीनी मस्तिष्कोंकी करामाती कारगुजारियों-से हम चकित रह-रह जाते हैं। दूसरी ओर, माइक्रोफिल्म जैसी वस्तु भी मानों गागरमें सागरका मूर्त रूप है। अगस्त्य मुनिकी कथाके उस अंशको आप सत्य मानें या न मानें जिसमें एक ही चुल्लूसे सप्त-सागरोंके जल सोख लेनेका उल्लेख है; किंतु यह तो हमारे-आपके सामने प्रत्यक्ष है ही कि संपूर्ण गीता तथा रामायण आदिको अंगूठेके नाखून जितने सूक्ष्माकारमें उतार लेना माइक्रोफिल्मद्वारा ही संभव है।

इतनेपर भी मानव-मस्तिष्क तो बस, मस्तिष्क ही है, कि जिसका जवाब नहीं। अधिकतम संपन्न कम्प्यूटरों तथा माइक्रोफिल्मोंको भी लज्जानत कर दे ऐसा इसका स्मृति-कोष है। इसका तंत्रिका-तंत्र

ज्ञान-तंतुओंका मकड़जाल और उन तंतुओंकी भी उप-तंतुओंका अपार, असीम समूह, सब कुछ जटिलतम पावरहाउस, विद्युत-केंद्र, रेडियो, टेलीविजन और न जाने क्या-क्या विलक्षणताओंका यह चूं-चूंका मुरब्बा है। हो सकता है, कम अक्लवालोंके लिये यह एक चूं-चूंका मुरब्बा ही हो और ज्यादा अक्लवालों (जरूरतसे ज्यादा फिर भी नहीं!) के लिये यह एक ऐसा सुनियोजित स्मृति-कोष हो जिसमेंसे एक टिकट-घरकी भांति किसी भी संदर्भको जब चाहा, खट्से निकाल लिया।

जो कुछ भी है, है यह बड़ा विलक्षण। प्रत्येक चित्र, ध्वनि, सुगंध और स्वाद; अर्थात् आंख, कान, नाक और जीभकी अनुभूतियोंका अपना-अपना अलग ही कोष इस मस्तिष्कमें होता है जिसमें वे जा बैठती हैं। कुछेक अनुभव और अनुभूतियां वज्रवत् भी होती हैं और स्मृति-पटलपर ऐसे जटित हो जाती हैं मानों गीली मिट्टीमें कोई आकृति उभारकर उसे आगमें तपा दिया और स्थायी पट्टिका बना दिया। अन्यथा ९९९ प्रति १००० स्मृतियां तो रेडियोकी भांति कनेक्शन मिलानेपर ही सजीव होती हैं और उन्हींका जबतक सही कनेक्शन नहीं मिलता, तबतक वही परेशानी कि — 'हां....हां.. वही — क्या भला-सा नाम है उसका........?'

सजीव होनेकी यह क्रिया कहीं तो पलक मारनेके भी सहस्रांशमें संपन्न हो जाती है और कहीं-कहीं हमें ऊपर लिखी बेतुकी हालतमें डालकर हमसे हथियार डलवा लेती है। ऐसी बेवफा है यह। अक्सर ही देखा होगा कि किसी भूले हुए गीतकी पंक्ति याद करनेके लिये यह नहीं होता कि उसी पंक्तिका सिरा पकड़ लिया; किंतु होता यह है कि समूचे गीतको आरंभ ही से गुनगुनाना, दोहराना पड़ता है, तब कहीं उलझी गांठ खुलती है और मानों गाड़ी पटरीपर आती है। वर्ना बस, सिर मारे जाइये, प्रत्येक बार उसी पंक्तिपर गाड़ी ठप्प होकर रह जायगी! दूसरे शब्दोंमें, यह क्रिया टेप रिकार्डरके रीलकी भांति चलती है। उसमें भी तो भरे हुए गीतोंमेंसे किसी एकको सुननेके लिये आरंभ ही से रील चलानी पड़ती है!

भूलनेकी क्रियाको भी स्पष्ट समझ लें। भूल जानेमें यह नहीं होता कि उस स्मृति-कक्षका कपाट ही बंद हो गया हो; बल्कि होता यह है कि टेलीफोनकी भांति लाइन गड़बड़ हो जाती है। आप खास कनेक्शनके लिये चोंगा (अर्थात् यादका दामन) थामे बैठे हैं और उधरसे कोई और ही हजरत बहक रहे हैं! आप चाहते हैं किसी गजलका मिसरा यादपर लाना, और टकरा रहा है किसी चौपाईका पद। आप कहना चाहते हैं किसी गीतकारका नाम, और जुबानपर आ जाता है किसी इतिहासकारका नाम। तो, यह है, लाइनमें गड़बड़ी हो जाना।

एक दिलचस्प विरोधाभास और देखिये। यह भूलना भी कहीं अभिशाप है, तो कहीं वरदान, कहीं अनोखा अंदाज है, तो कहीं मजबूरी। सोचिये, उस विरहीकी मनःस्थिति क्या रही होगी, जिसने अपनी प्रेमिकाके लिये कहा :—

जब तेरी यादसे तस्कीने मुहब्बत न हुई,
फिर यह सोचा कि भुला दूं, तो भुलाया न गया।

भूलना यदि एक परीक्षार्थीके लिये सबसे बड़ा अभिशाप है, तो एक गमके मारेके लिये यह सबसे बड़ा वरदान भी है। यदि बीते हुए रंजोगम, दुख और सितम, समयके साथ हमारे स्मृति-पटलसे पुछते, मिटते न रहें तो यह जीवन जीने योग्य रह जायेगा क्या? हर हालतमें हमें उस जगन्नियन्ताका आभार ही मानना होगा जो हमारी हर सांसपर अपने कर-कमलोंका पहरा बिठाये हुए है और जिसे —

— लहमेभर को भी हम भूले हों........हमें याद नहीं।

अपाहिजोंको नया जीवन

कलकत्तेके एक सज्जन मोटर दुर्घटनामें फंस गये। परिणामस्वरूप उनकी एक टांग काटनी पड़ी। डाक्टरोंने उसके स्थानपर एक लकड़ीकी टांग लगा दी। उनके एक मित्र हस्पतालमें मिलने गये तो वह सज्जन बोल उठे, जानते हो भाई! इस नयी टांगसे बड़ा आराम हो गया है। हाड़-मांसकी टांगसे यह कहीं अच्छी है। सुननेवालेके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने पूछा, वह कैसे? तो बोले, इसमें कभी मच्छर नहीं काटते। सब लोग हंस पड़े।

आजसे कुछ वर्ष पहलेतक जिनके हाथ-पांव कट जाते थे उन्हें अपनी परिस्थितिपर टसवे बहानेके सिवाय और कोई उपाय न सूझता था। परंतु आज परिस्थिति इतनी बुरी नहीं है। पिछले महायुद्धमें सरकारने देखा कि उत्साही सैनिक जो सब कुछ करनेके लिये तैयार होते थे, जिनके अंदर स्फूर्ति और जीवन भरा हुआ था वही हाथ-पांव कट जानेके कारण बिलकुल बेकार हो जाते हैं। उनके लिये सारा जीवन अंधकारमय हो जाता है और गर्वीले जवानोंको दूसरोंकी दयाका पात्र बन जाना पड़ता है। सेनाके अफसरोंने उनके लिये नकली अंग बनानेका प्रयास किया और इस कामके लिये पूनामें आर्टिफिशल लिम्ब सेंटर नामक संस्थाकी स्थापना की। आरंभमें यह संस्था केवल सैनिकोंके लिये थी पर आगे चलकर इसके दरवाजे एक हदतक साधारण जनताके लिये भी खोल दिये गये। यह संस्था आजकल वर्षमें दो हजार आदमियोंके लिये हाथ-पांव बनाती है फिर भी उनके पास दो हजार नाम अपनी बारीकी प्रतीक्षा करते ही रहते हैं।

इस संस्थामें आते ही निराश रोगीको दिखाया जाता है कि उसी जैसे रोगी नये अंगोंकी सहायतासे भिन्न-भिन्न प्रकारके उपयोगी काम कर रहे हैं। इतना ही नहीं, एक ओर गद्देपर बैठे हुए लंगड़े-लुंजे बड़े उत्साहके साथ वालीबाल खेल रहे हैं। उनके लिये नीची जाली लगायी जाती है और उन्हें बैठकर खेलना सिखाया जाता है। उनका उत्साह देखने लायक होता है, 'पकड़ो पकड़ो' 'वाह' 'शाबाश' की आवाजें वातावरणको भर देती हैं। खेलते-खेलते लोग लुढ़क पड़ते हैं और हंसीके फव्वारे छूटते हैं, नवागन्तुक भी उत्साहसे भर जाता है। उसकी निराशा कम हो जाती है और वह भी डाक्टरको सहयोग देनेके लिये तत्पर हो जाता है। नकली अंग कश्मीरी बेतसे बनाये जाते हैं। हर एक व्यक्तिका नाप लेकर उसके लिये ठीक-ठीक अंग बनाकर उसे उनका उपयोग करना सिखाया जाता है और अगर हो सके तो उसे अपने पुराने पेशेके लिये, वरना किसी नये कामके लिये, तैयार किया जाता है। जब वह पूरी तरहसे काम सीख जाता है तब उसे छुट्टी मिलती है।

जिनके हाथ कट जाते हैं उनके लिये एक नये प्रकारकी शल्यक्रिया भी की जाती है। कोशिश यह की जाती है कि कटे हुए हाथके ठूंठमें चीरा देकर उंगलियोंका काम देनेकी क्षमता लायी जाय।

—संकलित

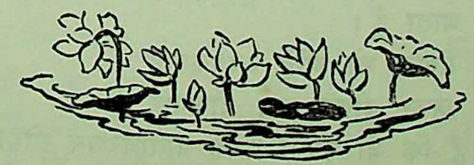

शेख सादी और शिक्षा

हम पुरोधाके कुछ अंकोंमें फारसीके प्रसिद्ध कवि शेखसादीके कुछ वचन पढ़ चुके हैं। आज हम शिक्षा और पालन-पोषणके बारेमें उनके विचार देखेंगे।

कोई बच्चा जब पैदा होता है तो वह हाड़-मांस और चामका लोथड़ा होता है। उसमें उठने, बैठने या बोलनेकी शक्ति नहीं होती। वह आसपासके लोगोंके चेहरे देखता है पर यह नहीं जानता कि ये कौन हैं और उसे किसलिये घेरे हुए हैं। उसे भूख लगती है तो चिल्लाता है। दूसरे उस-की आवश्यकताको जानकर उसे दूध पिला देते हैं और हर तरहसे देखभाल करते हैं। वह दूसरोंसे प्राप्त शिक्षाके आधारपर अपना जीवन ढालने लगता है, अपने मां-बाप तथा आसपासके लोगोंकी भाषा बोलने लगता है और उनकी नकल करनेमें गौरव समझता है। बच्चेमें बहुत-सी स्वाभाविक क्षमताएं होती हैं जो कि ठीक शिक्षा पाकर उभर आती हैं। अगर उसके आंतरिक स्वभावमें ही दोष हो तो फिर शिक्षा भी उसे कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती। शेखसादी कहते हैं ––"खराब लोहेसे कोई अच्छी तलवार कैसे बना सकता है? ए बुद्धिमान्, केवल शिक्षासे ही कोई व्यक्ति मनुष्य नहीं बन जाता। वर्षाका पानी हमेशा पवित्र होता है, वही पानी वाटिकामें सुन्दर फूल बनता है और जंगल-में जंगली घास।"

फिर कहते हैं, "जिसका आधार ही बुरा हो वह भलोंकी छायासे भी दूर रहता है। अयोग्यके लिये शिक्षा ऐसे ही है जैसे गुंबजपर लट्टू। वह फौरन लुढ़ककर नीचे आ जाता है।" और एक जगह कहते हैं, "बादल नया जीवन लानेवाला पानी बरसाता है, फिर भी चाहे कितना भी पानी बरसे बेंतमें कभी फल नहीं लगता। एक कमीनेके साथ समय मत नष्ट करो, बांसकी लकड़ीसे भी कभी शक्कर पैदा हो सकती है?" इसी भावको हिंदीमें यूं कहा गया है:

फूलहि फलहि न बेंत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥

जो स्वाभाविक रूपसे कमीना है वह सन्तोंके साथ रहकर भी लाभ नहीं उठा सकता। शेखसादी उदाहरण देते हैं कि चाहे भेड़ियेका बच्चा हमेशा मनुष्योंके साथ ही रहता हो फिर भी उसकी रक्त-पिपासा नहीं जायगी, वह बड़ा होकर भेड़िया ही होगा। कहते हैं:

एक करुई बेल तुमरिया। वह तो सब तीरथ करि आई।
सब सन्तनके मन भाई। बाकी तोऊ न गई करुआई ॥

यानी कड़वी तुमड़ीकी बेल सब तीर्थोंकी यात्रा करके, सब सन्तोंका मन लुभाकर लौटी फिर भी रही कड़वीकी कड़वी ही।

लेकिन शिक्षा बालकोंके सहज गुणोंको विकसित करती है। अगर बच्चेके स्वभावमें ही कहीं कोई ग्रंथि न हो तो शिक्षा उसकी क्षमताओंको उजागर करती है। शेख साहब बच्चोंकी तारणा करनेके पक्षमें हैं। उनका कहना है –– "ज मेहरे पिदर जौरे उस्ताद बह" यानी बापकी मेहरबानीसे उस्तादकी सख्ती ज्यादा अच्छी है। उनका कहना है कि जो बच्चा उस्तादकी सख्ती नहीं सहता वह जमानेकी सख्तीका शिकार हो जाता है।

"हर आं तिफ्ल को जौहे आमूजगाह
न बीनद जफा बीनद अज रोजगार।"

तमिलमें भी एक कहावत है कि जो बच्चा घरके वातावरणमें सीधा नहीं होता, उसे गांवके लोग सीधा करते हैं।

बच्चोंकी शिक्षामें दो बातोंका विशेष रूपसे ख्याल रखना चाहिये। एक तो यह कि उनके बोल

मीठे और सच्चे हों, दूसरे यह कि उनके काम अच्छे और पवित्र हों। अगर नींवमें ये दोनों बातें हों तो जीवन सफल होता है। शेखसादी कहते हैं कि मनुष्यको ऐसा जीवन बिताना चाहिये कि मरनेके बाद भी लोग उसे अच्छे शब्दोंमें याद किया करें न कि ऐसा कि उसकी कब्रको देखकर घृणासे मुंह मोड़ लें। हिन्दीके प्रसिद्ध कवि गिरिधर कविराय कहते हैं:

गुनके गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुने सब कोय॥
शब्द सुने सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊको एक रंग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मनके।
बिन गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुनके॥

बोस्तांके सातवें अध्यायमें एक जगह सन्तानकी शिक्षाके बारेमें शेखसादी कहते हैं, अगर बाप यह चाहे कि दुनियामें उसका नाम रहे तो वह अपने लड़केको बुद्धि और विद्या प्रदान करे। अगर तुम्हारे बेटेमें विद्या और बुद्धि न हो तो तुम्हारे मर जानेके बाद तुम्हारा नामलेवा कोई न होगा।

अमीर लोग अपने बच्चोंको बहुत लाड़-प्यारसे पालते हैं और उन्हें कठिनाईका सामना नहीं करने देते। शेखसादी कहते हैं, जो लड़का लाड़-प्यारमें ही पला हो वह कष्ट नहीं सह सकता। अगर तुम्हें अपने बच्चोंसे प्रेम है तो उन्हें बुद्धिमान् और संयमी बनाओ, अपनी दौलतपर भरोसा न करो, वह आज है कल हाथसे निकल जायगी। विद्या और कला-कौशल ही बाकी रह जाते हैं जिनकी मददसे तुम्हारी सन्तान अपना जीवन संवार सकेगी। तुम्हारे पास चाहे कुबेरका धन क्यों न हो फिर भी अपने बच्चेको कष्ट सहन करना सिखाओ। चांदी-सोनेकी थैली खाली हो जाती है, विद्याकी थैली कभी खाली नहीं होती। तुम्हें क्या मालूम कहीं भविष्य उसे इधरसे उधर न चक्कर लगवाये। हाथमें कौशल होगा तो उसे किसीके आगे हाथ न पसारना होगा।

बच्चोंको बुरे संगसे भी बचाना चाहिये क्योंकि बुरे लोग अपनी तरह बच्चोंको भी बुरा बना देते हैं।

निगहदार जामेंजगारे बदश
कि बदबख्तो बेरह कुनद चूं खुदश।

बच्चोंको दूसरोंकी बुराई करनेसे भी बचाना चाहिये, इससे उनके अपने दोष उनकी आंखोंसे ओझल हो जाते हैं। सादी कहते हैं, "ए कमीने, लोगोंके दोषोंको मत उछाल, उन दोषोंसे तेरी आंखें बन्द हो जाती हैं। भगवान् एक नेकीके बदले दस नेकियां करता है। मनुष्यको चाहिये कि इस चीजको याद रखे। दूसरोंके दोषोंको न फैलाता फिरे।"

जो व्यक्ति दूसरोंके दोष तुम्हें सुनाता है उससे किसी नेकीकी आशा न रखो। वह तुम्हारे दोष दूसरोंको सुनाता फिरेगा। शेखसादीने अपने बचपनकी घटना सुनायी है और कहा है कि उन्होंने जब कभी दूसरोंका दोष देखा तो उनके पिताने या गुरुने उन्हें टोक दिया, इसलिये वह दूसरोंसे कहते हैं:

इला ऐ खिरदमन्द फर्खुन्दाखू।
हुनरमन्द नशुनीदाअम ऐब जू।

यानी हे गुणवान्, बुद्धिमान्, मैंने किसी हुनरमन्द आदमीको किसी दूसरेका ऐब ढूंढ़ते नहीं देखा।

इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है पर लेख लंबा होनेके भयसे यहीं समाप्त करता हूं। अगर हमारी पीढ़ी इन उपदेशोंके अनुसार चले तो हमारा परस्पर विरोध हमेशाके लिये खतम हो सकता है। मैं आशा करता हूं कि हमारे युवक इस शिक्षाका अनुसरण दिलोजानसे करेंगे। हर धर्मने इन बातोंपर जोर दिया है।

—अफजलुल उलमा मुहम्मद यूसुफ कोकन

विद्यार्थी जीवनकी झलक

(१)

छुट्टियां

आजसे पांच वर्ष पहलेकी यह कथा है। वर्षा ऋतु थी। विद्यालयमें वार्षिक परीक्षा खत्म हो गयी थी और नयी कक्षामें जानेसे पहले हमें कुछ दिनकी छुट्टियां थीं। इन दिनों हम नित नये खेल खेलते और मौज करते थे। एक दिन सारी कक्षाने मिलकर गंगाके किनारे पिकनिक करनेकी ठानी। हमारी बात शिक्षक एवं घरवालोंने मान ली। एक अच्छा-सा दिन देखकर निकले। सुबह छः बजे-के निकले, उस जगह पहुंचते-पहुंचते ढाई घंटे लग गये। पहुंचनेके बाद थोड़ी देर इधर-उधर घूमते रहे। दस बजते-न-बजते हममेंसे करीब पांच छःको नदीमें नाव चलानेकी धुन सवार हुई। हमने एक नौकावालेसे नौका भाड़े लेनेकी तय कर ली और चलनेके कुछ सैकेण्ड पहले ही अपनी अध्यापिका-जीको बताया। उन्होंने जैसे ही सुना कि हम छः लड़कियां नदीमें नौका चलाने जा रही हैं तो एकदम उछल पड़ीं और लंबी-सी "नहीं" दाग दी। अब तो हम बड़े असमंजसमें पड़ गयीं। सब कुछ तय करनेके बाद अगर 'एक जन' के कारण ही हमें जाना न मिले तो वह हमारे लिये शोकजनक होगा। हमने अध्यापिकाजीको बहुत मनाया। अन्तमें दस मिनटके बाद उन्होंने हमारी बात एक शर्त्तपर मानी कि "अपने साथ नौकावालेको भी ले जाओ और पन्द्रह मिनटमें वापस यहां आ जाना।"

हमने भी इस शर्त्तको स्वीकार कर लिया और चल पड़े।

नौका चलाना हममें मुझे और एक दूसरी लड़कीको छोड़कर बाकी चारको तो आता था। खैर, उन चारोंने दो-दोके दल बना लिये और बारी-बारीसे खेने लगीं। नौकावाला बेचारा चुपचाप एक तरफ बैठा रहा। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी...... और हम अपनी खुशीमें आगे बढ़ती ही जा रही थीं। समय बीतता गया पर हमें मालूम ही नहीं पड़ा। करीब तीन मील आगे निकल जानेपर देखा, अचानक काले बादल घिर आये हैं। तब भी हमें कुछ भी न लगा। आखिर नौका-वालेने याद दिलाया कि अब जल्दी ही लौटना चाहिये। वर्षा होने लगी तो फिर पहुंचना कठिन हो जायगा। हमने न जाने कैसे उसकी बात मान ली और नावको जिस तरफसे आये थे उसी तरफ मोड़ा। आकाश बादलोंसे घिरा हुआ था, साथ ही ठण्डी हवा बहने लगी। अब वर्षामें कुछ ही देरी थी। हमने अपना सारा जोर देकर नौकाको तेजीसे चलानेकी कोशिश की परंतु सब व्यर्थ। एक मील खत्म करते-न-करते वर्षा शुरू हो गयी और वह भी बहुत जोरसे। हमारी नौका कभी इधर कभी उधर डगमगाने लगी। अब तो हमें अध्यापिकाजीकी बातें याद आने लगीं। लगा कि उन्होंने ठीक ही कहा था। परंतु अब क्या हो सकता था? अब तो "चिड़िया चुग गयी खेत"। हमने नौकावालेसे मदद मांगी। उसने तुरंत स्वीकार कर लिया। उस समयकी हालत याद आती है तो रोयें खड़े हो जाते हैं। भगवान्की दयासे एक घंटेमें हम वापस घाटके पास पहुंच गये जहांसे हमने नौका ली थी। वहां पहुंचते ही देखा कि हमारी अध्यापिकाजी बरसाती कोट पहने खड़ी थीं, उनकी आंखें लाल थीं। हम इतनी डर गयीं कि उनके सामने देख भी नहीं सकीं और चुपचाप अन्य लोगों-के बीच जा पहुंचीं। दिनभर हम डरके मारे सहमी-सी रहीं। परंतु शामको जब हम विद्यालय लौटीं तो अध्यापिकाजीने प्यारसे हम छः को बुलाया और हमारी भूल समझायी।

परंतु अब भी जब वह दृश्य सामने आता है तो रोयें खड़े हो जाते हैं।

—चेतना

–२–

मुझे हिंदी प्रिय है

जी हां, सब अध्यापक ऐसे ही हो जायें तो कैसा अच्छा, हर एक परीक्षाके बाद हमसे, या कम-से-कम मुझसे पूछ लिया करे कि कहो, तुम्हें कौनसी श्रेणीमें रहना है, तुम्हें कितने अंक चाहियें। स्कूलोंका यह ढंग मुझे बिलकुल पसंद नहीं है कि हर अध्यापकको तानाशाही अधिकार दे दिये जाते हैं। अंक लेनेवाले हम और हमसे कोई पूछतातक नहीं कि कितने अंक चाहियें, बस उठायी लाल पेंसिल और घसीट डाले अंक — कहीं एक, कहीं डेढ़ और बहुत उदार हो गये तो दो और ढाईतक दे दिये। भला कोई पूछे इन—क्या करूं, मुंहसे जो शब्द निकलना चाहते हैं शिष्टाचारकी लगाम उन्हें निकलने नहीं देती — से कि आखिर आपका जाता क्या है? ज्यादा अंक दे दिये तो आपकी जेबसे कुछ खर्च न होगा और कम दिये तो आपकी कोई बचत न होगी, फिर ज्यादा देकर दूसरोंका भला क्यों नहीं कर लेते? क्या आप भूल चुके हैं 'हर्रा लगे न फटकरी रंग भी चोखा आय।'

खैर, यह तो भूमिका हुई, अब आइये असली बातपर। असली बात यह है कि मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं बहुभाषाविद् बनूंगी। हिंदी उर्दूकी बात ही क्या है, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, लैटिन, अरबी सभीके कान काटूंगी। क्या कहा, इसके लिये बहुत मेहनत करनी पड़ेगी? अजी लाहौल वला कुव्वत, मेहनत और हम! यह भी अच्छी कही आपने। अजी साहब, जरा कान खोलकर सुन लीजिये, पानी और आग एक साथ रह सकते हैं, अहि नकुलमें प्रेम हो सकता है, तारे सूरजके साथ-साथ चमक सकते हैं पर मेहनत और मैं......ही ही ही।

मैं आपके चेहरेपर आपके भाव पढ़ सकती हूं। आप यही सोच रहे हैं न कि आखिर 'बिना मेहनतके मैं अपनी भीष्म प्रतिज्ञाको पूरा कैसे करूंगी? यही तो है मेरा रहस्य जिसे जाननेका अधिकार सबको प्राप्त नहीं है। विरले ही होते हैं जिन्हें यह उत्तम रहस्य बताया जा सकता है और वह भी इस शर्त्तपर कि वे इसका उपयोग न करें। हां, जब मेरा जीवन-चरित्र लिखा जाय तो इसका उल्लेख अवश्य होना चाहिये।

लीजिये, सुनिये, और सारी बातोंको छोड़कर केवल हिंदीकी ही बात सुन डालिये और इसीको आधार बनाकर बाकीका अनुमान कर लीजिये। बात यह है कि मुझे हिन्दी भी बहुत प्रिय है। मैंने कई बार कहा है कि अगर मुझे एक खाट न सही, आरामकुर्सी ही मिल जाय तो उसपर पड़ी-पड़ी सारे दिन रामायणका पाठ सुननेको तैयार हूं और रामायण ही क्यों, अध्यापक महाशय चाहें तो सूर, तुलसी, जायसी, कबीर किसीका भी पाठ शुरू कर दें और कठिन पदोंको समझाते जायें फिर देखिये वे सुनाते-सुनाते थकते हैं या मैं सुनते-सुनते। हां, यहां एक बातकी ओरसे सावधान करती चलूं, हो सकता है काव्यरसमें विभोर होकर मैं कभी काव्य-लोकमें जा पहुंचूं अथवा अनहद नादको जरा जोरसे सुनाने लग जाऊं। अगर ऐसा हो तो कहीं आप अरसिक, अनभिज्ञ लोगोंकी तरह यह न मान बैठें कि मैं सो रही हूं अथवा खर्राटें ले रही हूं, नहीं, यह तो अध्यापकजीकी सराहनामें मेरी रसाञ्जलि होगी जिसे सुनकर वे भी गद्गद् हो उठेंगे।

मैंने सुना है कि हमारे अध्यापकजी तो मेरी पढ़ाईसे पूरी तरह सन्तुष्ट हैं सहपाठी चाहे जितना शोर मचाया करें मेरी बलासे। बात यह है कि सब विद्यार्थियोंसे आशा की जाती है हर सप्ताह एक प्रस्ताव घसीट डालें। कुछ हैं जो हर सप्ताह नहीं हर तीसरे दिन ही कविता, कहानी, निबंध कुछ-न-कुछ लिख मारते हैं, कुछ हैं जो कहने-सुननेपर एक साथ दो-चार छलांगें मारते हैं और फिर आराम करने बैठ जाते हैं पर मैं इनमेंसे नहीं हूं, शायद आपको गर्वोक्ति लगे पर तथ्य तो यही है कि मैं अपने-आपमें एक संस्था हूं तभी तो अध्यापक महोदयने मुझे 'खद्योत' की उपाधिसे विभूषित कर

दिया है। अब आप ही बताइये ख को भी द्युति देनेवालेका गृह कहां और गृहकार्य कैसा! वह तो सदा विचरण करता रहता है, पथप्रदर्शन करता रहता है और अपने पंखोंको (लोग भले बाइसिकिल कह लें) लोक-कल्याणके लिये चलाता रहता है उससे आप कैसे आशा करते हैं कामकी...कम... छीः, कहां खेचर और कहां यह धरतीके क्रिया-कलाप। कहां राजा भोज और कहां गंगू तेली।

हां, पर यह न समझिये कि मैंने हिंदीके लिये कुछ त्याग नहीं किया। जर्मनवालोंने लिखनेके लिये कहा तो मैंने टका-सा जवाब दे दिया, यूनानीके अध्यापकने काम करनेको कहा तो मैंने उग्र रूप धारण कर लिया, फिर हिंदुस्तानी भाषाओंका तो कहना ही क्या है! लेकिन इस हिंदीके अध्यापक महानुभावके समझाने-बुझाने, प्यार करने और फटकारनेपर सचमुच मैंने वर्षमें एक नहीं दो-दो गृह-कार्य कर दिखाये!! इसपर भी आपको विश्वास नहीं होता कि हिंदी मुझे बहुत प्रिय है। लेकिन देखिये, किसीसे कहिये नहीं, उसके बादसे मैं हिंदी अध्यापक महोदयसे हमेशा ३६ बनकर रहा करती हूं या यूं कहिये कि संयोगवश ऐसा हो जाता है, क्या करूं!

—रवीन्द्र

—३—

पढ़ाई

सचमुच विद्यार्थी बनना कोई आसान काम नहीं है। कहते हैं विद्यार्थीका एक ही काम है पाठशालामें आकर अध्यापककी बातें सुनना। लेकिन मुझे पता नहीं कि इसे सरल क्यों कहा जाता है। अगर हम कुर्सीपर बैठकर मुंह खोलें और कान बंद किये अध्यापककी बातें सुनते चले जायं, तो और चाहे जो हो पर विद्यार्थी बनना तो असंभव है। ऐसी हालतमें हम न तो कुछ सीखते ही हैं और न मीठी नींद ही ले पाते हैं। चंदूकी यह घटना सुननेसे आप शायद मेरा आशय समझ सकेंगे कि "नींद" क्यों मीठी नहीं हो पाती। हमारी कक्षामें चंदू नामक एक लड़का था। वह आलस्यकी मूर्ति था। बड़ी-बड़ी आंखें खोलकर मानों ध्यानसे अध्यापककी बातें सुनता था; लेकिन कुछ ही देरमें उसके पलक झपक जाते और वह स्वप्नोंके देशकी ओर बह जाता। शायद वह बड़े सुन्दर स्वप्न देखता होगा, क्योंकि एक बार, घण्टी बजनेपर भी वह उसी लोकमें घूमता रहा। कक्षामें तुरंत शोर मच गया और अध्यापक भी हंसने लगे। चंदू घबराकर उठ बैठा, मानों अभी चंद्रमामेंसे गिरा हो! हंसी और भी बढ़ गयी और चंदूका मुंह भीगे चूहे-जैसा हो गया।

आलस्य विद्यार्थीके लिये एक बहुत बड़ा खतरा है। अगर भूलसे भी इसके जालमें पड़ जायं तो यह बिजलीकी ए. सी. धाराकी तरह पकड़ लेता है। और कोई बहादुर विद्यार्थी इस मुसीबतसे छुड़ाने आ जाय तो उसका भी बचना मुश्किल होता है। मेरी जान-पहचानकी एक लड़की एक बार आलस्यके हाथ पड़ गयी। शकीला नामक लड़कीसे उसकी बहुत मित्रता थी। शकीला बहुत ही अमीर और ऊपरसे चमकती हुई थी (क्योंकि पैसा हाथमें हो तो नाईलनके फ्राकों और टीप-टापकी चीजोंकी क्या कमी?)। शकीला अकलकी बहुत बड़ी दुश्मन तो थी ही, साथ ही घरवालोंके लाड़के कारण उसकी नाक हमेशा हवामें रहती थी। इसलिये पढ़ाईके समय उसका नम न जाने कहां-कहां चरने चला जाता था। वह सिर्फ बदतमीजी करनेमें ही मस्त रहती थी। उसकी नयी सहेलीको यह जीवन बहुत पसंद आया और वह शकीलाकी बड़ी भक्त बन गयी। पढ़ाई वगैरा त्याग शकीलाके पीछे घूमने लगी। कई वर्षों बाद उसने अपनी भूल पहचानी लेकिन फिर पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत।

विद्यार्थी-जीवनमें एक और समस्याका सामना करना पड़ता है। यह है 'परीक्षा'। इसका नाम सुनते ही विद्यार्थी बेहोश-सा हो जाता है, और परीक्षा समाप्त हो जानेपर भय उसे लपेटे रहता है।

अध्यापक या परीक्षकको देखते ही मुंहसे निकलता है, "वह बैठे आराम करते हैं और यहां हम दिन-रात पढ़ते-पढ़ते मरे जा रहे हैं" बदकिस्मतीसे अधिकतर विद्यार्थी यही सोचते हैं। लेकिन परीक्षा जैसी व्याधि भी हल्की पड़ सकती है यदि हम उसका उपचार आखिरी दमपर न शुरू न करें। बराबर, ध्यान देकर मेहनतसे काम करते रहनेसे हमारे रास्तेमें कोई बाधा नहीं आती और अगर आ भी जाय तो वह भी हमारी उन्नतिमें सहायक होती है। हर गृहकार्य विद्यार्थी-जीवनमें एक साथीका रूप ले लेता है। लेकिन उसे इस भावनासे स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि विद्यार्थी जब मौज-मजा करता हो तो गृहकार्यका विचारतक उसे दुःखी बना देता है। लेकिन विद्यार्थी-जीवनसे कुछ फल पाना हो तो मेहनत जरूरी है। मेहनत विद्यार्थी-जीवनका खंबा है, इसके बगैर भविष्यकी अट्टालिका किसपर खड़ी होगी, इसलिये 'मेहनत' के साथ हाथ मिलाओ और उसके सहारे ऊपर उठो।

—मीना

सच्चा दान

[महाभारत एक महाकाव्य ही नहीं उपाख्यानोंका महावन भी है। कुछ विदेशी विद्वानोंने इसके कुछ उपाख्यानोंको इतना पसंद किया है कि उनके कथनानुसार इन उपाख्यानोंके सिवाय महाभारतका शेष भाग कालक्रमसे विनष्ट हो जाय तो इससे कोई विशेष क्षति न होगी। उनके इस वचनमें अतिशयोक्ति होते हुए भी आंशिक सत्य अवश्य है। इन उपाख्यानोंकी विशेषता यह है कि ये उपदेशात्मक होनेके साथ-साथ मनोरंजक भी हैं। इनमेंसे कुछ तो पहलूदार हीरेके समान सर्वांग-सुन्दर हैं। इन्हींमेंसे एक यहां महाभारतसे संकलित किया गया है। इसमें दानकी प्राचीन भावना मूर्त हुई है। — ले.]

द्वापरके अंतकी बात है।

युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ पूरा होनेको ही था। उस यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों, जातिवालों, संबंधियों, बन्धुबान्धवों, अंधों और दीन-दरिद्रोंके तृप्त हो जानेपर जब युधिष्ठिरके महादानका चारों ओर शोर हो रहा था तभी एक नेवला आया। उसकी आंखें नीली थीं और मस्तक सुनहरा था। उसने आते ही वज्रके समान गर्जना करके समस्त मृगों और पक्षियोंको भयभीत कर दिया और फिर मनुष्यकी भाषामें बोला — "राजाओ, तुम्हारा यह यज्ञ कुरुक्षेत्र-निवासी एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके सेरभर सत्तूदानके भी बराबर नहीं है।" नेवलेकी बात सुनकर ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नेवलेको घेरकर पूछा — "नकुल, इस यज्ञमें साधु पुरुष ही आये हैं, तुम कहांसे आये? तुम कौन हो जो हमारे यज्ञकी निंदा करते हो? इस यज्ञमें पूजनीय पुरुषोंकी विधिके अनुसार पूजा की गयी है, हवि-द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया गया है और देने योग्य वस्तुओंका दान किया गया है, फिर तुम इस प्रकार क्यों कहते हो?"

ब्राह्मणोंके इस प्रकार पूछनेपर नेवला हंसकर बोला, "मैंने आप लोगोंसे अभिमानपूर्वक मिथ्या बात नहीं कही है। उस दानके प्रभावसे ब्राह्मणने किस प्रकार स्वर्गपर अधिकार प्राप्त किया और मेरा मस्तक सोनेका हो गया वही प्रसंग बता रहा हूं।

"कुछ दिन पहलेकी बात है, कुरुक्षेत्रमें एक ब्राह्मण रहते थे। वे उन्छवृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह किया करते थे। कबूतरकी तरह अन्नके दाने चुन-चुनकर वे अपने परिवारका पालन-पोषण किया करते थे। वे अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्रवधूके साथ तपस्यामें लीन थे और तीन दिनके बाद छठे समयमें भोजन किया करते थे।

"एक बार उस देशमें बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। उनके पास अन्नका संग्रह न था। खेतोंका अन्न भी सूख गया। छठा समय अनेक बार बीत गया परंतु उन्हें भोजन न मिला। एक दिन भोजनके समय उन्हें कहींसे एक सेर जौ मिले। उन्होंने उस जौका सत्तू तैयार किया। अग्निमें विधिपूर्वक आहुति देनेके बाद वे सब लोग एक-एक पाव सत्तू बांटकर खाने लगे। वे अभी भोजनके लिये बैठे ही थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ पहुंचा। कुशल-मंगल पूछनेके बाद वे भूखसे व्याकुल उस ब्राह्मणको अपनी कुटियामें ले गये। ब्राह्मणने अपने भागका सत्तू अतिथिको खानेको दिया पर उसे खाकर उसे तृप्ति न हुई। तब ब्राह्मणकी पत्नीने कहा — "स्वामिन्, आप मेरा भाग अतिथि देवताको दे दें।" ब्राह्मणने कहा, "जो पुरुष अपनी पत्नीकी रक्षा नहीं करता वह नरकमें जाता है।" स्त्री बोली, "आप ही मेरे पति, भर्त्ता और वरदाता हैं; आपके सुखमें मेरा सुख और आपके दुःखमें मेरा दुःख है, आप नहीं खाते तो मेरा खाना व्यर्थ है, इसलिये मेरा भाग भी अतिथिको दे दीजिये।"

"ब्राह्मणीकी बात सुनकर ब्राह्मणने उसका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको दे दिया। परंतु अतिथिका पेट नहीं भरा। इसपर पुत्रने कहा, "पिताजी, आप मेरा सत्तू अतिथिको दे दीजिये।" पिता बोले—"पुत्र तुम सौ वर्ष जीओ। बूढ़े होनेके कारण मुझे भूख नहीं सताती, तुम सत्तू खाकर जीवन धारण करो।" पुत्र बोला, "पिताजी, मैं आपका आत्मज हूं इसलिये यों कहकर मुझे पराया न बनाइये।" पुत्रके वचनोंसे पसीजकर पिताने उसका सत्तू भी ब्राह्मणको दे दिया, पर अतिथिको इससे भी संतोष न हुआ।

"ब्राह्मणकी पुत्रवधूसे यह न देखा गया और उसने भी अपने श्वसुर महोदयकी आज्ञा लेकर अतिथि देवको अपना सत्तू अर्पण कर दिया।

"स्वयं धर्मने अतिथि ब्राह्मणके रूपमें इस उन्छवृत्तिधारी ब्राह्मण परिवारकी परीक्षा ली थी। वे समस्त परिवारके त्यागसे प्रसन्न होकर बोले, "हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मैं तुम्हारे दिये दानसे अत्यंत संतुष्ट हूं। संकट-कालमें भी तुमने शुद्ध हृदयसे सत्तूका दान किया। अपने इस पुण्य कार्यके प्रभावसे तुमने स्वर्गलोकपर विजय प्राप्त कर ली।" धर्मके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण सपरिवार स्वर्ग गये।

"उसके बाद सत्तूकी गंध सूंघते-सूंघते मैं, जहां ब्राह्मण परिवार भोजन करने बैठा था उस जगह आया। दान करते समय वहां गिरे सत्तूके कुछ कणोंको खानेसे मेरा मस्तक सोनेका हो गया। शरीरका शेष भाग सोनेका बनानेकी आशासे मैं आपके यज्ञमें आया था पर मेरा शरीर सोनेका न हो सका। इसीलिये मैंने हंसकर कहा था कि यह यज्ञ ब्राह्मणके सेरभर सत्तूके दानके बराबर भी नहीं है।"

यों कहकर नेवला यज्ञस्थलसे चला गया।

—मेधाव्रत

एक लेखिकाकी मुसीबतें

प्रिय सम्पादक महोदय,

सादर नमस्कार। आपका लेख 'सम्पादककी एक शाम' पढ़ा। बड़ा अच्छा लगा! आपके हाथमें कलम है और आप पत्रिकाके स्याहो सुफीदके मालिक हैं इसलिये जो चाहें लिख सकते हैं। आपने बेचारे गुमनाम लेखकोंकी अच्छी छीछालेदर की है, इसके लिये उनको आपका आभारी होना चाहिये। आखिर किसी तरह तो आपने उनको याद किया —— बदनाम जो होंगे तो क्या नाम न होगा? आपने तो सम्पादककी एक शामके बारेमें ही लिखा है, लीजिये मैं एक लेखिकाके एक युगके बारेमें लिखे देती हूं। देखिये, बुरा न मानियेगा, आखिर आप लोगोंको नाराज करके हम रहेंगे कहां? जलमें रहकर मगरसे बैर कैसा? इसलिये जो कुछ मैं लिख रही हूं वह आपके ऊपर फबती न होकर अपने ही कर्मका रोना है। आशा करती हूं जहां आप इतनी रचनाएं 'स्थानाभाव' के कारण 'खेदके साथ' लौटा चुके हैं वहां मेरे इस व्यक्तिगत पत्रको सहर्ष लौटानेकी कृपा करेंगे। मैं नहीं चाहती कि मेरे लेखनका कच्चा चिट्ठा किसी औरके हाथमें पड़े।

बहुत वर्ष हुए मैंने अंग्रेजीमें कुछ भारतीय कहानियां पढ़ी थीं। मैं थी ही कितनी-सी, जरा-सी बटुकनी। मैंने सोचा, ऐसी कहानियां तो मैं भी लिख सकती हूं। झट अपनी कापीके कागजोंपर अचम्भेका बच्चा नामक कहानी लिख मारी और बिना दुहराये ही इंग्लैंडके किसी बड़े प्रकाशकके पास भेज दी। बुरा न मानिये, वहांके प्रकाशक आप लोगोंकी अपेक्षा बहुत अच्छे होते हैं। मेरी कहानी लौटती डाकसे वापिस तो आयी पर उसके साथ बढ़ावा देनेवाला पत्र भी था जिसमें लिखा था प्रयास करती रहोगी तो लिखना आ जायगा। बहुत दिनों बाद पता चला कि मेरी कहानीकी वह किताब कुल जमा पांच पन्नेकी होती जिसमें व्याकरणकी कम-से-कम पच्चीस-तीस भूलें तो थीं ही। उस पत्रसे मेरा साहस बढ़ गया और मैंने अबके बार हिंदीमें महावीर बाबाकी स्तुतिमें एक कविता लिख मारी और उसे हिंदीके एक प्रसिद्ध पत्रके सम्पादकको भेज दिया। मैं उत्तरकी प्रतीक्षा करती रही, करती रही पर वह न आना था, न आया।

खैर, मैं हिम्मत हारनेवाली न थी। कभी महादेवी वर्माकी कृति सामने रखकर, कभी प्रेमचन्दकी कहानी पढ़कर तो कभी दिनकरकी पोथियां खोलकर उन लोगोंके जैसी चीजें लिखना शुरू किया। सम्पादकजी, मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मेरी चीजें उनसे इक्कीस भले हों, उन्नीस तो किसी हालतमें न थीं। फिर भी आपकी बिरादरीके किसी सम्पादकने उन्हें लौटानेतकका कष्ट न किया। मैं हर बार बड़ी-बड़ी आशाएं करती थी, सोचती थी इस बार तो मेरी चीज जरूर छपेगी, उससे मिलनेवाली प्रतिष्ठाका ख्याल आता, कभी सोचती मेरी प्रशंसामें जब लोगोंके पत्र आयेंगे तो कैसे उत्तर दूंगी। कभी सोचती कि अपने निजी सचिवके नामसे हस्ताक्षर करके उत्तर भेजूंगी। हर रोज डाकियेके लिये आंखें बिछाये रहती, हर रोज कौए उड़ाती, लेकिन परिणाम हमेशा वही।

हजार बार सुनी है वही नहीं मैंने।

इसी तरहसे काफी दिन बीत गये। दुनियाकी भाषामें मैं बड़ी हो गयी और मेरे हाथ पीले कर दिये गये। नया घर, नये आदमी और नया वातावरण, यहां सब कुछ नया था। मैं लिखनेका समय ही न पाती थी। उन लोगोंके सामने बैठकर कैसे लिखती। उनको न जाने पसंद आता या नहीं, कहीं किसी पत्रिकाकी लौटायी हुई चीज उनके हाथ पड़ गयी तो . . . . . काफी दिनोंतक इन्हीं विचारोंमें डूबती उतराती रही। ऊपरसे देखनेमें आग बुझ गयी पर सचमुच अंदर ही अंदर सुलग रही थी। मेरे वे तो जानवरोंके डाक्टर थे। दिन भर काम करते, रातको घर आते तो उनके पास

बातचीतका एक ही विषय होता। आज फलानेकी भैंसको फोड़ा हो गया था, उसमेंसे इतना मवाद निकला, फलाने गांवकी मुर्गियोंको हैजा हो गया था इसलिये डेढ़ सौ मुर्गियोंको सूचिवेध करना पड़ा, राजूके बन्दरने अपने हाथमें चोट लगा ली थी इसलिये मरहम-पट्टी करनी पड़ी। जबतक निद्रादेवी छुटकारा न दिलवातीं तबतक यही नीरस बातें सुननी पड़तीं। सच कहूं सात दिनमें ही मेरे तो कान पक गये। वे जितना ही रस ले लेकर सुनाते, मैं उतना ही कुढ़ती और अपने भाग्यको कोसती। मैं मन-ही-मन कहती (देखिये सम्पादकजी, कहीं बात खुल न जाय, उनके कानतक पहुंच गयी तो मेरी खैर नहीं होगी)—भगवान्के यहां भी क्या न्याय है मुझ-जैसी साहित्यिक और रसज्ञ स्त्रीको यह जानवर मिला है। फिर अपने-आप ही पश्चात्ताप करती और कहती कि एक हिंदू स्त्रीको ऐसी बातें सोचनेका अधिकार नहीं है।

गर्मीकी छुट्टियोंमें उनके छोटे भाई घर आये। उनके आते ही सारा घर डोल गया। मैंने सुना, लालाजी कविता लिखते हैं और उनकी कृतियां कई पत्र-पत्रिकाओंमें छपा करती हैं। मुझे मनचाही चीज मिल गयी। देवर भाभीका संबंध वैसे भी बड़ा मधुर होता है, यहां तो मैंने विशेष यत्नके साथ उसे दूधसे सींचा। कौन जाने उनकी सहायतासे कहीं मेरी चीजें भी छपने लग जायें एक-दो चीजें छप जायें तो मुर्गीके हैजे और तोतेके बुखारकी जगह उन्हें ही बातचीतका विषय बना लूं, फिर मुझे सब समय उनकी बातें सुनते रहनेकी जगह कुछ अपनी सुनानेका भी अधिकार हो जायेगा।

मैंने एक दिन धीरे-से लालाजीके कानमें ऐसी कुछ बात डाली। मैं उनकी थाह लेना चाहती थी। मैं उनकी विद्वत्ताके प्रदर्शनसे दंग रह गयी। जैसे ही उन्हें पता लगा कि मुझे साहित्यमें रस है कि बस उन्होंने मेरे ऊपर रौब गांठना शुरू किया। अब उनकी भाषाका कोई भी शब्द बिना उपसर्गके न रहता था। उनका प्रत्न (परंपरागत) प्रभवन (उत्पत्ति-स्थान) प्रभाद्रक (सुन्दर) प्रबुद्ध भागमें था जिससे प्रबभ्र (इन्द्र) भी ईर्ष्या करते हैं, वहांकी मिट्टी मानों प्रत्यश्मा (गेरू) के समान है, उनके यहांका प्रत्यूष प्रत्यासन्न हो तो प्रत्यवाय (नैराश्य) का प्रलोप हो जाता है और प्रत्याशा प्रत्युत्पन्न हो जाती है। मुझ जैसा प्रत्युद्गमनीय (स्वागत करने योग्य) व्यक्ति वहां जाये तो वे उस प्रत्यासत्ति (निकटता) से बहुत प्रसन्न होंगे और प्रयास करेंगे कि मेरी कृतिके प्रकाशनमें कोई प्रत्यावरोध न होने पाये और उसका प्रत्यागमन न हो। वे मेरी प्रतुष्टिके लिये प्रतियत्न करते रहेंगे।

मैं तो उनकी यह भाषा सुनकर ही प्रतिमंत्रित-सी हो गयी। वे मेरे साहित्यिक प्रतिभू बननेको तैयार थे। मैंने सोचा अब मेरी रचनाओंके प्रद्योत (प्रभा) को देखकर मेरे प्रतिवेशी मेरे प्रति ईर्ष्या करने लगेंगे। मैं सारे प्रदेशमें प्रख्यात हो जाऊंगी और मेरे कारण वे भी समाजमें प्रभुविष्णु (शक्तिशाली) बन जायेंगे। तब मेरे सुहस्तोंसे दी हुई प्रत्येक वस्तु उनके लिये सुशुभ हो जायगी, मेरी हर बात सुश्रव (सुनने योग्य) होगी। जब पत्रिकाओंसे सुपारिश्रमिक आने शुरू होंगे तो हम लोग सुवित्त हो जायेंगे। मेरे माता-पिता भी सुविस्मित हुए बिना न रहेंगे। अपने सुवचनोंके कारण मुझे सुवदना, सुमुखी आदि कहलाते देर न लगेगी। यह सुविचार मेरे अंदर सुरूर लाते जा रहे थे।

मैंने देखा मैं पूरी तरहसे लालाजीके प्रभावमें आ गयी थी। और अब उन्हींकी तरह प्र, सु और स से अपने शब्दोंको सजाकर सुन्दर भाषा बना रही थी। लेकिन मुश्किल यह है कि मैं संस्कृतसे सुपरिचित नहीं हूं इसलिये कई बार उपसर्गोंमें भूलें हो जाती हैं, तब एक तरहसे खीझ आती है और सोचती हूं लिखना बंद कर दूं। लेकिन सोचना एक बात है और करना दूसरी। यह भी तो लगता है न कि मेरे न लिखनेसे मेरी ही नहीं, साहित्यकी भी हानि होगी।

खैर, बड़े ही परिश्रमसे एक सुन्दर-सी कहानी बनायी। इस बार मुझे विश्वास था कि साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, आजकल — जिसे भेज दूं वही उत्सुकतासे छापेगा और अधिक कहानियोंके लिये मांग करेगा। इतनी अच्छी चीजसे मैं उन्हें वञ्चित न करना चाहती थी, इसलिये इसे कहीं

भेजनेसे पहले उन्हें सुनानेकी उत्कण्ठा जाग उठी। उनके आनेमें अभी देर थी। सच मानिये संपादक जी, एक-एक पल एक-एक युगके समान बीत रहा था। इस तरहसे तो मैंने कभी उनकी राह न देखी थी। मैं उनके लिये सिर्फ आंखें ही नहीं, नाक, कान सब कुछ बिछाये बैठी थी। आज उन्हें कुछ ज्यादा देर हो गयी थी।

शामके सातके लगभग वे लौटे। देखनेसे बहुत थके हुए मालूम होते थे। मैंने सोचा मेरी कहानी उनमें नया जीवन डाल देगी और वे थकानको भूल जायेंगे। उन्होंने कपड़े बदलना शुरू किया और मैंने कहानी सुनाना। कुछ देरतक तो वे कुछ अनखके साथ ही क्यों न हो पर सुनते रहे, फिर जरा नाक भौं सिकोड़ी पर मैंने उधर ध्यान न दिया, सुनाती गयी। वे एकाएक भड़क उठे, कागज मेरे हाथसे छीन लिया और बोले, क्या परि-मुसीबत है। सारे परि-गांवकी सु-मुर्गियोंको प्र-हैजा हो गया है। उन्हें परि-दवाई देते-देते प्र-इंजेक्शन लगाते-लगाते सु-दम निकल गया। घर आते ही न प्र-चाय न प्र-पानी, परि-सुस्तानेके लिये मोहलत नहीं बस सुनो यह वाहियात परि-बकवास। चूल्हेमें जाय तुम्हारी कहानी और भाड़में जाय तुम्हारा साहित्य। खबरदार अबसे मुझे तंग किया है तो" और यह कहते-कहते मैं जान पाऊं उससे पहले मेरी कहानी चायके लिये दहकते हुए अंगारोंके सुपुर्द हो गयी। मैंने सिर पीट लिया। मुझे जो हानि हुई वह तो हुई ही, लेकिन इस दुर्घटनाके कारण विश्वसाहित्यकी जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति असंभव है।

जी चाहता है उनकी मुर्गियों और बकरियोंका गला घोंट दूं; फिर यही सोचकर चुप रह जाती हूं कि जाने दो पशुओंकी चिकित्सा करते-करते अपने-आप ....

तो देखिये सम्पादकजी, हम लोगोंकी कठिनाइयां आपकी कठिनाइयोंसे कम नहीं होतीं। लेकिन देखिये इस गाथाको अपनेतक ही रखिये, उन्हें इसकी बूतक न आने पाये। कहीं उन्हें पता लग गया कि मैं उनकी बातें औरोंको बताती हूं तो उनके अंदरका पशु न जाग उठे।

प्रधूपिता (कष्टमें पड़ी हुई)
सुलेखा

[पुरोधाके पिछले अंकमें सम्पादककी कठिनाइयोंके बारेमें एक लेख छपा था। उससे प्रेरणा पाकर श्रीमती सुलेखाने एक लेखिकाकी कठिनाइयां गिनायी हैं। पत्र मजेदार है, हम उसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर रहे हैं पर लेखिकाकी इच्छाके अनुसार और उनकी सुरक्षाकी दृष्टिसे इसे आप अपनेतक ही रखियेगा। इस बातका विशेष ध्यान रखिये कि इसकी गंध भी लेखिकाके 'उन' तक न पहुंचने पाये।

—सम्पादक]

* * *

न्योतेसे लौटते हुए

रातका समय था। चारों तरफ घुप अंधेरा छाया हुआ था। पृथ्वी काले कपड़ोंमें लिपटी हुई थी। ठंडी हवा सांय-सांय करके बड़ी तेजीसे बह रही थी। वह सारे अंग-अंगमें चुभती-सी जान पड़ती थी। सड़कोंकी सारी बत्तियां बुझ चुकी थीं। हवाका पेड़ोंसे फुसफुसाना सुनकर रोयें खड़े

हो जाते थे। हाथको हाथ नहीं सूझता था। उस रात्रिको हम लोगोंका मकान, जो शहरके बाहर अकेला खड़ा था, बड़ा ही भयानक जान पड़ रहा था। लगता था मानों प्रेतात्माएं उसके चारों ओर मंडरा रही हों।

मैं अपनी पत्नीके साथ एक न्योतेसे लौट रहा था। हम दोनों एक्का गाड़ीपर बैठे थे, गाड़ी मैं ही हांक रहा था। उस अंधेरी और डरावनी रातको केवल हमीं दो साहसी प्राणी थे जो कि अपने घरका रास्ता नाप रहे थे। साहस मेरा साथ छोड़ रहा था और मेरी पत्नी इतनी ज्यादा डर गयी थी कि वह मुझसे ऐसी चिपक गयी जैसे एक छोटा-सा बंदर अपनी मांसे चिपकता है। साहस दिखानेके लिये मैं उससे बातें करके डर भुलानेकी कोशिश करने लगा।

किसी तरह रातके करीब साढ़े ग्यारह बजे हम लोग अपने यहां जा पहुंचे। मैं जैसे ही दरवाजेकी चाबी घुमाने चला वैसे ही एक चीख सुनायी दी। डरके मारे मेरी घिग्घी बंध गयी, खून नाड़ियोंमें ही जम गया, हृदयकी गति रुक गयी और मेरी पत्नी तो बेहोश ही हो गयी।

बहुत माथा-पच्ची करनेके बाद भी मेरी समझमें न आया कि सब कुछ अच्छी तरह बंद होनेपर भी अंदर कोई कैसे हो सकता है? तभी मैंने एक आर्त्तनाद सुना——आह! मुझे मार डाला.....

मैंने वास्तवमें सीढ़ीसे किसीके बड़ी जल्दी उतरनेकी आवाज सुनी। फिर एक नारी-ध्वनि –ऐसा न करो....कृपा करके ऐसा न करो....हाय! यह खून.....वह पागल हो गया, उई मां! कटार लिये वह मेरी ही ओर बढ़ा चला आ रहा है......

मैंने साहस बटोरते हुए दरवाजा खोला और दबे कदमों अंदर घुसा। मेरी पत्नी तबतक होशमें आ चुकी थी। अंदर घुसकर बिजली जला देनेकी बात मेरे दिमागमें ही न आयी और मैं पंजोंके बल शयन-कक्षकी ओर पिस्तौल लेने चला क्योंकि मैं अपने-आपको हर समस्याका मुकाबला कर सकनेके लिये तैयार कर लेना चाहता था।

मैं जैसे ही कमरेमें घुसनेवाला था वैसे ही मैंने किसीको अपनी तरफ आते देखा। मैं उसी जगह जड़ बनकर खड़ा रहा और वहांसे एक इंच भी न हिल सका। मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं और शायद अपनी जिन्दगीमें पहली बार भगवान्को याद किया। थोड़ी देरके लिये चारों तरफ निस्तब्धता छा गयी और फिर किसीने मेरे कानोंमें फुसफुसाया — "मैं बदला लूंगा। अगर कत्ल न कर सका तो जहर दूंगा।"

मैंने हांफते हुए पूछा — "कौन है?" और आवाज रुंध गयी। मैं डरके मारे और बोल न सका किसीने कुछ जवाब न दिया सिर्फ एक रूखी हंसी सुनायी दी।

मैं, जिसने कभी भूत-प्रेतमें विश्वास न किया था आज उनके अस्तित्वका साक्षी बन गया। मुझे फिर लगा जैसे कोई कह रहा हो, "आओ, हम लोगोंका खेल देखो, उसमें भाग लो और आनंद करो।" मुझे लगा जैसे कोई शक्ति मुझे बैठककी ओर खींचे लिये जा रही है और मुझे कई मनुष्योंकी पद-ध्वनि और अस्पष्ट बोलियां सुनायी दीं। मैंने शब्दोंको पकड़नेकी कोशिश की किंतु असफल रहा। मेरी नसोंका तनाव बढ़ता जा रहा था। मैं भी बेहोश हो गया।

करीब पंद्रह मिनट बाद मुझे होश आया और मैं आंखें फाड़-फाड़कर बैठकको देखने लगा; तभी मैंने सुना — "यह विविध भारती है। इस समय रातके ठीक बारह बजे हैं। जो नाटक अभी हम लोगोंने खेला था वह शेक्सपीयरका प्रसिद्ध 'हैमलेट" था।"

इतना कहकर कलाकारोंके नाम सुनाये गये और फिर प्रोग्राम बंद हो गया।

उस समय मुझे याद आया कि न्योतेमें जानेसे पहले हम लोगोंने रेडियो खुला ही छोड़ दिया था।

—भूमा

पंचायतकी बैठक

(सुराज व कुराज)

—श्री रामरतन बडोला

सरपंचने कहा, एक जंगलमें एक शेरके दो मंत्री थे, हंस और तोता। दोनों वनराजको सदा उचित व सुन्दर सलाह दिया करते थे। सिंह भी उनकी उचित सलाह मानकर वनका राज करता था। वनमें शांति व सुख था क्योंकि शेरका मन्त्रिमंडल प्रजाकी भलाई की सोचता और वनोन्नति व विकासके कार्य किया करता। हां! कुछ दुष्ट प्राणी, इस सुख-साम्राज्यसे इसलिये असंतुष्ट थे कि उनको अपना उल्लू सीधा करनेका अवसर न मिलता था। उनमें गीदड़ और कौवा मुख्य थे। उन्हें सदा यह दुख रहता था कि वह अपनी चालबाजी व हथकंडे इस राज्यमें नहीं चला पाते और इस कारण गरीबीके दिन बिताने पड़ते हैं। नये-नये स्वादिष्ट भोजन व ऐश्वर्य उपलब्ध नहीं हो पाते। उन्हें कोई नहीं पूछता और सब उन्हें घृणाभरी दृष्टिसे देखते हैं। कोई उनकी राय नहीं मानता।

एक दिन दोनोंने सलाह की। विचार हुआ, राजाका दिल अपनी ओर खींचना चाहिये। उन्होंने निश्चय किया कि राजाको खुश करनेके लिये उसको उपयुक्त भेंट देनी चाहिये। भेंट देकर राजाको प्रसन्न करके उसे हंस व तोतेके खिलाफ भड़कायेंगे और स्वयं मंत्री बननेका यत्न करेंगे। यदि मंत्री बन गये तो फिर क्या है। जिन्दगी सुधर जायगी। जो कुछ चाहेंगे, करेंगे, क्योंकि सब कानून अपने हाथमें होंगे, नये कानून बनाना अपने हाथमें होगा और सत्ताका अधिकार पाकर कानूनको मनमाने ढंगसे लागू करना भी अपने बायें हाथका खेल होगा।

भेंट कौनसी ले आयी जाय? यह जटिल प्रश्न था। दोनों मित्र भेंटकी ढूंढ़में चल दिये। उन्होंने एक सुन्दर स्वस्थ तरुण गायको एक तालाबमें पानी पीते देखा। खुशीसे दोनोंकी बांछे खिल गयीं। इससे सुन्दर भेंट राजाके लिये और क्या हो सकती है, यह सोचकर वह गायके पास पहुंचे और हाथ जोड़कर नमस्कार किया, "मौसी! नमस्ते!"

सीधी गायने डरके मारे नमस्तेका उत्तर भी न दिया। वह अपने घरकी ओर जाने लगी।

"मौसी! नमस्तेका उत्तर भी न दोगी। नाराज हो क्या? अरे भाई, ठीक है, मालूम होता है चरकर मौसीका पेट नहीं भरा और मालिकन पूरा दाना चारा नहीं देती। पर कोई बात नहीं मौसी! हम तुम्हें ऐसी जगह ले जायेंगे जहां बस मखमली गुदगुदी घास ही उगी है। जिन्दगी भर खाती रहो तो खत्म न हो।" गीदड़ने हितैषी भावसे कहा।

"अरे हां! ठीक तो कहता है गीदड़ भाई! चलो न मौसी, तुम्हें वह जगह दिखा दें। देख लो तब चली जाना घर। अभी तो दोपहर ही है। शाम होनेमें तो कई घंटे हैं।" कौवेने कांव-कांवकी ध्वनिमें मौसीकी पीठपर बैठकर अनुनय की।

गीदड़ने हल्केसे मौसीकी टांग, चिरौरी करते हुए पकड़ ली और कौवा पर फड़फड़ाता हुआ आगे-आगे हो लिया। गायने सोचा, चलो, देख तो आयें। हर्ज ही क्या है? दुष्ट भी अच्छी सलाह दे तो मान लेनी चाहिये।

दोनों गायकी खुशामदमें लगे थे। रास्तेमें कभी कहींसे मुलायम घास और कभी स्वादिष्ट पत्तियां मौसीके लिये लाते और हर तरहसे सेवा-टहल करते। यदि कोई भी मक्खी मौसीकी पीठ अथवा गर्दनपर बैठ जाती तो कौवा कांव-कांव करता हुआ चट पर फड़फड़ाकर उसे उड़ा देता। गाय उनकी खुशामदोंसे बहुत प्रसन्न हो गयी और उन्हें अपना हितैषी समझने लगी।

गायको उन्होंने सिंहकी दृष्टिसे हटाकर एक अच्छे घासवाले मैदानमें छोड़ दिया और कुछ बहाना बनाकर सिंहके पास आ गये। सिंहराजसे उन्होंने विनती की। "हजूर! हम आपकी प्रजा हैं! यह हमें शोभा नहीं देता कि आपके पास खाली हाथ आयें। अतः एक तुच्छ भेंट सेवामें लाये हैं। स्वीकार कर हम दोनोंपर अनुग्रह कीजिये और प्रजाप्रेमका ज्वलंत उदाहरण दीजिये।"

वे सिंहको गाय दिखाने ले गये। गाय बेचारी अपने चरनेमें मस्त थी। उसने कुछ नहीं देखा। गीदड़ बोला, "महाराज! इससे सुन्दर भेंट हमें नहीं मिली। आशा है इस तरुण सुगंधित मांससे आपके जबड़ोंको परम शांति व जिह्वाको अतीव स्वाद तथा आनंद प्राप्त होगा।"

स्वस्थ गायको देखकर वास्तवमें सिंहके मुंहमें पानी आ गया। वह चाहता था कि तुरंत झपट मार दे, परंतु हंस व तोता उसी समय आ गये और राजाको मना किया — "महाराज! मंत्रिमंडलकी सलाह बिना लिये ऐसा काम न करें। आप नहीं जानते चिकने घड़ेमें छेद भी हो सकता है। घड़ेको देखकर ही न रीझना चाहिये और फिर अपनी प्रजापर दया करना आपका धर्म है और दीन भोले दुर्बल प्राणियोंके प्रति उचित न्याय जरूरी है। आपको जब अपना भोजन व ऐश्वर्य उचित मात्रामें मिल जाता है तो विलासिताके हित महाराज कोई ओछा काम न करें।"

परंतु इतना सुन्दर खाद्य छोड़ना सिंहको उचित न लगा। उसने सोचा कि इसके गर्म खूनमें जितना स्वाद होगा उतना तो इन्द्रपुरीकी सुरामें भी नहीं हो सकता। हाथ आयी संपदाको त्यागना मूर्खता है और यह तो भेंट है, इसपर मेरा संपूर्ण अधिकार है।

वह झपटना ही चाहता था कि हंस व तोतेने गायके पास जाकर उसे भगा दिया। सिंह अत्यधिक रुष्ट हो गया। उसने हंस व तोतेको निकाल दिया। गीदड़ व कौवेकी बन आयी। उन्होंने सिंहको उकसाना आरंभ किया — "हजूर! यह भी कोई मंत्री हुए जो आपके व्यक्तिगत मामलेमें हस्तक्षेप करते हैं। मानों आप राजा न होकर इनके अनुचर हों। वास्तवमें इन्होंने आपको कैद-सा कर लिया था, स्वतंत्र रूपसे कुछ भी न करने देते थे। आप वनके मालिक हैं, चाहे जो करें, आपका अधिकार है।" सिंह खुशामदसे बहुत खुश हुआ। उसने गीदड़ और कौवेको मंत्री बना दिया और उनकी सलाहपर चलने लगा। गीदड़ और कौवेकी बन गयी। राज्यभरमें हाहाकार मच गया। हंस और तोता यह अन्याय न सह सके। जिस राज्यमें दीन, भोले प्राणियोंपर अत्याचार किये जायं, जहां जीवन सुरक्षित न हो उस राज्यको मिट जाना चाहिये, यह सोचकर वह एक गांवमें गये और मुखियासे सारी रामकहानी कही। मुखियाने बंदूक लेकर सिंहको परलोक भेज दिया और उसकी खालको शानसे दीवारपर टांग दिया तथा वनको गांवके हितके लिये काममें लाना शुरू किया। गांववालोंको मुखियाकी कृपासे घास, लकड़ी व फल-फूलोंकी कमी न रही। गीदड़ और कौवा अपनी किस्मतको रोते हुए कहीं दूर चले गये। इसीलिये भाइयो! पंचायती कामोंमें निजी स्वार्थ लाना पाप है। सलाह जनहितमें ही देनी चाहिये। योग्य व्यक्तियोंको ही अधिकार सौंपे जायं। घूस लेने व देनेवाले दोनों पापी हैं क्योंकि उससे सच्चाईका गला घुटता है और सामाजिक पतन होता है।

मारीशसकी एक कथा

—वा. विष्णुदयाल

अठारहवीं शताब्दीमें मारीशस फ्रेंचोंद्वारा शासित था। सन् १७६७ में या लगभग आजसे दो शती पूर्व उस द्वीपमें फ्रांसके महान् लेखक बेरनार्दें दे सें प्यरे पधारे थे जहां वे तीन वर्ष रहे।

उन तीन वर्षोंके निवासके फलस्वरूप उन्होंने एक लघु उपन्यास रचा जिसका नाम "पाल और विर्जिनी" है। उपन्यासकारके जीवनकालमें ही अनेक देशोंमें इस पुस्तकका उलथा होने लगा। अनेक अनुवादकोंने अपने अनुवादके ये दो नाम रखे: "पाल और विर्जिनी — एक भारतीय कथा।" कहना न होगा कि यह मारीशस-विषयक उपन्यास है। इसे भारतीय कथा कहनेवाले अनुवादकोंको याद था कि इसमें भारतसे आये हुए भारतीयका ही नहीं अपितु उस देशसे लाये गये पक्षी, पौधे, पेड़ आदिका भी पग-पगपर उल्लेख है।

अपने युगमें भारतके इस फ्रांसीसी मित्रने देखा था कि भारत और मारीशसमें गाढ़ा संबंध था। कथा-वस्तु इस प्रकार है:

दो फ्रेंच परिवार उस नन्हें द्वीपमें रहते थे जो भारतीय सागरमें है और जिसका नाम मारीशस है।

एक परिवारमें एक पुत्रका जन्म हुआ जिसका पाल नाम पड़ा और दूसरेमें एक पुत्रीका जिसे विर्जिनी नाम दिया गया।

ये लोग एक नन्हीं नदीके तटपर निवास करते थे। इनका ग्राम मनोहर था। कहीं पहाड़ी थी तो कहीं चट्टान, पेड़ोंपर चिड़ियां आकर बसती थीं और अपने मधुर स्वरसे दोनों परिवारोंको मुग्ध करती थीं।

एक परिवारका एक दास था और दूसरेकी एक दासी थी। उन दिनों काले आदमी बाजारमें बिकते थे। उन्हींको दास या गुलाम कहा जाता था। ये लोग दासोंको अपने ही जैसे मानव समझते थे। ये दास कृतज्ञ थे और इनकी सेवा खूब यत्नसे करते थे।

एक दिन दोनों बालक सूर्य ढलनेतक न लौटे। दासोंको चिंता हुई और वे उनकी खोजमें निकल पड़े। एक स्वामिभक्त कुत्ता भी साथ था। उसीने बालकोंको सबसे पहले देखा। उसी घड़ी क्या कुत्ता, क्या दासोंके आनंदकी सीमा न रही। जब बालक अपनी माताओंसे मिले तो ऐसा लगा कि वे विदेश-यात्रा करके लौटे हैं।

पाल मनुष्य क्या था, वन-देवता था और विर्जिनी वन-देवी। वे पेड़ोंकी उम्रसे अपने उम्र जानते थे क्योंकि उनके जन्मके दिन नारियलके पेड़ जमीनमें लगा दिये गये थे। वे सूर्यको उगते देखकर जान जाते थे कि इसी तरह रात्रिके समाप्त होनेपर उठना चाहिये। वे सूर्य, तारे, चन्द्रमा, पेड़, लतासे शिक्षा लेते थे। ये स्कूल न जाते थे, इन्हें प्रकृतिकी पुस्तक जो पढ़नी थी।

बड़े और छोटे — सबका जीवन सुखसे बीतता था। एक बार फ्रांससे विर्जिनीकी नानीने धन भेजा। मारीशस फ्रेंचोंका था और लाबुरदोने राज्यपाल था। उसने स्वयं थैली विर्जिनीकी मांको पकड़ायी। धनके आते ही सुखकी इतिश्री हो गयी।

विर्जिनी फ्रांस चली गयी। उसकी नानी कर्कश स्वभावकी थी। उसे हमेशा ताने मारती रहती। उसने अपनी नातिनका विवाह किसी अधेड़के साथ करवाना चाहा।

विर्जिनी प्रत्येक चिट्ठीमें दुख प्रकट करती थी, अपने मारीशस स्थित परिवारसे पुनः मिलना चाहती थी। एक जहाजसे मारीशस लौटी पर पाल और अपनी माता, दास तथा स्वामिभक्त कुत्तेसे फिर मिलना बेचारीके भाग्यमें न लिखा था। जहाज मारीशसके समुद्रमें आ गया था। तूफानसे बार-बार सताये जानेवाले टापूके समुद्रमें उस युवतीके पृथ्वीपर पैर धरनेसे पहले चक्रवात आया।

जहाज डूब गया। समुद्र-तटपर जमघट था जिसने विर्जिनीको जलमें डूबते देखा। विर्जिनी सबको प्रिय थी। दर्शक फूट-फूटकर रोये। विर्जिनीका शव मिला जिसे केरलसे आयी हुई महिलाओंने नहलाया।

मनोहर ग्राममें सब लोग उदास हो गये, सबसे पहले पालकी मृत्यु हुई। उसके बाद दोनों परिवारोंके शेष सदस्य और उनका प्रिय कुत्ता मरा। ग्राम मनुष्योंसे शून्य हो गया।

घर-घरपर इन दोनों बालकोंकी चर्चा होने लगी। प्रत्येक मांकी यही इच्छा होने लगी कि मेरी कन्या विर्जिनीकी तरह हो। देशके कई स्थान ऐसे नामोंसे पुकारे जाने लगे जो पाल और विर्जिनीकी कथाका स्मरण कराते हैं। अब भी एक खाड़ीका नाम समाधिकी खाड़ी है क्योंकि वहीं विर्जिनीकी लाश मिली थी।

मारीशसकी यात्रा करनेवाले उस गांवको देखने जाते हैं चाहे उन्हें उस द्वीपमें एक ही दो दिन क्यों न ठहरना पड़े। ज्यों-ज्यों उसके निकट आते हैं वे बच्चों, ग्रामीणों आदिसे प्रश्न करने लगते हैं, क्या आप बता सकते हैं कि विर्जिनी और पालकी झोंपड़ियां किस तरफ थीं?

रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने बचपनमें यह पुस्तक पढ़ी थी और उससे बहुत प्रभावित हुए थे।

* * *

पुस्तक-परिचय

ध्यान और एकाग्रता : ले. श्रीमां-श्रीअरविंद। प्रकाशक––अदिति कार्यालय, पांडिचेरी-२। पृ. सं. ११०। मूल्य रु. ३.००

इस पुस्तकका नाम ही इसके विषयको स्पष्ट सूचित करता है। श्रीमाताजी तथा श्रीअरविंदके लेखोंमेंसे यह पुस्तक संकलित की गयी है। श्रीअरविंदयोगके साधकोंके लिये तो यह पुस्तक उपयोगी है ही, अन्य साधनाओंके साधकोंको भी इससे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

गीता-विज्ञान : संकलनकर्त्ता केशवदेव आचार्य, प्रकाशक दिव्य जीवन साहित्य-प्रकाशन, पांडिचेरी-२ पृ. सं. ४२१; मूल्य १०.५० ।

श्रीअरविंदने गीताके बारेमें बहुत-से लेख लिखे थे जिन्हें एसेज आन दि गीताके नामसे प्रकाशित किया गया था। केशवदेवजीने उन्हींके आधारपर गीताका पदच्छेद, अन्वय और अनुवाद हिंदीमें कर दिया है और यत्र-तत्र आवश्यक बातें पाद-टिप्पणियोंके रूपमें दे दी हैं। श्रीअरविंदने गीताको एक और ही दृष्टिसे देखा है। प्रस्तुत पुस्तकमें हमें उसकी एक झांकी मिल सकती है। जिन लोगोंको मूल पढ़नेका अवसर नहीं मिलता उनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। साधारण पाठककी दृष्टिसे दाम कुछ अधिक है।

सत्यका रहस्य : लेखक और प्रकाशक वही; पृ. सं. ३०४; मूल्य ५.५०।

आजकल जब कि सामान्य जीवनसे सत्य और नैतिकताको देश-निकाला दे दिया गया है, शास्त्रीजीने धारासे उल्टा चलनेका प्रयास किया है। इस पुस्तकमें 'मधुरता, मितभाषण, सरलता, निर्भयता, सहिष्णुता, आत्मनिरीक्षण, व्यापारमें सचाई, वकालत, गवाही, न्याय आदिके बारेमें छोटे-छोटे प्रकरण दिये गये हैं और प्रत्येकमें भारत तथा अन्य देशोंके महान् व्यक्तियोंके वचन तथा उनके जीवनकी शिक्षाप्रद घटनाएं दी गयी हैं। पुस्तक उपयोगी है।

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश : ले. स्वामी सत्यानन्दजी महाराज; प्रकाशक वेद प्रचारक मण्डल; ६०।१३ रोहतक रोड, नयी दिल्ली-५; पृ. सं. ५७०; मूल्य ३.२५।

स्वामी दयानन्दका पावन जीवन बड़ा ही प्रेरणादायक है। जिन दिनों भारत बहुत ही गिरी हुई अवस्थामें था उन दिनों स्वामीजीने जन्म लेकर वेदोंका प्रकाश फैलाया और अपने जीवनके द्वारा ब्रह्मचर्य और सत्यनिष्ठाका उदाहरण जगत्के सामने रखा। स्वामीजी अद्वितीय तार्किक होनेके साथ-साथ परम भक्त भी थे। उन्होंने विष देनेवालेकी जीवन-रक्षा की और मरते दम उनके मुंहसे निकला, प्रभु! तूने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूरी हो। यह एक घटना ही उनकी भक्तिका अच्छा उदाहरण है, किंतु खेद है कि आर्यसमाजने उनके तर्क पक्षको तो खूब उभारा पर श्रद्धाको भुला दिया और इस तरह विकलांग हो गया। स्वामी सत्यानन्दजीके एक-एक शब्दसे श्रद्धा टपकती है। उनका लिखा हुआ यह जीवन-चरित्र बहुत ही रोचक है। स्वामी दयानन्दके बारेमें बहुत अच्छी जानकारी दी गयी है। उनके हास्यको भी याद रखा गया है। ३.२५ में इतनी अच्छी पुस्तक देनेके लिये प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

कल्याण-मार्गका पथिक : ले. स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी, प्रकाशक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नयी दिल्ली–१; मूल्य ५० पैसे।

स्वामी श्रद्धानन्दकी जीवनी एक रोमांससे कम नहीं है। बाल्यावस्थामें उनकी मां उन्हें एक जादूगरसे बचाकर रखती थी जो अपने मंत्र-बलसे युवकोंको भी अपने वशमें कर सकता था। उन्हें मालूम न था कि यही जादूगर उनके बच्चेको पूरी तरह अपने वशमें कर लेगा। यह जादूगर और कोई नहीं, स्वामी दयानन्द थे। श्रद्धानन्दजी (उस समयके लाला मुंशीराम) की उठती जवानीमें शराब-कबाबका दौर खूब चला। फिर आचार्य दयानन्दके प्रभावमें आकर एक नये तपस्वी जीवनका आरंभ हुआ और श्रद्धानन्द संन्यासी भारतके कर्मठ तपस्वियोंमें बहुत ऊंचा स्थान पा गये। इस पुस्तकमें उनकी अपनी कहानी उन्हींके शब्दोंमें है। स्वामीजीने बिना कुछ छिपाये अपनी हर बात इसमें रख दी है। इसे पढ़कर उनके प्रति विशेष आदरका भाव उत्पन्न होता है और यह आशा बंधती है कि दृढ़ निश्चय और दिलकी सच्चाईके साथ प्रयास करनेसे क्षुद्रतासे बाहर निकला जा सकता है।

हाजीपीरका दर्रा : ले. राजकुमार; प्रकाशक हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१; पृ. सं. १००; मूल्य १.५०।

हाजीपीरका दर्रा हिन्द-पाक युद्धमें बहुत नाम पा गया था। उसकी भूमिकामें इस नाटकमें श्री राजकुमारने कश्मीरके लिये जो लड़ाई हुई थी, उसका बड़ा अच्छा चित्र खींचा है। कश्मीरके स्वदेश-प्रेमी मुसलमानों और पाकिस्तानी भाड़ेके टट्टुओंकी अच्छी तुलना की गयी है। इस विषयपर लिखते हुए भी लेखक परस्पर वैमनस्य और घृणाको दूर रख सका है यह प्रशंसनीय है।

वनौषधि-शतक : ले. वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा; प्रकाशक वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता-६; पृ. सं. २१०; मूल्य ५.००।

आजका मानव-जीवन बहुत पेचीदा होता जा रहा है। नये-नये रोग पैदा होते जा रहे हैं और उनके लिये भांति-भांतिके महंगेसे महंगे उपचार निकल रहे हैं। आयुर्वेदकी मान्यता है कि जिस प्रदेशमें जो रोग होते हैं उसमें उसकी दवा भी पैदा होती है। लेकिन हम पश्चिमके प्रकाशसे कुछ ऐसे चौंधिया गये हैं कि खांसी ठीक करनेके लिये अपने द्वारपर उगे हुए वासाको लेनेकी जगह बोतलमें बंद 'सिरप वासाका' खरीदना पसंद करते हैं। इस पुस्तकमें हर जगह पायी जानेवाली घरेलू १०१ औषधियोंके गुण गिनाये हैं और उनकी प्रयोग-विधि बतायी है। रंगीन चित्रोंके कारण पुस्तक और भी उपयोगी हो गयी है। हम इस प्रकारकी अन्य पुस्तकोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आधुनिक खाद्य-चिकित्सा : ले. राजेन्द्र प्रताप; प्रकाशक आरोग्य निकेतन प्रकाशन, हरद्वार; पृ. सं. १०५; मूल्य ३.००।

इस पुस्तकमें प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिके आधारपर भोजनके बारेमें अच्छी जानकारी दी गयी है। साधारण स्वास्थ्यको ठीक रखनेकी विधि, मिट्टी-पानीकी चिकित्सा आदिपर प्रकाश डाला गया है।

पचास साल बाद : ले. धर्मचन्द सरावगी; प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१; मूल्य १.००।

संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् पं. सातवळेकरजीका कहना है कि प्राचीन भारतमें सत्तर-पचहत्तर वर्षके लोग युवक गिने जाते थे। आज चालीसतक पहुंचते-पहुंचते लोग अपनेको बूढ़ा मानने लग जाते हैं। श्रीसरावगीने इस पुस्तकमें ५० वर्षसे ऊपरकी आयुवालोंके लिये स्वाभाविक आहार-विहार आदिके बारेमें सलाह दी है ताकि वे अपने स्वास्थ्यको अच्छा रख सकें।

विज्ञानकी कहानियां : ले. आर. डी. विद्यार्थी तथा श्यामसरन अग्रवाल; प्रकाशक विद्यार्थी पुस्तक-भवन, लखनऊ। मूल्य १.००।

भूमिकामें स्वयं लेखकने ही कह दिया है, "एक बार आरंभ करके अंततक अबाध उत्सुकतासे पढ़कर ही रखी जाने योग्य यह पुस्तक......" इसके बाद हमारे कहनेके लिये क्या रह जाता है? हम उनके कथनपर अपनी मुहर लगा देते हैं।

गुदड़ीके लाल : ले. श्यामसरन अग्रवाल; मनोज प्रकाशन, आगरा; मूल्य ०.५०।

सरल भाषामें लिखी गयी छोटी-छोटी दस कहानियोंका संग्रह है। छोटे बच्चों और प्रौढ़ शिक्षा-योजनामें हिंदी पढ़नेवालोंके लिये पुस्तक बहुत अच्छी है। हम लेखकसे और चीजोंकी आशा करते हैं।

ज्वालामुखी : अनन्त गोपाल शेवड़े; सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली; मूल्य ३.५०

अनन्त गोपाल शेवड़े हिंदीके सुपरिचित लेखक हैं। प्रस्तुत उपन्यास उनके निजी अनुभवोंके आधारपर लिखा गया है। उन्हें सन् ४२ में जेलमें रहते हुए विनोबाजीके सत्संगसे लाभ उठानेका अवसर भी मिला जिसने सोनेपर सुहागेका काम दिया। पुस्तक पढ़कर अभयकुमार और विजयाके त्यागका चित्र हमारी आंखोंके सामने तैरता रहता है। और मांकी अनुपम साधना अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहती। आजकलके स्वार्थपूर्ण वातावरणको देखकर जब मनमें खीझ हो उठे तो यह उपन्यास याद दिलाता है कि मानव का दूसरा पहलू भी है।

नई इमारत : ले. अंचल, प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, मूल्य १०.००।

१९४२ में भारतका एक बहुत बड़ा भाग अंग्रेजी राज्यके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था। प्रस्तुत उपन्यासमें लाठी, डंडे और छीनी हुई बन्दूकोंसे लैस भारतीय और बागी जनतापर गोलियां बरसाती हुई गोरी सेनाकी मुठभेड़के अच्छे चित्र खींचे गये हैं। महमूद, आरती, शीला आदिको भूलना आसान नहीं है।

लय : नीरज द्वारा सम्पादित हिन्दी नव लेखनका प्रतिनिधि त्रैमासिक साहित्य संकलन। एक प्रति का मूल्य १)।

सम्पादकके रूपमें नीरजका नाम इस संकलनका परिचय देनेके लिये काफी है। समसामयिक कविता और कहानीके बारेमें अच्छे लेख हैं। गीतके बारेमें नीरजका सम्पादकीय पढ़ने योग्य है। सारे अंकमें अगर कमी है तो बस नीरजके अपने गीतोंकी। आशा है अगले अंकोंमें यह भी पूरी कर दी जायगी।

दक्षिण भारती

(दक्षिण भारतकी भाषाएं सीखिये)

पाठ २२

अब हम क्रियाओंके कुछ साधारण रूप देख लें। वर्तमान कालके रूप हम पहले पढ़ चुके हैं। जिन लोगोंने वह पाठ नहीं पढ़ा है वे भी वाक्योंके प्रयोगसे इन्हें समझ जायेंगे। यहां हम फिरसे याद दिला दें कि दक्षिणकी भाषाओंमें लिंगका झगड़ा नहींके बराबर है। केवल अन्य पुरुषमें क्रिया लिंगके अनुसार बदलती है। और वहां भी नियम बहुत सरल है। थोड़ासा अभ्यास हो जानेपर ठीक उपयोग किया जा सकता है।.

हिन्दी :	मैं था, मैं थी।	तू था, तू थी।	वह था, वह थी।
तमिल :	नान इरुन्देन।	नी इरुन्दाय।	अवन इरुन्दान, अवळ इरुन्दाळ।
तेलुगू :	नेनु उंडिनानु।	नीवु उन्नावु।	वाळु उन्नाळु। आमे उन्नवि।
कन्नड़ :	नानु इद्देनु।	नीनु इद्दे।	अवनु इद्दनु। अवळु इद्दळु।
मलयालम :	ञान आयिरुन्नु।	नी आयिरुन्नु।	अवन आयिरुन्नु। अवळ आयिरुन्नु।

हिन्दी :	वह था (नपुंसक)।	हम थे, हम थीं।	तुम थे, तुम थी।.
तमिल :	अदु इरुन्ददु।	नाम इरुन्दोम।	नीर इरुन्दीर।
तेलुगू :	अदि उन्नदि।	मेमु उन्नामु।	मीरु उन्नारु।
कन्नड़ :	अदु इद्दितु।	नावु इद्देवु।	नीवु इद्दिरि।
मलयालम :	अतु आयिरन्नु।	ञाङ्डळ।	निङ्डळ।

हिन्दी :	वे थे।	वे थीं।	वे थे (न)।	सम्मानसूचक आप थे, आप थीं।
तमिल :	अवर इरुन्दाळ।	अव।	अवै इरुन्दन।	नींगळ इरुन्दीर्हळ।
तेलुगू :	वारु उन्नारु।	वारु उन्नारु।	अवि उन्नवि।	तमरु उन्नारु।
कन्नड़ :	अवरु इद्दरु।	अवरु इद्दरु।	अवु इद्दवु।	तावु इद्दिरि।
मलयालम :	अवर आयिरन्नु।	अवर आयिरन्नु।	अव आयिरुन्नु।	तांकळ आयिरन्नु।

आइये, अब कुछ वाक्य बनायें। आप हिन्दी पढ़े बिना ही अर्थ समझनेकी कोशिश कीजिये। जब जरूरत हो तो हिन्दी देख लीजिये। कुछ नये शब्द भी दिये गये हैं। उन्हें पहचानिये।

हिन्दी : १. तू अच्छा लड़का है। २. वह अच्छी लड़की है। ३. यह अच्छी कुरसी है। ४. आप बहुत अच्छे आदमी हैं। ५. मैं यहां हूं। ६. आप कहते हैं। ७. मैं आपको मिठाई देता हूं। ८. मैं श्रीअरविन्दाश्रमसे आ रहा हूं। ९. यह श्रीअरविन्दकी पुस्तक है। १०. यह फूल-का चित्र है। ११. मैं कलमसे लिखता हूं। १२. तू उसे देख। १३. षण्मुखम् अच्छा लड़का है। १४. सावित्री अच्छी लड़की थी। १५. मेरे पास एक अच्छी किताब थी। १६. आप कहां रहते थे? १७. तू कहां था? १८. मैं खाता था। १९. तुम जाते थे। २०. वे जाती थीं। २१. वह जाती थी। २२. हम जाते थे। २३. तुम गाते थे। २४. वह रोता था। २५. आप घर जाइये। २६. तुम बाजार जाओ। २७. मैं अभी जाता हूं। २८. तुम क्या कर रहे हो? २९. मुझे काम है। ३०. मैं भी काम करता हूं।

तमिल : १. नी नल्ल पैयन। २. अवळ नल्ल पेण। ३. इदु नल्ल नार्काली। ४. नींगळ मिह्वुम नल्ल मनिदर। ५. नान इंगे इरुक्किरेन। ६. नींगळ सोलँगिरीहंळ। ७. नान उंगळुकु मिठाइ तुरुहिरेन। ८. नान श्रीअरविन्द्राश्रमत्तिलिरुन्दु वन्दुकोंडिरुक्किरेन। ९. इदु श्रीअरविन्दरुडैय पुस्तगम। १०. इदु पूविन पडम। ११. नान पेनाविनाल एजुदुगिरेन। १२. नी अवनैप्पार। १३. षण्मुखम् नल्ल पैयन। १४. सावित्री नल्ल पेण। १५. ऐन्निडम ओरु नल्ल पुस्तगम इरुन्ददु। १६. नींगळ एंगे वसितु वन्दीहंळ? १७. नी एंगे इरुन्दाय? १८. नान सापिट्टुवन्देन। १९. नीर पोय वन्दीर। २०. अवर्हळ पोय वन्दनर। २१. अवळ पोय कोंडिरुन्दाळ। २२. नांगळ पोयकोंडिरुन्दोम। २३. नीर पाडि वन्दीर। २४. अवन अजुदुकेंडिरुन्दान। २५. नींगळ वीटिर्कु पोंगळ। २६. नीर कडैवीदिक्कु पोम। २७. नान इप्पोजुदे पोहिरेन। २८. नीर एन्न सेयदुकोंडिरुक्कीरीर? २९. एनक्कु वेलै इरुक्किरदु। ३०. नान कूड (नानुम) वेलै सेयहिरेन।

तेलुगू : १. नीवु मंचि बालुडवु। २. अदि मंचि बालिका। ३. इदि मंचि खुरचि। ४. तमरु चाला मंचि मनिषि। ५. नेनु इक्कड़ उन्नानु। ६. तमरु चपतुन्नारु। ७. नेनु तमक्कु मिठाई इच्चुचुन्नानु। ८. नेनु श्रीअरविन्दाश्रमनुंचि वोस्तुन्नानु। ९. इदि श्रीअरविन्दुनि पुस्तकम। १०. इदि पुष्पमयोक्क चित्रम। ११. नेनु कैलमतो व्रास्तानु। १२. नीवु वाळिवि (पुं) चूड। १३. षणमुखम चाला मंचि बालुडु। १४. सावित्री मंचि बालिका। १५. न वद्दा वोक मंचि पुस्तकम उण्डिनदि। १९. तमरु येक्कड़ उण्टारु। १७. नीवु येक्कड़ उन्नावु। १८. नेनु तिनचुन्नानु। १९. मीरु पोवुचुन्नारु। २०. वारु पोवुचुन्नारु। २१. आमे पोवुचुन्नदि। २२. मेमु पोवुचुन्नानु। २३. मीरु पाडुचुन्नारु। २४. वाडु एडुस्तुन्नाडु। २५. तमरु इंटिकि पोण्डी। २६. मीरु बजारु पोण्डी। २७. नेनु इप्पुड़े वोचुन्नानु। २८. मीरु एमि चेस्तुन्नारु। २९. नाकु पनि उन्नदि। ३०. नेनु कूड पनि चेस्तुन्नानु।

कन्नड़ः १. नीनु ओळळेय होडग। २. अवळु ओळ्ळेय होडुगि। ३. इदु ओळ्ळेय कुर्ची। ४. तावु बहळ ओळ्ळेय मनुष्यरु। ५. नानु इल्लि इद्देने। ६. तावु हेळुत्तीरि। ७. नानु तमगे मिठाई कोडुत्तेने। ८. नानु श्री अरविन्दाश्रमदिन्द बरुत्तिद्देने। ९. इदु श्रीअरविन्दर पुस्तक। १० इदु पूविन चित्र। ११. नानु पेन्निनिन्द (कलमनिन्द) बरेयुत्तेने। १२. नीनु अदन्नु नोडु। १३. षणमुखनु ओळ्ळेय होडुगनिद्द। १४. सावित्री ओळ्ळेय होडुगियिद्दळु। १५. नन्न वळि ओन्दु ओळळेय पुस्तकविद्दितु। १६. तावु येल्लि इरुतिद्दिरि। १७. नीनु येल्लि इद्दे। १८. नानु अटमाडुत्तिदे। १९. नीवु होगुत्तिद्दिरि। २०. अवरु होगुत्तिद्दरि। २१. अवळु होगुत्तिद्दळु। २२. नावु होगुत्तिद्देवु। २३. नीवु हाडुत्तिद्दिरि। २४. अवनु अडुत्तिद्द। २५. तावु मनेगे होगिरि। २६. नीवु अंगडिगे होगिरि। २७. नानु ईगले होगुत्तेने। २८. नीवु एनु माडुत्तिद्दीरि। २९. ननगे केलसविदे। ३०. नानू केलस माडुत्तिद्देने।

मलयालम : १. नी नल्ल कुटि आकुन्नु। २. अवळ नल्ल कुटि आकुन्नु। ३. इतु नल्ल कसेलयाकुन्नु। ४. निङङ्ळ वळरे नल्ल आळ आकुन्नु। ५. ञान इविटे उण्डु। ६. निङङ्ळ संसारिक्कुन्न्। ७. ञान निङङळक्कु मिठाई तरुन्नु। ८. ञान अरविन्दश्रमत्तिलतिन्नु वरिचयाणु। ९. इतु श्रीअरविन्दोविण्टे पुस्तकमाण। १०. इतु ओरु पुष्पत्तिण्टे चित्रम। ११. ञान पेनकोण्टु एजुदुन्नु। १२. नी अद्देहत्ते काणु। १३. षणमुखम नल्ला कुटिया यिरन्नु। १४. सावित्री नल्ला कुटियायिरन्नु। १५. एण्डे कैवशम नल्लोरु पुस्तकम उण्डायिरन्नु। १६. निङङ्ळ एविडेयाणु तामसिकुन्नतु? १७. नी एविटे आयिरिन्नु। १८. ञान भक्षिक्कुक आयिरन्नु। १९. निङङ्ळ पोवुक आयिरन्नु। २०. अवर पोवुक आयिरन्नु। २१. अवळ पोवुक आयिरन्नु। २२. ञाङ्गळ पोवुग आयिरन्नु। २३. निङङ्ळ

पाड्ग आयिरन्नु। २४. अवन करयुक आयिरन्नु। २५. तांकळ वीटिलेक्कु पोवु।. २६. निङङळ बाजारिलेकु पोवुगा। २७. ञान इप्पोड़ पोगाम। २८. निङङळ एन्ता आणु चेय्युन्नतु। २९. एनिक्कु जोली उण्टु। ३०. ञानुम जोलि चेय्युन्नु।

पाठ २३

हिन्दी	तमिल	तेलुगू	कन्नड़	मलयालम
जाग	विळि	तिम्मु	येच्चरवागु	उणरुक
सो	तूंगु	निद्रिंचु	निद्देमाळु	उरंङुक
उठ	एजुविरु	ले	येळु	एजुन्नेलकुक
पढ़	पडि	चदुवु	ओदु	वायिक्कुक
लिख	येजदु	व्रायु	बरे	एजुतुक
चल	नड	पद, नडु	नडि	नटक्कुक
जल्दी	सीक्किरम	तोन्दरगा	बेग	वेगम
देरसे	तामदमाह	आलस्यमुगा	निदानवागि	वैकियिट्टु
अभी	इप्पोळुदे	इप्पुड़े	ईगले	इप्पोळतन्ने
पीछे	पिन्नाल, पिरहु	तरुवाता	हिन्दे, अनन्तर	पिन्निल
जरूर	कट्टायम	तप्पक	जरूर	तीर्चयायुम्
हमेशा	एप्पोजुदुम	एल्लप्पडु	यावागलो	एप्पोजुम
कभी	एप्पोजुदावदु	एप्पुडु	वोम्मे	ओरिक्कलुम
कभी कभी	सिल समयम	अप्पुडु अप्पुडु	भावागलादुरु	चिलप्पोळ
कभी नहीं	ओरुपोजुदुमिल्लै	एप्पुडु लेदु	यावागलू इल्ल	ओरिक्कलुमिल्ल

अब आप निम्नलिखित वाक्योंको पढ़कर उनका अर्थ समझनेकी कोशिश कीजिये। इनमें भूतकालकी क्रियाओंका प्रयोग किया गया है। जहां समझमें न आये वहीं हिन्दी देखिये।

हिन्दी : १. वह सोया। २. सीता रोयी। ३. मैंने खाया। ४. तू आयी। ५. राम गया। ६. उसने पढ़ा। ७. सीताने चिट्ठी लिखी। ८. रामने चिट्ठी लिखी। ९. मैंने चिट्ठी लिखी। १०. उन्होंने चिट्ठी लिखी। ११. जल्दी चलो। १२. वह देरसे आया। १३. मैं जरूर आया था। १४. अभी चलो। १५. कभी-कभी राम भी आता है। १६. अभी जाओ, पीछे आना। १७. तुम हमेशा देरमें आते हो। १८. हमेशा नहीं, कभी-कभी। १९. यह आदत अच्छी नहीं है। २०. वह कभी नहीं सोता।

तमिल : १. अवन तूंगिनान। २. सीता अजुदाळ। ३. नान सप्पिटेन। ४. नी वन्दाय। ५. रामन पोनान। ६. अवन पडित्तान। ७. सीता कडिदम एजुदिनाळ। ८. रामन कडिदम एजुदिनान। ९. नान कडिदम एजुदिनेन। १०. अवर्गळ कडिदम एजुदिनार्हळ। १२. सीक्किरम नड। १२. अवन तामदमाय वन्दान। १३. नान कट्टायम वन्दिरुन्देन। १४. इप्पोजुदे नड (पो)। १५. सिल समयम रामनुम वरुहिरान। १६. इप्पोजुदे पो, पिरहु वरलाम। १७. नीर एप्पोजुदुम तामदमाह वरुहिरीर। १८. एप्पोजुदम इल्लै, सिल समयम। १९. इन्द पजक्कम नल्लदल्ल। २०. अवन ओरुपोजुदुम तूंगुवदिल्लै।

तेलुगू : १. वाडु निद्रिचुन्नाडु। २. सीता येट्चुचुन्नदि। ३. नेन तिन्नानु। ४. नीवु वोच्चावु। ५. रामुडु पोइनाडु। ६. वाडु सदिविनाडु। ७. सीता उत्तरम व्रासिनदि। ८. तमुडु उत्तरम व्रासिनाडु। ९. नेनु उत्तरम व्रासिनानु। १०. वारु उत्तरम व्रासिनारु। ११. तोन्दरगा पदा। १२. वाडु आलस्यमुगा वोञ्चिनाडु। १३. नेनु तप्पगा वच्चा। १४. इप्पुड़े पदा। १५. अप्पुडु अप्पुडु रामुडु कूड वोस्ताडु। १६. इप्पुडु पो तरवातरा। १७. मीरू एप्पुडु आलस्यमुगा वोच्चेदरु। १८. एप्पुडु कादु, अप्पुडु अप्पुडु। १९. ई एलवाटु मंचिदि कादु। २०. वाडु एप्पुडु निद्रपोडु।

कन्नड़ : अवनु निद्दे माडुत्तिद्द। २. सीता अडुत्तिद्दड़ु। ३. नानु अट माड़िदे। ४. नीनु वन्दी। ५. रामनु होदनु। ६. अवनु ओदिदनु। ७. सीतयो कागदवन्नु बरेदळु। ८. रामनु कागदवन्नु बरेदनु। ९. नानु कागदवन्नु बरेदेनु। १०. अवरु कागदवन्नु बरेदरु। ११. वेग होरडिरि। १२. अवनु तड़बागि वन्दनु। १३. नानु जरुरु वन्दिद्दे। १४. ईगले होरेडरि। १५. यावागलादरू रामनू बरुत्ताने। १६. ईग होगि, आमेले बन्निरि। १७. नीवु यावागलू तड़वागि बरुत्तीवि। १८. यावागलु अल्ल, वोम्मम्मे मात्र। १९. ई पद्धति ओळेळेयदल्ल। २०. अवनु यावगलो निद्रेमाडु वुदिल्ल।

मलयालम : १. अवन् उरङ्ङि। २. सीत करञ्ञु। ३. ञान् तिन्नु। ४. नी वन्नु। ५. रामन्षोयी। अवन् (अवळ्) वायिच्चु। ७. सीत एजुत्तुवायिच्चु। ८. रामन एजुत्तु एजुति। ९. ञान एजुत्तु एजुति। १०. अवर (अद्देहम) एजुत्तु एजति। ११. वेगम नटक्कु। १२. अवन वैकियिट्टुवन्नु। १३. ञान तीर्चयायुम वन्नि रन्नु। १४. इप्पोळ तन्ने पोकु। १५. चिलप्पोळ रामनुम वरारुण्टु। १६. इप्पोळ् तन्ने नटक्कु, पिन्निल् वरु। १७. निङङल एन्नु वैकिवरुन्नु। १८. एप्पोजुं वेंटा, चिलप्पोळ मात्रम। १९. ई स्वभावं नल्ल तल्ला। २०. अवन ओरिक्कलुम उरङ्ङिङल्ला।

पाठ २४

भविष्य काल

हिन्दी	: मैं जाऊंगा (गी)।	तू जायगा (गी)।	वह जायगा	वह जायगी।
तमिल	: नान पोवेन।	नी पोवाय।	अवन पोवान।	अवळ पोवाळ।
तेलुगू	: नेनु पोयेदबु।	नीवु पोयुदवु।	वाडु पोवुनु।	आमे पोवुतु।
कन्नड़	: नानु होगेंवेनु।	नीनु होगुवि।	अवनु होगुवनु।	अवळु होगुवळु।
मलयालम	: ञान पोकुम।	नी पोकुम।	अवन पोकुम।	अवळ् पोकुम।

हिन्दी	: वह जायगा (न)।	हम जायेंगे (गी)।	तुम जाओगे (गी)।	आप जायेंगे (गी)
तमिल	: अदु पोदुम।	नाम पोवोम।	नीर पोवीर।	नींगळ पोवीर्हळ।
तेलुगू	: अदि पोवुनु।	मेमु पोयेदमु।	मीरु पोयेदरु।	तमरु पोयेदरु।
कन्नड़	: अदु होगुवदु।	नावु, होगुवेवु।	नीवु होगुविरि।	तावु होगुविरि।
मलयालम	: अतु पोकुम।	ञाङङळ पोकुम।	निङङळ पोकुम।	तांकळ् पोकुम।

हिंदी	: वे जायेंगे।	वे जायेंगे (न)।	हो सकता है।	नहीं हो सकता।	जा सकता है।
तमिल	: अवर्गळ पोवार्हळ।	अवै पोवुम।	मुड़ियुम।	मुड़ियादु।	पोह मुड़ियुम।
तेलुगु	: वारु पोयेदरु।	अवि पोपुवु।	वोत्सुनु।	अदि कादु।	पो वोत्सुतु।
कन्नड़	: अवरु होगुवरु।	अवु होगुववु।	अग्ग बल्लदु (माडब)।	आगलारदु।	होग बल्लदु।
मलायलम	: अवर पोकुम।	अव पोकुम।	आकाम्।	आविल्ला।	पोकाम।

अब उसी तरह वाक्य देखिये :

हिन्दी : १. मैं सो सकता हूं। २. तू रो सकता है। ३. वह खा सकता है। ४. वह नहीं जा सकती। ५. राम लिख सकता है। ६. आप कर सकते हैं। ७. हम बोल सकते हैं। ८. वह नहीं ला सकता। ९. मैं आऊंगा। १०. वह घर जायेगा। ११. आप कहां बैठेंगी? १२. आप रोटी देंगे। १३. मैं फल दूंगा। १४. विह मिर्च देखता है। १५. मैं अरहर देखूंगा। १६. मैं तमिल पढ़ सकता हूं। १६. आप मलयालम पढ़ सकते हैं। १८. उनका बेटा दिल्ली जायगा। १९. आपकी बेटी त्रिवेंड्रम जायेगी। । २०. मैंने विशाखापट्टणम् देखा। २१. बंगलोर दूर नहीं। २२. मैंने मद्रास नहीं देखा। २३. आजके लिये इतना काफी।

तमिल : १. नान तूंग मुडियुम। २. नी अज मुडियुम। ३. अवन साप्पिड मुडियुम। ४. अवळ पोह मुड़ियादु। ५. रामन एजुद मुडियुम। ६. नींगळ सेय्य मुडियुम। ७. नांगळ पेस मुडियुम। ८. अवन कोंडुवर मुडियादु। ९. नान वरुवेन। १०. अवन वीटिर्कु पोवान। ११. नींगळ ऐंगे उट्कारुवीर्हळ? १२. नींगळ रोटी तरुवीर्हळ। १३. नान पजम तरुवेन। १४. अवन मिळहाय पार्किरान। १५. नान तुवरम परुप्पै पार्पेन। १६. नान तमिळ पडिक्क मुडियुम। १७. नींगळ मलयालम पडिक्क मुडियुम। १८. अवर्गळुडैय महन डिल्लिक्कु पोवान। १९. उंगळुडैय महळ तिरुवनन्दपुरित्तिर्कु पोवाळ। २०. नान विसागपट्टिनम पार्तेन। २१. बंगळूर दूरमिल्लै। २२. नान मत्रास पार्तदिल्लै। २३. इन्ड्रैकु इव्वळवु पोदुम।

तेलुगू : नेनु निद्र पोगलनु। २. नीवु येडवु गलवु। ३. वाडु तिनेगलडु। ४. वाडु पोलेडु। ५. रामुडु व्रायिगलडु। ६. तमरु चेयिगलरु। ७. मेमु चप्पगलमु। ८. वाडु तीस्को रालेडु। ९. नेनु वोच्चेदवु। १०. आमे इंटिकिपोवुनु। ११. तमरु यक्कड़ कूर्चुन्दुरु। १२. तमरु रोट्टे इच्चेदरु। १३. नेनु फलम इच्चेदनु। १४. वाडु मिर्पकाया चूस्तुन्नाडु। १५. नेनु कन्देलु चूचेदनु। १६. नेनु तमिल सदवेगलनेु। १७. तमरु मलयालमु सदवगलेरु। १८. वारि कुमारुडु दिल्ली पोवुनु। १९. तम्म कुमारते त्रिवेंड्रम पोवुनु। २०. नेनु विशाखापट्टणम चूचिनानु। २१. बंगलोर दूरम लेदु। २२. नेनु मद्रासु चूडलेदु। २३. ईरोजुकु इदि चालुनु।

कन्नड़ : १. नानु निद्दे माडबल्ले। २. नीनु अळबल्ले। ३. अवनु अट माडबल्ला। ४. अवळु होगलारलु। ५. रामनु बरेयबल्लनु। ६. तावु माड बल्लिरि। ७. नावु हेळ बल्लेवु। ८. अवनु तरलारनु। ९. नानु बरुवेनु। १०. अवळु मनेगे होगुवळु। ११. तावु एल्लि कूडुविरि। १२. तावु रोट्टियन्नु कोडुविरा? १३. नानु हण्णन्नु कोडुवनु। १४. अवनु मेळसिन कयिन्नु नोडुत्ताने। १५. नानु तगोरि बेळेयन्नु नोडुवेनु। १६. नानु तमिळन्नु ओद बल्ले। १७. तावु मलयाळीयन्नु ओद बल्लिरि। १८. अवर मगनु दिल्लिगे होगुवनु। १९. तम्म मगळु त्रिवेड्रमगे होगुवळु। २०. नानु विशाखपट्टमवन्नु नोडिद्देने। २१. बंगळूरु दूरविल्ल। २२. नानु मद्रासन्नु नूडिल्ल। २३. ईवत्तिगे इष्टु साकु।

मलयालम : १. एनिक्कु उरङ्ङान कजियुन्न। २. निङ्ङ्ङळक्क करयान्न कजियुन्नु। ३. अवन्नु तिन्नुवार कजियुन्नु। ४. अवळक्कु पोकान वय्या। ५. रामन्नु एजुतान कजियुन्नु। ६. निङ्ङळक्कु चेय्याम्। ७. नमुक्कु रुंसारिक्काम। ८. अवन्नु कोंदुवरान कजियिल्ल। ९. ञान वरुम। १०. अवन वीट्टिल पोकुम। ११. निङ्ङळ एकिटे इरिक्कुम। १२. निङ्ङळ रोट्टि तरुम। १३. ञान पजम तरुम। १४. अवन मुळकु काणुन्ने। १५. ञान तुवर काणुम। १६. एनिक्कु तमिल वायिक्कान कजियुम। १७. निङ्ङळक्कुकु मलयालम वायिक्कान अरियाम। १८. अद्देहत्तिन्टे मकन डलहिक्कु-पोकुम। १९. निङ्ङळुरे मकळ तिरुवनन्तपुरत्तु पोकुम। २० ञान विशाखपट्टणम् कण्टु। २१. बंगलर दूरे अल्ला। २२. ञान मद्रास कण्टिल्ल। २३. इन्नु इतु मति।

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

यदि आप सर्वोत्तम प्रकारके
वैद्युतिक उपादान
चाहते हैं
तो हमें लिखिये :
आनेस्टी एलेक्ट्रिक स्टोर्स
१२–रवीन्द्र सरणि
प्रदर्शन कक्ष क्रमांक ३१५
कलकत्ता–१
दूरभाष : ३४७९९८

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता–७

फोन–३३२३१२

* * *

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

* * *

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,
CALCUTTA 29

A LEADING DEALER IN AND

MANUFACTURERS

CHEMICALS, SOLVENTS, MINERALS,

THINNERS, SILICATES,

INSECTICIDES & PESTICIDES.

बिना आत्मसंयमके भौतिक स्तरपर कुछ भी सिद्ध करना असंभव है। यदि तुम्हारा हृदय, नियमित रूपसे और निरंतर, धड़कनेके कठोर संयमके अधीन होना न चाहे तो तुम पृथ्वीपर जी ही न सकोगे। जिन्होंने महान् सिद्धियां प्राप्त की हैं वे सदा महान् संयमी पुरुष थे।

--श्रीमाताजी

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन-४३४

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

हम पृथ्वीपर जो कुछ ले आना चाहते हैं उसे 'क्रांति' तो बिलकुल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोगोंने अबतक जितने परिवर्तन देखे हैं यह उन सबसे कहीं अधिक अद्भुत होगा। बहरहाल इसकी तुलना उन रक्तरंजित क्रांतियोंसे तो किसी भी तरह नहीं की जा सकती जो व्यर्थमें देशोंको पूरी तरह तहस-नहस कर देती हैं और अपने बाद कोई महान् परिवर्तन नहीं ले आतीं, क्योंकि वे मनुष्योंको पहले जैसा ही मिथ्यावादी, अज्ञानी और अहंकारी छोड़ देती हैं।

—श्रीमाताजी

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

With best wishes from:

Arthur Import Export Co.

'MON REPOS'

41/44, Arthur Bunder Road,
Behind Radio Club,
BOMBAY-5

Importers, Exporters & Suppliers of

Finest quality of

Shoddy yarns, Synthetic Tops and Barrack Blankets.

पुरोधा

किशोर मासिक

अक्तूबर

१९६६

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ अक्तूबर १९६६ **अंक २**

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
मोक लागे महा मानव-स्थान (असमिया)		२
संपादकीय		३
श्रीअरविंद-वाणी		६
श्रीमातृवाणी		७
श्रीअरविंदाश्रममें शारीरिक शिक्षण	प्रणव कुमार	१०
सातवळेकरजी चिरायु हों	रवींद्र	१३
पौधोंमें अभीप्सा	श्रीमाताजी	१६
पौधोंके साथ	रिचर्ड	१७
बच्चोंके साथ	अंजना शर्मा	२०

भयंकर तूफान :

विकराल सौंदर्य	मीना	२२
सब कुछ खोकर....	प्रेमा	२३
तूफानका आशीर्वाद	अरविंद वाजपेयी	२५

हमारी दुनिया :

नयन सीपियां	श्यामसरन अग्रवाल	२७
समुद्री दानव	वत्सला	२९

नयी कोंपलें :

पांच भाई	वीणा	३०
सूरज	कृष्णकुमार	३१
बेचारा कौआ	अजय शर्मा	३२
अगर-अगर मत किया करो	चेतना	३२
पुस्तक-परिचय		३३
दक्षिण-भारती		३४

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य :** एक अंक : रु. ०.६० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ७.००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

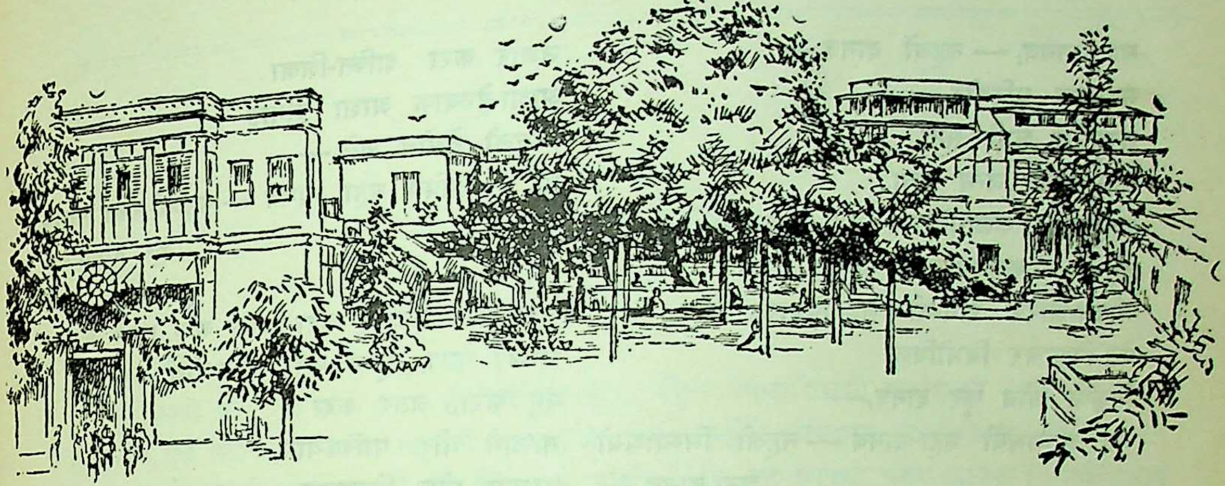

प्रार्थना

संसार दो परस्पर विरोधी शक्तियोंमें बंट गया है जो प्रधानता प्राप्त करनेके लिये युद्ध कर रही हैं। भगवन्! ये दोनों ही शक्तियां समान रूपसे तेरे विधानसे उलटी हैं: क्योंकि तू न तो मृत्यु जैसी अचल स्थिति चाहता है और न अंध प्रलय। तू तो एक सतत, बढ़ते हुए तथा ज्योतिर्मय रूपांतरके द्वारा अपने-आपको प्रकट करता है; और यदि हम तेरे संकल्पको अभिव्यक्त करना चाहें तो हमें इसी रूपांतरको पृथ्वीके ऊपर स्थापित करना होगा।

कभी-कभी हमारी अधीरता तुरत-फुरत यह जान लेना चाहती है कि इस अभिव्यक्तिके उपाय क्या हैं। परंतु हमारी अधीरता बेकार है और उसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। कारण, ज्ञान तो आयेगा समुचित समयपर, कर्म करनेके मुहूर्त्तमें।

अतः मनको शांत कर तथा कर्मसाधक संकल्पको स्थिर और दृढ़ बनाकर हम तेरे उस संकेतकी प्रतीक्षा कर रहे हैं जो तू हमें प्रदान करेगा।

—श्रीमां

असमिया :

मोक लागे महा-मानव स्थान

मइ मानव, —— नहओं दानव ——
मइ-आइ धरित्रीर
सरगप्रभ शान्ति-सना
यौन पीठत जन्म पोवा
उत्कृष्टतम कला-विस्मय महा-मानव, ——
नहओं —— कलुष-पँचात उद्भव होवा
जीवन-खादक रोग-बीजाणु, विषाक्त कीट,
प्रेत-पिशाचर बिभीषिका
निकृष्ट जीव क्रुर दानव,——
मइ सत्याश्रयी महा-मानव —— नहओ मिथ्याश्रयी
क्रुर दानव ——

मोत —— सर्ब्ब-कालर, सर्ब्ब युगर सपोन-माला
अनुभूति उपलब्धिर,
ज्ञान-विज्ञान, काव्य-कला-संस्कृतिर
समग्रताक आकोवाली
समन्वयर ऐक्य सिजाइ
जीवन-अनल ज्वले, ——
दानवीय नरक-फुटा
उपद्रवर आस्फालनक
भष्म करि, धोंवा करि
उजार करा शक्ति-शिखा
आशा-हेरुवाक आशा योगाइ
बिजुली ठेओत चले,——
मई शांतिप्रिय महा मानव —— नहओं रक्त लोलुप
क्रुर दानव —

मानवताक विद्र पू करा, दीर्ण करा, खर्ब्ब करा,-
उच्छेद करा, क्षुब्ध करा, हीन-नीच करा ——
पंगु करा, जठर करा
नालागे मोक पाकिस्थान,
नालागे मोक हिंदुस्थान,
नालागे मोक शिखीस्थान,
नालागे मोक खृष्टीस्थान,——
लागे माथों मोक
मानवीयताक ज्योतिर्म्मय करा
शांतिमय करा, महियान करा मानव स्थान,-
मानवीस्थानर महिमात परि
आन सब स्थान ध्वंस हओक,——
देश-काल भेदि महा-मानवर
विजयी-शंख निनादि रओक,——

——श्री अम्बिकागिरि राय चौधुरी

मैं मानव हूं, दानव नहीं। धरती माताकी स्वर्गिक शांतिसे सना सर्वोत्कृष्ट कला-विस्मय महा-मानव हूं। मैं कलुषकी सडांदसे उत्पन्न, जीव भक्षी रोग बीजाणु, विषैले कीड़े, प्रेतपिशाच आदिकी विभीषिकाका निकृष्ट जीव दानव नहीं हूं। मेरे अंदर सर्वकालकी, सर्वयुगोंकी स्वप्नमालाएं, अनुभूतियां, उपलब्धियां, ज्ञान-विज्ञान, काव्यकला संस्कृतिकी समन्वय एकताको उफानता-सा, जीवन अनल दिन रात जलता रहता है।

मेरे अंदर दानवीय अनलसे उत्पन्न पैशाचिकताकी घमण्डभरी चुनौतियोंको राख कर देनेवाली उबली पड़ती शक्ति-शिखाएं, निराश हृदयोंमें नयी आशाका संचार करनेवाली बिजलीकी धारा प्रवाहित होती है। मैं दानव नहीं हूं, मानवताका उपहास करनेवाले मानवताको दीर्ण, विनष्ट और उच्छेदित करनेवाले, विक्षुब्ध करनेवाले, हीन नीच बनानेवाले, पंगु और जड़ बनानेवाले तत्त्व नहीं चाहियें। मुझे नहीं चाहिये पाकिस्तान, हिंदुस्तान, सिखिस्तान, या ख्रीष्टिस्तान। मुझ एकमात्र मानवताको ज्योतिर्मय बनानेवाला, शांत और महीयान बनानेवाला, महा-मानव-स्थान चाहिये। महा-मानव-स्थानकी महिमाकी दीप्त रश्मिसे दूसरे सभी 'स्तान' ध्वस्त हो जायें। देश और कालको भेदकर महामानवका विजयी शंखनाद गूंज उठे।

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

अपनी बात

पुरोधाको शुरू हुए अभी चार ही वर्ष हुए हैं। हिंदी पत्रकारिताकी अवस्थाको देखते हुए कहना होगा कि हमें पाठकोंका अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ है। उन्हींके आग्रहपर हम पुरोधाका मासिक रूप लेकर आपके सामने उपस्थित हो रहे हैं। हमें आशा है कि यह आपको पसंद आयगा। यदि आप लोगोंका सहयोग हुआ तो हम इसके कलेवरको भी बढ़ानेका प्रयास करेंगे। यहां आपकी जानकारीके लिये इतना कहते चलें कि जहां हिंदी पत्रिकाओंमें आर्थिक कारणोंसे हमें एक-एक, दो-दो पृष्ठका हिसाब करना पड़ता है वहां अमरीकाके न्यूयार्क टाइम्सके साप्ताहिक संस्करणमें केवल ५०० पृष्ठ होते हैं और दाम ३० सेंट या लगलभग २.५०।

नवंबर अंकसे हम श्रीअरविंदकी प्रसिद्ध कविता 'लव एंड डेथ' के आधारपर 'प्रेम और मृत्यु' शुरू कर रहे हैं। 'दक्षिण भारती' या दक्षिण भारतकी भाषाओंके पाठ भी दो-तीन अंकोंमें समाप्त हो जायेंगे। उनके स्थानपर हम हिंदी माध्यमसे ओड़िया और फ्रेंचके पाठ शुरू करेंगे। फरवरी और अगस्तके अंक विशेषांक होंगे जिनमें मुख्य रूपसे श्रीमाताजी तथा श्रीअरविंदकी चीजें रहेंगी।

पुरोधाकी प्रतिष्ठित लेखिका श्री अनुबेन पुराणी अमरीकासे निमंत्रण पाकर जापान होती हुई अमरीका गयी हैं। पुरोधाकी शुभ कामनाएं उनके साथ हैं। आशा है उनके भ्रमणके वृत्तान्त भी हमें मिलते रहेंगे।

हमारा विश्वास है कि भारतकी जनताके लिये आयुर्वेद अधिक उपयोगी चिकित्सा-प्रणाली है। हम प्रयास करेंगे कि आयुर्वेदकी दृष्टिसे स्वास्थ्य-संबंधी लेख भी देते रहें। आश्रममें कृषि और बागवानीके बहुतसे परीक्षण किये जा रहे हैं उनका विवरण भी होगा। इसी भांति योजनाएं तो कई हैं, उनके बारेमें कुछ कहनेकी अपेक्षा उन्हें कार्यान्वित करके दिखाना अधिक अच्छा होगा। इस काममें हमें आपके सहयोगकी पहलेसे भी अधिक आवश्यकता है। आप जैसे-जैसे ग्राहक बढ़ाकर हमारी नींवको पक्का करते जायेंगे वैसे-वैसे हम भी पुरोधाको अधिकाधिक उपयोगी बनानेमें समर्थ हो सकेंगे।

विद्यार्थियोंकी समस्या

आजके नवयुवक कल राष्ट्रके कर्णधार बनेंगे। इसलिये प्रत्येक राष्ट्रका यह कर्तव्य है कि उनकी भली-भांति देख-भाल करे। परंतु आजकल सारे संसारमें ही महाविद्यालयोंके विद्यार्थियोंमें असंतोषकी एक लहर फैली हुई है और वे बड़ी ही ऊटपटांग बातें करते रहते हैं। कोरिया, वियतनाम, मिस्र आदि देशोंमें जो उथल-पुथल हुई है उसकी बात जाने दीजिये, हम अपने ही देशमें देखें तो लज्जासे सिर नीचा कर लेना पड़ता है। हमारे राजनीतिक नेता हर संभव और असंभव आंदोलनमें विद्यार्थियोंको उकसाकर आगे कर देते हैं। हिंदी-विरोधी आंदोलन, ट्रामके किरायेके विरुद्ध आंदोलन, भाषा-

संबंधी आंदोलन, खाद्यान्न-संबंधी आंदोलन आदि अनगिनत आंदोलनोंमें, भिन्न-भिन्न प्रकारकी हड़तालोंमें विद्यार्थियोंका उपयोग किया जाता है। विद्यार्थी उन्मत्त होकर राष्ट्रकी संपत्तिका विनाश करते हैं और गरीब देशको और भी अधिक गरीब बनानेमें सहायता देते हैं। विद्यार्थी-आंदोलनके विरुद्ध सरकार भी बेबस-सी हो जाती है क्योंकि किसीका बेटा, किसीका नाती, किसीका भाई, किसीका भतीजा उसमें भाग ले रहा होता है।

फिर इस प्रकार अनुशासनहीनताका पाठ पढ़कर विद्यार्थी अपनी शिक्षण-संस्थाओंपर भी उसी अस्त्रका प्रयोग करते हैं। परीक्षाका प्रश्न-पत्र कठिन लगा तो हड़ताल, किसी शैतान लड़केको निकाल दिया तो हड़ताल, शुल्क बढ़ा तो हड़ताल, किसी बस कंडक्टरने टिकट न होनेपर सख्ती की तो हड़ताल — पग-पगपर हड़तालके लिये तैयार। विद्यार्थीजीवन शक्तिसंचयके लिये होता है। इतनी हड़तालें होती रहें तो पढ़ाईका वातावरण क्या खाक बनेगा? फिर स्वाभाविक है कि परीक्षाके समय कुंजियोंसे और नकलसे काम लेकर किसी तरह पास होनेकी धुन लग जाती है और जो उसमें बाधक हो वह शत्रु बन जाता है। जरा गंभीरतासे सोचकर देखा जाय कि इस सबसे हानि किसकी होती है? शिक्षाका स्तर गिरनेसे किसे नुकसान होता है?

नवयुवकमें शक्ति होती है, उत्साह होता है और कुछ करनेकी हवस होती है। उसे ठीक मार्गदर्शन न मिले तो वह गलत रास्तेपर चल पड़ता है। और गलत रास्तेपर चलनेमें, या यूं कहिये घसिटनेमें ज्यादा आसानी होती है। धारासे उलटा तैरना तो बस सिंहोंका ही काम है। यदि समाज खून लगाकर शहीदोंमें नाम करनेका अवसर दे तो फिर कमर कसकर परिश्रम करनेकी क्या जरूरत?

पहले विद्यार्थी केवल अभिजात कुलोंसे आया करते थे। उन्हें अपने घरकी मानमर्यादाका ख्याल होता था, उनके मां-बापकी कुलकी प्रतिष्ठा और अपनी नौकरीकी चिंता होती थी और यूं भी घरके संस्कारोंके कारण बहुत-सी चीजें उन्हें अपनेसे नीची लगती थीं। आज विद्यार्थी समाजके प्रत्येक स्तरसे आते हैं। घरपर कुलीनताका कोई प्रश्न ही नहीं होता। मां-बाप समाजके निम्नतम स्तरके हो सकते हैं या फिर नये-नये अमीर जिन्हें दिखावा ही प्रिय होता है। इस तरहके कारणोंसे विद्यार्थीमें सदाचार, शिष्टता, अध्ययन आदिकी जगह उत्पात, विद्रोह और उत्तेजनामें रस लेनेकी प्रवृत्ति जाग जाती है। उसमें एक प्रकारकी हीनता-ग्रंथि बन जाती है जिसके कारण वह अपने-आपको ऊंचा और चमकदार दिखानेकी कोशिश करता है। वह देखता है कि समाजमें ईमानदार, सच्चे और परिश्रमी लोगोंके लिये जगह नहीं है। बेईमानी, चोरबाजारी और धोखाधड़ी किये बिना जीवन बिताना असंभवसा है इसलिये वह भी इन्हीं चीजोंको सीखता है और इनमें पेशेवर लोगोंसे भी आगे बढ़ जानेमें गर्वका अनुभव करता है। अभी उस दिन हमें एक धर्म-भीरु विद्यार्थीसे बातचीत करनेका अवसर मिला। वह भविष्यमें व्यापारी बननेका स्वप्न ले रहा है। बातचीतमें उसने कहा, धर्म और संसार दो अलग चीजें हैं। अपने जीवनमें वह धर्म-सत्य आदिका पालन करेगा और व्यापारमें सांसारिक बुद्धि लगायेगा। आज विद्यार्थीको आप शिष्टाचारकी बातें सिखाइये, वह घर पहुंचते-पहुंचते आपकी बातें भूल जायगा। उसे याद रहेगा कि किस तरह लोक-सभा और विधान-सभाओंके सदस्य — जो देशके नेता कहलाते हैं — एक-दूसरेको गाली-गलौज देते हैं और अभद्रताका नंगा नाच दिखाते हैं।

अभी कुछ दिन पहले एक पत्रकारने दिल्लीमें बहुतसे कालिजोंके विद्यार्थियोंसे बातचीत की थी। उनसे पूछा गया कि वे अपने खाली समयका उपयोग कैसे किया करते हैं। उनमेंसे ३२% ने कहा कि वे कनाट सर्कसमें चहलकदमी करते हैं। १६% ने कहा, वे घूमने जाते हैं। खाली समयमें पढ़ाई करनेवाले केवल १०% थे। कसरत आदि करनेवाले इससे भी कम। लड़कियोंके साथ छेड़खानी उनका एक विशेष शगल है। ४२% विद्यार्थी कहते हैं कि वे सिगरट पीते हैं और ४१% ने स्वीकार

किया कि वे शराबसे अपरिचित नहीं हैं। उनमेंसे बहुतोंको देशकी समस्याओंके बारेमें कुछ भी नहीं मालूम था। एकने इन्दिरा गांधीको महात्मा गांधीकी लड़की बता दिया। हमारे बहुतसे विद्यार्थी जब बाहर जाते हैं तो वहांके प्रकाशसे उनकी आंखें चुंधिया जाती हैं और वे हमेशाके लिये यूरोप और यूरोपीय जीवनके पतंगे बन जाते हैं।

पहले घरोंमें धर्मका वातावरण होता था, पाप-पुण्यका ख्याल होता था और स्वर्ग-नरककी चिंता होती थी। आजके समाजमें धार्मिक लोग भी अपने धर्मको जीवनपर प्रभाव नहीं डालने देते। पूजा-पाठके लिये पैसा देकर स्वर्गमें अपने लिये स्थान निश्चित करवा लेते हैं और बस। स्वर्ग-नरकके चित्र आजके युवकका ध्यान नहीं खींचते, वह पाप-पुण्यके झमेलेमें नहीं पड़ना चाहता इसलिये आज हम फिरसे पुरानी जड़ी-बूटियोंसे काम न चला सकेंगे। जो समय बीत चुका वह वापिस नहीं आया करता। नये जमानेकी नयी समस्याएं हैं और उनके लिये नये उपचार ढूंढ़ने होंगे। यूरोपकी तरह अधिकाधिक भौतिक सुख-सुविधाएं देनेसे भी काम न चलेगा। हम प्रायः ही सुनते रहते हैं कि वहांके नवयुवकोंमें हमारे यहांसे भी ज्यादा कुण्ठा घर करती जा रही है, मानसिक और स्नायविक रोग इसका परिणाम हैं।

हमें विश्वास है कि जबतक देशकी चेतनाको न उठाया जायगा तबतक इस समस्याका कोई हल नहीं हो सकता। यह काम लेक्चरबाजियोंसे कभी न होगा। हमें अपने जीवनके मूल्य बदलने होंगे। तथा-कथित सफलता और धनने हमारे सर्वोच्च सिंहासनको हथिया लिया है। हमें उन्हें उचित स्थान-पर बिठाना होगा। इस विषयमें हम श्रीमाताजीके दो सूत्र उद्धृत करते हैं :

भारतमें शिक्षाका लक्ष्य –– "भारतकी संतानको असत्यके बहिष्कार और सत्यकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करना।"

इसकी तैयारीके लिये –– "भौतिक तत्त्वको आत्माकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करो।" और "रूढ़ियोंसे बाहर निकलो और आत्माके विकासपर बल दो।"

हममेंसे जो अध्यापक हैं या शिक्षाके साथ और किसी तरहका संबंध रखते हैं, या जो माता-पिता हैं जिनके बच्चे पढ़ रहे हैं या जो ऐसे विद्यार्थी हैं जिनपर अभी यह भूत विजयी नहीं हुआ है, उन सबका कर्तव्य है कि वे इस दिशामें भरसक प्रयास करें। ऊपरसे किये जानेवाले कार्यका अपना मूल्य है, परंतु जिस भावसे काम किया जाता है उस भावका मूल्य कहीं अधिक है।

श्रीअरविंद-वाणी

ऊषासे पहले अंधकार

तुम्हारी कठिनाइयोंकी चरम तीव्रताका कारण यह है कि योगने निश्चेतनाकी आधारशिलापर आक्रमण कर दिया है और यह निश्चेतना ही आत्माकी विजयमें तथा उस विजयकी प्राप्ति करानेवाले भगवत्कर्ममें आनेवाली समस्त व्यक्तिगत एवं विश्वगत बाधाओंका मुख्य आधार है। कठिनाइयां आश्रममें तथा बाहरकी दुनियामें एक समान हैं। संदेह, निरुत्साह, श्रद्धाका ह्रास या लोप, आदर्शके लिये प्राणिक उत्साहकी न्यूनता, भविष्यके संबंधमें परेशानी एवं निराशा इत्यादि इस कठिनाईके मोटे-मोटे लक्षण हैं। बाहरकी दुनियामें इनसे भी बहुत अधिक बुरे लक्षण उपस्थित हैं, जैसे हृदयहीनताकी सामान्य वृद्धि, किसी भी चीजमें विश्वास करनेसे इंकार, ईमानदारीकी कमी, अपरिमित भ्रष्टाचार, अधिक ऊंची चीजोंका सर्वथा बहिष्कार करके मुख्यतः भोजन, धन, सुख और भोगमें ही व्यस्त रहना, संसारमें बुरी-से-बुरी अवस्थाओंके घटित होनेकी सामान्य आशा। ये सभी, चाहे ये कितनी भी प्रबल क्यों न हों, अस्थायी चीजें हैं और जो लोग विश्व-शक्तिकी क्रिया-शैलियों तथा परम आत्माकी क्रिया-शैलियोंके संबंधमें कुछ भी जानते हैं वे इनके लिये तैयार थे। स्वयं मैंने यह पहलेसे ही देख लिया था कि यह अत्यंत बुरी अवस्था आयगी, उषासे पहले निशाका अंधकार दिखायी देगा। इसलिये मैं निरुत्साहित नहीं हुआ हूं। मुझे पता है कि अंधकारके पीछे क्या तैयार हो रहा है और मैं उसके आनेके पूर्वचिह्न देख तथा अनुभव कर सकता हूं। जो भगवान्को पाना चाहते हैं उन्हें डटे रहना होगा और अपनी खोजमें निरंतर लगे रहना होगा। कुछ समय बाद अंधेरा कम होकर दूर होने लगेगा और दिव्य प्रकाश आ जायगा।

विजयकी ज्योति

बंगालकी अवस्था निश्चय ही बहुत बुरी है। वहांके हिंदुओंकी स्थिति भयानक है और दिल्लीमें हुए अंतरिम सुविधाके गठबंधनके होते हुए भी वह और अधिक बुरी हो सकती है। परंतु इसके बारेमें हमारी प्रतिक्रिया अति तीव्र या निराशामय नहीं होनी चाहिये। बंगालमें कम-से-कम दो करोड़ हिंदू होंगे और वे समूल नष्ट नहीं किये जा सकते —— हिटलरतक अपने संहारकारी वैज्ञानिक साधनोंसे संपन्न होते हुए भी यहूदियोंको निर्मूल नहीं कर सका। आज भी वे पूरी तरह जीवित हैं। और फिर हिंदू संस्कृति तो कोई इतनी दुर्बल और हलकी-फुलकी चीज नहीं है जो सहज ही मिटायी जा सके। यह, कम-से-कम, ५ हजार वर्षोंसे जीवित है और अभी इससे भी अधिक दीर्घ कालतक जीवित रहनेवाली है और अपना जीवन बनाये रखनेके लिये इसने पर्याप्त शक्ति संचित कर ली है। जो कुछ हो रहा है उससे मुझे बिलकुल आश्चर्य नहीं हुआ। जब मैं बंगालमें था तभी मैंने इसे भविष्य-दृष्टिसे देख लिया था और लोगोंको चेतावनी दी थी कि ऐसा होनेकी अत्यधिक संभावना है और यह प्रायः अवश्यंभावी है, उन्हें इसके लिये तैयार रहना चाहिये। उस समय किसीने भी मेरे कथनको कोई महत्त्व नहीं दिया, यद्यपि बादमें, जब मुश्किलने सिर उठाया, तो कइयोंको मेरी बात स्मरण हो आयी और उन्होंने स्वीकार किया कि मैंने ठीक कहा था। केवल चित्तरंजनदासको इस संबंधमें बहुत आशंका थी; यहांतक कि जब वे पांडिचेरी आये थे तो उन्होंने मुझसे कहा कि वह नहीं चाहते कि अंग्रेज यह भयंकर समस्या हल होनेसे पहले हमारे देशसे चले जायें। परंतु जो घटनाएं आज हो रही हैं उनसे मैं निरुत्साहित नहीं हुआ हूं, क्योंकि मैं यह जानता हूं और मैंने सैंकड़ों बार यह अनु-

भव किया है कि जो व्यक्ति भगवान्‌का यंत्र है उसके लिये घोर-से-घोर अंधकारके परे भागवत विजयकी ज्योति विद्यमान रहती है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने इस संसारमें किसी बातके लिये —— यहां मैं व्यक्तिगत चीजोंके बारेमें नहीं कह रहा हूं —— कोई प्रबल और आग्रहपूर्ण संकल्प किया हो और वह पूरी न हुई हो, भले ही उसके पूरे होनेमें विलंब हुआ हो या पराजय और महाविपत्तिका सामना करना पड़ा हो। एक समय था जब हिटलरकी सर्वत्र विजय हो रही थी और यह निश्चित प्रतीत होता था कि असुरका अंधकारपूर्ण जुआ समस्त संसारके कंधोंपर लाद दिया जायगा; परंतु अब कहां है हिटलर और कहां है उसका राज्य? बर्लिन और न्यूरेमबर्गने मानव इतिहासके उस भयानक अध्यायका अंत सूचित कर दिया है। अब अन्य अंधकारमय शक्तियां मानवजातिको ढक देने या निगल जानेकी धमकी दे रही हैं, पर वे भी उसी प्रकार नष्ट हो जायेंगी जिस प्रकार वह दुःस्वप्न नष्ट हो गया है। अपने इस विश्वासको पुष्ट करनेवाली सभी बातोंको मैं पूर्ण रूपसे इस पत्रमें नहीं लिख सकता —— संभवतः एक दिन आयगा जब मैं ऐसा कर सकूंगा।

पर्देके पीछे तैयारी

मैं जानता हूं कि यह तुम्हारे लिये तथा प्रत्येक व्यक्तिके लिये कष्टका समय है। यह सारे संसारके लिये ऐसा ही है। सभी जगह गड़बड़, दुःख, अराजकता तथा उलटा-पलटी —— यही आजकी सामान्य वस्तुस्थिति है। जो अच्छी चीजें प्रकट होनेको हैं वे पर्देके पीछे तैयार या विकसित हो रही हैं तथा सभी जगह बुरी चीजोंका बोलबाला है। बस एकमात्र आवश्यकता इस बातकी है कि जबतक प्रकाशकी घड़ी न आ जाये तबतक अडिग और अटल रहा जाये।

***

श्रीमातृ-वाणी

भागवत इच्छा

भागवत इच्छाको जाननेकी चार शर्त्तें हैं:

(१) पहली आवश्यक शर्त्त: पूर्ण सच्चाई।

(२) अपनी इच्छाओं और अभिरुचियोंपर विजय प्राप्त करना।

(३) मनको नीरव रखकर सुनना।

(४) ज्योंही ऊपरसे आदेश प्राप्त हो तत्काल उसके अनुसार कार्य करना।

यदि तुम इसका लगातार अभ्यास करते रहोगे तो तुम भागवत इच्छाको अधिकाधिक स्पष्ट रूपमें जानने लगोगे। किंतु भागवत इच्छा क्या है यह जाननेसे पहले भी तुम स्वयं अपनी इच्छाको उनके प्रति समर्पित कर सकते हो और तब तुम देखोगे कि सब परिस्थितियां ऐसी व्यवस्थित हो जायंगी कि जो तुम्हें करना है वही तुम करोगे। किंतु तुम्हें उस व्यक्तिके समान नहीं होना चाहिये ——

यह व्यक्ति मेरा परिचित था —— जो यह कहता था : "मैं भागवत इच्छाको दूसरोंमें देखता हूं।" यह बात, तुम्हें पता नहीं, कहां ले जाय और यह है भी बहुत अधिक संकटपूर्ण। कारण, यदि तुम भागवत इच्छाको दूसरोंमें देखते हो तो यह निश्चय है कि तुम अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करोगे, भगवान्‌की इच्छाके अनुसार नहीं। वहां भी, हम कह सकते हैं कि उनमेंसे एककी भी, एक मनुष्यकी भी इच्छा भागवत इच्छाके अनुरूप नहीं है।

तुम क्रुद्ध हाथी, महावत और उस व्यक्तिकी कथा जानते हो जो हाथीको निकलनेका रास्ता नहीं देता था। बीच रास्तेमें बैठे उस व्यक्तिने महावतसे कहा : "भागवत इच्छा मेरे अंदर है और भागवत इच्छा यह चाहती है कि मैं यहांसे नहीं हिलूं।" महावत जो कि स्फुरितमति था, बोला : "किंतु हाथीके अंदर उपस्थित भागवत इच्छा चाहती है कि तुम यहांसे हट जाओ।"

भय

व्यक्तिमें भय क्यों होता है ?

मेरे विचारमें, इसलिये, क्योंकि वह अपने अहंमें केंद्रित होता है।

इसके तीन कारण हैं : पहला, अपनी सुरक्षाके लिये अत्यधिक चिंता। दूसरा, जिस वस्तुको व्यक्ति नहीं जानता वह सदा ही उसमें एक दुःखमय संवेदन उत्पन्न कर देती है जो फिर चेतनामें भयका रूप धारण कर लेता है। और सबसे बड़ा कारण यह है कि तुम्हें भगवान्‌में सहज विश्वास रखनेका अभ्यास नहीं है। यदि अधिक दूरतक जाया जाय तो यही कारण ठीक होता है। ऐसे लोग भी हैं जिन्हें यह भी नहीं ज्ञात है कि भगवान्‌का अस्तित्व है या नहीं, दूसरे शब्दोंमें, उन्हें हम यह कह सकते हैं, "तुम्हें अपनी भवितव्यतामें विश्वास नहीं है", या फिर "तुम भागवत कृपाके विषयमें कुछ नहीं जानते।" कुछ भी कह दो, जो चाहो कह दो, किंतु मूल बात होती है विश्वासका अभाव। यदि तुममें सदा यह भावना रहे कि किन्हीं भी परिस्थितियोंमें जो कुछ भी होता है वह ही अधिकसे अधिक भला होता है, तो तुम्हारे अंदर भय नहीं होगा।

भयकी पहली क्रिया अनायास ही आ जाती है। एक बड़ा विद्वान् था जो एक बड़ा मनोवैज्ञानिक भी था, (मुझे उसका नाम याद नहीं) उसने अपनी आंतरिक चेतनाको विकसित कर लिया था, किंतु वह इसके प्रमाण चाहता था। तब उसने एक प्रयोग किया। वह यह देखना चाहता था कि चेतनाकी शक्तिके द्वारा वह शरीरकी स्वतःचालित क्रियाओंपर नियंत्रण रख सकता है या नहीं, (शायद वह अभी इस क्षेत्रमें इतनी दूरतक नहीं गया था कि वह ऐसा कर सके, क्योंकि ऐसा किया जा सकता है; जो भी हो, उसके लिये ऐसा करना तब संभव नहीं था।) वह वहांके चिड़ियाघरमें गया और उस स्थलपर पहुंचा जहां बड़े-बड़े शीशोंके पिंजरोंमें सांप रखे जाते थे। वहां एक बड़ा दुर्दांत विषधर भी था। जब वह सोता न होता तो प्रायः सदैव क्रोधित अवस्थामें पाया जाता। कारण, शीशेमेंसे वह लोगोंको देख सकता था और उससे वह बुरी तरह उत्तेजित हो उठता था। हमारा यह विद्वान् उसके पिंजरेके पास जाकर खड़ा हो गया। वह जानता था कि पिंजड़ा ऐसा बना है कि सांप शीशेको तोड़कर बाहर नहीं आ सकता और उसे उसके आक्रमणका जरा भी डर नहीं है। अतएव उसने बाहरसे चीख-पुकार और संकेतोंके द्वारा उसे उकसाना शुरू किया। सांप क्रोधसे फुफकारकर शीशेपर आक्रमण करने लगा, किंतु प्रत्येक समय जब वह शीशेपर प्रहार करता, विद्वान् अपनी आंखें बंद कर लेता। वह अपने-आपसे कहता भी, "पर क्यों ? मैं यह जानता हूं कि सांप शीशेको भेदकर बाहर नहीं आ सकता, फिर भी मैं अपनी आंखें बंद क्यों कर लेता हूं ?" हां, तो यह मानना पड़ेगा कि शरीरपर विजय पाना कठिन है। यह सुरक्षाकी भावना है, और यदि व्यक्तिको यह अनुभव हो

कि वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता तो उसे भय लगने लगता है। किंतु भयकी यह क्रिया जो आंखोंके झपकनेके रूपमें व्यक्त होती है, न मानसिक भय है न प्राणिक, यह शरीरके कोषाणुओंका भय है। इसका कारण यह है कि उन्हें यह सिखाया ही नहीं गया था कि भयकी कोई बात नहीं है और न ही वे भयका सामना करना जानते थे, क्योंकि उसने योगका अभ्यास नहीं किया था, ठीक बात है न? योगके अभ्याससे व्यक्ति खुली आंखोंसे देख सकता है, तब वह अपनी आंखें बंद नहीं करेगा। वह आंखें बंद करेगा ही नहीं, क्योंकि उसने किसी और वस्तुका आवाहन किया है और यह "कोई और वस्तु" उसके अंदर भागवत उपस्थितिकी भावना है जो सबसे अधिक शक्तिशाली है। केवल यही वस्तु तुम्हें भयसे मुक्त कर सकती है।

इस प्रवचनके कई वर्ष बाद एक साधकने एतद्विषयसंबंधी निम्न प्रश्न पूछा था :

मई १९, १९६५

आप कहती हैं, "यदि व्यक्तिकी सदा यह भावना बनी रहे कि सभी परिस्थितियोंमें जो कुछ होता है वही सर्वश्रेष्ठ है, तो उसके अंदर भय नहीं होगा।" क्या सचमुचमें सभी परिस्थितियोंमें सर्वश्रेष्ठ ही घटता है?

संसारकी किसी विशेष अवस्थामें यह सर्वश्रेष्ठ होता है — यह निरपेक्ष रूपमें सर्वश्रेष्ठ नहीं होता।

दो बातें हैं: प्रत्येक क्षण, सबके दिव्य लक्ष्यके लिये यही एक पूर्ण और सर्वांगीण रूपमें यथासंभव सर्वश्रेष्ठ होता है, और उसके लिये, जो भागवत इच्छाके साथ चेतन रूपमें जुड़ा हुआ है, यही उसकी अपनी दिव्य प्राप्तिके लिये भी अत्यधिक अनुकूल है।

मेरे विचारसें यही इसकी यथार्थ व्याख्या है।

समष्टिकी दृष्टिसे प्रत्येक क्षण जो घटता है वही भागवत विकासक्रमके लिये सदा अत्यधिक अनुकूल होता है। और भगवान्के साथ चेतन रूपसे युक्त सभी तत्त्वोंके लिये भी यही सर्वश्रेष्ठ है, इसीसे पूर्ण एकत्व प्राप्त होगा।

केवल एक बात नहीं भूलनी चाहिये कि यह सदा बदलता रहता है। यह स्थिर प्रकारका 'श्रेष्ठ' नहीं है। यदि इसे स्थिर रखा जाय तो यह एक क्षण बाद ही सर्वश्रेष्ठ नहीं रहेगा। और इसका कारण यह है कि मानवीय चेतना उस वस्तुको सदा सुरक्षित रखना चाहती है जो उसे अच्छी लगती है या जिसे वह अच्छा समझती है, जिसे वह अपनी पहुंचके बाहरकी वस्तु समझती है।

* * *

घोर अंधेरी निशा घिरी अब, आओ शुभ्र उषा बन
खोलो मानसि, खोलो अपना श्रद्धाका वातायन!
दिव्य चेतनाका प्रभात नव, बन उरमें तेरा मुख,
मौन मधुरिमासे अंतरको भर दे, डूबे सुख दुख!
भर जावे सूने अंतरमें नव भावोंका गुंजन,
खोलो, आभामयि, खोलो, निज करुणाका वातायन!

—पन्त

श्रीअरविंदाश्रममें शारीरिक शिक्षण

-- श्री प्रणवकुमार भट्टाचार्य

भारतकी सबसे बड़ी देन है आध्यात्मिक संस्कृति। भारतके हर महान् प्रयासकी नींव आध्यात्मिक अनुभवपर खड़ी है। यहांके धर्म, दर्शन, शिक्षा, राजनीति, समाजशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, कला, स्थापत्य, संगीत आदि भी अध्यात्मकी भित्तिपर खड़े हैं। हजारों वर्षोंसे आध्यात्म जीवनके इर्द-गिर्द नाना प्रकारके परीक्षण किये जाते रहे हैं। सब प्रकारके दृष्टिकोणों और पद्धतियोंने न्यूनाधिक रूपसे भारतीय जीवनपर अपना असर डाला है और इन सबके कारण भारतीय आध्यात्मने एक सामंजस्य और पूर्णताकी ओर प्रगति की है।

विकासकी एक स्थितिमें भारतीय आध्यात्मने बाह्य सांसारिक जीवनको बिलकुल मिथ्या मानकर उसकी उपेक्षा की और केवल परात्पर अनुभूति प्राप्त करना ही अपना लक्ष्य बनाया। यह संन्यास-वृत्ति अब भी हमारे जीवनपर काफी हदतक छायी हुई है पर यह भारतीय आध्यात्मिकताकी इतिश्री नहीं है। इस संन्यास-वृत्तिके बाद आत्मा और भौतिक पदार्थके ऐसे तथ्योंकी खोज हुई जिन्होंने प्राचीन संपूर्ण दृष्टिको फिरसे जगा दिया। यह विकास कभी बंद नहीं हो सकता।

श्री अरविंदाश्रममें श्रीअरविंद तथा श्रीमाताजीके मार्गदर्शनमें भारतीय आध्यात्मिकता एक नया मार्ग ले रही है, एक नये प्रकारका गतिशील आध्यात्मिक जीवन विकसित हो रहा है। इस योगके बारेमें श्रीअरविंद कहते हैं, "यहां जिस योगपद्धतिका अनुसरण किया जा रहा है उसका उद्देश्य औरोंसे अलग है। उसका उद्देश्य साधारण सांसारिक चेतनामेंसे उठकर भागवत चेतनामें जाना हीनहीं है, उसका उद्देश्य भगवान्की अतिमानस चेतन-शक्तिको मन, प्राण और शरीरके अविद्यामय जीवनमें उतारना है और उनका रूपांतर करना तथा जड़ पदार्थमें भी भागवत जीवनको अभिव्यक्त करना है।"

लेकिन यह महान् कार्य केवल मनुष्यके बसका नहीं है। मनुष्यकी सच्ची अभीप्सा और भागवत शक्तिकी सहायतासे ही यह सिद्ध हो सकती है। इस योगके लिये संसारसे कटकर पहाड़ोंपर बसनेकी जरूरत नहीं है। यह साधारण सांसारिक जीवन तथा दैनिक कार्यक्रमके साथ ही साधा जा सकता है। परंतु यह ठीक है कि समुचित वातावरण हो तो प्रगति ज्यादा आसानीसे हो सकती है। आश्रम वही समुचित वातावरण देनेके लिये है। पूर्णता प्राप्त करनेके लिये एक आदर्श व्यक्ति और आदर्श समाज एक दूसरेके लिये अनिवार्य है। आदर्श व्यक्ति ही आदर्श समाज बना सकते हैं और आदर्श समाज ही आदर्श व्यक्तिको पूर्णता प्राप्त करनेके लिये सब सुविधाएं दे सकता है।

श्रीअरविंदके योगके कोई बंधे हुए नियम नहीं जिनका पालन हर एकके लिये आवश्यक हो। आरंभके लिये सब ही पंचमुखी मनोवैज्ञानिक पूर्णताके लिये प्रयास कर सकते हैं। यह पांच अंग हैं श्रद्धा, अभीप्सा, भक्ति, दिलकी सच्चाई, और समर्पण। आदमी अपने दैनिक कार्यक्रमके साथ ही अपने जीवनमें इन पांचोंको बढ़ानेका प्रयास कर सकता है। इनमें जैसे-जैसे प्रगति होती जायगी वैसे-वैसे अंदरसे भागवत शक्ति आगेका मार्ग दिखाती जायगी।

श्रीअरविंदका योग पूर्ण-योग या योगोंका समन्वय कहाता है। इसमें साधक संपूर्ण अतिमानसिक रूपांतरकी ओर बढ़नेका प्रयास करता है और उसके लिये मन, प्राण और शरीरमें यथासंभव अधिकाधिक पूर्णता लानेका प्रयास करता है और ज्ञान, भक्ति और कर्ममें सामंजस्य सिद्ध करनेकी कोशिश करता है।

श्रीमाताजी कहती हैं, 'जब हम उस परिपूर्णतातक पहुंचेंगे जो हमारा लक्ष्य है तो हम देखेंगे कि जिस सत्यको हम खोज रहे हैं उसके चार मुख्य रूप हैं — प्रेम, ज्ञान, शक्ति और सौंदर्य। सत्यके ये चारों पहलू हमारी सत्तामें अभिव्यक्त हो उठेंगे। हमारी अंतरात्मा सच्चे और पवित्र प्रेमका वाहन होगी, मन उच्चतम ज्ञानका, प्राण अमोघ शक्तिका और शरीर पूर्ण सौंदर्य और सामंजस्यका वाहन होगा।'

एक वादक अपने संगीतका पूरा लाभ तभी दे सकता है जब उसका यंत्र पूरी तरह निर्दोष हो। हम जिस भागवत शक्तिको अपने मन, प्राण और शरीरमें उतारना चाहते हैं वह तभी पूरी तरह अभिव्यक्त हो सकती है जब उसे पूर्ण रूपसे विकसित उपकरण मिलें। इसीलिये श्रीअरविंदाश्रममें शिक्षण और प्रशिक्षणके द्वारा मन, प्राण और शरीरमें यथासंभव पूर्णता लानेका प्रयास किया जाता है।

शरीर हमारे भौतिक जीवनका आधार है। हमारे मन, प्राण और आत्मा इसीके द्वारा अपनी शक्तियोंको अभिव्यक्त कर सकते हैं। इसलिये न केवल शरीरके अपने सत्यको अभिव्यक्त करनेके लिये उसका महत्त्व है, उसकी दशाका अन्य क्षेत्रोंपर भी प्रभाव पड़ता है। श्रीअरविंदका योग कठिन है और इसके लिये बहुत समयकी आवश्यकता है अतः यदि शरीरको स्वस्थ रूपमें बल और सक्रिय ऊर्जासे भरपूर रखा जा सके तो साधनाके लिये भी अधिक अच्छा है। यह ठीक है कि हम नया शरीर लेकर साधनाके कार्यको जारी रख सकते हैं लेकिन फिर भी नया जन्म और नया शरीर लेनेका अर्थ होगा कई कामोंको फिरसे आरंभ करना और इसमें व्यर्थमें अधिक समय लगता है। इसलिये हम इस शरीरमें रहते हुए जितनी अधिक प्रगति कर लें उतना ही अच्छा है।

शरीरको अधिक समयतक स्वस्थ, बलवान् और क्रियाशील बनाये रखनेके लिये स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करते हुए भी एक सुदृढ़ शारीरिक प्रशिक्षणकी आवश्यकता होती है। शारीरिक शिक्षणके अंतिम लक्ष्यके बारेमें श्रीअरविंद कहते हैं, "शरीरकी पूर्णता — जहांतक अपने बसमें है, और जहांतक हमारे साधन हमें ले जा सकते हैं — हमारे शारीरिक प्रशिक्षणका लक्ष्य होना चाहिये। और शारीरिक प्रशिक्षणके आधारभूत कार्यक्रमके बारेमें श्रीमाताजी कहती हैं कि हमें ऐसा सुगठित शरीर बनाना चाहिये जो सुन्दर, नमनशील, सामंजस्यपूर्ण और फुर्तीला हो । क्रियामें शक्तिशाली और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे सहनशील और नीरोग हो।

उत्तम प्रकारका शारीरिक शिक्षण बड़ी हदतक शारीरिक क्षमताको बढ़ाता है और नियंत्रण, तथा नैतिक आचरण और सच्चरित्रको जीवनमें लानेमें सहायता देता है। श्रीअरविंदके योगका साधक यह मानता है कि श्रीमाताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षाको अपने आंतरिक और बाह्य जीवनमें उतारते हुए और साथ-ही-साथ शारीरिक शिक्षणके द्वारा ऊपर कही हुई चीजोंको अपने जीवनमें लाते हुए वह एक दिन शारीरिक पूर्णताके लक्ष्यतक पहुंच जायगा।

शारीरिक क्षमता मानो शारीरिक पूर्णताका आधार रखती है। अगर हम जरा बारीकीसे देखें तो शारीरिक क्षमताके चार अंग हैं: स्वास्थ्य, बल, सहनशक्ति और शारीरिक कौशल। यदि समुचित रूपसे शारीरिक शिक्षण चलता रहे और उसके साथ समुचित आहार, व्यवहार, निद्रा-विश्राम, वातावरण और आंतरिक शक्ति तथा नीरवता हो तो चौमुखी शारीरिक क्षमता पैदा हो सकती है। हर-एक कसरत, शरीरकी प्रत्येक गति एक विशेष प्रकारकी क्षमता लानेमें सहायक होती है। और जितने प्रकारकी कसरतें और शारीरिक गतियां हैं उतने प्रकारका शारीरिक कौशल भी होता है। शारीरिक कौशलसे या शरीरकी दक्षतासे हमारा मतलब है गतिविधि, फुरती, नैसर्गिक सहज-क्रियाएं, सामंजस्य, लालित्य और वे क्षमताएं जो विशेष कसरतोंसे ही प्राप्त की जा सकती हैं। इसलिये श्रीअरविंदाश्रमकी शारीरिक शिक्षण-पद्धतिमें यह व्यवस्था की गयी है कि उसके सदस्योंको यथासाध्य अधिकसे अधिक प्रकारकी कसरतोंका अवसर दिया जाय। उन्हें सलाह दी जाती है कि दो-एक चीजों-

में विशेषज्ञ बननेकी जगह यथाशक्ति सब प्रकारके शारीरिक प्रशिक्षणमें भाग लेकर अपने शरीरको अधिकसे अधिक पूर्णताकी ओर ले जानेका प्रयास करें।

आश्रममें छः वर्षके लड़के-लड़कियोंसे लेकर काफी वयस्क स्त्री-पुरुषोंतक सब मिलकर लगभग आठ सौ व्यक्ति शारीरिक शिक्षणके कार्यक्रममें भाग लेते हैं। इन सदस्योंकी आयु और क्षमताको देखते हुए बारह दलोंमें बांटा गया है और प्रत्येक दलको उसके उपयुक्त कसरतें दी जाती हैं। जो वयस्क दलोंसे अलग रहकर अपनी पसंदकी कसरतें करना चाहते हों उनके लिये भी समुचित व्यवस्था है। लड़के और लड़कियोंको एक ही प्रकारकी कसरतें दी जाती हैं। प्रत्येक सदस्यका डाक्टरी निरीक्षण नियमित रूपसे किया जाता है और उनकी बाकायदा जानकारी रखी जाती है। बच्चोंको दो बार और बड़ोंको वर्षमें एक बार डाक्टरी निरीक्षण करवाना होता है। जिन्हें किसी चिकित्सा या कसरतोंमें परिवर्तनकी जरूरत हो उनके लिये भी जरूरी व्यवस्था कर दी जाती है।

शारीरिक शिक्षण विभागका नया वर्ष आधे दिसंबरसे शुरू हुआ करता है। २५ वर्षसे कम आयुके सभी लड़के-लड़कियोंसे प्रत्येक दिन शामको किसी-न-किसी रूपमें कसरत करनेकी आशा की जाती है। १२ से २५ तकके लड़के-लड़कियोंके अनेक दल साधारणतया सप्ताहमें दो दिन खेल-कूद, दो दिन जिम्नास्टिक्स, एथलेटिक्स, एक दिन तैराकी और एक दिन कुश्ती, बाक्सिंग, जूडो आदि करते हैं। बारहसे कम या पच्चीससे ऊपर आयुके सदस्योंके लिये कार्यक्रम इतना कड़ा नहीं होता। लेकिन उनके लिये भी उनकी आवश्यकता और क्षमताके अनुसार सर्वांगीण कार्यक्रम बनाया जाता है। शारीरिक शिक्षण विभागके सभी उपविभागोंमें आश्रममें ही प्रशिक्षित शिक्षक काम करते हैं।

इन सबके अतिरिक्त विभिन्न दलोंके लिये खेल-कूद, तैराकी, जिम्नास्टिक्स आदिकी प्रतियोग्यताएं भी होती हैं। दिसंबरकी दूसरीको हमारे शिक्षा-केंद्रके जन्मदिनके उपलक्ष्यमें विशेष कार्यक्रम होता है और उसके बाद वनभोज आदि। हमारे यहां छुट्टियां नहीं होतीं। सारे वर्ष, सप्ताहके सातों दिन शारीरिक व्यायाम चलता रहता है।

संक्षेपमें यह है श्रीअरविन्दाश्रमके शारीरिक शिक्षण-विभागका परिचय। एक छोटेसे आंगनमें चौदह लड़कोंको लेकर बिना किसी साधनके १९४५ में इसका श्रीगणेश हुआ था और अविरत प्रगति करते हुए वह इक्कीस वर्षोंमें अपनी वर्तमान स्थितिपर पहुंचा है। लेकिन अभी तो बहुत कुछ करना बाकी है। हम इसे पूर्णताकी ओर ले जानेका सतत प्रयास कर रहे हैं।

मनुष्यके अन्य भागोंकी तरह शरीरको भी पूर्णता पानेसे पहले चार अवस्थाओंमेंसे गुजरना होगा। पहले उसे सचेतन होना होगा, फिर नियंत्रण लाना होगा, पूर्ण अधिकार प्राप्त करना होगा और फिर इसका रूपांतर करना होगा और यह कार्य पूरी तरहसे प्रत्येक अंगमें ही नहीं शरीरके हर अणुमें सिद्ध करना होगा। तब एक दिन, इस शरीरको चौमुखी पूर्णता प्राप्त करनी होगी जिसकी अभी कल्पना करना भी असंभव है। हो सकता है कि तब भौतिक शरीर परात्परकी ज्योति, उसके सौंदर्य और आनंदका घर बन जाये और दिव्य जीवन, दिव्य शरीर धारण कर ले।

* * *

खोलो, अंतरमयि खोलो, अपना स्वर्गिक वातायन !
निज स्वर्णिम आभासे भर दो, मेरा स्वप्नोंका मन !

—पन्त

सातवळेकरजी चिरायु हों !

साधनहीन बालक, एक सफल चित्रकार और फोटोग्राफर, वेदके विद्यार्थी, उग्र राष्ट्र-सेवक, गो-सेवक, वेदसम्मत राजनीतिक कार्यकर्ता और वेदमूर्ति यह है संक्षेपमें पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर-के जीवनकी एक झांकी।

श्रीमाताजीने लिखा है, "वृद्धावस्था आयुके वर्षोंकी गिनतीपर निर्भर नहीं है, एक बीस वर्षका लड़का भी वृद्ध हो सकता है और सत्तर वर्षका व्यक्ति भी युवक हो सकता है। जो निरंतर प्रगति करता रहे उसे वृद्ध नहीं माना जा सकता।" पं० सातवळेकरजी इसी प्रकारके एक युवक हैं। वे स्वयं कहा करते हैं कि अंग्रेजी भाषाने हमें यह बुरी आदत सिखा दी है कि हम हर एकको बूढ़ा कहने लगते हैं। हम कहते हैं 'ही इज टेन ईयर्स ओल्ड' पर मैं तो अपने-आपको हमेशा 'हंड्रेड ईयर्स यंग (सौ वर्षका जवान)' कहा करता हूं। और बात है भी ठीक, उन्हें देखकर कोई भी न कह सकेगा कि वे सत्तर वर्षसे ऊपर होंगे। छोटे कद, लाल चेहरे और चमकदार आखोंवाला यह युवक भारतके युवकोंके लिये एक उदाहरण है, एक प्रोत्साहन है। और साथ ही आलसी, अकर्मी लोगोंको लज्जित करनेवाला है। पंडितजीने बातचीतमें बताया कि वे आज भी लगभग आठ-दस घंटे लिखने-पढ़नेका काम करते हैं और जिन्होंने उनसे परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है वे कहेंगे कि यह अल्पोक्ति हो सकती है अत्युक्ति नहीं।

सातवळेकरजीका जन्म आजसे सौ वर्ष पहले सावन्तवाड़ीके पास हुआ था। आर्थिक कठिनाइयां इतनी थीं कि साधारण आदमीका हृदय टूट जाता, पर 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'। इन्होंने संस्कृत पढ़ी और फिर अपने ही बल-बूतेपर १८९० में बंबई आ गये और वहां छः वर्षतक चित्रकलाका अध्ययन करते रहे। कुछ थोड़े बहुत चित्र खींचकर आमदनी करते, उससे अपना खर्च निकालते और घरवालोंकी भी सहायता करते। इनकी शिक्षा समाप्त होते ही इनके अंग्रेज प्रिंसिपलने इनकी प्रतिभा देखकर इन्हें अपने शिक्षणालयमें अध्यापक बना लिया। लेकिन कहीं सिंहोंके भी नाथ डाली जाती है! ये नौकरी छोड़कर हैदराबाद, दक्षिण चले गये, वहां निजामके लिये और अन्योंके लिये चित्र बनाते रहे और इससे अच्छी आय होने लगी, पर — मेरे मन कछु और है विधनाके कछु और। यहांपर सातवळेकरजीका संपर्क आर्य समाज और थियोसोफिकल सोसायटीसे बढ़ गया और उन्होंने वेद-शास्त्रोंका गहरा अध्ययन आरंभ किया। उन्हीं दिनों सारे देशमें श्रीअरविन्द और तिलक-के नेतृत्वमें स्वदेशी आंदोलन उठ खड़ा हुआ और सातवळेकरजीने अनुभव किया कि वैदिक धर्मकी मांग है कि देशको स्वतंत्र करवाया जाय। ये आंदोलनमें कूद पड़े। बकरेकी मां कबतक खैर मनाये। निजामके पास रेजीडेंटका आदेश आया कि इस भयंकर आदमीको देश-निकाला दे दिया जाय और सातवळेकरजीको बोरिया-बिस्तरा उठाना पड़ा।

इन्हीं दिनों भारतके क्षितिजपर एक नया नक्षत्र उठता हुआ दिखायी दे रहा था। हरद्वारके पास हिमालयकी मौन घाटीमें महात्मा मुंशी राम (बादमें स्वामी श्रद्धानन्द) ने वैदिक शिक्षा-पद्धतिको पुनरुज्जीवित करनेका बीड़ा उठाया था और इस हेतु गुरुकुल, कांगड़ीकी स्थापना की थी। सातवळे-करजीको दूर दक्षिणमें इसका आभास मिला और वे होते-हुवाते गुरुकुलमें आ पहुंचे। पर विदेशी सरकारका पंजा इन्हें कब छोड़नेवाला था। इन्होंने एक मराठी पत्रिकामें कुछ "विद्रोहात्मक" लेख लिखे थे जिनके कारण संपादक और प्रकाशक गिरफ्तार कर लिये गये। इन्हें यह चीज खटकी। ये

महाराष्ट्र पहुंचे और घोषणा की कि इन लेखोंका लिखनेवाला तो मैं हूं, पर सरकार चुप्पी साध गयी। ये लौट पड़े परंतु इनके गुरुकुल लौटते ही सरकारका फौलादी पंजा इनपर पड़ा। पांच फुट दो इंचके इस छोटेसे शरीरको पकड़नेके लिये लगभग तीन सौ सिपाही, घुड़सवार और अफसर गुरुकुलपर चढ़ आये। गुरुकुलके विद्यार्थियोंने अपने प्रिय अध्यापकको सौंपनेसे इंकार किया, मुंशी रामजी जमानत देनेको तैयार हुए पर सातवळेकरजी (जो अब पंडितजीके नामसे प्रसिद्ध हो गये थे) ने अपने-आपको पुलिसके हाथमें सौंपना ज्यादा पसंद किया, राष्ट्रीय यज्ञमें अपनी आहुति जो देनी थी। पंडितजी रातके समय हवालातमें पहुंचाये गये, और सब कैदी सो गये थे, इन्हें उनके मैलेके पास बैठकर रात काटनी पड़ी। उन दिनों राजनीतिक कैदियोंको भी दूसरे कैदियोंके साथ ही रखा जाता था और रातको बीस कैदियोंकी बेड़ियोंमें एक जंजीर डालकर ताला लगाया जाता था। पंडितजीके साथ भी यही व्यवहार हुआ, पर उन्होंने उफतक न की –– जब प्रेमगलीमें पांव दिया तो अपयशसे घबड़ाना क्या? इनके ऊपर जो गंभीर आरोप लगाये गये थे वे सिद्ध न हो सके और साल-डेढ़ सालके बाद पंडितजीको जेलसे मुक्त कर दिया गया, पर अब यू-पी. में रहना असंभव हो गया और ये लाहौर चले गये। वहां चित्रकला और फोटोग्राफीकी दुकान खोली। दुकान अच्छी चल निकली, पर इनके भाग्यमें तो कुछ और ही लिखा था। इन्होंने वैदिक राष्ट्रीय गीत गाने शुरू किये और वह भी सर माइकेल ओडायरके राज्यमें। सर माइकेलकी ओटमें विधिने इन्हें फिरसे धक्का दिया और ये पंजाबसे निकाले गये। इनके मित्र औंध-नरेश बड़े गुणग्राही थे। उन्होंने पंडितजीको अपने यहां रामायणके चित्र बनानेके लिये बुला लिया और ये वहीं बस गये। औंधके राजा बड़े उदार और प्रगतिशील विचारोंके आदमी थे। जब चारों ओर स्वराज्य-संग्राम चल रहा था, उन्होंने पंडितजीकी सहायतासे अपने छोटेसे राज्यमें वैदिक पद्धतिका शासन चलानेकी कोशिश की। राजाने अपने सभी अधिकार प्रजाको सौंप दिये और अपने-आप सच्चे अर्थोंमें प्रजाके सेवक बन गये। प्राचीन कालमें जैसे राजा लोग हमेशा ऋषि-मुनियोंसे सलाह करते थे उसी प्रकार शासनके कामोंमें सच्चे ब्राह्मण सातवळेकरकी सलाह ली जाने लगी। राज्यमें यह व्यवस्था हुई कि नगरमें कहीं भी कुछ आपत्ति आ पड़े तो सभी नागरिक अपना काम-काज छोड़कर वहां सहायता करने पहुंच जायें। शिक्षा और व्यायामका खूब प्रचार हुआ और प्रजा शासनका मुंह ताकनेकी जगह अपने पैरोंपर खड़ी होने लगी। प्रजामें सातवळेकरजी और उनके राजाकी लोकप्रियता बढ़ती गयी और इसका प्रभाव आसपासकी उन्नीस-बीस रियासतोंपर पड़ा और उनमें भी धर्मपरायण शासनका सूत्रपात हुआ। आसपासके अंग्रेजी इलाकेके आतंक-पीड़ित लोग अपने घर-बार छोड़कर औंधमें आ बसे और यहांके गुण्डे यहांका जलवायु अनुकूल न पाकर अंग्रेजी राज्यमें भाग गये।

इस सबके साथ-साथ वेदके अध्ययन-अध्यापन, मुद्रण, प्रकाशन और प्रचारका काम बड़े वेगसे चल रहा था। औंधमें स्वाध्याय मंडलकी स्थापना हुई जो देशमें चलती हुई झंझाका विरोध करके वैदिक ज्योति-स्तंभ बननेका प्रयास कर रहा था। वेद और वैदिक वाङ्मयके प्रामाणिक संस्करण निकाले गये, उनपर स्वयं पंडितजीने भाष्य किये। हिन्दी और मराठी भाषाओंके साहित्यको समृद्ध किया जाने लगा। ऋषि दयानन्दने कहा है कि "वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है।" श्रीअरविन्द इसपर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि इस बातमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। पंडितजीने वेदके राष्ट्रपरक और समाजपरक अर्थ लगाये हैं और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रोंके लिये वेदसे क्रियात्मक पथप्रदर्शन पाया। योग-साधन मालामें योग, आसन, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य आदिपर बड़ी प्रामाणिक और उपयोगी सरल पुस्तकें लिखीं। वाल्मीकि रामायण और महाभारतकी टीकाएं कीं और संस्कृत सीखनेके लिये 'संस्कृत स्वयं-शिक्षक' के २४ भाग लिखे। इसके साथ-ही-साथ मराठी और हिन्दी मासिक पत्रोंका संपादन करते रहे।

पर सब दिन होत न एक समान। भारत स्वाधीन हुआ और छोटी-छोटी रियासतें निकटवर्ती प्रांतोंके साथ मिला दी गयीं। गेहूंके साथ घुन भी पिस गया। अत्याचारी शासकोंके राज्यके साथ औंध जैसे राज्यका भी अंत आ गया। पतरी सरकारके लोग ब्राह्मणोंसे खार खाये बैठे थे। उन्हीं दिनों गांधीजीकी हत्या हो गयी जिससे सारे देशमें क्रोधकी लहर दौड़ गयी। इस अवसरका लाभ उठाकर उपद्रवी लोगोंने ब्राह्मणोंपर अत्याचार शुरू कर दिये। जिस दिन गांधीजीकी हत्या हुई थी उस दिन पंडितजीके यहां पच्चीस मेहमान आये थे। मंडलमें उनके भोजनकी व्यवस्था की गयी पर शामको दुखद समाचार पाकर उन्होंने खानेसे इन्कार कर दिया। इतना सारा भोजन बचा हुआ था उसे नष्ट करना ठीक न समझकर पंडितजीने वह भोजन अपने कर्मचारी वर्गको दे दिया। इस जरा-सी बातको लेकर अब्राह्मण दलके लोगोंने यह प्रचार करना शुरू किया कि पंडितजीने महात्माजीकी हत्याके उपलक्ष्यमें प्रीतिभोज दिया। असंतुष्ट लोगोंकी बन आयी और उन्होंने पंडितजीका औंधमें रहना असंभव कर दिया। औंध-नरेशका भी देहांत हो चुका था। ब्राह्मण-विरोधी आंदोलनने पंडितजीको बड़ी आर्थिक हानिके साथ महाराष्ट्र छोड़नेपर बाधित किया और उन्होंने गुजरातके एक छोटेसे ग्राम पारडीमें अपना नूतन नीड़ निर्मित किया। अब ८० वर्षकी आयुमें पंडितजीने सब कुछ नये सिरेसे शुरू किया। साधारण मनुष्य इन विपदाओंसे टूट जाता लेकिन यहां सातवळेकरजीने जीवनका नया अध्याय शुरू किया ।

“बढ़ता है और उनका, रुकनेसे दरिया।” आज सौवें वर्षकी आयुमें पंडितजी ऐसे उत्साहके साथ, ऐसी आशाके साथ और इतने परिश्रमके साथ काम कर रहे हैं मानों अभी वे नवयुवक हों। अभी हालमें उन्होंने वेदका एक नया प्रकाशन शुरू किया है जिसमें पांच-पांच सौ पृष्ठकी तीस पुस्तकें होंगी। गुजरातमें आकर उन्होंने हिन्दी और मराठीके अतिरिक्त गुजरातीमें भी प्रकाशन शुरू किया है । उन्होंने अपने-आप गुजराती सीखी है और अब एक गुजराती पत्रिकाका भी प्रकाशन कर रहे हैं।

पंडितजीको संस्कृत, हिन्दी और मराठीपर अच्छा अधिकार है। संस्कृतके ऐसे विद्वान् तो शायद गिने-चुने ही निकलें। अब देशने आपका मूल्य समझना शुरू किया है। आपको संस्कृत-सेवाके लिये और अहिन्दी भाषी होते हुए हिन्दीकी सेवाके लिये पुरस्कार मिल चुके हैं और राष्ट्रपतिने भी आपके कार्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पंडितजीने १९६० में श्रीअरविन्दाश्रमकी यात्रा की और शायद यह उनके जीवनमें एक और नये अध्यायका आरंभ हुआ। आश्रमसे चलते हुए उन्होंने मित्रोंसे कहा, मैं अनुभव कर रहा हूं मानों अपना घर छोड़कर कार्यवश प्रवासके लिये जा रहा हूं। अब मेरा घर तो यहीं है, माताजीने चलते समय मुझसे पुनरागमनाय जो कह दिया।

दो-तीन वर्ष पहले पंडितजी रेलसे कहीं जा रहे थे। एक जगह रेल बदलनी पड़ी। पांव फिसल गया और वे गिर पड़े। सिरमें बड़ी चोट आयी। साथ तो कोई था नहीं, रेलवालोंने ही उठाकर हस्पताल पहुंचाया। यह समाचार अखबारोंमें पढ़कर पंडितजीके मित्रोंको बहुत चिंता हुई। पत्रोंके ढेर लग गये। पंडितजीने अपने हाथसे उत्तर लिख भेजे, “मैं बिलकुल ठीक हूं। आप लोग चिन्ता न करें।”

इस वर्ष पंडितजी अपनी शताब्दी पूरी कर रहे हैं। परमात्मा उन्हें चिरकालतक एक उद्यमी युवकके रूपमें बनाये रखें।

— रवीन्द्र

पौधोंमें अभीप्सा

—श्रीमाताजी

क्या तुमने कभी किसी वनको असंख्य पेड़-पौधों सहित प्रकाशके लिये ऐकांतिक रूपसे संघर्ष करते नहीं देखा है —— धूप प्राप्त करनेके लिये उन्हें मुड़ते-तुड़ते और अन्य सब संभव तरीकोंसे यत्न करते नहीं देखा है? भौतिक स्तरपर अभीप्साका अनुभव ठीक यही है —— प्रकाशकी प्राप्तिके लिये संवेग, गति एवं प्रेरणा। मनुष्योंकी अपेक्षा पौधोंकी भौतिक सत्तामें यह अधिक मात्रामें होती है। उनका संपूर्ण जीवन प्रकाशकी पूजा है। निःसंदेह प्रकाश भगवान्का स्थूल प्रतीक है और सूर्य, जड़प्राकृतिक अवस्थाओंमें, परम चेतनाका प्रतिनिधि है। पौधोंने इसे अपने सरल अंध ढंगसे सर्वथा स्पष्ट रूपमें अनुभव किया है। यदि तुम उनकी अभीप्सासे सचेतन होना जान लो तो तुम्हें पता चलेगा कि उनकी अभीप्सा अत्युत्कट है। जड़प्रकृतिके स्तरपर वे मेरे प्रभावके प्रति सबसे अधिक खुले हुए हैं —— मनुष्यकी अपेक्षा एक फूलमें मैं चेतनाकी किसी अवस्थाको अधिक सुगमतासे संचारित कर सकती हूं : वह अत्यंत ग्रहणशील है, चाहे अपने अनुभवको अपने प्रति रूपायित करना वह नहीं जानता क्योंकि उसमें मन नहीं है। परंतु शुद्ध आंतरात्मिक चेतना प्राप्त करना उसके लिये सहज-स्वाभाविक है। अतएव जब तुम मुझे फूल देते हो, उसकी अवस्था प्रायः सदैव तुम्हारी अवस्थाकी सूचक होती है। ऐसे कई लोग हैं जो मेरे पास ताजा फूल कभी नहीं ला पाते —— फूल चाहे ताजा हो तो भी उनके हाथोंमें वह कुम्हला जाता है। परंतु और कई लोग सदा ताजे फूल ही लाते हैं और मुरझाते फूलोंमें भी जान डाल देते हैं। यदि तुम्हारी अभीप्सा तीव्र है, तुम्हारे पुष्प-उपहार ताजे होंगे। और यदि तुम ग्रहणशील हो तो तुम उस संदेशको बड़ी आसानीसे आत्मसात् भी कर सकोगे जो मैं अपने दिये हुए फूलोंमें निहित कर देती हूं। जब मैं फूल देती हूं, मैं तुम्हें चेतनाकी अवस्थाएं देती हूं; फूल माध्यम हैं और वे प्रभाव उत्पन्न करते हैं या नहीं यह केवल तुम्हारी ग्रहणशीलतापर निर्भर है।

(जो लोग माताजीके पास जाया करते हैं, माताजी उन्हें फूल दिया करती हैं। —सं.)

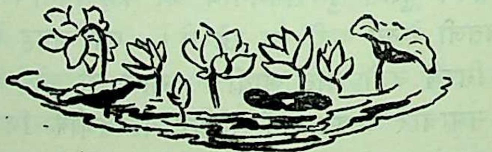

हे जीव! तुम अभीप्सा करो, कामना करो, जबतक तुम देव न बनो तबतक अभीप्सा करते रहो। अभीप्सा करते-करते अन्न प्राण बना, अभीप्सा करते-करते सागरकी मछली उड़ने लगी। तैरनेवाली मछली इसी अभीप्साके कारण उड़नेवाला पक्षी बन गयी। अभीप्सा करते-करते प्राणमें मनोज्ञानका उदय हुआ और इसी अभीप्सासे आत्मज्ञानकी सिद्धि हुई। तुम भी उसी प्रकारकी उत्कट अभीप्सा करते चलो।

—कुवेम्पु

पौधोंके साथ

—श्री रिचर्ड

[परीक्षण करके देखा गया है कि पौधोंपर केवल हवा, पानी और खादका ही नहीं, काम करनेवालेकी चेतनाका भी असर होता है। इस छोटेसे रूपकके लेखक श्रीअरविंद शिक्षा-केंद्रमें इस प्रकारके प्रयोग किया करते हैं। —सं.)

(नैपथ्यसे) यहांसे थोड़ी दूर, एक छोटी-सी वाटिकामें एक सुन्दर-सा पौधा है, या यूं कहूं कि सुन्दर ही नहीं एकदम अलौकिक। आप लोग हमारे साथ परियोंकी उस वाटिकामें चलेंगे ?

(पर्दा उठता है)

यह लीजिये यह रहा।

पौधा : ओह, सवेरा हो गया! नन्हीं चिड़िया नमस्कार, तुम मेरी शाखाओंपर मौज कर रही हो! नमस्कार चींटी महाशया, तुम मेरी कोमल पत्तियोंके नीचे क्या ढूंढ़ रही हो ?

(एक मालीका प्रवेश)

पहला माली : यह देखो, मेरा सुन्दर पौधा, अरे यह सब बेकार पौधे तो तेरा दम घोंटे दे रहे हैं। ले, मैं अभी देखते-देखते इनसे तेरा पिंड छुड़ाये देता हूं।

(घास-पात उखाड़ने लगता है)

आह, ऊह, यह ले, निकल यहांसे, मेरे पौधेको हवा चाहिये, उसे बहुत ऊंचा उठना है।

(दूसरा माली हाथमें हजारा लिये आता है)

दूसरा माली : लो पानी, पानी (कहते हुए उकड़ूं बैठे हुए पहले मालीसे टकराता है)।

पहला माली : अरे, क्या कर रहा है तू ?

दूसरा माली : मैं इस अद्भुत पौधेके लिये पानी लाया हूं। इसे पानी चाहिये। देख, इसके पत्ते मुरझाने लगे। इन्हें एकदम नया जीवन चाहिये।

पहला माली : लेकिन तूने तो मुझे भी सींच डाला, मैं भी कोई पौधा हूं क्या ?

दूसरा माली : तुझे भी तो गरमी लग रही है।

(दोनों जोर-जोरसे बातें करते हुए चले जाते हैं।)

पौधा : गये। हाश! उन्होंने मुझे हवा दी, पानी दिया। लेकिन मुझे उनकी बकबक नहीं भाती। मुझे तो अपना मौन ही पसंद है।

(संगीतके साथ सूर्यकी आराधना)

पौधा : हे सूर्यनारायण, तुम्हारी पहली किरणोंके आगमनके साथ हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। भगवन्, तुम्हारी बड़ी कृपा है (मौन) तुम्हारी ज्योति हमारे जीवनमें ऊष्मा लाती है और हमें शक्तिसे भर देती है, मेरे फूल तेरी ज्योतिको देखकर खिल उठते हैं और अपना सुगंधभरा हृदय तेरे चरणोंपर न्यौछावर करते हैं।

सूर्यकी किरण : (लाल वेशमें) मेरे प्यारे मित्र, मैं ओज और बल देने आयी हूं। मेरी जीवनदायिनी ऊष्मा तेरे हरे-हरे पत्तोंको सहला रही है।

पौधा : (पुलकित होकर) वाह ! वाह ! तूने मेरे सारे शरीरमें ऊष्मा भर दी। मेरी हरी-हरी कोंपलें तेरे बताये हुए काममें लगी हैं, वाह, वाह, अब मेरी शाखाओंपर सुन्दर सुगन्धित फूल खिलेंगे और सूर्य भगवान्के जैसे सुनहरे बड़े-बड़े फल आयेंगे।

किरण : हां, हां, जरूर, आनन्दसे काम करता जा और भगवान्के गुण गाता जा, सारे दिन बिना रुके सूर्यनारायणके गीत गाता हुआ काम करता जा।

(अपना काम पूरा करके चली जाती है।)

पौधा : अरे, रात भी हो गयी, इतनी जल्दी ! चलूं अपनी पत्तियां बंद करके सो जाऊं। सूर्यकी किरणें खेल छोड़कर चली गयीं। लेकिन रातकी इस स्तब्धतामें तो मुझे और भी अधिक शांति और आनंदका अनुभव होता है ! अच्छा, चलो, कल सवेरे मालियों और कौतुकी बच्चोंको विस्मयमें डाला जाय।

(दूसरे दिन — बड़े ही सवेरे)

एक छोटा बालक : अभीतक सवेरा नहीं हुआ। मैं बगीचेमें जाकर कुछ ढूंढ़ना चाहता हूं। हां, इस तरफ तो मैं कभी आया ही नहीं, कौन जाने किसका है यह भाग। लेकिन उसकी क्या परवाह ! अभी तो मैं अकेला ही हूं। चारों ओर मेरा ही राज है।

पौधा : मैंने पानी पी लिया, यह प्रभात कितना सुन्दर और जीवनदायी है। इसने मुझे तरोताजगीके मोतियोंसे भर दिया है।

छोटा बालक : यह कौन-सा पौधा है ? इसमें फूल भी होते हैं ? ओ, यह रही, एक पंखुड़ी, कितनी लाल है, मानों रक्तकी बूंद हो।

(जमीनपर पड़ी हुई पंखुड़ियोंको उठाकर पौधेकी ओर देखता है।)

पौधा : यह 'भागवत प्रेम' नामक फूलकी पंखुड़ियां हैं।

बालक : क्या ?

पौधा : तुझे यह सब नहीं मालूम ? सुन। बहुत पुरानी बात है। आज जहां अरबका रेगिस्तान है वहां एक भागवत पुरुषने अवतार लिया। वह धरतीपर परम प्रेमको जगाने आया था। जैसा हमेशा होता है, उसपर किसीने विश्वास न किया, उसकी बात न समझी और उसे खदेड़ने लगे। उसे बहुत चोट आयी। वह एकांतमें शांतिके साथ मरना चाहता था, वह एक दिशामें भागा, लोग पीछा कर रहे थे। लेकिन देखते-ही-देखते उस सूने मैदानमें अनारका एक पेड़ खड़ा हो गया। भागवत पुरुष उसकी शाखाओंमें छिप जाना चाहता था। उसके चारों ओर झाड़ी फैल गयी और पत्तोंने उसे ढक लिया। उसके रक्तकी एक-एक बूंदने खाद बनकर इस पौधेको पोषण दिया और पूरी-की-पूरी झाड़ी लोहूके रंगके सुन्दर भव्य फूलोंसे ढक गयी। पीछा करने-वाले बिना संदेह किये ही आगे बढ़ गये। यही फूल भागवत प्रेमका प्रतीक है।

बालक : और तेरे फल भी कैसे सुन्दर और सुनहरे हैं !

पौधा : ले, ले, बच्चे, तू इस फलको ले ले, यह तेरे लिये ही है। यह धरतीपर फैले हुए भागवत प्रेमका प्रतीक है।

(बालक चला जाता है। माली हंसते हुए आते हैं।)

पहला माली : कहां है वह फल ? तू बातें तो इतनी बना रहा था, अब दिखा . . . . .

दूसरा माली : यहां नहीं है, कोई ले गया शायद, यह . . . . .

पहला माली : नाराज न हो भई, हम फलके लिये तो काम नहीं करते, देख, पौधा तो तेरी तरह दुःखी नहीं है।

दूसरा माली : हूं.....एक बार तो तेरी बात ठीक है....

(किसीकी पदचाप सुनायी देती है। युवा विद्वान् आता है।)

युवा विद्वान् : नमस्कार, मैं अपने परीक्षणोंके लिये नये पौधोंकी तलाशमें हूं।

पहला माली : नमस्कार महाशय, आप वनस्पति-शास्त्री हैं क्या?

युवा विद्वान् : मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि मुझे पेड़-पौधे अच्छे लगते हैं।

पहला माली : यह लीजिये, एक सुन्दर-सा पौधा। शायद आपने इसे नहीं देखा होगा।

युवा विद्वान् : मैं इसे भलीभांति जानता हूं। इसपर तो मैं बहुतसे परीक्षण कर चुका हूं। आप दोनोंको कष्ट न हो तो मेरी प्रयोगशालामें चलिये, जहां मैं पौधोंके जीवनपर परीक्षण कर रहा हूं।

दोनों माली : जरूर, जरूर, चलिये....

(तीनों चले जाते हैं।)

पौधा : मनुष्य मेरे जीवनके रहस्यको जान जाये तो उसमें बड़ा परिवर्तन आ जायगा। हे मेरे मधुर स्वामी! रोजकी तरह आज भी मेरी अभीप्सा तेरी ओर उठ रही है। हे सूर्य भगवान्, हे मित्रवर, सबको.....अधिकाधिक प्रकाश दो, सौंदर्य दो, और सच्चा प्रेम दो!

(नेपथ्यसे) : मनुष्य भी तो पूर्णताके लक्ष्यको पानेके लिये अभीप्सा करते हैं। हां, वे बहुत बार रास्तेपर हजारों झंझटोंमें फंस जाते हैं और सीधे ज्योति-स्वरूपकी ओर बढ़नेकी जगह भूलभुलैयामें पड़ जाते हैं। लीजिये, हम युवा विद्वान्की प्रयोगशालामें आ पहुंचे।

युवा विद्वान् : मेरे पास आप लोगोंके लिये कई आश्चर्यजनक चीजें हैं।

पहला माली : क्या सुन्दर चीज है, कैसी सुगन्ध है!

दूसरा माली : आप यहांपर क्या परीक्षण कर रहे हैं?

युवा विद्वान् : मैं यह दिखानेकी कोशिशमें हूं कि लाल रोशनी पौधोंका पोषण करती है। वह उनमें शक्ति भर देती है जो उनके शरीरको पुष्ट करती है। उधर देखिये, जहां स्फटिकमेंसे सूर्यकी लाल किरणें पड़ रही हैं और पौधोंमेंसे आक्सीजन निकल रही है।

पहला माली : और यहां?

युवा विद्वान् : यहां एक और परीक्षण हो रहा है जिससे मालूम होता है कि जो कार्बन-गैस हमारे लिये अनुपयोगी है, जो हमारे निःश्वासके साथ बाहर निकलती है उसका पौधे किस तरह उपयोग करते हैं। यह परीक्षा-नली बंद है, इसमें निम्न कोटिके पौधेके रूपमें कुछ काई है, और नीला लिटमस है जो मेरे फूंक मारनेसे ही रंग बदलता है। यह कार्बन गैसकी करामात है, इसे धूपमें रख दो तो नीला रंग वापिस आ जायगा। यानी कार्बन गैसको पौधा ले लेगा और आक्सीजन छोड़ देगा। इसी प्रकारकी जो नली धूपमें न रखकर अल्मारीमें रखी गयी है उसमें रंग नहीं बदलता।

और यहां एक तीसरा परीक्षण है। जो चीज आपके बागोंमें स्वाभाविक रूपसे होती रहती है, उसे मैंने प्रयोगशालामें करनेकी कोशिश की है।

पहला माली : लेकिन मुझे तो यहां कोई खास यंत्र नहीं दिखायी देते।

(संगीत)

युवा विद्वान् : नहीं, यहां मैं यह देखना चाहता हूं कि सहानुभूति, प्रार्थना, ध्यान — यानी चेतनाकी चीजें — जीवनके ऊपर क्या असर कर सकती हैं। आपने देखा होगा कि कई पौधे एक-सी परिस्थितियां होते हुए भी एक मालीके यहां ज्यादा अच्छी तरह फलते-फूलते हैं, दूसरेके यहां वह बात नहीं आती। जिन मालियोंके हाथमें बरकत होती है, वे ऐसे होते हैं जो अपनी चेतनाको पौधोंकी चेतनासे मिलाकर पौधोंको ज्यादा पुष्ट और अच्छा बना सकते हैं। उनके पौधे, उनके फूल हमेशा अधिक अच्छे होते हैं।

पहला माली : हमारे युवा मित्र ! हमें अभी बहुत कुछ सीखना है।

दूसरा माली : हां भाई, चलो, हम भी पौधोंकी तरह चुपचाप नम्रताके साथ अधिक प्रकाश, अधिक सौंदर्य और अधिक प्रेमके लिये प्रार्थना करें।

(शांत प्रार्थना और संगीत)

(धीरे-धीरे पर्दा गिरता है)

* * *

बच्चोंके साथ

—श्री अंजना शर्मा

बच्चोंकी अपनी ही दुनिया होती है जिसमें उनकी अपनी प्रिय वस्तुएं वास करती हैं। उनको कुछ ऐसी चीजें प्रिय होती हैं जो हमें बिलकुल कूड़ा-करकट लगती हैं। हमारे स्कूलमें बच्चे रद्दी कागजोंके ढेरमेंसे न जाने कैसे-कैसे पुराने कागज, चित्र आदि इकट्ठे करके रखते हैं। उनकी प्रिय चीजें प्रायः हमारी नजरोंमें कूड़ा-करकट होती हैं। और बड़े दुःखकी बात है कि बहुतसे मां-बाप बिना सोचे-समझे उनको उठाकर फेंक देते हैं। एक छोटी-सी लड़की एक दिन कह रही थी कि उसकी मां उसके चित्र फेंक देती है। यह सुनकर मुझे दुःख हुआ क्योंकि मैं उस लड़कीके भावोंको समझ सकती थी ; मैं जानती हूं कि उस लड़कीके लिये इन चीजोंका कितना मूल्य है। हम बड़े होकर बच्चेकी दृष्टिसे देखने और उनके भावोंको समझनेका प्रयत्न नहीं करते। फटे-पुराने कागज, टूटे खिलौने, घोंघे, सीपियां उनका खजाना हैं और वही उनके लिये मूल्यवान् वस्तुएं हैं। अगर हम उनकी चीजोंको बेकार समझकर फेंकेंगे या पटकेंगे तो बच्चे भी हमारी चीजोंका मूल्य समझनेका प्रयत्न नहीं करेंगे, और शायद हम देखेंगे कि एक दिन वह हम बड़ोंकी महंगी चीजोंको ही पकटना, गिराना, तोड़ना शुरू कर देंगे, उनकी नजरोंमें किसी भी वस्तुका मूल्य नहीं रहेगा।

बच्चे हमेशा बड़ोंको देखकर ही सीखते हैं। इसलिये उनके सामने बहुत सावधान रहना जरूरी है। अगर उनके सामने सभ्यता, सदाचार, प्रेम दिखाये जायें तो वे भी यही सीखेंगे। वैसे तो उनका भी अपना स्वभाव होता है जिसे बदलना मुश्किल है। मगर वे वातावरणसे बहुत प्रभावित होते हैं। और सत्संग या कुसंग उनके जीवनको दिशा दे सकता है। अगर उनकी इकट्ठी की हुई चीजोंको हम लोग संभालकर रखें और उनको भी यही सिखायें और उनकी हरएक वस्तुको मूल्य दें तो वे बहुत खुश होते हैं और घरमें अपना महत्त्व समझने लगते हैं। वे यह नहीं समझते कि उनपर ध्यान नहीं दिया जाता, या उनकी वस्तुओंको बेकार माना जाता है। अगर मां अपने बच्चेके खेलनेके डिब्बेको अपने बच्चेसे मांगती है और कहती है कि यह बहुत उपयोगी वस्तु है और उसके बड़े काम आयगी, वह उसमें अपना सूई-धागा रखेगी तो बच्चा बहुत खुश होता है; वह अपनी चीजका मूल्य समझता

है और यह भी अनुभव करता है कि उसकी मां उसकी इकट्ठी की हुई चीजोंको महत्त्व देती है, उसकी चीज मांतकके काममें आ सकती है। इससे बढ़कर खुशीकी बात क्या हो सकती है।

इसी तरह बच्चोंके साथ रहते हुए यह समस्या खड़ी होती है कि उनकी प्रशंसा की जाय या नहीं। उनके कामोंको बढ़ावा देना कहांतक उचित है। प्रशंसा कभी लाभदायक होती है तो कभी हानिकारक भी, कई लोग प्रशंसासे उत्साहित होकर प्रगति कर सकते हैं और कइयोंका दिमाग आसमानपर चढ़ जाता है और वे अपने बराबर किसीको गिनते ही नहीं। मगर हम लोग बच्चोंके विषयमें बातचीत कर रहे हैं। इसलिये प्रश्न उठता है कि बच्चोंकी प्रशंसा कहांतक उचित है? क्योंकि यह भी हो सकता है कि कोई बच्चा अपनी प्रशंसा सुनकर फूल जाय और आगे उन्नति करनेसे रुक जाय। यह एक काफी गंभीर प्रश्न है क्योंकि कौन चाहेगा कि बच्चा यह सोचने लगे कि वह बहुत होशियार है, वह जो कुछ करता या कहता है वह बिलकुल ठीक है। ऐसी हालतमें वह आगे सीख ही कैसे सकेगा? यह झूठा आत्मसन्तोष आगे चलकर काफी हानिकारक हो सकता है। यहां मुझे एक लड़कीके साथ अच्छा अनुभव हुआ है, वह सब विषयोंमें अच्छी थी और स्वाभाविक रूपसे उसकी प्रशंसा की जाती थी। मगर हर वक्त प्रशंसा पाकर वह कुप्पा हो गयी और उसका दिमाग आसमानमें रहने लगा। उसे कुछ सिखाना कठिन हो गया।

मुझे विश्वास है कि किसी हदतक प्रशंसा लाभदायक हो सकती है। जब बच्चा नयी चीज करना चाहता है, जैसे कोई नया खेल खेलनेका या कुछ लिखनेका प्रयत्न करता है, तब यह अनिवार्य-सा हो जाता है कि अध्यापिका उसकी प्रशंसा करे और उसे बढ़ावा दे। क्योंकि बच्चा शुरू-शुरूमें थोड़ा हिचकिचाता है मगर जब अध्यापिका उसकी प्रशंसा करती है तो उसकी हिचकिचाहट कुछ-कुछ दूर होती है और वह उत्साहित होकर उस खेल या लेखनमें दूना प्रयत्न करता है। उसका आत्मविश्वास जागता है और उसे लगता है कि वह भी कुछ कर सकता है।

मैंने एक बच्चेके साथ कुछ ऐसा ही अनुभव किया है। वह पेंसिल भी ठीकसे नहीं पकड़ सकता था और जब मैं उससे लिखनेका प्रयत्न करवाती तो वह बिलकुल घबरा जाता था, क्योंकि उसके मनमें यह बैठ गया था कि वह लिख नहीं सकेगा। शुरू-शुरूमें उसका हाथ पकड़कर लिखवाती थी। सचमुच परिश्रम मेरा होता था मगर मैं उसे उत्साहित करती रहती थी और उसकी प्रशंसा करती जाती थी। फिर मैंने देखा कि वह धीरे-धीरे मेरे हाथका सहारा छोड़कर कुछ-कुछ लिखने लगा। फिर भी उसका हाथ सधा नहीं। मैं उसे बढ़ावा देती गयी। वह खुश होता था और उसकी खुशीसे मुझे भी खुशी होती थी। उसमें आत्मविश्वास आता गया और एक उत्साह भर गया। कुछ समय बाद वह लिखना सीख गया और अब अच्छी तरह लिख लेता है।

जब बच्चा किसी चीजमें जम जाय तब मैं समझती हूं कि उसकी प्रशंसाके पुल बांधना ठीक नहीं है। क्योंकि तब बच्चेके मनमें अहम् जागृत होता है, वह अपने-आपको सबसे अच्छा समझने लगता है और दूसरे जब गलती करते हैं तो हंसता है। इस बातपर अगर बचपनसे ध्यान न दिया जाय तो आगे चलकर स्वभाव बहुत बिगड़ सकता है।

मैं प्रशंसा करती हूं और उसके पक्षमें भी हूं, मगर एक बात है, इससे यह न समझा जाय कि बच्चेको झूठी प्रशंसाके घेरेमें डाल दिया जाय, क्योंकि इससे उसके मनमें यह बात पैठ जायगी कि वह जैसा भी काम करे, चाहे ठीक हो या न हो, वह प्रशंसा पानेके योग्य जरूर है। अगर बच्चा कुछ काम ठीक नहीं करता तो उसकी प्रशंसा न करना ही उचित है। अगर उसे किसी नये काममें प्रोत्साहनकी जरूरत है तो खुले मन प्रशंसा की जाय, क्योंकि इससे बच्चेको सहारा मिलता है, वह सीखता है। परंतु जब बच्चा किसी काममें जम जाय तब प्रशंसा तभी करनी चाहिये जब वह प्रशंसा पाने योग्य काम करे।

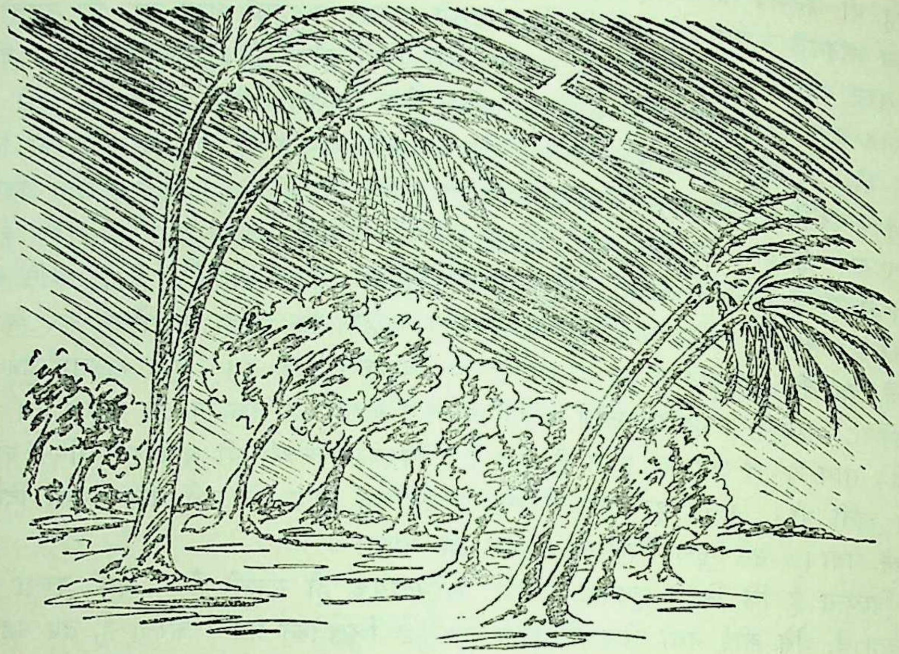

भयंकर तूफान

[३० अप्रैल १९६६ को पांडिचेरीमें एक भयंकर तूफान आया था। यहां तीन विद्यार्थियोंसे उसका वर्णन सुनिये। --सं०]

विकराल सौंदर्य

--श्री मीना

उस रात (३०-४-६६) सोनेसे पहले मुझे एक अजीब-सी बात याद आयी। किसीने मुझसे कहा था कि मद्रास और कडलोरके बीच एक तूफान आनेवाला है। इसे मामूली-सी बात समझकर मैं सो गयी।

अचानक मेरी नींद टूटी। प्रमादी पवन अब बड़े पराक्रमके साथ उड़ा जा रहा था। ऐसा लगता था मानो उनचास मरुतोंमें प्रतियोगिता हो रही हो। वर्षा भी ताल दे रही थी, दोनों मिलकर मानो ताण्डवका संगीत कर रहे थे। ऊपर बादलोंका रोमांचक गर्जन हो रहा था और बिजली भी निरंतर दमकती जा रही थी। रह-रहकर दसों दिशाएं जाग उठती थीं। यह शक्तिशाली झंझावात मानों नगरके साथ गेंदकी तरह खेल रहा था। काले-काले बादल मानो राक्षसकी तरह बैठे थे। बिजली उनका इशारा थी, जिसपर वर्षा और हवा नाच रहे थे। तूफानने सारी रात सब कुछ नष्ट करनेमें बितायी। बड़े-बड़े पेड़ लट्टूकी तरह घूम रहे थे, टीनके बड़े-बड़े पत्तर बड़ी आवाजके साथ उड़ रहे थे, और अड़ोस-पड़ोसके खपरैलोंका तो कहना ही क्या था। वे आकाशमें कटी पतंगोंका स्थान ले रहे थे। कम-से-कम उस रातके लिये पांडिचेरी वेनिस बन गयी थी। मकानों-

के बीचमें और कहीं-कहीं मकानोंके अंदर भी कहीं कमरतक और कहीं छातीतक गहरी नहरें और नदियां बह रही थीं। कई घरोंमें मेज-कुर्सियोंने नावका काम देना शुरू कर दिया था।

हम कमरेमें बैठे सारा तमाशा सुन रहे थे; देखना तो प्रायः असंभव था क्योंकि खिड़कियां बंद थीं और बाहर जाते ही बिना पंख उड़ जानेका भय था। जो कुछ कांचमेंसे या दरारोंमेंसे दीखा वही काफी था। सुबहके लगभग साढ़े पांच बजे होंगे। बाहर जानेकी खूब इच्छा हो रही थी, लेकिन खिड़की खोलते ही हवा अंदर आकर एक मुसीबत कर डालती थी। काफी समयके बाद निकलनेका हौसला हुआ। बादल अब भी क्रोधसे कांप रहे थे, उनका चेहरा काला पड़ गया था। उधर ज्योति अपने सौंदर्यकी लाली फैलानेका प्रयत्न कर रही थी। वह मानो सूर्योदयके हरावलमें थी जो लाचार और बेबस मानवताके लिये भगवान् सूर्यसे उज्ज्वल भविष्यका पैगाम ला रही थी। लेकिन वीभत्स और भयंकर बादल हटते ही न थे और उनकी आड़में अंधेरा नगरमें मौजसे घूमता-भटकता फिर रहा था।

हमारे बगीचेमें हजारों आम गिरे हुए पड़े थे। फूल और पत्ते मिट्टीपर ही थे। पेड़ बिलकुल नंगे और उदास मालूम पड़ते थे। बहुतसे पेड़ तो गिर ही चुके थे मानो कह रहे हों — घमण्डीका सिर नीचा। इधर-उधर भीगे हुए कौए मरे पड़े थे जैसे युद्धक्षेत्रमें सैनिक। रास्तोंपर भी आम और पत्ते बिखरे हुए थे, उनपर बिजलीके तार आराम कर रहे थे। गरीब लोग जितना हो सके उठा-उठाकर ले जा रहे थे। भक्त जैसे भगवान्‌के प्रसादको चांदीके बरतनमें बड़े यत्नसे रखता है वैसे ही बिना घर-द्वारके लोग अपने सबसे सुन्दर वस्त्रमें कच्चे आम इकट्ठे कर रहे थे और गिरे हुए पेड़ोंसे काट-काटकर मुफ्तकी लकड़ी ले जा रहे थे। यह उनके लिये सुख तथा दुःखका सम्मिश्रण था। अनेक घर-द्वारोंका कोई ठिकाना नहीं था, कइयोंके एल्यूमिनियमके दो-चार बरतन भी हवाने हथिया लिये थे। वर्षाके कारण फटे-पुराने कपड़े शरीरसे चिपक गये और हवाने उनकी चिंधियां बना डालीं। एककी गाय मर गयी, दूसरेके पड़ोसी मर गये। बहुत-से बेघर-बारके साधु बन गये थे।

उधर समुद्र भी शांत नहीं था। उसका चेहरा लाल और कोपसे भरा हुआ मालूम पड़ता था। ऊंची-ऊंची लहरें उठ-उठकर दीवारके साथ जोर आजमा रही थीं। एक बार खीझकर वापिस जातीं तो दूसरी बार और भी अधिक ताकतके साथ दीवार तोड़नेका प्रयत्न करतीं। अगर अचानक दीवारमें तरेड़ आ जाती, तो न जाने नगरका कितना हिस्सा "है" की जगह "था" बन जाता। आंधी और तूफानसे बड़े-बड़े पेड़ और मकान तहस-नहस हो चुके थे; छज्जे इधर-उधर उड़ गये थे, और कितने ही लोग मोहताज हो गये थे।

लेकिन हमारे लिये यह एक अनुभूति थी। जो प्रकृति सरल बच्चेकी तरह चुपचाप रहती है वही कभी अपना उग्र और प्रचंड रूप भी प्रकट कर सकती है। वह कभी मोहिनी रूप धारण करती है तो कभी चण्डिका बन जाती है। दोनों एक ही चेहरेपर बदलते हुए दो मनोभाव हैं।

⁂

सब कुछ खोकर . . . . .

पांडिचेरीमें मार्चसे अक्तूबरतक गर्मियां चलती हैं। और अगर बीच-बीचमें वर्षा आ जाय तो सभीको बहुत आनंद होता है।

अप्रैलका महीना खतम होने आया था और कल पहली मई थी। कई सप्ताहोंसे वर्षा नहीं

हुई थी। धरती गरमीसे तप रही थी। और कई बार ऐसा लगता था मानो धरतीके नीचे आग जल रही हो। हम लोग बहुत बार आशासे आकाशकी ओर देखते थे मगर वर्षाका कोई चिह्न न दिखायी पड़ता था। अचानक तीस अप्रैलको न जाने किस अच्छी हवाने काले बादलोंको पांडिचेरीकी और भेज दिया। शामको कानोंने वर्षाकी मीठी टप-टप आवाज सुनी। ठंडी हवा बहने लगी। गरमीकी वजहसे जो तमस् फैला हुआ था वह गायब हो गया। अगर वर्षा इस गतिसे होती रहती तो सब कुछ ठीक रहता। हमें क्या पता था कि इन बादलोंके पीछे क्या रहस्य छिपा था। न जाने क्यों प्रकृति गुस्सेमें थी। हम उसकी चालको कभी नहीं समझ पाते।

रातको जब सब लोग सो रहे थे तब अचानक मैंने एक जोरकी आवाज सुनी। मैं चौंक उठी और देखा कि बहुत जोरकी हवा चल रही है और वर्षा हो रही है। मैं खिड़कियां बंद करने लगी पर हवा उन्हें बार-बार खोल देती थी। हवाकी तेजी इतनी थी कि बहुत-सी खिड़कियोंके शीशे टूटने लगे। मैंने सोचा, अब क्या किया जाय। हवा सारे समय खिड़कियोंको जोर-जोरसे खटखटाती रही। पर मैं इस मेहमानके लिये दरवाजा खोलनेको तैयार न थी। जब हवाने देखा कि मैं खिड़की खोलूंगी ही नहीं, तो वह स्वयं वर्षाकी सहायतासे शीशे तोड़कर हमपर टूट पड़ी। बाहर खूब आंधी चल रही थी, आसपासके पेड़ तड़ातड़ गिरने लगे, बादल गरजने लगे और बार-बार बिजली कौंधने लगी। ऐसा लगता था कि आकाशसे बूंदें नहीं धारें गिर रही हैं। चारों ओर पानी भर गया। ऐसा तूफान आया कि गरीबोंकी झोंपड़ी तो क्या, पक्के मकान भी पानीमें गिर पड़े और कई बह गये। पशु, पक्षी, मनुष्य सब कांपने लगे। सब लोग घबरा उठे। सारी रात तूफान चलता रहा। रास्तेमें जो कुछ मिला सब कुछ नष्ट करता रहा। सुबहके लगभग छः बजेतक भयंकर तूफान अच्छी तरह शरारत करके चला गया।

जब मैं खाटसे उतरी तो देखा कि कमरा पानीसे भरा है और दरवाजेके सामने पेड़ गिरे हुए हैं। रास्ते, टूटे पेड़ोंकी डालियोंसे भरे हैं। और आसपास सब जगह नये-नये तालाब बने हुए हैं जिनके उद्घाटनके लिये अभीतक किसी बड़े आदमीको निमंत्रण नहीं दिया गया था। आकाश बहुत काला था मगर उसपर लाली छाने लगी थी। प्रकृतिके इस कोपमें भी हम एक सुन्दरता देख सकते थे। ऐसा लगता है कि सब पुरानी, सड़ी, रद्दी चीजें चली गयी हैं और एक नया जीवन शुरू हो रहा है। साफ दिखायी दे रहा था कि प्रकृतिकी जरा-सी हुंकारके आगे आदमी कितना बेबस है। मैं जरा घूमने निकली। काफी दूर जाकर अंगूरोंकी एक बेल जमीनपर पड़ी हुई देखी। न जाने क्यों मेरा जी भर आया और मैं वहीं बैठ गयी। सहानुभति पाकर बेल भी चुप न रह सकी। वह बोली, "मैं अभी-अभी संसारमें आयी थी। और पेड़ोंके सामने मैं बहुत छोटी और बेकार-सी लगती थी। वे लंबे-चौड़े और इतने ऊंचे थे मानो बादलोंको चूमते हों। उनके पास ही दूसरे पेड़ खड़े थे जो देखनेमें इतने अच्छे न थे मगर थे मजबूत और घमंडसे भरे। पास ही आमोंके पेड़ थे। उनका तो कहना ही क्या था, वे दिनभर अपनी ही प्रशंसामें लगे रहते थे। इन सबके सामने मैं कौन थी! न तो मैं देखनेमें सुन्दर थी, न मजबूत और न फल ही देती थी। वे मुझे नीची निगाहसे देखते थे। मुझे बहुत अकेला-अकेला लगता था। मैं आकाशकी ओर ताकती और प्राणपनसे चाहती थी कि मैं भी एक दिन सूर्यके पास पहुंच सकूं।

"एक दिन रातके समय बहुत जोरकी हवा आयी। बादल भी गरजने लगे। आंधी चलने लगी और वर्षा शुरू हो गयी। दूर-दूर बड़े-बड़े पेड़ोंके गिरनेकी आवाज सुनायी देती थी। मेरे पासके पेड़ आपसमें कह रहे थे "प्रकृतिकी शक्तियां हमारा क्या बिगाड़ सकती हैं? (उन्हें पता न था कि वे भी तो उसी प्रकृतिके थे) हम इतने बड़े, मजबूत और कर्मठ हैं कि कोई हमारा कुछ नहीं कर सकेगा। हमें हवा और आंधीकी तनिक भी परवाह नहीं है।" मेरी ओर इशारा करके एकने कहा,

“डर तो इसे लगना चाहिये, एक साधारण-सा झोंका इसे उड़ा ले जायगा। यह सारे दिन करती भी क्या है, बस यूं ही पड़ी रहती है, चली गयी तो थोड़ी सफाई हो जायगी।”

“यह सब सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ और मैं भगवान्से बहुत प्रार्थना करने लगी। तूफान आया मगर सौभाग्यवश मैं मरी नहीं। मेरे पड़ोसियोंकी हालत बहुत खराब थी। कइयोंकी बड़ी-बड़ी डालें टूट गयी थीं और जो अपने-आपको बहुत ऊंचा और मजबूत समझते थे वे एकदम जड़से उखड़कर गिर पड़े थे। यह देखकर मुझे उनके लिये बहुत दुःख हुआ। आखिर वे मेरे सजातीय ठहरे। थोड़ी देर बाद प्रकृति एकदम शांत हो गयी और एक शीतल हवा बह उठी। मुझे लगा कि मैं बड़ी होती जा रहा हूं, बड़ी सिर्फ ऊंचाईमें नहीं अंदरसे भी। मेरी समझमें आ गया कि मेरे आसपासके पेड़ोंकी यह दशा क्यों हुई।”

इस घटनाको कई वर्ष बीत गये। एक बार मैं उसी रास्तेसे गुजर रही थी कि सहसा एक आवाज सुनायी दी। मैंने चौंककर देखा। वही, अंगूरकी बेल थी। उसने कहा, “तुमने आड़े वक्त मुझसे सहानुभूति दिखायी थी। देखा, मैं वही हूं। आज कैसी हरी-भरी और फलोंसे लदी हुई हूं। मैंने उस दिन अपना सब कुछ देकर सब कुछ पा लिया।”

—प्रेमा

⁂

तूफानका आशीर्वाद

भगवान् सर्वत्र हैं। हर चीज भगवान् है, यह सत्य मनुष्यको हर क्षण याद रखना चाहिये। दुःख और सुख, अमीरी और गरीबी, मौज और मुश्किलोंमें उसका ध्यान इस सत्यमें रत रहना चाहिये।

भगवान्ने हमारी परीक्षा लेनेके लिये हम लोगोंको एक साफ-सुथरा, छोटा-सा मुर्गीखाना रहनेके लिये दिया। उसमें मुर्गे-मुर्गियोंके लिये ऊंचे-ऊंचे दरवाजे थे, बड़े-बड़े, बत्तियोंसे जगमगाते कमरे, और स्नानागारमें सुगंधित गुलाब। माफ कीजियेगा, अगर आपको वहां सुगंधके बदले कुछ और महसूस हो, क्योंकि स्नानघर और पाखानेको हवासे भरनेके लिये एक जगह छोड़ दी गयी है। किंतु मुर्गियां क्या जानें किसमें मजा है और किसमें नहीं, वे इस कृपाका मूल्य नहीं आंक पातीं। हां, तो भगवान्ने हमको मुर्गी बननेका आदेश दिया ताकि हम इस डरबेका पूरा मूल्य जान पायें।

हम लोगोंने भगवान्की इच्छाको जान लिया और मनुष्य-योनिमें मुर्गी बनना स्वीकार कर लिया। इस डरबेमें हम आठ प्राणी रहने लगे। हम तो रहने लगे किंतु हमारी संपत्ति और असबाब राजी न हुए, वे विद्रोह कर बैठे। अंतमें हमको अपनी उठने-बैठनेकी जगह छोड़नी पड़ी और उन्हें जगह सौंपनी पड़ी। हमको सिर्फ इतनी जगह मिल पायी कि हम चार-पांच कदम हिल सकें। जब भगवान्ने हमारी दीन अवस्था देखी तो करुणानिधानने दीननाथोंके द्वारा मुर्गीखानेके ऊपर एक कटघरा बनवा दिया जिसमें हम कुछ क्षणतक पंख फैला सकें।

समय बीतता गया। कभी दिनकरके क्रोध और कभी हिमांशुकी असह्य शीतलता बरदाश्त करनी पड़ती। प्रभु हमारी पंचाग्नि परीक्षाओंमें सफलता देखकर खुश हो रहे थे, आखिर उन्होंने एक अत्यंत कठोर परीक्षा ली।

वि. सं. २०२२ के वैशाख महीनेकी बात है। पृथ्वी मनुष्योंकी भद्रतासे लज्जित हो तमतमा रही थी। भानु-मित्र (तारे) व्योमसे आंसू बरसा रहे थे और पवनदेव अपनी शक्ति बटोर रहे थे। हम

लोग मुर्गीखानेके कटघरेमें लेटे सोच रहे थे कि अगर अम्बुकण धरतीसे आलिंगन करनेके लिये बहुत उत्सुक हो गये तो हमपर आफत आ जायगी। यह विचार करते-करते कब पलकें मुंद गयीं इसका कोई अंदाज नहीं। किंतु यह पता था कि सुबह होनेमें अभी बहुत देर थी। इतनेमें पानी हवाके झोंकोंके साथ हमको थपथपाने लगा। हड़बड़ाकर हम उठ खड़े हुए और मुर्गीखानेमें शरण ली। यह तो जल्ल-जलालिहीकी कृपा थी कि हम सब नीचे उतर आये, नहीं तो जो होता उसका आप आगे अंदाज लगा पायेंगे।

जब दिनेशने अपनी रश्मियोंको अंधकारको छेड़नेके लिये भेजा, तो हमने उनका आदर किया। बात यह है कि मुर्गीखानेकी शरण पा, हम पवनदेवके क्रोधको बिलकुल भूल गये थे। नीचे उतरकर फिर नींदमें विभोर हो गये थे। सुबह जब कटघरेपर नजर पड़ी तो देखते क्या हैं कि पवनदेव और कटघरेकी कुश्तीमें पवनदेव जीत गये थे। कटघरा चारों खाने चित पड़ा रो रहा था। सब खाटें और बिस्तर उसके नीचे दबे पड़े थे। एक तो कटघरेका रुदन, दूसरे बिस्तरोंके दबनेके कारण उनका अपना रोना, सारे-के-सारे आंसुओंसे तर हो गये।

हमारे अब्बाजानको जब यह खबर मिली तो वे आगबबूला हो गये। पहले ही मस्तीके कारण उनकी आंखें ललाई लिये हुए थीं; जब उनमें पित्तकी पिचकारी मारी गयी तो वे बिलकुल भभक पड़ीं। वैशाख होते हुए भी वर्षाके कारण कुछ ठंड हो गयी थी। अब्बाकी आंखोंके सेंकसे ठंड कहां, वहां तो फिरसे झुलसानेवाली ज्वाला धधकने लगी। किंतु धन्य है उनकी डांटको। उसकी गर्मीसे हममें जो फुर्ती आयी तो बस, रुकती ही न थी। उसी फुर्तीकी कृपासे हमने बहुत-सा बिगड़ा काम बना लिया। बिस्तरोंको और खासकर गद्दोंको सुखाया। मेरा बस चले तो मैं 'पापड़ बेलने' के बदले 'गद्दे सुखाना' मुहावरा चला दूं। सच कहता हूं, अगर आपको बदलीके दिन पानीसे तर गद्दा सुखाना पड़े तब आप इस सत्यको जान पायेंगे। खैर, वह दिन भी बीत गया। ऊपरका कटघरा टूटा तो इस बार हमने असबाबकी एक न सुनी। उसे एक तरफ पटककर सोनेकी जगह निकाली। किंतु मुसीबतोंका अंत कहां? बंद डरबेमें हवा कहां और जहां हवा है वहां मुर्गियोंकी सुरक्षा कैसी? आगे देखें भगवान्‌को क्या सूझता है?

—— अरविंद वाजपेयी

* * *

गानमाणु ञान् ओटत्तण्टल्ला,
ज्वलिक्कुन्न नाळमाणु ञान,
पषन्तुणितन् तिरियल्ला;
वेगमाणु ञान्, शून्यतलत्तिन चिरकल्ला,
ञाननश्वर लयम, वेळिच्चम्, विश्वस्पन्दनम्

मैं गान हूं, बांसकी लकड़ी नहीं, मैं जलती दीपशिखा हूं, चिथड़ोंकी बत्ती नहीं, मैं वेग हूं, शून्यतलकी पांख नहीं, मैं अनश्वर लय हूं, ज्योति हूं, विश्व-स्पंदन हूं।

—जी. शंकर कुरुप

हमारी दुनियां :

नयन-सीपियां ढलते मोती

— श्री श्यामसरन अग्रवाल, विक्रम एम. ए.

आंखोंके पानीका अपना अलग ही पानी है। अवसर-अवसरकी बात है। जिस पानीके लिये यह कहा गया है — 'पानी गए, न ऊबरै मानस, मोती, चून' — वही पानी जब अपना पानी दिखाता है, तब नयन-सीपियोंका सिंगार बन जाता है। इन आंसुओं और आगमें आग-पानी जैसा नाता है। कहीं तो पानी धार बनकर आगको बुझा देता है और कहीं फुहार बनकर आगको भड़काता भी है। इसीलिये शायद कहा है :—

> ऐ चश्मे बारां, बरसना है तो खुलकर बरसो,
> दो चार अश्क तौ और आग लगा जाते हैं।

आंसू और मोती — मोती और आंसू; मानो भाई भाई हैं। सीपी हो या नयन-कटोरी, इनमें जो बूंद ढल जाये सो मोती है, ढुलक जाये सो पानी है। असली आंसू और मोती नितांत अवसराश्रित हैं; हमारे हुकुमके ताबेदार नहीं। नकलीकी बात ही और है। जिस प्रकार कल्चर (नकली) मोतीकी जापानमें बाकायदा खेती की जाती है, उसी प्रकार सिने-अभिनयके लिये 'मगरके आंसू' चाहे जब टपटपानेके भी साधनोंकी कमी नहीं।

हमारे वैज्ञानिकोंने बालकी खाल निकालनेकी भांति आंसूकी भी छीछालेदार करनेमें कसर नहीं उठा रखी है। उनका मत है कि प्राणी जगत्‌में संवेगावेगके अधीन, केवल मानव ही आंसू बहानेकी क्षमतासे पुरस्कृत है। कुत्ते, बंदर और मगरके आंसूवाली बातमें कोई तथ्य नहीं। ठीक ही तो है — रोना है यह, कुछ हंसी तो नहीं है। हां, यह अवश्य है कि आंसू केवल खारा पानी ही नहीं है। यह हमारे शरीरका प्रकृतिदत्त अति विलक्षण संवेग-निष्कासन द्वार भी है। इसकी रासायनिक रचना इसे अनेक औषधीय गुण प्रदान किये हुए है। अवसरकी विभिन्नताके साथ-साथ आसुंओंकी रासायनिकता और फलतः उनके गुण-दोषोंमें भी अंतर पड़ता जाता है।

सामान्यतः आंसूकी एक बूंदमें विभिन्न शर्कराएं, प्रोटीन, क्षार और अनेक रोगहारी एन्जाइम, विशेषतः लाइसोजोम उपस्थित रहते हैं। हर्ष और शोक, मिलन और बिछोह, प्यार और फटकार, आंखोंका रोग अथवा अनामंत्रित तिनका या सिकताकण, सुरमा या काजल या आइड्राप्स जैसी दवा डालनेके कारण आंखोंसे छलकते-ढुलकते आंसुओंकी रासायनिकतामें पर्याप्त भेद रहता है। जिस प्रकार जी भरकर रो लेनेके पश्चात् आवेगकी उमड़ी-घुमड़ी घटाएं छंटकर तबीयत साफ हो जाती है, तथावत् आंखोंका यह पानी पुतलियोंको धो-मांजकर साफ-सुथरी रखता है।

जैसी कि प्रचलित मान्यता है, ये आंसू पलकोंकी कोरोंसे बरसते नहीं। ये तो शरीरकी अन्यान्य ग्रंथियोंकी भांति नयनकोरोंमें स्थित अश्रु-ग्रंथियोंसे यथावश्यकता स्रवित होते ही रहते हैं। स्रवित होनेके साथ-साथ यह अश्रुजल अधिकांश तो पुतलियोंको साफ रखनेमें खपता रहता है और शेष वाष्पित होता रहता है। दर्पण देखें तो पायेंगे कि नासिका-संधिपर दोनों ओरके नयनकोरोंमें ये अश्रु-ग्रंथियां झलकती हैं। ऊपरके पलकोंमें, भीतरी किनारोंपर प्रत्येकमें १०-१२ छिद्र होते हैं। इनमें ४-४ छिद्रों-

से जुड़ी हुई अश्रुवाहिनियां होती हैं जो नासिकाके भीतरी भागको स्नेहसिक्त रखती हैं। इन्हींमें जब प्रवाह बढ़ जाता है, तब आंखोंके साथ नाक भी बरसने लगती है।

ये अश्रु-ग्रंथियां अधिकतर हमारे चेहरेके स्नायुओंकी गतिविधिसे भी प्रभावित होती हैं। इन स्नायुओंद्वारा ग्रंथियोंपर स्वाभाविक-अस्वाभाविक दबाव डाले जानेपर अश्रुवर्षा संभवित हो जाती है। मनोविशेषज्ञोंका मत है कि अधिकांशतः दुःखानुभूति ही अश्रुसिंचन कराती है। हर्षावेगके पर्देमें भी भावना यही काम करती है कि हर्षोत्पत्तिसे पूर्वके कालमें बहुत दुःख पाये। कुछ तो वह आवेग चेहरेके स्नायुओंपर दबाव डालता है और रोनेवाला भूखे बालककी भांति दांत भींचकर, मुट्ठी कसकर, चीख-चीखकर उस दबावको बढ़ावा देता है। फलतः अश्रुधार बह निकलती है।

प्रकृतिका यह गूढ़ और स्वचालित विधान है कि आंखोंकी सुरक्षाके लिये पुतलियां पानीदार रहनी ही चाहियें। नेत्र-जलकी वह परत पुतलियोंकी सतहको वायुमंडलमें अदृश्यतः आच्छादित रोगाणुओंके आक्रमणसे कवचकी भांति सुरक्षित रखती है। इसका यह भी प्रमाण है कि बात-वे-बात — अंसुवनके जलसे पग धोने' —वाली नारियोंको पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत ही कम, सो भी बढ़ी हुई अवस्थामें चश्मेकी आवश्यकता पड़ती है। यह भी एक तथ्य है कि दुःखके आवेगोंको निष्काषित करते रहकर, दुःखकी घुटनको आहों-आंसुओंकी बादल-बरसातके रूपमें बंधनमुक्त करते रहकर जीवनडोर बढ़ायी जा सकती है।

—'घुटके मर जाऊं', ये मरजी है मेरे सैयादकी' — कहकर मर-मर कर जीनेवाले व्यक्ति दिलके कोनेमें कैसे-कैसे दर्द छिपाये रहते हैं, इसका भी चिकित्सोद्घाटन कम मनोरंजक नहीं। तरह-तरहके अश्रुबिंदु सूक्ष्मदर्शीके नीचे पेट खोलकर कैसे-कैसी बातें करते हैं, कैसी-कैसी दर्द-बयानी करते हैं, यह जनाने योग्य है। भीगे नयनकी कोरपर एक सोख्ता कागजकी नोक छुआकर भी उस अश्रुबिन्दुका तत्त्वान्वेषण कर लिया जाता है। जिस प्रकार रोने-रोनेके कारणोंमें अंतर है, उसी प्रकार रोनेकी क्रियाविधिमें भी अंतर रहता है। इस क्रियामें शरीरकी स्नायविक तथा रासायनिक गतिविधिमें स्पष्ट अंतर दृष्टिगोचर होता है। अश्रुबिन्दु स्वयं स्लाइटपर हो या उसमें भीगे सोख्ता कागजकी नोक स्लाइडपर हो, एक कुशल रोग-परीक्षक यह बता सकेगा कि आपने दर्दको दिलमें ही घुटा-घुटाकर, किसीकी खुशीके लिये स्वयं गरलपान करते रहकर अपने शरीरके किन-किन अनदेखे कोनोंमें, किस हदतक एस्थमा पाल रखा है, कहां जहरीला फोड़ा छिपा बैठा है, वृहद् आन्त्रशोथ कितनी तरक्कीपर है, जोड़ोंकी जलन, गठियाका ज्वर, परागज्वर और पित्ताशयकी सूजन कहां-कहां सिर उठाये हुए हैं। यहांतक कि आपकी थकानको भी आंखोंका पानी, आंखों ही आंखोंमें कह जायेगा। यों, तेज-कदम चिकित्सा-विज्ञानके अंतर्गत खून-टेस्ट, थूक-टेस्ट, कफ-टेस्ट, पसीना, पेशाब या पाखाना-टेस्टके साथ-साथ आंसू-टेस्ट भी रोग-निदानमें अपनी तूती आवाज बुलन्द करने लगा है।

आखिर, क्यों न हो? —

डूब जाते हैं उम्मीदोंके सफीने इसमें,
मैं न मानूंगा कि आंसू है महज पानी की बूंद।

* * *

अचानक मैंने किसीकी कष्टपूर्ण कराह सुनी। सुनते ही एक सहानुभूतिपूर्ण अश्रु ढुलक पड़ा। यद्यपि यह पानीकी एक बूंद ही थी लेकिन उसमें समाया हुआ था सारा समुद्र। समुद्रमें मेरा अहं डूब गया और दुःखपूर्ण गुड़िया गगनमें समा गयी।

—किशिन चन्द बेबिस

समुद्री दानव

हम साधारणतः बड़े डीलडौलकी बात करते हैं तो कह देते हैं कि यह हाथी है। हमारी कल्पनामें हाथी ही सबसे बड़ा प्राणी है। अगर पढ़े-लिखे लोग बातें कर रहे हों तो अतीतके दीनासोरस जानवरोंकी बातें करते हैं जिनका अब केवल नाम ही बाकी है। कहते हैं कि ये जानवर छिपकली परिवारके थे और अस्सी फुटसे अधिक लंबे तथा ५० टन भारी होते थे। उनकी कल्पना करके हम दांतों तले उंगली दबा लेते हैं। ये सब तो प्रागैतिहासिक बातें हैं परंतु आज भी एक प्राणी ऐसा है जो इन प्राचीन दानवोंको भी मात कर सकता है। यह है नीली व्हेल। इसका भार शायद दो दीनासोरसोंके भारसे भी अधिक होता है। वह पंद्रह बड़े-बड़े हाथियों अथवा १५० मनुष्योंके बराबर भारी होती है। उसकी पीठपर खड़ा हुआ घोड़ा एक साधारण खिलौनेके जैसा ही लगेगा। यह व्हेल आर्कटिक, एंटार्कटिक समुद्रोंमें पायी जाती है। धरतीके प्राणियोंको जो शक्ति वातावरणके दबावका मुकाबिला करनेके लिये खर्च करनी पड़ती है वह सारी शक्ति व्हेल अपने शरीरको बढ़ानेमें लगा देती है। साधारण नीली व्हेल ७५ से १०० फुट लंबी होती है और उसका भार भी ७५-१०० टन होता है। कुछ ऐसी व्हेलें भी देखी गयी हैं जिनकी लंबाई ११५ फुट और भार १७० से १९० टनतक था।

एक अजायबघरमें व्हेलके कंकालको खड़ा किया गया है जिसकी लंबाई ७५ फुट है। ९० फुट लंबी नीली व्हेलकी जीभका भार ही साढ़े तीन हजार किलोग्रामके करीब होता है। उसका बछड़ा २५ फुट लंबा और ७ टन भारी होता है गोया इसका नन्हा शिशु एक जवान हाथीसे बड़ा और भारी होता है और जबतक वह मांका दूध छोड़ता है तबतक वह ५० फुट लंबा हो जाता है। इसके पेटका निचला भाग गंधकके रंगका होता है।

इसका गला सबसे अधिक विलक्षण होता है। इसमें तीन सौसे अधिक लंबी पतली हड्डीकी पट्टियां होती हैं। ये पट्टियां तिकोनी होती हैं, ऊपरसे लटकती रहती हैं, उनपर कुछ बाल-सी रचनाएं होती हैं। इस नीली व्हेलके मुखमें अन्य व्हेलोंकी तरह दांत नहीं होते इसलिये यह चबा नहीं सकती। वह समुद्रमें पाये जानेवाले नन्हें-नन्हें यूफ्रोसीड्स खाती है। इन चमकदार लाल यूफोसीड्सको क्रिल कहते हैं। व्हेल तैरते-तैरते टनों पानी पी जाती है और फिर अपने मुंहको बंद कर लेती है और जीभको तालूके साथ लगा देती है। पट्टियां छलनीका काम देती हैं, सारा पानी निकल जाता है और लगभग दो तीन टन क्रिल व्हेलके पेटमें रह जाते हैं और बस इतनेसे आहारसे वह अपना काम चला लेती है।

एक नीली व्हेलसे टनों हड्डियां मिल जाती हैं और पहले इनका दाम दस हजार डालर प्रति टन था। आजकल इन्हें शृंगार आदिके काममें नहीं लाया जाता केवल अस्थिचूर्ण ही बनाया जाता है इसलिये दाम घट गया है। इस एक व्हेलमेंसे लगभग १०० पीपे तेल निकलता है।

इसकी एक और विशेषता है पानीका फुहारा जिसके कारण शिकारी इसे दूरसे ही पहचान लेते हैं। बात यह है, उसके फेफड़ोंकी हवा बहुत ही गरम हो जाती है और जब यह सांस छोड़ती है तो वह वाष्प भरी हवा ठंडी होकर पानीके फुहारेका रूप धारण कर लेती है।

अभी शायद तीन सौ वर्ष पहले ही यह पता लगा था कि समुद्रमें रहते हुए भी व्हेल मछली नहीं है। वह धरतीके अन्य स्तनपायी जानवरोंकी तरह स्तनपायी चौपाया है जिसने करोडों वर्ष पहले समुद्रको अपना घर बना लिया था।

—वत्सला

पांच भाई

चीनके एक घने जंगलमें पांच भाई रहते थे। वे पांचों एक-दूसरेकी प्रतिमूर्ति थे। उनकी बोल-चाल भी एक समान थी। हर एकका नाम भी एक ही था।

पांचों भाइयोंमें कोई-न-कोई विशेषता थी। पहला ल्यु समुद्रको पीकर फिरसे निकाल सकता था। दूसरा ल्यु आगमें खड़े होनेपर भी जलता नहीं था। तीसरा ल्यु लोहेसे भी अधिक कठोर था। चौथा ल्यु अपनी मर्जीके मुताबिक अपने पैरोंको लंबा कर सकता था। पांचवां ल्यु पशु-पक्षियोंकी बोली बोल और समझ सकता था।

एक दिन एक दुष्ट राजा शिकार करनेके लिये आया। वहां आकर उसने सब पशु-पक्षियोंको डरा दिया। जब राजा शिकार खेलने आया था उस समय पांचवां ल्यु पहाड़पर बैठा था। जब राजाने चारों तरफ नजर दौड़ायी तो उसने एक जंगली भेड़को मिमियाते देखा। उसने जैसे ही तीर चढ़ाकर छोड़ना चाहा कि पांचवें ल्युने भेड़को उसकी भाषामें भाग जानेके लिये कह दिया। भेड़ भाग गयी तो राजाने एक हिरणको चौकड़ियां भरते देखा। लेकिन उसी समय ल्युने हिरणको भी सावधान कर दिया। इसी प्रकार जब राजाके हाथसे दो-तीन शिकार निकल गये तो उसको पांचवें ल्युपर बहुत क्रोध आया। उसने ल्युको अपने पीछे घोड़ेपर बांध लिया। शहरमें आकर उसने पांचवें ल्युको एक भूखे बाघके सामने छोड़ दिया। परंतु ल्युने उसकी असली भाषामें बातचीत करना शुरू किया इसलिये खानेके बजाय बाघने उससे मित्रता कर ली। यह देखकर राजाको बहुत क्रोध आया। उसने पांचवें ल्युको पहाड़से नीचे फेंक देनेका आदेश दिया। उसी समय चौथा ल्यु जो अपने पैरोंको लंबा कर सकता था, पांचवें ल्युसे मिलनेका बहाना कर खुद वहां बैठ गया और अपने भाईको दूर भेज दिया। दूसरे दिन जब उसे फेंका गया तो वह अपने पैरोंको लंबा करके खड़ा हो गया; यह देखकर राजाको और भी क्रोध आया। उसने चौथे ल्युका गला काट देनेका हुकुम दिया। यह सुनकर तीसरा ल्यु जो लोहेके समान कठोर था अपने भाईसे मुलाकात करनेका बहाना करके खुद वहीं रह गया और चौथे ल्युको घर भेज दिया। दूसरे दिन एक जल्लादने एक तेज तलवार लेकर तीसरे ल्युकी गरदनपर वार किया, परंतु गला कटनेके बजाय तलवारके ही दो टुकड़े हो गये। तब राजाने कहा, कल इसको आगमें जला दिया जाय। यह सुनकर दूसरा ल्यु जो आगमें नहीं जलता था भाईसे मिलनेके बहाने आया और वहां रह गया। दूसरे दिन दूसरे ल्यूको एक खंभेसे बांधा गया और उसके चारों तरफ आग लगा दी गयी परंतु वह जला नहीं। जब आग शांत हुई तो राजाका पारा आसमानतक चढ़ चुका था। उसने अपने सिपाहियोंसे कहा –– "इस नीचको गलेमें पत्थर बांधकर समुद्रमें फेंक आओ। पहला ल्यु इस समाचारको सुनकर भाईसे मिलने आया और उसके बदले वहां रह गया। जब उसकी नाव समुद्रमें ले जायी गयी तो राजा भी उसके साथ था। जब उसे फेंका गया तो उसने पानी पीना शुरू किया। जब सब पानी पी लिया तो राजा और उसके सेवक नावमेंसे गिर पड़े और कीचड़में फंस गये तब पहला ल्यु किनारेपर आकर पानी छोड़ने लगा। इस प्रकार राजा और उसके सेवक पानीमें डूब मरे।

— वीणा

⁂

सूरज

किसी जमानेमें सूरज आज जितना बड़ा नहीं था और न ही आजकी तरह आकाशमें चक्कर लगाता था। वह एक छोटा-सा चमकीला गोला था और पृथ्वीपर एक कोनेमें पड़ा-पड़ा अपना प्रकाश फैलाया करता था। स्वाभाविक ही है कि उसका प्रकाश पृथ्वीके हर हिस्सेतक नहीं पहुंचता था और इसीलिये रोज-रोज अलग-अलग देशोंके राजाओंमें सूरजको पानेके लिये लड़ाइयां होती रहती थीं। जिसकी जीत होती थी उसीके राज्यमें उजेला रहता था पर चार दिनकी चांदनी और फिर अंधेरी रात। कुछ ही दिन नहीं बीत पाते थे कि पड़ौसी राजा आक्रमण करता और फिर सूरज उसके राज्यमें पहुंच जाता।

ऐसे ही एक बार किसी तानाशाही राजाने सूरजको जीत लिया। वह राजा बड़ा अत्याचारी था और उसकी प्रजा उससे सदा रुष्ट रहा करती थी। जब सूरज उसके राज्यमें आया तो उसने सोचा कि कम-से-कम कुछ दिन तो प्रजा खुश रहेगी ही। परंतु लोग तो अपने ऊपर किये गये अत्याचारोंका बदला लेनेका मौका खोज रहे थे। सब लोगोंने मिलकर राजाको परेशान करनेका एक तरीका सोचा। उन्होंने सोचा कि अन्य राज्योंकी तरह यहां भी सूरज किसी कोनेमें पड़ा रहेगा और सबको बराबर प्रकाश नहीं मिल पायेगा। इसलिये वे सब राजाके पास गये और कहा कि सबको बराबर प्रकाश मिलना चाहिये अन्यथा वे विद्रोह कर देंगे। राजा बेचारा बड़ा घबराया। उसके दिमागमें कोई ऐसी तरकीब नहीं आ रही थी कि जिससे सारे राज्यमें बराबर मात्रामें प्रकाश फैल सके। उसने अपने मंत्रीसे सलाह ली और सचमुच मंत्रीने उसे एक अच्छी तरकीब बता दी। उसका सुझाव यह था कि सारे राज्यपर एक बड़े चँदोवे जैसा ढक्कन लगवा दिया जाये और बीचमें सूरजको टांग दिया जाये। राजाने सुना तो वह बड़ा खुश हुआ। बस, फिर देर किस बातकी थी। हजारों मिस्त्री कामपर लग गये और बात-ही-बातमें चँदोवा बनाकर रख दिया गया। इस प्रकार राजाने प्रजाकी बात पूरी कर दी।

मगर लोगोंको फिर भी पूरा संतोष न हुआ। वे तो राजाको किसी-न-किसी बहाने तंग करना चाहते थे। सारे राज्यके लोग इकट्ठे हुए और फिर पहुंचे राजाके महलके सामने। राजाने पूछा तो सब लोगोंने कहा कि हम सूरजके तेज प्रकाशके मारे ठीक तरह सो नहीं पाते हैं। राजाने फिर घबराकर अपने बुद्धिमान मंत्रीकी शरण ली और इस बार भी उसका मंत्री एक अच्छा खासा उपाय सुझानेमें सफल हो गया। उसने बताया कि सूरजके पास राजा किसी व्यक्तिको नियुक्त कर दे जो नियत समयपर सूरजको ढंक दिया करे और जब लोग अच्छी तरह सो लें तो फिर सूरजको चमकने दिया करे। राजाको बात पसंद आ गयी और ऐसा ही हुआ।

इस प्रकार कुछ दिनके लिये प्रजाके पास राजाका विरोध करनेको कुछ न रहा। जबतक सूरज चमकता रहता, लोग काम करते और जब वह ढंक दिया जाता तो सब लोग सो जाते। ऐसे ही कई दिन बिना किसी प्रकारकी गड़बड़ीके बीत गये।

परंतु एक दिन बड़ी अजीब घटना घटी। सूरजके पास जो आदमी नियुक्त किया गया था वह सूरजको ढंककर सो गया और ऐसा सोया कि नियत समयके बाद कई घंटे बीत गये पर वह न जागा। सब लोग अंधेरेमें जाग गये पर कहीं भी सूरजका प्रकाश नहीं दिखलायी पड़ रहा था। क्रोधमें आकर लोगोंने तोड़-फोड़ शुरू कर दी। कुछ लोगोंने इसी दौरान वह चंदोवा उखाड़ फेंका। चंदोवेका उखड़कर गिरना था कि सूरज घबराकर उससे अलग हो गया और नीचे गिरकर आकाशमें अटक गया। तभीसे वह आकाशमें चमकता है और पृथ्वीपर अपना प्रकाश फैलाया करता है।

— कृष्णकुमार टीकमगढ़ी

बेचारा कौआ

एक बार उल्लूको किसीने गुस्सेमें आकर पत्थर मार दिया। उल्लूको बहुत जोरसे लगा। उल्लूके शरीरसे खून निकलने लगा और चिकित्सा न करनेपर उसका घाव पक गया और वह पीड़ासे तड़पने लगा। वह अपने मित्र कौएके पास गया और उससे दवाई मांगी। कौएने कहा, "अरे भई, मैं तो कोई डाक्टर नहीं हूं। तुम कोयल वैद्यके पास जाओ।" उल्लूने कहा कि तुम भी मेरे साथ चलो, मुझे तो उसका घर नहीं मालूम। कौआ और उल्लू कोयलके घर गये और उससे दवाई मांगी। परंतु दवाई देनेके पहले तो उसने फीस मांगी। उल्लूके पास एक धेला भी नहीं था और कौआ तो एक साधारण मजदूर था, उसके पास पैसे कहांसे आते? उल्लूने कोयलसे कहा कि तुम मुझे अभी दवाई दे दो, मैं तुम्हें बादमें पैसे दे दूंगा। परंतु कोयल स्यानी थी, उसने कहा, तेरा क्या विश्वास। इतनेमें कौएने कहा, "कोयल बहन, तू मेरे ऊपर तो विश्वास कर, मेरे नामपर तू उसे दवाई दे दे।" आखिर कोयल मान ही गयी, उसने उल्लूको दवाई दे दी।

कौआ जब दूसरे दिन उल्लूके वहां उसका हाल देखने गया तो उसका घर खाली और उजड़ा मिला। पड़ोसीसे पूछनेपर मालूम हुआ कि वह तो रातों-रात बोरिया-बिस्तर बांध भाग गया। अब कौआ मुसीबतमें पड़ा। कोयल उसे जहां भी मिलती वह उसे पैसे देनेके लिये टोकती थी, परंतु उसके पास पैसे कहांसे आते? अंतमें उसने तंग आकर कोयलसे कहा कि मेरे पास तो पैसे हैं नहीं, तुम मुझसे और कुछ मांग लो। "और कुछ है ही क्या?" कोयलने कहा। "अच्छा, तुम मेरा एक काम करो, मेरे अंडेको सेना। कौएको यह मानना ही पड़ा। उस दिनसे उल्लू कौएसे छुपनेके लिये रातको ही निकलता है। और कौए बेचारेको उस दिनसे उऋण होनेके लिये कोयलके अंडे सेने पड़ते हैं।

— अजय शर्मा

⁂

अगर, अगर मत किया करो

एक मियांजी थे। उनमें जहां और बहुतेरी बुरी आदतें थीं वहां एक बहुत ही बुरी आदत यह थी कि वे हमेशा दूसरोंकी बातें काटकर अपनी शुरू कर दिया करते थे। परंतु अपनी ओरसे भी वे अच्छी बातें नहीं करते थे, केवल अपनी शेखी बघारते थे।

एक बार किसीने उनसे पूछा कि मियांजी, अभी तो चीनके साथ भारतकी लड़ाई चल रही है, आप मोरचेपर क्यों नहीं जा रहे? मियांजीने उत्तर दिया — देख, लड़ाईमें जानेसे पहले मुझे अपना नाम देना पड़ेगा। परंतु उसमें भी दो बातें हैं। एक तो वे बुलायेंगे ही नहीं तब तो ठीक है, परंतु अगर बुलाया तो फिर दो बातें हैं। एक तो मेरी डाक्टरी जांच की जायगी, दूसरे, मुझसे प्रश्न पूछे जायेंगे, प्रश्नोंके जवाब मैं इस तरहसे उल्टे सीधे दूंगा कि मैं फेल हो जाऊं। परंतु डाक्टर मुझे पास कर देगा इस अलमस्त शरीरको देखकर। अतः मैं किसी भी तरह ले लिया जाऊंगा और वे लोग प्रशिक्षणके लिये भेज देंगे। तब भी दो बातें हैं: एक तो मैं अच्छी तरहसे सीख नहीं सकूंगा और दूसरी कि मैं अच्छी तरह सीख जाऊंगा। अगर नहीं सीखा तो तब तो ठीक है, वे लोग मुझे वापिस भेज देंगे, परंतु अगर सीख गया तब तो निश्चय ही वे लोग मुझे मोरचेपर भेजेंगे। परंतु वहां पहुंचनेके बाद भी दो बातें हैं — एक, हो सकता है कि अफसरको दया आ जाय और मुझे पिछली कतारमें रखे, तब तो मैं जल्दी नहीं मर सकता। परंतु मान लो कि उसने मुझे अगली कतारमें रखा तब तो

निश्चय ही मेरी मौत आ जायगी। अरे! मौतके बाद भी दो बातें हैं — एक तो शायद मैं स्वर्गमें जाऊं, नहीं तो कौन जाने नरकमें ही जाना पड़े। अगर स्वर्गमें गया तब तो अच्छी बात है, परंतु अगर नरकमें गया दो वहां मुझे राक्षसोंसे मार मिलेगी। परंतु उसमें भी दो बातें हैं — हो सकता है कि मार खाते-खाते मैं तंग आ जाऊं और गुस्सेमें आकर उन दैत्योंको मार बैठूं। अन्य नरक-निवासी भी उनपर हमला कर बैठें तब तो नरकमें क्रांति हो जायगी। परंतु मैं नरकमें क्रांति करवाना नहीं चाहता। अतः मैं भारत-चीनके मोरचेपर नहीं जाना चाहता।

—चेतना

* * *

पुस्तक-परिचय

राई और पर्वत — ले. रांगेय राघव, प्रकाशक : राजपाल एंड सन्स, दिल्ली-६, पृ. सं. २००, मूल्य ३.००।

यह पुस्तक समाजमें फैले अनाचार और ढोंगपर जोरदार कुठाराघात है। धर्म, न्याय, आचारकी आड़में होनेवाले अधर्म, अनाचार और अन्यायका भंडाफोड़ है। बुरे दीखनेवाले भी कहींपर कितने अच्छे हो सकते हैं इसका उदाहरण है हरदेव, रामभरोसे और विद्या। और ऊपरसे अच्छा दीखनेवाले...

नाशका विनाश — ले. मामा वरेरकर, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, पृ. सं. १४०, मूल्य ३.००।

मामा वरेरकर मराठीके लब्धप्रतिष्ठ लेखक थे। उनकी कई रचनाओंका हिंदीमें अनुवाद हो चुका है। शिव और सतीकी पौराणिक कथाको लेकर यह नाटक लिखा गया है जिसमें आदि मानव समाजका चित्रण करनेका प्रयास किया गया है। भाषा और कलाकी दृष्टिसे पुस्तक बहुत अच्छी है परंतु देवी-देवताओंको इतना अधिक मानव स्तरपर ले आना यूनानी समाजमें भले ठीक लगे, भारतीय परिपाटीके प्रतिकूल है। सुना है कि इस बातकी ओर ध्यान खींचे जानेपर स्वयं मामाने इसमें आवश्यक परिवर्तन करनेकी स्वीकृति दे दी थी पर इसी बीच उन्हें परलोकसे बुलावा आ गया और यह काम न हो सका।

राह न रुकी — ले. रांगेय राघव, प्रकाशक : राजपाल एंड सन्स, दिल्ली। पृ. सं. १५६, मूल्य ३.००

हिंदीमें जैन साहित्यके आधारपर कम ही लिखा गया है। प्रस्तुत पुस्तक बाई श्री चंदनबाला जीके जीवनके आधारपर लिखी गयी है। चंदनबालाका जीवन स्वाधीनताकी घोषणा करनेवाली नारी-के लिये पथप्रदर्शकका काम दे सकता है। स्त्री-पुरुष, व्यक्ति और समाज आदिके प्रश्नोंको भी बड़े रोचक ढंगसे उठाया गया है; हिंसा-अहिंसाके बारेमें काफी ऊहापोह है। पर हां, इन समस्याओंका हल तो अभीतक मानव बुद्धिके लिये अगम्य ही है।

धरती अब भी घूम रही है — ले. विष्णु प्रभाकर, राजपाल एन्ड सन्स, दिल्ली-९, पृ. सं. १८०, मूल्य ३.००।

यह पुस्तक लेखककी १६ प्रतिनिधि कहानियोंका संग्रह है। इन छोटी-छोटी मार्मिक कहानियोंमें अपना ही रस है। शायद इनमेंसे कई कहानियां संसारकी श्रेष्ठ कहानियोंमेंसे गिनी जा सकती हैं। मनुष्य जीवनके अछूते पहलुओंका बड़ा अच्छा चित्रण हुआ है। इनमें 'जजका फैसला', सम्व, अधूरी कहानी आदि पढ़नेके बाद बहुत देरतक दिमागमें घूमती रहती हैं।

दक्षिण भारती

(पुरोधाके मासिक रूपमें दक्षिण भारतीका रूप भी बदल रहा है। अब हम प्रतिमास दो पृष्ठ दे सगेंगे। एक बार हिंदीके साथ तमिल और मलयालम और दूसरी बार तेलुगु और कन्नड़। इसी क्रमसे पाठ छपा करेंगे। —सं.)

पाठ २५

हिंदी	: मैंनै दूध नहीं पिया।	मैं सिर्फ दूध पीता हूं।
तमिल	: नान पाल कुडिक्कविल्लै।	नान पाल मात्रम कुडिक्किरेन।
मलयालम	: ञान पाल कुटिच्चिल।	ञान पाल मात्रं कुटिक्कुन्नु।
हिंदी	: मां मुझे दूध देंगी।	मैं कल दस बजे उसके घर जाऊंगा।
तमिल	: अम्मा एनक्कु पाल कोडुवाळ।	नान नाळैक्कु पत्तुमणिक्कु अवनुडैय वीट्टुक्कु पोवेन।
मलयालम	: अम्म एनिक्कु पाल तरुम्।	ञान नाळे पत्तु मणिक्कु वीट्टिल पोकुम्।
हिंदी	: तुम्हारे साथ और कौन जायेगा?	मेरे साथ मेरी छोटी बहिन जायेगी।
तमिल	: उन्नोडु इन्नुम यार पोवार्हळ?	एन्नोडु एन तंगै पोवाळ।
मलयालम	: निङङ ळुटे कूटे आरोक्के वरुम्?	एंटे कूटे एंटे अनुजत्ति वरुम्।
हिंदी	: तुम यह काम नहीं करोगे?	यह कुत्ता नहीं काटेगा।
तमिल	: नी इन्द वेलै सेय्यमाट्टामा?	इन्द नाय कडिक्कादु।
मलयालम	: निङङळ् ई पणि चेय्युकयिल्ले?	ई नाय कटिक्कुकयिल्ला।
हिंदी	: मगर यह बिल्ली काट सकती है।	डरो मत।
तमिल	: आनाल इन्द पूनै कडिक्क कूडुम।	भयप्पडादे।
मलयालम	: एन्नाल् ई पूच्च कटिक्कुम्।	पेटिक्केंटा।
हिंदी	: मैं अगले सप्ताह जाऊंगा।	आप क्यों जायेंगे?
तमिल	: नान अडुत्त वारम पोवेन।	नीङळ येन पोवीर्हळ?
मलयालम	: ञान अटुत्त आषच पोकुम्।	निङङळ् एन्निनु पोकुम्?
हिंदी	: वहां मेरी बड़ी बहिन आयेगी।	आप कब वापिस आयेंगे?
तमिल	: अङ्गे एन अक्का वरुवाळ।	नीङ्गळ एप्पो तिरुम्बि वरुवीर्हळ?
मलयालम	: अविटेक्कु एंटे ज्येष्ठत्ति पोकम्।	तांकळ् एन्नु तिरिके वरुम्?
हिंदी	: मैं वहां एक मास रहूंगा।	आप मेरा रुपया देंगे?
तमिल	: नान अङ्गे ओरु मासम डूरुप्पेन।	नीङ्गळ एन रुपाम कोडुप्पीर्हळा?
मलयालम	: ञान अविटे ओरु मासं पार्कुम्।	तांकळ् एंटे रूप तरुमो?

हिंदी : वहां जंगल है।
तमिल : अंङ्गे काडु इरुक्किरदु।
मलयालम : अविटे काटु उंटु।

हिंदी : रातको कुत्ते भूंकते हैं।
तमिल : नायहळ इरविल कुलैक्किन्रन।
मलयालम : रत्ति नाय्कळ् कुरक्कुन्नु।

हिंदी : दुकानसे मिठाई खरीदो।
तमिल : कड़ैइलिरिन्दु मिट्टाइ वोगु।
मलयालम : पीटिकयिल् निन्नु मिट्टायि वाङ्ङु।

हिंदी : अन्दरसे कपड़ा ला।
तमिल : उळ्ळे इरुन्दु तुणि कोण्डुवा
मलयालम : अकत्तु निन्नु तुणि कोंटुवरु।

हिंदी : मुझे पचास रुपये दीजिये।
तमिल : एनक्कु अंवदु रुप कोडुंगळ।
मलयालम : एनिक्कु अम्पतु रूप तरु।

हिंदी : उसे गुस्सा अयेगा।
तमिल : अवनुक्कु कोपम वरुम।
मलयालम : अवन्नु कोपं वरुम।

हिंदी : हम नहीं खायेंगे।
तमिल : नांगळ साप्पिड माट्टोम।
मलयालम : ञाङ्ङळ् वरिक यिल्ला।

हिंदी : आप पुस्तक नहीं दें ?
तमिल : नीगळ पुस्तहम कोडुक्कमाट्टीर्हेळ ?
मलयालम : निङ्ङळ् पुस्तकं तरिकयिल्ले ?

हिंदी : लड़का पाठ लिख रहा था।
तमिल : पैयन पाडम एजुदु क्कोण्डु इरुन्दान।
मलयालम : आण् कुट्टि पाठं एषुतुकया यिरुन्नु।

वहां बहुत जानवर हैं।
अङ्गे अधिह मिरुहंगळ इरुक्किन्रन।
अविटे वळरे मृगङ्ङळ् उंटु।

उस घरसे पानी लाओ।
अन्द वीट्टिलिरिन्दु तण्णीर कोण्डुवा।
आ वीट्टिल् निन्नु वेळ्ळं कोंटुवरु।

धूपमें मत जाओ।
वेय्यिलिल पोहादे।
वेयिलत्तु पोकरुनु।

तुम्हारा वेतन कितना है ?
उनक्कु एन सम्वळम ?
निनक्कु एंनु सम्बलम ?

मैं रुपये नहीं दूंगा।
नान रुवाय कोडकमाट्टेन।
ञान रूप तरिकयिल्ला।

वह लड़की यहां नहीं आयेगी।
अन्द पेण इंङ्गे वर माट्टाळ।
आ पेण् कुट्टि इविटे वरिकयिल्ला।

यह कुत्ता नहीं काटेगा।
इन्द नाय कडिक्कादु।
ई नाय कटि।

मां दूध उबाल रही है।
अम्मा पाल कायच्चिकोण्डु इरुक्किराळ।
अम्म पाल् काच्चुक याकुन्नु।

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,
CALCUTTA 29

A leading Dealer in and

Manufacturers

Chemicals, Solvents, Minerals,

Thinners, Silicates,

Insecticides & Pesticides.

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.

Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)

Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)

Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

यदि आप सर्वोत्तम प्रकारके

वैद्युतिक उपादान

चाहते हैं

तो हमें लिखिये :

आनेस्टी एलेक्ट्रिक स्टोर्स

१२–रवीन्द्र सरणि
प्रदर्शन कक्ष क्रमांक ३१५
कलकत्ता–१

दूरभाष : ३४७९९८

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,

कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता—७

फोन—३३२३१२

* * *

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

* * *

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of:

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स
३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९
तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

बिना आत्मसंयमके भौतिक स्तरपर कुछ भी सिद्ध करना असंभव है। यदि तुम्हारा हृदय, नियमित रूपसे और निरंतर, धड़कनेके कठोर संयमके अधीन होना न चाहे तो तुम पृथ्वीपर जी ही न सकोगे। जिन्होंने महान् सिद्धियां प्राप्त की हैं वे सदा महान् संयमी पुरुष थे।

—श्रीमाताजी

पांडिचेरी रोलिंग मिल्स

पांडिचेरी

फोन-४३४

हम पृथ्वीपर जो कुछ ले आना चाहते हैं उसे 'क्रांति' तो बिलकुल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोगोंने अबतक जितने परिवर्तन देखे हैं यह उन सबसे कहीं अधिक अद्‌भुत होगा। बहरहाल इसकी तुलना उन रक्तरंजित क्रांतियोंसे तो किसी भी तरह नहीं की जा सकती जो व्यर्थमें देशोंको पूरी तरह तहस-नहस कर देती हैं और अपने बाद कोई महान् परिवर्तन नहीं ले आतीं, क्योंकि वे मनुष्योंको पहले जैसा ही मिथ्यावादी, अज्ञानी और अहंकारी छोड़ देती हैं।

—श्रीमाताजी

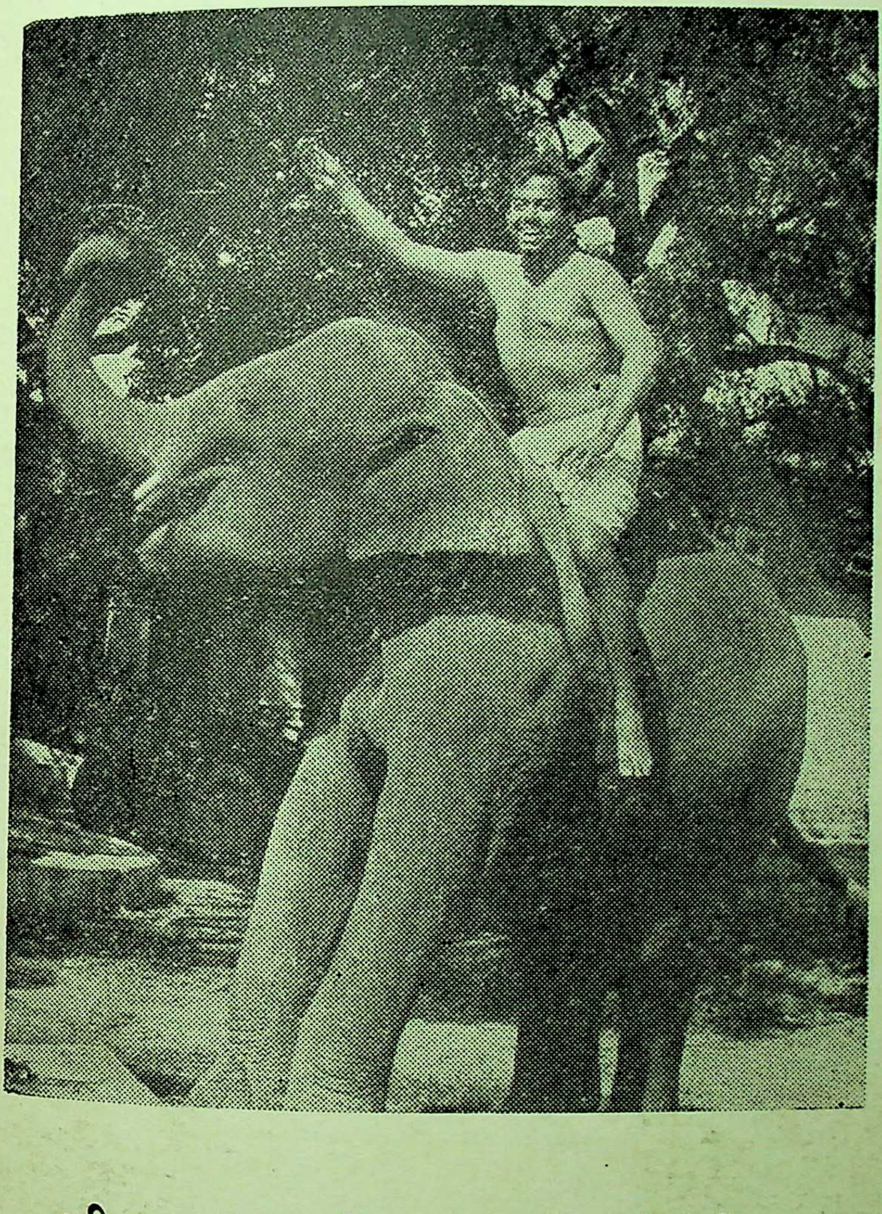

श्रीकृष्ण वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
१६६, दादाभाई नौरोजी रोड, फोर्ट;
बम्बई--१

M 8127

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

With best wishes from :

Arthur Import Export Co.

'MON REPOS'

41/44, Arthur Bunder Road,
Behind Radio Club,

BOMBAY-5

Importers, Exporters & Suppliers of
Finest quality of
Shoddy yarns, Synthetic Tops and Barrack Blankets.

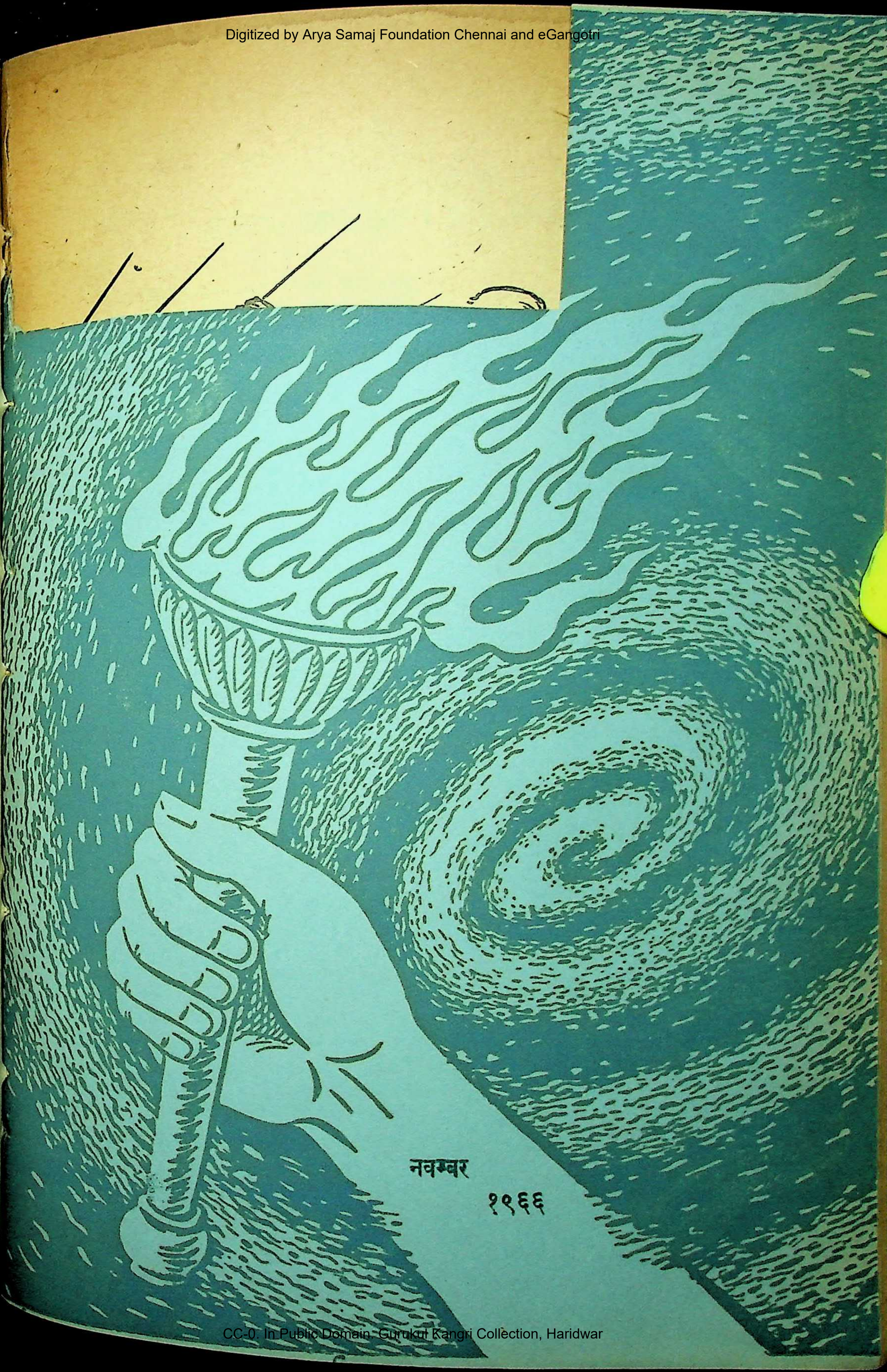

नवम्बर

१९६६

he Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65
M 8127

उत्तर प्रदेश, बिहार,
अ
सरकारी पुस्तकाल

वर्ष ५

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
तिमिरका द्वीप : ज्योतिका नवखंड	कस्तूरी कश्यप	२
संपादकीय : आर्योंकी युद्ध-नीति		३
श्रीअरविंद-वाणी :		
१. अतिमानस सत्यकी खोजका उद्देश्य		५
२. अतिमानसका अवतरण निश्चित		५
श्रीमातृवाणी : शब्दोंकी शक्ति		६
प्रेम और मृत्यु	श्रीअरविंद	८
खेती और बागवानी : आश्रममें धानकी खेती	द. प.	१३
मेरी बीमारी	रवीन्द्र	१५
समुद्रके तटपर	मीना	१९
भारतीय गिरा : किशिनचन्द बेबसि		२१
हमारी दुनिया : प्रकृतिकी घड़ी		२३
प्रत्यूषका प्रारंभ	कवि जयश्री	२५
याद हो आयी	रवीन्द्र	२६
यात्रा :		
अमरीकाकी ओर	अनुबेन पुराणी	२९
हमारी मद्रास यात्रा	अरुणा	३१
वेगोंको मत रोकिये		३३
नयी कोपलें :		
जादूकी मछली	मीना	३५
बुढ़िया माई	भीष्म	३६
दक्षिण-भारती		३७
पुस्तक-परिचय		३९

चित्रकार : कृष्णलाल। मूल्य : एक अंक : रु. ०. ६० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम् प्रेस, पांडिचेरी-२

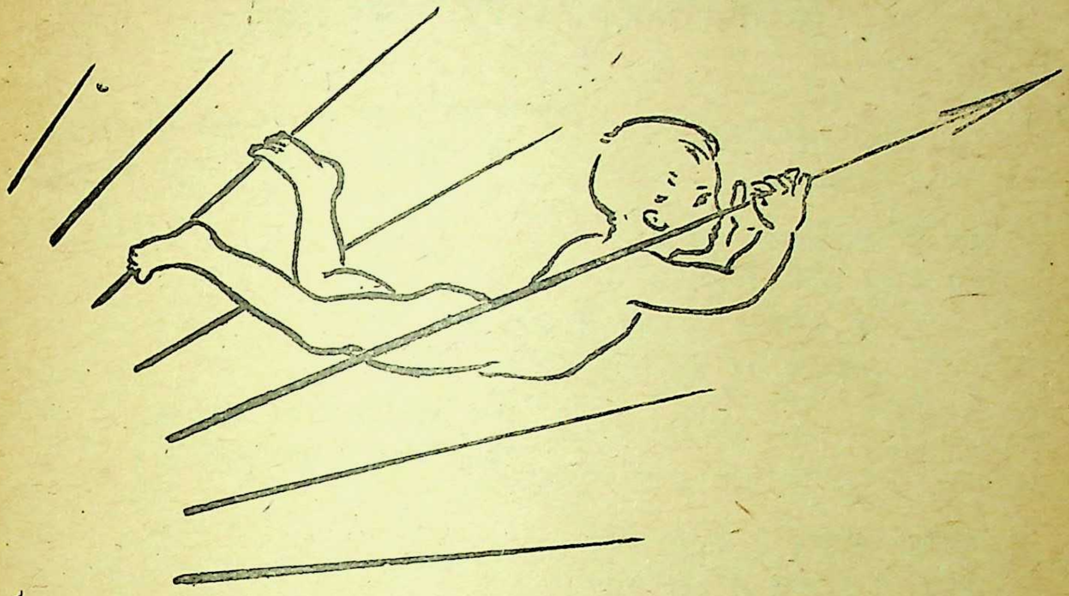

प्रार्थना

हे प्रभुवर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरा कार्य पूरा हो। हमारी भक्तिको दृढ़ बना, हमारे समर्पणको अधिक बढ़ा और पथपर हमें प्रकाश दिखा। हम अपने अंदर तुझे सर्वोच्च अधिपतिके रूपमें स्थापित कर रहे हैं जिसमें कि तू संपूर्ण पृथ्वीका सर्वोच्च अधिपति बन जाय।

हमारे शब्द अभी भी अज्ञानमय हैं : उन्हें ज्ञानोज्ज्वल बना।

हमारी अभीप्सा अभीतक दोषपूर्ण है : उसे शुद्ध कर।

हमारा कार्य अभी भी शक्तिहीन हैं : उसे सशक्त बना।

हे नाथ ; यह पृथ्वी कराह रही है और पीड़ा भोग रही है; अस्तव्यस्तताने इस जगत्को अपना घर बना लिया है।

यह अंधकार इतना अधिक है कि केवल तू ही इसे दूर कर सकता है। आ, अभिव्यक्त हो, जिसमें तेरा कार्य संपन्न हो।

—श्रीमां

*

तिमिरका द्वीप : ज्योतिका नवखंड

स्वप्न-भीने मौन ! अब कुछ गुनगुना
दे रही है धूप दस्तक द्वार पर,

छोड़ दे पाषाण-निद्रा छोड़ दे
उम्र से टूटे क्षणों को जोड़ दे
जो अनिश्चय की गुहा में भ्रांत हैं
सृजन-पथ पर उन स्वरों को मोड़ दे
सत्य को सौंदर्य का पाथेय दे
किन्तु चलने दे उसे अंगार पर।

सृष्टिका अस्तित्व है गहरी घुटन
श्वास भी है कण्ठ में जैसे चुभन
किन्तु जादूगर न रूठें ज्योतिके
गन्धसे रूठा नहीं करते सुमन
हम सर्मापित सर्ग हैं इतिहास के
हम विर्सजित दीप हैं जलधार पर।

इन्द्रधनुषी रंग जायेंगे निखर
पारदर्शी मौन जायेगा बिखर
जब चरण रूपान्तरण पथ पर चलें
तब ढहेंगे कामनाओं के शिखर
प्यार दुखपर वार हंस दे इस तरह
जिस तरह हंस दे किरण पतझार पर।

अर्घ्य की वेला, जुड़े सब तीर हैं
उड़ रहे धानी-वसन्ती चीर हैं
दिव्य चेतन की सवारी आ गयी
ढोलकें धुनकी बजे मंजीर हैं
जड़ तिमिर का द्वीप जल में खो चला
ज्योति का नव खंड उभरा ज्वार पर।

— कस्तूरी कश्यप

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ।।

सम्पादकीय

आर्योंकी युद्धनीति

प्रत्येक देश और प्रत्येक कालमें युद्ध होते आये हैं। एकदम जंगली गुफावासियोंसे लेकर सभ्यता और संस्कृतिके शिखरोंतक पहुंचे हुए राष्ट्र भी युद्ध करते रहे हैं। युद्ध अपने-आपमें वांछनीय न होते हुए भी अपरिहार्य अवश्य है। मानवताके अंदर समायी हुई जड़ता और उसके तमस्को दूर करनेके लिये रजस्के प्रहार अत्यावश्यक हो जाते हैं। कहते हैं, एक बार एक आदमी स्वामी विवेकानन्दके पास भगवान्तक पहुंचनेका रास्ता पूछने आया। स्वामीजीने कहा, "तुम जाकर फुटबाल खेलो और लड़ाई-झगड़ा करो।" लोग हैरान हो गये कि यह क्या? स्वामीजीने बताया, "भगवान्को पाना नपुंसकोंका काम नहीं है, जो मुंहपर बैठी मक्खीको नहीं उड़ा सकता वह संसारमें कर ही क्या सकता है? तमस्में पड़े-पड़े यह आशा न करो कि भगवान् तुम्हारे हाथ लग जायगा। शक्ति प्राप्त करो, जीवनको सच्चा रूप दो, फिर ऊपर उठो। कई बार ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं कि युद्ध छोड़कर और कोई उपाय ही नहीं रह जाता।"

यह सब होते हुए भी आर्य लोगोंने अपने युद्धोंके लिये कुछ नियम बनाये थे, उनसे नीचे उतरना उनकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध होता था। भिन्न-भिन्न जातियों और कुलोंकी अपनी-अपनी रीति-नीति होती थी और बड़े-बड़े भी उसका उल्लंघन न करते थे। प्राचीन भारतका योद्धा अपनी आन और मर्यादाका बहुत ख्याल रखता था। शत्रुको पीठ दिखाना उसके लिये मरणसे भी बुरा था, संग्रामभूमिसे एक पग पीछे हटना उसके लिये अधर्म था। याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं, "जो भूमिके लिये लड़ाई छेड़ते हैं उन्हें युद्धक्षेत्रमें पीठ न दिखानी चाहिये, उन्हें निषिद्ध हथियारोंका उपयोग न करना चाहिये। ऐसे योद्धा योगी महात्माओंकी तरह स्वर्ग प्राप्त करते हैं। युद्ध करते-करते जो ऐसी अवस्थामें पहुंच जायें कि आगे लड़ाई न कर सकें उनपर हाथ न उठाना चाहिये। जो लड़ते-लड़ते घायल हो गये हों, जिनके हथियार छूट या टूट गये हों, जो शरण आये हों उनपर हाथ नहीं उठाना चाहिये।" इसी प्रकार हम रामायणमें देखते हैं कि जब रावण हनुमान जीसे बहुत नाराज होकर उन्हें मार देना चाहता था तो उसके मंत्रीने कहा, 'दूतको नहीं मारा जा सकता, दूत जो कुछ भी करता है अपने स्वामीकी आज्ञासे करता है, उसके कामकी पूरी-पूरी जिम्मेदारी उसके मालिककी होती है।' उन्होंने कहा, "दूता न वध्याः समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः।"

प्राचीन भारतीय राज्योंकी अपनी-अपनी विग्रह-शान्ति-परिषद् होती थी। वाल्मीकिने भरतकी शांति-सभा तथा रावणकी शांति-विग्रह-सभाका पूरा-पूरा वर्णन किया है। रावण सीताजीको हर तो ले गया पर आगे लड़ाई करनेसे पहले अपनी सभासे परामर्श करना जरूरी था। सभा-भवनका सुन्दर वर्णन करनेके बाद सभासदोंके बारेमें वाल्मीकि कहते हैं—

मन्त्रिणश्च यथा मुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः। अमात्याश्च गुणोयेताः सर्वज्ञा बुद्धि दर्शनाः ।।
समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा। सभायां हेम वर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ।।

(युद्ध काण्ड, सर्ग ११)

यथायोग्य भिन्न-भिन्न विषयोंपर उचित सम्मति देनेवाले मुख्य-मुख्य मंत्री, कर्तव्य-निश्चयमें पाण्डित्य दिखानेवाले सचिव, बुद्धिदर्शी, सर्वज्ञ, सद्गुणसंपन्न उपमंत्री, और भी बहुतसे शूरवीर संपूर्ण अर्थोंके निश्चयके लिये और सुख-प्राप्तिके उपायोंपर विचार करनेके लिये उस सुनहरी कांतिवाली सभाके

भीतर सैकड़ोंकी संख्यामें उपस्थित थे। इस सभामें कुंभकर्ण और विभीषणने रावणकी अच्छी तरह भर्त्सना की थी। इस प्रकारकी सभाओंमें ही युद्धकी नीति-अनीतिका निर्णय हुआ करता था। प्रत्येक कुलकी अपनी परंपरा और अपने मानदंड होते थे। उन परंपराओंके अनुसार इन परिषदोंमें शस्त्रोंके प्रयोग, पड़ोसी राज्योंके साथ व्यवहार, सेनाकी तैयारी, संधिवार्ता आदिके बारेमें निर्णय किये जाते थे। राजा बलवान् होता था तो वह परिषद्से अपनी बात मनवा लेता था, लेकिन फिर भी उसे अपने कामोंकी सफाई देनी पड़ती थी और अपनी नीतिको धर्मसंगत और नीतिसंगत सिद्ध करना होता था।

मनु महाराज अपनी स्मृतिमें युद्धके बारेमें भी नीति बता गये हैं। उनका कहना है कि युद्धके समय कूट हथियारोंका, जहरीले और जलते हुए हथियारोंका प्रयोग न करना चाहिये। नपुंसक, दुर्बल, हाथ जोड़े हुए, सोते हुए, नंगे या लड़ाई बन्द कर चुकनेवालेपर प्रहार न करना चाहिये। शरणागत या बहुत घायल अथवा जिसके हथियार नष्ट हो गये हों उसका या बहुत डरे हुओंका हनन वर्जित है। मनुका आदेश है कि शत्रुसे युद्ध करते समय, चाहे वह समबल हो या दुर्बल या अतिबल, कभी पीठ नहीं दिखानी चाहिये। रामायणके अनुसार "पूर्वापकारिणां हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते" जिस किसीने पहले अपकार किया हो उसके मारनेमें अधर्म नहीं होता। जो राष्ट्र, जाति या जनताको कष्ट पहुंचाये उसका हनन धर्मसम्मत माना जाता था। योद्धा केवल अपने पराक्रमके लिये नहीं आर्तनादको मिटानेके लिये हथियार उठाया करता था — "क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।"

महाभारतमें भी हमें इस प्रकारके उदाहरण मिलते हैं। एक बार श्रीकृष्ण कहीं गये हुए थे। उसी समय किसीने द्वारकापर आक्रमण किया। प्रद्युम्न उसका सामना करने गये, परंतु चोट खाकर मूर्च्छित हो गये। उनका सारथी दारुक यह अवस्था देखकर उन्हें रणक्षेत्रसे बाहर ले आया। मूर्च्छा टूटते ही प्रद्युम्नने सारथीको डांटा; उन्होंने कहा, "वृष्णिकुलका कोई योद्धा युद्धस्थलको जीवित अवस्थामें नहीं छोड़ता। तुम अपने कर्ममें निपुण हो फिर तुमने ऐसा काम क्यों किया? अब सात्यकि, बलराम आदि मेरे बारेमें क्या कहेंगे? वृष्णिकुलकी स्त्रियां मेरे बारेमें क्या सोचेंगी?" इसी प्रकार अर्जुनकी अनुपस्थितिमें जब अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदनेके लिये चला तो, १६ वर्षके बालकको सात महारथियोंका सामना करनेकी तैयारी करते देख सारथी जरा सकुचाया। अभिमन्युने कहा, "भगवान् कृष्ण जिसके मामा हैं, अर्जुन जिसके पिता हैं, उसे भला किसका भय हो सकता है? चलो, आगे बढ़ो।"

इसके विपरीत है शुक्रनीति। उसका कहना है, "युद्धमें न्याय-अन्यायका प्रश्न बेकार है। बलवान् शत्रुके विनाशके लिये कूटनीतिसे बढ़कर नीति नहीं। छल-कपट, छद्मवेश, चाटूक्ति, अपमान-सहन आदि विजयके लिये अमोघ साधन हैं। अभीष्टको हाथसे जाने देना मूर्खता है। अभीष्टकी प्राप्तिके लिये मानापमानपर ध्यान न देना चाहिये, युद्धमें शत्रुका ध्वंस ही ध्येय है। वहां न्याय-संगत होना जरूरी नहीं है। शत्रुपर अकस्मात् आक्रमण करना चाहिये और बातकी बातमें दूर हट जाना चाहिये।" शुक्रके अनुसार योगी और रणमें लड़ते हुए योद्धा ही स्वर्गके अधिकारी हो सकते हैं। युद्धमें गुरु भी सामने आ जाय तो उसका भी सामना करना चाहिये। जो अपनी जान बचानेके लिये युद्धसे भागता है वह अधम, पामर, मृतकके समान है और सारे देशका पाप अपने ऊपर लेता है — वह नरकका अधिकारी है।

लेकिन यहां एक बातकी ओर ध्यान खींचना जरूरी है। नीति वगैरह वहींतक हैं जहांतक मनुष्योंका संबंध है, लेकिन नीति यदि भगवान्के कार्यसे उलटी पड़ती हो तो उसका विरोध करके भगवान्की इच्छा पूरी करना ही परम धर्म है, जैसे स्वयं रामने बालिका वध किया था, भगवान् कृष्ण मथुरा छोड़कर भागे या उन्होंने भीमको इशारा करके जरासंधका वध करवाया। भागवत आदेशके आगे और सब नियम गौण हो जाते हैं। आर्योंका यही धर्म रहा है।

श्रीअरविंद-वाणी

अतिमानस सत्यकी खोजका उद्देश्य

मेरा प्राण इन अहंकारमयी भावनाओंमें चक्कर नहीं लगाता। मैं एक ज्यादा ऊंचे सत्यकी तलाशमें हूं। प्रश्न यह नहीं है कि वह सत्य मनुष्यको ज्यादा बड़ा बनाता है या नहीं, प्रश्न यह है कि क्या वह लोगोंको सत्य, शांति और प्रकाशमें निवास प्रदान करके उन्हें असत्य, अनृत, कष्ट और कलह-भरे जीवनसे कुछ अच्छा जीवन दे सकता है या नहीं। इतना हो सके तो मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जायगा, चाहे लोग पुराने जमानेके लोगोंसे कम महान् ही क्यों न रहें। मेरे लिये मानसिक धारणाएं ही इस जगत्का अंत नहीं हो सकतीं; मुझे मालूम है कि अतिमानस एक सत्य है।

मैं अपने बड़प्पनके लिये अतिमानसको नीचे उतारनेकी कोशिश नहीं कर रहा हूं। मुझे मानव अर्थोंमें बड़प्पन और छुटपनकी तनिक परवाह नहीं। मैं पृथ्वी-चेतनामें आंतरित सत्य, प्रकाश, सामंजस्य और शांतिके तत्त्वको उतारनेका प्रयत्न कर रहा हूं। मैं उसे ऊपरकी ओर देखता हूं और जानता हूं कि वह क्या है। मैं उसे हमेशा ऊपरसे अपनी चेतनापर किरणें डालते हुए देखता हूं और मैं कोशिश कर रहा हूं कि वह सारी सत्ताको अपनी स्वाभाविक शक्तिके अंदर उठा ले और मनुष्य-प्रकृति आधे अंधेरे आधे उजालेमें ही न पड़ी रहे। मेरा विश्वास है कि पृथ्वीपर विकासका अंतिम उद्देश्य ही है यहांपर दिव्य-चेतनाके विस्तारका रास्ता खोल देनेवाले इस सत्यको नीचे उतार लाना। अगर मुझसे बड़े लोगोंके सामने यह दृष्टि न थी और यह आदर्श न था तो यह कोई कारण नहीं कि मुझे भी अपनी सत्य भावना और सत्य दृष्टिके अनुसार काम नहीं करना चाहिये। मुझे जरा भी परवाह नहीं है यदि मानव बुद्धि मुझे इस बातके लिये मूर्ख ठहराये कि मैं एक ऐसा काम करनेके लिये कोशिश कर रहा हूं जिसके लिये श्रीकृष्णतकने प्रयत्न नहीं किया। यह भगवान्की इच्छा है या नहीं या मैं उस सत्यको नीचे उतारने या उसके लिये मार्ग खोलने या कम-से-कम उसके अवतरणको ज्यादा संभव बनानेके लिये भेजा गया हूं या नहीं, इसमें 'क' 'ख' या किसी औरका तो सवाल ही नहीं है। यह तो मेरे और भगवान्के बीचकी बात है। दुनिया मेरा मजाक उड़ाना चाहे तो उड़ाती रहे और मेरी इस धृष्टतासे जहन्नुम टूटा पड़ता है तो टूट पड़े, मैं विजय प्राप्त करके रहूंगा या मर मिटूंगा। इसी भावनासे मैं अतिमानसकी खोज कर रहा हूं, अपने लिये या दूसरोंके लिये बड़प्पन-की लालसासे नहीं।

अतिमानसका अवतरण निश्चित

जगत्की बुरी दशाके बारेमें मैं पहले ही कह चुका हूं। इस संबंधमें गुह्यवेत्ताओंका साधारण विचार यह है कि दशा जितनी ही अधिक बुरी होती है, ऊपरसे दिव्य हस्तक्षेपका होना या नवीन प्रकाशका आना उतना ही अधिक संभव होता है। साधारण मनको इस बातका पता नहीं चल सकता—उसके लिये बस यही चारा है कि या तो वह इस बातपर विश्वास करे या न करे अथवा प्रतीक्षा करे और राह देखता रहे।

अब रहा यह प्रश्न, कि क्या भगवान् सचमुच ही चाहते हैं कि ऐसा कुछ घटित हो। इस बारेमें मेरा विश्वास है कि उन्हें यह अभिमत है। मुझे पूरी तरहसे, निश्चित रूपसे, मालूम है कि अतिमानस एक सत्य है और, जगत्की वस्तुस्थितिको देखते हुए, उसका यहां आना अवश्यंभावी है।

प्रश्न तो बस केवल कब और कैसेका है। और वह भी कहीं ऊपरसे निश्चित और पूर्व-निर्धारित हो चुका है। परंतु उसकी प्राप्तिके लिये यहां विरोधी-शक्तियोंके बीच घमासान लड़ाई चल रही है, क्योंकि पर्थिव जगत्‌में वह पूर्व-निर्धारित परिणाम छिपा हुआ है। और यहां जो कुछ हम देखते हैं वह तो संभावनाओं तथा शक्तियोंका भंवर ही है और वे संभावनाएं एवं शक्तियां किसी चीजकी प्राप्तिके लिये यत्न कर रही हैं पर इस सबका भविष्य मनुष्यकी दृष्टिसे ओझल है। तो भी इतना निश्चित है कि कुछ एक आत्माएं इसलिये भेजी गयी हैं कि वह अभी सिद्ध हो जाय। बस, वस्तुस्थिति यही है। मेरी श्रद्धा और संकल्प इसी ओर हैं कि यह अभी सिद्ध हो। अवश्य ही, यह सब मैं मानवीय बुद्धिके धरातलसे ही कह रहा हूं, या यूं कहें कि गुह्य बौद्धिक शैलीसे कह रहा हूं। इससे अधिक कहना विषयकी सीमाको पार करना होगा। मैं समझता हूं कि तुम यह नहीं चाहते कि मैं भविष्यवाणी करना शुरू कर दूं। बुद्धिवादी होनेके कारण तुम ऐसा चाह भी नहीं सकते।

⁂

श्रीमातृ-वाणी

शब्दोंकी शक्ति

यह मुझे निरर्थक प्रतीत होता है कि मैं तुम्हारा ध्यान उन बहुतसे अनुपयोगी शब्दोंकी ओर खींचूं जो हम नित्य-प्रति उच्चारित करते रहते हैं। इस दोषको स्वीकार सभी लोग करते हैं, परंतु इसका उपाय कम लोग ही सोचते हैं।

इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे शब्द हैं जो हम अनुपयोगी तरीकेसे बरतते हैं। अथवा यूं कहिये कि दिनमें बहुत बार कोई शब्द बोलते हुए हमें एक लाभदायक भावनाको अभिव्यक्त करनेका अवसर मिलता है यदि हमें यह पता हो कि उन अवस्थाओंमें शब्दके पीछे क्या भाव रखना चाहिये।

परंतु कितनी ही बार हम अपने मिलनेवालोंके चारों ओर एक हितकारी मानसिक वातावरण उत्पन्न करनेका ऐसा अवसर खो देते हैं। इस उपेक्षाका प्रतिकार करना प्रत्यक्ष ही अत्यंत हितकर होगा।

इसके लिये हमें अपनी मानसिकताको उस अनिश्चित और निष्क्रिय भावमें निवास करनेसे रोकना होगा, जिसमें वह अधिकतर लगी रहती है।

इस अर्धचेतन अवस्थासे उत्तरोत्तर स्वास्थ्य लाभ करनेके लिये हमें अवश्य ही, किसी शब्दको उच्चारित करते हुए उसके यथार्थ भावपर एवं वास्तविक क्षेत्रपर विचार करना चाहिये। इससे हम उस शब्दको उसकी पूरी क्षमता प्रदान कर सकेंगे।

इस संबंधमें हम कह सकते हैं कि शब्दोंकी क्रियाशक्ति तीन विभिन्न कारणोंपर निर्भर है।

पहले दो कारण तो स्वयं शब्दमें ही निहित होते हैं जिससे वह शक्तिका संचेत्र (शक्तिका संचय करनेवाला यंत्र) बन जाता है। तीसरा, शब्द प्रयुक्त करनेके समय उसके गंभीर भावको सर्वांगीण रूपमें अनुभव करना होता है।

स्वभावतः ही, यदि ये प्रभावकताके तीनों कारण इकट्ठे मौजूद होते हैं तो शब्दकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

(१) कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनकी ध्वनि भौतिक जगत्में उनके भावके अपने निजी जगत्के सूक्ष्म स्पंदनका ठीक स्थूलीकृत पूर्ण स्पंदन होती है।

ध्वनि और भावके साम्यको थोड़ा और पाससे देखनेपर हमें कुछ ऐसे मूल शब्द मिलेंगे जो सर्वथा व्यापक विचारोंको अभिव्यक्त करते हैं और जो अधिकांश बोलनेकी भाषाओंमें लगभग एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। (हमें भाषाके इस उद्गमको लिखित भाषाओंके उद्गमके साथ मिला नहीं देना चाहिये, क्योंकि इन भाषाओंका स्वरूप और है और ये कुछ दूसरी ही आवश्यकताओंको पूरा करती हैं।)

(२) कुछ और शब्द हैं जो शताब्दियोंसे विशेष परिस्थितियोंमें दोहराये जाते रहे हैं और जो उन सबकी मानसिक शक्तिसे, जो उनका उच्चारण कर रहे हैं, भरपूर हो गये हैं। ये शक्तिके सच्चे संचेत्र बन गये हैं।

(३) अंतमें फिर वे शब्द हैं जो बोलनेके समय बोलनेवालेके जीवंत भावसे तत्काल एक महत्त्व प्राप्त कर लेते हैं।

मैं जो ऊपर कह चुकी हूं, उसके दृष्टांतके रूपमें मैं एक शब्द प्रस्तुत करती हूं। इसमें तीनों प्रकारके गुण मौजूद हैं और यह है संस्कृतका शब्द "ओ३म्"।

इसे भारतमें दिव्य उपस्थितिको अभिव्यक्त करनेके लिये प्रयुक्त किया गया है। यह व्यापक रूपमें ध्यान, चिंतन और योगाभ्याससे संबद्ध है।

जैसे "ओ३म्" शब्दकी ध्वनि शांति, सौम्यता और शाश्वतताके भावको जाग्रत करती है वैसे अन्य कोई ध्वनि नहीं करती।

फिर इस शब्दमें, इसका प्रयोग करनेवालोंकी, इसके भावसंबंधी, शताब्दियोंकी एकत्रभूत मानसिक भावनाएं पूरी तरहसे भर गयी हैं, विशेषकर हिंदुओंके लिये तो भागवत सत्ताके साथ संबंध स्थापित करनेका यह एक पूरा शक्तिसंपन्न साधन है।

और क्योंकि पूर्वके लोग धार्मिक भाववाले होते हैं और उन्हें चिंतनका अभ्यास होता है, उनमें कम ही ऐसे हैं जो इसकी प्रभावकताके लिये आवश्यक विश्वासके बिना इसे उच्चारित करते हों।

चीनमें समान लाभ एक और शब्दसे प्राप्त किया जाता है जिसका अर्थ वही है और जिसकी ध्वनि भी 'ओ३म्' शब्दसे मिलती-जुलती है। यह शब्द है 'ताओ'।

हमारी पश्चिमी भाषाएं उतनी व्यंजनापूर्ण नहीं हैं, ये अपने वर्तमान स्वरूपमें उस मूल भाषासे जिसने इन्हें जन्म दिया था, बहुत दूर हट गयी हैं। परंतु हम सदा ही अपने सजीव और सक्रिय भावकी शक्तिसे अपने शब्दको जीवंत बना सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे सूत्र हैं जिन्हें हम अपने वर्तमान चालू सूत्रोंमें और जोड़ सकते हैं। ये सूत्र कई प्राचीन गुह्यविद्याके संप्रदायोंमें बरते जाते थे। इनका अभिवादनके शब्दोंके रूपमें प्रयोग किया जाता था और उन लोगोंके मुंहमें, जो इनपर विचार करना जानते थे, ये विशेष प्रभावपूर्ण तथा फलोत्पादक हो जाते थे।

ऐसे शिष्योंको जिन्हें नयी-नयी दीक्षा मिली होती थी और जिन्होंने मार्गपर अभी पहला पग ही रखा होता था, कहा जाता था : "तुम्हें समताकी शक्ति प्राप्त हो।"

उन्हें, जिन्होंने अपने अनवरत तथा विकसनशील हितभावको अपने आंतरिक और बाह्य मनोभावसे प्रमाणित कर दिया था, कहा जाता था : "तुम्हें पूर्ण हित प्राप्त हो।"

और कुछ गुरुओंके दृष्टांतमें, जिन्हें विशेष उच्च शक्तियां प्राप्त होती थीं, ये शब्द रोगमुक्त करनेके समान कई वास्तविक सिद्धियां भी प्रदान करनेकी सामर्थ्य रखते थे।

* * *

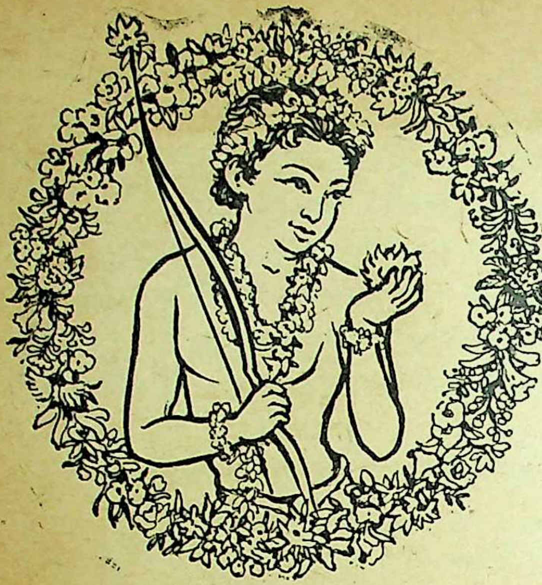

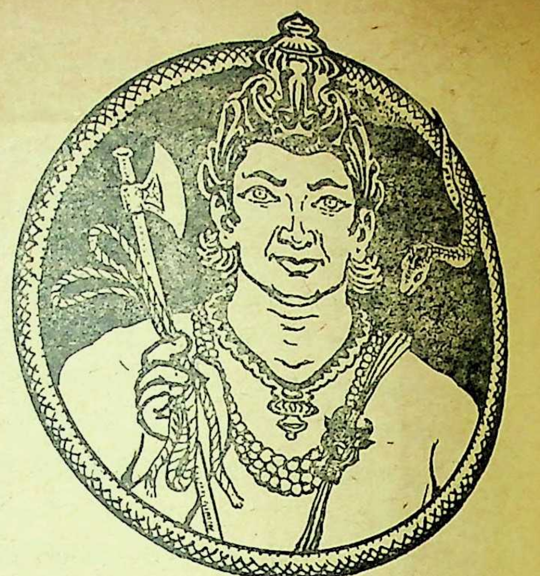

प्रेम और मृत्यु

(प्रियंवदाकी मृत्यु)

[महाभारतमें रुरु और प्रियंवदाका आख्यान है। उसे पढ़कर श्रीअरविंदके मनमें एक नये काव्यने जन्म लिया और वह है 'लव एंड डेथ'। इसकी गिनती अंग्रेजीके सर्वोत्तम काव्योंमें की जा सकती है। उसका अनुवाद करना तो एक असंभव-सा काम है। यहां श्री अनुबेनने अपने शब्दोंमें उसका भाव देनेकी कोशिश की है। उनका कहना है कि अगर इसमें मूल काव्यकी एक बूंद भी आ जाय तो वे अपने-आपको धन्य समझेंगी।

यह कथानक नवंबर, दिसंबर और जनवरीके अंकोंमें प्रकाशित हो रहा है। इसके चित्र श्री-कृष्णलालके बनाये हुए हैं ——संपादक।]

पृथ्वी अभी जन्मी ही थी और उल्लाससे नाच रही थी। प्रेम स्वयं अपने लिये नया, उष्मासे भरपूर और निर्दोष था। सृष्टिकी उस वेलामें फूलसे खेलते प्रभात-सा रुरु अपनी प्रियंवदामें मग्न था। ओस कणोंकी ताजगी और चमक नेत्रोंमें बंद किये हुए, मधुर गात्री, शुभ्रवर्णा प्रियंवदाने अपने हृदयका रक्त-पुष्प प्रेममूर्ति, रुरुके सामने खोल दिया। नव कमलके चारों ओर नाचते जलप्रवाहकी तरह रुरुके प्रणय-आवेगने प्रियंवदाको रोमांचित कर दिया और उसकी आत्माको अपने प्रचंड आवेगसे मंत्र-मुग्ध कर लिया। रुरुके लिये सारी पृथ्वी इस एक फूलकी क्यारीमात्र थी और प्रियंवदाके लिये मानो सारा जगत् ही रुरुके आलिंगनमें समाया हुआ था।

उस समय सहस्र युगोंकी धधकती ज्वाला और असंख्य सूर्योंके गरम कोपसे मुक्त होकर पृथ्वी वर्षाकी शीतलतामें नहा चुकी थी। इस मुक्तिसे पुलकित हो-होकर वह हरियाली बिछाती गयी। सुरभित फूलोंसे उसका आतुर हृदय भर गया, उसके वत्सल हाथोंमें नवजात जीवन मस्तीसे झूमता गया। भोले शिशु-सा नव जीवन सदा खेलता रहता था, न कभी थकता और न पृथ्वीकी उज्ज्वल भावीको भूलता। जीवनकी कली बहार ला रही थी। चारों ओर खुशीका दौर था, सुगंध और रंगकी बहार थी। मस्त हवाएं बह रही थीं और जीवनकी उन्मत्त किरणें चारों ओर फैली हुई थीं। उत्कंठापूर्ण आनंद पृथ्वीको अपने आलिंगनमें समेटता गया। पृथ्वीके मैदानोंमें एक स्वतंत्र, बंधनोंसे

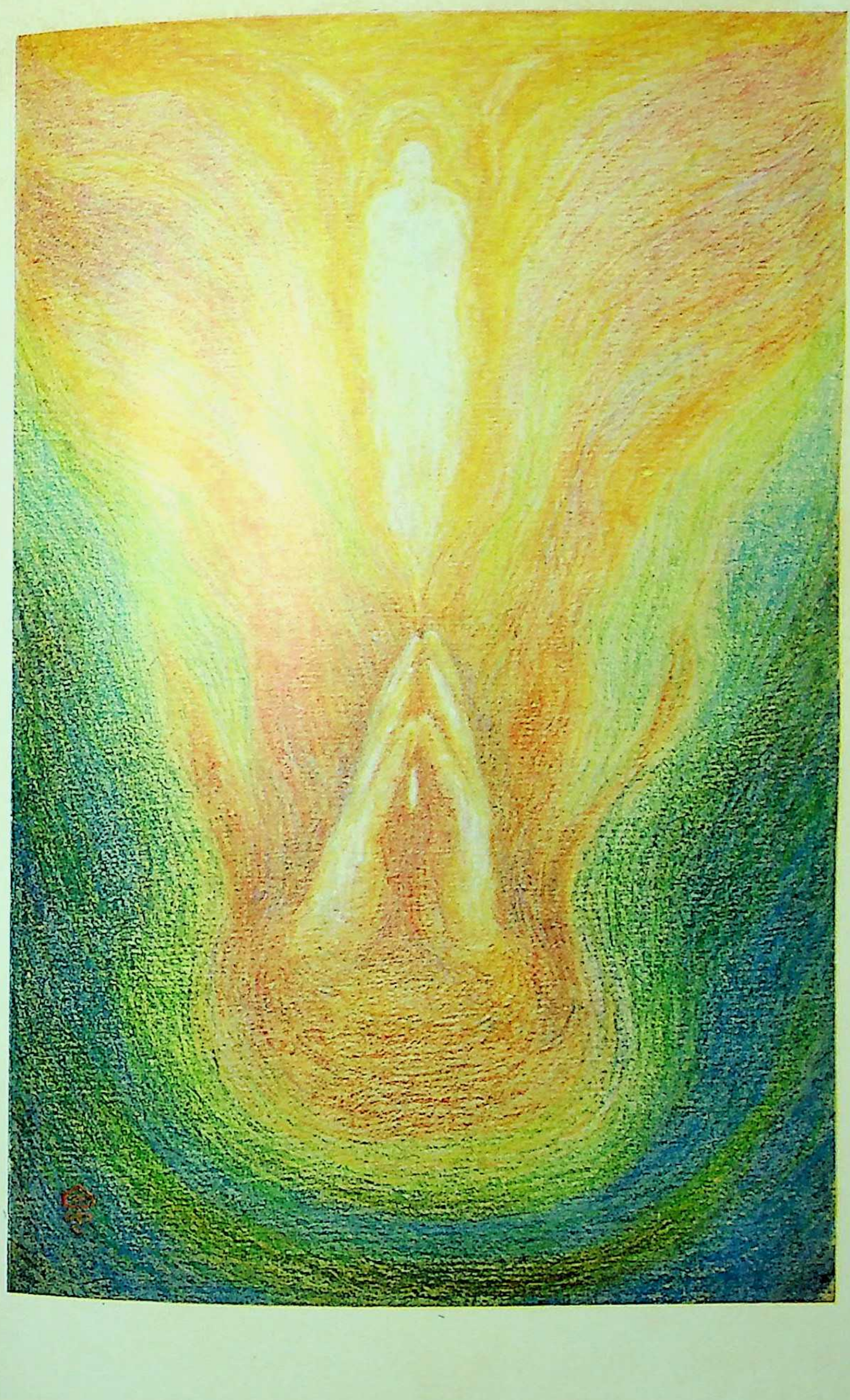

अपरिचित मानवजाति विहर रही थी। उनके स्वच्छंद हृदय और विशाल मानस ज्योतिकी ओर उन्मुक्त थे। उर्वरा धरतीके खेतोंमें धान झूमता था। समृद्ध और विशाल जंगलोंके ऊंचे-ऊंचे पेड़ हवाके झोंकोंसे मरमर ध्वनि करते रहते थे। उन्हें सुन और देखकर मानव मनमें विचारोंकी भी ऐसी ही उच्च तान छिड़ जाती थी। कुमारी कन्या-सी, बांधसे अपरिचित नदियां निर्द्वंद्व होकर समुद्रकी ओर बहती जाती थीं। इस नयी मानवजातिके मनमें अनदेखे पहाड़ोंकी कल्पना गरुड़-सी विचरती रहती और उनके हृदय एक विचित्र काल्पनिक सौंदर्यसे भर जाते। युवक रुरुके अंतरमें नवीन, पृथ्वीका माधुर्य रक्तकी तरह घुलमिल गया था। जिंदगी छोटी होते हुए भी युगों-सी लंबी लगती थी। क्योंकि उसमें अनंत कार्य करनेका समय था और था प्रेम — जीवनके मधुरतम वरदान-सा और जीवनके अविरत उल्लास जैसा प्रेम! जैसे चमकते रंगोंसे सुशोभित पक्षी हवामें तैरता हुआ, गुलांटे खाकर, कल्लोल करता हुआ, अपने घोंसलेमें लौटकर संगिनिको हृदयसे लगाता है और उसे अपनी ही समझता है, वैसे रुरु भी सोते खेतोंमेंसे घूमती हुई हवासे खेलता हुआ या आशीर्वाद रूपी धूपमें निकलकर फिर प्रियाके पास चला आता था। जंगलोंमें पत्ते उड़ते रहते थे। नीलम जैसे सुहावने — श्यामल वनमें वह नये-नये स्थान ढूंढ़ता फिरता। अनजानी पहाड़ियोंमें घूमता-घामता, मैदानोंमें दौड़ते वायुके साथ स्पर्धा करता-सा रुरु प्रियंवदाकी ओर प्रायः उड़ता हुआ आता। ताजे कमल-सी नवीन प्रियंवदा उसकी ओर बढ़ती और रुरु इस नवीन कमलमें खो जाता। उसे इस गौरांगी बालाके माधुर्य और उग्र भावका कहीं ओर-छोर न दीखता था। उसकी गहन गंभीर आंखें रुरुकी आत्मापर जादू कर देती थीं। कान्ताके शरीरका हल्का-सा स्पर्श भी उसे झकझोर देता था। उसके दीर्घ चुंबनोंसे रुरुका सुख सौगुना बढ़ जाता और उन अमृतमय ओठोंका स्पर्श प्रेमीको रोमांचित और आश्चर्यचकित करता रहता। प्रियंवदाके श्वेत कंधे कुंतल केशराशिमेंसे चमेलीसे कोमल और धवल दीखते। प्रियाके चुंबन और सौंदर्यसे मुग्ध रुरु उसके सारे शरीरको अपना साम्राज्य समझता, और उसे देवोंकी महिमा जानकर पूजता। वह ठीक न कर पाता था कि उसे कान्ताका कौन-सा रूप ज्यादा प्रिय है; उसका धवल स्मित, अकारण आखें भरना, जरा-जरा-सी बातोंमें रूठना या कमलोंमें एक नवीन कमल-सी, उस सद्यः स्नाताका आलिंगन। कभी-कभी रुरुके सारे सामर्थ्यको अपनी रूपमाधुरीसे हरा देनेवाली प्रियंवदा बड़ी प्यारी लगती। हठात् सामने आकर वह रुरुको चौंका देती। ज्योत्स्ना रात्रिमें चमेलीके लतामंडपके अंदर बैठे-बैठे आनंदके आंसू बहाती या रुरुके प्रेम-विहारसे प्रसन्न होकर धीरे-धीरे हंसती या किसी अनजान दुःखसे भरी हुई आंखोंसे उसे देखती रहती। इस प्रकार रुरु माधुर्यके सुहावने जंगलमें रहता था और इस आनंदको स्थायी समझता था। वह इससे बढ़कर किसी आनंदकी कल्पना भी न कर सकता था।

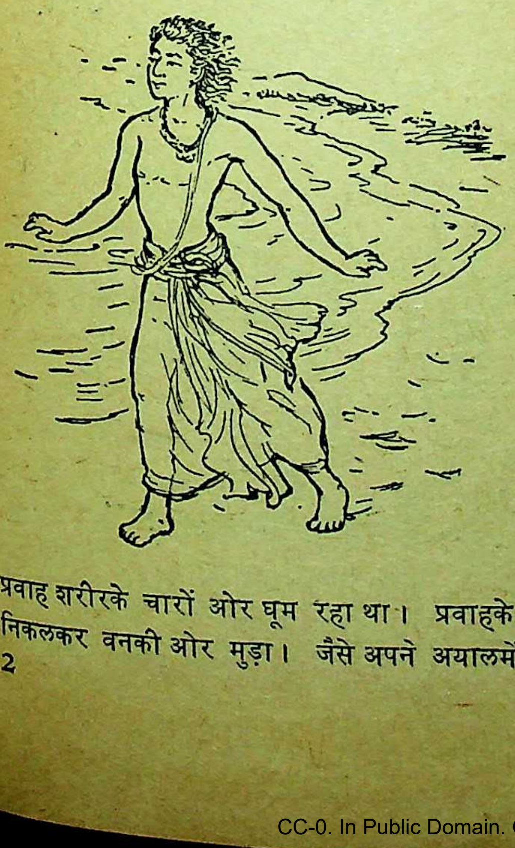

किंतु उच्च आत्माओंके लिये प्रेम देवके पास खास रक्तरंजित सुख होता है जो कंटकहीन गुलाबके सुखसे कहीं अधिक धन्य है। उस दिन पूर्वमें अभी अंधेरा ही था कि रुरु सोती प्रियंवदाके बाहुपाशसे उठकर नदीमें जा कूदा। जलका शीतल प्रवाह शरीरके चारों ओर घूम रहा था। प्रवाहके विरुद्ध तैरनेका आनंद लेता हुआ रुरु दूसरे किनारे निकलकर वनकी ओर मुड़ा। जैसे अपने अयालमें हवाके झोंकेका आनंद लेते-लेते खुशीसे हिनहिनाता

अश्व गर्वसे गरदन मोड़कर चलता है उसी तरह युवक रुरुने हर्षके साथ अपने घुंघराले बालोंको हिलाकर चारों ओर ओसकणसे जलबिंदु बिखेर दिये। दिनकी उठती हुई प्राणवाही शक्तिमें जीते प्राणीकी तरह वह जीवनके प्रचंड प्रवाहमें बहने लगा और दूर-दूर फल-फूल बटोरता चला गया। प्रियंवदाके सौंदर्यके लायक फूल ढूंढ़ता-ढूंढ़ता वह आगे बढ़ता गया और नये झरनों, नये पेड़ों और अभिनव वनराजिमें खो-सा गया। सूर्यकी किरणें ओसकणोंसे गीले हुए पत्तोंके इस सघन देशमें धीरे-धीरे आयीं। दिन चढ़ता गया और किरणें प्रकाशका पथ बनाती-बनाती आगे आती गयीं और सारे वनको रंगोंकी सुहावनी दुनियामें ले गयीं। सारा वन जीवनके संगीतसे भर गया; मृग और पशु-पक्षी सभी उसमें बहकर सामंजस्यके राज्यमें रहने लगे। दोपहरके इस दर्शनसे संतुष्ट रुरु कुटीकी ओर मुड़ा। कुटीके पास बने कुंजमंडपसे निकलते हुए उसने हंसते-हंसते सूर्यकी ओर देखा "तात अंशुमाली! जीवन कितना मधुर है, और प्रेम! . . . . . अवश्य ही हमारे आनंदका न कभी अंत होगा और न हमें वृद्धावस्था सतायेगी। है न? इस स्वच्छंद वायु और इस कलकल करती सरितासम हम भी सदा जीवित रहेंगे या इन फलोंकी तरह नये-नये जन्म पायेंगे। और नहीं तो इन विशाल वृक्षों-सी दीर्घ आयु तो हमें मिली ही होगी।"

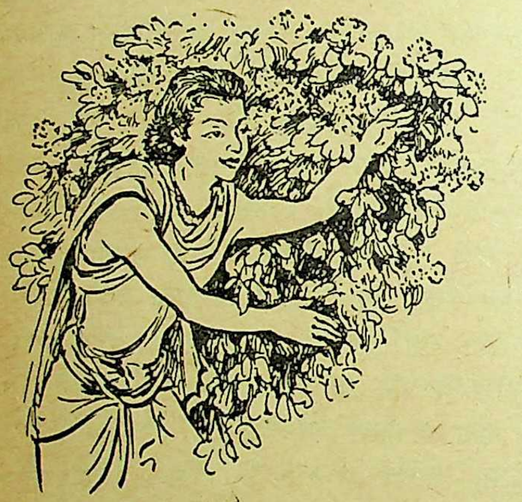

सोचते-सोचते रुरु दिवास्वप्नमें घूमने लगा। उसके ओठ मुस्कराये —— "ओह प्रिया . . . ." वह रूठकर अपना अश्रुसिक्त मुख मुझसे मोड़ लेगी। उस समय उसका सुकुमार मुख आंधी-भरे आकाश-सा या ज्योत्स्ना रात्रिमें बरसती वर्षा-सा सुन्दर लगेगा। फिर मैं उनके पीछे-पीछे चलकर मीठी-मीठी बातोंसे मानिनीको मना लूंगा अथवा उसके क्रोधकी उपेक्षा करके पके फलकी तरह उसके पूर्ण कोपका स्वाद लेता-लेता चुप रहूंगा और जब उसे निरुपाय और बेबस बना लूंगा तब शांतिसे उसके हृदयपर अपना अधिकार जमाकर छातीसे लगा लूंगा। वह मना न कर सकेगी, वह विरोध करना ही भूल जायेगी। और तब अपनी प्रसन्नचित्त प्रियाकी सुषमाको फूलोंसे सजा दूंगा। नहीं तो ऐसा करूंगा, मैं उसके पैरोंपर गिरूंगा तब उसका मुख ऊषा-सा उज्ज्वल हो जायेगा और छोटा-सा स्मित उसके मुखपर खिल उठेगा। रुरु इन विचारोंमें खोया हुआ था कि उसे प्रियंवदा दिखायी दी। वह चमेलीका गुच्छा आतुर हाथोंसे तोड़ रही थी। रुरुका पदरव सुनते ही, उसे देखनेसे भी पहले प्रियंवदाके चेहरेपर मनोहर स्मित खिंच गया और खुशी और लज्जासे उसका नत मुख गुलाबी हो उठा। ऐसा लग

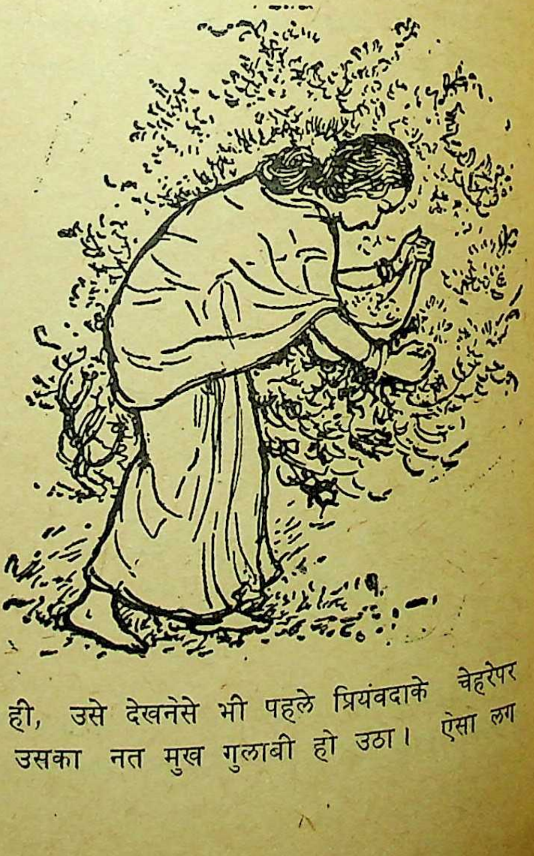

मानो आनंद और लज्जाने उसे चकित कर दिया हो। इस तरह मरनेसे पहले वह अपने प्रेमके संमुख पूर्ण सौंदर्यमें खड़ी थी। रुरु उसकी ओर देखकर मुस्कराया।

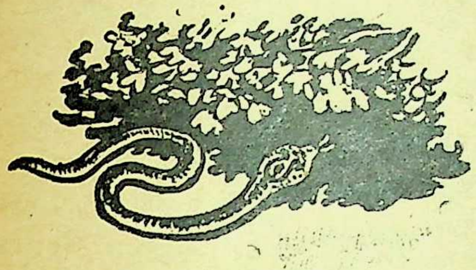

अचानक एक दर्दभरी चीखके साथ प्रियंवदा पीली पड़ गयी और कराहती हुई धरतीपर आ गिरी। आश्चर्यसे जड़वत् रुरु उसे फटी आंखोंसे देखता रहा। फिर एकदम चौंककर एक ही छलांगमें पास आ गया। आते ही उसने चमकती कुंडलियोंको कोंधते हुए देखा। वे दिनके उजालेसे भाग रही थीं। मौतके फूत्कार करते-करते उस घृणित भड़कीले फनने शीतल हरे पत्तोंमें आश्रय ले लिया!

वाचा-हीन रुरु प्रियापर झुक गया और उसके असहायसे हाथ प्रियंवदाके मुखपर कोमलतासे फिरने लगे। वह निःशब्द भाषामें उस उड़ती हुई आत्मासे वापिस आनेकी प्रार्थना करने लगा। क्रूर आशा उसके हृदयको छलने लगी, "आह, ! अभी उसका शरीर गरम है" . . . . . परंतु वृक्षपर मुरझाते चमेलीके गुच्छे-जैसा प्रियंवदाका मुख भी विवर्ण हो चला। . . . . . वह गुलाबी वर्ण कहां गया? . . . . दर्दसे विस्फारित नयनोंसे वह उजालेमें देखने लगी। उसकी दुर्बल होती बांहें रुरुके गलेमें थीं। सिसकते-सिसकते बोली, "हाय प्रिय!" फिर जरा रुककर, ". . . प्रियतम! हमारी छोटी-सी हरी भरी कुटी! क्या मुझे वह इतनी जल्दी छोड़नी पड़ेगी? . . . . . मैं तुम्हारे प्यार और चुंबनोंमें कितनी रमी हुई . . . . . मैं समझती थी कि हमारा आलिंगन युग-युगतक बना रहेगा। मुझे अभीतक जीवनके हास्य, आंसू, मधुरता और घर्षण——किसीका भी पूरा अनुभव नहीं है। अभी तो मैं इस वनके पशु-पक्षियोंको भी भलीभांति नहीं पहचानती। अभी तो जी भरकर सूर्योदय और सूर्यास्तको भी नहीं देखा है और न कोयल और चातककी स्वरलहरीको ठीक-ठीक पहचान पायी हूं। इस कुटियाके कितने ही फूलोंके नाम मुझे नहीं मालूम। ये बड़े-बड़े वृक्षराज अभीतक अपरिचित हैं, अंधेरी रातमें तारोंकी पहचान भी कहां हो पायी है? क्या मुझे इतनी जल्दी मरना होगा? उफ, ठंडे-ठंडे हाथ मुझे तेरे ऊष्माभरे शरीरसे अलग खींच रहे हैं। . . . . . . वे मुझे कुहासा भरे अंधकारमें लिये जा रहे हैं। . . . चारों ओरसे रातका अंधेरा मुझे घेर रहा है। . . . . . हाय! अब मैं तुम्हारी नहीं रही। . . . . . किसी अनजान प्रदेशमें जा रही हूं। . . . . . मुझे विचित्र छायाएं दीखती हैं, विचित्र प्रदेश दिखायी देता है और दिखायी देती है वह भयंकर नदी . . . . . . हाय वे मुझे तुझसे दूर-दूर लिये जा रहे हैं . . . क्या फिर कभी मिलन हो पायेगा? . . . . मृत्युके उस विराट् प्रदेशमें हम मिल सकेंगे? जीवनशक्ति तुझे दूसरे हाथोंमें धकेल देगी। तू मुझे भूल जायगा। ना . . . . ना, तू भी मेरे साथ चल। . . . . . भयभीत असहाय होकर मैं उस प्रदेशमें अकेली नहीं भटकना चाहती। शायद तेरे प्रेमसे वंचित होकर मुझे प्रकाशहीन झरनेके किनारे आंसू बहाने पड़ेंगे।" . . . . . मृत्यु उस सुन्दर मुखपर झुक आयी। एक सिसकीके साथ खेलसे जल्दी बुलाये गये बालककी तरह असंतुष्ट सुभग आत्मा प्रियंवदाके शुभ्र शरीरको छोड़ गयी।

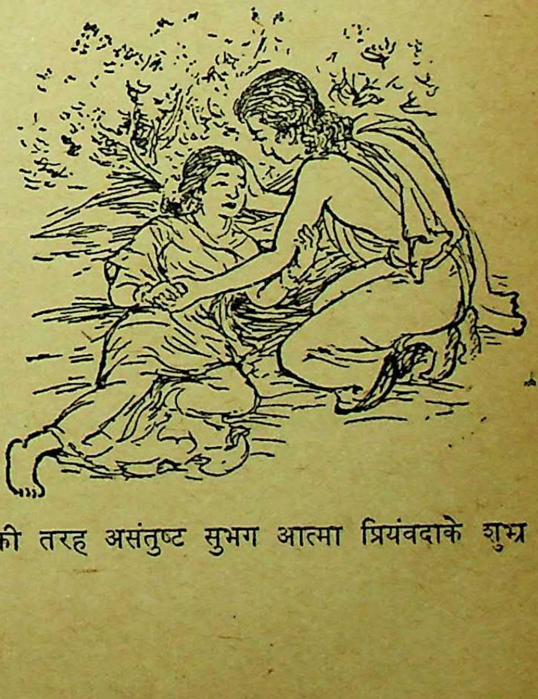

शरीरपर झुका हुआ रुरु अब भी निस्तब्ध था। उन बंद ओठोंसे और कुछ सुननेकी आशा लिये बैठा था। चंचल हरे-भरे उपवनमें सिर्फ प्रियंवदा खामोश पड़ी थी। रुरु उठा नहीं, मृतकके ऊपर झुका रहा। उसे तेज-विहीन आंखोंसे देखता रहा।.....कुछ देर बाद ऋषि-पत्नियां आयीं। पाल-पोसकर दुलारसे जिस शरीरको पुत्रीकी तरह पाला था, उसपर आज वे आंसू बहा रही थीं। बड़ी कोमलतासे उन्होंने उस ठंडे शरीरको उठाया, फिर भी रुरु मृत बन वहीं बैठा रहा। न हिला न डुला, न नजर ही उठायी, अंतिम चुंबन भी न दिया। मृत प्रियंवदा किसी शीतल निकुंजमें अपनी माताओंके साथ ले जायी गयी।

सारा जंगल प्रियंवदाको याद कर रहा था फिर भी रुरु निःशब्द बैठा रहा। रुरुकी आत्मामें एक विस्तृत निःस्तब्धता छायी थी। उस सन्नाटेमेंसे वह जंगलकी आवाजें सुनता रहा; पत्तोंकी खड़-खड़, गिलहरियोंकी दौड़-भाग, उड़ते पक्षियोंका चहकना, दूर-दूर कलापीका क्रंदन और पेड़ोंकी फुनगियोंका हवाके झोंकोंमें सरसराना। यह सब दूर, सुदूर था और रुरु अपने दिलमें अकेला था, बिलकुल अकेला। उसे खोयी प्रियाका विचारतक न आता था। वह कोमलांगी रुरुके जीवनमें प्रवेश कर पायी। उससे भी दूर अतीतकी छोटी-छोटी स्मृतियां मनपर बिछ गयी थीं।

रुरु स्तब्ध बैठा था। उसके सिरके आसपास चिड़ियां उड़ रही थीं। उनके छोटे-छोटे पंख उसपर हवा करते थे। हवाके इन मृदु झोंकोंसे वह हिला और उसके मन और शरीरमें वर्तमान स्मृति जाग उठी। उसने चारों ओर देखा : वही हरा-भरा जंगल था, वैसे ही फूल मुस्करा रहे थे और वही चिर-परिचित वृक्षराज हवामें झूम रहे थे। उसे पृथ्वीकी प्रफुल्ल उदासीनता और अपने दुःखमें एकाकीपन अनुभव हुआ। दुःखसे विवर्ण सुन्दर मुखको उठाकर वह बुदबुदाया, "ओ ठंडे दिल-वाले निष्ठुर मृत्यु! मैं रो-धोकर तुझे संतुष्ट न करूंगा, तेरी नाटचशालामें दुःखके अभिनयका नाटक भी न रचाऊंगा। सामान्य पुरुषकी तरह स्मृतिकी तलवारके आगे रात्रिकी निस्तब्धतामें कराह न उठूंगा। तेरे वज्रपातसे डरकर, कांपता, सिसकता हुआ तुझे आनंद न दूंगा। असह्य विचारोंसे रातमें अचानक परेशान होकर घूमता-फिरता, थककर, पराजित होकर गिर न पड़ूंगा। ये छोटे अशक्त पुरुषोंके कार्य हैं। हे भयंकर रहस्य! हे विरह अंधकार! तुझसे हम कांप उठते हैं। बृहद् शक्ति, मुझे मालूम नहीं कैसे और कहां, पर मैं तेरे गहन अवसादमें प्रवेश अवश्य करूंगा और तब तुझे मेरे सामर्थ्यसे पता लगेगा कि मनुष्य कौन-सी धातुका बना है और तू खुद क्या चीज है? उठकर रुरु जंगलोंमें घूमने लगा। महीनों दुःखसे ही, दुःखमें ही जीवित रहा। हर क्षण प्रियंवदाके विचारोंसे घिरा उसका अमर मन दुःखकी अतल गहराईमें डूब-सा गया। जैसे दावानल लगते ही जंगलमें वृक्षोंकी शाखायें जलती मशाल बन जाती हैं और आकाशकी ओर लपटें फेंककर दुःखभरी महिमासे चीत्कार करती हैं वैसे ही रुरुका हृदय दुःखकी महिमासे गौरववान् होकर चीत्कार कर रहा था। गम्भीर दुःखसे पावन हुए अपने सुन्दर मुखको ऊपर उठाकर उसने आकाशकी ओर देखा।

(क्रमशः)

* * *

आशा या श्रद्धाको कभी नहीं खोना चाहिये। कोई रोग ऐसा नहीं जो असाध्य हो, भगवान्की शक्तिके लिये तुम कोई सीमा नहीं बांध सकते।

—श्रीमाताजी

खेती और बागवानी :

आश्रममें धानकी खेती

आज भी भारत कृषिप्रधान देश है। यहां ७५ प्रतिशतसे अधिक लोग खेती-बाड़ीके काममें लगे रहते हैं और देशकी संपदामें इसका आधा साझा है। यह जानते हुए भी कृषिकी काफी उपेक्षा हुई है और परिणामस्वरूप हमारी अनाज, तिलहन, कपास आदिकी पैदावार आबादीके साथ कदम न बढ़ा सकी और कई वर्षोंसे अन्न-संकट हमारा दरवाजा खटखटाता रहता है और उसे टालनेके लिये विदेशी मुद्रा खर्च कर-करके बाहरसे अनाज मंगाना पड़ता है। देशके हितैषियोंके लिये यह बड़े ही हर्षका विषय है कि हमारी सरकारें चौथी पंचवर्षीय योजनामें कृषिको पूरा-पूरा महत्त्व दे रही हैं परंतु यह काम केवल सरकारके बसका नहीं है। अंतिम परिणाम देशके कोने-कोनेमें फैले हुए करोड़ों किसानोंके उत्साह, धैर्य और अध्यवसायपर निर्भर है।

भारतमें पैदा होनेवाले अनाजोंमें चावलका अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। लगभग ८ करोड़ पचास लाख एकड़ जमीनमें धानकी काश्त होती है और वर्षमें लगभग तीन करोड़ पचास लाख टन चावल पैदा होता है। दुर्भाग्यवश भारतमें मिस्र, जापान, चीन, अमरीकाकी अपेक्षा धानकी प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम है — उनकी पैदावारकी ३० या ४० प्रतिशत! इसका कारण यह नहीं है कि हमारा जलवायु या हमारी धरती धानके लिये ठीक नहीं है। हमारी कम पैदावारका मुख्य कारण यह है कि हमने आजकी आवश्यकताओंके अनुसार अपनी कृषि-पद्धतिमें सुधार और परिवर्तन नहीं किये हैं। जहां-जहां इस प्रकारके प्रयास किये गये हैं वहां अच्छे परिणाम दिखायी दिये हैं। सरकारकी कृषि-संबंधी योजनाओं और आर्थिक नीतिसे पूरा लाभ उठाकर यदि हमारे किसान या कम-से-कम उनका अधिक भाग अपनी पैदावार बढ़ा सके तो हमारी समस्या हल हो सकती है।

भारतके तथा अन्य देशोंके कृषिविशेषज्ञोंने जो उन्नतिके उपाय बताये हैं उनके अनुसार परीक्षण करते हुए श्रीअरविंदाश्रमके कृषि-विभागने धानकी पैदावार बढ़ोनेमें काफी सफलता प्राप्त की है। इस लेखमें हम आश्रम कृषिपद्धतिकी ओर देशका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं ताकि हमारे किसान उससे लाभ उठा सकें। हमारी दृष्टिमें निम्नलिखित वस्तुओंका विशेष महत्त्व है।

(क) बीजका चुनाव (ख) प्राकृतिक खादका उपयोग (ग) बोनेकी लहर-पद्धति (घ) नियमित अंतःकृषि (ङ) समयपर पौधोंकी रक्षा।

प्रादेशिक सरकारोंके पास भिन्न-भिन्न प्रकारकी जमीन और ऋतुके उपयुक्त बीज मिल सकते हैं। ये बीज सामान्य धानकी अपेक्षा कम-से-कम भी २० प्रतिशत अधिक धान देते हैं। इनमेंसे कुछके पकनेमें कम समय लगता है। उन्हें बीमारी नहीं होती, दाने झड़ नहीं पड़ते और कइयोंमें चावल भी ज्यादा अच्छा होता है। इस प्रकारके बीज लेकर अपनी जमीनके छोटे-छोटे टुकड़ोंपर परीक्षण करके देख लिया जाय कि अमुक ऋतुमें सबसे अच्छा बीज कौन-सा है। इस तरह परीक्षण करके अपने खेतोंके लिये उचित बीज चुन लिया जाय। इस प्रकारके कई परीक्षण करके हमारी जमीनके लिये सितंबर जनवरीकी फसलके लिये बी. सी. पी. १ (आंध्र) और फरवरी मईकी ऋतुके लिये सी. ओ. २९ (मद्रास) सबसे अधिक सफल रहे हैं। आजकल टाइचुंग नेटिव १ और ए. डी.टी २७ पर परीक्षण किये जा रहे हैं।

बीजको बोनेसे पहले यदि उसे जरा देरके लिये नमकके पानीमें भिगो लिया जाय तो खोखले दाने अलग हो जाते हैं और अगर केरेसान या एग्रेसानके घोलमें धो लिया जाय तो बीजद्वारा आनेवाली बीमारियोंसे बचा जा सकता है। १० सेंट जमीनमें २० किलोग्राम बीज अच्छी तरह लगा दिये जायें तो एक एकड़ जमीनके लिये पौधे तैयार हो सकते हैं।

प्राकृतिक खाद : धानकी उपज, जमीनकी उर्वरतापर निर्भर है। साधारण खेती एक एकड़ जमीनमेंसे लगभग २४ किलोग्राम नाइट्रोजन, १२ किलो फोस्फोरिक एसिड और २० किलो पोटाश निकाल लेती है। अधिक उपज देनेवाले पौधे इसके दुगनेसे भी अधिक लवण ले लेते हैं। इन आंकड़ोंसे हम यह अंदाज लगा सकते हैं कि खेतमें खाद देना कितना जरूरी है। धानके खेतोंमें प्राकृतिक और रासायनिक खादोंका देना अत्यधिक आवश्यक है। वरना खेतोंकी उपज बराबर कम होती जायगी। केवल रासायनिक खादोंसे काम नहीं चल सकता। अभी हमारे देशमें प्रचुर तो क्या पर्याप्त मात्रामें रासायनिक उर्वरक कहां मिलते हैं। इसलिये उनके पीछे न भागकर प्राकृतिक खादोंपर अधिक जोर देना चाहिये। गोबर अथवा खेतके सड़े हुए पौधे-पत्ते आदिसे बनी खाद ५ से १० टन प्रति एकड़ देनी चाहिये। लेकिन हमारी वर्तमान अवस्थामें इसका मिलना भी आसान नहीं है इसलिये हर किसानको अधिक-से-अधिक जमीनमें हरी खाद देनेवाले पौधोंको बोना चाहिये। जहां कहीं जरा भी खाली जगह हो, या बाढ़के रूपमें हरे पत्तोंवाली झाड़ियां बो देनी चाहियें। जमीनकी उपयोगिताको देखते हुए सन, जंगली नील आदि जल्दी उगनेवाले और बहुत पत्तोंवाले पौधोंको बो दिया जाय और बढ़नेपर उन्हें जमीनके अंदर ही जोत दिया जाये। Daincha (Sestonia aculeate) जमीनके क्षारीय तत्त्वको भी कम कर देता है। बंगालमें water hycinth --नीलारुण नामक पौधा सब जगह बड़ी भयंकर चीज माना जाता है क्योंकि वह तालाबोंमें बेतहाशा फैलता है। लेकिन इससे भी बड़ी अच्छी खाद बन सकती हैं। एक एकड़ जमीनके लिये ढाईसे पांच हजार किलोतक हरी खाद डाली जानी चाहिये।

बोनेकी लहर-विधि : (आश्रम-विधि): तीन महीनेवाले धानके तीन सप्ताहके पौधे और अधिक लंबे समयवाले धानके चारसे छः सप्ताहके पौधोंको रोपना चाहिये। पौधोंको बिलकुल सीधी लकीरोंमें रोपना चाहिये और बीच-बीचमें अंतर कृषिके लिये काफी जगह छोड़नी चाहिये। पौधोंको हवाकी दिशामें लगाना चाहिये। धानकी ऋतुमें पांडिचेरीमें उत्तर और दक्षिणकी हवा चला करती है इसलिये यहां पौधे उत्तरसे दक्षिणकी ओर रोपे जाते हैं। पौधोंको एक-डेढ़ इंच गहराईमें ही रोपना चाहिये ताकि जल्दी ही नये अंकुर फूट सकें। जब खेत पौधे रोपने लायक गीला हो तो रस्सी लेकर सीधी, स्पष्ट दीखनेवाली लकीरें बना लेनी चाहियें। लकीरें एक-दूसरेसे १८ इंच दूर होनी चाहियें और पौधे एक-दूसरेसे ५ से ६ इंचकी दूरीपर सर्पाकार लगाने चाहियें। इस विधिसे रोपनेकी क्रिया बहुत सरल हो जाती है। ६ स्त्रियां एक एकड़के लिये काफी होती हैं। रोपनेके बाद खेतमें पानी दिया जाता है और तीन दिनतक तीसरे पत्तेके निचले भागतक पानी रखा जाता है। चौथे दिन पानीको धीरे-धीरे छोड़ देते हैं और इतना पानी रखते हैं कि जमीन पानीसे ढकी रहे।

अंतरकृषि : धानकी खेतीके लिये अन्तरकृषि बहुत जरूरी है। कह सकते हैं कि यह धानकी खेतीकी जान है। इससे पौधेके चारों ओरकी मिट्टीको इधर-उधर करके ढीला किया जाता है ताकि भूमिमें अच्छी तरह हवा जा सके और उसका तापमान भी ठीक रह सके। इससे जड़ें ज्यादा मजबूत होती हैं और थोड़े ही समयमें अधिक जड़ें निकल आती हैं। रोपनेके पांचवें दिन 'टिलरिंग हो' चलाया जाता है। और एक-एक सप्ताहके अंतरसे दो बार और किया जाता है। उसके बाद दस-दस दिनके अंतरसे 'मर्लचिंग हो' चलाया जाता है। इससे जमीनमें मेंडें और नालियां-सी बन जाती हैं जो देखनेमें लहरों-जैसी लगती हैं। बालियां आनेसे लगभग महीना भर पहले अंतरकृषिकी ये क्रियाएं बंद कर देनी चाहियें। ऊपर कही हुई विधिसे चला जाये तो जड़ें ज्यादा मजबूत होती हैं, उन्हें काफी हवा मिलती है, पानीके खर्चमें बचत होती है और मजदूरी भी कम लगती है। अंतिम अंतरकृषि क्रियाके बाद खेतको तीन दिनतक सूखा रहने देते हैं। जापानी विशेषज्ञोंके अनुसार यह Oxidation reduction Potential बढ़ा देता है यानी जमीनमें अधिक आक्सीजन रखता है।

पौधोंकी सुरक्षा : धानके पौधेमें हमेशा ही किसी-न-किसी बीमारी या विनाशक कीटके आक्रमणका भय रहता है। रोपनेसे एक सप्ताह पहले पौधोंपर डी. डी. टी. घोल छिड़कना चाहिये। रोपनेके बाद फूल आनेतक नियमित रूपसे कृमिविनाशक तथा फुई विनाशक औषधियां छिड़कते रहना चाहिये। और फूल आनेके बाद भी यदि कोई रोग आये तो उसका तुरंत इलाज करना चाहिये नहीं तो सारी की-करायी मेहनत बेकार हो जायगी।

ऊपर बतायी हुई तरकीबसे श्रीअरविंदाश्रमका कृषि-विभाग हर ऋतुमें प्रति एकड़ लगभग पौने दो से दो हजार किलोग्राम धान प्राप्त कर लेता है। आश्रमके अधिकतर खेतोंमें धानकी दो फसलें होती हैं। देशमें सामान्य रूपसे प्रचलित पद्धतिसे आश्रम पद्धतिमें निम्नलिखित लाभ हैं :—

(क) धानकी जड़ें ज्यादा पुष्ट होती हैं और धरतीसे अधिक पोषण प्राप्त कर सकती हैं।

(ख) पौधोंको हवा, रोशनी और गरमीकी कमी नहीं रहती और पौधा ज्यादा मजबूत होता है इसलिये बीमारियोंका शिकार नहीं होता।

(ग) लहर-पद्धतिके कारण जड़ें इधर-उधर फैलनेकी जगह ज्यादा गहरी जाती हैं जिससे उन्हें अधिक पोषण मिलता है और परिणामस्वरूप दाने अधिक और भारी होते हैं।

(घ) सिंचाईके पानीकी बचत होती है, उतने ही पानीसे अधिक जमीन सींची जा सकती है।

(ङ) निराईकी जरूरत नहीं होती, रोपने और अंतरकृषिमें श्रमकी बचत होती है।

आश्रम कृषि-विभाग अपने परीक्षणोंके आधारपर बराबर अधिक उपज पा रहा है। हम आशा करते हैं कि हमारे देशवासी हमारे अनुभवसे लाभ उठानेकी कोशिश करेंगे। इस विषयमें सहायता देनेके लिये हम हमेशा तैयार हैं। इस विषयके प्रश्न आश्रम कृषि-विभाग, श्रीअरविंदाश्रम, पांडिचेरी-२ के नाम भेजे जा सकते हैं।

—द. प.

मेरी बीमारी

—श्री रवींद्र

कहनेको तो लोग बहुत-सी बातें कहा करते हैं, परंतु जब अपने सिरपर मुसीबत आती है तो सबके सब लंबी-चौड़ी बातें भूल जाया करते हैं। अब मेरी ही बात ले लो न! कितनी बार मैंने औरोंको समझाया है कि स्वर्ग और नरक कहीं और नहीं है, हम अपने-आप ही अपने लिये स्वर्गको नरक और नरकको स्वर्ग बना लेते हैं। परंतु जब मैट्रिककी अंतिम परीक्षा सिरपर आयी तो अध्यापकोंकी पढ़ाई हुई यह सब बातें दिमागसे ऐसे गायब हो गयीं जैसे गुडूची खानेसे ज्वर। बड़ोंसे सुना था कि अंतिम परीक्षा बहुत ही कड़ी होती है। उसपर जीवनका सारा भविष्य निर्भर है। अगर उसमें अच्छे अंक आ गये तो कालिजमें स्वागत होता है, नौकरी भी अच्छी मिल जाती है और ससुराल भी दीया लेकर ढूंढ़ने आती है और उसमें फिसड्डी रह गये तो नियुक्ति करनेवाले भी थर्ड क्लास कहकर मुंह मोड़ लेते हैं और दूसरी ओर भी किसी अच्छे घरकी आशा नहीं रह जाती।

खैर, ऐसे अवसरपर अच्छे विद्यार्थियोंके उदाहरण सामने आते रहते हैं। सुना है, इसी विद्यालयमें सुमन जी पढ़ा करते थे जो आज भारत सरकारमें सचिवके पदपर हैं। कहते हैं, पढ़ते समय न उन्हें खानेका होश होता था न पहननेका। मांने जबर्दस्ती करके कुछ खिला दिया तो दो कौर खा लिये और नहीं तो वह भले और उनकी किताबें भली। एक बार तो नौबत यहांतक पहुंच गयी कि घर-

वालोंके बातचीत करनेसे चिढ़कर उन्होंने सामने बगीचेमें नीमके पेड़पर बैठकर पढ़ना शुरू कर दिया। सवेरे साढ़े पांचके आसपास पेड़पर चढ़ जाते और शामको सातसे पहले न उतरते। बीचमें कोई खाना देने जाता तो उसे ऊपरसे ही ढेले मारकर भगा देते थे। रातको उनके कमरेमें हमेशा रोशनी जलती ही दिखायी देती थी। किसीको हिम्मत थी भला जो उनको टोक देता। इस तरहसे पढ़-पढ़कर सुमन जी बी. ए. एम. ए. ही नहीं आई. सी. एस. में भी पहले आये और आज उनकी स्थिति देखकर सबको ईर्ष्या होती है। बस, मैंने भी निश्चय कर लिया है कि कलसे सुमनजीकी तरह परिश्रम करूंगा और उसके बाद भी पहला न आया तो अपना नाम बदल डालूंगा।

अब सवाल यह पैदा हुआ कि मैं नीमका पेड़ कहांसे पाऊं। सुमनजी तो छोटेसे गांवके रहनेवाले थे। मकानके आसपास ही बहुतसे खेत और बगीचे थे, पर मैं तो बीच शहरमें रहता हूं। यहां तो नीमका पेड़ क्या पत्ता भी नहीं दिखायी देता। हरियालीके नामपर छतपर दो-चार गमलोंमें पोदीना लगा है। काश, मैं परियोंकी तरह हल्का-फुल्का होता और इसीपर बैठकर काम कर सकता। परीक्षा सिरपर आ रही थी और यहां नीमका पेड़ तलाश करनेमें ही एक सप्ताह बीत गया। नीमका पेड़ तो न मिला, हां, इतना लाभ अवश्य हुआ कि सब परिचित-अपरिचित मुझे कनखियोंसे देखकर मूंछोंमें मुस्कराने लगे। मैंने यह सब देखा तो जरूर, पर उसकी परवाह न की।

अब मेरे सामने समस्या थी कि मैं कहां बैठकर पढ़ूं। मैंने सोचा, पेड़ोंमें जीवनी-शक्ति होती है इसीलिये सुमनजी पेड़ोंपर बैठकर पढ़ा करते होंगे। मैं बाजार जाकर दो-चार क्रोटनके पौधे ले आया। उनके ऊपर न सही, उनसे घिरकर पढ़ंगा। पौधोंके गमले छतपर रखवा दिये और डांट-डपटकर छोटी बहन मुन्नीको राजी कर लिया कि वह रोज चुपकेसे सवेरे पांच बजे उठा दिया करे। उसने उठा दिया और हम भी शहीदोंकी तरह कफन बांधकर आई. ए. एस. में पहले आनेके स्वप्न लेते हुए ऊपर चढ़े। घरमें अभी सब सो रहे थे। माघकी सर्दियां थीं और ढाढू बह रहा था। मैं किताबें लिहाफमें लपेटे जीनेपर चढ़ रहा था। सारा शरीर कांप-कांप उठता था, दांत बजने लगे थे, पर मैं अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग —— ऊपर चढ़ता ही गया। लेकिन यह क्या, अभीतक सूर्य नारायण क्यों नहीं आये? क्या उन्हें भी ठंड लग रही है या सर्दियोंके कारण रेवड़ियां और गजक खाते देर हो गयी है। रोज तो वे मेरे उठनेसे काफी पहले आ जाया करते हैं, आज मुझे विशेष पढ़ाई करनी है तो आज ही उन्होंने देर कर दी। खैर, मैं ऊपर पहुंच गया और क्रोटनके गमलोंके बीचमें जा बैठा। बैठनेको तो लिहाफमें किसी तरहसे लिपटकर बैठ गया, पर बोरसीकी याद बहुत सता रही थी। मैं सूर्य नारायणकी प्रतीक्षा करने लगा।

अचानक किसीने लिहाफ खींचा। मैं चौंक पड़ा। देखा, मैं ७ का अंक बना हुआ लिहाफमें लिपटा हुआ हूं। किताबें पास ही पड़ी हुई, स्याहीमें नहा रही हैं और सूर्य भगवान् झुक-झुककर मुझे देख रहे हैं। मैं कुछ समझ न पा रहा था कि आखिर मामला क्या है, मैं कौन हूं और यहां क्या कर रहा हूं और यह सब क्या है? इतनेमें पिताजीकी आवाज आयी, "ओहो! बरखुर्दार यहां बैठकर पढ़ रहे हैं। ऐसे तो तुम हो चुके मैट्रिक। उधर सारा घर परेशान है कि आखिर तुम कहां चले गये। तुम्हारी मां मुझे कोस रही है कि मैंने कल जो जरा सख्त सुस्त कह दिया था उससे कहीं बेटा रूठ न गया हो। घरके लोग, अड़ोसी-पड़ोसी, सब तुम्हें तलाश करनेमें लगे हैं और तुम यहां मैट्रिक पास कर रहे हो।" बात कोई भी कड़ी न थी, पर कहनेका ढंग कुछ ऐसा था कि एकदम मुझे पसीना आ गया और मैं नीचेको भागा।

इसके परिणामस्वरूप और कुछ हुआ हो न हुआ हो, हमारी जान-पहचानवालोंमें यह जरूर फैल गया कि मैं बहुत जोरसे पढ़ाई कर रहा हूं और आई. ए. एस. की आशामें अभीसे खून-पसीना एक कर रहा हूं। बात यह है कि मेरे गुम हो जानेकी बात देखते-देखते सब जान-पहचानवालोंमें फैल

गयी थी और उसकी बदनामीसे बचानेके लिये मांने यह किस्सा शुरू कर दिया था। फिर क्या था। मेरे शुभचिंतकोंकी सेना तैयार हो गयी। कोई शावाशी देता तो कोई कहता बेटा, इतनी मेहनत न करो, जरा शरीरका भी ख्याल रखो। शरीर ठीक न हुआ तो पढ़ाई किस कामकी। इसी तरह मुझे उपदेशकी खुराकें पिलायी जाने लगीं। पिताजी बहुत बड़े आदमी हैं, उनसे बहुतोंको काम पड़ता है, लेकिन वह किसीसे एक छदामतक नहीं लेते, इसलिये उनसे काम निकालनेकी चितामें लोग आ-आकर मुझे सलाहकी घूंस देने लगे और मांके सामने भी मेरी चितामें दुबले होने लगे। कोई मूसली दे गया, कोई शतावरी ले आया, किसीने सच्ची ताजी असगंध मंगा दी। और हर एक यही कहता था कि मैं परिश्रमके मारे कमजोर हुआ जा रहा हूं। पहले तो मैं उनकी बातोंपर हंस देता था। फिर धीरे-धीरे मुझे शंका होने लगी कि कहीं उनकी बात ठीक ही न हो। एक दिन मांने बड़े प्यारसे कहा, "देख बेटा, जरा संभलकर चल, इतने ही दिनोंमें तेरी कमर निहुर आयी है और आंखोंके नीचे काले चक्करसे दीखने लगे हैं। चेहरेका रंग भी फीका पड़ गया है। न हो तो किसी डाक्टर, वैद्यको दिखा ले। भाड़में जाय तेरी परीक्षा, अपने घरमें खानेकी कौन कमी है जो तू इतनी तन-तोड़ मेहनत कर रहा है।" मेरे लिये शुरूसे ही मांकी बात आकाशवाणीके जैसी होती है। उनके कहनेसे मुझे भी विश्वास हो गया कि मैं परीक्षाके लिये जो मेहनतके नामपर थोड़ा-बहुत कर रहा हूं वह भी मेरे लिये बहुत है। आखिर बढ़िया छुरी कसाईके बुगदेका काम तो नहीं कर सकती।

उसी दिन मैं पड़ोसमें नये आये हुए डा. कैलास सिंहके यहां जांच करवाने गया। यह डाक्टर अभी नये-नये आये हैं। कुछ दिन सेनामें काम कर चुके हैं और अब अपनी दुकान खोली है। पैसा जल्दी-जल्दी इकट्ठा करना ही इनका उद्देश्य है। मुझे देखते ही इनकी बाछें खिल गयीं। मेरे साथ दो-चार मिनट बातें करके ही उन्होंने मेरे रोगका निदान कर लिया और जान लिया कि मुझे एक भयंकर बीमारी है जिसके लिये मुझे बहुत दिनोंतक दवाई खानी पड़ेगी। डाक्टर बड़े ही हितैषी थे, मेरी मांसे मिलकर सब कुछ ठीक करनेके लिये मेरे घर आ गये। उन्होंने बताया कि मैं ठीक समयपर उनके पास गया था, जरा और देर हो जाती तो वह कुछ न कर पाते। इस बीमारीके लिये सारे हिंदुस्तानमें कोई ढंगकी दवाई नहीं मिलती। सरकारने विदेशी मुद्रापर इतने प्रतिबंध लगा दिये हैं कि बाहरसे भी मंगाना संभव नहीं है। वह तो मेरा भाग्य अच्छा है कि यूरोपसे लौटते हुए डाक्टर साहब गलतीसे अपने थैलेमें कुछ गोलियां डाल लाये थे। उन्हें अगर पैसा ही कमाना हो तो इन गोलियोंको बेचकर हजारों कमा सकते हैं, परंतु पड़ोसीके नाते मेरी मांसे एक-एक गोलीके दस-दस रुपये ही ले लेंगे, देखें कितनी गोलियां निकलें उनके थैलेमेंसे। मेरी मां सचमुच डर गयी और मैं भी घबरा उठा। लेकिन डाक्टर साहबका अभय हस्त हमें आश्वासन दे रहा था, "आप चिंता न करें, मैं लड़केको तीन महीनेमें बिलकुल ठीक कर दूंगा। हां, मेरी एक शर्त्त है, फीसका मेरे सामने नामतक न लें। जैसा आपका बच्चा वैसा मेरा बच्चा। सिर्फ दवाईका दाम देना पड़ेगा। वह लेते हुए भी मुझे शर्म आती है, पर क्या करूं, अभी पैर नहीं जमे हैं इसलिये......।"

दूसरे दिनसे मेरी पढ़ाई बंद हो गयी। सवेरे-शाम थोड़ी सैरके सिवाय और सब हलचल बंद। मैं भला और मेरी खाट भली। कभी दूध, कभी कोई फल, कभी पौष्टिक दवाइयां और कभी वह विशेष गोली, बस मेरे दिनभरका कार्यक्रम यही रह गया। जो आता यही कहता, अरे, रे देखो, तो कैसा सूखा-सा मुंह निकल आया है। कोई कहता, चेहरेका रंग उड़ गया है, कोई पिचके हुए गाल देखता और कोई घोषणा कर देता कि मुझे उठने-बैठनेमें भी तकलीफ हो रही है। शुरूमें मैं इन सब बातोंपर मन-ही-मन हंसा करता था, मुझे यह सारी व्यर्थकी खटर-पटर लगती थी और मैं इसका विरोध करता था परंतु धीरे-धीरे मुझे भी विश्वास होता गया। आइनेमें चेहरा देखनेपर मुझे भी यही शंका होने लगी कि कहीं मैं अपने दिन तो नहीं गिन रहा। मैं सचमुच दो कदम चलकर थक

जाता था। डाक्टरकी जेब भरती जा रही थी, हितैषियोंकी सहानुभूति गाढ़ी हो रही थी और मैं धीरे-धीरे मौतके मुंहमें जा रहा था मानों जीते-जी नरक में......।

मेरे बड़े भाई कहीं बाहर गये हुए थे। लौटकर आये तो देखा कि घरपर मुर्दनी छायी है। वह कुछ समझ न पाये और मेरे बारेमें लोगोंकी बातें सुनकर सहम गये। लेकिन हैं वह जरा फक्कड़ स्वभावके। जब कुछ ठीक कर लेते हैं तो चाहे दुनिया इधरकी उधर हो जाय वह अपनी करके ही छोड़ते हैं। औरोंकी बातें सुनकर, मांसे मेरी बीमारीका सारा किस्सा जानकर सीधे मेरे कमरेमें आये और दहाड़े, "क्या स्वांग कर रखा है तूने? हुआ क्या है तुझे जो यूं पड़ा रहता है?" इतनी कटु तीक्षण भाषा, मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा, "मैं मर रहा हूं और आप इस समय भी ऐसी बातें करते हैं,....." मैं अपनी बात पूरी न कर पाया, मेरी आंखें छलछला आयीं। मेरे भाईको मेरे साथ बहुत ही प्रेम है। वह मेरी खाटपर बैठ गये और बोले, "मैं विश्वास दिलाता हूं तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। यह तो सहानुभूति दिखानेवालोंका कारनामा है और तुम्हारे दिलकी कमजोरी है कि तुम उनके विषको गटकते गये। तुम बिलकुल स्वस्थ हो, जरा मनको मजबूत करो और चलो मेरे साथ।"

"लेकिन मैं तो चार कदम चलकर ही थक जाता हूं, चलूं कैसे?" मैंने उत्तर दिया।

"मैं कहता हूं, इन विचारोंको जड़से उखाड़ फेंको। भगवान्‌के भरोसे खाट छोड़कर चलो। अगर मरना ही है तो खाटपर पड़े-पड़े क्यों मरते हो, कुछ करते-करते मरो," यह कहते हुए मेरे भाई बाहर चले गये। मुझे उनकी बातोंसे बहुत चोट पहुंची। मैंने मनमें सोचा, चलो यही सही, जब ठीक होनेके कोई लक्षण नहीं दीखते तो मर-ही क्यों न जाऊं। बस, मैंने हितैषियोंकी बातोंसे ठीक उलटा करनेकी ठानी। मैंने डटकर मनचाहा नाश्ता किया और धूपमें घूमनेके लिये निकल पड़ा। लेकिन यह क्या? कहां चार कदम चलनेमें थक जाता था और कहां आज एक-एक कदम नयी स्फूर्ति ला रहा था। अभी मैं थोड़ी दूर ही गया था कि मैंने देखा कि मेरे भाईका कुत्ता जंजीरके साथ भागा जा रहा है। यह कुत्ता घरभरको बहुत प्रिय है, कहीं इधर-उधर चला गया तो किसीकी मोटरके नीचे न आ जाय। मैं उसे पकड़नेके लिये दौड़ा। कुत्तेने समझा उसके साथ खेल हो रहा है। वह और भी तेज भागा। थोड़ी देर रुक जाता था और जैसे ही मैं नजदीक आता कि फिर दौड़ पड़ता था। गनीमत यह थी कि अभी मोटरोंका तांता शुरू नहीं हुआ था। खैर, तीन-चार फरलांग दौड़-कर मैं कुत्तेको पकड़ पाया। जंजीर हाथमें लेते ही मुझे होश आया। तीन-चार कदम चलकर थक जानेवाला मजेसे इतना दौड़ आया। आश्चर्य है! घरकी ओरको मुड़ा तो देखा मेरे भाई खड़े हंस रहे हैं। अब समझमें आया। यह सारी कारस्तानी इन्हींकी थी। मेरे कंधेपर हाथ रखकर बोले, देख, जो मिले उसे मजेसे खा ले, अच्छी तरहसे मेहनत कर और सहानुभूति दिखानेवालोंकी बात न सुना कर, इतना कर और भगवान्‌पर भरोसा रख। बीमारी तेरे नजदीक न फटकेगी। मालवीयजीकी बात याद रख:

दूध पियो, कसरत करो, जपो हरिका नाम।
यह तीनों जो करोगे, पूरन होंगे काम॥

* * *

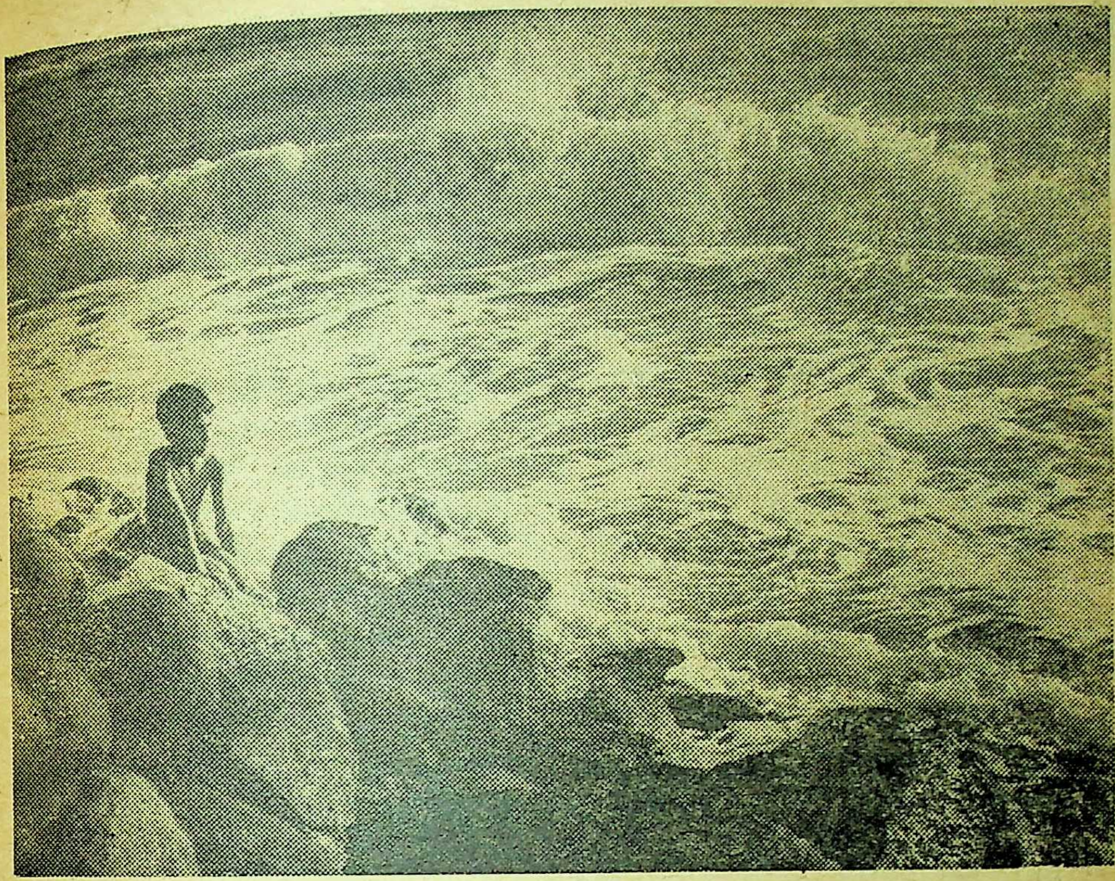

समुद्रके तटपर

समुद्रके पास रहते हुए मैं समुद्रतटपर बहुत बार जाया करती हूं। दिनके हर प्रहरमें तट सुन्दर लगता है, और हर बार वहां कुछ-न-कुछ नया देखनेको मिल जाता है। एक दिन कोई धूमकेतु देखनेके लिये हम भोरके चार बजे वहां जा पहुंचे। रास्ते बिलकुल सुनसान पड़े थे। समुद्र और आसमान इतने भिद गये थे कि अगर ऊपर तारे न चमकते, तो सामने सिर्फ अंधकार-ही-अंधकार दिखायी देता। कई बार जब मौजें बहुत पास आ जातीं, तो हम उस अंधेरेमें भी ऊपरकी सफेद झाग देख सकते थे। नहीं तो समुद्रका गरजना सुनकर ही संतुष्ट होना पड़ता था। बीच-बीचमें लहरें दीवारसे टक्कर खाती थीं और समुद्रके इस चीत्कारको सुनकर मेरा दिल धड़क उठता था। तभी मेरे अंदर, कोई मुझसे कहता, "इसमें डरनेकी कौन-सी बात है? इन लहरोंकी उठती-गिरती ध्वनि तो प्रकृतिका बहुत ही मधुर संगीत है। इससे तुम्हारे दिलमें भय नहीं, आनंद पैदा होना चाहिये।" लेकिन आजतक मैं उस डरके पंजेसे छूट नहीं पायी। गहरा सन्नाटा जब लहरोंके उस रणनादसे टूट जाता है तब मैं व्याकुल और त्रस्त हो उठती हूं। बार-बार दूरकी यह आवाज मेरे मनमें एक आशंका पैदा करती है। शायद डर इसलिये लगता है कि कंहीं मैं समुद्रके उस गहरे तिमिरग्रस्त गड्ढेमें गिर न जाऊं, लेकिन तब मैं सोचती हूं, "जब हम अपने अंदरके अथाह अचेतन गड्ढेमें गिर पड़ते हैं तो खतरा कुछ कम होता है क्या?"

कई दिन हुए मैं एक रविवारको सुबह छः बजे समुद्र-तटपर भ्रमण करनेको निकली। शीतल हवा बह रही थी। वही गरजता हुआ समुद्र एक तालाबकी तरह शांत था। ऐसा मालूम होता था मानो रेशमका एक टुकड़ा है जो अचानक किसी देवीके कपड़ोंमेंसे छूटकर धरतीपर आ पड़ा हो।

सूर्योदयकी तैयारी हो रही थी। वे छोटे-छोटे सफेद बादल शरमाकर इधर-उधर भागे जा रहे थे और वे नन्हीं-नन्हीं लहरें उन्हें देखकर हंस रही थीं। वातावरणमें खुशी समायी हुई थी और चारों ओर सुख-ही-सुख था, मैं तो उसके एक कणको भी अपने अंदर समा न सकी। जब मैंने अपनी आंख दूसरी ओर की तो देखा कि कौए, चिड़ियां, आदमी, जानवर, पेड़, पत्ते, फूल सभी उस नीरव शांतिका स्वागत कर रहे थे और अपने संजीवनकी ओर उत्साहसे देख रहे थे।

कल जब मैं समुद्र-तटपर गयी थी तो मेरे लिये दूसरा ही दृश्य उपस्थित था। पानी इतना चमक रहा था कि आंखें चौंधिया जाती थीं और सफेद बालूपर पांव देते ही सारा शरीर जल उठता था। निष्ठुर सूर्य धरतीको तपा रहा था।

संध्याके समय जब मैं उसी जगह आयी तो तटपर आदमी-ही-आदमी दीखते थे। हर तरहके फैशन किये लोग इधर-उधर भटक रहे थे। जिसे चलना न सुहाता था, वह मोटरमें बैठकर समुद्रकी शोभाको सराह रहा था। रास्तेपर "गरमा-गरम सुन्डल" या "मल्लाटे" की तीखी आवाजोंके साथ चनें, पकौड़े और मूंगफली बेचनेवाले अपना रंग जमा रहे थे। कोई ट्रांजिस्टर लिये गर्वके साथ पाससे होकर निकल जाता था, और कई लोग साइकिलोंपर सीटी बजाते हुए निकल पड़े थे। हर तरहके रंग और सब तरहके लोग मानो आंखोंके सामने कवायद कर रहे थे। भीड़के कारण, मानो सांस लेनेकी भी मनाही थी। सिगरटोंका धुंआ अलग घुटन पैदा कर रहा था। घर लौटनेके सिवा और कोई चारा न था। समुद्रकी शोखीको जैसे देखा जा सकता है, उसी तरह लोगोंकी बदतमीजीको देखना संभव नहीं है। तट रंगबिरंगा और सुन्दर तो था न, लेकिन जब उसपर शांति छायी हो, तभी हम एक नयी स्फूर्ति पाते हैं। परंतु कई बार मनुष्य प्रकृतिके मृदु अथवा विकराल सौंदर्यका रस लेनेकी जगह अपने भद्देपन, अपने अशिव और असुन्दरसे उसे ढंकनेकी कोशिश करता है।

—मीना

* * *

कौन अन्त लै रेत दी किनकियां दा ?
महल विच आकाश दे चिने केहड़ा ?
केहड़ा करे शुमार सतारयां दा ?
तुपके गिन बरसात दे कौन दस्से ?
केहड़ा तेरे उपकार दा अंत पावे ?
अते अमृत दे दोषां नूं गिने केहड़ा ?

रेतके कणोंका कौन अंत पा सकता है ? कौन आकाशके बीच महल खड़ा कर सकता है ? कौन सितारोंकी गिनती कर सकता है और हे भगवान् ! तेरे उपकारोंका कौन अंत पा सकता है ? अमृतके दोषको भी कौन गिन सकता है ?

—अमृता प्रीतम

किशिनचंद बेबसि

सदियोंकी गुलामीने हिंदुस्तानको कुचलकर रख दिया। जन-जीवनमें छल-कपट, बेईमानी आदिकी प्रमुखता हो गयी और इन सब चीजोंका दुष्परिणाम हम आज देख रहे हैं। परंतु भारतमाता इतनी अधिक सजीव और सशक्त है कि सब प्रकारसे विकलांग होकर भी अपने उज्ज्वल भविष्यकी ओर बढ़नेके लिये ललकारती रहती है। वह हमें सामयिक अंधकारको भेदकर भविष्यके सूर्यके दर्शन करनेके लिये और उसकी ओर बढ़नेके लिये प्रेरित करती है।

उन्नीसवीं शताब्दीके अंतिम चरणमें जहां दासताकी कड़ियां हमें पूरी तरह जकड़े हुए थीं वहीं हमारे चारों ओरके पंकमेंसे भांति-भांतिके पंकज जन्म ले रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त, सुब्रह्मण्यम् भारती और किशिनचंद बेबसि ऐसे ही पंकजोंमें थे। सिंधी भाषापर सूफियोंका बहुत प्रभाव रहा है। नानक और कबीर आदिका असर भी कुछ कम न था परंतु ये सब पुराने जमानेकी बातें हैं। सिंधीका आधुनिक काल किशिनचंद बेबसिसे शुरू होता है। इनका जन्म १८८५ में लाड़काणा नामक नगरमें हुआ था। इन्होंने सिंधी भाषामें प्रशिक्षण पाकर अध्यापन कार्य आरंभ कर दिया और अंततक अध्यापक ही रहे। अपने विद्यार्थियोंमें बेबसि बहुत ही लोकप्रिय थे। यह हरएकको सांई कहकर संबोधित करते थे फिर चाहे वह इनसे कितना ही छोटा क्यों न हो। सोलह वर्षकी आयुमें ही इन्होंने कविता लिखना शुरू कर दिया था। शुरूमें इनपर शाह अब्दुल लतीफ, सामी, सचल आदि सूफी कवियोंका बहुत प्रभाव था, बादमें गांधीजी और रवींद्रनाथ ठाकुरका भी प्रभाव पड़ा परंतु यह सब होते हुए भी बेबसिका एक अपना व्यक्तित्व है। इनकी बहुत इच्छा थी कि मरनेसे पहले स्वतंत्र भारतमें सांस ले सकें। हुआ भी यही। भारतके स्वाधीन होनेके कुछ ही समय बाद दिसंबर १९४७ में इन्होंने इस संसारसे छुट्टी ले ली।

बेबसि मानते हैं कि भगवान्ने अपने ही अंशसे इस जगत्को पैदा किया। वे कहते हैं, "ऐ मनुष्य! यदि उसे अपना भेद न बताना होता तो वह तुम्हें अपनी आत्मासे क्यों पैदा करता? लेकिन यह भेद प्रेमके बिना नहीं प्राप्त होता। तुम्हें जब प्रेमपूर्ण हृदयसे भरा, तो तुम्हें अपनेसे अलग किया था फिरसे अपने साथ मिलानेके लिये। प्रेमके सिवा हृदयपर किसीका शासन नहीं हो सकता।

बेबसि दुनियाको छोड़नेकी सलाह नहीं देते। उनका कहना है "तुम्हारा असल जीवन बिना किनारोंका सागर है और तुम उसके बुलबुले हो। तुमने जिसे नाशवान् मान रखा है वह सचमुच सत्य स्वरूप और अमर है। वे मौतसे नहीं डरते। उनका कहना है यदि मृत्युका अंतिम रूप नश्वरता और नास्तिमें होता तो संसारमें मृत्यु इतनी साधारण न होती। जीवन-संध्याके लिये रातमें ही मृत्यु-रूपी विश्राम है और सवेरा ही अमरताका संदेश है। प्रसादपूर्ण है मृत्युरूपी सुन्दर देवदूत जो कुरूपता और बुढ़ापेपर कठोर धनुष ताने हुए, है जो वर्षोंके भारसे झुकी हुई प्राचीनता और दुर्बलताको भुला देता है और पुष्परूपी रूपपर लावण्यके चिह्न प्रकट करता है।

हमारे यहां रमणीयताका यह लक्षण बताया गया है कि वह क्षण-क्षण नयी होती रहती है। फिर भी हम लोग बहुत रूढ़िवादी हैं। बेबसि कहते हैं "प्रातःकाल होते ही दिन नित्य प्रति हमें एक महान् संदेश देता रहता है और वह कहता है कि मैं नवीनसे भी नवीन और प्राचीनसे भी प्राचीन हूं। वह ज्ञानी नहीं है जो इस रहस्यको नहीं समझता और जो मेरे साथ नहीं चलता। कलाकार होकर भी कोई यदि नवीनताके आवर्तनमें आवर्तित नहीं होता तो उसका भाग्य चरम सीमापर पहुंचकर गिर जाता है।"

वे संसारके स्रष्टासे कहते हैं, "ओ स्रष्टा ! सब तुम्हारी प्रशस्ति कर रहे हैं। . . . . . कीर, कोयल और बुलबुलने तुम्हारी प्रशंसामें चोंच खोल दी है। यह सारा विश्व ही मंदिर है और स्वामी प्रत्येकके हृदयमें विराजमान है। हरएक शरीर ही तेरा मंदिर बना हुआ है। हमारे श्वासोच्छ्वासमें अनहदका नाद बज रहा है और बज रही हैं स्नेहसिक्त भेरियां। लो वह स्रष्टा आ रहा है। दर्शनार्थ अपने नयनोंको खोलो, विराट्का रथ आ रहा है। हृदयके अंदर दरबार जुड़ेगा क्योंकि महान्का आगमन हो रहा है। पवन बड़े वेगसे चल रहा है और मार्गके घास-फूस उड़कर दूर हो गये। स्वयं वायुदेवता पथपर झाड़ू देनेके लिये आ पहुंचा। मेघोंने बूंद बनकर चारों ओर इत्र छिड़क दिया है। बसंत असंख्य फूलोंको मार्गपर छितरानेके लिये ढोकर लाया है। टहनीरूपी डंडोंको बजा-बजाकर नृत्य कर रहे हैं, पत्ते हिल-हिलकर तालियां बजा रहे हैं, प्रियतमा पद्मिनी आ रही है। वर्षाद्वारा भेरियां बजती सुनकर विहगवृन्दने शहनाई बजाना शुरू किया, विद्युत् हृदय खोलकर नाच रही है। अरुणदेवको आज्ञा हुई कि मार्गको सोनेके पत्तोंसे ढक दो। देखो किरण-श्रमिकोंकी पंक्तियां किस प्रकार उतर रही हैं। भक्तिरूपी उल्काएं प्रत्येक वस्तुमें प्रज्वलित हो उठी हैं। आनंददायिनी चंद्रिकासे चतुर्दिक दीपावली सज उठी है। आकाशमें ग्रहनक्षत्र और सितारोंने सुनहरी परिधान पहन लिया है। चन्द्रमारूपी साबुनके लगनेसे चमक-दमक निखर उठी है। धवल फेनने पृथ्वीपर दूधकी धारा बहा दी है। किसकी शान-शौकत और अभिनंदनमें यह समारोह हो रहा है? अदृश्यके पटसे यह कौन कुमारी आ रही है ?"

स्थानकी कमीके कारण अधिक न लिखकर हम उनकी एक और कविताका भाव यहां देकर इस लेखको समाप्त करते हैं। इस कविताका शीर्षक है — गंगाकी लहरें। बेबसि कहते हैं :—

किअं लिखां जाणा रुगो छा लिखां सलि तूं
कंदुसि पूरी बांसुरी, फूकीं दें गल तूं
पंधु करणु भूखां पुजे बाट वठी हलु तूं
बाझ भर्या बलु तूं; हिन बेबसि ऐं वे जोर जो।

किस प्रकार लिखूं ? जानता हूं। क्या लिखूं सिर्फ यही तू मुझे बता दे। मैं वंशी बजाऊंगा लेकिन मेरे गाल तुम फुलाओगे। मैं राह चल सकता हूं, लेकिन रास्ता दिखाओ, हे कृपानिधे ! तू ही इस बेबसका बल है। बांसुरी बजानेके लिये तुमने मेरे गाल फुलाये और मैंने बांसुरी बजा दी। मैंने अपने हृदयका सारा कलुष धो डाला। प्रियतम अब आकर मेरे हृदयमें खुशीसे होली खेलो। . . . जिसे मैंने संसार समझा था वह तो मेरे प्रियतमका रूप है। यदि आंखोंसे अंधकारका दुराग्रह दूर कर दूं, बुद्धि और प्रतीतिको संतुलित करके मनका मनका फेरूं तो हृदय दर्शनके आनंदमें समा जाय। पढ़े हुए विद्वान् चढ़ न सके। उलटे अलंघनीयमें अड़ गये, प्रवाहसे पार न हो सके और छिछलेमें भी तैर न पाये। हजारों मृत्युके भयसे प्रवाहतक ही न पहुंचे, कई पददलित हो गये और कइयोंको लहरोंने डुबा दिया। बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता। अतः भविष्यको उज्ज्वल बनानेका प्रयत्न करनेमें ही बुद्धिमानी है।

मूं पचाए खासि गोढ़ा शैर जा मोती क्या।
कथ सराफी परिख बसि, कींझरि कही कोदियूं कहे।

"मैंने विशेष आंसुओंको पकाकर काव्यके मोती बनाये हैं। इनका मूल्य आंकना तो सराफके हाथ है। चाहे वह इन्हें मूल्यवान् समझे या दो कौड़ीका।"

(राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाद्वारा प्रकाशित पुस्तक 'किशिनचंद बेबसि'के आधारपर)

हमारी दुनिया :

प्रकृतिकी घड़ी

सभी जीवित वस्तुएं समय बतानेमें समर्थ प्रतीत होती हैं — सोनेका समय, विकसित होनेका समय स्थानपरिवर्तन करनेका समय, जोड़ा खानेका समय और शीतकालीन विश्रामका समय। उनको इन सभी समयोंका ज्ञान कैसे होता है, यह दीर्घकालसे एक पहेली बना हुआ है? आजकल, अधिकाधिक वैज्ञानिक पृथ्वीपर विद्यमान जीवनके तालबद्ध चक्रकी पहेलीको सुलझानेके लिये अनुसंधानरत हैं। उन्होंने इस क्षेत्रमें अवतक जो खोजें की हैं वह ज़ीवनपर पृथ्वीसे बाहरकी शक्तियोंके प्रभाव — सूर्यके उल्लेखनीय प्रभाव — की ओर इंगित करती हैं।

पुष्प वसन्त ऋतुमें ही क्यों फूलते हैं? पक्षी यह कैसे जान लेते हैं कि अब दक्षिणकी ओर पलायन करनेका समय आ गया है? मधुमक्खी द्वारा शहदकी सफल खोजका वास्तविक रहस्य क्या है? और तेज रफ्तारसे उडनेवाले यानपर लंबी हवाई यात्रा करनेके बाद समय और स्थानके बारेमें हमपर जो मानसिक प्रतिक्रिया होती है इसका क्या कारण है?

यह एक पुरानी कहानी है, अत्यंत प्राचीन कालसे ज्ञात एक सुविदित तथ्य है कि विभिन्न प्रकारके पक्षी तथा पशु एक निर्धारित कालक्रमके अनुसार अपने विभिन्न कार्य करते हैं। विज्ञानके समक्ष और मानवके समक्ष प्रश्न उपस्थित है: "ऐसा क्यों"; इससे भी अधिक कठिन प्रश्न है: "ऐसा कैसे?"

अपने उपयोगके लिये मनुष्यने समयको मापनेका एक तरीका निकाल लिया है: दीवालपर लगी हुई घड़ी, हाथकी कलाईपर बंधी हुई घड़ी — और वार्षिक कैलेण्डरके रूपमें वह समयको सेकेण्डों, मिनिटों, घण्टों, दिनों और वर्षोंमें बांटकर अपने क्रियाकलापोंका एक क्रम निर्धारित कर लेता है। इसी सिद्धांतको आधार बनाकर वैज्ञानिकोंने पौधों और पशुओंकी समय-बोध संबंधी क्षमताको एक परिभाषा और एक अर्थ — और एक नाम — प्रदान किया है।

पौधों और पशुओंके संबंधमें सबसे अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होनेवाली बात यह है कि वे एक कालक्रमके अनुसार अपने समस्त कार्य संपन्न करते हैं। यह सत्य है कि वे सभी जीवनसंबंधी महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापोंके लिये विभिन्न कालक्रमोंका उपयोग करते हैं लेकिन उनके कार्य करनेके ढंगमें एक तालबद्धता दृष्टिगोचर होती है। सत्य तो यह है कि इन तालोंमें भी भिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार जीवनके ये तालबद्ध चक्र प्रकृतिकी चुनौतियोंके प्रति उनकी प्रतिक्रिया हैं। वैज्ञानिक लोगोंने इन तालबद्ध चक्रोंको तथाकथित "बायोलौजिकल क्लाककी सुइयों" का नाम प्रदान किया है।

ये 'जैविक घड़ियां' क्या हैं? क्या वे वास्तविक हैं? वे किस प्रकार कार्य करती हैं? वैज्ञानिकोंने इन रहस्योंके अंदर अभी पैठना ही प्रारंभ किया है। पक्षियोंके द्वारा स्थान-परिवर्तन इस प्रकारके तालबद्ध जीवन-चक्रके अस्तित्वका एक ठोस प्रमाण है।

इस संदर्भमें एक अत्यंत दिलचस्प बात यह है कि पक्षी दिनमें सूर्यकी परिवर्तनशील स्थितिके अनुसार अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। दिनमें ठीक समय मालूम करनेके लिये उनके शरीरके अंदर कोई-न-कोई समयका बोध करानेवाली ऐसी संवेदनशील प्रणाली अवश्य होनी चाहिये जिसको वे सूर्यकी स्थितिको दृष्टिमें रखते हुए स्वयं नियंत्रित करनेमें समर्थ हों। कई मानोंमें, वे उसी प्रकार यात्रा करते हैं जिस प्रकार मनुष्य समुद्रपर यात्रा करता है। वह सूर्यकी स्थिति और समय मालूम करता है और इसके बाद उस दिशाको मालूम करता है जो उसे अपने गंतव्य स्थानतक पहुंचनेके लिये ग्रहण करनी चाहिये। पक्षी भी अपने गंतव्य स्थानतक पहुंचनेके लिये ठीक इसी प्रकार आचरण करते हैं।

पैन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालयके जीव-वैज्ञानिक, डा. कण्डल पाई, तथा उन जैसे अन्य वैज्ञानिकोंके अनुसार, जैविक घड़ियां गहन अनुसंधान और सक्रिय वाद-विवादके विषय हैं। इस दिशामें किसी भी वार्ताके लिये व्यापकतम संदर्भ-बिंदु स्वयं सृष्टि —— उसके विषयमें जिस बातका पर्यवेक्षण हो सकता है, वह अर्थात् एक विशाल लय-प्रणाली —— ही है। हमारा सौरमण्डल इस प्रणालीका एक सूक्ष्म-सा बिन्दु है, जिसके अंतर्गत बहुतसे ग्रह सूर्यकी, और चन्द्रमा जैसे बहुतसे उपग्रह ग्रहोंकी, नियमित क्रमसे परिक्रमा कर रहे हैं। ऐसी दशामें क्या यह बात आश्चर्यजनक है कि पौधे और पशु अपने दैनिक जीवनमें प्रकृतिके नियमित चक्रों या लयोंका अनुसरण करते हैं? प्रत्येक दिन सूर्योदय और सूर्यास्त-द्वारा विभाजित हो जाता है। इस प्रकार, पृथ्वीका २४ घंटेका चक्र प्रकाश और अंधेरेकी दो प्राकृतिक अवधियोंमें विभाजित हो जाता है। कुछ पशु —— जैसे चूहे, उलूक और जंगली जानवर —— रातको काम करते और दिनको सोते हैं। मकड़ा सूर्योदयके समय अपना जाला बुनता है, जब कि मधुमक्खियां और चिड़ियां दिनके समय कार्यव्यस्त रहती हैं।

मौसमोंके परिवर्तनमें, बहुतसे पशुओंकी प्रजननसंबंधी आदतें प्रतिबिंबित होतीं हैं। उदाहरणके लिये, पक्षियोंका एक स्थानसे हटकर दूसरे स्थानपर जा बसना मौसमके परिवर्तनका सूचक होता है। रीछ, चमगादड़, गिलहरी आदि जीव तो जाड़ेके दिनोंमें एकांतमें रहकर विश्राम करते और शिथिल बने रहते हैं। समुद्रके किनारे, चन्द्रमाका प्रभाव ज्वारभाटेके नियमित उतार-चढ़ावके समय केकड़ों तथा अन्य जल-जन्तुओंके व्यवहारमें प्रतिबिंबित होता है।

स्वयं हम मनुष्योंके लिये कुछ नियमित क्रम और लयें हैं। उदाहरणके लिये, हममेंसे अधिकांश व्यक्ति दिनके समय जगते और रातको सोते हैं। स्त्रियोंके रजस्वला होनेका एक नियमित मासिक चक्र होता है। हमारे शरीरका तापक्रम प्रातःकाल कम और रातको ऊंचा होता है।

प्राकृतिक चक्रके इन तथा अन्य प्रमाणोंको देखकर वैज्ञानिकोंको विश्वास हो गया है कि जैविक घड़ियोंका अस्तित्व अवश्य है। वे यह मानते हैं कि जीवोंको समयकी तीव्र अनुभूति होती है। इस संबंधमें जो बात स्पष्ट नहीं है, वह है — उनकी प्रकृति। क्या जीवित प्राणी इसलिये कालक्रमके अनुसार व्यवहार करते हैं कि वे ऐसा करनेके लिये ही बनाये गये हैं? अथवा क्या उनमें आसपासके विश्वके ब्रह्माण्ड-चक्रसे प्रभावित होकर ऐसी प्रतिक्रिया होती है?

इन प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिये अनेकानेक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं। 'फेडरल अमेरिकन सोसायटीज फार एक्सपेरिमेण्टल बायोलौजी' के हालके अधिवेशनोंमें वैज्ञानिकोंने उन प्रयोगोंके परिणामों-पर विचार-विमर्श किया जिनका उद्देश्य इन घड़ियोंका विश्लेषण करना रहा है। उनका उद्देश्य संभवतः ऐसे लक्षण और संकेत प्राप्त करना रहा है, जिनसे प्राकृतिक घड़ियोंकी आंतरिक क्रिया-विधिका पता चल सके।

जैविक घड़ियोंके प्रभावका शास्त्रीय उदाहरण पैंगुइन पक्षीकी अपने घर या निवासस्थानपर वापिस लौट आनेकी आदत है। वे अपने घोंसलोंसे हजारों मील दूर क्यों न चली जायें, किंतु उन्हें बर्फीले प्रदेशों और निर्जन बीहड़ोंको पारकर फिर अपने निवास-स्थानपर लौट आनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

कीड़े-मकोड़ोंपर किये गये प्रयोगोंसे स्पष्ट रूपसे यह पता चलता है कि जैविक घड़ियोंद्वारा उनकी क्रियाशीलता नियंत्रित होती है।

डा. पाईने एक विशेष उपमाका प्रयोग करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है:

"जैविक घड़ियां बहुत कुछ उसी तरह क्रियाशील होती प्रतीत होती हैं, जिस प्रकार कोई साधारण घड़ी कार्य करती है। अन्य शब्दोंमें, उनमें भी घड़ीकी 'टिक' जैसी गति होती है। हम उन्हें उसी प्रकार व्यवस्थित कर सकते हैं, जिस प्रकार हम घड़ीकी सुइयोंको व्यवस्थित करते हैं। हम यह कल्पना करना चाहेंगे कि हमने जो परिवर्तन देखे हैं, वे किसी घड़ीकी टिक-टिकके समान हैं। उन्हें

कोई बाहरी दृश्य-रक्षक पुन: व्यवस्थित कर सकता है। अधिकांश मामलोंमें यह तत्त्व उषाकाल प्रतीत होता है जो पशुओं और पौधोंकी प्रकाश-प्रेरित प्रतिक्रियाका प्रतीक है।"

स्पष्टत: प्रकृतिमें समयका क्रम व्यवस्थित करनेवाले पूर्व-प्रतिष्ठित तत्त्व पाये जाते हैं, जैसे पृथ्वीका अपनी धुरीपर चक्कर काटना, पृथ्वीके अधिकांश धरातलपर दिन और रातका आवर्ती चक्र, पृथ्वीके चारों ओर चन्द्रमाकी मासिक परिक्रमा। ये सभी सूर्यसे प्रभावित हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये पशुओं और पौधोंकी विभिन्न क्रियाशीलताओंको नियमित करनेवाले संकेतोंके मूल स्रोत हैं। उदाहरणके लिये, बहुतसे फूल शामको बंद या संकुचित हो जाते हैं, और उस समय जुगनुओं और चमगादड़ोंके कार्य प्रारंभ हो जाते हैं।

U.S.I.S. के सौजन्यसे

तेलुगु कविता : **कवि : श्री जय श्री**

प्रत्यूषका प्रारंभ

क्लांत निमीलित जीवनमें,
यह नूतन प्रत्यूषका प्रारंभ है
ज्वर-पीड़ित मानस में
यह नव दिनका शुभारंभ है ।।
उधर प्राक्दिशा-सुन्दरीके अंबरसे
रवि महोज्ज्वल उदित हो रहा है,
इधर प्राणप्रिया जगा रही है
भिक्षाटनके लिये उदर-पोषणार्थ।
उधर अंबर पुलकित होकर
धवलिमा फैला रहा है सर्वत्र,
इधर प्रेयसी अवनत होकर
कांति-हीन खड़ी है सम्मुख।
उधर रविके आलिंगनमें
कमल विकसित हो रहे हैं,
इधर कष्टोंके आलिंगनमें
मुकुलित हो रहा है मेरा वदन
उधर भानुके स्वर्ण-कर
विश्व-सुन्दरीका स्पर्श कर रहे हैं,
इधर पीड़ित भयानक बाहु
जीवनको घोंट रहे हैं।
उधर मलय मारुत लिए सुगंध
शनैः शनैः गमन कर रहा है,
इधर बृहत-प्रलय भेद रहा है
द्रुत गतिसे अभेद्यको।
उधर निनादित शकुंतोंका
अव्यक्त मधुर नादामृत है,
इधर विलपित है जीर्ण —
भाव-शकुंतोंका विलाप।
उधर सर्व सौभाग्य-संभरित
प्रत्यूषके प्रारंभका आह्लाद है,
इधर सर्व दौर्भाग्य संकलित
प्रत्यूषके प्रारंभका विषाद है।

अनुवादक : विजय राघव रेड्डी

याद हो आयी

सभी जानते हैं कि कैसे बात-बातमेंसे बात निकल आती है। बात यह है कि मेरा पचासवां जन्मदिन मनाया जा रहा था। आसपासके लोग बड़ी प्रसन्नताका प्रदर्शन कर रहे थे और मेरे ऊपर बधाइयों और शुभकामनाओंकी बौछार हो रही थी। सचिवने हमारी नगरपालिकाकी सदस्या श्री रामप्यारीका तार मेरे हाथमें दिया। यहां रामप्यारीका जरासा-परिचय देता चलूं। आयुमें तो वह मेरे आधेसे भी कम है पर बुद्धिमें उसकी बराबरी करना कठिन है। वह मधुरभाषी और होशियार होनेके कारण हर बार नगरपालिकामें चुन ली जाती है। उसके सारे परिवारमें एक विशेषता है। उनमेंसे हरएक भूलनेकी कलामें निपुण है। क्या रामप्यारी और क्या उसके मां-बाप, भाई-बहन सब-के-सब भूलनेमें प्रवीण हैं। घरसे निकले हैं तरकारी लेने और जाकर ले आये हारमोनियम, जा रहे थे किसीके घर निमंत्रणमें और जा पहुंचे किसी हस्पतालमें, छतरी हाथमें लिये हुए तचती धूप खा रहे हैं, किसीने पूछा क्या बात है तो बोले कोई कमबख्त मेरी छतरी उठा ले गया —यह सब तो इनके परिवारकी आये दिनकी घटनाएं हैं जो हमारे यहांके बच्चे-बच्चेकी जबानपर चढ़ी हैं। शायद इन लोगोंको यह बातें गौरव बढ़ानेवाली लगती हैं इसलिये परिवारका हर व्यक्ति प्रत्येक घटनाको बड़े ही रसके साथ नमक-मिर्च लगा-लगाकर चौराहेपर, चौपालमें सब जगह सुनाता है जिससे इनकी प्रत्येक घटना सारे नगरकी थाती बन गयी है और उसके कारण यह परिवार हमेशा लोगोंकी आंखोंमें बसा रहता है जिससे चुनाव वगैरहमें बड़ी सहायता मिलती है। यह भी एक कारण है कि रामप्यारी नगरपालिकाके लिये निर्विरोध चुनी जाती है। खैर, तो हस्बे मामूल इस बार भी रामप्यारी मेरा जन्मदिन भूल गयी थी और मेरा जन्मदिन तो है २५ को, उसने पांचको ही एक सुन्दर तार भेजा था जिसमें अपने न आ सकनेके लिये माफी मांगी थी और बहुत-सी अच्छी-अच्छी खटमीठी बातें लिखी थीं। हमारा सचिव (शायद मैं रामप्यारीकी बातोंमें पड़कर आपको यह बताना भूल गया कि मैं स्थानीय नगरपालिकाका अध्यक्ष हूं और अगर शनि आड़े न आया होता तो गत वर्ष अपने प्रदेशके मंत्रिमण्डलमें भी ले लिया गया होता —खैर अगले वर्ष सही, जब चन्द्र मेरे अनुकूल होनेवाला है) बड़ा होशियार है, उसने थोड़ी इधर-उधरकी बातें जोड़कर रामप्यारीका तार आज ही सबके बीचमें सुनाया। उसका सुनना था कि सब लोग हंसने लगे और रामप्यारीकी भूलनेकी क्षमताकी प्रशंसा करने लगे। हर एक अपने साथ संबंध रखनेवाली दो-एक घटनाएं सुनानेको बेताब हो रहा था।

"अरे भई, लोग भूल कैसे जाते हैं, मैं तो इनसे ईर्ष्या करता हूं," बीचमें ही छुट्टनलालजीने कहना शुरू किया। "मेरी तो स्मरणशक्ति मेरे लिये एक समस्या है। अच्छी बातें हों या बुरीं, मैं कभी उनको भूल ही नहीं सकता। आज भी मैं पचास वर्ष पहलेकी किसी घटनाको याद करता हूं तो मानों मैं अपने-आपको ठीक पचास वर्ष पहलेके उस क्षणमें पाता हूं और मेरे भाव, मेरी मानसिक स्थिति और मेरी प्रतिक्रियाएं वही पुराना रूप धारण कर लेती हैं। मैं जानता हूं कि यह चीज ठीक नहीं है पर मैं बेबस हूं। पचास वर्ष पहले यदि किसीने मेरे साथ बुरा सलूक किया था तो आज भी उस व्यक्तिके प्रति मेरे वही भाव होते हैं जो उस दिन थे। लोग कहते हैं कि समय सबसे अच्छा मरहम है। वह हर प्रकारके घावको ठीक कर देता है, परंतु मेरी यह स्मरण-शक्ति किसी घावको भरने नहीं देती। बड़ा कष्ट होता है इसके कारण, पर मैं कुछ कर नहीं पाता।"

"तब तो आपको परीक्षाओंमें बहुत आराम रहता होगा", एक अध्यापक महाशय पूछ बैठे। "जी हां, बात तो ऐसी ही है। अपने विद्यालय और महाविद्यालयके जीवनमें मैं हमेशा वर्षके अंतमें

यानी परीक्षासे एक मास पहले पढ़ना शुरू किया करता था। एक महीनेके अंदर सारे सालकी पढ़ाई मेरे दिमागमें बैठ जाती थी और मजा यह कि इसपर भी मुझे जरा भी थकान न लगती थी, मैं ताजादम परीक्षा देने जाता था, मुझे सोचनेकी जरूरत ही न पड़ती थी। बस प्रश्न देखा और दिमागमेंसे जरूरी उत्तर निकालकर कागजपर धर दिया। परिणाम यह होता था कि सालके बारह महीने मेहनत करनेवाले मुझसे पीछे रह जाते थे।''

''तब तो आपकी दशा लाला हरदयालके जैसी होगी, कहते हैं कि एक बार उनका एक निबंध देखकर उनके प्राध्यापकने कहा था, 'हरदयाल, इसमें एक अल्पविरामतक बदलना असंभव है। लेकिन इसमें एक वाक्य भी तुम्हारा अपना नहीं है।' हरदयालने कहा, 'आप ठीक कहते हैं, मैंने इतना अधिक पढ़ा है और मुझे इतना अधिक याद है कि मैं कुछ भी लिखने बैठता हूं तो बड़े-बड़े लेखकोंके वाक्य याद आ जाते हैं और मेरा निबंध उन्हींके वाक्योंसे भर जाता है।'' अध्यापकने कहा।

छुट्टनलालजीको जरा हेठी लगी। उनके ऊपर मौलिक न हो सकनेका आरोप और हरदयालके साथ उनकी तुलना। ऊं हुं। उन्होंने झट नया अध्याय शुरू कर दिया। मैं केवल पढ़ने-लिखनेकी बातोंकी नहीं कहता। मुझे अपने जीवनकी सारी घटनाएं याद हैं। आज भी मुझे तबकी बातें याद हैं जब मैं छः महीनेका बालक था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं छः महीनेका था तो हमारे घर एक भैंस आयी थी। क्या सुन्दर चमकता हुआ काला रंग था उसका, और उसके सींग भी खूब बड़े-बड़े और अंदरकी ओरको मुड़े हुए थे। वह शायद एक समयमें सात-आठ सेर दूध दिया करती थी। घरवाले आग्रह करके मेरी मांको अधिक दूध पिलाया करते थे। एक बार मेरी मांने औरोंसे छिपाकर मुझे भी वह दूध पिला दिया। मैं अनुभव कर रहा था कि यह दूध मेरे लिये ठीक नहीं है पर बोलता कैसे ? अभी मैंने बोलना न सीखा था। स्नेहमयी मांके आग्रहसे मैंने दूध पी तो लिया पर उससे मेरा पेट चलने लगा। घरवालोंको बड़ी चिंता हुई। मांने डरके मारे अपना रहस्य किसीको नहीं बताया और आज भी मेरे सिवाय इसे जाननेवाला और कोई नहीं है। इसी तरह जब मेरे पिताजीने मेरी मांके होते हुए दूसरी शादी की तो उनके सिरपर कैसा मोर बांधा गया था यह मुझे भलीभांति याद है। और याद है कि कैसे मेरी मां इस घटनासे दुःखित होकर छिप-छिपकर रोया करती थी और नानी छटपटाती थीं।

मैं अपनी स्मरण-शक्तिपर गर्व नहीं करता। मेरे लिये तो यह एक बड़ी समस्या है। डेढ़ वर्षकी आयुमें मांको रोता देखकर मुझे पिताके प्रति एक प्रकारकी घृणा-सी हो गयी जिसे मैं हजार प्रयास करनेपर भी न हटा पाया। इसी तरह मां और नानीके दुःखको देखकर मेरे मनमें स्त्रियोंके लिये एक करुणाका भाव उत्पन्न हो गया जिसके कारण आज भी मेरे अंदर पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके लिये अधिक सहानुभूति है।

ऐसा लगता था कि और लोग तो छुट्टनलालजीकी बातोंको पूरी तरहसे निगलते जा रहे थे या उस ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं दे रहे, पर यह सुनकर अध्यापकके पेटमें न जाने क्या हो रहा था, वह फिर बोल उठा, — छुट्टनलाल जी, तब तो आपको भाषाएं सीखनेमें बड़ी सुविधा रहती होगी। एक बार पढ़ लिया और बस। आपको साहित्यमें भी रस है तो आपने बहुत-सी भाषाएं सीख ली होंगी। न जाने जान-बूझकर या अजाने यह छुट्टनलालजीके मर्मस्थलपर आघात था क्योंकि उन्होंने कभी भारतकी भाषाएं सीखनेका कष्ट नहीं किया था। ऐसा अश्लील प्रश्न सुनकर छुट्टनलालजीको झट याद आया कि उन्हें किसी जरूरी कामपर जाना है। और वे लंबे डग भरते वहांसे चल पड़े।

अब मुझे ईर्ष्या होने लगी। मैंने सोचा, एक तो यह महाशय हैं कि साठ वर्ष पहलेकी घटनाएं याद हैं और एक हम हैं कि यह भी नहीं याद कि दोपहरको क्या खाया था। मैं मनमें सोचने लगा, मैंने जो कुछ पाया उसका मूल्य ही क्या है? इतनी अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ीं, वेद पढ़े, पुराण पढ़े,

कुरान और बाइबलका भी पारायण किया। शेक्सपीयरसे लेकर कालिदासतक सब कुछ पढ़ डाला। आज यह भी याद नहीं है कि इन पुस्तकोंमें है क्या। जन्मदिनका समारोह और मनमें यह कसक। खैर, मैंने किसी तरह लोगोंको बिदा किया और पूजाके कमरेमें जाकर बैठ गया। आज मैंने निश्चय कर लिया था कि भगवान्से स्मरणशक्तिका वरदान लेकर ही उठूंगा। कार्यं वा साधेयम्, देहम् वा पातेयम्। मुझे बैठे-बैठे न जाने कितना समय बीत गया। मारकण्डेयने अपनी तपस्याके समय घंटे या दिन नहीं गिने थे, मैं भी तो आखिर उसी मार्गपर चल रहा था। खैर, मैं पूरी तरहसे खो गया।

मैंने देखा उन्नीस सौ पांचका सन् चल रहा है। एक शहरसे कुछ दूर एक तालाबके किनारे एक बड़ा-सा मेंढक बैठा है। मेंढक तालाबके किनारे बैठे हुए दो युवकोंकी बातचीत सुन रहा है। दोनों बड़े उत्साहसे बंगालके स्वदेशी-आंदोलनकी बातें कर रहे हैं। और अपने यहां भी उसी प्रकारका कुछ काम करनेकी सोच रहे हैं। उनका उत्साह मेंढकके हृदयको भी उछालने लगा। उसके भी जीमें आ रहा था कि वह भी कुछ करे। वह भी विदेशी मेंढकोंको चुनौती देकर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करना चाहता था। लेकिन उसकी बातको समझे कौन? उसकी बड़ी-से-बड़ी मंत्रणाको भी लोग मेंढककी टर्र-टर्र समझ लेंगे। वह भगवान्से सहायता मांगने लगा।

कुछ समयके बाद मैंने देखा कि वही मेंढक एक नवागन्तुक योगीके दरवाजेके पास मरा हुआ पड़ा है। मैं उसे फेंक देना चाहता था कि अचानक आवाज आयी, खबरदार, छूना मत, मेंढक समाधिमें है। वाह, यह भी खूब, मेंढकजी समाधिमें हों!! खैर, इस क्षेत्रकी बातें मैं नादान क्या जानूं, चुप होकर बैठ गया। थोड़ी देरके बाद मेंढक उठा और वहांसे चल दिया। वहांके लोगोंमें यह बात जोरोंसे हुआ करती थी कि यह मेंढक जरूर कोई विशेष प्राणी है तभी रोज-रोज योगी महाराजके दर्शन करने आता है। उनकी भी इसपर विशेष कृपा मालूम होती है, हररोज इसकी ओर बड़े स्नेहसे देखा करते हैं। आसपास जहां कहीं योगीकी कथा होती वही मेंढक एक कोनेमें दिखायी देता।

कहते हैं, योगी लोग किसीके सगे नहीं होते। सब प्रकारके बंधन तोड़कर ही तो इस मार्गपर आते हैं। बस, एक दिन योगी महाराजने अपना डंडा उठाया और पौ फटनेसे पहले-पहले कई मील दूर जा पहुंचे, भक्त लोग उनके बारेमें बातें ही करते रह गये पर उनका कहीं पता न चला। लेकिन वाह रे मेंढक, फुदकता हुआ उनके पास जा पहुंचा। महाराज उसे देखकर जरा मुस्कराये और बोले, आहा, तू यहां भी आ गया। कई बार यही घटना दोहरायी गयी, जहां-जहां योगी जाते मेंढक भी उनके पीछे-पीछे पहुंच जाता था। आखिर एक दिन योगीने कह दिया, मण्डूकराज! भगवान्की इच्छा हुई तो अगले जन्ममें तू मनुष्यका चोला पायेगा। लेकिन देख, भगवान्को भूल न जाना। यह कहकर योगी महाराज अंतर्धान हो गये। मेंढक कुछ खोया-सा नाककी सीधमें चल पड़ा। उधरसे 'स्वदेशी' के सैनिक आ रहे थे। अनजाने किसीका पांव उसपर पड़ गया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

मैं नहीं जानता कि मैं जाग रहा था या सो रहा था। परंतु मेंढककी सारी कहानी मैंने अच्छी तरहसे देखी और उसी समय आवाज सुनायी दी, ले, तेरी मनोकामना पूरी हो गयी। यह मेंढक तेरे पिछले जन्मका रूप है। अब उठ और अपने जीवनको सफल बना।

यूं तो मैंने छुट्टनलालसे बाजी जीत ली। मुझे पिछले जन्मकी कहानी भी याद हो आयी पर अब मुझे उसकी परवाह नहीं है। अब तो योगीराजका उपदेश ही कानोंमें गूंज रहा है।

—रवींद्र

अमरीकाकी ओर

(अनुबेनके पत्रोंसे बिना अनुमति संकलित)

बचपनमें विदेश-यात्राकी लालसा थी, विशेष रूपसे सौंदर्यधाम जापान और नृत्य तथा भारतीय संस्कृतिके अमर पुजारी जावा, सुमात्रा और बालि देखनेके लिये मन कूदा करता था। परंतु मेरे मन कछु और है विधनाके कछु और। उदयशंकरके यहांसे नृत्यकी शिक्षा पाकर मैंने फिरसे श्रीअरविंदाश्रममें ही रहनेकी ठान ली और विदेशोंके सपने सपने ही रह गये।

समय बीतते देर नहीं लगती। मेरे पिताजीको अमरीकासे निमंत्रण आया और वे नयी दुनियाके लोगोंको श्रीअरविंद मकरंदका एक कण देनेके लिये चले गये। वहां उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि सारे दिनमें एक मिनट भी अपना न रहा। हृदयके दो दौरे हुए पर वे उनके दौरेको न रोक सके। वे अपने काममें जुटे रहे। वे अमरीकासे लौटे और तीसरा दौरा हुआ और फिर चौथा दौरा उन्हें लेकर चला गया। बने-बनाये कार्यक्रम प्रतीक्षा करते रहे पर वे चल बसे। उनके मित्रोंने अमरीकामें "पुराणी निवास" की स्थापना की और उनके चलते-फिरते स्मारकके रूपमें मुझे भी निमंत्रण दिया। इसपर माताजीकी स्वीकृति भी मिल गयी और मैंने पासपोर्टके लिये आवेदन-पत्र दे दिया। पासपोर्ट पाना कोई आसान काम नहीं है। पचास तरहके प्रमाणपत्र जुटाने पड़ते हैं। मुझे यह तो विश्वास था कि मैं पैदा हुई थी, पर इसे प्रमाणित कैसे करती? मेरे पास बर्थ सर्टिफिकेट जो न था! इधर-उधर हाथ-पांव मारे गये, मेरे जन्म-स्थानकी नगरपालिकाकी अलमारियोंकी तलाशी ली गयी पर मेरे जन्मके वर्षके कागज ही न मिले। अब मुझे भी शंका हो उठी कि मैं सचमुच जन्मी भी थी या नहीं! वह तो भला हो सूरतके उन एडवोकेटका जिन्होंने मेरी मांसे मजिस्ट्रेटके आगे एक बयान दिलवाया जिसके आधारपर मुझे प्रमाणपत्र मिल गया, नहीं तो कौन जाने मैं अजन्मी ही रह जाती!

खैर, पासपोर्ट तो मिल गया। अब आयी पी. फार्मकी बारी। यह जरा टेढ़ी खीर है। हमारे देशमें कुछ लोग सरकारको ठगनेके लिये नित नयी तरकीबें करते रहते हैं और उनपर रोक लगानेके लिये सरकार भी नये-नये नियम बनाती रहती है। दोनोंकी होड़में मारे जाते हैं हम जैसे गरीब। गेहूंके साथ घुनका पिसना स्वाभाविक है। खैर, पी. फार्म भी मिल गया और मद्राससे उड़नेकी तारीख भी निश्चित हो गयी। जानेकी बात तो काफी दिनोंसे चल रही थी पर पी. फार्मकी अनिश्चित स्थितिके कारण सारी हालत लुढ़कते लोटेकी-सी थी। अब झटपट तैयारी शुरू की। कई बन्धु-बान्धव रास्तेके लिये उपहार ले आये, कुछ अपने मित्रोंके लिये छोटी-मोटी चीजें भेजना चाहते थे पर हवाई जहाजसे सामान ले जाना हंसी-खेल नहीं है इसलिये न चाहते हुए भी उनके उपहारोंको पीछे छोड़ना पड़ा। हां, उन सबकी शुभ कामनाएं तो मेरे साथ जा ही रही थीं क्योंकि अभीतक उनका किराया लेनेकी तरकीब नहीं निकली है। ७ सितंबरको सवेरे हमारी मोटर आश्रमके मुख्य द्वारपर आ खड़ी हुई। जहां नयी दुनियाको देखनेकी खुशी थी वहां अपनोंसे बिछुड़ते आखें गीली हो रही थीं, मानो धूप और वर्षा दोनों एक साथ हों। मैं आश्रममें ही पली और यहीं बड़ी हुई थी। आज उसे छोड़ते हुए —— चाहे वह श्रीमाताजीके आशीर्वाद के साथ और कुछ दिनोंके लिये ही क्यों न हो — दिल बैठ रहा था। इतनेमें श्रीमती विद्यावती कोकिल आ पहुंचीं, प्राचीन परंपराके अनुसार विदाई

देने। हाथमें कांसेकी थाली, उसमें कुमकुम, दीया और नारियल। बस फिर क्या था, टीका लगा, आरती उतारी गयी और अक्षत छोड़े गये और फिर शुभ शकुनके लिये मुझे मुंह खोलकर उनके चम्मचसे दधिपान करना पड़ा। उस समय शायद वहां खड़े हुए लोगोंको छोटा-सा चिरौटा याद आ रहा होगा जो चींचीं करता हुआ अपनी बड़ी-सी चोंच खोलकर मांकी चोंचसे दाने लिया करता है। कृष्णलाल भाईने स्वस्तिवाचन किया और खेद और उल्लासके मिश्रित वातावरणमें हमारी मोटर मद्रासकी ओर दौड़ पड़ी।

मद्रासमें एअर इंडियासे टिकट लेना था। पैसा दिया जा चुका था और बहुत-सी लिखा-पढ़ी भी हो चुकी थी। और उन लोगोंकी मेरे ऊपर विशेष कृपा थी, फिर भी इतनी सारी मगज-पच्ची करनी पड़ी कि बस तौबा। कभी-कभी ऐसा लगता है मानो विदेश जाना एक प्रकारका अपराध है जिसमें तरह-तरहकी जिरह की जाती है और अनेकानेक प्रमाण-पत्रोंकी जरूरत होती है। न जाने वह दिन कब आयेगा जब हम सब विश्व नागरिक होंगे और सारी वसुधा ही हमारा कुटुम्ब होगी।

खैर, मैं हवाई जहाजमें जा बैठी और हमारा जहाज पूर्वकी ओरको उड़ चला। मेरे पास ही एक मुसलमान सज्जन बैठे थे जो हैं तो भारतीय पर रहते हैं कोलालमपुरमें। उनके लिये यह रास्ता सुपरिचित था। वे बीच-बीचमें कई बातें बताते जाते थे। खिड़कीमेंसे सारा दृश्य अत्यंत सुहावना लग रहा था। चारों ओर पानी ही पानी था और कहीं-कहीं सफेद बादल आकर पानीको ढक देते थे। मैं सोच रही थी कि शायद मेघदूतका कवि भी हवाई जहाजपर बैठकर भारतयात्रा किया करता होगा, काश वह इस ओर भी आया होता!

थोड़ी देरके बाद कुछ जमीन दिखायी दी और मुझे बताया गया कि यह है अंदमान द्वीप। नाम सुनते ही शरीरमें सिहरन-सी हो उठी और पिछले सौ वर्षोंका इतिहास आंखोंके आगे चलचित्र बनकर घूम गया। भाई परमानन्द, सावरकर, बारीन घोष आदि अनेकानेक जिन्दा शहीदोंने यहां सांस ली होगी। हमारे सुधीर सरकार[1] इन पेड़ोंके साथ हिलते-मिलते रहे होंगे। शायद आज भी यहांके दरोदीवार देशके उन दीवानोंको याद कर लिया करते होंगे।

अभी थोड़ा ही समय गुजरा था कि सिंगापुर आ गया। इसे देखते ही पहले 'प्रिंस आफ वेल्स' और 'रिपल्स' के नाम याद आये। यही वह सिंगापुर है जो अंग्रेज साम्राज्यका बहुत मजबूत स्तंभ था, जिसे अपराजेय माना जाता था। और यहीं अंग्रेज सेनाके साठ हजार सिपाहियोंने जापानियोंके आगे हथियार डाले थे।

सिंगापुर बड़ा सुन्दर शहर है। रास्तेपर उतार-चढ़ाव बहुत हैं पर इसे देखकर ऐसा लगा मानो एशियाके भूखण्डपर यूरोपका एक टुकड़ा रखा हो। (आज एशियामें प्रगतिका मापदण्ड कुछ ऐसा ही हो गया है।) यहां एक श्रीअरविंद कल्चरल सोसाइटी है जो एक विद्यालय चलाती है और विशेष त्यौहारोंपर कुछ कार्यक्रम करती है। सिंगापुरके टेलीविजनपर मेरा नाच हुआ। राजनीतिक उथल-पुथलने बाली जावाके इतने नजदीक होते हुए भी वहां न जाने दिया।

यहां एक मजेदार चीजकी ओर ध्यान गया। आश्रममें रहते यह ख्याल न आया था कि कागज और स्याही भी कोई बड़ी चीजें हैं। जब पत्र लिखनेकी इच्छा हुई तो मेरे पास कागज न था। यहां पहले पता लगाओ कि कागज कहां मिलता है, यहांकी मुद्रामें उसका दाम चुकाओ और फिर डाकखाना खोजते फिरो। जरासे काममें कितना झमेला और कितना समय!

अच्छा, अब अगले पत्रोंमें।

सिंगापुर, सितंबर ६६

---

[1] अन्दमानके एक राजनीतिक कैदी जो अब आश्रममें रहते हैं।

हमारी मद्रास-यात्रा

रास्तेपर दोनों ओरके पेड़ दौड़े चले जा रहे थे। सूर्य नारायण भी पेड़ोंकी डालियोंपर लुका-छिपी खेल रहे थे मानो उन्हें भी चंद्रमा और बादलोंसे प्रतियोगिता करनी हो। बीच-बीचमें हरे-हरे खेत सिपाहियोंकी तरह वर्दी पहने अपना अस्तित्व जताते जाते थे। चारों ओर फैले हुए प्राकृतिक सौंदर्यको चीरता हुआ काला-काला कोलतारसे पुता रास्ता मीलोंतक फैला हुआ नजर आ रहा था और हमारी बस उसीपर उड़ते घोड़े या यूं कहिये उड़ते हाथीकी तरह मद्रासकी ओर उड़ी जा रही थी।

बसके अंदरका चित्र भी मजेदार था। अधिकतर यात्री मानो आनंदमें झूम रहे थे और कभी-कभी अधिक मस्त होकर अपना सिर दूसरोंके कंधोंपर पटक देते थे। एक सज्जन हाथमें किताब लिये कुम्भकर्णके वंशजोंका अभिनय कर रहे थे। जब बस मद्रास जा पहुंची तो अचानक चौंककर चिल्ला पड़े, 'नहीं, नहीं, यह मद्रास नहीं हो सकता। अभी तो पांडिचेरीसे चले ही थे। तुम लोग मुझे यूं ही उल्लू बना रहे हो।' हमारे साथी केवल रामायणकालका ही नहीं महाभारतकालका भी प्रतिनिधित्व कर रहे थे। जहां कुम्भकर्णका एक वंशज था वहां भीमके दो चेले भी मौजूद थे। उन्होंने सोचा, वाह खाली बस ही चलती रहेगी और हमारे मुंह बंद पड़े रहेंगे मानो हमारे कारखानेमें हड़ताल हो। नहीं, नहीं, ऐसा भी कभी हो सकता है! तो बस साहब, बसके चलते ही दोनोंने मिलकर भकोसना शुरू किया, कभी मिठाई तो कभी चिउड़ा, कभी पूरी तो कभी पेड़े, मौसम्बी, संतरा, अंगूर हर एककी बारी आ गयी। फिर भी उनकी चपर-चपर बंद न हुई। चिंगलपेटमें हमारी गाड़ी कुछ देरके लिये रुकी। उसने तेल भरवाया, हमारे मित्रोंने सोचा, हमारी मशीनने कौन-सा पाप किया है कि उसके लिये भी कोयला न इकट्ठा किया जाय। झट उतरे और हमारे देखते-देखते काफीके चार-छः प्याले खाली कर दिये और साथमें इडली, दोसे, मूंगफली आदि खरीद लिये और मोटरके साथ-साथ उनकी मशीनें भी चल पड़ीं। कौन जानें अब भी कहीं आइसक्रीम और चाकलेट साफ करनेमें लगे होंगे।

इन भोजनभट्ट महाशयोंके पीछे एक आधुनिक रोमियों बैठे थे। सूट-बूटमें सजे हुए, हाथमें जलती हुई सिगरट, पांवपर पांव रखे हुए ट्रांजिस्टरको पूरे जोरसे चला रहे थे। किसी फिल्मतारिकाकी मधुर आकर्षक तानें सुनायी दे रही थीं जो हम जैसे अरसिकोंके कानमें भैंसेके संगीतसे कम न थीं। उनसे कुछ ही दूर एक 'सब जानता' महाशय बैठे थे जिन्होंने अपने छोटे लड़केको चार घंटेमें पंडित बनानेका निश्चय कर लिया था। वे दुनियाभरके विषयोंपर भाषण दिये जा रहे थे। रास्तेके पेड़-पौधे, तालतलैया, पहाड़ियां और टीले सबके बारेमें उनका दिमाग एक विश्वकोशसे कम न था। रास्तेके कुछ हरे पत्तोंको देख उन्होंने चीड़ और सनोबरके बारेमें ज्ञान प्रदर्शन कर डाला। यह और बात है कि हमारे जैसे साधारण लोग उन्हें सामान्य बांसके नामसे जानते हैं। सारे समय ज्ञानकी धकापेल करना ही उनका पेशा मालूम होता था। चिंगलपेटसे जब बस चली तो यह ज्ञानी खिड़कीसे बाहर झांक रहे थे और साथ-ही-साथ अपने बेटेके लाभके लिये भाषण देते जाते थे। कोई दस मिनटके बाद उन्होंने सिर अंदर किया और एकदम चिल्ला पड़े, अरे रोको, रोको, गाड़ी रोको। सब लोग परेशान हो गये। कंडक्टर भी दौड़ा आया कि आखिर मामला क्या है। 'सब जानता' महाशय चिल्लाये, "अरे देखते नहीं हो तुम लोग, मेरा बेटा मोटरमें नहीं है। वह चिंगलपेटके होटलमें ही रह गया होगा। तुम लोग बहुत लापरवाह हो . . . . . बस यूं ही अनाप-शनाप बके जा रहे थे कि

किसीने हंसी रोकते हुए कहा, अजी साहब, आप भी कमाल करते हैं, वह रहा आपका लड़का, उधर पड़ा सो रहा है। अब इनकी जानमें जान आयी और रुका हुआ भाषण फिरसे बह चला।

बसके अंदर इस तरहके तमाशे देखते हुए और बाहरकी प्रकृतिका सौंदर्य निहारते हुए न जाने चार घंटे कब बीत गये और हम लोग मद्रास जा पहुंचे। सबसे पहले एअर इंडियाके महाराजा हाथी-पर दिखायी दिये। आगे-आगे शहनाई बज रही थी और नीचे लिखा था 'मद्रास आपका स्वागत करता है'। स्वागतका यह ठाठ देखकर सोचा, हम अपने पड़ोसीके यहां आये हैं, यहां सब तरहकी सुविधा रहेगी। लेकिन मोटरें, लारियां, घोड़ागाड़ी, मोटर-साइकिल, बाइसिकल आदि देखकर तो ऐसा लगा मानो मद्रास शहर क्या है एक बड़ी कन्दील है जिसमें तरह-तरहके खिलौने बड़ी तेजीसे घुमाये जा रहे हैं। शायद यहांके सभी लोगोंने अपनी जानका बीमा करा रखा होगा तभी ऐसी तेजी-से जान जोखोंमें डालकर एक-दूसरेसे आगे निकलनेकी स्पर्धा करते हैं। और कहते हैं मद्रास तो बंबई कलकत्तेकी तुलनामें सोता हुआ शहर है।

मोटरसे उतरकर ख्याल आया कि हम तो ब्याहमें बराती बनकर आये हैं। मेरे भाईका एक दोस्त अपनी मोटर लिये हमारे इंतजारमें खड़ा था। अब यह समस्या आयी कि छोटी-सी मोटरमें सात कैसे समायें? खैर, समस्या आयी तो समाधान भी हो गया। हममेंसे दो लड़के बसमें बैठ गये और पांच बहिनें होनेवाले बहनोईके साथ मोटरमें विराजीं। यह ब्याह कुछ और ही ढंग-का था। आठ बजेका मुहूर्त्त था और अब सात बज चुके थे। हमें एक मंदिरमें जाना था जो यहांसे सात मील दूर था। खैर, जैसे-तैसे करके हम लोग साढ़े साततक मंदिरमें जा पहुंचे और दुलहिन-को दस मिनटमें सजाकर तैयार कर दिया। गोटे-किनारीकी साड़ी और बालोंमें गुलाब — बस यही था उसका सारा श्रृंगार पर इस सीधे-सादे श्रृंगारमें भी मधु बहिन इतनी सुन्दर लग रही थी कि आंख उसके चेहरेपरसे हटना न चाहती थी।

खैर, उन लोगोंके रिवाजके अनुसार ठीक आठ बजे विवाह शुरू हुआ। मूर्तिके सामने एक ओर मधु और दूसरी ओर मधुकर खड़े हो गये। बीचमें पान-नारियल आदिसे सजी हुई थाली थी। पुरोहितने न जाने कौनसे मंत्र गुनगुनाये, दिया जलाया और मूर्तिकी आरती की। फिर मधुकरने थालीमें रखे हुए मंगलसूत्रको उठाया। बाहर जोरसे बाजे बजने लगे और हम सबकी शुभ कामनाओं-के बीच मंगलसूत्र मधुको पहना दिया गया। फिर पुरोहितके आदेशसे वर-वधू दोनोंने एक दूसरे-को फूलोंकी मालाएं पहिनायीं, फिरसे कुछ मंत्र बोले गये और मूर्तिकी प्रदक्षिणा की गयी। मधु और मधुकर दोनोंने पहले मूर्तिको, फिर पुरोहितको और बादमें हम सबको प्रणाम किया और शादी-की रस्म पूरी हो गयी। वहांसे हम वरके घर पहुंचे जहां उसकी मां इस नवदम्पतिकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने आरती पुष्पवृष्टि आदि तो की ही पर उनके नेत्रोंसे होनेवाली स्नेह-वृष्टि इन सबसे बढ़कर थी।

लेकिन अभी ब्याह पूरा न हुआ था। अभी सरकारी दफ्तरमें उसकी रजिस्ट्री करानी थी। मेरी छोटी बहिन आज सवेरेसे नाच रही थी क्योंकि आज पहली बार उसे बालिगोंका-सा काम करनेका अधिकार मिलनेवाला था। उसे विवाहके साक्षीके रूपमें हस्ताक्षर करने थे। जब वह हस्ताक्षर करनेके लिये आगे बढ़ी तो अफसर कुछ हिचकिचाया। उसने छोटे भाईकी ओर इशारा करके कहा, इनको हस्ताक्षर करने दीजिये न! बहिनने जरा अकड़कर कहा, "वह अभी छोटा है।" हम सब हंस पड़े। बात यह है कि इन दोनोंमें एक वर्षका फर्क है और भला ऐसे अच्छे अवसरपर बहिन अपने बड़प्पनका अधिकार क्यों न दिखाती।

— अरुणा

स्वास्थ्य-चर्चा :

वेगोंको मत रोकिये

आजकल सभ्यताके कारण जीवनमें एक अस्वाभाविकता आ गयी है और हमारे बहुतसे रोग और शारीरिक क्लेश इसीका परिणाम हैं। हमारे काम-काजकी व्यवस्था, समाजका झूठा शिष्टाचार और नाटक सिनेमा आदिके कारण हमें बहुत बार शरीरिक वेगोंको दवाना पड़ता है। आप कार्यालयमेंसे अथवा सिनेमामेंसे उठकर मलमूत्र त्यागके लिये नहीं जा सकते। चार भले आदमियोंके बीच बैठकर छींक नहीं सकते और इसलिये अपने शरीरपर दबाव डालकर बैठे रहते हैं। शिष्टाचारके नियमोंका पालन हो जाता है पर उससे शरीरको जो क्षति होती है उसकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता।

भगवान् आत्रेय कहते हैं :

> **न वेगान्धारयेद्धीमान्जातान्मूत्रपुरीषयोः ।**
> **न रेतसो न वातस्य न वम्याः क्षवथोर्न च ।।**
> **नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुतपिपासयोः ।।**
> **न वाष्पस्य न निद्राया न श्वासस्य श्रमेण च ।।**
>
> —— चरकसंहिता, सूत्र स्थान ८-१२

यानी मूत्रमल, वीर्य, निम्नवायु, छींक, वमन, डकार, जम्हाई, भूख-प्यास, आंसू, नींद और श्रमसे उपजा श्वास —— इन वेगोंको बुद्धिमान् मनुष्य कभी जोर देकर बंद न करे। मूत्रको रोकनेसे वस्ति-स्थान और लिंगमें दर्द हो जाता है, मूत्र कष्टसे उतरता है, सिर भारी हो जाता है और अंग टेढ़ा हो जाता है। मल रोकनेसे सिर दर्द, बदहज्मी, पेटमें हवा आदि होते हैं। अपान वायु रोकनेसे अफारा, ग्लानि, पीड़ा और मल-बंध हो जाले हैं। छींकके रोकनेसे सिरका दर्द, इंद्रियोंकी कमजोरी सिरका भारीपन आदि लक्षण पैदा होते हैं। आंसुओंके रोकनेसे जुकाम, आंखके अनेक रोग, अरुचि, भ्रम आदि हो जाते हैं। इस प्रकार वेगोंको रोकनेसे नाना प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होती हैं इस लिये सुधी पुरुषको कभी वेगोंको दबाना न चाहिये।

आगे चलकर आचार्य कहते हैं कि कुछ ऐसे भी वेग हैं जिनका रोकना जरूरी है। उदाहरणस्वरूप परनिन्दा, दूसरेको पीड़ा पहुंचाना, लोभ, शोक, भय, क्रोध, वैर, मान, निर्लज्जपन, ईर्षा, विषयासक्ति आदिके वेगोंका बुद्धिमान्को धारण करना चाहिये अर्थात् इन्हें रोकना चाहिये।

इस लेखमें हम संक्षेपमें मल-बंधके बारेमें कुछ कहना चाहते हैं। मल-बंधका एक बहुत बड़ा कारण है वेगको रोकनेकी बुरी आदत ; यदि खानपान ठीक हो और आलस्य अथवा शिष्टाचार आदिके कारण बुरी आदत न पड़ गयी हो तो सामान्यतः मल-बंध नहीं होने पाता। शुद्ध मल गोलाई लिये लंबा होता है, न बहुत कड़ा और न पतला। उसमें दुर्गन्ध नहीं होती और वह इधर-उधर लगे बिना झटसे निकल जाता है। लेकिन रोकनेके कारण वह गुदाद्वारके पास ही सूखने लगता है, उसका रंग काला हो जाता है और उसमें बदबू पैदा हो जाती है और तब टूट-टूटकर कंकरोंकी तरह निकलता है।

मलबंधके कारण अनिद्रा, बदहज्मी, पीलिया, आंखोंकी खराबी, जीभके छाले, सिरदर्द, बवासीर आदि अनेकानेक रोग पैदा हो सकते हैं। यहां हम इस विषयमें विस्तारसे कहकर पाठकोंके हृदयमें भीति नहीं पैदा करना चाहते। बस इतना जान लेना काफी है कि मल-बंध अनेक रोगोंकी जड़ है। इससे बचनेके लिये कुछ बहुत सीधे-सादे नियम हैं। इनका पालन करनेसे आदमी बहुत हदतक स्वस्थ रह सकता है। मल-मूत्र आदिके वेगको कभी न रोकिये, जल्दी-जल्दी खाना निगलनेकी

जगह आरामसे चबाकर खाइये, बहुत चिकने भारी पदार्थोंसे जरा बचे रहिये, ठूंस-ठूंसकर कभी न खाइये, अपने भोजनमें हरे शाक और फल जरूर-जरूर रखिये। फलोंमें महंगे फलोंके पीछे दौड़नेकी जरूरत नहीं है। पपीता, अमरूद, बेल, टमाटर, निम्बू आदि काफी हैं; इनमेंसे कई तो आपके आंगनमें हो सकते हैं। इन सबसे बढ़कर जरूरी है कि चिंता, भय और क्रोध आदिसे बचे रहिये और नियमित रूपसे कुछ व्यायाम या शारीरिक श्रम करते रहिये। कई आसन विशेष रूपसे उपयोगी हैं।

लेकिन अगर कोई इसका शिकार हो तो वह क्या करे? अगर स्थिति बहुत बिगड़ चुकी है तब तो किसी वैद्य डाक्टरके पास जाना जरूरी है परंतु प्रारंभिक अवस्थामें होनेसे पहले पानी पीना, शामको दूधमें गुलाबकी पंखुड़ियां डालकर पी जाना, रातको हरड़का सेवन, चने, सत्तू या चोकरका उपयोग और पेटकी कसरतें तथा मनमें यह दृढ़ संकल्प कि हमारी आंतें ठीक काम करेंगी और अपने आलस्यको छोड़ देंगी। ईसबगोल, बेल आदिके शरबत भी सहायक होते हैं।

* * *

अज्ज नूर दे तड़के
जदों लै रही सी सबेर अंगडाइयां
पहु फुटाले दी गोद विच
तुसी खेल रहे सओ मेरे साइयां।
किंज, हां किंज! आ गए सओ
ओस निकी गोद विच?
मेरे ऐड़े वडे विशाल सांइयां।

आज जब ज्योतिर्मयी उषा अंगड़ाई ले रही थी, तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबमें तुम खेल रहे थे। इतने विशाल मेरे सांई! कैसे, हां कैसे, तुम उस छोटी-सी गोदमें समा गये?

—भाई वीरसिंह

With best compliments from:

M/s. Kalinga Tubes Ltd.,

33, Chittaranjan Avenue,
CALCUTTA-12

WORKS:
CHOUDWAR, CUTTACK, ORISSA.

नयी कोपलें :

जादूकी मछली

एक समयकी बात है, किसी गांवमें एक किसान रहता था। उसके तीन बेटे थे। गंगू, राम और शामू। गंगू और शामू तो समझदार लड़के थे, लेकिन शामू बिलकुल बुद्धू था। जब भी देखो पलंगपर लेटा रहता था। कुछ काम नहीं करता था।

एक दिन दोनों भाई शहरमें चले गये। तो भाभियोंने शामूसे कहा, भैया, दो बाल्टी पानी ले आओ। शामूने पलंगपर लेटे-लेटे कहा, मैं नहीं जाऊंगा। भाभियोंने उससे कहा — जब दोनों भाई आयेंगे तब तुझे मिठाई देंगे। मिठाइयोंका नाम सुनते ही शामू झटपट उठा और दो बाल्टी लेकर नदीकी ओर चला। उसने दोनों बाल्टियां भर लीं, फिर वहीं बैठकर पानीमें देखने लगा। अचानक एक मछली किनारेपर आयी। शामूने झपट्टा मारकर उसे पकड़ लिया। इतनेमें मछली आदमियोंकी आवाजमें बोली, "शामू, मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारी जो इच्छा होगी वह पूरी कर दूंगी।" शामूने मछलीको छोड़ दिया। फिर शामू बोला, "चलो बाल्टी घरकी ओर।" शामूने कहा ही था कि बाल्टी अपने-आप घरकी ओर चल पड़ी। शामू आकर फिर पलंगपर लेट गया।

भाभियोंने शामूसे कहा कि जंगलसे लकड़ियां काटकर ले आओ। शामू इस बार जाना नहीं चाहता था। भाभियोंने कहा, जब दोनों भाई आयेंगे तो तुझे मिठाइयां नहीं देंगी। मिठाईके लालचसे शामू झट खड़ा हो गया और बैलगाड़ी लेकर तैयार हो गया। भाभियोंने कहा, "शामू, तुझे तो बैल चलाना नहीं आता है।" शामूने कहा, "मुझे बैलकी जरूरत नहीं है।" और धीरेसे बोला —"चल मेरी गाड़ी जंगलकी ओर।" इतना कहते ही गाड़ी जोरसे भागने लगी। रास्तेमें एक गांव पड़ता था। गाड़ी इतनी जोरसे भाग रही थी कि रास्तेमें चलते हुए आदमी टक्कर खाकर गिर पड़े। उन्होंने गाड़ीको रोकना चाहा लेकिन गाड़ी नहीं रुकी। जंगलमें पहुंचनेपर शामूने अपने कुल्हाड़ेसे कहा, "लकड़ी काटो।" लकड़ियां कटकर बैलगाड़ीमें जमा हो गयीं। उसने अपनी गाड़ीसे फिर कहा, "चलो गाड़ी घरकी ओर।" गाड़ी; फिर तेजीसे भागने लगी। इस बार गांवके लोगोंने गाड़ी रोक ली और उसे मारने लगे। शामूने धीरेसे कहा — "इन सबके ऊपर डंडे पड़ें।" इतना कहते ही डंडोंने उनकी पिटाई करनी शुरू कर दी। शामू वहांसे भाग निकला। गांवके लोगोंने राजासे शिकायत कर दी। राजाने एक दरबारीसे कहा कि तुम शामूको मेरे पास ले आओ। मंत्री शामूको बुलाने गया लेकिन शामू नहीं आया। राजाने फिर मंत्रीसे कहा कि तुम जाओ और शामूसे बोलो कि राजा मिठाइयां खिलानेके लिये बुला रहा है। मंत्रीने शामूको यह बात बतायी तो शामू बोला, "चल मेरे पलंग राजाके पास" पलंग उड़ता हुआ राजाके सामने आ पहुंचा। राजाने शामूसे कहा कि तुम्हारे विरुद्ध कई शिकायतें हैं। तुमने कई लोगोंको घायल कर दिया है। शामूने कहा, "वे लोग मेरी राहमें क्यों आये?" इतनेमें राजाकी लड़की चम्पा खिड़कीपर आकर खड़ी हुई। शामूने उसे देखा तो मन-ही-मन बोला, यह लड़की मुझे चाहिये। और अपने पलंगसे कहा, चल, मेरे पलंग घरकी ओर। पलंग घर पहुंच गया। अब राजाकी लड़कीने रोना शुरू कर दिया कि मैं तो शामूसे शादी करूंगी नहीं तो जीवित नहीं रहूंगी। राजाने शामूको बुलवाया और धोखा देकर चम्पा और शामूको शरबतमें जहर पिला दिया और दोनोंको एक संदूकमें बंद करके समुद्रमें बहा दिया। शामूको जब होश आया तो उसने चंपा और अपने-आपको संदूकमें देखा। चंपाने कहा कि मैंने राजासे कहा था कि मैं शामूके साथ शादी करूंगी, इसलिये राजाने ऐसा किया। शामूने कहा, "चल मेरे संदूक किनारेपर।" संदूक किनारेपर आ गया। दोनों बाहर निकले तो शामूने कहा यहांपर एक महल खड़ा हो जाय। झट एक विशाल महल खड़ा हो गया। चम्पा और शामू दोनों सुखसे महलमें रहने लगे।

— श्री दीपा

बुढिया माई

एक बुढ़िया माई थी। उसका नियम था कि वह नित्य सुबह उठकर सूरजनारायणको छाछका छींटा दिया करती थी। वह रोज पड़ोसिनसे छाछ मांग लाती और छींटा दे देती। एक दिन पड़ोसिनने छाछ नहीं दी तो वह आसन-पट्टी लेकर सो गयी। तभी भगवान् सूर्यनारायण आये और बोले, "उठ, बूढ़ी माई, उठ, आसन-पट्टी लेकर क्यों सोयी है?" वह बोली, "तो क्या करूं, मेरा तो नियम है कि नित्य सूर्यनारायणको छींटा देती हूं। आज पड़ोसिनने छाछ न दी।" भगवान् बोले, "उठ बूढ़ी माई, तेरे घरके सामने गोरी गाय, गोरा बछड़ा खड़ा है, सो लाकर घरमें बांध ले। जब तो बुढ़िया जल्दीसे उठी और बाहर जाकर देखा तो सचमुच उसके घरके सामने एक गोरी गाय, गोरा बछड़ा खड़ा है। उसका घर इतना बड़ा न था कि वह गाय और बछड़ेको अंदर बांध सके। उसका घर क्या था बस, एक टूटी-सी झोंपड़ी थी। इसलिये उसने उसे गलीमें ही बांध दिया और दूध दुह छाछका छींटा दे दिया। अब उसे पड़ोसिनसे छाछ मांगनेकी जरूरत न थी।

उस गायमें ऐसा गुण था कि सोने-चांदीका गोबर करती और मोतियोंका मूत्र। बुढ़िया बेचारी-को इसके बारेमें कुछ पता न था। पता चलता भी कैसे? क्योंकि सोना-चांदी और मोती तो वह पड़ोसिन ही बुहारकर ले जाती थी। एक दिन भगवान् सूर्यनारायणने सोचा अब तो बुढ़िया मालामाल हो गयी होगी। उन्होंने आकाशसे झांककर देखा तो वह टूटी झोंपड़ी दिखायी दी। भगवान् पड़ोसिन-की चालाकी समझ गये। उन्होंने वर्षादेवीको भेजा। जब खूब वर्षा होने लगी तो बुढ़ियाने गाय-को झोंपड़ीके अंदर बांध लिया। अब गायने झोंपड़ीमें बहुत-सा सोने-चांदीका गोबर और मोतियोंका मूत्र किया और इन चीजोंका ढेर लगा दिया। अब बुढ़ियाको इस बातका पता चल गया इसलिये वह झोंपड़ीमें ही गाय बांधने लगी। इधर पड़ोसिनको डाह हुई। उसने जाकर राजासे शिकायत की और कहा, "राजा, उस बुढ़ियाके पास तो ऐसी गाय है जो सोने-चांदीका गोबर करती है और मोतियोंका मूत्र। ऐसी गाय तो तुम्हारे पास होनी चाहिये।" राजाने बुढ़ियाकी गाय महलमें मंगवा ली और उसके लिये गद्दोंका इंतजाम किया।

उधर गायने उन गद्दोंपर इतना गोबर और मूत्र किया कि सबकी नाक बदबूके मारे फटने लगी। राजाने बुढ़ियाको बुलवाया और कहा, "बुढ़िया, तूने यह क्या जादू-टोना किया जो गायने मेरे महलमें आकर सोने-चांदीका गोबर करना बंद कर दिया।" बुढ़िया बोली, "महाराज, मैंने तो कुछ जादू-टोना नहीं किया। यह गाय तो भगवान् सूर्य नारायणकी दी हुई है।" इसके बाद उसने सब बातें कह सुनायीं। अब राजाने बुढ़ियाकी गाय वापस कर दी और ऊपरसे अपनी तरफसे एक गाय और दी। बुढ़िया अपनी दोनों गायोंके साथ आरामसे रहने लगी।

—श्रीभीष्म

* * *

कहते हैं कि तुम अंग्रेजको निराश कर दो तो वह चुपचाप सह लेगा पर उसके पेटमें घाव हो जायेंगे। फ्रेंच आदमीको निराश करो तो वह पीता पीता प्राण दे देगा। जर्मन अपने-आपको गोली मार लेगा, अमरीकन पहले तो तुम्हें गोली मार देगा फिर तुम्हारे परिवारकी सुरक्षाके लिये दस लाख डालर इकट्ठे करनेकी चिंतामें मर जायगा।

दक्षिण भारती

पाठ २५

हिन्दी :	मैंने दूध नहीं पिया।	मैं सिर्फ दूध पीता हूं।
तेलुगु :	नेनु पालु त्राग लेदु।	नेनु पालु मात्रमे त्रागतानु।
कन्नड़ :	नानु हालन्नु कुडिदिल्ल।	नानु केवल हालु कुडियुत्तेने।
हिन्दी :	मां मुझे दूध देगी।	मैं कल दस बजे उसके घर जाऊंगा।
तेलुगु :	अम्म नाकु पालु इच्चेदरु।	नेनु रेपु पदि गंटलकु वाडि इंटिकि पोयेदनु।
कन्नड़ :	ताइयु ननगे हालु कोडुवळु।	नानु नाळे हत्तु गंटेगे आतन मनेगे होगुवेनु।
हिन्दी :	तुम्हारे साथ और कौन जायगा ?	मेरे साथ मेरी छोटी बहिन जायगी।
तेलुगु :	नीतो दूंका ऐवरु वस्तारू ?	नातो ना चिन्न चेल्लेलु वस्तुंदि।
कन्नड़ :	निम्म जोतेगे मन्ते यारु होगुवरु ?	नन्न संगड नन्न चिक्क तंगि बरुवळु।
हिन्दी :	तुम यह काम नहीं करोगे ?	यह कुत्ता नहीं काटेगा।
तेलुगु :	नीवु ई पनि चेयवा ?	ई कुक्क करवदु।
कन्नड़ :	नीवु ई केलसवन्नु माडुवदिल्लवे ?	ई नायि कडियुवदिल्ल।
हिन्दी :	मगर यह बिल्ली काट सकती है।	डरो मत।
तेलुगु :	कानी ई पिल्लि करवगलदु।	दडवद्दु।
कन्नड़ :	आदरे ई बेक्कु कडियबल्लदु।	अंजबेडिरि।
हिन्दी :	मैं अगले सप्ताह जाऊंगा।	आप क्यों जायेंगे ?
तेलुगु :	नेनु वच्चे वारम् पोतानु।	तमरु एदुकु पोयेदरु ?
कन्नड़ :	नानु मुन्दिन वार होगुवेनु।	तावु एके होगुविरि ?
हिन्दी :	वहां मेरी बड़ी बहिन आयेगी।	आप कब वापिस आयेंगे ?
तेलुगु :	अक्कडकु मा अक्क वस्तुंदि।	तमरु एप्पुडु तिरिगि वच्चेदुरु ?
कन्नड़ :	अल्लि नन्न (दोग) अक्क बरुवळु।	तावु यावाग तिरुगि बरुविरि ?
हिन्दी :	मैं वहां एक मास रहूंगा।	आप मेरा रुपया देंगे ?
तेलुगु :	नेनु अक्कड वोक नेल वुंडेदनु।	तमरु ना पैकमु इच्चेदरा ?
कन्नड़ :	नानु अल्लि वन्दु तिंगळु इरुवेनु।	तावु नन्न रूपायियन्नु कोडुविरा ?
हिन्दी :	वहां जंगल है।	वहां बहुत जानवर हैं।
तेलुगु :	अक्कड अडवि वुंदि।	अक्कड चाला मृगालु वुन्नायि।
कन्नड़ :	अल्लि अडवि इदे (इरुत्तदे)।	अल्लि बाहळ प्राणिगळु इरुत्तवे।

हिन्दी :	रातको कुत्ते भूंकते हैं।	उस घरसे पानी लाओ।
तेलुगु :	रात्रि कुक्कलु अरुस्तायि।	आ इंटि नुंचि नील्लु तीसुकुरा।
कन्नड़ :	रात्रियल्लि नायिगळु बोगळुत्तवे।	आ मनेयिंद नीरु तन्निरि।

हिन्दी :	दुकानसे मिठाई खरीदो।	धूपमें मत जाओ।
तेलुगु :	दुकानमुलो मिठाई कोनु।	यंडलो पो वद्दु।
कन्नड़ :	अंगडियिंद मिठाई कोंडुकोक्किरि।	बिसिलिनल्ली होगबेड़।

हिन्दी :	अंदरसे कपड़ा ला।	तुम्हारा वेतन कितना है ?
तेलुगु :	लोपल नुंचि गुगलु तीसुकुरा।	मी जीतमु एंत ?
कन्नड़ :	वळगिनिन्द अरिवेगळन्नु ता (तेगेदुकोंडुबा)।	निम्म संबळवेष्टु ?

हिन्दी :	मुझे पचास रुपये दीजिये।	मैं रुपये नहीं दूंगा।
तेलुगु :	नाकु एबै रूपाइलु इळंडि।	नेनु रूपायि कोड़ुवदिल्ल।
कन्नड़ :	ननगे अैवत्तु रूपायि कोडिरि।	नानु रुपायि कोड़ुवदिल्ल।

हिन्दी :	उसे गुस्सा आयेगा।	वह लड़की यहां नहीं आयेगी।
तेलुगु :	वाडिकि कोपं वस्तुंदि।	आ पिल्ल इक्कडकु रादु।
कन्नड़:	अवनिगे सिट्टु (कोप) बरुवदु।	आ हुडिगे इल्लि बरुवदिल्ल।

हिन्दी :	हम नहीं खायेंगे।	आप पुस्तक नहीं देंगे ?
तेलुगु :	मेमु तिनमु।	तमरु पुस्तकमु इव्वरा ?
कन्नड़ :	नावु तिन्नुवदिल्ल।	तावु पुस्तकवन्नु कोड़ुवदिल्लवे ?

हिन्दी :	लड़का पाठ लिख रहा था।	मां दूध उबाल रही है।
तेलुगु :	बालुडु पाठमु व्रायचुंडेनु।	अम्म पालु कास्तुंदि।
कन्नड़ :	हुडुगनु पाठवन्नु बरेयुत्ता इद्रदनु।	अव्वा, (अम्मा) हालु, कुटिसुत्तिद्दाळे।

With best compliments
from:

NEW SOUTH INDIAN HANDLOOM HOUSE

All kinds of Handloom &
Cotton Fabrics

BUXI BAZAR, CUTTACK
(ORISSA)

पुस्तक-परिचय

माध्यम—केरल विशेषांक — बन्धुवर बालकृष्णरावने हिंदी जाननेवालोंके लिये केरलका एक जीता-जागता चित्र तैयार कर दिया है। इसमें वहांके दृश्य और दृष्टि, वहांकी परंपरा, वहांके साहित्य और वहांकी भाषाके बारेमें बड़ी अच्छी और रोचक सामग्री दी गयी है। इसके तैयार करनेमें बहुत परिश्रम लगा होगा। हम आशा करते हैं कि इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेशके बारेमें विशेषांक निकालकर 'माध्यम' समस्त भारतका एक नकशा हमारे मनमें तैयार कर सकेगा। प्रकाशक है — हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

पगडंडी और फुलझड़ी — ले. श्री कालीकुमार मुखोपाध्याय, प्रकाशक : कुमार प्रकाशन,, डुमरामा, भागलपुर, दोनोंका मूल्य २.७५।

हिंदीवाले ही हिंदीके नामका ढिंढोरा पीटते रहें तो उससे कुछ आता-जाता नहीं। संपर्क-भाषाके रूपमें उसका गौरव तब बढ़ता है जब अन्य भाषा-भाषी अपने मौलिक विचार हिंदीमें प्रकट करना शुरू करें। इस दृष्टिसे हम इन दोनों पुस्तकोंका स्वागत करते हैं।

राष्ट्र-धर्मका रामानन्द चटर्जी अंक — प्रकाशक : राष्ट्र धर्म कार्यालय, डा. रघुवीर मार्ग, लखनऊ।

रामानन्द बाबू भारतीय पत्रकारोंके दादा गुरु थे। उन्होने प्रत्यक्ष रूपमें अंग्रेजी, बंगला और हिंदीकी पत्रकारिताके स्तरको बहुत ऊंचा उठा दिया था। व्यक्तिके रूपमें भी उनकी बहुत-सी बातें अनुकरणीय हैं। उनकी जन्म-शताब्दीके वर्षमें यह विशेषांक निकालकर राष्ट्र-धर्मने सब पत्र-पत्रिकाओंकी ओरसे पितृऋण चुकानेका प्रयास किया है।

हार-जीतका भेद — ले. आनन्दकुमार, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, मूल्य २.००

बच्चोंके लिये शिक्षाप्रद बारह कहानियोंका संग्रह। मण्डलके कथा-कहानी साहित्यके अनुरूप सरस और सुन्दर।

एक मुसाफिर एक दुनिया — ले. लल्लन प्रसाद व्यास, प्रकाशक : हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, मूल्य ३.००।

हर्षका विषय है कि आजकल हिंदीमें मौलिक यात्रा-साहित्यकी ओर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। कुछ दिन पहले हमने यशपालजीकी यात्राओंके बारेमें लिखा था। प्रस्तुत पुस्तक भी उसी प्रकारकी है। इसमें दक्षिण-पूर्व एशियाके सात देशोंमें भ्रमण करनेके बाद वहांके प्राकृतिक दृश्यों, वहांकी समस्याओं और उन देशोंके साथ भारतके संबंधके बारेमें बड़ी रोचक और प्रामाणिक सामग्री दी गयी है।

France looks at modern India : **ले. वासुदेव विष्णुदयाल, भारतीय विद्याभवन, बंबई।**

भाई वासुदेव प्रवासी भारतीय हैं। इनके पूर्वज भारतसे मारिशस गये थे। यह अपने-आप १९३३ से ३९ तक भारतमें रहे थे। मारिशसमें फ्रांस और फ्रेंचका बहुत असर है। इस पुस्तकमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, श्रीअरविन्द आदिके बारेमें छोटे-छोटे लेख हैं। मूल्य १.००

"श्रीअरविंद हमारे साथ हैं।"

——श्रीमाताजी

जाड़ेके मौसममें हर तरहके शाल दोशाले
खरीदनेसे पहले हमें याद रखें

रामकृष्ण जैन शालवाले, यूनिक स्टोर्स
घास मंडी; लुधियाना

USE
TEPCO
SCREWDRIVER
- Made from Special Steel
- Tempered to INDIAN & INTERNATIONAL Standards

Manufacturers:
TEPCO,
C. 37, Industrial Estate,
Guindy, Madras-32.
Phone: 80329.

GP

नयी बी. एम. सी.
तार सिलाईकी मशीन
माडल नं. ९०७

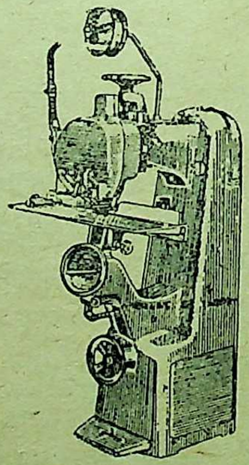

अधिक उत्पादन और अधिक लाभ, तार बेकार न जाय, और गति इच्छानुसार बदली जा सके।

मिलनेका पता:

बसंत मशीनरी कम्पनी
निजाम रोड
लुधियाना

आश्रम-प्रकाशन

प्राण और उसका रूपांतर — ले. श्रीअरविंद, प्रकाशक : अदिति कार्यालय, पांडिचेरी-२, पृ. सं. ८८, मूल्य २.५०।

यह पुस्तक श्रीअरविंदके पत्रोंसे संकलित और अनूदित की गयी है। इसमें यह बताया गया है कि प्राण-तत्त्व क्या चीज है और हमारे जीवनमें उसकी क्या-क्या क्रियाएं होती हैं; मानवजीवनके रूपांतरमें यह प्राण कौन-कौनसी कठिनाइयां उत्पन्न करता है और उन्हें कैसे जीता जा सकता है; प्राण आज हमारे जीवनमें जो बहुत बड़ी बाधाएं उत्पन्न कर रहा है, उसे हम अपने जीवनके उन्नयनमें किस प्रकार एक बड़ी शक्तिके रूपमें व्यवहृत कर सकते हैं। वैसे यह सारी पुस्तक श्रीअरविंदके योगकी आवश्यकताको सामने रखकर लिखी गयी है, पर इसमें ऐसे बहुतसे सामान्य तत्त्व भी आ गये हैं जिनका ज्ञान सभी प्रकारके आध्यात्मिक साधकोंके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुस्तककी छपाई सुन्दर है।

Sri Aurobindo's Life Divine : **ले. श्री अंबालाल पुराणी; प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पृ. २८०, मूल्य १२.००।**

१९६२ में पुराणीजीने अमरीकाका दौरा किया था और वहां सिडोनाके क्रिसेंट मून सेंटरमें श्रीअरविन्दकी शिक्षाके बारेमें ८२ भाषण दिये थे। वहांके श्री डंकनकी कृपासे इन भाषणोंका टेप रिकार्ड कर लिया गया था। प्रस्तुत पुस्तक उन भाषणोंके आधारपर तैयार की गयी है। यह श्रीअरविन्द-दर्शनको समझनेके लिये बहुत उपयोगी है।

Dictionary of Sri Aurobindo's Yoga : **संकलनकर्ता : माधव पण्डित; प्रकाशक : दीप्ति प्रकाशन; पृ. सं. ३१५, मूल्य १०.००**

श्रीअरविन्द साहित्यके अपने शब्दों और परिभाषाओंको जाननेके लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। यदि आप जानना चाहें कि हृदयका उद्घाटन क्या है, श्रीअरविन्द पाताल किसे कहते हैं अथवा पुनर्जन्मके बारेमें श्रीअरविन्दके क्या विचार हैं तो इस पुस्तकमें यह और इस प्रकारकी बहुत-सी जानकारी स्वयं श्रीअरविन्दके शब्दोंमें मिल जायेगी। यदि श्रीअरविन्दके उद्धरणोंके साथ-साथ उनका ठौर ठिकाना भी बता दिया गया होता तो और अच्छा होता।

Reminiscences and anecdotes of Sri Aurobindo : **सं. माधव पण्डित, प्रकाशक : दीप्ति प्रकाशन, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२; मूल्य ७.००।**

इस सुन्दर-सी पुस्तकमें श्रीअरविन्दके जीवनकी कुछ मजेदार घटनाएं और उन्हींके शब्दोंमें उनके अनुभव तथा भिन्न-भिन्न विषयोंमें उनकी राय दी गयी हैं। वन्दे-मातरम्, क्रोध, ज्योतिष, भविष्य-वाणियां, रेवती अन्य ग्रह आदिके बारेमें श्रीअरविन्दके वचन उद्धृत हैं।

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

वी. पी. का पैसा आनेमें या उसके वापिस लौटनेमें कई बार एक-एक महीना लग जाता है। इस कारण नया मासिक अंक तैयार होनेतक यह पता न लग पायेगा कि किसको अंक भेजना है और किसको नहीं। इसलिये यह निश्चय किया गया है कि आपका आखिरी अंक वी पी. से भेजा जाय। उदाहरणके लिये, यदि आपका चंदा दिसंबर अंकके साथ समाप्त होता है तो नवंबर अंकके साथ आपको सूचना दी जायगी और आपका उत्तर या धनादेश न आया तो दिसंबर अंक वी. पी. द्वारा भेजा जायगा। कृपया वी. पी. किसी हालतमें न लौटाइये। उससे हमें व्यर्थका आर्थिक घाटा होता है। यदि आप किसी कारण अगले वर्ष ग्राहक न रहना चाहते हों तो सूचना पहुंचते ही हमें एक पोस्टकार्ड भेज दें।

धन्यवाद

—व्यवस्थापक, पुरोधा

M 8127
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

I need not appear to be good if my sincerity is perfect.

It is better to be than to seem.

⁂

यदि मेरी सत्यनिष्ठा पूर्ण हो तो मुझे भला दीखनेकी कोई आवश्यकता नहीं।
'दीखने' की अपेक्षा 'होना' कहीं अधिक अच्छा है।

—श्रीमां

पुरोधा

किशोर मासिक

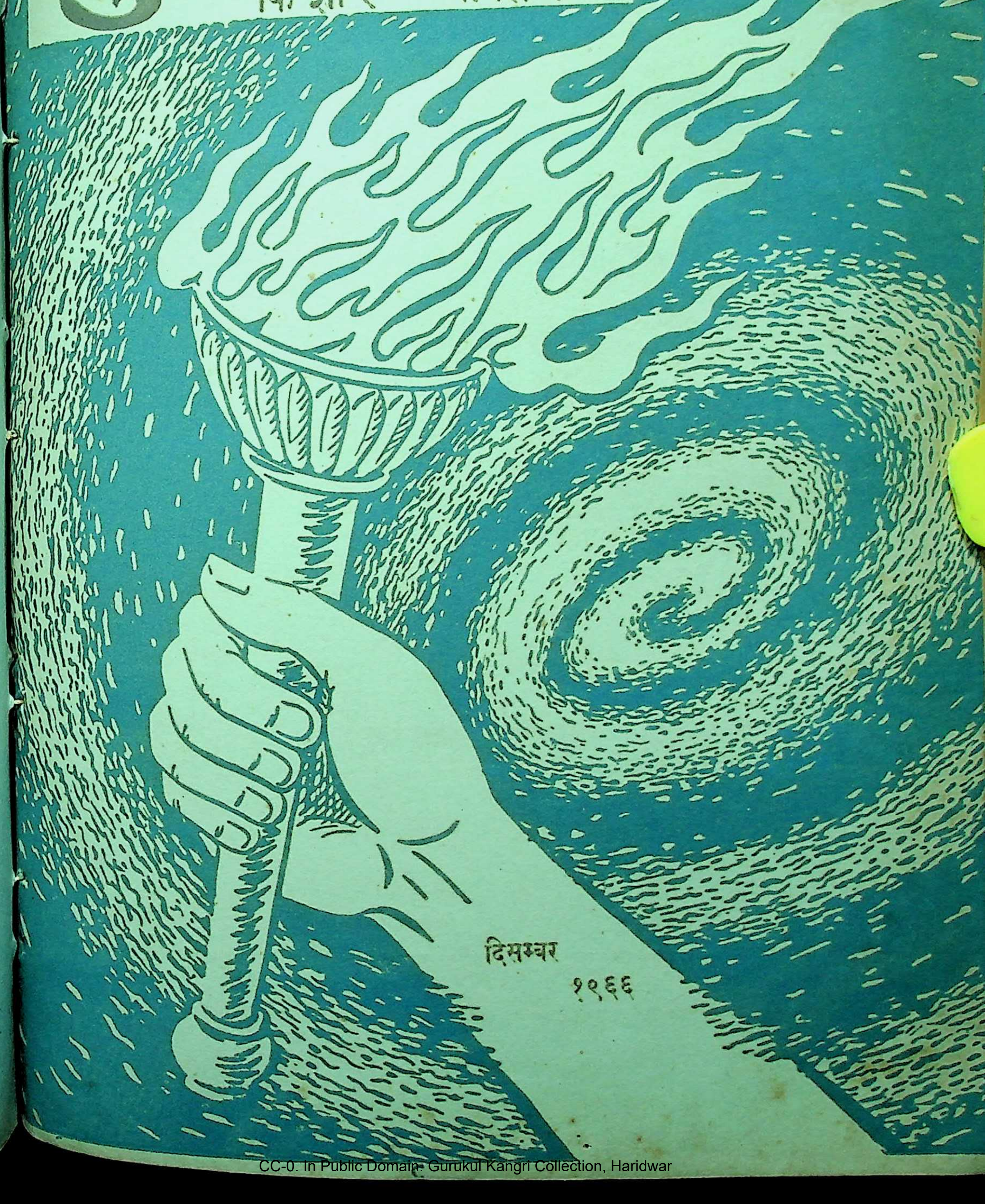

दिसम्बर
१९६६

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात,
ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ दिसंबर १९६६ अंक ४

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
तृण या पैसा	कुवेम्पु	२
संपादकीय		३
स्नेहम्	कुमारनाशन	५
श्रीअरविंद-वाणी :		
यौगिक अनुभव और भौतिक विज्ञानके आक्षेप		६
श्रीमातृवाणी :		
असत्यपर विजय		७
मनुष्य अपने चिंतनका स्वामी कैसे बने ?		८
प्रेम और मृत्यु	श्रीअरविन्द	९
आश्रमके अनुभव :		
छोटे बच्चोंके बीच	अरुणा	१६
आयुध पूजा	रवीन्द्र	१८
हमारा भारत : विजयनगर	रवीन्द्र	२०
भारतीय गिरा : रामकथाकी विभिन्नता	विष्णु ललित	२३
विश्व साहित्य : राजा और प्रजा	मुहम्मद युसुफ कोकन	२७
यह दुनिया : समुद्र — उसका रंग-रूप	संकलित	२९
कहानी : परिवर्तन	रवीन्द्र	३१
इतिहास बोलता है : अबू सिम्बल	संकलित	३४
स्वास्थ्य चर्चा : हैजा और उससे बचनेके उपाय		३६
कानूनी वार्ता : दिल्लीका घंटाघर	संकलित	३७
नयी कोंपलें :		
वर्षा	निर्मल	३८
बहरूमल	मदन	३९
पंडित	काशीनाथ	
पुस्तक-परिचय		४०

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य :** एक अंक : रु. ०.६० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ७.००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

प्रार्थना

हे प्रेमके दिव्य स्वामी, सब वस्तुओंमें तेरी ही उपस्थितिके कारण सब मनुष्य, यहां तक कि क्रूरतम भी, दया प्रदर्शित करते हैं तथा नीच-से-नीच मनुष्य भी, मानो असहाय-से, उच्चता और न्यायका मान करते हैं। तू ही, सब सामाजिक परिपाटियों और पक्षपातोंके परेसे, एक विशेष, दिव्य और पवित्र प्रकाशद्वारा 'हम जो कुछ हैं और जो कुछ करते हैं' को प्रकाशित करता है तथा 'हम जो बने हैं और जो बन सकते हैं' में अंतर दिखला देता है।

तू आत्यंतिक पाप, अंधता तथा दुष्टताकी अनतिगम्य विरोधी सीमा है; तू हरएक हृदयमें संभव तथा भावी पूर्णताओंकी सजीव आशा है।

तुझे मेरी सातिशय भक्ति।

तू हमारे मानसिक बोधनोंको प्राप्य वह द्वार है जो अज्ञात और अचिंत्य वैभवोंकी ओर ले जाता है, ऐसे वैभवोंकी ओर जो उत्तरोत्तर हमारे प्रति प्रकट किये जायेंगे।

—श्रीमां

कन्नड़ कवि :

: श्री कुवेम्पु

हण या पैसा

हणवनुगळिसेंदण्णनिगेल्लरु बुद्धिय हेळुवरेकम्मा ।
हणवेंन्दरे नावाडुव मण्णिन पुडिगिंतलु चेलुवेनम्मा ? ॥१॥

धूलिनष्टु अदु नण्णगिहुदे हेळम्मा ?
धूलिनष्टु अदु सण्णगिहुदे हेळम्मा ? ॥ २ ॥

धूळियन्ते अदु गाळियल्लि हाराळबल्लुदे तिळिसम्मा ?
धूळियन्ते अदु हुडुगरेल्लरनु ओळियबल्लुदे हेळम्मा ? ३ ॥

बेळिगिन नेसरिनेळविसिलिन मुन्ननु हण मीरिहुदेनम्मा ?
एळं हसुरलि दिनवू नावायुव हू गळ मीरिहुदेनम्मा ? ॥४॥

मळेय बिल्लिनोलु मनव मोहिपुदे हेळम्मा ?
मळेय हनिगळोलु नम्म कुणिसुबुदे हेळम्मा ? ॥ ५ ॥

हनियोळुं मिंदिह तळिरिल नलियुव हिममणिगदु चेलुवेनम्मा ?
तळितिह बनदलि उलियुव कोगिलेचिंचरकदु इंपेनम्मा ? ॥ ६ ॥

आजकल चारों ओर पैसेका ही राज्य है। कुवेम्पु एक छोटे-से बच्चेके मुखसे उसकी महिमाके बारेमें प्रश्न करते हैं। बच्चा अपनी मांसे पूछता है — मां, सब लोग भाईसे क्यों कहते रहते हैं कि पैसा कमाओ, पैसा कमाओ। हम जिस धूलसे खेलते हैं, पैसा उससे भी सुन्दर है क्या? ॥ १ ॥

बताओ मां, वह धूलकी न्याईं चिकना है? क्या वह धूलकी तरह मुलायम और छोटा है? ॥ २ ॥

मां, क्या वह धूलकी तरह हवामें उड़ सकता है? क्या वह धूलकी तरह सब लड़कोंके पास आ जा सकता है? क्या वह सब लड़कोंको सहला सकता है? सब बच्चोंको प्यार कर सकता है? ॥ ३ ॥

मां, बता, क्या वह सूर्यकी बाल छविके सौंदर्यसे बढ़कर है? हरीतिमासे, हरे-हरे पौधोंसे रोज हम जो फूल चुनकर लाते हैं उनसे भी बढ़कर है क्या वह पैसा? ॥ ४ ॥

बोल मां, क्या वह इन्द्रधनुषकी तरह हमारे मनको मोहित कर सकता है? वर्षाकी बूंदोंकी तरह हमें नाच नचा सकता है? ॥ ५ ॥

क्या वह हिमार्द्र पल्लवोंपर खेलते हुए तुहिन कणोंसे भी सुन्दर है? फूलते-फलते चैत्र काननोंमें कूकनेवाली कोकिलके कंठसे अधिक मधुर है? कह दे मां, उसमें वह माधुर्य है क्या? ॥ ६ ॥

* * *

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

शिक्षा कैसी हो?

आज समस्त देशमें शिक्षाके बारेमें बड़े जोरोंसे चर्चा चल रही है। यह ठीक भी है। स्वाधीनतासे पहले हम अपनी हर एक बुराईके लिये मैकालेकी शिक्षा-पद्धतिको दोष दिया करते थे। हमने व्यक्ति और राष्ट्रकी बहुत-सी बीमारियोंके लिये विदेशी ढंगकी शिक्षाको उत्तरदायी ठहराया। आज जब देशकी बागडोर हमारे अपने हाथोंमें है तो हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य हो जाता है शिक्षाका सुधार। आजके बालक ही कलके नागरिक होंगे, इन्हींमें भविष्यके जवाहरलाल और राधाकृष्णन छिपे हुए हैं। परंतु हमें केवल भविष्यके कर्णधारोंकी ही नहीं अपितु साधारण नागरिकोंकी भी देख-भाल करनी है। देशके बालक एक पहाड़ी नदीके अनुरूप हैं, अगर उन्हें ठीक रास्ता मिल गया तो वे पुण्यसलिला जाह्नवी बन सकेंगे और ठीक रास्ता न मिला तो वह देशका तहस-नहस करनेसे भी न चूकेंगे। यहांतक तो सब लोग सहमत हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण और असंतोषजनक है पर मतभेद तब पैदा होता है जब इसके स्थानपर कोई नयी प्रणाली चलानेकी बात की जाय।

हमें आगे बढ़नेसे पहले यह ख्याल रखना होगा कि बालक किसी एक सांचेमें ढलकर नहीं आते जिनके लिये बीजगणितके सूत्र बना दिये जायें जो हर परिस्थितिमें ठीक निकलें। हमें देश और काल की भिन्नता देखते हुए, परिस्थितियों और प्राप्त सुविधाओंको ध्यानमें रखते हुए अपनी कार्यप्रणालीमें परिवर्तन करने होंगे। पर हां, यह सब करनेसे पहले हम यह जान लें कि हम किस लिये शिक्षाका प्रसार करना चाहते हैं; बालकको, और आगे चलकर किशोरको हम क्यों पढ़ाना चाहते हैं? मैकालेकी शिक्षाका उद्देश्य था एक ऐसी जातिको पैदा करना जो अपनी चमड़ीके रंगसे तो हिंदुस्तानी हो पर अंदरसे पूर्णतया अंग्रेज हो। इस तरहसे शिक्षा पाये हुए काले अंग्रेज सरकारकी मशीनमें कल-पुर्जोंका काम दे सकते थे। आज उसके विपरीत देशमें उद्योग-धंधोंकी बाढ़ आ रही है और चारों ओरसे यह आवाज आ रही है कि हमारे यहां उद्योग-धंधोंकी शिक्षाको ही प्रधानता दी जानी चाहिये। इस तरह शिक्षा पाये हुए लोग बड़े अच्छे इंजीनियर बन सकेंगे, कल-कारखाने चला सकेंगे, मोटरें, रेडियो और हवाई जहाजतक बना सकेंगे पर . . . . . पर हम इसीमें शिक्षाकी इतिश्री नहीं मानते।

श्रीअरविंद कहते हैं कि किसी भी शिक्षा-प्रणालीमें हमें तीन चीजोंका खास ख्याल रखना चाहिये। १. मनुष्य — अपने सर्वसामान्य गुणों और अपनी विशेषताओंके साथ मनुष्य, २. जन-समाज या राष्ट्र और ३. समस्त मानव जाति। सच्ची शिक्षा-पद्धति वही हो सकती है जो व्यक्तिको उसकी सब क्षमताओंको विकसित करनेमें सहायता दे, उसे अपने जनसमूह, अपने राष्ट्रके मानस, आत्मा तथा जीवनके साथ ठीक संबंध जोड़ना सिखाये और समस्त मानवजातिके संबंधमें — जिसका वह पूर्णतया स्वतंत्र पर फिर भी अविच्छिन्न अंग है — उसके कर्त्तव्यकी ओर अंगुली-निर्देश करे। हम एक ऐसी समाजव्यवस्था चाहते हैं जिसमें व्यक्तिपर सामाजिक, समाजपर राष्ट्रीय और राष्ट्रपर अंतरराष्ट्रीय दबाव न हो, हर एक व्यक्ति और हर एक समूह अपने-आपमें स्वतंत्र होते हुए भी अन्य व्यक्तियों और समूहोंके साथ कदम मिलाते हुए अपनेसे बड़े समूहमें अपने उचित आसन पा सकें, इन सारी चीजोंमें एक सामञ्जस्य हो और एक सुन्दरता हो।

राष्ट्रोंके अस्तित्व और उनके व्यक्तित्वके संबंधके बारेमें विभिन्न धारणाएं हैं। कुछ वाद व्यक्ति-

को राष्ट्रकी मशीनका एक पुरजा मात्र मानते हैं जिसका अपना कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है जब कि कुछ अन्य वाद व्यक्तिके ही पुजारी हैं, उनकी दृष्टिमें राष्ट्र एक अनावश्यक, बल्कि हानिकारक व्यवधान है। हमारी शिक्षाके ऊपर हमारी इन धारणाओंका सीधा असर होगा। भारतवर्षका इस बारेमें एक अपना ही मन्तव्य रहा है और हमें देखना है कि क्या उस मन्तव्यको दृष्टिके सामने रखते हुए हमारे लिये सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा देना संभव है।

भारतीय मनीषी यह नहीं मानते कि आरंभमें केवल जड़तत्त्व ही था, विकास करते-करते एक दिन उसमें अचानक प्राणका संचार हो गया। और इसी प्रकार मन और बुद्धिका विकास हुआ। अगर यह धारणा ठीक मानी जाय तो मनुष्य 'हैवाने नातिक' (बोलनेवाला जानवर) या सोचनेवाला जानवर है। हम मनुष्यको जड़ प्रकृतिका एक पुष्प माननेको तैयार नहीं हैं जिसके अंदर सोचनेकी क्षमता, इच्छा-शक्ति और अहं पैदा हो गया है। अगर हम इस धारणाको मान लें तो हमारी शिक्षाका मुख्य उद्देश्य होगा व्यक्तिको अपनी क्षुधाओंको संतुष्ट करनेकी क्षमता प्रदान करना, उसकी इच्छाओं, वासनाओं और उसके अहंको पुष्ट करने तथा उनकी मांगोंको पूरा करनेके योग्य बनाना। उस अवस्थामें यदि हम ऐसी शिक्षा दे सकें जो व्यक्तिको समाजका एक सुनियंत्रित, उपयोगी अंग बना सके, जो समाजकी आमदनीको, उसके वाणिज्यको और उसकी प्रतिष्ठाको बढ़ा सके तो हमारा कर्तव्य पूरा हो जायगा।

परंतु भारतीय परंपरा इसको माननेके लिये तैयार नहीं है। ये सब चीजें मनुष्यके बाह्य जीवनसे संबंध रखती हैं, उनका अपना महत्त्व है। परंतु इनको मुख्य स्थान नहीं दिया जा सकता। भारतने हमेशा यह माना है कि हर व्यक्तिके केंद्रमें भगवान्‌का एक अंश विद्यमान है। वह सार्वभौम चेतनाका एक प्रतिनिधि है जो मन, प्राण और शरीरके चोलोंको अपनाये हुए है। हम व्यक्तिमें मन और बुद्धिका विकास अवश्य चाहते हैं; हम चाहते हैं कि वह कार्यक्षम हो, उसमें सौंदर्य-बोध हो, वह अपने प्राण और शरीरको पूरी तरह विकसित कर सके पर इन्हींको अपने लक्ष्यकी सीमा न मान ले। इन सबके ऊपर आत्मा विद्यमान है और इनको आत्माके चारों ओर रहते हुए उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्गपर प्रगति करनी चाहिये, उसके उच्चतम शिखरोंसे प्रेरणा लेकर जीवनके विभिन्न अंगोंमें सामंजस्य लाना चाहिये। यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ और परमार्थ होगा।

हमारी दृष्टिमें राष्ट्र एक लौह तंत्र, एक हथियारोंसे लैस समाज नहीं है जो जातीय अहंकी सेवामें तत्पर हो। हमारे लिये राष्ट्र एक सामूहिक जीवन और चेतना है जो अपना स्वभाव-स्वधर्म लिये हुए है, जो बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओंको लिये हुए है। वह अपने अंदर इन सबको लिये हुए है और फिर भी इन सबसे महान् है। जब हम शिक्षाकी बात करें तो हमारे सामने यह चित्र रहना चाहिये कि यहां मानव जातिमें सार्वभौम सत्ता ही प्रकट हो रही है। वही हमारे जीवन, हमारे मन और हमारे शरीरमें निहित है और उसके प्रत्येक भागको प्रगति करते हुए अपने अंदर उस चेतनाको प्रकट कर सकना चाहिये। इसलिये हमारी शिक्षा बालकको इस बातमें सहायता दे कि वह यह अनुभव कर सके कि वह उस परम चेतनाका एक अंग है, उसे यहां नाना प्रकारके अनुभव प्राप्त करने हैं, जीवन-संग्राममें भाग लेना है और साथ-ही-साथ अपने वैयक्तिक रंग-रूपको, अपनी सुरभिको बनाये रखना है, उसे वैविध्यपूर्ण समाजका एक स्वतंत्र अंग बनना है और अपनेद्वारा समाजको भी पूर्णतर बनाते हुए अपने-आपको और उसको उच्चतर चेतनाका समुचित वाहक बनाना है। सच्ची शिक्षा वही होगी जो मन, प्राण और शरीरमें इस प्रकारकी पूर्णता लानेमें सहायक हो, जो भूतकालकी प्राप्तियोंको पूर्णतया सुरक्षित रखे, भविष्यकी संभावनाओं और शक्यताओंको खिलनेका अवसर दे, व्यक्ति और राष्ट्रके आंतरिक और बाह्य जीवनको समृद्ध बनाये तथा मनुष्यके चरम लक्ष्य, आध्यात्मिक उत्थानकी ओर ले जाय।

एक स्पष्टीकरण :—

पुरोधाके किसी पिछले अंकमें छपी हुई एक लड़केकी कहानीके बारेमें हमारे पास यह शिकायत आयी है कि वह किसी बड़े लेखककी कहानीकी नकल है। स्पष्ट ही है कि एक संपादकके लिये यह जानना असंभव है कि उसके लेखकोंकी चीजें मौलिक हैं या नहीं। इसलिये हम लेखकोंपर विश्वास करके चलते हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे लेखक इस बारेमें ज्यादा सावधान रहेंगे।

'नयी कोंपलें' स्तंभमें जो कहानियां दी जाती हैं उनके लिये मौलिक होनेकी शर्त नहीं है। यह कहानियां छोटे बच्चोंकी लिखी हुई होती हैं। इनमें बहुतसी नानी या दादीसे सुनी हुई कहानियां होती हैं। इस स्तंभके लिये हमें केवल यही आग्रह होता है कि कहानियोंकी भाषा बच्चोंकी अपनी हो और कहनेका ढंग भी उनका अपना हो।

स्नेहम्

स्नेहत्तिल निन्नुदिक्कुन्नु — लोकम
स्नेहत्ताल वृद्धि तेटुन्नु
स्नेहम तान् शक्ति जगत्तिल् — स्वयं
स्नेहम् तानानन्दमार्कुम्
स्नेहम् तान् जीवितम् श्रीमन — स्नेह
व्याहति तन्ने मरणम्
स्नेहम् नरकत्तिन् द्विपिल् — स्वर्ग
गेहम् पणियुन् पटुत्वम्।

प्रेमसे जगत्की उत्पत्ति होती है, प्रेमसे ही उसकी वृद्धि होती है। प्रेम ही जगत्में शक्ति है और प्रेम ही सबको आनंद देता है। प्रेम ही जीवन है और प्रेमका अभाव ही मरण है। प्रेम ही नरकको स्वर्ग बनाता है।

—मलयाली कवि कुमारनाशन

श्रीअरविंद-वाणी

यौगिक अनुभव और भौतिक विज्ञानके आक्षेप

तुमने मुझसे पूछा है कि क्या तुम्हें स्वीकार करनेसे पहले जांचनेकी प्रवृत्तिका परित्याग कर देना चाहिये और योगमें प्रत्येक चीजको स्वयंसिद्ध मानकर स्वीकार कर लेना चाहिये — और 'जांचने'से तुम्हारा अभिप्राय साधारण तर्कबुद्धिद्वारा जांचना है! मैं इसका बस एक ही उत्तर दे सकता हूं और वह यह कि योगके अनुभव अंतर्जगत्की चीजें हैं और वे अपने निजी विधि-विधानके अनुसार चलते हैं; इनकी अपनी ही दृष्टि-शैली है, विचार करनेका अपना निजी मानदंड है और सब कुछ अपना और अलग है और ये सब चीजें न तो स्थूल इंद्रियोंके क्षेत्रकी हैं और न बौद्धिक या वैज्ञानिक अनुसंधानके जगत्की। जिस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान स्थूल इंद्रियोंके क्षेत्रको अतिक्रांत कर जाता है और अनंत तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्मके क्षेत्रमें प्रविष्ट हो जाता है, जिसके विषयमें इंद्रियां कुछ कह नहीं सकतीं, कुछ परीक्षण नहीं कर सकतीं — क्योंकि हम परमाणुको देख या छू नहीं सकते, इंद्रिय-मनकी गवाहीके द्वारा यह नहीं जान सकते कि परमाणुकी सत्ता है या नहीं या उसकी गवाहीके आधारपर यह निश्चय नहीं कर सकते कि वास्तवमें पृथ्वी सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करती है या सूर्य पृथ्वीके चारों ओर, जैसा कि नित्य निरंतर हमारी इंद्रियां और हमारे समस्त स्थूल अनुभव हमें बताया करते हैं, — उसी प्रकार आध्यात्मिक जिज्ञासा भी वैज्ञानिक या बौद्धिक अनुसंधानके जगत्से परेकी वस्तु है और आध्यात्मिक अनुभवोंसे अवगत तत्त्वोंकी जांच साधारण प्रत्यक्षमूलक बुद्धिद्वारा नहीं हो सकती और न यह निर्णय ही हो सकता है कि ये तत्त्व वास्तवमें हैं या नहीं और इनका नियम क्या है, स्वरूप क्या है। जैसे विज्ञानमें, ठीक वैसे ही योगमें भी अनुभव-पर-अनुभव प्राप्त करने होते हैं, गुरुद्वारा उपदिष्ट या प्राचीन शास्त्रोंद्वारा निर्धारित मार्गोंका निष्ठापूर्वक अनुसरण करके हमें अपने अंदर एक संबोधिमूलक विवेक-शक्ति विकसित करनी होती है जो विभिन्न अनुभवोंको परस्पर मिलाकर देखती है कि उनका अभिप्राय क्या है, उनमेंसे प्रत्येक कहांतक और किस क्षेत्रमें ठीक है, पूर्णके अंदर प्रत्येकका क्या स्थान है, आपाततः विरोधी प्रतीत होनेवाले अन्य अनुभवोंके साथ उसे कैसे समन्वित या संबद्ध किया जा सकता है इत्यादि-इत्यादि, और यह विकास तबतक करते जाना होता है जबतक कि हम आध्यात्मिक व्यापारोंके विशाल क्षेत्रमें एक सुदृढ़ ज्ञानके साथ संचरण न करने लगें। आध्यात्मिक अनुभवको जांचनेकी सच्ची कसौटी बस यही है। स्वयं मैंने दूसरे प्रकारकी प्रक्रियाका भी प्रयोग करके देखा है और उसे सर्वथा असमर्थ और अनुपयुक्त पाया है। किंतु, यदि तुम स्वयं इन अनुभवोंमेंसे गुजरनेको उद्यत न हो, — क्योंकि विशिष्ट-आध्यात्मिक-शक्तिसंपन्न पुरुष ही ऐसा साहस कर सकते हैं, — तो तुम्हें गुरुके बताये मार्गका अनुसरण करना ही होगा, जैस विज्ञानमें भी, उसके संपूर्ण क्षेत्रमेंसे गुजरने और उसका स्वयं प्रयोग करनेके बदले तुम एक अध्यापकका आश्रय लेते हो — कम-से-कम तबतक तो अवश्य ही जबतक तुम पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त नहीं कर लेते। यदि इस प्रकारके पथानुसरणको स्वयंसिद्ध मानकर स्वीकार करना कहा जाये तो, हां, तुम्हें इसी प्रकार स्वीकार करना होगा। कारण, मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि किन युक्तिसंगत कसौटियोंके आधारपर तुम साधारण बुद्धिको उससे परेकी वस्तुओंका निर्णायक बनाना चाहते हो।

तुमने 'व' या 'स' के हवाले दिये हैं। उनके वचनोंको मूल्य देनेसे मैं पहले यह जानना चाहूंगा

कि उन्होंने अपने आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभवोंको जांचनेके लिये वस्तुतः क्या-क्या किया? 'व' ने अपने आध्यात्मिक अनुभवोंके मूल्यकी जांच कैसे की — इनमेंसे कुछ तो साधारण प्रत्यक्षमूलक मनके लिये इन चमत्कारोंसे आधिक सुविश्वसनीय नहीं हैं जो कुछ प्रसिद्ध योगियोंके नामके साथ जुड़े हुए हैं। मैं 'स' के संबंधमें कुछ नहीं जानता, परंतु उसकी कसौटियां क्या थीं और उसने उनका प्रयोग कैसे किया? उसकी प्रणालियां क्या हैं, उसका मानदंड क्या है? मैं तो समझता हूं कि कोई भी साधारण व्यक्ति दीवालमेंसे बुद्धकी छाया निकालनेको या हयग्रीवके साथ आध घंटेतक वार्तालाप करनेको, किसी प्रकार परीक्षा करनेपर भी, सच्ची बात स्वीकार नहीं करेगा। ये तथ्य उसे या तो स्वतःप्रमाणके रूपमें या एकमात्र 'व' के कथनप्रमाणके रूपमें स्वीकार करने होंगे। दोनोंका एक ही अर्थ हुआ। नहीं तो स्वयं-प्रमाणके आधारपर, इन्हें ऐसी भ्रांतियां या कोरी मानसिक मूर्त्तियां समझकर त्याग देना होगा जिनमेंसे एकके साथ श्रवण-भ्रम भी जुड़ा हुआ है। मैं नहीं समझ पाता कि वह इनकी "परीक्षा" कर ही कैसे सकता है। अथवा कैसे मैं 'निर्वाण' के अपने अनुभवको साधारण बुद्धिकी कसौटीपर कसता। भला साधारण प्रत्यक्षमूलक बुद्धिका आश्रय लेकर निर्वाणके संबंधमें मैं किस निर्णयपर पहुंच सकता था? इसकी सत्यताकी परीक्षा मैं कैसे ले सकता था? मैं तो उसकी कल्पना करनेमें भी असमर्थ हूं। मैं एक ही बात कर सकता था और वही मैंने की भी, वह यह कि इसे अनुभवके प्रबल एवं उपपन्न सत्यके रूपमें स्वीकार किया, इसे पूरा-पूरा कार्य करनेको छोड़ दिया जिससे यह पूरे प्रयोगात्मक परिणामोंको प्रकट करता गया जबतक कि मुझे इतना पर्याप्त यौगिक ज्ञान नहीं हो गया कि मैं इसको इसके योग्य स्थानपर स्थापित कर सकूं। आखिर, आंतरिक ज्ञान या अनुभूतिके बिना तुम या कोई और दूसरोंके आंतरिक ज्ञान और अनुभूतिको कैसे जांच सकेगा?

* * *

श्रीमातृ-वाणी

असत्यपर विजय

असत्यके अधिपति आज बेचारी मानवजातिपर प्रायः पूर्ण रूपसे अधिकार जमाये हुए हैं। मनुष्यकी निम्नतर प्राण-शक्ति एवं निम्नतर प्राणिक सत्ता ही नहीं अपितु उसका संपूर्ण मन इनके अधीन है। वह अनगिनत प्रकारसे इनकी पूजा करता है, क्योंकि ये अपनी धूर्त्ततामें अत्यंत प्रवीण हैं और नाना ढंगके लुभानेवाले वेषोंमें अपने स्वार्थोंको सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपने असत्यसे ऐसे चिपट जाते हैं जैसे यह कोई खजाना हो, इसे वे जीवन की सुन्दरतम वस्तुओंसे भी अधिक स्नेहपूर्वक पालते-पोसते हैं। इसकी रक्षाके संबंधमें शंकित होकर वे इसे अपने अंदर सावधानीसे बहुत गहरा गाड़ देते हैं; किंतु जबतक वे इसे बाहर निकालकर भगवान्‌को समर्पित नहीं कर देंगे तबतक उन्हें सच्चा सुख कभी नहीं प्राप्त होगा।

निःसंदेह इसे बाहर लाकर प्रकाशके आगे रख देनेका कार्य ही अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होगा और वह अंतिम विजयका मार्ग प्रशस्त कर देगा। प्रत्येक असत्यको खोलकर रख देना अपने-आपमें एक विजय है — दोष स्वीकार करनेका प्रत्येक कार्य अंधकारके एक-एक अधिपतिके ध्वंसके समान है। अपने दोषको मनुष्य अपने प्रति स्वीकार कर सकता है, इस शर्त्तपर कि यह कार्य वह पूरी सचाईके साथ करे, यह नहीं कि वह जरा सा खेद प्रकाशित करे और वह खेद भी अगले क्षण

भूल जाय तथा उसमें गलतीको पुनः न करनेके अटूट निश्चयका भी बल न हो। अथवा वह गुरुके रूपमें मूर्त्तिमंत भगवान्के आगे अपना दोष स्वीकार कर सकता है। सीधा गुरुके सामने अपना दोष स्वीकार करनेका परिणाम यह होता है कि तुम्हारा निश्चय तब तुम्हारा अपना नहीं रहता, क्योंकि, यदि तुम सच्चे हो तो भगवान्का आदेश तुम्हारे पक्षमें हो जाता है। इसका अभिप्राय समझनेके लिये मैं तुम्हें एक निजी अनुभव सुनाती हूं। यह अनुभव उस समयका है जब मैं पांडिचेरीमें श्रीअरविन्दसे पहले-पहल मिली थी। मैं गहरे ध्यानमें थी, अतिमानसमें वस्तुओंका स्वरूप देख रही थी, उन वस्तुओंका जो भविष्यमें जन्म लेनेवाली थीं पर जो किसी कारण प्रकट नहीं हो रही थीं। जो कुछ मैंने देखा था वह श्रीअरविन्दको बताया और उनसे पूछा कि क्या ये चीजें प्रकट होंगी। उन्होंने उत्तरमें केवल "हां" कहा। उसी क्षण मैंने देखा कि अतिमानसने पृथ्वीका स्पर्श किया और चरितार्थ होना शुरू हो गया। यह पहला अवसर था जब मैंने सत्यको वास्तविक रूप देनेकी शक्ति अपनी आंखों देखी: ठीक यही शक्ति तुम्हें सत्यकी उपलब्धि करायेगी जब तुम पूरी सचाईके साथ इसकी शरणमें आओगे, यह कहते हुए कि "इस असत्यसे मैं मुक्त होना चाहता हूं", और तुम्हें इसका उत्तर मिलेगा — "हां"।

मनुष्य अपने चिंतनका स्वामी कैसे बने?

पहली बात। आत्म-निरीक्षणद्वारा अपने-आपको समझनेकी कोशिश करते हुए मनुष्य इस बातका पूरा महत्त्व अनुभव करे कि हमारे कर्म हमारे विचारोंकी ही ठीक अभिव्यक्ति होते हैं और जबतक अपनी मानसिक क्रियापर हमारा पूरा नियंत्रण नहीं हो जाता, ये सभी प्रकारके बाह्य प्रभावों (वेदनों और प्रेरणाओं) की यांत्रिक प्रतिक्रियामात्र रहते हैं। इस कारण मनुष्य 'अपना' नहीं होता और जबतक वह अपने विचारोंका स्वामी नहीं बन जाता तबतक वह किसी प्रकार भी अपना उत्तरदायित्व नहीं ले सकता।

दूसरी बात। मनुष्यमें अपनी मानसिक वृत्तियोंको सफलतापूर्वक निर्धारित करनेका दृढ़ संकल्प हो।

तीसरी बात। वह अपने विचारोंको जाननेके लिये, उनके स्वाभाविक प्रवाहसे परिचित होनेके लिये और विशेषकर जो उसके वेदनों-संबंधी तथा भाव-भावना-संबंधी स्वभावसे गूढ़तर सहानुभूति रखते हों, उन्हें अच्छी तरह पहचाननेके लिये उनका निरीक्षण करे।

चौथी बात। मनुष्य अपने अंदर उस विचारको ढूंढ़े जो सबसे अधिक उच्च, सबसे अधिक विशाल, सबसे अधिक पवित्र तथा सबसे अधिक निष्काम प्रतीत होता हो और उसे ही — जबतक कि उसके स्थानपर वह एक अधिक श्रेष्ठ विचार न स्थापित कर ले — केंद्र बना ले जिसके चारों ओर वह मानसिक समन्वयकी रचना करे, उसे आदर्शमानक बना ले जिसके प्रकाशसे बाकी सब विचारोंको समझे-बूझे और जांचे अर्थात् उन्हें स्वीकार किंवा उनका त्याग करे।

पांचवीं बात। मनुष्य अपने-आपको क्रमपूर्वक तथा दैनिक रूपसे एक मानसिक संयमके अधीन रखे। इस विषयपर जो शिक्षा और उपदेश मिलते हैं उनमेंसे उस शैलीको ढूंढ़े जो सबसे अधिक सार्थक प्रतीत होती हो और फिर उसका पूर्ण भावसे, नियमपूर्वक, शक्ति और धीरजके साथ पालन करता जाय।

* * *

प्रेम और मृत्यु

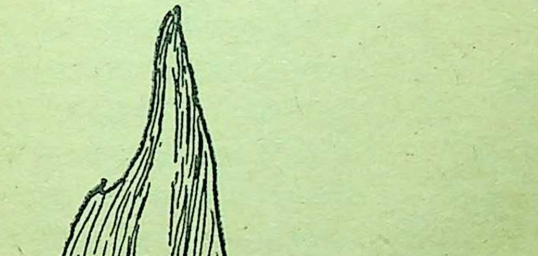

(२)

हर क्षण प्रियंवदाके विचारोंसे घिरा उसका अमर मन दुःखकी अतल गहरायीमें डूब-सा गया। जैसे दावानल लगते ही जंगलमें वृक्षोंकी शाखाएं जलती मशाल बन जाती हैं और आकाशकी ओर लपटें फेंककर दुःखभरी महिमासे चीत्कार करती हैं वैसे ही रुरुका हृदय दुःखकी महिमासे गौरववान् होकर चीत्कार कर रहा था। गम्भीर दुःखसे पावन हुए अपने सुन्दर मुखको ऊपर उठा कर उसने आकाशको देखा।

रुरुकी दृष्टिसे विधाता कांप उठा और देवलोक भी उसके लिये रो पड़ा। उसके मौनसे देवता भी भयभीत हो उठे। देवोंके आग्रहसे दिव्य शिखरोंसे उतर, अमर अग्नि-देव विद्युत्-वेगसे अश्वत्थ वृक्षके पास

आये। अनेक शिखाओंकी संहारक-वाणी बोल उठी, "हे विराट् वृक्ष! तेरी छायामें लश्कर-के-लश्कर आश्रय लेते हैं। आज उनसे बढ़कर एक देवताको आश्रय दे और एक नयी ख्याति पा, एक प्रज्वलित देवता का निवास-स्थान बन। ऋषि-पुत्र रुरुके हृदयमें दुःखकी बाढ़ रुकी हुई है और देवगण भयभीत हो रहे हैं। उसके शापके भयसे पनपती नयी सृष्टिके लिये पृथ्वी कांप रही है। कहीं ऐसा न हो कि नित्य नूतन सर्जनका ईश्वर, प्रेम उलटा रूप ले लें और वेदनाकी सजा भोगता रहे। हे अश्वत्थ! उसमें रुद्र-भाव जगा और उस भावको अपनी ओर खींच। तू मेरा सिंहासन बन जायगा। तू हमेशा वेदना सहेगा फिर भी गरिमायुक्त रहेगा। दिव्य अग्निको धारण करनेके लिये वेदनाका यह मूल्य कम ही है।" पवित्र और नित्य युवा संहारककी वाणी रुकी और मूक वृक्षराजने मौन स्वीकृति दे दी।

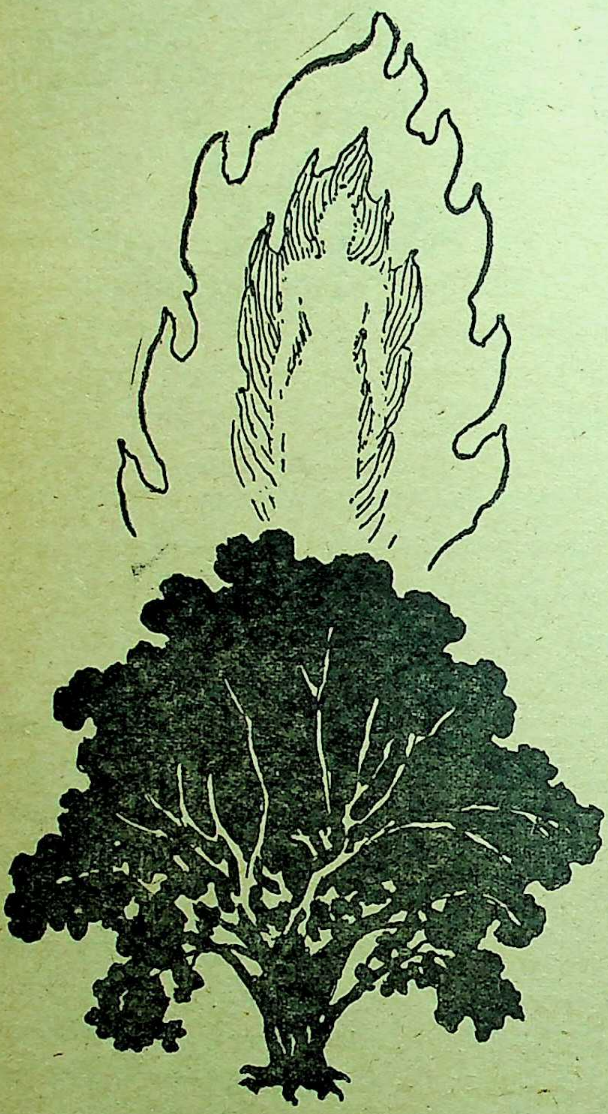

उस दिन रुरु घूम-घूमकर दुःखकी विस्मृतिमें बहक गया था। मधुर विचारों, कानके पास फुसफुसाते शब्दों तथा दृश्यचित्रोंमें वह ऐसा खो गया कि उसके पागल दिलने समझा कि प्रियंवदा जीवित है। इस अवस्थामें रुरु दोपहरके समय अवश्त्थके पास आ गया। धीरेसे झुककर पेड़के कोमल पत्तोंने उसके कपोल सहलाये, उसकी घनी केशराशिको छुआ। रुरु सस्मित मुड़ा। एक स्वर्गीय क्षणके लिये उसने समझा प्रियंवदा लौट आयी। वह बहुत बार इसी तरह चुपके-चुपके पीछेसे आकर अपनी छोटी-छोटी उंगलियोंसे उसके बालोंको सहलाती थी और उसके लंबे बाल हवासे उड़-उड़कर रुरुको जकड़ लेते थे। प्रियंवदाकी गरम-गरम सांस बसन्तकी मंद समीर-सी सुगन्धित लगती थी। आश्चर्यचकित रुरु उन्मत्त-सा होकर उस स्वर्णिम शरीरको आलिंगनमें बांध लेता था।.... पर आह....वह कहां थी? वहां तो भयसे कांपता अपराधी वृक्ष ही खड़ा था। दुःख दुगना हो गया और रुरुके मुखका रंग गहरा हो उठा। तपस्वी पूर्वजोंकी तपःशक्ति उसके हृदयमें प्रज्वलित हो उठी। मौन तोड़कर वाणी अग्नि-शिखासी भड़क उठी, "हे अश्वत्थ! तूने जानबूझकर अपने साथी-वायुसे मिलकर मेरे शोकका उपहास किया है, जा, तुझे भी हवाके शीतल स्पर्श या अपने हरे-भरे पत्तों-पंखुड़ियोंका सुख न मिलेगा। तेरे अपराधी पत्ते आगमें झुलसते हुए भी जियेंगे। जबतक तेरी शापित छायाके पाससे होकर आर्योंके रथ गड़गड़ाते हुए समरांगणमें जाते रहेंगे और जबतक कविकुल-माता सरस्वतीकी स्वर लहरी अनार्योंतक न फैलेगी तबतक तू इसी तरह जला कर।" रुरुकी वाणी मूक हो गयी और विशाल

वृक्ष अपने विधानको सुनकर पत्ते-पत्तेद्वारा कराह उठा। फिर उसमेंसे धुंआ उठने लगा। क्षणभरमें तनेसे लपलपाती हुई आगकी लपटें उठीं और बल खाती हुईं हरे-भरे पत्तोंमें फूत्कार करती हुईं घूम गयीं। सुसज्जित रथमें हुताशन आकाश-मार्गसे आये। रथसे कूदकर शाखाओंपर लपके और आकाश अग्निकी लपटोंसे आच्छादित हो गया। वेदनासे धू-धू करता वृहद् वृक्षराज तड़पते हुए भी खड़ा-का-खड़ा रह गया। उसका आधा रंग हरे-भरे पत्तोंसे पार्थिव लगता था किंतु दूसरा अलौकिक आभासे मंडित उठती हुई अग्निशिखामें लिपटा था।

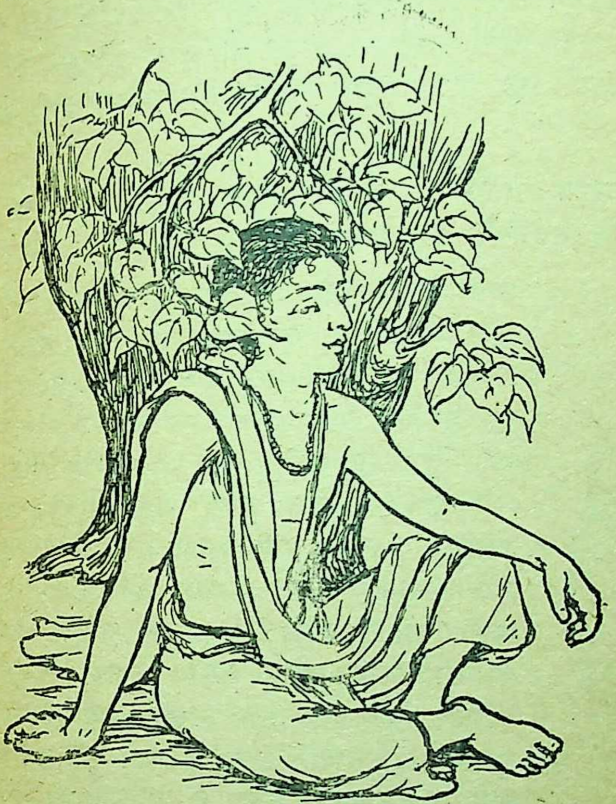

तपःशक्तिके आवेगसे कांपते, शोकसे अभिभूत रुरुने सूर्यकी ओर हाथ उठाकर चीत्कार किया, "आह प्रियंवदा!" उस परिचित प्रेमपूर्ण शब्दसे रुरुके मानस-पटलपर अनेक शब्द-चित्र उभरते मिटते गये। कितनी बार उस प्रिय नामसे उसे पुकारा था। उसे वह प्रसंग याद आया जब प्रियंवदा रूठकर मुंह फेरे चंपाके पास खड़ी थी। रुरुने रौबभरी आवाजमें पुकारा, मानो किसी सुन्दर प्रमादी दासीको बुला रहा हो। प्रियंवदाने धीरे-धीरे सिर मोड़ा, फिर लजाती-शरमाती आत्मसमर्पण करती हुई उसपर आ गिरी। प्रेयसीका गर्म मुख उसके पैरोंपर था, हाथ प्यारे-प्यारे स्पर्शसे रिझा रहे थे। कभी-कभी वह उसके लंबे नामको बड़े अनुनय-विनयसे लेता था, तब रूठी हुई प्रिया दौड़कर उसके पास आ जाती, आंखोंमें पश्चात्तापके आंसू होते और होठ चुंबनोंसे भी अतृप्त। कभी छोटे-मोटे कामके लिये बुलावा, कभी यूं ही तंग करनेके लिये पुकारना। रोज-रोजका यही संबोधन था, फिर भी कभी खला नहीं, उसका जादू मिट न पाया। सब कामकाज छोड़कर रुरुकी पुकार सुनते ही हांफते हुए आना, खुशीसे चमकती आंखें, आतुर होंठ; इन सबकी याद ताजा हो गयी। किसी समय शांतिमें उसके पास बैठे-बैठे जपकी तरह वह प्रेयसीका नाम उसीके कानोंमें फुसफुसाता। या उसकी शांत गंभीर दृष्टिमें उन्माद जगाता था। कभी नदीके घाटपर लुभाकर ले जाता, कभी मीठी नींदमें सोयी प्रियाके नामका उच्चारण करता रहता। रतिके उन्मादमें टूटे स्वरोंमें उसका नाम दोहराता रहता। यही सब स्वर-चित्र उसके कर्ण-पटपर बाढ़में बढ़ती नदीसे टूटे पड़े। अति सुखद स्मृतियोंके असह्य भारसे टूटते दिलसे वह कराह उठा, "ओ मृत प्रियंवदा! तू मेरे शोकमें अभी भी जीवित है। ओ मेरेमुरझाये पुष्प! हाय, मैं सिर्फ उस निर्दोष वृक्षको मार सका, पर जहां शक्तिका काम था वहां निर्बल ही बना रहा। हमारे पूर्वज भृगु जिनके पवित्र वीर्यसे हमारा कुल उत्पन्न हुआ, ऐसे न थे। भृगुके पुत्र और मेरे पिता भी इतने दुर्बल न थे। उन्होंने अपनी माता पुलोमाके गर्भसे सूर्यकी भांति प्रकट हो दाहक दृष्टिसे मांका अपहरण करनेवाले पुलोमा राक्षसको भस्मीभूत कर दिया था। ऐसे प्रतापी पूर्वजोंका पुत्र मैं, रुरु, निकम्मा निकला।

मृत्यु ! तू तारोंभरे आकाशके नीचे पृथ्वीपर अपना मुंह नहीं दिखा सकता। प्रेमसे हारनेके भयसे तू अवगुंठनमें मुंह छिपाकर हमारे स्वजनोंका अपहरण करता है। हाय ! तेरे अंधियारे महलसे कोई लौटा नहीं जो हमें रास्ता भी बता सके।.....अगर प्रेमीके शोकमें शक्ति है तो मैं उसी शक्तिसे दैवी सत्ताका पृथ्वीपर उतरनेके लिये आह्वान करता हूं। प्रेमकी तपस्यासे जागृत शक्तिसे मैं उसे पुकारता हूं। ओ काले मृत्युके प्रकाश-पुंज शत्रु ! उतर और मुझे उसके धुंधले द्वारतक ले जा। मैं अग्निसे भी प्रचंड आगमें झुलस रहा हूं और मेरी शय्या तलवारकी नोकसे भी ज्यादा दुःखदायी है।" रुरु चुप हो गया और स्वर्ग रोमांचित हो उठा। दूर दिगंत अदृश्य पंखोंकी फड़फड़ाहटसे कंपित हो उठा।

रुरु आवेशमें आगे बढ़ता गया और शामतक पत्तोंसे ढके, हरे-भरे शीतल स्थानपर पहुंच गया। वहां एक वृक्ष अप्सरा और गान्धर्व लोकके अलौकिक वायुमंडलमें खोया-सा खड़ा था। उसकी शाखाओंके बीच-बीचमेंसे नीला आकाश झांक रहा था। रुरु तनेके सहारे खड़ा रहा। ऊंची शाखापर बैठा एक तोता जोरसे चीख उठा। शाखापर एक कुंदनवर्ण किशोर खड़ा था जिसका ओजस्वी शरीर अर्ध-नग्न था। उस मधुर और कोमल शरीरका प्रत्येक अंग सुन्दर था। प्रत्येक अंग आंखोंको चुंबककी भांति अपनी ओर खींचता था और सम्मोहित हृदय निर्बल बन जाता था। किशोर हाथोंमें धनुष लिये था पर मनुष्य धनुषधारीकी तरह नहीं। उसके धनुषकी प्रत्यंचा कांपती रहती थी और उससे मधुमक्खियोंके गुंजनकी मर्मर ध्वनि निकलती थी। एक अनोखी सुगंध वातावरणमें फैली हुई थी जिसमें सांस लेना भी मधुर खतरा-सा लग रहा था। किशोरने अपना मुख रुरुकी ओर फेरा। उसका एक-एक कदम जादूका पाश था। इस जंगलमें मारा-मारा क्यों फिरता है ? तेरा सुन्दर मुख तीव्र दुःखसे क्यों व्यथित है ? तेरे ओठों और विशाल नेत्रोंमें भयंकर दुःखके उज्ज्वल सौंदर्यको देखनेके लिये ही देवोंने तेरे हृदयको मथा है। असुरभूमिमें जैसे अत्याचारी दूसरोंके कष्ट देखकर सुख पाते हैं, और अत्याचारसे ही अपना सामर्थ्य जताते हैं वैसे ही . . . . . देवोंने तुम्हारे साथ किया है। धरतीकी मधुर ध्वनि और शस्य श्यामल सौंदर्यको भूलकर जिस सुन्दरीमें तुम्हारा मन रम गया है उस तन्वीके ओठोंमें निश्चय ही मधु होगा और उसके वक्षमें जादू।" देवतासे वशीभूत रुरु न चाहते हुए भी बोल उठा, "कामदेव ! सृष्टियोंमें आग लगानेवाले, तुम्हारे क्रूर उज्ज्वल सौंदर्यसे मैं तुम्हें पहचानता हूं। आह ! मेरा दुःख और मेरी कामना बढ़ानेके लिये उसके विषयमें क्यों पूछते हो ? अगर यह दृश्य मेरी अभागी आत्माकी प्रवंचना नहीं है तो तुम वही क्रूर मधुर देव हो — महान् प्रेम ! उसकी मां तुम्हारी ही एक अप्सरा थी।" जो रोमांचित शाश्वत स्मित बसन्तको जन्म देता है उसी स्मितको ओठोंपर लाते हुए रति प्रेमी बोला, "मानव ! मैं वही हूं। मैं वही मदन हूं जो तारोंमें द्युति है और

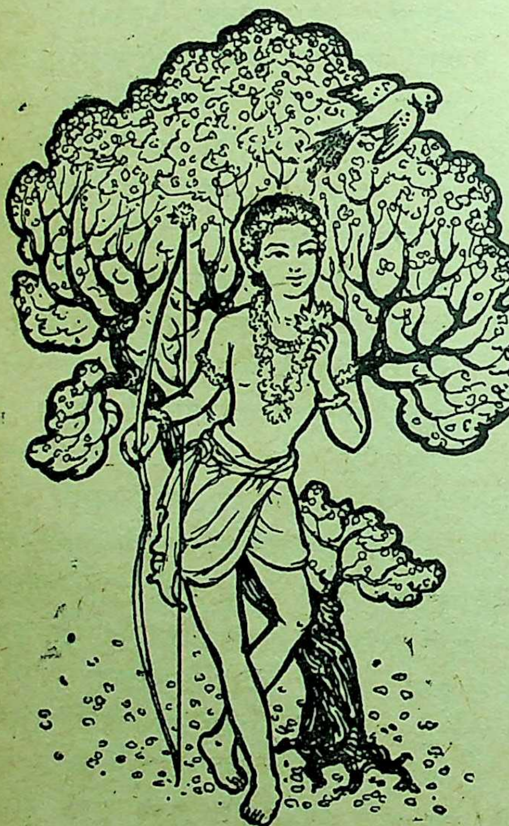

जो जीवनके विस्तृत फलकपर छाया और प्रकाश, आनंद और अश्रुके चित्र खींचता है। मैं ही सामान्य क्षणको अद्‌भुत बनाता हूं, सामान्य वाचाको जादूका असर देता हूं। मैं ही विपरीत आत्मओंको मिलाकर एक जीवनको दूसरेके साथ बांध देता हूं। एक ही क्षणमें आकस्मिक मिलन या धीरे-धीरे बढ़ते हुए जादूके पीछे भी मैं ही होता हूं। मैं किशोर वरको वधूके कांपते हृदयकी ओर उड़ा ले जाता हूं, देवोंको मर्त्य दुःखोंके पीछे पागल बना देता हूं। अनेक घूरती जलती आंखोंके सामने स्वयंवरमें प्रसिद्ध, सुदर्शन राजाओंके बीचमें भी भयसे व्याकुल विवश कुमारी राजकन्याको एक अनदेखे मुखकी ओर धकेलता हूं; जीवनका आनंद मेरे द्वारा आता है। गृहिणी मेरे कारण गृहमें संतुष्ट और व्यस्त रहती है और खुशी-खुशी आज्ञा-पालन करती है। वह बड़े आनंदसे अनथक सेवा करती है और उसके ओठोंपर स्मित थिरकता रहता है और आंखोंमें पूजा-भाव। पति भी मेरे कारण पत्नीके लिये बाहुपाश फैलाये रहता है। वह उन्हीं पुराने संबोधनोंसे कभी नहीं थकता। वही कुंतल केश उसे रोमांचित करते हैं, वही चिर-परिचित आकार उसे ऊष्मासे भर देते हैं। इतना ही नहीं, प्रेमके अन्य उज्ज्वल रूप और अन्य सुखी, सुकुमार भाव मेरे चारों ओर मंडराते हैं। मैं भाईके दिलमें बहिनके लिये पुनीत प्रेम जगाता हूं, बहिनके हृदयका आवेग और आकर्षण भाई और अन्य स्वजनोंके प्रति दौड़ता है। अपार्थिव प्रेमके प्रतीक-सम युवती मांकी आंखोंमें पार्थिव गंभीर और तीव्र प्रेमकी दृष्टि लाता हूं। शिशु हृदयमें माता-पिताके लिये भक्ति जगाता हूं। मेरे इन गुणोंके कारण लोग मुझे पूजते हैं। ये हैं मेरे शांत गौरवशाली बाणोंके गुण, लेकिन मेरे पास प्रबल दाहक और प्रचण्ड तीक्ष्ण बाण भी हैं। उनसे मैं दृढ़ हृदयको भी चंचल और विवश बना देता हूं। पत्थरसे कठोर दिलको पिघला सकता हूं। आंसुओंकी झड़ी लगा सकता हूं या मौन कटुता और निर्दय पीड़ा भी दे सकता हूं। दयालु दिलमें खूनकी प्यासी ईर्ष्या जगाकर उसे पत्थर-सा कठोर बना देता हूं। असंयत आत्मामें वैरका बीज बोता हूं। और उससे असंभव क्रूरताके काम कराता हूं। मैं ही ठंडी लालसा और भयंकर चांचल्य देता हूं। मानव मनमें ऐसा प्रेम जगाता हूं जो द्वेषका ही दूसरा रूप होता है। मनुष्योंमें अमानुषिक हिंसा, असंतुष्ट, उच्छृंखल वांछा, मौत-सा अंधा और तलवार-सा बहरा आवेग मेरे ही बाणोंका काम है। मर्त्य! सब गहरी इच्छायें और असीम स्पृहायें मेरी हैं। मैं यह सब कर सकता हूं।" वह जैसे-जैसे बोलता जाता था वैसे-वैसे उसका मुख असीम सम्मोहनसे अधिक अद्‌भुत बनता जा रहा था। अपने अंदर छिपे अमरत्वकी झांकी देते हुए उसके पार्थिव दीखनेवाले अंग सुकुमार दीप्तिसे चमक उठे।

पर तुरंत असंतोषका भ्रू भंग करके वह बोला, "मैं यह सब कर सकता हूं। बड़े-बड़े देवता भी मेरी शक्तिको जानते हैं, पर मृत्युके साथ मुठभेड़ करते वक्त मैं बुरी तरह पछाड़ खा जाता हूं और मुझे अपने स्फूर्तिमान देवत्वपर शंका होने लगती है। मनुज! मैं तारोंकी रोशनी हूं, फूलोंकी बहार हूं और वह अनामी सुगन्ध हूं जो समस्त विश्वमें फैली हुई है, परन्तु काल मुझसे भी पुराना है। वह मेरे पीछे-पीछे रातको लिये अपनी ठंडी बृहद छाया फैलाता आता है। मृत्यु-पथ कठिन है और उस पथपर चलना मर्त्य चरणोंके लिये प्रायः असंभव है। फिर भी मनोहर युवक! अगर तुझे जाना ही है, अगर तूने दृढ़ संकल्प किया है, (और मैं समझता हूं कि तेरी आत्मा मजबूत होगी क्योंकि इतने गहरे विषादको भी सह सकता है) तो सुन! प्रेमसे सुसज्जित होकर दुःसाहसके लिये मनको फौलाद-सा बना ले। फिर भी मृत व्यक्तिको जीवित मनुष्यके बाहुपाशमें लानेसे पहले कितना कठोर सौदा करना पड़ेगा यह भी सुनता जा . . . . ." देव इतना ही बोल पाये थे कि बीचमें ही आवेशपूर्ण आरक्त मुख, आतुर आंखोंसे देखते हुए, कांपते स्वरमें प्रेमी रुरु बोल उठा, "ओ महान् प्रेम! ओ सलोने प्रेम! अगर शारीरिक या मानसिक सामर्थ्यसे उसे रोका जा सके, आत्मबलसे या मधुर शब्दोंसे जिन्हें सुनकर पत्थर भी पिघल जाये या मधुर स्वर लहरीसे उसका सामना किया जा सके तो मैं महान्

संगीत रचाऊंगा और अनुपम वाणीसे उसे रोका जाये तो ऐसी वाणी उतार लाऊंगा। मैंने सुना है कि सरस्वतीकी वाणी सुनकर देवताओंके हृदयसे आंसू निकल आते हैं। मैं भी वही तान छोड़कर उसे चुनौती दूंगा। उसे हर तरह पकड़कर उसकी अमानवीय शक्तिसे अपनी मानवीय शक्तिको भिड़ाकर उसे हरा दूंगा। देव सौदा कितना सरल है! अजस्र अश्रुधाराओंसे मूल्य चुकाऊंगा या सदियोंतक शारीरिक पीड़ा और आत्माकी वेदना सहकर ऋण उतारता रहूंगा ताकि मेरे मुखपर उसका सुकोमल हाथ फिरसे आ सके, उसके घुंघराले बाल मुझे घेर लें और मेरे वक्षपर उसका धड़कता हृदय फिर एक बार स्पंदित हो सके।

दयार्द्र स्मितके साथ महान् देव बोले, "ओ मूढ़ प्रणयी! अश्रुधारासे कठोर मृत्युको संतुष्ट करना असंभव है। उसे तेरी विरह व्यथापर जरा भी दया न आयगी। यह भी समझ ले कि उसके पाषाण नेत्र संगीतकी माधुरीसे द्रवित न होंगे और न ही उसके कान मीठे शब्दोंको स्वीकारेंगे। तू एक पुष्पको भी मुरझानेसे नहीं रोक सकता फिर उस निष्ठुर छायासे कैसे लड़ेगा? देवगण मनुष्यसे एक ही चीज मांगते हैं: वह है बलिदान। उसके बिना कोई सिद्धि नहीं मिलती, कोई मुकुट नहीं मिलता। कई तरहके यज्ञ होते हैं जिनमें लाजाकी, लोमकी, पवित्र फूलोंकी आहुति दी जाती है। यही नहीं, प्रार्थना, रक्त और मानसका अदम्य विस्तार, अपने समस्त कार्यों और सब विचारोंकी पवित्र सुगंध —— इन सबकी भी आहुति दी जाती है। कभी सूर्य-सी उदारता, दयाहीन श्रम, अविरल अश्रुधारा आहुतिमें दिये जाते हैं। मृत्यु या मृत्युसे भी बढ़कर दुःखदायी पीड़ा या बिछोह, प्रियजनसे अलग एक रिक्त मरुस्थल; यही नहीं पापतक आहुतिके रूपमें अपवित्र सिद्धिके लिये अर्पण किया जाता है। किंतु पाषाण-सी निश्चल मौतकी काली छाया इनमेंसे कुछ नहीं मांगती। वह शुभ्र और पवित्र तथा काले कलुषित हृदय: दोनों ही में प्रवेश करती है। देख! वह न्यायशील पुरुष असहाय होकर अपने प्रियके मृत शरीरपर झुक गया है। उसके सारे गुण, उसके सारे पुण्य ठंडे हृदयको स्पंदित न कर सकेंगे। वह पीले, निर्जीव मुखको पागलकी तरह बार-बार चूमता जाता है परंतु अब वह मुख उसे मना करनेके लिये कभी न खुलेगा। विवर्ण प्रेत-सा काल, जीवन मांगता है। अपना आधा जीवन देकर तू उस आनंदमय जीवनकी डोरको वापिस ला सकेगा। रुरु, जीवन मधुर है और तुझे उसका आधा हिस्सा देना पड़ेगा। आह रुरु! जीवन क्षणिक होते हुए भी कितना मधुर और कितना अमूल्य है? सिर्फ श्वास लेना कितना अच्छा है, कितनी ऊष्मा देता है। जब तू जिंदगीकी सामान्य चीजें गंवा देगा तब तुझे पता लगेगा कि वे कितनी मनोहर और रंगीन थीं। थके मांदे शरीरको मित्रकी भांति आलिंगनमें लेतीं नींद कितनी कोमल है, और भोजन कितना स्वादिष्ट! इनको खोकर तेरे अंदर उनके लिये तृष्णा जागेगी और खोये सौंदर्य और सुखके लिये पश्चात्ताप होगा। आह पागल प्रेमी! क्या तू इन सबको छोड़ देगा? प्रकाश और आनंदपर अपना अधिकार यूं ही किसी दूसरे मनुष्यको दे देगा? आखिर वह तू तो है नहीं। उसके हृदयमें बहते आनंदके स्रोतका तुझे अनुभव भी नहीं होगा। तेरे शरीरमें यंत्रणा होगी, तब वह न चिल्ला उठेगी, न कराहेगी। ज्यादासे ज्यादा दयार्द्र दृष्टिसे तुझे देखती रहेगी। अनुकंपासे प्रेरित होकर तेरे पास आयगी। प्रियतमसे इतनी दूरी देखकर वह अपनी असमर्थतासे दुःखी होकर फूट-फूटकर रोयेगी। मानव समाजमें व्यक्ति आकाशमें विचरते तारोंकी भांति है; वे एक दूसरेको देख सकते हैं परंतु परस्परके सुख-दुःखका अनुभव नहीं कर सकते। मनुज हर्षविषके उल्लासमें भी अकेला ही रहता है और उसकी दर्दनाक पीड़ामें भी कोई साझीदार नहीं बन पाता। ओह रुरु! सुन्दर सलोने मुख तो अनेक हैं परंतु तुम! तुम तो एक ही हो। अच्छी तरह सोच देखो। जब तुम अपने-आप जीवनके मधुर खजानेको कम कर दोगे और अंतमें मौतकी छाया तुमपर मंडरायेगी तब तुम व्यथित न होंगे? पश्चाताप न करोगे?" मन्मथ रुका और एक विचित्र शंकित दृष्टिसे उसे देखने लगा।

धुंआधार वर्षाकी तरह प्रणयीका उत्तर गरजा, "उफ कैसे निरर्थक शब्द हैं ये? सिर्फ दिनकी रोशनी अपने-आपमें क्या है? अति वृद्ध होकर बूढ़ोंकी तरह, असंतुष्ट दुनियामें जीना कौन चाहेगा? कंजूसकी भांति जिंदगीके छोटे-छोटे सुखोंसे ही संतुष्ट होकर जीना; इस बृहद् उदार जीवनसे सिर्फ अपने ही स्वार्थको साधना कौन पसंद करेगा? प्रेमके आदान-प्रदानसे आत्माको तुष्ट करना या महा विरल बलिदानसे स्वयंको दूसरोंमें पाना; यह न हो तो जीवनका अर्थ ही क्या है? ऐसा शीत दानी कौन होगा जो गरिमामय जीवनके ऐसे स्वार्थमय अपव्ययपर अफसोस न करे? ओ तारोंके मित्र! तू मेरा उपहास क्यों करता है? प्रेमका देव होकर भी तू यह नहीं जानता कि प्रेम शरीरके बंधनोंको जलाकर भस्म कर देता है और पृथकतापर हंसता है? पर शरीरसे खेलकर और भी मधुर हो जाता है। मैं अंतरतमसे जानता हूं कि प्रेमी प्रेयसीसे अलग नहीं होता। उनका मौनतक गूंगा नहीं होता। प्रणयी अपने हृदयमें प्रेयसीका हृदय रखता है, उसका शरीर भी अपने शरीरमें पाता है। उसकी लालीसे वह भी लाल होता है। उसको शीत लगे तो वह भी ठंडसे कांपता है और अगर वह मर जाय हां, जब वह मर जाती है तो एक खोखलापन.....। अपंग, अपाहिज प्रेमीकी जिंदगी जिंदगी नहीं रहती। वह मधुर तीव्र ऐक्य खो बैठता है। इस तीव्र दुःखको कम करनेके लिये कोई भी कीमत देनी पड़े तो वह कम ही होगी। ऐसे सुखद अल्प जीवनसे लंबी सदियां ईर्ष्या करेंगी। हम मौतके डरसे मुक्त होकर जियेंगे। हमें दूसरोंकी तरह वांछा और भयसे प्रणयीपर झुककर कांपना न पड़ेगा, न हमें उसके टिमटिमाते जीवन दीपको देखकर शीतकी अनुभूति होगी। छोटे-मोटे वियोगमें व्याकुल होकर हम अवारा कल्पनासे परेशान भी न होंगे और जब मौतकी काली छाया हमपर फैल जायगी तब शांतिसे एक सिसकी लेकर चल बसेंगे। आत्मा आत्मासे लिपट जायगी और शरीर एक दीर्घ चुंबनमें बंधे रहेंगे। स्वर्गके सुखका भी हम साथ-ही-साथ आस्वादन करेंगे और कभी-कभी स्पर्शसे अपनी धन्यताकी अनुभूति कर लेंगे। अगर नरकमें गये तो वहां भी दुःखमें साथ रहेंगे। असह्य पीड़ामें भी हमारे शरीर अभिन्न बने रहेंगे और इससे पीड़ा भी प्रायः सुख बन जायेगी क्योंकि हम दोनों साथ होंगे। ओ प्रेमके प्रभु, मैं शब्दोंसे ऊब गया हूं। मुझे मेरी राजकुमारी-सी कोमल, बसंतके दूसरे अवतार-सी अद्भुत प्रियंवदाके पास उड़ा ले चलो। जिस निर्जन झरनेके किनारे वह भटक रही है मैं वहीं जाऊंगा।

रुरु चुप हो गया। उसकी आंखोंमें जिज्ञासा और उत्साह चमक रहे थे। और एक बार किशोर देवके मधुर मुख और कोमल शरीरपर अमरत्व झिलमिलाया। वह बोला, "प्रिय युवक! इस फूलको अपने हाथमें सावधानीसे रखो और चलते जाओ। पुनीत और मंथर स्थिर-गति गंगा और विकराल सागरराजके मिलन स्थानपर जब तू पहुंचे तो खड़े रहकर मेरे उस उन्मत्त भाईसे अनुरोध करना" कहते कहते उसने अपना हाथ रुरुकी ओर बढ़ाया। रुरुने हाथ उठाये और एक रोमांचसे उसका सारा शरीर कांप उठा। रुरुको अपने हाथोंमें एक सूक्ष्म, अगोचर फूलकी अनुभूति हुई। उस फलमें अद्भुत स्पंदन था और एक आग-सी थी। उसकी पंखुड़ियां आगकी लपटोंकी तरह अपना रंग बदलती रहती थीं। उन पंखुड़ियोंमें भय देनेवाले मादक आकर्षणकी महक थी। उसमें भयातुर, व्याकुल आनंद था। रुरुने ऊपर देखा, परंतु हरे वृक्षसे देवता अदृश्य हो चुके थे। जादुई वृक्ष शाखाओंमेंसे नीले आकाशको निहार रहा था। शाखाएं आनंदसे सिहर उठी थीं। धूमिल होती हुई पृथ्वीपर रात्रिका साम्राज्य फैलता जा रहा था।

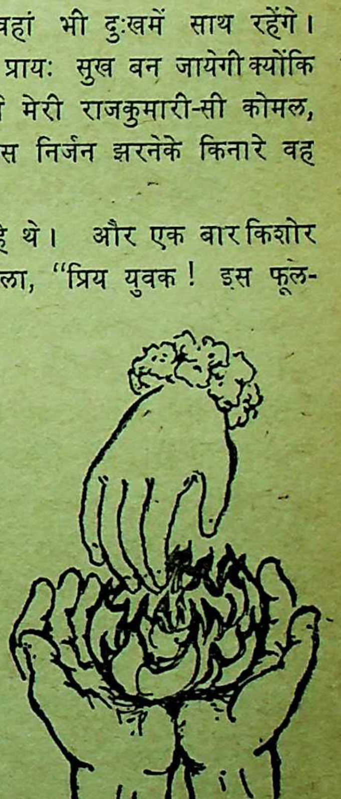

आश्रमके अनुभव :

छोटे बच्चोंके बीच

—श्री अरुणा

यूं तो खेल-कूदमें सभीको मजा आता है पर इसमें बच्चोंकी बराबरी कौन कर सकता है? उनके लिये खेल-कूद अपने-आपमें एक दुनिया है। वे दिनभर खिलौनोंसे खेलते रहते हैं। अपने कमरेमें बैठकर लकड़ीके दो चार टुकड़ोंसे ही राजा, विद्यार्थी, अध्यापक, रेल अस्पताल और न जाने क्या-क्या बनाकर उनमें रमे रहते हैं। इसी प्रकार खेलके मैदानमें भी अपनी कल्पना-शक्तिसे नये-नये खेल निकालते रहते हैं। उनसे घोड़ेकी तरह सरपट दौड़नेको कहा जाय तो बस खेलका मैदान घुड़दौड़का मैदान बन जाता है। कभी चिड़िया बनकर उड़नेमें, कभी मोटर बनकर भों-भों करते हुए भागनेमें और एक दूसरेका कुर्ता पकड़कर रेलगाड़ी बननेमें बड़ा ही मजा आता है। उन्हें इस प्रकारके काम करनेको कहा जाय तो वे झट कप्तानका हुकुम माननेके लिये तैयार हो जाते हैं। कल्पनाकी दुनियामें रहनेके कारण वे हर चीजको बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं। अगर कूदनेकी रस्सी दो बच्चोंके हाथमें पकड़ा दी जाये और कह दिया जाये कि यह मछली पकड़नेका जाल है और जमीनपर लकीर खींचकर समुद्र बना दिया जाये और बाकी बच्चोंको मछलियां, तब आप देखेंगे कि मछली पकड़नेका यह खेल कितना आनंददायक हो उठता है।

केवल मछुए बननेमें ही नहीं, हर खेलमें बच्चोंकी कल्पना बड़ी ऊंची उड़ान लिया करती है। छोटेसे घरोंदेके आंगनमें वे ऐसी जोरदार फुटबाल खेल सकते हैं मानो मोहन बागानके सबसे अच्छे खिलाड़ी हों। गोल होते ही सब आनंद-विभोर होकर चिल्ला उठते हैं और कहीं निर्णेता (रेफरी)ने ठीक तरह देखे बिना निर्णय दे दिया हो तो बस उसकी मुसीबत कर देते हैं (जैसा बड़ोंके मैचमें होना तो न चाहिये, पर होता जरूर है)।

दलके खेलोंके अतिरिक्त साधारण खेल-कूदमें भी वे बड़ा मजा लेते हैं। उदाहरणके लिये कूदनेकी बात लीजिये। रस्सीके एक सिरेपर बिना हवाकी फुटबाल बांधकर कप्तान गोल-गोल घुमाए और बच्चोंसे उसपरसे कूदनेको कहे तो फिर मजा देखिये। शरीर पसीना-पसीना हो जाये, मुंह मदारीकी बंदरिया-सा लाल हो जाये फिर भी उन्हें कूदनेसे रोकना मुश्किल होगा। छोटे-छोटे कारणोंको लेकर दौड़-भाग करना तो एक मामूली-सी बात है। आप किसी दौड़ते हुए बच्चेसे पूछिये क्या हुआ तो वह बतायेगा कि "वह दूसरा बच्चा मुंह बिचकाकर भाग गया है। मैं उसे पकड़ने जा रहा हूं।"

बच्चे जबतक मौजसे दौड़-भाग करते रहते हैं तबतक तो ठीक है पर अचानक कोई दुर्घटना हो जाये तो कप्तानकी मुसीबत आ जाती है। एक बच्चा रस्सीकी सीढ़ीपर चढ़ रहा है। एकके बाद एक तुला हुआ कदम आगे रखता है पर अचानक उसका हाथ छूट जाता है और वह दस फुटकी ऊंचाईसे गिर पड़ता है। ऐसे समय कप्तानकी, उसके धैर्यकी और उसकी सहज बुद्धिकी सचमुच परीक्षा हो जाती है। वे कुछ क्षण उसके लिये युगोंके समान हो जाते हैं। एक ओर बालक इतनी ऊंचाईसे गिरा है, न जाने उसका क्या हाल हो, दूसरी ओरसे अन्य सब बच्चे चिड़ियाघरके घबराये हुए जानवरोंसे इकट्ठे हो जाते हैं और डर रहता है कि कहीं वे सहानुभूति दिखाते-दिखाते ही कुछ और अनिष्ट न कर बैठें। उधर आप डाक्टरको बुलाने जायें और इधर चारों ओरसे घेरे हुए बालक उस आहत बालकके लिये हवा भी बंद न कर दें। एक समय दो स्थानोंपर होना मुश्किल हो

जाता है। ऐसे समय भगवान्पर श्रद्धा और अटल विश्वास हो तो बड़ीसे बड़ी कठिनाई भी हल्की हो जाती है और सुगमतासे रास्ता निकल आता है।

इस प्रकारकी परीक्षा जीवनभर याद रहती है। इसी भांति मिट्टी और पसीनेसे लथपथ चेहरों-मेंसे दो टिमटिमाती हुई मुस्कानभरी आंखें एक स्नेह, विश्वास और आशाके साथ आपकी ओर देखती हैं तो कप्तानका कठोर हृदय भी पिघल उठता है और उनपर न्यौछावर होनेको मन करता है। हमारे यहां एक जर्मन व्यायाम शिक्षक आये थे। वे पहली बार हमारे छोटे बच्चोंको व्यायाम सिखाने गये। शिक्षकको जर्मनके सिवा कोई भाषा न आती थी और बच्चोंको हिंदी और टूटी-फूटी अंग्रेजी। हमें कौतूहल था कि दोनों एक-दूसरेकी भाषा कैसे समझेंगे? एक घंटेके बाद जब शिक्षक महाशय मैदानसे बाहर निकले और बच्चे अपने घर जाने लगे तो एक नन्हा-मुन्ना दौड़ता हुआ आया और शिक्षकके हाथ-में एक टाफी देकर अपना मुंह छिपाता हुआ भाग गया। विश्वास कीजिये यह टाफी पाकर शिक्षक-को ऐसा अनुभव हुआ मानो किसी बड़ी प्रतियोगितामें सोनेका कप पाया हो। उन्होंने हमसे कहा—व्यायाम-शिक्षककी सबसे बड़ी परीक्षा यही है वह भाषा जाने या न जाने पर अपने विद्यार्थियोंमें रस उत्पन्न कर सके। और छोटे बच्चोंमें किसी चीजके लिये रस उत्पन्न करना बहुत कठिन नहीं है।

छोटे बच्चोंमें प्रतियोगिताकी भावना काफी जोरदार होती है। दौड़में सबसे आगे निकलनेके लिये या सबसे अच्छा कूदनेके लिये कहिये, वे अपनी सारी शक्ति लगा देंगे। कभी-कभी अपने-आपको दूसरेसे मजबूत सिद्ध करनेके लिये मारपीट भी कर लेंगे। लेकिन कप्तानकी अधिक मुसीबत तब आती है जब वे एक-दूसरेके माता-पिताकी तुलना करने लगते हैं। अच्छा बोलो, गोपालके पिताजी ज्यादा मजबूत है या किरणके? आप इस समस्यासे छुटकारा पानेके लिये कुछ ऊल-जलूल बात कह दें तो उससे काम न चलेगा। उनके अंदर न्यायप्रियता भी होती है।

दो बच्चोंमें झगड़ा हो और आप एकको डांट पिला दें तो ठीक न होगा क्योंकि प्रायः झगड़ा शुरू करनेवाला तो एक होता है पर दूसरा भी कोई कसर नहीं छोड़ता। इनमें मारपीट आदि हो जाय तो उसे बहुत अधिक गम्भीरतासे न लेना चाहिये। इन मस्त बछेड़ोंको एक बार लगाम लगा दी जा सके तो वे घुड़दौड़के सधे हुए घोड़े बन सकते हैं। उनकी स्वाभाविक प्रगति, उनके छोटे-से-शरीरके अंदर भरी हुई अजस्र शक्ति और उसके विकासको देखकर उनके हर शुभाकांक्षीका दिल हरा हो जाता है। वही छोटा-सा बालक जो आपकी सीटीकी आवाजपर कठपुतलीकी तरह उठ-बैठ करता था या रेलका डब्बा बनकर दौड़ता था, जब बारह सेकेण्डमें सौ मीटर दौड़ लेता है तो प्रशिक्षकको जो खुशी होती है वह व्यक्त नहीं की जा सकती। वह गंगाका वह पवित्र जल होता है जो पिछले कष्टों-को पापकी तरह धो डालता है।

* * *

हवा पत्तेयां दे कन विच आके कैंहदी ए—
“मैं ओह दे कोलों आई हां।”
पत्ते तैनूं वेखदे नहीं—
पर तेरा नां सुनके नच उठदे ने।

हवा आकर पत्तोंके कानमें कहती है, “मैं उसीके पाससे होकर आ रही हूं।” पत्ते तुझे देखते तो नहीं, पर तेरा नाम सुनकर नाच उठते हैं।

—अमृता प्रीतम

आयुध-पूजा

"आज शामको हमारे यहां आयुध पूजा है, आपको आना ही होगा।" कर्मचारियोंके इस प्रकारके आग्रहभरे निमंत्रणको भला कैसे टाला जा सकता था? मैं ठीक पांच बजे निश्चित स्थानपर जा पहुंचा। आज तो यहांका दृश्य ही निराला था। दरवाजोंपर कदली स्तंभ अपने हाथ फैलाकर मानो आगन्तुकोंका स्वागत कर रहे थे। सारा आंगन बड़ी सुरुचिके साथ ध्वजा, पताका और तोरणोंसे सजा हुआ था। आज इस स्थानको देखकर यह अनुमान करना असंभव था कि यहां सारे दिन कपड़े धोये जाते हैं और दूसरी तरफ इस्त्री होती रहती है। यहां घुसते ही ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी धार्मिक प्रवचन अथवा भागवत कथाके लिये मंच बना हुआ है। धरतीपर लाल, सफेद सांझी बस, देखनेकी चीज है। इस पिछड़े हुए भारतके इन अनपढ़ गंवारोंमें आज भी इतना सौंदर्य बोध और इतनी कलाप्रियता है? और जरा अंदर चलकर एक बड़ा-सा मंच बनाया गया था जिसपर श्रीमाताजी और श्रीअरविंदके बड़े-बड़े चित्र रखे थे। मंचपरसे एक सुन्दर-सा कपड़ा लटक रहा था जिसपर तीन बड़े-बड़े सिंह खड़े याद दिला रहे थे कि कल ही सिंहवाहिनी मां दुर्गाका त्यौहार बीता है। चारों ओर धूप-दीप जल रहे थे और एक आदमी बराबर इसी कामपर तैनात था कि यह देखता रहे कि दीपकोंमें तेल कम न पड़ जाय इन दीपोंकी एक अपनी ही छटा थी जिसे बिजलीके बल्ब नहीं पा सकते। सारे वातावरणमें कोई चीज बेमेल थी तो वह कोनेमें रखा आधुनिक रेडियो जो बिना समझे-बूझे कोई राग अलापे जा रहा था।

नियत समयपर पूजा शुरू हुई। काममें आनेवाली चीजोंकी आरती उतारी गयी, उनको धूप दी गयी और सब आगन्तुकोंने भावके साथ आरती ली। उसके बाद सबको प्रसाद बांटा गया। इसमें बड़ी मनोहर बात यह थी कि विभागके कर्मचारियोंने अपने हाथसे अध्यक्ष तथा अन्य अधिकारियों आदिको प्रसाद दिया और विभागाध्यक्षने पंक्तिमें बैठे हुए कर्मचारियोंके पास जा-जाकर उन्हें प्रसाद बांटा। एक पारिवारिक सम्मेलनका-सा वातावरण था।

यहां हमें अपने एक यूरोपीयन मित्रकी बात याद हो आयी। वह अभी नये-नये भारत आये थे। उन्होंने आशाकी थी कि हर नुक्कड़पर दो योगी और हर चौराहेपर एक हाथी और उसपर एक राजा देख पायेंगे। यह सब न पाकर उन्हें बड़ी निराशा हुई। उन्हें भारतकी आध्यात्मिकता देखनी थी और देखना था यहांका वैभव। साथ-ही-साथ यहांके सांप और मदारी भी दीख जाते तो और अच्छा होता। कोई उन्हें आयुध-पूजा दिखाने ले गया। इन्होंने सोचा, वहां कोई चमत्कार देखेंगे। इन्हें बताया गया था कि इस पूजाका आरंभ भगवान् रामसे हुआ था। रामने रावणको मारनेसे पहले अपने शस्त्रास्त्र की पूजा की थी। यह सुनकर साहबकी आशाएं और भी बढ़ गयीं। परंतु जब उन्होंने देखा कि बढ़ई अपनी आरी और बसूलेकी पूजा कर रहा है तो उनके अंदर सोया हुआ ईसाई जाग पड़ा। "यह क्या वाहियात चीज है। इन बेजान औजारोंकी पूजाका क्या अर्थ है। इसी आधारपर तुम लोग अपने-आपको आस्तिक और आध्यात्मिक कहते हो।" ......और न जाने क्या-क्या कह गये।

लेकिन बात ठीक ऐसी नहीं है। बढ़ई अपनी आरी और बसूले आदिकी आरती करता है, नाई अपने उस्तरे कैंचीपर रोली अक्षत चढ़ाता है पर इसके पीछे भावना कुछ और होती है। आर्य धर्मकी यह विशेषता रही है कि वह समाजके किसी अंगकी उपेक्षा नहीं करता। वह मुमुक्षुको मोक्षका मार्ग दिखाता है तो गृहस्थको अधिक अच्छा गृहस्थ बननेका, वैदिक ऋषि केवल 'द' कहकर असुरों

मनुष्यों और देवताओंको उनकी चेतनाके अनुसार दया, दान और दमनकी शिक्षा दे देता है। पुराणोंकी कहानियां दीक्षा पाये हुए साधकके लिये एक अर्थ रखती हैं, सामान्य विद्वान्के लिये कुछ और तथा अनपढ़ अशिक्षित कहानेवालोंके लिये कुछ तीसरा ही; पर हैं सबके लिये समान रूपसे सच्ची और कल्याणकारी।

सामी धर्मोंने कुछ नियम बना दिये हैं। जो उनका पालन करता है भगवान् उससे प्रसन्न होते हैं; जो उनके विरुद्ध चलता है उसे नरकमें भेज देते हैं। एक गज ऊंची डोरी लगी है, जो स्वर्ग जाना चाहता है उसे उस डोरीके ऊपरसे कूदना ही होगा और जो न कूद सका उसके लिये यमराजके यहां स्थानकी कमी नहीं है। परंतु आर्य धर्म कोई डोरी नहीं बांधता। हिमालयके शिखरोंपर खड़ा हुआ ज्ञानी भी भगवान्से दूर हो सकता है और कहीं तलहटीमें खड़ा हुआ बौना भी भगवान्के पास हो सकता है। भगवान् बौनेके दिलकी सच्चाईको देखकर, उसकी अभीप्सासे आकर्षित होकर अपने-आप नीचे झुक आते हैं और उसकी बांह पकड़ लेते हैं।

इसी प्रका जो जरा जाननेवाले हैं उन्हें आयुध-पूजा यह याद दिलाती है कि हम भी उस जगन्नियन्ताके यंत्र हैं और हमें अपने-आपको पूरी तरह उसके हाथोंमें सौंप देना चाहिये। दूसरी श्रेणीके लोग यह सीखते हैं कि भगवान् हर चीजमें विद्यमान हैं। ये चीजें उन्हींकी दी हुई हैं और हमें उन्हींकी देन मानकर इनका उपयोग करना चाहिये, इनके व्यवहारमें लापरवाही, प्रमाद और विनाशक वृत्तिको न घुसने देना चाहिये। यदि हम अपने उपकरणोंको भगवान्की देन मानकर उनका भलीभांति उपयोग करेंगे तो चीजें भी हमारी आन और मर्यादाकी रक्षा करेंगी। हम अपनी चेतनाके विस्तारमें केवल अपने नातेदारों, रिश्तेदारोंको ही नहीं, अपने पशुओं और अपनी वस्तुओंको भी अपना लेते हैं। वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर यह एक बड़ा कदम है।

परंतु जो वहांतक नहीं जाना चाहता उसके लिये आयुध-पूजा एक ऐसा सामाजिक पर्व है जब बड़े-छोटेका ख्याल छोड़कर एक साथ काम करनेवाले सब लोग इकट्ठे होते हैं और एक स्तरपर आकर मिलते और मधुर संबंध बनाते हैं।

क्या यह अपने-आपमें एक बड़ी चीज नहीं है? हिंदुओंके सैंकड़ों त्यौहार उनके अंदर उफनती हुई जीवनी शक्तिको सुन्दर मार्ग देनेके लिये शुरू किये गये थे। आजकी अवस्थामें भी यदि उन्हें ठीक तरह मनाया जाय तो उनसे हमारे उत्थानमें सहायता मिल सकती है।

—रवीन्द्र

* * *

तुम सपनेमें आये। मैंने तुम्हें आलिंगनबद्ध कर लिया। किंतु तुम तो अदृश्य थे। मेरी पकड़में नहीं आये। मेरी कलाई कांपती रह गयी।

मैंने बरबस चरणोंपर माथा टेक दिया, किंतु माथा बिना स्पर्शके ही रहा। तुम ऊंचे थे, मैं नीचा। मेरे बसकी बात न थी।

मैं पल्ला पकड़नेके लिये भागा, बिजलीकी लहरोंकी गतिसे पल्ला उड़ गया, जाते-जाते अपना स्पर्श देता गया।

प्राणहीन मिट्टीमें प्राण फूंककर तुम रोम-रोममें ऐसे समा गये जैसे बिजली कौंध जानेसे चकाचौंध छा जाये।

—भाई वीरसिंह

विजयनगर

भारतके इतिहासमें ऐसे अवसर कम ही आये हैं जब पश्चिममें सिंधु नदीसे भी परेके हिस्सोंपर, पूर्वमें सारे बंगालपर, उत्तरमें कश्मीर और दक्षिणमें मदुरैतक का भाग एक ही शासन-सूत्रके अधिकारमें रहा हो। सुलतान मुहम्मद बिन तुगलकका राज्य सिंध, लाहौर, पटना, लखनोती, गुजरात, तेलंग और द्वारा-समुद्रतकको अपने आधीन मानता था। राज्यके विस्तारके कारण यातायातकी कठिनाइयां बहुत अधिक बढ़ी हुई थीं और हर तीसरे दिन कहीं-न-कहीं विद्रोह होता रहता था। कभी बंगालमें तो कभी सिंधमें, कभी गुजरातमें तो कभी दक्षिणमें विद्रोहका झंडा फहराता ही रहता था। दक्षिणके भाग दिल्लीसे बहुत दूर होनेके कारण हमेशा ही दिल्लीको झांसा देनेकी कोशिश करते रहते थे और जब बादशाह इधर व्यस्त होता तो अन्य प्रदेश सिर उठाने लग जाते थे। इन्हीं परिस्थितियोंको देखकर बादशाहने राजधानीको दिल्लीसे उठाकर दौलताबाद लानेकी कोशिश की जिससे लाभ होनेकी जगह हानि ही हुई। सन् १३३४-३५ में वर्तमान मद्रासके निकट मावरके हाकिम जलालुद्दीन अहसन शाहने विद्रोह कर दिया। सुलतान एक बड़ी सेना लेकर उसे दबानेके लिये चला। वारंगल पहुंचते-पहुंचते उसकी सेनामें महामारी फैल गयी और वह स्वयं भी बीमार हो गया। हजारों सैनिक मर गये। सुलतानने देवगिरि (दौलताबाद) लौटनेका निश्चय किया और उधर मावरने आजादीका झंडा बलन्द कर दिया। यहींसे तुगलक साम्राज्यके टुकड़े होने शुरू हुए।

जब मुहम्मद तुगलक गद्दीपर बैठा था तबतक तेलंगानाके एक बहुत बड़े भागपर दिल्लीका अधिकार हो चुका था। उसके कई टुकड़े करके उनपर अलग-अलग मुसलमान हाकिम नियुक्त किये गये थे। इन हाकिमोंका दिल्ली राज्यके साथ कोई व्यक्तिगत संबंध तो था नहीं इसलिये हरएक यही सोचा करता था कि बदलते हुए जमानेसे लाभ उठाकर अपनी शक्ति बढ़ा ली जाय। हर हाकिम सामन्तोंकी एक नयी फौज खड़ी कर देता था और उनमें आपसमें प्रतिस्पर्धा रहती थी। फिर सुल्तानकी उदारतासे लाभ उठानेके लिये मध्य एशियासे नये-नये लोग आते रहते थे और उन्हें भी सुल्तान शताधिकारी बना देता था, इससे उनमें और स्थानिक मुसलमानोंमें काफी अनबन रहती थी। इस विषम परिस्थितिसे हिंदू लाभ उठाते थे। मुसलमान हाकिम एक-दूसरेको नीचा दिखानेके लिये और दिल्लीका सफल विरोध कर सकनेके लिये हिंदुओंको अपने पक्षमें रखना चाहते थे। यह भी एक कारण है जिससे दक्षिणमें हिंदुओंकी शक्ति किसी हदतक बनी रही, राजपूतोंकी तरह उनका तहसनहस नहीं हुआ। अहसन शाहके सफल विद्रोहको देखकर हिंदुओंका भी साहस बढ़ा। उन्होंने तेलंगानामें गड़बड़ शुरू कर दी।

तेलंगानेमें एक छोटा-सा राज्य था कम्पिल्ला; उसके राजाको हराकर उसके दो संबंधी हरिहर और बुक्काको दिल्ली भेज दिया गया था और जनश्रुतिके अनुसार उन्हें मुसलमान बना लिया गया था। पर दोनों ही अपने धर्मके पक्के थे। वे बराबर इसी ताकमें रहते थे कि कब अवसर मिले और कब मुसलमानोंसे बदला लें। तेलंगानेका हाकिम मलिक मकबूल जब हिंदुओंको दबानेमें असफल रहा तो सुलतानने हरिहर और बुक्काको स्थिति संभालनेके लिये भेजा। हरिहरने सुल्तानको वचन दिया था कि वह उसके एक करदकी तरहसे रहेगा। परंतु यह बात जनताको मालूम हो जाती तो वह बिगड़ बैठती। उसने घोषणा की कि उसे हिंदू धर्मपर पूरी श्रद्धा है और वह एक स्वतंत्र हिंदू राजा है परंतु सुलतानके साथ व्यर्थमें बिगाड़ भी नहीं करना चाहता। उसने प्रसिद्ध विद्वान् माधव विद्यारण्यको अपना गुरु बना लिया। हिंदू जनता उससे बहुत संतुष्ट हो गयी। वह मुहम्मद तुगलकको संतुष्ट रखनेके लिये कभी-कभी कर भी दे देता था। इसका परिणाम यह हुआ

कि उसे सुल्तानका आदमी समझकर अन्य हाकिमोंने उसपर आक्रमण नहीं किया। उसे थोड़ी चैन प्राप्त हुई तो उसने कोणकण और तुंगभद्राकी तलहटीतक पांव फैला लिये। विद्यारण्य इसका गुरु और मंत्री था। उसीके नामसे विद्यानगरकी नींव पड़ी जो आगे चलकर विजयनगर बन गया। इसने सेनाका नये ढंगसे संगठन किया और बहुत दिनोंके बाद प्रजाको कुछ शांति मिली। यह स्वतंत्र विजयनगरका श्रीगणेश था।

हरिहर और बुक्काने वीर बल्लाल और निरूपाक्ष बल्लालकी सहायतासे मुहम्मद तुगलकके शासनको दक्षिणसे मार भगाया। मुहम्मद तुगलककी मृत्युके बाद विजयनगरने मावरके राज्यको भी हड़पकर एक बड़े प्रतापशाली और पराक्रमी राज्यकी आधार-शिलाको पक्का किया। हरिहर और बुक्काने अपनी स्वाधीनताकी घोषणा नहीं की थी। जैसा हम पहले कह आये हैं, उस समयकी राजनीतिका यही तकाजा था। समय आनेपर हरिहर तृतीय ने महाराजाधिराज होनेकी घोषणा कर दी। १३३६ से १५६५ के बीच विजयनगरमें तीन राजवंश बदले। पहला १३३६ से १३८६ तक रहा, दूसरा १५०५ तक रहा और तीसरेका सफाया १५७० में हो गया। विजयनगरका सर्वश्रेष्ठ राजा कृष्णदेव राय तीसरे वंशका था।

विजयनगर राज्य अत्यंत पराक्रमी और वैभवशाली था। फारसीके प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ताने इसके सौंदर्यका बड़े विस्तारसे वर्णन किया है। वह कहता है कि वहांकी एक राजकुमारीके विवाहमें सड़कपर छह मीलतक जरी, मखमल आदि बहुमूल्य वस्तुएं बिछायी गयी थीं। १४२० में एक इटेलियन पर्यटकने लिखा है कि विजयनगर सारे भारतमें सबसे सुन्दर नगर था। वह साठ मीलके घेरेमें बसा हुआ था। उसमें चारों ओर बगीचे ही बगीचे थे। इस राज्यमें स्थित मंगलूरमें शुद्ध पीतलको ढालकर एक मंदिर बनाया गया था जो १५ फुट ऊंचा था। उसके फर्शकी लंबाई-चौड़ाई ३० फुट थी। बेलूरका मंदिर इससे बढ़-चढ़कर अद्‌भुत था।

मध्य एशियाके पर्यटक अब्दुर्रज्जाकका कहना है कि विजयनगर ऐसा शहर है कि सारी दुनियांमें इसकी बराबरीकी जगह न आंखोंने देखी न कानोंने सुनी। वहांके बाजारोंके बारेमें वह कहता है, "हर बाजारके सिरेपर ऊंचे मेहराबोंका सिलसिला है और शानदार दालान है। राजाका महल इन सबसे ऊंचा है।......बाजार बहुत लंबे-चौड़े हैं......मीठी सुगन्धके ताजे फूल इस शहरमें हमेशा मिलते हैं और जीवनका आधार माने जाते हैं मानो इनके बिना जीवन ही असंभव हो। समान व्यवसायवालोंकी दुकानें पास-ही-पास हैं। जौहरी लोग माणिक, मोती, हीरे, पन्ने खुले बाजारमें रखकर बेचते हैं। उस मनोहर इलाकेमें जहां राजाका महल है बहुत-सी छोटी-छोटी नदियां और धाराएं हैं जो चमकदार, एकसम कटे हुए पत्थरोंकी नालियोंमेंसे होकर बहती हैं।" वह इसी प्रकार विजयनगरकी प्रशंसाके पुल बांधता जाता है।

इसी जमानेमें इटलीमें रिनेसांका प्रभाव नया जीवन पैदा कर रहा था और वहां स्थापत्यमें नये-नये काम हो रहे थे। पेईज नामक पुर्तगाली यात्री इटली होता हुआ १५२२ में विजयनगर आया। उसने लिखा है कि विजयनगर देखनेमें रोमके बराबर सुन्दर है। एक यूरोपियनसे इससे अधिक प्रशंसा क्या मिल सकती है? उसने यहांके बगीचों, पानीके सोतों, तालाबों और अनेक आश्चर्यजनक चीजोंका बड़े विस्तारसे वर्णन किया है। वह कहता है कि यह शहर 'दुनियां भरमें सबसे ज्यादा भरा-पूरा है।....इस शहरकी हालत वैसी नहीं है जैसी दूसरे शहरोंकी होती है, जहां प्रायः आवश्यक वस्तुओंकी और रसदकी कमी पड़ जाती है। यहां हर चीजकी बहुतायत है। राजमहलमें इसने एक कमरा देखा जो पूरेका पूरा हाथी दांतका बना हुआ था। कमरेकी दीवारोंपर ऊपरसे नीचेतक और छतकी कड़ियों और खंभोंपर सारेके-सारे हाथी दांतके गुलाब और कमल बने हुए थे। ये सब इतने सुन्दर थे कि इनसे सुन्दर हो ही नहीं सकते।

सन् १४०० के करीब शहरमें पानी लानेके लिये १५ मील पहाड़ काटकर एक नहर बनायी गयी थी और एक नदीको रोककर बांध बांधा गया था। इसके कारण शहरमें कभी पानीकी कमी नहीं होती थी।

यहांके राजाओंमें कृष्णदेवराय सबसे अधिक पराक्रमी था। उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी। उसके राज्यमें तेलुगु और संस्कृत साहित्यने बहुत उन्नति की। उसने मुसलमानोंको हरा अपने पूर्वजोंका बदला लिया। उसके व्यक्तित्व, शासन-व्यवस्था और सेना-संगठनकी प्रशंसा देशी-विदेशी इतिहासकारोंने की है। शासन हिन्दू संस्कृतिको पूरा प्रश्रय देता था, परंतु हर एक धर्मावलंबीके साथ राजाका व्यवहार बहुत अच्छा रहता था। उन्होंने अपनी सेनाके मुस्लिम सिपाहियोंके लिये मस्जिदें भी बनवायी थीं।

विजयनगरका राज्य अपनी साहित्य-सेवा, मंदिर, महल और बड़े-बड़े गढ़ बनवाकर संगीत, नृत्य आदिको प्रोत्साहन देकर हिन्दू राज्योंमें अपना नाम उज्ज्वल कर गया। कृष्णदेव रायके बारेमें तो एक अलग लेखकी जरूरत है।

इतना सब होनेपर भी विजयनगरके शासक यह न देख पाये कि उनके जरा कमजोर होनेपर पड़ोसी राज्य मिलकर आक्रमण कर सकते हैं। जैसा कि बहुत बार हुआ करता है, कृष्णदेव राय जैसे पराक्रमी और प्रतापीके वंशज कमजोर निकले और पड़ोसके मुस्लिम राज्योंने विजयनगरके प्रति ईर्ष्याकी आगमें तपकर हमला किया। विजयनगरवाले अपने मदमें मस्त थे। झूठे आत्म-विश्वासने उनकी शक्ति हर ली थी। १५६५ में वीदर, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि पांच दुश्मन राज्योंने विजयनगरपर अधिकार कर लिया और पांच-छः महीनेतक वहीं डेरा डाले रहे। सब सुन्दर महल और मंदिर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। उत्तम मूर्त्तियों और पत्थरकी नक्काशीको चकनाचूर कर दिया गया और जो कुछ जलाया जा सकता था जला दिया गया। एक अंग्रेज इतिहासकारका कहना है, “संसारके इतिहासमें इतने बड़े, इतने भव्य और इतने सुन्दर नगरका अचानक ऐसा अंत शायद कभी नहीं हुआ होगा।’ वह नगर जो एक दिन फलता-फूलता धन-धान्यसे भरा, परिश्रमी लोगोंसे बसा था, दूसरे ही दिन बर्बर हत्याकांडके दृश्योंको और सारे जंगलीपनेके सम्मिलित वर्णनोंको फीका करनेवाले भयंकर कुकृत्योंके कारण दूसरोंके अधिकारमें आ गया और पूरी तरह खंडहर बना दिया गया।”

[इस लेखके उद्धरण पं० नेहरूकी ग्लिम्प्सेज आफ वर्ल्ड हिस्ट्रीसे लिये गये हैं।—ले०]

***

मिट्टीका गहरा अंधकार
डूबा है उसमें एक बीज —
वह खो न गया मिट्टी न बना,
कोदों सरसोंसे क्षुद्र चीज।
उस छोटे उरमें छिपे हुए
हैं डाल पात औ’ स्कंधमूल।

— पंत

भारतीय गिरा :

रामकथाकी विभिन्नता

हम सबने रामका नाम सुना है। हमें रामायणकी कहानी भी मालूम है। पर वास्तवमें रामकी कहानी बड़ी विस्तृत है और रामायणें भी एक दो नहीं, बल्कि बहुत-सी हैं। रामकी कथा केवल भारतवर्षमें ही नहीं, इसके पड़ोसी तथा एक समय इसकी संस्कृतिसे घनिष्ठ संबंध रखनेवाले खोतान, चीन, तिब्बत, हिंदेशिया, श्याम और ब्रह्मदेशमें भी प्रचलित हैं। वैसे तो रामकथाका साहित्य अत्यंत विशाल है पर हम यहां केवल परशुराम चतुर्वेदीकृत 'मानसकी रामकथा' तथा रामदास गौड़कृत 'हिन्दुत्व' के आधारपर कुछ घटनायें प्रस्तुत करेंगे।

प्रायः सभी रामायणोंके पढ़ते समय ये दो बातें देखनेमें आती हैं। एक तो यह कि वे अपनेसे पहलेकी रामायण या रामायणोंका उल्लेख करती हैं। दूसरी यह कि वे बताती हैं कि रामायणोंके बहुतसे प्रकार हैं और उनकी संख्या भी अनंत हैं। उदाहरणके लिये हम गो० तुलसीदास कृत "रामचरितमानस" की ये पंक्तियां उद्धृत कर सकते हैं: "रामायन सतकोटि अपारा" और "हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुविधि सब संता।" "रामायन सतकोटि अपारा" को अतिशयोक्ति मानकर आगे बढ़ जाना इस उक्तिके प्रति हमारा अन्याय होगा। क्योंकि रामायण और रामायण-संबंधित साहित्यके वास्तविक विस्तारकी झलकभर भी मिलनेपर इस उक्तिके प्रति हमारी धारणा बिलकुल बदल जायेगी।

जिन ग्रंथोंमें हमें रामके जीवन-चरितका विस्तारपूर्वक और श्रृंखलाबद्ध विवरण मिलता है वे 'रामायण' नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे पुरानी बाल्मीकि रामायण है। इसीके आधारपर, इससे भिन्न, दूसरी रामायणें भी मिलती हैं। हमारे प्रांतोंमें प्रचलित रामायणें भी अधिकांश रूपमें इसीपर आधृत हैं। केवल पांच महापुराणोंको छोड़कर और सबमें रामकथाका उल्लेख मिलता है। कुछ उपपुराण और महाभारतमें भी रामकथा वर्णित है। फिर कुछ ऐसे ग्रंथ भी हैं जिनमें रामकथाका पूरा विवरण तो नहीं मिलता पर राम उनके मुख्य पात्र होते हैं। इसके सिवा रामायणके फुटकर आख्यानोंपर खंड काव्य, नाटक, कविता और कहानियोंके रूपमें स्वतंत्र रचनायें प्राप्त होती हैं। ये तो रहे साहित्यके प्रकाशित रूप। लोक परंपरा और लोक गीतोंमें भी रामायणके विभिन्न प्रसंगों और पात्रोंके चरितका रोचक वर्णन मिलता है।

राम कथाके इन विविध रूपोंमें हमें उसकी विभिन्नतायें भी प्राप्त होती हैं। और ये कभी-कभी हमारी जानी हुई रामकथासे इतनी भिन्न होती हैं कि ये हमें विचित्र और अद्भुत-सी लगती हैं। आज हम इसी विभिन्नताका एक आंशिक तथा संक्षिप्त रूप आपके सामने प्रस्तुत करनेकी कोशिश करेंगे।

बौद्धोंके जातक-साहित्यकी एक कथा है कि दशरथ काशीके राजा थे। उनकी पटरानीसे तीन संतानें हुईं, राम पंडित, लक्खमण तथा सीता देवी। पटरानीके स्वर्गवास होनेके पश्चात् राजाने अपनी दूसरी पत्नीको पटरानी बनाया, जिससे भरतकुमारका जन्म हुआ। राजाने पटरानीको एक वर दिया। जब भरतकुमार सात वर्षका हुआ तब रानीने उसके लिये राज्य मांगा। राजाकी अनिच्छा होते हुए भी रानीके हठकी जीत हुई। अपनी पहली रानीके पुत्रोंपर, भावी संकटकी आशंकासे राजाने उनकी भलाईके लिये उन्हें वन जानेको कहा। साथ ही यह भी कहा कि बारह वर्षके बाद, मेरे मर जानेपर तुम आकर राज्य संभालना। पिताकी आज्ञानुसार वे चल पड़े, बहिन सीता देवी भी साथ चल

पड़ीं। वे तीनों हिमालयके पास आश्रम बनाकर रहने लगे। इधर राजा नवें वर्षमें ही चल बसे और भरतकुमार अपनी माताकी आज्ञाके विरुद्ध रामको वापिस लेने चल दिये। उन्होंने रोते हुए दशरथकी मृत्युका संवाद सुनाया। रामने, शोकके कारण विचलित न होकर, अपने दोनों दुःखी भाइयों तथा बहिन सीता देवीको सांत्वना दी। भरतकुमारके बहुत आग्रह करनेपर भी वे बारह बरसके पहले, अपने पिताकी आज्ञाके विरुद्ध, लौटनेके लिये राजी नहीं हुए। उन्होंने भरतकुमारको अपनी तृण पादुका देकर, लक्खमण तथा सीता देवीके साथ विदा किया। वे लोग काशी लौटकर पादुकाको सामने रख राज्य करने लगे। राज्यमें जब कभी अन्याय होता तब वे पादुकायें एक दूसरेसे टकराने लगतीं। तीन वर्ष और बीत जानेपर राम पंडित काशी लौटे और अपनी बहिन सीता देवीके साथ विवाह करके उन्होंने १६००० वर्षोंतक राज्य किया।

इस कथामें सीता-हरण, सुग्रीवके साथ मैत्री, लंकाके युद्ध और सीताके परित्याग आदि वृत्तांतोंका नामतक नहीं है।

एक दूसरे जातकमें बोधिसत्त्व (एक) राजा था। उसका मामा भी राजा हो गया, पर वह बड़ा लोभी तथा निर्दय था। उसने भानजेका राज्य छीननेके लिये उसपर चढ़ाई कर दी। बोधिसत्त्वने, युद्धके कारण होनेवाली प्राणहानि, धनहानि, अपने प्यारे सगे-संबंधियोंसे सदाके लिये दुःखदायी वियोग तथा उसके अनेकों बुरे परिणामोंको सोचकर, मामाका सामना नहीं किया। वह अपनी रानीके साथ वन चला गया। एक दिन जब बोधिसत्त्व फल लाने गया था, समुद्रके नागने ऋषिका वेष धारण करके उसकी पत्नीका अपहरण कर लिया। लौटनेपर अपनी पत्नीको न देखकर बोधिसत्त्व बहुत चिंतित तथा दुःखी होकर उसकी खोज करने लगा। खोजते-खोजते उसकी खिन्न तथा मन मारकर बैठे हुए एक बंदरसे भेंट हुई। बंदरने अपने दुःखका कारण बताते हुए कहा कि मेरे चाचाने मेरा राज्य छीन लिया है। राजाने भी अपनी दुःखभरी कहानी कही। अब दोनोंने मैत्री कर ली और राजा बोधिसत्त्वने बंदरके चाचाको मार भगाया और अपने मित्रको राज्य वापिस दे दिया। बड़े बंदरके आदेशसे छोटे बंदर रानीकी खोजमें चारों ओर चल दिये। उन्हें एक बुरी तरहसे घायल पक्षी मिला जिसने रानीका पता बतला दिया। इन्द्र नामके एक छोटे बंदरकी देख-रेखमें समुद्र पार करनेके लिये एक सेतु बना। सभी बंदरोंने द्वीपपर आक्रमण किया। द्वीपके नागने विषैले कुहरे, बादल, आंधी और बवंडरोंसे बंदरोंको बहुत कष्ट पहुंचाया। पर बोधिसत्त्वने अंतमें उसे मार गिराया और रानीको मुक्त कर दिया। मामाकी मृत्युकी खबर पाकर वह अपने देश लौटा। नागके द्वीपमें रहनेके कारण रानीपर उसे संदेह हुआ। रानीके कहनेपर जब पृथ्वी फट गयी तब उसका सारा संदेह दूर हो गया। फिर दोनों मिलकर धर्मके अनुसार अपनी प्रजाका पालन करते रहे।

इस कथाकी यह विशेषता है कि इसकी घटनायें रामायणकी घटनाओंके साथ मिलती-जुलती हैं पर इसमें एक भी नामका उल्लेख नहीं है। इन्द्र नामके बंदरका उल्लेख तो है पर वह नाम सुग्रीवके नामके साथ मेल नहीं खाता।

तिब्बत देशकी एक कथामें सीता रावणकी बेटी है। उसके जन्मके समय बहुतसे अमंगलसूचक अपशकुन हुए थे। अतः सीताको अनिष्टोंका मूल मानकर उसे पिटारेमें बंद करके रावणने फेंक दिया। पिटारेमें बंद सीता भारतीय कृषकोंको मिली और उन्हींके द्वारा उसका पालन पोषण हुआ। उधर राम अपने पिताके वचनको सत्य करनेके लिये लक्ष्मणको राज्य देकर एक आश्रममें तपस्या करने चले गये। वहां वे कृषकोंके अनुरोधपर सीतासे विवाह करके राज्य करने लगे।

खोतानकी राम कथामें दशरथके पुत्रका नाम सहस्रबाहु है। राम और लक्ष्मण सहस्रबाहुके पुत्र हैं। पर इनकी माताने इन्हें जन्मसे ही बारह बरसतक पृथ्वीके अंदर छिपाये रखा था। एक बार अपने सहस्रबाहु परशुरामके पिताकी गाय चुराते हैं। इसपर परशुराम उनका वध कर देते हैं। अपने

पिता सहस्रबाहुकी हत्याका बदला लेनेके लिये राम पृथ्वीसे बाहर आकर परशुरामका सिर उतार लेते हैं। आगे चलकर इस कहानीमें राम और लक्ष्मण दोनों ही सीतासे विवाह करते हैं।

जैनियोंकी एक राम कथामें रामकी माताका नाम सुबाला है और लक्ष्मण कैकेयीका पुत्र है। इसमें भरत और शत्रुघ्नकी माताका नाम नहीं मिलता। सीता मंदोदरीके गर्भसे उत्पन्न होती है। यहां, रावण सीताको अनिष्टकारी मानकर फेंक नहीं देता, बल्कि पिटारीमें रखकर मारीचके द्वारा दूर मिथिला देशमें उसे गड़वा देता है। हल जोतनेके समय राजा जनक उसे पाते हैं और पाल-पोसकर बड़ा करते हैं। फिर दैवयोगसे मिली हुई बेटी सीताके विवाहके उपलक्षमें वे एक वैदिक यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। पर इस यज्ञमें रावणको निमंत्रित नहीं किया जाता। यज्ञकी रक्षाके लिये राम और लक्ष्मण बुलाये जाते हैं। अंतमें सीताका विवाह रामसे किया जाता है। इधर नारदजी रावणके पास आकर सीताके सौंदर्यका वर्णन करते हैं। फिर सीता-हरण, राम-रावण युद्ध, रावणकी मृत्यु और रामका दिग्विजय करते हुए अपनी राजधानी बनारसमें लौटनेका वर्णन मिलता है। अपने राज्यकालके अंतमें राम और सीता दीक्षा लेकर मुक्ति पाते हैं और स्वर्ग पाते हैं।

मलयदेशकी राम कथामें रावणके पिता उसे अपने देशसे बाहर निकाल देते हैं। रावण सिंहलद्वीपमें जाकर अपनी तपस्यासे अल्लाहको प्रसन्न करता है। अल्लाह, उसे चार लोकोंमेंसे एकका स्वामी बना देते हैं। वह लंकापुरी बसाता है। इस कथामें दशरथकी पत्नी वलियादरी उनसे रामके राज्य छुड़वानेका अनुरोध करती है। राम बड़ी प्रसन्नताके साथ घर छोड़ देते हैं। यहांपर बालि और सुग्रीव गौतमके पुत्र और अंजनी उनकी पुत्री हैं। हनुमानकी उत्पत्तिके कारण राम हैं।

जावाकी रामकथा इस प्रकार है। रावण एक बार युद्धमें विष्णुको हरा देता है। इससे विष्णु, वासुकी और श्रीके साथ डरसे भागकर दशरथके यहां आते हैं। पहले दोनों दशरथके पुत्र हो जाते हैं और श्री एक अंडेमें परिणत हो जाती हैं। रावण उस अंडेको निगल जाता है। इसीसे बादमें सीताका जन्म होता है। कहते हैं कि अंतमें सीताके एकमात्र 'बुतलष' नामक पुत्रको रामने राज्य भार सौंप दिया। एक अनल नामक वानरने अपनेको अग्निमें परिणत कर लिया। फिर राम, सीता, लक्ष्मण, विभीषण तथा सुग्रीव आदि उस जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके भस्मीभूत हो गये।

हमें इसी प्रकार कुछ और विचित्र संबंध तथा घटनायें मिलती हैं। राम रावणके चचेरे भाई थे। उनकी एक बहिन शांता और भाई लक्ष्मण थे। राम जब सीताकी खोजमें निकलते हैं तब और दो विवाह करते हैं, एक तो बालिकी विधवा स्त्रीसे और दूसरा बालि और सुग्रीवकी बहिनसे। इस कथामें रामको बुद्धका, रावणको देवदत्तका, दशरथको शुद्धोधनका, लक्ष्मणको आनंदका और सीताको भिक्षुणीका रूप बतलाया जाता है।

लक्ष्मण शूर्पणखाके पुत्रका वध करते हैं। हनुमान और लक्ष्मणका युद्ध होता है। सेतुबंधके पहले रावण तपस्वीका वेष बनाकर रामके पास आता है। सीताके लंकावासके कारण राम उसपर संदेह करते हैं तो सीता अयोध्यामें प्रवेश करनेसे इंकार करती है। उसकी शर्त्त है कि मैं रामकी मृत्यु होनेपर ही वहां जाऊंगी। इसपर राम हनुमानके द्वारा अपनी मृत्युका संवाद भेज देते हैं। सीता विलाप करती हुई हनुमानके बहुत समझाने बुझानेपर भी नागराज मिरुणके पास चली जाती है।

एक और कथामें शूर्पणखा हरिणका रूप धारण करके रामको दूर जंगलमें ले जाकर, उनसे मारे जानेके समय अपना राक्षसी-रूप प्रकट करती है।

वनवासके समय शबरी रामसे कहती है कि बाराहावतारके समय विष्णुने मेरी माला खायी थी। उनके मरनेके बाद मैंने उनके मुर्देका मांस खाया था। उसके बाद मेरा मुंह काला हो गया और अभीतक वैसा ही है। अगर आप अपने हाथसे मेरा मुंह पोंछ दें तो मैं फिरसे शुद्ध हो जाऊंगी और यह कालापन चला जायेगा।

रामका विवाह सीताके अलावा और सात कन्याओंसे होता है और लक्ष्मणका सोलह राजकुमारियोंसे। सीता-हरण बनारसके पासके जंगलसे होता है। रावणका वध लक्ष्मणके द्वारा होता है। रावण-वधके पापके कारण लक्ष्मण किसी रोगसे मरकर नरक भोगते हैं।

दशरथकी चार रानियां थीं। पटरानीसे राम, दूसरीसे रामण, तीसरीसे भरत और चौथीसे शत्रुघ्नका जन्म हुआ। पिताके वन जानेकी आज्ञा सुनकर रामण रामसे कहता है कि तुम तो निर्दोष हो, फिर ऐसे अन्यायका समर्थन क्यों करोगे? ऐसी आज्ञाको ठुकरा दो। पर राम ऐसा करना उचित नहीं समझते हैं।

रामकी माताका नाम अपराजिता है। सीताका एक यमज भ्राता है जिसका नाम प्रभामंडल है। पर सीताके स्वयंवरके पहले प्रभामंडल यह नहीं जानता था कि वह उसकी अपनी बहिन है।

मेघनादकी सात रानियां थीं जो अपने पतिके साथ रामसे युद्ध करके मारी जाती हैं।

बलि और सुग्रीवके द्वन्द्व युद्धके समय सुग्रीवकी पूंछमें एक आईना बंधा होता है।

राजा दशरथ और कौसल्या अपने पूर्व जन्मोंमें स्वायम्भुव और शतरूपा, राजा कुंतल और सिन्धुमती, राजा कुमुद और वीरमतीके नामसे प्रसिद्ध थे।

'लोमश रामायण' में सीताके जन्मका कारण जनकके शिकार करते हुए जंगलमें योगमायाका दर्शन बतलाया गया है।

'स्वायम्भुव रामायण' में कौसल्या-हरण होता है और रावणके बदले उसमें मुनिदंडका नाम है।

'सूवर्यस-रामायण' में सीताके चरित्रके विषयमें शांता चुगली खाती है और सीताके शापसे चिड़िया बन जाती है। इसी तरह दूसरी रामायणों और रामायणसंबंधी साहित्यमें हमारी जानी हुई घटनाओं और कथाओंके विभिन्न रूप, हमारी जानकारीके बाहरकी कथायें और घटनायें, फिर इन दोनोंका भिन्न क्रमसे आना और इनके वर्णनकी विविध शैलियां प्राप्त होती हैं।

रामकथाकी इस विभिन्नताके कुछ कारण हमें स्पष्ट दीख पड़ते हैं। रामकथाके सुव्यवस्थित काव्यग्रंथोंमें तो इसका कारण प्रधानतः कवियोंकी प्रतिभा और उनकी अपनी कल्पना शक्ति ही है। रामकथाके विभिन्न रूप भिन्न-भिन्न धर्मोंके प्रभावके परिणाम भी हो सकते हैं क्योंकि हम प्रायः उनके सिद्धांतोंकी स्पष्ट छाप पात्रोंपर देखते हैं। हर एक देशके अपने रीति-रिवाज और चाल-चलन भी कथाकी विभिन्नताको जन्म देते हैं। रामकथाके देश-विदेशमें फैलनेके समय भी सुनने और सुनानेवालोंसे भी बहुत परिवर्तन आ गया होगा।

—विष्णु ललित

* * *

एक ऐसी शक्ति है जिसपर किसी सरकारका अधिकार नहीं हो सकता, एक ऐसी प्रसन्नता है जिसे कोई पार्थिव सफलता नहीं प्रदान कर सकती, एक ऐसी ज्योति है जो किसी विज्ञताके अंदर नहीं पायी जा सकती, एक ऐसा ज्ञान है जिसे कोई दर्शन-शास्त्र, कोई विज्ञान आयत्त नहीं कर सकता, एक ऐसा आनंद है जिसका रसास्वादन किसी कामनाकी तृप्ति नहीं करा सकती, एक ऐसी प्रेमपिपासा है जिसे कोई मानवीय संबंध तृप्त नहीं कर सकता, एक ऐसी शांति है जो कहीं नहीं, यहांतक कि मृत्युमें भी नहीं मिल सकती।

यह शक्ति, प्रसन्नता, ज्योति, ज्ञान, आनंद, प्रेम और शांति वे चीजें हैं जो भगवान्‌की कृपा होनेपर मिलती हैं।

—श्रीमाताजी

विश्व साहित्य :

राजा और प्रजा

—श्री अफजलुल उलमा मुहम्मद यूसुफ कोकन

हजरत सादीका जमाना निरंकुश बादशाहोंका जमाना था। चारों ओर मारकाटका बाजार गर्म था। बगदादकी अब्बासी खिलाफतका सूर्य डूब रहा था। हलाकूने हर तरफ हमले शुरू कर दिये थे। चारों तरफके बादशाह अपने झगड़ोंमें लगे थे उन्हें तातारियोंके साथ लड़नेकी फुर्सत कहां थी। शिया सुन्नीके झगड़े मुसलमानोंको तबाह कर रहे थे। आपसका मनमुटाव हदसे बढ़ गया था। ऐसी परिस्थितिमें कौन किसकी सुंन सकता था। ऐसी हालतके होते हुए भी हजरत सादीने अपने मजेदार ढंगसे राजाओं और सरदारोंको खरी-खरी सुनायी। अगर उन लोगोंने इनकी बातपर कान दिया होता तो अपने आप भी बच जाते और अपनी प्रजाको भी मुश्किलोंसे बचा लेते। हजरत सादीने ६५५ हिजरीमें बोस्तां लिखी और ६५६ में गुलिस्तां। ६५६ में ही हलाकूखांने बगदादपर हमला किया और वहांके आखिरी खलीफा अब्बासी मुस्तेइसिमबिल्ला और उसके साथ बहुतसे सरदारों और विद्वानोंको मौतके घाट उतार दिया। इसपर शेख साहबने एक मर्सिया लिखा जिसका पहला शेर था :

आस्मांरा हक बूअद गर खूं बबारद बर जमीं।
बर जवाले मुल्के मुस्तेसिम अमीरुल मौमिनीं ।।

यानी आस्मानको अधिकार होगा कि वह अमीरुल मौमिनीन मुस्तेसिमके देशके तबाह हो जानेके कारण जमीनपर खून बरसाये।

सादी किसीकी खुशामद नहीं किया करते थे लेकिन उन्होंने अपने जमानेके एक बादशाह अबू बक्र बिन सादकी बहुत प्रशंसा की है। सादके नामके आधारपर ही उन्होंने अपना उपनाम सादी रखा था। यह बादशाह बहुत न्याय-प्रिय था। उसके राज्यमें कहीं अत्याचार नहीं होता था। दूर-दूरसे लोग उसके राज्यमें बसनेके लिये आते थे। सादीका कहना है कि यह बादशाह ऐसे परिवारका है जिसकी आत्मा आकाशमें है और शरीर धरतीपर। सादीका कहना है कि राजा पेड़ है और प्रजा उसकी जड़। जड़ मजबूत न हो तो पेड़ अपनी जगह नहीं रह सकता। इसलिये प्रजाका दिल मत दुखाओ। किसानोंको स्वयं अपने हितके लिये सुविधएं दो क्योंकि एक प्रसन्नवदन मजदूर अधिक काम करता है :

मुराआते दहकां कुन अज बहे खीश।
कि मजदूरे खुशदिल कुनद कार बेश ।।

फिर कहते हैं कि देशमें तलवार बहुत अशांति पैदा कर सकती है पर औरतों और बच्चोंकी हाय उससे बहुत अधिक विनाशकारी होती है। इसलिये शासक ऐसा होना चाहिये जो लोगोंको बिलकुल न सताये और अपने-आप संयमसे रहे। जो औरोंको सताकर उनका खून पीकर तेरा लाभ करना चाहता है वह तेरा बुरा चाहनेवाला है। अगर तुम नागरिकोंको कष्ट पहुंचाओगे तो वे तुम्हारे विरोधी होकर दुश्मनसे जा मिलेंगे।

सादी साफ बात कहना पसंद करते थे। उन्होंने कहा है, ऐ सादी, सच्ची बात कह डालो, लोभ छोड़ दो और लोगोंके सामने सत्य कहते जाओ। तुम न तो रिश्वत लेते हो, न नखरे करते हो इसलिये तुम निःसंकोच होकर विवेकपूर्ण बातें कर सकते हो।

सादी राजासे कहते हैं कि हे राजा, तू ऐसी जगह सोया कर जहां गरीबोंकी आवाज तेरे पास पहुंच सके। अगर तुम्हारे देशका कोई आदमी गड़बड़ पैदा करता है तो उसे देश-निकाला न दो क्योंकि वह जहां जायेगा वहां गड़बड़ करेगा और वहांके लोग कहेंगे, 'नाश हो ऐसे देशका जहां ऐसे लोग होते हैं'। बादशाहको चाहिये कि अपने गुस्सेपर काबू रखे। अगर उसे किसीपर गुस्सा आये तो उसे सजा देनेसे पहले अनेक बार सोच-विचार कर ले। आदमीका दिल बदख्शानी हीरे-जैसा

है। वह जरा-सी ठेससे टूट सकता है परंतु एक बार टूटे हुए हीरेको जोड़ना असंभव है। मैं यह नहीं कहता कि युद्धके समय उलटे पैरों भाग जाओ, मैं कहता हूं कि जब गुस्सा आये तो अपनी बुद्धि मत खो बैठो। गुस्सेपर विवेकका अंकुश रखो।

फिर सादी कहते हैं: शिकारी कुत्ता एक चीतेसे मुंह नहीं फेरता लेकिन बिना अनुभवका शेर एक लोमड़ीके सामनेसे भाग खड़ा होता है। अगर तेरा लड़का शिकार करता रहा है तो युद्ध सामने आनेपर भी भयभीत नहीं होगा। कुश्ती, शिकार, तीर-अन्दाजी और गेंद फेंकनेवाला लड़का हमेशा वीर और निर्भय होता है और ऐशों आराममें पला हुआ व्यक्ति युद्धमें बहुत कष्ट उठाता है। अगर तुम किसीको लड़ाईमें पीठ फेरते हुए देखो तो खुद ही उसकी गरदन उड़ा दो। दुनिया देखे हुए आदमीकी रायसे काम करो। क्योंकि एक बूढ़ा भेड़िया हमेशा ज्यादा अनुभवी होता है। तलवार चलानेवाले जवानोंसे युद्धकला जाननेवाले बूढ़े ज्यादा भयानक होते हैं। हाथी और शेरको पकड़नेवाले नौजवान बूढ़ी लोमड़ीकी चालाकियां नही पकड़ सकते।

हजरत सादी कहते है कि एक बाहशाह थिगड़े लगे हुए कपड़े पहने था। किसीने उसे अच्छे कपड़े पहननेकी सलाह दी तो उसने कहा, "इतना पहन लेना तन ढकने और आरामसे रहनेके लिये काफी है। इससे ज्यादा पहनूं तो वह सजावटके लिये होगा। मैं लोगोंसे रुपया इसलिये नहीं लेता कि अपने-आपको बना संवारकर रखूं। अगर मैं औरतोंकी तरह अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर ठाटसे रहूं तो लड़ाईके समय मरदानगी कौन दिखायेगा? मेरे अंदर भी बहुत-सी इच्छाएं और अभिलाषाएं हैं, लेकिन खजाना मेरा अपना नहीं है।"

सादीने मजबूत सेना रखनेके लिये तो कहा पर उन्हें लड़ाई पसंद न थी। वे कहते हैं अगर बादशाह ताकतवर हो और उसके पास बहुत बड़ा लश्कर हो तो भी दुश्मनके मुल्कपर हमला न करना चाहिये। अगर किसी दुश्मनसे लड़ाई छिड़ ही जाये तो जहांतक बन पड़े शांतिके साथ समस्याओंको सुलझा लेना चाहिये। अगर तेरे अंदर हाथीका जोर है और शेरका पंजा है तो भी मेरी नजरोंमें लड़ाईसे सुलह ज्यादा अच्छी है:

अगर पील जोरी व गर शेर चंग
ब नजदीके मन सुलह बहतर न जंग।

आगे कहते हैं कि तू लड़ाईसे परहेज कर क्योंकि मैंने बहुत देखा है कि एक बूंदसे भी बाढ़ आ सकती है। जहांतक हो सके अपनी भौंहे न तान। दुश्मन कमजोर और बेबस हो तो भी उसका दोस्त रहना बेहतर है। लेकिन जब समझौतेकी कोशिशें बेकार हो जायें तो तलवार उठाना उचित है। अगर दुश्मन समझौता करना चाहे तो अपना मुंह न फेरो और अगर लड़नेपर तुला हो तो अपनी बाग न मोड़ो।

उन दिनों कई अच्छे बादशाह सांसारिक झमेलोंसे बचनेके लिये राजपाट छोड़कर फकीर बन जाते थे। सादीको यह पसंद न था। वे कहते हैं, ऐ बादशाह, सचमुच दरवेश बनना है तो सेवा कर। हाथमें माला लेकर गुदड़ी पहनकर आसन जमाये नमाज पढ़ते रहनेसे तू दरवेश न बन जायेगा। तू सच्चाई, श्रद्धा और न्यायपर डटा रह। मुखसे बुरी बात न निकाल फिर दरवेश होनेका दावा करनेकी जरूरत नहीं। बिना सचाई और सफाईकी पूंजीके, बिना आचरणके खाली सांस चलानेका कोई लाभ नहीं। तू सिंहासन पर रहकर भी अपने शुद्ध आचरण के कारण दरवेश हो सकता है।

इसी तरह राज्यमें न्यायका होना जरूरी है। शेखसादी कहते हैं, भाग्यवान् है वह जिसने अपने राज्यमें न्यायके साथ जीवन बिताया। अगर भगवान् किसी देशके साथ भलाई करना चाहता है तो उस देशको एक न्यायप्रिय राजा देता है।

अगर मौका मिला तो फिर कभी भेंट होगी, आज यहीं समाप्त करता हूं।

***

यह दुनिया :

समुद्र–उसका रंगरूप

कहते हैं देवताओं और दैत्योंको अमृतकी चाह हुई तो उन्होंने समुद्रको मथ डाला। समुद्रमेंसे हलाहल भी निकला और अमृत भी। आज मनुष्यजातिके सामने फिरसे एक बहुत बड़ी समस्या आ खड़ी हुई है। मनुष्योंकी संख्या बेतहाशा बढ़ती जा रही है लेकिन खाद्य उस अनुपातमें नहीं बढ़ रहे और रहनेकी जगह......। उसके लिये तो मनुष्यने धरतीके जंगलोंको उजाड़ दिया है और सैंकड़ों प्रकारके जानवरोंको नीस्तो नाबूद कर दिया है। फिर भी समस्याका कोई हल नहीं दिखायी देता। हिंदुस्तानको ही ले लीजिये। १९२१ में यहांकी आबादी ३० करोड़ थी, अब पकिस्तान और बर्माके अलग हो जानेके बाद यहांकी आबादी ४५ करोड़ है। साधारण आदमी अनुभव नहीं कर पाता पर जाननेवालोंका कहना है कि अगर इसी तरह आबादी बढ़ती गयी तो सारी धरतीपर मनुष्योंके खड़े रहनेकी जगह न बचेगी। आधी दुनियामें भोजनकी कमी है और मीठा पानी सब जगह कम होता जा रहा है।

स्वाभाविक रूपसे अब मनुष्यकी दृष्टि समुद्रकी ओर जा रही है। पृथ्वीका तीन-चौथाई अंश समुद्र है। हमें यह तो मालूम है कि समुद्र रत्नाकर है पर हम अभीतक उसके रत्नोंसे बिलकुल अनभिज्ञ-से हैं। हमारे वैज्ञानिक चंद्रमा और मंगलकी अपेक्षा समुद्रके बारेमें कम जानकारी रखते हैं। कहते हैं घरका जोगी जोगना, उसी तरह हमारा पड़ोसी होनेके कारण समुद्र भी बहुत अधिक उपेक्षाका पात्र बना रहा। आज सागरविज्ञानका अध्ययन करनेवाले बताते हैं कि प्रति एकड़के हिसाबसे देखा जाय तो शायद जमीनकी अपेक्षा समुद्रमें अधिक प्राणी और पौधे पाये जाते हैं। परंतु मनुष्यने अभीतक समुद्रमें खेती करना नहीं सीखा है। वहां आज भी मनुष्य शिकारीके रूपमें ही जाता है और शिकारको पकड़कर उदरस्थ कर लेता है।

समुद्र धरतीकी गरमी सरदीका नियंत्रण करता है, इसके किनारोंको आकार देता है, मनुष्यजातिके व्यापार और युद्धमें सहायता देता है और नाराज हो जाय तो शहरों, टापुओं और बड़े-बड़े भूमिखण्डोंको भी समाप्त करके धर देता है। प्राचीन कालके बहुतसे चिह्न जो धरतीपरसे नष्ट हो चुके हैं, अब भी समुद्रमें सुरक्षित हैं जिनके आधारपर पृथ्वीकी ठीक आयुका पता लगता है। समुद्रमें नमकके अतिरिक्त प्रायः सभी प्रकारकी धातुएं और लवण पाये जाते हैं। उनका समुचित रूपसे उपयोग किया जा सके तो हमारे यहां किसी चीजकी कमी न रहे। आजकल समुद्रके पानीका खारापन निकालनेकी कोशिशें हो रही हैं। इस प्रक्रियाको यदि सस्ता बनाया जा सके तो सारी दुनियामें कहीं भी पानीकी कमी न रहेगी।

यूं तो पुराणोंमें तथा अन्य प्राचीन साहित्यमें भी समुद्रके बारेमें बहुत-सी जानकारी दी गयी है पर आधुनिक ढंगसे समुद्रका अध्ययन लगभग १८५० में हुआ था। १८७२ में इंग्लैंडके चार्ल्स विली टामसन के नेतृत्वमें चैलेंजर नामक अंग्रेजी जहाजने सारी दुनियाके समुद्रोंका चक्कर लगाया और जगह-जगहसे समुद्री तलके जीव-जन्तु, पौधे और मिट्टीके नमूने इकट्ठे किये। उसने समुद्रोंके आकारका भी ठीक पता लगाया और साथ ही यह भी बताया कि प्रायः सब ऋतुओंमें गहराईमें जानेपर समुद्रका तापमान प्रायः एक समान ही रहता है। उसने बताया कि समुद्रकी गहराइयोंमें भी बहुत अधिक प्राणी रहते हैं जिनके बारेमें आज तक हमें कुछ भी नहीं मालूम।

पहले समुद्रकी गहराई नापनेके लिये एक रस्सीमें कोई भारी चीज बांधकर उसे समुद्रमें उतारा

जाता था और जब वह समुद्रकी थाह ले चुके तो फिर ऊपर खींच लिया जाता था। इसमें बहुत अधिक समय लगता था और परिणाम हमेशा ठीक न होते थे। परंतु अब फेदमीटर नामक यंत्र-का उपयोग किया जाता है। इससे समुद्रके अंदर एक ध्वनि भेजी जाती है, वह नीचे तहसे टकराकर प्रतिध्वनिके रूपमें वापिस आती है। ध्वनि और प्रतिध्वनिमें जितना समय लगता है उससे हिसाब लगाकर समुद्रकी गहराईका पता लगा लिया जाता है। जिस काममें पहले कई-कई घंटे लगते थे उस-में अब कुछ सेकंडोंकी जरूरत होती है। इस तरीकेसे समुद्रकी गहराई, वहांके पहाड़, मछलियोंके झुण्ड, टूटे हुए जहाज आदिका भी पता लगाया जाता है और सारे समुद्रका एक अच्छा खासा मानचित्र भी तैयार कर लिया गया है। परंतु इस विधिसे जिस स्तरका पता लग सकता है वह समुद्रकी सच्ची तली नहीं होती। उसके नीचे काफी दूरतक कीचड़ आदि होती है। सच्ची तलीतक ध्वनि पहुंचानेके लिये एक और यंत्र होता है।

सागर-शास्त्रका अध्ययन करनेवालोंका कहना है कि जब पृथ्वी बनी थी तो वह एक जलते हुए पिण्डके रूपमें थी। धीरे-धीरे गरमी कम होती गयी। पृथ्वीके बहुत सारे द्रव्य वाष्पके रूपमें आकाश-पर छाये हुए थे। और सूर्यको ढंके हुए थे। सारी पृथ्वीपर अंधकार ही अंधकार था। धीरे-धीरे आकाशमें जलकी मात्रा इतनी बढ़ गयी कि वातावरणके लिये उसे संभालना असंभव हो गया और परिणामस्वरूप धुंआधार वर्षा शुरू हो गयी। लेकिन उस वर्षामें और आजकी वर्षामें कोई तुलना नहीं है। दिनपर दिन वर्षपर वर्ष और सदियोंपर सदियां बीत गयीं, वर्षा होती ही रही। पृथ्वी-पर बहुतसे स्थान नीचेको धंस गये और हल्के स्थान ऊपरको उभर आये। धंसे हुए स्थान ही आज-के समुद्र हैं और उभरे हुए स्थान भूखण्ड। यूं भूगोलकी पुस्तकोंमें हम पांच महासागरोंके नाम पढ़ते हैं पर सचमुच तो सारी पृथ्वीपर एक ही महासागर है जिसमें इधर उधर भूखण्ड तैर रहे हैं। कहते हैं कि पहले समुद्रका पानी खारा न था। धीरे-धीरे पर्वतोंसे और भूखण्डोंसे भिन्न-भिन्न प्रकार-के लवण बह-बह कर आने लगे और सागरतलमें इकट्ठे होते गये। पानी तो भाप बनकर उड़ता रहता है पर लवण जमा होते रहते हैं। इसीके परिणामस्वरूप आज समुद्रका पानी इतना खारा है। सागरके विभिन्न भागोंमें पानी और नमकका अनुपात अलग-अलग है, यहांतक कि उत्तरी अमरीकामें एक सागरके पुराने अवशेष ऊटा झीलमें नमककी मात्रा २८% है पर साधारण समुद्री जलमें यह लगभग ३.५% होता है। कहते हैं कि अगर समुद्रके सारेके सारे नमकको निकालकर भूखण्डपर डाल दिया जाय तो ५०० फुट मोटी तह बनेगी।

ध्रुवोंके आसपास समुद्रके पानीका तापमान ३२° फरनहाइटके आसपास होता है और ईरानके आसपास ८५° फरनहाइट। परंतु बड़े-बड़े समुद्रोंके तलमें तापमान ३२° से ३४° होता है। समुद्रके सारे पानीका औसत तापमान ३९° फा. के आसपास रहता है। इसपर बाह्य परिस्थितियोंका असर नहीं होता। समुद्र जहां छिछला हो वहां उसका रंग हल्का हरा या मटियाला होता है और गहरा पानी हो तो रंग नीला, भूरा या गहरा हरा दीखता है। यह रंग धूप, छांव आदिके साथ बदलता जाता है। सागरशास्त्रियोंका कहना है कि पानीका अपना कोई रंग नहीं होता। हमें जो रंग दिखायी देता है वह आकाशकी छाया अथवा घुले हुए पदार्थोंके कारण होता है। कई समुद्रोंमें घुले हुए पदार्थों अथवा जीव जन्तुओंके कारण विशेष रंग दिखायी देता है और इसके कारण उन्हें विशेष नाम दिये गये हैं, जैसे लाल सागर, पीत सागर आदि।

—संकलित

कहानी :

परिवर्त्तन

५ मार्च

आज बहुत दिनोंके बाद दैनन्दिनी लिखने बैठी हूं। यह मेरे लिये एक आईनेका काम देती है। जब तबीयत घबरा उठती है तो यह तसल्ली देती और भार हल्का करती है, जब तबियत खुश हो तो यह खुशीको बढ़ाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लिखते समय मैं अकेली होती हूं। यहां मैं अपने-आपको नंगे रूपमें देख सकती हूं, यहां किसी दिखावेकी जरूरत नहीं है। कोई दूसरा मेरे इन रहस्योंतक न पहुंच पायेगा और मैं अपना दिल खोलकर रख सकूंगी।

लेकिन नहीं, बहुत बार हम अपने-आपको भी तो धोखा देते हैं। हम एक चीज करना चाहते हैं किसी उद्देश्यसे लेकिन स्वयं अपने-आपको ही विश्वास दिलाते हैं कि नहीं यह बात नहीं है। उस दिन जब उग्रका साहित्य पढ़नेको मन मचल रहा था तो मैंने अपने-आपको विश्वास दिलाया कि यह केवल उनकी सुन्दर भाषाके प्रति आकर्षण है। इसी प्रकार पास-पड़ोसकी स्त्रियोंके चबावके रसका पान कहानीकी सामग्रीके रूपमें हो जाता है। यह मन भी एक पहेली है। अपने मनको जानना ही मुश्किल है, दूसरोंके मनकी कौन कहे।

९ मार्च

यह प्रश्न बार-बार मेरे आगे आकर खड़ा हो जाता है कि सचमुच अपने मनकी बातको कैसे जाना जाय। क्या हमारे अंदर एकसे अधिक मन हैं? कौन-सा प्रामाणिक है, किसकी बातको हम 'अपनी बात' कह सकते हैं? जरा खोलकर ही क्यों न रख दूं, यहां कौन देखनेवाला है। मैंने एक अच्छे संभ्रांत घरमें जन्म लिया था। घरमें मेरे मां-बापके अतिरिक्त मेरा बड़ा भाई था। मैं छोटी होनेके कारण अपने मां-बापकी आंखोंका तारा बन गयी। मेरी मांका अस्तित्व मेरी हर उचित और अनुचित मांगको पूरा करनेके लिये ही था। वे मेरी इच्छा पूरी करनेमें जरा भी कसर करतीं तो मैं झट पिताजीसे शिकायत कर देती और तब उनकी बुरी गत बनती। मेरी मां साधारण पढ़ी 'घर-द्वारवाली औरत' थी और मेरे पिता जवानीकी उमंगोंसे भरे महत्त्वाकांक्षी, अपना प्रभाव दिखानेके लिये उत्सुक युवक। सुना था वे कहीं किसी उच्च पदपर काम करते थे जिससे उन्हें मोरकी तरह नाचकर अपने पंख दिखानेका अवसर अच्छी तरह मिल जाता था। उनकी दृष्टिमें मां एक निपट फूहड़ और मूर्ख स्त्री थी जिसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य था पिताजीकी सेवा-टहल करना, उनकी हर झिकको पूरा करना और उनकी संतानका दिल बहलाए रखना। इन सेवाओंके करते हुए उचित, अनुचितका सवाल उठाना ही अनुचित था। मैं जरा बिसूर देती तो मांपर झिड़कियां पड़ जातीं और और मैं अपनी विजयके उल्लासमें फूली न समाती।

इस तरहका लाड़ पाकर मैंने अपने-आपको अपने घरका ही नहीं, मानव समाजका केंद्र समझ लिया। आसपासके लोग, नातेदार रिश्तेदार सब मुझे खुश करनेके लिये थे। मेरी जिद दिनपर दिन बढ़ती जाती थी। मुझे केले पसंद न थे इसलिये घरमें केलेका आना मना, मुझे पकौड़ियां पसंद थीं तो धौरी दोपहर हो या काली अंधेरी रात, उसी समय गरम-गरम पकौड़ियां मेरे सामने आ जातीं। उसमें यह न देखा जाता कि नौकर चाकरोंको या घरकी मुख्य नौकरानी यानी मेरी मांको कितना कष्ट होता है। मेरी कोई खास कपड़ा पहननेकी इच्छा हो जाती तो उसी समय अधिक पैसा देकर दरजी बुलाया जाता और सारे काम छोड़कर मेरे कपड़े तैयार कराये जाते। मेरा मूल मंत्र था 'खा

लिया सो अपना पहन लिया सो अपना, औरोंका सब सपना'। मैं पढ़नेमें तेज थी लेकिन पढ़ती थी जासूसी कहानियां और 'घासलेटी साहित्य'। जेब हमेशा भारी रहती, किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं इसलिये मेरी अलमारी अमरीकन अपराधकी पत्रिकाओं और फिल्मी साहित्यसे भरी रहती थी। पिताजी दूरसे देख लेते थे कि उनकी लाड़ली पढ़ाईमें लगी है लेकिन वह पढ़ रही है या अपनी कब्र खोद रही है यह देखनेकी न तो उन्हें परवाह थी न फ़ुरसत।

४ जून

सचमुच फ्रायड ही मनुष्यको ठीक समझ सका है। उसकी बातें दिलमें घर कर जाती हैं। हमारी प्रत्येक क्रियाका रहस्य उसने हमारे सामने खोलकर रख दिया है। उसके सामने भारतीय दर्शन तो एकदम फीका लगता है ठीक ऐसे ही जैसे चटपटे आचारके बाद रूखी रोटी। हमारे यहां जो सबसे अधिक बदनाम व्यक्ति है उसीका दर्शन मुझे तो आकर्षक लगता है। जब वह कहता है: यावज्जीवेत् सुखम् जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् तो चार्वाक मानो मेरे मनकी बातको अपने शब्दोंमें व्यक्त कर देता है। मुझे रामायण और महाभारत पढ़नेका भी अवसर मिला है। सचमुच अद्‌भुत ग्रंथ है। दोनों ही मुझे अत्यधिक प्रिय हैं परंतु मैं उन्हें मानसिक विलासकी चीजें समझती हूं। उनमें हमारे पूर्वजोंके बारेमें जो कहा गया है वह ठीक है, मैं उनका आदर करनेमें किसीसे पीछे नहीं परंतु इसका यह मतलब नहीं कि मैं अपने जीवनको राम या लक्ष्मण या अर्जुनके अनुरूप घड़नेकी कोशिश करूं। नहीं, जमाना आगे बढ़ चुका है, हमें प्रगति करनी चाहिये। कालके पहिये पीछे नहीं हटा करते।

५ जून

मैंने कल लिखा था कि कालके पहिये पीछे नहीं हटा करते। ठीक है, मैं प्रगति कर रही हूं। मेरे मार्गमें जो कोई बाधा देगा उसे मुंहकी खानी होगी। पिताजी मेरी बातको कुछ-कुछ समझते हैं। वे मेरी प्रगतिमें कभी बाधा नहीं डालते बल्कि यूं कहूं कि परोक्ष रूपसे मेरी सहायता ही करते हैं। परंतु यह फूहड़ मां जिसका आदर करने को कहा जाता है मुझे बिल्कुल नहीं समझ पाती। मेरी आधुनिक गतिविधि उसे बेहयाई और घरका नाम डुबानेवाली लगती है। लगा करे। वह अपनी जगह खुश रहे और मेरे मार्गमें बाधा न दे इसीमें खैर है नहीं तो दुर्घटना होनेकी पूरी-पूरी संभावना है। लेकिन क्या करूं। वह अब भी मुझे अपना बालक मानती है और सुधारनेकी कोशिश करती है। समवयस्क लड़कोंके साथ मेरा मिलना जुलना उसे एक आंख नहीं भाता। वह मुझे राम और सीताकी कहानियां याद दिलाना चाहती है। उलटे बांस बरेली। कितनी बार उससे कुछ काम करवा लेनेके लिये मैंने घूसके रूपमें उसे रामायण सुनायी है। रामका जीवन आदर्श जरूर है पर हम लोगोंके लिये नहीं, भारतकी महिमा गानेवालोंके लिये, मंदिरोंमें कथा कहनेवालोंके लिये आधुनिकताकी द्रौड़में भाग न ले सकनेवालोंके लिये।

५ जुलाई

मां मेरी हरकतोंसे नाराज होकर, अपने मनको दुखी करके अपने नेहर चली गयीं। जाने दो, अब मुझे ज्यादा आजादी रहेगी। लेकिन यह खूंसट दादी यहां किसलिये आ धमकी है। पिताजी कहते हैं, मांकी अनुपस्थितिमें वह घर संभालेगी। पर मुझे इस बातपर विश्वास नहीं। कहीं संभालनेकी जगह उजाड़ न डाले। हमारा पैसा मुफतका थोड़े ही है। पिताजी खून पसीना एक करके लाते हैं और यह महाशया, कल एकादशीका बहाना करके ब्राह्मणोंको सिंघाड़े बांट रही थी। अंधेर है। अपने लिये इसे अलग उबली हुई शकरकंदियां चाहिये। क्या व्यर्थका खर्च है। मैं जरा लिहाज कर जाती हूं तो यह सिरपर ही चढ़ी आ रही है। कल कालिजके कुछ लड़के यूं ही आ गये थे। मैंने उनके लिये बाजारसे केक और बिस्कुट मंगाये तो हमारी दादीजान बफर गयीं मानों मेरे साथी इनके ब्राह्मणोंसे भी गये बीते हैं।

और यह लड़के भी तो कम नहीं हैं। एकने झट दादीको बता दिया कि मैं परीक्षामें किताब

लेकर गयी थी। बस दादी बरस पड़ी। अरे बाबा, किताब ले गयी तो इसमें कौन सा पाप कर डाला मैंने? किताब कोई गंदी चीज नहीं है और किताब ले गयी तो परीक्षामें सौमेंसे अस्सी अंक भी तो ले आयी न, लेकिन यह उन्हें नहीं दिखायी देता। उन्हें तो बस इसमें चोरी और बेईमानी ही दीखती है। कालकी गति इन लोगोंको छू तक नहीं गयी।

१५ जुलाई

नहीं, मांके बिना काम चलना मुश्किल है। यहां तो मेरे खाने-पहननेकी किसीको परवाह ही नहीं है। दादी न जाने सचमुच नहीं जानती या जानकर अनजान बन जाती हैं पर उन्हें यह पता ही नहीं होता कि सिनेमा कब खतम होता है। मैं रातके दस बजे आ जाऊं तो, और ग्यारह बजे आऊं तो, एक ही हाल होता है ठंडी रोटी दालसे ही सिर मारना पड़ता है। मिसरानीको वह चौकेमें नहीं घुसने देती, अपने आप काम होता नहीं और कुछ कह दो तो बस बिस्तर गोल करनेकी धौंस। पिताजीपर वे पूरा-पूरा अधिकार मानती हैं और पिताजी भी उनके सामने चूं नहीं करते। बस मुसीबत है तो एक मेरी। जी चाहता है कि कह दूं दादीसे कि तुम्हारी जरूरत नहीं, बख्शो बी बिल्ली, तोता लंडूरा ही जियेगा। लेकिन कहीं पिताजी नाराज हो गये तो — नाराजगीकी तो कौन परवाह करता है पर, नहीं वह इतने नीच नहीं हैं.....लेकिन कौन जाने......कहीं हाथ खर्चपर........नहीं, मुझे सहना होगा।

२५ जुलाई

मां, मां, तुम जल्दी लौट आओ, तुम्हारे बिना काम नहीं चलता। अबसे तुम्हें कभी तंग न करूंगी इस बार माफ कर दो। तुम्हारे बिना तो जिन्दगी दूभर हो रही है। एं, यह मैंने क्या कह दिया, मैं तो लड़की हूं। मां जन्म भर तो साथ न देंगी। जब मेरा अपना घर होगा, क्या तब भी मांको बुलाया करूंगी। लेकिन मैं ऐसे बिना देखे सुने किसीके साथ भांवरें डालनेसे रही। मैं तो चुनकर कोई आंखका अंधा गांठका पूरा लूंगी जो मेरी सेवाके लिये हमेशा तैयार रहे, मेरे इशारेपर थैली खोले बन्द करे और मेरी आजादीमें चूं भी न करे। सारे दिन बस वह भला और उसका काम भला। मैं क्या करती हूं और क्या नहीं करती इसमें वह अपनी टांग न अड़ाए।

यह तो ठीक है लेकिन अब मांको तार देकर बुलाना पड़ेगा। दादीने नौकर नौकरानियोंको भी पट्टी पढ़ा दी है। वे भी मेरी परवाह नहीं करते। मां होती तो मैं इन सबको धक्के मारकर निकाल देती लेकिन अभी कुछ बोली तो सारा काम मेरे सिरपर आ पड़ेगा। उफ 'मात बिनु रोटी कटौरा को दैहै।' अब तो उन्हें आना ही चाहिये।

१ अगस्त

मेरे बार-बार आग्रह करनेपर मां लौट आयी हैं। लेकिन दो ही तीन दिनमें खटपट शुरू हो गयी। मेरे सारे वादे कागजी घोड़े बनकर रह गये और मैंने फिर झगड़ना शुरू कर दिया। आज सबेरे ही सबेरे मांसे आग्रह किया कि मेरे लिये खीर बना दें। मुझे मालूम था कि मेरे कालिजका समय हो रहा है और इतनी जल्दीमें खीर तैयार कर देना बहुत कठिन है पर फिर भी मैं जिदपर डटी रही। मांके सामने और कोई चारा न था। चूल्हेपर दाल पक रही थी, उसे उतारकर खीर चढ़ानी थी। मां झपटकर पतीली उतारने चलीं, पांव फिसला और वे रपट पड़ीं। चश्मा टूट गया, हाथ-पांवमें चोट आयी और, और,....कहते हुए शरम आती है, मेरे कारण उबलती हुई दाल उनके ऊपर गिर पड़ी। शरीर कई जगहसे जल गया। इसका पूरा दायित्व मुझपर है। आखिर यह सब क्यों होता है? हमारा घर इस तरह नरक क्यों बना हुआ है? मैं इतने ऊंचे विचार करती हूं, कभी आदर्शवादसे भर जाती हूं और कभी इस तरह कीचड़में घुस जाती हूं आखिर इसका कारण क्या है? मेरे कुछ मित्र मुझे एकदम मधुर, शिष्ट सभ्य और आदर्श लड़की मानते हैं, इधर दूसरी ओर, घरके

लोग भी मेरा संग छोड़कर भाग जाना चाहते हैं। ऐसे कबतक चलता रहेगा। इसका कुछ उपाय तो होना चाहिये। मैंने फ्रायडकी चिकित्सा करनेकी कोशिश की परंतु वह तो मेरी समस्याओंको और भी बढ़ा देता है।

५ अगस्त

नहीं, यह अवस्था नहीं चलने दी जायेगी। मैंने मनुष्य योनिमें जन्म लिया है मुझे मनुष्य ही बनना चाहिये। मैं कई दिनोंसे इस विषयपर सोच रही हूं। आज सवेरे ही सवेरे ख्याल आया कि मैं बहुत ज्यादा बहिर्मुख हूं। मेरी कठिनाइयोंका एक बड़ा कारण यह है कि मैंने कभी अपने अंदर देखनेकी कोशिश नहीं की। इंद्रियोंका सुख प्राप्त करना ही तो मेरे जीवनका चरम लक्ष्य नहीं है। मुझे कभी-कभी अपने जीवनके लक्ष्यका आभास मिलता है पर वह शीघ्र ही बाहरी कीचड़में डूब जाता है। मुझे अपने अंदर खोज करनी होगी। पर अभीतक मेरा जीवन उलटे मार्गपर ही चलता आया है। क्या मैं ठीक हो सकूंगी ?

१० अगस्त

मांके शरीरपर बड़े-बड़े छाले देखकर रोना आता है। मैं लड़की नहीं डायन हूं। यह भी कोई जीवन हुआ। छिः।

१२ अगस्त

नहीं, मुझे इतना निराश न होना चाहिये। आज अचानक एक पुस्तक खोली। सबसे पहला वाक्य शायद मुझे ही पुकार रहा था। उसने कहा, "मनुष्य अपनी स्वार्थ भावनाओं और सुविधाओंपर केंद्रित रहता है,जब वह ऐसा करना बंद कर देगा तभी समस्त कठिनाइयोंसे निवृत्ति हो सकेगी।... दृढ़ता और अध्यवसाय सफलताके लिये अनिवार्य हैं, किंतु हर हालतमें जो लोग श्रद्धा और विश्वासके साथ पुकारते हैं भगवत्कृपा उनकी सहायता करती ही है।"

१५ अगस्त

मैं बदलनेके लिये पूरा प्रयास कर रही हूं। निराशा कम हो चली है। आज सवेरे सोकर उठी तो एक मृदु स्वर सुनायी दिया 'इस उलझनसे छुटकारा पानेके लिये मेरी सहायता सर्वदा तुम्हारे साथ है। तुम शांत रहो तो इसे अनुभव कर सकोगी।'

—रवींद्र

* * *

इतिहास बोलता है :

अबू सिम्बल

सूर्य प्राचीनकालसे मनुष्यका आराध्य रहा है। किसीने उससे डरकर और किसीने उसे उच्चतम सत्ताका प्रतीक मानकर उसकी पूजा की है। हमारे देशमें भी सूर्यके मंदिर हैं जिनमें सबसे अधिक ख्याति कोणार्कको मिली है। इसी भांति मिस्र देशमें भी सूर्यकी पूजा की जाती था। वहांके सूर्य-मंदिरोंमें अबू सिम्बलका नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। ये मंदिर केवल तीन हजार दो सौ वर्ष पहले नील नदके किनारे नूबियामें पहाड़को काटकर बनाये गये थे। कहते हैं कि राजा रामेसेज द्वितीयने पच्चीस हजार कारीगर लगाकर इन मंदिरोंको बीस वर्षमें पूरा करवाया था। यूं काम शुरू तो उसके बापके समय ही हो गया था।

रामेसेजने बड़ा मंदिर सूर्य भगवान्की पूजाके लिये बनवाया था जिसे वहांके लोग आमेनरा कहते थे। साथ ही रामेसेजने उसमें अपनी मूर्तियां भी बनवायीं। उसी नदके तीरपर जरा नीचेकी ओरको प्रेम, संगीत और नृत्यकी देवीका मंदिर है और इसमें रामेसेजकी रानी नफ़रतारीकी मूर्ति है। यह मंदिर पहलेसे कुछ छोटा है। नेफरतरीके मंदिरसे लोग बहुत ज़मानेसे परिचित थे परंतु रामेसेजका मंदिर विस्मृतिके पर्देके पीछे पड़ा था। १८१२ में एक स्विस यात्री नेफरतरी स्मारकसंबंधी कुछ खोज कर रहा था तो उसे रेतमें उभरी हुई कुछ चीज दिखायी दी। कुछ खोदनेपर अंदरसे विशाल मूर्तियोंके चिह्न मिले। यहींसे उस खुदायीका आरंभ हुआ जिसे पूरा होनेमें सौ वर्ष लगे और अंतमें चार विशाल मूर्तियों और इस बड़े मंदिरका पता लगा।

यह मंदिर पहाड़के भुरभुरे पत्थरमें २०० फुट लंबा, १२५ फुट चौड़ा और ११० फुट ऊंचा है। रामेसेज द्वितीयकी पैंसठ-पैंसठ फुट ऊंची चार प्रतिमाएं इसपर पहरा देती हैं। बाहरसे आनेवाला पहले दीवारके साथ लगी हुई रामेसेजकी आठ मूर्तियां देखता है जो तीस-तीस फुट ऊंची हैं। इन्हें देखते ही वह स्तंभित रह जाता है। मंदिरके मुख्य हालमें रामेसेजके रंगीन चित्र हैं जिनमें वह हिटाइट शत्रुओंको परास्त करता दिखायी देता है। फिर कई रहस्यमय रास्तोंसे होता हुआ वह आदमीके कदसे ऊंची चार मूर्तियोंके पास पहुचता है, इनमें एक मूर्ति भगवान् रा या सूर्यकी है, दूसरी टो बेसके देव एमनकी, तीसरी मेम्फिसके देव टाकी और चौथी स्वयं रामेसेज की।

नदीके दाहिने किनारेपर लगभग ३०० फुट दूरीपर अबू सिम्बलका छोटा मंदिर या नफरतरीका मंदिर है। यह ४० फुट ऊंचा, ९० फुट चौड़ा और ७० फुट गहरा है। इसमें राजा और रानीकी ३३ फुट ऊंची ६ मूर्तियां हैं। इसमें बहुत-सी सुन्दर और विलक्षण चीजें हैं जिसमें रानीके राज्याभिषेकका भी उल्लेख है।

इन मंदिरोंका धार्मिक लक्ष्य तो था ही पर इसके अतिरिक्त इतने विशाल भवनोंको देखकर ही फरओनका रौब और प्रभाव बढ़ता होगा। रामेसेज बड़े निर्माताके साथ-साथ मानसतत्त्ववेत्ता भी रहा होगा। जरा कल्पना कीजिये, उस जमानेमें मंदिर इस तरह बनाया गया था कि हर बसंत ऋतुमें एक दिन उगते सूर्यकी रोशनी सारे मंदिरको पार करती हुई देवतापर स्वर्गीय आलोककी तरह पड़ती थी। लेकिन यह रोशनी टाके ऊपर नहीं क्योंकि उसका राज्य अंधकारमय लोगोंपर है। इस रोशनीके पड़नेके समय ऐसा लगता है कि रामेसेज अपनी रानीके साथ बाहर आनेकी तैयारीमें है।

ये मंदिर ३२ शताब्दियां देख चुके हैं लेकिन आज इनके लिये खतरा पैदा हो गया है। नील नदपर अस्वान बांध बंध रहा है। उससे बननेवाली ३०० मीलकी झील अबू सिम्बलके अस्तित्वको धमकी दे रही है। यदि इन देवालयोंको ऐसे ही छोड़ दिया जाय तो मूर्तियोंके ऊपर १२० फुट पानी आ जायेगा। लेकिन इस समाचारने दुनियाके दिल को दहला दिया है और कोशिश यह की जा रही है कि इन्हें काटकर ज्योंका त्यों ३०० फुट ऊंचे स्थानपर फिरसे खड़ा कर दिया जाये। इसके लिये यूनेस्को प्रयत्नशील है और उसने प्रारंभिक काम शुरू भी कर दिया है। इस कामके लिये छः वर्षकी योजना बनायी गयी है और सभी देशोंसे चंदा जमा किया जा रहा है। यह देखकर संतोष होता है कि जो देश एक-दूसरेका गला पकड़नेके लिये तैयार हैं वे अबू सिम्बलरूपी विश्व-संस्कृतिकी रक्षाके लिये साथ मिलकर काम कर रहे हैं।

—संकलित

स्वास्थ्य चर्चा :

हैजा और उससे बचनेका उपाय

कुछ डाक्टरोंने चेतावनी दी है कि १९६७ में भारतवर्षमें अधिक हैजा होनेकी संभावना है। किसी दुश्मनका सामना करनेसे पहले अगर हम उसके बारेमें जानकारी प्राप्त कर लें तो आसानी रहती है। हैजेके कृमियोंको यहांसे वहां और वहांसे यहां फैलानेका काम साधारण मक्खीका होता है। रोगीके वमन, विरेचनपर बैठकर वहांके कृमिसे भरी गंदगी हमारे भोजनपर उगल देती है। मक्खी गंदगी मनुष्य शरीरके अंदर हैजा पैदा करती है। हैजेमें बेतहाशा टट्टियां और उल्टियां होती हैं और वही ठीक उपचार न हो सके तो थोड़े घंटोंमें ही रोग और रोगी दोनोंका अंत हो जाता है। यह रोग बहुत तेजीसे फैलता है और कभी-कभी देखते-देखते परिवारके परिवार साफ हो जाते हैं।

रोग भयंकर है पर इससे बचना बहुत कठिन नहीं है। घरमें सफाई रखी जाय, खानेकी चीजोंपर मक्खियां न बैठने पायें। भोजन अनाप-शंनाप न हो और पानीको भी उबालकर या क्लोरीन जलकी जरा-सी बूंद डालकर पिया जाये तो रोग होनेकी संभावना बहुत ही कम हो जाती है। फलों और तरकारियोंका धोए बिना उपयोग न किया जाये और सामान्य भोजनके साथ अदरक, निंबू और प्याजका उपयोग होता रहे तो सामान्य स्वास्थ्यको भी लाभ होता है और हैजेसे भी बचा जा सकता है। यहां इन तीनों चीजोंके बारेमें थोड़ी-सी जानकारी दे देना अनुचित न होगा। प्याजके बारेमें चरकने कहा है: वात और पित्तके रोगोंमें प्याज बड़ा उपयोगी होता है। शरीरको बल देता है और सब प्रकारके कृमियोंको मार देता है। रूसके कई डाक्टरोंका कहना है कि प्याज कृमिनाशनके लिये सबसे अच्छी चीज है। उनका कहना है कि रोग वहन करनेवाले बहुतसे कृमियोंपर उन्होंने परीक्षण करके देखा है कि प्रायः सबके सब प्याजके असरसे मर जाते हैं। उनका कहना है कि प्याजसे जो तीखी गंध निकलती है जिसके कारण आंखोंमें पानी आ जाता है, वह गंध-तत्त्व ही कृमि नाशक है। अगर मुखमें पांच मिनटतक प्याज रखा जाय तो मुख एकदम कृमिहीन हो जाता है। इसलिये जुकाम और गलेके कष्टमें प्याज चबानेसे लाभ होता है। परीक्षण करके देखा गया है कि गंदे घाव भी प्याजकी भापसे साफ हो जाते हैं और भरने लग जाते हैं।

अदरकके बारेमें चरकका कहना है: "रोचनं दीपनं वृष्यमार्द्रकं विश्वभेषजम्। वातश्लेष्मविबंधेषु इरुस्तस्योपदिश्यते।" अदरक रुचि पैदा करता है, पेटकी अग्निको तेज करता है और वात और कफको शांत करता है। इसी तरह निंबू भी दीपन, पाचन और श्रमहारक होनेके नाते बहुत उपयोगी है। इसमें भी कीटाणु नष्ट करनेकी क्षमता है।

प्याज निंबू और अदरकको यदि नियमित रूपसे खाया जाय तो पेटकी बीमारियां दूर रहती हैं। हैजेसे बचनेके लिये भी यह एक बड़ी अच्छी तरकीब है। लेकिन हां, इन चीजोंको साधारणतः खाली पेटपर न खाना चाहिये नहीं तो पेटमें जलन हो सकती है। केवल निंबूका रस खाली पेट लेना ज्यादा अच्छा रहता है।

परंतु इन सब उपचारोंसे भी बढ़कर आवश्यक यह है कि डरको दूर रखा जाये। और यह केवल हैजेके लिये ही नहीं दुनियाभरकी सब बीमारियोंके लिये जरूरी है। श्रीमाताजीने कहा है कि 'डर अर्ध स्वीकृति है'। जब हम किसी चीजसे डरते हैं तो उसकी संभावनाको अधिक नजदीक बुला लेते हैं। इसलिये रोगसे डरना बिलकुल नहीं चाहिये। डरे बिना अपनी ओरसे पूरी सावधानी बरतनी चाहिये और भगवान्पर भरोसा रखना चाहिये।

***

कानूनी वार्ता :

दिल्लीका घंटाघर

हर नागरिकका कर्तव्य है कि वह अपने व्यवहारमें ऐसी सावधानी बरते जिससे दूसरोंको हानि न पहुंचे। आप मोटर चला रहे हैं, आपकी जरा-सी लापरवाही कइयोंकी जान ले सकती है। आप होटल चलाते हैं परंतु सफाई नहीं रखते, आपकी लापरवाहीसे अनजान लोगोंका स्वास्थ्य खतरेमें पड़ सकता है। इस प्रकारकी लापरवाहीके लिये आपपर मुकदमा चल सकता है और आपको हरजाना देना पड़ सकता है। साधारणतया अदालतके सामने वादीको अपने पक्षमें प्रमाण देने होते हैं और उसे यह साबित करना होता है कि प्रतिवादीने जानकर लापरवाही की परंतु कई बार इस तरहकी बातोंको प्रमाणित करना असंभव होता है। ऐसी अवस्थाओंमें कानूनका एक सूत्र है 'रेस इप्सा लोकितर' — चीज अपने-आप अपने बारेमें बोलती है। उदाहरणके लिये जब शल्य चिकित्साके बाद पता लगता है कि डाक्टर पेटके अंदरसे लोहू पोंछनेका कपड़ा निकालना भूल गया था अथवा दूधकी बोतलमें मक्खी दिखायी देती है अथवा रोटीके अंदरसे लोहेकी कील निकलती है तो यह स्पष्ट है कि लापरवाही की गयी है।

इस प्रकारके मुकदमे बड़े मजेदार होते हैं। रेलवे स्टेशनपर एक आदमी खड़ा हुआ था और किसी पागल कुत्तेने उसे काट लिया। अदालतने फैसला किया कि इसके लिये रेलवे जिम्मेदार नहीं है। एक तांगेका घोड़ा अचानक बिदक गया और तांगेवालेके प्रयत्नके बावजूद कई लोगोंको घायल कर गया। अदालतने तांगेवालेको निरपराधी घोषित किया। रेलके डिब्बेमें भीड़ बहुत थी। लोग दरवाजा बंद करने लगे तो एक आदमीकी अंगुलियां पिच गयीं। उसका कहना था कि इसके लिये रेलवेको हरजाना देना चाहिये परंतु अदालतने फैसला किया कि भीड़के लिये रेलवेवालोंकी जिम्मेदारी नहीं है।

ऐसे ही कुछ वर्ष पहले एक बड़ी मजेदार घटना हुई थी। दिल्लीमें चांदनी चौकका घंटाघर बहुत प्रसिद्ध है। वहींपर स्वामी श्रद्धानंदजीने अंग्रेजी सरकारकी फौजोंको छाती खोलकर ललकारा था। एक दिन अचानक घंटाघर बाजारमें गिर पड़ा और तीन आदमी उसके नीचे आकर मर गये। उनके उत्तराधिकारियोंने हरजानेके लिये दावा किया। अदालतने 'रेस इप्सा लोकितर' का नियम लगाया और कहा कि म्यूनिसिपल कमेटीका यह कर्तव्य है कि अपनी इमारतोंकी भलीभांति देखभाल करे ताकि रास्ता चलनेवालोंकी जान जोखोंमें न पड़ जाये। दिल्ली निगमने कहा कि इमारतोंके अंदर कोई त्रुटि हो तो उसके लिये हम कैसे जिम्मेदार ठहराये जा सकते हैं। अदालतने निष्णात इंजीनियरोंसे पूछा। उन लोगोंने बताया कि यह इमारत अस्सी वर्ष पुरानी है और हर जानकार जरा-सी परीक्षा करके यह जान सकता था कि जिस ईंट-चूनेका उपयोग किया गया है वह चालीस-पचास वर्षसे ज्यादा नहीं रह सकता। चूना बिलकुल मिट्टी बन चुका था। अदालतने उपर्युक्त साक्षीके आधारपर फैसला किया कि नगर निगमका कर्तव्य था कि इस इमारतकी भलीभांति जांच करवाता। उसकी अवहेलनाके कारण ही इन लोगोंकी जान गयी। नगर निगमका कहना था कि दुर्घटना हमारे अधिकारसे बाहरकी चीज थी और घंटाघरके बाहरी रंग-रूपमें ऐसी कोई चीज नहीं थी जिससे यह शंका भी हो पाती कि वह गिर जायेगा।

उच्चतम न्यायालयने फैसला किया कि जिन परिस्थितियोंमें घंटाघर गिरा था वे मनुष्यकी शक्तिके बाहर न थीं और इसे आकस्मिक दुर्घटना नहीं कहा जा सकता और इन लोगोंकी मृत्युके लिये

निगमकी लापरवाही एक बड़ा कारण है इसलिये निगमको हरजाना देना होगा। जिन लोगोंकी इमारतें सड़कके आसपास हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे उनकी जांच पड़ताल करते रहें ताकि उनकी इमारत राहगीरोंके लिये खतरा न बन जाय।

अब सवाल था हरजानेकी रकमका। इसके लिये साधारणतया यह देखा जाता है कि आदमीकी आमदनी क्या थी और वह उसमेंसे अपने ऊपर कितना खर्च करता था। बाकी राशि उसके परिवारको मिला करती होगी, तो इसके मरनेसे परिवारको इतनी हानि हुई जैसे इन तीनमेंसे एक मृत व्यक्ति ३० वर्षका था और उसकी विधवा २८ की थी उसका लड़का १४ का और दो लड़कियां १२ और २ की थीं। अदालतने फैसला किया कि यह आदमी अपनी पत्नीको कमसे कम १५० रु. महीना देता होगा। कम-से-कम अगले १५ वर्षोंतक इन्हें इतने रुपये की जरूरत होगी। इस तरह हिसाब लगाकर उस विधवाको निगमसे २७००० दिलवाये गये।

—संकलित

नयी कोंपलें :

वर्षा

अपनी श्रेणीमें बैठा हूं और गालोंपर पसीनेकी धारायें बह रही हैं। खिड़कीके बाहर सूर्य अपनी गर्मी पूरी तरह बरसा रहा है। पीठपर भी पसीना-ही-पसीना भरा हुआ है, कमीज भी भीग गयी है, पढ़ाईमें भी मन नहीं लग रहा। क्या करें, इस गरमीकी वजहसे मैं इस सोचमें पड़ गया कि इस गर्मीको दूर कैसे किया जाये। ऐसी अवस्थाओंमें भगवान्का सहारा ही सबसे अच्छा माना जाता है। बस, फिर तो भगवान्का प्रिय भक्त बन गया और प्रार्थना करने लगा, "हे भगवान्, कृपा करके मूसलाधार वर्षा तो कर दे, बहुत दिनोंसे धूपमें तप गये हैं। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करना।" स्कूलकी घंटी बजी और सब बाहर निकले, सबके सब पसीनेसे तर थे। अकाशमें भी बादल न थे जो सूर्यके तापको छानते हुए हमपर छिड़कते। किसी तरह इस आगकी बरसातको पार करके घर पहुंचा। इस गर्मीने तो खाना भी मुश्किल कर दिया था।

रातको छतपर सोया। मुश्किलसे आधी रात बीती होगी कि मुंहपर बूंदें टपकने लगीं। जल्दीसे ही उठकर सब बिस्तरा लेकर मैं भागा-भागा नीचे आया पर तबतक तो पूरा ही भीग गया था और बिस्तरसे भी पानी चूने लगा था। खैर, मैंने तो मूसलाधार वर्षा की ही प्रार्थना की थी। अब किसी भी तरहसे यह वर्षा रुके ही नहीं। एक, दो, तीन दिन बीत गये पर वर्षा बंद होनेका नाम ही नहीं लेती। एक-एक करके अल्मारीमेंसे मेरे सारे कपड़े निकलकर कमरेमें बांधी हुई रस्सीपर सूखने लगे, कमरेमें सील हो गयी और अब धूपकी ही याद आने लगी। पर अब तो भगवान् भी मेरी नहीं सुन रहा था। मैंने हार मान ली और भगवान्से प्रार्थना की कि अब यह वर्षा रोक दो और तुम ही मौसमको संभालो, मैं कुछ नहीं कहूंगा।

पर वर्षाने तो मुझे अपना सारा मजा चखाया और फिर गायब। फिर तो मैं भी समझ गया कि भगवान् जो करता है वह ठीक ही करता है।

—निर्मल

बहरूमल

(यह कहानी बहुत-बहुत पुराने जमानेमें चीनमें घटी)

एक गरीब आदमी था। वह बहुत फुर्तीला था। लेकिन दुर्भाग्यने उसको बहरा बनाया। उसके नगरका नाम 'फुशफुश' था। (आज वहां पेकिंग है)। उस समय चीनका वह मुख्य केंद्र था। एक दिन चीनकी स्थल सेनाका कप्तान 'हाकीहाकी' 'फुशफुश' नगरमें घूम रहा था कि उसे बहरूमल अपने फुर्तीलेपनका एक करतब दिखलाता मिला। 'हाकीहाकी' जो किसी सज्जनके वेशमें था, बोला, "अच्छा! तुम तो बहुत फुर्तीले हो, तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा काम तो करतब दिखाकर पैसा कमाना है।" बहरूमल बोला।

कप्तान बोला, "वह तो ठीक है, परंतु आपका नाम क्या है?"

"कहा तो", बहरू बोला, "करतब दिखलाकर पैसे।"

"वह तो मान लिया, लेकिन आपका नाम क्या है?" कप्तान झुंझलाकर बोला।

"कितनी बार कहा — मेरा नाम ......" बहरू भी चिल्लाया।

हाकीहाकीको भी गुस्सा आया। वह चिल्लाया — "तुम्हारा नाम क्या है?"

"अबे बहरे, मैंने कितनी बार कहा कि मेरा काम ......" बहरूमल भी चिल्लाया।

दोनों एक-दूसरेको बहरा समझ रहे थे। आखिर कप्तानने बात बदली, "अच्छा जी, आपकी उम्र क्या है?"

"शत्रु कहां है?" बहरूमल चिल्लाया। इतनेमें दूर शत्रुकी ध्वजा दिखायी दी।

"डूब मर!" हाकीहाकीने बहरूको धक्का देकर कहा।

बहरूने सुना, "उधर। ये ले, जल्दी कर।"

बहरूने कप्तानकी तलवार ली और अपने घोड़ेपर कूद शत्रुपर भागा। अपने फुर्तीले करतब दिखलानेके लिये उसके घोड़ेपर बहुत-सी मिट्टीसे भरी बोरियां थीं जो फट गयीं और इतनी ऊंची धूल उड़ी कि शत्रुने सोचा, "इतनी धूल! क्या सेना है? लगता है हवामें भी उड़ती है।" फिर क्या था सबके सब उलटे पैर भागे और ऐसे भागे कि चीनकी सरहद पार होनेतक पीछे न देखा।

यह देख बहरूमलको बहुत-सा रुपया-पैसा इनाममें मिला। उस पैसेसे उसे इतनी खुशी हुई कि वह बहरा न रहा।

—मदन

पंडित

एक आदमी था जिसे पंडित होनेकी बड़ी इच्छा थी। वह बहुत बड़ी-बड़ी बातें कहा करता था लेकिन कोई भी उसको पंडितजी कहकर नहीं पुकारता था। उसकी समझमें नहीं आया कि क्या किया जाये। वह बीरबलके पास गया और उससे पूछा, "मुझे पंडितकी पदवी कैसे प्राप्त हो सकती है? जरा दया करके बताइये।" बीरबल थोड़ी देर सोचकर बोले, "अगर कोई तुमको भूलसे भी पंडित कहकर बुलाये तो तुम उसके पीछे भागना और कुछ दिनोंमें ही तुम प्रसिद्ध पंडित बन जाओगे।" फिर बीरबलने बाहर जाकर कुछ लड़कोंसे कह दिया कि वे इस आदमीको पंडित कहकर बुलायें। जब वह आदमी घरसे बाहर निकला तो लड़के उसे पंडितजी कहकर पुकारने लगे और वह आदमी उनके पीछे दौड़ने लगा। लड़कोंको यह बहुत अच्छा खेल लगा और वे उस आदमीको बार-बार पंडितजी कहकर बुलाने लगे। सब इस खेलमें मजा लेने लगे। इसलिये कुछ दिनोंमें ही पंडित जी बड़े प्रसिद्ध हो गये। पंडित जी फिरसे बीरबलके पास गये और उन्होंने बीरबलसे पूछा, अब क्या किया जाये। बीरबलने कहा, "पंडितजी, आप पंडित तो बन गये, अब लोगोंके पीछे दौड़ना और गुस्सा करना छोड़ दीजिये। कोई आपका नाम नहीं भूलेगा।"

—काशीनाथ

पुस्तक-परिचय

श्री जमनालालजी —— ले. घनश्यामदास बिड़ला; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली। मूल्य १.५०।

ऐसे लोग विरले ही होते हैं जिन्हें लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका आशीर्वाद प्राप्त हो। बिड़लाजी एक ऐसे ही विरल पुरुष हैं। जमनालालजीके साथ इनका घनिष्ठ संबंध रहा था और इस छोटी-सी पुस्तकमें उसीके आधारपर उनका परिचय दिया गया है। यहां हम साहसी नवयुवक, उदार सद्गृहस्थ और प्रखर राजनीतिक नेताकी झांकियां पाते हैं। पुस्तक बहुत ही रोचक है।

रेंगनेवाले जीव —— ले. सुरेशसिंह, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली। मूल्य ०.५०।

अंग्रेजी फ्रेंच वगैरामें पदार्थ विज्ञान, जन्तुशास्त्र आदिकी इतनी अच्छी पुस्तकें मिलती हैं कि जिसे विषयमें रस न हो वह भी पढ़े बिना न छोड़े। हमारी भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी किताबोंका अभाव-सा है। हमारे पास इस तरहकी चीजें लिख सकनेवाले तो हैं पर ऐसी किताबें छापनेमें धनकी आवश्यकता होती है। हर्षका विषय है कि सस्ता साहित्य मंडलने इस दिशामें कदम उठाया है। प्रस्तुत पुस्तक 'जीव जगत्की कहानी माला'का पांचवा रत्न है। इन सभी पुस्तकोंमें अपने-अपने विषयकी बहुत उपयोगी जानकारी दी गयी है और साथ ही शुरूसे अंततक रंगीन चित्र भरे हैं। हिन्दीमें इस प्रकारका कार्य करनेके लिये मंडलको बधाई है।

परम सखा मृत्यु —— ले. काका कालेलकर, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली। मूल्य २)

जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्य होगी —— यह जानी हुई बात है फिर भी मनुष्य मृत्युसे डरता है और जहांतक हो सके उससे भागनेकी कोशिश करता है परंतु मृत्यु है क्या? एक जीवनमेंसे दूसरे जीवनमें जानेका दरवाजा। इस पुस्तकमें काका साहबने स्वेच्छा-मरण, मृत्युका रहस्य, मृत्युके बाद आदि विषयोंपर अपने विचार अपनी अनोखी भाषामें रखे हैं।

चिलिका —— ले. राधानाथराय, प्रकाशक : साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली। मूल्य १.५०।

राधानाथ राय उड़िया भाषाके एक जाने माने कवि थे। चिलिका उनका एक काव्य है जिसका हिन्दी रूप युगजीत नवलपुरीका दिया हुआ है। यहां प्रकृति सुंदरी ही प्रेयसी है जिसके गान भावुक कविने गाये हैं। समकालीन भारतीय कवितामें इसका एक अपना ही स्थान है।

With best compliments from:

M/s. Kalinga Tubes Ltd.,

33, Chittaranjan Avenue,
CALCUTTA-12

WORKS:
CHOUDWAR, CUTTACK, ORISSA.

आश्रम-प्रकाशन

On nationalism : **ले. श्रीअरविंद, प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी २। मूल्य ४.००**

श्रीअरविन्दने अपने जीवनके राजनीतिक कालमें वन्दे मातरम् तथा कर्मयोगिन्का संपादन किया था। प्रस्तुत पुस्तकमें उनके ३४ लेखोंका संग्रह है। यह लेख आजसे साठ वर्ष पहले लिखे गये थे परंतु पढ़नेसे ऐसा लगता है मानों आजकी देशव्यापी समस्याओंको देखकर उनपर टिप्पणी की गयी है। कुछ विषय हैं -- राष्ट्रीयताका आधार, जातपांत और गणतंत्र, राष्ट्रीयताका जीवन, स्वराज्य, मनुष्यमें भगवान्की विजय, स्वराज्य और अराजकता, गांव और राष्ट्र आदि। राष्ट्रीय कामोंमें लगे हुए हर व्यक्तिको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये।

Man--Slave or free : **ले. श्रीअरविंद, प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२। मूल्य २.००**

आदिकालसे यह प्रश्न चला आ रहा है कि मनुष्य स्वाधीन है अथवा नियतिके द्वारा बंधा हुआ। प्रस्तुत पुस्तकमें इस विषयपर दो लेख हैं। अन्य लेखोंमें हिप्नाटिज्म, राष्ट्रीयता और धर्म, कावूर और मेजिनी, नेपोलियन आदिके बारेमें टिप्पणियां हैं जिनसे हमें बहुत-सी नयी बातें मालूम होती हैं।

Sri Aurobindo & The Mother on Love : **प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२, मूल्य ३.००**

इस पुस्तकमें श्रीअरविन्द और माताजीकी पुस्तकोंसे प्रेमसंबंधी कुछ उद्धरण इकट्ठे किये गये हैं। भागवत प्रेम और उसकी अभिव्यक्ति, पार्थिव विकासमें प्रेम, प्रेम और आनंद आदि विषयोंपर बड़े सुंदर वाक्य दिये गये हैं। साधारण जीवनमें प्रेम शब्दकी जितनी दुर्गति हुई है उतनी शायद ही किसीकी हुई हो। माताजी और श्रीअरविन्दके वचनोंसे हमें उसके शुद्ध रूपका परिचय मिलता है।

सावित्री : रूपांतरकर्त्री : विद्यावती कोकिल, प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२। मूल्य ४.००।

श्रीअरविन्दके महाकाव्य सावित्रीके बारेमें कुछ कहना छोटे मुंह बड़ी बात होगी। विद्यावतीजीने उसके आदि पर्वको हिन्दी चोला पहनानेका प्रयास किया है। जो लोग मूलका रसास्वादन नहीं कर सकते उन्हें इससे अवश्य सहायता मिलेगी। कुछ वर्षोंमें इसका पूरा रूपांतर प्रकाशित करनेकी योजना है। हम उसकी सफलता चाहते हैं।

चतुर्दश कविता : (बंगला), प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२।

श्रीअरविन्दकी १४ कविताओंका बंगला काव्यमें अनुवाद। अनुवादके साथ-साथ अंग्रेजी मूल कवितायें भी दी गयी हैं। अनुवादक हैं आश्रमवासी श्री पृथ्वीसिंह। अनुवाद अच्छा हुआ है।

वेदमंत्र : (बंगला), ले. नलिनीकांत गुप्त, प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२। मूल्य ५.००

श्रीअरविन्दने वेदको एक अद्भुत आध्यात्मिक रूपमें देखा है। उनके अर्थमें कहीं खींचातानी नहीं दिखायी देती और सचमुच कुछ प्राप्त होता है। नलिनी बाबूने श्रीअरविन्दके पदचिह्नोंपर चलते हुए ऋग्वेदके कुछ मंत्रोंपर बंगलामें भाष्य किया है। इसमें सरमा और पणि, पुरूरवा और उर्वशी, यम यमी आदि अनेक कथोपकथन तथा वागाम्भृणी आदि सूक्त दिये गये हैं। यह वेद-संबंधी साहित्यमें एक मूल्यवान् वृद्धि है।

M 8127
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

Never forget that you are not alone. The Divine is with you helping and guiding you. He is the companion who never fails, the friend whose love comforts and strengthens. Have faith and He will do everything for you.

The Mother

*

कभी यह मत भूलो कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान् तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी सहायता कर रहे हैं तथा तुम्हें रास्ता दिखा रहे हैं। वह ऐसे साथी हैं जो कभी पीछे नहीं रहता, ऐसे मित्र हैं जिसका प्रेम आश्वासन और बल प्रदान करता है। विश्वास बनाये रखो और वह सब कुछ तुम्हारे लिये कर देंगे।

—श्रीमां

प्रबोधा

किशोर मासिक

जनवरी

१९६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ जनवरी १९६७ **अंक ५**

सूची

प्रार्थना — श्रीमां — १
वेदांतीकी प्रार्थना — श्रीअरविन्द — २
संपादकीय : चुनाव करना हमारे हाथमें है — ३
श्रीअरविंद-वाणी : राष्ट्रीयताकी मांग — ५
मातृवाणी : त्याग — ८
प्रेम और मृत्यु — श्रीअरविंद — ९
भारतीय गिरा : भाई वीरसिंह — १७

कहानी :

जीवनके उतार-चढ़ाव — रवींद्र — २०
चटपट चाची — रवींद्र — २४

हमारी दुनिया :

बेंजामिन फ्रेंकलिन — फिलिप गूल्ड — २७
पहला अणुबम — मोहिनी — २९
स्वास्थ्य-चर्चा : प्राणायाम — ३१

खेल-कूद :

ओलिम्पिककी कहानी — रवींद्र — ३२
विद्यालयमें नन्हा-मुन्ना — अंजना शर्मा — ३४

नयी कोंपलें :

छुट्टियां बितायीं — आनन्द — ३६
लंबी गरदन — भीष्म — ३८
पुस्तक-परिचय

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य : एक अंक :** रु. ०. ६० न.पै. **वार्षिक चंदा :** रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरक़ार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

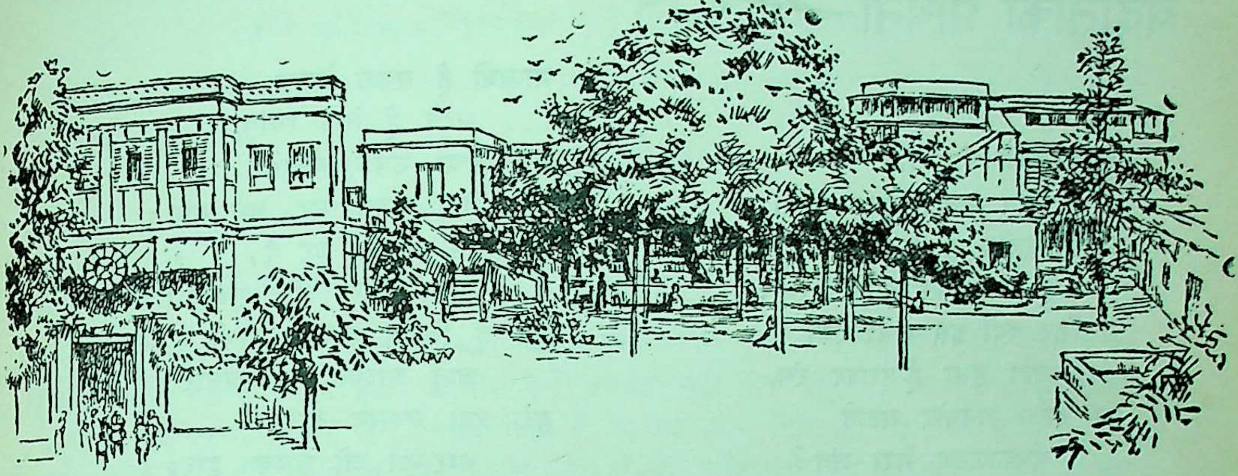

प्रार्थना

स्वामी, मेरी एक ही अभीप्सा है : तुझे अधिक अच्छी तरह जान सकूं और नित्य प्रति अधिक अच्छी तरह सेवा कर सकूं। बाह्य परिस्थितियोंका क्या महत्त्व ! मुझे ये दिन-प्रतिदिन अधिक व्यर्थ और भ्रांतिपूर्ण प्रतीत हो रही हैं और मैं इस बातमें कम-से-कम रुचि लेने लगी हूं कि बाह्य रूपमें हमारे साथ क्या घटेगा। किंतु मुझे, अधिकाधिक और तीव्र रूपमें, केवल एक ही तथ्य रुचिकर लगने लगा है और यही मुझे महत्त्वपूर्ण भी प्रतीत होता है : हम तुझे अधिक अच्छी तरह जानें जिससे तेरा कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकें। सब बाह्य घटनाएं इसी लक्ष्य, केवल इसी लक्ष्यपर केंद्रित हों, और यह हमारी उस वृत्तिपर निर्भर है जो हम इनके प्रति बना लेते हैं। यह है तुझे सदा सब वस्तुओंमें खोजना, प्रत्येक परिस्थितिमें तुझे अच्छी तरह अभिव्यक्त करनेकी इच्छा करना। इसी वृत्तिमें परम शांति, पूर्ण आत्मप्रसाद और सच्चा संतोष प्राप्त होंगे। इसमें जीवन खिल उठेगा, महान् हो जायेगा, इतने गौरवमय ढंगसे, इतनी विशाल लहरोंके रूपमें विस्तृत हो उठेगा कि कोई भी तूफान उसे उद्विग्न नहीं कर सकेगा।

हे प्रभु, तू हमारा रक्षक है, हमारी एकमात्र प्रसन्नता है, तू हमारी जाज्वल्यमान ज्योति है, हमारा पवित्र प्रेम, हमारी आशा और हमारी शक्ति है, तू हमारा जीवन है, हमारी सत्ताका सत्यस्वरूप है।

आदरपूर्ण और प्रफुल्ल भक्तिभावमें मैं तुझे नमस्कार करती हूं।

—श्रीमां

वेदांतीकी प्रार्थना

हृदय-गुह्यकी नीरवतामें
ध्यान मग्न है पुरुष परम।
एकमेवाद्वितीय है तू,
हे हे शाश्वत ज्योति परम !
हा फिर क्यों इस अंधकारका
चढ़ा हुआ है मुझपर रंग,
छा डाला घनघोर घटाने
सुप्रकाशमय मेरा अंग ?
क्यों इच्छाके हाथों इस बिध
रूप कुरूप हुआ मेरा,
बंदर बन मैं नाच नाचता
इत उत घिरा, खिंचा फेरा।
आवेगपूर्ण राग-द्वेषकी
ज्वालासे क्यों झुलसाता,
तव प्रशांतिसे पूर्ण बहिष्कृत
भंवर-भंवरमें चकराता ?
शोक-पाशमें क्यों जकड़ा अरु
भय-विह्वलतासे आक्रांत,
कामातुरताके घावोंसे
क्यों मैं चकित, चलित उद्भ्रांत ?
रुधिर-सिक्त मम मलिन भूत लख
तव करुणा नहीं होवे वाम,
और देर भी नहीं करे वह,
एकाकी हे सत्य प्रणाम।
मायावी हैं सकल देवता,
भरते हैं तेरा स्वांग,
बचा बचा उनके धोखेसे
मेरा यौवन, यह मम मांग।
नीरवतामें परिणत कर दे,
ये कोलाहल और पुकार।
सुन लूं जिससे शाश्वत वाणी,
जानूं शाश्वत शक्ति-प्रसार।
हटा हटा जगमग आडम्बर,
भार-भूत जो शाश्वत द्वार;
जगा-जगा तू दृष्टि समुज्ज्वल,
बना हृदय स्वच्छ, सुकुमार।
झिड़क, नाथ, इन आशाओंको
कान फोड़ता जिनका शब्द,
स्थापित कर पुनि मम विशुद्धता,
दूर हटा मम पंकिल अब्द।
खुल जा, खुल जा, अब तो खुल जा,
दिव्य ज्ञानके ओझल द्वार,
पूर्ण बना अपनेको हे बल,
प्रेम ढाल अपनी रसधार।
सुन लूं जिससे शाश्वत वाणी
जानूं शाश्वत शक्ति-प्रसार।
खुल जा, खुल जा, अब तो खुल जा,
दिव्य ज्ञानके ओझल द्वार,
पूर्ण बना अपनेको हे बल,
प्रेम ढाल अपनी रसधार।

—श्रीअरविंद

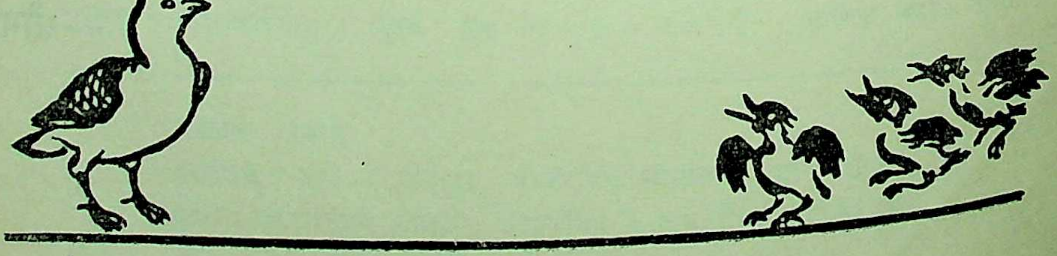

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

चुनाव करना हमारे हाथमें है

हम जो कुछ करते हैं, हम जिस किसी चीजके लिये प्रयास करते हैं उसके पीछे श्रद्धा काम करती है। श्रद्धाकी कमीके कारण हमारे कामोंमें पूर्ण सफलता नहीं मिल पाती। हम अपनी छोटी-मोटी प्राप्तियोंपर ही फूल उठते हैं और सोचने लगते हैं कि यह हमने किया है, यह हमने पाया है, परंतु तथ्य यह है कि हमारे अंदर जो प्रबल इच्छा होती है वह अभीप्साका रूप धारण कर लेती है और उसके उत्तरमें दैवी कृपा हमारे कार्यको संपन्न कर देती है। हां, अधिकतर हम इस तथ्यको जानते-तक नहीं कि हमने किसी उच्चतर शक्तिकी सहायता पायी है।

आज भारतवर्षकी कठिनाइयां बढ़ती जा रही हैं। ऊपरी दृष्टिसे देखनेसे कई बार ऐसा लगता है कि इससे तो अंग्रेजी राज्य ही अच्छा था। उस समय देशमें अधिक शांति थी। बात एक हदतक है भी ठीक। पर वह शांति श्मशानके सन्नाटेके जैसी थी और आजकी कठिनाइयां नवीन भारतके जन्मसे पहलेकी प्रसववेदना हैं। इस कष्टको कम किया जा सकता था, और अब भी किया जा सकता है यदि हम इसके लिये यूरोपीय उपायोंकी नकल न करके भारतीय उपाय काममें ला सकें। हम हमेशासे सुनते आये हैं कि भारतकी रक्षा देवताओंके जिम्मे है। हमने देवताओंको अपने जीवनसे दूर कर दिया है और उनके आसनपर अपने अहंकार, स्वार्थ और लोलुपताको ला बिठाया है। कोई भी महान् कार्य बिना आत्म-बलिके, बिना त्याग और तपस्याके पूरा नहीं हो सकता। हमने यह मान लिया है कि देशके लिये जितने त्याग तपस्याकी जरूरत थी वह सत्याग्रहके दिनोंमें हो चुका, आज उसके फल खानेका अवसर है। यह एक गलत दृष्टि है जो हमें गलत रास्तेपर लिये जा रही है।

देवताका रथ आ रहा है। रास्तेमें लोग उसे प्रणाम करते हैं, रथ सोचता है कि लाखों सिर मेरे आगे झुक रहे हैं, घोड़े सोचते हैं, यह मुझे नमन हो रहा है। और मूर्ति अपने-आप इतराने लगती है परंतु जिस अन्तर्यामीके कारण इन सबको महिमा मिल रही है उसे न तो प्रणामकी परवाह है न गरिमाकी आवश्यकता।

इसी प्रकार भारतकी स्वाधीनताके लिये कुछ लोगोंने तपस्या की और स्वाधीनता मिलनेपर उनके पीछे खड़े हुए लोगोंने यह मान लिया कि यह सब हमारे कियेका फल है और टूट पड़े उसका लाभ उठानेके लिये। परंतु स्वाधीनता प्राप्त करनेकी अपेक्षा स्वाधीनताको स्थिर करना, उसके विशाल मंदिरको सुदृढ़ बनाना कहीं अधिक कठिन है। हम भूल गये हैं कि इसके लिये और भी अधिक बलिदान चाहिये।

हमारा देश कमजोर नहीं है परंतु इसकी सारी शक्ति इधर-उधर छितरी हुई है, एक दूसरेके साथ टक्कर लेनेमें और अपनी निम्न वासनाओंके संतुष्ट करनेमें लगी हुई है। हमें जरूरत है एक संगठित सुदृढ़ और शांत बलकी। हमें ऐसे निःस्वार्थ कार्यकर्ताओंकी जरूरत है जिनमें देशप्रेम कूट-कूटकर भरा हो, जिनके हृदयमें देशके लिये आग हो और जो देशके उज्ज्वल भविष्यपर पूरी श्रद्धा रखते हों।

हमें जरूरत है ऐसे लोगोंकी जो आगे आनेके लिये, दुनियाके आगे चमकनेके लिये उत्सुक न हों, जो भारत मांके सदनकी नींवका पत्थर बननेको तैयार हों। उनके अंदर अभीप्साकी आग धधक रही हो, यह आग सब कमजोरियों और बाधाओंको जलाकर भस्म कर सकती है।

देशको उठानेका काम उन लोगोंके बसका नहीं है जिन्हें अपने हलवे मांडेकी ही चिन्ता बनी रहती है या जो अपनी शक्तिका अधिकांश अपनी, अपने कुटुंबकी सेवामें लगाये रहते हैं और बची-खुची जूठन देशको देकर उसपर एहसान करते हैं। देशको ऐसे लोगोंकी जरूरत है जो जहां हैं वहीं रहते हुए अपने क्षेत्रमें देशके लिये, भगवान्के लिये सब कुछ करनेकी अभीप्सा रखते हों। उनका समर्पण कमजोर, दीन-हीनका समर्पण न होकर बलवान्, योग्य और सक्षम व्यक्तिका समर्पण होना चाहिये। उसी अभीप्साके साथ, उसी समर्पण-भावनाके साथ यदि वे देशकी शिक्षामें, कृषिमें, उद्योग-धंधोंमें, व्यापारमें काम करेंगे, ग्रामोंमें जागृति लानेका प्रयास करेंगे, बीमारी और दुष्कालके विरुद्ध लड़ेंगे तो हम उस शक्तिका साथ दे रहे होंगे जो भारत ही नहीं समस्त संसारके कलुषको, अश्रद्धा, अविश्वास, भय, संकीर्णता आदिको बहा देगी और भारतको संसारके आध्यात्मिक गुरुके आसनपर आसीन करेगी।

श्रीमाताजी और श्रीअरविन्दने हमें बताया है कि भागवत आदेश हो चुका है, भारत ऊंचा उठेगा और अवश्य उठेगा। भगवान्की शक्ति यहांपर काम कर रही है और उसकी सफलता निश्चित है। हमारे सामने सवाल इतना ही है कि हम भगवान्के अस्त्र बनकर उस शक्तिका साथ देंगे या उसका विरोध करके अथवा निष्क्रिय पड़े रहकर रास्तेमेंसे हटा दिये जायेंगे। चुनाव करना हमारे अपने हाथमें है।

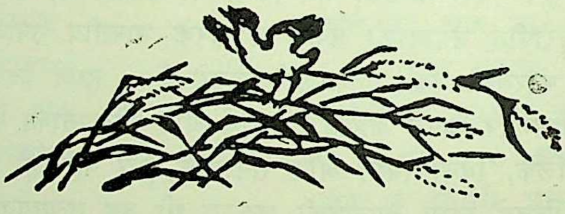

"भगवान् मुझसे क्या चाहते हैं?"

वह चाहते हैं कि तुम सबसे पहले अपने-आपको खोज निकालो; अपनी सच्ची सत्ता यानी अपनी चैत्य सत्ताके द्वारा अपनी निचली सत्तापर अधिकार जमाओ और उसपर शासन करो, और तब तुम इस महान् भागवत कर्ममें बिलकुल स्वाभाविक रूपसे अपना ठीक स्थान पा लोगे।

*

सभी विरोधोंके बावजूद सत्य अवश्य विजयी होगा।

—श्रीमां

श्रीअरविंद-वाणी

राष्ट्रीयताकी मांग

राष्ट्रका जीवन जो पहले विस्तृत नदीके रूपमें बहता था, बहुत समयसे कट-छंटकर कई छोटी-छोटी छिछली नहरोंमें बह गया है। इसकी दो मुख्य धाराएं हैं राजनीति और धर्म, परंतु दोनों धाराएं एक-दूसरेसे अलग हैं। हमारी राजनीतिक प्रवृत्ति यूरोपीय या यूरोपके रंगमें रंगे हुए मानसके द्वारा बनायी हुई धारामें बहती है। उसमें दिखावटी विस्तार तो है पर गहराई और घनताका अभाव है। राष्ट्रीय प्रतिभा, मौलिकता और व्यक्तित्वने अपने-आपको धर्मके पथपर चलाया जब कि राजनीति अवास्तविक और यूरोपकी नकल ही रही। परंतु आधुनिक युगमें एक जीवित राजनीतिके बिना राष्ट्रीय जीवनका पनपना असंभव है। इसी प्रकार सामाजिक जीवनकी धारा भी अधिकाधिक पंकिल और विक्षुब्ध रही है जो शुद्ध होनेका, अपने अंदर गहराई, विस्तार और स्वाधीनता लानेका प्रयास तो करती रही है पर उसमें सफल नहीं हुई। यह अधिकाधिक कमजोर और मार्गच्युत होती गयी। सजीव कलात्मक और सक्षम औद्योगिक जीवन —— जिसे न्यायविरुद्ध कानूनों और गलत व्यापार-नीतियोंके द्वारा नष्ट-सा कर दिया गया —— भी एक पतली-सी कमजोर धारा छोड़ गया है। आजकल कुछ इस दिशामें प्रवृत्ति है कि ये सब धाराएं फिरसे एक बनकर एक अदम्य बाढ़ बन जायें। सच्चे नेताओंका मुख्य काम यही होना चाहिये कि इस प्रवृत्तिको बढ़ावा दें और जातीय चेतनामें जो गहरी अभीप्सा है उसको व्यक्त करनेमें सहायक हों।

(१)

चतुर्वर्णके बिना कोई राष्ट्रीय जीवन पूर्ण या स्वस्थ नहीं हो सकता। राष्ट्रके जीवनमें ब्राह्मण—अध्यात्म, ज्ञान, शिक्षा, उच्च और विशुद्ध नैतिक अभीप्सा और प्रयास हो; क्षत्रिय —— पौरुष और नैतिक तथा शारीरिक बल, युद्धप्रेम, विजयके लिये तड़प, आत्मसम्मान, शौर्य, उदारता, आत्मोत्सर्ग और आत्माकी महानता हो; वैश्य —— व्यापार, उद्योग, मितव्ययता, संपन्नता, मानव सौहार्द, परोपकार-भावना और दानशीलता हो; और शूद्र —— ईमानदारी, सादगी, श्रम, धार्मिक भावसे राष्ट्रकी छोटी-से-छोटी सेवा करनेके लिये तत्परता हो , तभी समुचति जीवन चल सकता है। भारतके पतनका बड़ा कारण था क्षात्र जीवनका लोप और वैश्यका ह्रास। नंदवंशके अत्याचारोंके समयसे भारतका राजनीतिक इतिहास क्षत्रियोंको उठाने या उनके स्थानपर किसी औरको बिठानेका प्रयास रहा है पर इस प्रयासको सफलता कम ही मिली। वैश्य काफी समयतक टिका रहा पर अंग्रेजी राज्यके आनेपर वह भी मिट-सा गया।

जब चतुर्वर्णका ह्रास होता है तो वर्णसंकर हो जाता है; जो महान् वर्ग राष्ट्रको स्वस्थ और शक्तिशाली रखते हैं उनमें एकदम अस्तव्यस्तता आ जाती है। क्षत्रिय और वैश्यका ह्रास हो गया तो ब्राह्मण और शूद्र ही बच रहे। ब्राह्मणके भी लोपकी बारी आ गयी, उसका पतन हो गया और कुछ ऊपरी चिह्न रखते हुए भी वह शूद्रोंमें जा मिला। कलियुगमें शूद्रका बल अधिक होता है। जैसे धरती अन्य छोटे-मोटे उपग्रहोंको अपनी ओर खींच लेती है उसी प्रकार शूद्र क्षीण शक्तिवाले ब्राह्मणको अपनी ओर खींच लेता है और उसका टिमटिमाता ब्रह्मतेज और लुप्त-

प्राय अध्यात्मबल शून्यवत् हो जाते हैं। सतयुगको लानेके लिये ब्रह्मतेजको पुनः प्राप्त करना और उसका प्रसार करना जरूरी है क्योंकि ब्रह्मतेज बाकी सब चीजोंके लिये आधारका काम देता है और सतयुगमें सभीके अंदर न्यूनाधिक ब्रह्मतेज होता ही है। राष्ट्र उसीके भरोसे जीता और महान् बनता है।

(२)

हम कह सकते हैं कि यह एक रूपककी न्याई है। परंतु यह रूपकसे बहुत अधिक — एक महान् सत्य है। लेकिन हमारा शिक्षित वर्ग अपने पूर्वजोंके आंतरिक ज्ञानसे इतना अपरिचित हो चुका है कि उसे कोई बात तबतक समझमें नहीं आती जबतक उसे यूरोपीय ढंगसे न कहा जाय। उनके लिये यूरोपीय विचार ही सत्य है और भारतीय विचारके महान् सत्य केवल रूपक, अन्योक्ति या गूढ़ कथामात्र हैं। अंग्रेजी शिक्षापद्धतिने भारतमें मारक अराष्ट्रीयता लानेमें इतनी सफलता प्राप्त की है।

ब्राह्मण धर्म, विज्ञान, स्वाध्याय और उच्च नैतिकताका प्रतीक है; क्षत्रिय युद्ध, राजनीति और प्रशासनका सूचक है; वैश्य व्यापार, उद्योग और अन्य पेशोंका प्रतिनिधि है और शूद्र सेवा और श्रमका। जब राष्ट्रके ये चारों विभाग पूर्णतया स्वस्थ और बलवान् हों तभी राष्ट्र स्वस्थ और महान् हो सकता है। इनमेंसे कोई भी कमजोर हो जाय तो देशके लिये अहितकर होता है और उपरले दो तो सबसे अधिक आवश्यक हैं। अगर वे पूर्ण शक्तिशाली हों तो निचले दोके अभावकी पूर्ति कर सकते हैं पर यदि ब्राह्मण और क्षत्रियका अभाव हो जाय, यदि राजनीतिक बल या अध्यात्मशक्ति नष्ट हो जाय तो राष्ट्रका सब कुछ नष्ट हो जाता है। हां, यदि वह इन शक्तियोंको फिरसे जागृत कर सके तो और बात है। और इन दोनोंमें भी ब्राह्मण अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह नये क्षत्रिय तैयार कर सकता है। अध्यात्मशक्ति अपनी रक्षाके लिये पार्थिव शक्तिको खड़ा कर सकती है। परंतु जब ब्राह्मण ही शूद्र बन जाये तो दासकी निम्न वृत्ति ही सब कुछ बन जाती है। नौकरी करके पेट पालना जीवनका ध्येय हो जाता है, आदमी खोयी हुई महानताके बदले सुरक्षाको चुनता है, उच्चतर अभीप्साकी कठिनाइयोंके बदले लज्जाजनक सुविधा और पराधीनताको चुनता है — फिर चाहे वह व्यक्तिके लिये हो या राष्ट्रके लिये। अध्यात्मकी हानिसे सब कुछ नष्ट हो जाता है। भारतकी राष्ट्रीयतामें उसकी आत्माके पुनरुत्थानने हमें इस अंतकी ओर जानेसे बाल-बाल बचा लिया है।

लेकिन यह पुनरुत्थान अभी पूरा नहीं हुआ है। अभी भारतीयताकी भावना भर है, उसका ज्ञान नहीं है। एक धुंधला-सा विचार है, कोई निश्चित अवधारणा या गहरी दृष्टि नहीं है। हमें अपने-आपको पहचानना है — हम क्या थे, क्या हैं और क्या हो सकते हैं। हम भूतकालमें क्या कर चुके हैं और भविष्यमें क्या करने योग्य हैं। हमें अपने इतिहास और अपने जीवनध्येयका परिचय होना चाहिये। यह पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण काम है कि इस ज्ञानको प्राप्त करके उसका प्रसार कर सकें। हमारे राष्ट्रकी प्रत्येक संपदा — चाहे वह यहींकी हो या कहीं औरसे आकर बस गयी हो — का हमें पता होना चाहिये। उसको अपना उचित स्थान और उचित मूल्य मिलना चाहिये। हमें वेदान्त और सूफीवाद, मन्दिर और मस्जिद, नानक और कबीर, रामदास, चैतन्य, गुरु गोबिंद, ब्राह्मण, कायस्थ और नामशूद्र सब इसी प्रकारकी संपत्तियां मिली हैं। हमें यह भी जानना चाहिये कि इन राष्ट्रीय संपदाओंका कैसे उपयोग किया जाय जिससे राष्ट्रीय जीवनमें पूर्णता आये और भविष्य बने। भूतकालमें इनका क्या मूल्य था यह जानना आसान है पर भविष्यके नकशेमें उन्हें उचित स्थान देना ज्यादा कठिन है। तीसरी चीज है बाह्य जगत्को जानना, उसके साथ अपने संबंधको पहचानना और उसके साथ उचित व्यवहार करना। आज हमारे लिये यह समस्या बहुत अधिक कठिन बनी हुई है पर इसका हल पहली दोके हलपर निर्भर है।

पुरोधा

हम कह चुके हैं कि हमें सबसे पहले और सबसे अधिक जरूरत है ब्रह्मतेजकी। एक दृष्टिसे देखा जाय तो इसका अर्थ होगा धर्मकी प्रधानता। परंतु यूरोपीय लोग जिसे धर्म समझते हैं वह ब्रह्मतेज नहीं है। ब्रह्मतेज है आध्यात्मिकता, विचार और क्रियाकी वह शक्ति और ऊर्जा जो अपने अंतरतममें विद्यमान, सारे संसारपर शासन करनेवालेके साथ संपर्क और उसके प्रति आत्मसमर्पण। हम धर्म शब्दका उपयोग इसी अर्थमें करते हैं। भगवान् हमसे जो भी काम कराना चाहते हैं उसके लिये इस शक्ति और ऊर्जाका उपयोग हो सकता है। यह ज्ञान, प्रेम और सेवाके लिये उपयोगी है, यह व्यक्तिकी मुक्तिके लिये, राष्ट्रके निर्माणके लिये और कोई भी काम करनेके लिये उपयोगी हो सकती है। हमारा उद्देश्य है हमारे भूतकालद्वारा दिये गये साधनोंकी सहायतासे तीस करोड़ आदमियोंके अंदर वही शक्ति फिरसे जगाना।

यूरोपीय लोगोंको इस बातका गर्व है कि वे जीवन और धर्मको पृथक् करनेमें सफल हो चुके हैं। उनका कहना है कि धर्म अपने स्थानपर ठीक है पर उसका राजनीति, विज्ञान या व्यापारसे कोई संबंध नहीं है बल्कि वह उनमें टांग अड़ाकर उन्हें बिगाड़ देता है। धर्म तो केवल रविवारकी चीज है। अंग्रेज उस दिन काले कपड़े पहन लेता है और अपने-आपको अच्छा माननेकी कोशिश करता है और अगर यूरोपके अन्य देशोंका हो तो वह बाकी छः दिनोंको ताकपर रख देता है और मौज करता है। परंतु वास्तविक बात यह है कि यूरोपीयन भी अपने जीवनसे धर्मको निकाल बाहर करनेमें सफल नहीं हुआ। वह भौतिक या नैतिक आवरणोंके पीछे, समाजवाद, बाकूनिन और टाल्सटायके अराजकतावाद तथा अन्य वादोंके पर्देके पीछेसे वापिस आ रहा है। वह सारे जीवनको अपने अंदर लपेट लेने तथा समाज और राजनीतिको अपने आदर्शोंके ढांचेमें ढालनेकी कोशिश कर रहा है। वह साधारणतया भगवान्‌का नाम नहीं लेता या इस विचारतक नहीं पहुंच पाता पर मानवता ही उसके लिये भगवान् है। यूरोप जिसे धर्म समझता था उससे पीछा छुड़ाना और उसे जीवनसे बाहर कर देना जरूरी था परंतु सच्चा धर्म, अध्यात्म, आदर्शवाद, बढ़ता हुआ आत्मोत्सर्ग, पूर्णताप्राप्तिके लिये भूख — यह सब तो मानवजातिकी नियति है, इसे दूर करना असंभव है। आखिर भगवान् है, और अगर वह है तो हम उससे यह तो नहीं कह सकते 'जाओ वहां बैठो', यह जीवन और यह संसार हमारा है।' वह सब जगह व्याप्त है और जब-जब उससे इंकार किया जाता है तो यह इंकार एक अधिक बड़ी और सर्वग्राही अनुमतिकी तैयारी होता है।

—'मैन — स्लेव आर फ्री' के एक लेखका छायानुवाद

* * *

तुम इस विषयमें निश्चित हो सकते हो कि यथासंभव उत्तमसे उत्तम घटित होगा और समचा संसार जितना संभव है उतनी ही तेजीसे अपने सुनहले रूपांतरकी ओर आगे बढ़ रहा है।

—श्रीमां

श्रीमातृ-वाणी

त्याग

पुस्तकोंमें त्यागकी बहुत चर्चा मिलती है —— तुम्हें धन-संपत्तिका त्याग करना चाहिये, आसक्तियोंका त्याग करना चाहिये, इच्छाओंका त्याग करना चाहिये। परंतु मैं इस परिणामपर पहुंची हूं कि जबतक तुम्हें किसी चीजका त्याग करना पड़ता है, तुम इस पथपर आरूढ़ ही नहीं हुए हो; क्योंकि जबतक तुम चीजोंके वर्तमान स्वरूपसे पूरी तरह ऊब नहीं जाते और जवतक तुम्हें उनके त्यागके लिये यत्न करना पड़ता है, तुम अतिमानसिक उपलब्धिके लिये तैयार नहीं हो। यदि अधिमानसकी रचनाएं —— अर्थात् इसका रचा हुआ यह संसार और वर्तमान व्यवस्था —— तुम्हें अभीतक संतुष्ट करती हैं तो तुम अतिमानसिक उपलब्धिमें भाग लेनेकी आशा नहीं कर सकते। चेतनाके परिवर्तनके लिये योग्य तो तुम तभी होते हो जब तुम ऐसे संसारको विरक्तिकर, असह्य और अस्वीकार्य अनुभव करते हो। यही कारण है कि मैं त्यागकी भावनाको कुछ महत्त्व नहीं देती। त्यागसे तो यह समझा जाता है कि तुम्हें उस चीजका त्याग करना है जिसे तुम महत्त्व देते हो, कि तुम्हें उस चीजका वर्जन करना है जिसे तुम रखने योग्य समझते हो। इसके विपरीत तुम्हें यह अनुभव होना चाहिये कि यह संसार कुरूप, मूढ़ एवं क्रूर है और असह्य दुःखकष्टसे भरा हुआ है; एक बार तुम्हें ऐसा अनुभव होते ही, समस्त भौतिक एवं समस्त जड़ात्मक चेतना जो इसका ऐसा होना पसंद नहीं करती, इसका परिवर्तन चाहेगी, वह चिल्लायेगी "मैं कोई और चीज प्राप्त करूंगी —— ऐसी चीज जो सत्य-शिव-सुन्दर हो; आनंद, ज्ञान और चेतनासे परिपूर्ण हो!" यहां सब कुछ अंधकारमय अचेतनाके समुद्रपर तैर रहा है। परंतु जब तुम अपनी समस्त इच्छा, अपने समस्त संकल्प, अपनी समस्त अभीप्सा और उत्कट लगनके साथ भगवान्‌को चाहते हो तो वे अवश्यमेव प्राप्त होते हैं। इसका अभिप्राय केवल संसारको सुधारना ही नहीं है। ऐसे लोग बहुत हैं जो सरकारको बदलने और सामाजिक सुधार एवं परोपकारके कार्य करनेके लिये शोर मचाते हैं और यह मानते हैं कि इससे वे संसारको अधिक अच्छा बना सकेंगे। परंतु 'हम' चाहते हैं एक नया संसार, एक सच्चा संसार, सत्य-चेतनाका प्राकट्य। और यह होगा, अवश्य होगा, —— और जितनी जल्दी हो उतना ही अच्छा!

तथापि यह केवल आंतरिक परिवर्तनभर नहीं होना चाहिये। भौतिक जीवनका भी रूपांतर करना होगा। जड़ जगत् केवल हमारे अंदर ही चेतनाका परिवर्तन नहीं चाहता है। यह क्रियात्मक दृष्टिसे कहता है: "तुम आनंदमें चले जाते हो, प्रकाशयुक्त बन जाते हो, दिव्य ज्ञान प्राप्त कर लेते हो; पर इससे मैं तो नहीं बदल जाता। मैं फिर भी वही नरक बना रहता हूं जो मैं कार्यतः हूं।" चेतनाका सच्चा परिवर्तन वह होगा जो संसारकी भौतिक अवस्थाओंको बदलकर इसे एक सर्वथा नया संसार बना देगा।

* * *

अपने भीतर, अपने हृदयकी गहन गुफाओंमें जाकर निवास करो और कोई व्यक्ति या कोई वस्तु तुम्हें उद्विग्न करनेमें समर्थ नहीं होगी।

——श्रीमां

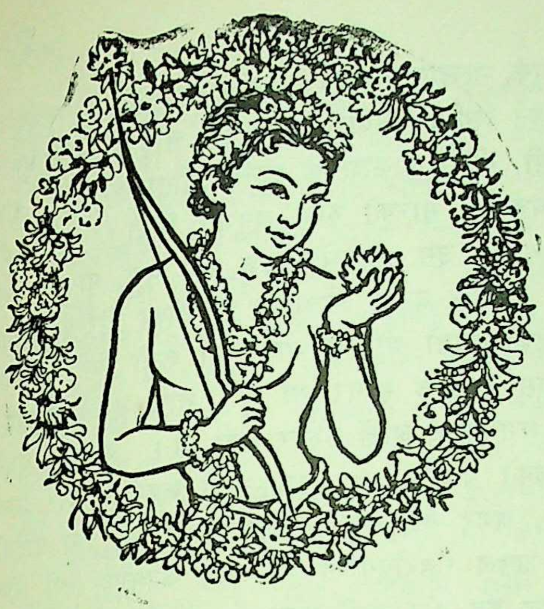

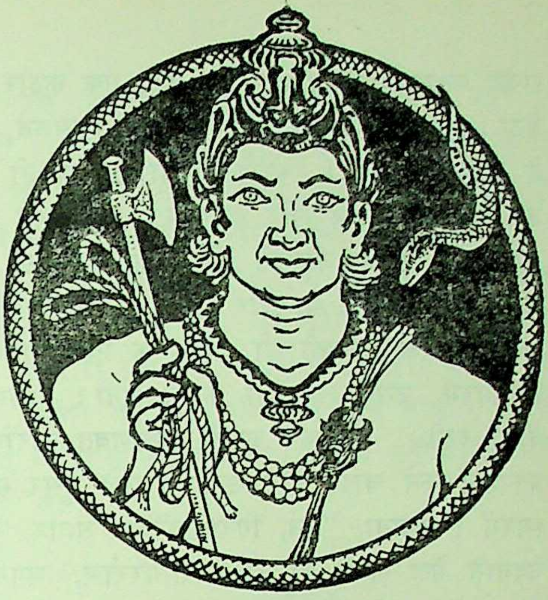

प्रेम और मृत्यु

--३--

पवित्र शतद्रु, और विपाशा लोगोंकी प्यारी शरावती, स्वच्छ, चुस्त चन्द्रभागा और मनुज-कल्याणमें कार्यरत वितस्ता : इन नदियोंकी भूमि छोड़कर रुरुने आर्योंसे अपरिचित बीहड़ जंगलोंमें प्रवेश किया। अछूती कन्या-सी कुंवारी प्रकृति गूंगे पर्वत और जंगलोंमें अकेली, मूक और मुग्ध, आनंदसे लेटी हुई थी। गंगाके विस्तृत होते पाटके साथ-साथ आश्चर्यचकित रुरुने किरात, पौंड्र जातियोंको देखा। वे एक साथ रहती थीं पर लड़ती भी थीं। यह जातियां विराट् वृक्ष तथा महा सर्पराजकी पूजा करती थीं। किंतु यहां स्वस्थ, उन्मत्त पृथ्वी और उसके वनोंमें विचरते जंगली पशु इन छोटी-छोटी जातियोंपर प्रभुत्व रखते थे। आगे चलकर रुरुने देखा कि संध्याके क्षीण धुंधले प्रकाशमें गंगाकी असंख्य लहरें दूर-दूर तक फैलती जा रही हैं। गंगाके लुप्तप्राय सामनेके किनारेसे अनेक स्वर-लहरियां उठ रही थीं। उधरसे

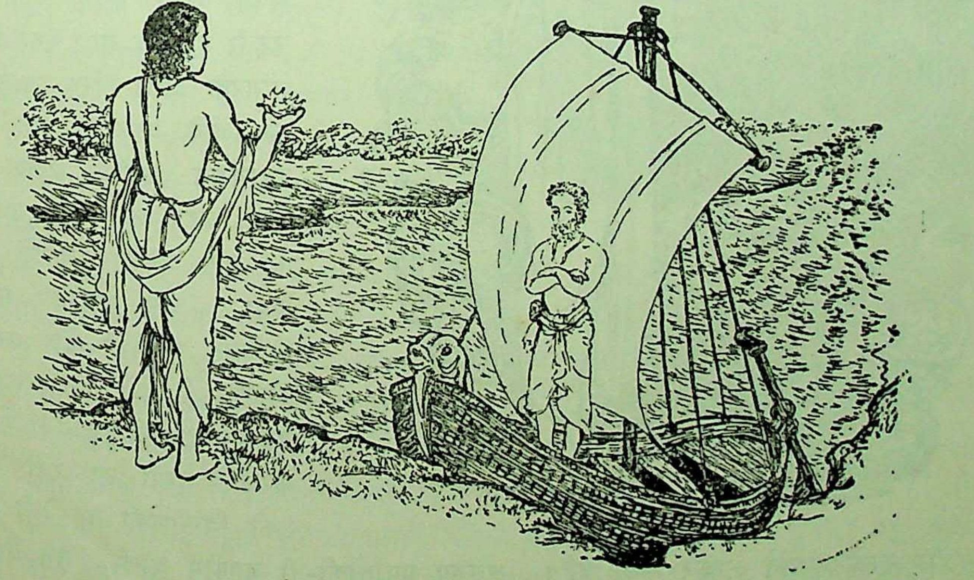

सफेद पताकावाली नौका खेता हुआ एक कठोर, मूक मल्लाह आया। उसके आते ही रुरु नावमें जा बैठा। नाव गंगाके रहस्यमय जलपर फिसलने, उड़ने लगी। नदीके दोनों पाट चौड़े होते-होते आंखोंसे ओझल हो गये। सारी दुनिया जलमय हो गयी, नीला आकाशतक पानीमें गोता खा गया। रातके धीरे-धीरे झुकने और पलकोंपर बढ़ते हुए अंधकारके भारको रुरुने अनुभव किया। रुरुको यह सब अपने दैनिक जीवनसे भी सच्चा स्वप्न-सा लगा। उस स्वप्नमें उसके पास मूक, पाषाण मुखवाला मल्लाह बैठा था और चारों ओर क्षितिजका विस्तार बढ़ता जाता था। नौका धीरे-धीरे अथाह जलपर सरकती जाती थी और एक ऐसे बंदरगाहको ढूंढ़ती थी जो शायद ही कभी मिले। क्षीण अंधकारमें उसने लहरोंकी कराह सुनी। आसपास विशाल सागर था और नीचे अतल गहराई। नौका रुकी। नाविकने अपनी पाषाणवत् तारोंकी समवयस्क आंखें रुरुपर गड़ा दीं। प्रभातके धुंधले प्रकाशमें रुरुने चारों ओर उठते उभरते धूसर समुद्रको देखा। वह फुसफुसाती लहरोंके ऊपर उच्च स्वरमें चिल्लाया, "सुन, गिरासे वंचित सागर, सुन, अगर तेरे अगणित छंदोंमें एक भी लय प्रेमीकी वेदनासे मेल खाती हो तो हे सागरराज, अपनी अतल गहराइयोंको मेरे मर्त्य कदमोंके लिये खोल दे। मैं उस विषादपूर्ण स्थानको ढूंढूंगा जहां अकाल मृत और बन्दी आत्मायें यादोंकी आहोंमें तड़पती हैं। मैं कोई सामान्य मनुज नहीं हूं। महान् ऋषिकी संतान, मैं, रुरु तुझे पुकार रहा हूं। देवोंने मुझे इस विशिष्ट विपत्तिके लिये चुना है। इस फूलसे खिलते अग्नि-पुष्पको देख। कितना ताजा है! यह मेरी वेदनासे ही सजीव है। रुरुने फूलको आगे बढ़ा दिया और एक सजीव वस्तुकी तरह सारा समुद्र कांप उठा। वह हठात् ऊपर उठा, सारा आकाश उत्ताल तरंगोंसे भर गया। पहाड़-सी लहरें उठकर रुरुके ऊपर झुक गयीं। स्वर्गतक समुद्रके इस रूपसे डर गया। बाढ़-सा पानी तीव्र वेगसे बढ़ता गया और एक लंबी सांस लेकर सागरने रुरुको अपने अंदर खींच लिया। गिरती, उठती तरंगोंके साथ रुरुने प्रवेश किया। सागरके क्षीण हरित आलोकमें सागरकन्याओंके बाल लहराते थे। उनके रहस्यमय उरोज झलक जाते थे। आगे बढ़ते-बढ़ते दिङ्मूढ़ रुरुने पानीको एक अगोचर गर्तकी ओर भागते देखा। जैसे भयभीत मानव अपनी निश्चित भावीकी ओर असहाय होकर दौड़ता है वैसे ही असहाय तूफानी वेगसे पातालकी यह गंगा करुण चीत्कार करती, भागी जा रही थी। घूंघटसे ढकी त्रिलोककी वह देवी पानीसे ऊपर उठी और रुरुके सामने आकर खड़ी हुई। असंख्य प्रपातोंकी-सी वाणीमें बोली, "तूने बेधड़क होकर

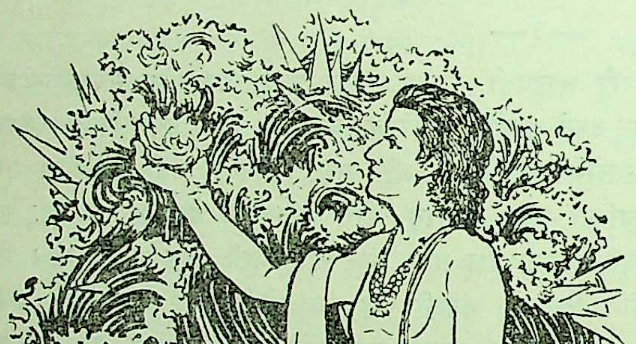

सूर्यके प्रकाशको छोड़ा है। मेरे साथ चलकर तू उस असहाय जीवको काली निराशामें डूबा हुआ पायेगा। प्रेमी! मृत्युकी इस महारात्रिमें मुझ-सी देवीतक कलपती रहती है और अपनी क्रूरतासे स्वयं अपने हृदयको घायल करती रहती है। उस भयंकर रात्रिमें चलनेकी हिम्मत है तो चल, आ।”

अनिच्छासे नीचे उतरते-उतरते धवल गंगा भी काली हो चली और उसकी तरंगें ऐसा चीत्कार कर उठीं जैसा मनुष्यके कानने कभी न सुना होगा। रुरु कुछ ठंडा पड़ गया फिर भी उसके हाथमें स्थित महान् तीव्र प्रेम अपने अंगुलिनिर्देशसे उसे आगे धकेलता गया। वह गंगाके निर्दय स्वरके पीछे-पीछे चलता चला गया। उस भूतहा वातावरणमें अशरीरी प्रेत उसे पकड़ते थे, आसुरी आवाजें उसके कानोंमें चिल्लाती थीं। आत्माकी वेदना सहता आखिर वह एक धूमिल मैदानमें आया। रास्तेके दुःखसे छुट्टी पाकर उसने शांतिकी सांस ली। किंतु वह दुःखकी शांति थी। अनेक मुसीबतोंसे निकलकर मनुष्य जैसी दुःखभरी शांति पाता है वैसी ही थी।

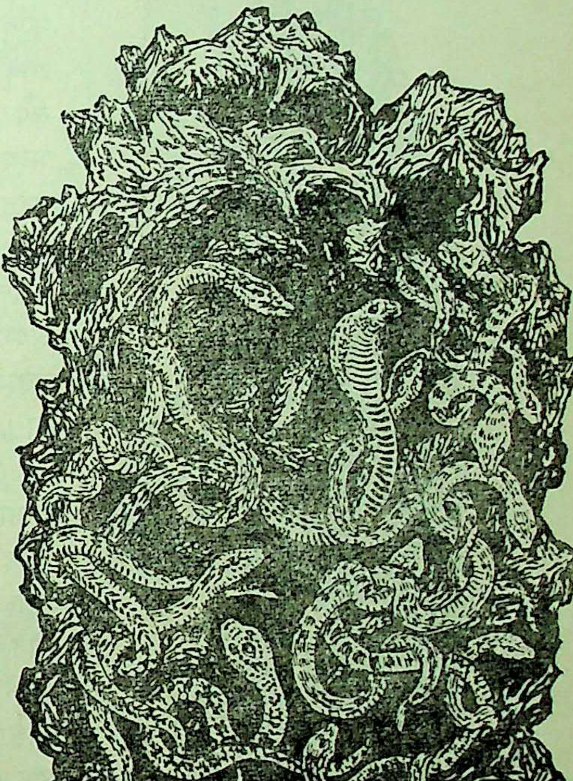

पातालके काले प्रदेशमें न सूर्य था, न कभी बारिश होती थी। मनुष्यके सुखी श्रमसे वहांकी धरती कभी उर्वरा नहीं बनी थी। वहां थी सिर्फ रेत-ही-रेत, विचित्र पहाड़ियां, अस्पष्ट आकारकी गुफायें। उस काले सुनसान देशमें महान् सर्पराज और अनेक लहराते, बल खाते बीभत्स आकार थे। रुरुने घृणास्पद झिलमिलाते प्रकाशको पहचाना। फूत्कारोंको सुनता हुआ और उन आकारोंको देखता हुआ आत्मबलसे आगे बढ़ता गया, थकी-मांदी निराशाके छः प्रदेशोंमेंसे गुजरा जहां दुःख और आहोंका पहुंचना असंभव था। अंतमें आहोंकी पुकार सुनता-सुनता रुरु पातालसे भी नीचे उतर गया। वहां शोककी हृदय-विदारक ध्वनियां सुनायी देती थीं। स्वर मानवीय थे किंतु इतने करुण कि मनुष्य उनको सह न सके। शापित गंगा पागल-सी, चीत्कार करती हुई बढ़ती जाती थी। उसकी प्रचंड धारामें बहते अनेक जीव दुःख, शोक और वेदनासे चिल्लाते जाते थे। उस प्रवाहमें रुरुने राजाओंके मुरझाये मुख देखे, महान् विजेताओंको देखा और विख्यात सुन्दरियोंको भी देखा। गंगाके उभरते, गिरते प्रवाहके ऊपर कभी एक कांपता कुंदन-सा हाथ, कभी वेदनासे पीला पड़ा हुआ चेहरा, छिन्न-भिन्न अंग या भयविह्वल वक्ष दिखायी दे जाते थे। सबके ऊपर गंगाका पानी रोता रहता था। उसे अपनी क्रूरतामें सुख नहीं मिल रहा था। इस क्रूरताको देखकर दयासे द्रवित स्वरमें रुरु पुकार उठा, “हाय! दुःखी मानव-जाति! तू पृथ्वीपर आतुर और आवेगपूर्ण आत्मा लेकर आती है किंतु तेरा नाश पहलेसे ही निश्चित होता है। जीवनके कुछ दिन अनिश्चितता और दुःखमें बीतते हैं। बीच-बीचमें सूर्यका प्रकाश और फूलोंकी सुगंध-सा अदृश्य सुख पानेका प्रयत्न करती रहती है। पर तुझे सुखकी एक बूंद ही मिल पाती है और फिर इस विशाल भूमिको छोड़कर जल्दी ही इस भयानक रात्रिमें उतरना पड़ता है।

यहां भी तुझे अपने छोटे-छोटे सुखोंकी कीमत चुकानी पड़ती है। जरासे सुखके लिये कितनी भारी कीमत! मौत भी हमारी मदद नहीं करती। वह अपने आलिंगनसे डरे हुए, थर-थर कांपते नग्न जीवको यहां ला पटकती है। हाय! मेरे प्यारे फूल! क्या तू भी इस कलपते प्रवाहमें डूब रहा है? मैं जल्दी इस निराशाकी धारामें कूद पड़ंगा। तेरे सौंदर्यको फिरसे तारोंभरे आकाशके नीचे मुस्कराता देखूंगा या उसे ढूंढ़कर तेरे दुःखी हृदयको छातीसे लगा चुंबनोंसे तेरे चीत्कार बंद कर दूंगा। प्रेम तेरा आधा दर्द मेरे अंदर खींच लायेगा। हम दुःख और कष्टमें भी विजयी बने रहेंगे। रुरु रुका और एक आवाज बोली, "मृत्युके साम्राज्यको अपने सजीव नेत्रोंसे व्याकुल न कर। आगे बढ़ता जा। तू जिसे ढूंढ़ता है वह यहां नहीं है। मैंने उसे अभी-अभी देखा है। वह उन लोगोंके बीच है जिन्हें शारीरिक कष्ट नहीं होता। वे दुःखद विचार और मूक यादोंके सताये हैं। वह थर-थर कांपते शहीद हृदयोंका एक दल है। रुरुने पीठ फेरी और उस दर्दभरे प्रवाहपर आगकी पच्चीकारीका एक बड़ा सेतु देखा। अग्निशिखासे ही आवृत एक नारीमूर्ति नंगी तलवार लिये उस चंचल आगकी लपटोंके सेतुपर पहरा दे रही थी। उसका दहकता मुख भव्य और भयावह था। वह बोली, "भृगुपुत्र! आगे बढ़ता जा। तेरे हाथका फूल मुझसे भी तेरी रक्षा करता है। एक हाथके भव्य उग्र झटकेसे उसने रुरुको धकेला। उसके स्पर्शसे कांपता परंतु सही सलामत रुरु अंदर आ गया। नदीका दूसरा किनारा भी काली लताओंसे ढका था। उसके मैदानमें एक भी फूल नहीं था। सारा मैदान दुखकातर कोमल मुखोंसे भरा था। मजबूत पुरुष, आंसू बहाती माताएं, सौंदर्यकी आभायुक्त कन्याएं, और सुकुमार दुःखी बालक भी वहां थे। नीची दृष्टि किये, नतमस्तक वस्त्रहीन दल इधर-उधर घूम रहा था। बिन बारिश मुरझाये फूलकी नाईं वे सब मौन थे। इनके बीच रुरु आ खड़ा हुआ। अचानक एकने उसे देखा। फिर चुपचाप खड़ी फसलपर हवाका झोंका जैसे बालियोंको आलोड़ित करता है वैसे ही सारे मूक जीव मुख उठाकर उसकी ओर देखने लगे। सब उसकी ओर बढ़े और दयनीय चेष्टाएं करते हुए उसे छूने लगे। कोई उसका वस्त्र पकड़ता, कोई उसका बाल सहलाता और कोई सिर्फ उसकी सांसका अनुभव करता था। छोटे-छोटे बालक और सुकोमल कन्याएं आकर उसके सामने बैठ गयीं और बड़ी-बड़ी करुण आंखें उठाकर रुरुकी आंखोंमें देखने लगीं। रुरुका दिल शोकके इस अतिरेकसे टूटने-टूटनेको हो रहा था। हृदय आंसू बनकर उमड़ चला। जीवित मनुष्यके लिये मृत जीवोंकी यह वेदना और प्रेम वह समझ सकता था। उसने उन विचित्र सुंदर मुखोंपर दृष्टि घुमायी पर जिसे वह ढूंढ़ता था वह यहां भी न थी। स्थिर हवामें पीला मुख उठाकर मौन वातावरणमें रुरु बोला, "ओह दुःखी जीवो! तुम एक बार

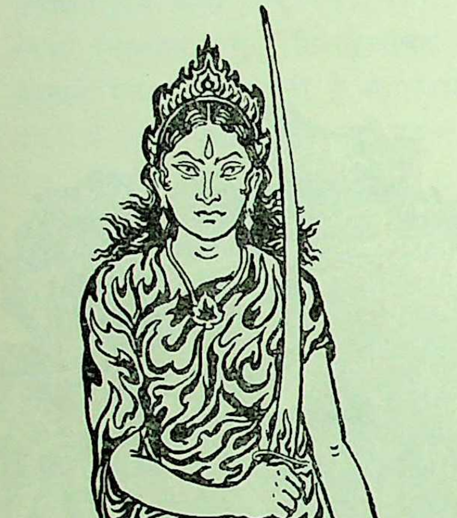

कितने सुखी थे। अगर पुरानी बातें भूल सको तो कितना अच्छा हो। तुम्हारे दुखसे मेरी आत्मा भी दुखी है। बताओ तुम्हारे बीचमें मेरी प्रियतमा है? ओ मुरझाये सुंदर जीव! तुम उसे झट पहचान लोगे। मृत आत्माओंमें वह सबसे सुंदर होगी; उसकी माधुरीसे तुम उसे पहचान जाओगे।” बोलते-बोलते रुरुका स्वर रुंध गया। आंसू बह चले। वे लोग चुपचाप उसको निहारते रहे। रुरु बुदबुदाया, “आह, क्या पागलपन है! अगर वह होती तो क्या देखते ही मेरी ओर दौड़ी न आती और मेरे वक्षपर सिर रखकर उन्हीं जानी-पहचानी आंखोंसे मेरे दुखको समझनेका प्रयास न करती? वह होती तो कितना आनंद होता! उसके होठ मौन रहते फिर भी उसका तीव्र प्रेम मूक भाषामें सब कुछ कह जाता। हम एक दूसरेको समझ जाते और हाथमें हाथ लेकर यहां आरामसे चलते।”

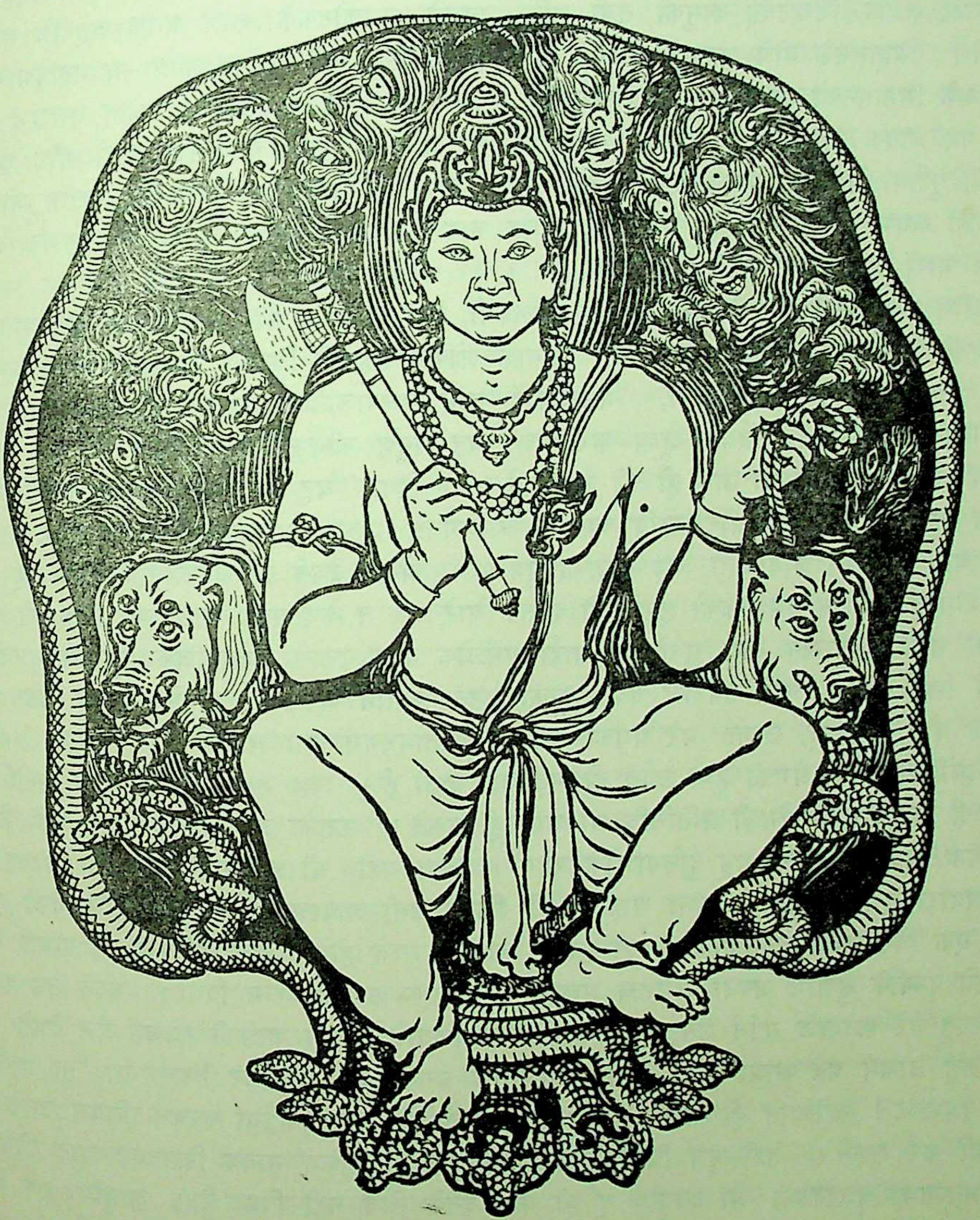

इतना कहते-कहते वह अकाल मृतकोंको छोड़ आगे बढ़ा। वाणीविहीन असहाय मौनमें वे अवश लिपटती दृष्टिसे उसे निहारते साथ-साथ चले और एक भयावह विचित्र इमारतके सामने आ खड़े

हुए। उसके चारों ओर बड़े-बड़े स्तंभ थे। बादल-सी स्याह छत सारे महलपर छायी हुई थी। दरवाजेपर अजीब तरहके सशस्त्र प्राणी पहरा दे रहे थे। उनके डरसे दुखी मोहक मृतक पीछे हट गये और अनिच्छासे शब्दहीन शोक-जगत्में वापिस चले गये। रुरु बेधड़क द्वारतक चलता गया। पहरेदारोंने धनुषबाण सम्हाले। झट रुरुने प्रेमके अग्नि-पुष्पको आगे बढ़ाया। कठोर मुखवाले पहरेदारोंने उसे आगे बढ़ने दिया। रुरुने एक धुंधला-सा असीम सभा-मंडप देखा। चारों ओर मौनका साम्राज्य था। अंधेरी सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते जैसे रोशनीकी झलक आ जाती है वैसे ही ऊपरकी ओर थाड़ी-थोड़ी चमक दिखायी दे रही थी। वहां एक सिंहासन-सा दीखता था और रत्नखचित तोरण झलक रहे थे। उसके चारों ओर कुंडलियां मारकर या लहराते हुए बड़े-बड़े सर्पराज थे। नागराज जरत्कारू, तक्षक, विराटदेह वासुकी तथा अग्नि उगलते करकोटकके साथ अनेक जहरीले सांप लेटे हुए थे। सिंहासनके नीचे भयंकर सौंदर्यसे भयावह कुंडलियां मारे विचित्र कमल-सा महापद्म सर्पराज यमराजके सिंहासनको फनपर उठाये हुए था। अनेक नाम और प्रकृतिवाले, महान् यमराज करुणामयी पर घातक दृष्टिसे देख रहे थे। पवित्र तथा बलवान्, यमलोकके अवसादपूर्ण और रहस्यमय स्वामी, पुराने नियमोंको अटूट रखनेवाले धर्मराज, सब चीजोंको खतम करनेवाले कृतांत जो अंतमें स्वयं भी खतम हो जायेंगे, यही थे। इधर-उधर चार आंखोंवाले कुत्ते पंजोंपर सिर रखकर लेटे थे। उनकी चारों आंखें पहरा देती रहती थीं।

क्षीण प्रकाशमें देवत्वरूपी सर्पराज और कालरूपी, ठंडी, असाध्य मौत —— उसके सामने आते गये। सिंहासनके पास आकर रुरुने हाथ जोड़े। हवाके झोंकेसे लहराते चित्रमय परदेसे सारे आकार लहराये। एक विषण्ण वाणी बोली, "यमलोकमें सांस लेनेवाला यह मनुष्य कौन है? नरककी मृत माधुरीको अपने जीवंत सौंदर्यसे क्षुब्ध करनेवाला यह मनुज कौन-सी आध्यात्मिक या अन्य शक्तिसे यहां आया है? एक दूसरी पास ही की आवाजने उत्तर दिया, "यह देव और असुरकी संतान है। यह स्वर्गीय सुख एक अप्सरा और ऋषि च्यवनके आलिंगनसे उतरा है, भृगुपुत्र च्यवन पुलोमा राक्षसीसे जन्मा था। भृगुको जानते हो, वह ब्रह्माका पुत्र था। प्रेमके देवने उसे विरहसे खिलता यह अग्नि-पुष्प दिया है इसलिये यमलोककी हवा उसे शीतके मारे जड़ न कर सकी, पातालकी नदी उसे पाषाण न बना सकी। प्रेमका नाम सुनते ही सारा यमलोक कांप उठा। यमराजका सिंहासन प्रदोषकेसे अंधेरेमें छिप गया। सारे सर्पराज दर्दसे फूत्कार उठे, कुत्तोंने अपने विराट सिर ऊपर उठा लिये। यमराज बोले, "महान्, उष्मा भरे प्रेमको इस ठंडे वातावरणमें क्या चाहिये?"

निर्मोही सृष्टियां प्रेमकी हवा लगते ही गड़बड़ा जाती हैं। वह जहां जाता है वहां यमके नियम तोड़ता है किंतु नरकमें प्रेमकी प्रतिनिधि आ जा नहीं सकते। उसका अधिकार नरकतक नहीं फैलता। इस युवक विद्रोहीको मेरी यह दुनिया रोके रहेगी। क्या यहां भी वह गड़बड़ करना चाहता है? अपने अवारा सुखको यहां भी लाना चाहता है? फिरसे उसी आवाजने उत्तर दिया, "स्वर्गकी अप्सरा मेनका एक दिन पृथ्वीपर उतरकर लता-मंडपमें आनंदसे मस्त होकर खेल रही थी। गांधर्व राजके सहवाससे पृथ्वीके सुखोंमें अपना अमरत्व भूलकर उसने एक कलीको जन्म दिया। रुरुने उस कलीको पाया परंतु तेरे फनवाले सर्पने उसे बहुत जल्दी छीन लिया। उसी कलीकी खोजमें प्रेम देवसे रक्षित इस दुःसह लोकमें वह आया है।" सारा यमलोक उसकी ओर झुककर चिल्लाया, "हा मर्त्य, ओ बेचारे पथभ्रष्ट! वलिदान ही सबसे ज्यादा शक्तिशाली है। स्वर्गके या नरकके नियम उसके आगे कुछ नहीं कर सकते। तेरी मृत प्रियाको मैं लौटा दूंगा। लेकिन मानव फिर एक बार सोच ले। देवोंने मनुष्यको वृद्धावस्था या आयुष्य यूं ही फेंक देनेके लिये नहीं दिया है। आयुष्य एक बेकार निकम्मी वस्तु नहीं है। बड़ी आयुतक रहकर मनुष्य शांति पाता है; गौरव अपनाता है और उसीसे परम प्रभुकी ओरका कठिन आरोहण कम मुश्किल हो सकता है। इसीलिये काल यौवनके सौंदर्य

और वैभवको पीटता है। उसके जोशीले अद्भुत प्राणिक रूपको हराता है ताकि मानव समझ सके कि उसका सच्चा स्वरूप आत्मा है। उसकी चिरंजीव आत्मा इस चंचलतामें लीला करनेके लिये आती है। मृत्यु उसका अंत नहीं है। मांके वात्सल्यपूर्ण हाथ उसका जीवन शुरू नहीं करते। वह अजन्म आत्मा अनजाने अवकाशमें रहती है। विकसित होती हुई आत्माके साथ शरीरका महत्त्व कम होता जाता है। उसकी सीमाओंसे बाहर आकर जीवनके छोटे-मोटे सुख अदृश्य हो जाते हैं। उनका स्थान परम शांति ले लेती है। यौवन, पौरुष, बढ़ती आयु और बुढ़ापा इन चार ऋतुओंमेंसे आत्मा गुजरती है। यौवन आतुरतासे आशा, आनंद और स्वप्नोंकी ओर झुकता है। पौरुष आवेगोंको गहरा रंग देता है। गंभीर विचारों और श्रमको समझता है। वानप्रस्थ-सी बढ़ती आयु इन सबको इकट्ठा करने और उनपर ध्यान करनेकी आयु है। मनुष्य जैसे ऊंची पहाड़ीपर चढ़कर नीचे फैले खेत, खलिहान और मानवसमाजको देखता है वैसे ही मनुष्य तटस्थ भावसे जिस समाजमें वह हंसा, खेला, राग-अनुरागसे जीवनके अनेक पहलू जान सका उस समाजको देख सकता है। अंतमें सर्वोत्तम आयु आती है जब नील गगन पास आता जाता है। इस वरदानको त्याग देगा? किसलिये? कुछ वर्ष, हां, केवल इने-गिने — वर्षोंके लिये उसे सूर्यके प्रकाशमें वापिस लानेके लिये जो अंतमें चली ही जायगी। आह ऋषिपुत्र! रुक जा। देख, मैं नरकका पंजा उठाकर तुझे अपनी सुन्दर सुहावनी जिंदगीमें तारोंभरे आकाश तले वापिस भेजे देता हूं या फिर अपनी जिंदगीके सफल वर्ष तू मुझे समर्पण कर तभी तेरी कली-सी प्रिया फिरसे मुस्करायेगी।" परंतु दुश्मनकी आवाजकी नाईं एक छाया बोल उठी, "यह जिस गरिमाका त्याग कर रहा है वह दिखा दो।" अग्निसे दहकते तोरणपर मूर्तियोंका जलूस दिखायी दिया। स्वर्ग या पृथ्वीसे भी बढ़कर सुन्दर स्थापत्यके नमूने चलते-फिरते दिख रहे थे। ऐसी सुन्दर सुडौल मूर्तियां न ऐथेन्सके एक्रोपोलीसमें हैं, न फिडियाकी कुमारी माता मरियमकी मूर्तियोंमें हैं। बौद्ध चैत्य या ओडिसाके ऊंची उठती अभीप्साकेसे मंदिर जहां सेनापति, और नर्तकी, ज्ञानी और राजा महाराजा, नगर प्रवेश करते हुए विजयी राजा और दैनिक जीवनके दृश्य स्वप्नलोकसे अंकित थे। भुवनोंके स्वामीके भवनसे भुवनेश्वरको भी हरानेवाले सुन्दर दृश्य रुरुके भावी जीवनके परदेपर नाच रहे थे। इनके बीच रुरुने अपने भावी रूपको देखा — एक दिव्य आभायुक्त मुख — एक ऋषि जो अनंत तत्त्वोंसे परिचित है। उसने स्वयंको कभी पहाड़ोंपर, कभी छंदमय झरनोंके पास — ऐसे स्थानोंपर देखा जहां असीमके साथ मनुष्य भी असीम बनता है। जैसे पुराने वृक्षकी छायामें छोटे-छोटे पौधे पलते हैं वैसे ही अपने चारों ओर उसने राजोचित और उत्साही मनुष्य देखे। महान् राजा जिन्हें काल भुला नहीं पाता, गहन गंभीर विचारोंके स्वामी, ज्ञानी पुरुष, कविवृन्द जिनके होठोंसे तत्त्वज्ञानके बीजरूपी काव्य स्फुरते थे, इन सब महान् पुरुषोंका समाज उसकी पूजा करता था। अंतमें उसने सारी सृष्टिको सौंदर्यमें डूबते देखा और आश्चर्यमूढ़ हो उसने उस अद्भुत मुखकी ऊषा भी देखी। पागल-सा वह आगे बढ़ा, फिर थककर पीछे हट गया। उसके दिमागमें आकाशमें उड़ते पक्षीकी तरह सारे दृश्य उड़ते चले गये। उसने मनुष्यके दुःखकी आहोंके प्रवाहको सुना। अचानक रोषमें आकर उसने अपनी आत्मासे आधी जिंदगी फेंक दी और बिजली-सा गिर पड़ा। विजय-गर्वके साथ छाया चली गयी, घना अंधकार बढ़ गया। सिंहासनके नग चमकते रहे, सर्पराजकी आंखें मुंद-सी गयीं। अचानक एक सुगंध फैल गयी, नरक आनन्दोल्लाससे रोमांचित हो उठा। दुनियाको डराती हुई क्रुद्ध और विजित छाया निर्बल हो चली। रुरुके आक्रोशसे भरे हुए, समस्त पृथ्वीका दमन करनेवाले यमराज खिसियाकर निस्तेज होते गये। रुरुकी थकी आत्माने स्वर सुने, "उठ बैठ। द्वंद्व युद्ध खतम हो चुका है। आगेकी भीषणता अब इतनी कठिन न रहेगी। क्योंकि उसे सहनेके लिये तू अकेला न होगा। थककर चूर हुए रुरुके प्राणोंमें फिरसे जीवन उछल पड़ा। मृत्युके दरबारको छोड़कर वह आगे चला। बारह बार उसने दुःसह वैतरणीको पार किया,

बारह बार नरकका सामना किया और उस बृहद् नदको अंधेरे कूपमें गिरते देखा। उस कूपमें रात्रिसे भी अकल्पनीय गहन अंधकार था। रुरुने वहां ऐसी यातनाएं देखीं कि उन्हें देखना भी आंखोंको अपवित्र करना था। मानव प्रेत अनदेखे, अनसुने कष्ट सहते थे। वहां आसुरी वेदनामें कांपते और मूक प्राणीकी तरह चुपचाप असह्य दर्दको सहते मूक प्रेतोंके झुंड थे। मूर्तियोंमें व्यक्त किये हुए अमानुषिक विचारसे उन प्रेतोंके शरीर विचित्र भंगिमा लिये सिहर रहे थे। एक हिंसक और लौह मौन इस सृष्टिको जकड़े हुए था। उन प्रेतोंको अनंत दर्दकी चीख-पुकारका सहारा भी न था। वे न छूटनेका प्रयास करते थे, न सांस लेते थे। जहां गंगा मौतकी तलैया बनकर अपनी यात्रा खतम करती थी उस अंतिम नरकमें रुरुकी त्रस्त आंखोंने प्रियाको देखा। मुरझायी हुई, पीली निस्तेज प्रियंवदा उस पार्थिव मूर्तिसे कितनी भिन्न थी। कहां वह लालित्य, वह पार्थिव ऊष्मा। प्रेमसे लजाते उसके कपोलोंपर गुलाब खिल उठते थे और चमेलीका धवल रंग भी निखर आता था। यहां वह मूक थी और मुरझायी कली-सी निस्तेज खड़ी थी। कड़कते बादलसे काले आक्रोशभरे आकाश उसपर पहरा दे रहे थे। प्रेमदेवके आशीर्वादसे निर्भीक बना हुआ रुरु उनपर टूट पड़ा। उसके स्पर्शसे ही घबराकर वे झूठे भयकी तरह लुप्त हो गये। रोमांचित हो रुरुने प्रियाको पुनीत प्यारे नामसे पुकारा और उसपर झुक गया। रुरुके स्पर्शसे नरकके भयानक बंधन छूट गये, सारे दुःख-दर्द दुःस्वप्नसे अदृश्य हो गये। जैसे मनुष्य पहाड़ीपरसे कुहरेको भागते देखता है वैसे ही रुरुके मानस-पटलसे नरकका असह्य विराट् जगत् भागता गया। अति दुर्गम विजयोल्लाससे उसकी इंद्रियां वशमें न रहीं। नींद-सी बेहोशीने सुकुमार हाथोंसे उसे अपनी ओर खींच लिया। रुरुने जागकर दूर कूकती कोयलकी कूक सुनी। चारों ओर सूर्यका प्रकाश था, छोटी-छोटी चीजें संतोषका सांस ले रही थीं। पृथ्वीका स्पर्श, शरीरको शांति देनेवाले रोजके दृश्य : इन सबसे रुरुका शरीर लहरोंपर नाचते कमल-सा संतुष्ट लेटा था। उसने सिर उठाकर हरे घास-पात और हरे-भरे वृक्षराजोंको देखा। पास ही छिपा एक टिड्डा जोर-जोरसे एक ही स्वरमें चिल्ला रहा था। रोम-रोमसे पुलकित रुरुने पास लेटी प्रियंवदाको देखा। ओह! मौतके पंजेसे मुक्त उसका शरीर कितना सजीव, कितना प्यारा था। घासपर लेटा शरीर कितना श्वेतवर्ण था। उसके कुंतलकेश अस्त-व्यस्त हो गये थे। फिरसे ओठोंके गुलाब खिले और मुस्करा उठे। कपोलोंपर माधुरी लौट आयी। सूर्यके सुनहरे प्रकाशके जालमें बंधे उस चमेलीसे सुकुमार शरीरको वह आत्म-विस्मृत होकर देखता रहा। कुछ डरते-डरते छूकर विश्वास कर लिया कि वह सचमुच है। रुरुने धीरेसे उसकी बंद आंखोंको चूम लिया। छोटी-सी सिसकी लेकर उसने बड़ी-बड़ी पार्थिव आंखें खोलीं और रुरुको देखा। छोटे-छोटे हाथ ऊपर उठाकर उससे लिपट गयी। दोनोंकी आत्मा एक हो गयी। एक ही साथ रोती और हंसती प्रियंवदा रुरुसे लिपटकर बोली, "प्यारे! यह हरी--भरी सृष्टि। यह सुहावना सूर्य।" वह चुप हो गयी। अपने बच्चोंकी खुशीसे प्रसन्न पृथ्वी आनंदमग्न होकर गाती-गाती घूमती गयी। कोयलकी कूक सृष्टिके उस सुदूर प्रभातमें आनंद घोलती हुई गूंजती रही।

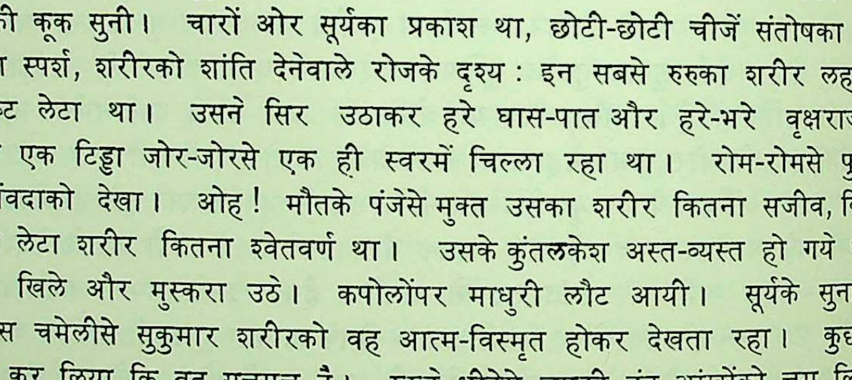

भाई वीरसिंह

हिंदीके विद्वान् पंजाबीको हिंदीका ही एक रूप मानते रहे हैं। गुरु नानक, गुरु गोविंद आदि गुरुओंकी वाणी जहां पंजाबी साहित्यकी निधि है वहां हिंदी साहित्यमें भी उनका स्थान ऊंचा है। पंजाबके पुराने लेखक ब्रजभाषामें ही लिखा करते थे। पंजाबी भाषापर उर्दू, फारसी तथा सूफी काव्यका बहुत प्रभाव पड़ा है। यहां हम आधुनिक पंजाबीको नया मोड़ देनेवाले भाई वीरसिंहका कुछ परिचय दे रहे हैं। इसका आधार राष्ट्रभाषा प्रचार समितिद्वारा प्रकाशित प्रीतमसिंह पंछीकी पुस्तक 'भाई वीरसिंह' है।

भाई वीरसिंहका जन्म ५ दिसंबर १८७२ को हुआ था। उनके पिता ब्रज भाषाके अच्छे कवि थे। इनके पूर्वजोंने सिख धर्मकी बहुत सेवा की थी। भाई साहब बचपनसे ही स्वाधीनताके दीवाने थे। इन्होंने नौकरी करनेकी जगह व्यापार करना चाहा और किसी मित्रको साथ लेकर अमृतसरमें वजीर हिंद प्रेस खोला जो वहां पंजाबीका सबसे पुराना प्रेस है। इन्होंने काव्य, महाकाव्य, उपन्यास, नाटक आदि सब कुछ लिखा है। इनका महाकाव्य राणा सूरत सिंह और उपन्यास 'बाबा नौध सिंह' पंजाबी साहित्यमें बहुत ऊंचा स्थान रखते हैं। इनके पहले उपन्यास 'सुन्दरी'की लाखों प्रतियां छप चुकी हैं। यह बात भारतकी किसी भी भाषाके लिये विशेष गौरववाली है। इसमें सिख वीरांगनाओंकी कहानी दी गयी है।

इनकी कृतियोंमें धार्मिक भाव है, सूफियाना रंग, समाज-सुधार है और स्वाधीनताकी तड़प है। इनका प्रकृतिका चित्रण बहुत ही सुन्दर और सजीव होता है। अलंकारों और मुहावरोंसे इनकी भाषा चमकती रहती है। अन्य सिख कवियोंकी तरह इनके काव्य भी संगीतमय हैं।

पंजाबी जीवनमें रूमानियतका एक विशेष स्थान होता है। उस धरतीके एक-एक कणमें प्रेम, सौंदर्य, यौवनकी छटा होती है। ये सभी चीजें भाई वीरसिंहको अपने प्रदेशसे बड़ी उदारताके साथ मिलीं। गुरुओंने स्वाधीनताके लिये तड़प पैदा की और सूफियोंने इन्हें दार्शनिक दृष्टि प्रदान की। इन्हें फूलोंसे बहुत प्रेम था और फूलोंने इनके काव्यको रंगीन बना दिया।

लीजिये, अब हम इधर उधरकी बातें न करके भाईसाहबके काव्यका नमूना प्रस्तुत करते हैं :—

अज्ज नूर दे तड़के
जदों लै रही सी सवेर अंगड़ांइयां
पहु फुटाले दी गोद विच
तुसी खेल रहे सओ मेरे साइयां।
किंज हां, किंज ? आ गये सऊं
ओस निकी गोद विच ?
मेरे ऐडे बडे विशाल सांइयां।

(आज जब ज्योतिर्मय उषा अंगड़ाई ले रही थी, तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबमें तुम खेल रहे थे। मेरे इतने विशाल प्रियतम! कैसे, हां, कैसे, तुम छोटी-सी गोदमें आ गये ?)

समयके बारेमें वे कहते हैं : मैंने बड़ी अनुनय-विनय की किंतु समयने मेरी एक न मानी। मैं पकड़ती ही रह गयी पर वह अपना पल्ला छुड़ा ले गया। मैंने बहुत चाहा पर उसे रोक न सकी।

वह बड़ी तेजीसे सब सीमाओंको लांघता चला गया। मानव! गतिशील समयको देख, वह रुकना नहीं जानता। एक बार जाकर वह वापिस नहीं आता।

कहते हैं कि भगवान् अनन्त और अपार है जहां बुद्धिकी पहुंच नहीं। बुद्धिमान् लोग भगवान्को माननेसे भी इंकार करते हैं। भाई वीरसिंह कहते हैं, "जिस ऊंचाईसे बुद्धि अपने पंख जलाकर धरतीपर आ गिरी, मेरा मन बरबस वहां पहुंचनेके लिये आकुल है। वहां किसी अदृश्य प्यालेको मेरे ओठ छू लेंगे तो मैं रसविभोर हो, झूमने लगूंगा।

"ज्ञानके दावेदार मेरा मार्ग रोककर खड़े हो गये। वे अंध विश्वासी कहते हैं — जो बुद्धिसे परे पहुंचनेका प्रयास करते हैं वे मारे जाते हैं।

"लेकिन ऐ ज्ञानी! तू अपनी बुद्धिकी गोदमें पड़ा रह। मैंने तो उमंगोंके देशसे दोस्ती कर ली है।"

भाई वीरसिंहपर रवींद्रनाथ ठाकुरका असर भी दिखायी देता है। उनकी गीताञ्जलिके रंगकी एक कविता सुनिये :—

"तुम मेरे सपनेमें आये। मैंने तुम्हें गलबहियोंमें पकड़ना चाहा लेकिन तुम अदृश्य थे, मेरी पकड़में कैसे आते। मेरी कलाई कांपती रह गयी।

"मैंने तुम्हारे चरणोंमें सीस नवाया पर तुम्हें छू न पाया। तुम ऊंचे थे मैं नीचा। तुम्हें छूना मेरे बसकी चीज न थी।

"मैं तुम्हारा पल्ला पकड़नेके लिये दौड़ा। लेकिन वह बिजलीकी लहरोंकी तरह उड़ गया। जाते-जाते वह मुझे छूता गया।

"मेरी मिट्टी चमक गयी। तुम मेरे रोम रोममें समा गये। बिजली कौंध गयी और चकाचौंध छा गया।"

कहते हैं केवल पढ़-पढ़कर सच्चा ज्ञान नहीं मिलता। कबीरदास जी आदि अनेक संतोंने हमें बताया है कि केवल बाहरी विद्योपार्जनसे कुछ न होगा। भाई वीरसिंहने इसी बातको कैसे मजेदार ढंगसे रखा है, "सिरको भिखारीका प्याला बनाकर मैं विद्वानोंके द्वारपर फिरा। घर-घरसे भीख मांगकर मैंने इसे ठूंस-ठूंसकर भर लिया। प्यालेको भरा देखकर मैंने समझा कि अब मैं ज्ञानी हो गया। मेरे पैर जमीनपर न पड़ते थे। मैं बहुत ऊंचा होकर चलने लगा। एक दिन यह प्याला मैंने गुरुके आगे धर दिया। उन्होंने जूठा जूठा कहकर उसे उलटकर खाली कर दिया। फिर उसे मल मलकर धोया और विद्याके मैलको उतारा। अब इस प्यालेको देखे फिरसे कमलकी तरह खिल उठा है।"

मानव प्रेम सुन्दर वस्तुको अपने कब्जेमें कर लेना चाहता है, वह उसे पूरी तरह अपना लेना चाहता है। गुलाबका फूल अभी-अभी खिला है। उसके सौंदर्यको देखकर लोलुप माली उसे तोड़ने जाता है। गुलाब कह उठता है, "मुझे डालसे मत तोड़। मैंने सुगन्धकी दुकान खोली है। लाखों ग्राहक आकर सूंघ सकते हैं, किसीको खाली न लौटना होगा। लेकिन अगर तू मुझे तोड़कर ले जायगा तो मैं एक ही जगहका होकर रह जाऊंगा और पलक मारते मेरा रूप और मेरी सुगन्ध उड़ जायगी।"

भाई वीरसिंह पराधीन भारतमें जन्मे थे। भारतीय जनता स्वाधीनताके लिये तड़प रही थी। लेकिन कुछ पिंजरेके पंछी ऐसे भी थे जिन्हें गुलामी ही पसंद थी। इस सारी स्थितिका कविने बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। इस कविताका शीर्षक है गंगाराम। गंगाराम पालतू तोतेको कहते हैं। हम यहां पूरी कविताके भावार्थ देनेके लोभका संवरण नहीं कर सकते। वे कहते हैं, "एक उजाड़ जंगलमें एक तोता बैठा रो रहा है। वह डरसे चौंक चौंक पड़ता है। कभी उछलकर बेचैनीसे

इधर-उधर देखता है। कभी सहमता सिकुड़ता बैठ जाता है। कभी आशाका पल्ला पकड़कर चलता है। कभी एक टांगपर खड़ा होकर आंखें बंद कर लेता है और कभी थककर पंख फड़फड़ाता है। बेचारेकी हालत डावांडोल है, भूख-प्याससे व्याकुल हो रहा है पर उसका दुःख मिटानेवाला कोई नहीं आया।

"थोड़ी दूर एक बड़ा पीपल लहरा रहा था। उड़ते हुए तोतोंकी एक पंक्ति उसपर आराम करनेके लिये आकर बैठ गयी। पीपलकी डाल झूम उठती है। तोते उसके फल खाते, चहचहाते, शोर मचाते जाते हैं और इधर-उधर नजर दौड़ाते हैं। एक तोतेने देखा कि कुछ दूरीपर हमारा ही एक भाई बिलख रहा है, किसी दुःख और पीड़ाके कारण पंखवाला होते हुए भी पंखविहीन लग रहा है। एक तोता उड़कर उसके पास जा पहुंचा और बोला —— तू इतना दुःखी क्यों है, तू क्यों इस तरह सुबक रहा है और डरके मारे कांप रहा है? चल मेरे साथ उड़ चल, हम उस बड़े पेड़पर चलें, कहीं ऐसा न हो कि कोई कुत्ता या बिल्ली अपना पेट भरनेके लिये तुझे उठा ले जाय।

"कमजोर तोतेने पेड़की ओर देखकर पूछा —— क्या मैं वहां जा सकता हूं? मुझे उठानेवाला तो कोई है ही नहीं। यही सोचकर हिचकिचा जाता हूं। तोतेने डांटकर कहा——छिः, तू पंख तो मार। गंगारामने पंख फड़फड़ाये पर उड़ न सका। तोतेने ऐसी अनोखी बात पहले देखी या सुनीतक न थी। वह यह नया समाचार सुनानेके लिये उड़ गया। उसका हाल सुनकर सब तोते नीचे उतर आये। उसे देखकर बोले, "भाई, तूने अपना क्या हुलिया बनाया है? डरके मारे क्यों दुबका जा रहा है, तू उड़ना कैसे भूल गया? गंगारामने रोकर कहा —— मैं अपने देशसे बिछुड़ गया हूं, भूख-प्यासने मुझे अधमुआ कर दिया है। मुझपर बड़ा भय आ पड़ा है। तोतेने कहा —— अच्छा, तू अपने देशका कुछ हाल सुना। तू कहां जाना चाहता है, किसके बिछोहमें रो रहा है? गंगारामने कहा —— मैं देवलोकका वासी हूं। दिन-रात मौज किया करता था। एक और तोतेने बात काटते हुए कहा, यह स्थान ठीक नहीं है, चलो उस पेड़पर चलें। गंगाराम पंख फड़फड़ाता रह गया। तब और तोतोंने उसे ढाढ़स बंधाया और बहुत यत्नसे पीपलके पेड़पर ले गये और उसे पिप्पलियां खानेको दीं। गंगाराम ने जरा चखकर फेंक दी, दूसरी चखी, फिर नाक भौं सिकोड़कर बोला, फीकी है। पेटका गढ़ा तो भरना ही था। रो-धोकर पिप्पली निगल ली।

"अब तोतोंने फिर उसके घरका हाल पूछा। गंगू मजा ले लेकर कहने लगा —— मैं देवताओंके बीच रहता था। वहां कोई चिंता न थी। मेरे लिये लोहेका महल था जिसमें मुझे किसी प्रकारका डर न था। खानेके लिये तरह-तरहके पकवान और फल थे। लोग गीत सुनाते थे और लाड़ करते थे। यह कहकर गंगाराम मनुष्योंकी बोली बोलने लगा। सब तोते भौंचक्के रह गये। यह भाषा तो उन्होंने कभी न सुनी थी। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

"आखिर सब तोते मिलकर एक बूढ़े तोतेके पास गये जो पास ही सेमलकी खोहमें रहता था। उसे सारी बातें बतायीं। तो वह खुर्राट भांप गया कि दालमें कुछ काला है। वह उड़कर गंगाराम के पास आया। उसे देखते ही बूढ़ा समझ गया कि यह अस्वाभाविक प्राणी जरूर कहीं बन्दी रहकर आया है। बूढ़ेने पूछा —— क्यों गंगाराम, तुम यहां रहना चाहते हो या अपने देवलोकको वापिस जाना चाहते हो? गंगारामने कहा —— मुझे अपने स्वर्गका रास्ता बता दो। तुम्हारे यहां तो अच्छा खाना भी नहीं मिलता। बूढ़ेने सब तोतोंकी ओर इशारा किया और वे नजदीक आ गये। फिर उसने पूछना शुरू किया —— अच्छा, तुम जिस महलमें बंद थे उसमें कितने दरवाजे थे? और वे किधर खुलते थे? गंगूने कहा —— एक ही दरावाजा था और वह देवोंके अधिकारमें था। उसे खोलना, बंद करना उन्हींका काम था। मुझे बाहर जानेकी जरूरत ही क्या थी। हवा, पानी

और खाना सब कुछ तो अंदर ही पहुंचा देते थे और मेरे आरामका पूरा ख्याल रखते थे। बूढ़ेने पूछा -- तुम्हें अपनी इच्छाके अनुसार खाना मिलता था या मालिककी इच्छासे ? गंगू बोला, नहीं, उसपर मेरा बस न था। मेरे लिये मालिक ही सब कुछ करते थे। अगर मैं कुछ गलती कर बैठता तो सजा भी देते थे। तब बूढ़े तोतेने कहा -- अच्छा, तू जो बोल रहा है उसका मतलब क्या होता है ? गंगारामने कहा -- अर्थ तो मैं भी नहीं जानता। हां, ऐसे बोलनेसे देवगण प्रसन्न होते थे। मेरा काम था उन्हें प्रसन्न रखना।

“बूढ़ा हंस पड़ा। उसने सब तोतोंकी ओर देखकर कहा -- अरे, यह देवलोकसे नहीं आया, यह तो मनुष्योंका दास है। गंगू झेंप गया और इधर-उधर देखने लगा कि कोई उसकी सुध लेनेवाला आ रहा है या नहीं। बूढ़ा आकाशकी ओर देखकर प्रार्थना करने लगा, हे भगवान् ! हमें ऐसे दानवीर उदारोंसे बचा जो हमें पकवान खिलाकर पिंजरेमें बंद रखें। हम भले बिल्ली या बाजके मुखके ग्रास बन जायें पर कभी पराधीन न हों। हम हमेशा अपनी तोतोंकी बोली बोलते रहें। हमें उस सभ्यतासे दूर रख जो दूसरोंके पंख नोचकर उन्हें बंदी बनाती है। हमारे अंदर स्वतंत्रता बेचनेकी बुद्धि कभी न आये और न ही स्वतंत्रता छीननेकी कला सीखें। हमारी गर्दन सदा तनी रहे, हमारे भीतरकी चिनगारी कभी बुझने न पाये, हमारी भुजाओंमें बल रहे, हम कभी दूसरोंका मुंह न ताकें।”

पराधीन देशकी स्वाधीनताके लिये तड़प कैसे भावमय, सुन्दर ढंगसे व्यक्त हुई है? बस एक उद्धरण और। कहानी बहुत पुरानी है पर कहनेका ढंग अपना ही है। मजनूंने रो-रोकर सारी आयु बिता दी पर लैला न पिघली, उसके पास न आयी। अंतमें हारकर मजनूं लैलाका नाम लेता हुआ चुपचाप बैठ गया। लैलामें वह इतना तन्मय हो गया कि लैला उसके भीतर ही समा गयी। लैला इस खिंचावके कारण मजनूंको ढूंढ़ती आयी। उसने मैं लैला, मैं लैला कहकर आवाजें दीं लेकिन मजनूंने आंख उठाकर देखा ही नहीं, वह उसे पहचान भी न पाया। मजनूं लैलाका रूप हो गया। अंदरकी टेक मिली तो “आपे प्रीतम बण गिया प्रेमी, टेक जां अन्दर पाई।”

* * *

कहानी :

जीवनके उतार-चढ़ाव

-- श्री रवींद्र

मां

संतान-सुखसे बढ़कर और कोई सुख नहीं, हां, ठीक ही तो कह रही हूं, संतान न हो तो घर भूतोंका डेरा लगता है, पुत्र न हो तो वैतरणी कौन पार लगवाये ? बांझका जीवन भी कोई जीवन है ! यही विचार मेरे दिमागमें दिन-रात चक्कर काटा करते थे। ब्याह हुए दस बारह वर्ष बीत चुके थे पर अभीतक मेरी गोद न फली थी। गंडे पहने, तावीज बंधवाये और मंत्र-जंत्र किये पर विधाता टससे मस न हुआ। आखिर जी कड़ा करके मैंने उनसे एक लड़का गोद ले लेनेके लिये कह दिया। पहले तो उन्हें यह विचार न भाया फिर मेरी तिरिया हठके आगे उनको झुकना पड़ा। और हमारी सबकी शुभ कामनाओंके साथ, बाजे-गाजेकी हर्षध्वनिमें आनंदने हमारे घरमें पांव रखा।

मुझे आज अपने जीवनकी सार्थकताका अनुभव हुआ लेकिन साथ ही सबके साथ मिलकर गाते-गाते एक जरा-सी हिचकी निकल गयी और आंखें भी गीली हो उठीं।

आनंद बड़ा ही सुशील लड़का था। रोज सवेरे उठकर और सोनेसे पहले हम दोनोंके पांव छुआ करता था और हर काममें मेरी आज्ञा ही उसके लिये सब कुछ थी। आनंदके आनेके कुछ ही दिन बाद मेरे पांव भारी हो गये। विश्वास न होता था, डाक्टरको दिखाया। उसकी बात सुनकर ही मैं खुशीसे पागल हो उठी। मुझे लगा कि आनंदका आना मेरे लिये शुभ हुआ। आखिर दीनदयालुने मेरी सुन ली और कुछ महीनोंके बाद मैंने एक चांद-सा मुखड़ा देखा। आकाशके चांदमें कलंक होता है, मेरा चांद निष्कलंक था।

कुछ दिन बीते। आनंदका व्यवहार मुझे खटकने लगा। उसके व्यवहारमें मुझे ढोंगकी गंध आने लगी। आखिर तो कंगालका बेटा है, जानता है कि मैं नाराज हो जाऊं तो उसे खानेके लाले पड़ जायेंगे। कभी सोचती, नहीं यह ठीक नहीं। ऐसा सुशील लड़का क्यों मेरी आंखोंमें खटक रहा है? फिर भी उसका हरएक व्यवहार मुझे खलने लगा। मेरी दृष्टिमें वह पूरा बगुला भगत था। उन्हें मेरी बात ठीक न लगती थी। वे हमेशा कहा करते थे, आनंद और आलोक तुम्हारी दो आंखें हैं पर यह बात मुझे कभी जंची नहीं। कुछ दिनों बात अचानक उन्हें बुखार हो आया। आनंद उनकी पाटीपर बैठा बातें कर रहा था। उन्हें अचानक जोरकी हिचकी आयी और मेरा सब कुछ लुट गया। मैंने सोचा, यह कलमुंहा कुलच्छना ही इसके पीछे है।

आलोक अभी छोटा था इसलिये हारकर मुझे उनका काम आनंदके ऊपर ही छोड़ना पड़ा। आनंदके व्यापारमें घुसते ही आमदनी बढ़ गयी और साथ ही मेरी चिंता भी। आनंद सारी कमाई लाकर मेरे पैरोंपर रख देता था। अपने लिये रिक्शाका खर्च भी मुझसे मांगकर लेता था पर मुझे उसपर विश्वास न था। मुझे इसके पीछे कोई कपट दीख रहा था। मैं कामकी न काजकी, अढ़ाई सेर नाजकी थी। वह चाहता तो मुझे दूधकी मक्खीकी तरह अलग कर देता। उसे कोई कुछ न कहता पर वह तो मानो मेरी पूजा करता था। आज कलिकालमें बिना किसी छलकपटके यह कैसे हो सकता है?

खैर, दिन बीतते गये। आलोककी भी मसें भीग चली थीं। मुझे लगा कि अब उसे अपना स्थान मिलना चाहिये। आनंद इतने थोड़े दिनोंमें ही दो-तीन लाख कमा चुका था। अब उसे और पालते रहना आलोकके हितमें ठीक न होगा। एक दिन मैंने उससे कह दिया, अब तुम अपना काम अलग कर लो तो अच्छा हो। वह एक शब्द भी न बोला। मेरे पांव छुए और जैसा खड़ा था वैसा ही घरसे निकल गया। उसका मौन खटका तो बहुत फिर भी मैंने चैनकी सांस ली। आलोकको बुलाकर सब कुछ सौंप दिया। फिरसे दिन बीतने लगे और मेरा आलोक शराब, कबाब, जुआ और बाकी सब चीजोंमें फंस गया। शुरूमें मुझे यही लगता रहा कि बड़े लोगोंके बच्चोंमें यह आदतें तो होती ही हैं, क्या हुआ अगर इसने भी थोड़ा मौज शौक कर लिया। पड़ोसियोंने मेरा ध्यान खींचा पर वे तो आनंदपर दिलदादा थे। उनकी बातका क्या मूल्य?

मेरा माथा उस दिन ठनका जब सारी तिजोरी खाली हो गयी और सारा व्यापार भी ठप हो गया। आलोक मुझसे पैसे मांग रहा था। मैंने तो अपने पास एक छदाम भी न रखा था। दे कहांसे देती? लेकिन आलोकको विश्वास न हुआ। उसकी आंखोंमें खून उतर आया और — कहते हुए कलेजा मुंहको आता है — उसने, हां, मेरे लाडलेने मुझे पीटा। अब मेरी आंखें खुलीं। अब मैंने आनंदका मूल्य जाना पर 'का वर्षा सब कृषि सुखाने'। अब बहुत देर हो चुकी थी, मैं किसीको मुंह दिखाने लायक न रही। अब गंगा माताकी गोद ही मेरी आबरू रख सकती थी। मैं घरसे निकल गयी। किसीने मेरी ओर एक नजर भी न डाली।

मैं होशमें आयी तो अपने-आपको एक महलमें पाया। ऐं, क्या यह सच था? हां, आनंद मेरी पाटीपर बैठा मेरे सारे शरीरपर हाथ फेर रहा था। आसपास, डाक्टर-नर्स, और न जाने कौन-कौन थे। होश आते ही मैंने सुना मानों बादलोंमेंसे आनंदकी आवाज आ रही थी 'मां कैसी हो'?

तो यही था वह आनंद जिसे मैंने नंगे पैर नंगे सिर और खाली हाथ घरसे निकाल दिया था। मैं लज्जाके मारे आंख न उठा सकी।

आनंद

बड़ी मुसीबतमें फंसा हूं। मांने मेरे लिये क्या नहीं किया? आज मैं जो कुछ बन पाया हूं यह सब उन्हींकी कृपा है। उनसे उऋण होना सात जन्ममें भी संभव न होगा। मां कलप रही हैं इस विचारसे कि उन्होंने मुझे घरसे निकाल दिया था। पर उससे मेरा कितना उपकार हुआ मैं ही जानता हूं। अगर उन्होंने अपने ऊपर कलंकका टीका लगवाकर भी मुझे इस तरह चुनौती न दी होती तो यह कोठी, यह कारखाने, यह प्रतिष्ठा क्या स्वप्नमें भी मिल पातीं? मैं भी पिताजीकी तरह एक खातापीता व्यापारी बनकर रह जाता। यह जो कुछ भी वैभव दिखायी दे रहा है सब मांकी चरणरज ही है।

मुझे दुःख है तो इस बातका कि मां जब मुश्किलमें पड़ीं, जब आलोकने सब कुछ भस्म करके उन्हें कहींका न रखा तो वे मेरे पास आनेकी जगह गंगा मैयाके पास चली गयीं। वह तो अचानक उनके प्राण बच गये नहीं तो सारे जीवनके लिये दिलमें घूंसा लगता रहता। अपनी कठिनाईके समय मांने मुझे इस योग्य न समझा कि मैं उनकी सेवा कर सकता। मां कहती हैं मुझे मुंह दिखाते उन्हें शरम आती है। कैसा दुर्भाग्य है मेरा! मैं उन्हें कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैं अब भी उनका छोटा-सा आनंद हूं। यह सब कुछ उनका है, वे चाहें तो आज भी यह सब आलोकको दे सकती हैं, मुझे खुशी ही होगी।

कल आलोक आया था वह भी मुझे नहीं समझ पाता। मेरी समझमें नहीं आता क्या करूं। किसीको कैसे विश्वास दिलाऊं.......हे भगवान्!

आलोक

यह आनंद बड़ा ही काइंया है। हमारे घरमें रहकर मेरे पिताजीकी पूंजीसे पैसा मारकर बड़ा आदमी बना फिरता है। इसके यहां कुछ होता तो मेरे घर आता ही क्यों? मां भी तो ऐसी ही है। मैंने उस दिन जरा डर दिखाया, सोचा था, वह आनंदसे कुछ उगलवा सकेगी लेकिन वह तो खुद वहां जाकर बैठ रही। आनंदने बड़ा दिखावा करते हुए घर-घर जाकर मेरा कर्ज उतार दिया लेकिन इससे मुझे क्या मिला, खाक! सब लोगोंकी नजरमें वह ऊंचा और मैं नीचा हो गया। अब तो कोई एक बोतल भी उधार देनेको तैयार नहीं है। मैं उस दिन मांसे मिलने गया तो आनंदने प्रेमका अच्छा ढोंग रचा। कहने लगा भैया, बुरी आदतें छोड़ दो और तुम भी यहीं मांके साथ रहने लग जाओ न। क्या खूब। हर एकको अपनी मुट्ठीमें रखना चाहता है। और, मौज शौक छोड़ दूं तो जिन्दा रहकर करूं क्या?

याद रख आनंद, मैं उस धातुका बना हुआ हूं जिसे तू नहीं पिघला सकता। तूने मांको तीर्थ-यात्राके लिये भेजा है और वह भी हवाई जहाजमें ताकि वह मुझसे, अपने पेटके जाएसे बची रह सके। अच्छा, नौ दिन तेरे तो एक दिन मेरा भी होगा।

चन्द्रभाल

भई आदमी हो तो आनंद जैसा, और सब तो उसके आगे बंदर हैं बंदर! यही कोई दस बारह

वर्ष पहलेकी बात है। शायद चौदह वर्ष भी हो गये हों। आनंद घरसे निकाला गया। उन दिनों मैं फुटपाथपर ही रहा करता था। वहीं एक टीनकी आड़ करके कुछ पकौड़ियां तल लेता और उन्हें बेचकर रोजी चला लेता था। रोज सब पकौड़ियां थोड़े ही बिकती थीं। शामको जितनी भी बच जातीं उन्हें पेटमें उतारकर पानी पी लिया करता और किसी-न-किसीके घरके आगे गलीके कुत्तोंके साथ गुड़ी-मुड़ी होकर सो जाता था।

आनंद घरसे निकलकर सीधा मेरे पास आया। दुआ न सलाम, झट बोला, भैया, मैं तुम्हारे साथ काम करूंगा। यह भी खूब रही। यहां अपने पेटको लाले पड़ रहे हैं, इसका बोझ कौन ढोयेगा। मैं साफ न कहना चाहता था पर उसका निर्दोष चेहरा देखकर मुंहसे निकल गया, अच्छा तीन दिन करके देखें। मैंने पकौड़ियां बनायीं, सेव बनाये और कुछ चिउड़ा भी तल दिया। अब बेचना उसका काम था। पहले ही दिन सारा माल साफ हो गया और हमें ३) का मुनाफा हुआ। मेरी बांछें खिल गयीं। इतना मुनाफा तो मुझे कभी न हुआ था। दूसरे दिनसे हम दोनों लग गये कमाई बढ़ानेमें। यहांतक कि हमारा एक छोटा-सा होटल हो गया। आनंद दिन-रात काममें लगा रहता था और थोड़े ही दिनोंमें शहर भरमें उसकी साख जम गयी। मैंने सोचा कुछ दिनके लिये घर हो आऊं। लेकिन अब मैं सेठजीकी तरह जाना चाहता था। आसपासके दो-चार व्यापारियोंसे तीन हजार उधार लेकर चल पड़ा। घर पहुंचा। वहां मेरे पैसोंकी राह देखी जा रही थी, किसीका जनेऊ करना था किसीकी सगाई। तीन हजार देखते-देखते उड़ गये। मैं कई झंझटोंमें फंस गया और वापिस जाना मुश्किल हो गया। बार-बार तीन हजारका विचार मनको कचोट रहा था पर मैं क्या करता? आखिर मैं उसे मनसे निकालनेमें सफल हो गया।

कोई बारह वर्ष बाद मैं फिर उसी शहरमें पहुंचा। मेरी हालत बहुत अच्छी नहीं थी इसलिये आनंदसे मिलते डर लग रहा था। कहीं तीन हजारकी बात छेड़ बैठे तो? दो दिनमें मेरा काम पूरा हो गया। मैंने यूंही किसीसे पूछ लिया — यहां एक आनंद रहा करता था उसका कुछ ठौर-ठिकाना जानते हो? सामनेवाला चमक उठा। उसने कहा, क्या बात कर रहे हो, कहीं तुम्हारा मतलब आनंद प्रकाश सिंहसे तो नहीं है? मैं अचंभेमें पड़ गया। उसका पुराना इतिहास सुना तो ऐसा लगा कि वह उसी आनंदकी बात कर रहा था। उसकी कोठी ठीक सामने ही थी। मैं हिम्मत करके डयोढ़ीमें पैर रख ही रहा था कि एक गुरखा चिल्लाया, "कौन है? क्या मांगता?" मेरी तो सिटी गुम हो गयी। मैंने झिझकते हुए कहा, मुझे आनंदसे मिलना है। वह गुर्राया — 'यहां आनंद वानंद कोई नहीं है अपना रास्ता नापो।' मैंने मनमें कहा, 'बड़े बे आबरू होकर तेरे कूचेसे हम निकले।'

मैं अपना-सा मुंह लेकर लौट आया और स्टेशनका रास्ता लिया। अचानक पीछेसे एक मोटर आकर रुकी और किसीने बांह पकड़कर मुझे अंदर खींचा। मैं भौंचका रह गया। यह तो आनंद था। उसने बड़े रोषके साथ कहा, अरे भले आदमी, तू यहां आया और मुझसे मिले बिना जा रहा है। कबसे तेरी तलाशमें हूं। मेरे पेटमें पानी हो गया। दिल जोर-जोरसे धड़कने लगा। मुझ विश्वास था कि अब तीन हजारकी बात निकलेगी और मैं मुंह न उठा सकूंगा। मैं अपने-आपको कोसने लगा। आनंदने मेरी हालतके बारेमें सब कुछ उगलवा लिया। फिर आंखोंमें आंसू भरकर बोला, तुम भी अजीब हो चन्द्रभाल। मेरे यहां आते तुम्हें संकोच हो रहा था। भलेमानस, जब मुझे रोटीका टुकड़ा मिलना मुश्किल था तब तुमने ही मुझे सहारा दिया। आज भगवान्‌का दिया सब कुछ है और तुम्हारी यह हालत।

दो-तीन दिन यूं ही बीत गये। अब मुझे जाना ही था। चलते समय उसने मुझे दस हजारके नोट पकड़ाते हुए कहा, चन्द्रभाल, चौंको मत, मैं तुम्हें दान नहीं दे रहा। वह तो तुम्हारा अपमान

होगा। इस रुपयेसे अपना काम बढ़ाओ और जब भगवान् तुम्हें भी चार पैसे दे तो किसी ईमानदार-की इसी तरह सहायता करना।

अब कहिये, क्या मैं गलत कहता हूं कि आनंद मनुष्य नहीं देवता है?

आनंद

खूब कमाया, खाया, खिलाया और दोनों हाथोंसे नेकनामी लूटी। कुछ लोग मुझे पूजते हैं और कुछ मुझसे घृणा करते हैं। मेरी उपेक्षा करना उनके लिये असंभव है। यह सब होते हुए भी अभीतक अंदरसे एक धीमी-सी आवाज सुनायी देती है "यह लक्ष्य नहीं है, लक्ष्यकी ओर बढ़, तुझे कैलास पर्वतपर जाना है और तू अभी चट्टियोंमें ही भटक रहा है।"

*****

चटपट चाची

वे मेरी ही नहीं, सारे मुहल्लेकी, मेरे पिताजीकी, मेरे बाबा और मेरी दादीतककी चटपट चाची थीं। उनका असली नाम तो भगवान् जाने, पर जबसे मैंने होश संभाला है उनका यही नाम सुनता आया हूं। वही छोटा-सा शरीर जिसमें मुट्ठीभर हड्डियां हैं, चौड़ा-सा मुंह और जरा ज्यादा शरबती गेहुआं रंग। सारे शरीरका ढांचा कुछ ऐसा है कि मानों कमर जैसी कोई चीज ही नहीं फिर बुढ़ापेके कारण कमर झुके भी तो कैसे। मैं तो जबसे देख रहा हूं तबसे यही सोचा करता हूं कि उनकी आयु यही कोई पचासके आसपास होगी। आज भी मेरा यही ख्याल है। एक दिन मैंने पिताजीसे पूछा तो उन्होंने भी कहा कि मैं भी बचपनसे ही इन्हें ठीक ऐसा ही देखता आ रहा हूं, मेरे पिताजी भी इन्हें चटपट चाची कहकर ही बुलाया करते थे।

खैर, तो चटपट चाची सारे मुहल्लेकी चाची थीं। उन्हें हर घरकी एक-एक बातका पता होता था। हर परिवारका वृक्ष मानों उन्हें मौखिक याद रहता था। कहीं कुछ बात हुई नहीं कि झट वे अपने दिमागका पोथी-पत्रा खोलकर हर एककी सात साखका इतिहास सुना देती थीं। छोटे बच्चों-को चाची बहुत ही अधिक प्रिय हैं। मेरा, मेरे पिताजीका और मेरे बच्चोंका यही अनुभव है। अब मैं औरोंकी क्यों कहूं? अपने बचपनकी ही बात कह दूं न! चटपट चाची बच्चोंके लिये बहुत ही उदार थीं और हैं। अड़ोस-पड़ोसमें, टोले-महल्लेमें कहीं भी किसीका मुंडन हो या नामकरण, जनेऊ हो या ब्याह, अरे, ग्यारहें और तेरहींके लिये भी घरकी बड़ी बूढ़ीके रूपमें उन्हें जाना पड़ता था। ऐसे अवसरोंपर चाची कभी अकेली नहीं जाया करती थीं। हम पांच-सात बच्चे तो हमेशा उनके साथ रहते ही थे। वे हमेशा घरकी मालकिन बनकर हमसे कहतीं, बेटा, संकोच न करो, पेट भरकर खाओ, यही तो खानेके दिन हैं। अभी नहीं खेलो-खाओगे तो फिल कब खाओगे। हममेंसे कोई जरा धीमा पड़ता तो चाची उसे रस्साकशीके दलकी तरह प्रोत्साहन देने लगतीं और वह फिर भी रंगपर न आता तो उसकी जेबें भर देतीं। मुझे अब भी अच्छी तरह याद है, चाची हम लोगोंकी जेबोंमें ठूंस-ठूंसकर गिंदौरा, रेबड़ी, गजक ही नहीं लड्डू, कचौरियां भी भर दिया करती थीं। वे हमेशा कहा करतीं, बेटा, अपना ही घर समझो, तुम कोई पराये थोड़े ही हो। अब आप ही सोचिये, जो चाची इतना

करती हों वे भी अगर बच्चोंको प्रिय न होंगी तो और कौन प्रिय होगा ? हां, यह और बात है कि कुछ दुष्ट लड़के कह दिया करते थे कि चाची हमेशा औरोंके घर ही उदार बनती हैं, अपने घरमें तो कभी पांव नहीं रखने देतीं।

बड़े होकर मैंने सुना कि चाचीके पास कई खेत हैं जिनमें अनाज होता है, तिलहन होता है और कपास भी होता है। उनकी आमदनीमें दस आदमी आसानीसे पल सकते हैं, परंतु वे अकेली जीव, शुरूसे ही अकेली चली आ रही हैं। उनके लिये प्रसिद्ध है कि कहींसे पूरी-कचौरी आ जाय तो उसे धूपमें सुखा देती हैं और फिर कूट-पीसकर रख लेती हैं और कई दिनतक उन्हें चूल्हा नहीं जलाना पड़ता। कइयोंका कहना है कि उन्होंने चाचीको सूखी रोटी कूटकर नमककी डलीके सहारे गलेसे उतारते देखा है। कभी कोई कहता है, चाची, चाची, भगवान्ने इतना दिया है, वह किस दिनके लिये है, तुम्हारे कौन बाल गोपाल बैठे हैं जिनके लिये बचाकर रख रही हो ? चाची झट कह दिया करती हैं, बेटा, अभी तो हाथ-पांव चल रहे हैं, सब तरफ भगवान्की कृपा है। लेकिन बुढ़ापेका भी तो सोचना चाहिये। हम लोग मन-ही-मन हंस पड़ते। चटपट चाची अभीतक अपने-आपको बच्चा ही मानती हैं। कभी कोई बहुत तंग करता तो कह देतीं, देखो बेटा, यह पैसा मेरा थोड़े ही है। यह तो वृषभान ललीका दिया हुआ है। मैं इसे कैसे हड़प सकती हूं। उनका हुकुम हो जायगा तो देखना एक पैसा भी न रखूंगी।

बचपनमें इन बातोंका बड़ा प्रभाव होता था, फिर बड़े होकर संदेह-वृत्ति जागी। चाचीकी बातोंमें बनावट और अपनी कंजूसीको छिपानेका प्रयास दीखने लगा। एक दिन मैंने चाचीको तंग करनेकी ठानी। चाची कहींसे गिंदौरा लेकर लौट रही थीं। हमने सुन रखा था कि वे शक्कर नहीं खरीदतीं, इधर-उधरसे मिले हुए गिंदौरोंसे ही काम चला लेती हैं। मैंने पांच-सात साथियोंको इकट्ठा किया और चाचीपर धावा बोल दिया। सब-के-सब बाकायदा पंक्ति बनाये हुए कदम मिलाते चाचीके सामने आ खड़े हुए। मैं नेताकी हैसियतसे जरा हटकर खड़ा था। मैंने हुकुम दिया, 'सावधान, बच्चो, चटपट चाची सबको गिंदौरा देना चाहती हैं, बारी-बारीसे हाथ जोड़कर उनके सामने आते जाओ।' चाची इस हमलेके लिये तैयार न थीं। जरा सकपकायीं, बोलीं, बेटा, बलैया तुम लोगोंकी, मैं जरूर गिंदौरा खिलाऊंगी अपने बच्चोंको। परसों राम खेलावनके बेटेका जनेऊ है, तुम सब मेरे साथ चलना। मैंने कहा, हां, चाची, परसों तो हम चलेंगे ही पर आज तो खास गिंदौरेकी भूख है। आज न खाया तो फिर खाया ही क्या ? हममेंसे एक बड़े जोरसे बोल उठा, हां, चाची, खिलाना है तो अभी खिलाइये नहीं तो गोस्वामी तुलसीदासजी कह गये हैं "का वर्षा सब कृषि सुखाने" यानी जब गिंदौरेकी भूख हो तो गिंदौरा जरूर खाना चाहिये। समय बीत जानेपर खानेका कोई लाभ नहीं।

तुलसीदासजीका नाम सुनते ही चाचीके हाथोंके तोते उड़ गये। उन्होंने बड़ी गंभीरतासे मुझसे पूछा, क्यों बेटा, सचमुच बाबा तुलसीदासने ऐसा कहा है ? मैंने नरो वा कुंजरो वा न्यायसे सिर हिला दिया। चाची हाथका गिंदौरा छिपाते हुए बोलीं, मेरे लाल, मेरे पास गिंदौरा होता तो क्या मैं तुम्हें मना करती ? खानेकी चीज खानेके लिये होती है, ठठरीपर ले जानेके लिये नहीं। फिर तुम लोगोंको नहीं खिलाऊंगी तो खिलाऊंगी किसे ? हममें अजय सबसे छोटा था। वह खिसककर आगे बढ़ आया और चाचीकी धोतीके खूंटमें छिपे हुए गिंदौरेको हथियानेकी तरकीब सोचने लगा। चाची भी ताड़ गयीं और बोलीं, बेटा, मैं जरा जल्दीमें हूं, अभी पूजा-पाठ समाप्त नहीं हुआ। लेकिन तुम लोग परसों याद करके जरूर आ जाना। यह कहते हुए चाचीने लंबे-लंबे डग भरने शुरू कर दिये। मैंने भी ज्यादा तंग करना उचित न समझा, अजयको इशारेसे रोक दिया।

इसी तरह हम लोग बहुत बार चाचीको तंग किया करते थे। कभी तोता रामके ढाबेमें ले चलनेके लिये कहते, कभी महाराजके तंदूरके लिये लार टपकाते, परंतु चाची कभी टस-से-मस न हुईं।

हमने उन्हींसे सुनी हुई कर्णकी, दधीचिकी और बलिकी कहानियां उन्हें सुनायीं। उनसे कहा कि बालकोंको खिलाने-पिलानेसे स्वर्गमें उनका स्थान निश्चित हो जायगा, पर चाचीके कानपर जूं तक न रेंगी। हमारे बड़े कहा करते थे, रेतसे तेल निकालना सरल है, पर चटपट चाचीसे पैसा निकालना मुश्किल है। इसी तरह हंसते-खेलते, चाचीको तंग करते न जाने कितना जमाना बीत गया। तंग करनेवाले बालक बदलते रहते थे, बड़ हो-होकर आगे बढ़ते जाते थे, पर चाचीका न तो शरीर ही बदलता था न स्वभाव। वे हमेशा कह दिया करती थीं, मैं तो राधाप्यारीकी चेरी हूं, जैसा वे कहेंगी कर दूंगी, मेरा क्या आता-जाता है। और हर पीढ़ी उनके इस उत्तरपर हंस देती थी।

१९६२ का साल था। चीनने भारतवर्षपर आक्रमण कर दिया था। देशका एक-एक बच्चा उठकर खड़ा हो गया। "क्या यह भी संभव है" हमारे गांवमें भी यह समाचार फैल गया। लोग चटपट चाचीको भूल गये। अब सबकी जबानोंसे एक ही बात निकलती थी, "भारत माताकी जय", "वन्दे मातरम्"। हमारे गांवमें भी रेडियो लग गया और लोग गुड़के ऊपर मक्खियोंकी तरह उससे चिपके रहते थे। एक दिन पण्डित नेहरूकी आवाज सुनायी दी। वे कह रहे थे, भारत मांके ऊपर जितनी भी कठिनाइयां आती हैं, उनका चेहरा और भी दमक उठता है, देशपर आयी हुई विपत्तिका सामना करना हममेंसे हरएकका कर्तव्य है। मां अपनी संतानसे बड़ी-बड़ी कुर्बानियोंकी आशा कर रही है और मुझे पूरा विश्वास है कि हममेंसे कोई भी अपने कर्तव्य-पथसे पीछे न हटेगा। भाषण बंद हो गया। लोग स्तब्धसे बैठे रहे। इतने में हमने देखा, चटपट चाची, हांफती, कांपती, हाथ उठाकर चिल्लाती चली आ रही हैं। उन्होंने छूटते ही मुझसे पूछा, क्यों बेटा, नेहरू कहां चला गया? चाची समझती थीं कि जैसे ओझा मंत्रके बल प्रेतात्माको बुलाकर उससे बुलवा सकता है वैसे ही रेडियो जीवित लोगोंकी आत्माको बुलाकर उससे बातें करवाता है। उन्होंने दूरसे सुना था कि पंडित नेहरू बोल रहे हैं तो उनके दर्शनके लिये खिंची चली आयीं। पण्डितजीके शब्द उनके कानोंमें गूंज रहे थे। वे बड़े जोरसे बोलीं, मुझे नेहरूजीके पास ले चलो, मुझे उनसे काम है। इतने गंभीर वातावरणमें भी लोग मुस्करा उठे। मैंने पिंड छुड़ानेके लिये हामी भर दी। बस चाचीके अंदर बिजली भर गयी। वे अपने घरकी ओर दौड़ीं। थोड़ी देर बाद कुतूहलवश मैं भी वहीं जा पहुंचा। मैंने देखा तो दंग रह गया। चाची अपनी धोती घुटनोंसे ऊंची किये, फावड़ा हाथमें लिये अपना घर खोद रही हैं। मैं कुछ कहूं उससे पहले ही उन्होंने एक सब्बल मेरे हाथमें पकड़ा दिया और एक कोनेकी ओर खोदनेका हुकुम दिया। देखते-देखते ही घरमें सिक्कोंका, सोनेके टुकड़ोंका और गहनोंका ढेर लग गया। चाची जरा सुस्तानेके लिये रुकीं। पसीना पोंछते हुए उन्होंने कहा, मैं कहती थी न बेटा कि मेरा सब कुछ राधारानीका है। कल रात मैंने स्वप्न देखा कि प्यारीजी खड़ी हिंदुस्तानकी रक्षा कर रही हैं। मैं उनकी सहायताके लिये दौड़ी तो उन्होंने कहा, मेरा पैसा ले आ। पास ही नेहरूजी खड़े थे, उनकी ओर इशारा करके बोलीं, लाकर इसे दे दे। इसलिये अब मैं खाना पीछे खाऊंगी, पहले यह सब नेहरूको दे आऊं।

कंजूस चटपट चाचीके चरणोंपर मेरा सिर श्रद्धासे झुक गया। ऐसे कंजूसोंपर हजारों उदार न्यौछावर हैं।

* * *

हे मेरे परमप्रिय प्रभु! मुझे अपने दिव्य प्रेमका यंत्र बनना सिखाओ।
—श्रीमां

बेन्जामिन फ्रैंकलिन–प्रथम अमेरिकी

–– श्री फिलिप गूल्ड ––

बेन्जामिन फ्रैंकलिन अपने युगके सबसे प्रसिद्ध अमेरिकी थे। तथापि उन्होंने अपनी अंतिम वसीयत इस प्रकार आरंभ की थी: "मैं बेन्जामिन फ्रैंकलिन, मुद्रक........"

वह अपनेको लेखक, संपादक, प्रकाशक, आविष्कारक, वैज्ञानिक सभी कुछ कह सकते थे। और यदि इन विशेषणोंसे संतोष न होता तो वह विधायक (कानून-निर्माता), किसान, राजनीतिज्ञ, कूट-नीतिज्ञ, दार्शनिक, अर्थशास्त्री और हास्यकार विशेषण भी जोड़ सकते थे। वह अपने लंबे और सक्रिय जीवनमें इन सभी क्षेत्रोंमें असाधारण रूपसे सफल रहे थे; उनकी दिलचस्पी और उपलब्धियोंके क्षेत्र आश्चर्यजनक रूपसे विविध थे।

किंतु उन्होंने व्यावसायिक जीवन एक मुद्रकके शिक्षार्थीकी हैसियतसे शुरू किया था, और मुद्रणके व्यवसायने उन्हें वर्षोंतक आजीविका दी और यह अधिक बड़े लक्ष्योंका साधन बना। इस प्रकार ८४ वर्षकी आयुमें भी उन्हें सबसे अधिक गौरव इस व्यवसायमें अनुभव होता था।

अपने व्यवसायमें गौरव अनुभव करना फ्रैंकलिनके अपने जीवनके प्रति संपूर्ण प्रवृत्तिका अंग था – और उनकी प्रवृत्ति थी क्रियात्मक, दक्षतापूर्ण और सच्चे श्रमका सम्मान करनेकी। इसीसे उन्होंने वह स्थान प्राप्त किया जो कुछ वह आगे चलकर बने –– प्रथम अमेरिकी जन-नायक। संभवतः उन्हें हम सीधे-सादे रूपमें "प्रथम अमेरिकी" कह सकते हैं।

बेन्जामिन फ्रैंकलिनका जीवनकाल अधिकांश १८ वीं शताब्दीकी अवधिमें रहा –– १७ जनवरी १७०६ को उनका जन्म हुआ और १७ अप्रैल १७९० को उनकी मृत्यु हुई। वह बोस्टनके एक साबुन और मोमबत्ती निर्माताके पुत्र थे और अपने पिताकी १७ संतानोंमेंसे १५ वें थे। १० वर्षकी आयुमें वह अपने पिताके काममें हाथ बटाने लगे थे। १२ वर्षकी आयुमें वह अपने सौतेले भाई जेम्ससे, जिसका छापाखाना था, काम सीखते थे। वह दिनमें काम करते थे, फिर आधी राततक बैठते थे और जो भी पुस्तक मिल जाती थी उसे पढ़ डालते थे –– इस तरह व्यवस्थित रूपमें अपनी शिक्षा चलाते थे।

जेम्सने एक छोटा समाचार-पत्र प्रकाशित करना प्रारंभ किया और युवा बेन्जामिनने "साइलेन्स डोगुडे" साहित्यिक नामसे उस पत्रमें अज्ञात रूपमें निबंध लिखे। बेन्जामिनकी आयु १६ वर्षकी भी नहीं हुई थी कि वह घरसे भाग गये। पहले वह न्यूयार्क गये, फिर वहांसे फिलाडेल्फिया चले गये। वहां उनकी मुलाकात उस युवतीसे हुई जिससे बादमें उनका विवाह हुआ। फिर उन्होंने मुद्रकके रूपमें नौकरी कर ली।

यह बात १७२३ की है। अमेरिका तब भी ब्रिटेनका उपनिवेश था और तबतक राजनीतिज्ञ और कटनीतिज्ञके रूपमें तथा संयुक्त राज्य अमेरिकाके आदि संस्थापकके रूपमें बेन्जामिन फ्रैंकलिनने अपनी कोई कारगुजारी नहीं दिखायी थी। तथापि, वह अत्यंत जिज्ञासु, प्रतिभाशाली तथा क्रियाशील थे और कभी शांत नहीं बैठते थे।

लन्दनमें ३ वर्षके प्रवास-कालमें काम करनेके बाद उन्होंने मुद्रकके रूपमें अच्छी कमाई की और अपनी फर्म कायम कर ली। उन्होंने 'पेन्सिल्वेनिया गजट' नामक समाचारपत्र खरीद लिया और

देश-विदेशके समाचारोंको, चुटकलोंको तथा विनोद और बुद्धिमत्ताके साथ छोटे लेखोंको सजीव भाषामें अधिक स्पष्ट, असंदिग्ध एवं निष्कपट लिखनेकी अपनी शैली परिष्कृत कर ली।

बेन्जामिन फ्रैंकलिनने सूझबूझ और बुद्धिमत्ताके साथ उद्योग चलाने और बचत करनेका प्रचार किया और सदैव अपनी उक्तियोंके अनुरूप आचरण किया। वह सादा लिबास रखते थे, सीधे-सादे तरीकेसे रहते थे और सदा उन्नति करनेके लिये हर दम काम करते थे तथा यत्न करते थे — और इसके बावजूद अपने विलक्षण जीवनका सुख उठाते थे।

फ्रैंकलिन मुद्रक, संपादक और प्रकाशक तो हो ही चुके थे, अब चाहते तो स्वतः फिलाडेलफियामें सामाजिक नेता हो सकते थे और उन्होंने ऐसा होना पसंद भी किया। अन्य बातोंके अलावा इस बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्तिने अमेरिकासे चलते-फिरते पहले पुस्तकालयका आयोजन किया; और पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालयकी स्थापना की। अपने खाली समयमें वह आदर्शों, प्रकृति दर्शन और राजनीतिपर विचार-विमर्श करते थे तथा फ्रेंच, इटैलियन, स्पेनिश, जर्मन और लैटिन भाषाएं सीखते थे।

इसके बाद भी क्या दिनमें समय बचता था? आविष्कारक बेन्जामिन फ्रैंकलिन फिर भी समय निकाल लेते थे। अन्य अनेक उपयोगी चीजोंके अलावा उन्होंने एक स्टोव (अंगीठी) का डिजायन निकाला, जिसमें सामान्य चूल्हेकी अपेक्षा अधिक ताप हासिल होता था और ईंधनका अपव्यय कम होता था। उन्होंने एक सरल तरीकेकी घड़ी बनायी, पास व दूर देखनेके संयुक्त कांचवाली ऐनक बनायी और कपड़ोंकी सिलवटें निकालनेके लिये पहली इस्तरी निकाली।

पतंग, डोरी, चाबी और वर्षावाला तूफान। बस वैज्ञानिक फ्रैंकलिनने इन सबसे पहली बार यह प्रमाणित कर दिया कि बादलोंकी चमकीली बिजली भी विद्युत् ही है। फिर उन्होंने वैद्युतिक छड़का आविष्कार किया और वह अपने युगमें वैद्युतिक क्रिया-कलापके सर्वोत्कृष्ट छात्र हो गये। उनके आविष्कारोंमें अन्य किसीने २० शताब्दीसे पहले कोई महत्त्वपूर्ण नयी बात नहीं जोड़ी। नोवेल पुरस्कार विजेता भौतिक विज्ञानशास्त्री रौबर्ट मिलिकनने उनकी गणना कौपरनिकसके बाद हुए १४ सर्वाधिक महत्त्वशाली वैज्ञानिकोंमें की है।

वह अमेरिकाके प्रथम वैज्ञानिक किसान थे, क्योंकि वह उर्वरकके रूपमें जिप्समका प्रयोग करनेवाले पहले व्यक्ति थे। उन्होंने देहातोंमें उपयोगी पौधों और अनाजोंका प्रचार किया, और बदलेमें कई नये पेड़ों, फलों और घासोंको यूरोपमें फैलाया।

फ्रैंकलिन कोई प्रामाणित चिकित्सक नहीं थे, फिर भी वह चिकित्सा क्षेत्रमें अपने युगके प्रमुख नेताओंकी कोटिमें गिने जाते हैं। वह लन्दन और पेरिसकी मेडिकल सोसाइटियोंके पदाधिकारी चुने गये। उन्होंने साधारण सर्दी-जुकामके कारणों और उपचारके विषयमें जो कुछ कहा, वह इस विषयपर बहुत कुछ आज भी हमारी समस्त जानकारीका आधार बना हुआ है। वह खुली हवासंबंधी आधुनिक विज्ञानके आदि आचार्य थे। सफाईसंबंधी मामलों और ऐसे रोगोंके उपचारके विषयमें उनके विचार अपने युगसे बहुत आगे थे।

फ्रैंकलिनने जितनी सफलताएं अकेले प्राप्त कीं, उतनी दर्जनों सफल व्यक्तियोंने भी शायद ही प्राप्त की हों। किंतु अमेरिकी स्वतंत्रताके दिन निकट आ रहे थे और फ्रैंकलिनके लिये, जो सबसे प्रमुख अमेरिकी थे, और उस समय औपनिवेशिक एजेण्टकी हैसियतसे लन्दनमें वार्ता चलानेकी कला सीख रहे थे, अभी भी अपने जीवनके अंतिम १५ वर्षोंकी सबसे बड़ी भूमिका — राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञकी भूमिका — अभिनीत करनी शेष थी। एकमात्र वही ऐसे व्यक्ति थे, जिसके हस्ताक्षर उन चारों महान् प्रलेखोंपर पाये जाते हैं, जिनके फलस्वरूप अमेरिकाका जन्म हुआ। ये प्रलेख हैं: स्वतंत्रताका घोषणापत्र, फ्रांसके साथ मैत्री-संधि, इंगलैंडके साथ शांति-संधि और अमेरिकी संविधान।

७० वर्षकी आयुके मनुष्य, जिनके जीवन शांत और सफल रहे हों, आम तौरपर राजनीतिक क्रांतिके नेता नहीं होते। किंतु, फ्रैंकलिनकी आयु इतनी ही थी जब उन्होंने स्वतंत्रताके घोषणा-पत्रका मसविदा तैयार करनेमें टामस जैफर्सनकी मदद की थी और जब उन्होंने लिखा था: "वे लोग जो थोड़ी-सी अस्थायी सुरक्षा खरीदनेके लिये मूलभूत स्वतंत्रताका परित्याग करनेको उत्सुक हों, न तो स्वतंत्रताके और न ही सुरक्षाके अधिकारी हैं।"

सफलता और सुरक्षाके बावजूद, उनकी स्वतंत्रतासंबंधी धारणा पूरी आधी शताब्दीतक अपरिवर्तित बनी रही। १५ वर्षकी आयुमें जब वह मुद्रकके यहां नौकर थे, उन्होंने अपने-आपको "स्वेच्छाचारी सरकार और अपरिमित सत्ताका मर्त्य शत्रु" कहा था। और अपनी मृत्युपर्यंत वह ऐसे ही बने रहे। रंग, धर्म या वर्गका ख्याल किये बगैर सभीके लिये भाषणकी स्वतंत्रता, समाचारपत्रकी स्वतंत्रता, वैज्ञानिक विचारोंके विनिमयकी स्वतंत्रता, धर्म, शिक्षा, निजी उद्यम और अवसरकी स्वतंत्रताका उन्होंने जो विवेकपूर्ण और साहसी अभियान चलाया वह उनके जीवनकी समस्त वैविध्यपूर्ण क्रियाशीलताओंको एक सूत्रमें पिरोनेवाला जाज्वल्यमान सूत्र जैसा था।

और, वह केवल अमेरिकाके लिये ही नहीं थे। बेंजामिन फ्रैंकलिन किसीसे भी कम अमेरिकी नहीं थे किंतु वह विश्वके भी नागरिक थे। अपने जीवनके अंतिम कालके निकट उन्होंने ये उपयुक्त शब्द लिखे थे: "भगवान् करे कि न केवल स्वतंत्रताका प्रेम बल्कि मनुष्यके अधिकारोंकी पूर्ण जानकारी पृथ्वीके सभी राष्ट्रोंमें व्याप्त हो, ताकि अगर कोई दार्शनिक जगतीतलपर कहीं भी कदम रखे तो बोल उठे: "यह तो मेरा ही देश है।"

* * *

पहला अणुबम

पहले जमानेमें कहा जाता था कि अमुक लोग तलवारोंकी छाहोंमें रहते हैं। इसका मतलब होता था कि उनका जीवन बड़ा संकटमय है, किसी भी समय तलवार उनको झटपट उस पार भेज सकती है। परंतु अब यह मुहावरा पुराना हो चुका है। आज हम कह सकते हैं कि सारी दुनिया अणु बमकी छांहोंमें रहती है। अकेले अमरीका या रूसके पास ही इतने अणुबम हैं कि उनसे सारी धरतीको मिटाकर नीस्त नाबूद किया जा सकता है। चीन और फ्रांस भी ध्वंसकार्यमें आगे बढ़ रहे हैं और भारतमें इसके पक्ष-विपक्षमें बड़ी बहस होती ही रहती है। आज हिंदुस्तान जैसे बड़े और वेल्जियम जैसे छोटे ९ राष्ट्र अणु बम बनाने योग्य हैं। ऐसे अवसरपर हम पहले अणुबमके बारेमें याद करते चलें।

१९३९ में सारे संसारके वैज्ञानिकोंमें खलबली मच गयी। राजनीतिक नेता घबरा उठे। उन्हें पता लगा था कि जर्मनोंने सफलताके साथ अणु विस्फोट कर लिया है। अमरीकाके वैज्ञानिकोंने, जिनमें आइंस्टाइनका नाम मुख्य है — वहांके राष्ट्रपति रूजवेल्टको एक पत्र लिखा जिसमें उनसे निवेदन किया गया था कि अमरीकामें अणुसंबंधी खोज करनेके लिये एक बहुत बड़ी प्रयोगशाला बनायी जाये। रूजवेल्टको वैज्ञानिकोंकी बात पसंद आ गयी और न्यू मेक्सिकोमें लोस आलामोसके नजदीककी मरुभूमिमें ओपनहाइमरकी अध्यक्षतामें अणुबमकी प्रयोगशाला शुरू की गयी। कुछ वर्षोंतक चुपचाप काम चलता रहा। १९४५ तक उनके काममें इतनी प्रगति हो गयी कि उन्होंने अपनी सरकारको सूचना दे दी कि प्रथम अगस्ततक अणुबम तैयार हो जायेगा।

उनकी बात ठीक निकली। जुलाईके अंततक अणुबम तैयार हो गया। अब उसकी परीक्षा बाकी थी। १६ जुलाई १९४५ को सवेरे साढ़े पांच बजे न्यू मेक्सिकोकी किसी बंजर जमीनमें इसका परीक्षण किया गया। परीक्षण सफल रहा। संसारमें उस दिनसे अणु-युगका आरंभ हुआ। अणुबमके फटनेसे धरती कांप उठी। लगभग एक मील ऊंची गहरे जामनी और नारंगी रंगकी भयानक अग्निशिखा ऊपरको उठी। देखनेवालोंको लगा मानो एक नया सूरज निकल आया है। उसके ऊपर धुएंका कुकुरमुत्ता-सा दिखायी दिया।

उधर राष्ट्रपति रूजवेल्टका देहान्त हो चुका था। उनकी जगह ट्रूमेन आसीन हुए। जर्मनीने युद्धमें घुटने टेक दिये। अब लड़ाईके मैदानमें केवल जापान ही बाकी था। मित्र राष्ट्र काफी थक चुके थे और लड़ाईका जल्दी-से-जल्दी अंत लाना चाहते थे। जापानके शहरोंपर अणुबम फेंकनेकी बात हुई। सरकारमें कुछ लोग इसके पक्षमें थे और कुछ विपक्षमें। आखिर ट्रूमेनकी सरकारने जापानको चेतावनी दी कि यदि उन्होंने तुरत आत्मसमर्पण न कर दिया तो उनकी बहुत ही बुरी गति होगी। जापानने चेतावनीको ठुकरा दिया।

अमरीकाके राष्ट्रपतिने अत्यंत गोपनीय निर्णय किया कि ६ अगस्तको हिरोशिमापर अणुबम गिराया जायेगा। इस कामके लिये कर्नल टिबेर पाइलट, केप्टन लुईस कोपाइलट और मेजर फेअरबीको चुना गया। ६ अगस्त १९४५ को ये तीनों एनोलागे नामक हवाई जहाजमें बैठकर हिरोशीमापर जा पहुंचे। हिरोशीमा इनसे ३१६०० फुट नीचे था। फेअरबीने कहा 'आ गया' और पंद्रह सेकेण्डमें अणुबम जहाजसे बाहर था। हवाई जहाज एकदम ऊपर उठकर दूर भाग गया पर हिरोशीमा न बच सका। वह एक इतिहासका नगर बन चुका था। नगरके बीचमें तापमान दस करोड़ डिग्रीतक पहुंचा था। सत्तर हजार आदमी निमिषमात्रमें इस लोकसे परलोक जा पहुंचे।

इधर-उधर कुछ थोड़ेसे लोग बच रहे थे। उन्होंने बताया कि हिरोशीमा एक भयंकर सुन्दर प्रकाशपुंज बन गया था। वह रोशनी अंधा करनेवाली थी। किसीने उसमें पांच-छः रंग देखे, किसीने केवल सुनहरा रंग देखा। गरमीका प्रभाव दूर-दूरतक फैला। लगभग दो मीलके घेरेमें छतोंमें लगा लोहा पिघल गया। टेलीफोनके खंबे जल गये। यहांसे दस मीलकी दूरीपर कोबेका मेयर अपने बागमें खड़ा था। उसका चेहरा झुलस गया। हिरोशीमासे दो मीलकी दूरीपर मनुष्यकी त्वचा जलती थी।

गरमीने प्रचंड रूप धारण किया तो हवा क्यों पीछे रहनेवाली थी। ५०० मील प्रति घंटाके वेगसे आंधी आयी जिसने लगभग पांच-पांच मीलतकके मकानोंको जमींदोज कर दिया और बांधोंको गिराकर पानीका भयानक रेला ले आयी। इसके बाद ही एक विलक्षण वर्षा हुई जिसमें बड़ी-बड़ी कांचकी गोलियों जैसी बूंदें बरसीं और इसके बाद फिरसे आंधी जिसने दूर-दूरतकके बाग-बगीचोंके पेड़ोंको जड़से उखाड़ दिया।

हिरोशीमा खतम हो गया लेकिन टोकियोको इसका पता न था! तार, टेलीफोन आदि सब जल चुके थे। समाचार पानेका कोई साधन ही न था। उन्होंने यही समझा कि दो तीन हवाई जहाजोंने हमला किया होगा। अब अमरीकाके राष्ट्रपति ट्रूमेनने रेडियोपर भाषण दिया और कहा कि हिरोशीमापर एक नये अस्त्रका उपयोग किया गया है। उस भाषणसे ही संसारको हिरोशीमाके भयंकर विनाशका पता चला। जापानपर लाखों पर्चे गिराये गये जिनमें अणुबम और उसके विनाशक परिणामोंका वर्णन था। फिर भी उन्होंने आत्म-समर्पण न किया। अब अमरीकाने नागासाकी नामक दूसरे शहरपर अणुबम गिराया और विनाश और भी भयंकर हुआ।

दूसरे दिन जापानी मंत्रिमंडलने अमरीकाके आगे हथियार डाल दिये। लाखों निर्दोष लोगोंपर और आनेवाली संततिपर भी इसके दुष्परिणामोंका प्रभाव हुआ।

श्रीमाताजीसे अणुबमके बारेमें पूछा गया तो उन्होंने कहा कि यह बम अपने-आपमें एक विलक्षण प्राप्ति है और भौतिक प्रकृतिपर मनुष्यके बढ़ते हुए अधिकारका चिह्न है। परंतु खेदकी बात है कि यह भौतिक प्रगति और प्रभुत्व आध्यात्मिक प्रगति और प्रभुत्वके परिणामस्वरूप नहीं है और न उनके साथ मेल खाते हैं। इन आविष्कारोंसे पैदा होनेवाले खतरेसे बचानेकी शक्ति और ठीक प्रतिक्रिया पैदा करनेकी शक्ति उस आध्यात्मिक प्रगतिमें ही है। हम प्रगतिको न तो रोक सकते हैं और न उसे रोकना ही चाहिये। हां, हमें आंतरिक और बाह्य प्रगतिमें संतुलन अवश्य रखना चाहिये।

—मोहिनी

स्वास्थ्य-चर्चा :

प्राणायाम

हरएक देश और जातिमें बात करनेका अपना ढंग होता है। अगर हम उस ढंगको समझे बिना समालोचना करने लग जायें तो बड़ी गड़बड़ हो जाती है। जैसे हम कहते हैं जानसे हाथ धोना; इसका मतलब यह नहीं है कि एक लोटेमें जान रख ली जाती है फिर धीरे-धीरे हाथपर उसकी धारा बहाकर हाथ धोए जाते हैं, इसी प्रकार बहुत-सी बातें कही जाती हैं। कई बार ये यूंही मुहावरे होते हैं और कई बार उनके पीछे कुछ सत्य छिपा होता है। जैसे आपने कई बार सुना होगा कि भगवान्के यहांसे हमारे श्वासोंकी संख्या निश्चित होती है। अगर हम चाहें तो जल्दी-जल्दी सांस लेकर अपना जीवन छोटा कर सकते हैं और अगर धीरे-धीरे सांस लें तो जीवन लंबा हो सकता है। इस साधारण मान्यताके अंदर एक सत्य छिपा है। अगर हम मेहनत मशक्कत करते हैं तो गहरी सांस लेनेके लिये बाधित हो जाते हैं, फेफड़ोंमें पूरी-पूरी हवा भरती है और रक्त अच्छी तरह साफ होता है। इसके परिणामस्वरूप बहुतसे रोग हमसे दूर रहते हैं।

हमें व्यक्तिगत रूपसे ऐसे लोगोंके बारेमें मालूम है जिनके फेफड़े बहुत कमजोर थे और सप्ताहमें चार-पांच दिन उनकी छातीमें दर्द रहा करता था। डाक्टरोंने मान लिया था कि हो-न-हो यह यक्ष्माके आनेकी सूचना है। परंतु नियमित प्राणायाम करनेसे उनके सारे कष्ट दूर हो गये और छातीके दर्दकी याद भी बाकी नहीं रही। उथली सांस लेनेवालेके फेफड़ेके उपरले और निचले भागमें हवा नहीं जा पाती और वे खाली रहनेके कारण रोगके घर बन जाते हैं। उन हिस्सोंमें भरी गंदी हवा आसानीसे बाहर नहीं निकलती और वह रोगके कीटाणुओंका पोषण करती है। इसका प्रमाण देखना हो तो सामान्य रूपसे सांस बाहर करनेके बाद लंबा करके 'फूफा' कहिये। आप देखेंगे कि श्वास निकाल चुकनेपर भी कितनी हवा अंदर भरी रह जाती है।

श्वास अंदर लेनेकी क्रियाको पूरक कहते हैं और बाहर निकालनेकी क्रियाको रेचक और श्वासको अंदर ही रोक देना कुंभक कहाता है। ये तीनों क्रियाएं मिलकर प्राणायाम बनती हैं जिसकी बहुत महिमा गायी गयी है। यूं तो भिन्न-भिन्न कष्टोंको दूर करनेके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके अनेकानेक प्राणायाम होते हैं परंतु आजके आदमीको न तो इतना विश्वास है और न रस। इसलिये आरंभके लिये इतना करके देखिये। पेटको अंदर दबाकर पूरा श्वास लीजिये और मन-ही-मन एक दो तीन चार गिनिये। फिर थोड़ी देर सांसको अंदर ही रोके रखिये और फिरसे एक दो तीन चार गिनिये। अब पेटको ढीला छोड़कर एक दो तीन चार गिनते हुए सांस छोड़ दीजिये। उसमें खास ख्याल

रखिये कि सांस अंदर लेते समय, रोकते समय और बाहर छोड़ते समय पहलेसे कुछ अधिक समय लगे तो अच्छा है पर तीनोंमेंसे किसी क्रियाको भी जोर देकर न करें, सहज-स्वाभाविक रूपसे प्रगति होने दें। जबरदस्ती करनेसे लाभकी जगह हानि होनेकी संभावना है।

खाना खानेके एकदम बाद प्राणायाम न करना चाहिये। भार उठाते समय, सीढ़ियां चढ़ते समय या ऐसा ही कोई भारी काम करते समय हल्का-सा प्राणायाम करनेसे भार कम मालूम होता है और थकान कम आती है। मानसिक कष्टके समय प्राणायाम जीको हल्का करता है और मनको प्रसन्न करनेमें सहायता करता है। इसको और भी अधिक प्रभावशाली बनाना हो तो एक दो तीन चार गिननेकी जगह अंदर ही अंदर ओ३म् कहिये। इसमें अ, उ, म तीन ध्वनियां हैं जो प्राणायामके समय खूब मेल खाती हैं और उसके प्रभावको बढ़ा देती हैं। दिनमें कुछ समय तो नियमित प्राणायामके लिये निश्चित करना चाहिये और उसके अतिरिक्त जब भी ख्याल आ जाय लंबी-लंबी सांसें लेनी चाहियें। इतना थोड़ा-सा प्रयास करनेसे ही स्वास्थ्यपर बड़ा अच्छा असर पड़ सकता है। हां, इतना अधिक कभी न खाना चाहिये जिससे सांस लेनेमें कठिनाई हो।

खेल-कूद :

ओलिम्पिककी कहानी

——श्री रवींद्र

अगले वर्ष ओलिम्पिक खेल होनेवाले हैं और विभिन्न देशोंके युवक बड़ी उत्सुकतासे उनकी बाट जोह रहे हैं। हर चार वर्षके बाद किसी-न-किसी देशमें सारे संसारके युवक इकट्ठे होते हैं और वर्ण-जाति आदिके भेदभावके बिना नाना प्रकारके खेल-कूदमें भाग लेते हैं। इसका पुराना इतिहास बड़ा रोचक है। ये खेल यूनान देशमें ईसासे सैकड़ों वर्ष पहले खेले जाते थे। ईसासे ७७६ वर्ष पहलेके ओलिम्पिक विजेताके बारेमें तो हमारे पास ऐतिहासिक प्रमाण हैं और दंतकथाके अनुसार खेल उससे भी पुराने हैं।

एक दंतकथाके अनुसार यूनानके दो बड़े-बड़े देवता जीयस और क्रोनोसमें धरतीपर कब्जा करनेके लिये ओलिम्पियाके पहाड़पर लड़ाई हुई थी जिसमें जीयसकी जीत हुई और ओलिम्पिक समारोह उसकी स्मृतिमें है। कुछ लोगोंका कहना है कि ओलिम्पिकके पास राजा ईनोमोस राज्य करता था जिसकी एक सुंदर लड़की थी हिपोडेमिया। ईनोमोसने घोषणा की थी कि जो हिपोडेमियाके साथ शादी करना चाहे उसे हिपोडेमियाको रथमें बिठाकर ले जाना होगा। राजाके सिपाही अपने रथोंमें उसका पीछा करेंगे और जो उनसे बचकर भाग सके वही राजाका दामाद बन सकेगा। परंतु राजा अपनी सेनाको साथ लेकर बड़ी क्रूरतासे आक्रमण करता था और उसकी बरछीने तेरह उम्मीदवारोंको मौतके घाट उतार दिया था। चौदहवां उम्मीदवार था पेलोप्स —— देखनेमें अत्यंत सुंदर, साहसी और चतुर। पेलोप्सने राजाके सारथीको मिला लिया और उसके रथके पहियेको जरा ढीला कर दिया। रथोंकी दौड़ शुरू हुई। राजाके घोड़े हवामें उड़ रहे थे और करीब था कि राजा पेलोप्सको अपना चौदहवां शिकार बनाये कि राजाके रथका पहिया खुल गया। राजाकी गरदनमें सख्त चोट आयी और वह उसी जगह खत्म हो गया। पेलोप्सको एक सुंदर पत्नी मिल गयी और क्रूर ससुरसे भी पीछा छूट

गया। कहते हैं उसी भूमिमें उसने कुछ धार्मिक उत्सव मनाये और उनके साथ खेल-कूद आदिका आरंभ किया।

प्राचीन यूनानी सौंदर्यके पुजारी थे। उनके लिये ओलिम्पिक जीतनेवाले देवता तुल्य थे और कई बार मरनेपर उनकी पूजातक होती थी। इन खेलोंमें धर्मकी काफी पुट होती थी। खेलमें भाग लेनेवालेको शपथ लेनी होती थी कि वह जन्मसे स्वतंत्र यूनानी है, उसके रक्तमें गैर यूनानी अंश नहीं है। खेलोंसे पहले पुजारी जीयसके नाम एक सूअर और पेलोप्सके नाम एक काले मेढ़ेकी बलि देते थे। सारे मैदानमें मंदिर छितरे हुए थे जिनमेंसे कइयोंमें अखंड ज्योति जलती थी। जीतनेवाला सार्वजनिक रूपसे जीयसकी पूजा करता था और यह माना जाता था कि जिस गांवका आदमी जीता है वह गांव जीयसका विशेष कृपापात्र है। कहा जाता है कि एक बार ईबोटास छठे ओलिम्पिकमें जीतकर आया तो उसके गांवने उसे संतोषजनक मान नहीं दिया। उसने सारे गांवको शाप दे दिया और उसके बाद चौहत्तर ओलिम्पिकोंतक उस गांवका कोई आदमी ओलिम्पिकमें नहीं जीत सका। लोगोंने जाकर डेल्फीसे शकुन उठवाया तो उन्हें आदेश मिला कि ईबोटासके मानमें उसकी एक मूर्ति बनाओ तो उसका शाप उतर जायगा। मूर्ति बननेके बाद ही उस गांवके लोग फिरसे जीतने लगे।

जिस पहली ओलिम्पिकका हमें पता है उसमें खाली दौड़ ही होती थी। तेरहवीं ओलिम्पिकके बाद भिन्न-भिन्न दूरीकी दौड़, बच्चोंकी प्रतियोगिता, बाक्सिग, कुश्ती, डिस्कस, रथ-दौड़ आदि भी होने लगे। यहांतक कि सतहत्तरवीं ओलिम्पिकके समय हम यह शिकायत सुनते हैं कि रथ-दौड़ इतना अधिक समय और स्थान ले लेती है कि बाक्सिग रातको चांदनीमें करनी पड़ती है। इस सबके साथ ओलिम्पिकका धार्मिक महत्त्व भी बढ़ता ही गया। ओलिम्पिक खेल सारे यूनानके लिये पर्वके समान होते थे। उन दिनों जब हमेशा लड़ाई-भिड़ाई और मारकाट होती रहती थी, ओलिम्पिक शांतिका संदेश लेकर आती थी। उसमें भाग लेनेवाले खिलाड़ियों और दर्शकोंको पूर्ण सुरक्षामें जाने-आनेकी खुली छूट होती थी। कवियों और शिल्पियोंको ओलिम्पिकमें जीतनेवालोंको अमर कर देनेका आदेश मिलता था। हेरोडोटस वहां दर्शकोंको अपना इतिहास सुनाया करता था। पिंडारने इनके बारेमें बहुतसे गीत लिखे थे।

ओलिम्पियाके खेलके मैदान बड़े विशाल थे। जिम्नाजियम अपने-आपमें देखने लायक था। वर्षाके समय अभ्यास करनेके लिये अलग जगह थी। ठंडे और गरम पानी, भाप आदिसे स्नान करने और शरीर सुखाने और आराम करनेके लिये अलग व्यवस्था थी। खिलाड़ियोंके प्रशिक्षणके नियम बहुत कड़े थे। खेल-कूदमें भाग लेनेसे पहले हरएकको शपथ लेकर कहना होता था कि उसने दस महीनेका प्रशिक्षण लिया है। और ठीक मैदानमें आकर ओलिम्पिक अधिकारियोंकी देखरेखमें ३० दिन अभ्यास करना होता था। उनके भोजनपर भी कड़ी निगाह रखी जाती थी। एक जमानेमें तो दिनमें तीनों बार केवल ताजे पनीर और पानीपर ही रहना पड़ता था। हर खिलाड़ीको अपने खर्चपर आना-जाना होता था और रथकी होड़में अपना ही रथ लाना होता था और जीतनेपर भोज देना होता था और पुरस्कारस्वरूप फूल-पत्ते ही मिलते थे।

९८ वीं ओलिम्पिकमें बाक्सिग करनेवालोंमें कुछ घूंस चली थी पर जब उसका पता चला तो उन लोगोंकी काफी दुर्गति की गयी।

शुरू-शुरूमें ओलिम्पिक मैदाननें स्त्रियां दर्शकके रूपमें भी नहीं आ सकती थीं। इस नियमके उल्लंघनका दण्ड था मृत्यु। पर एक बार पिसिडोरस नामक दौड़नेवालेकी मां वेश बदलकर वहां आ गयी थी। पिसिडोरसका पिता उसे दौड़की तैयारी कराते समय मर गया था। उसके बाद मां उसे तैयारी कराती रही। जब उसने देखा कि उसका बेटा पहला आया है तो वह अपने-आपको रोक न सकी और भेद खुल गया। परंतु अधिकारियोंने उसे पहाड़परसे नहीं फेंका। वह बच गयी

और फिर धीरे-धीरे स्त्रियोंको खेल देखनेकी अनुमति मिल गयी। १२८ वीं ओलिम्पिकमें तो बोलिसिश नामक स्त्रीने रथ दौड़ानेमें पहला स्थान पाया था।

सैकड़ों वर्षतक ओलिंपिक खेलोंका बड़ा महत्त्व रहा पर यूनानके पतनके साथ-ही-साथ इनका भी पतन हो गया और सन् ३९४ में रोमके राजाकी आज्ञासे इन्हें बंद कर दिया गया।

आधुनिक कालमें फ्रांसके बारों द क्यूबर्तें नामक एक सज्जनके दिमागमें यह बात समायी कि ओलिंपिक खेलोंको फिरसे शुरू किया जाये। उन्हें विश्वास था कि दुनियाके सब राष्ट्र इसमें भाग लें तो उनमें पारस्परिक सहयोगकी भावना पैदा होगी। क्यूबर्तेने घूम-घूमकर इस चीजका प्रचार किया और बहुतसे देशोंसे अपनी बात मनवा ली। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि पहली ओलिंपिक यूनानकी राजधानी एथन्समें ही हो। यूनानवाले खुश हो गये। लेकिन इतना पैसा कहांसे आये? इस्कन्दरियाके एक व्यापारी जार्ज एवरोफने सारा खर्च देकर यह गुत्थी भी सुलझा दी। यह ओलिंपिक १८९६ में हुई। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, डेनमार्क, हंगरी, स्विटजरलैंड और अमरीकाने इसमें भाग लिया। अमरीकावालोंने १२ मेंसे ९ इनाम बटोर लिये।

एथन्समें ही माराथान रेसका आरंभ किया गया। ४९० ई. पू. में लगभग दस हजार एथन्सवालोंने ईरानके दाराका डटकर मुकाबिला किया और दाराकी बहुत बड़ी सेनाको हरा दिया था। इधर एथन्समें लोग चिंतामें बैठे थे। इस लड़ाईके परिणामपर उनके नगरका भविष्य निर्भर था। जब ईरानी भाग गये तो एथन्सके नेता मिल्टिओडिसने फिडिपिडिस नामक दौड़नेवालेको बुलाया और उससे कहा — विजयका समाचार एथन्स ले जाओ। वह दिनभरका थका-मांदा था और एथन्स लगभग २६ मील दूर था फिर भी फिडिपिडिस दौड़ पड़ा। उसका मुंह सूख गया, पैरोंसे खून बह चला पर वह दौड़ता गया। वह शहरमें घुसा और चिल्लाया — 'खुशी मनाओ, हम जीत गये' और यह कहकर वह गिर पड़ा और मर गया।

आजकल जो माराथान रेस हुआ करती है वह इसी घटनाककी स्मारक है।

विद्यालयमें नन्हा मुन्ना

हमारे स्कूल खुल गये। पहला दिन है। किंडरगार्टनमें बच्चोंके नये-नये चेहरे नजर आ रहे हैं और उनके साथ उनके मां-बाप या कोई रिश्तेदार। मजेदार दृश्य है। कई तो हंसी-खुशी खेलमें लग चुके हैं और कई अपनी मांका आंचल नहीं छोड़ते। वे अध्यापिकाको इस प्रकार घूर-घूरकर देख रहे हैं मानो वह पढ़ानेवाली बच्चोंको प्यार करनेवाली न होकर एक हौवा है जो उन्हें कच्चा ही सटक जायेगी।

अध्यापिका उन्हें मनाकर क्लासमें लानेका प्रयत्न करती है, अपनी तरफसे प्यार जताती है, खेल दिखाकर रिझानेका प्रयत्न करती है, रंग-बिरंगे खिलौने दिखाती है मगर रोने-सिसकनेवाले बच्चोंके कानोंपर जूंतक नहीं रेंगती। अब क्या किया जाये?

खैर, कई बच्चे अपनी मांके साथ ही कक्षामें आ जाते हैं। मगर कई हैं जो स्कूलको कारावास महसूस करके वहांसे निकल भागना चाहते हैं। और रो-रोकर आंखें लाल कर लेते हैं और हारकर उन्हें माता-पिता समेत घर भेज दिया जाता है। वे ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते हैं जिससे न रोनेवाले सयाने बच्चे भी एक बंधन-सा महसूस करने लगते हैं। एक बार की बात सुनिये। कई

बच्चे कोनेमें खड़े एक साथ रो रहे थे। एक लड़का कुछ दूरीपर एक खम्भेके सहारे खड़ा रोने लगा। मैंने उस लड़केको हंसी-खुशी आते देखा था, उसने अपनी मांको भी विदा कर दिया था फिर यह आंखों-से पानी कैसा! मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उससे पूछा, "अरे, तुम क्यों रोने लगे?" वह रोते-रोते ही बोला, "क्योंकि वे दूसरे बच्चे रो रहे हैं।" हां, तो इसीलिये मैं कह रही थी —— कई ऐसे रोने-वाले बच्चे दूसरोंको भी रोनेके लिये बाधित कर देते हैं।

ऐसा वातावरण देखकर यह प्रश्न उठता है कि बच्चोंके दिलमें स्कूलके प्रति इस प्रकारका भय क्यों और कैसे बैठ जाता है? एक बात यह भी हो सकती है कि कई बच्चे अपने घरके बाहरके लोगोंसे ज्यादा मिलनेके आदी नहीं होते और स्कूलमें नयी अध्यापिकाएं और नये-नये बच्चे देखकर वे अपने-आपको बहुत अलग-अलग महसूस करते हैं,. उनको वहां कोई अपना नहीं दीखता और उन्हें यही डर लगता रहता है कि न जाने 'यह नये लोग' उनसे मम्मीकी तरह प्यार करेंगे या नहीं।

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि कभी गुस्सेमें मम्मीने डांटते वक्त कह दिया हो, "अरे बच्चू, अभी घरमें जितनी शैतानी करनी है कर ले, जब स्कूल जायेगा तो आप अकल ठिकाने आ जायेगी, डंडे पड़ेंगे डंडे।" ऐसी बातें सुनकर बच्चा अपने मनमें स्कूलका एक भयंकर चित्र खींचता है: वहांकी 'मिस' हाथमें डंडा लिये घूमती होगी और ज्योंही जरा कुछ हुआ कि बस पड़े डंडोंपर डंडे। वह इस विचारसे कांपने लगता है और उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं स्कूलके नामसे।

इसमें बड़ोंका काफी हाथ होता है, जब स्कूलसे बच्चा घर लौटता है तो मां ऐसे गले मिलती है जैसे पता नहीं उसका बच्चा जेलसे छूटकर आ रहा है या वह कोई बहुत बड़ा काम कर रहा है। यही चीज बच्चोंको स्कूलके नामसे डरा देती है। कई बार घरमें उस छोटे बच्चेके भाई-बहिन होते हैं जो स्कूल जाते हैं, वे घर आकर स्कूलकी कई ऐसी घटनाओंका जिक्र करते हैं, जैसे आज मास्टर-जीने एक लड़केको खूब पीटा या आज एक लड़कीको चोरी करनेपर मुर्गा बनना पड़ा। बच्चा यह सब सुनकर क्या महसूस करेगा? जब उसकी स्कूल जानेकी बारी आती है तो वह रोने-सिसकने लगता है और उसे ठीक करनेके लिये काफी समय लगता ही है और साथ-साथ बहुत मेहनत भी करनी पड़ती है।

मैं समझती हूं कि जब बच्चेके स्कूल जानेकी उम्र होने लगे तो उसे और बच्चोंके साथ खूब खेलने दिया जाये ताकि वह पहलेसे ही ऐसे वातावरणके लिये तैयार हो जाये जहां उसे कई बच्चोंके साथ रहना, खेलना पड़े। बच्चेके सामने स्कूलकी बुरी घटनाओंका उदाहरण न देकर उसके सामने स्कूल-का सही-सही और अच्छा चित्र खींचना चाहिये। वहांके अच्छे-अच्छे खेलोंका वर्णन करना चाहिये और वहांकी उन अच्छी अध्यापिकाओंकी बात करनी चाहिये जो मारती नहीं वरन् प्यार करती हैं और पढ़ना-लिखना सिखाती हैं और खूब अच्छी-अच्छी कहानियां सुनाती हैं।

बच्चा जब स्कूलसे लौटे तो उसे ऐसे सीनेसे चिपकाना जैसे पता नहीं कितने अरसेके बाद मिले हैं, बच्चेके दिलमें एक कमजोरी पैदा कर देता है। उसे ऐसा नहीं लगने देना चाहिये कि स्कूल जाकर उसने एक बहुत बड़ा काम कर दिया। स्कूलसे लौटते ही उसे कुछ इधर-उधरकी बात बताओ या उससे स्कूलकी ही कोई बात पूछो या स्कूलमें सिखाया कोई गाना सुनो तो उसे खुशी भी होगी कि वह स्कूलमें कुछ सीख रहा है—"ओह स्कूलमें कितनी अच्छी चीजें सिखाते हैं कि मम्मी भी खुश है और जब मां खुश है तो फिर और क्या चाहिये।"

अगर बच्चा स्कूल जानेमें रोता हो तो मांको साथ स्कूल जाना चाहिये और जब बच्चा कुछ जमने लगे तो कुछ-कुछ समय काम करके बच्चेके साथ बैठा जाये। अगर बच्चा बहुत ही बुरी स्थिति-में हो कि मांको छोड़ता ही नहीं तो मां बाजार जाकर उसके लिये कुछ लेकर आनेका वायदा कर सकती है और जिस समय मां आनेका वचन दे उसी समय उसे लौटकर आ जाना चाहिये नहीं

तो बच्चेका विश्वास उठ जायेगा। और अगर मम्मी कह जाये कि वह बाजारसे कुछ लायेगी और जो वह कुछ न लाये तो बच्चा कभी अपनी मम्मीको न छोड़ेगा। इसलिये अगर अपने बच्चेको विश्वास दिलाया हो तो उसके लिये निश्चय ही बाजारसे कुछ लेकर आइये, यही सही तरीका है।

हमारे स्कूलमें एक बच्चा बिलकुल नहीं बैठता था। मां भी बेचारी कबतक साथ आती। दो-तीन महीने गुजर गये मगर वह मांका साथ छोड़नेको तैयार ही नहीं हुआ। लेकिन अब वह बड़े मजेसे स्कूल आ रहा है। मांको 'टा टा' कहकर विदा करता है। 'वह कैसे?' आप पूछेंगे! आश्चर्य तो हर सुननेवालेको होता है। एक तो यह कि उसे एक छोटी तीन पहियेकी साइकिल चाहिये थी और उसके सामने अपने अरमान पूरे करनेका यही एक तरीका था कि वह स्कूल जाये। उन्हीं दिनों हमारे यहां बच्चोंका एक नाटक हुआ था। वह इस नाटकको देखकर भी बड़ा प्रभावित हुआ और नाटकने उसे स्कूलकी ओर खींचा। साइकिलकी और नाटककी तमन्ना इन दोनोंके जोरपर वह स्कूल आने लगा है। लेकिन जब वह कुछ निश्चित समयतक स्कूल आया तो अब उसे साइकिल खरीदकर दे दी गयी है ताकि बच्चेके विश्वासको ठेस न लगे। उसने अपना वचन पूरा किया है और रोज स्कूल आता है तो मां-बापको भी अपने कहेपर अमल करना चाहिये था न!

—अंजना शर्मा

⁂

नयी कोंपलें

छुट्टियां बितायीं

आदमीका जीवन भी एक अजीब चीज है। जो हमें मिलता है उसकी हमें परवाह नहीं और जो नहीं मिलता उसके पीछे पड़े रहते हैं। अब मेरी ही बात ले लीजिये। जब कालिजमें प्रवेश नहीं मिल रहा था तो जमीन आसमानके कुलावे मिला दिये, जब प्रवेश मिल गया तो पढ़ाई जान खाने लगी। रोज यही शिकायत रहती कि पढ़ाईके कारण यह नहीं हो पाता और वह नहीं हो पाता। बस, मैं छुट्टियोंके दिन गिनने लगा और बड़े-बड़े मनसूबे बांधने लगा।

खैर, छुट्टियां आयीं और चली भी गयीं। आप पूछेंगे कि मैंने इनसे कितना लाभ उठाया, कितने कार्यक्रम पूरे किये? यह बातें खुलकर कहनेकी नहीं हैं पर आप जानना ही चाहते हैं तो मेरा एक व्यक्तिगत पत्र पढ़ लीजिये जो छुट्टियोंके अंतमें लिखा गया था। लीजिये वह पत्र, लेकिन इसे अपने-तक ही रखिये।

"भई, वाह, इन छुट्टियोंमें तो मजा आ गया। क्या बताऊं? छुट्टियां कैसे बितायीं? कुल बारह महीनोंमेंसे दस महीने तो पढ़ाई ही पीछा करती रही, दिमाग चाट गयी और बड़ा ही तंग किया उसने। पर हम भी ऐसे ढीठ थे कि उसकी परवाह न करते थे, यानी उस ओर ध्यान ही न देते थे। परंतु घरमें मा-बाप भी तो थे, वे कहां चुप बैठने देते थे। वे जब हाथमें डंडा लेते तो तुरंत मेरी किताब खुल जाती। पर इससे क्या होता है, मन तो यही सोचता था कि हाय! कब इस बीमारीसे पिंड छूटेगा।

बस, यही सोचते-सोचते छुट्टियां आ गयीं। "अब कसर निकालूंगा। दिन-रात ऐश करूंगा, चैन-की नींद सोऊंगा।"

हां, तो अब सुनिये कैसे 'दिन' बिताये और (माफ करें) 'रातें काटीं।.........

शारीरिक :— बस, रोज सुबह-सुबह उठ जाता, शायद कोई पांच सवा-पांच बजे। मुंह-हाथ धोकर घरसे निकल पड़ता और पहुंच जाता समुद्रके किनारे दौड़ लगाने। रोजाना कोई दो-ढाई मील हो जाते थे, वहांसे हांफते-हांफते अपनी व्यायामशालामें पहुंचता। थोड़ा ठंडा हो जानेके बाद अपने डौले बनानेकी फिक्र करता। बड़े भारी-भारी वजन उठानेकी कोशिश करता परंतु इतनी ताकत कहां थी कि टससे मस कर पाता? इस शक्तिको प्राप्त करनेके लिये ही तो मैं बेचारा अपनी रोज सुबह सवेरेकी नींद खराब करके यहां आता था।

कभी-कभी भारी वजन अगर उठ भी जाता, तो उस समय देखनेका नजारा होता था। कभी वह मेरे ऊपर गिरता और कभी मैं उसपर। हां, दिलमें इतना संतोष होता था कि "अच्छा है कोई देख नहीं रहा" नहीं तो न जाने क्या-क्या बातें बन जातीं।

खैर, यहांपर एक-डेढ़ घंटा तो जरूर अपनी मरम्मत करता। अपना शरीर जो बनाना था! फिर थका हुआ, अध-मरियल, धीरे-धीरे पैर घसीटता घरको लौटता और कुछ ही समयमें एक नया जीवन शुरू हो जाता। इस बार जोर होता था गलेपर। संगीत — पहले आ-आ करके गला साफ करता, फिर औरोंको गा-गाकर सुनाता। सब लोग मुझसे तंग और मैं उनसे तंग था। वे हमेशा मुझे टोकते रहते थे और मैं उनके नीरस होनेकी शिकायत करता।

जब मैं गाना शुरू करता तो वे बस-बस कहना शुरू कर देते। खैर! मैं उनकी परवाह न करता था। संगीत शुरू करनेसे पहले गरारे करता और संगीतके बाद गरम-गरम हलवा गलेसे उतारता। फिर क्या था, गला साफ, आवाज सुरीली, और मीठी तथा दिल और पेटमें खुशी होती थी।

दिमागमें तरह-तरहके विचार आते ? "अरे भई, बड़े होकर तो गायक बनेंगे, और कुछ नहीं तो किसी फिल्ममें पार्श्व गायक ही सही। लेकिन मुसीबत तो यह थी कि उस हदतक पहुंचा कैसे जाये? घरमें कोई ऐसा था नहीं जो मेरी सहायता कर सके। और न कोई मेरी सूझ-बूझवाला था जो रास्ता दिखा सके। नतीजा यह कि हम जहांके तहां ही रहे। न हम बदले न हमारा राग। सा-रे-गा-मा से शुरू किया था और अभीतक उससे ही चिपटे हुए हैं। कहते हैं बहुतसे बड़े-बड़े गुरु अपने शिष्योंको दस-दस वर्षतक इसीका रियाज कराते हैं, मुझे तो अभी दस सप्ताह भी नहीं हुए।

दिन तो यूं खतम हो जाता। अब लीजिये रातकी बात। रोज रातको जाना पड़ता था एक नाटक करनेके लिये। और नाटक भी ऐसा जो सारे साल पीछा करता रहा। इस बार मैंने भी भूलसे नाम दे दिया था, और मुझे एक कप्तानका पार्ट मिला। हाथमें तलवार और सिरपर पगड़ी। बस, तनकर खड़े रहो और कभी-कभी एक-आध शब्द बोल जाओ। फिर भी गर्व यह कि कप्तान हैं और हमारे नीचे कुछ सिपाही हैं। परंतु सिपाही हमसे भी बढ़कर थे। खड़े-खड़े सोते थे। मैं उन्हें क्या कह सकता था क्योंकि मेरी अपनी दशा भी वैसी ही थी।

आखिर नाटकका दिन आया और अपने रामको इस झमेलेसे छुट्टी हुई — और साथ-ही-साथ हमारी छुट्टियां भी पूरी हो गयीं।

मुझे लगता है कि यही आजके युवकका जीवन है। उसके आगे निश्चित ध्येय नहीं। कभी यह करनेकी सोचता है और कभी वह। परिश्रमसे कतराना, उत्तेजनामें रहना और बिना कुछ किये फलकी कामना करना।

—आनंद

लम्बी गरदन

बहुत पहले किसी जंगलमें एक ऊंट रहता था। आज जैसे ऊंटके लंबी गरदन है पहले इतनी लंबी न थी। विशाल होनेके कारण उसे बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। एक दिन भगवान् उसपर खुश हो गये और उन्होंने सोचा कि उसे वर देना चाहिये। यह विचारकर भगवान् उसके सामने प्रकट हो गये और बोले, "मैं तुमसे बहुत खुश हूं, कोई वर मांगो।" ऊंटने जवाब दिया, "हे भगवान्, अगर आप खुश हैं तो मैं चाहता हूं कि मेरी गर्दन लंबी हो जाये।" भगवान् "तथास्तु" कहकर अंतर्धान हो गये। इधर जब ऊंटकी गर्दन लंबी हो गयी, वह आरामसे एक पेड़के नीचे बैठ गया और बैठा-बैठा ही अपनी गर्दन बढ़ाकर पत्ते खाने लगा। आखिर वह इतना आलसी और मोटा हो गया कि उसके लिये हिलना-डुलना मुश्किल हो गया। अब भगवान्को उसपर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने सोचा कि इसे अब आलसका मजा चखाना चाहिये। उन्होंने एक तूफान भेजा। जैसे ही जंगलमें तूफान आया सब जानवर सुरक्षित जगहोंमें जा घुसे। अब ऊंट घबराया और पछताने लगा। लेकिन अब पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गयीं खेत। फिर भी उसने बचावके लिये अपनी गर्दन एक खोहमें घुसा दी। उस खोहमें कुछ गीदड़ बैठे थे जो कई दिनसे भूखे थे। जब उन्होंने ऊंटकी गर्दनको देखा तो बोले, लगता है भगवान्ने हमारे लिये खाना भेजा है। यह कह उसकी गर्दनपर टूट पड़े और उसे मार डाला। कहते हैं तबसे सब ऊंटोंकी गर्दनें लंबी हो गयीं।

—भीष्म

With best compliments from:

M/s. Kalinga Tubes Ltd.,

33, Chittaranjan Avenue,
CALCUTTA-12

WORKS:
CHOUDWAR, CUTTACK, ORISSA.

यदि आप सर्वोत्तम प्रकारके
वैद्युतिक उपादान
चाहते हैं तो हमें लिखिये :
आनेस्टी एलेक्ट्रिक स्टोर्स
१२–रवीन्द्र सरणि
प्रदर्शन कक्ष क्रमांक ३१५
कलकत्ता–१

दूरभाष : ३४७९९८

With best compliments

From

S. S. BATTH & CO.

DEOL SAHI

CUTTACK-1

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स

३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE
PR. LIMITED
7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

ARVIND TRADING COMPANY

54/1A HINDUSTHAN PARK,

CALCUTTA 29

A LEADING DEALER IN AND

MANUFACTURERS

CHEMICALS, SOLVENTS, MINERALS,

THINNERS, SILICATES,

INSECTICIDES & PESTICIDES.

पुस्तक-परिचय

ये सात और हम : ले. भगवतीचरण वर्मा; प्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ७; पृ. १६५; मूल्य ५.००।

भगवतीचरण वर्मा छायावादके प्रसिद्ध कवियोंमेंसे हैं। इन्हें सभी कवियोंके साथ मेलजोल करनेका अच्छा अवसर मिला और कई तो इनके लड़कपनके साथी रहे हैं। इस परिचयके कारण वे उनकी अच्छाइयों और कमजोरियोंसे भली-भांति परिचित हैं। इस पुस्तकमें उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, दिनकर, बच्चन और नरेन्द्र शर्मा और इनके अतिरिक्त "हम" यानी स्वयं अपने बारेमें, बड़े अच्छे लेख लिखे हैं। साथ ही उनकी रचनाओंके नमूने भी दिये हैं।

वापसी : विलियम सोरायां के "द ह्यूमन कोमेडी" नामक उपन्यासका संक्षिप्त रूपांतर, प्र. राज कमल प्रकाशन, दिल्ली; पृ. १६०; मूल्य ३.००।

विलियम सोरायां अंग्रेजीके ख्यातनामा कहानीकार हैं। इस उपन्यासमें युद्धकी बर्बरतामें भी छिपी हुई मानवताके दर्शन होते हैं। एक सैनिक युद्धमें मारा जाता है और उसका एक अभिन्न मित्र यह समाचार लेकर उसके परिवारके पास जाता है परंतु वह उस परिवारको दुःखी नहीं करना चाहता। वह भी उस परिवारको अपना लेता है। उसमें सैनिककी मांको अपना खोया हुआ बेटा मिल जाता है और परिवारके सभी लोग यही अनुभव करते हैं मानों उनका आत्मीय वापिस आ गया है।

हमारे संस्कारसूत्र : संपादक : लक्ष्मीराम शास्त्री; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली; पृ. १५५, मूल्य ३.००।

संस्कृत वाङ्मय एक अक्षय भंडार है। आप जिस विषयमें जैसी चीज चाहते हों वहां मिल जायेगी। विद्वान् लेखकने इस पुस्तकमें अत्रि स्मृति, नैषध काव्य, वैद्यक भाव मिश्र, महाभारत, मनुस्मृति आदिसे ज्ञानयोग, अहिंसा, पुरुषार्थ, दम्पति-धर्म, स्वास्थ्य, शुचिता आदि ३७ विषयोंपर सूक्तियां इकट्ठी की हैं। आजके 'सेक्यूलर' जमानेमें ऐसी चीजोंकी विशेष आवश्यकता है।

राजस्थानी भीलोंकी कहावतें : सं. लोक साहित्य विभाग, प्र. राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर; पृ. २३०, मूल्य २.५०।

साधारण अशिक्षित कहलानेवाले लोगोंकी वाणीमें बड़ा बल होता है। उनकी भाषा हमारी किताबी भाषासे अधिक सजीव होती है। उसमें दैनिक जीवनके चित्र होते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें राजस्थानी भीलोंकी कहावतोंका संग्रह किया गया है, साथ ही उनका भाव हिंदीमें बताया गया है। उदाहरणके लिये दो-एक कहावतें देख लीजिये। आलो ढोलो कीदे काम नी चाले यानी खाली हां न करते रहनेसे काम नहीं चलता, काम करनेसे ही होता है। चोड़ोजी चचून्दरी मारीने पूमाइग्या यानी 'चोड़ोजी' छछूंदर मारकर ही फूल रहे हैं। हूता हाप नी जगाड़वो यानी सोये हुए सांपको न जगाना चाहिये। इसी प्रकर ८०२ कहावतें दी गयी हैं और अंतमें पचास पृष्ठका भीली शब्दकोष है। हम आशा करते हैं कि इस प्रकारके काम अपना उचित सम्मान पायेंगे।

1. 1. 67

Men, countries, continents!
The choice is imperative:
Truth or the abyss.

१-१-६७

मनुष्यों, देशों और महाद्वीपो!
चुनाव अनिवार्य है:
सत्य या अतल गह्वर।

—श्रीमां

प्रबोधा

किशोर मासिक

फ़रवरी

१०६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ **फरवरी १९६७** **अंक ६**

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
नवयुगकी पुकार	यशवंत पेण्ढरकर	२
संपादकीय : श्रीअरविन्दाश्रम		३
यह अंक		४
श्रीअरविंद-वाणी : बुद्धि		५
त्याग		५
श्रीमातृवाणी : श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्र		६
विवेक		९
शुभेच्छा		११
भूल क्यों जाते हैं ?		१२
रुपये-पैसेका मूल्य		१३
मनुष्य-जातिकी सेवा		१५
अच्छा-बुरा		१८
श्रीमाताजी	रवीन्द्र	१९
महिषासुर-वध	(संकलित)	२०
कबीर	अनुब्रेन	२५
मानवताके मधुचक्र		३०
इधर-उधरसे		३२
बनाना और तोड़ना	श्रीमाताजी	३४
बंधन	विजय पोद्दार	३७
नयी कोंपलें : स्वावलंबी	काशीनाथ	३८
रातमें बस-यात्रा	कृष्ण कुमार	३८

चित्रकार : कृष्णलाल। मूल्य : एक अंक : रु. ०. ६० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

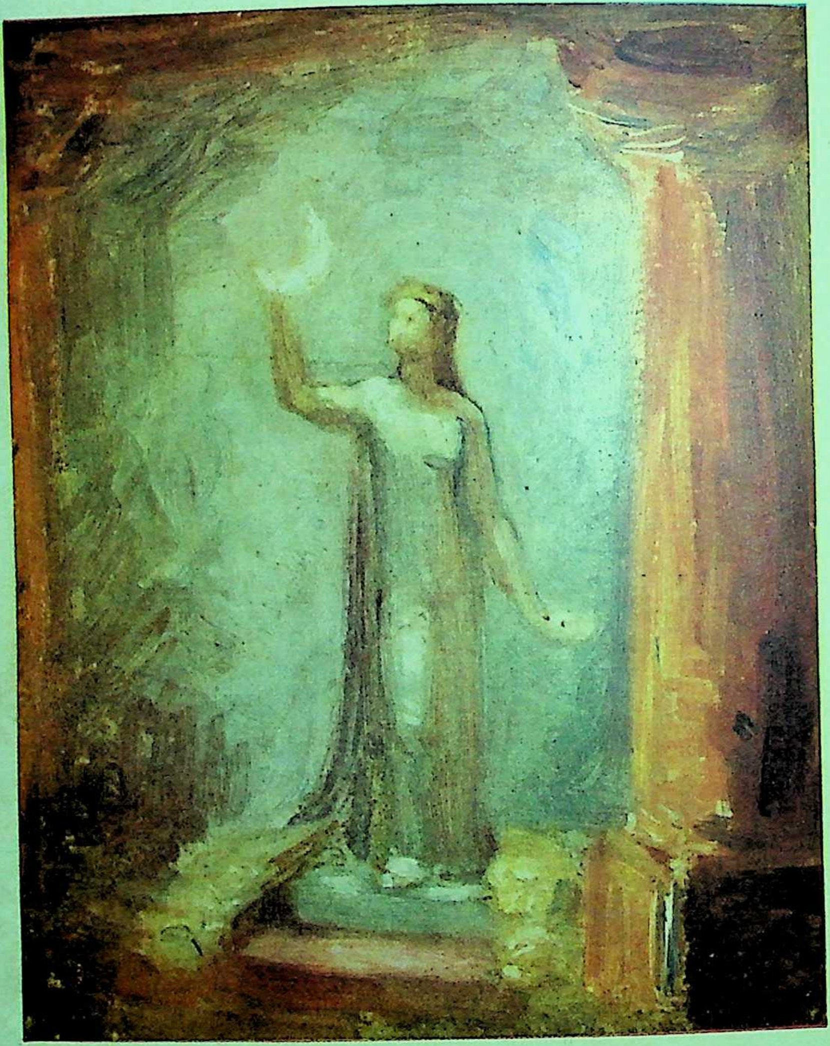

आभास

प्रार्थना

उनके कष्टसे तीव्र रूपमें पीड़ित होकर मैं तेरी ओर मुड़ी हूं, और उसमें इस दिव्य प्रेमका— जो समस्त शांति और प्रसन्नताका मूल है — थोड़ा-सा अंश उंडेलकर उसे दूर करनेका यत्न करती हूं। कष्टसे दूर नहीं भागना चाहिये, न उसके साथ प्रेम करना या उसे पोसना ही चाहिये, वरन् पर्याप्त रूपमें उसकी गहराईतक जाना सीखना चाहिये और उसे एक साधन बना लेना चाहिये जो नित्य चेतनाके द्वार खोलने तथा तेरे निर्विकार एकत्वकी स्थिर शांतिमें प्रवेश पानेमें सहायक हो।

जब हम बाह्य रूपोंकी अस्थिरता और तेरे सारभूत एकत्वकी वास्तविकताके विषयमें चिंतन करते हैं, तो निश्चय ही यह भावुक और भौतिक आसक्ति, जो शरीरोंके बिछुड़नेपर व्यथा उत्पन्न करती है, एक दृष्टिसे बालोचित प्रतीत होती है। पर दूसरी ओर यह आसक्ति, यह व्यक्तिगत स्नेह क्या उस मूल एकत्वको, जिसकी ओर मनुष्य सदैव बिना जाने ही प्रेरित होते रहते हैं, बाह्य रूपमें यथासंभव चरितार्थ करनेका उनका अचेतन प्रयत्न नहीं है? और ठीक इसी कारण, क्या वियोगसे उत्पन्न कष्ट इस बाह्य चेतनाको पार करनेका, इस ऊपरी आसक्तिका स्थान तेरे नित्य एकत्व की पूर्ण उपलब्धिको देनेका एक सक्षम साधन नहीं है?

यही थी वह चीज जो मैं सबके लिये चाहती थी, इसी वस्तुकी मैंने उत्साहपूर्वक उनके लिये इच्छा की थी और इसीके लिय, तेरी विजयका आश्वासन पाकर, तेरी जीत निश्चित समझकर, मैंने उनका कष्ट तुझे सौंप दिया था जिससे कि तू उसे आलोकित करके दूर कर दे।

हे प्रभु! ऐसी कृपा कर कि स्नेह और कोमलताका यह समस्त सौंदर्य एक गौरवमय ज्ञानमें परिणत हो जाय।

प्रदान कर कि प्रत्येक वस्तुका अच्छे-से अच्छा परिणाम निकले और तेरी प्रसन्न शांति पृथ्वीपर छा जाये।

—श्रीमां

*

नवयुगकी पुकार

"आलों मी आलों मी !" कोण करीं हा पुकार
जो का क्षतविव्हालास दिव्य औषधोपचार
"आता रणमैदानीं थाटतील उद्यानें
शस्त्रास्त्रें तरि कशास ऋषि मुनिच्या अस्थिविणे ?
कर्तव्याविण कोणा नाहि जात नाहि धर्म
दुसर्याच्या क्षेमाचें अध्याहृत ज्यांत वर्म
प्रभुच्या अवतारात्स्तव संसृतिच्या मन्दिरात
पुरुष-स्त्री जणु नंदा दीपातिल जोड वात
पूर्व थोर संस्कृतिची चित्तामधि चाड धरा"
कां विलंब मग व्हाया स्वर्गाहुनि रम्य धरा
हा पुकार घुमवी नरहृदयींचा नारायण
दाहि दिशा करिती पडसादांनी पारायण"

आलों मी आलों मी ! काळ नवा देई साद
ह्या मराठी-कवनी तों ऐका भावानुवाद "

(मैं आया, मैं आया ! यह किसकी पुकार है ? घायलों और दुखियोंके लिये औषधोपचारके समान यह आवाज किसकी है ? "अब रणक्षेत्रोंकी जगह उद्यान बनेंगे। जिनमें ऋषि-मुनियोंकी अस्थियोंका तेज नहीं है, ऐसे शस्त्रास्त्रके लिये अब कहीं जगह नहीं है। कर्तव्यके सिवा न कोई जाति होगी न धर्म, इस कर्तव्यमें दूसरोंकी क्षेमका रहस्य छिपा है। संस्कृतिके मंदिरमें स्त्री-पुरुष मानों पूजाके दीपककी बत्ती हैं। अपनी प्राचीन महान् संस्कृतिके गौरवको अपने मनमें स्थिर कर लो और देखो कि इस पृथ्वीको स्वर्गसे भी सुंदर बननेमें कितनी देर लगती है।" मानव•हृदयका नारायण इस प्रकार पुकार रहा है। दसों दिशाएं उसकी प्रतिध्वनिसे गूंज रही हैं।

"मैं आया, मैं आया !" यह नये युगकी पुकार है। उस पुकारका भावानुवाद इस मराठी कवितामें सुनो।

— यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ।।

सम्पादकीय

श्रीअरबिन्दाश्रम

माताजी और श्रीअरविन्दके बारेमें बात करते हुए लोग बहुत बार कह देते हैं हम मानते हैं कि वे महान हैं परंतु आजकलकी भयावनी और निराशाजनक अवस्थामें क्या यह उचित है कि देशके चुने हुए योग्य और सक्षम व्यक्तियोंको, शरीर और मनसे बलिष्ठ युवकोंको इस तरह देशसे अलग करके पांडिचेरीकी सुरक्षित गुफाओंमें बंद कर दिया जाये। यह प्रश्न उन लोगोंकी ओरसे उठता है जिन्होंने श्रीअरविन्दके आश्रमको और वहांके कार्यव्यग्र जीवनको नहीं देखा है अथवा केवल ऊपरी दृष्टिसे देखा है।

हमारी मान्यता है कि देशकी कठिनाइयां मुख्य रूपसे आर्थिक, राजनीतिक या औद्योगिक नहीं है। भारतका एक अपना लक्ष्य है, संसारमें उसके जीवनका एक विशेष उद्देश्य है, जबतक वह उस लक्ष्य को, उस उद्देश्यको भूलकर, अंग्रेजी शिक्षा और आधुनिकताकी तड़क-भड़कके प्रभावमें आकर यूरोपकी नकल करता रहेगा तबतक उसकी समस्याओंका हल नहीं हो सकता। हमें उस मानसिक ढांचेको बदलना होगा जो खानपानकी बहुतात, ऐश आरामकी अधिकाधिक सुविधाओं और सुरक्षाओंको ही जीवनकी पूर्णता मान लेता है और इन्हें प्राप्त करनेके लिये हर उचित और अनुचित मार्गको अपनानेके लिये तैयार रहता है

श्रीअरविन्दका आश्रम उनकी प्रयोगशाला है जहां विभिन्न परिस्थितियोंमें मनुष्यके प्रत्येक पहलूका अध्ययन होता है तथा उसे नाना प्रकारकी समस्याओंका सामना करके आंतरिक बलसे उनका मुकाबिला करनेकी विद्या सीखनी होती है। वहां जीवनको समग्र रूपमें लेकर उसे ऊंचा उठानेका प्रयास किया जाता है।

जहांतक शिक्षाका संबंध है हमारे देशके सामने यह बड़ी समस्या है कि आधुनिकताकी धाराका पूरा लाभ उठाते हुए देशके आध्यात्मिक मूल्योंको किस तरह आगे लाया जाये। अपनी प्राचीन परंपरागत विद्याको आजके लिये कैसे उपयोगी बनाया जा सके और इन परस्पर विरोधी लगनेवाली धाराओंका समन्वय करके कैसे एक नयी ज्ञान गंगा 'बहायी जाये' जो प्राचीन अध्यात्म और अर्वाचीन भौतिक शास्त्रोंके पूरे लाभको हमारे जीवनमें उतार सके। देशवासियोंकी दृष्टिमें विस्तार कैसे लाया जाये जिससे वे 'मेरा चूल्हा और मेरी चक्की' का झगड़ा छोड़कर विश्वमानव बन सकें और इसके साथ-ही-साथ प्रत्येक व्यक्तिको ऐसा अवसर मिल सके कि वह अपने दैनिक जीवनके झगड़ोंसे अलग रहकर अपने अंदर छिपी हुई क्षमताओंको विकसित कर सके और अपने अंदरके विभिन्न व्यक्तित्वोंमें सामञ्जस्य लाकर पूर्ण मानव बन सके।

यह केवल भारतके लिये ही नहीं संसारके लिये आवश्यक है। श्रीअरविन्दके आश्रममें इस दिशामें एक महत्वपूर्ण प्रयोग हो रहा है। आश्रममें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता, अपनी आवश्यकताके अनुसार इस प्रयोगमें भाग ले रहा है। वहांका वातावरण एक अपनी ही विशेषता रखता है जिसका वर्णन करना असंभव है। वहां एक शिक्षा केंद्र है जिसमें विभिन्न देशों और प्रदेशोंके विद्यार्थी और अध्यापक एक ही छतके नीचे बिना किसी भेद-भावके काम करते हैं। हर एक बच्चा बिना विशेष प्रयासके पांच-छः भाषाएं तो जान ही लेता है और फिर आये दिन ऐसे भाषण और प्रदर्शनियोंके कार्यक्रम होते रहते हैं जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न देशोंका परिचय होता है। यहांके विद्यालयमें प्रायः दस भारतीय और छः विदेशी भाषाएं सीखनेकी व्यवस्था है और लगभग डेढ़ हजारकी इस बस्तीसे अंग्रेजी, फेंच, हिन्दी, बंगला, गुजराती, ओड़ीया, कन्नड़, तमिल आदिकी लगभग पंद्रह पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं और इन सब भाषाओंमें साहित्य भी प्रकाशित होता रहता है।

विद्यार्थियोंको प्राचीन और नवीनदर्शन, साहित्य, इतिहास आदिके अतिरिक्त भौतिकी, रसायन,

प्राणी शास्त्र, और इंजीनियरिंग तककी शिक्षा दी जाती है और उन्हें भरसक क्रियात्मक प्रयोग करनेके अवसर दिये जाते हैं। भारतीय शिक्षामें रसका बहुत महत्त्व है। इसका विकास करनेके लिये भारतीय और पश्चिमी संगीत, नृत्य, चित्रकला, नाटक आदिकी भी समुचित व्यवस्था है। यहांके शारीरिक शिक्षणका विस्तृत परिचय तो हम पिछले अक्तूबर अंकमें दे ही चुके हैं।

इन सबके अतिरिक्त आजादीका वातावरण, जब आवश्यकता हो तो समुचित सलाह, अपनी क्षमताओंको विकसित करनेमें प्रोत्साहन और पूरे बाह्य विकासके साथ-साथ अंतरके साथ संबंध — ये आश्रम शिक्षा प्रणालीकी कुछ शिवशेषताएं हैं। आश्रममें विद्यार्थीके लिये पढ़ाई एक भार नहीं बनने पाती। वह भी खेल-कूद, नाच-गानके साथ-साथ जीवनका एक अंग होती है। उनके अध्यापक उनसे अनुचित लाभ उठानेवाले या उनपर दबाव डालनेवाले नहीं होते। जो विद्यालयकी श्रेणीमें अध्यापक और विद्यार्थी हैं वही भोजनालयमें, क्रीड़ांगणमें साथी होते हैं जिनमें बराबरीका सा संबंध होता है।

यूं तो चार वर्षकी आयुसे पढ़ाईका कार्यक्रम शुरू हो जाता है और स्नातकोत्तर श्रेणियोंतककी व्यवस्था है पर कहीं कठोर नियम नहीं है। कोई विद्यार्थी किसी विशेष विषयमें न चल सकनेके कारण अन्य सब विषयोंसे वंचित नहीं किया जाता। शिक्षा विषयक नाना प्रकारके परीक्षण हो रहे हैं जिनमें परीक्षाओंका महत्व बहुत कम कर दिया गया है। श्रीअरविन्दने हमें बताया है ज्ञान अंदर है। अध्यापकका काम है कि वह विद्यार्थीके अंदर छिपी हुई समझनेकी शक्ति और सहज ज्ञानको बाहर लानेमें सहायता दे। हर विद्यार्थीके विकासके बारेमें उसकी सलाह और उसका सक्रिय सहयोग जरूरी है और हरएकको इतनी सुविधाएं मिलनी चाहिये कि वह अपनी आवश्यकताके अनुसार अपनी ही गतिसे आगे बढ़ सके। लेकिन अगर वह न बढ़ना चाहे तो उसकी भी आजादी है।

इतना ही नहीं, आश्रम चेतनाके विकासमें भी पूरी-पूरी सहायता देता है। श्रीअरविन्दका कहना है कि चेतनाके विकासमें मनुष्य योनि एक कदम है, इससे ऊपर उठना जरूरी है। आज न सही कल इसे अपने वर्तमान स्तरको छोड़कर ऊपर उठना ही होगा। विचार-जगत्में एकता, शांति, सामंजस्यकी बातें इस आनेवाले युगका प्रथम चिह्न हैं। परंतु श्रीअरविन्दको इतनेसे ही संतोष नहीं है। वे इन सब दैवी संपदाओंको यहां पार्थिव जगत्में उतारना चाहते हैं और उनका कहना है कि यह काम भारतके जिम्मे हैं। भारत ही भगवान्को धरतीपर लायेगा। आश्रम इस दिशामें एक प्रयास है। हम पुरोधाके पाठकोंको यहांके जीवनके अलग-अलग पहलुओंका परिचय देते रहेंगे पर यह ध्यान रहे कि सारा आश्रम मिलकर एक बनता है। उसके अवयवोंको अलग-अलग देखनेसे उसके बारेमें समुचित परिचय नहीं मिल सकता। यहां जो कुछ हो रहा है वह श्रीमाताजी और श्रीअरविन्दकी सतत प्रेरणासे हो रहा है और यह तो उनके बहुतसे कामोंमेंसे एक काम है।

यह अङ्क

२१ फरवरी श्रीमताजीका जन्म दिन है। उस दिनके उपलक्ष्यमें हम इस अंकमें कुछ विशेष सामग्री दे रहे हैं। जीवनके भिन्न-भिन्न प्रश्नोंके बारेमें समय-समयपर माताजीसे पूछा जाता रहा है। माताजीके उत्तर प्रायः फ्रेंच या अंग्रेजीमें होते हैं। यहां उनमेंसे कुछ वचन पाठकोंकी भेंट किये जा रहे हैं। इन्हें छायानुवादके रूपमें ही माना जाये।

हमने दो वर्षतक 'दक्षिण भारती' के द्वारा पाठकोंको तमिल, तेलुगु, कन्नड़, और मलयालमका कुछ परिचय करानेका प्रयास किया। आगामी अंकसे हम हिन्दी माध्यमसे फ्रेंच पाठ शुरू कर रहे हैं। फ्रेंच आधुनिक भाषाओंमें बहुत अधिक समृद्ध है। अभी कुछ समय पहलेतक यरोपमें अंतर्राष्ट्रीय कामोंके लिये तथा राजनीतिक समझौतोंके लिये इसीका उपयोग होता था। अब भी सांस्कृतिक क्षेत्रमें इसका स्थान बहुत ऊंचा है। आशा है पाठक हमारे इस नये प्रयाससे लाभ उठायेंगे। श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्रकी श्री सरलाने कृष्णाकुमारीके साथ ये पाठ तैयार किये हैं

श्रीअरविंद-वाणी

बुद्धि

बुद्धि इस तथ्यपर निर्भर नहीं करती कि किसीने कितना पढ़ा है, यह मनका एक गुण है। अध्ययन केवल उसे अपने कार्यके लिये सामग्री प्रदान करता है, उसी प्रकार जैसे जीवन भी करता है। कुछ ऐसे लोग हैं जो लिखना-पढ़ना नहीं जानते, पर वे बहुतसे उच्च शिक्षित व्यक्तियोंसे अधिक बुद्धिमान् हैं और जीवन और वस्तुओंको अधिक अच्छी तरह समझते हैं। दूसरी ओर, अध्ययन करनेसे एक अच्छी बुद्धि विकसित भी हो सकती है, क्योंकि उसे अपना कार्य करनेके लिये अधिक सामग्री मिलती है तथा वह प्रयासद्वारा और एक अधिक विस्तृत क्षेत्रमें विचरनेसे उन्नत होती है। किंतु पुस्तक-ज्ञान अकेला सत्य वस्तु नहीं है, इसे बुद्धिके लिये एक सहायताके रूपमें प्रयुक्त किया जाना चाहिये। किंतु प्रायः यह केवल मूर्खता और अज्ञानको ही सहायता देता है — अज्ञानको इसलिये, क्योंकि यदि व्यक्ति तथ्योंके सच्चे अर्थको न समझ सके तो उसका ज्ञान एक बहुत तुच्छ-सी वस्तु होता है।

*

जब बुद्धि सत्यकी अपेक्षा अपनी रचनाएं अधिक पसंद करने लगती है तो वह भी उतनी ही बड़ी बाधा बन सकती है जितना कि प्राण।

त्याग

हमें मार्गपर बढ़ते हुए केवल उसे ही पीछे छोड़नेको तैयार नहीं रहना चाहिये जिसे अशुभ कहकर निंदित किया जाता है बल्कि उसे भी जो हमें शुभ तो प्रातीत होता है पर जो एकमात्र शुभ नहीं है। कई ऐसी वस्तुएं होती हैं जो कभी उपयोगी एवं सहायक थीं, जो शायद एक समय एकमात्र वांछनीय भी प्रतीत होती थीं; पर फिर भी जब एक बार उनका कार्य पूरा हो जाता है, एक बार जब वे प्राप्त हो जाती हैं, तो वे ही उस समय, जब कि हमें उनसे आगे बढ़नेके लिये कहा जाता है, बाधाएं बन जाती हैं, बल्कि विरोधी शक्तियां बन जाती हैं। आत्माकी कुछ अच्छी अवस्थाएं होती हैं जिनपर विजय प्राप्त करनेके बाद भी यदि उनमें निवास किया जाय तो वे भारी संकट पैदा कर देती हैं। कारण, तब हम उनसे परे स्थित भगवान्के विस्तृत साम्राज्यकी ओर नहीं बढ़ सकते। भागवत सिद्धियोंके साथ भी चिपट नहीं जाना चाहिये, जबतक कि वे बिलकुल अपने सारतत्त्व और पूर्णतामें भागवत सिद्धि ही न हों। हमें 'सर्व' से, पूर्ण परात्परतासे कम किसी भी वस्तुसे संतोष नहीं मानना चाहिये। और इस प्रकार यदि हम आत्मामें स्वतंत्र हो सकें तो हम भगवान्की कार्यशैलियोंके संपूर्ण चमत्कारको जान सकेंगे; हम यह जान लेंगे कि सब वस्तुओंके आंतरिक त्यागमें हमने खोया कुछ भी नहीं है। "सब कुछ छोड़नेसे ही तुम सब कुछका उपभोग करोगे।" कारण, सब कुछ हमारे लिये ही है और हमें मिल जाता है, किंतु वह भगवान्के सर्व-शुभ और सर्व-सौंदर्यमें, सर्व-प्रकाश और सर्व-आनंदमें आश्चर्यजनक रूपसे परिवर्तित एवं रूपांतरित हो जाता है, उन भगवान्के रूपमें जो सर्वदा शुद्ध एवं असीम हैं और जिनका रहस्य और चमत्कार युगोंतक समाप्त नहीं होता। **

श्रीमातृ-वाणी

श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र

मनुष्य जिन परिस्थितियोंके अधीन संसारमें रहता-सहता है वे उसकी अपनी चेतनाके परिणाममात्र हैं। चेतनाको बदले बिना परिस्थितियोंको बदलनेकी इच्छा करना कोरा स्वप्न देखना है। जिन लोगोंको इस बातका ज्ञान हो गया है कि मानव–जीवनके आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक, वित्तीय तथा शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न क्षेत्रोंमें स्थितिको सुधारनेके लिये क्या किया जा सकता है और क्या करना चाहिये, वे वही व्यक्ति हैं जिन्होंने किसी-न-किसी अंशमें अपनी चेतना असाधारण ढंगसे विकसित कर ली है तथा ज्ञानके उच्चतर स्तरोंके साथ अपना संबंध जोड़ लिया है। पर उनके विचार रहे सदा कम या अधिक सैद्धांतिक ही, अथवा यदि उन्हें कार्यान्वित करनेका प्रयत्न किया भी गया तो वह सदैव थोड़े-बहुत समयके बाद बुरी तरहसे असफल हुआ। कारण, कोई भी मानव संगठन मूलतः तबतक नहीं बदला जा सकता जबतक मानव चेतना ही अपने-आपमें न बदली जाये। नयी मानवताके अग्रदूत एकके बाद एक आये, कई आध्यात्मिक और सामाजिक धर्म चलाये गये, उनके प्रारंभिक प्रयत्न कभी-कभी आशापूर्ण भी होते थे, परंतु मानव-प्रकृति मूलतः नहीं बदली गयी, और उसकी स्वभावजन्य पुरानी भूलें धीरे-धीरे फिर प्रकट हो उठीं। और कुछ ही समयमें यह पता लगने लगा कि मनुष्य लगभग उसी स्थानपर खड़ा है जहांसे वह इतनी आशा और उत्साहसे चला था। मनुष्यकी अवस्थाओंको सुधारनेके प्रयत्नमें सदैव दो प्रवृत्तियां काम करती रही हैं, प्रगट रूपमें विरोधी प्रतीत होनेपर भी दोनों एक दूसरेकी पूरक हैं तथा विकास-साधनके लिये दोनोंका मिलके कार्य करना आवश्यक है। इनमेंसे एक सामूहिक पुनः-संगठन अर्थात् एक ऐसी वस्तुका समर्थन करती है जो मानवजातिको सफल एकताकी ओर ले जाये। दूसरीका मत है कि सब प्रकारका विकास पहले व्यक्तिको करना होगा, वह इस बातपर बल देती है कि व्यक्तिको वे सब अवस्थाएं प्रदान करनी चाहियें जिनमें वह स्वाधीनतापूर्वक उन्नति कर सके। ये दोनों प्रवृत्तियां समान रूपसे सत्य हैं और साथ ही आवश्यक भी। इसलिये, दोनोंके लिये इकट्ठा प्रयत्न करना चाहिये। सामूहिक विकास और वैयक्तिक विकास अन्योन्याश्रित हैं। व्यक्तिका विकास होनेके पूर्व सामूहिक जीवनका कुछ-न-कुछ विकास हो जाना आवश्यक है। अतएव, कोई ऐसा साधन ढूंढ़ना चाहिये जिससे दोनों विकास साथ-साथ चल सकें।

इस अनिवार्य आवश्यकताकी पूर्तिके लिये ही श्रीअरविंदने अपने अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी योजना बनायी थी। इससे उनका आशय कुछ ऐसे चुने हुए लोगोंको तैयार करना था जो मानवजातिके क्रमिक एकीकरणके लिये कार्य कर सकें और साथ-ही-साथ उस नयी शक्तिको अभिव्यक्त करनेके लिये तैयार हो जायें जो पृथ्वीको रूपांतरित करनेके लिये अवतरित हो रही है। कुछ सामान्य विचार इस विश्व-विद्यालय केंद्रके संगठनके आधाररूप होंगे, साथ ही वे अध्ययनके कार्यक्रमको भी निर्धारित करेंगे। इनमेंसे अधिकतर श्रीअरविंदके विभिन्न लेखोंमें प्रगट हो चुके हैं। इनमेंसे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विचार यह है कि मनुष्यजातिकी एकता न तो एकरूपतासे, न प्रभुत्वसे और न ही दासत्वसे प्राप्त हो सकती है। सब राष्ट्रोंका समन्वयपूर्ण संगठन, ऐसा संगठन जिसमें प्रत्येकको अपनी प्रतिभा तथा समष्टिमें अपने उचित कर्मके अनुसार स्थान प्राप्त होगा ;—उस पूर्ण और विकसनशील

एकताको लानेमें समर्थ हो सकता है जो संभवतः स्थायी सिद्ध हो। यह समन्वय जीवंत हो इसके लिये समष्टिको एक ऐसे केंद्रीय विचारपर आधारित होना होगा जो यथासंभव उच्च और व्यापक हो तथा जिसमें सब प्रवृत्तियोंको, अत्यंत विरोधी प्रवृत्तियोंको भी, अपना निश्चित स्थान प्राप्त हो। यह उच्चतम विचार ही मनुष्यको जीवनकी वे सब आवश्यक अवस्थाएं प्रदान करेगा जो उसे नयी शक्तिको अभिव्यक्त करनेके लिये तैयार कर सकेंगी, यह शक्ति ही भावी जातिको उत्पन्न करेगी।

प्रतिस्पर्द्धाकी हर प्रकारकी प्रवृत्ति तथा प्रधानता और अधिकार प्राप्त करनेके प्रत्येक संघर्षकी जगह समस्वर संगठन तथा शुद्ध और सफल सहयोगकी भावनाको प्रतिष्ठित करना होगा।

इसे संभव बनानेके लिये यह आवश्यक है कि बच्चे छोटी अवस्थासे न केवल उपयुक्त विचारके ही अभ्यस्त बनें बल्कि उनके अनुसार कर्म भी करें। इसीलिये यह अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केंद्र अंतर्राष्ट्रीय होगा — अंतर्राष्ट्रीय इस कारण नहीं कि इसमें सब देशोंके विद्यार्थी प्रविष्ट किये जायेंगे, इसलिये भी नहीं कि यहां उन्हें अपनी मातृभाषामें शिक्षा दी जायेगी, बल्कि इसलिये कि संसारके विभिन्न देशोंकी संस्कृतियां यहां केवल बौद्धिक रूपमें विचार, मत, सिद्धांत और भाषामें ही नहीं वरन् जीवन्त रूपमें अभ्यास, रीति-रिवांज और सब प्रकारकी कलाएं (चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, गृहशिल्प, साज-सज्जा आदि) यहांतक कि स्थूल रूपमें प्राकृतिक दृश्य, वेश-भूषा, खेल-कूद, उद्योग-धंधे तथा भोजन तकमें सबके लिये सुलभ होंगी। एक ऐसी विश्वप्रदर्शनीकी व्यवस्था करनी पड़ेगी जिसमें सब देश सजीव-साकार रूपमें उपस्थित होंगे। इसमें आदर्श यह होगा कि प्रत्येक राष्ट्रका, जिसकी अपनी निश्चित संस्कृति है, एक पृथक् भवन होगा जो उस संस्कृतिको प्रस्तुत करेगा, उसका निर्माण उसी नमूनेके अनुसार किया जायेगा जो उस देशकी रीति-नितिको अधिकसे अधिक स्पष्ट रूपमें उपस्थित करेगा। वह राष्ट्रकी विशेष प्रतिनिधि स्वरूप प्राकृतिक और निर्मित, दोनों प्रकारकी कृतियों, यहांतक कि ऐसी कृतियोंको भी प्रदर्शित करेगा जो उसकी बौद्धिक और कलात्मक प्रतिभा तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंको सर्वोत्तम रूपमें प्रकट करती होंगी। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र इस सांस्कृतिक समन्वय में अत्यंत क्रियात्मक और सजीव रुचि रखेगा और उस भवनका जो उस संस्कृतिका प्रतिनिधित्व करता है, दायित्व लेकर इस कार्यमें सहायता पहुंचायेगा। इसके साथ ही उसी राष्ट्रके विद्यार्थियोंके निवास के लिये एक छात्रावास भी होगा, जो आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा हो सकता है। इस प्रकार ये विद्यार्थी अपनी मातृभूमिकी संस्कृतिका आनंद उठाते हुए केंद्रमें ऐसी शिक्षा प्राप्त करेंगे जो इनका संसारकी अन्य संस्कृतियोंके साथ परिचय करा देगी: अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा तब स्कूलकी बेंचोंपर प्राप्त होनेवाली केवल सैद्धांतिक शिक्षा ही नहीं होगी वरन् जीवनके समस्त अंगोंमें व्यावहारिक भी होगी।

यहां इस संगठनका केवल एक सामान्य विचार उपस्थित किया गया है। जैसे-जैसे इसके विभिन्न अंगोंको कार्यान्वित किया जायेगा, उसका विवरण क्रमशः निकलता रहेगा।

अतएव पहला लक्ष्य यह होगा कि व्यक्तियोंको इस बातमें सहायता दी जाय कि वे जिस राष्ट्रके हैं उसकी गंभीर प्रतिभाको भली भांति जान लें, तथा अन्य राष्ट्रोंके रहन-सहनके ढंगसे भी परिचय प्राप्त कर लें जिससे वे संसारके सब देशोंकी सच्ची भावनाको समान रूपसे जान सकें तथा उसका मान कर सकें। यदि समस्त विश्व-संगठन वास्तविक या जीवित रहनेके योग्य बनना चाहते हैं तो उन्हें राष्ट्र-राष्ट्रके बीच तथा व्यक्ति-व्यक्तिके बीच पारस्परिक आदर और सहानुभूतिपर आधारित होना चाहियें। केवल व्यवस्था, सामूहिक संगठन और पारस्परिक सद्भावपर आधारित सहयोग ही मनुष्यको आजकी दुःखद अव्यवस्थाओंमेंसे निकाल सकते हैं। इसी उद्देश्य और भावनाके साथ इस विश्व-विद्यालय केंद्रमें समस्त मानव प्रश्नोंका अध्ययन किया जायेगा, और इनका हल भी उस अतिमानसिक ज्ञानकी सहायतासे किया जायेगा जिसपर श्रीअरविंदने अपने ग्रंथोंमें काफी प्रकाश डाला है।

श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केंद्रमें दी जानेवाली शिक्षाको जो नियम संचालित करेंगे

उनके विषयमें यह कहा गया था कि प्रत्येक राष्ट्रको विश्वकी समस्वरतामें अपना स्थान प्राप्त करना होगा, अपनी भूमिका निभानी होगी। पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि प्रत्येक राष्ट्र स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी किसी महत्त्वाकांक्षा और लालसाके अधीन होकर अपना स्थान चुनेगा। किसी देशका लक्ष्य मानसिक रूपमें, बाह्य चेतनाकी अहंकारयुक्त और अज्ञानमूलक रुचियोंद्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा होनेसे राष्ट्रोंमें केवल संघर्षका क्षेत्र ही बदलेगा, संघर्ष फिर भी और शायद अधिक तीव्र रूपमें बना रहेगा। जिस प्रकार व्यक्तिकी अपनी अंतरात्मा होती है जो उसकी वास्तविक सत्ता है और उसके भविष्यको थोड़े बहुत प्रत्यक्ष रूपमें परिचालित करती है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्रकी भी अंतरात्मा होती है, उसकी सच्ची सत्ता वही है और उसकी भवितव्यताके पदके पीछेसे वही निर्माण कार्य करती हैं। यही देशकी आत्मा है, राष्ट्रीय प्रतिभा है, जातिकी भावना है, राष्ट्रीय अभीप्साका केंद्र है, किसी देशके जीवनमें जो कुछ सुन्दर, उत्कृष्ट, महान् और उदार होता है उसका मूल स्रोत यही है। सच्चे देशभक्त प्रत्यक्ष सत्ताके रूपमें इसकी उपस्थिति अनुभव करते हैं। इसीको भारतवर्षमें एक दिव्य रूप दे दिया गया है; जो लोग अपने देशसे सच्चा प्रेम करते हैं वे इसे भारतमाता कहके पुकारते हैं और अपने देशके हितके लिये इसीके आगे प्रार्थना करते हैं। यह भारत माता ही देशके सच्चे आदर्शको, विश्वमें उसके सच्चे उद्देश्यको सांकेतिक रूपमें व्यक्त करती है, उसे मूर्तिमान करती हैं। भारतवर्षके कुछ विशिष्ट विचारक तथा अध्यात्म चेता व्यक्ति तो इसे विश्वमाताकी ही एक विभूति मानते हैं जैसा कि दुर्गा माताके एक स्तोत्रसे प्रकट होता है। इसके कुछ पदोंका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है।

माता दुर्गे! सिंहवाहिनी, सर्वशक्तिदायिनी, तेरे शक्ति अंशसे उत्पन्न हम भारतके युवकगण यहां तेरे मंदिरमें बैठे हैं। माता हमारी प्रार्थना सुन, तू पृथ्वीपर अवतरित हो, अपने-आपको तू भारतकी इस भूमिपर अभिव्यक्त कर।

माता दुर्गे! शक्तिदायिनी, प्रेमदायिनी, ज्ञानदायिनी, सौम्य-रौद्र-रूपधारिणी, मां! तू अपने शक्ति-स्वरूपमें भयंकर है। जीवन-संग्राममें, भारत संग्राममें हम तेरे ही द्वारा प्रेरित योद्धा हैं, मां तू हमारे हृदयमें, हमारे मनमें, असुरकी शक्ति दे, हमारी आत्मा और हमारी बुद्धिको देवताका गुण-कर्म और ज्ञान दे।

मां दुर्गे! भारत जगत्की सर्वश्रेष्ठ जाति, घोर तिमिरसे आच्छन्न थी। मां, तू पूर्व गगनमें प्रकट हो रही है, तेरे दिव्य अंगोंकी आभाके साथ-साथ उषाका आगमन हो रहा है और वह अंधकारको छिन्न-भिन्न कर रही है। अपने आलोकका विस्तार कर, मां अंधकारका नाश कर।

माता दुर्गे! हम तेरी संतान हैं, तेरी कृपासे, तेरे प्रभावसे हम महान् कार्यके, महत् आदर्शके योग्य बनें। हमारी क्षुद्रताका, हमारे स्वार्थका, हमारे भयका तू विनाश कर मां!

माता दुर्गे! तू काली है, हाथमें कृपाण धारण करके तू असुरोंका नाश करती है। देवी! अपने क्रूर निनादसे तू हमारे अंतस्थित शत्रुओंका नाश कर। इनमेंसे एक भी हमारे अंदर जीवित न रहे, हम शुद्ध निर्मल हो जायें — यही हमारी प्रार्थना है, मां तू प्रकट हो।

मां दुर्गे! भारत स्वार्थ, भय और क्षुद्रताके हीन गर्तमें गिरा हुआ है। हमें महान् बना, हमारे प्रयत्नोंको महत् रूप दे, हमारे हृदयको विशाल बना, हमें अपने संकल्पके प्रति सच्चा रख। ऐसी कृपा कर कि हम उस वस्तुकी कामना न करें जो क्षुद्र, निःशक्त आलस तथा भयग्रस्त हो।

मां दुर्गे! योगशक्तिका अत्यधिक विस्तार कर, हम तेरी आर्य संतान हैं; हमारे अंदर लुप्त शिक्षा, चरित्र मेधाशक्ति, श्रद्धा-भक्ति, तपोबल, ब्रह्मचर्यबल और सत्यज्ञानका पुनः विकास कर, इन सबका जगत्में वितरण कर। हे विश्व जननि, मनुष्यकी सहायताके लिये प्रकट हो, अशुभका नाश कर।

मां दुर्गे! अंतःस्थ शत्रुओंका संहार कर और फिर चारों ओरकी बाधाओंको निर्मूल कर दे।

भद्र, वीर और पराक्रमी भारत-जाति, प्रेम और एकतामें, सत्य और शक्तिमें, शिल्प और साहित्यमें, विक्रम और ज्ञानमें श्रेष्ठ भारत-जाति भारतके पवित्र काननोंमें, उर्वर खेतोंमें, गगनचुंबी पर्वतोंके तले, पुण्यसलिला नदियोंके तीरपर निवास करे। तेरे चरणोंमें हमारी यही प्रार्थना है मां, तू प्रगट हो!

माता दुर्गे! अपने योगबलद्वारा हमारे शरीरमें प्रवेश कर। हम तेरे यंत्र बनेंगे, तेरी अशुभ-नाशक तलवार बनेंगे, तेरा अज्ञानविनाशी प्रदीप होंगे। अपने शिशुओंकी इस अभिलाषाको पूर्ण कर। मां, तू स्वामिनी बनकर अपना यंत्र चला, तलवार हाथमें लेकर अशुभका नाश कर, प्रदीप ऊंचा उठाकर ज्ञान-प्रकाश विकीर्ण कर, तू प्रगट हो।"

राष्ट्रीय आत्माके लिये इस प्रकारका आदरभाव उसके सर्वोच्चआदर्शकी अभिव्यक्तिके योग्य यंत्र बननेकी ऐसी ही अभीप्सा, प्रगति और पूर्णताके लिये ऐसी ही लगन, जो प्रत्येक जातिको अपनी राष्ट्रीय आत्माके साथ एकाकार होने और इस प्रकार अपने सच्चे स्वरूप और कार्यको जाननेके लिये उत्साहित करती है, हम समस्त देशोंमें देखना चाहेंगे। इससे प्रत्येक देश इतिहसकी सभी ऊंच-नीच होते हुए भी, एक सजीव तथा अमर सत्ता बन जायेगा।

विवेक

प्रत्येक मनुष्य अपनी व्यक्तिगत रुचिके अनुसार अपनी बोध-शक्तियों, मानसिक अभिरुचियों, बल्कि अपनी इच्छाओंके अनुसार भगवान्के विषयमें अपने विचार बनाता है। तुम अपने अंदर एक ऐसे भगवान्के विचारको रूप देते हो जिसे तुम चाहते हो, जिससे मिलनेकी तुम इच्छा करते हो, स्वभावतया ही इसी कारण तुम्हारी प्राप्ति भी सीमित होती है।

किंतु यदि हम यह समझ सकें कि भगवान् वह सब चीज है जिसके विषयमें हम सोच सकते हैं, बल्कि उससे भी अनेकगुना अधिक हैं तभी हम सर्वांगीणताकी ओर बढ़ना शुरू करते हैं। सर्वांगीणता मानवकी चेतनाके लिये एक बहुत कठिन चीज है, क्योंकि वह अपने आपको सीमित करकें ही चेतनता प्राप्त करती है। फिर भी थोड़ा प्रयत्न करनेसे और जो लोग मानसिक क्रियाओंके साथ क्रीड़ा करना जानते हैं उनके लिये अपने-आपको इतना विस्तारित करना संभव है कि वे किसी सर्वांगीण वस्तुतक पहुंच सकें।

तुम भगवान्के विषयमें एक विचार बनाते हो, ऐसा करते हो न! वह विचार तुम्हारी प्रकृति और धारणाके अनुसार होता है। तब यदि तुम अपनेसे थोड़ा बाहर निकलके पूर्णयोगका अभ्यास करनेका प्रयत्न करते हो तो तुम्हें यह समझनेकी अवश्य चेष्टा करनी चाहिये कि भगवान् केवल वही नहीं हैं जैसा कि तुम उनके बारेमें सोचते या अनुभव करते हो पर वे वह भी हैं जैसा कि दूसरे उनके बारेमें सोचते या अनुभव करते हैं—साथ ही वे कुछ और भी हैं जिसके विषयमें कोई भी विचार या अनुभव नहीं कर सकता।

यदि तुम यह समझ लो तो समझो कि तुमने सर्वांगीणताके पथपर पहला कदम रख दिया है।

सहज स्वभाववश ही और बिना जाने, लोग इस बातपर आग्रह करते हैं कि भगवान्को उनकी धारणाओंके अनुसार ही होना चाहिये। कारण., वह बड़े सहज रूपमें बिना सोचे कह उठते हैं: "हां, यही भगवान् हैं, वह भगवान् नहीं हैं।" पर वे क्या जानते हैं? कुछ ऐसे लोग भी हैं जो, ज्यों ही इस रास्तेपर पैर रखते हैं और यहां पहुंचकर कुछ चीजें देखते हैं तथा कुछ व्यक्तियोंसे मिलते हैं, कह उठते हैं: "इस आश्रमका भगवान्से कुछ संबंध नहीं है। इसमें जरा भी दिव्यता नहीं है।" यदि उनसे पूछा जाय, "भगवान् हैं क्या?" तो वे जवाब देनेमें घबरा जायेंगे, क्योंकि वे इस विषयमें कुछ भी नहीं जानते।

जितना कम आदमी जानता है, उतना ही अधिक वह दूसरोंके बारेमें निर्णय देता है, यह एक पूर्ण तथ्य है। जितना अधिक मनुष्य जानता है उतना ही कम वह वस्तुओंके बारेमें अपने मत देता है। और फिर एक ऐसा क्षण आता है जब व्यक्ति केवल बातको सरल ढंगसे कह सकता है, तुम वस्तुओंको देख सकते हो, उनके उसी रूपमें देख सकते हो जैसी कि वे दूसरोंके साथ अपने संबंधमें हैं या जिस स्थानपर हैं: तुम यह भी पूरी तरह जान सकते हो कि जिस स्थानपर वे हैं और जहां उन्हें होना चाहिये उसमें क्या भेद है (कारण, संसारमें बहुत अधिक अस्तव्यस्तता है), किंतु तुम उनके विषयमें अपना मत नहीं बनाते, तुम केवल देखते हो।

एक ऐसा क्षण भी आयेगा जब तुम यह नहीं कह सकोगे, "यह भगवान् है, वह भगवान् नहीं है", क्योंकि एक ऐसा समय होता है जब व्यक्ति संसारको एक ऐसे समग्र और व्यापक रूपमें देखता है कि, सच पूछो तो, बिना समष्टिके बिगाड़े हम उसमेंसे एक भी चीज नहीं निकाल सकते।

तुम अब एक या दो पग और आगे बढ़ो और तुम्हें यह निश्चयपूर्वक पता लग जायेगा कि तुम जिन वस्तुओंको भगवान्-विरोधी समझके चौंक उठते हो वे वैसी केवल इसलिये प्रतीत होती हैं कि वे अपने उपयुक्त स्थानपर नहीं हैं। प्रत्येक वस्तुको अपने स्थानपर होना चाहिये, साथ ही उसे इतना कोमल और नमनीय भी होना चाहिये कि वह अपने अंदर, उत्तरोत्तर समस्वरताको प्राप्त एक संगठनके अंदर, उन सब नये तत्त्वोंको धारण कर सके जो अभिव्यक्त विश्वमें लगातार जोड़े जा रहे हैं। विश्वमें आंतरिक पुनःसंगठनकी एक सतत क्रिया चलती रहती है, साथ-ही-साथ विश्व मानो विस्तृत भी होता जाता है, और अधिकाधिक जटिल बनता जाता है। वह अधिकाधिक पूर्ण और समग्र होता जाता है, और ऐसा अनिश्चित कालतक चलता रहता है। और जब कि नये तत्त्व अभिव्यक्त हों, संपूर्ण संगठनको भी नये आधारपर निर्मित करना चाहिये, इसीलिये एक ऐसा क्षण भी नहीं होता जब कि समष्टिमें एक सतत क्रिया न चल रही हो। किंतु यदि यह क्रिया भागवत व्यवस्थाके अनुसार हो, तो वह समस्वर होगी, इतने पूर्ण रूपसे समस्वर कि वह दृष्टिमें ही नहीं आयेगी, उसे देखना कठिन होगा।

अब यदि तुम इस चेतनासे वापिस बाह्य चेतनामें आ जाओ तो स्वभावतया ही तुम बड़े यथार्थ ढंगमें उन वस्तुओंको अनुभव करना आरंभ कर दोगे जो तुम्हें सच्ची चेतनाको प्राप्त करनेमें सहायता पहुंचायेंगी, और उनको भी जो तुम्हारे रास्तेमें रुकावट डालेंगी या तुम्हें पीछेकी ओर ढकेलेंगी, यहां तक कि जो तुम्हारी प्रगतिके साथ संघर्ष भी करेंगी। तब दृष्टिकोण बदल जाता है और तुम्हें कहना पड़ता है: " यह दिव्य है, यह तुम्हारे भगवान्के रास्तेपर चलनेमें सहायता पहुंचायेगा। और यह भगवान्के विरुद्ध है, भगवान्का शत्रु है।"

किंतु यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो भौतिक जीवनमें कार्यके लिये, गतिके लिये व्यावहारिक है। कारण, मनुष्यको अभी उस चेतनाकी प्राप्ति नहीं हुई है जो इस सबसे ऊपर उठ जाती है, मनुष्य अभी उस आंतरिक पूर्णताकी अवस्थातक नहीं पहुंचा है जो उसे संघर्ष समाप्त करनेके योग्य बनायगी, क्योंकि तब वह संघर्षके क्षेत्रको, संघर्षके समय और संघर्षकी आवश्यकताको पार कर चुका होगा। अपनी चेतना और कर्ममें इस अवस्थाको प्राप्त करनेसे पहले संघर्ष होगा ही और यदि संघर्ष होगा तो चुनावकी संभावना भी रहेगी और चुनावके लिये विवेक होना ही चाहिये।

और विवेक पानेका सबसे निश्चयात्मक तरीका है भागवत संकल्प और मार्गदर्शनके प्रति चेतन, स्वेंच्छाकृत और यथावंपव पूर्ण समर्पण। तब भूल करने तथा मिथ्या प्रकाशको सच्चा प्रकाश मान लेनेका कोई भय नहीं रहता।

⁂

शुभेच्छा

क्या व्यक्ति अपनी शुभेच्छाद्वारा संसारकी सहायता कर सकता है ?

शुभेच्छाद्वारा बहुत-सी वस्तुएं बदली जा सकती हैं, पर एक बात है, इसे अत्यधिक पवित्र और अमिश्रित होना चाहिये। यह स्पष्ट है कि एक पूर्णतया पवित्र और सच्चा विचार या प्रार्थना, यदि उसे संसारके लिये प्रयुक्त किया जाय, अपना कार्य कर सकती है। किंतु इस प्रकारका पूर्णतया पवित्र और सत्य विचार है कहां, विशेषतया तब जब कि वह मानव मस्तिष्कमेंसे गुजर चुका हो? तब वह निम्न कोटिका हो जाता है। यदि तुम अपने अंदर, आंतरिक चेतना और ज्ञानके प्रयत्नके द्वारा, एक इच्छाको सच्चे अर्थोंमें वशमें कर सकते हो और आंतरिक शुभेच्छा, चेतना, प्रकाश और ज्ञानके द्वारा इच्छाका नाश करनेमें समर्थ होते हो तो तुम व्यक्तिगत रूपमें उस इच्छाको पूरा करनेकी अवस्थासे सौ गुना अधिक प्रसन्न हो उठोगे और तब इसका प्रभाव आश्चर्यजनक होगा। तुम सोच नहीं सकते इसकी संसारमें कितनी प्रक्रिया होगी। यह फैलेगा, क्योंकि जिन स्पंदनोंको तुमने उत्पन्न किया है वे फैलते ही रहेंगे। ये बर्फके गोलोंके समान बढ़ते रहेंगे। चाहे जितनी छोटी विजय तुम अपने स्वभावपर प्राप्त करो, वह एक ऐसी विजय होगी जो पीछे समस्त संसारमें भी प्राप्त की जा सकेगी। और यही बात मैं अभी कहना चाहती थी: वे सब कार्य जो आंतरिक प्रकृतिको बदले बिना केवल बाह्य रूपसे किये जाते हैं, — उदाहरणार्थ, अस्पताल, स्कूल आदि खोलना — झूठे अभिमानवश अथवा बड़ा बननेकी भावनासे किये जाते हैं, पर अपने अंदर इन छोटी, तुच्छ वस्तुओंको वशमें करनेसे एक असीम और महान् विजयकी प्राप्ति होती है चाहे उसके अंतिम परिणाम छिपे क्यों न रहें। तुम्हारे अंदरकी कोई भी ऐसी क्रिया जो मिथ्या है एवं सत्यकी विरोधी है भागवत जीवनका निषेध है। तुम्हारे छोटे-छोटे प्रयत्नोंका बहुत बड़ा प्रभाव होता है, जिसे जाननेका भी संतोष तुम्हें प्राप्त नहीं होता, किंतु वह होता सच है और यथार्थ ढंगसे निर्वैयक्तिक और सामान्य परिणाम उत्पन्न करता है।

यदि तुम सचमुच कोई भला कार्य करना चाहते हो तो सबसे अच्छा कार्य होगा अपने अंदर सच्चाईके साथ, एकके बाद एक छोटी-छोटी बातोंपर विजय प्राप्त करना। और इस प्रकार तुम, अपनी शक्तिकेंके अनुसार, संसारकें लिये अधिकसे अधिक कार्य कर सकते हो।

क्या हमारी विजय समूचे संसारके लिये कार्य करेगी ?

वह प्रत्येक व्यक्तिको नहीं बदलेगी, क्योंकि तुम्हारी विजय इतनी छोटी है कि वह सबको अपने अंदर समाविष्ट नहीं कर सकती। ऐसी लाखों विजयें चाहिये। समग्र विजयकी तुलनामें यह एक बहुत छोटी विजय है। किंतु यह दूसरी वस्तुओंके साथ मिल जाती है।

तुम कह सकते हो कि यह एक प्रकारसे संसारमें किसी कार्यको करनेकी सामर्थ्य प्राप्त करना है, किंतु विजयकी इस क्रियाके फलप्रद होनेके लिये सदियोंकी आवश्यकता पड़ेगी। यह अनुपातोंका प्रश्न है। तुम अपने आसपासके व्यक्तियोंपर यह प्रयोग कर सकते हो। पर इसके लिये तुम्हें बिलकुल सच्चा होना होगा, तथा किसी विशेष फल पानेके विचारसे कार्य नहीं करना होगा, वरन् इसलिये कि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो। यदि तुम्हें विजय प्राप्त हो जाती है तो इसका तुम्हारे आसपासके लोगोंपर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। किंतु यदि इसमें एक भी सौदेबाजीका तत्त्व रह गया और तुमने इस फलको पानेकी आशासे काम लिया: "मैं अपने दोषोंको दूर करना चाहता हूं, पर दूसरे व्यक्तिको भी अपने दोष दूर करने चाहियें।" तो काम नहीं बनेगा: यह एक व्यापारीका काम है — "मैं यह दूंगा पर वह लूंगा।" यह सब कुछ नष्ट कर देता है। यहां न विशुद्धता है, न सत्यता। यह तो सौदेबाजी है।

तुम्हारी सच्चाई, तुम्हारी अभीप्सा और तुम्हारे उद्देश्यके साथ कोई भी और चीज मिश्रित नहीं होनी चाहिये। तुम भगवान्के प्रति प्रेमकी खातिर, सत्य और पूर्णताकी खातिर, बिना किसी और प्रयोजन या विचारके कार्य करो। इसीका कुछ फल निकलेगा।

हम बातें भूल क्यों जाते हैं ?

नि:संदेह इसके कई कारण हैं। पहला और सबसे प्रधान कारण यह है कि हम याद करनेके लिये "स्मरणशक्ति" नामक वृत्तिका व्यवहार करते हैं। स्मरण-शक्ति मनका एक यंत्र है और मस्तिष्क की रचना और विकासपर निर्भर करती है। तुम्हारा मस्तिष्क, अवश्य ही यदि वह पहलेसे ही क्षीण न होने लगा हो तो, निरंतर विकसित होता रहता है; उसका यह विकास कार्य बहुत दीर्घकालतक, शरीरकी आयुसे भी अधिक कालतक चलता रह सकता है। इस प्रक्रियाके अंदर अनिवार्यत: पहलेकी चीजोंके स्थानपर दूसरी चीजें आती रहती हैं, और जैसे-जैसे यंत्र विकसित होता जाता है वैसे-वैसे जो चीजें एक स्तरपर उपयोगी थीं वे अब उसके बादके स्तरपर वैसी उपयोगी नहीं रहतीं और उन्हें दूसरी अधिक उपयुक्त चीजोंके लिये जगह खाली करनी पड़ती है। हमारे अर्जनका शुद्ध परिणाम तो सार-रूपमें रह जाता है, परंतु जिन चीजोंके परिणामस्वरूप हम अर्जन करते हैं वे मध्यवर्त्ती स्तर दब जाते हैं। निश्चय ही 'अच्छी स्मरण शक्ति' का अर्थ इससे अधिक और कुछ नहीं है —— केवल परिणामोंको याद रखा जाय, जिसमें प्रधान चीजें—— और केवल वे ही चीजें जो भावी रचनाके लिये उपयोगी हों उन्हें छानकर संचित किया जाय। किसी विशेष विषयको कठोर रूपमें बनाये रखनेकी चेष्टा करनेकी अपेक्षा यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

एक दूसरी बात भी है। हमारी स्मरण-शक्ति स्वयं अपने स्वभावमें ही एक दोषपूर्ण यंत्र तो है ही, परंतु इसके अलावा एक दूसरा तथ्य भी यह है कि एकके पीछे एक चेतनाके कई अलग-अलग स्तर है। प्रत्येक स्तर उस मुहुर्त्तकी घटनाओंको, चाहे वे कुछ भी क्यों न हों, सच्चाईके साथ टांक लेता है। अब, अगर तुम्हारा मन स्थिर और स्वच्छ हो, विस्तृत और सबल हो तो तुम उस मुहूर्त्तकी घटनाओंपर अपनी चेतनाको एकाग्र करके उस समय तुम्हारी गतिविधियोंका जो कुछ अभिलेख दर्ज किया गया था उसका पता लगा सकते हो और अपनी वर्तमान सक्रिय स्थितिमें याद कर सकते हो; तुम एक खास समयमें चेतनाकी एक विशेष स्थितिमें वापिस जा सकते हो और वहां फिरसे निवास कर सकते हो। जो कुछ तुम्हारी चेतनामें एक बार लिख जाता है वह कभी नहीं मिटता। और इसलिये वह वास्तवमें कभी नहीं भूलता। तुम हजार वर्षोंतक जी सकते हो और तुम उसे नहीं भूलोगे। अतएव, यदि तुम कोई चीज भूलना न चाहो तो तुम्हें अपनी मानसिक स्मरण-शक्तिके द्वारा नहीं, बल्कि अपनी चेतनाके द्वारा उसे बनाये रखना होगा। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, मानसिक स्मरण-शक्ति मंद हो जाती है, नयी चीजें, आजकी चीजें पुरानी चीजों, कलकी चीजोंका स्थान ले लेती हैं। परंतु जिस बातके विषयमें तुम अपनी चेतनायें 'सचेतन' हो चुके हो, उसे तुम कभी नहीं भूल सकते। वह कहीं, पीछेकी तहमें पड़ी रहती है और तुम्हारी आज्ञा पाते ही तुम्हारे पास वापिस आ जाती है। तुम्हें बस चेतनाकी उस स्थितिमें पीछे हट जानेकी आवश्यकता होती है जहां वह छिपी पड़ी रहती है। इस प्रकार तुम ऐसी बातोंको याद कर सकते हो जिन्हें तुमने शायद शताब्दियों पहले जाना था। इसी तरीकेसे तुम अपने पूर्वजीवनोंक भी याद रक सकते हो। क्योंकि, चेतनाकी कोई क्रिया कभी नहीं मरती जो प्रभाव बाहरी मस्तिष्कगत मनपर पड़ते हैं केवल वे ही क्षणिक होते हैं। जो कुछ तुमने इस ऊपरी यंत्रके द्वारा परिश्रमके साथ सीखा है —— केवल पढ़ा-सुना, लिखा और चिह्नित किया है ——

वह कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ता, परंतु जो कुछ चेतनाके सत्तत्त्वमें सोख लिया जाता है, भीतर ग्रहण कर लिया जाता है वह बना रहता है। मस्तिष्कका निरंतर परिवर्तन और पुनर्गठन हो रहा है। पुराने कोष, जो कोष दुर्बल और क्षीण हो गये हैं उनका स्थान नये-नये और अधिक पुष्ट कोष ले लेते हैं अथव पुराने कोंष विभिन्न रूपमें एकत्र होते या अन्य प्रकारके संगठनोंमें प्रवेश करते हैं। इस तरह जिन पुराने संस्कारों या स्मृतियोंको वे लिये हुए होते हैं वे लुप्त हो जाती हैं।

चेतनाकी जिस स्थितिमें तुमने कोई चीज अनुभव की थी उसी पूर्व-स्थितिमें प्रवेश करके तुम सदा उस चीजको अपनी स्मृतिमें वापिस ला सकते हो। बस तुम्हें यही जाननेकी आवश्यकता है कि तुम उस बिंदुपर, जो कहीं गहराइयोंमें डूबा पड़ा है, कैसे पहुंच सकते हो। मृत्युके बाद शरीर विलीन हो जाता है, प्राण और मनका भी अधिक भाग छिन्न-भिन्न हो जाता है — केवल एक छोटा-सा अंश, जो सुसंगठित होता है, जिसे घना सुदृढ़ आकार मिला होता है, वही बना रहता है। इस तरह प्राण और मनके किसी अंशका स्थायी रूप प्राप्त करना एक विरल घटना है। परंतु चेतनाके साथ दूसरी ही बात घटित होती है। चेतना चिरस्थायी है। यदि तुम चेतनाके साथ अपना संपर्क स्थापित कर लो तो तुम पृथ्वी और सृष्टिका सारा रहस्य जान सकते हो। चेतना ही वह चीज है जो सृष्टि कर सकती है।

रुपये-पैसेका मूल्य

जितना ही अधिक किसीको पैसा मिलता है उतना ही अधिक वह विपत्तिमें पड़ता है। वास्तवमें रुपया एक विपत्ति ही है, मेरे बच्चो!

रुपये-पैसेका होना एक महाविपत्ति है। पैसा तुम्हें मूढ़ बना देता है, वह तुम्हें लोभी, कुकर्मी बना देता है। यह संसारकी एक सबसे बड़ी आफत है। धन वह वस्तु है जिसे मनुष्यको तबतक नहीं रखना चाहिये जबतक कि वह कामनासे शून्य, आसक्तिसे रहित न हो जाय, जब किसीको पृथ्वीके समान विशाल चेतना प्राप्त हो जाय तभी वह पृथ्वीका सारा धन अपने पास रख सकता है। और यह सबके लिये अच्छा होगा। परंतु जबतक वैसी चेतना नहीं प्राप्त होती तबतक जितना धन तुम्हारे पास है उतना ही अभिशाप भी तुम्हारे ऊपर है। यह बात मैं प्रत्येक व्यक्तिके मुंहपर कहूंगी, यहांतक कि उस ममुष्यके मुंहपर भी कहूंगी जो धनी होना एक गुण समझता है। यह एक आपत्ति है, यह शायद एक प्रकारका अपमान भी है, भागवत करुणा प्राप्त करनेकी स्थितिसे पतन है, एक प्रकारके भागवत असंतोषकी अभिव्यक्ति है।

धनी होना और उसके साथ ही ज्ञानवान्, बुद्धिमान् और उदार होना बहुत कठिन है। 'उदार' होना इस बातपर जरा ध्यान दो, गरीबकी अपेक्षा धनीके लिये उदार बनना अनंतगुना अधिक कठिन हैं। अनेक देशोंमें अनेक लोगोंसे मेरी मुलाकात और जान-पहचान हुई है। अत्यंत उदार व्यक्ति सर्वदा अत्यंत गरीब थे। ज्यों ही तुम्हारी जेब भर जाती है त्योंही मानो किसी रोगसे, धनके प्रति हीन कोटिकी आसक्तिसे तुम ग्रस्त हो जाते हो। मैं विश्वास दिलाती हूं यह एक अभिशाप ही है।

अतएव, जब किसीके पास धन हो तब उसके लिये सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह उसे दे डाले। परंतु तुम्हें यह जानना चाहिये कि उसे बिना सोचे-समझे नहीं दे डालना चाहिये। तुम उस तरह धन मत दो जिस तरह एक दानी देता है; क्योंकि वह तरीका उसे केवल उसकी अपनी दयालुता, उदारता और महत्ताकी भावनासे भर देता है। तुम्हें यह कार्य सात्त्विक भावके साथ करना

चाहिये, यानी यह, देखो कि उसका सबसे उत्तम उपयोग होनेकी संभावना कहांपर है। इस तरह प्रत्येक व्यक्तिको अपनी निजी चेतनाके अंदर, जो उच्चतम चेतना उसे प्राप्त है उसमें खोजना होगा कि जो धन उसके पास है उसका सर्वोत्तम संभाव्य उपयोग क्या है।

सच बात तो यह है कि धनका केवल उतना ही मूल्य होता है जितना वह व्यवहारमें रहता है। प्रत्येक व्यक्तिके लिये धनका केवल तभी मूल्य है जब कि वह खर्च किया जाता है। मनुष्यने धनके बदले एक ऐसा पदार्थ चुननेका कष्ट उठाया है जो खराब नहीं होता, जैसे सोना और चांदी, परंतु फिर भी नैतिक दृष्टिकोणसे, जब वह कार्यमें व्यवहृत नहीं होता तब सड़ता है। आजकल धातुकी जगह कागजका व्यवहार किया जाता है, पर तुम यदि अपने कागजोंके पुलिंदेको अपनी दराजमें रख दो तो कुछ दिनोंके बाद तुम देखोगे कि तुम्हारी सारी पूंजी घिस गयी है, खा ली गयी है। कीड़े-मकोड़े जाली बुनकर तुम्हें दे देंगे और तुम्हारे बैंक उसे ग्रहण करना अस्वीकार कर देंगे!

ऐसे लोग और ऐसे धर्म हैं जो कहते हैं कि ईश्वर जिन लोगोंको प्यार करते हैं उन्हें गरीब बना देते हैं। मैं नहीं जानती कि यह बात सच है या नहीं, परंतु एक बात जो सच है वह यह है कि जब कोई धनी होकर ही जन्म लेता है या जब कोई धनवान् हो जाता है, हर हालतमें जब किसीके पास बहुत, अर्थात् भौतिक धन बहुत होता है तब निश्चय ही यह इस बातका चिह्न नहीं है कि भगवान्ने उसे अपनी करूणाके लिये चुना है; यदि वह भगवान्की ओर सीधे रास्तेसे, सच्चे मार्गसे चलना चाहता है तो उसे काफी मात्रामें प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता होती है।

धन-संपदा एक शक्ति है; मैं तुम्हें एक बार पहले बतला चुकी हूं कि यह प्रकृतिकी एक शक्ति है। इसे व्यवहारके चलते रहनेका एक साधन, एक गतिशील शक्ति होना चाहिये, ठीक जिस तरह कि बहनेवाला पानी एक गतिशील शक्ति होता है। यह एक ऐसी चीज है जो उत्पादन, संगठनमें सहायता करती है। यह व्यापारिक वस्तुओंके पूर्ण और मुक्त आवागमनके लिये एक सुविधाजनक साधन है — मूलतः यह एक साधन ही है। यह शक्ति उन्हीं लोगोंके हाथोंमें रहनी चाहिये जो यह जानते हैं कि इसका सर्वोत्तम संभाव्य उपयोग कैसे किया जा सकता है, दूसरे शब्दोंमें, ऐसे लोगोंके हाथोंमें रहनी चाहिये, जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूं, जिन्होंने अपने अंदरसे समस्त व्यक्तिगत कामना, समस्त आसक्तिको दूर कर दिया है, जो कुछ-कुछ इन दोनों चीजोंसे मुक्त हो चुके हैं। उसके साथ-साथ वह दूर-दृष्टि भी अवश्य जुड़ी होनी चाहिये जो पार्थिव जीवनकी आवश्यकताओंको समझनेके लिये पर्याप्त विस्तृत हो, वहां एक पूर्ण ज्ञान होना चाहिये जो उन आवश्यकताओंको संगठित करने और उन्हें पूरा करनेके लिये इस शक्तिका उपयोग करनेमें समर्थ हो।

इसके अतिरिक्त, यदि ऐसे लोगोंको एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना प्राप्त हो तो फिर वे पृथ्वीपर धीरे-धीरे एक ऐसी चीज निर्माण करनेमें इस शक्तिका व्यवहार कर सकते हैं जो भागवत शक्ति और भागवत करुणाको अभिव्यक्त करनेके योग्य होगी। ऐसा होने पर ही यह रुपये-पैसेकी, धन-संपत्तिकी शक्ति, अर्थकी यह शक्ति, जैसा कि मैंने कहा है, अभिशाप होनेके बदले, सबके मंगलके लिये एक आशीर्वाद बन जायेगी। कहावत है कि सबसे बुरे लोग ही सबसे अच्छे बनते हैं। मैं आशा करती हूं कि सबसे अच्छी चीज सबसे बुरी नहीं बनती, क्योंकि वह सचमुचमें दुःखदायी बात होगी।

महत्तम शक्ति जब बुरे रूपमें प्रयुक्त होती है तब वह एक बहुत बड़ी विपदा बन सकती है; वही शक्ति अच्छे रूपमें प्रयुक्त होनेपर मंगलकारी बन सकती है।

सब कुछ इस बातपर निर्भर है कि किसी चीजका क्या उपयोग किया जाता है। प्रत्येक वस्तुका संसारमें एक स्थान है, एक कार्य है, एक सच्चा उपयोग है। परंतु इस जगत्में, जैसा कि यह है, बहुत थोड़ी-सी चीजें ही अपने सच्चे उद्देश्यके लिये काममें लायी जाती हैं, बहुत थोड़ी-सी चीजें ही अपने समुचित स्थानमें हैं। संसार एक भयावह अस्तव्यस्तताकी अवस्थामें है। यही कारण है कि

यहां ये सब विपत्तियां, ये सब दुःख-कष्ट हैं। यदि प्रत्येक चीज अपने निजी स्थानमें हो, सब कुछ एक सुसमंजस स्थितिमें हो तो समूचा संसार जिस संकट और दुःख-क्लेशकी स्थितिमें है, उसमें पड़नेकी आवश्यकताके बिना प्रगति कर सकता है।

मनुष्यजातिकी सेवा

"महत्त्वाकांक्षाका अत्यधिक सामान्य रूप है मानवजातिकी सेवाका विचार। इस विचार या कार्यके प्रति समस्त आसक्ति वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षाका एक चिह्न है।"

आप इसे महत्त्वाकांक्षा क्यों कहती हैं?

तुम मानवजातिकी सेवा क्यों करना चाहते हो? तुम्हारा विचार क्या है? यह महत्त्वाकांक्षा है, मनुष्योंके बीच एक बड़ा आदमी बनना है। क्या तुम्हारे लिये यह समझना कठिन है?

भगवान् सर्वत्र हैं इसलिये यदि तुम मनुष्यजातिकी सेवा करते हो, तो तुम भगवान्की ही सेवा करते हो।

आश्चर्य! इसमें सबसे अधिक स्पष्ट बात यह है कि हम कह सकते हैं कि भगवान् मेरे अंदर हैं, यदि मैं अपनी सेवा करूं, तो मैं भगवान्की भी सेवा कर रहा हूं!

भगवान् सचमुच सब जगह विराजमान हैं। मनुष्यजातिकी सेवा करनेकी जरूरत नहीं है, तुम्हारे किये बिना भी भगवान् अपना कार्य भली प्रकार कर लेंगे।

मैं यह भली-भांति देख रही हूं कि तुम इस बातको नहीं समझे हो, किंतु, यदि तुम यह समझते हो कि भगवान् यहां हैं, तो मनुष्यजातिकी सेवा करनेकी चिंता तुम्हें क्यों है? मनुष्यजातिकी सेवा करनेके लिये तुम्हें भगवान्से अधिक अच्छी तरह जानना चाहिये कि उसके लिये क्या करनेकी आवश्यकता है। क्या तुम सेवा करना भगवान्से अधिक अच्छा जानते हो?

भगवान् सर्वत्र हैं, हां। पर वस्तुओंको देखनेसे वे दिव्य नहीं दिखायी देतीं। मुझे तो इसका एक ही समाधान सूझता है। यदि तुम मनुष्यजातिकी सहायता करना चाहते हो तो तुम अपनी संपूर्ण सत्ताको, यथासंभव पूर्ण रूपसे, भगवान्को समर्पित कर दो, बस यही समाधान है।

सब कहते हैं कि भगवान् सब वस्तुओंमें विराजमान हैं, तब वस्तुएं बदलती क्यों नहीं? क्योंकि भगवान्को प्रत्युत्तर नहीं मिलता, कोई भी वस्तु भगवान्को प्रत्युत्तर नहीं देती। उन्हें देखनेके लिये तुम्हें अपनी चेतनाके तलमें खोजना होगा। मनुष्यजातिकी सेवाके लिये तुम क्या करना चाहते हो? गरीबोंको खाना देना? तुम लाखोंको भोजन खिला सकते हो पर यह समाधान नहीं होगा, समस्या वैसी-की-वैसी ही रहेगी। अथवा मानवजातिको नयी और पहलेसे अच्छी अवस्थाएं प्रदान करना? भगवान् उसके अंदर विद्यमान हैं, फिर भी वह क्यों नहीं बदलती? भगवान् मनुष्यजातिकी अवस्थाओंको तुमसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं। तुम क्या हो? तुम केवल चेतना और जड़ पदार्थका एक छोटा-सा कण हो। इसीको तुम "मैं" कहते हो। यदि तुम मनुष्यजातिकी, संसार या विश्वकी सहायता करना चाहते हो तो तुम केवल एक बात कर सकते हो, इस छोटेसे कणको, पूर्णतया भगवान्को सौंप दो। जगत् दिव्य क्यों नहीं है? यह स्पष्ट है कि जगत्में व्यवस्था नहीं है। अतएव समस्याका केवल एक ही समाधान है: जो कुछ तुम्हारे पास है उसे दे दो, सब कुछ पूर्ण रूपसे भगवान्को सौंप दो, केवल अपने लिये ही नहीं, मनुष्यजातिके लिये, विश्वके लिये। समस्याका इससे अच्छा हल और कुछ नहीं है। तुम मनुष्यजातिकी किस प्रकारकी सहायता करना चाहते हो? तुम्हें यह तक तो पता नहीं कि उसे क्या चाहिये। और तुम्हें उस सत्ताका तो और भी कम पता है

जिसकी तुम सेवा करना चाहते हो। पहले अपने-आपको बदले बिना तुम किसी और वस्तुको कैसे बदल सकते हो?

जो भी हो, तुममें ऐसा करनेके लिये काफी शक्ति नहीं है। तुम किसी दूसरेकी सहायता कैसे कर सकते हो जब कि तुम्हारी अपनी चेतना उसकी चेतनासे उच्च नहीं है। कैसी बचकानी बात है यह! ऐसा तो केवल बच्चे कहते हैं कि मैं एक छात्रावास खोल रहा हूं, मैं एक शिशुशाला बनाना चाहता हूं, मैं गरीबोंको खाना दूंगा, इस ज्ञानका प्रचार करूंगा, उस धर्मको फैलाऊंगा। यह सब इसलिये होता है कि क्योंकि तुम समझते हो कि तुम दूसरोंसे अच्छे हो, तुम यह उनसे अधिक जानते हो कि उन्हें क्या होना चाहिये या क्या करना चाहिये। इसीको मानवजातिकी सेवा कहा जाता है। क्या तुम इसीको करते रहना चाहते हो? इससे कुछ अधिक बदला नहीं है। मानवजातिकी सहायताके लिये लोग अस्पताल या स्कूल नहीं खोलते।

फिर भी इससे कुछ तो सहायता पहुंची ही है। यदि हम सब स्कूल बंद कर दें.....

मुझे नहीं लगता कि इससे लोग अधिक सुखी हो गये हैं, या कोई बड़ा सुधार हो गया है। सबसे बढ़कर तो तुम्हारे अंदर यह भावना पैदा होती है कि "मैं भी कुछ हूं।" इसीको मैं महत्त्वाकांक्षा कहती हूं।

जो लोग स्कूलोंके लिये धन देनेको तैयार हैं उन्हींको यदि तुम भगवान्‌के कामके लिये धन देनेको कहो और उन्हें यह बताओ कि भगवान्‌ने इसी ढंगसे कार्य करनेका निश्चय किया है तो चाहे उन्हें यह विश्वास हो भी जाय कि यह सचमुचमें भगवान्‌का ही कार्य है तो भी वह धन देना अस्वीकार कर देंगे, क्योंकि लोग इसे लोक-कल्याणका कार्य नहीं मानते। तुम्हें यह संतोष नहीं होता कि तुमने कुछ भला कार्य किया है। इसीको तो मैं महत्त्वाकांक्षा कहती हूं। मैं ऐसे कई लोगोंका उदाहरण दे सकती हूं जो अस्पताल खोलनेके लिये लाखों रुपया दे सकते हैं, क्योंकि यह उन्हें इस बातका संतोष देता है कि उन्होंने कोई बहुत बड़ा श्रेष्ठ और उदार कार्य किया है। इस प्रकार व्यक्ति अपने यशकी वृद्धि करता है। इसीको मैं महत्त्वाकांक्षा कहती हूं।

मैं एक ऐसे व्यक्तिको जानती हूं जो मजाकमें कहा करता था, "भगवान्‌का राज्य जल्दी आनेवाला नहीं है, नहीं तो बिचारे परोपकारी जन क्या करेंगे? यदि मनुष्य जाति दुःख-दैन्यसे पीड़ित न हो तो परोपकारियोंके लिये तो कोई कार्य ही नहीं रह जायगा।" इन विचारोंसे बाहर निकलना कठिन है। फिर भी, यह सत्य है कि जगत्‌की जो अवस्था आज है उसमेंसे वह तबतक बाहर नहीं निकलेगा जबतक कि वह अपने-आपको भगवान्‌को नहीं सौंप देगा। तुम्हारे समस्त गुण — तुम उनकी अत्यधिक प्रशंसा कर सकते हो — तुम्हारी स्वयंकी, दूसरे शब्दोंमें तुम्हारे अहंकी तुष्टि ही करते हैं। वे तुम्हें भगवान्‌के प्रति सच्चे अर्थोंमें चेतन होनेमें सहायता नहीं पहुंचाते। संसारके उदारचित्त बुद्धिमान् लोगोंको बदलना ही सबसे अधिक कठिन है। वे अपने जीवनसे बिलकुल संतुष्ट हैं। एक गरीब आदमी जिसने अपने जीवनमें अनेकों भूलें की हैं तत्काल ही अपनी गलती मान लेता है और कहता है: "मैं कुछ नहीं हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता, जिस तरह तुम मेरा प्रयोग करना चाहो, वैसा करो।" यह व्यक्ति उस व्यक्तिसे जो ज्ञानवान् है, और साथ ही बुद्धि और गर्वसे भरपूर है अधिक अच्छा है और भगवान्‌के अधिक निकट है। वह जैसा है वैसा ही अपनेको देखता है।

एक परोपकारी और बुद्धिमान् व्यक्ति जिसने मनुष्यजातिके लिये काफी कार्य किया है स्वयंसे इतना तुष्ट है कि उसे अपने-आपको बदलनेका विचार ही नहीं आता। साधारणतया ऐसे लोग ही कहा करते हैं, "यदि मैं जगत्‌को बनाता तो मैं इसे ऐसा कभी बनाता, मैं इसे अधिक अच्छा जगत बनाता।" और वे उस चीजमें सुधार करनेकी चेष्टा करते हैं जिसे भगवान्‌ने उनके ख्यालमें गलत बनाया है। उनके दृष्टिकोणसे सब कुछ मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ है। इस वृत्तिको रखते हुए तुम कभी

भी भगवान्‌के नहीं हो सकते। तुम्हारे और उनके बीचमें सदा एक ऐसा अहं खड़ा रहेगा जो अपनी बौद्धिक श्रेष्ठताके प्रति सचेतन है। यह भगवान्‌के विषयमें अपने मत बनाता है, और समझता है कि वह कभी गलती नहीं कर सकता। कारण उसे यह विश्वास है कि यदि वह जगत्‌का निर्माण करता, तो जो मूर्खताएं भगवान्‌ने की हैं वे उन्हें कभी न करता। और इन सब बातोंका स्रोत है अभिमान, थोथा घमंड और स्वपर्याप्तता। जो लोग मनुष्यजातिकी सेवा करना चाहते हैं उन्हींमें यह बात पायी जाती है।

ये लोग मानवजातिको क्या देंगे? कुछ भी नहीं। चाहे वे अपने रक्तकी एक-एक बूंद, अपने मस्तिष्कके सब विचार, अपने जेबका सब पैसा भी दे दें तो भी इससे व्यक्तिमें कोई परिवर्तन नहीं होगा जो सनातनतामें केवल एक क्षणके समान है। और वे कल्पना करते हैं कि वे सनातनताकी सेवा कर सकते हैं! मनुष्यसे उच्च सत्ताओंने जन्म लिया है, वे कुछ प्रकाश भी लायी हैं और उन्होंने अपने प्राणतक दे दिये हैं। पर इस सबसे भी वस्तुओंमें अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। तब एक मनुष्य, एक क्षुद्रातिक्षुद्र सत्ता क्या सहायता कर सकती है? यह केवल अभिमान है। यह तर्क किया जाता है कि "यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी ओरसे अधिक-से-अधिक अच्छा करे तो सब कार्य ठीक प्रकारसे हो जायेगा।" मैं इस बातमें विश्वास नहीं रखती और यह असंभव है। एक प्रकारसे विश्वमें सभी अधिक-से-अधिक अच्छा करते हैं। किंतु इस 'अधिक से-अधिक अच्छे'का कोई मूल्य नहीं है। जबतक पूरी वस्तु ही न बदल जाये, कुछ भी नहीं बदलेगा। इस 'अधिक-से-अधिक अच्छे'को ही बदलना होगा। अज्ञानके स्थानपर ज्ञान, सामर्थ्य और चेतनाको जन्म लेना होगा, अन्यथा तुम उसी एक मूर्खताके चारों ओर चक्कर काटते रहोगे।

तुम लाखों अस्पताल खोल सकते हो, यह बात लोगोंको बीमार पड़नेसे नहीं रोकेगी। उल्टे उन्हें बीमार होनेके लिये सुविधा और प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकारके विचारोंसे लोग ओत-प्रोत हो गये हैं। इससे तुम्हारी चेतनाको थोड़ी तसल्ली अवश्य मिलती है: "मैं संसारमें आया हूं, मुझे दूसरोंकी सहायता करनी चाहिये।" तुम अपने-आपसे कहते हो: "मैं कितना निःस्वार्थी हूं! मैं मनुष्यजातिकी सहायता करूंगा।" यह सब अहंभावके सिवाय और कुछ नहीं है।

वस्तुतः मानवजातिका सबसे प्रधान भाग जो तुमसे संबंध रखता है वह तुम स्वयं हो। तुम दुःख का नाश करना चाहते हो। किंतु जबतक तुम दुःख सहनेकी सामर्थ्यको प्रसन्न रहनेके विश्वासमें परिणत नहीं कर सकते, तबतक संसारमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। वह सदा वैसा ही रहेगा, केवल तुम चक्कर काटते रहोगे —— एक सभ्यताके बाद दूसरी सभ्यता आती है, एक विपत्तिके बाद दूसरी विपत्तिका आगमन होता है, किंतु वस्तुएं नहीं बदलतीं। कारण, जिस एक चीजका वहां अभाव है, जो वहां नहीं है, वह है चेतना। बस बात इतनी है।

किंतु यह मेरा मत है। इसे मैं तुम्हारे सामने रखती हूं, तुम देखो, इसका तुम क्या उपयोग कर सकते हो। यदि तुम अस्पताल और स्कूल आदि बनाना चाहते हो तो बना सकते हो। यदि इससे तुम्हें प्रसन्नता होती है तो अच्छी बात है। पर इसका कोई अधिक महत्त्व नहीं है। जब मैंने "मोस्यो वेंसां" नामक फिल्म देखी तो मुझे वह बहुत पसंद आयी। उसने देखा कि जब वह दस आदमियोंको खाना खिलाता तो एक हजार और आ जाते। यही बात कौलबर्टने उससे कही थी; "तुम गरीबोंको खिलाकर मानो और गरीब पैदा कर रहे हो।" और यह बात बिलकुल गलत नहीं है। फिर भी यदि स्कूल खोलना, शिक्षा देना, बीमारोंकी सेवा करना, अस्पताल खोलना ही तुम्हारा निर्दिष्ट कार्य है तो ठीक है, वैसा ही करो। किंतु इसे अधिक महत्त्व तुम्हें नहीं देना चाहिये। यह एक बढ़ा-चढ़ा दिखावेका काम है जिसे तुम अपनी प्रसन्नताके लिये करते हो। यह कहो, "मैं इसे इसलिये करता हूं क्योंकि यह मुझे प्रसन्नता प्रदान करता है।" किंतु तब योगकी बात मत करो।

यहां तुम योग नहीं कर रहे। तुम सोचते हो कि तुम बड़े महान् कार्यमें व्यस्त हो। बस यही बात है, यह केवल व्यक्तिगत संतोषकी बात है।

अच्छा-बुरा

सब कुछ उस ढंगपर निर्भर करता है जिससे तुम वस्तुओंको देखते हो। एक दृष्टिकोणसे देखा जाये तो संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो पूर्णतया अनुपयोगी हो। केवल जो वस्तुएं एक समय सहनीय या ग्राह्य थीं वे दूसरे समय वैसी नहीं होतीं। और जब वे ग्राह्य नहीं रहतीं, लोग उन्हें बुरा कहना आरंभ कर देते हैं, क्योंकि तब उनमें इन्हें दूर हटा देनेकी इच्छा जाग उठती है। किंतु मैं सोचती हूं कि विश्वके इतिहासमें बल्कि पृथ्वीके इतिहासमें —— इस समस्याको हम अपने छोटेसे ग्रहतक भी सीमित कर सकते हैं —— जो भी वस्तुएं अपना अस्तित्व रखती हैं उन सबकी एक विशेष समयपर अपनी-अपनी आवश्यकता और महत्त्व होता है। जितना तुम आगे बढ़ते हो उतना ही ये पीछे छूट जाती हैं या दूसरी वस्तुएं जो भूतकालकी न होकर भविष्यकी होती हैं इनका स्थान ले लेती हैं। तब उन चीजोंको जिनके अस्तित्वका अब कोई कारण नहीं रह जाता तुम 'बुरा' कहने लगते हो। तुम अब अपने अंदर उन्हें बाहर फेंक देनेकी, उस अभ्यासको तोड़ देनेकी कुंजी ढूंढ़नेकी कोशिश करते हो। किंतु शायद किसी विशेष समयपर वे बुरी नहीं थीं, कुछ अन्य वस्तुएं बुरी थीं।

मनुष्यके अंदर रहने-सहनेके, अनुभव करनेके, कार्य करनेके अपने ढंग होते हैं जिन्हें वह बहुत लंबे समयतक सहता रहता है, जो उसे कष्ट नहीं देते, व्यर्थ और बुरे नहीं प्रतीत होते; और न ही वह उन्हें छोड़ना चाहता है। तब अचानक एक दिन —— पर तुम यह नहीं जानते कि यह क्यों और कैसे हुआ —— तुम्हारा देखनेका ढंग बदल जाता है। और तुम उनकी ओर देखकर कहते हो, "यह कैसे ? क्या यह चीज मेरे अंदर है, वास्तवमें मेरे अंदर है ? यह असहनीय है, मैं इसे नहीं चाहता।" और अचानक ही वह तुम्हें बुरी लगने लगती है, क्योंकि अब उसे त्याग देनेका समय आ गया है, क्योंकि वह तुम्हारी उस वृत्तिसे मेल नहीं खाती जिसे तुमने अब अपना लिया है, न ही वह तुम्हारी उस प्रगतिसे मेल खाती है जो तुमने संसार-यात्रामें आगे बढ़ते हुए ली है। इन वस्तुओंको अब और जगह होना चाहिये, ये अपने स्थानपर नहीं हैं, इसीलिये तुम्हें बुरी लगती हैं।

किंतु शायद ये ही वस्तुएं जो तुम्हें बुरी प्रतीत होती हैं दूसरोंको जो जरा सीढ़ीके निचले डंडेपर हैं बहुत अच्छी लगती हैं।

तुमसे अधिक बुरा, अधिक अंधकारमय, अधिक अचेतन, अधिक अज्ञानी सदा ही कोई न कोई होता है। जो अवस्था तुम्हें असहनीय प्रतीत होती है, जिसे तुम अब नहीं रख सकते और तुम्हारे लिये जिसे अब चले जाना चाहिये, शायद उनके लिये वही प्रकाशयुक्त प्रतीत होगी। तुम्हें यह कहनेका क्या अधिकार है "यह चीज बुरी है ?" तुम केवल यह कह सकते हो, "मुझे अब इसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह मेरी सत्ताके वर्तमान ढंगसे मेल नहीं खाती, मैं एक ऐसे स्थानपर जाना चाहता हूं जहां इन वस्तुओंके लिये कोई स्थान नहीं है, वहां ये अपने उपयुक्त स्थानपर नहीं हैं। इन्हें स्थान पानेके लिये कहीं और जाना चाहिये।" किंतु तुम इनके विषयमें कोई निर्णय नहीं दे सकते। यह कहना असंभव है कि "यह वस्तु बुरी है।" अधिक-से-अधिक तुम इतना ही कह सकते हो, यह मेरे लिये बुरी है, मेरे लिये यह अपने स्थानपर नहीं है, इसे अब जाना चाहिये।" बस इतना ही, और तुम उसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाओ।

इससे प्रगति अधिक आसान हो जाती है, निराश होकर बैठ जाने तथा अपनी वर्तमान अवस्थाके

लिये अपने दुःखों, दोषों और असंभावनाओंके लिये रोने-धोनेके स्थानपर यदि तुम इस प्रकार सोचोगे और अनुभव करोगे तो तुम्हारी प्रगति वास्तवमें अधिक सरल हो जायेगी। तुम कहो, " ये वस्तुएं केवल यहां अपने स्थानपर नहीं हैं, यदि वे दूसरी जगहपर चली जायें, जहां इनका स्थान है तो वहां इनका स्वागत ही होगा। मैं आगे बढ़ रहा हूं, मैं ऊपरकी ओर जा रहा हूं, मैं एक अधिक विशुद्ध, अधिक अच्छे, अधिक पूर्ण प्रकाशकी ओर जा रहा हूं, उस अवस्थामें इन सब वस्तुओंको जो अंधकारसे प्यार करती हैं चले जाना चाहिये।" बस बात केवल इतनी ही है।

ऐसे प्रत्येक समय जब तुम अपने अंदर कोई ऐसी वस्तु देखो जो सचमुच बहुत कुरूप है, तो इसका मतलब यह होगा कि तुमने प्रगति की है। तब उस समय रोने-धोने और निराश होनेके स्थानपर तुम्हें प्रसन्न होकर कहना चाहिये, "सब ठीक है, मैं आगे बढ़ रहा हूं।"

श्रीमाताजी

स्वयं श्रीअरविन्दने अपने बारेमें कहा है कि उनका जीवन ऊपरी तलपर नहीं रहा है और केवल ऊपरी घटनाओंकी गिनती कर लेनेसे उनको जान सकना असंभव है। उनका सच्चा जीवन-चरित्र तो लिखा ही नहीं जा सकता। कौन है जो उनकी अतल गहराइयोंमें पहुंच सका हो, कौन है जो वहांके रहस्य लाकर हमारे सामने रख सके। अगर उन्हें निकालकर हमारे सामने रख भी दिया जाये तो शायद अनभ्यस्त आंखें उन्हें देखकर भी पहचान न पाएं। जो बात श्रीअरविन्दके बारेमें कही गयी है वह माताजीके बारेमें और भी अधिक लागू होती है। श्रीअरविन्द अपने राजनीतिक कामकी वजहसे कुछ तो सामने आये थे परंतु श्रीमाताजी तो सदा परदेकें पीछे ही रही हैं, उनके बारेमें कुछ कहना ठीक ऐसा ही होगा जैसे समुद्रके किनारे बैठकर घोंघे चुनते हुए समुद्रकी गहराइयोंकी बात करना। अस्तु, अपनी ओरसे कुछ कहनेके पहले हम देखें श्रीअरविन्द क्या कहते हैं।

श्रीअरविन्दने एक प्रश्नके उत्तरमें लिखा है — केवल एक ही दिव्य-शक्ति है जो विश्वमें भी कार्य करती है और व्यक्तियोंमें भी और इसके अतिरिक्त उसमें भी जो व्यक्ति और सृष्टिसे परे हैं। श्रीमाताजी इन सबकी प्रतिनिधि हैं, पर वह यहां शरीरमें रहकर कुछ ऐसी चीज उतारनेके लिये कार्य कर रही हैं जो अभीतक इस स्थूल जगत्में इस तरह अभिव्यक्त नहीं हुई है कि यहांके जीवनको रूपांतरित कर सके — अतः तुम्हें उनको इस उद्देश्यसे यहां काम करनेवाली शक्ति समझना चाहिये। वह अपने शरीरमें ही नहीं अपनी संपूर्ण चेतनामें भगवान्के सभी स्वरूपोंके साथ भी अपना तादात्म्य बनाये हुए हैं।

श्रीअरविन्द एक और पत्रके उत्तरमें कहते हैं — श्रीमां अतिमानसको नीचे लानेके लिये ही आती हैं और अतिमानसका अवतरण होनेपर ही उनका पूर्ण रूपसे यहांपर अभिव्यक्त होना संभव है.... उनका मूर्तिमान होना पृथ्वीकी चेतनाके लिये अपने अंदर अतिमानसको ग्रहण करने तथा उसे संभव बनानेके लिये जो रूपांतर जरूरी है उसे प्राप्त करनेका एक सुयोग है।

अब प्रश्न उठता है कि हमारा श्रीमाताजीके साथ क्या संबंध है, इस संबंधका उद्देश्य क्या है और यह हमें किधर ले जायेगा। चलिये यहां भी श्रीअरविन्दसे ही पूछा जाये। वे कहते हैं: — माताजी तथा उन्हें स्वीकार करनेवाले लोगोंके बीच जो संबंध है वह चैत्य और आध्यात्मिक मातृत्वका संबंध है। संसारिक मांका अपने बच्चेके साथ जो संबंध होता है, यह उससे बहुत अधिक महान् है। मानव मातृत्व जो कुछ दे सकता है, यह संबंध वह सब देता है पर देता है बहुत ही ऊंचे तरीकेसे और केवल उतना ही नहीं उससे अधिक, जिसकी कल्पना करना भी हमारे लिये असंभव है।

श्रीअरविंदने हमें बताया है कि माताजी हमारी कठिनाइयोंके समय हमारी रक्षा करती हैं। हमें ऊपर चढ़ानेके लिये अपने-आप नीचे उतरती हैं, हमारे अंदर छाये हुए अंधकारको भेदकर उसमें ज्योतिके लिये मंदिर बनाती हैं। अगर हम श्रीअरविंदके योगको अपनाना चाहें तो सबसे पहला कदम होगा माताजीके प्रति आत्मसमर्पण। यह समर्पण एक दिनमें पूरी हो जानेवाली क्रिया नहीं है। इसके लिये साधकको पल-पल जागरूक रहना पड़ता है। अगर हम माताजीके प्रति खुले रहें तो उनकी दिव्य शक्ति हमारे अंदर अपना काम कर सकती है और हमें अपने लक्ष्यके नजदीक ला सकती है।

यहां एक चीजके बारेमें सावधान रहना जरूरी है। समर्पणका संकल्प या उसके लिये इच्छामात्रसे काम नहीं चल सकता। आवश्यकता है पूर्णरूपसे समर्पण करनेकी। इस बातका कोई विशेष महत्त्व नहीं है कि इस क्रियामें कितनी कठिनाइयां आती हैं या कितना समय लगता है। एक बार इस ओर बढ़नेके लिये दृढ़ निश्चय कर लेना और निरंतर प्रयत्नशील रहना जरूरी है। समर्पणका भाव केवल बड़े-बड़े कामोंमें ही नहीं, तुच्छ और नगण्य गिनी जानेवाली क्रियाओंमें भी रहना चाहिये। यह भाव बना रहे तो हम बहुतसे बुरे कामोंसे, बहुत-सी मूर्खताओंसे और जीवन-पथपर आनेवाले बहुतसे गड्ढोंसे बच जाते हैं। जैसे-जैसे हम माताजीकी ओर बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे हमारी चेतना ऊंची उठती जायगी। श्रीअरविंदने कहा है — हमेशा इस तरहसे व्यवहार करो मानो माताजी तुम्हें देख रहीं हैं। वास्तवमें वे सदा उपस्थित हैं।

—रवींद्र

महिषासुर-वध

पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें पूरे सौ वर्षोंतक घोर संग्राम हुआ था। उसमें असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओंके नायक इन्द्र थे। उस युद्धमें देवताओंकी सेना महाबली असुरोंसे परास्त हो गयी। संपूर्ण देवताओंको जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा। तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माको आगे करके उस स्थानपर गये, जहां भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे। देवताओंने महिषासुरके पराक्रम तथा अपनी पराजयका यथावत् वृत्तान्त उन दोनों देवेश्वरोंको विस्तारपूर्वक कह सुनाया। वे बोले — "भगवन्! महिषासुर सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण तथा अन्य देवताओंके भी अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बना बैठा है। उस दुरात्मा महिषने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है। अब वे मनुष्योंकी भांति पृथ्वीपर विचरते हैं। दैत्योंकी यह सारी करतूत हमने आप लोगोंको कह सुनायी। अब हम आपकी ही शरणमें आये हैं। उसके वधका कोई उपाय सोचिये।

इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर भगवान् विष्णु और शिवने दैत्योंपर बड़ा क्रोध किया। उनकी भौंहें तन गयीं और मुंह टेढ़ा हो गया। तब अत्यंत कोपमें भरे हुए चक्रपाणि श्रीविष्णुके मुखसे एक महान् तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बड़ा भारी तेज निकला। वह सब मिलकर एक हो गया। महान् तेजका वह पुंज जाज्वल्यमान पर्वत-सा जान पड़ा। देवताओंने देखा, वहां उसकी ज्वालाएं संपूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो रही थीं। संपूर्ण देवताओंके शरीरसे प्रकट हुए उस तेजकी कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होनेपर वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया और अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंमें व्याप्त जान पड़ा। भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उस देवीका मुख प्रकट हुआ। यमराजके तेजसे उसके सिरमें बाल निकल आये। श्रीविष्णुभगवान्के तेजसे उसकी भुजाएं उत्पन्न हुईं। चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तनोंका और इन्द्रके तेजसे मध्यभाग (कटिप्रदेश) का प्रादुर्भाव हुआ। वरुणके तेजसे जंघा और पिंडली तथा पृथ्वीके तेजसे नितम्बभाग प्रकट हुआ। ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण और सूर्यके तेजसे उनकी अंगुलियां हुईं। वसुओंके तेजसे हाथोंकी अंगुलियां और कुबेरके तेजसे नासिका प्रकट हुई। उस देवीके दांत प्रजापतिके तेजसे और तीनों नेत्र अग्निके तेजसे प्रकट हुए थे। उसकी भौंहें संध्याके और कान वायुके तेजसे उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके तेजसे भी उस कल्याणमयी देवीका आविर्भाव हुआ।

तदनन्तर समस्त देवताओंके तेजपुंजसे प्रकट हुई देवीको देखकर महिषासुरके सताये हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए। पिनाकधारी भगवान् शंकरने अपने शूलसे एक शूल निकालकर उन्हें दिया; फिर भगवान् विष्णुने भी अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके भगवतीको अर्पण किया। वरुणने शंख भेंट किया, अग्निने उन्हें शक्ति दी और वायुने धनुष तथा बाणसे भरे हुए दो तरकस प्रदान किये। सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथीसे उतारकर एक घंटा भी प्रदान किया। यमराजने कालदंडसे दंड, वरुणने पाश, प्रजापतिने स्फटिकाक्षकी माला तथा ब्रह्माजीने कमंडलु भेंट किया। सूर्यने देवीके समस्त रोमकूपोंमें अपनी किरणोंका तेज भर दिया। कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी। क्षीरसमुद्रने उज्ज्वल हार तथा कभी जीर्ण न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये। साथ ही उन्होंने दिव्य चूडामणि, दो कुंडल, कड़े, उज्ज्वल अर्धचन्द्र, सब बाहुओंके लिये केयूर, दोनों चरणोंके लिये निर्मल नूपुर, गलेकी सुन्दर हंसली और सब अंगुलियोंमें पहननेके लिये रत्नोंकी बनी अंगूठियां भी दीं। विश्वकर्माने उन्हें अत्यंत निर्मल फरसा भेंट किया। साथ ही अनेक प्रकारके अस्त्र और अभेद्य कवच दिये; इनके सिवा मस्तक और वक्षःस्थलपर धारण करनेके लिये कभी न कुम्हलानेवाले कमलोंकी मालाएं दीं। जलधिने उन्हें सुन्दर कमलका फूल भेंट किया। हिमालयने सवारीके लिये सिंह तथा भांति-भांतिके रत्न समर्पित किये। धनाध्यक्ष कुबेरने मधुसे भरा पानपात्र दिया तथा संपूर्ण नागोंके राजा शेषने, जो इस पृथ्वीको धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियोंसे विभूषित नागहार भेंट दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओंने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवीका सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहासपूर्वक उच्च स्वरसे गर्जना की। उनके भयंकर नादसे संपूर्ण आकाश गूंज उठा। देवीका वह अत्यंत उच्च स्वरसे किया हुआ सिंहनाद कहीं समा न सका, आकाश उसके सामने लघु प्रतीत होने लगा। उससे बड़े जोरकी प्रतिध्वनि हुई, जिससे संपूर्ण विश्वमें हलचल मच गयी और समुद्र कांप उठे। पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे। उस समय देवताओंने अत्यंत प्रन्नसताके साथ सिंहवाहिनी भवानीसे कहा — "देवि ! तुम्हारी जय हो'। यह कह करके महर्षियोंने भक्ति-भावसे विनम्र होकर उनका स्तवन किया।

संपूर्ण त्रिलोकीको क्षोभग्रस्त देख दैत्यगण अपनी समस्त सेनाको कवच आदिसे सुसज्जित कर, हाथोंमें हथियार ले सहसा उठकर खड़े हो गये। उस समय महिषासुरने बड़े क्रोधमें आकर कहा — 'आः ! यह क्या हो रहा है।' फिर वह संपूर्ण असुरोंसे घिरकर उस सिंहनादकी ओर लक्ष्य करके दौड़ा

और आगे पहुंचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थीं। उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दबी जा रही थी। माथेके मुकुटसे आकाशमें रेखा-सी खिंच रही थी तथा वे अपने धनुषकी टंकारसे सातों पातलोंको क्षुब्ध किये देती थीं। देवी अपनी हजारों भुजओंसे संपूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके खड़ी थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्योंका युद्ध छिड़ गया। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे संपूर्ण दिशाएं उद्‌भातिस होने लगीं। चिक्षुर नामक महान् असुर महिषासुरका सेनानायक था। वह देवीके साथ युद्ध करने लगा। साठ हजार रथियोंके साथ आकर उदग्र नामक महादैत्यने लोहा लिया। एक करोड़ रथियोंको साथ लेकर महाहनु नामक दैत्य युद्ध करने लगा। जिसके रोएं तलवारके समान तीखे थे, वह असिलोमा नामक महादैत्य पांच करोड़ रथी सैनिकोंसहित युद्धमें आ डटा। साठ लाख रथियोंसे घिरा हुआ बाष्कल नामक दैत्य भी उस युद्धभूमिमें लड़ने लगा। परिवारित नामक राक्षस हाथीसवार और घुड़सवारोंके अनेक दलों तथा एक करोड़ रथियोंकी सेना लेकर युद्ध करने लगा। बिडाल नामक दैत्य पांच अरब रथियोंसे घिरकर लोहा लेने लगा। इनके अतिरिक्त और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेना साथ लेकर वहां देवीके साथ युद्ध करने लगे। स्वयं महिषासुर उस रणभूमिमें कोटि-कोटि सहस्र रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनासे घिरा हुआ खड़ा था। वे दैत्य देवीके साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खड्‌ग, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे। कुछ दैत्योंने उनपर शक्तिका प्रहार किया, कुछ लोगोंने पाश फेंके तथा कुछ दूसरे दैत्योंने खड्‌ग प्रहार करके देवीको मार डालनेका उद्योग किया। देवीने भी क्रोधमें भरकर खेल-खेलमें ही अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करके दैत्योंके वे समस्त अस्त्र-शस्त्र काट डाले उनके मुखपर परिश्रम या थकानका रंचमात्र भी चिह्न नहीं था। देवता और ऋषि उनकी स्तुति करते थे और वे भगवती परमेश्वरी दैत्योंके शरीरोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करती रहीं।

देवीका वाहन सिंह भी क्रोधमें भरकर गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें इस प्रकार विचरने लगा, मानो वनोंमें दावानल फैल रहा हो। रणभूमिमें दैत्योंके साथ युद्ध करती हुई अम्बिकादेवीने जितने निःश्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ों, हजारों गणोंके रूपमें प्रकट हो गये और परशु, भिन्दिपाल, खड्‌ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रों द्वारा असुरोंका सामना करने लगे। देवीकी शक्तिसे बढ़े हुए वे गण असुरोंका नाश करते हुए नगाड़ा और शंख आदि बाजे बजाने लगे। उस संग्राम-महोत्सवमें कितने ही गण मृदंग बजा रहे थे। तदनन्तर देवीने त्रिशूलसे, गदासे, शक्तिकी वर्षासे और खड्‌ग आदिसे सैकड़ों महादैत्योंका संहार कर डाला। कितनोंको घंटेके भयंकर नादसे मूर्च्छित करके मार गिराया। बहुतेरे दैत्योंको पाशसे बांधकर धरतीपर घसीटा। कितने ही दैत्य उनकी तीखी तलवारकी मारसे दो-दो-टुकड़े हो गये। कितने ही गदाकी चोटसे घायल हो धरतीपर सो गये। कितने ही मूसलकी मारसे अत्यंत आहत होकर रक्त वमन करने लगे। कुछ दैत्य शूलसे छाती फट जानेके कारण पृथ्वीपर ढेर हो गये। उस रणाङ्गणमें बाणसमूहोंकी वृष्टिसे कितने ही असुरोंकी कमर टूट गयी। बाजकी तरह झपटनेवाले देवपीडक दैत्यगण अपने प्राणोंसे हाथ धोने लगे। किन्हींकी बांहें छिन्न-भिन्न हो गयीं। कितनोंकी गर्दनें कट गयीं। कितने ही दैत्योंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। कुछ लोगोंके शरीर मध्यभागमें ही विदीर्ण हो गये। कितने ही महादैत्य जांघें कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंको ही देवीने एक बांह, एक पैर और एक नेत्रवाले करके दो टुकड़ोंमें चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जानेपर भी गिरकर फिर उठ जाते और केवल धड़के ही रूपमें अच्छे-अच्छे हथियार हाथमें ले देवीके साथ युद्ध करने लगते थे। दूसरे कबंध युद्धके बाजोंकी लयपर नाचते थे। कितने ही बिना सिरके धड़ हाथोंमें खड्‌ग, शक्ति और ऋष्टि लिये दौड़ते थे तथा दूसरे-दूसरे महादैत्य 'ठहरो! ठहरो!!' कहते हुए देवीको युद्धके लिये ललकारते थे। जहां वह घोर संग्राम हुआ था,

वहांकी धरती देवीके गिराये हुए रथ, हाथी, घोड़े और असुरोंकी लाशोंसे ऐसी पट गयी थी कि वहां चलना-फिरना असंभव हो गया था। दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरोंसे इतनी अधिक मात्रामें रक्तपात हुआ था कि थोड़ी ही देरमें वहां खूनकी बड़ी-बड़ी नदियां बहने लगीं। जगदम्बाने असुरोंकी विशाल सेनाको क्षणभरमें नष्ट कर दिया — ठीक उसी तरह, जैसे तृण और काठके भारी ढेरको आग कुछ ही क्षणोंमें भस्म कर देती है।और वह सिंह भी गर्दनके बालोंको हिला-हिलाकर जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ दैत्योंके शरीरोंसे मानो उनके प्राण चुने लेता था। वहां देवीके गणोंने भी उन महादैत्योंके साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे आकाशमें खड़े हुए देवतागण बहुत संतुष्ट हुए और फूल बरसाने लगे।

जगदम्बाके श्रीअंगोंकी कांति उदयकालके सहस्रों सूर्योंके समान है। वे लाल रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। उनके गलेमें मुंडमाला शोभा पा रही है। दोनों स्तनोंपर रक्त चंदनका लेप लगा है। वे अपने कर-कमलोंमें जपमालिका, विद्या और अभय तथा वरनामक मुद्राएं धारण किये हुए हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखारविंदकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके मस्तकपर चंद्रमाके साथ ही रत्नमय मुकुट बंधा है तथा वे कमलके आसनपर विराजमान हैं। ऐसी देवीको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूं।

ऋषि कहते हैं — दैत्योंकी सेनाको इस प्रकार तहस-नहस होते देख महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोधमें भरकर अम्बिका देवीसे युद्ध करनेको आगे बढ़ा। वह असुर रणभूमिमें देवीके ऊपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरुगिरिके शिखरपर पानीकी धारा बरसा रहा हो। तब देवीने अपने बाणोंसे उसके बाण-समूहको अनायास ही काटकर उसके घोड़ों और सारथिको भी मार डाला। साथ ही उसके धनुष तथा अत्यंत ऊंची ध्वजाको भी तत्काल काट गिराया। धनुष कट जानेपर उसके अंगोंको अपने बाणोंसे बींध डाला। धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर वह असुर ढाल और तलवार लेकर देवीकी ओर दौड़ा। उसने तीखी धारवाली तवालरसे सिंहके मस्तकपर चोट करके देवीकी भी बांयीं भुजापर बड़े वेगसे प्रहार किया। राजन्! देवीकी बांहपर पहुंचते ही वह तलवार टूट गयी, फिर तो क्रोधसे लाल आंखें करके उस राक्षसने शूलहाथमें लिया और उसे उस महादैत्यने भगवती भद्रकालीके ऊपर चलाया। वह शूल आकाशसे गिरते हुए सूर्यमंडलकी भांति अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा। उस शूलको अपनी ओर आते देख देवीने भी शूलका प्रहार किया। उससे राक्षसके शूलके सैंकड़ों टुकड़े हो गये, साथ ही महादैत्य चिक्षुर की भी धज्जियां उड़ गयीं। वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा।

महषासुरके सेनापति उस महापराक्रमी चिक्षुरके मारे जानेपर देवताओंको पीड़ा देनेवाला चामर हाथीपर चढ़कर आया। उसने भी देवीके ऊपर शक्तिका प्रहार किया, किंतु जगदम्बाने उसे अपने हुंकारसे ही आहत एवं निष्प्रभ करके तत्काल पृथ्वीपर गिरा दिया। शक्ति टूटकर गिरी हुई देख चामरको बड़ा क्रोध हुआ। अब उसने शूल चलाया, किंतु देवीने उसे भी अपने बाणोंद्वारा काट डाला। इतनेमें ही देवीका सिंह उछलकर हाथीके मस्तकपर चढ़ बैठा और दैत्योंके साथ खूब जोर लगाकर बाहु-युद्ध करने लगा। वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथीसे पृथ्वीपर आ गये और अत्यंत क्रोधमें भरकर एक-दूसरेपर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए लड़ने लगे। तदनन्तर सिंह बड़े वेगसे आकाशकीओर उछला और उधरसे गिरते समय उसने पंजोंकी मारसे चामरका सिर धड़से अलग कर दिया। इसी प्रकार उदग्र भी शिला और वृक्ष आदिकी मार खाकर रणभूमिमें देवीके हाथसे मारा गयातथा कराल भी दांतों, मुक्कों और थप्पड़ोंकी चोटसे धराशायी हो गया। क्रोधमें भरी हुई देवीने गदाकी चोटसे उद्धत का कचूमर निकाल डाला। भिन्दिपालसे वाष्कलको तथा बाणोंसे ताम्र और अंधकको मौतके घाट उतार दिया। तीन नेत्रोंवाली परमेश्वरीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्यतथा महाहनु नामक दैत्योंको

मार डाला। तलवारकी चोटसे बिडालके मस्तकको धड़से काट गिराया। दुर्धर और दुर्मुख —इन दोनोंको भी अपने बाणोंसे यमलोक भेज दिया।

इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होता देख महिषासुरने भसेका रूप धारण करके देवीके गणोंको त्रास देना आरंभ किया। किन्हींको थूथुनसे मारकर, किन्हींके ऊपर खुरोंका प्रहार करके, किन्हीं-किन्हींको पूंछसे चोट पहुंचाकर, कुछको सींगोंसे विदीर्ण करके, कुछ गणोंको वेगसे, किन्हींको सिंहनादसे, कुछ को चक्कर देकर और कितनोंको निःश्वास वायुके झोंकेसे धराशायी कर दिया। इस प्रकार गणोंकी सेनाको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेके लिये झपटा। इससे जगदम्बाको बड़ा क्रोध आया। उधर महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधमें भरकर धरतीको खुरोंसे खोदने लगा तथा अपने सींगोंसे ऊंचे-ऊंचे पर्वतोंको उठाकर फेंकने और गर्जने लगा। उसके वेगसे चक्कर देनेके कारण पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। उसकी पूंछसे टकराकर समुद्र सब ओरसे धरतीको डुबोने लगा। हिलते हुए सींगोंके आघातसे विदीर्ण होकर बादलोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके श्वासकी प्रचंड वायुके वेगसे उड़े हुए सैंकड़ों पर्वत आकाशसे गिरने लगे। इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्यको अपनी ओर आते देख चण्डिकाने उसका वध करनेके लिये महान् क्रोध किया। उन्होंने पाश फेंककर उस महान् असुरको बांध लिया। उस महासंग्राममें बंध जानेपर उसने भसेका रूप त्याग दिया और तत्काल सिंहके रूपमें प्रकट हो गया। उस अवस्थामें जगदम्बा ज्यों ही उसका मस्तक काटनेको उद्यत हुई, त्यों ही वह खड्गधारी पुरुषके रूपमें दिखायी देने लगा। तब देवीने तुरंत ही बाणोंकी वर्षा करके ढाल और तलवारके साथ उस पुरुषको भी बींध डाला। इतनेमें ही वह महान् गजराजके रूपमें परिणत हो गया। तथा अपनी सूंडसे देवीके विशाल सिंहको खींचते हुए गर्जने लगा। खींचते समय देवीने तलवारसे उसकी सूंड काट डाली। तब उस महादैत्यने पुनः भसेका शरीर धारण कर लिया। और पहलेकी भांति चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको व्याकुल करने लगा। तब क्रोधमें भरी हुई जगन्माता चण्डिका बारंबार उत्तम मधुका पान करने और लाल आंखें करके हंसने लगीं। उधर वह बल और पराक्रमके मदसे उन्मत्त हुआ राक्षस गर्जने लगा और अपने सींगोंसे चण्डीके ऊपर पर्वतोंको फेंकने लगा। उस समय देवी अपने बाणोंके समूहोंसे उसके फेंके हुए पर्वतोंको चूर्णकरती हुई बोलीं। बोलते समय उनका मुख मधुके मदसे लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी।

देवीने कहा —ओ मूढ़! मैं जबतक मधु पीती हूं, तबतक तू क्षणभरके लिये खूब गर्ज ले। मेरे हाथसे यहीं तेरी मृत्यु हो जानेपर अब शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे।

ऋषि कहते हैं —यों कहकर देवी उछलीं और उस महादैत्यके ऊपर चढ़ गयीं। फिर अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने शूलसे उसके कंठमें आघात किया। उनके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे (दूसरे रूपमें बाहर होने लगा) अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया। आधा निकला होनेपर भी महादैत्य देवीसे युद्ध करने लगा। तब देवीने बहुत बड़ी तलवारसे उसका मस्तक काट गिराया। फिर तो हाहाकार करती हुई दैत्योंकी सारी सेना भाग गयी तथा संपूर्ण देवता अत्यंत प्रसन्न हो गये। देवताओंने दिव्य महर्षियोंके साथ दुर्गादेवीका स्तवन किया। गन्धर्वराज गान तथा अप्सराएं नृत्य करने लगीं।

(मार्कण्डेय पुराणसे)

* * *

कबीर

(सिर सौंपे सोई पिवै)

पांच छः वर्षकी आयुके कुछ बच्चे मुहल्लेके बीचमें आंख मिचौनी खेल रहे थे। इस कोनेसे उस कोने भागना, खम्भोंके पीछे छिपना, कहीं-कहीं एक-दूसरेका नाम लेकर चिढ़ाना, सब कुछ जोरों से चल रहा था। मुहल्ला नीच, गरीब, कुम्हार और जुलाहोंका था। बड़े लोग अपने-अपने काममें लगे थे, कहीं कोई इक्का-दुक्का किसी कामसे आता-जाता था। बच्चे अपने खेलमें ऐसे मस्त थे कि उन्हें कोई दिखायी ही न देता था। इस प्रकार दौड़ते-दौड़ते कोई उनकी लपेटमें आ जाता तो थोड़ी डांट खा लेते और फिर उसे भूलकर अपनी दौड़-भागमें लग जाते। डांट खाना तो मानो इनका एक नित्यकर्म था। वे बड़े घरोंके बच्चोंकी तरह मुंह लटकाकर बैठना न जानते थे। पानी भरकर आती हुई नीमाके साथ एक बच्चा टकराकर गिर पड़ा। मिट्टीका घड़ा गिरकर टूट गया। नीमाने बच्चेको पुचकारा –– "बेटा रतन, चोट तो नहीं लगी ?" रतनकी आंखोंमें लुके-सहमे आंसू इस सहानुभूतिको पाकर उमड़ उठे। सारा खेल रुक गया। सब बच्चे, कोई फटे हाल, कोई गंदा, कोई साफ-सुथरा, सबके सब अपने छोटे दोस्तके आसपास घिर आये। पांच सालका छोटा कबीरा अपनी तुतलाती बोलीमें "छी ! छी ! लतन इतनी छोटी-सी चोटपर लोता है, तल-तल अभी हम कमलको पकलता है" कहता हुआ रतनके पास आया और उसे बांह पकड़कर खींचने लगा। उसी क्षण छोटे रतनकी आंखें खिल उठीं। रोना भूलकर कबीरका हाथ पकड़कर वह दौड़ने लगा। सारे बच्चे पक्षियोंके झुण्डकी तरह तितर-बितर हो गये। नीमा अपने गीले कपड़ोंको सम्हालती हुई अत्यंत आत्मसंतोषकी हंसी हंसती हुई घरकी ओर चली। उसकी आंखें भूतकालके पर्देको उठाकर अंदर झांकने लगीं। वह नीरूके साथ शामके समय अपनी छोटी-सी गठरी लिये सारे दिनका लेन-देन पूरा करके घरकी ओर लौट रही थी। नीरू मस्तीमें आकर गाना गाता हुआ उसके आगे-आगे चल रहा था। लहरतारा झील शामके समय बहुत सुहावनी लग रही थी। शांत स्तब्ध वातावरणमें झींगुरका तीव्र स्वर शांतिको और गहरा बना रहा था। अचानक नीरु भी चुप हो गया। कुछ क्षण बाद उस नीरवताको चीरती हुई एक पतली-सी आवाज सुनायी दी। दोनों ठिठक गये। इस निर्जन स्थलपर नवजात बच्चेके रोनेकी आवाज कैसी ? कुतूहलवश नीरू आगे बढ़ा। आवाज रुक-रुककर आती थी और नीरू भी रुक-रुककर बढ़ता था। झीलके किनारे एक नीमके नीचे सफेद कपड़ेमें लिपटा हुआ एक बच्चा पड़ा था। नीरू आश्चर्यसे देखता रह गया। बच्चेको असहाय देखकर नीमाका हृदय वात्सल्यसे भर आया। वह धीरे-धीरे बच्चेके पास गयी। जैसे ही छूने लगी तो नीरू बोला— "ठहर जा, शायद उसकी मां झीलमें स्नान करने गयी होगी, अगर बामनका बच्चा हुआ तो लोग हमें मार-मारकर खत्म कर डालेंगे। नीमासे न रहा गया। तब तुम्हीं जाकर देख आओ न, अगर कोई औरत दिखायी दे तो उसे बुला लाना। आधे घण्टेतक नीरू झीलके चारों ओर छानबीन करता रहा। थककर नीमाके पास आया। "अरे यहां तो कोई नहीं दिखायी देता" नीरूने चिंताभरे स्वरमें कहा, और दोनों एक-दूसरेका मुंह ताकने लगे। धीरे-धीरे नीमाने कहा –– "इस सुन्दरसे बालकको कौन भला इस निर्जन स्थानपर फेंक गया होगा।" नीमाके पांव वहांसे हट नहीं रहे थे। एक अपरिचित-सी ममताका उद्रेक उसे बच्चेकी ओर खींच रहा था। उसका उदार पति उसकी भावना समझ

गया। वह कहने लगा — "नीमा, तू रोज भगवान्से प्रार्थना करती थी। विधातानें तेरी सुन ली, ले उठा ले इस बच्चेको। क्या जाने यह तेरे लिये ही यहां भेजा गया हो। यह सुनते ही नीमाने चटसे बच्चेको उठा लिया। उसके अंग-अंगमें तृप्तिकी, माधुरीकी एक लहर दौड़ गयी। अचानक नीमा वर्तमानमें जाग उठी। उस दिनका अबोध शिशु यही कबीरा है जो आज छोटेसे रतनको बड़े भाईकी तरह समझा रहा है।

नीरू और नीमा रातके समय बातें कर रहे थे। बाहर आंगनमें सारे दिनके खेलके बाद कबीर आरामसे सो रहा था। नीमा बोली, "हमारे घर यह चांद आया लेकिन हम उसे कुछ दे न सके। आज सवेरे देख रही थी बामनके बेटे पाठशाला जा रहे थे और हमारा कबीरा करघा चला रहा था। उनको जाते देखते ही उसके हाथ रुक गये। काफी देरतक सोचता रहा। अंतमें मैंने पुकारा तब चौंककर फिर काममें लग गया। शायद उसकी भी पढ़नेकी इच्छा है पर हमारी हालत देखकर मन मसोसकर रह जाता है। हमारा बेटा बहुत समझदार है। कभी कुछ मांगता नहीं है और न कभी हठ करता है। दूसरे बच्चोंकी तरह मुझे कष्ट नहीं देता। कभी मारपीट नहीं करता। मेरी मानो, हंसीकी बात नहीं है, सच कहती हूं — हमारा कबीरा बड़ा आदमी बनेगा।" नीरू हंसके बोला, "अरी तुझे नहीं मालूम, हरेक मांको अपना बेटा बहुत ही अच्छा लगता है। और फिर एक ही बच्चा हो तब कहना ही क्या।" नीमा रूठ गयी। वहांसे उठती हुई बोली, "तुम आदमियोंसे बातें करना बेकार है। तुम समझते हो अल्लाहने अक्ल सिरफ तुम लोगोंको ही दे रखी है और हम बेचारी अबूझ औरतें? हम क्या जानें तुम्हारी बातें!" नीरूने नीमाका हाथ पकड़कर जबरदस्ती बिठा दिया। बस, इतनेमें चिढ़ गयी। ले, चल मान लिया। तेरा कबीरा — वो पंडित लोग क्या कहते हैं – न भूतो, न भूतो, हां-हां इसका मतलब न हुआ था, न होगा, ऐसा होगा। बस, अब राजी हो गयी? नीमा बोली — "तुम तो हरेक चीजमें मजाक करते हो। लेकिन तुम देख लेना नीमा क्या कहती थी।"

कबीरासे दोनोंका जीवन हरा-भरा हो गया था। घुमा-फिराकर वही उनकी बातोंका केंद्र होता था। दोनोंको अपने अंधेरे घरके उजालेपर बहुत गर्व था। दूसरे दिन नीरूने कबीरासे पूछा, "क्यों बेटा, तुमको बामनके लड़कोंकी तरह पाठशाला जाना है?" कबीराने पूछा — "बाबा, हम जुलाहोंको कौन सिखायेगा? मैंने पूछ रखा है, सबने कह दिया है तू नीच जातिका है, जुलाहोंको सिखानेसे हमें पाप लगेगा। अपनी भलाईके लिये दूसरोंको पापमें क्यों डालूं? हां, लेकिन पाप क्या होता है, वह कैसे लगता है?" नीरू बोला — "बेटा, पाप क्या है यह मैं नहीं बता सकता। बड़े-बड़े पंडित ही बता सकते हैं।" बस, तभीसे कबीराने ठीक कर लिया कि किसी-न-किसी तरह पंडितोंसे बातचीत करेगा और पापका पता लगायेगा। उसको रातको होनेवाली कथा याद आयी। उसी दिन शामको वह भी चौराहेपर कथा सुननेके लिये बैठ गया। सारे समय उसके दिमागमें यही विचार चक्कर काटता रहा, पाप क्या है? कथामें उसने रामकी बाल-लीलाएं सुनीं। उसका मन दशरथके लिये रोया, कौशल्याके लिये रोया और राम उसका आदर्श नायक बन गया। रामके जैसा बनना चाहिये-उसने यह तय किया। तब पाप लग ही नहीं सकेगा।

कबीरा रतन और कई दोस्तोंके साथ खेल रहा था। आज बच्चोंका खेल नहीं था। कबीरा अब बड़ा हो गया था। बहुत सारे बच्चोंका गोलाकार झुण्ड रतनको घेरे हुए था। रतन लकड़ी घुमाते हुए चिल्ला रहा था, "कौन है माईका पूत जो मेरे हाथसे लकड़ी गिरा सके? है कोई ऐसा?" कमाल छलांग लगाकर बीचमें कूद पड़ा। आजा रतन' वह बोला। और उसके बाद दोनोंमें तड़ातड़ लकड़ीके प्रहार होने लगे। चारों ओर खड़े लड़के प्रोत्साहन देने लगे। "देखो कमाल, सम्हलके रतन, वह आया, उधर देखो, उधर, शाबाश, शाबाश, क्या लगायी है अरे, नया दांव भूल गये, जल्दी।

अंतमें मार खाते-खाते कमाल हिम्मत हार गया। उसके हाथसे लकड़ी उड़कर घेरेके बाहर जा पड़ी। कमाल और रतन आपसमें गले मिले।

उमंग और उत्साहसे भरी हुई आवाजमें रतन चिल्लाया — "और कोई है, माईका लाल !" भीड़को चीरता हुआ कबीर अपनी लाठी सम्हाले आगे बढ़ा ; हां, रतन चलो, अब हम दोनों खेलेंगे; कबीरका बचपनका शत्रु अकबर बोला — "कबीर कुछ सुना भी ?" कबीर ने मुस्कराते हुए कहा— "तब क्या बिना सुने ही आया हूं ? भाई बहरा नहीं हूं।" अकबर कबीरसे बड़ा था। सोलह साल पार कर चुका था। उसकी मसें भीगने लगी थीं। अपने चारों ओर देखकर वह जोरोंसे बोला — कबीरा तुम्हें मालूम है कि तुम किस माईके लाल हो ? जानते हो तुम्हारी मां कौन है ?" कबीरा चिल्लाया — क्यों नहीं। मुझे क्या सारे मुहल्लेको मालूम है। अकबर यही कहलवाना चाहता था। एक विजयीकी तह उधर-इधर देखकर अपनी मुस्कानमें कटुता उंडेलता हुआ अकबर बोला — "कबीर तू अभी छोटा है, अबोध है, तुझे मालूम नहीं तेरी मां कौन है। मुहल्लेके बूढ़े चाचा अजमलसे जाकर पूछो तुमको नीमा चाची कहांसे उठा लायी थी। सारा वातावरण क्षुब्ध हो गया। चारों ओर काना-फूसी होने लगी, किसीने कहा, "हां, हां ठीक कहता है अकबर", कोई बोला — "अरे सुना नहीं उस दिन मां क्या कह रही थी। चलो चलकर पुछवा दूं। हां, हां चलो चलें कहते हुए कई लड़के वहांसे चले गये। ये और इसी प्रकारके अन्य तीखे शब्द कबीरके संज्ञाशून्य कानोंसे टकराते रहे। कबीर जड़मूर्तिकी तरह स्तब्ध खड़ा था। रतन पास आया और कंधेपर हाथ रखकर बोला — "भइया, तू दुःख क्यों करता है ? मोती चाहे कहींसे क्यों न निकले, मोती ही रहता है। तेरी मां, नीमा चाची थी या कोई और इससे क्या आता-जाता है। तू अपनेको देख। उन कुछ क्षणोंमें कबीर शायद जीवनका एक काल जी चुका था। तीव्र वेदनासे उसका शरीर सुन्न पड़ गया था। वह बड़ा समझदार हो चला था। उसके आत्मसम्मानको चोट लगी थी। वह अपने सारे दुःखोंको पीकर आंसुओंको आंखोंके अंदर-ही-अंदर छिपाता हुआ नथुने फुलाये लाल चेहरा किये खड़ा था। उसके मुंहसे एक शब्दतक न निकला। कांपते हुए हाथसे उसने रतनका हाथ पकड़ा। इसी बीचमें उसके और मित्र खिसक चुके थे। दोनों मित्र मुहल्लेके बाहर लहरतारा झीलकी ओर चल पड़े। कबीर इसी झीलके किनारे कई बार खेलने आया था। कई बार रतनके साथ अकेला बैठा था। लेकिन आज वही झील परायी-सी लग रही थी। आज वहां उसे चारों तरफसे मानो अनसुनी आवाजें सुनायी दे रही थीं — "भाग जा, चला जा, काला मुंह कर......' नीमा कुंएपर पानी भर रही थी। पर उसका मन चूल्हेके आसपास घूम रहा था। कल कुछ कम पैसे मिले थे। इसलिये आज चावल न खरीद सकी। उसका मन चावलकी कमी पूरी करनेमें लगा था। कबीर कहीं भूखा न रह जाय तभी पीछेसे ईदन चिल्लायी —"अरे नीमा, गजब हो गया !' नीमा चौंककर पीछे मुड़ी और बोली— "क्यों क्या हुआ ?" उसका हृदय धक-धक करने लगा। मुहल्लेमें अभी तेरा कबीरा और सब बच्चे लाठी खेल रहे थे। इतनेमें रतनने कहा — "है कोई मांका लाल जो मेरी लाठी छुड़वा सके ?" कबीरा जैसे ही उसके पास गया, अकबर चिल्लाया — "अरे, कबीरा तुझे अपनी मांका नाम मालूम भी है ? और उसी समय इतने सारे लोगोंके सामने उसने कबीरेको बताया कि तू उसकी मां नहीं है। सुनते ही मेरा कलेजा कांप गया। मैं तुरंत गयी पर वह कहीं न मिला। नीमाका हृदय मानो धक-धक करना भूल गया। उसे मूर्च्छा आने लगी। तभी ईदनने उसका हाथ जोरसे पकड़ लिया। वह बोली — "नीमा, ऐसे कमजोर होनेसे कैसे काम चलेगा ? जल्दी कर, चल उसे ढूंढ़े। नीमाका दिमाग त्वरासे काम करने लगा। कबीरा बचपनसे ही जब चिढ़ जाता तो अकेलेमें जा बैठा करता था। नीमाको उसके प्रियस्थल मालूम थे। एक था छज्जा, एक थी लहरतारा झील और एक था रतनका घर। उसने ईदनसे पूछा, "तू रतनके घर गयी थी ?" ईदन बोली — "अरे हां, सबसे पहले

उसीके यहां गयी थी। मैं जानती हूं दोनों बचपनके बहुत पक्के दोस्त हैं।" तब नीमा बोली, "शायद घरपर होगा।" लेकिन ईदनने उसकी आशा तोड़ दी। "तेरे घरमें मैंने दो-तीन बार छानबीन की।" इसपर नीमाने कहा — "ईदन चलो झील लहरतारा, वह वहींपर मिलेगा।" दोनों जल्दी-जल्दी मौन चल रही थीं। नीमाके मस्तिष्कमें कोलाहल हो रहा था।

लहरतारा झील पहुंचकर नीमाका जी धकसे रह गया। जिस नीमके पेड़के नीचेसे पन्द्रह साल पहले वह एक छोटे-से बच्चेको उठा लायी थी उसी पेड़के नीचे दोनों दोस्तोंकी लड़ाई हो रही थी? कबीर अपना पूरा जोर लगाकर हाथ छुड़ानेकी कोशिश कर रहा था। और रतन उसको जी-जानसे पकड़े हुए था। नीमाको पहले रतनने देखा। वह चिल्लाया — "नीमा चाची, जल्दी आइये" नीमाका नाम सुनते ही कबीराका सारा जोश ठंडा पड़ गया। नीमा जल्दी-जल्दी पास आकर बोली– "क्यों क्या बात है?" रतने रुक-रुककर बोलने लगा, "नीमा चाची, कबीरा कहता है, अब वह यहां नहीं रहेगा। नीमा — "क्यों क्या हुआ?" रतन — "आपको पता नहीं, हम खेल रहे थे तब अकबर क्या बोला?" नीमाने नतमस्तक कबीरापर दृष्टि डालते हुए कहा — "कबीरा मेरी ओर देख।" कबीरको ऐसा लगा कि उसके सिरपर मनों भार पड़ गया है। कबीरने बड़ा प्रयत्न करके मांकी ओर देखा। उसे देखते ही उसका सारा रोष, दुःख, घृणा सब कुछ रुदनकी अजस्र धारामें पलट गया कबीराका यह रुदन नीमाके हृदयको आप्लावित करने लगा। ईदनको लगा इस समय मां-बेटेको एकांत में बातें करनी चाहियें। रतनका हाथ पकड़के वह धीरे-धीरे गांवकी ओर जाने लगी। नीमाने दोनों हाथोंको फैलाकर कबीरके कांपते शरीरको समेट लिया और बोली — "मत रोओ मेरे लाल। देखो, सच पूछो तो गलती मेरी ही है। मैं भी सोच रही थी कि अब कहनेका समय आ गया है। लेकिन बेटा, सच कहना और सहना आसान नहीं है। मुझे, मालूम था उससे तुझे बहुत दुःख होगा। उसका ख्याल करते ही मेरा कलेजा कांप उठता था।" आंसूसे गीला चेहरा उठाकर कबीर बोला — "मां, अम्मां, नहीं-नहीं, क्या यह बात सच है?" नीमाका चेहरा फीका पड़ गया था। कबीरा मुझे अम्मा तक नहीं कहेगा। वह बोली, "देख तुझे एक रहस्यकी बात बताऊं, जो सिर्फ जन्म देती है वही अम्मा नहीं होती। जिनके दिलमें मांके जैसा प्यार होता है, जो भी मांके जैसा व्यवहार करना जानती है, वे सब मां हैं। तभी तो हिंदू कहते हैं न, तूने सुना है, यह सारी पृथ्वी मां है, रात तक मां है।

गहरे दुःखमें डूबे हुए कबीरको इन वाक्योंने **नव** जीवन दिया। नीमा बोलती गयी — "यह सच है कि मैंने तुझे जन्म नहीं दिया है पर जिस दिन मैंने तुझे देखा उसी दिनसे तू मेरे लिये अल्लाहकी रहमत रहा है। तेर आनेके पहले मैं अल्लाहसे रोज एक बेटेके लिये अर्ज किया करती थी। पन्द्रह साल पहलेकी बात है, एक दिन शामको तेरे अब्बा और मैं इसी लहरतारा झीलके पाससे गुजर रहे थे। तब हमने छोटे बच्चेके रोनेकी आवाज सुनी। हमने आधे घंटेके लिये उस नवजात बच्चेकी मांकी तलाश की और जब वह न मिली तब हम दोनोंने तुझे बहुत उत्साहके साथ उठा लिया। कबीरके मनोभावोंको पढ़ते हुए नीमा बोली, "बेटा, तेरी मांका उसमें कोई दोष नहीं है। तू अभी बच्चा है, बड़ा होकर समझेगा। तेरी मां कितनी प्रेममयी थी। उसने तुझे जिंदा छोड़कर हमारे ऊपर बड़ी करुणा दिखायी है। पता नहीं कितनी राततक मां-बेटे स्तब्ध रात्रिमें मूक वार्तालाप करते रहे।

उस प्रसंगने कबीरको एकदम बदल दिया। वह ज़रा गंभीर हो गया। बालकोंमें जो स्वाभाविक निर्दयता होती है कबीरमें उसका अभाव था। अब प्रायः रतनको लेकर वह झील लहरताराके किनारे जाकर बैठता था। रतनके सामने जी खोलकर अपने-आपको व्यक्त करता था। एक दिन रतन ने पूछा, "कबीर, आजकल तुम हमारे मन्दिरोंके आसपास क्यों घूमा करते हो। जहां भी हरि-कथा होती है, मैं देखता हूं कि तू सबसे आगे बैठ जाता है।" कबीर — "मुझे मालूम नहीं कि

मेरा जन्म किस धर्ममें हुआ है, मेरे मनमें रह-रहकर यही विचार आता है कि अगर मैं हिंदू घरमें जन्मा हूं तो हिंदू धर्मका सब ज्ञान होना चाहिये। इसीलिये मैं दूरसे मंदिरोंकी पूजा देखता हूं और कथाएं सुनता हूं।” रतनने कहा, “अरे कबीर, उससे क्या होता है, देख मेरे चाचा दिनमें दस बार गंगा स्नान करते हैं परंतु मुझे उनमें और नीरू चाचामें कोई फर्क नहीं मालूम होता।” कबीर — “वह तो ठीक है, लेकिन पता है न तुझे, मैं बचपनसे ही पाप क्या है यह ढूंढ़ रहा हूं। उस दिन पंडितजीने क्या कहा था — ‘पापका दूसरा नाम है “दुरितम्”। मतलब जो कुछ भी तुम्हें अपने रास्तेसे हटाये वह पाप है।” रतनकी आखें आश्चर्यसे बड़ी हो गयीं। वह बोला — तू भी कविता क्यों नहीं लिखता? कबीर हंस दिया। बोला — “उस दिन आचार्य आये थे न, उन्होंने बताया कि कविता लिखनेके लिये पिंगल शास्त्र पढ़ना चाहिये। मुझे कौन सिखायेगा भला। फिर भी रतन नहीं हारा। उसने कबीरके मनको कविता लिखनेके लिये तैयार कर ही दिया। कबीर कहने लगा — “लेकिन रतन, मुझे लिखना तो आता ही नहीं।” रतन कहने लगा — “कोई बात नहीं, हम अपने जैसे दोस्तोंके बीचमें तेरी कविता याद करके बोला करेंगे। कबीरने कहा — “अच्छा।”

एक दिन रातके समय चांद निकला था। कबीर और उसके सब मित्र अलग मंडली बनाकर भजन गाते कीर्तन करते घूम रहे थे। अचानक रतनने कबीरसे कहा — “कबीरा अब की तू बोलियो।” भजन खत्म होते ही रतन जोरसे चिल्लाया — “अब कबीर गायेगा।” कबीरका गला सबके लिये परिचित था। बड़े बूढ़े सभी उसकी आवाज सुनकर मुग्ध हो जाते थे। बलंद और आकाशतक पहुंचनेवाली खुली आवाजमें कबीरने पहले भी कई बार गीत गाये थे। खूब तन्मयतासे उसने गाया :—

मो को कहां ढूंढ़े बन्दे मैं तो तेरे पासमें।
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कोई क्रिया कर्ममें, नहीं योग वैरागमें।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं पलभरकी तालासमें।
कहै कबीर सुनो भोई साधौ सब स्वासोंकी स्वांसमें।

कबीर जैसे ही रुके, चारों ओरसे आश्चर्य और प्रशंसाके उद्‌गार सुनायी दिये। कबीरके कई साथी रतनसे पूछने लगे — “अरे यह नया गीत कबीरने कहांसे सीखा?” उमंगमें भरकर रतन बोला, “और कहांसे सीखेगा, उसने अपने-आप बनाया है।” तब तो कहना ही क्या था मुहल्लेके सभी लोगोंमें उत्साहकी बाढ़ आ गयी। सब बोलने लगे, अरे वाह कबीरा, वाह रतन और उसके साथी चिल्लाये “कबीरा और गा।” इस सब कोलाहलमें आंखें नीची किये किसी गहरे विचारमें डूबे कबीर सबसे अलग ही दीख रहे थे। धीरे धीरे उन्होंने ऊपर देखा और गाया :—

कबीर हरिरस जो पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुंभारका, बहुरि न चढ़ई चाकि॥
राम रसाइन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, मांगे सीस कलाल।
कबीर माठी कलालकी, बहुतक बैठे आई।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाई।

सारी भीड़मेंसे तरह तरहकी आवाजें आने लगीं। औरतोंके साथ खड़ी नीमाकी आंखें छलछला रही थीं। उसकी आंखें कबीरके गंभीर मुग्ध वदनको छोड़कर नीरूको ढूंढ़ने लगीं। नीरू भी होठोंको दबाकर अपने आंसुओंको रोकता हुआ कभी कबीरकी ओर देखता था और कभी नीमाकी ओर।

— श्री अनुबेन पुराणी

मानवताके मधुचक्र—डा० श्विट्ज़र

एक वर्षसे ऊपर हो गया, ४ सितंबर १९६५को मानवतासे महकता हुआ एक जीवन-फूल सुदूर अफ्रीकाके वनप्रदेश गेबनमें सदाके लिये मुरझा गया। आजीवन सेवाव्रती साधुचरित चिकित्सक डा. अलबर्ट श्विट्ज़र ९० वर्षकी परिपक्व उमरमें दिव्यधामवासी हो गये।

देखनेमें ग्रामीणसे प्रतीत होनेवाले, बड़ी-बड़ी मूंछोंवाले और धवलकेशी बुज़ुर्ग श्विट्जरकी यह दृढ़ मान्यता थी —

> "संसारके प्रत्येक मनुष्यको स्वीकार करना चाहिये कि पृथ्वीके समस्त प्राणियोंके प्रति हमारा अमर्यादित दायित्व है। उसके लिये सहायक होना ही चाहिये।"

बालपनमें दयालु स्वभावके श्विट्जरने एक दिन देखा कि गांवके गरीब बालकोंके पास पहननेको बूट नहीं हैं सो जूता पहनना छोड़ दिया। पकड़नेके पश्चात् तड़पती हुई मछलीको निहारकर सदाके लिये मछली पकड़ना छोड़ दिया।

अफ्रीकाके घने वनप्रदेश बेगनके लैम्बरीन नामक गांवमें एक सेवाश्रम बनाकर विगत ५० वर्षोंसे डाक्टर श्विट्जर अफ्रीकाके लूले, लंगड़े, कुष्ठग्रस्त, रक्तपित्त-पीड़ित, अंधे और बहरे, गरीब और अर्धनग्न, और क्षुधार्त लोगोंकी बराबर सेवा कर रहे थे। जीवनके प्रति अनुकंपा —— यह था उनका ध्यानमंत्र। डा. श्विट्जरके आदेशानुसार आश्रममें चींटीतकको मारनेका निषेध था। गरीबी और व्याधियोंके विरुद्ध युद्ध करनेवाले डा. श्विट्जरने "जीओ और जीने दो" के मंत्रको जीवनमें चरितार्थ कर दिखाया।

संत अलबर्ट श्विट्ज़र हमारी शतीके एक अद्‌भुत विभूतिमान पुरुष थे। वे परम मेधावी, तत्त्वचिंतक, चिकित्सक, संगीतकार और विशेष रूपमें मानवतावादी युगपुरुष थे। उनका जन्म जर्मनीमें गनबाश नामक स्थानमें १४ जनवरी १८७५ को हुआ था। वे एक प्राटेस्टेण्ट पादरीके पुत्र थे। जीवनके प्रारंभमें उनको तत्त्वज्ञान (दर्शन) धर्म और संगीतसे विशेष प्रेम था। अपने अध्ययन और अध्यापनद्वारा वे एक माने हुए दार्शनिक और संगीतज्ञ बन गये। परंतु ३० वर्षकी उमरसें उनकी अंतरात्मा से एक पुकार आयी —— तुम्हें तो जंगल बुला रहे हैं, मानवसेवाके लिये तुम्हारा आह्वान हो रहा है। तुरंत ही ३० वर्षकी उमरमें यह विश्रुत अध्यापक और संगीतकार (आर्गन वाद्य बजानेमें विशेषज्ञ) के यशस्वी कार्यको छोड़कर अफीकाके जंगलोंमें जा बसे और शेष समस्त जीवन अफ्रीकावासियोंकी शारीरिक और आत्मिक सेवामें लगा दिया।

२४ वर्षकी उमरमें श्विट्जरने ट्रासबर्ग विद्यापीठसे भिन्न-भिन्न विषयोंमें डाक्टरकी पदवी प्राप्त की थी। जर्मन दार्शनिक इमेन्युअल काण्टके तत्त्वज्ञानपर एक महानिबंध लिखा था। अगले छः वर्षतक वे ट्रासबर्ग विद्यापीठमें प्राध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। साथ ही संगीतकी साधना भी चालू रही और यूरोपके प्रथम कोटिके संगीतज्ञोंमें उनकी गणना होने लगी। सन् १९०४ में २९ वर्षकी उमरमें इनके हाथमें पेरिसकी एक मिशनरी सोसायटीकी एक पत्रिका आयी। उस पत्रिकाको पढ़कर इनके जीवनने एक दिशाको पकड़ लिया। उनकी अंतरात्माने महत्त्वका निर्णय कर लिया —— मानव जीवन-की पीड़ाएं और यातनाएं दूर करनेके लिये समर्पित जीवनकी तैयारी करो। अफ्रीकाके वनोंमें अर्द्ध सभ्य और व्याधिग्रस्त मनुष्य तुम्हें पुकार रहे हैं। धर्मका प्रचार छोड़कर जीवनको सेवा और साधना द्वारा प्रेममय बनाओ। अपने इस विश्वासको चरितार्थ करनेके लिये श्विट्जर ट्रासबर्ग विद्यापीठमें नये सिरेसे अध्ययन करके चिकित्सशास्त्रमें निष्णात बन गये। सन् १९१२ में आपने हेलन ब्रेसलो नामक एक परिचारिका (नर्स) कन्यासे विवाह किया। अब ट्रासबर्ग विद्यापीठके प्राध्यापक पदसे, सेंट निकोलस मठके पादरी पदसे तथा पेरिसकी संगीत समितिके आर्गन वादक-पदसे त्यागपत्र देकर इस

तरुणने दंपती सन् १९१३ में मानवजातिकी सेवा-सुश्रूषाके लिये अफ्रीकाके वनप्रदेशकी ओर प्रयाण किया।

अफ्रीकाके वनोंमें चिकित्सालयकी स्थापनाके लिये तथा रोगियोंके दवादारूके लिये द्रव्यकी आवश्यकता होगी, यह सोचकर संगीत-सम्मेलनोंका आयोजन करके पैसा एकत्र किया। चिकित्सालयके जरूरी साधनोंकी ७० पेटियां और दो हजार जर्मन मार्क लेकर यह तरुण गेबन प्रदेशके लेम्बरीन ग्राममें पहुंच गया। छब्बीस फीट लंबे और पंद्रह फीट चौड़े एक कुटीरमें दवाखाना स्थापित करके इस दंपतीने सेवाकार्य प्रारंभ कर दिया। इस दवाखानेमें उनका एकमात्र सहायक था एक अफ्रीकन परिचारक।

सन् १९२८ में श्विट्जर जर्मनीके फ्रेंकफोर्ट शहर गये। वहां इनको गेटे पुरस्कार दिया गया। सन् १९४९ में अमेरिकाकी यात्रा की। वहांपर दिये गये व्याख्यानोंसे जो आमदनी हुई उसके द्वारा इन्होंने गलित कुष्ठके रोगियोंके लिये लैम्बरीनमें एक पृथक् चिकित्सालय स्थापित किया।

अपने कार्योंका विवरण देते हुए श्विट्जर एक स्थानपर लिखते हैं — "इस सेवाश्रम (औषधालय) के प्रारंभमें हमें अनेक बाधाओंका मुकाबला करना पड़ा। मुझे अपनी प्रवृत्तियोंके लिये मेननं सोली तथा बेसिल नामक दो व्यक्तियोंने विशेष प्रेरणा और सहयोग दिया। इनमें से एककी पत्नीको मैंने गंभीर व्याधिसे बचा लिया था। और दूसरा व्यक्ति अपनी दयाशीलताके कारण मेरे प्रति आकृष्ट हुआ था।"

डा. श्विट्जर गेबन प्रांतकी काली प्रजाके आराध्यदेवसे हो गये थे। रोगियोंके उपचारके सिवाय डां. श्विट्जर सेवाश्रमके नाना कार्योंमें व्यस्त रहते थे। आश्रमकी सफाई, मार्गकी मरम्मत, ईंधनके लिये जंगलमें जाकर लकड़ी काटकर लाना, रोगियोंके कपड़ोंकी धुलाई, उनके भोजनकी व्यवस्था, उनके लिये शाकभाजी तथा फलफूलकी बगीचीका निर्माण और रक्षण आदि अनेकविध कार्यों के लिये वे सदा उत्साहपूर्वक संनद्ध रहते थे। गेबनका सेवाश्रम मानो श्विट्जरका अपना परिवार था।

श्रद्धावान् ईसाई होनेपर भी अनेक ईसाई धर्मशास्त्रियोंसे उनके वाद-विवाद होते रहते थे। श्विट्जरके व्यक्तित्वमें श्रद्धा और प्रोज्ज्वल बुद्धिवान्का सुभग समन्वय था। आठ वर्षकी नन्हीं उमरमें ही उन्होंने एक बार प्रश्न किया था — क्या कारण है कि "पवित्र परिवार" इतना गरीब था और नवजात 'परित्राता'' के जन्मपर पूर्वके तीन राजाओंने उसके प्रति अति कीमती उपहार क्यों प्रस्तुत किये थे? श्विट्जरके धार्मिक और बौद्धिक दृष्टिकोणका अच्छा परिचय हमको उनके विख्यात ग्रंथ "ऐतिहासिक ईसा मसीहकी खोज" (दि क्वेस्ट आफ दि हिस्टोरिकल जीसस्) में प्राप्त होता है; इस ग्रंथका उद्देश्य सांप्रदायिक ईसाईवादको उत्तेजित करना न था, अपितु ईसा मसीहका अति सरल और सुन्दर शिक्षाओंके द्वारको खोलना ही था।

भारतीय विचारधारा और महात्मा गांधीके प्रति उनको विशेष अनुराग था। प्राचीके प्रति उनके प्रेमका प्रमाण उनकी दो विख्यात पुस्तकें हैं — (१) भारतीय विचारधाराका विकास (इंडियन थाट् एण्ड इट्स डेवलपमेंट), (२) सभ्यताका दर्शन (फिलोसोफी आफ सिविलिजेशन)।

डाक्टर श्विट्डर सच्चे अर्थोंमें विश्वमानव थें। उनकी जीवनभावना और जीवन-सरणीद्वारा हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रगत, जातिगत और धार्मिक सीमाओंको वे पार कर चुके थे।

सन् १९५३ में आपकी मानवसेवाओंसे प्रभावित होकर स्वीडिश एकेडेमीने आपको शांतिका नोबल पुरस्कार देकर सम्मानित किया। लाखों मनुष्योंने आपके जीवन तथा विचारोंसे प्रेरणा प्राप्त की है। उनके कुछ सहयोगियोंने उनको "प्रज्ञाका प्रदीप" (लैम्प आफ कोनशेन्स) का विरुद प्रदान किया है — यह ठीक ही है। जिस पुण्यात्माने जीवनके प्रति करुणा और श्रद्धाकी भावनाको चरितार्थ कर दिखाया वह इतिहासमें अपने मानवप्रेम, कारुण्य और साहसके लिये स्नेहपूर्वक चिरकालतक स्मरण किया जायगा।

— श्रीशंकरदेव विद्यालंकार

इधर-उधरसे

केरलका नव वर्ष

केरलमें मुख्य रूपसे दो त्यौहार मनाये जाते हैं —— ओनम और विशू। विशू केरल पंचाङ्गका नव वर्षारंभ होता है। साधारण मान्यता है कि विशूके दिन सवेरे-ही-सवेरे अगर शुभ शगुन हो तो सारा वर्ष अच्छी तरह कटता है। इसलिये पहलेसे ही विशूकानीकी व्यवस्था की जाती है। एक कांसेके बरतनमें चावल रखे जाते हैं, उनपर सोनेका कोई गहना, रुपये-पैसे, आईना, कपड़ें, खीरे, नारियलकी गरी, कटहल, आम, धार्मिक ग्रंथ आदि सजाये जाते हैं और घरभरके लोग सवेरे-ही-सवेरे उसीका दर्शन करते हैं। साथ ही देवी-देवताओंके चित्र और नाना प्रकारके फूल सजाये जाते हैं।

इसके बाद घरके बड़े-बूढ़े अपनेसे छोटोंको कुछ उपहार देते हैं। बहुत-सी जगहोंपर बड़े जमींदारोंको नजराना देनेकी प्रथा थी परंतु वह समयके साथ खतम हो गयी पर अब भी बहुतसे लोग सालके अंतिम दिन अपने मालिकोंके यहां केले, नारियल और शाक-भाजीका उपहार लेकर जाते हैं और अगले दिन उनसे कुछ इनाम पाते हैं। सवेरे-ही-सवेरे सब लोग अच्छी तरह सजधजकर मंदिर जाते हैं और वहांसे आकर विशेष प्रसाद पाते हैं।

नये वर्षके लिये अपना भविष्य जाननेकी एक मजेदार तरकीब है। फर्शको साफ करके चौका लगाकर उसपर कुछ धान फैला दिये जाते हैं और धूप-दीपके द्वारा पूजा की जाती है। उसके बाद हल्दी कुमकुम लगाकर एक नारियल पश्चिमसे पूर्वकी ओरको लुढ़काया जाता है। जब वह लुढ़कना बंद कर दे, उस समय नारियलका मुख पूर्वकी ओर हो तो लुढ़कानेवालेको आगामी वर्षमें चारों ओर सफलता मिलेगी, अगर वह दक्षिण या दक्षिण-पूर्वकी ओर मुख करे तो भाग्य मंदा माना जाता है, पश्चिमकी ओर हो तो मानसिक कष्ट, गृह-कलह आदि होंगे, उत्तरकी ओर हो तो आर्थिक हानि होगी और ऊपर या नीचेको हो तो मरण निश्चित है।

अगस्त्य मुनि

कहते हैं कि तमिल भाषामें महर्षि अगस्त्यने ही प्राण डाले थे। भगवान् शंकरने अगस्त्यसे दक्षिणकी ओर जानेके लिये कहा। ऋषि चल पड़े। रास्तेमें विंध्य पर्वत मिला जो ऊंचा हो होता चला जा रहा था। ऋषिने अपना रास्ता बनानेके लिये उसे लिटा दिया और अपनी वापिसीतक प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। विंध्य पर्वत मान गया और मुनि आगे चले। उन दिनों तमिल प्रदेशमें चोल राज्य था। वहां पानीका बहुत कष्ट था। मुनिने कृपा करके उन्हें कावेरी प्रदान की। इधरसे होते हुए वे पोतिगै नामक स्थानपर जा पहुंचे। इनकी प्रार्थना सुनकर शंकर भगवान्ने यह मान लिया था कि इन्हें एक बार शिव-पार्वती विवाहका दृश्य दिखा देंगे। अगस्त्यने उसके लिये तपस्या शुरू की। वे दिन-रात आगकी लपटोंमें रहकर प्रार्थना करते रहे।

इन्हीं दिनों राजा मसूमन गुनी त्यौहार मना रहे थे। त्यौहारके आठवें दिन शिवजीका जुलूस निकाला गया। सब कुछ हरा-हरा था। अगस्त्य मुनि भी दौड़े हुए दर्शन करने आये और वहींपर भगवान् आशुतोषने उन्हें तथा वहां एकत्र भक्तोंको शिव-पार्वती विवाहके दर्शन करा दिये। सब लोग निहाल हो गये। अगस्त्यने वर मांगा कि इसी स्थानपर हर वर्ष पंगुनिके अवसरपर भक्तोंको यह दर्शन हो जाया करें। एवमस्तु कहकर भगवान् चले गये। आज भी अम्बा समुद्रम्में यह पर्व मनाया जाता है, वहींपर अगस्त्य मुनिका मंदिर भी है।

बाईसिकिलकी शताब्दी

पं. नेहरू कहा करते थे कि जब यूरोप, अमरीका वायुयान युगमें हैं तब भारत बाइसिकिल युगमें प्रवेश कर रहा है। सचमुच आज हिंदुस्तानमें बाइसिकिलोंकी भरमार है। परंतु कितने लोग जानते हैं कि हमारा यह लोहेका घोड़ा अभी केवल एक सौ वर्षका ही है। १८६५ में मैकास नामक एक फ्रेंच आदमीने एक यांत्रिक घोड़ा बनाया था। पर 'घरको जोगी जोगना' केवल हिंदुस्तानकी ही विशेषता नहीं है, फ्रांसमें उसकी पूछ न हुई। तब लातमांइ नामक और एक फ्रेंच आदमीने अमरीका जाकर वहां अपनी दो पहियेकी गाड़ीका पेटेंट करवाया। परंतु १८६६ का वह यांत्रिक घोड़ा १९६६ की बाइसिकिलसे बहुत ही भिन्न था। उसके पहिये लकड़ीके थे और अगला पहिया पिछले पहियेसे बहुत बड़ा था। उसमें जंजीर न थी। पहियोंपर लोहा चढ़ा था और पैडल मारकर सीधे पहियेपर जोर दिया जाता था। उन दिनोंके कच्चे रास्तोंपर इसे चलाना बहुत आसान काम न होता था। जब यह घोड़ा इंग्लैंड पहुंचा तो वहांके लोगोंने इसे हड्डी हिलाने वाला 'बोन शेकर' नाम दिया। हमारे इक्के शायद इसका कुछ अंदाज दे सकें।

कुछ वर्षों बाद तारकी तीलियोंके पहिये और ठोस रबरके टायरका उपयोग शुरू हुआ और १८७५ में साइकिलकी जंजीरने जन्म लिया। जान डानलापने १८८८ में हवावाले ट्यूब और टायर बनाये।

इंग्लैंडमें लगभग दो सौ वर्ष पहले एक हाबी हार्स बनाया गया था जिसमें दो पहिये होते थे और एक आदमी सवारीके पीछे खड़ा होकर उसका संतुलन रखता था और उसे ट्रेडलद्वारा चलाता था। आज हमारे लिये यह कल्पना करना मुश्किल है कि इस मामूली-सी घरेलू चीजके पीछे कितना दिमाग लड़ाया गया है और कितना परिश्रम किया गया है।

गणेशजी

पांडिचेरीमें श्रीअरविंद सोसायटी भवनके पास ही एक गणपति मंदिर है। इसकी कहानी बड़ी रोचक है। कहते हैं कि जब फ्रेंच लोग पांडिचेरी आये थे तब यह इलाका बिलकुल खाली पड़ा रहता था, यहां खुलेमें गणपतिकी एक मूर्ति पड़ी रहती थी और आने-जानेवाले धूमधामसे उसकी पूजा करते थे। वहीं एक फ्रेंच सज्जनने अपना बंगला बनवाया। इस धूमधामके कारण उन्हें बड़ा कष्ट होता था। एक दिन उन्होंने चुपकेसे गणपतिको उठाकर समुद्रमें फिंकवा दिया। दूसरे दिन मूर्ति अपने स्थानपर वापिस आ गयी। साहब बड़े झल्लाये और मूर्तिको फिरसे फिंकवा दिया। अब साहब रातको सोये तो उन्होंने स्वप्न देखा कि एक विशालकाय हाथी उनके ऊपर क्रुद्ध होकर उनकी चटनी बना देनेपर उतारू है। साहब घबराये। हाथीने उनसे वचन ले लिया कि वे उसी समय मूर्तिको समुद्रसे निकलवाकर अपने खर्चसे उसके लिये मंदिर बनवा देंगे।

यह गणपति मंदिर उसीका परिणाम बताया जाता है।

⁂

हिंदुस्तानमें १०५ रामनगर, १०० रामपुर हैं। दुनियामें १३ देहलियां हैं जिनमेंसे एक अमरीका और एक कनाडामें है। अमरीकामें २० बर्लिन हैं और बर्लिनके पास एक गांव है जो अमरीका कहाता है।

बनाना और तोड़ना

बालको, यह तो तुम जानते हो कि 'बनाने' और 'तोड़ने' के क्या अर्थ हैं।

एक सैनिक हाथमें शस्त्र लेकर तोड़ने अर्थात् किसीका नाश करने जाता है।

एक कारीगर नक्शे बनाता है, नींवें खोदता है और फिर मनुष्योंके परिश्रमी हाथ किसानके लिये झोंपड़ा या राजाके लिये महल खड़ा कर देते हैं।

तोड़नेसे बनाना अच्छा है पर कभी-कभी तोड़ना भी आवश्यक हो जाता है।

बच्चो, तुम्हारी तो बाहुएं और हाथ खूब बलिष्ठ हैं; क्या तुम केवल निर्माण ही करोगे? कभी तोड़ोगे नहीं? और यदि कभी तोड़ा तो किसको तोड़ोगे, किसका नाश करोगे?

दक्षिण भारतके हिंदुओंकी एक प्राचीन कथा है।

एक नवजात शिशु एक बार वृक्षोंके एक झुरमुटमें पड़ा पाया गया। तुम यह सोच सकते हो कि वह वहां पड़ा-पड़ा मर गया होगा, क्योंकि उसकी मां उसे वहां छोड़ गयी थी और उसको वापिस ले जानेका कोई विचार नहीं था। जानते हो क्या हुआ? जिस वृक्षके नीचे वह पड़ा था, वह ह्य पैइल नामक एक विशेष प्रकारका वृक्ष था। उसके सुन्दर फूलोंसे मधुके समान मीठी बूंदें टप-टप उसके मुंहमें गिरती रहीं और इस प्रकार उसका पालन होता रहा। अंतमें एक स्त्रीने उसे देखा — वह पासके शिवमंदिरमें पूजा करनेके लिये आयी थी। उसका हृदय बच्चेको देखकर द्रवित हो उठा।

उसे गोदमें लेकर वह घर आ गयी। क्योंकि उसका अपना कोई बाल-बच्चा नहीं था, उसके पतिने प्रसन्न हृदयसे बच्चेका स्वागत किया।

दोनों उस कुंजमें पड़े पाये गये अज्ञातकुलशील बालकका पालन-पोषण करने लगे। प्रारंभसे ही उनके पड़ोसी उनपर व्यंग्य करने लगे थे कि न जाने किस जातिके बच्चेंको ये लोग उठा लाये हैं। इस डरसे कि उनके पड़ोसी इस बच्चेके कारण उनसे नाराज न हो जायं उन्होंने उसे एक पालनेमें डाल दिया और पालनेको घुड़सालकी छतसे लटका दिया। वहां पारिया जातिका एक कुटुम्ब रहता था। बच्चेकी रक्षाका भार उसको सौंप दिया गया।

कुछ वर्ष बाद लड़का बड़ा हुआ। आयुके साथ-साथ उसकी मानसिक शक्तियोंकी भी वृद्धि हुई। अब उसने अपने पालनकर्ताओंसे विदा ली और अकेला यात्राके लिये निकल पड़ा। कुछ समयतक चल चुकनेके बाद वह एक ताड़के वृक्षके नीचे सुस्तानेके लिये लेट गया। पेड़ने धूपसे उसकी रक्षा की। ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह पेड़ भी उस स्त्रीके समान ही उससे प्यार करता था जो उसे वृक्षोंके झुरझुटमेंसे उठा लायी थी। यह लगता तो असंभव है कि ताड़का पेड़ जिसका तना इतना लंबा होता है, किसीको अपने पत्तोंसे सारे दिन छाया दे सके, पर कहानी यही कहती है कि सारे समय उसकी छाया निश्चल रही और जबतक वह लड़का सोता रहा उसे ठंडक पहुंचाती रही।

यह सब क्यों और कैसे हुआ?

जन्मसे ही बच्चेकी इस सुरक्षाका क्या कारण था? और ताड़के पेड़ने धूपसे उसका बचाव क्यों किया? क्योंकि उसका जीवन मूल्यवान् था। वह बच्चा एक दिन तिरुवल्लुवर नामक प्रसिद्ध तामिल कवि और तिरुक्कुरलका रचयिता बना।

उन वस्तुओं और उन व्यक्तियोंकी, जो संसारके लिये कुछ संदेश लाते हैं, रक्षा होनी ही चाहिये।

हमको बलिष्ठ बाहु पाकर प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि इनकी शक्तिसे हम रोग और मृत्युसे उन सबकी रक्षा कर सकते हैं जो सत्य, शिव और सुन्दर हैं।

इनकी रक्षा करनेके लिये ही हमें कभी-कभी लड़ना तथा नाश करना चाहिये।

*   *

तिरुवल्लुवर लोगोंको अपने अमृतवचनोंका आस्वादन ही नहीं कराते थे वरन् वे लड़ना और मारना भी जानते थे। उन्होंने कावेरीपक्कम गांवके दैत्यको मारा था।

कावरीपक्कममें एक किसान रहता था। उसके पास एक हजार पशु और कई विस्तृत खेत थे। पर इनके आसपास एक दैत्यका बड़ा डर रहता था। खड़ी फसलको वह जड़समेत उखाड़ देता और पशुओं और मनुष्योंकी हत्या कर देता था। कावेरीपक्कमके निवासियोंके हृदय इससे बहुत विक्षुब्ध हो उठे थे।

उस धनी किसानने घोषणा की —— "जो वीर हमें इस दैत्यके अत्याचारसे मुक्त कर देगा उसे मैं एक मकान, खेत तथा बहुत-सा धन दूंगा।"

बहुत समयतक कोई वीर आगे नहीं बढ़ा। किसान तब पर्वतपर रहनेवाले मुनियोंके पास गया और राक्षसके मारनेवालेका पता पूछा।

पर्वतवासी मुनि बोले —— "तिरुवल्लुवरके पास जाओ।"

इस प्रकार वह किसान तिरुवल्लुवरके पास आया और उनसे सहायताके लिये प्रार्थना की। उन्होंने कुछ राख अपनी हथेलीपर ली और उसपर पांच पवित्र अक्षर लिखे। फिर मंत्र पढ़कर वह राख ऊपर हवामें फेंक दी। उन अक्षरों और मंत्रोंका उस दैत्यपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह मर गया। कावेरीपक्कमके लोग इससे बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ वर्ष पीछेकी बात है। एक बार तिरुवल्लुवर मदुरा शहरमें गये। बहुतसे लोग उनकी सुन्दर कविता सुननेके लिये एकत्र हुए। वृक्षोंके कुंजमें पाये गये बच्चेद्वारा रचित पदोंको सुनकर वे मुग्ध हो गये ——

"भला बननेसे बढ़कर और कोई वस्तु इस संसारमें मिलनी अत्यंत कठिन है।"

वहां पास ही खिले कमलोंवाले एक तालावकें किनारे बैंचपर विद्वान् कवियोंकी एक टोली बैठी थी। ये लोग एक नीच जातिवाले कविको बैंचपर अपने साथ स्थान नहीं देना चाहते थे। वे प्रश्नपर प्रश्न करके उससे भ्रममें डाल उसकी भूलें पकड़नेकी कोशिश कर रहे थे। अंतमें उन्होंने तिरुवल्लुवरसे कहा —— "ओ पारिया, अपनी कविताकी पुस्तकको तू इस बेंचपर रख दे। यदि यह सचमुच ही सुन्दर साहित्यिक कृति हुई तो यह बेंच 'तिरुक्कुरल'के अतिरिक्त और किसीको अपने ऊपर स्थान नहीं देगी।"

तिरुवल्लुवरने अपनी पुस्तक पानीके समीप उस बैंचपर रख दी। कहानी आगे कहती है कि पुस्तकका उसपर रखा जाना था कि वह बैंच इतनी छोटी हो गयी कि उसपर केवल पुस्तकको ही स्थान मिल सका और मदुराके वे अभिमानी और ईर्ष्यालु कवि दूसरी ओर तालावके जलमें गिर पड़े। हां, वे उनचास ईर्ष्यालु तालाबमें कमलोंके मध्य जा पड़े। लज्जित मुख, भीगे शरीर लिये वे बाहर निकले। उस दिनसे तामिलभाषाभाषी 'तिरुकुरल' से बड़ा प्रेम करने लगे हैं।

* *

बच्चो, कावेरीपक्कमके राक्षसका मारा जाना क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा? मदुराके वे उनचास शरारती कवि जो पानीमें गिर पड़े थे क्या इससे तुमको दुःख हुआ है?

इस संसारमें भली वस्तुएं भी हैं और बुरी भी। हमें भलीसे तो प्रेम करना चाहिये, उनकी रक्षा करनी चाहिये और बुरीसे लड़ना तथा उनका नाश करना चाहिये।

इस भले कविकी तरह सभी बुद्धिमान् लोग ऐसा करना जानते हैं और कर भी सकते हैं। वे जितने अधिक बुद्धिमान होंगे उतना ही इस कार्यको अच्छी तरह कर सकेंगे। छोटे बच्चे, जिनकी बुद्धि अभी उतनी विकसित नहीं हुई है और जो उतना बल भी नहीं रखते, उनकी नकल करके अपने साहसका प्रयोग कर सकते हैं।

तिरुवल्लुवरकी बहन अव्वैने अपने भाईकी इसी प्रकारकी नकल की थी।

एक दिन वह उराइयूर गांवकी एक छोटी गलीमें जमीनपर बैठी थी। वहांसे तीन व्यक्ति घूमते हुए निकले। एक राजा था और दो कवि। जब राजा आया तो उसने एक घुटना टेक उसके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया। अब कवि गुजरा। इसके सम्मानार्थ उसने अपना दूसरा घुटना झुकाया। पर जब दूसरा कवि उसके समीप पहुंचा तो उसने अपनी दोनों टांगें फैलाकर रास्ता ही रोक लिया।

उसके बर्तावका यह ढंग अनुचित-सा तो लगा। पर अव्वै अपने उत्तरदायित्वको भली-भांति समझती थीं। वास्तवमें दूसरा कवि एक ढोंगी मनुष्य था। उसमें प्रतिभा तो कुछ थी नहीं, वह कोरा प्रदर्शन ही करता था।

कविको इससे बड़ी खीज हुई और उसने अव्वैसे उसके इस बर्तावका कारण पूछा।

"एक ऐसे पदकी रचना करो जिसमें 'मन' शब्द तीन बार आवे",— अव्वैने उत्तर दिया।

यह देखकर कि वहां बहुतसे लोग इकट्ठे हो गये हैं, कविने अपनी विद्वत्ता दिखानेका अच्छा अवसर पाया। उसने बहुतेरा प्रयत्न किया पर दो बारसे अधिक वह किसी प्रकार भी उस शब्दको अपनी कवितामें न ला सका।

अव्वैने व्यंग्य किया — "उस तीसरे शब्दका क्या हुआ जिसने तुम्हें यहीं रोक दिया और जिसे तुम्हारी कवितामें भी स्थान नहीं मिला?" इस प्रकार उसने उस ढोंगीको लज्जित किया।

क्या तुम यह सोचते हो कि अव्वैने अपने इस अशिष्ट व्यवहारमें प्रसन्नता अनुभव की थी? नहीं, तनिक भी नहीं। पर ढोंग उसको सम्मानयोग्य प्रतीत नहीं हुआ। वह इस बातकी विवेचना कर सकती थी कि किसका आदर होना चाहिये और किसका नहीं। वह कहती थी — "श्रेष्ठ पुरुष, उस हंसकी तरह जो सदा खिले-कमलयुक्त झीलकी ओर जाता है, सदा भली वस्तुकी ओर झुकता है। पर दुष्टप्रकृति लोग सदा बुराईकी ही खोज करते हैं — जैसे गिद्ध दुर्गंध द्वारा आकर्षित होकर सड़े गले जानवरोंको जा पकड़ता है।"

संसारके सब देशोंके बालको, वे कौन-सी बुरी वस्तुएं हैं जिनके विरुद्ध तुम्हें लड़ाई करना सीखना चाहिये? किन वस्तुओंका तुम्हें नाश करना चाहिये? किन वस्तुओंपर तुम्हें अधिकार स्थापित कर लेना चाहिये? उन सब वस्तुओंपर जो मनुष्यके जीवन या उसकी उन्नतिके लिये हानिकारक हैं, जो उसे अधोगति या दुःखकी ओर ले जाती हैं।

वेगवती नदियोंके ऊपर पुल और बाढ़को रोकनेके लिये बांध बनाकर मनुष्यको पानीके दुर्दाम वेगको अधीन करना चाहिये।

उसे ऐसे मजबूत जहाज बनाने चाहियें जो हवा और लहरोंकी प्रचंडताका सामना कर सकें।

दलदलवाली भूमिके घातक कीचड़-पानीको निकालना या सुखा देना चाहिये और इस प्रकार उसकी सीलमें जो ज्वररूपी दैत्य रहता है उसका नाश कर देना चाहिये।

जंगली जानवरोंसे, हर स्थानपर या जहां उनका अधिक डर हो, लड़ाई ठानकर उनका नाश कर देना चाहिये।

ऐसे होशियार डाक्टर पैदा होने चाहियें जो सब जगहसे दुःख-दर्द और बीमारीको भगा दें।

मनुष्यको भूखके सबसे बड़े कारण गरीबीको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह भूख ही उन माताओंको रुलाती है जिनके बच्चोंको रोटीतक नसीब नहीं होती।

सबके जीवनको दुःखमय बनानेवाली दुष्टता, ईर्षा और अन्यायका उसे नाश करना चाहिये।

* *

इसके विपरीत वे कौन-सी वस्तुएं हैं जिनके साथ मनुष्यको प्रेम करना चाहिये, जिनकी रक्षाकी जानी चाहिये ?

इस संसारमें आनेवाले प्रत्येक बच्चेके अमूल्य जीवनकी रक्षा होनी चाहिये।

उसे लाभकारी वृक्षोंकी रक्षा करनी चाहिये। ऐसे फूल और पौधे लगाने चाहिये जो उसे आहार और आनंद प्रदान करते हैं।

उसको ऐसे मकान बनाने चाहियें जो मजबूत, स्वास्थ्यप्रद और खुले हों।

पवित्र देवालयों, मूर्त्तियों, चित्रों, बर्तनों, कसीदेके कामों, सुमधुर गीतों और ललित कविताओंकी बड़ी सावधानीसे रक्षा की जानी चाहिये। संक्षेपमें उन सब चीजोंकी रक्षा की जानी चाहिये जो सुंदर होनेके कारण मनुष्यके आनंदकी वृद्धि करती हैं।

भारतवर्ष और दूसरे देशोंके बच्चो, सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्यको उन हृदयोंकी रक्षा करनी चाहिये जो प्रेम करते हैं, उस बुद्धिकी रक्षा करनी चाहिये जो सत्य चिंतन कर सकती है, उन हाथोंकी रक्षा करनी चाहिये जो सच्चे और न्याययुक्त काम करते हैं।

—श्रीमां

बंधन

हे प्रभु, जबतक मैं तुझसे अपने-आपको अलग पाता हूं तभीतक बंधन है, तभीतक संसार एक जाल और माया है, तथा पथ बड़ा दुर्गम और कांटोंसे भरा हुआ है।

परंतु हे प्रभु, जब मैंने एक बार, खाली एक बार तेरा सत्य-पथ देख लिया फिर सारा संसार ही तू बन गया। यह दुर्गम पथ एक खेल हो गया और कांटे फूल बन गये। और जब बंधनोंमें भी मैं तुझे देखने लगा तो फिर वे बंधन ही कहां रहे!

हे दयानिधान! जब तूने अपने-आप मेरे रथकी लगाम हाथोंमें ले ली है, जब तूने खेल-खेलमें ही मुझे लुभा लिया है और सारे विश्वमें अपनेको प्रकट किया है, जब सब कुछ तू ही है तब फिर न तो मैं ही रहा और न बेड़ियां और न बंधन। जैसे विवेकानंदने कहा था, "कौन कहता है कि मनुष्य पापी है? खाली एक ही पाप है और वह है मनुष्यको पापी कहना। मनुष्य भगवान् है, वह पुरुषोत्तमका एक अंश है, वह महान् है", तब कहां हैं वे बंधन जो उसको कैदी बना सकें? वह उन सबसे परे उन सबसे ऊंचा — भगवान् है!

जैसे भक्त कहता है कि हे मां, आखिर तुम ही तो सब कुछ हो, और तुम्हारी इच्छासे ही सब कुछ होता है, तुम चाहती हो तो किसीको ब्रह्म-पद दे देतीहो, और चाहती होतो किसीको अधोगामी बना देती हो। परंतु यह सब तो लोगोंका कहना है। अधोगामी मनुष्यमें भी तो तुम ही ज्योतिर्मय स्वरूप विराजमान हो। और तुम्हारी ज्योतिमें, तुम्हारे प्रकाशमें कौन है अधोगामी और कहां है बंधन?

— विजय पोद्दार

स्वावलंबी

दोपहरका समय था। गली सुनसान थी। सिर्फ कुछ आलसी आदमी गलीके एक कोनेमें एक पेड़की छायामें बैठकर ताश खेल रहे थे। एक बूढ़ा एक गाड़ी खींचता हुआ आ रहा था। हर कदमपर उसका सारा अंग कांपता था। उसका मुख पसीनेसे चमक रहा था। देखनेसे ऐसा लगता था मानो उसका सारा जीवन ही श्रम था।

गलीके मोड़के पास एक छोटा-सा चढ़ाव था। बूढ़ा अपनी सारी शक्ति लगाकर गाड़ीको खींचने लगा। लेकिन वह चढ़ावको पार न कर सका और गाड़ीके साथ लड़खड़ाते हुए पीछे आया। पेड़के नीचे बैठे हुए आदमियोंने इसपर जरा भी ध्यान नहीं दिया। उस गलीसे एक लड़का भी गुजर रहा था। वह भी चुपचाप खड़ा होकर देखने लगा। बूढ़ेने दूसरी बार कोशिश की किंतु इस बार भी न चढ़ सका। ताश खेलनेवाले हंस पड़े। पर बूढ़ेने कुछ ध्यान न दिया। एक लंबी सांस लेकर फिरसे गाड़ीको खींचते हुए चढ़ने लगा। इस बार बूढ़ा अपनी शक्तिकी अंतिम हदपर था, देखनेवाला लड़का दौड़कर आया और गाड़ीको पीछेसे ढकेला।

चढ़ावको पार कर लेनेपर बूढ़ेने मुड़कर कृतज्ञताभरी दृष्टिसे लड़केको देखते हुए कहा, "तुम भविष्यमें एक बड़े आदमी बनो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। और.....यह कभी नहीं भूलना कि जो स्वावलंबी हैं उनकी सहायता करनेके लिये भगवान् सदा तैयार रहते हैं।" बूढ़ा गाड़ीको लेकर चल दिया। लड़का बहुत खुशीके साथ लेकिन कुछ विचारमग्न होकर घरकी ओर चला।

— काशीनाथ

रातमें बस-यात्रा

बस रातको दस बजे चली। मैंने कभी पहले सारी रात बससे यात्रा नहीं की थी, इसलिये इस बार नया अनुभव लेनेकी बहुत उत्सुकता थी। मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो, रात जागकर ही बिताऊंगा और साहित्यिकोंकी तरह सोई हुई प्रकृतिका दर्शन करूंगा।

शरद्के दिन थे इसलिये रातें ठंडी हो चली थीं। बसके चलते ही हवाके ठंडे-ठंडे झोंके खिड़कीमें से घुसने लगे। खिड़की बंद करनेपर एक अजीब-सी उमस महसूस होती थी, बीड़ियोंके धुंएसे मन घबराने लगता था। रोनेवाले बच्चोंकी चीखें, पसीनेकी बदबू आदिसे छुटकारा पानेके लिये मैंने खिड़की खोल ली और अलसाई आंखोंसे बाहरका दृश्य देखने लगा। अभी चांद नहीं उगा था लेकिन तारोंके हल्के-हल्के प्रकाशमें दूरतक फैले हुए वनकी छाया जैसी दिख जाती थी। फिर बसकी रोशनी भी एक-एक वृक्षको प्रकाशित करती चलती थी। जैसे ही अंतिम खिड़की गुजर जाती, बेचारा पेड़ फिर काफी लंबे असके लिये अंधेरेमें रह जाता।

मेरे बाजूवाली सीटपर ढोलक, डफली आदि बजानेवाले कुछ लोग बैठे थे। उन्होंने कुछ गाना-बजाना शुरू किया। कोई संगीतज्ञ सुनता तो ऐसे पक्के रागकी तारीफ किये बगैर न रहता। वे पूरी ताकतसे ढोलक बजा रहे थे और ऊंचे स्वरोंमें बुंदेलखंडी गीतोंके आलाप ले रहे थे। उनके चेहरेपर लालिमाके साथ पसीनेकी बूंदें झलक आयीं। मजीरा बजानेवालोंके सिर कई बार झूम-झूमकर खिड़कीसे टकराये लेकिन उनके गीतमें कोई रुकावट नहीं आने पायी। कानोंका स्पर्श करती हुई ठंडी हवाकी फर-फर, मोटरके इंजनकी एक समान रहनेवाली घरघराहट और इन लोगोंके गायनकी आवाज मिलकर एक ऐसा सरल और मधुर ग्रामीण वातावरण बना रही थी जिसमें सुननेवाला आदमी सब कुछ भूल जाये। ऐसा लगता ही नहीं था कि बस चलती जा रही है। जहां किसी जगह ब्रेक लगता

और ठंडी हवाकी फर-फर एक क्षणके लिये रुक जाती वहीं एकदम संज्ञा लौट आती और बसकी गतिका अनुभव होता।

पता नहीं वे लोग कबतक गाते रहे। मुझे अपने संकल्पका ध्यान ही न हरा। और मैं सो गया। एक बार मेरा सिर बड़ी जोरसे अगली सीटपर टकराया तो मेरी नींद खुल गयी। मेरी आंखें जम-सी गयी थीं। बड़ी मुश्किलसे मैंने देखा कि गाड़ी कहीं खड़ी थी और एक बज चुका था। गानेवाले चुप हो चुके थे। शायद उन लोगोंके पास कुछ चमड़ा रखा हुआ था जिसकी बदबू मुझे लगातार परेशान कर रही थी। मैंने बाहर जाकर आंखें धोयीं और खाली दिमागसे फिर वापिस सीटपर बैठ गया। थोड़ी देर बाद गाड़ी चली और फिर ठंडी हवा फर-फर करके कानोंको छूने लगी। अब मुझमें अधिक साहस न था कि आंखें ऐसी तेज हवामें खुली रख सकूं। प्रकृति-दर्शन करनेका उत्साह लगभग समाप्त-सा हो गया था या मैं उसे भूल गया था। थोड़ी देरतक मैं जागता रहा और बसके बाहर और भीतरके नजारे देखता रहा। कहीं कोई नवीनता नहीं थी। सब पेड़ एक जैसे लगते थे और सड़क भी बंधी हुई-सी गुजरती जाती थी। अंदर लगभग हर व्यक्तिका सिर इधर-उधर झूम रहा था। कभी किसी बच्चेके रोनेकी आवाज आ जाती थी और उसकी मां क्षणभरमें उसे चुप करा देती थी।

केवल दो व्यक्ति बातें कर रहे थे। उनमेंसे एक बीड़ी पी रहा था और पैरोंको लंबा करके पूरी सीटपर पड़ा था। दूसरा पैरोंको सिकोड़े अलसाया हुआ बैठा था। थोड़ी देर बाद वे भी सो गये। चारों तरफ अवसादका वातावरण बन गया। बाहर चांदनीमें नहाए हुए खेतों, मैदानों, पेड़ोंको पीछे झोड़ती हुई बस सीधी भागती चली जा रही थी। ईंजनकी घरघराहट बहुत तेज महसूस होने लगी। पलकें इतनी बोझिल हो चली थीं कि उनको खुला रखना असंभव हो गया था। शायद केवल एक बार ब्रेक लगनेपर मेरा सिर पीछे टकराया और मैंने विचारशून्य दृष्टिसे बाहरकी चांदनीको देखा और फिर सो गया। बसमें केवल एक आदमी जाग रहा था। वह था ड्राइवर।

—कृष्ण कुमार

Phone No. 33-6927

DINDAYAL RAMRUP

(Registered stock holder of Iron & Steel)

BHAGWATI STEEL PRIVATE LTD.

(Mfg. of Rounds & Flats)

15/1, SOVARAM BASACK STREET

CALCUTTA-7

“श्रीअरविंद हमारे साथ हैं।”

—श्रीमाताजी

जाड़ेके मौसममें हर तरहके शाल दोशाले
खरीदनेसे पहले हमें याद रखें

रामकृष्ण जैन शालवाले, यूनिक स्टोर्स
घास मंडी; लुधियाना

With best compliments from:

M/s. Kalinga Tubes Ltd.,
33, Chittaranjan Avenue,
CALCUTTA-12

WORKS:
CHOUDWAR, CUTTACK, ORISSA.

नयी बी. एम. सी.
तार सिलाईकी मशीन
माडल नं. ९०७

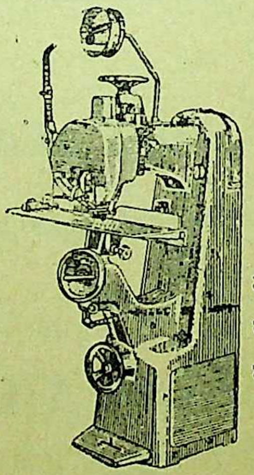

अधिक उत्पादन और अधिक लाभ, तार बेकार न जाय, और गति इच्छानुसार बदली जा सके।

मिलनेका पता:

बसंत मशीनरी कम्पनी
निजाम रोड
लुधियाना

पुस्तक-परिचय

बांगलार प्राण (बंगला) : ले. नलिनीकांत गुप्त, प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२

इस पुस्तकमें नलिनी बाबूके बंगाल संबंधी अनेक लेखोंका संग्रह है। बंगालमें शक्ति-पूजा, राममोहनराय, बंकिमचंद्र, रामकृष्ण, जगदीशचंद्र, शरच्चंद्र आदि सुपरिचित और सौमित्र शंकर दासगुप्त, नीरेंद्र चक्रवर्ती आदि अपेक्षतया अपरिचित व्यक्तियोंके बारेमें सारगर्भित लेख हैं। बंगालका परिचय प्राप्त करनेके लिये अच्छी चीज है।

श्रीअरविंद और उनकी साधना : ले. डा. के. ना. वर्मा, प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, महसुवा, डाकघर रायपुर करचुलियान, रीवा (म. प्र.)। मूल्य ६.००

श्रीअरविन्दके जीवन तथा उनकी शिक्षाको साधारण जनता तक पहुंचानेके लिये अच्छा प्रयास है। हिन्दी भाषी इससे लाभ उठा सकते हैं।

कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा कर्नाटकमें बड़े उत्साहके साथ हिन्दीका प्रचार कर रही है। उसने कन्नड़ साहित्यका हिन्दीमें परिचय देनेका स्तुत्य प्रयत्न भी हाथमें लिया है। यह काम बहुत जरूरी और साथ-ही-साथ कठिन भी है। इसलिये हमें वैयाकरण बनकर इन प्रकाशनोंकी हिन्दीकी भूलें नहीं ढूंढ़नी चाहिये बल्कि इनके द्वारा मिलनेवाले कन्नड़ साहित्यके रसको पाकर खुश होना चाहिये। यहां हम उनके कुछ प्रकाशनोंका परिचय दे रहे हैं और अन्य प्रकाशनोंके लिये उनसे आग्रह करते हैं। हां, प्रूफकी भूलें जरा कम होतीं तो अच्छा होता।

एकलव्य — ले. टी. पी. कैलासम, अनु. गुरुनाथ जोशी, मूल्य १.२५।

यह कन्नड़के प्रसिद्ध नाटककारकी एक कृतिका सजीव अनुवाद है जिसमें प्राचीन कालके गुरु शिष्य संबंधपर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला गया है। नाटक मंचपर खेला जा सकता है।

रजतोत्सव ग्रंथ — सं. शिवमूर्ति स्वामी और सिद्धनाथ पंत; मूल्य ८)।

कर्नाटकमें होनेवाले हिन्दी प्रचार कार्यका समुचित परिचय, और उससे भी बढ़कर स्वयं कर्नाटक तथा उसके साहित्य और संस्कृतिके साथ परिचय पानेके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसमें आप हिन्दीके लिये खून-पसीना एक करनेवाले प्रचारोंके चित्र, कन्नड़ प्रदेशके संतों, वीर-पुरुषों, वीर नारियों, राष्ट्रसेवियों आदिका संक्षिप्त पर अच्छा परिचय पायेंगे। जहांतक संभव हुआ मुख्य स्थानोंऔर व्यक्तियोंके चित्र भी दिये हैं। ८ रु. में पुस्तक सस्ती है।

अक्का महादेवीके वचन — अनु. उमापति शास्त्री; मूल्य १.५०।

अक्का महादेवी कर्नाटककी मीरा हैं। इनका विशेष परिचय हम पुरोवामें दे चुके हैं। इस पुस्तकमें उनके वचनोंका संग्रह किया गया है। ईश्वर स्वरूप, गुरुकी महिमा, अर्चना, सहज मंत्र आदि विभागोंमें महादेवीके वचन मूल कड़न्नमें देवनागरी लिपिमें दिये गये हैं और साथ ही उनका अनुवाद दिया गया है। आरंभमें ६८ पृष्ठकी विशद भूमिका है जिसमें अक्का तथा उनके मार्गके बारेमें उपयोगी जानकारी दी गयी है। इसी तरह बसब, अल्लम प्रभु आदिके बारेमें भी पुस्तकें प्रकाशित की जायें तो अच्छा हो।

जय गीत — ले. जयदेवी ताई, अनु. शिवमूर्ति स्वामी; मूल्य १.९०।

कर्नाटक और महाराष्ट्रमें श्रीजयदेवी 'ताई' या मांके नामसे प्रसिद्ध हैं और इनकी संतवाणीका बहुत प्रचार है। इस पुस्तकमें आपके कुछ गीतोंका हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

तुषार हार — ले. सिद्दय्या पुराणिक काव्यानंद; अनु. काशीनाथ स्वामी सारंगदेव, मूल्य १.२५।

इस पुस्तकमें सिद्दय्याकी छोटी-छोटी २३ सचित्र कहानियां दी गयी हैं। यूं पूरी पुस्तक पढ़ जानेके लिये अधिक-से-अधिक आधे घंटेकी जरूरत है, पर प्रत्येक कहानी बड़े मजेदार ढंगसे एक संदेश दे जाती है जो छोटे-बड़ोंके लिये समान रूपसे उपयोगी होता है।

M 8127
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

ça ne fait rien ! les difficultés sont là pour le plaisir de les surmonter

Va de l'avant, garde confiance et tout ira bien.

*

उससे कुछ नहीं आता जाता ! कठिनाइयां इसलिये विद्यमान हैं कि उन्हें जीतनेका आनंद प्राप्त हो।

आगे बढ़ो, विश्वास बनाये रखो और सब कुछ अच्छा ही होगा।

—श्रीमां

पुरोधा

किशोर मासिक

मार्च

१९६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ मार्च १९६७ अंक ७

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
संपादकीय : आश्रममें कला		२
प्रार्थना	डा. रामकृष्ण	३
श्रीअरविंद-वाणी : मृत्युके बाद		४
श्रीमातृवाणी : विश्व इतिहासका अभिलेख		५
कबीर	अनुबेन पुराणी	७
खेलकूद : प्राचीन भारतमें शारीरिक शिक्षा	मनोज	१३
इतिहास बोलता है : एस्तेर	अरुणा	१८
जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां	रवीन्द्र	२१
वसन्त (कविता)	कस्तूरी कश्यप	२३
अहंकार	रवीन्द्र	२४
इधर उधरसे : गेस्ट्रो केमरा	संकलित	२६
हीरा		२६
शरीरपर मनका प्रभाव		२७
हमारा जगत् : मधुमक्खी	रवीन्द्र	२८
बागी बनाफर	एक पुलिस अफसर	३०
नयी कोंपलें : सच्चा सुख	तृप्ता भसीन	३२
राजा भोज	दीपा	३४
पाठ याद हो आया	मारिया	३५
फ्रेंच सीखिये		३६
पुस्तक-परिचय		३८

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य :** एक अंक : रु. ०. ६० न.पै. **वार्षिक चंदा :** रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

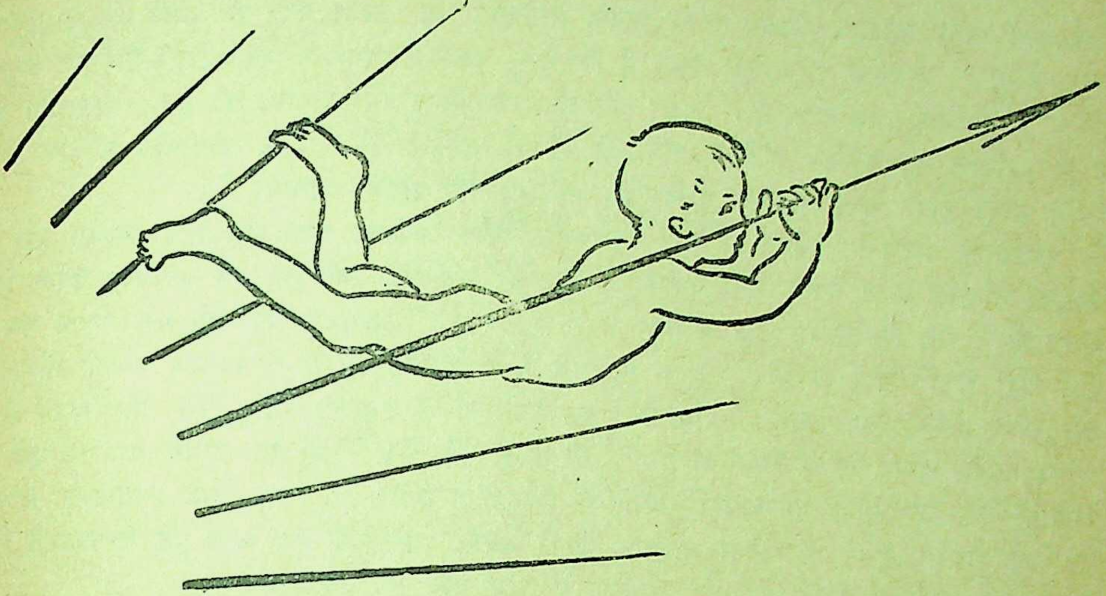

प्रार्थना

व्यक्तिके अपने अंदर ही सब बाधाएं हैं, उसके अपने अंदर ही सब कठिनाइयां हैं, उसके अपने अंदर ही सब अंधकार और अज्ञान है। चाहे हम सारी पृथ्वीका चक्कर लगा आयें, किसी एकांत स्थानमें अपने-आपको बंद कर लें, अपनी सब आदतोंको छोड़ दें, अत्यधिक तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगें, तो भी, यदि भ्रांतिका कोई भी बंधन हमारी चेतनाको तेरी पूर्ण चेतनासे दूर रखता है, यदि कोई अहंभावयुक्त आसक्ति तेरे दिव्य प्रेमके साथ हमारा पूर्ण संपर्क स्थापित नहीं होने देती, बाह्य परिस्थितियां कुछ भी हों, हम तेरे अधिक निकट नहीं हो सकते। इस संबंधमें क्या परिस्थितियां, कुछ अनुकल-प्रतिकूल हो सकती हैं, इसमें भी मुझे संदेह है। हम जो विचार उनके बारेमें बना लेते हैं वही (उनकी देनसे हम कम वा अधिक लाभ उठाते हैं) इसे निर्धारित करता है।

हे प्रभु, मैं तेरे आगे प्रार्थना करती हूं, ऐसी कृपा कर कि जिस संघातने इस व्यक्तित्वका निर्माण किया है उसके प्रति मैं पूर्ण रूपसे चेतन हो जाऊं तथा उसकी स्वामिनी बन जाऊं, ताकि मैं अपने-आपसे मुक्त हो जाऊं, और एकमात्र तू ही इन अनेक तत्त्वोंमें निवास करने लगे, इनके द्वारा कार्य करने लगे।

तेरी सर्वोच्च अभिव्यक्तिके साथ दृढ़ रूपमें संयुक्त होकर प्रेममें, प्रेमके द्वारा, प्रेमके लिये जीना .. सदा ही अधिकाधिक प्रकाश प्राप्त हो, अधिकाधिक सौंदर्य, अधिकाधिक सत्य !

—श्रीमां

सम्पादकीय

आश्रममें कला

भारतमें कुछ ऐसी मान्यता प्रचलित है कि जो भगवान्के मार्गपर चल रहा है उसे दुनिया जहानसे मुख मोड़ लेना चाहिये। विशेष रूपसे योगके साधकोंसे यह आशा नहीं की जाती कि वे सौंदर्यके उपासक हों। सामान्यतः हम यही देखते हैं कि साधु अपनी वेशभूषाको, अपनी चेहरे-मोहरेको असुन्दर बनाना ही अधिक पसंद करते हैं। परंतु श्रीअरविंदाश्रमकी दुनिया ही निराली है। माताजीने कहा है कि भगवान् जड़ प्रकृतिमें सौंदर्यके द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं। अतः जीवनमेंसे सौंदर्यका बहिष्कार करना मानो बाह्य जीवनमें भगवान्की अभिव्यक्तिपर प्रतिबंध लगाना है।

आश्रमके आरंभ के दिनोंसे ही यहां चित्रकला संगीत आदिको बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा है। कलाको जीवनसे अलग किसी ऊंची वेदीपर न बिठाकर उसे जीवनका एक अंग बनानेका प्रयास किया जाता है। इसी सिलसिलेमें वहां फूलोंका बहुत महत्त्व है। आश्रमके मकानोंमें ऐसे मकान कम ही होंगे जहां फूलोंके पौधे न हों। आप आश्रमके मुख्य भवनमें घुसते ही स्वागत कक्षकी दीवारोंपर बड़े सुन्दर हंसोंके चित्र देखेंगे। दीवारोंका रंग चित्रोंकी पृष्ठभूमिके साथ ऐसा मेल खाता है कि आपको यही लगेगा कि ये चित्र दीवारोंपर ही आंके गये हैं। वहीं एक ओरसे गायोंका एक झुंड दिखायी देगा जो वैदिक परिभाषामें ज्योतिकी किरणोंका प्रतीक है। यह सब चित्रकारी आश्रमके प्रारंभिक दिनोंकी है। उन दिनों आश्रमके काफी वयस्क लोग एक नये आये हुए चित्रकारसे चित्रकला सीख रहे थे। इतने वर्ष बीत जानेपर ये चित्र आज भी नये हैं।

आश्रममें रहनेवाली लड़कियोंके मनमें आया कि श्रीअरविंद तथा श्रीमाताजीके कमरोंके पर्दे, मेजपोश वगैरा सुन्दर होने चाहियें। बस फिर क्या था! चित्रकारोंकी सहायता लेकर उन्होंने कशीदा काढ़ना शुरू कर दिया और आगे चलकर एक अच्छा खासा विभाग बन गया जो आज अपने सुईके कामके लिये काफी विख्यात है। एक महिलाने कहींसे फटे-पुराने कपड़े जुटाए और उनमें थिगड़े लगानेकी जगह उनपर बेल-बूटे बना दिये जिससे पुराने कपड़ोंका मूल्य दस गुना हो गया। इसी प्रकार टाटके टुकड़ोंपर पुराने मौजोंके सूतसे भिन्न-भिन्न आकृतियां बनाकर मानो कालीन तैयार हुए।

समय-समयपर केक बनाये जाते थे। यह क्षेत्र भला कैसे अछूता रह सकता था। हमारे चित्रकार जगत्ने वहां भी धावा बोला और केकपर बादाम पिस्ता आदिसे सुन्दर फूल-पत्ते बनाये जाने लगे। दुर्गा-पूजा, लक्ष्मी पूजा आदिके अवसरपर माताजी विशेष आशीर्वाद दिया करती थीं। ऐसे दिनोंपर जो सांझियां बनायी जाती थीं वे सचमुच देखने योग्य होती थीं। आज भी दर्शनके अवसरोंपर क्रीड़ांगणमें बड़ी सुन्दर विशाल सांझी बनायी जाती है।

क्रीड़ांगणकी बात आ गयी है तो बच्चोंके रेतके खेलोंका उल्लेख करना भी जरूरी है। छोटे बच्चोंको मिट्टीमें खेलना बहुत प्रिय होता है। आश्रममें इसपर कोई रोक नहीं लगायी जाती। हां, मिट्टीकी जगह उन्हें प्रचुरमात्रामें रेत दी जाती है जिससे वे मनमाने खेल खेल सकें। रेतके इस अखाड़े में भी कला अपनी छटा दिखाती है। वहां कभी रेतके दुर्ग, कभी बुद्ध, कभी प्रताप और कभी शिवाजी बनाये जाते हैं। इस प्रकार खेल-ही-खेलमें बच्चे सौंदर्यको देखनेकी आदत डालते हैं।

हमारे यहां एक छोटा-सा कुटीर उद्योग विभाग है। जो अन्य विभागोंकी तरह मुख्य रूपसे आश्रमकी आवश्यकताएं पूरी करनेके लिये ही है। वहां चटाई, दरी, फर्नीचर वगैरामें भी उपयोगिताके साथ-साथ सौंदर्य लानेका प्रयास किया जाता है। वहांके पापिये-माशेकी चीजें, मूर्तियां वगैरा भी सामान्य जीवनमें सुरुचि लानेके साधन हैं।

यहां नृत्य, नाटक आदिका भी नाम लेना जरूरी है। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार नाच गाना सीखनेके लिये भारतीय और यूरोपीय पद्धतिके नृत्य गानके लिये पूरी सुविधाएं प्राप्त हैं। प्रयास यह किया जाता है कि इन सबके द्वारा मानव चेतनाको ऊपर उठनेमें मदद दी जाये।

प्रार्थना

छेड़ो प्रभु अब नूतन तान,
स्वर-लहरी झंकार उठे नव,
करे प्रफुल्लित जगके प्राण।
शांति तुम्हारी उतरे भू पर
करे प्रसारित अपना राज,
दूर हटा पाखंड व्यर्थ जो
शांति नामसे पुजता आज।
जगती इस स्वातंत्र्य ऐक्यकी
छायासे मोड़े निज माथ,
और तुम्हारी स्वतंत्रता औ'
सुएकतासे बने सनाथ,
अंधी-हिंसा, भक्ति दिखावा,
मिथ्या-शक्ति धरापर गाज,
चला रहीं जो युग-युगसे हैं
प्रबल, प्रतिष्ठित अपना राज,
ये पाकर उपरोक्त बलत्रयी
उसे उखाड़ें जड़के साथ,
उनके बिन न बदल सकता है
कोई जग-की पीड़ा-गाथ।
बस जगमें जो जूझ रहे हैं
वरनेको तव जय पावन,
झेल रहे हैं दुःख-क्लेश सब
ताकि शान्ति का हो शासन,
वे अब देखें परम-विजयके
फलको होते पूर्ण फलित,
वसुन्धरा-नन्दन-काननमें
हों वे प्रमुदित औ' हर्षित।

—— डा. रामकृष्ण

श्रीअरविंद-वाणी

मृत्युके बाद

मृत्युके समय सत्ता मस्तकसे होकर शरीरके बाहर चली जाती है। वह पहले सूक्ष्म शरीरमें जाती है और फिर सत्ताके अन्य लोकोंमें कुछ समयके लिये जाती है जहां वह अपने पार्थिव जीवनके परिणामस्वरूप कुछ अनुभूतियोंमेंसे गुजरती है। पीछे वह चैत्य लोकमें जाती है। वहां एक प्रकारकी निद्राकी स्थितिमें तबतक विश्राम करती रहती है जबतक कि पृथ्वीपर नया जन्म आरंभ करनेका उसका समय नहीं आ जाता। साधारणतया ऐसा ही होता है — किंतु कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अधिक विकसित होते हैं और वे इस धाराका अनुसरण नहीं करते।

* *

मृत्युके बाद एक ऐसा समय आता है जब जीव प्राण-जगत्‌में जाता है और वहां कुछ समयतक रहता है। इस यात्राका केवल पहला भाग ही संकटपूर्ण या कष्टदायक हो सकता है; बाकी यात्रा तो जीव अपने-जीवन-कालकी प्राणिक कामनाओं या प्रवृत्तियोंके अवशिष्ट अंशको विशेष वातावरणमें रहकर चरितार्थ करता है। जैसे ही वह इन सबसे क्लांत हो जाता है और इनसे परे जानेमें समर्थ हो जाता है, वैसे ही उसका प्राणिक कोष खिसक पड़ता है। उसके बाद जीवको कुछ मानसिक अवशिष्टांशोंसे मुक्ति पानेके लिये कुछ समयकी आवश्यकता होती है और फिर वह चैत्य जगत्‌में जाकर विश्राम लेता है। जबतक पृथ्वीपर अगला जीवन धारण करनेका समय नहीं आ जाता तबतक वहीं रहता है।

दिवंगत आत्माको सहायता दी जा सकती है अपनी शुभेच्छाके द्वारा या यदि किसीको उसका ज्ञान हो तो गुह्य साधनोंके द्वारा। एक चीज जो नहीं करनी चाहिये वह है दिवंगत आत्माके लिये दुःख या आसक्तिकी भावना रखकर उसे पीछे खींचना, ऐसा कुछ न करना जिससे कि वह पृथ्वीके समीप खिंच आये या विश्राम-स्थलतक पहुंचनेकी अपनी यात्रामें रोक लिया जाये।

* *

कुछ लोगोंके साथ ऐसा हो सकता है कि उन्हें थोड़ेसे समयतक पता ही न लगे कि वे मर गये हैं। ऐसा विशेषतः तब होता है जब कि मृत्यु अप्रत्याशित और आकस्मिक होती है; किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा सबके साथ या अधिकांशके साथ होता है। कुछ लोग अर्द्धचेतनताकी दशामें पहुंच सकते हैं या मृत्युके समयकी मानसिक स्थितिसे उत्पन्न किसी अंधकारमयी आंतरिक अवस्थासे अभिभूत हो सकते हैं; उस स्थितिमें वे कुछ भी नहीं अनुभव करते कि वे कहा हैं इत्यादि। अन्य लोग यात्राके विषयमें काफी सचेतन होते हैं।

यह सच है कि प्रयाण करनेवाली आत्मा अपनी प्राणिक देहमें रहते समय शरीरके समीप या जीवनके क्षेत्रके समीप कुछ समयतक बनी रहती है, अधिकांशमें आठ-आठ दिनोंतक टिकी रहती है, और प्राचीन धर्मोंमें उसे दूर करनेके लिये मंत्रों तथा अन्य साधनोंका उपयोग किया जाता था। जिसकी प्रकृति पृथ्वीसे बहुत बंधी रहती या सबल भौतिक कामनाओंसे भरी होती है वह सत्ता शरीरसे अलग हो जानेपर भी पार्थिव वातावरणमें लंबे समयतक रुकी रह सकती है। यह अवधि अधिकसे-अधिक तीन वर्षकी होती है। बादमें वह सत्ता प्राणिक लोकोंमें चली जाती है, अपनी यात्रामें आगे बढ़ती जाती है जिसके अंतमें — जल्दी हो या देरीसे — चैत्य विश्राममें पहुंच जाती है और वहां नया जीवन न मिलनेतक रहती है। यह भी सच है कि मृतकके लिये दुःख और शोक करनेसे मृतक पार्थिव वातावरणसे बंधा रह जाता है और आगे बढ़नेकी अपेक्षा पीछेकी ओर खिंच आता है जिससे उसकी प्रगतिमें बाधा आती है।

श्रीमातृ-वाणी

विश्वके इतिहासका अभिलेख

सृष्टिके आरंभसे लेकर अबतक पृथ्वीपर जो कुछ हुआ है वह सब, उसकी एक-एक चीज, बिना किसी अपवादके प्रत्येक चीज, चेतनाके किसी विशेष लोक या क्षेत्रमें कहीं-न-कहीं लिखी रखी है। जो कुछ मनुष्यने सोचा-विचारा है, वह सब, उसके अन्वेषण और आविष्कार, उसके निर्णय और सिद्धांत सब कुछ ज्यों-का-त्यों रखा हुआ है, सावधानीके साथ संचित है। यदि तुम पृथ्वीके विगत इतिहासकी किसी बातको जानना चाहते हो, किसी विशेष समय और स्थानपर घटी घटनाको जानना चाहते हो तो बस तुम उस जगत्में अपने-आपको उठा ले जाओ और उन अभिलेखोंको ध्यानपूर्वक देख लो।

वह एक बहुत विचित्र स्थान है, एक विशाल पुस्तकालयकी जैसी चीज है। इसमें मानो असंख्य कमरे हैं, प्रत्येक कमरेमें एक-एक विशिष्ट विषयका सारा ज्ञान भरा हुआ है। उन कमरोंका आकार वर्गाकार मालूम होता है और साधारणतया वे बंद रहते हैं। अगर तुम किसी विशिष्ट वर्गमें जाकर कुछ देखना चाहते हो तो तुम एक बटन दबाते हो और वह खुल जाता है तथा उसमेंसे लिखित कागजोंका एक पुलिंदा बाहर निकल आता है। तुम उस पुलिंदेको खोलते हो जो और कुछ तुम चाहते हो उसे खोज लेते हो। वहां चारों ओर, ऊपर और सर्वत्र इस तरहके सहस्रों और सहस्रों और सहस्रों कमरे और पुलिंदे हैं। सौभाग्यवश मनोमय जगत्में तुम जहां चाहो जा सकते हो, ऊपर चढ़नेके लिये तुम्हें 'लिफ्टों' या सीढ़ियोंकी आवश्यकता नहीं होती।

परंतु प्रश्न यह है कि आखिर वहां जाया कैसे जाय? अच्छा, पहली बात यह है कि तुम अपने मनको संपूर्णतः निश्चल-नीरव बना दो। मानसिक चिंतनको, चंचलताको तुम्हें पीछे छोड़ना ही होगा, कोई विचार तुम्हारी चेतनामें नहीं घुसना चाहिये, उसे शांत और स्थिर, पानीकी एक स्वच्छ सतह की तरह या चिकने और साफ-सुथरे शीशेकी तरह बने रहना चाहिये। ऊपर जो मैंने एक पुस्तकालयका वर्णन किया है वह महज एक रूपक है, असली चीज तो कुछ दूसरी ही है। जो हो, इस तरहसे तुम्हें उस विषयकी कुछ धारणा हो जायेगी जिसका तुम अनुसरण कर सकते हो। निश्चल नीरव मनमें तुम चेतनाका एक बिंदु तैयार करते हो और उसे तुम आवश्यक जानकारी इकट्ठा करनेके लिये एक गुप्तचरके रूपमें भेजते हो। चेतनाके इस बिंदुको पूर्ण रूपसे मुक्त, अनासक्त होना चाहिये और जहां वह चाहे वहां जानेके लिये उसे स्वतंत्र होना चाहिये। क्योंकि तुम यदि अपने ही मनकी सामान्य क्रियाओंके साथ किसी भी रूपपमें उसे बांध रखो तो जो कुछ तुम्हारे मस्तिष्कमें है उससे आगे तुम नहीं जा सकोगे। तुम्हें अपने मस्तिष्कको एकदम खाली कर देनेकी योग्यता प्राप्त करनी होगी, तुम्हें इस प्रकारकी कोई भी पूर्वनिर्धारित धारणा या भावना नहीं रखनी चाहिये कि तुम्हारी समस्याका समाधान इस तरह या उस तरह हो सकता है। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, तुम्हारा मन एकदम सादा पृष्ठ, एक साफ-सुथरी स्लेट (पट्टी) बन जाना चाहिये। और उसपर कुछ भी लिखा नहीं होना चाहिये, एक निशानतक भी नहीं होना चाहिये। उसके स्थानपर होनी चाहिये सत्यको जाननेकी एक सच्ची अभीप्सा, परंतु पहलेसे ही यह नहीं मान बैठना चाहिये कि वह इसी प्रकारका सत्य होगा; अन्यथा तुम अपनी ही रचनाको अपने मतिष्कमें पाओगे।

निश्चय ही तुम अपनी आंतरिक यात्राद्वारा प्राप्त ज्ञानको बाहरी ज्ञानके द्वारा, जो कुछ दूसरोंने

जाना है या जो कुछ पुस्तकोंमें लिखा हुआ है उसके द्वारा जांच सकते हो और सुधार सकते हो। आंतरिक ज्ञानके स्थानपर बाहरी ज्ञानको ला बैठानेकी कोई जरूरत नहीं है और न ऐसा करना ही चाहिये, पर बाहरी ज्ञान उसका पूरक होता है और दोनोंको ही एक-दूसरेको संपुष्ट करना चाहिये और पूर्ण बनाना चाहिये। परंतु वहां एक प्रकारका मिश्रण भी होता है जिसके विषयमें तुम्हें खूब सावधान रहना चाहिये। तुम्हारा नीरव मन, तुम्हारी आंतरिक चेतना तो आवश्यक ज्ञान प्राप्त करती है, पर जैसे ही तुम उसे व्यक्त करना या सामान्य शब्दोंमें रूपांतरित करना चाहते हो अर्थात् जैसे ही तुम्हारा मस्तिष्क फिरसे सक्रिय हो उठता है वैसे ही वह अपने निजी मसालों और जानकारियोंको दे सकता है और अक्सर देता ही है और मूल ज्ञान अस्तव्यस्त और विकृत हो जाता है। कभी-कभी तुम ऐसा कर सकते हो कि तुम अपनी देखी हुई या अनुभव की हुई चीजोंको अत्यंत निष्क्रिय भावसे बोलते जाओ और जैसे-जैसे तुम बोलो वैसे-वैसे कोई दूसरा आदमी उसे लिखता जाये। तुम्हें ठीक वैसा ही बोलना चाहिये जैसा कि तुम देखते हो और दूसरेको ठीक-ठीक वैसा ही लिखना चाहिये जैसा कि वह सुनता है।

मैंने तुम्हें पुस्तक पढ़नेकी उपमा ऊपर दी है। परंतु वह, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, केवल एक रूपक है। वास्तवमें वह एक प्रकारकी अनुभूति, एक दर्शन है। और वह अनुभूति एक दृश्यके रूपमें आ सकती है अथवा एक वर्णनके रूपमें आ सकती है। दूसरे अवसरोंपर वह किसी विशेष प्रश्नका एक सीधा-सादा उत्तर हो सकती है। अभिलेखोंके अनेक प्रकार और भेद हैं और तुम जिस चेतनामें जाते हो उसके प्रकारों या स्तरोंके अनुसार वे भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं।

स्वभावतः ही यह प्रक्रिया आसान नहीं है और एक मामूली किताबकी तरह यह प्रत्येक आदमीको प्राप्य नहीं है। इसके लिये एक विशेष प्रकारकी योग्यता और एक विशिष्ट साधनाकी आवश्यकता होती है।

* * *

न तो कोई मनुष्य पूर्ण सच्चा है और न कोई मनुष्य पूर्ण झूठा, यही कारण है कि मनुष्योंमें भेद करना इतना कठिन होता है।

* * *

एकमात्र दिव्य सत्य और दिव्य प्रेम ही शाश्वत हैं। जो कुछ इनका विरोध या खंडन करता है वह विलीन होनेके लिये बाध्य है.......।

बस, साहस बनाये रखो और (अपने पथपर) डटे रहो।

—श्रीमां

कबीर

(अनुभवकी बात कबीर कहै)

—श्री अनुबेन पुराणी

अब कबीरकी ख्याति अपने छोटेसे मुहल्लेसे निकलकर बाहर फैल रही थी। सारी काशी अब कबीर तथा उसके गीतोंको जानती थी। साधारण जनताको इससे संबल मिलता था और जहां भी कबीर दिखायी देते थे लोग इकट्ठे हो जाते थे। लेकिन वे कर्मकांडी पंडितोंकी आंखोंकी किरकिरी बन गये थे। इतना ही नहीं पंडित मंडलीमें कबीरके शब्दोंने खलबली मचा दी। खासकर पंडित देवदत्तजीको कबीर फूटी आंखों नहीं सुहाते थे। वे गंगाघाटपर सवेरे-सवेरे अपने मित्रों और शिष्योंके बीच बैठे एक यज्ञकी तैयारीमें लगे हुए थे। इतनेमें कबीर उधरसे निकले। उनको देखते ही पंडितजी चिल्लाये — "कबीरा इधर आ, तू आजकल बड़ा मुंहफट होता जा रहा है। न तुझे पिंगल-शास्त्र आता है न छन्दका ज्ञान है। पढ़ना-लिखनातक तो आता नहीं, और बड़ा कवि बनने चला है। उसपर भी धर्मकी बुराई करता है। बीस सालके जवान कबीरका खून इन शब्दोंको न सह सका। उसने तुरंत जवाब दिया —"लेकिन पंडित जी, आपके शास्त्रोंमें भी तो कहा है कि हमेशा सत्य बोलो। अब अगर मैं झूठ बोलता हूं तब आप ही कहिये, आपके पड़ोसी पं. रामपूजन कितनी तीर्थयात्रा कर आये हैं, गंगामें पता नहीं कितनी डुबकियां लगाते हैं पर उनका क्रोधी स्वभाव बदला है क्या? पंडितजीने उत्तर दिया — "लो बहस करने चला है, आता तो कुछ है नहीं और बहस करेंगे! अरे, ऐसे इक्के-दुक्के आदमीको देखकर बोलनेसे कैसे काम चलेगा। हमारे पुरखोंने युगोंतक जो किया है वह क्या झूठ है? जब सनातन कालसे कर्मकांड चला आ रहा है तो इसमें कुछ तो होगा ही।" कबीर —"महाराज, मैं मना कहां कर रहा हूं, मेरे कहनेका मतलब है कि सिर्फ क्रियाओंसे कुछ नहीं होता, जो आदमी सच्चे दिलसे इनको करता होगा उसको जरूर फायदा होता होगा।" इस बीच लोगोंकी अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। छैला बने हुए अकबरको भी इसमें रस आ गया। भीड़ कभी पंडितकी सराहना करती तो कभी वाह कबीर वाह कबीर की पुकार करती। सहसा कबीरके मुखसे मुखरित हुआ :—

तीरथमें तो सब पानी है, होवे नहीं कछु अन्हाय देखा।
प्रतिमा सकल तो जड़ है भाई, बोले नहीं बोलाय देखा।।
पुरान कुरान सबै बात हैं, या घटका परदा खोल देखा।
अनुभवकी बात कबीर कहै, यह सब है झूठी पोल देखा।

भीड़ वाह-वाह कह उठी। कबीरने फिर कहा :—

पाहण केरा पूतरा करि पूजै करतार।
इही भरौसै जै रहे, ते बूडे काली धार।।
काजल केरी कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथिमी पंडित पाडि बाट।।

पं. देवदत्तजीके होठ फड़कने लगे। वह कुछ बोलें इससे पहले ही अकबर चिल्ला उठा, "बहुत

अच्छा कबीर, ये लोग खामखाह मूरत लेकर बैठते हैं। हमारा मजहब कैसा अच्छा है।" कबीरने हंसकर कहा, "ना अकबर, हमारे यहां भी तो ईद मनाते हैं, हज करते हैं, जुम्माको विशेष बांग देते हैं, भैया सब अंधे हैं -- क्या मुसलमान क्या हिंदू।" फिरसे कबीरका मधुर स्वर सुनायी दिया :—

ना जाने साहब कैसा है?
मुल्ला होकर बांग जो दैवे, क्या तेरा साहब बहरा है।
कीड़ीके पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।
माला फेरी तिलक लगाया, लंबी जटा बढ़ाया है।
अंतर तेरे कुफर-कटारी, यों नहीं साहब मिलता है।
जो खुदाय मसिद बसतु है और मलुक केहि केरा?
तीरथ मूरत राम निवासी बाहर करे को हेरा।।
पूरब दिसा है हरिको बासा पच्छिम अलह मुकामा।
दिल में खोज दिल में खोजे इहै करीमा रामा।।
जैते औरत मरद उपानी सौ सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगडा अलह रामका सौ गुरु पीर हमारा।।

* *

कबीरको लहरतारा झील और रतन इन दोनोंसे ही आराम मिलता है। आज रतनने आते ही कहा — "कबीर लोग तेरे दोहे, भजन बहुत पसंद करते हैं।" कबीरने कहा, "रतन भइया, तू यह सब सुनकर बहुत खुश होता है। पर सच बताऊं, मैं लोगोंको खुश करनेके लिये नहीं गाता। अपनी ही खुशीके लिये गाता हूं।" रतन — "वह तो मैं जानता हूं लेकिन कभी-कभी लोगोंकी बात भी ठीक होती है। जैसे, लोग तुझे निगुरा कहते हैं। कबीर — "मुझे तो नहीं मालूम।" रतन — "ना भइया, तू बात नहीं समझा। देख, अभीतक तुझे पाप क्या है इतना ही मालम है लेकिन भगवान् क्या है यह तू नहीं जानता। तू कहता है कि कर्मकांडसे कुछ नहीं होता। लेकिन तू यह नहीं बता सकता कि क्या करनेसे भगवान् मिल सकते हैं।"

कबीरने बहुत सोच-विचारकर बाबा भोलानाथजीके पास जानेका विचार किया। भोलानाथजीकी और उसकी बचपनकी जान-पहचान थी। उन्हींसे तो उसने रामायण, महाभारत और असंख्य देवी-देवताओंकी कहानियां सुनी थीं। असमान वयके इस बूढ़े और जवान कबीरमें बहुत गहरी मित्रता थी। भोलानाथजी ही कबीरकी व्यथाको, उसकी तड़पको समझ सकते थे। आज इसीलिये कबीरके पांव अनायास उनकी ओर मुड़ गये। बाबा छोटे दीपके सहारे अपने मित्र पं. हरिहरनाथकी नयी काव्य-रचनाको देख रहे थे। कबीरको देखते ही उन्होंने कागज समेटना शुरू किया। बड़े प्रेमसे बोले, "आओ बेटा, आओ, कोई नया गीत जोड़ा है?" कबीर बोले — "ना ना, आपसे एक बात पूछने आया हूं।" अच्छी तरह आसन जमाकर भोलानाथजी बोले — "सुनाओ"। कबीरने पूछा — "बाबा जी जिसको सत्य ढूंढ़ना हो उसके लिये गुरु जरूरी है क्या?" भोले बाबा बोले — "हां बेटा, कहते हैं कि गुरु बिन ज्ञान न होय।" कबीर बोले — "क्यों बाबा बुद्ध भगवानने तो कोई गुरु नहीं बनाया?" बाबा — "कहां भगवान् बुद्ध, भगवान् राम और कहां हम! अरे वे तो आये ही इसलिये थे कि आदमीको आगे चलनेके लिये रास्ता दिखा सकें। तू भी बातें करता है, भगवान्का गुरु कौन हो सकता है। हम तुम जैसोंके लिये तो गुरु ही :—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

कबीर बोले —— पर बाबा आजकल हरेक गुरु बनने चला है। सच्चा गुरु कैसे पहचाने ? बाबा हंसे —— बबुआ यह बहुत आसान है, तेरा जो सबसे कठिन प्रश्न हो, जिस प्रश्नका उत्तर तुझे अभीतक न मिला हो, उसका ठीक-ठीक उत्तर जो दे सके, तेरे लिये वही गुरु है।"

* *

काशीमें चारों ओर चहल-पहल थी। हरेकके मुखसे एक ही बात निकल रही है "रामानंद पधारे हैं, आहा , क्या सुन्दर मूर्ति है"। देखते ही मन खिंच जाता है। आज अश्वमेध घाट सारी काशीका एकमात्र आकर्षण बन गया है। घाटपर नरमुण्ड-ही-नरमुण्ड दिखायी देते थे। दूर-दूरतक गंगाका स्वच्छ पट काले-काले बिंदुओंसे भर गया था। कभी-कभी जय-जयके नारोंसे घाट गूंज उठता था। इस मानव समुद्रके बीच कबीर सभा मंडपके बहुत नजदीक खड़े थे। मंडपके सभी स्वामियों, पंडितों और शास्त्रियोंको वे देख सकते थे। भीड़को चीरता हुआ मनुष्योंका एक छोटा-सा झुंड सभा मंडपकी ओर आने लगा और उसके पीछे पीछे जयध्वनिकी लहरें सभा मंडपको चारों ओरसे घेरने लगीं। कबीरने देखा कि गेरुवा वस्त्रसे लिपटा हुआ एक दल सभाकी ओर आ रहा था। इनके बीचमें अग्निशिखाकेसे तेजसे प्रज्वलित एक मनुष्य-शरीर देखा। लंबा सुकुमार-सा शरीर था। गोरे हाथोंपर चंदन लगा हुआ था। आधी-मुंदी हुई आंखें जमीनकी ओर लगी हुई थीं। सारा मुख मंडल किसी भावावेशमें खो गया था। कबीरको इस साधुकी प्रत्येक चेष्टा बहुत प्रिय लगी। पास खड़े रतनसे पूछा —— "अरे रतन, यह कौन है जिसके शरीरसे अग्निशिखा-सी निकलती दिखायी देती है ?" रतन हंस पड़ा और बोला —— "भैया तुम तो बोलनेमें भी कविता करते हो।" लेकिन कबीर गंभीर थे। बोले —— "नहीं रतन, मैं मजाक नहीं करता। तू देख तो सही इस मनुष्यका सब कुछ आकाशकी ओर उठ रहा है।" रतनने कहा —— "भैया, तुम देखते होगे, लेकिन मैं इतना जानता हूं कि ये ही तो हैं रामानंद स्वामी, जिनके दर्शनके लिये हम सब एकत्र हुए हैं। "कबीर मुग्ध दृष्टिसे रामानंद स्वामीकी ओर देखता रहा। अचानक उसे बाबा भोलानाथकी बात याद आयी। कबीरने सोचा क्या ये मेरे गुरु हो सकते हैं। कबीर अपनी सुध-बुध खो बैठे। पता नहीं कहां डूब गया उसका मन। अचानक भीड़के नारोंने उसका ध्यान तोड़ा 'रामानंद स्वामीकी जय'। कबीरने चौंककर देखा चारों ओरसे सभा मंडपमें फूल बरस रहे हैं। रामानंद स्वामी बीचमें खड़े थे। उन्होंने बलंद आवाजमें कहा — "किसीको कुछ पूछना है ? और कबीर अपने स्थानसे चिल्लाये — "हां महाराज।" रामानंदकी तेजस्वी आंखें कबीरकी ओर घूमी उन्होंने एक सुन्दर मुग्ध चेहरा देखा, निर्भीक आंखें देखीं, प्रत्येक रेखामें दृढ़ निश्चय देखा। उनको यह युवक बहुत पसंद आया। कबीरने कहा — "पापको 'दुरितम्' कहते हैं यह तो ठीक है लेकिन मनुष्यको कैसे पता चले कि कौन-सा रास्ता उसके लिये ठीक है। रामानंद हंसे और कबीरको लगा कि उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई। वे बोले — "यह पहला सच्चा प्रश्न है जो मैं सुन रहा हूं। बेटा, ध्यान करते हो ?" कबीर —— "कोशिश करता हूं।" रामानंद —— "तब सुन लो ध्यान करते -करते तुमको अपना और दूसरोंका ज्ञान होगा। तुम्हारे अंदरका जो देवता है वह एक दिन जाग उठेगा। कबीर — तब गुरुकी क्या जरूरत है ? रामानंद स्वामी — "अगर हमें बादशाहसे मिलना हो तो यहांसे दिल्ली जाना पड़ेगा न ? लेकिन दिल्लीका रास्ता जाननेवाला साथ रहे तो हम जल्दी और सीधे वहीं जायेंगे। लेकिन अगर अकेले चले और रास्ता मालूम न हो तो जरूर भटकना पड़ेगा। बस गुरुकी इसीलिये जरूरत है। हमारे बादशाहतक पहुंचनेमें वह हमें ठीक-ठीक रास्ता दिखा सकता है। कबीर मुस्कुरा उठे। कुछ-कुछ आशा जागी। फिर बोले — "लेकिन स्वामीजी, हरेक कहता है मेरा ही रास्ता ठीक है। शैव कहता है मेरा ही रास्ता ठीक है। हमारे काजी कहते हैं कि सच्ची 'राह' एक ही है। उन सबोमें कौन-सा सच्चा

रास्ता है ? रामानंद स्वामी बोले –– "देखो यह गंगा बह रही है न, सीधी समुद्रमें जायगी और कहते हैं दूर-दूर बंगालमें ब्रह्मपुत्र है वह भी समुद्र में जाकर गिरता है। वैसे ही तुम जिस रास्तेको अपनाओगे वह उसी ओर ले जायगा। सच पूछो तो ब्रह्म हर जगह है। उसको किसी भाषामें बांध नहीं सकते। इसको बुद्धि समझ नहीं सकती। वह जगत्में है और जगत्के बाहर भी है। देखो गीतामें क्या कहा है :–– "शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः। ज्ञानीके लिये कुत्ता और ब्राह्मण एक हीके अनेक रूप हैं। कबीरको लगा कि आज ठीक-ठीक उत्तर मिल रहा है। रामानंदकी तेजस्वी आंखें कबीरकी सारी हस्तीको हिला रही थी। रामानंद बहुत प्रसन्न थे। वाह कैसा सच्चा जिज्ञासु मिला आज। कबीर धीरे-धीरे आगे बढ़े –– "स्वामीजी, आपने मुझे सच्चा रास्ता दिखाया, मैं गुरुमंत्र चाहता हूं, बोलते-बोलते कबीर पांव छूनेके लिये नीचे झुके कि झट पं. देवदत्तजी चिल्लाये — "अरे, अरे स्वामीजी पीछे हटिये, यह म्लेच्छ है।" रामानंदजी कबीरकी ओर देखते रहे, कबीर रुक गया। कबीरके हृदयमें आग लग गयी। उसकी आंखें दहकते हुए अंगारोंकी तरह चमकने लगीं। स्वामीजी बोले –– "बेटा किस जातिके हो ?" नीमाकी सौम्य शकल याद करते ही कबीर गर्वसे भर आया। स्वामीजीकी आंखोंमें देखते हुए वह बोला –– "जुलाहा।" स्वामीजीका हृदय चीत्कार कर उठा। ऊपरसे शांत रहते हुए उन्होंने कहा –– "मैं तुम्हें गुरु-मंत्र नहीं दे सकता" और वे दूसरी ओर मुड़कर अपने साथियोंके साथ चल पड़े। कबीरके चेहरेपर कालिख पुत गयी। ऐसा अपमान, वह भी अपने प्रिय स्वामीजीसे ! उसका मन माननेको तैयार नहीं था। चारों ओर भीड़मेंसे आवाजें उठ रही थीं "बहुत बड़ा आदमी बना फिर रहा था, देखो न, अरे कबीर, तू तो झट गाना गाकर जवाब देता था। क्या हुआ आज ? रतन कबीरका हाथ पकड़कर बोला –– "भइया यह सब सुननेके लिये क्यों खड़ा है ? चल हम अपनी झीलके पास जायं। निर्जीव-सा कबीर रतन के पीछे हो लिया।

गंगाके घाटपर उज्ज्वल चांदनी चमक रही थी। घाटपर स्वामी रामानंदजी अकेले घूम रहे थे। उनका स्वस्थ अंतर डांवाडोल हो रहा था। विचारोंकी बिजलियां चारों ओरसे आ-आकर उनको चौंका देती थीं। सचमुच क्या शास्त्रोंने निम्न वर्णके लोगोंको दीक्षा देना मना किया है ? अचानक उनको गीताका वह श्लोक याद आया :––

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणं गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

वेदने भी कहा है :––

"यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥"

पर वर्षोंके विचार फिरसे उनको पीछे खींच रहे थे। वे मनमें कहने लगे, देखो, महाभारतमें द्रोणाचार्यने शूद्र शिष्य एकलव्यको मना किया था कि नहीं। उसके अंदर क्या कबीरसे कम भक्ति थी ? लेकिन द्वैपायन तो महर्षि पराशर और मत्स्यगंधाके बेटे थे, ऊंहूं इस सबमें मेल नहीं बैठता। हां, उस समय कबीर धीरेसे बोले थे जिसे उनके सिवाय किसीने नहीं सुना था। उन्हें वे वचन याद आने लगे 'स्वामीजी गीता केवल पढ़नेके लिये है या आचरणके लिये ?' स्वामीजी घबड़ाकर अपने प्रिय मंत्रका पाठ करने लगे 'ओम हरि ओम'। उनके विचार फिर चलने लगे। और शूद्र किसको कहते हैं ? महाभारतमें कहा है कि आदमी आचरणसे शूद्र बनता है जन्मसे नहीं, तब कबीरको शूद्र कैसे कहें ? और कैसी स्वस्थतासे उसने अपनेको जुलाहा बताया था। हां, पं. देवदत्त कह रहे थे कि वह सचमुच जुलाहेका बेटा नहीं है। सत्यकामके गुरुने उसका सच्चा ब्राह्मणत्व पहचान लिया था। पर मैं. . . और स्वामीजी फिरसे "हरि ओम हरि ओम" कहने लगे।

पूर्वमें अंधेरा हट रहा था और आनेवाले प्रकाशकी छाया प्रकट हो रही थी। गंगाका शांत जल

जैसे प्रतीक्षामें चुपचाप खड़ा था। घाटके दूरसे खड़ाऊंकी खट-खट आवाज इस शांतिको ज्यादा गंभीर बना रही थी। धीरे-धीरे आवाज पास आती गयी। रामानंद स्वामीकी आकृति आकाशमेंसे उतरती-सी जान पड़ी। हठात् उनका पांव घाटकी सीढ़ीपर किसीसे टकराया। वे बोले — "राम बोलो राम"। एक मिनटका "चिरपरिचित" चेहरा उनके सामने आया। गुरुके मुंहसे निकला – "कबीर"। और कबीर गुरुकी ओर देखने लगे। बोले — "गुरुदेव, आपने मंत्र भी दिया और चरण स्पर्श भी। अब मुझे स्वीकार करें। रामानंदने कबीरको गले लगाया और बोले — "हां बेटा, बस राम मंत्रका जाप जपो तुम्हें सब ज्ञान मिलेगा। वही सारे ज्ञानकी खान है।" कबीर चुपचाप सुनते रहे। रामानंदने उनको आशीर्वाद दिया और चलने लगे। फिर एकाएक रुककर बोले — "बेटा, एक बात याद रखना गुरुकी करनीपर ध्यान न देना कथनीके अनुसार चलना।" कबीर मुस्कराये 'प्रिय जनका सब कुछ प्रिय लगता है।' गुरुका यह थोड़ा-सा डर भी कबीरको बहुत प्रिय लगा।

★ ★

अकबर अपने कुछ साथियोंको लेकर कबीरके घर आया। अकबरने कहा — 'कबिरा, हमने सुना है कि तूने एक हिन्दूको गुरु बनाया है।" कबीरने कहा — "हां, ठीक बात है।" अकबर — "अरे, तू मुसलमान है कि क्या है, तेरी बात समझमें ही नहीं आती।" कबीरने कहा — "भइया मैं भी यही खोज रहा हूं, मैं क्या हूं, मेरा भगवान कौन है? कभी मैं सोचता हूं कि मैं हिन्दू हूं। कभी मैं सोचता हूं न मैं मुसलमान हूं न ही हिन्दू।" अकबर — "तेरी ये सब वाहियात बातें हम नहीं जानते। लेकिन तूने हिन्दूको गुरु बनाया है और इसका ढिंढ़ोरा पीटता है, वह बंद करना पड़ेगा। कबीर — "अकबर डराने आया है? हम बचपनसे साथ पले हैं। तू कबीरको नहीं पहचानता। डरके मारे गुरुके अहसानको भूल जाऊं?" कबीरकी आंखें ज्योतिसे जगमगा उठीं। अनायास उसके गलेसे शब्द निकले :—

> बलिहारी गुरु आपणे यों हाड़ी के बार।
> जिनि मानिष ते देवता करत न लागी बार॥
> सतगुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपकार।
> लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावन हार॥
> राम नाम के पटतरे, देवे को कुछ नाहीं।
> क्या ले गुरु संतोषिये, हौंस रही मन मांहि॥

★ ★

लहरतारा झीलके किनारे आज रतन अपनी प्रणय कहानी सुना रहा था। और कबीर उत्सुकतासे सुन रहा था। रतन बोला — "भइया, मेलेमें उसको देखा और पता नहीं क्यों मैं सुध-बुध भूल गया। ना मुझे मेला दिखायी दिया न मुझे तू ही दिखायी दिया। जहां भी देखता था उसकी काली आंखें मुझे देखती हुई....। कबीर बोले — "रतन, तूने उसका नाम भी पूछा?" रतन — "हां-हां, क्यों नहीं उसका नाम लाली है।" अचानक कबीर हंस पड़े — "जोड़ी खूब अच्छी बनी। तू रतन और वह लाली। तेरे नामने बड़ा अच्छा खेल किया। रतन मुस्कराया और कहने लगा — "कबीर, तुम्हें शादीमें चलना ही पड़ेगा।" कबीर बोले — "रतन, हम बचपनसे मित्र हैं और तेरी खुशीमें मैं खुशी नहीं मनाऊंगा यह कैसे हो सकता है। मैं जरूर चलूंगा। रतन कुछ कहना चाहता था लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी। कबीरने रतनके कंधेपर हाथ रखकर कहा — रतन तुझे क्या कहना! मेरे सामने शर्म क्या? रतनने कहा, भइया, बुरा तो नहीं मानोगे? कबीर — रतन तेरा कोई भी प्रश्न मुझे बुरा न लगेगा। रतनने कहा — "मेरी तो लाली है पर भैया आपकी?" कबीर जोरसे

हंस पड़ा –आहा, अब रतन भइयाको सब जगह प्रेम-ही-प्रेम दिखायी देता है। अब तू चाहता है मेरी भी कोई लाली हो। कबीर बोले —– रतन, मैं किससे प्रेम करूं? मुझे हमेशा यही लगता है कि पता नहीं इन सब लड़कियोंमेंसे कौन मेरी चाची होगी, कौन मेरी बहन लगती होगी। हिन्दू हो चाहे मुसलमान, मुझे हरेक जगह गलती करनेका अनुभव होता है। मैं तो अपनी कल्पनाकी सुन्दरी से ही प्रेम करूंगा।

शादीके बाद रतनको इतना समय नहीं मिलता जितना पहले मिलता था। बहुत दिनों बाद रतन आज फिर आया था। कबीरने हंसकर कहा — "आज दूल्हेको समय कैसे मिला?" रतन शर्मा गया, बोलने लगा — "भइया, तूने तो शादी की नहीं, तुझे क्या मालूम रिश्तेदारी.........." कबीर बीचमें ही बोल उठे — लालीसे छिप-छिपकर मिलना — हां-हां समझ रहा हूं, बहुत काम है तेरे पास। रतन कहने लगा — "सच भइया, यह दुनिया एक ही आदमीके कारण इतनी बदल सकती है, मुझे मालूम न था। सब कुछ सुन्दर बन गया है।" कबीर — "यही कहो न कि तुम लालीमय बन गये हो।" रतन कहने लगा — "भइया, हमने सब कुछ साथ-साथ किया है.".......पर कबीर बीच ही में बोले — "ना, रतन ना, इसमें भी तेरे पीछे नहीं हूं।"

कुछ रुककर बोले — "रतन, तू ही क्यों अम्मा भी तो अब तंग कर रही है।" रतन — "तूने क्या कहा?" कबीर — "मैंने अम्माको ऐसा जवाब दिया कि बस चुप हो गयी।" रतन — "मैं भी तो सुनूं।" कबीरने मधुर स्वरमें गुनगुनाया :—

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सके मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बडे मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन के तांई,
काहै न मिलो राजा राम गुसाई।।
अबकी बेर मिलन जो पाऊं,
कहै कबीर मौ जलि नहीं आऊं।।

गीत सुननेके बाद रतन पूज्य भावसे कबीरकी ओर देखने लगा। कबीर भावावेशमें अपने-आपको भूल चुके थे। अचानक इस स्तब्धतामें एक औरतकी मीठी आवाज सुनायी दी — "ए काली, गोदावरी आ-आ"। कबीरने देखा झीलके दूसरी ओर एक युवती खड़ी थी। गायें उसके चारों ओर घूम रही थीं। फिर भी वह रतनकी ओर देखती हुई गायोंको बुला रही थी। मानों वे बहुत दूर हों। उसका चेहरा प्रसन्नतासे खिले हुए फूलके समान था। अभी उसकी शादीके गहने शरीरसे उतरे नहीं थे। कबीरने देखा — रतन जैसे बदल गया। उसका सारा शरीर सामर्थ्यसे भर गया। उसके होंठ, उसकी आंखें मुस्कुरा उठीं। कबीर प्रेमकी यह अव्यक्त भाषा देखकर प्रसन्न हो गये और रतनसे पूछने लगे — रतन क्या यह भाभी है? अचानक रतन जैसे आकाशसे नीचे आया। वह बोला — "हां"। कबीर — "शायद तुम्हें बुलाने आयी है।" रतन हंसकर बोला — "भइया, तुम बिना प्रेम किये यह सब कैसे समझ लेते हो?" कबीर —"प्रेम कैसे नहीं किया भैया? मैंने तो तुझसे कहा था न कि मैं अपनी स्वप्न सुन्दरीसे प्रेम करूंगा। लेकिन ढूंढ़ते ढूंढ़ते मैंने देखा कि "हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया" और भइया इस प्रेमको समझनेके लिये मैं जैसे जैसे कोशिश करता गया हठात् मैंने देखा कि मेरी दशा तो अजीब हो गयी। न अपना पता न प्रेमका पता —

"लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल।।

***

प्राचीन भारतमें शारीरिक शिक्षा

आज हमारे अध्ययनका विषय है प्राचीन भारतमें शारीरिक शिक्षा। यह विषय इस रूपमें अबतक प्रायः अछूता ही रहा है क्योंकि इस विशिष्ट दिशामें अबतक बहुत ही कम खोजें हुई हैं। यह वस्तुतः सच है क्योंकि भारतीय मन सामान्यतया इतिहासको लेखबद्ध करनेके प्रति उदासीन रहा है, इस प्रकारका प्रयत्न एक भगीरथ कार्य हो जाता है। किंतु हम बड़ी उत्सुकतापूर्वक यह आशा करते हैं कि इन खोजोंको करनेके लिये योग्य इतिहासकारोंका एक संगठन बनाया जायेगा जिससे कि वे हमारी संस्कृतिकी सुंदर पैतृक संपत्तिके तथ्योंको जो बहुत दिनोंसे छूटे पड़े हैं प्राप्त कर सकें। आज सायं इस विशिष्ट विषयकी सामान्य जानकारी हम आपको देना चाहते हैं। निश्चय ही इस थोड़े-से समयमें हम इस विषयके साथ, जिसे समझनेके लिये समूचा जीवन ही निष्ठापूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है, न्याय नहीं कर सकते।

आरंभमें ही मैं आपको दो प्रकारके लेखकोंके विरुद्ध चेतावनी देता हूं जो इस विषयका अध्ययन करते समय आपके सामने आ सकते हैं।

हमें उस पक्षपातपूर्ण पश्चिमी लेखकसे बचना चाहिये जो भारतकी हीन अवस्थापर ही अपनी क्षुद्र दृष्टिको केंद्रित करके उसी दृष्टिकोणसे हमारे समस्त प्राचीन ऐतिहासिक तथ्योंके विषयमें अपने निर्णय देता है। ऐसे इतिहासकारके लिये भारतकी भावना "पारलौकिकता"के सिवाय और कुछ नहीं है। दृष्टांतके रूपमें हम "शारीरिक शिक्षाका विश्व इतिहास से निम्नलिखित उद्धरण देते हैं, इसके लेखक हैं, डेओबाल्ड बी. वेन डालेन, पी. एच. डी., एलमर डी. मिशल, पी. एच. डी. और ब्रूस एल. बेनट, पी.एच. डी.।

"भारतकी निःशक्तकारक जलवायु, अधिक मृत्युसंख्या, महामारी और गरीबीने हिन्दुओंको इस बातके लिये प्रेरित किया कि वे उस महान् "सनातन सत्ता" में लीन होकर जीवनके इन कठोर परिवर्तनोंसे मुक्तिलाभ करें। इस जीवनके सुख-भोगोंका, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा और कार्यकलापका त्याग करके ही वे अपने व्यक्तित्वको मिटाने और ब्रह्ममें लीन होनेकी आशा करते थे।"

एक ऐसी जातिकी जिनके बारेमें श्रीअरविन्द कहते हैं : "यह एक ऐसी जाति है जो पृथ्वीपर सबसे अधिक पुरानी है तथा जिसकी सभ्यता सबसे अधिक महान् है। शक्तिमें अधिक दुर्जेय, महानतामें उर्वर, जीवनमें गहनतम, संभाव्यताओंमें अत्यधिक आश्चर्यजनक......" इससे अधिक शोचनीय व्याख्या और क्या हो सकती है।

सौभाग्यसे पश्चिमका बुद्धिजीवी वर्ग इसे आज ठीक ढंगसे समझने लगा है और वह उस संस्कृतिमें जिसका भारत प्रतिनिधित्व करता है अधिकाधिक रुचि लेने लगा है। श्रीपियर सरैं द्वारा लिखित "संसारमें शारीरिक शिक्षा" का निम्न उद्धरण एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोणकी साक्षी देता है।

"भारतकी प्राचीन संस्कृतिसे पश्चिम बहुत अधिक अनभिज्ञ है, साथ ही वह उसके लिये दुर्बोध भी है......डा. विल ड्युरां जो कि एक प्रसिद्ध खोजी हैं स्पष्टतापूर्वक यह स्वीकार करते हैं कि भारतके बारेमें पश्चिमका ज्ञान अपर्याप्त है। प्राचीन भारतमें शारीरिक शिक्षाके संबंधमें भी उनका ज्ञान उतना ही कम है।"

साथ ही हमें उन अति उत्साही भारतीय इतिहासकारोंसे भी बचना चाहिये जो महाभारतमें ही — दंदूका वर्णन पढ़कर यह दावा करना चाहेंगे कि क्रिकेटके खेलका जन्म भारतमें हुआ है या जो वाल्मीकिकी रामायणमें हनुमान्‌के लंका पार करनेके-वर्णनको पढ़कर इस निष्कर्षपर पहुंचेंगे कि लंबी कदकी

विद्या भारतमें ही अत्युच्च विकासको प्राप्त हुई थी। वे शायद यह भी सोचना चाहेंगे कि यह आधुनिक समयकी '१. सेल स्टाइल' या '२. विच किक' है।

क्रमिक युगोंमें शारीरिक चेष्टाओंकी सामान्य रूपरेखाओंके विषयमें कुछ कहनेसे पहले यह याद रख़ना अच्छा होगा कि जिसे हम आज शारीरिक शिक्षा कहते हैं वह एक बिलकुल हालकी ही चीज है। आधुनिक सभ्यताके विकासके साथ-साथ मनुष्यका भौतिक जीवन कृत्रिम और निश्चेष्ट बन गया है। सौभाग्यसे अब यह उसे पता लग रहा है कि उसकी सत्ताके स्वस्थ और सामंजस्यपूर्ण विकासके लिये शारीरिक क्रिया अनिवार्य एवं आवश्यक है। किंतु उन गुजरे हुए पुराने दिनोंमें जीवन प्रकृतिके साथ अधिक समस्वर था और जीवनका सामान्य क्रम ही काफी शारीरिक व्यायाम प्रस्तुत कर देता था। क्या आज भी ग्रामीण जीवनका मोटा ढंग एक सामान्य शहरी जीवन-क्रमसे अधिक स्वास्थ्यजनक नहीं है? इस बातको अपने मनकी पृष्ठ-भूमिमें रखते हुए अब हम अपने सांस्कृतिक जीवनके क्रमिक युगोंपर दृष्टि डालेंगे।

यह एक सामान्य भ्रांति है कि भारतीय विचार और जीवनमें परलोकके दृष्टिकोणके विकासके लिये वेदों और उपनिषदोंकी शिक्षाएं ही उत्तरदायी हैं। यह बात सत्यसे कितनी दूर है यह निम्न अनुच्छेदमें श्रीअरविन्दमें अत्यधिक बलपूर्वक प्रतिपादित करते हैं:

"व्यावहारिक बुद्धिवाले लोग सामान्यतया यह सोचते हैं कि जीवनके पथप्रदर्शकके रूपमें वेदांत और आध्यात्मिक सम्मिलनकी प्रणालीके रूपमें योग बड़ी भयावह वस्तु है, क्योंकि वह मनुष्योंको 'कर्म' से 'निवृत्ति' की ओर ले जाती है। हम उन्हें तो छोड़ ही देते हैं जो ऐसे सब विश्वासोंको रहस्यवाद, स्व-भ्रांति अथवा पाखंड कहते हैं; किंतु जो लोग हिन्दू-धर्मके ऊंचे विचारोंमें विश्वास एवं श्रद्धा रखते हैं वे भी यही समझते हैं कि आध्यात्मिक जीवन अपनानेके लिये पूर्ण मानवीय कर्मसे अलग होना ही चाहिये। पर आध्यात्मिक जीवनकी सबलतम अभिव्यक्ति केवल उसी मनुष्यमें होती है जो योगकी शक्तिके साथ और वेदांतके नियमके अनुसार सामान्य मनुष्यजीवन बिताता है। आंतरिक और बाह्य जीवनकी ऐसी एकताके द्वारा ही मनुष्यजाति अंतमें ऊपर उठेगी और शक्तिशाली एवं दिव्य बनेगी। यह सोचना भ्रांति है कि वेदांतमें जीवनके लिये प्रेरणा नहीं हैं, व्यवहारसंबंधी नियम नहीं है और वह विशुद्ध रूपमें दार्शनिक और निवृत्तिवादी है। इसके विपरीत, जिस उच्चतम नैतिकतातक मनुष्यकी पहुंच हो सकती है उसका एक पूर्ण आधार और समर्थन उपनिषदों और गीताकी शिक्षामें ही पाया जाता है। गीताके विशिष्ट सिद्धांत यदि जीवनका एक नियम या धर्म नहीं है तो वे कुछ भी नहीं हैं, और वेदांतकी अत्यंत लोकोत्तर अभीप्साओंकी पूर्त्तिके लिय भी जीवनमें ही तैयारी करनी पड़ती है, क्योंकि जीवनके द्वारा ही मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है।" इसी स्थलपर वे आगे कहते हैं, "हम फिर कहते हैं कि यह सोचना भूल है कि आध्यात्मिकता जीवनसे विलग कोई चीज है। ईशोपनिषद् कहती है: "सब कुछ त्याग दो, जिससे कि तुम सब कुछका उपभोग कर सको, न ही किसी अन्यकी चीजके लिये लालच करो, बल्कि इस जगत्‌में सच्चे रूपसे अपना कार्य करो और सौ वर्ष जीनेकी अभिलाषा करो। अपने कर्मोंके बंधनसे मुक्ति पानेका और कोई मार्ग तुम्हारे लिये नहीं है।"

मुण्डक उपनिषद् कहती है: "हम प्रार्थना करते हैं कि हम सबल शरीर और सुदृढ़ अंगोंसे अपने जीवनके नियत दिनोंका उपभोग करें।" ये जीवनसे भागने एवं दिवास्वप्न लेनेवाले संन्यासियोंके वचन नहीं हैं। वस्तुतः ये सभी बातें यही प्रमाणित करती हैं कि प्राचीन युगमें, जिसमें भारतीय सभ्यताका रहस्य छुपा पड़ा है, संपूर्ण जीवन ही — जिसमें शरीर भी शामिल है — ऋषियोंकी आध्यात्मिक दिव्य दृष्टिके विशाल क्षेत्रमें आ गया था।

वेदोंमें हमें किन्हीं विशेष व्यायामों आदिका वर्णन नहीं मिलता, न उनमें किसी ऐसी संस्थाका ही जिक्र आता है जिसमें शारीरिक शिक्षा विशेष रूपसे दी जाती हो। हां, वहां आखेट, घुड़सवारी,

नृत्य और अन्य विभिन्न करतबोंका जिक्र आता है। यह जानना मनोरंजक होगा कि समाजमें स्त्रियों-को भी वही स्थान प्राप्त था जो पुरुषोंको। हमें इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि स्त्रियां भी सैनिक कार्योंमें भाग लेती थीं। एक महान् सेनानायिका विश्पलाका जब युद्धमें एक पैर कट गया तो वह अश्विनौकी सहायतासे लोहेकी टांग लगाकर दुबारा युद्धमें गयी। ऋषि मुदगलकी पत्नी एक बड़ी अच्छी और प्रसिद्ध सारथी थी। हमें यह भी याद रखना चाहिये कि आयुर्वेद जिसे पांचवें वेदके रूपमें आदर प्राप्त था केवल चिकित्सासंबंधी एक प्रणाली ही नहीं था वरन् उसमें जीनेकी समस्त कला और विज्ञान निहित थे। अतएव हम निर्भयतापूर्वक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हमारे प्राचीन पूर्वज, सांसारिक जीवनसे भागना तो दूर रहा, जीवनके रहस्योंका गहन ज्ञान रखते थे, हमसे कहीं अधिक।

रामायण महाभारतके युगमें हमें शारीरिक शिक्षाकी कोई सुनिश्चित प्रणाली तो नहीं मिलती, किंतु उस समय लोगोंके शरीरकी सबलताका सामान्यतः जो ऊंचा मानदंड था वह बताता है कि वे अपनी शारीरिक शक्तिके विकासका बहुत ध्यान रखते थे। महाभारतमें कुछ ऐसे स्थल आते हैं जहां यह स्पष्ट लिखा है कि राजकुमारोंके लिये विविध शारीरिक व्यायामोंमें प्रवीणता दिखानेके लिये कितने ही समारोहोंका आयोजन किया जाता था और उनमें लोग बहुत रुचि लेते थे। यहां यह भी जान लेना चाहिये कि शारीरिक शिक्षण केवल युद्ध करनेवाले वर्ग अर्थात् क्षत्रियोंतक ही सीमित नहीं था। कारण, हम देखते हैं कि इन राजकुमारोंके शिक्षक सदा ब्राह्मण ही होते थे, जो इस बातका प्रमाण है कि ब्राह्मणोंको भी इस विषयकी पूर्ण शिक्षा प्राप्त थी। कुछ छुटपुटे ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जो हमें बताते हैं कि अन्य वर्ग अर्थात् वैश्य और शुद्र भी इन शारीरिक व्यायामोंमें भाग लिया करते थे। उन दिनों जो खेल प्रचलित थे उनमेंसे कुछ ये हैं: पत्थरका बोझ उठाना और पत्थरकी दूरतक मार, धनुर्विद्या, कूदना, तैरना, दौड़ना, झूलना, रथविद्या, हाथीकी सवारी, घोड़ेकी सवारी, गदा-युद्ध आदि। बुद्धधर्मका प्रचार होनेके बाद ही —— जो वस्तुतः बुद्धकी सच्ची शिक्षाकी मिथ्या व्याख्या थी — भार-तीय आध्यात्मिकताके "पारलौकिक" स्वरूपको प्रधानता मिली और भारतकी प्राणशक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी।

किंतु भारतकी आत्माने इसके विरुद्ध सबल प्रतिक्रियाकी और पुराणोंके ऋषियोंने वेदोंके सनातन सत्योंको पुनः प्रकाशमें लाकर उनकी एक बार फिर पुष्टि की। भारतीय जीवन पुनः बड़े प्रबल रूपमें स्पंदित होने लगा।

इस युगके साथ हम भारतके बहुतसे आधुनिक शारीरिक व्यायामोंका संबंध जोड़ सकते हैं। हम देखते हैं कि लोगोंकी, अमीरों और गरीबों दोनोंकी शारीरिक स्वस्थताके लिये बहुत-सी व्यायामशालाएं खोली गयीं। देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक बहुतसे विश्वविद्यालय भी खोले गये जिनमें नालंदा और तक्षशिलाके विश्व-विद्यालय अधिक प्रसिद्ध थे। उस समय गदायुद्ध, मुष्टि-युद्ध, चक्र-युद्ध, कुल्हाडी-युद्ध, लाठी-युद्ध आदि अधिक प्रचलित थे। इसी युगमें हठयोगकी विद्याको, जो कि भारतकी एक अद्वितीय देन है, पूर्णता प्राप्त हुई। इसके द्वारा मनुष्य अपने भौतिक जीवनपर एक अद्भुत स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। क्या पश्चिम इस महान् और गुप्त ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये भारतकी ओर आशाभरी दृष्टि लगाये नहीं बैठा है?

बौद्ध विश्वविद्यालयोंमें भी शारीरिक शिक्षाने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही थी —— हां, वहां इसके सब हिंसापूर्ण रूपोंका अवश्य त्याग कर दिया गया था। इत्सिंग कहते हैं, "प्रत्येक प्रातः साढ़े पांच बजे पुरोहितोंको स्नानके समयका स्मरण दिलानेके लिये घंटी बजायी जाती थी। कभी सौ तो कभी हजार पुरोहित नालंदाके विहारसे उठकर, चारों ओर पासके बड़े तालाबमें इकट्ठे स्नान करते थे।" चीनी यात्रियोंके विवरणोंसे भी हमें नालंदा और अन्य विश्वविद्यालयोंमें खेले जानेवाले निम्न खेलोंका

पता चलता है: (१) तैरना, (२) पृथ्वीपर खेंची गयी आकृतियोंपर कूदना, (३) ढेरमेंसे एक-एक वस्तुको, बिना बाकी वस्तुओंको हिलाये-डुलाये निकालना, (४) जाल और गेंदके खेल, (५) गेंद लुढ़काना, (६) तुरही बजाना, (७) खेलके रूपमें हल चलानेकी प्रतियोगिताएं, (८) धनुर्विद्या-प्रतियोगिता, (९) निशाना लगाना, (१०) दूसरोंके विचारोंको भांपना, (११) रथ-संचालन, (१२) दूसरोंकी क्रियाओंकी नकल उतारना, (१३) हाथीकी सवारी (१४) तलवार-युद्ध, (१५) घोंड़ों और गाड़ियोंके आगे-आगे दौड़ना, (१६) हाथ मरोड़नेकी प्रतियोगिताएं, (१७) कुश्ती, (१८) मुष्टियुद्ध आदि।

भारतके इतिहासका अंधकारमय युग दसवीं शताब्दीसे आरंभ होता है। यही मुसलमानी आक्रमणके आरंभका भी समय है। हजारों लंबे वर्षोंकी उज्ज्वल बहुमुखी गतिविधियोंके समयके बाद, ऐसा प्रतीत होता है, भारत तमस्की एक काली और भयावह निद्रामें लीन हो गया था।

उस समयसे लेकर आधुनिक युगतक हमें केवल यहां वहां ही प्रादेशिक विशेषताओंके कुछ आभास मिलते हैं और वे भी क्षणिक।

उदाहरणार्थ, हमें पता चलता है कि राजा सोमेश्वरके राज्यकालमें (सन् ११२४ से ११३४ तक) —जो चालुक्य वंशके राजा विक्रमादित्य, छठे का पुत्र था — शारीरिक शिक्षा अत्यधिक विकसित हुई। उसकी 'मानसोल्लास' पुस्तकमें उस समयकी शारीरिक शिक्षासंबंधी प्रणालीका ब्यौरेवार वर्णन दिया हुआ है। 'मल्ल-विनोद' अध्यायमें कुश्तीका वह स्पष्ट रूप दिया गया है जो सन् १००० के पहलेके भारतवर्षमें विकसित हुआ था। उसमें हमें ऐसी परिभाषाएं मिलती हैं:

भविष्णु — एक होनहार कुश्तीबाज (आयु २० वर्ष), प्ररूढ़ — एक वयःप्राप्त कुशल खिलाड़ी (आयु ३१ वर्ष)। कुश्तीबाज तीन श्रेणियोंमें विभक्त थे: (१) ज्येष्ठिका — सर्वश्रेष्ठ। (२) अंतर्ज्येष्ठिका — मध्य स्तरके। (३) गोवाला — निम्न स्तरके।

प्रातःकाल करनेके व्यायाम ये थे: (१) भारश्रम —रेतके भारी बोरोंका उत्तोलन। (२) भ्रमणश्रम — खुली वायुमें दौड़ना। (३) गर्दनतक पानीमें खड़े होकर कुश्ती करना।

सायंकाल ये व्यायाम किये जाते थे: (१) बाहु-पेल्लनक-श्रम — भारी मुद्‌गर घुमाना। (२) मल्ल-स्तंभ — कुश्ती करनेवालोंका स्तंभ।

इसके अतिरिक्त उस समय हाथियोंकी लड़ाई, घोड़ोंकी लड़ाई, आखेट, युद्धके शस्त्रोंका प्रयोग आदि भी प्रचलित थे।

प्राचीन युगके महान् लेखक बाणके लेखोंमें भी राजा हर्षके अंगरक्षकोंकी शारीरिक गठनका अतिसुन्दर वर्णन मिलता है। इतिहासमें ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जब कि राष्ट्रकूटके राजा अवसर पड़नेपर सैनिकोंकी बड़ीसे बड़ी संख्याका संचालन कर सकते थे। प्रत्येक ग्राममें तब अखाड़ा होता था।

'ज्ञानेश्वरी' (सन् १२९०) में यादवोंकी सुयोग्य सेनाका उल्लेख आता है। संत ज्ञानेश्वर दंडपटका अभ्यास करते हुए योद्धाओंका ब्यौरेवार वर्णन देते हैं।

विजयनगरके शासक कृष्णदेवरायाका (१५०९-१५३१) यहां विशेष रूपसे उल्लेख कर देना चाहिये। उन्होंने शारीरिक शिक्षापर विशेष बल दिया था। वे स्वयं उच्चकोटिके घुड़सवार थे, साथ ही वे प्रातःकाल नियमपूर्वक व्यायामादि भी करते थे और सायं अखाड़ेमें उपस्थित रहकर कुश्तीके पैंतरे देखते थे। उनके अंगरक्षकोंमें एक विशेष बात यह थी कि उनमें स्त्रियां भी थीं। उस समयके पुर्तगाली राजदूत क्रिस्टवो-द-फिज्यूरीडोके अनुसार प्रतियोगिताओंमें कोई प्रतिबंध नहीं था। करारी चोटोंका प्रयोग होता था और उसमें आंख या दांत जाता भी रहे तो कोई परवाह नहीं की जाती थी। वह एक अनोखा दृश्य होता था, जैसा कि और कहीं भी देखनेमें नहीं आता था। इन प्रतियोगिताओंमें पुर्तगाली पहलवान भी भाग लिया करते थे।

किंतु ये उदाहरण और ऐसे अन्य भी जिनकी चर्चा नहीं की गयी है, भारतके ऊपर छाये हुए अंधकारमय तममें केवल कतिपय प्रकाशपूर्ण विद्युत्-झाकियां ही थे। किंतु निश्चित ही उन्होंने निद्रित महावीरको जीते रहनेमें सहायता ही पहुंचायी।

हिंदुओंके विपरीत, मुसलमान अधिक कठोर व्यायामोंमें रस लिया करते थे। उनके खाली समय-का कार्य युद्ध सीखना होता था। यह कहा जाता है कि बाबरने अपने शरीरको बहुत कठोर और कष्टसह बना लिया था। वह अपनी दोनों बगलोंमें दो आदमी दबाकर लंबी दौड़ लगा सकता था। यह कहा जाता है कि मध्य एशियासे लेकर बनारस शहरतक उसने सारी नदियां तैरकर पार की थीं। इतिहास हमें यह भी बताता है कि किस प्रकार गाजियुद्दीन, नजवर खां, इस्माइल बेग और अन्य योद्धाओंने जमुना नदी तैरकर अपनी जानें बचायी थीं।

फतहपुर सिकरी अकबरके व्यायामोंके अवशेषोंका सजीव स्मारक है। अकबरको पोलोका खेल अतीव प्रिय था (पोलो तुर्की भाषाका शब्द है) और वह इसे अपने हरमकी स्त्रियोंके साथ खेला करता था। इसी प्रयोजनसे उसने अपनी रानियोंको विशेष रूपसे घुड़सवारीकी शिक्षा दी थी। किंतु पिछले मुगल राजा नाच और भोग-विलासमें पड़ गये और यही उनके पतन एवं ब्रिटिशों द्वारा उनकी पराजयका कारण था।

ब्रिटिश राज्यसे पहलेके समयमें राजपूत और मरहटे एक बहुत ही भिन्न परिस्थिति प्रस्तुत करते हैं। यह एक ऐसी वीरगाथा है जिसपर सभी भारतीय समुचित गर्व अनुभव कर सकते हैं। यह कहा जाता है कि शिवाजीके गुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामीने देशभरमें हनुमान्‌के १२०० मंदिर बनावाये। जैसा कि हम जानते ही हैं हनुमान् बल और वीरताके देवता हैं। रामदास स्वामी स्वयं भी प्रतिदिन १२०० सूर्यनमस्कार करते थे, उनका शरीर बहुत बलवान था। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दासबोध' में वे कहते हैं: "बल व्यक्तिको प्रसन्नताकी ओर ले जाता है। बिना बलके वह दूसरेकी हंसीका लक्ष्य बनता है और रोग भी उसे सरलतासे धर दबाते हैं। बल शरीरको सुंदर बनाता है। बल ही व्यक्तिको सांसारिक आनंदोंको पूर्ण रूपसे भोगनेके योग्य बनाता है। बिना बलके व्यक्ति निःसहाय होता है। बल ही तुम्हें राज्योंको विजित करनेकी शक्ति प्रदान करता है। बलके साथ यदि कुशलता भी मिल जाये तो वह सबसे प्रेम एसं सम्मान पाता है। यह व्यक्तिको आत्मविश्वास, साहस और वीरोचित कार्योंकी ओर ले जाता है।"

ब्राउटन जो दौलतराव शिंडेके साथ आये थे, कहते हैं: "इतना ही नहीं, व्यायामके लिये लोगोंकी भावना इतनी प्रबल हो गयी थी कि कभी-कभी इस व्यायाम-कलाका अभ्यास स्त्रियां भी करती थीं, वे भी निर्धारित व्यायामोंके द्वारा अपने शरीरोंको कठोर तथा अपनी मांसपेशियोंको सुदृढ़ बनाना सीखती थीं, इतना ही नहीं, वे अपने अभ्यासके परीक्षणके लिये विभिन्न ग्रामोंसे गुजरती हुई पुरुष पहलवानोंको चुनौतीतक दे बैठती थीं।"

पेशवा भी कुश्ती आदि व्यायामोंको नित्य देखना पसंद करते थे। पेशवा नाना साहबकी एक अपनी सुसज्जित व्यायामशाला थी चौबीस प्रकारके उपकरण थे, भारी नल, मुद्गर, भारी लेजिम, पट्टेबाजीका सामान् आदि।

यह सब होते हुए भी अंतिम रूपमें विदेशी आक्रमणके कठोर आघातने ही भारतको उसकी लंबी निद्रासे जगाया। पर पुनर्जागृत भारतमें एक सबल आधारके रूपमें शारीरिक बलकी तीव्र आवश्यकता अनुभव होने लगी है। विवेकानंदके इस निर्देशका कि गीता पढ़ना छोड़कर फुटबाल खेलो यही कारण है। हम अब आधुनिक युगपर आते हैं जिसका विवेचन हम अलग करेंगे।

हम यह कहकर कि भारत आज प्राचीन ऋषियोंकी लुप्त शिक्षाओंकी आवश्यकताको धीरे-धीरे समझ रहा है तथा उनके सनातन सत्यमें पुनः निवास करना सीख रहा है इस लेखको समाप्त करेंगे।

स्वयं भगवान्ने इस महत् कार्यको अपने हाथमें लिया है। श्रीअरविन्दके इन शब्दोंके साथ, "किंतु भगवान् स्वयं हमारे स्वामी और शिक्षक हैं, क्योंकि वे अपने चुने हुए राष्ट्रको निर्दोष प्रशिक्षण और पूर्ण सामर्थ्य प्रदान करेंगे", हम समाप्त करते हैं।

— श्री मनोज

इतिहास बोलता है :

एस्तेर

—श्री अरुणा

एस्तेर फरांसीसी भाषाका सुप्रसिद्ध काव्य है। इसकी कहानी रासीनके अपने दिमागकी उपज नहीं है अपितु बाइबलकी इस पुरानी कहानीको उसने बड़ा सुन्दर काव्यात्मक रूप दिया है। एस्तेर एक यहूदी लड़की थी। उसकी जातिवालोंको यहांसे वहां मारे-मारे फिरना पड़ता था। वह अभी नन्हीं बालिका ही थी कि मां-बापका साया सिरसे उठ गया और उसकी देखभाल उसके चाचा मार्दकाय या मारदोशेके भागमें आयी। मारदोशे देशभक्त होनेके साथ-साथ साधु संतोंका-सा जीवन बिताता था। उसके ज्ञान, विवेक और नेतृत्वपर सब लोग न्यौछावर होते थे। उसका संग पाकर एस्तेरका निर्दोष मन खिल उठा। चाचाके लाड़-प्यारमें पलनेवाली लड़की जंगलकी हरिणीकी तरह बढ़ने लगी। उसकी सारी जातिमें सौंदर्य और बुद्धिमें उसकी बराबरी करनेवाला कोई न था। मारदोशे अपनी जातिका रहस्य छिपाकर फारसकी राजधानी सोजमें रहने लगा।

एक बार फारसके राजा अहाश्वेरोशने अपने एक विजयोत्सव समारोहपर आसपासके सब छोटे-मोटे राजाओंको निमंत्रित किया। उत्सव दस दिनतक चलता रहा। अंतिम दिन शराबके नशेमें धुत होकर राजाने अपनी रानी वास्तीको सबके बीचमें नाचनेके लिये हुकुम भेजा। रानीको इसमें बड़ा अपमान लगा और उसने राजाके दूतको उलटे पांव लौटा दिया। राजा भला यह अपमान कैसे सह लेता। उसने रानीको देश-निकाला दे दिया।

अहाश्वेरोशने रानीको निकाल तो दिया पर उसके साथ-ही-साथ उसके मनकी शांति भी चली गयी। सारे समय रानीके विचार मनमें चक्कर काटते रहते थे। और राजकाजमें जरा भी मन न लगता था। मुख्य दरबारियोंने सोचा कि राज्यके हितके लिये वास्तीकी जगह भरना जरूरी है। सारे राज्यमें मुनादी कर दी गयी और जगह-जगहसे सुन्दर लड़कियां इकट्ठी की जाने लगीं। उन्हें सरकारी मुख्य चारिका आवश्यक बातें सिखाती और फिर राजाके सामने पेश करती ताकि वह अपनी पसंदका खिलौना चुन ले।

यह बात मारदोशेके कानोंतक भी पहुंची। उसने एस्तेरको समझा-बुझाकर राजाके यहां जानेके लिये तैयार कर लिया। साथ-ही-साथ यह भी कह दिया कि राजाको कहीं यह न मालूम होने पाये कि वह यहूदिन है। एस्तेरने मुख्य-परिचारिकाको खुश कर लिया इसलिये उसे राजाके यहां पहुंचते देर न लगी। अहाश्वेरोशने देखा उसमें न तो बड़े घरकी लड़कियोंकी शान शौकत है न पैसेवालोंकी

तड़क-भड़क। वह अपने स्वाभाविक, सुकोमल सौंदर्यसे सजी नम्रताके साथ उसके आगे खड़ी थी। राजा मुग्ध हो गया और एस्तेर रानीके रूपमें चुन ली गयी।

एस्तेर रानी तो बन गयी पर उसे महलका वातावरण पसंद न था। वह मानो पिंजरेमें बन्द पक्षी थी। यहां उसका दम घुटता था। धीरे-धीरे उसने अपने चारों ओर अनेक यहूदी लड़कियोंको इकट्ठा करना शुरू किया। उसके लिये इस अंधेरे बंद महलमें एकमात्र रोशनी थी राजा अहाश्वेरोश। मारदोशे लुक-छिपकर एस्तेरके पास संवाद भेजता रहता था। एक बार कुछ दरबानोंने मिलकर राजाकी हत्या करनेकी ठानी। मारदोशेने यह समाचार एस्तेरके पास भेज दिया। राजाकी जान बच गयी और दरबानोंको कड़ी सजा मिली। अहाश्वेरोश मारदोशेसे बहुत खुश हो गया और उसका नाम उस पोथीमें दर्ज कर लिया जिसमें राजापर उपकार करनेवालोंके नाम होते थे।

हामान राजा अहाश्वेरोशका मुंहलगा मंत्री था। सारी प्रजा उसके सामने घुटने टेकती थी। केवल मारदोशेको उसकी परवाह न थी। मारदोशे बहुत बार राजमहलके दरवाजोंपर ही बैठा रहता था और इससे उसे बहुत-सी बातोंका पता लग जाता था। भला हामान इसे कैसे सह सकता था? इतना ही नहीं मारदोशे यहूदी था और हामान यहूदियोंका दुश्मन। अपने धर्मके कट्टर वैरीको मान देना मारदोशेके लिये असंभव था। इन कारणोंसे हामान मारदोशेके खूनका प्यासा हो गया। उसने बड़ी चालाकीसे राजासे उसकी मुहर लेकर उस मुहरके साथ एक फरमान निकाला कि अमुक दिन सब यहूदियोंको फांसी लगा दी जाय। राजाका यह फरमान देखकर मारदोशेने शरीरपर राख मली, बोरेके कपड़े पहने और भिखारीके वेशमें राजद्वारपर आ खड़ा हुआ। एस्तेरको पता लगा तो वह दौड़ी आयी और उसे देखते ही चिल्ला उठी — चाचाजी, आपपर ऐसी कौन-सी विपत्ति आयी है कि आपने यह बाना अपनाया है। मारदोशेने कहा — बेटी, राजाके हुकुमसे आज देशभरके यहूदियोंपर मुसीबत ढाई जा रही है। अब इस समय एक तुम ही हो जो इस जातिका उद्धार कर सकती हो। जाओ राजाके आगे कह दो कि मैं यहूदिन हूं। "लेकिन चाचाजी, आप जानते हैं, राजाके पास बिना बुलाये जानेसे क्या सजा मिलती है!" एस्तेरने पूछा। "हां, बेटी जानता हूं। तू अपनी जातिकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी बलि देते हुए डरती है? मैंने सोचा था कि मेरी एस्तेर रानी बनकर अपने लोगोंकी रक्षा करेगी, पर मेरा विश्वास गलत निकला। याद रख, तू न सही कोई और सही, भगवान् किसी-न-किसीके द्वारा अपनी प्रजाका उद्धार करेंगे। तू अपने प्राण बचाना चाहती है, जब सभी यहूदी समाप्त हो जायेंगे, तब भी राजा तुझे बचाये रखेगा क्या? आखिर वास्ती भी तो रानी थी। उसे निकालते कितनी देर लगी थी।

"बस, बस चाचाजी, और कुछ न कहिये", एस्तेरने अपने दोनों कानोंमें उंगलियां डालते हुए कहा। "मेरी एक ही विनती है। आप सभी यहूदियोंसे तीन दिनका उपवास करनेके लिये कहिये और कहिये कि सारे समय भगवान्से प्रार्थना करते रहें।" एस्तेर वहांसे चली गयी।

अहाश्वेरोश भरे दरबारमें बैठा था। दरवाजेकी ओर देखकर एकदम बोल पड़ा — कौन है, तुम एस्तेर! "हां, मालिक" एस्तेरने कहा। राजाने अपना राजदण्ड आगे बढ़ाते हुए कहा 'लो, यह सुनहरी राजदण्ड हाथमें पकड़ लो, इसे छूने भरसे सब सजाएं माफ हो जाती हैं और हमारे नियमको तोड़नेकी सजा — फांसीसे भी मुक्ति मिल सकती है। इसे हाथमें लेकर कहो तुम्हें क्या चाहिये? आधा राज्य लेना हो तो वह भी ले लो, तुम्हारा ही है। " एस्तेरने बड़े ही विनम्र भावसे कहा "'कल प्रभु, हामानके साथ मेरी कुटीपर भोजनके लिये पधारें। मैं अपनी सारी बात वहीं कह सकूंगी। राजाने उत्तर दिया तुम्हारी हर बात मेरे सिर-आंखोंपर।

उस दिन राजाको नींद नहीं आयी। उन्होंने किसीसे उपकारोंकी पोथी पढ़कर सुनानेके लिये कहा। जब मारदोशेका नाम पढ़ा गया — जिसने राजाका जीवन बचाया था — तो राजाने पूछा, इसे क्या

इनाम दिया गया गया है ? उत्तर मिला — 'कुछ नहीं'। यह सुनकर राजाको बड़ा खेद हुआ और उसने सवेरे-ही-सवेरे हामानको बुलाया और उससे कहा, 'हामान, जो आदमी अनन्य भावसे राजाकी सेवा करता हो उसको क्या उपहार देना चाहिये ? हामान अपने सिवा और किसीको अनन्य सेवक माननेके लिये तैयार न था। वह झट बोला — हुजूर, ऐसे आदमीको बहुत सारा रुपया देकर, उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाकर बाजे-गाजेके साथ घोड़ेपर सवार करके सारे गांवमें घुमाना चाहिये और फिर उसे सारे गांवका मुखिया बना देना चाहिये।

"खूब कहा भई हामान। चलो आज मारदोशेको यह सब मान दिया जाये। उसी मेरी प्राण-रक्षाकी है।

राजाकी बात सुनते ही हामानको बुखार चढ़ आया। उसने कपटसे काम लेनेका निश्चय किया। उसे अपने जासूसोंसे पता लग गया था कि मारदोशे यहूदी है। इसलिये उसने अपने महलके सामने ही उसके लियें सूली लगवा दी।

इधर एस्तेरके महलमें राजाके आनेकी तैयारी थी। राजा ठीक समयपर हामानके साथ वहां आया। एस्तेर अपने हाथसे खाना परोसने लगी। यह देखकर राजा और भी खुश हो गया। उसने कहा — तुम चाहो तो मेरा आधा राज्य तुम्हारा हो सकता है। एस्तेर बोली — जहांपनाह, आप खुश हों तो इससे बढ़कर क्या इनाम हो सकता है ? हां, खेद इतना ही है कि आपको राजकाजसे कभी फुरसत ही नहीं होती कि हम लोगोंकी सुधि ले सकें। राजाने कहा, क्यों रानी, ऐसी क्या बात है। कुछ तो कहो ! एस्तेरने कहा, महाराज, आज आप मारदोशेको बाजे-गाजेके साथ सन्मान दे रहे हैं और आज ही, आप हीके हुकुमसे उसे सूलीपर चढ़ाया जायगा।

राजा कुछ समझ न पाया। उसने कहा — असंभव, मैं ऐसा हुकुम कैसे दे सकता हूं। एस्तेरने झट खिड़की खोली और कहा — वह देखिये हामानके घरके आगे सूली टांगी जा रही है। वहीं अन्य यहूदियोंके साथ मारदोशेको भी झुला दिया जायेगा। और राजन्, मारदोशेके बाद फिर मेरी बारी आयेगी क्योंकि मैं भी तो यहूदी हूं।

'हर्गिज नहीं', राजाने बड़े जोरसे कहा। आज से तुम्हारी जाति फारसमें अपनी मरजी मुताबिक सुखसे रह सकती है। मेरे आदेशके अनुसार मारदोशे सन्मानके साथ मुखिया बनेगा और यहूदियोंके दुश्मन तुम्हारे हाथोंमें सौंप दिये जायेंगे। हां, हामान इसी सूलीपर झूलेगा जो उसने औरोंके लिये बनवायी है। राजाके कहने और करनेमें ज्यादा देर न लगी। हामान मारा गया। यहूदियोंमें यह दिन उत्सवके रूपमें मनाया जाता है।

* * *

मेरे पास तीन अमूल्य चीजें हैं जिनकी मैं प्राणपनसे रक्षा करता हूं। वे हैं — दया, मितव्ययता, एवं नम्रता। दयालु होकर मैं वीर हो सकता हूं। और नम्र होकर मनुष्योंका नायक बन सकता हूं। मितव्ययी होकर उदार हो सकता हूँ। आजकल लोग दया छोड़कर केवल बलकी साधना करते हैं। मितव्ययता छोड़कर उदारता पर दृष्टि रखते हैं, अंतिम पद त्यागकर केवल प्रमुख पदकी चाह करते हैं और यही है संसारके कष्टोंका मूल कारण।

—लाउतजे

जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां

सेलुलाइडके टुकड़ोंपर पालिश करना और गगनमण्डलमें विचरण करना यह दो ऐसी बातें हैं जो आपसमें मेल खाती नहीं दीखतीं पर मनुष्य भी एक अजीब पहेली है। इसके अंदर संभव असंभव और असंभव संभव होते देर नहीं लगती। और एकनिष्ठ अध्यवसाय हो तो असंभवके जैसी कोई चीज नहीं रह जाती।

हम अपनी बातको जरा स्पष्ट करते चलें। काउरू नामक जापानी बालक अभी छः वर्षका ही था जब उसके पिता बेंटेन जीमा हशरमें आ बसे। परिवार बड़ा था और मकान छोटा। सारे समय छोटे-छोटे बच्चे चिल्लपों करते रहते थे। उनके शोरसे बचनेके लिये बालक काउरू छतपर जा बैठता था। थोड़े ही दिनोंमें यह एक व्यसन हो गया और बच्चा छतपर बैठा घंटों तारोंकी ओर निहारता रहता था। और कुछ समय बीता, उसने आकाशके बारेमें पुस्तकें जुटाकर पढ़ना और आकाशके नक्शे ले-लेकर तारोंको पहचानना शुरू किया। बाप नाराज हुए कि एक मछली बेचनेवालेका बच्चा ज्योतिषका व्यसन नहीं कर सकता पर बेटेको हठ थी कि वह अपना दूरवीक्षण यंत्र बनाकर रहेगा। वह इधर-उधर पुस्तकालयोंमें, प्रयोगशालाओंमें घूम-घूमकर आवश्यक जानकारी प्राप्त करने लगा।

उधर बापके व्यापारमें घाटा आने लगा और उसे निराशा और दुःखको धोनेके लिये शराब मिल गयी। दिन-पर-दिन हालत खराब होती गयी। वह अपनी स्त्री और पांच छोटे बालकोंके सामने आते हुए लजाने लगा। घरकी सारी जिम्मेदारी काउरूकी मांपर आ पड़ी। वह इधर-उधर बरतन धोने और पकानेका काम करने जाती थी और बेटा सवेरे विद्यालय जानेसे पहले और विद्यालयसे लौटकर अखबार बेचता था। किसी तरहसे रो-झींककर घरकी गाड़ी चलती रही। परंतु जापानमें यह माना जाता है कि जो पिता अपने बालकोंकी देखरेख न करे और जो पुत्र अपने बड़ोंकी सेवा न करे वह सारे कुलको कलंकित करता है। काऊरूको सबसे बड़ी चिंता इस बातकी थी कि पिताने जो कलंक लगाया है उसे कैसे धोया जायं। इतनी मेहनत और चिंताके समय भी बालकका आकाश-प्रेम कम न हुआ। वह यह स्वप्न लेने लगा कि एक दिन वह एक नये धूमकेतुको देखेगा जिसका नाम 'काउरू इकेया' रखा जायेगा और इस तरह वह अपने परिवारके कलंकको धो सकेगा।

१९५९ में काउरूने अपनी स्कूली शिक्षाको प्रणाम किया और एक पियानोके कारखानेमें काम करने लगा। इसे सेलुलाइडके टुकड़ोंपर पालिश करनेका काम दिया गया और वेतन भी बहुत कम था पर काऊरूको यह काम बहुत पसंद आया। यहां हाथोंको मशीनकी तरह चलाते हुए वह आकाशमें उड़ाने ले सकता था। कारखानेसे जो समय बचता उसमें वह कांच घिस-घिसकर और रद्दीमालकी दुकानोंमें चक्कर लगा-लगाकर वहांसे उपयोगी चीजें ढूंढ़कर अपना दूरवीक्षण यंत्र बनानेकी तैयारी करता था। दो वर्षके कड़े परिश्रमके बाद उसका यंत्र तैयार हो गया। वह दिनभर कमाई करता और रातको आकाशकी छानबीन। एक नये धूमकेतुको ढूंढ़ निकालना ही उसके जीवनका ध्येय बन गया। आकाशमें अगर बादल छा जाते तो इसे सोनेका अवसर मिल जाता था। कई महीने बीत गये पर कोई नया धूमकेतु न दिखायी दिया। निराश होकर इसने मिनोरू होण्डा नामक एक बड़े ज्योतिष शास्त्रीको पत्र लिखा। वहांसे उत्तर आया, "केवलधूमकेतु ढूंढ़नेके लिये आकाशकी छानबीन करना एक बेकार-सा काम है। इसमें व्यर्थमें समय और शक्तिका अपव्यय होता है। अगर तुम्हें रस है तो आकाशका अध्ययन करो और हो सकता है कि यह करते-करते तुम्हें कोई नया धूमकेतु भी मिल जाये।

पहले तो काउरूने समझा कि उसके सारे उत्साहपर ठंडा पानी डाल दिया गया है। परंतु बार बार पत्र पढ़नेपर वह इस निष्कर्षपर पहुंचा कि इसमें हिम्मत हारनेकी कोई बात नहीं है। यह तो उसे ठीक रास्ता दिखाने वाला पत्र है। बस, फिर क्या था वह दुगुने उत्साहके साथ आकाशका अध्ययन करनेमें लग गया। ३१ दिसंबर १९६१ की शामको उसकी मांने कहा, बेटा, पूरे सोलह महीनेसे तू इसमें लगा हुआ है। आज सालका आखिरी दिन है। हम दोनोंने मेहनत-मजदूरी कर के सारा ऋण चुका दिया है और अब हमें किसीके आगे आंख नीची करनेकी जरूरत नहीं। आज हम लोग नये वर्षका स्वागत करेंगे। बेटा मांकी बात मान गया और उस रात छतपर न गया और सारे परिवारके साथ मिलकर उत्सव मनाता रहा। पहली तारीखको उसने सबके साथ मिलकर नये वर्षके लिये प्रार्थना की और २ जनवरीको ही उसकी प्रार्थना का फल मिल गया। उसने एक नया धूमकेतु देख लिया। लेकिन क्या सचमुच उसकी अभिलाषा पूरी हो गयी? कौन कह सकता था? सवेरा होते ही उसने टोकियोंकी वेधशालाको उसके बारेमें पूरी जानकारी तारद्वारा भेजी और अपने-आप पियानोके कारखानेमें काम करने चला गया। वहां कौन जानता था कि उनके बीच एक विश्व विख्यात आदमी काम रहा है। उसके मालिकोंके अनुसार तो वह एक लगभग अशिक्षित, बिना महत्त्वाकांक्षावाला, नियमित युवक था।

कुछ ही दिनों बाद सारे संसारमें तार खटकने लगे, हर देशका रेडियो चिल्लाने लगा कि उन्नीस वर्षीय जापानीने बिना किसी शिक्षाके, अपनी ही हाथों बनाये हुए दूरवीक्षण यंत्रद्वारा एक नये धूमकेतुका पता लगाया है। और वैज्ञानिकोंने उस धूमकेतुको इकेया १९६३ ए. का नाम दिया। अब काउरू इकेयाके यहां पत्रों और तारोंका ढेर लगने लगा। रेडियो और टेलिविजन वाले उसके कारखानेमें उसे ढूंढ़ते हुए आ पहुंचे। काउरू अपने बापकी बदनामीको मिटाकर अपने परिवारके नामको उज्ज्वल करनेमें सफल हो गया। टोकियो वेधशालाने उसे एक स्वर्णपदक दिया। उसकी जीवनीकी एक फिल्म बनायी गयी। अब उसके कारखानेके साथियोंको भी सुध आयी। उसकी प्रशंसाके लिये सभा की गयी और उसे लगभग ७००) की थैली भेंट की गयी।

सितम्बर १९६४ में उसने और एक जापानीके साथ मिलकर उस प्रसिद्ध धूमकेतुको देखा जिसकी सारे संसारमें धूम मच गयी थी। उसका नाम इन दोनोंके नामके आधारपर इकेया-सेकी रखा गया। जाननेवालों का कहना है कि यह धूमकेतु संसारका भला करनेके लिये आया था।

—श्री रवींद्र

* * *

मनुष्यको अपने शरीरपर बड़ा गर्व है। उसके रासायनिक तत्त्वोंको देखा जाय तो आप पायेंगे:

(१) दस गैलन पानी।
(२) कपड़ा धोनेके साबुनकी सात बट्टियों लायक चर्बी।
(३) नौ हजार पैंसिलोंके लायक कार्बन।
(४) दो हजार दियासलाईकी तीलियोंके लायक फास्फोरस।
(५) एक छोटी कीलके लायक लोहा।
(६) एक कुत्तेके शरीरके पिस्सुओंको मारने लायक गंधक।
(७) मुर्गीके एक छोटे डरबेपर सफेदी करने लायक चूना।

इसका दाम सात-आठ रुपयेसे अधिक न होगा।

वसन्त : एक नामकरण

हर्षसे मदोन्मत्त चैत्य थे अनंगके
यूं कि आ जुड़े सकल देवता उमंगके
द्वार-द्वारपर मदिर शंख-तूर्य गूंजते
देहरी अलिंदमें झांझ-वेणु कूंजते
दीप्तिमंत मोदमय नयन थे मनोजके
गर्वसे छलक गए स्रोत रति-उरोजके
लाजमें घुली-मिली मंजु-मृदु हंसी लिये
पुष्प अंकमें भरे रति जला रहे दिए
पा ममत्वका परस गालमें खिले कमल
वे महावरी चरण उठ रहे संभल-संभल
बाल वह मराल-सा मूर्त्त दर्श दृष्टिका
मूर्त्त स्वप्न स्वर्गका मूर्त शिल्प सृष्टिका
देख उस मुहूर्त्तको ज्योति अश्व रुक गये
काल-चक्र थम गया शैल-शृंग झुक गये
उस अरूप रूपमें खो गयी वसुन्धरा
हो गयी अचल शिला चेतना चिदंबरा
ज्वार सिंधुमें जगा शिशु-चरण पखारने
घन-घटा उमड़-घुमड़ आ गयी दुलारने
अर्घ्यदान दे किया वीचि-वीचिने नमन
ले लिया त्रिलोकने शीश टेक आचमन
आरती उतारने चल पड़ी दिशा-दिशा
मंत्र-मुग्ध हो गयी रंगिणी उषा-निशा
चल पड़ी जुहारको पालकी समीरकी
संग-संग चल पड़ीं डोलियां अबीरकी
यक्ष रूपके चले व्योमके विहानमें
देव गन्धके उड़े अंतरिक्ष-यानमें
छू चली असीमको रंग-सैन्य झूमकर
लालसा निकल पड़ी अग्नि-पंख चूमकर
रस-कलश लिये चली विश्वकी जिजीविषा
तृप्तिके तुरंगपर बैठकर चली तृषा
सूर्यने लुटा दिये भर कटोर धूपके
चंद्रने सजा लिये थाल रश्मि-सूपके
कोटि-कोटि कल्पकी उम्र दी खगोलने
दी अतुल्य संपदा वत्सला विलोलने
भोजपत्रपर लिखी कुण्डली रसालने
आंगलीक दुंदभि फूंक दी तमालने
छेड़ दी कदम्बने मोहनी मृदंगपर
रच दिया अशोकने राग अंग-अंगपर
दे दिये गुलाबने गूंथकर गुलाल क्षण
दे दिये सरोजने बांधकर पराग-कण
भालपर किया तिलक केतकी-कनेरने
मल्लिका-लवंगने कोकनद-कुबेरने
कुंज-कुंज बन गया पूत यज्ञ-वेदिका
डाल-डाल पीठिका दूब पाद-सेविका
होमते हविष्य थे पत्र बन गये श्रुवा
बांटती प्रसाद थी कामिनी लता युवा
सामगान गा उठी सारिका-सुहागिनी
स्वर-सुधा बिखेरती कोकिला-विहागिनी
कीर मुक्त कण्ठसे ऋग्-ऋचा उचारते
नीलकण्ठ द्विज बने जयति-जय पुकारते
धन्य-धन्य घोषसे ध्वनित हो गये दिगन्त
कवि-समाजने उसे नाम दे दिया 'वसन्त'

—कस्तूरी कश्यप

अहंकार

दण्डकारण्यमें धौम्य ऋषि अपने आश्रममें बैठे अपने शिष्योंसे बातचीत कर रहे थे। हर एक शिष्य अपनी कठिनाइयां बता रहा था। आसपास सूखा पड़नेके कारण खानेकी मुश्किल हो गयी थी जब अपने ही खानेके लाले पड़ रहे हों तो ऋषि-मुनियोंके आश्रमकी कौन सुध ले। भूखके कारण आसपासके जानवर भी अधिक भयानक हो गये थे। वे अपनी जानका मोह-माया छोड़कर आदमियोंके आसपास मंडराने लगे थे। शिष्य लोग ऐसी ही अनेक कठिनाइयां सुनाते जा रहे थे। परंतु गुरुके सौम्य चेहरेपर आनन्द छोड़कर और कोई भाव न दीखता था। सबकी बातें सुनकर गुरु थोड़ी देर चुप रहे और फिर धीरे-धीरे बोले, "मैं तुम लोगोंकी मुश्किलोंसे अपरिचित नहीं हूं" आज मुझे भी अन्नका दर्शन किये दस दिन बीत चुके हैं पर मैं निराश नहीं हूं। सच पूछो तो मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि सच्चा प्रेम सारी बाधाओं, कठिनाइयों और कमियोंको जीत लेगा। इसी कारण मैं अंतिम विजयके बारेमें निश्चित हूं। रात्रिका घना अंधकार उषाके सामने अवश्य विलीन हो जायगा। मैंने देखा है कि शांति और धीरजसे सामना किया जाय तो तीखीसे तीखी शारीरिक वेदना भी घट जाती और सह्य बन जाती है। जहांतक संभव हो बेचैन या अधीर होनेसे बचो। अचंचलता और शांतिमें ही भगवान्की कृपा ज्यादा अच्छी तरह काम कर सकेगी।

थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहनेके बाद एक-एक करके सभी शिष्य उठ-उठकर अपने-अपने कामपर चले गये। चन्द्रदत्त सबके अंतमें उठा। उसने गुरुको प्रणाम किया और धीरे-धीरे गोशालाकी ओर बढ़ गया। ऋषिकी गौओंको चराना इसके जिम्मे था। कई दिनोंसे इधर-उधर चक्कर लगा रहा था पर कहीं गौओंके लायक चारा न दिखायी देता था। भरसक कोशिश करनेके बाद भी चन्द्रदत्त गौओंको कुछ न खिला पाया। और जब गोमाता ही भूखी पड़ी हो तो भला ऋषि परिवारमें कौन अन्न ग्रहण कर सकता है। चन्द्रदत्तको गुरुका एक-एक वाक्य अपने ऊपर चोट मालूम हो रहा था। वह सोचता जा रहा था, आज इतने वर्षोंसे गोसेवामें लगा हूं, कभी कोई कसर नहीं रहने पायी। आज अनावृष्टिके कारण पानी घास नहीं मिल रहा। मैं गौओंको क्या खिलाऊं और जबतक गौएं न खा लें तबतक गुरु और उनके समस्त परिवारके लिये क्या करूं। इतनी तन तोड़ मेहनतके बाद भी मुझे यही सुनना पड़ता है कि मेरी सेवामें कुछ कमी है —— इसे कहते हैं भाग्य।

थके मांदे चन्द्रदत्तने भूखे पेट ही कुदाल उठायी और भगवान्का नाम लेकर कुंआ खोदना शुरू किया। दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। शरीर टूटता जा रहा था पर पानी अब भी दूर था। चन्द्रदत्त उस धातुका बना हुआ न था जो मेहनतसे पिघल जाय। आखिर उसने पानी पा ही लिया। जमीनके परतको फोड़कर जोरकी धार निकली। चन्द्रदत्त उसे देखते ही खुशीसे अचेत हो गया। आज गुरु धौम्यके आश्रममें उत्सव था। सब लोग नाच-कूद रहे थे पर गुरुके चेहरेपर आज भी कोई विशेष भाव न आया। सावन सूखे न भादों हरे। दो तीन दिनके बाद चन्द्रदत्त ठीक हो गया। वह उछलता-कूदता गुरुके चरणोंमें प्रणाम करने गया। पर यह क्या? आज भी गुरुने उसका विशेष स्वागत न किया, उसके पराक्रमके लिये बधाई न दी। चन्द्रदत्तका दिल फिरसे कराह उठा। क्या यही है इनका न्याय, यही है इनकी अनुकम्पा। मैंने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर औरोंके प्राण बचाये और यहां मेरे लिये सराहनाका एक शब्द भी नहीं। अच्छा न सही, मैं इससे भी बढ़कर कठोर परिश्रम करूंगा। देखें गुरु कहांतक मेरी अवहेलना करते हैं।

चन्द्रदत्त अपने नियमानुसार प्रणाम करके चुपचाप चला गया। उसने आश्रमसे कुछ दूर पड़ी

हुई परती जमीनपर फावड़ चलाने शुरू किये, अपने खोदे हुए कुंएसे पानी लाकर उस जमीनको सींचा और वहांपर एक छोटा-सा नन्दन वन खड़ा कर दिया। अब धौम्यके शिष्योंको भिक्षा मांगनेकी या गृहस्थोंसे दक्षिणा लेनेकी जरूरत न रही। उनका नन्दन वन ही उनकी सब आवश्यकताएं पूरी कर सकता था। चन्द्रदत्तने सोचा अब तो गुरु निहाल हो जायेंगे मैंने उनकी कितनी सेवा की है। वह मनमें बड़ी आशाएं अभिलाषाएं लिये चुपचाप गुरुकी सेवामें जा पहुंचा पर, गुरुके चेहरेपर मुस्कानतक न आयी। वही गुरु जो दूसरोंके एक समिधा लानेपर या वेदी बनानेपर भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं, वही चन्द्रदत्तके लिये मानो पत्थर बन जाते हैं। चन्द्रदत्तका हृदय रो उठा। वह बिना एक शब्द बोले कुटियासे बाहर निकल गया। उसके अंदर छिपी कटुता कुछ और बढ़ गयी। वह अपने प्रति और निष्ठुर हो गया। लोगोंने देखा चन्द्रदत्त दुगुने वेगसे पहाड़ काटनेमें लगा है। किसीने पूछा यह क्या पागलपन है? किसीने सहानुभूति दिखायी तो किसीने हंसी उड़ायी। सबको निश्चय था कि उसका दिमाग कुछ खसक गया है। कइयोंने जाकर गुरुसे सिफारिश की, परंतु गुरुके कानपर जूं तक न रेंगी। उन्होंने उसे अपने पागलपनमें ही लगे रहने दिया। दिन बीते, सप्ताह बीते, मास बीत गये, चन्द्रदत्त मानो अपने बाहुबलकी पहाड़से तुलना कर रहा था। वह देखना चाहता था कि किसमें अधिक ठसक है। एक दिन लोगोंने देखा पहाड़के उस पारसे झरनेका पानी इधर बहता आ रहा है। चन्द्रदत्तने असंभवको संभव बना दिया। गुरुकी कुटियाके चारों ओर एक सुन्दर-सी नहर बन गयी। पहले पागल कहनेवाले आज प्रशंसक बन गये। मजाक उड़ानेवाले सबसे पहले नहरसे लाभ उठानेवाले बन गये।

चन्द्रदत्तको विश्वास था कि अब तो गुरु जरूर पिघलेंगे। इस बार उसे अवश्य गले लगा लेंगे। मनमें थोड़ा अभिमान आया। आह, मैं इतना कर चुका अब तो गुरुको ही मुझे बुलाना चाहिये। दो तीन दिन बीत गये पर गुरुका बुलावा न आया। चन्द्रदत्तका पित्ता उछलने लगा। मैंने इनको प्रसन्न करनेके लिये क्या नहीं किया, फिर भी मेरे साथ यह व्यवहार। मेरे इतने प्रयासका, इतने परिश्रमका कोई मूल्य ही नहीं इनकी दृष्टिमें। धिक्कार है ऐसे जीनेको। मैंने अपना सब कुछ गुरुकी सेवामें लगा दिया। बदलेमें मुझे मिला क्या? यही कटुता। मेरा जीवन व्यर्थ गया। जिसके लिये यह सब किया उसे मेरी परवाह नहीं है। फिर मैं भी रहकर क्या करूंगा।

चन्द्रदत्त सोच ही रहा था कि किस प्रकार इस जीवनसे छुट्टी पाये कि उसे गुरुकी खड़ाऊं की आवाज सुनायी दी। वह एक झाड़ीके पीछे हो गया। गुरु भद्रदत्तके साथ नहर देखने आ रहे थे। चन्द्रदत्तने सोचा, सारा परिश्रम मैंने किया, खून पसीना मैंने एक किया और महत्त्व मिल रहा है इस भद्रको। अकेला मिल जाये तो इसे नहरके अन्दर ही गाड़कर संतोष करूं। जिस झाड़ीके पीछे चन्द्रदत्त छिपा था उससे चार कदम दूर गुरु खड़े हो गये। नहरकी शोभाका बखान करने लगे। फिर अचानक बोल उठे, भद्र, मेरी शिक्षाका किसीने लाभ उठाया है तो चन्द्रने। मैंने तुमको बताया था कि सच्चा प्रेम सब प्रकारकी विघ्न बाधाओंको हर लेता है और तीखीसे तीखी शारीरिक वेदनाको भी सह्य बना देता है। चन्द्रका एक-एक काम मेरी बातकी पुष्टि करता है। उसका उत्साह, उसका परिश्रम, उसका अध्यवसाय तुम लोगोंके लिये दृष्टांतका काम दे सकता है। कितनी विपरीत परिस्थितियोंमें उसने यह सब किया है इसे मैं ही जानता हूं।

भद्रदत्त कुछ कहना चाहता था पर मुंह खुला रह गया, शब्द न निकले। गुरु बोले — तुम्हें मेरी बातें सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तुम मेरे व्यवहारको उसके विरुद्ध पाते हो न। इसका भी एक रहस्य है? उसके अंदर बहुत प्रबल अहंकार है। उसके सारे कामके पीछे वह छिपा रहता है। वह दिखाना चाहता है कि वह जो कुछ कर सकता है वह किसी औरके बूतेका नहीं है। अहंकार शुरूमें सहायक होता है पर पीछे चलकर बाधा बन जाता है। मैं इस अहंकारको पोषण नहीं देना

चाहता। यह अहंकार ही उसके जीवनको कटु बनाये हुए है पर मुझे आशा है कि वह शीघ्र ही इस बाधाको भी लांघ सकेगा।

चन्द्रदत्त और न सुन सका। वह झाड़ीके पीछेसे निकल आया और उसका अहंकार मानों नेत्रों-द्वारा गुरुके चरणोंमें अर्पित हो गया।

—रवींद्र

इधर-उधरसे

गेस्ट्रो केमरा

आधुनिक युगमें हैजा, प्लेग आदि बीमारियोंके ऊपर काफी हदतक रोक लगा दी गयी है पर आजकल जिन नयी-नयी बीमारियोंका चलन बढ़ गया है केंसर उनमेंसे एक है। बिलकुल ही प्रारंभिक अवस्थामें तो इसकी कुछ रोक-थाम की जा सकती है पर एक बार बढ़ जानेके बाद इससे मुक्ति दिलाना केवल यमराजके हाथमें होता है। केंसर शरीरके किसी भी भागमें हो सकता है। केंसरके रोगियोंमें काफी संख्या ऐसे लोगोंकी होती है जिनके पेटमें यह दानव छिपा होता है। वहांपर इसे पहचान पाना अत्यंत दुष्कर कार्य है।

इस दिशामें जापान अन्य सब देशोंसे आगे है। वहां एक गेस्ट्रो केमरा बनाया गया है जो पेट-की हालत जाननेके लिये एक्सरेसे भी ज्यादा उपयोगी है। इस केमरेको नलीके साथ पेटमें उतारा जा सकता है। इसमें चार मिलीमीटर चौड़ाईकी फिल्म होती है और एक साथ छत्तीस चित्र लिये जा सकते हैं। उसे ऊपर नीचे करके पूरे आमाशयके रंगीन फोटो लिये जा सकते हैं जिनसे केंसर, घाव आदिका अच्छी तरह अध्ययन किया जा सकता है और इस सारी क्रियामें कुछ ही मिनट लगते हैं जिससे रोगीको विशेष कष्ट भी नहीं हो पाता।

हीरा

हीरेका नाम सुनते ही हमारे मनमें तड़क-भड़क और समृद्धिका विचार आता है। तरह-तरहके गहने, कोहेनूर, मुगलोंका तख्ते ताऊस या राजपूत बालाओंकी हीराकणी भी हमारी आंखोंके सामने आ जाते हैं परंतु आधुनिक कालमें हीरोंसे कुछ और ही तरहके काम लिये जाते हैं, हां, यह और बात है कि इसके लिये अच्छे चमकदार हीरोंका उपयोग नहीं होता, उनके छुटभइये ही कामोंके लिये पकड़े जाते हैं।

हां, तो कांच काटनेके लिये तो हीरेका प्रयोग बहुत पुराना है। परंतु आजकल तरह-तरहके कल-पुरजोंमें हीरेका उपयोग होता है क्योंकि यह शायद इंद्रके वज्रके बाद सबसे अधिक कठोर वस्तु है। कांच तथा विभिन्न मिट्टियोंसे जो नाजुक चीजें बनायी जाती हैं उनके घिसनेका काम हीरा ही कर सकता है। ये चीजें बहुत अधिक तापमानपर तैयार होती हैं और गरमीके कारण कुछ छोटी हो जाती हैं इसलिये उन्हें आवश्यकतासे कुछ अधिक बड़ा रखना पड़ता है। उनके आकारको ठीक करना हीरेके सिवाय और किसीके बसका काम नहीं है।

इसी प्रकार बड़ी नाजुक मशीनोंके पेचोंमें जहां ०.००६ या ०.००४ इंच चौड़ाईकी चूड़ी डालनी

होती हैं वहां भी हीरा ही काम आता है। उच्च कोटिके सान करनेके पत्थर जब अपनी सान खो बैठते हैं तो हीरा ही उन्हें फिरसे उपयोगी बना सकता है। इसी तरह बड़ी-बड़ी दूरबीनों या केमरे-के कांचको ठीक रूप देनेके लिये भी हीरेकी मांग होती है। हीरेकी दूसरी विशेषता यह है कि इतना काम करनेके बाद भी वह आसानीसे नहीं टूटता या घिसता। इससे कारखानोंका औजारोंको बदलने या उनकी मरम्मत करनेका समय बचता है।

एक नये सूक्ष्मवीक्षण यंत्रके लिये कुछ चीजोंके बहुत ही पतले टुकड़ोंकी जरूरत होती है। वहां भी हीरा इंचके एक करोड़वें हिस्से तकके टुकड़े कर सकता है और इसके लिये ०.०००१ ग्राम भारके हीरेका उपयोग होता है। जैसे-जैसे सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर वस्तुओंकी आवश्यकता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे हीरेका उपयोग भी बढ़ता जा रहा है।

हीरा हमें दिखाता है कि सौंदर्य और शांतशक्ति परस्पर विरोधी नहीं है।

शरीरपर मनका प्रभाव

हरद्वारके सुप्रसिद्ध वैद्य पं. यागेश्वर जी अपने समयके सबसे बड़े पंडितोंमें गिने जाते थे। उन्होंने एक मजेदार घटना सुनायी थी। वे किसी बड़े वैद्यके यहां काम सीखा करते थे। किसी राजाकी तबीयत खराब हो गयी और वह काफी दूरसे इनके पास इलाजके लिये आया। वैद्यराजने अपने पट्ट शिष्य यागेश्वरसे कहा, जरा इन्हें देखकर उचित औषध दे दो। यागेश्वर जी अभी भोले-भाले विद्यार्थी ही थे। उन्होंने राजासे कह दिया, आपको खाली सरदी हुई है यह नुस्खा लेते जाइये, दो दिनमें आराम हो जायेगा। नुस्खेका दाम चार आने। राजाधिराज इतने बड़े अपमानको न सह सके। उन्हें इतने महान् व्यक्तिको खाली सरदी हो और वह भी एक चवन्नीकी पुड़ियासे ठीक हो जाये यह कैसे हो सकता था? उन्होंने जाकर वैद्यराजसे कहा, आपने किस अनगढ़ छोकरेके हाथमें मुझे सौंप दिया, यह तो कुछ भी नहीं जानता। वैद्यराजने यागेश्वरजीसे सब कुछ जान लिया, वे राजासे बोले नहीं महाराज, यह अभी लड़का है। यह क्या जाने राजाओंके विशेष रोग। आपको प्रतिश्याय हुआ है (यह सामान्य सरदीका संस्कृत नाम है) और इसके बारेमें संस्कृतके दो एक श्लोक सुना दिये। और फिर यागेश्वरजी वाली दवाई ही संस्कृतके एक लंबे समासयुक्त नामके साथ उन्हें पकड़ा दी और अनुपान वगैरा के साथ रोज तीन बार लेनेका आदेश दिया। और दाम रखा एक खुराक-के २५) यानी दिनके ७५) और एक सप्ताह दवाई खानेके बाद फिर से आकर दिखानेकी ताकीद कर दी। राजा खुश हो गये और कहने लगे, मैं पहले ही ताड़ गया था कि यह लड़का निरा उजड्ड है, देखिये न, मुझे सरदी बता रहा था।

* *

फ्रांसके एक प्रसिद्ध सज्जनको पेटकी कुछ तकलीफ थी। बहुत इलाज किये पर कोई लाभ न हुआ। आखिर एक बड़े डाक्टरने सब कुछ सुनकर कहा—आप हर रोज बड़े सबेरे उठकर अपनी जेबमें कुछ अंगूर लेकर घरसे बाहर निकल जायें। घरकी सीढ़ीसे न उतरकर खिड़कीसे उतरें और तेजीके साथ पूर्वकी ओर मुंह करके चल पड़ें। अपने कदम गिनते जायें। हर पचास कदमपर एक अंगूर खा लें। पहले दिन दस अंगूर खाकर लौट पड़िये, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन तीस इसी तरह पचास अंगूर तक पहुंचकर दस दिनतक यही कार्यक्रम जारी रखिये और उसके बाद मुझसे मिलने आइये। डाक्टरने सीधी-सीधी कसरत करनेके लिये कहा होता तो उनकी रायका का कोई मल्य न होता। इस तरहसे उसने कसरत करवायी और रोगीको लाभ भी हो गया।

* *

एक सज्जनको पुराने कब्जकी शिकायत थी। कइयोंका इलाज करके थक चुके थे। उनके शहर में एक नया-नया वैद्य आया। उसकी ख्याति पहले ही पहुंच चुकी थी। यह सज्जन बड़ी श्रद्धाके साथ वैद्यके पास जा पहुंचे। उसकी बातोंमें सम्मोहन शक्ति थी। उसने रोगीको विश्वास दिला दिया कि तीन दिनमें उसका रोग अवश्य ठीक हो जायेगा। उसने अंदर जाकर एक बोतलमें सुराही-का पानी भरा, उसमें एक चुटकी हल्दी मिलायी और अच्छी तरह घोलकर दवाई रोगीको पकड़ा दी और दिनमें तीन बार खानेसे पहले लेनेका आदेश दे दिया। चौथे दिन रोगीने आकर कहा —वैद्यजी, आप साक्षात् धन्वन्तरि हैं। इतने बरसोंके कष्टको तीन दिनमें आराम कर दिया। रोगी महाशय महीनों वैद्यजीकी 'दवाई' लेते रहे। जब 'दवाई' छोड़ते तो फिर कोष्ठ हड़ताल कर बैठता था।

—संकलित

* * *

हमारा जगत् :

मधुमक्खी

—श्री रवीन्द्र

आर्य लोग अनादि कालसे प्रार्थना करते आये हैं — जिह्वाया अग्रे मधु मे, जिह्वामूले मधूलकम्। मेरी जीभ मधुके जैसी मीठी हो, मैं हमेशा मधुरभाषी हो सकूं, मेरे जीवनमें मधु संचारित हो, मैं मधु सदृश बन जाऊं। यज्ञ यागसे लेकर अतिथि-सत्कारतक सब जगह मधुकी प्रधानता रही है। मधु अपने आपमें अत्यंत हितकर है, जहां अन्य मीठी चीजें वर्जित होती हैं वहां भी आयुर्वेद वाले मधुको पथ्य बताते हैं। परंतु हममेंसे कम ही लोग होंगे जिन्होंने यह देखनेका प्रयास किया हो कि मधु, कहांसे और कैसे आता है। जंगलमें जाकर किसी छत्तेको देखें या किसी आधुनिक मधुमक्खियोंकी पेटीको देखें तो हमें बहुत कुछ नया दिखायी देगा। मधुमक्खीको तो सभी जानते हैं, यह छोटा सा जन्तु जब काट लेता है तो बस मजा आ जाता है। हमारा इसका परिचय साधारणतः यहीं समाप्त हो जाता है कि इसके काटेपर लोहा घिस दिया जाय तो जलन कम हो जाती है। परंतु जरा नजदीकसे अध्ययन करनेपर हम देखेंगे कि हममेंसे अधिकसे अधिक परिश्रम करनेवाले व्यक्ति भी इसकी तुलनामें बेकार और अहदी कहलाएंगे। मधुमक्खीका शरीर इतना छोटा होता है कि अन्य कीड़े मकोड़ोंकी तरह उसके लिये भी अपने शरीरको गरम बनाये रखना असंभव है और मधुमक्खीके शरीरका तापमान बाहरी हवाके तापमानके बराबर ही रहता है। सर्दीके दिनोंमें जब ठंडी हवाएं बहती हैं तो मधुमक्खी न तो अपना घर छोड़कर किसी गरम प्रदेशमें जा सकती है और न शिथिल और अचल होकर रह सकती है। इसलिये हमारे वातानुकूल कमरोंकी कल्पना होनेसे भी लाखों वर्ष पहले मधुमक्खीने अपने छत्तेको वातानुकूलित करना सीख लिया था। छत्तेमें एक साथ हजारों मधुमक्खियां अपने पंख फड़फड़ाती हैं जिससे गरमी उत्पन्न होती है। बारी-बारीसे कुछ मधुमक्खियां पंख फड़फड़ाकर गरमी पैदा करती हैं और कुछ इधर-उधर इकट्ठी होकर लिहाफका काम देती हैं। जिससे अंदरकी गरमी बाहर न जाने पाये। बहुत ठंडे प्रदेशोंमें छत्तेका तापमान बाहरी हवासे पचहत्तर डिग्री (फरनहाइट) ऊंचा होता

है। यानी बाहर जब लोग बरफमें जम रहे हों तो छत्तेके अंदर अच्छा गरम वातावरण रहता है। जैसे किसी शीत-गृह (कोल्ड रूम) में अंदर का तापमान उठने लगे तो मशीन चल पड़ती है और जबतक तापमान निर्धारित डिग्रीतक न पहुंच जाये तबतक चलती रहती है उसी प्रकार छत्तेका तापमान गिरने लगे तो बहुत-सी मक्खियां पंख फड़फड़ाने लगती हैं। और थोड़ी गरमी बढ़ जाय तो अपनी गति धीमी कर देती हैं मानो कोई ताप-मापक लिये इन सब चीजोंका निरीक्षण कर रहा है।

जाड़ेकी ऋतु समाप्त होनेपर उनका शीतके विरुद्ध युद्ध समाप्त हो जाता है। वसन्त की दुन्दुभि सुनते ही मधुमक्खियां युद्धकी सेनाकी जगह शांति दल बन जाती हैं। अब उनका मुख्य काम होता है चुकी हुई रसदके खाली भंडारको भरना। चारों ओर फूल खिल उठते हैं, जीवनमें रंग और मधुका राज्य हो जाता है और मधुमक्खियां उसी तत्परतासे रसद जुटानेमें लग जाती हैं। साधारण दिनोंमें छत्ते के पास एक कटोरीमें थोड़ा-सा शहद रख दिया जाय तो कुछ मिनटोंमें वहां मधुमक्खियोंकी भीड़ हो जाती है जो उसे साफ करके ही छोड़ती है परंतु फूलोंकी ऋतुमें उन्हें हमारी इस सहायता की जरूरत नही होती। इन दिनों उनके पास प्राकृतिक मधुकी बहुतायत है। प्रकृतिने उनके लिये लाखों सुन्दर प्यालोंमें अमृत परोसकर रख दिया है! फिर उन्हें किसी की जूठन की परवाह! आंधी आ रही हो, तो मधु मक्खियां उस से पहले-पहले मधु लेकर अपने घर आ पहुंचती हैं। जब वर्षा उनके पंखोंपर हथौड़े बरसाती है तब भी मक्खियां उसका विरोध करते हुए अपना काम करनेकी कोशिश करती हैं। इस ऋतुमें पैदा होनेवाली मधु-मक्खीका जीवन केवल छः-सात सप्ताहका होता है जब कि अपेक्षया आरामसे रहनेवाली जाड़ेकी मक्खी छः मासतक जी लेती है।

एक बार अमरीकामें परीक्षण करनेके लिये कुछ छत्ते ऐसे स्थानपर रखे गये जहां फूलोंका नामतक न था। वहांसे आठ मील दूरीपर फलों का एक खेत था। मधु मक्खियोंके गुप्तचरोंने इस खेतका पता लगा लिया और मक्खियोंने जरा सा शहद लानेके लिये सोलह मीलका चक्कर लगाना शुरू कर दिया। कृषि विभाग वालोंने हिसाब लगाकर कहा कि यह मक्खियां एक पाउण्ड शहद इकट्ठा करनेके लिये तीन लाख मीलका चक्कर लगाती थीं। जहां फूल प्रचुर मात्रामें होते हैं वहां भी एक पाउण्ड शहदके लिये मक्खियोंके दलको पृथ्वीके दो घेरोंके बराबर यानी लगभग पचास हजार मीलका चक्कर लगाना पड़ता है। यहां हम सम्मिलित प्रयासकी बात कर रहे हैं। वैसे एक मक्खीके लिये सारे जीवन उड़ते रहनेपर भी एक पाउण्ड शहद तैयार करना असंभव है क्योंकि इसके लिये लगभग सैंतीस हजार उड़ानोंकी जरूरत है। प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक आर्थर टामसनका कहना है कि एक छत्तेकी मक्खियां दिनमें लगभग दो लाख फूलोंसे रस इकट्ठा करके अपने भारका ठीक आधा शहद ला पाती हैं। यात्रा अगर लंबी हो तो शहदसे लदी मक्खियोंको बीचमें आराम करनेके लिये रुक जाना पड़ता है। कभी कभी नदी नाले पार करते हुए वे थककर जल समाधि ले लेती हैं।

ऐसा लगता है कि मधु मक्खियोंके पास कोई खास घड़ी होती है और वे वनस्पति शास्त्रकी विशेषज्ञ भी होती हैं। उन्हें पता होता है कि कौन-से फूलमें कब शहद होता है। कुछ फूल हैं जिनमें मधुकोश दो तीन घंटे खुला रहता है। मधु मक्खियां उन फूलोंपर ठीक उसी समय जाया करती हैं। अगर एक मधुमक्खी संतरेका शहद इकट्ठा कर रही है तो वह आसपासके अन्य फूलोंको छुएगी भी नहीं। वह एक जातिके फूलोंसे ही मधु संचय करती रहेगी। इसका एक बड़ा लाभ यह होता है कि एक फूलकी केसर दूसरेपर नष्ट नहीं होती। हमारी खेती और बागबानीमें नर फूलोंके केसरको मादा फूलोंतक पहुंचाना मधुमक्खीका ही काम है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि अगर मधुमक्खी न हो तो लगभग एक लाख प्रकारके पौधे धरती से उठ जायेंगे। एक बार यूरोपके किसी देशमें कीड़ोंको मारनेके लिये हवामेंसे डी. डी. टी. का छिड़काव किया गया था। सेबोंके कीड़े तो मर गये पर साथ ही सारी मधु मक्खियां भी मर गयीं और परिणाम स्वरूप पराग भी न हो पाया और सारी फसल

खतम हो गयी। बादमें अन्य प्रदेशोंसे मधुमक्खीके छत्ते किरायेपर लाये गये और तब काम चला। आजकल कई देशोंमें लोग अपने छत्ते मोटर लारीमें रखा करते हैं और लारियां किराया लेकर खेतोंके और बगीचोंके पास खड़ी हो जाती हैं जिससे उनके यहां समुचित पराग हो जाता है।

मधु मक्खी रसायन भी जानती है। फूलमेंसे मिलने वाला शहद कच्चा होता है और उसे रखना असंभव है। मधु मक्खी उसमें कुछ रासायनिक क्रियाएं करके पकाती है जिसके बाद वह बरसों रह सकता है।

मधु मक्खियोंकी एक विशेष भाषा होती है। जब कोई मक्खी कहीं अच्छे फूल देखकर आती है तो वह एक विशेष प्रकारसे नाचती है, उसका नाच देखकर अन्य मक्खियां भी उसका साथ देने लगती हैं और इस प्रकार सबको खबर मिल जाती है कि फूल किस दिशामें और कितनी दूर हैं। अगर हम उनके नाचको ध्यानसे देखें तो हम भी उसे देखकर उन फूलोंकी स्थितिके बारेमें जान सकते हैं। हां, सूर्य न हो तो मक्खियोंको दिशाका ज्ञान ठीक तरह नहीं हो पाता। परंतु भिन्न भिन्न जातिकी मक्खियोंकी भाषा अलग होती है। उत्तर प्रदेशकी मधुमक्खी जर्मनीकी मधु मक्खीकी भाषा नहीं समझ सकती। कौन जाने एक दिन मधु मक्खियां भी भाषागत प्रदेश बनानेकी मांग कर बैठें।

* * *

बागी बनाफर

बुन्देलखंडके राजपूतोंमें एक जाति है जो बनाफर कहाती है। आल्हा-ऊदल इसी जातिके थे। इस जातिका एक जमींदार मोतीलाल बागी हो गया। रैयतसे तो पैसा इकट्ठा कर लेता था पर सरकारी खजानेमें कुछ भी दाखिल न कराता था। इसमें सरकारको जो आर्थिक घाटा होता था सो तो होता ही था, साथमें यह डर भी था कि इसकी देखा-देखी और लोग भी यही न करने लग जायें। कई बार तकाजा करनेके लिये आदमी भेजे गये पर वह किसीकी परवाह न करता था। कोई भी सरकारी आदमी जाता तो उसकी वर्दी उतरवाकर उसे दो जूते लगवाता मट्टी ढुलवाकर अपने दरवाजेपर डलवाता। इसलिये अब कोई उस दिशामें जाने को तैयार न होता था।

हमारी रियासतके मंत्रीने मुझे बुलाकर कहा — देखो, दलजीतसिंह! मोतीलालको पकड़ना जरूरी है नहीं तो उसकी देखा-देखी न जाने और कितने लोग बागी हो जायें। यह राज्यकी प्रतिष्ठाका सवाल है। मेरा ख्याल है कि यह काम तुम्हें छोड़कर और कोई नहीं कर सकता। मैंने उन्हें सलाम किया और विनयकी कि महाराज यह संगीन मामला है, मैंने इसे हाथमें लिया तो पकड़े बिना न छोड़ूंगा। आप जरा महाराजसे आज्ञा ले लीजिये कि मोतीलालको जिन्दा या मुर्दा, कब्जेमें कर लिया जाय। कहीं ऐसा न हो कि वहां गोली चले और मैं आपकी सेवा करते हुए हत्याके अपराधमें फंस जाऊं। इतनेमें महाराज भी आ गये और उन्होंने कहा — तुम निःशंक होकर मोतीलालके पीछे लग जाओ, बस अब यह आतंक समाप्त होना ही चाहिये। मैं पूरी तरह तुम्हारे साथ हूं।

बस, शेरके मुंहको खून लग गया। मैंने पुलिसके कुछ अफसर और सिपाही साथ लिये और मोतीलालके गांवकी ओर कूच किया। मैंने प्रकट रूपसे यह घोषणा की कि मैं मोतीलालके गांवके पास किसी डाकूको पकड़नेके लिये जा रहा हूं। अपने साथियोंको पीछे छोड़कर मैं मोतीलालके घर-

की ओर बढ़ा। देखता क्या हूं दरवाजेके सामने चबूतरेपर मोतीलाल अपने मुसाहिबोंके साथ विराजमान है। यही कोई छः फुट ऊंचा बड़े डील-डौलका आदमी, काला रंग और लाल-लाल आंखें। सारा चेहरा कुछ भयावना सा दीखता था। कहते हैं कि सवेरे उठते ही डेढ़ पाव तिलका तेल पीया करता था। और फिर आध सेर भांगकी ठंडाई छनती थी जिसे वह अपने संगी साथियोंके साथ चढ़ा जाता था। इसके ऊपर खूब उटा हुआ गाढ़ा-गाढ़ा दूध। शराब, गांजा, चरस आदि इनके अतिरिक्त।

ऐसे राक्षसको पकड़नेके लिये मैं उसकी मांदपर शामके पांच बजे पहुंचा। मुझे और मेरी वर्दीको देखते ही मोतीलाल चबूतरेसे कूद पड़ा और एक बड़ा लंबा मोटा बांस दोनों हाथोंसे घुमाते हुए — "आइये सरकार, आइये सरकार" कह कहकर मेरा और मेरे साथीका स्वागत करने लगा। इसी बीच उसके मकान के दरवाजेमें भीतरकी ओरको दो कुर्सियां रख दी गयीं और वह बांसको इस तरह घुमाता गया कि हम न चाहते हुए भी उसके घरमें घुसनेके लिये बाधित हो जायं। पर यहां हमने भी कच्ची गोलियां न खेली थीं। मैं देख सकता था वहां दीवारपर एक बन्दूक लटक रही थी और वह उसके हाथ आ जाती तो मेरा रिवाल्वर भी बेकार हो जाता। उसके साथियोंकी संख्या भी बढ़ चली। मैंने देखा कि स्थिति काबूसे बाहर होनेको है तो मैंने झट अपने साथियोंको इशारा कर दिया कि उसे पकड़ लें। कई आदमी एक साथ उसपर टूट पड़े। उसके हाथमें हथकड़ी डालनेकी कोशिश की तो उसका दाहिना हाथ इतना मोटा निकला कि हमारी हथकड़ी छोटी पड़ गयी। वह बराबर उत्पात करता जा रहा था। इतनेमें उसका एक आदमी दीवारपर टंगी हुई बन्दूकपर लपका परंतु वह खतरेका कारण बन सके इससे पहले हमने उसे चारों खाने चित कर दिया।

अब मोतीलालके पिट्ठू बहुत बढ़ चुके थे और हम लोगोंकी जानको खतरा था। फिर भी मैं गोली चलानेका हुक्म न दे रहा था। मेरे साथी अफसरने देखा कि मैं बुरी तरह घिर गया हूं और अब कुछ भी हो सकता है तो उसने चुपकेसे पुलिसवालोंको गोली चलानेकी आज्ञा दे दी। पहली गोलीसे ही मोतीलाल समाप्त हो गया और उसके साथियोंमें भगदड़ मच गयी। पुलीसवाले भी इतने उत्तेजित हो गये कि उन्हें यह ख्याल तक न आया कि कहीं उनकी गोली मुझे ही शिकार न बना ले। और सबके भाग जानेके बाद भी मेरे ऊपरसे गोलियां गुजरती रहीं। मैं चिल्लाया "रोको, रोको" पर गोलियोंकी आवाजमें मेरी आवाज कौन सुन पाता। खुदा झूठ न बुलवाये कमसे कम चालीस गोलियां तो मेरे ऊपरसे गयी होंगी। अब मैंने अपना रिवाल्वर पुलिसवालोंपर ताना। यह देखकर उनके होश ठिकाने आये और उन्होंने अपनी बौछार बंद की।

स्थितिको काबू करते ही मैं सीधा महाराजके महलकी ओर चला। हमारी मोटर रातके बारह बजे उनके यहां जा पहुंची। महाराजको जगाया गया। वह आये। मैंने सारा हाल सुनाया। उन्होंने शाबाशी दी और कहा इसमेंसे कुछ उपद्रव उठ खड़ा हो तो वह मेरी रक्षा करेंगे। मैं उसी समय और पुलिस लेकर वहां वापिस गया। लेकिन अब सब कुछ शांत था।

दूसरे दिन चारों ओर मोतीलालकी हत्याकी बात फैल गयी। सरकारकी ओरसे मजिस्ट्रेटको यह हुक्म दिया गया कि इस गोलीकांडकी जांच करे। मजिस्ट्रेट मेरे बड़े अच्छे मित्र थे। परंतु थे जरा ऐसे ही। जांचके बाद वह महाराजके छोटे भाईके पास पहुंचे जो रियासतके गृहमंत्री थे। उनसे बोले — महाराज मुझे तो लगता है कि पुलिसने ज्यादती की है और व्यर्थमें एक भले आदमीको मार डाला। परंतु मैं आपसे पूछे बिना कुछ लिखना नहीं चाहता, आप जो कहें वही लिख दूं। छोटे महाराज तिलमिला उठे। यह क्या बदतमीजी है! उन्होंने कहा — अगर मुझे अपनी रायके अनुसार ही काम करना होता तो मैं जांचका स्वांग ही क्यों करता। जाओ, न्यायकी दृष्टिसे जो ठीक लगे वह लिख दो। लेकिन यह ख्याल रखना कि जहां पुलिसको बचानेकी जरूरत नहीं है वहां उसपर

झूठा आरोप लगाना भी अपराध होगा। काम ऐसा हो कि कठिन परीक्षा लेनेपर भी खरा निकले।

बेचारे मजिस्ट्रेट अपना सा मुंह लेकर लौट आये। वे शायद मोतीलालकी बिरादरीकी सहायतासे अपनी जेब गरम करना चाहते थे। वह न हो सका तो उन्होंने दूसरा पांसा फेंका। महाराजके यहांसे मेरे यहां आये और मेरे पास बहुत सहानुभूति दिखाते हुए बोले —— देखो, आज तो मैंने तुम्हें बचा ही लिया। छोटे महाराज तुमसे बहुत सख्त नाराज हैं। मैं अभी उनके यहांसे आ रहा हूं। वह कह रहे थे कि तुमने एक भले आदमीको यूं ही मार दिया। मैंने तुम्हारी बड़ी पैरवी की, उन्हें विश्वास दिलाया कि तुमने जो कुछ किया, आत्मरक्षाके लिये किया, अगर तुम उसे न मारते तो तुम्हारी भी जान चली जाती और राजकी प्रतिष्ठाको धक्का लगता सो अलग। बहुत प्रयासके बाद मैंने उन्हें कुछ ठंडा किया। यह सुनकर मेरा राजपूत खून खौल उठा। मैंने कहा —— मैं अभी छोटे महाराजके पास जाता हूं। जरा देखूं तो यह क्या षडयंत्र है। वे घबराये, बोले —— नहीं, नहीं, कहीं ऐसी भूल न कर बैठना। अभी मैंने जैसे-तसे करके सारा मामला ठंडा किया है तुम फिरसे आग लगाना चाहते हो।

मुझे उनकी बातोंसे संतोष न हुआ। मैंने साइकिल दबायी और सीधा छोटे महाराजके यहां जा पहुंचा। वह मकानके बाहर ही खड़े थे, मुझे देखते ही बोले —— अच्छे मित्र बनाये हैं तुमने! देखो, मजिस्ट्रेट साहब मुझसे यह कह गये हैं। मैंने भी अपनी बात सुनायी तो मामला स्पष्ट हो गया। मैं सोच रहा था —— क्या ऐसे मजिस्ट्रेट मोतीलालसे किसी तरह अच्छे हैं?

—— एक पुलिस अफसर

नयी कोपलें :

सच्चा सुख

——श्री तृप्ता भसीन

आज सबेरेसे ही न जाने क्यों मेरा मन उदास-सा है। हर तरफ एक अजीब-सी शून्यता दिखायी दे रही है। सूर्य देवता अभी कनखियोंसे ही संसारकी शोभा निहार रहे हैं। पेड़ोंके बीचसे छन-छनकर धूप आंगनके एक कोनेतक आ पायी है। मां सुबहसे मंदिर गयी हुई हैं। मैं बिलकुल अकेली बैठी हूं। और यह अकेलापन मुझे काटनेको दौड़ रहा है। मेरे जैसा इनसान तो अक्सर एकांतका इच्छुक होता है। पर कभी-कभी यही एकांत असह्य हो जाता है। सामने पेड़की टहनीपर एक चिड़िया बैठी है। अकेली, बिलकुल अकेली। लेकिन फिर भी चहचहा रही है। मैं दबे पांव उसके पास जाने लगी पर मेरे पास पहुंचते ही वह फुर्रसे उड़ गयी। एकाएक मैं हंस पड़ी। 'डरपोक'! मेरे मुंहसे निकला और मैं बरामदेका दरवाजा खोलकर बगीचीमें जा बैठी। घासके लानपर धूप बिछ चुकी थी। मैंने सोचा सर्दीके इस मौसममें यह धूप कितनी अच्छी लगती है! और यही गर्मीमें काटने दौड़ती है। समय-समयकी बात है। मैं इन्हीं विचारोंमें खोयी हुई थी कि एक साथ बहुत-से पक्षियोंके जोर-जोरसे चिल्लानेसे मेरी विचारधारा टूट गयी। मैंने हैरानीसे इधर-उधर देखा। वृक्षोंकी टहनियोंपर बैठे पत्ती जोर-जोरसे चिल्ला रहे थे। पर यह चिल्लाना उस चहचहाहटकी आवाजसे बिलकुल भिन्न था जो कुछ देर पहले सुनायी दे रही थी। इस आवाजमे एक दर्द था, पीड़ा थी, क्रंदन था।

एक मोटी-सी सफेद बिल्ली भागती हुई मेरे सामनेसे निकल गयी, उसने एक छोटी-सी चिड़ियाको अपने मुंहमें दबा रखा था। पक्षियोंका क्रंदन और बढ़ गया। मेरी आंखोंमें आंसू आ गये और मैं फिरसे आंगनमें आ गयी। मेरा दिल और व्यथित हो उठा। मैं सोचने लगी कि क्या इस संसारमें शोषणका कभी अंत न होगा, अत्याचार कभी न मिटेगा, जिनमें ताकत है वे कभी दया करना न सीखेंगे?

तभी बाहर दरवाजेपर किसीने छड़ीसे खट-खटाया। ग्वाला होगा, बिना देखे ही मैं जान गयी। इस बेचारेका जीवन भी कितना दर्द भरा है। भगवान्ने इसे स्वर नहीं दिया, बेचारा गूंगा है। और इस कमीने इसके जीवनको नरक बना डाला है। इसका निर्दय बाप हमेशा बेचारेको पीटता रहता है। मेरा विचार है दस-बारह वर्षके इस मासूम बच्चेको मांके सिवा किसीने प्यारके दो शब्द भी नहीं कहे। कई बार जब इसका बाप निर्दयतासे इसे पीटता है तो मुझे बहुत क्रोध आता है। पर मैं क्या कर सकती हूं। यह बेचारा भी अब इन बातोंका आदी हो गया है। इतना सब सहते हुए भी उसका चेहरा शांत और निर्दोष है। लगभग तीन महीनेसे यह हमारी गाय-भैंस चराने ले जाता है। बोल न सकनेके कारण प्रतिदिन यूंही छड़ी खटखटाकर अपने आनेकी सूचना देता है।

अचानक फिर छड़ी खटखटानेकी आवाज आयी। मैंने जल्दीसे मुड़कर देखा वह दरवाजेके पास खड़ा आर्द्र दृष्टिसे मुझे देख रहा था। ओह! कितना दर्द था उसकी आंखोंमें, मैं वर्णन नहीं कर सकी। 'क्या बात है' मैंने सहानुभूतिसे पूछा। उसकी आंखोंमें थमे हुए आंसू बह निकले। कुछ देर यूंही खड़ा रोता रहा और फिर इशारेसे बताया कि बहुत भूख लगी है। मैं जल्दीसे रसोईकी तरफ भागी नाशता तो अभी तैयार नहीं था रातकी कुछ रोटियां और दाल बची पड़ी थीं। मैंने जल्दीसे उन्हें थालीमें रखा और थाली उसके सामने रख दी। वह खुश हो गया और जल्दी-जल्दी खाने लगा। खानेके बाद उसने इशारेसे बताया कि रातको बापने उसे छड़ीसे पीटा था और रातभर भूखा रखा। मेरा रोम-रोम उसके अत्याचारी पिताके प्रति घृणासे भर गया। और जब मैंने उसकी पीठपर चोटोंके निशान देखे तो मैं आपेसे बाहर हो गयी। "यह तेरे बापने पीटा है? वह पिता है या जल्लाद? आने दे उसे, देख कैसी खबर लेती हूं।" मैं गुस्सेमें न जाने क्या-क्या कह गयी। उसकी आंखोंसे आंसू फिर बहने लगे। उसने इशारेसे अनुनय की कि मैं उसके बापूसे कुछ न कहूं। मैं जल्दीसे अंदर गयी और मरहम लाकर उसकी चोटोंपर लगा दी। वह तेजीसे उठा और गाय-भैंस खोलकर बाहरकी तरफ चल दिया। वह जा रहा था। पशुओंके झुंडके पीछे छोटी-सी छड़ी हाथमें लिये वह साक्षात् श्रीकृष्णका छोटा रूप लग रहा था।

सबेरा दोपहरमें बदल गया और दोपहर भी ढलने लगी।

घरमें मेरा मन नहीं लग रहा था। जी चाहता था कि कहीं दूर प्रकृति मैयाकी गोदीमें बैठकर जी हल्का करूं। लेकिन जाऊं कहां? यही सोच रही थी कि सामने सविता आती दिखायी दी। मैं खिल उठी। 'चल आज कहीं घूमने चलें' उसके आते ही मैंने मचलकर कहा। 'कहां चलोगी' वह अपने स्वभावानुसार धीरेसे बोली। कहीं तो चलेंगे ही मैंने जल्दीसे उठकर कहा और मांसे कह कर हम दोनों चल दीं। हम दोनों धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थीं। सामने दरिया दिखायी देने लगा और हम किनारे की बालूपर बैठ गयीं और दूर-दूरके दृश्य बड़ी दिलचस्पीसे देखने लगीं। एकाएक मेरी निगाह दूसरे किनारेपर खड़ी अपनी गायपर पड़ी। हम पुलपरसे होती हुई दूसरे पार जा पहुंचीं। कहींसे संगीतकी मधुर तान सुनायी दी और हमारे कदम रुक गये। सामने रेतके टीलेपर ग्वालेका लड़का बैठा था। उसके हाथमें तानपुरे जैसा कोई छोटा-सा साज था जिसे वह मस्तीसे बजाये जा रहा था। उसे आसपासकी सुध न थी। बहुतसे छोटे-छोटे पक्षी उसके इर्द-गिर्द फुदक रहे थे। अचानक कहींसे दो छोटे-छोटे सफेद खरगोश भागते हुए आये और धीरेसे उसकी गोदमें जा

बैठे। यह सब देखकर मेरा मन आनंदसे भर गया। इतना खूबसूरत दृश्य मैंने जिन्दगीमें पहले कभी न देखा था और न ही इतना मीठा संगीत सुना था। मैं विभोर हो उठी। एकाएक संगीत रुक गया, मैंने देखा ग्वालेका लड़का उन खरगोशोंको अंकमें भरकर प्यार कर रहा है। 'ओह! यह कितना निहाल है' मेरे मुंहसे निकला, हम सबसे हजार गुना सुखी। इसने सांसारिक सुख खोकर सच्चा सुख पा लिया है। इनसानोंका स्वार्थमय प्यार खोकर इसने प्रकृतिका प्यार पाया है। सच्चा और निःस्वार्थ प्यार।

⁂

राजा भोज

जब राजा भोजके पिता मरे तब भोजकी आयु सात वर्षकी थी और वह राज्य संभालनेके योग्य न था। इसलिये मंत्रियोंने आपसमें सलाह की कि जबतक भोज जवान न हो जाये तबतकके लिये राज्यका काम उसके चाचा मुञ्जको सौंप दिया जाये। मुञ्जने जब यह सुना तो बहुत खुश हुआ और राज्य करने लगा। जैसे-जैसे दिन बीतते गये मुञ्जके दिलमें बेईमानी आती गयी। उसने सोचा कि जब भोज बड़ा होगा तब वह राज्य मुझसे छीन लेगा, इसलिये मुझे कुछ उपाय सोचना चाहिये जिससे मैं ही राजा बना रहूं। थोड़े दिन सोचनेके बाद उसने अपने एक मंत्रीको बुलाया और कहा कि तुम लोग भोजको जंगलमें ले जाकर मार दो। परंतु मंत्री मुञ्जकी तरह लालची न था। उसने अपने आदमियोंसे कहा कि तुम भोजको मेरे महलमें छोड़ दो और मुञ्जसे कह देना कि भोज मर गया। मंत्रीने एक पत्र दिया और कहा, मुञ्जसे कह देना कि भोजने मरते समय यह पत्र दिया था। आदमी मुञ्जके पास गये और कहा कि भोज मर गया और मरते समय उसने यह पत्र दिया था। राजाने जब वह पत्र पढ़ा तो उसे बहुत दुख हुआ कि मैंने भोजको क्यों मरवा डाला। उसको सारी रात नींद न आयी और उसने सपनेमें देखा कि बड़ा भाई सामने क्रोधसे कांप रहा है। और उससे कह रहा है नीच तूने यह क्या किया, तूने मुझे वचन दिया था कि मैं भोजको प्यारसे रखूंगा और अब लालचमें आकर उसे मरवा दिया। उसी समय उसकी नींद खुली और वह जोर-जोरसे चिल्लाकर भोजको पुकारने लगा। उसका चिल्लाना उसके मंत्रीने सुन लिया। वह आया और बोला राजा आप इतना दुख न कीजिये। मैंने सुना है कि इस देशमें एक साधू है जो मरे हुए आदमीको जिन्दा कर देता है। मुञ्जने पूछा वह साधू कहां है। मुझे उससे मिलना है। मंत्री बोला, राजा, वह साधू कल सवेरे आयेगा। अगले दिन वही मंत्री साधूका वेष बनाकर राजाके महलमें आया और राजासे बोला, अगर आप प्रतिज्ञा करें कि भोजको प्यारसे रखेंगे तो हम उसे जिन्दा कर देंगे। राजाने कहा कि मैं उसे अपने बच्चेकी तरह रखूंगा। तब साधू-रूपी मंत्रीने कहा आप आंखें बंद कीजिये और जब मैं कहूं तब खोलिये। राजाने आंखें बंद कर लीं और मंत्री भोजको पुकारने लगा। भोज मंत्रीके महलसे निकलकर राजाके सामने आ खड़ा हुआ। राजाने जब आंखें खालीं तो भोजको देखकर बहुत खुश हुआ और फिर आरामसे राज्य करने लगा।

—दीपा

पाठ याद हो आया

उन दिनों, पांडव द्रोणाचार्यजीके पास पढ़ने जाया करते थे।

एक दिन उनके गुरुने एक पाठ पढ़ाया। पाठ था — "सत्य बोलो।"

उन्होंने युधिष्ठिरसे पूछा, "पाठ याद हो गया?"

"हां गुरुजी" उत्तर मिला।

अर्जुनसे भी यही सवाल पूछा गया। उसने भी वही उत्तर दिया।

"क्रोधको जीतो" गुरुजीने आगे पढ़ाया।

अबकी बार जब युधिष्ठिरसे पूछा गया कि पाठ याद हुआ या नहीं तो उत्तर "नहीं" मिला। फिर अर्जुनसे पूछा गया "पाठ याद हो गया?"

"जी हां"

गुरुजीको जरा बुरा लगा कि इतना साधारण पाठ जो अर्जुनको याद हो गया वह युधिष्ठिरको याद नहीं हो सकता। परंतु वे चुप रहे।

दूसरे दिन जब सब फिर इकट्ठे हुए तो गुरु द्रोणने सबसे पहले युधिष्ठिरसे पूछा "पाठ याद हो गया?"

युधिष्ठिरका उत्तर था "जी नहीं गुरुजी"। यह सुनकर सभी बड़े हैरान हुए।

गुरुजीको तो बड़ा ही गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा "कल अगर पाठ याद करके नहीं आये तो तुम्हारी खैर नहीं।"

अर्जुन वगैरहको बड़ा आश्चर्य हुआ कि युधिष्ठिर जो बुद्धिमान था उसे छोटा-सा पाठ कैसे याद नहीं हो रहा है। उन्हें जरा फिकर हो गयी। इधर दुर्योधन बड़ा खुश था। सोच रहा था कैसा बुद्धू है युधिष्ठिर, क्योंकि उसे तो सदा पांडवोंसे जलन होती थी।

तीसरे दिन जब सब फिर इकट्ठे हुए तो युधिष्ठिरसे पिछले दिनका सवाल फिर किया गया। फिरसे वही उत्तर मिला। गुरुजीको बड़ा ही गुस्सा आया। उन्होंने युधिष्ठिरको एक तमाचा मारा।

तुरंत युधिष्ठिर बोल उठा "गुरुजी, पाठ याद हो गया।"

"अगर मुझे पहलेसे मालूम होता कि तुम्हें पाठ तमाचेसे याद होता है तो मैं कभी भी अपना इतना समय बर्बाद न करता" गुस्सेमें गुरु द्रोणने कहा।

"बात ऐसी नहीं है गुरुजी" युधिष्ठिरने कहा। "आपने जब पाठ पढ़ाया 'क्रोधको जीतो' तो मुझे विश्वास नहीं था कि मैं क्रोधको जीत सकता हूं। मैंने सोचा संभव है कि अगर कोई मुझपर गुस्सा करे तो मुझे भी गुस्सा आ जाये। पर जब दूसरे दिन आपने गुस्सा किया तो मुझे बिलकुल क्रोध नहीं आया। पर फिर मैंने सोचा हो सकता है कि अगर कोई मुझे मारे तो मुझे गुस्सा आ जाये। पर आज जब आपने मुझे तमाचा मारा तो भी मुझे बिलकुल गुस्सा नहीं आया। मुझे अपनेपर विश्वास हो गया।"

यह सुन गुरु द्रोण बड़े खुश हुए, उन्होंने युधिष्ठिरको गले लगाकर कहा, "मुझे नहीं मालूम था कि तुम पाठ इस तरह याद करते हो। मुझे क्षमा करना।"

—मारिया

फ्रैंच सीखिये

फ्रैंच-वर्णमाला L'alphabet Français

a	b	c	d	e	f	g	h	i	j	k	l	m	n	o	p
आ	बे	से	दे	अ	एफ्	जे	आश्	ई	जी	का	एल्	एम्	एन्	ओ	पे

q	r	s	t	u	v	w	x	y	z
क्यू	एर्	एस्	ते	यू	वे	दूब्लवे	इक्स्	ईग्रॅक्	जॅद्

नोट :— (१) 'अॅ' — इस चिह्नका bed की e ध्वनिके समान उच्चारण किया जाय।

(२) g (जी) और j (जे) का उच्चारण अंग्रेजी शब्द measure की 'ज' ध्वनिके समान होता है।

स्वर Voyelles (**वोआइअॅल**)[1]

a e i o u

आ अ ई ओ यू (यह पूर्ण रूपसे यू नहीं किंतु अ और य की मिश्रित ध्वनि है।)

le papa (ल पापा) पापा	la table (ला ताब्ल) मेज
le livre (ल लीव्र) पुस्तक	le kilo (ल किलो) किलो
la robe (ला रॉब) साया, फ्राक	la moto (ला मोतो) मोटर
le mur (ल म्यूर्) दीवार	la lune (ला ल्यून) चंद्रमा

नोट — (अ) दो प्रकारके articles (आर्तीक्ल) होते हैं जो संज्ञा शब्दोंके पूर्व लगते हैं। le (ल) पुलिंग शब्दके सामने और la (ला) स्त्रीलिंग शब्दके सामने, किंतु बहुवनचमें le और la 'les' (ले) में बदल जाते हैं —

le livre (ल लीव्र) पुस्तक les livres (ले लीव्र) पुस्तकें।

(ब) अनिश्चित वस्तुके लिये un (अँ) पुलिंगमें और une (यून) स्त्रीलिंगमें प्रयोग होता है — un livre. une table.

स्वर-ध्वनि a e i o u

ba	be	bi	bo	bu	ma	me	mi	mo	mu
ca	que	qui	co	cu	na	ne	ni	no	nu
का	क	कि	को	क्यू					

---

[1] जिन अक्षरोंके नीचे ‿ चिह्न लगा है उनका उच्चारण संयुक्ताक्षरकी तरह किया जाय।

ça ce ci ço çu[२]
सा स सी सो स्यू
cha che chi cho chu
शा श शी शो श्यू
da de di do du

fa fe fi fo fu

ga gue gui go gu
गा ग गी गो ग्यू
gea ge gi geo
जा ज जी जो
gna gne gni gno
ञा ञ ञी ञो
ha he hi ho hu

pa pe pi po pu

pha phe phi pho phu
फ़ा फ़ फ़ी फ़ो फ़्यू
qua que qui quo
का क की को
ra re ri ro ru

sa se si so su
सा स सी सो स्यू
assa asse assi asso assu
आस्सा आस्स आस्सी आस्सो आस्स्यू
usa use usi
ज़ा ज़ ज़ी
ta te ti to tu

(ह का उच्चारण बहुत हल्का-सा किया जाता है।)

ja je ji jo ju

ka ke ki ko ku
का क की को क्यू

va ve vi vo vu

za ze zi zo zu
ज़ा ज़ ज़ी ज़ो ज़्यू

la dame (ला दाम) स्त्री
le midi (ल मिदी) मध्याह्न
la rose (ला रोज़) गुलाब

le cheval (ल शवाल्) घोड़ा
le garçon (ल गारसौं) लड़का
la jupe (ला ज्यूप) साया

संयुक्त स्वर Voyelles composées (वोआइअॅल कौंपोज़े)

ai (ए), au (ओ), eau (ओ), eu (अ . . . . .), oi ओआ, œu (अ), ou (ऊ), ui (युई)

le balai (ल बाले) झाड़ू
le chapeau (ल शापो) टोप
le mois (ल मोआ) महीना

la poule (ला पूल) मुर्गी

le pauvre (ल पोव्र) निर्धन
le cheveu (ल शव . . . .) बाल
le bœuf (ल बफ़) बैल

la nuit (ला न्युई) रात

---

[२] c (से) के बाद a, o, u स्वरोंके आनेपर c ‘क’ की तरह उच्चरित होता है किंतु c के नीचे ‘¸’ cédille (सेदीय्) लगानेपर ç (स) बन जाता है।

पुस्तक-परिचय

भारतीकी कविताएं : प्रकाशक साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली; मूल्य ५.००।

सुब्रह्मण्यम भारती आधुनिक तमिलके पथप्रदर्शकोंमेंसे हैं। तमिल कवितामें उनका वही स्थान है जो हिंदीमें मैथिलीशरण गुप्तका है। उन्होंने ३९ वर्षकी अल्पायु में ही कविता, निबंध, कहानी लिख-लिखकर आधुनिक तमिलके भंडारको समृद्ध कर दिया था। देशप्रेमी होनेके अपराधमें उन्हें देश-निकाला दिया गया था। और इन्हें दस वर्ष पांडिचेरीमें रहना पड़ा, वहां उन्हें श्रीअरविंदके निकट संपर्कमें आनेका अवसर मिला। प्रस्तुत पुस्तकमें उनकी काव्य प्रतिभाका परिचय दिया गया है। अनुवादिका हैं आनन्दी रामनाथन।

केशवसुत : प्रकाशक साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली; मूल्य २.५०।

भारतीने तमिलके लिये जो काम किया था वही केशवसुतने मराठीके लिये किया। प्रस्तुत पुस्तक में प्रभाकर माचवेने उनकी संक्षिप्त जीवनी और कुछ कविताओंका अनुवाद किया है। इस प्रकार-हिंदीमें अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका प्रकाशन करके साहित्य अकादेमी बहुत उपयोगी काम कर रही है। हम इस प्रकारके अन्य प्रकाशनोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

JAIPURIA ENTERPRISES

Textile Mills

Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
KANPUR, U. P.
Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
PONDICHERRY (S.I.)
Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
NAINI (Allahabad) U.P.
Udaipur Cotton Mills,
UDAIPUR (Rajasthan).
Swadeshi Cotton Mills Company Limited,
MAUNATHBHANJAN.

Sugar Mills

Ganesh Sugar Mills Limited,
ANANDNAGAR, Dist. Gorakhpur, U. P. (Northern Railway)
Shree Anand Sugar Mills Limited,
KHALILABAD, Dist. Basti, U. P. (Northern Railway)

Coal Mines

Samla Collieries Limited.
Collieries at: Samla, Chhatrishandra, Kendra, Ramnagar Rly. Station,
PANDAVESWAR (Eastern Railway)
Jaipuria Kajora Collieries Limited,
Railway Station, ONDAL (Eastern Railway)

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट
शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट
कलकत्ता—७
फोन—३३२३१२

---

*
**

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस
१९ चौरंगी
कलकत्ता—१३

**
*

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Raniganj
Burdwan (W. Bengal)

Phone No. 33-6927

DINDAYAL RAMRUP

(Registered stock holder of Iron & Steel)

BHAGWATI STEEL PRIVATE LTD.

(Mfg. of Rounds & Flats)

15/1, SOVARAM BASACK STREET
CALCUTTA-7

Statement about ownership and other particulars about newspaper (PURODHA) to be published in the first issue every year after last day of February.

FORM IV

(See Rule 8)

1. Place of Publication	PONDICHERRY
2. Periodicity of its publication ..	MONTHLY
3. Printer's Name	Amiyo Ranjan Ganguli
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-2
4. Publisher's Name	Aniruddha Sircar
Nationality	Indian
Address	Sri Auobindo Ashram, Pondicherry-2
5. Editor's Name	Ravindra
Nationality	Indian
Address	Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-2
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital.	Sri Aurobindo Society, 64, Rue d'Orleans, Pondicherry-2

I, Aniruddha Sircar, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd- ANIRUDDHA SIRCAR
Signature of Publisher

Date 1st March 1967

M 8127
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

India has or rather had the knowledge of the Spirit, but she neglected matter and suffered for it.

The west has the knowledge of matter but rejected the Spirit and suffers badly for it.

An integral education which could, with some variations, be adapted to all the nations of the world, must bring back the legitimate authority of the Spirit over a matter fully developed and utilised.

पुरोधा

किशोर मासिक

अप्रैल

१९६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात,
ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ अप्रैल १९६७ अंक ८

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
जीवन-मुक्त	श्रीअरविंद	२
संपादकीय		३
श्रीअरविंद-वाणी : जगत्‌की वर्तमान दशा		५
संसारमें अराजकता		५
श्रीमातृवाणी : रोग और दुर्घटनाएं		६
यूनेस्कोमें ऑरोविल		१०
योगके बारेमें भ्रांतियां	अंबालाल पुराणी	१२
ईस्टर	रवींद्र	१७
मौतको भी झुकना पड़ा	रवींद्र	१९
कबीर (पाणी आगी न लागै)	अनुवेन पुराणी	२१
परीक्षा	कुरूपटो	२८
परीक्षाकी धांधली	रवींद्र	२९
मगर आरामके साथ	रवींद्र	३१
बच्चोंके लिये कहानियां	अंजना शर्मा	३४
नयी कोंपलें : मधुमय देश हमारा	कृष्णकुमार	३६
मिथिलाके बीरवल	अरविंद श्रीवास्तव	३७
फ्रेंच सीखिये	सरला	३८
पुस्तक-परिचय		

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य :** एक अंक : रु. ०. ६० न.पै. वार्षिक चंदा : रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

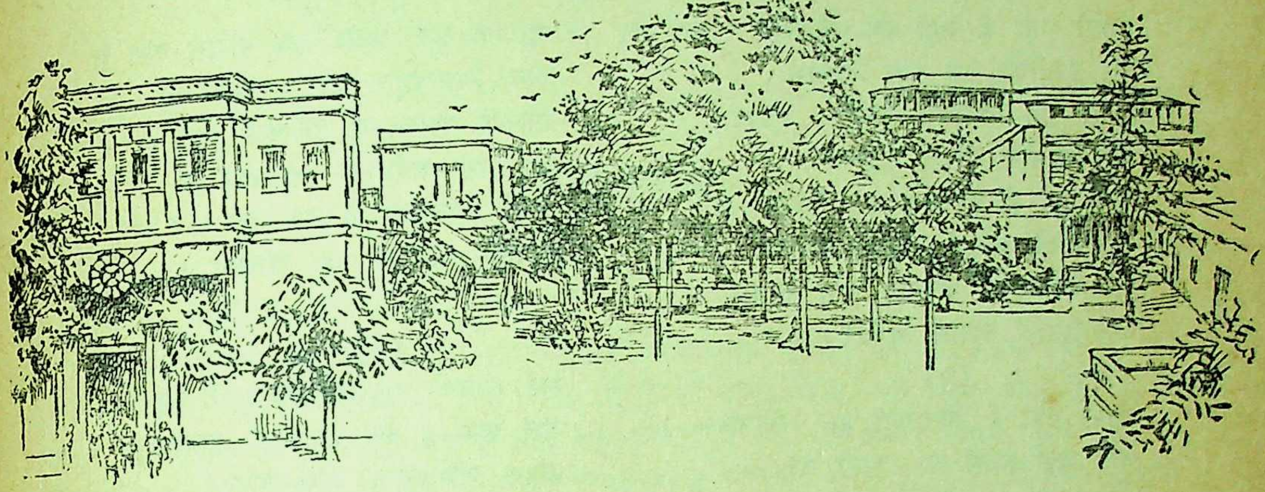

प्रार्थना

पृथ्वीपर अंधकार उतर आया है, घना, प्रचंड, विजयी....। इस भौतिक जगत्में सब कुछ दुःख, भय और विनाशमें परिणत हो गया है, और ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे प्रेमकी ज्योति-प्रभा शोकके पदसे आच्छादित हो गयी है......।

हे प्यारी माता! मैं एक विपुल प्रेमावेगके साथ तेरे अंदर गल रही हूं और साथ ही सकल वस्तुओंके अधीश्वरसे यह हार्दिक प्रार्थना करती हूं कि हमें पथ दिखावें, वह अपने कार्यका मार्ग हमारे लिये स्थिर कर दें जिसमें कि हम साहसपूर्वक उसका अनुसरण कर सकें।

समय शीघ्रतासे निकला जा रहा है: हे भगवान्, पीड़ित पृथ्वीकी सहायता करनेके लिये देवशक्तियोंको शीघ्र आना चाहिये।

हे मां! हे प्यारी जननी! तू अपने सभी बच्चोंको अपने विशाल वक्षस्थलपर चिपकाये रखती है और तेरा प्रेम उन सबको एक समान घेरे रहता है।

मैं तेरे प्रेमकी शुद्धिदायिनी अग्नि बन गयी हूं। हे भगवान्! हे मौन अचिंत्य! तू इस प्रेमकुंडकी आत्माहुतिको स्वीकार कर जिससे कि तेरा राज्य स्थापित हो, तेरी ज्योति अंधकार और मृत्युपर विजय प्राप्त करे।

अपनी शक्तिको प्रकट कर। दिन-प्रति-दिन, घंटे-प्रति-घंटे हम तुझसे अनुनय करते हैं: हे भगवान्, अपनी शक्तिको प्रकट कर!

—श्रीमां

जीवन-मुक्त

(१)

छिपी पड़ी है यहां एक नीरवता
जो पृथ्वीकी उस मूक चेतनाके
द्वारा सब परिचित, संबंधित सुन्दर
नीरवताओंसे भी है महानतर,
बसी हुई है जो बस उस 'विरले' के
अंतरतमके भीतर अविचल बनकर
जो शाश्वतका पादपीठ बन, रहता
अनन्ताओंके स्पर्शमें निरंतर।

(२)

छिपी पड़ी है और यहां इक महिमा--
नहीं धरा-नेत्रोंमें आ सकती जो --
फकत डुबा सकती है इक गंभीरा
ज्वालावृता, सर्वदर्शिका दृष्टिको;
और प्रकट होकर वह जग जाती है,
जब गतिरहित 'प्रकृति'-सागरके ऊपर
'प्रभु' नीरवता नभ बन छा जाती है।

(३)

(बस उस महाभागके ही भीतर तब)
और अवतरित एक शक्ति होती है,
'नियति' न जिसको कि क्षुब्ध कर सकती है,
गिरि शिखरोंसे भी सुशांततर होती,
सागरसे भी जो विशालतर होती,
औ' इस ज्योतिष्मान निस्तब्धताकी
ही एकाकी महाशक्ति है माती,
जो युग-युगांतरोंको औ' जगतोंको,
बिना थके है अविरम ढोती रहती।

(४)

एक निरंतर हर्षातिरेकके संग
आकर आनंद उसे घेर लेता है
और निरतिशय ऊर्ध्वस्थित अमर्त्य इक
उल्लास स्व-अधिकार जमा लेता है,
फिर 'सर्व सुन्दरी', 'सर्व मोहनी' के
हाथोंमें दे उसे, प्रेमपर उसके
मुद्रा तादात्म्यकी लगा देता है।

(५)

वह जो छूट 'काल' की मद्धिम गति से
लीन, विचारहीन औ' शब्दहीन सा
शाश्वत वक्षस्थलमें पुलकित रहता,
औ' उस सर्वज्ञानी 'नीरवता' में
ऊर्ध्व प्रतिष्ठित बनकर वही रूप औ'
इंगितके अर्थोंको यहां खोलता।

(६)

मर्त्य-कायको अनुमति देकर भी वह
यहां स्वयं है अरे अमर ही रहता
बंधन, सीमाओंको नहीं जानता,
और युग-युगान्तर तो ये उसके हित
एक खेलका प्रांगण बने हुए हैं,
जीवन और कर्म व्यापार सभी ये
उसकी एक भव्य छाया लगते हैं।

(७)

वह तो जीता और कर्म करता है
बाट जोहती हुई 'प्रकृति' तक केवल
'प्रभु' की शक्ति-छटाओंके लानेको,
उसकी श्रम-श्लथ पीड़ाओंको आकर
विशाल पक्ष शांतिके दुलरानेको
और शोकके उस प्राचीन घावपर
अनन्त आनंद-अमृत बरसानेको
और अचित्के तमस्-खातके ऊपर
चिर-प्रकाशकी किरणें छिटकानेको।

(८)

बस वह महान् जिसकी विशाल आत्मा
'अनन्तता' पर और सनातनतापर
अपना उच्चाधिकार मांग रही है,
उसके लिये नगण्य और नन्हीं ये
मनस्-उड़ानें न कुछ मूल्य रखती हैं।
सब कुछ उसका पथदर्शक होता है,
सब कुछ उसका अपना ही प्यारा है,
सब कुछ उसका आश्रयथल न्यारा है।

--श्रीअरविंद

अनु. डा. रामकृष्ण

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

भारतका भविष्य

देशकी वर्तमान अवस्था कई बार सच्चे देश-प्रेमियोंके मनमें भी एक शंका-सी उत्पन्न कर देती है। वे सोचने लग जाते हैं कि क्या यह वही भारत है जिसके बारेमें व्यास और मनुसे लेकर श्रीअरविंदतकने कहा है कि वह संसारका गुरु है और वह मानवताको एक नया प्रकाश देगा। ऊपरी दृष्टिसे देखनेमें चारों ओर अशिव, अमंगल और असुन्दरका राज्य दिखायी देता है। यदि भारतका भविष्य सचमुच उज्ज्वल है तो आज यह विकृत अवस्था क्यों दिखायी दे रही है? भौतिक और मानसिक स्तरोंपर यह नंगा नाच क्यों हो रहा है? इस प्रश्नका उत्तर पानेसे पहले यह जान लेना जरूरी है कि संसारमें अशिव और पाप हैं ही क्यों? भगवान्‌की सृष्टिमें ये तत्त्व गड़बड़ पैदा करनेके लिये घुस पड़े हैं या इनका अपना भी कोई उद्देश्य है।

जड़वादी तार्किक लोगोंके सामने यह समस्या उठती ही नहीं। वे यही मानते हैं कि प्रकृतिके विकासमें हर तरहकी चीजें उभरती हैं। प्रकृति अपने-आपमें अंधी और नासमझ है, उसमें शिव और अशिव, पाप और पुण्यका प्रश्न ही नहीं उठता। विकास करते हुए मनुष्यके अंदर जब नैतिकताका भाव आता है तभी ये समस्याएं भी सामने आती हैं। परंतु जो लोग यह मानते हैं कि इस संसारके पीछे एक सचेतन शक्ति काम कर रही है और उसकी इच्छा अथवा अनुमतिके बिना कुछ हो ही नहीं सकता, उनके लिये यह समस्या एक जटिल रूप धारण कर लेती है।

बहुतसे धर्मपरायण लोग यह नहीं मान सकते कि सर्वमंगलमय भगवान्‌से ही अशिवकी भी उत्पत्ति हुई है। उनकी मान्यता है कि सत्य, शिव और सुन्दर तो भगवान्‌से उत्पन्न हुए और असत्य, अशिव और असुन्दर शैतानसे पैदा हुए हैं। जो शैतानके अस्तित्वको नहीं मानते वे कहते हैं कि जो कुछ मंगल है वह भगवान्‌से आया है और सारा अमंगल मनुष्यकी 'कपोल कल्पना' से उत्पन्न हुआ है। अब यहांपर यह प्रश्न उठता है कि यदि भगवान् सचमुच सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं तो वे अमंगल, अशिव और दुरितको पैदा ही क्यों होने देते हैं। यह प्रश्न मनुष्य, देश और संसार सभीके संबंधमें, उठाया जा सकता है। भगवान्‌को सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक माननेके बाद इस प्रश्नसे नहीं बचा जा सकता। साथ ही आप्त प्रमाण और थोड़ा बहुत अनुभव हमें यह बताता है कि भगवान् प्रेममय हैं। वे बदला लेनेवाले, क्रोधी या द्वेषी नहीं हैं। इससे यह अनुमान होता है कि जो कुछ हो रहा है उसके पीछे प्रेममय भगवान्‌की मंगल कामना अवश्य काम कर रही है।

भगवान् ज्ञानके भंडार हैं और हमारा ज्ञान धूमिल और अविकसित है। भगवान्‌के प्रेमके साथ पूर्ण ज्ञान मिला हुआ है और हमारा प्रेम हमें अंधा बना देता है, इसलिये हम उज्ज्वल भविष्यको नहीं देख पाते, अंधकारमय वर्तमानमें ही ठोकरें खाते रहते हैं और इस अंधेरी रातको ही सत्य मानकर प्रकाशमय कलके अस्तित्वपर ही शंका करते हैं। परंतु भावोंमें बह जानेवाले, जरा-सी कठिनाईसे कराह उठनेवाले मनकी रायका कोई मूल्य नहीं होता। जिस बुद्धिमें धीरता है वह सम्यक् ज्ञान प्राप्त

करनेकी कोशिश करती है, अगर बात तुरंत समझमें न आये तो बिना उतावलेपनके शांतिके साथ प्रतीक्षा करती है। ऐसी बुद्धि अनुभवके साथ मिलकर हमें बताती है कि एक ही भगवान् कल्याणकारी शिव भी हैं और रुलानेवाले रुद्र भी। वही भगवान् लहलहाती खेतियोंमें हैं और भूखों मारनेवाले दुष्कालमें भी।

प्रकृतिवादीका यह कहना ठीक है कि प्रकृतिके लिये अच्छा और बुरा, शिव और अशिव कुछ नहीं है। ये परिभाषाएं मनुष्यने अपने विकासक्रममें बना ली हैं और इनके मानक बदलते रहते हैं। जो चीजें एक काल और एक देशमें अशिव मानी जाते हैं वही किसी अन्य काल और देशमें शिव होती हैं। हम सब जानते और मानते हैं कि भारतका बंटवारा अशिव और अमंगल था पर बंटवारेकी घोषणा होते ही श्रीमाताजीने कहा कि यह भारतवासियोंको यह दिखानेके लिये हो रहा है कि उनके आपसी झगड़े कितने हास्यास्पद हैं — यह और बात है कि हम अभीतक इस पाठको नहीं सीख पाये हैं।

जाननेवाले — जो भूत और भविष्यकी बाधाओंके बिना, वस्तुस्थितिको उसके सच्चे रूपमें देख सकते हैं — कहते हैं कि अशिव शिवका वह रूप है जो टूट-फूटकर उच्चतर कल्याण और मंगलके लिये रास्ता साफ कर देता है। यदि हमें एक प्रासाद बनाना हो तो पहले जमीनको खोदकर गहरी नींव बनानी होगी। भावी भारत संसारका सबसे अधिक चित्रमय देश होगा जिसमें उच्चतम आध्यात्मिक शक्तियोंका आविर्भाव होगा। उसके पूरी तरह अवतरित होनेसे पहले यह जरूरी है कि अशिवकी जितनी संभावनाएं हैं वे सब समाप्त हो जायें। आज भारत उसी प्रक्रियामेंसे गुजर रहा है। पुराण हमें बताते हैं कि जब आसुरी शक्तियोंके विनाशका समय आता है तो नारद मुनि उन्हें और अधिक गड़बड़की प्रेरणा दिया करते हैं ताकि वे अपनी शक्तियोंको खतम कर डालें। शायद आज भी नारद मुनि छद्मवेशसे केवल भारत ही नहीं समस्त संसारमें अशिव और अमंगलको बढ़ावा दे रहे हैं और भविष्यके लिये उसकी सारी संभावनाओंको जड़से उखाड़ रहे हैं ताकि हमारे पार्थिव जीवनमें भी उच्चतम आध्यात्म शक्तिका आविर्भाव हो सके। वर्तमान स्थितिके देखते हुए यह समय जितना दूर लगता है उतना दूर नहीं है। हम एक बड़ी, अंधेरी सुरंगमेंसे गुजर रहे हैं। एक दिन हम अचानक देखेंगे कि सुरंग खतम हो गयी और सूर्यका प्रकाश हमें चारों ओरसे नहला रहा है।

विपदाओंसे घिरी हुई अवस्थामें हमें श्रीअरविंदके ये शब्द हमेशा याद रखने चाहियें, “मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस राष्ट्र और इसकी प्रजाके भाग्यमें महान् और ऐक्यपूर्ण भविष्य लिखा है। जो दिव्य शक्ति इतने संघर्ष और दुःख-कष्टमेंसे हमें स्वतंत्रतातक लायी है, वह, हमें चाहे कितने भी द्वंद्वों और कष्टोंमेंसे क्यों न गुजरना पड़े, हमें एकता भी प्रदान करेगी। स्वतंत्र और एकताबद्ध भारत उत्पन्न होगा और भगवती मां अपने बच्चोंको अपने चारों ओर इकट्ठा करके, उन्हें आपसमें मिलाकर एक महान् और ऐक्यबद्ध जातिके जीवनकी अखण्ड राष्ट्रीय शक्तिमें परिणत करेंगी।”

श्रीअरविंद-वाणी

जगत्की वर्तमान दशा

तुम्हारे पत्रप्रेषकोंको, जो जगत्की वर्तमान दशाके बारेमें दुःख-शोक मना रहे हैं, मैं कम-से-कम तत्काल तो विशेष आश्वासन नहीं दे सकता। दशा बुरी जरूर है, अधिक बुरी होती जा रही है और किसी भी समय अत्यंत बुरी हो सकती है अथवा, यदि यह संभव हो तो, अत्यंत बुरीसे भी बुरी हो सकती है — और कोई भी बात, कैसी असंभव-सी ही वह क्यों न हो, वर्तमान विक्षुब्ध जगत्में संभव प्रतीत होती है। तुम्हारे पत्रप्रेषक यदि अनुभव कर सकें कि यह सब कुछ अनिवार्य था तो यह उनके लिये सबसे अच्छा होगा। यदि नये तथा अधिक अच्छे जगत्को अवश्य जन्म लेना है तो कई संभावनाओंका प्रकट होना और प्रकट होकर दूर होना जरूरी है, इस सबको किसी भविष्यत् कालके लिये रोके रखना ठीक नहीं। यह ऐसा ही है जैसा योगमें होता है — व्यक्तित्वकी सक्रिय या सोई हुई वृत्तियोंका सामना तथा पराभव करनेके लिये उन्हें प्रकाशमें क्रियान्वित किया जाता है अथवा उन्हें पवित्र करनेके लिये गहरी प्रसुप्त अवस्थामेंसे ऊपर लाना होता है। तुम्हारे पत्रप्रेषक यह उक्ति भी ध्यानमें रख सकते हैं कि उषासे पहलेकी निशा घोरतम काली होती है और कि उषाका आना अवश्यंभावी है। पर उन्हें यह भी याद रखना होगा कि जिस नये जगत्के आनेकी हम कल्पना करते हैं वह उसी पुराने जगत्के ताने-बानेसे बना हुआ तथा केवल नमूनेमें ही भिन्न नहीं होगा। वह वास्तवमें दूसरे साधनोंद्वारा अंदरसे आवेगा, बाहरसे नहीं। इसलिये सबसे अच्छा यह होगा कि बाहर जो दुःखजनक घटनाएं हो रही हैं, मनुष्य उनकी विशेष चिंता न करे, बल्कि स्वयं अपना अंतर्विकास साधित करे जिससे वह उस नये जगत्के लिये — जो चाहे कैसे भी रूपवाला क्यों न हो — तैयार रहे।

संसारमें अराजकता

मैं जानता हूं कि यह तुम्हारे लिये तथा प्रत्येक व्यक्तिके लिये कष्टका समय है। यह सारे संसारके लिये ऐसा ही है। सभी जगह गड़बड़, दुःख, अराजकता तथा उलटापलटी — यही आजकी सर्वसामान्य वस्तुस्थिति है। जो अच्छी चीजें प्रकट होनेको हैं वे पर्देके पीछे तैयार या विकसित हो रही हैं तथा सभी जगह बुरी चीजोंका बोलबाला है। एकमात्र आवश्यकता इस बातकी है कि जबतक प्रकाशकी घड़ी न आ जाये तबतक हम अडिग और अटल रूपसे प्रयत्नमें लगे रहें।

* * *

मैं इस मतसे सहमत नहीं हूं कि जगत् मिथ्या है। ब्रह्म यहां भी वैसे ही है जैसे वह विश्वातीत निरपेक्ष तत्त्वमें है। जिस चीजको हमें अतिक्रम करना है वह है अज्ञान जो हमें अंधा बनाता है और जगत्में तथा जगत्से परे ब्रह्मको तथा सत्ताके यथार्थ स्वरूपको उपलब्ध करनेसे हमें रोकता है।

— श्रीअरविंद

श्रीमातृ-वाणी

रोग और दुर्घटनाएं

अगर शरीर अस्वस्थ हो तो क्या मन भी बीमार पड़ जाता है ?

सच पूछो तो यह आवश्यक नहीं है। मैं तुम लोगोंको बता चुकी हूं कि साधारणतया बीमारियां आती हैं सत्ताके विभिन्न भागोंके बीच संबंध टूट जानेके कारण, एक प्रकारका असामंजस्य स्थापित हो जानेके कारण। बहुत संभव है कि शरीरने प्रगतिकी धाराका अनुसरण न किया हो, वह पीछे रह गया हो जब कि दूसरे अंग, आगे बढ़ गये हों। उस हालतमें समतोल बिगड़ जाता है, सामंजस्य टूट जाता है और उसके कारण बीमारी पैदा हो जाती है, मेरा मतलब है, शरीरमें बीमारी पैदा हो जाती है, क्योंकि मन और प्राण उस समय भी स्वस्थ रह सकते हैं। ऐसे बहुतसे लोग है जो वर्षों बीमार रहे, भीषण और असाध्य रोगोंसे पीड़ित रहे, और फिर भी उन्होंने अपनी मानसिक शक्तिको अद्भुत रूपसे स्वच्छ और सक्रिय बनाये रखा और उस क्षेत्रमें उन्नति करना जारी रखा। फ्रांसमें एक कवि थे, वह बहुत अच्छे कवि थे, उनका नाम था स्यूली प्रूदोम (Sully Prudhomme), वह सांघातिक रूपसे बीमार थे और उन बीमारीके दिनोंमें ही उन्होंने अपनी सबसे सुन्दर कविताओंकी रचना की। जब कि उनका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता जाता था तब भी वह बराबर बहुत प्रसन्न रहते थे, अपनी रसिकतासे प्रत्येक आदमीका मन हर लेते, प्रत्येक आदमीके सामने हंसते हुए और प्रफुल्ल रहते। तुम्हें याद होगा कि महान् चौदहवें लुई (Louis XIV) उस समय भी मजाक किया करते और हंसते रहते, जब कि, उनके जीवनके अंतिम दिनोंमें, उनके डाक्टर और सर्जन उनके शरीरको काटते जाते थे और जोंकोंको सौंपते जाते थे। यह बात व्यक्ति-व्यक्तिपर निर्भर करती है। क्योंकि दूसरे प्रकारके ऐसे लोग हैं जो जरा-सी भी शारीरिक अस्वस्थता हुई कि बस सिरसे पैर-तक एकदम घबड़ा जाते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके अंदर विभिन्न तत्त्वोंका मिश्रण अपने निजी ढंगका होता है।

निस्संदेह, मन और शरीरके बीच एक संबंध है, अत्यंत घना संबंध है। अधिकांश मनुष्योंमें मन ही शरीरको अस्वस्थ बनाता है, कम-से-कम बीमारीका यह एक अत्यंत प्रमुख कारण होता है। मैं कह चुकी हूं कि कुछ ऐसे लोग होते हैं जो शरीरके रुग्ण होनेपर भी अपने मनको स्वच्छ बनाये रखते हैं। परंतु जब मन अस्वस्थ होता है या अपनी समतोलता खो बैठता है तब शरीरको स्वस्थ बनाये रखना बड़ा कठिन होता है और विरले लोग ही बनाये रखते हैं। ऐसा करना असंभव तो नहीं है, पर अत्यंत विरल है। क्योंकि मैं तुम्हें बतला चुकी हूं कि मन ही शरीरका मालिक है, शरीर उसका आज्ञाकारी और विनम्र सेवक है। दुर्भाग्यवश लोग साधारणतया यह नहीं जानते कि उन्हें अपने मनका व्यवहार कैसे करना चाहिये, और इतना ही नहीं, बल्कि उसका बुरा व्यवहार करते हैं और जितना बुरा व्यवहार करना संभव होता है उतना बुरा व्यवहार करते हैं। मनमें रचना करने और शरीरपर सीधे क्रिया करनेकी बहुत बड़ी शक्ति है। ठीक इसी शक्तिका उपयोग लोग शरीरको अस्वस्थ बनानेमें करते हैं। जैसे ही कोई ऐसी बात होती है जो अपने अनुकूल नहीं पड़ती, वैसे ही मन उसके विषयमें परेशान होना आरंभ कर देता है, आनेवाली विपत्तियोंकी रचनाएं करने लगता है, भविष्यमें आनेवाले नाना प्रकारके काल्पनिक खतरोंकी बात सोचने लगता है। अब, यदि मनको इस प्रकार खूनके प्यासे पागलकी तरह चाहे जिसपर आक्रमण करके संहार न करने दिया जाय बल्कि उसमें बदले उसी शक्तिको कहीं अधिक अच्छे उद्देश्यमें प्रयुक्त किया जाये, यदि अच्छी रचनाएं की जायें,

अर्थात्, शरीरमें यदि आत्मविश्वास उत्पन्न किया जाय, उससे कहा जाय कि इसमें घबड़ानेकी कोई बात नहीं, यह एक क्षणिक कष्ट है आदि-आदि, तो ऐसी हालतमें शरीर ग्रहणशीलताकी समुचित स्थितिमें आ जायगा और बीमारी जैसे आयी थी वैसे ही चुपचाप निकल जायगी। इसी तरह मनको शिक्षा देनी चाहिये कि वह शरीरको अच्छे सुझाव दे और उसपर कीचड़ न फेंके। यदि तुम उचित ढंगसे ऐसा करो तो उससे अद्भुत परिणाम उत्पन्न होंगे।

जब कोई दुर्घटना होती है तब उसमें एक विकट मुहूर्त्त आता है। उदाहरणार्थ, तुम फिसलते हो और तुम गिर पड़ते हो। अब, जिस क्षण तुम फिसलते हो और जिस क्षण तुम गिरते हो, इन दोनोंके बीच ठीक सेकंडका एक क्षुद्रांश समय आता है जब तुम्हें मानो चुनाव करनेका मौका दिया जाता है। अब, या तो कुछ भी नहीं घट सकता अथवा कोई बहुत गंभीर बात घट सकती है। बस, चुनाव करनेके लिये तुम्हारी चेतना पूर्ण रूपसे जागृत होनी चाहिये और तुम्हारी सत्ताका संपर्क निरंतर चैत्य पुरुषके साथ बना रहना चाहिये। संपर्कको उत्पन्न करनेके लिये वहां तनिक भी समय नहीं है, पहलेसे ही वहां संपर्क बना रहना चाहिये। सो, ठीक फिसलने और गिरनेके बीच, यदि तुम्हारे अंदर मन और चैत्य पुरुषका संगठन पर्याप्त मात्रामें हो चुका हो तो तुम एकदम अछूते निकल आओगे। यदि इसके विपरीत, शरीर यह सोचने लगे, जैसी कि उसकी आदत है, "ओह! मैं फिसल गया" और भयभीत हो जाये —— इसमें, जैसा कि मैंने कहा है, सेकंडका एक हिस्सा, उससे भी कम समय लगता है —— तो दुर्घटना हो जायेगी! तुममें दुर्घटनाको रोकनेकी क्षमता है, तुम्हें क्षणभरमें चुनाव करनेका मौका दिया जाता है। परंतु उसके लिये तुम्हें पूरा-पूरा जाग्रत्, पूर्ण रूपसे सचेतन होना सीखना होगा। जब तुम उस अवस्थामें होते हो तब तुम दुर्घटनाको रोक सकते हो, किसी रोगको अपने अंदर आनेसे रोक सकते हो। परंतु यह ठीक सेकंडके भी एक क्षुद्रांशका मामला होता है और तुम्हें उसे खोना नहीं चाहिये।

और, इसके अतिरिक्त, एक और भी मुहूर्त्त आता है। जब तुम गिर चुके हो और आहत हो चुके हो तब भी एक अवसर तुम्हारे लिये खुला होता है कि आया वह दुर्घटना अच्छा रूप ले या बुरा, आया वह ठीक एक दुर्घटना ही होकर रुक जाये या वास्तवमें कोई गंभीर या यथासंभव अधिकसे अधिक गंभीर कोई बात बन जाये। क्या तुम लोगोंने इस बातपर कभी ध्यान दिया है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके जीवनमें दुर्घटनाका कोई भी अवसर खाली जाता हुआ नहीं प्रतीत होता? जब कभी दुर्घटनाकी संभावना होती है तभी वह घटित हो जाती है। और दुर्घटना कभी हल्की नहीं होती, वह गंभीर होनेकी ही प्रवृत्ति रखती है और प्रायः बहुत गंभीर हो जाती है। लोग कहते हैं, कितना दुर्भाग्यशाली व्यक्ति है! संयोग कभी उसके पक्षमें नहीं होता इत्यादि-इत्यादि! परंतु यह सब महज एक अज्ञान है। प्रत्येक चीज पूर्णतः चेतनाकी क्रियापर निर्भर करती है। मैं इस बातके चाहे कितने उदाहरण दे सकती हूं और उतने ही आश्चर्यजनक उदाहरण दे सकती हूं। ऐसे लोग हैं जो मर ही गये होते पर दुर्घटनामेंसे जैसे-के-तैसे निकल आये। दूसरे कुछ ऐसे लोग हैं जिनके लिये जो बात आरंभमें बिलकुल हानिकारक नहीं होती वही बुरीसे बुरी हो जाती है और अंतमें, शायद, घातक सिद्ध होती है।

परंतु तुम्हें जानना चाहिये कि यह कोई विचारकी, साधारण विचार-शक्तिकी क्रिया नहीं है। एक आदमीमें उतना ही अच्छा विचार रह सकता है जितना कि दूसरेमें। यह साराका सारा निर्भर करता है चुनावके उस मुहूर्त्तपर। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जानते हैं कि ठीक ढंगसे और ठीक समयपर कैसे प्रतिक्रिया की जाती है। बस, उनका स्वभाव ही प्रधान चीज है। ऐसे लोगोंमें जाग्रत् और सतर्क चेतना होती है; वे निद्रित नहीं होते, वे अपने अंदर निरंतर चौकसी भी नहीं रखते। और ठीक मुहूर्त्तमें, हां, एकदम ठीक समयपर ही वे सहायताकी पुकार करते हैं, भागवत शक्तिका आह्वान,

करते हैं और खतरा टल जाता है। दूसरी ओर, जब कभी कोई बात प्रतिकूल हो रही हो, सत्तामें कोई असामंजस्य हो गया हो और तब यदि तुम्हारी चेतनामें भय, भावी अशुभकी संभावना या पराजयकी भावना भर जाये तो तुम नष्ट ही हो जाओगे।

वास्तवमें, जैसा कि मैंने कहा है, मन वह चीज नहीं है जो निर्णय करती है। वह चीज तो है एक आंतरिक भाव, सत्ताकी एक अवस्था, यथार्थ चेतना जो समुचित ढंगसे प्रतिक्रिया करती है। इसका प्रभाव बहुत दूरतक जाता है। तुम नहीं जानते कि यह कैसी शक्ति है। यदि यह शक्ति एक क्षणके लिये भी विद्यमान रहे तो यह आश्चर्यजनक कार्य कर सकती है। केवल इसे पहलेसे वहां रहना चाहिये, तुम्हें पहलेसे ही एक जाग्रत् अवस्थामें रहना चाहिये, तुम उसी क्षण उसे ला नहीं सकते, तुम्हारे पास इसके लिये समय ही नहीं होता।

फिर तुम यह कह सकते हो कि वास्तवमें भगवत्कृपा ही रक्षा करती है। पर क्या तुम मुझे समझा सकते हो कि वह कैसे कार्य करती है? निःसंदेह यह पता लगाना बड़ा आनंददायी होगा कि किसमें यथार्थमें जागृत चेतना थी, श्रद्धा-विश्वासऔर आंतरिक निर्भरता थी, किसने सहायताके लिये पुकारा था और किसमें वह चीज थी जिसने अंदर आनेवाली चीजका सहजभावसे —— और यहांतक कि एक प्रकारसे अचेतन रूपमें —— प्रत्युत्तर दिया था। मानव-बुद्धि एक आपेक्षिक वस्तु है और उसमें शक्तिकी विभिन्न मात्राएं हैं। साधारणतया वह विषमताओं और विपरीतताओंके द्वारा वस्तुओंको समझती है। वह सत्यको अखंड रूपमें नहीं समझती। उदाहरणार्थ, मेरे पास सैकड़ों चिट्ठियां आयी हैं जिनमें मुझे धन्यवाद दिया गया है, क्योंकि वे लोग खतरोंसे बच गये। परंतु मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी एक भी चिट्ठी पायी हो जिसमें मुझे इसलिये धन्यवाद दिया गया हो कि सब कुछ स्वाभाविक ढंगसे हो गया और कुछ भी अन्यथा घटित नहीं हुआ। मनुष्य कृपाशक्तिकी क्रियाको तभी अनुभव करते हैं जब निराशाका वातावरण होता है और कोई खतरा होता है, जब दुर्घटनाका होना आरंभ हो चुकता है, जब दुर्घटना होने जा रही होती है और वे उससे बच जाते हैं। जब वे सुरक्षित रूपमें खतरेसे बाहर निकल आते हैं केवल तभी वे रक्षा करनेवाली शक्तिकी ओर ध्यान देते हैं। अन्यथा उसका विचार भी उनके मनमें नहीं आता। अगर वे अपनी समुद्रयात्राको बिना किसी दुर्घटनाके पूरा कर लें तो वे यह नहीं सोचेंगे कि इसमें भगवत्कृपाकी कोई क्रिया विद्यमान थी। इसे वे लोग स्वाभाविक गतिसे होनेवाली एक बात समझते हैं। परंतु यह बात ठीक ऐसी घटित हुई इसी कारण यह कहा जा सकता है कि यहां एक उच्च प्रकारकी कृपाशक्तिने कार्य किया होगा और मनुष्यकी चेतना तथा जिस उच्चतर शक्तिका वह उत्तर देती है उसके बीच पहलेसे ही कोई गंभीर समस्वरता विद्यमान रही होगी। दुर्घटनाकी संभावनाका अर्थ ही है कि जिस असामंजस्यकी बात मैं कह चुकी हूं उसका प्रारंभ हो चुका है। परंतु अवस्था उस समय बहुत जटिल हो जाती है जब कि सामूहिक दुर्घटनाका प्रसंग होता है। यहांपर परिणाम निर्भर करता है उसमें ग्रस्त व्यक्तियोंके वातावरणके ऊपर। सामूहिक दुर्घटनामें विद्यमान जनसमूहके अंदर ये दो बातें जिस मात्रामें होती हैं उसीके अनुसार उस दुर्घटनाका आकार और प्रकार निश्चित होता है।

मैं इस विषयमें तुम्हें एक सच्ची कहानी सुनाऊंगी। एक विमानचालक था जो प्रथम महायुद्धके समय अपने साथियोंमें बड़ा निपुण समझा जाता था और लोग उसे 'आस' (Ace) —— शत्रुके दस हवाई जहाज मार गिरानेवाला —— कहा करते थे। वह एक असाधारण चालक था और कितनी ही विजयें ले आनेवाला वीर योद्धा था। उसे कभी भी कुछ नहीं हुआ। परंतु उसके जीवनके अंतिम भागमें एक घटना —— एक व्यक्तिगत दुःखांत घटना घटी और एकाएक उसे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई बात उसके जीवनमें घटित होने जा रही है; संभवतः एक दुर्घटना होगी और उसका सर्वनाश हो जायेगा। वह युद्धसे वापिस आ गया था पर अभी सेनामें ही था। उसे इच्छा हुई कि वह

दक्षिण अफ्रीकातक, फ्रांससे एकदम सीधे दक्षिण अफ्रीकातक एक उड़ान ले। वह फ्रांससे रवाना हुआ और जहांतक मुझे याद है, उसने मैडागास्कर (Madagascar) तक जाकर वहांसे फिर फ्रांस लौट आना चाहा। उन दिनों मेरे भाई कांगो (Congo) के गवर्नर थे और उन्हें अपने कार्यपर यथासंभव शीघ्र जानेकी जरूरत थी। उन्होंने उस विमानचालकसे उसके जहाजमें अपने लिये एक जगह मांगी। वह सामान्यतया यात्रियोंके लिये व्यवहृत कोई साधारण विमान नहीं था, बल्कि वह उन विमानोंमेंसे एक था जिन्हें परीक्षणके लिये काममें लाया जाता था और जिनके द्वारा यह दिखाया जाता था कि उन मशीनोंमें कितनी क्षमता है और उनके चालक कितने निपुण हैं। बहुतसे लोगोंने मेरे भाईको समझानेकी कोशिश की कि वह यात्रा न करें और उनसे कहा कि इस तरहकी दुःसाहसिक यात्राएं बराबर ही खतरनाक होती हैं। परंतु मेरे भाईने खतरेका कोई ख्याल नहीं किया। यात्रामें खतरनाक कोई घटना नहीं हुई। केवल सहाराके बीचमें एक मामूली-सी दिक्कत आयी जो सहज ही पार कर ली गयी। विमानने सुरक्षित रूपमें यात्रा पूरी की और मेरे भाईको कांगोमें उनके स्थानपर पहुंचा दिया। विमान फिर मैडागास्करकी ओर आगे बढ़ा जहां कि, मैं कह चुकी हूं कि, उसे जाना था। मैडागास्कर पहुंचनेके बाद वह चालक अब वापिस लौटा और उसने अपनी आधी ही यात्रा पूरी की थी कि उसका विमान गिर पड़ा और वह तुरत मारा गया। अब मैं तुम्हें समझाऊंगी कि वास्तवमें क्या बात हुई। जो कुछ हुआ वह तो होनेवाला ही था, वह पहलेसे निर्धारित किया हुआ एक निर्णय था। मेरे भाईको अपने भाग्यपर अटूट विश्वास था, उन्हें पूरा निश्चय था कि कोई भी चीज उन्हें स्पर्श नहीं करेगी। परंतु दूसरेकी चेतना, उसके विपरीत, संदेह और भावी आशंकासे भरपूर थी। अतएव दो वातावरणोंके मिश्रणके कारण यह हुआ कि प्रथम प्रसंगमें दुर्घटनाको रोका तो नहीं जा सका पर वह सांघातिक परिणामपर पहुंचनेसे पहले ही रुक गयी। परंतु जब मेरे भाईका भाग्य मशीनके साथ नहीं रहा —— सीजरके भाग्यकी तरह जिसने नाविकको तूफानके बीच सुरक्षित रूपसे नदीको पार करने दिया —— तब संरक्षण भी हट गया और विमानचालकको अपने दुर्भाग्यके पूरे तूफानमें नष्ट हो जाना पड़ा। मैं इसी प्रकारकी एक दूसरी कहानी सुना सकती हूं। वह एक जहाजकी कहानी है। दो व्यक्ति थे —— पति और पत्नी। वे हवाई जहाजसे हिंद-चीन (Indo-China) गये। उस विमानमें एक दुर्घटना, बहुत बड़ी दुर्घटना हो गयी। सब लोग मर गये, केवल ये ही दो व्यक्ति बच गये। अब उन्हें फ्रांस वापिस आना था। इस बार उन्हें विमानसे यात्रा करनेकी इच्छा नहीं हुई, उसका उन्हें अनुभव हो चुका था। अतएव उन्होंने एक जलयान अर्थात् एक बहुत बड़ा जहाज़ पकड़ा और उन्होंने समझा कि यह बिलकुल निरापद है। अब पूर्ण रूपसे अप्रत्याशित, एकदम असाधारण एक घटना घटी। लाल समुद्रके बीचमें, दिन-दहाड़े, जहाज एक चट्टानसे टकरा गया और डूब गया —— ऐसी बात हो गयी जो शायद लाखों प्रसंगोंमेंसे एक बार भी नहीं घटित होती। सभी यात्री डूब गये और, फिर कहना ही होगा कि आश्चर्यजनक रूपसे बस यही जोड़ा बच गया। इस तरहके बहुतसे लोग होते हैं, वे अपने साथ संकट लिये फिरते हैं, पर वह संकट दूसरोंके लिये होता है, वे स्वयं किसी तरह बच निकलते हैं।

जब तुम साधारण ढंगसे इस चीजको देखते हो तब यह बात तुम्हें दिखायी नहीं देती। परंतु वह तथ्य वहां मौजूद है। तुम्हें अपने संग-साथके विषयमें बहुत सावधान रहना चाहिये। दुर्भाग्यपूर्ण संग-साथ तुम्हारे लिये सर्वनाशी सिद्ध हो सकता है। दूसरोंका 'कर्म' तुम्हारे ऊपर आ सकता है यदि तुम्हें आंतर ज्ञान, आंतर दृष्टि और आवश्यक शक्ति न प्राप्त हो। यदि तुम किसी आदमीके इर्दगिर्द काले भंवर-जैसी चीज देखो तो चाहे जो भी हानि हो, उससे अलग रहो। इन सब बातोंका तात्पर्य यह है कि चीजोंको केवल ऊपर-ही-ऊपर देखनेकी अपेक्षा कुछ अधिक गहराईमें जाकर देखना बहुत लाभदायी होता है।

युनेस्कोमें 'ऑरोविल'पर प्रस्ताव

पेरिसमें गत २५ अक्तूबरसे ३० नवंबरतक यूनेस्कोका अधिवेशन हुआ। 'ऑरोविल' पर भारत सरकारने एक प्रस्ताव रखा था जिसका समर्थन सभी देशोंके प्रतिनिधियोंने किया। अधिवेशनमें निम्नलिखित प्रस्ताव एकमतसे स्वीकृत हुआ।

यूनेस्कोकी जनरल कान्फरेंस :

यह जानकर कि यूनेस्कोकी २० वीं वर्षगांठके मनाये जानेके संबंधमें श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी, भारत, जो कि 'यूनेस्कोके लिये भारतीय राष्ट्रीय आयोग' से संलग्न एक गैरसरकारी संस्था है, एक सांस्कृतिक नगरीकी स्थापनाका विचार रखती है, जिस नगरीका नाम 'ऑरोविल' होगा और जहां विभिन्न देशोंके लोग मेलसे एक समाज बनकर रहेंगे और सांस्कृतिक, शिक्षण, वैज्ञानिक तथा अन्य वृत्तियोंमें संलग्न होंगे,

यह ध्यानमें रखते हुए कि नगरीमें ऐसे मंडप होंगे जिनका उद्देश्य होगा संसारकी संस्कृतियोंका प्रतिनिधित्व करना, केवल बौद्धिक रूपसे नहीं, वरन् जीवन-विधिके एक अंगके रूपमें शिल्प, चित्रकला, मूर्त्तिकला, संगीत आदिकी विभिन्न शैलियोंके प्रदर्शनके द्वारा,

इस बातको मान्यता देते हुए कि ऑरोविलके लक्ष्योंमेंसे एक होगा विभिन्न संभावनाओं और संस्कृतियोंके मूल्यों और आदर्शोंको निकट सान्निध्यमें ला बैठाना,

यह विश्वास प्रकट करती है कि यह योजना देशोंको एक-दूसरेको समझनेमें और शांतिके विकासमें योगदान देगी और यह कान्फरेंस यूनेस्कोके आदर्शोंमें रुचि रखनेवालोंको इस योजनापर ध्यान देनेको कहती है।

इसे पेश करते हुए भारत सरकारके प्रतिनिधि श्री पुष्प दासने कहा :

"पचास सालसे कुछ अधिक हुए, श्रीअरविंद उस समय भारतीय स्वतंत्रता-संग्रामके उत्साही युवक सैनिक थे जो कलकत्तेके एक जेलमें नजरबंद रह चुके थे, भगवत्कृपासे आदेश पाकर पांडिचेरीमें शरण पाने चल दिये। पांडिचेरी उस समय फ्रांसीसी राज्यमें था। वहां उन्होंने सभी प्रकारके राजनीतिक कर्मोंको त्याग देनेका निश्चय किया जिससे कि वे ध्यान और एकाग्रताके जीवनमें एकनिष्ठ होकर लग जायें। शीघ्र ही वहां उनके बहुत-से शिष्य आ-आकर रहने लगे और वहां उन विस्मयकारी आध्यात्मिक आवासोंमेंसे एक बन गया जिसे भारतमें लोग 'आश्रम' कहते हैं। वहां वे ध्यान करते रहे, लिखते रहे। उनके सूक्ष्म प्रभावसे वहां एक वायुमंडल बन गया जो गहरी श्रद्धा और आंतरिक शांतिका था। पृथ्वीके हर कोनेसे ढूंढ़ते हुए लोग आने लगे उस परमज्ञानको 'यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' और जहां उनकी एक दृष्टि पड़ते ही सारा जीवन बदल जाता था।

१९२६ ईस्वीसे, जबसे श्रीअरविंद सक्रिय जीवनसे नाता तोड़ उस शांतिमें रहने लगे जो ऋषियोंकी शांति है, उन्होंने आश्रमका संचालन उन फ्रांसीसी महिलाको सौंप दिया जो उस योगकी साधिका पहलेसे ही थीं और जो पीछे चलकर आश्रमकी 'मातुश्री' हुईं। १९५० के बाद जब श्रीअरविंदने देहत्याग किया, श्रीमां इस विस्मयकारी समुदायको प्राणवंत रख रही हैं जिसमें जीवनकी विविधताओंसे भरी क्रीड़ाके साथ ही मिला हुआ है त्यागका अचल उदाहरण, जहां लोगोंके अंतर आकुल हैं उस ज्ञान और आनंदके लिये जिसकी आभा संतोंके मुखमंडलपर छिटकती है और जहां आह्लाद और कर्मोंसे भरे जीवनमें उल्लसित आत्माओंका मिलन है।

वे बारह सौकी संख्यामें हैं और संसारके हर कोनेसे आये हुए हैं। इंजीनियर, गृहनिर्माता,

फोरमैन, ओवरसीयर, डाक्टर, विधिवेत्ता (एडवोकेट), अंकेक्षक (अकाउन्टेन्ट्स), शिक्षक, कलाकार, कृषक और साधारणजन सभी उसी प्रकार अपने उस समुदायके लिये काम करते हैं जिस प्रकार वे साधारण सामाजिक जीवनमें अपने स्वार्थके लिये करते। और इस प्रकार उठ खड़ा हुआ है उद्योग और व्यापारोंका यह महत्प्रयासी समुदाय जिसकी अपनी व्यायामशाला है, तैरनेका तालाब है, अस्पताल है, खेलके मैदान हैं, स्कूल हैं, सिनेमा है, यंत्रोंके निर्माण तथा मकानोंमें लगानेके लिये कंक्रीटके सामानोंकी ढलाईके लिये तरह-तरहके कारखाने हैं, इसका बैंक है, भंडार हैं, दुग्धालय है और मुर्गीखाना इत्यादि है।

परंतु इस समुदायका प्रत्येक सदस्य कठोरतम शारीरिक और मानसिक अनुशासनका पालन करता है, और बचे हुए अपने सारे समयको शरीरके विकासमें तथा अध्ययन और ध्यानमें लगाता है। सारे संसारमें अपने ढंगका यह अकेला प्रयास है जो उच्चतम आध्यात्मिक जीवनका तालमेल उद्योगश्रमी सभ्यताकी आपदाओंके साथ बिठानेके लिये किया जा रहा है। आश्रमके सभी सदस्य कठोर रूपसे स्वाभाविक सक्रिय और स्वस्थ बाहरी जीवनके साथ ही, तीव्र आंतरिक जीवन बिताते हैं।

पश्चिममें जो लोग आश्रमके संपर्कमें आये हैं वे वहांके लोगोंकी नैतिकता और उनके लक्ष्योंकी उच्चता और पवित्रतासे अवश्य प्रभावित होते रहे हैं। गैस्टन वगेसर जिन्हें हम लोग कठोर बुद्धिवादीके रूपमें जानते हैं, उन्होंने जब फ्रांसके प्राग्रेसिव ग्रुप्स, जिनमें वे प्रेरक थे, और आश्रमके निर्धारित लक्ष्योंकी समानताको देखा तो दंग रह गये।

अब यह असाधारण संस्था जो अपने ढंगकी संसारमें अकेली संस्था है, हम लोगोंकी इस संस्थाकी वर्षगांठके अवसरपर, जिसके सिद्धांतों और लक्ष्योंके साथ उसके अपने सिद्धांतों और लक्ष्योंकी संघति है, अपने क्रिया-व्यापारको और भी प्रसारित करना चाहती है। एक विशाल केंद्रके रूपमें यह अपनेआपको एक सच्ची नगरीके रूपसे पुनर्नियोजित करना चाहती है जहां सारे जगत्के लोग श्रीअरविंददर्शनके ऊपर आधारित आदर्शके अनुरूप आनेको तैयार हों। यह नगरी होगी सुन्दरताकी, संस्कृतिकी, अनुसंधानकी, जहां व्यक्ति स्वतंत्रता और संघतिमें निवास कर सकेगा।

ऑरोविल —— उसका यही नाम होगा —— पांडिचेरीके उत्तरमें कुछ किलोमीटरतक फैला होगा। कारोमंडल समुद्रतटपर बंगालकी खाड़ीके सामने जिस भूभागपर यह स्थित होगा, उसका क्षेत्रफल होगा २० वर्ग किलोमीटर और भौगोलिक स्वभावके कारण इसमें गृह-निर्माणकी विविध संभावनायें होंगी। शहरके चारों ओर रक्षित होगा प्राकृतिक सुषमाओंसे सजा हुआ भूखंड। बीचों-बीच इस नगरीमें होगा एकताका उपवन जो बगीचोंका एक समुदाय होगा और एक झीलके ऊपर सजा हुआ दिखलायी देगा।

आप कहेंगे कि यह सब एक मानसिक रचना है, एक स्वप्न है। शायद ऐसा ही हो। परंतु क्या हमारी अंतरात्माकी गहराईमें इससे एक प्रतिध्वनि नहीं जगती? क्या हम नहीं देखने लगते वहां अपनी युग-युग पुरानी आशाओंका संसार, वह राज्य जिसे हमने देखा और भुला दिया है, वह दुर्ग जिसमें परम रूपवती राजकुमारी युग-युगसे सोयी हुई है इस आशामें कि आयेगा एक दिन उसके हृदयका देवता और जगा देगा उसको अपने दृष्टिपातसे? हमारा अंतर्हृदय क्या एक अक्षय पवित्रता, अकल्प्य प्रकाश, और एक वेद्य अनिर्वचनीय आनंदका भूखा नहीं जिसकी आभासे मंडित है सुखी संतोंकी मुखाकृति और जिससे उद्भासित है बुद्धके मुखमंडलपर फूटनेवाली मुस्कान?

चूंकि वे लोग जो श्रीअरविंदके आश्रममें रहते हैं एक पूर्णता और आध्यात्मिक प्रचुरता प्राप्त कर लेते हैं, ऑरोविलमें भी ऐसा होगा ही! न होनेका कोई कारण नहीं दीखता। ऑरोविलमें प्रवेश पानेके लिये जिस विशेष प्रकारकी मनःस्थितिकी आवश्यकता है, वहां आनेके लिये जो संबल चाहिये वह निश्चित रूपसे है जीवनके प्रति संकल्पशील निष्ठा, आनंदकी भूख, इन महान् प्रश्नोंमें परिलक्षित जागृत स्पृहा, हम यहां क्यों हैं? हम कहां जा रहे हैं? क्या हमारा कोई लक्ष्य भी है? हमारे जीवन-

का अभिप्राय क्या है? अपने जीवन और अस्तित्वको समझते हुए हमारी स्थिति क्या है? बाकी और वस्तुएं तो दे ही दी जायंगी और उन दी जानेवाली चीजोंसे होगा आत्मदानका भाव, आशा, विश्वास और प्रेम भी।

इसीलिये भारत सरकार चाहती है कि यह महासम्मेलन अपने लक्ष्योंके अनुरूप और जिन लक्ष्योंको हम यहां अपनी बीसवीं वर्षगांठके अवसरपर पुनः स्वीकारते और दुहराते हैं, उनके अनुरूप ही इस अद्वितीय और असाधारण संस्थाको जो बहुत अंशोंमें अभूतपूर्व है, अपना नैतिक सहयोग और विश्वास प्रदान करें।

इसके बाद फ्रांसके श्री तेरू, रूसके श्री फोमिन और सूडानके श्री यूसुफ ने जोरदार शब्दोंमें प्रस्तावका समर्थन किया और प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हो गया।

योगके बारेमें कुछ भ्रान्तियां

--श्री अंबालाल पुराणी--

[जन-साधारणमें योगके बारेमें कितनी अधिक गलतफहमियां फैली हुई हैं। खासकर हिंदी भाषा-भाषी जनता तो श्रीअरविंदके योगके विषयमें बहुत कम जानती है। साधनाकी उपयोगिता क्या है, साधक जनहितके कामसे अलग क्यों प्रतीत होता है, संसारके बड़े-बड़े प्रश्नोंको छोड़कर वह भगवान्‌की प्राप्तिमें ही क्यों लगा रहता है — आदि प्रश्नोंके उत्तर इस लेखमें दिये गये हैं। इसके पढ़नेसे यह भी ज्ञात होता है कि श्रीअरविंदके योगमें कर्मका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहां कर्मपर इतना जोर दिया जाता हो, निष्क्रियता या निठल्लेपनको वहां फटकनेकी भी हिम्मत हो सकती है? पुराणीजीका यह लेख मननीय है। —सं.]

योग-साधनाकी उपयोगिता, उसके हेतु और उसकी पद्धतियोंके विषयमें हमारे समाजके एक बड़े भागमें बहुत-सी अकारण और कुछ आंशिक रूपमें साधारण शंकाएं और गलतफहमियां फैली हुई हैं। साधना करनेवालेको ऐसे प्रश्न बहुत ही ओछे प्रतीत होते हैं और सामान्यतः वह इन्हें हल करनेकी ओर प्रवृत्त नहीं होता। जब सिरपर आ ही पड़े तो व्यक्ति, प्रसंग, वातावरण आदिके अनुकूल तर्क करके ही वह संतुष्ट हो जाता है, पर इसीसे सामान्य आदमीके मनका समाधान बहुत बार नहीं होता और गलतफहमियां बढ़ती जाती हैं। आखिरकार थककर जब उन्हें कुछ समझमें नहीं आता, तो वे यही मान लेते हैं कि इसमें समझनेकी कोई बात है ही नहीं। उधर साधक यह मान बैठता है कि जिन प्रश्नोंका हल सामान्य जीवन बितानेवाला समझ नहीं सकता, उन्हें चाहे वह कितनी भी अच्छी तरह क्यों न समझाये फिर भी वह इन दुनियादारोंके गलेसे न उतार सकेगा। विषयभोगके कीड़े आध्यात्मिक आनंदकी शक्यता या आत्मानंदकी दिव्यताको कहांसे समझ सकते हैं? साधक यह सोचकर

कि एक समय था जब वह भी ऐसे ही भ्रमोंमें फंसा हुआ था, औरोंको समझानेके बजाय यह सोचने लगता है कि जैसे प्यासा कुंएंके पास जाता है, उसी प्रकार मानव भी प्रभुके पास जायेगा और जरूर जायेगा, दोनोंमें एक प्रकारका झूठा आत्मसंतोष व्याप रहा है।

साधनाकी उपयोगिताके विषयमें विचार करनेसे पहले देखना यह है कि जैसे हम भूख-प्यास जैसी शारीरिक जीवनकी आवश्यकताओंके बारेमें दलीलें करते हुए समय नहीं गंवाते वैसे ही आध्यात्मिक — आत्माकी भूखके बारेमें कहा जा सकता है। साधकके जीवनमें साधना एक आवश्यक अंग बन चुकी होती है। श्रीमाताजीने एक जगह क्या ठीक कहा है — 'प्रभु तुम्हारे जीवनका एकमात्र — अनेकमेंसे एक नहीं — उद्देश्य हैं', 'उसके बिना जीना तुम्हें असंभव लगता है।" इतनी बड़ी आवश्यकता उपयोगिता-विषयक चर्चाकी प्रतीक्षामें ठहरी न रहेगी, यह तो स्पष्ट है।

पर हमारा जमाना इतनी आसानीसे साधकका पिंड छोड़ दे, यह तो संभव नहीं। आज तो प्रत्येक व्यक्ति जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें चंचुपात करनेका हक समझता है। इसमें उसका कोई दोष भी नहीं है। बुद्धि-विकासके समय उसके आगे बरसाती कीड़ोंकी तरह नये-नये प्रश्न उपस्थित होते जाते हैं।

अर्थको मानव-जीवनका केंद्र मानकर बाकी सब चीजोंका आर्थिक गठन करनेवाले नवीन समाजके विधाता, अर्वाचीन मनु और याज्ञवल्क्य मानव-जीवनमें प्रभुको पैर रखनेके लिये भी स्थान नहीं दे सकते। इनके पास तो सर्वशक्तिमान्‌की अशक्तियोंकी एक लंबी फेहरिस्त तैयार है। प्रभु निरुपयोगी है (अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे), इतना ही नहीं, जगत्‌के यह त्राता तो कहते हैं कि वह 'अफीमकी भांति हानिकर' है और जितनी जल्दी संसार उसके पंजेसे छूटेगा, उतनी ही जल्दी उसके दुःख और क्लेश नष्ट हो सकेंगे।

इन लोगोंको चुप करनेके लिये दलीलोंकी जरूरत नहीं। एक-आध ज्वलंत उदाहरण, चाहे वह रामकृष्ण परमहंस हों या रमण महर्षि, ही काफी है।

कई बार कट्टर विरोधी थोड़ा-बहुत पक्ष लेनेवालेकी अपेक्षा अच्छे होते हैं। 'भई मैं तो ईश्वरके विषयमें तुमसे ज्यादा ही जानता हूं, पर जब जमानेके सामने इतने बड़े-बड़े प्रश्न खड़े हों, तब भला योग-साधना चल कैसे सकती है?' इस प्रश्नमें कितना अज्ञान भरा है। ऐसा प्रश्न करनेवाले योग अथवा मानवजातिके वास्तविक प्रश्नोंसे कितने अनभिज्ञ हैं।

'साधना-साधना क्या लगा रखी है, मानव-जीवनमें काम आनेवाले तो यही चार-पांच मोटे-मोटे नियम हैं —चोरी न करो, शराब न पियो, झूठ मत बोलो।' पर क्या एक चोरी, मदिरापान और असत्य भाषण न करनेवाला कभी रामकृष्ण परमहंसकी बराबरी कर सकता है? यह तो ठीक है कि इस प्रकारके सर्व-सामान्य नियमोंका पालन करनेसे व्यक्ति प्रभुका ज्ञान प्राप्त करनेका अधिकारी बन सकता है, पर यह भी ठीक है कि इतनेमें ही परमात्म-ज्ञानकी इतिश्री नहीं हो जाती।

यह तो एक 'अंध-कुआं' है, पर किसके लिये? मानवके मनके मिथ्या प्रयत्नोंके लिये, चेतनाके लिये या अंतरात्माके लिये नहीं। यह सारा बखेड़ा मानवके मनघड़ंत विचारोंका है। रामकृष्ण परमहंसके शब्दोंमें भोजनसे पहिले-पहिले बहुत गाल बजाये जाते हैं, पर भोजन शुरू होते ही चुप्पी साधनी पड़ती है। इसी प्रकार यह सारे झगड़े साधनाका आस्वाद करते ही समाप्त हो जाते हैं।

पर यह बात भी आजके समाजको तसल्ली देनेवाली नहीं। 'अरे भई, चुपचाप निठल्ले बैठकर 'हम योग-साधन कर रहे हैं' की रट लगानेसे क्या लाभ, कुछ लोकोपकारका काम करो न।' कई लोग बेचारे साधकपर तरस खाने लगते हैं। कहते हैं कि वह व्यर्थ जीवन नष्ट कर रहा है। पर यही लोग प्रतिदिन तापमान देखते रहने और उसके कोष्टक तैयार करने, अर्थशास्त्रके आंकड़े तैयार करने या बच्चोंके सिर नाप-नापकर उनके कोष्टक तैयार करनेको उपयोगी कार्य गिनते हैं, लेकिन अंतर-चेतनाका अवलोकन तथा उसके संचालनमें हेर-फेर करनेके प्रयत्न उन्हें व्यर्थ लगते हैं।

कच्ची सहानुभूति रखनेवाला यहींपर कह उठता है —— यह तो हम भी मानते हैं कि आंतरिक प्रगति करनी चाहिये; पर यह किसने बताया कि वह केवल योगसे ही हो सकती है। इसके जवाब-में तो यही कहा जा सकता है कि सारी प्रगति योग ही तो है। श्रीअरविन्दने पूर्णयोगके विषयमें लिखते हुए शुरूमें ही कहा है —— समग्र जीवन ही योग है; पर इसका मतलब यह नहीं कि सभी योगी हैं या योग कर रहे हैं। सारा जीवन योग तो है, पर किसका? प्रभुकी ओर अनंत प्रकारसे गति करती हुई प्रकृतिका। जो इस गतिकी दिशाको जानते हैं, उसके हेतुको समझते हैं या इसके लिये जागृत रूपसे प्रयत्न करते हैं, उसके अंतिम उद्देश्यके साथ तादात्म्य पैदा करते हैं, वे योगी हैं, बाकी प्राकृत मानव। हमारे चारों ओरकी वायुमें वाष्प तथा विद्युत् दोनों विद्यमान हैं, पर केवल इसीसे न तो कोई मशीन चल सकती है और न रोशनी हो सकती है। इसी प्रकार अज्ञानके कारण प्रत्येक व्यक्ति योगसे लाभ नहीं उठा सकता।

इस सबका अर्थ यह नहीं है कि केवल साधना करनेवालोंने ही प्रगतिका ठेका ले रखा है। श्री-कृष्ण भगवान् तो कहते हैं ——

न हि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

जो अपना सारा जीवन साधनामें तो नहीं लगाते पर यथाशक्ति उच्च जीवन बनानेका प्रयत्न करते हैं; वे भी उन्नति कर रहे हैं। इसलिये साधना न करनेवाला किसी प्रकार भी साधना करनेवालेसे नीचा नहीं ठहरता।

'लेकिन जब संसारमें इतनी जटिल समस्याएं उपस्थित हों, तब योगके लिये अवकाश कहां है?' वास्तवमें योग तो सारी समस्याओंका पूरी तरहसे हल करनेवाला उपाय है। बाकी सब उपाय तो केवल थिगड़े लगाने या मरहमपट्टी करनेकी नाईं हैं। योग इन सब व्याधियोंको दूर करनेके लिये रामबाण है। श्रीअरविन्द ज्ञानयोगपर लिखते हुए १८ वें अध्यायमें कहते हैं, 'मुक्तात्मा या सिद्धके लिये यह असंभव है कि वह दुःखी और दीन-बंधुओंकी तरफसे उदासीन रहे, क्योंकि उसे तो इन दुःखी और अज्ञानी लोगोंके अंदर भी अपनी ही आत्मा व्याप्त दिखायी देती है। अपने-आप अज्ञान और दुःखसे मुक्ति पाकर वह स्वाभाविक रूपसे औरोंको भी इसी ओर खींचता है। एक तरफ वह स्वयं और दूसरी तरफ और सब जगत् और इन दोनोंके बीचमें कोई अज्ञानमय संबंध अर्थात् ईश्वरको अलग रखकर स्थापित किया हुआ किसी प्रकारका संबंध तो मुक्तात्मामें असंभव है। इसी कारण कोई पार्थिव संबंध या उच्च परोपकार-वृत्तिवाले संबंधसे मुक्तात्मा परिमित नहीं हो सकता। उसकी आध्यात्मिक स्थितिकी पराकाष्ठा दूसरोंके लिये अपने-आपको अर्पित कर देने या अपने-आपको दूसरोंके भोगके लिये दे देनेमें नहीं, अपितु ईश्वर-प्राप्ति करनेमें, मुक्ति पानेमें और दिव्य आनंद हासिल करके अपने-आपको कृतकृत्य कर देनेमें है। उसका उद्देश्य अपने-आप सिद्धि प्राप्त करना और दूसरोंको भी पूर्ण या सिद्ध बनाना होता है। क्योंकि केवल ईश्वरसे ही, ईश्वर-प्राप्तिसे ही मानव-जीवनके सब क्लेशोंका अंत हो सकता है। जिससे मानव प्रभुकी ओर उत्थान करे ऐसी प्रवृत्ति सारी मानव-जाति-की सहायता करनेका सर्वोत्तम और फलदायक उपाय है।

* *

साधना करनेवाला जानता है कि मानव-जीवनके प्रश्न वास्तवमें मानव-प्रकृतिके ही प्रश्न हैं। जीवनमें आमूल परिवर्तन करना हो तो इधर-उधर कुछ थोड़े-बहुत सुधार कर देनेसे, दो-चार, दस-पांच थिगड़े लगा देनेसे काम नहीं चल सकता, उसे दीखता है कि इसके लिये तो मानव-चेतनाका एकदम रूपांतर ही करना होगा। मानव-जातिका इतिहास उसे बुद्धिकी परिमितता दिखाता है। उसे स्पष्ट

दीखता है कि हजारों वर्ष बुद्धि लड़ानेके बाद भी समस्याएं बढ़ती ही जाती हैं और नये-नये गोरखधंधे पैदा होते जाते हैं, ऐसी अवस्थामें उसे यह आवश्यक लगता है कि बुद्धिसे परे चेतनाकी किसी अन्य अवस्थाद्वारा इन समस्याओंका हल ढूंढ़नेका यत्न करे। उस स्थितिके मिलनेतक वह अपने कर्म बंद तो नहीं करता; पर हां, अपनी मर्यादामें रहकर ही कर्म करता है। इसमें भीरुताका कोई स्थान नहीं है।

कहा जाता है कि समाजमें रहनेवालेको समाजके लिये भी कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिये। आध्यात्मिक जीवनको अपना ध्येय बना लेनेवाला सामान्य सामाजिक हेतुओंका — अर्थ और कामनाका — परित्याग कर देता है। अतः समाजके बंधन उसपर लागू नहीं हो सकते। समाजको उन्नत करना तो उसे आवश्यक लगता है; पर कोई समाज कभी समाजके रूपमें शायद ही प्रगति करता हो। प्रायः व्यक्ति ही समाजको उन्नतिके पथपर ले जाते हैं और अवनत होनेसे बचाते हैं। व्यक्तिका विधान तो अंदरसे ही आता है और यदि अंदरका विधान बाह्य विधानोंका विरोधी हो तो साधक उन्हें तोड़कर भी, समाजका विरोध करता हुआ भी, उसे आगे बढ़ाता है। श्रीचैतन्यदेवके जीवनसे ही कितने नास्तिक आस्तिक बन गये, कितने लुटेरे संत बन गये और बंगला-साहित्यकी कितनी अभिवृद्धि हुई।

कहा जाता है कि धर्म, आंतर विकास, योग-साधना आदिका लाभ तो सभीको मिलना चाहिये, साधु, संत और महात्मा स्वयं ज्ञान प्राप्त करके जनहितके लिये कितना-कितना करते थे। यह बात है तो कुछ-कुछ ठीक; पर क्या कोई कट्टरसे कट्टर प्रजासत्ता और समानताका पोषक भी यह प्रतिपादित कर सकता है कि योग-साधनामें अधिकारका स्थान नहीं है? कितने धर्म-प्रचारक और धर्म-प्रवर्तक हो गये, जिन्होंने बहुतसे विधि-निषेधात्मक सूत्र बना दिये; पर उन्हींके अनुयायी इन सब नियमोंको जानते हुए भी उनका उल्लंघन करते हैं। इन नियमोंको तोड़नेवाली वृत्तियां बहुत प्रबल होती हैं और वे केवल जोर-जोरसे उपदेश दे लेनेसे नष्ट नहीं हो जायेंगी। योग-साधन करनेवाला यथाशक्ति इन नियमोंका पालन करता है और उन्हें अपने आचरणद्वारा प्रसारित करता है।

प्रत्येक व्यक्ति अमुक रीतिसे ही, जन-समाजकी इच्छाके अनुसार ही सेवा करे ऐसी मांग करना तो कुछ ज्यादती है। प्रत्येक राजनैतिक दल और नेता भी अपनी रीतिसे, अपने ही सिद्धांतोंके पीछे चलकर सेवा करता है, फिर योगीसे ही यह सवाल क्यों किया जाता है कि वह औरोंके पथपर क्यों नहीं चलता।

इन दलीलोंसे जरा ज्यादा गहराईमें जाकर देखें कि आखिर यह 'परोपकार', 'सेवा', 'जनहित', 'मानव-जातिकी सेवा' इत्यादि दूसरोंके हितकी प्रवृत्ति 'अहं' तथा 'मम' की प्रवृत्तिसे कुछ अधिक भी है? किसीने कहा है कि परोपकारी धनाढचोंकी दानवृत्ति अधिकतर दूषित हुआ करती है; क्योंकि इनकी उदारता बहुतोंकी निर्धनता और गरीबीकी भित्तिपर खड़ी होती है और इनकी उदारवृत्तिके प्रकट होनेके लिये आवश्यक है कि दूसरोंमें गरीबी भी रहे, बहुतेरे धनाढच अपनी दानशीलताके ही बलपर गरीबोंका शोषण करते हैं। उन्हें अपनी वर्तमान स्थितिमें ही संतुष्ट रहनेके लिये प्रेरित करते हैं जिससे कि वे मानवताके विशाल अधिकारोंकी मांग न करें।

स्वामी विवेकानंद एक जगह कहते हैं कि जगत् तो एक ढहते हुए घरकी नाईं है, जबतक एक जगह मरम्मत की जाये तबतक वह दूसरी ओरसे गिरने लगता है। मुश्किल तो यह है कि जो बात एक समय, एक समाजमें हितकर, उत्तम और इष्ट लगती है वही अन्य समय या अन्य समाजमें हानिकारक और त्याज्य बन जाती है।

आजतक संसारमें जो व्यवस्थित दानवृत्ति चली आयी है, वह दरिद्रतामें जरा भी कमी नहीं कर पायी। इन सब बातोंसे यही लगता है कि कोई बाह्य कर्म जगत्के दुःखोंको दूर कर सकेगा, यह विचार एकतरफा है। सुख या दुःखका आधार बाह्य परिस्थितियोंपर नहीं, आंतरिक अवस्थापर है। विपुल धनराशिवाला भी दुःखी और दीन हो सकता है और अकिंचन त्यागी भी सुखी हो सकता है।

शायद यह दावा नहीं किया जा सकता कि बाह्य जीवनके अंदर परिवर्तन करनेसे सुखी रहनेकी शक्तिमें वृद्धि होगी।

* *

इसी प्रकार जन-साधारणमें यह धारणा बहुत प्रचलित है कि योग और खासकर श्रीअरविन्दके योगका कर्मके साथ कुछ बैर है, दुनियासे और कर्मसे दूर भागकर ही साधना की जा सकती है। पर यह एक भ्रम है और सर्वथा निर्मूल है। लेख लंबा तो हो जायेगा, पर विषयकी आवश्यकताको देखते हुए हम यहां श्रीअरविन्दके कुछ पत्रोंका उदाहरण देते हैं। ये पत्र अपने-आप अपना परिचय हैं।

'साधना करते हुए काम जारी रखनेसे आंतरिक अनुभूति तथा प्रकृतिके बाह्य विकासको समतुलित रखनेमें सहायता मिलती है। नहीं तो एकतरफापन पैदा हो जाता है और समतुलन तथा प्रमाणमें खामी आ जाती है। भगवान्के लिये कर्म करनेकी, कर्मयोगकी साधना आवश्यक है, क्योंकि वह अंतमें साधकको आंतरिक प्रगतिको बाह्य प्रकृति तथा जीवनमें ढालनेमें सहायक होती है और इससे साधनाकी सर्वदेशीयता बढ़ती है।'

* *

'आध्यात्मिक दृष्टिसे केवल वही काम पावन है जो किसी निजी हेतु, कीर्ति, जनताकी आंखोंमें जंच जानेकी इच्छा (जनताद्वारा प्रमाणित होनेकी इच्छा) या किसी दुनियावी बड़प्पनकी कामनाके बिना किया जाता है। जो कार्य मनघड़ंत हेतुओं, प्राणकी वासनाओं और दुराग्रहके बिना, स्थूल शरीरके पक्षपातसे मुक्त रहकर, मिथ्या अभिमान या भद्दे बड़प्पन और शेखीके बिना, किसी पद या मानकी लालसाके बगैर, केवल भगवान्की खातिर और भगवान्की आज्ञासे किया जाता है, वही आध्यात्मिक दृष्टिसे विशुद्धिकारक है। अहंकारमय भावनासे किये गये कार्य, अविद्यामय जगत्में रहनेवाले सामान्य लोगोंके लिये चाहे जितने हितकारी हों, पर योगके जिज्ञासुके लिये उनका कोई उपयोग नहीं'।

* *

'सामान्य मानव-जीवनसे संबद्ध केवल ऐसा ही काम गिना जाता है जो निजी हेतुओंको साधनेके लिये और किसी मानसिक और नैतिक संयममें रहकर कामनाओंको संतुष्ट करनेके लिये और कभी-कभी किसी मानसिक आदर्शका स्पर्श करते हुए किया जाये। गीताके योगमें सारे काम भगवान्के लिये यज्ञके रूपमें करने, कामनाओंपर विजय पाकर अहंकार और कामनासे रहित होकर, भगवान्की भक्ति, विराट् चेतनामें प्रवेश, सब भूतोंके साथ अद्वैतका साक्षात्कार करने तथा भगवान्के साथ एकता अनुभव करनेका समावेश होता है। पूर्णयोग इसमें विज्ञानमय ज्योति और विज्ञानमय शक्तिका अवतरण तथा प्रकृतिका रूपांतर यह दो बातें और बढ़ा देता है'।

* * *

हमारे योगमें निर्वाण उच्चतर सत्यका प्रारंभ है, क्योंकि यह अज्ञानसे उच्चतर सत्यमें जानेका एक मार्ग है। अज्ञानको पहले विलुप्त करना ही होगा जिसमें कि दिव्य सत्य अभिव्यक्त हो सके।

—श्रीअरविंद

ईस्टर

ईसाई लोगोंमें बड़े दिनके बाद शायद ईस्टरका ही सबसे अधिक महत्त्व है। इस त्योहारका आरंभ यहूदियोंसे हुआ था। यह यहूदी महीने निसानकी पूर्णिमाको मनाया जाता है इसलिये प्रचलित ईसवी सन्के हिसाबसे इसकी तारीख बदलती रहती है। कहते हैं कि जिन दिनों इसराइली लोग मिस्रमें थे, एक रात मौतका फरिश्ता उनके डेरोंके ऊपरसे गुजर गया और इस तरह उसने नवजात शिशुओंको दीर्घायु प्रदान की। तबसे यहूदी लोग इसे मौतसे छुटकारा पानेवाले त्यौहारके रूपमें मनाते हैं और इसे पेसाख कहते हैं।

यूनानी लोग इसे ओस्तारा अथवा इयोस्त्रे कहते थे और यह उनके लिये नव वसंतका त्यौहार होता था। ईसाई और विशेष रूपसे रोमन केथोलिक लोगोंका यह विश्वास है कि सूलीपर चढ़ाये जानेके बाद हजरत ईसा इसी दिन पुनरुज्जीवित हो उठे थे इसलिये ईसाई जगत्में इसका विशेष महत्त्व है। ईसाइयोंके त्यौहार अपनी धार्मिकता तो रखते हैं पर उनके मनाये जानेके ढंगमें धार्मिकताकी जगह मौज-शौकका ज्यादा ख्याल रहता है। जैसे बड़े दिनपर नाच-गानेका, और विशेष रूपसे टर्की (पाताल मयूर) के मांसका तथा भांति-भांतिके उपहारोंका महत्त्व होता है, वैसे ही ईस्टरके अवसरपर ईस्टरके अंडेका महत्त्व होता है।

पुराने यूनानी, मिस्री तथा ईरानी अंडेको जीवन-मर्म मानते थे इसलिये वे अंडेको सृष्टि-रचनाके प्रतीक रूपमें देखते थे। परंतु अब ईस्टरके अंडेका मतलब होता है भांति-भांतिके भिन्न-भिन्न आकारके नकली अंडे जिनमें चाकलेट भरी होती है। कहते हैं कि अकेले इंग्लैंडमें ही लड़ाईके पहले ईस्टरके अवसरपर २५०००००० ईस्टरके अंडोंकी खपत होती थी और अब तो यह संख्या बहुत बढ़ चुकी है।

एक दंतकथा है कि एक बार कुछ पादरियोंको कांटोंका वह ताज मिल गया जो ईसाके सिरपर रखा गया था। वे उसे बहुत श्रद्धा और मानके साथ उठा लाये और गिरजाघरमें रख दिया। उसके दर्शनके लिये लोगोंके ठटके ठट लग जाते थे। ईस्टरके दिन वहांके पादरीको ख्याल आया कि आज उस ताजका वहां रहना असंगत-सा है। वह उसे हटाने गया। दरवाजा खोलते ही उसे बड़ी अच्छी सुगंध आयी। वह आश्चर्यमें पड़ गया। उसने खिड़की खोली, वह आंखें मलता रह गया जब उसने देखा कि कांटोंका ताज है तो अपने स्थानपर ही परंतु सूर्यके प्रकाशसे हर कांटा एक सुंदर सुगंधित गुलाब बन गया है।

इसी तरहकी एक और कहानी है। बात यरुसलमकी है। ईस्टरके दिन नजदीक आ रहे थे। यरुसलमके पासकी पहाड़ी पेड़ों और बेलोंसे सजी हुई थी। सब ओर हरा-ही-हरा दिखायी देता था। लेकिन इन पेड़ों और बेलोंमें आपसमें लड़ाई हो रही थी। हरएक यही कहता था कि मैं ही पुनरुज्जीवित ईसाका विशेष पौधा हूं। लड़ाई कई दिनोंतक चलती रही, उसका कहीं अंत ही न आता था। एक दिन एक फरिश्ता वहां उड़ता हुआ आया। उसने कहा, "तुम लोग व्यर्थमें झगड़ रहे हो। प्रतिवर्ष ईस्टरके दिन एक विशेष फूल खिला करेगा, जिसके सौंदर्य और सौरभकी तुलना नहीं हो सकती। वही ईस्टरका विशेष फूल होगा।" बड़ी व्याकुलतासे सबने पूछा, "वह पौधा कहां है, कम-से-कम उसे देख तो लें।" 'धीरज रखो भाइयों', फरिश्तेने कहा, "वह इसी पहाड़ीपर दिखायी देगा"। सब पेड़ और बेलें आंखें बिछाये नये फूल और पौधेकी प्रतीक्षा करते रहे। ईस्टरका दिन आया। आकाश स्वच्छ था। पहाड़ीपर एक गंभीर नीरवता छायी हुई थी। सहसा एक पतली मधुर आवाज

आयी, "मैं कुमुद हूं, मैं ही ईस्टरका फूल हूं।" बड़े-बड़े पेड़ोंने, सुन्दर बेलोंने देखा, छोटेसे नालेके पास एक छोटे-से पौधेपर सुनहरे हृदयवाला मखमली सफेद फूल खिला हुआ है।

जैसे हमारे देशमें गणपति उत्सवके समय तरह-तरहके गणपति बनाये जाते हैं, कोई गांधीजीके जैसा तो कोई पं. नेहरू या सुभाष बोस जैसा और हर वर्ष देशकी स्थितिके अनुसार वाहन आदि भी बदल दिये जाते हैं उसी प्रकार ईस्टरके अंडेमें भी तरह-तरहकी नयी चीजें घुसा दी जाती हैं। एक बार एक फ्रेंच करोड़पतिने अपनी प्रेमिकाके लिये इतना बड़ा ईस्टरका अंडा भेजा जिसे घरमें घुसाना असंभव हो गया। वह दौड़ी हुई खिड़कीपर आयी तो उसने देखा कि एक गाड़ीपर १० फुट ऊंचा और २० फुट लंबा अंडा रखा है, वह मखमलसे ढका हुआ है जिसपर कारचोवीका बड़ा सुन्दर काम है। वह खड़ी देख ही रही थी कि अंडा एक ओरसे खुल गया। उसमेंसे साईस और कोचवान समेत दो घोड़ोंकी बग्गी निकली।

फ्रांसमें एक बहुत प्रसिद्ध सुनार था जो रूसी राजपरिवारके लिये ईस्टरके अंडे बनाया करता था। उसके बनाये हुए अंडे आज भी भिन्न-भिन्न देशोंमें पाये जाते हैं। एक बार उसने सोनेका एक अंडा बनाया था जिसमेंसे एक राजहंस निकलकर पानीमें तैरने लगता था और थोड़ी-थोड़ी देर बाद गरदन इधर-उधर करता और पंख फड़फड़ाता था। उसके और एक अंडेमेंसे एक सुनहरा तोता निकला करता था जो जरा दबानेसे बोलने लगता था।

आज भी ईस्टरके अवसरपर तरह-तरहकी सौगातें भेजी जाती हैं जिनमें ईस्टरका अंडा मुख्य होता है।

—रवींद्र

◆

अबुलफज्ल अकबरके नवरत्नोंमें थे। वे खुले हाथों दान दिया करते थे। एक बार किसीने कहा — आप गैर मुस्लिमोंको दान क्यों देते हैं? इससे तो कोई पुण्य न होगा। बोले, भाई, हमने सुना है, मुसलमानोंको दान देनेसे फरिश्ते जन्नतमें महल तैयार कर देते हैं और गैर मुस्लिमोंको दान देनेसे नरकमें कोठरी मिलती है। मुझे मालूम नहीं मुझे जन्नत मिलेगी या दोजख, इसलिये दोनों जगह इन्तजाम रखता हूं ताकि कहीं भी बेघरबार न रहना पड़े।

⁂

दूसरा महायुद्ध चल रहा था। इंग्लैंडके राजा, छठे जार्ज लार्ड माउंटबेटनकी सेनाका निरीक्षण करने आ रहे थे। प्रथाके अनुसार सैनिकोंको राजाके आगे झुकना चाहिये। अमरीकी सैनिक इसके लिये तैयार न थे। स्थिति नाजुक थी।

माउंटबेटनने कहा, "मैं जानता हूं राजाके सामने सिर झुकाना तुम्हें पसंद न आयेगा पर मेरे बड़े भाईका आदर करनेमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी!

सब हंस पड़े और माउंटबेटनके भाई जार्जका जोरोंसे स्वागत हुआ!! यह है वाणीका चमत्कार।

मौतको भी झुकना पड़ा

—श्री रवींद्र

केंसर आधुनिक कालके सबसे अधिक घातक रोगोंमेंसे एक है। इसका नाम सुनते ही रोगीके आधे प्राण निकल जाते हैं और रहे सहे प्राण डाक्टरोंकी सलाह निकाल देती है। सामान्य शरीरमें एक चेतना होती है जो सब अवयवोंको अपनी सीमामें रखती है। यदि शरीरके कुछ अणु इस चेतनाके विरुद्ध विद्रोह कर दें और अपनी मरजीके मुताबिक चलने लगें तो केंसर आदि कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि सचेतन रूपसे, पूरी दृढ़ताके साथ, रंचमात्र भयके बिना इस स्थितिका मुकाबिला किया जा सके तो इसपर विजय पाना असंभव नहीं है। हम ऐसे उदाहरण जानते हैं जहां दिमागका केंसर — जिसके रोगीको विशेषज्ञोंने बड़ी उदारतासे तीन महीने जी सकनेकी आशा दिलायी थी — भी भागवत कृपासे ठीक हो गया।

यहां हम एक ऐसे अफसरकी कहानी दे रहे हैं जिसने अपनी अटल श्रद्धा और दृढ़ निश्चयके बलपर केंसरके विरुद्ध लड़ाई की और लड़कर जीत गया। लेफ्टिनेंट रोजेनवर्ग अमरीकाकी नौसेनाका एक अफसर था। उसे बचपनसे ही नौसेनामें जानेका चाव था। बड़ी लगनके साथ उसने सब परीक्षाएं पास कीं और लेफ्टिनेंटका पद पा लिया (१९४६)। अभी नौकरी करते तीन ही वर्ष हुए थे कि एक दिन उसे बड़े जोरका बुखार हो आया, साथ ही पेटमें दर्द था और दाहिना भाग सूजा हुआ था। डाक्टरोंने मामूली बुखार समझा और रोजनवर्ग पन्द्रह दिनमें ठीक हो गया।

कुछ ही बिन बाद रोजनवर्ग नौसेनाकी हवाई टुकड़ीकी कसरतोंमें भाग ले रहा था कि उसके वंक्षणमें मामूली-सी चोट आ गयी। वही पिछले लक्षण फिरसे पैदा हो गये, इस बार उनका रूप अधिक उग्र था। लेकिन तेज बुखार और असह्य पीड़ा होते हुए भी रोजेनवर्ग अपने काममें लगा रहा। उसने खाना छोड़ दिया पर काम न छोड़ा। लेकिन यह स्थिति ज्यादा न चल सकी। उसे चेल्सिया नेवल हास्पिटलमें भेज दिया गया। वहां डाक्टरने शल्यक्रियाके बाद बड़ी गंभीरतासे रोजेनवर्गसे कहा, "आप चाहेंगे कि मैं आपको सच्ची स्थिति बता दूं। हमने आपके वंक्षणसे केंसरका एक अर्बुद निकाला है। लेकिन अब पता चला है कि आपके वृक्कमें भी केंसर है। हम उसे भी काटकर निकालनेके लिये तैयार हैं पर मुझे भय है कि उसका कोई लाभ न होगा।" डाक्टर थोड़ा रुका। जरा इधर-उधर देखा, अपने कपड़े ठीक किये और फिर और भी गंभीर होते हुए बोला, "मेरा ख्याल है, अब आप पन्द्रह दिनसे अधिक न जी सकेंगे। आप चाहें तो वसीयत तैयार करनेके लिये आपके पारिवारिक वकीलको बुला दिया जाय।"

"वसीयत, हा, हा, वसीयत! नहीं डाक्टर, मुझे वकीलकी जरूरत नहीं है, मैं अभी मरना नहीं चाहता। आप चिंता न करें।" डाक्टरोंने आपसमें परामर्श किया और उसे ब्रूकलिन हास्पिटलमें भेज दिया गया। वहांके डाक्टरोंने भी वही राग अलापा। रोजेनवर्गने कहा, "मैं नहीं मर रहा। आप लोग अपनी ओरसे चिकित्सामें कोई कसर न रखें। मैं प्रार्थना करता रहूंगा।" डाक्टरोंने आशा न होते हुए भी उसकी बात मान ली। रोजेनवर्ग दिन-रात प्रार्थनामें लगा रहने लगा। बारह सप्ताह बाद डाक्टर खुशीसे नाचते हुए उसके कमरेमें आये और बोले, यह सचमुच चमत्कार है। तुम्हारे आजके एक्सरेसे मालूम होता है कि तुम्हारा केंसर गायब हो गया।

रोजेनवर्ग बहुत जल्दी स्वस्थ हो गया और अपने कामपर वापिस पहुंचा, लेकिन अधिकारी वर्गने

बताया कि केंसरके रोगीको तुरंत सेवासे निवृत्त कर दिया जाता है अतः अब उसके लिये कोई स्थान नहीं है। उसने बहुत अनुनय विनय की तो उन्होंने कहा, अच्छा हम तुम्हें एक महीनेकी छुट्टी देते हैं। उसके बाद तुम्हारी शारीरिक परीक्षा होगी और तब देखा जायगा। रोजेनवर्ग खुश हो गया और एक महीने बाद उछलता-कूदता और अपने-आपको पूर्णतया स्वस्थ समझकर फिर आया। इस बार डाक्टरोंने देखा उसकी गरदनमें एक नया केंसर-अर्बुद हो गया है। वह जरा भी न डरा। उसने डाक्टरोंसे कहा, मैं इसे भी ठीक कर लूंगा। अर्बुद छोटा होता गया और फिर एकदम गायब!

वह फिरसे नौसेनाके मुख्य दफ्तरमें जा पहुंचा। इस बार अफसर पूरी तरह डट गये। अब उसके लिये नौसेनामें कोई स्थान न था। बड़े डाक्टरोंने उन्हें सूचना दे दी थी कि रोजेनवर्ग छः माससे अधिक किसी हालतमें न जी सकेगा। रोजेनवर्गने निराश होना न सीखा था। उसने पांव पटकते हुए कहा, आप लोग यह क्यों भूल जाते हैं कि मैं मनुष्य हूं, आपके हिसाब-किताबका एक आंकड़ा नहीं। खैर; उसका मामला वाशिंगटनके सबसे ऊंचे डाक्टरी विभागके पास भेज दिया गया। वहां कई सप्ताहतक जूते घसीटनेके बाद उसकी सुनायी हुई। उसकी उत्साहभरी वकालतने सबको प्रभावित कर दिया और प्रतीक्षाकी तड़पके बाद उसे फिर एक बार बुलाया गया और उसे सूचना दी गयी कि इस बार फिरसे उसकी परीक्षा ली जायगी और अगर वह नीरोग हुआ तो उसे वापिस ले लिया जायगा। लेकिन दुर्भाग्य अभीतक साथ लगा था। फिरसे वंक्षणमें अर्बुद दिखायी दिया और उसे निराश होकर लौटना पड़ा। मार्च १९४७ में यह पूर्णतया स्वस्थ पाया गया परंतु इसे नौकरीसे निवृत्त करके नौसेनाके विद्यालयमें अध्यापक बना दिया गया।

रोजेनवर्ग अध्यापक नहीं, फिरसे नौसेनाका अफसर बनना चाहता था। उसने सिनेटके चक्कर लगाने शुरू किये और आखिर सिनेटर हिकेनलूपरको अपनी ओर आकर्षित करनेमें सफल हो गया। सिनेटरको लगा कि यह विलक्षण आदमी है जिसके सामने मौतको भी झुकना पड़ा, इसे अवसर न देना अन्याय होगा। इसकी बहादुरी और इसके दृढ़ संकल्पका पुरस्कार मिलना ही चाहिये। उसने सिनेटके अन्य सदस्योंसे बातचीत की। आखिर सिनेटने इसके मामलेपर विचार करनेके लिये एक समिति बना दी। रोजेनवर्गने समितिके सामने अपना मामला इस तरह पेश किया कि सब लोग प्रभावित हो गये और उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि बहादुर रोजेनवर्गको फिरसे अपने पदपर ले लिया जाये। १९५० के अगस्तमें इस प्रस्तावको अमरीकी राष्ट्रपतिकी स्वीकृति मिल गयी। रोजेनवर्गको एक सालके लिये प्रशिक्षण लेना पड़ा और उसके कुछ दिनों बाद ही वह अपने अच्छे कामके बलपर पदोन्नति कर गया।

आज रोजेनवर्ग नोरफोकमें अपनी स्त्री और बच्चोंके साथ बड़े मजेमें रहता है। यदि उसने डाक्टरोंकी सलाह मान ली होती तो......?

* * *

अपने जीवनकी चिंता पूरी सच्चाईके साथ भगवान्‌पर छोड़ दो और तुम्हारा हृदय शांतिसे भर जायगा।

—श्रीमां

कबीर

(पाणी आगि न लागै)

(३)

वर्षोंतक दूर-दूर घूमकर आज कबीर वापिस आये। खबर पाते ही रतन दौड़ा-दौड़ा आया। भइया, कहां-कहां भटक आये तुम? कबीर — नहीं, भटक नहीं, दूर-दूरतक खोजकर, बहुतोंसे मिलकर मैंने बहुत कुछ सीखा। लेकिन रतन, तू उदास क्यों है? रतनकी आंखें डबडबा आयीं। बोला — तेरी भाभी......। कबीर — क्यों, क्या हुआ उनको? रतन बिना बोले कबीरका हाथ पकड़कर अपने घरकी ओर ले चला। घरके अंधेरे कोनेमें लाली पड़ी थी, या यों कहें कि लालीकी छाया पड़ी थी। कबीर चौंक पड़े। कहां वह प्रेमभरी आंखें, खिला हुआ चेहरा, और कहां यह अस्थि-पंजर। रतन चारपाईके पास जाकर बोला — बहू देख, भइया आ गये। लालीने यत्नपूर्वक आंखें खोलीं। बोली — "भइया आ गये? बस, तुम्हारी ही बाट जोहती थी। मुझे मालूम है कि मैं जाऊंगी तब ये बहुत दुःख पायेंगे, इसीलिये भगवान्से मन-ही-मन कहती थी कि तुमको जल्दी यहां बुला ले। बस, अब मुझे कोई चिंता नहीं, तुम उनको संभाल लोगे।" कबीरने कुछ बोलना चाहा, लेकिन वह दूर देशके लिये तैयार हो चुकी थी। रतनने जाकर लालीके निर्जीव शरीरको उठा लिया। वह चिल्ला उठा — "बहू कहां गयी?"

रतनको किसी तरह समझा-बुझाकर कबीर लहरतारा ले आये। कबीरने कहा — भइया, तुझे और लालीको देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती थी। तुझे मालूम है, दुनियामें कहीं भी सच्चा संबंध नहीं मिलता पर तुम दोनों उससे भिन्न थे। मैं तो यही समझूंगा कि यह भी तेरी भलाईके लिये ही हुआ है। रतनका सारा दुःख क्रोधमें बदल गया। वह बोला — "भइया, लालीको मुझसे छीनकर तेरा भगवान् मेरी क्या भलाई कर रहा है? मेरा बना-बनाया संसार उसने उजाड़ दिया। नहीं सुननी है मुझे तेरे भगवान्की बातें।" कबीर — "अच्छा, चलो छोड़ो इसे। मैं तुझे अपने अनुभवकी बातें सुनाऊं। रतन तुझे पता है न मैं क्यों दूर-दूरतक घूमने गया था? तुझे याद होगा जिस दिन अम्मा मरी मैं पागल हो गया था। मुझे भी तेरी तरह कुछ अच्छा नहीं लगता था। अंतमें मैंने सोचा, इधर-उधर कहीं घूम आऊं। किसी तरह अम्माके अभावमें कुछ बन सकूंगा। और रतन, मैंने क्या देखा? जब असह्य एकाकीपनसे दुःखी होकर मैं रोता था तब मैंने क्या अनुभव किया? तुझे आश्चर्य होगा सुनकर। मैंने देखा कि मेरे अंदर कोई एक बैठा है जो मेरे सब भावोंको प्रत्यक्ष होकर देखता भी है, और हरएक भावमें वह मेरा साझीदार भी है। मैंने अनुभव किया कि मेरे साथ वह रोता था लेकिन साथ-साथ वह आश्वासन भी देता था। तबसे मेरा दुःख आधा हो गया है। क्योंकि मैं अकेला तो रहा नहीं। मैंने समझ लिया कि मेरे साथ कोई है, कोई है जो मेरे साथ प्रेम करता है। वह दीखता नहीं है पर है मेरे साथ ही। भइया, मैं चाहता हूं तुझे भी उसका अनुभव हो, उसका साथ मिले।" रतनकी आंखोंमेंसे अश्रुधारा बहती जा रही थी। एकाएक उसने कबीरके पांव छू लिये। कबीर पुकार उठे — "अरे रतन, यह क्या कर रहा है?" रतन बोला, "भैया, तुमने मुझे पाप करनेसे बचा लिया। आज मैं सोच ही रहा था कि अगर लाली न रही तो रतन भी न रहेगा।"

कुछ दिनों बाद कबीर अंधेरी रातका आनंद लूटनेके लिये अकेले ही घूम रहे थे। वापिस आते ही रतनके घरके पास उन्होंने रतनको भूतकी तरह अपने घरका चक्कर काटते हुए देखा। बहुत रात हो चुकी थी। कबीर समझ गये कि रतन लालीके लिये तड़प रहा है। उनका मन अपार करुणासे भर आया। और सहसा उनकी करुणा गीतमें मुखरित हो उठी :—

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहीं चैन रात नहीं निंदिया,
तलफ-तलफके भोर किया॥
तन-मन-मोर रहट-अस डोले,
सून सेजपर जनम छिया।
नैन थकित भये पंथ न सूझै,
सांई बेदरदी सुध न लिया॥
कहत कबीर सुनो भई साधो
हरो पीर दुःख जोर किया॥

कबीरने देखा कि रतन धीरे-धीरे विभिन्न पंथोंके साधुओंमें भटक-सा गया है। एक दिन काफी रात हो चुकी थी, तब कबीरने रतनके घरके चारों ओर काफी शोरगुल सुना। वे वहां देखनेके लिये गये तो सब पंथके साधु वहां भोजनके लिये बैठे हैं। कबीर कई दिनोंसे सोच रहे थे कि रतनसे उसकी इस नयी लहरके बारेमें चर्चा करें क्योंकि उनको लग रहा था कि रतन धर्मको नहीं, धर्मके बाह्य रूपको पकड़नेकी कोशिश कर रहा था। कबीरने समझा यह अच्छा अवसर है। रतनके घरका पिछवाड़ा हरएक प्रकारके साधुओंसे भरा पड़ा था। कबीरके प्रवेश करते ही उनमें खलबली मच गयी। यह शोरगुल सुनकर रतन दौड़ा आया। अपने परम प्रिय कबीर भैयाको देखकर वह खुश हो गया और कहने लगा — "आओ न, कबीर भैया। मैं तुम्हें सबसे अच्छी जगह बिठा दूंगा।" कबीर — "पर रतन, तू यह क्या कर रहा है?" रतन — "भइया, सत्कार्य कर रहा हूं।" कबीर, "सत्कार्य?" रतन — "हां, क्यों महाभारतमें भी तो दानकी महिमा है। मैं ईश्वरभक्तोंकी सेवा कर रहा हूं।" कबीरने चारों ओर देखा। कहीं गेरुआ कौपीनधारी संन्यासी, कहीं कनफट्टे साधु और कहीं तुलसीमाला गलेमें डाले वैष्णव बैठे हैं। कबीरका मन अवसादसे भर गया। उनको लगा रतन एक छोटा बच्चा है और उसको समझाना कबीरका धर्म है। कबीरने चारों ओर देखा और ललकारकर कहा :—

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा।
आसन मारि मंदिरमें बैठे,
ब्रह्म छांडि पूजन लागे पथरा।
कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।
जंगर जाय जोगी धुनिया रमौले।
काम जराय जोगी हौय गैले हिजरा।
मथवा मुडाय जोगी कपड़ा रंगौले,
गीता बांचके होय गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवजवा बांधल जैवे पकड़ा॥

चारों ओर खलबली मच गयी। डंडा लिये कई साधु कबीरकी ओर झपटे। दाढ़ी जटासे

विकराल लगता हुआ एक साधु चिल्लाया — "क्यों बे कबीरा, तू हम साधुओंका मजाक उड़ा रहा है?" कबीरने हंसकर कहा — "महाराज, मैं सिर्फ बाहरी ढोंगका मजाक उड़ा रहा हूं, साधु-संतोंका नहीं।" क्रोधसे उबलते हुए एक जटाजूटवाले साधु चिल्लाये — "अरे ढोंगके बच्चे, तू बहुत पहुंचा हुआ है न, सिद्ध होगा सिद्ध।" और चारों ओर ठहाकोंकी आवाज सुनायी दी। तुलसीमालाका भार लिये हुए दूसरा वैष्णव बोला — "अरे सिद्ध जी, ऐसा लग रहा है मानो आपने तो भगवान्‌को देख ही लिया होगा, समझ ही लिया होगा। जरा हमें भी बताइये कि भगवान् क्या हैं? कबीरने नम्रतासे हाथ जोड़कर कहा — मैं उपदेश देनेवाला कौन हूं, लेकिन मैं इतना जानता हूं कि :—

राम राइको ऐसा बैरागी
हरि भजि मगन रहै विषत्यागी
राम राइ तू ऐसा अद्‌भुत, अनुपम
तेरी अनभै थे निस्तरिये।
जे तुम कृपा करो जगजीवन
तौ कतहूं भूलि न पारिये।

एक क्षणके लिये सारा पिछवाड़ा स्तब्ध रह गया। लेकिन फिर एक गेरुआधारी संन्यासी आकर बोले — अगर तुमने सचमुच भगवान्‌को देखा है तो हमें बताओ।

हरिपद अगम अगोचर, कथिया गुर गमि विचारा।
जा कारनि हम ढूंढ़त फिरते, अथ भजे संसारा।
प्रगटी ज्योति कपाट खोलि दिये, दगधे जम दुख द्वारा।
प्रगटे विश्‍वनाथ जगजीवन मैं पाये करत विचारा।
देख्यत एक अनेक भाव है लेखक जाति अजाती।
बिहको देव तबि ढूंढ़त फिरते, मंडप पूजा पाती।
कहै कबीर करुणामय किया, देरी गलियां बहु विस्तारा।
रामके नांव रम पद पाया छूटे विघन विकारा।

कबीर — ना भाई ना। मैंने कब कहा कि मैंने देखा है। इतनेमें एक साधु बोला — अरे भाई, तुम तो अभी कह रहे थे "छूटै बिघन विकारा" और फिर गा रहे थे "रामके परम पद पाया"। एक वैष्णव सज्जन बीचमें ही बोल उठे — "हां, हां, कविता करता फिर रहा है। बस कह दिया परम पद पाया और अब देखो कैसा पकड़ा गया।"

कबीर बोला — अरे भाई, तुम्हारे ही शास्त्रोंमें तो लिखा है कि वह वाणीसे परे है, उसको पहचानना मनके परेकी बात है। इसीलिये मैं कहता हूं भाई —

भारी कहौ तो बहु डरौं हलका कहौं तो झूठा।
मैं का जाणौ राम कूं नैना कबहूं न दीठा।
ऐसा अद्‌भुत जिनि कथै अद्‌भुत राखि लुकाई।
वेद कुरानौ गमि नहीं कह्या न को पतियाई॥
करता की गति अगम है तू चल अपनौ उनमान।
धीरे धीरे पांव दे पहुंचेंगे परवान॥

अभीतक धीरे-धीरे बहुत सारे साधु खिसक चुके थे। पिछवाड़ा प्रायः खाली हो चुका था। वैष्णव जन और उनके कई साथी कबीरके इस सबदपर झूम उठे। उनका क्रोध गायब हो चुका था। वैष्णव जन बोले — "वाह कबीर, खूब कही! औरोंने भी अपनी प्रशंसा व्यक्त की। कबीर सिर झुकाये चुपचाप खड़े थे। अचानक रतनने कबीरके पांव पकड़ लिये।

उसकी आंखोंसे अश्रुधारा बह रही थी। वह अचानक कबीरके इस व्यवहारको समझ गया। चौंककर कबीरने देखा कि रतन उनके पांव छू रहा है। वे बोले — "छी! छी! रतन! यह क्या करते हो?" रतन —"ना भइया, बचपनसे ही तुम मुझे संभालते आये हो और जब मुझे कुछ कष्ट हुआ है तो तुमने ही मुझे सांत्वना दी है। अब गुरु.....।" कबीर चिल्ला उठे —"रतन, गुरु क्या होता है, मैं तो तेरा भइया हूं, मुझे वैसा ही रहने दो।" रतन — "ना-ना, आप मुझसे बहुत ही आगे बढ़ चुके हैं। आपके द्वारा ही पथ भूला राही मैं आगे चल सकूंगा। मुझे स्वीकार कीजिये। ना, न कहना।" कबीर बोले — "मैं तुझे क्या उपदेश दूं, पर इतना जानता हूं:—

एक कनक अरु कामिनी, जगमें दोइ फंदा।
इन पै जो न बंधावई, ताका हूं मैं बंदा॥
देह धरे इन मांहि बास कहुं कैसे छूटे।
सीव भरै ते ऊबरे, जीवित ते लूटे॥
एक एक सूं मिलि रह्या तिनही सचु पाया।
प्रेम मगन लै लीन मन, सो बहुरि न आया॥
कहै कबीर निह्चल भया, निरभै पद पाया।
संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया॥

इस प्रकार कुम्हार रतन द्विज बना। इस पुनर्जन्मके बाद कबीरने उसका नाम भी बदल दिया। वह रतनसे ज्ञानदास बन गया। इस छोटी-सी घटनासे सारी काशीमें खलबली मच गयी। जुलाहा इतनी हिम्मत कर सकता है...... । लोग कहने लगे कि कबीरने सारी काशीके साधुजनोंका अपमान किया और ऊपरसे चेले भी मूंडने शुरू किये। बड़े-बड़े पण्डित, शास्त्री और साधुजन पं. देवदत्तके यहां उपस्थित हुए। उनकी चर्चाका विषय था कबीर। वैष्णव प्रपन्नाचार्य जी बोले — अरे, मैं कहता हूं वह धूर्त है, ढोंगी है। हमारा धर्म है कि भोली जनताको बचानेके लिये उसके ढोंगकी पोल खोल दें।

अलखनाथ बोले — यह तो समझे, पर हम किस भांति उसकी पोल खोलें?

पं. देवदत्त जी सोच-विचारकर चिल्लाये — मिला, मिला उपाय, मिला। देखो, भाई, आखिर वह मनुष्य है, उसके अंदर कोई-न-कोई खराबी होगी ही, हम उसीको पड़ककर ठीक करें। कबीरकी शादी नहीं हुई है। बस इतनेमें प्रपन्नाचार्य जी कूद पड़े। बोले — हां, हां, यही ठीक उपाय है।

अलखनाथने कहा — अरे भाई, मैं तलाश कर चुका हूं। वह लड़कियोंसे दूर ही भागता है, तुम पोल कहांसे खोलोगे?

पं. देवदत्तजी बोले — मैं सोचता हूं कि अभीतक उसने किसी सुन्दर लड़कीको देखा नहीं है। अगर एक बार उसकी नजरके सामने कज्जन आ जाय तब मैं देखूं कैसे मुंह मोड़ता है। चारों तरफसे वाह वाह होने लगी। सब इस प्रस्तावसे बहुत खुश हुए।

अलखनाथने कहा — अरे भइया, वैसे ही सामने जानेसे कुछ नहीं होगा, लेकिन हमने देखा है कि जब कज्जन गाती जाती है और साथ-साथ नाचती है तब मेनकाको भी मात कर देती है।

प्रपन्नाचार्य — लेकिन कबीरको कज्जनके घर ले जाना टेढ़ी खीर है।

देवदत्तजीने कहा — अजी, कोई जरूरत नहीं। सेठ नथमलजी हमारे बड़े भक्त हैं। उनके लड़केकी शादी एक सप्ताहके बाद होनेवाली है, हम उनको हुकुम देंगे कि लड़केकी शादीमें खास ढंगका मंडप बनाया जाय और उस मंडपमें कज्जनका नाच गान वगैरह हो और हम अकबरसे कहेंगे

कि किसी तरह वह कबीरको वहां लिवा लाये। पंडित देवदत्तकी इस युक्तिको सुनते ही सब लोग उछल पड़े।

* *

सेठ नथमलके घरके सामने खूब चहल-पहल हो रही थी। शहनाई बंद होनेके साथ ही सारंगीकी तान सुनायी देने लगी। उनके घरके सामने बहुत सुन्दर मंडप सजा था। रेशमी वन्दनवारें हवामें झूल रही थीं, ऊपर रेशमका सफेद चांद चमक रहा था। सारा मंडप इत्र और गुलाबजलकी महकसे सुगंधित हो रहा था। सारंगीवालेने अपनी तान छेड़ी और गद्दीपर बैठे हुए रसिक लोग सतर्क होकर बैठ गये। झाड़-फानूसकी रोशनीसे मंडपमें दिन हो रहा था। मानो सारे प्रकाशने पुंजीभूत होकर मानव रूप धारण किया हो। इस प्रकार लोगोंने अचानक देखा कि कज्जन नाचती हुई आ रही है। चारों तरफसे वाह वाह सुनायी दी। वाह, कज्जन वाह, जवान सेठ आपसमें बात करने लगे, भाई, लड़की है कि बिजली, क्या रंग पाया है, उफ, क्या नाच है! कज्जन कभी गोलाकारमें घूमती, कभी आगे आती, कभी पीछे मुड़ जाती, ऐसा मालूम होता जैसा बादलोंमें बिजली कौंध रही हो। सहसा कज्जनके गलेमें मीठी तान सुनायी दी। "जरा कह दो सांवरियासे आया करे।" कज्जनकी बड़ी-बड़ी आंखें भाव-विभोर हो उठीं। सबने देखा मानो कज्जन सखीसे विनती कर रही है। वही पंक्ति फिर दुहरायी गयी। अबकी कज्जनने किसी भले घरकी वधूकी तरह शर्माकर लज्जाका भाव दिखाया। नाचते-नाचते कज्जन अचानक ठिठक गयी। एक क्षणके लिये वह सभा और मंडप सब कुछ भूल गयी। उसके यहां आनेवाले जनाब अकबरके साथ यह नया अपरिचित कौन है? गौर वर्ण, बड़ी तेजस्वी और निर्भीक आंखें, प्रशस्त ललाट, प्रायः गुलाबी ओठ। कज्जनने सोचा शायद नवाबका बेटा होगा। लेकिन उसी क्षण उसका ध्यान उसके कपड़ोंकी ओर गया, नहीं, यह कोई गरीब मालूम होता है। कज्जनने सोचा — वाह! क्या मस्तानी अदा है और उसके गलेसे वही पंक्ति फिर मुखरित हो उठी, "जरा कह दो सांवरियासे आया करे।" इस बार उसने ऐसा अभिनय किया कि वह नायकको पहली बार देख रही हो और सहेलीको बुलाकर उसे रास्तेमेंसे बुला लानेके लिये अनुनय-विनय कर रही हो। लेकिन हाय, कुछ ही क्षणों बाद कबीर उठकर चला गया। परंतु साथ-साथ कज्जनका दिल भी लेता चला गया। कज्जन रुक गयी, दूरसे आवाज सुनायी दी —

रहना नहीं देस बिराना है।
यह संसार कागदकी पुड़िया बूंद पड़े धुल जाना है।
यह संसार कांटोंकी बाड़ी उलझ पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ और झांखर आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है।

कज्जनको अपने रूप और कलापर गर्व था। बड़े-बड़े राजा, नवाब, कवि उसकी सेवा करनेके लिये आतुर रहते थे। लेकिन इस गरीब आदमीने उसके गर्वको चूर-चूर कर दिया। कज्जनकी आंखोंमेंसे क्रोध और विरहके आंसू एक साथ निकल पड़े। वह स्वगत बोली — अरी बावरी, एक ही क्षणमें अपनेको दे बैठी। कहां गया तेरा स्वाभिमान, कहां गयी तेरी स्वस्थता? लेकिन कज्जन आजतक जिस प्रेमके गीत गाती रही थी आज उसका मन उसी प्रेमकी जंजीरोंमें बंध गया और बंदी हृदय उसकी बात माननेमें असमर्थ था।

कज्जन आज काशीकी प्रख्यात वारांगना नहीं है, सिर्फ एक स्त्री है और उसी सहजबुद्धिसे उसने कबीरके घरका पता लगा लिया है। सारे जीवनमें जितने भावोंका अनुभव किया था उनसे कोई अलग ही भाव उसके हृदयमें प्रवेश कर रहा है। आज कज्जन लजा रही है। कबीरको दूरसे ही

देखनेकी इच्छाको वह न रोक सकी, एक देहाती औरतकी वेश-भूषा बनाये वह कबसे रास्तेके मोड़पर रतनके पिछवाड़ेके पेड़ोंमें छिपी कबीरके आनेकी प्रतीक्षा कर रही है। दूरसे उसने गीत सुना। गीत उसके पास आता जा रहा था। एक गाता था दूसरा दुहराता था। गानेवाले पास आते गये। कज्जनको शब्द सुनायी देने लगे।

सुन्नि मंडलमें मंदला बाजे, तंह मेरा मन नाचै।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषुमनां काछै।
पूरा मिल्या तभी तबै सुख उपज्यौ, तबकी तपन बुझानी।
कहै कबीर भव बंधन छूटै, ज्योति ही ज्योति समानी।

अब गानेवाले दिखायी देने लगे। कज्जनने देखा कबीर और ज्ञानदास बड़ी मस्तीसे गाते हुए आ रहे हैं। कज्जन उन दोनोंको अनिमेष नयनोंसे देखती रही। उसकी बहुत इच्छा हुई कि आगे बढ़कर दो-एक बात कर ले लेकिन हिम्मत नहीं हुई।

* *

कई दिनकी उदासीके बाद आज कज्जनके नयन फड़क रहे हैं, "जो कछु रोगियै भावै वही वैद फरमावै।"

आज पं. देवदत्तने उसे बताया कि अगर किसी तरकीबसे वह कबीरको अपने जालमें फंसा सके तो उसको एक हजारका इनाम मिलेगा। कज्जनको अपने रूपपर, अपनी कलापर नाज था। आज अपने सारे हथियार उठाकर वह कबीरके ऊपर हमला करेगी। बड़े जतनसे उसने अपने बाल बनाये, वेणीमें जूहीके फूल तारोंकी भांति चमक रहे थे। बड़े-बड़े नयनोंमें सुरमा डालकर उन्हें और भी चपल बनाया। कई साड़ियां पहन-पहनकर उतार दीं। अंतमें अपने गोरे रंगके साथ मिलती हुई एक सुनहले रंगकी साड़ी पहन ली। लाल बिंदी चमका दी। रातके अंधेरेमें वह कबीरके घरकी ओर चली। जाकर दरवाजा खटखटाया। किसीने नींदभरी आवाजमें पूछा — कौन ? कज्जनने उत्तर नहीं दिया, केवल खटखटाती रही। कबीरने दरवाजा खोला। हाथमें छोटेसे दीपकके सहारे उन्होंने देखा कि उनके सामने राजरानी-सी एक सुन्दरी खड़ी है। चेहरा कुछ परिचित मालूम हुआ। वे देखते रहे। स्त्रीने धीरेसे कहा — "क्या दरवाजेपर ही खड़ा रखेंगे ? मुझे अंदर न आने देंगे ?"

कबीर कुछ पीछे हटे और बोले — "आप आ सकती हैं लेकिन मेरा ख्याल है कि आप गलत स्थानपर आयी हैं।" कज्जन हंस पड़ी। नहीं, नहीं, मैं ठीक स्थानपर आयी हूं। आपका ही नाम कबीर है न ? मैं आप ही के पास आयी हूं।

कबीर बोले — "अरी बहन, मुझ गरीबसे आपका क्या काम हो सकता है ?"

उनके 'बहन' कहते ही कज्जन बोल उठी —"यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं आपसे भिक्षा मांगने आयी हूं।"

कबीर — "भिक्षा और आप, और वह भी मुझसे ? आप तो स्वर्गकी रानी मालूम होती हैं।"

कज्जन — "लेकिन स्वर्गकी रानियोंको भी पतिकी जरूरत होती है।" अचानक नीचे देखकर कज्जन फिर बोली — "मैं आपसे प्रार्थना करने आयी हूं कि आप मुझे स्वीकार करें।" और इसके बाद कज्जनने धीरेसे अपना हाथ कबीरके हाथकी ओर बढ़ाया। कबीर झटकेसे पीछे हटे और बोले — "यह आप क्या कर रही हैं ? मैं सिर्फ जुलाहा हूं। मेरे पास पैसा नहीं है.... अहा, अब याद आया। आप तो सेठ नथमलके यहां अभी उस दिन गाना गा रही थीं। किसी सेठके यहां जाओ, मुझसे क्या पाओगी तुम, मैं हूं गरीब जुलाहा।"

कज्जनने कहा —"लेकिन मुझे आपसे कुछ नहीं चाहियें। मुझे पैसे नहीं चाहिये, चीजें नहीं चाहिये, सिर्फ.....।"

कबीर —"लेकिन आप किससेके पास आयी हैं, मैं तो दास हूं, गुलाम.....राजा रामका। अगर मैं आपका हाथ पकड़ लूं तो वह नाराज हो जायगा।"

* *

सबेरे-सबेरे ज्ञानदासने कबीरको तंग कर दिया। उसने बार-बार पूछा — भइया, कल रातको तुम्हारे यहां कौन आया था? मैं सो नहीं सका।

कबीरने कहा — घबरानेकी बात नहीं है। मुझे मालूम है काशीमें कबीरके बहुत दुश्मन हैं, पता नहीं क्या करूं। सुन, अगर हम ठीक तरह देखें तो कल एक बहुत अच्छी चीज हुई। क्या पता मेरे रामने ही कज्जनको भेजा हो।

ज्ञानदास — कज्जन मशहूर नाचने-गानेवाली औरत और आप कहते हैं कि अच्छा हुआ। हां-हां मैं समझता हूं कि सब चाल.......उन लोगोंने ही उसे भेजा होगा जिससे आप बदनाम हो जायें। कबीर हंसे और बोले — ज्ञानदास, कबीर कब डरा है जो अब डरे।

ज्ञानदास — लेकिन कबीर.....। कबीर बोले —अच्छा-अच्छा मैं सुनाता हूं कि क्या हुआ :–

तुम घरि जाहु हमारी बहना, विष लागै तिहारे नैना
अंजन छांडि निरंजन राते, ना किसहीं का दैनां।
बलि जाऊं ताकी जिनि तुम्ह पठई एक भाई एक बहना।
राति खाडी देखि हमारा सिंगारी।
परलोकमें क्या दुख पडिया तुम्ह आई कलि मांही।
जाति जुलाहा नाम कबीरा अजहुं पती जो नाहीं।।
तहां जाहु जहां पाट-पटंबर, अगर चंदन घसि लीना।।
आइ हमारे कहा करौगी हम तौ जाति कमीना।
जिनि हम साजे सज्य निवाजे बांधे कांचे धागे
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा पाणी आगि न लागै
साहिब मेरा लेखा मांगै।।

— अनुबेन पुराणी

* * *

प्रेम हमारे भीतर बिना खिले फूलकी तरह विद्यमान रहता है और अंतरात्माके द्रुत क्षणकी प्रतीक्षा करता है।

—श्रीअरविंद

परीक्षा

"परीक्षा" शब्दसे विद्यार्थी अच्छी तरह परिचित होते हैं। इसे सुनते ही इसके प्रति उनकेम नमें एक विशेष प्रतिक्रिया होती है। एक भार-सा अनुभव होता है। बहुतोंका ऐसा भी मत है कि परीक्षासे विद्यार्थियोंपर कुछ खराब मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। बात जो भी हो, पर यह परीक्षा देनेके भावपर निर्भर है। यदि परीक्षामें अनिवार्य रूपसे उत्तीर्ण होनेका प्रतिबंध हो तो शायद यह खराबी पहुंचा सके।

अगर हम अपने जीवनको ही देखें तो यह परीक्षाओंसे भरा दीखेगा। भले ही हमें इसका ध्यान हो या नहीं पर जीवनका पद-पद परीक्षामय है। परंतु यह हमारे लिये हानिकारक नहीं होता क्योंकि उत्तीर्ण होनेका प्रतिबंध हमपर प्रकट रूपसे नहीं रहता। तो भी हम यह भूल नहीं सकते कि परीक्षाके श्रमको टालते हुए आलस्यके मधुर सुखका भोग करना अनंतकालके लिये संभव नहीं है। जान-जानकर कठिनाइयोंसे मुंह मोड़ना हमें कष्टमय दशामें ही डालता है। जबतक हम उनका सामना नहीं करते तबतक परीक्षाएं साथ नहीं छोड़तीं। जिस किसी बहानें हम इन्हें टालें वे किसी-न-किसी रूपमें फिर उपस्थित होकर हमें चकित कर देती हैं। बहानोंका खजाना खाली हो जाता है। फिर हम अपने-आप उत्तीर्ण होनेका अनुभव करते हैं। स्वेच्छासे परीक्षाको स्वीकार करके सफलताके लिये प्रयास करते हैं। उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। प्रकृति हमें सफल बनाकर ही छोड़ती है। इसी तरह विविध परीक्षाओंमें उत्तीर्ण कराती हुई हमें एक बड़ी पूर्णताकी ओर अग्रसर करती है।

अरे, बात तो विद्यार्थियोंकी परीक्षाओंकी हो रही थी। हां, पर विद्यार्थी जीवन भी तो मनुष्यके जीवनका ही अंग होता है। अगर हम परीक्षाका वास्तविक उपयोग समझ सकें तो यह भार-सा कभी न लगेगा। हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसमें कितनी ही त्रुटियां हो सकतीं हैं। अर्थ समझमें न आना ही नहीं, बहुत बार हम भूल समझ बैठें, यह संभव है। कभी ज्ञान अनिश्चित और धूमिल सा रहता है। ज्ञानकी ऐसी स्थिति हममेंसे किसे वाञ्छनीय होगी? परीक्षाकी सार्थकता तो इसीमें है कि इन सब त्रुटियोंकी ओर हमारी आंखें खोल दे, जिससे कि हम इन्हें दूर कर सकें, यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकें। जिसमें वास्तवमें सीखनेकी लगन हो उसके लिये तो परीक्षा उत्सव-सी आनंदप्रद हो सकती है। संशोधनके पहले भूलोंको जाननेकी उत्सुकता होती है और जब शुद्धियां मिलती हैं तो भूलोंका कारण ढूंढ़ना कुछ कम रोचक नहीं होता। जाननेका शौक और परीक्षासे अरुचि, ये दोनों एक ही साथ कभी सत्य नहीं हो सकतीं। परीक्षासे विद्यार्थियोंका चिंतित होना वास्तविक समस्या नहीं है, बल्कि पाठ्य विषयोंमें रुचिका अभाव, ज्ञानार्जन और परीक्षाका यथार्थ मूल्य न समझना, यही हमारी शिक्षासंबंधी कठिनाइयोंका कारण है।

—कुरूपटो

* * *

हैदराबादके निजामके बारेमें बहुत-सी ऊटपटांग बातें प्रसिद्ध हैं पर उनकी अच्छी बातें कम ही लोग जानते हैं। बहुत दिनोंकी बात है। उनके शासनकालकी रजत जयन्ती मनायी जा रही थी। दिल्लीसे आयी हुई एक विशेष गायिका उनकी एक गजल गा रही थी। गाना सचमुच कमालका था। हैदराबादका सबसे अच्छा तबलची साथ दे रहा था। अभी दो मिसरे भी पूरे न हुए थे कि लोगोंने सुना, 'सब खराब कर रहा है, तेरे बापने भी कभी तबला बजाया है? यह कहते हुए निजामने तबलचीको हटा दिया और अपने-आप बजाने लगे। जाननेवालोंका कहना है कि गान और तबलेका ऐसा अच्छा मेल जीवनभरमें उससे पहले और उसके बाद कभी नहीं सुना।

परीक्षाकी धांधली

आह, परीक्षा, परीक्षा और फिरसे परीक्षा ! तंग आ गया इन परीक्षाओंसे। सुना है परीक्षा हमारी बुद्धिकी जांच करनेके लिये, हमारी सोयी हुई चेतनाको जगानेके लिये और हमारे मानसरोवरमेंसे मोती निकालनेके लिये होती है, परंतु मेरा अनुभव इससे बिलकुल उलटा है। जहां हमने कोई नयी बात कही कि परीक्षकोंकी नाक-भौं चढ़ जाती हैं और उत्तरपत्रपर शून्य-ब्रह्मके दर्शन हो जाते हैं। हमें किसी प्रकारकी आजादी नहीं होती, अपनी सच्ची राय प्रकट करनेपर सजा दी जाती है और तरह-तरहसे परेशान किया जाता है। मौलिकताकी जरा भी कद्र नहीं होती।

मैं अपना भाषण समाप्त करके कुछ उदाहरण देता चलूं तो शायद मेरी बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। अभी पिछले दिनों हमारी हिंदीकी परीक्षा थी। हमेशाकी तरह इस बार भी कुछ शब्दार्थ पूछे गये थे। कसम ले लीजिये, परीक्षामें जो शब्द पूछे गये थे उन्हें छोड़कर बाकी सब शब्द मुझे अच्छी तरह आते थे। एक शब्द था विस्मय, । मुझे समय, असमय, कुसमय आदि तो याद आते रहे पर विस्मय किसी तरह दिमागमेंसे न निकाला। मैं सोच ही रहा था कि यह शब्द विसमय होगा और भूलसे विस्मय लिखा गया है। वि का अर्थ होता है विशेष जैसे विकराल या नहीं, जैसे विमल, या खंड, जैसे विभाग आदि-आदि। तो इस हिसाबसे विस्मयका अर्थ होगा विशेष समय या असमय। मैं इस अर्थको लेकर वाक्य बनाने ही वाला था कि कानमें पड़ा बिजली। शायद मेरे पीछे बैठी हुई लड़की किसीको इसी शब्दका अर्थ बता रही थी, मैंने चट वाक्य बना दिया — विस्मयसे बहुत-सी मशीनें चलती हैं। अब यहां आप जो भी अर्थ लगायें ठीक बैठेगा। मेरे वाक्यका अर्थ होगा बिजलीसे मशीनें चलती हैं या असमयमें मशीनें चलती हैं, लेकिन परीक्षक महाशयका क्या कहना है ! इतना न समझ पाये और मेरे वाक्यको काट दिया। पीछे पता लगा कि वे विस्मयका अर्थ आश्चर्य किया करते हैं तब भी मेरा वाक्य गलत नहीं है। मशीनें हमेशा नये आदमीके लिये आश्चर्यकी चीजें होती हैं और मेरे वाक्यका अर्थ हो जाता आश्चर्यके साथ मशीनें चलती हैं।

इसी प्रकार एक दूसरा शब्द था मंजरी। साधारण लोग इसका अर्थ करते हैं कोंपल या सींकमें लगे हुए छोटे-छोटे फूल या दाने, जैसे आम्रमंजरी, तुलसी-मंजरी आदि। मैंने वाक्य बनाया —मंजरी मंजरी आगीसे अपना देह सेक रहा था। अब आप जरा कल्पना कीजिये कोयलोंमें नयी कोंपलोंकी तरह आग उठ रही है और फिर एक कोयलेसे दूसरे कोयलेको छू रही है, मानो आगकी मंजरियां एक साथ खिल उठी हैं। रहा शब्द आगि तो गोस्वामी तुलसीदासजीने ही कहा है — प्रेमसे प्रभु प्रकटहि जिमि आगी। इसलिये मंजरी-मंजरी आगीका अर्थ हुआ धीमी-धीमी आग। मैंने यह वाक्य लिखा तो काट दिया गया। यही वाक्य अगर बाबा तुलसीदास ने लिखा होता तो सब प्रशंसा करते न अघाते। इसीको कहते हैं दुनिया।

यह तो हुई शब्दार्थकी बात। अब लीजिये मात्राओंका प्रसंग। सब जानते हैं कि कवि शब्दमें छोटी इ होती है। मैं और आप कविता लिखें तो हम लोग कवि कहलायेंगे लेकिन तुलसीदासजीको या कबीर साहबको भी कवि नहीं कह सकते, उन्हें तो बड़ी ई देनी ही पड़ेगी — छोटोंके लिये छोटी और बड़ोंके लिये बड़ी, यही तो न्याय है। जैसे हम विद्यार्थियोंके लिये छोटी कुर्सी होती है और अध्यापकोंके लिये बड़ी। लेकिन परीक्षक महाशय सभीको एक चाबुकसे हांकना जानते हैं। मेरे 'कवी' को काट दिया और ऊपर लिख दिया अभीतक तुम्हें यह भी नहीं आता। अब कौन कहे उनसे कि साहब बात इससे ठीक उलटी है।

अब लीजिये लिंगकी बात। हिंदीमें साधारणतः स्त्रीलिंगमें 'ई' लगा दी जाती है जैसे घंटा–घंटी, पहाड़–पहाड़ी आदि। इसीका अनुकरण करते हुए मैंने लिखा समरका अर्थ है पुरुषोंकी लड़ाई और स्त्रियोंकी लड़ाई हो तो समीर। लेकिन किसीने दाद न दी। मैंने तो इसी तरह यह प्रस्ताव रखा था कि अगर दीर्घायु हो तो जीवन और अल्पायु हो तो जिवन लिखा जाये। लेकिन रूढ़िपर चलनेवाले मेरी बातोंको कसे मान लें।

अब लीजिये इतिहासकी बातोंको। यहां भी हमसे यही आशा की जाती है कि हम इतिहास-पुस्तकोंमें लिखी बातोंको ही वेदवाक्य मानकर चलें। दूर क्यों जाइये, अंग्रेजी राज्यको बहुतसे अभिशाप मानते हैं और बहुतसे वरदान। अपनी-अपनी राय जो ठहरी। कवि भूषण शिवाजीको सबसे बड़ा मानते थे और मैं महाराणा प्रतापको। परीक्षामें हमसे 'त्यों मलेच्छ बंसपर सेर सिवराज हैं'–यह पंक्ति पूछी गयी थी। मैंने सब कुछ ठीक लिखकर अंतमें लिख दिया – जैसे मलेच्छोंके ऊपर महाराणा प्रताप। इसपर मुझे बहुत बुरा-भला कहा गया और मेरा मजाक उड़ाया गया। मेरा ख्याल है कि परीक्षक महाशयका यह कार्य भारतीय विधानके विरुद्ध है। भारतीय सरकार सबको अपनी-अपनी राय रखनेकी और उसे प्रकट करनेकी आजादी देती है फिर बेचारे परीक्षार्थीपर ही यह प्रतिबंध क्यों? जी चाहता है इस चीजको लेकर अखबारोंमें शोर मचा दूं और पढ़ाई बंदका आंदोलन शुरू करूं, तब इन लोगोंको आटे-दालका भाव मालूम हो जायेगा।

मेरे एक साथीने लिखा था कि महारानी लक्ष्मीबाईके पतिका देहांत हो गया और उसके एक वर्ष बाद वे विधवा हो गयीं। परीक्षकने उस बेचारेका बहुत मजाक उड़ाया। मेरी समझमें न आया कि इसमें मजाककी क्या बात थी। अपना-अपना स्वभाव ही तो है, कोई धीरे-धीरे काम करता है कोई तेजीसे। शायद रानी धीरे-धीरे काम किया करती होगी इसलिये उसे विधवा होनेमें एक वर्ष लगा। परीक्षक महाशय शायद एक महीनेमें ही विधवा बन जाते। जैसे साधारण विद्यार्थी इक्कीस बाईस वर्षकी आयुमें बी.ए. करता है पर गोखलेने सत्रह या अट्ठारह वर्षकी आयुमें ही बी.ए. कर लिया। खैर, इस बातकी मैंने गांठ बांध ली। इस बार हमसे चूड़ावतकी कहानी लिखनेके लिये कहा गया। मैंने लिखा राठौर वंशकी विधवाने महाराणाको लिखा कि मैंने आपको वर चुन लिया है, अब मेरी मान-मर्यादा आपके हाथमें है। यह बात भी उन्हें पसंद न आयी। बोले वाह, वाह, ब्याहसे पहले ही विधवा कैसे हो गयी वह? मैंने मन-ही-मन उत्तर दिया, यह भी मुश्किल है। जानते हैं कि इस पत्रके आते ही राणाने ब्याह किया फिर लड़ाई हुई और तीसरे दिन वह लड़की विधवा हो गयी। अगर मैंने भविष्य भाखते हुए तीन दिन पहले विधवा कह दिया तो बुरा क्या किया। एक ने देर कर दी तो वह गलत, मैंने जल्दीकी तो वह गलत। मानों विधवा होनेके लिये रेलके समयकी पाबंदी करनी पड़ेगी। अच्छी मुसीबत है –– आगे चलें नचामें, पीछे चलें विरामें।

इसीलिये तो कहता हूं कि परीक्षा हमारी बुद्धिको कुण्ठित करती है, हमारी मौलिकताका गला घोंटती है और हमारे साहसके पर कतर कर हमें लकीरका फकीर बनाना चाहती है। उसकी यह धांधली न जाने कबतक चलेगी।

–– रवींद्र

मगर आरामके साथ

— श्री रवींद्र

"ठाकुर रघुनाथ सिंहजी, ओ....ठाकुर रघुनाथ सिंहजी, जरा एक मिनट सुनिये"। "आह आयी मुसीबत" मैं बड़बड़ा उठा। बात यह है कि आजकल काम कुछ बढ़ गया है और मुझे सवेरे पांच बजे ही घरसे बाहर निकल जाना पड़ता है। सारे दिनका थका-मांदा अभी लौटा था और जैसे-तैसे दो कौर मुंहमें डालकर लेटा था कि किसीने दरवाजा खटखटाना शुरू किया। मैंने चुप्पी साध ली। लेकिन वह भलामानुस क्यों चुप होने लगा था। मुझे लगा मानो आज दरवाजे टूटकर रहेंगे। हारकर कहना पड़ा, "कौन है, आधी रातको, जरा सोने भी नहीं देता।" फिर आवाज आयी "अजी ठाकुर साहब, सुनिये तो जरा।"

लाचार होकर दरवाजा खोलना पड़ा। उस समय मेरा हुलिया देखकर शायद साधारण आदमी तो चौंककर भाग ही जाता। जरा सोचिये तो सही आंखोंमें खुमार भरा हो, बाल बिखरे हुए हों और पैर कहींसे कहीं पड़ रहे हों। इतना ही नहीं जब सिर गुड्डेके सिरकी तरह हिल रहा हो, आवाजमें अनख हो और एक मोटा ताजा काला शरीर अंधेरेमें आपके सामने आ जाय तो आपकी क्या हालत होगी। खैर छोड़िये इस कल्पनाको। आगन्तुकको डर वर कुछ नहीं लगा। वह शायद अपने-आपमें इतना अधिक रमा हुआ था कि उसे इधर-उधर देखनेकी फुरसत ही न थी। मैंने मोटे गलेसे कहा, क्या है? इस समय कौन आया है?

"अजी वह तो मैं हूं, ठाकुर साहब" आगन्तुकने पांव छूते हुए कहा। "आज शामको मेरा छुन्नू बाजारसे मिठाई लाने गया था। छबड़ीपर एक कागज लपटा हुआ था। मैं यूं ही देखने लगा। उसमें चीनके हमलेकी बात लिखी थी और यह भी लिखा था कि पण्डित नेहरूने अपील की है कि भारतका प्रत्येक व्यक्ति अपनी ओरसे भारत मांकी रक्षाके लिये भरसक प्रयास करे। पण्डितजीकी भाषा पढ़ते ही मेरी रगोंमें खून खौलने लगा और मैं भागा-भागा आपके यहां आया। आप हमारी बिरादरीके मुखिया हैं। आप ये सब बातें हमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। मेहरबानी करके बताइये कि मैं क्या सेवा कर सकता हूं।" वे बोलते चले जा रहे थे।

"तो यह बातचीत करनेके लिये आपको यही समय मिला। इसके लिये सोतेको जगाना कहांकी भद्रता है।" यह कहते हुए मैंने दरवाजा बंद करना चाहा। परंतु मेरे मित्र कन्हैयाजू क्या इतने सस्तेमें छोड़नेवाले थे। उन्होंने दरवाजा पकड़ लिया और अंदरको धंस आये। बोले—देखिये ठाकुर साहब, यह देशकी, भारत मांकी सुरक्षाका सवाल है। इसमें अपनी सुविधा-असुविधाका तो ख्याल ही नहीं आना चाहिये। आप हम लोगोंसे बड़े हैं, आपको तो हमारे सामने सेवाका आदर्श रखना चाहिये और आप हैं कि अपनी नींदकी ही फिक्रमें हैं। ऐसे लोगोंके कारण ही हमरा देश पिछड़ा हुआ है।"

मुझे गुस्सा तो बहुत आया। आज महीनेभरसे ऊपर हो गया है। रोज सवेरे पांच बजेसे निकल जाता हूं और रातको ग्यारह के आसपास लौटता हूं। सारे दिन रंगरूट भरती करनेके लिये जूतियां चटकाता फिरता हूं। और यह कलका छोकरा चला है मुझे देशभक्तिका पाठ पढ़ाने। खैर इस समय हमें मान अपमानसे ऊपर होना चाहिये, एक रंगरूट अपने-आप चलकर आया है तो उसके लिये थोड़ी असुविधा भी सह लेनी चाहिये। मैंने प्रेमसे कहा, ओहो यह बात है, पहले क्यों नहीं कहा कन्हैयाजू। लो बैठो, मैं जरा लालटेन जलाये देता हूं।

मैंने लालटेन जलायी, रजिस्टर निकाला और कलम दवात लेकर बैठ गया। मेरे पूछनेपर

कन्हैयाजूने अपना नाम, बापका नाम, पेशा आदि बताया। फिर मैंने पूछा, "आप किस तरहका काम करना चाहते हैं?"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"मेरा मतलब यह है कि आप बाकायदा सेनामें भरती होना चाहते हैं या अपना काम-धाम चलाते हुए कुछ समय देशके कामको देना चाहते हैं?"

कुछ समय ! क्या कहते हैं ठाकुर साहब आप भी, अजी यहां कफन बांधकर घरसे चले हैं। आपको विश्वास न हो तो मेरी घरवालीसे पूछ लीजिये। जब मैंने आपके यहां आनेकी बात कही तो सारे घरमें कुहराम मच गया। लोगोंने मान लिया कि बस मैं श्मशानके रास्तेमें हूं। छुन्नू, मुन्नू, दुलारी सबने अपने-अपने हिस्सेकी मिठाई जबरदस्ती मुझे खिलायी। देखिये न मेरे माथेपर रोली है, और अक्षतका टीका लगा है। मैंने भी सबको समझाया कि भई जीना मरना तो लगा ही रहता है, देशके लिये बलिदान हो जानेके अवसर जीवनमें रोज-रोज नहीं आते। इसलिये तुम लोग अपने आपको भाग्यवान् समझो कि मैं आज इस महान् उद्देश्यकी ओर अग्रसर हो रहा हूं। दांडी कूचके, लिये जानेसे पहले महात्माजीने अपनी पुत्रवधूसे कहा था, बेटी आजसे तू अपने-आपको विधवा समझ तेरा पति देशके लिये लड़ने जा रहा है, उसी भांति छुन्नू-मुन्नूकी मांको समझाया। इस समझाने-बुझानेमें ही तो देर हो गयी, नहीं तो मैं कबका आ गया होता।"

लेक्चर तो इतना लंबा हो गया पर कामकी बात कुछ न हुई। मैंने फिर पूछा, "तो सेनाके रंगरूटोंमें आपका नाम दर्ज कर दूं?"

"अजी साहब, जहां आपकी मरजी हो वहां लिख दीजिये, सेनामें लिखिये, समाज-कल्याणमें लिखिये, खेती के लिये लिखिये, गांव-गांव घूमकर सिनेमा दिखानेका काम दे दीजिये। जो आपको ठीक लगे वही काम दे दीजिये। पंडितजीने कहा है कि केवल सैनिक ही युद्ध नहीं कर रहे। घरपर बैठकर उत्पादन, विकास, प्रचार आदि करनेवाले भी उतना ही जरूरी काम कर रहे हैं।"

"अच्छा तो आपके सामने समयका तो प्रश्न न होगा। घरवालोंका पेट पालनेके लिये तो आपके पास खेत और बगीचे हैं ही, तो आप सारे दिन काम कर सकेंगे न?"

"हां, क्यों नहीं। लेकिन ठाकुर साहब, अब आपसे क्या छिपाना है। आप तो अपने घरके आदमी हैं। मुझे जरा बच्चोंके स्कूलकी तैयारी करवानी होती है, । मैं न रहूं तो वे आकाश पाताल एक कर देते हैं। और पढ़ाई-लिखाईकी हड़ताल हो जाती है। आखिर उनको पढ़ाना और ठीक रखना भी तो देशका ही काम है।"

"अच्छा तो आपके बच्चे कितने बजे स्कूल जाते हैं?"

"जी, दससे कुछ पहले।"

"तो आपके कामका समय दससे शामके पांचतक रख दूं।"

"जी हां, यह ठीक रहेगा। बस बच्चोंको स्कूल भेजकर मैं जरा खाना वाना खा लूंगा और फिर आपकी सेवामें। लेकिन हां, मुझे एक बुरी आदत है। दोपहरका खाना खानेके बाद थोड़ी देर आराम न करुं तो मेरे सिरमें दर्द होने लगता है और किसी काममें मन नहीं लगता। सारा दिन खराब चला जाता है।"

"अच्छा खानेके बाद प्रन्द्रह मिनट आराम करनेसे काम चल जायगा?"

"जी गजब करते हैं आप। पन्द्रह मिनट तो नींदको बुलानेमें लगते हैं और पन्द्रह मिनट आलस्य उतारनेमें। और दो घंटोंकी नींद। बस इतना काफी है।"

"तो फिर ऐसा कीजिये आप, शामके तीन से रातके दसतक हमारे दफ्तरमें ही काम कर लिया करें। यहां भी आदमीकी बहुत जरूरत है। मैं दिनभर इधर-उधर घूमता रहता हूं। दफ्तरकी

चिट्ठी-पत्रीके लिये तथा रंगरूटोंके बारेमें सारी काररवाई करनेके लिये यहां कोई नहीं है। आप इसका भार ले लीजिये।''

''जी हां, यह काम मेरे लिये बिलकुल ठीक है। इसमें तो युद्धका काम भी होगा और मरने-जीनेका भी कोई डर नहीं। आखिर पंडितजीने कहा भी है कि ये सब काम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। तो मैं तीन बजे उठकर चाय-वाय पीकर यहां हाजिर हो जाया करूंगा।''

''अच्छा तो ठीक है, तो कलसे .....''

''लेकिन एक बात तो कहना भूल गया। मुझे जरा रक्तचापकी बीमारी है। डाक्टरने कहा है, रोज दो-एक मील टहल लिया करो। तो मैं रोज पांच बजे टहलने जाया करता हूं। यह आदत बरसोंसे है। अब इसे बदलूं तो कहीं तबीयत खराब न हो जाय। बीमार आदमी देशपर भार होता है। इस संकट-कालमें हमें खास ख्याल रखना चाहिये कि हम देशपर, देशवासियोंपर भार न बनें। अगर मैं बीमार हो गया तो दवाइयां खानी पड़ेंगी, इंजेक्शन लेने पड़ेंगे, जो चीजें सेनाके लिये जानी चाहियें उनका मेरे लिये उपयोग होगा। छीः छीः, यह तो देशद्रोह होगा।''

''अच्छा, यह सब तो सुन लिया। अब यह आप बताइये कि आप खाली कब हैं और काम कब कर सकते हैं?''

''जी, मैंने कहा तो, मेरा सारा जीवन देशके लिये है। एक-एक मिनट देशपर न्यौछावर है। उसमें भी कोई सौदा थोड़े ही करना है। लेकिन एक बात और है। मेरी घरवाली जरा रंगीन तबीयतकी है। रोज सिनेमा देखे बिना उसे नींद नहीं आती। मैं उसे सिनेमा दिखाने न ले जाऊं तो नेफामें लड़ाई होनेकी जगह घरमें लड़ाई शुरू हो जायगी। हम लोग तो शांतिके दीवाने हैं। घरसे ही लड़ाई शुरू कर दी तो शांति क्या खाक करेंगे?''

''फिर?''

''फिर दस बजे सिनेमासे आकर खाना खाऊंगा और फिर सोनेके सिवाय और कोई विशेष काम नहीं है। लीजिये, मैंने अपना सारा कार्यक्रम आपके सामने रख दिया। मेरा बाकी सारा समय आपका है, आप जो सेवा चाहें और जब चाहें ले सकते हैं। हां, मेरा घर जरा दूर है। आने-जानेमें बड़ा समय लग जाता है, रास्तेमें लोग बातें करने लगते हैं। देश-सेवाके समयको इस तरह नष्ट करना तो पाप है। इसलिये आप मेहरबानी करके तांगेका इंतजाम कर दें ताकि आने-जानेमें सहूलियत रहे और मेरा सारा समय भारतमांकी सेवामें जाय।''

''और दफ्तरमें चाय, लस्सी या आइसक्रीमकी व्यवस्था हो तो .....'' मैंने व्यंग्यमें कहा।

''ओह, तब तो कहने ही क्या हैं? लोग इन्हें शौककी चीजें समझते हैं। परंतु यह बात ठीक नहीं है, इनसे कार्यक्षमता बढ़ती है। सचमुच आप जैसा समझदार अफसर हो तो ......।''

मैंने खड़े होकर लालटेन उठा ली और बोला, ''हां, और आप जैसा देशसेवक मिले तो बस बेड़ा पार है। आज्ञा दीजिये। आज ही सदर दफ्तरको मोटरके लिये लिखता हूं। आपको ले जानेके लिये ठीक व्यवस्था हो जायगी तब आपको सूचना दे दूंगा।'' राम-राम करके कन्हैयाजूसे पिण्ड छूटा। मुफ्तमें मेरी नींद हराम कर दी। घड़ी देखी तो एक बज चुका था। मेरे मुंहसे निकला —

''रंज लीडरको बहुत हैं मगर आरामके साथ।''

* * *

चापलूसीका जहरीला प्याला आपको तबतक नुकसान नहीं पहुंचा सकता जबतक कि आपके कान उसे अमृत समझकर पी न जायं।

—प्रेमचंद

बच्चोंके लिये कहानियां

किसी बच्चेको यदि कहानियोंसे वंचित रखा जाये तो मैं तो यही कहूंगी कि वह उस बच्चेकी तरह है जिसे भरपेट खाना नहीं मिलता। जी हां, कहानीका भी पढ़ाई-लिखाईके साथ बहुत महत्त्व है। बस, बात इतनी-सी है कि कई अध्यापक या बड़े समझते हैं कि बच्चा अब बड़ा हो गया है इसलिये उसे इन महत्त्वहीन कहानियोंके भ्रममें न छोड़कर खूब-खूब पढ़ाया जाये। नहीं, नहीं, बेचारेको पढ़ाईके भारसे दबा मत डालिये। बस, इतना ध्यान रखिये, अपनी पढ़ाई-लिखाईका काम नियमित समयपर सीखे और सीखनेमें दिलचस्पी ले।

मैं बिलकुल छोटे-छोटे बच्चोंकी बात कर रही हूं क्योंकि मेरा वास्ता चार-पांच सालके बच्चोंसे ही पड़ता है जो खुद नहीं पढ़ सकते। इसलिये बड़ोंका यह कर्तव्य है कि उनको कहानियां सुनाकर उनकी फरमाइश पूरी करें।

काम सीधे ढंगमें कहानी सुनानेसे ही नहीं चलेगा क्योंकि कहानी सुनाना भी एक कला है या यूं कहिये कि भगवान्‌की देन है। ऐसा न हो कि आप ऐसे नीरस ढंगसे कहानी सुनायें कि बच्चे एक-एक करके भाग उठें। उन्हें कहानी सुनाते वक्त अध्यापिकाको नाटक भी करना पड़ता है, उदाहरणके लिये, आप कह रही हैं कि एक मोटी-ताजी बिल्ली एक बेचारे छोटे-से चूहेके पीछे धीरे-धीरे बगैर आवाज किये भाग रही है। इस बातको आप एक नीरस ढंगसे कह दीजिये, देखिये, बच्चे उकताने लगेंगे। अगर उसी चीजको आपने बिल्ली बनकर उसकी तरह धीरे-धीरे कदम रखे और बेचारे निर्दोष चूहेकी तरह मुंहके भाव बनाये तो बच्चोंके सामने सारी कहानी सजीव हो जायगी और वे फटी आंखोंसे आपको देखते ही रह जायेंगे। वे भूल जायेंगे कि यह एक कहानी है, उनको बिल्ली-चूहेका सजीव वातावरण मिलेगा और वे उसमें खो जायेंगे। अपनी आवाजको कभी धीमी, कभी ऊंची कीजिये, कभी बिल्लीकी आवाज तो कभी चूहे-की-सी चुप्पी साधिये, फिर देखिये, बच्चे आपका पीछा नहीं छोड़ेंगे और एक कहानीके खतम होते-न-होते आपके पास दूसरी कहानीकी फरमाइश आ जायेगी। अगर उनकी कहानियोंकी किताबमें तस्वीरें हैं तो बच्चोंको अवश्य दिखाइये ताकि उनको कहानीमें और भी मजा आये।

चार-पांच सालके बच्चोंकी कहानियोंका विशेष ध्यान रखना उचित है। कहानी बहुत कठिन न हो और विषय भी सरल हो। कई बच्चे परियोंमें, भूतोंमें विश्वास रखते हैं। अगर ऐसा हो तो उन्हें ऐसी कहानी सुनाइये, अगर न हो तो उन्हें इन चीजोंके विश्वासमें मत ढालिये क्योंकि फिर उन्हें कहानीमें कोई सच्चाई नजर नहीं आयेगी। क्योंकि जब उनकी छोटी-सी दुनियामें परियां नहीं बसतीं तो उन्हें ठूंसना नहीं चाहिये।

बिलकुल छोटे बच्चे इन चीजोंमें विश्वास कर लेते हैं, मगर जैसे ही बच्चा बड़ा होता है वह इन परी-कथाओंके भ्रमसे निकलता जाता है। उनके लिये विशेष रूपसे ध्यान रखा जाना चाहिये क्योंकि अब वे आपके नाटकीय ढंगसे कहानी कहनेके बावजद उसमें उस सबके पीछे क्या है यह भी ढूंढ़नेका प्रयत्न करेंगे। अब उनके लिये चूहे-बिल्लीकी नन्हीं कहानियोंका महत्त्व घट जायगा। वे आपसे कुछ गंभीर चीजोंकी आशा करेंगे।

कहानी बच्चोंको सही रास्तेपर लानेमें आपकी सहायता कर सकती है। एक बच्चा हमेशा रोता है या झूठ बोलता है, उसे उपदेश देनेके बजाय आप उसे एक ऐसी कहानी सुनाइये जिसमें एक

लड़का या लड़की या कोई जानवर झूठ बोलता है या खाली छोटी-छोटी बातोंपर रोता है, उसे तरह-तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है और अंतमें वह सुधर जाता है। वह ऐसा न करनेकी कसम खाकर बहुत अच्छा बन जाता है। यह कहानी आपके बच्चेके लिये एक उदाहरण बन जायेगी और वह समझ जायगा कि ऐसा करना उचित नहीं है। एक बात मजेदार यह है कि आप बच्चेसे पूछिये कि कहानीका झूठ बोलनेवाला या रोनेवाला नायक उसे अच्छा लगा या नहीं तो वह यही कहेगा, "नहीं, वह बहुत गंदा है।" और इसी प्रकार वह यह भी समझ जायेगा कि वह भी रोनेसे या झूठ बोलनेसे गंदा कहलायेगा। इस कहानीसे उसे अपनी भूलका आभास हो जायगा। वैसे चाहे हजार बार समझानेपर भी वह समझनेका प्रयत्न न करता। अगली बार जब वह बच्चा उसी तरह व्यवहार करे तो, आप और कुछ कहे बगैर, डांट लगाये बगैर, बस, उस कहानीकी याद दिलाइये। देखिये, बच्चा खुद-ब-खुद सुधरने लगेगा।

अगर आप बच्चेको किसी निराकार चीज जैसे 'वीरता' का अर्थ समझाना चाहती हैं तो उसके नन्हें अधपके दिमागमें यूं ही मत ठूंसिये बल्कि एक कहानी सुनाइये, वह चाहे झांसीकी रानीकी हो, चाहे शिवाजीकी। फिर वह कभी इन निराकार शब्दोंके अर्थ आपसे बार-बार नहीं पूछेगा, एक कहानी ही बस होगी।

यह हुई बच्चोंको कहानी सुनानेकी बात। अगर बच्चा कुछ बड़ा है, यही कोई आठ-नौ सालका, जो अब कुछ-कुछ पढ़ना सीख रहा हो तो उसे खुद पढ़ने दीजिये जबतक वह खुद आपसे कहानी सुनानेके लिये जिद न करे। लेकिन इस प्रकारके बच्चोंका साहित्य किस प्रकारका हो यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है। बच्चोंकी किताबें बहुत ही सरल भाषामें लिखी होनी चाहियें। एक ही शब्दका बार-बार प्रयोग होनेसे बच्चेके दिमागमें वह शब्द बार-बार बजनेसे अपने-आप ही बैठ जायेगा। कहानी सुनाते वक्त भी यही ख्यालमें रहे कि भाषा कठिन न हो और एक साथ बहुत सारे शब्दोंका प्रयोग न हो जिससे बच्चेको कुछ भी याद न रहे। बच्चोंके लिये किताबोंके अक्षर काफी मोटे हों तो बहुत अच्छा है ताकि वे सरलतासे पढ़ सकें। और अगर उनकी किताबें चित्रोंसे भरपूर हों तो कहना ही क्या? उनसे नन्हें बच्चेकी दिलचस्पी और बढ़ जायगी और जो कुछ वह पढ़ रहा है वह भी सजीव होकर उसके दिमागमें जम जायेगा।

हम बड़े जिनपर बच्चोंके पढ़ानेका दायित्व है यह कभी न भूलें कि बच्चे कहानी सुनने या पढ़नेके लिये कभी बड़े नहीं होते, हर उम्रमें कहानी पढ़ी या सुनी जाती है। बस, फर्क इतना होता है कि कहानीका स्तर अलग हो जाता है।

अगर किसी बच्चेको कहानी में सबसे ज्यादा रस है तो यह समझना गलत है कि वह अपना समय नष्ट कर रहा है। पढ़ना, लिखना कब सीखेगा? उसे कहानीके साथ पढ़ने-लिखनेमें भी प्रोत्साहन दें, देखिये, नैय्या अपने-आप पार लग जायेगी। मैंने देखा है कि हमारे स्कूलमें कई बच्चे हैं जो और किसी चीजमें रस नहीं लेते, उनके हाथमें कहानीकी एक किताब थमा दी जाये जो चित्रोंसे सजी हो तो वे चुपचाप बैठे घंटों चित्रोंको देखकर कहानी बनाने और समझनेका प्रयत्न करते रहते हैं, आप चाहे कितनी ही आवाजें क्यों न दीजिये वे अपनी छोटी-सी कहानीकी दुनियामें ही गोते खाते रहते हैं।

बच्चोंको कहानी सुनानेमें कई बड़े घबराने लगते हैं कि उन्हें कोई कहानी तो आती नहीं, सुनायें क्या? बच्चोंकी किताबोंमें इतने चित्र होते हैं कि कई बार तो मैं बगैर कहानी पढ़े ही चित्रोंको देख-देखकर एक लंबी-चौड़ी कहानी गढ़ देती हूं। मगर यह कुछ हदतक ही ठीक है। कई बार कहानी पढ़कर भी सुनायी जा सकती है। अगर वह बहुत बड़ी न हो और हमारे नन्हें-मुन्ने श्रोताओंको उकता न दे।

—अंजना शर्मा

नयी कोंपलें :

मधुमय देश हमारा

—कृष्णकुमार

हमारा देश बहुत पुराना है। इस छोटेसे 'बहुत' से भारतके पुरानेपनका अन्दाजा लगाना कठिन है। कई हजार वर्षोंके इतिहासमें सैंकड़ों जातियों, संप्रदायों और राजाओंकी घटनाएं भरी पड़ी हैं। कभी अपने घोड़े दौड़ाते हुए, आदमीके खूनके प्यासे चंगेज खां और नादिरशाह यहां आये और इस उजली-सी धरतीको तहस-नहस कर गये; कभी अशोक जैसे शासक, जिसका हृदय आदमियोंकी लाशोंको देखकर अनजाने ही बदल गया और कभी औरंगजेब जैसे असहिष्णु इस देशकी हुकूमत संभाले रहे। मुहम्मदशाहने कोहेनूरको अपनी पगड़ीमें छिपाया था। मगर कोहेनूर बच न सका। हीरेकी कनी समुद्रों-पार रहनेवालेको यहां खींच लायी। समय आया और वे भी गये और आज फिर हम भारतीय अपनी ही धरतीपर खड़े हैं।

आज वही 'सुजला, सुफला, शस्य श्यामला' धरती हमारा घर बनी है। गंगा वैसी ही बही चली जा रही है, अबाध गतिसे, सबेरेकी धूपमें 'उछलती कूदती' और 'संध्याके गंभीर सायेमें शांत-सी'। अबतक अनगिनत लोग इस गंगामें स्नान कर अपने-आपको पवित्र बना चुके हैं। "असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गंधर्व आये, न जाने कितनी मानव जातियां यहां आयीं और आजके भारतवर्षको बनानेमें अपना हाथ लगाती गयीं" (ह. प्र. द्विवेदी)। करोड़ोंकी भीड़ गुजरती गयी; किसीने इस धरतीको उजाड़ा और किसीने संवारा। कबीरने एक महान् युग-द्रष्टाकी भांति भारतकी इस विचित्रताकी अत्यंत सुन्दर अभिव्यक्ति की है:—

"इक जंगम, इक जटाधार, इक अंगविभूति करै अपार।
इक मनियर, इक मनहुं लीन, एक होत होत ह्वै जाहिं खीन।।
इक कुल देव्यांको जपहिं जाप, त्रिभुवन पति भूलें विविध ताप।।
इक पढ़हिं पाठ, इक घूमहिं उदास, इक नगन निरंतर रहैं निवास।।"

कुरुक्षेत्रके लाल मैदान आज भी फैले हैं जहां कभी पांडवों और कौरवोंकी तलवारें अट्ठारह दिनोंतक खनखनायी थीं। उज्ज्वलताका प्रतीक ताजमहल हजारों दर्शकोंका मोहक स्थल बना हुआ खड़ा है। कन्याकुमारीका सूरज रोज उसी मादक अदाके साथ डूबता है। इलाहाबादमें गंगाके तटपर पतले कपड़ेकी लाल-पीली झंडियोंको फहराते कितना अरसा बीत गया।

हम उसी धरतीपर खड़े हैं जहां सवेरेसे उषा अपने सुनहले घड़ेको लेकर सुख और मंगलका अमृत बिखेरती है। वही शाम होती है, लाल बादलोंवाली शांत और गंभीर। मगर सुबह और शामके बाद ?

हमारा संसार इतना कठिन बन चुका है कि सुबह और शामकी लालिमा अपना काम चुपचाप कर रूठी-सी चली जाती है। नियोन ट्यूबोंसे जगमगाते बाजारोंमें आकाश-गंगाका पता भी नहीं लगता। लोग पागल होकर शोर मचाते हैं, होटलोंमें घुसते हैं, शराब पीते हैं और बेसुध होकर रात बिता देते हैं।

पर यह तो भारत नहीं है। आज भी कई जगहोंपर जाड़ेकी रातोंमें आगके चारों तरफ लोग

मधुर भावसे आपबीती सुनाते हैं। अभी तो कहीं कुछ नहीं बिगड़ा है। मेरा देश उसी मस्तीसे हंस रहा है, गा रहा है, भोलेपनसे बच्चोंकी तरह उछल-कूद मचा रहा है। और मैं खड़ा भविष्यमें आनेवाले ज्योतिपुंजकी राह देख रहा हूं जो मेरे देशमें छाये हुए अंधकारको हमेशाके लिये दूर कर दे और सत्य तथा प्रेमका राज्य ले आये।

मिथिलाके बीरबल, गोनू झा

गोनू झा पंडितजीके नामसे ज्यादा मशहूर थे। ये राजाके दरबारमें रहते थे इसलिये चोरोंको पक्का विश्वास था कि इनके घरमें बहुत धन है। लेकिन जब वे चोरी करने आते तो निराशा ही हाथ लगती। एक रात कुछ चोर उनके घरमें आ धमके। पंडितजीको इसकी आहट मिल गयी। झट उन्होंने अपनी सोयी हुई पत्नीसे कहा, "कैसी है तुम्हारी नींद, कीमती चीजोंको भी बाहर छोड़ देती हो।" नींदमें ही पत्नीने कहा, कौन-सी वस्तु बाहर रह गयी है? पंडितजीने कहा, 'बिनौले; तुम कभी बाहर जाती ही नहीं हो तुम्हें क्या मालूम आजकल बिनौले भी सोनेके भाव बिकने लगे हैं। सुनो, सौ रुपये तोलेका भाव है। दो छटांक भी हों तो पूरे एक हजारके।" "अरे! तब तो मैं लुट गयी, सेर भर बिनौलोंसे कुछ कम नहीं होंगे, ऊपर ही रखे हैं। जाओ, आप ही ले आओ न। गोनू झाने कहा, "अच्छा दीया जलाओ।" पत्नी जबतक दीया जलाती रही तबतक चोर बिनौले लेकर भाग खड़े हुए।

दूसरे दिन गोनू झा बाजारमें घूमने गये। देखा, कुछ लोग बिनौले लिये खड़े हैं। गोनू झाने भाव पूछा। एकने कहा, १०० रुपये तोला। पंडितजीने कहा, 'अरे, वह तो रातका भाव था, मैं अभी-का भाव पूछ रहा हूं। इतना सुनना था कि सभी चोर भाग खड़े हुए।

सभी दरबारी गोनू झासे जलते थे। इसलिये उन्होंने एक काने पंडितकी तारीफ राजासे की और उसे दरबारमें रखवा दिया। एक दिन राजाने उससे उसके काने होनेका कारण पूछा, तो कानेने जबाब दिया, "सरकार, एक बार बड़ी तंगी आ गयी थी तभी पिताजीकी मृत्यु हो गयी। श्राद्ध कर्मके लिये मैंने गोनू झासे कर्ज लिया। मगर जब मैं कर्ज न चुका सका तो इन्होंने मेरी एक आंख गिरवी-के तौरपर मांग ली। इसीसे सरकार मैं काना हूं। अब सरकार, मैं कर्ज देनेके लिये तैयार हूं।" गोनू झा मान गये कि अगर ये मेरा कर्ज लौटा दें तो मैं आंख वापिस कर दूंगा। दूसरे दिन गोनू झा एक पेटीमें बहुत-सी आंखें लिये हुए आये, पहले उन्होंने पैसा लिया और फिर कहा, 'इन आंखोंमेंसे अपनी आंख निकाल लीजिये।' पंडित इतनी आंखें देखकर घबड़ा गया और बोला, इनमें मेरी आंख नहीं है। गोनू झाने कहा "कैसे नहीं है? आप अपनी दूसरी आंख निकालिये, मैं अभी उसीके बराबर-वाली निकाल देता हूं।" "मैं दूसरी आंख कैसे निकाल सकता हूं?" पंडितजीने पूछा। "जैसे पहली आंख गिरवी रखनेके लिये निकाली थी।" यह सुनते ही राजा सब समझ गया और उसने उसी समय कानेको दरबारसे निकाल दिया।

— अरविंद

फ्रैंच सीखिये

(उच्चारण)

स्वरोंके ऊपर प्रयोग होनेवाले चिह्न accents (आक्सां)

स्वरोंके ऊपर तीन प्रकारके चिह्नोंका प्रयोग किया जाता है जिनसे स्वरकी ध्वनिमें अंतर पड़ जाता है :

१. ‘`’ aceent grave (आक्सां ग्राव)
२. ‘´’ accent aigu (आक्सां तेग्यू)

३. ‘^’ accent circonflexe (आक्सां सिरकोंफ्लैक्स)

à (आ) — à (आ) को; à la poule (आ ला पूल) मुर्गीको
â (आ....) — la pâte (ला पात) लेई
è (ऐ) — हिंदीके शब्दके ऐनक समान la crème (ला क्रैम) क्रीम
é (ए) — le marché (ल मार्शे) बाजार
ê (ऐ) — la fenêtre (ला फनैत्र) खिड़की
î (ई) — une île (यून ईल), एक द्वीप
ô (ओ) — le trône (ल त्रोन) सिंहासन
û (यू) — sûr (स्यूर) निश्चित

अनुनासिक स्वर Voyelles nasales (वोआइअॅल नाज़ाल)

an (आँ) — le banc (ल बाँ) बैंच
in, ain, ein (ऐँ) — le lapin (ल लापैँ) खरगोश, la main (ला मैँ) हाथ, plein (प्लैँ) भरा हुआ
en (आँ) — la tente (ला ताँत) डेरा
on (औँ) — on (औँ) कोई, le savon (ल सावौँ) साबुन
un (अँ) — un (अँ) एक, brun (ब्रँ) भूरा

अन्तःस्थ Semi-voyelles (सैमी वोआइअॅल)

ille — la fille (ला फीय्) लड़की
eil — le soleil (ल सोलेईय्) सूर्य
aill — le **tailleur** (ल ताइअर्) दर्जी

नोट — (१) 'h' muet (आश् म्यूए) — शब्दके आरंभमें आनेपर h का उच्चारण अनेक स्थलोंपर नहीं होता है वरन् वे शब्द स्वरसे आरंभ होने वाले शब्दोंकी तरह बोले जाते हैं। उच्चरित स्थानोंपर भी h की ध्वनि हल्की-सी ही निकलती है।

(२) le और la के स्वरों का लोप हो जाता है जब वे h (muet) या स्वरसे आरंभ होनेवाले शब्दोंके पूर्व आते हैं और उनके स्थानपर (') l'apostrophe (लापास्त्रॉफ) चिह्नका प्रयोग किया जाता है। यथा —

l'école (लेकॉल) स्कूल, l'ami (लामी) मित्र,
l'homme (लोम) आदमी, l'eau (लो) पानी

सन्धि liaison (लिएजौं)

किसी व्यंजनसे समाप्त होनेवाला शब्द जब स्वर या h muet से आरंभ होनेवाले शब्दके पूर्व आता है तो दोनों शब्दोंका उच्चारण एक शब्दकी तरह किया जाता है।

un homme (अँनौम) एक आदमी, un ami (अँनामी) एक मित्र

un arbre (अँनार्ब्र) एक पेड़, un hôtel (अँनोतल) एक होटल

नोट — शब्दके अंतिम व्यंजनका उच्चारण प्रायः नहीं किया जाता है।

le chat (ल शा) बिल्ली, le nid (ल नि) घोंसला,
le bois (ल बोआ) जंगल या लकड़ी le pied (ल पिए) पैर

नोट — le tréma (¨) (ल त्रेमा) स्वरके ऊपर दो बिंदु le tréma लगानेपर यह बोध होता है कि इस स्वरके पूर्व आनेवाले स्वरका उच्चारण अलग होगा —

le noël (ल नौयैल)

th — त् उच्चारणमें हल्का-सा थ् का मिश्रण है।

ti — जब tial, tiel, tience, tieux, tion ये ध्वनियां किसी शब्दके अंतमें आती हैं तब ti का उच्चारण 'सी' होता है —

partial (पार्सिआल्) पक्षपाती, partiel (पार्सिअॅल) आंशिक,
la patience (ला पासिआंस) धैर्य, ambitieux (आँबीसिअ) महत्त्वाकांक्षी
l'aristocratie (लारिस्तोक्रासी) कुलीन समाज, la méditation (ला मेदीतासिऔं) ध्यान

शब्दके अंतमें आनेपर ien, ier का उच्चारण क्रमशः 'इएं' और 'इए' होता है —

le papier (ल पापिए) कागज, le chien (ल शिऐं) कुत्ता

Phone No. 33-6927

DINDAYAL RAMRUP

(Registered stock holder of Iron & Steel)

BHAGWATI STEEL PRIVATE LTD.

(Mfg. of Rounds & Flats)

15/1, SOVARAM BASACK STREET
CALCUTTA-7

सब प्रकार के मोटर पार्टों के विक्रेता

नेशनल आटोमोबिल्स

३, प्रिन्सेप स्ट्रीट
कलकत्ता १३.

फोन—२३२९३३
२३९८२२
२३६५३९

तार—नेशनओटो

BEHAR COLD STORAGE PR. LIMITED

7 CANNING STREET,
CALCUTTA-1

Cold Storage: We have got cold storage at Patna City (Behar) for potatoes and potato seeds. We store potatoes on rent also.

Printing jobs: We have a well-equipped press section for printing jobs.

Managing Agents:
JHUNJHUNWALA BROTHERS

पुस्तक-परिचय

प्रेम और मृत्यु : ले. श्रीअरविंद; प्र. श्रीअरविंद सोसाइटी, पांडिचेरी २; मूल्य २.२५।

७२ पृष्ठकी इस पुस्तकमें पुरोधामें प्रकाशित जगन्नाथका रथ, स्वप्न, विदुला, बाजीप्रभु और प्रेम और मृत्युको पुस्तकका आकार दिया गया है। इनमें आदर्श समाज, भक्ति, वीरता और विजयी प्रेम संबंधी कहानियां हैं। आजकलके निराशाभरे वातावरणमें इस पुस्तकका पढ़ना हर व्यक्तिके लिये आवश्यक और लाभप्रद है। पुस्तकमें बहुतसे चित्र भी दिये गये हैं।

बोलती तस्वीरें : ले. कृष्णा हठीसिंग; प्र. सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली; मूल्य ३.५०।

भारतके स्वाधीनता संग्रामके समय अभिजात कुलके अनेकानेक व्यक्तियोंको जेल-यात्रा करनेका अवसर मिला था। वहां उन लोगोंने एक नयी ही दुनिया देखी। बड़े-बड़े अपराधी, क्रूर और हत्यारे कहानेवालोंको नजदीकसे देखनेका अवसर मिला और उन्हों ने देखा कि इनके बाह्य आवरणके पीछे कोई और ही व्यक्तित्व छिपा था। परिस्थितियोंने अत्यंत सहृदय लोगोंसे क्रूरतापूर्ण काम करवा दिये और परिणामस्वरूप उनका सारा जीवन जेलकी चार दीवारीके अर्पित हो गया जहां वे सुधरने-की जगह बिगड़ते गये। इस पुस्तकमें पं. नेहरूकी बहन कृष्णाने अपने जेलके अनुभवके आधारपर कुछ घटनाएं लिखी हैं। इसे पढ़कर हमारे समाजकी न्याय व्यवस्थाको बदलनेकी आवश्यकता साकार हो उठती है। रामकली, लक्ष्मी, मीना आदि बार-बार हमारी दण्ड व्यवस्थाकी ओर ध्यान खींचती हैं।

प्रेम और प्रकाश : ले. आंद्रे जीद; प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली; मूल्य २.००।

आंद्रे जीदका उपन्यास पास्टोरल सिम्फनी संसारभरमें प्रसिद्ध है। प्रेम और सहानुभूतिके द्वारा अक्षम कहानेवाले अपाहिजोंमें भी क्या चमत्कारपूर्ण परिवर्तन लाये जा सकते हैं यह इसमें बड़ी अच्छी तरह चित्रित किया गया है। इसके अनुवादकके रूपमें हम यशपालजीकी सुपुत्री अन्नदाका स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि यह तो अभी श्रीगणेश है।

जीवन-क्रांतिकी दिशा : ले. सेठ गोविंददास; प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली; मूल्य २.०

आचार्य रजनीश हमारे कालके उन सुलझे हुए विचारकोंमें से हैं जो जीवनकी गहराईमें जानेका प्रयास करते हैं। १९६३ में सेठ गोविंददासके जवान बेटेका देहान्त हुआ तो उस आघातको सहना उनके लिये असंभव-सा हो गया। उन दिनों उन्होंने आचार्य रजनीशसे भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक और सामाजिक विषयोंपर बातचीत की थी जिससे उन्हें कुछ शांति प्राप्त हुई। उसी बातचीतको सेठजीने निबन्धोंके रूपमें हमारे आगे रखा है। विषयोंमें धर्म और संप्रदाय, आदर्श और यथार्थ, मनुष्यका भविष्य, भौतिकवाद और आध्यात्मिकता आदि पढ़ने और मनन करने योग्य है।

शिक्षा-सिद्धांत : ले. उमाशंकर श्रीवास्तव, प्रकाशक हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, मूल्य ५.०

शिक्षा देशकी सबसे बड़ी आवश्यकताओंमेंसे है। देशके भविष्यका बनाना या बिगाड़ना इसीके हाथमें है। प्रस्तुत पुस्तकमें शिक्षाके आधुनिक रूपपर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला गया है। पुस्तकमें जितना कहा गया है वह बहुत उपयोगी है पर एक चीज खटकती है। भारतवासियोंका स्वभाव है 'घरको जोगी जोगना, आन गांवको सिद्ध'। पुस्तक पढ़नेसे यह नहीं मालूम होता कि भारत भी इस क्षेत्रमें कुछ दे सकता है। श्रीअरविंदकी क्रांतिकारी पद्धतिकी ओर लेखकका ध्यान ही नहीं गया है। हालांकि इस विषयमें प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

बेसिक हिंदी : ले. बदरीनाथ कपूर; प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली; मूल्य ४.००।

आजकल हिंदीका प्रचार बढ़ रहा है। बच्चे तो विद्यालयमें जाकर सीख लेते हैं पर बड़ोंके लिये उपयुक्त पुस्तकें कम ही हैं। अंग्रेजीके माध्यमसे हिंदी सीखनेवालोंके लिये कपूरजीकी पुस्तक बहुत उपयोगी हो सकती है। व्याकरणके केवल २७ नियम देकर कपूरजीने नौसिखियोंका काम काफी सरल कर दिया है। इसी तरहकी पुस्तकें अन्य भाषाओंके माध्यमसे भी तैयार की जा सकें तो बहुत अच्छा हो।

M 8127
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

It is the Divine Presence that gives value to life. This Presence is the source of all peace, all joy, all security. Find this Presence in yourself and all your difficulties will disappear.

With my blessings

भगवान्की उपस्थिति ही जीवनको मूल्य देती है।
यही सत्ता समस्त शक्ति, समस्त आनंद, समस्त सुरक्षाका स्रोत है।
अपने अंदर इस सत्ताको खोज लो और तुम्हारी सब कठिनाइयां गायब हो जायेंगी।

-- श्रीमां

प्रबोधा

किशोर मासिक

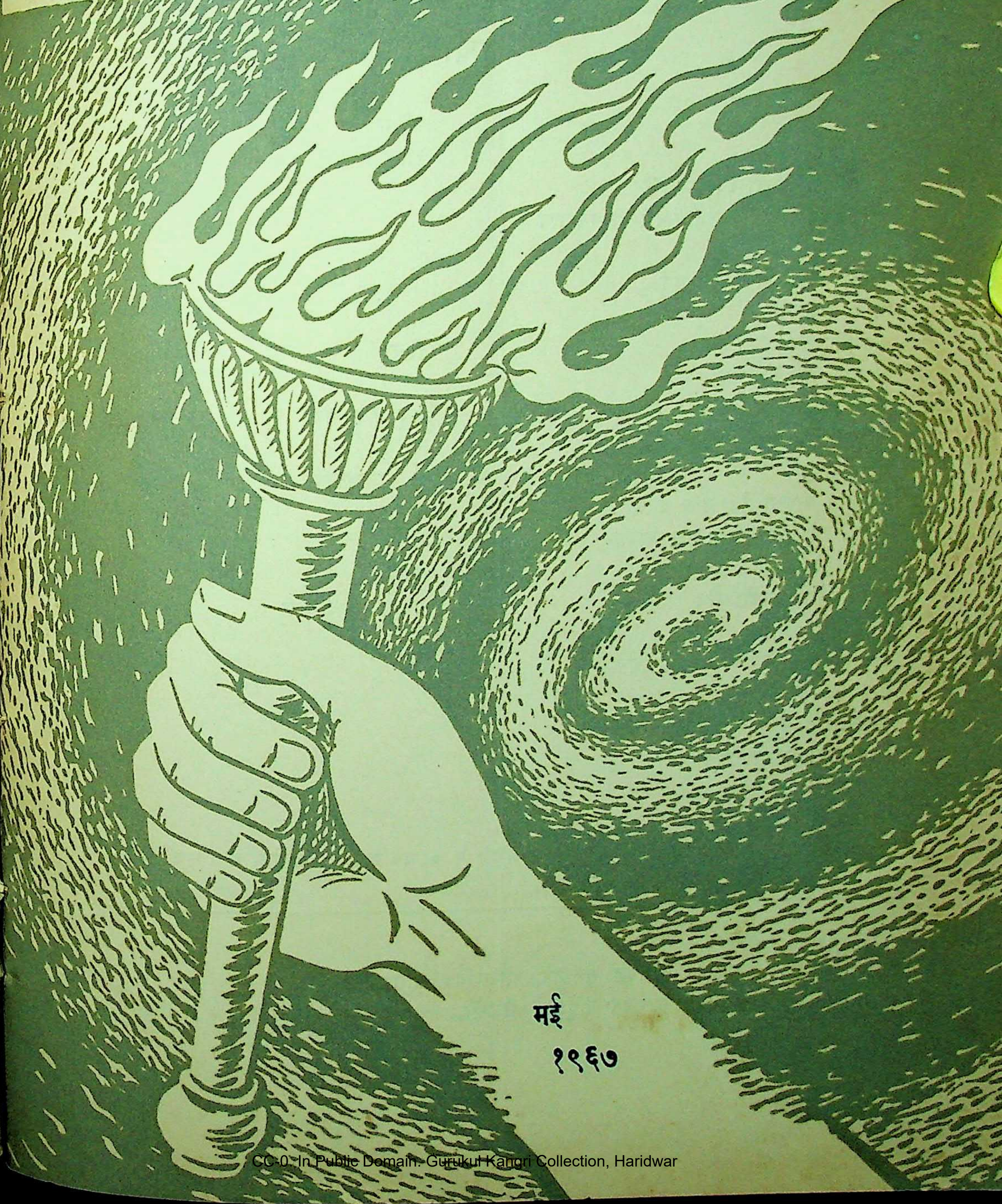

मई

१९६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात,
ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ मई १९६७ अंक ९

सूची

प्रार्थना	श्रीमां	१
कृष्ण (कविता)	श्रीअरविंद	२
संपादकीय : श्रीअरविंद शताब्दी		३
श्रीअरविंद-वाणी : भारतीय-मुस्लिम स्थापत्य		५
धन		५
श्रीमातृवाणी : योग और धर्म		६
गहरे पानी पैठि :		
सैत्यकी ओर	रवीन्द्र	९
प्रार्थना और अभीप्सा		११
कबीर	अनुबेन पुराणी	१३
भारतमें स्त्रियां	रवीन्द्र	१९
दीर्घ जीवन	पं. सातवळेकर	२१
इतिहास बोलता है : जान द आर्क	अरुणा	२३
विद्यालयमें नन्हा-मुन्ना : कुछ आदतें	अंजना शर्मा	२८
लिपिकी खोजमें	रवीन्द्र	३०
व्रजभारती : करवा चौथ	उमाशंकर दीक्षित	३३
नलनीलका वंशज		३४
लक्ष्मीप्रसादजी बोले — आकाशगंगासे		३५
फ्रेंच सीखिये		३७
पुस्तक-परिचय		
चित्र : असतो मा सद्‌गमय		

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य :** एक अंक : रु. ०. ६० न.पै. **वार्षिक चंदा :** रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

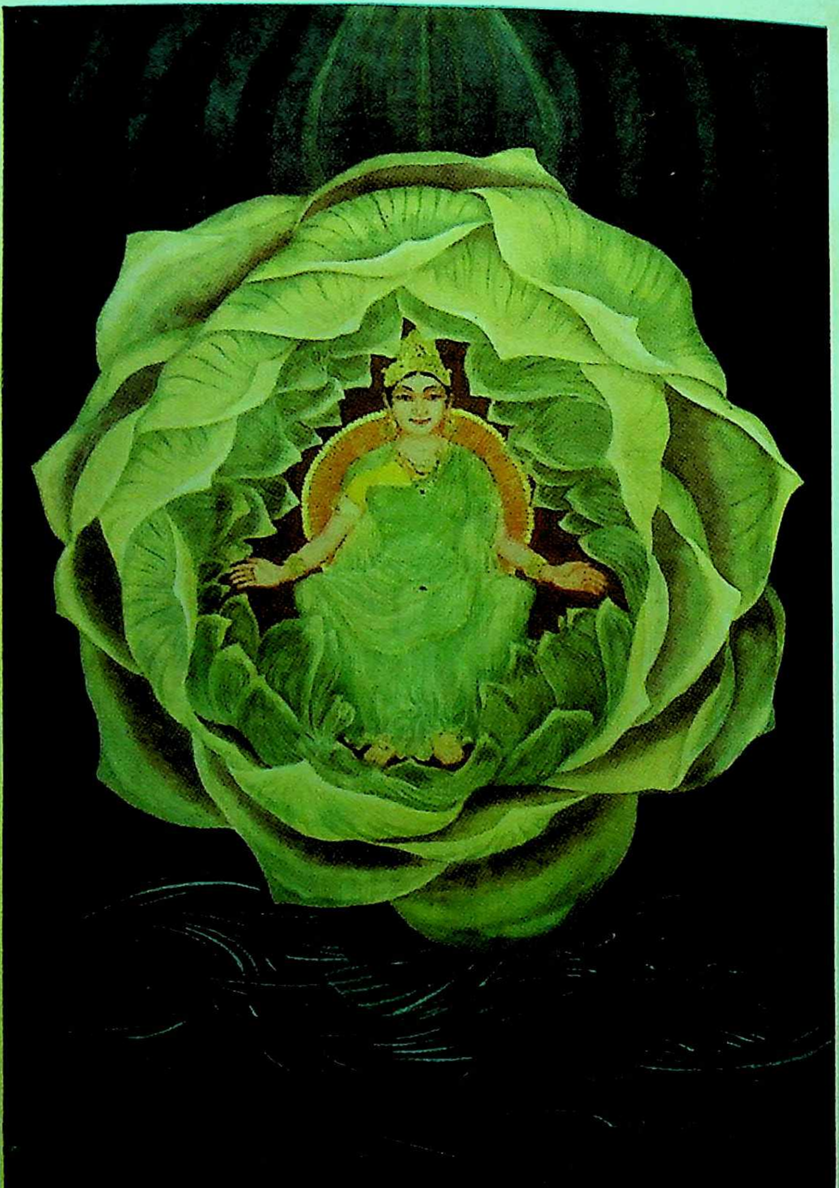

प्रार्थना

ऊपरी सतहपर तूफान है, समुद्र विक्षुब्ध है, लहरें संघर्ष कर रही हैं, एक-दूसरेपर आक्रमण करती और भीषण गर्जनके साथ भंग हो रही हैं और इस क्रुद्ध जलके नीचे सर्वदा विशाल प्रसारताएं विद्यमान हैं जो स्थिर, प्रशांत और हास्यपूर्ण हैं; वे ऊपरी सतहके इस आंदोलनको एक अनिवार्य क्रियाके रूपमें देखती हैं; यह आवश्यक है कि जड़-तत्त्वका कठोरतापूर्वक मंथन किया जाय जिसमें कि वह भागवत ज्योतिको संपूर्ण रूपमें व्यक्त करनेके योग्य बने। विक्षुब्ध बाह्य रूपके पीछे, द्वंद्व और दारुण संघर्षके पीछे चेतना अपने स्थानपर दृढ़तापूर्वक अवस्थित है, बाह्य सत्ताकी सभी गतियोंका निरीक्षण करती है, केवल उनकी दिशामें, उनकी स्थितिमें संशोधन करनेके लिये हस्तक्षेप करती है जिसमें कि उनका खेल अत्यंत नाटकी ढंगका न हो जाय। और यह हस्तक्षेप कभी सुदृढ़ और थोड़ा-सा कठोर तो होता है, कभी व्यंगपूर्ण, समुचित स्थितिमें आनेकी एक पुकार अथवा एक उपहास तो होता है, पर वह सर्वदा एक प्रबल, मधुर, प्रशांत और हास्यपूर्ण करुणासे भरपूर होता है।

निश्चल-नीरवताके अंदर मैंने देखा तेरा अनंत और शाश्वत आनंद।

फिर अब भी अंधकार और संघर्षमें पड़ी हुई वस्तुकी यह प्रार्थना धीरे-धीरे तेरी ओर उठ रही है : "हे परमप्रिय स्वामी, हे परम प्रकाशदायक, चरम शुद्धिदाता, ऐसी कृपा कर कि समस्त उपादान और समस्त क्रियाकलाप एकमात्र तेरे दिव्यप्रेम और तेरे सर्वोच्च आत्मप्रसादकी ही सतत अभिव्यक्ति हों।"

और मेरे हृदयमें हो रहा है तेरी महान् महिमाका स्तवगान।

—श्रीमां

कृष्ण

विकट-मधुर इस मर्त्यलोकमें
जन्म लिया क्यों आत्माने
आखिर इसका रहस्य इकदिन
बरबस जान लिया मैंने,

क्योंकि हो गया मेरा भू के
भूखे उरसे एकाकार,——
कृष्ण-चरणकी लगन लिये जो
बढ़ा जा रहा दिवके पार।

देखी उन अमर्त्य नयनों की
मैंने लीला सुन्दरता,
और सुनी है प्रेमी-वंशी
की मैंने रागोन्मत्ता,

एक अमर हर्षातिरेककी
सिहरनने अभिभूत किया,
औ' अन्तरके सब दुख-सुखने
सदा सदाको मौन लिया।

निकट निकटतर अब मेरे
वंशीध्वनि बढ़ती आती,
एक विचित्र सुखातिरेकसे
प्राणशक्ति सिहरी जाती,

प्रियके स्पर्श और आलिंगन
औ' सन्निधि-आकर्षणमें,
सकल प्रकृति है बनी ठगी-सी
इक विशाल सम्मोहनमें।

इसी एक क्षणके हित जीता
आया है सब बीता 'काल'
जगती सिहर उठी है मुझमें
आखिर बन परिपूर्ण निहाल।

——श्रीअरविंद

——अनु. रामकृष्ण

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

श्रीअरविंद शताब्दी

श्रीअरविन्दका जन्म-दिन संसारके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने केवल अपने देश या जातिके लिये ही नहीं सारे संसारको बदलनेके लिये कार्य किया और अब भी कर रहे हैं। उन्होंने जिन चीजोंके स्वप्न लिये थे उनमेंसे बहुत-सी अपने प्रारंभिक रूपमें चरितार्थ हो रही हैं। शायद राजनीतिक लोगोंमें सबसे पहले उन्होंने ही भारतके लिये पूर्ण स्वाधीनताकी मांग की थी। उन्होंने ही बताया कि भारतकी स्वाधीनता सारे संसारके हितके लिये जरूरी है। और हमने देखा कि भारतके स्वाधीन होते ही संसारमें स्वाधीनताकी लहर आ गयी और साम्राज्यवाद लुप्त हो गया। आज संसार भरमें लोग भारतकी ओर बड़ी आशासे देख रहे हैं।

श्रीअरविन्दने क्रिप्स प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा था कि इसे स्वीकार कर लेनेसे देश बटवारे तथा अन्य कई विपदाओंसे बच जायगा परंतु देशने उनकी बात सुनी-अनसुनी कर दी और उसका परिणाम हमारे सामने है। चीनके आक्रमणसे बहुत पहले उन्होंने तर्क संगत ढंगसे उसकी संभावना हमारे सामने रख दी थी। हमने उसपर कान न दिया यह और बात है।

श्रीअरविन्दने हमें बताया है कि मनुष्य ही सृष्टिके विकासक्रममें अंतिम सीमा नहीं है। उनके अनुसार जैसे वनस्पतिसे पशु और पशुसे मनुष्य विकसित हुआ उसी प्रकार अब समय आ गया है कि संसारमें मनुष्यसे ऊपरकी अतिमानव योनि प्रकट हो। लेकिन यहांपर क्रम थोड़ा बदलता है। प्रकृतिने अपने-आप ही वनस्पति और पशुके ऊंचे-ऊंचे स्तरोंको पैदा किया था परंतु मनुष्यको यह सौभाग्य दिया गया है कि सचेतन रूपसे अपनी प्रगतिमें भाग ले सके। मानव प्रगतिकी सीमा बहुत दूर-दूरतक जाती है परंतु फिर भी सीमा तो है ही। वह अपने तर्क, बुद्धि और विवेकके द्वारा जो कुछ पा सकता था उसे पा चुका है परंतु फिर भी वह शांति, सामंजस्य, संतुलनसे उतनी ही दूर है जितना उसके पूर्वज। श्रीअरविन्दने हमें बताया है कि अब ऊपरी लीपा-पोतीसे काम न चलेगा। अब जरूरत इस बातकी है कि उसके हृदयमें, उसकी चालक शक्तिके रूपमें अहंकारकी जगह भगवान्‌की प्रतिष्ठा हो। और केवल इतना ही नहीं वही भगवान् हमारी छोटीसे छोटी और बड़ीसे बड़ी क्रिया करें। हमारा सच्चा 'स्व' जागे और प्रेम, ज्ञान और ज्योतिके ताने बानेसे एक नयी सृष्टि खड़ी हो।

श्रीअरविंदने किसी भी क्षेत्रको अछूता नहीं छोड़ा है। आदर्श समाजका चित्र खींचते हुए उन्होंने बताया है कि उसमें हर व्यक्तिको पूर्ण स्वाधीनता होगी, व्यक्ति और समष्टिमें किसी प्रकारकी रगड़ न होगी। मानो सागरकी प्रत्येक बूंद अपने-आपमें पूरी तरह स्वतंत्र होते हुए एक अतल सागरका निर्माण करेगी। श्रीअरविंदके समाजमें कुछ ऐसा सौंदर्य है कि उसमें हरएकको अपने इष्टकी झलक दिखायी देगी। उसमें राजतंत्र, समाजवाद, अराजकतावाद आदि सभीके सच्चे स्वरूपोंकी झांकी

मिलेगी क्योंकि इन सबमें सत्यका एक पहलू छिपा है। श्रीअरविंदकी दृष्टिमें इन सबका सामंजस्य है और उसके अतिरिक्त कुछ और भी। इसका एक छोटा-सा कच्चा खाका श्रीअरविंदकी प्रयोगशाला — उनके आश्रम — में देखा जा सकता है जहां जीवनके किसी तत्त्वका बहिष्कार नहीं है और एक अद्भुत रूपसे परस्पर विरोधी दीखनेवाले तत्त्वोंका सामंजस्य करनेका प्रयास किया जा रहा है।

श्रीअरविंदने शिक्षा-दीक्षा, व्यापार-वाणिज्य, उद्योग-धंधे, राजनीति, अर्थनीति आदि जीवनके सभी कार्य चलानेके लिये एक नयी दृष्टि दी है। जहां उनकी दृष्टिको लेकर काम करनेवाला प्रधान मंत्री कहीं अधिक अच्छा प्रधान मंत्री बन सकेगा वहां उनकी दृष्टिसे काम लेनेवाला मोची अधिक अच्छा मोची बन सकेगा। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रको उन्होंने एक नया मार्ग दिखाया है और उसके प्रभावसे समग्र मानव जीवन अनुपम रूप धारण कर सकेगा। श्रीअरविंद केवल शिक्षा देकर नहीं रह गये। वे आज भी मानव जातिको सत्य, प्रेम और ज्योतिकी इस दिशामें ले जानेके लिये यत्नशील हैं।

इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए और श्रीअरविंदके कामको वेगसे आगे बढ़ानेके उद्देश्यसे श्रीअरविंद सोसायटीने १९७२ में श्रीअरविंदकी जन्म शताब्दी मनानेका निश्चय किया है जिसके लिये श्रीमाताजीने अनुमति दे दी है। सोसायटी इस शताब्दीको केवल एक समारोहके रूपमें नहीं मनाना चाहती। उसकी इच्छा है कि श्रीअरविंदका हरएक अनुयायी अपने जीवनमें उनकी शिक्षाको उतारनेका महत्त्वपूर्ण कार्य करे। जैसा हमने ऊपर कहा श्रीअरविंदका कार्य सारे जगत्को अपने अंदर समेट लेता है, कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहने पाता इसलिये जिस व्यक्तिको जिस काममें रुचि हो वह उस कामके क्षेत्रमें श्रीअरविंदकी शिक्षाको पहुंचाने तथा उसका ज्वलंत उदाहरण बननेका प्रयास करे। हममेंसे हरएकका यह कर्तव्य है कि श्रीअरविंदके संदेशको अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुंचायें।

सोसायटीकी इच्छा है कि विद्यालयों, कारखानों तथा हर प्रकारकी सभा-सोसायटियोंमें भी श्रीअरविंदकी शताब्दी मनायी जाये। कोई भी क्षेत्र अछूता न रहने पाये। इस उत्सवमें सरकार और विरोधी दल, कांग्रेस और कम्यूनिस्टका भेद न किया जाये। शताब्दी मनानेके लिये एक मनवाले लोग जगह-जगह क्षेत्र-क्षेत्रमें इकट्ठे होकर अपनी रुचि और क्षमताके अनुसार कार्यक्रम बना लें तथा उसकी सूचना सोसायटीके केंद्रको भी देते रहें।

हमारा विचार है कि १९७२ तक श्रीअरविंद साहित्यको संसारकी सभी मुख्य भाषाओंमें उपलब्ध किया जाये। इस सिलसिलेमें हमने सोचा है कि पुरोधामें प्रत्येक बार कुछ ऐसी सामग्री देंगे जिसे श्रीअरविंद मार्गपर चलनेका प्रयास करनेवालोंकी बैठकोंमें पढ़ा जा सके। इसके लिये प्रारंभिक कार्यक्रम यह है कि इस दिशामें रुचि रखनेवाले एक साथ मिल बैठें (वे चाहे सौ हों चाहे दो) और व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यकी एक योजना बना लें और फिर गंभीरतासे उसे कार्यान्वित करनेका प्रयास करें। जिन लोगोंको इस दिशामें रस हो वे अपनी बैठकमें श्रीमाताजीकी प्रार्थना पढ़ सकते हैं जो हर बार पुरोधामें छपा करती है। उसके बाद पुरोधामें छपे हुए साधना-विषयक लेखको पढ़ा जा सकता है और उसके बाद कुछ मिनट ध्यान हो। यहां इस बातपर पूरा जोर रहे कि इस प्रकारकी बैठकोंमें फालतू बातों, गप्पों आदिके लिये अथवा आत्मप्रदर्शन करनेकी वृत्तिके लिये कोई स्थान न हो। केवल एक ही लक्ष्य हो कि श्रीअरविंदकी सहायतासे अपने जीवनको तथा देशके जीवनको ऊपर उठानेके प्रयास किये जायें। इन बैठकोंमें कोई सांप्रदायिक भावना न आने पाये। इनके द्वार हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई — हरएकका स्वागत करें।

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी इस दिशामें दिये गये सुझावोंका स्वागत करेगी और इस दिशामें किये गये प्रयासोंकी जानकारी पाना चाहेगी।

श्रीअरविंद-वाणी

भारतीय मुस्लिम स्थापत्य

एक शब्द भारत-मुस्लिम स्थापत्यके विषयमें भी कह दें.... मुझे तो यह लगता है कि यहां भारतीय मनने अरबी और फारसी कल्पनासे बहुत कुछ लिया है और कुछ मस्जिदों तथा मकबरोंमें तो मुझे दृढ़ और साहसी अफगानी एवं मुगल स्वभावकी छाप विद्यमान दिखायी देती है; परंतु यह बात पर्याप्त रूपमें स्पष्ट दिखायी देती है कि फिर भी यह कुल मिलाकर विशिष्ट भारतीय देनसे युक्त एक ठेठ भारतीय कृति ही है। सज्जासंबंधी कुशलता और कल्पनाके वैभवको एक अन्य शैलीके उपयोग करने योग्य बना दिया कया है, किंतु यह वही कौशल है जिसे हम उत्तरके हिंदू मंदिरोंमें पाते हैं, और पृष्ठभूमिमें हम कभी-कभी, हलके रूपमें ही सही, प्राचीन महान् सामग्री और शक्तिका कुछ अंश देखते हैं, पर बहुधा हम वह काव्योचित सुषमा देखते हैं जिसे हम स्वदेशीय मूर्तिकलामें मुसलमानोंके आनेसे पहले विकसित होती हुई पाते हैं,——जैसे, उत्तर-पूर्व और जावाकी कला-शैलीमें,——और कभी-कभी तो दोनों उद्देश्योंका मिश्रण भी देखते हैं ......।

ताजमहल केवल एक शाही प्रेमकी ऐंद्रिय स्मृति या चंद्रलोकके चमकदार पत्थरोंसे बनाया हुआ परियोंका जादू नहीं है, बल्कि मृत्युके बाद भी जीवित रहनेवाले प्रेमका एक शाश्वत स्वप्न है। महान् मस्जिदें प्रायः एक उच्च तपोभावनातक उठी हुई धार्मिक अभीप्साको साकार रूप देती हैं जो गौणभूत साज-सज्जा और श्री-शोभाको प्रश्रय तो देती हैं पर उससे क्षीण नहीं होती। मकबरे मृत्युसे परे स्वर्गके सौंदर्य और आनंदतक पहुंचते हैं। फतेहपुर सीकरीकी इमारतें स्त्रैण भोग-विलासमय पतनके स्मारक नहीं हैं,——अकबरके समयके मनका यह एक मूर्खतापूर्ण वर्णन है,——बल्कि वे एक ऐसी महानता, शक्ति और सुषमाको रूप देती हैं जो भूतलको अपने अधिकारमें कर लेती हैं पर उसके कीचमें लोटती नहीं। इसमें संदेह नहीं कि यहां प्राचीनतर भारतीय मनका विशाल आध्यात्मिक तत्त्व नहीं है, किंतु फिर भी यह एक भारतीय मन ही है जो इन मनोहर रचनाओंमें पश्चिमी एशियाके प्रभावको आत्मसात् कर लेता है और ऐंद्रिय तत्त्वपर भी बल देता है जैसा कि पहले कालिदासके काव्यमें दिया गया था, पर साथ ही यह इसे किसी अभौतिक सौंदर्यकी ओर भी उठा ले जाता है, प्रायः भूतलको पूर्ण रूपसे छोड़े बिना इससे उठकर मध्य-लोकके जादूभरे सौंदर्यमें जा पहुंचता है और धार्मिक वृत्तिके साथ पवित्र हाथसे भगवान्के आंचलोंको जा छूता है। सर्वतोव्यापी आध्यात्मिक तल्लीनता तो यहां नहीं है पर जीवनके अन्य तत्त्व जिनकी भारतीय संस्कृति उपेक्षा नहीं करती और जिन्हें अतिप्राचीन श्रेष्ठ युगसे इसका समर्थन प्राप्त होता आया है, यहां एक नये प्रभावके अधीन व्यक्त किये गये हैं और अभीतक एक उत्कृष्ट दीप्तिकी किसी उज्ज्वल आभासे ओत-प्रोत हैं।

धन

सबसे पहले, वित्तीय दृष्टिसे देखा जाये तो, जिस सिद्धांतपर हमारा कार्य आधारित है वह यह है कि धनका कार्य और अधिक धन लाना नहीं है —— यह विचार कि धन और अधिक धन पैदा करे एक मिथ्यात्व है, एक विकृति है।

धनका कार्य है एक दलकी, एक देशकी, बल्कि समूची पृथ्वीकी संपत्तिको, उसकी समृद्धि और उसके उत्पादनको बढ़ाना। धन एक साधन है, शक्ति और बल है, अपने-आपमें लक्ष्य नहीं। और सब शक्तियों और सामर्थ्योंकी तरह यह भी क्रियाशीलता और सतत प्रवाहसे बढ़ता और शक्ति ग्रहण करता है, जमा करने या पड़े-पड़े सड़नेसे नहीं।

यहां हम जिस बातकी चेष्टा कर रहे है वह एक प्रत्यक्ष दृष्टांतके द्वारा यह प्रमाणित करना है कि एक आंतरिक मनोवैज्ञानिक उपलब्धि और बाह्य व्यवस्थाके द्वारा एक ऐसे जगत्को उत्पन्न किया जा सकता है जहां मानव कष्टके अधिकतर कारणोंका अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

श्रीमातृ-वाणी

योग और धर्म

योग और धर्ममें क्या भेद है?

हां, मेरे बच्चे, यह तो ऐसा हुआ मानो तुम मुझसे शेर और कुत्तेका भेद पूछ रहे हो।

एक ऐसे व्यक्तिकी कल्पना करो जिसने किसी प्रकारसे भगवान्के बारेमें कुछ सुना है या जिसके अंदर यह व्यक्तिगत भावना है कि इस प्रकारकी किसी सत्ताका अस्तित्व है। अब यह व्यक्ति भगवान्को पानेके लिये सभी प्रकारके प्रयत्न —— इच्छासंबंधी प्रयत्न, अनुशासन और एकाग्रताके प्रयत्न — करना आरंभ कर देता है। वह इन प्रयत्नोंद्वारा भगवान्को खोजना चाहता है, उसे जानना तथा उसके साथ संयुक्त होना चाहता है, तब यह कहा जा सकता है कि वह योग कर रहा है।

अब यदि यह व्यक्ति इन सब विधियोंको जिन्हें वह काममें लाया है, लिख ले, उसे एक स्थायी पद्धतिका रूप दे दे, जो कुछ उसने खोजा है उसके विषयमें पक्के नियम गढ़ ले अर्थात् भगवान् इस प्रकारका है, भगवान्को पानेके लिये यह करना चाहिये, अमुक भावमुद्राका, अमुक क्रियाका प्रयोग करना चाहिये, तथा यह स्वीकार करना चाहिये कि यही सच्चा मार्ग है, "मैं मानता हूं कि यह सत्य है, मैं पूर्णतया इसके पक्षमें हूं और मेरी प्रणाली ही अकेली ठीक प्रणाली है तथा केवल इसका ही अस्तित्व है" —— यह सब वह लिख ले और उसे स्थायी नियमों और विधियोंके रूपमें व्यवस्थित और क्रमबद्ध कर ले तो यह धर्म बन जाता है।

क्या इस प्रणाली अर्थात् धर्मके द्वारा भगवान्को प्राप्त किया जा सकता है?

जिन लोगोंकी आध्यात्मिक भवितव्यता है तथा जो भगवान्को प्राप्त करने, उनके प्रति चेतन होने तथा उनमें निवास करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हैं वे उनतक निश्चय ही पहुंचेंगे, चाहे वे किसी भी रास्तेका अनुसरण करें। दूसरे शब्दोंमें धर्ममें भी ऐसे लोग हैं जिनको आध्यात्मिक अनुभूति होती है और जो भगवान्को ढूंढ़ लेते हैं; —— पर साधारणतया ऐसा वे धर्मके कारण नहीं बल्कि उसके बिना भी कर सकते हैं। क्योंकि उनके अंदर वह आंतरिक प्रेरणा होती है जो रुकावटोंके होते हुए भी उन्हें उनमेंसे निकालकर लक्ष्यकी ओर ले जाती है। ऐसे लोगोंके लिये सब कुछ ठीक होता है।

किंतु जब यह लोग अपने अनुभवको अभिव्यक्त करना चाहते हैं तो ये स्वभावतया ही उस धर्मकी

भाषाका प्रयोग करते हैं जिसमें वे पले हैं, वे अपने अनुभवको संकीर्ण बना लेते हैं, काफी हदतक उसे सीमित करनेको विवश हो जाते हैं तथा उसे एक प्रकारसे सांप्रदायिक बना देते हैं। पर यह संभव है कि स्वयं अपने लिये वे समस्त रूपों, सीमाओं और रूढ़ियोंसे ऊपर उठ चुके हो तथा सच्चे अनुभवको उसकी सरलतामें पा चुके हों।

आजके संसारमें क्या अधिकतर लोग किसी-न-किसी धर्मका अनुसरण नहीं करते? क्या उन्हें सहायता नहीं प्राप्त होती?

शायद उन्होंने अभी फिरसे धर्मका अनुसरण करना आरंभ किया है। किंतु बहुत समयतक, इस शताब्दीके बिलकुल शुरूमें ही, लोगोंने धर्मका बहुत खंडन किया था, कम-से-कम बुद्धिवादियोंने तो किया ही था, क्योंकि उन्होंने इसे ज्ञानका विरोधी पाया था। केवल अभी ही बर्बर प्रत्यक्षवादको छोड़कर लोगोंने दूसरी चीजकी ओर मुड़ना आरंभ किया है। सामाजिक अभ्यासके कारण ही लोगधर्मका अनुसरण करते हैं, जिससे कि वे बुरे न दीखें। कई गांवोंमें तो धार्मिक संस्कारोंपर उपस्थित न होना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि वहां न जानेसे तुम्हारे पड़ोसी तुमपर ऊंगली उठायेंगे। किंतु इसका आध्यात्मिक जीवनसे कोई संबंध नहीं है, बिलकुल नहीं।

मैं तुम्हें एक कहानी सुनाती हूं। पहली बार जब मैं भारतवर्ष आयी, मैं एक जापानी जलयानपर यात्रा कर रही थी। इस जलयानपर विभिन्न संप्रदायोंके दो पादरी थे। मुझे इन संप्रदायोंके नाम ठीक याद नहीं पर वे थे दोनों अंग्रेज। मेरे विचारमें एक इंगलिश चर्चका और दूसरा मठ-संप्रदायका था।

इतवार आया। जहाजपर धार्मिक अनुष्ठानका करना आवश्यक था, नहीं तो जापानियोंकी तरह वे मूर्तिपूजक माने जाते। अतएव अनुष्ठानका करना आवश्यक हो गया, पर अब प्रश्न यह उठा कि इसे करे कौन? इंगलिश चर्चवाला पदारी या मठ-संप्रदायवाला? इस बातपर करीब-करीब झगड़ा ही हो गया। अंतमें एक सम्मानसहित पीछे हट गया। मुझ याद नहीं कौन-सा। मेरे ख्यालमें इंग्लिश चर्चवाला। अंतमें मठ-संप्रदायवालेने अनुष्ठान किया।

यह उसने जहाजके गोल कमरेमें किया। वहां जानेके लिये सीढ़ीसे कुछ कदम नीचे आना होता था। प्रत्येकने अपना कोट पहन रखा था। मौसम गर्मीका था और मेरा ख्याल है हम उस समय लाल सागरसे गुजर रहे थे — सब कोट, कालर, टाई, चमड़ेके जूते, सिरपर हैट आदि चढ़ाये हुए थे, सबके हाथोंमें एक-एक पुस्तक थी और वे जलूस-सा बनाकर पुलियापरसे होते हुए कमरेमें प्रविष्ट हुए। स्त्रियां भी हैट पहने थीं, किन्हींके पास छाता भी था, उनके हाथमें भी प्रार्थनाकी पुस्तकें थीं।

सब अंदर आये, मठ संप्रदायवाले पादरीने भाषण दिया, जिसे सबने बड़े धर्मभावमें सुना। जब सब कुछ समाप्त हो गया तो सब लोग ऊपर चले गये। वे बहुत संतुष्ट थे कि उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन किया है। और फिर स्वभावतया पांच मिनटके बाद ही वे ऊपर कमरेमें बैठे शराब पी रहे थे और ताश खेल रहे थे। अबतक वे अपने धार्मिक अनुष्ठानको भूल चुके थे। उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया था। सब कुछ समाप्त हो चुका था।

किंतु वह पादरी मेरे पास आया और थोड़ी-बहुत नम्रताके साथ मुझसे पूछने लगा कि मैं उसके अनुष्ठानमें क्यों नहीं आयी। मैंने उत्तर दिया:

"मुझे अफसोस है महाशय, मैं धर्ममें विश्वास नहीं रखती।"

"तो तुम भौतिकवादी हो।"

"बिलकुल नहीं।"

"तब क्यों नहीं आयी?"

"यदि मैं तुम्हें बताऊं तो तुम नाराज हो जाओगे, न कहना ही अच्छा है।"

उसने इतना जोर दिया कि मैंने अंतमें उससे कहा : “क्या मैं तुम्हें यह बता सकती हूं कि मैं तुम्हें सच्चा नहीं समझती, न तुम्हें, न तुम्हारे अनुयायियोंको। तुम सब केवल एक सामाजिक कर्तव्यको, एक सामाजिक प्रथाको निभानेके लिये वहां गये थे, इसलिये नहीं कि तुम सचमुच भगवान्के साथ संबंध स्थापित करना चाहते थे।”

वह बोला : “भगवान्के साथ संबंध स्थापित करना ! पर हम ऐसा कर ही नहीं सकते। हम तो केवल कुछ अच्छे शब्द कह सकते हैं।”

तब मैंने उत्तर दिया : “ठीक इसी कारण मैं नहीं आयी, मुझे इस सबमें रुचि नहीं है।”

बादमें उस पादरीने मुझसे कई प्रश्न किये और मुझे बताया कि वह चीनमें वहांके मूर्तिपूजकोंका धर्मपरिवर्तन करनेके लिये जा रहा है। इसपर मैं कुछ गंभीर हो गयी और मैंने उससे कहा :

“कृपया सुनिये। आपके धर्मके उत्पन्न होनेसे भी पहले — २ हजार वर्षसे कुछ कम ही हुए होंगे — चीनी लोगोंका दर्शनशास्त्र बहुत उच्च कोटिका था। वे भगवान्तक पहुंचनेका रास्ता जानते थे। जब वे पश्चिमी लोगोंके बारेमें बात करते थे, वे उन्हें बर्बर कहते थे। उन लोगोंका धर्मपरिवर्तन करनेके लिये आप क्यों जाते हैं जो कि आपसे अधिक जानते हैं। आप उन्हें क्या सिखाएंगे ? झूठा बनना ? गहन दर्शनका और एक ऐसी निरासक्तिका, जो उन्हें एक उच्च चेतनातक ले जाती है, अनुसरण करनेके स्थानपर क्या आप उन्हें ये खोखले अनुष्ठान सिखाएंगे ?”

इसपर उस बेचारेका सांस रुकता-सा जान पड़ा और वह बोला : “खेद है, मुझे आपके शब्दोंपर विश्वास नहीं होता।” “मैं आपको विश्वास दिलानेकी चेष्टा भी नहीं कर रही”, मैंने उत्तर दिया, “मैं तो केवल वास्तविक दशाके बारेमें बता रही हूं। मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि बर्बर लोग उन सभ्य लोगोंको वे बातें कैसे सिखा सकते हैं, जिन्हें वे उनसे पहले भी जानते थे।”

और यहीं बात समाप्त हो गयी।

◆

बिना अध्यवसायके कुछ भी नहीं हो पाता।

किसी चीजको इसलिये नहीं छोड़ देना चाहिये कि वह कठिन है, बल्कि वह जितनी ही कठिन हो उतना ही अधिक उसमें सफलता पानेका संकल्प होना चाहिये !

समस्त चीजोंमें सबसे कठिन है भौतिक जगत्में भागवत चेतनाको ले आना। तो क्या हमें इस कठिनाईके कारण इस कार्यको छोड़ देना चाहिये ?

★

निराशावादी होनेसे इसके सिवा कभी और कोई फल नहीं होता कि मनुष्य ठीक उन्हीं चीजोंको अपने ऊपर खींच लाता है जिनसे वह डरता है। इसके विपरीत, यह जरूरी है कि सब तरहके निराशाभरे विचारोंको दूर भगाकर केवल उसी विषयमें सोचनेपर जोर दो जिसे तुम पसंद करते हो।

—श्रीमाताजी

गहरे पानी पैठि :

सत्यकी ओर

——श्री रवींद्र

[हमारे कुछ पाठक श्रीअरविंदकी शिक्षाको गंभीरतासे अपने जीवनमें उतारना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि वे नियमित रूपसे इकट्ठे होकर कुछ अध्ययन किया करें। यह लेखमाला विशेष रूपसे उनके लिये तैयार की जा रही है। इस कार्यक्रमके बारेमें संपादकीय लेखमें देखें। —सं.]

श्रीमाताजीने मनुष्यों, देशों और भूखण्डोंको टेरकर कहा है कि अब चुनाव अनिवार्य है। उन्हें या तो सत्यको अपनाना होगा या रसातलका मार्ग लेना होगा। बात बहुत गंभीर है। हम खुली आंखों देख रहे हैं कि सारे संसारमें तोड़-फोड़कर तहस-नहस करनेवाली शक्ति बड़े जोरोंसे काम कर रही है। राजनीतिक क्षेत्रमें हो या सामाजिक क्षेत्रमें, आर्थिक क्षेत्रमें हो या व्यक्तिगत जीवनमें सब ओर सब जगह एक अफरा-तफरी फैली हुई है। कहीं भी प्रकाशकी किरण नहीं दिखायी देती। हम शुतुरमुर्ग बनकर अपना सिर छिपा लें तो और बात है नहीं तो सारी मानवतामें मानों नरकका नंगा नाच हो रहा है। ऐसे समयमें माताजीकी टेर एक रास्ता दिखाती है, हमें रसातलमें जानेसे बचना है तो उसका एक ही उपाय है —— हम सत्यकी चट्टानको पकड़ लें।

लेकिन सिर्फ इतना कहनेसे शायद बात समझमें नहीं आती। यह सारी सृष्टि भगवान्‌की लीला है। हम सब उसकी लीलामें भाग लेनेवाले खिलाड़ी हैं। हमारे द्वारा वही सुख-दुःख, विद्या-अविद्या आदिका नाटक कर रहा है और हम जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सचमुच उसीके अनुभव होते हैं। इस नाटकमें चार अंक हैं सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि। सत्ययुगमें धर्म अपने चारों पैरोंपर खड़ा होता है। कुछ सीमाओंके भीतर काफी दृढ़ सामंजस्यका राज्य होता है जो पवित्रताके आधारपर खड़ा होता है। लेकिन त्रेतामें धर्मका एक पैर टूट जाता है। सामंजस्य टूटने लगता है पर मनुष्य उसे अपने संकल्प-बलसे, व्यक्तिगत और सामूहिक संकल्पसे खड़ा रखता है। द्वापरमें उसका और भी ह्रास होता है लेकिन मनुष्य किसी-न-किसी तरह बुद्धिसे, नियमोंसे और आपसी समझौतेसे काम चलाता रहता है। परंतु कलियुगमें आकर पूरी तरह बंटाढार हो जाता है। मनुष्यकी बुद्धि तो खूब विकसित होती है, उसकी सुख-सुविधाकी सामग्री की बहुतायत होती है पर वह अपने स्रोतसे दूर – बहुत दूर हो जाता है। प्राचीन सत्य, ज्ञान और संस्कृतिका विनाश हो जाता है।

कलिकाल अभी हालमें ही खतम हुआ है। लेकिन अभी उसका प्रभाव दूर नहीं हुआ। सत्ययुग आनेसे पहले अभी संधिकाल चल रहा है। प्राचीन ज्ञानके अवशेषके रूपमें वेद, उपनिषद् आदि कुछ ग्रंथ बच रहे हैं परंतु ज्ञानी कम ही हैं। हम इस विकृत अवस्थामें भी देख सकते हैं कि कम-से-कम विचार-जगत्‌में तो चारों ओर शांति, सामंजस्य और पूर्णताकी बातें चक्कर काट रही हैं। लेकिन अभी पूर्णता या अन्य दैवी संपदाएं हमसे कोसों दूर हैं।

यह सत्य, यह शांति, यह सामंजस्य कहांसे आयेगा? श्रीअरविंदने हमें बताया है कि कम-से-कम इस चतुर्युगमें दैवी संपदाओंको धरतीपर लानेका काम भारतके जिम्मे है। आज संसारको आंतरिक परिवर्तनकी आवश्यकता है। जो विकार आ गये हैं, जो अशांति फैली हुई है उसे दूर करनेमें बाह्य

साधन कभी सफल न होंगे। हम राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन, सामाजिक ढांचेमें हेर-फेर करके विकारोंका रूप बदल सकते हैं, उन्हें हटा नहीं सकते। उदाहरणके लिये, स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करनेसे यूरोप, अमरीकामें हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि बीमारियां तो मिट गयीं पर मानसिक बीमारियों-का नया तांता शुरू हो गया। पेटकी क्षुधा शांत हो गयी पर उसके स्थानपर कितनी नयी क्षुधाएं पैदा हो गयीं।

आज संसारमें जितने भी कष्ट हैं उनको दूर करनेके लिये यह जरूरी है कि हमारे अंदर आमूल परिवर्तन हो, केवल मरहम-पट्टी नहीं। हमें अपने मन, अपने हृदय, अपनी बुद्धि सबको भगवान्के चरणोंमें समर्पित करना होगा। श्रीमाताजीने हमें बताया है कि परम सत्य धरतीपर उतरने लगा है, उसकी विजय अवश्य होकर रहेगी। सवाल यह है कि हम उसके साथ रहकर, उसको ग्रहण करने योग्य पात्र बनकर उसके काममें सहायता देंगे या उसके काममें बाधा देकर अपना सिर चट्टानके साथ टकरायेंगे? चुनाव करना हमारे अपने हाथमें है। हम चाहें तो उस परम सत्यके साथ होकर अपने भविष्यको उज्ज्वल बना लें और चाहें तो बिना टिकटके सीधे ही रसातल पहुंच जायें।

अब सवाल उठता है कि हमने मनमें तो चुन लिया कि हम भगवान्का साथ देंगे परंतु इसके लिये करें क्या? इसके लिये सबसे पहले हमें अपने मनमें यह अभीप्सा जगानी होगी कि हम पूरी तरह भगवान्के होकर रह सकें। यह अभीप्सा जितनी तेज होगी उतनी ही शक्तिशाली होगी। हमें यह प्रार्थना करनी होगी कि हमारा सब कुछ भगवान्का हो जाय। हमारा आचार-विचार, हमारी इच्छाएं, अभिलाषाएं, हमारे क्रिया-कलाप सब कुछ भगवान्के हो जायें। हम अपने अंदर संतुलन और शांत प्रसाद भाव बनाये रखें जिससे हमारे अंदर सच्चा एकत्व आ जाये और वह एकत्व हमारे अंदरके सारे संघर्षोंको, हमारे मानसिक कष्टोंको दूर कर देगा।

जब हम एक बड़े परिणामकी मांग करते हैं तो हमें उसका बड़ा मूल्य भी चुकाना होगा। भगवान् प्रत्येक व्यक्तिसे केवल उतना ही मांगते हैं जितना वह है, उससे अधिक नहीं, पर उससे कम भी नहीं। देशकी वर्तमान मानसिक परिस्थितियोंमें सबसे जरूरी बात यह है कि हम मन-बहलावके लिये, अपनी नसोंका तनाव कम करनेके लिये अपने हृदयको ओछी और भद्दी चीजोंसे न भरें। हम अपने हृदय और मस्तिष्कको छोटी-बड़ी सब तरहकी चीजोंसे खाली करनेका प्रयास करें ताकि उसमें भगवान्की उपस्थिति पैठ सके।

अब यह प्रश्न उठता है कि सत्यको चुननेवालेको क्या काम करना चाहिये और क्या नहीं। इसके उत्तरमें श्रीमाताजी कहती हैं, “यौगिक जीवन इस बातपर निर्भर नहीं कि मनुष्य क्या करता है, बल्कि इस बातपर निर्भर है कि वह कैसे करता है; मेरे कहनेका मतलब, कार्यका उतना मूल्य नहीं है जितना मनोभावका, अथवा उस वृत्तिका है जिससे मनुष्य कार्य करता है। लोग जिन्हें महान् कार्य कहते हैं उन्हें मिथ्या गर्व और अभिमानके साथ करनेकी अपेक्षा बरतन धोते हुए या खाना परोसते हुए अपने-आपको पूरी तरह भगवान्को दे सकनेपर तुम भगवान्के अधिक निकट पहुंच सकते हो।”

यदि पूरी सच्चाईके साथ भगवान् के निकट पहुंचनेकी भावनासे कोई काम किया जाये तो हर काम हमें उनके नजदीक पहुंचा सकता है। लेकिन जबतक यह स्थिति न आये तबतक अपने रोजमर्राके कामको छोड़कर कुछ समयके लिये नियमित रूपसे ऐसा काम कीजिये जो आपके व्यक्तिगत लाभके लिये न हो — उसमें आमदनी, प्रतिष्ठा, लाभ आदिका भाव न हो। वह पूरी तरह से भगवान्के लिये हो, उसमें कुछ आमदनी भी हो तो वह भगवान्के कामके लिये लगायी जाये।

प्रार्थना और अभीप्सा

प्रार्थना शब्दसे हम सब परिचित हैं। हममेंसे शायद ही कोई ऐसा हो जो किसी-न-किसी समय प्रार्थना न करता हो। लेकिन प्रार्थना प्रार्थनामें अंतर होता है। एक प्रार्थना वह है जिसमें मनुष्य मशीनकी तरह एक नामको या एक मंत्रको या कुछ शब्दोंको बिना सोचे-समझे दोहराता जाता है। मनमें भिन्न-भिन्न विचार आते-जाते रहते हैं। बीच-बीचमें कुछ क्रियाएं भी होती रहती हैं और साथ ही प्रार्थना चलती रहती है। यह प्रार्थना तिब्बतके उस प्रार्थना-चक्रकी तरह है जिसपर मंत्र लिख दिये जाते हैं और फिर हवा उसे घुमाती रहती है। इस प्रकारकी प्रार्थना विशेष लाभकारी नहीं होती। लेकिन उसके पीछे भी कुछ सच्चाई हो तो वह भी मनुष्यके मनको थोड़ा चुप कर सकती है और उस हदतक उसका लाभ है।

दूसरी प्रार्थना वह होती है जिसमें मनुष्य अपने लिये या अपनोंके लिये कुछ मांगता है और बड़ी उत्कट अभिलाषाके साथ अपनी मांगको दोहराता जाता है। यह प्रार्थना भगवान्से भी की जा सकती है और अन्य देवी-देवताओं और निचले स्तरकी शक्तियोंसे भी की जा सकती है। यदि प्रार्थनाके पीछे सच्चाई हो तभी वह भगवान्तक पहुंच सकती है और तभी उसका उत्तर मिल सकता है। सूक्ष्म जगत्में ऐसी छोटी-मोटी बहुत-सी शक्तियां घूमती फिरती हैं जो मनुष्यके द्वारा अपना उल्लू सीधा करना चाहती हैं। छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, महत्त्वाकांक्षा आदिसे भरी हुई प्रार्थना ऐसी ही शक्तियोंके पास पहुंचती है। ये शक्तियां अपनी शक्ति दिखानेके लिये बहुत-सी प्रार्थनाओंको तुरंत स्वीकार कर लेटी हैं और मनुष्यकी इच्छा पूरी कर देती हैं। परंतु पूरी सच्चाईसे की गयी प्रार्थना सीधी भगवान्के चरणोंमें पहुंचती है।

अब यहां मुश्किल यह है कि साधारण मनुष्य यह चाहता है कि भगवान् उसकी हर प्रार्थनाको स्वीकार कर ले। वह यह तो कहता है कि हे भगवान्, तुम्हारी इच्छा पूरी हो पर साथ ही चुपकेसे यह भी जोड़ देता है कि देखना भगवान्, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी होनेकी बात कर रहा हूं, तुम भी मेरी इच्छाको पूरा कर देना। लेकिन भगवान् भक्तकी हर इच्छाको, हर प्रार्थनाको स्वीकार करना जरूरी नहीं समझते। वे उसी इच्छाको पूरा करते हैं, उसी प्रार्थनाको स्वीकार करते हैं जो भक्तके लिये कल्याणकारी हो। कहते हैं, एक बार नारद मुनिको घमंड हो आया कि उन्होंने कामदेवको जीत लिया है। भगवान् गर्वप्रहारी तो हैं ही क्योंकि गर्व मनुष्यको औंधे मुंह गिराता है। उन्होंने नारद मुनिके रास्तेमें एक माया नगरी रच दी। इस माया नगरीकी अनन्य सुन्दरी राजकुमारीका स्वयंवर होनेवाला था। नारद मुनि उसके पिताके यहां गये। लड़कीने आकर मुनिवरके चरण छुए। उसे देखते ही मुनिवरका जी डांवाडोल हो गया और उनके मनमें बड़ी तीव्र इच्छा पैदा हो गयी कि वह लड़की उन्हें ही वर ले। उन्होंने राजमहलसे बाहर आते ही भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की और झट भगवान् उनके आगे आ खड़े हुए। मुनि बोले, देखो, भगवान्, मैं चाहता हूं कि यह सुन्दरी मेरे गलेमें वरमाला डाले। लेकिन यहां अनेक सुन्दर-सुन्दर राजकुमार आ रहे हैं उनके सामने मुझे कौन पूछेगा? यदि तुम मेरा भला चाहते हो तो मुझे अपना रूप और सौंदर्य दे दो तभी मेरी इच्छा पूरी हो सकेगी। भगवान् मुस्कराये और बोले, मैं तुम्हारा भला अवश्य करूंगा। नारद मुनि खुश-खुश सभा-मंडपमें जा बैठे। उन्हें जो देखता था वही हंस पड़ता था परंतु नारद अपने विचारोंमें ऐसे खोये हुए थे कि उस और उनका ध्यान ही न गया। खैर, सुन्दरी हाथमें जयमाला लिये आयी और इनकी ओर देखे बिना आगे बढ़ गयी। इन्हें बड़ा दुःख हुआ। कहानीके पूरे विस्तारमें जाकर

हम यहीं खत्म करते हैं कि नारदजीने बाहर आकर पानीमें अपनी छाया देखी तो उनका दिमाग ठिकाने न रहा। उन्होंने देखा कि उनकी गर्दनपर बंदरका सिर रखा हुआ है! उन्होंने झट भगवान्‌को भी शाप दे डाला। शाप स्वीकार करनेके लिये स्वयं भगवान् सामने आ खड़े हुए। उन्होंने कहा, देखो नारद, मैंने तुम्हें वचन दिया था कि तुम्हारा भला करूंगा। तुम्हें अपनी तपस्यापर गर्व हो गया था। तुम्हारे कल्याणके लिये उसे तोड़ना जरूरी था इसलिये मैंने यह माया-नगरी खड़ी की और मायाकी सुन्दरीके सामने तुम्हें पहुंचाया। तुम पागल हो उठे। इसमेंसे भी तुम्हें बचाना जरूरी था इसलिये मैंने तुम्हें अपना सौंदर्य देनेकी जगह बंदरका चेहरा दे दिया! तुम्हारा भला करनेके लिये मैं तुम्हारा शाप भी स्वीकार करता हूं।

प्रार्थना सच्चे दिलसे की गयी हो तो भगवान् हमारे लिये वही करते हैं जो हमारे लिये उन परिस्थितियोंमें अच्छे-से-अच्छा हो। इसमें भक्तको यह विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् उससे अधिक जानते हैं, और जो कुछ भी करते हैं उसके लिये वही अच्छा होता है।

लेकिन इससे ऊंची एक प्रार्थना होती है जिसमें भक्त कुछ नहीं मांगता। भगवान्‌ने उसके लिये, इस संसारके लिये जो कुछ किया है उसके लिये कृतज्ञता प्रकट करता है। उसके अंदरसे मानो आगकी एक लौ उठती है जो उसकी सभी गंदगियोंको भस्म कर सकती है। यह जितनी तेज हो उतनी ही शक्तिशाली होती है। यह अविद्या अंधकारको दूर करती हुई भगवान्‌की ज्योतिमें जा मिलती है। यह प्रार्थना प्रार्थना न रहकर एक अभीप्सा बन जाती है। इसीका एक और रूप है जब मनुष्य बिना सोच-विचार किये सहज रूपसे भगवान्‌को पुकारता है। वह सारी परिस्थिति उन्हें सौंप देता है, अपनी ओरसे कोई हल पेश नहीं करता और न ही यह सोचता है कि भगवान् क्या करेंगे। वह सारी चीज पूरी तरह उनके हाथमें छोड़कर उनका आह्वान करता है। यह उस सीपकी न्याईं होता है जो चुपचाप मुंह खोले खड़ी रहती है, जब घनश्यामकी मरजी हो जाये उसे एक बूंद दे दें। वह उस बूंदका भी मोती बनाकर फिरसे अपने स्वामीके चरणोंमें चढ़ा देती है।

आदमी मन, प्राण, शरीर आदि विभिन्न क्षेत्रोंसे प्रार्थना कर सकता है परंतु अभीप्सा तो हमेशा अंतरात्मासे ही उठती है। उसका रूप उठती हुई अग्नि-शिखाका होता है। उसमें शब्दोंकी जरूरत नहीं होती, उसमें बाह्य रूपका प्रयोजन नहीं होता। वह तो बस एकनिष्ठाके साथ अपने-आपको इष्टके चरणोंमें सौंप देना चाहती है।

आपने अपने अंदर कोई ऐसी गति देखी जो आपके आदर्शोंके साथ मेल नहीं खाती। आप उसे हटानेके लिये शोर नहीं मचाते। आप उसे सीधा भगवान्‌की ओर खोल देते हैं। आपकी बड़ीसे बड़ी इच्छा यही होती है कि आपके अंदर और सारी सृष्टिके अंदर भगवान्‌की इच्छा पूरी हो। अपनी इस अभीप्साको लिये हुए आप शांत भावसे भगवान्‌की ओर आंख लगाये रहते हैं।

प्रार्थना तो भगवान्‌को माननेवाले ही कर सकते हैं पर अभीप्साके लिये भगवान्‌को मानना भी जरूरी नहीं है। सतत प्रगतिके लिये भी अभीप्सा हो सकती है। बुद्धिवादी कहानेवाले प्रार्थनाको जरा नीची दृष्टिसे देखते हैं और भक्त प्रार्थनाको ही सर्वोत्तम मानते हैं। हमारे लिये दोनों ही भगवान्‌की ओर जानेके रास्ते हैं। संसारकी स्थितिको देखकर हमारे हृदयसे यही प्रार्थना निकलती है कि हे भगवान् समस्त चेतना उस पूर्णताकी ओर उठे जिसे तू लाना चाहता है। तेरी ज्योति संसारमें फैले हुए अविद्या-अंधकारको छिन्न-भिन्न कर दे। हमारे अंदर जो कुछ भी तेरी राहसे भटका हुआ है वह तेरी राहपर आ जाये। भगवान्, सब कुछ तेरा हो जाये — तू हो जाये।

* * *

कबीर

(दास कबीरा जतन करि ओढ़ी)

(४)

कज्जनका हृदय क्रोध और घृणासे भर गया था। उसके जैसी रूपकी रानी एक भिखारीपर अपनी कृपा दिखाये और उसकी इतनी हिम्मत। कज्जनने अपने मनसे ठीक कर लिया। अबसे वह कबीरका नाम नहीं सुनेगी, उसके बारेमें सोचेगी भी नहीं और उसको देखेगी भी नहीं। इसी तैशमें आके कज्जनने सचमुच ही एक सप्ताहतक कबीरको देखनेका प्रयास नहीं किया। एक सप्ताह बाद कज्जनने सोचा अब तो मुझे उस भिखारीकी परवाह नहीं है। आज जाकर देखूं वह भिखारी क्या कर रहा है। खूब मजाक करूंगी उसका। आखिर बदला तो लेना ही चाहिये मुझे। इसी तरह अपने-आपको धोखा देकर कज्जन एक रातको फिरसे चली। उसे दूरसे ही एक नया गीत सुनायी दिया।

मैं कासे बुझौ आपने पियाकी बात री
जान सुजान प्रानप्रिय पिय बिन सबै बटाऊं जात री।
आसा नदी अगाध कुमति बहै, रोकि काहूं पै न जात री।

यह सुनते ही कज्जनका दिल बल्लियों उछलने लगा। उसकी — कज्जनकी — विजय होकर ही रही। कैसी मूर्खा थी वह। इतने दिन यों ही गंवा दिये। सारे सप्ताहकी उदासीनताकी प्रतिक्रियामें कज्जनके पांव उतावले हो रहे थे। दरवाजेपर आकर कज्जनने देखा कि छोटे दीपककी लौके सामने बैठे कबीर आंखें मूंदे गा रहे हैं। चेहरेपर दो अश्रुधाराएं चमक रही हैं। आंसूके मोती झड़ते थे और साथ ही कज्जन सोच रही थी कि इन्हीं मोतियोंकी माला उसके गलेमें आयेगी। उसने एक कदम आगे बढ़ाया साथ ही कबीरका गीत भी आगे बढ़ा —

काम क्रोध दोऊ भये करारे, पड़े विषय रस मात री।

कज्जन ऐसे ही रुक गयी जैसे बांधके सामने बाढ़से उफनती नदी।

ये पांचों अपमानके संगी सुमिरनको अलसात री।
कहै कबीर बिछुरि नहीं मिलिहौ, ज्यों तरवर बिन पात री॥

कज्जनका सांस फूलने लगा। उसने मन-ही-मन कहा — ऐं, गीतमें यह कैसा मोड़ .... शायद उसको देखकर ही अपमानसे बचनेको उपदेश जोड़ रहा है।

कभी नहीं, कभी नहीं। अब वह इस झूठेके सामने कभी नहीं जायगी। वह तेजीसे मुड़ी, अब चलने ही वाली थी कि अचानक कबीरकी आंखें खुल गयीं। कबीरने आश्चर्यसे कहा — "तुम ?"

कज्जनने क्रोधसे कहा — "हां, मैं। आप यह मत समझिये कि मैं फिरसे भिखारिन बनकर आयी हूं। मुझे दूरसे देखकर ही मान-अपमानका उपदेश देने चले।" कबीर आश्चर्यसे बोले — "कब ?"

कज्जन — "क्यों, शुरू-शुरूमें तो विरहका गीत सुनाने लगे और उसके बाद शायद मुझे जलानेके लिये ही अपमानकी बातें करने लगे।"

कबीर हंस पड़े और बोले — "कज्जन, मैं तो आंखें बंद किये बैठा था। मैंने तुझे देखा ही नहीं। रही बात विरहकी, जिसके विरहमें तू जल रही है उसीके विरहमें मैं भी तड़पता हूं।"

कज्जनकी आंखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। आप ...... अपनेसे प्रेम।

कबीर — नहीं कज्जन, ऐसा मूर्ख कौन होगा जो अपने-आपसे प्रेम करे। तू भी नहीं जानती कि तू किससे प्रेम कर रही है। हम सभी जाने-अनजाने यही सोचते रहते हैं कि —

अविनासी दुलहा कब मिलिहौ भक्तनके रछपाल।
जल उपजी जल ही सौ नेहा, रटत पियास पियास।
मैं गढी बिरहन मग जोऊं प्रियतम तुमरी आस।
छोडे गैह नेह लगि तुम सों, भ ई चरन लवलीन।
ताला बेलि होति घर भीतर, जैसे जल बिन मीन।
दिवस न भूख रैन नहिं निदिया, घर अंगना न सुहाय।

कज्जन अभीतक विषाक्त हंसीके साथ कबीरका प्रलाप सुन रही थी। लेकिन इन पंक्तियोंको सुनते ही उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कबीरने उसके अंतरमे बैठकर असीम करुणासे उसकी व्याकुलताका वर्णन किया है। सारा विष आंखोंके रास्ते बाहर निकल गया। आज उसके प्रेममें आदर और मानने भी स्थान पाया।

सेजरिया बैरिन भई हमको, जागत रैन बिहाय।
हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार।
दीन दयाल दया करि आओ समरथ सिरजनहार।
कै हम प्रान तजति है प्यारे कै अपनी कर लेव।
दास कबीर विरहा अति बाढेउ हमको दरसन देव।

कज्जनसे खड़ा नहीं रहा गया। अनायास ही उसके हाथ जुड़ गये। और वह धीरे-धीरे बैठ गयी। कितनी देर बैठी रही उसे याद न रहा।

* *

कज्जनके घर आज सेठ नथमलका बेटा मित्रोंके साथ गाना सुनने, नाच देखने आनेवाला था। कज्जन अन्यमनस्क-सी अपना शृंगांर कर रही थी। इन चीजोंमें अब उसका मन बिलकुल नहीं लगता था। उसका मन एक संकरी गलीके एक छोटे-से घरके चारों ओर मंडरा रहा था। उसने जीवनमें बहुत मान पाया था लेकिन कबीरकी तरह उसे कौन जान सकता था? कज्जनकी विचार-शृंखला टूटी दाईने आकर कहा — "बाई जी, सेठ साहब अकेले आये हैं।" "अच्छा उनको बैठाना, अभी आयी यों कहकर कज्जन जल्दी-जल्दी बैठकमें गयी। नथमलका जवानबेटा काफी पिये हुए था। कज्जनको देखते ही दोनों हाथोंको बढ़ाकर वह बड़बड़ाया — "कज्जन, मेरी रानी, बस आज रात तो मैं तुम्हारे यहां रहूंगा।" कज्जन हंसी — "हां हजूर, आपका ही घर है। आप चाहें तो ठहरिये।" वह और पास आया। कज्जनको शराबकी तीव्र गंध चारों ओरसे घेरने लगी। आज पहली बार उसे यह गंध पसंद न आयी। सेठने उसे पकड़ना चाहा। अचानक कज्जनके कानोंमें एक आवाज गूंज उठी — "अविनासी दुलहा कब मिलिहो।" कज्जनने चौंककर देखा। इसी लड़केकी एक मास पहले मरनेकी बात थी। वह अब अविनासी दुलहेकी दुलहन बननेका स्वप्न देख रही थी फिर उसके यहां इन सबका स्थान कहां? उसे लगा कि कबीर अगर इस दशामें उसे देख ले तो घृणा, क्रोध और उपेक्षासे ..... वह आगे न सोच सकी। उसका दिल रो उठा। बड़ी मेहनत करके उसने शराबीको सुला दिया लेकिन उसे "सेजरिया बैरिन भइ हमको, जागत रैन बिहाय।"

आज कई दिन हो गये, कज्जन काशीसे दूर जलसेमें बुलायी गयी थी। कज्जन, बाबू चन्द्रभानसिंहके महलमें मुजरा करने खड़ी हुई। लेकिन वह आवेशमय मुस्कान, वह मादक गाने, उत्तेजक नाच उसके लिये प्रायः असंभव हो गये। जैसे ही खड़े होकर उसने सलामी दी उसी समय उसको ये पंक्तियां याद आयीं :

छण अहरणि बीचि लोह ज्यों घडी सहै सिर चोट ॥
कबीर केवल राम कहि सुध गरीबी झालि।
कूड बडाई बूडसी, मारी पडसी कालि्ह ॥
कायामज्जन क्या करै, कपड धोइम धोई।
ऊजल हुआ न छूटिये, सुख नींदडी न सोई ॥
उज्जल कपडा पहरि करि पान सुपारी खांहि ।
एकै हरिका नाव विन बांधे जमपुर जांहि ॥
तेरा संगी को नहीं सब स्वारथ बंधी लोई ॥

किसी तरह खींच-तानकर कज्जनने नृत्य करना शुरू किया। बीच-बीचमें अपने वातावरणको भूलकर खोयी-खोयी-सी खड़ी हो जाती। कुछ देर यों ही स्तब्ध रहती और फिर वाह-वाह और कहकहोंकी आवाजसे वह जाग उठती। किसी तरह मुजरा खत्म हुआ। और आयी रात। कज्जन चुपचाप बैठे-बैठे अपने मनको तैयार कर रही थी। अचानक उसे एक दोपहर याद आया जब कि वह कबीरकी झोंपड़ीमें गयी थी। कबीर अपना करघा लिये ताना-बाना तान रहे थे। उनकी आंखोंसे टप-टप आंसू गिर रहे थे। कज्जनने कबीरके लिये नया नाम ढूंढ़ा था — उसके मुंहसे निकला — कबीर साहब, आप रो रहे हैं? कबीरने चौंककर ऊपर देखा। हंसके बोले — नहीं बहना, आनन्द और दुःख जब असह्य हो जाते हैं तब एक ही रूप लेते हैं। मैं रो नहीं रहा हूं। आनन्दके साक्षी हैं ये आंसू। मौन कज्जन बड़ी उत्सुकतासे कबीरकी ओर ताकती रही, कबीर मानो अपने-आपसे कहने लगा — कबीर इस दशाको स्त्रियां ही समझ सकती हैं। अभीतक तो हालत ऐसी थी। कबीरकी अन्तर वेदना शब्दोंमें फूट पड़ी। उन्होंने गाया :—

अंखियां तो झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीहडियां छाला पड्या, नाम पुकारि पुकारि ॥
विरह कमंडल कर लिये, वैरागी दो नैन ।
मांगे दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥
सब रंग तांत रबाब तन, बिरह बनावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साईंके चित्त ॥

गान समाप्त हुआ। कबीरकी समाधि टूटी। वे थोड़ी देर कज्जनकी ओर देखते रहे। मानो किसी भूली स्मृतिको वापिस ला रहे हों। बोले — "कज्जन, आज मेरा भ्रम दूर हो गया। जिसे मैं दूर समझकर बुलाता था वह तो यहीं है। यहां इस कमरेमें मेरे अंदर, तेरे अंदर, सब चीजोंमें, सबके अंदर मौजूद है।" वे फिर गुनगुनाने लगे। कज्जन निमिषमात्रके लिये आनन्दातिरेकसे सिहर उठी। कबीर बोल उठे — पा लिया, मैंने सबको पा लिया, मैंने रामको पा लिया और गुनगुनाये :

नैननकी करि कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकोंकी चिक डारिकै, पियाको लिया रिझाय ॥
प्रीतमको पतिया लिखूं, जो कहुं होय विदेश।
तनमें मनमें नैनमें, ताकौ का संदेस ॥

कैसा अद्भुत प्रेमका अनुभव है यह। कज्जन लाचारीसे सोचती रही। मुझे यह अनुभव कभी

न होगा। मैं इसके लायक कहां! मैं हूं मानवी-अजगरोंका खाद्य। अभी और अजगर आयेगा और मुझे निगलनेकी कोशिश करेगा। उसकी आंखोंमेंसे असह्य वेदनाके अश्रु ढुलक पड़े। अचानक उसने सुना ––

मैं ठाडी विरहन मग जोऊं, प्रियतम तुमरी आस।
छोडे गेह नेह लगि तुमसौ, भई चरन लवलीन॥

ठीक तो है, जबतक वह घर-द्वार. . . .और उफ. . . .घर-द्वार भी कैसा। इस पापमय जीवन-को छोड़े बिना "अविनासी दुलहा" कैसे मिलेगा। कज्जनका सारा शरीर कांप उठा। इसका मतलब गान-नाच सब कुछ छोड़ देना। और फिर खानेके लिये. . . . .। बचपनमें भूखसे दोस्ती थी, कुछ दिन आराम मिला, अब फिर उसीसे पाला पड़ेगा। अंदरसे कोई बोल उठा –– आगमें तपे बिना ये मैल न छुटेंगे। अनायास कज्जनके हाथ जुड़ गये –– तो फिर ऐसा ही होगा।

* *

कबीर अपनी धुनकी सम्हाले बाहर निकल ही रहे थे कि एक देहाती औरत घूंघट काढ़े हुए उनके घरपर आ पहुंची और उनके पांव पकड़ लिये बाबा, मैं गरीब अकेली औरत हूं, मुझे आश्रय दीजिये। कबीर उसको उठाते हुए बोले –– बहन, आसरा दे सकता हूं, मैं हूं अकेला आदमी, घरमें दूसरी कोई औरत नहीं है। तुम व्यर्थमें बदनाम. . . .। परिचित-सी आकृति देखकर कबीर कुछ ठिठके, फिर चौंकते हुए बोले –– "अरे कज्जन, ये क्या वेश बनाया है? तेरा नौकर कहां गया?" देहाती औरतके वेशमें आयी हुई कज्जन मुस्कराने लगी। बोली –– साहब, अब कैसा नौकर और कैसा चाकर।" कबीरने पूछा –– "क्यों, क्या हुआ?" कज्जन बोली –– "बस वही हुआ जो हमेशासे होता आया है। नमककी गुड़ियाने सोचा था कि वह समुद्र जीत लेगी। आज उसने समुद्रके अथाह बलको पहचान लिया। मुझे भी ज्ञानदासकी तरह अपना लीजिये।" कबीर बोले –– 'लेकिन कज्जन' यह नाचना और गाना नहीं है, यह तलवारकी धारपर चलना है।" कज्जन बोली –– "आपका सहारा हो तो तलवारकी धारपर चलना भी आसान ही होगा।"

सबेरे-सबेरे ज्ञानदास आये और कज्जनको वहां खाना पकाते हुए देखकर दंग रह गये। शिष्य होते हुए भी आवेशमें कबीरको दादा कह उठते थे। दौड़े-दौड़े अंदर गये। "दादा, यह क्या? तुमने कज्जनको आसरा दिया है?" कबीर शांतिसे बोले –– "हां ज्ञानदास।" ज्ञानदास –– "लेकिन आप बदनाम हो जायेंगे।" कबीर –– "ज्ञानदास, हम साधुओंको बदनामीका क्या डर? और भइया, जो तन, मन, धन सबकी बाजी लगाकर रामसे खेलने आता है उसको मैं मना कैसे करूं?" ज्ञानदास –– "अरे यह मामूली औरत नहीं, वेश्या है। आपको कैसे मालूम कि ढोंग नहीं कर रही।" कबीर –– "अरे भइया, अगर ढोंग भी है तब भी झूठ-मूठ नाम स्मरण करते-करते एक दिन सच्ची लगन लग जायगी।"

तन-मन-धन बाजी लगी हो।
चौपड खेलूं पीव से तन-मन-धन बाजी लगी हो।
हारी तो पियकी भई जीती तो पिय मोर हो।
चौसरियाके खेलमें जुग्ग मिलनकी आस।
नर्द अकेली रह गयी रे, नहिं जीवनकी आस हो।
चार बरन घर एक है रे, भांति-भांतिके लोग।

कज्जन पानी भरकर आ रही थी, वह भी सुननेके लिये बैठ गयी।

लख चौरासी भरमत भरमत पौ पै अटकी आय।
जो अब के पौ ना पडी रे, फिर चौरासी जाय हो।

कहै कबीर धर्मदास मेरे, जीती बाजी मत हार ।
अब के सुरत चढाय देरे, सोई सुहागिन नार हो ।

कज्जनके हाथकी गगरी देखकर कबीर बोले — "कज्जन, नौकरकी तरह क्यों काम करती हो ?" कज्जन बोली — "साहब, ऐसे छोटे-छोटे कामोंमें इतना आनंद मिल सकता है, यह मैंने कल्पना तक नहीं की थी। इसके लिये मना मत कीजियेगा।" ज्ञानदास कज्जनकी ओर मुड़े और बोले — "कज्जन, तेरे मकानका क्या हुआ ? तेरे नौकरोंका क्या हुआ ?" कज्जन — "भइया, मकान मैंने बेच दिया और पैसे सब नौकरोंमें बांटकर उनको छुट्टी दे दी।" ज्ञानदास खुश हुए। तभी अचानक कज्जन बोली — "साहब, सुना, ज्ञानदासजीका नाम रतन था। आपने उनका नाम बदला, अब कज्जन-कज्जन सुनना अच्छा नहीं लगता। कज्जन मर गयी, अब वह नाम सुनकर घृणा होती है जैसे बामन लोग दो बार जनम लेते हैं वैसे ही मुझे लगता है मैंने भी यह दूसरा जन्म लिया है। आप मुझे किसी और नामसे पुकारें।" कबीर सिर झुकाकर सोचते रहे। मेरे रामको और मुझे लोई बहुत पसंद है। यह शरीर ही झीनी-झीनी चदरिया है, और मैं हूं जुलाहा। इसलिये मैं हरएक चीजको उसी दृष्टिसे देखता हूं। देखो, मेरे रामने चादर बुनी है, तुम सोचोगे कि यह बकवास है। लेकिन —

काहै के ताना काहै के भरनी, कौन तारसे बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तारसे बीनी चदरिया ॥
आठ कंवल दल चरखा डोले, पंचतत्त्व गुन तीनि चदरिया॥
साईंको सियत मास दस लागे, ठोक-ठोकके बीनी चदरिया।

अबसे तू लोई हुई। लोई चदरियाका मूल्य कुछ नहीं है ऐसा न समझना। शरीरको चादर कहा इसलिये यह न समझना कि वह निरर्थक है, फेंकने लायक है। इसी चदरियाके लिये देवतक तरसते हैं क्योंकि मेरा साईं देखना चाहता है कि तुम उसका उपयोग कैसे करते हो।

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़के मैली कीन्हि चदरिया।
दास कबीर जतन कर राखी ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया॥

लोई मैं आशा करता हूं कि अब तू भी अपनी चदरिया जतनसे ओढ़ेगी।

* *

कबीरके घरमें रात चुपचाप बैठी थी। कबीर टिमटिमाते हुए तारोंसे भी दूर कहीं नजर गड़ाये हुए छतपर निःशब्द बैठे थे। सीढ़ीपर किसीकी पदचाप सुनायी दी। उठकर देखा तो लोई ऊपर आ रही थी। और लोई..... लोई आत्मसंयम खो चुकी थी। न जाने कब और कैसे वही पुरानी कज्जन अपने प्रेमका उफान लिये उसके अंदर आ बसी थी। सीढ़ियां तो चढ़ गयी लेकिन आतुरता और उन्मादके मारे उसके पांव मन-मनभरके हो उठे। वह हांफती-कांपती ऊपर आ पहुंची। कबीर यह सारा दृश्य देखकर मुस्कराये। लोईसे आगे न बढ़ा गया। वहीं ठिठककर रह गयी। कबीर कहने लगे —

पिया मिलन की आस, रहौ कबलौं खरी।
ऊंचे नहिं चढि जाय, मने लज्जा भरी॥
पांव नहीं ठहराय चढूं गिरि गिरि परूं।
फिरि फिरि चढूं सम्हारि चरन आगे धरूं॥
अंग अंग थहराई, तो बहुविधि डरि रहूं॥

लोई शरमके मारे जमीनमें गड़ी जा रही थी। कबीरने कहा — "लोई लगता है कि हम दोनों,

सहेलियां हैं। एक ही पियासे मिलने चली हैं।" लोईने दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपा दिया। बोली — "नहीं, नहीं, आप मुझ जैसी दुष्टासे बोल भी कैसे सकते हैं?" कबीर — "लोई, सब दुष्ट होते हैं। लेकिन जब मैंने तुझे अपनाया है तो मुझे तेरा सब कुछ अपनाना होगा। मैं भी तो काफी दुष्ट हूं लेकिन मेरा साईं तो मुझे नहीं दुतकारता।"

करम कपट मग घेरी तो भ्रम परि रहूं।
बारी निपट अनारि, तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हार मिलन कैसे होई है।

"पर लोई पता, है मेरा साईं क्या कहता है। उसकी बात तेरे लिये भी उतनी ही ठीक है जितनी मेरे लिये।

छोरो कुमति विकार सुमति गहि लीजिये।
सत गुरु शब्द सम्हारि चरन चित दीजिये।

"भूल गयी लोई, तेरा दुल्हा तो अविनाशी है। इस कबीरमें क्या धरा है। कल ही देह आगमें फूसकी तरह जलेगा। मैं तो साईंका दास हूं। और एक बार सुन ले

अंतरपट दे खोल, शब्द उर लावरी।
दिल बिचि दास कबीर मिलै तौंहि बावरी।

* *

अकबर कई दिनोंसे बेचैन है। कज्जनका पता लगाते लगाते थक गया। बहुत पूछ-ताछ करनेके बाद उसे बस इतना ही पता लगा कि कज्जन घर-द्वार बेचकर कहीं चली गयी। वह अनमना सा घरकी ओर आ रहा था कि उसने कबीरके घरके सामने एक भीड़ देखी। पंडित देवदत्त, उनके चेले श्रीप्रपन्नाचार्य और उनके मुहल्लेके सब लोग मिलकर बड़ा हो-हल्ला मचा रहे थे। अकबरकी समझमें कुछ न आया। भीड़मेंसे रास्ता काटता हुआ आगे आया। दरवाजेके पास एक देहाती औरत कबीर और ज्ञानदासके बीचमें खड़ी थी। अकबरको औरतोंमें बहुत दिलचस्पी थी। उसने जरा घूरकर देखा और उसके मुंहसे निकला :—

"कज्जन, तू यहां क्या कर रही है?" देहाती कपड़ोंमें भी कज्जनका रूप छिपा न रह सका और तभी पं. देवदत्त चिल्लाये — "तुम लोगोंने इस कबीरको बहुत सिरपर चढ़ा रखा था न। देखो यह नतीजा। अपने-आपको बड़ा समझता है, दूसरोंको उपदेश देने चला है और घरमें लाकर किसको बिठाया है भाई, एक वेश्याको। तुम सब तो जानते हो इस कज्जनको। देखो, अच्छा हुआ मैंने इसके पापका भंडा फोड दिया।" कबीरपर चारों ओरसे व्यंगके बाणोंकी बौछार होने लगी। उन्होंने एक उपेक्षा भरी दृष्टि दौड़ायी और फिरसे वही चिरपरिचित निर्भीक आवाज सुनायी दी।

निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ। निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ।
निंदा जनको खरी पियारी। निंदा बाप निंदा महतारी॥
निंदा होय त बैकुंठ जाइयै। नाम पदारथ मनहि बसाइयै॥
रिदै सुद्ध जौ निंदा होइ। हमरे कपरे निंदक धोइ॥
निंदा करै सो हमरा मीत। निंदक माहि हामरा चीत॥
निंदक तो जो निंदा होरै। हमरा जीवन निंदक लोरै॥
निंदा हमरी प्रेम पियार। निंदा हमरा करै उधार॥
जन कबीर कौं निंदा सार। निंदक डूबा हम उतरे पार॥

— अनुबेन पुराणी

भारतमें स्त्रियां

लालबहादुर शास्त्रीके असामयिक निधनके बाद अधिकतर भारतीय लोगोंकी निगाहें स्वभावतः इन्दिरा गांधीकी ओर उठ गयीं। इन्दिरा प्रियदर्शिनीने केवल पंडित नेहरूकी लड़की होनेके नाते ही नहीं अपने गुणोंसे भी भारतीय और विदेशी लोगोंके मनको मोह लिया था। इसलिये उनके प्रधान मंत्री बननेपर किसीको आश्चर्य नहीं हुआ। भारतमें सबने यही सोचा कि इन्दिरा प्रधान मंत्री बनी है, किसीको यह ख्याल न आया कि भारतकी बागडोर एक स्त्रीके हाथमें गयी। परंतु स्त्री-स्वातंत्र्यके सबसे अधिक अभिमानी और इस दिशामें भी अपने-आपको दुनियाका नेता समझनेवाले यूरोप और अमरीकामें एक तहलका-सा मच गया। क्या यह संभव है कि एक सुन्दर स्त्री इतने बड़े राष्ट्रका सूत्र संचालन कर सके, मानों सौंदर्य कार्य-क्षमतामें बाधक हो? लोगोंने बार-बार पूछा, क्या एक स्त्री भूख, सुरक्षा और आंतरिक कलहकी समस्याओंके भारको उठा सकेगी? प्रत्येक नेता, प्रत्येक अखबार उनके स्त्री होनेपर जोर दे रहा था। भारत पहला बड़ा देश था जिसने एक स्त्रीको इतने ऊंचे पद-पर ला बिठाया था। "पिछड़ा हुआ, स्त्रियोंको नीचा समझनेवाला" भारत १९३६ में विजय लक्ष्मी पंडितको दुनियांमें सबसे पहले मंत्री-पद दे चुका था। फिर उन्हें ही पहले राजदूत और संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनके सभापतिका आसन दिया गया।

जब स्वयं इन्दिरा गांधीसे पूछा गया कि उनके स्त्री होनेके बारेमें हिन्दुस्तानमें जरा भी शोर नहीं मचा और यूरोप और अमरीकामें इतना शोर मच रहा है, इसका कारण क्या है, तो उन्होंने बड़े ही सरल-स्वाभाविक ढंगसे कहा, भारतके लिये यह कोई नयी बात नहीं है। हम व्यक्तिके काम और उसकी क्षमताको देखते हैं, उसके स्त्री या पुरुष होनेको नहीं।"

भारतमें हमने यही सीखा है "त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उतवा कुमारी।" स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध सबके अंदर आत्मा है और आत्मा इन सब झमेलोंसे ऊपर है। हमारे यहां 'पुरुष' तो साक्षी मात्र रहता है सृष्टिका सृजन तो माता-रूपी शक्ति ही करती है। इसी प्रकार अविद्या और अविद्यासे उत्पन्न होनेवाली आसुरिक शक्तियोंका दमन करना भी भगवती दुर्गा और कालीका काम है। यमराजके पाशसे बचानेका काम उनकी अपनी बहिन यमुनाका है। कहते हैं कि भगवती दुर्गाके सौंदर्यकी चर्चा सुनकर असुरराज शुम्भ निशुम्भ उनपर मोहित हो गये और उनके पास प्रणय-संदेश भेजा। दुर्गाका उत्तर आज भी कायरोंके दिल दहला सकता है। उनका उत्तर था:

> यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
> यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

जो मुझे युद्धमें जीतकर मेरे अभिमानको चूर्ण कर सकेगा, जो मेरे जैसा ही बलवान होगा वही मेरा पति बन सकता है।

अब साधारण स्त्रियोंकी बात लीजिये। चौथी शताब्दीमें मध्य भारतमें प्रभावती गुप्तने एक काफी बड़े राज्यपर तेरह वर्षतक राज्य किया। ओड़ीसामें नवींसे ग्यारहवीं सदीके बीच छः रानियोंने राज्य किया था। कश्मीरमें क्षेमेंद्र गुप्त (९५०-९७०) की रानी दीदाने अपने पतिकी मृत्युके बाद बरसोंतक राज किया। इसी प्रकार चौदहवीं सदीमें कोटा रानीने बड़ी अच्छी तरह राज-काज किया। इतिहासकार उसे कश्मीरकी 'क्लियोपेट्रा' कहते हैं।

राष्ट्रकूट नरेश ध्रुवकी रानी शील महादेवी अपने पतिके साथ मिलकर दक्षिणसे विंध्यतक फैले हुए

राज्यका सूत्र संचालन करती थी। कर्णाटकमें चालूक्य कुमारी अक्का देवीने विक्रमपुरपर राज्य किया और बहुत-सी लड़ाइयोंमें दुश्मनके दांत खट्टे कर दिये। विजयनगर साम्राज्यके नष्ट-भ्रष्ट होनेके बाद उस इलाकेमें रानी चेन्नम्माने बड़ी होशियारीके साथ राज्य किया। उसके कृषि-सुधार और दानके लिये उसे अब भी याद किया जाता है। उसने एक बार औरंगजेबकी सेनाको पीछे हटा दिया था। औरंगजेब उसकी वीरतासे इतना प्रभावित हुआ कि उसके साथ संधि कर ली और उसके पास बहुतसे उपहार भेजे।

त्रावणकोरके आदित्य वर्मा किसीको एलैय राजा (युवराज) बनाये बिना मर गये। अब अत्तिगलकी रानी उमायम्मा ही गद्दीके लिये शोर मचा सकती थी। शत्रुओंने उसके छःमेंसे पांच बच्चोंको मार दिया। रानीको जंगलमें शरण लेनी पड़ी। जंगलमें ही उसने एक सेना तैयार कर ली और फिरसे राज्य वापिस ले लिया।

उत्तरकी अहिल्या बाईकी तरह दक्षिणमें मंगम्माका नाम प्रसिद्ध है। अपने पतिकी मृत्युके बाद इसने १८ वर्षतक राज किया। इसकी दानशीलताकी कहानियां अब भी प्रचलित हैं। उसकी बनवायी हुई धर्मशालाएं और सराएं अब भी हैं। उसके दानसे मंदिर, मस्जिद , गिरजा सबको भाग मिलता था।

उन्नीसवीं शताब्दीमें त्रावणकोरकी रानी गौरी लक्ष्मी और गौरी पार्वतीने समाज-सुधार, और शिक्षा-प्रसारके क्षेत्रमें बहुत काम किया। उन्नीसवीं सदीके अंतमें जब दसवें महाराज जयचमराज ओडेयारका देहांत हुआ तो उनका बालक बहुत छोटा था, उसे लेकर रानीने आठ वर्ष राज्य किया। झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई और कित्तूरकी रानी चेन्नम्मा, रानी दुर्गावती, सुलताना रजिया और चांद बीबीका तो नाम ले देना ही काफी है।

इस प्रकारके और बहुतसे उदाहरण निकलते आयेंगे। यह सब देखनेके बाद यह आसानीसे समझमें आ जाता है कि श्रीमती इन्दिराका प्रधान मंत्री बनना भारतवासियोंके लिये कोई नयी बात न थी।

— रवींद्र

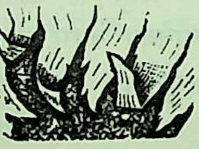

अक तुजि सोंग दजि, या हई वनस नार,
अगर ई पयो न तिम सीती सूरिन खार।
स हैस कर, चीज कांह छू न नेक न बद,
से पानस ताम छुई दियुन गाश या नार।

आगकी एक ही चिनगारी दीपकको जलाकर अंधेरा मिटाती है। वही एक चिनगरी सारे जंगलको राखकर सकती है। इसी चिनगारीसे अच्छे-अच्छे पकवान भी बन सकते हैं। कोई चीज अपनेआपमें अच्छी या बुरी नहीं होती। यह तो मनुष्यके हाथमें है चाहे उसे विनाशक आग बना ले, चाहे अंधेरा मिटानेवाली रोशनी।

—राही

दीर्घ जीवन

—पं. सातवळेकर—

प्राचीनकालीन भारतमें सौ वर्षकी आयुष्यमर्यादा बहुत सामान्य-सी होती थी। उस समयके लोगोंकी औसत आयु ही सौके आसपास होती थी, यदि यह कहा जाये तो मेरे विचारसे कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक नहीं, दो नहीं ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे सामने हैं, जो मेरे इस विचारकी पुष्टि करते हैं।

जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्गवासी हुए, उस समय उनकी आयु १२० वर्षकी थी। यह दुःखद समाचार सुनकर उनके बड़े भाई बलरामने यह विचार कर कि श्रीकृष्णके चले जानेके बाद मैं यहां रहकर क्या करूंगा, प्राणायामके द्वारा अपने प्राणोंको अनन्तमें विलीन कर दिया। यहां यह बात लक्ष्यमें रखने योग्य है कि बलराम खाटपर पड़े-पड़े 'हाय हाय' करते हुए नहीं मरे, अपितु उन्होंने स्वयं अपनी इच्छासे प्राणोंका त्याग किया! इसका अर्थ यह है कि उस समय भी उनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम था और यदि वे चाहते तो २०-२५ वर्ष और अधिक जीवित रह सकते थे। भगवान् कृष्ण और बलरामके देहावसानके समय उनके माता-पिता वसुदेव और देवकी जीवित थे। वे कृष्ण बलरामके अंतके समाचारको सुनकर कहते हैं, कि 'अब कलियुग आ गया है, क्योंकि माता-पिताके सामने उनके पुत्र मरने लगे हैं।' अब आप कल्पना करें, विवाहके समय वसुदेव देवकीकी आयु कम-से-कम २५-२० की रही होगी और कृष्ण देवकीके आठवें पुत्र हैं, अतः कम-से-कम २० वर्षकी कालमर्यादा कृष्णके जन्मके बीचमें माननी पड़ेगी। इस प्रकार वसुदेव कम-से-कम १६५ वर्षके और देवकी १६० वर्षके करीब आयुवाली रही होंगी।

इसी प्रकार महाभारतकारने केवल भीष्मको ही पितामहके नामसे संबोधित किया है। बाकीके द्रोण, कृप, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि सब युवक थे। अर्जुनकी आयु ७० के लगभग थी, गुरु द्रोणाचार्यकी आयु १०० के आसपास थी। भीष्म पितामहकी आयु १७५ के लगभग थी। इस प्रकार महाभारतकालमें भी अर्थात् आजसे केवल पांच हजार वर्ष पूर्व २५० या इससे अधिक आयुवाला ही वृद्ध माना जाता था, और उससे कमके नवयुवक या प्रौढ़ माने जाते थे। १७५, १०० और ७० वर्षमें भी भीष्म, द्रोण और अर्जुन भयंकर युद्ध करते हैं। इनमेंसे एक भी शय्यापर पड़ा हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। भीष्म भी अंतमें प्राणायाम द्वारा प्राण छोड़ते हैं अर्थात् इतने दीर्घकालके बाद भी उनकी मृत्यु नैसर्गिक नहीं होती। इसी प्रकार द्रोण भी वीर गति प्राप्त करते हैं और अर्जुन आदि भी महाप्रस्थानके द्वारा शरीर-त्याग करते हैं।

भारतीयोंकी दीर्घकालीन जीवनकी यह स्थिति मौर्यकालतक थी। मौर्यकालमें भारत प्रवासपर आनेवाले यवनदेशीय यात्रियों (ग्रीक यात्रियों) ने अपने ग्रंथोंमें यह लिखा है कि भारतमें १४० वर्षके मनुष्य सड़कोंपर घूमते नजर आते हैं। १४० वर्षके होनेपर भी वे इतने शक्तिमान् हैं कि नवयुवकोंकी तरह भ्रमण करते हैं।

ये कुछ उदाहरण हैं जो प्राचीन भारतीयोंके दीर्घायुष्यके समर्थक हैं।

मानवजीवनके ११६ वर्षका कार्यक्रम छांदोग्योपनिषत्कारने निश्चित किया है। हर मनुष्यको १२० वर्ष तो कम-से-कम जीना ही चाहिये। ११६ वर्षके कार्यक्रमको बतानेवाले छान्दोग्योपनिषद्के वचन इस प्रकार हैं—

"मनुष्यका जीवन एक यज्ञ है। इसमें प्रथम २४ वर्षोंका प्रातःसवन है यही ब्रह्मचर्याश्रम है।

इसके बाद ४४ वर्षोंका द्वितीय सवन या गृहस्थाश्रम है। तदनन्तर ४८ वर्षोंका तृतीय सवन या वानप्रस्थाश्रम है। इस प्रकार २४ ४४ ४८ ११६ वर्षोंका कार्यक्रम है। इन वर्षोंके बीचमें ही मैं अपने इस यज्ञको समाप्त न करूं, इस प्रकार जो संकल्प करता है, वह नीरोगी होता है।" छान्दोग्योपनिषद्के इस कार्यक्रममें शैशवावस्थाके प्रथम चार वर्षोंको नहीं गिना है। शैशवावस्थाके प्रथम चार वर्ष और बाकीके ११६ वर्ष मिलकर कुल १२० वर्षोंका कार्यक्रम उपनिषत्कारने बताया है।

यहां जो आयुष्यमर्यादा बतायी है, वह वानप्रस्थाश्रमतक ही है, उसके बाद एक और आश्रम तुरीयाश्रम भी है जिसे संन्यासाश्रम भी कहते हैं। संन्यासाश्रमका काल ११६ वर्षके बादका काल है, जो कम-से-कम ५०-६० वर्षोंका है, इस प्रकार १७०-१७५ वर्षोंका कार्यक्रम उपनिषत्कारने मानवोंके सामने रखा है। मानवजीवन एक बड़ा भारी यज्ञ है, जो बीचमें ही तोड़नेपर पापदायक होता है। वेद अकालमृत्युका समर्थक नहीं है, वह सदा दीर्घायुप्राप्तिका ही उपदेश देता है। यदि अनवधानके कारण मनुष्यपर मृत्युका पैर पड़ भी जाये, तो उसे चाहिये कि वह अपने पुरुषार्थसे उसे दूर कर दे–

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियास:॥

"हे मनुष्यो! अपने ऊपरसे मृत्युके पैरको हटाते हुए, अपनी आयुको दीर्घ करते हुए तथा प्रजा और धनसे संतुष्ट होकर शुद्ध, पवित्र और यज्ञमय जीवनवाले होओ।"

इस प्रकार वेद हरएकको दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये उपदेश देते हैं। वे केवल दीर्घायु प्राप्तिका उपदेश ही नहीं देते, अपितु उसकी प्राप्तिका मार्ग भी बताते हैं। ऋग्वेदका एक ऋषि कहता है कि–

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।

'ज्ञानियोंने आयुकी सात मर्यादाएं बांध दी हैं, उनमेंसे एककी भी अवहेलना करनेवाला मनुष्य पापी होता है।' (१) चोरी न करना, (२) व्यभिचार न करना (३) ब्रह्महत्या न करना (४) (४) भ्रूणहत्या न करना (५) सुरापान न करना (६) दुराचार न करना (७) पाप हो जानेपर असत्य बोलकर उसे न छिपाना। इन सात मर्यादाओंके अंदर रहता हुआ जो मनुष्य व्यवहार करता है, उसे अवश्य ही दीर्घजीवनकी प्राप्ति होती है। सप्त मर्यादाओंका पालन दीर्घायु प्राप्तिका प्रथम साधन है।

दूसरा साधन है "कर्म"। जो मनुष्य सदा उत्तम-उत्तम कर्म करता रहता है, उसका मन सदा उत्तम कर्मोंमें रहनेके कारण शुद्ध व निर्मल बन जाता है। 'खाली मन शैतानका घर होता है', यह कहावत सर्वांशमें सत्य है। खाली मन ऐसी-ऐसी योजनाएं बनाता है, जो स्वयंके लिये तो हानिकारक होती ही हैं पर समाज और राष्ट्रके लिये भी भयंकर हानिकर होती हैं। इसीलिये वेदमें कहा है––

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।

अर्थात् मनुष्य इस संसारमें उत्तम कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे।'

वस्तुतः कर्ममें ही अमृत छिपा है। कर्म करनेसे शक्ति प्राप्त होती है। "धत्तं कर्मसु चामृतं" कर्ममें ही देवोंने अमृत स्थापित किया है। इस प्रकार कर्मशील व्यक्ति अनायास ही दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। कर्म करना ही सतयुगका चिह्न है। उपनिषद्में कहा है कि 'सोती हुई अवस्था कलियुगकी है, अंगड़ाई लेती हुई अवस्था द्वापरकी होती है, निद्रासे उठनेकी अवस्था त्रेताकी है और कर्म करनेकी अवस्था सतयुगकी है। अतः हे मनुष्यो! सदा कर्म करते रहो।' इस प्रकार कर्म नीर्घायु प्राप्तिका दूसरा साधन है।

दीर्घायुका तीसरा साधन है 'प्राणायाम'। काम करते-करते जब सारी इंद्रियां थक जाती है तब प्राणायामसे उन्हें पुनः नवीन शक्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार अग्निमें पड़कर सोना कुन्दन बन

जाता है, उसी प्रकार प्राणायामकी अग्निमें पड़कर इंद्रियां शुद्ध और निर्मल बन जाती हैं। दीर्घजीवनके लिये प्राणायामका अभ्यास अत्यंत आवश्यक है। इन तीनों साधनोंका अवलम्बन करके मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

(१०० वें जन्मदिनपर दिये गये भाषणका एक अंश)

इतिहास बोलता है :

जिसने फ्रांसको नया जीवन दिया

जान दार्क

--श्री अरुणा

[फ्रांसके इतिहासमें जानदार्कका वही स्थान है जो भारतमें महारानी लक्ष्मीबाईका। दोनोंके जीवनमें बहुत-सी बातें एक जैसी हैं। जब अंग्रेज फ्रांसको कुचलनेका प्रयास कर रहे थे तब इस सत्रह-अठारह वर्षकी बालिकाने फ्रांसको एक नया गौरव प्रदान किया और उसमें नयी जान फूंकी। फ्रांसकी जानदार्क, कित्तूरकी महारानी चेन्नमा और झांसीकी महारानी लक्ष्मीबाईके जीवन देखनेसे लगता है मानो एक ही सत्ता समय और स्थानके अनुसार अलग-अलग रूप धारण करके देशको आगे बढ़ानेके लिये प्रादुर्भूत हो रही है। कौन जाने ? यह जीवनी पुरोधाके दो अंकोंमें दी जा रही है। —सं.]

जानदार्क या जिसे हम अंग्रेजीके अनुसार जोन आफ आर्क कहते हैं, फ्रांसके इतिहासमें बिजलीकी न्याईं कौधीं और उसकी आत्मामें समा गयी। आज उसके बिना फ्रांसकी कल्पना करना मुश्किल है। उसका जन्म ६ जनवरी १४१२ में दोरेमी नामक एक छोटेसे गांवमें हुआ था। इसके दादा-परदादा रईस रह चुके थे पर इसके मां, बापकी स्थिति अच्छी न थी। इसके पिता एक किसान थे। दिनभर तनतोड़ मेहनत करके अपने बड़े कुटुम्बका भरण-पोषण कर पाते थे। उस जमानेमें चारों ओर डाकुओंका बोलबाला था और वे सारे जीवनकी कमायी मिनटोंमें साफ कर दिया करते थे। जानके भाई-बहन बापके साथ काम करने खेतपर जाया करते थे और स्वयं यह घरपर रहकर मांके कामकाजमें हाथ बंटाती और सीना-पिरोना सीखती थी। पढ़ाई-लिखाईका तो सवाल ही न था। जीवनके उस कालमें जब उछलती हुई जवानी अपने-आपमें मस्त रहती है, जान भजन-पूजनमें लगी रहती थी और पादरीके पास ईसाई धर्मके अनुसार पाप स्वीकार करने जाया करती थी ;।

इस सरल धर्मपरायण बालिकाको एक दिन बहुत तेज रोशनी दिखायी दी और उसके बीच संत माइकेल खड़े थे। उन्होंने कहा, जान तुम अच्छी लड़की बनो और रोज गिरजामें जाया करो। कुछ दिनोंके बाद फिर एक गुह्य वाणी सुनायी दी —'जान फ्रांसकी रक्षा करो और सप्तम चार्लसकी सहायता करो।' जानने घुटने टेक दिये और बोली — मैं इतना बड़ा काम कैसे करूंगी ? अदृश्य देवने उत्तर दिया —सेंट मारगेरेट और सेंट केथेरीन तुम्हारी सहायता करेंगी। डरो मत आगे बढ़ी चलो।' छोटी-सी जानकी समझमें कुछ न आया।

कई वर्ष बीत गये। जान गूढ़ वाणी और रहस्यमय दृश्योंकी बातें अपने मनमें ही संजोये रखती थी।

न घरके किसी आदमीके आगे न गिरजे में पादरीके आगे वह इनके बारे में जवान खोलती थी। पांच-छः वर्षतक यह सब देखने-सुननके बाद जानको विश्वास हो गया कि वह धरतीपर कोई निश्चित काम करनेके लिये आयी है और उसे वही करना चाहिये। एक बार निश्चय कर लेनेके बाद वह निडर होकर मैदानमें निकल पड़ी। अब घरद्वारके बंधन उसके लिये बंधन न रह गये। बापने धमकाया, खबरदार! तू सिपाही बनकर फ्रांसके राज्यको बचाने जाये उससे पहले ही मैं तुझे अपने हाथोंसे डुबाकर मार दूंगा। मांने पैरोंमें सांकल डालनेकी तैयारी की। उसने कहींसे एक लड़का ढूंढ़ निकाला जो शपथ खाकर कहता था कि जानने मेरे साथ शादी करनेकी प्रतिज्ञा की थी। परंतु जो भगवान्के कामके लिये आया हो उसे कौन फंसा सकता है? जानके एक चाचाको उसके अंतर-दृश्योंकी बातपर विश्वास हो गया और वह उनकी सहायतासे घरकी बेड़ियां तोड़कर निकल पड़ी और ऐसी निकली कि फिर यह भी न जाना कि घर पूरबमें है या पच्छिममें।

जानके अशरीरी पथप्रदर्शकोंने कहा था कि उसे वोकूलर जाना चाहिये और वहांके एक कप्तानको साथ लेकर राजाके पास जाना ज्यादा आसान होगा। वह कप्तानसे मिली तो उन्होंने उसे समझाना शुरू किया कि तू अपने पिताके घर वापिस चली जा। पर जानकी दहाड़ सुनकर वह भौंचक्का-सा रह गया। जानने कहा, "मैं भागवत आदेशके अनुसार तुम्हारे पास आयी हूं। तुम जाकर युवराजसे कहो कि दुश्मनका सामना करता जाये। उसकी विजय अवश्य होगी। भगवान्की इच्छा है कि युवराजका राज्याभिषेक हो और वह राज्यको ईश्वरीय देन समझकर संभाले। मैं स्वयं उसके राजतिलककी व्यवस्था करूंगी।"

अब कप्तानको विश्वास हो गया कि इस लड़कीपर कोई भूत-पिशाच चढ़ा हुआ है। वह दौड़ा-दौड़ा गांवके पादरीके पास गया और उसे अपने साथ ले आया। पादरीने सलीब छूते हुए कहा, 'तू कौन है? भूत, पलीद, जिन जो भी हो मेरे सामनेसे हट जा।"

बात सारे गांवमें फैल गयी। ठटके ठट लोग इसे देखनेके लिये आने लगे। पादरी और कप्तानको जानपर जितना ही संदेह था, साधारण जनताको उतना ही विश्वास। एक रईसने परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे पूछा, 'क्या हमें राजाको मार भगाना चाहिये और अंग्रेज बन जाना चाहिये?' जानने उत्तर दिया, "तुम लोग जो चाहो करो, पर मैं युवराजसे मिलने जाऊंगी और अवश्य जाऊंगी। चाहे मेरे पैर घुटनोंतक घिस जायें फिर भी अपने मालिकका हुकुम बजा लानेके लिये चलती जाऊंगी।" "तुम्हारा मालिक कौन है?" रईसनें पूछा। "और कौन, स्वयं भगवान् ही मेरे मालिक हैं। उन्हें छोड़कर और किसीकी बात मेरे लिये मान्य नहीं है।" सारे वातावरणमें बिजली दौड़ गयी। चारों ओर नीरवता छा गयी। रईसके चेहरेपर एक तेज आ गया। उसने कहा, "देवि! यदि तुम भगवान्का काम कर रही हो तो जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, मैं तुम्हारा दास रहूंगा। बोलो, क्या करना है?" कप्तानने यह देखा तो झट युवराजके नाम एक पत्र दे दिया। लोगोंने उसे एक घोड़ा और पुरुषों-की वेश-भूषा उपहारमें दी।

जान, रईस और दो चार अन्य लोगोंको साथ लेकर चल पड़ी और शिनों नामक स्थानपर जा पहुंची जहां युवराज अपना अड्डा जमाये था। जान दरबारमें पहुंची तो वह छिपनेके लिये अन्य रईसोंमें जा मिला। लेकिन जान उधर-इधर देखे बिना सीधी युवराजके पास गयी और बोली — युवराज, मैं जान हूं। भगवान्ने मुझे तुम्हारी सहायता करनेके लिये भेजा है। स्वयं प्रभु ही फ्रांसका सच्चा राजा है। उसकी इच्छा है कि तुम उसकी ओरसे यहांका शासन-सूत्र संभालो। तुम राजाके पुत्र हो और फ्रांसकी गद्दीके सच्चे उत्तराधिकारी हो, तुम्हें छोड़ और कोई फ्रांसका राजा नहीं बन सकता।" जानके आश्वासन भरे शब्द युवराजके कानोंमें मधु संचार करने लगे।

युवराजने जानको कुछ और आदमी दिये और आर्लिऐंसकी सहायताके लिये भेज दिया जहां अंग्रेज सेनाका पड़ाव था। रास्तेमें लोग जानको देखकर मुग्ध रह जाते थे। काले घोड़ेपर सफेद बख्तर पहने जान एक अलौकिक सत्ता मालूम होती थी। एक ओर फरसा और दूसरी ओर सेंट केथेरीनकी तलवार बंधी थी। लेकिन इन सबसे अधिक सुन्दर था उसका झंडा। सफेद रेशमपर लीसके फूल और बीचमें दोनों हाथोंसे दुनियाको पकड़े हुए भगवान् और उनके दोनों ओर लीसके फूल लिये हुए देवदूत। जान कहा करती थी कि "मुझे अपना झंडा तलवारकी अपेक्षा कहीं अधिक प्यारा है। मैं तलवारका उपयोग करना नहीं चाहती।" पर इसका यह मतलब न था कि उसकी तलवार केवल शोभाके लिये थी। मौका आनेपर वह रणबांकुरे योद्धाकी तरह मैदानमें मारकाट भी कर सकती थी।

आर्लिऐंसपर अंग्रेज घेरा डाले हुए थे। घेरेको तोड़नेका सारा श्रेय तो जानको नहीं दिया जा सकता क्योंकि फ्रांसके बहुत बड़े-बड़े योद्धाओंने भी उसकी सहायता की थी पर यह बात निर्विवाद है कि उन सब लोगोंको एक झंडे तले इकट्ठे करना और एक-दूसरेके साथ सहयोग करनेका पाठ पढ़ाना जानका ही काम था। उन लोगोंको युवराजकी अवहेलना करनेकी आदत थी और नियंत्रण जैसी चीजसे वे अपरिचित थे। जानने उन कठोर हृदय, क्रूर सिपाहियोंमें मनुष्यताके अंकुर उपजाये। उसने खुले आकाशकी छतके नीचे एक वेदी-सी बनायी और वहां भगवान्की प्रार्थना शुरू की। उसकी देखादेखी सिपाहियों और अफसरोंने भी प्रार्थना शुरू कर दी। उनके जीवनमें एक नया रस, एक नया उत्साह आ गया। वे जानकी आज्ञापर आर्लिऐंस ही नहीं, यरूशलम जानेके लिये भी तैयार थे। वह अंग्रेजोंसे घृणा न करती थी। उसने उनके नाम एक संदेशमें कहा था —— मैं भगवान्की ओरसे कह रही हूं, तुम लोग इंग्लैंड लौट जाओ या फिर हम लोगोंके साथ मिल जाओ।

२९ अप्रैलकी शामके आठ बजे जानने आर्लिऐंसमें प्रवेश किया। सारा शहर रास्तोंपर निकल आया और हरएक उसके घोड़ेको या उसके कपड़ेको छूनेका प्रयास कर रहा था। लोगोंको ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो साक्षात् भगवान् उनके बीच आ गये हों। वह भगवान् न सही देवदूत तो थी ही जिसे मनुष्यकी आवश्यकताएं छू तक न गयी थीं। कभी-कभी वह सारे दिन घोड़ेकी जीनपर रहती और रातको सूखी रोटीके टुकड़े कुछ शराबमें भिगोकर निगल लेती थी। जान आर्लिऐंसमें घुस तो गयी पर सारा शहर अंग्रेजोंसे घिरा हुआ था। अंग्रेजोंकी एक-एक टुकड़ीमें पांच-पांच सौ आदमी थे। जानकी इच्छा थी कि शहरमें घुसते ही अंग्रेजोंपर टूट पड़े पर उसके साथी अफसरोंको यह बात पसंद न आयी। वे बहुमूल्य समय बातोंमें बिता रहे थे। जानको यह पसंद न था। वह सोनेके लिये चली गयी और संतरीसे कहती गयी कि फाल्स्टाफ आये तो मुझे जगा देना। इसमें ढील की तो तेरा सिर धड़से जुदा हो जायेगा। रातको वह अचानक चौंककर उठ बैठी और बोली, हे भगवान्! जमीन हमारे आदमियोंके खूनसे रंगी जा रही है और मैं पड़ी सोती रही। वह कूदकर उठी और हथियारोंसे लैस होकर घोड़ा दबाकर निकल पड़ी।

यहांसे जान सीधी युद्धक्षेत्र जा पहुंची। उसके आते ही अंग्रेज सेनामें घबराहट फैल गयी। जान अब अकेली न थी। आर्लिऐंसके बहुतसे लोग उसकी सहायताके लिये आ गये और धुंआधार लड़ाई हुई। कई अंग्रेज अपनी चमड़ी बचानेके लिये पादरीके वेशमें निकल भागे। जानने उनको अपने साथ ले लिया और अपने आदमियोंसे उनकी रक्षा की। उसे अपने आदमियोंकी पाशविकताका भी अच्छी तरह पता था। युद्धक्षेत्रमें इतनी लाशें देखकर उसकी आंखें छलछला आयीं। उसने देखा इतने सारे लोग धार्मिक क्रियाओंके बिना संसारसे जा चुके हैं। उसने निश्चय किया कि अगले दिन वह उन सबके लिये प्रार्थना करेगी। जानके विरोधी कप्तानोंको यह अच्छा अवसर मिल गया। वह प्रार्थनामें लगी थी और इधर उन लोगोंने अपनी सभा करके निश्चय कर लिया कि अगला आक्रमण कहां होगा। सच्चा आक्रमण लाल्वारसे करना था और दिखावेके लिये एक और मोर्चा भी

खोलना था। जानको दिखावेके मोर्चेके बारेमें ही बताया गया और सच्चे हमलेकी बात उससे छिपा ली गयी। पर सौभाग्यवश कुछ लोगोंने चुपके-चुपके जानको सब कुछ बता दिया।

अब अंग्रेज भी चौकन्ने हो गये थे। वे अपने डेरे जलाकर आगे बढ़े। और सारी शक्ति तूरनेल और आगस्टीन नामक किलोंपर लगा दी। जानको आगस्टीन लेते देर न लगी अब रहा तूरनेल। जानके विजयोन्मत्त साथी रातको तूरनेलके किलेके पास ही रहना चाहते थे। उन्होंने जानको बाधित किया कि वह रातको आराम करे। शुक्रवार होनेके कारण उसने कुछ खाया पिया न था पर अगले दिन बड़े सवेरे वह तूरनेलकी ओर चल पड़ी। उसने अपने अंगरक्षकसे कहा, "आज बहुत लोग घायल होंगे और मेरे शरीरसे भी खून बहेगा।" अंग्रेज अपने किलेकी अच्छी तरह रक्षा कर रहे थे। जान रणचण्डीके रूपमें लड़ती हुई किलेकी दीवारतक जा पहुंची पर अंदर घुसना असंभव था। जानने दीवारसे एक सीढ़ी लगायी और उसपर चढ़ने लगी। दुश्मनका एक तीर आकर उसके कंधेमें लगा और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। अंग्रेज उसे उठाकर किलेमें ले जाना चाहते थे लेकिन उसके दोस्तोंने उसे पहले ही उठा लिया।

जानको होश आया तो उसने अपने-आपको मैदानसे दूर बहुतसे लोगोंसे घिरा हुआ पाया। तीर उसके गले और हंसलीकी हड्डीमें घाव करता हुआ निकल गया था। लोग उसे ठीक करनेके लिये मंत्र बोल रहे थे। सत्रह-अठारह वर्षकी जान यह देखकर घबरा उठी और रो पड़ी। लेकिन तुरंत ही अपनी कमजोरीको दूर भगाकर वह उठ बैठी। भगवान्की कृपासे वह शीघ्र ही अच्छी होने लगी पर बिलकुल ठीक होनेसे पहले ही वह फिरसे लड़ाईके लिये निकल पड़ी। अंग्रेजोंपर दोनों ओरसे आक्रमण हो रहा था। आर्लिऐंसके लोग नदी पारसे यह दृश्य देख रहे थे। वे अपने-आपको रोक न सके और सेनाकी सहायता करनेके लिये बढ़ आये। नदीका पुल इतना भार न सह सका और बीचमेंसे कुछ हिस्सा टूट गया। लेकिन यह मानव समुद्र इससे भी न रुका और किसी तरह किले तक आ ही पहुंचा। किलेमें पांच सौ अंग्रेज थे। सबके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। उत्तरमें जो अंग्रेज बचे हुए थे वे भी अपना सब कुछ छोड़कर, यहांतक कि अपने बीमार और घायल साथियोंको भी छोड़कर भाग गये। जानने यहां एक वेदी खड़ी की और भगवान्से प्रार्थना की। आर्लिऐंसकी स्वाधीनतासे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। लोगोंको विश्वास हो गया कि इसमें भगवान्का हाथ है।

आर्लिऐंसके बाद दूसरी जबर्दस्त लड़ाई २८-२९ जूनको पातेमें हुई। अंग्रेजोंके बड़े सेनानायक फाल्स्टाफ और टालबोट अन्य कप्तानोंके साथ मिलकर लड़ रहे थे। फाल्स्टाफ हेरिंग्जकी लड़ाईका विजेता था। वह इस समय लड़नेके पक्षमें न था। उसका कहना था कि मात खायी हुई निराश सेनाको लेकर लड़ना बेकार है। पर टालबोट अपने आर्लिऐंसके कलंकको धोना चाहता था। ऐसे समय फ्रेंच लोगोंने इन्हें खदेड़ना शुरू किया और दो हजार लाशें जमीनपर बिछा दीं। जानका कोमल हृदय इस भीषण हत्याकांड और अपने सिपाहियोंकी बर्बरताको देखकर चीख उठा। उसने घोड़ेसे उतरकर कई मरते हुए आदमियोंको धार्मिक 'पाप स्वीकृति' की रस्म पूरी करनेमें सहायता दी।

पातेकी विजयके बाद युवराजको रेम्स ले जानेका मौका आया। अब देर करनेका अर्थ होता अंग्रेजों और उनके पक्षके लोगोंको मजबूत होनेका अवसर देना। जान जल्दी-से-जल्दी रेम्स जाकर चार्ल्सका राज्याभिषेक करवाना चाहती थी। साधारण जनता भी जानके चमत्कारोंकी बात सुनकर उसके साथ हो ली। इन सबके आगे चार्ल्सके मंत्रियोंकी एक न चली। जानके उत्साहने आखिर चार्ल्सकी अकर्मण्यतापर विजय पायी और वह भी चलनेको तैयार हो गया। जनताका दल बढ़ता ही जा रहा था। जिसे जो मिला वही अस्त्र लेकर जानके पीछे चल पड़ा। थोड़ी ही देरमें बारह हजारकी भीड़ उसके साथ हो गयी जो रास्तेमें बढ़ती ही जाती थी।

रेम्सके रास्तेमें ओजेर नामक शहर था जो अंग्रेजों और उनके साथ मिले हुए लोगोंके हाथमें था।

इतने बड़े शत्रुको छोड़कर आगे जाना संभव न था। और उससे भिड़नेके लिये भी युवराजके मंत्री तैयार न थे। तब क्या मंत्रियोंकी सलाहके अनुसार लौटना ही पड़ेगा? युवराज अभी इसी शशोपंजमें पड़ा था कि जान वहां आ पहुंची। युवराजके मंत्रियोंमेंसे एकने कहा, 'जान, अगर तुम यह विश्वास दिला सको कि हम छः दिनमें ओजेर ले लेंगे तो हम लड़नेके लिये तैयार हैं।" "छः दिन" जानने व्यंग्यमें कहा, 'मैं कहती हूं कल ही हम लोग ओजेरमें होंगे।' यह कहकर जान अपने हाथमें झंडा लेकर किलेकी ओर चल पड़ी। किलेके बाहर एक बड़ी खाई थी। रामकी वानर सेनाने जैसे समुद्रको देखते-देखते पाट दिया था उसी तरह जानकी सेनाने खाईमें लकड़ी पत्थर, दरवाजे — जो भी हाथमें आया डाल डालकर उसे भर दिया। अंग्रेजोंकी आंखोंके सामने आलिऐंसका नक्शा घूम गया। उन्होंने किला खाली कर देना स्वीकार किया। जानने देखा वे लोग जाते हुए फ्रेंच कैदियोंको अपने साथ लिये जा रहे थे। इनके बारेमें मंत्रिमंडलने सोचा ही न था। जानने युवराजसे कह सुनकर अंग्रेजोंको कुछ पैसा दिलाकर इन लोगोंको छुड़ाया।

९ जुलाईको चार्ल्सने रेम्समें प्रवेश किया और १७ जुलाईको पूरी सजधजके साथ फ्रांसकी परिपाटीके अनुसार युवराजका राज्याभिषेक हुआ और वह सप्तम चार्ल्सके नामसे सारे फ्रांसका अधिपति बना। अब अंग्रेज अपने मनमाने आदमीको फ्रांसकी गद्दी न दे सकते थे। जानने कहा — मेरे अच्छे राजा, आज भगवान्‌की इच्छा पूरी हो गयी। उसने मुझे यह काम सौंपा था कि मैं आलिऐंसको स्वाधीन कराऊं और यहांपर तुम्हें राजगद्दीपर बिठाऊं। दोनों काम पूरे हो गये। अब मैं मर भी जाऊं तो मुझे कोई दुःख न होगा (कौन जाने, शायद उसे आनेवाली घटनाका पूर्वाभास मिल रहा था।) लोगोंकी आंखें छलक आयीं। जानने कहा — राजा, अगर भगवान्‌की इच्छा हो तो मैं अब घर जाकर अपने भाई-बहनोंके साथ भेड़ें चरानेमें लग जाऊंगी। मुझे देखकर वे कितने खुश होंगे।

जान न चाहती थी कि अभी पैरिसपर आक्रमण किया जाय पर उसकी बातकी अवहेलना करके राजाके मंत्रियोंने विजययात्रा शुरू कर दी। जानको भी आगे-आगे चलना पड़ा। रास्तेमें गांवके गांव स्वागतके लिये उमड़े पड़ते थे। दल बढ़ता गया और पैरिसकी दीवारोंपर हमला शुरू हो गया। जान अपने-आप आगे-आगे खाईमें उतरी पर उसमें पानी भरा था। वह अपने भालेकी सहायतासे आगे बढ़ने लगी और अपने सिपाहियोंको आगे बढ़नेके लिये ललकारती रही। ऊपरसे तीरोंकी वर्षा हो रही थी। एक तीर उसकी जांघमें आ लगा। वह फिर भी डटी रही। खूनकी धारा बहती जा रही थी पर उसे पतातक न था। वह रातके ग्यारहके आसपास वहांसे लौटी। यहां लगभग पांच सौ फ्रेंच लोग घायल हुए। इस निष्फल आक्रमणकी पूरी जिम्मेदारी जानके सिरपर थोपी गयी। लोग भूल गये कि वह इसके विरुद्ध थी। खैर, उसने इन सब बातोंकी परवाह न की और फिर आगे बढ़ने लगी। उसने एक गांव जीत भी लिया। पीछेसे दुश्मनोंका एक रेला आया और जानके आदमियोंको मैदान छोड़ना पड़ा। अपने आदमियोंको पुल पार करवाते हुए वह सबसे पीछे थी। इसलिये शत्रुओंने उसे आसानीसे पहचान लिया। अगले कुछ क्षणोंमें वह अंग्रेजोंके बीचमें घिरी हुई थी। उसका घोड़ा छीना जा चुका था। उसे एक साधारण तीरन्दाजने पकड़ लिया और ले जाकर जान द लक्सम्बर्गके हाथों बेच दिया। यह देखकर अंग्रेजोंके आश्चर्यकी सीमा न रही कि उनके हृदयमें आतंक पैदा करनेवाली यह बालिका केवल अठारह वर्षकी थी।

कहते हैं कि जानको इस गिरफ्तारीका आभास मिल गया था। वह पिछले दिन किसी गिरजामें प्रार्थना करने गयी थी और वहां उसने पादरी और कुछ बच्चोंके सामने कहा था' "मेरे मित्रो, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि एक आदमीने मुझे बेच दिया है। अब मैं अपने राजा और महान् फ्रांसकी सेवा न कर सकूंगी। तुम मेरे लिये भगवान्‌से प्रार्थना करना।"

* * *

विद्यालयमें नन्हा-मुन्ना

(कुछ आदतें)

बात बच्चोंकी आदतोंपर उठी है तो यह कहती चलूं कि एक-एक अच्छी आदत मजबूत ईंटकी तरह है जिससे एक बड़ी इमारत खड़ी होगी। छोटी-छोटी बुरी आदतें मासूम बच्चेके व्यक्तित्वको कमजोर बनाती हैं। दूर क्यों जायें, छोटी-सी चीजको ही लीजिये, जैसे सुबह तड़के उठकर जल्दी तैयार होना। अगर यह एक आदत बन जाय तो आप देखेंगे फिर हर काम जल्दी होगा। जब बच्चा तैयार हो जायेगा तो वह स्कूल भी अवश्य समयपर पहुंचेगा। बच्चेको रोज स्कूल जानेकी आदत पड़नी चाहिये जैसे खाये बगैर बच्चा नहीं रह सकता उसी प्रकार उसे स्कूल जानेकी भी चाह होनी चहिये। जब वह स्कूल नहीं जाय तब उसे यह महसूस होना चाहिये कि जैसे उस दिन उसने बहुत बड़ी चीज खो दी है। मैंने देखा है कि एक छोटी लड़की स्कल जानेमें जब भी आनाकानी करती तो उसकी मांको तरस आ जाता और वह उसे पुचकारकर स्कूल जानेसे, 'मुक्ति' दिलवा देती। जरा कुछ हुआ नहीं कि लड़की घरपर! जरा-सी खांसीमें ही वह ऐसा महसूस करने लगती जैसे वह बहुत बीमार है, घरमें एक दिन त्यौहार हुआ नहीं कि उसने तीन दिनकी छुट्टी मना ली। पहली बात हुई स्कूल न जानेकी और उससे भी बड़ी बात हुई बीमारीको आमंत्रण देनेकी। जब वह स्वस्थ है और स्कूल जानेके लिये अस्वस्थ होना चाहती है तो मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि वह अवश्य सचमुच बीमार पड़ेगी क्योंकि वह बीमारीके लिये हाथ पसारे बैठी है। वह बार-बार बीमार पड़ेगी क्योंकि इससे उसे स्कूलकी शक्ल नहीं देखनी पड़ती। फिर उसका स्वास्थ्य गिरेगा, वह पढ़नेमें फिसड्डी रह जायेगी और एक ही श्रेणीमें दो-दो, तीन-तीन साल रहना होगा। मैं नहीं समझती इसमें उसे मजा आयेगा क्योंकि उसके सहपाठी उसे 'टा-टा' कहके उससे कई श्रेणी आगे निकल जायेंगे। तो देखा आपने एक छोटी-सी आदत और कितने खतरे; यही उस भावी इमारतकी कच्ची ईंट है। बच्चोंको समयपर खाना-पीना और आराम करना सिखाना भी हमारा कर्तव्य है। बचपनसे ही थोड़ा-थोड़ा पढ़नेकी आदत भी डालनी चाहिये। साथ ही अभीसे बहुत पढ़नेपर बहुत जोर भी नहीं डालना चाहिये क्योंकि इससे उसका छोटा-सा दिमाग थक जायगा और वह पढ़नेसे जी चुराने लगेगा। मैं यह नहीं कहती कि पढ़नेका मतलब यह है कि उसके सामने एक किताब खुली हुई होनी चाहिये या उसके हाथमें कलम होनी चाहिये। मेरा मतलब हरगिज यह नहीं है। मैं कहना यह चाहती हूं कि उसे आप खेल-खेलमें पढ़ाइये। उससे रंगोंके नाम पूछिये, या उसकी आंखें बंद करके उसे लकड़ीके टुकड़े छू-छूकर बताने दीजिये कि वह कैसी आकृतिके हैं। गिनती भी खेल-खेलमें सिखायी जा सकती है। जैसे किसी कितबामें कुछ पक्षियोंके चित्र हैं तो उससे उन्हें गिनवाइये। चाहे उसकी गिनती 'एक' से शुरू न होकर 'पांच' से हो मगर इससे उसके दिमागमें अंकोंका मतलब बैठ जायेगा, फिर वह एक साथ 'पांच' मछलियोंको एक चित्रमें देखकर एक-एक करके गिने बगैर आपको एकदम पूरा अंक बता देगा, इसका मतलब है वह अंकोंके अर्थको ग्रहण कर चुका है।

दूसरा तरीका यह है कि तोतेकी तरह उससे एक से सौतक गिनती गिनवा लीजिये और मन-मन सफलतापर फूले न समाइये, मगर उस तरह वह तोतेका तोता ही रह जायेगा, उसे पता भी नहीं लगेगा कि वह क्या बोल रहा है, वह एक मशीनकी तरह चल पड़ेगा और जैसे ही खटका बंद किया कि मशीन बन्द! आपको अपने बच्चेके लिये क्या पसंद आयेगा? वह धीरे-धीरे पांचचतक की गिनती

समझ-समझकर सीखे या तोतेकी तरह रट्टे मारे! मैं एक बात कह दूं। शुरूमें बच्चेकेंके लिये सिर्फ पांचतक ही गिनती लीजिये, उसे बोझसे दबाइये मत। फिर जब उसे अंकका जरा-जरा ज्ञान हो जाये तब उसे बस पांचतक गिनती लिखाकर दिखाइये और साथ-साथ बताती जाइये कि यह कौन-कौनसा अंक है। बस इससे ज्यादा कुछ नहीं। दूसरे समय उसे गिनती लिखकर क्रमसे पांचतकके अंक पूछिये। उसके बाद अगला कदम है कि आप 'एक' नम्बरपर एक छोटा-सा पत्थर या कोई मोती रखिए और उसे समझाते जाइये कि यह 'एक' है और इसी तरह बच्चेको जब अंक पहचाननेमें असुविधा न हो तब उससे भी यही करवाइये यानी उससे अंकोंपर हिसाबसे पत्थर रखाइये। हम अपने स्कूलमें यही प्रयास करते हैं और यह बहुत सफल होता है।

इसी प्रकार पढ़नेमें भी हम यही करते हैं। बजाय बच्चोंको क, ख, ग रटवानेके हम एक पूरा शब्द लिखते हैं जैसे "हाथ" अब हम पहली बार "हाथ" पढ़कर बताते हैं। और साथ-ही-साथ यह भी बता देते हैं कि यह किस वस्तुका नाम है। बच्चेके दिमागमें एक पूराका पूरा शब्द और चित्र बैठ जाता है। जब अगली बार वह शब्द 'हाथ' देखता है तो उसे यह पता रहता है कि यह जाना-पहचाना शब्द है। और वह पहचानकर याद करनेका प्रयत्न करता है। कई बार तो वह सफल होता है क्योंकि उसकी आंखोंने वह शब्द पहले देखा है और दिमागमें वह गूंजता है तो उन दोनोंका संबंध मिलकर वह झट बोल पड़ता है कि यह "हाथ" है। कभी-कभी ऐसा होता है कि वह पढ़नेमें हिचकिचाता है तो उसे शब्द बनानेकी जगह उस वस्तुकी ओर इशारा करती हूं जिसका नाम कागजपर लिखा हुआ है। इससे यह होता है कि अगर शब्द उसे आता है मगर वह पढ़ नहीं सकता तो वह झट समझ जाता है कि यह किस चीजका नाम है और उसको शब्द याद आ जाता है। इस प्रकार वह खुद ही समझ जाता है। शुरूमें एक-एक शब्दके साथ प्रयोग कीजिये फिर जब उसकी ग्रहण-शक्ति बढ़ने लगे तब उसे रोजमर्रा कामकी कुछ चीजें दिखाइये जैसे पेंसिल, खड़िया, रबर, कापी, स्लेट, मेज, कुर्सी वगैरह एक-एक छोटे कागजपर इन चीजोंके नाम लिखिए और जिस चीजका नाम है वह उसी चीजपर रखिये जैसे कापीके ऊपर 'कापी' लिखा हुआ कागजका टुकड़ा। फिर बच्चेसे कहिये कि तुम पढ़नेका प्रयत्न करो। बच्चेको सब वस्तुओंके नाम पहलेसे ही आते हों तो पढ़नेमें कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि वह वस्तुको देखते ही झट नाम बोल देगा। अगर उसे नाम भी न मालूम हो तो आप दोनों चीजें एक साथ सिखा सकती हैं—पढ़ना भी और चीजका नाम भी। फिर जब उन्हें सब चीजोंके नाम अच्छी तरह पढ़ने आ जायें तब एक बच्चेको वह नन्हें-नन्हें कागज (जिनपर नाम लिखे हैं) देकर कहिये कि वह जिस चीजपर जो नाम ठीक समझता हो रख दे। अब उसकी परीक्षा ही मानिये। वह ठीक भी रख सकता है गलत भी, यह तो उसीपर निर्भर है।

बच्चोंकी देखनेकी शक्ति बढ़ानेके लिये आप उनसे कहिये कि वे आंखें बंद करें फिर आप उन सारी चीजोंमेंसे एक या दो चीजें गुम कर दीजिये और फिर आंखें खुलवाकर यह पूछिये कि कौन-सी वस्तु गायब हो गयी। तब आपको मालूम हो जायगा कि किसका कितना ध्यान खेलमें है। ऐसी बातोंका कोई अंत नहीं, अच्छा आज बहुत बातें हुईं, फिर मिलेंगे।

—— अंजना शर्मा

लिपिककी खोजमें

—श्री रवींद्र

"दूंदे कक्का, जै बिहारीजीकी !"

"आओ , बोटा आओ, बड़ी उमर होइ, दूधन नहाओ, पूतन फलो ! "

"कक्का, हों तो विधावासे ब्याह करोंगो ?"

और दूंदे कक्का अपनी लुटिया डोर नीचे रखकर मेरे पीछे पड़ गये। "ठहर जा नठिया, डाढ़ीजार ...."

लेकिन शायद मुझे बात शुरूसे कहनी चाहिये। दूंदे कक्काका असली नाम तो कोई जानता नहीं, शायद उन्हें भी न मालूम हो परंतु सबके सब उन्हें दूंदे कक्का ही कहा करते थें क्योंकि उनका जन्म १८५७ के द्वन्द्वके समय हुआ था। हमारा स्थान न तो शहर था और न गांव। दोनोंके बीचमें, आप जो नाम देना चाहें दे लें। दूंदे कक्का हमारे यहांके पढ़े-लिखे पंडितोंमें थे। वेद-शास्त्र, रामायण, महाभारत सबके नाम जानते थे। हनुमान चालीसा, सत्य नाराणकी कथा आदि उन्हें कण्ठस्थ थे। किसीके यहां ब्याह हो या श्राद्ध, कक्का पुरोहिताई करने पहुंच जाते थे।

कुछ दिनोंसे हमारे यहां सुधारकी लहर आयी थी। मेरे घरमें सुधारवादियोंकी जातीय महासभाकी बैठकें होतीं और विधवा विवाह उचित है या अनुचित इस विषयपर गरमा-गरम बहस होती। हम बच्चे उन लोगोंकी बातें तो न समझते थे, न हमें यह मालूम था कि विधवा किस चिड़ियाका नाम होता है पर हमने यह देखा था कि विधवा-विवाहका नाम लेते ही दूंदे कक्का बौखला उठते थे। हम बच्चोंने बस यह नियम बना लिया कि जब कक्का दिखायी दें, उनके सामने विधवा-विवाहकी बात करते थे और वे कभी खड़ाऊं फेंककर मारते, कभी लुटियामेंसे पानी फेंकते और कभी खाली गालियां देकर रह जाते। हम लोगोंको बड़ा मजा आता। दिनमें कम-से-कम दस पंद्रह बार गलीगलीमें यह नाटक दुहराया जाता।

कक्काकी आयु ढल चुकी थी। इतनी कसरतसे बहुत थक जाते थे पर आदत और धार्मिक उग्रतासे लाचार थे। थक जाते तो बड़े उच्च स्वरस्से प्रार्थना करते —'हे बांके बिहारी, इस घोर कलिकालमें जिंदा रहना असंभव है। अब जल्दी उठा लो !" और हममेंसे कोई पीछेसे कह देता — "और इस बारकी तरह अगले जन्ममें भी क्रोधी बंदर न बनाना।" वे फिर उठते और लाल-पीले होकर कहनेवालेके पीछे दौड़ते पर बूढ़ी टांगें दौड़नेसे जवाब दे देतीं और वे धम्मसे बैठ जाते और कभी-कभी धर्मके अपमानपर आंसू बहाते। मेरे पिताजीको उनकी बूढ़ी हड्डियोंपर बड़ी दया आती थी। एक दिन उन्होंने हम सबको इकट्ठा करके डांट पिलायी और समझाया। उन्होंने हमें बताया कि दूंदे कक्काके एक छोटे भाई थे सारंगपाणि। ऐसे ही मजाक-मजाकमें किसीने उनसे कह दिया —'तुम डरपोक हो'। वे बड़े बिगड़े, आखिर तय यह हुआ कि वे अपनी बहादुरी दिखानेके लिये कुंएमें कूदकर दिखायें। कुछ लड़कोंने मजाक आगे बढ़ाते हुए कहा, "कूद चुके, अपने पड़ोसके कुएंमें कूदेंगे ताकि बचानेवाले साथ रहें।" बातचीत खत्म हो गयी। लोग भूलभाल गये। शामको सारंगपाणिकी घरवाली मेरे पिताजीके पास आयी कि लाला, जरा देखो तो तुम्हारे भैया कहां हैं ? आज दोपहरको खाने भी नहीं आये, मेरी बांयी आंख फड़क रही है। मेरे पिताजीका माथा ठनका। दो-चारको साथ लेकर इधर-उधर खोजने निकले। आखिर कहीं दूर जंगलकी तरफ एक कुएंमेंसे उनकी लाश मिली । वे अपनी शर्त्त पूरी करने गये होंगे !

यह घटना सुनाकर पिताजी बोले —— एकको हम लोगोंने मजाक-ही-मजाकमें मार डाला, अब तुम भी यही करनेपर तुले हो। भगवान्के लिये उस बेचारेकी आफत न करो। हम लोग गंभीर होकर वहांसे चले गये। उसके बाद इच्छा होनेपर भी किसीने कक्कासे विधवा विवाहकी बात नहीं की।

* *

इस घटनाको एक जमाना बीत गया। दूंदे कक्का भगवान्के यहां चले गये। मैं भी अपना स्थान छोड़कर आसाममें कलक्टर बन गया। बहुत दिनोंके बाद दो महीनेकी छुट्टी लेकर घर लौटा। गांवका हुलिया ही बदला हुआ था। दूंदे कक्काका बड़ा लड़का पुरोहिताई करता तो था परंतु उसको वह आदर न मिल पाया था। मैं जो पहुंचा तो वह मेरे पास आ धमका। बोला —— भैया, कक्का तुम्हें बहुत मानते थे। मरती बिरियां मुझसे बोले —— "बेटा तू तनिक भी चिंता न करना। तेरा दद्दा कलक्टर है। कोई भी तकलीफ हो झट उसके पास चले जइयो। वह सब ठीक कर देगा।" मेरे लिये यह पहला मौका नहीं था। बहुतोंके मामा, चाचा, फूफा 'मरती बिरियां' मुझे याद करके मेरी सहायताका आश्वासन देकर मरे थे। खैर, मैंने सोचा, चलो थोड़ी देर मन लगानेके लिये एक खिलौना मिल गया। मैंने पूछा, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं? दूंदे कक्काके सुपुत्र फफूंदेने इधर देखा, उधर देखा, आकाशको ताका, फिर धीरेसे बोले —— लौआ तुमने (अब मैं दद्दा और आपसे लौआ और तुम हो गया) रामायण महाभारतका नाम तो सुना ही होगा। मेरी भी इच्छा है कि ऐसी कोई पोथी लिख जाऊं जिससे मेरा और मेरे पुरखोंका नाम अमर हो जय। लेकिन मुश्किल यह है कि मैं अपने-आप लिख नहीं सकता। कहते हैं कि व्यासजी भी मेरी तरह थे। उन्हें भी लिखनेके लिये गणेशजीकी जरूरत पड़ी थी। मुझे लगता है कि मुझे भी कोई लिखनेवाला मिल जाये तो मैं भी महाभारत नहीं तो रामायण जितनी बड़ी चीज तो तैयार कर ही दूंगा। आप इसमें कुछ सहायता कर दें तो बड़ी कृपा हो।

मैंने मनमें सोचा, यह अच्छी मुसीबत आयी। लेकिन खैर, मैंने इधर देखा, उधर देखा, जमीन देखी, आकाश खोजा और बड़ी ही गंभीर वाणीमें कहा —— हां, एक आदमी मेरी नजरमें है लेकिन कौन जाने वह मानेगा या नहीं। 'नहीं कैसे मानेगा' फफूंदे जी उबल पड़े, नहीं मानेगा तो हथकड़ियां न पड़ जायेंगी। कलक्टर साहबका हुकुम न माननेकी हिम्मत किसमें है। आप नाम बता दीजिये, आगे मैं कर लूंगा। मैंने और भी गंभीर होकर कहा —— यह हमारे पड़ोसमें महंत वेंकटगिरि रहते हैं, आदमी विद्वान् हैं, आप मना सकें तो मना लीजिये। फफूंदेकी बांछें खिल गयीं। वेंकटगिरिको सारा गांव जानता था। उसे हम लोग राजनीतिक महंत कहा करते थे। पूजा-पाठ तो कम करता था। सारे समय कांग्रेस और जनसंघ, मुस्लिम लीग और रामराज्य परिषद्के झंझटोंमें लगा रहता था। उसका आदर्श वाक्य था 'खाओगे कितना? इत्ता सारा; काम कितना करोगे? 'नन्हा बेचारा। जिले भरमें शायद ही कोई हो जो महंतजीके इस स्वभावसे परिचित न हो, परंतु बात यह है कि फफूंदे अपना नया महाभारत रचनेके लिये इतने उतावले हो रहे थे कि वे मेरा मजाक न समझ पाये। उसी समय उठे और सीधे महंतजीके डेरेपर जा पहुंचे। महंतजीने अपने स्वभावके अनुसार बड़ी आवभगत की और मीठी वाणीसे फफूंदेका मन मोह लिया। इन्हें लगा कि यह शिकार तो हाथमें है ही बस, कलसे ही नया महाभारत शुरू कर देंगे। लेकिन पहले महंतजीका मुंह जुठारनेकी व्यवस्था भी तो होनी चाहिये। बस, उन्हें अपने घर निमंत्रण दे डाला। उस दिन घरमें भुंजी भाग भी न थी। इधर-उधर जिजमानोंके निहोरे करके खीर पूरी हलुवा आदि बनाकर अपने आराध्य महंतजीको बुलाने चले। महंतजीने बड़ी आनाकानी की, इधर-उधरके बहाने बनाये और फिर 'फफूंदे जी' को खुश करनेके लिये उनके घर आ गये। फफूंदेने जितना बनाया था सबका सब महंतजीके

'मुंह जुठारनेमें' ही साफ हो गया और उनके अपने अनशनकी नौबत आ गयी। लेकिन उन्हें खुशी थी। उनकी नये महाभारतकी तैयारी पक्की हो रही थी।

हाथ-मुंह धोकर महंतजी घरकी ओर चले तो फफूंदे भी उनके साथ हो लिये। रास्तेमें उन्होंने कलिकाल की, धर्मके क्षयकी, नये जमानेकी नयी जरूरतोंकी न जाने कितनी बातें कीं और फिर धीरेसे अपने मतलबपर आये। महंतजीको मानो बिच्छूका, डंक लगा वे और भला काम करेंगे और वह भी इस फूहड़के नीचे! हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! फिर सारे देशकी नेतागिरि कौन करेगा? लेकिन मजाल है कि उनके चेहरेपर कोई भाव आया हो। उन्होंने बड़े ही अपनेपनके साथ कहा — हां, फफूंदे भाई, काम तो आपका बहुत बड़ा है, इसके लिये आपकी नजर मुझपर गयी यह मेरा सौभाग्य है। मुझे इस प्रकारका काम बहुत ही प्रिय है लेकिन बात यह है कि मैं अभी किसी और काममें अत्यंत व्यस्त हूं, दम लेनेकी फुरसत नहीं होती। आपके स्नेहने बाधित किया तो इधर चला आया। आपको कष्ट तो होगा, पर कुछ दिनों बाद फिरसे याद दिला दें तो अच्छा हो। फफूंदे मुंह लटकाये लौट आये, अंतड़ियोंमें आग लगी थी, एक लोटा पानी डाला और सोनेकी कोशिश करने लगे।

इस बीच फफूंदे फिर दो-चार बार मेरे यहां आये। अपने कामकी महत्ता, अपनी विवशता और महंत जैसे सहायककी आवश्यकतापर बड़े-बड़े भाषण दिये और तरह-तरहसे मुझे प्रभावित करनेके यत्न करते रहे। मैं उनकी बातोंका कायल था। मैंने कई अप्राप्य हस्तलिखित ग्रंथोंके आधारपर उनके सामने यह सिद्ध कर दिया कि महाभारतकार व्यास तो खाली बादरायण थे, आप तो अंगूरायण हैं और आपके आनेकी भविष्यवाणी मैंने आसाम और बंगालमें सुनी थी। उन लोगोंकी मान्यता है कि बादरायण बदरी या बेर जैसे थे, उनकी तुलनामें आप अंगूर जैसे हैं। अब आप जल्दीसे महंतको तैयार करके लिखवाना शुरू कीजिये। संसारको इतने बड़े ग्रंथसे वंचित रखना ठीक नहीं है।

फफूंदेने फिरसे महंतको न्योता दिया। अबकी लड्डू पेड़े वगैरापर हाथ साफ करनेके बाद महंत जी बोल — देखो फफूंदे भाई, बात यह है कि मैं एक बहुत बड़ी संस्थाका सदस्य हूं। मेरी सेवाएं राष्ट्रपतिके हाथोंमें हैं। उनसे पूछे बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम राष्ट्रपतिसे एक शब्द कहलवादो और मैं तुम्हारा पूरा काम सिरपर ले लूंगा। यहांतक कि ग्रंथ छपवानेकी व्यवस्था भी कर दूंगा। फफूंदेका दिल बल्लियों उछलने लगा। दौड़े-दौड़े मेरे पास आये। उनका ख्याल था कि कलक्टर होनेके नाते राष्ट्रपतिसे तो मेरा भाईचारा होगा ही, मैं चट जाऊंगा और पट उनसे हुकुम लिखवा लाऊंगा। मैं भला उनके विश्वासको क्यों तोड़ता। फिर भी अपनी बेचारगी, महंतकी ढिठाई और उनकी भलमनसाहतके बारेमें एक लेक्चर झाड़ दिया। आखिर फफूंदेके कहनेपर मैंने महंतजीके नाम एक पुरजा लिखा कि अगर आप इनका काम कर देंगे तो आपको धरतीके तारे, आकाशके फूल और न जाने क्या-क्या उपहारमें मिलेगा। फफूंदे खुश होकर महंतके यहां पहुंचे। महंतने मेरे पत्रकी खूब प्रशंसा की पर उन्हें शिकायत बनी रही कि राष्ट्रपतिकी आज्ञा तो नहीं आयी। फफूंदे फिरसे मेरे पास आये। उन दिनों देशके कई स्थानोंपर राजनीतिके कारणोंसे उपवास चल रहे थे। मैंने फफूंदे कहा — आप भी आमरण अनशनकी घोषणा कर दीजिये। आप कह दीजिये कि जबतक महंतजी आपके यहां काम करने नहीं आते तबतक आपका उपवास जारी रहेगा। आखिर आप जो कर रहे हैं संसारके लिये कर रहे हैं, आपकी सहायता न करके महंतजी देशद्रोह कर रहे हैं, बल्कि मानवद्रोह कर रहे हैं।

मेरी और सब बातें तो फफूंदेजीके गलेसे उतर गयीं पर उपसावकी बातपर वे अभी विचार कर रहे हैं। इधर मैं उनके बार-बारके हमलोंसे बच गया हूं। अगर आप भविष्यके इस बृहत् पुराणके लिपिक बनना चाहें तो आज ही फफूंदेजीके नाम पत्र भेज दीजिये। ऐसे अवसर बार-बार नहीं आया करते।

ब्रजभारती :

करवा चौथ

—श्री उमाशंकर दीक्षित

सात भैय्यान्की एक लाड़ली भैन हती। वाकौ नाम कोऊ कोऊ बींझा भैन बतावैं हैं। करवा चौथ आई। नन्द भौजाई सब बर्ती रहीं। भैनके बिना भैय्यननें हू कछू नहीं खायौ। भैय्यन नें कही कै भैन आजा खाइवे कूं खाइलै। भैन बोली -- आजु तौ मेरौ बर्तु है। मैं तौ आज चन्दा कूं अरग दैकें खाऊंगी।

संजा है गई। भैय्यान कूं बड़े जोर की भूक लगी। उनमें ते एक जंगल कूं चल दीयौ और एक पीपर के पेड़ पै नसैनी लगाइके चढ़ि गयौ। दीयौ जराइ कें बाकूं चलनी ते ढकि आयौ। फेरि घरमें आइके भैन ते बोल्यौ — कै भैन, दिखि चन्दा निकसि आयौ चलि कै अरगु दै दै। भैन नें देखि कै भाभीन तें कही कैं भाभी चलौं चन्दा निकरि आयौ है कैं अरगु दै दै। भाभीन नें कही कै सात भइय्यान की प्यारी भैन कौ चन्दा निकरि आयौ है। हमारौ तौ रात कूं निकरैगौ।

भैन अकेली ही अरगु दै आई औरु पूजा करके भैय्यान के संग खाइवे बैठी। पैहले ही गस्सा में बार आय गयौ, दूसरे में छींक भई, तीसरे में बाके मालिक के मरिबे की खबरि आइ गई। जैसी बैठी वैसी ही रोवती पीटती उठि बैठि और अपने घर पौंहची। अपने मालिक की ल्हास लकें एक कोठरी में रखि कै बैठि गई वाकी खूब सेवा करिबे लगी।

ऐसें करत अघैन की चौथ आई। वर्ती रही, पूजा करी, रात में चौथ मइय्या आई। चौथम इय्या नें कही कै तू कहा मांगै है? मोय मेरो सुहाग दै बींझा नैं कही। चौथ मइय्या बोली — सुहाग तो मैं नांइ दै सकूं। पूस की चौथ आवैगी बु दैगी। पूस की चौथ आई। फिरि बानै एसेई कर्‌यो रात में चौथ मइय्या आई। बाते बानें कही के मोइ सुहाग दै। बानेंऊ कही कै मैं नाही दै सकूं, माह की आवैगी बु देगी। ऐसेई माह की, फागुन की, चैत की, बैसाख की, ज़ैठ की, असाढ़ की, सामन कीं, सबन्नें अपनीन ते आगे बारीन पै टार दीनी कै आगे की दूसरी चौथ आवैगी बोई सुहाग देगी। अंत में क्वार की चौथ आई। वानें कही कै कातिक की चौथ जो करवा चौथ है बुई तोहि सुहाग दै सकै है और कोऊ नांहि दै सकै। बु दांतन काटती लातन मारती आवैगी। तू बाके पैर पकरि लीजे, छोड़ियो मति।

कातिक लागत चौथ आई। बानें वैसेई वर्त राख्यौ। पती की पूजा करी। लीप पोत कैं भींति पै चन्दा काढचौ। रात में चौथ मइय्या आई। ऐसैई लातन मारती दांतन काटती आई। बींझा नें बाके पैर पकरि लीनै, बहोतु विनती करी और कही कै मय्या मोय मेरौ सुहाग दै।

चौथ मइय्या ने व्हौतु नाहीं करी। परि बु नहिं मानी। पीछैं ही परि गई। रोबै पैरन में बेरि बेरि हाथ जोरै तब तौ चौथ मइय्या कूं दया आइ गई और अपनी कन्नी उंगरिया चीर कैं बाके मालिक के म्हौमें डारि दई। सोई बु हरे हरे करिकैं उठि बैठ्यौ।

बीझा नै चौथ मइय्या की खूब पूजा करी। जब आसमान में सांजे कौ चन्दा निकसि आयौ तब बाकूं अरगु दीयौ और भींति के चन्दा की पूजा करिकें मट्टी के चेरुआ पल्टे। पती कूं भोजन कराइ कैं पीछे आपुनेहूं प्रसादु लयौ। बस, जैसी पैहली आई काऊ कें मति अइयो, पीछै आई सब काहुकें अइयो।

नलनीलका वंशज

रामायणमें बंदरोंकी बड़ी महिमा है। उन्होंने तरह-तरहके काम किये और राक्षसोंपर विजय पायी। आधुनिक मानव इन बातोंको कहानी या कल्पना कहकर टाल देता है। परंतु वह आस्ट्रेलियाके बालमोरल जिलेके जानीके बारेमें क्या कहेगा यह देखना है।

वहां मिस्टर श्मिट नामक एक किसान रहता है जिसके पास बहुत-सी जमीन है जहां खेतीके साथ-साथ भेड़ें भी पाली जाती हैं। एक दिन श्मिट अपनी मोटरमें कहींसे लौट रहा था तो उसने देखा कि रास्तेमें एक बंदरवालेकी मोटरमें आग लग गयी है। श्मिटने अपनी गाड़ी रोकी और बंदरोंसे भरी हुई मोटरकी आग बुझाई। मालिक बहुत खुश हुआ और उसने श्मिटको एक छोटा-सा बंदर उपहार दिया। इनकी समझमें न आया कि उससे क्या करें। फिर भी उसे घर ले आये। बंदर कुछ ही दिनोंमें खाली बैठनेसे तंग आ गया और उसने मिस्टर श्मिटके साथ खेतोंपर जाना शुरू कर दिया। श्मिट ट्रेक्टर चलाता तो बंदर महाशय बड़े ध्यानसे देखा करते। कुछ दिन यूं ही बीत गये। श्मिट ट्रेक्टरसे घास ले जाया करता था और जगह-जगह रुककर भेड़ोंके लिये घास फेंकता जाता था। एक दिन उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि बंदर महाशयने ट्रेक्टर चलाना शुरू कर दिया। वह ऊबड़-खाबड़ जमीनपर झाड़-झंकाड़से बचाकर सधे हुए चालककी तरहसे ट्रेक्टर चलाने लग गया, यहांतक कि पहाड़ीपर चढ़ाना उतारना भी उसके लिये आसान हो गया। अब कभी श्मिट ट्रेक्टर चलाता तो बंदर घास बांटता और बंदर ट्रेक्टर चलाता तो श्मिट घास बांटा करता।

भेड़ोंकी रखवालीके लिये खास प्रकारके कुत्ते रखे जाते हैं। जानी इस काममें भी निपुण हो गया। इधर-उधर भटक जानेवाली भेड़ोंको वापिस ले आना भी उसका एक काम हो गया। आस्ट्रेलियामें बहुत बड़े-बड़े खेत होते हैं। उनमें बीच-बीचमें दरवाजे होते हैं। ट्रेक्टरवालेको बार-बार उतरकर दरवाजा खोलना होता है फिर ट्रेक्टर आगे ले जाकर दरवाजा बंद कर देना होता है। जानीने यह काम भी अपने हाथमें ले लिया। दरवाजेके पास पहुंचनेसे पहले ही वह कूद पड़ता है और जबतक ट्रेक्टर दरवाजेके पास पहुंचे तबतक दरवाजा खोलकर खड़ा हो जाता है और फिर दरवाजा गुजर जानेपर उसे बंद करके ट्रेक्टरपर आ बैठता है। वह बिना थके सारे दिन इसी काममें लगा रहता है और रात होती है तो घूमने चला जाता है। सब दरवाजों और तालोंकी जांच करता है और फिर आकर सो जाता है। वह सवेरे दूध, केले और दलिया घाकर कामपर निकल जाता है। दोपहरका खाना मालिकके साथ खेतपर ही खाता है। दोनोंके लिये अलग-अलग बरतनोंमें खाना होता है। पर मजाल है कभी बंदर महाशयने भूलसे भी मालिकके खानेको हाथ लगाया हो।

एक दिन श्मिटके खेतपर कुछ मजदूर काम कर रहे थे। उनमें एक स्त्री भी थी जिसका बच्चा छः महीनेका था। वह उसे लिटाकर काममें लग गयी। इधर बंदर महाशय बच्चेकी आया बन बैठे और उसे खिलाते रहे। लेकिन जब बच्चेकी मां उसे लेने आयी दो बंदरने देनेसे साफ इंकार कर दिया। आधे घंटेतक चकचक होती रही फिर श्मिटने आकर बच्चा बंदरसे लेकर मांके सुपुर्द किया।

यह बंदर दो मजदूरोंका पूरा काम करता है और न कभी हड़ताल करनेकी धमकी देता है न वेतन बढ़ानेके लिये शोर मचाता है। अब श्मिटने एक और बंदरका बच्चा पाला है और जानी उसे काम सिखा रहा है। अमरीकामें भी एक बढ़ईने इसी तरहका एक बंदर पाल रखा है जो पेटियां बना सकता है, कीलें जड़ और निकाल सकता है और सीधी-सादी कुर्सियां भी बना लेता है। इन सब बातोंको सुनकर किष्किंधाकी याद हो आती है।

***

लक्ष्मीप्रसाद्‌जी बोले

(हमारे बहुतसे छोटे-छोटे मित्रोंने शिकायत की है कि हम 'लक्ष्मीप्रसादजी बोले' को आगे क्यों नहीं चला रहे। बात यह है कि लक्ष्मीप्रसाद जी अपने मर्त्य शरीरको छोड़कर जा चुके हैं और अब उन्हें पकड़ना हमारे बसकी बात नहीं है। परंतु उनके प्रिय बालकोंका आग्रह भी कम नहीं है। इसलिये हमने उनके नाम बेतारका तार खटखटाया और उत्तरमें जो कुछ मिला उसे पाठकों-की भेंट कर रहे हैं। यूं कहनेको हम कह सकते थे कि यह संवाद आकाशवाणीद्वारा आया है पर अब तो आकाशवाणी कहते डर लगता है कि कहीं आल इंडिया रेडियोवाले दावा न ठोक दें कि बिना हमसे पूछे हमारे नामका उपयोग क्यों हो रहा है। खैर, अब सुनिये। — सं.)

लक्ष्मीप्रसाद जी बोले मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बच्चे अब भी मुझे याद करते हैं। संपादकजी, आप शायद भूल गये हैं कि अब धरतीके साथ मेरा कोई संबंध नहीं है। मैं आजकल आकाशगंगाके एक टापूपर निवास करता हूं। खैर, आपने इतने आग्रहसे निर्दोष बालकोंके नामपर मांग की है तो कुछ सुनाये देता हूं। पर देखिये बार-बार न बुलाइयेगा।

हां, तो संपादकजी, शूरसेन देशमें चित्रकेतु नामका एक राजा राज्य करता था। उसके हजारों स्त्रियां थीं पर पुत्र एक भी नहीं। बड़ा दुःखी रहता था बेचारा। पूजा, अर्चना, तप, जप, दान दक्षिणा सब कुछ कर लिया पर पुत्र न होना था, न हुआ। इधर राजा दुःखी, उधर सब रानियां दुःखीं। भगवान्‌का दिया हुआ सब कुछ होते हुए भी चारों ओर दुःख ही दुःख।

एक दिन घूमते-घुमाते अंगिरा ऋषि वहां आ पहुंचे। राजाने साष्टांग प्रणाम किया। रानियोंने प्रणाम किया और सबने मिलकर ऋषिकी खूब सेवा की। ऋषिने कहा, महाराज बात क्या है? आप सब दुःखी क्यों दीखते हैं? राजाने अपने मनकी बात कही। ऋषि बोले, लेकिन तुम्हारे भाग्य-में पुत्र नहीं है, मैं क्या करूं? राजाने पांव पकड़ लिये और कहा, भगवन् अब आपने दुःखका कारण पूछा है तो उसे दूर भी करना ही होगा। ऋषिने कहा, अच्छा तुम्हारी हठ है तो यह यज्ञशेष लो और इसे अपनी पटरानी कृतद्युतिको खिला दो। उसके गर्भसे एक पुत्र होगा जो तुम्हें खूब सुख और खूब दुःख देगा। यह कहकर ऋषि चले गये। कुछ समयके बाद कृतद्युतिने एक पुत्रको जन्म दिया। राजा निहाल हो गया। अपना सारा खजाना लुटा दिया। और उस दिनसे कृतद्युतिकी महिमा बहुत बढ़ गयी। राजाकी अन्य रानियां इसे सह न सकीं। वे ईर्ष्यासे जलने लगीं।

अब आगेकी कथा सुनो। रानियोंने सोचा यह क्या? हम अपने ही महलमें दासी, बल्कि उससे भी गयी बीती हो गयीं। कृतद्युति भी तो हमारे जैसी ही है। उसमें कौनसा सुरखाबका पर लगा है कि वह हमारे सिरपर चढ़कर बैठे? इस जरासे बच्चेके कारण ही तो यह सब हुआ है। चलो इसे ही खत्म कर दें। न रहे बांस न बजे बांसुरी। उन्होंने रुईका फाया जहरमें भिगाया और सोते हुए बालकके ओठोंपर फेर दिया। थोड़ी देरके बाद दासी आयी। उसने बालकका नीला रंग देखा तो चीख मारकर वहीं गिर पड़ी। चीख सुनकर कृतद्युति दौड़ी आयी। उसने जो देखा तो वह भी ढाड़ मारकर रोने लगी। राजा भी दौड़ा आया। सारे राज्यमें कोलाहल मच गया।

ठीक इसी समय अंगिरा और नारद वहां आ पहुंचे। अंगिरा बोले राजन्! तुम किसके लिये शोक कर रहे हो? यहां कौन किसका है? जैसे पानीके वेगसे बालूके कण इधरसे उधर बहते हैं वैसे ही हम सब भी कभी यहां जन्म लेते हैं और कभी वहां। जैसे व्यापारीके यहां सिक्के आते-जाते रहते हैं वैसे ही धरतीपर प्राणी आते-जाते रहते हैं। तुम चिंता न करो। जब मैं पहले आया

था तो तुम कामनाके कारण अंधे हो रहे थे। मैंने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी। अब तुम सुख-दुःख दोनों देख चुके, अब इनसे ऊपर उठना सीखो।

नारदजी अभीतक चुपचाप खड़े थे। अब उन्होंने लड़केकी आत्माको बुलाया। लड़का चट उठ खड़ा हुआ। नारद जी बोले, देखो तुम्हारे विरहमें तुम्हारे मां-बाप कितने व्याकुल हैं। तुम अब इसी शरीरमें निवास करो और चक्रवर्ती राज्य भोगो। बालककी आत्माने उत्तर दिया, महाराज कौन किसकी मां और कौन किसका बाप? एक जन्ममें जो हमारा बाप है दूसरे जन्ममें वही शत्रु हो जाता है। शरीरके साथ-साथ संबंध भी खतम। ये संबंध तो कोई खास बात सिखानेके लिये होते हैं। वह सीख लिया तो बस वह जन्म पूरा हो गया। अब आप मुझे आज्ञा दें। मुझे नये शरीरमें जाकर नये अनुभव प्राप्त करने हैं। और हां, मेरी ये हजारों माताएं मेरी दुश्मन नहीं हैं। एक बार मैंने किसी पिछले जन्ममें हजारों चींटियोंको बिना जाने ही जला डाला था। उन्हीं चींटियों-ने मां बनकर मुझसे उस कर्मका बदला लिया है। यह कहते-कहते वह आत्मा अपने धाम चली गयी।

"लेकिन लक्ष्मीप्रसादजी यह तो आपने ज्ञान वैराग्य की कहानी सुनाई। कोई ऐसा भी तो उपाय होगा जिससे आदमी जरा-मृत्यु आदिसे बच सके। हम बच्चोंको वह सुन्दर मार्ग क्यों न दिखायें?"

हां, है क्यों नहीं। आपने मार्कण्डेयकी कहानी नहीं सुनी? कहते हैं कि विधाताने उनकी आयु केवल बारह वर्षकी रखी थी। जब वे बारहके हुए तो माता-पिताने विलाप करना शुरू कर दिया। बच्चेको जब कारण मालूम हुआ तो उसने कहा, बस, इतनी-सी बातपर आप लोग रो रहे हैं? उसने झट भगवान्की शरण ली और उनके पैर पकड़ लिये। निश्चित समयपर यमके दूत उसे लेने आये। पर किसमें इतनी हिम्मत थी कि जो भगवानके चरण पकड़े हुए हो उसे वहांसे अलग कर सके। हारकर यमदूत लौट गये और मार्कण्डेय आज भी जीवित हैं। कहते हैं कि वे हजारों बार सृष्टिका आरंभ और अंत देख चुके हैं।

"अच्छा अब मैं जा रहा हूं। फिर कभी।" कहते हुए लक्ष्मीप्रसादजीने हमारे बेतारके तारका संबंध काट दिया और हम देखते रह गये। देखें अब कब मौका हाथ लगे।

BMC

Complete range of **WIRE STITCHING MACHINES** for Books, Pamphlets and cardboard boxes and Box Making Machines.

for
Greater Production
and Higher Profits

Manufacturers :
Basanti Machinery Company,
NIZAM ROAD, LUDHIANA-1. (PB.)

Phone : 1148

फ्रैंच सीखिये

पाठ १

le cahier (ल काइए) कापी
le stylo (ल स्तीलो) कलम, पैन

le crayon[1] (ल क्रेइयौँ पेंसिल)
(क)

Qu' est-ce que c'est ?
(कॅसक से ?) यह क्या है ?

la gomme (ला गॉम) रबड़
l'encre (लांक्र) स्याही

la règle (ला रैग्ल) पैमाना

c' est un cahier

(से तँ काइए) यह एक कापी है।

c'est un stylo

(से तँ स्तीलो) यह एक पैन है।

c' est un papier

(से तँ पापिए) यह एक कागज है।

c' est une gomme

(से त्यून गॉम) यह एक रबड़ है।

c' est une règle

(से त्यून रैग्ल) यह एक पैमाना है।

c' est l'encre

(से लांक्र) यह स्याही है।

c' est une fille.

(से त्यून फीय्) यह एक लड़की है।

---

[1] y — किसी भी स्वरके पश्चात् y आनेपर इसका उच्चारण दो i (ii) की तरह होता है।

ख) le jardin (लं ज़ारदैँ) बाग
le fruit (ल फ्रुइ) फल
le lait (ल ले) दूध
Oui (उई) हां

la chambre (ला शाम्ब्र) कमरा
la maison (ला मेजौँ) घर
la chaise (ला शैज़) कुर्सी
non (नौँ) नहीं

Est-ce que c'est un garcon ?	Oui, c' est un garcon
अँस क से तँ गारसौँ ?)	(उई, से तँ गारसौँ)
क्या यह एक लड़का है ?	हां, यह एक लड़का है।
Est-ce que c' est un livre ?	Oui, c' est un livre
(अँस क से तँ लीव्र ?)	(उई, से तँ लीव्र)
क्या यह एक पुस्तक है ?	हां, यह एक पुस्तक है।
Est-ce que c' est un fruit ?	Oui, c' est un fruit
(अँस क से तँ फ्रुइ ?)	(उई, से तँ फ्रुई)
क्या यह एक फल है ?	हां, यह एक फल है।
Est-ce que c' est une chambre ?	Oui, c' est une chambre
(अँस क से त्यून शाम्ब्र ?)	(उई, से त्यून शाम्ब्र)
क्या यह एक कमरा है ?	हां, यह एक कमरा है।
Est-ce que c' est une robe ?	Oui, c' est une robe
(अँस क से त्यून रॉब ?)	(उई से त्यून रॉब)
क्या यह एक फ्राक है ?	हां, यह एक फ्राक है।
Est-ce que c' est une rose ?	Oui, c' est une rose
(अँस क से त्यून रोज़ ?	(उई, से त्यून रोज़)
क्या यह एक गुलाब है ?	हां, यह एक गुलाब है।

(ग)

Est-ce que c' est un arbre ?	Non, ce n'est pas un arbre
(अँस क से तँनार्ब्र ?)	(नौँ, स ने पाज़ँनार्ब्र)

क्या यह एक पेड़ है ?	नहीं, यह एक पेड़ नहीं है।
Est-ce que c' est un hôtel?	Non ce n'est pas une hôtel
(अॅस क से तँनोतॅल ?)	(नौं, स ने पाज़ँ नोतॅल)
क्या यह एक होटल है ?	नहीं, यह एक होटल नहीं है।
Est-ce que c' est une fenêtre ?	Non, ce n' est pas une fenêtre
(अॅस क से त्यून फनैत्र ?)	(नौं, स ने पा ज़्यून फनैत्र)
क्या यह एक खिड़की है ?	नहीं, यह एक खिड़की नहीं है।
Est-ce que c' est une chambre ?	Non, ce n'est pas une chambre
अॅस क से त्यून शाम्ब्र ?)	नौं, स ने पा ज़्यून शाम्ब्र)
क्या यह एक कमरा है ?	नहीं, यह एक कमरा नहीं है।
Est-ce que c'est une tente ?	Non, ce n'est pas une tente,, c' est une maison
(अॅस क से त्यून तांत ?)	(नौं, स ने पा ज़्यून तांत, से त्यून मेज़ौं)
क्या यह एक डेरा है ?	नहीं, यह एक डेरा नहीं है, यह एक घर है।
Est-ce que c' est une table ?	Non, ce n'est pas une table, c' est un banc.
(अॅस क से त्यून ताब्ल ?)	(नौं स ने पा ज़्यून ताब्ल, से तँ बां)
क्या यह एक मेज है ?	नहीं, यह एक मेज नहीं है, यह एक बैंच है।
Est-ce que c' est une main ?	Non, ce n'est pas une main c' est un pied।
(अॅस क से त्यून मैं ?)	(नौं, स ने पा ज़्यून मैं, से तँ पिए)
क्या यह एक हाथ है ?	नहीं, यह एक हाथ नहीं है, यह एक पैर है
Est-ce que c' est la lune ?	Non, ce n'est pas la lune, c' est le soleil.
(अॅस क से ला ल्यून ?)	(नौं, स ने पा ला ल्यून, से ल सोलेईय्)
क्या यह चन्द्रमा है ?	नहीं, यह चन्द्रमा नहीं है, यह सूर्य है।

Phone No. 33-6927

DINDAYAL RAMRUP

(Registered stock holder of Iron & Steel)

BHAGWATI STEEL PRIVATE LTD.

(Mfg. of Rounds & Flats)

15/1, SOVARAM BASACK STREET

CALCUTTA - 7

"श्रीअरविंद हमारे साथ हैं।"

—श्रीमाताजी

हर प्रकारकी चादर, शाल दोशाले
खरीदनेसे पहले हमें याद रखें

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

पुस्तक-परिचय

श्रीअरविंदके पत्र : प्र. श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२ ; मूल्य ७.४०।

श्रीअरविंदका पत्र-साहित्य बहुत विशाल है। दुनियाका शायद ही कोई विषय बचा हो जिसके बारमें श्रीअरविंदसे प्रश्न नहीं किये गये। उनके उत्तरोंकी बानगी देखते ही बनती है। इस पुस्तकमें साधना, सर्वांगीण योग, दर्शन, विज्ञान, राजनीति आदि विषयोंपर कुछ पत्र इकट्ठे किये गये हैं। हिंदी अनुवाद अच्छा है।

ल शां द लाम (आत्माका संगीत) और दी आर्य समाज इंट्रोडयूस्ड : ले. श्री विष्णुदयाल, दाम नहीं लिखा।

श्री विष्णुदयाल मारिशसके रहनेवाले प्रसिद्ध आर्य विद्वान् हैं। पहली पुस्तकमें ऋषि दयानंदकी वैदिक संध्याका हिंदी, अंग्रेजी और फ्रांसीसीमें भावार्थ दिया गया है, साथ ही कई सुंदर वैदिक प्रार्थनाएं हैं। दूसरीमें आर्यसमाजका सुन्दर संक्षिप्त परिचय है। दोनों पुस्तकें अपने-अपने स्थानपर बहुत उपयोगी हैं।

जीवनके चार अध्याय : ले. भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव; वितरक लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-१, मूल्य ७.००।

माधवजी हिंदीके जानेमाने भक्त लेखक हैं। इस पुस्तकमें उन्होंने अपने जीवनके चार अध्यायोंका परिचय दिया है। माधवजी चाहे छात्र रहे हों या अध्यापक, संपादक रहे हों या अफसर, उनके जीवनमें एक आदर्श रहा है और वह आदर्श ही उन्हें सब प्रकारकी कठिनाइयोंके समय मार्ग दिखाता रहा है। पुस्तकमें उपन्यासकी-सी रोचकता है।

हिमगिरि विहार : ले. स्वामी तपोवनजी महाराज, अनु. सुधांशु चतुर्वेदी; प्र. स्वामी महादेववनम, उत्तर काशी; मूल्य १०.००।

स्वामी तपोवनम केरलके प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। उन्होंने अपने जीवनका काफी समय हिमालयमें बिताया था। प्रस्तुत पुस्तकमें उन्होंने हिमालयके अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलों, मंदिरों और मठोंका परिचय दिया। रोचकताकी दृष्टिसे यह एक भ्रमण पुस्तक है, परंतु इसमें दर्शन, धर्म और अध्यात्मकी पुटके कारण चार चांद लग गये हैं। सुधांशुजीने मलयालमसे इसका हिंदीमें अनुवाद किया है। यह बड़े हर्षकी बात है कि हिंदी भाषी दक्षिणकी भाषाएं सीखकर उनके साहित्यको हिंदीमें लाने का प्रयास कर रहे हैं।

संस्कृतिके परिव्राजक : (काका कालेलकर समर्पण ग्रंथ) : प्र. सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य २०.००।

काका साहब अपने-आपमें एक संस्था हैं। उनके कामोंका परिचय देनेके लिये एक पोथीकी जरूरत है। उनके इक्यासीवें जन्मदिनपर प्रकाशित इस ग्रंथमें उनकी जीवनी, उनके कार्य तथा उनकी कृतियोंका परिचय प्रामाणिक लोगोंने दिया है। अहिंदी भाषी होते हुए भी काका साहबने हिंदीके लिये बहुत किया। राष्ट्र भाषा हिंदीका शोर मचानेवाले काका साहबके जीवनसे एक पृष्ठ ले सकें तो हिंदीका अधिक उपकार होगा।

M 8127
Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65

२४ अप्रैल १९६७

आखिरकार, सत्ताके अंदर विद्यमान संकल्प ही वह चीज है जो परिस्थितियोंको मूल्य प्रदान करती है, और बहुधा आशातीत मूल्य प्रदान करती है; बाह्य परिस्थितिका रूप-रंग तो एक भ्रांति उत्पन्न करनेवाला लक्षण ही होता है। यदि कोई जाति या सभ्यता मृत्युकी ओर जानेकी इच्छा करे, यदि वह पतनकी ओर ले जानेवाली शिथिलतासे चिपकी रहे और मृत्युके मुखमें जानेके लिये तत्पर हो अथवा शक्ति-सामर्थ्य होनेपर भी विनाशकी ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियोंपर अंधभावसे आग्रह करे, अथवा वह केवल मृत युगकी शक्तियोंको ही प्रिय समझे और भविष्यकी शक्तियोंको अपनेसे दूर हटा दे, यदि वह भावी जीवनकी अपेक्षा अतीत जीवनको ही पसंद करे, तो फिर कोई भी चीज, यहांतक कि प्रचुर शक्ति, वैभव तथा बुद्धिमत्ता भी, जीते रहनेके बहुतसे अवसर तथा निरंतर प्राप्त होती रहनेवाली सुविधाएं भी उसे अनिवार्य विघटन या संहारसे नहीं बचा सकतीं। परंतु उस जातिमें यदि प्रबल आत्मविश्वास आ जाय और जीवित रहनेका प्रबल संकल्प उत्पन्न हो जाय, यदि वह आगे आनेवाली वस्तुओंकी ओर खुल जाय, भविष्यको और उस से प्राप्त होनेवाली चीजोंको अधिकृत करनेके लिये इच्छुक हो जाय और जहां भविष्य प्रतिकूल प्रतीत हो वहां उसका दमन करनेकी शक्ति रखती हो तो वह प्रतिकूलता और पराजयसे भी अदम्य विजय प्राप्त करनेकी शक्ति प्राप्त कर सकती तथा असहाय दीखनेवाली अवस्था और पतनसे ऊपर उठकर एक महत्तर जीवनके प्रकाशमें ले जानेवाले नवीन उत्साहकी प्रचंड ज्योति प्राप्त कर सकती है। यही चीज करनेके लिये भारतीय सभ्यता आज पुनः जागृत हो रही है; वह अपनी आत्माकी शाश्वत शक्तिके द्वारा सदासे ऐसा करती आ रही है।

—श्रीअरविंद

४—५—६७

पार्थिव जीवन एक महान् देवका स्वनिर्वाचित निवास-स्थल है और उन देवताका शाश्वत संकल्प यह है कि यह पार्थिव जीवन एक अंध कारागार बने रहनेके बदले उनके परम मनोहर प्रासाद तथा उच्च स्वर्गस्पर्शी मंदिरमें परिवर्तित हो जाये।

—श्रीअरविंद

पुरोधा

किशोर मासिक

जून
१९६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात,
ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ जून १९६७ **अंक १०**

सूची

प्रार्थना १
अग्नि डा. रामकृष्ण २

संपादकीय

आप क्या कर रहे हैं? ३

श्रीअरविंद-वाणी

युद्ध ५

श्रीमातृवाणी

भगवान्की हंसी ६
महान रहस्य श्रीमाताजी ८

इतिहास बोलता है

जान दार्क अरुणा १४

गहरे पानी पैठि

अन्तरात्मा १७
गर्दभ स्वामी सुब्रह्मण्यम भारती १९

बालकोंके बीच

भूल-सुधार अंजना शर्मा २१
दुखवा मैं कासों कहों चेतना, ऋता २४-२५
क्या आप मानेंगे? मेधाव्रत २७
वीर खेंगार केशवजी २८

नयी कोंपलें

यात्राकी यादमें आनन्द ३३
सुडानके जंगलोंमें भूमा ३५
फ्रेंच सीखिये ३७
पुस्तक-परिचय ३९
बुढ़ियाका भाग्य भीष्म आवरण-३

चित्रकार : कृष्णलाल। **मूल्य :** एक अंक : रु. ०. ६० पै. **वार्षिक चंदा :** रु. ७. ००

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

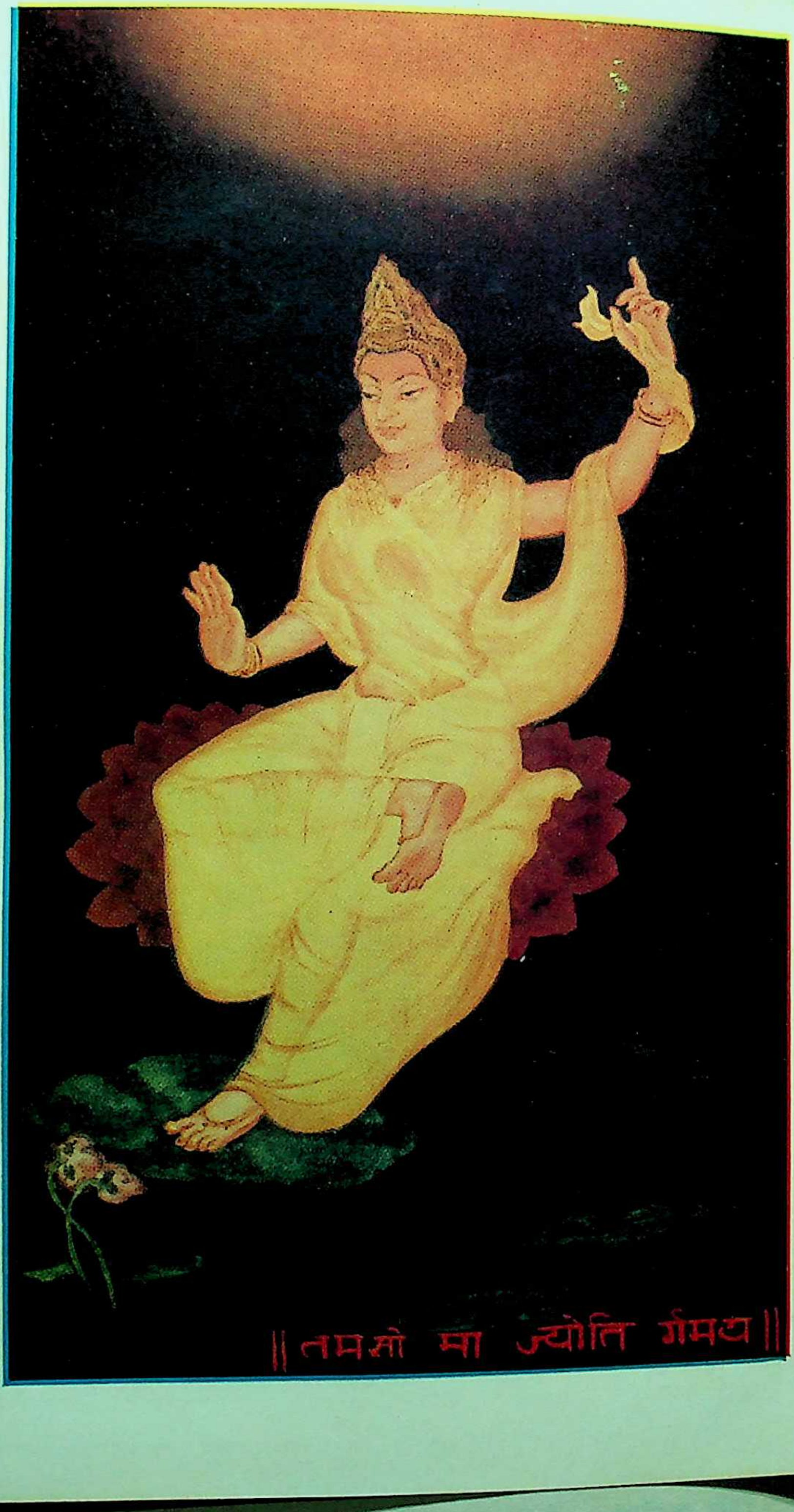

|| तमसो मा ज्योति र्गमय ||

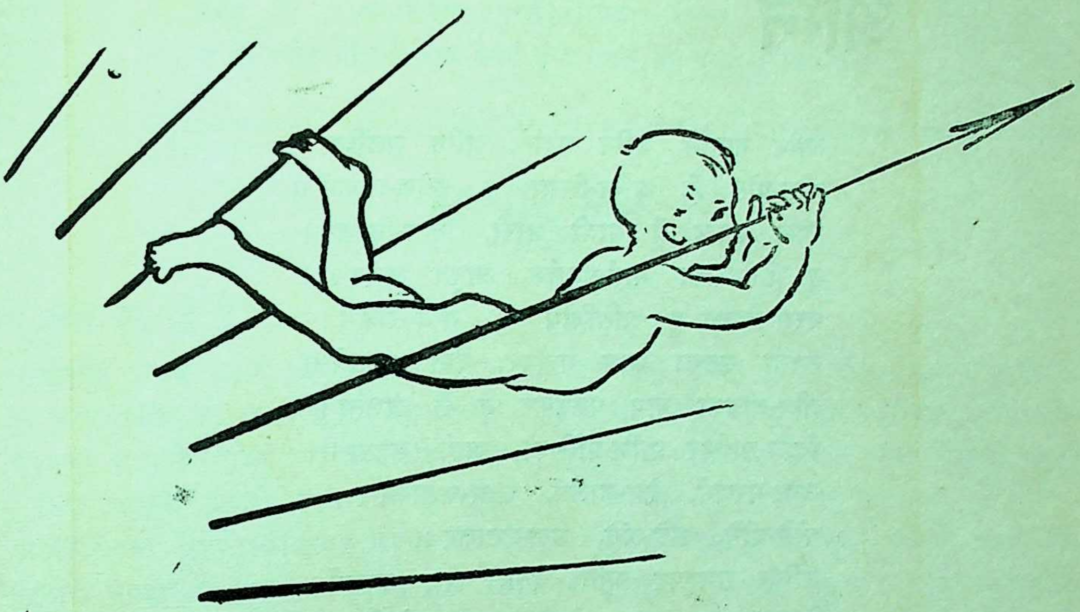

प्रार्थना

हे प्रभु ! प्रेमके दिव्य स्वामी ! तू सनातन विजेता है। जो अपने-आपको तेरे साथ पूर्ण समस्वरतामें ले आते हैं, जो केवल तेरे लिये तथा तुझे ही आधार मानकर जीते हैं, केवल वही प्रत्येक विजय प्राप्त कर सकते हैं। कारण, तुझमें ही है परम शक्ति-पूर्ण निष्कामताकी, पार-दृष्टिकी, निर्दोष तथा सर्वोच्च हितकामनाकी शक्ति।

तुझमें तथा तेरे द्वारा सब कुछ रूपांतरित हो जाता है तथा अपने महिमामय रूपको प्राप्त होता है; तुझमें ही सभी रहस्यों तथा सभी शक्तियोंकी कुंजी है। परंतु तुझे कोई प्राप्त केवल तभी करता है जब वह तुझमें निवास करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, केवल तेरी ही सेवा करना चाहता है, तेरे ही दिव्य कर्मको अधिक शीघ्रतासे तथा अधिक लोगोंके कल्याणके लिये सफल करना चाहता है।

प्रभो, केवल तू ही सत्य है, बाकी सब भ्रम है; कारण, जब मनुष्य तेरे अंदर निवास करता है, तभी वह सब वस्तुओंको वस्तुतः देखता और समझता है, तेरे पूर्ण ज्ञानसे कुछ भी बाहर नहीं, किंतु वहां सब कुछका रूप और ही होता है; कारण, साररूपमें सब कुछ तू ही है, सब कुछ तेरे कार्यका, तेरे महान् अन्तःक्षेपका फल जो ठहरा। घोरसे घोर अंधकारमें भी तूने तारा चमका दिया है।

—श्रीमां

अग्नि

अग्नि गगनमें, अग्नि धरामें, अग्नि जलधिमें।
ओत-प्रोत है, अग्नि-शिखा तू, लोक-लोकमें।।
लोक सकल है यात्री भारी, नित्य-निरंतर।
तू है उसका मार्ग-प्रदर्शक, जागृत सुन्दर।।
परम देवका तू प्रतिनिधि है, मर्त्य-लोकमें।
करता उसका काम यहांपर, गुप्त प्रकटमें।।
जीव-जीवका हाथ पकड़कर तू ले चलता।
विश्व-मार्गपर प्राणि-प्राणिको, आगे करता।।
जन्म-मरणमें, देश-कालमें, चला-चलाकर।
धीमे-धीमे, ऊंचे-ऊंचे, उठा-उठाकर।।
उचित समयपर पहुंचा देता, परम धरममें।
देव परात्पर, परम देवके, शुभ दर्शनमें।।
अंधकार का उजियाला तू, परम लोकप्रिय।
भोजन तू ही सिद्ध करे है, मुदित करे हिय।।
वैश्वानर तू, जठर अग्नि तू, मानव तनमें।
प्रविष्ट होकर पाचन करता, परिणत रसमें
कर देता है मानव भोजन, और बनाता
हृष्ट-पुष्ट तू मानव तनको और चलाता
अंग-अंगको, अवयव गणको, नित्य नियममें।
परिणत करता जड़ शरीरको जीवित तनमें।।
एक समय ऐसा आता है, नर जीवनमें।
वैराग्य उदय होता है जब मानव हियमें।।
निम्न प्रकृतिके घोर चक्रसे, ऊपर उठकर।
पाना चाहे उदासीनता, शान्ति परात्पर।।
सीमा बंधन, अरु जन्म-मरण हो जाते दूभर।
अचल-अमर सुविराट् भावमें परिणत होकर।।
एकाकार बना वह चाहे, परम सत्यसे।
अंधकार वह खोना चाहे, परा ज्योतिसे।।
स्थापित तब वह करता तुझको अपने हियमें।
अणु-अणु, गति-मति, सब-कुछ अर्पण, करता तुझमें।।
कुन्दन सदृश शुद्ध परिष्कृत, उज्ज्वल भास्वर।
शुद्ध-बुद्ध अरु नित्य मुक्त तब बनता सुन्दर।।

—— रामकृष्ण

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ।।

सम्पादकीय

आप क्या कर रहे हैं?

संसारका प्रत्येक महान् कार्य श्रद्धाके कारण ही सफल हो सकता है। अगर श्रद्धाकी कमी हो तो हर काम कठिन हो जाता है। अमरीकाकी खोजकी बात लीजिये या रेडियमकी तलाशकी। युद्धमें विजयकी बात ले लीजिये या देशकी स्वधीनताकी, हर एकके पीछे एक जबर्दस्त श्रद्धा दिखायी पड़ती है। बिना श्रद्धाके आदमी डगमगाता है, ठोकरें खाता है और गिर गिर पड़ता है।

साधारणतया हमारी आंखोंपर अहंकारका मोटा पर्दा पड़ा रहता है जो हमें यह नहीं देखने देता कि सचमुच भगवान्का हाथ ही हमारी सब उपलब्धियोंके पीछे काम कर रहा है। हम उसके प्रति जितने सचेत हो सकें उतनी ही सफलता मिलेगी। हम अहंकारके जंजालमें ऐसे फंसे रहते हैं कि हम उसको नहीं देख पाते। हम सोचते हैं कि हर काम हमने किया है और सफलताके कारण हम स्वयं हैं। परंतु :

जब लगि मेरी मेरी करे तब लगि काज एकौ नहिं सरे ।
जब मेरी ममता मिट जाय आपुहि काज सम्हारै आय ।।

जब हम किसी चीजके लिये बहुत जोरसे इच्छा करते हैं तो वह इच्छा अभीप्साका रूप धारण कर लेती है। अभीप्सा करना प्रार्थना करनेके समान है और हर सच्ची प्रार्थनाका उत्तर अवश्य मिलता है। लेकिन हां, एक शर्त्त है और वह शर्त्त छोटी नहीं है। हमारी अभीप्सा या प्रार्थनाके अंदर स्वार्थकी पुट बिलकुल न होनी चाहिये। स्वार्थ अभीप्साके प्रभावको हल्का कर देता है।

जो भगवान्पर सच्चा विश्वास करता है वह अपनी निम्न सत्तासे ऊपर उठ जाता है। भगवान् ही हमारी, और इस विश्वकी सच्ची सत्ता हैं। जब हम अपनी निचली सत्तापर विश्वास करते हैं, यानी अपने अहंपर आश्रित रहते हैं तबतक हमारी सफलता और असफलता हमारी शारीरिक मानसिक क्षमताके ऊपर आश्रित रहती है, साथ ही अपने कर्मोंके फल और पिछले जन्मकी कमाईपर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है। जब हमारी निम्न सत्ता किसी चीजके लिये इच्छा करती है तो वह इच्छा अहंकारसे पैदा होती है और अहंकारकी सीमाओंमें बंधी रहती है। अहंकार अपने पिछले कर्मोंका दास होता है परंतु हमारी उच्चतर सत्ता भूत भविष्य और वर्तमानकी मालिक होती है, उसकी अभीप्सापर अहंकारके बंधन नहीं लग सकते, वह सर्वशक्तिमान् होती है। परंतु उच्चतर सत्ताको भी शरीर और मनके अंदर रहकर काम करना होता है इसलिये वह देश काल, वातावरण और कार्य कारण संबंधका ख्याल रखती है और ठीक समय आनेतक प्रतीक्षा करती है पर एक बार वह संकल्प कर ले तो आवश्यक परिस्थितियां पैदा हो ही जाती हैं।

इस बातको भारतवर्षकी परिस्थितिपर लागू करके देखिये। पराधीन भारतमें चारों ओर दासताकी मनोवृत्ति फैली हुई थी। उन्होंने यह मान लिया था कि गुलाम भारतकी ओर अंग्रेज प्रभुकी बराबरीका सवाल उठाना ही मूर्खता है। संस्कृतके बड़े-बड़े पंडित और अरबी फारसीके मौलवी

मौलाना भी अपने बच्चोंको अंग्रेज बनानेका प्रयास कर रहे थे। देशके अंदर कुंठा, पराजय, अक्षमता आदिकी भावनाओंने घर कर लिया था। ऐसे समय कुछ मनीषियोंने अनुभव किया कि भारतकी स्वाधीनता केवल भारतके लिये ही नहीं संसारके लिये आवश्यक है। उन्हें उच्चतर शक्तिका संपर्क प्राप्त था। उन्होंने अपने संकल्पद्वारा देशको स्वाधीनताका मंत्र दिया। परिणामस्वरूप हजारों लाखों व्यक्ति, बिना जाने, बिना समझे स्वाधीनताके दीपकपर पतंग बन गये। अनपढ़ और अशिक्षित कहानेवाली जनतापर इसका अधिक प्रभाव पड़ा क्योंकि वहां बालकी खाल निकालनेवाली बुद्धि न थी। इस अभीप्साका ही परिणाम था कि भारतवर्षने विपरीत परिस्थितियोंके होते हुए भी स्वाधीनता प्राप्त कर ली, स्वाधीनता संग्राममें लगे हुए लोग भी इसके लिये तैयार न थे। परंतु इसके उपरांत सारी चीजको उन लोगोंने हथिया लिया जो दूसरे वर्गमें गिने जा सकते हैं, जिन्होंने इच्छा, लालसा, आवेश, क्रोध आदिको ही अपनी प्रेरक शक्ति माना था। उन्होंने यही सोचा कि जो परिणाम आया है वह उन्हींके प्रयासोंका फल है। जैसा कि हमने ऊपर कहा, हर बलवती इच्छा अपना फल लाती है। इनके अंदर जो निम्न चेतनासे इच्छाएं उठी थीं वे भी अपना फल ले आयीं और उनका फल आज हमारी आंखोंके आगे है। हम आजकी अवस्थाके लिये किसी भी व्यक्ति या दलको दोष नहीं दे सकते। हमारी निम्न चेतनाने ही इसे खींचा है।

इसका उपाय एक ही है। हममेंसे अधिक-से-अधिक लोग अपनी क्षमता और सामर्थ्यके अनुसार काम चुन लें और उसे भगवान्का काम मानकर करें। उसमें अपनी इच्छाओं वासनाओंके लिये कोई स्थान न हो। उसके द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना उसका लक्ष्य न हो। कार्यकर्ताओंका यह दल किसी राजनीतिक सामाजिक या धार्मिक ढांचेमें नहीं ढलेगा। वह आध्यात्मिक द्रष्टाके नेतृत्वमें भारतके नवनिर्माणके काममें लग जायगा। स्वाधीनता प्राप्त करना अपेक्षया बहुत आसान काम था, उसे सुदृढ़ बनाना और देशको उन्नत करना कहीं अधिक कठिन है। भारतमें शक्तिकी कमी नहीं है पर वह इधर-उधर फैली हुई है। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि एक ऐसी अभीप्साको जगाया जाय जो सारी बिखरी हुई शक्तिको इकट्ठा कर सके। शक्तिकी यह धार भारतवर्षमें फैले हुए स्वार्थ, अविश्वासको हटाकर बल और राष्ट्रीय चेतनाको जगायेगी। तब और केवल तभी भारत नवनिर्माणके मार्गपर अग्रसर होगा।

श्रीअरविन्दने हमें बताया है कि देशके निर्माणका काम बहुत महान् है, समय भी अधिक नहीं ह और सच्चे कार्यकर्ताओंका भी अकाल है। हमें ऐसे कार्यकर्ताओंकी जरूरत है जो अपना सब कुछ भगवान्के लिये लगा सकें। उनके कार्यका उद्देश्य आगे आना या चमकना न होगा। वे निःस्वार्थ भावसे, भगवान्की सेवाके रूपमें शिक्षा-प्रसार, ग्राम-निर्माण, चिकित्सा, सफाई आदिके काममें लग सकें, वे अन्न पैदा करनेसे लेकर, कल कारखाने चलानेतक, काव्य लिखनेसे लेकर कानून बनानेतक हर क्षेत्रमें नियंत्रण, सुव्यवस्था और सामंजस्यके साथ काम करेंगे और जहां होंगे वहीं अभीप्साकी अग्निको प्रज्वलित करते रहेंगे। भारतमें साधनोंकी कमी नहीं है। उनका ठीक उपयोग करनेवालोंकी कमी है।

श्रीअरविन्दके बताये हुए पथपर चलनेके लिये बड़ा अच्छा अवसर आ गया है। श्रीअरविन्दका जन्मदिन हमारा स्वाधीनता दिवस बना। श्रीअरविन्दकी शताब्दी (१९७२) भारतके लिये एक नये जीवनका आरंभ कर सकती है। हममेंसे हर एक, जो जहां है वहीं रहता हुआ शांत भावसे उस महती शक्तिका आह्वान करे और अपने-आपको उसका यंत्र बनानेका यथासंभव प्रयास करे तो सफलता निश्चित है।

आप उस सफलताको नजदीक लानेके लिये क्या कर रहे हैं?

श्रीअरविंद-वाणी

युद्ध

[श्रीअरविन्दकी एक पुस्तक 'विचार और झांकियां' के कुछ वाक्योंके बारेमें श्रीमाताजीसे प्रश्न किये गये थे। यहां हम ऐसे प्रश्नोत्तरका एक हिस्सा दे रहे हैं।--सं०]

"किसीने नेपोलियनको एक निष्ठुर शासक तथा गला काटनेवाला राजा कहा है किंतु मैंने एक सशस्त्र देवताको यूरोपमेंसे गुजरते हुए देखा है।"

क्या ये सब युद्ध पृथ्वीके विकासके लिये आवश्यक हैं?

मानवी विकासकी एक विशेष अवस्थामें युद्ध अनिवार्य है। प्रागैतिहासिक युगमें समूचा जीवन ही युद्ध था। और हमारे समयतक भी मानव इतिहास युद्धोंकी एक लंबी कहानी ही है। युद्ध चेतनाकी एक ऐसी अवस्थाका स्वाभाविक परिणाम है जो जीवनके लिये संघर्ष और अहंभावयुक्त उग्रतासे शासित है और वर्तमान समयमें मनुष्योंके द्वारा शांतिके लिये कुछ प्रयत्न किये जानेपर भी, अभीतक हमें कोई भी चीज यह निश्चयता नहीं दिला सकी है कि अब युद्ध एक अनिवार्य विपत्ति नहीं है। वस्तुतः इस समय पृथ्वीके कई स्थलोंपर क्या अभी भी युद्धकी अवस्था नहीं है, चाहे वह खुले रूपमें हो या न हो?

पर यह भी ठीक है कि पृथ्वीपर जो कुछ भी होता है वह अनिवार्य रूपसे उसे उन्नतिकी ओर ले जाता है। अतएव युद्ध साहस, सहनशीलता और वीरताके विद्यालय हैं। ये एक ऐसे भूतकालका नाश करनेमें प्रयुक्त हो सकते हैं जो अपना समय समाप्त होनेपर भी विलीन होना अस्वीकार करता है क्योंकि वह विलीन होकर ही अपना स्थान नयी वस्तुओंको दे सकता है। युद्ध पृथ्वीको आक्रमणकारी और विनाशक जातिसे मुक्त करनेका साधन भी हो सकता है जिससे कि न्याय और सत्यका शासन स्थापित हो सके। कुरुक्षेत्रका युद्ध इसका उदाहरण है। युद्ध संकटको उपस्थित करके एक अत्यधिक तामसिक चेतनाकी जड़ताको भी झकझोर सकता है तथा सुप्त शक्तियोंको जगा सकता है। और अंतमें यह शांति और युद्धके भेद तथा युद्धकालके तथा उसके पीछे होनेवाले भयंकर दुष्परिणामोंके द्वारा मनुष्योंको एक ऐसा प्रभावकारी साधन ढूंढ़नेको प्रेरित कर सकता है जिसके द्वारा रूपांतरका यह बर्बर और हिंसक रूप समाप्त कर दिया जाये।

कारण, पार्थिव विकासमें जो कुछ व्यर्थ होता है वह स्वयं ही समाप्त हो जाता है।

आपने कहा है: "ये (युद्ध) एक ऐसे भूतकालका नाश करनेमें प्रयुक्त हो सकते हैं जो अपना समय समाप्त होनेपर भी विलीन होना अस्वीकार कर देता है क्योंकि वह विलीन होकर ही अपना स्थान नयी वस्तुओंको दे सकता है।" अब जब कि अतिमानस पृथ्वीपर अवतरित हो चुका है, क्या जगत्की वर्तनमान अवस्थाको बदलनेके लिये युद्धकी आवश्यकता पड़ेगी?

सब कुछ राष्ट्रोंकी ग्रहणशीलतापर निर्भर करेगा। यदि वे व्यापक रूपसे तथा शीघ्र ही नयी शक्तियोंके प्रभावके प्रति अपने-आपको खोल देंगे और काफी जल्दी अपनी धारणाओं तथा अपने कार्योंको बदल देंगे तो युद्ध टल सकता है। किंतु अभी तो यह हर समय धमकीके रूपमें ऊपर मंडरा रहा है और प्रत्येक भूल, चेतनाकी प्रत्येक अस्पष्टता इस धमकीको बढ़ा ही रही है।

पर फिर भी अंतिम विश्लेषणमें प्रत्येक वस्तु वस्तुतः भागवत कृपापर ही निर्भर करती है, और हमें भविष्यकी ओर विश्वास और शांतिपूर्वक देखना चाहिये, साथ ही जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र अपना विकास भी साधित करना चाहिये।

श्रीमातृ-वाणी

भगवान्की हंसी

"भगवान्की हंसी कभी-कभी शिष्ट कानोंके लिये बड़ी अभद्र और अनुपयुक्त होती है, वे मौलियैर बननेसे ही संतुष्ट नहीं रहते, उन्हें एरिस्टोफेन्स और राबेले भी बनना पड़ता है।"

"यदि मनुष्य जीवनको जरा कम गंभीरतासे लेते तो वे उसे अधिक पूर्ण बना सकते। भगवान् अपने कार्योंको कभी भी गंभीरतासे नहीं लेते, इसीलिये हमें इस अद्भुत जगत्का दृश्य देखनेको मिलता है।"

"लज्जाके बड़े सराहनीय परिणाम होते हैं, सुन्दरता और नैतिकता दोनोंकी दृष्टियोंसे, हम इससे बच नहीं सकते, किंतु यह सब मानते हुए भी यह दुर्बलताका चिह्न है और अज्ञानका प्रमाण है।"

यह पूछा जा सकता है कि वस्तुओंको गंभीरतासे लेना जीवनको अधिक पूर्ण बननेसे कैसे रोक सकता है?

पुण्य सदा ही जीवनसंबंधी वस्तुओंको दबानेके कार्यमें व्यस्त रहा है और यदि संसारके विभिन्न देशोंके पुण्य एकत्रित कर दिये जायं तो जीवनमें बहुत कम वस्तुएं बच रहेंगी।

पुण्यका दावा है कि वह पूर्णताकी खोज करता है, किंतु पूर्णता तो एक समग्रता है। अतएव, ये दो क्रियाएं एक-दूसरेका विरोध करती हैं। एक ऐसा पुण्य या सद्गुण जो किसी वस्तुका बहिष्कार करता है, उसे कम करता तथा सीमाएं बनाता है और वह सद्गुण जो प्रत्येक वस्तुको स्वीकार करता है, किसीको अस्वीकार नहीं करता, वरन् प्रत्येक वस्तुको अपने स्थानपर रखता है — ये दोनों एक-दूसरेको समझ नहीं सकते।

जीवनको गंभीरतासे लेनेमें सामान्यतः दो क्रियाएं होती हैं, पहली है उन वस्तुओंको महत्त्व देना जिनका शायद कोई महत्त्व नहीं है और दूसरी, जीवनको उन कुछ गुणोंतक सीमित कर देना जो जीवनके लिये पवित्र और उचित माने जाते हैं। कुछ लोगोंमें (उदाहरणार्थ उनमें जिन्हें श्रीअरविन्द यहां दूरदर्शी या अतिनैतिकतावादी कहते हैं) यह गुण रूखा, सूखा, धूसर और आक्रामक बन जाता है, यह सर्वत्र दोष ढूंढ़ता है, ऐसी प्रत्येक वस्तुमें, जो मुक्त और हर्ष एवं आनंदसे परिपूर्ण है।

जीवनको पूर्ण बनानेका (यहां मेरा मतलब निश्चय ही पार्थिव जीवनसे है) रास्ता है और वह है उसे एक पर्याप्त ऊंचाईसे देखना जिससे उसे उसकी समग्रतामें देखा जा सके, केवल उसकी वर्तमान समग्रतामें नहीं, बल्कि उसकी भूत, वर्तमान और भविष्य समग्रताको एकदम देख सकना चाहिये। कारण, प्रत्येक वस्तुको अपने स्थानपर रखनेके लिये यही एकमात्र रास्ता है। कुछ भी दबाया नहीं जा सकता, कुछ भी दबाना नहीं चाहिये, किंतु प्रत्येक वस्तुको अपने स्थानपर, बाकी वस्तुओंके साथ एक पूर्ण समस्वरतामें रहना चाहिये और वहां समस्त वस्तुएं जो अनैतिकतावादी आत्माके लिये इतनी 'बुरी', इतनी "निन्दनीय" और "अग्राह्य" प्रतीत होती हैं आनंदकी और एक पूर्णतया दिव्य और मुक्त जीवनकी क्रियाएं हो जायंगी। और तब कोई भी चीज हमें भगवान्की इस अद्भुत हंसीको जानने, समझने, अनुभव करने और उसे अपने जीवनमें उतारनेसे नहीं रोक सकेगी, उन भगवान्की हंसीको जो अपने-आपको असीम रूपोंमें निवास करते देखनेमें असीम आनंद प्राप्त करते हैं।

वह आनंद, यह अद्‌भुत हंसी जो समस्त अंधकारको, समस्त दुःख और कष्टको विलीन कर देती है। आंतरिक सूर्यको पाने और उसकी ज्योतिमें स्नान करनेके लिये अपने अंदर खूब गहरे जाना ही काफी है, और तब सब कुछ समस्वर, आलोकित और प्रकाशमय हंसी बन जाता है जिसमें कहीं भी छाया या पीड़ा नहीं रहती।

सत्य ही, यदि तुम सबसे बड़ी कठिनाइयों, सबसे बड़े शोकों, बल्कि शारीरिक दुःख-दर्दोंको भी उसी स्थानसे देख सको तथा वहीं स्थिर रह सको, तो तुम्हें उनकी अवास्तविकता अर्थात् कठिनाईकी अवास्तविकता, शोककी अवास्तविकता, कष्टकी अवास्तविकता समझमें आ जायगी –– सब कुछ तब एक प्रसन्नता और प्रकाशसे परिपूर्ण स्पंदनमात्र ही होगा।

कठिनाइयोंको सुलझाने, शोकपर विजय पाने तथा कष्ट और पीड़ाको सहन करनेका असलमें सबसे प्रबल साधन यही है। पहले दो अपेक्षाकृत सरल हैं (मैं अपेक्षाकृत ही कहती हूं), अंतिम अधिक कठिन है, क्योंकि तुम अभ्यासवश ही शरीरको और उसकी अनुभूतियोंको अत्यंत ठोस और निश्चित समझते हो। किंतु यह भी वही चीज है। इसका कारण केवल यह है कि हमने अपने शरीरको एक तरल, नमनीय, अनिश्चित और लचीली वस्तुके रूपमें देखना नहीं सीखा है, न इस रूपमें उसे देखनेका हमें अभ्यास ही है। हमने इसमें उस आलोकित हंसीका संचार करना नहीं सीखा है जो समस्त अंधकारको, समस्त कठिनाई, विरोध और असंगतिको तथा उस सबको जो चरमराती है और रोती चिल्लाती है, समाप्त कर देती है।

और यह सूर्य, दिव्य हंसीका यह सूर्य प्रत्येक वस्तुके केंद्रमें है, यह प्रत्येक वस्तुका सत्य है। केवल आवश्यकता है इसे देखने, अनुभव करने और इसके अनुसार जीवन व्यतीत करना सीखनेकी।

और इसके लिये हमें उन लोगोंसे बचना चाहिये जो जीवनको गंभीरतासे लेते हैं। वस्तुतः ऐसे व्यक्ति उकता देनेवाले होते हैं।

ज्योंही वातावरण गंभीर हो जाय, त्योंही तुम कह सकते हो कि कहीं कोई चीज ठीक नहीं है, एक हानिकारक प्रभाव, कोई पुराना अभ्यास अपना जोर आजमा रहा है और उसे ऐसा नहीं करने देना चाहिये। यह सब पश्चात्ताप, यह सब खेद, अयोग्यता और दोषकी यह भावना और यदि एक कदम और आगे जायें तो पापकी भावना –– ओह, यह सब...... ये मुझे किसी अन्य युगकी, अंधकारके युगकी चीजें प्रतीत होती हैं।

किंतु वे सब वस्तुएं जो बनी रहना चाहती हैं, जो हठीली और स्थायी बनी रहनेकी चेष्टामें हैं, ओह, ये सब निषेध और जीवनको अंगोंमें विभाजित करनेका यह तरीका — छोटे और बड़ेमें, पवित्र और अपवित्रमें! जो लोग यह समझते हैं कि वे आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हैं, वे कहते हैं: "यह कैसे! तुम ऐसी छोटी वस्तुओंको जिनका बहुत कम महत्त्व है आध्यात्मिक अनुभूतिका विषय बना लेते हो!" तो भी यह एक अनुभूति है जो अधिकाधिक मूर्त्त और वास्तविक बनती जाती है – भौतिक रूपसे भी। ऐसी कोई बात नहीं है कि भगवान् कहीं हैं और कहीं नहीं हैं। प्रभु सदा सर्वत्र हैं। वे किसी भी वस्तुको अति गंभीरतासे नहीं लेते, वे सभीके साथ खेलते हैं, पर तभी यदि तुम खेलना जानो। तुम खेलना जानते नहीं। कैसे खेला जाय लोग नहीं जानते। किंतु भगवान् खेलना जानते हैं और कितना अच्छा खेलते हैं वे सबके साथ, समस्त छोटी-छोटी वस्तुओंके साथ! क्या तुम्हें अपनी मेजपर कुछ चीजें रखनी हैं? इस बातपर विश्वास मत करो कि तुम्हें सोचकर उन्हें व्यवस्थामें लाना होगा। तुम अभी खेलने लगे हो: तुम इस वस्तुको यहां रखते हो, उसको वहां और इस प्रकार करते जाते हो। और फिर दूसरे समय उन्हें किसी और ढंगसे रखते हो...... कितना सुन्दर खेल है यह, और कितना मनोरंजक!

हां, तो अब यह समझमें आ गया है, भगवान्‌के साथ-साथ हंसना सीखनेका हम प्रयत्न करेंगे।

महान् रहस्य

[श्रीमाताजीने एक छोटासा नाटक तैयार किया था जिसमें सात पात्र हैं — राजनीतिज्ञ, लेखक, वैज्ञानिक, कलाकार, उद्योगपति और एक व्यायामी। सभी अपने-अपने क्षेत्रमें मूर्द्धन्य हैं। वे एक नौकामें जा रहे हैं, रसद खतम हो गयी है और मृत्यु लगभग निश्चित है। ऐसे समय हर एक अपना-अपना हृदय खोलकर रख देता है। हर एक पूरी सफलता पानेके बाद भी निराश है। ऐसे समय एक सातवां अज्ञात व्यक्ति जो बैठा इनकी बातें सुन रहा था, इनकी कुण्ठा और निराशाका भेद बताता है और उन्हें आगेका रास्ता दिखाता है।

इसमें लेखक, वैज्ञानिक, उद्योगपति और व्यायामीके वक्तव्य क्रमशः नलिनी, पवित्र, आंद्रे और प्रणवके लिखे हुए हैं। बाकी श्रीमाताजीके हैं।

यह अगले अंकमें पूरा होगा। –सं०]

राजनीतिज्ञ :—

आप लोगोंकी इच्छा है तो लीजिये, मैं ही सबसे पहले बताता हूं कि मेरा जीवन कैसा रहा है।

मैं एक राजनीतिज्ञका बेटा था और बचपनसे ही सरकारी बातों और राजनीतिक समस्याओंसे परिचित था। मेरे माता-पिता अपने मित्रोंको जब दावत दिया करते थे तो इन बातोंपर अच्छी तरह बहस हुआ करती थी। मैं भी बारह वर्षकी आयुसे वहां उपस्थित रहा करता था। विभिन्न राजनीतिक दलोंके मत मुझसे छिपे न थे और मैं अपने छोटेसे उत्साहपूर्ण मस्तिष्कमें प्रत्येक कठिनाईका हल पा लेता था।

स्वभावतः मेरी पढ़ाई-लिखाई भी इसी दशामें चली और मैं राजनीति-विज्ञानका एक प्रतिभाशाली छात्र बन गया।

फिर जब सिद्धांतोंको क्रियामें लानेकी बात आयी तब मुझे पहली गंभीर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। तब मुझे मालूम हुआ कि अपने विचारोंको क्रियान्वित करना लगभग असंभव सा है। मुझे समझौते करने पड़े और धीरे-धीरे मेरा महान् लक्ष्य मुरझा गया।

मैंने जाना कि सफलता सचमुच व्यक्तिगत मूल्यांकन नहीं है। सफलता अपने-आपको परिस्थितियोंके अनुसार ढाल लेने और दूसरोंको खुश करनेकी क्षमताका नाम है। इसके लिये हमें दूसरोंकी त्रुटियोंको ठीक करनेकी जगह उनकी कमजोरियोंकी खुशामद (लल्लो चप्पो) करनी पड़ती है।

आप सभी जानते होंगे कि मेरा उज्ज्वल जीवन कैसा रहा है। उस बारेमें स्वयं मुझे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। लेकिन, हां मैं इतना तो कहना ही चाहूंगा कि जैसे ही मैं प्रधान मंत्री बना और मेरे हाथमें सचमुच कुछ शक्ति आयी तो मैंने अपनी जवानीके पुरुषार्थके स्वप्नोंको याद किया और उन्हें चरितार्थ करनेकी कोशिश की।

मैंने चाहा कि मैं दलबन्दीमें न पड़ूं। संसारमें राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्ति या हलचलोंमें जो विग्रह मचा हुआ है जो सारे संसारको तोड़नेमें लगा है — जिनमेंसे प्रत्येकके अंदर कुछ अच्छाइयां और कुछ बुराइयां हैं — इस सबमेंसे मैंने एक हल निकालना चाहा। इनमेंसे कोई भी पूरा-पूरा अच्छा या पूरा-पूरा बुरा नहीं है। इनकी अच्छाइयोंको चुनकर एक क्रियात्मक और सामंजस्यपूर्ण

हल निकालना जरूरी है। मैं ऐसे समन्वयका कोई सूत्र न पा सका जो परस्पर विरोधी तत्त्वोंमें एकता ला सके। उसे क्रियात्मक रूप देना तो और भी असंभव था।

मैं राष्ट्रोंमें शांति, एकता और सौहार्द चाहता था, मैं सबके भलेके लिये सहयोग चाहता था पर मुझसे बड़ी शक्तिने मुझे युद्ध करनेपर, अविवेकी तरीकों और अनुदार नीति द्वारा विजय प्राप्त करनेपर बाधित कर दिया।

लेकिन मुझे एक बड़ा नीतिकुशल नेता माना जाता है। मेरे ऊपर आदर सम्मान और प्रशंसाकी बौछार की जाती है और मुझे मानव जातिका मित्र माना जाता है।

लेकिन मैं अपनी कमजोरी जानता हूं। मैंने उस सच्चे ज्ञान और सच्ची शक्तिको खो दिया जो मेरे बचपनकी आशाओंको सफलताका मुकुट पहना सकतीं।

अब अंत नजदीक है। मुझे लगता है कि मैंने बहुत ही थोड़ा किया है और जो किया है वह भी बुरी तरह। मैं मृत्युके द्वार टूटे सपनोंका विषाद लेकर पहुंचूंगा।

लेखक :——

इस मर्त्यलोकमें स्पंदन करते हुए सत्य और सौंदर्यको मैंने पंखदार शब्दोंसे पकड़ना चाहा। हमारी आंखोंके सामने जो सृष्टिका सौंदर्य-विस्तार फैला हुआ है, यह चराचर जगत्, ये दृश्य और घटनाएं, और इसी तरह फैला हुआ हमारी अनुभूतियों, चिंतनों और संवेदनोंका जगत् हमारी चेतनामें एक रहस्यमय मायाजाल बना देता है। मानो मयदानवकी बनायी भूल-भुलैया हो। वह सृष्टि मेरे ऊपर सम्मोहन जाल फेंकती है, उसकी वाणीमें किन्नरियोंकी बांसुरीसे भी ज्यादा मधुरता है। वह मुझे बुला रही है अपने-आपको जानने, पहचानने और मूर्तरूप देनेके लिये। मैंने अपने शब्दोंको वही ध्वनि देनी चाही।

मैंने वस्तुओंके मर्मको वाणी देना चाहा, मैंने चाहा कि काल पुरुषके रहस्योंका उद्घाटन करूं। जो कुछ छिपा हुआ है, जो अज्ञात है, जो अपने सुदूर रहस्यमय आवाससे सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और मानव हृदयका परिचालन करता है, मैंने उसे खोलकर दिव्य-लोकमें लाकर रखना चाहा। पार्थिव और अपार्थिव वस्तुओंके आयास प्रयास मूक कठपुतलियोंके अस्त-व्यस्त नाटक जैसे हैं। मैंने उन्हें वाचा और चेतना दी। मेरी दृष्टिमें शब्द एक अनुपम यंत्र हैं उनसे बढ़कर परिवाहक यंत्र कोई नहीं। शब्दोंकी गढ़न्त कुछ ऐसी है कि वे वस्तुको मूर्तरूप भी दे सकते हैं और प्रकाशमें भी ला सकते हैं, वे तरल होते हुए भी अस्पष्ट नहीं हैं, ठोस होते हुए भी अपार-दर्शक नहीं हैं। शब्द एक ही समय दो सृष्टियोंके साथ संबंध रखता है। वह पार्थिव जगत्का है इसलिये स्थूल आकार दे सकता है, और सूक्ष्म जगत्का होनेके नाते अत्यंत सूक्ष्म वस्तुओं, शक्ति, स्पंदन, नियम और विचारोंके साथ संबंध रखता है, अशरीरीको शरीर दे सकता है और इनसे बढ़कर वह वस्तुओंके सच्चे अर्थको, रूपके पिंजरेमें बन्द भावको मुक्त करता है।

मैंने अपने गीतिकाव्योंमें मनुष्य और प्रकृतिके हृदयका व्याकुलता, उनके क्रन्दन और उनके अश्रुओंके रहस्यको खोलना चाहा। कथा कहानीके विशालतर पटपर मैंने जीवनके विविध भावों और आशाओंका चित्रण किया, उसके उत्तुंग ज्ञान शिखर और उसकी साधारण दैनिक मूढ़ताको आंका। जो घटनाएं मनुष्य और प्रकृतिके इतिहासको घड़ती हैं मैंने उनमें प्राणका स्पंदन पैदा किया और उन्हें एक वास्तविकता प्रदान की। मैंने जीवनके हास्य और रुदनको नाटकका रूप दिया। मुझे यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि उस प्राचीन रूपको नवीन आवश्यकताओं और मांगोंको भली भांति पूरा करते हुए देखकर आप लोगोंको कितना आनंद हुआ था। मैंने जीवित शक्तियोंके पात्रोंको कभी न भुलाये जा सकनेवाले व्यक्तित्वके सांचेमें ढाला। शायद उपन्यास इस युगके वैज्ञानिक शोधवृत्तिके अधिक अनुकूल

है क्योंकि इसमें चित्र और व्याख्या दोनों हैं। मैंने व्यष्टि और समष्टिके जीवनका इतिहास दिया, और उसके साथ ही संपूर्ण मानव जातिके इतिहासकी कभी गोल, कभी कुंडलियों जैसी और कभी चढ़ती हुई गतिके कुछ अंशको देना चाहा। लेकिन मैंने जाना और अनुभव किया कि मनुष्यकी अंतरात्माके लिये केवल परिधिका विस्तार और बाह्य प्रसार काफी नहीं है। वह ऊंची उड़ान चाहती है, और ऊर्ध्वतम शैलीकी मांग करती है। यह सोचकर मैंने महाकाव्य रचा जिसमें सारे जीवनका परिश्रम लग गया। आपमेंसे बहुतसे उसके मर्मको न समझ पाये, बहुतसे उससे अभिभूत हो गये। फिर भी प्रायः सभीने उसके जादुई स्पंदनका अनुभव किया। रहस्योंका पर्दा चाक करनेके लिये मैंने जी-जान लगाकर अंतिम प्रयास किया। मैंने अपने विषय और भाषाको कैसे चित्र विचित्र रूप दिये। एक निपुण वैज्ञानिककी नाई मैंने शब्दोंके साथ खेल किये, मैं उन्हें उलट-पलटकर उनमें हेरफेर करके उनका रूपांतर करना जानता था और जानता था उनमें नवीन अर्थ, नवीन स्वर और नवीन व्यंजना लाना। मेरे लिये सिसरोकी तरंग, मिलटनकी उच्च गंभीरता, रासीनकी मधुर सुकुमारता, वर्डस्वर्थकी सर्वोत्तम काव्यकी सरलता या शेक्सपियरका जादू अनुपलब्ध न था। वाल्मीकीकी उत्तंग महिमा या व्यासका प्रगाढ़ महत्त्व मेरे लिये अगम्य शिखर न थे।

फिर भी मैंने जो चाहा था वह न पा सका। मुझे संतोष न हो पाया। मैं अतृप्त रह गया; क्योंकि सचमुच मैंने जो कुछ किया है वह एक स्वप्नसे बढ़कर नहीं है, मानों हवामें स्वप्न बिखेरे हों। आज मुझे लगता है कि मैंने वस्तुओंके सत्यको छुआतक नहीं हैं, उनकी सौंदर्य-आत्माकी हवातक नहीं पा सका। मैं ऊपर ही ऊपर एक खरोंच सी कर पाया हूं। मैं प्रकृतिके बाह्य आवरणका स्पर्श भर कर पाया हूं। उसकी अपनी सत्ता मुझसे दूर ही रही है। बाहरसे देखनेमें चाहे कितना भी मनोहर और सच्चा क्यों न लगे पर मैं सृष्टिके अंग-प्रत्यंगपर एक-एक मकड़ीका जाल ही तो रच पाया हूं। जिन उपायों और उपकरणोंको मैंने एक बार निष्कलंक और पूर्ण माना था, मेरी धारणा थी कि वे सर्वग्राही, सर्वप्रकाशसमर्थ हैं। वही साधन अपनी अक्षमताके कारण मुझे हताश कर रहे हैं। अब मुझे लगता है कि एक महान् नीरवता, एकांत मौन ही वस्तुओंके हार्दके अधिक नजदीक है। इसी चिंतन प्रवाहमें, इस अनन्त चपलताके बीचमें अपनी असहाय भुजाएं उठाकर फास्टसकी तरह चिल्ला उठता हूं ओ असीम प्रकृति रानी मैं तुम्हें कहां पा सकूंगा? एक और महाकविकी तुलना उस असमर्थ देवदूतसे की गयी थी जो शून्यमें अपने चमकदार सुनहरे पंखोंको फड़फड़ा रहा हो। सारी मानव जाति इससे बढ़कर और कुछ नहीं है।

आज अपने जीवनकी संध्यामें एक बच्चेके अज्ञानके साथ मैं पूछता हूं कि इस सबका मतलब क्या है? हम किस देवताके आगे सिर झुकायें और किसे अपनी हवि दें। कस्मै देवाय हविषा विधेम। शेकीनाकी अंतर्दृष्टि क्या है? हम किसलिये जियें और किसलिये मरें? पृथ्वीपर इस उड़ते हुए आविर्भावका अर्थ क्या है? इस सारे प्रयास और संघर्षका, इतने कष्टों और इतनी सफलताओंके मुकाबिलेमें इतनी वेदनाका क्या मूल्य है। ऐसी ज्वलंत आशाओं और विजयी उत्साहका क्या अर्थ जो अज्ञान और अचेतनाकी ऐसी खाईमें ले जायें जिसे कोई पलट न सके। और इस सबकी अनिवार्य समाप्ति-विलय और विनाश जो आविर्भावसे भी अधिक रहस्यमय है। देखकर लगता है मानों सारा ही एक अविश्वसनीय, वीभत्स और व्यर्थका मजाक हो।

वैज्ञानिक

आप लोगोंमेंसे कइयोंकी तरह मैंने अपना जीवन मानवजातिकी अवस्था सुधारनेके उद्देश्यसे नहीं शुरू किया था। मेरे लिये कर्म नहीं ज्ञान ही मुख्य आकर्षण था, और ज्ञानका भी आधुनिक रूप— भौतिक विज्ञान। मुझे लगता था कि प्रकृतिके रहस्योंको छिपानेवाले पदके एक कोनेको उठाकर वहां

छिपे सोतोंको जरा अधिक जान लेनेसे बढ़कर अद्‌भुत और हो ही क्या सकता है। मैंने शायद अनजाने ही प्रचलित धारणाके अनुसार यह मान लिया था कि ज्ञानकी वृद्धिके परिणामस्वरूप शक्ति अवश्य बढ़ेगी और प्रकृतिपर हर नयी विजय आज न सही कल, मनुष्यकी अवस्थाको जरूर सुधारेगी, उसकी नैतिक और भौतिक स्थितिमें उन्नति लायेगी। उन विचारकोंकी न्याई जिनकी जड़ें भौतिक विज्ञानकी प्रतिष्ठा करनेवाली गत शताब्दिमें हैं — मेरी दृष्टिमें भी अज्ञान, एकमात्र नहीं तो मुख्य पाप तो अवश्य था। यही मानवके पूर्णताकी ओर अभियानमें बाधा देता था। हम बिना ननुनचके मनुष्यकी असीम परिपूर्णताको मान बैठे थे। हम मानते थे कि धीमी हो या तेज पर प्रगति है अवश्यंभावी, हमें विश्वास था कि जब इतनी दूरतक आ चुके हैं तो आगे भी जाया जा सकता है। हमारे लिये ज्यादा जाननेका अर्थ था अधिक समझना, अधिक बुद्धिमान और न्यायसंगत होना — एक शब्दमें कहें तो उन्नति करना।

हमने इस धारणाको भी स्वतःसिद्ध मान लिया कि विश्व जैसा है उसे वस्तुपरक रूपमें वैसा जानना और उसके नियमोंपर अधिकार कर लेना संभव है। यह बात इतनी स्पष्ट थी कि हमें उसके बारेमें जरा भी शंकातक न हुई। विश्व और मैं — हम दोनोंका अस्तित्व है और एकका काम है दूसरेको समझना। मैं विश्वका एक अंग जरूर हूं पर उसे समझनेकी प्रक्रियामें मैं उससे दूर खड़ा होकर वस्तुपरक रूपसे देखता हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि मैं जिन्हें प्रकृतिके नियम कहता हूं उनकी अपनी पृथक् सत्ता है जो मेरे या मेरे मनके ऊपर निर्भर नहीं है, वे सभी विचारवान् लोगोंके लिये एक ही हैं।

मैंने विशुद्ध ज्ञानके इस आदर्शसे प्रेरित होकर अपना काम शुरू किया। मैंने भौतिक विज्ञान और उसमें भी विशेषकर अणु और तेजष्क्रियता (रेडियो एक्टिविटी) के क्षेत्रको चुना जिसमें बेकरेल और क्यूरीने पहले ही से राजमार्ग बना रखा था। यह वह समय था जब प्राकृतिक तेजष्क्रियताका स्थान कृत्रिम तेजष्क्रियताने ले रखा था, जब कीमियागरोंके स्वप्न सच्चे हो रहे थे। मैंने उन बड़े वैज्ञानिकोंके साथ काम किया जिन्होंने यूरेनियम विस्फोटकी खोज की। मैंने अणु बंबके जन्मको भी देखा। ये कठोर अविच्छिन्न और एकनिष्ठ परिश्रमके वर्ष थे। उन्हीं दिनों मुझे वह पहली प्रेरणा मिली जिसके कारण मैंने अणु केंद्रिक ऊर्जा या न्यूक्लियर ऊर्जासे सीधी-सीधी बिजली प्राप्त करनेको संभव बनाया। आप जानते ही हैं कि इस खोजने सारी दुनियाकी आर्थिक स्थितिमें एक मौलिक परिवर्तन ला दिया क्योंकि उसके कारण ऊर्जा सर्वसुलभ हो गयी। अगर यह खोज सनसनीपूर्ण थी तो इसका मुख्य कारण यह था कि इसने मनुष्यको श्रमके अभिशापसे मुक्त कर दिया, अब वह रोटी कमानेके लिये एड़ी चोटीका जोर लगानेके लिये विवश न रहा।

इस भांति मैंने अपने यौवनके स्वप्नको सिद्ध किया — एक महान् खोजकी। साथ ही मैंने मनुष्यजातिके लिये उसका महत्त्व भी समझा। बिना विशेष प्रयासके मैं मनुष्यजातिके लिये एक वरदान ले आया था।

मुझे पूर्णतया संतुष्ट होनेका अधिकार था, पर कुछ समयके लिये ही। अब हम मृत्युके द्वारपर खड़े हैं और यह रहस्य हमारे साथ ही विलीन हो जायगा; इस लिये मैं कह सकता हूं कि मैंने न केवल यूरेनियम, थोरियम आदि दुर्लभ धातुओंसे अपितु ताबां, एल्युमिनियम आदिसे भी अणु शक्तिको मुक्त करनेका तरीका खोज निकाला। लेकिन फिर मेरे सामने एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई जिसके भारने मुझे लगभग ढेर कर दिया। क्या अपनी खोजको प्रकट कर दूं? मेरे सिवा इस रहस्यको अभीतक और कोई नहीं जानता।

आप सब अणु बंबकी कहानी जानते ही हैं। आप यह भी जानते हैं कि उसके बाद उससे भी भयंकर एक अस्त्रकी खोज हुई — वह था उद्‌जन बंब। मेरी तरह आप जानते हैं कि मानवता इन

खोजोंके भारसे लड़खड़ा रही है। इन खोजोंने मनुष्यके हाथमें संहारकी कल्पनातीत शक्ति पकड़ा दी है। अगर मैं अपनी इन खोजोंको प्रकाशित कर दूं, उनके रहस्योंको खोल दूं तो एक विकट संहारकी आसुरी शक्ति जिस किसीके हाथ लग सकती है। और इसपर सरकारोंका कोई अधिकार या नियंत्रण न रहेगा। यूरेनियम और थोरियमको सरकारें आसानीसे अपने हाथमें रख सकती थीं क्योंकि वे दुष्प्राप्य थीं और उससे भी बढ़कर इसलिये कि उन्हें परमाणु राशिकके काममें लगाना बहुत कठिन था। आप कल्पना कर सकते हैं कि वह स्थिति कितनी भयंकर होगी जब हर पागल, हत्यारा या मतांध व्यक्ति अपनी कामचलाऊ प्रयोगशालामें ऐसे अस्त्र बना सके जिनसे पेरिस, लंदन या न्यूयार्कको उड़ाया जा सके? क्या यह मानवजातिके लिये एक घातक प्रहार न होगा? मैं खुद अपनी खोजके भारसे चकरा रहा हूं। मैं बहुत देरतक हिचकिचाता रहा हूं और अभीतक किसी ऐसे निश्चयपर नहीं पहुंच पाया जो मेरे दिल और दिमाग दोनोंको संतुष्ट कर सके।

इस भांति अपनी जवानीमें जिस पहले सूत्रको लेकर मैं प्रकृतिके रहस्योंकी खोज करने चला था, वह टुकड़े-टुकड़े हो गया। अगर ज्ञानकी हर वृद्धि अधिक शक्ति लाती हो तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि उससे मानव-कल्याण भी होता है। वैज्ञानिक प्रगतिका यह अर्थ है कि उसके साथ ही नैतिक प्रगति भी हो। वैज्ञानिक और बौद्धिक ज्ञान मानव-प्रकृतिको बदलनेमें असमर्थ है फिर भी उसकी आवश्यकता अनिवार्य हो उठी है। मानवके लोलुपता और मनोवेग आज भी प्रायः वैसे ही हैं जैसे अश्मकालमें थे। यदि भविष्यमें भी वे ऐसे ही बने रहे तो मानवका सर्वनाश निश्चित ही है। अब हम ऐसी अवस्थातक पहुंच चुके हैं कि यदि शीघ्र ही आमूल नैतिक रूपांतर न हो तो मानवजाति अपने ही हाथों इस नयी शक्तिसे अपना विनाश कर लेगी।

अच्छा, अब देखें मेरे यौवनकी दूसरी स्वतःसिद्ध धारणाका क्या हुआ। क्या मैं कमसे कम विशुद्ध ज्ञानका आनंद पा सका, क्या मैं निश्चित रूपसे प्रकृतिकी रचनाके छिपे तलोंको थोड़ा-बहुत भी पकड़ पाया। क्या मैं यह आशा कर पाया कि प्रकृतिको संचालित करनेवाले कुछ नियमोंको जाननेका आनंद ले सकूंगा? खेदकी बात तो यह है कि यहां भी मेरे आदर्शने मुझे निराश कर दिया। ..... हम वैज्ञानिकोंने कबसे यह विचार छोड़ रखा है कि हर परिकल्पना या सिद्धांतको पूरा-पूरा सत्य या असत्य होना ही चाहिये। हम अब यही कहते हैं कि यह सुविधाजनक है, यह तथ्योंके साथ मेल खाता है और एक कामचलाऊ व्याख्या देता है। मगर यह जानना कि यह सच है या नहीं, अर्थात् वास्तविकताके साथ मेल खाता है या नहीं —— यह तो एक और किस्सा है। शायद यह प्रश्न ही निरर्थक है। शायद और सिद्धांत भी हैं, और शायद ही क्यों अवश्य ऐसे सिद्धांत भी हैं जो इन्हीं तथ्योंको इतनी ही अच्छी तरह स्पष्ट कर सकते हैं इसलिये वे भी इतने ही न्यायसंगत हैं। आखिर ये सारे सिद्धांत हैं क्या? वे बिंबमात्र ही तो हैं। वे उपयोगी अवश्य हैं क्योंकि उनके द्वारा हम भविष्यकी अनेक चीज़ोंको देख सकते हैं। वे यह तो दिखाते हैं कि घटनाएं कैसे घटती हैं पर उनके अस्तित्वके क्यों और कैसेका उत्तर नहीं दे पाते। वे हमें वास्तविकताकी ओर नहीं ले जाते। हमें सारे समय यही लगता है कि सत्य और वास्तविकताके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं, उन्हें भिन्न-भिन्न कोणोंसे देखते हैं, भिन्न भिन्न दिशाओंसे नजर डालते हैं पर उसे खोजनेमें या पकड़ पानेमें कभी सफलता नहीं होती। वह अपने-आप भी पर्दा हटाकर अपने-आपको प्रकट नहीं करता।

और फिर हम जो कुछ माप-तोल करते हैं, जिससे हम आशा करते हैं कि वह इस स्थूल जगत्के बारेमें कुछ बतायेगा उसमें भी मानव सहायताकी जरूरत होती है। और इस माप-जोखकी क्रियासे ही हम कुछ न कुछ हलचल पैदा कर देते हैं। और यह हलचल जगत्के बाह्य रूपमें कुछ तो हेरफेर कर ही देती है। तो इस माप-तोलसे मिलनेवाला ज्ञान भी पूरी तरह निःसंदेह नहीं है। इस सब हिसाब-किताबसे हम संसारका जो चित्र बनाते हैं वह संभव तो होता है पर सुनिश्चित नहीं। हम

भौतिक जगत्के जिस स्तरपर रहते हैं वहां यह अनिश्चितता नगण्य सी होती है पर इससे अत्यंत सूक्ष्म अणु-परमाणुके जगत्के लिये यही बात नहीं कही जा सकती। यहांपर एक मौलिक अक्षमता है, एक ऐसी बाधा है जिसे पार करनेकी आशातक नहीं की जा सकती। इसका कारण हमारी अनुसंधान पद्धतिकी त्रुटि नहीं है, चीजोंकी अपनी प्रकृति ही ऐसी है। हम जिन रंगीन चश्मोंसे सृष्टिको देखते हैं उन्हें उतार फेंकना असंभव है। मेरे सारे हिसाबमें, मेरी परिकल्पनाओं और सिद्धांतोंमें मेरा अहं छिपा हुआ है। वह जितने परिमाणमें जगत्को पकड़ पाते हैं उतने ही परिमाण मुझे और मेरे मनको भी लिये रहते हैं। वे जितने वस्तुपरक हैं उतने ही आत्मपरक। और उनका अस्तित्व शायद मेरे मन ही में है।

असीमके तटपर मैंने एक पद-चिह्न देखा। बालूपर निशान देखकर मैंने उसकी मूर्त्ति गढ़नी चाही जिसने यह पदचिह्न छोड़ा था। मुझे आखिर सफलता तो मिली लेकिन मैंने देखा कि वह व्यक्ति स्वयं मैं था। तो आज मेरी यह अवस्था है, हम सबकी अवस्था यही है। मुझे कोई मार्ग नहीं दीखता. .

लेकिन शायद इस बातसे कुछ आशा बंधती है कि मैंने विश्वके बारेमें असंख्य संभावनाएं देखी हैं, कोई निश्चित ज्ञान नहीं पाया —— शायद इसीमें यह आशा छिपी है कि मनुष्यका भविष्य सदाके लिये अवरुद्ध नहीं है।

कलाकार :——

मेरा जन्म एक सम्भ्रान्त मध्यवर्गीय कुटुंबमें हुआ था। मेरे घरवाले कलाको आजीविका नहीं मनबहलावकी चीज मानते थे। उनके मतानुसार कलाकार बड़े हल्के अनैतिक और धनके प्रति उदासीन होते हैं —— और उनकी दृष्टिमें यह बड़ी खतरनाक चीज थी। शायद विरोधकी भावनासे प्रेरित होकर मैंने चित्रकलाको ही अपने जीवनका आदर्श बना लिया। मेरी सारी चेतना दो आंखोंमें केंद्रित थी और मैं शब्दोंकी अपेक्षा रंग और रेखाओंद्वारा अपने-आपको ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त कर सकता था। मैंने पुस्तकें पढ़कर सीखनेकी अपेक्षा चित्र देखकर अधिक सीखा। एक बार देखा हुआ प्राकृतिक दृश्य, मानव आकृति या रेखांकित चित्रोंको मैं कभी न भूलता था।

मैंने कठोर परिश्रमद्वारा तेरह वर्षकी आयुमें ही रेखांकन, जल रंग, पेस्टल और तैलचित्रकी तकनीक अच्छी तरह सीख ली थी। अपने माता-पिताके मित्रों और परिचितोंके लिये छोटे-मोटे काम करके कुछ कमानेका अवसर मिल गया। और पैसा आते ही मेरे परिवारने मेरे कामको गंभीरतासे लेना शुरू कर दिया। इससे लाभ उठाकर मैंने और गहरा अध्ययन शुरू किया। ठीक आयु होनेपर मैं ललितकला शालामें भरती हो गया और शीघ्र ही रोम पुरस्कार प्रतियोगितामें भाग लेनेका अवसर मिला। वहां मैंने प्रथम पुरस्कार पाया। यह पुरस्कार पानेवाले सबसे छोटी आयुवालोंमें मैं भी एक था। यह इटालियन कलाका गहरा अध्ययन करनेके लिये एक अच्छा अवसर था। कुछ समय बाद छात्रवृत्ति पाकर मैंने स्पेन, बेलजियम, हालेंड, इंग्लेंड आदि देशोंका भ्रमण किया। मैं एक ही शैली या एक ही युगका कलाकार न बनना चाहता था। मैंने पूर्व और पश्चिमके सभी देशोंकी सब प्रकारकी कलाका अध्ययन किया।

इधर मेरा अपना काम भी जारी था। मैं एक नये कला सूत्रके संधानमें लगा था। इसमें महान् सफलता मिली, यश मिला और ख्याति मिली। चित्र प्रदर्शनियोंमें प्रथम पुरस्कार मिले, चित्रोंकी परीक्षा करनेवाली ज्यूरीमें स्थान मिला। मेरे चित्र सारे संसारके बड़े-बड़े संग्रहालयोंमें स्थान पाने लगे और मेरी चीजोंके लिये चित्रविक्रेता पागल हो उठे। चारों ओरसे सौभाग्य, उपाधि, सम्मानकी वर्षा होने लगी। लोग मुझे प्रतिभाशाली कहने लगे। पर मैं संतुष्ट नहीं हूं। प्रतिभाकी मेरी कल्पना कुछ और ही है। प्रतिभाशालीको एक नये ही आधारपर एक नये उच्चतर, अधिक शुद्ध,

अधिक सत्य और अधिक महान् सौंदर्यको नये साधन, नवीन पथ, और पद्धतिसे अभिव्यक्त करना होगा। जबतक मैं मानव पशुत्वका बंदी हूं तबतक जड़ प्रकृतिके रूपसे पूरी तरह छुटकारा पाना संभव नहीं। उसके लिये अभीप्सा तो रही है पर ज्ञान और दृष्टिका अभाव था।

आज जब हम सब मरने लगे हैं तो मुझे लग रहा है कि मैं जैसा सृजन करना चाहता था, न कर पाया। मैं जिस चीजको आंकना चाहता था न आंक पाया। मुझे लगता है कि यह ख्याति आदिके ढेरके होते हुए भी मैं असफल ही रहा।

* * *

इतिहास बोलता है :

जिसने फ्रांसको नया जीवन दिया

जान दार्क

--श्री अरुणा

(२)

[पिछले अंकमें हमने देखा था कि किस तरह जान दार्क नामक एक अनपढ़ सत्रह-अठारह वर्षकी लड़कीने पददलित फ्रांसके अंदर एक नयी जान डाली। देशके लिये लड़ते हुए वह पकड़ी गयी। उसके शत्रु देखकर चकित रह गये कि यह सुकुमार लड़की बड़े-से-बड़े वीरोंके दिल दहला सकती है। फिर स्वयं उसके अपने लोग उसकी जानके दुश्मन हो गये।]

जान दार्क युद्धके समय अपनी सेनाकी रक्षा करती हुई पकड़ी गयी। जिस चार्लसको उसने धूलमेंसे उठाकर राजगद्दीपर बिठाया था उसने डरके मारे अपनी आंखें फेर लीं। कई फ्रेंच सरदार उसके जानी दुश्मन बन गये क्योंकि उन्हें अंग्रेजोंकी चापलूसी करनेमें ही लाभ था। ड्यूक फिलिप्स जैसे बड़े सरदारने उसे शत्रुके हाथमें सौंप दिया। जब बड़े-बड़े लोग ही अपनी चुपड़ीकी चिंतामें थे तो ऐसा दो सिरवाला कौन निकलता जो जान दार्कके लिये अपने ऊपर आफत मोल लेता। हरएक उसे भट्टीमें झोंककर अपना उल्लू सीधा करना चाहता था। कोशों नामक एक पादरी (यहां यह बात मजेदार है कि हिज्जे बदलकर इस शब्दका अर्थ सूअर होता है) भी गिरजाकी ओरसे इसपर लांछन लगानेके लिये बढ़ आया। वह आर्च बिशप बनना चाहता था!

२१ फरवरी सन् १४३१ को जानको न्यायाधीशोंके सामने पेश किया गया। कोशों इनका अध्यक्ष था। जानने सत्य बोलनेकी शपथ लेते समय कहा, "मैं नहीं जानती आप लोग क्या-क्या पूछेंगे, पर चाहे मेरा गला क्यों न घोंट दिया जाये मैं अपने अंतर्दर्शनके बारेमें कुछ न कहूंगी।" इधर-उधरके कुछ प्रश्न करनेके बाद कोशोंने कहा, अच्छा, तुम बाइबलकी अमुक प्रार्थना हमें सुनाओ। इसके पीछे यह विचार काम कर रहा था कि अगर जान शैतान है तो भगवान्की प्रार्थना न कर सकेगी। जानने बड़ी चालाकीसे उत्तर दिया, "अवश्य, पर शर्त्त इतनी ही है कि स्वयं कोशों मुझसे प्रार्थनाके साथ-साथ मेरी 'दोष-स्वीकृति' भी सुनें।" वह दिखाना चाहती थी कि वह इतनी साफ है कि वह दुश्मन-

को अपना धर्मपिता बनानेको तैयार है। और उस हालतमें कोशोंको उसके निर्दोष होनेकी साक्षी देनी पड़ती। कोशों यह सुनकर चौंक गया और उसने उस दिनकी कार्रवाई स्थगित कर दी।

न्यायाधीशोंको उत्तर देते हुए कई बार जान ऐसी बातें कह जाती थी जिनसे वे अचकचा उठते थे। एक बार उसने कहा मैं, भगवान्के यहांसे आयी हूं, मुझे तुमसे कुछ लेना देना नहीं है। मुझे जल्दी ही भगवान्के पास भेज दो।" कई बार न्यायाधीश ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछते थे जिनसे चित भी उनकी और पट भी उनकी रहे। एक बार उन्होंने पूछा, "क्या तुम अपने-आपको भगवान्का विशेष कृपा-पात्र मानती हो?" अगर जान 'न' कहती तो इसका अर्थ किया जाता कि वह शैतानका अस्त्र है और अगर हां कहती तो कहा जाता उफ कितनी दम्भी है। भगवान् ऐसोंको दूर ही रखते हैं। जानने सहज-स्वाभाविक रूपसे उत्तर दिया, "अगर मेरे ऊपर भागवत कृपा नहीं है तो हो जाये और अगर है तो मेरी यही प्रार्थना है कि वह हमेशा बनी रहे।"

ऐसा लगता था कि न्यायाधीश पहलेसे ही निश्चय किये बैठे थे कि जान एक जादूगरनी है और यह सिद्ध करनेके लिये ही मुकद्दमेका ढोंग किया जा रहा था। उन्हें विश्वास था कि जानको दिखायी देनेवाले दृश्य और सुनायी देनेवाली वाणी भगवान्की ओरसे नहीं है। वे तो केवल उसी भगवान्को मान सकते थे जिसका प्रतिनिधि पोप अपने कार्डिनल और बिशप आदिके द्वारा राज्य करता था। जान चारों ओरसे मुश्किलोंसे घिरी थी। उसके पैरोंमें बेड़ियां पड़ी थीं और उसके भोजनमें एक हल्का विष मिलाया जा रहा था। उसके हाथ-पांव काठमें देनेकी धमकी दी गयी और उसकी आंखोंके सामने इसकी तैयारी भी की गयी, पर जान विचलित न हुई। वह कहती गयी, मैंने जो किया है भगवान्के आदेशसे किया है और मैं इसमें रंचभर हेरफेर नहीं कर सकती।

यहांके न्यायाधीश पेरिस विश्वविद्यालयके निर्णयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आखिर वहांसे यही फैसला आया कि जान शैतानके वशमें है, वह अपने मां-बापके विरुद्ध है और ईसाइयोंके लहूकी भूखी है। उसे जादूगरनीकी तरह जिंदा जला देना चाहियें। अंग्रेज जानको जलाने भरसे संतुष्ट न थे। वे चाहते थे कि मरते-मरते जान कुछ ऐसी बात कह जाये जिसके आधारपर राजा चार्ल्सको बदनाम किया जाये।

खुले मैदानमें लकड़ीका खूब ऊंचा ढेर लगाया गया और वहां जानके सामने जल्लादको बुलाया गया। जानने उसे देखकर कहा, 'जब मैं आगके अंदर होऊंगी तब भी वही कहूंगी जो अभीतक कहती आयी हूं।' लकड़ीके ढेरके पास अंग्रेजोंका प्रतिनिधि वारविक एक चबूतरेपर अपने दो न्यायाधीशोंके साथ बैठा। वह अंग्रेजोंकी दृष्टिमें बहुत ही भद्र, वीर और भगवान्का भक्त था। वह गिरजाके लिये सब कुछ कर सकता था — और वही एक निर्दोष बालाको — और वह भी जिसे युद्धके कैदीके रूपमें पकड़ा गया था — शब्दशः तिल-तिल करके जलवानेके लिये बैठा। यह वही बाला थी जिसकी तलवारके आगे बड़े-बड़े अंग्रेज सूरमा और उनके फ्रेंच पिट्ठू थर्राते थे।

इसी समय किसीने आकर चार्ल्सको बुरा-भला कहना शुरू किया। जानके प्राण बचानेके लिये उसने अपनी उंगलीतक न उठायी थी और लोग आशा कर रहे थे कि इस समय तो वह उसके विरुद्ध हो जायेगी। पर नहीं, वह अपने भगवान्के आदेशपर दृढ़ रही। उसने कहा, "ऐसे न कहो। चार्ल्स सच्चा ईसाई है।" जानकी दृढ़ता अंग्रेजोंको अधिकाधिक कटु बनाती जा रही थी। वे चाहते थे कि जल्दी जल्दी उसका काम तमाम कर दिया जाये। क्योंकि वे अनुभव करते थे कि उसके जीवित रहते उनका फ्रांसमें रह सकना असंभव था। कोशों भी वारविकको खुश करनेके लिये जल्दीमें था। उसने एक दिन सवेरे-ही-सवेरे एक पादरीको उसके पास भेजा जो यह समाचार दे आये कि आज उसका आखिरी दिन है और उसकी धार्मिक क्रियाओंमें भी सहायता करे। एक ओर कोशोंने फैसला सुनाया था कि जान नास्तिक, गिरजा-विरोधी और जादूगरनी है और दूसरी ओर

उसका हुकुम था कि पक्के धार्मिक ईसाइयोंके लिये जो क्रियाएं की जाती हैं, जानको उनके लिये पूरी-पूरी सुविधा दी जाये। कोशों चाहता था कि सारा मामला चुपचाप खत्म कर दिया जाये पर पादरीका मन न माना और उसने रुएनके गिरजामें इसकी खबर कर दी। वहांके पादरियोंने सड़कपर जुलूस निकालकर लोगोंको सलाह दी कि वे जानके लिये प्रार्थना करें।

धार्मिक क्रियाओंके बाद जानकी नजर कोशोंपर पड़ी। उसने कहा, 'विशप, मैं तुम्हारे कारण मर रही हूं। तुमने मुझे गिरजामें कैद किया होता तो यह गति न होती। मैं भगवान्के सामने तुमसे इसका जवाब तलब करूंगी। इतनेमें जानकी नजर भीड़में खड़े उस पादरीपर पड़ी जिसने उसकी अंतिम धार्मिक क्रियाएं करवायी थीं। वह बोली, आह, आज शामको मैं कहां होऊंगी? पादरीने प्रश्नके उत्तरमें प्रश्न किया, "क्यों, तुम्हें भगवान्पर भरोसा नहीं है?" "हां, मैं शामतक भगवान्के पास स्वर्गमें होऊंगी" जान बोली। परंतु भगवान्के पास पहुंचनेसे पहले उसके शरीरको अभी और बहुतसे कष्ट झेलने थे। सवेरे नौ बजेके लगभग उसे गाड़ीमें बिठाकर बाजारके रास्ते ले जाया गया। बाजारके बीच एक खुली जगह वारविक अपनी साथियोंके साथ बैठा था, दूसरी ओर कोशों अपने न्यायाधीशोंके साथ विराजमान था और तीसरी ओर लकड़ीकी चिता तैयार थी। चिता जान-बूझकर बहुत ऊंची रखी गयी थी ताकि जल्लाद उसमें नीचेसे आग लगा सके और जिंदा जानको मरनेसे पहले लपटोंमें भुनना पड़े। यह न्याय था। जानको चिताके ऊपर खड़ा किया गया और चारों ओर अंग्रेज सिपाही नंगी तलवारें लिये उसे घेरकर खड़े हो गये। उन्हें आशा थी कि शायद उसके मुंहसे कोई ऐसी बात निकल जाये जिसमें राजा चार्ल्स, भगवान्, उसकी अंतरदृष्टि आदिके बारेमें कुछ ऊटपटांग लांछन छिपा हो। कोशों भी इसी आशासे चिताके बहुत नजदीक आ गया। वह चाहता था कि और कुछ नहीं तो कम-से-कम चीख चिल्लाकर जान माफी ही मांग ले।

पेरिस विश्वविद्यालयके एक बड़े विद्वान् मेत्र मिकोला मिलीने इस वीभत्स काण्डका प्रारंभ करते हुए कहा, 'जब संप्रदायका एक अंग बीमार हो जाता है तो सारा संप्रदाय ही बीमार हो जाता है। और बीमार अंगको काटना जरूरी हो जाता है। जान, जाओ, शांतिसे जाओ, संप्रदाय तुम्हें बचानेमें असमर्थ है। इसके बाद कोशोंने जानकी आत्माकी मुक्तिके लिये प्रार्थना की। जान इस सारे समय घुटने टेके भगवान्से प्रार्थना करती रही। जानने पदारियोंकी ओर देखकर कहा, आप लोग प्रार्थना कीजिये और मेरी आत्माके लिये अपने-अपने यहां मास (एक प्रकारकी सम्मिलित प्रार्थना) कहिये। यह जरा-सा वाक्य सुनकर सबकी आंखें छलक आयीं। कोशों रो पड़ा, वारविक और उसके साथी अंग्रेजोंने भी आंखें पोंछनी शुरू कीं। इसके बाद कोशोंने जानकी अपराध-सूची पढ़कर सुनायी और अंतमें कहा, हम तुम्हें संप्रदायका एक बीमार अंग मानते हैं जिसे ठीक करना हमारे बसमें नहीं है। हम तुम्हें राज्यसत्ताके हाथमें सौंपते हैं और आशा करते हैं कि तुम्हें मौतकी सजा न होगी।

जानने एक सलीब (क्रास) मांगी। किसीने वहीं लकड़ीकी एक सलीब बनाकर उसे दे दी, पर वह गिरजाघरकी सलीब चाहती थी। एक पादरी दौड़कर एक गिरजाकी सलीब ले आया। जानने उसे गलेसे लगा लिया और चूमने लगी। पादरी उसे आश्वासन दे रहा था। अंग्रेज इस सबसे उकता गये। दोपहर हो चली थी। अंग्रेज कप्तानने पादरीसे कहा, "क्यों साहब, क्या शामका खाना भी यहीं मिलेगा? उन्होंने पादरीके पाससे जानको खींचकर दूसरी ओर धक्का दे दिया। उसके मुंहसे निकला, "आह रुएन, तुझे मेरी मृत्युसे कष्ट होगा। जल्लादने नीचेसे आग लगा दी। जानने पादरीको अपनेसे दूर किया और मरनेके लिये तैयार हो गयी। कोशों फिर पास आया तो उसने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा, "बिशप, मैं तुम्हारे कारण मर रही हूं। मैंने भला-बुरा जो कुछ किया है उसमें राजाका हाथ नहीं है।" आग जानके पास पहुंचती जा रही थी। उसने फिर कहा, "मुझे भगवान्की वाणी

सुनायी देती थी, उसने मुझे कभी धोखा नहीं दिया।" कई अंग्रेज यह देख-सुनकर हंस रहे थे। यद्यपि बादमें उनमेंसे एकने कहा, अंग्रेजोंका भला नहीं हो सकता, हमने एक संतको जला दिया है।

आगकी लपटें बढ़ती गयीं और उन्होंने जानको चाट लिया। जिस पादरीको जानने चितापरसे हटाया था उसने कई वर्षोंके बाद बताया कि गिरते समय जानके मुंहसे निकला 'हे ईसू'। कइयोंका कहना है कि लपटोंमे ईसाका नाम लिखा था। कुछ और कहते हैं कि उन्होंने जानकी श्वाससे एक पवित्र कबूतरको निकलते हुए देखा था।

जान नास्तिक, चर्चविरोधी और जादूगरनी होनेके अपराधमें १४३१ में जिन्दा जलायी गयी और १९२० में उसी गिरजाने उसे संतकी पदवी दी और अब हर मईका दूसरा रविवार फ्रांसमें "जान दार्क पर्व'के रूपमें मनाया जाता है।

किस्मतका खेल !

* * *

गहरे पानी पैठि :

अंतरात्मा

श्रीअरविंदका योग मुख्य रूपसे तीन चीजोंपर विशेष रूपसे बल देता है। १. सच्ची अंतरात्मा या चैत्य पुरुषको विकसित करना जिससे वह हमारे अंदर पैदा होनेवाली इच्छा, कामना, राग, द्वेष आदिसे प्रेरित होनेवाली मिथ्या शक्तिका स्थान ले ले, २. मानव प्रेमको दिव्य प्रेममें बदलना और ३. चेतनाको उसके मानसिक स्तरसे उठाकर आध्यात्मिक और अतिमानसिक स्तरपर ले जाना — जिसकी शक्तिसे ही आत्मा और जीवन-शक्तिको अविद्याके आवरणोंसे मुक्त किया जा सकता है।

अंतरात्मा भागवत अग्निकी एक चिनगारी है जो धरतीपर व्यक्तिके विकासमें सहायता देती है। वह उत्तरोत्तर प्रगति करती जाती है या यूं कहें कि वह हमारे जीवनमें अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान लेती जाती है और हमारे जीवनको भगवान्‌के साथ मिलन करनेके लिये तैयार करती है। अंतरात्मामें शांति भी होती है परंतु यह उसका मुख्य गुण नहीं है। जैसे सूर्यमुखी हमेशा सूर्यकी ओर मुड़ता है वैसे ही अंतरात्माका अपना स्वभाव है भागवत सत्यकी ओर मुड़ना। हमारे जीवनमें जो कुछ दिव्य है उसे अंतरात्मा स्वीकार करती है और जो कुछ उससे उलटा है उससे मुंह मोड़ लेती है। शुरू-शुरूमें यह अपनी शक्ति नहीं दिखाती। यह बहुत अधिक घने अंधेरेमें एक छोटी-सी चिनगारी होती है जिसके ऊपर मनों कूड़ा कबाड़ पड़ा रहता है। इस छोटी-सी चिनगारीमें इतनी शक्ति होती है कि वह सारा कूड़ा इसे बुझा नहीं सकता। यह धीरे-धीरे हमारे जीवनमें आगे आनेकी कोशिश करती है। (यहां हमारी दृष्टिमें) कठिनाई यह है कि भगवान् जबर्दस्ती नहीं करते। वे हमें पूरी-पूरी स्वाधीनता देते हैं कि हम चाहें तो उनके प्रकाशको लें और न चाहें तो अपने अंधेरेमें ही सड़ते रहें। हमारे जीवनमें मन, प्राण और शरीर सभी तो अविद्यामें पड़े हुए हैं। अपने अंधकारमेंसे निकलना बिरले ही चाहते हैं।

यहां हमें पुराणोंकी एक कथा याद आती है। कहते है कि एक बार लक्ष्मीजीने भगवान् विष्णुसे कहा, संसारमें लोग इतना कष्ट पाते हैं आप उन्हें स्वर्गमें क्यों नहीं बुला लेते? भगवान्‌ने कहा, लोग आना चाहें तब न। लक्ष्मीजी बोलीं, वाह, ऐसा भी कहीं हो सकता है कि कोई स्वर्ग आनेके लिये इच्छुक न हो। भगवान्‌ने कहा, अच्छा लो तुम्हें खुली छूट है जिस-जिसको चाहो ले आओ।

लक्ष्मीजी प्रसन्न हो गयीं। उन्होने अपने दूत धरतीपर भेजे और कहा, दुनियामें जो सबसे अधिक कष्टमें हो उसे यहां ले आओ।

दूत धरतीपर पहुंचे। सबसे पहले उन्होंने एक बूढ़ेको देखा जो अपने परिवारपर भार बना हुआ था। घरमें दिनभर झगड़ा होता था और बूढ़ा बार-बार कहता था, हे भगवान्, मुझे उठा लो, हे दीनानाथ, अब नहीं सही जाती, अब और कितने दिन इस नरक-कुण्डमें रखोगे? लक्ष्मीजीका दूत उसके पास गया और उसे स्वर्ग चलनेका निमंत्रण दिया। बूढ़ा खुश हो गया और बोला हे नाथ, मेरी सुन ली, हे दयाके सागर, मैं स्वर्ग आनेके लिये तैयार बैठा हूं, बस जरा छोटे बेटेका ब्याह इन आंखोंसे देख लूं। मैंने आंखें मूंद लीं तो न जाने उसका क्या होगा। इसलिये जरा ठहर जाओ प्रभो!

लक्ष्मीजीका दूत एक युवक दम्पतिके पास गया। दोनोंमें अभी लड़ाई हुई थी। स्त्री चिल्ला रही थी, हे भगवान्, मुझे मौत क्यों नहीं आती। दूतने उसी क्षण जाकर कहा, हां, चलो, तुम्हें स्वर्ग ले चलूं। स्त्री घबराकर भागी और पतिको जोरसे पकड़ लिया और वहींसे बोली, हैं, मैं मर गयी तो इनकी देखभाल कौन करेगा? दूत वहांसे भी निराश होकर आगे बढ़ा। रोगी, दुःखी, मरणासन्न बहुतसे लोगोंके पास गया पर कोई भी उसके साथ चलनेको तैयार न हुआ। आखिर उसने कीचड़में पड़े हुए एक सूअरको जा पकड़ा। उस बेचारेके न खानेका ठिकाना था न रहनेका। सब उससे घृणा करते थे। देवदूतने सोचा, इसे कौनसा सुख है जो यह धरतीपर रहना चाहेगा। झट उससे स्वर्ग चलनेके लिये कहा। सूअर जरा सोचमें पड़ गया फिर बड़ी उत्सुकतासे बोला —— तुम्हारे स्वर्गमें विष्ठा मिलेगी? देवदूतने अपना सिर पीट लिया और निराश होकर लक्ष्मीजीके पास लौट गया।

हम सबकी दशा कुछ-कुछ ऐसी ही होती है। हमें अपने कूड़े-कबाड़ेसे इतना मोह होता है कि हम उसे छोड़कर उसके नीचे छिपी हुई अंतरात्माकी ओर देखना तक नहीं चाहते। अंतरात्माको हमारे मनके ऊटपटांग विचारों, गलत-सलत निश्चयों, हमारे प्राणकी अविवेकशील इच्छाओं, मांगों और कामनाओं, तथा शरीरकी जड़ताको छेदकर काम करना पड़ता है। और इसी कारण हजारोंमें एक भगवान्की ओर सचमुच जाना चाहता है और ऐसा चाहनेवाले हजारोंमेंसे कोई एक उसका मूल्य चुकानेके लिये तैयार होता है।

हमारे मनका बाजार जरा चुप हो जाय, हमारी इच्छाएं, कामनाएं जरा शांत हो जायें और हम सच्चे दिलसे भगवान्को बुलायें तो अंतरात्मा सब कूड़ेको जलाती हुई आगे आने लगती है। वह स्वभावसे ही भगवान्की ओर उठती है और हर कामपर अपनी मुहर छोड़ती जाती है। वह बुद्धिकी तरह संदेह या कट्टरताका शिकार नहीं बनती। वह हर जगह छिपे हुए दिव्य तत्त्वको देख सकती है और बिना सकुचाये या डगमगाये सीधा रास्ता दिखाती है। यह जीवनमें सत्य, संकल्पशक्ति, बल, आनंद, सौंदर्य और प्रेमकी मांग करती है। यह पतनकी ओर ले जानेवाले सुखोंकी अपेक्षा पवित्र करनेवाले कष्टका स्वागत करती है। यह उस सौंदर्य और प्रेमकी मांग नहीं करती जो क्षणिक, आवेशपूर्ण और दूसरेपर अधिकार जमानका प्रयास करता है। यह सनातन सौंदर्यकी ओर जाती है जो सच्चे सामंजस्यसे आता है। यह उस प्रेमको अपनाती है जो अहंकार, लालसा, बदलेकी मांग आदिके कीचड़में नहीं फंसा होता बल्कि यज्ञकी ज्वालाकी तरह ऊंचा उठता है और अपने साथ अंदर डाली गयी हविको भी ऊपर ले जाता है।

अंतरात्माको सामने लानेके लिये सच्ची, निर्बाध अभीप्सा बहुत जरूरी है। जैसे-जैसे हम भगवान्को ओर उन्मुख होते जायेंगे वैसे वैसे अंतरात्मा बाहर आकर हमारे जीवनके क्रिया-कलापोंको अपने हाथमें लेती जायगी। जैसे-जैसे वह आगे आती जायगी वैसे-वैसे हमारे जीवनमेंसे अविद्या, असत्य और असुन्दरको देश-निकाला मिलता जायगा, हमारे जीवनमें सत्य, ज्योति, पवित्रता और प्रेम अपना स्थान ले लेंगे।

गर्दभ स्वामी

—श्री सुब्रह्मण्यम भारती

(सुब्रह्मण्यम भारती आधुनिक तमिलके निर्माता माने जाते हैं। इनकी कविताएं मैथिलीशरण गुप्तकी याद दिलाती हैं। अंग्रेज सरकारने इन्हें देश-निकाला दे दिया था जिसके परिणामस्वरूप इन्हें कई वर्षोंतक पांडिचेरीमें रहना पड़ा। यहां श्रीअरविंदके संपर्कने इनके साहित्यको और भी ओज दिया। उन्होंने पंचतंत्रके ढंगपर कुछ कहानियां लिखी हैं। इसी प्रकारकी एक कहानी यहां दी जा रही है।—संपादक)

मधुकण्डिकै नामक कोयलने कहा, "एक समयकी बात है। वांची नगरीमें एक सांप रहता था। उसकी कन्या बहुत ही सुन्दर थी। उसका नाम था गुलाब। एक दिन की बात है, मां बेटी हवा खानेके लिये झाड़ीमेंसे बाहर निकलीं। छोटी-सी गुलाबने पूछा — मां, लोग हमसे घृणा क्यों कहते हैं और हमें देखते ही ढेले-पत्थर क्यों फेंकने लगते हैं? मांने कहा — बेटी, हमारे दांतोंमें विष होता है और हम किसीको काट लें तो वह तुरंत मर जाता है इसलिये लोग हमसे डरते हैं और उस डरसे घृणा पैदा होती है।

उधरसे एक साधु गुजर रहे थे। उन्हें सांपोंसे जरा भी डर न लगा, और न उन्होंने इनसे बचनेकी कोशिश की। वे चुपचाप अपने रास्तेपर चलते गये। गुलाबको बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने मांसे पूछा — मां, यह कैसी बात है? इस साधुको हमारा डर क्यों नहीं लगा? माने कहा — बेटी, यह सिद्ध पुरुष है। अगर हम इसे डस भी लें तो भी इसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। उसे हमारा डर नहीं है और इसलिये वह हमसे घृणा भी नहीं करता। उसके अंदर बहुत शक्ति है; वह हमें शाप भी दे सकता है और वरदान भी।

गुलाबको साधुके बारेमें और भी उत्सुकता हुई। उसने पूछा, मां, यह सिद्ध पुरुष कहां रहता है? मांने कहा, वह पेड़ोंका झुरमुट देखती है, यह वहीं रहता है। कुछ दिन बाद गुलाब अकेली चल पड़ी और झुरमुटके पास बैठे साधुके आगे प्रणत हो गयी। साधुने बड़ी मधुरतासे पूछा — क्यों क्या चाहिये तुझे?" "एक वरदान मांगती हूं पिता"। "क्या" साधुने कहा। गुलाबने कहा — मैं अपनी इच्छाके अनुसार लड़कीका रूप धारण कर सकूं। साधुने पूछा — क्यों? तो गुलाब बोली —भगवान्, सांपसे सब घृणा करते हैं। मैं सुन्दर लड़की बनकर राजकुमारोंके भी मन मोहा करूंगी। साधु उसके कष्टको समझ गये और उन्होंने कहा — अच्छा, तेरी इच्छा पूरी होगी पर याद रख अगर किसीकी बातसे तुझे जरा भी डर लगे तो उससे तुरन्त दूर हो जाना नहीं तो तेरा अंत हो जायगा। गुलाबने साधु महात्माको धन्यावाद दिया और वहांसे चल दिया।

कुछ दिन बीते। गुलाबने एक सुंदर लड़कीका रूप धारण कर लिया और वांचीके दरबारमें जा पहुंची। राजकुमारने उसे देखा और उसपर मोहित हो गया। उसने पूछा, सुन्दरी, तुम कौन हो? गुलाबने कहा, मैं सिंहलद्वीपकी राजकुमारी हूं। राजकुमार बड़े अचरजमें पड़ गया। उसने कहा अजीब बात है, तुम राजकुमारी कैसे हो सकती हो तुम्हारे साथ दास-दासियां तो हैं ही नहीं। लड़कीने कहा, मुझे एक महात्माने वरदान दिया है कि मैं अपनी इच्छाके अनुसार उड़ सकती हूं। आज मैं इस इलाकेपर उड़ रही थी कि तुम्हारी सुन्दर सी बाटिकापर नजर पड़ी और मैं उसे देखनेके लिये

नीचे उतर आयी। राजकुमार उसके सौंदर्यसे मतवाला हो रहा था। उसने कन्याकी प्रशंसा शुरू की। उसने कहा सच बताना तुम कोई अप्सरा हो या नागकन्या ?

'नागकन्या' सुनते ही गुलाबके शरीरमें फुरेरी आ गयी। राजकुमार इसका कारण न समझ पाया। लड़कीको साधुकी बात याद आ गयी और वह दुर्घटनासे बचनेके लिये झट नौ दो ग्यारह हो गयी।

एक बार गुलाब सुनसान जंगलमें एक कुएंके पास झाड़ीमें आराम कर रही थी। उसने एक सुन्दर ब्राह्मण युवकको आते देखा। उसने तुरंत लड़कीका रूप धारण कर लिया और रास्तेमें खड़ी हो गयी। युवकने चारों ओर देखा। कहीं कोई न था। रात भीगनी शुरू हो गयी थी और उसके ठीक सामने एक अद्भुत सुन्दरी खड़ी थी। ब्राह्मण चकरा सा गया। गुलाबने युवकसे कहा, बड़ी प्यास लगी है, कुएंसे पानी निकाल दो जरा। ब्राह्मण झट तैयार हो गया। कुएंमें एक पानी-का सांप तैर रहा था। ब्राह्मणने लड़कीसे कहा, तुमने यह सांप देखा ? सांप शब्द सुनते ही लड़की-का सारा शरीर थरथराने लगा, उसे साधुकी बाद याद आ गयी और वह सिरपर पांव रखकर भागी। इस तरह गुलाबके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। लेकिन आखिर गर्दभ स्वामी नामक संन्यासी उसके चंगुलमें फंस गया।

श्रोता रसिकशिरोमणि नामक गधे ने पूछा, मधुकंडिकै, यह गर्दभ स्वामी कौन था ? कोयल बोली, रसिक मामा, गंगाके तीरपर रामनगर नामक एक गांव था। वहां एक धोबी रहता था जिसका गधा भक्तिविस्तार बहुत आज्ञाकारी और धैर्यवान् था। लड़के उसपर पत्थर फेंका करते तो भी वह चुप-चाप खड़ा रहता था। एक बार भक्तिविस्तार नदी किनारे चर रहा था। उसने दो कौओंको पुनर्जन्मके बारेमें बातचीत करते सुना। एक कौआ कह रहा था अगर कोई गंगा यमुनाके संगमपर प्राण त्यागे तो उसे अपनी इच्छाके अनुसार नया जन्म मिलता है। दूसरे कौएको इस बातपर विश्वास न हो रहा था। उसने पूछा, तुम्हें किसने बताया ? पहलेने कहा, नहीं यह न बताऊंगा। पर यह बात है बिलकुल सच्ची। दूसरेने फिर आग्रह किया तो पहला बोला, छिः तू कैसा अविश्वासी है। तेरा कभी भला न होगा। ले, सुन मेरे गुरुने मुझे यह रहस्य बताया है। मेरे गुरु जैसा ज्ञानी धरती तो क्या ब्रह्मलोकमें भी नहीं है। एक बार ब्रह्माको सृष्टिविज्ञानके बारेमें कुछ शंका हुई थी, उन्होंने नारदजीको भेजकर मेरे गुरुको सलाहके लिये बुलाया था। यह सुनकर दूसरा कौआ जोरसे हंसा और वहांसे उड़ गया।

गधेने यह सारी बातचीत सुन ली और सुनते ही उसने त्रिवेणीका मार्ग लिया। दिन रात चलते चलते वह संगमके पास जा पहुंचा। उसनें भगवान्से प्रार्थना की, हे प्रभो मुझे अगला जन्म दक्षिण भारतमें देना। मैं यहां उत्तरमें बहुत दुखी हूं। लेकिन भगवान् बनाना मुझे चिन्ताओंसे मुक्त, रमते राम संन्यासी। लोग मेरा मान करें और खुशीसे मेरा भरण पोषण करें और मैं जहां मरजी विचरता फिरूं। लेकिन फिर भी मुझे याद बनी रहे कि मैं गधा हूं और मेरी रासभ-बुद्धि जैसी-की तैसी बनी रहे। यह कहकर उसने संगममें डुबकी लगा ली।

इस प्रार्थनाके असरसे गधेने दक्षिण भारतके एक खाते-पीते घरानेमें जन्म लिया। उसका नाम रखा गया मुत्तूस्वामी। मुत्तूस्वामीको भली भांति याद था कि वह वास्तवमें गधा है। वह बस इतना ही जानता था कि वह सामान्य बालक न होकर कोई विशेष व्यक्ति है। सोलह वर्ष पूरे होने-से पहले पहले उसने गेरुआ धारण कर लिया और भिक्षाटन करता हुआ विचरने लगा। वह अपना नाम गर्दभ स्वामी बताया करता था।

गर्दभ स्वामी तमिल और संस्कृतका पंडित था। उसने एक बड़ीसी पोथी लिखी जिसमें यह सिद्ध किया कि संस्कृत दुनिया भरकी भाषाओंकी जननी है और वह तमिलसे निकली है। वह जात पांतकी वर्तमान स्थितिसे बहुत असंतुष्ट था। उसका कहना था कि अब भारतमें केवल चार हजार

जातियां रह गयी हैं परंतु पहले जमानेमें चालीस हजार जातियां थीं और अब फिरसे उन चालीस हजार जातियोंमें जान डालनी चाहिये। इस विषयपर भी उसने एक बड़ासा पोथा लिख मारा। उसने भगवान्के नामोंकी एक तालिका बनायी और घोषणा की कि यह सारे नाम भैरवके ही हैं।

गर्दभ स्वामीका कहना था कि जनेऊ होनेसे पहले, ब्राह्मणका बालक भी शूद्र ही रहता है इसलिये घरके ब्राह्मणोंको उसके सामने भोजन न करना चाहिये। उसकी मांको दूध पिलानेके बाद स्नान करना चाहिये या घरके बरतन भांडे आदि न छूने चाहिये नहीं तो सारा परिवार धर्मच्युत और जातिभ्रष्ट हो जायगा और मरकर घोर नरकमें जायगा।

स्वामीजीके चारों ओर शिष्य जुटने लगे, पैसा भी आने लगा और उन्होंने शालिवादिपुत्रम्में एक मठकी स्थापना की। उनके मठका नाम रखा गया चालीस हजार जाति-भेद-पूर्वक-द्रविड़-भैरव-गर्दभ-ब्राह्मण-शिशु-बहिष्कार महामठ।

* * *

बालकोंके बीच :

भूल-सुधार

—श्री अंजना शर्मा

बच्चोंके बीच बहुत-सा समय गुजारनेसे एक बहुत ही स्वाभाविक और काफी गंभीर प्रश्न यह उठता है कि अगर कोई बच्चा गलती कर बैठे तो बड़ेका उसके प्रति कैसा बर्ताव होना चाहिये।

हर बच्चा गलती करता है और हर गलतीकी एक ही सजा नहीं होती। एक प्रश्न यह भी उठता है कि सजा देना कहांतक उचित है? क्या कोई और तरीका नहीं जिससे बच्चेको सुधारा जा सके? उनके ऐसे कोई प्रश्न हैं जिनको ध्यानसे सोच-विचार करके देखा जा सकता है और बच्चोंपर प्रयोग किये जा सकते हैं।

मैं समझती हूं कि हरएक बच्चा सजा पानेके काबिल नहीं होता। कई बच्चे ऐसे भी होते हैं जो प्यारके दो शब्दोंसे भी सुधर सकते हैं, इसलिये हरएक मरीजको एक ही दवा नहीं दी जा सकती और हर बीमारीको लिये एक रामबाण औषध नहीं होती। उदाहरणके लिये मैं एक किस्सा बताती हूं। हमारे स्कूलमें एक बच्चा बहुत ही शैतान है। मामूली-सी शैतान हो तो कोई भी उसको संभाल सकता है, मगर वह ऐसा है कि उसीके लिये अलग एक अध्यापिका चाहिये। जरा नजर इधर-उधर हो जाय तो वह कहींकी चीजें कहीं पटक दे, खेलके मोती इधर-उधर बिखेर दे, किसीको नोंच ले, जरा देरमें वह न जाने क्या-से-क्या कर डाले। ऐसे बच्चेके साथ स्वाभाविक रूपसे अध्यापिकाको गुस्सा आ ही जाता है और वह डांटे बगैर नहीं रह सकती। मगर कई बच्चे डांट खाकर ज्यादा 'जंगली' हो जाते हैं फिर जिस चीजके लिये उनको मना किया जाता है आग्रहसे वही करते हैं। मैंने उस बच्चेको डांट-फटकारसे संभालनेका प्रयत्न किया मगर उसका नतीजा बिल्कुल उलटा निकला, वह और भी बिगड़ता चला गया। फिर मैंने एक दिन कुछ नये ढंगसे प्रयोग करने शुरू किये। मगर मैं कह नहीं सकती थी कि मैं कहांतक सफल हूंगी। मैंने उसे प्रेमसे सनझाना शुरू किया कि गंदे बच्चे ऐसा व्यवहार करते हैं। मैने गुस्सेको जेबमें डाल लिया और बड़े धैर्य के साथ उससे मधुर व्यवहार करती गयी। मैंने देखा मेरे धैर्यका कुछ-कुछ नतीजा नजर आने लगा। धीरे-धीरे वह समझने लगा था और अपने दुर्व्यवहारको जानने लगा था। यह पहला कदम था। वही अक्खड़ अब बहुत कुछ सध

गया है और वही लड़का जब मैं स्कूल जाती हूं तो दौड़कर मेरे पास आकर मुझसे लिपट जाता है, उसका व्यवहार पहलेसे बहुत बदल गया है।

कई बच्चोंके लिये डांट-फटकार या डराना भी अनिवार्य हो जाता है। उनमें कई बार इस विधिसे सुधार भी होता है। मगर एक बात है कि किसी बच्चेको डांटें खाते या सजा पाते वक्त यह मालूम होना चाहिये कि वह क्यों सजा पा रहा है। अगर उसे यह न मालूम हो कि आखिर उसने ऐसा क्या किया जिसके लिये बड़े उसपर ऐसे उबल रहे हैं तो वह फिरसे वही गलती दुहरा सकता है। अगर उसको एक बार पता लग जाये कि यह काम नहीं करना चाहिये, यह अनुचित है तो वह उसे न करनेका प्रयत्न कर सकता है। एक बात यह भी हो सकती है कि वह सजाके डरसे गलती करनेसे घबराये। मगर मैं समझती हूं कि गलतीकी सजा देनेके बजाय अगर यह समझाया जाये कि यह गलत क्यों है, यह बुरा क्यों कहलाता है तो शायद उसे समझनेमें मदद मिल सकती है।

कई बार ऐसा होता है कि दो बच्चे आपसमें लड़ बैठते हैं और अध्यापिकाके पास शिकायत लेकर आते हैं। दोनों एक-दूसरेको दोष देते हैं, एक कहता है, गलती दूसरेकी है और दूसरा पहलेकी गलती बताता है। उस समय पता नहीं लगता कि आखिर गलती किसकी है, कौन सच बोल रहा है और कौन झूठ। उस समय एककी बात मानकर दूसरेको डांटना काफी नाजुक मामला है, क्योंकि जिसपर डांट पड़ रही है, हो सकता है उस बेचारेने कुछ भी न किया हो और जिसे हम ठीक समझते हैं वही गलत हो। मेरे विचारमें उस वक्त सिर्फ एकको न डांटकर दोनोंका समझा दिया जाये कि जो उन्होंने किया है वह गलत है और वे दोनों ही उस गलतीके एक समान हिस्सेदार हैं। इससे उन्हें एक-दूसरेपर गुस्सा करनेका मौका न मिलेगा और दूसरोंको डांट खाते हुए देखकर खुश होनेकी गंदी आदत भी छूट जायेगी। कई बच्चे दूसरेको सजा पाते देखकर खुशीसे फूल उठते हैं और ताली पीटते हैं, कहते हैं, "बड़ा मजा आया।" यह एक बहुत बुरी आदत है जो शुरूमें छोटी-सी बात लगती है पर आगे चलकर बहुत खतरनाक हो सकती है। बच्चोंको एक-दूसरेको प्रति प्रेम सिखाना हम लोगोंका कर्तव्य है।

एक बात और है कि बच्चा जब-तब गलतीके कारण डांट खाता रहता है तो वह कई बार चिड़चिड़ा हो जाता है। कई बार वह अपनी अध्यापिकासे डरने और घृणा करने लगता है। कभी उसकी अध्यापिका सीधे ढंगसे भी बुलाती है तो वह डरता है, सहमता है, अध्यापिका और बच्चेके बीच एक दूरी हो जाती है और वह कभी अपनी अध्यापिकाके नजदीक नहीं आ सकता। इसलिये हमेशा बच्चोंको बुरी नजरसे देखना पढ़ानेवालीका दोष है। बच्चा चाहे कितना ही शैतान क्यों न हो, हमें यह याद रखना चाहिये कि वह शैतान बच्चेके अतिरिक्त कुछ और भी है। उसपर हमेशा कड़ी नजर रखनेकी जगह उसे बीच-बीचमें अपने पास बुलाकर उसके लिये प्यार दिखानेसे वह यह समझने लगता है कि उसकी अध्यापिका भयानक, डांट लगानेवाली नहीं, कुछ और भी है जो उसको महत्व देती है, उसको प्यार करती है। वह अपनी अध्यापिकाको पहिचानने लगता है और उसके मनमें अध्यापिकाके लिये जो दूरी है वह दूर हो जाती है और वह अपनापन अनुभव करने लगता है और तब उसकी कमजोरियोंको दूर करना ज्यादा आसान हो जाता है।

बच्चे एक पौधेकी तरह हैं जिन्हें अच्छे पानी, खाद, रोशनी और हवाकी जरूरत है नहीं तो वह मुरझा जाता है। उसी प्रकार बच्चोंके लिये स्वस्थ वातावरण होना जरूरी है। सच कहती हूं बच्चोंके सामने अगर अच्छी आदतें रहें, अच्छी बातें की जायें तो वे वही सीखते हैं नहीं तो बुरी आदतोंके शिकंजेमें आ जाते हैं। मैं समझती हूं बच्चोंके सामने बड़ोंको कुछ करते या बोलते समय बहुत-बहुत सावधान रहना चाहिये नहीं तो बच्चे 'नकलची बन्दरों' की तरह जल्दी ही उन चीजोंकी

नकल उतारते हैं। मजेदार और आश्चर्यकी बात यह है कि बच्चे बुरी आदतें जल्दी ही पकड़ लेते हैं। सबसे जरूरी चीज जो हर जगह काम आती है वह है सभ्यता और शिष्टाचार। मैंने कई बार देखा है कि बच्चे घरसे बुरी-बुरी आदतें और अभद्रता लेकर आते हैं और उससे दूसरे बच्चोंपर बहुत प्रभाव पड़ता है। मां-बाप समझते हैं कि जैसे ही बच्चा बड़ा हो गया, स्कूल जाने लगा तो उनका दायित्व खत्म हो गया क्योंकि वह अब ज्यादा-से-ज्यादा समय स्कूलमें गुजारने लगा है और उसे सुधारनेका काम अध्यापिकाके सिर है। मगर देखा जाये तो बच्चेके जीवनमें जितना महत्व स्कूलका है उतना ही घरका भी। घरवालोंको उसकी आदतोंकी ओर खास ध्यान देना चाहिये। आखिर नींव तो वहीं पड़ती है। अध्यापिका बच्चेको पढ़ाती है, बच्चेके व्यक्तित्वपर भी ध्यान देती है लेकिन अगर दोनों तरफसे ध्यान दिया जाए तो ही सचमुच कुछ हो सकता है। साधारण बच्चा शुरूमें बिलकुल मासूम होता है। उसके दिमागमें अच्छे-बुरे, सच-झूठका ज्ञान नहीं होता, उसका दिमाग इन सब चीजोंसे खाली रहता है, मगर जैसे-जैसे वह बढ़ता जाता है, जैसे वातावरणमें पलता है वैसे ही विचार उसके दिमागमें घर करते जाते हैं और वह अपना व्यक्तित्व घड़ने लगता है। अच्छा वातावरण बच्चोंको अच्छा बनायेगा। इसलिये बड़ोंको हमेशा सतर्क रहते हुए अपने आचार-व्यवहार, अपनी बोलचाल आदिमें संयमसे काम लेना चाहिये ताकि बालक यह न देखे कि उसे जिन बातोंके लिये मना किया जाता है, बड़े उन्हींमें फंसे रहते हैं। अध्यापिकाको अपने इस कर्तव्यकी ओर हमेशा जागरूक रहना चाहिये। इसमें सफलता उसके धैर्य और सच्चाईपर निर्भर है।

एक चीज जो बच्चोंके अंदर शुरूसे ही घर कर लेती है, वह है ऊंच नीचका भाव। उनमें यह भाव देखा-देखी आ जाता है कि यह नौकर है इसलिये नीच है। क्या मनुष्य अमुक काम करनेसे नीचा बन जाता है? हम तुम सब ही तो काम करते हैं और अगर किसीके नीचे रहकर काम करनेसे नौकर कहलाते हैं तो हम सब किसी-न-किसीके नीचे ही तो काम करते हैं। क्या नौकर मनुष्य नहीं है? मेरी समझमें नहीं आता कि भगवान्के लिये उन मासूम बच्चोंको यह क्यों नहीं समझा दिया जाता कि वे नौकरोंके साथ दुर्व्यवहार न करें। बच्चे बड़ोंको देखते हैं कि वे किस प्रकार नौकरोंको नीची नजरसे देखते हैं और उनसे कैसा दुव्वहार करते हैं। फिर हम उन नाजुकसे बच्चोंसे और क्या आशा कर सकते हैं? क्या बुरा उदाहरण देकर यह आशा की जा सकती है कि वे हमारे उदाहरणसे कुछ न सीखें? यह असंभव है। नौकरोंको झिड़कियां, मां-बापके लड़ाई-झगड़े, घरमें ईमानदारीका अभाव, इन सबके होते हुए हम चाहते हैं कि हमारे बालक दूधके धुले रह सकें।

इस चीजका मैं विशेष तौरपर ध्यान रखती हूं कि हमारे स्कूलके बच्चे वहांके नौकरोंसे कभी किसी प्रकारका बुरा बर्ताव न करें। उनको मैं हर तरहसे समझानेका प्रयत्न करती हूं ताकि वे अभीसे इस तरहकी आदतोंसे बच सकें क्योंकि शायद यह छोटी-छोटी चीजें आगे चलकर बड़ा रूप धारण कर सकती हैं। हम लोग इससे ज्यादा क्या कर सकते हैं क्योंकि हरएक अपना व्यक्तित्व अपने-आप बनाता है। मगर हम अध्यापिकाओंका कर्तव्य यही है कि हम उनको अच्छाईके पथपर ले जानेका पूरा प्रयत्न करें। इस काममें भगवान्पर श्रद्धा और अपने जीवनमें सच्चाई और प्रामाणिकताकी बहुत आवश्यकता होती है। हम इस कामको किसी पुरस्कार या पारिश्रमिकके लिये नहीं, भगवान्की सेवाके रूपमें कर सकें तभी सच्ची सफलताकी आशा की जा सकती है।

दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी

(श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय-शिक्षा केंद्र में हिन्दीकी परीक्षामें एक प्रश्न दिया गया था '"दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी" पर एक अपनी कहानी बनाओ।' यहां दो लड़कियोंके उत्तर दिये जा रहे हैं। — संपादक)

–१–

एक आराम कुर्सीपर बैठी हुई वह ऐसी लग रही थी जैसे पत्थरमें बदल गई हो। उसका मस्तिष्क सुन्न हो गया था। अब उसे किसी बातका न हर्ष था न शोक। बिलकुल वैसी ही स्थिति हो गई थी जैसी एक जानवरकी होती है जब उसे कहीं पीड़ा हो रही हो। वह मुखसे आहतक नहीं निकालता पर कातर नजरोंसे इधर उधर देखता है। उसकी मूक वेदना दिलको चीर जाती है। परंतु आज तो यहां ऐसा कोई न था जो उसका दर्द देखकर उससे सहानुभूति भी करता। वह अपनी जान-पहचानके सब व्यक्तियोंसे हजारों मील दूर मैड्रिडमें बैठी थी, कोई पास होते हुए भी वह मूक थी। काश वह संजयसे भी दूर होती।

परंतु यह इच्छा उसके हृदयका एंक छोटासा पक्ष ही कर रहा था। यह कभी कभी उसपर अधिकार जमाकर उसे बहुत सताता था। छः महीने पहले वह इसी स्थानपर आनेके सुनहरे सपने देख रही थी। कितनी योजनाएं बनायी थीं उसने। पर सारी मिट्टीमें मिल गई और बड़ा दुःख तो इस बातका था कि वह किसीसे कुछ कह भी नहीं सकती। कई बार उसे लगता था मानों उसका दम घुटा जा रहा है। उसके मनमें जोरसे चीख मारनेकी इच्छा उठती थी, फिर किसी तरह वह स्वयंको वशमें कर लेती। उसे शंका हो रही थी कि कहीं वह पागल न हो जाय।

घरमें माता पिता आदि सबको मालूम था कि वह संजयसे विवाह करनेवाली है। वह स्वयं भी इस बातसे बहुत प्रसन्न थी और अपनेको सौभाग्यवती मानती थी। दो वर्ष पहले संजय मैड्रिडमें आ गया। सुषमा का निश्चय जैसेका वैसा ही बना रहा — छः महीने पहले तक। एक बार जब वह संजयके घर उसके मां बापसे मिलने गयी तो वहां उसके भतीजे कुमारको देखा। तबसे उसकी दुनिया ही परिवर्तित हो गई। दोनोंने कोई खास बात नहीं की और सुषमा जल्दी ही घर लौट आयी।

मैड्रिडसे एक तार आया जिसमें लिखा था कि एक दुर्घटनामें संजयकी दोनों आंखें चली गयी हैं और वह सुषमा को बुला रहा है। जानेसे पहले उसे एक बार कुमार मिला परंतु उसने ऐसे दिखाया मानों वह उसे जानती ही न हो। अपनी भावनाओंपर पूर्ण नियंत्रण रखना उसे अच्छी तरह आता था। संजयके पास पहुंचकर वह दिन रात उसकी सेवामें लग गई। वह अपनेको ऐसा समय नहीं देना चाहती थी जब उसके विचार और भावनाएं आकर उसे सताएं। बूढ़े माता पिताने उसे अकेले ही जाने दिया था क्योंकि वह स्वतंत्र प्रकृतिकी थी और उन्हें पूरा विश्वास था कि वह अपनी देखरेख कर सकेगी।

सुषमाको भी मालूम था कि कुमारके लिये उसकी भावना बहुत गहरी है और वह उसे कभी भुला न सकेगी। परंतु वह संजयसे, उसकी वर्तमान स्थितिमें, कैसे कह सकती थी कि वह किसी औरसे विवाह करेगी। नारीकी उच्च बलिदान भावना लेकर वह सब कुछ सह रही थी। संजय उसी विश्वास और उसी प्रेमसे उससे बातें करता था और सुषमा इस बातकी भरसक चेष्टा करती थी

कि संजयको उसके परिवर्तनका आभास तक न मिले। वह कुमारसे भी कुछ नहीं कहेगी, इस बातका उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था।

उसके हृदयमें भयानक अग्नि जल रही थी जो त्यागकी शीतलतासे कुछ हदतक शांत रहती थी। जब वह भविष्यके बारेमें सोचती तो उसकी आंखोंके सामने अंधेरा छा जाता। वह भगवान्से प्रार्थना करती और इसीसे उसके बिना जाने उसके दुःखकी काली घटामें आशाकी धीमी किरण घुस आती थी।

——ऋता

–२–

सितंबरका महीना था। परीक्षाओंके और हमारे बीच एक माहका भी फासला न रहा था। सारे साल कुछ न किया केवल हंसी मजाकमें समय बिता दिया और अब अंतिम समयमें सब कुछ पढ़ना पड़ रहा था। हिन्दी, अंग्रेजी एवं इतिहासके लिए तो जरा भी डर न था क्योंकि उनके लिए थोड़ा जानना ही बहुत हो जाता है। परंतु विज्ञान एवं गणितके लिए मैं बेहद परेशान हो रही थी। उसके भी बहुतसे कारण थे: पहले तो यह कि विज्ञान एवं गणित इतने मोटे थे कि मेरे पतलेसे दिमागमें आसानीसे प्रवेश नहीं कर सकते, फिर उनको अच्छी तरह सीखनेके लिये समय चाहिये! परंतु मैंने आशा नहीं छोड़ी पास होने की! घरमें, विद्यालयमें, मित्रोंके बीच सभी जगह मुझे डांट सुननेको मिलती थी —— सब कहते 'परीक्षाएं आ गयीं और यह बच्चोंसे खिलवाड़में लगी है।' परंतु मेरा दिल जानता था कि मैं कितनी मेहनत कर रही थी। खैर, जो कुछ भी हो मेरे पतलेसे दिमागने भी एक तरकीब खोज निकाली, वह यह कि हिन्दी, अंग्रेजी तो वैसे ही मेरे लाड़ले विषय हैं, और मैं आसानीसे लिख भी सकती हूं! रहे कहानियोंके नाम एवं उनके लेखकोंके नाम, यह तो मैं परीक्षा के पहले दिन रातको बारह तक एवं सुबह ४ से ७ तक बैठकर याद कर सकती हूं। यह सोचकर मैंने हिन्दी और अंग्रेजीकी पुस्तकोंको एक कोनेमें धीरेसे रख दिया। फिर आयी इतिहासकी बारी! ऐसे तो शुरूसे ही इतिहास मेरा प्यारा विषय रहा था अतः मैंने कक्षामें भी कुछ ध्यान दिया था जिसके कारण मुझे ज्यादा पढ़नेकी जरूरत न थी। मैंने सोचा कि इतिहासकी परीक्षा तो सोमवारको होगी अतः रविवारको दिन भर और फिर रातको बारह बजे तक बैठकर पढ़ लूंगी तो काम हो जाएगा। फलतः हिन्दी एवं अंग्रेजीके साथ इतिहासकी पुस्तक भी उसी कोनेमें रख दी गयी। अंतमें रही दो किताबें: विज्ञान एवं गणित। उन्हें तो मैं किसी तरह न छोड़ सकती थी। कैलेंडरमें देखा पूरे चौबीस दिन बाकी थे! बस फिर क्या था! मैं तो उछल पड़ी, ये चौबीस दिन मेरे लिये चौबीस वर्षके समान थे। मैंने उसी दिनसे इन दोनों मोटे विषयोंके लिये दिमागको भी मोटा बनाना शुरू कर दिया! कड़ी मेहनत की! मुझे तो अब इतना याद भी नहीं है परंतु मेरी माताजी कभी-कभी मेरी उन परीक्षाओंके बारेमें बतलाती हैं तो सुनकर रोएं खड़े हो जाते हैं। (मैं आपको सारी बातें नहीं बतला सकती पर कुछ-कुछ कहे देती हूं।) उनके कथनानुसार: "रातको बारह-बारह बजेतक मैं एकटक किताबोंकी ओर देखती रहती फिर सुबह चार बजे उठ जाती और सात साढ़े सात तक पढ़कर नौ बजेतक मैं स्कूलके लिये रवाना हो जाती थी। आंखें लाल-लाल टमाटर जैसी हो गयी थीं और पंद्रह दिनके अंदर शरीर ऐसा हो गया जिसे देखकर एक सूखी लकड़ी भी अपनेपर गर्व कर सकती थी। इत्यादि........"

ये चौबीस दिन बहुत जल्दी खत्म हो गये। परीक्षाएं शुरू हो गयीं। पहले दिन हिन्दीके दो प्रश्न पत्र थे। मैंने अपनी योजनानुसार हिन्दीकी परीक्षाके पहले दिन ही कुछ पढ़ा और पढ़कर परीक्षा देने गयी। परंतु प्रश्न पत्र हाथमें लेते ही मेरे हृदयकी धड़कनें मानों बंद होने लगीं। मैंने

जो कुछ पढ़ा था उसमेंसे एक परमाणु मात्र भी प्रश्न पत्रमें न था ! जैसे तैसे केवल निबंध लिखकर घर लौट आयी ! किसीसे कुछ भी नहीं कहा ! परंतु दिलमें एक तूफान सा मचा हुआ था ! मैंने उस तूफानको शांत कर दिया यह सोचकर कि चिन्ता करनेसे अगली परीक्षामें भी हिन्दीकी तरह न हो जाए !

परंतु अगले दिन फिर वही हाल : अंग्रेजीका प्रश्न पत्र बहुत ही सरल था परंतु मैंने उन विषयोंको छुआ तक नहीं था अतः इस बार हृदयकी धड़कनें बहुत ही बढ़ गयीं। जैसे तैसे थोड़ा बहुत लिखकर मैं घर वापस लौटी। घर जाकर इतिहास भूगोलकी परीक्षाकी तैयारीमें जुट गयी। अगले दिन इतिहासके प्रश्न पत्रको देखकर तो मैं अपनी जगहपर उछल पड़ी। मैंने जो कुछ पढ़ा था वही आया था। मैंने सोचा चलो कोई डर नहीं, अंग्रेजी, हिन्दीको बिगाड़ा है पर इतिहासको सुधार लेना चाहिये ! सुन्दर लिखाई एवं सफाईसे ही क्यों न लिखूं ! अतः मैंने सफाईसे धीरे धीरे सारे प्रश्नोंके उत्तर देने शुरू कर दिये। करीब पांच या छः प्रश्न थे, परंतु उनके उत्तर इतने लंबे थे कि मैं और आप तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर रहे विज्ञान एवं गणितके परचे। मैंने इन दोनोंको तो कड़ी मेहनत करके अपने दिमागमें धंसा लिया था अतः जरा भी डर न था, परंतु जैसे ही प्रश्न पत्र हाथमें आया कि मैं बेचैन हो उठी, मैंने जो सीखा था उसमेंसे कुछ भी नहीं आया, और अगर आया भी हो तो प्रश्नोंको थोड़ा टेढ़ा-मेढ़ा करके दिया होगा। खैर ! विज्ञानमें भी डूबी ! अगले दिन गणितकी अंतिम परीक्षा थी। प्रश्न पत्र को देखते ही मैंने सोचा कि चलो इसमें कम-से-कम ८० तो आ ही जाएंगे ! अतः कहीं इतिहासकी तरह न हो जाए यह सोचकर धड़ाधड़ सवालोंको खत्म कर दिया और परचा दे दिया। जब मित्रोंसे उत्तर मिलाए तो खाली तीन ही सही निकले। यानी केवल तीस ही अंक, सौमेंसे। आज तो मैं एकदम थक गयी। एक तो इतने दिनकी मेहनत ऊपरसे सारेके सारे परचे खराब ! मैंने ऐसा महसूस किया मानों मेरी सारी शक्ति उड़ गयी। मैं कब और कहां गिर पड़ी, उसका मुझे पता न चला।

कुछ देर बाद जब होश आया तो देखा कि मेरे सामने मेरी दो सहेलियां खड़ी थीं। एकने पूछा — “क्या हुआ था तुम्हें चेतना ?” तुरंत मुझे अपने हिन्दीके परचेमें दिये हुए लेखकी पंक्ति याद आ गयी जो मैंने उसे उत्तरके रूपमें सुना दी — “दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी”!

—चेतना

* * *

चिड़िया मां खाना लेने गयी थी। पेड़के कोटरमें बच्चे चहक रहे थे। गिद्ध मामा आकर द्वारपर बैठ गये। बच्चे बोले, मामा आज बड़े खुश नजर आ रहे हैं। मामाके मुंहमें पानी भर आया। बोले, आठ दिनसे भूखा हूं, आज तुम्हें खाकर अपनी भूख मिटाऊंगा। बच्चे डर गये “लेकिन मामा, मां तो तुमपर इतना विश्वास करती है, तुम्हें सबसे अधिक प्रियजन मानती है। गिद्ध मुस्करया और बोला अरे यह तो मेरी मीठी बोलीके कारण। तुम नहीं जानते मनुष्य इसीको कूटनीति या डिप्लोमेसी कहते हैं। अज इसीका जोर है।

—लिङ-यू-ताङ

क्या आप मानेंगे?

—मेधाव्रत

आपको शायद ऐसी कवि-प्रसिद्धियोंपर विश्वास नहीं है जैसे कि हंस मोती चुगते हैं और उनमें नीर-क्षीर विवेककी शक्ति है, या सांपके सिरमें मणि होती है और आंखोंमें आकर्षण शक्ति अथवा युवतियोंकी ठोकरसे अशोक और कुल्लेसे बकुल खिलता है इत्यादि। इन बातोंको पूरी तरह मैं भी नहीं मानता था पर एक घटना ऐसी हुई, वह भी मेरी आंखोंके सामने कि मैं इन बातोंपर कुछ विश्वास करने लगा। संभव है कि आप समझदारकी तरह सिर हिलाकर अनेक प्रकारके तर्क प्रस्तुत कर और सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणके बाद यह सिद्ध कर दिखायें कि ऐसी बातोंमें जरा भी तथ्य नहीं है या ये निरी कल्पना है। कल्पना, यह हो सकती है पर जब यह घटना हुई थी उस समय यह मुझे कल्पना नहीं लगी थी और आज भी . . . . . लेकिन मैं कहानी कहूं।

उन दिनों मैं शायद तृतीय वर्षका विद्यार्थी था। छुट्टियोंमें घर आया हुआ था। शहरके एक कोनेमें तालाबके किनारे हमारा एक बंगलानुमा किरायेका मकान था। गर्मीके दिन थे, बहुत उमस हो रही थी। घरके लोग भोजनके बाद सुनिद्रा ले रहे थे, मुझे नींद आती न थी, क्या करूं? बंगलेके अहातेमें तालाबकी ओर इमली, आम और मौलसरीके कुछ पेड़ थे। जब कुछ काम-धाम न होता और जी न लगता तो उन पेड़ोंके नीचे बैठकर तालाबमें तैरती बत्तखों और पासके मंदिरमें आने-जानेवाले लोगोंको देखा करता था। इस बार भी मेरे पैर स्वभावतः अपने अभ्यस्त इस विश्राम-स्थलकी ओर सहज ही बढ़ गये। वहां देखा तो सब सुनसान था। मैं मौलसरीके पेड़के तनेके सहारे बैठ गया और चारों ओर देखने लगा। बत्तखें तालाबके पासके पेड़की छायामें अपने पंख साफ कर रही थीं और मंदिरका रास्ता एकदम सूना था। अचानक मेरी दृष्टि बहुत दिनोंसे उपेक्षित, कोनेमें स्थित एक जर्जर कोठरीपर पड़ी। ऊंची होनेके कारण उसपर सीढ़ियां बनी हुई थीं और उसमें बहुत-सा पुराना सामान जैसे तैसे आंट दिया गया था। मनमें हुआ, देखें, उसमें क्या रखा है। इस विचारके बाद मैं सीढ़ियोंपर चढ़कर ज्यों ही झुककर अंदर देखने लगा कि अंदरसे सरसराहट हुई और मैं कूदकर नीचे आ खड़ा हुआ। क्या है यह जाननेके लिये मैं भय और कुतूहल मिश्रित भावसे कोठरीके आसपास देखने लगा। लाठीकी बात मनमें आयी पर आसपास डंडीतक न थी। कुछ देरतक जब कुछ न दीखा तो मैं फिर मौलसरीके पेड़के नीचे लौट आया। और अभी मैं वहां बैठा ही था कि मेरी नजर कोठरीके पासके इमलीके पेड़की ओर गयी। वहां देखा तो इमलीकी खोखरमें एक लंबा काला धामन दो फुट सिर उठाये, कोठरीकी दिशामें स्थिरतासे देख रहा है। मुझे आश्चर्य हुआ कि धामन जो आदमीकी छायासे भी भागता है, मुझे १०-१२ फीटकी दूरीपर खड़ा देखकर भी न भागता है, न छिपनेकी कोशिश करता है बल्कि स्थिर होकर खड़ा है मानो मेरा वहां कोई अस्तित्व ही नहीं। यह देखकर मेरे मनमें कुतूहल जगा और अपने बचाव या सांपको मारनेका विचार छोड़कर इस घटनाको अंततक देखनेका मेरे मनमें विचार आया। चार-पांच मिनट यही अवस्था रही। सांप सिर उठाये निस्पंद खड़ा है और कोठरीकी ओर स्थिरतासे खड़ा देख रहा है। मैंने सांपकी दृष्टिका अनुसरणकर कोठरीकी ओर देखा तो वहां कोनेपर बन्नीके किनारे, एक मूछोंका जोड़ा हिलता हुआ दिखायी दिया और कुछ देर बाद वह भी अदृश्य हो गया। अब मैं सांस रोककर प्रतीक्षा करने लगा, आगे क्या होता है। कुछ देर बाद बन्नीके किनारे वह मूंछोंका जोड़ा फिर प्रकट हुआ। इस

बार वह और आगे बढ़ा और तेजीसे हिलती हुई एक नाक दिखायी दी। मैंने थोड़ा आगे बढ़कर देखा तो वह चूहा निकला। उसे देखकर स्पष्ट लगता था कि वह बहुत उत्तेजित अवस्थामें है। सारी घटनाकी संगति अपने दिमागमें बिठाऊं-बिठाऊं कि चूहा फिर लौट गया। मैंने भी मनमें कहा – चलो, छुट्टी हुई, चूहा गया अब सांप भी चला जायगा। पर कहां, सांप तो अब भी उसी तरह स्थिर निस्तब्ध खड़ा है और अपनी जगहसे जरा भी नहीं हिलता। और कुछ देर बाद चूहा फिर दिखायी दिया और थोड़ा रुककर फिर लौट गया, फिर आया, फिर गया। इस प्रकार उसने कई चक्कर मारे पर आश्चर्य यह कि हर चक्कर छोटा होता गया जिसका अनुमान उसके बन्नीपर आनेके समयसे सहज ही लगाया जा सकता था। आखिर चूहा किनारे आकर फिर लौटा नहीं, वहीं स्थिर हो गया। उधर सांप अपनी उसी आश्वस्त मुद्रामें खड़ा था। अब दोनों एक-दूसरेके आमने-सामने खड़े होकर एक-दूसरेको देख रहे थे। चूहेकी मूंछोंका हिलना धीरे-धीरे कम होने लगा, अंतमें मानों उसका श्वास स्थिर हो गया। कुछ देर यही स्थिति रही और फिर अकस्मात् चूहा अपने स्थानसे सांपकी ओर उछला। सांप मानो इसीकी प्रतीक्षा कर रहा हो, इस प्रकार अपना मुंह खोला और चूहेको उसमें समा लिया। यह सब इतनी तेजीसे हुआ कि सांपके चले जानेपर ही मैं इस क्षणकी घटनाको अपने मनमें सहेज सका।

अच्छा, तो अब आप क्या कहते हैं?

कच्छके शिवाजी — वीर खेंगार

–श्री केशवजी–

(१)

वीर खेंगारका जन्म कच्छमें संवत् १५४९ के आसपास हुआ था। उनके पिताका नाम हमीर जी था। जाम हमीरके अलियोजी, खेंगारजी, साहबजी और रायबजी नामके चार पुत्र और कमाबाई नामकी एक कन्या थी। इन में अलियोजी और कमाबाई जामके अनौरस संतान थे। कमाबाईकी शादी अहमदाबादके शाह महम्मूद बेगड़ाके साथ हुई थी। इसीलिये जाम हमीरके बड़े लड़के अलियोजी भी अहमदाबादमें ही रहते थे।

एक दिन जाम हमीरके साथी जामरावल ने उन्हें अपने यहां आमंत्रित किया। जाम हमीरके साथ उनके ५ और मित्र थे। जाम रावलने उन सबको बेहद शराब पिलाकर बेहोशीकी हालतमें ही मार डाला। इस प्रसंगको कच्छके चारणने इस प्रकार पद्यबद्ध किया है :—

कड़े की कड़े की, कड़े मुंध न वसे मीं,
कड़े सुरज चांद जा, डिठा न सरीखा डी।

अर्थात् कभी अच्छा और कभी खराब समय आता है। कभी वर्षा ऋतुमें भी मेघ नहीं बरसता और सूरज चांदके लिये भी दिन एक समान नहीं होते।

यह दोनों वंशोंकी पुरानी शत्रुताका परिणाम था। सारे वंशको समूल नष्ट करनेके लिये जाम रावल अपने विश्वस्त साथियोंको लेकर जाम हमीरके गांव वींझाणमें उनके कुंवर खेंगारजी और साहेब

जीको मारने पहुंचे। इधर हमीरजीकी मृत्युका समाचार सुनते ही खेंगारकी मासी ने एक नमक हलाल नौकर छच्छर बुट्टाके साथ खेंगारजी और साहेबजीको अहमदाबाद रवाना कर दिया। छच्छर बुट्टा कुंवरोंके साथ अपने परम मित्र कक्कल मियाणाके पास रेलड़ी गांवमें पहुंचा। कक्कलने उन दोनोंको आश्रय दिया। खेंगारजीके मामा भी यह समाचार सुनकर राजकुमारोंकी खोजमें निकले और उनके रेलड़ी गांवमें पहुंचनेके कुछ ही देर बाद वहां पहुंचे।

इधर वींझणमें खेंगार जी और साहेबजीका पता न मिलनेपर जाम रावलने पैरोंके निशान देखनेमें प्रवीण पगियोंको बुलाकर कुमारोंकी खोज शुरू की। रेलड़ी गांवमें मियां कक्कलके वाड़ेके पास पहुंचकर पगियोंने दृढ़ विश्वासके साथ कहा कि कुंवर इसी वाड़ेमें है और यदि न निकले तो वे अपना सिर कटवानेको तैयार हैं।

मियां कक्कलको जाम रावलके आनेका समाचार पहले ही मिल गया था इसलिये उसने उन चारोंको छिपानेके लिये एक स्थान ढूंढ़ निकाला। उसके बाड़ेमें ज्वारकी एक विशाल गंजी रखी थी। उसने उसमें चारपाई रखकर चार व्यक्तियोंके बैठने योग्य जगह बना ली और ऊपर एक ओर हवा आने-जानेके लिये जगह छोड़ दी। उसमें खाने-पीनेका सामान रखकर उसने चारों आदमियोंको अंदर बिठा दिया और ऊपरसे ज्वारकी गंजी इस प्रकार व्यवस्थित कर दी कि किसीको संदेह न हो।

इतनेमें जाम 'मार-मार' करता वहां आ पहुंचा और पति-पत्नी दोनोंको कुंवरोंको वापस देनेके लिये धमकाने लगा। लेकिन वह मियाणा बच्चा कच्ची गोली नहीं खेला था। उसने भी अपने कानोंपर हाथ धरके अपनी निर्दोषता जतायी। इसपर जाम रावलने गुस्सेमें आकर तलवार से उसके बड़े लड़केका सिर काट दिया तो भी मियाणा झुका नहीं, अड़ा ही रहा। यह देखकर जाम रावलने उसके दूसरे लड़केको भी इसी तरह मार डाला। इस तरह उसके एकके बाद एक छह लड़कोंको उसने गाजर-मूलीकी तरह काट दिया। अंतमें उसका केवल एक ही लड़का बचा। जामने उसे भी उसके हाथसे छीन लिया और गरजकर कहा — "कक्कल, यदि तू अब भी न मानेगा तो तेरे इस अंतिम लड़केका भी सिर धूलमें मिल जायेगा।

अपनी आंखोंके सामने अपने छः-छः बच्चोंको खूनकी नदीमें तड़पते देखकर और अपने अंतिम बच्चेको भी इस क्रूर आदमीके पंजोंमें पड़ा देखकर मियाणाकी आंखोंसे आंसूकी एक बूंद गिरी। पतिकी इस कमजोरीको उसकी पत्नी मल्लणी भांप गई। उसे लगा इतना कुछ करनेके बाद भी यदि उसका पति ढीला हो गया तो सारा बना बनाया मटियामेट हो जायगा। वह वीरांगना थी, उसने अपने पतिको इशारेसे समझा दिया कि कुछ भी क्यों न हो वह अपनी बातपर दृढ़ रहे।

अपनी पत्नीकी इस अपूर्व हिम्मतको देखकर मियाको बड़ा ढाढ़स मिला और उसने अपने मनमें प्रणपर दृढ़ रहनेका निश्चय किया। उसने तनकर जाम रावलसे कहा — "बच्चोंके साथ यदि तू मुझे भी कत्ल करना चाहता है तो कर ले पर मैं जिनके संबंधमें कुछ जानता नहीं उन्हें कहांसे लाकर दूं?" इस जवाबसे जाम रावलको विश्वास हो गया कि कक्कलको कुंवरोंका कुछ पता नहीं है। आखिर वह उसके सातवें लड़केको जिन्दा छोड़कर वहांसे चला गया। मल्लणीकी इस वीरताका गीत चारणोंने यों गया है :—

कच्छ कक्कले रखेओ, रखेओ काछेरा।
कां वियाणी मल्लणी, कां अकबर मां॥

अर्थात् कक्कलने कच्छ और कच्छके राजाकी रक्षा की। अकबरको जन्म देनेवाली माताके समान ही कक्कलके लड़कों जन्म देनेवाली उनकी माता मल्लणी धन्य है।

जाम रावलके जानेके बाद मियां कक्कलने उन चारोंको बाहर निकाला। कक्कलके अपूर्व बलि-

दानको देखकर चारों दंग रह गये। खेंगारने उस बलिदानका प्रतिदान देनेका वचन दिया और रात होनेपर वे सब आगे बढ़े।

रास्तेमें जब वे चराडवा गांवमें आराम कर रहे थे तो वहांके एक ब्राह्मण पुरोहितकी नजर सोये हुए खेंगारजीके पैरोंके तलवोंपर पड़ी। उसमें राजचिह्न देखकर उसने अपना सिर हिलाया। लोगों-के कारण पूछनेपर उस ब्राह्मणने भविष्यवाणी की कि खेंगारजी आगे जाकर राजा बनेंगे। वह अंबा माताका भक्त था। उसने खेंगारजीको अंबाजीकी एक सांग दी और कहा कि इससे उसके भविष्यका मार्ग प्रशस्त होगा।

आखिर वे चारों अहमदाबाद पहुंचे। वहां उनकी खेंगारजीके भाई अलियोजीसे भेंट हुई और वे वहीं रहने लगे। उन दिनों वहां जेसलमेरके जयचन्द्र और देवचन्द्र नामके दो भट्टी भाई एक बड़ा अखाड़ा चला रहे थे जिसमें कुश्तीके साथ पटेबाजी और निशानेबाजीकी तालीम भी दी जाती थी। खेंगारजी और साहेबजी उनसे कुश्ती और पटेबाजी सीखने लगे। कुछ ही दिनोंमें दोनों कच्छी राज-कुमार अखाड़ेकी सब विद्याओंमें इतने प्रवीण हो गये कि देखकर लोग दंग रह गये। अब कुमारोंका मन अपने पिताके खूनी जाम रावलसे बदला लेनेके लिये आतुर हो गया। उनके हाथ एक अच्छा मौका भी लग गया।

उन्हीं दिनों अहमदाबादके आसपास एक विकराल सिंहने आतंक फैला रखा था। उसे मारनेके लिये स्वयं महम्मूद बेगड़ा अपने शिकारी मंडलके साथ चल पड़ा। अपना शौर्य दिखानेका ऐसा अच्छा अवसर देखकर राजकुमार भी शिकारियोंके साथ चल पड़े। सिंहकी मांदमें धुआं देकर और उसे खोद-खादकर शिकारी लोग उसे बाहर निकालनेका यत्न करने लगे। आखिर गुस्सेमें आकर गर्जना करता हुआ सिंह सीधा बादशाहके हाथीकी ओर झपटा। सिंहकी दहाड़ सुनकर साथके शिकारियोंके घोड़े बिदककर भाग खड़े हुए, उधर सिंह सीधा हाथीके हौदेपर कूदा। बादशाह सिंहको देखकर कांपने लगा। ऐसे भयानक समयमें खेंगारजीने उस मदोन्मत्त सिंहपर प्रहार किया और उनके एक ही वारसे सिंह हतप्राण होकर जमीनपर गिर पड़ा। युवक राजकुमारके पराक्रमको देखकर बादशाह-को बहुत आश्चर्य हुआ पर राजकुमार वहां ठहरा नहीं तुरंत वहांसे रवाना हो गया।

दूसरे दिन दरबारमें बादशाहने सिंह मारनेवाले व्यक्तिकी खोज करनेका आदेश दिया। अलियोजी-ने खड़े होकर नम्रतापूर्वक कहा — "नामदार, वनराजको मारनेवाला मेरा छोटा भाई खेंगारजी है।" इसपर खेंगारजीको तुरंत दरबारमें बुलाया गया और उसके आते ही बादशाहके मुंहसे अनायास निकल पड़ा "आओ रावजी"। दूसरे दिन बाकायदा दरबार करके खेंगारजीको रावकी पदवी इनायत की गयी। यह घटना संवत् १५६५ की जिसे कच्छी चारणोंने यों अंकित किया है : —

समे सावज मारेओ, सांग हणी सरदार,
संवत पनरो पांसठे, रापै जुड़ै सार।

भावार्थ : — सरदार खेंगारजीने सांग द्वारा सिंहको मारा। संवत् १५६५ में उन्हें रावकी पदवी प्राप्त हुई।

बादशाहने प्रसन्न होकर खेंगारजीको कुछ मांगनेके लिये भी कहा। अच्छा मौका देखकर उसने अपना राज्य वापिस लेनेके लिये सहायताकी मांग की। बादशाहने उसे अपने दो सरदारोंके साथ बारह हजार घुड़सवार और बहुत बड़ी पैदल सेना दी। बादशाहका परवाना लेकर वह अपनी सेनाके साथ मोरबी गया परंतु वहांके नवाब खान गोरीने बादशाही परवानेकी परवाह न करके उसे मोरबी राज्य सौंपनेकी साफ ना कही, इसपर अपने दो साथी राधा और काला जोशीकी सहायतासे उसने युक्तिपूर्वक मोरबी अपने हाथमें कर लिया। इसके बाद अलियोजी और नौंघणजी होथी कच्छकी हालत देखनेके लिये आगे बढ़े और सायर गांवमें पहुंचे। वहां जाम रावलके एक साथी जाम अवड़ाने

नौंघणजीकी अनुपस्थितिमें अलियोजीका निद्रित अवस्थामें ही धोखेसे खून कर दिया। हाथीने इसका बदला लिया और जाम अवड़ाको भालेसे मार डाला। जाम अवड़ाके मरनेपर खेंगारजीका सायरमें विधिवत् राज्याभिषेक किया गया।

(२)

ऐसी किंवदन्ती है कि खेंगारजीपर प्रसन्न होकर आशापुरी माताने उन्हें कच्छका राज्य दिया था। माताजीने कहा था : ——

मां तो खेंगा तो त्रुठी, रूठी रावर जाम,
डिनां मां तो के मिड़े, कच्छ धराजा गाम।

अर्थात् मैं तुझसे संतुष्ट हुई हूं और जाम रावलपर कोपायमान हुई हूं। कच्छ भूमिके सब गांव मैंने तुझे दे दिये।

रावल जाम भी आशापुरी माताका भक्त था उसे भी एक रात आशापुरी माताकी वाणी सुनायी दी : ——

कीनो रावल कूड़ ते, मुं साथे कर मान,
मद्य पी हामो मारियो, माने दई जमान।
चिंता म कर नचिंत रे, उत्तर दरिया पार,
कच्छ धर हुक्म न ताहरां, हुं तो दऊं हालार।

भावार्थ : —— तूने मेरी शपथ खाकर जाम हमीरको अपने यहां बुलाया और मदिरा पिलाकर कपटसे उसे मार डाला। मेरी बात मान —— मैं तुझे समुद्र पारका हालार देश देती हूं। अब तू निश्चिंत होकर कच्छकी धरती छोड़कर चला जा।

माताजीकी वाणीमें अनन्य श्रद्धा होनेके कारण जाम रावल कच्छ छोड़कर जाने लगा। जाम रावलका एक साथी रणमल्ल बड़ा बहादुर जवान था। उसे इस प्रकार पलायन करना ठीक न लगा। उसने जामको समझाया पर जब जामने उसकी बात न सुनी तो वह अकेला ही खेंगारजीका सामना करने लौट पड़ा। उधर जाम रावलके कच्छ त्यागनेके समाचारको सुनकर खेंगारजी उसका पीछा कर रहे थे। खेंगारजीने दूरसे ही रणमल्लको पहचान लिया। वे उसकी वीरतासे परिचित थे। खेंगारजीने अपना काला घोड़ा उसकी ओर बढ़ाया और दोनोंमें द्वंद्व युद्ध होने लगा। "पहला वार सरदारका यह विचारकर रणमल्लने अपना भाला खेंगारजीपर तानकर फेंका पर खेंगारजीने घोड़ा घुमाकर कुशलतापूर्वक अपनेको बचा लिया। इससे अधिक कुपित होकर रणमल्लने उनपर ऐसा वार किया कि उनके साथियोंको उनके बचनेंकी आशा न रही। उन सबके सांस ऊंचे चढ गयें। पर घोड़ा घुमानेका समय न होनेके कारण खेंगारजी फुरतीसे घोड़ेके बांयी ओरसे नीचे कूद गये और रणमल्लकी कातिल तलवारसे घोड़ेका काम तमाम हो गया। रणमल्ल उस समय नीचे झुका हुआथा। इस अवसरका लाभ उठाकर खेंगारजीने तलवारके एक ही प्रहारसे उसका मस्तक काट दिया और अपने पैरसे उसका मस्तक हटाकर अपने सैनिकोंके पास आये। खेंगारजीकी सेनाके साथ एक चारण था जिसे रणमल्लका यह अपमान असह्य रूपसे चुभा। उसने रणमल्लकी प्रशंसामें वहीं यह दोहा कहा : ——

कारो रणमल्ल रखेओ, रणमल्ल रखेओ रा,
उन धींगेजे ध्रा, वे अवरिया लतरी।

अर्थात् रणमल्लने काले घोड़ेको मारा और रावने रणमल्लको मारा पर उसी रणमल्लके डरसे

उलटी ओर तो तुम्हीं उतरे थे। सत्यवक्ता चारणके यह वचन सुनकर उलटे खेंगारजी खुश हुए और उन्होंने उसी समय अपने गलेका हार उतारकर चारणको दे दिया।

कच्छको स्वतंत्र करके राव खेंगारने सं० १६०२ माघ कृष्णा ८ रविवारको अंजारका तोरण बांधा और सं० १६०५ माघ शुक्ला ३ को भुजंगके नामसे एक भुजंग नगरकी स्थापना की जिसका अपभ्रंश भुजनगर है। इसी प्रकार सं० १६३६ में राव पदवीकी स्मृतिमें रायपर बंदरगाहकी स्थापना की जो अब मंडवी बंदरके नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार उन्होंने अपने राज्यमें सुख-शांति लानेके अनेक काम किये। वे अपने संकटके साथियोंको भी न भूले थे। स्वामी भक्त छच्छर बुट्टाको उन्होंने तीन गांव, मियां कक्कलको बारह गांव और जामकी पदवी तथा राजा बननेकी भविष्यवाणी करनेवाले ब्राह्मणको बारह गांव और उपाध्यायकी पदवी दी। माणैक मेरजीके स्थानमें एक अंबाजीकी मूर्ति स्थापित की जहां वे प्रत्येक दिन प्रातः दर्शनके लिये जाते थे। खेंगारजी द्वारा सिंहको मारी गयी सांग आज भी इस मंदिरमें सुरक्षित है।

पर इसी बीचमें खेंगारजीको मारनेके अनेक प्रयत्न हुए। एक बार जाम रावलको खेंगारजीका मस्तक काटनेका वचन देकर बारह शक्तिशाली पहलवान कच्छ गये और खेंगारजीको मारनेका अवसर ढूंढ़ने लगे। एक दिन बहुत सबेरे जब खेंगारजी जंगल गये थे उस समय मौका देखकर इन पहलवानोंने उन्हें घेर लिया। खेंगारजी अपनी तलवार रातदिन अपने साथ रखते थे। उन्होंने तुरंत तलवार निकालकर उन बारहों व्यक्तियोंको वहां हमेशाके लिये सुला दिया।

जीवा वजीर जाम रावलका एक दरबारी था जिसे खेंगारजीने दया करके अपनी सेवामें रख लिया था। एक बार जब खेंगारजी स्नान कर रहे थे तो जीवा वजीर भी वहीं था। खेंगारजी स्नान करनेमें मग्न थे। पीछेकी ओर खूंटीपर उनकी तलवार लटक रही थी म्यानमेंसे धीरेसे तलवार खींचकर जीवा वजीर ज्योंही प्रहार करनेको तैयार हुआ तो उसकी परछाई खेंगारजीने देख ली और एकदम कूदकर उन्होंने जीवासे तलवार छीन ली। मृत्युको निकट जानकर जीवाने खेंगारजीको सच बात बता दी। जीवाकी अद्‌भुत स्वामीभक्ति देखकर खेंगारजी क्रुद्ध होनेके स्थानपर प्रसन्न हुए और उसे अच्छा इनाम देकर वहांसे विदा किया।

इन दिनों सिंधपर दिल्लीके बादशाहकी हुकूमत थी। मिर्जाईसाखान बादशाहकी ओरसे सिंधका शासन कर रहा था पर बादमें वह स्वयं सिंधका मालिक बन बैठा। ईसाखान अपने बड़े लड़के मिर्जा सालेहको प्यार करता था और छोटे लड़के मिर्जा बाकीको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता था। इसलिये मिर्जा बाकीने खेंगारजीका आश्रय लिया। यह सुनकर ईसाखानने कच्छपर आक्रमण किया। इधर यह समाचार सुनकर खेंगारजीने भी उससे मोर्चा लेनेके लिये झारा पर्वतपर अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया। ईसाखानकी फौजके आते ही घमासान युद्ध हुआ। दोनों सेनाओंमें जमकर लड़ाई हुई पर मैदान कच्छी वीरोंके हाथ रहा। यह युद्ध झाराके प्रथम युद्धके नामसे प्रख्यात है।

कुछ समय बाद काबुलके अमीर मिर्जा हुसैनने सिंधमेंसे होते हुए कच्छपर चढ़ाई की। उसका स्वागत करनेके लिये खेंगारजी अपनी सेना लेकर आये। दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ ऐड़ा नामके गांवके पास हुई। इस बार भी कच्छी सेनाने अपने पराक्रमसे अमीरकी सेनाको शिकस्त दी। लौटते हुए खेंगारजीको समाचार मिला कि बादशाही सेना उनका पीछा कर रही है। उन्होंने झारा पर्वतके पास एक अच्छा-सा स्थान देखकर वहीं छावनी डाल दी। दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध हुआ। इस युद्धमें खेंगारजीने अपनी तलवारसे बादशाही सेनाके बहुतसे सरदारोंको मार दिया। इस प्रकार मुगल सेनाको हराकर उन्होंने विजय-ध्वजके साथ भुजमें प्रवेश किया। वृद्ध खेंगारजीके इस अद्‌भुत पराक्रमको देखकर कच्छी जनताने उनका परम सम्मान किया। यह झाराका द्वितीय युद्ध कहलाता है।

मुगल सूबेको दी गयी झाराकी पराजय अकबरके मनमें खटकती रही। कच्छका राज्य दिल्लीके

शासनके आधीन था इसलिये बादशाह कच्छपर सीधी चढ़ाई तो नही कर सकता था। इस कारण बादशाहने बदला लेनेकेका और तरीका ढूंढ़ निकाला। उसने खेंगारजीको धुमली जाकर वहांके सरदारोंको दबानेका फरमान भेजा। खेंगारजीको दिल्लीपतिके फरमानका अनादर करना योग्य न लगा। यद्यपि वे वृद्ध हो गये थे फिर भी उन्होंने रणवेशमें सजकर अपने शौर्यसे सरदारोंको दबा दिया और विजयका डंका बजाते हुए भुज लौट आये।

इस प्रकार कच्छके मुकुटमणि खेंगारजीने बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थातक अतुल शौर्यका प्रदर्शन किया। यही नहीं जीवनके उतार-चढ़ाव और सुख-दुःखके अनेक चक्रोंमेंसे गुजरते हुए भी उन्होंने अव्यवस्थित और अशांत कच्छमें व्यवस्था और शांतिकी स्थापना की, अपने उपकर्ताओंको सम्मान दिया और आश्रितोंको शरण दी। अंतमें ९० वर्षकी लंबी आयु भोगकर वे स्वर्गवासी हुए। कच्छके इतिसमें इस वीर शिरोमणिका नाम हमेशाके लिये स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा।

नयी कोंपलें :

यात्राकी यादमें

—श्री आनंद

आज बहुत दिनोंकी यात्राके बाद हम सब इकट्ठे हो रहे थे। हर लड़केमें एक नयी जान दिखायी दे रही थी। हरएक अपने अनुभव सुनानेके लिये बेताब हो रहा था। अपनी सुनानेके लिये दूसरोंकी भी सुननी ही पड़ती थी। बस, एक श्याम सिकुड़ा-सिमटा-सा बैठा था। उसके जैसा वाचाल और इतना चुपचाप! अपनी-अपनी डफली बजाते हुए भी हमारा ध्यान उस ओर गया। मैं भांप गया कि दालमें कुछ काला जरूर है। मैंने बड़े आग्रहसे कहा, "अरे भाई, चुप्पी क्यों साधे हो, तुम भी तो अपनी सुनाओ।"

"अरे भई! अब क्या बताऊं अपनी यात्राके बारेमें . . . बस मुसीबत आ गयी थी, समझो।"

"हम भी तो सुनें, क्यों ऐसी क्या बात हो गयी?"

"बतानेमें शर्म तो नहीं, हिचकिचाहट जरूर होती है। खैर, चलो . . . . तुम्हें याद होगा कि छुट्टी होते ही, हमने अपना टिकट मौसीके साथ मसूरी जानेके लिये कटवा लिया था। मौसीके बारेमें बहुत कुछ सुन तो हमने रखा था कि वे बड़ी ऐसी-वैसी हैं और हमेशा अपना उल्लू सीधा करनेकी फिक्रमें रहती हैं और किसीकी परवाह नहीं करतीं परंतु हमारा भी स्वार्थ था। सोचा, क्या है, चलो मसूरी तो देख लेंगे इसी बहाने। लेकिन हम यह नहीं जानते थे कि मसूरी इतनी महंगी पड़ेगी।"

मैंने बात काटते हुए कहा, अपनी ही हांकते रहोगे या कुछ कहोगे भी?

अच्छा, लीजिये, सुनिये, यात्रामें हमपर क्या गुजरी।

हम अपना संदूक और बिस्तर लिये मौसीके घर जा पहुंचे। इंतजारका एक-एक मिनट भारी हो रहा था। कभी घड़ीकी ओर देखते तो कभी उनके दरवाजेकी तरफ। वह कमबख्त ऐसे बंद था मानो किसी गढ़ीका दरवाजा हो। हम घड़ीको देखते जाते और मौसीको कोसते जाते थे। आखिर युगोंके बाद दरवाजा खुला — मौसी, उनके केवल तीन बच्चे और उनका सामान बाहर आये।

उनका सामान और उनकी तैयारी देखकर संदेह-सा होने लगा। हमने पूछा, "मौसी जी, अब आप दिल्लीमें न रहकर मसूरीमें ही रहेंगी क्या? यह सुनते ही मौसी गुस्सेसे लाल-पीली हो गयीं। मैं तुरंत घबराता हुआ बोला, "नहीं, नहीं, मेरा मतलब था.... यह आपका सामान देखकर..... "चुप रह! बेवकूफ," मौसीने आंखें तरेरते हुए कहा। अब आगे बोलनेकी हिम्मत कहां? हम अपना-सा मुंह लिये उनके डरावने मुंहकी ओर ताकते रह गये। खैर.....

स्टेशनपर हमारा पहुंचना था कि एक नया तमाशा शुरू हो गया। एक तो 'सामान' और दूसरे मौसीका 'शरीर'। हमारे पास दो चीजें काफी आकर्षक थीं जिनको छिपाना कम-से-कम हमारे लिये संभव न था। जहां जाओ सबकी नजरें हमारी तरफ, और हमारी अपने कदमोंपर। हम बिना इधर-उधर देखे सीधे डिब्बेमें घुसकर बैठ गये और मनाने लगे कि गाड़ी समयसे पहले ही छूट जाये।

गाड़ी तो आखिर गाड़ी ठहरी, उसे हमारी क्या परवाह थी। जल्दी करनेकी जगह देर ही तो कर दी।

हमने अभी खिड़कीसे बाहर झांकना शुरू ही किया था कि मौसीकी नम्रताभरी आवाज सुनायी दी। मैं चकराया कि आखिर बात क्या है? मुझे ज्यादा देर सोचना न पड़ा। वे अपनी वाणीमें मिसरी घोलते हुए बोलीं, "श्याम बेटा, जरा बच्चोंके लिये बिस्तरा तो लगा दो।" हमें ख्याल आया लो, हो गयी शुरूआत। फिर भी उनका हुकुम तो मानना ही था। उनके छोटे-मोटे काम करते-करते पीठ अकड़ गयी। कहनेका मतलब हमारा केवल इतना ही है कि उन्होंने न अपने-आप चैन ली और न मुझे लेने दी। नतीजा यह हुआ कि जब हम मसूरी पहुंचे तो शरीर टूट-सा रहा था। पर दुःख तो इस बातका है कि मौसीके कानपर जूं तक न रेंगी। खैर......।

देहरादून स्टेशनपर मौसीका विशालकाय शरीर और सामान देखकर काफी कुली इकट्ठे हो गये। उन्होंने सोचा होगा "बोहनी होगी"। परंतु वे हमारी मौसीको कहां पहचानते थे। मौसी कोई मामूली औरत तो थी नहीं, उन्होंने सबके साथ तू-तड़ाक करके, जो दाम चाहती थीं ठहरा लिये, और शानसे बसमें जा बैठीं।

मसूरी पहुंचते ही, हमने वहांके पहाड़ और दूसरे दृश्य तो न देखे, पर अपनी मौसी के खूब तमाशा देखा।

मौसीका नाम मसूरीके पैसेवालोंमें तो था, परंतु खर्चनेवालोंमें नहीं। होटल भी उन्होंने ऐसा-वैसा ही लिया और फिर कम दाममें ज्यादा आराम चाहने लगीं। लेकिन इस बार उनकी जीत न हो सकी, और उन्होंने सारी कसर हमपर निकाली। हम जब कभी दूर भागनेकी कोशिश करते वह तुरंत पुकारकर कुछ-न-कुछ काम सौंप देतीं।

बस, इसी तरह छुट्टियोंके दिन गुजरने लगे.....और अंतमें गुजर भी गये। आज मैं तुम लोगोंके सामने हूं। अब बताओ कैसे अपने सैर सपाटेकी बातें सुनाऊं।"

* * *

यदि कोई अनुशासनका पालन करनेमें असमर्थ होता है तो वह जीवनमें कुछ भी स्थायी और मूल्यवान् कार्य करनेमें भी असमर्थ होता है।

—श्रीमां

सुडानके जंगलोंमें

जब विश्वविद्यालय गर्मियोंकी छुट्टियोंके लिये बंद हो गया तो मेरे दोस्त गोपालने मुझे उस जंगलकी छान-बीन करनेकी सलाह दी जहां कहा जाता है कि बहुत-सा खजाना छिपा पड़ा है। तरह-तरहकी मनगढ़न्त कहानियां वहांके निवासी जंगल और उसके छिपे हुए खजानेके बारेमें कहा करते थे। वे कहते हैं कि जंगलके उस पार पहाड़ोंपर बहुत सारा सोना और अनगिनत बड़े-बड़े हीरे जिन्हें शायद ही किसीने देखा हो, पड़े हैं।

इस कहानीने मुझे हदसे ज्यादा लालचमें डाल दिया और मैं गोपालकी सलाह सुनकर खुशीके मारे उछल पड़ा। मैंने उसी वक्त चलनेका वादा किया और खुद दौड़कर अपने और दो दोस्तों रहीम और हुगलीको जो कि वहां उस समय उपस्थित नहीं थे राजी करा आया। उस संदेशने उन लोगोंके अंदर सैर-सपाटेकी खुशीकी लहर भर दी और वे दूसरे ही दिन ऊषाकालके पहले रवाना होनेको प्रस्तुत हो गये।

दो दिन तक मोटरमें बैठे रहनेके बाद हम लोग उस रहस्यमय जंगलमें पहुंचे। जूलू, जो कि वहींका निवासी लड़का था वह भी हम लोगोंके साथ आया था; उसने इतनी सफाई और कौशलसे सुडानकी अपनी अनोखी झोंपड़ी बनायी कि हम लोग उसका मुंह ताकते रह गये। उस झोंपड़ीमें थोड़ा विश्राम करनेके बाद जूलुके साथ अपनी बंदूक लेकर निकल पड़ा। उस वियावान और सुनसान जंगलमें मीलों चलनेके बाद हम लोगोंने उन पहाड़ोंकी चोटियां देखीं। अब रास्ता ज्यादा साफ था, उतना अंधेरा न था, उतने बड़े-बड़े और घने पेड़ न थे पर अब था सवाना — एक तरहकी लंबी घास। बड़ी मुश्किलसे हम लोग उन ऊंची-ऊंची घासोंसे होते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे पर विधाताकी दयासे थोड़ा ही चलना पड़ा। हम लोगोंको छोटी-छोटी झाड़ियां दिखायी दीं और पहाड़ नजदीक ही मालूम पड़ा। मैं हदसे ज्यादा थका हुआ था और ऊपरसे सूरजकी कड़ी किरणें लगातार नहलाती हुई अपना आशीर्वाद दिये जा रही थीं; आखिर बेचारा शरीर कहांतक सहता, वह ढह गया। शामके समय ठंडी हवाके थपेड़ोंने हमें तरोताजा बना दिया और हम लोगोंमें आगे बढ़नेकी पूरी ताकत फिरसे आ गयी। नये उत्साह और नयी उमंगोंके साथ हम लोग फिर आगे बढ़े। मैं अपनी बन्दूकके कुंदेसे रास्ता साफ करनेके लिये झाड़ियां हटाता जा रहा था। तभी एक छोटेसे टीलेके पासकी झाड़ी हटाते हुए मैं ने एक सुरंग देखी। वह काफी गहराईतक उतरती चली गयी थी। मैं अंदर घुस गया। धीरे-धीरे सुरंग संकरी और अंधेरी होती जा रही थी। आगे बढ़नेमें अब कठिनाई हो रही थी। और हम लोगोंको रास्ता टोह-टोहकर चलना पड़ रहा था। चारों तरफ भयानक चुप्पी छायी हुई थी और साहस मेरा साथ छोड़ रहा था, मैं आगे बढ़नेसे इंकार कर रहा था पर इच्छा और लालसासे भरा, जूलु मुझे आगे बढ़नेके लिये मजबूर कर रहा था। उस स्तब्धतामें मुझे एक सोतेकी आवाज सुनायी दी जिसने मुझे आगे जानेका साहस दिया। पर हम लोग चार ही कदम आगे बढ़े होंगे कि एक नदीमें जा गिरे। नदीकी धार खूब तेज थी और हम लोगोंको बहाकर दूर ले गयी कुछ भी हो हम लोग नदीके उस पार जा पहुंचे। नदीमें गिरना अच्छा ही हुआ क्योंकि मुझे जोरोंकी प्यास लगी थी वह बुझ गयी। अब और ज्यादा अंधेरा था। मैंने आग जलानी चाही पर दियासलाई बिलकुल भीग गयी थी, तब उसी अंधेरेमें ऐसी दलदलमें चलना पड़ा जिसका किसीको पता न था। चिंता थी कि कहीं धंसकर जान न खो देनी पड़े। पर इतनी जल्दी मरना न बदा था; सुरंग तो अब बहुत ही संकरी हो गयी थी। उसकी दीवारोंके सहारे हम लोगोंने वह दलदलवाला रास्ता पार किया। उसके बाद हम लोगोंने अपने-आपको एक गुफामें पाया। वहां घुप अंधेरा छाया हुआ था। दियासलाईको खूब रगड़कर जलानेके बाद मैंने एक मिस्री मूर्ति अपने सामने पायी। यह प्रतिमा जरूर ही फरओनके पहरेदार — सूर्य देवता 'रा' की रही होगी। उसकी आंखें चमक रही

थीं और ऐसां लगता था मानो वे आपके अंदर घुसकर सब कुछ जान लेंगी। उस मूर्तिके पीछे कुछ सीढ़ियां नीचेको उतर रही थीं। मैं कौतूहलवश सीढ़यां उतरने लगा और जूलू हमेशाकी तरह मेरे पीछे-पीछे चल दिया। हर सीढ़ीपर अंधकार और घना होता जा रहा था और सात-आठ सीढ़ियों के बाद और सीढ़ियां न थीं। नीचे जो बड़ा-सा कमरा था वहां उतरनेका कोई उपाय न था। म आखिरी सीढ़ी पकड़कर लटक गया और जूलू मेरा पैर पकड़कर लटककर नीचे कूद गया। फिर उसने कूदनेमें मेरी सहायता की।

यहां कहींसे भीतिजनक प्रकाश आ रहा था। मैंने अपने चारों तरफ कफन देखे। शायद कोई पहले भी इनको देख गया था क्योंकि सब मुर्दे खुले पड़े थे। एक कोनेमें एक ममी पड़ी थी और उसके पैर मुड़े हुए थे — वह औंधी थी। उसके सारे शरीरमें पैपीरस लिपटा हुआ था। मैंने पास जाकर देखा — इस ममीको किसीने नहीं छुआ था। पैपीरसके पत्ते मैं खोलता गया। तीन लंबे-लंबे पत्ते निकले। उनपर चित्राक्षरोंमें कुछ लिखा था। मैं उसे पढ़ना न जानता था लेकिन रहीम इस विचित्र भाषाको पढ़ सकता था। इसलिये मैंने उन्हें अपनी जेबमें रख लिया।

ममीको मैं ने उलटकर देखा कि उसके माथेपर साम्राजिक प्रतीक — एक सांप बना हुआ था। मुर्देका सारा शरीर सोनेसे मढ़ा था और आंखोंकी जगह दो हीरे चमक रहे थे। हम लोग कामपर लग गये। सोनेकी परतें जिनसे वह ममी जड़ी हुई थी उन्हें जैसे ही निकाला वैसे ही एक बहुत ही गन्दी असहनीय बदबू गुफामें फैल गयी। जूलूने अपने लंबे-लंबे नाखूनोंसे मुर्देका पेट चीर डाला और उसमें हाथ घुसाकर हीरे और जवाहरात निकालने लगा। वह खुशीके मारे चिल्ला उठा, "अब बेशक हम लोग दुनियामें सबसे अमीर हो जायेंगे।" और वह एक भूखे भेड़ियेकी तरह ममीपर टूट पड़ा और ३ अपनी जेबें भरने लगा। उसने मुझे भी कुछ हीरे और जहवारात दिये जो गंदगीसे भरे थे, फिर भी लालच और उनकी चमकसे अंधा होकर मैं भी अपनीजेब भरने लगा।

अब यहां रहना खतरेसे खाली न था। उस बदबूमें न जाने कौन-सी जहरीली गैस भरी थी कि हम लोगोंका दम घुटा जा रहा था। हम लोग बाहरकी तरफ दौड़े ताकि कुछ शीतल वायुसे अपने फेफड़ोंको तरोताजा कर सकें। जब हम लोग रहीम और हुगलीसे मिले तो मैं अपने-आपको बीमार महसूस कर रहा था और सचमुच ही मैं बुरी तरह बीमार पड़ गया। अपनी बीमारीके बाद मैंने अपना सारा कांड अपने दोस्तोंको कह सुनाया और रहीमको वह पैपीरस दिया जिसके बारेमें उसने वादा किया कि वह इसे पढ़कर एक किताब लिखेगा।

* * *

For Quality Electrical Equipment, Kindly Contact:

Honesty
ELECTRIC STORES
PHONE:
34-7998
12, RABINDRA SARANI: TERRATTI BAZAR. CALCUTTA-1. INDIA.

फ्रैंच सीखिये

पाठ २ Leçon 2

संज्ञा शब्द Les noms (ले नौं)

le ciel (ल सिअॅल) आकाश
le pot (ल पो) गमला
le ballon (ल बालौं) बड़ी गेंद, गुब्बारा
l'oiseau (लो आजो) पक्षी

la fleur (ला फ्लर्) फूल
la feuille (ला फई) पत्ता
la poupée (ला पूपे) गुड़िया
l'église (लेग्लीज) गिरजाघर

अन्य शब्द

devant (दवां) के सामने
dans (दां) में
où (ऊ) कहां, là (ला) वहां,

derrière (दर्रिऐर) के पीछे
sur (स्यूर्) ऊपर
ici (इसी) यहां

Le garçon est dans l'école. (ल गारसौं ए दां लेकॉल) लड़का स्कूलमें है।
La poupée est sur la chaise. (ला पूपे ए स्यूर् ला शैज) गुड़िया कुर्सीपर है।
Il est devant la moto. (इल ए दवां ला मोतो) वह मोटर साइकिलके सामने है।
Elle est derrière l'hôtel. (अॅल ए दर्रिऐर लोतॅल) वह होटलके पीछे है।
Le chapeau est sur la table. (ल शापो ए स्यूर ला ताब्ल) टोप मेजपर है।
Le lapin est sous le banc. (ल लापैं ए सू ल बां) खरगोश बैंचके नीचे है।

Où est le cheval ?
(ऊ ए ल शवाल् ?) घोड़ा कहां है ?
Où est le chien ?
(ऊ ए ल शिऐं ?) कुत्ता कहां है ?
Où est le chat ?
(ऊ ए ल शा ?) बिल्ली कहां है ?
Où est la fleur ?
(ऊ ए ला फ्लर् ?) फूल कहां है ?
Où est l'église ?
(ऊ ए लेग्लीज ?) गिरजाघर कहा है ?

Il est devant la maison.
(इल ए दवां ला मेजौं) वह घरके सामने है।
Il est dans le jardin.
(इल ए दां ल जारदैं) वह बागमें है।
Il est sur l'arbre.
(इल ए स्यूर् लार्ब्र) वह पेड़पर है।
Elle est dans le pot.
(अॅल ए दां ल पो) वह गमलेमें है।
Elle est derrière le jardin.
(अॅल ए दर्रिऐर ल जारदैं) वह बाग के पीछे है।

La couleur (ला कूलर्) रंग

bleu (ब्ल)	नीला
vert (वॅर्)	हरा
brun (ब्रँ)	कत्थई
noir (नो आर्)	काला
rose (रोज)	गुलाबी
jaune (जोन)	पीला
rouge (रूज)	लाल
gris (ग्री)	भूरा
blanc (ब्लां)	सफेद [पुलिंग]
blanche (ब्लांश)	सफेद [स्त्रीलिंग]

नोट : —उपर्युक्त शब्दोंका स्त्रीलिंग बनानेके लिये शब्दके अंतमें e लगा देते हैं। जिन शब्दोंके अंतमें पहले ही 'e' हो उनमें दूसरा 'e' जोड़नेकी आवश्यकता नहीं है।

Le livre est bleu.	(ल लीव्र ए ब्ल) किताब नीली है।
La fleur est bleue.	(ला फ्लर् ए ब्ल) फूल नीला है।
Le chapeau est vert.	(ल शापो ए वॅर्) टोप हरा है।
La table est verte.	(ला ताब्ल ए वॅर्त) मेज हरी है।
Le banc est brun.	(ल बां ए ब्रँ) बेंच कत्थई है।
La chaise est brune.	(ला शैज ए ब्रयून) कुर्सी कत्थई है।
Le boeuf est blanc.	(ल बफ ए ब्लां) बैल सफेद है।
La robe est blanche.	(ला रॉब ए ब्लांश) साया सफेद है।
Le ballon est rose.	(ल बालौं ए रोज) गेंद गुलाबी है।
La poupée est rose.	(ला पूपे ए रोज) गुड़िया गुलाबी है।
Le cahier est gris.	(ल काइए ए ग्री) कापी भूरी है।
La gomme est grise.	(ला गॉम ए ग्रीज) रबड़ भूरा है।
Le crayon est jaune.	(ल क्रेइयों ए जोन) पेंसिल पीली है।
La règle est jaune.	(ला रैग्ल ए जोन) पैमाना पीला है।
Le savon est rouge.	(ल सावौं ए रूज) साबुन लाल है।
La moto est rouge.	(ला मोतो ए रूज) मोटर साईकिल लाल है।

पुस्तक-परिचय

चढ़ती पगडंडियां : ले. रामकृष्ण कौशल; प्र. हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १; मूल्य ३.००

आजकल आंचलिक उपन्यास बढ़ते जा रहे हैं यह एक अच्छी बात है। यह उपन्यास शिमला तथा उसके आसपासके प्रदेशकी भूमिकामें लिखा गया है।

एक प्यास पहेली : ले. राजेन्द्र अवस्थी, प्र. वही; मूल्य ६.००।

यह राजेन्द्र अवस्थीकी २५ कहानियोंका संग्रह है। इनमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रयोग हैं। कहीं मुस्कान है कहीं रुदन। कहीं-कहीं बड़ी मीठी चुटकी ली गयी है। हर कहानी रोचक है और कहनेका ढंग अपना निराला है। लेखक अभी युवक हैं, हमें उनसे बहुत आशा है।

बम्बईके हिंदी कवि : सं. दाऊदत्त उपाध्याय और मधुकर गौड़; वितरक सहयोगी पुस्तक भंडार; हीराबाग, बम्बई ४, मूल्य २.००।

बम्बईमें बसे हुए सतरंगी कवियोंके काव्यका रसास्वादन मजेदार है।

* * *

The soul, itself being a portion of the Divine, is above all moral notions, it bathes in the Divine Light and manifests it, but can truly rule over the whole being only when the ego has been dissolved.

THE MOTHER

★

With the Compliments of :

SRI MAHALAXMI
OIL MILLS
Ranigani
Burdwan (W. Bengal)

बालासिनोर पेपर मार्ट

हिसाब लिखने के बही-खातों
के निर्माता,
कागज के विक्रेता

प्रधान कार्यालयः—१३३, कॉटन स्ट्रीट

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट

कलकत्ता-७

फोन-३३२३१२

⁂

नेशनल रबर मेन्यूफेक्चरर्स लिमिटेड

लेज़ली हाउस

१९ चौरंगी

कलकत्ता—१३

⁂

बुढ़ियाका भाग्य

एक बुढ़िया थी। वह रोज सवा मनका चूरमा बनाती और सवा सेरका खाती थी। एक बार उसके घरमें दीया भी बुझ गया और आग भी बुझ गयी। इसलिये उसने अपनी बहूको पड़ोसिनसे आग मांग लानेके लिये कहा। जब बहू पड़ोसिनके यहां गयी तो पड़ोसिन बोली, "आ री सखी, बैठ आजकल तू कहां रहती है, घरका क्या हाल चाल है?" बहूने जवाब दिया, "क्या बैठूं बहिन, आज तो घरमें दीया भी बुझ गया और आग भी, इसलिये सासने आग लाने भेजा है। मेरी सास तो रोज सवा मनका चूरमा करती है और सवा सेरका खाती है।" अब तो पड़ोसिनको बड़ा अखरने लगा, उसने कहा, "बहिन, यह तुम क्या कह रही हो। अगर बुढ़िया हर रोज ऐसा करती रहेगी तो काम कैसे चलेगा। तुम जरा सोचो तो सही, कल तुम्हें भी बेटे-बेटियां ब्याहने होंगे। बुढ़िया अगर धन ऐसे ही खर्च करती रहेगी तो उस समय क्या करोगी?" बहूको पड़ोसिनकी सीख ठीक मालूम दी। वह घर गयी और आसन-पट्टी लेकर सो गयी। जब उसका पति घर आया तो उसने अपनी पत्नीसे पूछा, ऐसे क्यों सोयी हो? तो उसकी पत्नीने जवाब दिया, सोऊं न तो क्या करूं, तुम्हें किसीकी चिन्तासे क्या लेना देना। तुम्हारी मां रोज-रोज चूरमा बनाती है। जब इसे बन्द करोगे तभी उठूंगी, नहीं तो नहीं। पतिने उसे बहुत समझाया और कहा, "देख बावली, हम लोग जो खाते हैं वह सब तो हम उसीके भाग्यका दिया हुआ खाते हैं। लेकिन पत्नी न मानी। आखिर हारकर उसने मांको इतना चूरमा बनानेसे मना कर दिया। लेकिन मांने कहा, जबतक मैं जिन्दा हूं तबतक मुझे कोई कुछ नहीं कह सकता। अब बेटेने अपनी बहूके कहनेसे उसे एक खाली कोठरीमें बंद कर दिया।

मां कोठरीमें आसन-पट्टी लेकर सो गयी। तभी हनुमानजी आये और बोले, "उठ बुढ़िया माई उठ सोयी क्यों है।" सोऊं न तो क्या करूं, बेटेने मुझे चूरमा बनानेसे मना कर दिया। मैंने उसकी बात सुनी नहीं तो उसने मुझे इसी कोठरीमें मरनेके लिये छोड़ दिया है। हनुमानजीने कहा, उठ तो सही बुढ़िया माई, देख तेरी इस कोठरीमें तो 'पुरी' (गांव) बस गयी है, जा उठकर चूरमा बना, भोग लगा और भोजन-कर कहकर हनुमानजी अंतर्धान हो गये। अब बुढ़िया जल्दीसे उठी, नहा-धो, पूजा-पाठ कर उसने सवा मन चूरमा बनाया और सवा सेरका खाया। वह रोज सवा मनका बनाती और भगवान्का भजन करती। इसी तरह उसके दिन मजेसे कटने लगे। इधर कुछ सालोंतक तो पति-पत्नी आरामसे जीवन बिताते रहे। बादमें उन्हें खानेके लाले पड़ने लगे। अब पत्नीको अक्ल आयी। अब वह जिद करने लगी जा अपनी मांको ला। पतिने कहा, "पहले तो कोठरीमें बंद करवा दिया और अब कहती है उसे ला। अब तो उसकी हड्डियां भी मिलेंगी कि नहीं यह भी नहीं पता।" नहीं, उसे ला कहींसे भी ला। अंतमें पतिने उस कोठरीका दरवाजा खोला तो देखता क्या है कि कोठरीमें तो पुरी बसी है और मां बैठी भजन कर रही है। वह जाकर मांके पैरोंपर पड़कर माफी मांगने लगा। और उसने कहा, मां तुमने यह क्या जादू-टोना किया? मांने कहा, बेटा यह सब तो हनुमानजीकी माया है। बेटेने मांसे कहा, "अब मां बाहर चल।" मांने उत्तर दिया, बेटा मैं तो यहीं ठीक हूं। तुम अपनी पत्नीके साथ आरामसे रहो। पति-पत्नीने बहुत क्षमा मांगी तब कहीं जाकर मां बाहर निकली। उसके बाहर निकलते ही पहलेकी तरह भंडार भर गये और तीनों आरामसे जीवन बिताने लगे।

—भीष्म

Registered with the Registrar of Newspapers for India M 8127
No. R N 8837/65

Never forget that you are not alone. The Divine is with you helping and guiding you. He is the companion who never fails, the friend whose love comforts and strengthens. Have faith and He will do everything for you.

यह कभी न भूलो कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान् तुम्हारे साथ हैं। वे तुम्हारी सहायता करते हैं और तुम्हें राह दिखाते हैं। वे ऐसे साथी हैं जो कभी अवहेलना नहीं करते, वे ऐसे मित्र हैं जिसका प्रेम आश्वासन और बल देता है। भगवान्पर श्रद्धा रखो और वे तुम्हारे लिये सब कुछ कर देंगे।

—श्रीमां

पुरोधा

अगस्त
१९६७

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात,
ओडिसा, आंध्रप्रदेश और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

वर्ष ५ अगस्त ६७ अंक १२

सूची

प्रार्थना श्रीमां १
श्रीमाताजीने बताया है २
श्रीअरविंद कहते हैं : २
संपादकीय : ज्योतिकी ओर ३
मातृवाणी : अपने जीवनको व्यवस्थित करो ५
वक्तकी मांग ६
श्रीअरविंद-वाणी : विकासक्रम ७
भारतका भाग्य ९
मुक्तिदाता परसियस (नाटक) श्रीअरविंद ११
श्रीअरविंद अनुबेन पुराणी १८
अप्रकाशित इतिहासका एक पृष्ठ सुरेश चक्रवर्ती २२
गहरे पानी पैठि : ध्यान २८
आर्य कौन हैं ? २९
कविकी दृष्टि रवीन्द्र ३१
विद्यालयमें नन्हा-मुन्ना अंजना शर्मा ३४
फ्रेंच सीखिये ३६
नयी कोंपलें : जादुई जड़ी सूजान

चित्रकार : कृष्णलाल। मूल्य एक अंक : रु. ०.६० पै. वार्षिक चंदा : रु. ७.००।

संपादक : रवींद्र
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२

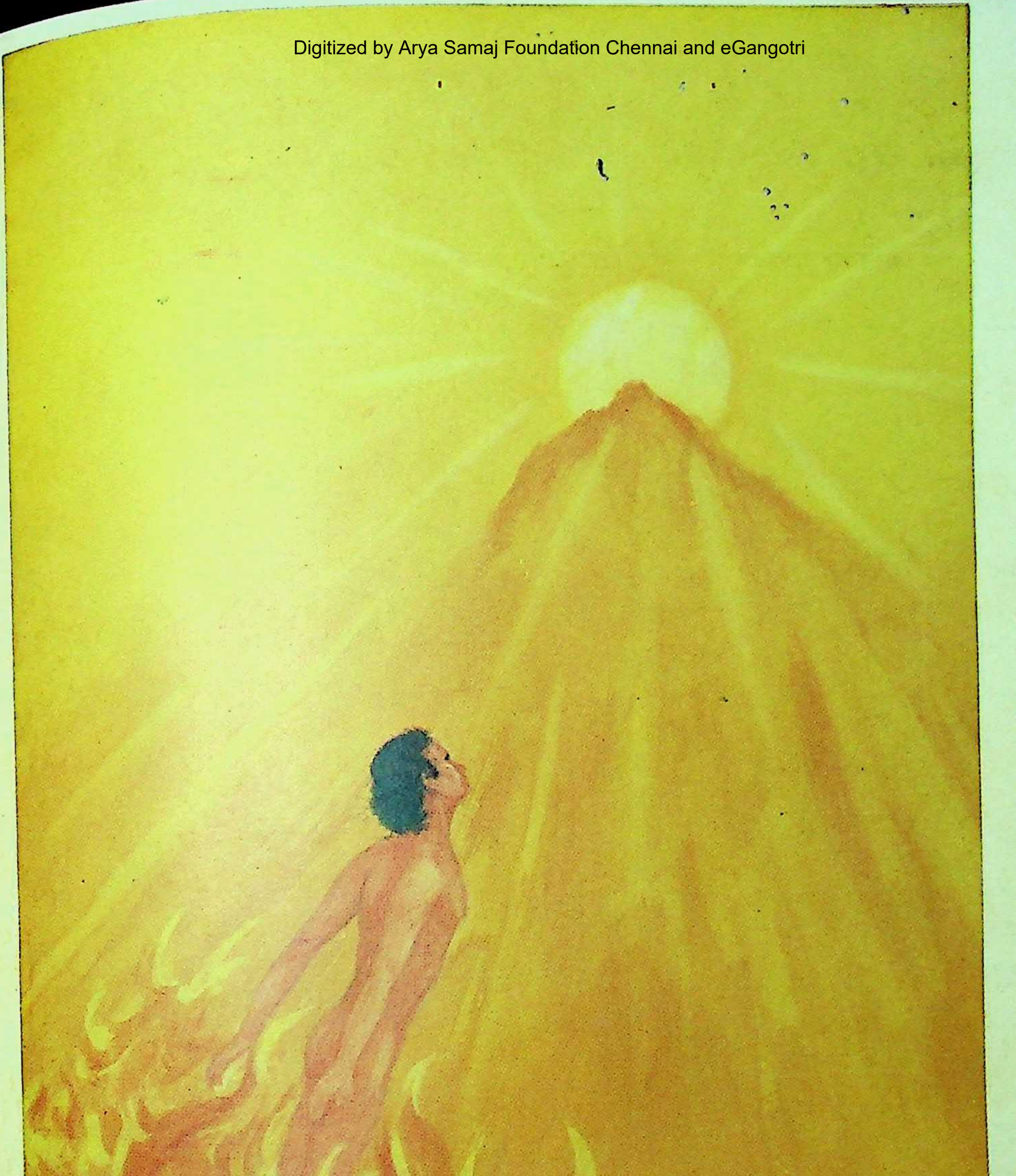

Without care for time, without fear for space, surging out purified from the flames of the ordeal, we shall fly without stop towards the realisation of our goal, ... the supramental victory.

“कालकी परवाह और देशके भयसें मुक्त, अग्नि-परीक्षाकी ज्वालाओंमेंसे पवित्र होकर निकलते हुए, बिना रुके हम अपने लक्ष्य —— अतिमानसिक विजयकी ओर उड़ चलेंगे।”

—— श्रीमां

★

श्रीमाताजीने बताया है कि :

श्रीअरविंद हमें यह बतलानेके लिये आये थे कि सत्यको प्राप्त करनेके लिये पृथ्वी छोड़नेकी आवश्यकता नहीं, अपनी अंतरात्माको पानेके लिये जीवनका त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं, भगवान्के साथ संबंध स्थापित करनेके लिये जगत्का त्याग करने अथवा केवल सीमित विश्वासोंको ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं। भगवान् सर्वत्र हैं, प्रत्येक वस्तुमें हैं और वह यदि छिपे हुए हैं तो इसका कारण केवल यह है कि हम उन्हें ढूंढ़नेका कष्ट नहीं उठाते।

* *

श्रीअरविंदने मानवशरीरमें अतिमानसिक चेतनाको मूर्त्तिमान किया। उन्होंने न केवल उस पथके स्वरूपको तथा उसका अनुसरण करनेकी पद्धतिको हमारे सामने प्रकट किया जिसमें कि हम लक्ष्यतक पहुंच जायं, बल्कि अपनी व्यक्तिगत सिद्धिके द्वारा हमारे सामने उसका उदाहरण भी रखा। उन्होंने हमें इस बातका प्रमाण दे दिया है कि यह कार्य किया जा सकता है और उसे करनेका समय अब आ गया है।

श्रीअरविंद कहते हैं :

राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? वह न भू-खण्ड है, न वाक्यालंकार और न मानसकल्पना। वह एक महान् शक्ति है। जिन असंख्य छोटे-छोटे व्यक्तियोंसे राष्ट्रका निर्माण हुआ है, उन सबकी सम्मिलित शक्ति है, ठीक उसी प्रकार जैसे भवानी महिषमर्दिनी लाखोंलाख एकताबद्ध देवोंकी सम्मिलित विशाल शक्तिपुंजसे आविर्भूत हुई थीं। जिस शक्तिको हम भारत-माता कहते हैं, अथवा भवानी माता कहते हैं, वह तीस कोटि लोगोंकी एकत्रबद्ध जीवंत शक्ति है। किंतु वह निष्क्रिय है, तमके ऐंद्रजालिक घेरेमें कैद है, अपने ही लालोंके स्वनिर्मित जड़त्व और अज्ञानान्धकारसे आच्छादित है। तमससे मुक्ति पानेके लिये हमें अपने अंतःब्रह्मको जगाना होगा।

* *

भारतका नाश नहीं हो सकता, हमारी जाति निर्जीव नहीं हो सकती, क्योंकि मानवजातिके सभी भागोंमेंसे एकमात्र भारतके भाग्यमें ही सबसे उच्च एवं अत्यंत प्रोज्वल सिद्धि पाना बदा है। भावी मानवजातिके हितके लिये यह सिद्धि बहुत आवश्यक है। भारतको ही अपने अंदर से समस्त विश्वका भावी धर्म प्रकट करना होगा, एक ऐसा विश्वजनीन शाश्वत धर्म जो सभी धर्मों, विज्ञानों और दर्शनोंमें समन्वय स्थापित कर सके तथा मानव मात्रमें एकात्मभावका निर्माण कर सके। उसी प्रकार नैतिकताके क्षेत्रमें भारतका लक्ष्य होगा मानवतासे दानवताको दूर करना, विश्वको आर्य-धर्ममें दीक्षित करना। ऐसा करनेके लिये उसे अपने-आपको पुनः आर्य बनाना होगा।

* *

तुम्हारे अंदर पुकार मालूम होती है और हो सकता है कि तुम योगके अधिकारी हो किंतु बहुतसे मार्ग हैं और प्रत्येकका लक्ष्य और ध्येय अलग है। कामनाओंको जीतना, जीवनके साधारण संबंधोंको त्यागना और अनिश्चयतासे ध्रुव निश्चयताकी ओर जानेका यत्न करना — ये बातें सब मार्गोंमें एक-सी हैं। मनुष्य स्वप्न और निद्रा तथा भूख-प्यास आदिको जीतनेका भी यत्न कर सकता है। परंतु जगत् या जीवनसे कुछ भी सरोकार न रखना अथवा इंद्रियोंको मार डालना या उनकी क्रियाको पूर्ण रूपसे दबा देना मेरे योगका अंग नहीं है। मेरे योगका उद्देश्य भागवत सत्यके प्रकाश, शक्ति एवं आनंद तथा उसकी क्रियाशील निश्चयताको जीवनमें उतारकर उनके द्वारा उसे रूपांतरित करना है। यह योग संसारसे कतरानेवाले संन्यासका नहीं वरन् दिव्य जीवनका योग है।

वेदेषु यो जीवनयज्ञनेता पुरोहितोऽग्निः प्रथितः प्रचेताः ।
स नो भवेद् बाल-विकास-वेधाः पुरो नयेत् पत्र-जगत्-पुरोधाः ॥

सम्पादकीय

ज्योतिकी ओर

मानव जाति चक्रनेमिकी तरह ऊपर उठती और नीचे गिरती हुई आगे बढ़ती जाती है। उसका नीचे गिरना भी और आगे बढ़कर ऊपर आनेके लिये होता है। जब मानव नीचेकी ओर जाने लगता है तो भारत अपनी नेतृत्व शक्तिको खो देता है। उसके महान् नेता जीवनमें रस लेना छोड़कर गुफाओंमें जा बैठते हैं और वहींपर ज्योतिको जगाये रखते हैं, बाकी देश तिमिर ग्रस्त हो जाता है। उसके बाद जब मानव जातिके उत्थानका समय आता है तो फिरसे भारतके द्रष्टा, ऋषि, योगी गुफाओं और कन्दराओंको छोड़कर बाहर निकल आते हैं। सारे देशपर उनका प्रभाव छा जाता है और यह देश फिरसे मानव जातिके गुरुके आसनपर विराजमान हो जाता है।

भारत आजकल एक ऐसी ही दशामेंसे गुजर रहा है। अंधेरा-युग समाप्त हो गया है परन्तु अभी तक सूर्यनारायणके दर्शन नहीं हो पाये हैं। देशों और जातियोंके इतिहासमें यह युग हमेशा कठिन हुआ करता है। जाता हुआ अंधेरा अपनी ओरसे पूरा नाश करनेकी कोशिश करता है और हमारे अंदर जो कुछ अंधेरेको सहारा देता है वह खतरेमें होता है। आज हम एक नये युगकी देहली पर खड़े हैं और वह दिन दूर नहीं कि अंधेरेकी बातें केवल इतिहासके पन्नोंमें रह जायेंगी।

मनुष्य जाति स्वाभावसे अपने महापुरुषोंकी पूजा करती आयी है और हर देशकी प्रजाने अपनी प्रक्तिके अनुसार महापुरुषोंको अपनाया है। कहीं हिटलर और कहीं स्टालिन, कहीं बुद्ध और कहीं कनफ्यूशसकी पूजा होती है। समय और देशके अनुसार ये मूल्य बदलते रहते हैं। मंचूरियाके एक कम्युनिस्ट नेताने पं नेहरूकी प्रशंसा करते हुये कहा था कि हमारे देशमें उन्हें चंगेज खां और स्टालिनका सम्मिश्रण माना जाता है। (पता नहीं यह प्रशंसा सुनकर पण्डितजीकी क्या हालत होती !) भारतकी प्रजाने अधिकसे अधिक मान दिया राम और कृष्णको। भीम और दुर्योधनके जैसे योद्धा विदुरका स्थान न पा सके। सूर्यवंशके तेजस्वी राजाओंको भी गुरु बसिष्ठके आगे सिर झुकाना पड़ता था। विश्वामित्र जैसे राजर्षिकी सबसे बडी आकांक्षा थी बसिष्ठसे मान्यता पानेकी। ये सब तथ्य हमें बताते हैं कि भारतीय लोगोंमें स्वाभाविक रूपसे आध्यात्मिकताकी ओर झुकाव होता है। जहां अन्य देशोंको मानवताके लिये विभिन्न काम सौंपे गये हैं वहां भारतके जिम्मे है आध्यात्मिक विकास।

आध्यात्मिक प्रगतिके लिये शंका और संदेहकी बहुत आवश्यकता है। हमारी जाति प्रायः उन सब बातोंपर अविश्वास करती है जिन्हें उसने अंदरसे अनुभव करके नहीं देखा है। हमारे प्राचीन ऋषि शंका और सन्देह करनेमें आजके वैज्ञानिकोंसे पीछे नहीं थे। वैज्ञानिक विश्वास करनेसे पहले हर चीजको प्रयोगशालामें रखकर नाना प्रकारके परीक्षण करके देखना चाहता है। हमारे ऋषि भगवान्‌के साथ नाता जोड़कर हर चीजको उनके प्रकाशमें देखना चाहते थे और जबतक यह न हो जाय तब तक उन्हें स्वयं अपनी अनुभूतियोंपर भी पूरा विश्वास नहीं होता था। उन्होंने

इन्द्रियोंकी, मनकी, बुद्धिकी सच्चाई और प्रामाणिकता पर हमेशा संदेह किया। उन्होंने इस संसारके और संसार ही नहीं स्वयं भगवान्‌के अस्तित्व पर भी संदेह किया। इस शंकाशीलताकी चरम सीमा पहुंच गयी बुद्ध-वाणीमें। उन्होंने किसी धर्मका प्रचार नहीं किया, किसी सिद्धान्त या मन्तव्यको मानना आवश्यक नहीं बताया, उन्होंने तपस्या, और आत्मसिद्धिपर ही जोर दिया और इन्द्रियासक्ति और बुद्धिभ्रमके जालसे छूटनेको ही मुख्य लक्ष्य माना।

जब जब शंका सन्देह और अविश्वास आदिमें वृद्धि हुई तब-तब, कबीर, तुलसी, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदिने जन्म लेकर विश्वास और श्रद्धाकी लौको जगाये रखा। अंग्रेजोंके साथ जो लहर आयी उसने तो मानों सारी इमारतको ही ढा देनेकी कोशिश की पर उसी समय दयानन्द, रामकृष्ण आदिने जन्म लेकर नव भारतकी नींव डाली।

ऐसे समय पूरी तरहसे अंग्रेजियतके वातावरणमें श्रीअरविंदने जन्म लिया। श्रीअरविंदने विश्वके आध्यात्मिक इतिहासमें एक नया प्रकरण शुरू किया। सतयुग आनेकी भविष्यवाणी तो पहलेसे चली आ रही थी पर श्रीअरविंदने पहली बार बताया कि उसका रूप क्या होगा। श्रीअरविंदने हमें बताया कि सारी पार्थिव चेतनाका रूपान्तर होगा। अविद्या अहंकारका नाश नहीं विद्या और ज्योतिमें परिवर्तन होगा। उन्होंने एक नयी आशाका संदेशा दिया कि मानव अपनी सहज कमजोरियोंसे निकलकर अतिमानव बन सकेगा और चुनाव करना उसके अपने हाथमें है। आज भारतमें एक नयी ज्योतिका आविर्भाव हो रहा है। और उसकी किरणें इस ठोस घने अंधकारको चीरती हुई दिखायी दे रही हैं। आज हो या कल ज्योतिकी विजय अवश्यम्भावी है।

मनुष्य जातिने बहुत प्रकारके परीक्षण कर लिये हैं। पूर्णताके न जाने कितने स्वप्न देखे गये परन्तु उनमेंसे कोई मानव जातिकी दरिद्रता (यहां दरिद्रतासे मतलब पैसेका अभाव मात्र नहीं है।) दुःख, कलह, असन्तोष आदिको दूर नहीं कर सका। बाह्य उपकरणों, बाह्य साधनोंका उपयोग करके जितने भी प्रयास किये गये, चाहे वे धार्मिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक स्तरोंपर किये गये हों, वे सबके सब अपने लक्ष्यको पानेमें असफल रहे हैं। भारत बहुत जमानेसे यह जानता आया ह कि इन सब आधिव्याधियोंका इलाज अंदरसे होगा। हर पीढ़ीने कुछ आध्यात्मिक लोंगोको जन्म दिया जिन्होंने अपने अंदर पैठकर कुछ प्राप्ति की और चुपचाप, घोषणा किये बिना अपनी देन अपने शिष्यों प्रशिष्योंको देकर चले गये। इस तरह विपरीत परिस्थितियोंके होते हुये भी कार्य आगे बढ़ता गया और चेतना अंधेरेकी चादरमें प्रगति करती गयी। अब समय आ गया है नयी चेतना परदा चाक करके अपने असली रूपमें प्रकट हो जिसे अंधे भी देख सकें। भगवान्‌का आदेश हो चुका है और वह पूरा होकर रहेगा। हम उसका साथ देकर गोवर्धनधारी कृष्णके साथी ग्वाल बालोंकी तरह लीलामें भाग ले सकते हैं अथवा उसका विरोध करके या उसकी उपेक्षा करके रसातल पहुंच सकते हैं।

१५ अगस्तका पुण्य पर्व हमारे अंदर इस संकल्पको जगाता है कि हम भागवत कार्योंमें भाग लें, चाहे हमारी स्थिति रामकी सहायता करनेवाली गिलहरी जैसी क्यों न हो। श्रीअरविंद हमें एक नये जीवनकी ओर निमंत्रण दे रहे हैं। हां, उनके निमंत्रणको स्वीकार करनेके लिये पहले अपनी सब बेड़ियां काटनी होंगी और बिना किसी संकोच या हिचकके भविष्यमें छलांग मारनी होगी।

* * *

श्रीमातृ-वाणी

अपने जीवनको व्यवस्थित करो

नैतिक धारणाओंका आंतरिक सत्ताके विकासके साथ कोई संबंध नहीं। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है, पर इन दोनोंमें जोड़ नहीं बैठता और ये दोनों उलटे रास्ते जाते हैं। तुम एकदम स्वार्थहीन कार्य करनेके कारण भी पूर्ण रूपसे बीमार पड़ सकते हो और दूसरी ओर अत्यंत अहंकारपूर्ण कार्य करते हुए भी स्वस्थ और शक्तिशाली बने रह सकते हो।

नैतिक चेतना और सत्यको अभिव्यक्त करनेवाली चेतना, इन दोनोंमें बहुत बड़ा अंतर है। मैं फिर तुमसे कहती हूं कि नैतिक चेतना प्राप्त करनेकी अपेक्षा सत्यको प्रकट करनेवाली चेतना प्राप्त करना अनंतगुना अधिक कठिन है। क्योंकि, जो कोई मोटी बुद्धिवाला मनुष्य सामाजिक नियमोंको जानता और उनका अनुसरण करता है, उसे ही नैतिक चेतना प्राप्त होती है, पर सत्यकी चेतना प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको मोटी बुद्धिवाला नहीं होना चाहिये, यह पहली शर्त्त है।

जीवनमें जितनी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं घटती हैं, वे जीवनमें संगठनका अभाव होनेके कारण आती हैं। जब जैसा मुहूर्त्त आता है बस उसीके अनुसार तुम जीवन बिताते हो, चीजें जैसी आती हैं उन्हें वैसी ही किसी-न-किसी तरह ग्रहण कर लेते हो। अथवा, तुम एक मानसिक व्यवस्था लानेकी चेष्टा करते हो जो सत्यके साथ बिलकुल मेल नहीं खाती और इस कारण पग-पगपर विफल होती है। यदि जीवनको एक उच्चतर तत्त्वके अनुरूप सुव्यवस्थित किया जाय, साधारणतया जीवनमें जो हमें अंधेकी भांति टटोल-टटोलकर चलना पड़ता है उससे यदि हम बचें, अर्थात्, हमें क्या करना चाहिये और कैसे करना चाहिये इस संबंधमें मिलनेवाले ठीक-ठीक सुझावका प्रत्येक क्षण अनुसरण करें तो फिर सारी बातें बिना किसी दुर्घटनाके व्यवस्थित की जा सकती हैं।

मोटे तौरपर कहें तो, यह अधिक अच्छा है कि हम अपने कार्यको खूब सावधानीके साथ चुनें, केवल उतना ही काम लें जितना कि हम कर सकें और उसे अच्छी तरह करें; बहुधा तुम बहुत अधिक काम ले लेते हो और उन बहुत अधिक कामोंमें ऐसी बेकार चीजोंकी एक अच्छी मात्रा होती है जो पर्याप्त अंशमें निकाली जा सकती या घटा दी जा सकती हैं। और उनसे अंतिम परिणामम कोई अंतर नहीं पड़ेगा। मैं इसे कोई पूर्ण सामान्य नियम नहीं बना रही हूं। मैं तो केवल अपना एक अनुभव बता रही हूं। अगर तुम आंतरिक सुझावके प्रति संपूर्ण सावधान रहो और बाहरसे आनेवाली लहरोंमें इधर-उधर बहते रहना अस्वीकार कर दो — दूसरे लोगोंकी उन इच्छाओं, दैनंदिन परिस्थितियों या विरोधी शक्तियोंकी क्रियाओंको अस्वीकार कर दो जो कार्योंको होने देना नहीं चाहतीं —कहनेका मतलब, यदि तुम इधर-उधर धक्के खानेके बदले स्पष्ट रूपमें और यथार्थ आंतर संकेत ग्रहण करो और उसकी उपेक्षा किये बिना या हिचकिचाये बिना, बल्कि एक ऐसी कठोरताके साथ भी, जो दूसरोंको नापसंद हो — हो तो हुआ करे — उसके अनुसार कार्य करो तो उस हालतमें तुम देखोगे कि तुम एक तरहसे परिस्थितियोंके स्वामी बन गये हो, वे अनुकूलताके साथ व्यवस्थित हो रही हैं और थोड़े समयमें अधिक कार्य करनेकी क्षमता तुममें आ गयी है।

किसी काममें लगनेवाले समयको कम करनेका एक तरीका है और वह है अपनी एकाग्रताको बढ़ाना। कुछ लोग एकाग्र होनेमें असमर्थ होते हैं; एकाग्र होनेपर वे थक जाते हैं। परंतु एकाग्र होना बोझ ढोनेके समान है; तुम इसके अभ्यस्त हो सकते हो। सो, सबसे पहले तुम्हें एकाग्र होनेकी इस शक्तिको आयत्त करना होगा; उसके लिये तुम्हें अपने मनको स्थिर करना होगा और उस

स्थिरताकी अवस्थामें जिस प्रश्नको तुम्हें हल करना है उसपर, जो काम तुम्हें करना है उसपर, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो, एकाग्र होओ, एकाग्रता बनाये रखो। एकाग्रता एक प्रकारकी चालक शक्ति-के साथ आती है जो शांत पर अत्यंत शक्तिशाली होती है; और फिर तुम बिना हिचकिचाये आगेकी ओर बढ़ते जाते हो। उस समय तुम उस कार्यको एक चौथाई घंटेमें कर सकते हो जिसे करनेमें साधारणतया पूरा एक घंटा लग जाता। उससे तुम्हारा बहुत अधिक समय बच जाता है। तुम निरंतर एक कामसे दूसरे काममें लगनेके बजाय एक क्षणके लिये लेट जाओ और पूरा विश्राम लो। विश्राम करनेसे तुम्हारे उन सभी अंगोंको आराम मिल जाता है जिनपर काम करते समय बल पड़ता था, मतलब, उन्हें नयी शक्ति मिल जाती है और तुम फिर नये सिरेसे एकाग्र होना आरंभ कर सकते हो।

वक्तकी मांग

"भगवान् अपने संसारको इतने भयानक रूपसे कष्ट क्यों देते हैं, उसे आटेके समान रौंदते और गूंधते क्यों हैं? क्यों उसे रक्तस्नान कराते हैं और नरकाग्निकी जलती भट्ठीमें झोंक देते हैं...."

(विचार और झांकियां)

सारी समस्या तो फिर यही जाननेकी हुई न कि क्या मनुष्यजाति विशुद्ध स्वर्णावस्था तक पहुंच गई है या उसे अभी परीक्षाओंमेंसे गुजरना है।

एक बात स्पष्ट है कि मनुष्यजाति अभी तक विशुद्ध स्वर्णावस्था तक नहीं पहुंची है। यह बिलकुल प्रत्यक्ष और निश्चित है।

किंतु एक बात विश्वके इतिहासमें हो चुकी है जो यह आशा दिलाती है कि मनुष्योंका एक उत्कृष्ट भाग, कुछ थोड़े से लोग, विशुद्ध स्वर्णमें बदलनेके लिये शायद तैयार हैं। ये लोग ही शक्तिको बिना हिंसाके, वीरताको बिना नाशके और साहसको बिना संकटके अभिव्यक्त करनेकी क्षमता रखते हैं।

किंतु श्रीअरविंद ठीक यही उत्तर देते हैं: "यदि केवल मनुष्यजाति आध्यात्मिक बनना स्वीकार कर लेती!" "मनुष्यजाति" कहनेके बदले हम कहेंगे "व्यक्ति", यदि केवल व्यक्ति आध्यात्मिक बनना स्वीकार कर लेता!

उसका एक भाग खोज करता है, अभीप्सा करता है और बाकीका भाग अस्वीकार कर देता है, वही बना रहना चाहता है जो वह है, वही मिश्रित कच्ची धातु, जिसे तपती भट्ठीमें झोंकना आवश्यक हो जाता है।

इस समय हम पृथ्वीके इतिहासमें एक निश्चित मोड़ पर खड़े हैं, एक बार फिर। सब ओरसे लोग मुझसे पूछते हैं: "अब क्या होगा?" सब ओर चिंता, शंका और भय व्याप रहे हैं। क्या होनेवाला है? इसका केवल एक ही उत्तर है: "यदि केवल मनुष्यजाति आध्यात्मिक बनना स्वीकार कर लेती!"

और शायद यही काफी होगा कि कुछ व्यक्ति विशुद्ध स्वर्ण बन जायं। उनका उदाहरण घटनाओंकी गतिको बदलनेके लिये पर्याप्त होगा। हम इस आवश्यक परिस्थितिके ठीक सामने खड़े हैं, और यह अत्यावश्यक है।

जिस साहस और वीरताकी भगवान् हमसे मांग करते हैं उनका प्रयोग हम अपनी कठिनाइयों, अपूर्णताओं और अपने अज्ञानके साथ युद्ध करनेमें क्यों न करें।

आंतरिक पवित्रताकी भट्ठीका हम वीरतापूर्वक सामना क्यों न करें जिससे हमें एक ऐसे भया-

नक और राक्षसी विनाशमेंसे एक बार फिर गुजरनेकी आवश्यकता न पड़े जो संपूर्ण सभ्यताको अंधकारके गर्तमें गिरा देता है ?

यही समस्या हमारे सामने है और प्रत्येकको अपने ढंगसे इसका समाधान खोजना है।

आज सायं मैं अपनेसे किये गये प्रश्नोंका उत्तर देती हूं और मेरा उत्तर वही है जो श्रीअरविंद-का है: "यदि केवल मनुष्यजाति आध्यात्मिक बनना स्वीकार कर लेती !"

और मैं एक शब्द और जोड़ देती हूं : यही वक्तकी मांग है — कमसे कम मानवी दृष्टिकोणसे।

श्रीअरविंद-वाणी

विकास क्रम

श्रीअरविंद कहते हैं कि "प्रत्येक उपजाति अपने विशिष्ट गुणोंसे, अपनी रचनाके नियमोंसे संतुष्ट है और वह कभी भी एक नयी उपजातिमें परिवर्तित या रूपांतरित होनेका यत्न नहीं करती। कुत्ता कुत्ता बना रहकर ही संतुष्ट होता है, घोड़ा घोड़ा ही बना रहना चाहता है, उदाहरणार्थ वह हाथी बनना नहीं पसंद करता। यहां श्रीअरविंद यह प्रश्न उठाते हैं : क्या मनुष्य भी मनुष्य बना रहकर संतोष पायेगा और क्या वह कभी मनुष्यके अतिरिक्त कुछ और बननेकी अर्थात् अतिमानव बननेकी आवश्यकता भी अनुभव करेगा ?

किंतु यदि तुम श्रीअरविंदके कथनोंके अभ्यस्त हो जाते हो और तब इसे पढ़ते हो, तो तुम्हें लगता है कि तुम्हारी सत्ताकी कोई चीज संतुष्ट नहीं है। शायद कहा जा सकता है कि यहां अत्यधिक बाह्य रूप अर्थात् सत्ताके ऊपरी आवरणका प्रश्न नहीं है। किंतु तुम अपने अंदर एक ऐसी वस्तुको पाते हो जो, वस्तुतः, इस रूपके बहुत आगे जानेकी अदम्य प्रवृति रखती है। जब श्रीअरविंद अपनी बातको इस ढंगमें व्यक्त करते हैं तो वे हमें यही बताना चाहते हैं।

मैंने कई ऐसे पशु भी देखे हैं जो कुछ और बननेकी, एक प्रकारकी आंतरिक आवश्यकता अनुभव करते हैं। मैंने ऐसे कुत्ते, बिल्लियां, घोड़े और कुछ पक्षी भी देखे हैं। उनका बाह्य रूप वही था जो सामान्यतः होता है, पर उनके अंदर कोई ऐसी सजीव और प्रत्यक्ष वस्तु थी जो स्पष्टतया किसी और रूप, किसी और अभिव्यक्तिको पानेका प्रयत्न कर रही थी। और ऐसा प्रत्येक मनुष्य जो पशु-मानवके स्तरसे ऊपर उठ चुका है, इस अर्धपशुके अलावा कुछ और वस्तु बननेकी सच्ची आवश्यकता अनुभव करता है।— यह अर्धपशु अपनी अभिव्यक्तिमें, अभिव्यक्तिके ढंगमें और जीवनके ढंगमें बड़ा असंतोषजनक है। अतएव समस्या यह है : यह अनिवार्य आवश्यकता अपनी अभीप्सामें क्या इतनी प्रभावकारी है कि स्वयं आकार अथवा उपजाति अपना विकास एवं रूपांतर कर सके अथवा यह अकेली वस्तु, सत्ताके अंदरकी यह अमर चेतना आकारके नष्ट होनेपर उससे बाहर आ जायेगी और एक ऐसे उच्चतर आकारमें प्रवेश करेगी जिसका अभी कोई अस्तित्व नहीं है।

अब समस्या यह उठती है कि यह उच्च आकार कैसे उत्पन्न किया जायेगा। क्या यह एक ऐसी विधिद्वारा होगा जिसके विषयमें हम कल्पना कर सकते हैं और हमें सोचना होगा कि यही आकार

थोड़ा-थोड़ा करके एक नये आकारको जन्म देनेके लिये रूपांतरित हो जायेगा, या फिर संसारमें नये आकारको लानेका यह कार्य किसी अन्य विधिसे होगा, एक ऐसी विधिसे जो हमें अभीतक ज्ञात नहीं नहीं है।

दूसरे शब्दोंमें, क्या यह एक सतत प्रक्रियाके द्वारा होगा या अचानक ही एक नयी वस्तु प्रकट हो जायेगी? हम जो कुछ अब हैं और जो कुछ बननेके लिये हमारी आंतरिक सत्ता अभीप्सा कर रही है, इनके बीचमें क्या कोई विकसनशील मार्ग होगा या खाली दरार होगी, दूसरे शब्दोंमें क्या हमें एक नये आकारके प्रकट होनेकी प्रतीक्षामें वर्तमान आकारको छोड़ देना होगा, एक ऐसे आकारके प्रकट होनेकी प्रतीक्षा करनी होगी जिसका हमारे वर्तमान आकारसे कोई संबंध नहीं होगा? क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि यह शरीर जो इस समय हमारी पार्थिव अभिव्यक्तिका ढंग है किसी ऐसी वस्तुमें उत्तरोत्तर विकसित हो सकता है जो एक उच्चतर जीवनको अभिव्यक्त कर सकेगी या यह बात ठीक है कि दूसरे आकारमें प्रवेश पानेके लिये —एक ऐसे आकारमें जिसका पृथ्वीपर अभी कोई अस्तित्व नहीं है—हमें क्या इस आकारको पूर्णतया छोड़ देना पड़ेगा?

यही समस्या है। यदि तुम इसपर चिंतन करना चाहो तो तुम जरा अधिक प्रकाशमें जा सकते हो।

इव प्रवचनके छपते समय श्रीमाताजीने निम्न शब्द और जोड़ दिये थे :—

दोनों क्यों नहीं?

दोनों एक ही समय होंगे, एक दूसरेको बहिष्कृत नहीं करता।

हां, किंतु क्या एक अपने-आपको दूसरेमें रूपांतरित कर देगा?

एक अपने-आपको रूपांतरित कर लेगा और दूसरेकी स्थूल रूपरेखा बन जायेगा और दूसरा पूण बनकर प्रकट होगा जब कि पहलेका अस्तित्व भी बना रहेगा। कारण दोनों वस्तुओंमें सौंदर्य है, दोनोंके अस्तित्वका हेतु है। अतएव वे दोनों मौजूद रहेंगी।

मन सदा चुननेका, एक निश्चय बनानेका यत्न करता है—पर बात ऐसी नहीं है। जिस वस्तुकी भी हम कल्पना कर सकते हैं वह उस वस्तुसे बहुत कम होगी जो अभी आयेगी। सच पूछो तो ऐसे प्रत्येक व्यक्तिका जिसमें तीव्र अभीप्सा और आंतरिक विश्वास है इसे चरितार्थ करनेके लिये आवाहन किया जायेगा।

सर्वत्र, सभी क्षेत्रोंमें सदा और सब समय सब कुछ संभव होगा। और जो कुछ संभव है, वह एक निश्चित समय पर ही घटित होगा—एक विशेष समयपर जो थोड़ा बहुत लंबा हो सकता है, पर वह होगा अवश्य, पशु और मनुष्यमें सब प्रकारकी संभावनायें पायी गयी हैं जो चाहे पीछे स्थिर नहीं रहीं। इसी प्रकार और भी कई प्रकारकी संभावनायें होंगी, प्रत्येक अपने ढंगसे कार्य करेगी, और सब इकट्ठी होकर भावी प्राप्तिको लानेमें सहायता देंगी।

अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या मानव उपजाति एक ऐसी उपजातिके समान बन जायेगी जो पृथ्वीसे लुप्त हो चुकी है? कुछ उपजातियां पृथ्वीसे लुप्त हो चुकी हैं, पर वे उपजातियां नहीं जो मानव जातिके समान लंबे समयतक जीवित रह चुकी हैं। मेरे विचारमें ऐसा नहीं हुआ है। विशेषतया ऐसी उपजातियां तो लुप्त नहीं ही हुईं जिनमें विकासका यह बीज था, प्रगतिकी यह संभावना मौजूद थी। प्रतीत यह होता है कि विकासक्रममें एक ऐसा मोड़ आयेगा जो उच्चतर उपजातिकी ओर अधिकाधिक बढ़ेगा और जो कुछ निम्न उपजातियोंके अधिक निकट होगा वह शायद नष्ट हो जायगा, उन्हीं उपजातियोंकी भांति जो नष्ट हो चुकी हैं।

व्यक्ति यह सदा भूल जाता है कि प्रत्येक वस्तु संभव है—प्रत्येक वस्तु, अत्यधिक विरोधी वस्तुएं भी—वल्कि सभी संभव वस्तुओंका कम-से-कम एक क्षणके लिये तो अवश्य ही अस्तित्व होता है।

भारतका भाग्य

हमारा विश्वास है कि भारतके भाग्यमें यह लिखा है कि वह अपने स्वतंत्र जीवन और सभ्यताका निर्माण करे, संसारका अग्रणी बनकर खड़ा हो और उन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक समस्याओंको हल करे जिनका हल निकालनेमें यूरोप असफल रहा है, किंतु जिनका हल निकालनेकी अपनी चेष्टाको तथा उस चेष्टामें एक परीक्षणसे दूसरे परीक्षणतक, एक विफलतासे दूसरी विफलतातक पहुंचनेके अपने आयासपूर्ण ज्वरमय मार्गको ही वह अपनी प्रगति कहकर पुकार रहा है। हमारे साधन भी उतने ही महान् होने चाहियें जितने महान् हमारे उद्देश्य हैं। और उन उद्देश्योंको अधिगत करनेके लिये साधनोंको खोजने तथा प्रयोगमें लानेकी जो शक्ति है वह तो तभी प्राप्त हो सकती है जब हम अपने अंदर शक्तिके सनातन स्रोतको ढूंढ़ निकालें।

अपने समाजको यूरोपकी प्रतिमूर्ति बनानेकी दृष्टिसे उसके वर्तमान ढांचेको बदलकर हम सामाजिक सुधार कर सकेंगे, ऐसा हमें विश्वास नहीं है। विधवाविवाह, जातपांतकी जगह वर्गपद्धतिकी स्थापना, बाल-विवाह-निषेध, अंतर्जातीय विवाह, अंतर्जातीय भोज तथा समाजसुधारकके बताये हुए अन्य सस्ते इलाज तो ऐसे यांत्रिक परिवर्तनमात्र हैं जो, अच्छे या बुरे जैसे भी हों, केवल अपने बलपर राष्ट्रकी आत्माको जीवित नहीं रख सकते तथा अवनति और विनाशके प्रवाहको रोक नहीं सकते। जीवित रखनेवाली तो केवल आत्मा है और हृदयसे महान् तथा स्वतंत्र बननेसे ही हम सामाजिक और राजनीतिक तौरपर महान् तथा स्वतंत्र बन सकते हैं।

हमें इस बातमें विश्वास नहीं है कि पश्चिमसे लाये हुए धर्म-संबंधी संकीर्ण और हीनतर विचारोंमें सीमित नये संप्रदायोंको बढ़ाते चले जानेसे या हिंदू धर्मकी केवल पोशाक और उसके शरीरको निरंतर बनाये रखनेके लिये संघ स्थापित करनेसे हम आध्यात्मिक स्वास्थ्य, शक्ति और महत्ताको पुनः प्राप्त कर सकते हैं। संसार स्वतंत्र विचार और प्रकृतिवादकी अनिवार्य अराजकतामें से गुजरता हुआ धार्मिक विचार तथा अनुभवके एक नवीन समन्वयकी ओर तथा एक प्रकारके नये धर्मयुक्त ऐहलौकिक जीवनकी ओर बढ़ रहा है। ऐसे जीवनकी ओर जो असहिष्णुतासे विमुक्त होता हुआ भी श्रद्धा और उत्साहसे भरा हुआ हो, जो एकमेव ब्रह्ममें अटल विश्वास रखनेके कारण धर्मके सभी रूपोंको स्वीकार करता हो। जो धर्म भौतिक विज्ञान और आस्तिक-बुद्धिका, प्राचीन ईश्वरवाद, ईसाइयत, इस्लाम और बौद्धधर्मका आलिंगन करता है परंतु इनमेंसे कोई-सा भी नहीं है, उसीकी ओर विश्व-आत्मा गति कर रही है। हमारा अपना धर्म जो सब धर्मोंसे अधिक संदेहवादी और सबसे अधिक विश्वासी है — सबसे अधिक संदेहवादी इसलिये कि इसने सबसे अधिक प्रश्न उठाये और परीक्षण किये हैं, सबसे अधिक विश्वासी इसलिये कि इसके पास गंभीरतम अनुभूति तथा सबसे अधिक विविधतापूर्ण एवं भावात्मक आध्यात्मिक ज्ञान है, — वह विशालतर हिंदूधर्म जो कोई एक मतवाद या मतवादोंका समुदाय नहीं है किंतु जीवनका नियम ह, जो कोई सामाजिक ढांचा नहीं है बल्कि अतीत और भावी सामाजिक विकासकी आत्मा है, जो किसी चीजका निराकरण नहीं करता है परंतु प्रत्येक चीजको परखने और आजमानेके लिये आग्रह करता ह तथा परख और आजमा चुकनेके वाद उसे आत्माके उपयोगमें लानेका आग्रह करता है, उस हिंदूधर्ममें हम भावी विश्वधर्मका आधार पाते हैं। इस सनातनधर्मके अनेक धर्मशास्त्र हैं, वेद, वेदांत, गीता, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, तंत्र; और यह बाइबल या कुरानसे भी इंकार नहीं कर सकता ह; पर इसका वास्तविक, सबसे अधिक प्रामाणिक धर्मशास्त्र तो उस हृदयमें है जिसमें सनातन देवका वास है। अपनी आंतरिक आध्यात्मिक अनुभूतियोंमें ही हम संसारके धर्मशास्त्रोंकी प्रामाणिकता और स्रोतको प्राप्त करेंगे, ज्ञान, प्रेम और आचारके नियमको एवं कर्मयोगकी प्रेरणा और आधारको पावेंगे।

अतएव हमारा लक्ष्य होगा मानवताकी खातिर भारतवर्षके निर्माण किये जानेमें सहायता करना — राष्ट्रवादकी यही भावना है जिसे हम मानते और जिसका हम अनुसरण करते हैं। हम मानवतासे कहते हैं, "वह समय आ गया है जब तुझे अवश्य ही बड़ा कदम उठाना चाहिये और भौतिकताग्रस्त जीवनसे बाहर निकलकर उस उच्चतर, गंभीरतर और विस्तीर्णतर जीवनकी ओर उठ जाना चाहिये जिसकी ओर मनुष्यमात्र गति कर रहा है। जिन समस्याओंने मानवजातिको पीड़ित किया है उनका हल तो केवल अंदरका राज्य जीतनेसे ही किया जा सकता है, —— प्रकृतिकी शक्तियोंको आराम और विलासके काममें लानेसे नहीं, परंतु बुद्धि और आत्माकी शक्तियोंका स्वामी बननेसे, मनुष्यकी बाह्य तथा आंतरिक स्वतंत्रताको स्थापित करनेसे और बाह्य प्रकृतिपर अंदरसे विजय पानेसे। इस कामके लिये एशियाका पुनरुत्थान आवश्यक है, इसीलिये एशिया उन्नत हो रहा है, इस कामके लिये भारतकी स्वतंत्रता और महत्ताका होना अत्यावश्यक है, अतएव वह विधाताद्वारा नियत की गयी अपनी स्वतंत्रता और महत्ताका दावा करता है और यह इंग्लैंड समेत सारी मानवजातिके हितकी बात है कि वह अपने इस दावेको पूरी तरहसे स्थापित कर ले।"

हम भारत राष्ट्रसे कहते हैं, "यह ईश्वरकी ही इच्छा है कि हम भारतीय होकर रहें और यूरोपीय न बनें। हमने अपनी सत्तासे भिन्न किसी अन्यकी सत्ताके नियमका अनुसरण करके जीवनको फिरसे प्राप्त करनेकी चेष्टा की है। हमें इससे लौटना होगा और जीवन तथा शक्तिके स्रोतोंको अपने अंदर ढूंढ़ना होगा। हमें अपने अतीतका ज्ञान प्राप्त करना है और अपने भविष्यके उपयोगके लिय उसे पुनः प्राप्त करना है। हमारा कार्य है —— सबसे पहले अपने आपको जानना और फिर भारतके सनातन जीवन तथा उसकी प्रकृतिके नियमके अनुकूल प्रत्येक वस्तुको ढालना। अतः कर्मयोगीका उद्देश्य यह होगा कि वह हमारे धर्म, हमारे समाज, हमारे दर्शन, हमारी राजनीति, हमारे साहित्य, हमारी कला, हमारे स्मृतिशास्त्र, हमारे विज्ञान और विचार, प्रत्येक वस्तु जो हमारी थी और है उसके हृदयका अध्ययन करें ताकि हम अपने-आपसे, अपने राष्ट्रसे यह कहनेमें समर्थ हों, 'यह हमारा धर्म है'। हम सर्वथा भारतीय विचार और ज्ञानके दृष्टिकोणसे ही यूरोपीय सभ्यताकी आलोचना करेंगे और पश्चिमकी प्रभुत्व जमानेवाली मुह छापको अपने परसे मिटानेका यत्न करेंगे, हमें पश्चिमसे जो कुछ लेना है उसे हम भारतीय रहते हुए लेंगे। और धर्मका एक बार पता चल जानेपर हम उसे माननेका ही नहीं अपितु जीवनगत करनेका, अपने वैयक्तिक कार्योंमें, अपने समाजिक जीवनमें, अपने राजनीतिक उद्योगोंमें सजीव रूपसे चरितार्थ करनेका भरसक प्रयत्न करेंगे।"

हम प्रत्येक व्यक्तिसे कहते हैं और विशेषतया उन युवकोंसे जो अब भारतका काम, संसारका काम, ईश्वरका काम करनेके लिये उठ रहे हैं : "यदि तुम अपने मनोंको यूरोपीय विचारोंका गुलाम बना दोगे या जीवनको भौतिक वा जड़वादी दृष्टिकोणसे देखोगे तो तुम इन आदर्शोंको धारण नहीं कर सकोगे और इन्हें सफल करना तो तुम्हारे लिये और भी कठिन होगा। भौतिक दृष्टिसे तुम कुछ नहीं हो, आध्यात्मिक दृष्टिसे तुम सब कुछ हो। एकमात्र भारतीय ही प्रत्येक चीजपर विश्वास कर सकता है, प्रत्येक काम करनेका साहस कर सकता है, प्रत्येक चीजका बलिदान कर सकता है। इसलिये सबसे पहले भारतीय बन जाओ, अपने पूर्वपुरुषोंकी पैतृक संपत्तिको फिरसे प्राप्त करो। आर्य विचार, आर्य अनुशासन, आर्य चरित्र, आर्य जीवनको पुनः प्राप्त करो। वेदांत, गीता और योगको फिरसे प्राप्त करो। उन्हें केवल बुद्धि या भावनासे ही नहीं अपितु जीवनद्वारा पुनः जीवित कर दो। उन्हें जीवनमें लाओ और तुम महान्, दृढ़, शक्तिशाली, अजेय तथा निर्भय हो जाओगे। तब तुम्हें न तो जीवन भयभीत कर सकेगा और न मृत्यु। 'कठिन' और 'असंभव' शब्द तुम्हारे शब्दकोशोंसे विलुप्त हो जायंगे। क्योंकि एकमात्र आत्मा ही शाश्वत एवं अनन्त बलसे युक्त है और आत्मराज, आन्तरिक स्वराजको जीतकर वापिस ले लेना होगा, उसके बाद ही तुम बाह्य साम्राज्यको वापिस ले

सकोगे। वहां (आत्मामें) ही माता विराजमान है और वह पूजाकी प्रतीक्षा कर रही है ताकि वह शक्ति दे सके। उसमें विश्वास रखो, उसकी सेवा करो, अपनी इच्छाओंको उसकी इच्छामें, अपनी "मैं" को देशकी बड़ी "मैं" में, अपनी पृथक् स्वार्थपरताको मानवताकी सेवामें विलीन कर दो। संपूर्ण शक्तिके स्रोतको अपनेमें फिरसे प्राप्त कर लो तो अन्य सब कुछ तुम्हें आ मिलेगा – सामाजिक स्वस्थता, बौद्धिक प्रमुखता, राजनीतिक स्वाधीनता' मानव-विचार पर प्रभुत्व और संसारका नेतृत्व।"

* * *

मुक्तिदाता परसियस

[श्रीअरविंदने अंग्रेजीमें परसियस दी डेलिवरर, वासवदत्ता, एरिक आदि कई नाटक लिखे हैं जो अभी तक हिन्दीमें उपलब्ध नहीं हैं। हमारी इच्छा है कि श्रीअरविंद शताब्दीसे पहले पहले इन सब-को हिन्दी चोला पहनानेकी कोशिश करें। सच्चे काव्यका अनुवाद करना एक असम्भव सा काम है यह जानते हुये भी अंग्रेजी न जाननेवालोंके लिये हम परसियस दी डेलिवररका छायानुवाद प्रस्तुत करनेका साहस कर रहे हैं। इसके द्वारा मूल कृतिके सौंदर्य और सन्देशका एक अंश भी पाठकों तक पहुंच सके तो हम अपने-आपको धन्य मानेंगे।

हमारे आग्रह पर इस असंभव कार्यको करनेका बीड़ा श्री अनुवेन पुराणीने उठाया है। पुरोधाके प्रत्येक अंकमें नाटकका कुछ भाग आता रहेगा। --सम्पादक]

परसियसकी गाथा

आरगीवका राजा एक्रियस था। एक भविष्यवेताने उसे चेतावनी दी थी कि उसका धेवता उसकी मौतका कारण बनेगा। राजाने मौतसे बचनेके लिये लड़कीको पीतलके मीनारमें बंद कर दिया। किंतु देवोंका राजा जीयस, उस कारागारमें सुनहरी वर्षा का रूप लेकर उतरा और डेनीने एक बालकको जन्म दिया, जिसका नाम था परसियस। डेनी और उसके बालकको बिना पतवार, बिना चप्पूकी एक नावमें बैठाकर असीम समुद्रमें धकेल दिया गया। यहां भी भाग्यने और देवोंने साथ दिया और नौका सेरिफसके द्वीपतक आरामसे पहुंच गयी। वहांके राजाने डेनीका बड़े मानके साथ स्वागत किया। परसियस बड़ा हो गया तो राजाने उसे मौतके घाट उतारनेकी सोची क्योंकि वह खुद डेनीसे विवाह करना चाहता था। इसलिये राजाने परसियसको हुकुम दिया कि वह उत्तरमें अगोचर, अपरिचित और बरफीले शीत प्रदेशमें जाकर गोरगन मेडुसाका सिर काट लाये। माना यह जाता था कि उसके सिरको देखते ही मनुष्य पाषाण बन जाते थे। ज्ञानकी देवी ऐथिनीने हार्पी नामक दिव्य तलवार, हवामें उड़नेके लिये पंखदार जूते, अपनी ढाल तथा अंतर्धान होनेको टीपी देकर उसकी मदद की। अनेक संकटोंमेंसे गुजर कर, अनेक पराक्रम करके मेडूसाका सिर उतार कर लौटते हुए वह सिरियामें आया।

उसने सीरियाके राजा सीफिबस और रानी केसीयोपियाकी बेटी एंड्रोमीडाको समुद्री पहाड़ियोंसे जकड़ा हुआ पाया। वहांकी प्रजाने रानीके समुद्रके देव पोसायडनके प्रति अश्रद्धाके प्रायश्चित स्वरूप उसकी लड़कीको समुद्री दानवका भोग बननेके लिये छोड़ दिया था। परसियसने समुद्री दानवको मारकर एंड्रोमीडासे विवाह कर लिया।

इस रचनामें लेखकने प्राचीन लोककथाके वीर गाथा स्वरूपको छोड़कर शेक्सपियरकी शैलीम (रोमांस) स्वच्छन्द रूपसे एक कहानी कही है जिसके इर्दगिर्द मानव स्वभाव और जीवनके स्पन्दन खुलकर खेल सकते हैं। जिस देशमें नाटककी घटना घटी है वह कल्पना जगत्का सीरिया है, इतिहासका नहीं। यूनानी लोककथाको सेमेटिक जीवनके वातावरणमें, या अरमियन संस्कृतिमें नहीं बैठाया जा सकता। सीफियसकी राजधानीको एक यूनानी आबादी ही समझना चाहिये जहां यूनानी संस्कृतिमें रंगे लोगोंपर एक और ऐचियन राजवंश शासन करता है। वहांकी प्रजा भूमध्य सागरके आसपासकी प्रथाके अनुसार पुरातन देवको यूनानी नाम देकर, उसकी पूजा करती है। इस तरहकी काल्पनिक स्वच्छन्द रचनामें इतिहासका उल्लंघन क्षम्य है। आइंस्टाइनने समयको सापेक्ष बताया है, यहां हम उससे भी एक कदम आगे बढ़ जाते हैं। सर्जनात्मक कल्पना ही उसकी एकमात्र व्यवस्थापक नियति है। यहां अद्भुतरूप सृष्टिका ही साम्राज्य है। पुरातन देशों और प्रजाओंके नाम सिर्फ पृष्ठभूमि सजानेके लिये झालरके रूपमें आते हैं। कालकी भूलें तो मानों जहां तहां घूमती फिरती हैं। विभिन्न देशों और युगोंके विचार और रीति-रिवाज घुलमिल जाते हैं। कपोल कल्पना, रोमांस और वास्तविकतासे मिलकर पूर्ण इकाई बनती है। यहां हर काल ही रंगमंच है। मानवका शाश्वत मन ही विषय है। बाहरसे काफी विकसित, सुसंस्कृत दीखनेवाली मानव जातिके मनका अर्ध जंगली अवस्थासे अधिक बौद्धिक और मानवीय अवस्थाकी ओर बढ़ना ही उसका विषय है। बाहरसे शिष्ट और सुसंस्कृत दीखनेवाले इस मानव स्वभावके नीचे भी अंधकारमय, हिंसात्मक जीवन शक्तियां पराभूत होकर भी सोयी हुई या दबी पड़ी रहती हैं और उनका फिरसे बाहर उछल पड़ना असंभव नहीं है। यह रचना मानव मनमें गंभीर उच्चतर आत्माके और आध्यात्म शक्तिके उत्थानका प्रथम सोपान है क्योंकि मनुष्यका भविष्य इसी दिशामें है।

प्राक्कथन

विक्षुब्ध समुद्रमें कोलाहल, आकाशमें झंझावात। पालस ऐथिनी नभमें प्रकट होती है। उसके सिरके ऊपर और पैरों तले बिजलियां कौंधती हैं।

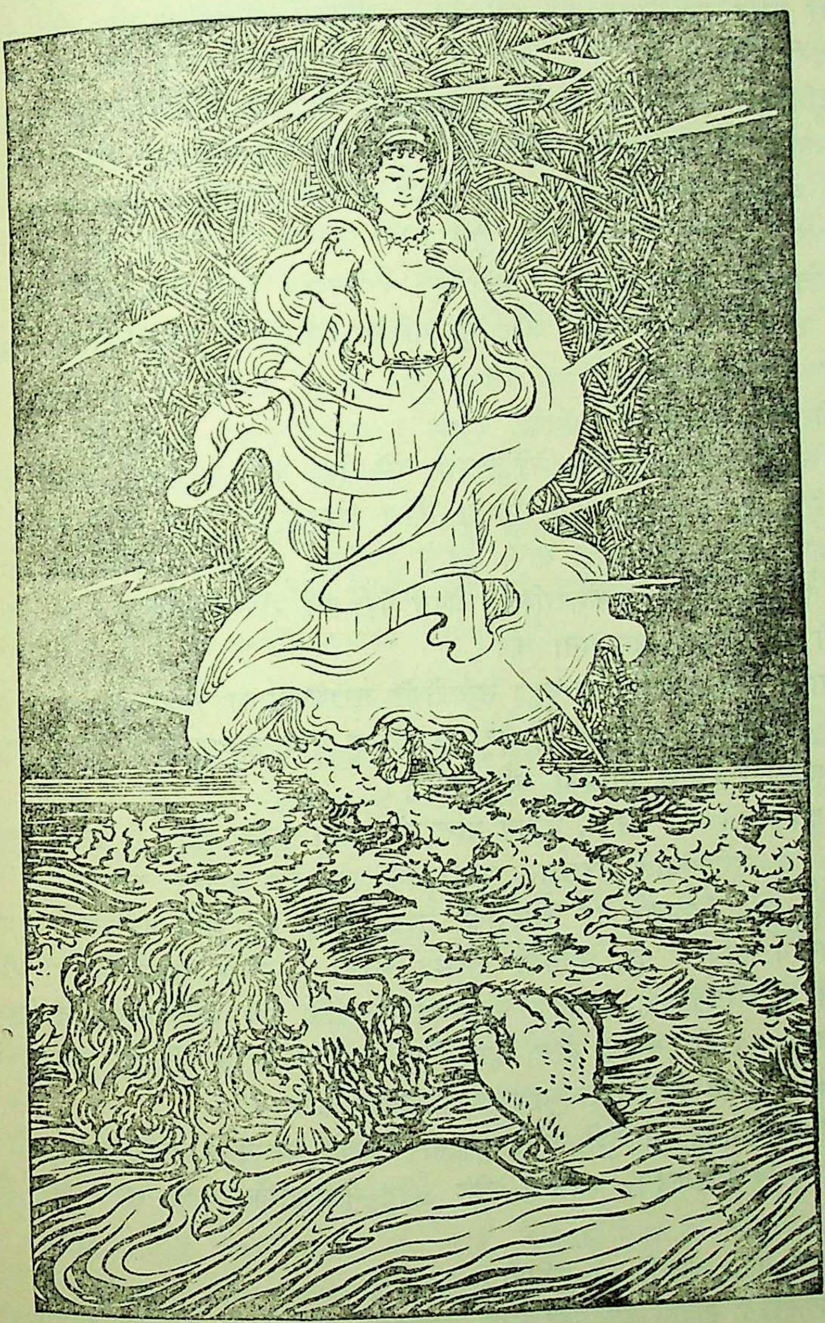

ऐथिनी — भूले भटकते और उसको धरतीपर आप्लावित करते जलप्रवाहरूपी हे विशाल सागर, तेरी लोलुप लहरें शिकारकी खोजमें अपने नीले खूंखार नथुनोंको फड़काती आगे बढ़ रही हैं। उन्हें अपने पैरोंकी ओर वापिस खींच ले। मेरे दैवी आदेशको सुन और अपनी चंचल तरंगोंको शांत कर। मेरे संकल्पको पूरा कर।

समुद्रकी आवाजें — अदम्य प्रवाहोंपर अपना प्रशांत अधिकार जतानेवाली तुम कौन हो?

ऐथिनी — मैं पालस हूं। सर्वशक्तिमान्‌की पुत्री।

आवाजें — तुम्हें क्या चाहिये? तुम्हारा विरोध करना असंभव है। तुम्हारे संगमरमरसे श्वेत चरणोंके आगे हमारे उद्विग्न हृदय सहमेसे खड़े हैं।

ऐथिनी — अपने विकट पोसायडनको जगाओ और उठाकर मेरे सामने प्रस्तुत करो।

आवाजें — समुद्र अभी नीरव है, तुम्हारी ललकार ही उसे जगानेके लिये काफी है।

ऐथिनी — उठ ओ असीम सागरके स्वामी पोसायडन, उठ, अपनी लहराती नीली केशराशिको तरंगोंके फेनसे विभूषित करके दिनके प्रकाशमें प्रकट हो।

(पोसायडन पानीके ऊपर दिखाई देता है।)

पोसायडन — किसकी प्रशांत गभीर आवाज अतल गहराईको छेदती हुई, मुझे पाषाण शैयासे उठनेके लिये बाधित कर रही है ?

आवाजें — आकाशमें शुभ्र सामर्थ्यकी मूर्ति खड़ी है।

पोसायडन — आह, तुम कितनी सुन्दर, गौर और प्रशांत हो। फिर भी तूफानोंको लपेटे हुए। देवी, तुम्हारे ऊपर बिजलियोंसे घायल आकाश कांप रहा है। तुम्हारे शुभ्र, शांत, चरणोंसे समुद्र दूर भागा जा रहा है। तुम्हारी शांति मुझे बेचैन कर रही है। ज्योतिमें बसनेवाली तुम कौन हो ?

ऐथिनी — मैं हूं एथिनी।

पोसाडयन — पुरानी दुनियाको अस्तव्यस्त करनेवाली सौंदर्यकी अद्वितीय कुमारी ! तुम हमेशा शाश्वत जगत्को क्षणभंगुर मनुष्यके अधीन करना चाहती हो। पर्वतोंको हिलाती, समुद्रोंमें भी खलबली मचाती हमारी प्रचण्ड शक्तिको तुम अपने दिमागसे उड़ते स्वप्नोंके अधीन रखना चाहती हो और हमारा दमन करके हमपर शासन करना चाहती हो।

ऐथिनी — मुझे सर्वशक्तिमान्ने अपनी सत्तामेंसे रचा है। मनुष्यमें विराजमान अमर आत्माको समस्त बाह्य जगत्पर अद्भुत प्रभुत्व पाने और सुव्यवस्थित करनेतक राह दिखाना और नियंत्रणमें रखना मेरा काम है।

पोसायडन — तुम मुझसे क्या चाहती हो ?

ऐथिनी — धरतीकी शक्तियोंने समर्पण भावसे मेरे चरण चूमे हैं। वे मुझे जैतून, अनाज और असंख्य फल, पहाड़ियोंके गर्भसे चांदी, संगमरमर, और लोहेका नैवेद्य चढ़ाती हैं। अग्नि मेरा गुलाम है परंतु, तुम पोसायडन, तुम अपने अनेक देवताओंके साथ, हवासे उच्छृंखल पंखोंपर मेरा विरोध करते हो। चट्टानोंके विजेता, मैं तेरी बहती नीली केशराशिको अपने पैरों तले रौंदने आयी हूं। चट्टानोंको डुलानेवाले पोसायडन, अपनी साम्राज्ञीकी आराधना कर।

पोसायडन — ओ उग्र आतंककारी ऐथिनी, इन बृहद् सागरोंकी अराजकताका राज्य मेरा है। मेरे सिरके एक झटकेसे ही लहरें तरंगित हो उठती हैं। मनुष्यके निर्बल पांव उनपर कोई निशान नहीं छोड़ते और न मेरी चपल लहरोंपर उसके भाग्यका अधिकार है।

ऐथिनी — तेरा असीम दुर्धर्ष जल देश देशको, मानव मानवको अलग करता है। मैं उन्हें मिलाकर एक करना चाहती हूं। हे गरजनेवाले उच्छृंखल सागर, मैं उसे तेरे जलपर चलाऊंगी। मैं प्रेरणा देकर उसे पोले भुरभुरे वृक्षोंमें बिठाकर तेरे शिखरोंकी उपेक्षा करते हुए आगे बढ़ाऊंगी। वह मेरे ऊपर विश्वास करके असीम सागरमें कूद पड़नेकी हिम्मत करेगा। उसके द्वारा भारत और पश्चिमका मिलन होगा, आगे बढ़ते-बढ़ते मेरी उज्ज्वल छत्रछायामें बर्फीले थके मांदे उत्तरी द्वीपोंतक वह पहुंच पायेगा। तेरे प्रचण्ड तूफानी वेगोंके बीच व्हेल जैसा विशाल प्राणी भी पिस जाता है किंतु बौना मानव उछलती आगके यंत्र लिये तेरे क्रुद्ध जलपर चढ़ाई करेगा।

इसलिये हे बलशाली नील पोसायडन, मैं तुझे अपने तूफानी वेगोंको थामनेका हुकुम नहीं देती। तू उसके बढ़ते कदमोंका जरूर विरोध कर। क्योंकि मौत और मुसीबतोंके धक्के खा खाकर ही मानव देवत्वको पा सकेगा।

पोसायडन — तो फिर तुम क्या चाहती हो ऐथिनी ?

ऐथिनी — परले निर्मम किनारेसे साहसी व्यापारी और टायरासे आतलांतिक समुद्रतक व्यापारकी धुनमें भटकते मानवको तेरा त्रिशूल निर्दयतासे नुकीली पहाड़ियोंपर पटक देता है। जो वहांसे बच निकलते हैं उन्हें सीरियाकी खुशमिजाज और जंगली प्रजा तुझे प्रसन्न करनेके लिये तेरी बलिवेदीपर चढ़ा देती है। सीरियाके किनारेके मोलोक-पोसायडन, गाजाके डागोन ! अनेक नामोंके स्वामी, अनेक प्रकृतियोंके ईश्वर ! एक ही शक्तिके अनेक रूप लेकर तू फिलिस्टीयासे उत्तरतक एक अभिशाप और

हौवा बनकर राज्य करता है। हे लौह सम्राट्! इस खून खराबेसे बाज आ, शुभ अर्घ्यको अपना और मानवको जीने दे।

पासायडन —ऐथिनी, मेरे सागर-साम्राज्यको देख। लहरोंके फेनिल-श्वेत शिखर क्षितिजकी सीमाओंको भी तोड़ते हुए वेगसे बढ़ते जाते हैं। उसके ओजको सराहो। उनकी गर्जना और विद्युत् गतिको सराहो। हरे खुर और श्वेत केसरवाले मेरे ये अश्व सब कुछ कुचलते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। मेरी अनेक प्रबल ध्वनियोंसे धरा गूंज उठती है। क्या मैं इन भव्य विप्लवी सागरोंको एक रास्ता बन जाने दूं? निरंकुश सागरको व्यापारका राजमार्ग हो जाने दूं?

क्या तेरे क्षणभंगुर मानवकी नाजुक नावें मेरे विशाल उदधिकी पीठपर विजय पाकर गुलामीकी लकीरें खींचेंगी? असीम सागरको तुच्छ मानव जीत कर पालतू बनाएंगे? मैं पीछेसे आनेवाले नरम-दिल देवताओंमेंसे नहीं हूं। मैं पुरातन सृष्टिका देव हूं, लमुरिया और पुराना एटलांटिस मेरी पूजाके लिये रक्तरंजित वेदियोंकी स्थापना करते थे। मेरे विशाल नथुनोंमें अभीतक उस खूनकी सुगंध भरी हुई है। आज भी मेरे नथुने खूनके लिये फड़कते रहते हैं। जाओ, पालस ऐथिनी, अपने स्वर्गमें वापिस चली जाओ, मैं भी समुद्र-गुफाके गहरे अंधकारकी ओर चलूं।

ऐथिनी —तो आ जा, युद्धमें अपनी समर्थ लहरोंको मेरी ढालके साथ टकरानेके लिये तैयार हो जा। तू सागरोंकी गहराईमें जाकर मुझसे छिपनेकी न सोच। क्योंकि मैं तेरे सागरोंको धरती पटलसे उड़ा दूंगी और तुझे प्रकाशके आगे नंगा छोड़ दूंगी।

पोसायडन —भैरव कुमारी! तेरे युद्ध कौशलसे मैं टक्कर नहीं लूंगा।

ऐथिनी —तो अपने एक प्रतिनिधिको मेरे प्रतिनिधिसे लड़नेके लिये भेज। पोसायडन, चलो उनकी हार जीत ही हमारे भाग्यका निर्णय करे।

पोसायडन —तेरा प्रतिनिधि कौन है?

ऐथिनी —दिव्य ओलिमपसके स्वामीका पुत्र परसियस। एक्रीस्यिसकी बेटी, डेनीने पीतलके मजबूत मीनारमें, सोते हुए दिव्य कुंदन वर्ण देवका वरण करके उसे जन्म दिया था। यह वालक उस ओजस्वी सुवर्ण-वर्षाकी देन है।

पोसायडन —ओहो! वही न जो भविष्यमें दादाका हत्यारा बनेगा? किंतु मेरे सागर-दैत्योंके तीखे दांत और आग उगलते निःश्वास उस हत्याको रोक देंगे। अच्छा ऐथिनी अब विदा!

ऐथिनी —जबतक मैं तेरी भीमकाय नील केसरपर अपने पांव न जमाऊं, जबतक तेरे समुद्रोंको अपने बढ़ते साम्राज्यमें न मिला लूं तबतकके लिये अलविदा।

(पोसायडन समुद्रमें अदृश्य हो जाता है।)

लो उसने सागरकी गहराईमें डुबकी लगा ली। डुबकीके कारण अलग हुआ पानी कड़कती गरजनाके साथ धीरे-धीरे उसके डरावने सिरपर स्थिर होता जा रहा है। धीरे-धीरे परसियस उत्तर-के बरफीले प्रदेशसे सूर्यमें नहाते इस सुन्दर प्रदेशमें उड़ा आ रहा है। रातके अंधेरेमें तुझे यह भी नहीं मालूम कि तू किस मार्गपर है। किंतु अब उषा आ पहुंची और पृथ्वीके सुदूर क्षितिजपर सूर्यका उदय हो रहा है। इसी तरह तू भी सीरिया और गुलाबसी सुकोमल ज्योतिपुंज एंड्रोमीडाके लिये उदित होगा। हे सुविख्यात वीर! आनंदमग्न रहो! पवित्र ऐथिनीके प्रशांत सामर्थ्यको धारण करनेवाले! प्रेममें आनंद लो, जीवनका आनंद लो।

(ज्योतिमें अदृश्य हो जाती है)

अंक १, दृश्य १

समुद्रकी उग्र तरंगोंकी मार खाता हुआ जमीनका किनारा त्यौरी चढ़ाये हुए टीलोंसे घिरा हुआ दीखता है।

(सीरियस, डायोमिडी)

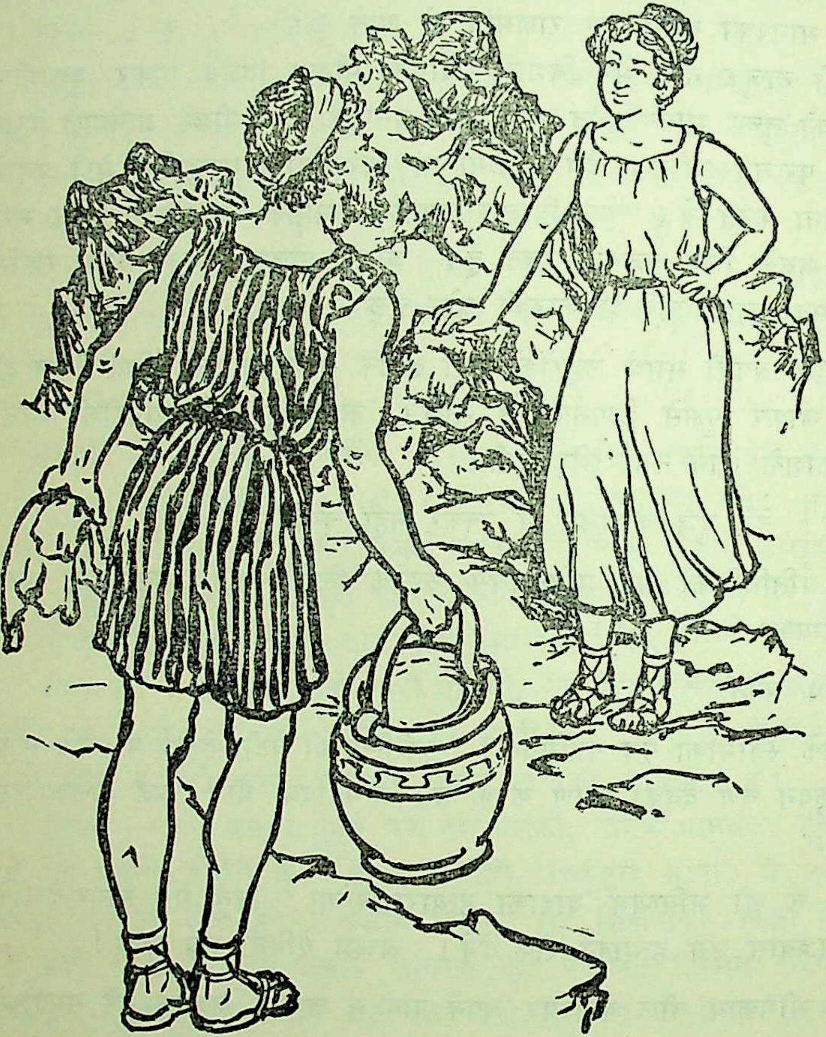

सीरियस — डायोमिडी अरे तुम ! इतनी जल्दी और इस आवारा और तूफ़ानी मौसममें यहां !

डायोमिडी — मुझे तो मौसममें कोई नुक्स नहीं दिखता सीरियस ! सूर्य चमक रहा है और हवामें उल्लास है।

सीरियस — बादलोंने रो रोकर जी हल्का किया है, पवन फिर भी पागलोंकी भांति चिल्ला रहा है और समुद्र गुस्से में गरजता जा रहा है। क्या सवेरे सवेरे मालिकिन एन्ड्रोमीडाने पोसायडनको नैवेद्य चढ़ानेके लिये भेजा है ? या तुम खुद समुद्रकी ठंडी ठंडी हवासे अपने गुलाबी गालोंको और भी गुलाबी बनानेके लिये घूम रही हो ?

डायोमिडी — मेरी मालिकिन तुम्हारे पोसायडनकी उतनी ही परवाह करती है जितनी मैं तेरे जले भुने, त्यौरियां चढ़ाये हुए पुजारी पोलिडियोनकी। लेकिन सीरियस, तुम अपनी लाल नाकको समुद्रकी हवामें और ज्यादा रंगने आये हो या अपने परम पावन मालिकके सोटोंकी पपड़ियोंको हवा देने आये हो ?

सीरियस — अरे मुझे मंदिरमें बैठे उसी नीले बालोंवाले खूंसटको धोनेके लिये समुद्रके पानीकी बालटियोंपर बालटियां ले जानी हैं। अरे ऐसा हड़बड़िया, तूफ़ानी कंजूस भाड़में जाय। मैंने उसे इन अठारह वर्षोंतक धोया, पोंछा, रगड़ा और कपड़ोंसे लादा फिर भी उसने एक बार भी तो अपने समुद्रमेंसे कोई ऐसी टूटी-फूटी नौका नहीं भेजी जिससे मुझे चार पैसे मिल जाते। किसी डूबती राजकुमारीके सुनहरे रत्नजटित कंगन या रोडियाके व्यापारियोंके मखमली अस्तरमें रखे हुए बहुमूल्य कलश मुझे दे देनेसे वह दिवालिया नहीं हो जायगा। इधर मैं, इतना जरा सा पाकर ही अपनी आजादी खरीद सकूंगा।

डायोमिडी — शायद उसे इसी बातका डर है। मेरे प्रिय सीरियस, तेरे जैसे अच्छे मालिश करनेवालेको कौन छोड़ना चाहेगा?

सीरियस — हे भगवान्! मुझे पता होता तो मैं उसके शरीरको पन्द्रह दिनतक अनधुला रहने देता, वह पड़ा पीठ खुजाता रहता। किंतु इन देवताओंका कुछ भरोसा नहीं, इनके साथ मजाक करना टेढ़ी खीर है। उनके अस्तवलमें काफी दानव यूं ही डोलते रहते हैं जो जरा-जरा सी बातपर अपराधीको हड़प कर, मुंह पोंछ लेनेके लिये तैयार रहते हैं।

डायोमिडी — और सीरियस, बलिदान अच्छी तरह चल रहे हैं न? मैं आशा करती हूं तुम इस गरमीकी ऋतुमें अपने देवको मजेदार स्वादिष्ट खाना खिलाकर शांत रखते हो।

सीरियस — आह बेचारा बूढ़ा पोसायडन! आजकल उसे सिर्फ बकरियां और समुद्री केकड़ें मिलते हैं और जिसकी जीभको फीनिक्सवालोंके मांसका मजा लग गया हो उसके लिये तो यह सब बेमजा है। लेकिन गलती उसीकी है, उसे तूफान ला लाकर ज्यादा नौकाएं डुबानी चाहिये। इधर दिनपर दिन काले कलूटे पोलिडियनका मुंह रोषसे और भी काला होता जा रहा है। सिबिलका बेटा ज्यूपिटर जैसे पागल सांड बनकर घूमता था वैसे ही मेरा मालिक बौखला उठेगा। मुझे डर है कि कहीं किसी दिन भग्न नौकाके फीनिसियावासियोंकी जगह मुझे ही बलिवेदीपर न ढकेल दे। मैं हमेशा डरसे कांपता रहता हूं कि न जाने कब उस कलमुंहेकी छुरी मेरे हृदयकी खोजमें मेरी छाती टटोलने लगे।

डायोमिडी — तो तुम उसे पहलेसे ही बता रखो कि तुम्हारा हृदय बीस सेर चरबीके नीचे तोंदमें छिपा है। तब उसे कम काट-छांट करनी पड़ेगी और तुम्हें भी छुटकारा मिल जायगा।

सीरियस — चल भाग यहांसे! तू एक पानीके देवताकी व्यालूके लिये मुझे चिरवाना चाहती है? बस यही है तेरा स्नेह?

डायोमिडी — भगवान् न करे ऐसा हो, प्रिय सीरियस, अगर तुम अकालमें ही नरककी ओर चल पड़े तो सीरियाकी आधी धूर्तता और दुर्जनता तुम्हारे साथ चली जायगी।

सीरियस — चल, दूर हट यहांसे लंबी मुंहफट कहींकी। बेहूदा फबतियोंकी दुम। लेकिन ठहर, पहले मुझे बताती जा, राजमहलकी क्या खबर है? लोग कहते हैं कि राजा फीनियस राजकुमारी ऐन्ड्रोमीडासे शादी करेगा?

डायोमिडी — हां, लेकिन तभी जब राजकुमारी ऐन्ड्रोमीडा राजा फीनियससे शादी करे! अरे यह क्या हो हल्ला है?

सीरियस — मुसीबतमें फंसे बहुतसे आदमियोंकी चीख लगती है। (एक पहाड़ीपर चढ़ जाता है।)

डायोमिडी — हाय भगवान्, कैसी भयानक आवाज थी। जरूर सायडोन या नील नदीकी कोई शाही नाव हमारी पथरीली जमीनसे टकरायी है।

सीरियस — फीनिसियाकी एक बड़ी नाव भंवरमें पड़ गयी है और गोल-गोल घूम रही है। लोग जी जानसे चप्पू चला रहे हैं, लेकिन बेकार! वह देखो, कड़-कड़ करती हुई नाव धमाकेके साथ चट्टानके फौलादी पंजोंसे टकराती है। उसके नाजुक शरीरको पथरीले पंजे फाड़ रहे हैं। सफेद नौका लहरोंके थपेड़ोंसे चट्टानोंपर गिरकर सताई हुई औरतकी भांति चिल्लाती है। चारों ओरसे आदमी लंबी सेमसे गिरते दानोंकी भांति लुढ़कते जा रहे हैं। कुछ हांफते, कांपते, डूबते, उतराते जल प्रवाहमें बहने लगते हैं और चट्टानोंसे टकरा-टकराकर चकनाचूर हो रहे हैं।

डायोमिडी — ओह, देखने लायक दृश्य होगा! सीरियस, मुझे ऊपर उठा न।

सीरियस — ना, ना, मुझे दौड़कर बूढ़े बदमिजाजको खबर देनी चाहिये कि भयानक पोसायडनके लिये ताजा मांस आ गया है। (वह दौड़ता हुआ उतरता है और भागा चला जाता है।)

डायोमिडी –– अरे बेमुरव्वत कुत्ते ! इन अठारह महीनोंमें यह पहला पोत-ध्वंस है और मैं इसे न देख पाऊंगी ! मैं कोशिश करके पहाड़ीपर जरूर चढ़ूंगी, हाथ पांव तुड़वाकर हर्जाना देना पड़े तो भी कोई बात नहीं। (वह दूसरी दिशामें चली जाती है।)

(क्रमशः)

* * *

श्रीअरविन्द

––अनुबेन पुराणी

भारतपर अनेक परदेशी आक्रमण होते रहे हैं परंतु भारतकी सशक्त सुन्दर संस्कृतिने उन सब विजेताओंको अपने अंदर समा लिया। परिणामस्वरूप विजेता सांस्कृतिक रूपसे देशकी संस्कृतिसे हार गए और भारतमें परदेशीके रूपमें न रहकर भारतवासी बन गए। शक, हूण आदि न जाने कितनी जातियां आयीं और भारतीय बनकर यहींकी हो रहीं। मुसलमान पूरी तरह आत्मसात् न हो पाए लेकिन उनपर भी भारतीय रंग चढ़े बिना न रहा। हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति जब कमजोर हो गई तब यूरोपीय संस्कृतिने उसपर आक्रमण किया, परिणाम यह हुआ कि भारतीय अंग्रेजी संस्कृतिको बिना समझे ही अपनाने लगे। भारतीय संस्कृति उन दिनों घोर संकटमें थी और तब अपना दिया हुआ वचन ––

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

पूरा करनेके लिये श्रीअरविंदने जन्म लिया। वे एक पूरे पाश्चात्य रंगमें रंगे हुए पिताके घर १५ अगस्त १८७२ को जन्मे थे। श्रीअरविंदके पिता डा. कृष्णधन घोष और माता श्रीमती स्वर्णलता देवीके पांच संतानें थीं। श्रीअरविंदसे बड़े दो भाई विनयभूषण और मनमोहन थे, तथा छोटे भाई बारीन और उनसे छोटी बहिन सरोजिनी। महान् व्यक्तिके स्वतंत्र विकासके लिये घरकी छोटी परिधिसे अलग रहना बड़ा हितकर होता है इसीलिए परिस्थितियां ऐसी बन गईं कि पांच वर्षकी कोमल आयुमें ही श्रीअरविंदको पढ़नेके लिये दार्जिलिंग भेजा गया। दार्जिलिंगका लोरेतों कन्वेंट स्कूल खास तौरपर भारत आये अंग्रेज अफसरोंके बच्चोंके लिये ही था। वहां ज्यादातर अंग्रेजोंसे ही हेल-मेल रखना पड़ता था। परिणामस्वरूप उन्हें अपनी मातृभाषा बंगला बिलकुल न आती थी। इसके अलावा जब वह घरपर रहते थे तब भी डा. घोषकी इच्छानुसार उनसे अंग्रेजी या हिंदुस्तानीमें ही बातचीत होती थी। १८६४ में श्रीअरविंदको उनके माता-पिता दो बड़े भाइयोंके साथ इंगलैंड ले गए। इस सात वर्षकी छोटी आयुमें परदेशमें अपरिचित व्यक्तियोंके पास रहकर वे विद्याभ्यास करने लगे। श्रीअरविंदकी आयु स्कूल जाने लायक न थी। इसलिये उनके अभिभावक ड्रूएट दम्पति उन्हें घरपर ही गणित, इतिहास, यूनानी तथा लैटिन पढ़ाया करते थे। इंगलैंडमें रहते हुए श्रीअरविंदको कई तरहकी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा। पर जिस भारके नीचे निर्बल दबकर मर जाते हैं उसी भारको सहकर सशक्त और अधिक बल प्राप्त करते हैं। स्कूल तथा कालेजमें उनके अध्यापकोंकी राय उनके बारेमें बहुत अच्छी रही।

पढ़ते-पढ़ते श्रीअरविंदने अपने एक ध्येयको पहचाना। वह था साहित्य-सृजन। वे इंगलैंड जाते ही सात वर्षकी छोटी आयुमें फावस फेमिली-मैगजिनके लिये लड़कपनके सहज भावसे कविताएं लिखते थे। आगे चलकर उनकी काव्यधारामें यौवनका गांभीर्य आने लगा। इसी बीच अध्ययनमें उन्होंने दो विषयोंमें दो पुरस्कार पाए। साधारण विद्यार्थीके लिए कालेजका अभ्यास ही काफी होता है। परंतु श्रीअरविंदने उसके साथ-साथ उन दिनोंकी बड़ी कठिन मानी जानेवाली आई. सी. एस. की परीक्षा की तैयारी बिना किसी अध्यापककी सहायताके शुरू कर दी।

इसी बीच श्रीअरविंदने एक नये प्रेमको पाया, वह था देश-प्रेम। सुदूर इंगलैंडमें रहते हुए भी भारतकी पुकार नियतिने किसी-न-किसी प्रकार उनके कानोंतक पहुंचा ही दी। उन्हीं दिनों इंगलैंडमें भारतीय विद्यार्थियोंने अपनी राष्ट्रीय मजलिसका श्रीगणेश किया था। उसकी बैठकोंमें पहली बार श्रीअरविंदने अपने देशकी पराधीनताका विकराल रूप देखा। परिणामस्वरूप वे इतने आंदोलित हो उठे कि देशको स्वतंत्र करना उनके जीवनका ध्येय बन गया। इसीलिये आई. सी. एस. की परीक्षामें हजारोंके बीच ग्यारहवें स्थानपर उत्तीर्ण होनेके बाद भी उन्होंने अश्वारोहणकी परीक्षामें अनुपस्थित रहकर अपनेको अयोग्य सिद्ध कर लिया। भारतीय संस्कृतिने श्रीअरविंदके हृदयकी गहराइयोंको छू लिया था। श्रीअरविंदके पिता डा. घोष अपने बेटेके उज्ज्वल भविष्यकी प्रथम किरणोंको देख चुके थे। परंतु कालने उनके साथ बड़ा क्रूर व्यंग किया। १८९३ में जब श्रीअरविंद कार्थेज नामक जहाजसे भारतके लिए रवाना हुए तब डा. घोषको जहाज कम्पनीने भूलसे जहाजका गलत नाम बता दिया। दुर्भाग्यसे वह जहाज समुद्री तूफानमें डूब गया। इस समाचारके आघातसे डा. घोष एकदम बीमार पड़ गए और दशरथकी नांई पुत्रका नाम रटते रटते इस संसारसे चल बसे।

श्रीअरविंद सही-सलामत अपने देशमें आ पहुंचे। भारतने अपने इस बिछुड़े हुए पुत्रको गोदमें लेते ही उसे अभूतपूर्व शांतिका उपहार दिया। यह शांति सब तरहके दावानल तथा आंतरिक भूचालोंके बीच श्रीअरविंदकी चिरसंगिनी बनी रही। बड़ौदेमें बाहरी रूपसे प्रोफेसरी करते हुए श्रीअरविन्दने अंदर-ही-अंदर राजनीतिक विचारोंको मूर्त रूप देना शुरू कर दिया।

जिन भारतीयोंको श्रीअरविंदके अधीन अध्ययन करनेका अवसर मिला वे उनके भाषणोंको या उनको कभी भूल न सके और उनका संपर्क कइयोंके लिये पारसमणिका स्पर्श बन गया। इन भाषणोंने अनेक विद्यार्थियोंके जीवनकी दिशा बदल दी।

श्रीअरविंद सारे देशमें निर्भीक सैनिकोंके छोटे-छोटे दल बनाना चाहते थे, इन दलोंद्वारा सारे देशमें एक ही साथ गोरीला युद्ध शुरू करवाकर अनुशासनहीनताका राज्य फैलाना चाहते थे जिससे विदेशीकी जड़ें हिल उठें। श्रीअरविंदके लिये भारत नदी, पहाड़ और मैदानोंसे युक्त एक भूभाग ही न था उन्हें इन चीजोंके पीछे इस देशकी आत्माके दर्शन होते थे। वे चाहते थे कि उनके देशवासी भी इस आत्माके, भारत माताके दर्शन कर सकें। इसी उद्देश्यसे उन्होंने भवानी मंदिरकी योजना बनायी। इस मंदिरमें पूजा करनेका अधिकार केवल उन व्यक्तियोंको था जो मांके चरणोंमें अपना सब कुछ न्यौछावर करनेको तैयार हों।

बड़ौदेमें रहते-रहते उनकी अभिरुचिका काम साहित्य-सृजन जोरोंसे चलता रहा। इस साहित्य-सृजनने उनके देशप्रेमके रंगमें रंगकर एक नया रूप पाया। कोमल भावोंका कवि अंगार बरसाती वाणीका स्वामी बना। उनके इन्दु प्रकाशमें प्रकाशित न्यू लैम्प्स फार ओल्ड नामक लेखोंने न सिर्फ साधारण जनतामें बल्कि नेताओंमें भी खलबली मचा दी। ऐसी खलबली मचानेवाला व्यक्ति देशनेताओंको आकर्षित किये बगैर रह नहीं सका। गर्मदलके नेता तिलकको उनकी ओर आकर्षण हुआ और दोनोंने मिलकर सूरतमें होनेवाली कांग्रेसके लिये सम्पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव निश्चित किया। सूरत कांग्रेसमें क्या हुआ वह सब जानते हैं। जिस कांग्रेसको असंतोषके वाष्पको निकालने-

के लिये एक छोटेसे छिद्रके रूपमें बनाया गया था वही कांग्रेस अंग्रेजी राजतंत्रको तोड़ने फोड़ने पर उतारू हो गई थी। सरकारके लिये गर्मदलकी यह विजय मियांकी जूती मियांकी चांद बन गई। इससे विक्षुब्ध होकर सरकार गर्मदलके सब नेताओंके पीछे लट्ठ लेकर पड़ गई।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीअरविंदने भारतमें आते ही जाने अनजाने योग करना शुरू कर दिया था। बड़ौदेमें रहते समय वे नर्मदातटपर स्थित कनाडी गांव गए थे। वहां टहलते-टहलते वे काली मंदिरमें जा पहुंचे तो उन्हें मूर्तिके अंदर जीवित जागृत व्यक्तित्त्वका आभास हुआ। इस अनुभवने उनके मूर्ति-पूजा संबन्धी विचारोंको बदल दिया। प्रकट रूपमें इस अनुभवके बाद श्रीअरविंदने श्रीविष्णु भास्कर लेलेके पास जाकर योगाभ्यास शुरू किया। लेलेने उन्हें अपने मनको सब विचारोंसे मुक्त करके नीरव मन (वैकन्ट माइंड) का अनुभव करनेके लिये कहा। हम सभी जानते हैं कि पांच मिनट भी मनको नीरव रखनेके लिये वर्षोंकी साधना चाहिये परन्तु पार्वतीके विद्याभ्यासकी भांति श्रीअरविंदके प्रयासके साथ ही सब योग शक्तियां उनकी ओर चल पड़ीं। कुछ ही दिनोंमें उन्हें नीरवता प्राप्त हो गई। श्रीअरविंद अपनी देशव्यापी क्रांतिकारी योजनाको रूप दे सकें उसके पहले अंग्रेज सरकारने २० जुलाई १९०५ में बंगाल विभाजनकी घोषणा करके सारे देशमें उत्तेजना फैला दी। इसके कारण अपरिपक्व दशामें ही उत्तेजनासे अभिभूत होकर श्रीअरविंदके कई कार्यकर्त्ताओंने अंग्रेजी अफसरोंपर अन्धाधुन्ध गोली दागना शुरू कर दिया। नतीजा यह हुआ कि असंख्य प्रतिभावान् भारतीय युवक अनेक यातना सहकर अकाल ही कालकी गोदमें सो गए। इसी सिलसिलेमें ४ मई १९०८ में श्रीअरविंद गिरफ्तार कर लिये गये। क्योंकि वन्देमातरम् पत्रिकामें उनके तेजोमय लेखोंको पढ़कर खून उत्तेजित होता था और सरकारको विश्वास था कि इस खूनखराबीके पीछे श्रीअरविंदका हाथ जरूर रहा होगा। लेकिन कहते हैं कि : जाको राखे साइयां मारि सके न कोय। जेलके कष्टमय दिनोंमें भी उन्हें भगवान्का आर्शीवाद प्राप्त हुआ। अपनी आंखोंसे उन्होंने वासुदेवके दर्शन किये और उनकी आज्ञानुसार गीताकी योग प्रणालीको अपनाया। न केवल उन्हें व्यक्तिगत ईश्वरके दर्शन हुए अपितु भागवत कृपासे भगवानके विराट् रूपके दर्शन भी हुए। उन्हें जेलकी चार दीवारी वासुदेवकी प्रेममय आलिंगन करती हुई भुजायें प्रतीत हुईं। उनके कमरेपर पहरा देनेवाला सिपाही भी छद्मवेशी वासुदेव बन गया।

उनकी गिरफ्तारीने सारे भारतमें खलबली मचा दी। पहली बार बड़े बढ़े वकील देश-प्रेमसे अभिभूत होकर अपने प्रिय नेताके लिये मुकदमा लड़े। इनमें श्री चितरंजनदासने इतना ज्यादा परिश्रम किया कि उनके स्वास्थ्यके ऊपर भी उसका काफी असर पड़ा। श्रीअरविंदने अब व्यक्तिगत विचार भावनाएं वगैरह छोड़कर पूर्ण रूपसे अपने-आपको नारायणके हाथमें समर्पित कर दिया। जब यह मुकदमा न्यायालयके सामने आया तो सारा देश उत्तेजित हो उठा, सारा न्यायालय उत्तेजित वातावरणसे हिल उठा था परन्तु जिनके कारण यह सब हो रहा था वे समुद्रकी लहरोंके बीच स्थित द्वीपकी तरह शांत स्थिर थे। ऐसे पार्थिव उत्तेजनात्मक वातावरणके होते हुए उन्हें अपार्थिव अनुभव प्राप्त हो रहा था। उन्हीं दिनों प्रत्येक मनुष्यके अंदर स्थित नारायणके दर्शन पाकर नर नारायणके सुभग मिलनको समझ पाए। भागवत निर्णयानुसार वे निर्दोष साबित हुए और उन्हें छोड़ दिया गया। इस अनुभवने उनके जीवनमें जबर्दस्त परिवर्तन ला दिया। जेलसे छूटनेके बाद सनातन धर्म संघने उन्हें उत्तरपाड़ा आकर भाषण देनेका निमंत्रण दिया। दस हजार देश-बंधुओंके सामने श्रीअरविंदने अलीपुर जेलके अनुभव कह सुनाए और सनातन धर्मके मर्मको समझाया। उस सभामें उन्होंने कहा कि भारतको सिर्फ अपनी उन्नतिके लिये स्वतंत्र नहीं होना है अपितु भारतका लक्ष्य है सारी पृथ्वीको भागवत जीवनकी ओर ले जाना और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये भारतका स्वतंत्र होना आवश्यक है। सरकारने श्रीअरविंदके विरुद्ध वारंट निकालना

निश्चित किया। परंतु श्रीअरविंदके कई मित्रोंको इस बातका पता चल गया। धर्म और कर्मयोगिन्के कार्यालयमें जमा होकर सब मित्र अपनी-अपनी बुद्धिके अनुकूल सलाह दे रहे थे। अचानक जेलके बाद जो आवाज उन्हें हमेशा आदेश देती थी उसने कहा, चन्दननगर जाओ। अपने प्रेमी सखा वासुदेवका आदेश पाते ही अत्यंत सावधानीके साथ उसी रातको श्रीअरविंद चन्दननगरकी अपनी यात्रापर चल पड़े। वहां मोतीलाल राय नामक एक सज्जनने उन्हें अपने यहां छिपाकर रखा। कुछ दिनोंके बाद ३० मार्चको दूसरे आदेशानुसार उन्होंने पांडिचेरीके लिये प्रयाण किया। सुगंध पाते ही जैसे भंवरे फूलको ढूंढ़ते हैं उसी भांति श्रीअरविंदके पांडिचेरी आते ही दक्षिणके कई महानुभाव उनसे मिलने आए।

श्रीअरविंदकी योगप्रवृति पूरे वेगसे चल रही थी। उन्हीं दिनों श्रीअरविंदने अपनी साधनामें इळा, सरस्वती और सरमाके दर्शन किये जो स्वतःप्रकाश, अंतःप्रेरणा और अंतर्ज्ञानकी देवियां थीं। इन दिनों जब श्रीअरविंद भारतमें इस तरह आध्यात्मिक क्षेत्रमें काम कर रहे थे उन्हीं दिनों श्रीमाताजी सुदूर फ्रांसमें इस अनुसंधानमें लगी थीं कि इस पृथ्वीपर भागवत मिलनके बाद भागवत जीवन किस तरह स्थापित किया जाय। दूर रहते हुए भी इन दोनोंका आंतरिक संबंध होना स्वाभाविक था। श्रीअरविंदसे मिलनेसे पहले श्रीमाताजी उनको ध्यानावस्थामें कई बार देख चुकी थीं। श्रीमाताजी ध्यानमें देखी हुई उस मूर्तिको श्रीकृष्ण समझती थीं। आध्यात्मिक सत्यकी खोजमें घूमते-घूमते श्री माताजी पांडिचेरी आईं। श्रीअरविंदसे २९ मार्च १९१४को साक्षात्कार होते ही अपने स्वप्नके श्री कृष्णको उन्होंने पहचाना। उस दिनसे योगकी दुनियामें नयी नयी खोजें होने लगीं। पहले विश्वयुद्धके कारण श्रीमाताजीको भारत छोड़कर फ्रांस जाना पड़ा। युद्ध खतम होते ही श्रीमाताजी फिर पांडिचेरी आ गयीं।

श्रीअरविंदके प्रथम दर्शन होनेकी अनुभूतिको श्री माताजी यों बताती हैं :—

"अधिक चिंता नहीं अगर सैंकड़ों मनुष्य घने अंधकारमें डूबे हैं। वे जिन्हें हमने कल देखा था, वे तो पृथ्वीपर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बातका काफी प्रमाण है कि एक दिन आवेगा जब अंधकार प्रकाशमें परिवर्तित होगा, जब तेरा राज्य पृथ्वीपर कार्य रूपमें स्थापित होगा।"

श्रीअरविंद और माताजीने जिस सत्यका साक्षात्कार किया उसे उन्होंने अतिमानस या सुपरमाइण्डका नाम दिया। वैदिक ऋषि ज्योतिषां ज्योतिमें सूर्यसे परे जानेकी बात करते थे, श्रीअरविंद इतनेसे ही सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने कहा, वहां (विज्ञान या अतिमानसकी भूमिकामें) पहुंचना तो हमारे मार्गका एक पड़ाव ही है, हमारा ध्येय है उस अतिमानस चेतनाको धरतीपर लाना और अत्यंत पार्थिव और स्थूल अणु-परमाणुओंतकमें उसका राज्य स्थापित करना।

श्रीअरविंद और माताजी दोनों दिन-रात इसी काममें लगे रहे। धीरे-धीरे उन्होंने अपने चारों ओर शिष्य मण्डलको बढ़ते हुए देखा। भागवत करुणाके मूर्तिमान रूप श्रीमाताजीने श्रीअरविंदकी सम्मतिसे अपने इन बालकोंकी देख-भाल करना शुरू किया। २४ नवम्बर १९२६ श्रीअरविंदकी सिद्धिका दिन है। उस दिनसे श्रीअरविंदने लोगोंसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया। वे वर्षमें केवल तीन ही दर्शन दिया करते थे। श्रीमाताजीके जन्मदिनके उपलक्षमें २१ फरवरी, अपने जन्मदिन पर १५ अगस्त और सिद्धि दिवस २४ नवम्बरको श्रीअरविंद गिने-चुने शिष्यों और भक्तोंको दर्शन दिया करते थे। १९३९ में २४ अप्रेलका दिन भी इसी सूचीमें जुड़ गया था। अब भी आश्रममें चार पर्व मनाये जाते हैं और श्रीमाताजीके विशेष दर्शन होते हैं।

इसके बादका जीवन एक बन्द किताबकी नाईं है जिसमें उल्लेखनीय घटनाएं नहीं हैं। हम इतना ही मानते हैं कि श्रीअरविंद नये-नये आन्तरिक क्षेत्रोंपर विजय पाते जा रहे थे। आश्रममें साधकोंकी संख्या बढ़ती जा रही थी और उनकी आन्तरिक और बाह्य कठिनाइयोंको हटाना गुरुका

ही काम था। इस सिलसिलेमें उन्हें प्रतिदिन सात-आठ घंटे पत्र-व्यवहारमें लगाने पड़ते थे। उनका सारा पत्र साहित्य इसी कालका है। इन्हीं दिनोंमें सावित्री महाकाव्य पूरा किया गया। दिव्य जीवनको दोहराया गया तथा अन्य कई पुस्तकें प्रकाशित की गयीं।

दूसरे विश्व युद्धके आरंभमें श्रीअरविंदने घोषणा की कि हिटलर आसुरी शक्तियोंकी ओरसे लड़ रहा था और मित्र राष्ट्र अपनी सारी कमजोरियोंके होते हुए भी भगवान्के पक्षमें थे। उन्होंने पूरी तरहसे मित्र राष्ट्रोंको सहायता दी। जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत आये तो फिरसे एक बार श्रीअरविंदने घोषणा की कि क्रिप्स प्रस्तावको स्वीकार कर लेना भारतके लिये हितकर होगा। आज हम देख सकते हैं कि यदि भारतने उनकी सलाहको मान लिया होता तो देशको विभाजन और परवर्ती विभीषिकाओंसे बचाया जा सकता था।

१९५० ई० में अपने कामको पूरा करनेके लिये श्रीअरविंदको अपना शरीर त्याग करनेकी आवश्यकता मालूम हुई और उन्होंने दिसम्बर पांच तारीखको अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया। श्रीमाताजीका कहना है कि वे अब भी पृथ्वीके वातावरणमें मौजूद हैं और अपने कामको आगे बढ़ानेमें लगे हुए हैं।

श्रीमाताजीके शब्दोंमें "श्रीअरविंद विश्व इतिहासमें जिस चीजका प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, न कोई अन्तःप्रेरणाद्वारा प्राप्त ज्ञान ही है; वह तो एक सुनिश्चित कार्य है जो "सीधा परात्पर प्रभुसे आया है।"

* * *

अप्रकाशित इतिहासका एक पृष्ठ

(३)

मैं पहले बता चुका हूं कि श्रीअरविंद विजयके साथ ४ अप्रेल सन् १९१० की शामको जहाजसे पांडिचेरी पहुंचे और मैं उनसे साढ़े चार दिन पहले ३१ मार्चको सवेरे रेलसे पहुंचा था। इस ३१ मार्चसे ४ अप्रेलतक मैं श्रीयुक्त श्रीनिवास आचारीके घरपर रहा। इन साढ़े चार दिनोंमें नैपथ्यमें अर्थात् मेरे अनजानमें मेरे लिये एक ट्रजिक ड्रामाका आयोजन हो रहा था। पर इस विषयमें मुझ, कुछ भी पता न था —— पता लगा प्रायः दो-ढाई वर्ष बाद। इस संभाव्य ट्रैजिक ड्रामाके विषयमें पाठकोंके मनमें कुछ कौतूहल जग सकता है, अतएव सारी घटनाका वर्णन कर रहा हूं।

श्रीअरविंदके पांडिचेरी पहुंचनेसे पूर्व साढ़े चार दिन मैंने आचारी महाशयके घर खा-पीकर, बैठ-सोकर ही बिता दिये। ....इन दिनों मेरा बस एक ही विशेष कार्य था श्रीनिवास आचारीसे श्रीअरविंदके लिये एक मकान ठीक कर रखनेका तकाजा करना। किंतु इस विषयमें आचारी महाशयमें मैं एक प्रकारका निर्लिप्त भाव ही देखता था। जब कभी मैं उनके सामने यह बात उठाता तभी वह एक परम उदासीनकी तरह 'होगा, होगा' ढंगकी कोई बात कहकर मुझे चुप कर देते। मैं भला क्या कर सकता था, मेरे लिये विदेश-भमि, मैं भी चप हो जाता। ४ अप्रेलको श्रीअरविंदके पांडिचेरी पहुंचनेकी बात थी। अंतमें ३ अप्रेलको जब मैंने मकानकी बात

विशेष रूपसे उठायी तो एक आदमी मुझे साथ ले जाकर एक मकान दिखा लाया। पांडिचेरीके रास्ते आदि ताजमहलके प्रांगणकी तरह स्वच्छ-सुन्दर हैं यह कहना सत्यका अपलाप करना है और यहांके मकानादि भी फतेहपुर सिकरीकी तरह हैं यह कहना भी महज मिथ्या कहना होगा। किंतु उसमेंसे भी मानो चुनकर एक विशेष गंदे महल्लेकी एक अंधी गलीमें इन्होंने एक मकान ठीक किया है श्रीअरविंदके रहनेके लिये। मकानमें घुसते ही नीचेके तल्लेमें एक छोटा-सा मुद्रण-यंत्र और एक बाईस-तेईस वर्षके दाढ़ी-मूंछ कमाये, बड़े-बड़े नेत्र और पूरे सिरपर लंबे-लंबे छंटे बालवाले एक तामिल युवकको देखा। मेरे साथी मुझे ऊपर ले गये। ऊपर तल्लेपर सीढ़ीके सामने ही एक घर था। उसे रहनेका घर कहना सत्यका अपमान करना है, वह तो सबसे ऊपरकी छतपर सीढ़ीके ऊपर बना एक छोटा-सा कमरा था और फिर उसकी दीवालोंपर उस युगके सभी राजनीतिक नरम-गरम क्रांतिकारी नेताओंके चित्र पंक्तिबद्ध सजा दिये गये थे। निवास-स्थानकी कितनी सुरुचिपूर्ण सजावट! किसी तरह निस्तार नहीं, यहां आकर भी तिलक, लाजपतरायसे आरंभ कर चिदंबर पिल्ले, कन्हाई दत्ततक सबके संपर्कमें चौबीसों घंटे काटना होगा! विश्राम-कक्ष मानो बन गया है वक्तृता-मंच! मेरे साथी महाशयने कहा कि यहीं श्रीअरविंदके रहनेकी व्यवस्था इन लोगोंने की है। कहना न होगा कि श्रीअरविंदके इस निवास-स्थानको देखकर इन लोगोंकी समझ-बूझ और कर्मपटुताकी प्रशंसा करनेके लिये मेरी वाणी खुल ही नहीं गयी, बल्कि वास्तवमें उस समय विस्मयके कारण मैं एकदम अवाक् हो गया। अंगरेजीका कोई भी शब्द मेरे मुंहसे नहीं निकला —— यहांतक कि बंगला शब्द भी नहीं निकला। मकान देखना समाप्त होनेपर मैं अपने साथीके साथ वापस आ गया। इस विषयमें श्रीनिवास आचारीको भी कुछ न कहा।

दूसरे दिन ४ अप्रैल १९१० को श्रीअरविंदके पांडिचेरी पहुंचनेकी बात थी। शायद यहांके लोगोंने पहले ही जहाज कंपनी 'मेसेजरी मारितिम' के कार्यालयमें जाकर पता कर लिया था कि कलकत्तेसे आनेवाला 'दूपलेक्स' जहाज शामको प्रायः ४ बजे पांडिचेरी पहुंचेगा। श्रीनिवास आचारी और मैं अरविंदको ले आनेके लिये उसी समय जेटीपर आये।

यह सुनकर कि अरविंद यहां आयेंगे, यहांके लोगोंने खूब शोरगुलके साथ उनकी अभ्यर्थना करनेकी कल्पना की थी। मुझे जब इसका पता चला तो मैंने कहा, "अरविंद यहां गुप्त रूपमें आ रहे हैं और यहां गुप्त रूपमें ही निवास करेंगे, इस प्रकार उनकी अभ्यर्थना करनेसे तो सर्वत्र बात फैल जायगी। अतएव ऐसा करना अभिप्रेत नहीं।' मेरी बात सुनकर ये लोग आश्चर्यचकित हुए —— विस्मित स्वरमें बोले —— अरविंद घोष यहां आवेंगे और उसे कोई जान नहीं सकेगा! क्या कह रहे हैं महाशय अथवा क्या कह रहे हो छोकरे? अर्थात् बड़े-बड़े राजनीतिक नेताओंके विषयमें सभा, जुलूस, धक्तृता, हो-हल्ला इत्यादि इनके मनमें इस प्रकार जम गया है कि इन सबके बिना उन (नेताओं)के अस्तित्व और चलने-फिरनेकी ये कल्पना ही नहीं कर सकते। स्वयं नेपोलियन यदि नाटू सर्दारका नाम लेकर एक टोकरी अंडा सिरपर रखकर जहाजसे उतरें तो भला कौन समझ सकता है कि यही अंगरेज-जर्मन-रूस-त्रासकारी 'पती कार्पोराल' (Petit Carporal) हैं —— यह बात उनकी बुद्धिके लिये सहजगम्य नहीं थी। जो हो, मैंने कहा कि जहाज पहुंचनेपर जरा भी हो-हल्ला न कर दो-एक आदमी जहाजपर जाकर अरविंदको उतार लायेंगे और उनको सीधे उनके ठहरनेके स्थानमें ले जायेंगे, फिर यदि कोई उनका नाम किसीको न बताये तो कौन जान सकेगा कि वह यहां आये हैं? मेरी बातसे शायद इन लोगोंको यह संभावना थोड़ी समझमें आ गयी और इन्होंने अरविंदका विशेष रूपसे स्वागत करनेकी भावनाको त्याग दिया।......

४ अप्रैलकी शामको लगभग ४ बजे 'दूप्लेक्स' जहाजने आकर पांडिचेरी बंदरगाहमें लंगर डाला। पांडिचेरीके पास समुद्र बड़े-बड़े जहाजोंके आने योग्य काफी गहरा नहीं है। **इसलिये यहां कोई जहाज**

जेटीके पास आकर खड़ा नहीं होता। जेटीसे चौथाई या आध मील दूर समुद्रमें लंगर डालता है। यात्रियोंको जेटीसे जहाजतक नावके द्वारा आना-जाना पड़ता है। जेटीसे नावमें बैठना और फिर नावसे जहाजमें जाना काफी व्यायाम-प्रदायक व्यापार है। और उसपर यदि हवाका विशेष जोर हो तथा समुद्र-वक्ष तरंग-मालाओंके नर्तनसे विशेष रूपमें विक्षुब्ध हो उठा हो तब तो वह व्यायाम एकदम 'पैरेलेल बार' और 'होरीजेण्टल बार' के व्यायामका ही रूप धारण कर लेता है।

उन दिनों, चाहे फ्रांसीसी सरकारकी हो या जहाज कंपनीकी हो, जेटीसे जहाजतक यात्रियोंको ले जाने और ले आनेके लिये मनुष्यचालित अर्थात् डांड़-चालित निरावरण अर्थात् बिना छायी हुई एक नाव थी। यहांके डांड़ोंको देखा नये ढंगके थे। बंगालमें मैंने इस प्रकारके डांड़ कहीं नहीं देखे। आठ या दस हाथ लंबा एक काठका दंड होता है और उसीके एक सिरेपर तीन-चौथाई या एक हाथ चौड़ा एक छोटा-सा काठका तख्ता मजबूतीसे बंधा होता है। यही भाग पानीमें होता है और दूसरी ओरका सिरा मल्लाहोंके हाथमें होता है और उसके आगे पीछे चलनेसे अश्वशक्ति उत्पन्न होती है।

समुद्र-वक्षके तरंग-नर्तनसे उत्क्षिप्त विक्षिप्त प्रक्षिप्त उस नौकामें जेटीसे सीढ़ीद्वारा उतरकर बहुत प्रकारका ताल संभालकर अंतमें श्रीनिवास आचारी और मैं सवार हो गये। नौका आठ-दस बार डांडोंके उठते-गिरते ही जहाजकी ओर चल पड़ी।

जहाजके पास नौकाके पहुंचते ही देखा कि अरविंद और विजय डेकपर खड़े हैं और हमारी नावकी ओर ताक रहे हैं। संभवतः उनके मनमें इस विषयमें कुछ संशय, कुछ उद्विग्नता थी कि मैं ठीक ठीक पांडिचेरी पहुंचा या नहीं तथा यहांके मित्रोंको खोज सका या नहीं। जो हो, कुछ क्षण बाद हमारी नाव जहाजके पास लग गयी। हम दोनों तरंगके कारण हिलती-डुलती-नाचती उस नावसे फिर काफी कसरत करके तथा बहुत-कुछ ताल संभालकर जहाजसे झुलायी हुई सीढ़ीके द्वारा वहां पहुंच गये जहां अरविंद और विजय खड़े थे। उस डेकसे फिर एक सोपान-श्रेणी पार कर हम सब लोग उनके केबिनमें आये —— द्वितीय श्रेणीका केबिन था। देखा, जहाजके प्रबंधकोंने अपने कुछ दिनोंके अतिथियोंका आदर-सत्कार करनेमें कोई त्रुटि नहीं की थी। जहाजपर वही था तीसरे पहरकी चायका समय। जहाज इन दोनों यात्रियोंके गंतव्य स्थानपर पहुंच गया है। प्रबंधक बिना हिचकके कह सकते थे —— "चाय-वाय अब घर जाकर ही लीजियेगा महाशय!" परंतु उसके बदले देखा कि उनके बक्स-वक्स ठीक-ठाक करना और सामान-बिछौना बांधना-छांदना समाप्त करते-न-करते केबिनमें चाय हाजिर हो गयी और उसके साथ-साथ आ गया मछलीके आकारके छोटे-छोटे कुरमर बिस्किटोंसे भरा हुआ एक प्लेट। भाव मानो आत्मीयताका हो। मानो जहाजवाले कहते हों, "——चाहे जो कहिये और जो कीजिये, पर चाय पिलाये बिना हम नहीं छोड़ेंगे।" श्रीनिवास आचारी आचारनिष्ठ तामिल ब्राह्मण ठहरे। एक तो बिस्कुट, उसके ऊपर मछलीकी आकृति और उसके भी ऊपर मलेच्छका जहाज। अतएव ऐसी अवस्थामें ऐसी वस्तु श्रीनिवास आचारी किसी तरह छू नहीं सकते। एक बंगाल और काश्मीरके ब्राह्मणोंके सिवा अन्य किसी प्रदेशके ब्राह्मण आमिषका स्पर्श नहीं करते। पीछे सुना था, यदि बैंगन गोल हो और उसका रंग यदि सफेद हो तो अंडेके सदृश दिखायी देनेके कारण वह भी तमिल ब्राह्मणके लिये कदापि स्पर्शनीय नहीं। खानेमें आलूका व्यवहार भी इन लोगोंके लिये एक महा सांस्कारिक व्यापार है। खूब आचारनिष्ठ ब्राह्मण लोग आलू भी नहीं खाते। कारण शायद यह है कि इसका आदि जन्मस्थान भारतसे बाहर है, और वेदमें इसका कोई उल्लेख नहीं है। जो हो, उस मत्स्यरूपी बिस्कुटमेंसे थोड़ा-सा मेरे उदरस्थ भी हुआ यह कहना बेकार है। इसके शायद पांच-छः वर्ष बाद घरपर श्री निवास आचारीने दो-एक बार एक-दो बिस्कुट और दो-एक प्याला चाय लिया था। वह भी संभवतः इसलिये कि वह अवसर नितांत अरविंदके जन्मदिनका उत्सव था। किंतु

वह उनके जीवनमें व्यतिक्रमके रूपमें ही रह गया —— ऐसा मेरा अनुमान है। , उन्होंने तृतीय बार वैसा कोई काम किया होगा ऐसा नहीं लगता।

खैर, जहाजके कैबिनमें चाय-पर्व समाप्त कर मोटमें तीन ट्रंक और बिछौना लेकर हम सब लोग जहाजसे नावपर, नावसे जेटीपर और जेटीसे 'कूर शाबरोल' नामक राजपथपर पहुंच गये। श्रीनिवास आचारी शहरके किसी संभ्रांत व्यक्तिसे एक घोड़ागाड़ी मांगकर ले आये थे जो वहां तैयार थी। कलकत्तेमें जिस तरह फिटन या पाल्की-गाड़ी भाड़ेपर मिलती है उस तरह यहां नहीं मिलती थी, अब भी नहीं मिलती। घोड़ा-जुती एक प्रकारकी गाड़ी यहां मिलती अवश्य है पर उसका चेहरा-मोहरा बंगालकी बैलगाड़ीकी तरह ही होता है, वह वैसे ही दो चक्केवाली और वैसी ही छाजनवाली होती है। इसका नाम है झटका। उस १९१० के सालमें पांडिचेरीमें दो-तीनसे अधिक मोटर-गाड़ियां न थीं, और वे भी अधिक समय मरम्मतकी आशामें ही पड़ी रहतीं थी। गवर्नरके पास भी मोटर नहीं थी, उनके पास बग्गी थी। उन दिनों गवर्नर थे मोसिय मार्तिनों, वह अत्यंत सीधे-सादे मनुष्य थे। बहुत बार वह रिक्शापर बैठकर घूमा-फिरा करते थे। उन दिनों बस वही एकमात्र रिक्शा था पांडिचेरीमें। एक दिन संयोगवश मैंने इन गवर्नर महाशयको रिक्शेमें बैठकर जाते देखा। सफेद पतलून, गलेतक बटन लगा हुआ एक सफेद कोट और फिर उसकी पीठपर लगा हुआ एक पेबंद। पेबंद लगा हुआ कोट पहनकर, रिक्शेपर चढ़कर, गवर्ननरको जाते देख, रास्तेके एक स्थानीय आदमीने होंठ बिचकाकर अवज्ञाके सुरमें यह टिप्पणी कस दी —— केल गूवर्नर! अर्थात् कैसा जंगली जानवर है! स्पष्ट प्रकट होता है कि राज्य चलानेके लिये कुछ तड़क-भड़ककी भी आवश्यकता होती है, उससे जन-साधारणके मनमें संभ्रम उत्पन्न होता है —— राज्यरक्षाके लिये वह भी एक बड़ा मूलधन है। आज अवश्य ही पांडिचेरीमें बहुत मोटर-गाड़ियां हैं, गवर्नमेंट हाऊसमें भी —— अब तो यहां टेक्सियां भी भाड़ेपर मिल जाती हैं।

जो हो, जेटीसे सदर रास्तेपर आकर श्रीनिवास आचारी अरविंदको साथ ले उसी घोड़ागाड़ीसे रवाना हो गये। मुझे ठीक याद नहीं कि विजय भी उन्हीं लोगोंके साथ चले गये थे या पीछे मेरे साथ आये थे। किंतु मैं पीछे ट्रंक और बिछौना-आदि लेकर पुस-पुस गाड़ीसे एक तामिल पथप्रदर्शकके साथ रवाना हुआ।

परंतु पथप्रदर्शक महाशय मुझे उस मकानमें नहीं ले गये जिसे मैंने पहले दिन देखा था और उस गंदे महल्लेकी अंधेरी गलीमें था। यह मकान एक दूसरे रास्तेपर था, अच्छा सुन्दर मकान था। अपने पथप्रदर्शकके साथ इस मकानके तीन तल्लेपर जाकर देखा कि स्थान खूब साफ-सुथरा है, झलमल कर रहा है। खूब शांत-निर्जन है —— ठीक जैसा होना चाहिये वैसा ही है। इसीके एक छोटेसे कमरेमें जाकर देखा कि अरविन्द एक आरामकुरसीपर बैठे हैं और श्रीनिवास आचारी आदि चार-पांच जन उनके सामने संभ्रमके साथ खड़े हैं। अरविन्दके लिये यह वासस्थल ठीक करनेके कारण इन लोगोंके बुद्धि-विचार और कार्यपटुताके विषयमें अब मुझे कोई संदेह नहीं रह गया। चारों ओर दीवालोंको निहारकर देखा, कहीं भी किसी राजनीतिक नेताका कोई चित्र नहीं था। निश्चित रूपसे समझ गया कि तामिल लोगोंके विषयमें निराश होनेकी कोई बात नहीं। किंतु पहले दिन दिखाये गये गंदे मकानकी बात याद आते ही मैं आश्चर्यसे एक बार फिर अवाक् हो गया, आखिर बात क्या है?

कालक्रमसे मैं दूसरा मकान दिखानेकी बात भूल गया। परंतु प्रायः दो वर्ष बाद इसकी व्याख्या जान सका। उस समयतक इन तामिल मित्रोंके साथ काफी घनिष्ठता हो गयी थी। इनमेंसे एकने (ठीक किसने यह अब याद नहीं) मुझे बताया कि इन लोगोंने मेरे कहनेसे अरविन्दके लिये मकान तो ठीक कर लिया था पर उनके मनमें यह संदेह भी था कि कहीं मैं अरविन्दका दूत न हो पुलिसका गोयंदा ही होऊं एवं स्वभावतः ही संभाव्य पुलिसके गोयन्देसे असली मकानकी बात गुप्त रखी थी।

इन लोगोंने निश्चय किया था कि चौथी अप्रैलको 'दुप्लेक्स' जहाजके पांडिचेरी पहुंचनेतक प्रतीक्षा करेंगे और उससे यदि अरविन्द न आवें तो खूब भलीभांति प्रमाणित हो जायगा (Good Heavens) कि मैं पुलिसका ही गोयन्दा हूं। फिर ये लोग मुझे विशेष रूपसे शिक्षा देकर विदा करेंगे। निश्चय ही यह कहना न होगा कि वह शिक्षा कागज-कलमके द्वारा न होती बल्कि महज हाथ-कलमसे होती।

इनकी यह बात सुनकर मुझे उस दिन खूब स्पष्ट रूपमें अनुभव हुआ कि Ignorance is bliss (अज्ञान भी एक वरदान है) कितना बड़ा सत्य है। नेपथ्यमें मेरे संबंधमें इस प्रकारकी व्यवस्था हो रही है इसे यदि मैं पहलेसे ही जानता होता तो श्रीनिवास आचारीके घर साढ़े चार दिन मुझे कितनी उत्कंठाके साथ, सशंकित रूपमें ही यह सोचते-सोचते बिताना होता कि यदि घटनाचक्रसे अरविन्द चौथी अप्रैलको जहाजसे न आवें तो मेरे भाग्यमें क्या घटित होगा। इसीसे 'अज्ञान भी एक वरदान है' वचनको प्रायः ऋषिवाक्य ही कहा जा सकता है।

यही मेरे संबंधमें वह ट्रैजिक ड्रामा है जो घटता तो घट भी सकता था और जिसकी बात मैंने आरंभमें कही थी। और यह ड्रामा अभिनीत होनेकी अवस्था सचमुच उपस्थित भी होनेवाली थी क्योंकि चौथी अप्रैलके दिन जहाजसे अरविन्दके पांडिचेरी न पहुंचनेकी संभावना भी वास्तवमें हुई थी। पीछे अरविन्दके मुंहसे इस विषयमें मैंने जो कुछ सुना था उसे बताता हूं।

कलकत्तेके बंदरगाहसे फ्रांसीसी कंपनीके जहाज 'दुप्लेक्स' के छूटनेकी तारीख थी पहली अप्रेल। अरविन्द उस समय चन्दननगरमें थे। तय हुआ था कि अरविन्द उससे पहलेके दिन ही अर्थात् ३१ मार्च को संध्याके समय जहाजपर जायें और उनके साथ विजय आयेंगे। विजय कलकत्तेमें अरविन्दके लिये उस समय कलकत्तेकी भूमिपर पदार्पण करना निरापद नहीं था। अतएव व्यवस्था यह की गयी थी कि अरविन्द और विजय नावद्वारा आकर नदी-वक्षपर एक साथ मिलेंगे। फिर दोनों एक साथ सीधे स्टीमरपर सवार हो जायेंगे।

अरविन्द आये एक नावसे चन्दननगरसे दक्षिणकी ओर। विजय चले एक दूसरी नावसे कलकत्तेसे उत्तरकी ओर। इसी प्रकार इन्हें परस्पर एक-दूसरेको खोज लेनेकी बात तै हुई थी। किंतु दुर्भाग्यवश उनकी नावें कब एक-दूसरेको पार कर गयीं यह कोई पकड़ नहीं पाया। अतएव दोनोंकी मुलाकात नहीं हो सकी और इस तरह सारा बंदोबस्त ही बेकार हो गया। 'according to plan' (योजनानुसार) कुछ भी घटित नहीं हो सका। इस तरह संध्या समय वे लोग जहाजपर सवार नहीं हो सके।

अंतमें, जब पुलिस सर्वत्र अरविन्दकी खोज कर रही थी, तब उन्हें उस १९१० सालकी एकतीसवीं मार्चकी रातको ८।९ बजेके करीब एक भाड़ेके मकानमें, जो उनके मौसा कृष्णकुमार मित्रके मकानसे थोड़ी ही दूर था, बहुत देरतक प्रतीक्षा करनी पड़ी। सारी परिस्थिति मानो जासूसी उपन्यासके कान- के पाससे गोली चले जानेके समान हुई। जो हो, बहुत हैरानी-परेशानीके बाद, बहुत खोज-पूछ करने- के बाद जब दोनों मिले और स्टीमरपर पहुंचे तब रातके ग्यारह बज गये थे। स्टीमरके यात्रीके रूप- में अरविन्दने नाम लिया था यतीन्द्रनाथ मित्र और विजयने लिया था बंकिमचंद्र बसाक। वहां पहुंचने- पर एक और झगड़ा खड़ा हो गया। जहाजके अफसरोंने बताया कि स्वास्थ्य-परीक्षा हुए बिना किसी यात्रीको जहाजपर चढ़ने देनेका नियम नहीं है और स्वास्थ्य-परीक्षक डाक्टर स्टीमरपर नहीं रहते, शहरमें रहते हैं। एकदम तीरके पास पहुंचकर नाव डूबनेकी जैसी अवस्था हो गयी।

फिर दोनों व्यक्ति डाक्टरका पता लेकर उसी रातको वहां पहुंचे। डाक्टर साहब खास अंगरेज थे। समस्त वस्तु ओंमें ही कुछ-न-कुछ भलाई करनेका बीज रहता ही है — दो-एक पेग ब्रांडी-ह्विस्कीमें भी और वह क्षेत्र उपस्थित होनेपर ही प्रकाशित होता है। मालूम होता है डाक्टर साहब दो-एक पेगका सद्व्यवहार करनेमें संलग्न थे, इसी कारण इतनी रातको भी जगे थे। पर जो हो, पेग-रत ही हों या निद्रा-रत, सचमुचमें डाक्टर साहब मिल गये। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि

इतनी रातको उनकी फीस डबल देनी होगी। इतनी रातको बहुतसे अंगरेजोंको डबल दिखायी देता है —ऐसा अनुमान करना नितांत भूल नहीं माना जा सकता। इसलिये ऐसे समय डबल फीस मांगनेमें असंगत या अनुचित कुछ नहीं। डाक्टर साहबको परिस्थितिका कुछ ज्ञान नहीं था, पर अरविन्द निश्चय ही मन-ही-मन कहते होंगे, केवल डबल फीस ही नहीं, उसके ऊपर बख्शिश भी देनेको राजी हूं। जो हो, अरविन्द डबल फीस देनेको सम्मत हो गये और डाक्टर साहब उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा करनेमें लग गये। अरविन्दके मुंहसे अंगरेजी सुनकर डाक्टर साहब तो खूब खुश हो गये। पूछा, आपने ऐसी अंगरेजी कहां सीखी साहब? ऐसी अंगरेजी तो मैंने किसी भारतीयके मुंहसे नहीं सुनी। अवश्य ही साहबने ऐसी गौड़ीय भाषामें और भावभंगीके साथ यह बात नहीं कही, उन्होंने अपनी मातृभाषामें ही कहा था, किंतु अनुमान होता है कि आत्मीयताका सुर उसमें सहज भावसे ही फूट पड़ा होगा। यतीन्द्रनाथ मित्र महाशयने विनयपूर्वक बताया कि मैंने बहुत दिन विलायतमें बिताये हैं। जिसके मुंहकी अंगरेजी इतनी अच्छी हो उसके स्वास्थ्यके संबंधमें अथवा और किसी संबंधमें खराब धारणा उत्पन्न होनेकी कौनसी बात है। अतएव डाक्टर साहबने दोनों व्यक्तियोंकी परीक्षा करके स्वास्थ्यका सर्टिफिकेट दे दिया। उस सर्टिफिकेटको लेकर अंतमें वे लोग जहाजपर उसी रातको सवार हो गये।

इसीलिये कह रहा था कि उस चौथी अप्रैलको अरविन्दके पांडिचेरी न पहुंचनेकी संभावना उपस्थित हुई थी। अंतमें यदि यह संभावना ही सत्य हो उठती तथा वह 'डुप्लेक्स' जहाजसे पांडिचेरी चौथी अप्रैलको न पहुंचते तो मेरे कपालपर अर्थात् पीठपर क्या घटता यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। तब इस संबंधमें जरा भरोसा यही था कि इन तामिल लोगोंमें जूता पहननेका रिवाज नहीं है —कम-से-कम उस १९१० सालमें नहीं था —अंततः अपने उन तामिल बंधुओंके चरणयुगलमें मैंने किसी दिन स्वदेशी-विदेशी, आक्सफोर्ड-डरबी, कटकी-काबुली, मद्रासी-मराठी किसी प्रकारके जूतेसे अलंकृत नहीं देखा। उस परिस्थितिमें मेरे लिये यह कुछ कम सांत्वनाकी बात नहीं थी।

खैर, आखिरकार 'डुप्लेक्स' जहाजसे अरविन्द विजयको साथ लेकर पांडिचेरी सचमुच पहुंच गये और ४ अप्रैलकी शामको लगभग ५।६ बजे उस अदृष्ट-पूर्व मकानके तीन तल्लेपर साढ़े तीन दिन कम छः मासके लिये स्थायी हो गये —और उनके साथ-साथ विजय और मैं भी।

(सुरेशचंद्र चक्रवर्तीकी 'स्मृति कथा' से संकलित)

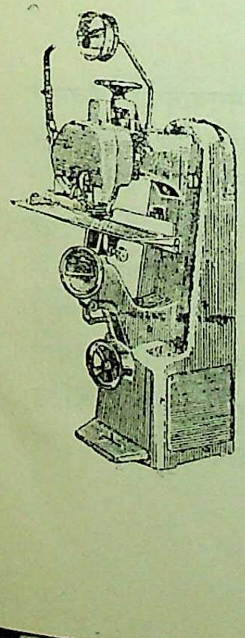

BMC

Complete range of **WIRE STITCHING MACHINES** for Books, Pamphlets and cardboard boxes and Box Making Machines.

for
Greater Production
and Higher Profits

Manufacturers :
Basanti Machinery Company,
NIZAM ROAD, LUDHIANA-1. (PB.)

Phone : 1184

गहरे पानी पैठि:

ध्यान

योगमार्गपर पांव रखनेका विचार करते ही लोग पहला प्रश्न करते हैं कि ध्यान कैसे करें। ध्यानके बारेमें बहुतसे आचार्योंने अलग-अलग तरीके बताये हैं और सभी तरीके आरंभके समय उपयोगी हो सकते हैं। कोई कहता है एक ही विषयको लेकर उसीपर सोचते जाओ। विचार इधर-उधर न जाने पायें। कोई सब विचारोंको छोड़कर अपनी चेतनाको किसी एक शब्द, किसी मंत्र अथवा किसी एक प्रतीकपर केंद्रित करनेको कहते हैं। कोई हृदय, सहस्रदल कमल, गले या भौंहोंके बीचम चित्तको एकाग्र करना सिखाते हैं। इनमेंसे हर एक विधि अपने-अपने ढंगसे, अपने-अपने मार्गपर सहायक हो सकती है।

हमारा मन चेतनाका एक शक्तिशाली हथियार है। जबतक हम इससे ऊपर नहीं उठ जाते तबतक यही हमारी आंतरिक चेतनाकी व्यवस्था कर सकता है। परंतु साधारण मन एक बाजारके जैसा होता है जिसमें विचारोंकी टोलियां आती जाती रहती हैं। वह अपने-आप नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। कभी कठोर परिस्थितियोंके कारण अथवा विशेष रसके कारण ही वह किसी एक विषयपर ज्यादा समयतक लगा रहता है। आप अपने मनको अचानक रोककर पूछिये, क्यों भई, तुम इस समय क्या कर रहे हो। वह इतना अचेतन होता है कि दसमेंसे ९ बार उत्तर न दे सकेगा। अगर वह एक उपयोगी क्रिया करता है तो उसके साथ दस अनुपयोगी क्रियाएं बंधी रहती हैं। प्रकृतिका यही नियम है। वह हर चीज बहुत अधिक पैदा करती है। भौतिक जगत्में भी तो हम देखते हैं कि जहां एकसे काम चल सके वहां वह दस पैदा करती है। मन और प्राणका भी यही हाल है। राजयोगी विचारोंको एकाग्र करके मनकी गतिविधिपर काबू पाता है। हठयोगी आसन और प्राणायामद्वारा शरीर और प्राणको वशमें करता है। श्रीअरविंदका लक्ष्य है मन, प्राण और शरीर--सभीको ऊपरसे उतरनेवाली भागवत चेतनाको ग्रहण करनेके योग्य बनाना। आदर्श अवस्था तो वह है कि ध्यान करनेकी जरूरत ही न हो जिसे कबीरने सहज समाधि बताया है, जिसके लिये वे कहते हैं:

> आंख न मूंदूं कान न रुंधूं, काया कष्ट न धारूं।
> खुले नैन मैं हंस हंस देखूं, सुंदर रूप निहारूं।
> कहूं सो नाम सुनूं सो सुमिरन, जो कछु करूं सो पूजा।
> ऊठत बैठत कबहुं न बिसरै ऐसी तारी लागी।

लेकिन यह तो जरा दूरकी बात है। जबतक हमारी चेतना पूरी तरह भगवान्की चेतनाके साथ मिल न जाये तबतक प्रयास तो करना ही पड़ेगा। हां, तो ध्यानसे पहले इस तरहसे बैठ जाइये कि न तो बैठनेमें कष्ट अनुभव होता रहे और न इतना आराम हो कि नींद आने लगे। अब अंदर और बाहरसे अपने-आपको चुप कीजिये। शरीरमें गति न हो और मन इधर-उधर भागता न फिरे। मनके धागे छितरे हुए हों तो उन्हें धीरे-धीरे इकट्ठा करके एक स्थानपर ले आइये। साधारण चेतनाको, जो सारे समय इधर-उधर भटकती रहती है, हृदयमें केंद्रित कीजिये। इसमें कभी कुछ सेकेंड और कभी कई मिनट लग सकते हैं। अब आप ध्यान करनेके लिये तैयार हो गये। अब आपके आगे दो मार्ग हैं। अपनी चेतनाको पूरी तरह भगवान् या गुरुपर केंद्रित कीजिये, इसमें यह भावना बनी रहे कि गुरु आपको जिस ओर ले जा रहे हैं आपकी चेतना उस

ओर जा सके, वे जिसके साथ सम्पर्क जोड़ना चाहते हैं उसके साथ सम्पर्क बन सके। यह सक्रिय ध्यान है जिसमें आप अपनी ओरसे भगवान्की ओर बढ़नेका प्रयास करते हैं।

दूसरा है निष्क्रिय ध्यान जिसमें आप अपनी ओरसे प्रयास नहीं करते। अपने हृदय-कपाट खोलकर चुपचाप भागवत कृपाकी राह देखते हैं। इसमें आप अपनी मरजीके अनुसार हृदयके द्वार, कोरी पुस्तक, खाली कलश, सीप आदिके प्रतीकका उपयोग कर सकते हैं। जरूरी केवल यही है कि आप पूरी तरह चुपचाप और शांत होकर शांत भावसे ऊपरसे अवतरणकी प्रतीक्षा करें। आप समय सुविधा और मनोभावके अनुकूल किसी भी प्रतीकको ले सकते हैं या इच्छा हो तो बदल-बदलकर भी ले सकते हैं। आजकल भगवान्की अतिमानस शक्ति धरतीपर काम कर रही है, हम अपने-आपको उसके प्रति खोलकर उसके काममें अधिक सहायक हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त एक सामूहिक ध्यान भी होता है जिसमें एक बड़ा या छोटा समूह किसी एक उद्देश्यके लिये ध्यान करता है। सामूहिक ध्यानमें बड़ी शक्ति होती है। हमारे सामने ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं जहां बहुतसे लोगोंने मिलकर वर्षाके लिये ध्यान किया या यज्ञ और प्रार्थना की तो झट वर्षा हो गयी। एक बार जब गांधीजी मृत्यु शैयापर लेटे हुए थे तो सारे देशमें सामूहिक प्रार्थनाएं की गयीं जिन्हें निष्फल नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार हम भी एक मार्गपर चलनेवालोंका एक समूह बनाकर उस उच्चतम शक्तिके अवतरणके लिये अपने-आपको योग्य बना सकें तो यह अपने-आपमें एक बड़ी चीज होगी। बहुतसे लोगोंके लिये ध्यानका एक निश्चित समय और स्थान हो तो अधिक सुविधा रहती है। अभ्यासके साथ क्षमता बढ़ती है। हो सकता है कि शुरू-शुरूमें ध्यान न लगे या असर उलटा दिखायी दे। धैर्यके साथ लगे रहनेसे सफलता जरूर होगी। शरीरको मजबूत बनानेके लिये कसरत करनी होती है जिसमें शुरूमें काफी तकलीफ होती है पर धीरे-धीरे अभ्यास करते रहनेपर इसमें बड़ा सुख मिलता है। उसी भांति ध्यान करते-करते यह अवस्था आ जायगी कि आदमी हर काम स्वाभाविक रूपसे करता रहे और फिर भी चेतना पूरी तरह भगवान्के साथ युक्त हो।

आर्य कौन हैं

भारतवर्षका पुराना नाम आर्यावर्त रहा है। यहां सम्बोधन करते समय आर्य, आर्ये और आर्यपुत्र आदि शब्दोंका व्यवहार होता रहा है। वेदने कृण्वन्तो विश्वमार्यम्का नारा लगाया है। श्रीअरविंदने भी पांडिचेरीसे निकलनेवाले अपने मासिकका नाम आर्य रखा था। आधुनिक यूरोपीय इतिहासवेत्ताओंने इस नामको एक विशेष जातिपर चिपका दिया और उसे सत्य मानकर बहुत सारे सिद्धांत बना डाले। इन्हीं सिद्धांतोंके आधारपर भारतकी प्रजामें भी आदिम निवासी द्रविड़ और बाहरसे आये हुए आर्योंके भेद पैदा किये गये जिसके कारण आज भी बहुत सारी कठिनाइयां पैदा होती हैं। इसी सिद्धांतकी आड़ लेकर हिटलरने अपने-आपको और जर्मनोंको आर्य अथवा दुनियाकी सर्वश्रेष्ठ जाति माना था।

श्रीअरविंद कहते हैं कि वेदोंके अनुसार आर्य लोग वे हैं जो एक विशेष प्रकारकी संस्कृति,

आत्म-संयम, आन्तरिक और बाह्य आचार, आदर्श तथा अभीप्साको अपनाते हैं। प्राचीनतम मानवकी ऊंचीसे ऊंची अभीप्साएं, उसकी अभिजात धार्मिकता, उसकी आदर्शवादी आकांक्षाएं, उसके उच्च विचार, सब कुछ इस एक छोटेसे शब्दमें निहित है। उसके बादके कालमें आर्य शब्द एक ऐसे आदर्शका प्रतीक हो गया जो आत्म-संयम, सरलता, शिष्टाचार, भद्रता, स्पष्टवादिता, साहस, कोमलता, पवित्रता, दया, सहानुभूति, कमजोरोंकी रक्षा, उदारता, कर्तव्य-पालन, ज्ञान प्राप्तिके लिये उत्सुकता, विद्वानों और ज्ञानियोंका मान आदि ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके आदर्शोंको सर्वोपरि स्थान देता है। जो भी इस आदर्शसे खिसक जाता, जो भी अभद्रता, नीचता, क्रूरता, छल-कपट, असत्य आदिकी ओर झुकता वही अनार्य कहाता था। सारे संसारमें आर्य शब्दसे बढ़कर कुलीन और अभिजात शब्द कोई नहीं है।

आधुनिक भाषा-शास्त्रियोंने जब शब्दोंको तोड़-मरोड़कर उनमेंसे इतिहास और पुरातत्वकी बातें निकालनी शुरू कीं तो उन्होंने यह खोज कर डाली कि आर्य वह जाति थी जिसने अपने शिकारी पेशेको छोड़कर हल चलाना और खेती करना शुरू किया। यह है तो एकदम कपोल कल्पना पर श्रीअरविंद इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। वे कहते हैं कि आर्य यदि खेती करनेवालेको ही कहते हों तो आर्य वह है जो भगवान्‌की दी हुई आन्तरिक और बाह्य भूमिको बंजर नहीं छोड़ता। वह अथक परिश्रम करके दोनोंको फलता फूलता रखता है और उन्हें अधिकसे अधिक फलप्रद बनाता है। आर्य शब्दका एक दूसरा अर्थ योद्धा भी किया गया है। श्रीअरविंद इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। उनके अनुसार आर्य वह योद्धा है जो परम ज्ञानको पानेके लिये लड़ता है। उस ज्ञानके अंदर वह विवेक छिपा है जो ज्योतिर्मय, महान् और भागवत तत्वोंको जानता है, जो अत्यंत अशिव और असुन्दर, तिमिरग्रस्त तत्वोंमें भी भागवत सत्यको देख और पहचान सकता है और उसीको अभिव्यक्त करनेका प्रयास करता है। यह अभिव्यक्ति कोई सरल चीज नहीं हैं, इसके लिये बहुत संघर्ष करना पड़ता है और आर्य वही योद्धा है जो इस संघर्षमें बड़ी वीरतासे भाग लेता है। जो भगवान्‌की ओर जानेवाली ऊंची चढ़ानपर बिना किसी भय, संकोच, हारसे हार माने बिना, सृष्टकी विपुलतासे घबराये बिना, ऊंचाइयोंसे चकराये बिना अपने भगवान्‌के बलपर आगे बढ़ता ही जाता है वही आर्य है, वही भगवान्‌का योद्धा है, वही गीताका श्रेष्ठ पुरुष है।

सच्चा आर्य वह है जो अपने अंदर और बाहर जो कुछ भगवान्‌के विरुद्ध है, मानव प्रगतिमें बाधक है उससे लड़े और उसपर विजय प्राप्त करे। आत्म-विजय उसका पहला कदम है। वह अपने शरीर और पार्थिव तत्त्वपर विजय पाता है और साधारण आदमीकी तरह साधारण जीवनके तमस और अंधकारमय परम्परा तथा तामसिक सीमाओंको स्वीकार नहीं करता। वह जीवन् और प्राणको और उसकी शक्तियोंको वशमें रखता है और इच्छाओं तथा लालसाओंका अथवा राजसिक आवेगोंका दास होना स्वीकार नहीं करता। वह मनको और उसकी आदतोंको वशमें करता है। वह अविद्या, पैतृक पक्षपात, व्यावहारिक विचारों, मनपसन्द रायोंका दास नहीं होता वह ढूंढ़ना और चुनना जानता है। वह विशाल बुद्धि और दृढ़ संकलपवाला होता है। वह हर चीजमें सत्य, और धर्मको खोजता है, हर जगह ऊंचाई और आजादी चाहता है।

आर्य जब आत्म-विजय करता है तो आत्म परिपूर्णताकी दृष्टिसे। वह जिसे जीतता है उसे नष्ट नहीं करता, उसे ऊंचा उठाता और पूर्णतर बनाता है। वह जानता है कि शरीर मन और प्राण किसी उच्चतर कार्यके लिये दिये गये हैं, उनकी सीमाओंको लांघकर, उनकी वासनाओंको त्यागकर ऊंचेसे ऊंची चोटीपर चढ़ना चाहिये। वह जानता है कि यह ऊंचाई शून्य नहीं है। वह धरती पर भागवत संकल्प, चेतना, प्रेम और आनन्दके रूपमें प्रकट होती है और जिज्ञासुओंको और ग्रहण कर सकनेकी क्षमता रखनेवालोंको अपने रंगमें रंगती है। वह आर्य उसी उच्च चेतना-

में सेवक, प्रेमी और जिज्ञासु है। वह इसे पाकर अपने काममें प्रेम, आनन्द और ज्ञान उंडेलता है। एक आर्य कार्यकर्ता और योद्धा होता है। वह उच्चतम चेतना तक पहुंचनेके प्रयासमें अपने मन, प्राण और शरीर को पूरी तरह लगा देता है। वह किसी कठिनाईके आगे नहीं झुकता, किसी प्रकारकी थकानको नहीं स्वीकार करता। वह अपने अंदर और सारी धरती पर भगवान्‌का राज्य लानेके लिये युद्ध करता है।

आर्यमें जब पूर्णता आ जाती है तो वही अर्हत बन जाता है। एक परात्पर चेतना है जो सारी सृष्टिके परे होते हुए भी सारी सृष्टिमें व्याप्त है। सृष्टि उसका एक खिलौना है। वह उस चेतनाको पाना चाहता है। वह अपने अहंकी कैदसे निकलकर चराचर जगत्के साथ एकता अनुभव करता है। अपने खेलके लिये परात्पर चेतना संसारके बंधनोंको स्वीकार करती है। वह अहंको इसीलिये स्वीकार करती है ताकि वह बदलकर भगवान्के कार्यका, भगवानके खेलका एक स्वतंत्र केन्द्र बन सके। व्यक्तित्त्वसे परे जाकर खेलके लिये फिरसे उसे स्वीकार करना अपने आपमें एक बहुत बड़ी आहुति है। सच्चा अर्हत वह है जो निम्न चेतनाको ऊपर उठाता है, उच्चतर चेतनाको नीचे धरतीपर लाता है ताकि उच्चतम चेतनाके व्यष्टि, समष्टि और परात्पर रूपोंको अभिव्यक्त करनेमें सहायक हो सके।

(श्रीअरविंदके एक पुराने लेखके आधारपर)

* * *

कविकी दृष्टि

—श्री रवींद्र

अधिकतर कविता मन या प्राण अथवा दोनोंके मिश्रणसे लिखी जाती है। कहीं-कहीं मनसे ऊंचे स्तरोंका प्रकाश दिखाई देता है, जो कविताको उच्चतर स्तरपर पहुंचा देता है। परंतु, ऐसे अवसर कम ही आते हैं। प्राणमय जगत्से आयी हुई कवितामें भावोंकी प्रधानता होती है। इसमें कविता मन या अंतरात्माको तो पूरी तरह संतुष्ट नहीं कर पाती, पर उसके शब्द, उसकी लय और उसका विषय ये सब-के-सब या इनमेंसे कुछ तत्त्व पाठकके ऊपर छा जाते हैं। जिन कविताओंको सुनकर आदमी फड़क उठता है, उसका खून खौल उठता है या वह बिलकुल मस्त हो जाता है, उनमेंसे अधिकतर प्राणमय जगत्से आयी हुई होती हैं। मन और प्राणके भी अनेक स्तर हैं और प्रत्येक स्तरकी प्रेरणा भिन्न प्रकारकी कविताको जन्म देती है। जब हम सुनते हैं —

लाली मेरे लालकी जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

तब, हम देख सकते हैं कि ये पंक्तियां किसी गहरे अनुभवसे निकली हैं। ये पंक्तियां पढ़कर हम इनमें भाषा-सौन्दर्य, छंद या लयकी तलाश नहीं करते (यद्यपि ये चीजें अनुपस्थित नहीं हैं)। यह एक एक गहरे अनुभवसे निकली हुई चीज है और एक निमिष-मात्रके लिए ही सही, हमें भी अपनी लालीमें सराबोर करनेकी शक्ति रखती है।

कई कवि भौतिक मनके उपरले स्तरसे अथवा सौंदर्य और कलामय प्राणसे सीधी प्रेरणा प्राप्त करते हैं और अगर उनकी चेतना जागरित हो, तो वे उस स्तरसे प्रेरणा आनेकी प्रक्रियाको देख भी सकते हैं; कई बार भाषा, छंद प्रभृति भी उसी स्तरसे आते हैं। कभी-कभी कवि ऐसी भाषाका उपयोग करता है, जिसे वह पूरी तरह समझ नहीं पाता; ऐसे छंदका उपयोग करता है, जिससे स्वयं उसके कान परिचित नहीं हैं। ये चीजें कई बार मनके आंतरिक प्रदेशोंसे आया करती हैं। परंतु, यह कह सकना कि कौन-सी पंक्ति किस प्रदेशसे आयी है, किसी विरले जानकारका ही काम है।

कविताका सर्जनात्मक आवेग जब अपनी अभिव्यक्तिके लिए उच्चतम शिखरपर पहुंच जाता है, तब शैली और गतिकी घनता भी अपने तीव्रतम रूपमें प्रकट होती है। इस उच्च शिखरपर पहुंचते-पहुंचते काव्यकी वाणीमें उपस्थित रसवृत्ति, प्राण तथा बुद्धिके तत्त्व आध्यात्मिक तत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। काव्य-शैलीकी संपूर्ण सफलता तब होती है, जब सर्जनका यह उत्कृष्ट बिंदु किसी गहन, उच्च या विशाल आध्यात्मिक दर्शनका मूर्त्त रूप बन जाता है और इस दर्शनमें प्रकट होते हुए सत्यकी सुन्दरताके भाव, उसके विचार-तत्त्व, प्राण और उसकी अभिव्यक्ति आदि प्रेरणाकी ऊंची लहरोंके शिखरपर प्रकट होकर दर्शनके आनंदकी पराकाष्ठाको पहुंच जाते हैं। ऐसे क्षण साधारण कवियोंके जीवनमें तो यदा-कदा ही आते हैं और जब आते हैं, तब मानों उनकी रचनामें बिजली-सी कौंध जाती है अथवा ऐसा लगता है, मानों सहसा द्युलोकके दूतका अवतरण हुआ है। महाकवियोंकी रचनामें ऐसे देवदूतोंका आगमन होता ही रहता है; क्योंकि इन महाकवियोंमें कविदृष्टि और काव्यवाणी हमेशा जागरित रहती है। यह और बात है कि इसमें ज्वार-भाटा आता रहता है, फिर भी इसका अभाव कभी नहीं खटकने पाता।

एक दार्शनिककी विशेषता है उसका विवेकपूर्ण चिंतन और मनन। एक वैज्ञानिककी विशेषता है उसका विश्लेषणात्मक निरीक्षण। इसी भांति कविकी अपनी विशेषता है दृष्टि। साधारण संस्कृतमें कवि शब्द किसी भी काव्यलेखकके लिए प्रयुक्त होता था और काव्य शब्दमें गद्य और पद्य दोनोंका ही समावेश हो सकता था; परंतु वैदिक भाषामें कवि सिर्फ उसीको कहा जाता था, जो सत्यका दर्शन करके उसे शब्दोंमें प्रकट कर सके। प्राचीन आर्योंकी भाषामें कवि और मनीषीमें बहुत अंतर है। मनीषी विचारक है, बुद्धि द्वारा ऊहापोह करके किन्हीं निष्कर्षोंपर पहुंचनेवाला; जब कि कवि बुद्धिसे परे उस ज्ञानके साथ संपर्क रखता है, जो सीधे, दृष्टि तथा आंतरिक ज्योतिके द्वारा वास्तविकता, मुख्य तत्त्वों और वस्तुओंके सत्य-स्वरूपका दर्शन करता है।

आज हम कवि और काव्यके इस रूपसे बहुत दूर आ चुके हैं। अब हम काव्यसे इतनी ही आशा रखते हैं कि वह मनमोहक हो, कर्णमधुर हो और बहुत हुआ तो हमारी रसवृत्तिको संतुष्ट कर सके। आज हम टटपुंजिया पद्य रचनेवालेको, एकके नीचे एक शब्द लिखकर एक विचित्र-सा क्रम बना देनेवालेको भी कवि मान लेते हैं; परंतु आज भी जो सच्ची कविता है, उसके अंदर काव्यके असली सत्यके कुछ कण तो चमकते दिखाई दे ही जाते हैं।

काव्य एक कला है तथा अन्य कलाओंकी तरह इसका कार्य है हमें कुछ दिखलाना। पर, यह देखने-दिखानेका काम हमारी बाह्य इंद्रियोंका न होकर आंतरिक चक्षु और आंतरिक श्रोत्र आदिका है। हमारा कान तो केवल एक दरवाजा है, जिसमेंसे होकर कविता अंदर प्रवेश कर पाती है। कविने जो देखा है, उसे वह हमारी अंदरकी आंखोंके सामने लाकर खड़ा कर देता है। उसने अपनी रचनामें जिस चीजका अनुभव किया है, उसे हमारे अंदर जगा देता है, या यों कहें कि हमारी अंदरकी आंखको खोल देता है। हमारे अंदर इसे जगानेके लिये स्वयं कविके अंदर यह दृष्टि पूरी तरहसे खुली हुई होनी चाहिये। उदाहरणके लिये, एक छोटी-सी पंक्ति ले लीजिये —

मेरे मानसके हरिण आज वनचारी।
मैं बांध न लूंगी तुम्हें, तजो भय भारी॥

जब भरतके साथ सारी अयोध्या रामसे मिलने जंगलमें आयी, तब लक्ष्मणने सुना कि उर्मिला बहुत ही क्षीण हो गयी है, कौन जाने और कितने दिन बच पाये। वे उसे देखनेके लिये उत्सुक हैं, पर डर भी लगता है कि वह प्रबल आकर्षण कहीं उनके कर्त्तव्यपथमें बाधा न डाले। वे सहमे हुए-से दूरसे देख रहे हैं, तभी उर्मिलाके मुंहसे बरबस उपर्युक्त पंक्तियां निकल पड़ती हैं। निश्चय ही, मैथिलीशरणके प्राणने इस अनुभूतिको ठोस रूपमें प्राप्त किया होगा, तभी वह इतनी सजीव हो सकी है।

महान् कवि वे हैं, जिन्होंने जीवनका, मानवका या प्रकृतिका कोई अपूर्व सारगर्भ तथा सहज बोध-द्वारा दर्शन किया हो और जिनकी कविता इस दर्शनको व्यक्त कर सकनेवाली वाणीके साथ उद्भूत हुई हो। होमर, शेक्सपियर, दांते, वाल्मीकि और कालिदास ये सभी ऊपरसे चाहे कितने भी भिन्न क्यों न हो, पर इन सबकी महत्ताका आधार यही है। इनकी गिनती संसारके महाकवियोंमें इसलिय नहीं है कि इनके अंदर विचार-बाहुल्य है अथवा कल्पनाकी विपुलता अथवा भावावेशकी तीव्रता है, जो हमारे अंदर चुभती चली जाती है। हम यह नहीं कहते कि इन लोगोंमें ये विशेषताएं नहीं थीं। किसी एकके अंदर एक विशेषता अधिक है, दूसरेके अंदर दूसरी। परंतु, ये सब विशेषताएं इनके काव्यका आधार न होकर इनकी अभिव्यक्तिमें सहायक-भर थीं। उदाहरणके लिये, अंगरेजी-साहित्यके दो बड़े नाम ले लीजिये —— शेक्सपियर और बेकन। बहुत जमानेतक यह वाद-विवाद चला कि शेक्सपियर जैसा कोई आदमी वस्तुतः पैदा ही नहीं हुआ। उसके नाटक सचमुच बेकनके लिखे हुए थे। परंतु, उस जमानेमें नाटक लिखना बुरा समझा जाता था, इसलिये उसने अपने नाटकोंपर एक जाहिल शेक्सपियरका नाम लिख दिया। परंतु, दोनोंकी कृतियोंको जरा ध्यानसे देखिये। बेकनके एक-एक छोटे निबंधमें इतने ठोस विचार भरे होते हैं, जितने शेक्सपियरके पूरे नाटकमें भी नहीं पाये जाते। परंतु, बेकनके सौ निबंध मिलकर शेक्सपियरका एक नाटक नहीं बना सकते। बेकनने जब काव्य-रचनाका प्रयास किया, तब उसके अंदरके जन्मजात दार्शनिक और विचारकने तथा उसकी अभिव्यक्तिने काव्यकी अभिव्यक्तिको ढक लिया। उसकी तर्कसंगत शैली काव्यमें सफल न हो सकी।

इसके विपरीत, शेक्सपियरमें और चाहे कितनी भी त्रुटियां क्यों न हों, पर उसमें जीवन-दर्शनमेंसे निकलते हुए रूपों, विचारों और प्रतीकोंका एक विपुल प्रवाह है और इसी प्रवाहने शेक्सपियरको नाटककारोंका मुकुटमणि बना दिया। कविमें दृष्टि ही सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। हम कह सकते हैं कि एक आदर्श मौलिक कवि वह है, जो अपने अंदर, अपनी आत्माके अंदर समस्त जगत्को, भगवान्को, प्रकृतिको और इनमें समायी हुई प्रत्येक वस्तुको देख पाता है तथा अपने इस दर्शनको केंद्र बनाकर वहींसे छंद और वाणीके स्वरूपोंके प्रवाहको उद्वेलित करता है। सचमुच, बड़े कवि वे होते हैं, जो इस आदर्श सर्जनको किसी हदतक मूर्त्त रूप दे सकें। वे कवि सत्यश्रुत होते हैं, अर्थात् कविताके प्रेरक सत्य और काव्यकी सच्ची वाणीके देखने और सुननेवाले होते हैं।

आधुनिक कालमें एक बड़ी कठिनाई है। हम प्रत्येक वस्तुको उपयोगिताकी दृष्टिसे तौलते हैं। कला यदि हमारे जीवनमें आदरणीय स्थान पाना चाहे, तो उसे हमारे जीवनके लिये उपयोगी बनना पड़ेगा। केवल सौंदर्यका दर्शन अथवा उसका चित्रण पर्याप्त नहीं है। हम प्रत्येक कविता या चित्रके पीछे छिपे हुए अर्थको जानना-समझना चाहते हैं। निराला और महादेवीकी एक-एक पंक्तिको ठोक-पीटकर उनमेंसे एक संदेश खींच निकालते हैं। हमने बुद्धि और तर्कको इतना ऊंचा स्थान दे रखा है, मानों उन्हें छोड़कर जीवन-संग्राममें और किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं है। आज रवीन्द्रनाथ ठाकुर, इकबाल, गालिब और पंतकी फिलासफीके बारेमें बड़े-बड़े पोथे लिखे जा रहे हैं; परंतु यह सब

ठीक वैसा ही है, जैसा हम पहले कह आये हैं मानो वीणावादिनीकी वीणाकी तंत्रियोंको काटकर आगपर चढ़ाकर अथवा अम्लोंमें डुबोकर संगीतका रहस्य जानना। आजका संसार कविसे यह आशा करता है कि वह मानव-जातिको ऊंचा उठायगा, उसे एक निश्चित दिशामें ले जायगा। इस दृष्टिसे 'चल चल रे नौजवान' या 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' या 'बनो दृढांग मारो छलांग' की गिनती अच्छी कवितामें होनी चाहिये। परंतु, श्रीअरविन्दके मतानुसार जब यह कहा जाता है कि कवि सत्यका द्रष्टा होता है और उसके उच्च कोटिके काव्यका उत्स भगवान्, देवता, जीवन, प्रकृति या मानवके क्रांत दर्शनमें होता है, तब उसका यह मतलब नहीं है कि उसका एक बौद्धिक दर्शन भी होना चाहिये अथवा उसे मानव-समाजके लिये कोई संदेश देना ही चाहिये, जिसे वह अपनी विशेष योग्यताके कारण छंद और तालमें बांधकर और कल्पनाओंसे संजोकर धरतीको भेंट करे। इन सब चीजोंसे उसे कुछ प्रेरणा मिल सकती है, इनमें अपने भावको व्यक्त करनेकी सामग्री मिल सकती है। परंतु, उसके पहले इन्हें काव्यकी आत्माद्वारा काव्यमय दृश्य अथवा जीवनमें परिणत होना होगा। ये तत्त्व गौण रूपमें तो रह सकते हैं, परंतु न तो काव्यकी आत्माका स्थान ले सकते हैं, न उसके उद्देश्य बन सकते हैं और न ही कविताके राज्यमें आकर विधि-विधान बनानेकी धृष्टता कर सकते ह।

(श्रीअरविंदकी पुस्तक 'फ्यूचर पोएट्री' के आधारपर)

------ : ० : ------

विद्यालयमें नन्हा-मुन्ना

(मांके साथ संबंध)

जब बच्चा स्कूल जाने लगता है तो मां-बाप (विशेषकर मां क्योंकि वही सारे दिन घरमें रहती है) ठंडी सांस लेकर कहते हैं कि चलो पीछा छूटा, अब घरमें जरा शांति रहेगी। नहीं तो बस, नाकमें दम था।

हां, यह बात तो है कि अब बच्चा ज्यादासे ज्यादा समय स्कूलमें गुजारेगा और मांके सिरका बोझ हल्का होगा। मगर एक बात है कि इससे यह मत समझिये कि आपके सिरसे बिल्कुल बोझ उतर गया। आपका फर्ज है यह जानें कि आपका बच्चा स्कूलमें किस तरह पेश आता है, कुछ पढ़ता-लिखता भी है या बस यों ही नाममात्रको स्कूल जाता है। आप कम-से-कम महीनेमें एक बार उसकी अध्यापिकासे मिलिये और उसके बारेमें जानकारी प्राप्त करिये। इस बातपर मैं इसलिये जोर डालती हूं क्योंकि अभीतक बच्चा बहुत छोटा है और अपना भला-बुरा नहीं समझता। अभी उसको एक बहुत बड़ी मंजिल तय करनी है। और बचपनसे आपको उसकी मंजिलके लिये दायित्व लेना होगा। नहीं तो बचपनसे बच्चा लापरवाह होगा तो बस, आगेकी बातका तो कहना ही क्या है।

तो मैं किस विषयसे किसपर आ गयी! हां, तो आपको कमसे कम महीनेमें एक बार उसकी अध्यापिकासे मिलकर यह जानना चाहिये कि वह कितने पानीमें है। आप यह मत समझिये कि वह स्कूल जाता है तो कुछ-न-कुछ तो सीखता होगा, फिर क्या है। हां, वह कुछ-न-कुछ तो सीखता ही है आखिर वह कबतक भोंदू बना बैठा रह सकता है। मगर क्या वह और बच्चोंके साथ-साथ है या पिछड़ा हुआ है? वह क्लासमें किसी तरह चल भी पाता है या नहीं। इन बातोंका जानना आवश्यक

है और अगर बच्चा क्लासके साथ नहीं चल पाता तो आपका कर्तव्य है कि उसे समझायें और घरमें भी कुछ करनेका प्रयत्न करें ताकि बच्चा फिसड्डी न रह जाय। इन मासूम बच्चोंकी गाड़ीकी गति अभीसे धीमी हो गयी तो आगे चलकर शायद कहीं रुक ही जाय। एक तो वह फेल होता जायगा दूसरे छोटे बच्चोंकी क्लासमें रहनेसे उसमें हीनभावना पैदा होगी और वह पछतायेगा। इसलिये इन सब बातोंको ध्यानमें रखना बहुत जरूरी है। अभी बच्चा छोटा है, जब बड़ा होगा तो अपना दायित्व आप लेगा तब कहीं जाकर आप कह सकेंगे कि हमारा बोझ उतर गया मगर अभी नहीं।

यह हुई बच्चेके मां-बापकी बात। अब अध्यापिकाकी बात लीजिये। जब मां-बाप बच्चेके बारेमें कुछ जानना चाहते हैं तब अध्यापिकाको कैसे पेश आना चाहिये। मैं इस विषयको काफी मजेदार समझती हूं, शायद आप नहीं समझे। क्यों? जब मैं नयी-नयी पढ़ाने गयी थी तब मेरे सामने इस तरहकी समस्याएं खड़ी होती थीं। कई मां-बाप आकर अपने बच्चेके बारेमें जानकारी प्राप्त करना चाहते थे और मैं काफी दुविधामें पड़ जाती थी क्योंकि कभी-कभी बच्चा स्कूलमें बिलकुल कुछ नहीं करता था मगर मेरे होठोंपर सच्चाई आकर भी व्यक्त नहीं होती थी। मैं समझती थी कि बेचारे कितनी आशासे अपने बच्चेके बारेमें दो-चार प्रशंसाभरे शब्द सुननेके लिये आये हैं, मैं कैसे उन्हें निराश कर दूं। सब कुछ-न-कुछ आशा करते हैं और कई तो समझते भी हैं कि उनका बालक सबसे मेधावी है। मेरी समझमें नहीं आता था कि क्या करूं, मुझे उनके मनके शीशमहलको ठोकर मारते ठेस पहुंचती थी। मैं ऐसे ही हंसीमें बातको उड़ानेका प्रयत्न करती थी।

मगर अब मुझे चार साल हो गये स्कूलमें उन नन्हें-मुन्नोंको पढ़ाते। अब मैंने काफी कुछ सीखा है, कुछ तो देख-सुनकर और कुछ अनुभवसे। मुझे अनुभवोंने बहुत कुछ सिखा दिया है और मैं सच्चाईको व्यक्त करनेमें बिलकुल नहीं सकुचाती। मैंने यह जान लिया है कि बच्चेके मां-बापको भ्रममें रखना उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय है। वे जब अपने बच्चेके बारेमें कुछ जानना चाहते हैं तब हमारा कर्तव्य है कि उनके सामने बातको स्पष्ट रूपमें रखें। वे अपने बच्चेके असली रूपको खूब जानते हैं। इसलिये उनसे कुछ छिपाना टेढ़ी खीर है। हमें एक डाक्टरकी तरह होना पड़ता है जिसे मरीजकी बीमारीके बारेमें साफ-साफ बताना ही ठीक है ताकि वह सब तरफसे जागृत रह सके। हां, तो हमें उनको साफ कह देना चाहिये कि उनका बच्चा कितने पानीमें है। उन्हें भ्रममें रखना ठीक नहीं क्योंकि उस भ्रमके कारण वे न जाने कितने शीशमहल तैयार कर लेंगे जो जरा-सी ठोकर लगनेपर टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर पड़ेंगे या तो धूलमें मिल जायेंगे, और नही तो उन्हें ही वह शीशे चुभेंगे। इसलिये बेचारोंको असलियतसे बेखबर मत रखिये और उन्हें बच्चेकी मंजिल तय करनेमें सहायक होने दीजिये। यह अध्यापिकाके लिये सहायता ही होगी क्योंकि आखिर वह इतने सारे बच्चोंमें एकपर इतना समय नहीं लगा सकती।

लेकिन उनके सामने निराशाभरी बात रखनेका भी ढंग होता है जिससे गंभीर बात भी उनको ठेस न पहुंचा सके। आप कुछ खुश-मिजाजसे और जरा हल्के ढंगसे चीजको रखिये ताकि सुननेवालेको बुरा न लगे और आपकी बात भी उनतक ठीक ढंगसे सच्चाईके साथ पहुंचे। और साथ-साथ आशा भी बंधा दीजिये कि इसका सुझाव निकल ही आयेगा। और आप भी भरसक प्रयत्न कीजिये। दोनों तरफसे कोशिश चलेगी तो कभी तो सफलता हाथ लगेगी ही।

मैंने यह विषय इसलिये लिया है क्योंकि मैं समझती हूं कि कई अध्यापकों और अध्यापिकाओंके सामने इस तरहकी समस्याएं खड़ी होती होंगी और इसलिये मुझे यह प्रश्न ज्यादा मजेदार लगा।

—अंजना शर्मा

फ्रैंच सीखिये

पाठ ४ Leçon 4

La famille (ला फ़ामीय्) परिवार

le papa	(ल पापा)	पिता	la maman	(ला मामाँ)	मां
le père	(ल पै...र)	पिता	la mère	(ला मै...र)	मां
le frère	(ल फ़्रै...र)	भाई	la sœur	(ला स...र)	बहिन
l'oncle	(लौँक्ल)	चाचा, मामा, फूफा आदि	la tante	(ला ताँत)	चाची, मौसी, फुआ आदि
le fils	(ल फ़ीस्)	पुत्र	la fille	(ला फ़ीय्)	पुत्री
le mari	(ल मारी)	पति	la femme	(ला फ़ाम)	पत्नी
l'ami	(लामी)	मित्र	les parents	(ले पाराँ)	माता-पिता
l'enfant	(लाँफ़ाँ)	बच्चा	le bébé	(ल बेबे)	बच्चा

नोट :— जिस स्वरके बाद (...) चिह्न हो उसे कुछ लंबा खींचकर बोला जाय।

विशेषण l'adjectif **(लाद्जँक्तिफ़)**

mon	(मौं)	मेरा	ton	(तौं)	तेरा	son	(सौं)	उसका
ma	(मा)	मेरी	ta	(ता)	तेरी	sa	(सा)	उसकी
mes	(मे)	मेरे या मेरी	tes	(ते)	तेरे या तेरी	ses	(से)	उसके या उसकी

क्रिया –होना Verbe être **(ऐत्र)**

Je suis (ज सुई) मैं हूं।	Nous sommes (नू (सौम) हम हैं।
Tu es (त्यू ए) तू है।	Vous êtes (वू ज़ैत) तुम हो।
Il est (इल ए) वह है। (पु. लिंग)	Ils sont (इल सौँ) वे हैं।
Elle est (ॲल ए) वह है। (स्त्रीलिंग)	Elles sont (ॲल सौँ) वे हैं।

Jacques est mon frère. (जाक ए मौं फ़्रै...र) जाक मेरा भाई है।
Isabelle est ma sœur. (इज़ाबॅल ए मा स...र) इज़ाबल मेरी बहिन है।
Je suis dans ta chambre. (ज सुई दां ता शाम्ब्र) मैं तेरे कमरेमें हूं।

Tu es devant ta maison. (त्यू ए दवां ता मेज़ौँ) तू अपने घरके सामने है।
Paul est son fils. (पौल ए सौं फ़ीस्) पौल उसका लड़का है।
Elles sont mes sœurs. (ॲल सौं मे स...र्) वे मेरी बहिने हैं।
Est-ce que ce sont tes crayons ? (ॲस क स सौं ते क्रेइयौँ ?) क्या ये तुम्हारी पेंसिलें हैं ?
Nous sommes dans le jardin. (नू सौम दां ल जारदैं ?) हम बागमें हैं।

Est-ce qu'il est dans l'école ? (अॅस कि ल ए दां लेकॉल ?) क्या वह स्कूलमें है ?
Non, il n'est pas dans l'école. (नौं, इल ने पा दाँ लेकॉल) नहीं, वह स्कूलमें नहीं है।
Où est ton cahier ? (ऊ ए तौं काइए) तेरी कापी कहां है ?
Il est dans mon sac. (इल ए दाँ मौँ साक्) वह मेरे थैलेमें है।

नोट :— वाक्यमें ne . . . . pas लगानेसे वह नकारात्मक बन जाता है। être धातुके नकारात्मक रूप वर्तमान कालमें इस प्रकार हैं :—

Je ne suis pas (ज न सुई पा) मैं नहीं हूं।

Tu n'es pas (त्यू ने पा) तू नहीं है।
Il n'est pas (इल ने पा) वह नहों है। (पु.)
Elle n'est pas (अॅल ने पा) वह नहीं है। (स्त्री.)
Nous ne sommes pas (नू न सौम पा) हम नहीं हैं।
Vous n'êtes pas (वू नैत पा) तुम नहीं हो।
Ils ne sont pas (इल न सौँ पा) वे नहीं हैं।
Elles ne sont pas (अॅल न सौँ पा) वे नहीं हैं।

वर्तमान कालमें avoir धातुके नकारात्मक रूप :—

Je n'ai pas (ज ने पा) मैं नहीं रखता हूं या मेरे पास नहीं है।
Tu n'as pas (त्यू ना पा) तेरे पास नहीं है।
Il n'a pas (इल ना पा) उसके पास नहीं है।
Elle n'a pas (अॅल ना पा) उसके पास नहीं है।
Nous n'avons pas (नू नावौँ पा) हमारे पास नहीं हैं।
Vous n'avez pas (वू नावे पा) तुम्हारे पास नहीं हैं।
Ils n'ont pas (इल नौँ पा) उनके पास नहीं हैं।
Elles n'ont pas (अॅल नौं पा) उनके पास नहीं हैं।

नोट :— avoir क्रियाके साथ नकारात्मक वाक्योंमें बहुवचन संज्ञा शब्दके पूर्व des के स्थानपर de प्रयुक्त होता है।

Je n'ai pas de fleurs. (जने पा द फ़लर्) मेरे पास फूल नहीं हैं।
Il n'a pas de ballons. (इल ना पा द बालौं) उसके पास गेंद नहीं हैं।
Hélène n'a pas de poupées. (एलैन ना पा द पूपे) हेलैन के पास गुड़िया नहीं है।
Est-ce que ton père est là? (अॅस क तौं पै....र ए ला ?) क्या तेरे पिता वहां हैं ?
Non, mon père n'est pas là, mais ma mère est là.
(नौँ मौँ पै...र ने पा ला मे मा मै...र ए ला) नहीं मेरे पिता वहां नहीं हैं किंतु मेरी मां वहां हैं।
Son fils n'a pas de cheval. (सौं फ़ीस ना पा द शवाल्) उसके पुत्र के पास घोड़ा नहीं है।

***

अनाज में

किफायत करने का अब समय आ गया है!

क्यों ?

इसलिए कि, सूखा-ग्रस्त इलाकों में रहने वाले हमारे लाखों करोड़ों भाई मुसीबत में हैं। आने वाले एक-दो महीनों में खेतों से कुछ नहीं मिलेगा, इसलिये, अनाज को बचाकर रखना है। अनाज की कमी को पूरा करने के लिये उसकी खपत कम करना जरूरी है।

कैसे ?

बड़ी दावतों पर रोक लगाइये। अतिथि नियंत्रण कानून का पालन कीजिये। अनाज वाले और अनाज रहित खानों पर हाथ रोकिये। भोजन में अनाज कम तथा फल-सब्जियां या मांस-मछली का इस्तेमाल अधिक कीजिये।

अनाज बचाना
अनाज पैदा करने के बराबर है !

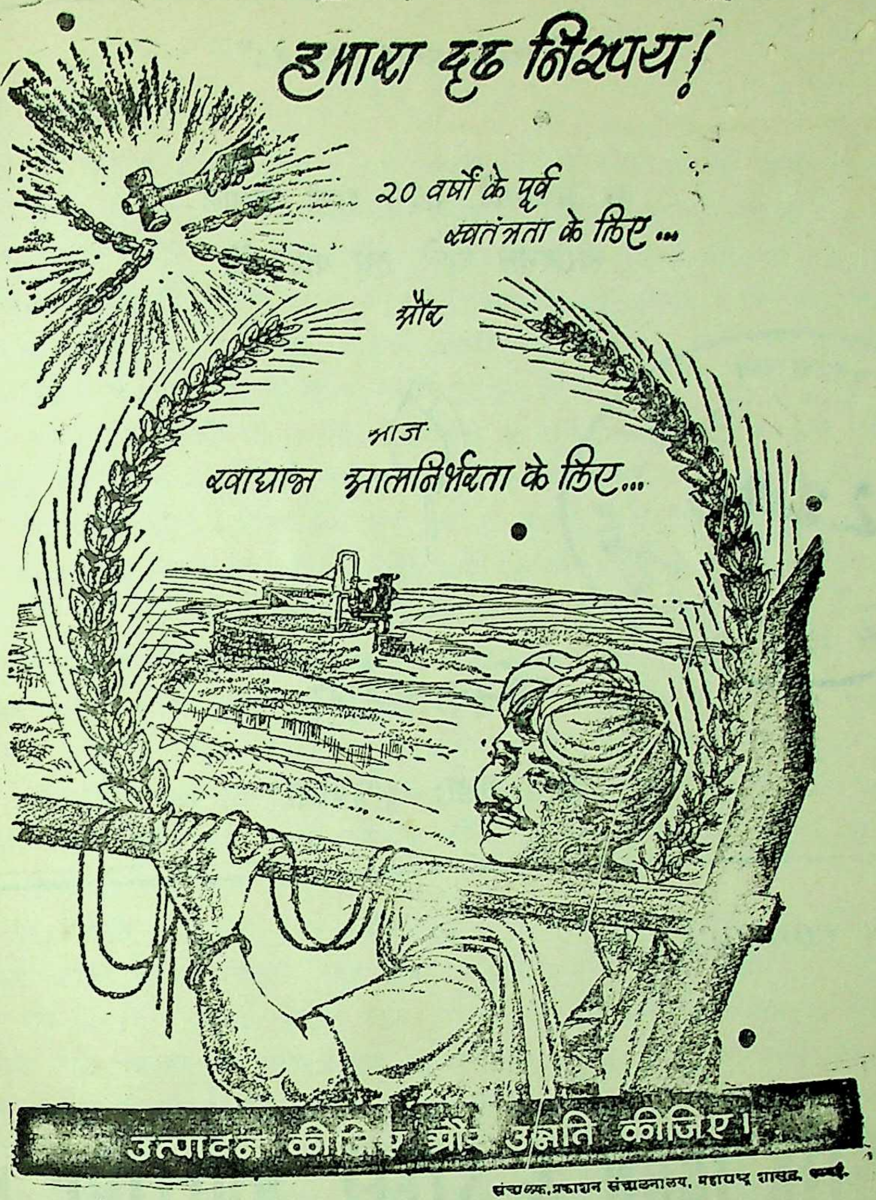
हमारा दृढ़ निश्चय!
२० वर्षों के पूर्व
स्वतंत्रता के लिए...
और
आज
खाद्यान्न आत्मनिर्भरता के लिए...
उत्पादन कीजिए और उन्नति कीजिए।

संचालक, प्रकाशन संचालनालय, महाराष्ट्र शासन, [illegible]

With best compliments from:

M/s. Kalinga Tubes Ltd.,
33, Chittaranjan Avenue,
CALCUTTA-12

WORKS:
CHOUDWAR, CUTTACK, ORISSA.

"श्रीअरविंद हमारे साथ हैं।"

—श्रीमाताजी

हर प्रकारकी चादर, शाल दोशाले
खरीदनेसे पहले हमें याद रखें

यूनिक स्टोर्स
घास मंडी; लुधियाना

पुस्तकालय
112290
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

Always contact :—

SWASTIK IRON & STEEL ROLLING MILLS

Registerd Re-rollers (Scrap)
Mandi Gobindgarh (Punjab)

Office Phone : 116
Residence : 36

For

All types of conduit Pipe Flats
at most competitive rates

Personal Attention our speciality

जादुई जड़ी

पास्कालके न मां-बाप थे न भाई-बहिन। वह अपनी चाचीके साथ अकेला रहता था। चाचीका स्वभाव बहुत अच्छा न था। बेचारा पास्काल हमेशा डांट-फटकार पाता रहता था। और बच्चोंकी तरह वह भी हररोज सवेरे विद्यालयके लिये चल पड़ता था। रास्ता लंबा था और वह हमेशा घास-पात, कीड़े-मकोड़े आदिको देखता जाता था। विद्यालयमें वह हमेशा सपने देखा करता था। एक बार उसकी अध्यापिकाने कहा, अपना गृह-कार्य अच्छी तरह करना। दूसरे दिन गृहकार्य तो रहा एक तरफ वह फूलोंका एक सुन्दर-सा गुलदस्ता लेकर हाजिर हो गया।

रास्तेके सब जानवरोंसे उसकी दोस्ती थी। यहांतक कि चूहे जिनसे साधारण बच्चे डरते हैं —— वे भी उसके दोस्त थे। एक बार उसने चूहोंके एक परिवारको सांपके मुखसे बचाया था। जैसे ही वह चलने लगा कि दादा चूहेने बुलाया —— ठहरो, मैं इस नेकीके बदले तुम्हें कुछ देना चाहता हूं। चूहा गायब हो गया और थोड़ी देर बाद एक छोटी-सी पुरानी जड़ लेकर वापिस आया। जड़ पास्कालके हाथमें देते हुए उसने कहा, यह लो मेरी भेंट। यह एक साधारण भेंट नहीं है। यह जड़ तुम्हारा सब कुछ काम कर सकेगी। मान लो तुम्हें कुछ काम करना हो और उसी समय तुम्हें कहीं जाना हो तो इस जड़को अपनी कुरसीपर रख देना। यह तुम्हारा रूप धारण करके तुम्हारा काम कर देगी और तुम मौजसे घूम-फिर सकोगे। यह कहकर चूहा अपने बच्चोंको लेकर चला गया।

पास्कालको बहुत ही अचंभा हुआ। उसे चूहेकी बातपर रत्तीभर विश्वास न हुआ। उसने अपना भेद किसीको नहीं बताया और घर जाकर तकियेके नीचे छिपाकर सो गया। उसे डर था कि उसकी चाची कहीं उसके रहस्यको जान न ले।

दूसरे दिन विद्यालयके बाद वह अपने कमरेमें घुसा। उस जड़पर हाथ फेरा और खाने चला गया। खा-पीकर अपना काम करनेकी जगह उसने जड़की परीक्षा करनेकी ठानी। उसने जड़को अपनी कुरसीपर रख दिया। सामने किताबें और कापियां धर दीं और अपने-आप खिड़कीमेंसे उड़ंछू हो गया। लेकिन बाहर जाकर भी पास्कालका मन न लगा। वह अपने घर लौट आया। उसने खिड़कीमेंसे देखा उसकी कुरसीपर ठीक उसीके जैसा एक लड़का बैठा है। पास्कालने सोचा चलो इससे बातचीत करें। परंतु वह लड़का तो बहरा मालूम होता था। उसने सिरतक न उठाया। और इतना ही नहीं पास्काल उसके पास पहुंचा तो वह गायब हो गया। परंतु पास्कालने देखा कि वह इसकी कापियोंमें इसका गृहकार्य बड़ी अच्छी तरहसे पूरा कर गया है। आह, क्या मौज है!!

उस दिनसे पास्कालने रोज-रोज यही चालाकी करनी शुरू कर दी।

एक दिन पास्काल घूम फिरकर लौटा तो रोजकी तरह उस बालकके पास गया। आज वह बालक गायब न हुआ। वह खड़ा हो गया और बोला —— लो मुझे पकड़ो। मैं तुम्हें एक सप्ताह देता हूं, इस बीच मुझे न पकड़ पाये तो मैं तुम्हारा स्थान ले लूंगा और तुम मेरी जगह जड़ बन जाओगे।

पास्काल डरके मारे कांप उठा। दौड़ शुरू हुई। पास्काल थककर चूर हो गया पर कोई नतीजा न निकला। छः दिन बीत गये। अचानक निराशामेंसे आशा पैदा हुई। पास्कालको उस चूहेका ख्याल हो आया और वह दौड़ा-दौड़ा उसके पास पहुंचा। चूहेने कहा, ओह, तू बड़ा आलसी है। अपना सारा काम दूसरोंके सिर डालना चाहता है। ले फिर उसका नतीजा। लेकिन तूने हमेशा जानवरों और कीड़े-मकोड़ोंसे अच्छा व्यवहार किया है इसलिये मैं तुझे बचाये देता हूं। अब घर जा, शामको तेरे तकियेके नीचे वह जड़ फिरसे आ जायगी। उसे लेकर जला देना।

पास्कालने चूहेको धन्यवाद दिया और अपने घर चला गया।

उसके बादसे किसीने पास्कालको आलस्य करते नहीं देखा।

——सूजान

112290

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R N 8837/65
M 8127

Sri Aurobindo
is constantly
among us and
reveals himself
to those who are
ready to see and
hear him

Blessings

*

श्रीअरविंद सदा हमारे बीचमें हैं। जो उन्हें देखने और उनकी बात सुननेके लिये तैयार हैं उनके सामने प्रकट होते हैं।

—श्रीमां

Compiled
1999-2000